A single jurist is more severe against Satan than a thousand worshippers.

**Fatawa 'Alamgiri** Modern Urdu

(Volume Eight)

**Simplification and Headings:** Maulana Abu Obaid Ullah Preacher, Jamia Masjid Tuhfa-e-Fasteen Defence Road, Lahore

**Translator:** Maulana Syed Amir Ali (May Allah have mercy on him) Author of Tafsir Mawahib-ur-Rahman, Ain-ul-Hidayah, etc.

---

• Book of the Authorized Representative (Al-Ma'zun)
• Book of Usurpation (Al-Ghasb)
• Book of Pre-emption (Al-Shufa')
• Book of Partition/Distribution (Al-Qismah)
• Book of Sharecropping (Al-Muzara'ah)
• Book of Dealings/Transactions (Al-Mu'amalah)
• Book of Slaughters (Al-Zaba'ih)
• Book of Sacrifice (Al-Adhiyah)

---

**Maktaba Rahmaniyah** Iqra Center, Ghazni Street - Urdu Bazar - Lahore

एक फकीह (विद्वान) शैतान पर एक हजार आबिदों (इबादत करने वालों) से ज्यादा भारी है।

**फ़तावा आलमगीरी** आधुनिक उर्दू

(आठवां खंड)

**सरलीकरण और शीर्षक:** मौलाना अबू उबैद अल्लाह खतीब जामे मस्जिद तोहफा-ए-फ़स्तीन डिफेंस रोड लाहौर

**अनुवादक:** मौलाना सैयद अमीर अली (रहमतुल्लाहि अलैह) लेखक: तफ़्सीर मवाहिबुर्रहमान और ऐनुल हिदाया इत्यादि

---

- किताब-अल-माज़ून (अनुमति प्राप्त व्यक्ति का अध्याय)
- किताब-अल-ग़सब (छीनने/अन्यायपूर्ण कब्ज़े का अध्याय)
- किताब-अल-शुफ़ा (पूर्व-क्रय अधिकार का अध्याय)
- किताब-अल-क़िस्मत (बंटवारे का अध्याय)
- किताब-अल-मुज़ारआत (साझेदारी की खेती का अध्याय)
- किताब-अल-मुआमला (लेन-देन का अध्याय)
- किताब-अज़-ज़बाइह (हलाल तरीके से ज़बह करने का अध्याय)
- किताब-अल-अज़हिया (कुर्बानी का अध्याय)

---

**मकतबा रहमानिया** इकरा सेंटर, गज़नी स्ट्रीट - उर्दू बाज़ार - लाहौर

---

فَقِيهٌ وَاحِدٌ اَشَدُّ عَلَى الشَّيْطَانِ مِنْ اَلْفِ عَابِدٍ

**فَتَاوٰی عَالَمْگِیری** جدید اردو

(جلد ہشتم)

**تسہیل وعنوانات:** مولانا ابو عبید اللہ خطیب جامع مسجد تحفہ فسطین ڈیفنس روڈ لاہور

**مترجم:** مولانا سید امیر علیؒ مصنف تفسیر مواہب الرحمن وعین الہدایہ وغیرہ

---


- کتاب الماذون
- کتاب الغصب
- کتاب الشفعہ
- کتاب القسمۃ
- کتاب المزارعۃ
- کتاب المعاملۃ
- کتاب الذبائح
- کتاب الاضحیۃ


---

**مکتبہ رحمانیہ** اقراء سنٹر غزنی سٹریٹ۔ اردو بازار۔ لاہور

---

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful.

All rights are reserved by the publisher.

Book Name — Fatawa-e-Alamgiri (Modern Urdu) Translator — Maulana Syed Ameer Ali (Rahmatullah Alayh) Simplification & Headings — Maulana Abu Ubaidullah Correction — Tariq Ismail Salafi (M.A. Islamic Studies) Press — Ali Ejaz Printers Publisher — Maktaba Rahmania

Appeal By the grace and mercy of Allah Almighty, utmost care has been taken in composing, printing, proofreading, and binding, according to human capacity and resources. Due to human fallibility, if any error is noticed or if pages are not correct, please kindly inform us. God willing, it will be rectified. We will be extremely grateful for the identification of any such issues. (Management)

बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम

सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं।

पुस्तक का नाम — फतावा आलमगीरी (आधुनिक उर्दू) अनुवादक — मौलाना सैयद अमीर अली (रहमतुल्लाह अलैह) सरलीकरण और शीर्षक — मौलाना अबू उबैदुल्लाह संशोधन — तारिक इस्माइल सलफी एम.ए. इस्लामियात छापाखाना — अली एजाज प्रिंटर्स प्रकाशक — मकतबा रहमानिया

अनुरोध अल्लाह तआला के फजल-ओ-करम से मानवीय शक्ति और क्षमता के अनुसार लिखाई, छपाई, संशोधन और जिल्द साजी में पूरी सावधानी बरती गई है। मानवीय स्वभाव के कारण यदि कोई गलती नजर आए या पन्ने सही न हों तो कृपया सूचित करें। इंशाअल्लाह उसका निवारण किया जाएगा। हम इंगित करने के लिए बहुत आभारी होंगे। (प्रबंधन)

بسم اللہ الرحمن الرحیم

جملہ حقوق بحق ناشر محفوظ ہیں۔

نام کتاب — فتاویٰ عالمگیری (جدید اردو) مترجم — مولانا سید امیر علی رحمتہ اللہ علیہ تسہیل و عنوانات — مولانا ابو عبید اللہ تصحیح — طارق اسمٰعیل سلفی ایم اے اسلامیات مطبع — علی اعجاز پرنٹرز ناشر — مکتبہ رحمانیہ

استدعا اللہ تعالیٰ کے فضل و کرم سے انسانی طاقت اور بساط کے مطابق کتابت، طباعت، تصحیح اور جلد سازی میں پوری پوری احتیاط کی گئی ہے۔ بشری تقاضے سے اگر کوئی غلطی نظر آئے یا صفحات درست نہ ہوں تو ازراہ کرم مطلع فرمادیں۔ ان شاء اللہ ازالہ کیا جائے گا۔ نشاندہی کے لئے ہم بے حد شکر گزار ہوں گے۔ (ادارہ)

## Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Index


| Page | Content |
|---|---|
| 70 | **Chapter 9:** Regarding testimony against an authorized slave (Ma'dhun), a restricted slave (Mahjur), a minor, and an insane person. |
| 73 | **Chapter 10:** Regarding the invalid sale (Bay' Fasid) by an authorized slave and the legal deceptions (Ghurur) of an authorized slave or a child. |
| 78 | **Chapter 11:** Regarding an offense committed by an authorized slave or his slave, or an offense committed against him by someone else. |
| 83 | **Chapter 12:** Regarding the permission for trade given to a minor, an insane person, or their slaves by their father, executor (Wasi), or judge (Qadi). |
| 88 | **Chapter 13:** In miscellaneous matters. |
| 97 | **Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)** **Chapter 1:** Regarding the definition, |
| 11 | **Kitab al-Ma'dhun (The Book of the Authorized Slave)** **Chapter 1:** Regarding the legal definition of authorization (Idhn), its pillars, conditions, and rulings. |
| 15 | **Chapter 2:** Regarding matters that are deemed permitted for trade and those that are not. |
| 29 | **Chapter 3:** Regarding things that a slave can own and those he cannot own. |
| 45 | **Chapter 4:** Regarding issues of debt incurred by an authorized slave and the master's disposal of the slave (through arrangement, manumission, etc.). |
| 52 | **Chapter 5:** Regarding things that cause an authorized slave to become restricted (Mahjur) and things that do not. |
| | **Chapter 6:** Regarding the admissions/ confessions (Iqrar) made by an authorized slave and his master. |

| Page | Content |
| --- | --- |
| | conditions, methods, rulings, and appendices of usurpation (Ghasb). |
| 99 | **Chapter 2:** Regarding usurped property becoming worthless due to the act of the usurper or someone else. |
| 112 | **Chapter 3:** Regarding cases in which liability (Daman) is not mandatory upon the destruction of property. |
| 63 | **Chapter 7:** Regarding a slave shared by two persons and authorization for one authorized slave to inflict legal punishment (Hadd). |
| 66 | **Chapter 8:** Regarding the disputed litigation that occurs between an authorized slave and his master after the slave becomes restricted (Mahjur). |

# फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द ८ फ़ेहरिस्त (अनुक्रमणिका)


| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| | **अध्याय ९:** |
| ७० | अधिकृत (माज़ून), प्रतिबंधित (महजूर), नाबालिग और विक्षिप्त गुलामों के विरुद्ध गवाही के विवरण में। |
| | **अध्याय १०:** |
| ७३ | अधिकृत गुलाम की अवैध बिक्री (बै' फासिद) और अधिकृत गुलाम तथा बालक के धोखे (ग़ुरूर) के विवरण में। |
| | **अध्याय ११:** |
| ७८ | अधिकृत गुलाम या उसके गुलाम द्वारा किए गए अपराध, या किसी व्यक्ति द्वारा उस पर किए गए अपराध के विवरण में। |
| | **अध्याय १२:** |
| ८३ | नाबालिग, विक्षिप्त, या उनके गुलामों को उनके पिता, वसीयतदार (वसी) या न्यायाधीश (काज़ी) द्वारा व्यापार की अनुमति देने के विवरण में। |
| | **अध्याय १३:** |
| ८८ | विविध मामलों में। |
| | **किताब अल-ग़सब (हड़पने की पुस्तक)** |
| ९७ | **अध्याय १:** |

| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| | **किताब अल-माज़ून (अधिकृत गुलाम की पुस्तक)** |
| ११ | **अध्याय १:** कानूनी अनुमति (इज़्न) की परिभाषा, स्तंभ, शर्तें और निर्णयों के विवरण में। |
| | **अध्याय २:** |
| | उन मामलों के विवरण में जो व्यापार के लिए अनुमत माने जाते हैं और जो नहीं माने जाते। |
| | **अध्याय ३:** |
| १५ | उन चीजों के विवरण में जिनका गुलाम मालिक हो सकता है और जिनका वह मालिक नहीं हो सकता। |
| | **अध्याय ४:** |
| २९ | अधिकृत गुलाम पर ऋण चढ़ने और स्वामी द्वारा गुलाम का निस्तारण (जैसे तदबीर या दासमुक्ति आदि) करने के मसलों के विवरण में। |
| | **अध्याय ५:** |
| ४५ | उन कारणों के विवरण में जिनसे अधिकृत गुलाम प्रतिबंधित (महजूर) हो जाता है और जिनसे नहीं होता। |
| ५२ | |

| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| | ग़सब (हड़पना) की परिभाषा, शर्त, मार्ग, निर्णय और परिशिष्टों के विवरण में। |
| | **अध्याय २:** |
| ९९ | हड़पने वाले या किसी अन्य के कृत्य से हड़पी गई संपत्ति के तुच्छ हो जाने के विवरण में। |
| | **अध्याय ३:** |
| ११२ | उन स्थितियों के विवरण में जिनमें संपत्ति नष्ट होने पर हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होता। |
| | **अध्याय ६:** |
| ६३ | अधिकृत गुलाम और उसके स्वामी के स्वीकारोक्ति (इकरार) के विवरण में। |
| | **अध्याय ७:** |
| ६६ | दो व्यक्तियों के साझा गुलाम और एक अधिकृत गुलाम को सजा (हद) देने की अनुमति के विवरण में। |
| | **अध्याय ८:** |
| | अधिकृत गुलाम के प्रतिबंधित होने के बाद उसके और स्वामी के बीच होने वाले विवादों के विवरण में। |

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ۸ فہرست**


| صفحہ | مضمون |
|---|---|
| | **باب : ۹** |
| ۷۰ | غلام ماذون و محجور و نابالغ و معتوہ پر گواہی واقع ہونے کے بیان میں |
| | **باب : ۱۰** |
| ۷۳ | غلام ماذون کی بیع فاسد اور ماذون کے غرور و طفل کے غرور کے بیان میں |
| | **باب : ۱۱** |
| ۷۸ | ماذون یا ماذون کے غلام کی جنایت کرنے یا اُس پر کسی شخص کے جنایت کرنے کے بیان میں |
| | **باب : ۱۲** |
| ۸۳ | نابالغ و معتوہ یا اُن دونوں کے غلام کو اُن کے باپ یا وصی یا قاضی کی تجارت کی اجازت دینے کے بیان میں |
| | **باب : ۱۳** |
| ۸۸ | متفرقات میں |

| صفحہ | مضمون |
|---|---|
| | **کتاب الماذون** |
| | **باب : ۱** |
| ۱۱ | اذن کی تفسیر شرعی اور رکن و شرط و حکم کے بیان میں |
| | **باب : ۲** |
| ۱۵ | جو امور تجارت کے واسطے اجازت قرار پاتے ہیں اور جو نہیں قرار پاتے |
| | **باب : ۳** |
| ۲۹ | ان چیزوں کے بیان میں جن کا غلام مالک ہوتا ہے اور جس کا مالک نہیں ہوتا |
| | **باب : ۴** |
| ۴۵ | ماذون پر قرضہ چڑھ جانے اور مولیٰ کا ماذون میں بطور یا تدبیر و اعتقاق وغیرہ کے تصرف کرنے کے مسائل کے بیان میں |

| مضمون | صفحہ |
|---|---|
| **باب : ۵** | |
| جس سے ماذون محجور ہو جاتا ہے اور جس سے محجور نہیں ہوتا ہے | ۵۲ |
| **باب : ۶** | |
| غلام ماذون اور اُس کے مولیٰ کے اقرار کے بیان میں | ۶۳ |
| **باب : ۷** | |
| باب دو اشخاص کے مشترک غلام میں اور ایک ماذون کی اجازت حد دینے کے بیان میں | ۶۶ |
| **باب : ۸** | |
| ماذون کے محجور ہونے کے بعد جو اختلافی خصومت ماذون اُس کے مولیٰ کے درمیان واقع ہو اُس کے بیان میں | |

| مضمون | صفحہ |
|---|---|
| **کتاب الغصب** | |
| **باب : ۱** | |
| غصب کی تفسیر و شرط و راہ و حکم و ملحقات کے بیان میں | ۹۷ |
| **باب : ۲** | |
| غاصب یا غیر کے فعل سے مال مغصوب حقیر ہو جانے کے بیان میں | ۹۹ |
| **باب : ۳** | |
| ان صورتوں کے بیان میں جن میں تلف کرنے سے ضمان واجب نہیں ہوتی ہے | ۱۱۲ |

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Index (Table of Contents)**


| Page | Content |
|---|---|
| 115 | Chapter: (4) Regarding the nature of liability (Zaman). |
| 118 | Chapter: (5) Regarding mixing the property of two persons with that of another, or its being mixed unintentionally. |
| 121 | Chapter: (6) Regarding the restitution of usurped property from the usurper. |
| 126 | Chapter: (7) Regarding the claims arising in cases of usurpation (Ghasb). |
| 131 | Chapter: (8) Regarding the usurper becoming the owner of the usurped property and gaining profit from it. |
| 135 | Chapter: (9) Regarding the decree for destroying another's property and its related matters. |
| 137 | Chapter: (10) Regarding cultivation on usurped land. |
| 140 | Chapter: (11) Regarding matters pertaining to a usurped slave. |
| 142 | Chapter: (12) Regarding the usurper of a usurper and the depositary of a usurper, etc. |
| 146 | Chapter: (13) Regarding the usurpation of a free person, |
| 148 | Chapter: (14) Regarding miscellaneous matters. |
| 167 | **❖ Kitab-ush-Shufa (The Book of Pre-emption) ❖**<br>Chapter: (1) Regarding the definition, characteristics, and rulings of Shufa. |
| 176 | Chapter: (2) Regarding the grades/ levels of Shufa. |
| 185 | Chapter: (3) Regarding the demand for Shufa. |
| 191 | Chapter: (4) Regarding the pre-emptor's (Shafi) right to the whole or part of the sale. |
| 192 | Chapter: (5) Regarding the ruling of Shufa and litigation in Shufa matters. |
| 194 | Chapter: (6) Regarding the case where a house is sold and several pre-emptors are present. |
| 197 | Chapter: (7) Regarding the purchaser's denial of the neighbor's right of pre-emption and its related details. |
| 198 | Chapter: (8) Regarding the purchaser's disposal/use of the pre-empted property before the arrival of the pre-emptor. |
| 201 | |

| Page | Content |
| --- | --- |
| | Mudabbar, Mukatab, and Umm Walad. |
| 208 | Chapter: (9) Regarding matters that invalidate the right of Shufa after it has been established. |
| | Chapter: (10) Regarding testimony in Shufa matters and concerning the pre-emptor, purchaser, and seller. |

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 फ़ेहरिस्त (विषय-सूची)


| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| 115 | अध्याय: (4) ज़मानत की गुणवत्ता के वर्णन में |
| 118 | अध्याय: (5) दो व्यक्तियों के माल को दूसरे के माल के साथ मिलाने या बिना मिलाये मिल जाने के वर्णन में |
| 121 | अध्याय: (6) ग़ासिब से छीनी हुई संपत्ति वापस लेने के वर्णन में |
| 126 | अध्याय: (7) ग़सब (ज़बरदस्ती छीनने) के दावे के वर्णन में |
| 131 | अध्याय: (8) ग़ासिब के छीनी हुई संपत्ति का मालिक बन जाने और उससे लाभ प्राप्त करने के वर्णन में |
| 135 | अध्याय: (9) दूसरे की संपत्ति को नष्ट करने के आदेश और उसके संबंधित मामलों के वर्णन में |
| 137 | अध्याय: (10) छीनी हुई भूमि पर खेती करने के वर्णन में |
| 140 | अध्याय: (11) उन मामलों के वर्णन में जो छीने गए दास (ग़ुलाम) पर लागू होते हैं |
| 142 | अध्याय: (12) ग़ासिब-अल-ग़ासिब और मुस्तौदा-अल-ग़ासिब आदि के वर्णन में |
| 148 | अध्याय: (14) विविध विषयों में |
| 167 | ❖ किताब-अश-शुफ़आ (शुफ़आ की पुस्तक) ❖<br>अध्याय: (1) शुफ़आ की व्याख्या, विशेषताओं और आदेशों के वर्णन में |
| 176 | अध्याय: (2) शुफ़आ के स्तरों (श्रेणियों) के वर्णन में |
| 185 | अध्याय: (3) शुफ़आ की मांग करने के वर्णन में |
| 191 | अध्याय: (4) शुफ़ई के पूरी या आंशिक बिक्री के अधिकार के वर्णन में |
| 192 | अध्याय: (5) शुफ़आ के आदेश और शुफ़आ में विवाद के वर्णन में |
| 194 | अध्याय: (6) इस वर्णन में कि जब एक घर बेचा जाए और उसके कई दावेदार (शुफ़ई) एकत्रित हों |
| 197 | अध्याय: (7) खरीदार का पड़ोसी के शुफ़आ के अधिकार से इनकार करना और उससे संबंधित विवरण |
| 198 | अध्याय: (8) शुफ़ई के उपस्थित होने से पहले बेची गई संपत्ति में खरीदार के अधिकार के वर्णन में |

| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| | अध्याय: (13) आज़ाद, मुदब्बर, मुकातब |
| 146 | और उम्म-वल्द को ज़बरदस्ती छीनने के वर्णन में |
| | अध्याय: (9) उन मामलों के वर्णन में जिनसे |
| 201 | शुफ़आ का अधिकार सिद्ध होने के बाद रद्द हो जाता है |
| | अध्याय: (10) शुफ़आ के मामले में गवाही |
| 208 | और शुफ़ई, खरीदार एवं विक्रेता के विषय में |

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ۸ فہرست**


| صفحہ | مضمون |
|---|---|
| ۱۱۵ | باب: (۴) کیفیت ضمان کے بیان میں |
| ۱۱۸ | باب: (۵) دو شخصوں کے مال کو غیر کے مال کو اپنے مال کے ساتھ خلط کرنے یا بدون خلط کے مختلط ہو جانے کے بیان میں |
| ۱۲۱ | باب: (۶) غاصب کے مال مغصوب کے استرداد کے بیان میں |
| ۱۲۶ | باب: (۷) غصب میں دعویٰ واقع ہونے کے بیان میں |
| ۱۳۱ | باب: (۸) غاصب کے مال مغصوب کے مالک ہو جانے اور اس سے نفع حاصل کرنے کے بیان میں |
| ۱۳۵ | باب: (۹) اتلاف مال غیر کا حکم دینے اور اُس کے متصلات کے بیان میں |
| ۱۳۷ | باب: (۱۰) زمین مغصوبہ میں زراعت کرنے کے بیان میں |
| ۱۴۸ | باب: (۱۴) متفرقات میں |
| | **❖ کتاب الشفعۃ ❖** |
| ۱۶۷ | باب: (۱) شفعہ کی تفسیر و وصف و حکم کے بیان میں |
| ۱۷۶ | باب: (۲) مراتب شفعہ کے بیان میں |
| ۱۸۵ | باب: (۳) طلب شفعہ کے بیان میں |
| ۱۹۱ | باب: (۴) شفیع کے کُل یا بعض بیع کے استحقاق کے بیان میں |
| ۱۹۲ | باب: (۵) حکم بالشفعہ اور شفعہ میں خصومت کرنے کے بیان میں |
| ۱۹۴ | باب: (۶) اس بیان میں کہ ایک دار فروخت کیا جائے اور اُس کے چند شفیع جمع ہوں |

| صفحہ | مضمون |
| --- | --- |
| ۱۴۰ | باب: (۱۱) ان امور کے بیان میں جو غلام مغصوب کو لاحق ہوں |
| ۱۴۲ | باب: (۱۲) غاصب الغاصب اور مستودع الغاصب وغیرہ کے بیان میں |
| ۱۴۶ | باب: (۱۳) آزاد و مدبر و مکاتب و اُم ولد کو غصب کرنے کے بیان میں |
| ۱۹۷ | باب: (۷) مشتری کا جوار شفیع سے انکار کرنا اور اُس کے متصلات کے بیان میں |
| ۱۹۸ | باب: (۸) شفیع کے حاضر ہونے سے پہلے دار مشفوعہ میں مشتری کے تصرف کرنے کے بیان میں |
| ۲۰۱ | باب: (۹) ان امور کے بیان میں جس سے حق شفعہ بعد ثابت ہونے کے باطل ہو جاتا ہے |
| ۲۰۸ | باب: (۱۰) شفعہ کے معاملہ میں گواہی اور شفیع و مشتری و بائع کے |

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) Table of Contents**


| Page | Topic |
|---|---|
| | [In the explanation of...] |
| 256 | Chapter: 4 - In the explanation of things that are included under partition without being explicitly mentioned |
| 258 | Chapter: 5 - In the explanation of retracting from division and casting lots in division |
| 259 | Chapter: 6 - In the explanation of having an option (Khiyar) in division |
| 262 | Chapter: 7 - In the explanation of people who can be overseers of division on behalf of others |
| 265 | Chapter: 8 - In the explanation of the division of inheritance in a situation where there is a debt owed by or to the deceased, or a legatee is present, and on the appearance of a debt after division |
| 269 | Chapter: 9 - In the explanation of deception (Ghurur) in division |
| 270 | Chapter: 10 - In the explanation of division in which a right is established over a certain portion |
| 271 | Chapter: 11 - In the explanation of the claim of an error in division |
| 276 | |

| Page | Topic |
|---|---|
| 208 | In the explanation of the occurrence of disagreement |
| 215 | Chapter: 5 - In the explanation of appointing a proxy for pre-emption (Shufa), and the proxy of the pre-emptor giving up the pre-emption, and its consequences |
| 218 | Chapter: 7 - In the explanation of pre-emption by a minor |
| 220 | Chapter: 8 - In the explanation of the ruling on pre-emption if the purchase is made in exchange for goods |
| 222 | Chapter: 9 - In the explanation of the entitlement to pre-emption in sale and cancellation (Iqala), and its consequences |
| 223 | Chapter: 10 - In the explanation of pre-emption for non-believers |
| 225 | Chapter: 11 - In the explanation of pre-emption during illness |
| 227 | Chapter: 12 - In the explanation of miscellaneous matters |
| 228 | **Kitab al-Qisma (The Book of Partition)** |

| Page | Topic |
| --- | --- |
| | Chapter: 12 - In the explanation of Muhayah (time-sharing or alternate use of property) |
| 280 | Chapter: 13 - In the explanation of miscellaneous matters |

| Page | Topic |
| --- | --- |
| | Chapter: 1 - In the explanation of the essence, cause, pillar, condition, and ruling of partition |
| 239 | Chapter: 2 - In the explanation of the method of partition |
| 243 | Chapter: 3 - In the explanation of the case in which division will be carried out and the case in which it will not, and what is permissible and what is not... |

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (८) विषय-सूची


| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| | [के विवरण में] |
| २५६ | अध्याय: ४ - उन चीजों के विवरण में जो विभाजन के अंतर्गत बिना उल्लेख के सम्मिलित हो जाती हैं |
| २५८ | अध्याय: ५ - विभाजन से पीछे हटने और विभाजन में लॉटरी डालने के विवरण में |
| २५९ | अध्याय: ६ - विभाजन में अधिकार (ख़ियार) होने के विवरण में |
| २६२ | अध्याय: ७ - उन लोगों के विवरण में जो दूसरों की ओर से विभाजन के संरक्षक हो सकते हैं |
| २६५ | अध्याय: ८ - ऐसी स्थिति में विरासत के विभाजन का विवरण जहाँ मृतक पर या मृतक का ऋण मौजूद हो, या वसीयत पाने वाला मौजूद हो, और विभाजन के बाद ऋण प्रकट होने के विवरण में |
| २६९ | अध्याय: ९ - विभाजन में धोखे के विवरण में |
| २७० | अध्याय: १० - ऐसे विभाजन के विवरण में जिसमें कुछ हिस्से पर अधिकार सिद्ध किया गया हो |
| २७१ | अध्याय: ११ - विभाजन में त्रुटि होने के दावे के विवरण में |
| २०८ | मतभेद होने की स्थिति के विवरण में |
| २१५ | अध्याय: ५ - शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) के लिए वकील नियुक्त करने और शफी (अग्रक्रयाधिकारी) के वकील द्वारा शुफ़ा दे देने तथा उसके परिणामों के विवरण में |
| २१८ | अध्याय: ७ - नाबालिग के शुफ़ा के विवरण में |
| २२० | अध्याय: ८ - यदि खरीद माल के बदले में हुई हो, तो उसके शुफ़ा के आदेश के विवरण में |
| २२२ | अध्याय: ९ - बिक्री और इक़ाला (सौदे की समाप्ति) में शुफ़ा का अधिकार होने और उसके परिणामों के विवरण में |
| २२३ | अध्याय: १० - काफ़िरों (गैर-मुसलमानों) के शुफ़ा के विवरण में |
| २२५ | अध्याय: ११ - बीमारी की स्थिति में शुफ़ा के विवरण में |
| २२७ | अध्याय: १२ - विविध विषयों के विवरण में |
| २२८ | **किताब अल-क़िस्मत (विभाजन की पुस्तक)** |

| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| २७६ | अध्याय: १२ - मुहायाह (बारी-बारी से उपयोग) के विवरण में |
| २८० | अध्याय: १३ - विविध विषयों के विवरण में |
| २३९ | अध्याय: १ - विभाजन की प्रकृति, कारण, स्तंभ, शर्त और आदेश के विवरण में |
| २३९ | अध्याय: २ - विभाजन की गुणवत्ता (तरीके) के विवरण में |
| २४३ | अध्याय: ३ - जिस स्थिति में विभाजन किया जाएगा और जिस स्थिति में नहीं किया जाएगा, और जो जायज़ है और जो जायज़ नहीं है, उसके[विवरण में] |

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد (۸) فہرست**


| صفحہ | مضمون |
|---|---|
| | کے بیان میں |
| ۲۵۶ | باب: ٤ ان چیزوں کے بیان میں جو قسمت کے تحت میں بلا ذکر داخل ہو جاتی ہیں |
| ۲۵۸ | باب: ٥ تقسیم سے رجوع کرنے اور تقسیم میں قرعہ ڈالنے کے بیان میں |
| ۲۵۹ | باب: ٦ تقسیم میں خیار ہونے کے بیان میں |
| ۲۶۲ | باب: ۷ ان لوگوں کے بیان میں جو غیر کی طرف سے متولی تقسیم ہو سکتے ہیں |
| ۲۶۵ | باب: ۸ ایسی حالت میں تقسیم ترکہ کا بیان کہ میت پر یا میت کا قرضہ موجود ہو یا موصٰی موجود ہو اور بعد تقسیم کے قرضہ ظاہر ہونے کے بیان میں |
| ۲۶۹ | باب: ۹ تقسیم میں غرور کے بیان میں |
| ۲۰۸ | درمیان اختلاف واقع ہونے کے بیان میں |
| ۲۱۵ | باب: ٥ شفعہ کے واسطے وکیل کرنے اور وکیل شفیع کے شفعہ دے دینے اور اس کے محصلات کے بیان میں |
| ۲۱۸ | باب: ۷ نابالغ کے شفعہ کے بیان میں |
| ۲۲۰ | باب: ۸ اگر خرید بعوض عروض واقع ہو تو اس کے حکم شفعہ کے بیان میں |
| ۲۲۲ | باب: ۹ بیع و اقالہ میں استحقاق شفعہ ہونا اور اس کے محصلات کے بیان میں |
| ۲۲۳ | باب: ۱۰ اہل کفر کے شفعہ کے بیان میں |
| ۲۲۵ | باب: ۱۱ مرض میں شفعہ کے بیان میں |

| صفحہ | مضمون |
| --- | --- |
| ۲۷۰ | باب: ۱۰ ایسی تقسیم کے بیان میں جس میں کسی قدر حصہ پر استحقاق ثابت کیا گیا |
| ۲۷۱ | باب: ۱۱ تقسیم میں غلطی ہونے کے دعوٰی کے بیان میں |
| ۲۷۶ | باب: ۱۲ مہاباۃ کے بیان میں |
| ۲۸۰ | باب: ۱۳ متفرقات کے بیان میں |

| صفحہ | مضمون |
| --- | --- |
| ۲۲۷ | باب: ۱۲ متفرقات کے بیان میں |
| ۲۲۸ | **کتاب القسمۃ** |
| ۲۳۹ | باب: ۱ قسمت کی ماہیت اور سبب و رکن و شرط و حکم کے بیان میں |
| ۲۴۳ | باب: ۲ کیفیت قسمت کے بیان میں |
| | باب: ۳ جس صورت میں تقسیم کی جائے گی اور جس صورت میں نہ کی جائے گی اور جو جائز ہے اور جو جائز نہیں ہے اس |

## Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) Contents


| Page | Subject |
|---|---|
| 380 | Chapter (5): In miscellaneous matters |
| | **Book of Sacrifice (Kitab al-Udhiyah)** |
| 382 | Chapter (1): Regarding the definition, pillars, attributes, conditions, and rulings of Udhiyah (sacrifice) |
| 386 | Chapter (2): Regarding the obligation of sacrifice due to a vow (nadhr) |
| 388 | Chapter (3): Regarding the time of sacrifice |
| 390 | Chapter (4): Regarding the situations related to time and place |
| 391 | Chapter (5): Regarding the place of fulfilling the obligation (mahall iqamah al-wajib) |
| 396 | Chapter (6): Regarding what is recommended (mustahabb) in favor of the sacrifice |
| 398 | Chapter (7): Regarding performing the sacrifice on behalf of someone else |
| 402 | Chapter (8): Regarding issues related to sharing in the sacrificial animals |
| 340 | Chapter (9): Regarding the liability being obligatory on the cultivator |
| 342 | Chapter (10): Regarding surety (kafalah) in sharecropping and transactions |
| 343 | Chapter (11): Regarding the sharecropping of a minor and an authorized person (ma'dhun) |
| 345 | Chapter (12): Regarding disputes occurring between the landowner and the cultivator |
| 349 | Chapter (13): Regarding the cultivation of land without a contract |
| 350 | Chapter (14): In miscellaneous matters |
| | **Book of Transactions (Kitab al-Mu'amalah)** |
| 356 | Chapter (1): Regarding the definition, conditions, and rulings of the transaction |
| 358 | Chapter (2): In miscellaneous matters |
| | **Book of Slaughtering (Kitab al-Dhaba'ih)** |
| 371 | Chapter (1): Regarding the pillars, |

| Page | Subject |
| --- | --- |
| 405 | Chapter (9): Regarding miscellaneous matters |

| Page | Subject |
| --- | --- |
| | conditions, rulings, and types of slaughtering |
| 378 | Chapter (2): Regarding animals whose eating is permissible and those whose eating is not permissible |

## फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (८) विषय-सूची


| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| ३८० | अध्याय (५): विविध मामलों में |
| | **कुर्बानी की पुस्तक (किताब अल-अज़हिया)** |
| ३८२ | अध्याय (१): अज़हिया (कुर्बानी) की परिभाषा, स्तंभ, गुण, शर्तों और नियमों के वर्णन में |
| ३८६ | अध्याय (२): मन्नत के कारण कुर्बानी अनिवार्य होने के वर्णन में |
| ३८८ | अध्याय (३): कुर्बानी के समय के वर्णन में |
| ३९० | अध्याय (४): उन स्थितियों के वर्णन में जो समय और स्थान से संबंधित हैं |
| ३९१ | अध्याय (५): कर्तव्य पूरा करने के स्थान के वर्णन में |
| ३९६ | अध्याय (६): कुर्बानी के संबंध में जो मुस्तहब (पसंदीदा) है |
| ३९८ | अध्याय (७): दूसरे की ओर से कुर्बानी करने के वर्णन में |
| ४०२ | |
| ३४० | अध्याय (९): काश्तकार (किसान) पर ज़मानत (गारंटी) वाजिब होने के वर्णन में |
| ३४२ | अध्याय (१०): मज़ारअत (साझा खेती) और लेन-देन में कफ़ालत (जमानत) के वर्णन में |
| ३४३ | अध्याय (११): नाबालिग और माज़ून (अनुमति प्राप्त) की मज़ारअत के वर्णन में |
| ३४५ | अध्याय (१२): ज़मीन के मालिक और काश्तकार के बीच होने वाले मतभेदों के वर्णन में |
| ३४९ | अध्याय (१३): बिना अनुबंध के भूमि की खेती के वर्णन में |
| ३५० | अध्याय (१४): विविध मामलों में |
| | **लेन-देन की पुस्तक (किताब अल-मुआमला)** |
| ३५६ | अध्याय (१): लेन-देन की परिभाषा, शर्तों और नियमों के वर्णन में |
| ३५८ | अध्याय (२): विविध मामलों में |
| ३७१ | |

| पृष्ठ | विषय |
|---|---|
| | अध्याय (८): उन मसलों के वर्णन में जो कुर्बानी के जानवरों में साझेदारी से संबंधित हैं |
| ४०५ | अध्याय (९): विविध विषयों के वर्णन में |
| | **वध की पुस्तक (किताब अल-ज़बायह)** |
| | अध्याय (१): ज़ुकात (हलाल वध) के स्तंभ, शर्तों, नियमों और प्रकारों के वर्णन में |
| ३७८ | अध्याय (२): उन जानवरों के वर्णन में जिनका खाना जायज़ है और जिनका खाना जायज़ नहीं है |

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد (۸) فہرست**


| صفحہ | مضمون |
|---|---|
| ۳۸۰ | باب : (۵) متفرقات میں |
| | **کتاب الاضحیہ** |
| ۳۸۲ | باب : (۱) اضحیہ کی تفسیر و رکن و صفت بشرائط و حکم کے بیان میں |
| ۳۸۶ | باب : (۲) بوجہ نذر کے قربانی واجب ہونے کے بیان میں |
| ۳۸۸ | باب : (۳) قربانی کے وقت کے بیان میں |
| ۳۹۰ | باب : (۴) اُن صورتوں کے بیان میں جو متعلق زمان و مکان ہیں |
| ۳۹۱ | باب : (۵) محل اقامة الواجب کے بیان میں |
| ۳۹۶ | باب : (۶) اضحیہ کے حق میں جو مستحب ہے |
| ۳۹۸ | |

| صفحہ | مضمون |
|---|---|
| ۳۴۰ | باب : (۹) کاشتکار پر ضمان واجب ہونے کے بیان میں |
| ۳۴۲ | باب : (۱۰) مزارعت و معاملت میں کفالت کے بیان میں |
| ۳۴۳ | باب : (۱۱) نابالغ و ماذون کی مزارعت کے بیان میں |
| ۳۴۵ | باب : (۱۲) مالک زمین و کاشتکار کے درمیان اختلاف واقع ہونے کے بیان میں |
| ۳۴۹ | باب : (۱۳) بغیر عقد کے اراضی کی زراعت کے بیان میں |
| ۳۵۰ | باب : (۱۴) متفرقات میں |
| | **کتاب المعاملہ** |
| ۳۵۶ | باب : (۱) معاملہ کی تفسیر و شرائط و احکام کے بیان میں |
| ۳۵۸ | باب : (۲) متفرقات میں |

| صفحہ | مضمون |
| --- | --- |
| | باب : (۷) غیر کی طرف سے قربانی کرنے کے بیان میں |
| | باب : (۸) اُن مسائل کے بیان میں جو |
| ۴۰۲ | قربانی کے جانوروں میں شرکت ہونے سے متعلق ہیں |
| ۴۰۵ | باب : (۹) متفرقات کے بیان میں |

| صفحہ | مضمون |
| --- | --- |
| | **کتاب الذبائح** |
| ۳۷۱ | باب : (۱) ذکوۃ کے رکن و شرائط و حکم و انواع کے بیان میں |
| ۳۷۸ | باب : (۲) اُن حیوانوں کے بیان میں جن کا کھانا جائز ہے اور جس کا کھانا نہیں جائز ہے |

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8, Kitab al-Ma'zun**

# Kitab al-Ma'zun (Book of the Authorized Person)

**It consists of thirteen chapters.**

**Chapter One ☆**

# किताब अल-माज़ून (अधिकृत व्यक्ति की पुस्तक)

## इसमें तेरह अध्याय हैं

### अध्याय एक ☆

## کتاب الماذون

---

**اس میں تیرہ ابواب ہیں**

**باب اول ☆**

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 12 | Kitab al-Ma'dhun (The Book of the Authorized Slave)**

...if he did not prohibit it, then this slave will become 'Ma'dhun' (authorized). The disposal of property witnessed by the master shall not be valid except in the case where the master grants permission through his word, whether the sale is for the master or for someone else. However, whatever transaction he carries out afterwards, he shall become Ma'dhun in respect of it; this is stated in 'Siraj al-Wahhaj'.

If Zaid gave some goods to Amr's slave for sale, and Amr saw him selling them but did not prohibit him, then by Amr's silence, the slave becomes 'Ma'dhun at-Tijarah' (authorized for trade), and the sale of the goods by Zaid's order shall be valid. Subsequently, the jurists (Mashaikh) disagreed regarding the liability (responsibility) for this sale; some said the liability for this sale would be upon Zaid, while others said it would be upon the slave; this is in 'Al-Muhit'. If the master saw him and prohibited him, or did not see him at all, then the liability would be upon the owner of the goods; this is in 'Al-Mabsut'. If Zaid usurped a 'Mahjur' (restricted) slave belonging to Amr and Amr could not find witnesses to reclaim the slave, and the usurper took an oath, then the slave engaged in transactions while the master remained silent, and later Amr found witnesses and recovered the slave, then this slave shall not be Ma'dhun; this is in 'Al-Mughni'. If a slave usurped Zaid's property and sold it while the slave's master was watching and did not prohibit it, then by this, the slave becomes Ma'dhun at-Tijarah, but this sale shall not be valid, whether it was by the master's order or without it; this is in 'Al-Mabsut'. If Zaid saw his slave buying something with his (Zaid's) dirhams and dinars and did not prohibit him, the slave becomes Ma'dhun. Thus, if the price was paid from the master's wealth, the master has the option to take it back. When taken back, this sale shall not be void (batil). If the master's property consists of goods measured by volume (kayli) or weight (wazni) and the master took them back, the sale becomes void, provided that the measurement or weight is specific. If it is not specific and the master took it back, it shall not be void; this is in 'Fatawa Qazi Khan'.

If someone sees his slave getting married or sees a slave-girl getting married on her own and remains silent, the correct view is that he shall not be Ma'dhun. If a slave is given general permission (idhn al-'amm) or his transactions are validated for all trade, the form of this is that he tells the slave, "I have given you permission for trade," without restricting it to any specific type of trade. Similarly, if the permission for trade is expressed using the word "all" (jami'), the ruling is the same; this is in 'Al-

Kafi'. If permission was given for one type of trade and not others, he shall be Ma'dhun for all types of trade, whether he was explicitly prohibited from types other than that one or the master remained silent; thus, he shall be Ma'dhun for all trade; this is in 'Al-Nihayah'. If a master says to his slave, "Pay me five dirhams from your earnings every month," this constitutes permission for him for all trades. Similarly, if he says to his slave, "When you pay me a thousand dirhams, you are free," or "You are free [upon payment]," the ruling is the same. Likewise, if he says, "I have fixed ten dirhams every month or five dirhams every Friday for you to pay me," he shall become Ma'dhun for trade; this is in 'Al-Mughni'. If he tells his slave to sit for work as a weaver, tailor, or dyer, he shall become Ma'dhun for all trade. If he says, "I have permitted you to trade in cotton," he shall become Ma'dhun for all trade. If he tells his slave to buy a cloth for wearing, or buy meat for eating, or says something similar for any other thing, he shall not be Ma'dhun for the purpose of trade (istinasan), and this shall be considered permission for service (idhn al-istikhdam), not permission for trade. The difference is that if permission is given in a manner where contracts and transactions are repeatedly performed, one after another, until it becomes known that profit is intended, then this permission shall be counted as 'idhn' (for trade). But if permission is given for only one contract, from which it appears that profit is not the objective, then it shall not be 'idhn' but shall be established as service according to custom and habit. Even if he says, "Buy cloth and sell it," he shall become Ma'dhun for trade. Similarly, if he says, "Sell this cloth of mine and with its price buy this thing," he shall become Ma'dhun at-Tijarah. Based on this principle, we have said that if Zaid tells his slave, "Go to such-and-such person and hire yourself out (ijarah) to people for such-and-such work," he shall be Ma'dhun for trade, because the person who will deal with him is not specified, so in that...

**फ़तावा आलमगीरी ..... खंड (८) | १२ | किताब अल-माज़ून (अधिकृत दास का अध्याय)**

...मना नहीं किया तो यह गुलाम माज़ून (अधिकृत) हो जाएगा और वह कार्य जिसका स्वामी ने अवलोकन किया है, जायज़ नहीं होगा, सिवाय इस स्थिति के कि स्वामी अपनी वाणी से उसकी अनुमति दे दे, चाहे वह बिक्री स्वामी की ओर से हो या किसी अन्य के लिए, लेकिन उसके बाद वह जो भी लेन-देन करेगा, उसके हक में वह माज़ून हो जाएगा, यह 'सिराज अल-वहाज' में है।

यदि ज़ैद ने अम्र के गुलाम को बेचने के लिए कोई सामान दिया और अम्र ने उसे बेचते हुए देखकर मना नहीं किया, तो अम्र की चुप्पी से गुलाम 'माज़ून अत-तिजारत' (व्यापार के लिए अधिकृत) हो जाएगा और ज़ैद के आदेश से सामान की बिक्री जायज़ होगी। फिर विद्वानों (मशाइख) ने इस बिक्री के उत्तरदायित्व (ज़िम्मेदारी) में मतभेद किया है; कुछ ने कहा कि इस बिक्री का उत्तरदायित्व ज़ैद पर होगा और कुछ ने कहा कि गुलाम पर होगा, यह 'मुहीत' में है। और यदि स्वामी ने उसे देखकर मना किया हो या न देखा हो, तो उसका उत्तरदायित्व सामान के मालिक पर होगा, यह 'मबसूत' में है। यदि ज़ैद ने अम्र के'महजूर' (प्रतिबंधित) गुलाम को छीन लिया और अम्र को गवाह न मिले कि गुलाम वापस ले सके और छीनने वाले ने कसम खा ली, फिर गुलाम ने लेन-देन किया और स्वामी चुप रहा, फिर अम्र ने गवाह पेश करके गुलाम वापस पाया, तो यह गुलाम माज़ून नहीं होगा, यह 'मुग़नी' में है। और यदि गुलाम ने ज़ैद का माल छीनकर बेच दिया, जबकि गुलाम का स्वामी उसे देख रहा है और मना नहीं करता है, तो इससे वह गुलाम माज़ून अत-तिजारत हो जाएगा, और यह बिक्री जायज़ नहीं होगी चाहे स्वामी के आदेश से हो या बिना आदेश के, यह 'मबसूत' में है। यदि ज़ैद ने अपने दिरहम और दीनार से कुछ खरीदते हुए अपने गुलाम को देखा और मना नहीं किया, तो वह माज़ून हो जाएगा। अतः यदि कीमत स्वामी के धन से चुकाई गई, तो स्वामी को उसे वापस लेने का अधिकार है, और जब वापस ले लिया तो यह बिक्री शून्य (बातिल) नहीं होगी। और यदि स्वामी का माल नापने (कैली) या तोलने (वज़नी) वाली चीज़ हो और स्वामी ने उसे वापस ले लिया, तो बिक्री बातिल हो जाएगी, बशर्ते कि वह नाप और तोल निश्चित हो, और यदि निश्चित न हो और स्वामी ने वापस ले लिया, तो बातिल नहीं होगी, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

यदि अपने गुलाम को निकाह करते देखा या दासी (बांदी) को खुद ही निकाह करते देखा और चुप रहा, तो सही बात यह है कि वह माज़ून नहीं होगा। और यदि गुलाम को सामान्य अनुमति (इज़न-ए-आम) दे दी या व्यापार के सभी अधिकारों में उसके लेन-देन को जायज़ करार दिया, और इसकी सूरत यह है कि गुलाम से कहे कि "मैंने तुझे व्यापार की अनुमति दे दी" और किसी विशेष प्रकार के

व्यापार के साथ सीमित नहीं किया, इसी तरह यदि व्यापार की अनुमति 'सभी' (जमीअ) शब्द के साथ व्यक्त की, तो भी यही आदेश है, यह 'काफ़ी' में है। और यदि व्यापार के एक प्रकार की अनुमति दी न कि अन्य की, तो वह सभी प्रकार के व्यापार के लिए माज़ून होगा, चाहे उसने उस प्रकार के अतिरिक्त से स्पष्ट रूप से मना किया हो या चुप रहा हो, अतः वह सभी व्यापारों के लिए माज़ून होगा, यह 'निहाया' में है। और यदि अपने गुलाम से कहा कि मुझे हर महीने अपनी कमाई से पाँच दिरहम दिया करे, तो यह उसके लिए सभी व्यापारों की अनुमति है। इसी तरह यदि अपने गुलाम से कहा कि "जब तू मुझे एक हज़ार दिरहम अदा कर देगा तो तू आज़ाद है", या "तू आज़ाद है", तो भी यही आदेश है। इसी तरह यदि कहा कि "मैंने तुझ पर हर महीने दस दिरहम या हर जुमे (शुक्रवार) को पाँच दिरहम तय किए कि तू मुझे अदा करे", तो भी वह व्यापार के लिए माज़ून हो जाएगा, यह 'मुग़नी' में है। और यदि अपने गुलाम से कहा कि कतई, दर्जी या रंगरेज़ को काम के लिए बिठा दे, तो वह सभी व्यापारों के लिए माज़ून हो जाएगा। और यदि कहा कि "मैंने तुझे कपास के व्यापार की अनुमति दी", तो वह सभी व्यापारों के लिए माज़ून हो जाएगा। और यदि अपने गुलाम से कहा कि पहनने के लिए कपड़ा खरीद ला या खाने के लिए मांस खरीद ला या ऐसी ही किसी और चीज़ के लिए कहा, तो वह व्यापार के उद्देश्य से माज़ून नहीं होगा, और यह सेवा की अनुमति (इज़न-ए-इस्तिख़दमी) मानी जाएगी न कि व्यापार की अनुमति। और अंतर यह है कि यदि ऐसी अनुमति दी जिससे बार-बार अनुबंध और लेन-देन होता है, यहाँ तक कि यह ज्ञात हो जाए कि उसका उद्देश्य लाभ कमाना है, तो यह अनुमति 'इज़न' (व्यापार की अनुमति) मानी जाएगी। और यदि केवल एक ही अनुबंध की अनुमति दी जिससे यह प्रतीत होता है कि लाभ कमाना उद्देश्य नहीं है, तो वह 'इज़न' नहीं होगा बल्कि रीति-रिवाज के अनुसार सेवा माना जाएगा। यहाँ तक कि यदि यूँ कहा कि "कपड़ा खरीद कर बेच दे", तो वह व्यापार के लिए माज़ून हो जाएगा। और इसी प्रकार यदि कहा कि "मेरा यह कपड़ा बेचकर उसकी कीमत से यह चीज़ खरीद ला", तो वह माज़ून अत-तिजारत हो जाएगा। और इसी सिद्धांत से हमने कहा है कि यदि ज़ैद ने अपने गुलाम से कहा कि "अमुक व्यक्ति के पास जा और खुद को लोगों को अमुक काम के लिए किराए (इजारा) पर दे दे", तो वह व्यापार के लिए माज़ून होगा क्योंकि जो व्यक्ति उससे लेन-देन करेगा वह निश्चित नहीं है, अतः उस...

منع نہ کیا تو یہ غلام ماذون ہو جائے گا اور تصرف جس کو مولیٰ نے مشاہدہ کیا ہے جائز نہ ہو گا مگر اس صورت میں کہ مولیٰ اپنے قول سے اس کی اجازت دے دے خواہ بیع مولیٰ کے واسطے ہو یا غیر کے واسطے مگر بعد اس کے جو تصرف کرے اس کے حق میں ماذون ہو جائے گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔

اگر زید نے عمرو کے غلام کو کوئی متاع فروخت کے واسطے دی اور عمرو نے اس کو فروخت کرتے دیکھ کر منع نہ کیا تو عمرو کے سکوت سے غلام ماذون التجارۃ ہو جائے گا اور زید کے حکم سے متاع کی بیع جائز ہو گی پھر مشائخ نے اس بیع کے عہدہ میں اختلاف کیا ہے بعضوں نے فرمایا کہ اس بیع کا عہدہ زید پر ہو گا اور بعضوں نے کہا کہ غلام پر ہو گا یہ محیط میں ہے اور اگر مولیٰ نے اس کو دیکھ کر منع کیا ہو یا نہ دیکھا ہو تو اس کا عہدہ مالک متاع پر ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر زید نے عمرو کے غلام محجور کو غصب کر لیا اور عمرو کو گواہ نہ ملے کہ غلام واپس کر لے اور غاصب قسم کھا گیا پھر غلام نے تصرف کیا اور مولیٰ خاموش رہا پھر عمرو نے گواہ پیش کر کے غلام واپس پایا تو یہ غلام ماذون نہ ہو گا یہ مغنی میں ہے اور اگر غلام نے زید کا مال غصب کر کے فروخت کیا حالانکہ غلام کا مولیٰ اس کو دیکھ رہا ہے اور منع نہیں کرتا ہے تو اس سے وہ غلام ماذون التجارۃ ہو جائے گا اور یہ بیع جائز نہ ہو گی خواہ بحکم مولیٰ ہو یا بلا حکم مولیٰ ہو یہ مبسوط میں ہے۔ اگر زید نے اپنے درہم و دینار سے کوئی چیز خریدتے ہوئے اپنے غلام کو دیکھا اور منع نہ کیا تو ماذون ہو جائے گا پس اگر ثمن مال مولیٰ سے ادا کیا تو مولیٰ کو واپس کر لینے کا اختیار ہے اور جب واپس کر لیا تو یہ بیع باطل نہ ہو گی اور اگر مال مولیٰ کیلی یا وزنی چیز ہو اور مولیٰ نے واپس کر لی تو بیع باطل ہو جائے گی بشرطیکہ یہ کیل و موزون

معین ہو اور اگر معین نہ ہو اور مولیٰ نے واپس کر لی تو باطل نہ ہو گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر اپنے غلام کو نکاح کرتے دیکھا یا باندی کو خود ہی نکاح کرتے دیکھا اور خاموش رہا تو صحیح یہ ہے کہ وہ ماذون نہ ہو گا اور اگر مملوک کو اذنِ عام دے دیا یا اس کا تصرف تمام تجارت کے حق میں جائز ہے اور اس کی یہ صورت ہے کہ مملوک سے کہے کہ میں نے تجھے تجارت کی اجازت دے دی اور کسی نوعِ تجارت کے ساتھ مقید نہ کیا اسی طرح اگر تجارت کی اجازت بہ لفظِ جمیع بیان کی تو بھی یہی حکم ہے یہ کافی میں ہے اور اگر ایک نوعِ تجارت کی اجازت دی نہ غیر کی تو جمیعِ تجارت کے واسطے ماذون ہو گا خواہ غیر اس نوع سے صریح منع کیا ہو یا سکوت کیا پس جمیع تجارت کے واسطے ماذون ہو گا یہ نہایہ میں ہے اور اگر اپنے غلام سے کہا کہ مجھے ہر مہینہ پانچ درہم اپنی کمائی سے دیا کرے تو یہ اس کے واسطے تمام تجارتوں کی اجازت ہے اسی طرح اگر اپنے غلام سے کہا کہ جب تو مجھے ہزار درہم ادا کر دے پس تو آزاد ہے یا تو آزاد ہے تو بھی یہی حکم ہے کہ اسی طرح اگر کہا کہ میں نے تجھ پر ہر مہینہ دس درہم یا ہر جمعہ پانچ درہم مقرر کیے کہ تو مجھے ادا کرے تو بھی تجارت کے واسطے ماذون ہو جائے گا یہ مغنی میں ہے اور اگر اپنے غلام سے کہا کہ گندی گری یا درزی یا رنگریز کو کام کے واسطے بٹھال تو تمام تجارت کے واسطے ماذون ہو جائے گا اور اگر کہا کہ میں نے تجھے روئی کی تجارت کے واسطے اجازت دی تو تمام تجارت کے واسطے ماذون ہو جائے گا اور اگر اپنے غلام سے کہا کہ پہننے کے واسطے کپڑا خرید کر یا کھانے کے واسطے گوشت خرید کر یا ایسے ہی اور کسی چیز کو کہا تو استئناساً ماذون نہ ہو گا اور یہ اذنِ استخدام شمار ہو گا نہ اذنِ تجارت اور فرق یہ ہے کہ اگر ایسے طور کی اجازت دی جس سے عقد و مرہ بعد اخریٰ متکرر ہوتے ہیں حتیٰ کہ یہ معلوم ہو جائے کہ اس کی مراد نفع ہے تو یہ اجازتِ اذن شمار ہو گی اور اگر ایک ہی عقد کی

اجازت دی جس سے یہ معلوم ہوتا ہے کہ نفع مقصود نہیں ہے تو اذن نہ ہو گا بلکہ عرف و عادت کے موافق استخدام قرار دیا جائے گا حتیٰ کہ اگر یوں کہا کہ کپڑا خرید کر کے فروخت کر دے تو تجارت کے واسطے ماذون ہو جائے گا اور علیٰ ہٰذا اگر کہا کہ میرا یہ کپڑا فروخت کر کے اس کے ثمن سے یہ چیز خرید کر تو ماذون التجارۃ ہو جائے گا اور اسی اصل سے ہم نے کہا ہے کہ اگر زید نے اپنے غلام سے کہا کہ فلاں شخص کے پاس جا اور اپنے تئیں لوگوں کو اجارہ پر فلاں کام کے واسطے تو دے تجارت کے واسطے ماذون ہو گا کیونکہ جو شخص اس سے معاملہ کرے وہ متعین نہیں ہے پس اس...

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 13 | Kitab al-Ma'dhun**

Dealing with people by virtue of an order is established; thus, the rulings for various contracts are established. In the *Nawadir*, the issue of *Ijarah* (hiring/leasing) is categorized into three types:

The first case is when a slave is told to hire himself out to a specific person for service; in this case, he shall not be considered an authorized agent for trade (*Ma'dhun al-Tijarah*). The second case is when he is told to hire himself out to someone so that he may trade for him; in this situation, he becomes authorized for trade. The third case is when the slave is simply told to hire himself out without any further instructions; in this case, he will not be authorized for trade. This is stated in *al-Dhakirah*. It is mentioned in *Fatawa Atabiyyah* that if a master hires out his slave to trade for a specific period, this constitutes authorization (*idhn*), and any debt incurred by the slave while purchasing items for the hirer shall be recovered from the hirer, as noted in *Tatarkhaniyyah*. If a master provides his slave with a large water-skin and a donkey to supply water to the master, his family, and neighbors without charge, this does not constitute permission for trade. Similarly, if a miller provides his slave with a donkey to fetch wheat for grinding, this is not permission for trade. However, if the slave is given the skin and donkey and told to fill them and sell the water, this is permission for trade. Likewise, if he is given a donkey and told to accept grain from people to transport for hire, this is permission for trade. According to *al-Muhit*, even if the term "people" is not used but no specific person is named, permission is still granted.

If a slave is told to work among porters and tailors or to hire himself out to them, he is authorized for trade. If a slave is sent to buy cloth or meat for one Dirham, this is not considered permission for trade by *Istihsan* (juristic preference), as per *al-Mabsut*. If told to buy cloth and have a shirt tailored for the master, he is not authorized; rather, this is considered a specific assignment of necessity, as mentioned in *al-Ghani*. Permission for *Ijarah* implies permission for trade, and permission for trade implies permission for *Ijarah*, as stated in *Sirajiyyah*. If a person orders his slave to collect rent for a house, or to collect his debts from people, or appoints him as a legal representative (*wakil*) for litigation, this is not permission for trade. Similarly, if he is appointed to manage crops or land, supervise laborers for construction, settle accounts with debtors, demand debts from people, pay land tax (*Kharaj*), or settle the master's own debts, the slave will not become an authorized trader (*Ma'dhun al-Tijarah*) in any of these cases, according to *al-Mabsut*. If a master tells his slave, "I do

not forbid you from trading," this constitutes permission. Likewise, if he is permitted to gather and sell wood, the same ruling applies, as per *Sirajiyyah*.

**If a person gives wealth to his slave and orders him to buy grain, this issue is mentioned in two places within the chapter on 'Ma'dhun'** ☆

If Zayd owns a large village and tells his slave to lease its land, buy grain to cultivate it, and sell the produce to pay its land tax (*Kharaj*), the slave becomes authorized for all types of trade; this is in *al-Mabsut*. Regarding the scenario where a master gives money to his slave to buy grain, the ruling is mentioned in two places. In one place, it states the slave becomes authorized, while in another, it says he does not. Our scholars (*Mashayikh*) stated that the interpretation for being authorized is when he is given a large sum of wealth where buying cannot be easily completed in one go but requires multiple transactions; thus, the master has permitted multiple distinct contracts, making him authorized. The interpretation for not being authorized is when he is given a small amount whereby he can complete the purchase in a single contract; since only one transaction was permitted, he does not become authorized for general trade. This is stated in *al-Khulasah*.

हुक्म के साथ लोगों से मामला करना साबित हुआ, अतः विभिन्न अनुबंधों (उकूद) का हुक्म स्थापित हुआ और नवादिरात में इजारा (किराया/मजदूरी) के मामले को तीन प्रकार से निर्धारित किया गया है।

पहली स्थिति यह है कि गुलाम से कहा गया कि फलां व्यक्ति को अपनी सेवाएँ किराए पर दे ताकि वह उसकी सेवा करे; इस स्थिति में वह व्यापार के लिए अधिकृत (माज़ून अल-तिजारा) नहीं होगा। दूसरी स्थिति यह है कि उससे कहा गया कि अपनी सेवाओं को उसे इस शर्त पर किराए पर दे कि तू उसके लिए व्यापार करे; इस स्थिति में वह व्यापार के लिए अधिकृत हो जाएगा। तीसरी स्थिति यह है कि गुलाम से केवल इतना कहा गया कि अपनी सेवाओं को उसे किराए पर दे दे और इसके अलावा कुछ नहीं कहा; तो इस स्थिति में वह व्यापार के लिए अधिकृत नहीं होगा। यह 'ज़खीरा' में उल्लेखित है। 'फ़तावा अताबिया' में है कि यदि मालिक ने गुलाम को एक निश्चित अवधि के लिए व्यापार करने हेतु किराए पर दिया, तो यह अनुमति (इज़न) है, और यदि गुलाम पर मुस्ताजिर (किरायेदार) के लिए खरीदारी करते समय कोई ऋण हो जाता है, तो वह उसे मुस्ताजिर से वापस लेगा, जैसा कि 'तातारखानिया' में दर्ज है। यदि किसी ने अपने गुलाम को एक बड़ी मशक (पानी का थैला) और गधा दिया ताकि वह मालिक, उसके परिवार और पड़ोसियों को बिना किसी शुल्क के पानी पिलाए, तो यह व्यापार की अनुमति नहीं है। इसी प्रकार, यदि किसी चक्की चलाने वाले (तहान) ने अपने गुलाम को गधा दिया ताकि वह उस पर गेहूँ लादकर लाए ताकि वह उसे पीस सके, तो यह व्यापार की अनुमति नहीं है। लेकिन यदि गुलाम को मशक और गधा देकर कहा गया कि इन्हें भरकर लाओ और पानी बेचो, तो यह व्यापार की अनुमति है। इसी प्रकार, यदि गुलाम को गधा देकर कहा गया कि लोगों से अनाज लेकर किराए पर लाओ, तो यह व्यापार की अनुमति है। 'मुहीत' के अनुसार, भले ही 'लोग' शब्द का प्रयोग न किया गया हो लेकिन किसी विशिष्ट व्यक्ति को भी नामित न किया गया हो, तो भी अनुमति मानी जाएगी।

यदि कहा गया कि जुलाहों या दर्ज़ियों के साथ काम कर या अपनी सेवाएँ उन्हें किराए पर दे दे, तो यह व्यापार की अनुमति है। यदि गुलाम को एक दिरहम का कपड़ा या मांस खरीदने भेजा गया, तो इसे 'इस्तेहसान' (न्यायपूर्ण प्राथमिकता) के आधार पर व्यापार की अनुमति नहीं माना जाएगा, यह 'मब्सूत' में है। यदि कहा गया कि कपड़ा खरीदकर मेरे लिए कमीज़ सिलवा ला, तो वह अधिकृत नहीं होगा, बल्कि इसे आवश्यकतानुसार आदेश माना जाएगा, जैसा कि 'अल-ग़नी' में है। इजारा (किराए) की अनुमति व्यापार की अनुमति है और व्यापार की अनुमति इजारा की अनुमति है, यह 'सिराजिया' में

उल्लेखित है। यदि किसी ने अपने गुलाम को मकान का किराया वसूल करने या लोगों से अपना ऋण वसूल करने या मुक़दमेबाज़ी के लिए वकील नियुक्त किया, तो यह व्यापार की अनुमति नहीं है। इसी प्रकार, यदि उसे अपनी खेती या भूमि की देखभाल, निर्माण कार्य के लिए मज़दूरों की निगरानी, लेनदारों के साथ हिसाब-किताब, लोगों से ऋण की माँग करने, या अपनी भूमि का लगान (खराज) अदा करने या अपने स्वयं के ऋणों का भुगतान करने के लिए नियुक्त किया गया, तो इनमें से किसी भी स्थिति में गुलाम 'माज़ून अल-तिजारा' नहीं होगा, यह 'मब्सूत' में है। यदि मालिक ने अपने गुलाम से कहा कि "मैं तुझे व्यापार करने से नहीं रोकता", तो यह अनुमति है। इसी प्रकार, यदि उसे लकड़ियाँ लाकर बेचने की अनुमति दी गई, तो भी यही नियम लागू होगा, यह 'सिराजिया' में है।

### यदि किसी व्यक्ति ने अपने गुलाम को धन दिया और आदेश दिया कि मेरे लिए अनाज खरीदे, तो यह मुद्दा 'माज़ून' में दो स्थानों पर उल्लेखित है ☆

यदि ज़ैद के पास एक बड़ा गाँव है और उसने अपने गुलाम से कहा कि इसकी ज़मीन किराए पर दे दे, अनाज खरीदकर उसमें खेती कर, और फ़सल बेचकर उसका लगान (खराज) अदा कर, तो गुलाम सभी प्रकार के व्यापारों के लिए अधिकृत हो जाएगा, यह 'मब्सूत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने गुलाम को धन दिया और अनाज खरीदने का आदेश दिया, तो यह मुद्दा दो स्थानों पर वर्णित है। एक स्थान पर हुक्म है कि गुलाम अधिकृत हो जाएगा, जबकि दूसरे स्थान पर लिखा है कि वह अधिकृत नहीं होगा। हमारे उलेमा (मशाइख) ने फरमाया कि अधिकृत होने की स्थिति की व्याख्या यह है कि उसे बड़ी धनराशि दी गई जिससे एक बार में खरीदारी संभव नहीं थी, बल्कि उसे कई बार खरीदारी करनी थी; अतः उसने विभिन्न अनुबंधों की अनुमति दी, जिससे वह अधिकृत हो गया। अधिकृत न होने की व्याख्या यह है कि उसे कम धनराशि दी गई जिससे वह एक ही बार में खरीदारी कर सकता था; अतः केवल एक अनुबंध की अनुमति दी गई, इसलिए वह व्यापार के लिए अधिकृत नहीं होगा, यह 'खुलासा' में उल्लेखित है।

---

حکم سے لوگوں سے معاملہ کرنا ثابت ہوا پس عقود مختلفہ کا حکم ثابت ہوا اور نوادر میں مسئلہ اجارہ تین طور پر قرار دیا گیا ہے۔

ایک یہ صورت کہ غلام سے کہا کہ فلاں شخص کو اپنے تئیں اجرت پر دے تا کہ اس کی خدمت کیا کرے اور اس صورت میں ماذون التجارۃ نہ ہو گا۔ دوسری یہ صورت کہ اس سے کہا کہ اپنے تئیں اس کو اجارہ پر دے تا کہ تو اس کے واسطے تجارت کیا کرے اور اس صورت میں ماذون التجارۃ ہو جائے گا اور تیسری صورت یہ ہے کہ غلام سے فقط اس قدر کہا کہ اپنے تئیں اس کو اجارہ پر دے دے اور اس سے زیادہ کچھ نہ کہا تو اس صورت میں ماذون التجارۃ نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے اور فتاویٰ عتابیہ میں ہے کہ اگر مولیٰ نے غلام کو کچھ مدت تک تجارت کرنے کے لئے اجارہ دیا تو یہ اذن ہے اور جو چیز مستاجر کے واسطے خریدنے میں غلام پر قرضہ آگیا تو اس کو مستاجر سے واپس لے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر اپنے غلام کو ایک مشک کلان اور گدھا دیا کہ میرے اور میرے عیال اور پڑوسیوں کو بغیر ثمن پانی پلایا کرے تو یہ تجارت کی اجازت نہیں ہے۔ اسی طرح اگر طحان نے اپنے غلام کو دھمار دیا کہ اس پر لاد کر گیہوں لایا کرے تاکہ میں اس کو پیسوں تو یہ تجارت کی اجازت نہیں ہے اور اگر غلام کو مشک و گدھا دیا کہ اس پر بھر لا کر فروخت کیا کر تو یہ تجارت کی اجازت ہے اسی طرح اگر غلام کو گدھا دے کر کہا کہ لوگوں سے پائی کا اناج قبول کر کے اجرت پر اس پر لاد لایا کر تو یہ تجارت کی اجازت ہے اسی طرح اگر لوگوں کا لفظ نہ کہا مگر کسی شخص کو معین نہ کیا تو بھی اجازت ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر کہا کہ نقالین و خیاطین میں کام کیا کر یا نقالین و خیاطین کو اپنے تئیں اجرت پر دے دے تو یہ غلام کو تجارت کی اجازت ہے اور اگر غلام کو بھیجا کہ میرے واسطے ایک درہم کا کپڑا یا گوشت خریدے تو یہ استحساناً تجارت کی اجازت نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر کہا کہ کپڑا خرید کر کے میرے واسطے قمیص قطع کراوے تو ماذون نہ ہو گا بلکہ بضرورت یہ استقدام قرار دیا جائے گا کذافی الغنی اور اجارہ کی اجازت تجارت کی اجازت ہے اور تجارت کی اجازت اجارہ کی اجازت ہے یہ سراجیہ میں ہے۔ اگر کسی شخص نے اپنے غلام کو کسی مکان کے کرایہ وصول کرنے کے واسطے حکم کیا یا لوگوں پر اپنے قرضہ کے وصول کرنے کا حکم دیا ایسے معاملہ میں خصومت کے واسطے وکیل کیا تو یہ تجارت کی اجازت نہیں ہے اسی طرح اگر اس کو اپنی کھیتی کی یا زمین کی پرداخت یا اپنی عمارت بنوانے کے مزدوروں کی نگہبانی یا اپنے قرضداروں سے حساب کرنے یا لوگوں سے اپنے قرضہ کے تقاضے اور اس میں سے اپنی زمین کے خراج ادا کرنے یا اپنے اوپر جو قرضہ ہے اس کے ادا کرنے کے واسطے مقرر کیا تو اس میں سے کسی صورت سے غلام ماذون التجارہ نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر اپنے غلام سے کہا کہ میں تجھے تجارت سے منع نہیں کرتا ہوں تو یہ اجازت ہے اسی طرح اگر اس کو لکڑیاں لا کر فروخت کرنے کی اجازت دی تو بھی یہی حکم ہے یہ سراجیہ میں ہے۔

**اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو مال دیا اور حکم کیا کہ میرے واسطے اناج خریدے تو یہ مسئلہ ماذون میں دو جگہ مذکور ہے ☆**

اگر زید کے پاس ایک بڑا گاؤں ہو اور اس نے اپنے غلام سے کہا کہ اس کی زمین اجارہ پر دے اور اناج خرید کر اس میں زراعت کر اور اس کے پھل فروخت کر کے اس کا خراج ادا کر تو غلام تمام تجارتوں کے واسطے ماذون ہو جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو مال دیا اور حکم کیا کہ میرے واسطے اناج خریدے تو یہ مسئلہ ماذون میں دو جگہ مذکور ہے ایک

جگہ یہ حکم دیا ہے کہ غلام ماذون ہو جائے گا اور دوسری جگہ لکھا ہے کہ ماذون نہ ہو گا اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ ماذون ہونے کی صورت میں یہ تاویل ہے کہ اس کو مال کثیر دیا کہ جس سے ایک مرتبہ خرید آسان نہیں ہے بلکہ چند مرتبہ کر کے خرید سکتا ہے پس اس صورت میں اس نے عقود متفرقہ کی اجازت دی جس سے ماذون ہو گیا اور ماذون نہ ہونے کی تاویل یہ ہے کہ قلیل دیا جس سے ایک مرتبہ خرید سکتا ہے پس ایک ہی عقد کی اجازت دی اس واسطے ماذون نہ ہو گا یہ خلاصہ میں ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 13 | Kitab al-Ma'zun (Book of Authorized Slaves)**

Permission was granted in a way that did not make the slave *Ma'zun* (authorized to trade). Imam Muhammad (RA) hinted at this meaning in the book, stating explicitly regarding the form of permission that "substantial wealth was given," as mentioned in *Al-Mughni*. If Zaid gave his slave money and said, "Go to such-and-such city and give it to Amr so that he may buy cloth and give it to you, and then bring it to me," and the slave did so, he would not become a *Ma'zun* for trade; this is in *Al-Mabsut*. If Zaid gave his slave plain land and ordered him to buy grain and cultivate it, and hire laborers to prepare water channels so that the crops receive water and pay the land tax (*Kharaj*), then this constitutes permission for trade. Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa, RA) stated that if one says to his slave, "Sell this cloth of mine for profit and growth," or "as a means of profit and growth," this is permission for trade. In contrast, if he says, "Sell this cloth of mine to Amr," without specifying "for profit," then this ruling does not apply; this is in *Al-Mughni*. If he says, "I have given you permission to trade for one day today, and after today passes, I will exercise my judgment," the slave becomes authorized (*Ma'zun*) permanently until the master formally restricts him (*Mahjur*) in front of the marketplace people. If he says, "I have authorized you to trade in this shop," he will be authorized to trade in all locations. Similarly, authorization for a single day or hour makes him authorized for all days until restricted before the public. Likewise, if he says, "I have authorized you to trade only in this month, and after the month passes, do not buy or sell," this restriction (*Hajr*) is void, as per *Al-Mabsut*.

If a runaway slave (*Aabiq*) is given permission to trade, it is not valid even if the slave becomes aware of it. However, if he is given permission along with the person who has him in possession, it is valid. If an usurped (*Maghsub*) slave is given permission to trade, and the usurper (*Ghasib*) admits it or the owner has witnesses that he can sell him to the usurper or others, then the owner is entitled to grant permission. If the usurper denies it and the owner has no witnesses, the permission to trade is invalid, just as selling him would be invalid; this is in *Fatawa al-Sughra*. If a slave is given substantial wealth and sent in a certain direction to buy cloth but is forbidden from selling it, this still constitutes permission to trade, according to *Al-Mabsut*. If permission is granted from a distance and the slave does not hear it, he does not become authorized; this is in *Sirajiyyah*. If a slave belongs to only one person and that person makes half of him a *Mukatab* (a slave with a contract for manumission), the

entire slave is authorized for trade. According to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the entire slave becomes *Mukatab*, whereas according to Imam al-A'zam, only half is *Mukatab*. Half of whatever he earns will belong to the master because half of him is not *Mukatab*, and the other half belongs to the slave because half is *Mukatab*. He shall perform labor (*Sa'ayah*) to pay off any debts incurred; this is in *Al-Mabsut*. If the entire slave belongs to one person and he says to the marketplace people, "When you see this slave of mine trading (and I remain silent and do not stop him)," he does not become authorized for trade. However, if the master subsequently sees him trading and does not forbid him but remains silent, he then becomes authorized (*Ma'zun*), as stated in *Al-Mughni*. These are the issues related to this chapter.

**Connected Matters (Mutassilaat)** ☆ There are a few issues connected to this chapter. Let it be clear that it is permissible to attribute authorization (*Idhn*) to a future time, and similarly, conditional authorization is permissible. However, making the restriction (*Hajr*) conditional or attributing it to a future time is not permissible; this is in *Al-Dhakhira*. If one says to his slave, "When tomorrow comes, you are authorized (*Ma'zun*) for trade," he will become authorized on that day. But if he says, "When tomorrow comes, you are restricted (*Mahjur*)," it is not valid, and the slave will not become restricted. A slave does not become authorized until he gains knowledge of it. Even if the master says, "I have authorized my slave," while the slave does not know, he will not be authorized for trust-based transactions or agency (*Wakalah*). Regarding a runaway slave (*Aabiq*), whom people often catch: if someone catches him and calls witnesses saying, "I am catching him to return him to his owner," he will receive forty Dirhams for bringing him from the destination. However, if he caught him for himself, he becomes an usurper (*Ghasib*).

**फतावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द ८ | १३ | किताब अल-माज़ून**

अनुमति दी जिससे वह 'माज़ून' (व्यापार के लिए अधिकृत) नहीं हुआ और इस अर्थ की ओर इमाम मुहम्मद (रह.) ने किताब में संकेत किया है कि अनुमति की स्थिति में स्पष्ट रूप से फरमाया कि 'माल-ए-कसीर' (अधिक धन) दिया, जैसा कि 'मुग़नी' में है। यदि जैद ने अपने गुलाम को धन दिया और कहा कि फलां शहर में जाकर अम्र को दे दे ताकि वह कपड़ा खरीदकर तुझे दे दे, और तू उसे मेरे पास ले आ, यदि गुलाम ने ऐसा किया तो वह व्यापार के लिए 'माज़ून' नहीं होगा, यह 'मबसूद' में है। यदि जैद ने अपने गुलाम को केवल ज़मीन दी और आदेश दिया कि अनाज खरीदकर उसमें खेती करे और मज़दूर किराये पर लेकर उनसे नालियाँ (जदावल) तैयार कराए ताकि फसल को पानी पहुंचे और ज़मीन का लगान (खिराज) अदा कर दे, तो यह व्यापार की अनुमति है। इमाम-ए-आज़म (रह.) ने फरमाया कि यदि अपने गुलाम से कहा कि मेरा यह कपड़ा लाभ और वृद्धि के लिए या लाभ कमाने के तौर पर बेच दे, तो यह व्यापार की अनुमति है। इसके विपरीत यदि यह कहा कि मेरा यह कपड़ा अम्र के हाथ बेच दे और यह नहीं कहा कि लाभ के तौर पर बेच, तो यह हुक्म नहीं है, यह 'मुग़नी' में है। और यदि कहा कि मैंने तुझे आज एक दिन के लिए व्यापार की अनुमति दी, फिर आज का दिन गुजरने पर मैं अपनी राय दूँगा, तो वह गुलाम हमेशा के लिए 'माज़ून' हो जाएगा जब तक कि उसे बाजार वालों के सामने व्यापार से रोक (महजूर) न दिया जाए। और यदि कहा कि मैंने तुझे इस दुकान में व्यापार की अनुमति दी, तो वह सभी स्थानों में व्यापार के लिए 'माज़ून' होगा। इसी प्रकार किसी एक दिन या घड़ी की अनुमति से वह हमेशा के लिए 'माज़ून' हो जाएगा जब तक कि उसे बाजार वालों के सामने रोका न जाए। इसी प्रकार यदि कहा कि मैंने तुझे केवल इसी महीने में व्यापार की अनुमति दी, फिर जब महीना बीत जाए तो उसके बाद खरीद-बिक्री न करना, तो यह रोक (महजूर करना) बातिल (अमान्य) है, जैसा कि 'मबसूद' में है।

यदि अपने भागे हुए गुलाम (आबिक़) को व्यापार की अनुमति दी तो यह सही नहीं है, चाहे उस गुलाम को इसका पता चल जाए। और यदि उस गुलाम को उस व्यक्ति के साथ अनुमति दी जिसके कब्जे में वह है, तो सही है। यदि छीने हुए (मग़सूब) गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, तो यदि छीनने वाला (ग़ासिब) स्वीकार कर ले या मालिक के पास गवाह हों कि वह इसे ग़ासिब आदि के हाथ बेच सकता है, तो मालिक अनुमति देने का पात्र होगा। और यदि ग़ासिब इनकार करे और मालिक के पास गवाह न हों, तो व्यापार की अनुमति सही नहीं है, जैसा कि उसे बेचना सही नहीं है; यह 'फतावा-ए-सुग़रा' में है। यदि अपने गुलाम को बहुत सारा धन देकर किसी दिशा में कपड़ा खरीदने के लिए भेजा लेकिन

उसे बेचने से मना कर दिया, तो यह व्यापार की अनुमति है, यह 'मबसूद' में है। यदि दूर से अपने गुलाम को अनुमति दी और उसने नहीं सुना, तो वह 'माज़ून' नहीं होगा, यह 'सिराजिया' में है। यदि गुलाम केवल एक व्यक्ति का हो और उसने आधे गुलाम को 'मुकातब' (मुक्ति अनुबंध वाला) बना दिया, तो यह पूरे गुलाम को व्यापार की अनुमति है। फिर 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार पूरा गुलाम मुकातब हो जाएगा, और इमाम-ए-आज़म के अनुसार आधा मुकातब होगा। वह जो धन कमाएगा उसमें से आधा मालिक का होगा इस आधार पर कि आधा मुकातब नहीं है, और आधा गुलाम का होगा क्योंकि आधा मुकातब है; और जो कर्ज उस पर होगा, उसकी अदायगी के लिए वह मेहनत (सेयायत) करेगा, यह 'मबसूद' में है। यदि पूरा गुलाम एक ही व्यक्ति का हो और उसने बाजार वालों से कहा कि 'जब तुम मेरे इस गुलाम को व्यापार करते देखो (और मैं चुप रहूँ और न रोकूँ' तो वह 'माज़ून' नहीं होगा। फिर यदि मालिक ने उसे व्यापार करते देखकर मना नहीं किया और चुप रहा, तो वह 'माज़ून' हो जाएगा, जैसा कि 'मुग़नी' में है। यहाँ इस अध्याय से संबंधित मसले समाप्त हुए।

**संबंधित विषय (मुत्तसिलात)** ☆ और इस अध्याय से जुड़े कुछ मसले हैं। यह स्पष्ट हो कि अनुमति (इज़न) को भविष्य के किसी समय के साथ जोड़ना जायज़ है, और इसी प्रकार शर्त के साथ जोड़ना भी जायज़ है। लेकिन व्यापार से रोकने (हज्र) को शर्त के साथ जोड़ना जायज़ नहीं है और न ही इसे भविष्य के समय के साथ जोड़ना मान्य है, यह 'ज़खीरा' में है। यदि गुलाम से कहा कि 'जब कल का दिन आए तो तू व्यापार के लिए अधिकृत (माज़ून) है', तो कल आने पर वह माज़ून हो जाएगा। और यदि गुलाम से यह कहा कि 'जब कल का दिन आए तो तू व्यापार से वर्जित (महजूर) है', तो यह सही नहीं है और गुलाम महजूर नहीं होगा। गुलाम तब तक माज़ून नहीं होता जब तक उसे इसका पता न चल जाए। यहाँ तक कि यदि मालिक ने कहा कि 'मैंने अपने गुलाम को अनुमति दे दी' जबकि गुलाम को पता नहीं है, तो वह 'तवक्कुल' और 'वकालत' के लिए माज़ून नहीं होगा। और यदि कोई भागा हुआ गुलाम (आबिक़) हो जिसे अक्सर लोग पकड़ लेते हैं, तो जिसने गवाह बना लिए कि 'मैं इसे मालिक को वापस करने के लिए पकड़ रहा हूँ', तो उसे ठिकाने तक लाने के बदले चालीस दिरहम मिलेंगे। और यदि उसने अपने लिए पकड़ा, तो वह 'ग़ासिब' (छीनने वाला) कहलाएगा।

---

اجازت دی کہ جس سے ماذون نہ ہوا اور اس معنی کی جانب امام محمدؒ نے کتاب میں اشارہ کیا ہے کہ صورت اذن میں صریح فرمایا کہ مال کثیر دیا کذا فی المغنی۔ اگر زید نے اپنے غلام کو مال دیا اور کہا کہ فلاں شہر میں جا کر عمرو کو دے تا کہ وہ کپڑا خرید کر تجھے دے دے تو اس کو میرے پاس لایس غلام نے ایسا کیا تو ماذون التجارۃ نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر زید نے اپنے غلام کو زمین خالص دے کر حکم کیا کہ اناج خرید کر اس میں زراعت کرے اور مزدور کرایہ کر کے ان سے جداول تیار کرائے تا کہ کھیتی کو پانی پہنچے اور زمین کا خراج ادا کر دے تو یہ تجارت کی اجازت ہے اور امام اعظمؒ نے فرمایا کہ اگر اپنے غلام سے کہا کہ میرا یہ کپڑا نفع و بڑھتی کے واسطے یا بطور نفع و بڑھتی کے فروخت کر تو یہ تجارت کی اجازت ہے بخلاف اس کے اگر یہ کہا کہ میرا یہ کپڑا عمرو کے ہاتھ فروخت کر اور یہ نہ کہا کہ بطور نفع کے فروخت کر تو یہ حکم نہیں ہے یہ مغنی میں ہے اور اگر کہا کہ میں نے تجھے آج ایک روز کے واسطے تجارت کی اجازت دی پھر آج کے دن گزرنے پر میں اپنی رائے دوڑاؤں گا تو یہ غلام ہمیشہ کے واسطے ماذون التجارۃ ہو جائے گا یہاں تک کہ اس کو اہل بازار کے سامنے محجور کرے اور اگر کہا کہ میں نے تجھے اس دُکان میں تجارت کی اجازت دی تو جمیع مقامات میں تجارت کے واسطے ماذون ہو گا اسی طرح کسی روز یا کسی ساعت کی اجازت سے تمام ایام کے واسطے ماذون ہو گا تا وقتیکہ اس کو اہل بازار کے سامنے محجور نہ کرے اسی طرح اگر کہا کہ میں نے تجھے صرف اسی مہینہ میں تجارت کی اجازت دی پھر جب مہینہ گزر جائے تو اس کے بعد تو خرید و فروخت نہ کرنا تو یہ محجور باطل ہے کذا فی المبسوط۔

اگر اپنے غلام آبق کو تجارت کی اجازت دی تو صحیح نہیں ہے اگر چہ آبق کو معلوم ہو جائے اور اگر آبق کو مع اس شخص کے جس کے قبضہ میں ہے تجارت کی اجازت دی تو صحیح ہے اور اگر غلام مغصوب کو تجارت کی اجازت دی پس اگر غاصب مقر ہو یا مالک کے پاس گواہ ہوں کہ جس سے یہ اس کو غاصب وغیرہ کے ہاتھ فروخت کر سکتا ہو تو اس کے واسطے اجازت دینے کا مالک ہو گا اور غاصب منکر ہو اور اس کے پاس گواہ نہ ہوں تو تجارت کی اجازت صحیح نہیں ہے جیسا کہ اس کا فروخت کرنا صحیح نہیں ہے یہ فتاویٰ صغریٰ میں ہے۔ اگر اپنے غلام کو مال کثیر دے کر کسی سمت کو کپڑا خریدنے کے واسطے روانہ کیا مگر اس کے فروخت سے منع کر دیا تو یہ تجارت کی اجازت ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر دور سے اپنے غلام کو اجازت دی اور اس نے نہ سنا تو ماذون نہ ہو گا یہ سراجیہ میں ہے۔ اگر غلام فقط ایک شخص کا ہو اور اس نے نصف غلام مکاتب کیا تو یہ جمیع غلام کو تجارت کی اجازت ہے پھر صاحبین کے نزدیک پورا غلام مکاتب ہو جائے گا اور امام اعظمؒ کے نزدیک نصف مکاتب ہو گا اور جو مال کما دے اس میں سے نصف مولیٰ کا ہو گا باعتبار اس کے کہ نصف مکاتب نہیں ہے اور نصف مکاتب کا ہو گا باعتبار اسکے نصف مکاتب ہے اور اسکے ذمہ جو کچھ قرضہ لاحق ہوا سکے ادا کے واسطے سعایت کریگا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر پورا غلام ایک شخص کا ہو اور اس نے اہل بازار سے کہا کہ جب تم میرے اس غلام کو تجارت کرتے دیکھو (فمسکت ولم انہہ) تو ماذون التجارۃ نہ ہو گا پھر مولیٰ نے اس کو تجارت کرتے دیکھ کر منع نہ کیا خاموش رہا تو ماذون التجارۃ ہو جائے گا کذا فی المغنی مما یتصل بھذا الباب مسائل -

**متصلات** ☆ اور اس باب سے متصل چند مسائل ہیں۔ واضح ہو کہ اذن کو زمانہ مستقبل کے کسی وقت کی طرف اضافت کرنا جائز ہے اور ایسے ہی تعلیق بالشرط جائز ہے مگر حجر کی تعلیق بالشرط جائز نہیں ہے اور نہ اس کی اضافت زمانہ مستقبل کی طرف روا ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر

اپنے غلام سے کہا کہ جب کل کا روز آئے تو تو ماذون التجارۃ ہے تو کل کے روز ماذون التجارۃ ہو جائے گا اور اگر غلام سے یہ کہا کہ جب کل کا روز آئے تو تو محجور ہے تو صحیح نہیں ہے اور غلام محجور نہ ہو جائے گا اور غلام ماذون نہیں ہوتا ہے تا وقتیکہ اس کو علم نہ ہو جائے حتیٰ کہ اگر مولیٰ نے کہا کہ میں نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی حالانکہ غلام نہیں جانتا ہے تو توکل و وکالت کے ماذون نہ ہو گا اور اگر آبق بھاگا ہوا غلام اکثر لوگ اس کو پکڑ لیتے ہیں پس جس نے گواہ کر لئے کہ مالک کو واپس دینے کے لئے پکڑتا ہوں تو منزل سے لانے میں چالیس درہم پائے گا اور اگر اپنے واسطے پکڑا تو غاصب ہو گیا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 15 | Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'zoon)**

[If a master] said, "Buy and sell with my slave, for I have given him permission to trade," and they engaged in trade even though the slave did not know the master had authorized him (*ma'zoon*), then according to the report in *Kitab al-Ma'zoon*, he becomes authorized. Some of our scholars have stated that he becomes authorized without disagreement, and that restricting (*hajr*) a slave without his knowledge is not valid. He will not be considered restricted (*mahjoor*) until he becomes aware of it. If he was restricted in the market (1) but was unaware of it, then if two reliable men, or one man and two reliable women, or one reliable man and one reliable woman informed him, then by consensus, he becomes restricted, regardless of whether the authorized slave believed the news or denied it; this is mentioned in *Al-Jawharah al-Nayyirah*. If the master sent an envoy to his slave or wrote a letter, and the envoy delivered the message or letter, he becomes authorized regardless of the envoy's status. If an unauthorized person (*fuzuli*) informed him on their own initiative, it is mentioned in *Kitab al-Kafalah* that if the informant is reliable or unreliable, or even a single reliable man, he becomes authorized provided the truth of the news is manifested. By "manifested," we mean that the master subsequently appears and acknowledges having given permission. If the master denies giving permission, the slave will not be considered authorized. If the informant is a single unreliable man, and the slave believes him, he becomes authorized. If he denies it, then according to Imam Azam (Abu Hanifa), he does not become authorized even if the news is proven true, whereas according to the *Sahibayn* (his two disciples), he becomes authorized if the truth of the news is manifested. Sadr al-Shahid wrote in *Fatawa Sughra* that the slave becomes authorized regardless of the informant's status, as stated in *Al-Mughni*. Imam Abu Hanifa distinguished between restriction (*hajr*) and permission (*izn*), noting that according to Imam Muhammad, restriction is not established by the report of a single individual unless that individual is reliable or there are two informants. However, permission is established in any case based on the word of an unauthorized person (*fuzuli*). Sheikh Imam Khawahirzadah reported from Sheikh Faqih Abu Bakr al-Balkhi that there is no difference between permission and restriction; a slave becomes authorized only when the informant is truthful in his view. Similarly, restriction is not established by the report of an unauthorized person unless they are truthful in the slave's view. The fatwa follows this opinion, as stated in *Fatawa Qazi Khan*.

**Chapter Three: Regarding things a slave can and cannot own**

The authorized slave (*ma'zoon*) has the discretion to buy and sell at market value (*mithl qimat*) (2) or at a loss that people do not typically bear, i.e., an excessive loss (*nuqsan-e-fahish*); this is according to Imam Azam. Trading at a slight loss (*nuqsan-e-qaleel*) is permissible by consensus, but an excessive loss is not permissible according to the *Sahibayn*. The same ruling applies to an authorized minor boy. If an authorized slave grants a concession (*muhabat*) during his terminal illness (*marz-ul-maut*), it is considered from his entire wealth provided he has no debts. If there are debts, it is considered from the remainder. If the debt encompasses his entire holdings, the buyer will be told: "Either complete the full concession amount or we will annul the sale"; this is in *Al-Jawharah al-Nayyirah*. The authorized slave has the authority for forward sales (*bay' al-salam*) and accepting them, as in *Al-Kafi*. He also has the authority to appoint an agent (*wakil*) for cash or credit transactions, as in *Al-Mughni*. If an authorized slave appoints an agent to act as a claimant or defendant, it is permissible, similar to a free person. Likewise, if an agent or...

---

1. The literal phrasing suggests the word 'market' applies to places with one or two markets. In places where this is not the case, such as large cities in India, the matter requires careful consideration. Allah knows best. 2. *Mithl* means obtaining a price equal to the value or a loss that falls within the estimates of two assessors. For example, if one estimates ten dirhams and another nine and three-quarters, it is permissible by consensus. If one says nine dirhams, which no one else estimates, it is an excessive loss and is not permissible according to the *Sahibayn*. *Muhabat* means selling at a price below its value.

कहा कि मेरे ग़ुलाम से तुम ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करो कि मैंने उसको तिजारत की इजाज़त दे दी है, उन्होंने ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त की हालांकि ग़ुलाम नहीं जानता है कि मौला ने मुझे माज़ून (इजाज़त याफ़्ता) किया है, तो 'किताबुल माज़ून' की रिवायत पर वह माज़ून हो जाएगा। और हमारे बाज़ मशाईख़ ने फ़रमाया कि बिला-इख़्तिलाफ़ माज़ून हो जाएगा, और ग़ुलाम का 'महजूर' (पाबंद) करना उसके इल्म के बग़ैर सहीह नहीं है, और वह तब तक महजूर नहीं होगा जब तक उसे मालूम न हो जाए। और अगर बाज़ार (१) में उसे महजूर किया गया जबकि उसे मालूम नहीं है, फिर अगर उसे दो आदिल (विश्वसनीय) मर्दों या एक मर्द और दो औरतों ने ख़बर दी, या एक आदिल मर्द और एक औरत ने ख़बर दी, तो बिल-इज्माअ (सर्वसम्मति से) वह महजूर हो जाएगा, चाहे माज़ून ने इस ख़बर की तस्दीक़ (पुष्टि) की हो या तकज़ीब (नकारा) हो, यह 'जौहरा नय्यिरा' में है। और अगर मौला ने अपने ग़ुलाम के पास कोई एलची (संदेशवाहक) भेजा या ख़त लिखा और एलची ने पैग़ाम या ख़त पहुँचा दिया, तो वह माज़ून हो जाएगा चाहे एलची कैसा भी हो। और अगर किसी 'फ़ुज़ूली' (बिना अधिकार के हस्तक्षेप करने वाले) ने अपनी तरफ़ से उसे ख़बर दी, तो 'किताबुल कफ़ालत' में ज़िक्र है कि अगर ख़बर देने वाला शख़्स आदिल हो या ग़ैर-आदिल, या एक आदिल मर्द हो, तो वह माज़ून हो जाएगा बशर्ते कि ख़बर की सच्चाई ज़ाहिर हो जाए। और ज़ाहिर होने से हमारी मुराद यह है कि इसके बाद मौला हाज़िर होकर अपनी इजाज़त देने का इक़रार करे। और अगर उसने इज़्न (इजाज़त) से इनकार किया तो वह माज़ून नहीं होगा। और अगर ख़बर देने वाला एक ग़ैर-आदिल मर्द हो, फिर अगर ग़ुलाम ने उसकी तस्दीक़ की तो वह माज़ून हो जाएगा, और अगर तकज़ीब की तो इमाम-ए-आज़म के नज़दीक माज़ून नहीं होगा हालांकि ख़बर की सच्चाई ज़ाहिर हो जाए, जबकि साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक अगर ख़बर की सच्चाई ज़ाहिर हो जाए तो माज़ून हो जाएगा। और सदरुश-शहीद ने 'फ़तावा सुग़रा' में लिखा है कि ग़ुलाम माज़ून हो जाएगा चाहे ख़बर देने वाला कैसा भी हो, जैसा कि 'मुग़नी' में है। और इमाम अबू हनीफ़ा ने 'हज्र' (पाबंदी) और 'इज़्न' (इजाज़त) में फ़र्क़ किया है कि इमाम मुहम्मद के नज़दीक एक शख़्स की ख़बर से हज्र साबित नहीं होता, लेकिन अगर यह शख़्स आदिल हो या दो मर्द ख़बर देने वाले हों तो साबित हो जाता है। और एक फ़ुज़ूली के कहने से हर हाल में इज़्न साबित हो जाता है। और शैख़ इमाम ख़वाहरज़ादा ने शैख़ फ़क़ीह अबू बक्र बलख़ी से नक़्ल किया है कि इज़्न और हज्र में कोई फ़र्क़ नहीं है; ग़ुलाम तभी माज़ून होता है जब ग़ुलाम के नज़दीक ख़बर देने वाला सच्चा हो। इसी तरह हज्र भी फ़ुज़ूली की ख़बर से

साबित नहीं होता मगर तब जब वह ग़ुलाम के नज़दीक सच्चा हो, और फ़तवा इसी क़ौल पर है जैसा कि 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

## अध्याय तीन: उन चीज़ों के बयान में जिनका ग़ुलाम मालिक होता है और जिनका मालिक नहीं होता है

माज़ून को इख़्तियार है कि बाज़ार भाव यानी 'मिस्ल क़ीमत' (२) पर ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करे, या उस नुक़सान पर जो लोग बर्दाश्त नहीं करते यानी 'नुक़सान-ए-फ़ाहिश' (बड़ा घाटा) हो, यह इमाम-ए-आज़म के नज़दीक है। और मामूली नुक़सान (नुक़सान-ए-क़लील) पर बिल-इज्माअ जायज़ है, और नुक़सान-ए-फ़ाहिश पर साहिबैन के नज़दीक जायज़ नहीं है। और यही हुक्म माज़ून नाबालिग़ लड़के का है। और अगर माज़ून ग़ुलाम ने अपनी 'मरज़-उल-मौत' (मौत की बीमारी) में 'महाबात' (रियायती सौदा) की, तो वह तमाम माल से मोतबर होगी बशर्ते कि उस पर क़र्ज़ न हो, और अगर हो तो बाक़ी सब में मोतबर होगी। और अगर क़र्ज़ उसके तमाम माल को घेरे हुए हो तो ख़रीदार से कहा जाएगा कि तू चाहे तो तमाम महाबात (कमी) को पूरा कर दे वर्ना हम सौदा रद्द कर देंगे, यह 'जौहरा नय्यिरा' में है। और माज़ून को 'बय-ए-सल्लम' (अग्रिम भुगतान सौदा) और 'क़बूल-ए-सल्लम' का इख़्तियार है, जैसा कि 'काफ़ी' में है। और माज़ून ग़ुलाम को इख़्तियार है कि किसी दूसरे को नक़द और उधार ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त के लिए 'वकील' मुक़र्रर करे, जैसा कि 'मुग़नी' में है। अगर माज़ून ग़ुलाम ने अपने मुद्दई (वादी) या मुद्दआ-अलैह (प्रतिवादी) होने की सूरत में किसी को वकील बनाया तो वह आज़ाद शख़्स की तरह जायज़ है। इसी तरह अगर वकील या...

---

१ इबारत के ज़ाहिरी अर्थ से दलील मिलती है कि 'बाज़ार' शब्द उन जगहों के लिए है जहाँ एक या दो बाज़ार लगते हों, और जहाँ ऐसा न हो जैसे हिंदुस्तान के बड़े शहरों में, वहाँ यह सोच-विचार का विषय है, वल्लाहु आलम। २ 'मिस्ल' यानी जो क़ीमत है उसी के बराबर दाम पाना या इतना नुक़सान हो कि दो अंदाज़ा करने वालों के अंदाज़े में आ जाए, मिसाल के तौर पर एक ने दस दिरहम और दूसरे ने पौने दस दिरहम अंदाज़ा किया तो सब के नज़दीक जायज़ है, और अगर कोई नौ दिरहम कहे जिसका कोई अंदाज़ा नहीं करता तो यह नुक़सान-ए-फ़ाहिश है और साहिबैन के नज़दीक जायज़ नहीं है। महाबात का अर्थ क़ीमत से कम पर बेचना है।

کہا کہ میرے غلام سے تم خرید و فروخت کرو کہ میں نے اس کو تجارت کی اجازت دے دی ہے انہوں نے خرید و فروخت کی حالانکہ غلام نہیں جانتا ہے کہ مولیٰ نے مجھے ماذون کیا ہے تو کتاب الماذون کی روایت پر ماذون ہو جائے گا اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ بلا خلاف ماذون ہو جائے گا اور غلام کا محجور کرنا بدون اس کے علم کے صحیح نہیں ہے اور محجور نہ ہو جائے گا تا وقتیکہ اس کو معلوم نہ ہو جائے اور اگر بازار (۱) میں اس کو محجور کیا حالانکہ اس کو نہیں معلوم ہے پس اگر اس کو دو مردوں یا ایک مرد و دو عورتوں عادل نے خبر دی یا ایک خبر دی یا ایک مرد اور ایک عورت عادل نے خبر دی تو بالاجماع محجور ہو جائے گا خواہ ماذون نے اس خبر کی تصدیق کی ہو یا تکذیب کی ہو یہ جوہرہ نیرہ میں ہے اور اگر مولیٰ نے اپنے غلام کے پاس ایلچی بھیجا یا خط لکھا اور اس کے پاس ایلچی نے پیغام یا خط پہنچا دیا تو ماذون ہو جائے گا خواہ ایلچی کیسا ہی ہو اور اگر کسی فضولی نے اپنی طرف سے اس کو خبر دی تو کتاب الکفالت میں مذکور ہے کہ اگر خبر دہ شخص عادل یا غیر عادل یا ایک مرد عادل ہو تو ماذون ہو جائے گا خواہ اس نے خبر کی تصدیق کی ہو یا نہ کی ہو بشرطیکہ خبر کی صداقت ظاہر ہو جائے اور ظاہر ہو جانے سے ہماری مراد یہ ہے کہ اس کے بعد مولیٰ حاضر ہو کر اپنی اجازت دینے کا اقرار کرے اور اگر اس نے اذن سے انکار کیا تو ماذون نہ ہو گا اور اگر مخبر ایک مرد غیر عادل ہو پس اگر غلام نے مخبر کی تصدیق کی تو ماذون ہو جائے گا اور اگر تکذیب کی تو امام اعظم کے نزدیک ماذون نہ ہو گا اگرچہ خبر کی صداقت ظاہر ہو جائے اور صاحبین کے نزدیک ماذون ہوگا اگر صداقت خبر ظاہر ہو جائے اور صدر الشہید نے فتاویٰ صغریٰ میں لکھا ہے کہ غلام ماذون ہو جائے گا۔ خواہ مخبر کیسا ہی ہو کذا فی المغنی اور امام ابوحنیفہ نے حجر اور اذن

میں فرق کیا ہے کہ امام محمد کے نزدیک ایک شخص کی خبر سے حجر ثابت نہیں ہوتا ہے لیکن اگر یہ شخص عادل ہو یا دو مرد مخبر ہوں تو ثابت ہوتا ہے اور ایک شخص فضولی کے کہنے سے ہر حال میں اذن ثابت ہوتا ہے اور شیخ امام خواہرزادہ نے شیخ فقیہ ابوبکر بلخی سے نقل کیا کہ اذن و حجر میں کچھ فرق نہیں ہے کہ غلام جبھی ماذون ہوتا ہے کہ جب غلام کے نزدیک مخبر صادق ہو ایسے ہی حجر بھی فضولی کی خبر سے ثابت نہیں ہوتا ہے مگر جب کہ فضولی غلام کے نزدیک صادق ہو اور فتویٰ اسی قول پر ہے کذا فی فتاویٰ قاضی خان۔

**باب سوم: ان چیزوں کے بیان میں جن کا غلام مالک ہوتا ہے اور جن کا مالک نہیں ہوتا ہے**

ماذون کو اختیار ہے کہ مثل قیمت (۲) پر خرید و فروخت کرے یا اس قدر نقصان پر جو لوگ نہیں برداشت کرتے ہیں یعنی نقصان فاحش ہو یہ امام اعظم کے نزدیک ہے اور نقصان قلیل پر بالاجماع جائز ہے اور نقصان فاحش پر صاحبین کے نزدیک نہیں جائز ہے اور یہی حکم نا بالغ لڑکے ماذون کا ہے اور اگر غلام ماذون نے اپنے مرض الموت میں محابات کی تو جمیع مال سے معتبر ہوگی بشرطیکہ اس پر قرضہ نہ ہو اور اگر ہو تو مابقی سب میں معتبر ہوگی اور اگر قرضہ اس کے تمام مقبوضہ کو محیط ہو تو مشتری سے کہا جائے گا کہ تو چاہے تو تمام محابات کو پورا کر دے ورنہ ہم بیع رد کر دیں گے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے اور ماذون کو بیع سلم و قبول سلم کا اختیار ہے کذا فی الکافی اور غلام ماذون کو اختیار ہے کہ کسی دوسرے کو نقد و ادھار خرید و فروخت کے واسطے وکیل کرے کذا فی المغنی۔ اگر غلام ماذون نے اپنے مدعی یا مدعاعلیہ ہونے کی صورت میں کسی کو وکیل کیا تو مثل آزاد کے جائز ہے اسی طرح اگر وکیل یا

---

۱ ظاہر عبارت دلیل ہے کہ بازار کا لفظ ایسے مقامات میں ہے جہاں ایک یا دو بازار لگتی ہوں اور جہاں ایسا نہ ہو جیسے ہندوستان کے بڑے بڑے شہروں میں وہاں محل تامل ہے واللہ اعلم۔ ۲ مثل

یعنی جو قیمت ہے اسی کے برابر داموں کو پانا یا اس قدر خسارہ ہو کہ دو اندازہ کرنے والوں کے انداز میں جائے مثلاً ایک نے دس درہم اور دوسرے نے پونے دس درہم اندازہ کئے تو بالاتفاق جائز ہے اور اگر نو درہم کہے تو کوئی اندازہ نہیں کرتا پس یہ نقصان فاحش ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز نہیں ہے محابات قیمت سے کمی پر ہونا بیچنا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | Kitab al-Ma'dhun (Book of Authorized Slaves) | 16**

It is permissible for the master, some creditors, his son, the claimant's son, his Mukatab slave, or any of his Ma'dhun slaves to act as an agent; as stated in al-Mabsut. If a Ma'dhun slave appoints his master as an agent in a dispute against a stranger, it is permissible whether the slave is the claimant or the defendant. There is a distinction between this case and another which they mention, namely: if a stranger appoints the Ma'dhun slave's master as an agent in a dispute against the Ma'dhun slave himself, it is not valid. Consequently, if the agent makes an admission against his principal, that admission shall not be valid, regardless of whether the Ma'dhun is the claimant or the defendant. Thus, a master can be an agent for his slave against a stranger, but he cannot be an agent for a stranger against his slave; this is in al-Muhit. If the agent of a Ma'dhun slave makes an admission against the Ma'dhun before a Qadi (judge), it is valid even if his master denies it. If he makes an admission before someone other than a Qadi, and the adversary brings him before the Qadi claiming he admitted elsewhere, the Qadi shall investigate. If the agent admits, "I confessed before a third party before appearing here," the Qadi shall issue a decree accordingly. If he says, "I confessed before the Ma'dhun appointed me as agent," while the adversary claims the confession was made during the agency, the Qadi shall issue a decree. If the adversary confirms that the confession preceded the agency, the Qadi shall dismiss him from the agency and shall not issue a decree against the principal based on that admission. If the agent denies the confession, he shall not be required to take an oath. If the adversary provides witnesses to an admission made either before the agency or after dismissal(1) by the Qadi, that admission shall not be binding upon the principal; as stated in al-Mabsut.

**The mentioned issue according to the *Tarafayn* (Imam Abu Hanifa and Imam Muhammad)** ☆ If a Ma'dhun slave appoints a free person as an agent to sell his goods, and that agent sells the goods to a person to whom the Ma'dhun slave owes a debt, then according to the *Tarafayn*(2), the price (thaman) shall be exchanged. However, Imam Abu Yusuf disagrees on this. If both parties have debts against each other, they shall be set off against the slave's debt by consensus; this is in al-Mughni. If a Ma'dhun slave accepts an agency to buy something for someone else, then if he accepts to buy on credit, this agency is not permissible by *Istihsan* (juridistic preference). If he accepts to buy for cash, it is permissible by *Istihsan*. If he accepts an agency to sell for another, it is permissible by both *Qiyas* (analogy) and *Istihsan*,

whether it is for cash or credit; this is in al-Muhit. If a Ma'dhun slave sells Zayd's female slave by his order, and Zayd kills her before delivery, the sale becomes void. If the Ma'dhun slave kills her, his master shall be told either to surrender the Ma'dhun slave or pay compensation for the crime (fidya); the same rule would apply if he had killed her before the sale. Then, whichever action the master chooses, the buyer (mushtari) has the option (khiyar) to either cancel the sale or accept whatever has replaced the female slave and pay the price. If the master of the Ma'dhun slave kills the female slave, whether the Ma'dhun is in debt or not, it is obligatory upon the master's supportive clan (Aqilah) to pay the price of the female slave within three years. The buyer may choose to cancel the sale, in which case the price goes to the principal, or he may pay the price and recover the amount from the master's clan over three years. If a Ma'dhun slave sells a female slave from his possessions to Zayd in exchange for another female slave, and the Ma'dhun kills her before delivery, the contract becomes void because a slave has the same authority of disposal over his earnings as a free person has over his property. Thus, the item sold is guaranteed in his possession but only for the equivalent of what it was sold for. If that exchange item is present with Zayd, no further guarantee is due. In this case, it is the same whether the slave is in debt or not. Similarly, if the master of the Ma'dhun kills it while the Ma'dhun is not in debt, since the slave is subordinate to his master, his earnings are the master's pure property. However, if the Ma'dhun is in debt, the master shall be liable for the price because in that state...

(1) Meaning, the Qadi removed him from the agency. (2) *Tarafayn* refers to Imam Abu Hanifa and Imam Muhammad.

उसका मौला या बाज़ क़र्ज़ख़्वाह या उसका बेटा या मुद्दई का बेटा या उसका मुकातब या उसका कोई गुलाम माज़ून हो तो भी जाइज़ है, कज़ा फ़िल मबसूत। अगर माज़ून ने अपने मौला को अजनबी के साथ खुसूमत (मुक़दमे) में वकील किया तो जाइज़ है, चाहे गुलाम मुद्दई हो या मुद्दआ अलैहि हो, और इस सूरत में और दूसरी सूरत में जो बयान करते हैं फ़र्क है, वह यह है कि अजनबी ने माज़ून के मौला को माज़ून के साथ खुसूमत में वकील किया तो सही नहीं है, यहाँ तक कि अगर वकील ने अपने मुवक्किल के ऊपर कुछ इक़रार कर दिया तो इक़रार सही न होगा, चाहे माज़ून मुद्दई हो या मुद्दआ अलैहि हो। पस मौला अपने गुलाम की तरफ़ से मुक़ाबला-ए-अजनबी वकील हो सकता है और अजनबी की तरफ़ से मुक़ाबला-ए-अपने गुलाम के वकील नहीं हो सकता है, यह मुहीत में है। अगर माज़ून के वकील ने माज़ून पर क़ाज़ी के सामने कुछ इक़रार किया तो जाइज़ है अगरचे उसका मौला इनकार करे और अगर सिवाय क़ाज़ी के दूसरे के सामने इक़रार किया और ख़स्म (प्रतिवादी) उसको क़ाज़ी के पास लाया और दावा किया कि इसने दूसरे के सामने इक़रार किया है तो क़ाज़ी उससे दरयाफ़्त करेगा, पस अगर वकील ने इक़रार किया कि मैंने ग़ैर के सामने यहाँ हाज़िर होने से पहले इक़रार किया है तो क़ाज़ी उस पर डिग्री कर देगा और अगर कहा कि मैंने इससे पहले कि मुझे माज़ून वकील करे इक़रार किया है और ख़स्म ने कहा कि हालत-ए-वकालत में इक़रार किया है तो क़ाज़ी उस पर डिग्री कर देगा और अगर ख़स्म ने तस्दीक़ की कि उसने क़ब्ल-ए-वकालत इक़रार किया है तो क़ाज़ी उसको वकालत से ख़ारिज कर देगा और उसके मुवक्किल पर इस इक़रार के सबब कुछ डिग्री न करेगा और अगर वकील ने इक़रार से इनकार किया तो उससे क़सम न ली जाएगी और अगर ख़स्म ने क़ब्ल-ए-वकालत के या क़ाज़ी(1) की वकालत से निकाल देने के बाद इक़रार करने के गवाह दिए तो उसका इक़रार मुवक्किल पर जाइज़ न होगा, यह मबसूत में है।

**मसला मज़कूरा तरफ़ैन के नज़दीक** ☆ अगर गुलाम माज़ून ने किसी आज़ाद को अपनी मताअ (सामान) फ़रोख़्त करने का वकील किया, उसने ऐसे शख़्स के हाथ जिसका माज़ून पर क़र्ज़ है मताअ फ़रोख़्त की तो तरफ़ैन(2) के नज़दीक समन (क़ीमत) बदला जाएगा मगर इमाम अबू यूसुफ़ रह. ने इसमें इख़्तिलाफ़ किया है और अगर दोनों पर क़र्ज़ हो तो बिल-इत्तिफ़ाक़ गुलाम के क़र्ज़ से मद-सह (समायोजित) हो जाएगा, यह मुग़नी में है। माज़ून ने अगर दूसरे की तरफ़ से किसी चीज़ के खरीदने की वकालत क़बूल की, पस अगर उधार खरीदने पर क़बूल की तो यह बिल-इस्तिहसान वकालत जाइज़ नहीं है और अगर नक़द खरीदने पर क़बूल की तो इस्तिहसानान जाइज़ है और अगर ग़ैर की

तरफ़ से बेचने पर वकालत क़बूल की तो यह क़ियासान व इस्तिहसानान जाइज़ है चाहे नक़द फ़रोख़्त करने पर हो या उधार फ़रोख़्त करने पर हो, यह मुहीत में है। और अगर माज़ून ने ज़ैद की बांदी उसके हुक्म से फ़रोख़्त की फिर क़ब्ल-ए-तस्लीम (सौंपने से पहले) ज़ैद ने उसको क़त्ल किया तो बय (बिक्री) बातिल हो जाएगी और अगर माज़ून ने उसको क़त्ल किया तो माज़ून के मौला से कहा जाएगा कि चाहे माज़ून को दे दे या जिनायत का फ़िदिया (जुर्माना) दे, चुनाँचे क़ब्ल-ए-बय के अगर क़त्ल करता तो यही हुक्म था, फिर उसके मौला ने चाहे कोई फ़ेल दोनों में इख़्तियार किया हो, मुश्तरी (खरीदार) को खयार (विकल्प) होगा कि चाहे बय तोड़ दे या जो बांदी के क़ायम-मक़ाम हुआ है उसको लेकर समन अदा कर दे। और अगर माज़ून के मौला ने बांदी को क़त्ल किया और माज़ून पर क़र्ज़ है या नहीं है तो मौला की मददगार बिरादरी (आक़िला) पर वाजिब होगा कि बांदी की क़ीमत तीन साल के अंदर अदा करें और मुश्तरी चाहे बय तोड़ दे और उसकी क़ीमत मुवक्किल को मिलेगी और अगर चाहे समन अदा करके तीन साल में वकील के मौला की मददगार बिरादरी से क़ीमत वसूल करे। और अगर माज़ून ने अपनी मक़बूज़ा चीज़ों से ज़ैद के हाथ कोई बांदी ब-इवज़ (बदले में) बांदी के फ़रोख़्त की फिर माज़ून ने क़ब्ल-ए-तस्लीम के उसको क़त्ल कर डाला तो अक़्द (अनुबंध) बातिल हो जाएगा क्योंकि गुलाम को अपनी कमाई में वही इख़्तियार-ए-तसर्रुफ़ हासिल है जो आज़ाद आदमी को अपनी मिल्क (स्वामित्व) में हासिल होता है, पस मबीअ (बिकी हुई वस्तु) उसके पास मज़मून (ज़मानत में) होगी मगर उस चीज़ के इवज़ जिसके मुक़ाबुल फ़रोख़्त हुई थी और वह चीज़ ज़ैद के पास मौजूद है, पस ज़मान कुछ और न देनी होगी और इस सूरत में चाहे गुलाम पर क़र्ज़ हो या न हो यकसां (बराबर) है। इसी तरह अगर माज़ून के मौला ने उसको क़त्ल किया दर-हालें कि माज़ून मक़रूज़ नहीं है क्योंकि गुलाम अपने मौला का ताबे है उसकी कमाई मौला की ख़ालिस मिल्क है और अगर माज़ून मक़रूज़ हो तो मौला क़ीमत का ज़ामिन होगा क्योंकि इस हालत में...

(1) यानी क़ाज़ी ने उसको वकालत से ख़ारिज कर दिया। (2) तरफ़ैन: इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम मुहम्मद।

---

اس کا مولیٰ یا بعض قرض خواہ یا اس کا بیٹا یا مدعی کا بیٹا یا اس کا مکاتب یا اس کا کوئی غلام ماذون ہو تو بھی جائز ہے کذا فی المبسوط ۔ اگر ماذون نے اپنے مولیٰ کو اجنبی کے ساتھ خصومت میں وکیل کیا تو جائز ہے خواہ غلام مدعی ہو یا مدعیٰ علیہ ہو اور اس صورت میں اور دوسری صورت میں جو بیان کرتے ہیں فرق ہے وہ یہ ہے کہ اجنبی نے ماذون کے مولیٰ کو ماذون کے ساتھ خصومت میں وکیل کیا تو صحیح نہیں ہے حتیٰ کہ اگر وکیل نے اپنے مؤکل کے اوپر کچھ اقرار کر دیا تو اقرار صحیح نہ ہو گا خواہ ماذون مدعی ہو یا مدعیٰ علیہ ہو پس مولیٰ اپنے غلام کی طرف سے بمقابلہ اجنبی وکیل ہو سکتا ہے اور اجنبی کی طرف سے بمقابلہ اپنے غلام کے وکیل نہیں ہو سکتا ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون کے وکیل نے ماذون پر قاضی کے سامنے کچھ اقرار کیا تو جائز ہے اگرچہ اس کا مولیٰ انکار کرے اور اگر سوائے قاضی کے دوسرے کے سامنے اقرار کیا اور خصم اس کو قاضی کے پاس لایا اور دعویٰ کیا کہ اس نے دوسرے کے سامنے اقرار کیا ہے تو قاضی اس سے دریافت کرے گا پس اگر وکیل نے اقرار کیا کہ میں نے غیر کے سامنے یہاں حاضر ہونے سے پہلے اقرار کیا ہے تو قاضی اس پر ڈگری کر دے گا اور اگر کہا کہ میں نے قبل اس کے کہ مجھے ماذون وکیل کرے اقرار کیا ہے اور خصم نے کہا کہ حالت وکالت میں اقرار کیا ہے تو قاضی اس پر ڈگری کر دے گا اور اگر خصم نے تصدیق کی کہ اس نے قبل وکالت کے اقرار کیا ہے تو قاضی اس کو وکالت سے خارج کر دے گا اور اس کے موکل پر بسبب اس اقرار کے کچھ ڈگری نہ کرے گا اور اگر وکیل نے اقرار سے انکار کیا تو اس سے قسم نہ لی جائے گی اور اگر خصم نے قبل وکالت کے یا قاضی(۱) کی وکالت سے نکال دینے کے بعد اقرار کرنے کے گواہ دیے تو اس کا اقرار موکل پر جائز نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

**مسئلہ مذکورہ طرفین کے نزدیک** ☆ اگر غلام ماذون نے کسی آزاد کو اپنی متاع فروخت کرنے کا وکیل کیا اس نے ایسے شخص کے ہاتھ جس کا ماذون پر قرض ہے متاع فروخت کی تو طرفین(۲) کے نزدیک ثمن بدلا جائے گا مگر امام ابو یوسفؒ نے اس میں اختلاف کیا ہے اور اگر دونوں پر قرض ہو تو بالاتفاق غلام کے قرض سے مد سہ ہو جائے گا یہ مغنی میں ہے۔ ماذون نے اگر دوسرے کی طرف سے کسی چیز کے خریدنے کی وکالت قبول کی پس اگر ادھار خریدنے پر قبول کی تو یہ بالاستحسان وکالت جائز نہیں ہے اور اگر نقد خریدنے پر قبول کی تو استحساناً جائز ہے اور اگر غیر کی طرف سے بیچ کرنے پر وکالت قبول کی تو یہ قیاساً واستحساناً جائز ہے خواہ نقد فروخت کرنے پر یا ادھار فروخت کرنے پر ہو یہ محیط میں ہے اور اگر ماذون نے زید کی باندی اسکے حکم سے فروخت کی پھر قبل تسلیم کے زید نے اس کو قتل کیا تو بیع باطل ہو جائے گی اور اگر ماذون نے اس کو قتل کیا تو ماذون کے مولیٰ سے کہا جائے گا کہ چاہے ماذون کو دے دے یا جنایت کا فدیہ دے چنانچہ قبل بیع کے اگر قتل کرتا تو یہی حکم تھا پھر اس کے مولیٰ نے خواہ کوئی فعل دونوں میں اختیار کیا ہو مشتری کو خیار ہو گا کہ چاہے بیع توڑ دے یا جو باندی کے قائم مقام ہوا ہے اس کو لے کر ثمن ادا کر دے اور اگر ماذون کے مولیٰ نے باندی کو قتل کیا اور ماذون پر قرض ہے یا نہیں ہے تو مولیٰ کی مددگار برادری پر واجب ہو گا کہ باندی کی قیمت تین سال کے اندر ادا کریں اور مشتری چاہے بیع توڑ دے اور اس کی قیمت مؤکل کو ملے گی اور اگر چاہے ثمن ادا کر کے تین سال میں وکیل کے مولیٰ کی مددگار برادری سے قیمت وصول کرے اور اگر ماذون نے اپنی مقبوضہ چیزوں سے زید کے ہاتھ کوئی باندی بعوض باندی کے فروخت کی پھر ماذون نے قبل تسلیم کے اس کو قتل کر ڈالا تو عقد باطل ہو جائے گا کیونکہ غلام کو اپنی کمائی میں وہی اختیار تصرف حاصل ہے جو آزاد آدمی کو اپنی ملک میں حاصل ہوتا ہے پس مبیع اسکے پاس مضمون ہو گی مگر اس چیز کے عوض جسکے مقابل فروخت ہوئی تھی اور وہ چیز

زید کے پاس موجود ہے پس ضمان کچھ اور نہ دینی ہو گی اور اس صورت میں خواہ غلام پر قرض ہو یا نہ ہو یکساں ہے اس طرح اگر ماذون کے مولیٰ نے اس کو قتل کیا درحالیکہ ماذون مقروض نہیں ہے کیونکہ غلام اپنے مولیٰ کا تابع ہے اسکی کمائی مولیٰ کی خالص ملک ہے اور اگر ماذون مقروض ہو تو مولیٰ قیمت کا ضامن ہو گا کیونکہ اس حالت میں

(۱) یعنی قاضی نے اس کو وکالت سے خارج کر دیا۔ (۲) طرفین امام ابو حنیفہؒ ومحمدؒ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | Kitab al-Ma'dhun (Book of the Authorized Slave)**

His earnings belong to the creditors; this is stated in al-Mabsut. If Zaid appoints an authorized slave (ma'dhun) as an agent (wakil) to purchase something for a specified price from someone, but the price is not paid, it is permissible by way of 'istihsan'. If the price is a deferred credit, the item purchased by the authorized agent belongs to the slave himself, not to Zaid; this is found in Fatawa Qazi Khan.

If a master (mawla) gives his authorized slave a female slave who was not part of his earnings and orders him to sell her, and the slave sells her, but before the buyer (mushtari) takes possession, the master kills her, the sale (bay') is voided. If the authorized slave kills her, then if the master chooses to surrender the slave for the offense, the buyer has the option (khiyar), but if he chooses to pay the ransom (fidya), the sale is voided; this is in al-Muhit. If the authorized slave accepted an agency to sell a specific slave on behalf of Zaid and sold him, then the master restricted (mahjur) the slave, and the buyer found a defect in the sold slave, the restricted slave will be treated as the respondent. Thus, if the sold slave is returned to the restricted slave through witness testimony, refusal to take an oath, or admission of a defect (provided the defect is of a nature that could not have developed subsequently), the returned slave shall be sold to refund the price. This is as mentioned in the book. It is further stated that if the buyer returned the slave to the authorized agent while he was still authorized, the buyer shall demand the price refund from him; the authorized slave will then return the slave to his principal (muwakkil) and recover the price from him. In the event the sold slave was returned and the price paid back to the buyer, but the amount was insufficient, would the restricted slave be sold? The ruling is to see: if the principal is not destitute but wealthy, the slave shall not be sold; instead, the restricted slave will be told to collect the deficit from his principal and pay it to the buyer. However, if the principal is destitute, the restricted slave shall be sold, and the proceeds divided proportionately between the buyer and his creditors. If any amount remains due to the buyer, he shall recover it from the principal of the restricted slave. Similarly, the creditors of the restricted slave shall also recover from the principal whatever amount the buyer received from the slave's price; this is in al-Mughni.

If there is a jointly owned female slave between an authorized slave and a free person, and the free person orders her sale, and the slave sells her for a thousand dirhams, then admits that his partner has received the full price or half from the buyer, and the buyer confirms this but the partner denies it, the slave's admission will

be valid only to the extent that the buyer is discharged from half the price. Then an oath will be taken from the slave regarding the partner's claim. If he takes the oath, he shall collect half the price from the buyer, which will be divided equally between them. If he refuses the oath (nukul), he shall pay half the price as compensation to the partner and take half from the buyer, which will be given to him. In none of these cases is an oath required from the buyer. If the partner admits that the authorized slave received the full price, and the buyer confirms but the authorized slave denies it, the buyer is still discharged from half the price and no oath is required from him. The partner will take an oath from his authorized partner; if the latter refuses, he must pay half the price to the partner. If he takes the oath, he is discharged from the partner's share and shall collect half the price from the buyer, in which the free partner has no share. If the partner admits the slave received half the price, the buyer is discharged from one-fourth of the price, leaving seven hundred and fifty dirhams due. When this amount is collected, the partner receives one-third and the authorized slave receives two-thirds, as this was the remaining right of each against the buyer. And one partner admitted that the authorized slave...

1. Half the price, meaning when the authorized slave has taken an oath, he can collect only half the price from the buyer and divide it with the partner. However, if he refuses to take the oath, he shall be liable for the partner's share, which is half the price, and the remaining half of the price on the buyer shall be collected by the slave himself.

उसकी कमाई कर्जदाताओं की है, यह 'मबसूत' में उल्लेखित है। ज़ैद ने एक 'माज़ून' (व्यवसाय के लिए अधिकृत) गुलाम को किसी चीज़ को निश्चित मूल्य (समम) के बदले खरीदने के लिए वकील नियुक्त किया, लेकिन मूल्य का भुगतान नहीं किया, तो यह 'इस्तेहसानन' (न्यायसंगत आधार पर) जायज़ है। और यदि मूल्य की मियाद तय करके उधार लिया गया, तो जो चीज़ माज़ून वकील ने खरीदी है, वह उसी की होगी न कि ज़ैद की; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में दर्ज है।

यदि स्वामी (मौली) ने अपने माज़ून गुलाम को एक ऐसी दासी दी जो उसकी कमाई का हिस्सा नहीं थी और उसे बेचने का आदेश दिया, गुलाम ने उसे बेच दिया लेकिन खरीदार (मुश्तरी) ने अभी उस पर कब्ज़ा नहीं किया था कि स्वामी ने उसे मार डाला, तो बिक्री (बै) निरस्त हो जाएगी। और यदि माज़ून ने उसे मारा, तो यदि स्वामी ने अपराध के बदले में माज़ून को देना स्वीकार किया, तो खरीदार को विकल्प (खियार) प्राप्त होगा, और यदि हर्जाना (फ़िदिया) देना चुना, तो बिक्री निरस्त हो जाएगी; यह 'मुहीत' में है। यदि माज़ून ने ज़ैद की ओर से एक विशेष गुलाम बेचने की वकालत स्वीकार की और उसे बेच दिया, फिर स्वामी ने माज़ून को प्रतिबंधित (महजूर) कर दिया, और खरीदार को बेचे गए गुलाम में कोई दोष मिला, तो प्रतिबंधित माज़ून को ही प्रतिपक्षी माना जाएगा। यदि बेचे गए गुलाम में गवाहों के प्रमाण, शपथ से इनकार या दोष की स्वीकृति (जब दोष ऐसा हो जो बाद में उत्पन्न न हो सकता हो) के आधार पर उसे प्रतिबंधित माज़ून को लौटा दिया गया, तो मूल्य की वापसी के लिए उसी लौटाए गए गुलाम को बेचा जाएगा। पुस्तक में ऐसा ही वर्णित है। यह भी कहा गया है कि यदि खरीदार ने माज़ून होने की स्थिति में वकील माज़ून को वस्तु लौटाई, तो खरीदार मूल्य वापसी की मांग उसी से करेगा, फिर माज़ून उस लौटाए गए गुलाम को अपने मुवक्किल को वापस करेगा और उससे मूल्य प्राप्त करेगा। और यदि बेचे गए गुलाम से प्राप्त राशि खरीदार को भुगतान की गई और वह कम पड़ी, तो क्या प्रतिबंधित गुलाम को बेचा जाएगा? इसका नियम यह है कि यदि मुवक्किल निर्धन न हो बल्कि समृद्ध हो, तो गुलाम नहीं बेचा जाएगा, बल्कि महजूर से कहा जाएगा कि वह शेष राशि अपने मुवक्किल से लेकर खरीदार को दे दे। और यदि मुवक्किल निर्धन हो, तो महजूर को बेचकर प्राप्त राशि खरीदार और उसके कर्जदाताओं के बीच अनुपातिक रूप से वितरित की जाएगी। यदि फिर भी खरीदार की कुछ राशि शेष रहती है, तो वह महजूर के मुवक्किल से प्राप्त करेगा। इसी प्रकार महजूर के कर्जदाता भी मुवक्किल से उतनी राशि वापस लेंगे जितनी खरीदार ने महजूर के मूल्य में से प्राप्त की है; यह 'मुग़नी' में है।

यदि एक माज़ून गुलाम और एक स्वतंत्र व्यक्ति के बीच एक साझी दासी हो और स्वतंत्र व्यक्ति ने उसे बेचने का आदेश दिया, और गुलाम ने उसे एक हज़ार दिरहम में बेचा, फिर गुलाम ने स्वीकार किया कि उसके साझीदार ने पूरा या आधा मूल्य खरीदार से प्राप्त कर लिया है और खरीदार ने इसकी पुष्टि की लेकिन साझीदार ने इनकार किया, तो गुलाम की यह स्वीकृति इस सीमा तक वैध होगी कि खरीदार आधे मूल्य से मुक्त माना जाएगा। फिर साझीदार के दावे पर गुलाम से शपथ ली जाएगी। यदि उसने शपथ ले ली, तो वह खरीदार से आधा मूल्य प्राप्त करेगा जिसे दोनों साझीदार बराबर बाँट लेंगे। और यदि उसने शपथ से इनकार (नुकूल) किया, तो वह साझीदार को आधे मूल्य का हर्जाना देगा और खरीदार से आधा मूल्य लेगा जो उसी को दिया जाएगा। इन स्थितियों में खरीदार पर शपथ नहीं आती। और यदि साझीदार ने स्वीकार किया कि माज़ून ने पूरा मूल्य प्राप्त कर लिया है, और खरीदार ने पुष्टि की लेकिन माज़ून ने इनकार किया, तो भी खरीदार आधे मूल्य से मुक्त होगा और उस पर शपथ नहीं आएगी। साझीदार अपने माज़ून साझीदार से शपथ लेगा, यदि उसने शपथ से इनकार किया तो उसे आधा मूल्य साझीदार को देना होगा। यदि शपथ ली, तो वह साझीदार के हिस्से से मुक्त हो जाएगा और खरीदार से आधा मूल्य प्राप्त करेगा जिसमें स्वतंत्र साझीदार का हिस्सा नहीं होगा। यदि साझीदार ने स्वीकार किया कि गुलाम ने आधा मूल्य प्राप्त किया है, तो खरीदार एक-चौथाई मूल्य से मुक्त हो जाएगा और उस पर साढे सात सौ दिरहम शेष रहेंगे। जब यह राशि प्राप्त होगी, तो साझीदार को उसका एक-तिहाई और माज़ून को दो-तिहाई मिलेगा क्योंकि खरीदार के जिम्मे दोनों का इतना ही हक शेष था। और एक साझीदार ने स्वीकार किया कि माज़ून गुलाम ने...

1. आधा मूल्य, अर्थात जब माज़ून गुलाम ने शपथ ले ली, तो वह खरीदार से केवल आधा मूल्य प्राप्त कर सकता है और उसे साझीदार के साथ बाँट लेगा। हाँ, यदि उसने शपथ से इनकार कर दिया, तो वह साझीदार के हिस्से का उत्तरदायी होगा, जो आधा मूल्य है, और खरीदार पर जो आधा मूल्य शेष था, वह गुलाम स्वयं प्राप्त कर लेगा।

---

اس کی کمائی قرض خواہوں کی ہے یہ مبسوط میں ہے زید نے ایک غلام ماذون کو کوئی چیز مسمی بعوض ثمن کسی کے خریدنے کے لیے وکیل کیا مگر ثمن نہیں دیا تو استحساناً جائز ہے اور اگر ثمن میعادی ادھار کیا تو جو چیز ماذون وکیل نے خریدی وہ اسی کی ہو گی نہ زید کی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر مولیٰ نے اپنے غلام ماذون کو ایک باندی دی جو اس کی کمائی میں سے نہیں ہے اور حکم کیا کہ اس کو فروخت کرے اس نے فروخت کی اور ہنوز مشتری نے اس پر قبضہ نہ کیا تھا کہ مولیٰ نے اس کو قتل کیا تو بیع ٹوٹ جائے گی اور اگر ماذون نے اس کو قتل کیا پس اگر مولیٰ نے جنایت میں ماذون کو دینا اختیار کیا تو مشتری کو خیار ہو گا اور اگر فدیہ دینا اختیار کیا تو بیع ٹوٹ جائے گی یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون نے زید کی طرف سے ایک خاص غلام فروخت کرنے کی وکالت قبول کی اور فروخت کیا پھر ماذون کو مولیٰ نے محجور کر دیا پھر مشتری نے غلام مبیع میں عیب پایا تو ماذون جو محجور ہو گیا ہے اس کا خصم قرار دیا جائے گا پس اگر غلام مبیع بہ ثبوت گواہان یا بانکار قسم یا باقرار عیب درحالیکہ عیب ایسا ہو کہ اس کے مثل پیدا نہ ہو سکتا ہو ماذون محجور کو واپس دیا گیا تو ثمن کے واسطے وہی غلام مردود فروخت کیا جائے گا ایسا ہی کتاب میں مذکور ہے اور فرمایا کہ اگر مشتری نے ماذون ہونے کی حالت میں وکیل ماذون کو واپس کیا تو مشتری اسی سے ایفائے ثمن کا مطالبہ کرے گا پھر ماذون اس غلام مبیع مردود کو اپنے موکل کو واپس دے گا اور اس سے ثمن واپس لے گا اور درصورتیکہ غلام مبیع فروخت کیا گیا اور اس میں سے مشتری کو ثمن ادا کیا گیا اور کم پڑا تو کیا غلام محجور فروخت کیا جائے گا تو یہ حکم ہے کہ دیکھا جائے کہ اگر موکل تنگدست نہ ہو بلکہ خوش حال ہو تو فروخت نہ کیا جائے گا بلکہ

محجور سے کہا جائے گا کہ جس قدر دام کم ہوئے ہیں وہ اپنے موکل سے لے کر مشتری کو دے دے اور اگر موکل تنگدست ہو تو محجور کو فروخت کر کے اس کا ثمن مشتری اور اس کے قرض خواہوں کے درمیان حصہ رسد تقسیم کیا جائے گا پھر بھی اگر مشتری کے کچھ دام باقی رہے تو ماذون محجور کے موکل سے واپس لے گا اور اسی طرح محجور کے قرض خواہ بھی جس قدر مشتری نے محجور کی قیمت میں سے لیا ہے اس قدر موکل سے واپس لیں گے یہ مغنی میں ہے۔

اگر ماذون اور آزاد شخص کے درمیان ایک مشترک باندی ہو اور آزاد نے اس کو اس کے فروخت کرنے کا حکم کیا اور غلام نے ہزار درہم کو فروخت کی پھر اقرار کیا کہ میرے شریک نے تمام ثمن یا نصف ثمن مشتری سے وصول کیا ہے اور مشتری نے اس کی تصدیق کی مگر شریک نے تکذیب کی تو غلام کا اقرار اس امر کے واسطے صحیح ہو گا کہ مشتری نصف ثمن سے بری ہو گا پھر غلام سے شریک کے دعوٰی پر قسم لی جائے گی پس اگر قسم کھائی تو مشتری سے نصف ثمن لے لے گا کہ وہ دونوں کے درمیان برابر تقسیم ہو گا اور اگر قسم سے نکول کیا تو شریک کو آدھا ثمن تاوان دے گا اور مشتری نے نصف ثمن لے گا کہ وہ اسی کو دے دیا جائے گا اور ان میں سے کسی صورت میں مشتری پر قسم نہیں آتی ہے اور اگر شریک نے اقرار کیا ہو کہ ماذون نے تمام ثمن وصول پایا ہے اور مشتری نے تصدیق اور ماذون نے تکذیب کی ہو تو بھی مشتری نصف ثمن سے بری ہو گا اور مشتری پر قسم نہیں آتی ہے اور شریک اپنے شریک ماذون سے قسم لے گا پس اگر نکول کیا تو نصف ثمن شریک کو دینا پڑے گا اور اگر قسم کھائی تو شریک کے حصہ سے بری ہو جائے گا اور مشتری سے نصف ثمن وصول کرے گا کہ اس میں شریک آزاد اس کا ساجھی نہیں ہو سکتا ہے اور اگر شریک نے اقرار کیا کہ غلام نے نصف ثمن وصول کیا ہے تو مشتری چوتھائی ثمن سے بری ہو جائے گا پس مشتری پر ساڑھے سات سو درہم باقی رہیں گے پس جب اس قدر درہم وصول ہوئے تو شریک کو اس کی ایک تہائی اور ماذون کو دو تہائی ملے گی کیونکہ

اسی قدر دونوں میں سے ہر ایک کا حق بذمہ مشتری رہ گیا تھا اور ایک شریک نے اقرار کیا کہ غلام ماذون نے

۱۔ نصف ثمن یعنی جب غلام ماذون قسم کھا گیا تو مشتری سے فقط نصف ثمن وصول کر سکتا ہے اور وہ شریک کے ساتھ بٹوارہ کر لے ہاں اگر قسم سے انکار کر دیا تو حصہ شریک کا ضامن ہو گا اور وہ نصف ثمن ہے اور مشتری پر نصف ثمن باقی تھا وہ غلام خود وصول کرلے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 18 | Kitab al-Ma'zun (Book of the Authorized Slave)**

If the seller absolved the buyer from the price or gifted it to him, then this admission is void, and the entire price remains the buyer's responsibility. **An authorized slave (Ma'zun) and Zaid are owed two thousand dirhams by Amr. Then Zaid appointed the slave as an agent (wakil) to receive his share of the dirhams. This agency is not valid.** If the slave made such an admission and the partner denied it, the ruling is the same. And if in this matter, the partner himself became the manager of the sale (mutawalli) with the slave's permission, and then admitted that the slave had received the full price or his share, the ruling is as previously stated for the case where the slave is the mutawalli of the sale and the partner makes such an admission. If the seller admitted to absolving the slave or gifting to him, it is void, just as if the absolution or gift were directly witnessed from the slave, the gift would still be void. Similarly, if the slave admitted that the seller absolved the buyer from the price or gifted it to him, the same ruling applies. However, the buyer's claim against the seller for absolution remains, so the seller will be asked to take an oath. If he takes the oath, he will collect the full price from the buyer. If he refuses the oath (nukul), the buyer will be absolved from the entire price. According to Imam-e-Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, the slave has the right to take a guarantee for half the price from the seller. According to Imam Abu Yusuf, in such a case, the buyer is absolved only from the seller's share of the price; this is mentioned in 'Al-Mabsut'. A Ma'zun slave and Zaid are owed two thousand dirhams by Amr. Zaid appointed the slave as an agent to receive his share of the dirhams; the agency is not valid. Whatever is received will be divided equally between the two, and if it is lost, it is the loss of both. If Zaid appointed the slave's master (mawla) as an agent for this task, the same ruling applies, provided the slave is not in debt. If he is in debt, it is valid; this is mentioned in 'Al-Mughni'. If the Ma'zun slave and his partner Zaid have a debt of one thousand dirhams owed by Amr, and Amr denies it, then the slave and partner appoint the slave's master as an agent in the litigation (khusumat), whether the slave is in debt or not. If the master then made an admission before the judge (qadi) that both have received the payment, his admission is valid for both of them, even if both deny it. If the partner claimed against the slave that he received his share, then if the slave is not in debt, the partner shall take his half share from him, for which he will be sold. If the slave is in debt, the partner has no way of taking from him or his master until the debt is paid. If the slave pays his debt and some wealth remains, the

outsider (partner) will take from it according to his share. If the master's admission regarding both was confirmed but the slave falsified it (takzib), whether the slave is in debt or not, neither can take anything from his partner. If the partner appointed only the slave as an agent for the litigation of his share, and the slave admitted before the judge that Amr owes nothing to the partner, or admitted that he received his share from Amr but the partner denied it, Amr will be absolved from the partner's share, but the slave will collect his share from Amr because he made no admission regarding his own share. Then, when the slave collects it, the partner becomes a participant in it, whether the slave is in debt or not. If the Ma'zun and Zaid were owed one thousand dirhams by Amr and he disappeared after it was established, then the Ma'zun claimed against the partner that he had received his share and wanted half of it divided, but Zaid denied it and appointed the Ma'zun's master as an agent in this case, whether the slave is in debt or not, or appointed some of the Ma'zun's creditors as agents, and the agent admitted that Zaid had received his full share from Amr, this admission is void and he cannot be an agent. And if Zaid claimed against the Ma'zun that he had received payment, and the Ma'zun appointed his master or some creditors as agents in this case, and the agent admitted the receipt on behalf of the Ma'zun, then the agent's admission is valid against him because there is no benefit for the agent in this admission, rather it is a loss. And when the debtor appears and claims that the Ma'zun received as much as the agent said, it will not be confirmed. For this reason, the slave has the option...

खरीदार (मुश्तरी) को कीमत (समन) से बरी कर दिया या उसे उपहार (हिबा) कर दिया, तो यह स्वीकारोक्ति (इकरार) बातिल है और पूरी कीमत खरीदार की ज़िम्मेदारी रहेगी। **एक व्यापारिक दास (माज़ून) और ज़ैद के अम्र पर दो हज़ार दिरहम बकाया हैं, फिर ज़ैद ने दास को अपना हिस्सा वसूल करने के लिए वकील (प्रतिनिधि) बनाया, तो यह वकालत जायज़ नहीं है।** ۞ यदि दास ने ऐसा इकरार किया और साझेदार ने इनकार किया, तब भी यही हुक्म है। और यदि इस मामले में साझेदार ही दास की अनुमति से बिक्री का प्रभारी (मुतवल्ली) बना, फिर इकरार किया कि दास ने पूरी कीमत या अपना हिस्सा वसूल कर लिया है, तो उसका वही हुक्म है जो दास के मुतवल्ली होने और साझेदार पर ऐसे इकरार के बयान में हुआ है। और यदि विक्रेता ने दास के संबंध में बरी करने या उपहार देने का इकरार किया, तो वह बातिल है, जैसा कि यदि दास के साथ बरी करने या हिबा का प्रत्यक्ष गवाह हो, तो भी हिबा बातिल होता है। इसी तरह यदि दास ने इकरार किया कि विक्रेता ने खरीदार को कीमत से बरी या हिबा किया है, तो भी यही हुक्म है, लेकिन खरीदार का विक्रेता पर बरी करने का दावा बना रहेगा, अतः विक्रेता से इस पर शपथ (कसम) ली जाएगी। यदि उसने शपथ ली, तो खरीदार से पूरी कीमत ली जाएगी, और यदि उसने इनकार किया (नकुल), तो खरीदार पूरी कीमत से बरी होगा। इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार, दास को विक्रेता से आधी कीमत की ज़मानत लेने का अधिकार होगा। और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार ऐसी स्थिति में खरीदार केवल विक्रेता के हिस्से से बरी होगा, यह 'मबसूत' में है। एक माज़ून दास और ज़ैद के अम्र पर दो हज़ार दिरहम हैं, ज़ैद ने दास को अपना हिस्सा वसूल करने के लिए वकील बनाया, तो वकालत जायज़ नहीं है। जो कुछ भी वसूल होगा वह दोनों में बराबर बँटेगा, और यदि नष्ट हो गया तो दोनों का धन गया। और यदि ज़ैद ने दास के मालिक (मौला) को इस काम के लिए वकील बनाया, तो भी यही हुक्म है, बशर्ते दास पर कर्ज न हो, और यदि वह कर्जदार है तो यह जायज़ है, यह 'मुग़नी' में है। यदि माज़ून और उसके साझेदार ज़ैद के अम्र पर एक हज़ार दिरहम कर्ज हों और अम्र मुकर गया, फिर दास और साझेदार ने दास के मालिक को मुकदमेबाज़ी (ख़ुसूमत) में वकील बनाया, दास कर्जदार है या नहीं, फिर मालिक ने काज़ी के सामने यह इकरार किया कि दोनों ने माल वसूल कर लिया है, तो उसका इकरार दोनों के हक में जायज़ होगा, चाहे दोनों उससे इनकार करें। और यदि साझेदार ने दास पर यह दावा किया कि उसने अपना हिस्सा वसूल किया है, तो यदि दास कर्जदार नहीं है, तो साझेदार उससे अपना आधा हिस्सा लेगा जिसके लिए उसे बेचा जाएगा। और यदि दास कर्जदार है,

तो साझेदार को उससे या उसके मालिक से लेने का कोई रास्ता नहीं है जब तक कि वह कर्ज अदा न कर दे। यदि दास ने अपना कर्ज अदा किया और कुछ माल बचा, तो अजनबी (साझेदार) उसमें से अपने हिस्से के बराबर ले लेगा। और यदि ऐसा हुआ कि मालिक ने जो कुछ दोनों के संबंध में इकरार किया उसकी पुष्टि की गई, लेकिन दास ने उसे झुठलाया (तकज़ीब), चाहे दास कर्जदार हो या न हो, तो दोनों में से कोई भी अपने साझेदार से कुछ नहीं ले सकता। और यदि साझेदार ने केवल दास को अपने हिस्से के मुकदमे के लिए वकील बनाया और दास ने काज़ी के सामने इकरार किया कि अम्र की तरफ से साझेदार का कुछ नहीं है, या इकरार किया कि उसने अम्र से अपना हिस्सा वसूल लिया है, लेकिन साझेदार ने इनकार किया, तो अम्र साझेदार के हिस्से से बरी होगा, लेकिन दास अपना हिस्सा अम्र से वसूल करेगा क्योंकि उसने अपने हिस्से के बारे में कोई इकरार नहीं किया है। फिर जब दास उसे वसूल कर ले, तो साझेदार उसमें सहभागी हो जाएगा, चाहे दास कर्जदार हो या न हो। यदि माज़ून और ज़ैद के अम्र पर एक हज़ार दिरहम हों और वह तय होने के बाद गायब हो गया, फिर माज़ून ने साझेदार पर दावा किया कि उसने अपना हिस्सा वसूल किया है और चाहा कि उसमें से आधा बँटवा ले, और ज़ैद ने इनकार किया और माज़ून के मालिक को इस मामले में वकील बनाया, चाहे दास पर कर्ज हो या न हो, या माज़ून के कुछ लेनदारों को वकील बनाया और वकील ने इकरार कर दिया कि ज़ैद ने अम्र से अपना पूरा हिस्सा पा लिया है, तो यह इकरार बातिल है और वह वकील नहीं हो सकता। और यदि ज़ैद ने माज़ून पर दावा किया कि उसने वसूली की है, और माज़ून ने इस मामले में अपने मालिक या कुछ लेनदारों को वकील बनाया और वकील ने माज़ून के संबंध में वसूली का इकरार किया, तो वकील का इकरार उस पर जायज़ है क्योंकि इस इकरार में वकील का कोई लाभ नहीं बल्कि नुकसान है। और जब कर्जदार हाज़िर हुआ और उसने दावा किया कि जितना वकील ने कहा है उतना माज़ून ने वसूल किया है, तो उसकी पुष्टि नहीं होगी। इसी कारण दास को अधिकार है...

مشتری کو ثمن سے بری کر دیا یا ہبہ کر دیا ہے تو یہ اقرار باطل ہے اور سب ثمن مشتری کے ذمہ رہے گا۔ **ایک غلام ماذون و زید کے عمرو پر دو ہزار درہم ہیں پس زید نے ماذون کو اپنے حصہ کے درہم وصول کرنے کا وکیل کیا تو وکالت جائز نہیں** ۞ اگر غلام نے ایسا اقرار کیا اور شریک نے انکار کیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر اس مسئلہ میں شریک ہی ماذون کی اجازت سے متولی بیع ہوا پھر اقرار کیا کہ غلام نے تمام ثمن یا اپنا حصہ وصول کر لیا ہے تو اس کا وہی حکم ہے جو درصورت ماذون کے متولی بیع ہونے اور شریک پر ایسا اقرار کرنے کے بیان ہوا ہے اور اگر بائع نے غلام کی نسبت بری کرنے یا ہبہ کر دینے کا اقرار کیا تو باطل ہے جیسا کہ اگر ابراء یا ہبہ کو غلام سے معائنہ کیا ہو تو بھی ہبہ باطل ہوتا ہے اسی طرح اگر غلام نے اقرار کیا کہ بائع نے مشتری کو ثمن سے بری یا ہبہ کیا ہے تو بھی یہی حکم ہے ، مگر مشتری کا بائع پر ثمن سے بری کرنے کا دعویٰ باقی رہا پس بائع سے اس پر قسم لی جائے گی پس اگر قسم کھائی تو تمام ثمن مشتری سے لے گا اور اگر نکول کیا تو مشتری تمام ثمن سے بری ہو گا اور امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک غلام کو بائع سے نصف ثمن کی ضمان لینے کا اختیار ہو گا اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ایسی صورت میں مشتری فقط بائع کے حصہ ثمن سے بری ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ ایک غلام ماذون و زید کے عمرو پر دو ہزار درہم ہیں پس زید نے ماذون کو اپنے حصہ کے درہم وصول کرنے کا وکیل کیا تو وکالت جائز نہیں ہے اور جس قدر وصول کرے گا وہ دونوں میں برابر تقسیم ہو گا اور اگر تلف ہوا تو دونوں کا مال گیا اور اگر زید نے ماذون کے مولیٰ کو اس کام کے واسطے وکیل کیا تو بھی یہی حکم ہے بشرطیکہ غلام مقروض نہ ہو اور اگر مقروض ہو گا تو جائز ہے یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون و اس کے شریک زید کے ہزار درہم عمرو پر قرضہ ہوں

اور عمرو منکر ہو گیا پس غلام و شریک نے غلام کے مولیٰ کو اس کی خصومت میں وکیل کیا اور غلام مقروض ہے یا نہیں ہے پھر مولیٰ نے قاضی کے سامنے یوں اقرار کر دیا کہ دونوں نے مال وصول پایا ہے تو اس کا اقرار دونوں کے حق میں جائز ہو گا اگر چہ دونوں اس سے انکار کریں اور اگر شریک نے غلام پر یہ دعویٰ کیا کہ اس نے حصہ وصول کیا ہے پس اگر غلام مقروض نہ ہو تو شریک اس سے اپنا نصف حصہ لے گا جس کے واسطے وہ فروخت کیا جائے گا اور اگر غلام مقروض ہو تو شریک کو اس سے یا اس کے مولیٰ سے لینے کی کوئی راہ نہیں ہے جب تک کہ قرضہ ادا نہ کرے اور اگر غلام نے اپنا قرضہ ادا کیا اور کچھ مال بچا تو اجنبی اس میں سے بقدر اپنے حصہ کے لے لے گا اور اگر ایسا ہوا کہ مولیٰ نے جو کچھ دونوں کی نسبت اقرار کیا ہے اس کی تصدیق کی مگر ماذون نے تکذیب کی خواہ ماذون مقروض ہے یا نہیں ہے تو دونوں میں سے کوئی شخص اپنے شریک سے کچھ نہیں لے سکتا ہے اور اگر شریک نے فقط ماذون کو اپنے حصہ کی خصومت کے واسطے وکیل کیا اور ماذون نے قاضی کے سامنے یہ اقرار کیا کہ شریک کا عمرو کی جانب کچھ نہیں ہے یا یہ اقرار کیا کہ اس نے عمرو سے اپنا حصہ وصول پایا ہے مگر شریک نے اس سے انکار کیا تو عمرو حصہ شریک سے بری ہو گا مگر ماذون اپنا حصہ عمرو سے وصول کرے گا کیونکہ اس نے اپنے حصہ کی نسبت کچھ اقرار نہیں کیا ہے پھر جب ماذون اس کو وصول کرے شریک اس میں ساجھی ہو جائے گا خواہ غلام مقروض ہو یا نہ ہو۔ اگر ماذون اور زید کے عمرو پر ہزار درہم ہوں اور وہ مقرر ہو کر کہیں غائب ہو گیا پھر ماذون نے شریک پر دعویٰ کیا کہ اس نے اپنا حصہ وصول کیا ہے اور چاہا کہ اس میں سے نصف تقسیم کرا لے اور زید نے انکار کیا اور ماذون کے مولیٰ کو اس مقدمہ میں خصومت کے واسطے وکیل کیا خواہ غلام پر قرضہ ہے یا نہیں ہے یا ماذون کے بعض قرض خواہوں کو وکیل کیا کہ وکیل نے اقرار کر دیا کہ زید نے عمرو سے اپنا حصہ بھر پایا ہے تو یہ اقرار باطل اور وہ

وکیل نہیں۔ ہو سکتا ہے اور اگر زید نے ماذون پر دعویٰ کیا کہ اس نے وصول پایا ہے اور ماذون نے اس مقدمہ میں اپنے مولیٰ یا بعض قرض خواہوں کو وکیل کیا اور وکیل نے ماذون کی نسبت وصول پانے کا اقرار کر دیا تو وکیل کا اقرار اس پر جائز ہے کیونکہ اس اقرار میں وکیل کی کچھ منفعت نہیں ہے بلکہ ضرر ہے اور جب قرض دار حاضر ہوا اور اس نے دعویٰ کیا کہ جس قدر وکیل نے کہا ہے وہ ماذون نے وصول پایا ہے تو اس کی تصدیق نہ ہو گی اسی سبب سے غلام کو اختیار

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 19 | Kitab al-Ma'dhun**

It means that he shall collect his entire debt from 'Amr. However, if the slave is not in debt and the Master (Mawla) is acting as his agent (Wakil), then the Master's acknowledgment regarding his authorized slave (Ma'dhun) shall be verified. In this case, the authorized slave cannot collect from 'Amr again. This is mentioned in *Al-Mabsut*.

If an authorized slave is in debt and the creditor appoints the slave's son, father, the father's slave, or his *Mukatib* (slave in a contract for freedom) as an agent, and the agent acknowledges receiving the debt, it shall be verified. This is mentioned in *Al-Mughni*. If an authorized slave of Zaid and 'Amr owes one thousand Dirhams, and the slave claims against Zaid that he has received his debt, but Zaid denies it and appoints the slave's Master as his agent in this case, then the agency (Tawkil) is void. If the Master acknowledges it, the acknowledgment is void whether the slave is in debt or not. Furthermore, if the second creditor, 'Amr, comes and makes the same claim as the Master acknowledged regarding Zaid, seeking to recover his half-share, he cannot do so. If one of two partners appoints the other as an agent in the slave's case and the agent acknowledges before a judge that his partner’s share has been received, this acknowledgment is valid for both of them, and the debt will decrease by five hundred Dirhams. Then, when the acting [1] partner collects the remaining five hundred Dirhams, his partner will become a co-owner of half of it. This is in *Al-Mabsut*. It should be known that a Master cannot act as an agent on behalf of a stranger to collect a debt from his own authorized slave. Even if the Master acknowledges that he collected the debt from his slave, the acknowledgment is invalid, and the slave will not be absolved of the debt. Similarly, if the Master collects the debt before witnesses, the collection is invalid; the slave remains liable to the stranger. This ruling is in favor of the Master. Conversely, if a stranger appoints the slave as an agent to collect his debt from the Master, and the slave accepts, the agency is valid because the slave is acting as an agent for the stranger, not for himself, and he is not absolving [2] his own life or property. Furthermore, once the slave's role as an agent is validated in this matter, if the Master pays the stranger's debt to his slave acting as an agent before witnesses, the Master is absolved. Likewise, if the slave acknowledges that he collected the principal's debt but it was subsequently lost (*Talf*), the acknowledgment is valid, and the Master is absolved. However, an oath will be required from the slave regarding the collection and the loss. If he takes the oath, he is absolved; if he refuses (*Nakul*), the value of the debt

will be attached to his person (he must pay), for which he may be sold. But if the Master pays his ransom (*Fidya*), he shall not be sold. This is in *Al-Muhit*.

Regarding Zaid's slaves, Kallu and others. There are two authorized slaves; Kallu owes 'Amr one thousand Dirhams. 'Amr appoints Khairu (the other slave) as an agent to collect this money; this is permissible. If the agent (Khairu) acknowledges receiving it, his statement will be verified upon oath. This scenario follows the same rules as the previous case. If he refuses the oath (*Nakul*), the liability falls on him. This means if Zaid authorized two slaves, Kallu and Khairu, and both incurred debts, and a creditor of Kallu appointed Khairu as an agent to collect the debt, and Khairu acknowledged the receipt, it is valid. However, if some creditors of the second slave appoint the first authorized slave or his Master as an agent to collect their debt, they shall not be considered agents, and their possession is not valid. If both slaves pledged something (*Rahn*) for their respective debts and placed it in each other's possession, and both pledged items were lost, the first slave's pledge is lost in exchange for his debt, and the other's item in exchange for his. If a debtor slave transfers (*Hawala*) a creditor to a person named Khalid: if the slave was already owed something by Khalid and transferred the debt for that reason, the transfer is void. If no money was owed, the transfer is valid. If the creditor then appoints the transferring slave or his Master (the one to whom the debt was transferred) as an agent to collect this money, possession is not valid. But if he appoints another slave of the Master, or the Master's son, or the slave who was originally in debt as an agent, and they acknowledge receiving the debt from the person to whom it was transferred, then the acknowledgment is valid. If the Master owes a debt and transfers it to Khalid, and the creditor appoints the Master's slave as an agent to collect it from Khalid, and the slave acknowledges the receipt, it is valid. This is in *Al-Mabsut*.

---

[1] Meaning in the sense of the statement that this acknowledgment is valid for him and his partner. [2] This points to the fact that if he acknowledged receipt by the principal, it is correct. And Allah knows best.

यह होगा कि वह अम्र से अपना पूरा कर्ज़ वसूल करे, लेकिन अगर गुलाम कर्जदार न हो और उसका मालिक (मौला) उसका वकील हो, तो मालिक के उस इकरार की तस्दीक की जाएगी जो उसने अपने माज़ून के बारे में किया है। इसका मतलब यह है कि इस स्थिति में माज़ून अम्र से (दोबारा) नहीं ले सकता। जैसा कि 'मबसूत' में उल्लेख है।

एक माज़ून कर्जदार है और लेनदार ने माज़ून के बेटे, पिता, पिता के गुलाम या उसके मुकातिब को वकील बनाया। उसने कर्ज़ वसूल पाने का इकरार किया, तो इसकी तस्दीक की जाएगी, जैसा कि 'मुग्नी' में है। अगर ज़ैद और अम्र के माज़ून पर एक हज़ार दिरहम का कर्ज़ हो और गुलाम ने ज़ैद के खिलाफ दावा किया कि उसने अपना कर्ज़ वसूल पा लिया है, और ज़ैद ने इनकार किया और माज़ून के मालिक को इस मुकदमे में अपना वकील बनाया, तो यह वकालत (तौकील) बातिल (अमान्य) है। और अगर मालिक ने इकरार किया, तो वह इकरार भी बातिल है, चाहे गुलाम कर्जदार हो या न हो। और अगर दूसरा लेनदार यानी अम्र आया और उसने वही दावा किया जो माज़ून के मालिक ने ज़ैद के बारे में इकरार किया था, और चाहा कि अपना आधा हिस्सा उससे वापस ले ले, तो वह ऐसा नहीं कर सकता। और अगर दो भागीदारों (शरीकों) में से किसी ने दूसरे को गुलाम के मुकदमे में अपना वकील बनाया और उसने काजी के सामने अपने साथी के संबंध में अपना हिस्सा वसूल पाने का इकरार किया, तो यह इकरार उस पर और उसके साथी पर जायज़ होगा, और कर्ज़ में से पाँच सौ दिरहम कम हो जाएँगे। फिर जब वकील [1] साझेदार बाकी पाँच सौ दिरहम वसूल करेगा, तो उसका साथी उसमें आधे का हिस्सेदार हो जाएगा। यह 'मबसूत' में है। यह जानना चाहिए कि मालिक अपने माज़ून गुलाम के लिए किसी अजनबी की ओर से उनका कर्ज़ वसूल करने का वकील नहीं हो सकता, यहाँ तक कि अगर मालिक ने इकरार किया कि उसने मेरे माज़ून गुलाम से अपना कर्ज़ वसूल कर लिया है, तो यह इकरार सही नहीं है और गुलाम कर्ज़ से मुक्त नहीं होगा। इसी तरह अगर मालिक ने गवाहों के सामने कर्ज़ वसूल किया, तो वह वसूली सही नहीं है, यानी गुलाम उस अजनबी के कर्ज़ से मुक्त नहीं होगा। यह हुक्म मालिक के हक में है। इसके विपरीत, यदि किसी अजनबी ने गुलाम को उसके मालिक से अपना कर्ज़ वसूल करने का वकील बनाया और गुलाम ने इसे स्वीकार कर लिया, तो यह वकालत सही है, क्योंकि वह जो कुछ वसूल करेगा, उसमें वह अजनबी की ओर से काम कर रहा है, अपने लिए कुछ नहीं कर रहा और न ही अपनी जान या माल को मुक्त (बरात [2]) कर रहा है। फिर स्पष्ट हो कि जब इस मामले में गुलाम का वकील होना सही ठहरा, तो हम कहते हैं कि अगर

मालिक ने गवाहों के सामने अपने माज़ून वकील को अजनबी का कर्ज़ चुका दिया, तो मालिक मुक्त हो जाएगा। इसी तरह अगर गुलाम ने इकरार किया कि मैंने अपने मुवक्किल का कर्ज़ वसूल किया था लेकिन वह मेरे पास नष्ट (तल्फ) हो गया, तो यह इकरार सही है, यानी उसका मालिक कर्ज़ से मुक्त हो जाएगा। लेकिन गुलाम से वसूली और नष्ट होने पर कसम ली जाएगी। अगर उसने कसम खा ली, तो वह मुक्त हो गया, और अगर इनकार (नकुल) किया, तो यह माल उसकी गर्दन पर पड़ेगा (उसे चुकाना होगा), जिसके लिए उसे बेचा जाएगा। लेकिन अगर मालिक उसका फ़िदिया (मुआवज़ा) दे दे, तो वह बेचा नहीं जाएगा। यह 'मुहीत' में है।

ज़ैद के कल्लू आदि। दो माज़ून गुलाम हैं, उनमें से कल्लू पर अम्र का एक हज़ार दिरहम कर्ज़ है। उसने दूसरे गुलाम खैरु को यह माल वसूल करने का वकील बनाया, तो यह जायज़ है। और अगर वकील ने उसे वसूल पाने का इकरार किया, तो कसम के साथ उसके बयान की तस्दीक होगी। इसकी स्थिति वही है जो पिछले मसले में बताई गई है। और अगर उसने कसम से इनकार (नकुल) किया, तो यह माल उसकी गर्दन पर लाज़िम होगा। इसका अर्थ यह है कि अगर ज़ैद ने अपने दो गुलामों कल्लू और खैरु को माज़ून (व्यापार हेतु स्वतंत्र) किया और उन दोनों पर कर्ज़ हो गया, और कल्लू के किसी लेनदार ने खैरु को अपना कर्ज़ वसूल करने का वकील बनाया और उसने वसूल पाने का इकरार कर दिया, तो यह जायज़ है। और अगर दूसरे के कुछ लेनदारों ने पहले माज़ून को या उसके मालिक को अपना कर्ज़ वसूल करने का वकील बनाया, तो वह वकील नहीं होगा और उसका कब्ज़ा जायज़ नहीं होगा। और अगर दोनों में से प्रत्येक ने अपने कर्ज़ के बदले कुछ गिरवी (रहन) रखा और उसे दूसरे के कब्ज़े में रख दिया, फिर दोनों गिरवी माल नष्ट हो गए, तो पहले माज़ून का रहन उसके कर्ज़ के बदले में नष्ट माना जाएगा और दूसरे का माल उसके माल के बदले। और अगर कर्जदार माज़ून ने अपने किसी लेनदार को खालिद नामक व्यक्ति पर स्थानांतरित (हवाला) कर दिया, तो यदि माज़ून का खालिद पर कुछ पैसा बकाया था और उस कारण हवाला किया, तो हवाला बातिल है। और अगर पैसा बकाया नहीं था, तो हवाला जायज़ है। फिर अगर लेनदार ने उसी माज़ून (जिसने हवाला दिया) को या उसके मालिक को (जिस पर हवाला दिया गया) यह माल वसूल करने का वकील बनाया, तो कब्ज़ा जायज़ नहीं है। और अगर मालिक के किसी दूसरे गुलाम या मालिक के बेटे या उस माज़ून को जिस पर असल में कर्ज़ था, वकील बनाया और उसने इकरार किया कि मैंने कर्ज़ वसूल कर लिया है, तो इकरार जायज़ है। और अगर मालिक पर कर्ज़ हो और उसने खालिद पर हवाला कर दिया, फिर लेनदार ने मालिक के गुलाम को खालिद से कर्ज़ वसूल करने का वकील बनाया और उसने वसूल पाने का इकरार किया, तो जायज़ है। यह 'मबसूत' में है।

[1] यानी इस कथन के अर्थ में कि यह इकरार उस पर और उसके साथी पर जायज़ होगा। [2] इस कथन से संकेत है कि यदि उसने मुवक्किल द्वारा वसूली का इकरार किया, तो यह सही है। वल्लाहू आलम।

---

ہو گا کہ عمرو سے اپنا تمام قرضہ وصول کرے لیکن اگر غلام مقروض نہ ہو اور وکیل اس کا مولیٰ ہو تو مولیٰ کے اقرار کی جو اس نے اپنے ماذون کی نسبت کیا ہے تصدیق کی جائے گی اور یعنی اس صورت میں ماذون عمرو سے نہیں لے سکتا ہے کذا فی المبسوط۔

ایک ماذون مقروض ہے اور قرض خواہ نے ماذون کے بیٹے یا باپ یا باپ کے غلام یا اس کے مکاتب کو وکیل کیا اس نے قرضہ وصول پانے کا اقرار کیا تو تصدیق کی جائے گی کذا فی المغنی۔ اگر زید وعمر کے ماذون پر ہزار درہم قرض ہوں اور غلام نے زید کی نسبت دعویٰ کیا کہ اس نے اپنا قرضہ وصول پایا ہے اور زید نے انکار کیا اور ماذون کے مولیٰ کو اس مقدمہ میں اپنا وکیل کیا تو توکیل باطل ہے اور اگر مولیٰ نے اقرار کیا تو اقرار باطل ہے خواہ غلام مقروض ہو یا نہ ہو اور اگر دوسرا قرضخواہ یعنی عمرو آیا اور جو کچھ ماذون کے مولیٰ نے زید کی نسبت اقرار کیا تھا وہی دعویٰ کیا اور چاہا کہ اپنا حصہ نصف اس سے واپس لے تو ایسا نہیں کر سکتا ہے اور اگر دونوں شریکوں میں سے کسی نے دوسرے کو غلام کے مقدمہ میں اپنا وکیل کیا اس نے قاضی کے سامنے اپنے شریک کی نسبت اپنا حصہ وصول پانے کا اقرار کیا تو یہ اقرار اس پر اور اس کے شریک پر جائز ہوگا اور قرضہ میں سے پانچ سو درہم کم ہو جائیں گے پھر وکیل [1] شریک نے جب باقی پانچ سو درہم وصول کیے تو اس کا شریک اس میں آدھے کا ساجھی ہو جائے گا یہ مبسوط میں ہے جاننا چاہیے کہ مولیٰ اپنے غلام ماذون سے اجنبی کی طرف سے ان کا قرضہ وصول کرنے کا وکیل نہیں ہو سکتا ہے حتیٰ کہ اگر مولیٰ نے اقرار کیا کہ اس نے میرے ماذون غلام سے اپنا قرضہ وصول پایا ہے تو اقرار صحیح نہیں ہے اور غلام بری نہ ہوگا اسی طرح اگر مولیٰ نے گواہوں کے سامنے قرضہ وصول کیا تو وصول صحیح نہیں ہے یعنی غلام اس اجنبی کے

قرضے سے بری نہ ہو گا اور یہ حکم مولیٰ کے حق میں ہے بخلاف غلام کے کہ اگر اس کو کسی اجنبی نے اس کے مولیٰ سے اپنا قرضہ وصول کرنے کا وکیل کیا اور غلام نے قبول کیا تو توکیل صحیح ہے کیونکہ وہ جو کچھ وصول کرے گا اس میں اجنبی کی طرف سے عامل ہے اپنے واسطے کچھ نہیں کرتا ہے اور اپنی جان یا مال کی براءت [2] نہیں کرتا ہے۔ پھر واضح ہو کہ جب غلام کا وکیل ہونا اس معاملہ میں صحیح ٹھہرا تو ہم کہتے ہیں کہ اگر مولیٰ نے گواہوں کے سامنے اپنے ماذون وکیل کو اجنبی کا قرضہ ادا کیا تو مولیٰ بری ہو جائے گا اسی طرح اگر غلام نے اقرار کیا کہ میں نے اپنے موکل کا قرضہ وصول کیا تھا مگر میرے پاس تلف ہو گیا تو اقرار صحیح ہے یعنی اس کا مولیٰ قرضے سے بری ہو جائے گا مگر غلام سے وصول کرنے اور تلف ہو جانے پر قسم لی جائے گی پس اگر قسم کھالی تو بری ہو گیا اور اگر نکول کیا تو یہ مال اس کی گردن پر پڑے گا جس کے واسطے فروخت ہو گا لیکن اگر مولیٰ اس کا فدیہ دے دے تو فروخت نہ ہو گا۔ یہ محیط میں ہے۔

زید کے کلو وغیرہ۔ دو ماذون غلام ہیں ان میں سے ایک کلو پر عمرو کے ہزار درہم قرض ہیں اس نے خیر و دوسرے کو اس مال کے وصول کرنے کا وکیل کیا تو جائز ہے اور اگر وکیل نے اس کے وصول پانے کا اقرار کیا تو قسم سے اس کے قول کی تصدیق ہو گی اس کی صورت وہی ہے جو مسئلہ سابقہ میں بیان ہے اور اگر اس نے قسم سے نکول کیا تو یہ مال اس کی گردن پر لازم ہو گا یہ معنی ہیں ہے اگر زید نے اپنے دو غلام کلو و خیر و کو ماذون کیا اور ان دونوں پر قرضہ ہو گیا اور کلو کے کسی قرض خواہ نے خیرو کو اپنا قرضہ وصول کرنے کا وکیل کیا اس نے وصول پانے کا اقرار کر دیا تو جائز ہے اور اگر دوسرے کے بعض قرض خواہو نے پہلے ماذون کو یا اس کے مولیٰ کو اپنا قرضہ وصول کرنے کا وکیل کیا تو وہ وکیل نہ ہو گا اور اس کا قبضہ جائز نہ ہو گا اور اگر دونوں میں سے ہر ایک نے اپنے قرضہ کے عوض کچھ رہن کیا اور اس کو دوسرے

کے قبضہ میں رکھ دیا پھر دونوں مال مرہون تلف ہو گئے تو پہلے ماذون کا رہن اس کے قرضہ کے معاوضہ میں تلف ہو گا اور دوسروں کا مال اس کے مال کے عوض تلف ہو گا اور اگر ماذون مقروض نے اپنے کسی قرض خواہ کو ایک شخص خالد پر حوالہ کر دیا پس اگر ماذون کا خالد پر کچھ مال آتا تھا اس کی وجہ سے حوالہ کیا ہے تو حوالہ باطل ہے اور اگر مال نہیں آتا تھا تو حوالہ جائز ہے۔ پھر اگر طالب نے اسی ماذون محیل کو یا اس کے مولیٰ محتال علیہ سے یہ مال حوالہ وصول کرنے کے واسطے وکیل کیا تو قبضہ نہیں جائز ہے اور اگر مولیٰ کے کسی دوسرے غلام یا مولیٰ کے بیٹے یا اس ماذون کے جس پر اصل میں قرضہ تھا کسی غلام کو وکیل کیا اور اس نے اقرار کیا کہ میں نے محتال علیہ سے قرضہ وصول کیا ہے تو اقرار جائز ہے اور اگر مولیٰ پر قرضہ ہو اور اس نے خالد پر حوالہ کر دیا پھر قرض خواہ نے مولیٰ کے غلام کو خالد سے قرضہ وصول کرنے کا وکیل کیا اور اس نے خالد سے وصول پانے کا اقرار کیا تو جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔

---

[1] یعے معنی میں اس قول کے کہ یہ اقرار اس پر اور اس کے شریک پر جائز ہو گا۔ [2] اس قول سے اشارہ ہے کہ اگر اس نے موکل کے وصول پانے کا اقرار کیا تو یہ صحیح ہے واللہ اعلم۔

---

**Kitab al-Ma'dhun** (The Book of the Authorized Slave) **Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Page: 20**

If a 'Mahjur' (restricted) slave accepts an agency (wakalat) to sell a specific item belonging to Khalid on Khalid's behalf, it is permissible. Once the sale is completed, it shall be valid. The proceeds (price) shall belong to Khalid, but the responsibility for the sale (legal obligations of the seller) shall not lie with the slave, but with Khalid. If the Mahjur slave is later manumitted (freed), the responsibility for the sale will then shift to him. If the buyer discovers a defect in the sold item before the slave's manumission, the opposing party in the dispute will not be the slave, but the owner of the goods, Khalid. Thus, if the buyer produces witnesses to prove the defect, he will return the item to Khalid and reclaim the price from him. If there are no witnesses, Khalid shall be required to take an 'Ilmi' (informative) oath: "By Allah, I do not know that the slave of Amr sold this item in a condition where it had this defect." If he takes the oath, he will be absolved of the claim; otherwise, the item will be returned to him, and the price will be recovered from him. If the buyer claims a defect but the slave is manumitted before witnesses are presented, then this manumitted slave will be the defendant, and the buyer will present his witnesses against him. If there are no witnesses, an oath will be taken from the slave himself. If the buyer presented witnesses against the principal (Khalid) before the slave's manumission, but the Qazi (judge) had not yet issued a decree based on those witnesses before the slave was freed, the Qazi shall issue the decree against the manumitted slave based on that same testimony. After manumission, the buyer will not be burdened with presenting witnesses against the slave again. Similarly, if the buyer had presented only one witness against the principal before manumission, he shall present the second witness against the slave after manumission, and the Qazi will not require him to repeat the testimony of the first witness. In such a case, if the Qazi annuls the sale based on witnesses, it should be noted that if the buyer received the price from Khalid himself, he shall reclaim it from him and make no claim against the manumitted slave. If the slave had received the price from Khalid, the buyer shall reclaim it from him. If the price was lost while in the slave's possession and the buyer reclaimed it from him, the slave will then reclaim it from his principal (Khalid). This is mentioned in *Al-Muhit*.

If a 'Ma'dhun' (authorized) slave misappropriated (*ghasab*) one thousand dirhams from Zaid, and Amr collected them from the slave and they were lost in Amr's possession, then Zaid appeared and chose to seek compensation from Amr, the

Ma'dhun slave will be absolved. Then, if the Ma'dhun slave or his master appoints a representative (*wakil*) to collect his compensation dirhams from Amr, the representative's acknowledgment of receipt is valid. Similarly, if the master chose to take compensation from the Ma'dhun slave and appointed someone to collect it from Amr, that is also valid. However, if the master appointed the Ma'dhun's master as a representative to collect from him, it is not valid. If the master acknowledges receipt in this case, it will be void (*batil*). If a master designates a debt-ridden slave as 'Mudabbar' (promised freedom after the master's death) and the creditors choose to take the slave's value as compensation from the master, then appointing the Mudabbar to collect this compensation from the master is not valid. Similarly, if they chose to apprehend the Mudabbar for collection and appointed the master to collect from him, it is also not valid. Furthermore, if the master frees the slave after making him a Mudabbar, the liability (*zamanat*) will not re-attach to him anew; meaning, the claimants will not have the right to make him a guarantor. If during the first agency he collected something from the Mudabbar, this possession will not be valid in favor of the creditors. If they appoint a representative after he is manumitted, it is valid. This is in *Al-Mabsut*. And there is authority to give and take pledges (*rahn*), as stated in *Al-Kafi*.

If a Ma'dhun slave wishes to pay the debt of one of his creditors or give a pledge in lieu of debt, the other creditors have the right to reject this. If there is only one creditor and the Ma'dhun slave gives a pledge for his debt, and by mutual consent the pledged item is kept with the master and it is lost in his possession, then the slave's property is gone and the debt remains as it was. However, if they both placed it in the hands of another slave of the master, or a 'Mukatib' slave, or the master's son, and the pledged property is lost, it shall be considered as payment for the debt. The same rule applies if the debt-ridden Ma'dhun slave placed it with another slave. Similarly, if the loss is known only through the slave's statement and not by any other means, then his oath will be taken, meaning the Qazi will administer an oath. It is not mentioned here whether the oath is 'Ilmi' (informative) or 'Qat'i' (absolute); it is appropriate that the oath be absolute. And Allah knows best.

**किताब अल-माज़ून फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 पृष्ठ: 20**

एक 'मूहजूर' (पाबंद) गुलाम ने यदि खालिद की ओर से खालिद के किसी निश्चित माल को बेचने की वकालत स्वीकार की, तो यह जायज़ है। और जब उसने बिक्री कर दी, तो वह भी जायज़ होगी। इसकी कीमत खालिद को मिलेगी, लेकिन बिक्री की जिम्मेदारी गुलाम पर नहीं, बल्कि खालिद पर होगी। फिर यदि वह गुलाम आज़ाद हो जाए, तो बिक्री की जिम्मेदारी उसके ऊपर आ जाएगी। यदि गुलाम के आज़ाद होने से पहले ग्राहक (खरीदार) ने माल में कोई दोष पाया, तो मुक़ाबले में उसका विरोधी वह गुलाम नहीं होगा, बल्कि माल का मालिक यानी खालिद होगा। अतः यदि ग्राहक ने दोष के गवाह पेश किए, तो माल खालिद को वापस देकर उसी से कीमत वापस लेगा। यदि गवाह न हों, तो खालिद से 'इल्मी' (जानकारी वाली) कसम ली जाएगी कि "ईश्वर की शपथ, मैं नहीं जानता कि अम्र महजूर के गुलाम ने उस माल को ऐसी स्थिति में बेचा कि उसमें यह दोष था।" यदि वह कसम खा ले तो दावे से मुक्त हो जाएगा, अन्यथा वह माल उसे वापस देकर उससे कीमत वापस ली जाएगी। यदि ग्राहक ने माल में दोष का दावा किया लेकिन गवाह पेश करने से पहले ही गुलाम आज़ाद हो गया, तो प्रतिवादी यही आज़ाद गुलाम माना जाएगा और ग्राहक उसी के खिलाफ अपने गवाह पेश करेगा। यदि गवाह न हों, तो उसी गुलाम से कसम ली जाएगी। यदि ग्राहक ने गुलाम के आज़ाद होने से पहले मुवक्किल (मालिक) पर गवाह पेश किए, लेकिन काज़ी (न्यायाधीश) ने अभी उन गवाहों पर डिक्री नहीं दी थी कि वह गुलाम आज़ाद हो गया, तो काज़ी उसी गवाही के आधार पर उस आज़ाद गुलाम के खिलाफ डिक्री दे देगा। आज़ादी के बाद ग्राहक को दोबारा गुलाम पर गवाह पेश करने की तकलीफ नहीं दी जाएगी। इसी तरह यदि आज़ादी से पहले ग्राहक मुवक्किल पर एक ही गवाह पेश कर चुका हो, तो आज़ादी के बाद वह दूसरा गवाह इस गुलाम पर पेश करेगा और काज़ी उसे पहले गवाह को दोबारा पेश करने की तकलीफ नहीं देगा। फिर ऐसी स्थिति में यदि काज़ी ने गवाहों के आधार पर बिक्री रद्द कर दी, तो देखना चाहिए कि यदि ग्राहक ने स्वयं खालिद से कीमत प्राप्त की है, तो ग्राहक उसी से अपनी कीमत लेगा, आज़ाद गुलाम से कुछ नहीं मांगेगा। और यदि गुलाम ने खालिद से कीमत प्राप्त कर ली हो, तो ग्राहक उससे वापस लेगा। और यदि कीमत गुलाम के पास नष्ट हो गई हो और ग्राहक ने उससे वापस ली हो, तो गुलाम अपने मुवक्किल से पुनः वसूल करेगा। यह 'मुहीत' में है।

यदि 'माज़ून' (अनुमति प्राप्त) गुलाम ने ज़ैद के एक हज़ार दिरहम छीन लिए और अम्र ने उससे वसूल कर लिए और वे उसके पास नष्ट हो गए, फिर ज़ैद आया और उसने अम्र से हर्जाना लेने का विकल्प

चुना, तो माज़ून मुक्त हो जाएगा। फिर यदि माज़ून या उसके स्वामी ने अम्र से अपने हर्जाने के दिरहम वसूल करने के लिए किसी को वकील बनाया, तो वकील का वसूली का इकरार जायज़ है। इसी तरह यदि स्वामी ने माज़ून से हर्जाना लेना तय करके अम्र से वसूल करने के लिए वकील बनाया, तो वह भी जायज़ है। लेकिन यदि माज़ून के स्वामी को उससे वसूल करने का वकील बनाया, तो जायज़ नहीं है। यदि स्वामी ने इस स्थिति में वसूली का इकरार लिया तो वह शून्य (बातिल) होगा। यदि स्वामी ने कर्जदार गुलाम को 'मुदब्बर' (वह गुलाम जिसे स्वामी की मृत्यु के बाद आज़ादी का वादा हो) बना दिया और ऋणदाताओं ने यह चुना कि वे स्वामी से उसकी कीमत के बराबर हर्जाना लेंगे, फिर मुदब्बर को यह हर्जाना स्वामी से वसूल करने का वकील बनाया, तो यह वकालत और वसूली का इकरार जायज़ नहीं है। इसी तरह यदि मुदब्बर से पकड़कर वसूली करना चुना और स्वामी को उससे वसूल करने का वकील बनाया, तो भी जायज़ नहीं है। फिर यदि मुदब्बर बनाने के बाद स्वामी ने उसे आज़ाद कर दिया, तो उस पर जिम्मेदारी (ज़मानत) नए सिरे से वापस नहीं आएगी, यानी दावेदारों को यह अधिकार नहीं होगा कि उसे ज़मानतदार बना दें। और यदि पहली वकालत के दौरान उसने मुदब्बर से कुछ वसूल किया, तो यह कब्ज़ा ऋणदाताओं के हक में जायज़ नहीं होगा। और यदि आज़ाद करने के बाद उन्होंने वकील बनाया, तो जायज़ है। यह 'मब्सूत' में है। और गिरवी (रहन) रखने और देने का अधिकार है, जैसा कि 'काफी' में वर्णित है।

यदि माज़ून ने अपने ऋणदाताओं में से किसी एक का ऋण चुकाना चाहा या ऋण के बदले गिरवी रखना चाहा, तो अन्य ऋणदाताओं को इसे अस्वीकार करने का अधिकार है। और यदि ऋणदाता एक ही व्यक्ति हो और माज़ून ने उसके ऋण के बदले गिरवी रखा और दोनों की सहमति से गिरवी रखा गया माल स्वामी के पास रखा गया और उसके पास नष्ट हो गया, तो गुलाम का माल गया और ऋण यथावत बना रहेगा। और यदि दोनों ने स्वामी के किसी दूसरे गुलाम, मुकातिब, या पुत्र के हाथ में रखा और माल नष्ट हो गया, तो वह ऋण के बदले माना जाएगा। इसी प्रकार यदि कर्जदार माज़ून ने किसी गुलाम के पास रखा हो, तब भी यही नियम है। इसी प्रकार यदि उसका नष्ट होना केवल गुलाम के बयान के अलावा किसी अन्य तरीके से पता न चले, तो भी उसकी कसम मान्य होगी, यानी काज़ी कसम लेगा। और यहाँ यह उल्लेख नहीं है कि कसम 'इल्मी' है या 'कत्ई' (निश्चित), उचित यह है कि कसम कत्ई हो। वल्लाहु आलम (अल्लाह बेहतर जानता है)।

---

**کتاب الماذون فتاوی عالمگیری ..... جلد ۸ صفحہ: ۲۰**

غلام محجور نے اگر خالد کی طرف سے خالد کے کسی مال معین فروخت کرنے کی وکالت قبول کی تو جائز ہے اور جب بیع کر دی تو جائز ہو گی اور اس کا ثمن خالد کو ملے گا مگر بیع کا عہدہ غلام کے ذمہ نہ ہوگا بلکہ خالد پر ہوگا پھر اگر محجور آزاد ہو گیا تو عہدۂ بیع اس کے ذمہ آجائے گا اور اگر غلام کے آزاد ہونے سے پہلے مشتری نے مبیع میں کچھ عیب پایا تو اس کے مقابلہ میں خصم اس کا یہ غلام نہ ہو گا بلکہ مالک متاع یعنی خالد ہو گا پس اگر مشتری نے عیب کے گواہ پیش کیے تو مبیع خالد کو واپس دے کر اسی سے ثمن واپس لے گا اور گواہ نہ ہوں تو خالد سے علمی قسم لی جائے گی کہ واللہ میں نہیں جانتا ہوں کہ عمرو محجوری کے غلام نے اس مبیع کو ایسے حال میں فروخت کیا کہ اس میں یہ عیب تھا پس اگر قسم کھا گیا تو دعویٰ سے بری ہو گا ورنہ وہ متاع اس کو واپس دے کر اس سے ثمن واپس لیا جائے گا اور اگر مشتری نے متاع میں عیب لگایا لیکن ہنوز گواہ پیش نہ کئے تھے کہ غلام آزاد ہو گیا تو مدعاعلیہ یہی غلام آزاد قرار پائے گا کہ مشتری اسی کے مقابلہ میں اپنے گواہ پیش کرے گا اور اگر گواہ نہ ہوں گے تو اسی غلام سے قسم لے گا۔ اگر مشتری نے غلام کے آزاد ہونے سے پہلے موکل پر گواہ پیش کیے مگر ہنوز قاضی نے ان گواہوں پر مدعی کی ڈگری نہ کی تھی کہ وہ غلام آزاد ہو گیا تو قاضی اسی گواہی سے اس غلام آزاد شدہ پر ڈگری کر دے گا بعد عتق کے مشتری کو دوبارہ غلام پر گواہ پیش کرنے کی تکلیف نہ دے گا اسی طرح اگر قبل عتق کے مشتری موکل پر ایک ہی گواہ پیش کر چکا ہو تو محجور کے عتق کے بعد مشتری دوسرا گواہ اس غلام پر پیش کرے گا اور قاضی پہلے گواہ کے اعادہ کے واسطے اس کو تکلیف نہ دے گا پھر ایسے حال میں اگر قاضی نے گواہوں پر بیع توڑ دی تو دیکھنا چاہیے کہ اگر مشتری نے خود خالد سے ثمن وصول کیا ہے تو مشتری اسی سے

اپنا ثمن لے گا غلام آزاد شدہ سے کچھ مطالبہ نہ کرے گا اور اگر غلام نے خالد سے وصول کر لیا ہو تو مشتری اس سے واپس لے گا اور اگر ثمن غلام کے پاس تلف ہو ا ہو اور مشتری نے اس سے واپس لیا تو غلام اپنے مؤکل سے پھر واپس لے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر ماذون نے زید کے ہزار درہم غصب کر لیے اور اس سے عمرو نے وصول کر لیے اور اس کے پاس تلف ہو گئے پھر زید حاضر ہوا اور اس نے یہ اختیار کیا کہ عمرو سے تاوان لے تو ماذون بری ہو جائے گا پھر اگر ماذون یا اس کے مولیٰ کو عمرو سے اپنے تاوانی درہم وصول کرنے کا وکیل کیا تو وکیل کا اقرار وصول جائز ہے اسی طرح اگر مالک نے ماذون سے تاوان لینا اختیار کر کے عمرو کو وصول کرنے کا وکیل کیا تو وہ بھی جائز ہے لیکن اگر ماذون کے مولیٰ کو اس سے وصول کرنے کا وکیل کیا تو جائز نہیں ہے اگر مولیٰ نے اس صورت میں وصول پانے کا اقرار لیا تو باطل ہو گا۔ اگر مولیٰ نے غلام مقروض کو مدبر کیا اور قرض خواہوں نے یہ اختیار کیا کہ مولیٰ سے اس کی قیمت تاوان لیں پھر مدبر کو یہ تاوان مولیٰ سے وصول کرنے کا وکیل کیا تو یہ وکیل و اقرار وصول جائز نہیں ہے اسی طرح اگر مدبر سے دستگیر ہو کر وصول کرنا اختیار کیا اور مولیٰ کو اس سے وصول کرنے کا وکیل کیا تو بھی جائز نہیں ہے پھر اگر مدبر کرنے کے بعد مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا تو از سر نو اس پر ضمان عود نہ کرے گی یعنی طالبوں کو یہ استحقاق حاصل نہ ہوگا کہ اس کو ضامن بنا دیں اور اگر وکالت اولیٰ میں اس نے مدبر سے کچھ وصول کیا تو یہ قبضہ قرض خواہوں کے حق میں جائز نہ ہو گا اور اگر بعد آزاد کرنے کے انہوں نے وکیل کیا تو جائز ہے یہ مبسوط میں ہے اور رہن دینے اور رہن رکھنے کا اختیار ہے کذا فی الکافی۔

اگر ماذون نے اپنے قرض خواہوں میں سے کسی کو اس کا قرض ادا کرنا یا قرض کے عوض رہن دینا چاہا تو دوسرے قرض خواہوں کو رد کرنے کا اختیار ہے۔ اور اگر قرض خواہ ایک ہی شخص

ہو اور ماذون نے اس کے قرض کے عوض رہن دیا اور دونوں نے برضا مندی مال مرہون مولیٰ کے پاس رکھایا اور اس کے پاس سے ضائع ہو گیا تو غلام کا مال گیا اور قرض اس پر بحالہ باقی رہے گا اور اگر دونوں نے مولیٰ کے کسی دوسرے غلام یا مکاتب یا بیٹے کے ہاتھ میں رکھا ہو اور مال رہن تلف ہو گیا تو عوض قرض کے کیا اسی طرح اگر ماذون مقروض نے کسی غلام کے پاس رکھا ہو تو بھی یہی حکم ہے اسی طرح اگر اس کا تلف ہو جانا سوائے غلام کے قول کے اور کسی طرح معلوم نہ ہو تو بھی قول قسم لے گا یعنی قاضی قسم لے گا اور یہ مذکور نہیں ہے کہ قسم علمی ہے یا قطعی ہے ، چاہیے ہے کہ قسم قطعی ہو واللہ اعلم۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 21 | Kitab al-Mazun (The Book of Authorized Slaves)**

This ruling is found in 'Al-Mabsut'. An authorized slave (*Mazun*) has the right to lease land or enter into a crop-sharing agreement (*Muzara'ah*), whether the seeds are provided by him or by the farmer. This is mentioned in 'Fatawa Qazi Khan'. He is also authorized to purchase wheat and cultivate it, as stated in 'At-Tabyin'. However, he does not have the right to give wheat to another person on the condition that the person sows it in his own land for half the crop, as stated in 'An-Nihaya'.

Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA) stated that it is not permissible for a *Mazun* to provide personal (*Kafalat-bin-Nafs*) or financial (*Kafalat-bil-Mal*) guarantees, whether the slave is in debt or not. However, if the slave's master gives him permission to provide a guarantee and he does so, it is permissible, provided the slave is not in debt. If he is in debt, it is not permissible. Shams al-A'immah al-Sarakhsi (RA) used to say that if a *Mazun* accepts a financial guarantee, whether with or without the master's permission, and he was in debt, he will be held liable after gaining freedom; this is mentioned in 'Az-Zakhira'.

If a *Mazun*, with his master's permission, becomes a guarantor for Zaid and says, "If Khalid dies and does not pay your due, I am the guarantor," while the slave already owes one thousand Dirhams to Bakr and the debt is immediate (not deferred). Then, the judge sells the slave for one thousand Dirhams; these thousand Dirhams will go to Bakr. If Zaid's right remains unpaid, Zaid will take his share of the slave's price from the first creditor, Bakr, proportionate to the guaranteed amount. If the *Mazun* accepted a personal guarantee, immediate or deferred, with the master's permission and then the master sold him, the sale is valid. The beneficiary of the guarantee (*Makful-lahu*) has no right to annul the sale, but wherever he finds the slave in the buyer's possession, he will hold him liable under the guarantee. This constitutes a defect (*ayb*), so the buyer has the option (*Khiyar*) to return him to the seller. If a master tells his slave, "Guarantee the thousand Dirhams that Zaid owes to Amr, such that if Amr dies without paying this wealth, I am the guarantor," then if the master sells that slave to the financier (*Rabb-al-Mal*), it is valid; the master will receive the price and is free to do as he wishes. If Amr dies without paying the debt, Zaid will recover his debt from the seller from the slave's price. If his debt exceeds the price, the excess is void. If Zaid found a defect, returned him to the master, and recovered his price, then in this case, the slave will be sold to satisfy his debt. If the price was lost while with the seller and the buyer found a defect, he has the right to return him

but cannot take anything from the seller; however, the slave will be sold for his price. If he sells for more than the price, the excess will be taken towards his debt; this is in 'Al-Mughni'.

**If the master grants permission for a *Mufawada* partnership, what trades will that permission include?** ☆

The *Mazun* has the right to enter into an *Inan* partnership (limited partnership) with another, but he cannot enter into a *Mufawada* partnership (equal partnership). If he enters into a *Mufawada* partnership, it will be established as an *Inan* partnership, not *Mufawada*; this is in 'Al-Muheet'. Furthermore, it should be clear that an *Inan* partnership is only valid when both parties have entered into a general partnership without restricting purchases to cash or credit. If two authorized slaves enter into an *Inan* partnership to buy on both cash and credit, the credit part is not permissible while the cash part is valid. However, if both their masters permit a partnership for cash and credit purchases and both slaves are not in debt, it is permissible. This is similar to how it is permissible if each slave's master permits him to accept a guarantee or an agency for credit purchases; this is in 'An-Nihaya'. If the master grants permission for a *Mufawada* partnership, refer to the details of *Inan* and *Mufawada* partnerships in the 'Book of Partnership' (*Kitab al-Shirkah*).

---

1. *Mu'ajjal* means an immediate guarantor without a time limit, and *Mu'ajjal* means, for example, "I will produce him on a specific announced date."
2. Refer to the explanation of *Inan* and *Mufawada* partnerships in the 'Book of Partnership'.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 21 | किताब अल-माज़ून**

यही हुक्म होगा, यह 'मबसूत' में है। माज़ून (अधिकृत गुलाम) को अधिकार है कि वह ज़मीन किराये (इजारा) पर दे दे या मज़ारअत (साझेदारी की खेती) पर दे दे या ले ले, चाहे बीज उसकी ओर से हों या काश्तकार की ओर से। यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। और उसे अधिकार है कि वह गेहूँ खरीदकर उसमें खेती करे, जैसा कि 'अत-तबीन' में है। लेकिन उसे यह अधिकार नहीं है कि वह गेहूँ किसी दूसरे व्यक्ति को इस उद्देश्य से दे कि वह व्यक्ति अपनी ज़मीन में आधे की बटाई पर बोए, जैसा कि 'अन्नहाया' में है।

इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि माज़ून के लिए कफ़ालत-बिन-नफ़्स (व्यक्तिगत ज़मानत) या कफ़ालत-बिल-माल (वित्तीय ज़मानत) जायज़ नहीं है, चाहे माज़ून ऋणी हो या न हो। और अगर माज़ून के मालिक ने उसे कफ़ालत की इजाज़त दे दी और उसने कफ़ालत की, तो यह जायज़ है, बशर्ते कि उस पर कोई कर्ज़ न हो। और अगर कर्ज़ हो तो जायज़ नहीं है। शम्सुल अइम्मा सरख़सी (रह.) फ़रमाते थे कि अगर माज़ून ने कफ़ालत-बिल-माल स्वीकार कर ली, चाहे मालिक की इजाज़त से हो या बिना इजाज़त, और उस पर कर्ज़ था, तो आज़ाद होने के बाद उससे जवाबदेही ली जाएगी, यह 'अज़-ज़ख़ीरा' में है।

अगर माज़ून ने अपने मालिक की इजाज़त से ज़ैद के लिए ज़मानत ले ली और कहा कि "अगर खालिद मर गया और उसने तुम्हारा हक अदा नहीं किया तो मैं ज़िम्मेदार हूँ," जबकि उस गुलाम पर बकर का एक हज़ार दिरहम का कर्ज़ है और कर्ज़ ऐसा है जो तत्काल देय है यानी मियादी (समय-बद्ध) नहीं है। फिर काज़ी ने उस गुलाम को एक हज़ार दिरहम में बेच दिया, तो ये एक हज़ार दिरहम बकर को मिलेंगे। और अगर ज़ैद का हक अदा नहीं हुआ, तो ज़ैद पहले लेनदार बकर से गुलाम की कीमत (समन) में से ज़मानत राशि के बराबर हिस्सा लेगा। और अगर माज़ून ने तत्काल या मियादी व्यक्तिगत ज़मानत मालिक की अनुमति से स्वीकार की, फिर मालिक ने उसे बेच दिया, तो बिक्री जायज़ है। और ज़मानतदार व्यक्ति (मक़फ़ूल लहू) को बिक्री रद्द करने का अधिकार नहीं है, लेकिन जहाँ कहीं गुलाम खरीदार के कब्ज़े में मिलेगा, वह उसे कफ़ालत के तहत पकड़ लेगा। और यह एक दोष (ऐब) है, इसलिए खरीदार को विकल्प (ख़ियार) होगा कि चाहे तो विक्रेता को वापस कर दे। और अगर मालिक ने अपने गुलाम से कहा कि "ज़ैद के जो एक हज़ार दिरहम अम्र पर हैं, उनकी ज़मानत इस तरह करो कि अगर अम्र बिना यह माल चुकाए मर गया तो मैं ज़िम्मेदार हूँ," फिर अगर मालिक ने वह गुलाम पूँजीपति (रब-अल-माल) के हाथ बेच दिया तो जायज़ है, और उसकी कीमत मालिक को

मिलेगी और उसे पूरा अधिकार है। फिर अगर अम्र मर गया और कर्ज़ अदा नहीं किया, तो ज़ैद अपना कर्ज़ विक्रेता से उस गुलाम की कीमत से वापस लेगा। यदि उसका कर्ज़ कीमत से ज़्यादा हो, तो अधिक राशि अमान्य हो जाएगी। और अगर ज़ैद ने इसमें कोई दोष पाकर मालिक को वापस करके अपनी कीमत वापस ले ली हो, तो ऐसी स्थिति में वह गुलाम उसके कर्ज़ के बदले बेचा जाएगा। और अगर कीमत विक्रेता के पास नष्ट हो गई हो और खरीदार ने दोष पाया, तो उसे वापस करने का अधिकार है और वह विक्रेता से कुछ नहीं ले सकता, लेकिन गुलाम उसकी कीमत के लिए बेचा जाएगा। फिर अगर कीमत से कुछ ज़्यादा में बिका, तो वह अतिरिक्त राशि अपने कर्ज़ में ले लेगा, यह 'अल-मुग़नी' में है।

**मालिक ने शिरकत-ए-मुफ़ावदा की अनुमति दी, तो वह अनुमति किन व्यापारों को शामिल होगी?** ☆

माज़ून को अधिकार है कि वह दूसरे के साथ 'शिरकत-ए-इनान' (सीमित साझेदारी) कर ले, लेकिन 'शिरकत-ए-मुफ़ावदा' (पूर्ण साझेदारी) नहीं कर सकता। और अगर उसने मुफ़ावदा कर ली, तो वह शिरकत-ए-इनान के रूप में लागू होगी, मुफ़ावदा के रूप में नहीं, यह 'अल-मुहीत' में है। फिर स्पष्ट हो कि शिरकत-ए-इनान भी तभी सही है जब दोनों ने बिना किसी शर्त के साझेदारी की हो, और नकद या उधार खरीदने की कोई पाबंदी न लगाई हो। और अगर दो माज़ून गुलामों ने इस तरह शिरकत-ए-इनान की कि वे मिलकर नकद और उधार खरीदें, तो इसमें उधार जायज़ नहीं है और नकद जायज़ है। लेकिन अगर दोनों के मालिकों ने नकद और उधार खरीदने की साझेदारी की इजाज़त दे दी हो, और दोनों माज़ून ऋणी न हों, तो यह जायज़ है। जैसा कि अगर हर एक के मालिक ने उसे कफ़ालत की या उधार खरीदने की वकालत स्वीकार करने की अनुमति दे दी हो, तो वह जायज़ होती है, यह 'अन्नहाया' में है। और अगर मालिक ने उसे शिरकत-ए-मुफ़ावदा की अनुमति दी, तब भी शिरकत-ए-इनान और मुफ़ावदा का विवरण 'किताबुश-शिरका' में देखें।

---

1. मुअज्जल यानी तत्काल ज़मानत जिसमें कोई समय-सीमा नहीं है, और मुअज्जल यह कि उदाहरण के लिए एक निश्चित तारीख पर उसे उपस्थित करूँगा।
2. शिरकत-ए-इनान और मुफ़ावदा का विवरण 'किताबुश-शिरका' में देखें।

---

یہی حکم ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ ماذون کو اختیار ہے کہ زمین اجارہ پر دے لے یا مزارعت پر دے دے یا لے خواہ بیج اس کی طرف سے ٹھہرے ہوں یا کاشتکار کی طرف سے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اس کو اختیار ہے کہ گیہوں خرید کر کے اس میں زراعت کرے کذانی التبیین اور اس کو یہ اختیار نہیں ہے کہ گیہوں دوسرے شخص کو اس غرض سے دے کہ یہ شخص اپنی زمین میں آدھے کی بٹائی پر بودے کذانی النہایہ۔

امام ابویوسفؒ اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ ماذون کو کفالت بالنفس یا بالمال جائز نہیں ہے خواہ ماذون مقروض ہو یا نہ ہو اور اگر ماذون کے مولیٰ نے اس کو کفالت کی اجازت دے دی اور اس نے کفالت کی تو جائز ہے بشرطیکہ اس پر قرضہ نہ ہو اور اگر قرضہ ہو تو نہیں جائز ہے اور شمس الائمہ سرخسیؒ فرماتے تھے کہ اگر ماذون نے کفالت بالمال کو قبول کیا خواہ با اجازت مولیٰ ہو یا بلا اجازت ہو اور اس پر قرضہ تھا تو بعد آزادی کے ماخوذ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر ماذون نے اپنے مولیٰ کی اجازت سے زید کے واسطے ضمانت کر لی اور کہا کہ اگر خالد مر گیا اور تیرا حق ادا نہ کیا تو میں ضامن ہوں حالانکہ اس غلام پر بکر کے ہزار درہم قرضہ ہیں اور قرضہ ایسا ہے کہ حالہ ہے یعنی میعادی نہیں ہے پس قاضی نے اس غلام کو ہزار درہم میں فروخت کیا تو یہ ہزار درہم بکر کو ملیں گے اور زید کا حق ادا نہ کیا تو زید پہلے قرض خواہ بکر سے غلام کے ثمن میں سے بقدر حصہ مکفول بہ کے لے گا اور اگر ماذون نے تعجلؒ یا موجل کفالت بالنفس باجازت مولیٰ قبول کی پھر مولیٰ نے اس کو فروخت کیا تو جائز ہے اور مکفول لہ کو بیع توڑ دینے کا اختیار نہیں ہے مگر غلام جہاں کہیں مشتری کے قبضہ میں پائے گا دامنگیر ہو کر

اس کو کفالت میں ماخوذ کرے گا اور یہ ایک عیب ہے سو مشتری کو خیار حاصل ہو گا کہ چاہے بائع کو واپس کر دے اور اگر مولیٰ نے اپنے غلام سے کہا کہ زید کے عمرو پر جو ہزار درہم آتے ہیں اس کی کفالت اس طور سے کرے کہ اگر عمرو بدون اس مال کے ادا کرنے کے مر گیا تو میں ضامن ہوں پھر اگر مولیٰ نے وہ غلام رب المال کے ہاتھ فروخت کیا تو جائز ہے اور اس کا ثمن مولیٰ کو ملے گا سوا اس کو اختیار ہے جو چاہے سو کرے پھر اگر عمرو مر گیا اور قرضہ ادا نہ کیا تو زید اپنا قرضہ بائع سے اس غلام کے ثمن سے واپس لے گا پس اگر اس کا قرضہ ثمن سے زیادہ ہو تو زیادتی باطل ہو جائے گی اور اگر زید نے اس میں کوئی عیب پا کر مولیٰ کو واپس کر کے اپنا ثمن واپس کر لیا ہو تو اس صورت میں وہ غلام اس کے قرضہ کے عوض فروخت کیا جائے گا اور اگر ثمن بائع کے پاس تلف ہو گیا ہو اور مشتری نے عیب پایا تو اس کو واپس کرنے کا اختیار ہے اور بائع سے کچھ نہیں لے سکتا ہے مگر غلام اس کے ثمن کے واسطے فروخت کیا جائے گا پھر اگر ثمن سے کچھ زیادہ بکا تو زیادتی اپنے قرضہ میں لے لے گا یہ مغنی میں ہے۔

**مولیٰ نے شرکت مفاوضہ کی اجازت مرحمت کی تو وہ اجازت کن تجارتوں کو شامل ہو گی ☆**

ماذون کو اختیار ہے کہ دوسرے سے شرکت عنان کر لے مگر شرکت مفاوضہ نہیں کر سکتا ہے اور اگر شرکت مفاوضہ کر لی تو وہ شرکت عنان ہو کر منعقد ہو گی نہ شرکت مفاوضہ یہ محیط میں ہے۔ پھر واضح ہو کہ شرکت عنان بھی جبھی صحیح ہے کہ جب دونوں نے مطلقاً شرکت اختیار کی ہو نقد و ادھار خریدنے کی قید نہ لگائی ہو اور اگر دو غلام ماذون التجارۃ نے اس طور پر شرکت عنان کر لی کہ باہم نقد و ادھار خریدیں تو اس میں سے ادھار نہیں جائز ہے اور نقد جائز ہے لیکن اگر دونوں کے مولاؤں نے نقد و ادھار خریدنے کی شرکت کی اجازت دے دی ، حالانکہ دونوں ماذون مقروض نہیں ہیں تو جائز ہے جیسا کہ اگر ہر ایک کے مولیٰ نے اس کو کفالت کی یا ادھار خریدنے کی وکالت قبول کرنے کی اجازت دے دی تو جائز ہوتی ہے یہ نہایہ میں ہے اور اگر

اس کو مولیٰ نے شرکت مفاوضہ کی اجازت دی تو بھی شرکت عنان اور مفاوضہ کا بیان کتاب الشرکۃ میں دیکھو۔

---

1. معجل یعنی حاضر ضامن جس میں کوئی میعاد نہیں ہے اور موجل یہ کہ مثلاً اعلان تاریخ اس کو حاضر کروں گا۔
2. شرکت عنان اور مفاوضہ کا بیان کتاب الشرکت میں دیکھو۔

---

**Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'dhun) | 32 | Fatawa Alamgiri ..... Volume 8**

General partnership (mufawadhah) will not be valid in all types of trades. However, if it becomes valid in all trades even after the master's permission, would it be valid specifically for once? Except for Imam Muhammad, who has not written about this issue in the book, and Sheikh-ul-Islam has written in his commentary that one may argue it is permissible, while another may argue it is not permissible; this is mentioned in "Al-Muhit". The authorized slave (ma'dhun) has the right to grant permission for trade. The same rule applies to the contract-based slave (mukatib) and the partner in a specific venture (sharik al-'inan) regarding things held in joint partnership.

Our scholars (mashaikh) have disagreed on one scenario: if a specific type of investment manager (mudarib) permits his subordinate slave involved in the investment to trade, does this slave become authorized for all trades or only for that specific type? Shams al-Aimmah al-Sarakhsi stated that, in my view, the most correct opinion is that he becomes authorized for all trades, as mentioned in "Al-Zahiriyyah". The authorized slave has the right to give and take property for investment (mudarabah) and to provide it as merchandise (bada'ah), as per "Al-Muhit". He also has the right to cultivate his land, give and receive deposits (wadi'ah), and give and take loans for use ('ariyah), according to "Al-Dhakhirah". In our view, he has the right to hire himself out for any work he chooses, and whatever he earns shall be handed over to his master, as stated in "Al-Muhit".

He may hire out for wet-nursing, and an authorized female slave (ma'dhunah) has the right to hire herself out for wet-nursing; this is found in "Fatawa Qazi Khan". She also has the right to sell herself or pledge herself, as in "Siraj al-Wahaj". She does not have the right to marry on her own, but it is valid with the master's permission. If she marries a free woman on her own accord, a separation shall be enforced between them. Any dower (mahr) incurred due to consummation will not be recoverable from her after she gains freedom, as per "Al-Muhit".

- He cannot arrange marriages for those under his ownership. Therefore, if he marries off his male slave, it is invalid by consensus (ijma'). If he marries off a female slave, it is also invalid according to the "Tarafayn" (Imam Abu Hanifa and Imam Muhammad), but permissible according to Imam Abu Yusuf. The same ruling applies to an authorized minor, a mudarib, and a sharik al-'inan; this is in

"Siraj al-Wahaj". An authorized slave does not have the right to enter into a contract of manumission (mukatabah) with his own slave. If he does so and the master permits it, it is valid provided the authorized slave is not in debt. Then, the authorized slave has no way to collect the payment (badal); rather, the master has the right to it. If the contract-based slave (mukatib) pays the authorized slave, he is not cleared of debt unless the master appointed the authorized slave as an agent to collect. Similarly, if the authorized slave becomes indebted after the master's permission, the same rule applies. If the authorized slave is heavily or slightly in debt, his manumission contract is void, even if the master permits it. Thus, if the contract is not revoked until the mukatib pays the consideration, and if the master had not given permission, the mukatib will not be free; instead, he will become a companion to the authorized slave and sold to pay off his debts. Any property he received during the manumission contract will also be spent on the debt. If the master gave permission and appointed the authorized slave as an agent to receive the payment, while the debt on the authorized slave is so great that it encompasses his person and property, and then the mukatib pays the manumission fee, then according to the Great Imam (Abu Hanifa), this scenario and the first one are analogous. However, according to the "Sahibayn" (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the slave becomes free, and the master must compensate the creditors for his value. Similarly, any manumission payment collected by the master shall be returned and distributed among the creditors. If the debt of the authorized slave does not encompass his person and property, then his mukatib becomes free by consensus. Then he (the master/slave) will provide a guarantee for his price to the creditors, and the manumission payment collected by the master and authorized slave will also be claimed by the creditors...

- A specific type, for example, a condition was placed on the mudarib that he trade in slaves.
- Mukatabah, meaning if he entered a contract of manumission with any of his slaves, it is void.
- He will become free because everything happened with the master's permission.

**किताब अल-माजून | ३२ | फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ८**

मुफ़ावज़ा (साझेदारी) आम तौर पर सभी व्यापारों में जायज़ नहीं होगी और जब मौला (मालिक) की अनुमति के बाद भी सभी व्यापारों में जायज़ हुई, तो क्या विशेष रूप से एक बार जायज़ होगी? सिवाय इमाम मुहम्मद के उन्होंने इस मसले को किताब में नहीं लिखा है और शेखुल इस्लाम ने अपनी शरह (व्याख्या) में लिखा है कि कहने वाला कह सकता है कि जायज़ है और कहने वाला यह भी कह सकता है कि जायज़ नहीं है, यह 'मुहीत' में है। और माजून (अनुमति प्राप्त गुलाम) को यह अधिकार है कि व्यापार की अनुमति दे और मुकातिब (आजादी का अनुबंध करने वाला गुलाम) का और शरीके अ़नान का ऐसी चीज़ में जो दोनों की भागीदारी की है, यही नियम है।

हमारे मशाइख (विद्वानों) ने एक स्थिति में मतभेद किया है वह यह है कि पहली किस्म के विशिष्ट मुज़ारिब (निवेश प्रबंधक) ने अगर अपनी मुज़ारबत के गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, तो क्या यह गुलाम सभी व्यापारों के लिए माजून होगा या उसी विशिष्ट प्रकार के लिए? और शम्सुल आइम्मा सरख्सी ने फ़रमाया कि मेरे नज़दीक सबसे सही यह है कि सभी व्यापारों के लिए माजून होगा, जैसा कि 'ज़हीरिया' में है। और माजून को अधिकार है कि माल मुज़ारबत के लिए दे और ले और बिज़ाअत (व्यापारिक वस्तु) के रूप में दे, जैसा कि 'मुहीत' में है। और माजून को अधिकार है कि अपनी ज़मीन में खेती करे और अमानत (वदीअत) रखे और अमानत स्वीकार करे और उधार (आरियत) दे और उधार ले, जैसा कि 'ज़खीरा' में है। और हमारे नज़दीक उसे यह अधिकार है कि अपने आप को जिस काम के लिए चाहे किराए पर दे दे और जो कुछ उसने कमाया हो वह उसके मालिक को सौंप दिया जाए, जैसा कि 'मुहीत' में उल्लेखित है।

दूध पिलाने के लिए किराए पर दे और जो दासी (बांदी) माजूना हो उसे अपने आप को दूध पिलाने के लिए किराए पर देने का अधिकार है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। और उसे यह अधिकार है कि अपने आप को बेचे या गिरवी रखे, जैसा कि 'सिराजुल वहाज' में है। और उसे निकाह करने का अधिकार भी नहीं है, लेकिन मौला (मालिक) की अनुमति से जायज़ है। और अगर उसने किसी स्वतंत्र महिला से स्वयं निकाह कर लिया तो दोनों के बीच अलगाव (तफ़रीक़) कर दिया जाएगा, और संभोग

के कारण जो कुछ महर उस पर वाजिब हुआ, स्वतंत्रता के बाद उसके लिए उसे जवाबदेह नहीं ठहराया जाएगा, जैसा कि 'मुहीत' में है।

- वह अपने दासों का निकाह नहीं करा सकता। अतः यदि उसने अपने गुलाम का निकाह करा दिया, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से यह जायज़ नहीं है। और यदि दासी का निकाह करा दिया, तो भी 'तरफ़ैन' (इमाम अबू हनीफा और इमाम मुहम्मद) के निकट जायज़ नहीं है, लेकिन इमाम अबू यूसुफ के निकट जायज़ है। और माजून बच्चे, मुज़ारिब और शरीके अ़नान का भी यही नियम है, यह 'सिराजुल वहाज' में है। और माजून को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने गुलाम को मुकातिब बनाए। और यदि मुकातिब बनाया और मौला ने अनुमति दे दी, तो जायज़ है बशर्ते कि माजून कर्ज़ में न हो। फिर माजून को मुकातिब की रक़म (बदल) वसूल करने का कोई रास्ता नहीं है, बल्कि मौला का अधिकार है। और यदि मुकातिब ने माजून को रक़म दी, तो वह ऋणमुक्त नहीं होगा, लेकिन यदि मौला ने माजून को वसूल करने के लिए वकील बनाया है तो यह जायज़ है। इसी प्रकार यदि मौला की अनुमति के बाद माजून ऋणी हो गया, तो भी यही नियम है। और यदि माजून पर बहुत अधिक या थोड़ा कर्ज़ हो, तो उसकी मुकातिबत (आजादी का अनुबंध) अमान्य है, चाहे मौला अनुमति ही क्यों न दे दे। अतः यदि मुकातिबत रद्द नहीं की गई यहाँ तक कि मुकातिब ने रक़म अदा कर दी, तो यदि मौला ने अनुमति नहीं दी थी तो मुकातिब आज़ाद नहीं होगा, बल्कि उसे माजून का साथी बना दिया जाएगा और उसके कर्ज़ की अदायगी के लिए बेच दिया जाएगा। और मुकातिबत में उसने जो धन लिया है, वह भी कर्ज़ में खर्च किया जाएगा। और यदि मौला ने अनुमति देकर माजून को रक़म प्राप्त करने का वकील बनाया हो, जबकि माजून पर इतना कर्ज़ हो जो उसकी जान और उसके पास मौजूद माल को घेरे हुए हो, फिर उसके मुकातिब ने रक़म अदा की, तो इमाम आज़म (अबू हनीफा) के नज़दीक यह स्थिति और पहली स्थिति तुलनात्मक रूप से (क़ियासन) समान हैं, और साहबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक वह आज़ाद हो जाएगा और मौला उसकी कीमत लेनदारों को हर्जाने के रूप में देगा। और इसी तरह जो मुकातिबत का माल मौला ने वसूल किया है, वह भी वापस लेकर लेनदारों में बाँट दिया जाएगा। और यदि माजून का कर्ज़ उसकी जान और माल को नहीं घेरे हुए है, तो उसका मुकातिब सर्वसम्मति से आज़ाद हो जाएगा, फिर वह लेनदारों को उसकी कीमत की ज़मानत (गारंटी) देगा, और जो मुकातिबत का माल मौला और माजून ने वसूल किया है, वह भी लेनदार अपने...
- विशिष्ट प्रकार, जैसे मुज़ारिब से शर्त लगाई गई कि वह गुलामों का व्यापार करे।

- मुकातिबत, यानी अगर उसने अपने किसी गुलाम को मुकातिब बनाया तो वह अमान्य है।
- वह आज़ाद हो जाएगा क्योंकि सब मौला की अनुमति से हुआ है।

---

مفاوضہ علی سبیل العموم تمام تجارات میں جائز نہ ہو گی اور جب بعد اجازت مولیٰ کے بھی تمام تجارات میں جائز ہوئی تو کیا علیٰ سبیل الخصوص ایک بار جائز ہو گی سوا امام محمدؒ نے اس مسئلہ کو کتاب میں نہیں لکھا ہے اور شیخ الاسلام نے اپنی شرح میں لکھا ہے کہ کہنے والا کہہ سکتا ہے کہ جائز ہے اور کہنے والا یہ بھی کہہ سکتا ہے کہ نہیں جائز ہے یہ محیط میں ہے اور ماذون کو یہ اختیار ہے کہ تجارت کی اجازت دے اور مکاتب کا اور شریک عنان کا ایسی چیز میں جو دونوں کی شرکت کی ہے یہی حکم ہے۔

ہمارے مشائخ نے ایک صورت میں اختلاف کیا ہے وہ یہ ہے کہ نوع اول خاص کے مضارب نے اگر اپنی مضاربت کے غلام کو تجارت کی اجازت دی تو یہ غلام آیا جمیع تجارت کے واسطے ماذون ہو گا یا اسی نوع خاص کے واسطے اور شمس الائمہ سرخسیؒ نے فرمایا کہ میرے نزدیک اصح یہ ہے کہ جمیع تجارت کے واسطے ماذون ہو گا کذا فی الظہیر یہ اور ماذون کو اختیار ہے کہ مال کو مضاربت کے واسطے دے اور لے اور بضاعت کے طور پر دے کذا فی المحیط اور ماذون کو اختیار ہے کہ اپنی زمین میں زراعت کرے اور ودیعت دے اور ودیعت لے اور عاریت دے اور عاریت لے کذا فی الذخیرہ اور اس کو ہمارے نزدیک اختیار ہے کہ اپنے تئیں جس کام کے واسطے چاہے اجارہ پر دے دے اور جو چیز اس نے کمائی ہو وہ اس کے مالک کے سپرد ہو کذا فی محیط مآخذہ ہے------

دودھ پلائی پر اجارہ دے اور جو باندی ماذونہ ہو تو اس کو اپنے تئیں دودھ پلائی پر اجارہ دینے کا اختیار ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اس کو یہ اختیار ہے کہ اپنے تئیں فروخت کرے یا رہن

کرے کذا فی سراج الوہاج اور اپنے نکاح کرنے کا اختیار بھی نہیں ہے مگر باجازت مولیٰ جائز ہے اور اگر اس نے کسی آزاد عورت سے خود نکاح کر لیا تو دونوں میں تفریق کر دی جائے گی اور بسبب دخول کے جو کچھ مہر اس کے ذمہ لازم آیا اس کے واسطے بعد آزادی کے ماخوذ نہ ہو گا کذا فی المحیط۔

- اپنے مملوکوں کا نکاح نہیں کرا سکتا ہے پس اگر اپنے غلام کا نکاح کر دیا تو بالا جماع نہیں جائز ہے اور اگر باندی کا نکاح کر دیا تو بھی طرفین کے نزدیک نہیں جائز ہے اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک جائز ہے اور لڑکے ماذون و مضارب و شریک عنان کا بھی یہی حکم ہے یہ سراج وہاج میں ہے اور ماذون کو اختیار نہیں ہے کہ اپنے غلام کو مکاتب کرے اور اگر مکاتب کیا اور مولیٰ نے اجازت دے دی تو جائز ہے بشرطیکہ ماذون مقروض نہ ہو پھر ماذون کو بدل وصول کرنے کی کوئی راہ نہیں ہے بلکہ مولیٰ کو استحقاق ہے اور اگر مکاتب نے ماذون کو دیا تو بری نہ ہو گا لیکن اگر ماذون کو مولیٰ وصول کرنے کا وکیل کرے تو یہ جائز ہے اسی طرح اگر مولیٰ کی اجازت کے بعد ماذون ہو گیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر ماذون پر مال کثیر یا قلیل قرضہ ہو تو اس کی مکاتبت باطل ہے اگرچہ مولیٰ اجازت دے دے پس اگر مکاتبت رد نہ کی یہاں تک کہ اس کے مکاتب نے بدل ادا کیا پس اگر مولیٰ نے اجازت نہیں دی تھی تو مکاتب آزاد نہ ہو گا بلکہ ماذون کا رفیق کر دیا جائے گا اور اس کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور جو مال اس نے مکاتبت میں لیا ہے وہ بھی قرضہ میں صرف کیا جائے گا اور اگر مولیٰ نے اجازت دے کر ماذون کو قبض البدل کا وکیل کیا ہو حالانکہ ماذون پر اس قدر قرضہ ہو کہ اس کی جان و مقبوضہ مال کو محیط ہے پھر اس کے مکاتب نے مال کتابت ادا کیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک یہ صورت اور صورت اولیٰ قیاساً یکساں ہیں اور صاحبین کے نزدیک وہ آزاد ہو جائے گا اور مولیٰ اس کی قیمت قرض خواہوں کو تاوان دے گا

اور اسی طرح جو مال کتابت مولیٰ نے وصول کیا ہے وہ بھی واپس لے کر قرض خواہوں کو تقسیم کر دیا جائے گا اور اگر ماذون کا قرضہ اس کی جان و مال کو محیط نہ ہو تو اس کا مکاتب بالا جماع آزاد ہو جائے گا پھر قرض خواہوں کو اس کی قیمت کی ضمان دے گا اور مال کتابت جو مولیٰ و ماذون نے وصول کیا ہے وہ بھی قرض خواہ اپنے

۱ نوع خاص مثلاً مضارب سے شرط کی کہ وہ غلاموں کی تجارت کرے۔ ۲ مکاتبت یعنی اگر اس نے اپنے کسی غلام کو مکاتب کیا تو باطل ہے۔ ۳ آزاد ہو جائے گا اس وجہ سے کہ سارا مولیٰ کی اجازت سے ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 23 Book of Al-Mazun**

[They] will take it in the debt; this is in Al-Mabsut. And the creditors have the right to invalidate the contract of Kitabat before the realization of manumission. And if they did not get it invalidated until the Mukatab (slave) paid and became free, then the master (Mawla) shall pay its price as indemnity to the creditors; this is in Al-Muhit.

If the Mukatab of an authorized slave (Mazun) paid the consideration for Kitabat to the master before the master gave permission, he would not be free, and whatever the master received would be returned to him (the Mazun) because it is the earning of his slave; this is in Al-Tabyin. And the Mazun does not have the right to manumit his earning's slave in exchange for property. If he manumitted him against property despite having no authority and the master allowed the manumission, then if the Mazun is not in debt, the master's permission will be effective, and the master is entitled to receive the consideration. If that slave has some debt incurred upon him, then nothing from the consideration of right shall be spent on his debt. And if the Mazun is in debt, then if the debt encompasses him (his assets), according to Imam Azam (Abu Hanifa), the master's permission will not be effective, but according to the Sahihayn (Abu Yusuf and Muhammad), it will be effective. If the debt does not encompass him, then by consensus, the permission will be effective, and the master will pay his price as indemnity to the creditors, and the creditors have no way to take compensation from the right; this is in Al-Muhit. And the Mazun has no right to give Dirhams or clothes or such things as a gift (Hiba) or charity (Sadaqa). And he cannot give compensation for what was gifted to him without an unconditional exchange, nor can he give a loan. If the master gave him permission for these voluntary contributions, then if he is not in debt, there is no fear (it is permissible). If there is debt, no such disposal will be valid; this is in Al-Mabsut. And the Mazun has the right to give a penny or a round of bread or less than a Dirham's worth of silver as Sadaqa. The explicit command for the validity of giving less than a Dirham's worth of silver as Sadaqa is in Kitab al-Mukatab. And it is written in Al-Asl that if the Mazun gave Sadaqa and the donated property is anything other than wheat, whose value is a Dirham or more, it is not permissible; this is in Al-Mughni.

So, the Mazun has the right to host an easy, very low-cost feast, and this ruling is based on Istihsan (juristic preference), but he does not have the right to host a large banquet. Then, there must be a boundary between an easy/small feast and a large feast. Thus, it is narrated from Sheikh Muhammad bin Salama that this amount depends on the trade capital. So, if his trade capital is, for example, ten thousand

Dirhams and he spent ten Dirhams on hosting, it is easy and small. And if it is ten Dirhams and he spent one Dang on hosting, then conventionally this is a large expenditure. This discussion was about the chapter of his hosting. As for the talk about gifts (Hadya), we say that the Mazun has the authority to gift edibles, i.e., food items, but he has no authority to gift anything besides them, like Dirhams and Dinars. Our scholars said that he can only gift as much of the edibles as he has the authority to spend on hosting; this is in Al-Muhit. And let it be clear that there is no fear in Sharia in accepting an invitation from a Mazun slave or borrowing his clothes or cattle; thus in Al-Khulasa. And if any of those things borrowed are destroyed while with the borrower, indemnity is not obligatory upon him, whether the Mazun is in debt or not; this is in Al-Mabsut. Wearing the Mazun's clothes is disliked (Makruh); this is in Al-Khulasa.

**If the Mazun purchased a slave girl and took possession, then the seller gifted the price to the Mazun, it is permissible.** ☆

It is narrated from Imam Abu Yusuf that if a master gave his restricted (Mahjur) slave one day's food, he has the right to invite some of his companions to join in that food, i.e., there is no fear in Sharia. And if he gave him a month's food, the ruling is contrary to it. And for a woman, there is nothing in Sharia to give as Sadaqa a small thing like a round of bread etc. from her husband's house without his information; thus in Al-Kafi. He (the author) said, "May Allah be pleased with him."

1. Tahqiq means before the proof of the right is complete.
2. Hadd-e-Fasil means a boundary should be set to prove that up to this limit it is a small feast, then if he exceeds it, it becomes a large feast.

फतावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 23 किताब अल-माज़ून कर्ज़े में ले लेंगे यह मब्सूत में है और कर्ज़ख्वाहों को अधिकार है कि तहक़ीक़-ए-अतक़ से पहले अक़्द-ए-किताबत को बातिल कर दें और अगर बातिल न कराई यहाँ तक कि मुकातब अदा कर के आज़ाद हो गया तो मौला उसकी क़ीमत कर्ज़ख्वाहों को तावान (जुर्माना) देगा यह मुहीत में है। अगर माज़ून के मुकातब ने बदल-ए-किताबत मौला को मौला की इजाज़त देने से पहले अदा किया तो आज़ाद न होगा और जो कुछ मौला ने वसूल किया है वह उसी को सुपुर्द कर दिया जाएगा क्योंकि उसके गुलाम की कमाई है यह तबीन में है और माज़ून को अधिकार नहीं है कि अपनी कमाई के गुलाम को ब-इवज़ माल के आज़ाद करे और अगर उसने बावजूद अदम-ए-अख्तियार के माल पर आज़ाद किया और मौला ने अतक़ की इजाज़त दे दी पस अगर माज़ून मक़रूज़ न होगा तो मौला की इजाज़त कारआमद होगी और बदल वसूल करने का इस्तहक़ाक़ मौला को है और अगर उस गुलाम पर कुछ कर्ज़ा चढ़ गया होगा तो बदल-ए-हक़ में से कुछ उसके कर्ज़े में सर्फ(खर्च) न किया जाएगा और अगर माज़ून मक़रूज़ हो पस अगर कर्ज़ा उसके वास्ते मुहीत हो तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के नज़दीक मौला की इजाज़त कारआमद न होगी और साहिबैन के नज़दीक कारआमद होगी और अगर कर्ज़ा मुहीत न हो तो बिल-इत्तेफ़ाक़ इजाज़त कारआमद होगी और मौला उसकी क़ीमत कर्ज़ख्वाहों को तावान देगा और कर्ज़ख्वाहों को इवज़-ए-हक़ लेने का कोई रास्ता नहीं है यह मुहीत में है और माज़ून को दिरहम या कपड़ा या ऐसी चीज़ों के हिबा (उपहार) या सदक़ा करने का अधिकार नहीं है और जो चीज़ उसको बिला शर्त-ए-इवज़ हिबा की गई उसका मुआवज़ा नहीं दे सकता है और क़र्ज़ नहीं दे सकता है। अगर मौला ने उसके इन तबर्रुआत की इजाज़त दे दी पस अगर उस पर कर्ज़ा नहीं है तो खैर कुछ डर नहीं है और अगर कर्ज़ा हो तो उसमें से कोई तसर्रुफ़ जाइज़ न होगा यह मब्सूत में है और माज़ून को अधिकार है कि एक पैसा या एक गिरदा (गोल रोटी) या दिरहम से कम चांदी सदक़ा करे और दिरहम से कम चांदी सदक़ा करने के जवाज़ पर किताबुल मुकातब में सरीह हुक्म किया है और असल में लिखा है कि अगर माज़ून ने सदक़ा किया और माल-ए-सदक़ा सिवाय गेहूँ के कोई ऐसी चीज़ है जिसकी क़ीमत दिरहम या ज़्यादा है तो जाइज़ नहीं है यह मुग़नी में है। तो माज़ून को आसान बहुत कम खर्च दावत करने का अधिकार है और यह हुक्म इस्तेहसानान है और उसको बड़ी ज़ियाफत का अधिकार नहीं है फिर आसान व छोटी दावत और बड़ी दावत के दरम्यान हद-ए-फ़ासिल ज़रूर है पस शेख मुहम्मद बिन सलमा रहमतुल्लाह अलैहि से रिवायत है कि यह मिक़दार माल-ए-तिजारत पर है पस अगर उसका माल-ए-तिजारत मसलन दस हज़ार दिरहम हों और उसने दस दिरहम खर्च कर के

ज़ियाफत की तो आसान व छोटी है और अगर दस दिरहम हों और उसने एक दांग ज़ियाफत में खर्च किया तो उरफ़न (प्रचलन में) यह सर्फए-कसीर (बड़ा खर्च) है यह तक़रीर तो उसकी दावत के बाब में हुई और रहा कलाम हदिये में सो हम कहते हैं कि माज़ून को माकूलात यानी खाने की चीज़ें हदिया करने का अधिकार है और उनके सिवाय दिरहम व दीनार के हदिये का अधिकार नहीं है और हमारे मशायख ने फ़रमाया कि माकूलात में भी उसी क़दर हदिया कर सकता है जिस क़दर दावत में सर्फ करने का अधिकार है यह मुहीत में है और वाज़ेह हो कि गुलाम माज़ून की दावत क़बूल करने और उसके कपड़े या चौपाया को आरियत (उधार) लेने में शरअन कुछ डर नहीं है कज़ा फ़िल खुलासा और अगर इन चीज़ों में से जो आरियत ली हैं कोई चीज़ मुस्तईर (उधार लेने वाले) के पास तलफ़ हो गई तो उस पर ज़मान लाज़िम नहीं आती है ख़्वाह माज़ून मक़रूज़ हो या न हो यह मब्सूत में है। माज़ून का कपड़ा पहनना मकरूह है यह खुलासा में है। अगर माज़ून ने कोई बांदी ख़रीद कर के क़ब्ज़ा किया फिर बाएअ (विक्रेता) ने समन (क़ीमत) माज़ून को हिबा कर दिया तो जाइज़ है ☆ इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाह अलैहि से रिवायत है कि अगर मौला ने अपने गुलाम-ए-महजूर को एक रोज़ की खुराक दी तो उसको अधिकार है कि उस खाने में अपने बाज़ रफ़ीक़ों की दावत करे यानी शरअन कुछ डर नहीं है और अगर एक महीने की खुराक दी तो हुक्म इसके खिलाफ है और औरत को शरअन कुछ नहीं है कि अपने शौहर की बिला इत्तिला उसके घर में से मिस्ल-ए-गिरदा रोटी वगैरह के खफ़ीफ़ चीज़ सदक़ा कर दे कज़ा फ़िल काफ़ी। क़ाल रज़ियल्लाहु अन्हु 1 तहक़ीक़ यानी हक़ का सबूत पूरा होने से पहले। 2 हद-ए-फ़ासिल यानी कोई हद मियान करनी चाहिए जिससे साबित हो कि इस हद तक छोटी दावत है फिर उससे तजावुज़ करे तो बड़ी दावत हो जाएगी।

فتاویٰ عالمگیری ..... جلد (۸) ۲۳ کتاب الماذون قرضہ میں لے لیں گے یہ مبسوط میں ہے اور قرض خواہوں کو اختیار ہے کہ تحقیق عتق سے پہلے عقد کتابت کو باطل کردیں اور اگر باطل نہ کرائی یہاں تک کہ مکاتب ادا کر کے آزاد ہو گیا تو مولیٰ اس کی قیمت قرض خواہوں کو تاوان دے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون کے مکاتب نے بدل کتابت مولیٰ کو مولیٰ کی اجازت دینے سے پہلے ادا کیا تو آزاد نہ ہو گا اور جو کچھ مولیٰ نے وصول کیا ہے وہ اسی کو سپرد کر دیا جائے گا کیونکہ اس کے غلام کی کمائی ہے یہ تبیین میں ہے اور ماذون کو اختیار نہیں ہے کہ اپنی کمائی کے غلام کو بعوض مال کے آزاد کرے اور اگر اس نے باوجود عدم اختیار کے مال پر آزاد کیا اور مولیٰ نے عتق کی اجازت دے دی پس اگر ماذون مقروض نہ ہو گا تو مولیٰ کی اجازت کارآمد ہوگی اور بدل وصول کرنے کا استحقاق مولیٰ کو ہے اور اگر اس غلام پر کچھ قرضہ چڑھ گیا ہو گا تو بدل حق میں سے کچھ اس کے قرضہ میں صرف نہ کیا جائے گا اور اگر ماذون مقروض ہو پس اگر قرضہ اس کے واسطے محیط ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک مولیٰ کی اجازت کارآمد نہ ہو گی اور صاحبین کے نزدیک کارآمد ہوگی اور اگر قرضہ محیط نہ ہو تو بالا جماع اجازت کارآمد ہو گی اور مولیٰ اس کی قیمت قرض خواہوں کو تاوان دے گا اور قرض خواہوں کو عوض حق لینے کے کوئی راہ نہیں ہے یہ محیط میں ہے اور ماذون کو درہم یا کپڑا یا ایسی چیزوں کے ہبہ یا صدقہ کرنے کا اختیار نہیں ہے اور جو چیز اس کو بلا شرط عوض ہبہ کی گئی اس کا معاوضہ نہیں دے سکتا ہے اور قرض نہیں دے سکتا ہے۔ اگر مولیٰ نے اس کے ان تبرعات کی اجازت دے دی پس اگر اس پر قرضہ نہیں ہے تو خیر کچھ ڈر نہیں ہے اور اگر قرضہ ہو تو اس میں سے کوئی تصرف جائز نہ ہوگا یہ مبسوط میں ہے اور ماذون کو اختیار ہے کہ ایک پیسہ یا ایک گردہ روٹی یا درہم سے کم چاندی صدقہ کرے اور درہم سے کم چاندی صدقہ کرنے کے جواز پر کتاب المکاتب میں

صریح حکم کیا ہے اور اصل میں لکھا ہے کہ اگر ماذون نے صدقہ کیا اور مال صدقہ سوائے گیہوں کے کوئی ایسی چیز ہے جس کی قیمت درہم یا زیادہ ہے تو جائز نہیں ہے یہ مغنی میں ہے۔ تو ماذون کو آسان بہت کم خرچ دعوت کرنے کا اختیار ہے اور یہ حکم استحسانا ہے اور اس کو بڑی ضیافت کا اختیار نہیں ہے پھر آسان و چھوٹی دعوت اور بڑی دعوت کے درمیان حد فاصل ضرور ہے پس شیخ محمد بن سلمہؒ سے روایت ہے کہ یہ مقدار مال تجارت پر ہے پس اگر اس کا مال تجارت مثلاً دس ہزار درہم ہوں اور اس نے دس درہم خرچ کر کے ضیافت کی تو آسان و چھوٹی ہے اور اگر دس درہم ہوں اور اس نے ایک دانگ ضیافت میں خرچ کیا تو عرفاً یہ صرف کثیر ہے یہ تقریر تو اس کی دعوت کے باب میں ہوئی اور رہا کلام ہدیہ میں سو ہم کہتے ہیں کہ ماذون کو ماکولات یعنی خورش کی چیزیں ہدیہ کرنے کا اختیار ہے اور ان کے سوائے درہم و دینار کے ہدیہ کا اختیار نہیں ہے اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ ماکولات میں بھی اسی قدر ہدیہ کر سکتا ہے جس قدر دعوت میں صرف کرنے کا اختیار ہے یہ محیط میں ہے اور واضح ہو کہ غلام ماذون کی دعوت قبول کرنے اور اس کے کپڑے یا چوپایہ کو عاریت لینے میں شرعاً کچھ ڈر نہیں ہے کذا فی الخلاصۃ اور اگر ان چیزوں میں سے جو عاریت لی ہیں کوئی چیز مستعیر کے پاس تلف ہو گئی تو اس پر ضمان لازم نہیں آتی ہے خواہ ماذون مقروض ہو یا نہ ہو یہ مبسوط میں ہے۔ ماذون کا کپڑا پہنا مکروہ ہے یہ خلاصہ میں ہے۔ اگر ماذون نے کوئی باندی خرید کر کے قبضہ کیا پھر بائع نے ثمن ماذون کو ہبہ کر دیا تو جائز ہے ☆ امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ اگر مولیٰ نے اپنے غلام محجور کو ایک روز کی خوراک دی تو اس کو اختیار ہے کہ اس کھانے میں اپنے بعض رفیقوں کی دعوت کرے یعنی شرعاً کچھ ڈر نہیں ہے اور اگر ایک مہینہ کی خوراک دی تو حکم اس کے خلاف ہے اور عورت کو شرعاً کچھ نہیں ہے کہ اپنے شوہر کی بلا اطلاع اس کے گھر میں سے مثل گردہ روٹی وغیرہ کے خفیف چیز صدقہ کر دے کذا فی الکافی۔ قال رضی اللہ عنہ

۱ تحقیق یعنی حق کا ثبوت پورا ہونے سے پہلے۔ ۲ حد فاصل یعنی کوئی حد میان کرنا چاہیے جس سے ثابت ہو کہ اس حد تک چھوٹی دعوت ہے پھر اس سے تجاوز کرے تو بڑی دعوت ہو جائے گی۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 The Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'zoon)**

Page 24

In our custom, a wife or a slave girl is not considered part of the authorized slave's (Ma'zoon) right to donate cash; this is stated in 'Fatawa Qazi Khan'. If a Ma'zoon sells a slave girl and delivers her to the buyer (*Mushtari*), and then before or after taking possession of the price (*Thaman*), he gifts (*Hiba*) the entire price or a portion of it to the buyer or reduces it from the buyer's liability, this act is void (*Batil*). However, if the buyer causes a defect in the sold item (*Mabi'*) and the Ma'zoon gifts or reduces some of the price before or after possession, it is permissible; but if he gifts or reduces the entire price, it is not permissible. If a Ma'zoon buys a slave girl and takes possession, and then the seller (*Ba'i*) gifts the price back to the Ma'zoon, it is permissible. Similarly, if the seller gifts it to the Ma'zoon's master (*Mawla*) and he accepts, the ruling is the same: this case is akin to gifting a slave, whether the slave is in debt or not. If in this case the master, or in the first case the slave, does not accept the gift, it becomes void, and the price remains due from the Ma'zoon as it was.

If the seller gifts the price to the slave or his master before taking possession of it, and then the slave finds a defect in the purchased slave girl, he cannot return her; this ruling is based on *Istihsan* (juridical preference). Similarly, if the price is unspecified, the same ruling applies. If specific goods (*Asbab*) were fixed as the price and the Ma'zoon gifted such a price to the buyer before taking possession, the gift is valid; and if the buyer did not accept the gift, it is void. If before the Ma'zoon takes possession, the buyer gifts the slave girl to the Ma'zoon and he accepts, it is permissible regardless of whether the slave is in debt or not, and this act shall be considered a rescission of the sale (*Faskh-e-Bay'*). If the buyer gifts her to the Ma'zoon's master, then if the slave is not in debt, this rescission of sale is valid. If he is in debt and the master accepts and takes possession of the gifted slave girl, this is not considered a violation of the sale. If after mutual possession, a specific commodity (*'Arz*) is gifted to the buyer and he accepts, the gift is void. If after mutual possession, the buyer gifts the slave girl to the Ma'zoon or his master, the gift is valid as an initial act of kindness. Then, if the Ma'zoon finds a defect in that specific commodity and he is not in debt, he will not have the right to return it. If he is in debt and the situation was that the buyer gifted the slave girl to the Ma'zoon, the ruling is the same. But if the situation was that she was gifted to the master, then the Ma'zoon has the right to return the specific commodity due to the defect and take the price

from the buyer that the slave girl had on the day of possession; this is mentioned in 'Al-Mabsut'.

If Zaid authorized his slave to trade, and the Ma'zoon sold a slave girl from his possessed property to a person in exchange for another slave and mutual possession took place, and then a defect occurred in the slave girl while with the buyer due to a natural calamity, or the buyer's act, or the act of a stranger, or she gave birth to a child, or the buyer had intercourse (*Wati*) with her (whether she was a virgin or not), or a stranger had intercourse with her, and then the buyer gifted that slave girl back to the Ma'zoon or his master, whether the slave is in debt or not, and then the Ma'zoon found a defect in the [received] slave, he has the right to return him to the buyer because of the defect; this is mentioned in 'Al-Mughni'. If a Ma'zoon bought a slave girl from Zaid for one thousand dirhams in exchange for one of his possessed slaves valued at one thousand dirhams and mutual possession occurred, then Zaid gifted both (the thousand dirhams and the slave) he had received from the Ma'zoon back to him, and the Ma'zoon took possession of both, then if the Ma'zoon slave wanted to return the slave girl he bought due to a defect, he cannot. Similarly, if Zaid gifted to the master while the Ma'zoon was not in debt, the ruling is the same. But if the Ma'zoon is in debt and the gift was made to his master, then the Ma'zoon has the right to return the slave girl due to the defect and, after returning her, can take his thousand dirhams and the price of the slave from the seller. If he took all this back from the seller, and then the creditors of the indebted Ma'zoon absolved him or gifted the debt to him or gifted it to the master or the master's heirs, then from whatever the Ma'zoon took from the seller, something return...!

! *'Arz* means goods and property.

**फतावी आलमगीरी ..... जिल्द 8 किताब अल-माज़ून (अधिकृत दास की पुस्तक)**

पृष्ठ 24

और हमारे प्रचलन में, पत्नी या दास कन्या नकद धन दान करने के अधिकार में माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत दास) नहीं होती है; यह 'फतावी काज़ी ख़ान' में उल्लेखित है। यदि एक माज़ून ने किसी दास कन्या को बेचकर खरीदार (मुश्तरी) को सौंप दिया, और फिर कीमत (थमन) पर कब्ज़ा करने से पहले या बाद में पूरी कीमत या उसका कुछ हिस्सा खरीदार को उपहार (हिबा) में दे दिया या खरीदार की देनदारी से कम कर दिया, तो यह अमान्य (बातिल) है। यदि खरीदार ने बेची गई वस्तु (मबी') में कोई दोष पैदा कर दिया और माज़ून ने कब्ज़े से पहले या बाद में कीमत का कुछ हिस्सा उपहार में दे दिया या कम कर दिया, तो यह वैध है; परंतु यदि पूरी कीमत उपहार में दी या कम की, तो यह वैध नहीं है। यदि माज़ून ने कोई दास कन्या खरीदी और कब्ज़ा कर लिया, फिर विक्रेता (बाए') ने माज़ून को कीमत उपहार में दे दी, तो यह वैध है। इसी प्रकार, यदि विक्रेता ने उसके मालिक (मौला) को उपहार दिया और उसने स्वीकार कर लिया, तो भी यही नियम है कि यह स्थिति दास को उपहार देने के समान होगी, चाहे दास हो या न हो। यदि इस स्थिति में मालिक ने, या पहली स्थिति में दास ने उपहार स्वीकार नहीं किया, तो यह अमान्य हो जाएगा और माज़ून पर वह कीमत वैसी ही बनी रहेगी।

यदि विक्रेता ने दास या उसके मालिक को कीमत पर कब्ज़ा करने से पहले वह कीमत उपहार में दे दी, और फिर दास ने खरीदी हुई दास कन्या में कोई दोष पाया, तो वह उसे वापस नहीं कर सकता; यह नियम 'इस्तेहसान' (न्यायसंगत वरीयता) पर आधारित है। इसी तरह, यदि कीमत अनिश्चित (ग़ैर-मुअय्यन) हो, तो उसमें भी यही नियम लागू होता है। यदि कीमत के रूप में कुछ निश्चित वस्तुएँ (अस्बाब) तय की गई हों और माज़ून ने कब्ज़े से पहले ऐसी कीमत खरीदार को उपहार में दे दी, तो उपहार वैध है; और यदि खरीदार ने उपहार स्वीकार नहीं किया, तो यह अमान्य है। यदि माज़ून के कब्ज़े से पहले खरीदार ने दास कन्या माज़ून को उपहार में दे दी और माज़ून ने स्वीकार कर लिया, तो यह वैध है, चाहे दास ऋणी हो या न हो, और इस कार्य को विक्रय का निरसन (फस्ख-ए-बै') माना जाएगा। यदि खरीदार ने उसे माज़ून के मालिक को उपहार में दे दी, तो यदि दास ऋणी नहीं है, तो यह विक्रय का निरसन सही है। यदि वह ऋणी है और मालिक ने उपहार में मिली दास कन्या को स्वीकार कर कब्ज़ा कर लिया, तो यह विक्रय का उल्लंघन नहीं माना जाएगा। यदि आपसी कब्ज़े के बाद कोई निश्चित वस्तु (अर्ज़) खरीदार को उपहार में दी गई और उसने स्वीकार कर लिया, तो उपहार अमान्य है। यदि खरीदार ने आपसी कब्ज़े के बाद दास कन्या माज़ून या उसके मालिक को उपहार में

दे दी, तो उपहार शुरुआती एहसान के तौर पर वैध है। फिर यदि माज़ून ने उस निश्चित वस्तु में कोई दोष पाया और वह ऋणी नहीं है, तो उसे उसे वापस करने का अधिकार नहीं होगा। यदि वह ऋणी हो और स्थिति यह हो कि खरीदार ने माज़ून को दास कन्या उपहार में दी है, तब भी यही नियम है। परंतु यदि स्थिति यह हो कि मालिक को उपहार दिया गया है, तो माज़ून को अधिकार है कि दोष के कारण उस निश्चित वस्तु को वापस करे और कब्ज़े के दिन दास कन्या की जो कीमत थी, वह खरीदार से ले ले; यह 'मबसूत' में वर्णित है।

यदि ज़ैद ने अपने दास को व्यापार की अनुमति दी और माज़ून ने अपने अधिकार वाले माल में से एक दास कन्या को एक अन्य दास के बदले किसी व्यक्ति को बेच दिया और दोनों ने वस्तुओं पर कब्ज़ा कर लिया, फिर खरीदार के पास उस दास कन्या में कोई प्राकृतिक आपदा, खरीदार के कृत्य या किसी अजनबी के कृत्य से कोई दोष उत्पन्न हो गया, या उसने बच्चे को जन्म दिया, या खरीदार ने उसके साथ संभोग (वती) कर लिया (चाहे वह कुंवारी रही हो या विवाहिता), या किसी अजनबी ने उसके साथ संभोग किया, और फिर खरीदार ने वह दास कन्या माज़ून या उसके मालिक को उपहार में दे दी, चाहे दास ऋणी हो या न हो, और फिर माज़ून ने प्राप्त हुए दास में कोई दोष पाया, तो उसे अधिकार है कि दोष के कारण उसे खरीदार को वापस कर दे; यह 'मुग़नी' में उल्लेखित है। यदि माज़ून ने ज़ैद से एक दास कन्या एक हज़ार दिरहम के बदले अपने अधिकार वाले एक दास (जिसका मूल्य एक हज़ार दिरहम है) से खरीदी और आपसी कब्ज़ा हो गया, फिर ज़ैद ने वे दोनों (हज़ार दिरहम और दास) जो उसने माज़ून से प्राप्त किए थे, माज़ून को उपहार में दे दिए और माज़ून ने दोनों पर कब्ज़ा कर लिया, फिर माज़ून दास ने अपनी खरीदी हुई दास कन्या को दोष के कारण वापस करना चाहा, तो वह वापस नहीं कर सकता। इसी प्रकार, यदि ज़ैद ने उसके मालिक को उपहार दिया हो जबकि माज़ून ऋणी न हो, तब भी यही नियम है। परंतु यदि माज़ून ऋणी हो और उपहार उसके मालिक के लिए किया गया हो, तो माज़ून को दोष के कारण दास कन्या वापस करने का अधिकार है और वापस करके वह विक्रेता से अपने एक हज़ार दिरहम और दास की कीमत ले सकता है। फिर यदि उसने वापस करके विक्रेता से यह सब प्राप्त कर लिया, और बाद में ऋणी माज़ून को उसके लेनदारों ने कर्ज से मुक्त कर दिया या ऋण उसे उपहार में दे दिया या मालिक या उसके उत्तराधिकारियों को उपहार में दे दिया, तो माज़ून ने जो कुछ विक्रेता से लिया है, उसमें से कुछ वापस...!

! अर्ज़ अर्थात् अस्बाब और मता' (वस्तुएँ और संपत्ति)।

---

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد 8 کتاب الماذون**

صفحہ ۲۴

اور ہمارے عرف میں بیوی و باندی نقد مال صدق کرنے کے حق میں ماذون نہیں ہوتی ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر ماذون نے کوئی باندی فروخت کر کے مشتری کو دے دی پھر ثمن پر قبضہ کرنے سے پہلے یا بعد تمام ثمن یا کچھ مشتری کو ہبہ کر دیا یا مشتری کے ذمہ سے کم کر دیا تو یہ باطل ہے اور اگر مشتری نے مبیع میں کچھ عیب لگایا اور ماذون نے قبضہ سے پہلے یا بعد کچھ ثمن ہبہ کر دیا یا کم کر دیا تو جائز ہے لیکن اگر تمام ثمن ہبہ کیا یا کم کیا تو جائز نہیں ہے اور اگر ماذون نے کوئی باندی خرید کر کے قبضہ کیا پھر بائع نے ثمن ماذون کو ہبہ کر دیا تو جائز ہے اسی طرح اگر بائع نے اس کے مولیٰ کو ہبہ کیا اور اس نے قبول کیا تو بھی یہی حکم ہے کہ یہ صورت بمنزلہ غلام کے ہبہ کرنے کے ہو گی خواہ غلام ہو یا نہ ہو اور اگر مولیٰ نے اس صورت میں یا غلام نے صورتِ اول میں قبول نہ کیا تو یہ باطل ہو جائے گا اور ثمن ماذون پر بحالہ باقی رہے گا۔

اگر بائع نے غلام کو یا اس کے مولیٰ کو ثمن پر قبضہ کرنے سے پہلے ثمن ہبہ کیا پھر غلام نے باندی میں کچھ عیب پایا تو واپس نہیں کر سکتا ہے یہ حکم استحساناً ہے اور اسی طرح جو ثمن غیر معین ہو اس میں یہی حکم ہے اور اگر ثمن کوئی اسباب معین قرار دیا گیا ہو اور ماذون نے قبل قبضہ کے ایسا ثمن مشتری کو ہبہ کیا تو ہبہ جائز ہے اور اگر مشتری نے ہبہ قبول نہ کیا تو باطل ہے اور اگر ماذون کے قبضہ سے پہلے مشتری نے باندی ماذون کو ہبہ کر دی اور ماذون نے قبول کیا تو جائز ہے خواہ غلام مقروض ہو یا نہ ہو اور یہ فعل فسخِ بیع قرار دیا جائے گا اور اگر اس

نے ماذون کے مولیٰ کو ہبہ کر دی پس اگر غلام مقروض نہ ہو تو یہ فسخِ بیع صحیح ہے اور اگر مقروض ہو اور مولیٰ نے باندی موہوبہ کو قبول کیا اور قبضہ کر لیا تو یہ امر بیع کا نقض نہیں ہے اور اگر باہمی قبضہ کے بعد عرضِ معین مشتری کو ہبہ کیا اور اس نے قبول کیا تو ہبہ باطل ہے اور اگر مشتری نے باندی کو بعد باہمی قبضہ کے ماذون یا اس کے مولیٰ کو ہبہ کر دی تو ہبہ بطریقِ ابتدائی احسان کے جائز ہے پھر اگر ماذون نے عرضِ معین میں کچھ عیب پایا اور وہ مقروض نہیں ہے تو اس کو واپس کرنے کا اختیار نہ ہو گا اور اگر مقروض ہو اور صورت یہ ہوئی کہ مشتری نے ماذون کو باندی ہبہ کی ہے تو بھی یہی حکم ہے اور اگر صورت یہ ہوئی کہ مولیٰ کو ہبہ کی ہے تو ماذون کو اختیار ہے کہ بوجہ عیب کے عرضِ معین اس کو واپس کرے اور جو کچھ قیمت قبضہ کے روز باندی کی تھی وہ مشتری سے ماذون لے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر زید نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دے اور ماذون نے اپنے مقبوضہ مال میں سے ایک باندی بعوض ایک غلام کے ایک شخص کے ہاتھ فروخت کر کے باہم قبضہ کر لیا پھر مشتری کے پاس باندی میں کوئی عیب آسمانی آفت سے یا فعلِ مشتری سے یا فعلِ اجنبی سے پیدا ہو گیا یا اس کے بچہ پیدا ہوا یا مشتری نے اس سے وطی کر لی حالانکہ وہ باکرہ تھی یا ثیبہ تھی یا کسی اجنبی نے اس سے وطی کر لی پھر مشتری نے وہ باندی ماذون یا اس کے مولیٰ کو ہبہ کر دی حالانکہ غلام مقروض ہے یا نہیں ہے پھر ماذون نے غلام میں کچھ عیب پایا تو اس کو اختیار ہے کہ عیب کی وجہ سے مشتری کو واپس کرے یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون نے زید سے ایک باندی بعوض ہزار درہم اپنے مقبوضہ ایک غلام کے جس کی قیمت ہزار درہم ہے خریدی اور باہمی قبضہ کر لیا پھر زید نے وہ ہر دو ہم جن پر ماذون سے لے کر قبضہ کیا ہے اور اس کا غلام دونوں ماذون کو ہبہ کئے اور ماذون نے دونوں پر قبضہ کر لیا پھر غلام ماذون نے اپنی خریدی ہوئی باندی کو بوجہ عیب کے واپس کرنا چاہا تو واپس نہیں کر سکتا ہے اسی طرح اگر زید نے اس کے مولیٰ کو ہبہ کیا

ہو درحالیکہ ماذون مقروض نہ ہو تو بھی یہی حکم ہے اور اگر ماذون مقروض ہو اور ہبہ اس کے مولیٰ کے واسطے واقع ہوا ہو تو ماذون کو عیب کی وجہ سے باندی واپس کرنے کا اختیار ہے اور واپس کر کے بائع سے اپنے ہزار درہم اور غلام کی قیمت لے سکتا ہے پس اگر اس نے واپس کر کے بائع سے یہ سب لے لیا پھر ماذون مقروض کو اس کے قرض خواہوں نے بری کیا یا قرضہ اس کو ہبہ کیا یا مولیٰ یا وارثانِ مولیٰ کو ہبہ کیا تو ماذون نے جو کچھ بائع سے لیا ہے اس میں سے کچھ واپس!

! عرض یعنی اسباب و متاع۔

---

...will not do; this is in 'Al-Mabsut'. If Zaid permitted his slave to trade, and then a debt became due to this 'ma'zoon' (authorized slave) from a free person, a slave, or a 'mukatib' (a slave with a contract for manumission) for the price of a sale or for usurped property, and the 'ma'zoon' granted him a delay (respite), it is permissible out of juristic preference (istihsan). If the 'ma'zoon' settled with him on the basis of receiving one-third immediately, granting a delay for one-third, and waiving one-third, then granting the delay is permissible, but the waiver is void (batil). If the amount due is a loan—that is, the 'ma'zoon' lent it to him—and then the 'ma'zoon' granted him a delay, he has the option to retract the delay and collect it immediately, as stated in 'Al-Mughni'. If he remains satisfied with it, it is better; this is in 'Al-Muhit'. If a person permitted his slave to trade, and then one thousand dirhams became due from Amr to the slave and another person, Zaid, in which both are joint creditors, and the 'ma'zoon' then granted Amr a delay for his share even though it was currently due, then according to Imam Al-A'zam (Imam Abu Hanifa), the delay is void and the wealth remains currently due as before. If either of the two creditors collects anything, it shall be shared between him and his partner. According to the 'Sahibayn' (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the delay is permissible, and the partner who did not grant the delay, if he collects anything, it belongs exclusively to him; the 'ma'zoon' cannot share in it until the specified period arrives; this is in 'Al-Mughni'.

Then, when the period is complete, the 'ma'zoon' has the option either to take half of what his partner collected and then both collect the remainder from the debtor together, or to let what the partner collected remain with him and collect his own share from the debtor himself. If the 'ma'zoon' collected some of the wealth from the debtor before the period was complete, his partner has the option to have half of it distributed. Similarly, if the entire amount is a term debt and one partner collected some before the period was complete, the other has the option to have it distributed. If the debt is currently due and the 'ma'zoon' granted the debtor a one-year delay, then the partner collected his share, and before the year passed the debtor himself canceled that delay which the 'ma'zoon' had granted by mutual consent, then the delay becomes void. However, according to the 'Sahibayn', until the period is complete, the 'ma'zoon' will not have the option of partnership in the wealth that the partner has collected. Then, when the period has passed, he will have the option to become a partner in what is in the partner's possession. If the period has not passed but the debtor died and the wealth became currently due, the 'ma'zoon' will become

a partner in what is in his partner's possession. If the debtor did not die but both canceled the term, then the partner collected his share, the 'ma'zoon' has the option to share in what is in his partner's possession. If the wealth was currently due and the partner collected his share, then the 'ma'zoon' granted the debtor a delay for his own share—whether or not he knows about the partner's collection—then according to the 'Sahibayn', granting the delay is permissible, and until the period passes, there is no way for partnership in what the partner has possessed. Then, when the period has passed, he will have the option of a half-share in what has been possessed.

If there is a one-year period for the payment of the wealth and the partner collected it before the period, then the slave granted the debtor a delay for another upcoming year—whether he knows the status of the partner's collection or not—then according to the 'Sahibayn', his granting of delay is permissible, and until the full two years have passed, he cannot share in what is in the partner's possession. And if the wealth is currently due and the partner...

...नहीं करेगा, यह 'मबसूत' में है। अगर ज़ैद ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर उस माजून (अनुमति प्राप्त गुलाम) का किसी स्वतंत्र व्यक्ति, गुलाम या मुकातिब पर बिक्री की कीमत या हड़पी हुई संपत्ति बकाया हो गई और माजून ने उसे मोहलत (अतिरिक्त समय) दे दी, तो इस्तिहसान (विवेक) के तौर पर उसका मोहलत देना जायज़ है। और अगर माजून ने उससे इस तरह समझौता किया कि एक तिहाई अभी वसूल करे, एक तिहाई के लिए मोहलत दे और एक तिहाई छोड़ दे, तो मोहलत देना जायज़ है और छोड़ देना (माफ़ करना) बातिल (अवैध) है। और अगर यह धन जो देय है वह ऋण हो, यानी माजून ने उसे उधार दिया हो, फिर माजून ने उसे मोहलत दी, तो उसे यह अधिकार होगा कि वह मोहलत से पीछे हट जाए और तुरंत वसूल करे, जैसा कि 'मुग़नी' में है। और अगर वह उसी तरह सहमत रहे तो बेहतर है, यह 'मुहीत' में है। अगर किसी व्यक्ति ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर उसके और एक व्यक्ति ज़ैद के अम्र पर एक हज़ार दिरहम देय हुए, जिसमें दोनों ऋणदाता (कर्ज़ देने वाले) साझेदार हैं। फिर माजून ने अम्र को अपने हिस्से के लिए मोहलत दे दी, जबकि वह तुरंत देय था, तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाहि अलैहि के अनुसार विलंब बातिल है और धन पहले की तरह तुरंत देय रहेगा। और दोनों ऋणदाताओं में से यदि कोई कुछ वसूल करता है, तो वह उसके और उसके साथी के बीच साझा होगा। और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) रहमतुल्लाहि अलैहिम के अनुसार विलंब जायज़ है, और जिसने विलंब नहीं दिया है, यदि उसने कुछ वसूल किया तो वह विशेष रूप से उसी का होगा, माजून उसमें तब तक साझा नहीं कर सकता जब तक कि निर्धारित अवधि पूरी न हो जाए, यह 'मुग़नी' में है।

फिर जब अवधि पूरी हो जाए, तो माजून को अधिकार होगा कि चाहे तो अपने साथी से उसके द्वारा वसूल किए गए धन का आधा हिस्सा ले ले और फिर दोनों मिलकर बाकी धन ऋणी से वसूल करें, या साथी द्वारा वसूल किया गया धन उसी के पास रहने दे और अपना हिस्सा खुद ऋणी से वसूल करे। और यदि माजून ने अवधि पूरी होने से पहले ऋणी से कुछ धन वसूल कर लिया, तो उसके साथी को अधिकार होगा कि उसमें से आधा हिस्सा विभाजित करा ले। इसी तरह यदि पूरा धन मियादी (एक निश्चित अवधि वाला ऋण) हो और एक साथी ने अवधि पूरी होने से पहले कुछ वसूल किया, तो दूसरे को हिस्सा लेने का अधिकार है। यदि ऋण तुरंत देय हो और माजून ने ऋणी को एक वर्ष की मोहलत दे दी, फिर साथी ने अपना हिस्सा वसूल कर लिया, और वर्ष बीतने से पहले ऋणी ने स्वयं वह मोहलत, जो माजून ने सहमति से दी थी, समाप्त कर दी, तो मोहलत समाप्त हो जाएगी। लेकिन

साहिबैन के अनुसार जब तक अवधि पूरी न हो जाए, माजून को साथी द्वारा वसूल किए गए धन में साझेदारी का अधिकार नहीं होगा। फिर जब अवधि बीत जाए, तो उसे अधिकार होगा कि वह साथी के कब्जे वाले धन में साझा हो जाए। और यदि अवधि नहीं बीती लेकिन ऋणी मर गया और धन तुरंत देय हो गया, तो माजून अपने साथी के कब्जे वाले धन में साझा हो जाएगा। और यदि ऋणी नहीं मरा बल्कि दोनों ने अवधि समाप्त कर दी, फिर साथी ने अपना हिस्सा वसूल किया, तो माजून को अपने साथी के कब्जे वाले धन में साझा करने का अधिकार है। और यदि धन तुरंत देय हो और साथी ने अपना हिस्सा वसूल कर लिया, फिर माजून ने ऋणी को अपने हिस्से के लिए मोहलत दे दी, चाहे वह साथी द्वारा वसूली की बात जानता हो या नहीं, तो साहिबैन के अनुसार मोहलत देना जायज़ है, और जब तक अवधि न बीते तब तक साथी के कब्जे वाले धन में साझेदारी का कोई रास्ता नहीं है। फिर जब अवधि बीत जाए, तो उसे कब्जे वाले धन में आधे की साझेदारी का अधिकार होगा।

यदि धन भुगतान के लिए एक वर्ष की अवधि हो और साथी ने अवधि से पहले वसूली कर ली, फिर गुलाम ने ऋणी को आगामी एक और वर्ष की मोहलत दे दी, चाहे उसे साथी की वसूली के बारे में पता हो या नहीं, तो साहिबैन के अनुसार उसका मोहलत देना जायज़ है, और जब तक पूरे दो वर्ष न बीत जाएं वह साथी के कब्जे वाले धन में साझा नहीं कर सकता। और यदि धन तुरंत देय हो और साथी...

نہ کرے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر زید نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر اس ماذون کا کسی شخص آزاد یا غلام یا مکاتب پر شمن بیع یا مال غصب واجب ہوا اور ماذون نے اس کو مہلت دے دی تو استحساناً اس کا مہلت دینا جائز ہے اور اگر ماذون نے اس سے اس طور سے صلح کی کہ ایک تہائی بالفعل وصول کرے اور ایک تہائی کے واسطے مہلت دے اور ایک تہائی چھوڑ دے تو مہلت دینا جائز ہے اور چھوڑ دینا باطل ہے اور اگر یہ مال جو واجب ہوا ہے قرض ہو یعنی ماذون نے اس کو قرض دیا ہو پھر ماذون نے اس کو مہلت دی تو پھر اس کو اختیار ہوگا کہ مہلت سے رجوع کر کے فی الحال اس سے وصول کرے کذا فی المغنی اور اگر اسی طور پر راضی رہے تو بہتر ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر اس کے اور ایک شخص زید کے عمرو پر ہزار درہم واجب ہوئے جن میں دونوں قرض خواہ شریک ہیں پھر ماذون نے عمرو کو اپنے حصہ کی مہلت دی حالانکہ فی الحال واجب الادا تھا تو امام اعظمؒ کے نزدیک تاخیر باطل ہے اور مال ویسا ہی فی الحال واجب الادا رہے گا اور دونوں قرض خواہ میں میں اگر کوئی کچھ وصول کرے گا تو وہ اس کے اور اس کے شریک کے درمیان مشترک ہوگا اور صاحبینؒ کے نزدیک تاخیر جائز ہے اور تاخیر دہندہ کا ساتھی جس نے تاخیر نہیں دی ہے اگر اس نے کچھ وصول کیا تو خاص اسی کا ہوگا ماذون اس میں شرکت نہیں کرسکتا ہے تادقتیکہ میعاد نہ آجائے یہ مغنی میں ہے۔

پھر جب میعاد پوری ہوگئی تو ماذون کو اختیار ہوگا چاہے اپنے شریک سے جو اس نے وصول کیا ہے اس کا آدھا لے لے پھر دونوں مل کر باقی مال قرض دار سے وصول کریں گے یا شریک کا وصول کیا ہوا اس کے پاس رہنے دے اور اپنا حصہ قرض دار سے خود وصول کرے اور اگر

ماذون نے میعاد پوری ہونے سے پہلے کچھ مال قرض دار سے وصول کیا تو اس کے شریک کو اختیار ہوگا کہ اس میں سے نصف تقسیم کرا لے اسی طرح اگر تمام مال قرضہ میعادی ہو اور ایک شریک نے میعاد پوری ہونے سے پہلے کچھ وصول کیا تو دوسرے کو تقسیم کرا لینے کا اختیار ہے۔ اگر قرضہ فی الحال واجب الادا ہو پھر ماذون نے قرض دار کو ایک سال کی مہلت دے دی پھر شریک نے اپنا حصہ وصول کیا پھر سال گزرنے سے پہلے قرض دار نے خود ہی وہ میعاد مہلت جو ماذون نے برضا مندی دے دی باطل کردی تو میعاد باطل ہوجائے گی لیکن صاحبین کے نزدیک تادقتیکہ میعاد پوری نہ ہوجائے ماذون کو اس قدر مال میں جو شریک نے وصول کیا ہے شرکت کا اختیار نہ ہوگا پھر جب میعاد گزر گئی تو اس کو اختیار ہوگا چاہے شریک کے مقبوضہ میں ساجھی ہو جائے اور اگر میعاد نہ گزری لیکن قرض دار مر گیا اور مال فی الحال واجب الادا ہو گیا تو ماذون اپنے شریک کے مقبوضہ میں شریک ہو جائے گا اور اگر قرض دار نہیں مرا بلکہ دونوں نے میعاد توڑ دی پھر شریک نے اپنا حصہ وصول کیا تو ماذون کو اپنے شریک کے مقبوضہ میں سا جھا کرنے کا اختیار ہے اور اگر مال فی الحال واجب الادا ہوا اور شریک نے اپنا حصہ وصول کیا پھر ماذون نے قرض دار کو اپنے حصہ کی مہلت دے دی خواہ شریک کے وصول کرنے کا حال جانتا ہو یا نہ جانتا ہو تو صاحبین کے نزدیک مہلت دینا جائز ہے اور جب تک میعاد نہ گزرے تب تک اس کو شریک کے مقبوضہ میں شرکت کی کوئی راہ نہیں ہے پھر جب میعاد گزر گئی تو اس کو شرکت کے مقبوضہ میں نصف کی شرکت کا اختیار ہوگا۔

اگر ادائے مال کی ایک سال میعاد ہو اور شریک نے میعاد سے پہلے وصول کر لیا پھر غلام نے قرض دار کو ایک سال آئندہ کی بھی مہلت دے دی خواہ اس کو شریک کے وصول کرنے کا حال معلوم ہے یا نہیں تو صاحبین کے نزدیک اس کا مہلت دینا جائز ہے اور جب تک پورے دونوں برس

نہ گزریں تب تک شریک کے مقبوضہ میں ساجھا نہیں کر سکتا ہے اور اگر مال فی الحال واجب الادا ہو اور شریک...

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | Book of the Ma'zun | Page 26**

(If a partner) collected his share and the Ma'zun (authorized slave) handed over this wealth to him, it is permissible, provided that the amount due from the debtor is not lost. If it is lost, he shall become a partner in what the other partner has collected. If the wealth was on a one-year term and the Ma'zun purchased a slave girl from the debtor in exchange for his share, the partner has the option to hold the Ma'zun accountable for his half-share to collect the dirhams. Thus, if the partner collected his half-share from the Ma'zun in dirhams, and later the Ma'zun discovered a defect in the slave girl and returned her to the seller by the order of a judge (Qazi), then the debt shall return to its original term, and the slave shall take back from his partner what he had collected. If the Ma'zun returned the slave girl without a judge's order or consensual rescission (Iqalah), he cannot take back what he gave to the partner. In this case, five hundred dirhams shall be payable by the debtor to the Ma'zun and the partner when the term arrives, and five hundred dirhams shall be immediately due from the slave's debtor. Similarly, if the Ma'zun purchased the slave girl from the debtor for a full possession of one thousand dirhams, the same ruling applies, with the difference that in this case, the partner will take his full share of five hundred dirhams from the Ma'zun. Furthermore, if at the time of returning without a judge's order or Iqalah, the seller conditioned with the Ma'zun that its price be payable at its previous term, then it shall be payable at that term; this is in 'Al-Mabsut'. If the Ma'zun purchased a slave on the condition of a three-day option (Khiyar), and within the option period the seller exempted him from the price, and then the Ma'zun returned the slave under the right of option, it is valid according to Imam al-Azam (Abu Hanifa); as stated in 'Al-Kafi'.

In the rescission of sale (Iqalah), the ruling for a Ma'zun is the same as for a free person. Thus, if a Ma'zun purchased a slave girl and her value increased (e.g., she gained a desirable quality) while in his possession, to the point that the price became significantly lower than her value—a loss beyond common tolerance—and then the Ma'zun rescinded the sale, it is permissible according to Imam al-Azam, but not according to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad); this is in 'Al-Mabsut'. If a Ma'zun purchased a slave girl for one thousand dirhams, took possession before paying the price, and the seller then released him from the price, and they subsequently rescinded the sale, the Iqalah is void according to Imam al-Azam and Imam Muhammad; as in 'Al-Kafi'. If the Iqalah was made for one hundred dinars, another slave girl, or two thousand dirhams, it is still void according to Imam

al-Azam but permissible according to the Sahibayn. If the Ma'zun had not taken possession of the slave girl and the seller gifted (Hiba) the price to him, and they then performed Iqalah, it is void by consensus (Ijma). Similarly, if Iqalah was made for a different price under these circumstances, the same ruling applies. If they did not perform Iqalah but the Ma'zun found a defect before possession and was dissatisfied, or had to see the slave girl and after seeing her was dissatisfied and broke the sale, even though the seller had already gifted him the price, the breaking of the sale is void; this is in 'Al-Mabsut'.

It is narrated in 'Abanah' from 'Muntaqa' that a Ma'zun sold a slave from his trade, then the master (Maula) interdicted (made him Mahjoor) him. If the buyer then found a defect and wished to return the slave, the interdicted Ma'zun slave himself would be considered the defendant (Khasm) for the return due to the defect. Thus, if the interdicted slave confessed to the defect, nothing would be mandatory upon him, but if he refused to swear an oath and the judge decreed the return, it is valid; this is in 'Tatarkhaniyah'. If a Ma'zun bought or sold something and then the master rescinded the sale, if the Ma'zun is not in debt at that time, the master's action is valid for the Ma'zun. If the Ma'zun is in debt at that time, but the master paid off the debt or the creditors released the slave from his debt before the judge revoked the rescission, it is valid. If the judge has already revoked the rescission and subsequently the creditors released him from the debt, the ruling of revocation remains in effect.

(यदि साझेदार) ने अपना हिस्सा वसूल किया और माज़ून (अधिकृत गुलाम) ने यह माल उसी को सौंप दिया, तो यह जायज़ है, बशर्ते कि जो कुछ कर्जदार पर है वह डूब न जाए। अतः यदि वह डूब गया, तो वह साझेदार द्वारा प्राप्त राशि में हिस्सा प्राप्त करेगा। और यदि माल एक वर्ष की अवधि पर हो और माज़ून ने कर्जदार से अपने हिस्से के बदले एक दासी खरीदी, तो साझेदार को यह अधिकार है कि वह अपने आधे हिस्से के लिए माज़ून को जिम्मेदार ठहराए कि वह दिरहम वसूल करे। फिर यदि साझेदार ने अपना आधा हिस्सा माज़ून से दिरहमों में वसूल कर लिया, और बाद में माज़ून ने दासी में दोष पाया और न्यायाधीश (क़ाज़ी) के आदेश से उसे विक्रेता को वापस कर दिया, तो कर्ज की राशि अपनी पिछली अवधि पर वापस लौट आएगी, और गुलाम अपने साझेदार से वह राशि वापस ले लेगा जो उसने प्राप्त की थी। और यदि माज़ून ने उस दासी को बिना क़ाज़ी के आदेश या आपसी सहमति (इक़ाला) के बिना वापस किया हो, तो वह साझेदार से दी गई राशि वापस नहीं ले सकता। ऐसी स्थिति में, माज़ून और साझेदार के पाँच सौ दिरहम कर्जदार पर समय आने पर देय होंगे, और पाँच सौ दिरहम गुलाम के कर्जदार पर तत्काल देय होंगे। इसी प्रकार, यदि माज़ून ने वह दासी कर्जदार से पूरे एक हज़ार दिरहम के बदले में खरीदी हो, तब भी यही नियम लागू होगा, सिवाय इस अंतर के कि इस स्थिति में साझेदार माज़ून से अपने पूरे पाँच सौ दिरहम प्राप्त कर लेगा। फिर यदि बिना क़ाज़ी के आदेश या इक़ाला के समय विक्रेता ने माज़ून से यह शर्त लगा ली कि उसकी कीमत पिछली अवधि पर देय होगी, तो वह उसी अवधि पर देय होगी; यह 'मबसूत' में उल्लेखित है। यदि माज़ून ने एक गुलाम इस शर्त (ख़ियार) पर खरीदा कि उसे तीन दिन का विकल्प है, और विकल्प की अवधि के दौरान विक्रेता ने उसे कीमत के भुगतान से मुक्त कर दिया, और फिर माज़ून ने विकल्प के अधिकार के तहत उसे वापस कर दिया, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफा) के अनुसार यह सही है; जैसा कि 'अल-काफी' में वर्णित है।

बिक्री के इक़ाला (सौदे की समाप्ति) में माज़ून का हुक्म एक स्वतंत्र व्यक्ति के समान है। अतः यदि माज़ून ने कोई दासी खरीदी और उसके पास रहने के दौरान उसमें कोई सुधार या मूल्य वृद्धि (विशेषता) हुई, यहाँ तक कि कीमत उसके मूल्य से इतनी कम हो गई जिसे लोग सामान्यतः सहन नहीं कर सकते, और फिर माज़ून ने उस सौदे को रद्द (इक़ाला) कर दिया, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार यह जायज़ है, जबकि साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार यह जायज़ नहीं है; यह 'मबसूत' में है। और यदि माज़ून ने एक हज़ार दिरहम में एक दासी खरीदी और

भुगतान से पहले उस पर कब्ज़ा कर लिया, और फिर विक्रेता ने उसे कीमत माफ़ कर दी, फिर दोनों ने आपसी सहमति से सौदा रद्द किया, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार यह इक़ाला बातिल (अवैध) है; जैसा कि 'अल-काफी' में है। और यदि इक़ाला सौ दीनार या दूसरी दासी या दो हज़ार दिरहम पर किया गया, तब भी इमाम-ए-आज़म के अनुसार यह बातिल है और साहिबैन के अनुसार जायज़ है। और यदि माज़ून ने दासी पर कब्ज़ा नहीं किया था और विक्रेता ने कीमत उसे दान (हिबा) कर दी, फिर दोनों ने इक़ाला किया, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से यह इक़ाला बातिल है। इसी प्रकार, यदि ऐसी स्थिति में किसी अन्य कीमत पर इक़ाला किया गया, तब भी यही हुक्म है। और यदि दोनों ने इक़ाला नहीं किया, लेकिन कब्ज़े से पहले माज़ून ने उसमें दोष पाया और वह संतुष्ट नहीं हुआ, या उसे दासी को देखना था और देखने के बाद वह सहमत नहीं हुआ और सौदा तोड़ दिया, जबकि विक्रेता उसे कीमत दान कर चुका है, तो सौदा तोड़ना बातिल है; यह 'मबसूत' में वर्णित है।

'अबाना' में 'मुनतका' से उद्धृत है कि एक माज़ून ने अपने व्यापार से एक गुलाम बेचा, फिर उसके मालिक (मौला) ने उसे प्रतिबंधित (महजूर) कर दिया। इसके बाद यदि खरीदार ने उस गुलाम में दोष पाकर उसे वापस करना चाहा, तो दोष के कारण वापसी के मामले में वही महजूर गुलाम प्रतिवादी (हस्म) माना जाएगा। अतः यदि महजूर ने दोष स्वीकार कर लिया, तो उस पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा, लेकिन यदि उसने शपथ लेने से इनकार कर दिया और न्यायाधीश ने वापसी का आदेश दे दिया, तो यह जायज़ है; यह 'तातार्खनिया' में है। यदि माज़ून ने कुछ खरीदा या बेचा और उसके मालिक (मौला) ने उस सौदे को रद्द (इक़ाला) कर दिया, तो यदि माज़ून उस समय तक कर्जदार नहीं है, तो मालिक का कृत्य माज़ून पर प्रभावी होगा। और यदि माज़ून उस समय कर्ज में है, लेकिन मालिक ने वह कर्ज चुका दिया है या लेनदारों ने न्यायाधीश द्वारा इक़ाला रद्द करने से पहले गुलाम को कर्ज से मुक्त कर दिया है, तो यह जायज़ है। लेकिन यदि न्यायाधीश ने इक़ाला रद्द कर दिया और उसके बाद लेनदारों ने उसे कर्ज मुक्त किया, तो निरस्तीकरण का आदेश प्रभावी रहेगा।

---

نے اپنا حصہ وصول کیا اور ماذون نے یہ مال اسی کو سپرد کر دیا تو جائز ہے الا یہ کہ جو کچھ قرض دار پر ہے وہ ڈوب جائے پس اگر ڈوب گیا تو شریک کے مقبوضہ میں شریک ہو جائے گا اور اگر مال ایک سال کی میعاد پر ہوا اور ماذون نے قرض دار سے اپنے حصہ کے عوض ایک باندی خریدی تو شریک کو اختیار ہے کہ اپنے نصف حصہ کے واسطے ماذون کو ماخوذ کرے کہ درہم وصول کرے پس اگر شریک نے اپنے نصف حصہ کو ماذون سے درہموں سے وصول کیا پھر ماذون نے باندی میں عیب پایا اور بحکم قاضی اپنے بائع کو واپس کیا تو پھر مال قرض اپنی میعاد پر عود کرے گا اور غلام اپنے شریک سے جو کچھ اس نے وصول کیا ہے واپس کرلے گا اور اگر ماذون نے وہ باندی بلا حکم قاضی یا باقالہ واپس کی ہو تو شریک سے جو کچھ اس کو دیا ہے واپس نہیں لے سکتا ہے اور ماذون و شریک کے پانچ سو درہم قرض دار پر میعاد آنے پر واجب الادا ہوں گے اور پانچ سو درہم غلام کے قرض دار پر فی الحال واجب ہوں گے اسی طرح اگر ماذون نے وہ باندی قرض دار سے پورے قبضہ ہزار درہم میں خریدی ہو تو بھی یہی حکم ہے مگر فرق اس قدر ہے کہ اس صورت میں شریک اپنا حصہ پانچ سو درہم کامل ماذون سے لے لے گا پھر اگر بلا حکم قاضی یا باقالہ واپس کرنے کے وقت بائع نے ماذون سے یہ شرط کرلی کہ اس کا ثمن اپنی میعاد سابقہ پر واجب الادا ہو تو اپنی میعاد پر واجب الادا ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون نے ایک غلام اس شرط سے خریدا کہ مجھے تین روز تک خیار ہے پھر مدت خیار کے اندر بائع نے اس کو ثمن سے بری کر دیا پھر ماذون نے وہ غلام بحکم خیار اس کو واپس کیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک صحیح ہے کذا فی الکافی۔

اقالہ بیع میں ماذون کا حکم مثل آزاد کے ہے پس اگر ماذون نے کوئی باندی خریدی اور وہ اس کے پاس بڑھ گئی یعنی اس میں کچھ زیادتی ہوگئی یہاں تک کہ ثمن اس کی قیمت سے اس قدر گھٹ گیا جس قدر خسارہ لوگوں کو برداشت میں نہیں آتا ہے پھر ماذون نے اس کی بیع کا اقالہ کرلیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک جائز ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر ماذون نے ہزار درہم کو ایک باندی خرید کر ثمن ادا کرنے سے پہلے اس پر قبضہ کرلیا اور پھر بائع نے اس کو ثمن سے بری کر دیا پھر باہم بیع کا اقالہ کیا تو امام اعظمؒ اور امام محمدؒ کے نزدیک بیع کا اقالہ باطل ہے کذا فی الکافی اور اگر اقالہ بیع سودینار یا دوسری باندی یا دو ہزار درہم پر کیا تو بھی امام اعظمؒ کے نزدیک اقالہ باطل ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز ہے اور اگر ماذون نے باندی پر قبضہ نہ کیا یہاں تک کہ بائع نے اس کا ثمن اس کو ہبہ کر دیا پھر دونوں نے اقالہ کیا تو بالاجماع اقالہ باطل ہے اس طرح اگر ایسی حالت میں دوسرے داموں پر اقالہ کیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر دونوں نے بیع کا اقالہ نہ کیا لیکن قبضہ سے پہلے ماذون نے اس میں عیب پایا اور راضی نہ ہوا یا باندی کو دیکھنا تھا پھر جب دیکھا تو راضی نہ ہوا اور بیع توڑ دی حالانکہ بائع ثمن اس کو ہبہ کر چکا ہے تو بیع توڑنا باطل ہے یہ مبسوط میں ہے۔

ابانہ میں منتقٰی سے منقول ہے کہ ماذون نے اپنی تجارت میں سے ایک غلام فروخت کیا پھر مولیٰ نے اس کو محجور کردیا پھر مشتری نے اس غلام میں عیب پا کر واپس کرنا چاہا تو عیب کی وجہ سے واپس کرنے میں خصم وہی غلام ماذون جو محجور ہو گیا ہے قرار دیا جائے گا پس اگر محجور نے عیب کا اقرار کر دیا تو اس پر کچھ لازم نہ ہوگا اور اگر قسم سے انکار کیا اور قاضی نے اس پر واپس کرنے کی ڈگری کردی تو جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر ماذون نے کوئی چیز خریدی یا فروخت کی پھر مولیٰ نے اس کی بیع کا اقالہ کردیا پس اگر ماذون اس وقت تک مقروض نہ ہو تو جو کچھ اس کے مولیٰ نے کیا ہے وہ ماذون پر جائز ہوگا اور اگر ماذون پر اس

وقت قرض ہو مگر مولیٰ نے وہ قرض ادا کردیا یا قرض خواہوں نے غلام کو اپنے قرض سے بری کردیا قبل اس کے کہ قاضی اقالہ کو فسخ کرے تو جائز ہے اور اگر قاضی اقالہ کو فسخ کر چکا پھر قرض خواہوں نے اپنے قرض سے اس کو بری کیا تو فسخ کا حکم باقی رہے گا یعنی اقالہ فسخ رہے گا اور اگر کوئی عرض بعوض ثمن کے فروخت کر

ا۔ یہ مال یعنی جو شریک نے وصول کیا ہے اس کو ماذون نے شریک کو سپرد کر دیا اور خود ماذون نے نہ لیا۔ ب۔ یعنی اس میں ایسی خوبی بڑھ گئی جس سے قیمت بڑھ جاتی ہے بلکہ یہاں تک قیمت ڈھکہ ہے الخ۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (Page 27) Book of the Authorized Slave (Kitab al-Mazun)**

...the mutual possession took place, and then they mutually agreed to cancel the sale (*Iqala*). Although the commodity still exists, the price is lost or was lost after the cancellation, the cancellation (*Iqala*) will be complete. However, if the price remains but the commodity is lost, whether before or after the cancellation, the cancellation is void (*Batil*). This is mentioned in *al-Mabsut*. Imam Muhammad (RA) said: If an authorized slave (*Mazun*) sold some property from his earnings and the buyer, after taking possession, found a defect in it—whether the defect was of a nature that could have arisen later or not—and he litigated with the *Mazun*, and the *Mazun* accepted the return without a judge's order, without an oath, and without witnesses to the defect, it is permissible, and the sale is dissolved. If he did not accept it until the judge ordered the return based on testimony, refusal of an oath, or confirmation of the defect, it is also permissible. This is in *al-Mughni*.

If the *Mazun* sold a female slave for a thousand Dirhams and mutual possession took place, then the buyer cut her hand or had sexual intercourse (*wati*) with her, or her eye was lost without anyone's action, and then both parties agreed to cancel the sale (*Iqala*) while the *Mazun* was unaware of this, he shall have the option to either accept her or return her to the buyer. If the one who cut her hand or had intercourse was a stranger, and compensation for injury (*arsh*) or dower-like compensation (*uqr*) became due, and then they agreed to *Iqala*—whether the slave knew of it or not—then according to Imam al-Azam (Abu Hanifa RA), the cancellation is void, but according to the *Sahibayn* (Abu Yusuf and Muhammad), it is valid. This is in *al-Mabsut*. If the *Mazun* sold a female slave to Zaid and Zaid took possession, then found a defect and complained to the judge with witnesses that the defect existed with the *Mazun*, and the judge ordered the return of the slave and the refund of the price, but the slave later discovered another defect that occurred while she was with the buyer—which neither the slave nor the judge knew at the time of return—the *Mazun* shall have the choice to either annul the dissolution (*faskh*) and return the slave to the buyer, recovering the full price except for the value of the defect that was with the *Mazun*, or keep the slave by validating the dissolution, but he cannot recover any amount from the buyer for the defect that occurred with him. This is in *al-Mughni*.

**If a detached increase (e.g., offspring) occurs in the female slave while with the seller after dissolution, the buyer cannot take it.** ☆

If the slave did not return her until a second defect arose in her while with him, he cannot return her, but he shall recover from the price the loss for the defect that arose with the buyer, just as the buyer could have done upon finding an old defect and having a new one arise with him. Thus, the buyer in this situation has the option to take the slave along with the defect that arose with the slave. If he accepts and pays the price, he shall recover from the *Mazun* an amount of the price proportional to the old defect, but he cannot recover for the second defect. Similarly, if the second defect was a crime or intercourse committed by the *Mazun*, the same ruling applies. If a stranger committed a crime or intercourse and *uqr* or *arsh* became due, the *Mazun* shall recover from the buyer the loss for the defect that arose with the buyer from the price. If a detached increase occurred in the slave while with the seller after dissolution, the buyer cannot take it. Just as such an increase while with the buyer is a legal impediment to dissolving the contract, the same rule applies to an increase arising with the seller after dissolution. Thus, when return becomes impossible, the seller's right remains to recover the portion of the price corresponding to the defect. If the buyer initially returned the slave to the *Mazun* due to a defect and the *Mazun* took possession, then the buyer discovered that her hand was severed or she was had intercourse with, and did not return her due to this defect until another defect arose while with the slave, the buyer has the option to take the slave and pay the full price to the *Mazun*, and then in the price the slave... by legal right, meaning it is the right of the Sharia that the contract should not be dissolved, meaning the Sharia has prohibited it.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (27) किताब अल-माज़ून**

...के आपसी कब्ज़ा कर लिया फिर आपस में इकाला (विक्रय रद्दीकरण) किया, हालाँकि माल तो बाकी है मगर कीमत नष्ट हो चुकी है या इकाला के बाद नष्ट हुई, तो इकाला पूरा हो जाएगा। और अगर कीमत बाकी हो मगर माल नष्ट हो गया हो, चाहे इकाला से पहले हो या बाद में, तो इकाला बातिल (अमान्य) है। ऐसा ही 'मबसूत' में है। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि माज़ून गुलाम ने अपनी कमाई में से कोई माल बेचा और खरीदार ने कब्ज़ा करने के बाद उसमें दोष पाया, और दोष ऐसा है जो बाद में पैदा हो सकता है या नहीं, और उसने माज़ून से मुक़दमा किया, और माज़ून ने काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश के बिना, बिना कसम और बिना गवाह के दोष स्वीकार कर लिया, तो यह जायज़ है और बिक्री रद्द हो जाएगी। और अगर स्वीकार नहीं किया यहाँ तक कि काज़ी ने गवाही या कसम से इनकार या दोष की पुष्टि के आधार पर वापसी का आदेश दे दिया, तो यह जायज़ है। यह 'मुग़नी' में है।

अगर माज़ून ने एक हज़ार दिरहम में एक दासी बेची और आपसी कब्ज़ा हो गया, फिर खरीदार ने उसका हाथ काट दिया या उससे संभोग (वती) कर लिया या बिना किसी के कृत्य के उसकी आँख चली गई, फिर दोनों ने बिक्री रद्द करने का समझौता (इकाला) कर लिया, जबकि माज़ून को इसकी जानकारी नहीं थी, तो माज़ून को अधिकार होगा कि चाहे तो उसे ले ले या खरीदार को वापस कर दे। और अगर हाथ काटने वाला या संभोग करने वाला कोई अजनबी हो और उस पर 'अर्श' (चोट का मुआवज़ा) या 'उक़्र' (महर जैसा मुआवज़ा) वाजिब हुआ, फिर दोनों ने बिक्री का इकाला किया, जबकि गुलाम जानता है या नहीं जानता, तो इमाम आज़म (रह.) के अनुसार इकाला बातिल है और साहिबैन के अनुसार सही है। यह 'मबसूत' में है। अगर माज़ून गुलाम ने ज़ैद के हाथ एक दासी बेची और ज़ैद ने उस पर कब्ज़ा कर लिया, फिर उसमें दोष पाकर काज़ी के पास शिकायत की और गवाह दिए कि यह दोष माज़ून के पास ही था, और काज़ी ने गुलाम को वह दासी वापस करने और कीमत लौटाने का आदेश दिया, फिर गुलाम ने उसके बाद उसमें एक दूसरा दोष देखा जो खरीदार के पास रहते हुए पैदा हुआ था, जिसकी जानकारी न गुलाम को वापसी के समय थी और न काज़ी को, तो माज़ून को अधिकार होगा कि चाहे तो रद्द करने (फ़स्ख़) को तोड़ दे और दासी खरीदार को वापस करके उससे पूरी कीमत, दोष की मात्रा के हिस्से को छोड़कर, वापस ले ले। और अगर चाहे तो फ़स्ख़ को जायज़ रखकर दासी अपने पास रखे, मगर जो दोष माज़ून के पास था, उसके नुकसान के लिए खरीदार से कम या ज़्यादा कुछ नहीं ले सकता। यह 'मुग़नी' में है।

**अगर बिक्री रद्द होने (फ़स्ख़) के बाद विक्रेता के पास दासी में अलग होने वाली वृद्धि (जैसे संतान) हो गई, तो खरीदार उसे नहीं ले सकता** ☆

अगर गुलाम ने उसे वापस नहीं किया यहाँ तक कि उसके पास दासी में दूसरा दोष पैदा हो गया, तो वह वापस नहीं कर सकता, लेकिन कीमत में से उस दोष का नुकसान जो खरीदार के पास पैदा हुआ था, वापस लेगा, जैसा कि खरीदार पुराने दोष की स्थिति में और अपने पास दूसरा दोष पैदा होने पर कर सकता था। अतः खरीदार को इस स्थिति में अधिकार होगा कि चाहे तो दासी को उस दोष के साथ ले ले जो गुलाम के पास पैदा हुआ है। फिर अगर उसने स्वीकार कर लिया और कीमत दे दी, तो वह माज़ून से पुराने दोष के हिस्से के बराबर कीमत वापस लेगा, मगर दूसरे दोष का नुकसान वापस नहीं ले सकता। इसी तरह अगर दूसरा दोष माज़ून की तरफ़ से कोई अपराध या संभोग हो, तो भी यही हुक्म है। और अगर किसी अजनबी ने कोई अपराध या संभोग किया हो और 'उक़्र' या 'अर्श' वाजिब हुआ हो, तो माज़ून खरीदार से उस दोष का नुकसान, जो खरीदार के पास पैदा हुआ है, कीमत में से वापस लेगा। और अगर फ़स्ख़ के बाद विक्रेता के पास दासी में कोई अलग होने वाली वृद्धि (जैसे बच्चा पैदा होना) हो गई, तो खरीदार उसे नहीं ले सकता। जिस तरह यह वृद्धि खरीदार के पास कानूनी रूप से अनुबंध रद्द होने (फ़स्ख़) में बाधा होती है, उसी तरह विक्रेता के पास फ़स्ख़ के बाद पैदा होने की स्थिति में भी यही हुक्म है। अतः जब वापसी असंभव हो जाए, तो विक्रेता का अधिकार यह रह गया कि वह दोष के हिस्से के बराबर राशि वापस ले ले। और अगर खरीदार ने पहले दोष के कारण दासी माज़ून को वापस कर दी और माज़ून ने उस पर कब्ज़ा कर लिया, फिर खरीदार ने पाया कि उसका हाथ काट दिया गया है या उससे संभोग किया गया है, और इस दोष के कारण वापस नहीं किया यहाँ तक कि गुलाम के पास रहते हुए उसमें दूसरा दोष पैदा हो गया, तो खरीदार को अधिकार है कि चाहे तो दासी को ले ले और माज़ून को पूरी कीमत दे दे, फिर कीमत में गुलाम शरीअत के हक़ के अनुसार, यानी यह शरीअत का हक़ है कि अनुबंध रद्द न हो, यानी शरीअत ने इससे मना किया है।

---

کے باہمی قبضہ کرلیا پھر باہم اقالہ کیا حالانکہ عرض تو باقی ہے مگر ثمن تلف ہو چکا ہے یا بعد اقالہ کے تلف ہوا تو اقالہ پورا ہو جائے گا اور اگر ثمن باقی ہو مگر عرض تلف ہو گیا ہو خواہ قبل اقالہ کے یا بعد اقالہ باطل ہے کذا فی المبسوط امام محمدؒ نے فرمایا کہ غلام ماذون نے اپنی کمائی میں سے کوئی مال عین فروخت کیا اور مشتری نے بعد قبضہ کے اس میں عیب لگایا اور عیب خواہ ایسا ہے جس کے مثل پیدا ہوسکتا ہے یا نہیں پیدا ہوسکتا ہے اور اس نے ماذون سے مخاصمہ کیا اور ماذون نے بغیر حکم قاضی بلا قسم و بلا گواہ جو عیب پر شاہد ہوں قبول کرلیا تو جائز ہے اور بیع ٹوٹ جائے گی اور اگر قبول نہ کیا یہاں تک کہ قاضی نے گواہی یا انکار قسم یا بارقرار عیب واپس کرنے کا حکم دے دیا تو جائز ہے یہ مغنی میں ہے۔

اگر ماذون نے ہزار درہم کو ایک باندی فروخت کی اور باہمی قبضہ ہو گیا پھر مشتری نے اس کا ہاتھ کاٹا یا اس سے وطی کرلی یا بدوں کسی کے فعل کے اس کی آنکھ جاتی رہی پھر دونوں نے بیع کا اقالہ کرلیا حالانکہ اس سے ماذون کو خبر نہ تھی تو اس کو اختیار حاصل ہوگا چاہے لے لے یا مشتری کو واپس کر دے اور اگر ہاتھ کاٹنے والا یا وطی کرنے والا کوئی اجنبی ہو اور اس پر ارش یا عقر واجب ہوا پھر دونوں نے بیع کا اقالہ کرلیا حالانکہ غلام جانتا ہے یا نہیں جانتا ہے تو امام اعظمؒ کے نزدیک اقالہ باطل ہے اور صاحبین کے نزدیک صحیح ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر غلام ماذون نے زید کے ہاتھ ایک باندی فروخت کی اور زید نے اس پر قبضہ کرلیا پھر اس میں عیب پا کر غلام کو لے جا کر قاضی کے پاس نالش کی اور گواہ دیئے کہ یہ عیب ماذون کے پاس تھا اور قاضی نے غلام کو وہ باندی واپس کرنے کا حکم کیا اور ثمن لے لیا پھر غلام نے اس کے بعد اس میں ایک دوسرا عیب جو مشتری کے پاس تھا دیکھا جو غلام کو وقت واپسی کے معلوم نہ ہوا تھا

اور نہ قاضی کو معلوم ہو اتھا تو ماذون کو اختیار ہوگا چاہے فسخ کو توڑ دے اور باندی مشتری کو واپس کر کے اس سے سب ثمن سوائے مقدار عیب کے جو ماذون کے پاس کا ہے واپس کرلے اور اگر چاہے تو فسخ کو جائز رکھ کر باندی اپنے پاس رکھے مگر جو عیب ماذون کے پاس تھا اس کے نقصان میں کم یا زیادہ کچھ مشتری سے نہیں لے سکتا ہے یہ مغنی میں ہے۔

**اگر بعد فسخ کے بائع کے پاس باندی میں زیادت منفصلہ پیدا ہوگئی تو مشتری اس کو نہیں لے سکتا ☆**

اگر غلام نے اس کو واپس نہ کیا یہاں تک کہ اس کے پاس باندی میں دوسرا عیب پیدا ہو گیا تو واپس نہیں کر سکتا ہے مگر ثمن میں سے اس عیب کا نقصان جو مشتری کے پاس پیدا ہو گیا ہے وہ واپس لے گا جیسا کہ مشتری درصورت عیب قدیم پائے جانے اور اس کے پاس دوسرا عیب پیدا ہو جانے کے کر سکتا تھا پس مشتری کو اس صورت میں اختیار ہوگا کہ چاہے باندی کو مع اس عیب کے جو غلام کے پاس پیدا ہوا ہے لے لے پس اگر قبول کرلی اور ثمن دے دیا تو ماذون سے بقدر حصہ عیب قدیم کے جو ماذون کے پاس تھا ثمن میں سے واپس لے گا مگر دوسرے عیب کا نقصان واپس نہیں لے سکتا ہے اسی طرح اگر دوسرا عیب ماذون کی طرف سے کوئی جنایت یا وطی ہو تو بھی یہی حکم ہے اور اگر اجنبی نے کوئی جنایت یا وطی کی ہو اور عقر یا ارش واجب ہوا ہو تو ماذون مشتری سے نقصان عیب جو مشتری کے پاس پیدا ہوا ہے ثمن میں سے واپس لے گا اور اگر بعد فسخ کے بائع کے پاس باندی میں زیادت منفصلہ پیدا ہوگئی تو مشتری اس کو نہیں لے سکتا ہے اور جس طرح یہ زیادت مشتری کے پاس بحق شرعی مانع فسخ عقد ہوتی ہے اسی طرح بائع کے پاس بعد فسخ کے پیدا ہو جانے میں بھی یہی حکم ہے پس جب واپس کرنا متعذر ہو تو بائع کا حق یہ رہا کہ بقدر حصہ عیب کے واپس لے اور اگر مشتری نے ماذون کو پہلے بسبب عیب کے باندی واپس کردی اور ماذون نے اس پر قبضہ کیا پھر مشتری نے پایا کہ اس کا ہاتھ قطع

کیا گیا ہے یا اس سے وطی کی گئی ہے اور اس عیب سے واپس نہ کیا یہاں تک کہ اس میں غلام کے پاس دوسرا عیب پیدا ہو گیا تو مشتری کو اختیار ہے چاہے باندی کو لے کر ماذون کو تمام ثمن دے کر پھر ثمن میں غلام بحق شرعی یعنی یہ شرع کا حق ہے کہ عقد فسخ نہ ہو یعنی شرع نے اس کو منع فرمایا ہے۔

---

**Kitab al-Ma'zoon** (The Book of the Authorized Slave) Page 28, Fatawa Alamgiri, Vol. 8

...he should take back the loss proportional to the share of the first defect. If he wishes, he may return it to the Ma'zoon (authorized slave) according to the loss of that defect which occurred while in his possession, from the price (thaman). What is meant by this loss is that which occurred due to an injury (jinayat) or due to sexual intercourse (waty) in the case of her being a virgin, whereby a reduction in her value occurred because of the intercourse. However, if the purchaser had intercourse with her and she was a non-virgin (thayyiba), such that no loss in value occurred from the intercourse, then the Ma'zoon cannot take back anything from the price from the purchaser, and that slave-girl remains the responsibility of the Ma'zoon. If a stranger cut off her hand or had intercourse with her while in the purchaser's possession, and a dower (uqr) or indemnity (arsh) became due, and then the judge ordered the return of the slave-girl to the Ma'zoon because of the defect she had while with the Ma'zoon, and what the stranger did while she was with the purchaser was not known, and then another defect occurred in the slave-girl while with the Ma'zoon, and subsequently the defect that occurred while with the purchaser became known, the slave-girl shall be returned to the purchaser. The Ma'zoon shall also return with her the amount of loss for the defect that occurred while with him, which caused a decrease in her price. Then the Ma'zoon shall take back the price from the purchaser if he had already paid it. Then the purchaser shall take from the Ma'zoon the loss for the first defect. If the defect that occurred while the slave was with the Ma'zoon was due to the act of a stranger, the purchaser shall have an option (khiyar): either he takes the compensation for the loss from the Ma'zoon, and the Ma'zoon recovers it from the stranger, or he takes it directly from the stranger. If a stranger killed her while she was with the Ma'zoon, the ruling is the same: the purchaser shall take the price of the slave-girl from the Ma'zoon, and there is no recourse against the stranger [for the purchaser]; then the Ma'zoon shall recover her price from the stranger. This is in contrast to a situation where the injury is less than loss of life, for in that case, this ruling does not apply. If the Ma'zoon sold that slave-girl after the purchaser had taken possession, the sale is valid; this is mentioned in *Al-Mabsut*.

If the Ma'zoon sold one slave-girl to Zaid in exchange for another slave-girl, and then both parties agreed to cancel the sale (iqala), but before they had retaken possession, each slave-girl gave birth to a child whose value is one thousand dirhams, and the value of each slave-girl is also one thousand dirhams, then each shall take his own slave-girl along with her child. If they did not take possession after

the iqala until both slave-girls died, then each shall give the child of the slave-girl in his possession, along with half the price of its mother, to the other. If the price of each slave-girl was five hundred dirhams, then each shall take the child that is with the other party, along with one-third of the price of its mother. If both children died but the slave-girls are alive, then each takes his own slave-girl from the other and cannot take anything more. If both slave-girls and one child died, then the one who has the living child shall give it to the other, and shall take from the other one-third of the price of the slave-girl who died in his possession; this is in *Al-Mughni*. If the Ma'zoon sold a slave-girl to Zaid for one thousand dirhams and mutual possession was taken, then they agreed on iqala, but before the Ma'zoon had retaken possession of the slave-girl, 'Amr cut off her hand or had intercourse with her, resulting in a loss, the [Ma'zoon] slave shall have an option (khiyar). If he chooses to take the slave-girl, he shall proceed against the one who had intercourse or the injurer to recover the uqr or arsh. If he chooses to break the iqala, then the uqr or arsh shall belong to the purchaser. If instead of one thousand dirhams, the price was a specific commodity (araz), the Ma'zoon shall have the option: either he takes the slave-girl from the purchaser and recovers the uqr or arsh from the one who had intercourse or the injurer, or he takes from the purchaser the value of the slave-girl on the day she was in his possession and lets the slave-girl remain with him, in which case the uqr and arsh belong to the purchaser. Similarly, if the injurer killed her, the slave shall have the option: either he takes her price as blood money (diyah) from the injurer’s supporting tribe (aqila), or he takes her price from the purchaser immediately, and then the purchaser shall recover her price from the injurer’s aqila over three years. Similarly, if after the iqala, that slave-girl… [text continues]

---

1. Fixed wealth as dower (Mahr) which had to be given due to illicit intercourse.

**किताब अल-माज़ून** (माज़ून की किताब) पृष्ठ २८, फ़तावा आलमगीरी, जिल्द ८

...से पहले दोष के हिस्से के बराबर नुक़सान वापस ले ले, और यदि चाहे तो माज़ून को उस दोष के नुक़सान के बराबर वापस दे दे जो उसके पास पैदा हुआ है। क़ीमत (थमन) में से वापस दे, और इस नुक़सान से मुराद यह है कि जो अपराध (जिनायत) के कारण उत्पन्न हुआ या संभोग (वती) के कारण कुंवारी होने की स्थिति में उत्पन्न हुआ, जिससे संभोग के कारण उसके मूल्य में कमी आ गई। और यदि ग्राहक (मुश्तरी) ने उससे संभोग किया लेकिन वह गैर-कुंवारी (थय्यिबा) थी जिससे संभोग से कोई नुक़सान नहीं हुआ, तो माज़ून ग्राहक से क़ीमत में से कुछ भी वापस नहीं ले सकता, और वह दासी माज़ून की ज़िम्मेदारी होगी। और यदि ग्राहक के पास किसी अजनबी ने उसका हाथ काट दिया या उससे संभोग किया और उक्र (मेहर) या अर्श (क्षतिपूर्ति) अनिवार्य हो गया, फिर न्यायाधीश ने माज़ून को उस दोष के कारण जो माज़ून के पास था दासी वापस कर दी, और जो कुछ अजनबी ने ग्राहक के पास किया था वह ज्ञात नहीं हुआ, फिर माज़ून के पास दासी में दूसरा दोष पैदा हो गया, फिर माज़ून को उस दोष का पता चला जो ग्राहक के पास पैदा हुआ था, तो दासी ग्राहक को वापस कर दी जाएगी और माज़ून उसके साथ उस दोष के नुक़सान के बराबर भी वापस देगा जो उसके पास पैदा हुआ है जिससे उसकी क़ीमत में कमी आई है। फिर माज़ून ग्राहक से क़ीमत वापस लेगा यदि उसे दे चुका हो, फिर ग्राहक माज़ून से पहले दोष का नुक़सान ले लेगा। और यदि वह दोष जो गुलाम (माज़ून) के पास पैदा हुआ है किसी अजनबी के कृत्य से हुआ हो, तो ग्राहक को विकल्प (ख़ियार) होगा, चाहे वह नुक़सान माज़ून से ले ले और माज़ून उस अजनबी से वसूल कर ले, या सीधे अजनबी से ले ले। और यदि माज़ून के पास किसी अजनबी ने उसे मार डाला तो नियम समान है और ग्राहक माज़ून से दासी की क़ीमत ले लेगा और अजनबी से लेने का कोई रास्ता नहीं है, फिर माज़ून उसकी क़ीमत अजनबी से वापस लेगा, इसके विपरीत यदि अपराध जान लेने से कम हो, तो इस स्थिति में यह नियम नहीं है। और यदि माज़ून ने वह दासी ग्राहक के क़ब्ज़े के बाद बेची तो बिक्री वैध है, यह 'मबसूत' में है।

यदि माज़ून ने ज़ैद को एक दासी के बदले एक दासी बेची, फिर दोनों ने बिक्री रद्द (इकाला) कर दी और अभी तक क़ब्ज़ा नहीं किया था कि प्रत्येक दासी से एक बच्चा पैदा हुआ जिसकी क़ीमत एक हज़ार दिरहम है और प्रत्येक दासी की क़ीमत भी एक हज़ार दिरहम है, तो प्रत्येक अपनी दासी और उसके बच्चे को ले लेगा। और यदि इकाला के बाद क़ब्ज़ा नहीं किया यहाँ तक कि दोनों दासियाँ मर गईं, तो प्रत्येक अपनी क़ब्ज़े वाली दासी के बच्चे को उसकी माँ की आधी क़ीमत के साथ दूसरे को दे।

और यदि प्रत्येक दासी की क़ीमत पाँच सौ दिरहम हो तो प्रत्येक उस बच्चे को जो दूसरे के पास है उसकी माँ की एक-तिहाई क़ीमत के साथ ले। और यदि दोनों बच्चे मर गए और दासियाँ जीवित हैं, तो प्रत्येक अपनी दासी दूसरे से ले ले और इससे ज़्यादा कुछ नहीं ले सकता। और यदि दोनों दासियाँ और एक बच्चा मर गया, तो जिसके पास जीवित बच्चा है वह दूसरे को दे दे और दूसरे से उस दासी की एक-तिहाई क़ीमत ले ले जो उसके पास मर गई है, यह 'मुग़नी' में है। यदि माज़ून ने ज़ैद को एक दासी एक हज़ार दिरहम में बेची और आपसी क़ब्ज़ा कर लिया, फिर इकाला कर लिया और अभी तक माज़ून ने दासी पर क़ब्ज़ा नहीं किया था कि अम्र ने उसका हाथ काट दिया या उससे संभोग किया जिससे उसमें नुक़सान आया, तो गुलाम को विकल्प (ख़ियार) होगा। यदि उसने दासी लेना चुना तो संभोग करने वाले या अपराधी से उक्र या अर्श वसूल कर लेगा, और यदि उसने इकाला तोड़ना चुना तो उक्र या अर्श ग्राहक को मिलेगा। और यदि एक हज़ार दिरहम के बजाय क़ीमत में कोई निश्चित वस्तु (अरज़) हो तो माज़ून को विकल्प होगा। चाहे ग्राहक से दासी लेकर संभोग करने वाले या अपराधी से उक्र या अर्श वसूल करे, या ग्राहक से उसके क़ब्ज़े के दिन की दासी की क़ीमत लेकर दासी उसके पास रहने दे और उसका उक्र और अर्श ग्राहक का होगा। इसी तरह यदि अपराधी ने उसे मार डाला तो भी गुलाम को विकल्प होगा, चाहे अपराधी के सहायक परिवार (आक़िला) से दियत के रूप में उसकी क़ीमत ले या ग्राहक से तत्काल उसकी क़ीमत ले, फिर ग्राहक अपराधी के सहायक परिवार से तीन साल में उसकी क़ीमत वसूल करेगा। इसी तरह यदि इकाला के बाद वह दासी ग्राहक...

---

1. निर्धारित धन मेहर के रूप में जो अनुचित संभोग की वजह से देना पड़ा।

سے بقدر حصہ عیب اول کے نقصان واپس لے اور اگر چاہے تو ماذون کو بقدر نقصان اس عیب کے جو اس کے پاس پیدا ہو گیا ہے۔ ثمن سے واپس دے اور مراد اس نقصان سے یہ ہے کہ بسبب جنایت کے پیدا ہوا یا بسبب وطی کے درصورت باکرہ ہونے کے پیدا ہوا کہ اس کی مالیت میں بسبب وطی کے نقصان آگیا اور اگر مشتری نے اس سے وطی کی مگر وہ ثیبہ تھی کہ اس میں وطی سے کچھ نقصان نہیں آیا تو ماذون مشتری سے ثمن میں سے کچھ واپس نہیں لے سکتا ہے اور وہ باندی ماذون کے ذمہ لازم ہوگی اور اگر مشتری کے پاس کسی اجنبی نے اس کا ہاتھ کاٹایا اس سے وطی کی اور عقر یا ارش واجب ہوا پھر قاضی نے ماذون کو بسبب اس عیب کے جو ماذون کے پاس تھا ماذون کو واپس کر دی اور جو کچھ اجنبی نے مشتری کے پاس اس سے کیا ہے وہ معلوم نہ ہوا پھر ماذون کے پاس باندی میں دوسرا عیب پیدا ہو گیا پھر ماذون کو وہ عیب جو مشتری کے پاس پیدا ہوا تھا معلوم ہوا تو باندی مشتری کو واپس دے جائے گی اور ماذون اس کے ساتھ اس قدر نقصان عیب بھی جو اس کے پاس پیدا ہوا ہے کہ جس سے اس کی قیمت میں نقصان آیا ہے واپس دے گا پھر ماذون مشتری سے ثمن واپس لے گا اگر اس کو دے چکا ہو پھر مشتری ماذون سے عیب اول کا نقصان لے لے گا اور اگر وہ عیب جو غلام کے پاس پیدا ہوا ہے کسی اجنبی کے فعل سے ہوا ہو تو مشتری کو خیار ہوگا چاہے یہ نقصان ماذون سے لے لے اور ماذون اس اجنبی سے بھر لے گا یا اجنبی سے لے اور اگر ماذون کے پاس اجنبی نے اس کو قتل کیا تو حکم یکساں ہے اور مشتری ماذون سے باندی کی قیمت لے لے گا اور اجنبی سے لینے کی کوئی راہ نہیں ہے پھر ماذون اس کی قیمت اجنبی سے پھیر لے گا بخلاف اس کے اگر جنایت تلف نفس

سے کم واقع ہو کہ اس صورت میں یہ حکم نہیں ہے اور اگر ماذون نے وہ باندی بعد قبضہ مشتری کے فروخت کی تو بیع جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ماذون نے زید کے ہاتھ ایک باندی بعوض ایک باندی کے فروخت کی پھر دونوں نے اقالہ کر لیا اور ہنوز قبضہ نہیں کیا تھا کہ ہر ایک باندی کے ایک بچہ پیدا ہوا جس کی قیمت ایک ہزار درہم ہے اور ہر ایک باندی کی قیمت بھی ہزار درہم ہے تو ہر ایک اپنی باندی اور اس کے بچہ کو لے لے گا اور اگر بعد اقالہ کے قبضہ نہ کیا یہاں تک دونوں باندیاں مر گئیں تو ہر ایک اپنی باندی مقبوضہ کے بچہ کو مع اس کی ماں کی نصف قیمت کے دوسرے کو دے اور اگر ہر ایک باندی کی قیمت پانچ سو درہم ہوں تو ہر ایک اس بچہ کو جو دوسرے کے پاس ہے مع اس کی ماں کی تہائی قیمت کے لے اور اگر دونوں بچہ مر گئے باندیاں زندہ ہیں تو ہر ایک اپنی اپنی باندی دوسرے سے لے اور اس سے زیادہ کچھ نہیں لے سکتا ہے اور اگر دونوں باندیاں اور ایک بچہ مر گیا تو جس کے پاس زندہ بچہ موجود ہے وہ دوسرے کو دے دے اور دوسرے سے تہائی قیمت اس باندی کی جو اس کے پاس مر گئی ہے لے لے یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون نے زید کے ہاتھ ایک باندی کو ہزار درہم کو فروخت کر کے باہمی قبضہ کر لیا پھر باہم اقالہ کر لیا اور ہنوز ماذون نے باندی پر قبضہ نہ کیا تھا کہ عمرو نے اس کا ہاتھ کاٹ ڈالا یا اس سے وطی کی جس سے اس میں نقصان آیا تو غلام کو خیار حاصل ہوگا پس اگر اس نے باندی کا لینا اختیار کیا تو وطی کرنے والے یا جنایت کنندہ کا دامنگیر ہو کر عقر یا ارش وصول کر لے گا اور اگر اس نے اقالہ توڑنا اختیار کیا تو عقر یا ارش مشتری کو ملے گا اور اگر بجاے ہزار درہم کے ثمن میں کوئی عرض معین ہو تو ماذون کو اختیار ہوگا۔ چاہے مشتری سے باندی لے کر وطی کنندہ یا جنایت کنندہ سے عقر یا ارش وصول کرے یا مشتری سے اس کے قبضہ کے روز کی باندی کی قیمت لے کر باندی اس کے پاس رہنے دے اور اس کا عقر و ارش مشتری کا ہوگا اسی طرح اگر جنایت کنندہ نے اس کو قتل کیا تو بھی

غلام کو اختیار ہوگا چاہے جنایت کنندہ کی مددگار برادری سے اس کی قیمت بطور دیت کے لے یا مشتری سے فی الحال اس کی قیمت لے پھر مشتری جنایت کنندہ کی مددگار برادری سے تین سال میں اس کی قیمت وصول کرے گا اسی طرح اگر بعد اقالہ کے وہ باندی مشتری

---

۱ مقررہ مال بطور مہر جو بے جا وطی کی وجہ سے دینا پڑا.....

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (49) Kitab al-Mazoon**

...if she dies in [his] possession, the slave still has the right to collect her price from the buyer. If, after rescission (*iqala*), a defect arises in the slave girl due to the buyer's action, the authorized slave (*mazoon*) shall have the option to either take the price of the day of possession from the buyer or take the slave girl and recover the amount of loss from the buyer. If the buyer caused a defect before rescission, then rescission was made, and subsequently the slave learned of the defect, he shall have the option to either take the price of the day of possession from the buyer or take the slave girl as she is with the defect, and he shall receive nothing besides that. If the *mazoon* sold a silver anklet worth one hundred dirhams for ten dinars, and after mutual possession they rescinded the contract, but separated before [actual return] possession, the rescission shall be void; this is recorded in *al-Mabsut*.

**Chapter Four: Concerning the accumulation of debt upon an authorized slave (*mazoon*) and the master's disposal of the *mazoon* through sale, *tadbir* (contract for freedom), manumission (*itq*), and similar matters.**

Be it clear that debt is of three types. First is the debt which is unanimously attached to his person (neck), which arises due to *istihlak* (destruction/consumption of property). Second is the debt which is unanimously not attached to his person, being any debt incurred for something not considered trade, such as *mahr* (dower) becoming obligatory due to intercourse in a marriage contracted without the master's permission. Third is the debt regarding which there is disagreement over its attachment to the person; this includes any debt arising from trade or its equivalents, such as buying and selling, leasing (*ijara*), hiring (*istijar*), liability for usurped property (*zaman-e-maghsoob*), and trusts (*wadiah* and *amanah*) when denied. This also includes the *uqr* (compensation) becoming due for intercourse with a purchased slave girl after [a third party's] right is proven, as this is also attributed to the purchase and thus annexed to it, as stated in *at-Tirmidhi* and found in *al-Ma'dan*. If Zaid permits his slave to trade, and the slave begins trading and subsequently incurs many debts, and the creditors bring him before the Judge (*Qazi*) while the master is present and request his sale, then if there are actual assets in the slave's possession sufficient to pay the debt, the debt shall be paid from his earnings and the slave shall not be sold for their debt. If there are no current assets but his property is elsewhere and its recovery (*dar-amad*) is expected, or if someone owes him a debt currently payable and its recovery is hoped for, the Judge shall not hasten to sell him but shall wait for

the property to appear or the debt to be collected. No fixed duration was specified for this waiting period.

Some of our scholars (*mashaikh*) stated that its duration depends on the Judge's discretion. Thus, if a period passes and in the Judge's opinion the waiting time has elapsed, he shall sell the slave. If, in his opinion, the time has not passed and there is room for waiting, he shall not sell. It is narrated from the jurist Abu Bakr al-Balkhi that he used to say the waiting period is three days. Thus, if after three days there is hope for the missing assets to appear or for the debt to be collected, he should wait until the assets appear or the debt is received; otherwise...

---

1. *Istijar* means taking on rent. *Zaman-e-Maghsoob* means compensation for an item seized and destroyed. One becomes liable (*zamin*) for a trust (*wadiah*) upon denying its existence.
2. *Dar-amad* means hope of receipt/collection.

...के पास मर गई तो भी ग़ुलाम को अख्तियार है कि मुश्तरी (खरीदार) से उसकी कीमत वसूल करे और अगर इकाला (अनुबंध रद्द करना) के बाद मुश्तरी के काम से बांदी (दासी) में कोई दोष पैदा हो गया तो माज़ून (अनुमति प्राप्त ग़ुलाम) को अख्तियार होगा चाहे मुश्तरी से कब्ज़े के दिन की कीमत ले ले या बांदी को लेकर नुकसान के बराबर मुश्तरी से ले ले। और अगर इकाला से पहले मुश्तरी ने उसमें कोई दोष पैदा कर दिया, फिर इकाला किया और फिर ग़ुलाम को उस दोष की खबर हुई तो अख्तियार होगा कि चाहे मुश्तरी से बांदी के कब्ज़े के दिन की कीमत ले ले या बांदी को वैसे ही दोषपूर्ण ले ले और इसके अलावा कुछ नहीं मिलेगा। और अगर माज़ून ने चांदी की पायल (छागल), जिसकी कीमत सौ दिरहम है, दस दीनार के बदले बेची और आपसी कब्ज़े के बाद इकाला किया और कब्ज़े से पहले दोनों अलग हो गए तो इकाला टूट जाएगा, यह 'मबसूत' में लिखा है।

## अध्याय चार: माज़ून पर कर्ज़ चढ़ जाने और मौला (मालिक) का माज़ून में बिक्री, तदबीर (मृत्यु उपरांत आज़ादी का वादा) या आज़ादी (ए'ताक) आदि के रूप में अधिकार के उपयोग के मुद्दों के वर्णन में।

स्पष्ट हो कि कर्ज़ तीन तरह का होता है। एक वह कर्ज़ जो सर्वसम्मति से उसकी गर्दन (स्वयं) से संबंधित होता है और वह 'इस्तेहलाक' यानी माल नष्ट कर देने के कारण होता है। दूसरा वह कर्ज़ है जो सर्वसम्मति से उसकी गर्दन से संबंधित नहीं होता है और वह हर वह कर्ज़ है जो ऐसी चीज़ के बदले वाजिब हुआ हो जो व्यापार के अर्थ में नहीं है, जैसे मालिक की अनुमति के बिना निकाह करके सहवास करने से मेहर (स्त्री धन) वाजिब हुआ हो। और तीसरा वह कर्ज़ है जिसके गर्दन से संबंधित होने या न होने में मतभेद है, और वह हर वह कर्ज़ है जो व्यापार और उसके समान कारणों से वाजिब हुआ हो, जैसे खरीद-फरोख्त, इज़ारा (किराया), इस्तिजार (किराये पर लेना), ग़सब (अनधिकृत कब्ज़ा) किए गए माल की भरपाई, अमानत और धरोहर (वदीअत) जबकि उससे इनकार कर दिया गया हो, और जैसे स्वामित्व सिद्ध होने के बाद खरीदी हुई बांदी से सहवास के कारण 'उक्र' (मुआवज़ा) वाजिब हुआ हो, क्योंकि यह भी खरीद की ओर संदर्भित है इसलिए इसी के साथ जोड़ दिया गया। 'तिरमिज़ी' में ऐसा ही है और यह 'मअदन' में है। और अगर जैद ने अपने ग़ुलाम को व्यापार की अनुमति दी और ग़ुलाम ने खरीद-फरोख्त शुरू की और कुछ समय बाद उस पर बहुत से कर्ज़ हो गए और कर्ज़दाता उसे काज़ी (न्यायाधीश) के पास ले आए, जबकि उसका मालिक उपस्थित है और मालिक से उसे बेचने का अनुरोध किया। तो यदि ग़ुलाम के कब्ज़े में वास्तव में इतना माल

मौजूद है जो उसके कर्ज़ चुकाने के लिए पर्याप्त है, तो उसका कर्ज़ उसकी कमाई से अदा किया जाएगा और ग़ुलाम को उनके कर्ज़ के बदले नहीं बेचा जाएगा। और अगर वास्तव में उसके पास माल मौजूद नहीं है लेकिन उसका माल कहीं और है जिसकी वसूली (दरामद) की उम्मीद है, या उसका किसी व्यक्ति पर ऐसा कर्ज़ है जो वर्तमान में देय है और उसके मिलने की उम्मीद है, तो काज़ी उसकी बिक्री में जल्दी नहीं करेगा बल्कि इंतज़ार करेगा कि माल मिल जाए या कर्ज़ वसूल हो जाए, और इस इंतज़ार की कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

हमारे उस्तादों (मशाइख) में से कुछ ने फरमाया कि इसकी अवधि काज़ी की राय पर निर्भर है। अतः यदि कुछ समय गुज़रा और काज़ी की राय में इंतज़ार की अवधि बीत चुकी तो ग़ुलाम को बेच देगा, और अगर उसकी राय में अवधि नहीं बीती बल्कि इंतज़ार की गुंजाइश लगी तो नहीं बेचेगा। और फकीह अबू बक्र बलखी से वर्णित है कि वे फरमाते थे कि इंतज़ार की अवधि तीन दिन है। अतः यदि तीन दिन गुज़रने पर उसके गायब माल के आने या कर्ज़ की वसूली की उम्मीद हो तो इंतज़ार करे, यहाँ तक कि माल आ जाए या कर्ज़ वसूल हो जाए और अगर ऐसा न हो...

---

1. इस्तिजार का अर्थ है किराये पर लेना। 'ज़मान-ए-मग़सूब' का अर्थ है कोई चीज़ छीनकर नष्ट कर दी जिसका हर्जाना देना पड़ा। और जब अमानत से इनकार कर दे तो वह ज़िम्मेदार (ज़ामिन) हो जाता है।
2. दरामद का अर्थ है वसूली होने की उम्मीद।

---

کے پاس مرگئی تو بھی غلام کو اختیار ہے کہ مشتری سے اس کی قیمت وصول کرے اور اگر بعد اقالہ مشتری کے فعل سے باندی میں کچھ عیب پیدا ہو گیا تو ماذون کو اختیار ہو گا چاہے مشتری سے قبضہ کے روز کی قیمت لے لے یا باندی کو لے کر بقدر نقصان کے مشتری سے لے لے اور اگر قبل اقالہ کے مشتری نے اس میں کوئی عیب پیدا کر دیا پھر اقالہ کیا اور پھر غلام کو اس عیب کی خبر ہوئی تو اختیار ہو گا کہ چاہے مشتری سے باندی کے قبضہ کے روز کی قیمت لے لے یا باندی کو جوں ہی عیب دار لے لے اور اس کے سوائے کچھ نہیں ملے گا اور اگر ماذون نے چاندی کی چھاگل جس کی قیمت سو درہم ہے بعوض دس دینار کے فروخت کی اور باہمی قبضہ کے بعد اقالہ کیا اور قبل قبضہ کے دونوں جدا ہو گئے تو اقالہ ٹوٹ جائے گا یہ مبسوط میں لکھا ہے۔

## باب چہارم: ماذون پر قرضہ چڑھ جانے اور مولیٰ کا ماذون میں بطور بیع یا تدبیر و اعتاق وغیرہ کے تصرف کرنے کے مسائل کے بیان میں

واضح ہو کہ قرضہ تین طرح ہے۔ ایک وہ قرضہ جو اس کی گردن سے بالاتفاق متعلق ہوتا ہے اور وہ استہلاک یعنی مال تلف کر دینے کی وجہ سے ہوتا ہے۔ دوسرا وہ قرضہ ہے جو بالاتفاق اس کی گردن سے متعلق نہیں ہوتا ہے اور وہ ہر قرضہ ہے جو ایسی چیز کے عوض واجب ہوا ہو جو تجارت کے معنی میں نہیں ہے جیسے کہ بلا اجازت مولیٰ نکاح کرنے کے وطی کرنے سے مہر واجب ہوا اور تیسرا وہ قرضہ ہے جس کے گردن سے متعلق ہونے اور نہ ہونے میں اختلاف ہے اور وہ ہر قرضہ ہے جو بسبب تجارت و اس کے امثال کے واجب ہوا ہو جیسے خرید وفروخت و اجارہ ۱ و استیجار ۱ و ضمان مغصوب ۱ ودیعت و امانت در حالیکہ اس سے منکر ہو جائے اور

جیسے استحقاق ثابت ہونے کے بعد خریدی ہوئی باندی سے وطی کرنے کی وجہ سے عقر واجب ہوا کیونکہ یہ بھی خرید کی جانب مستند ہے پس اسی کے ساتھ ملحق کر دیا گیا کذافی الترمذی یہ معدن میں ہے اور اگر زید نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی اور غلام نے خرید و فروخت شروع کی اور بعد چندے اس پر بہت سے قرضے ہو گئے اور قرض خواہ لوگ اس کو قاضی کے پاس لائے حالانکہ اس کا مولیٰ حاضر ہے اور مولیٰ سے اس کے فروخت کی درخواست کی پس اگر غلام کے قبضہ میں بالفعل مال موجود ہو کہ اس کے ادائے قرض کے واسطے کافی ہے تو اس کا قرضہ اس کی کمائی سے ادا کیا جائے گا اور غلام ان کے قرضے میں فروخت نہ کیا جائے گا اور اگر بالفعل اس کے پاس موجود نہیں ہے مگر اس کا مال غائب ہے کہ اس کی درآمد ۲ کی امید ہے یا اس کا کسی شخص پر ایسا قرضہ ہے جو فی الحال واجب الادا ہے اور اس کے نکل آنے کی امید ہے تو قاضی اس کے فروخت میں تعجیل نہ کرے گا بلکہ انتظار کرے گا کہ مال برآمد ہو یا قرضہ وصول ہو جائے اور اس انتظار کی کوئی مدت مقرر نہیں فرمائی۔

ہمارے مشائخ میں سے بعضوں نے فرمایا کہ اس کی مدت قاضی کی رائے پر ہے پس اگر کچھ مدت نہ گذری اور قاضی کی رائے میں انتظار کی میعاد گذر چکی تو غلام کو فروخت کر دے گا اور اگر اس کی رائے میں مدت نہیں گزری بلکہ انتظار کی گنجائش معلوم ہوئی تو فروخت نہ کرے گا اور فقیہ ابوبکر بلخی سے منقول ہے کہ وہ فرماتے تھے کہ انتظار کی مدت تین روز ہیں پس اگر تین روز گزرنے پر اس کا مال غائب کے برآمد ہونے یا قرضہ کے وصول ہونے کی امید ہو تو انتظار کرے، یہاں تک کہ مال برآمد ہو یا قرضہ وصول ہو اور اگر ایسا نہ ہو

---

۱ استیجار کرایہ پر لینا ضمان مغصوب یعنی کوئی چیز غصب کر کے تلف کی جس کا تاوان لازم آیا اور جب ودیعت سے منکر ہو تو ضامن ہو جاتا ہے۔ ۲ درآمد یعنی وصول ہونے کی امید ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 --- 30 --- Kitab al-Ma'zoon**

That is, if after three days pass there is no hope, then he (the judge) should sell him. Then if, according to both opinions, the waiting period has passed and the missing property has not been recovered and the debt has not been collected, the Qazi (judge) shall sell the indebted slave for their debt. This is all in the case where the master is present. If the master is absent, then until the master is present, the Qazi shall not sell this slave. Then, if upon the master's presence the Qazi has sold this slave, he will look at the price (saman). If all debts can be paid from the price, he will pay each creditor their full right. Then if anything remains, he will give it to the master. And if all debts cannot be paid from the price, he will pay each creditor from the price according to their proportional share. Then, whatever debt remains for each, there is no way to collect it from the slave until he becomes free. This is in 'Al-Zakhira'.

Furthermore, if the same master purchased this slave in whose presence the Qazi had sold that slave for the creditors, the creditors cannot hold him responsible for their remaining debts, whether small or large, even though the slave has come into the ownership of the one in whose ownership the debt became mandatory upon the slave. This is in 'Al-Mughni'. If some debts are currently payable, i.e., non-term debts, and some are term-bound (due later), the Qazi will sell the slave, pay the non-term creditors according to their share, and keep aside the portion for the term creditors to pay them when the term arrives. This all applies when all are manifest. If some are manifest and others are not, but the cause of liability has become manifest—for example, the slave dug a well in a path and there is a debt against it—then the Qazi will sell him and give the creditor from the price according to his debt. If the price is equal to the debt, i.e., both are equal, he will give the whole amount to him. Thereafter, if an animal falls into that well and dies, the owner of the animal will take from the creditor; thus, shares in the price will be allocated according to the value of the animal for the owner and according to the debt for the creditor. Thus it is in 'Al-Tatarkhaniya'. If some creditors requested the Qazi for his sale while other creditors are absent, and the Qazi sold him for those present, the sale is valid regarding the rights of all. Then the Qazi will give the present ones their share from the price and set aside the share of the absentees. If the slave, before being sold, said, "I owe such-and-such an amount to so-and-so who is absent," and the master confirmed or denied his statement, but the present creditors said that so-and-so has nothing against him, little or much, then the slave's statement will be affirmed in this matter.

Then if that absent person appears and confirms the slave's statement, he shall take his right. And if he denies it, then whatever amount the Qazi had set aside for him will also be distributed among the present ones proportionately. This is in 'Al-Mughni'.

If the slave made such an admission after being sold and the master confirmed his admission, their statements will not be affirmed regarding the rights of the creditors, and the entire price will be given to the known creditors. Then if that absent person appears and presents witnesses for his right, he shall take his share from whatever price the creditors have received. If the Qazi wished to take a guarantor (kafeel) from the present creditors for security until the absentee arrives, and the creditors refused, they shall not be compelled to do so. However, if they provided a guarantor willingly, it is permissible. And if the absentee appeared and provided witnesses that the slave had admitted his debt before the sale, that is also permissible. Then if the present creditors had provided a guarantor and the absentee's right is proven by the testimony of witnesses, he will have the choice to either take his share from the creditors or collect it from the guarantor; then the guarantor will take back that much amount from the creditors. This is in 'Al-Mabsut'. Furthermore, let it be clear that if the Qazi or his trustee sold the slave for the creditors, then the responsibility of the sale...

यानी तीन दिन बीतने पर उम्मीद न रहे तो बेच दे, फिर यदि दोनों कथनों के अनुसार प्रतीक्षा की अवधि बीत गई और अनुपस्थित धन बरामद न हुआ और ऋण वसूल न हुआ, तो काज़ी ऋणी दास को उनके ऋण के बदले बेच देगा। यह सब उस स्थिति में है जब मालिक उपस्थित हो और यदि मालिक अनुपस्थित हो, तो जब तक मालिक उपस्थित न हो जाए, काज़ी उस दास को नहीं बेचेगा। फिर यदि मालिक के उपस्थित होने पर काज़ी ने उस दास को बेचा, तो वह प्राप्त धन (कीमत) को देखेगा कि यदि उस धन से सभी ऋण चुकाए जा सकते हों, तो प्रत्येक ऋणदाता को उसका पूरा अधिकार (हिस्सा) चुका देगा, फिर यदि कुछ शेष रह जाए तो मालिक को दे देगा। और यदि उस धन से सभी ऋण न चुकाए जा सकते हों, तो प्रत्येक ऋणदाता को उसके हिस्से के अनुपात में उस धन में से भुगतान करेगा। फिर प्रत्येक का जो ऋण शेष रह गया है, उसे दास से वसूल करने का कोई रास्ता नहीं है जब तक कि वह स्वतंत्र न हो जाए। यह 'ज़खीरा' में है।

फिर यदि उसी मालिक ने इस दास को खरीद लिया जिसके समक्ष काज़ी ने ऋणदाताओं के लिए उस दास को बेचा था, तो ऋणदाता अपने शेष ऋण के लिए, चाहे वह कम हो या अधिक, उसे नहीं पकड़ सकते, यद्यपि वह दास उसी के स्वामित्व में आ गया जिसके स्वामित्व में दास पर ऋण अनिवार्य हुआ था। यह 'मुग़नी' में है। यदि कुछ ऋण वर्तमान में देय हों यानी गैर-मियादी हों और कुछ मियादी (निश्चित समय वाले) हों, तो काज़ी दास को बेचकर गैर-मियादी ऋणदाताओं को उनके हिस्से के अनुसार देकर, शेष मियादी ऋणदाताओं का हिस्सा सुरक्षित रखेगा ताकि नियत समय आने पर उन्हें भुगतान कर सके। और यह सब उस समय है जब सभी प्रकट हों। और यदि कुछ प्रकट हों और कुछ अप्रकट, लेकिन ऋण अनिवार्य होने का कारण प्रकट हो गया हो, उदाहरण के लिए दास ने रास्ते में कोई कुआँ खोदा और उस पर ऋण है, तो काज़ी उसे बेचकर ऋणदाता को प्राप्त मूल्य से उसके ऋण के अनुसार दे देगा, और यदि मूल्य ऋण के बराबर हो यानी दोनों बराबर हों, तो पूरा उसे दे देगा। फिर इसके बाद यदि उस कुएँ में कोई जानवर गिरकर मर गया, तो जानवर का मालिक ऋणदाता से (हर्जाना) लेगा, अतः जानवर के मूल्य के बराबर मालिक का और ऋण की राशि के बराबर ऋणदाता का मूल्य में हिस्सा लगाया जाएगा, ऐसा 'ततारखनिया' में है। यदि कुछ ऋणदाताओं ने काज़ी से उसकी बिक्री का अनुरोध किया जबकि अन्य ऋणदाता अनुपस्थित हैं, और काज़ी ने उपस्थितों के लिए उसे बेच दिया, तो सभी के हक में उसकी बिक्री जायज़ है, फिर उपस्थितों को काज़ी मूल्य में से उनके हिस्से के अनुसार दे देगा और अनुपस्थितों का हिस्सा सुरक्षित रखेगा। यदि दास ने बेचे जाने से

पहले यह कहा कि मुझ पर अमुक अनुपस्थित व्यक्ति का इतना धन (ऋण) है और मालिक ने उसके कथन की पुष्टि या खंडन किया, लेकिन उपस्थित ऋणदाताओं ने कहा कि अमुक व्यक्ति का उस पर थोड़ा या बहुत कुछ नहीं है, तो इस मामले में दास की पुष्टि की जाएगी। फिर यदि उस अनुपस्थित व्यक्ति ने उपस्थित होकर दास के कथन की पुष्टि की, तो वह अपना हक ले लेगा और यदि खंडन किया, तो काज़ी ने उसके हक में जितना सुरक्षित रखा था, वह भी उपस्थितों में आनुपातिक रूप से विभाजित कर देगा। यह 'मुग़नी' में है।

यदि दास ने बिकने के बाद ऐसा स्वीकार किया और मालिक ने उसकी स्वीकारोक्ति की पुष्टि की, तो ऋणदाताओं के अधिकार के संबंध में दोनों के कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी और सारा प्राप्त मूल्य ज्ञात ऋणदाताओं को दे दिया जाएगा। फिर यदि उस अनुपस्थित व्यक्ति ने उपस्थित होकर अपने अधिकार के गवाह पेश किए, तो ऋणदाताओं ने जितना मूल्य प्राप्त किया है, उनसे वह अपने हिस्से के बराबर ले लेगा। और यदि काज़ी ने चाहा कि अनुपस्थित व्यक्ति के आने तक सुरक्षा के लिए उपस्थित ऋणदाताओं से कोई ज़मानतदार (कफ़ील) ले और ऋणदाताओं ने इससे इनकार किया, तो उन लोगों को इस बात के लिए मजबूर नहीं किया जाएगा। लेकिन यदि उन्होंने अपनी इच्छा से ज़मानतदार दे दिया तो यह जायज़ है। और यदि अनुपस्थित व्यक्ति ने उपस्थित होकर गवाह दिए कि बिक्री से पहले दास ने मेरे ऋण को स्वीकार किया था, तो ऐसा भी जायज़ है। फिर यदि उपस्थित ऋणदाताओं ने ज़मानतदार दिया हो और उस अनुपस्थित व्यक्ति का अधिकार गवाहों की गवाही से साबित हो जाए, तो उसे अधिकार होगा कि वह चाहे तो ऋणदाताओं से अपना हिस्सा ले ले या ज़मानतदार से वसूल कर ले, फिर ज़मानतदार उतना ही धन ऋणदाताओं से वापस ले लेगा। यह 'मबसूत' में है। फिर यह स्पष्ट हो कि यदि काज़ी या उसके अमीन (विश्वस्त व्यक्ति) ने ऋणदाताओं के लिए दास को बेचा, तो बिक्री का उत्तरदायित्व...

یعنی تین روز کے گزرنے پر امید نہ ہو تو فروخت کر دے پھر اگر دونوں قولوں کے موافق انتظار کی مدت گزر گئی اور مال غائب برآمد نہ ہوا اور قرضہ وصول نہ ہوا تو قاضی غلام مقروض کو ان کے قرضہ میں فروخت کرے گا یہ سب اس صورت میں ہے کہ مولیٰ حاضر ہو اور اگر مولیٰ غائب ہو تو جب تک مولیٰ حاضر نہ ہو قاضی اس غلام کو فروخت نہ کرے گا پھر اگر مولیٰ کے حاضر ہونے پر قاضی نے اس غلام کو فروخت کیا تو ثمن لے کر دیکھے گا کہ اگر ثمن سے تمام قرضے ادا ہو سکتے ہوں تو ہر ایک قرض خواہ کو اس کا پورا حق ادا کر دے گا پھر اگر کچھ باقی رہا تو مولیٰ کو دے دے گا اور اگر ثمن میں سے تمام قرضے ادا نہ ہو سکتے ہوں تو ہر ایک قرض خواہ کو اس کے حصہ رسد ثمن میں سے ادا کرے گا پھر جو کچھ ہر ایک کا قرضہ رہ گیا اس کو غلام سے وصول کرنے کی کوئی راہ نہیں ہے تا وقتیکہ وہ آزاد نہ ہو جائے، یہ ذخیرہ میں ہے۔

پھر اگر اس غلام کو اسی مولیٰ نے خرید لیا جس کے مواجہہ میں قاضی نے قرض خواہوں کے واسطے وہ غلام فروخت کیا ہے تو قرض خواہ لوگ اپنے باقی قرضے کے واسطے خواہ قلیل ہو یا کثیر ہو اس کے دامنگیر نہیں ہو سکتے ہیں، اگرچہ وہ غلام اسی کی ملک میں آگیا، جس کی ملک میں اس غلام پر قرضہ واجب ہوا تھا یہ مغنی میں ہے۔ اگر بعض قرضے فی الحال واجب الادا ہوں یعنی غیر میعادی ہوں اور بعض میعادی ہوں تو قاضی غلام کو فروخت کر کے غیر میعادی قرض خواہوں کو ان کے حصہ کے موافق دے کر باقی میعادی قرض خواہ ہونے کا حصہ رکھ چھوڑے گا کہ بروقت میعاد آنے کے ان کو ادا کر دے گا اور یہ سب اس وقت ہے کہ سب ظاہر ہوں اور اگر بعض ظاہر اور بعض غیر ظاہر ہوں لیکن سبب وجوب ظاہر ہو گیا چنانچہ غلام نے راہ میں کوئی کنواں کھودا اور اس پر قرضہ ہے تو قاضی اس کو فروخت کر کے قرض خواہ کو ثمن سے اس

کے قرضہ کے موافق دے دے گا اور اگر ثمن مثل قرضہ کے ہو یعنی دونوں برابر ہوں تو پورا اس کو دے دے گا پھر اس کے بعد اگر اس کنویں میں کوئی جانور گر کر مر گیا تو جانور کا مالک قرض خواہ سے لے گا پس بقدر قیمت جانور کے مالک کا اور بقدر قرضہ کے قرض خواہ کا ثمن میں حصہ لگایا جائے گا ہکذا فی التاتارخانیہ میں ہے۔ اگر بعض قرض خواہوں نے قاضی سے اس کے فروخت کی درخواست کی حالانکہ دوسرے قرض خواہ غائب ہیں اور قاضی نے حاضرین کے واسطے اس کو فروخت کیا تو سب کے حق میں اس کی بیع جائز ہے پھر حاضرین کو قاضی ثمن میں سے بقدر ان کے حصہ کے دے دے گا اور غائبین کا حصہ رکھ چھوڑے گا۔ اگر غلام نے قبل فروخت کیے جانے کے یوں کہا کہ مجھ پر فلاں غائب کا اس قدر مال ہے اور مولیٰ نے اس کے قول کی تصدیق یا تکذیب کی مگر قرضخواہان حاضر نے کہا کہ فلاں شخص کا اس پر تھوڑا یا بہت کچھ نہیں ہے تو غلام کی اس بارہ میں تصدیق ہوگی پھر اگر فلاں غائب نے حاضر ہو کر غلام کے قول کے تصدیق کی تو اپنا حق لے لے گا اور اگر تکذیب کی تو جس قدر قاضی نے اس کے حق میں رکھ چھوڑا ہے وہ بھی حاضرین کو حصہ رسد تقسیم کر دے گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر غلام نے بعد فروخت ہونے کے ایسا اقرار کیا اور مولیٰ نے اس کے اقرار کی تصدیق کی تو قرض خواہوں کے حق میں دونوں کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی اور تمام ثمن قرضخواہان معروفین کو دے دیا جائے گا، پھر اگر فلاں غائب نے حاضر ہو کر اپنے حق کے گواہ پیش کیے تو جس قدر قرض خواہوں نے ثمن وصول کیا ہے ان سے بقدر اپنے حصہ کے لے لے گا اور اگر قاضی نے چاہا کہ قرض خواہان حاضر سے غائب کے آنے سے تک مضبوطی کے واسطے کوئی کفیل لے اور قرض خواہوں نے اس سے انکار کیا تو وہ لوگ اس امر پر مجبور نہ کئے جائیں گے لیکن اگر انہوں نے بخوشی خاطر کفیل دے دیا تو جائز ہے اور اگر غائب نے حاضر ہو کر گواہ دیے کہ قبل بیع کے غلام نے میرے قرضہ کا اقرار کیا ہے تو ایسا بھی جائز ہے پھر اگر قرض

خواہوں حاضر نے کفیل دیا ہو اور فلاں غائب کا حق بہ گواہی گواہان ثابت ہوا تو اس کو اختیار ہو گا کہ چاہے قرض خواہوں سے اپنا حصہ لے لے یا کفیل سے وصول کر لے پھر کفیل اسی قدر مال قرض خواہوں سے واپس لے لے گا یہ مبسوط میں ہے۔ پھر واضح ہو کہ اگر قاضی یا اس کے امین نے قرض خواہوں کے واسطے غلام کو فروخت کیا تو عہدہ بیع اس

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 31 | Kitab al-Ma’dhun**

...shall not be liable. If the buyer discovers a defect in the slave, he cannot return him to the Judge (Qazi) or his trustee (Amin). However, the Qazi shall appoint an executor (Wasi) to whom the buyer will return the slave. Similarly, if the Qazi or his Amin collected the price from the buyer and it was lost while in their possession, and then the slave was taken from the buyer's possession upon proof of a prior claim (Istihqaq).

**Reason for the Disagreement among Scholars regarding the aforementioned issue** ☆

The buyer cannot reclaim his price from the Qazi or his Amin, but rather only from the creditors. If the slave is subsequently manumitted, the creditors will recover their debt from him. This is clear. However, whether they can also recover what they paid as compensation is not mentioned in any book. Our scholars have disagreed, but the correct view is that they cannot claim this penalty from the slave. Sheikh-ul-Islam Khwaharzada mentioned in the commentary on 'Kitab al-Ma’dhun' that if a Qazi, at the request of creditors, orders his Amin to sell a debtor-slave: if he says, "I have appointed you as an Amin for the sale of this slave," the Amin will not be liable for the sale contract. If he simply says "for sale" without further elaboration, scholars differ, but the correct view is that the liability of the sale contract does not fall upon the Amin. This is stated in 'Az-Zakhirah'. Furthermore, in a case where a buyer returns the slave due to a defect to the executor appointed by the Qazi, the Qazi shall order him to sell the slave and disclose the defect. If he sells it and receives the price, the first buyer's debt will be settled first. Then, if the second price is less than the first, the creditors shall compensate the buyer for the deficit, and the Amin shall not be liable for this deficit. If the second price is higher, the buyer's right will be fulfilled, and the remainder will be given to the creditors. Even though the creditors' right to the slave was terminated after the sale, this is mentioned in 'Al-Mughni'.

If the slave returns to the Amin and dies in his possession before he can resell him, the Amin shall recover the price from the creditors and return it to the buyer. This is in 'Az-Zakhirah'. If the master took something from the slave’s earnings: if the slave was not in debt at the time but became so later, the master is not obligated to return what he took, even if the item still exists. If he consumed it, no liability attaches. However, if the slave was in debt at the time, the master must return what he took, provided the item still exists. If he consumed it, liability arises. This is in 'Al-Mughni'. If

a master took one thousand dirhams from him and spent them, while at that time he owed five hundred dirhams, and later his debt increased such that it encompassed the slave's value and all the master took, the master must pay the full thousand dirhams as compensation to be given to the creditors, and the slave will also be sold for the debt. If the slave’s debt did not increase further, the master would only be liable for half. If a licensed slave (Ma’dhun) incurs debt that covers all his possessed assets and his own value, and thereafter the master takes ten dirhams monthly from his earnings until a large sum is collected, all that the master collected shall be given [to the creditors]. This ruling is based on 'Istihsan' (juristic preference), because the master taking earnings in this manner benefits the creditor status, as the slave remains 'Ma’dhun' on the master's behalf upon receipt of earnings. Taking a monthly hundred dirhams from him is void, and liability is mandatory. If the item is fungible, like dirhams or dinars, he gives its equivalent. If it is a non-fungible valuable, does he pay the value on the day of possession or on the day of the Qazi's judgment? Both views exist, and the second is more correct because it became known today that he returned it to the master.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 31 | किताब अल-माज़ून**

...ज़िम्मे नहीं होगा यहाँ तक कि अगर खरीदार ने गुलाम में कोई दोष पाया तो वह काजी या उसके अमीन (अमानतदार) को वापस नहीं कर सकता है, लेकिन काजी एक वसी (प्रतिनिधि) नियुक्त करेगा जिसे खरीदार वापस कर देगा। इसी तरह अगर खरीदार से काजी या उसके अमीन ने कीमत वसूल की और वह उनके पास नष्ट हो गई, फिर वह गुलाम खरीदार के पास से हक साबित करके ले लिया गया।

**मज़कूरा (उपरोक्त) मसले में मशायख (विद्वानों) के मतभेद का कारण** ☆

तो खरीदार अपनी कीमत काजी या उसके अमीन से वापस नहीं ले सकता बल्कि केवल कर्जदारों से वापस लेगा। फिर अगर वह गुलाम उसके बाद आज़ाद हो गया तो कर्जदार उससे अपना कर्ज़ वसूल करेंगे और यह तो स्पष्ट है, मगर जो कुछ उन्होंने दंड स्वरूप भरा है वह भी वापस लेंगे या नहीं, तो इसका उल्लेख किसी पुस्तक में नहीं है। और हमारे विद्वानों ने मतभेद किया है और सही यह है कि वे यह जुर्माना गुलाम से नहीं ले सकते। और शेखुल इस्लाम ख्वाहरज़ादा ने 'शरह किताबुल माज़ून' में उल्लेख किया कि काजी ने अगर अपने अमीन को माज़ून (अनुमति प्राप्त) कर्जदार की बिक्री के लिए कर्जदारों के अनुरोध पर आदेश दिया, तो अगर इस प्रकार कहा कि "मैंने तुझे इस गुलाम की बिक्री के लिए अमीन नियुक्त किया", तो अमीन इस स्थिति में बिक्री का ज़िम्मेदार नहीं होगा यानी बिक्री का उत्तरदायित्व उस पर नहीं होगा। और अगर केवल बिक्री के लिए कहा और इससे अधिक कुछ न कहा, तो इसमें विद्वानों का मतभेद है और सही यह है कि बिक्री का उत्तरदायित्व अमीन के ज़िम्मे नहीं होगा, यह 'ज़खीरा' में है। फिर जिस स्थिति में खरीदार ने उस गुलाम को दोष के कारण काजी द्वारा नियुक्त वसी को वापस कर दिया, तो काजी उसे आदेश देगा कि वह इस गुलाम को बेच दे और इसका दोष प्रकट कर दे। फिर अगर उसने बेचा और कीमत वसूल की, तो पहले खरीदार का कर्ज़ अदा किया जाएगा, फिर देखा जाएगा कि अगर दूसरी कीमत पहली कीमत की तुलना में कम है, तो कमी की मात्रा के बराबर कर्जदार लोग खरीदार को हर्जाना देंगे और अमीन इस कमी का हर्जाना नहीं देगा। और अगर दूसरी कीमत अधिक हो तो खरीदार को उसका हक अदा करके शेष कर्जदारों को दे दिया जाएगा। यद्यपि बिक्री के बाद कर्जदारों का हक गुलाम से समाप्त हो गया था, यह 'मुगनी' में है।

अगर वह गुलाम अमीन के पास वापस आया और अमीन द्वारा बेचने से पहले अमीन के पास मर गया, तो अमीन उसकी कीमत कर्जदारों से वापस लेकर खरीदार को दे देगा, यह 'ज़खीरा' में है। अगर स्वामी ने गुलाम की कमाई में से कुछ ले लिया, फिर अगर लेते समय गुलाम कर्जदार नहीं था और बाद में कर्जदार हो गया, तो जो कुछ स्वामी ने लिया है उसका वापस करना स्वामी पर अनिवार्य नहीं है, चाहे वह चीज़ वैसी ही मौजूद हो। और अगर उसे नष्ट कर दिया हो तो हर्जाना अनिवार्य नहीं होता। और अगर उस समय गुलाम कर्जदार हो तो जो कुछ स्वामी ने लिया है उसका वापस करना स्वामी पर अनिवार्य है, बशर्ते वह वस्तु ज्यों की त्यों मौजूद हो। और अगर नष्ट कर दी हो तो हर्जाना देना होगा, यह 'मुगनी' में है। अगर स्वामी ने उससे एक हज़ार दिरहम लेकर नष्ट कर दिए और उस समय उस पर पाँच सौ दिरहम का कर्ज़ था, फिर उसके बाद उस पर इतना कर्ज़ हो गया कि गुलाम की कीमत और जो कुछ स्वामी ने लिया है सब उसमें समा गया, तो स्वामी पूरे एक हज़ार दिरहम हर्जाना अदा करेगा और वे कर्जदारों को दे दिए जाएंगे और गुलाम भी कर्ज़ में बेच दिया जाएगा। और अगर गुलाम पर अधिक कर्ज़ न हुआ हो तो स्वामी केवल आधे का उत्तरदायी होगा। और अगर माज़ून (अनुमति प्राप्त गुलाम) पर इतना कर्ज़ हो गया कि उसके पूरे कब्जे वाले माल और उसकी कीमत को घेर लिया है, फिर उसके बाद स्वामी ने उससे दस दिरहम मासिक आय ली यहाँ तक कि बहुत सारा माल वसूल किया, तो जो कुछ स्वामी ने वसूल किया वह सब उसे दिया जाएगा। और यह आदेश 'इस्तेहसान' (न्यायसंगत वरीयता) पर आधारित है, क्योंकि स्वामी के इस तरह आय लेने में कर्जदार होने का लाभ है, क्योंकि आय वसूल होने पर स्वामी की ओर से गुलाम 'माज़ून' बना रहेगा। और अगर उससे मासिक सौ दिरहम आय ली तो यह अवैध है और हर्जाना अनिवार्य है। फिर अगर वह वस्तु 'मिसली' (बदले में वैसी ही चीज़ मिलने वाली) हो जैसे दिरहम और दीनार, तो उसके समान देगा। और अगर कीमती चीज़ हो तो क्या वह कीमत देगा जो कब्जे के दिन थी या वह जो काजी के आदेश के दिन थी? दोनों मत हैं और दूसरा अधिक सही है क्योंकि आज पता चला कि स्वामी को वापस कर दिया।

---

کے ذمہ نہ ہوگا یہاں تک کہ اگر مشتری نے غلام میں عیب پایا تو قاضی یا اس کے امین کو واپس نہیں کر سکتا ہے لیکن قاضی ایک وصی مقرر کرے گا جس کو مشتری واپس کر دے گا اسی طرح اگر مشتری سے یا قاضی یا اس کے امین نے ثمن وصول کیا اور اس کے پاس ضائع ہو گیا پھر وہ غلام مشتری کے پاس سے استحقاق ثابت کر کے لے لیا گیا۔

**مسئلہ مذکورہ میں مشائخ کے اختلاف کی وجہ ☆**

تو مشتری اپنا ثمن قاضی یا اس کے امین سے واپس نہیں لے سکتا ہے بلکہ فقط قرض خواہوں سے واپس لے گا پھر اگر وہ غلام اس کے بعد آزاد ہو گیا تو قرض خواہ لوگ اس سے اپنا قرضہ وصول کریں گے اور یہ تو ظاہر ہے مگر جو کچھ انہوں نے ڈانڈ بھرا ہے وہ بھی واپس لیں گے یا نہیں تو اس کا ذکر کسی کتاب میں نہیں ہے اور ہمارے مشائخ نے اختلاف کیا ہے اور صحیح یہ ہے کہ یہ تاوان غلام سے نہیں لے سکتے ہیں اور شیخ الاسلام خواہر زادہ نے شرح کتاب الماذون میں ذکر کیا کہ قاضی نے اگر اپنے امین کو ماذون مدیوں کے فروخت کے واسطے بدرخواست قرضخواہان حکم کیا پس اگر یوں کہا کہ میں نے تجھے اس غلام کی فروخت کے واسطے امین مقرر کیا تو امین اس صورت میں بیع کا عہدہ دار نہ ہو گا یعنی بیع کا عہدہ اس کے ذمہ نہ ہوگا اور اگر فقط بیع کے واسطے کہا اس سے زیادہ کچھ نہ کہا تو اس میں مشائخ نے اختلاف کیا اور صحیح یہ ہے کہ عہد بیع امین کے ذمہ لاحق نہ ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے۔ پھر جس صورت میں کہ مشتری نے وہ غلام بسبب عیب کے قاضی کے مقرر کئے ہوئے وصی کو واپس کیا تو قاضی اس کو حکم کرے گا کہ یہ غلام فروخت کرے اور اس کا عیب ظاہر کر دے پس اگر اس نے فروخت کیا اور ثمن وصول کیا

تو پہلے مشتری کا قرضہ ادا کیا جائے گا پھر دیکھا جائے گا کہ اگر دوسرا ثمن بہ نسبت پہلے ثمن کے کم ہو تو بقدر کمی کے قرض خواہ لوگ مشتری کو تاوان دیں گے اور امین اس کمی کا تاوان نہ دے گا اور اگر دوسرا ثمن زیادہ ہو تو مشتری کو اس کا حق ادا کر کے باقی قرض خواہوں کو دے دیا جائے گا۔ اگرچہ بعد بیع کے قرض خواہوں کا حق غلام سے منقطع ہو گیا تھا یہ مغنی میں ہے۔

اگر وہ غلام امین کے پاس واپس آیا اور امین کے فروخت کرنے سے پہلے امین کے پاس مر گیا تو امین اس کا ثمن قرض خواہوں سے واپس لے کر مشتری کو دے دے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر مولیٰ نے غلام کی کمائی میں سے کچھ لے لیا پس اگر لینے کے وقت غلام قرض دار نہ تھا پھر اس کے بعد قرض دار ہو گیا تو جو کچھ مولیٰ نے لیا ہے اس کا واپس دینا مولیٰ پر لازم نہیں ہے۔ اگرچہ وہ چیز بعینہ قائم ہو اور اگر تلف کر دی ہو تو ضمان لازم نہیں آتی ہے اور اگر اس وقت غلام قرض دار ہو تو جو کچھ مولیٰ نے لیا ہے اس کا واپس دینا مولیٰ پر واجب ہے بشرطیکہ بعینہ قائم ہو اور اگر تلف کر دی ہو تو ضمان لازم آئے گی یہ مغنی میں ہے۔ اگر مولیٰ نے اس سے ہزار درہم لے کر تلف کر دیئے اور اس وقت اس پر پانچ سو درہم قرضہ ہے پھر اس کے بعد اس پر اس قدر قرضہ ہو گیا کہ غلام کی قیمت اور جو کچھ مولیٰ نے لیا ہے سب کو محیط ہو گیا تو مولیٰ پورے ہزار درہم تاوان ادا کرے اور وہ قرض خواہوں کو دے دے جائیں گے اور غلام بھی قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور اگر غلام پر زیادہ قرضہ نہ ہو گیا ہو تو مولیٰ فقط نصف کا ضامن ہوگا۔ اور اگر ماذون پر اس قدر قرضہ ہو گیا کہ اس کے تمام مال مقبوضہ اور اس کی گردن کی محیط ہے پھر اس کے بعد مولیٰ نے اسے دس درہم ماہواری ماحصل لیا یہاں تک کہ مال کثیر وصول کیا تو جو کچھ مولیٰ نے وصول کیا وہ سب اس کو دیا جائے گا اور یہ حکم استحسان ہے اس واسطے کہ مولیٰ کے اس طور پر ماحصل لینے میں قرض خواہ ہونے کی منفعت ہے اس لیے کہ ماحصل

وصول ہونے پر مولیٰ کی طرف سے غلام ماذون باقی رہے گا اور اگر اس سے ماہواری سو درہم ماحصل لیا تو باطل ہے اور ضمان لازمی پس اگر مثلی ہو یا درہم و دینار ہوں تو اس کے مثل دے اور اگر قیمتی ہو تو کیا وہ قیمت دے جو قبضہ کے روز تھی یا وہ قیمت جو حکم قاضی کے روز تھی اور دونوں وجہیں ہیں اور دوم اصح ہے کیونکہ آج معلوم ہوا کہ مولیٰ کو واپس کر دیا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Kitab al-Ma'dhun (The Book of the Authorized Slave)**

The master is obliged to return whatever excess he has taken from such slaves beyond what is normally taken, as stated in *Al-Mabsut*. Trade debt is attached^1 to every earning acquired before or after the debt, and to every gift (Hiba) or charity (Sadqa) received before or after the debt, as mentioned in *Al-Kafi*. If an authorized slave (Ma’dhun) acknowledged a debt of five hundred dirhams, then received a slave worth one thousand dirhams as a gift which the master took, and subsequently the slave incurred more debt equal to the value taken by the master, then that slave shall be taken from the master, sold, and the proceeds distributed among all creditors. If the master has already paid off the initial creditors, the slave will be handed over to him, but shall still be sold for the sake of other creditors. The master shall not have the right to litigate for the amount he paid to the first creditor. If the master did not pay the first creditor, but the creditor forgave the Ma’dhun after other debts had accumulated, the slave taken by the master shall be sold to settle the other debts. If the first creditor forgave the slave before other debts were incurred, the slave taken by the master remains with him. If he did not forgive until other debts were incurred, and then the first creditor claimed he had no debt against the Ma’dhun and that the Ma’dhun's acknowledgment was void, the master would still keep the slave in his possession, and other creditors would have no claim against the master. Conversely, if the first creditor has a valid debt and waives it, the other creditors have the right to take and sell the slave. If the master acknowledged the first creditor's debt as the Ma’dhun did, and then the first creditor claimed he is owed nothing and the acknowledgment is void, the other creditors have the right to take the slave from the master to be sold for their debts, as per *Al-Mabsut*.

Just as a Ma’dhun slave is sold for trade debts, he shall also be sold for matters pertaining to the nature^2 of trade. Imam-e-Azam (RH), Imam Abu Yusuf (RH), and Imam Muhammad (RH) stated that if a person permits his slave to trade, then any liability arising from trade debt, misappropriation (Ghasb), denied trusts (Wadi'at), or for hamstringing an animal, or due to Mudarabah (partnership), trade goods (Bada'at), or borrowed items (Ariyat) that were denied, or the price of a cloth burned, or a laborer's wages, or the dower (Mahr) of a female slave who was bought and then claimed by a rightful owner after the Ma’dhun had intercourse with her—all these will be incumbent upon him, and he shall be immediately seized and sold, as per *Al-Muhit*. Some scholars stated that the ruling regarding damages for hamstringing an

animal or burning cloth applies if the Ma’dhun first misappropriated (Ghasb) the item and then damaged it. Otherwise, if the damage occurred before he took possession, then according to Imam Abu Yusuf (RH), he should not be held accountable immediately, nor should he be sold^3 immediately. However, according to Imam Muhammad (RH), he shall be held accountable and sold immediately, as per *Al-Mughni*.

If a person permits his female slave to trade and she subsequently gives birth to a child, will the debt incurred by that slave also apply to her offspring?

**Footnotes:** 1. **Attached etc.:** Meaning the right to settle the debt becomes attached to all such earnings and proceeds, and all this property will be taken for the debt, as illustrated in the following case. 2. **Nature of trade:** For example, if it is customary among merchants to stand surety (Kafalat) for one another, then this surety is also considered part of the nature of trade, and he will be held liable for such surety. 3. **Sold etc.:** Rather, he will be held accountable upon becoming free in the future.

मालिक पर वह वाजिब होगा जो ऐसे गुलामों से लिया जाता है, उससे जिस कदर ज़्यादा लिया है वह सब वापस दे दे, यह 'मबसूत' में है। व्यापार का कर्ज़ हर उस कमाई से जो कर्ज़ से पहले या उसके बाद हासिल की गई है, और हर उस उपहार (हिबा) व दान (सदक़ा) से जो उसे कर्ज़ से पहले या बाद में प्राप्त हुआ है, संबंधित^1 होता है, यह 'काफ़ी' में है। अगर माज़ून (अनुमति प्राप्त) गुलाम ने पाँच सौ दिरहम कर्ज़ स्वीकार किया, फिर उसे एक हज़ार दिरहम मूल्य का एक गुलाम मिला और उसे मालिक ने ले लिया, फिर उसके बाद गुलाम पर इतना कर्ज़ हो गया जो उस मूल्य के बराबर है जो मालिक ने लिया है, तो मालिक से वह गुलाम लेकर और उसे बेचकर उसकी क़ीमत सभी लेनदारों में बाँट दी जाएगी। और अगर मालिक ने पहले लेनदारों का कर्ज़ चुका दिया तो गुलाम उसे सौंप दिया जाएगा, लेकिन दूसरे लेनदारों के लिए बेचा जाएगा। मालिक को यह अधिकार नहीं होगा कि उसने पहले लेनदार का जो कर्ज़ चुकाया है उसके लिए वह मुक़दमा (खसोमत) करे। और अगर मालिक ने पहले लेनदार का कर्ज़ नहीं चुकाया बल्कि लेनदार ने माज़ून को माफ़ कर दिया, जबकि गुलाम पर दूसरों का कर्ज़ चढ़ चुका था, तो वह गुलाम जो मालिक ने ले लिया है दूसरों के कर्ज़ के बदले बेचा जाएगा। और अगर पहले लेनदार ने गुलाम के दूसरों का ऋणी होने से पहले अपना कर्ज़ माफ़ कर दिया, तो जो गुलाम मालिक ने ले लिया है वह मालिक को ही दिया जाएगा। और अगर माफ़ नहीं किया यहाँ तक कि गुलाम दूसरों का ऋणी हो गया, फिर पहले लेनदार ने कहा कि मेरा माज़ून पर कोई कर्ज़ नहीं था और माज़ून ने मेरे लिए जो कुछ स्वीकार किया था वह सब बातिल (अमान्य) था, तब भी मालिक को उसका कब्ज़े वाला गुलाम दे दिया जाएगा और दूसरे लेनदारों को यह अधिकार नहीं होगा कि वे मालिक से उसके बारे में कुछ लें। इसके विपरीत यदि पहले लेनदार का कर्ज़ हो और वह माफ़ कर दे, तो लेनदारों को अधिकार होगा कि उसे लेकर बिकवा दें। और अगर मालिक ने पहले लेनदार के कर्ज़ को स्वीकार किया हो जैसा कि माज़ून गुलाम ने स्वीकार किया है, फिर पहले लेनदार ने कहा कि मेरा कुछ नहीं निकलता और मेरे लिए जो कुछ स्वीकार किया गया है वह सब बातिल है, तो दूसरे लेनदारों को अधिकार है कि वे वह गुलाम ले लें जो मालिक ने लिया है ताकि उसे उनके कर्ज़ के लिए बेचा जाए, यह 'मबसूत' में है।

माज़ून गुलाम जिस तरह व्यापार के कर्ज़ के लिए बेचा जाता है, उसी तरह जो चीज़ व्यापार की प्रकृति^2 से है उसके लिए भी बेचा जाएगा। इमाम-ए-आज़म रह. व इमाम अबू यूसुफ़ रह. और इमाम मुहम्मद रह. ने फ़रमाया कि अगर किसी व्यक्ति ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दे दी,

तो जो कुछ हक उस पर व्यापार के कर्ज़ का, या ग़बन का, या ऐसी अमानत (वदीअت) का जिससे उसने इनकार किया हो, या पशु के पैर की नसें काटने के कारण, या मुज़ारबत (साझेदारी) या बज़ाअत (व्यापारिक संपत्ति) या उधार (आरियत) की वजह से जिससे इनकार किया गया हो, या उस कपड़े की क़ीमत जिसे उसने जला दिया हो, या मज़दूर की मज़दूरी, या उस दासी का मेहर जिसे खरीदा गया और फिर उस पर किसी का अधिकार सिद्ध हो गया और माज़ून ने उससे संबंध (संभोग) किया हो, यह सब उस पर अनिवार्य होगा कि वह तत्काल पकड़ा जाकर बेचा जाए, यह 'मुहीत' में है। कुछ विद्वानों ने फ़रमाया कि पशु के पैर काटने या कपड़ा जलाने के हर्जाने का जो ज़िक्र किया गया है, यह उस स्थिति पर आधारित है जब माज़ून ने पहले पशु या कपड़ा छीन लिया (ग़सब किया) और फिर उसे नष्ट किया, अन्यथा यदि कब्ज़े से पहले ऐसा किया तो इमाम अबू यूसुफ़ रह. के अनुसार तत्काल जवाबदेही नहीं होनी चाहिए और न ही तत्काल बेचा^3 जाएगा। हाँ, इमाम मुहम्मद रह. के अनुसार तत्काल जवाबदेही होकर बेचा जाएगा, यह 'मुग़नी' में है।

अगर किसी व्यक्ति ने अपनी दासी को व्यापार की अनुमति दी, फिर उससे बच्चा पैदा हुआ, तो क्या उस दासी का कर्ज़ उसकी संतान पर भी लागू होगा?

**पाद-टिप्पणी:** 1. **संबंधित इत्यादि:** यानी इस पूरी कमाई और प्राप्तियों से कर्ज़ चुकाने का अधिकार जुड़ जाएगा और यह पूरी संपत्ति इस कर्ज़ में ली जाएगी, जैसा कि अगला मसला इसकी मिसाल है। 2. **व्यापार की प्रकृति:** उदाहरण के तौर पर व्यापारियों में यह रिवाज हो कि वे एक-दूसरे की ज़मानत (कफ़ालत) देते हों, तो यह ज़मानत भी व्यापार का हिस्सा मानी जाएगी, और वह ज़मानत के लिए भी पकड़ा जाएगा। 3. **बेचना इत्यादि:** बल्कि भविष्य में स्वतंत्र होने पर उससे जवाबदेही होगी।

---

مولیٰ پر واجب ہوگا جو ایسے غلاموں سے لیا جاتا ہے اس سے جس قدر زیادہ لیا ہے وہ سب واپس دے یہ مبسوط میں ہے۔ تجارت کا قرضہ ہر اس کمائی سے جو قرضہ سے پہلے یا اس کے بعد حاصل کی ہے اور ہر ہبہ و صدقہ سے جو اس کو قرضہ سے پہلے یا بعد حاصل ہوا ہے متعلق۸1 ہوتا ہے یہ کافی میں ہے۔ اگر غلام ماذون نے پانچ سو درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر اس کو ہزار درہم قیمت کا ایک غلام ملا اور اس کو مولیٰ نے لے لیا پھر اس کے بعد غلام پر اس قدر قرضہ ہو گیا کہ جو مولیٰ نے لے لیا ہے اس کی قیمت کو حاوی ہے تو مولیٰ سے وہ غلام لے کر فروخت کر کے اس کا ثمن سب قرضخواہوں کو تقسیم کر دیا جائے گا اور اگر مولیٰ نے پہلے قرض خواہوں کا قرضہ ادا کر دیا تو غلام اس کے سپرد کیا جائے گا مگر دوسرے قرض خواہوں کے واسطے فروخت کیا جائے گا اور مولیٰ کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ جس قدر اس نے پہلے قرض خواہ کا قرضہ ادا کیا ہے اس کے واسطے خصومت کرے اور اگر پہلے قرض خواہ کا قرضہ مولیٰ نے ادا نہ کیا ہو بلکہ اس نے ماذون کو معاف کر دیا ہو بعد ازاں کہ غلام پر دوسروں کا قرضہ چڑھ گیا ہے تو وہ غلام جو مولیٰ نے لے لیا ہے دوسروں کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور قرض خواہ اول نے غلام کو قبل دوسروں کا قرض دار ہونے کے اپنا قرضہ عفو کیا تو وہ غلام جو مولیٰ نے لے لیا ہے مولیٰ کو دیا جائے گا اور اگر معاف نہ کیا یہاں تک کہ غلام دوسروں کا قرض دار ہو گیا پھر قرض خواہ اول نے کہا کہ میرا ماذون پر کچھ قرضہ نہیں تھا اور ماذون نے جو کچھ میرے واسطے اقرار کیا وہ سب باطل تھا تو بھی مولیٰ کو اس کا غلام مقبوضہ دیا جائے گا اور دوسرے قرض خواہوں کو اختیار نہ ہوگا کہ مولیٰ سے اس کی بابت کچھ لیں۔ بخلاف اس کے اگر قرض خواہ اول کا قرضہ ہو اور وہ معاف کر دے تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا کہ اس کو لے کر

فروخت کرا دیں اور اگر مولیٰ نے قرض خواہ اول کے قرضہ کا اقرار کیا جیسا کہ غلام ماذون نے اقرار کیا ہے پھر قرض خواہ اول نے کہا کہ میرا کچھ نہیں آتا ہے اور میرے واسطے جو کچھ اقرار کیا ہے وہ سب باطل ہے تو دوسرے قرض خواہ ہونے کا اختیار ہے کہ جو غلام مولیٰ نے لیا ہے وہ لے لیں تا کہ ان کے قرضہ میں فروخت کیا جائے یہ مبسوط میں ہے۔ غلام ماذون جس طرح قرضہ تجارت کے واسطے فروخت کیا جاتا ہے اسی طرح جو چیز جنس^2 تجارت سے ہے اس کے واسطے بھی فروخت کیا جائے گا امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو تجارت کے واسطے اجازت دے دی تو جو کچھ حق اس پر قرضہ تجارت کا یا غصب کا یا ودیعت کا جس سے انکار کیا ہے یا چوپایہ کی کونچیں کاٹنے کی وجہ سے یا مضاربت یا بضاعت یا عاریت کی وجہ سے جس سے انکار کیا ہے یا کپڑے کی قیمت جس کو جلا دیا ہے یا مزدور کی مزدوری یا باندی کا مہر جس کو خریدا پھر اس پر استحقاق ثابت ہوا اور ماذون نے اس سے دلی کی ہے یہ سب اس پر لازم ہوگا کہ اس میں فی الحال ماخوذ ہو کر فروخت کیا جائے گا یہ محیط میں ہے۔ بعض مشائخ نے فرمایا کہ چوپایہ کی کونچیں کاٹنے یا کپڑا جلا دینے کی ضمان کا حکم جو کچھ ذکر کیا ہے یہ ایسی صورت پر محمول ہے کہ ماذون نے پہلے چوپایہ یا کپڑا غصب کر کے لے لیا پھر اس کی کونچیں کاٹ ڈالیں یا جلا دیا ورنہ اگر قبضہ سے پہلے کونچیں کاٹ ڈالیں یا کپڑا جلا دیا تو امام ابو یوسفؒ کے قول کے موافق فی الحال اس سے مواخذہ نہ ہونا چاہیے اور نہ فی الحال فروخت^3 کیا جائے ہاں امام محمدؒ کے قول کے موافق فی الحال مواخذہ ہو کر فروخت کیا جائے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنی باندی کو تجارت کی اجازت دی پھر اُس کے بچہ پیدا ہوا تو کیا اس باندی کا قرضہ اس کی اولاد پر بھی جاری ہوگا؟

**حواشی:** 1. **متعلق الخ:** یعنی اس تمام کمائی و حاصلات سے قرضہ ادا کرنے کا حق متعلق ہو جائے گا اور یہ کل مال اس قرضہ میں لیا جائے گا چنانچہ آئندہ مسئلہ اس کی مثال ہے۔ 2. **جنس تجارت:** مثلاً تاجروں میں دستور ہو کہ باہم کفالت کرتے ہوں تو یہ کفالت بھی جنس تجارت سے ہے پس وہ کفالت میں بھی ماخوذ ہوگا۔ 3. **فروخت الخ:** بلکہ آئندہ آزاد ہو جانے پر اس سے مواخذہ ہو گا۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) (33) Kitab-ul-Ma'zun**

If an authorized slave (*ma'zun*) borrowed an animal from someone to reach a specific destination but then took it elsewhere to the extent that he was held liable (*dhamin*) for the violation, he shall be sold to fulfill that liability; this is mentioned in *Az-Zakhira*. If he marries a woman and consummates the marriage, then if this marriage was with the master's (*mawla*) permission, he shall be sold for the dower debt (*dayn mahr*). Furthermore, for the validity of the sale by the judge (*qadi*), the permission of both the creditors and the master for the sale is a condition; this is in *Al-Mughni*. If Zaid authorized his female slave to trade and she incurred debt, then something was gifted or given as charity to her and she acquired some property from trade etc., then the creditors have more right to all that property than the master so that their debt can be paid; this is in *Al-Mabsut*. If a person authorized his female slave to trade and she then gave birth to a child, will the debt of the slave also apply to her offspring so that the offspring may be sold like the mother, or not? There are two scenarios: either she gave birth before incurring debt and then became a debtor, or she gave birth after becoming a debtor. If she gave birth after becoming a debtor, the debt shall also apply to her child such that the child will be sold along with her for the debt; however, if the master pays the ransom (*fidiya*) on behalf of both, this shall not be the case; this is in *Al-Mughni*.

If a debt-burdened authorized female slave gave birth, and after the birth, she incurred further debt from other creditors, then all the previous and subsequent creditors shall share in the value and price of the slave at the time of sale, but the price of her child specifically belongs to the first creditors. And if she had two children, one before the debt and the second after the debt, the debt shall only apply to the second child, not the first; as stated in *Al-Mabsut*. The debt of a slave does not pertain to the capital that the master gave him for trade, as opposed to the wealth from his earnings that is in his possession, even if the master says regarding it, "This is my wealth with you for trade"; this is in *Tatarkhaniya*. If a person authorized his slave for trade by giving him some wealth in front of witnesses, and he conducted trade and incurred debt, then died, and he possesses wealth but the master's specific property cannot be identified therein, then everything in his possession belongs to the creditors; the master shall receive nothing from it. However, if the master identifies something specifically from it, he shall take it and the creditors shall not have access to it. Similarly, if a specific item is known to have been bought with the

master's money or sold in exchange for the master's property, the same ruling applies; as stated in *Al-Mabsut*.

If a slave, during his lifetime and health after becoming a debtor, confessed, "This property in my possession belongs to my master which he gave me," and the giving of the property was proven and known before witnesses, but the witnesses cannot identify the specific property of the master, the slave's confession shall not be valid. However, if he made such a confession for a stranger, it is valid. And if the master presented his witnesses that this property is the same that I gave to the slave, or if the creditors made such an admission, then that property shall belong to the master; this is in *Al-Mughni*. If there is debt currently due from the slave and a deferred debt, and the master paid the current debt from his price, then the term for the deferred debt arrived, he (the master) shall be the guarantor for those creditors' debts, and whatever the first creditors have taken shall be surrendered to them. And if he was not sold for the first creditors, he shall be sold for the others. And if the current creditors requested the judge to sell the slave, he shall be sold, their share given to them, and the remainder given to the master until the term arrives. If the property is lost while with the master before the term arrives, the master shall not be liable, and the creditors with deferred debts shall share in what was possessed by the first creditors according to their portions. And if the master himself destroyed that property or gave it to his creditor for debt, he shall be liable to the deferred creditors. If it was not collected from the master but was lost, then the other creditors shall share in what was possessed by the first ones...

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) (33) किताब-उल-माज़ून**

यदि किसी माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत दास) ने किसी व्यक्ति से किसी निश्चित स्थान तक के लिए एक जानवर उधार लिया, फिर उसे दूसरी जगह ले गया, यहाँ तक कि वह उल्लंघन के कारण उत्तरदायी (ज़ामिन) ठहराया गया, तो उसकी भरपाई के लिए उसे बेच दिया जाएगा; यह 'ज़ख़ीरा' में उल्लेखित है। यदि उसने एक महिला से विवाह किया और उसके साथ वैवाहिक संबंध बनाए, तो यदि यह विवाह स्वामी (मौली) की अनुमति से हुआ हो, तो महर के ऋण के लिए उसे बेचा जाएगा। फिर क़ाज़ी द्वारा बिक्री की वैधता के लिए ऋणदाताओं और स्वामी की अनुमति शर्त है; यह 'मुग़नी' में है। यदि ज़ैद ने अपनी दासी को व्यापार की अनुमति दी और उस पर ऋण हो गया, फिर उसे कोई चीज़ उपहार या दान के रूप में दी गई और उसने व्यापार आदि से कुछ धन प्राप्त किया, तो उस पूरे धन पर स्वामी से अधिक उसके ऋणदाताओं का अधिकार होगा ताकि उनका ऋण चुकाया जा सके यह 'मब्सूत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने अपनी दासी को व्यापार की अनुमति दी और फिर उसे बच्चा पैदा हुआ, तो क्या दासी का ऋण उसकी संतान पर भी लागू होगा ताकि माँ की तरह संतान को भी बेचा जा सके या नहीं? इसके दो रूप हैं: या तो ऋण होने से पहले बच्चा पैदा हुआ और फिर वह ऋणी हुई, या ऋणी होने के बाद बच्चा पैदा हुआ। यदि ऋणी होने के बाद बच्चा पैदा हुआ हो, तो ऋण उसके बच्चे पर भी लागू होगा कि ऋण चुकाने के लिए माँ के साथ बच्चे को भी बेचा जाएगा; लेकिन यदि स्वामी दोनों की ओर से फ़िद्या (मुआवज़ा) दे दे, तो ऐसा नहीं होगा; यह 'मुग़नी' में है।

यदि ऋणी माज़ून दासी ने बच्चा जना और जन्म के बाद उस पर अन्य ऋणदाताओं का ऋण हो गया, तो सभी पहले और बाद के ऋणदाता बिक्री के समय उस दासी की कीमत और मूल्य में साझेदार होंगे, लेकिन उसके बच्चे का मूल्य विशेष रूप से पहले ऋणदाताओं को मिलेगा। और यदि उसके दो बच्चे हुए, एक ऋण से पहले और दूसरा ऋण के बाद, तो ऋण केवल दूसरे बच्चे पर लागू होगा, पहले पर नहीं; जैसा कि 'मब्सूत' में है। दास का ऋण उस धन से संबंधित नहीं होता जो स्वामी ने उसे व्यापार के लिए दिया है, इसके विपरीत उस धन के जो उसकी अपनी कमाई का उसके पास है, भले ही स्वामी कहे कि यह मेरा धन तुम्हारे पास व्यापार के लिए है; यह 'ततारख़ानिया' में है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने दास को गवाहों के सामने कुछ धन देकर व्यापार की अनुमति दी, उसने खरीद-बिक्री की और उस पर ऋण हो गया, फिर वह मर गया और उसके पास धन है लेकिन उसमें स्वामी का मूल धन स्पष्ट रूप से पहचाना नहीं जा सकता, तो जो कुछ उसके पास है वह सब ऋणदाताओं का है, स्वामी को उसमें कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन यदि स्वामी उसमें से कोई चीज़ विशेष रूप से पहचान ले,

तो वह उसे ले लेगा और ऋणदाता उसे नहीं पा सकेंगे। इसी प्रकार यदि कोई विशेष चीज़ ज्ञात हो जो उसने स्वामी के धन से खरीदी है या स्वामी के धन के बदले बेची है, तो भी यही नियम है; जैसा कि 'मब्सूत' में है।

यदि दास ने अपने जीवन और स्वास्थ्य के दौरान ऋणी होने के बाद स्वीकार किया कि यह मेरे अधिकार में मौजूद धन मेरे स्वामी का है जो उसने मुझे दिया था, और गवाहों के सामने धन देना सिद्ध और ज्ञात हुआ लेकिन गवाह स्वामी के मूल धन को स्पष्ट रूप से नहीं पहचानते, तो दास की स्वीकारोक्ति मान्य नहीं होगी। और यदि उसने किसी अजनबी के लिए ऐसी स्वीकारोक्ति की तो वह मान्य है। और यदि स्वामी ने अपने गवाह पेश किए कि यह वही धन है जो मैंने दास को दिया था, या ऋणदाताओं ने ऐसा स्वीकार कर लिया, तो वह धन स्वामी को मिलेगा; यह 'मुग़नी' में है। यदि दास पर तत्काल देय ऋण और सावधि (निश्चित समय वाला) ऋण हो, और स्वामी ने उसकी कीमत से तत्काल वाला ऋण चुका दिया, फिर अवधि आ गई, तो वह उन ऋणदाताओं के ऋण का उत्तरदायी होगा और पहले ऋणदाताओं ने जो कुछ लिया है वह उन्हीं के पास रहेगा। और यदि पहले ऋणदाताओं के लिए नहीं बेचा गया तो दूसरों के लिए बेचा जाएगा। और यदि तत्काल वाले ऋणदाताओं ने क़ाज़ी से दास को बेचने का अनुरोध किया, तो उसे बेचकर उन्हें उनका हिस्सा देने के बाद शेष स्वामी को दे दिया जाएगा जब तक कि अवधि न आ जाए। यदि अवधि आने से पहले स्वामी के पास वह धन नष्ट हो गया, तो स्वामी उत्तरदायी नहीं होगा, और सावधि ऋणदाता पहले ऋणदाताओं के अधिकार वाले धन में अपने हिस्से के अनुसार साझेदार हो जाएंगे। और यदि स्वामी ने वह धन स्वयं नष्ट कर दिया या अपने किसी ऋणदाता को ऋण में दे दिया, तो वह सावधि ऋणदाताओं के लिए उत्तरदायी होगा। यदि स्वामी से वसूल नहीं हुआ बल्कि डूब गया, तो दूसरे ऋणदाता पहले वालों के अधिकार वाले धन में साझेदार होंगे...

اگر ماذون نے کسی شخص سے کسی مقام معلوم تک کے واسطے ایک جانور مستعار لیا پھر اس کو دوسری جگہ لے گیا یہاں تک کہ مخالف ضامن قرار پایا تو اس کی ضمانت میں فروخت کیا جائے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر ایک عورت سے نکاح کر کے اس کے ساتھ دخول کیا پس اگر یہ نکاح با اجازت مولیٰ ہو تو دین مہر کے واسطے فروخت کیا جائے گا۔ پھر قاضی کے فروخت کرنے کی صحت کے واسطے قرض خواہوں اور مولیٰ کا بیع کا اجازت دینا شرط ہے یہ مغنی میں ہے۔ اگر زید نے اپنی باندی کو تجارت کی اجازت دی اور اس پر قرضہ چڑھ گیا پھر اس کو کوئی چیز ہبہ یا صدقہ دی گئی اور اس نے کچھ مال تجارت وغیرہ سے حاصل کیا تو اس سب مال کے حقدار مولیٰ سے زیادہ اس کے قرض خواہوں کا قرضہ ادا کیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنی باندی کو تجارت کی اجازت دی پھر اس کے بچہ پیدا ہوا تو کیا اس باندی کا قرضہ اس کی اولاد پر بھی ساری ہوگا تاکہ مثل ماں کے اولاد فروخت کی جائے یا نہیں ساری ہو گا پس اس کی دو صورتیں ہیں یا تو قبل قرضہ چڑھ جانے کے بچہ جنی ہے پھر قرضہ دار ہوئی یا بعد قرضہ دار ہونے کے بچہ جنی پس اگر قرضہ دار ہو کر بچہ جنی ہو تو قرضہ اس کے بچہ پر بھی ساری ہو گا کہ قرضہ میں اس کے ساتھ اس کا بچہ بھی فروخت کیا جائے گا لیکن اگر مولیٰ دونوں کی طرف سے فدیہ دے دے تو ایسا نہ ہو گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر ماذونہ باندی مقروضہ بچہ جنی پھر بعد ولادت کے اس پر دوسرے قرض خواہوں کا قرضہ ہو گیا تو سب اگلے و پچھلے قرض خواہ اس باندی کی مالیت و ثمن میں وقت فروخت کیے جانے کے مشترک ہوں گے مگر اس کے بچہ کا ثمن خاصہ پہلے قرض خواہوں کو ملے گا اور اگر اس کے دو بچے ہوئے ایک قرضہ سے پہلے اور دوسرا قرضہ کے بعد تو قرضہ صرف دوسرے بچہ پر

ساری ہوگا نہ اول پر کذا فی المبسوط۔ غلام کا قرضہ اس مال سے متعلق نہیں ہوتا ہے جو مولیٰ نے اس کو تجارت کے واسطے دیا ہے بخلاف اس مال کے جو اس کی کمائی کا اس کے پاس ہے اگر چہ مولیٰ کی نسبت کہہ دے کہ یہ میرا مال تیرے پاس تجارت کے واسطے ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو گواہوں کے سامنے کچھ مال دے کر تجارت کی اجازت دی اس نے خرید و فروخت کی اور اس پر قرضہ چڑھ گیا پھر وہ مر گیا اور اس کے پاس مال ہے مگر اس میں سے مال بعینہ نہیں پہچانا جاتا ہے تو جو کچھ اس کے پاس ہے سب قرض خواہوں کا ہے مولیٰ کو اس میں کچھ نہ ملے گا لیکن اگر مولیٰ اس میں سے کوئی شے بطور معین پہچان لے تو لے لے گا اس کو قرض خواہ نہ پائیں گے اسی طرح اگر خاص ایسی کوئی چیز معلوم ہو جو اس نے مال مولیٰ سے خریدی ہے یا اس کے عوض مال مولیٰ فروخت کیا ہے تو بھی یہی حکم ہے کذا فی المبسوط میں ہے۔

اگر غلام نے اپنی حیات و صحت میں بعد مقروض ہو جانے کے اقرار کیا یہ میرا مقبوضہ مال میرے مولیٰ کا ہے جو اس نے مجھے دیا تھا اور گواہوں کے سامنے مال دینا ثابت و معلوم ہوا مگر گواہ لوگ مولیٰ کا مال بعینہ نہیں پہچانتے ہیں تو غلام کا اقرار صحیح نہ ہو گا اور اگر کسی اجنبی کے واسطے ایسا اقرار کیا تو صحیح ہے اور اگر مولیٰ نے اپنے گواہ پیش کیے کہ یہ مال وہی ہے جو میں نے غلام کو دیا تھا یا قرض خواہوں نے ایسا اقرار کیا تو وہ مال مولیٰ کو ملے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر غلام پر فی الحال واجب الادا قرضہ اور میعادی قرضہ ہو اور مولیٰ نے اس کے ثمن سے فی الحال والا قرضہ ادا کیا پھر میعاد آگئی تو ان قرض خواہوں کے قرضہ کا ضامن ہو گا اور پہلے قرض خواہوں نے جو کچھ لیا ہے وہ انہی کے سپرد کیا جائے گا اور اگر پہلے قرض خواہوں کے واسطے فروخت نہ کیا تو دوسروں کے واسطے فروخت کرے گا اور اگر فی الحال والے قرض خواہوں نے قاضی سے غلام کی بیع کی درخواست کی تو فروخت کر کے ان کو ان کا حصہ

دے کر باقی مولیٰ کے پاس دے دے گا یہاں تک کہ میعاد آ جائے پس اگر میعاد آنے سے پہلے مولیٰ کے پاس تلف ہو گیا تو مولیٰ ضامن نہ ہو گا اور میعاد والے قرض خواہ پہلے قرض خواہوں کے مقبوضہ میں بقدر حصص شریک ہو جائیں گے اور اگر مولیٰ نے وہ مال خود تلف کر دیا یا اپنے قرض خواہ کو قرضہ میں دیا تو میعاد والے قرض خواہوں کے واسطے ضامن ہو گا۔ اگر مولیٰ سے وصول نہ ہوا بلکہ ڈوب گیا تو دوسرے قرض خواہ پہلے والوں کے مقبوضہ میں شریک ہو

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 --- 34 --- Kitab al-Mazoon (Book of the Authorized Slave)**

...they will go, then both will together take back from that debtor whom the master (Mawla) paid; this is recorded in *Tatarkhaniya*.

If the judge did not sell the slave on behalf of the creditor, but instead the master sold him for the immediate creditors with their consent, the sale is valid. Then, from this price (*thaman*), he will give half to the immediate creditors, and half the price will be handed over to the master. Later, when the time comes for the creditors with deferred terms, they can take half the value (*qimat*) from the master; there is no provision for them to take the half price (*thaman*). Furthermore, if half the value was not recovered from the master and was lost, then those creditors who received half the price cannot be held liable by these creditors. If the master sold the slave without the judge's order and without the creditors' consent, the sale is void. However, if they subsequently gave permission, or the master paid their debt, or the price was sufficient to cover the debt and the master gave it to them, the sale becomes effective; this is mentioned in *Al-Mabsut*. If the master, without the consent of the creditors, sold his indebted authorized slave (*Ma'dhun*) and handed him over to the buyer, and then the creditors appeared and demanded the slave due to their debt, seeking to cancel (*faskh*) the sale while both the seller and buyer are present, the creditors have the right to cancel the sale. Our scholars stated that this ruling applies when the creditors are unable to recover their debt. If the price is recovered and the debt is fully paid from it, they will not have the right to cancel the sale. If one of the two contracting parties—the seller or the buyer—is absent (e.g., the buyer is absent and the seller is present with the slave), then by consensus, the creditors do not have the right to litigate with the seller or cancel the sale. If only the buyer with the slave is present, Imam Abu Hanifa (RA) and Imam Muhammad (RA) stated that they cannot litigate with the buyer; this is found in *Al-Mughni*.

**In the mentioned case, if some creditors chose to take a guarantee of the value (*daman qimat*) and others preferred to take the actual price (*thaman*), they have this choice.** ☆

If the creditors did not gain control over the buyer and the authorized slave, or only gained control over the seller and sought a guarantee for the slave's value from him, they have that choice. Once they have taken the guarantee from the seller (the master), each creditor will be considered a partner in that value according to their full

debt and they shall divide it proportionately. The sale of the slave will become valid, and the price will be given to the master. The creditors will have no further recourse to recover anything from that slave until he becomes free. Likewise, if the slave were sold specifically for their debt, the ruling would be the same. If they authorized the sale, the price would belong to them, and the seller would be absolved from the guarantee of the value. If the price was destroyed while in the seller's possession before reaching the creditors, the loss falls on the creditors, and the seller remains absolved. Once the slave becomes free, every creditor can seize him for their full debt. If, after the price was destroyed while with the seller, the creditors granted permission for the sale, the permission is valid, and the loss remains with the creditors; this is mentioned in *Zahir al-Riwayah*. If some creditors chose to take the guarantee of the value and others preferred the actual price, they are entitled to this choice. The benefit of this is, for instance, that the market value (*qimat*) may be higher than the contracted price (*thaman*). Those who chose the value will receive their share based on that value, while those who chose the price will receive theirs based on the price.

For example, if there are four creditors and one preferred the guarantee of the value, he will receive one-fourth of the value. The remaining three who preferred the price will receive three-fourths of the price, and the final one-fourth of the price goes to the master. The sale of the entire slave will become effective. This ruling is contrary to the case where, after being sold once, he would not return to the buyer's possession until he is free.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 --- 34 --- किताब अल-माज़ून**

...जाएंगे, फिर दोनों मिलकर उस कर्जदार से वापस लेंगे जिसे मौला ने अदा किया है; यह तातारखानिया में है।

यदि काज़ी ने लेनदार के लिए गुलाम नहीं बेचा, बल्कि मौला ने वर्तमान लेनदारों के लिए उनकी सहमति से उसे बेचा, तो बिक्री (बैअ) जायज़ है। फिर उस बिक्री मूल्य (थमन) में से आधी थमन वर्तमान लेनदारों को देगा, और आधी थमन मौला के सुपुर्द की जाएगी। फिर जब मियाद (निश्चित अवधि) वालों का समय आएगा, तो वे लोग मौला से आधी कीमत ले सकते हैं; आधी थमन लेने का कोई रास्ता नहीं है। और यदि मौला से आधी कीमत वसूल नहीं हुई और डूब गई, तो जिन लेनदारों ने आधी थमन वसूल की है, उनसे ये लेनदार कुछ नहीं ले सकते। और यदि मौला ने काज़ी के आदेश और लेनदारों की सहमति के बिना उसे बेचा हो, तो बिक्री बातिल (अमान्य) है। यदि उन लोगों ने अनुमति दे दी, या मौला ने उनका कर्ज चुका दिया, या थमन कर्ज अदायगी के लिए पर्याप्त थी और मौला ने उन्हें दे दी, तो बिक्री प्रभावी (नाफ़िज़) हो जाएगी; यह अल-मबसूत में है। यदि मौला ने लेनदारों की सहमति के बिना अपने कर्जदार अधिकृत गुलाम (माज़ून) को बेचकर खरीदार के सुपुर्द कर दिया, फिर लेनदारों ने उपस्थित होकर अपने कर्ज के कारण गुलाम की मांग की और बिक्री रद्द (फ़स्ख़) करना चाहा, जबकि विक्रेता और खरीदार दोनों मौजूद हैं, तो लेनदारों को बिक्री रद्द करने का अधिकार है। हमारे उलेमा ने कहा कि यह नियम तब है जब लेनदारों को अपना कर्ज वसूल न हो रहा हो। यदि थमन वसूल हो जाए और उससे पूरा कर्ज अदा हो जाए, तो बिक्री रद्द करने का अधिकार नहीं होगा। यदि दोनों पक्षों (विक्रेता और खरीदार) में से कोई एक अनुपस्थित हो—जैसे खरीदार अनुपस्थित हो और विक्रेता गुलाम के साथ उपस्थित हो—तो सर्वसम्मति से लेनदारों को विक्रेता से झगड़ने या रद्द करने का अधिकार नहीं है। और यदि केवल खरीदार गुलाम के साथ मौजूद हो, तो इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) और इमाम मोहम्मद (रह.) ने कहा कि वे खरीदार के साथ विवाद नहीं कर सकते; यह अल-मुग़नी में है।

**उपर्युक्त स्थिति में यदि कुछ लेनदारों ने मूल्य की ज़मानत (ज़मान क़ीमत) लेना चुना और कुछ ने थमन (बिक्री मूल्य) लेना पसंद किया, तो उन्हें यह अधिकार प्राप्त है** ☆

यदि लेनदारों ने खरीदार और अधिकृत गुलाम पर अधिकार नहीं पाया, या केवल विक्रेता पर अधिकार पाया और उससे गुलाम की कीमत की ज़मानत लेनी चाही, तो उन्हें ऐसा अधिकार है। फिर

जब उन्होंने विक्रेता यानी मौला से ज़मानत ले ली, तो प्रत्येक लेनदार को उसके पूरे कर्ज के हिसाब से उस कीमत में भागीदार माना जाएगा और वे आपस में हिस्से के अनुसार बांट लेंगे। गुलाम की बिक्री जायज़ हो जाएगी और थमन मौला को दे दी जाएगी। और लेनदारों को उस गुलाम से कुछ वसूल करने का कोई रास्ता नहीं होगा जब तक कि वह आज़ाद न हो जाए। यदि गुलाम उनके कर्ज में बेचा जाता तो भी यही नियम होता। और यदि उन्होंने बिक्री की अनुमति दे दी, तो थमन उनकी हो जाएगी और विक्रेता कीमत की ज़मानत से मुक्त हो जाएगा। फिर यदि लेनदारों को मिलने से पहले थमन विक्रेता के पास नष्ट हो गई, तो लेनदारों की संपत्ति चली गई और विक्रेता ज़मानत से मुक्त रहा। फिर जब गुलाम आज़ाद हो जाए, तो प्रत्येक लेनदार अपने पूरे कर्ज के लिए उसे पकड़ सकता है। यदि विक्रेता के पास थमन नष्ट होने के बाद लेनदारों ने बिक्री की अनुमति दी, तो अनुमति सही है और यह लेनदारों की संपत्ति का नुकसान है; ज़ाहिर अल-रिवाया में ऐसा ही उल्लेख है। और यदि कुछ लेनदारों ने कीमत की ज़मानत लेना चुना और कुछ ने थमन लेना पसंद किया, तो उन्हें यह अधिकार प्राप्त है। ऐसा करने का लाभ यह है कि उदाहरण के लिए बाजार मूल्य (क़ीमत), बिक्री मूल्य (थमन) के मुकाबले अधिक हो सकता है। अतः जिन्होंने कीमत लेना चुना है, उन्हें कीमत के अनुसार उनका हिस्सा मिलेगा, और जिन्होंने थमन चुना है, उन्हें थमन के हिसाब से हिस्सा मिलेगा।

उदाहरण के तौर पर यदि चार लेनदार हों और एक ने कीमत की ज़मानत पसंद की, तो उसे एक चौथाई कीमत मिलेगी। बाकी तीन जिन्होंने थमन लेना पसंद किया है, उन्हें तीन चौथाई थमन मिलेगी, और शेष एक चौथाई थमन मौला को मिलेगी। पूरे गुलाम की बिक्री प्रभावी हो जाएगी। यह नियम ऐसी स्थिति के विपरीत है; यही नियम था कि एक बार बिकने के बाद वह दोबारा खरीदार के पास स्वयं नहीं होगा जब तक कि वह आज़ाद न हो जाए।

---

جائیں گے پھر دونوں مل کر اس قرضہ دار سے جس کو مولیٰ نے ادا کیا ہے واپس لیں گے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر قاضی نے قرض خواہ کے واسطے غلام نہیں فروخت کیا بلکہ مولیٰ نے فی الحال والے قرض خواہوں کے واسطے ان کی رضامندی سے فروخت کیا تو بیع جائز ہے پھر اس شمن میں سے نصف ثمن فی الحال والے قرض خواہوں کو دے گا اور نصف ثمن مولیٰ کے سپرد کیا جائے گا پھر جب میعاد والوں کا وقت آئے گا تو وہ لوگ مولیٰ سے نصف قیمت لے سکتے ہیں نصف شمن لینے کی کوئی راہ نہیں ہے اور اگر نصف قیمت مولیٰ سے وصول نہ ہوئی ڈوب گئی تو جن قرض خواہوں نے نصف ثمن وصول پایا ہے ان سے یہ قرض خواہ کچھ نہیں لے سکتے ہیں اور اگر مولیٰ نے اس کو بدون حکم قاضی و بدون رضا ئے قرض خواہاں فروخت کیا ہو تو بیع باطل ہے پس اگر ان لوگوں نے اجازت دے دی یا مولیٰ نے ان کا قرضہ دے دیا یا شمن ادائے دین کے لیے کافی تھا وہ مولیٰ نے ان کو دے دیا تو بیع نافذ ہو جائے گی یہ مبسوط میں ہے۔ اگر مولیٰ نے بدون رضامندی قرض خواہوں کے اپنے غلام ماذون قرض دار کو فروخت کر کے مشتری کے سپرد کر دیا پھر قرض خواہوں نے حاضر ہو کر اپنے قرضہ کی وجہ سے غلام کا مطالبہ کر کے بیع کو فسخ کرنا چاہا حالانکہ بائع و مشتری دونوں حاضر ہیں تو قرض خواہوں کو فسخ بیع کا اختیار ہے اور ہمارے مشایخ نے فرمایا کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ قرض خواہوں کو اپنا قرضہ وصول نہ ہوتا ہو اور اگر ثمن وصول ہوتا ہو اور اس سے قرضہ پورا ادا ہوتا ہو تو فسخ بیع کا اختیار نہ ہو گا پس اگر دونوں عاقدین بائع و مشتری میں سے کوئی غائب ہو پس اگر مشتری غائب ہو اور بائع مع غلام کے حاضر ہو تو بالاجماع قرض خواہوں کو بائع سے مخاصمہ کرنے اور فسخ کرنے کا اختیار نہیں ہے اور

اگر فقط مشتری مع غلام موجود ہو تو امام ابوحنیفہؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ مشتری کے ساتھ خصومت نہیں کر سکتے ہیں یہ مغنی میں ہے۔

**مسئلہ مذکورہ کی صورت میں اگر بعض قرض خواہان نے ضمان قیمت لینا اختیار کیا اور بعضوں نے شمن لینا پسند کیا تو اُن کو یہ اختیار حاصل ہے ☆**

اگر قرض خواہوں نے مشتری و غلام ماذون پر قابو نہ پایا یا فقط بائع پر قابو پایا اور اس سے غلام کی قیمت کی ضمان لینی چاہی تو ان کو ایسا اختیار ہے پھر جب بائع سے یعنی مولیٰ سے انہوں نے ضمان لے لی تو ہر ایک قرض خواہ اپنے پورے قرضہ کے حساب سے اس قیمت میں شریک قرار دیا جائے گا اور باہم موافق حصہ رسید کے تقسیم کرلیں گے اور غلام کی بیع جائز ہو جائے گی اور شمن مولیٰ کے دے دیا جائے گا اور قرض خواہوں کو پھر اس غلام سے کچھ وصول کرنے کے راہ نہ ہوگی جب تک کہ آزاد نہ ہو جائے چنانچہ اگر غلام ان کے قرضہ میں فروخت کیا جاتا تو بھی یہی حکم تھا اور اگر انہوں نے بیع کی اجازت دے دی تو شمن ان کا ہو جائے گا اور بائع قیمت سے بری ہو جائے گا پھر اگر قرض خواہوں کو وصول ہونے سے پہلے بائع کے پاس تلف ہو گیا تو قرض خواہوں کا مال گیا اور بائع ضمان قیمت سے بری رہا پھر جب غلام آزاد ہو جائے تو ہر قرض خواہ اپنے تمام قرضہ کے واسطے اس کا دستگیر ہو سکتا ہے اور اگر بائع کے پاس شمن تلف ہو جانے کے بعد قرض خواہوں نے بیع کی اجازت دے دی تو اجازت صحیح ہے اور یہ قرض خواہوں کا مال گیا ایسا ہی ظاہر الروایہ میں مذکور ہے اور اگر بعض قرض خواہان نے ضمان قیمت لینا اختیار کیا اور بعضوں نے شمن لینا پسند کیا تو ان کو یہ اختیار حاصل ہے اور ایسا کرنے کا فائدہ یہ ہے کہ مثلاً قیمت اس کی بہ نسبت شمن کے زیادہ ہو پس جنھوں نے قیمت لینی اختیار کی ہے ان کو باعتبار قیمت کے ان کا حصہ ملے گا اور جنھوں نے شمن اختیار کیا ہے ان کو شمن کے حساب سے حصہ ملے گا۔

چنانچہ اگر چار قرض خواہ ہوں اور ایک نے ضمان قیمت پسند کی تو اس کو چوتھائی قیمت ملے گی اور باقیوں کو جنھوں نے شمن لینا پسند کیا ہے ان کو تین چوتھائی شمن ملے گا اور باقی چوتھائی شمن مولیٰ کو ملے گا اور پورے غلام کی بیع نافذ ہو جائے گی اور یہ حکم بخلاف ایسی صورت کے یہی حکم تھا کہ ایک بار فروخت ہونے کے بعد وہ دوبارہ مشتری کے پاس خود نہ ہوگا جب تک آزاد نہ ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (Page 35) Kitab al-Ma'dhun (The Book of Authorized Slaves)**

The rule is that the seller (Ba'i) and the buyer (Mushtari) must appear with the slave who is in the buyer's possession. If some creditors permit the sale and others nullify it, the ruling of nullification shall prevail, and the sale of any part of the slave shall not be valid (as stated in *Al-Muhit*). If creditors find the seller and buyer but not the slave, they have the choice to claim the slave's value as indemnity (Ta'wan) from either the seller or the buyer. If the indemnity is taken from the buyer, the buyer shall recover their purchase price from the seller. If the indemnity is taken from the seller (the master), the sale between the buyer and seller shall be considered valid. It should be clear that once the creditors choose to take indemnity from one person, the other is permanently released from that obligation (as stated in *Al-Mughni*).

If the creditors receive indemnity from the seller or buyer and the slave later appears, and the creditors wish to return the money and take the slave, the situation will be examined: Did they receive the indemnity according to their own claim or according to the guarantor's (Zamin) assertion? If they received the claimed amount through evidence or the defendant's refusal to take an oath (Nukul), they cannot take the slave. However, if they received the amount according to the guarantor's valuation (e.g., the guarantor claimed a lower value under oath), they may take the slave. Furthermore, if creditors took the price from the master and the slave later appeared, and the buyer returned the slave to the seller/master due to a defect by court order, can the master return the slave to the creditors? There are two scenarios: If the master was unaware of the defect at the time of sale and the defect is such that it could not have occurred subsequently, the master may return the slave to the creditors based on witness testimony or the seller's refusal to swear an oath.

If the slave was returned due to the seller's admission of the defect, the seller cannot return him to the creditors unless witnesses prove the defect existed before the purchase, or the creditors refuse to take an oath. Secondly, if the seller was aware of the defect at the time of sale, and the judge (Qadhi) decreed the price of a defective slave, the seller has the right to return the slave to the creditors. If the judge decreed the price of a sound slave, the seller still has the right of return, provided the defect is inherently pre-existing or proven via judicial evidence. In essence, whether creditors took indemnity for a defective slave or a sound one, the stated rulings shall apply accordingly.

**Footnotes:** 1. Meaning, to fulfill the other obligation. 2. The guarantor's claim, i.e., the amount specified by the guarantor.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (पृष्ठ 35) किताब अल-माज़ून**

नियम यह है कि विक्रेता (बाइ) और क्रेता (मुश्तरी) उस दास (ग़ुलाम) के साथ उपस्थित हों जो क्रेता के कब्ज़े में है। यदि कुछ लेनदारों (क़र्ज़-ख़्वाहों) ने बिक्री की अनुमति दी और कुछ ने इसे रद्द (बातिल) कर दिया, तो रद्द करने के आदेश को प्राथमिकता दी जाएगी और दास के किसी भी हिस्से की बिक्री मान्य नहीं होगी (जैसा कि 'अल-मुहीत' में वर्णित है)। यदि लेनदारों की पहुँच विक्रेता और क्रेता तक हो जाए पर दास न मिले, तो उन्हें यह अधिकार है कि वे विक्रेता या क्रेता में से जिससे चाहें दास की कीमत हर्जाने के रूप में ले लें। यदि क्रेता से कीमत ली गई, तो वह अपनी भुगतान की गई राशि विक्रेता से वापस लेगा। यदि विक्रेता (स्वामी) से क्षतिपूर्ति ली गई, तो विक्रेता और क्रेता के बीच बिक्री मान्य मानी जाएगी। यह स्पष्ट रहे कि लेनदारों ने जिस व्यक्ति से हर्जाना लेना चुना, दूसरा व्यक्ति सदैव के लिए उस उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाएगा (जैसा कि 'अल-मुग़नी' में है)।

यदि लेनदारों ने विक्रेता या क्रेता से हर्जाना ले लिया और फिर दास मिल गया, और अब वे चाहते हैं कि राशि लौटाकर दास को ले लें, तो यह देखा जाएगा कि राशि उनके अपने दावे के अनुसार मिली है या ज़ामिन (गारंटर) के बयान के अनुसार। यदि उन्होंने साक्ष्यों या ज़ामिन के शपथ से इनकार के आधार पर अपनी इच्छित कीमत ली है, तो वे दास वापस नहीं ले सकते। परंतु यदि उन्होंने ज़ामिन द्वारा बताई गई कीमत के अनुसार राशि ली है, तो वे दास वापस ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि लेनदारों ने स्वामी से राशि प्राप्त की और फिर दास प्रकट हुआ, और क्रेता ने न्यायालय के आदेश से दोष (ऐब) के कारण दास लौटा दिया, तो क्या स्वामी वह दास लेनदारों को लौटा सकता है? इसकी दो स्थितियाँ हैं: यदि स्वामी बिक्री के समय दोष से अनभिज्ञ था और दोष ऐसा था जो बाद में उत्पन्न नहीं हो सकता था, तो साक्ष्यों या स्वीकृति के आधार पर वह दास लेनदारों को लौटा सकता है।

यदि दास विक्रेता द्वारा दोष स्वीकार करने के कारण वापस हुआ हो, तो वह इसे लेनदारों को नहीं लौटा सकता, जब तक कि वह साक्ष्य न दे दे कि दोष पहले से था या लेनदार शपथ लेने से इनकार न कर दें। दूसरी स्थिति यह है कि विक्रेता को दोष का ज्ञान था। यदि न्यायाधीश ने दोषपूर्ण दास की कीमत का आदेश दिया, तो उसे वापसी का अधिकार है, और यदि स्वस्थ दास की कीमत का आदेश दिया तब भी वापसी का अधिकार है, बशर्ते दोष पुराना हो या न्यायिक प्रमाणों से सिद्ध हो। संक्षेप में, यदि लेनदारों ने स्वामी से दोषपूर्ण दास की कीमत ली या इनकार करके पूरे दास की कीमत ली, तो इन सभी स्थितियों में बताए गए नियम लागू होंगे।

---

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ۸ (صفحہ ۳۵) کتاب الماذون**

مسئلہ یہ ہے کہ بائع (فروخت کنندہ) اور مشتری (خریدار) اس غلام کے ساتھ حاضر ہوں جو مشتری کے قبضے میں ہے۔ اگر کچھ قرض خواہوں نے بیع (فروخت) کی اجازت دی اور کچھ نے اسے باطل قرار دیا، تو باطل کرنے کے حکم کو ترجیح دی جائے گی اور غلام کے کسی بھی حصے کی بیع جائز نہیں ہوگی (جیسا کہ 'المحیط' میں ہے)۔ اگر قرض خواہوں کی رسائی بائع اور مشتری تک ہو جائے لیکن غلام نہ ملے، تو انہیں اختیار ہے کہ بائع یا مشتری میں سے جس سے چاہیں غلام کی قیمت بطور ہرجانہ (تاوان) لے لیں۔ اگر خریدار سے قیمت لی گئی تو وہ اپنی ادا کردہ رقم بائع سے واپس لے گا۔ اگر بائع (آقا) سے ضمانت لی گئی تو بائع اور خریدار کے درمیان بیع جائز مانی جائے گی۔ یاد رہے کہ قرض خواہوں نے جس سے بھی تاوان لینے کا انتخاب کیا، دوسرا شخص ہمیشہ کے لیے اس ذمہ داری سے بری ہو جائے گا (جیسا کہ 'المغنی' میں درج ہے)۔

اگر قرض خواہوں نے بائع یا مشتری سے رقم لے لی اور پھر غلام مل گیا، اور اب وہ چاہتے ہیں کہ رقم واپس کر کے غلام لے لیں، تو دیکھا جائے گا کہ رقم ان کے اپنے دعویٰ کے مطابق ملی ہے یا ضامن کے بیان کے مطابق۔ اگر انہوں نے ثبوتوں یا ضامن کے انکارِ قسم (نکول) کی بنیاد پر اپنی مرضی کی قیمت لی ہے، تو وہ اب غلام واپس نہیں لے سکتے۔ لیکن اگر انہوں نے ضامن کے بیان کردہ قیمت کے مطابق رقم لی ہے، تو وہ غلام واپس لے سکتے ہیں۔ مزید یہ کہ اگر قرض خواہوں نے آقا سے قیمت وصول کی اور پھر غلام برآمد ہوا، اور خریدار نے عدالت کے حکم سے عیب کی وجہ سے غلام واپس کر دیا، تو کیا آقا وہ غلام قرض خواہوں کو واپس دے سکتا ہے؟ اس کی دو صورتیں ہیں: اگر آقا فروخت کے وقت عیب سے لاعلم تھا اور عیب ایسا ہے جو بعد میں پیدا نہیں ہو سکتا تھا، تو گواہوں یا اقرار کی بنیاد پر وہ غلام قرض خواہوں کو لوٹا سکتا ہے۔

اگر غلام بائع کے اعترافِ عیب کی وجہ سے واپس ہوا ہو تو وہ اسے قرض خواہوں کو نہیں لوٹا سکتا، الا یہ کہ وہ گواہ پیش کر دے کہ عیب پہلے سے موجود تھا یا قرض خواہ قسم کھانے سے انکار کر دیں۔ دوسری صورت یہ ہے کہ بائع کو عیب کا علم تھا۔ اگر قاضی نے عیب دار غلام کی قیمت کی ڈگری دی تو اسے واپسی کا اختیار ہے، اور اگر صحیح غلام کی قیمت کی ڈگری دی تب بھی واپسی کا اختیار ہے، بشرطیکہ عیب قدیم ہو یا عدالتی ثبوت سے ثابت ہو چکا ہو۔ خلاصہ یہ کہ اگر قرض خواہوں نے آقا سے عیب دار غلام کی قیمت لی یا انکار کر کے پورے غلام کی قیمت لی، تو ان تمام صورتوں میں بیان کردہ احکام لاگو ہوں گے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 36 Book of Al-Ma'dhun**

If the creditors have collected the price from the master (moula), and then the slave appears before the buyer, and the buyer becomes aware of a pre-existing defect (ayb-e-qadeem) in him, and before he could return the slave, a new defect occurred in the slave while in the buyer's possession; in this case, the buyer cannot return the slave to the master, but he can claim compensation for the loss caused by the pre-existing defect. If he collects this compensation from the master, the master shall not have the right to reclaim that amount from the creditors. This ruling is mentioned in this book without citing any disagreement. However, some of our scholars have stated that this is only the opinion of Imam Azam (Abu Hanifa); according to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, the master can reclaim the amount equivalent to the defect's loss from the creditors. This disagreement is explicitly mentioned in some manuscripts of this book and is also found in *Al-Muhit*. If a master manumits (frees) a slave belonging to his authorized slave (Ma'dhun) while the Ma'dhun is in debt, will this manumission be valid? There are two scenarios: either the debt encompasses the Ma'dhun's entire assets (*Mustaghriq*) or it does not. If the debt is not encompassing (non-*Mustaghriq*), meaning it does not cover all his wealth and life, Imam Azam initially held that the manumission would not be valid, but he later revised his opinion and stated it would be valid. If the debt is encompassing (*Mustaghriq*), then according to Imam Azam, the manumission by the master is not valid. In this case, he has only one opinion. However, the *Sahibayn* (his two disciples) stated that the manumission is valid in every case.

The disagreement between Imam Azam and the *Sahibayn* is derived from another issue: does the existence of debt on a slave prevent the master from acquiring ownership over the slave's earnings? According to Imam Azam, if the debt is encompassing, it is a preventative factor, and this is his only opinion on the matter. If it is non-encompassing, two opinions are narrated from Imam Azam: the first is that it is preventative, and the second is that it is not. According to the *Sahibayn*, it is not a preventative factor even if the debt is encompassing, though the master will be restricted from disposing of the earnings. Once this is understood, we say that if a master manumits a slave bought with the earnings of his Ma'dhun slave, according to Imam Azam, he will not be liable (guarantor), while according to the *Sahibayn*, he will be liable, whether he is indigent or wealthy. However, if the master is indigent, the creditor has the right to seize the manumitted slave for the value. The manumitted slave can then reclaim this value from his manumittor, the master.

Conversely, if the Ma'dhun himself manumitted the slave, and due to the Ma'dhun's indigence, the manumitted slave paid his value to the creditors through labor (*sa'ayat*), he cannot reclaim this value from the master, as stated in *Al-Mughni*. If a master manumits his indebted Ma'dhun slaves, according to Imam Azam, they will not be free—meaning they will not be considered free in regard to the rights of the creditors. The creditors will have the right to have these slaves sold and collect their debt from the proceeds. However, regarding the rights of the master, they will be free by consensus, such that if the creditors absolved them of the debt, or sold them back to the master, or the master paid off their debt, they would then be fully free. According to the *Sahibayn*, the master's manumission is valid, and the master becomes the guarantor of their value for the creditors, provided he is wealthy. If he is indigent, these individuals shall work to pay off their own value to the creditors and then reclaim it from the master. This is mentioned in *Yanabi*.

If a Ma'dhun slave falls heavily into debt and the master frees him after taking and depleting all his assets, and the creditors then choose to hold the slave accountable and collect the debt from him, the slave shall reclaim from the master an amount from the value of the assets taken by the master equivalent to the debt paid. If those assets still exist in their original state, the slave shall take possession of them to the extent of the debt paid. Whatever remains shall belong to the master. Similarly, if the creditors forgive the Ma'dhun's debt and the Ma'dhun does not have to pay anything, then all those assets belong to the master; the slave cannot reclaim anything from the master. Likewise, if the Ma'dhun is a female slave and the master frees her after taking her property, her child, and the compensation for a lost hand (blood money/*diyat*), and the situation is such that the debt was incurred before the birth of the child and the occurrence of the injury, then the debt...

---

1. *Mustaghriq*: Debt to such an extent that it encompasses everything the Ma'dhun possesses.

## फ़तावा आलमगीरी ..... खंड (8) 36 किताबुल माज़ून

यदि ऋणदाताओं ने स्वामी (मौली) से मूल्य प्राप्त कर लिया, फिर वह गुलाम खरीदार के पास प्रकट हुआ और खरीदार को उसके पुराने दोष (ऐब-ए-कदीम) का पता चला और उसने अभी उसे वापस नहीं किया था कि खरीदार के पास उसमें दूसरा दोष उत्पन्न हो गया, तो खरीदार उसे स्वामी को वापस नहीं कर सकता, लेकिन पुराने दोष के कारण हुए नुकसान की भरपाई वापस ले सकता है। और यदि उसने स्वामी से नुकसान का हर्जाना ले लिया, तो स्वामी को यह अधिकार नहीं होगा कि वह ऋणदाताओं से उस दोष के नुकसान के बराबर रकम वापस मांगे। यह मसला इस किताब में बिना किसी मतभेद के उल्लेखित है, लेकिन हमारे कुछ विद्वानों ने कहा है कि यह केवल इमाम-ए-आज़म का मत है, जबकि इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद के अनुसार स्वामी पुराने दोष के नुकसान के बराबर रकम ऋणदाताओं से वापस ले सकता है। इस किताब के कुछ प्रतियों में यह मतभेद स्पष्ट रूप से वर्णित है, यह 'मुहीत' में है। यदि स्वामी ने माज़ून के किसी गुलाम को आज़ाद कर दिया जबकि माज़ून पर कर्ज़ है, तो क्या यह मुक्ति (इत्क) लागू होगी या नहीं? इसकी दो स्थितियाँ हैं: या तो माज़ून पर कर्ज़ व्यापक (मुस्तग़रिक़) होगा या गैर-व्यापक। यदि कर्ज़ व्यापक नहीं है, यानी उसके पूरे माल और जान को घेरे हुए नहीं है, तो इमाम-ए-आज़म पहले कहते थे कि मुक्ति लागू नहीं होगी, फिर उन्होंने अपना मत बदल दिया और कहा कि लागू होगी। और यदि कर्ज़ व्यापक है, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार स्वामी द्वारा दी गई मुक्ति लागू नहीं होगी। इस मामले में उनका केवल एक ही मत है, जबकि साहिबैन (दोनों शिष्यों) ने कहा है कि हर स्थिति में उसकी मुक्ति लागू होगी।

इमाम-ए-आज़म और साहिबैन के बीच यह मतभेद एक अन्य मसले पर आधारित है, और वह मसला यह है कि क्या गुलाम पर कर्ज़ होना, गुलाम की कमाई पर स्वामी के स्वामित्व (मलिकियत) के स्थापित होने में बाधा है या नहीं? इमाम-ए-आज़म के अनुसार यदि कर्ज़ व्यापक है तो यह बाधा है, और इस मामले में उनका यही एकमात्र मत है। यदि कर्ज़ व्यापक नहीं है, तो इमाम-ए-आज़म से दो मत वर्णित हैं: पहला यह कि बाधा है और दूसरा यह कि बाधा नहीं है। साहिबैन के अनुसार कर्ज़ बाधा नहीं है, भले ही वह व्यापक क्यों न हो, लेकिन स्वामी को उसकी कमाई का उपयोग करने से रोका जाएगा। जब यह बात स्पष्ट हो गई, तो हम कहते हैं कि यदि स्वामी ने गुलाम की कमाई से प्राप्त किसी गुलाम को आज़ाद किया, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार वह जिम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा, और साहिबैन के अनुसार वह जिम्मेदार होगा, चाहे वह गरीब हो या अमीर। लेकिन यदि स्वामी गरीब हो, तो ऋणदाता को आज़ाद किए गए गुलाम को मूल्य के लिए पकड़ने का अधिकार है। फिर वह

आज़ाद गुलाम यह मूल्य अपने आज़ाद करने वाले यानी स्वामी से वापस ले सकता है। इसके विपरीत, यदि माज़ून ने स्वयं आज़ाद किया और माज़ून की गरीबी के कारण आज़ाद हुए गुलाम ने ऋणदाताओं के लिए अपनी कीमत मेहनत (सआयत) करके चुकाई, तो वह यह कीमत स्वामी से वापस नहीं ले सकता, जैसा कि 'मुग़नी' में है। यदि स्वामी ने अपने ऋणी माज़ून गुलामों को आज़ाद किया, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार वे आज़ाद नहीं होंगे, जिसका अर्थ है कि वे ऋणदाताओं के हक में आज़ाद नहीं होंगे और उन्हें इन गुलामों को बिकवा कर उनकी कीमत से अपना कर्ज़ वसूल करने का अधिकार होगा। मगर स्वामी के अधिकार के संबंध में वे सर्वसम्मति से आज़ाद हो जाएंगे, यहाँ तक कि यदि ऋणदाताओं ने उन्हें कर्ज़ से मुक्त कर दिया या स्वामी के हाथों उन्हें बेच दिया या स्वामी ने उनका कर्ज़ चुका दिया, तो वे आज़ाद हो जाएंगे। साहिबैन के अनुसार स्वामी द्वारा दी गई मुक्ति लागू होगी और स्वामी ऋणदाताओं के लिए उनकी कीमत का जिम्मेदार होगा, बशर्ते वह समृद्ध हो। और यदि वह गरीब हो, तो ये लोग मेहनत करके अपनी कीमत चुकाएंगे, फिर स्वामी से उसे वापस लेंगे। यह 'यनाबी' में है।

यदि माज़ून पर बहुत कर्ज़ हो गया और स्वामी ने उसे आज़ाद करके उसके पास जो कुछ भी माल था उसे ले लिया और नष्ट कर दिया, फिर ऋणदाताओं ने गुलाम को पकड़ना पसंद किया और उससे कर्ज़ वसूल कर लिया, तो गुलाम उस माल की कीमत में से जो स्वामी ने उससे लिया है, कर्ज़ की राशि के बराबर स्वामी से वापस लेगा। और यदि वह माल ज्यों का त्यों मौजूद हो, तो गुलाम उसे वापस लेकर कर्ज़ की भरपाई करेगा। और जो कुछ बच जाएगा वह स्वामी का होगा। इसी तरह, यदि ऋणदाताओं ने माज़ून का कर्ज़ माफ़ कर दिया और माज़ून को कुछ भी भुगतान नहीं करना पड़ा, तो वह पूरा माल स्वामी का है; गुलाम उसमें से स्वामी से कुछ भी वापस नहीं ले सकता। इसी तरह, यदि माज़ून एक दासी हो और स्वामी उसे आज़ाद करके उसका माल, संतान और अंग-भंग का हर्जाना (दियत) ले ले, जबकि स्थिति यह हो कि संतान जन्म और चोट लगने से पहले ही उस पर कर्ज़ चढ़ गया था, फिर कर्ज़...

---

1. व्यापक (मुस्तग़रिक़): इतना कर्ज़ जो माज़ून के पास मौजूद समस्त संपत्ति को घेर ले।

---

اگر قرض خواہوں نے مولیٰ سے قیمت حاصل کر لی پھر وہ غلام مشتری کے پاس ظاہر ہوا اور مشتری اس کے عیب قدیم سے واقف ہوا اور ہنوز اس نے واپس نہ کیا تھا کہ اس میں دوسرا عیب مشتری کے پاس پیدا ہو گیا تو مشتری اس کو مولیٰ کو واپس نہیں دے سکتا ہے لیکن نقصانِ عیبِ قدیم واپس لے سکتا ہے اور اگر اس نے نقصانِ عیب مولیٰ سے واپس لیا تو مولیٰ کو اختیار نہ ہو گا کہ قرض خواہوں سے بقدر نقصانِ عیب کے واپس لے اور یہ مسئلہ اس کتاب میں بلا ذکرِ خلاف مذکور ہے اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ فقط امام اعظم کا قول ہے کہ امام ابو یوسفؒ اور امام محمدؒ کے نزدیک بقدر نقصانِ عیب کے قرض خواہوں سے واپس لے سکتا ہے اور اس کتاب کے بعض نسخوں میں یہ اختلاف صریح مذکور ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر مولیٰ نے ماذون کا کوئی غلام رقیق آزاد کیا حالانکہ ماذون پر قرضہ ہے پس آیا یہ عتق نافذ ہو گا یا نہیں تو اس کی دو صورتیں ہیں یا تو ماذون پر قرضہ مستغرق ہو گا یا غیر مستغرق ہو گا۔ پس اگر غیر مستغرق ہو یعنی اس کے تمام مال و جان کو محیط نہ ہو تو امام اعظمؒ پہلے فرماتے تھے کہ عتق نافذ نہ ہو گا پھر رجوع کیا اور فرمایا کہ نافذ ہو گا اور اگر قرضہ مستغرق ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک عتق مولیٰ نافذ نہ ہو گا اس صورت میں ان کا ایک ہی قول ہے اور صاحبینؒ نے فرمایا کہ ہر حال میں اس کا عتق نافذ ہو گا۔

یہ اختلاف جو امام اعظمؒ اور صاحبینؒ کے درمیان ہے یہ ایک دوسرے مسئلہ پر متفرع ہے اور وہ مسئلہ یہ ہے کہ غلام پر قرضہ ہوتا آیا غلام کی کمائی میں مولیٰ کی ملکیت واقع ہونے کا مانع ہے یا نہیں سو امام اعظمؒ کے نزدیک اگر قرضہ میں فرق ہو تو مانع ہے اور ان کا اس صورت میں یہی ایک قول ہے اور اگر غیر مستغرق ہو تو امام اعظمؒ سے دو قول مروی ہیں پہلا قول یہ ہے کہ مانع

ہے اور دوسرا قول ہے کہ مانع نہیں ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک مانع نہیں ہے اگر چہ قرضہ مستغرق ہو لیکن مولیٰ اس کی کمائی میں تصرف کرنے سے منع کیا جائے گا جب یہ ذہن نشین ہو گیا تو ہم کہتے ہیں کہ اگر مولیٰ نے غلام کی کمائی کا غلام آزاد کیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک ضامن نہ ہو گا اور صاحبینؒ کے نزدیک ضامن ہو گا خواہ تنگدست ہو یا خوشحال ہو لیکن اگر مولیٰ تنگدست ہو تو قرض خواہ کو غلام آزاد شدہ کا قیمت کے واسطے دستگیر ہونے کا اختیار ہے پھر غلام آزاد شدہ یہ قیمت اپنے آزاد کنندہ یعنی مولیٰ سے واپس لے سکتا ہے بخلاف اس کے اگر ماذون نے خود آزاد کیا اور ماذون کی تنگدستی میں آزاد شدہ نے قرض خواہوں کے واسطے اپنی قیمت سعایت کر کے ادا کی تو یہ قیمت مولیٰ سے واپس نہیں لے سکتا ہے کذا فی المغنی۔ اگر مولیٰ نے اپنے ماذون مدیون غلاموں کو آزاد کیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک آزاد نہ ہوں گے اور اس سے یہ مراد ہے کہ قرض خواہوں کے حق میں آزاد نہ ہوں گے اور ان کو اختیار ہو گا کہ ان غلاموں کو فروخت کرا کے ان کے ثمن سے اپنا قرضہ وصول کریں مگر مولیٰ کے حق میں وہ لوگ بالاجماع آزاد ہو جائیں گے حتیٰ کہ اگر قرض خواہوں نے ان کو اپنے قرضہ سے بری کیا یا مولیٰ کے ہاتھ ان کو فروخت کیا یا مولیٰ نے ان کا قرضہ ادا کر دیا تو وہ آزاد ہوں گے اور صاحبینؒ کے نزدیک مولیٰ کا عتق نافذ ہو گا اور قرض خواہوں کے واسطے مولیٰ ان کی قیمت کا ضامن ہو گا بشرطیکہ خوشحال ہو اور اگر تنگدست ہو تو یہ لوگ اپنی اپنی قیمت سعی کر کے قرض خواہوں کو ادا کریں گے پھر مولیٰ سے واپس لیں گے یہ ینابیع میں ہے۔

اگر ماذون پر بہت قرضہ ہو گیا اور مولیٰ نے اس کو آزاد کر کے جو کچھ اس کے پاس تھا وہ سب مال لے کر تلف کر دیا پھر قرض خواہوں نے غلام کا دستگیر ہونا پسند کر کے اس سے قرضہ وصول کر لیا تو غلام اس مال کی قیمت میں سے جو اس سے مولیٰ نے لے لیا ہے بقدر اس قرضہ کے واپس لے گا اور اگر وہ مال بعینہ قائم ہو تو غلام دستگیر ہو کر اس میں بقدر قرضہ کے جو

اس نے ادا کیا ہے لے لے گا اور جس قدر بچ رہا وہ سب مولیٰ کا ہو گا اور اس طرح اگر قرض خواہوں نے ماذون کو قرضہ معاف کر دیا اور ماذون کو کچھ ادا نہ کرنا پڑا تو یہ بھی سب مال مولیٰ کا ہے، غلام اس میں سے مولیٰ سے کچھ واپس نہیں لے سکتا ہے۔ اسی طرح اگر ماذونہ باندی ہو اور اس کو آزاد کر کے اس کا مال اور فرزند اور ہاتھ کٹنے کا جرمانہ یعنی دیت مولیٰ نے لے لی اور حال یہ ہے کہ قبل ولادت و جنایت کے اس پر قرضہ چڑھ گیا تھا پھر قرض۔

---

۱۔ مستغرق اس قدر قرض کہ جو کچھ ماذون کے پاس ہے سب پر محیط ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 37 Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'dhun)**

Whether the creditors are present or not, the master shall be compelled to hand over the slave's property to him so that he may discharge his debt. However, the master shall not be compelled to return the children or any fines paid if the slave has not been manumitted. Instead, the slave girl shall be sold, and the debt shall be paid from her price and the compensation (diyat) received for her hand. If the master has manumitted her, the creditors have the option to take her value as indemnity from the master, and subsequently, her child may also be sold towards their debt.

Creditors may also collect the fine, i.e., compensation (diyat), from the master. Even then, if any debt remains, they shall pursue the manumitted slave girl for the remainder. They also have the option to bypass the master and pursue the slave girl for the entire debt. If they collect the full debt from the slave girl, her child and the compensation for the hand shall be handed over to the master and belong to him. The slave girl shall not have the right to reclaim the child or the compensation from the master, just as she did not have the right to reclaim the price of her own person. However, she shall have the right to take back whatever property the master had taken from her. Similarly, if the master sold the slave girl to the creditors towards their debt and received the price, and then the buyer manumitted her, the creditors have the choice: they may either keep the price and pursue the slave girl for the remaining debt, or they may pursue her for the entire debt. If they collect their entire debt from the slave girl, the price the master had received shall be returned to him. Likewise, if the master entered into a contract of manumission (mukataba) with the slave girl with the creditors' permission, the creditors have the right to take all the payments the master receives under that contract. As long as she remains under the contract of manumission, they have no right of recourse against her for any part of their debt.

If a dispute arises between the master and the creditors, where the creditors say to the master, "You have manumitted the slave, and we are entitled to claim the price from you," and the master says, "I have not manumitted him," the master's word shall be accepted. ☆

Furthermore, if the master received the full amount of the contract of manumission and the slave girl became free, the creditors have the option: they may either collect the full amount of the contract from the master and pursue the slave girl for the

remaining debt, or they may collect the entire debt from the slave girl. If they collect the full debt from the slave girl, all the contract payments the master received shall be returned to him. This is stated in *Al-Mabsut*. It is written in *Jami' al-Fatawa* that if an authorized slave owes a debt of four thousand dirhams and possesses assets worth three thousand dirhams, and the master destroys those assets and frees the slave, the creditors have the option: they may either collect their debt from the freed person, who in turn shall reclaim three thousand dirhams (the value of the assets) from his master, or they may hold the master liable for four thousand dirhams. In this case, the master cannot claim anything from the freed person. This is mentioned in *Tatar-Khaniya*. If there is a dispute where the creditors claim the master freed the slave and they are entitled to the price, while the master denies freeing him, the master's statement prevails and the slave shall be sold for the creditors. The creditors' admission[1] regarding the slave's manumission does not imply his exoneration from debt. Since exoneration did not occur and their debt remained upon the slave after their admission of manumission, the slave shall be sold for their debt, and no regard shall be given to their previous statement. This is in *Al-Dhakhira*.

If a master sells an indebted authorized slave without the creditors' permission and the buyer manumits him before taking possession, the right remains suspended. If the creditors then approve the sale, or the master pays off their debt, or they forgive the slave his debt...

[1] Admission, meaning when the creditors admitted, "You have freed this slave," it does not necessarily follow from this admission that the slave is cleared of his debts.

चाहे लोग हाजिर हों, मालिक को इस बात के लिए मजबूर किया जाएगा कि वह उसका माल उसे दे दे ताकि वह अपना कर्ज अदा कर सके और संतान व जुर्माना वापस देने पर मजबूर नहीं किया जाएगा। यदि उसने उसे आजाद नहीं किया है, तो दासी को बेच दिया जाएगा और उसकी कीमत (थमन) और हाथ के मुआवजे (दियत) में से कर्ज अदा किया जाएगा। और यदि मालिक ने उसे आजाद कर दिया है, तो ऋणदाताओं को यह अधिकार होगा कि वे मालिक से उसकी कीमत मुआवजे के तौर पर लें, फिर उसका बच्चा भी उनके कर्ज के बदले में बेचा जा सकता है।

मालिक से जुर्माना यानी मुआवजा (दियत) भी वसूल किया जा सकता है। फिर भी यदि कुछ कर्ज बाकी रह गया, तो वे बाकी कर्ज के लिए आजाद की गई दासी के पीछे पड़ेंगे। उन्हें यह भी अधिकार है कि वे मालिक को छोड़कर पूरे कर्ज के लिए दासी के पीछे पड़ें। अतः यदि उन्होंने दासी से पीछा करके पूरा कर्ज वसूल कर लिया, तो उस दासी का बच्चा और हाथ का मुआवजा सब मालिक को सौंप दिया जाएगा और उसी का होगा। दासी को यह अधिकार नहीं होगा कि वह बच्चा और मुआवजा मालिक से वापस ले, जैसे कि उसे अपनी स्वयं की कीमत वापस लेने का अधिकार नहीं था। लेकिन यह अधिकार होगा कि मालिक ने उससे जो कुछ माल लिया है, वह उसे वापस ले ले। इसी प्रकार यदि मालिक ने उस दासी को ऋणदाताओं के लिए उनके कर्ज के बदले बेच दिया और कीमत वसूल कर ली, फिर खरीदार ने उस दासी को आजाद कर दिया, तो ऋणदाताओं को अधिकार है कि वे चाहें तो कीमत लेकर बाकी कर्ज के लिए दासी के पीछे पड़ें या पूरे कर्ज के लिए दासी के पीछे पड़ें। अतः यदि उन्होंने अपना पूरा कर्ज दासी से वसूल कर लिया, तो मालिक ने जो कीमत वसूल की थी, वह उसे दे दी जाएगी। इसी प्रकार यदि ऋणदाताओं की अनुमति से मालिक ने उस दासी का मुकातबा (आजादी का अनुबंध) कर दिया, तो भी ऋणदाताओं को अधिकार है कि मालिक ने मुकातबा से जो धन प्राप्त किया है, वह सब ले लें। और जब तक वह दासी मुकातबा में है, तब तक उन्हें अपने किसी कर्ज के लिए उससे रुजू (दावा) करने का अधिकार नहीं है।

यदि मालिक और ऋणदाताओं के बीच विवाद हो जाए कि ऋणदाताओं ने मालिक से कहा, "तूने दास को आजाद कर दिया है और हमारा तुझसे उसकी कीमत लेने का अधिकार है," और मालिक ने कहा, "मैंने आजाद नहीं किया है," तो मालिक की बात स्वीकार की जाएगी। ☆

फिर यदि मालिक ने मुकातबा का सारा धन प्राप्त कर लिया और वह दासी आजाद हो गई, तो ऋणदाताओं को अधिकार है कि वे चाहें तो मालिक से मुकातबा का सारा धन प्राप्त करके बाकी कर्ज के लिए दासी का दामन पकड़ें (उससे वसूल करें) या दासी से पूरा कर्ज वसूल करें। और यदि उन्होंने दासी से पूरा कर्ज वसूल किया, तो मालिक ने जो मुकातबा का धन प्राप्त किया था, वह सब मालिक को दे दिया जाएगा। यह 'मबसूत' में है। 'जामे-उल-फतावा' में लिखा है कि यदि माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत दास) पर चार हजार दरहम कर्ज है और उसके पास इतना सामान मौजूद है जिसकी कीमत तीन हजार दरहम है, फिर मालिक ने उसका यह माल नष्ट कर दिया और दास को आजाद कर दिया, तो ऋणदाताओं को अधिकार होगा कि वे चाहें तो आजाद व्यक्ति से अपना कर्ज वसूल करें और वह अपने मालिक से तीन हजार दरहम यानी सामान की कीमत वापस लेगा, या मालिक से चार हजार दरहम की जमानत लें, और मालिक उस आजाद व्यक्ति से कुछ नहीं ले सकता। यह 'तातारखानिा' में है। यदि मालिक और ऋणदाताओं के बीच विवाद हो कि ऋणदाताओं ने मालिक से कहा कि तूने दास को आजाद कर दिया है और हमारा तुझसे कीमत लेने का अधिकार है, और मालिक ने कहा कि मैंने आजाद नहीं किया है, तो मालिक की बात स्वीकार की जाएगी और वह दास ऋणदाताओं के लिए बेचा जाएगा। और ऋणदाताओं का दास को आजाद करने का इकरार[1] दास की ऋणमुक्ति को शामिल नहीं करता है। और जब मुक्ति नहीं हुई और उनका कर्ज उनके आजादी के इकरार के बाद भी दास पर रहा, तो दास उनके कर्ज के बदले बेचा जाएगा और उनके(पुराने) कथन की ओर ध्यान नहीं दिया जाएगा। यह 'जखीरा' में है।

यदि ऋणी माज़ून दास को उसके मालिक ने ऋणदाताओं की अनुमति के बिना बेच दिया और खरीदार ने कब्जे से पहले ही उसे आजाद कर दिया, तो अधिकार स्थगित रहेगा। फिर यदि ऋणदाताओं ने बिक्री की अनुमति दे दी या मालिक ने उनका कर्ज अदा कर दिया या उन्होंने दास को कर्ज माफ कर दिया...

[1] इकरार यानी जब ऋणदाताओं ने यह इकरार किया कि "तूने इस दास को आजाद कर दिया है," तो इस इकरार से यह आवश्यक नहीं होता कि दास कर्ज से मुक्त हो गया।

خواہ لوگ حاضر ہوئے تو مولیٰ اس امر پر مجبور کیا جائے گا کہ اس کا مال اس کو دے دے تاکہ اپنا قرضہ ادا کرے اور فرزند و جرمانہ واپس دینے پر مجبور نہ کیا جائے گا اگر اس کو آزاد نہیں کیا ہے مگر باندی فروخت کی جائے گی اور اس کے ثمن اور ہاتھ کی دیت میں سے قرضہ ادا کیا جائے گا اور اگر مولیٰ نے اس کو آزاد کیا ہو تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا کہ مولیٰ سے اس کی قیمت تاوان لے پھر اس کا بچہ بھی ان کے قرضہ میں فروخت ہو سکتا ہے۔

مولیٰ سے جرمانہ یعنی دیت بھی وصول کر سکتے ہیں پھر بھی اگر کچھ قرضہ باقی رہا تو باقی کے واسطے باندی آزاد شدہ کے دامنگیر ہوں گے اور ان کو یہ بھی اختیار ہے کہ مولیٰ کو چھوڑ کر تمام قرضہ کے واسطے باندی کے دامنگیر ہوں پس اگر انہوں نے باندی سے دامنگیر ہو کر تمام قرضہ وصول کر لیا تو اس باندی کا بچہ اور ہاتھ کی دیت سب مولیٰ کو سپرد کی جائے گی اور اسی کی ہوگی اور باندی کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ بچہ اور دیت مولیٰ سے واپس لے جیسے کہ اس کو اپنی ذات کی قیمت واپس لینے کا اختیار نہ تھا مگر یہ اختیار ہو گا کہ مولیٰ نے جو کچھ مال اس سے لے لیا ہے وہ واپس لے اسی طرح اگر مولیٰ نے وہ باندی قرض خواہوں کے واسطے ان کے قرضہ میں فروخت کر دی اور ثمن وصول کر لیا پھر مشتری نے وہ باندی آزاد کر دی تو قرض خواہوں کو اختیار ہے چاہیں ثمن لے کر باقی قرضہ کے واسطے باندی کے دامنگیر ہوں یا تمام قرضہ کے واسطے باندی کے دامنگیر ہوں پس اگر انہوں نے اپنا تمام قرضہ باندی سے وصول کر لیا تو مولیٰ کو اس کا ثمن جو اس نے وصول کر لیا ہے دے دیا جائے گا اسی طرح اگر قرض خواہوں کی اجازت سے مولیٰ نے وہ باندی مکاتبہ کر دی تو بھی قرض خواہوں کو اختیار ہے کہ

جو کچھ مولیٰ نے مال کتابت وصول کیا ہے سب لے لیں اور جب تک وہ باندی مکاتبہ ہے تب تک ان کو اپنے کچھ قرضہ کے واسطے رجوع کا اختیار نہیں ہے۔

اگر مولیٰ و قرض خواہوں میں اختلاف ہوا کہ قرض خواہوں نے مولیٰ سے کہا کہ تو نے غلام کو آزاد کر دیا اور ہمارا تجھ پر قیمت لینے کا استحقاق ہے اور مولیٰ نے کہا کہ میں نے آزاد نہیں کیا تو مولیٰ کا قول قبول ہو گا ☆

پھر اگر مولیٰ نے تمام مال کتابت وصول پایا اور وہ باندی آزاد ہو گئی تو قرض خواہوں کو اختیار ہے چاہیں مولیٰ سے تمام مال کتابت وصول کر کے باقی قرضہ کے واسطے باندی کا پلو پکڑیں یا باندی سے تمام قرضہ وصول کریں اور اگر انہوں نے باندی سے تمام قرضہ وصول کیا تو مال کتابت جو مولیٰ نے وصول کیا ہے سب مولیٰ کو دے دیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔ جامع الفتاویٰ میں لکھا ہے کہ ماذون پر چار ہزار درہم قرض ہیں اور اس کے پاس اس قدر اسباب موجود ہے جس کی قیمت تین ہزار درہم ہیں پھر مولیٰ نے اس کا یہ مال تلف کر دیا اور غلام کو آزاد کر دیا تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا چاہیں آزاد شدہ سے اپنا قرضہ وصول کریں اور وہ اپنے مولیٰ سے تین ہزار درہم یعنی اسباب کی قیمت واپس لے گا یا مولیٰ سے چار ہزار درہم ضمان لیں اور مولیٰ اس آزاد شدہ سے کچھ نہیں لے سکتا ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر مولیٰ و قرض خواہوں میں اختلاف ہوا کہ قرض خواہوں نے مولیٰ سے کہا کہ تو نے غلام کو آزاد کر دیا اور ہمارا تجھ پر قیمت لینے کا استحقاق ہے اور مولیٰ نے کہا کہ میں نے آزاد نہیں کیا ہے تو مولیٰ کا قول قبول ہو گا اور وہ غلام قرض خواہوں کے واسطے فروخت کیا جائے گا اور قرض خواہوں کا اقرار[1] باعتاقِ غلام اس غلام کی بریت کو متضمن نہیں ہے اور جب بریت نہ ہوئی اور ان کا قرضہ ان کے اقرارِ اعتاق کے بعد غلام پر رہا تو غلام ان کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور ان کے قول کی طرف التفات نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

غلام ماذون مدیون کو اگر اس کے مولیٰ نے بلا اجازت قرض خواھان کو فروخت کیا اور مشتری نے قبل قبضہ کے اس کو آزاد کر دیا تو حق موقوف رہے گا پھر اگر قرض خواہوں نے بیع کی اجازت دے دی یا مولیٰ نے ان کا قرضہ ادا کر دیا یا انہوں نے غلام کو قرضہ معاف کر دیا

[1] اقرار یعنی قرض خواہوں نے جب یہ اقرار کیا تو نے یہ غلام آزاد کر دیا ہے تو اس اقرار سے لازم نہیں آتا ہے کہ غلام بری ہو گیا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) Kitab al-Ma'zun 38**

If [the authorized slave/Ma'zun] sold himself, the manumission (itq) by the buyer (mushtari) shall be valid. If the creditors refuse to permit the sale or if the master (mawla) refuses to pay their debts, the manumission shall be void, and the slave will be sold to settle the creditors' debts. If the buyer manumitted the slave after taking possession, the manumission becomes valid. Subsequently, the creditors have the option: they may either permit the sale and take the price (thaman), or seek compensation (daman) for the value from the seller. If compensation for the slave's value is taken, the master's sale becomes effective, and he shall receive the price; this is stated in *Al-Muhit*. If the buyer did not manumit him but instead sold or gifted (hiba) him, and the first sale was finalized due to certain aforementioned conditions (e.g., creditors' permission or debt payment), then the buyer's actions regarding the slave are valid. If the master did not sell him but gifted him to someone and then paid compensation to the creditors, the gift is valid. If the master later revokes the gift, whether by court order or otherwise, the slave returns to the master, and the recipient (mowhub-lahu) owes no value, nor do the creditors have a claim on the slave.

Furthermore, if the master discovers a defect (ayb) in the slave that decreases his value compared to the compensation paid, the master has the option to return the slave to the creditors and reclaim his payment. If, after revoking a gift but before discovering the defect, the master manumitted the slave or made him a *mudabbar* (promised freedom upon master's death), or if a new defect developed, he may recover the difference between the value of a sound slave and a defective one. Except in cases of manumission or *mudabbar* status, the creditors also have the option to return the price to the master, take the slave, and sell him for their debt. However, if the master chooses not to claim for the loss and accepts the slave with the defect, he may do so. If this involves a female slave with whom sexual intercourse occurred due to a legal doubt, making 'uqr' (dower) mandatory, the resulting 'attached increase' (*ziyadat-e-muttasila*) means the creditors have no path to claim her. If the master sold a Ma'zun, the buyer caused a defect, the creditors took compensation from the master, the buyer then found a pre-existing defect that could not have occurred anew while a second defect also appeared, and the buyer recovered the loss for the old defect from the seller, the seller cannot reclaim the price from the creditors but can recover a portion from the compensation paid relative to the defect; this is mentioned in *Al-Mabsut*.

If a Ma'zun slave sells something from his earnings to his master at a fair market price, it is permissible provided he is in debt; if he is not in debt, it is not permissible. In cases where it is permissible, if the Ma'zun delivers the goods to the master before receiving payment, the master's obligation to pay is not waived; this is in *Al-Muhit*. If an indebted Ma'zun sells to his master at a lower price, according to Imam al-Azam (Abu Hanifa), it is not permissible regardless of the extent of the loss. According to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the sale is valid regardless of the loss, but the master is given the choice to either make up the loss or annul the sale. This is the view of some scholars; others state that Imam al-Azam's view is similar to that of the *Sahibayn*. If an indebted Ma'zun sells to a stranger, according to Imam al-Azam, it is permissible whether at market value or a lower price, and the stranger shall not be asked to compensate for the loss. According to Imam al-Azam, the principle is that if the Ma'zun transacts with a stranger, a minor loss...

---

1. Uqr: Dower that becomes mandatory due to sexual intercourse under legal doubt. Ziyadat-e-muttasila: An increase that is physically attached to the property/slave.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) किताब-उल-माज़ून 38**

यदि [माज़ून गुलाम ने खुद को] बेच दिया तो खरीदार (मुश्तरी) द्वारा गुलामी से मुक्ति (इतक़) प्रभावी होगी। यदि ऋणदाताओं (कर्ज़ख़्वाहों) ने बिक्री की अनुमति देने से इनकार कर दिया या स्वामी (मौली) ने उनका ऋण चुकाने से मना कर दिया, तो मुक्ति शून्य होगी और वह गुलाम ऋणदाताओं के ऋण के बदले बेचा जाएगा। यदि खरीदार ने कब्जे के बाद उसे मुक्त किया, तो मुक्ति प्रभावी हो जाएगी। इसके बाद ऋणदाताओं को अधिकार होगा कि वे चाहें तो बिक्री की अनुमति देकर कीमत (समन) ले लें या विक्रेता से मूल्य का हर्जाना (ज़मान) लें। यदि गुलाम का मूल्य हर्जाने के रूप में लिया गया, तो स्वामी की बिक्री प्रभावी हो जाएगी और कीमत उसे ही मिलेगी, जैसा कि 'मुहीत' में है। यदि खरीदार ने उसे मुक्त नहीं किया बल्कि बेच दिया या उपहार (हिबा) में दे दिया, और पिछली बिक्री ऋणदाताओं की अनुमति या ऋण भुगतान के कारण पूरी हो गई थी, तो खरीदार का कार्य प्रभावी माना जाएगा। यदि स्वामी ने उसे बेचा नहीं बल्कि किसी को उपहार में दिया और फिर ऋणदाताओं को हर्जाना दे दिया, तो उपहार प्रभावी होगा। यदि स्वामी न्यायाधीश (काज़ी) के आदेश से या उसके बिना उपहार वापस ले ले, तो गुलाम स्वामी का होगा और उपहार पाने वाले पर कोई मूल्य देय नहीं होगा, न ही ऋणदाताओं के पास गुलाम लेने का कोई रास्ता होगा।

पुनः यदि स्वामी को गुलाम में कोई ऐसा दोष (ऐब) मिला जिससे उसकी कीमत उस राशि से कम हो गई जो उसने हर्जाने के रूप में भरी है, तो उसे अधिकार होगा कि वह ऋणदाताओं को गुलाम वापस कर अपनी कीमत ले ले। यदि उपहार वापसी के बाद दोष का पता चलने से पहले स्वामी ने उसे मुक्त या 'मुदब्बर' कर दिया, या उसमें नया दोष उत्पन्न हो गया, तो वह दोषपूर्ण और स्वस्थ मूल्य के अंतर की राशि वापस ले सकता है। मुक्ति और मुदब्बर बनाने के अलावा अन्य स्थितियों में, ऋणदाताओं को भी यह अधिकार होगा कि वे स्वामी को मूल्य लौटाकर गुलाम ले लें और उसे अपने ऋण के लिए बेच दें। लेकिन यदि स्वामी चाहे कि वह नुकसान का दावा न करे और गुलाम को वैसे ही रख ले, तो वह ऐसा कर सकता है। यदि यह स्थिति किसी दासी के मामले में हो जिसके साथ संदेहवश संभोग किया गया हो और उसका 'उक़्र' (महर) अनिवार्य हो गया हो, तो इस जुड़ी हुई वृद्धि (ज़्यादते मुत्तसिला) के कारण ऋणदाताओं के पास उसे लेने का अधिकार नहीं रहेगा। यदि स्वामी ने माज़ून को बेचा और खरीदार ने उसे दोषपूर्ण कर दिया, फिर ऋणदाताओं ने स्वामी से हर्जाना लिया, और खरीदार को ऐसा पुराना दोष मिला जो नया पैदा नहीं हो सकता था पर साथ ही एक नया दोष भी पैदा हो गया, और खरीदार ने विक्रेता से पुराने दोष के नुकसान की राशि ली, तो विक्रेता ऋणदाताओं से

मूल्य वापस नहीं मांग सकेगा, लेकिन हर्जाने की राशि में से दोष के हिस्से के बराबर राशि वापस ले सकेगा, यह 'मबसूत' में है।

यदि माज़ून गुलाम ने अपनी कमाई की कोई वस्तु अपने स्वामी को बाजार भाव (मिस्ल कीमत) पर बेची, तो यह तब जायज है जब वह ऋणी हो; यदि ऋणी न हो तो जायज नहीं है। जायज होने की स्थिति में, यदि कीमत वसूलने से पहले माज़ून ने वस्तु स्वामी को सौंप दी, तो स्वामी का कीमत चुकाने का दायित्व समाप्त नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है। यदि ऋणी माज़ून ने अपने स्वामी को कम कीमत पर वस्तु बेची, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार यह जायज नहीं है, चाहे नुकसान कम हो या अधिक। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार बिक्री जायज है, चाहे नुकसान कम हो या अधिक, लेकिन स्वामी को विकल्प दिया जाएगा कि वह या तो नुकसान की भरपाई करे या सौदा रद्द कर दे। यह कुछ विद्वानों का मत है; अन्य कहते हैं कि इमाम-ए-आज़म का मत भी साहिबैन जैसा ही है। यदि ऋणी माज़ून ने किसी अजनबी को वस्तु बेची, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार यह जायज है, चाहे बाजार भाव पर हो या कम कीमत पर, और अजनबी से नुकसान की भरपाई नहीं मांगी जाएगी। इमाम-ए-आज़म के अनुसार मूल सिद्धांत यह है कि यदि माज़ून अजनबी से लेनदेन करे तो कम नुकसान...

---

1. उक़्र: वह मेहर जो संभोग के संदेह के कारण अनिवार्य हो। ज़्यादते मुत्तसिला: ऐसी वृद्धि जो गुलाम/संपत्ति से जुड़ी हुई हो।

---

دیا تو عتق مشتری نافذ ہوگا اور اگر قرض خواہوں نے اجازت بیع سے یا مولیٰ نے ان کے قرضہ ادا کرنے سے انکار کیا تو عتق باطل ہوگا اور وہ غلام قرض خواہوں کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور اگر مشتری نے بعد قبضہ کے آزاد کیا تو عتق نافذ ہو جائے گا اور جب بعد قبضہ کے مشتری کا آزاد کرنا نافذ ہوا تو اس کے بعد قرض خواہوں کو اختیار ہوگا چاہیں بیع کی اجازت دے کر ثمن لے لیں یا بائع سے قیمت کی ضمان لیں اور اگر قیمت غلام تاوان لی تو مولیٰ کی بیع نافذ ہو جائے گی اور ثمن اسی کو ملے گا یہ محیط میں ہے اور اگر مشتری نے اس کو آزاد نہ کیا بلکہ بیع یا ہبہ کر کے سپرد کیا پس اگر بیع اول بعض امور مذکورہ کے پائے جانے سے تمام ہوگئی یعنی قرض خواہوں نے اجازت دے دی یا مولیٰ نے قرضہ ادا کر دیا یا ثمن ان کے قرضہ کے ادا کے واسطے کافی تھا وہ انہوں نے لے لیا تو جو تصرف مشتری نے غلام میں کیا ہے وہ نافذ ہو جائے گا اور اگر مولیٰ نے اس کو فروخت نہ کیا بلکہ کسی شخص کو ہبہ کر کے سپرد کر دیا پھر قرض خواہوں کو تاوان قیمت ادا کر دیا تو ہبہ نافذ ہوگا۔ پھر اگر مولیٰ نے بحکم قاضی یا بلا حکم قاضی ہبہ سے رجوع کر لیا تو وہ غلام مولیٰ کو دیا جائے گا اور موہوب لہ پر اس کی کچھ قیمت واجب نہ ہوگی اور نہ قرض خواہوں کو غلام لینے کی کوئی راہ ہوگی۔

پھر اگر مولیٰ نے اس غلام میں کوئی عیب پایا جس سے قیمت میں بہ نسبت اس قیمت کے جو اس نے ڈانڈ بھری ہے نقصان آتا ہے تو مولیٰ کو اختیار ہوگا کہ قرض خواہوں کو غلام دے کر اپنی قیمت واپس کر لے اور اگر ہبہ سے رجوع کرنے کے بعد عیب پر واقف ہونے سے پہلے مولیٰ نے اس کو آزاد یا مدبر کر دیا یا اس میں کوئی عیب پیدا ہو گیا تو جس قدر صحیح سالم کی قیمت اور عیب دار کی قیمت میں تفاوت ہے اس قدر نقصان واپس لے سکتا ہے مگر آزاد اور مدبر کرنے کی

صورت کے سوائے اور صورت میں قرض خواہوں کو یہ بھی اختیار ہوگا کہ غلام کی قیمت مولیٰ کو واپس کر کے غلام کو لے کر اپنے قرضہ میں فروخت کریں لیکن اگر مولیٰ یہ چاہے کہ قرض خواہوں سے نقصان کا مطالبہ نہ کرے اور غلام کو یوں ہی عیب دار لے لے تو کر سکتا ہے اور اگر یہ صورت باندی میں جس سے شبہ کی وجہ سے وطی کر لی گئی اور اس کا عقر لازم آیا ہے واقع ہوئی ہو تو اس زیادہ متصلہ کے پیدا ہو جانے کی وجہ سے قرض خواہوں کو اس کے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی۔ اگر مولیٰ نے ماذون کو فروخت کیا اور مشتری نے اس کو عیب دار کر دیا پھر قرض خواہوں نے مولیٰ سے قیمت ڈانڈ لی پھر مشتری نے غلام میں ایسا عیب پایا جس کے مثل پیدا نہیں ہو سکتا ہے اور اس میں دوسرا عیب پیدا ہو گیا اور مشتری نے بائع سے قیمت نقصان عیب قدیم واپس لی تو بائع کو اختیار نہ ہوگا کہ قرض خواہوں سے قیمت واپس لے مگر جو قیمت ضمان میں دی ہے اس میں سے بقدر حصہ عیب کے واپس لے سکتا ہے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر غلام ماذون نے اپنے مولیٰ کے ہاتھ کوئی چیز اپنی کمائی کی چیزوں میں سے بعوض مثل قیمت کے فروخت کر دی تو جائز ہے بشرطیکہ قرض دار ہو اور اگر قرض دار نہ ہو تو جائز نہیں ہے اور صورت جواز میں اگر ثمن وصول کرنے سے پہلے ماذون مدیون نے مبیع اپنے مولیٰ کے سپرد کر دی تو مولیٰ کے ذمہ سے ثمن ساقط نہ ہوگا یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون مدیون نے کم قیمت پر اپنے مولیٰ کے ہاتھ فروخت کی تو امام اعظم کے نزدیک نہیں جائز ہے خواہ تھوڑا نقصان ہو یا بہت ہو اور صاحبین کے نزدیک بیع جائز ہے خواہ نقصان قلیل ہو یا کثیر ہو مگر مولیٰ کو یہ اختیار دیا جائے گا کہ یا تو اس نقصان کو پورا کر دے یا بیع توڑ دے اور یہ جو ہم نے بیان کیا یہ بعض مشائخ کا بیان ہے بعض مشائخ نے فرمایا کہ صحیح یہ ہے کہ امام اعظم کا قول صاحبین کے قول کے مثل ہے اور اگر ماذون مدیون نے کسی اجنبی کے ہاتھ فروخت کی تو امام اعظم کے نزدیک جائز ہے خواہ مثل قیمت پر فروخت کی ہو یا بنقصان قلیل یا بنقصان کثیر فروخت کی ہو اور

اجنبی سے یہ نہ کہا جائے گا کہ ثمن کا نقصان اس کی قیمت تک پورا کر دے پس امام اعظم کے نزدیک اصل یہ ہے کہ ماذون نے اگر اجنبی کے ساتھ معاملہ کیا تو نقصان قلیل و

---

۱۔ عقر وہ مہر جو وطی شبہ کی وجہ سے لازم آئے زیادت متصلہ ایسی زیادتی ہے جو مملوک سے متصل ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 39 | Kitab al-Ma'zun**

A substantial loss can be borne, and according to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, if a sale is made to a stranger at a fair price or with only such a loss that people generally tolerate, it is valid. In the event of such a loss, the purchaser (Mushtari) shall not be asked to increase the price to the full market value, as stated in *Al-Mughni*. If an authorized slave (Ma'zun) bought or sold something from his possessed trade goods during the terminal illness (*Maradh al-Mawt*) of his master (Mawla), and then the master passed away during that illness, and the slave had granted a 'Muhabat'[1] (price concession/favor) in that transaction, then according to Imam Azam (Abu Hanifa), this concessionary sale is valid if the loss is within what people generally tolerate, provided the concession does not exceed one-third of the master’s total estate.

If it exceeds one-third of the master's estate, the purchaser shall be given an option (Khiyar) to either pay the amount exceeding the one-third limit or rescind the sale. Conversely, if the master is healthy and the authorized slave conducts a sale with a concession and incurs a loss, whether people generally tolerate it or not, then according to Imam Azam, the sale is valid in any case, whether the loss from the concession exceeds one-third of the master's estate or not. This is entirely the view of Imam Azam. According to the *Sahibain* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), if the authorized slave grants such a concession in a transaction that people would tolerate as a reasonable loss, it is valid and the goods shall be handed over to the purchaser, provided the loss does not exceed one-third of the master's estate. If it exceeds that limit, the purchaser shall have the choice to either make up the difference or rescind the sale, just as if the master himself had conducted such a transaction. However, if the authorized slave incurs such a loss and grants such a concession that people do not generally tolerate, then according to the *Sahibain*, the sale is not valid, even if the purchaser says, "I will make up the amount of the loss and will not rescind the sale." This is the view of the *Sahibain*. All of this applies when there is no debt upon the slave. If there is such a debt upon him that it encompasses his value and possessed assets, and he grants a small or large concession, then according to the *Sahibain*[2], by consensus, the same ruling applies as mentioned for the case of a slave without debt; this is in *Al-Muhit*.

If there is no debt on the authorized slave but there is a debt on the master, there are two scenarios: one where the master's debt encompasses his entire estate, and the other where it does not. If it encompasses the entire estate and the slave has granted

a concession in a transaction, the concession shall not be granted to the purchaser, whether it is small or large. However, in the case of a small concession, by consensus, the purchaser shall be given the option to either make up the loss or rescind the sale; this same ruling applies to the master's own transactions. If the concession is large (*Muhabat al-Kathirah*), there is a difference of opinion: according to Imam Azam, the purchaser is given the choice, while according to the *Sahibain*, the choice is not given —meaning the sale is void. If the debt does not encompass the master's entire estate, the slave's sale is valid whether the concession is small or large, and the goods shall be handed over to the purchaser, provided that after paying the debt, the concession does not exceed one-third of the remaining estate. If after debt settlement the concession exceeds one-third of the estate, the purchaser shall be given an option, and the slave's sale shall be treated like a sale conducted by the master himself. This is the view according to Imam Azam. According to the *Sahibain*, if the concession is small, the sale is valid and the concession is granted to the purchaser, provided that after debt settlement, the concession does not exceed one-third of the remaining estate[3]. If it exceeds it, the concession shall not be granted to the purchaser, but they will be given the option. If the concession is large, according to the *Sahibain*, the purchaser shall not be given an option. And if there is so much debt upon the master that...

---

[1] Muhabat: Selling at a price below market value to benefit the purchaser. [2] Mentioned in the book as the view of both, and the correct view is that it is by consensus between the *Sahibain* and the Imam. [3] Exceeding: Meaning that after paying the debt, one-third of the remainder is equal to or greater than the concession granted.

बड़ी मात्रा में नुकसान सहन किया जा सकता है, और इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद के अनुसार, यदि किसी अजनबी व्यक्ति को उचित मूल्य पर या केवल इतने नुकसान पर बेचा जाए जिसे लोग सामान्य रूप से स्वीकार करते हैं, तो यह वैध है। ऐसी स्थिति में खरीदार (मुश्तरी) से यह नहीं कहा जाएगा कि वह कीमत को पूरी बाजार कीमत तक बढ़ा दे, जैसा कि 'अल-मुग़नी' में उल्लेखित है। यदि एक अधिकृत दास (ग़ुलाम माज़ून) ने अपने व्यापारिक माल से स्वामी (मौला) के'मरण-रोग' (मरज़ुल मौत) के दौरान कोई चीज़ खरीदी या बेची, और फिर स्वामी का उसी बीमारी में निधन हो गया, और दास ने उस लेनदेन में 'मुहाबात' (रियायती मूल्य)[1] की थी, तो इमाम आज़म के अनुसार, यह रियायती बिक्री वैध है यदि नुकसान उतना ही हो जितना लोग सामान्यतः स्वीकार कर लेते हैं, बशर्ते कि यह रियायत स्वामी की कुल संपत्ति के एक-तिहाई भाग से अधिक न हो।

यदि यह एक-तिहाई से अधिक हो जाती है, तो खरीदार को विकल्प (खियार) दिया जाएगा कि वह या तो एक-तिहाई से अधिक के नुकसान की भरपाई कर दे या सौदा रद्द कर दे। इसके विपरीत, यदि स्वामी स्वस्थ हो और अधिकृत दास ने रियायती मूल्य पर बिक्री की और ऐसा नुकसान उठाया जिसे लोग सामान्यतः स्वीकार करते हों या न करते हों, तो इमाम आज़म के अनुसार यह बिक्री हर तरह से वैध है, चाहे वह रियायत स्वामी की एक-तिहाई संपत्ति से अधिक हो या नहीं। यह सब इमाम आज़म का मत है। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार, यदि दास ने लेनदेन में इतनी रियायत दी कि लोग उसे सामान्य नुकसान मानें, तो यह वैध है और माल खरीदार को दे दिया जाएगा, बशर्ते नुकसान स्वामी की एक-तिहाई संपत्ति से अधिक न हो। यदि यह अधिक हो, तो खरीदार को अधिकार होगा कि वह कमी पूरी करे या सौदा रद्द करे, जैसा कि यदि स्वामी ने स्वयं ऐसा लेनदेन किया होता तो यही नियम लागू होता। यदि दास ने इतना बड़ा नुकसान उठाया जिसे लोग स्वीकार नहीं करते, तो साहिबैन के अनुसार सौदा वैध नहीं होगा, भले ही खरीदार नुकसान की भरपाई करने की बात कहे। यह साहिबैन का मत है। यह सब तब लागू होता है जब दास पर कोई ऋण न हो। यदि दास पर इतना ऋण हो कि वह उसके मूल्य और संपत्ति को घेर ले, और उसने कम या अधिक रियायत दी हो, तो साहिबैन के अनुसार[2] सर्वसम्मति से वही नियम लागू होगा जो ऋण न होने की स्थिति में वर्णित है; यह 'अल-मुहीत' में है।

यदि दास पर ऋण नहीं है बल्कि स्वामी पर ऋण है, तो इसकी दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि ऋण स्वामी की पूरी संपत्ति को घेर ले, और दूसरी यह कि वह उसे न घेरे। यदि ऋण पूरी संपत्ति के बराबर

है और दास ने रियायती सौदा किया है, तो रियायत खरीदार को नहीं दी जाएगी, चाहे वह कम हो या अधिक। हालांकि, कम रियायत की स्थिति में सर्वसम्मति से खरीदार को विकल्प दिया जाएगा कि वह नुकसान की भरपाई करे या सौदा रद्द करे। स्वामी के स्वयं के सौदों में भी यही नियम है। यदि रियायत बहुत अधिक (मुहाबात-ए-कसीर) हो, तो मतभेद है: इमाम आज़म के अनुसार खरीदार को विकल्प दिया जाएगा, जबकि साहिबैन के अनुसार विकल्प नहीं दिया जाएगा, अर्थात सौदा अमान्य होगा। यदि ऋण स्वामी की पूरी संपत्ति को नहीं घेरता है, तो दास का सौदा वैध होगा चाहे रियायत कम हो या अधिक, और माल खरीदार को सौंपा जाएगा, बशर्ते कि ऋण चुकाने के बाद शेष संपत्ति के एक-तिहाई से अधिक रियायत न हो। यदि ऋण के बाद एक-तिहाई से अधिक हो, तो खरीदार को विकल्प दिया जाएगा और दास के सौदे को स्वामी के स्वयं के सौदे की तरह माना जाएगा। यह इमाम आज़म का मत है। साहिबैन के अनुसार, यदि रियायत कम है तो सौदा वैध है, बशर्ते ऋण के बाद शेष संपत्ति के एक-तिहाई से अधिक रियायत न हो[3]। यदि वह अधिक है, तो रियायत खरीदार को नहीं दी जाएगी, लेकिन उसे विकल्प दिया जाएगा। यदि रियायत बहुत अधिक है, तो साहिबैन के अनुसार खरीदार को कोई विकल्प नहीं दिया जाएगा। और यदि स्वामी पर इतना ऋण हो कि...

---

[1] मुहाबात: खरीदार को लाभ पहुँचाने के लिए बाजार मूल्य से कम पर बेचना। [2] पुस्तक में दोनों के लिए इसका उल्लेख है, और सही यह है कि साहिबैन और इमाम साहब के बीच इस पर सहमति है। [3] उल्लंघन: अर्थात ऋण चुकाने के बाद शेष का एक-तिहाई उतना ही हो जितनी रियायत दी गई है, या उससे अधिक हो।

کثیر کا تحمل ہو سکتا ہے اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک اگر اجنبی شخص کے ہاتھ برابر قیمت پر یا فقط اس قدر نقصان ہو کہ لوگ اس کو اندازہ سے برداشت کرتے ہیں فروخت کیا تو جائز ہے اور ایسے نقصان کی صورت میں مشتری سے یہ نہ کہا جائے گا کہ ثمن کو پوری قیمت تک بڑھا دے کذا فی المغنی۔ اگر غلام ماذون نے اپنے مقبولہ مال تجارت سے مولیٰ کے مرض الموت میں کوئی چیز خریدی یا فروخت کی پھر مولیٰ نے اس مرض میں انتقال کیا اور غلام نے اس خرید و فروخت میں محاباۃ۱۸ کی تھی امام اعظمؒ کے نزدیک یہ بیع محاباۃ اگر ایسے نقصان کے ساتھ ہو کہ جس قدر لوگ اپنے اندازہ سے برداشت کر لیتے ہیں تو جائز ہے بشرطیکہ محاباۃ اس قدر نہ ہو کہ مولیٰ کے تہائی مال سے تجاوز کر جائے۔

اگر مولیٰ کے تہائی مال سے تجاوز کیا تو مشتری کو خیار دیا جائے گا چاہے تہائی سے زائد جس قدر نقصان ہے وہ ادا کر دے یا بیع توڑ دے اور نہ ادا کرے بخلاف اس کے اگر مولیٰ صحیح و تندرست ہو اور غلام ماذون نے محاباۃ کے ساتھ بیع کی اور ایسا غبن اٹھایا کہ لوگ اپنے اندازہ میں برداشت کرتے ہیں یا نہیں کرتے ہیں تو امام اعظمؒ کے نزدیک ہر طرح بیع جائز ہے خواہ محاباۃ کا نقصان تہائی مال مولیٰ سے تجاوز کرے یا نہ کرے اور یہ سب امام اعظمؒ کا قول ہے اور صاحبین کے نزدیک اگر ماذون نے خرید و فروخت میں اس قدر محاباۃ کی کہ لوگ اندازہ میں ایسا خسارہ اٹھاتے ہیں تو جائز ہے اور مشتری کو مبیع دے دی جائے گی بشرطیکہ مقدار نقصان مولیٰ کے تہائی مال سے تجاوز نہ کرنے اور اگر تجاوز کرے تو مشتری مختار ہوگا چاہے پورا کر دے یا بیع توڑ دے جیسا کہ اگر مولیٰ نے خود خرید و فروخت کرنے میں ایسی محاباۃ کی ہوتی تو یہی حکم تھا اور اگر ماذون نے اس قدر نقصان اٹھایا اور محاباۃ کی کہ لوگ اپنے اندازہ میں نہیں برداشت

کرتے ہیں تو صاحبین کے نزدیک بیع جائز نہ ہوگی یہاں تک کہ اگر مشتری نے یہ بھی کہا کہ میں مقدار نقصان پورا کرتا ہوں اور بیع نہ توڑو گا تو اس کو یہ استحقاق نہیں ہے۔ یہ صاحبین کا قول ہے اور یہ سب جو ہم نے ذکر کیا اس وقت ہے کہ غلام پر قرضہ نہ ہو اور اگر اس پر اس قدر قرضہ ہو کہ اس کے رقبہ اور مال مقبوضہ کو محیط ہو یا نہ ہو اور اس نے خرید و فروخت میں قلیل یا کثیر محاباۃ کی تو صاحبین کے نزدیک۲۸ بالاتفاق وہی حکم ہے جو غلام کے مقروض نہ ہونے کی صورت میں ہم نے بیان کیا ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر ماذون پر قرضہ نہ ہو بلکہ مولیٰ پر قرضہ ہو تو اس میں دو صورتیں ہیں ایک یہ ہے کہ قرضہ مولیٰ کے تمام مال کو محیط ہو دوسرے یہ کہ محیط نہ ہو پس اگر مولیٰ کے تمام مال کو محیط ہو اور ماذون نے خرید و فروخت میں محاباۃ کی تو محاباۃ مشتری کو سپرد نہ کی جائے گی خواہ قلیل ہو یا کثیر ہو مگر قلیل محاباۃ کی صورت میں بالاجماع مشتری مختار کیا جائے گا کہ چاہے مقدار نقصان کو پورا کر دے یا بیع توڑ دے چنانچہ خود مولیٰ کی خرید و فروخت میں یہی حکم ہے اور اگر محاباۃ کثیر ہو تو مسئلہ میں اختلاف ہے امام اعظمؒ کے نزدیک مشتری کو اختیار دیا جائے گا اور صاحبینؒ کے نزدیک نہ دیا جائے گا قلت۔ یعنی بیع باطل ہوگی اور اگر قرضہ تمام مال مولیٰ کو محیط نہ ہو تو ماذون کی بیع جائز ہوگی خواہ محاباۃ قلیل ہو یا کثیر ہو اور مبیع مشتری کے سپرد کی جائے گی بشرطیکہ بعد ادائے قرضہ کے باقی مال مولیٰ کی تہائی سے زائد محاباۃ نہ ہو اور اگر بعد قرضہ کے تہائی مال مولیٰ سے محاباۃ تجاوز کرے تو مشتری مختار کیا جائے گا اور ماذون کی بیع مثل مولیٰ کے خود بیع کرنے کے قرار دی جائے گی اور یہ امام اعظمؒ کے نزدیک ہے اور صاحبین کے نزدیک اگر محاباۃ قلیل ہو تو خرید و فروخت جائز ہے اور محاباۃ مشتری کے سپرد کی جائے گی بشرطیکہ بعد قرضہ کے باقی مال مولیٰ کی تہائی سے محابات تجاوز نہ۳۸ کرے اور اگر تجاوز کرے تو محابات مشتری کے سپرد نہ کی جائے گی، مگر مشتری کو اختیار

دیا جائے گا اور اگر محابات کثیر ہو تو صاحبین کے نزدیک مشتری کو اختیار نہ دیا جائے گا اور اگر مولیٰ پر اس قدر قرضہ ہو کہ

---

۱ محاباۃ قیمت سے کم داموں پر مشتری کو نفع پہنچانے کے لیے فروخت کرنا۔ ۲ کتاب میں عندھما جمیعاً مذکور ہے اور صحیح یہ کہ صاحبین اور امام صاحب کے نزدیک بالاتفاق ہے۔ ۳ تجاوز یعنی قرضہ ادا کر کے باقی کی تہائی اسی قدر ہو جس قدر محابات ہے یا زیادہ ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (40) Kitab al-Ma’zun**

If the slave's value (raqaba) and the property in his possession are encompassed by a "muhabat" (a transaction at a preferential price below market value or above it), the muhabat shall not be handed over to the purchaser, whether it is minor or major. However, in the case of a minor muhabat, the purchaser shall be given the option [to complete the price]; this is by consensus (ijma'). If the muhabat is major, according to Imam al-Azam [Abu Hanifa], the same ruling applies: the purchaser is given the choice. According to the two companions [Sahibayn – Abu Yusuf and Muhammad al-Shaybani], the purchaser is not given a choice. All that we have mentioned applies when the authorized slave (ma'zun) conducts a muhabat with a stranger. If the master (mawla) engages in such muhabat with some of his heirs and dies in that same illness, then according to Imam al-Azam, the sale is void (batil) and the heir is not given a choice. According to the Sahibayn, the sale is valid (ja’iz) and the heir is given the choice either to annul the sale or to complete the full market price. No part of the muhabat shall be handed over to the heir even if it falls within one-third of the master’s estate. However, if the other heirs grant permission, it may be allowed. This ruling applies regardless of whether the master or the slave is in debt or not; this is stated in *Al-Mughni*. If the master sells something to the ma'zun slave at its market value or less, it is valid. However, if the sold item (mabi') is handed over to the slave before the price is collected, the claim for the price becomes void. When the price becomes void, it is as if the sale was made without a price, thus the sale becomes invalid. The "voidness of price" means that the delivery of price and its demand are nullified, and the master has the option to take back the sold item; this is in *Al-Jawhara an-Nayyira*. If the master retains the sold item to ensure the payment of the price, it is valid, similar to selling to one's mukatib (manumitted slave under contract); this is mentioned in *Al-Kafi*. If the price was fixed as some goods/commodities, the master has the right to demand those goods purchased from the slave; this is in *Al-Mughni*. If the master sells his goods to his ma'zun slave for a price higher than the market value, whether the excess is minor or major, the excess amount shall not be handed over to the master, and the master shall have the option (khiyar) either to annul the sale or to reduce the price by the excess amount; this is in *Al-Kafi*. If an indebted ma'zun slave is sold a piece of cloth by his master from the master's own property, the price of that cloth shall be a debt owed by the slave to the master. Once the cloth is sold, the master will recover his debt from the proceeds first, and then the remaining creditors will receive their share. If there is a shortfall, the debt shall

be void to the extent of the loss; this is narrated from *Abana* in *Tatarkhaniya*. If two partners are owed a debt by a ma'zun slave, where some part is due immediately and some is on term (deferred), and the master gifts (hibbah) the slave to one partner and hands him over, the other partner has the option to annul the gift. If he annuls it, the slave shall be sold, and the partner who annulled the gift shall recover his full debt from the proceeds. Whatever remains belongs to the master. Neither the donee’s partner nor the master nor the slave shall have any right over it. If the master sells that slave to one partner for a thousand dirhams while his actual value was two thousand dirhams, and the second partner annuls the sale (whether before or after possession), the slave shall be sold for the benefit of both, and they shall share the proceeds between them. No part of the purchaser's debt shall be void. If the ma'zun slave has a deferred debt and the master sells him to the creditor at market price or higher, the master is entitled to the price until the debt becomes due. At that time, the master shall hand over the price to the creditor. If the price is lost while in the master's possession, the creditor has no recourse to claim it from the master.

**Footnotes:** 1. "Supurd na mana'" means it will not be given according to anyone, but in cases of minor or major muhabat, according to the Imam, the purchaser will be told to either complete the price or rescind, whereas the Sahibayn disagreed regarding major muhabat. 2. "Istifa'" means to collect in full; the excess amount that the master increased in price from the indebted slave is the right of the creditors.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (40) किताब अल-माज़ून**

यदि गुलाम की गर्दन (मूल्य) और उसके पास मौजूद धन (मल्-ए-मक़्बूज़ा) पर मुहाबात (कीमत में पक्षपात/रियायत) हावी हो, तो मुहाबात खरीदार (मुश्तरी) को नहीं सौंपी जाएगी, चाहे वह कम हो या ज़्यादा। लेकिन कम मुहाबात की स्थिति में खरीदार को विकल्प (अख्तियार) दिया जाएगा, यह सर्वसम्मति (इज्मा) से है। यदि मुहाबात ज़्यादा हो, तो इमाम-ए-आज़म के निकट भी यही नियम है कि खरीदार को विकल्प दिया जाएगा, जबकि साहिबैन (दो साथियों - इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के निकट उसे विकल्प नहीं दिया जाएगा। यह सब जो हमने उल्लेख किया है, उस समय है जब माज़ून (अधिकृत गुलाम) ने किसी अजनबी के लिए मुहाबात की हो। और यदि मालिक (मौला) ने अपने कुछ उत्तराधिकारियों के साथ ऐसे लेन-देन में मुहाबात की हो और मालिक उसी बीमारी में मर गया, तो इमाम-ए-आज़म के निकट वह बिक्री (बै'अ) शून्य (बातिल) होगी और उत्तराधिकारी को विकल्प नहीं दिया जाएगा। साहिबैन के निकट बिक्री वैध होगी और उत्तराधिकारी को विकल्प दिया जाएगा कि वह चाहे तो बिक्री रद्द कर दे या पूरी कीमत (समन) चुका दे। और मुहाबात में से कुछ भी उत्तराधिकारी को नहीं सौंपा जाएगा, भले ही वह मालिक की संपत्ति के एक-तिहाई हिस्से से पूरी हो सकती हो। लेकिन अगर बाकी उत्तराधिकारी अनुमति दे दें, तो यह संभव है। और यही नियम होगा चाहे मालिक पर कर्ज हो या न हो, या गुलाम पर कर्ज हो या न हो, यह 'मुग़नी' में लिखा है। यदि मालिक ने माज़ून के हाथ कोई चीज़ उसकी वास्तविक कीमत पर बेची या उससे कम पर बेची, तो यह वैध है। फिर यदि कीमत वसूल करने से पहले बेची गई वस्तु (मबी') उसे सौंप दी गई, तो कीमत का दावा शून्य हो जाएगा। और जब कीमत शून्य हुई, तो ऐसा माना जाएगा जैसे उसने बिना कीमत के ही बेच दी, इसलिए बिक्री वैध नहीं होगी। कीमत के शून्य होने का अर्थ है कि कीमत का भुगतान और उसकी मांग अमान्य होगी, और मालिक को अधिकार है कि वह बिक्री वापस ले ले, यह 'जौहरा नय्यिरा' में है। और यदि मालिक ने कीमत की वसूली के लिए बेची गई वस्तु को रोक लिया, तो यह वैध है, जैसे अपने मुकातिब (संविदात्मक गुलाम) के हाथ बेचना वैध है, जैसा कि 'काफ़ी' में उल्लेखित है। यदि कीमत के बदले कोई सामान तय हुआ हो, तो मालिक को अधिकार होगा कि जो सामान गुलाम से खरीदा है, उसकी मांग करे, यह 'मुग़नी' में है। और यदि मालिक ने अपना सामान अपने माज़ून को उसकी वास्तविक कीमत से अधिक पर बेचा, चाहे वह अधिकता कम हो या ज़्यादा, तो वह अतिरिक्त राशि मालिक को नहीं सौंपी जाएगी और मालिक को विकल्प (खियार) होगा कि चाहे तो बिक्री रद्द कर दे या कीमत में से उस अतिरिक्त राशि को कम कर दे, यह 'काफ़ी' में है। यदि एक

ऋणी माज़ून गुलाम के हाथ उसके मालिक ने अपनी संपत्ति से एक कपड़ा बेचा, तो उस कपड़े की कीमत गुलाम पर मालिक का कर्ज मानी जाएगी। कपड़ा बिकने के बाद उसकी कीमत से मालिक अपना कर्ज वसूल कर लेगा, फिर शेष हिस्सा अन्य लेनदारों का होगा। और यदि इसमें नुकसान हुआ, तो नुकसान की सीमा तक कर्ज शून्य हो जाएगा, यह 'तातारखनिया' में 'अबाना' से उद्धृत है। यदि माज़ून पर दो साझेदारों का कर्ज हो, जिनमें से कुछ अभी देय हो और कुछ भविष्य की तारीख पर, और मालिक ने उस गुलाम को एक साझेदार को उपहार (हिबा) में दे दिया, तो दूसरे साझेदार को उपहार रद्द करने का अधिकार है। यदि उसने रद्द कर दिया, तो गुलाम को बेचा जाएगा और उसकी कीमत से वह साझेदार जिसने उपहार रद्द किया है, अपना पूरा कर्ज वसूल कर लेगा, और जो शेष बचेगा वह मालिक का होगा। उपहार प्राप्त करने वाले का साझेदार, या मालिक और गुलाम पर कोई अधिकार नहीं होगा। यदि मालिक ने वह गुलाम एक साझेदार को एक हजार दिरहम में बेच दिया जबकि उसकी वास्तविक कीमत दो हजार दिरहम थी, और दूसरे साझेदार ने बिक्री रद्द कर दी, चाहे कब्जे से पहले या बाद में, तो वह गुलाम दोनों के लिए बेचा जाएगा और दोनों उसकी कीमत आपस में बांट लेंगे, और खरीदार का कुछ कर्ज शून्य नहीं होगा। यदि माज़ून पर भविष्य का कर्ज हो और मालिक ने माज़ून को लेनदार की कीमत या उससे अधिक पर बेचा, तो मालिक उस कीमत का हकदार है जब तक कि कर्ज चुकाने की समय-सीमा न आ जाए, तब मालिक वह कीमत उसके लेनदार को सौंप देगा। और यदि वह कीमत मालिक के पास रहते हुए नष्ट हो गई, तो लेनदार के पास मालिक से उसे वसूल करने का कोई रास्ता नहीं है।

**पाद टिप्पणियाँ:** १. 'सुपुर्द न मानअ' का अर्थ है कि किसी के निकट नहीं दी जाएगी, लेकिन कम और अधिक के मामले में इमाम के निकट खरीदार से कहा जाएगा कि वह कमी पूरी कर दे, और साहिबैन ने 'ज़्यादा' की स्थिति में मतभेद किया है। २. 'इस्तीफ़ा' का अर्थ है पूरा वसूल करना; मालिक ने ऋणी गुलाम से जो कीमत में वृद्धि की है, वह लेनदारों का अधिकार है।

---

غلام کے رقبہ اور اس کے پاس کے مقبوضہ مال کو محیط ہو تو محابات مشتری کے سپرد نہ کی جائے گی خواہ قلیل ہو یا کثیر ہو مگر قلیل محابات کی صورت میں مشتری کو اختیار دیا جائے گا یہ بالا جماع ہے۔ اگر کثیر ہو تو بھی امام اعظمؒ کے نزدیک یہی حکم ہے کہ مشتری مختار کیا جائے گا اور صاحبین کے نزدیک مختار نہیں کیا جائے گا اور یہ سب جو ہم نے ذکر کیا ہے اس وقت ہے کہ ماذون نے اجنبی کے واسطے محابات کی ہو اور اگر مولیٰ کے بعض وارثوں کے ساتھ معاملہ میں ایسی محابات کی ہو اور مولیٰ اسی مرض میں مر گیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک بیع باطل ہو گی اور وارث کو اختیار نہ دیا جائے گا اور صاحبین کے نزدیک بیع جائز ہو گی اور وارث کو اختیار دیا جائے گا کہ چاہے بیع توڑ دے یا پوری قیمت تک ثمن پورا کر دے اور محابات میں سے کچھ بھی وارث کو سپرد نہ کیا جائے گا اگرچہ مولیٰ کے تہائی مال میں برآمد ہوتی ہو لیکن اگر باقی وارث لوگ اجازت دے دیں تو ہو سکتا ہے اور یہی حکم ہو گا خواہ مولیٰ پر قرضہ ہو یا نہ ہو غلام پر قرضہ ہو یا نہ ہو یہ مغنی میں لکھا ہے اور اگر مولیٰ نے ماذون کے ہاتھ کوئی چیز اس کے مثل قیمت پر فروخت کی یا مثل سے کم پر فروخت کی تو جائز ہے پھر اگر ثمن وصول کرنے سے پہلے مبیع اس کے سپرد کر دی تو ثمن باطل ہو جائے گا اور جب ثمن باطل ہوا تو ایسا ہو گیا کہ گویا اس نے بغیر ثمن فروخت کر دی پس بیع جائز نہ ہو گی اور بطلانِ ثمن سے یہ مراد ہے کہ تسلیم ثمن و اس کا مطالبہ باطل ہو گا اور مولیٰ کو اختیار ہے کہ بیع کو واپس کرے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے اور اگر مولیٰ نے مبیع کو استیفائے ثمن کے واسطے روک لیا تو جائز ہے جیسے اپنے مکاتب کے ہاتھ فروخت کرنا جائز ہے کذا فی الکافی۔ اگر ثمن میں کوئی اسباب ٹھہرا ہو تو مولیٰ کو اختیار ہو گا کہ جو اسباب غلام سے خریدا ہے اس کا مطالبہ کرے یہ مغنی میں ہے اور اگر مولیٰ

نے اپنی متاع اپنے ماذون کے ہاتھ فروخت کی اور اس کی قیمت سے زیادہ داموں پر خواہ زیادتی قلیل ہو یا کثیر ہو فروخت کی تو زیادتی مولیٰ کے سپرد نہ کی جائے گی اور مولیٰ کو خیار ہو گا کہ چاہے بیع توڑ دے یا قیمت میں سے زیادتی کو کم کر دے یہ کافی میں ہے۔ اگر ایک غلام ماذون قرض دار ہو اور اس کے ہاتھ اس کے مولیٰ نے اپنے مقبوضہ مال سے ایک کپڑا فروخت کیا تو اس کپڑے میں مولیٰ کا غلام پر ثمن بطور قرضہ کے رہے گا کہ کپڑا فروخت ہو کر اس کے ثمن میں سے مولیٰ اپنا قرضہ وصول کر لے گا پھر باقی قرض خواہوں کا حصہ ہو گا اور اگر اس میں نقصان رہا تو بقدر نقصان کے قرضہ باطل ہو جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ابانہ سے منقول ہے۔ اگر ماذون پر دو شریکوں کا قرضہ ہو بعض قرضہ فی الحال واجب الادا ہو اور بعض میعادی ہو مولیٰ نے وہ غلام ایک شریک کو ہبہ کر کے سپرد کر دیا تو دوسرے شریک کو ہبہ توڑ دینے کا اختیار ہے اور اگر اس نے توڑ دیا تو غلام فروخت کیا جائے گا اور اس کے ثمن سے یہ شریک جس نے ہبہ توڑا ہے اپنا قرضہ سب وصول کر لے گا اور جو باقی رہا وہ مولیٰ کا ہو گا اور موہوب لہ کا شریک یا مولیٰ و غلام پر کچھ حق نہ ہو گا اور اگر مولیٰ نے وہ غلام ایک شریک کے ہاتھ ہزار درہم کو فروخت کیا حالانکہ قیمت اس کی دو ہزار درہم تھی اور دوسرے شریک نے بیع توڑ دی خواہ قبضہ سے پہلے یا بعد تو وہ غلام دونوں کے واسطے فروخت کیا جائے گا اور دونوں اس کے ثمن کو باہم تقسیم کر لیں گے اور مشتری کا کچھ قرضہ باطل نہ ہو گا اور اگر ماذون پر میعادی قرضہ ہو اور مولیٰ نے ماذون کو قرض خواہ کے ہاتھ کی قیمت یا زیادتی پر فروخت کیا تو ثمن کا مولیٰ مستحق ہے یہاں تک کہ ادائے قرض کی میعاد آ جائے تب وہ ثمن مولیٰ اس کے قرض خواہ کے سپرد کر دے گا اور اگر مولیٰ کے پاس وہ ثمن تلف ہو گیا تو قرض خواہ کو مولیٰ سے لینے کی کوئی راہ نہیں ہے۔

حواشی: ۱ سپرد نہ مانع یعنی کسی کے نزدیک نہ دی جائے گی لیکن قلیل و کثیر میں امام کے نزدیک مشتری سے کہا جائے گا کہ چاہے کمی پوری کر دے اور صاحبین نے کثیر میں اختلاف کیا ہے۔ ۲ استیفاء پورا وصول کرنا مولیٰ نے مقروض غلام سے جو ثمن میں بڑھا لیا وہ قرض خواہوں کا حق ہے۔

---

Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'zun)
**Explanation of a Complex Case of Manumission (Itāq)** If there is a debt against an authorized slave (Ma'zun) owed to someone else, similar to the debt of the buyer, and its term has matured, the master (Mawla) shall be the guarantor (Zamin) for half of the price and deliver it to him. That price will belong solely to him; the buyer cannot be a partner in it, whether he was a partner in the original debt or not. If the buyer did not become a partner in the amount received, it shall not be handed over to him; rather, the master will take it from him, and then the other partner (who did not buy the slave) will come and take it from the master; this is recorded in 'Al-Mabsoot'. The master does not have the authority to sell an indebted Ma'zun. However, if the creditors grant permission for the sale, or the master pays off their debt, or the judge (Qadi) himself orders the sale, then the sale is valid; this is in 'Siraj al-Wahaj'. If the Ma'zun has a term-debt and the master sells him before the term expires, the sale is valid because a term-debt does not prevent the master from selling. When the term arrives, the creditor will not have the right to annul the sale but can seek a guarantee for the price from the master; this is in 'Fatawa Qadi Khan'. If the master manumits (frees) a Ma'zun who has heavy debts, the manumission is valid, and the master must compensate the creditors with the slave's price. If the price and debt are equal, the debt is settled. If the price is less, the Ma'zun will be liable for the remaining debt after freedom, meaning the creditors will claim it from him. If the price is less than the debt, the master will be a guarantor only up to the amount of the debt; this is in 'Al-Kafi'.

If the Ma'zun has no debt but has accidentally killed a free person or another slave, and the master frees him, then if the master was aware of this offense (Janāyat), his act of freeing constitutes an election to pay the ransom (Fidya). Therefore, if the victim was free, he must pay the blood money (Diyat), and if the victim was a slave, he must pay his value. However, if the value exceeds ten thousand dirhams, it shall be reduced by ten dirhams. If the master was unaware of the offense, he shall pay the slave's value as compensation, but if the value reaches ten thousand dirhams, ten dirhams shall be deducted from it; this is in 'Al-Mabsoot'. If the debt and the criminal liabilities are encompassing (exceed the slave's value), and the master frees him knowing this, he shall pay the full price as compensation to both the creditors and the victims' guardians. However, if it exceeds ten thousand dirhams, ten dirhams shall be reduced; this is in 'Al-Tahdhib'. If the master grants permission for trade to a 'Mudabbir' (a slave promised freedom after the master's death) or an 'Umm Walad' (a

slave who has borne the master's child), and both incur debts, and the master then frees them, he will not be liable for compensation, nor will the guarantee of the price of the Mudabbir or Umm Walad be mandatory; as stated in 'Al-Kafi'.

If the Ma'zun has so much debt that it encompasses (exceeds) his person and possessed property, and in this state, the master frees a bondwoman possessed by the Ma'zun, but then the debts are paid off or creditors forgive the Ma'zun to the point where the remaining debt can be paid from his value and his assets exceed the debt, then the master's manumission of the bondwoman is valid. If the master freed the Ma'zun's bondwoman while debts encompassed him, and subsequently the master had intercourse with her and a child was born, and the master claimed paternity, then his claim is valid. The master will be the guarantor of her price to compensate the creditors, after which the bondwoman becomes free because the creditors' right over her is extinguished, and she becomes an 'Umm Walad'. The master will also be obligated to pay her 'Uqr' (nuptial compensation); this is in 'Al-Mabsoot'.

If the master designates his indebted Ma'zun as a 'Mudabbir', the designation is valid, and the creditors will not have the power to annul it. Since they cannot annul it, they have the option (Khiyar) to either take the slave's price from the master as compensation or have the slave work (Su'āyat) to pay off their debt. Once they choose one of these two options, they lose the right to the other. Thus, if the price from the master...

(Footnotes): 1. 'Janāyāt' is the plural of 'Janāyah', meaning an offense requiring a fine, and they have become so numerous that they encompass (exceed) the slave's value. 2. Meaning the state of taking possession of freedom.

फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ⑧ किताब अल-माज़ून (अनुमति प्राप्त गुलाम की किताब) **आज़ादी (इताक़) की एक पेचीदा स्थिति की व्याख्या** यदि इस 'माज़ून' (व्यापार की अनुमति प्राप्त) गुलाम पर किसी अन्य का भी उतना ही कर्ज हो जितना खरीदार का है और उसकी समय-सीमा आ गई हो, तो मालिक आधी कीमत का ज़ामिन (गारंटी देने वाला) होगा और उसे सौंप देगा। वह कीमत उसी की होगी, खरीदार उसमें साझीदार नहीं हो सकता, चाहे वह कर्ज में शामिल हो या न हो। और यदि प्राप्त की गई उस कीमत में वह साझीदार नहीं बना, तो उसे नहीं दी जाएगी, बल्कि मालिक उससे ले लेगा, फिर दूसरा साझीदार जिसने नहीं खरीदा है, मालिक से आकर ले लेगा; यह 'मब्सूत' में है। मालिक को कर्जदार माज़ून को बेचने का अधिकार नहीं है, लेकिन यदि लेनदार उसे बेचने की अनुमति दें या मालिक उनका कर्ज चुका दे या काजी (न्यायाधीश) स्वयं उसकी बिक्री का आदेश दे, तो बिक्री जायज़ है; यह 'सिराजुल वहाज' में है। यदि माज़ून पर मियादी (समयबद्ध) कर्ज हो और मालिक ने उसे समय से पहले बेच दिया, तो बिक्री जायज़ है क्योंकि मियादी कर्ज मालिक को बिक्री से नहीं रोकता। फिर जब समय आ जाए, तो लेनदार को बिक्री रद्द करने का अधिकार नहीं होगा, लेकिन वह मालिक से कीमत की ज़मानत (गारंटी) ले सकता है; यह 'फ़तावा काजी खां' में है। यदि मालिक ने उस माज़ून गुलाम को, जिस पर बहुत कर्ज है, आज़ाद कर दिया, तो आज़ादी जायज़ है और मालिक लेनदारों को उसकी कीमत के बराबर हर्जाना देगा। यदि कीमत और कर्ज बराबर हैं तो कर्ज अदा हो गया, और यदि कीमत कम है तो शेष कर्ज के लिए माज़ून आज़ादी के बाद जवाबदेह होगा, यानी लेनदार उससे मांग करेंगे। और यदि कीमत कर्ज से कम हो, तो मालिक केवल कर्ज की सीमा तक ज़ामिन होगा; यह 'काफी' में है।

यदि माज़ून पर कर्ज न हो, बल्कि उसने किसी आज़ाद या गुलाम की गलती से हत्या कर दी हो और मालिक ने उसे आज़ाद कर दिया हो, तो यदि मालिक को इस अपराध (जिनायत) का पता था, तो इस कृत्य से उसने यह विकल्प चुना कि 'मैं फ़िद्या (हर्जाना) दूँगा'। अतः यदि मृतक कोई आज़ाद व्यक्ति हो तो उसकी दियत (रक्त मूल्य) चुकाएगा, और यदि गुलाम हो तो उसकी कीमत चुकाएगा। लेकिन यदि कीमत दस हजार दिरहम से अधिक हो, तो उसमें से दस दिरहम कम कर दिए जाएंगे। और यदि उसे इस अपराध का पता नहीं था, तो वह गुलाम की कीमत बतौर हर्जाना देगा, लेकिन यदि कीमत दस हजार दिरहम तक पहुँच जाए, तो उसमें से दस दिरहम कम कर दिए जाएंगे; यह 'मब्सूत' में है। यदि कर्ज और अपराधों का हर्जाना गुलाम के मूल्य से अधिक हो (मुहीत हो) और मालिक ने उसे आज़ाद कर दिया जबकि वह जानता था, तो वह लेनदारों और अपराध के पीड़ितों दोनों को पूरी

कीमत बतौर हर्जाना देगा, लेकिन यदि राशि दस हजार दिरहम से अधिक हो तो दस दिरहम कम किए जाएंगे; यह 'तहज़ीब' में है। यदि मालिक ने 'मुदब्बिर' (वह गुलाम जिसे मालिक की मृत्यु के बाद आज़ादी का वचन दिया गया हो) या 'उम्म वलद' (वह दासी जिसने मालिक की संतान को जन्म दिया हो) को व्यापार की अनुमति दी और उन पर कर्ज चढ़ गया, फिर मालिक ने उन्हें आज़ाद कर दिया, तो मालिक पर ज़मानत देना या उनकी कीमत की ज़मानत अनिवार्य नहीं होगी; ऐसा 'काफी' में है।

यदि माज़ून पर इतना कर्ज हो कि वह उसके मूल्य और अधीन संपत्ति से अधिक हो (मुहीत हो) और ऐसी स्थिति में मालिक ने उसकी अधीन दासी को आज़ाद कर दिया, फिर लेनदारों का कर्ज चुका दिया गया या लेनदारों ने माज़ून को कर्जमुक्त कर दिया या कुछ ने माफ़ कर दिया, यहाँ तक कि स्थिति ऐसी हो गई कि उसकी कीमत से बाकी कर्ज चुकाया जा सके और उसके पास जो संपत्ति है वह कर्ज से बढ़ती रहे, तो मालिक का दासी को आज़ाद करना जायज़ है। और यदि मालिक ने माज़ून की दासी को आज़ाद कर दिया जबकि माज़ून कर्ज में डूबा हुआ था, फिर मालिक ने उसके बाद उस दासी से संबंध बनाए और उससे बच्चा पैदा हुआ और मालिक ने उसके पितृत्व (नसब) का दावा किया, तो उसका दावा जायज़ है और मालिक उसकी कीमत का ज़ामिन होगा ताकि लेनदारों को हर्जाना दे सके फिर दासी आज़ाद हो जाएगी क्योंकि लेनदारों का हक उससे समाप्त हो गया और वह 'उम्म वलद' बन गई, और मालिक पर अनिवार्य होगा कि वह दासी को उसका 'उक़्र' (मुआवज़ा) दे; यह 'मब्सूत' में है।

यदि मालिक ने अपने कर्जदार माज़ून को 'मुदब्बिर' बना दिया तो यह वैध है और लेनदारों को इसे रद्द करने का अधिकार नहीं होगा। जब वे इसे रद्द नहीं कर सकते, तो उनके पास विकल्प (खियार) होगा कि या तो मालिक से गुलाम की कीमत बतौर हर्जाना लें या गुलाम से अपने कर्ज के लिए काम (सआयत) कराएं। इन दो विकल्पों में से जिसे वे चुन लेंगे, फिर दूसरे का अधिकार उन्हें नहीं रहेगा। अतः यदि मालिक से कीमत...

(फुटनोट): १. जिनायात, 'जिनाया' का बहुवचन है जिसका अर्थ है अपराध जिसकी सजा में हर्जाना देना पड़ता है, और वे इतने अधिक हो गए कि गुलाम की कीमत से बढ़ गए। २. यानी आज़ादी की स्थिति पर कब्ज़ा करना।

---

فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ⑧ کتاب الماذون **اعتاق کی ایک پیچیدہ صورت کی وضاحت** اگر اس غلام ماذون پر کسی دوسرے کا بھی قرضہ مثل قرضہ مشتری کے ہو اور اس کی میعاد آگئی تو اس کے واسطے مولیٰ نصف قیمت کا ضامن ہوگا اور اس کے سپرد کرے گا اور وہ قیمت اسی کی ہوگی اس میں مشتری ساجھی نہیں ہوسکتا ہے خواہ مشتری قرضہ میں شریک ہوا نہ ہو اور اگر اس قیمت میں جو اس نے وصول کی ہے شریک ساجھی نہیں ہو گیا تو اس کے سپرد نہ کی جائے گی بلکہ مولیٰ اس سے لے لے گا پھر دوسرا شریک جس نے نہیں خریدا ہے آکر مولیٰ سے لے لے گا یہ مبسوط میں ہے۔ مولیٰ کو ماذون مقروض کے فروخت کا اختیار نہیں ہے لیکن اگر قرض خواہ اس کو فروخت کی اجازت دیں یا مولیٰ ان کا قرضہ ادا کر دے یا قاضی خود اس کی بیع کا حکم کرے تو بیع جائز ہے یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر ماذون پر میعادی قرضہ ہو اور مولیٰ نے اس کو میعاد سے پہلے فروخت کیا تو بیع جائز ہے کیونکہ قرضہ میعادی مولیٰ کو بیع سے مانع نہیں ہوتا ہے پھر جب میعاد آجائے تو قرض خواہ بیع توڑنے کا اختیار نہ ہوگا لیکن مولیٰ سے قیمت کی ضمان لے سکتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر مولیٰ نے غلام ماذون کو جس پر بہت قرضے ہیں آزاد کیا تو اعتاق جائز ہے اور قرض خواہوں کو مولیٰ اس کی قیمت ڈانڈ دے گا پس اگر قیمت اور قرض مساوی ہے تو ادا ہو گیا اور اگر قیمت کم ہو تو مابقی قرض کے واسطے ماذون بعد آزادی کے ماخوذ ہوگا یعنی قرض خواہ اس سے طلب کریں گے اور اگر قیمت قرض سے کم ہو تو فقط بقدر قرضہ کے مولیٰ ضامن ہوگا یہ کافی میں ہے۔

اگر ماذون پر قرضہ نہ ہو بلکہ اس نے آزاد یا غلام کو خطا سے قتل کیا ہو اور مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا پس اگر مولیٰ کو اس جنایت کا حال معلوم تھا تو اس فعل سے اس نے یہ اختیار کیا کہ میں فدیہ دوں گا پس اگر مقتول کوئی آزاد ہو تو اس کی دیت ادا کرے گا اور اگر مملوک ہو تو اس

کی قیمت ادا کرے گا لیکن اگر قیمت دس ہزار درہم سے زائد ہو تو اس سے دس درہم کم کر دیے جائیں گے اور اگر اس کو اس جنایت کا حال معلوم نہ تھا تو اس غلام کی قیمت تاوان دے گا لیکن اگر قیمت دس ہزار درہم تک پہنچ جائے تو اس میں سے دس درہم کم کر دیے جائیں گے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر اس پر قرضہ محیط ہو اور جنایات بھی محیط ہوں یعنی اس کے رقبہ کو محیط ہوں اور مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا حالانکہ وہ جانتا تھا تو قرض خواہوں کو اس کی پوری قیمت ڈانڈ دے گا اور والیان جنایت کو بھی پوری قیمت ڈانڈ دے گا لیکن اگر دس ہزار درہم سے زائد ہو تو دس درہم کم کیے جائیں گے یہ تہذیب میں ہے۔ اگر مولیٰ نے مدبر یا ام ولد کو تجارت کی اجازت دے دی اور دونوں میں سے ہر ایک پر قرضہ چڑھ گیا پھر مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا تو مولیٰ پر ضمان دے یا مدبر وام ولد کی ضمان قیمت لازم نہ آئے گی کذا فی الکافی۔ اگر ماذون پر اس قدر قرضہ ہو کہ اس کے رقبہ و مال مقبوضہ کو محیط ہو اور اس حالت میں مولیٰ نے اس کی مقبوضہ باندی آزاد کر دی پھر قرض خواہوں کو قرضہ ادا کر دیا یا قرض خواہوں نے ماذون کو قرضہ سے بری کر دیا یا بعض قرض خواہوں نے معاف کیا یہاں تک کہ ایسا ہو گیا کہ اس کی قیمت سے باقی قرضہ ادا ہو سکتا ہے اور جو اس کے پاس مال ہے وہ قرضہ سے بڑھتا رہتا ہو تو مولیٰ کا باندی آزاد کرنا جائز ہے اور اگر مولیٰ نے ماذون کی باندی آزاد کر دی حالانکہ قبل حق سے ماذون پر قرضہ محیط ہے پھر مولیٰ نے اس کے بعد اس باندی سے وطی کی اور اس سے ایک بچہ پیدا ہوا اور مولیٰ نے اس کے نسب کا دعویٰ کیا تو اس کی دعوت جائز ہے اور مولیٰ اس کی قیمت کا ضامن ہوگا کہ قرض خواہوں کو تاوان ادا کرے گا پھر باندی آزاد ہو جائے گی کیونکہ قرض خواہوں کا حق اس سے ساقط ہو گیا اور وہ ام ولد ہوئی اور مولیٰ پر واجب ہوگا کہ باندی کو اس کا عقر ادا کرے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر مولیٰ نے اپنے ماذون مدیون کو مدبر کیا تو تدبیر جائز ہے اور قرض خواہوں کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اس کی تدبیر کو توڑ دیں اور جب تدبیر نہیں توڑ سکتے ہیں تو ان کو خیار ہوگا کہ چاہیں مولیٰ سے قیمت غلام تاوان لیں یا غلام سے اپنے قرضہ کے واسطے سعایت کرادیں اور ان دونوں باتوں میں سے جس بات کو اختیار کر لیا پھر دوسری بات کا ان کو استحقاق نہ رہے گا باطل ہو جائے گا پس اگر مولیٰ سے قیمت...

(حاشیہ): ۱ جنایات جمع جنایہ بمعنی جرم جس کی سزا میں جرمانہ لازم آئے اور وہ اس قدر جرم ہو گئے کہ اس کے رقبہ کو محیط ہیں۔ ۲ یعنی استیلا صورت آزادی ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 42 Kitab al-Mazun**

If a guarantee has been obtained, then as long as the slave is not manumitted, the creditors shall have no path to demand from the slave, and the slave remains in his status as a Mazun (authorized slave). If they choose to have the slave perform 'Sa'ayat' (labor to pay off debt), they shall recover their entire debt from his earnings, after which the slave remains in his Mazun status. If he continues as a Mazun and subsequently engages in commerce, accumulating significant further debt, the new creditors shall also have the right to hold the slave and have him labor for their debt. However, these creditors shall have no right to demand the slave's price from the master; they may only demand labor from the slave. This is in contrast to the initial creditors whose debt was incurred before the slave was made a 'Mudabbar' (a slave promised freedom upon the master's death); for them, the master becomes a guarantor for the slave's price. If the subsequent creditors have the slave perform labor and recover their debt from those earnings, the initial creditors who received the price of the Mudabbar from the master as a guarantee shall have no right to these labor earnings. Whatever remains of the earnings shall belong to the master. Those who took the indemnity price shall receive nothing from the labor earnings. If the Mudabbar is killed and his blood-money (price) becomes due from the killer, then from this price, the initial creditors who obtained the guarantee shall receive nothing; instead, the subsequent creditors shall recover their debt from this price. This is mentioned in 'Al-Mughni'.

If a Mazun slave owes three thousand dirhams to three persons and his value is one thousand dirhams, and the master then makes him a Mudabbar, some creditors may choose to take the price from the master while others prefer the slave's labor. They have the right to such a choice. Thus, if two creditors choose the price guarantee, they may take two-thirds of the value from the master, and one-third remains with the master. If the one who preferred labor collects his share from the slave's labor before the other two collect their portion, the others have the right to share in what he has possessed. However, if the one who chose labor then wishes to take his share of the guarantee from the master or share in the price possessed by the other two, he does not have that right. Similarly, the other two, after choosing the guarantee, cannot then choose to share in the labor earnings or switch to labor. If both, after choosing the guarantee, wish to sell the Mudabbar for their debt, they cannot do so, even if the master grants permission. Furthermore, if the Mudabbar afterwards engages in trade and accumulates more debt, all earnings of the Mudabbar shall be

shared between the initial labor creditor and the subsequent creditors. None shall have the right to collect for themselves alone. If the initial labor creditor took earnings before the subsequent debts were incurred, it shall belong solely to him. This is in 'Al-Mabsut'.

If the creditors were unaware that the master had made his indebted Mazun slave a 'Mukatab' (a slave under a manumission contract), and the Mukatab paid the full amount and became free, then the price becomes due from the master as it would upon immediate manumission. Thereafter, creditors may either take the slave's price as indemnity from the master and divide whatever he received from the Mukatab^2 among themselves proportionally (if any debt remains, they shall demand it from the freed Mukatab), or they may choose to hold the slave accountable for the entire debt. If they chose to hold the slave accountable and recovered their entire debt, then the master...^1 i.e., they do not have the right to say, "We will collect from the slave."

^1 That is, they do not have the right to say, "We will collect from the slave." ^2 This refers to the manumission money (Mal al-Kitabat), because the master, by utilizing the Mazun's earnings and destroying his status as property, caused loss to the creditors; thus, he shall be liable to that extent.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 42 किताबुल माज़ून**

अगर किसी ने ज़मान (गारंटी) हासिल की है, तो जब तक ग़ुलाम आज़ाद न हो, तब तक ग़ुलाम से मुतालबे वगैरह का कोई रास्ता उन्हें हासिल नहीं होगा और वह ग़ुलाम अपनी माज़ून (व्यापार के लिए अनुमत) स्थिति में रहेगा। और अगर ग़ुलाम से 'सई' (परिश्रम) कराना चुना, तो उसकी कमाई से वे अपना पूरा कर्ज़ वसूल कर लेंगे, फिर ग़ुलाम अपनी माज़ून स्थिति में रहेगा। फिर जब वह माज़ून रहा और उसके बाद उसने खरीद-ओ-फरोख्त की और उस पर फिर बहुत कर्ज़ चढ़ गया, तो कर्ज़दारों को यह अधिकार होगा कि ग़ुलाम को पकड़ कर उससे अपने कर्ज़ के लिए मेहनत कराएँ, लेकिन इन लोगों को मौला (मालिक) से कीमत माँगने का कोई अधिकार नहीं होगा, हाँ वे ग़ुलाम से सई करा सकते हैं। इसके विपरीत उन पुराने कर्ज़दारों के लिए, जिनका कर्ज़ ग़ुलाम को 'मुदब्बर' बनाने से पहले का था, उनके लिए मौला उसकी कीमत का ज़ामिन (गारंटर) होगा। यदि दूसरे कर्ज़दारों ने ग़ुलाम से सई कराई और उससे अपना कर्ज़ वसूल किया, तो पहले कर्ज़दार, जिन्होंने मौला से मुदब्बर की कीमत ज़मानत के रूप में वसूल की है, उन्हें इस सई की कमाई में कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। जो कुछ कमाई बचेगी वह मौला को मिलेगी। जिन्होंने मुआवज़ा लिया है उन्हें सई की कमाई से कुछ नहीं मिलेगा। और अगर मुदब्बर ग़ुलाम मार दिया गया और कातिल पर उसकी कीमत वाजिब हुई, तो उस कीमत में से पहले कर्ज़दारों को, जिन्होंने मौला से ज़मानत ली है, कुछ नहीं मिलेगा, बल्कि दूसरे कर्ज़दार अपना कर्ज़ उस कीमत से वसूल करेंगे। यह 'मुग़नी' में है।

अगर एक माज़ून ग़ुलाम पर तीन व्यक्तियों का तीन हज़ार दिरहम कर्ज़ हो और ग़ुलाम की कीमत एक हज़ार दिरहम हो, फिर मालिक ने उसे मुदब्बर बना दिया। कुछ कर्ज़दारों ने मालिक से कीमत लेना चाहा और कुछ ने ग़ुलाम से मेहनत कराना पसंद किया, तो उन्हें ऐसा अधिकार होगा। यदि दो कर्ज़दारों ने कीमत की ज़मानत चुनी, तो वे मालिक से दो-तिहाई कीमत ले सकते हैं और एक-तिहाई मालिक के पास रहेगी। फिर जिसने मेहनत कराना चुना, अगर उसने दूसरों के वसूल करने से पहले ग़ुलाम की सई से अपना हिस्सा ले लिया, तो उसके पास जमा रकम में दोनों को साझा करने का अधिकार होगा। और अगर सई से वसूल करने का विकल्प चुनने वाले ने मालिक से अपना ज़मानत का हिस्सा लेना चाहा या दूसरों के पास जमा रकम में भागीदारी चाही, तो उसे ऐसा अधिकार नहीं होगा। इसी तरह बाकी दोनों को भी ज़मानत लेने के बाद ऐसा अधिकार नहीं होगा। यानी मेहनत से वसूल करने वालों के साथ साझा करना या ग़ुलाम की सई से वसूल करने का विकल्प नहीं चुन सकते। और अगर दोनों ने ज़मानत लेने के बाद मुदब्बर को उसके कर्ज़ में बेचना चाहा, तो वे ऐसा नहीं कर

सकते, भले ही मालिक उन्हें यह हक़ दे दे। इसके बाद अगर मुदब्बर ने लेन-देन किया और और कर्ज़ चढ़ गया, तो ग़ुलाम की पूरी कमाई पुराने और नए कर्ज़दारों के बीच साझा होगी और किसी को यह अधिकार नहीं होगा कि वह दूसरों के अलावा खुद कुछ वसूल कर ले। अगर पहले कर्ज़दार ने बाद के कर्ज़ों से पहले कुछ ले लिया है, तो वह उसी का होगा। यह 'मबसूत' में है।

अगर कर्ज़दारों को पता न चला कि मालिक ने अपने ऋणी माज़ून को 'मुकातब' (मुक्ति-अनुबंध वाला) बना दिया है, यहाँ तक कि मुकातब ने पूरा पैसा चुका दिया और आज़ाद हो गया, तो मालिक पर उसकी कीमत वाजिब हो गई जैसे कि वह तुरंत आज़ाद करने पर होती थी। फिर कर्ज़दारों को अधिकार होगा कि चाहे तो मालिक से ग़ुलाम की कीमत मुआवज़े में लें और जो कुछ उसने मुकातब से लिया है, उसे लेकर^2 आपस में बाँट लें। अगर कुछ कर्ज़ बाकी रहे, तो वे आज़ाद हो चुके मुकातब से बाकी कर्ज़ की माँग करेंगे। या अगर चाहें तो पूरे कर्ज़ के लिए ग़ुलाम से मुआख़ज़ा (जवाबदेही) करें। यदि उन्होंने ग़ुलाम से मुआख़ज़ा करके अपना पूरा कर्ज़ वसूल कर लिया, तो मौला को^1... यानी उन्हें यह अधिकार नहीं है कि कहें कि हम ग़ुलाम से वसूल करेंगे।

^1 नहीं... यानी उन्हें यह अधिकार नहीं है कि कहें कि हम ग़ुलाम से वसूल करेंगे। ^2 वह यानी किताबत का माल, क्योंकि मौला ने माज़ून की कमाई और उसके वजूद को बर्बाद करके कर्ज़दारों का नुकसान किया है, इसलिए वह उसी हद तक ज़ामिन होगा।

کی ضمان حاصل کی تو جب تک غلام آزاد نہ ہو تب تک غلام سے مطالبہ وغیرہ کی کوئی راہ ان کو حاصل نہ ہو گی اور وہ غلام بحالہ ماذون باقی رہے گا اور اگر غلام سے سعی کرانا اختیار کیا تو اس کی سعایت سے تمام کمال اپنا قرضہ وصول کر لیں گے پھر غلام بحالہ ماذون باقی رہے گا پھر جب ماذون رہا اور اس نے اس کے بعد خرید و فروخت کی اور اس پر پھر بہت قرضہ چڑھ گیا تو قرض خواہوں کو بھی اختیار ہو گا کہ غلام کو ماخوذ کر کے اس سے اپنے قرضہ کے واسطے سعی کرا دیں مگر ان لوگوں کو مولیٰ سے مواخذہ و مطالبہ قیمت کا کچھ اختیار نہ ہو گا ہاں غلام سے سعایت کرا سکتے ہیں بخلاف پہلے قرض خواہوں کے جن کا قرضہ مدبر کرنے سے پہلے غلام پر عائد ہو چکا ہے کہ ان کے واسطے مولیٰ اس کی قیمت کا ضامن ہو گا پس اگر دوسرے قرض خواہوں نے غلام سے سعایت کرائی اور مال سعایت سے اپنا قرضہ وصول کیا تو پہلے قرض خواہوں کو جنہوں نے مولیٰ سے مدبر کی قیمت ضمان میں وصول کر لی ہے اس سعایت میں سے تھوڑا یا بہت کچھ استحقاق نہ ہو گا اور جو کچھ مال سعایت باقی رہے گا وہ مولیٰ کو ملے گا قرض خواہوں کو جنہوں نے قیمت تاوان لی ہے تھوڑا یا بہت کچھ نہ ملے گا اور اگر وہ مدبر قتل کیا گیا یہاں تک کہ اس کی قیمت قاتل کے ذمہ واجب ہوئی تو اس قیمت میں سے پہلے قرض خواہوں کو جنہوں نے مولیٰ سے ضمان قیمت حاصل کر لی ہے کچھ نہ ملے گا بلکہ دوسرے قرض خواہ اس قیمت میں سے اپنا قرضہ وصول کریں گے مغنی میں ہے۔

اگر غلام ماذون پر تین ہزار درہم تین شخصوں کے قرض ہوں اور ماذون کی قیمت ایک ہزار درہم ہو پھر مولیٰ نے اس کو مدبر کر دیا پس بعض قرض خواہوں نے مولیٰ سے قیمت لینا اختیار کیا اور بعض نے غلام سے سعایت کرانا پسند کیا تو ان کو ایسا اختیار ہو گا پس اگر دو قرض خواہوں نے

ضمان قیمت اختیار کی تو مولیٰ سے دو تہائی قیمت لے سکتے ہیں اور ایک تہائی قیمت مولیٰ کو مسلم رہے گی پھر جس نے سعایت غلام پسند کی ہے اگر دوسرے دونوں قرض خواہوں کی قیمت وصول کرنے سے پہلے اس نے اپنا حصہ سعایت غلام سے لے لیا تو اس کے مقبوضہ میں دونوں کو مشارکت کا اختیار ہو گا اور اگر سعایت سے وصول کرنا اختیار کرنے والے نے مولیٰ سے اپنا حصہ ضمان لینا چاہا یا دوسرے دونوں قرض خواہوں کی مقبوضہ قیمت میں شرکت چاہی تو اس کو بھی ایسا اختیار نہ ہو گا اور اسی طرح باقی دونوں قرض خواہوں کو بھی بعد ضمان قیمت اختیار کرنے کے ایسا اختیار نہ ہو گا یعنی سعایت سے وصول کرنا اختیار کرنے والے سے مشارکت یا سعایت غلام سے وصول کرنا اختیار نہیں کر سکتے ہیں اور اگر دونوں نے مولیٰ سے ضمان قیمت لینا اختیار کرنے کے بعد یہ چاہا کہ مدبر کو اپنے قرضہ میں فروخت کریں تو ایسا نہیں کر سکتے ہیں اگرچہ مولیٰ ان کو یہ استحقاق دے دے پھر اس کے بعد اگر مدبر نے خرید فروخت کی اور اس پر کئی حصوں کا قرضہ چڑھ گیا تو مدبر کی سب کمائی پہلے قرض خواہ کے جس نے سعایت سے وصول کرنا اختیار کیا ہے اور پچھلے قرض خواہوں کے درمیان مشترک ہو گی اور ان سب قرض خواہوں میں سے کسی کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ اور ان کے سوائے خود کچھ وصول کر لے اور اگر پہلے قرض خواہ نے جس نے سعایت سے وصول کرنا اختیار کیا ہے مدبر کی کمائی میں سے پچھلے قرض خواہوں کے قرضہ چڑھنے سے پہلے کچھ لے لیا تو یہ اسی کو دیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر قرض خواہ اس سے واقف نہ ہوئے کہ مولیٰ نے اپنے ماذون مقروض کو مکاتب کر دیا ہے یہاں تک کہ مکاتب نے سب بدل کتابت ادا کر دیا اور آزاد ہو گیا تو مولیٰ پر اس کی قیمت واجب ہو گئی جیسے کہ فی الحال آزاد کرنے میں واجب ہوتی تھی پھر اس کے بعد قرض خواہوں کو یہ اختیار رہے گا کہ چاہیں مولیٰ سے غلام کی قیمت تاوان لیں اور جو کچھ اس نے مکاتب سے لے لیا

ہے وہ لے کر ۲ اپنے درمیان حصہ رسد تقسیم کر لیں گے اور اگر کچھ قرضہ باقی رہا تو فی الحال مکاتب آزاد شدہ سے باقی قرضہ کے واسطے مطالبہ کریں گے یا اگر چاہیں تو اپنے پورے قرضہ کے واسطے غلام سے مواخذہ اختیار کریں پس اگر انہوں نے غلام سے مواخذہ اختیار کر کے اپنا تمام قرضہ وصول کیا تو مولیٰ کو ۱ نہیں وایعنی ان کو یہ اختیار نہیں ہے کہ کہیں کہ ہم غلام سے وصول کریں گے۔

۱ نہیں وایعنی ان کو یہ اختیار نہیں ہے کہ کہیں کہ ہم غلام سے وصول کریں گے۔ ۲ وہ یعنی مال کتابت اس لئے کہ مولیٰ نے مصروف ماذون کی کمائی اور اس کا رقبہ برباد کر کے قرض خواہوں کا نقصان کیا ہے تو اسی قدر ضامن ہو گا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 43 Kitab al-Ma'dhun (The Book of the Authorized Slave)**

The value of the slave and the 'Mal-e-Kitabat' (emancipation contract price) shall remain surrendered, and the slave shall not have the right to take back any portion, small or large, from his master; this is stated in *al-Mughni*. If the slave has paid some of the contract price and some remains, and during this time creditors appear—meaning they become aware of the situation—they have the right to either annul the contract, in which case the slave will be sold to satisfy their debt, or, if they do not annul it but grant permission, the contract is valid. Whatever amount the master collected before the permission for the contract and whatever remains shall be distributed among the creditors pro-rata. If the contract money collected by the master before permission was lost or destroyed in his possession, and then the creditors gave permission, the contract remains valid, and the master shall not be liable (guarantor) for that collected amount. If some creditors give permission and others do not, the contract shall not be valid until all creditors give permission. If they intend to break the contract, but in the meantime, the master or the slave himself pays off their debt, then after that, they shall no longer have the right to annul the contract; this is in *al-Muhit*.

If the debt of the authorized slave (ma'dhun) is deferred (has a future due date), the master has the right to take service from him. If it is currently due, the creditors have the right to prevent him from doing so. Similarly, if the master intends to take the authorized slave on a journey, the creditors do not have the right to prevent him in the case of a deferred debt, but they may prevent him if the debt is currently due. Likewise, the master may pledge (pawn) him or lease him out, provided the debt is deferred. Then, if the debt becomes due before the lease period expires, this will be considered a valid excuse[1] (*'udhr*), and the creditors can terminate the lease. However, a pledge is binding on the part of the pledger, and upon the debt becoming due, the creditors will not have the right to break the pledge, just as they do not have the right to break a sale that has been executed by the master, but they can take a guarantee from the master for his value. Then, if it happens that when the creditors intend to take the guarantee, he redeems the pledge and hands him over to the creditors, he shall be free from the guarantee. If a judge issues a decree for the guarantee of the value against him, and after that he redeems the pledge, the value remains obligatory upon him, the slave will belong to him, and the creditors will have no way to take the slave. If the master refuses to redeem the pledge and a decree is

issued in the names of the creditors for the slave to be sold for their debt, they shall have such right; this is in *al-Mabsut*. If the master sold the indebted authorized slave to a person and informed him of the debt, the creditors shall have the right to rescind the sale. The interpretation of this is that this rule applies when the creditors can receive the price (*thaman*) and there is no gross undervaluation (*muhabat*) in the sale, then they shall not have the right to rescind the sale. But the correct view is that if the price is insufficient to pay their debt, they shall have the right to rescind the sale; this is in *al-Jami' al-Saghir*.

**Statement regarding a form of removal from the place of right** ✵

If one sells their indebted slave and the buyer takes possession, then the seller disappears, the buyer shall not be held as an adversary (litigant) for the creditors, provided he denies the debt. This is the opinion of Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa) and Imam Muhammad. If the buyer confirms their debt, then by consensus (*ijma'*), the creditors shall have the right to rescind the sale. If the seller is present and the buyer is absent, then by consensus, there will be no litigation between the creditors and the seller until the buyer is present, but the creditors shall have the right to take a guarantee of the value from the seller. Once the guarantee of the value is taken, the sale becomes valid and the price belongs to the seller. If they (creditors) give permission for the sale, they can take the price; this is in *al-Tabyin*. If there is no debt upon the authorized slave and the master ordered him...

---

1. It will be an excuse, meaning for the purpose of annulling a lease, this legal excuse is acceptable.
2. The statement[2] and in the original text *(wa'amlahu bid-dayn)*; perhaps the correct is *'amlahu bid-dayn* and the meaning is that the buyer cannot rescind after becoming aware, but the creditors can stop it.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 43 किताबुल माज़ून**

गुलाम की कीमत और माल-ए-किताबत भी सुपुर्द रहेगी और गुलाम को यह अधिकार नहीं होगा कि उसमें से थोड़ा या बहुत अपने मौला (स्वामी) से वापस ले, यह मुग़नी में है। अगर गुलाम ने कुछ माल-ए-किताबत अदा किया और कुछ बाकी रहा कि इतने में लेनदार (क़र्ज़ख़्वाह) आकर मौजूद हुए यानी उनको जानकारी हुई तो उनको अधिकार होगा कि चाहें तो किताबत को रद्द (बातिल) करें और वह गुलाम उनके कर्ज़ के बदले में बेचा जाएगा। और अगर उन्होंने किताबत रद्द नहीं की बल्कि अनुमति दे दी तो किताबत जायज़ है। और जो कुछ माल मौला ने किताबत की अनुमति से पहले वसूल किया है और जो कुछ बाकी रहा, सब लेनदारों में आनुपातिक रूप से (हिस्सा-ए-रसद) वितरित होगा। और अगर वह माल-ए-किताबत जो मौला ने अनुमति से पहले वसूल किया है, उसके पास नष्ट हो गया, फिर लेनदारों ने अनुमति दे दी, तो किताबत जायज़ है और मौला उस वसूल किए गए माल का ज़ामिन (गारंटर) नहीं होगा। अगर कुछ लेनदारों ने अनुमति दी और कुछ ने नहीं दी, तो जब तक सभी लेनदार अनुमति न दें, किताबत जायज़ नहीं होगी। और अगर उन्होंने किताबत तोड़ने का इरादा किया और इसी बीच मौला ने उनका कर्ज़ या खुद गुलाम ने अदा कर दिया, तो उसके बाद उन्हें किताबत रद्द करने का अधिकार नहीं होगा, यह मुहीत में है।

अगर माज़ून का कर्ज़ मियादी (निश्चित समय वाला) हो तो मौला को उससे सेवा लेने का अधिकार है, और अगर अभी तुरंत देय (वाजिबुल अदा) हो तो लेनदारों को उसे रोकने का अधिकार है। इसी तरह अगर मौला ने माज़ून को यात्रा पर साथ ले जाने का इरादा किया, तो मियादी कर्ज़ की स्थिति में लेनदारों को रोकने का अधिकार नहीं होगा, लेकिन अगर तुरंत देय हो तो रोक सकते हैं। इसी तरह मौला उसे गिरवी (रहन) रख सकता है और किराए (इजारा) पर दे सकता है, बशर्ते कर्ज़ मियादी हो। फिर अगर किराए की अवधि समाप्त होने से पहले कर्ज़ चुकाने का समय आ जाए, तो यह 'उज़्र'[1] (बहाना/कारण) होगा और लेनदार किराया अनुबंध तोड़ सकते हैं। लेकिन गिरवी रखना स्वामी की तरफ से अनिवार्य होगा और समय आने पर लेनदारों को गिरवी तोड़ने का अधिकार नहीं होगा, जैसे उन्हें उस बिक्री (बय) को तोड़ने का अधिकार नहीं होता जो मौला की तरफ से प्रभावी हो चुकी हो, लेकिन वे मौला से उसकी कीमत की गारंटी ले सकते हैं। फिर अगर ऐसा हुआ कि जब लेनदारों ने गारंटी लेने का इरादा किया, तब उसने गिरवी छुड़ाकर (फक्क-ए-रहन) लेनदारों के सुपुर्द कर दिया, तो वह गारंटी से मुक्त हो जाएगा। और अगर काजी ने उस पर कीमत की गारंटी की डिक्री कर दी, उसके बाद उसने गिरवी छुड़ाई, तो उस पर कीमत अनिवार्य होगी और गुलाम उसी का होगा, और

लेनदारों के पास गुलाम लेने का कोई रास्ता नहीं होगा। और अगर मौला ने गिरवी छुड़ाने से इनकार किया और लेनदारों के नाम गुलाम की डिक्री हुई कि उसे अपने कर्ज़ के लिए बेचें, तो उन्हें ऐसा अधिकार होगा, यह मबसूत में है। माज़ून कर्जदार को उसके मौला ने किसी व्यक्ति के हाथ बेच दिया और उसे कर्ज़ से अवगत करा दिया, तो लेनदारों को बिक्री रद्द करने का अधिकार होगा। इसकी व्याख्या यह है कि यह आदेश तब है जब लेनदार उसकी कीमत (समन) प्राप्त कर सकें और बिक्री में बहुत ज़्यादा रियायत (मुहाबात) न हो, तो उन्हें बिक्री रद्द करने का अधिकार नहीं होगा। लेकिन सही यह है कि अगर कीमत उनके कर्ज़ की अदायगी के लिए पर्याप्त न हो, तो उन्हें बिक्री रद्द करने का अधिकार होगा, यह जामे' सग़ीर में है।

**हक़ के स्थान से गायब करने की एक सूरत का बयान ✨**

अगर अपने कर्जदार गुलाम को बेचा और खरीदार (मुश्तरी) ने उस पर कब्ज़ा कर लिया, फिर विक्रेता (बाये') गायब हो गया, तो खरीदार को लेनदारों का विरोधी (ख़स्म) नहीं ठहराया जाएगा, बशर्ते वह कर्ज़ से इनकार करे। यह इमाम-ए-आज़म (र.अ.) और इमाम मोहम्मद (र.अ.) का कथन है। और अगर खरीदार ने उनके कर्ज़ की पुष्टि की, तो सर्वसम्मति (बिल्-इज्मा) से लेनदारों को बिक्री रद्द करने का अधिकार होगा। और अगर विक्रेता उपस्थित है और खरीदार अनुपस्थित है, तो सर्वसम्मति से लेनदारों और विक्रेता के बीच कोई विवाद नहीं होगा जब तक कि खरीदार उपस्थित न हो, लेकिन लेनदारों को विक्रेता से कीमत की गारंटी लेने का अधिकार होगा। और जब कीमत की गारंटी ले ली गई, तो बिक्री वैध हो जाएगी और कीमत विक्रेता की होगी। और अगर उन्होंने बिक्री की अनुमति दे दी, तो वे कीमत ले सकते हैं, यह तबयीन में है। अगर माज़ून पर कर्ज़ न हो और मौला ने उसे आदेश दिया...

---

1. उज़्र होगा, यानी किराया अनुबंध रद्द करने के लिए यह शरई बहाना स्वीकार्य है।
2. कथन[2] और इसे मूल में (वाम्लाहु बिद-दैन) और शायद सही यह कि 'अमलाहु बिद-दैन' और अर्थ यह है कि खरीदार जानकारी के बाद रद्द नहीं कर सकता है, लेकिन लेनदार रोक सकते हैं।

---

غلام کی قیمت اور مال کتابت بھی سپرد رہے گا اور غلام کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اس میں سے تھوڑا یا بہت اپنے مولیٰ سے واپس لے یہ مغنی میں ہے۔ اگر غلام نے کچھ مال کتابت ادا کیا اور کچھ باقی رہا کہ اتنے میں قرض خواہ آکر موجود ہوئے یعنی ان کو آگاہی ہوئی تو ان کو اختیار ہو گا کہ چاہیں کتابت کو باطل کریں اور وہ غلام ان کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور اگر انہوں نے کتابت باطل نہ کی بلکہ اجازت دے دی تو کتابت جائز ہے اور جو کچھ مال مولیٰ نے اجازت کتابت سے پہلے وصول کیا ہے اور جو کچھ باقی رہا سب قرض خواہوں میں حصہ رسد تقسیم ہو گا اور اگر وہ مال کتابت جو مولیٰ نے قبل اجازت کے وصول کیا ہے اس کے پاس تلف ہو گیا پھر قرض خواہوں نے اجازت دے دی تو کتابت جائز ہے اور مولیٰ اس مال مقبوضہ کی کتابت کا ضامن نہ ہوگا۔ اگر بعض نے کتابت کی اجازت دی اور بعض نے اجازت نہ دی تو جب تک سب قرض خواہ اجازت نہ دیں تب تک کتابت جائز نہ ہو گی اور اگر انہوں نے کتابت توڑ دینے کا قصد کیا اور اتنے میں مولیٰ نے ان کا قرضہ یا خود غلام نے ادا کر دیا تو پھر اس کے بعد ان کو کتابت باطل کرنے کا اختیار نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔

اگر ماذون کا قرضہ میعادی ہو تو مولیٰ کو اس سے خدمت لینے کا اختیار ہے اور اگر فی الحال واجب الادا ہو تو قرض خواہوں کو اس سے ممانعت کرنے کا اختیار ہے اسی طرح اگر مولیٰ نے ماذون کو سفر میں ساتھ لے جانے کا قصد کیا تو درصورت میعادی قرضہ ہونے کے قرض خواہوں کو ممانعت کا اختیار نہ ہوگا اور اگر فی الحال واجب الادا ہو تو منع کر سکتے ہیں اسی طرح مولیٰ اس کو رہن رکھ سکتا ہے اور اجارہ دے سکتا ہے بشرطیکہ قرضہ میعادی ہو پھر اگر مدت اجارہ گذرنے سے پہلے قرضہ کی میعاد آگئی تو یہ عذر[1] ہو گا اور قرض خواہ لوگ اجارہ توڑ سکتے

ہیں مگر رہن راہن کی طرف سے لازم ہو گا اور میعاد آ جانے پر قرض خواہوں کو رہن کے توڑنے کا اختیار نہ ہوگا جیسے کہ ان کو اس بیع کے توڑنے کا اختیار نہیں ہوتا ہے جو مولیٰ کی طرف سے نافذ ہو گئی لیکن مولیٰ سے اس کی قیمت کی ضمان لے سکتے ہیں پھر اگر ایسا ہوا کہ جب قرض خواہوں نے اس سے ضمان لینے کا قصد کیا تب اس نے فک رہن کر کے قرض خواہوں کے سپرد کر دیا تو ضمان سے بری ہو جائے گا اور اگر قاضی نے اس پر ضمان قیمت کی ڈگری کر دی اس کے بعد اس نے فک رہن کیا تو اس پر قیمت واجب ہو گی اور غلام اسی کا ہو گا اور قرض خواہ لوگوں کو غلام لینے کی کوئی راہ نہ ہو گی اور اگر مولیٰ نے فک رہن سے انکار کیا اور قرض خواہوں کے نام غلام کی ڈگری ہوئی کہ اس کو اپنے قرضہ میں فروخت کریں تو ان کو ایسا اختیار ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ غلام ماذون قرض دار کو اس کے مولیٰ نے ایک شخص کے ہاتھ فروخت کیا اور اس کو سنے قرضہ سے آگاہ کیا تو قرض خواہوں کو بیع رد کر دینے کا اختیار ہو گا اور اس کی تاویل یہ ہے کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ قرض خواہ اس کے ثمن کو وصول پا سکتے ہوں اور بیع میں محابات نہ ہو تو ان کو رد بیع کا اختیار نہ ہو گا مگر صحیح یہ ہے کہ اگر ثمن ان کے قرضہ کے ادا کے واسطے کافی نہ ہو تو ان کو بیع رد کرنے کا اختیار ہو گا یہ جامع صغیر میں ہے۔

**محل حق سے معدوم کرنے کی ایک صورت کا بیان ❇**

اگر اپنے قرض دار غلام کو فروخت کیا اور مشتری نے اس پر قبضہ کر لیا پھر بائع غائب ہو گیا تو مشتری قرض خواہوں کا خصم نہ ٹھہرایا جائے گا بشرطیکہ قرضہ سے انکار کرے یہ امام اعظمؒ اور امام محمدؒ کا قول ہے اور اگر مشتری نے ان کے قرضہ کی تصدیق کی تو بالاجماع قرض خواہوں کو رد بیع کا اختیار ہو گا اور اگر بائع حاضر اور مشتری غائب ہو تو بالاجماع قرض خواہوں اور بائع میں خصومت نہ ہوگی تاوقتیکہ مشتری حاضر نہ ہو لیکن قرض خواہوں کو بائع

سے ضمان قیمت لینے کا اختیار ہوگا اور جب ضمان قیمت لے لی تو بیع جائز ہو جائے گی اور ثمن بائع کا ہوگا اور اگر انہوں نے اجازت بیع دے دی تو ثمن لے سکتے ہیں یہ تبیین میں ہے۔ اگر ماذون پر قرضہ نہ ہو اور مولیٰ نے اس کو حکم دیا

---

1. عذر ہو گا یعنی اجارہ فسخ ہونے کے لیے یہ عذر شرعی مقبول ہے۔
2. قول[2] اور اسکو اصل میں (واملہ بالدین) اور شاید صحیح یہ کہ املہ بالدین اور مفاد یہ ہے کہ مشتری بعد آگاہی کے رد نہیں کر سکتا ہے لیکن قرضخواہ روک سکتے ہیں۔

---

(Fatawa Alamgiri ..... Volume 8) 34 (Book of the Authorized Slave/Kitab al-Mazoon)

If a guarantee (kafalah) is given on behalf of Zayd for a thousand dirhams, and the authorized slave (mazoon) says to the creditor (makful-lah): "If Zayd does not pay you the thousand dirhams he owes, then this amount is upon me," then the guarantee is valid. Similarly, if he says: "If Zayd dies and does not pay you whatever amount of your wealth is due from him, then it shall be upon me," it is also valid according to his word. Then, if the master (mawla) removes this mazoon from his ownership by way of sale or gift, and subsequently the principal debtor (makful-anhu, i.e., Zayd) dies before fulfilling the right of the creditor, the creditor shall have the option to take the guarantee from the master, whichever is less between the value of the mazoon and the debt. The sale or gift by the master shall not be void. The same rule applies if an order was given to be a guarantor for a defect in property (zaman al-dark). If the master sold a house and ordered the mazoon to become a guarantor of zaman al-dark for the purchaser, and then the master sold that mazoon, and subsequently the house was taken away due to a prior claim (istihqaq), the purchaser shall have the choice to take a guarantee from the master for whichever is less between the value of the mazoon and the price (thaman), on the basis that he has eliminated the purchaser's source of right. If the master did not remove him from his ownership until such a debt accumulated upon the mazoon that it encompassed his entire value (raqba), and then the house was taken from the purchaser through a prior claim, the slave shall be liable for that wealth which is upon his neck along with the guarantee money; this is stated in *Al-Mabsut*.

If the master sold his own house to his mazoon: if the slave is not in debt, this sale is not valid; but if he is in debt, the sale is valid. If the price (thaman) is equal to or less than its value, then the pre-emptor (shafi) has the right of pre-emption (shuf'a). If it is more, then according to Imam Azam (Abu Hanifa, RA), the sale is void and there is no right of pre-emption. However, Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA) said that the excess amount is void, and the pre-emptor shall take it at the equal price under pre-emption, provided the master agrees to that amount; this is in *Al-Yanabi*. If the mazoon purchased or sold something, the master shall not have the right of pre-emption, provided the mazoon is not in debt. Similarly, if the master purchased or sold something, the mazoon shall not have the right of pre-emption if he is not in debt. If he is in debt, then each of them shall have the right of pre-emption in all cases. Except in one situation: if the slave sold a house for such a reduction in price that people would normally either overlook or notice as an estimation, the master

would not have the right of pre-emption. If the slave sold a house to his master while not in debt, and a stranger is the pre-emptor, the stranger shall not get pre-emption. If the slave is in debt and the sale occurred at a similar price or more, the stranger shall have the right of pre-emption. If it occurred at a price lower than the value, then according to Imam Azam (RA), the pre-emptor shall not get pre-emption, but according to the *Sahibayn* (the two companions, Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the pre-emptor can take it at an equal price or leave it. If the pre-emptor leaves it, the master shall have the option to buy it at the full price; this is in *Al-Mabsut*. If the master marries off his mazoon, it is valid; this is in *Tatarkhaniya*.

A slave authorized for trade (mazoon al-tijarah) bought a slave girl, and he is not in debt. Then the master married him to that slave girl; this is valid. The slave girl is then removed from the scope of trade, meaning the mazoon cannot sell her. If debt subsequently accumulates upon the mazoon, that slave girl shall not be sold for the creditors. If the mazoon bought a slave girl while in a state of debt and the master married him to her, the marriage shall not be valid due to the debt, and the master shall have the option to sell that slave girl and any child born from the mazoon’s seed. If after the marriage the master pays off the debt, it becomes valid, just as it was valid in the case of no debt; thus this also holds the same status; this is in *Al-Mughni*. And if the mazoon, by the master's order, took a guarantee for a thousand dirhams on behalf of Zayd, while upon it... (1) He eliminated the source of the right, i.e., the location with which the right was associated.

1. He eliminated the source of the right, i.e., the location with which the right was associated.

(फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8) 34 (किताब अल-माज़ून)

यदि कोई ज़ैद की तरफ़ से हज़ार दिरहम की कफ़ालत (ज़मानत) करे, फिर माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत गुलाम) ने मक़फ़ूल लहू (लेनदार) से कहा कि अगर ज़ैद तुझे तेरे हज़ार दिरहम जो उस पर वाजिब हैं न देगा, तो यह माल मुझ पर है, तो ज़मानत जायज़ है। और इसी तरह अगर यूँ कहा कि अगर ज़ैद मर गया और जो कुछ तेरा माल उस पर वाजिब है तुझे अदा न किया तो वही मुझ पर होगा, तो यह भी उसके कौल के मुताबिक जायज़ है। फिर अगर मौला (मालिक) ने इस माज़ून को अपनी मिल्कियत से बिक्री या हिबा (उपहार) के ज़रिए निकाल दिया, फिर मक़फ़ूल अन्हु यानी ज़ैद मक़फ़ूल लहू का हक़ अदा करने से पहले मर गया, तो मक़फ़ूल लहू को इख़्तियार होगा कि मौला से माज़ून की क़ीमत और क़र्ज़ में से जो राशि कम हो उसकी ज़मानत ले ले, और मौला की बिक्री व हिबा बातिल (अमान्य) न होगी। इसी तरह अगर ज़मान-ए-दरक (संपत्ति के दोषों के लिए ज़मानत) के लिए ज़ामिन (ज़मानतदार) होने का हुक्म दिया तो भी यही हुक्म है। अगर मौला ने एक मकान बेचा और माज़ून को हुक्म दिया कि खरीदार के लिए ज़मान-ए-दरक का ज़ामिन हो जाए, फिर मौला ने उस माज़ून को बेच दिया, फिर वह मकान हक़-ए-इस्तहक़ाक़ (किसी अन्य के दावे) में चला गया, तो खरीदार को इख़्तियार होगा कि मौला से माज़ून की क़ीमत और कीमत (थमन) में से जो कम हो उसकी ज़मानत ले ले, इस आधार पर कि उसने खरीदार के हक़ के स्थान को समाप्त कर दिया है। और अगर मौला ने उसे अपनी मिल्कियत से बाहर नहीं किया यहाँ तक कि माज़ून पर इतना क़र्ज़ चढ़ गया कि उसके मूल्य (रक़बा) को घेर लिया, फिर खरीदार के हाथ से वह मकान इस्तहक़ाक़ में ले लिया गया, तो गुलाम के ज़िम्मे वह माल जो उसकी गर्दन पर है, ज़मानत के माल सहित सब लाज़िम होगा, यह मबसूत में है।

अगर मौला ने माज़ून के हाथ अपना कोई घर बेचा, तो अगर गुलाम कर्ज़दार न हो तो यह बिक्री न होगी और अगर कर्ज़दार हो तो बिक्री जायज़ है। फिर अगर उसका मूल्य (थमन) उसकी क़ीमत के बराबर या कम हो तो शफ़ी (पड़ोसी/साझेदार) को शुफ़ा (अग्रक्रय का अधिकार) पहुँचता है। और अगर ज़्यादा हो तो इमाम-ए-आज़म रह. के नज़दीक बिक्री बातिल होगी और उसमें शुफ़ा कुछ न होगा। और इमाम अबू यूसुफ़ रह. व इमाम मुहम्मद रह. ने फ़रमाया कि अतिरिक्त राशि बातिल होगी और शफ़ी उसे शुफ़ा में बराबर ले लेगा, बशर्ते कि मौला उतनी राशि पर राज़ी हो, यह 'यनाबी' में है। अगर माज़ून ने कुछ खरीद-फरोख्त की तो उसमें मौला का शुफ़ा का हक़ न होगा, बशर्ते कि माज़ून पर क़र्ज़ न हो। इसी तरह अगर मौला ने खरीद-फरोख्त की तो उसमें माज़ून को शुफ़ा का हक़ न

होगा अगर माज़ून क़र्ज़दार न हो। अगर क़र्ज़दार हो तो दोनों में से हर एक को सभी स्थितियों में शुफ़ा का हक़ हासिल होगा। मगर हाँ, एक स्थिति में और वह यह है कि अगर गुलाम ने एक घर उसकी क़ीमत से इतनी कमी पर, जिसे लोग अपने अंदाज़े से नज़रअंदाज़ करते हैं या नहीं करते, बेचा, तो मौला को उसमें शुफ़ा का हक़ न होगा। और अगर गुलाम ने अपने मौला के हाथ एक घर बेचा जबकि उस पर क़र्ज़ नहीं है और एक अजनबी उसका शफ़ी है, तो अजनबी को शुफ़ा नहीं मिलेगा। और अगर उस पर क़र्ज़ हो और बिक्री उसकी बाज़ारू क़ीमत (मिस्ल क़ीमत) या उससे ज़्यादा पर हुई, तो अजनबी को शुफ़ा का हक़ होगा। और अगर क़ीमत से कम थमन पर हुई, तो इमाम-ए-आज़म रह. के नज़दीक शफ़ी को शुफ़ा नहीं मिलेगा और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक शफ़ी उसे बराबर क़ीमत पर ले सकता है, वर्ना छोड़ दे। फिर अगर शफ़ी ने छोड़ दिया तो मौला को इख़्तियार होगा कि चाहे पूरी क़ीमत में खरीदे, यह मबसूत में है। मौला ने अगर अपने माज़ून का निकाह करवाया तो जायज़ है, यह 'तातारखानिया' में है।

एक गुलाम माज़ून-अत-तिजारत ने एक दासी (बांदी) खरीदी और वह क़र्ज़दार नहीं है, फिर मौला ने उसके साथ उस दासी का निकाह कर दिया तो जायज़ है। वह दासी व्यापार (तिजारत) से बाहर हो गई कि माज़ून उसे बेच नहीं सकता है। और उसके बाद अगर माज़ून पर क़र्ज़ चढ़ गया, तो लेनदारों के लिए वह दासी बेची नहीं जाएगी। और अगर माज़ून ने क़र्ज़ की स्थिति में दासी खरीदी हो और मौला ने उसी के साथ निकाह कर दिया हो, तो क़र्ज़ की वजह से निकाह जायज़ न होगा और मौला को इख़्तियार होगा कि उस दासी को और उस दासी से जो बच्चा माज़ून के वीर्य से पैदा हुआ है, उसे बेच दे। और अगर निकाह के बाद मौला ने उसका क़र्ज़ अदा कर दिया तो (निकाह) जायज़ है जैसा कि क़र्ज़ न होने की स्थिति में जायज़ था, अतः यह भी उसी की तरह है, यह 'मुग़नी' में है। और अगर माज़ून ने मौला के हुक्म से ज़ैद की तरफ़ से हज़ार दिरहम की कफ़ालत (ज़मानत) ले ली, जबकि उस पर... (१) हक़ के स्थान को, यानी जिस स्थान से उसका हक़ संबंधित था, उसे समाप्त कर दिया।

1. हक़ के स्थान को, यानी जिस स्थान से उसका हक़ संबंधित था, उसे समाप्त कर दिया।

کہ زید کی طرف سے ہزار درہم کی کفالت کرے پس ماذون نے مکفول لہ سے کہا کہ اگر زید تجھ کو تیرے ہزار درہم جو اس پر آتے ہیں نہ دے گا تو یہ مال مجھ پر ہے تو ضمان جائز ہے اور اسی طرح اگر یوں کہا کہ اگر زید مر گیا اور جو کچھ تیرا مال اس پر آتا ہے تجھے ادا نہ کیا تو وہی مجھ پر ہو گا تو یہ بھی اس کے قول کے موافق جائز ہے پھر اگر مولیٰ نے اس ماذون کو اپنی ملک سے بطریق بیع یا ہبہ کے نکال دیا پھر مکفول عنہ یعنی زید قبل ادائے حق مکفول لہ کے مر گیا تو مکفول لہ کو اختیار ہو گا کہ مولیٰ سے ماذون کی قیمت اور قرضہ سے جو مقدار کم ہو ضمان لے اور مولیٰ کی بیع و ہبہ باطل نہ ہو گی اسی طرح اگر ضمان درک کے واسطے ضامن ہونے کا حکم کیا تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر مولیٰ نے ایک مکان فروخت کیا اور ماذون کو حکم دیا کہ مشتری کے واسطے ضمان درک کا ضامن ہو جائے پھر مولیٰ نے وہ ماذون فروخت کر دیا پھر وہ مکان استحقاق میں لے لیا گیا تو مشتری کو اختیار ہو گا کہ مولیٰ سے ماذون کی قیمت اور ثمن میں سے جو کم ہو اس کی ضمان لے لے باعتبار اس کے کہ اس نے مشتری کا محلِ حق معدوم کر دیا ہے اور اگر مولیٰ نے اس کو اپنی ملک سے خارج نہ کیا یہاں تک کہ ماذون پر اس قدر قرضہ چڑھ گیا کہ اس کے رقبہ کو محیط ہو گیا پھر مشتری کے ہاتھ سے وہ مکان استحقاق میں لے لیا گیا تو غلام کے ذمہ وہ مال جو اس کی گردن پر ہے مع مالِ ضمان سب لازم ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر مولیٰ نے ماذون کے ہاتھ اپنا کوئی گھر فروخت کیا پس اگر غلام مقروض نہ ہو تو یہ بیع نہ ہو گی اور اگر مقروض ہو تو بیع جائز ہے پس اگر اس کا ثمن اس کی قیمت کے برابر یا کم ہو تو شفیع کو شفعہ پہنچتا ہے اور اگر زیادہ ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک بیع باطل ہو گی اور اس میں شفعہ کچھ نہ ہو گا اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ زیادت باطل ہو گی اور شفیع اس کو

شفعہ میں برابر لے لے گا بشرطیکہ مولیٰ اس قدر پر راضی ہو یہ ینا بیع میں ہے۔ اگر ماذون نے کچھ خرید و فروخت کیا تو اس میں مولیٰ کا استحقاقِ شفعہ نہ ہو گا بشرطیکہ ماذون پر قرضہ نہ ہو اسی طرح اگر مولیٰ نے خرید و فروخت کیا تو اس میں ماذون کو استحقاقِ شفعہ نہ ہو گا اگر ماذون قرض دار نہ ہو اگر قرض دار ہو تو دونوں میں سے ہر ایک کو سب صورتوں میں استحقاقِ شفعہ حاصل ہو گا مگر ہاں ایک صورت میں اور وہ یہ ہے کہ اگر غلام نے ایک گھر اس کی قیمت سے اس قدر کمی پر جو لوگ اپنے اندازہ سے اٹھاتے ہیں یا نہیں اٹھاتے ہیں فروخت کیا تو مولیٰ کو اس میں شفعہ کا استحقاق نہ ہو گا اور اگر غلام نے اپنے مولیٰ کے ہاتھ ایک گھر فروخت کیا حالانکہ اس پر قرضہ نہیں ہے اور ایک اجنبی اس کا شفیع ہے تو اجنبی کو شفعہ نہ ملے گا اور اگر اس پر قرضہ ہو اور بیع اس کے مثل قیمت یا زیادہ پر واقع ہوئی تو اجنبی کو شفعہ کا استحقاق ہو گا اور اگر قیمت سے کم ثمن پر واقع ہوئی تو امام اعظمؒ کے نزدیک شفیع کو شفعہ نہ ملے گا اور صاحبین کے نزدیک شفیع اس کو برابر قیمت پر لے سکتا ہے ورنہ چھوڑ دے پس اگر شفیع نے چھوڑ دیا تو مولیٰ کو اختیار ہو گا کہ چاہے پوری قیمت میں خریدے یہ مبسوط میں ہے۔ مولیٰ نے اگر اپنے ماذون کا نکاح کروا تو جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

ایک غلام ماذون التجارۃ نے ایک باندی خریدی اور وہ قرض دار نہیں ہے پس مولیٰ نے اس کے ساتھ باندی کا نکاح کر دیا تو جائز ہے وہ باندی تجارت سے باہر ہو گئی کہ ماذون اس کو فروخت نہیں کر سکتا ہے اور اس کے بعد اگر ماذون پر قرضہ چڑھ گیا تو قرض خواہوں کے واسطے وہ باندی فروخت نہ کی جائے گی اور اگر ماذون نے قرض داری کی حالت میں باندی خریدی ہو اور مولیٰ نے اسی کے ساتھ نکاح کر دیا تو قرضہ کی وجہ سے نکاح جائز نہ ہو گا اور مولیٰ کو اختیار ہو گا کہ اس باندی کو اور اس باندی سے جو بچہ ماذون کے نطفہ سے پیدا ہوا ہے فروخت کرلے اور اگر بعد تزویج کے مولیٰ نے اس کا قرضہ ادا کر دیا تو جائز ہے جیسا کہ قرضہ نہ ہونے کی

صورت میں جائز تھا پس یہ بھی بمنزلہ اسی کے ہے یہ مغنی میں ہے اور اگر ماذون نے مولیٰ کے حکم سے زید کی طرف سے ہزار درہم کی کفالت کر لی حالانکہ اس پر ۱ محلِ حق یعنی جس محل سے اس کا حق متعلق تھا وہ معدوم کر دیا۔

۱ محلِ حق یعنی جس محل سے اس کا حق متعلق تھا وہ معدوم کر دیا۔

Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) Page 35 The Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'dhun)

...there is no debt, and if the master then sells him, the beneficiary of the guarantee (Makful lahu) will have the choice to annul the sale. However, if instead of a financial guarantee, a personal guarantee (Kafalat bi'l-Nafs) was accepted on behalf of Zaid, then the beneficiary will not have the option to annul the sale. Nevertheless, wherever the slave may be, the beneficiary can demand the fulfillment of the guarantee. This situation will be considered a defect (ayb) in the slave, and the buyer will have the option to return him because of this defect. If the guarantee is structured such that: "If the person sought does not pay your right against him within this period, I am the guarantor of his person," then the buyer cannot return the slave due to such a defect[1] until the condition is met. Once the condition is fulfilled and the guarantee becomes binding on the slave, the buyer may return him, provided he was unaware of this defect at the time of purchase. If he was aware at the time of purchase, then he can never return him due to this defect; this is stated in Al-Mabsut.

If the master sold the Ma'dhun (authorized slave) with the permission of the creditors, the sale is valid, and the right of the creditors will transfer to the sale price (thaman). The master will then act as an agent (wakil), such that if the price is not collected from the buyer and is lost, the loss falls on the creditors. Similarly, if the master collects it and it is destroyed while in his possession, the loss also falls on the creditors. However, the creditors' debt will not be extinguished; rather, they can claim it from the slave once he is manumitted; this is in Tatar-Khaniyya. If a master ordered his Ma'dhun slave to provide a guarantee for Zaid to Amr for a thousand dirhams, such that if Zaid died without paying Amr's thousand dirhams, the Ma'dhun is the guarantor of that amount, then this is permissible. Furthermore, if the master sold this slave to Amr for a thousand dirhams or less, the sale is valid, and the master may do as he pleases with the collected price. If the person guaranteed for (Makful 'anhu), namely Zaid, died without paying Amr's wealth, then the buyer, Amr, will have the option to take the price from the master to count towards the fulfillment of his debt. If that price was destroyed[2] while with the master, the master will not be liable for anything. If a portion is destroyed, the buyer will take the remainder towards his debt, and what was destroyed will be considered non-existent. If the price is destroyed while with the master and then the buyer finds a defect in the slave and wishes to return him, he may do so, and he will have no right against the master

regarding the price. Instead, the slave will be sold for his value, from which the buyer will recover the price he had given to the master. If anything remains, he will take it towards his previous debt, and if the second price is less than the first, the master is not liable for the difference; as stated in Al-Mabsut.

Chapter Five: Circumstances in which a Ma'dhun becomes restricted (Mahjur) and those in which he does not. In explaining what makes an authorized slave restricted and what does not, as well as matters regarding declarations by a restricted person, it should be known that restriction (hajr) nullifies permission (idhn). However, the condition is that the restriction must be equivalent to the permission. Thus, if the permission was general (idhn-e-'am) such that people in the market knew of it, then the restriction will only be effective if the restriction is also general—meaning most people in the market become aware of it. If it is less than that, it will not be effective, such as restricting him in front of one, two, or three individuals or inside one's house, regardless of whether the slave becomes aware of it or not. Such a restriction will not be effective. If the permission was specific (idhn-e-khas) such that the news had not spread among market-goers—for instance, in front of one, two, or three specific individuals, the slave was...

Footnotes: 1. "Defect etc." means that this guarantee, which is a type of defect, is not the kind of defect for which he could be returned immediately. 2. That is, if the master personally destroyed it through some action, he would be liable; but if it was lost or destroyed naturally, he would not be liable for anything.

फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) पेज 35 किताब अल-माज़ून

कोई कर्ज नहीं है फिर मौला ने उसे बेच दिया तो मकफ़ूल लहू (जिसके लिए ज़मानत दी गई) को इस बिक्री को रद्द करने का अधिकार होगा और अगर माल की ज़मानत के बजाय ज़ैद की ओर से जान की ज़मानत (कफ़ालत बिन-नफ़्स) स्वीकार की गई हो तो मकफ़ूल लहू को बिक्री रद्द करने का अधिकार नहीं होगा, लेकिन गुलाम जहाँ कहीं भी होगा उससे कफ़ालत का मुतालबा कर सकता है और यह बात गुलाम में दोष (ऐब) मानी जाएगी और खरीदार को अधिकार होगा कि वह चाहे तो इस दोष के कारण उसे वापस कर दे। और अगर कफ़ालत इस तरह हो कि "यदि वांछित व्यक्ति इस समय तक तेरा हक जो उस पर है अदा न करे तो मैं उसकी जान का ज़ामिन हूँ", तो खरीदार ऐसे दोष[1] के कारण वापस नहीं कर सकता जब तक कि शर्त पूरी न हो जाए। फिर जब शर्त पूरी होने से गुलाम पर कफ़ालत अनिवार्य हो जाए तो खरीदार उसे वापस कर सकेगा बशर्ते कि खरीदते समय उसे इस दोष का ज्ञान न रहा हो। और अगर खरीदते समय उसे पता था तो फिर इस दोष के कारण कभी वापस नहीं कर सकता, यह मबसत में है।

अगर मौला ने कर्जदारों की अनुमति से माज़ून (अनुमति प्राप्त गुलाम) को बेच दिया तो यह सही है और कर्जदारों का हक कीमत (थमन) की ओर स्थानांतरित हो जाएगा और मौला वकील के समान हो जाएगा, यहाँ तक कि अगर खरीदार से वसूली नहीं हुई और पैसा डूब गया तो यह कर्जदारों का नुकसान है। और अगर मौला ने वसूल किया और उसके पास नष्ट हो गया तो भी यह कर्जदारों का नुकसान है, लेकिन कर्जदारों का कर्ज खत्म नहीं होगा बल्कि जब गुलाम आज़ाद हो जाएगा तो उससे मुतालबा करेंगे, यह तातारखानिया में है। अगर मौला ने अपने गुलाम माज़ून को हुक्म दिया और उसने ज़ैद की ओर से अम्र के लिए एक हज़ार दिरहम की कफ़ालत इस तरह की कि अगर ज़ैद अम्र का एक हज़ार दिरहम अदा किए बिना मर गया तो माज़ून उस माल का ज़ामिन है, तो यह जायज़ है। फिर अगर मौला ने अम्र के हाथ यह गुलाम एक हज़ार दिरहम या उससे कम में बेच दिया तो बिक्री जायज़ है और मौला उसकी कीमत वसूल करके जो चाहे करे। फिर अगर मकफ़ूल अन्हु यानी ज़ैद अम्र का माल अदा किए बिना मर गया तो खरीदार यानी अम्र को मौला से कीमत लेने का अधिकार होगा कि वह उसे अपने कर्ज की अदायगी में गिन ले। और अगर मौला के पास वह कीमत नष्ट[2] हो गई तो मौला कोई ज़ामिन नहीं होगा। और अगर थोड़ा नष्ट हुआ तो खरीदार बाकी को अपने कर्ज की अदायगी में ले लेगा और जो नष्ट हो गया उसे खत्म माना जाएगा। और अगर मौला के पास कीमत नष्ट हो गई, फिर खरीदार ने गुलाम में कोई दोष पाकर वापस करना चाहा तो वापस कर सकता है और

मौला पर कीमत के संबंध में उसका कोई हक नहीं होगा लेकिन वह गुलाम उसकी कीमत में बेचा जाएगा, फिर उसकी कीमत से वह अपनी कीमत वसूल करेगा जो उसने मौला को दी थी। फिर अगर कुछ बचा तो उसे अपने पिछले कर्ज में ले लेगा और अगर दूसरी कीमत पहली की तुलना में कम हो तो मौला पर उस कमी के लिए कुछ अनिवार्य नहीं होगा, ऐसा ही मबसत में है।

पाँचवाँ अध्याय: जिससे माज़ून महजूर हो जाता है और जिससे महजूर नहीं होता है जिससे माज़ून (अनुमति प्राप्त गुलाम) महजूर (प्रतिबंधित) हो जाता है और जिससे महजूर नहीं होता है उसके और महजूर के इकरार (स्वीकृति) के बारे में बयान में यह जानना चाहिए कि प्रतिबंध (हज्र) से अनुमति (इज़न) रद्द हो जाती है, लेकिन शर्त यह है कि प्रतिबंध अनुमति के समान हो। यानी अगर अनुमति सामान्य (इज़न-ए-आम) थी इस तरह कि बाजार के लोग उसे जानते थे, तो प्रतिबंध तभी प्रभावी होगा जब प्रतिबंध भी सामान्य हो यानी अधिकांश बाजार के लोग उससे अवगत हो जाएं। और अगर इससे कम हो तो प्रभावी नहीं होगा, जैसे कि एक या दो व्यक्तियों के सामने या तीन आदमियों के सामने या अपने घर में प्रतिबंधित किया हो, चाहे गुलाम उससे अवगत हो या न हो, यह प्रतिबंध प्रभावी नहीं होगा। यदि अनुमति विशेष (इज़न-ए-खास) थी इस तरह कि बाजार के लोगों में यह खबर नहीं फैली थी, जैसे कि एक या दो या तीन विशिष्ट व्यक्तियों के सामने गुलाम को...

1. ऐब आदि यानी यह कफ़ालत जो एक तरह का दोष है, ऐसा दोष नहीं है कि वर्तमान में इससे वापस किया जा सके।
2. यानी अगर मौला ने खुद किसी काम में नष्ट किया हो तो वह ज़ामिन होगा और अगर खुद-ब-खुद नष्ट हो गया तो कोई ज़ामिन नहीं होगा।

---

قرضہ نہیں ہے پھر مولیٰ نے اس کو فروخت کیا تو مکفول لہ کو اس کی بیع توڑ دینے کا اختیار ہو گا اور اگر بجائے کفالت مال کے زید کی طرف سے کفالت بالنفس قبول کی ہو تو مکفول لہ کو بیع توڑنے کا اختیار نہ ہو گا لیکن غلام سے جہاں کہیں ہو گا کفالت کا مواخذہ کر سکتا ہے اور یہ امر غلام میں عیب شمار ہو گا اور مشتری کو اختیار حاصل ہو گا کہ چاہے اس عیب کی وجہ سے واپس کر دے اور اگر اس طور پر کفالت ہو کہ اگر مطلوب تجھ کو اس مدت تک تیرا حق جو اس پر ہے ادا نہ کرے تو میں اس کے نفس کا کفیل ہوں تو ایسی کفالت کے عیب۱۸ کی وجہ سے مشتری واپس نہیں کر سکتا ہے تاوقتیکہ شرط کا وجود متحقق نہ ہو پھر جب شرط پائی جانے سے غلام پر کفالت واجب ہو جائے تو مشتری اس کو واپس کر سکے گا بشرطیکہ وقت خرید کے اس کو اس عیب سے آگاہی نہ ہوئی ہو اور اگر اس کو وقت خرید کے معلوم ہو گیا ہو تو پھر اس عیب کی وجہ سے کبھی واپس نہیں کر سکتا ہے یہ مبسوط میں ہے۔

مولیٰ نے اگر قرض خواہوں کی اجازت سے ماذون کو فروخت کیا تو صحیح ہے اور قرض خواہوں کا حق ثمن کی طرف متحول ہو جائے گا اور مولیٰ بمنزلہ وکیل کے ہو جائے گا حتیٰ کہ اگر مشتری سے وصول نہ ہوا ڈوب گیا تو یہ قرض خواہوں کا مال گیا اور اگر مولیٰ نے وصول کیا اور اس کے پاس تلف ہو گیا تو بھی قرض خواہوں کا مال گیا لیکن قرض خواہوں کا قرضہ ساقط نہ ہو گا بلکہ جب غلام آزاد ہو جائے گا تو اس سے مواخذہ کریں گے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر مولیٰ نے اپنے غلام ماذون کو حکم دیا اس نے زید کی طرف سے عمرو کے واسطے ہزار درہم کی کفالت اس طور سے کی کہ اگر زید بدون عمرو کا مال ہزار درہم ادا کئے ہوئے مر گیا تو ماذون اس مال کا ضامن ہے تو یہ جائز ہے پھر اگر مولیٰ نے عمرو کے ہاتھ یہ غلام ہزار درہم کو یا کم کو

فروخت کیا تو بیع جائز ہے اور ثمن اس کا مولیٰ وصول کر کے جو چاہے کرے پھر اگر مکفول عنہ یعنی زید بدوں ادائے مال عمرو کے مر گیا تو خریدار یعنی عمرو کو مولیٰ سے ثمن لینے کا اختیار ہو گا کہ اس کو اپنے ادائے قرض میں شمار کر لے گا اور اگر مولیٰ کے پاس وہ ثمن تلف^2 ہو گیا تو مولیٰ کچھ ضامن نہ ہو گا اور اگر تھوڑا تلف ہو گیا ہو تو خریدار باقی کو اپنے ادائے قرض میں لے لے گا اور جو تلف ہو گیا وہ نابود شمار ہو گا اور اگر مولیٰ کے پاس ثمن تلف ہو گیا پھر مشتری نے غلام میں کچھ عیب پا کر واپس کرنا چاہا تو واپس کر سکتا ہے اور مولیٰ پر ثمن کی بابت اس کا کچھ حق نہ ہو گا لیکن وہ غلام اس کے ثمن میں فروخت کیا جائے گا پس اس کے ثمن سے اپنا ثمن جو اس نے مولیٰ کو دیا تھا وصول کر لے گا پھر اگر کچھ باقی رہا تو اس کو اپنے پہلے قرضہ میں لے لے گا اور اگر دوسرا ثمن بنسبت اوّل کے کم ہو تو مولیٰ پر اس کی کمی میں کچھ واجب نہ ہو گا کذا فی المبسوط میں ہے۔

باب پنجم: جس سے ماذون محجور ہو جاتا ہے اور جس سے محجور نہیں ہوتا ہے جس سے ماذون محجور ہو جاتا ہے اور جس سے محجور نہیں ہوتا ہے اس کے اور جو اقرار محجور سے متعلق ہے اس کے بیان میں جاننا چاہیے کہ حجر سے اذن باطل ہو جاتا ہے لیکن یہ شرط ہے کہ حجر مثل اذن کے ہو حتیٰ کہ اگر اذنِ عام ہو بایں طور کہ اس کو اہل بازار جانتے ہوں تو حجر جب کارآمد ہو گا کہ جب حجر بھی عام ہو یعنی اکثر اہل بازار اس سے واقف ہو جائیں اور اگر اس سے کم ہو تو کار آمد نہ ہو گا بایں طور کہ ایک شخص یا دو شخصوں کے سامنے یا تین آدمیوں کے سامنے یا اپنے گھر میں محجور کیا خواہ غلام اس سے واقف ہو جائے یا واقف نہ ہو یہ حجر کار آمد نہ ہو گا اگر اذنِ خاص ہو بایں طور پر اس کی اہل بازار میں یہ خبر منتشر نہ ہوئی ہو مثلاً ایک یا دو یا تین مخصوص کے سامنے غلام کو

1^ عیب الخ یعنی یہ کفالت جو ایک طرح کا عیب ہے ایسا عیب نہیں کہ بالفعل اس سے واپس کر سکے۔ 2^ یعنی اگر مولیٰ نے خود کسی کام میں تلف کیا ہو تو ضامن ہو گا اور اگر تلف ہو گیا ہو تو کچھ ضامن نہ ہو گا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) / Kitab al-Ma’zoon / 46**

If a slave is *Ma’zoon* (authorized to trade), and he is placed under *Hajr* (legal interdiction/restriction) in front of the same people, and the slave becomes aware of it, then this restriction shall be effective, meaning the slave becomes *Mahjoor* (restricted). This is mentioned in *Al-Mughni*. If the permission was given only in front of the slave, then restricting him in his presence alone would be effective.

**The Translator Said (Qal al-Mutarjim)** ☆ In terms of being present and in front, it is sufficient to be informed as per the custom of the people. If the slave does not become aware of it, the restriction will not be effective. If the slave was given permission and became aware of it, then restricted and did not become aware, the restriction will not be effective. However, if he was given permission and did not become aware of it, then restricted and did not become aware of that either, the restriction will be effective; as mentioned in *Al-Dhakheerah*. If the *Ma'zoon* was restricted in his house in front of most of the market-goers, he becomes restricted; this is in *Al-Kafi*.

**The Translator Said (Qal al-Mutarjim)** ☆ The gist is that in authorization (*Idhn*) and restriction (*Hajr*), there should be customary equality in terms of generality, specificity, and the knowledge or ignorance of the *Ma'zoon*. If the *Ma'zoon* went to a city for trade, and then most of the market people came to the master's house and the master restricted the *Ma'zoon* in their presence with testimony, while the slave is unaware of it, he will not be restricted. This act will not be considered a restriction regarding his rights. Similarly, if the slave is present in that city but is unaware of the restriction, it will not be a restriction regarding his rights. Whatever dealings he conducted with the market people before becoming aware of the restriction will all be valid. When the slave becomes aware after a day or two, he will be considered restricted from the time of his awareness. The buying and selling conducted by him before knowing will be valid; this is in *Al-Mabsut*. If, after restricting the *Ma'zoon* but before the slave became aware, the master saw him buying and selling and did not stop him, and then the slave came to know of the restriction, by juristic preference (*Istihsan*), he remains *Ma'zoon*; this is in *Al-Mughni*. If the master sold the *Ma'zoon*, then if there is no debt upon him, he becomes restricted whether the market people are aware or not. But if there is a debt upon him, he will not be restricted before the buyer (*Mushtari*) takes possession, unlike the first case where he becomes restricted by the act of sale itself. This applies when the debt is currently payable; if the debt is

for a fixed future term, the master shall not be prohibited from selling him; this is in *Fatawa Qazi Khan*.

If the master gifted the *Ma'zoon* to someone and the recipient took possession, he becomes restricted. If the gift is retracted, the previous authorization will not return. The same rule applies in the case of a sale; if the buyer finds a defect in the *Ma'zoon* and returns him by order of the judge, the authorization will not return even though the master's old ownership has returned; this is in *Al-Muheet*. If the master sold the *Ma'zoon* via a corrupt sale (*Bai' Fasid*) in exchange for wine or swine and handed him over to the buyer, and he traded while in the buyer's possession, then was returned to the seller, he remains restricted. Similarly, if the buyer took possession by order of the seller, or in his presence or absence, the rule is the same. But if he took possession after separation without the seller's order, he will not be restricted. If sold for a carcass or blood, due to the nullity of the sale, he will not be restricted in all these cases; this is in *Al-Mabsut*. If the master sold him via a valid sale (*Bai' Sahih*) with a three-day option condition (*Khiyar al-Shart*), the slave remains *Ma'zoon* until the sale becomes final, because he has not left the master's ownership. However, if the option is for the buyer, he becomes restricted; this is in *Khazanat al-Muftiyeen*. If the master restricted his *Ma'zoon* in the presence of market-goers while the slave was absent, and the master sent a messenger to inform him of the restriction and the messenger informed him, the slave becomes restricted; whether the messenger is free or a slave, a woman or a man, just or sinful. Similarly, if he sent him a letter and the letter reached him, he becomes restricted, whether the letter-bearer is free or not. That is, for the messenger or the person who brought the letter, conditions like number, justice, or freedom are not required.

यदि गुलाम को माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत) किया गया हो, और उसे उन्हीं लोगों के सामने महजूर (प्रतिबंधित) कर दिया गया और गुलाम को इसका पता चल गया, तो यह प्रतिबंध (हज्र) प्रभावी होगा, यानी गुलाम महजूर हो जाएगा। यह 'मुग़नी' में है। यदि अनुमति केवल गुलाम के सामने दी गई थी, तो उसके सामने ही उसे प्रतिबंधित करना प्रभावी होगा।

**अनुवादक ने कहा (क़ाल अल-मुतरजिम)** ☆ और उपस्थित होने तथा सामने होने की स्थिति में अवगत होना ही काफी है, जैसा कि लोगों का चलन है। और यदि गुलाम इससे अवगत नहीं हुआ, तो प्रतिबंध प्रभावी नहीं होगा। यदि गुलाम को अनुमति दी गई और वह अवगत हो गया, फिर उसे प्रतिबंधित किया गया और वह इससे अवगत नहीं हुआ, तो प्रतिबंध प्रभावी नहीं होगा। लेकिन अगर उसे अनुमति दी गई और वह उससे अवगत नहीं हुआ, फिर प्रतिबंधित किया गया और वह उससे भी अवगत नहीं हुआ, तो प्रतिबंध प्रभावी होगा; ऐसा 'ज़ख़ीरा' में है। और यदि माज़ून को उसके घर में बाज़ार के अधिकांश लोगों के सामने प्रतिबंधित किया गया, तो वह महजूर हो जाएगा; यह 'काफ़ी' में है।

**अनुवादक ने कहा (क़ाल अल-मुतरजिम)** ☆ सारांश यह है कि अनुमति (इज़्न) और प्रतिबंध (हज्र) में व्यापकता, विशिष्टता और माज़ून के ज्ञान या अज्ञान के आधार पर प्रथागत समानता होनी चाहिए। यदि माज़ून किसी शहर में व्यापार के लिए गया, और फिर बाज़ार के अधिकांश लोग मालिक के घर आए और उनके सामने गवाही के साथ मालिक ने माज़ून को प्रतिबंधित कर दिया, जबकि गुलाम इससे अवगत नहीं है, तो वह महजूर नहीं होगा। यह बात उसके अधिकार में प्रतिबंध नहीं मानी जाएगी। इसी प्रकार, यदि गुलाम उसी शहर में मौजूद हो लेकिन प्रतिबंध से अवगत न हो, तो यह उसके हक में प्रतिबंध नहीं होगा। प्रतिबंध से अवगत होने से पहले उसने बाज़ार के लोगों के साथ जो भी लेन-देन किया, वह सब लागू होगा। और जब एक या दो दिन बाद गुलाम इससे अवगत हो गया, तो अवगत होने के समय से उसे महजूर माना जाएगा। अवगत होने से पहले उसके द्वारा की गई खरीद-बिक्री वैध होगी; यह 'मबसूत' में है। यदि माज़ून को प्रतिबंधित करने के बाद और गुलाम के अवगत होने से पहले मालिक ने उसे खरीद-बिक्री करते देखा और नहीं रोका, और फिर गुलाम को प्रतिबंध का पता चला, तो वह अधिमानतः (इस्तिहसानन) माज़ून बना रहता है; यह 'मुग़नी' में है। यदि मालिक ने माज़ून को बेच दिया, तो यदि उस पर कोई कर्ज न हो, तो वह महजूर हो जाएगा, चाहे बाज़ार के लोग अवगत हों या न हों। लेकिन यदि उस पर कर्ज हो, तो खरीदार (मुश्तरी) के कब्ज़ा

करने से पहले वह महजूर नहीं होगा, पहली स्थिति के विपरीत जहाँ बिक्री मात्र से वह महजूर हो जाता है। यह उस स्थिति में है जब कर्ज तत्काल देय हो; यदि कर्ज की समय सीमा बाकी है, तो मालिक को उसकी बिक्री से नहीं रोका जाएगा; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

यदि मालिक ने माज़ून को किसी व्यक्ति को उपहार (हिबा) में दे दिया और प्राप्तकर्ता ने कब्ज़ा कर लिया, तो वह महजूर हो जाएगा। फिर यदि उपहार वापस ले लिया गया, तो पुरानी अनुमति बहाल नहीं होगी। यही नियम बिक्री की स्थिति में है कि यदि खरीदार ने माज़ून में कोई दोष पाकर न्यायाधीश के आदेश से उसे वापस कर दिया, तो पुरानी अनुमति वापस नहीं आएगी, भले ही मालिक का पुराना स्वामित्व फिर से लौट आया हो; यह 'मुहीत' में है। यदि मालिक ने माज़ून को एक भ्रष्ट बिक्री (बय-ए-फासिद) के रूप में शराब या सूअर के बदले बेचकर खरीदार को सौंप दिया, और खरीदार के कब्ज़े में उसने खरीद-बिक्री की, फिर उसे विक्रेता को वापस कर दिया गया, तो वह महजूर ही रहेगा। इसी तरह, यदि खरीदार ने विक्रेता के आदेश से या उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति में कब्ज़ा किया, तो भी यही नियम है। लेकिन यदि अलग होने के बाद विक्रेता के आदेश के बिना कब्ज़ा किया, तो वह महजूर नहीं होगा। और यदि मृत जानवर या रक्त के बदले बेचा गया हो, तो बिक्री के अमान्य होने के कारण इन सभी स्थितियों में वह महजूर नहीं होगा; यह 'मबसूत' में है। यदि मालिक ने एक वैध बिक्री (बय-ए-सहीह) के रूप में तीन दिनों की अपनी शर्त (खियार-ए-शर्त) पर बेचा, तो जब तक बिक्री पूर्ण रूप से प्रभावी न हो जाए, गुलाम माज़ून ही रहेगा क्योंकि वह अभी मालिक के स्वामित्व से बाहर नहीं हुआ है। लेकिन यदि शर्त खरीदार के लिए है, तो वह महजूर हो जाएगा; यह 'ख़ज़ाना अल-मुफ़्तीन' में है। यदि मालिक ने बाज़ार के लोगों की उपस्थिति में अपने माज़ून को प्रतिबंधित किया, जबकि गुलाम अनुपस्थित था, और मालिक ने उसे सूचित करने के लिए एक संदेशवाहक भेजा, और उसने गुलाम को अवगत करा दिया, तो गुलाम महजूर हो जाएगा; चाहे वह संदेशवाहक स्वतंत्र हो या दास, स्त्री हो या पुरुष, न्यायप्रिय हो या पापी। इसी प्रकार, यदि उसे पत्र लिखकर भेजा गया और पत्र पहुँच गया, तो वह महजूर हो जाएगा, चाहे पत्र लाने वाला स्वतंत्र हो या नहीं। यानी संदेशवाहक या पत्र लाने वाले के लिए संख्या, न्यायप्रियता या स्वतंत्रता की शर्तें अनिवार्य नहीं हैं।

---

ماذون کیا ہو تو اگر انہی لوگوں کے سامنے غلام کو محجور کیا اور غلام واقف ہو گیا تو یہ حجر کار آمد ہوگا یعنی غلام محجور ہو جائے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر اذن فقط غلام کے سامنے ہو تو اسی کے سامنے اس کو محجور کر دینا کار آمد ہوگا۔

**قال المترجم** ☆ اور حاضر و سامنے ہونے میں آگاہ ہونا کافی ہے علی ما اصطلح القوم اور اگر غلام اس سے واقف نہ ہوا تو حجر کارآمد نہ ہوگا اور اگر غلام کو اجازت دے دی اور وہ آگاہ ہو گیا پھر اس کو محجور کیا اور وہ آگاہ نہ ہوا تو حجر کارآمد نہ ہوگا اور اگر اس کو اذن دیا اور وہ آگاہ نہ ہوا پھر محجور کیا اور وہ آگاہ نہ ہوا تو حجر کارآمد ہوگا کذا فی الذخیرہ اور اگر ماذون کو اپنے گھر میں اکثر اہلِ بازار کے سامنے محجور کیا تو محجور ہو جائے گا یہ کافی میں ہے۔

**قال المترجم** ☆ حاصل یہ ہے کہ اذن و حجر میں باعتبار عموم و خصوص و علم ماذون و عدم علم کے عرفاً مقابلہ و مساوات ہونی چاہیے اور اگر ماذون کسی شہر کو تجارت کے واسطے گیا پھر اکثر اہل بازار مولیٰ کے مکان پر آئے اور ان کے سامنے شہادت کے ساتھ مولیٰ نے ماذون کو محجور کیا حالانکہ غلام اس سے واقف نہیں ہے تو وہ محجور نہ ہوگا اور یہ امر اس کے حق میں حجر نہ ہو گا اسی طرح اگر غلام اس شہر میں موجود ہو مگر وہ حجر سے واقف نہ ہوا تو یہ امر اس کے حق میں حجر نہ ہوگا اور جو کچھ اس نے قبلِ حجر سے واقف ہونے کے اپنے اہلِ بازار وغیرہ کے ساتھ تصرف کیا وہ سب نافذ ہوگا اور جب ایک یا دو روز کے بعد غلام اس سے واقف ہوا تو واقف ہونے کے وقت سے وہ محجور قرار دیا جائے گا اور قبلِ وقوف کے جو خرید و فروخت اس سے صادر ہوئی وہ سب جائز ہو گی یہ مبسوط میں ہے اور اگر ماذون کے محجور

کرنے کے بعد غلام کے آگاہ ہونے سے پہلے مولیٰ نے اس کو خرید و فروخت کرتے دیکھا اور منع نہ کیا پھر غلام کو محجور ہونا معلوم ہوا تو استحساناً ماذون باقی رہتا ہے یہ مغنی میں ہے اور اگر مولیٰ نے ماذون کو فروخت کیا پس اگر اس پر قرضہ نہ ہو تو محجور ہو جائے گا خواہ اہلِ بازار واقف ہو جائیں یا نہ ہوں اور اگر اس پر قرضہ ہو تو مشتری کے قبضہ کرنے سے پہلے محجور نہ ہوگا بخلاف صورتِ اوّل کے کہ اس میں نفسِ بیع سے محجور ہو جاتا ہے اور یہ اس صورت میں ہے کہ قرضہ فی الحال واجب الادا ہو اور اگر غلام کا قرضہ میعادی ہو تو مولیٰ کو اس کی بیع سے ممانعت نہ کی جائے گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر مولیٰ نے ماذون کسی شخص کو ہبہ کر دیا اور موہوب لہ نے قبضہ کر لیا تو محجور ہو جائے گا پھر اگر ہبہ سے رجوع کیا تو اجازت عود نہ کرے گی اور یہی حکم بیع کی صورت میں ہے کہ اگر مشتری نے ماذون میں کوئی عیب پا کر بحکم قاضی اس کو واپس کیا تو اجازت عود نہ کرے گی اگرچہ مولیٰ کی قدیم ملک پھر عود کر آئی ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر مولیٰ نے ماذون کو بطور بیع فاسد کے بعوض شراب یا سور کے فروخت کر کے مشتری کے سپرد کیا اس نے مشتری کے قبضہ میں خرید و فروخت کی پھر بائع کو واپس دیا گیا تو وہ محجور رہے گا اسی طرح اگر اس پر مشتری نے بائع کے حکم سے یا بائع کے حضور یا عدم حضور میں قبضہ کیا یا بائع کے حضور میں بغیر اس کے حکم کے قبضہ کیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر بعد افتراق کے بلا حکم بائع کے اس پر قبضہ کیا تو محجور نہ ہوگا اور اگر مردار یا خون کے عوض فروخت کیا ہو تو بسبب بطلانِ بیع کے ان سب صورتوں میں محجور نہ ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر مولیٰ نے بطور بیع صحیح کے تین روز کی اپنی خیارِ شرط پر فروخت کیا تو جب تک بیع نافذ نہ ہو جائے تب تک وہ غلام ماذون رہے گا کیونکہ مولیٰ کی ملک سے خارج نہیں ہوا اور اگر مشتری کے واسطے خیار کی شرط ٹھہری ہو تو محجور ہو جائے گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ اگر مولیٰ نے اہل بازار کے

حضور میں اپنے ماذون کو محجور کیا حالانکہ غلام غائب ہے اور مولیٰ نے اس کے پاس حجر سے آگاہ کرنے کے واسطے ایک ایلچی بھیج دیا اس نے غلام کو آگاہ کر دیا تو غلام محجور ہو جائے گا خواہ وہ ایلچی آزاد ہو یا مملوک ہو خواہ عورت ہو یا مرد ہو خواہ عادل ہو یا فاسق ہو اسی طرح اگر اس کو خط لکھ کر بھیجا اور خط پہنچ گیا تو محجور ہو جائے گا خواہ نامہ بر آزاد ہو یا نامہ بر یعنی جو شخص خط لایا ہے اس میں بھی مثل پیغام کے عدد و عدالت و آزادی وغیرہ شرط نہیں ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 47 Book of Al-Mazun (The Authorized Slave)**

Whether the slave (mamluk) is a man, a boy, or a woman, and whether they are upright (adil) or transgressive (fasiq), this is the position upon which the fatwa is given (mufta bihi). In the aforementioned case, if a slave joins the Dar al-Harb (enemy territory) and is captured by the polytheists and subsequently returns from captivity, his master shall be entitled to him, and any debts he owed shall remain as they were. This is the view according to Imam al-A’zam (Imam Abu Hanifa) (may Allah have mercy on him). ⋆ If an authorized slave (mazun) is informed of being restricted (mahjur) by someone whom the master did not send, then according to the reasoning (qiyas) of Imam al-A'zam, he will not be restricted until two people inform him or one upright person whom the slave recognizes informs him. Imams Abu Yusuf and Muhammad (may Allah have mercy on them) stated that if any person—man, woman, or child—informs him, he becomes restricted. This is after the news has reached him, as mentioned in *Al-Mabsut*. The phrase "after the news has reached him" means that subsequently, the master comes and affirms, "I have restricted him." If the master denies it, he will not be restricted; this is in *Al-Muhit*. If a slave is afflicted with continuous insanity (*junun mutbiq*) from which there is no recovery, he becomes restricted. If he later recovers, the original permission to trade does not return; this is in *Siraj al-Wahaj*. However, if the insanity is not continuous—meaning he becomes insane and then recovers—he shall not be restricted. There is a difference of opinion regarding the duration of continuous insanity: Imam Muhammad stated that if it lasts less than a month, it is not continuous; if it lasts a month or more, it is continuous. He later retracted this and said that it is not continuous if less than a year, and it is continuous if it lasts a year or more; this is the position of the fatwa. In the *Fatawa*, it is stated that if an authorized slave apostatizes (*murtad*), he becomes restricted according to Imam al-A’zam, but not according to the two companions (Imams Abu Yusuf and Muhammad). Then, if he joins the enemy territory, he is considered restricted from the time of joining according to the two companions, and from the time of apostasy according to Imam al-A’zam. If he falls unconscious—that is, fainting without being intoxicated—he shall not be restricted; this is in *Siraj al-Wahaj*. If he joins the enemy territory and returns after being captured by polytheists, his master is entitled to him and his debts remain as they were, according to Imam al-A’zam; whereas the two companions stated that the debt becomes void; this is in *Tatarkhaniya*. If an authorized slave runs away (*abaq*), he becomes restricted according to our three leading Imams. If he returns from flight,

whether his permission to trade is restored or not was not mentioned by Imam Muhammad in his book, and the scholars have differed on this. The correct view is that the permission is not restored; this is in *Al-Muhit*. If a slave engages in buying and selling while in flight, no contract shall be binding upon him. If the person who traded with the slave claims that the slave had not run away but was sent by the master, while the master claims he had run away, the word of the one who traded with the slave shall be taken. It is incumbent upon the master to bring witnesses that his slave had run away and had traded during flight. If both parties present witnesses for their claims, the witnesses of the one who traded with the slave shall be accepted. If both the master and the trader agree that the slave had run away, but the trader says "I traded with him before he fled" and the master says "No, rather after he fled," the word of the trader shall still be taken. If both present witnesses, the witnesses of the seller (the trader) shall be accepted; this is the position of the fatwa. If a slave who is a *mudabbar* (to be freed upon master's death) is authorized to trade and then runs away, he shall not be restricted. If an authorized slave is wrongfully seized (*ghasab*) by someone, the ruling for this is not mentioned in the book. The scholars have stated that the correct view is that he will not be restricted. If an authorized slave is captured by a combatant enemy, he will not be restricted before being secured in the enemy territory; once secured there, he becomes restricted. If the slave subsequently returns to his master, he does not become authorized again automatically—that is, the original permission does not return; this is in *Fatawa Qazi Khan*. An authorized slave purchased a slave and granted him permission to trade, and the permission was valid. Then the master, from among the two... [text cut off] (1) Continuous insanity was defined as being insane for a full month continuously, and the fatwa is based on this; however, in this context, it may be a year... [text cut off]

चाहे वह गुलाम पुरुष हो, बालक हो या महिला हो, चाहे वह न्यायप्रिय (आदिल) हो या पापी (फ़ासिक़) हो, यही मुफ़्ती-बेह (फ़तवा देने योग्य मत) है। उपरोक्त मसले में, यदि गुलाम दारुल-हरब (शत्रु देश) में चला गया और मुशरिकों (बहुदेववादियों) के हाथों गिरफ्तार होने के बाद कैद होकर वापस आया, तो उसका मालिक उसका हकदार होगा और उस पर जो कर्ज था, वह यथावत रहेगा। यह इमाम-ए-आज़म रह. के निकट है। ⋆ यदि माज़ून (व्यापार की अनुमति प्राप्त गुलाम) को महज़ूर (अक्षम/प्रतिबंधित) होने की सूचना किसी ऐसे व्यक्ति ने दी जिसे मालिक ने नहीं भेजा था, तो इमाम-ए-आज़म रह. के कयास में वह तब तक महज़ूर नहीं होगा जब तक कि दो व्यक्ति उसे खबर न दें या एक न्यायप्रिय व्यक्ति जिसे गुलाम पहचानता हो, खबर न दे। इमाम अबू यूसुफ़ रह. और इमाम मुहम्मद रह. ने फ़रमाया कि कोई भी पुरुष, महिला या बालक उसे यह खबर दे दे तो वह महज़ूर हो जाएगा। खबर पहुँचने के बाद, जैसा कि 'मबसूत' में है। "खबर पहुँचने के बाद" वाले कथन का अर्थ यह है कि इसके बाद मालिक आकर स्वीकार करे कि "मैंने इसे महज़ूर कर दिया है"। यदि वह इनकार करे, तो वह महज़ूर नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है। यदि माज़ून पर 'जुनून-ए-मुतबिक' (पूर्ण पागलपन) तारी हो जाए जिससे होश नहीं आता, तो वह महज़ूर हो जाएगा। फिर यदि उसे होश आ जाए, तो अनुमति (इज़्न) वापस नहीं लौटेगी, यह 'सिराज अल-वहाज' में है। और यदि पूर्ण पागलपन न हो, यानी कभी पागल हो जाता हो और फिर होश में आ जाता हो, तो वह महज़ूर नहीं होगा। फिर पूर्ण पागलपन की अवधि में मतभेद है: इमाम मुहम्मद रह. ने फ़रमाया कि यदि एक महीने से कम हो तो वह पूर्ण पागलपन नहीं है, और यदि एक महीना या उससे अधिक हो तो पूर्ण पागलपन है। फिर उन्होंने इस कथन से रुजू (वापसी) की और कहा कि एक साल से कम पूर्ण पागलपन नहीं है, और एक साल या उससे अधिक तक पूर्ण पागलपन है; यही मुफ़्ती-बेह है। और फ़तावा में है कि यदि माज़ून मुर्तद (धर्मत्यागी) हो जाए, तो इमाम-ए-आज़म रह. के निकट वह महज़ूर हो जाएगा और साहबेन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के निकट नहीं होगा। फिर जब वह दारुल-हरब में शामिल हो जाए, तो शामिल होने के समय से साहबेन के निकट और धर्मत्याग के समय से इमाम-ए-आज़म रह. के निकट वह महज़ूर होगा। और यदि उस पर बेहोशी तारी हो जाए, यानी बिना नशा किए मूर्च्छा (अग्मा) तारी हो, तो वह महज़ूर नहीं होगा, यह 'सिराज अल-वहाज' में है। यदि वह दारुल-हरब में शामिल होने और मुशरिकों के हाथों गिरफ्तार होने के बाद कैद होकर वापस आया, तो उसका मालिक उसका हकदार होगा और उस पर जो कर्ज था वह यथावत रहेगा, यह इमाम-ए-आज़म रह. के निकट

है; जबकि साहबेन ने फ़रमाया कि कर्ज बातिल (अमान्य) हो जाएगा, यह 'तातारखनिया' में है। यदि माज़ून भाग गया, तो हमारे तीनों इमामों के निकट वह महज़ूर हो जाएगा। फिर यदि वह वापस आया, तो क्या अनुमति बहाल होगी या नहीं? इस स्थिति का उल्लेख इमाम मुहम्मद रह. ने अपनी किताब में नहीं किया है और उलेमा (मशायख) ने इसमें मतभेद किया है। सही बात यह है कि अनुमति बहाल नहीं होगी, यह 'मुहीत' में है। यदि गुलाम ने भागने की स्थिति (अबाक) में खरीद-फरोख्त की, तो उसमें से उस पर कोई अनुबंध अनिवार्य नहीं होगा। फिर यदि गुलाम के साथ लेन-देन करने वाले ने कहा कि गुलाम भागा हुआ नहीं था बल्कि मालिक ने उसे भेजा था, और मालिक ने कहा कि वह भागा हुआ था, तो उसी का बयान मान्य होगा जिसने गुलाम के साथ व्यापार किया था। मालिक पर गवाह लाना अनिवार्य होगा कि मेरा गुलाम भागा हुआ था और उसने भागने की स्थिति में व्यापार किया था। और यदि दोनों ने अपने दावों के गवाह पेश किए, तो उसी के गवाह स्वीकार किए जाएंगे जिसने गुलाम के साथ व्यापार किया था। और यदि मालिक और व्यापारी इस बात पर सहमत हों कि गुलाम भागा हुआ था, लेकिन व्यापारी कहे कि "मैंने भागने से पहले उसके साथ व्यापार किया था" और मालिक कहे "नहीं बल्कि भागने के बाद किया है", तो भी व्यापारी का बयान मान्य होगा। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो विक्रेता (व्यापारी) के गवाह स्वीकार किए जाएंगे; यही मुफ़्ती-बेह है। यदि मुदब्बर गुलाम को माज़ून बनाया गया और वह भाग गया, तो वह महज़ूर नहीं होगा। और यदि माज़ून गुलाम को किसी व्यक्ति ने हड़प (ग़सब) लिया, तो किताब में इसका हुक्म दर्ज नहीं है। उलेमा ने कहा है कि सही यह है कि वह महज़ूर नहीं होगा। यदि माज़ून को शत्रु ने कैद कर लिया, तो दारुल-हरब में सुरक्षित करने से पहले वह महज़ूर नहीं होगा, और जब सुरक्षित कर लिया तो महज़ूर हो जाएगा। फिर यदि उसके बाद वह गुलाम अपने मालिक के पास वापस आया, तो वह माज़ून नहीं रहेगा यानी अनुमति स्वयं बहाल नहीं होगी, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। माज़ून गुलाम ने एक गुलाम खरीद कर उसे व्यापार की अनुमति दी, अनुमति मान्य हुई। फिर मालिक ने दोनों में से... [कटा हुआ भाग]

(1) जुनून-ए-मुतबिक के बारे में कहा गया कि एक महीने तक लगातार पागल रहे, और इसी पर फ़तवा है, लेकिन यहाँ शायद एक साल कहा गया है।

مملوک ہو خواہ مرد ہو یا لڑکا یا عورت ہو خواہ عادل ہو یا فاسق ہو یہ مفتی بہ ہے۔ مسئلہ مذکورہ میں اگر غلام دارالحرب میں جاملنے اور مشرکوں کے ہاتھ گرفتار ہونے کے بعد قید ہو کر آیا تو اس کا مولیٰ اس کا حقدار ہو گا اور جو قرضہ اس پر تھا وہ بحالہ باقی رہے گا یہ امام اعظمؒ کے نزدیک ہے * اگر ماذون کو محجور ہو جانے کی خبر کسی ایسے شخص نے دی جس کو مولیٰ نے نہیں بھیجا تھا تو امام اعظمؒ کے قیاس میں محجور ہو گا تا وقتیکہ اس کو دو شخص خبر نہ دیں یا ایک شخص عادل جس کو غلام پہچانتا ہو خبر نہ دے اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ جس شخص عورت یا مرد یا لڑکا اس کو یہ خبر دے دے تو محجور ہو جائے گا بعد ازاں کہ خبر پہنچی ہو کذا فی المبسوط قولہ بعد ازآں کہ خبر پہنچی ہو اس قول کے یہ معنی ہیں کہ اس کے بعد مولیٰ آکر اقرار کرے کہ میں نے محجور کیا ہے اور اگر اس نے انکار کیا تو محجور نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون پر جنونِ مطبق طاری ہو گیا کہ جس سے افاقہ نہیں ہوتا ہے تو محجور ہو جائے گا پھر اگر اس کے بعد اس کو افاقہ ہو گیا تو اذن عود نہ کرے گا یہ سراج الوہاج میں ہے اور اگر جنون مطبق نہ ہو یعنی جنون سے مجنون ہو جاتا ہو پھر افاقہ ہو جاتا ہو تو محجور نہ ہو گا۔ پھر جنون مطبق کی حد میں اختلاف کیا ہے امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ایک مہینہ سے کم ہو تو جنون مطبق نہیں ہے اور اگر ایک مہینہ یا زیادہ ہو تو مطبق ہے پھر اس قول سے رجوع کیا اور کہا کہ ایک سال سے کم مطبق نہیں ہے اور ایک سال یا زیادہ تک مطبق ہے یہ مفتی بہ ہے اور فتاوی میں ہے کہ اگر ماذون مرتد ہو گیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک محجور ہو جائے گا اور صاحبین کے نزدیک نہ ہو گا پھر جب دارالحرب میں جاملاتو وقت لحوق سے صاحبین کے نزدیک اور وقت ارتداد سے امام اعظمؒ کے نزدیک محجور ہو گا اور اگر اس پر بے ہوشی طاری ہوئی یعنی بدون

نشہ پئے ہوئے اغماء طاری ہوا تو محجور نہ ہو گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر دارالحرب میں جاملنے اور مشرکوں کے ہاتھ گرفتار ہونے کے بعد قید ہو کر آیا تو اس کا مولیٰ اس کا حقدار ہو گا اور جو قرضہ اس پر تھا وہ بحالہ باقی رہے گا یہ امام اعظمؒ کے نزدیک ہے اور صاحبین نے فرمایا کہ قرضہ باطل ہو جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر ماذون بھاگ گیا تو ہمارے علمائے ثلاثہ کے نزدیک محجور ہو جائے گا پھر اگر اباق سے واپس آیا تو کیا اذن عود کرے گا یا نہیں، سو اس صورت کو امام محمدؒ نے کتاب میں ذکر نہیں کیا اور مشائخ نے اس میں اختلاف کیا ہے اور صحیح یہ ہے کہ عود نہ کرے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر غلام نے حالت اباق میں خرید و فروخت کی تو اس میں سے اس پر کوئی عقد لازم نہ ہو گا پھر اگر غلام کے ساتھ معاملہ بیع کرنے والے نے یہ کہا کہ غلام بھاگا ہوا نہ تھا بلکہ مولیٰ نے اس کو بھیجا تھا اور مولیٰ نے کہا کہ بھاگا ہوا تھا تو قول اسی کا لیا جائے گا جس نے غلام سے بیع کا معاملہ کیا ہے اور مولیٰ پر گواہ لانا واجب ہو گا کہ میرا غلام بھاگا ہوا تھا اور اس نے حالت اباق میں اس کے ساتھ خرید و فروخت کا معاملہ کیا تھا اور اگر دونوں نے اپنے دعوے کے گواہ پیش کیے تو جس نے غلام سے معاملہ بیع کیا ہے اسی کے گواہ مقبول ہوں گے اور اگر مولیٰ اور معاملہ کرنے والے نے غلام کے اباق پر اتفاق کیا مگر معاملہ کرنے والے نے یہ کہا کہ میں نے اباق سے پہلے اس کے ساتھ معاملہ کیا تھا اور مولیٰ نے کہا نہیں بلکہ بعد اباق کے معاملہ کیا ہے تو بھی معاملہ کرنے والے کا قول لیا جائے گا اور اگر دونوں نے گواہ پیش کیے تو بھی بائع کے گواہ مقبول ہوں گے یہ مفتی بہ ہے۔ اگر غلام مدبر کو ماذون کیا ہو اور وہ بھاگ گیا محجور نہ ہو گا اور اگر غلام ماذون کو کسی شخص نے غصب کیا تو کتاب میں اس کا حکم مذکور نہیں ہے اور مشائخ نے فرمایا کہ صحیح یہ ہے کہ محجور نہ ہو گا اگر ماذون کو حربی دشمن نے قید کر لیا تو دارالحرب میں محفوظ کر لینے سے پہلے محجور نہ ہو گا اور جب دارالحرب میں محفوظ کر لیا تو محجور ہو جائے گا پھر اگر اس کے بعد وہ غلام اس

کے مولیٰ کے ہاتھ آیا تو ماذون نہ ہو جائے گا یعنی اذن عود نہ کرے گا یہ فتاوی قاضی خان میں ہے۔ غلام ماذون نے ایک غلام خرید کر اس کو تجارت کے واسطے اجازت دی حتی کہ اجازت صحیح ہوئی پھر مولیٰ نے دونوں میں سے... [کٹ گیا ہے] (۱) جنون مطبق کہا گیا کہ ایک ماہ تک برابر مجنوں رہے اور اسی پر فتوی ہے لیکن اس مقام پر شاید ایک سال ہو لوث جامنا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (48) Kitab al-Mazoon**

If one person is interdicted (mahjoor), and then a second person is interdicted, the interdiction of the second is not valid, whether the first has debts or not. However, if the first is interdicted, it shall be effective. Then the question arises whether the second will also become interdicted? So, if the first has debts, the second will become interdicted; if the first has no debts, the second will not become interdicted.

**The Translator said** ☆

'Hakadha fi al-nuskhat al-maujooda' (As it is in the present manuscript): If none of these conditions were met but the first slave died, the ruling for him is the same as mentioned regarding the interdiction of the first slave. If the first slave did not die but the master died, both slaves shall become interdicted (mahjoor), whether the first slave is in debt or not; this is stated in 'al-Mughni'. If the authorized slave (ma'zoon) of a contracted slave (mukatib) interdicts someone, it is not permissible, just as it is not permissible for an authorized slave's authorized person to interdict someone; this is in 'Khazanah al-Muftin'. If a mukatib permits his slave to trade and then becomes incapacitated (unable to fulfill the contract), whether he has debts or not, his authorized slave (ma'zoon) will also be interdicted. Similarly, if a mukatib dies leaving behind sufficient or insufficient wealth to pay for his freedom (kitabat), or a son born during the contract, the same ruling applies. If the son of a mukatib permits a slave left by his father after death to trade, that permission will not be valid. Likewise, if a free person dies in debt and has a slave whom the heir permits to trade, the permission is void. If the heir pays off the deceased's debt, according to some books, the permission will not be implemented. But if the debt he paid on behalf of the deceased is forgiven by the creditor, he may take it. It is said that if he had already given permission for trade, the permission will become effective, provided there is no debt upon the deceased but only the slave. Our masters have said that giving permission to a slave on behalf of the deceased would be permissible. Similarly, if the son of a mukatib permits a slave left by his father after death, and then pays the freedom price (kitabat) by borrowing money, his permission will not be valid. However, if someone gifts some wealth to the son of the mukatib and he then pays the freedom price, giving permission to the slave will be valid; this is in 'al-Mabsut'.

If a guardian (wasi) permits an orphan or his slave to trade and then dies, appointing someone else as a guardian, the orphan and his slave shall become interdicted due

to his death. But if a judge (qadi) gave him permission and the judge was later dismissed or died, the orphan and his slave shall remain authorized (ma'zoon); this is in 'Khazanah al-Muftin'. It is written in 'Fatawa Atabiyya' that if a father gives trade permission to his son's slave, and then the father buys him or inherits him, the permission becomes void. However, the permission of a minor's slave does not become void upon the minor reaching puberty, nor does it become void after reaching puberty due to the father's death. If a father sees his minor son's slave conducting transactions and remains silent, it constitutes permission; this is in 'Tatarkhaniyya'. If a master becomes an apostate (murtad) and the slave then conducts trade: if the master is killed, dies, or flees to non-Muslim territory (Dar al-Harb) and the judge issues a decree of his joining (lahaq 2), then all transactions conducted by the slave after the master's apostasy are void. But if he returns as a Muslim before reaching Dar al-Harb or before the judge's decree, then according to Imam Azam (RA), all transactions are valid. Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA) said all transactions are valid except those that occurred after the master joined Dar al-Harb; those will be void provided he has not returned until the judge issues the decree of joining. If he returns before that, it is permissible; this is in 'al-Mabsut'. If a woman becomes an apostate, her authorized slave (ma'zoon) remains on his permission. If she joins Dar al-Harb and the judge issues the decree of joining (lahaq), her authorized slave shall become interdicted. But if she returns before the judge's decree, the ma'zoon remains on his permission.

(1) Meaning, the translator says that it is written this way in the current manuscript, but apparently the ruling is the opposite, i.e., if the first is not in debt, the second will be interdicted, otherwise not. (2) Lahaq: Meaning the judge has decreed that a certain apostate has gone and joined the non-believers.

## फ़तावा आलमगीरी ..... खंड ⑧ (48) किताब अल-माज़ून

एक को महजूर (निषेधित) किया गया, फिर यदि दूसरे को महजूर किया गया, तो उसका महजूर करना सही नहीं है, चाहे पहले पर ऋण हो या न हो। और यदि पहले को महजूर किया गया, तो वह हो जाएगा। फिर प्रश्न यह है कि क्या दूसरा भी महजूर हो जाएगा या नहीं? तो यदि पहले पर ऋण है, तो वह महजूर हो जाएगा और यदि पहले पर ऋण नहीं है, तो दूसरा महजूर नहीं होगा।

## अनुवादक ने कहा ☆

'कज़ा फ़ी अल-नुस्खा अल-मौजूदा' (वर्तमान प्रति में ऐसा ही है): और यदि इनमें से कोई बात न हुई बल्कि पहला गुलाम मर गया, तो उसका आदेश वही है जो पहले गुलाम के महजूर करने के संदर्भ में वर्णित है। यदि पहला गुलाम नहीं मरा बल्कि मालिक मर गया, तो दोनों गुलाम महजूर हो जाएंगे, चाहे पहला गुलाम कर्जदार हो या न हो; यह 'मुगनी' में है। और यदि अपने मुकातिब (अनुबंधित दास) के माज़ून (व्यापार के लिए अनुमत दास) ने किसी को महजूर किया, तो यह जायज़ नहीं है, जैसे माज़ून के माज़ून को महजूर करना जायज़ नहीं है; यह 'ख़ज़ाना अल-मुफ़्तीन' में है। यदि मुकातिब ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और फिर वह खुद अक्षम हो गया, चाहे उस पर ऋण हो या न हो, तो उसका माज़ून भी महजूर हो जाएगा। इसी प्रकार यदि मुकातिब अपनी मुक्ति (किताबत) की अदायगी के योग्य पर्याप्त संपत्ति या अपर्याप्त संपत्ति या अनुबंध के दौरान पैदा हुआ पुत्र छोड़कर मर गया, तो भी यही आदेश है। फिर यदि मुकातिब की संतान ने मुकातिब की मृत्यु के बाद गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, तो वह अनुमति मान्य नहीं होगी। इसी प्रकार यदि कोई स्वतंत्र व्यक्ति मर गया और उस पर ऋण है और उसका एक गुलाम है जिसे उत्तराधिकारी ने व्यापार की अनुमति दी, तो वह अनुमति शून्य है। फिर यदि उत्तराधिकारी ने मृतक की संपत्ति से ऋण चुकाया, तो उसकी कुछ पुस्तकों के अनुसार अनुमति लागू नहीं होगी, और यदि उसने वह धन जो मृतक की ओर से दिया है, उसे ऋणदाता ने माफ कर दिया, तो वह उसे ले सकता है। और कहा गया है कि यदि व्यापार की अनुमति दे चुका है, तो अनुमति प्रभावी हो जाएगी, बशर्ते मृतक पर ऋण न हो बल्कि गुलाम हो। हमारे विद्वानों ने कहा है कि मृतक की ओर से गुलाम को अनुमति देना जायज़ होगा। इसी प्रकार यदि मुकातिब के बेटे ने उस गुलाम को अनुमति दी जिसे उसके पिता ने मृत्यु के बाद छोड़ा था, फिर किसी से ऋण लेकर मुक्ति राशि (किताबत) चुकाई, तो उसकी अनुमति सही नहीं होगी। और यदि किसी व्यक्ति ने मुकातिब के बेटे को कुछ धन दान (हिबा) किया और फिर उसने मुक्ति राशि चुका दी, तो गुलाम को अनुमति देना सही होगा; यह 'मबसूत' में है।

यदि वसी (अभिभावक) ने अनाथ या उसके गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और फिर वह स्वयं मर गया और किसी दूसरे को वसी नियुक्त कर गया, तो उसकी मृत्यु से अनाथ और उसका गुलाम महजूर हो जाएंगे। और यदि न्यायाधीश (काज़ी) ने उसे अनुमति दी थी और फिर काज़ी पदमुक्त हो गया या मर गया, तो अनाथ और उसका गुलाम माज़ून (अनुमत) ही रहेंगे; यह 'ख़ज़ाना अल-मुफ़्तीन' में है। 'फ़तावा अताबिया' में लिखा है कि यदि पिता ने अपने पुत्र के गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर पिता ने उसे खरीद लिया या उसका उत्तराधिकारी बना, तो अनुमति रद्द हो जाएगी। और नाबालिग के गुलाम की अनुमति उसके बालिग (वयस्क) होने पर रद्द नहीं होगी, और इसी तरह बालिग होने के बाद पिता की मृत्यु से भी रद्द नहीं होगी। और यदि पिता ने नाबालिग पुत्र के गुलाम को व्यवहार (लेन-देन) करते देखा और मौन रहा, तो यह अनुमति मानी जाएगी; यह 'तातारख़ानिया' में है। यदि मालिक धर्मत्यागी (मुरतद) हो गया और फिर गुलाम ने खरीद-फरोख्त की, तो यदि मालिक मारा गया या मर गया या शत्रु देश (दार अल-हर्ब) में जाकर मिल गया और काज़ी ने उसके देश छोड़ने (लहाक़) का आदेश जारी कर दिया, तो गुलाम ने धर्मत्यागी होने के बाद जो भी लेन-देन किया है, वह सब शून्य है। और यदि दार अल-हर्ब जाने से पहले या काज़ी के आदेश से पहले वह मुसलमान होकर वापस आ गया, तो इमाम आज़म (रहमतुल्लाह अलैह) के अनुसार सभी व्यवहार जायज़ होंगे। इमाम अबू यूसुफ़ (रहमतुल्लाह अलैह) और इमाम मुहम्मद (रहमतुल्लाह अलैह) ने कहा है कि सभी व्यवहार जायज़ हैं, सिवाय उस लेन-देन के जो मालिक के दार अल-हर्ब पहुँचने के बाद हुआ है; वह शून्य होगा बशर्ते वह वापस न आया हो और काज़ी ने उसके देश छोड़ने का आदेश जारी कर दिया हो। और यदि उससे पहले वापस आ गया हो, तो जायज़ है; यह 'मबसूत' में है। यदि कोई स्त्री धर्मत्यागी हो गई, तो उसका माज़ून अपनी अनुमति पर रहेगा। और यदि वह स्त्री दार अल-हर्ब चली गई और काज़ी ने उसके लहाक़ (मिलने) का आदेश दे दिया, तो उसका माज़ून महजूर हो जाएगा। और यदि काज़ी के आदेश से पहले वह वापस आ गई, तो माज़ून अपनी अनुमति पर बना रहेगा।

(1) अर्थात अनुवादक कहता है कि वर्तमान प्रति में ऐसा ही लिखा है, लेकिन स्पष्ट रूप से आदेश इसके विपरीत है, यानी यदि पहले पर ऋण न हो तो दूसरा महजूर होगा, अन्यथा नहीं। (2) लहाक़ अर्थात काज़ी ने आदेश दिया कि अमुक धर्मत्यागी जाकर अविश्वासियों में मिल गया है।

---

ایک کو محجور کیا پس اگر دوسرے کو محجور کیا تو اس کا محجور کرنا صحیح نہیں ہے خواہ اوّل پر قرض ہو یا نہ ہو اور اگر اوّل کو محجور کیا تو ہو جائے گا پھر آیا دوسرا بھی محجور ہو جائے گا یا نہیں سو اگر اوّل پر قرض ہو تو محجور ہو جائے گا اور اگر اوّل پر قرض نہ ہو تو دوسرا محجور نہ ہو جائے گا۔

**قال المترجم** ☆

هكذا في النسخة الموجودة اور اگر اس میں سے کوئی بات نہ ہوئی بلکہ غلام اوّل مرگیا تو اس کا حکم وہی ہے جو غلام اوّل کے محجور کرنے میں مذکورہ ہوا ہے۔ اگر غلام اوّل نہیں مرا بلکہ مولیٰ مر گیا تو دونوں غلام محجور ہو جائیں گے خواہ غلام اوّل مقروض ہو یا نہ ہو یہ مغنی میں ہے۔ اور اگر اپنے مکاتب کے ماذون نے محجور کیا تو نہیں جائز ہے جیسے ماذون کے ماذون کو محجور کرنا نہیں جائز ہے یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ اگر مکاتب نے اپنے غلام کو تجارت کے واسطے اجازت دی پھر خود عاجز ہو گیا خواہ اس پر قرضہ ہے یا نہیں ہے تو اس کا ماذون بھی محجور ہو جائے گا اسی طرح اگر مکاتب ادائے کتابت کے لائق کافی مال یا غیر کافی مال یا کتابت کے اندر جتنا ہوا لڑکا چھوڑ کر مر گیا تو بھی یہی حکم ہے پھر اگر فرزندِ مکاتب نے بعد موتِ مکاتب کے غلام کو تجارت کی اجازت دی تو اس کی اجازت جائز نہ ہوگی اسی طرح اگر آزاد مر گیا اور اس پر قرضہ ہے اور اس کا ایک غلام ہے کہ اس کو وارث نے تجارت کے واسطے اجازت دی تو اجازت باطل ہے پھر اگر وارث نے مالِ میت سے قرضہ اپنی بعض کتابوں کی اجازت نافذ نہ ہوگی اور اگر وہ مال جو اس نے میت کی طرف سے ادا کیا ہے اس کو طالب نے

معاف کر دیا لے سکتا ہے اور فرمایا تجارت کی اجازت دے چکا ہے تو اجازت نافذ ہو جائے گی اور اگر میت پر قرضہ نہ ہو بلکہ غلام اور ہمارے مشائخ نے فرمایا میت کے واسطے غلام کو اجازت دینا جائز ہو گا اسی طرح اگر مکاتب کے بیٹے نے اس غلام کو جس کو اس کے باپ نے بعد موت کے چھوڑا ہے اجازت دی پھر کسی شخص سے مال قرض لے کر کتابت ادا کی تو اس کی اجازت صحیح نہ ہوگی اور اگر کسی شخص نے مکاتب کے بیٹے کو کچھ مال ہبہ کیا پھر اس نے مالِ کتابت ادا کر دیا تو غلام کو اس کی اجازت دینا صحیح ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر وصی نے یتیم یا اس کے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر خود مر گیا اور کسی دوسرے کو وصی مقرر کر گیا تو اس کی موت سے یتیم و اس کا غلام محجور ہو جائے گا اور اگر قاضی نے اس کو اجازت دی پھر قاضی معزول ہو گیا یا مر گیا تو یتیم و اس کا غلام ماذون رہے گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے کہ اگر باپ نے اپنے بیٹے کے غلام کو اذنِ تجارت دیا پھر باپ نے اس کو خرید لیا یا وارث ہوا تو اذن باطل ہو جائے گا اور نابالغ کے غلام کا اذن اس کے بالغ ہونے سے باطل نہ ہو گا اور ایسے ہی اس کے بالغ ہونے کے بعد باپ کے مرنے سے بھی باطل نہ ہو گا اور اگر باپ نے نابالغ بیٹے کے غلام کو تصرف کرتے دیکھا اور خاموش رہا تو یہ اذن ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر مولیٰ مرتد ہو گیا پھر غلام نے خرید و فروخت کی پس اگر مولیٰ قتل کیا گیا یا مر گیا یا دار الحرب میں جا ملا اور قاضی نے اس کے لحاق (۲) کا حکم جاری کر دیا تو جو تصرف غلام نے اس کے مرتد ہونے کے بعد کیا ہے سب باطل ہے اور اگر دار الحرب میں جا ملنے سے پہلے یا جا ملنے کے بعد حکمِ قاضی جاری ہونے سے پہلے مسلمان ہو کر واپس آیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک سب تصرفات جائز ہوں گے اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ سب تصرفات جائز ہیں سوائے اس تصرف کے جو مولیٰ کے دار الحرب میں جا ملنے کے بعد اس سے صادر ہوا ہے وہ باطل ہو گا بشرطیکہ واپس نہ آیا ہو یہاں تک کہ قاضی نے

اس کے لحاق کا حکم جاری کر دیا ہو اور اگر اس سے پہلے واپس آیا ہو تو جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر عورت مرتد ہوئی ہو تو اس کا ماذون اس کے اذن پر رہے گا اور اگر وہ عورت دار الحرب میں جا ملی اور قاضی نے اس کے لحاق کا حکم دے دیا تو اس کا ماذون محجور ہو جائے گا اور اگر حکمِ قاضی سے پہلے واپس آئی تو ماذون اپنے اذن پر رہے گا یہ۔

(۱) یعنی مترجم کہتا ہے کہ نسخہ موجودہ میں اسی طرح لکھا ہے اور ظاہر یہ کہ حکم برعکس ہے یعنی اول مقروض نہ ہو تو دوسرا محجور ہو گا ورنہ نہیں۔ (۲) لحاق یعنی قاضی نے حکم دیا کہ فلاں مرتد جا کر کافروں میں مل گیا ہے۔

**Fatawa 'Alamgiri, Vol. 8, Page 49, Kitab al-Ma'dhun (Book of Authorized Slaves)**

It is stated in *Khizana al-Muftin*: If a 'mudarib' (managing partner) grants permission to a slave belonging to the 'mudarabah' capital to engage in trade, this permission shall be valid as against the 'rabb-ul-mal' (investor). If the investor subsequently restricts him (interdiction), such interdiction is void, as mentioned in *Al-Mabsut*. If an authorized female slave gives birth to a child fathered by her master, she becomes interdicted (restricted from trading). If she has incurred debts, the master shall be the guarantor of her value. If she gives birth to a child fathered by someone other than her master, she shall not be interdicted. Then it will be examined: if no debt was incurred upon her until the child was weaned, the child belongs to the master. Even if debt occurs thereafter, the creditors shall have no claim against the child. If she gives birth after the debt is proven(1), then the child shall also be sold to satisfy the claims of those creditors whose rights were established prior to the birth, but not for those whose rights were established after the birth. Thus it is mentioned in *Al-Jawharah al-Nayirah*. A master permitted a female slave to trade, and she incurred debt exceeding her value; thereafter, the master declared her a 'mudabbarah' (promised freedom upon his death). In this case, she remains an authorized slave as before, and the master shall be the guarantor of her value to the creditors, as stated in *Jami' al-Saghir*. When a master restricts an authorized slave, his admission/acknowledgment regarding the wealth in his possession shall be valid according to Imam Azam (Abu Hanifa). This means that he admitted concerning his possessed wealth that it belongs to a certain person as a trust or was wrongfully taken (usurped) from someone, or he admits to a debt upon himself to be paid from his possessed wealth. However, the Two Companions (Imams Abu Yusuf and Muhammad) stated that his admission is not valid, and he will be held accountable after the rights of creditors are satisfied, and whatever is in his possession belongs to his master. This is stated in *Al-Kafi*.

If someone restricted his authorized slave who had been permitted to trade, and the slave then made an admission against himself, there are two scenarios. If he does not have earnings from the period of his authorization in his possession, his admission shall not be valid for immediate effect; i.e., he cannot be held accountable immediately, regardless of whether there is debt from the period of authorization or not. All Imams are in agreement on this issue. If he possesses earnings from the period of authorization, there are three possibilities: first, that all such wealth is free from debts of the authorization period; second, that all the wealth is encumbered by

such debt; third, that some of it is free and some encumbered. If all the wealth is encumbered by the debt of authorization, then his admission regarding the wealth in his possession is not valid. After being restricted, the person in whose favor he made the admission (the beneficiary) shall not have the right to share the earnings of the authorization period along with the creditors; rather, all wealth shall be applied toward the debt of the authorization period. If some wealth is encumbered and some is free, then according to Imam Azam, his admission shall be valid to the extent of the wealth that is free from the debt of authorization. All this applies as long as the slave remains in the ownership of the one who gave permission. If he has left the ownership of the permitter for any reason, such as sale, gift, etc., and then makes an admission, then by consensus, his admission shall not be valid, whether he has earnings in hand or not. Thus it is in *Al-Muhit*. If he possesses wealth of a kind acquired through labor, such as gathering and selling wood from the forest, and then makes an admission regarding that wealth for another person, by consensus, his admission shall not be ratified. This is stated in *Al-Nihayah*.

If a master restricted an authorized slave who had one thousand dirhams, and the master took them, and thereafter the slave admitted that this wealth was a trust from a certain person with him, and the master denied it, the slave's admission shall not be deemed truthful. If he is subsequently manumitted, no liability shall attach to him because of this admission. However, if he admits to wrongful taking (usurpation/theft), he will be held accountable after the fulfillment of other rights. If he was restricted while possessing one thousand dirhams and had one thousand dirhams of debt, and he then admitted that these one thousand dirhams are a trust, or mudarabat capital, or a loan, or... [text continues]

(1) Proof of debt means that she gave birth after the occurrence of the debt was verified.

ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन में है। अगर मुदारिब ने मुदारबत के माल के किसी गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, तो यह अनुमति रब्ब-उल-माल (निवेशक) पर जायज़ होगी और अगर रब्ब-उल-माल ने उसे महजूर (प्रतिबंधित) किया तो यह प्रतिबंध बातिल (अमान्य) है, यह 'मब्सूत' में है। अगर माज़ून (अनुमति प्राप्त) दासी अपने मौला (मालिक) से बच्चा जनती है, तो वह महजूर हो जाएगी और अगर उस पर कर्ज चढ़ गया हो, तो मौला उसकी कीमत का ज़ामिन (गारंटर) होगा। और अगर मौला के अलावा किसी दूसरे से बच्चा जनी हो, तो वह महजूर नहीं होगी। फिर देखा जाएगा कि अगर बच्चे के दूध छूटने तक उस पर कर्ज नहीं हुआ है, तो बच्चा मौला का होगा, यहाँ तक कि अगर इसके बाद उस पर कर्ज हो गया, तो कर्जदाताओं का बच्चे की गर्दन पर कोई अधिकार नहीं होगा। और अगर कर्ज के सबूत(1) के बाद उसे बच्चा हुआ, तो वह बच्चा भी उन कर्जदाताओं के लिए बेचा जाएगा जिनका अधिकार जन्म से पहले साबित हो चुका है, न कि उन लोगों के लिए जिनका अधिकार जन्म के बाद साबित हुआ। ऐसा ही 'अल-जौहरा अल-नैयिरा' में है। एक दासी को उसके मौला ने अनुमति दी और उसने अपनी कीमत से ज़्यादा कर्ज ले लिया, फिर मौला ने उसे मुदब्बराह (वह दासी जिसे मालिक की मृत्यु के बाद आज़ादी का वादा हो) बना दिया, तो यह दासी अपनी माज़ून वाली स्थिति में बनी रहेगी और मौला कर्जदाताओं के लिए उसकी कीमत का ज़ामिन होगा, यह 'जामे-अल-सगीर' में है। और जब मौला ने माज़ून को महजूर किया, तो जो माल उसके कब्जे में है, उसके बारे में उसका इकरार (स्वीकृति) इमाम-ए-आज़म के नज़दीक जायज़ होगा। इसका अर्थ यह है कि उसने अपने पास मौजूद माल के बारे में इकरार किया कि यह फलां व्यक्ति की अमानत है और यह फलां व्यक्ति से छीना हुआ (ग़स्ब किया हुआ) है, या अपने ऊपर कुछ कर्ज का इकरार करे कि उसके पास मौजूद माल से अदा किया जाए। और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) ने फरमाया कि उसका इकरार सही नहीं है और हक पूरा होने के बाद उससे मुआख़ज़ा (पूछताछ) किया जाएगा और जो कुछ उसके पास है वह उसके मौला का होगा, यह 'काफी' में है।

अगर किसी ने अपने माज़ून गुलाम को, जिसे व्यापार की अनुमति दी थी, महजूर कर दिया, फिर गुलाम ने अपनी ज़ात (स्वयं) पर इकरार किया, तो इसकी दो सूरतें हैं। अगर उसके पास अनुमति के समय की कमाई न हो, तो वर्तमान समय के लिए उसका इकरार सही न होगा, यानी वर्तमान में उससे मुआख़ज़ा नहीं किया जा सकता, चाहे उस पर अनुमति के समय का कर्ज हो या न हो, और इस मसले में सभी इमामों की सहमति है। अगर उसके पास अनुमति के समय की कमाई मौजूद हो, तो

इसमें तीन सूरतें हैं: एक यह कि अनुमति के समय के कर्ज से यह सारा माल खाली हो; दूसरा यह कि सारा माल उसी कर्ज में लगा हो; तीसरा यह कि कुछ खाली हो और कुछ उस कर्ज में लगा हो। तो अगर सारा माल अनुमति के कर्ज में लगा हो, तो उसके कब्जे में मौजूद उस माल के बारे में उसका इकरार सही नहीं है। महजूर होने के बाद मुक़र-लहू (जिसके हक में इकरार किया गया) को यह अधिकार नहीं होगा कि वह कर्जदाताओं के साथ अनुमति के समय की कमाई में हिस्सा ले, बल्कि सारा माल कर्जदाताओं को अनुमति के कर्ज के बदले दिया जाएगा। और अगर कुछ माल लगा हुआ और कुछ खाली हो, तो इमाम-ए-आज़म के नज़दीक उस माल की सीमा तक जो अनुमति के कर्ज से खाली है, उसका इकरार सही होगा। और यह सब उस सूरत में है जब वह गुलाम अपने अनुमति देने वाले के स्वामित्व (मिल्क) में बना रहे। और अगर वह अनुमति देने वाले के स्वामित्व से किसी कारणवश जैसे बिक्री या दान (हिबा) आदि के ज़रिए निकल गया हो, फिर उसने इकरार किया, तो सर्वसम्मति (इत्तेफाक) से उसका इकरार सही न होगा, चाहे उसके पास कुछ कमाई मौजूद हो या न हो, ऐसा 'अल-मुहीत' में है। अगर उसके पास इस प्रकार का माल हो कि उसने लकड़ियाँ आदि जंगल से लाकर बेची हों या इसी तरह की मेहनत से जमा किया हो, फिर उसने उस माल के संबंध में दूसरे के लिए इकरार किया, तो सर्वसम्मति से उसके इकरार की पुष्टि नहीं की जाएगी, यह 'निहाया' में है।

अगर मौला ने माज़ून को महजूर किया और उसके पास एक हज़ार दिरहम थे, जिन्हें मौला ने ले लिया। फिर माज़ून ने यह इकरार किया कि यह माल फलां व्यक्ति की मेरे पास अमानत (वदीअत) थी और मौला ने इसे झुठलाया, तो उसे इकरार में सच्चा नहीं माना जाएगा। फिर अगर उसे आज़ाद कर दिया गया, तो इस इकरार के कारण उसके ज़िम्मे कुछ नहीं आएगा। और अगर उसने ग़स्ब (छीनने) का इकरार किया हो, तो हक के बाद उसकी पकड़ होगी। और अगर उसे महजूर किया गया और उसके पास एक हज़ार दिरहम थे और उस पर एक हज़ार दिरहम कर्ज था, तो उसने इकरार किया कि ये एक हज़ार दिरहम फलां व्यक्ति की अमानत या मुदारबत या कर्ज या...

(1) कर्ज का सबूत यानी कर्ज चढ़ जाने की पुष्टि होने के बाद बच्चे का जन्म।

---

خزانہ لمفتین میں ہے۔ اگر مضارب نے مال مضاربت کے کسی غلام کو تجارت کی اجازت دی تو یہ اجازت رب المال پر جائز ہوگی اور اگر رب المال نے اس کو محجور کیا تو حجر باطل ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذونہ باندی اپنے مولیٰ سے بچہ جنی تو محجور ہو جائے گی اور اگر اس پر قرضہ چڑھ گیا ہو تو مولیٰ اس کی قیمت کا ضامن ہوگا اور اگر مولیٰ کے سوا کسی دوسرے سے بچہ جنی ہو تو محجور نہ ہوگی پھر دیکھا جائے گا کہ اگر لڑکے کے دودھ چھونے تک اس پر قرضہ نہیں ہوا ہے تو لڑکا مولیٰ کا ہوگا حتیٰ کہ اگر اس کے بعد اس پر قرضہ ہو گیا تو قرض خواہوں کو بچہ کی گردن میں کچھ حق نہ ہوگا اور اگر ثبوت(۱) قرضہ کے بعد اس کے بچہ ہوا تو وہ بچہ بھی ان قرض خواہوں کے واسطے جن کا حق قبل ولادت کے ثابت ہو چکا ہے فروخت ہوگا نہ ان کے واسطے جن کا حق بعد ولادت کے ثابت ہوا کذا فی الجوہرۃ النیرہ۔ ایک باندی کو اس کے مولیٰ نے اجازت دی اور اس نے اپنی قیمت سے زیادہ قرض کر لیا پھر مولیٰ نے اس کو مدبرہ کر دیا تو یہ باندی بحالہا ماذونہ رہے گی اور مولیٰ قرض خواہوں کے واسطے اس کی قیمت کا ضامن ہوگا یہ جامع صغیر میں ہے اور جب مولیٰ نے ماذون کو محجور کیا تو جو مال اس کے قبضہ میں ہے اس کی بابت اس کا اقرار امام اعظمؒ کے نزدیک جائز ہوگا اور اس کے یہ معنیٰ ہیں کہ اس نے اپنے مقبولہ مال میں یہ اقرار کیا کہ یہ فلاں شخص کی امانت ہے اور یہ فلاں شخص کی غصب کی ہوئی ہے یا اپنے اوپر کچھ قرضہ کا اقرار کرے کہ اس کے مقبولہ میں سے ادا کیا جائے اور صاحبینؒ نے فرمایا کہ اس کا اقرار صحیح نہیں ہے اور بعد حق کے اس سے مواخذہ کیا جائے گا اور جو کچھ اس کے پاس ہے وہ اس کے مولیٰ کا ہوگا یہ کافی میں ہے۔

اگر کسی نے اپنے غلام ماذون کو جس کو تجارت کی اجازت دی تھی محجور کر دیا پھر غلام نے اپنی ذات پر اقرار کیا تو اس کی دو صورتیں ہیں اگر اس کے ہاتھ میں زمانہ اجازت کی کمائی نہ ہو تو فی الحال کے واسطے اس کا اقرار صحیح نہ ہوگا یعنی فی الحال اس سے مواخذہ نہیں ہو سکتا ہے خواہ اس پر زمانہ اجازت کا قرضہ ہو یا نہ ہو اور اس مسئلہ میں سب اماموں کا اتفاق ہے۔ اگر اس کے پاس زمانہ اجازت کی کمائی موجود ہو تو اس میں تین صورتیں ہیں ایک یہ کہ زمانہ اجازت کے قرضہ سے یہ سب مال فارغ ہو دوم یہ کہ سب مال اسی قرضہ میں مشغول ہو تیسرے یہ کہ کچھ فارغ ہو اور کچھ اس قرضہ میں مشغول ہو پس اگر سب مال قرضہ اجازت میں مشغول ہو تو اس کا اقرار اس مال میں جو اس کے قبضہ میں موجود ہے صحیح نہیں ہے بعد محجور ہونے کے مقرلہ کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ قرض خواہوں کے ساتھ زمانہ اجازت کی کمائی میں شرکت کرے بلکہ سب مال قرض خواہوں کو زمانہ اجازت کے قرضہ میں دیا جائے گا اور اگر بعض مال مشغول اور بعض فارغ ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک اس قدر مال میں جو قرضہ اجازت سے فارغ ہے اس کا اقرار صحیح ہوگا اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ وہ غلام اپنے اجازت دینے والے کی ملک میں باقی ہو اور اگر اجازت دہندہ کی ملک سے کسی وجہ سے مثل بیع و ہبہ وغیرہ کے خارج ہو گیا ہو پھر اس نے اقرار کیا تو بالاتفاق اس کا اقرار صحیح نہ ہوگا خواہ اس کے پاس کچھ کمائی موجود ہو یا نہ ہو کذا فی المحیط۔ اگر اس کے پاس اس قسم کا مال ہو کہ اس نے لکڑیاں وغیرہ جنگل سے لا کر فروخت کی ہوں یا اس کے مثل کی محنت سے جمع کیا ہو پھر اس نے اس مال کی نسبت دوسرے کے واسطے اقرار کیا تو بالاتفاق اس کے اقرار کی تصدیق نہ ہوگی یہ نہایہ میں ہے۔

اگر مولیٰ نے ماذون کو محجور کیا اور اس کے پاس ہزار درہم تھے ان کو مولیٰ نے لے لیا پھر ماذون نے یہ اقرار کیا کہ یہ مال فلاں شخص کا میرے پاس ودیعت تھا اور مولیٰ نے اس کی تکذیب

کی تو اقرار میں سچا نہ ٹھہرایا جائے گا پھر اگر آزاد کیا گیا تو اس اقرار کی وجہ سے اس کے ذمہ کچھ لاحق نہ ہوگا اور اگر غصب کا اقرار کیا ہو تو بعد حق کے ماخوذ ہوگا اور اگر محجور کیا گیا اور اس کے پاس ہزار درہم تھے اور اس پر ہزار درہم قرضہ تھے پس اس نے اقرار کیا کہ یہ ہزار درہم فلاں شخص کی ودیعت یا مضاربت یا قرض یا...

(۱) ثبوت قرضہ یعنی تحقیق قرضہ چڑھ جانے کے بعد جنی۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (50) Kitab al-Mazoon**

...usurped [money] is with me and its confirmation was not made, and the creditor took these dirhams towards his debt, then the slave was freed, then a debt of one thousand dirhams will remain upon him for which he will be held accountable. If a *mazoon* (authorized slave) was restricted (*mahjoor*) and he has one thousand dirhams, and he acknowledged a debt of one thousand dirhams upon himself, stating that these one thousand dirhams are a trust (*wadiyat*) of a certain person, then according to the reasoning of Imam-e-Azam, these one thousand dirhams will belong to the creditor. Once these dirhams are given to the person for whom the acknowledgement was made and then the slave is freed, the owner of the trust will be able to hold him accountable after his freedom. If he first acknowledged the trust, then these dirhams will be given to the owner of the trust, and the creditor will hold him accountable for his debt after freedom. According to the opinion of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, the acknowledgement of the trust will be void, and the master (*mawla*) will take these thousand dirhams. When he becomes free, the owner of the trust shall not hold him accountable, but the one for whom the debt was acknowledged will hold him accountable after manumission. If in a connected statement he acknowledged saying, "a certain person has a debt of one thousand dirhams upon me and these one thousand dirhams are a trust of a certain person," then according to Imam-e-Azam, these one thousand dirhams will be divided equally between both acknowledgees. After he becomes free, both will hold him accountable for the remainder. If in this connected acknowledgement he started with the trust, saying, "these thousand dirhams are a trust of a certain person and a certain person has a debt of one thousand dirhams upon me," then these thousand dirhams will be given to the owner of the trust. If both claimed and the *mazoon* said, "both of you are truthful," then these thousand dirhams will be divided equally between them; this is in the *Mabsut*.

If a person restricted his *mazoon* slave and then authorized him again, and during the second period of authorization (*izn*), the *mazoon* acknowledged, "After being restricted, I acknowledged that I usurped or borrowed one thousand dirhams from this person during the first period of authorization," then if the acknowledgee confirmed this statement, the slave will not be held accountable immediately, but after being freed. However, if the acknowledgee denied it and said, "No, you made this acknowledgement after receiving authorization again," then the word of the acknowledgee will be accepted, and the slave will be held accountable immediately.

This ruling is contrary to the case where the *mazoon* acknowledges, "I usurped one thousand dirhams from this person during the state of restriction (*hajr*)." In this case, the ruling is that the *mazoon* will be held accountable immediately, whether the acknowledgee denies or confirms it; this is in the *Mufti*. If one restricted his slave and he has one thousand dirhams, and then he acknowledged a debt of one thousand dirhams or a specific trust of one thousand dirhams for someone, and then the wealth was lost, then as long as the slave is not freed, nothing will be obligatory upon him. Once freed, the debt will become obligatory, not the trust. If he was restricted and has one thousand dirhams, and there is a debt of one thousand dirhams upon him, then he received authorization again, and he acknowledged a debt of one thousand dirhams to another person or it was proven by witnesses, then the thousand dirhams present with him will be given specifically to the first creditor. Similarly, if the *mazoon* acknowledged that this debt is from the state of the previous authorization, the ruling is the same. Likewise, if he acknowledged that this property is a trust of a certain person who kept it with him during the previous authorization period, the first creditor will still be entitled to it, and the owner of the trust will recover his property from his *raqaba* (value/person). According to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), these thousand dirhams will belong to his master, and the creditor will recover his wealth from his *raqaba*. Thus, the slave will be sold for his debt, but if his master pays the price (*thaman*), he will not be sold.

---

1. Confirmation, meaning if the master did not confirm it, he cannot be held accountable at present.
2. The first is that due to the acknowledgement, his entitlement will not be void, but will become binding on the neck of the acknowledger.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) (50) किताब अल-माज़ून**

ग़सब (छीनने) के मेरे पास हैं और इसकी तस्दीक़ नहीं की गई और साहिब-ए-क़र्ज़ ने ये दिरहम अपने क़र्ज़े में ले लिए, फिर ग़ुलाम आज़ाद किया गया तो उस पर हज़ार दिरहम क़र्ज़ रहेंगे कि उनके लिए माख़ूज़ (पकड़) होगा। अगर माज़ून (इजाज़त प्राप्त ग़ुलाम) को महजूर (प्रतिबंधित) किया गया और उसके पास हज़ार दिरहम हैं, उसने अपने ऊपर हज़ार दिरहम क़र्ज़े का इक़रार किया कि ये हज़ार दिरहम फ़लां शख़्स के वदीअत (अमानत) हैं, तो इमाम-ए-आज़म के क़यास में ये हज़ार दिरहम साहिब-ए-क़र्ज़ के होंगे और जब साहिब-ए-क़र्ज़ को जिसके लिए इक़रार किया है ये दिरहम दे दिए गए, फिर आज़ाद किया गया तो आज़ादी के बाद साहिब-ए-वदीअत उसका दामनगीर (जवाबदेह) होगा। अगर पहले साहिब-ए-वदीअत के लिए इक़रार किया हो तो ये दिरहम साहिब-ए-वदीअत को दिए जाएंगे और साहिब-ए-क़र्ज़ उससे आज़ादी के बाद अपने क़र्ज़ के लिए मुवाख़ज़ा (पूछताछ/वसूली) करेगा और इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद के क़ौल पर वदीअत का इक़रार बातिल होगा और ये हज़ार दिरहम मौला (मालिक) ले लेगा और जब आज़ाद हो जाए तो साहिब-ए-वदीअत उससे मुवाख़ज़ा न करेगा, मगर जिसके लिए क़र्ज़ का इक़रार किया है वह आज़ादी के बाद क़र्ज़े के लिए दामनगीर होगा और अगर मुत्तसिल कलाम (जुड़े हुए कथन) में यूँ इक़रार किया कि फ़लां शख़्स के मुझ पर हज़ार दिरहम क़र्ज़ हैं और ये हज़ार दिरहम फ़लां शख़्स की वदीअत हैं, तो इमाम-ए-आज़म के नज़दीक ये हज़ार दिरहम दोनों मुक़र्र-लह (जिसके हक में इकरार किया) में आधा-आधा तक़सीम होंगे और जब आज़ाद हो जाएगा तो बाक़ी के लिए दोनों उससे मुवाख़ज़ा करेंगे और अगर इस इक़रार-ए-मुत्तसिल में पहले वदीअत से शुरू किया यानी ये हज़ार दिरहम फ़लां शख़्स की वदीअत हैं और मुझ पर फ़लां शख़्स के हज़ार दिरहम क़र्ज़ हैं, तो ये हज़ार दिरहम साहिब-ए-वदीअत को दिए जाएंगे और अगर दोनों ने दावा किया और माज़ून ने कहा कि तुम दोनों सच्चे हो तो ये हज़ार दिरहम दोनों में बराबर तक़सीम होंगे, यह मब्सूत में है।

अगर अपने ग़ुलाम माज़ून को महजूर किया फिर उसको दोबारा इजाज़त दी, पस माज़ून ने दोबारा इज़्न (अनुमति) के ज़माने में यह इक़रार किया कि मैंने महजूर होने के बाद यह इक़रार किया कि मैंने इस शख़्स से हज़ार दिरहम ज़माना-ए-इज़्न-ए-अव्वल में ग़सब कर लिए या क़र्ज़ लिए थे, पस अगर मुक़र्र-लह ने उसकी इस बात में तस्दीक़ की तो ग़ुलाम से फ़िलहाल उसका मुवाख़ज़ा न किया जाएगा बल्कि आज़ादी के बाद मुवाख़ज़ा किया जाएगा और अगर मुक़र्र-लह ने उसकी तक़्ज़ीब (झुठलाया) की और यह कहा कि नहीं तूने दोबारा इजाज़त पाने के बाद ऐसा इक़रार किया है, तो

क़ौल उसी मुक़र्र-लह का लिया जाएगा और फ़िलहाल ग़ुलाम से मुवाख़ज़ा किया जाएगा और यह हुक्म उस सूरत के ख़िलाफ़ है कि अगर माज़ून ने यह इक़रार किया कि मैंने इस शख़्स से हालत-ए-हज्र (प्रतिबंध की स्थिति) में हज़ार दिरहम ग़सब कर लिए हैं, यह हुक्म है कि माज़ून से फ़िलहाल मुवाख़ज़ा किया जाएगा चाहे मुक़र्र-लह उसकी तक़्ज़ीब करे या तस्दीक़ करे, यह मुफ़्ती में है। अगर अपने ग़ुलाम को महजूर किया और उसके पास हज़ार दिरहम हैं फिर उसने एक शख़्स के लिए हज़ार दिरहम क़र्ज़ या मुअय्यन हज़ार दिरहम वदीअत का इक़रार किया फिर माल ज़ाया हो गया, तो जब तक ग़ुलाम आज़ाद न हो तब तक उसके ज़िम्मे कुछ लाज़िम न होगा फिर जब आज़ाद हो गया तो क़र्ज़ा लाज़िम होगा न कि वदीअत और अगर महजूर किया और उसके पास हज़ार दिरहम हैं और उस पर हज़ार दिरहम क़र्ज़ा है फिर उसको दोबारा इजाज़त हासिल हुई, पस उसने एक दूसरे शख़्स के लिए हज़ार दिरहम क़र्ज़े का इक़रार किया या गवाहों से साबित किया गया तो जो हज़ार दिरहम उसके पास मौजूद हैं वह पहले क़र्ज़ख़्वाह को ख़ासतौर पर दिए जाएंगे, इसी तरह अगर माज़ून ने इक़रार किया कि यह क़र्ज़ा हालत-ए-इज़्न-ए-साबिक़ (पिछली अनुमति) का है तो भी यही हुक्म है और इसी तरह अगर यह इक़रार किया कि यह माल फ़लां शख़्स की वदीअत है कि उसने मेरे पास ज़माना-ए-इज़्न-ए-साबिक़ में वदीअत रखा था तो भी क़र्ज़ख़्वाह अव्वल इसका मुस्तहिक़ (हक़दार) होगा और साहिब-ए-वदीअत अपने माल को उसके रक़बा (गर्दन/मूल्य) से वसूल करेगा और साहिबैन के नज़दीक ये हज़ार दिरहम उसके मौला के होंगे और क़र्ज़ख़्वाह अपना माल उसके रक़बा से वसूल करेगा, पस ग़ुलाम उसके क़र्ज़े में फ़रोख़्त (बेचा) किया जाएगा लेकिन अगर उसका मौला समन (क़ीमत) अदा कर दे तो फ़रोख़्त न होगा।

---

1. तस्दीक़ यानी मौला ने उसकी तस्दीक़ न की तो बिल-फ़ेल (तत्काल) माख़ूज़ नहीं हो सकता।
2. अव्वल इस है कि इक़रार की वजह से उसका इस्तहक़ाक़ बातिल न होगा बल्कि मुक़र्र की गर्दन पर लाज़िम आएगा।

غصب کے میرے پاس ہیں اور اس کی تصدیق نہ کی گئی اور صاحب قرض نے یہ درہم اپنے قرضہ میں لے لئے پھر غلام آزاد کیا گیا تو اس پر ہزار درہم قرض رہیں گے کہ ان کے واسطے ماخوذ ہوگا۔ اگر ماذون کو محجور کیا اور اس کے پاس ہزار درہم ہیں اس نے اپنے اوپر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا کہ یہ ہزار درہم فلاں شخص کے ودیعت ہیں تو امام اعظمؒ کے قیاس میں یہ ہزار درہم صاحب قرضہ کے ہوں گے اور جب صاحب قرض کو جس کے واسطے اقرار کیا ہے یہ درہم دے دیے گئے پھر آزاد کیا گیا تو بعد آزاد صاحب ودیعت اس کا دامنگیر ہوگا۔ اگر پہلے صاحب ودیعت کے واسطے اقرار کیا ہو تو یہ درہم صاحب ودیعت کو دیے جائیں گے اور صاحب قرض اس سے بعد آزادی کے اپنے قرض کے واسطے مواخذہ کرے گا اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے قول پر اقرار ودیعت باطل ہوگا اور یہ ہزار درہم مولیٰ لے لے گا اور جب آزاد ہو جائے تو صاحب ودیعت اس سے مواخذہ نہ کرے گا مگر جس کے واسطے قرض کا اقرار کیا ہے وہ بعد عتق کے قرضہ کے واسطے دامنگیر ہوگا اور اگر متصل کلام میں یوں اقرار کیا کہ فلاں شخص کے مجھ پر ہزار درہم قرضہ ہیں اور یہ ہزار درہم فلاں شخص کی ودیعت ہیں تو امام اعظمؒ کے نزدیک یہ ہزار درہم دونوں مقرلہ میں نصفا نصف تقسیم ہوں گے اور جب آزاد ہو جائے گا تو باقی کے واسطے دونوں اس سے مواخذہ کریں گے اور اگر اس اقرار متصل میں پہلے ودیعت سے شروع کیا یعنی یہ ہزار درہم فلاں شخص کی ودیعت ہیں اور مجھ پر فلاں شخص کے ہزار درہم قرض ہیں تو یہ ہزار درہم صاحب ودیعت کو دیے جائیں گے اور اگر دونوں نے دعویٰ کیا اور ماذون نے کہا کہ تم دونوں سچے ہو تو یہ ہزار درہم دونوں میں برابر تقسیم ہوں گے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر اپنے غلام ماذون کو محجور کیا پھر اس کو دوبارہ اجازت دی پس ماذون نے دوبارہ اذن کے زمانہ میں یہ اقرار کیا کہ میں نے بعد محجور ہونے کے یہ اقرار کیا کہ میں نے اس شخص سے ہزار درہم زمانہ اذن اول میں غصب کر لیے یا قرض لیے تھے پس اگر مقر لہ نے اس کی اس بات میں تصدیق کی تو غلام سے فی الحال اس کا مواخذہ نہ کیا جائے گا بلکہ بعد آزادی کے مواخذہ کیا جائے گا اور اگر مقر لہ نے اس کی تکذیب کی اور یہ کہا کہ نہیں تو نے دوبارہ اجازت پانے کے بعد ایسا اقرار کیا ہے تو قول اسی مقرلہ کا لیا جائے گا اور فی الحال غلام سے مواخذہ کیا جائے گا اور یہ حکم بخلاف اس صورت کے ہے کہ اگر ماذون نے یہ اقرار کیا کہ میں نے اس شخص سے حالت حجر میں ہزار درہم غصب کر لیے ہیں یہ حکم ہے کہ ماذون سے فی الحال مواخذہ کیا جائے گا خواہ مقرلہ اس کی تکذیب کرے یا تصدیق کرے یہ مفتی ۔ میں ہے۔ اگر اپنے غلام کو محجور کیا اور اس کے پاس ہزار درہم ہیں پھر اس نے ایک شخص کے واسطے ہزار درہم قرض یا معین ہزار درہم ودیعت کا اقرار کیا پھر مال ضائع ہو گیا تو جب تک غلام آزاد نہ ہو تب تک اس کے ذمہ کچھ لازم نہ ہو گا پھر جب آزاد ہو گیا تو قرضہ لازم ہوگا نہ ودیعت اور اگر محجور کیا اور اس کے پاس ہزار درہم ہیں اور اس پر ہزار درہم قرضہ ہے پھر اس کو اجازت دوبارہ حاصل ہوئی پس اس نے ایک دوسرے شخص کے واسطے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا یا گواہوں سے ثابت کیا گیا تو جو ہزار درہم اس کے پاس موجود ہیں وہ پہلے قرض خواہ کو بالخصوص دیے جائیں گے اسی طرح اگر ماذون نے اقرار کیا کہ یہ قرضہ حالت اذن سابق کا ہے تو بھی یہی حکم ہے اور اسی طرح اگر یہ اقرار کیا کہ یہ مال فلاں شخص کی ودیعت ہے کہ اس نے میرے پاس زمانہ اذن سابق میں ودیعت رکھا تھا تو بھی قرض خواہ اوّل اس کا مستحق ہوگا اور صاحب ودیعت اپنے مال کو اس کے رقبہ سے وصول کرے گا اور صاحبین کے نزدیک یہ ہزار درہم اس کے مولیٰ کے ہوں گے

اور قرض خواہ اپنا مال اس کے رقبہ سے وصول کرے گا پس غلام اس کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا لیکن اگر اس کا مولیٰ ثمن ادا کر دے تو فروخت نہ ہوگا۔

---

1. تصدیق یعنی مولیٰ نے اس کی تصدیق نہ کی تو بالفعل ماخوذ نہیں ہو سکتا۔
2. اوّل اس ہے کہ اقرار کی وجہ سے اس کا استحقاق باطل نہ ہوگا بلکہ مقر کی گردن پر لازم آئے گا۔

**Fatawa 'Alamgiri..... Vol 8 | 51 | Kitab al-Ma'dhun (The Book of the Authorized Slave)**

If a slave was interdicted (*mahjur*—restricted from trade) and he possesses one thousand dirhams, having taken cloth from a seller, and after the interdiction, he acknowledged a debt of one thousand dirhams, and then his master (*mawla*) re-authorized him (*ma'dhun*), and a manifest defect appeared in him, and he stated: "These one thousand dirhams in my possession are a deposit (*wadi'at*) belonging to such-and-such person," then his claim regarding the deposit shall not be verified. From these one thousand dirhams, five hundred shall be given to the first creditor, and the remaining five hundred shall be given to the second creditor for whom he acknowledged the debt during the state of interdiction. Even then, a debt of five hundred dirhams will remain upon him, for which he will be held liable after manumission (freedom). The owner of the deposit shall hold the slave liable for his full deposit, and the slave shall be sold for that purpose. However, if the master pays the amount, the slave shall not be sold. According to the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad), five hundred dirhams from the thousand shall be given to the first creditor, and the master shall take the remaining five hundred; the owner of the deposit will hold the slave liable for five hundred dirhams of his deposit, and the five hundred taken by the master will be voided from the deposit. If five hundred of the current thousand dirhams are lost while with the slave, the remaining five hundred will specifically go to the first creditor, and the owner of the deposit will recover five hundred dirhams from the slave's person (value). This is mentioned in *Al-Mabsut*. If a slave was authorized, then interdicted, then authorized again, and he acknowledged: "I borrowed and took possession of one thousand dirhams from Zayd during the first period of authorization," or acknowledged that Zayd gave him a deposit during the first period which he subsequently lost, and the owner of the property verifies this, the slave shall be held liable immediately. This is contrary to a case where he acknowledged during interdiction that he borrowed or lost a deposit during the authorized period; in that case, he would not be held liable immediately (1). This is in *Al-Mughni*.

If an interdicted slave acknowledges destroying one thousand dirhams belonging to someone, he shall not be held liable until he is freed, after which he will be liable. If someone stood as a guarantor (*kafil*) for this debt before his manumission, the guarantor is liable immediately. If the creditor purchased the slave and freed him or kept him, the debt from the slave is voided, but he shall recover from the guarantor

the amount guaranteed. If not purchased, but the owner gifted (*hiba*) the slave to the creditor, the debt is voided from both the slave and the guarantor. If the owner then revokes the gift, according to Imam Muhammad, the debt does not return, while according to Imam Abu Yusuf, it does return. This is in *Al-Mabsut*. If a person authorized his slave for trade, then interdicted him, then re-authorized him, and he has one thousand dirhams known to be earnings from the first authorization, and the slave acknowledges: "This is a deposit from so-and-so," or "I usurped (*ghasab*) this from so-and-so," and the master denies this, then according to Imam A'zam (Abu Hanifa), his acknowledgment is valid, but according to the *Sahibayn*, it is not. This is in *Al-Muhit*. If authorized, interdicted, and re-authorized, and it is known the thousand dirhams were with him during the first authorization, and he acknowledges they are a deposit, then according to Imam A'zam, his acknowledgment is verified. Similarly, if he acknowledges they were usurped during the first authorization, it is verified. This is the view of Imam A'zam; the *Sahibayn* disagree, stating they belong to the master, and the claimant shall recover from the slave's person, and the slave shall be sold (2). Similarly, if the slave made this acknowledgment regarding the property while in the state of the second authorization...

---

(1) Immediately, etc.: Rather, he will be held liable for his acknowledgment after becoming free. (2) Sold, etc.: Because he is now authorized (*ma'dhun*); had he been interdicted at the time of acknowledgment, he would not be liable until freed.

**फ़तावा आलमगीरी..... जिल्द 8 | 51 | किताब अल-माज़ून**

यदि किसी गुलाम को महज़ूर (व्यापार से प्रतिबंधित) कर दिया गया और उसके पास एक हज़ार दिरहम हैं, और उसने किसी विक्रेता से कपड़े लिए थे, फिर महज़ूरी के बाद उसने एक हज़ार दिरहम के ऋण का इक़रार (स्वीकृति) किया, फिर उसके स्वामी (मौला) ने उसे दोबारा माज़ून (व्यापार की अनुमति प्राप्त) कर दिया, और उसमें कोई बड़ा दोष (ऐब-ए-फ़ाश) पैदा हो गया, और उसने कहा कि ये एक हज़ार दिरहम जो मेरे पास हैं वे अमुक व्यक्ति की 'वदीअत' (धरोहर/अमानत) हैं, तो वदीअत होने के संबंध में उसके कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी। उन एक हज़ार दिरहमों में से पाँच सौ दिरहम पहले ऋणदाता को दिए जाएँगे और शेष पाँच सौ दिरहम उस दूसरे ऋणदाता को दिए जाएँगे जिसके पक्ष में उसने महज़ूरी की अवस्था में इक़रार किया था। इसके बावजूद उस पर पाँच सौ दिरहम का ऋण शेष रह जाएगा, जिसके लिए उसे स्वतंत्रता के बाद उत्तरदायी ठहराया जाएगा। वदीअत का स्वामी अपनी पूरी अमानत के लिए गुलाम को पकड़ सकेगा, और गुलाम उसके लिए बेचा जाएगा; लेकिन यदि मौला उसे चुका दे, तो वह बेचा नहीं जाएगा। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार, एक हज़ार में से पाँच सौ दिरहम पहले ऋणदाता को दिए जाएँगे और शेष पाँच सौ मौला ले लेगा, और वदीअत का स्वामी अपनी अमानत के पाँच सौ दिरहम के लिए गुलाम को पकड़ेगा। जो पाँच सौ दिरहम मौला ने लिए हैं, वे वदीअत में से रद्द हो जाएँगे। यदि मौजूदा एक हज़ार में से गुलाम के पास से पाँच सौ दिरहम नष्ट (तलफ़) हो गए, तो शेष पाँच सौ विशेष रूप से पहले ऋणदाता को मिलेंगे और वदीअत का स्वामी गुलाम के मूल्य (रकबा) से पाँच सौ दिरहम वसूल करेगा। यह 'मबसूत' में है। यदि गुलाम को अनुमति दी गई, फिर महज़ूर किया गया, फिर अनुमति दी गई, और उसने इक़रार किया कि मैंने ज़ैद से पहली अनुमति के काल में एक हज़ार दिरहम ऋण लेकर प्राप्त किए थे, या यह इक़रार किया कि ज़ैद ने मुझे पहली अनुमति के समय अमानत दी थी और मैंने उसे नष्ट कर दिया, और धन के स्वामी ने इसकी पुष्टि कर दी, तो गुलाम तत्काल उसके लिए उत्तरदायी होगा। इसके विपरीत, यदि उसने महज़ूरी की स्थिति में यह इक़रार किया होता कि मैंने अनुमति के समय ऋण लिया था या अमानत नष्ट की थी, तो उस स्थिति में तत्काल (1) उससे जवाबदेही नहीं ली जाती। यह 'मुग़नी' में है।

यदि महज़ूर गुलाम ने किसी व्यक्ति के एक हज़ार दिरहम नष्ट करने का इक़रार किया, तो जब तक वह आज़ाद न हो जाए, उससे जवाबदेही नहीं ली जाएगी, और आज़ाद होने के बाद वह उत्तरदायी होगा। यदि उसकी ओर से किसी व्यक्ति ने उसकी स्वतंत्रता से पहले उस ऋण की ज़मानत

(कफ़ालत) ले ली, तो ज़ामिन (कफ़ील) तत्काल उत्तरदायी होगा। यदि ऋणदाता ने उस गुलाम को खरीद कर आज़ाद कर दिया या अपने पास रखा, तो गुलाम से उसका ऋण समाप्त हो जाएगा, लेकिन वह ज़ामिन से उतनी राशि वसूल करेगा जिसकी उसने गारंटी दी थी। यदि खरीदा न गया हो, बल्कि मालिक ने ऋणदाता को गुलाम दान (हिबा) कर दिया हो, तो गुलाम और ज़ामिन दोनों से ऋण समाप्त हो जाएगा। फिर यदि मालिक दान वापस ले ले, तो इमाम मुहम्मद के अनुसार ऋण वापस नहीं आएगा, और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार वापस आ जाएगा। यह 'मबसूत' में है। यदि किसी ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर महज़ूर किया, फिर अनुमति दी, और उसके पास एक हज़ार दिरहम हैं और यह ज्ञात है कि यह पहले की कमाई है, और गुलाम ने इक़रार किया कि यह अमुक की अमानत है या मैंने अमुक से छीना (ग़सब) है, और मौला ने उसे झुठलाया, तो इमाम आज़म (अबू हनीफ़ा) के निकट उसका इक़रार सही है, और साहिबैन के निकट सही नहीं है। यह 'मुहीत' में है। यदि व्यापार की अनुमति दी, फिर महज़ूर किया, फिर अनुमति दी, और ज्ञात है कि एक हज़ार दिरहम पहली अनुमति के समय से उसके पास थे, और उसने इक़रार किया कि ये अमुक की अमानत हैं, तो इमाम आज़म के निकट उसकी पुष्टि होगी। इसी प्रकार यदि इक़रार किया कि ये मैंने पहले ग़सब किए थे, तो भी पुष्टि होगी। साहिबैन के निकट उसकी पुष्टि नहीं होगी बल्कि वे मौला के होंगे, और जिसका हक़ है वह गुलाम के मूल्य से वसूली करेगा और गुलाम बेचा (2) जाएगा। इसी प्रकार यदि गुलाम ने इस धन के संबंध में तब इक़रार किया जब वह दूसरी अनुमति की स्थिति में था...

---

(1) तत्काल आदि: बल्कि स्वतंत्र होने के बाद अपने इक़रार पर जवाबदेह होगा। (2) बेचा जाना आदि: क्योंकि अब वह माज़ून है; यदि इक़रार के समय महज़ूर होता तो आज़ाद होने तक जवाबदेही न होती।

---

اگر غلام کو محجور کیا اور اس کے پاس ہزار درہم ہیں اور اس پر بائع سے کپڑا لے کر بقدر پس بعد حجر کے اس نے ہزار درہم قرض کا اقرار کیا پھر اس کو مولیٰ نے دوبارہ ماذون کیا پس اسے عیب فاش پیدا ہو گیا ہزار درہم موجودہ میرے پاس اس شخص کی ودیعت ہیں تو ودیعت ہونے پر اس کے قول کے تصدیق نہ کی جائے گی اور ان ہزار درہم موجودہ میں سے پانچ سو درہم قرض خواہ اول کے دیے جائیں اور باقی پانچ سو درہم دوسرے قرض خواہ کو جس کے واسطے حجر کی حالت میں اقرار کیا تھا دیے جائیں اور پھر بھی اس پر پانچ سو درہم قرضہ رہ گیا سو اس کے واسطے بعد آزادی کے ماخوذ ہوگا اور صاحب ودیعت اپنی پوری ودیعت کے واسطے دستگیر ہوگا پس غلام اس کے واسطے فروخت کیا جائے گا لیکن اگر مولیٰ اس کو ادا کر دے تو فروخت نہ ہوگا اور صاحبین کے نزدیک ہزار درہم میں سے پانچ سو درہم قرض خواہ اول کو دیے جائیں گے اور باقی پانچ سو درہم مولیٰ لے لے گا اور صاحب ودیعت اپنی ودیعت میں سے پانچ سو درہم کے واسطے دستگیر ہوگا جو پانچ سو درہم مولیٰ نے لئے ہیں اس قدر ودیعت میں سے باطل ہو جائیں گے اور اگر ہزار درہم موجودہ میں سے غلام کے پاس پانچ سو درہم تلف ہو گئے تو باقی پانچ سو درہم قرض خواہ اول کو خاصہ ملیں گے اور صاحب ودیعت غلام کے رقبہ سے پانچ سو درہم وصول کرے گا صرف اس قدر اس پر لازم ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر غلام کو اجازت دی پھر محجور کیا پھر اجازت دی پھر اس نے اقرار کیا کہ میں نے زید سے زمانہ اذن اول میں ہزار درہم قرض لے کر قبضہ کر لیا تھا یا یہ اقرار کیا کہ زید نے مجھے حالت اذن اول میں ودیعت دی تھی اور میں نے تلف کر دی اور رب المال نے اس کے قول کی تصدیق کی تو غلام فی الحال اس کے واسطے ماخوذ ہوگا بخلاف اس اگر حالت حجر میں یہ اقرار کیا کہ میں نے حالت اذن میں قرض لیا

تھا یا ودیعت تلف کر دی تھی کہ اس صورت میں فی الحال ۱ـہ اس سے مواخذہ کیا جائے گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر غلام محجور شدہ نے کسی شخص کے ہزار درہم تلف کر دینے کا اقرار کیا تو جب تک آزاد نہ ہو تب تک اس سے مواخذہ نہ کیا جائے گا اور بعد آزاد ماخوذ ہوگا اور اگر اس کی طرف سے کسی شخص نے قبل اس کی آزادی کے اس قرضہ کی کفالت کر لی تو کفیل فی الحال ماخوذ ہوگا اور اس کو صاحب قرض نے خرید کر کے آزاد کیا یا اپنے پاس رکھا تو غلام سے اس کا قرضہ باطل ہو جائے گا لیکن کفیل سے مواخذہ کر کے جس قدر مال کی اس نے ضمانت کی ہے اس سے اور ثمن میں سے جو مقدار کم ہو وہ وصول کرے گا اور اگر خریدا نہ ہو بلکہ مالک نے قرض خواہ کو غلام ہبہ کر کے سپرد کر دیا ہو تو غلام سے قرضہ باطل ہو گا اور کفیل سے بھی باطل ہو گا پھر اگر مالک نے ہبہ سے رجوع کیا تو امام محمدؒ کے قول پر قرضہ بھی عود نہ کرے گا اور امام ابو یوسف کے قول پر بعد رجوع کے قرضہ عود کرے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر محجور کیا پھر اجازت دی اور اس کے پاس ہزار درہم ہیں اور یہ معلوم ہے کہ درہم پہلے اذن کی کمائی ہے پس غلام نے اقرار کیا کہ یہ مال فلاں شخص کی ودیعت ہے یا میں نے فلاں شخص سے غصب کیا ہے اور مولیٰ نے اس کے قول کی تکذیب کی تو امام اعظمؒ کے نزدیک اس کا اقرار صحیح ہے اور صاحبین کے نزدیک نہیں صحیح ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر محجور کیا پھر اجازت دی اور اس کے پاس ہزار درہم ہیں کہ یہ معلوم ہے کہ درہم حالت اذن اول میں اس کے پاس تھے پس اس نے اقرار کیا کہ یہ درہم فلاں شخص کی ودیعت ہیں تو امام اعظمؒ کے نزدیک اس کے اقرار کی تصدیق ہو گی اسی طرح اگر یہ اقرار کیا کہ یہ درہم فلاں شخص سے میں نے حالت اذن اول میں غصب کیے تھے تو بھی تصدیق کی جائے گی یہ امام اعظمؒ کا قول ہے اور صاحبین کے ایک ہزار درہم میں

اس کے قول کی تصدیق نہ ہو گی بلکہ یہ مولیٰ کے ہوں گے اور مقر لہ اپنا اقراری مال اس کے رقبہ سے وصول کرے گا اور غلام فروخت ۲؎ کیا جائے گا اسی طرح اگر غلام نے اس مال کی نسبت یہ اقرار اس وقت کیا کہ جب اس پر دوسری اجازت کی حالت میں۔۔۔

---

۱؎ فی الحال الخ بلکہ بعد آزاد ہونے کے اپنے اقرار پر ماخوذ ہوگا۔ ۲؎ فروخت الخ کیونکہ اب ماذون ہے اور اگر اقرار کے وقت محجور ہوتا تو ابھی مواخذہ نہ ہوتا جب تک آزاد نہ ہوتا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (52) Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma’dhun)**

Even if debts have accumulated, according to Imam Azam (Abu Hanifa), this property will be given to the acknowledged creditor, while according to the Sahibain (his disciples Abu Yusuf and Muhammad), this property will belong to the master; this is recorded in 'Al-Mabsut'.

**Chapter Nine: Regarding the declaration of the authorized slave and his master.**

If an authorized slave makes an acknowledgment of debt, there are two scenarios. If he acknowledges a trade-related debt, then the acknowledgment is valid concerning the master's rights, meaning the slave is immediately liable, whether the master confirms it or denies it. If he acknowledges a debt for any reason other than trade, he will not be held immediately liable; rather, he will be held accountable after his manumission. In 'Kitab al-Asl', Imam Muhammad stated that if an authorized slave acknowledges the usurpation (Ghasb) of property, or a trust (Wadi'at) which he previously denied, or a silent partnership (Mudarabah), goods for sale (Bida'at), or a loan (Ariyah) which he denied, or cutting the hamstrings of an animal, or burning a cloth, or hiring a laborer at a certain wage, or the dower of a concubine whom he bought and had intercourse with and who was subsequently claimed by a rightful owner (Istihqaq); in all such cases, if he makes an acknowledgment, it will be considered a debt for which he is immediately liable. The scholars (Mashaikh) stated that the ruling regarding cutting hamstrings and burning cloth applies when the acknowledgment occurs after he has taken possession of those items, thereby establishing him as a usurper (Ghasib) by possession, making liability (Daman) obligatory from the time of possession. In this case, compensation is due. Otherwise, if the damage occurred before possession, his acknowledgment is not valid, and he will not be held liable immediately; this is recorded in 'Al-Muhit'.

If he acknowledged that he ruptured the hymen of a free woman or a concubine (both being virgins) with his finger such that the passages for excrement and urine became one, then according to the two parties (Abu Hanifa and Muhammad), nothing is immediately obligatory upon him except if confirmed by the master, as this is an acknowledgment of a criminal offense (Jinayat). Imam Abu Yusuf stated that this acknowledgment relates to property, and he is immediately liable. If he usurped a virgin concubine and caused such injury with a finger, then if the master of the concubine seeks compensation based on the act of usurpation before the slave’s

acknowledgment, he has that right because compensation for usurpation falls under trade categories. However, if he seeks compensation specifically for the injury (Ikhtisas), he does not have that right, as it is a criminal offense and not proven solely by acknowledgment. If someone usurps a virgin concubine and has intercourse with her, and her master seeks compensation for the loss of virginity due to usurpation, he can claim it immediately. If he seeks it for the act of intercourse, it will not be obligatory until the slave is free; this is in 'Siraj al-Wahaj'. If the authorized slave acknowledges purchasing a virgin concubine and injuring her, then like other debts, he is liable for her fair dower (Uqr) if she is taken by a rightful claimant, and he will be held immediately liable; this is in 'Khazanat al-Muftin'. Similarly, if he usurped a virgin concubine and someone else injured her while in his possession and then fled, the owner has the right to hold the authorized slave liable for the dower; this is in 'Al-Mabsut'.

If he acknowledged that he injured this virgin after marrying her without his master's permission, nothing is immediately due from him. However, if the master confirms the acknowledgment of injury based on an invalid marriage (Nikah al-Fasid), then the claims of other creditors are paid first, and then if any property remains...

---

1. Denial: Because a trust (Wadi'at) becomes a liability after it is denied. Denial is a condition in trusts and commercial goods.
2. Istihqaq: Refers to the situation where the declarer is found not to be the rightful owner.
3. Meaning that through the master's confirmation, the offense becomes immediately punishable.
4. "The master, etc.": Meaning the slave acknowledged injury due to marriage without permission, and the master confirmed it as true.

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (52) किताबुल माज़ून

क़र्ज़ बढ़ गया है तो भी इमाम आज़म (अबू हनीफ़ा) के नज़दीक यह माल मुक़र्र-लह (जिसके पक्ष में इकरार किया गया) को दिया जाएगा और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक यह माल मौला (मालिक) का होगा, यह 'मबसत' में है।

## बाब नहुम: ग़ुलाम माज़ून और उसके मौला के इक़रार के बयान में

अगर ग़ुलाम ने क़र्ज़ का इक़ार किया तो इसकी दो सूरतें हैं। अगर उसने व्यापार (तिजारत) के क़र्ज़ का इक़रार किया तो इक़रार मौला के अधिकार में सही होगा, यानी ग़ुलाम तुरंत उत्तरदायी होगा, चाहे मौला इसकी पुष्टि (तस्दीक़) करे या इसे झुठलाए (तक़ज़ीब)। अगर व्यापार के अलावा किसी दूसरी वजह से क़र्ज़ का इक़रार किया, तो वह तुरंत उत्तरदायी नहीं होगा, बल्कि आज़ादी के बाद उससे जवाबतलबी की जाएगी। 'किताबुल असल' में इमाम मुहम्मद ने फ़रमाया कि अगर माज़ून ने ग़सब (अवैध कब्ज़ा) या वदीअत (अमानत) का जिससे उसने पहले इनकार किया था, या मुज़ारबत, बिज़ाअत, या आरियत (उधार) जिससे वह मुकर गया था, या किसी जानवर की पैर की नसें (कोंचें) काटने का, या किसी कपड़े को जला देने का इक़रार किया, या किसी मज़दूर को मज़दूरी पर रखने का, या किसी ऐसी दासी (باندی) के महर का जिसे खरीदकर उससे संभोग (वती) की थी और फिर वह दासी किसी अन्य हक़दार द्वारा (इस्तेहक़ाक़) ले ली गई; इन सबका इक़रार किया तो ये सब ऐसे ऋण होंगे जिनके लिए वह तुरंत उत्तरदायी होगा। मशाईख़ (विद्वानों) ने फ़रमाया कि कोंचें काटने और कपड़ा जलाने का जो नियम ऊपर बताया गया है, वह उस स्थिति के लिए है जब उसने उन चीज़ों पर कब्ज़ा करने के बाद उनके नुकसान का इक़रार किया हो, ताकि वह कब्ज़े के कारण ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाला) सिद्ध हो जाए और कब्ज़े के समय से ही हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य हो जाए। इस स्थिति में हर्जाना देना होगा। अन्यथा, अगर कब्ज़े से पहले जानवर को नुकसान पहुँचाया या कपड़ा जला दिया, तो उसका इक़रार मान्य नहीं होगा और न ही उससे तुरंत जवाबतलबी होगी; यह 'मुहीत' में है।

अगर उसने यह इक़रार किया कि मैंने किसी स्वतंत्र महिला या दासी की योनि को (हालांकि दोनों कुंवारी थीं) अपनी उंगली से क्षतिग्रस्त कर दिया, जिससे मल और मूत्र का मार्ग एक हो गया, तो तरफ़ैन (इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम मुहम्मद) के अनुसार, मौला की पुष्टि के बिना तुरंत उस पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा, क्योंकि यह एक अपराध (जिनायत) का इक़रार है। इमाम अबू यूसुफ़ ने

फ़रमाया कि यह वित्तीय इक़रार है और वह तुरंत उत्तरदायी होगा। यदि उसने एक कुंवारी दासी का ग़सब किया और उसे उंगली से क्षतिग्रस्त कर दिया, तो यदि दासी के मालिक ने उसके इक़रार से पहले ग़सब के आधार पर हर्जाना माँगा, तो उसे अधिकार होगा क्योंकि ग़सब का हर्जाना व्यापारिक लेन-देन की श्रेणी में आता है। परंतु यदि 'इख़्तिसास' (क्षति पहुँचाने के अपराध) के कारण हर्जाना माँगा, तो उसे अधिकार नहीं होगा क्योंकि यह एक अपराध है जो केवल इक़रार से सिद्ध नहीं होता। यदि कोई कुंवारी दासी ग़सब करके ले गया और उससे संभोग किया, और दासी का मालिक ग़सब के कारण कुंवारापन नष्ट होने का हर्जाना चाहे, तो वह तुरंत ले सकता है। यदि संभोग के लिए हर्जाना चाहे, तो वह आज़ादी के बाद ही देय होगा; यह 'सिराजुल वहाज' में है। यदि माज़ून ने इक़रार किया कि मैंने किसी की कुंवारी दासी खरीदकर उसे क्षतिग्रस्त किया है, तो अन्य ऋणों की तरह उस पर 'उक़्र' (उचित महर) देय होगा यदि दासी किसी हक़दार द्वारा ले ली जाए, और वह तुरंत उत्तरदायी होगा; यह 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। इसी प्रकार, यदि उसने एक कुंवारी दासी ग़सब की और किसी अन्य व्यक्ति ने उसके पास रहते हुए उसे क्षतिग्रस्त किया और भाग गया, तो दासी के मालिक को अधिकार है कि वह 'उक़्र' के लिए माज़ून को उत्तरदायी ठहराए; यह 'मबसत' में है।

यदि उसने यह इक़रार किया कि मैंने इस कुंवारी दासी से अपने मौला की अनुमति के बिना निकाह (विवाह) करके उसे क्षतिग्रस्त किया है, तो उस पर तुरंत कुछ भी देय नहीं होगा। और यदि मौला ने अमान्य विवाह (निकाह-ए-फ़ासिद) के आधार पर उसके इक़रार की पुष्टि कर दी, तो पहले अन्य लेनदारों का ऋण चुकाया जाएगा, फिर यदि कुछ धन बचा...

---

1. इनकार: क्योंकि अमानत (वदीअत) इनकार के बाद देयता बन जाती है। वदीअत, बिज़ाअत आदि में इनकार एक शर्त है।
2. इस्तेहक़ाक़: इसका अर्थ है कि किसी मामले में स्वीकार करने वाले का अधिकार न होना।
3. अर्थात मौला की पुष्टि से वह अपराध तुरंत दंडनीय हो जाता है।
4. मौला आदि: अर्थात ग़ुलाम ने बिना अनुमति निकाह के आधार पर इक़र ार किया और मौ ने उसे सच मान लिया।

قرضہ چڑھ گیا ہے تو بھی امام اعظمؒ کے نزدیک یہ مال مقرلہ کو دیا جائے گا اور صاحبین کے نزدیک یہ مال مولیٰ کا ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔

**باب نہم: غلام ماذون اور اس کے مولیٰ کے اقرار کے بیان میں**

اگر غلام نے قرضہ کا اقرار کیا تو اس کی دو صورتیں ہیں اگر اس نے قرضہ تجارت کا اقرار کیا تو اقرار حق مولیٰ میں صحیح ہو گا یعنی غلام فی الحال ماخوذ ہوگا خواہ مولیٰ اس کی تصدیق کرے یا تکذیب کرے۔ اگر تجارت کے سوائے کسی دوسری وجہ سے قرضہ کا اقرار کیا تو فی الحال ماخوذ نہ ہوگا بلکہ بعد آزادی کے مواخذہ کیا جائے گا کتاب الاصل میں امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ماذون غصب کا یا ودیعت کا جس سے انکار کر گیا تھا یا مضاربت کا بضاعت کا یا عاریت کا جس سے منکر ہو گیا تھا یا کسی چوپایہ کی کونچیں کاٹنے کا یا کسی کپڑے کے جلا ڈالنے کا اقرار کیا یا کسی اجیر کو اجرت پر مقرر کرنے کا یا کسی باندی کے مہر کا جس کو خرید کر اس سے وطی کی تھی پھر وہ استحقاق[2] میں لے لی گئی اقرار کیا تو یہ سب ایسا قرضہ اس کے ذمہ ہوگا جس کے واسطے فی الحال ماخوذ ہوگا اور مشائخ نے فرمایا کہ کونچیں کاٹنے اور کپڑا جلانے کا جو حکم مذکور ہے وہ ایسی صورت پر محمول ہے کہ جب اس نے ان دونوں چیزوں پر قبضہ کر کے کونچیں کاٹنے اور جلانے کا اقرار کیا ہوتا کہ قبضہ سے غاصب قرار پائے اور وقت قبضہ سے ضمان واجب ہو جائے اور اس صورت میں مال مضمون ہو گا ورنہ اگر قبضہ سے پہلے چوپایہ کی کونچیں کاٹ ڈالیں یا کپڑا جلا دیا ہو تو اس کا اقرار صحیح نہ ہوگا حتیٰ کہ اس سے مواخذہ نہ ہوگا یہ محیط میں ہے۔

اگر اس نے یہ اقرار کیا کہ میں نے آزاد عورت یا باندی کی فرج کو حالانکہ دونوں باکرہ ہیں اپنی انگلی سے چیر دیا یہاں تک کہ پاخانہ اور پیشاب کا ایک سوراخ ہو گیا تو طرفین کے نزدیک فی الحال اس پر کچھ لازم نہ ہوگا مگر مولیٰ کی تصدیق[3] کرنے سے اور یہ جنایت کا اقرار ہے۔ امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ یہ اقرار مال ہے اور فی الحال ماخوذ ہوگا اور اگر اس نے ایک باکرہ باندی غصب کر کے انگلی سے اس کی فرج چیر کر پاخانہ کے سوراخ سے ملا دی پس اگر باندی کے مولیٰ نے قبل اس کے اقرار کے اس سے غصب کی وجہ سے ضمان لینی چاہی تو اس کو اختیار ہوگا کیونکہ ضمان غصب وجوہ تجارت میں سے ہے اور اگر اختصاص یعنی چیرنے کے جرم کی وجہ سے ضمان چاہی تو اس کو اختیار نہ ہوگا کیونکہ یہ جنایت ہے اس کے اقرار سے ثابت نہ ہوگی اور اگر کوئی باکرہ باندی غصب کر کے لے گیا اور اس سے وطی کی پس اگر باندی کے مولیٰ نے غصب کی وجہ سے نقصان بکارت کی ضمان چاہی تو فی الحال ضمان لے سکتا ہے اگر وطی چاہی تو اس پر فی الحال لازم نہ ہوگی یہاں تک کہ آزاد ہو جائے یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر ماذون نے اقرار کیا کہ میں نے اس شخص کی باندی باکرہ خرید کر اس سے اختصاص کیا ہے تو مثل اور قرضوں کے اس پر اس کا عقر لازم ہو گا جب کہ وہ باندی استحقاق میں لے لی جائے اور فی الحال ماخوذ ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ اسی طرح اگر اس نے باکرہ باندی غصب کر لی اور اس کے پاس کسی شخص نے اس باندی سے اختصاص کیا پھر بھاگ گیا تو باندی کے مولیٰ کو اختیار ہوگا کہ اس کے عقر کے واسطے ماذون کو گرفتار کرادے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر یوں اقرار کیا کہ میں نے اس باکرہ سے بدوں اجازت اپنے مولیٰ کے نکاح کر کے اختصاص کیا ہے تو اس پر کچھ لازم نہ ہو گا اور اگر مولیٰ[4] نے بنکاح فاسد اس کے اختصاص کے اقرار کی تصدیق کی ہو تو پہلے قرض خواہوں کا قرضہ ادا کیا جائے گا پھر اگر کچھ مال...

1. انکار کیونکہ ودیعت امانت بعد انکار کے ضمانت ہو جاتی ہے وطی بضاعت وغیرہ میں انکار شرط ہے۔

2. استحقاق یہ کہ کسی صورت میں مقر کا نہ ہونا۔

3. یعنی مولیٰ کی تصدیق سے فی الحال جرم واجب المواخذہ ہو۔

4. مولیٰ الخ یعنی غلام نے بغیر اجازت مولیٰ کے بوجوہ نکاح کے اختصاص کا اقرار کیا تو مولیٰ نے کہا کہ سچا ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (Page 53) Kitab al-Ma'dhun**

As for the remainder, the master of the slave girl shall take it as her *uqr* (compensation). It is narrated from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) that the master of the slave girl should be made a partner with the creditors, whether the master has confirmed or denied it; this is stated in *Al-Mufti*. If a *Ma'dhun* (authorized slave) admits to having sexual intercourse with her outside of marriage and the master denies having given permission for marriage, he will not be held liable for the dower immediately until he becomes free; this is mentioned in *Al-Mabsoot*. If the *Ma'dhun* admits regarding a slave in his possession that "this person is the son of so-and-so, and he left him with me as a trust (deposit)," or says "he is free and was never a slave," then his word shall be accepted. The underlying principle in such cases is that if the *Ma'dhun* admits to "supervening freedom" (*Hurriyyat-e-Tariya*) for a slave in his possession—meaning freedom that occurred after being a slave—then his admission is not valid. However, if he admits to "original/inherent freedom" (*Hurriyyat-e-Asli*) which is apparent, it is valid. An admission is deemed to be of supervening freedom only when signs of slavery are evident in the person admitted for. For example, if the *Ma'dhun* previously admitted the person was a slave and the person confirmed it, then the *Ma'dhun* later claims he is inherently free, this is considered an admission of supervening freedom and is invalid. If no signs of slavery are apparent and he admits the person is inherently free, it is accepted as an admission of original freedom.

In the case where he says, "This is the son of such-and-such person who left him with me as a trust," and no signs of slavery are apparent, then if the slave confirms being the son of so-and-so or being inherently free, this admission of original freedom is valid; this is in *Al-Muheet*. If a *Ma'dhun* buys a slave from Zaid, while the slave is present and silent, and then admits the slave is the son of so-and-so or inherently free and was never owned, his admission shall not be valid; this is in *Al-Dhakhira*. If a *Ma'dhun* admits regarding a specific item in his possession that it belongs to so-and-so and that he usurped it or it was a trust, even if the *Ma'dhun* is heavily in debt, the item must first be given to the one in whose favor the admission was made; this is in *Al-Mabsoot*. If a *Ma'dhun* admits to many debts, all creditors shall share equally in his earnings and in the price realized when he is sold; an earlier creditor shall not have priority over a later one; this is in *Al-Dhakhira*. If a *Ma'dhun* buys a slave from someone and pays the price, whether he has existing debts or not, and then admits that the seller had freed him before the sale or that he is inherently free, while the

seller denies it, the slave remains a slave. Similarly, if he admits the seller made him a *mudabbar* (promised freedom upon master's death) or, in the case of a slave girl, that she bore a child for the seller, the same ruling applies. However, if the seller confirms the admission, the sale is annulled and the price is returned; this is in *Al-Mabsoot*.

**☆ If a Ma'dhun bought a slave from someone and paid the price, whether he has a debt or not... ☆**

If the *Ma'dhun* did not admit to any of the above but admitted that the seller had sold the slave to someone else before selling to him, and that third party confirmed it while the seller denied it, the *Ma'dhun*'s admission is not held against the seller (to reclaim the price), but he is considered truthful regarding his own obligation and ordered to hand over the slave to that third party.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (53) किताबुल माजून**

बाकी रहा तो बांदी का मौली उसके'उक़्र' (मुआवजा) में ले लेगा और इमाम अबू यूसुफ रह. से रिवायत है कि ऐसा होना चाहिए कि बांदी के मौली को क़र्ज़दारों के साथ शरीक किया जाए, चाहे मौली ने इसकी तस्दीक़ की हो या तकज़ीब, यह 'मुफ़्ती' में है। और अगर माज़ून ने इकरार किया कि मैंने इससे निकाह के बिना वती की है और मौली ने इजाज़त-ए-निकाह देने से इनकार किया, तो फ़िलहाल मेहर के लिए उससे मुतालिबा नहीं होगा जब तक कि वह आज़ाद न हो जाए, यह 'मब़सूत' में है। अगर माज़ून ने अपने पास मौजूद ग़ुलाम के बारे में यह इकरार किया कि यह शख़्स फ़लां बिन फ़लां का बेटा है और वह मेरे पास अमानत (वदीअत) छोड़ गया है, या कहा कि यह आज़ाद है और कभी ग़ुलाम (ममलूक) नहीं रहा, तो उसी की बात मानी जाएगी। इस तरह के मसलों में असल नियम यह है कि अगर माज़ून ने अपने क़ब्ज़े वाले ग़ुलाम के लिए 'हुर्रियत-ए-तारिया' (बाद में मिली आज़ादी) का इकरार किया, तो उसका इकरार सही नहीं होगा। लेकिन अगर उसने 'अस्ली आज़ादी' का इकरार किया जो ज़ाहिरी तौर पर साबित है, तो वह सही होगा। माज़ून के इकरार को 'हुर्रियत-ए-तारिया' तब माना जाएगा जब उस शख़्स में ग़ुलामी की निशानियां मौजूद हों। मसलन, माज़ून ने पहले इकरार किया कि यह शख़्स ममलूक है और उस शख़्स ने भी इसकी तस्दीक़ की, फिर बाद में माज़ून ने कहा कि यह 'हुरुल असल' (पैदाइशी आज़ाद) है, तो यह इकरार बाद की आज़ादी माना जाएगा और सही नहीं होगा। लेकिन अगर ग़ुलामी की निशानियां न हों और उसने उसे पैदाइशी आज़ाद कहा, तो यह सही माना जाएगा।

जिस सूरत में उसने कहा कि यह फ़लां शख़्स का बेटा है जिसने इसे मेरे पास अमानत रखा है, और उसमें ग़ुलामी की निशानियां नहीं हैं, तो यह अस्ली आज़ादी का इकरार है और सही होगा, यह 'मुहीत' में है। अगर माज़ून ने ज़ैद से एक ग़ुलाम खरीदा, ग़ुलाम वहां मौजूद और खामोश है, फिर माज़ून ने इकरार किया कि यह फ़लां का बेटा है या पैदाइशी आज़ाद है, तो यह इकरार सही नहीं होगा, यह 'ज़ख़ीरा' में है। अगर माज़ून ने अपने पास मौजूद चीज़ों में से किसी चीज़ के बारे में इकरार किया कि यह फ़लां शख़्स की है और मैंने उससे छीनी (ग़सब की) है या उसने अमानत दी थी, भले ही माज़ून पर बहुत क़र्ज़ हो, तो पहले उस शख़्स को वह चीज़ दी जाएगी जिसके हक़ में इकरार किया गया है, यह 'मब़सूत' में है। अगर माज़ून ने बहुत से क़र्ज़ों का इकरार किया, तो उसके सभी क़र्ज़दार उसकी कमाई और उसकी बिक्री की क़ीमत में बराबर के शरीक होंगे; ऐसा नहीं होगा कि पुराना क़र्ज़दार नए पर प्राथमिकता पाए। अगर माज़ून ने किसी से ग़ुलाम खरीदा और क़ीमत चुका दी, फिर

दावा किया कि बेचने वाले ने इसे बेचने से पहले ही आज़ाद कर दिया था या यह पैदाइशी आज़ाद है, और बेचने वाला इससे इनकार करे, तो वह ग़ुलाम ही रहेगा। लेकिन अगर बेचने वाला तस्दीक़ कर दे, तो सौदा रद्द हो जाएगा और माज़ून अपनी क़ीमत वापस लेगा।

### ☆ अगर माज़ून ने किसी शख़्स से एक ग़ुलाम खरीदा और उसको क़ीमत (थमन) अदा कर दी, चाहे उस पर क़र्ज़ है या नहीं ..... ☆

अगर माज़ून ने उपर्युक्त बातों का इकरार नहीं किया, बल्कि यह कहा कि बेचने वाले ने मेरे हाथ बेचने से पहले इसे किसी और को बेच दिया था, और उस तीसरे शख़्स ने इसकी तस्दीक़ की लेकिन बेचने वाले ने इनकार किया, तो माज़ून की बात बेचने वाले के ख़िलाफ़ नहीं मानी जाएगी (क़ीमत वापसी के लिए), लेकिन उसके अपने हक़ में उसे सच्चा माना जाएगा और उसे हुक्म दिया जाएगा कि वह ग़ुलाम उस तीसरे शख़्स को दे दे।

---

باقی رہا تو باندی کا مولیٰ اس کے عُقر میں لے لے گا اور امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ یوں چاہیے کہ باندی کا مولیٰ قرض خواہوں کے ساتھ شریک کیا جائے خواہ مولیٰ نے اس کی تصدیق کی ہو یا تکذیب کی ہو یہ مفتی میں ہے اور اگر ماذون نے اقرار کیا کہ میں نے اس سے نکاح سے وطی کی ہے اور مولیٰ نے اجازتِ نکاح دینے سے انکار کیا تو فی الحال مہر کے واسطے ماخوذ نہ ہوگا جب تک کہ آزاد نہ ہو جائے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون نے اپنے مقبوضہ غلام کی نسبت یہ اقرار کیا کہ یہ شخص فلاں بن فلاں کا بیٹا ہے وہ میرے پاس ودیعت چھوڑ گیا ہے یا کہا کہ یہ آزاد ہے کبھی مملوک نہیں ہوا ہے تو قول اسی کا لیا جائے گا اور اس جنس کے مسائل میں اصل یہ ٹھہری ہے کہ ماذون نے اگر اپنے مقبوضہ مملوک کے واسطے حریت طاریہ کا اقرار کیا یعنی حریت و آزادی طاری ہوئی ہے تو اس کا اقرار صحیح نہ ہوگا اور اگر اصلی آزادی کا جو بظاہر ثابت ہے اقرار کیا تو صحیح ہوگا اور ماذون کے اقرار کو حریت طاریہ کا اقرار جب ہی کہا جائے گا کہ جب مقر بہ مملوکیت کی نشانیاں اور علامات ظاہر ہوں اور یہ مثلاً اس طرح کہ ماذون نے یوں اقرار کیا کہ یہ شخص مملوک و رقیق ہے اور مملوک نے اس کے قول کی تصدیق کی بشرطیکہ مملوک اپنی ذات کو تعبیر کر سکتا ہو اور اگر نہیں تعبیر کر سکتا ہے حتیٰ کہ اس کے مملوک ہونے کے بارے میں ماذون ہی کا قول لازم القبول ٹھہرا پھر ماذون نے بعد اقرارِ رِقّیت کے اس کی نسبت یہ اقرار کیا کہ یہ حُر الاصل ہے تو اس کا یہ اقرار حریت طاریہ کا قرار دیا جائے گا پس صحیح نہ ہوگا۔ اگر اس شخص میں رِقّیت کے علامات و نشانات ظاہر نہ ہوں اور ماذون نے یوں اقرار کیا کہ یہ حُر الاصل ہے تو یہ حریت اصلی کا قرار دیا جائے گا نہ حریت طاریہ کا پس ماذون کا یہ اقرار صحیح ہوگا۔

جس صورت میں اس نے کہا کہ یہ فلاں شخص کا بیٹا ہے اس نے مجھے ودیعت دیا ہے اور اس شخص میں رِقّیت کی علامات ظاہر نہیں ہیں پس جب غلام نے کہا کہ یہ فلاں بن فلاں کا بیٹا ہے یا کہا کہ یہ حُر الاصل ہے تو یہ حریت اصلی کا اقرار ہے پس صحیح ہو گا یہ محیط میں ہے اور اگر ماذون نے زید سے ایک غلام خریدا حالانکہ غلام موجود و حاضر ہے اور ساکت ہے پھر اقرار کیا کہ فلاں شخص کا بیٹا ہے یا حُر الاصل ہے کبھی مملوک نہیں ہوا ہے تو ماذون کا اقرار صحیح نہ ہو گا اور نہ اس کی تصدیق ہوگی یہ ذخیرہ میں ہے اگر ماذون نے اپنی مقبوضہ چیزوں میں سے کسی خاص چیز کی نسبت یہ اقرار کیا کہ یہ چیز فلاں شخص کی ہے میں نے اس سے غصب کر لی یا اس نے مجھے ودیعت دی تھی حالانکہ ماذون پر بہت قرضہ ہے تو پہلے مقر لہ کو اس کی اقراری چیز دے دی جائے گی یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون نے بہت سے قرضوں کا اقرار کیا تو اس کے قرض خواہ اس کی مقبوضہ کمائی میں اور اس کے ثمن میں جب فروخت کیا جائے یکساں شریک ہوں گے یہ نہ ہو گا کہ سابق کا قرض خواہ پچھلے قرض خواہ پر مقدم ہو یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر ماذون نے کسی شخص سے ایک غلام خریدا اور اس کو ثمن ادا کر دیا خواہ اس پر قرضہ ہے یا نہیں ہے پھر اقرار کیا کہ میرے ہاتھ فروخت کرنے سے پہلے بائع نے اس کو آزاد کر دیا تھا یا یہ اصلی آزاد ہے اور بائع نے اس سے انکار کیا تو وہ غلام بحالہ مملوک رہے گا اسی طرح اگر بائع کی طرف سے مدبر کرنے کا اقرار کیا یا باندی تھی کہ جس کی نسبت یہ اقرار کیا کہ بائع سے بچہ جنی ہے تو یہی حکم ہے لیکن اگر بائع نے اس کے اقرار کی تصدیق کی تو دونوں میں بیع ٹوٹ جائے گی اور ثمن اس سے واپس لے گا یہ مبسوط میں ہے۔

**☆ اگر ماذون نے کسی شخص سے ایک غلام خریدا اور اس کو ثمن ادا کر دیا خواہ اس پر قرضہ ہے یا نہیں ..... ☆**

اگر ماذون نے ان میں سے کسی بات کا اقرار نہ کیا لیکن یہ اقرار کیا کہ بائع نے میرے ہاتھ فروخت کرنے سے پہلے یہ غلام فلاں شخص کے ہاتھ فروخت کیا ہے اور فلاں شخص نے اس کے اقرار کی تصدیق کی مگر بائع نے تکذیب کی تو ماذون اس اقرار میں بائع کے حق میں صادق قرار نہ دیا جائے گا تاکہ بائع سے اپنا ثمن واپس کر لے مگر اپنے حق میں سچا شمار ہو گا اور اس کو حکم دیا جائے گا کہ فلاں شخص کو دے دے یعنی پہلے یہ مملوک تھا پھر آزاد کیا گیا ہے خواہ باندی ہو یا غلام ہو۔ مقر بہ جس مملوک کے حق میں اقرار کیا ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | Page 54 | Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'zun)**

...Meaning, the slave should be handed over to the confessor (the one in whose favor the admission is made). If the seller confirms the admission made by the *Ma'zun* (the authorized slave), then the *Ma'zun* shall recover his price from the seller. Similarly, if the *Ma'zun* presents witnesses for his claim against the seller, or demands an oath from the seller regarding his claim and the seller refuses to take the oath (*nukul*), then he shall also recover his price. This is mentioned in *al-Muhit*. If the *Ma'zun* is in debt and admits regarding something in his possession that it belongs to his master (*mawla*), his master's son or father, or to another slave-trader belonging to his master (whether that slave is in debt or not), or to his master's *mukatab* (contracted slave) or *umm-ul-walad* (slave-mother of the master's child), then his admission is void (*batil*) in favor of his master, and his master's *mukatab*, *ma'zun*, or *umm-ul-walad*. However, it is valid in favor of the master's son or father. If the slave is not in debt, his admission in all these cases is valid. If he subsequently falls into debt, the ruling of that admission shall not become void. If he admits to a debt in favor of any of these people and later incurs further debts, the master, his *umm-ul-walad*, and his debt-free slave shall receive nothing. But for his indebted slave, *mukatab*, and father, the ruling is that after the debt is incurred, these people will share with other creditors. If the *Ma'zun*, whether indebted or not, makes an admission in favor of his free son or father, or his free wife, or in favor of the *mukatab*, indebted, or debt-free slave of his free son, then according to Imam al-A'zam (Abu Hanifa), his admission is void for them. However, according to the *Sahibayn* (his two disciples, Abu Yusuf and Muhammad), it is valid, and these people will share in his earnings along with other creditors.

If an indebted *Ma'zun* grants permission to his female slave to trade, and she subsequently incurs debt, and the *Ma'zun* admits that a certain thing belonging to that female slave is held by him as a deposit (*wadi'ah*), then this shall be confirmed whether the *Ma'zun* is indebted or not. Thus, the female slave will be entitled to that thing over other creditors. Similarly, if the *Ma'zun* admits to a debt in favor of that female slave, it is also valid. However, in the case of a debt, the female slave will share in her own earnings along with the *Ma'zun*'s creditors. In the case of an admission regarding a specific item (*shay-e-mu'ayyan*), the female slave alone will be entitled to it, and the *Ma'zun*'s creditors will not receive it. This is in *al-Mabsut*. If the authorized female slave, while in debt, makes an admission in favor of the *Ma'zun*

regarding a specific item or a debt, it is not valid. If she is not in debt, her admission regarding a specific item is valid, but her admission regarding a debt is invalid. If among the female slave's creditors is the master's *mukatab* or his slave, and the *Ma'zun* is in debt, then the *Ma'zun*'s admission regarding that female slave is invalid. If he is not in debt, then the *Ma'zun*'s admission for the female slave's creditors will be valid; this is in *al-Mughni*. If among the female slave's creditors are the master's father or son, and the *Ma'zun* admits to a deposit or debt for the female slave while he himself is in debt, the admission is valid. If among the female slave's creditors are the *Ma'zun*'s father or son, then whether the *Ma'zun* himself is in debt or not, according to the analogy (*qiyas*) of Imam al-A'zam, his admission is void, but according to the *Sahibayn*, it is valid. Likewise, if among the female slave's creditors is a *mukatab* of the *Ma'zun*'s father or son, the same difference of opinion exists. If among the female slave's creditors is the *Ma'zun*'s brother, his admission in favor of the female slave is valid; this is in *al-Mabsut*.

If the creditors of the *Ma'zun* requested the judge (*Qadi*) to sell the *Ma'zun*, and before being sold, the *Ma'zun* admitted that he owes a certain debt to an absent person, and both the master and the creditors confirmed or denied this, then the slave's admission shall be confirmed. After selling the slave, the absent person's share shall be set aside. If the slave did not make the admission until after the judge sold him, and then he made such an admission, it shall not be confirmed. If the master confirms his admission, then if he had another debt, the admission will not be valid; but if there was no other debt, it will be valid. Then if the condition of our case... ^1

1. That is, it will be valid by consensus (*bi-l-ittifaq*).

यानी मुक़र्र लहू (जिसके पक्ष में स्वीकारोक्ति की गई) को गुलाम दे दे और अगर विक्रेता ने माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत गुलाम) की स्वीकारोक्ति की पुष्टि की, तो माज़ून उससे अपनी कीमत वापस ले लेगा। इसी तरह, यदि माज़ून ने विक्रेता के विरुद्ध अपने दावे पर गवाह पेश किए या विक्रेता से अपने दावे पर शपथ की मांग की और उसने शपथ लेने से इनकार (नुकूल) किया, तो भी वह अपनी कीमत वापस ले लेगा। यह 'मुहीत' में वर्णित है। यदि माज़ून पर ऋण है और उसने अपने कब्जे वाली किसी चीज़ के बारे में यह स्वीकार किया कि यह चीज़ उसके स्वामी (मौली) की है, या उसके बेटे या पिता की है, या उसके किसी ऐसे गुलाम व्यापारी की है जो ऋणी हो या न हो, या उसके मुकातिब (मुक्ति हेतु अनुबंध करने वाले गुलाम) या उम्म-उल-वलद (स्वामी से संतान उत्पन्न करने वाली दासी) की है, तो उसकी यह स्वीकारोक्ति उसके स्वामी, मुकातिब, माज़ून और उम्म-उल-वलद के हक में अमान्य (बातिल) होगी। लेकिन स्वामी के बेटे या पिता के हक में यह मान्य होगी। और यदि गुलाम पर कोई ऋण नहीं है, तो इन सभी स्थितियों में उसकी स्वीकारोक्ति मान्य होगी। यदि इसके बाद गुलाम पर ऋण हो जाता है, तो उस स्वीकारोक्ति का आदेश अमान्य नहीं होगा। यदि उसने इनमें से किसी के ऋण को स्वीकार किया और बाद में उस पर और ऋण चढ़ गया, तो स्वामी, उसकी उम्म-उल-वलद और ऋण-मुक्त गुलाम को कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन ऋणी गुलाम, मुकातिब और पिता के लिए आदेश यह है कि ऋण चढ़ जाने के बाद ये लोग अन्य ऋणदाताओं (लेनदारों) के साथ सहभागी हो जाएंगे। यदि माज़ून ने, चाहे वह स्वयं ऋणी हो या न हो, अपने स्वतंत्र पुत्र, पिता या स्वतंत्र पत्नी के पक्ष में, अथवा अपने स्वतंत्र पुत्र के मुकातिब, ऋणी या ऋण-मुक्त गुलाम के पक्ष में कोई स्वीकारोक्ति की, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफा) के अनुसार इन लोगों के लिए उसकी स्वीकारोक्ति अमान्य है, जबकि साहिबैन (उनके शिष्यों अबू यूसुफ और मुहम्मद) के अनुसार यह मान्य है, और वे लोग उसकी कमाई में अन्य लेनदारों के साथ भागीदार होंगे।

यदि ऋणी माज़ून ने अपनी दासी को व्यापार की अनुमति दी और फिर दासी पर ऋण चढ़ गया, और माज़ून ने स्वीकार किया कि कोई चीज़ उस दासी की उसके पास अमानत (वदीअत) के रूप में है, तो इसकी पुष्टि की जाएगी, चाहे माज़ून स्वयं ऋणी हो या न हो। अतः वह दासी अन्य लेनदारों की तुलना में उस चीज़ की अधिक हकदार होगी। इसी तरह यदि माज़ून ने उस दासी के पक्ष में ऋण स्वीकार किया, तो यह भी सही है; किंतु ऋण की स्थिति में, यह दासी अपनी कमाई में माज़ून के लेनदारों के साथ सहभागी होगी। यदि किसी निश्चित वस्तु (शय-ए-मुअय्यन) की स्वीकारोक्ति है, तो उसकी

वास्तविक हकदार वह दासी ही होगी और माज़ून के लेनदारों को वह नहीं मिलेगी। यह 'मब्सूत' में है। यदि उस माज़ून दासी ने ऋणी होने की स्थिति में माज़ून के पक्ष में किसी निश्चित वस्तु या ऋण की स्वीकारोक्ति की, तो वह अमान्य है। यदि ऋण नहीं है, तो निश्चित वस्तु की स्वीकारोक्ति मान्य और ऋण की स्वीकारोक्ति अमान्य होगी। यदि दासी के लेनदारों में स्वामी का मुकातिब या उसका गुलाम शामिल हो और माज़ून ऋणी हो, तो माज़ून की स्वीकारोक्ति उस दासी के पक्ष में मान्य नहीं है। और यदि ऋण नहीं है, तो दासी के लेनदारों के लिए माज़ून की स्वीकारोक्ति मान्य होगी; यह 'मुग़नी' में वर्णित है। यदि दासी के कुछ लेनदारों में स्वामी का पिता या पुत्र हो और माज़ून ने दासी के लिए अमानत या ऋण स्वीकार किया हो, जबकि वह स्वयं ऋणी है, तो स्वीकारोक्ति मान्य होगी। और यदि दासी के कुछ लेनदारों में माज़ून का पिता या पुत्र हो, तो माज़ून स्वयं ऋणी हो या न हो, इमाम-ए-आज़म के कयास (तर्क) के अनुसार उसकी स्वीकारोक्ति अमान्य है, जबकि साहिबैन के अनुसार मान्य है। इसी प्रकार, यदि दासी के कुछ लेनदारों में माज़ून के पिता या पुत्र का मुकातिब हो, तो भी यही मतभेद बना रहता है। और यदि दासी के कुछ लेनदारों में माज़ून का भाई हो, तो दासी के पक्ष में उसकी स्वीकारोक्ति मान्य होगी; यह 'मब्सूत' में है।

यदि माज़ून के लेनदारों ने काज़ी से माज़ून की बिक्री का अनुरोध किया, और बिक्री से पहले माज़ून ने स्वीकार किया कि मुझ पर अमुक अनुपस्थित व्यक्ति का इतना ऋण है, और स्वामी तथा अन्य लेनदारों ने इसकी पुष्टि या खंडन किया, तो गुलाम की इस स्वीकारोक्ति की पुष्टि की जाएगी और गुलाम को बेचकर अनुपस्थित व्यक्ति का हिस्सा अलग रख दिया जाएगा। यदि गुलाम ने स्वीकारोक्ति नहीं की और काज़ी ने उसे बेच दिया, और उसके बाद उसने ऐसी स्वीकारोक्ति की, तो उसकी पुष्टि नहीं की जाएगी। और यदि स्वामी ने उसकी स्वीकारोक्ति की पुष्टि कर दी, तो यदि उस पर कोई दूसरा ऋण हुआ तो स्वीकारोक्ति सही नहीं होगी, और यदि दूसरा ऋण न हुआ तो सही होगी। फिर यदि हमारे इस मसले की स्थिति ^1

1. अर्थात सर्वसम्मति (बिला-इत्तेफाक) से मान्य होगी।

---

یعنی مقر لہ کو غلام دے دے اور اگر بائع نے ماذون کے اقرار کی تصدیق کی تو ماذون اس سے اپنا ثمن واپس لے گا اسی طرح اگر ماذون نے اپنے دعویٰ پر جو بائع پر کیا ہے گواہ پیش کیے یا بائع سے اپنے دعویٰ پر قسم طلب کی اور اس نے قسم سے نکول کیا تو بھی اپنا ثمن واپس لے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون پر قرضہ ہوا اور اس نے اپنی مقبوضہ کسی چیز کی نسبت یہ اقرار کیا کہ یہ چیز مولیٰ کی یا اس کے بیٹے یا باپ یا اس کے غلام تاجر مقروض یا غیر مقروض کی یا اس کے مکاتب یا ام ولد کی ہے تو اس کا اقرار اپنے مولیٰ اور اس کے مکاتب و ماذون و ام ولد کے واسطے باطل ہو گا مگر مولیٰ کے بیٹے یا باپ کے واسطے جائز ہو گا اور اگر غلام پر قرضہ نہ ہو گا تو اس کا اقرار ان سب صورتوں میں جائز ہو گا پھر اگر اس کے بعد اس غلام پر قرضہ ہو گیا تو اس اقرار کا حکم باطل نہ ہو گا اور اگر ان لوگوں میں سے کسی کے قرضہ کا اقرار کیا پھر اس کے بعد اس پر قرضہ چڑھ گیا تو مولیٰ یا اس کی ام ولد و غلام غیر مقروض کو کچھ نہ ملے گا اور اس کے غلام مقروض اور مکاتب اور باپ کے واسطے ایسے اقرار میں بعد قرضہ چڑھ جانے کے یہ حکم ہے کہ یہ لوگ قرض خواہوں کے ساتھ شریک ہو جائیں گے اور اگر ماذون مقروض یا غیر مقروض نے اپنے فرزند آزاد یا باپ یا اپنی آزاد جورو کے واسطے یا اپنے فرزند آزاد کے مکاتب یا غلام مقروض یا غیر مقروض کے واسطے اقرار کیا تو امام اعظم کے نزدیک ان لوگوں کے واسطے اس کا اقرار باطل ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز ہے اور لوگ اس کی کمائی میں قرض خواہوں کے ساتھ شریک ہو جائیں گے۔

اگر ماذون مقروض نے اپنی باندی کو تجارت کی اجازت دی پھر باندی پر قرضہ چڑھ گیا اور ماذون نے کسی چیز کی نسبت اقرار کیا کہ یہ چیز اس ماذونہ کی میرے پاس ودیعت ہے تو اس کی

تصدیق کی جائے گی خواہ ماذون مقروض ہو یا نہ ہو پس وہ باندی بنسبت قرض خواہوں کے اس چیز کی مستحق ہو گی اسی طرح اگر ماذون نے اس باندی کے لیے قرضہ کا اقرار کیا تو بھی صحیح ہے مگر قرضہ کی صورت میں یہ باندی اس کے قرض خواہوں کے ساتھ اس کی کمائی میں شریک ہو گی اور شے معین کے اقرار میں اس کی چیز کی مستحق خاصہ باندی ہو گی ماذون کے قرض خواہ نہ پائیں گے یہ مبسوط میں ہے اور اگر اس ماذونہ باندی نے مقروض ہونے کی حالت میں اپنی کسی چیز معین یا قرضہ کا ماذون کے واسطے اقرار کیا تو جائز نہیں ہے اور اگر قرضہ نہ ہو تو چیز معین کا اقرار جائز اور قرضہ کا اقرار نا جائز ہو گا اور اگر باندی کے قرض خواہوں میں مولیٰ کا مکاتب یا اس کا غلام ہو اور ماذون پر قرضہ ہے تو ماذون کا اقرار اس باندی کی نسبت جائز نہیں ہے اور اگر قرضہ نہ ہو تو ماذون کا اقرار باندی کے قرض خواہوں کے واسطے جائز ہو گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر باندی کے بعض قرض خواہوں میں مولیٰ کا باپ یا بیٹا ہو اور ماذون نے باندی کے واسطے ودیعت یا قرضہ کا اقرار کیا حالانکہ غلام مقروض ہے تو اقرار جائز ہو گا اور اگر باندی کے بعض قرض خواہوں میں سے ماذون کا باپ یا بیٹا ہو اور ماذون خود قرض دار ہے یا نہیں ہے تو امام اعظمؒ کے قیاس پر اس کا اقرار باطل ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز ہے اسی طرح اگر باندی کے بعض قرض خواہوں سے ماذون کے باپ یا بیٹے کا مکاتب ہو تو بھی یہی اختلاف ہے اور اگر باندی کے بعض قرض خواہوں میں سے ماذون کا بھائی ہو تو باندی کے واسطے اس کا اقرار جائز ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر قاضی سے قرض خواہوں ماذون نے ماذون کی بیچ کی درخواست کی پس قبل فروخت کئے جانے کے ماذون نے اقرار کیا کہ فلاں غائب کا مجھ پر اس قدر قرضہ ہے اور مولیٰ اور قرض خواہوں نے اس کی تصدیق یا تکذیب کی تو غلام کی اس اقرار میں تصدیق کی جائے گی اور غلام فروخت کر کے غائب کا حصہ رکھ لیا جائے گا اور اگر غلام نے اقرار نہ کیا یہاں تک کہ قاضی

نے اس فروخت کر دیا پھر اس کے بعد اس نے ایسا اقرار کیا تو تصدیق نہ کی جائے گی اور اگر مولیٰ نے اس کے اقرار کی تصدیق کی پس اگر اس پر دوسرا قرضہ ہوا تو اقرار صحیح نہ ہو گا اور اگر دوسرا قرضہ نہ ہو تو صحیح ہو گا پھر اگر ہمارے اس مسئلہ کی صورت [1]

۱ یعنی بالاتفاق جائز ہو گا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (55) Kitab al-Ma'dhun**

...that absent person appeared and produced witnesses for his right, he shall join the other creditors and take his pro-rata share from the proceeds (of the slave's sale); otherwise, he shall receive nothing. This is mentioned in *Al-Mughni*. If there are many debts against a Ma'dhun (authorized slave) and he admits to another debt, it shall also be binding upon him, and all creditors shall share proportionately; this is in *Al-Mabsut*. If a Ma'dhun admits to several debts incurred during his state of *Hajr* (restriction), saying, "I borrowed from Zaid, or I usurped someone's property, or I lost a deposit (*Wadi'at*) or investment (*Mudarabah*)", the question arises: is he liable immediately? The detail is that in the case of usurpation (*Ghasb*), he is liable immediately, whether the beneficiary (*Muqarr-lah*) confirms the admission occurred during restriction or claims it happened during authorization. In any case, he shall be sold for liability, unless the master pays his ransom (*Fidya*). Regarding debts, deposits, loans, or business capital, if the beneficiary confirms that the slave became a depositary or borrower during the state of restriction, then according to Abu Hanifa and Muhammad, he is not liable immediately but after manumission. If the beneficiary denies this, he is liable immediately; this is in *Al-Muhit*.

Similarly, if a discerning minor or a mentally impaired person who is authorized (*Ma'dhun*) makes such an admission, the same ruling applies; this is in *Al-Mabsut*. If a Ma'dhun admits to financial guarantee (*Kafalat bi'l-Mal*), it is not valid; this is in *Al-Sirajiyya*. If an authorized slave makes an admission in favor of a free person whose testimony would not be accepted for the slave (even if he were free), such as a wife, the admission is invalid; this is in *Fatawa Qadi Khan*. In *Al-Idah*, it is stated that if a Ma'dhun admits to a crime (*Jinayat*) against a slave or free person, or to a dower (*Mahr*) due from a valid or irregular marriage or sexual act by semblance, the admission is void and he is not liable until manumitted. However, if he admits to an act entailing retaliation (*Qisas*), it is valid, and the beneficiary has the right to exact retaliation; this is in *Al-Nihaya*. If a Ma'dhun admits to a debt during the master's terminal illness (*Marad al-Mawt*) due to usurpation, sale, loan, or existing or consumed deposits or investments from trade, there are two scenarios: If the master has debts incurred during health that encompass his wealth, the slave’s person, and his possessed property, the slave's admission of debt during the master's terminal illness is invalid while the master's 'health-debts' exist, provided the master's estate and the slave's value do not exceed the master's debts. If the master's debt was

admitted during his terminal illness, then the slave's admission during that period is valid.

If the master’s estate, the slave’s person, and his possessed goods exceed the master's debts, the slave’s admission shall be valid. The master's debts are settled first, and the remainder goes to the slave's creditors. If the master’s assets are missing and the slave and his goods were sold to pay the master's debts, and then the master's assets are found while some of the master's debt remains, the past debt of the master is settled first from those assets. Then, the judge shall consider the remainder and, after setting aside an amount equal to the sale price of the slave and his goods, pay the slave's creditors from it; this is in *Al-Muhit*. If the slave's debt is even greater, then after extracting the equivalent of the slave’s and his goods' value, the remainder goes as inheritance to the master's heirs, and the slave's creditors have no right to it. This is in *Al-Mabsut*. All this applies when the master has debts from a state of health...

---

1. i.e., the person in whose favor the admission is made will also share proportionately with other creditors. 2. "Void" here means he is not liable immediately. 3. This is how it appears in the original text; perhaps the correct translation is that if a minor, free person, or mentally impaired person later becomes authorized and admits they had acknowledged such a liability before authorization, their statement is accepted (per *Al-Mabsut*), meaning there is no immediate liability as the admission of the impaired is not legally effective. 4. *Bi-ayniha* means the specific deposit still exists in its original form; the same applies to *Mudarabah*, but here the debt scenario arises if the slave later denies it.

में वह ग़ायब आया और उसने अपने हक़ के गवाह क़ायम किए तो क़र्ज़ख़वाहों का दस्तगीर होकर अपना हिस्सा-ए-थमन उनसे ले लेगा वरना उसको कुछ न मिलेगा, यह 'मुग़नी' में है। अगर माज़ून (अधिकृत गुलाम) पर बहुत क़र्ज़ हों और उसने एक दूसरे क़र्ज़ का इक़रार किया तो यह भी उस पर लाज़िम होगा और सब क़र्ज़ख़वाह आपस में हिस्सा रसद (प्रो-राटा) तक़्सीम कर लेंगे, यह 'मबसूद' में है। अगर माज़ून ने अपने ऊपर हालत-ए-हज्र (प्रतिबंधित अवस्था) में बहुत से क़र्ज़ों का इक़रार किया, यानी "मैंने ज़ैद से क़र्ज़ लिया और फ़लां का माल ग़सब (अवैध कब्ज़ा) किया और फ़लां की वदीअत (अमानत) तलफ़ कर दी या मुज़ारबत (साझेदारी) तलफ़ कर दी", तो क्या वह फ़िलहाल माख़ूज़ (ज़िम्मेदार) होगा? इसका विवरण यह है कि ग़सब के मामले में वह फ़िलहाल माख़ूज़ होगा, चाहे मुक़र्रला (जिसके हक़ में इक़रार किया गया) हालत-ए-हज्र में ग़सब के इक़रार की तस्दीक़ करे या कहे कि "नहीं, बल्कि तूने हालत-ए-इज़्न (अनुमति की अवस्था) में ग़सब किया है"। हर सूरत में माख़ूज़ होकर उसे बेचा जाएगा, लेकिन अगर मौला (मालिक) उसका फ़िदिया (मुक्तिदंड) दे दे तो वह नहीं बेचा जाएगा। और क़र्ज़ या वदीअत व आरियत व बिज़ाअत में अगर मुक़र्रला ने हालत-ए-हज्र में ऐसा करने की तस्दीक़ की कि हालत-ए-हज्र में वह मुस्तौदअ (अमानतदार) और मुस्तईर (उधार लेने वाला) हुआ था, तो इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम मुहम्मद के अनुसार वह फ़िलहाल नहीं, बल्कि आज़ादी के बाद माख़ूज़ होगा। और अगर मुक़र्रला ने उसकी तकज़ीब (झुठलाया) की, तो वह फ़िलहाल माख़ूज़ होगा, यह 'मुहीत' में है।

इसी तरह अगर नाबा़लिग़ या मअतूह (मानसिक रूप से कमज़ोर) समझदार माज़ून ने इस क़िस्म का इक़रार किया तो उसका भी यही हुक्म है, यह 'मबसूद' में है। अगर माज़ून ने कफ़ालत बिल-माल (वित्तीय गारंटी) का इक़रार किया तो वह सही नहीं है, यह 'सिराजिया' में है। ग़ुलाम-ए-माज़ून ने अगर ऐसे आज़ाद शख़्स के लिए इक़रार किया जिसके लिए (अगर ग़ुलाम को आज़ाद मान लें तो भी) ग़ुलाम की गवाही क़बूल न हो, जैसे कि बीवी, तो उसका इक़रार सही न होगा, यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। और 'ईज़ा़ह' में है कि अगर माज़ून ने किसी ग़ुलाम या आज़ाद पर जिनायत (अपराध) या ऐसे महर का जो निकाह-ए-सही या फ़ासिद या वती-ए-शुबहा की वजह से उस पर वाजिब हुआ हो, इक़रार किया, तो इक़रार बातिल है; जब तक वह आज़ाद न हो जाए माख़ूज़ न होगा। और अगर ऐसे मामले का इक़रार किया जिससे क़िसास (बदला) लाज़िम आता हो, तो वह सही है और मुक़र्रला को उससे क़िसास लेने का अधिकार होगा, यह 'निहाया' में है। और अगर माज़ून ने मौला के मरज़ुल-मौत

(अंतिम बीमारी) में ग़सब, बिक्री, क़र्ज़, या मौजूदा वदीअत (यथावत अमानत) या नष्ट हुई अमानत, या मुज़ारबत (यथावत या नष्ट हुई) आदि व्यापारिक कारणों से अपने ऊपर क़र्ज़ का इक़रार किया, तो इसकी दो सूरतें हैं: यदि मौला पर ऐसा क़र्ज़ हो जो उसकी सेहत की हालत में वाजिब हुआ था और वह मौला के माल, ग़ुलाम की गर्दन (क़ीमत) और उसके पास मौजूद माल को घेरे हुए हो, तो ग़ुलाम का अपने ऊपर क़र्ज़ का इक़रार, जबकि मौला पर सेहत का क़र्ज़ मौजूद है, सही नहीं है; बशर्ते कि मौला के माल और माज़ून की क़ीमत व माल में मौला के क़र्ज़ से अधिक कुछ न हो। यदि मौला पर ऐसा क़र्ज़ हो जिसका उसने मरज़ुल-मौत में इक़रार किया हो, तो ग़ुलाम का अपने ऊपर क़र्ज़ का इक़रार मौला के मरज़ुल-मौत में सही है।

अगर मौला के तरके(विरासत), ग़ुलाम की क़ीमत और उसके पास मौजूद माल में मौला के क़र्ज़ से अधिक माल हो, तो ग़ुलाम का इक़रार सही होगा। पहले मौला का क़र्ज़ अदा किया जाएगा और जो बचेगा वह ग़ुलाम के क़र्ज़ख़वाहों को मिलेगा। यदि मौला का माल ग़ायब हो और ग़ुलाम व उसका सामान बेचकर मौला का क़र्ज़ अदा किया गया, फिर बाद में मौला का माल मिल गया जबकि मौला के क़र्ज़ का कुछ हिस्सा बाक़ी था, तो पहले मौला का पिछला क़र्ज़ उस माल से अदा किया जाएगा। फिर जो बचेगा, उसमें काज़ी ग़ुलाम की क़ीमत और उसके सामान की क़ीमत के बराबर हिस्सा निकालकर ग़ुलाम के क़र्ज़ख़वाहों को देगा, यह 'मुहीत' में है। अगर ग़ुलाम का क़र्ज़ इससे भी ज़्यादा हो, तो ग़ुलाम और उसके सामान की क़ीमत के बराबर हिस्सा निकालने के बाद जो बचेगा, वह मौला के वारिसों को विरासत में मिलेगा और उसमें ग़ुलाम के क़र्ज़ख़वाहों का कोई हक़ नहीं होगा, जैसा कि 'मबसूद' में है। और यह सब उस सूरत में है जब मौला पर सेहत के दौरान का...

---

1. यानी मुक़र्रला भी उन क़र्ज़ख़वाहों के साथ आनुपातिक हिस्से में शरीक होगा। 2. बातिल से मुराद यह है कि फ़िलहाल माख़ूज़ (पकड़) नहीं होगी। 3. मूल में इसी तरह है; शायद सही अर्थ यह है कि अगर ग़ुलाम नाबालिग़, आज़ाद या मअतूह हो और फिर माज़ून होने के बाद उसने इक़रार किया कि उसने माज़ून होने से पहले ऐसा हर्जाना स्वीकार किया था, तो उन्हीं की बात मानी जाएगी (मबसूद के अनुसार), यानी फ़िलहाल जवाबदेही नहीं होगी क्योंकि मअतूह का इक़रार प्रभावी नहीं होता। 4. 'बऐनिहा' यानी वह अमानत वैसी की वैसी ही मौजूद है; यही मुज़ारबत में है, लेकिन इसकी वजह से क़र्ज़ की यह सूरत है कि ग़ुलाम इससे इनकार कर दे।

---

میں وہ غائب آیا اور اس نے اپنے حق کے گواہ قائم کیے تو قرض خواہوں کا دستگیر ہو کر اپنا حصہ ثمن ان سے لے لے گا ورنہ اس کو کچھ نہ ملے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون پر بہت قرضہ ہوں اور اس نے ایک دوسرے قرض کا اقرار کیا تو یہ بھی اس پر لازم ہوگا اور سب قرض خواہ باہم حصہ رسد تقسیم کرلیں گے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون نے اپنے اوپر حالت حجر کے بہت سے قرضوں کا اقرار کیا یعنی میں نے زید سے قرض لیا اور فلاں کا مال غصب کیا اور فلاں کی ودیعت تلف کر دی یا مضاربت تلف کردی تو آیا فی الحال ماخوذ ہوگا یہ تفصیل ہے کہ غصب میں فی الحال ماخوذ ہوگا خواہ مقرلہ حالت حجر میں اقرار غصب کی تصدیق کرے یا کہے کہ نہیں بلکہ تو نے حالت اذن میں غصب کیا ہے بہر صورت ماخوذ ہو کر فروخت کیا جائے گا لیکن اگر مولیٰ اس کا فدیہ دے دے تو فروخت نہ ہوگا اور قرض یا ودیعت و عاریت و بضاعت میں اگر مقرلہ نے حالت حجر میں ایسا کرنے کی تصدیق کی کہ حالت حجر میں وہ مستودع و مستعیر ہوا تھا تو بقول ابوحنیفہ و محمد وہ فی الحال نہیں بلکہ بعد آزادی کے ماخوذ ہوگا اور اگر مقرلہ نے اس کی تکذیب کی تو فی الحال ماخوذ ہوگا یہ محیط میں ہے۔

اسی طرح اگر نابالغ یا معتوہ سمجھ دار ماذون نے اس قسم کا اقرار کیا تو اس کا بھی یہی حکم ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون نے کفالت بالمال کا اقرار کیا تو صحیح نہیں ہے یہ سراجیہ میں ہے۔ غلام ماذون نے اگر ایسے آزاد کے واسطے اقرار کیا کہ اگر غلام کو آزاد فرض کریں تو غلام کی گواہی اس کے لیے مقبول نہ ہو جیسے بیوی تو اس کا اقرار صحیح نہ ہوگا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور ایضاح میں ہے کہ اگر ماذون نے کسی غلام یا آزاد پر جنایت یا ایسے مہر کا جو نکاح صحیح یا فاسد یا بطور وطی شبہ کے اس پر واجب ہوا ہے اقرار کیا تو اقرار باطل ہے جب تک

آزاد نہ ہو ماخوذ نہ ہوگا اور اگر ایسے امر کا اقرار کیا جس سے قصاص لازم آتا ہے تو صحیح ہے اور مقرلہ کو اس سے قصاص لینے کا اختیار ہوگا یہ نہایہ میں ہے۔ (ولو کان العبد صغیر الوجان صغیر لحرا او معتوها فاقروا لعبد الاذن الهم قد اقرانه بذلك قبل الاذن کان القول قولهم کذا فی المبسوط) اور اگر ماذون نے مولیٰ کے مرض الموت میں غصب یا بیع یا قرض یا ودیعت موجودہ بعینہا یا مستہلکہ یا مضاربت قائمہ بعینہا یا مستہلکہ وغیرہ اقسام تجارت کی وجہ سے اپنے اوپر قرضہ کا اقرار کیا تو اس کی دو صورتیں ہیں کہ اگر مولیٰ پر قرضہ ہو جو اس کی صحت میں واجب ہوا ہے اور وہ مولیٰ کے مال اور غلام کے رقبہ اور مالِ مقبوضہ کو محیط ہے تو غلام کا اقرار قرضہ اپنے اوپر مولیٰ کے مرض الموت میں درحالیکہ مولیٰ پر قرضہ صحت موجود ہے یہ صحیح نہیں ہے بشرطیکہ مولیٰ کے مال اور ماذون کے رقبہ و مالِ مقبوضہ میں مولیٰ کے قرضہ سے زیادتی نہ ہو۔ اگر مولیٰ پر ایسا قرضہ ہو جس کا اس نے مرض الموت میں اقرار کیا ہے تو غلام کا اپنے اوپر قرضہ کا اقرار مولیٰ کے مرض الموت میں صحیح ہے۔

اگر مولیٰ کے ترکہ اور رقبہ غلام و اس کے مقبوضہ مال میں قرضہ مولیٰ سے زیادتی ہو تو غلام کا اقرار صحیح ہوگا اور پہلے مولیٰ کا قرضہ ادا کیا جائے گا اور جو کچھ باقی رہے گا وہ غلام کے قرض خواہوں کو ملے گا اور اگر مولیٰ کا مال غائب ہو اور غلام اور اس کا مقبوضہ اسباب فروخت کر کے مولیٰ کا قرضہ ادا کیا گیا پھر مولیٰ کا مال ہاتھ آیا حالانکہ مولیٰ کے قرضہ میں سے کچھ باقی رہ گیا ہے تو اس مال مولیٰ سے جو ہاتھ آیا ہے پہلے مولیٰ کا ماضی قرضہ ادا کیا جائے گا پھر جو کچھ اس میں سے باقی رہا اس میں قاضی غور کر کے بقد غلام کے ثمن اور اس کے اسباب مقبوضہ کے ثمن کے نکال کر اس سے غلام کا قرضہ اس کے قرض خواہوں کو ادا کرے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر غلام کا قرضہ اس سے بھی زیادہ ہو تو اس مال میں سے بقد غلام و اس کے اسباب کے ثمن کے نکالنے کے بعد جو کچھ باقی رہا وہ وارثان مولیٰ کو میراث ملے گا

اور اس میں سے غلام کے قرض خواہوں کا کچھ حق نہ ہوگا کذا فی المبسوط اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ جب مولیٰ پر صحت کا

---

۱۔ یعنی مقر لہ بھی ان قرض خواہوں کے ساتھ حصہ رسد شریک ہو گا۔ ۲۔ باطل سے مراد یہ ہے کہ فی الحال ماخوذ نہ ہوگا۔ ۳۔ یوں ہی اصل میں ہے اور شاید صحیح ترجمہ یہ ہے کہ اگر غلام صغیر ہو یا آزاد ہو یا معتوہ ہو پھر بعد ماذون ہونے کے انہوں نے اقرار کیا کہ غلام نے ماذون ہونے سے پہلے ایسے تاوان کا اقرار کیا تھا تو انہی کا قول قبول ہوگا المبسوط یعنی فی الحال مواخذہ نہیں ہو سکتا کیونکہ معتوہ کا اقرار مؤثر نہیں ہے۔ ۴۔ بعینہا یعنی وہ ودیعت معین بذات خود موجود ہے اور یہی مضاربت میں ہے لیکن اس کی وجہ سے قرضہ کی یہ صورت ہے کہ غلام اس سے منکر ہو جائے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | Kitab al-Ma'zoon | Page 56**

If there is a debt upon the master (Mawla) and none upon the slave, except that the slave acknowledged a debt upon himself during the master's terminal illness (*maradh al-maut*); and if there are debts upon both that became obligatory during the master's state of health, and the slave acknowledges a debt during the terminal illness of both himself and the master, then there are several scenarios in this matter. One is where the assets possessed by the slave exceed the slave's debt incurred during the master's health, but do not exceed the master's own debt. In this case, the slave's acknowledgment (iqrar) will not be valid. First, the slave's debt incurred during the master's health shall be paid from the slave's person (*raqba*) and earnings, and whatever remains surplus shall be used to pay the master's debt.

The second scenario is where the slave's person and earnings exceed both the slave's and the master's debts that were incurred during the master's state of health. In this case, the slave's acknowledgment will be valid to the extent of the assets exceeding both debts. Thus, the master's debt shall be settled first, then the slave's debt incurred during the master's health, and the remainder shall be given toward the slave's acknowledged debt. The third scenario is where the slave's assets and person do not exceed even the slave's own prior debt. In this case, the slave's acknowledgment shall not be valid. Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) has mentioned this in the book regarding this issue.

If the master has no debt, but the slave has a debt incurred during the master's health that encompasses the slave's person and possessed assets, and the slave then acknowledges a debt related to loans, sales, misappropriation, or other trade categories during the master's terminal illness, and the master subsequently dies in that illness, the slave's acknowledgment shall be valid. The judge (Qazi) shall sell the slave and his possessed assets and distribute the proceeds pro-rata (*hissa rasad*) among all creditors, giving no preference to any over the other. Similarly, if during terminal illness and while having no debt, the master acknowledges a specific item from his possessions for someone, the acknowledgment is valid, and the recipient shall be given that item first. Thus, it becomes clear that a slave is only restricted (*mahjoor*) regarding acknowledgments and debts during the master's illness if there exists a debt from the master's state of health. If no such debt exists, the slave is not restricted from such acknowledgments during the master's illness, as stated in *Al-Muheet*.

If the master has debt from his healthy state encompassing his assets and the person and assets of his authorized slave (*ma'zoon*), and the slave then borrows one thousand dirhams or buys something in front of witnesses during the master's illness, and the master dies, the judge shall sell the slave and his assets to pay the slave's debt first; any remainder shall go toward the master's debt, as mentioned in *Al-Mughni*. If a master permits his slave (valued at one thousand dirhams) to trade and has no other assets, then falls ill and acknowledges a debt of one thousand dirhams, and the slave also acknowledges a debt of one thousand dirhams, and the master dies, the judge shall sell the slave and divide the proceeds equally between both creditors. If the slave acknowledged first and then the master acknowledged, and both occurred during the master's illness, the judge shall first pay the slave's creditor and give the remainder to the master's creditor, as per *Al-Mughni*. If the master acknowledged one thousand dirhams and then, either immediately after (*muttasil*) or after a break (*munqati*), acknowledged another thousand, and then the slave acknowledged one thousand, and the master died, all three creditors shall share equally in the proceeds of the slave's sale. Similarly, if the slave acknowledges one thousand and then another thousand, both his creditors will share equally with the master's creditor.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) | किताब अल-माज़ून | पृष्ठ 56**

यदि स्वामी (मौला) पर ऋण हो और गुलाम पर कोई ऋण न हो, सिवाय इसके कि उसने स्वामी की मृत्यु-शय्या की बीमारी (मरज़ अल-मौत) के दौरान अपने ऊपर ऋण का स्वीकार (इकरार) किया हो; और यदि दोनों पर ऐसा ऋण हो जो स्वामी के स्वस्थ होने की स्थिति में अनिवार्य हुआ था, और गुलाम ने अपने और स्वामी के मरज़ अल-मौत के दौरान ऋण स्वीकार किया, तो इस मामले में कई स्थितियां हैं। पहली यह कि गुलाम की अधिकृत संपत्ति में गुलाम के उस ऋण की तुलना में अधिकता हो जो स्वामी की स्वस्थ अवस्था में अनिवार्य हुआ था, लेकिन स्वामी के ऋण से अधिक न हो। इस स्थिति में गुलाम का इकरार सही नहीं माना जाएगा और गुलाम के व्यक्ति (रकबा) तथा उसकी कमाई से पहले वह ऋण चुकाया जाएगा जो स्वामी के स्वास्थ्य के समय अनिवार्य हुआ था, फिर जो कुछ शेष बचेगा उससे स्वामी का ऋण चुकाया जाएगा।

दूसरी स्थिति यह है कि गुलाम के रकबे और उसकी कमाई में गुलाम और स्वामी दोनों के उन ऋणों की तुलना में अधिकता हो जो स्वामी के स्वास्थ्य काल में अनिवार्य हुए थे। इस स्थिति में गुलाम का इकरार उस अतिरिक्त संपत्ति की सीमा तक सही होगा जो दोनों ऋणों से अधिक है। अतः पहले स्वामी का ऋण चुकाया जाएगा, फिर गुलाम का वह ऋण जो स्वामी के स्वास्थ्य काल में अनिवार्य हुआ था, और फिर जो शेष बचेगा वह गुलाम के इकरारी ऋण (स्वीकार किए गए ऋण) के लिए दिया जाएगा। तीसरी स्थिति यह है कि यदि गुलाम की संपत्ति और रकबे में गुलाम के ऋण की तुलना में भी कोई अधिकता न हो, तो इस स्थिति में गुलाम का इकरार सही नहीं होगा। इमाम मुहम्मद (रह.) ने इस विषय की पुस्तक में ऐसा ही उल्लेख किया है।

यदि स्वामी पर कोई ऋण न हो, लेकिन गुलाम पर ऐसा ऋण हो जो स्वामी के स्वास्थ्य काल में अनिवार्य हुआ था और वह गुलाम के रकबे तथा अधिकृत संपत्ति को घेरे हुए है, फिर गुलाम ने स्वामी के मरज़ अल-मौत में ऋण, क्रय-विक्रय या गबन आदि व्यापारिक ऋण का इकरार किया और फिर स्वामी का उसी बीमारी में देहांत हो गया, तो गुलाम का इकरार सही माना जाएगा। काज़ी उस गुलाम और उसकी संपत्ति को बेचकर प्राप्त राशि को सभी लेनदारों में आनुपातिक रूप से (हिस्सा रसद) वितरित कर देगा और किसी को किसी पर प्राथमिकता नहीं देगा। इसी प्रकार, यदि स्वामी के मरज़ अल-मौत के दौरान, जबकि स्वामी पर कोई ऋण नहीं है, उसने अपनी अधिकृत संपत्ति में से किसी विशेष चीज़ का किसी व्यक्ति के लिए इकरार किया, तो वह इकरार सही है और लेनदार को वह चीज़ पहले दी जाएगी। अतः स्पष्ट हुआ कि स्वामी की बीमारी में गुलाम तभी प्रतिबंधित (महजूर) होता है,

यानी इकरार और ऋण के मामले में तभी रोका जाता है जब स्वामी पर स्वास्थ्य काल का ऋण मौजूद हो। यदि स्वामी पर स्वास्थ्य काल का ऋण न हो, तो वह मरज़ अल-मौत में ऐसे इकरार से प्रतिबंधित नहीं होगा, जैसा कि 'मुहीत' में उल्लेखित है।

यदि स्वामी पर उसके स्वास्थ्य काल का इतना ऋण हो जो उसकी संपत्ति और उसके माज़ून (व्यापार हेतु अनुमत गुलाम) के रकबे तथा संपत्ति को घेर ले, फिर माज़ून ने स्वामी की बीमारी के दौरान किसी व्यक्ति से एक हज़ार दिरहम ऋण लिया और गवाहों के सामने उस पर कब्ज़ा किया, या किसी से कोई वस्तु खरीदी और गवाहों के सामने कब्ज़ा किया, फिर स्वामी की मृत्यु हो गई, तो काज़ी गुलाम और उसकी संपत्ति को बेचकर पहले गुलाम का ऋण चुकाएगा, और जो बचेगा उसे स्वामी के ऋण में दे देगा, जैसा कि 'मुग़नी' में है। यदि किसी ने अपने गुलाम को, जिसका मूल्य एक हज़ार दिरहम है, व्यापार की अनुमति दी और उस गुलाम के अलावा उसके पास कोई संपत्ति नहीं है, फिर स्वामी बीमार पड़ा और अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम के ऋण का इकरार किया, फिर गुलाम ने भी अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम के ऋण का इकरार किया और स्वामी की मृत्यु हो गई, तो काज़ी गुलाम को बेचकर प्राप्त मूल्य को दोनों लेनदारों में बराबर बाँट देगा। और यदि गुलाम ने पहले इकरार किया फिर स्वामी ने इकरार किया और दोनों इकरार स्वामी की बीमारी के दौरान हुए, तो स्वामी की मृत्यु के बाद काज़ी पहले गुलाम का ऋण चुकाएगा और शेष स्वामी के लेनदार को देगा, जैसा कि 'मुग़नी' में है। यदि स्वामी ने पहले एक हज़ार दिरहम ऋण का इकरार किया, फिर उसी के साथ (मुत्तसिल) या कुछ समय बाद (मुन्क़ते) दूसरे एक हज़ार का इकरार किया, फिर गुलाम ने एक हज़ार का इकरार किया और स्वामी की मृत्यु हो गई, तो तीनों लेनदार गुलाम के मूल्य में बराबर के हिस्सेदार होंगे और मूल्य को तीन बराबर भागों में बाँटा जाएगा। इसी प्रकार यदि गुलाम ने पहले एक हज़ार का इकरार किया और फिर दूसरे एक हज़ार का, तो उसके दोनों लेनदार स्वामी के लेनदार के साथ बराबर के भागीदार होंगे।

---

قرضہ ہو اور غلام پر قرضہ نہ ہو مگر اس نے مولیٰ کے مرض الموت میں اپنے اوپر قرضہ کا اقرار کیا ہو اور اگر دونوں میں سے ہر ایک پر ایسا قرضہ ہو جو مولیٰ کی صحت میں واجب ہوا ہے اور غلام نے اپنے اور مولیٰ کے مرض الموت میں قرضہ کا اقرار کیا تو اس مسئلہ میں چند صورتیں ہیں۔ ایک یہ کہ غلام کے مقبوضہ مال میں غلام کے قرضہ سے جو مولیٰ کی صحت میں واجب ہوا ہے زیادتی ہو مگر قرضہ مولیٰ سے زیادتی نہ ہو اور اس صورت میں غلام کا اقرار صحیح نہ ہوگا اور غلام کے رقبہ و اس کی کمائی سے پہلے غلام کا وہ قرضہ جو مولیٰ کی صحت میں واجب ہوا ہے ادا کیا جائے گا پھر جو کچھ زیادہ بچ رہا ہے اس سے مولیٰ کا قرضہ ادا کیا جائے گا۔

دوسری صورت یہ ہے کہ غلام کے رقبہ و اس کی کمائی میں غلام کے قرضہ اور مولیٰ کے قرضہ دونوں کی بنسبت جو دونوں پر حالت صحت مولیٰ میں واجب ہوا ہے زیادتی ہو تو اس صورت میں غلام کا اقرار اس قدر مال میں جو دونوں کے قرضہ سے زائد ہے صحیح ہوگا پس پہلے مولیٰ کا قرضہ ادا کیا جائے گا پھر غلام کا وہ قرضہ جو مولیٰ کی حالت صحت میں واجب ہوا ہے ادا کیا جائے گا پھر جو کچھ باقی رہا وہ غلام کے اقراری قرضہ میں دیا جائے گا تیسری صورت یہ ہے کہ غلام کے مال و رقبہ میں بنسبت قرضہ غلام کے بھی زیادتی نہ ہو تو اس صورت میں غلام کا اقرار صحیح نہ ہوگا ایسا ہی امام محمدؒ نے اس مسئلہ کی کتاب میں ذکر کیا ہے۔ اگر مولیٰ پر قرضہ نہ ہو مگر غلام پر ایسا قرضہ ہو جو مولیٰ کی صحت میں واجب ہوا ہے اور وہ غلام کے رقبہ و مال مقبوضہ کو محیط ہے پھر غلام نے مولیٰ کے مرض الموت میں قرض یا بیع و غصب وغیرہ اقسامِ تجارات کے قرضہ کا اقرار کیا پھر مولیٰ اس مرض میں مر گیا تو غلام

کا اقرار صحیح ہوگا اور قاضی اس غلام و اس کے مقبوضہ مال کی فروخت کر کے سب ثمن اس کے سب قرض خواہوں کو حصہ رسد تقسیم کر دے گا کسی کو کسی پر مقدم نہ کرے گا۔ اسی طرح اگر مولیٰ کے مرض الموت میں درحالیکہ مولیٰ پر قرضہ نہیں ہے اپنے مقبوضہ میں سے کسی خاص چیز کا کسی شخص کے واسطے اقرار کیا تو اقرار صحیح ہے اور مقرلہ کو پہلے وہ چیز دے دی جائے گی پس ظاہر ہوا کہ مولیٰ کے مرض میں غلام جب بھی محجور ہوتا ہے یعنی اقرار میں ودین سے جب ہی محجور ہوتا ہے کہ جب مولیٰ پر صحت کا قرضہ موجود ہو اور اگر مولیٰ پر صحت کا قرضہ نہ ہو تو مرض مولیٰ میں ایسا اقرار سے محجور نہ ہوگا یہ محیط میں ہے۔

اگر مولیٰ پر زمانہ صحت کا اس قدر قرضہ ہو کہ اس کے مال اور اس کے ماذون کے رقبہ و مقبوضہ مال کو محیط ہو پھر ماذون نے مولیٰ کے مرض میں ایک شخص سے ہزار درہم قرض لیے اور گواہوں کے سامنے ان پر قبضہ کیا یا کسی شخص سے کوئی چیز خریدی اور گواہوں کے سامنے ان پر قبضہ کیا پھر مولیٰ مر گیا تو قاضی غلام کو اور اس کے مقبوضہ مال کو فروخت کر کے اس سے غلام کا قرضہ ادا کرے گا پھر اگر کچھ باقی رہا تو وہ مولیٰ کے قرضہ میں دے دے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر اپنے غلام کو جس کی قیمت ہزار درہم ہے تجارت کی اجازت دی اور سوائے اس غلام کے اس کا کچھ مال نہیں ہے پھر مولیٰ مریض ہوا اور اپنے اوپر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر غلام نے بھی اپنے اوپر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر مولیٰ مر گیا تو قاضی اس غلام کو فروخت کر کے اس کا ثمن دونوں مقر لہ قرض خواہوں کو برابر تقسیم کر دے گا اور اگر غلام نے پہلے اقرار کیا پھر مولیٰ نے اپنے اوپر قرضہ کا اقرار کیا اور دونوں اقرار مولیٰ کے مرض میں واقع ہوئے پھر مولیٰ مر گیا تو قاضی پہلے غلام کا قرضہ ادا کرے گا پھر جو کچھ باقی رہا وہ مولیٰ کے قرض خواہ کو دے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر مولیٰ نے پہلے ہزار درہم قرض کا اقرار کیا پھر اسی اقرار سے متصل یا منقطع کر کے دوسرے ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام نے

ہزار درہم قرض کا اپنے اوپر اقرار کیا پھر مولیٰ مر گیا تو تینوں قرض خواہ غلام کے ثمن میں برابر حصہ دار ہوں گے اور تینوں کو تین تہائی ثمن تقسیم کر دیا جائے گا اسی طرح اگر غلام نے ہزار درہم کا اقرار کیا پھر اسی اقرار سے متصل یا منقطع کر کے دوسرے ہزار درہم کا اقرار کیا تو اس کے دونوں قرض خواہ اقراری مولیٰ کے قرض خواہ کے ساتھ برابر شریک کر کے اقراری یعنی جو اس نے مرض الموت میں اقرار کیا۔ ۲ متصل الخ جیسے مجھ پر زید کے ہزار درہم ہیں اور مجھ پر بکر کے ہزار درہم ہیں اور منقطع جیسے اول اقرار کے بعد خاموش رہا پھر کسی وقت دوسرا اقرار کیا۔

**Fatawa Alamgiri Vol (8) Page 57, Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'dhun)**

...shall be given; this is mentioned in al-Mabsut. If a master (Mawla) acknowledges a debt of one thousand dirhams, then another thousand, and then another thousand, making all these acknowledgments during his death-illness, and then the slave acknowledges a debt of one thousand dirhams against himself, the judge (Qadi) shall sell the slave and divide the proceeds into four shares among the master's creditors and the slave's creditors. However, if the master acknowledges a thousand dirhams during his illness, then the slave acknowledges a thousand against himself, then the master acknowledges another thousand against himself, and subsequently dies, the judge shall divide the proceeds of the slave's sale into three parts among the master's two creditors and the slave's third creditor; this is as per al-Mughni.

If the value of a slave is two thousand dirhams, and he acknowledges a debt of one thousand dirhams during his master's illness, and then the master acknowledges a debt of one thousand dirhams, and subsequently the slave buys another slave worth one thousand dirhams from Zaid for one thousand dirhams, taking possession before witnesses, but that purchased slave dies while with the authorized slave (Ma'dhun), and then the master of the Ma'dhun dies leaving no property other than the slave, and the Ma'dhun is sold for two thousand dirhams, then the creditors of the Ma'dhun shall divide the proceeds among themselves, and the master's creditor shall receive nothing. If the slave did not purchase a slave himself, but rather the master purchased a slave for one thousand dirhams during his illness and took possession before witnesses, and that slave died with the master, and then the master died of that same illness while the remaining circumstances remained unchanged, and the Ma'dhun was sold for two thousand dirhams, then the seller's (of the deceased slave) debt shall be paid first, and whatever remains shall be divided among the slave's creditors. In this matter, whether the master's permission was granted during health or illness, the ruling remains the same; this is in al-Mabsut. If the Ma'dhun's value is two thousand dirhams, and he acknowledges a debt of one thousand dirhams against himself, and then the master acknowledges a debt of one thousand dirhams against himself, and the master dies, the judge shall sell the slave and give one thousand dirhams to the slave's creditor. The remaining one thousand dirhams shall be given to the master's creditor. If the market value of the slave decreases to one and a half thousand dirhams and the judge sells him, he shall give one thousand dirhams to the slave's creditor and the rest to the master's creditor. If the value drops to one thousand dirhams, the entire proceeds shall go to the slave's

creditor. If the slave acknowledges a thousand dirhams debt, then the master acknowledges a thousand dirhams debt against the slave, and the slave's value at the time of both acknowledgments was two thousand dirhams, but later the value drops and the slave is sold, the proceeds shall be divided equally between both creditors; this is in al-Muhit.

If the slave acknowledges a debt of one thousand dirhams, then the master acknowledges a debt of one thousand dirhams, then the slave acknowledges (another) one thousand dirhams, and the slave's value is one thousand dirhams, and he is sold for one thousand dirhams after the master's death, the master's creditor shall receive nothing, and the slave's creditors shall divide the amount pro-rata. If the slave, valued at two thousand dirhams, acknowledges a thousand dirhams debt, then the master acknowledges a thousand, then the slave acknowledges another thousand, and the slave is sold for two thousand dirhams, the three creditors shall divide the proceeds into three equal shares. If the judge sells him for one and a half thousand dirhams, it will be divided into five shares among the creditors, one share of which will go to the master's creditor. If sold for one thousand, the master's creditor receives nothing; this is in al-Mughni. If first the slave acknowledged one thousand dirhams, then the master acknowledged one thousand, then another thousand, whether these acknowledgments were concurrent or separate, then the slave acknowledged one thousand dirhams, the master died, and the slave was sold for two thousand dirhams, then both of the slave's creditors shall be included for their full debts, while the master's creditor shall be included based on only one thousand dirhams. If the slave was sold for fifteen hundred, the slave's creditors are included for their full debts and the master's creditors for five hundred dirhams. Thus, the proceeds shall be divided into five shares among all creditors, with each of the slave's creditors receiving two-fifths (which amounts to six hundred dirhams) and the master's creditor receiving one-fifth which...

...दिए जाएंगे, यह मबसूत में है। और अगर मालिक (मौली) ने एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर एक हज़ार दिरहम का इकरार किया और ये सभी इकरार अपनी बीमारी (मर्ज़-उल-मौत) में किए, फिर गुलाम ने अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, तो काज़ी गुलाम को बेचकर उसकी कीमत को मालिक के लेनदारों और गुलाम के लेनदारों के बीच चार हिस्सों में बाँट देगा। और अगर मालिक ने अपनी बीमारी में एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर गुलाम ने अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर मालिक ने अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम का इकरार किया और फिर मालिक मर गया, तो काज़ी गुलाम की कीमत को मालिक के दोनों लेनदारों और गुलाम के तीसरे लेनदार के बीच तीन हिस्सों में बाँट देगा, यह मुग़नी में है।

अगर गुलाम की कीमत दो हज़ार दिरहम हो, फिर उसने मालिक की बीमारी के दौरान एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर मालिक ने एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर ज़ैद से एक हज़ार दिरहम की कीमत का एक गुलाम एक हज़ार दिरहम में खरीदकर गवाहों के सामने उस पर कब्ज़ा कर लिया और वह गुलाम माज़ून (अधिकृत गुलाम) के पास मर गया, फिर माज़ून का मालिक मर गया और गुलाम के अलावा कोई संपत्ति नहीं छोड़ी और वह (माज़ून) दो हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो माज़ून के लेनदार उस कीमत को आपस में बाँट लेंगे और उसमें से मालिक के लेनदार को कुछ नहीं मिलेगा। और अगर गुलाम ने गुलाम न खरीदा हो, बल्कि मालिक ने अपनी बीमारी में एक हज़ार दिरहम का गुलाम खरीदा हो और गवाहों के सामने उस पर कब्ज़ा किया हो और वह मालिक के पास मर गया हो, फिर मालिक अपनी उसी बीमारी में मर गया और बाकी मामला वैसा ही रहा, और वह माज़ून दो हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो पहले विक्रेता (बाइ) का कर्ज़ चुकाया जाएगा, जो कुछ बचेगा वह गुलाम के लेनदारों में बँटेगा। इस मामले में, चाहे मालिक की अनुमति स्वास्थ्य की स्थिति में मिली हो या बीमारी की स्थिति में, फैसले में कोई अंतर नहीं है, यह मबसूत में है। अगर माज़ून की कीमत दो हज़ार दिरहम हो, तो उसने अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर मालिक ने अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर मालिक मर गया, तो काज़ी गुलाम को बेच देगा और गुलाम के लेनदार को एक हज़ार दिरहम दे देगा। फिर बाकी बचे एक हज़ार दिरहम मालिक के लेनदार को दे देगा। अगर गुलाम का भाव गिर गया और वह डेढ़ हज़ार दिरहम का रह गया और काज़ी ने गुलाम को बेचा, तो वह एक हज़ार

दिरहम गुलाम के लेनदार को दे देगा और बाकी मालिक के लेनदार को दे देगा। और अगर भाव गिरकर एक हज़ार दिरहम रह गया, तो सारी कीमत गुलाम के लेनदार को दे देगा। और अगर गुलाम ने एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर मालिक ने गुलाम पर एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया और दोनों इकरारों के समय गुलाम की कीमत दो हज़ार दिरहम थी, फिर उसका भाव गिर गया और गुलाम बेचा गया, तो उसकी कीमत दोनों लेनदारों में बराबर बाँटी जाएगी, यह मुहीत में है।

अगर गुलाम ने एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर मालिक ने एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर गुलाम ने (दोबारा) एक हज़ार दिरहम का इकरार किया और गुलाम की कीमत एक हज़ार दिरहम है, और उसे मालिक की मौत के बाद एक हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो मालिक के लेनदार को कुछ नहीं मिलेगा और गुलाम के लेनदार आपस में आनुपातिक रूप से (प्रो-राटा) हिस्सा बाँट लेंगे। और अगर गुलाम जिसकी कीमत दो हज़ार दिरहम है, उसने एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर मालिक ने एक हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इकरार किया, फिर गुलाम ने एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर गुलाम दो हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो तीनों लेनदार बराबर तीन हिस्से करके बाँट लेंगे। और अगर काज़ी ने उसे डेढ़ हज़ार दिरहम में बेचा, तो लेनदारों के बीच पाँच हिस्से करके बाँटा जाएगा, जिसमें से एक हिस्सा मालिक के लेनदार को मिलेगा। और अगर एक हज़ार में बिका, तो मालिक के लेनदार को कुछ नहीं मिलेगा, यह मुग़नी में है। अगर पहले गुलाम ने एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर मालिक ने एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर एक और हज़ार दिरहम का इकरार किया, और दोनों इकरार एक साथ हुए या अलग-अलग, फिर गुलाम ने एक हज़ार दिरहम का इकरार किया, फिर मालिक मर गया और गुलाम दो हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो गुलाम के दोनों लेनदार अपने पूरे कर्ज़ के लिए और मालिक का लेनदार केवल एक हज़ार दिरहम के हिसाब से शामिल किए जाएंगे। और अगर गुलाम डेढ़ हज़ार में बिका, तो गुलाम के लेनदार पूरे कर्ज़ के लिए और मालिक के लेनदार पाँच सौ दिरहम के हिसाब से शामिल किए जाएंगे। अतः उसकी कीमत सभी लेनदारों के बीच पाँच हिस्सों में बँटेगी, जिसमें से गुलाम के प्रत्येक लेनदार को दो-पाँचवाँ हिस्सा मिलेगा जो कि छह सौ दिरहम हुआ, और मालिक के लेनदार को एक-पाँचवाँ हिस्सा जो...

دیئے جائیں گے یہ مبسوط میں ہے اور اگر مولیٰ نے ہزار درہم کا اقرار کیا پھر ہزار درہم کا اقرار کیا پھر ہزار درہم کا اقرار کیا اور سب اقرار اپنے مرض میں کیے پھر غلام نے اپنے اوپر ہزار درہم کا اقرار کیا تو قاضی غلام کو فروخت کر کے اس کا ثمن مولیٰ کے قرض خواہوں اور غلام کے قرض خواہوں میں چار حصے کر کے تقسیم کر دے گا اور اگر مولیٰ نے اپنے مرض میں ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام نے اپنے اوپر ہزار درہم کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے اپنے اوپر ہزار درہم کا اقرار کیا پھر مولیٰ مر گیا تو قاضی غلام کا ثمن دونوں قرض خواہ مولیٰ اور تیسرے قرض خواہ غلام کے درمیان تین حصے کر کے تقسیم کر دے گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر غلام کی قیمت دو ہزار درہم ہوں پھر اس نے مولیٰ کے مرض میں ہزار درہم قرض کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر زید سے ہزار درہم قیمت کا غلام ہزار درہم میں خرید کر گواہوں کے سامنے اس پر قبضہ کر لیا اور وہ غلام ماذون کے پاس مر گیا پھر ماذون کا مولیٰ مر گیا اور سوائے غلام کے کچھ مال نہ چھوڑا اور وہ دو ہزار درہم کو بیچا گیا تو ماذون کے قرض خواہ ثمن باہم تقسیم کر لیں گے اور اس میں سے مولیٰ کے قرض خواہ کو کچھ نہ ملے گا اور اگر غلام نے غلام نہ خریدا ہو بلکہ مولیٰ نے اپنے مرض میں ہزار درہم کا غلام خریدا ہو اور گواہوں کے سامنے اس پر قبضہ کیا اور وہ مولیٰ کے پاس مر گیا پھر مولیٰ اپنے اس مرض میں مر گیا اور باقی مسئلہ بحالہ رہا اور وہ ماذون دو ہزار درہم کو فروخت کیا گیا تو پہلے بائع کا قرضہ ادا کیا جائے گا جو کچھ باقی رہا وہ غلام کے قرض خواہوں میں تقسیم ہوگا اور اس مسئلہ میں خواہ اجازت مولیٰ کی صحت میں واقع ہوئی یا مرض میں واقع ہوئی ہو کچھ حکم میں فرق نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون کی قیمت دو ہزار درہم ہوں پس اس نے اپنے اوپر ہزار درہم قرض کا

اقرار کیا پھر مولیٰ نے اپنے اوپر ہزار درہم قرض کا اقرار کیا پھر مولیٰ مر گیا تو قاضی غلام کو فروخت کر دے گا اور غلام کے قرض خواہ کو ہزار درہم دے دے گا۔ پھر باقی ہزار درہم مولیٰ کے قرض خواہ کو دے دے گا۔ اگر غلام کا نرخ گھٹ گیا اور ڈیڑھ ہزار درہم رہ گیا اور قاضی نے غلام کو فروخت کیا تو ہزار درہم غلام کے قرض خواہ کو دے دے گا اور باقی مولیٰ کے قرض خواہ کو دے دے گا اور اگر اس کا نرخ گھٹ کر ہزار درہم رہ گیا تو سب ثمن غلام کے قرض خواہ کو دے دے گا اور اگر غلام نے ہزار درہم قرض کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے غلام پر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا اور غلام کی قیمت دونوں اقراروں کے وقت دو ہزار درہم ہے پھر اس کا نرخ گھٹ گیا پھر غلام فروخت کیا گیا تو اس کا ثمن دونوں قرض خواہوں میں برابر تقسیم کیا جائے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر غلام نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر غلام نے ہزار درہم کا اقرار کیا اور غلام کی قیمت ہزار درہم ہے پس وہ ہزار درہم کو فروخت کیا گیا بعد ازاں کہ مولیٰ مر چکا ہے تو مولیٰ کے قرض خواہ کو کچھ نہ ملے گا اور قرض خواہان غلام باہم حصہ رسد تقسیم کریں گے اور غلام نے جس کی قیمت دو ہزار درہم ہے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر غلام نے ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام دو ہزار درہم کو فروخت کیا گیا تو تینوں قرض خواہ برابر تین حصہ کر کے تقسیم کر لیں گے اور اگر قاضی نے اس کو ڈیڑھ ہزار درہم کو فروخت کیا تو قرض خواہوں میں پانچ حصے ہو کر تقسیم ہو گا اس میں سے ایک حصہ مولیٰ کے قرض خواہ کو ملے گا اور اگر ایک ہزار کو فروخت ہوا تو مولیٰ کے قرض خواہ کو کچھ نہ ملے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر پہلے غلام نے ایک ہزار درہم کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے ایک ہزار درہم کا اقرار کیا پھر ایک ہزار درہم کا اقرار کیا اور دونوں اقرار متصل واقع ہوئے یا منفصل پھر غلام نے ایک ہزار درہم کا اقرار کیا پھر مولیٰ مر گیا اور غلام دو

ہزار درہم کو فروخت کیا گیا تو غلام کے دونوں قرض خواہ اپنے پورے قرضے اور مولیٰ کے قرض خواہ فقط ایک ہزار درہم کے حساب سے شریک کیے جائیں گے اور اگر غلام ڈیڑھ ہزار کو فروخت ہوا تو قرض خواہان غلام پورے قرضے اور قرض خواہان مولیٰ پانچ سو درہم کے حساب سے شریک کیے جائیں گے پس اس کا ثمن تمام قرض خواہوں میں پانچ حصہ ہو کر تقسیم ہو گا جس میں سے غلام کے ہر قرض خواہ کو دو پانچویں حصے جس کے چھ سو درہم ہوئے اور مولیٰ کے قرض خواہ کو ایک پانچواں جس...

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (58) Kitab al-Ma'zun (The Book of the Authorized Slave)**

...three hundred dirhams were owed, they shall be given. If a division is made according to this calculation, and then a debt of the master (mowla) towards the people becomes apparent, and an amount of one thousand, two thousand, or five hundred dirhams is recovered, then only the creditors of the master shall have a right to it. The creditors of the slave shall have no right to it, as they were not included as partners in the slave's price to the extent of a share of two thousand five hundred. Therefore, those people became entitled to everything that was recovered. If a debt of three thousand is recovered, the master's creditors will take two thousand seven hundred from it, and the slave's creditors will take three hundred dirhams. If two thousand six hundred dirhams are recovered, the master's creditors will take two thousand five hundred and fifty, and the remaining fifty dirhams will be for the slave's creditors. If the slave had not acknowledged the first debt and the rest of the legal issue remains the same, then the master's creditors will take the entire debt of the master that has emerged, i.e., two thousand six hundred dirhams. Then the slave will be sold. If he is sold for one thousand dirhams, then the master's creditors will be included for their remaining debt, and the slave's creditors for their full debt according to their share, i.e., at the rate of one thousand dirhams. Thus, after proportional sharing in the price, two parts will go to the master's creditors and five parts will go to the slave's creditors. This is mentioned in "Al-Mabsut".

**A scenario of a legal issue where if the master did not sell the slave but made him a 'Mudabbir' (a slave promised freedom upon the master's death), then the creditors will have the choice** ☆

Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) stated that if a person gave his slave permission to trade, and then acknowledged a debt on his slave exceeding the slave's value, while the slave was not in debt until then, and the slave denied his acknowledgement, then the entire acknowledged debt will be binding upon him. Since the master's acknowledgement of the debt on the slave was valid, the creditors will have the choice: they may either have the slave sold for their debt or have him work (sa'ayat) to pay it off. Similarly, if the master acknowledged a guarantee of assets (kafalat al-mal) upon him, for example, by saying, "You have guaranteed such an amount of assets on my behalf for such a person," and the slave denied it, then this amount will be binding upon the slave. This is in "Al-Muhit". If the master acknowledged a debt of ten thousand dirhams on the slave and the slave denied it,

and then the slave was sold to pay this debt and the price was divided among the creditors, then the creditors will have no way to demand anything further from the slave through the buyer (mushtari). If the buyer then freed him, the creditors will recover his value from him. If the master did not sell him but made him a 'Mudabbir', then the creditors will have the choice to either take a guarantee (zaman) of his value from the master or make the 'Mudabbir' work (sa'ayat) for their entire debt. If the master freed him after making him a 'Mudabbir', then in this case they will only demand his value from him. If the 'Ma'zun' (authorized slave) had paid five thousand dirhams through his labor (sa'ayat) when the master freed him, the creditors would still be able to demand his value from him, and anything exceeding that would be void (batil). If he was not made a 'Mudabbir' until the master fell ill, and then the master freed him and subsequently died, and he had no other property, it would be obligatory for the slave to strive (sa'i) for his own value, and the heirs will not receive it; rather, the creditors will take it. After that, these same creditors will take the slave into custody (makhoozo) and take an amount equal to his value, and the heirs and the master's creditors will receive nothing from it.

If he acknowledged a debt on the slave during his illness and the rest of the matter remained as it was, then the first price would specifically go to the master's creditors, then the slave would strive (sa'i) for his value to specifically pay his own creditors. And if the master did not acknowledge a debt on him, but rather for an offense (jinayat) committed by mistake [text incomplete]... I say that this ruling applies when his value is less than the remaining five thousand, based on the principle that whatever exceeds it shall be void, as mentioned above. Understand this.

...के तीन सौ दिरहम हुए, वह दिया जाएगा। फिर अगर इस हिसाब से बंटवारा कर लिया गया, और फिर लोगों पर मालिक (मौला) का कुछ कर्ज़ ज़ाहिर हुआ और उसमें एक हज़ार या दो हज़ार और पाँच सौ दिरहम बरामद हुए, तो उसमें केवल मालिक के लेनदारों (क़र्ज़ ख्वाहों) का हक़ होगा। गुलाम के लेनदारों का इसमें कोई हक़ नहीं होगा, क्योंकि वे गुलाम की कीमत में दो हज़ार पाँच सौ के हिस्से के बराबर साझीदार नहीं बनाए गए थे। इसी कारण वे बरामद हुई पूरी राशि के हक़दार हुए। और अगर तीन हज़ार का कर्ज़ बरामद हुआ, तो मालिक के लेनदार इसमें से दो हज़ार सात सौ ले लेंगे और गुलाम के लेनदार इसमें से तीन सौ दिरहम लेंगे। और अगर दो हज़ार छह सौ दिरहम बरामद हुए, तो मालिक के लेनदार इसमें से दो हज़ार साढ़े पाँच सौ दिरहम ले लेंगे और शेष पचास दिरहम गुलाम के लेनदारों को मिलेंगे। और अगर गुलाम ने पहले कर्ज़ का इक़रार (स्वीकारोक्ति) न किया हो और शेष मसला (कानूनी स्थिति) वही रहे, तो मालिक के लेनदार मालिक का जो भी कुल कर्ज़ निकला है, उसे ले लेंगे, यानी दो हज़ार छह सौ दिरहम। फिर गुलाम को बेचा जाएगा। यदि वह एक हज़ार दिरहम में बिका, तो मालिक के लेनदार अपने शेष कर्ज़ के लिए और गुलाम के लेनदार अपने पूरे कर्ज़ के हिसाब से, यानी एक हज़ार दिरहम के हिसाब से साझीदार बनाए जाएंगे। अतः कीमत में हिस्सेदारी के बाद, दो हिस्से मालिक के लेनदारों को और पाँच हिस्से गुलाम के लेनदारों को मिलेंगे। यह 'मबसूत' में है।

## मसला की एक सूरत जिसमें अगर मालिक ने गुलाम को बेचा नहीं बल्कि 'मुदब्बिर' (मृत्यु के बाद आज़ाद होने वाला गुलाम) बना दिया, तो लेनदारों को अधिकार होगा ☆

इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि यदि किसी व्यक्ति ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर उसने अपने गुलाम पर गुलाम की कीमत से अधिक कर्ज़ का इक़रार किया, जबकि उस समय तक गुलाम पर कोई कर्ज़ नहीं था, और गुलाम ने इस इक़रार को झुठलाया, तो इक़रार किया गया पूरा कर्ज़ उस पर अनिवार्य होगा। और चूँकि मालिक द्वारा गुलाम पर कर्ज़ का इक़रार सही माना गया, तो लेनदारों को अधिकार होगा: वे चाहें तो अपने कर्ज़ के लिए गुलाम को बिकवा दें या उससे मेहनत (सआयत) कराकर पैसे वसूलें। इसी प्रकार, यदि मालिक ने उस पर किसी माल की ज़मानत (किफ़ालत) का इक़रार किया, यानी उदाहरण के तौर पर कहा कि "तूने मेरी ओर से फ़लाँ व्यक्ति के लिए इतनी राशि की ज़मानत ली है", और गुलाम ने इससे इनकार किया, तो यह राशि गुलाम पर अनिवार्य होगी। यह 'मुहीत' में है। यदि मालिक ने गुलाम पर दस हज़ार दिरहम के कर्ज़ का इक़रार

किया और गुलाम ने इनकार कर दिया, फिर गुलाम को इस कर्ज़ के एवज़ में बेचा गया और लेनदारों ने आपस में कीमत बाँट ली, तो खरीदार (मुश्तरी) के पास लेनदारों के लिए गुलाम से कोई मांग (मुआख़ज़ा) करने का कोई रास्ता नहीं रहेगा। फिर यदि खरीदार ने उसे आज़ाद कर दिया, तो लेनदार उससे उसकी कीमत वसूल करेंगे। यदि मालिक ने उसे बेचा नहीं बल्कि 'मुदब्बिर' बना दिया, तो लेनदारों को अधिकार होगा कि वे चाहें तो मालिक से उसकी कीमत की गारंटी (ज़मान) लें या 'मुदब्बिर' से अपने पूरे कर्ज़ के लिए मेहनत (सआयत) कराएँ। फिर यदि मालिक ने 'मुदब्बिर' बनाने के बाद उसे आज़ाद कर दिया, तो इस स्थिति में वे उससे केवल उसकी कीमत की मांग करेंगे। यदि 'माज़ून' (व्यापार की अनुमति प्राप्त गुलाम) ने मेहनत से पाँच हज़ार दिरहम चुका दिए थे और इसी बीच मालिक ने उसे आज़ाद कर दिया, तब भी लेनदार उससे उसकी कीमत की मांग कर सकेंगे, और जो उससे अधिक होगा वह रद्द (बातिल) हो जाएगा। यदि उसे 'मुदब्बिर' नहीं बनाया गया था और मालिक बीमार हो गया, फिर उसने उसे आज़ाद कर दिया और मालिक मर गया और उसके पास इसके अलावा कोई संपत्ति नहीं थी, तो गुलाम पर अपनी कीमत के लिए प्रयास (सई) करना अनिवार्य होगा। और इसे वारिस नहीं बल्कि लेनदार लेंगे। फिर उसके बाद यही लेनदार गुलाम को पकड़कर (माख़ूज़) उसकी कीमत के बराबर हिस्सा ले लेंगे, और इसमें से वारिसों और मालिक के लेनदारों को कुछ नहीं मिलेगा।

यदि बीमारी के दौरान गुलाम पर कर्ज़ का इक़रार किया और बाकी मसला यथावत रहा, तो पहली कीमत विशेष रूप से मालिक के लेनदारों को मिलेगी, फिर गुलाम अपनी कीमत के लिए प्रयास (सई) करके विशेष रूप से अपने लेनदारों को भुगतान करेगा। और अगर मालिक ने उस पर कर्ज़ का इक़रार नहीं किया, बल्कि भूल से हुई किसी क्षति (जिनायत) का... मैं कहता हूँ कि यह नियम उस समय के लिए है जब उसकी कीमत शेष पाँच हज़ार से कम हो, इस तर्क के आधार पर कि जो कुछ उससे अधिक होगा वह रद्द होगा, जैसा कि ऊपर बताया गया। इसे समझें।

...کے تین سو درہم ہوئے دیا جائے گا پس اگر اس حساب سے تقسیم کر لیا پھر مولیٰ کا لوگوں پر کچھ قرضہ ظاہر ہوا اور اس میں ایک ہزار یا دو ہزار اور پانچ سو درہم برآمد ہوئے تو اس میں فقط مولیٰ کے قرض خواہوں کا حق ہو گا غلام کے قرض خواہوں کا کچھ حق نہ ہو گا اور وہ لوگ قرض خواہان غلام کے ساتھ اس کے ثمن میں بقدر دو ہزار پانچ سو کے حصہ کے شریک نہیں کیے گئے تھے اسی واسطے وہ لوگ اس سب کے جو برآمد ہوا ہے مستحق ہوئے اور اگر تین ہزار قرضہ برآمد ہوا تو قرض خواہان مولیٰ اس میں سے دو ہزار سات سو لے لیں گے اور قرض خواہان غلام اس میں سے تین سو درہم لے لیں گے اور اگر دو ہزار چھ سو درہم برآمد ہوئے تو قرض خواہان مولیٰ اس میں سے دو ہزار ساڑھے پانچ سو درہم لے لیں گے اور باقی پچاس درہم قرض خواہان غلام کو لیں گے اور اگر غلام نے قرضہ اول کا اقرار نہ کیا ہوا اور باقی مسئلہ یہی رہے تو مولیٰ کے قرض خواہ تمام مولیٰ کا قرضہ جو نکلا ہے لے لیں گے یعنی دو ہزار چھ سو درہم پھر غلام فروخت کیا جائے گا پس اگر ہزار درہم کو فروخت ہوا تو قرض خواہان مولیٰ اس میں سے اپنے باقی قرضے اور قرض خواہان غلام اپنے پورے قرضے کے حساب سے یعنی ہزار درہم کے حساب سے شریک کیے جائیں گے پس ثمن کے ساتھ حصہ ہو کر دو حصہ مولیٰ کے قرض خواہوں کو اور پانچ حصہ غلام کے قرض خواہوں کو ملیں گے یہ مبسوط میں ہے۔

**مسئلہ کی ایک صورت جس میں اگر مولیٰ نے غلام کو فروخت نہ کیا بلکہ مدبر کر دیا تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا ☆**

امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر اس نے اپنے غلام پر قیمت غلام سے زیادہ قرضہ کا اقرار کیا اور اس وقت تک غلام مقروض نہیں ہے اور غلام نے اس کے اس اقرار کی تکذیب کی تو تمام قرضہ اقراری اس پر لازم ہو گا اور جب کہ مولیٰ کا اقرار قرضہ غلام پر صحیح ہوا تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا چاہیں اپنے قرضے کے واسطے غلام کو فروخت کرا دیں یا اس سے سعایت کرا دیں اسی طرح اگر مولیٰ نے اس پر کفالتِ مال کا اقرار کیا یعنی مثلاً یوں کہا کہ تو نے میری طرف سے فلاں شخص کے واسطے اس قدر مال کی کفالت کی ہے اور غلام نے اس سے انکار کیا تو یہ مال غلام پر لازم ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر مولیٰ نے غلام پر دس ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا اور غلام نے انکار کیا پھر غلام اس قرضہ میں فروخت کیا گیا اور ثمن قرض خواہوں نے باہم تقسیم کر لیا تو مشتری کے پاس قرض خواہوں کو غلام سے مواخذہ کرانے کی کوئی راہ نہ ہو گی پھر اگر مشتری نے اس کو آزاد کر دیا تو قرض خواہ لوگ اس سے اس کی قیمت وصول کریں گے۔ اگر مولیٰ نے اس کو فروخت نہ کیا بلکہ مدبر کر دیا تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا کہ چاہیں مولیٰ سے اس کی قیمت کی ضمان لیں یا مدبر سے اپنے تمام قرضہ کے واسطے سعایت کرا دیں پھر اگر مولیٰ نے بعد مدبر کرنے کے اس کو آزاد کر دیا تو اس صورت میں اس سے فقط اس کی قیمت کا مواخذہ کریں گے۔ اگر ماذون نے پانچ ہزار درہم سعایت سے ادا کیے تھے کہ اتنے میں مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا تو بھی قرض خواہ اس سے اس کی قیمت کا مواخذہ کر سکیں گے اور جو اس سے زیادہ ہو وہ باطل ہو جائے گا۔ اگر اس کو مدبر نہ کیا یہاں تک کہ مولیٰ مریض ہو گیا پس اس کو آزاد کر دیا پھر مر گیا اور سوائے اس کے اس کا کچھ مال نہ تھا تو اس پر اپنی قیمت کے واسطے سعی کرنی واجب ہو گی اور اس کو وارث نہیں بلکہ قرض خواہ لے لیں گے۔ پھر اس کے بعد یہی قرض خواہ لوگ غلام کو ماخوذ

کر کے بقدر اس کی قیمت کے لے لیں گے اور اس میں سے وارثوں کو اور قرض خواہان مولیٰ کو کچھ نہ ملے گا۔

اگر اپنے مرض میں غلام پر قرضہ کا اقرار کیا اور باقی مسئلہ بحال رہا تو پہلی قیمت خاصۃً قرض خواہان مولیٰ کو ملے گی پھر غلام اپنی قیمت کے واسطے سعی کر کے خاصۃً اپنے قرض خواہوں کو ادا کرے گا اور اگر مولیٰ نے اس پر قرضہ کا اقرار نہ کیا بلکہ خطا سے کسی جنایت کا [نامکمل] میں کہتا ہوں کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ باقی پانچ ہزار سے اس کی قیمت کم ہو دلیل اس قول کے کہ جس قدر اس سے زائد نہ ہو وہ باطل ہو گا چنانچہ اوپر گذرا۔ فافہم۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 | 59 | Kitab al-Ma'dhun (Book of the Authorized Slave)**

If [the slave] makes an acknowledgment (iqrar), the master (mawla) shall have the option to either surrender the slave or pay his ransom (fidiya). Similarly, if the ma'dhun (a slave authorized to trade) acknowledges a debt or a legal offense (jinayat) regarding a slave girl or slave in his possession, the ruling is the same as if he made such an acknowledgment against himself. If the master frees both of them afterward, it follows the ruling of freeing an "overlooked" ma'dhun; that is, the same ruling as mentioned regarding the manumission of a ma'dhun applies. This is in 'Al-Mabsut'. If the master acknowledges a debt of ten thousand dirhams upon his ma'dhun, whose value is one thousand dirhams, and the slave denies it, but then the master frees him, the master becomes a guarantor for the creditors. However, the master's liability as a guarantor is limited to the slave's value, i.e., one thousand dirhams, and no more, even if the acknowledged debt is greater than the slave's value. Once the master pays the one thousand dirhams guarantee, it is mentioned in the book that the creditors shall again recover one thousand dirhams from him; this is in 'Al-Muhit'. If the slave also acknowledges that same amount of debt, the full debt becomes obligatory upon him. Even if this acknowledgment was not found from the master at all, the ruling would be the same; this is in 'Al-Mabsut'.

If a ma'dhun sold something from his possessions during the terminal illness (marz al-mawt) of the master, and there is no health-period debt upon the master or the slave, and the slave acknowledges receiving the price (thaman), but this cannot be proven except through acknowledgment, then his acknowledgment is valid. Likewise, if there are debts encompassing (mustaghraq) the slave's value or not, the ruling remains the same. However, if the master has debts that encompass the slave's value and his possessed property, the slave's acknowledgment of receiving the price shall not be valid unless witnesses are produced, provided the master's debt is a health-period debt. If the master has an illness-period debt, the slave’s acknowledgment of receiving the price is not valid concerning the purchaser (mushtari), to the extent that the purchaser must pay the price again. But in his favor, this acknowledgment will be valid to the point that the purchaser is included equally with other creditors, as if the master himself had made such an acknowledgment. This is the ruling, but if witnesses are produced for the full receipt (istifa) of the price, then the acknowledgment is valid. If the purchaser from the slave is an heir of the master, and the debt encompasses the slave's value and all property, and there is no other debt

on the master, then the acknowledgment of receipt of price from the master's heirs is not permissible. Similarly, if the master also has debts along with the slave, the acknowledgment of price receipt is not valid; this is in 'Al-Muhit'. If a ma'dhun during his terminal illness acknowledges a debt, a deposit (wadi'at), a loan (ari'at), a silent partnership (mudarabat), a specific lease (ijara), or a specific usurpation (ghasb), etc., and then dies in that illness, all these acknowledgments are valid provided he has no health-period debts. If he has health-period debts, these acknowledgments will not be valid except for the amount exceeding the health debts. Thus, his possessed property shall be sold to first settle the health-period debts.

If the usurped property, which was acknowledged during illness, was witnessed by witnesses, or the loan and deposit were witnessed, and if the witnesses identify the specific property (ayn), then the claimant (muqarr lahu) is entitled to that specific property. If they do not identify the specific property but only witnessed the act of usurpation or lending, then the claimant shall be included equally with health-period creditors. Similarly, every debt proven before witnesses during illness shall result in the illness-period creditor sharing equally with health-period creditors; this is in 'Al-Mughni'. If there is no health-period debt and he acknowledges one thousand dirhams upon himself during illness as the price of sold goods due from a certain purchaser...

**Footnotes:** 1. Meaning, he freed him after acknowledging the debt upon him. 2. Meaning, they will take another thousand dirhams. 3. 'Istifa': To recover/receive in full. 4. The phrase "identifying the borrowed item specifically" means the physical item is present for identification by the witnesses.

यदि [दास ने] स्वीकारोक्ति (इक़रार) की, तो मालिक (मौली) के पास यह विकल्प होगा कि वह उसे सौंप दे या उसका फ़िदिया (मुआवज़ा) दे दे। इसी तरह, यदि माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत दास) ने अपने अधिकार वाली दासी या दास के संबंध में कर्ज या अपराध (जिनायत) का इक़रार किया, तो वही आदेश लागू होगा जैसा कि उसने स्वयं अपने माज़ून पर इक़रार किया हो। फिर यदि उसने उन दोनों को इसके बाद आज़ाद कर दिया, तो यह भी 'भूले हुए' माज़ून को आज़ाद करने जैसा है, यानी वही आदेश लागू होगा जो माज़ून को आज़ाद करने की उस स्थिति में वर्णित है। यह 'मबसूत' में है। और यदि उसने अपने माज़ून पर दस हज़ार दिरहम का इक़रार किया और उसकी कीमत एक हज़ार दिरहम है, और दास ने इसका खंडन किया, फिर मालिक ने उसे आज़ाद कर दिया, तो मालिक लेनदारों के लिए ज़मानतदार (गारंटर) होगा, लेकिन ज़मानत में मालिक केवल उसकी कीमत, यानी एक हज़ार दिरहम का ही उत्तरदायी होगा, इससे अधिक नहीं, भले ही दास पर जितने कर्ज का इक़रार किया गया है वह उसकी कीमत से अधिक हो। फिर जब मालिक ने एक हज़ार दिरहम की ज़मानत दे दी, तो किताब में उल्लेख है कि लेनदार लोग उससे फिर से एक हज़ार दिरहम वसूल करेंगे; यह 'मुहीत' में है। यदि दास ने भी इतने ही कर्ज का इक़रार किया, तो उस पर पूरा कर्ज अनिवार्य (वाजिब) होगा। यदि मालिक से यह इक़रार बिल्कुल न मिला होता, तब भी यही आदेश था; यह 'मबसूत' में है।

यदि माज़ून ने मालिक की टर्मिनल बीमारी (मर्ज़ अल-मौत) के दौरान अपनी अधिकृत चीज़ों में से कुछ बेचा, और मालिक के स्वास्थ्य की अवधि का कोई कर्ज मालिक या दास पर नहीं है, और दास ने इक़रार किया कि उसने कीमत (थमन) वसूल कर ली है, लेकिन यह बात इक़रार के अलावा किसी अन्य तरह से सिद्ध नहीं है, तो उसका इक़रार मान्य होगा। इसी तरह यदि दास पर ऋण उसकी कुल संपत्ति के बराबर (मुस्तग़रक) हो या न हो, तब भी यही आदेश है। यदि मालिक पर इतना कर्ज हो जो दास के मूल्य और उसकी संपत्ति को घेर ले (मुहीत हो), तो दास का कीमत वसूल करने का इक़रार मान्य नहीं होगा जब तक कि गवाह मौजूद न हों, बशर्ते कि मालिक का कर्ज स्वास्थ्य काल का हो। और यदि मालिक पर बीमारी काल का कर्ज हो, तो दास का कीमत वसूलने का इक़रार खरीदार (मुश्तरी) के हक में मान्य नहीं है, यहाँ तक कि खरीदार को फिर से कीमत देनी होगी। लेकिन उसके हक में यह इक़रार इस सीमा तक मान्य होगा कि खरीदार को भी उसके अन्य लेनदारों के साथ समान रूप से शामिल कर लिया जाएगा, जैसा कि यदि मालिक ने स्वयं ऐसा इक़रार किया होता। यह

आदेश है, लेकिन यदि कीमत की पूर्ण प्राप्ति (इस्तीफ़ा) के गवाह मौजूद हों, तो इक़रार मान्य है। यदि इस स्थिति में दास से खरीदने वाला मालिक का कोई उत्तराधिकारी (वारिस) हो और कर्ज इतना हो जो दास की कुल कीमत और संपत्ति को घेर ले और मालिक पर कोई कर्ज न हो, तो मालिक के वारिसों से कीमत वसूलने का इक़रार जायज़ नहीं होगा। इसी तरह यदि मालिक पर दास के साथ-साथ कर्ज हो, तो भी कीमत वसूलने का इक़रार सही नहीं होगा; यह 'मुहीत' में है। यदि माज़ून ने अपनी टर्मिनल बीमारी में कर्ज, अमानत (वदीयत), उधार (आरियत), मुज़ारबत, किराया (इजारा) या ग़सब (अवैध कब्ज़ा) आदि का इक़रार किया और फिर उसी बीमारी में मर गया, तो ये सभी इक़रार मान्य हैं, बशर्ते उस पर स्वास्थ्य काल का कर्ज न हो। यदि स्वास्थ्य काल का कर्ज होगा, तो ये इक़रार मान्य नहीं होंगे, सिवाय उस संपत्ति के जो स्वास्थ्य काल के कर्ज से अतिरिक्त हो। अतः उसकी संपत्ति बेचकर पहले स्वास्थ्य काल का कर्ज चुकाया जाएगा।

यदि वह ग़सब की हुई संपत्ति, जिसका उसने अपनी बीमारी में इक़रार किया है, गवाहों ने देखी हो, या उधार व अमानत आदि को गवाहों ने देखा हो, तो यदि गवाह उस वस्तु को पहचानते हों, तो वह वस्तु दावेदार (मुक़र लहू) की होगी। यदि वे वस्तु को ठीक से नहीं पहचानते, केवल उन्होंने उसे ग़सब करते या उधार लेते देखा है, तो दावेदार को स्वास्थ्य काल के लेनदारों के साथ शामिल कर दिया जाएगा। इसी तरह हर कर्ज जो बीमारी की स्थिति में गवाहों के सामने सिद्ध हो जाए, तो बीमारी काल का लेनदार भी स्वास्थ्य काल के लेनदारों के बराबर माना जाएगा; यह 'मुग़नी' में है। यदि उस पर स्वास्थ्य काल का कर्ज न हो और बीमारी में उसने अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम का इक़रार किया कि यह बेची गई वस्तु की कीमत है जो उसकी बीमारी में अमुक खरीदार पर थी... 1. यानी उस पर कर्ज के इक़रार के बाद उसे आज़ाद कर दिया। 2. यानी और एक हज़ार दिरहम लेंगे। 3. 'इस्तीफ़ा': पूरी तरह से वसूल करना। 4. 'आरियत को पहचानते हों' का अर्थ है कि वह वस्तु स्वयं मौजूद हो जिसे गवाह पहचान सकें।

---

اقرار کیا تو مولیٰ کو اختیار ہو گا چاہے اس کو دے دے یا اس کا فدیہ دے دے۔ اسی طرح اگر ماذون کی مقبوضہ باندی یا غلام کی نسبت قرضہ یا جنایت کا اقرار کیا تو ایسا ہی حکم ہے جیسے اس نے اپنے ماذون پر ایسا اقرار کیا پھر اگر ان دونوں کو اس کے بعد آزاد کر دیا تو یہ بھی بھولے ماذون کے آزاد کرنے کے ہے یعنی وہی حکم ہو گا جو ماذون کے آزاد کرنے میں اس صورت میں مذکور ہوا ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر اپنے ماذون پر دس ہزار درہم کا اقرار کیا اور اس کی قیمت ایک ہزار درہم ہے اور غلام نے تکذیب کی پھر مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا تو مولیٰ قرض خواہوں کے واسطے ضامن ہو گا مگر ضمان میں مولیٰ صرف اس کی قیمت یعنی ایک ہزار درہم کا ضامن ہو گا اور اس سے زیادہ ضامن نہ ہو گا اگر چہ جس قدر قرضہ کا غلام پر اقرار کیا ہے وہ اس کی قیمت سے زیادہ ہے پھر جب مولیٰ نے ایک ہزار درہم ضمانت دے دی تو کتاب میں مذکور ہے کہ قرض خواہ لوگ دوبارہ اس سے ایک ہزار درہم وصول کریں گے یہ محیط میں ہے۔ اگر غلام نے بھی اس قدر قرضہ کا اقرار کیا تو اس پر پورا قرضہ واجب ہو گا چنانچہ اگر مولیٰ سے یہ اقرار بالکل نہ پایا جاتا تو بھی یہی حکم تھا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ماذون نے مولیٰ کے مرض الموت میں اپنی مقبوضہ چیزوں میں سے کوئی چیز فروخت کی اور مولیٰ کی صحت کا مولیٰ یا غلام پر کچھ قرضہ نہیں ہے اور غلام نے اقرار کیا کہ میں نے ثمن وصول پایا ہے مگر یہ امر سوائے اقرار کے اور طرح ثابت نہیں ہے تو اس کا اقرار صحیح ہو گا اسی طرح اگر غلام پر قرضہ مستغرق یا غیر مستغرق موجود ہو تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر مولیٰ پر اس قدر قرضہ ہو جو غلام کے رقبہ و اس کے مقبوضہ مال کو محیط ہو تو غلام کا ثمن وصول پانے کا اقرار بالکل صحیح نہ ہو گا تا وقتیکہ گواہ قائم نہ ہوں بشرطیکہ قرضہ مولیٰ قرضہ صحت

ہو اور اگر مولیٰ پر مرض کا قرضہ ہو تو غلام کا اقرار ثمن وصول پانے کا مشتری کے حق میں صحیح نہیں ہے یہاں تک کہ مشتری کو ثمن دینا پڑے گا مگر اس کے حق میں یہ اقرار صحیح ہو گا یہاں تک کہ مشتری بھی اس کے قرض خواہوں کے ساتھ یکساں شریک کر دیا جائے گا جیسا کہ اگر مولیٰ نے ایسا اقرار کیا ہوتا یہ حکم ہے لیکن اگر استیفاء ثمن کے گواہ قائم ہوں تو اقرار صحیح ہے اور ایسا نہ ہو گا جیسا کہ حق مولیٰ میں صحیح ہو گا۔ اگر اس صورت میں غلام سے خریدنے والا مولیٰ کا کوئی وارث ہو اور اس قدر قرضہ ہو کہ اس کے رقبہ و تمام مقبوضہ کو محیط ہو اور مولیٰ پر کچھ قرضہ نہیں ہے تو مولیٰ کے وارثوں سے اس کا ثمن وصول پانے کا اقرار جائز نہ ہو گا اسی طرح اگر مولیٰ پر بھی مع غلام کے قرضہ ہو تو بھی ثمن وصول پانے کا اقرار صحیح نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون نے اپنے مرض الموت میں قرضہ یا ودیعت معین یا عاریت و مضاربت و اجارہ معین یا غصب معین وغیرہ تجارت کا اقرار کیا پھر اس مرض میں مر گیا تو اس سب کا اقرار صحیح ہے بشرطیکہ اس پر صحت کا قرضہ نہ ہو اور اگر صحت کا قرضہ ہو گا تو یہ اقرارات صحیح نہ ہوں گے مگر اس قدر مال میں جو قرضہ صحت سے زائد ہو پس اس کا مقبوضہ مال فروخت کر کے پہلے صحت کا قرضہ ادا کیا جائے گا۔

اگر وہ مال غصب جس کا اپنے مرض میں اقرار کیا ہے گواہوں نے معائنہ کیا ہو یا عاریت و ودیعت وغیرہ کا معائنہ کیا ہو پس اگر گواہ لوگ وہ مال غصب یا ودیعت و عاریت کو بعینہ پہچانتے ہوں تو مقرلہ اس مال کا مستحق ہو گا یعنی اسی کو دیا جائے گا اور اگر وہ لوگ مال غصب و عاریت و ودیعت کو بعینہ نہ پہچانتے ہوں صرف انہوں نے غصب کرنا و عاریت دینا و ودیعت دینا دیکھا ہو تو مقرلہ اس کے صحت کے قرض خواہوں کے ساتھ شریک کر دیا جائے گا اسی طرح ہر قرضہ جو حالت مرض میں اس پر گواہوں کے سامنے ثابت ہو کر لازم آئے تو مرض کا قرض خواہ بھی صحت کے قرض خواہوں کے ساتھ یکساں کر دیا جائے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر اس پر

صحت کا قرضہ نہ ہو اور مرض میں اس نے اپنے اوپر ہزار درہم کا اقرار کیا اور یہ اقرار کیا کہ میں نے ہزار درہم ثمن مبیع کے جو اس کے مرض میں فلاں مشتری پر 1. یعنی اس پر قرضہ کے اقرار کے بعد اس کو آزاد کیا۔ 2. یعنی اور ایک ہزار درہم لیں گے۔ 3. استیفاء تمام و کمال وصول کرنا۔ 4. قولہ عاریت کو بعینہ پہچانتے ہوں یعنی وہ مال عین ہو جو گواہوں کی شناخت میں موجود ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (5) - 60 - Kitab al-Ma'dhun**

If debts were due and have been received, the acknowledgment of their receipt will not be verified. However, what is due from him will be divided equally between him and other creditors. If an authorized slave (Ma'dhun) becomes ill and has debts from his state of health, and he pays some creditors but not others, this will not be permissible; this is stated in *Al-Mabsut*. If the Ma'dhun acknowledges a debt of one thousand dirhams during his illness, and then acknowledges a deposit (wadi'at) of one thousand dirhams for another person, and then dies leaving nothing but that one thousand dirhams—of which he stated, "this is exactly the deposit of so-and-so"—then this thousand dirhams will be divided equally between the depositor and the creditor, just as the rule is for such an acknowledgment by a free person. If the Ma'dhun was ill and had a debt from his state of health, and he had a claim for a debt from his state of health against another person and acknowledged receiving it, his acknowledgment will be valid, to the extent that his debtor is discharged.

Similarly, if he acknowledged receiving a debt that became due during his state of health, while having debts from his state of illness, the acknowledgment of receipt remains valid. This rule applies to receiving debts from the state of health. However, if he acknowledged receiving a debt that became due from someone else during his illness, and he has debts from his state of health, his acknowledgment of receipt will not be valid, neither for the discharge of his debtor nor in his own favor, until his acknowledgment becomes equal with his other creditors. If the Ma'dhun has debts from his illness, his acknowledgment of receipt will not be valid—meaning it won't discharge his debtor—but it will be valid in his own right, until it is made equal with his creditors. Whatever share falls to him from what is due will be dropped from his liability, and the Ma'dhun will pay the remainder to the new creditors; this is in *Al-Mughni*. If the Ma'dhun is ill and acknowledges that a debt of one thousand dirhams (from the price of goods sold, etc.) due from Zaid during his illness has been received from Zaid, and the Ma'dhun has no other debts or property besides this claim, and subsequently, he acknowledges a debt of one thousand dirhams upon himself and then dies, then the Ma'dhun's acknowledgment of receipt will be void (batil). If he did not acknowledge the debt but it was established against him before witnesses, then the acknowledgment of receipt will be permissible because a debt established by the observation of witnesses is considered an apparent debt at the time of acknowledgment of receipt, as there is no suspicion in the testimony of witnesses; therefore, the acknowledgment of receipt would be void; this is in *Al-Mabsut*.

If the master (Mawla) ordered his Ma'dhun to sell his slave-girl, the master will not be liable for her price. If the master denies [the order], he will be liable. This rule applies when the slave-girl is present or her condition is unknown. If she has died, the correct view is that the claim will not be verified. If the slave contradicts him, the master will be liable for her price. If the Ma'dhun says, "I did not order him, but I gave permission for the sale," then if the slave-girl is present, it is permissible and the master is not liable; otherwise, it is not permissible and the master is liable. If the master coerced him and the Ma'dhun then said, "I ordered him to sell," his statement will not be accepted and the master remains liable. Similarly, if he made such an acknowledgment after the creditors forced a sale, the acknowledgment would not be valid; this is in *Al-Mughni*. If the Ma'dhun has heavy debts and sells his slave-girl to his master's son, father, a mukatib (contracted slave), or another authorized slave (whether indebted or not) for more than her value, it shall be divided equally by one-fourth.

1. In the original, the right of acknowledgment exists in reality, i.e., in the form of the active participle (Ism al-Fa'il). Two types of benefits are envisioned from this acknowledgment of receipt: first, the literal meaning, i.e., the debtor is discharged; second, the metaphorical meaning, i.e., he acknowledged that much property in his right so that, becoming entitled, it would also belong to his actual creditors. However, here there is no benefit from the Ma'dhun's acknowledgment.

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द (5) - 60 - किताब अल-माज़ून**

यदि ऋण देय था और उसे प्राप्त कर लिया गया है, तो उसकी प्राप्ति की पुष्टि नहीं की जाएगी, लेकिन जो राशि उस पर बकाया है, वह उसके और अन्य लेनदारों के बीच समान रूप से विभाजित की जाएगी। यदि माज़ून (अधिकृत दास) बीमार हो गया और उस पर स्वास्थ्य की स्थिति के ऋण बकाया हैं, और उसने कुछ लेनदारों को भुगतान किया और कुछ को नहीं, तो यह जायज़ नहीं होगा; यह 'मबसूत' में है। यदि माज़ून ने अपनी बीमारी के दौरान एक हज़ार दिरहम के ऋण को स्वीकार किया, फिर किसी अन्य व्यक्ति के लिए एक हज़ार दिरहम की अमानत (वदीअत) स्वीकार की, फिर वह मर गया और उसके पास उस एक हज़ार दिरहम के अलावा कुछ नहीं है जिसके बारे में उसने स्वीकार किया था कि यह अमुक व्यक्ति की अमानत है, तो यह एक हज़ार दिरहम अमानत रखने वाले और लेनदार के बीच समान रूप से विभाजित किया जाएगा, जैसा कि एक स्वतंत्र व्यक्ति की ऐसी स्वीकृति के मामले में नियम है। और यदि माज़ून बीमार था और उस पर स्वास्थ्य की स्थिति का ऋण बकाया था, और उसका किसी अन्य व्यक्ति पर स्वास्थ्य की स्थिति का ऋण था और उसने स्वीकार किया कि उसने अपना ऋण प्राप्त कर लिया है, तो उसकी स्वीकृति सही होगी, यहाँ तक कि उसका ऋणी ऋणमुक्त हो जाएगा।

इसी प्रकार, यदि उसने उस ऋण की प्राप्ति को स्वीकार किया जो उसके स्वास्थ्य की स्थिति के दौरान देय हुआ था और उस पर बीमारी के समय का ऋण बकाया है, तो भी प्राप्ति की स्वीकृति सही होगी। यह नियम स्वास्थ्य की स्थिति के ऋण की प्राप्ति के लिए है। लेकिन यदि उसने ऐसे ऋण की प्राप्ति को स्वीकार किया जो बीमारी की स्थिति में किसी अन्य पर देय हुआ था, और उस पर स्वास्थ्य की स्थिति का ऋण बकाया हो, तो उसकी प्राप्ति की स्वीकृति सही नहीं होगी, न ही उसके ऋणी की ऋणमुक्ति के लिए सही होगी और न ही उसके अपने हक में, जब तक कि उसकी स्वीकृति उसके अन्य लेनदारों के साथ समान न हो जाए। और यदि माज़ून पर बीमारी का ऋण बकाया हो, तो उसकी प्राप्ति की स्वीकृति सही नहीं होगी, यानी उसके ऋणी की ऋणमुक्ति के लिए सही नहीं होगी, लेकिन उसके अपने हक में सही होगी, यहाँ तक कि उसे उसके लेनदारों के साथ समान कर दिया जाए। जो कुछ उस पर बकाया है, उसमें से वह हिस्सा जो उसके भाग में आएगा, उसके दायित्व से समाप्त हो जाएगा और शेष राशि को माज़ून नए लेनदारों को भुगतान करेगा; यह 'मुगनी' में है। यदि माज़ून बीमार है और उसने स्वीकार किया कि ज़ैद पर उसका जो एक हज़ार दिरहम का ऋण (बिक्री की कीमत आदि के रूप में) बीमारी के दौरान देय हुआ था, वह उसने ज़ैद से प्राप्त कर लिया है, और

माज़ून पर कोई ऋण नहीं है और इस ऋण के अलावा उसके पास कोई अन्य संपत्ति नहीं है, फिर उसके बाद उसने स्वयं पर एक हज़ार दिरहम के ऋण को स्वीकार किया और फिर वह मर गया, तो माज़ून की प्राप्ति की स्वीकृति अमान्य (बातिल) होगी। यदि उसने ऋण स्वीकार नहीं किया था लेकिन गवाहों के सामने उस पर ऋण लागू हुआ, तो प्राप्ति की स्वीकृति जायज़ होगी क्योंकि जो ऋण गवाहों की गवाही से अनिवार्य हुआ, वह प्राप्ति की स्वीकृति के समय स्पष्ट ऋण के समान माना जाएगा, क्योंकि गवाहों की गवाही में कोई संदेह नहीं है, इसलिए प्राप्ति की स्वीकृति अमान्य होगी; यह 'मबसूत' में है।

यदि मालिक (मौला) ने अपने माज़ून की दासी को बेचने का आदेश दिया था, तो मालिक उसकी कीमत का ज़िम्मेदार नहीं होगा। और यदि वह इनकार कर दे, तो मालिक ज़िम्मेदार होगा। यह नियम तब है जब दासी मौजूद हो या उसकी स्थिति अज्ञात हो। और यदि वह मर गई हो, तो सही बात यह है कि उसकी पुष्टि नहीं की जाएगी। और यदि दास ने उसे झुठलाया, तो मालिक उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा। यदि माज़ून ने कहा कि "मैंने उसे आदेश नहीं दिया था लेकिन मैंने बिक्री की अनुमति दे दी थी", तो यदि दासी मौजूद है तो जायज़ है और मालिक ज़िम्मेदार नहीं होगा, अन्यथा जायज़ नहीं है और मालिक ज़िम्मेदार होगा। यदि मालिक ने उसे मजबूर किया और फिर माज़ून ने कहा कि "मैंने उसे बिक्री का आदेश दिया था", तो उसकी बात स्वीकार नहीं की जाएगी और मालिक ज़िम्मेदार रहेगा। इसी प्रकार, यदि उसने लेनदारों द्वारा बिक्री कराए जाने के बाद ऐसी स्वीकृति दी, तो भी स्वीकृति सही नहीं होगी; यह 'मुगनी' में है। यदि माज़ून पर अत्यधिक ऋण हो और उसने अपनी एक दासी अपने मालिक के बेटे, पिता, मुकातिब (अनुबंधित दास), या किसी अन्य माज़ून दास (चाहे वह ऋणी हो या नहीं) को दासी की कीमत से अधिक दाम पर बेची हो, तो उसे एक चौथाई के बराबर विभाजित किया जाएगा।

1. मूल रूप में स्वीकृति का अधिकार वास्तविकता में है, यानी 'कर्ता' (active participle) के रूप में। इस प्राप्ति की स्वीकृति से दो प्रकार के लाभ कल्पित हैं: पहला, मूल अर्थ में, यानी ऋणी ऋणमुक्त हो जाए; दूसरा, आलंकारिक अर्थ में, यानी उसने अपने अधिकार में उतनी संपत्ति की स्वीकृति दी ताकि वह हकदार होकर अपने वास्तविक लेनदारों का भी हक अदा कर सके। लेकिन यहाँ माज़ून की स्वीकृति से कोई लाभ नहीं है।

---

واجب ہوئے تھے وصول پائے ہیں تو اس کے وصول پانے پر تصدیق نہ کی جائے گی لیکن جو اس پر آتا ہے وہ اس کے اور دوسرے قرض خواہ کے درمیان برابر تقسیم ہو گا۔ اگر ماذون بیمار ہو گیا اور اس پر صحت کے قرضے موجود ہیں پس اس نے بعض قرض خواہوں کو ادا کیا بعض کو نہ دیا تو یہ جائز نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون نے اپنے مرض میں ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر دوسرے شخص کے واسطے ہزار درہم ودیعت کا اقرار کیا پھر مر گیا اور اس کے پاس سوائے اس ہزار درہم کے جس کی نسبت یہ اقرار کیا ہے کہ یہ بعینہ فلاں شخص کی ودیعت ہے اور کچھ موجود نہیں ہے تو یہ ہزار درہم ودیعت کے صاحب ودیعت اور قرض خواہ کے درمیان برابر تقسیم ہوں گے جیسے آزاد شخص کے ایسے اقرار میں حکم ہے اور اگر ماذون مریض ہوا اور اس پر صحت کا قرضہ ہے اور اس کا کسی دوسرے شخص پر صحت کا قرضہ تھا اور اس نے اقرار کیا کہ میں نے اپنا قرضہ وصول پایا ہے تو اس کا اقرار صحیح ہو گا حتیٰ کہ اس کا قرض دار بری ہو جائے گا۔

اسی طرح اگر اس نے اپنے اس قرضہ وصول پانے کا اقرار کیا جو اس کا حالت صحت میں واجب ہوا تھا اور اس پر مرض کا قرضہ موجود ہے تو بھی اقرار وصول صحیح ہو گا۔ یہ حکم تو حالت صحت کے قرضہ وصول پانے کا ہے اور اگر ایسے قرضہ کے وصول پانے کا اقرار کیا جو حالت مرض میں اس کا دوسرے پر واجب ہوا تھا پس اگر اس پر صحت کا قرضہ موجود ہو تو اس کا اقرار وصول صحیح نہ ہو گا نہ اس کے قرض دار کی براءت کے واسطے صحیح ہو گا اور نہ اس کے حق میں یہ اقرار صحیح ہو جائے گا حتیٰ کہ اس کا اقراری اس کے قرض خواہوں کے ساتھ یکساں نہ ہو جائے گا اور اگر ماذون پر مرض کا قرضہ ہو تو اس کا اقرار وصول صحیح نہ ہو گا

یعنی اس کے قرض دار کی براءت کے واسطے صحیح نہ ہو گا مگر اس کے حق میں صحیح ہو گا حتیٰ کہ مقررہ اس کے قرض خواہوں کے ساتھ یکساں کر دیا جائے گا جو کچھ اس پر آتا ہے اس میں سے اس قدر حصہ جو اس کے حصہ میں واقع ہو گا وہ اس کے ذمہ سے ساقط ہو جائے گا اور جو کچھ اس پر باقی رہے گا وہ ماذون نئے قرض خواہوں کو ادا کر دے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون مریض ہو پس اس نے اقرار کیا کہ میرا جو قرضہ ہزار درہم کا ثمن مبیع وغیرہ کا زید پر مرض میں واجب ہوا ہے وہ میں نے زید سے وصول پایا اور ماذون پر کچھ قرضہ نہیں ہے اور سوائے اس مال قرض کے اس کا کچھ اور مال نہیں ہے پھر اس کے بعد اس نے اپنے اوپر ہزار درہم قرض کا اقرار کیا پھر مر گیا تو ماذون کا اقرار وصول باطل ہو گا۔ اگر اس نے قرضہ کا اقرار نہ کیا لیکن گواہوں کے سامنے اس پر قرضہ لاحق ہوا تو اس کا اقرار وصول جائز ہو گا کیونکہ جو قرضہ گواہوں کے معائنہ سے واجب ہوا وہ اقرار وصول کے وقت بمنزلہ قرض ظاہر کے شمار ہو گا اس واسطے کہ گواہوں کی گواہی میں کچھ تہمت نہیں ہے اس لیے اقرار وصول باطل ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر مولیٰ نے اپنے ماذون کی باندی فروخت کرنے کا حکم دیا تھا تو مولیٰ اس کی قیمت کا ضامن نہ ہو گا اور اگر وہ انکار کر جائے تو مولیٰ ضامن ہو گا اور یہ حکم اس وقت ہے کہ باندی موجود ہو یا اس کا حال معلوم نہ ہو اور اگر مر گئی ہو تو صحیح یہ ہے کہ اس کی تصدیق نہ کی جائے گی اور اگر غلام نے اس کی تکذیب کی تو مولیٰ اس کی قیمت کا ضامن ہو گا پس اگر ماذون نے کہا کہ میں نے اس کو حکم نہیں دیا تھا مگر میں نے بیچ کی اجازت دے دی پس اگر باندی موجود ہو تو جائز ہے اور مولیٰ ضامن نہ ہو گا ورنہ جائز نہیں اور مولیٰ ضامن ہو گا اگر مولیٰ نے اس کو مجبور کر دیا پھر ماذون نے کہا کہ میں نے اس کو بیچ کا حکم دیا تھا تو قول قبول نہ ہو گا اور مولیٰ ضامن رہے گا اسی طرح اگر اس نے قرض خواہوں کے فروخت کرانے کے بعد ایسا اقرار

کیا تو بھی اقرار صحیح نہ ہو گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون پر قرضہ کثیر ہو اور اس نے اپنی ایک باندی اپنے مولیٰ کے بیٹے یا باپ یا مکاتب یا غلام ماذون التجارت مقروض یا غیر مقروض کے ہاتھ باندی کی قیمت سے زیادہ داموں یعنی کے ربع برابر تقسیم کیا جائے گا۔

۱ فی الاصل واقع حق الاقرار یعنی بصیغہ اسم الفاعل الصحیح یعنی اس اقرار وصول سے دو طرح کا فائدہ متصور ہوتا ہے اول اصلی معنی یعنی قرضدار بری ہو جائے دوم مجازی معنی یعنی دینا اس کے حق میں اس قدر مال کا اقرار کیا تو وہ مستحق ہو کر اس کے تحقیقی قرض خواہوں کا بھی ہو جائے لیکن یہاں ماذون کے اقرار سے چھ فائدہ نہیں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 61 Kitab al-Mazoon (The Book of the Authorized Slave)**

...sold it and handed it over to the purchaser, and then acknowledged (Iqrar) having received the price (Thaman). Such an acknowledgment is valid, except in the case of selling it to the authorized slave (Mazoon) or the contracted slave (Mukatab) of the master (Mawla), where it is not valid. If the agent (Wakil) of the authorized slave acts in this manner, his acknowledgment is equivalent to the acknowledgment of the authorized slave himself. If the son of an authorized slave is free and he misappropriates property belonging to his father, or his father's contracted slave, or wife, or a debtor or non-debtor authorized slave, and then the authorized slave acknowledges that he has received this property from the one who caused the loss, then according to the Great Imam (Abu Hanifa, RA), his statement will not be verified, whether the authorized slave is in debt or not. However, according to the disciples (Sahibayn, Imams Abu Yusuf and Muhammad), it shall be verified. If the person causing the loss is the brother of the authorized slave, then the acknowledgment of receipt from him is valid, and no oath shall be required of the brother after the acknowledgment of receipt. This is mentioned in 'Al-Mabsut'.

If an authorized slave commands his master to sell a slave belonging to his trade, and the master sells it and then acknowledges that the authorized slave has received the price from the purchaser, then the master shall be required to swear an oath regarding whether he is telling the truth or lying. If the master takes the oath, he shall not be held liable as a guarantor (Zamin). However, if he refuses the oath (Nukul), he shall become the guarantor of the price for his authorized slave. This is in 'Al-Mughni'. If Zaid grants his slave permission to trade, and the slave's value is one thousand dirhams, and after the permission, the slave incurs a debt of one thousand dirhams, and the master acknowledges this debt of one thousand dirhams while the slave denies it, and then the master manumits (frees) the slave, the creditor who lent to the slave has the choice: either to seek a guarantee (Zaman) from the master for the slave's value or to recover his debt from the now-free slave. If the master provides the guarantee, the second creditor shall have no claim against the master or the slave. If the creditor chooses to collect from the slave, the other designated party has the right to take the slave's value from the master. If the master acknowledges a debt of two thousand dirhams on the slave, and there is no other debt on the slave, but the slave denies the master's acknowledgment, and subsequently, a debt of one thousand dirhams is established against the slave by his

own acknowledgment or by testimony, then the slave shall be sold. Each creditor shall share in the proceeds of the sale pro-rata (Hissa-e-Rasad) according to their full debt. If the slave acknowledged first, then his acknowledged debt shall be paid first. Similarly, if a slave is sold for two thousand but only one thousand is recovered and one thousand is lost, the amount recovered will go to the creditor specified by the slave. If the slave acknowledges a debt of one thousand dirhams, then the master acknowledges a debt of one thousand dirhams against him, and then the slave acknowledges another thousand dirhams, the slave shall be sold, and the proceeds shall be shared pro-rata between the two creditors for whom the slave acknowledged. Any remainder from the price will then go to the one for whom the master acknowledged. If the slave made no acknowledgment, but the master acknowledged a thousand dirham debt and then separately acknowledged another thousand dirham debt for another person, the slave shall be sold, and the first creditor's debt will be paid first; if anything remains, it goes to the second. If the master made both acknowledgments consecutively (Muttaṣil), for example, saying, "My slave owes Zaid one thousand dirhams and Amr one thousand dirhams," then both creditors shall share in the price pro-rata. If the slave verifies the debt acknowledged by the master for the second creditor, whether the words were consecutive or separate (Munqati'), both shall be shareholders in the proceeds. If he verifies only the first, the first debt shall be paid first. However, this ruling applies when the master's two acknowledgments were made in separate statements; if they were made in a single continuous statement, both shall share in the proceeds. This is in 'Al-Mabsut'.

If one acknowledges a debt against his slave, it is valid even if the slave denies it and there is no actual debt, to the extent that creditors are entitled to recover from the slave's value. If the slave is freed, the master shall only be liable for the lesser of the two: the slave's value or the debt amount. This is in 'Fatawa Sughra'. If the value of the authorized slave is fifteen hundred dirhams and the slave acknowledged a debt of one thousand dirhams...

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 61 किताबुल माज़ून**

...बेचकर खरीदार (मुश्तरी) को दे दी, फिर उससे कीमत (समन) प्राप्त करने का स्वीकार (इकरार) किया, तो ऐसा इकरार जायज़ है। लेकिन स्वामी (मौली) के माज़ून (व्यापार हेतु अनुमति प्राप्त दास) और मुकातिब (मुक्ति हेतु अनुबंध करने वाला दास) के हाथ बेचने की स्थिति में यह जायज़ नहीं है। यदि माज़ून के वकील ने ऐसा कार्य किया, तो उसका इकरार माज़ून के इकरार के समान है। यदि माज़ून का पुत्र स्वतंत्र (आज़ाद) हो और उसने अपने पिता, या पिता के मुकातिब, या पत्नी, या उसके कर्जदार या बिना कर्जदार माज़ून का माल लेकर उसे नष्ट कर दिया हो, फिर माज़ून ने इकरार किया कि मैंने यह माल उस नुकसान पहुँचाने वाले से प्राप्त कर लिया है, तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाहि अलैहि के निकट उसके वचन की पुष्टि नहीं होगी, चाहे माज़ून कर्जदार हो या न हो। और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के निकट पुष्टि की जाएगी। और यदि नुकसान पहुँचाने वाला माज़ून का भाई हो, तो उससे प्राप्ति का इकरार जायज़ होगा और प्राप्ति के इकरार के बाद उसके भाई पर शपथ (क़सम) लागू नहीं होगी, यह 'मबसूत' में है।

यदि माज़ून ने अपने स्वामी को अपने व्यापार का गुलाम बेचने का आदेश दिया, स्वामी ने उसे बेच दिया और फिर इकरार किया कि माज़ून ने खरीदार से कीमत प्राप्त कर ली है, तो स्वामी से उसके वचन पर शपथ ली जाएगी कि वह सच कह रहा है या झूठ। यदि स्वामी ने शपथ खा ली, तो वह उत्तरदायी (ज़ामिन) नहीं होगा, और यदि उसने शपथ से इंकार (नकुल) किया, तो वह अपने माज़ून हेतु कीमत का उत्तरदायी होगा, यह 'मुग़नी' में है। यदि ज़ैद ने अपने गुलाम को, जिसकी कीमत एक हज़ार दिरहम है, व्यापार की अनुमति दी और उसने अनुमति के बाद एक हज़ार दिरहम का कर्ज ले लिया, फिर स्वामी ने उस पर एक हज़ार दिरहम कर्ज का इकरार किया जबकि वह इससे इंकार कर रहा है, फिर स्वामी ने उसे स्वतंत्र कर दिया, तो जिस लेनदार ने गुलाम को कर्ज दिया है, उसे अधिकार होगा कि चाहे तो स्वामी से उसकी कीमत की गारंटी (ज़मान) ले ले या स्वतंत्र गुलाम से अपना कर्ज वसूल करे। यदि स्वामी ने उसे गारंटी दे दी, तो दूसरे लेनदार का स्वामी या गुलाम पर कोई अधिकार नहीं होगा। और यदि उसने गुलाम से अपना कर्ज लेना चुना, तो दूसरे निर्धारित व्यक्ति को अधिकार होगा कि स्वामी से गुलाम की कीमत ले। यदि स्वामी ने गुलाम पर दो हज़ार दिरहम का इकरार किया हो और गुलाम पर इसके सिवाय कोई कर्ज न हो, और गुलाम ने स्वामी के इकरार का खंडन किया, फिर गुलाम पर इकरार या गवाहों के प्रमाण से एक हज़ार दिरहम अनिवार्य हो गए, तो गुलाम बेचा जाएगा और प्रत्येक लेनदार को उसकी कीमत में उसके पूरे कर्ज के अनुपात (हिस्सा-ए-

रसद) में भागीदार बनाया जाएगा। और यदि पहले गुलाम ने इकरार किया हो, तो पहले उसका इकरारी कर्ज चुकाया जाएगा। इसी प्रकार यदि गुलाम दो हज़ार में बिका लेकिन उसमें से एक हज़ार ही प्राप्त हुए और एक हज़ार डूब गए, तो जो भी प्राप्त हुआ है वह गुलाम के निर्धारित लेनदार को मिलेगा। यदि गुलाम ने एक हज़ार दिरहम कर्ज का इकरार किया, फिर स्वामी ने उस पर एक हज़ार दिरहम कर्ज का इकरार किया, फिर गुलाम ने एक हज़ार दिरहम कर्ज का इकरार किया, तो उसे बेचा जाएगा और उसकी कीमत में से वे दोनों लेनदार, जिनके लिए गुलाम ने इकरार किया है, आनुपातिक रूप से हिस्सा बाँट लेंगे। फिर यदि कीमत में से कुछ शेष रहा, तो वह उसे मिलेगा जिसके लिए स्वामी ने इकरार किया है। और यदि गुलाम ने कोई इकरार नहीं किया लेकिन स्वामी ने उस पर एक हज़ार दिरहम कर्ज का इकरार किया, फिर उस पर दूसरे व्यक्ति के एक हज़ार दिरहम कर्ज का अलग से इकरार किया, तो गुलाम बेचा जाएगा और पहले लेनदार का कर्ज चुकाने के बाद यदि कुछ बचा तो दूसरे को दिया जाएगा। और यदि अलग-अलग नहीं बल्कि एक साथ (मुत्तसिल) दोनों इकरार किए, उदाहरणतः यह कहा कि "ज़ैद के मेरे इस गुलाम पर एक हज़ार दिरहम और अम्र के एक हज़ार दिरहम कर्ज हैं," तो दोनों लेनदार उसकी कीमत में आनुपातिक हिस्सेदार होंगे। और यदि गुलाम ने स्वामी द्वारा स्वीकार किए गए दूसरे लेनदार के कर्ज की पुष्टि कर दी, चाहे इकरार के शब्द निरंतर हों या विच्छिन्न (मुनक़तअ), तो दोनों उसकी कीमत में हिस्सेदार होंगे। और यदि केवल पहले की पुष्टि की, तो पहले उसका कर्ज दिया जाएगा। लेकिन यह आदेश उस स्थिति में है जब स्वामी के दोनों इकरार विच्छिन्न शब्दों में हुए हों, और यदि वे एक ही निरंतर कथन में हों, तो दोनों उसकी कीमत में हिस्सेदार होंगे, यह 'मबसूत' में है।

यदि किसी ने अपने गुलाम पर कर्ज का इकरार किया तो वह सही है, भले ही गुलाम उसे झुठलाए और गुलाम पर वास्तव में कर्ज न हो, यहाँ तक कि लेनदारों को गुलाम की कीमत से वसूली का अधिकार होगा। और यदि गुलाम स्वतंत्र हो गया, तो स्वामी केवल न्यूनतम राशि (उसकी कीमत या कर्ज में से जो कम हो) का उत्तरदायी होगा, अर्थात यदि कर्ज कम है तो उसका, और यदि कीमत कम है तो उसका उत्तरदायी होगा, यह 'फ़तावा सुग़रा' में है। यदि माज़ून की कीमत डेढ़ हज़ार दिरहम हो और गुलाम ने एक हज़ार दिरहम कर्ज का इकरार किया...

کو فروخت کر کے مشتری کو دے دی پھر اس سے ثمن وصول پائے کا اقرار کیا تو ایسا اقرار جائز ہے مگر مولیٰ کے ماذون و مکاتب کے ہاتھ فروخت کرنے کی صورت میں جائز نہیں ہے۔ اگر ماذون کے وکیل نے ایسا امر کیا تو اس کا اقرار بمنزلہ اقرار ماذون کے ہے۔ اگر ماذون کا بیٹا آزاد ہو اور اس نے اپنے باپ یا باپ کے مکاتب یا بیوی یا اس کے ماذون مقروض یا غیر مقروض یا مال لے کر مکتف کر دیا پھر ماذون نے اقرار کیا کہ میں نے یہ مال اس تلف کنندہ سے وصول پایا ہے تو امام اعظمؒ کے نزدیک اس کے قول کی تصدیق نہ ہوگی خواہ ماذون مقروض ہو یا نہ ہو اور صاحبین کے نزدیک تصدیق کی جائے گی اور اگر تلف کرنے والا ماذون کا بھائی ہو تو اس سے وصول پانے کا اقرار جائز ہوگا اور اس کے اقرار وصول کے بعد اس کے بھائی پر قسم عائد نہ ہوگی یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ماذون نے اپنے مولیٰ کو اپنی تجارت کا غلام فروخت کرنے کا حکم دیا اس نے فروخت کیا پھر اس نے اقرار کیا کہ ماذون نے مشتری سے ثمن وصول پایا ہے تو مولیٰ سے اس کے قول پر قسم لی جائے گی کہ سچ کہتا ہے یا جھوٹ پس اگر مولیٰ نے قسم کھائی تو ضامن نہ ہوگا اور اگر نکول کیا تو اپنے ماذون کے واسطے ثمن کا ضامن ہوگا یہ مغنی میں ہے۔ اگر زید نے اپنے غلام کو جس کی قیمت ہزار درہم ہے تجارت کی اجازت دی اور اس نے بعد اجازت کے ہزار درہم قرض کر لیے پھر مولیٰ نے اس پر ہزار درہم قرض کا اقرار کیا حالانکہ وہ منکر ہے پھر مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا تو جس قرض خواہ نے غلام کو قرضہ دیا ہے اس کو اختیار ہوگا چاہے مولیٰ سے اس کی قیمت کی ضمان لے یا غلام آزاد سے اپنا قرضہ وصول کرے پس اگر مولیٰ نے اس کو ضمان دے دی تو دوسرے قرض خواہ یعنی مقررہ مولیٰ یا غلام پر کچھ حق نہ ہوگا اور اگر اس نے غلام سے

اپنا قرضہ لینا اختیار کیا تو دوسرے مقررہ کو اختیار ہوگا کہ مولیٰ سے غلام کی قیمت لے۔ اگر مولیٰ نے غلام پر دو ہزار درہم کا اقرار کیا ہو اور غلام پر اس کے سوائے کوئی قرضہ نہیں ہے اور غلام نے اقرار مولیٰ سے انکار کیا پھر غلام پر اقراری یا ثبوت گواہان ہزار درہم لازم ہوئے تو غلام فروخت کیا جائے گا اور ہر ایک قرض خواہ اس کے ثمن میں بحساب اپنے پورے قرضہ کے شریک کیا جائے گا اور اگر اوّل غلام نے اقرار کیا ہو تو پہلے اس کا اقراری قرضہ ادا کیا جائے گا اسی طرح اگر غلام دو ہزار کو فروخت ہو مگر اس میں سے ایک ہزار وصول ہوئے اور ایک ہزار ڈوب گئے تو بھی جس قدر وصول ہوا ہے وہ غلام کے مقررہ قرض خواہ کو ملے گا۔ اگر غلام نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے اس پر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر غلام نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا تو فروخت کیا جائے گا اور اس کے ثمن میں سے وہ دونوں قرض خواہ جن کے واسطے غلام نے اقرار کیا ہے حصہ رسد تقسیم کر لیں گے پھر اگر ثمن میں سے کچھ باقی رہا تو اس کو ملے گا جس کے واسطے مولیٰ نے اقرار کیا ہے اور اگر غلام نے کچھ اقرار نہ کیا مگر مولیٰ نے اس پر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر اس پر دوسرے شخص کے ہزار درہم قرضہ کا جدا اقرار کیا تو غلام فروخت کیا جائے گا اور اولاً پہلے قرض خواہ کا قرضہ دے کر اگر کچھ باقی رہا تو دوسرے کو دیا جائے گا اور اگر جدا نہ کیا بلکہ متصل دونوں اقرار کیے مثلاً یوں کہا کہ زید کے میرے اس غلام پر ہزار درہم اور عمرو کے ہزار درہم قرض ہیں تو دونوں قرض خواہ اس کے ثمن میں حصہ رسد شریک ہو جائیں گے اور اگر غلام نے مولیٰ کے اقراری دوسرے قرض خواہ کے قرضہ کی تصدیق کی خواہ کلام اقرار متصل ہو یا منقطع تو دونوں اس کے ثمن میں حصہ دار ہوں گے اور اگر اول کی تصدیق کی تو پہلے اس کا قرضہ دیا جائے گا مگر یہ حکم اس صورت میں ہے کہ مولیٰ کے دونوں اقرار بکلام منقطع واقع ہوئے ہوں اور اگر بکلام متصل ہوں تو دونوں اس کے ثمن میں حصہ دار ہوں گے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر اپنے غلام پر قرضہ کا اقرار کیا تو صحیح ہے اگرچہ غلام تکذیب کرے اور غلام پر قرضہ نہ ہو یہاں تک کہ قرض خواہوں کو نامہ بر کی قیمت سے وصول کرنے کا استحقاق ہوگا اور اگر غلام آزاد ہو گیا تو فقط کمتر مال کا اپنی قیمت و قرضہ سے ضامن ہوگا یعنی اگر قرضہ کم ہو تو اس کا اور اگر قیمت کم ہو تو اس کا ضامن ہوگا یہ فتاویٰ صغریٰ میں ہے۔ اگر ماذون کی قیمت ڈیڑھ ہزار درہم ہوں اور غلام نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 62 Kitab al-Mazun**

If the master (Mawla) acknowledged a debt of one thousand dirhams against him (the slave), and then the authorized slave (Mazun) acknowledged a debt of one thousand dirhams, and subsequently, the slave was sold for two thousand dirhams, then both creditors of the slave—the one whose debt the master acknowledged and the one whose debt the slave acknowledged—shall share in his price (thaman). Each will be entitled to five hundred dirhams, and the total price shall be divided into five parts between them. If the slave was not sold but the master emancipated him and his value is one and a half thousand dirhams, the master shall be the guarantor (zamin) for his value for the creditors. This value, which is a substitute for the corporal worth (raqba) of the slave, is treated like the sale price. Thus, it will be divided into five parts among them; the slave's creditor will receive two-fifths (i.e., six hundred dirhams). Each creditor may hold the slave liable for their previous four hundred dirhams, but the one for whom the master acknowledged can only hold him liable for two hundred dirhams. Creditors also have the option to forgo pursuing the master and instead hold the emancipated slave liable for their proven debt. If they choose to hold him liable, both creditors whose debts were acknowledged will receive their full debt of two thousand dirhams, and the creditor acknowledged by the master will receive five hundred dirhams from him (the slave), and then another five hundred dirhams from the master.

If the slave's value is one thousand dirhams and the slave acknowledged a debt of one thousand dirhams, then the master acknowledged a debt of one thousand dirhams against him, and subsequently, the slave's value increased to two thousand dirhams, after which the slave acknowledged another thousand dirhams in debt, and then the slave was sold for two thousand dirhams, the entire price shall be given to those two for whom the slave made the acknowledgment. If the master emancipated him, he shall be the guarantor for his value. If those two for whom the slave acknowledged chose to hold the slave liable and released the master from paying the price, then the creditor for whom the master acknowledged shall have the option to recover his full debt from the master. If the slave's value is one and a half thousand dirhams and the master acknowledged a debt of one thousand dirhams, then another thousand, and both acknowledgments occurred separately, and the slave was sold for one thousand dirhams, this price will be divided into three equal parts among the first two creditors. Out of this, the first will be shared according to the thousand dirhams and the second according to five hundred dirhams. If the master

emancipated him while his value was one thousand dirhams, he would be the guarantor for the one thousand dirhams price. Both creditors will first divide this value into three parts according to their proven debts. Then they will take five hundred from the slave and divide it into three parts. If they chose to take from the slave first, they would receive one thousand dirhams according to his value, divide it into three parts based on their proven claims, and then take the full price from the master. If the master made both acknowledgments regarding the slave in a single statement, the creditors shall share equally in the slave's price. If the master emancipated him, they would take compensation (tawan) for his value from the master and then turn to the slave for the previous debt, receiving up to his value. Any debt exceeding this amount is lost (sunk) and cannot be recovered from anyone. If the slave's value is one thousand dirhams and the master acknowledged a debt of one thousand dirhams, followed by another thousand dirhams acknowledgment, and then the slave's value increased to two thousand dirhams, and another thousand was acknowledged, and the slave was sold for two thousand, the price will be divided equally between the first and the third creditors, and the middle one will receive nothing. If sold for two thousand five hundred dirhams, the first and third will recover their full debts, and the remainder goes to the second. If the master emancipated him and the value is two thousand, the first and third will take a guarantee from him, and the middle one gets nothing. If emancipated when the value was two thousand five hundred, the first and third would take two thousand from the master, and the remaining five hundred goes to the second, because the master acknowledged him as a creditor, and he has no claim on the Mazun. If any amount of the master's liability is lost, that amount will be purely counted in the second's share.

If the slave's value is one and a half thousand dirhams and the master acknowledged a debt of one thousand, then another thousand, then two thousand dirhams, and the slave was sold for three thousand, the first will recover his full thousand dirhams debt, likewise the second, and the remaining thousand goes to the third. If only one thousand dirhams were recovered from the price and the remaining two thousand were lost, then two-thirds of the thousand goes to the first and one-third to the second.

---

and the master's acknowledged creditor will receive three hundred dirhams. 2. This is as we found it in the existing manuscript, and Allah knows best.

क्या फिर मौला ने उस पर एक हजार दिरहम ऋण को स्वीकार किया, फिर माज़ून ने एक हजार दिरहम को स्वीकार किया, फिर गुलाम को दो हजार में बेच दिया गया, तो गुलाम के दोनों ऋणदाताओं में से प्रत्येक अपने पूरे ऋण और जिसके लिए मौला ने स्वीकार किया है, पांच सौ दिरहम के हिसाब से उसकी कीमत (थमन) में शामिल होगा। अतः पूरी कीमत उनके बीच पांच हिस्सों में विभाजित की जाएगी। यदि गुलाम को बेचा नहीं गया बल्कि मौला ने उसे स्वतंत्र कर दिया और उसका मूल्य डेढ़ हजार दिरहम है, तो मौला उन ऋणदाताओं के लिए उसके मूल्य का ज़मानतदार (गारंटर) होगा। यह मूल्य, जो गुलाम के शरीर (रक़बा) के मूल्य का विकल्प है, बिक्री मूल्य के समान है। अतः यह उनके बीच पांच हिस्सों में विभाजित होगा, और गुलाम के ऋणदाता को दो-पाँचवाँ हिस्सा यानी छह सौ दिरहम मिलेंगे। प्रत्येक ऋणदाता अपने पिछले चार सौ दिरहम के लिए गुलाम को जवाबदेह ठहरा सकेगा, लेकिन जिसके लिए मौला ने स्वीकार किया है, वह केवल दो सौ दिरहम के लिए जवाबदेह हो सकता है। ऋणदाताओं को यह भी विकल्प है कि वे मौला का पीछा छोड़ दें और अपने प्रमाणित ऋण के लिए स्वतंत्र किए गए गुलाम को जवाबदेह ठहराएँ। यदि वे ऐसा करते हैं, तो गुलाम द्वारा स्वीकार किए गए दोनों ऋणदाता अपना पूरा दो हजार दिरहम ऋण प्राप्त करेंगे, और मौला का स्वीकार किया गया ऋणदाता पांच सौ दिरहम प्राप्त करेगा, फिर वह मौला से भी पांच सौ दिरहम प्राप्त करेगा।

यदि गुलाम का मूल्य एक हजार दिरहम है और गुलाम ने एक हजार दिरहम के ऋण को स्वीकार किया, फिर मौला ने उस पर एक हजार दिरहम स्वीकार किए, फिर गुलाम का मूल्य बढ़ गया और दो हजार दिरहम हो गया, फिर गुलाम ने एक और हजार दिरहम के ऋण को स्वीकार किया और गुलाम को दो हजार में बेचा गया, तो पूरी कीमत उन दोनों को दी जाएगी जिनके लिए गुलाम ने ऋण स्वीकार किया था। यदि मौला ने उसे स्वतंत्र कर दिया, तो वह उसके मूल्य का ज़मानतदार होगा। यदि वे दोनों, जिनके लिए गुलाम ने ऋण स्वीकार किया था, गुलाम को जवाबदेह ठहराने का विकल्प चुनते हैं और मौला को मूल्य के भुगतान से मुक्त कर देते हैं, तो उस ऋणदाता को, जिसके लिए मौला ने स्वीकार किया था, यह अधिकार होगा कि वह मौला से अपना पूरा ऋण वसूल करे। यदि गुलाम का मूल्य डेढ़ हजार दिरहम है और मौला ने उस पर एक हजार दिरहम स्वीकार किए, फिर दूसरे एक हजार दिरहम स्वीकार किए, और दोनों स्वीकारोक्तियाँ अलग-अलग समय पर हुईं, फिर गुलाम को एक हजार दिरहम में बेचा गया, तो यह कीमत पहले दोनों ऋणदाताओं में बराबर तीन हिस्सों में

विभाजित होगी। इसमें से पहला ऋणदाता एक हजार दिरहम के अनुपात में और दूसरा पांच सौ दिरहम के अनुपात में हिस्सा प्राप्त करेगा। यदि मौला ने उसे स्वतंत्र कर दिया और उसका मूल्य एक हजार दिरहम था, तो वह एक हजार दिरहम का ज़मानतदार होगा। दोनों ऋणदाता पहले इस राशि को अपने प्रमाणित ऋणों के अनुसार तीन हिस्सों में विभाजित करेंगे। फिर वे गुलाम से पांच सौ दिरहम और लेकर उसे तीन हिस्सों में विभाजित करेंगे। यदि उन्होंने पहले गुलाम से वसूलने का विकल्प चुना, तो वे उसके मूल्य के बराबर एक हजार दिरहम प्राप्त करेंगे और उसे अपने प्रमाणित दावों के अनुसार तीन हिस्सों में विभाजित करेंगे, फिर वे मौला से भी उसका पूरा मूल्य प्राप्त करेंगे। यदि मौला ने गुलाम के संबंध में ये दोनों स्वीकारोक्तियाँ एक ही समय में की हैं, तो ऋणदाता गुलाम की बिक्री के मूल्य में बराबर के भागीदार होंगे। यदि मौला ने उसे स्वतंत्र कर दिया, तो वे मौला से उसके मूल्य का हर्जाना प्राप्त करेंगे और फिर पिछले ऋण के लिए गुलाम की ओर मुड़ेंगे और उसके मूल्य के बराबर राशि वसूल करेंगे। जितना ऋण इसके बाद शेष रह जाएगा, वह समाप्त (डूब) जाएगा और उसे किसी से वसूल नहीं किया जा सकेगा। यदि गुलाम का मूल्य एक हजार दिरहम है और मौला ने उस पर एक हजार दिरहम का ऋण स्वीकार किया, फिर उसके बाद एक और हजार दिरहम स्वीकार किए, फिर गुलाम का मूल्य बढ़कर दो हजार दिरहम हो गया, फिर उस पर एक और हजार दिरहम स्वीकार किए गए और गुलाम दो हजार में बिका, तो यह कीमत पहले और तीसरे ऋणदाता के बीच आधी-आधी विभाजित होगी और दूसरे ऋणदाता को कुछ नहीं मिलेगा। यदि वह दो हजार पांच सौ दिरहम में बिका, तो पहला और तीसरा अपना-अपना ऋण वसूल करेंगे और शेष दूसरे को मिलेगा। यदि मौला ने उसे स्वतंत्र कर दिया और मूल्य दो हजार दिरहम है, तो पहला और तीसरा उससे ज़मानत लेंगे और बीच वाले को कुछ नहीं मिलेगा। यदि स्वतंत्र किया गया और मूल्य दो हजार पांच सौ दिरहम था, तो पहला और तीसरा मौला से दो हजार दिरहम लेंगे और शेष पांच सौ दिरहम दूसरे को मिलेंगे, क्योंकि मौला ने उसके ऋणदाता होने को स्वीकार किया है और उसका माज़ून पर कोई अधिकार नहीं होगा। यदि मौला का हिस्सा समाप्त हो जाता है, तो वह राशि विशेष रूप से दूसरे के हिस्से में गिनी जाएगी।

यदि गुलाम का मूल्य डेढ़ हजार दिरहम है और मौला ने उस पर पहले एक हजार, फिर दूसरे एक हजार, और फिर दो हजार दिरहम के ऋण को स्वीकार किया, और गुलाम तीन हजार में बिका, तो पहला ऋणदाता अपना पूरा एक हजार दिरहम प्राप्त करेगा, इसी तरह दूसरा भी, और शेष एक हजार दिरहम तीसरे को मिलेंगे। यदि बिक्री से केवल एक हजार दिरहम प्राप्त हुए और शेष दो हजार डूब गए, तो प्राप्त एक हजार का दो-तिहाई पहले को और एक-तिहाई दूसरे को मिलेगा।

प्राप्त करेगा और मौला का स्वीकार किया हुआ ऋणदाता तीन सौ दिरहम प्राप्त करेगा। 2. जैसा कि हमें उपलब्ध संस्करण में मिला, और अल्लाह बेहतर जानता है।

کیا پھر مولیٰ نے اس پر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر ماذون نے ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام دو ہزار کو فروخت کیا گیا تو غلام کے دونوں قرض خواہوں میں سے ہر ایک اپنے پورے قرضہ اور جس کے واسطے مولیٰ نے اقرار کیا ہے پانچ سو درہم کے حساب سے اس کے ثمن میں شریک ہوگا پس تمام ثمن ان کے درمیان پانچ حصہ ہو کر تقسیم ہوگا۔ اگر فروخت نہ کیا گیا بلکہ مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا اور اس کی قیمت ڈیڑھ ہزار درہم ہے تو مولیٰ ان قرض خواہوں کے واسطے اس کی قیمت کا ضامن ہوگا اور یہ قیمت جو بدل مالیت رقبہ ہے مثل ثمن بیع کے ہے پس ان کے درمیان پانچ ہو کر تقسیم ہوگی اور غلام کے قرض خواہ کو دو پانچویں حصہ یعنی چھ سو درہم ملیں گے اور ہر ایک اپنے ماضی چار سو درہم کے واسطے غلام کا دستگیر ہوگا مگر جس کے واسطے مولیٰ نے اقرار کیا ہے وہ صرف دو سو درہم کے واسطے دستگیر ہو سکتا ہے۔ قرض خواہوں کو یہ بھی اختیار ہے کہ چاہیں مولیٰ کا پیچھا چھوڑ کر اپنے قرضہ ثابت کے واسطے غلام آزاد شدہ کے دستگیر ہوں پس اگر اس کے دستگیر ہوئے تو اس کے اقراری دونوں قرض خواہ پورا قرضہ دو ہزار درہم لے لیں گے اور مولیٰ کا اقراری قرض خواہ پانچ سو درہم لے لے گا پھر مولیٰ سے بھی پانچ سو درہم لے گا۔

اگر غلام کی قیمت ایک ہزار درہم ہو اور غلام نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر مولیٰ نے اس پر ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام کی قیمت بڑھ گئی یہاں تک کہ دو ہزار درہم ہو گئے پھر غلام نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر دو ہزار درہم کو فروخت کیا گیا تو تمام ثمن انہی دونوں کو دیا جائے گا جن کے واسطے غلام نے اقرار کیا ہے اور اگر مولیٰ نے اس کو آزاد کیا تو اس کی قیمت کا ضامن ہوگا اور اگر ان دونوں نے جن کے واسطے غلام نے اقرار کیا ہے غلام کا دستگیر ہونا

اختیار کیا ہے اور مولیٰ کو قیمت سے بری کر دیا تو اس قرض خواہ کو جس کے واسطے مولیٰ نے اقرار کیا ہے یہ اختیار ہوگا کہ مولیٰ سے اپنا پورا قرضہ وصول کرے اور اگر غلام کی قیمت ڈیڑھ ہزار درہم ہو اور مولیٰ نے اس پر ایک ہزار درہم کا اقرار کیا پھر دوسرے ہزار درہم کا اقرار کیا اور دونوں اقرار جدا جدا واقع ہوئے پھر غلام ایک ہزار درہم کو فروخت کیا تو یہ ثمن پہلے دونوں قرض خواہوں میں تین تہائی ہو کر تقسیم ہوگا پس اس میں سے پہلا بحساب ہزار درہم کے اور دوسرا بحساب پانچ سو درہم کے شریک کیا جائے گا اور اگر مولیٰ نے اس کو آزاد کیا اور حالانکہ اس کی قیمت ہزار درہم تھی تو اس کے ہزار درہم قیمت کا ضامن ہوگا اور ہر دو قرض خواہ اوّل اس قیمت کو تین حصہ کر کے بقدر اپنے اپنے قرضہ ثابتہ کے باہم تقسیم کرلیں گے پھر پانچ سو غلام سے بھی لے کر تین حصہ کر کے تقسیم کرلیں گے اور اگر انہوں نے اوّلاً غلام سے لینا اختیار کیا تو بقدر اس کی قیمت کے ہزار درہم لے لیں گے اور تین حصہ کر کے بقدر اپنے اپنے فرقہ ثابتہ کے باہم تقسیم کر لیں گے پھر مولیٰ سے بھی اس کی پوری قیمت لے لیں گے اور اگر مولیٰ نے غلام پر یہ دونوں اقرار ایک ہی کلام مشعل میں کئے ہوں تو قرض خواہ غلام کے ثمن میں برابر شریک ہوں گے اور اگر مولیٰ نے اس کو آزاد کر دیا تو مولیٰ سے اس کی قیمت تاوان لیں گے پھر ماضی قرضہ کے واسطے غلام کی طرف رجوع کر کے بقدر اس کی قیمت کے لیں گے اور جس قدر قرضہ اس سے زیادہ رہ گیا وہ ڈوب گیا اس کو کسی سے نہیں لے سکتے ہیں اور اگر غلام کی قیمت ہزار درہم ہو اور مولیٰ نے اس پر ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر اس کے بعد ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام کی قیمت بڑھ کر دو ہزار درہم ہوگئی پھر اس پر ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام دو ہزار کو فروخت ہوا تو یہ ثمن پہلے اور تیسرے کے درمیان نصفا نصف تقسیم ہوگا اور درمیانی کو اس میں سے کچھ نہ ملے گا۔ اگر دو ہزار پانچ سو درہم کو فروخت کیا گیا تو پہلا اور تیسرا اپنا اپنا قرضہ وصول کر لیں گے اور باقی دوسرے کو ملے گا اور اگر مولیٰ

نے اس کو آزاد کر دیا اور اس کی قیمت دو ہزار درہم ہے تو اوّل و سوئم اس سے اپنی قیمت کی ضمان لیں گے اور درمیان والے کو کچھ نہ ملے گا اور اگر آزاد کیا حالانکہ اس کی قیمت دو ہزار پانچ سو درہم تھی تو اوّل و سوئم مولیٰ سے دو ہزار درہم لے لیں گے اور باقی پانچ سو درہم دوسرے کو ملیں گے اس وجہ سے کہ مولیٰ نے اس کے قرض خواہ ہونے کا اقرار کیا ہے اور اس کا ماذون پر کچھ حق نہ ہوگا اور اگر کچھ قیمت مولیٰ پر ڈوب گئی تو یہ مقدار خالصہ دوسرے کے حصہ میں شمار ہوگی۔

اگر قیمت غلام ڈیڑھ ہزار درہم ہو اور مولیٰ نے اس پر ہزار درہم قرضہ کا پھر ہزار درہم قرضہ کا پھر دو ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا پھر غلام تین ہزار کو فروخت ہوا تو اوّل اپنا پورا قرضہ ہزار درہم وصول کر لے گا اور ایسے ہی دوسرا بھی اور باقی ہزار درہم سو تیسرے کو ملیں گے اور اگر ثمن میں سے فقط ہزار درہم وصول ہوئے اور باقی دو ہزار درہم ڈوب گئے تو ہزار کی دو تہائی اوّل کو اور ایک تہائی دوسرے کو ملے

---

لے اور مولیٰ کا مقرلہ تین سو درہم پائے گا۔ ۲ ہکذا وجدناہ فی النسخۃ الموجودۃ واللہ اعلم۔

**Kitab al-Ma’zun (The Book of the Authorized Person) Page 63 Fatawa Alamgiri …… Volume 8**

…Thus, whatever amount of the price is recovered, they shall distribute it among themselves pro-rata according to their proven debts. Whatever assets are recovered will be divided into thirds until the first creditor completes his debt of one thousand dirhams. Then, whatever is further recovered will go to the second creditor until he also completes his debt. If something remains after fulfilling his debt, it will go to the third creditor. However, if all these acknowledgments of debt were made in a single continuous statement, then whatever is recovered will be distributed pro-rata among all of them according to their respective debts. Any deficit will be borne by all shares proportionately, as if the acknowledgment for all these creditors occurred in a single declaration. If the acknowledgments were disconnected (made separately), and the slave subsequently acknowledged a debt of one thousand dirhams upon himself, and then he was sold for three thousand dirhams, then the first creditor and the creditor for whom the slave acknowledged the debt will each receive their full debt. Then, from the remaining price, the second creditor (whose debt was acknowledged by the master) will also receive his full debt, and the third will receive nothing.

If one thousand of the price is lost and two thousand are recovered, it will be divided into five shares among the first, second, and the slave’s acknowledged creditor. From this, the master’s first acknowledged creditor and the slave’s acknowledged creditor will each receive two-fifths (2/5), and the second master’s acknowledged creditor will receive one-fifth (1/5). If a person grants permission to his slave for trade, while the slave's value is one thousand dirhams, and the slave trades until he accumulates one thousand dirhams, and then the slave acknowledges a debt of one thousand dirhams while the master acknowledges a debt of two thousand dirhams against him, then the thousand dirhams in the slave's possession will be divided equally (50/50) between the two creditors. If the master acknowledges two thousand dirhams simultaneously, then both the slave's price and his assets will be divided equally. If the slave has five hundred dirhams and acknowledges a debt of one thousand dirhams, and the master acknowledges a debt of two thousand dirhams, and then the slave again acknowledges one thousand dirhams, the creditor acknowledged by the master will only share five hundred dirhams from the slave's price and earnings. If the master’s acknowledgment occurred before the slave’s acknowledgment of the first debt, then the slave’s price and assets will be divided into four shares among all creditors, with the master’s acknowledged creditor receiving two shares and each of

the slave’s acknowledged creditors receiving one share each. This is mentioned in *Al-Mabsut*.

**Chapter Eight: Regarding the jointly-owned slave of two persons, and the granting of permission for trade to the slave by one or both masters.**

The author (may Allah have mercy on him) states: In this chapter, the translator refers to the one who grants permission as the 'Mujeez' (Permitter) and the one who does not as the 'Sakit' (Silent). The principle is that for two masters, granting permission to a common slave is valid for the master’s own share and invalid for the other master’s share. Once the permission is valid for the Mujeez’s share (excluding the Sakit’s share), and if the Sakit wishes to revoke the permission for his share, he shall not have the authority to do so. The Imam then mentioned that all of the slave's transactions (buying and selling) shall be valid, as stated in the book. When his transactions are valid in their entirety and he incurs many debts while having earnings in hand: if these debts were incurred due to those very earnings (i.e., they are commercial earnings and the debt arose from trade) and this becomes known, then by *Qiyas* (analogy), the ruling is that only the Mujeez’s share of the earnings should be used to settle the debt, and the Sakit's half-share should be returned to him. However, by *Istihsan* (juristic preference), the ruling is that the entire earnings, comprising the shares of both the Mujeez and the Sakit, should be given to the creditors. This same *Qiyas* and *Istihsan* apply in the case where the entire slave is interdicted (mahjoor) and he engages in trade...

**किताब अल-माज़ून (अधिकृत व्यक्ति की पुस्तक) ६३ फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ८**

...गई, अतः जो मूल्य प्राप्त हुआ है, उसमें से वे अपने सिद्ध ऋण (Proven debt) के अनुसार आनुपातिक रूप से (Pro rata) वितरण करेंगे। अतः जो कुछ वसूल होता जाएगा, वह उन तीनों के बीच विभाजित होगा, जब तक कि पहला व्यक्ति अपना एक हज़ार दिरहम का ऋण पूरा न कर ले। फिर जो कुछ प्राप्त होगा वह दूसरे को मिलेगा, यहाँ तक कि वह भी अपना ऋण पूरा कर ले। फिर यदि उसके ऋण की पूर्ति के बाद भी कुछ प्राप्त होता है, तो वह तीसरे को मिलेगा। और यदि ये सभी स्वीकारोक्तियाँ (एक ही कथन में) निरंतर दी गई हों, तो जो कुछ वसूल होगा, वह उन सभी में प्रत्येक के ऋण के अनुसार आनुपातिक रूप से विभाजित किया जाएगा, और जो डूब जाएगा उसे उन सभी के हिस्से में माना जाएगा, जैसे कि स्वीकारोक्ति इन सभी ऋणदाताओं के लिए एक ही कथन में की गई हो। यदि स्वीकारोक्तियाँ अलग-अलग समय पर हों, और फिर दास ने अपने ऊपर एक हज़ार दिरहम का ऋण स्वीकार किया, फिर उसे तीन हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो पहला ऋणदाता और वह ऋणदाता जिसके लिए दास ने ऋण स्वीकार किया है, प्रत्येक अपना पूरा ऋण प्राप्त करेंगे। फिर शेष मूल्य से दूसरा ऋणदाता (जिसका ऋण स्वामी ने स्वीकार किया था) भी अपना पूरा ऋण ले लेगा और तीसरे को कुछ नहीं मिलेगा।

यदि मूल्य में से एक हज़ार डूब गए और दो हज़ार प्राप्त हुए, तो यह पहले, दूसरे और दास द्वारा स्वीकृत ऋणदाता के बीच पाँच भागों में विभाजित होगा, जिसमें से स्वामी के पहले स्वीकृत और दास के स्वीकृत ऋणदाता को दो-दो पंचमांश (2/5) और दूसरे स्वामी के स्वीकृत ऋणदाता को एक पंचमांश (1/5) हिस्सा मिलेगा। यदि किसी व्यक्ति ने अपने दास को व्यापार की अनुमति दी, जबकि दास का मूल्य एक हज़ार दिरहम था, उसने तब तक व्यापार किया जब तक उसके पास एक हज़ार दिरहम नहीं हो गए। फिर दास ने एक हज़ार दिरहम के ऋण को स्वीकार किया और स्वामी ने उस पर दो हज़ार दिरहम के ऋण को स्वीकार किया, तो जो एक हज़ार दिरहम दास के पास हैं, वे दोनों ऋणदाताओं में आधा-आधा (50-50) विभाजित होंगे। और यदि स्वामी ने दास पर एक साथ दो हज़ार दिरहम का ऋण स्वीकार किया, तो दास का मूल्य और संपत्ति दोनों ऋणदाताओं के बीच आधा-आधा विभाजित होगा। और यदि दास के पास पाँच सौ दिरहम हों, और दास ने एक हज़ार दिरहम का ऋण स्वीकार किया और स्वामी ने दास पर दो हज़ार दिरहम का ऋण स्वीकार किया, फिर दास ने एक और हज़ार दिरहम का ऋण स्वीकार किया, तो स्वामी द्वारा स्वीकृत ऋणदाता को दास के मूल्य और कमाई में केवल पाँच सौ दिरहम का भागीदार बनाया जाएगा। और यदि स्वामी की स्वीकारोक्ति दास

द्वारा पहले ऋण की स्वीकारोक्ति से पूर्व हुई हो, तो दास का मूल्य और धन सभी ऋणदाताओं में चार हिस्सों में विभाजित होगा, जिसमें से स्वामी के स्वीकृत ऋणदाता को दो हिस्से और दास के प्रत्येक स्वीकृत ऋणदाता को एक-एक हिस्सा मिलेगा। यह 'मबसूत' में वर्णित है।

## अध्याय आठ: दो व्यक्तियों के संयुक्त दास के विषय में और दास को एक या दोनों स्वामियों द्वारा व्यापार की अनुमति देने के विवरण में

लेखक (अल्लाह उन पर दया करे) कहते हैं: इस अध्याय में अनुवादक अनुमति देने वाले को 'मुजीज़' (Permitter) और अनुमति न देने वाले को 'साकित' (Silent) शब्द से संबोधित करता है। मूल नियम यह है कि दो स्वामियों में से एक का दास को अनुमति देना उसके अपने हिस्से की सीमा तक सही है, और दूसरे स्वामी के हिस्से के लिए सही नहीं है। जब मुजीज़ के हिस्से में (साकित के हिस्से के अतिरिक्त) अनुमति वैध हो गई, और यदि साकित अपने हिस्से की अनुमति को निरस्त करना चाहे, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा। फिर इमाम ने उल्लेख किया कि दास के सभी क्रय-विक्रय (Trade actions) वैध होंगे, जैसा कि पुस्तक में वर्णित है। और जब कुल कार्यों में उसका क्रय-विक्रय वैध हो गया, और उस पर बहुत से ऋण हो गए जबकि उसके पास कमाई मौजूद है; तो यदि ये ऋण उसी कमाई के कारण हुए हों जो उसके पास है (अर्थात व्यापार की कमाई हो और ऋण व्यापार के कारण हुआ हो) और यह ज्ञात हो जाए, तो 'क़ियास' (तर्कसमानता) के अनुसार आदेश यह है कि ऋण चुकाने में मुजीज़ का कमाई का हिस्सा लगाया जाएगा और साकित का आधा हिस्सा उसे वापस कर दिया जाएगा। किंतु 'इस्तेहसान' (न्यायपूर्ण प्राथमिकता) के अनुसार आदेश यह है कि मुजीज़ और साकित दोनों के हिस्सों वाली कुल कमाई ऋणदाताओं को दी जाएगी। यही 'क़ियास' और 'इस्तेहसान' उस स्थिति में भी लागू होते हैं जब पूरा दास वर्जित (Interdicted) हो और उसने क्रय-विक्रय किया हो...

---

گئی پس جس قدر ثمن وصول ہوا اس میں سے بقدر اپنے قرضہ ثابتہ کے حصہ رسدی تقسیم کریں گے پس جو برآمد ہوتا جائے تو ان میں تین تہائی تقسیم ہو گا یہاں تک کہ اوّل اپنا قرضہ ہزار درہم پورا کر لے پھر جو کچھ برآمد ہو وہ دوسرے کو ملے گا یہاں تک کہ وہ بھی اپنا قرضہ پورا کر لے پھر اگر اس کے پورا کر لینے کے بعد بھی کچھ برآمد ہوا تو تیسرے کو ملے گا اور اگر یہ سب اقرارات بکلام متصل واقع ہوں تو جس قدر برآمد ہوتا جائے وہ ان سب میں بقدر ہر ایک کے قرضہ کے حصہ رسدی تقسیم ہو گا اور جس قدر ڈوب جائے وہ سب کے حصہ میں قرار دیا جائے گا بمنزلہ اس صورت کے کہ اقرار ان سب قرض خواہوں کے واسطے ایک ہی کلام میں واقع ہو۔ اگر اقرار منقطع ہوں پھر غلام نے اس کے بعد اپنے اوپر ہزار درہم کا اقرار کیا پھر تین ہزار درہم کو فروخت کیا گیا تو پہلا قرض خواہ اور وہ قرض خواہ جس کے واسطے غلام نے اقرار کیا ہے ہر ایک اپنا قرضہ پورا وصول کر لیں گے پھر باقی ثمن سے دوسرا قرض خواہ مولیٰ کا اقراری بھی اپنا قرضہ پورا لے لے گا اور تیسرے کو کچھ نہ ملے گا۔

اگر ثمن میں سے ایک ہزار ڈوب گئے اور دو ہزار برآمد ہوئے تو اوّل و ثانی و غلام کے اقراری قرض خواہ کے درمیان پانچ حصہ ہو کر تقسیم ہو گا جس میں سے مولیٰ کے اوّل اقراری و غلام کے اقراری ہر ایک کو دو پانچویں اور دوسرے مولیٰ کے اقراری کو ایک پانچواں حصہ ملے گا۔ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی حالانکہ اس کی قیمت ہزار درہم ہے اس نے خرید و فروخت کی یہاں تک کہ اس کے پاس ہزار درہم ہو گئے پھر غلام نے ہزار درہم قرضہ کا اقرار کیا اور مولیٰ نے اس پر دو ہزار درہم کا اقرار کیا تو ہزار درہم جو اس کے پاس ہیں وہ دونوں قرض خواہوں میں نصفا نصف تقسیم ہوں گے اور اگر مولیٰ نے اس پر دو ہزار درہم کا معاً

اقرار کیا تو غلام کا ثمن و مال دونوں میں نصفا نصف تقسیم ہو گا اور اگر غلام کے پاس پانچ سو درہم ہوں اور غلام نے ہزار درہم کا اقرار کیا اور مولیٰ نے اس پر دو ہزار درہم کا اقرار کیا پھر غلام نے ہزار درہم کا اقرار کیا تو مولیٰ کا اقراری غلام کے ثمن و کمائی میں فقط پانچ سو درہم کا شریک کیا جائے گا اور اگر مولیٰ کا اقرار غلام کے پہلے قرضہ کے اقرار سے پہلے واقع ہو تو غلام کا ثمن و مال سب قرض خواہوں میں چار حصہ ہو کر تقسیم ہو گا جس میں سے مولیٰ کے اقراری قرض خواہ کو دو حصہ اور غلام کے ہر ایک قرض خواہ اقراری کو ایک ایک حصہ ملے گا یہ مبسوط میں ہے۔

## باب ہشتم : دو شخصوں کے مشترک غلام میں اور غلام کو ایک یا دونوں کی تجارت کی اجازت دینے کے بیان میں

قال المحرر رحم اس باب میں مترجم اجازت دہندہ کو بلفظ مجیز اور غیر اجازت دہندہ کو بلفظ ساکت تعبیر کرتا ہے اصل یہ ہے کہ دو مولاؤں میں ایک غلام کو اجازت دینا اس کے حصہ میں صحیح ہے دوسرے کے حصہ میں نہیں صحیح ہے اور جب مجیز کے حصہ میں سوائے ساکت کے حصہ کے اجازت صحیح ہوئی اور ساکت نے چاہا کہ اس کے حصہ کی اجازت فسخ کر دے تو اس کو یہ اختیار نہ ہو گا پھر امام نے ذکر فرمایا کہ اس کی سب خرید و فروخت جائز ہوں گی ایسا ہی کتاب میں مذکور ہے اور جب کل میں اس کی خرید و فروخت جائز ہوئیں پھر اس پر بہت قرضے ہو گئے اور اس کے پاس کمائی موجود ہے۔ پس اگر یہ قرضے اسی کمائی کی وجہ سے جو اس کے پاس موجود ہے لاحق ہوئے ہوں بایں طور کہ یہ تجارت کی کمائی ہو اور قرضہ بسبب تجارت کے لاحق ہوا ہو اور یہ بات معلوم ہو جائے تو قیاسًا یہ حکم ہے کہ قرضہ کے ادا کرنے میں کمائی میں سے مجیز کا حصہ صرف کیا جائے گا اور ساکت کا نصف حصہ اس کو دے دیا جائے گا مگر استحسانًا

یہ حکم ہے کہ کل کمائی مجیز و ساکت دونوں کا حصہ قرض خواہوں کو دیا جائے اور یہی قیاس و استحسان اس صورت میں بھی جاری ہے کہ جب پورا غلام محجور ہو اور اس نے خرید و

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (64) Kitab al-Ma’zun (The Book of Authorized Slaves)**

If [an authorized slave] earned wealth through trade and it is present with him, and he incurred debt due to that trade, then, by way of *Istihsan* (legal preference), the income earned through the cause of the debt should be spent on paying off that debt. By way of *Qiyas* (analogical reasoning), however, it should not be so spent; rather, the entire income should be given to his master, and the creditors should wait until he is set free. If this income was not obtained from the same cause that led to the debt, then only the share of the permitting master (*Mujiz*) shall be spent on debt repayment, and not the share of the silent partner (*Saakit*). If the source of the income is unknown—whether it was obtained through the same means as the debt or through other means—and the two masters disagree (the *Saakit* master claiming the income was from a gift rather than trade and should be split equally, while the *Mujiz* master and the slave claiming it was from trade, the cause of the debt, and should be used for repayment), then by *Qiyas*, the word of the *Saakit* master is accepted, but by *Istihsan*, the word of the slave is accepted. This is stated in *Al-Mughni*.

If a *Ma’zun* (authorized slave) possesses goods belonging to a friend in his trade, and the *Saakit* master claims half of it, he does not have that right. Instead, all debts must be paid first, and if anything remains, it shall be divided equally between the two masters. If the debt exceeds the assets held, the excess shall be paid from the slave’s value (*Raqbah*), specifically from the share of the *Mujiz* master. Similarly, if the slave confesses to misappropriation (*Ghasab*) or destroying property, the same rule applies. If property destruction is proven by witnesses, the debt shall be recovered from the slave’s entire value. This is in *Al-Mabsut*. If a slave is jointly owned and one master permits him to trade while the other (*Saakit*) sees him trading and does not object, this silence constitutes permission from his side as well. If the *Saakit* master tells the marketplace traders not to trade with the slave and that any dealings would only affect his partner's share, but then sees the slave trading and does not stop him, then by *Qiyas*, his share also becomes authorized (*Ma’zun*), but by *Istihsan*, it does not. This ruling of *Istihsan* differs from a case where a slave is fully prohibited (*Mahjoor*) and the master, after warning the marketplace, sees him trading and remains silent; in that case, the slave becomes authorized despite the prior prohibition. This is in *Al-Muheet*.

If one of two masters permits trade and the other warns the marketplace against it, but then the *Saakit* master buys the share of the *Mujiz*, the entire slave becomes prohibited (*Mahjoor*). If the buyer then sees him trading and remains silent, it constitutes permission for trade. This is in *Al-Mabsut*. If one master asks the other to permit the slave to trade on his behalf or the partner's behalf and he agrees, the entire slave becomes authorized. This is in *At-Tatarkhaniyya*. If a slave is jointly owned and one master permits the other to enter into a *Kitabat* contract (freedom contract) for his share, trade permission is granted from both sides, but the *Kitabat* only applies to the contract-making master's share. According to Imam Azam, half the earnings will go to the master who did not enter the *Kitabat* contract. Similarly, if one appoints the other as an agent (*Wakil*) for *Kitabat*, the earnings are split equally between the contract-maker and the agent. If one permits the slave and a debt is incurred, then...

**फतावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 (64) किताबुल माज़ून (अधिकृत दासों का अध्याय)**

यदि [किसी दास ने] व्यापार करके धन कमाया और वह उसके पास मौजूद है, और व्यापार के कारण उस पर ऋण हो गया है, तो जिस कमाई के कारण ऋण हुआ है, उसे 'इस्तेहसानन' (कानूनी प्राथमिकता के आधार पर) ऋण चुकाने में खर्च किया जाना चाहिए, न कि 'क़ियासन' (अनुमान के आधार पर)। क़ियासन पूरी कमाई उसके स्वामी को दी जानी चाहिए, और ऋणदाता दास के मुक्त होने तक प्रतीक्षा करें। यदि कमाई उस कारण से प्राप्त नहीं हुई है जिसके कारण ऋण हुआ है, तो ऋण चुकाने में केवल अनुमति देने वाले स्वामी (मुजीज़) का हिस्सा उपयोग किया जाएगा, न कि मौन रहने वाले (साकित) स्वामी का। यदि कमाई के स्रोत के बारे में पता न हो कि वह उसी वजह से है जिससे ऋण हुआ या किसी अन्य कारण से, और दोनों स्वामियों में मतभेद हो—साकित स्वामी कहे कि कमाई व्यापार से नहीं बल्कि उपहार (हिबा) आदि से हुई है और इसे दोनों में आधा-आधा बांटा जाना चाहिए, जबकि मुजीज़ स्वामी और दास कहें कि कमाई व्यापार से हुई है जो ऋण का कारण है और इसे ऋण चुकाने में खर्च होना चाहिए—तो क़ियासन साकित स्वामी की बात मानी जाएगी, लेकिन इस्तेहसानन दास की बात स्वीकार की जाएगी। यह 'मुग़नी' में वर्णित है।

यदि माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत दास) के व्यापार में उसके किसी मित्र आदि का माल शामिल हो और साकित स्वामी उसमें से आधा लेना चाहे, तो उसे इसका अधिकार नहीं होगा। पहले सारा ऋण चुकाया जाएगा, फिर शेष को दोनों स्वामियों में आधा-आधा बांटा जाएगा। यदि ऋण कुल संपत्ति से अधिक हो, तो यह अधिकता दास के मूल्य (रक़बा) से विशेष रूप से मुजीज़ के हिस्से से चुकाई जाएगी। इसी प्रकार यदि दास ने किसी वस्तु को छीनने (ग़सब) या नष्ट करने का स्वीकार किया हो, तो भी यही नियम है। यदि माल नष्ट करना गवाहों से सिद्ध हो जाए, तो इसे दास के पूरे मूल्य से वसूला जाएगा। यह 'मबसूत' में है। यदि एक दास दो व्यक्तियों का साझा हो, एक ने अनुमति दी और दास व्यापार करने लगा और साकित ने देखकर भी मना नहीं किया, तो उसकी ओर से भी व्यापार की अनुमति मानी जाएगी। यदि साकित स्वामी बाज़ार वालों से कहे कि इस दास से लेनदेन न करना और यदि करोगे तो वह केवल मेरे साझीदार के हिस्से में होगा, फिर दास को व्यापार करते देखकर चुप रहे, तो क़ियासन उसका हिस्सा भी माज़ून होगा, लेकिन इस्तेहसानन वह माज़ून नहीं होगा। यह आदेश उस स्थिति के विपरीत है जब पूरा दास प्रतिबंधित (महजूर) हो और स्वामी बाज़ार वालों को मना करने के बाद भी उसे व्यापार करते देख चुप रहे, तो वह माज़ून (अधिकृत) हो जाएगा। यह 'मुहीत' में है।

यदि दो स्वामियों में से एक ने अनुमति दी और दूसरे ने बाज़ार वालों को मना कर दिया, फिर साकित ने मुजीज़ का हिस्सा खरीद लिया, तो पूरा दास महजूर हो गया। फिर यदि खरीदने वाले (मुश्तारी) ने उसे व्यापार करते देखकर मना नहीं किया, तो यह व्यापार की अनुमति मानी जाएगी। यह 'मबसूत' में है। यदि एक स्वामी ने साझीदार से कहा कि दास को मेरे या अपने हिस्से में व्यापार की अनुमति दे दो और उसने स्वीकार कर लिया, तो पूरे दास को अनुमति मिल जाएगी। यह 'तातारीखानिया' में है। यदि साझा दास के एक मालिक ने दूसरे को अनुमति दी कि मेरा हिस्सा दास को 'मुकातब' (मुक्ति अनुबंध) कर दो, तो दोनों की ओर से व्यापार की अनुमति होगी, लेकिन मुकातबत केवल अनुबंध करने वाले के हिस्से तक सीमित होगी। इमाम आज़म के अनुसार, उसकी आधी कमाई उस स्वामी को मिलेगी जिसने उसे मुकातब नहीं किया है। इसी तरह यदि एक ने दूसरे को वकील बनाया, तो कमाई आधी-आधी दोनों को मिलेगी। यदि एक ने दास को अनुमति दी और उस पर ऋण हो गया, फिर उसने...

فروخت کر کے تجارت سے مال کمایا اور وہ اس کے پاس موجود ہے اور تجارت کی وجہ سے اس پر قرضہ ہو گیا تو جس کمائی کی جہت سے اس پر قرضہ ہو گیا ہے وہ استحساناً اس کے ادائے قرضہ میں صرف کی جائے اور قیاساً صرف نہ کی جائے بلکہ پوری کمائی اس کے مولیٰ کو دی جائے رہا قرض خواہاں کا مطالبہ سو وہ لوگ اس کے آزاد ہو جانے تک انتظار کریں اور اگر یہ کمائی اس سبب سے حاصل نہ ہوئی ہو جس وجہ سے قرضہ ہو گیا ہے تو ادائے قرض میں مجیز کا حصہ صرف کیا جائے گا نہ ساکت کا اور اگر کمائی کا حال کچھ معلوم نہ ہو کہ اسی جہت سے حاصل ہوئی ہے جس وجہ سے قرضہ ہو گیا ہے یا اس کے سوائے دوسرے سبب سے حاصل ہوئی ہے اور دونوں مولاؤں نے اختلاف کیا پس ساکت نے کہا کہ کمائی اس وجہ سے حاصل نہیں ہوئی ہے جس وجہ سے قرضہ ہوا ہے مثلاً یوں کہا کہ یہ بطور ہبہ کے حاصل ہوئی ہے نہ بطور تجارت کے اور یہ کمائی ہم دونوں میں نصفا نصف تقسیم ہونی چاہیے اور مجیز نے مع غلام کے یہ کہا کہ نہیں بلکہ اسی وجہ سے حاصل ہوئی ہے جو قرضہ کا سبب ہے یعنی کہا کہ تجارت سے حاصل ہوئی ہے وہی قرضہ کا سبب ہے اور سب کمائی ادائے قرضہ میں صرف ہونی چاہیے تو قیاساً مولائے ساکت کا قول قبول ہو گا مگر استحساناً غلام کا قول قبول ہو گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر ماذون کے پاس اس کے کسی دوست وغیرہ کا مال اس کی تجارت میں ہو پس ساکت نے کہا کہ میں اس میں سے نصف لے لوں گا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا لیکن اس میں سے تمام قرضہ قرض خواہوں کو ادا کیا جائے گا پھر اگر باقی رہا تو دونوں مولاؤں میں سے ہر ایک کو اس کا نصف حصہ ملے گا اور اگر اس کے مقبوضہ مال سے قرضہ زیادہ نکلا تو یہ زیادتی غلام کے رقبہ سے خاصہ مجیز کے حصہ سے ادا کی جائے گی۔ اسی طرح اگر غلام نے غصب یا مال تلف کر دینے

وغیرہ کا اقرار کیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر مال تلف کرنا گواہوں سے ثابت ہوتا ہے تو غلام کے پورے رقبہ سے وصول کیا جائے گا جیسے کہ ایک کی اجازت دینے سے پہلے غلام کے مال تلف کر دینے اور گواہی سے ثابت ہو جانے کی صورت میں حکم تھا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک غلام دو شخصوں میں مشترک ہو اور ایک نے اس کو اجازت دی اور غلام نے خرید و فروخت کرنا شروع کیا اور ساکت نے اس کو دیکھ کر منع نہ کیا تو امر اس کی طرف سے بھی تجارت کی اجازت ہو جائے گا اور اگر مولیٰ سے ساکت اہل بازار کے پاس آیا اور کہا کہ غلام سے خرید و فروخت نہ کرنا اور تم لوگ اس سے ایسا معاملہ کرو گے تو فقط میرے شریک کے حصہ میں پڑے گا پھر مولائے ساکت نے اس غلام کو خرید و فروخت کرتے دیکھ کر منع نہ کیا تو قیاساً اس کا حصہ بھی ماذون ہوگا مگر استحساناً ماذون نہ ہوگا اور یہ حکم استحسان اس صورت میں بخلاف ایسی صورت کے ہے کہ جب پورا غلام محجور ہو اور مولیٰ نے اہل بازار کو اس کے ساتھ خرید و فروخت کرنے سے منع کر دیا پھر اس کو تجارت کرتے دیکھ کر سکوت کیا تو ماذون ہو جائے گا اگر چہ اس سکوت سے پہلے تجارت سے ممانعت کر چکا ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر دو مولاؤں میں سے ایک نے اس کو تجارت کی اجازت دے دی اور دوسرا اہل بازار کے پاس آیا اور ان کو اس کے ساتھ معاملہ خرید و فروخت سے منع کر دیا پھر ساکت نے مجیز کا حصہ خرید لیا تو پورا غلام محجور ہو گیا پھر اگر مشتری نے اس کو خرید و فروخت کرتے دیکھ کر منع نہ کیا تو یہ تجارت کی اجازت ہو گی یہ مبسوط میں ہے۔ اگر دونوں میں سے ایک نے اپنے شریک سے کہا کہ غلام کو اپنے حصہ میں یا کہا کہ میرے حصہ میں تجارت کی اجازت دے دے اس نے قبول کیا تو پورے غلام کو اجازت ہو جائے گی یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر غلام دو شخصوں میں مشترک ہو اور ایک نے دوسرے کو اجازت دی کہ تو میرا حصہ غلام مکاتب کر دے تو دونوں کی طرف سے غلام کو تجارت کی اجازت ہو گی مگر کتابت فقط حصہ مکاتب کنندہ کے ساتھ مقصود

ہو گی یہ امام اعظم کا قول ہے کہ یہاں تک کہ اس کی آدھی کمائی اس کو ملے گی جس نے اس کو مکاتب نہیں کیا ہے اسی طرح اگر ایک نے دوسرے کو اپنا حصہ مکاتب کرنے کے واسطے وکیل کیا تو اس کے بعد غلام کی کمائی میں نصف مکاتب کنندہ کو اور نصف وکیل کو ملے گی۔ اگر دونوں میں سے ایک غلام کو اجازت دی اور اس پر قرضہ ہو گیا پھر اس...

**(Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 65 | Kitab al-Ma’dhun [Book of the Authorized Slave])**

One partner bought the other partner's share, and subsequently, the slave engaged in buying and selling without the master's knowledge and incurred debt. In this case, both the first and second debts will be accounted for in the initial half share. However, if the master became aware of the slave's trade after purchasing the other half, the authorization for trade will also apply to the newly purchased half. Consequently, the first debt will be assigned to the first half, and the second debt will be assigned to the entire slave. This is mentioned in *Al-Mabsut*.

If one of two masters authorizes a slave to trade and the slave incurs debt, the one who gave authorization (the *mujeez*) will be asked to pay the debt. Otherwise, his share in the slave will be sold. This is in *Al-Sirajiyyah*. If a slave is co-owned by two people and one of them makes his share *mukatab* (enters into a contract of manumission), this act constitutes authorization for trade on his part. The other partner has the right to invalidate this contract (*kitabat*). If debt is incurred and the second partner then invalidates the *kitabat*, the debt will be specifically assigned to the share of the one who initiated the contract.

If he did not invalidate the *kitabat* despite seeing the slave trade and did not prohibit him, this does not prove his authorization for the contract itself; he retains the right to invalidate it. However, it does prove his authorization for the slave's trade. Thus, if he invalidates the contract while the slave is in debt, the entire slave will be sold to pay off the debt, unless the master pays the ransom (*fidya*). This is in *Al-Mabsut*.

Or, if two partner-masters authorize a slave to trade, and each lends him 100 dirhams, and a stranger also lends him 100 dirhams (meaning each sold specific goods worth 100 dirhams on credit), and the slave dies leaving 100 dirhams or is sold for 100 dirhams; then half will go to the stranger and the remaining half will be divided equally between the two masters. This is in *Al-Mughni*.

If only one master lent him 100 dirhams (i.e., a trade loan) and other conditions remain the same, the slave's 100 dirhams will be divided into three parts between the master and the stranger: two-thirds for the master and one-third for the stranger. This is the view of Imam Azam (Abu Hanifa). Imams Abu Yusuf and Muhammad stated that one-fourth goes to the master and three-fourths to the stranger. This is in *Siraj al-Wahhaj*.

If two people are partners under *mufawaza* or *inan* (types of partnership) and one of them has a slave who is not part of the partnership property, and one partner lends the slave 100 dirhams worth of goods from the partnership property while a stranger also lends 100 dirhams; and then the slave dies leaving 100 dirhams or is sold for that amount; then the stranger gets two-thirds and the two partners together get one-third. If they are in an *inan* partnership and the slave belongs to the partnership property, and one partner lends 100 dirhams worth of goods from that property while a stranger also lends 100 dirhams; the stranger receives two-thirds of the 100 dirhams, and the two partners receive the remaining one-third equally.

If the slave is shared by both and both (or one of them) lent him 100 dirhams from the partnership property while a stranger also lent 100 dirhams, then the entire 100 dirhams will be given to the stranger, and neither partner will receive anything. This is in *Al-Mabsut*. It is written in *Jame al-Fatawa* that an authorized (*ma'dhun*) slave owned by two people incurred a debt of 1000 dirhams. One owner disappeared. The creditor appeared, apprehended the slave, and sold his share for 700 dirhams to settle part of the debt. Then the second owner appeared and sold his share for 500 dirhams. He must give 300 dirhams to the creditor to complete the debt repayment and give the remaining 200 dirhams to the partner whose share was sold for 700, so that both bear an equal burden of the loss. This is in *Tatarkhaniyah*.

If two persons authorize their shared slave to trade, and then one lends him 100 dirhams worth of goods and a stranger...

**(Thus we found it in the copy available... and Allah knows best what is correct.)**

**(फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 65 | किताब-अल-माज़ून)**

एक साझीदार ने दूसरे का हिस्सा उससे खरीद लिया, फिर गुलाम ने उसके बाद खरीद-फरोख्त की और मालिक (मौला) को पता नहीं चला और उस पर कर्ज हो गया, तो पहला और दूसरा कर्ज दोनों पहले आधे हिस्से में गिने जाएंगे। और अगर मालिक को खरीदने के बाद उसकी खरीद-फरोख्त का हाल पता चला तो उस आधे खरीदे हुए हिस्से में भी व्यापार की अनुमति मानी जाएगी, अतः पहला कर्ज पहले आधे हिस्से में और दूसरा कर्ज पूरे गुलाम पर निर्धारित किया जाएगा, यह 'मबसूत' में है।

अगर दो मालिकों में से एक ने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और उस पर कर्ज हो गया, तो अनुमति देने वाले (मुजीज़) से कहा जाएगा कि वह उसका कर्ज अदा कर दे, वर्ना हम गुलाम में से तेरा हिस्सा बेच देंगे, यह 'सिराजिया' में है। अगर एक गुलाम दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और उनमें से एक ने अपना हिस्सा मुकातब (अनुबंध द्वारा आज़ादी पाने वाला) कर दिया, तो यह कार्य उसकी ओर से गुलाम को व्यापार की अनुमति है, और दूसरे साझीदार को अधिकार होगा कि वह इस अनुबंध (किताबत) को रद्द कर दे। और अगर गुलाम पर कर्ज हो गया और फिर दूसरे ने किताबत रद्द की, तो यह कर्ज विशेष रूप से किताबत करने वाले के हिस्से में माना जाएगा।

अगर उसने किताबत रद्द नहीं की और गुलाम को खरीद-फरोख्त करते देखा और उसे मना नहीं किया, तो इससे उसकी ओर से किताबत की अनुमति साबित नहीं होगी, बल्कि उसे किताबत रद्द करने का अधिकार रहेगा, लेकिन उसकी ओर से व्यापार की अनुमति साबित हो जाएगी। अतः यदि उसने किताबत रद्द कर दी जबकि गुलाम कर्जदार हो गया है, तो सारा गुलाम कर्ज चुकाने के लिए बेचा जाएगा, लेकिन अगर उसका मालिक उसका फिदिया (फिरौती) दे दे तो ऐसा नहीं होगा, यह 'मबसूत' में है।

अथवा गुलाम के दो साझीदार मालिकों ने उसे व्यापार की अनुमति दी और दोनों में से प्रत्येक ने उसे सौ दिरहम कर्ज दिए और एक अजनबी ने भी उसे सौ दिरहम कर्ज दिए (यानी प्रत्येक ने उसे सौ दिरहम का कुछ सामान उधार बेचा), फिर वह गुलाम सौ दिरहम छोड़कर मर गया या सौ दिरहम में बेचा गया, तो इसमें से आधा हिस्सा अजनबी को और बाकी आधा दोनों मालिकों में बराबर बांटा जाएगा, यह 'मुग़नी' में है।

अगर उसे केवल एक ही मालिक ने सौ दिरहम कर्ज दिए हों (यानी व्यापारिक कर्ज) और बाकी स्थिति वैसी ही रहे, तो गुलाम के सौ दिरहम उसके(मालिक के) और अजनबी के बीच तीन हिस्सों में इस

तरह बंटेंगे कि दो-तिहाई मालिक को और एक-तिहाई अजनबी को मिलेगा। यह इमाम आज़म का कथन है। इमाम अबू यूसुफ और इमाम मोहम्मद ने फरमाया कि उसका एक-चौथाई मालिक को और तीन-चौथाई अजनबी को मिलेगा, यह 'सिराज-उल-वहाज' में है।

और अगर दो व्यक्ति आपस में 'मुफावज़ा' या 'इनान' (साझेदारी के प्रकार) के तहत साझीदार हों और उनमें से एक का गुलाम व्यापारिक संपत्ति में शामिल न हो, फिर एक साझीदार ने उस गुलाम को व्यापार की संपत्ति से सौ दिरहम का सामान कर्ज दिया और किसी अजनबी ने भी सौ दिरहम का कर्ज दिया, फिर गुलाम मर गया और सौ दिरहम छोड़े या सौ दिरहम में बेचा गया, तो इसमें से अजनबी को दो-तिहाई और दोनों साझीदारों को एक-तिहाई मिलेगा। और अगर दोनों के बीच 'इनान' साझेदारी हो और गुलाम व्यापारिक संपत्ति में शामिल हो, और एक ने सौ दिरहम का सामान व्यापारिक संपत्ति से कर्ज दिया और अजनबी ने भी सौ दिरहम का कर्ज दिया, तो सौ दिरहम का दो-तिहाई अजनबी को और एक-तिहाई दोनों साझीदारों को आधा-आधा मिलेगा।

और अगर गुलाम दोनों में साझा हो और दोनों ने या एक ने उसे सौ दिरहम का कर्ज व्यापारिक संपत्ति से दिया और अजनबी ने भी सौ दिरहम का कर्ज दिया, और बाकी स्थिति वही रही, तो सौ दिरहम पूरे अजनबी को दिए जाएंगे और इस स्थिति में दोनों साझीदारों में से किसी को कुछ नहीं मिलेगा, यह 'मबसूत' में है। 'जामे-उल-फ़तावा' में लिखा है कि दो व्यक्तियों के साझे अधिकृत (माज़ून) गुलाम पर एक हज़ार दिरहम का कर्ज हो गया और उनमें से एक गायब हो गया। फिर लेनदार ने आकर उसे पकड़ लिया और उसके हिस्से को सात सौ दिरहम में बेचकर अपना कर्ज ले लिया। फिर दूसरा साझीदार आया और उसने अपना हिस्सा पांच सौ दिरहम में बेचा, तो वह लेनदार को तीन सौ दिरहम दे देगा ताकि उसका कर्ज पूरा हो जाए, और बाकी दो सौ दिरहम उस साझीदार को दे देगा जिसका हिस्सा सात सौ में बिका था, ताकि दोनों हर्जाना देने में बराबर रहें, यह 'ततारखानिया' में है।

अगर दो व्यक्तियों ने अपने साझे गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर एक ने उसे सौ दिरहम का सामान कर्ज दिया और एक अजनबी ने...

**(जैसा कि हमने मूल प्रति में पाया। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।)**

---

نے شریک کا حصہ شریک سے خرید لیا پھر غلام نے اس کے بعد خرید و فروخت کی اور مولیٰ کو معلوم نہ ہوا اور اس پر قرضہ ہو گیا تو پہلا اور دوسرا قرضہ دونوں پہلے نصف میں شمار ہوں گے اور اگر مولیٰ کو بعد خریدنے کے اس کی خرید و فروخت کا حال معلوم ہو تو نصف خریدی ہوئی میں بھی یہ تجارت کی اجازت ہو گی پس پہلا قرضہ پہلے نصف میں دوسرا قرضہ پورے غلام میں قرار دیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر دو مولیٰوں میں سے ایک نے غلام کو اجازت دی اور اس پر قرضہ ہو گیا تو مجیز سے کہا جائے گا کہ اس کا قرضہ ادا کر دے ورنہ ہم غلام میں سے تیرا حصہ فروخت کر دیں گے یہ سراجیہ میں ہے۔ اگر ایک غلام دو شخصوں میں مشترک ہو اور ایک نے اس میں سے اپنا حصہ مکاتب کر دیا تو یہ فعل اس کی طرف سے اس کو تجارت کی اجازت ہے اور دوسرے کو اختیار ہو گا کہ کتابت کو باطل کر دے اور اگر اس پر قرضہ ہو گیا پھر دوسرے نے کتابت کو باطل کیا تو یہ حصہ خاصتہ مکاتب کرنے والے کے حصہ میں قرار دیا جائے گا۔ اگر اس نے کتابت کو باطل نہ کیا یہاں تک کہ غلام کو خرید و فروخت کرتے دیکھا اور اس کو منع نہ کیا تو اس سے اس کی طرف سے اجازت کتابت ثابت نہ ہو گی بلکہ اس کو کتابت باطل کرنے کا اختیار ہے گا مگر اس سے اس کی طرف سے تجارت کی اجازت ثابت ہو گی پس اگر اس نے کتابت کو باطل کر دیا حالانکہ غلام مقروض ہو گیا ہے تو سب غلام قرضہ میں فروخت کیا جائے گا لیکن اگر اس کا مولیٰ اس کا فدیہ دے دے تو ایسا نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ یا غلام کے دو مالک شریکوں نے اس کو تجارت کی اجازت دی اور ہر ایک نے اس کو سو درہم قرضہ دیا اور ایک اجنبی نے بھی اس کو سو درہم قرضہ دیا یعنی ہر ایک نے اس کے ہاتھ کوئی اسباب معین سو درہم کو ادھار فروخت کیا پھر وہ غلام سو درہم کو فروخت کیا گیا یا سو درہم چھوڑ کر مر گیا

تو اس میں سے نصف اجنبی کو اور باقی نصف دونوں مولیٰوں میں برابر تقسیم ہو گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر اس کو فقط ایک ہی مولیٰ نے سو درہم قرض دیے ہوں یعنی قرض معاملہ کیا ہو اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو غلام کے سو درہم اس کے اور اجنبی کے درمیان تین حصہ ہو کر اس طرح تقسیم ہوں گے کہ دو تہائی مولیٰ کو اور ایک تہائی اجنبی کو ملے گی اور یہ امام اعظم کا قول ہے کہ ہے اور امام ابو یوسف و امام محمد نے فرمایا کہ اس کی چوتھائی مولیٰ کو اور تین چوتھائی اجنبی کو ملے گی یہ سراج الوہاج میں ہے اور اگر دو شخص باہم بطور مفاوضہ یا عنان کے شریک ہوں اور دونوں میں ایک شریک غلام ہو کہ وہ اس مال شرکت میں سے نہ ہو پس ایک نے اس کو مال شرکت سے سو درہم کا اسباب قرض دیا اور کسی اجنبی نے بھی سو درہم کا قرض دیا پھر غلام مر گیا اور سو درہم چھوڑے یا سو درہم کو فروخت کیا گیا تو اس میں سے اجنبی کو دو تہائی اور دونوں شریک کو ایک تہائی ملے گا اور اگر دونوں میں بطور عنان شرکت ہو اور یہ غلام مال شرکت سے ہو اور ایک نے سو درہم کا مال شرکت سے اسباب قرض دیا اور اجنبی نے بھی سو درہم کا قرض دیا تو سو درہم کی دو تہائی مال اجنبی کو اور سو درہم کی تہائی دونوں شریکوں کو نصفاً نصف ملے گی اور اگر غلام دونوں میں مشترک ہو اور دونوں نے یا ایک نے اس کو سو درہم کا قرضہ مال شرکت سے دیا اور اجنبی نے سو درہم کا قرضہ دیا اور باقی مسئلہ بحال رہا ہے تو سو درہم سب اجنبی کو دیے جائیں گے اور اس صورت میں دونوں میں سے کسی شریک کو کچھ نہ ملے گا یہ مبسوط میں ہے۔ جامع الفتاویٰ میں لکھا ہے کہ دو شخصوں کے مشترک غلام ماذون پر ہزار درہم کا قرضہ ہو گیا اور دونوں میں سے ایک غائب ہو گیا پس قرض خواہ نے حاضر ہو کر گرفتار کر کے اس کا حصہ سات سو درہم کو فروخت کر کے اپنے قرضہ میں لے لیا پھر دوسرا حاضر ہوا اور اپنا حصہ پانچ سو درہم کو فروخت کیا تو صاحب قرض کو تین سو درہم دے دے گا کہ اس کا قرضہ پورا ہو جائے یعنی پورے قرضہ تک اس کو دے دے گا

پھر دو سو باقی رہے وہ اس حصہ دار کو جس کا حصہ سات سو کو فروخت کیا گیا تھا دے دے گا تاکہ دونوں تاوان دینے میں برابر ہیں یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر دو شخصوں نے اپنے مشترک غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر ایک نے اس کو سو درہم کا اسباب قرض دیا اور ایک اجنبی نے

ہکذا وجدناہ فی النسخۃ الموجودۃ عند الرجمت واللہ اعلم بالصواب -

---

[A party] gave a loan of one hundred dirhams, then the master who did not provide the loan became absent while the stranger remained present and intended that the portion of the master who gave him the loan be sold so he could recover his debt; thus, it shall be sold. If it is sold for fifty dirhams, the stranger shall take it all. If the other master is present, his portion shall be sold for that stranger and for the master who gave the loan, and they shall divide it equally between themselves. If the price of the portion belonging to the master who provided the loan is lost upon the buyer, and the portion of the master who did not provide the loan is sold for fifty dirhams or more or less, then this price shall be divided into three equal parts: two parts for the stranger and one part for the master who provided the loan. If they distribute it in this manner and then the first fifty dirhams are recovered, the stranger shall take it all. Similarly, if it exceeds fifty, even if it increases beyond two-thirds of a hundred, whatever is in excess shall go to the master who provided the loan, and neither of the two masters can reclaim anything from the other. If a slave is jointly owned by two persons and both have authorized him to trade, then each of them, by his order, gives him one hundred dirhams of someone else as a loan, and a stranger gives him one hundred dirhams as a loan, and then that slave is sold for one hundred dirhams, these one hundred dirhams shall be divided equally into three parts between the stranger and the two masters. If the property that each master gave him as a loan is shared between that master and the stranger such that the stranger gave permission to give it as a loan, and the rest of the matter remains as stated, then these one hundred dirhams shall be divided into ten parts, of which four parts shall go only to the stranger and four parts to those two strangers who were partners of both masters in the two hundred dirhams, meaning each shall get two parts. Each master shall receive one part. If a slave valued at two hundred dirhams is shared between two persons and a stranger lent him one hundred dirhams, then the creditor came and demanded his debt, and one of the two masters was absent, no decree shall be issued against the absent one's share until he is present. Thus, if the share of the present one is sold for one hundred dirhams, the creditor shall take it all. Then, when the absent one returns, the one whose share was sold shall hold him accountable in the slave's share for fifty dirhams; so, either it will be sold or the absent one will pay that amount of dirhams. Similarly, if the slave is killed and the present one receives half of his value, i.e., one hundred dirhams, the creditor can take it all. Then, when the absent one returns and collects his share of the value, the one from whose share

the creditor took the amount shall take half the price from the partner. This is stated in Al-Mabsut.

**Chapter Ten: Regarding the explanation of disputes arising between a Mazun (authorized slave) and his master after the Mazun has been prohibited (Mahjur), concerning property in the possession of the slave or another person.** If a Mazun slave has property and the master says, "This is my property," and the Mazun says, "This is my earning," then if the slave is in debt, his statement shall be accepted; if not, the master's statement shall be accepted, as stated in Al-Dhakhirah. If the property is in the possession of both the slave and the master, then if the slave is not in debt, the possession of both shall be considered valid, and a decree of partnership shall be issued for both. If there is no debt, the master's possession shall be considered valid and the decree shall be in his name. If this property is in the possession of the slave, the master, and a stranger, and each claims it as his own, then if the slave is not in debt, that property shall belong to the master and...

सौ दिरहम का कर्ज़ दिया फिर जिसने कर्ज़ नहीं दिया है वह मौला (मालिक) गायब हो गया और अजनबी (तीसरा व्यक्ति) मौजूद रहा और उसने इरादा किया कि जिस मौला ने उसे कर्ज़ दिया है उसका हिस्सा बेच दे और अपना कर्ज़ वसूल कर ले, तो उसे बेचा जाएगा। यदि पचास दिरहम में बेचा जाए, तो सारा अजनबी ले लेगा और यदि दूसरा मौला मौजूद हो, तो उसका हिस्सा उस अजनबी के लिए और उस मौला के लिए जिसने कर्ज़ दिया है, बेचा जाएगा और दोनों आपस में आधा-आधा बाँट लेंगे। यदि कर्ज़ देने वाले मौला के हिस्से की कीमत खरीदार के पास डूब गई और उस मौला का हिस्सा जिसने कर्ज़ नहीं दिया है, पचास दिरहम या कम-ज़्यादा में बेचा गया, तो यह कीमत दोनों में तीन-तिहाई भागों में बँटेगी। इसमें से दो हिस्से अजनबी को और एक हिस्सा कर्ज़ देने वाले मौला को मिलेगा। फिर यदि उन्होंने इस तरह बाँट लिया और फिर पहले पचास दिरहम बरामद हुए, तो सब अजनबी ले लेगा। इसी प्रकार यदि पचास से ज़्यादा हो यहाँ तक कि सौ के दो-तिहाई से बढ़ जाए, तो जो हिस्सा ज़्यादा होगा वह कर्ज़ देने वाले मौला को मिलेगा और दोनों मालिकों में से कोई दूसरे से कुछ वापस नहीं ले सकता। यदि एक गुलाम दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और दोनों ने उसे व्यापार की अनुमति दी हो, फिर प्रत्येक ने उसे किसी दूसरे व्यक्ति के सौ दिरहम उसके आदेश से कर्ज़ में दिए हों और सौ दिरहम किसी अजनबी ने उसे कर्ज़ में दिए हों, फिर वह गुलाम सौ दिरहम में बेचा गया, तो ये सौ दिरहम अजनबी और दोनों मालिकों के बीच तीन हिस्सों में बराबर बँटेंगे। और यदि वह माल जो प्रत्येक मौला ने उसे कर्ज़ में दिया है, वह उस मौला और अजनबी के बीच साझा हो कि अजनबी ने उसे कर्ज़ में देने की अनुमति दी हो और शेष मामला वैसा ही रहे, तो ये सौ दिरहम दस हिस्सों में बँटेंगे जिसमें से चार हिस्से केवल अजनबी को मिलेंगे और चार हिस्से उन दोनों अजनबियों को मिलेंगे जो दो सौ दिरहम में दोनों मालिकों के भागीदार थे, यानी प्रत्येक को दो हिस्से मिलेंगे। प्रत्येक मौला को एक-एक हिस्सा मिलेगा। और यदि दो सौ दिरहम मूल्य का एक गुलाम दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और उसे किसी अजनबी ने सौ दिरहम कर्ज़ दिए हों, फिर लेनदार आया और उसने अपना कर्ज़ माँगा और दोनों मालिकों में से एक गायब हो गया, तो गायब व्यक्ति के हिस्से में कोई आदेश (डिक्री) तब तक नहीं होगी जब तक कि वह उपस्थित न हो जाए। अतः यदि उपस्थित व्यक्ति का हिस्सा सौ दिरहम में बेचा गया, तो लेनदार सारा ले लेगा। फिर जब गायब व्यक्ति उपस्थित होगा, तो जिसका हिस्सा बेचा गया है, वह पचास दिरहम के लिए गुलाम के उसके हिस्से में दावा करेगा, फिर या तो उसे बेचा जाएगा या गायब व्यक्ति उतने दिरहम अदा करेगा। इसी प्रकार यदि गुलाम मार

दिया गया और उपस्थित व्यक्ति ने उसकी कीमत में से आधा यानी सौ दिरहम प्राप्त किए, तो लेनदार सारा ले सकता है। फिर जब गायब व्यक्ति उपस्थित होकर अपने हिस्से की कीमत वसूल करेगा, तो जिसके हिस्से से लेनदार ने लिया है, वह साझीदार से आधी कीमत ले लेगा। यह 'मबसूत' में है।

**अध्याय दस: माज़ून के प्रतिबंधित (महजूर) होने के बाद, माज़ून और उसके मालिक के बीच गुलाम या किसी अन्य व्यक्ति के अधिकार वाले माल को लेकर होने वाले विवाद के वर्णन में**

यदि गुलाम माज़ून के पास माल हो और मालिक कहे कि यह मेरा माल है और माज़ून कहे कि यह मेरी कमाई है, तो यदि गुलाम ऋणी (कर्ज़दार) हो तो उसकी बात मानी जाएगी और यदि न हो तो मालिक की बात मानी जाएगी, जैसा कि 'अल-ज़खीरा' में है। यदि माल गुलाम और मालिक दोनों के कब्ज़े में हो, तो यदि वह गुलाम ऋणी न हो, तो दोनों का कब्ज़ा मान्य माना जाएगा और दोनों के पक्ष में साझेदारी की डिक्री होगी। यदि कर्ज़ न हो, तो मालिक का कब्ज़ा मान्य माना जाएगा और डिक्री उसके नाम पर होगी। और यदि यह माल गुलाम, मालिक और अजनबी, इन सब के कब्ज़े में हो और प्रत्येक दावा करता हो कि यह मेरा है, तो यदि गुलाम ऋणी न हो, तो वह माल मालिक और...

سو درہم کا قرضہ دیا پھر جس نے قرضہ نہیں دیا ہے وہ مولیٰ غائب ہوا اور اجنبی حاضر رہا اور اس نے قصد کیا کہ جس مولیٰ نے اس کو قرضہ دیا ہے اسکا حصہ فروخت کرا دے اور اپنا قرضہ وصول کر لے تو فروخت کیا جائے گا پس اگر پچاس درہم کو فروخت کیا جائے تو سب اجنبی لے لے گا اور اگر دوسرا مولیٰ حاضر ہوا تو اس کا حصہ اس اجنبی کے واسطے اور اس مولیٰ کے واسطے جس نے قرضہ دیا ہے فروخت کیا جائے گا اور دونوں باہم نصفاً نصف تقسیم کر لیں گے۔ اگر قرضہ دینے والے مولیٰ کے حصہ کا ثمن مشتری پر ڈوب گیا اور اس مولیٰ کا حصہ جس نے قرضہ نہیں دیا ہے پچاس درہم یا کم زیادہ کو فروخت کیا گیا تو یہ ثمن دونوں میں تین تین تہائی تقسیم ہوگا اس میں سے دو حصہ اجنبی کو اور ایک حصہ قرضہ دینے والے مولیٰ کو ملے گا پس اگر انہوں نے اس طور سے بانٹ لیا پھر پہلے پچاس درہم برآمد ہوئے تو سب اجنبی لے لے گا اسی طرح اگر پچاس سے زیادہ ہو حتیٰ کہ سو کی دو تہائی سے بڑھ جائے پس جس قدر زیادہ ہو تو وہ قرضہ دینے والے مولیٰ کو ملے گی اور دونوں مولاؤں میں سے کوئی دوسرے سے کچھ واپس نہیں لے سکتا ہے۔ اگر ایک غلام دو شخصوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس کو تجارت کی اجازت دی پھر ہر ایک نے اس کو کسی دوسرے شخص کے سو درہم اس کے حکم سے قرضہ میں دیے اور سو درہم کسی اجنبی نے اس کو قرضہ میں دیے پھر وہ غلام سو درہم کو فروخت ہوا تو یہ سو درہم اجنبی اور دونوں مولاؤں کے درمیان تین حصہ ہو کر مساوی تقسیم ہوں گے اور اگر وہ مال جو ہر ایک مولیٰ نے اس کو قرضہ میں دیا ہے وہ اس مولیٰ اور اجنبی کے درمیان مشترک ہو کہ اجنبی نے اس کو قرضہ میں دے دینے کی اجازت دی ہو اور باقی مسئلہ یوں ہی رہے تو یہ سو درہم دس حصہ ہو کر تقسیم ہوں گے کہ جس میں سے چار حصہ فقط اجنبی کو ملیں گے اور چار

حصہ ان دونوں اجنبیوں کو ملیں گے جو دو سو درہم میں دونوں مولاؤں کے شریک تھے یعنی ہر ایک کو دو حصہ ملیں گے۔ ہر ایک مولیٰ کو ایک ایک حصہ ملے گا اور اگر ایک غلام دو سو درہم قیمت کا دو شخصوں میں مشترک ہوا اور اس کو اجنبی نے سو درہم قرضہ دیے پھر قرض خواہ آیا اور اپنا قرضہ طلب کیا اور دونوں مولاؤں میں سے ایک غائب ہوا تو غائب کے حصہ میں کچھ ڈگری نہ ہو گی جب تک کہ حاضر نہ ہو پس اگر حاضر کا حصہ سو درہم کو فروخت ہوا تو سب قرض خواہ لے لے گا پھر جب غائب حاضر ہو تو جس کا حصہ فروخت ہوا ہے وہ پچاس درہم کے واسطے اس کے حصہ غلام میں مواخذہ کرے گا پس یا تو وہ فروخت کیا جائے گا یا غائب اس قدر درہم ادا کرے گا اسی طرح اگر غلام قتل کیا گیا اور حاضر نے اس کی قیمت میں نصف یعنی سو درہم پائے تو قرض خواہ سب لے سکتا ہے پھر جب غائب حاضر ہو کر اپنے حصہ کی قیمت وصول کرے تو جس کے حصہ سے قرض خواہ نے لے لیا ہے وہ شریک سے نصف قیمت لے لے گا یہ مبسوط میں ہے۔

**باب دہم: ماذون کے محجور ہونے کے بعد جو اختلافی خصومت ماذون و اس کے مولیٰ کے درمیان غلام یا کسی غیر کے مقبوضہ مال میں واقع ہوا اس کے بیان میں** اگر غلام ماذون کے پاس مال ہو اور مولیٰ نے کہا کہ یہ میرا مال ہے اور ماذون نے کہا کہ میری کمائی ہے پس اگر غلام مقروض ہو تو اس کا قول قبول ہوگا اور اگر نہ ہو تو مولیٰ کا قول قبول ہو گا کذا فی الذخیرہ۔ اگر مال غلام و مولیٰ دونوں کے قبضہ میں ہو پس اگر وہ غلام مقروض نہ ہو تو دونوں کا قبضہ معتبر ہو کر دونوں کے واسطے شرکت کی ڈگری ہو گی۔ اگر قرضہ نہ ہو تو مولیٰ کا قبضہ معتبر ہو کر اسی کے نام ڈگری ہوگی اور اگر یہ مال غلام و مولیٰ و اجنبی سب کے قبضہ میں ہو اور ہر ایک دعویٰ کرتا ہو کہ میرا ہے پس اگر غلام مقروض نہ ہو تو وہ مال مولیٰ و

(Fatawa Alamgiri ..... Volume 8) (67) (Kitab al-Ma'dhun)

Between strangers, it shall be divided half and half, and if there are debts, it shall be divided into three-thirds; this is mentioned in *Al-Mughni*. If a piece of cloth is in the possession of both a *Ma'dhun* (a slave authorized to trade) and a free person, and each claims it as his own, while the greater part of the cloth is in the possession of one and the other is merely holding its corner, it shall be divided equally between them. If one is wearing it as a loincloth (*izar*), or as a shawl, or is simply wearing it, and the other is merely holding it; or instead of cloth, if it is a beast of burden which one is riding and the other is holding its reins, then the item shall belong to the rider or the wearer. If one person is not riding but the other is holding it, the latter shall not be entitled to preference merely by the act of holding. If one is riding and the other is not even holding it, the rider shall be the entitled party. Thus, if there is a circumstance where, in the case of individual possession, one would be entitled and the other does not possess that same condition or its equivalent, the first shall be the entitled party, meaning the decree shall be in his name; this is in *Al-Mabsut*.

If a *Ma'dhun* slave, a *Mukatib* (a slave with a contract for freedom), or a free person hires himself out to a tailor to work with him or to conduct buying and selling for him, and a piece of cloth is in the hands of the employee (*ajir*), and the employee claims it is his while the employer (*mustajir*) claims it is his: if the employee is present in the shop or house of the employer, the word of the employer shall be accepted. If the employee is in a street or in his own house, the word of the employee shall be accepted. If the employee is wearing the cloth and the rest of the circumstances remain the same, then the employee’s word shall be accepted, whether he is in the employer's house or in the street. It is also narrated that the illustrious Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl (may Allah have mercy on him) used to say that if the disputed item is among the tools of the trade, then the employee's word shall be accepted regardless of whether he is in the employer's house or in a street or alley; this is in *Al-Mughni*. If a *Mahjur* (an unauthorized slave) is hired out by his master for some work and he has a piece of cloth, and the employer claims it is his while the master claims it is his cloth in the slave's possession, then the employer’s word shall be accepted even if he is in the street. The meaning of this ruling is that the master had hired him out for work other than commercial trading so that the slave remains *Mahjur*; otherwise, if he had hired him out for commercial trading, he would become *Ma'dhun*. Similarly, Sheikh-ul-Islam mentioned that if this slave is wearing the cloth, the master's word shall be accepted. In the case of cloth, this ruling is contrary to

that of a beast for riding; for if a *Mahjur* slave is riding an animal and a dispute arises between the employer and the master, the employer's word shall be accepted in this situation; this is in *Al-Muhit*. If a *Mahjur* slave is present in the master's house and has cloth with him, and a dispute arises between the employer and the master—where the employer says "It is mine" and the master says "It is mine"—then it shall belong to the master; this is in *Al-Mabsut*.

If a slave is authorized (*Ma'dhun*) for trade and the slave possesses goods belonging to his trade, then they shall belong to the slave; that is, items of the kind that the slave trades in. If they are not part of the slave's trade, they shall belong to the master. Imam Muhammad (pbuh) did not mention one case: when the item belongs to the trade of both. It is narrated from the jurist Abu Bakr al-Balkhi that he said the ruling should be in favor of the master. If a *Ma'dhun* is wearing cloth or riding an animal and a dispute arises between the *Ma'dhun* and his master regarding its ownership, the decree shall be in the name of the slave, whether it belongs to the category of his trade or not; this is in *Al-Muhit*. It is written in *Al-Jami* that a person gave a gift (*hiba*) to Zaid's slave and then wished to revoke it. The slave said, "I am *Mahjur*; you have no right to take back the gift until my master is present." The donor (*wahib*) said, "No, rather you are *Ma'dhun*." Then the slave presented his own admission of being *Mahjur* and witnesses for the donor—meaning witnesses testified that the donor admitted the slave was *Mahjur*—then the slave's witnesses shall be accepted; this is in *Al-Tatarkhaniya*. Imam Muhammad (pbuh) said that if a slave conducted buying and selling and did not state at the time of the transaction whether he was *Ma'dhun* or *Mahjur*, and subsequently incurred debts, and then claimed, "I am *Mahjur*; my master did not give me permission..."

(फ़तावा आलमगीरी ..... खंड 8) (67) (किताब अल-माज़ून)

अजनबियों के बीच यह आधा-आधा विभाजित होगा और यदि वह ऋणी हो तो तीन तिहाई में विभाजित होगा, यह 'मुग़नी' में है। और यदि एक कपड़ा एक माज़ून (व्यापार हेतु अनुमति प्राप्त दास) और एक स्वतंत्र व्यक्ति के अधिकार में हो और प्रत्येक यह दावा करे कि वह उसका है, तथा कपड़े का अधिकांश हिस्सा एक के अधिकार में हो और दूसरा उसका कोना पकड़े हुए हो, तो वह दोनों में बराबर विभाजित होगा। यदि एक ने उसे तहमत (लुंगी) के रूप में बांधा हो या चादर के रूप में ओढ़ा हो या पहना हो और दूसरा उसे केवल पकड़े हुए हो, अथवा कपड़े के स्थान पर कोई चौपाया हो जिस पर एक सवार हो और दूसरा उसकी लगाम पकड़े हुए हो, तो वह चीज़ सवार या पहनने वाले को मिलेगी। यदि एक व्यक्ति सवार न हो परंतु दूसरा उसे पकड़े हुए हो, तो केवल संबंध यानी पकड़ने मात्र से वह वरीयता का हकदार नहीं होगा, और यदि एक सवार हो और दूसरा उससे संबद्ध भी न हो, तो सवार हकदार होगा। अतः यदि ऐसी स्थिति हो जिसमें अकेले होने के समय एक हकदार हो और दूसरे को वह स्थिति या उसके समान कुछ प्राप्त न हो, तो पहला हकदार होगा यानी उसी के नाम डिक्री (फैसला) होगी, यह 'मब्सूत' में है।

यदि किसी गुलाम माज़ून या मुकातिब (मुक्ति हेतु अनुबंध करने वाला दास) या स्वतंत्र व्यक्ति ने स्वयं को किसी दर्जी को काम करने के लिए या उसके लिए खरीद-बिक्री करने हेतु मज़दूरी पर दिया, फिर यदि कारीगर (अजीर) के हाथ में एक कपड़ा हो और कारीगर कहे कि यह मेरा है और नियोक्ता (मुस्ताजिर) कहे कि यह मेरा है; तो यदि यह कारीगर अपने नियोक्ता की दुकान या घर में हो तो नियोक्ता का कथन स्वीकार्य होगा, और यदि कारीगर किसी गली में या अपने घर में हो तो कारीगर का कथन स्वीकार्य होगा। और यदि कारीगर वह कपड़ा पहने हुए हो और शेष स्थिति वही रहे, तो कारीगर का ही कथन स्वीकार्य होगा चाहे वह नियोक्ता के घर में हो या गली में। यह भी उद्धृत है कि शेख इमाम जलील अबू बक्र मोहम्मद बिन अल-फज़ल (रह.) फरमाते थे कि यदि विवादित वस्तु कारीगरी के औजारों में से हो तो कारीगर का कथन स्वीकार्य होगा चाहे वह नियोक्ता के घर में हो या कूचा-गली में, यह 'मुग़नी' में है। यदि किसी महजूर (व्यापार से वर्जित) दास को उसके स्वामी ने किसी काम के लिए मज़दूरी पर दिया हो और उसके पास एक कपड़ा हो, फिर नियोक्ता कहे कि यह मेरा है और स्वामी कहे कि यह मेरा कपड़ा उसके पास है, तो नियोक्ता का कथन स्वीकार्य होगा भले ही वह गली में हो। इस मसले का अर्थ यह है कि स्वामी ने उसे व्यापारिक खरीद-बिक्री के अलावा किसी अन्य काम के लिए किराए पर दिया हो ताकि वह दास महजूर ही रहे, अन्यथा यदि उसे व्यापारिक

खरीद-बिक्री के लिए किसी को किराए पर दिया होता तो वह माज़ून हो जाता। इसी प्रकार शेख-उल-इस्लाम ने उल्लेख किया है कि यदि वह दास वह कपड़ा पहने हुए हो तो स्वामी का कथन स्वीकार्य होगा। कपड़े के मामले में यह नियम चौपाया सवारी के विपरीत है, क्योंकि यदि महजूर दास जानवर पर सवार हो और नियोक्ता व स्वामी में विवाद हो, तो इस स्थिति में नियोक्ता का ही कथन स्वीकार्य होगा, यह 'मुहीत' में है। यदि महजूर दास स्वामी के घर में मौजूद हो और उसके पास कपड़ा हो और नियोक्ता व स्वामी में विवाद हो, यानी नियोक्ता कहे कि मेरा है और स्वामी कहे कि मेरा है, तो वह स्वामी का होगा, यह 'मब्सूत' में है।

यदि दास व्यापार के लिए माज़ून हो और उसके पास वह माल दास के व्यापार का हो, तो वह दास का होगा; अर्थात वैसी ही चीज़ें हों जिनका व्यापार वह दास करता है। यदि वह दास के व्यापार की श्रेणी का न हो तो वह स्वामी का होगा। इमाम मोहम्मद (स.) ने एक स्थिति का उल्लेख नहीं किया है, यानी जब वह चीज़ दोनों के व्यापार की हो। फकीह अबू बक्र बल्खी से वर्णित है कि उन्होंने फरमाया कि स्वामी के पक्ष में निर्णय होना चाहिए। और यदि माज़ून कपड़ा पहने हुए हो या जानवर पर सवार हो और माज़ून तथा उसके स्वामी के बीच उस वस्तु के स्वामित्व पर विवाद हो, तो दास के नाम डिक्री होगी, चाहे वह उसके व्यापार की किस्म से हो या न हो, यह 'मुहीत' में है। 'जामे' में लिखा है कि एक व्यक्ति ने ज़ैद के दास को कुछ उपहार (हिबा) दिया, फिर उपहार वापस लेना चाहा। दास ने कहा कि मैं महजूर हूँ, जब तक मेरा स्वामी उपस्थित न हो तब तक तुम्हें उपहार वापस लेने का अधिकार नहीं है। उपहार देने वाले (वाहिब) ने कहा कि नहीं, बल्कि तुम माज़ून हो। तब दास ने अपने महजूर होने के स्वीकारोक्ति और उपहार देने वाले के गवाह दिए, यानी गवाहों ने यह गवाही दी कि उपहार देने वाले ने उसके महजूर होने को स्वीकार किया है, तो दास के गवाह स्वीकार किए जाएंगे, यह 'तातारखानिया' में है। इमाम मोहम्मद (स.) ने फरमाया कि यदि दास ने खरीद-बिक्री की और लेनदेन के समय यह नहीं कहा कि मैं माज़ून हूँ या महजूर हूँ, फिर उस पर कर्ज चढ़ गया, फिर उसने कहा कि मैं महजूर हूँ और मेरे स्वामी ने मुझे अनुमति नहीं दी है...

اجنبی کے درمیان نصف نصف تقسیم ہوگا اور اگر مقروض ہو تو تین تہائی تقسیم ہوگا یہ مغنی میں ہے۔ اور ایک کپڑا ایک ماذون و ایک آزاد کے قبضے میں ہو اور ہر ایک دعویٰ کرتا ہو کہ میرا ہے اور اکثر کپڑا ایک کے قبضے میں ہے اور دوسرا اس کا کنارہ پکڑے ہوئے ہے تو وہ دونوں میں برابر تقسیم ہوگا۔ اگر ایک اس کو ازار کے طور پر یعنی لنگی باندھے ہوئے ہو یا چادر کے طور پر اوڑھے ہوئے ہو یا پہنے ہوئے اور دوسرا اس کو پکڑے ہوئے ہو یا بجائے کپڑے کے جو پایہ ہو کہ ایک اس پر سوار ہو اور دوسرا اس کی لگام پکڑے ہوئے ہو تو یہ چیز سوار یا پہننے والے کو ملے گی۔ اگر ایک شخص سوار نہ ہو مگر دوسرا اس کو پکڑے ہوئے ہو تو صرف تعلق سے یعنی پکڑنے ہوئے ہونے سے ترجیح کا مستحق نہ ہوگا اور اگر ایک سوار ہو اور دوسرا متعلق بھی نہ ہو تو سوار مستحق ہوگا پس اگر ایسا امر ہو کہ جس سے وقت انفراد کے ایک مستحق ہو اور دوسرے کو وہ امر یا اس کے مثل حاصل نہ ہو تو پہلا مستحق ہوگا یعنی اسی کے نام ڈگری ہو گی یہ مبسوط میں ہے۔

اگر کسی غلام ماذون یا مکاتب یا آزاد نے اپنے تئیں کسی درزی کو اس کے ساتھ کام کرنے یا اس کے واسطے خرید و فروخت کرنے کے لیے اجرت پر دیا پس اگر اجیر کے ہاتھ میں ایک کپڑا ہو اور اجیر نے کہا کہ یہ میرا ہے اور مستاجر نے کہا کہ یہ میرا ہے پس اگر یہ اجیر اپنے مستاجر کی دکان یا گھر میں موجود ہو تو مستاجر کا قول قبول ہوگا اور اگر اجیر کسی گلی میں یا اپنے گھر میں ہو تو اجیر کا قول قبول ہوگا اور اگر اجیر یہ کپڑا پہنے ہوئے ہو اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو اجیر ہی کا قول قبول ہوگا خواہ مستاجر کے گھر میں ہو یا گلی میں اور نقل ہے کہ شیخ امام جلیل ابو بکر محمد بن الفضل رحمۃ اللہ فرماتے تھے کہ اگر جھگڑے کی چیز کاریگری کے آلات میں

سے ہو تو اجیر کا قول قبول ہوگا خواہ اجیر مستاجر کے گھر میں ہو یا کوچہ گلی میں ہو یہ مغنی میں ہے۔ اگر غلام محجور کو اس کے مولیٰ نے کسی کام کے واسطے اجرت پر دے دیا اور اس کے پاس ایک کپڑا ہے پس مستاجر نے کہا کہ یہ میرا ہے اور مولیٰ نے کہا کہ یہ میرا کپڑا اس کے پاس ہے تو مستاجر کا قول قبول ہوگا اگر چہ گلی میں ہو اور اس مسئلہ کے معنی یہ ہیں کہ مولیٰ نے اس کو سوائے خرید و فروخت تجارتی کے اور کسی کام کے واسطے اجارہ دیا ہوتا کہ وہ غلام محجور رہے ورنہ اس کو خرید و فروخت تجارتی کے واسطے کسی کو اجارہ سے پر دے دے تو ماذون ہو جائے گا۔ ایسا ہی شیخ الاسلام نے ذکر فرمایا ہے کہ اگر یہ غلام اس کپڑے کو پہنے ہوئے ہو تو مولیٰ کا قول قبول ہوگا اور کپڑے کی صورت میں یہ حکم بخلاف چوپا یہ سواری کے ہے کہ اگر غلام محجور جانور پر سوار ہو اور مستاجر و مولیٰ میں اختلاف واقع ہو پس اس صورت میں مستاجر ہی کا قول قبول ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر غلام محجور مولیٰ کے گھر میں موجود ہو اور اس کے پاس کپڑا ہو اور مستاجر و مولیٰ میں اختلاف واقع ہو یعنی مستاجر نے کہا کہ میرا ہے اور مولیٰ نے کہا کہ میرا ہے تو مولیٰ کا ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر غلام تجارت کے واسطے ماذون ہو اور غلام کے پاس یہ متاع غلام کی سوداگری کی ہو تو وہ غلام کی ہو گی یعنی جن چیزوں کی غلام سوداگری کرتا ہے اسی قسم کی چیز ہو۔ اگر غلام کی سوداگری نہ ہو تو مولیٰ کی ہو گی۔ امام محمدؒ نے ایک صورت ذکر نہیں فرمائی یعنی جبکہ وہ چیز دونوں کی تجارت کی ہو اور فقیہ ابوبکر بلخی سے منقول ہے کہ انہوں نے فرمایا کہ مولیٰ کے واسطے حکم ہونا چاہیے اور اگر ماذون کپڑا پہنے ہوئے ہو یا جانور پر سوار ہو اور ماذون و اس کے مولیٰ میں اس چیز کی ملک میں اختلاف ہوا تو غلام کے نام ڈگری ہو گی خواہ اس کی تجارت کی قسم سے ہو یا نہ ہو یہ محیط میں ہے۔ جامع میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے زید کے غلام کو کچھ ہبہ دیا پھر ہبہ سے رجوع کرنا چاہا پس غلام نے کہا کہ میں محجور ہوں جب تک میرا مولیٰ

حاضر نہ ہو تب تک تجھے ہبہ واپس لینے کا اختیار نہیں ہے اور واہب نے کہا کہ نہیں بلکہ تو ماذون ہے پس غلام نے اپنے محجور ہونے کے اقرار و واہب کے گواہ دیے یعنی گواہوں نے یہ گواہی دی کہ واہب نے اس کے محجور ہونے کا اقرار کیا ہے تو غلام کے گواہ مقبول ہوں گے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ امام محمدؒ نے فرمایا کہ غلام نے اگر خرید و فروخت کی اور وقت خرید و فروخت کے یہ نہ کہا کہ میں ماذون ہوں یا محجور ہوں پھر اس پر قرضے چڑھ گئے پھر کہا کہ میں محجور ہوں میرے مولیٰ نے مجھے اجازت نہیں دی ہے

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 | (68) | Kitab al-Ma'zun (The Book of Authorized Slaves)**

If the creditors assert, "No, rather you are authorized (*ma'zun*)," then based on juristic preference (*istihsan*), the statement of the creditors shall be accepted, and the slave will be declared authorized. Once declared authorized and having explicitly admitted to it himself, by way of analogy (*qiyas*), his earnings shall not be sold to satisfy the debt as long as the master (*mawla*) is absent. However, based on *istihsan*, his earnings shall be sold for debt repayment. Furthermore, if after selling his earnings and paying the debt, some balance remains, both by analogy and preference, the slave himself shall not be sold as long as the master is absent.

If the creditors provide witnesses that the slave is authorized while the slave denies it and the master is absent, their witnesses will not be accepted until the slave is sold for their debt. If the slave admitted to having permission and the judge (*qadi*) sold assets from his earnings to repay the creditors, and subsequently the master denied granting permission, the judge will require the creditors to provide witnesses of such permission. If they provide witnesses, whatever transpired remains valid; otherwise, they must return the entire price received for the slave's items to the master. However, the sales already executed through the judge cannot be rescinded. This applies if the slave claimed to be restricted (*mahjur*). If the seller claimed the slave was restricted and stated, "I will not deliver the goods because my right (payment) will not be secured until he is free," and the slave asserts, "I am authorized," then in this matter, the slave's word will be accepted, and no oath shall be required of him. The seller will be compelled to deliver the item sold, and the seller will receive the price. If the seller then says, "I have witnesses that he is restricted," they will not be accepted; this is as mentioned in the book. The jurists have stated that there are two narrations on this issue, meaning the ruling differs based on two traditions, or according to analogy and preference; this is in *Al-Mughni*. If the slave admits before the judge that he was restricted at the time of sale, the judge will void the sale. If the master subsequently appears and refutes the slave's claim, saying, "I had given the slave permission to trade," the rescission of the sale that occurred between the slave and the buyer will remain valid. If the master thereafter grants permission for that sale, it will be void. If the judge did not void the sale based on the slave's admission until the master appeared and authorized it, then the sale remains valid; this is in *Al-Muhit*.

If the slave is the buyer and the seller says, "I will not give you anything because you are restricted," and the slave claims to be authorized, the slave's word will be accepted. If the seller then provides witnesses that after the purchase but before appearing before the judge, the slave admitted to being restricted, the witnesses will not be accepted. If a person engages in trade, incurs debts, and his status as a slave or free man is unknown, and he subsequently declares, "I am the slave of so-and-so," and that person confirms it saying, "He is my slave and is restricted," while the creditors maintain he is free, the slave will be believed in his admission insofar as he is declared the slave of so-and-so. However, he will not be believed against the rights of the creditors such that their debt remains pending until his eventual freedom; that shall not happen. The Imam stated that this slave shall be sold, and the creditors shall recover their debt from his price; this is in *Al-Mughni*. If a debt becomes due to a slave because of sale, lease, loan, or destruction (*istihlak*) [1] of property, or if someone deposited property with him, and then the master restricted him, the slave remains the adversary (accountable party) in all such matters. Thus, if the debtors repay the debt to the slave, they are exonerated, whether the slave is in debt or not. If they pay the master, then if the slave is not in debt...

[1] *Istihlak*: This refers to the instance where he has destroyed someone's property for any reason.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | (68) | किताब अल-माज़ून (अनुमत दास की किताब)**

और यदि ऋणदाताओं (क़र्ज़ख़्वाहों) ने कहा कि नहीं, बल्कि तू 'माज़ून' (व्यापार के लिए अनुमत) है, तो इस्तहसानन (न्यायसंगत वरीयता के आधार पर) ऋणदाताओं का कथन स्वीकार कर लिया जाएगा और दास को माज़ून घोषित कर दिया जाएगा। जब वह माज़ून घोषित हो गया और उसने स्वयं भी स्पष्ट रूप से माज़ून होने का स्वीकार कर लिया, तो क़ियासन (सादृश्य के आधार पर) उसकी कमाई ऋण की अदायगी में तब तक नहीं बेची जाएगी जब तक कि मालिक (मौला) उपस्थित न हो; परंतु इस्तहसानन ऋण चुकाने के लिए उसकी कमाई बेची जाएगी। फिर यदि उसकी कमाई बेचने और ऋण चुकाने के बाद भी कुछ ऋण शेष रह जाए, तो क़ियासन और इस्तहसानन दोनों ही स्थितियों में जब तक मालिक उपस्थित न हो, स्वयं दास को नहीं बेचा जाएगा।

यदि ऋणदाताओं ने गवाह पेश किए कि यह दास माज़ून है और दास इससे इनकार करता है और मालिक अनुपस्थित है, तो उनके गवाह स्वीकार नहीं किए जाएंगे और उनके ऋण के बदले दास को नहीं बेचा जाएगा। यदि दास ने अनुमति होने का स्वीकार किया और क़ाज़ी (न्यायाधीश) ने उसकी कमाई की संपत्तियाँ बेचकर ऋणदाताओं का ऋण चुका दिया, और फिर मालिक ने अनुमति देने से इनकार किया, तो क़ाज़ी ऋणदाताओं से गवाह माँगेगा कि वे अनुमति के प्रमाण प्रस्तुत करें। यदि उन्होंने गवाह पेश कर दिए, तो जो कुछ हुआ वह वैध है, अन्यथा वे दास की चीज़ों की जो कीमत वसूल कर चुके हैं, वह सब मालिक को वापस करेंगे; परंतु क़ाज़ी द्वारा जो बिक्री (बय) संपन्न हो चुकी है, वह निरस्त नहीं की जा सकती। यह सब उस स्थिति में है जब दास ने अपने 'महजूर' (व्यापार से प्रतिबंधित) होने का दावा किया हो। यदि विक्रेता ने दावा किया कि दास महजूर है और कहा कि "मैं इसे माल नहीं दूँगा क्योंकि जब तक यह स्वतंत्र नहीं होगा, मुझे मेरा अधिकार (मूल्य) प्राप्त नहीं होगा", और दास कहे कि "मैं माज़ून हूँ", तो इस विषय में दास की बात मानी जाएगी और उस पर कसम लागू नहीं होगी। विक्रेता को विवश किया जाएगा कि उसने जो वस्तु उसे बेची है, वह उसे दे दे और विक्रेता उससे अपना मूल्य ले लेगा। फिर यदि विक्रेता कहे कि "मैं इस बात के गवाह देता हूँ कि यह महजूर है", तो वे स्वीकार नहीं किए जाएंगे; जैसा कि पुस्तक में वर्णित है। उलेमाओं (मशाइख़) ने कहा है कि इस मसले में दो विवरण हैं, यानी दो रिवायतों के कारण हुक्म अलग-अलग है, या क़ियास और इस्तहसान के आधार पर हुक्म भिन्न है; यह 'मुग़नी' में है। यदि दास ने क़ाज़ी के सामने अपने महजूर होने का स्वीकार किया कि "बिक्री के समय मैं महजूर था", तो क़ाज़ी बिक्री को निरस्त कर देगा। फिर यदि इसके बाद मालिक उपस्थित हुआ और उसने दास के कथन को झुठलाया और कहा

कि "मैंने दास को खरीद-बिक्री की अनुमति दी थी", तो दास और ग्राहक के बीच जो बिक्री निरस्त हो चुकी थी, वह वैध रहेगी। यदि उसके बाद मालिक ने उस बिक्री की अनुमति दी, तो वह निरर्थक (बातिल) होगी। और यदि क़ाज़ी ने दास के महजूर होने के स्वीकार पर बिक्री नहीं तोड़ी, यहाँ तक कि मालिक उपस्थित हुआ और उसने बिक्री की अनुमति दे दी, तो वह वैध होगी; यह 'मुहीत' में है।

यदि दास ही ग्राहक (खरीददार) हो और विक्रेता कहे कि "मैं तुझे कुछ नहीं दूँगा क्योंकि तू महजूर है" और दास कहे कि "मैं माज़ून हूँ", तो दास की बात मानी जाएगी। फिर यदि विक्रेता गवाह दे कि खरीद के बाद और क़ाज़ी के सामने पेश होने से पहले दास ने महजूर होने का स्वीकार किया था, तो वे गवाह स्वीकार नहीं किए जाएंगे। यदि कोई व्यक्ति खरीद-बिक्री करता हो और उस पर ऋण चढ़ जाए और यह पता न हो कि वह दास है या स्वतंत्र, फिर उसके बाद वह कहे कि "मैं अमुक व्यक्ति का दास हूँ" और उस व्यक्ति ने इसकी पुष्टि कर दी और कहा कि "यह मेरा दास है और महजूर है", और ऋणदाताओं ने कहा कि "यह स्वतंत्र है", तो दास अपने स्वीकार में सच्चा माना जाएगा यहाँ तक कि उसे अमुक व्यक्ति का दास घोषित कर दिया जाएगा; परंतु ऋणदाताओं के अधिकार के मामले में उसे सच्चा नहीं माना जाएगा कि उनका ऋण इस इंतज़ार में पड़ा रहे कि उसकी स्वतंत्रता के बाद वसूला जाएगा, ऐसा नहीं होगा। फिर इमाम ने फ़रमाया कि यह दास बेचा जाएगा और ऋणदाता उसकी बिक्री की राशि से अपना ऋण वसूल करेंगे; यह 'मुग़नी' में है। यदि किसी व्यक्ति पर दास का ऋण बिक्री, किराये (इजारा), कर्ज़, या माल के'इस्तेहलाक' [1] के कारण अनिवार्य हुआ हो, या उसने किसी के पास अमानत रखी हो, और फिर मालिक ने उसे महजूर कर दिया हो, तो इन सब मामलों में विरोधी पक्ष (उत्तरदायी) वही दास होगा। अतः यदि ऋणियों ने दास को ऋण चुका दिया, तो वे ऋणमुक्त हो जाएंगे, चाहे दास ऋणी हो या न हो। यदि उन्होंने मालिक को दिया, तो यदि दास ऋणी न हो...

[1] इस्तेहलाक: अर्थात उसने किसी कारणवश किसी व्यक्ति की संपत्ति नष्ट कर दी हो।

---

اور قرض خواہوں نے کہا کہ نہیں بلکہ تو ماذون ہے تو استحساناً قرض خواہوں کا قول قبول ہو کر غلام ماذون قرار دیا جائے گا اور جب وہ ماذون قرار پایا اور اس نے خود ہی صریحاً ماذون ہونے کا اقرار کر دیا تو قیاساً اس کی کمائی قرضے میں تاوقتیکہ مولیٰ حاضر نہ ہو فروخت نہ کی جائے مگر استحساناً اس کے ادائے قرضہ کے واسطے فروخت کی جائے گی۔ پھر اگر اس کی کمائی فروخت کر کے ادائے قرض کے باوجود بھی کچھ قرضہ باقی رہ گیا تو قیاساً و استحساناً جب تک مولیٰ حاضر نہ ہو خود غلام فروخت نہ کیا جائے گا۔

اگر قرض خواہوں نے گواہ دیے کہ یہ غلام ماذون ہے اور غلام انکار کرتا ہے اور مولیٰ غائب ہے تو ان کے گواہ مقبول نہ ہوں گے یہاں تک کہ ان کے قرضہ میں غلام فروخت نہ ہوگا۔ اگر غلام نے اجازت کا اقرار کیا اور قاضی نے اس کی کمائی کا اسباب فروخت کر کے قرض خواہوں کا قرضہ ادا کیا پھر مولیٰ نے اگر اجازت سے انکار کیا تو قاضی قرض خواہوں سے گواہ طلب کرے گا کہ اس کی اجازت کے گواہ پیش کریں پس اگر انہوں نے گواہ پیش کیے تو جو کچھ گزرا سب جائز ہے ورنہ جس قدر غلام کی چیزوں کا ثمن انہوں نے وصول کیا سب مولیٰ کو واپس دیں گے مگر قاضی سے جس قدر بیوع واقع ہوئی ہیں وہ نہیں ٹوٹ سکتی ہیں اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ غلام نے اپنے محجور ہونے کا دعویٰ کیا ہو اور اگر بائع نے غلام کے محجور ہونے کا دعویٰ کیا اور کہا کہ میں اس کو کچھ نہیں دوں گا کیونکہ مجھے میرا حق جب تک کہ یہ آزاد نہ ہوگا وصول نہ ہوگا اور غلام نے کہا کہ میں ماذون ہوں تو اس باب میں غلام کا قول قبول ہوگا اور غلام پر قسم عائد نہ ہوگی۔ بائع پر جبر کیا جائے گا کہ جو چیز تو نے اس کے ہاتھ فروخت کی ہے اس کو دے دے اور بائع اس سے اپنا ثمن لے لے گا پھر اگر بائع نے کہا کہ میں اس امر کے گواہ دیتا ہوں کہ

یہ محجور ہے تو قبول نہ ہوں گے ایسا ہی کتاب میں مذکور ہے اور مشائخ نے فرمایا کہ اس مسئلہ میں دو روایتیں ہیں یعنی حکم مختلف دو روایتوں کی راہ سے ہے یا ازراہ قیاس و استحسان حکم مختلف ہے یہ مغنی میں ہے۔ اگر غلام نے قاضی کے سامنے اپنے محجور ہونے کا اقرار کیا کہ میں وقت بیع کے محجور تھا تو بیع کو قاضی رد کر دے گا پھر اگر اس کے بعد مولیٰ حاضر ہوا اور غلام کے قول کی تکذیب کی اور کہا کہ میں نے غلام کو خرید و فروخت کی اجازت دی تھی تو نقضِ بیع جو غلام و مشتری کے درمیان ہو چکا وہ جائز رہے گا پھر اس کے بعد اگر مولیٰ نے اس کے بیچ کی اجازت دی تو باطل ہوگی اور اگر قاضی نے غلام کے محجور ہونے کے اقرار پر بیع نہ توڑی یہاں تک کہ مولیٰ حاضر ہوا اور بیچ کی اجازت دی تو جائز ہو گی یہ محیط میں ہے۔

اگر غلام ہی مشتری ہو اور بائع نے کہا کہ میں تجھ کو کچھ نہ دوں گا کیونکہ تو محجور ہے اور اس نے کہا کہ میں ماذون ہوں تو غلام کا قول قبول ہوگا پھر اگر بائع نے گواہ دیے کہ بعد خرید کے قاضی کے پاس پیش ہونے سے پہلے غلام نے اپنے محجور ہونے کا اقرار کیا ہے تو گواہ قبول نہ ہوں گے۔ اگر ایک شخص خرید و فروخت کرتا ہو اور اس پر قرضے چڑھ گئے اور اس کا حال معلوم نہ ہوا کہ یہ غلام ہے یا آزاد ہے پھر اس کے بعد کہا کہ میں فلاں شخص کا غلام ہوں اور اس شخص نے تصدیق کی اور کہا کہ میرا غلام ہے اور محجور ہے اور قرض خواہوں نے کہا کہ یہ آزاد ہے تو یہ غلام اپنے اقرار میں مصدق ہو گا حتیٰ کہ فلاں شخص کا غلام قرار دیا جائے گا مگر قرض خواہوں کے حق میں مصدق نہ ہو گا کہ ان کا قرضہ توقف میں پڑا رہے کہ بعد اس کی آزادی کے وصول ہوا ایسا نہ ہوگا۔ پھر امام نے فرمایا کہ یہ غلام فروخت کیا جائے گا اور قرض خواہ لوگ اس کے ثمن سے اپنا قرضہ وصول کریں گے یہ مغنی میں ہے۔ اگر کسی شخص پر غلام کا قرضہ بیع یا اجارہ یا قرض یا استہلاک ۱ـہ مال کی وجہ سے واجب ہوا یا اس نے کسی کے پاس مال ودیعت رکھا تھا پھر مولیٰ نے اس کو محجور کر دیا تو ان سب میں خصم وہی غلام ہوگا پس

اگر قرض داروں نے غلام کو قرضہ ادا کر دیا تو بریک بری ہو جائے گا خواہ غلام مقروض ہو یا نہ ہو۔ اگر مولیٰ کو دیا پس اگر غلام مقروض نہ ہو

۱؎ استہلاک یعنی اس نے کسی شخص کا مال کسی وجہ سے تلف کر دیا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 69 Kitab al-Ma'dhun**

Then the buyer shall be absolved from the price, and if the price has been paid, he shall not be absolved; this is stated in *al-Muheet*. If the slave dies after being restricted (*mahjoor*), the master has the right of litigation against the slave's creditors regarding the debt, whether the slave was in debt or not. Regarding whether the master has the authority to collect the debt: if there is no debt upon the slave, the master may take possession of the debt, but if there is a debt, he may not. This issue is mentioned similarly in *Ma'dhun al-Asl*, while it is written in *Wakalat al-Asl* that he may take possession. Some scholars have stated that the two narrations on this issue are not contradictory; rather, the ruling in *Kitab al-Ma'dhun* applies when the master is not reliable (*mu'tabar*), meaning he is not trustworthy, though he can still demand payment. The ruling in *Kitab al-Wakalat* applies when the master is trustworthy. If the slave does not die after being restricted, but the master has removed him from his ownership, then the master shall be the opposing party (*mukhasim*) in collecting that debt. However, whether he can take possession of it follows the same detail mentioned earlier. If the buyer emancipates that slave, the slave himself shall be declared the opposing party; this is mentioned in *al-Mughni*.

If a person granted his slave permission to trade, and the slave sold another slave to someone, and the buyer took possession of him and paid the price; then the master restricted the selling slave. Subsequently, the buyer found a defect in the purchased slave; the opposing party in this matter shall be the restricted slave. If the buyer produces witnesses against the slave, he may return the purchased slave, and the buyer has the right to withhold the purchased item until he recovers his price. If the restricted slave has no assets and is in debt, the returned slave shall be sold first, and its price shall be given to the buyer. If any amount remains from that price, it shall be given to the restricted slave's creditors. If the price obtained is less than the buyer's claim, the buyer shall become a partner with the other creditors in the person (*raqaba*) of the restricted slave. Thus, the restricted slave shall be sold for all of them. If the buyer did not withhold the slave for his price but instead handed him over to the restricted slave, and then came to demand his price, the buyer shall be made a partner with the creditors in the returned slave and in the person of the restricted slave. If the buyer has no witnesses and demands an oath from the restricted slave, the judge (*Qazi*) shall take a definitive oath from him stating, "By God, I handed over this slave to this buyer under this sale agreement while he did not have this defect"; this is in *al-Muheet*. If the restricted slave does not deny the defect but confesses

before the judge, and if the defect is of a nature that could not have occurred later, the judge shall return the item to its seller (the restricted slave). If the defect is such that it could have occurred later, the judge shall not return it based on the restricted slave's confession; however, after his confession, the restricted slave shall no longer be the buyer's opposing party. Then the buyer shall litigate with the master, and upon producing witnesses against the master, he shall return the slave to him; this is in *al-Mughni*.

If the buyer has no witnesses at that time and wishes to take an oath from the master, the judge shall take an oath based on the master's knowledge. If the master refuses the oath (*nukul*) or confesses to the defect, the slave shall be returned to the master. Then it will be examined: if the defect is such that it could not have occurred later, the return is valid regarding the rights of the restricted slave's creditors. If the defect is such that it could have occurred later and both the creditors and the master denied the slave's confession of the defect, then the return shall be valid regarding the rights of the slave and the master, excluding the creditors. The returned slave shall be sold, and its price given to the buyer. If the second price is higher than the previous price, the excess shall be given to the creditors; this is in *al-Muheet*. If it is less, it shall be accounted for against the slave's person. When the restricted slave is sold, the creditors' debts shall be paid from his price first; after the settlement of debts, if anything remains, it shall be given to the buyer, and if nothing remains, the buyer shall receive nothing.

1. Mukhasim: It should be clear that the term 'Khasm' (opponent/party) applies generally to any party in a case, whether the plaintiff (*muddai*) or the defendant (*mudda-alayh*).

तो क्रेता मूल्य से मुक्त हो जाएगा और यदि मूल्य दे दिया हो तो मुक्त नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है। यदि दास प्रतिबंधित (महजूर) होने के बाद मर गया, तो स्वामी को उसके ऋणदाताओं से ऋण के संबंध में मुकदमेबाजी का अधिकार है, चाहे दास ऋणी हो या न हो। और क्या स्वामी को उसका ऋण वसूल करने का अधिकार है? यदि दास पर कोई ऋण न हो, तो वह ऋण पर कब्जा कर सकता है और यदि ऋण हो, तो वह कब्जा नहीं कर सकता। इसी प्रकार यह मसला 'माज़ून अल-अस्ल' में वर्णित है और 'वकालत अल-अस्ल' में लिखा है कि वह कब्जा कर सकता है। कुछ उलेमाओं ने फरमाया कि इस मसले में दो विवरण अलग नहीं हैं, बल्कि बात यह है कि जो नियम 'किताब अल-माज़ून' में लिखा है, वह उस स्थिति में है जब स्वामी विश्वसनीय (मोतबर) न हो, यानी वह भरोसेमंद न हो लेकिन तकाज़ा (माँग) कर सकता है। और 'किताब अल-वकालत' का नियम उस स्थिति में लागू होता है जब स्वामी विश्वसनीय हो। और यदि प्रतिबंधित होने के बाद दास मरा नहीं है लेकिन स्वामी ने उसे अपनी मिल्कियत से निकाल दिया, तो उस ऋण की वसूली में स्वामी पक्षकार (मुखसिम) होगा, परन्तु क्या वह कब्जा कर सकता है या नहीं, इसमें भी वही विवरण है जो हमने उल्लेख किया है। फिर यदि क्रेता ने उस दास को मुक्त कर दिया, तो दास भी पक्षकार बन जाएगा, यह 'मुग़नी' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपने दास को व्यापार की अनुमति दी, फिर उसने किसी व्यक्ति को एक दास बेचा और उस क्रेता ने उस पर कब्जा कर लिया और मूल्य दे दिया। फिर स्वामी ने उसे प्रतिबंधित (महजूर) कर दिया। फिर क्रेता ने दास में दोष पाया, तो इस मामले में पक्षकार वही प्रतिबंधित दास होगा। फिर यदि क्रेता ने दास के विरुद्ध गवाह पेश किए, तो वह खरीदा हुआ दास वापस कर सकता है और क्रेता को अधिकार होगा कि वह अपना मूल्य वसूल होने तक बिकी हुई वस्तु (मबीअ) को रोक कर रखे। और यदि प्रतिबंधित दास के पास संपत्ति न हो और उस पर ऋण हो, तो पहले वापस किया गया दास बेचकर उसका मूल्य क्रेता को दिया जाएगा। फिर यदि उसके मूल्य में से कुछ बचा, तो वह प्रतिबंधित दास के लेनदारों को दिया जाएगा। और यदि उसका मूल्य क्रेता के ऋण से कम पड़ा, तो प्रतिबंधित दास के शरीर (रकबा) में यह क्रेता अन्य लेनदारों के साथ भागीदार बना दिया जाएगा। अतः उन सभी के लिए प्रतिबंधित दास को बेचा जाएगा। यदि क्रेता ने अपने मूल्य के लिए दास को नहीं रोका बल्कि उसे प्रतिबंधित दास को सौंप दिया, फिर अपना मूल्य माँगने आया, तो क्रेता को लेनदारों के साथ वापस किए गए दास और प्रतिबंधित दास के शरीर में भागीदार बनाया जाएगा। और यदि क्रेता के पास गवाह न हों और उसने प्रतिबंधित दास से शपथ माँगी, तो काजी (न्यायाधीश) उससे

निश्चित शपथ लेगा कि "ईश्वर की शपथ, मैंने यह दास इस बिक्री के अनुबंध के तहत इस क्रेता को सौंपा था और उस समय इसमें यह दोष नहीं था," यह 'मुहीत' में है। यदि प्रतिबंधित दास ने दोष से इनकार नहीं किया बल्कि काजी के सामने स्वीकार कर लिया, तो यदि वह दोष ऐसा है जो बाद में पैदा नहीं हो सकता, तो काजी वस्तु उसके विक्रेता (प्रतिबंधित दास) को वापस कर देगा। और यदि दोष ऐसा हो जो बाद में भी पैदा हो सकता हो, तो काजी प्रतिबंधित दास के इकबाल (स्वीकृति) के आधार पर उसे वापस नहीं करेगा, परन्तु प्रतिबंधित दास अपनी स्वीकृति के बाद क्रेता का पक्षकार नहीं रहेगा। फिर क्रेता उसके स्वामी से विवाद करेगा और स्वामी के विरुद्ध गवाह पेश करके उसे वापस करेगा, यह 'मुग़नी' में है।

यदि क्रेता के पास उस समय गवाह न हों और उसने स्वामी से शपथ लेनी चाही, तो काजी इस जानकारी पर शपथ लेगा। फिर यदि स्वामी ने शपथ लेने से इनकार (नुकूल) किया या दोष स्वीकार कर लिया, तो वह दास स्वामी को वापस कर दिया जाएगा। फिर उसके बाद देखा जाएगा कि यदि यह दोष ऐसा है जो बाद में पैदा नहीं हो सकता, तो प्रतिबंधित दास के लेनदारों के हक में यह वापसी वैध है। और यदि दोष ऐसा हो जो बाद में भी पैदा हो सकता है और लेनदारों तथा स्वामी ने दास की दोष-स्वीकृति को झुठलाया हो, तो यह वापसी लेनदारों के अलावा दास और स्वामी के हक में सही होगी। और वह वापस किया गया दास बेचकर उसका मूल्य क्रेता को दिया जाएगा। और यदि दूसरा मूल्य पिछले मूल्य से अधिक हुआ, तो जितना अधिक होगा वह लेनदारों को दिया जाएगा, यह 'मुहीत' में है। यदि कम हुआ तो वह दास के शरीर की कीमत में पड़ेगा। फिर जब प्रतिबंधित दास बेचा गया, तो पहले उसके मूल्य से लेनदारों का ऋण चुकाया जाएगा, फिर ऋण अदायगी के बाद यदि कुछ बचा, तो वह क्रेता को दिया जाएगा और यदि कुछ न बचा तो क्रेता को कुछ नहीं (मिलेगा)।

1. मुखसिम: स्पष्ट हो कि 'खस्म' शब्द का प्रयोग मुकदमे के किसी भी एक पक्ष के लिए होता है, चाहे वह वादी (मुद्दई) हो या प्रतिवादी (मुद्दा-अलैह)।

---

تو مشتری ثمن سے بری ہو جائے گا اور اگر ہو تو ثمن سے بری نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر غلام بعد محجور ہونے کے مر گیا تو مولیٰ کو اس کے قرض داروں سے بابت قرضہ کے خصومت کا استحقاق ہے خواہ غلام مقروض ہو یا نہ ہو۔ اور آیا مولیٰ کو اس کے قرضہ وصول کرنے کا اختیار ہے پس اگر غلام پر قرضہ نہ ہو تو اس کے قرضہ پر قبضہ کر سکتا ہے اور اگر قرضہ ہو تو قبضہ نہیں کر سکتا ہے یوں ہی یہ مسئلہ ماذون الاصل میں مذکور ہے اور وکالت الاصل میں لکھا ہے کہ قبضہ کر سکتا ہے اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ اس مسئلہ میں دو روایت مختلف نہیں بلکہ بات یہ ہے کہ جو حکم کتاب الماذون میں لکھا ہے وہ ایسی صورت میں ہے کہ مولیٰ پر وثاقت نہ ہو یعنی ثقہ نہ ہو مگر تقاضا کر سکتا ہے اور جو حکم کتاب الوکالت میں ہے وہ ایسی صورت میں محمول ہے کہ مولیٰ ثقہ ہو اور اگر بعد محجور ہونے کے غلام نہیں مرا لیکن مولیٰ نے اس کو اپنی ملک سے نکال دیا تو اس قرضہ کے وصول میں مولیٰ مخصم ہو گا مگر کیا قبضہ کر سکتا ہے یا نہیں تو اس میں بھی وہی تفصیل ہے جو ہم نے ذکر کی ہے پھر اگر مشتری نے وہ غلام آزاد کر دیا تو غلام بھی مخصم قرار دے دے گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی پس اس نے ایک شخص کے ہاتھ ایک غلام فروخت کیا اور اس شخص مشتری نے اس پر قبضہ کر لیا اور ثمن اس کو دے دیا پھر مولیٰ نے اس کو محجور کر دیا پھر مشتری نے غلام میں عیب پایا تو خصم اس معاملہ میں وہی غلام محجور ہو گا پھر اگر مشتری نے غلام پر گواہ قائم کیے تو غلام خرید کردہ اس کو واپس کر سکتا ہے اور مشتری کو اختیار ہو گا کہ اپنے ثمن وصول کرنے تک مبیع کو روک رکھے اور اگر غلام محجور کے پاس مال نہ ہو اور اس پر قرضہ ہو تو پہلے واپس کیا ہوا غلام فروخت کر کے اس کا

ثمن مشتری کو دیا جائے گا پھر اگر اس کے ثمن میں سے کچھ بچا تو محجور کے قرض خواہوں کو دیا جائے گا اور اگر ثمن اس کا قرضہ مشتری سے کم پڑا تو غلام محجور کے رقبہ میں یہ مشتری اس کے قرض خواہوں کے ساتھ شریک کر دیا جائے گا پس ان سب کے واسطے محجور فروخت کیا جائے گا اور مشتری نے اپنے ثمن کے واسطے غلام کو نہ روکا بلکہ محجور کو دے دیا پھر اپنا ثمن طلب کرنے کے واسطے آیا تو مشتری قرض خواہوں کے ساتھ غلام واپس کردہ اور غلام محجور کے رقبہ میں شریک کیا جائے گا اور اگر مشتری کے پاس گواہ نہ ہوں اس نے محجور سے قسم طلب کی تو قاضی اس سے قطعی قسم لے گا کہ واللہ میں نے یہ غلام محکم اس بیع کے اس مشتری کو سپرد کیا اور حالانکہ اس میں یہ عیب نہ تھا یہ محیط میں ہے۔ اگر محجور نے عیب سے انکار نہ کیا بلکہ قاضی کے سامنے اقرار کر دیا پس اگر وہ عیب ایسا ہو کہ ویسا عیب حادث نہیں ہوتا ہے تو قاضی مبیع اس کے بائع محجور کو واپس کر دے گا اور اگر اس کے مثل حادث ہو سکتا ہو تو قاضی محجور کے اقرار سے اس کو واپس نہ دے گا مگر غلام محجور اپنے اقرار کے بعد مشتری کا مخصم باقی نہ رہے گا پھر مشتری اس کے مولیٰ سے مخاصمہ کر کے مولیٰ پر گواہ قائم کر کے اس کو واپس دے گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر مشتری کے پاس اس وقت میں گواہ نہ ہوں اور اس نے مولیٰ سے قسم لینی چاہی تو قاضی اس علم پر قسم لے گا پس اگر مولیٰ نے قسم سے نکول کیا یا عیب کا اقرار کر دیا تو مولیٰ کو وہ غلام واپس دیا جائے گا پھر اس کے بعد دیکھا جائے گا کہ یہ عیب اگر ایسا ہے کہ حادث نہیں ہو سکتا ہے تو محجور کے قرض خواہوں کے حق میں یہ واپسی جائز ہے اور اگر ایسا عیب ہو کہ اس کے مثل حادث ہو سکتا ہے اور محجور کے قرض خواہوں اور مولیٰ نے غلام کے اقرار عیب کی تکذیب کی ہو تو یہ واپسی سوائے قرض خواہوں کے غلام و مولیٰ کے حق میں صحیح ہوگی اور وہ غلام واپس شدہ فروخت کر کے اس کا ثمن مشتری کو دیا جائے گا اور اگر دوسرا ثمن بنسبت ثمن

سابق کے زیادہ ہوا تو جس قدر زیادہ ہو وہ قرض خواہوں کو دیا جائے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر کم ہوا تو مٹی کے رقبہ میں پڑے گی پھر جب محجور فروخت کیا گیا تو پہلے اس کے ثمن سے قرض خواہوں کا قرضہ ادا کیا جائے گا پھر بعد ادائے قرض کے اگر کچھ باقی رہا تو وہ مشتری کو دیا جائے گا اور اگر کچھ نہ بچا تو مشتری کو کچھ نہ (ملے گا)۔

۱- مخصم واضح ہو کہ خصم کا اطلاق مطلقاً ایک فریق مقدمہ پر ہے خواہ مدعی ہو یا مدعا علیہ ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 70 | Kitab al-Ma'dhun**

...will be obtained. If there is no debt upon the *Mahjur* (restricted slave), the debt of the purchaser shall be upon the persons of both the returned slave and the *Mahjur*, as both can be sold for its price. If the master has taken an oath during the court proceedings, then the sold slave shall not be returned to him. However, when the restricted slave becomes free, the sold slave shall be returned due to the acknowledgment of a defect, as stated in *Al-Mughni*.

**Chapter: Regarding the Admissibility of Testimony Against a Permitted Slave (*Ma'dhun*), a Restricted Slave (*Mahjur*), a Minor, and a Mentally Impaired Person (*Ma'tuh*)**

It should be clear that in matters pertaining to trade, the *Ma'dhun* (permitted slave) shall be considered the adversary (party to the suit), and testimony against him shall be acceptable, and the presence of the master is not necessary; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If two witnesses testify against a *Ma'dhun* that he usurped an object, or destroyed a trust, or has denied it, or if they testify that he acknowledged actions concerning which testimony of purchase, sale, or lease was given while the slave denies it and the master is absent, then such testimony against the *Ma'dhun* shall be acceptable and the judge shall issue a decree. In such a situation, if instead of a *Ma'dhun* it were a *Mahjur* slave, and in the absence of the master, two witnesses testified against him for destruction of property or usurpation, the testimony would not be accepted and no decree would be issued against the restricted slave. The elders have explained the meaning of this as: testimony shall not be accepted for a judgment that relates to the right of the master, i.e., the slave shall not be sold, but it shall be accepted for a right that pertains to the slave himself. Therefore, after the right is established, he shall be held accountable. And just as the presence of the master is a condition here, the presence of the slave is also a condition; this is in *Al-Mughni*. If witnesses testify against a restricted slave regarding usurpation or destruction of a trust, and if they testify to having witnessed the act rather than the slave's acknowledgment of his own act, then the testimony shall be accepted. However, the decree for usurpation shall only be issued when the master is present, and the decree for liability for destruction of a trust or *Mudarabah* (partnership) shall not be issued until he is set free; this is the opinion of Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, as stated in *Fatawa Qazi Khan*.

If both witnesses testify that the restricted slave acknowledged such an act, whether the master is present or absent, no decree shall be issued against either of them until the slave is free. Then, at the time he becomes free, he shall be liable for the property concerning which the testimony was given. If witnesses testify against him for intentional murder, or slander (*Qadhf-i-Hisn*), or adultery, or drinking wine, while the slave denies it, then according to Imam Azam and Imam Muhammad, such testimony shall not be accepted in the absence of the master. If testimony is given that the slave acknowledged such acts but the master is absent, then for those acts where retracting an acknowledgment is effective, this testimony shall not be accepted. But for acts where retraction is not effective, such as *Qisas* (retaliation) and *Hadd al-Qadhf* (the penalty for slander), the testimony shall be accepted; this is in *Al-Mughni*. A minor boy who has been permitted to trade by his father or his father's executor is in the same position as a permitted slave; testimony concerning trade-related liability against him shall be accepted even if the permitter is absent. The same rule applies to a mentally impaired permitted person, as stated in *Al-Muhit*. If witnesses testify against a permitted minor or a permitted mentally impaired person regarding intentional murder, slander, wine-drinking, or adultery, then in the cases of slander, wine-drinking, and adultery, their testimony shall not be accepted even if the permitter is present. In the case of murder, if the permitter is present, the testimony shall be accepted and the decree shall be issued against his supporting tribe (*Aqilah*), but if he is absent, the testimony shall not be accepted. If witnesses testify that this permitted slave, or mentally impaired person, or permitted boy acknowledged any of these acts, the testimony shall not be accepted whether the permitter is present or absent, as stated in *Al-Dhakhirah*. If witnesses [testified against] a *Ma'dhun* regarding ten... (Footnote: 1. *Qadhf-i-Hisn* means accusing a married person of adultery; wine-drinking; stolen property).

प्राप्त होगा और यदि महजूर (प्रतिबंधित दास) पर कोई ऋण न हो, तो खरीदार का ऋण उस दास और महजूर दोनों की गर्दन पर होगा, क्योंकि दोनों को उसकी कीमत चुकाने के लिए बेचा जा सकता है। और यदि मुकदमे के फैसले में मालिक ने शपथ ले ली हो, तो बेचे गए दास को उसे वापस नहीं किया जाएगा, लेकिन जब महजूर दास आज़ाद हो जाए, तब उसके बेचे गए दास को दोष की स्वीकारोक्ति के कारण वापस किया जाएगा, जैसा कि अल-मुग़नी में उल्लेखित है।

## अध्याय संख्या: माज़ून (व्यापार हेतु अनुमत दास), महजूर, नाबालिग और मंदबुद्धि पर गवाही के विवरण में

स्पष्ट हो कि जो चीज़ व्यापार की श्रेणी में आती है, उसमें माज़ून को प्रतिपक्षी माना जाएगा और उस पर गवाही स्वीकार्य होगी, और मालिक की उपस्थिति अनिवार्य नहीं है; यह फ़तावा काज़ी खान में है। यदि दो गवाहों ने माज़ून के विरुद्ध गवाही दी कि उसने यह चीज़ छीन ली है या अमानत नष्ट कर दी है या मुकर गया है, या इस प्रकार गवाही दी कि उसने ऐसे कार्यों को स्वीकार किया है जिनकी गवाही खरीद-बिक्री या किराये पर दी गई है, जबकि दास इनकार करता है और मालिक अनुपस्थित है, तो माज़ून पर ऐसी गवाही स्वीकार्य होगी और काज़ी उस पर आदेश देगा। और यदि ऐसी स्थिति में माज़ून के स्थान पर दास महजूर हो और मालिक की अनुपस्थिति में दो गवाहों ने उस पर धन नष्ट करने या छीनने की गवाही दी, तो गवाही स्वीकार नहीं होगी और महजूर दास पर आदेश नहीं दिया जाएगा। विद्वानों ने इसका अर्थ यह बताया है कि ऐसे आदेश के लिए गवाही स्वीकार नहीं होगी जो मालिक के अधिकार से संबंधित हो, अर्थात दास को बेचा नहीं जाएगा, लेकिन ऐसे अधिकार के लिए जो स्वयं दास से संबंधित हो, स्वीकार्य होगी, अतः अधिकार सिद्ध होने के बाद उससे जवाबदेही ली जाएगी। और जैसा कि यहाँ मालिक की उपस्थिति शर्त है, वैसे ही दास की उपस्थिति भी शर्त है, यह अल-मुग़नी में है। यदि गवाहों ने किसी महजूर दास पर ज़बरदस्ती कब्ज़े या अमानत नष्ट करने की गवाही दी, और यदि गवाहों ने प्रत्यक्ष देखने की गवाही दी न कि उस महजूर के स्वयं के कृत्य स्वीकारने की, तो गवाही स्वीकार्य होगी, लेकिन ज़बरदस्ती कब्ज़े का आदेश तभी होगा जब मालिक उपस्थित हो। अमानत के विनाश और मुज़ारबत (साझा व्यापार) के हर्जाने का आदेश तब तक नहीं होगा जब तक वह आज़ाद न हो जाए; यह इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद का विचार है और यह फ़तावा काज़ी खान में है।

यदि दोनों गवाहों ने यह गवाही दी कि महजूर ने ऐसे कृत्य को स्वीकार किया है और मालिक उपस्थित या अनुपस्थित है, तो उनमें से किसी पर भी आदेश तब तक नहीं होगा जब तक दास आज़ाद न हो जाए। फिर जब वह आज़ाद होगा, तब उस पर वह धन अनिवार्य होगा जिसकी गवाही दी गई थी। यदि गवाहों ने उस पर जानबूझकर हत्या, शादीशुदा पर बदनामी (क़ज़्फ़-ए-हिस्न), व्यभिचार या शराब पीने की गवाही दी, जबकि दास इनकार करता है, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार मालिक की अनुपस्थिति में ऐसी गवाही स्वीकार नहीं होगी। यदि गवाही दी गई कि दास ने ऐसे कृत्यों को स्वीकार किया है लेकिन मालिक अनुपस्थित है, तो जिन कार्यों में स्वीकारोक्ति से मुकरना प्रभावी होता है, उनमें यह गवाही स्वीकार नहीं होगी, और जिनमें स्वीकारोक्ति से मुकरना प्रभावी नहीं है, जैसे कि किसास (बदला) और बदनामी की सजा (हद-ए-क़ज़्फ़), उनमें यह गवाही स्वीकार्य होगी; यह अल-मुग़नी में है। वह नाबालिग लड़का जिसे उसके पिता या पिता के वसीयतदार ने व्यापार की अनुमति दी हो, वह माज़ून दास के समान है, उस पर व्यापारिक हर्जाने की गवाही स्वीकार्य होगी चाहे अनुमति देने वाला अनुपस्थित हो। मंदबुद्धि माज़ून के लिए भी यही आदेश है, यह अल-मुहीत में है। यदि गवाहों ने नाबालिग माज़ून या मंदबुद्धि माज़ून पर जानबूझकर हत्या, बदनामी, शराबखोरी या व्यभिचार की गवाही दी, तो बदनामी, शराबखोरी और व्यभिचार में उनकी गवाही स्वीकार नहीं होगी चाहे अनुमति देने वाला उपस्थित हो। हत्या के मामले में यदि अनुमति देने वाला उपस्थित हो तो गवाही स्वीकार कर ली जाएगी और उसकी सहायक बिरादरी (आक़िला) पर हर्जाने का आदेश होगा, और यदि वह अनुपस्थित हो तो गवाही स्वीकार नहीं होगी। यदि गवाहों ने यह गवाही दी कि इस माज़ून दास, मंदबुद्धि या माज़ून लड़के ने इनमें से किसी कृत्य को स्वीकार किया है, तो गवाही स्वीकार नहीं होगी चाहे अनुमति देने वाला उपस्थित हो या अनुपस्थित, जैसा कि अल-ज़खीरा में है। यदि गवाहों ने माज़ून पर दस... (पाद-टिप्पणी: 1. क़ज़्फ़-ए-हिस्न अर्थात विवाहित पर व्यभिचार का आरोप लगाना, शराब पीना, चोरी का धन)।

---

ملے گا اور اگر محجور پر قرضہ نہ ہو تو مشتری کا قرضہ اس غلام واپس شدہ و محجور دونوں کی گردن پر ہوگا کہ دونوں اس کے ثمن کے واسطے فروخت کیے جاسکتے ہیں اور اگر فیصلہ مقدمہ میں مولیٰ نے قسم کھالی ہو تو پھر غلام مبیع اس کو واپس نہ دیا جائے گا مگر جب غلام محجور آزاد ہو جائے تب اس کا غلام مبیع بوجہ اقرار عیب کے اس کو واپس دیا جائے گا کذا فی المغنی۔

**باب نمبر: غلام ماذون و محجور و نابالغ و معتوہ پر گواہی واقع ہونے کے بیان میں**

واضح ہو کہ جو چیز از قسم تجارت ہے اس میں ماذون خصم قرار دیا جائے گا اور اس پر گواہی مقبول ہوگی اور مولیٰ کا موجود ہونا معتبر نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر دو گواہوں نے ماذون پر گواہی دی کہ اس نے یہ چیز غصب کرلی یا یہ ودیعت تلف کردی یا منکر ہو گیا ہے یا یوں گواہی دی کہ اس نے ایسے افعال کا اقرار کیا ہے جو اس پر خرید یا فروخت یا اجارہ کی گواہی دی حالانکہ غلام منکر ہے اور مولیٰ غائب ہے تو ماذون پر ایسی گواہی مقبول ہوگی اور قاضی اس پر ڈگری کرے گا اور اگر ایسی صورت میں بجائے ماذون کے غلام محجور ہو اور مولیٰ کے غائب ہونے کی حالت میں دو گواہوں نے اس پر استہلاک مال یا غصب کی گواہی دی تو گواہی قبول نہ ہوگی اور غلام محجور پر ڈگری نہ ہوگی اور مشائخ نے اس کے معنی یہ بیان فرمائے ہیں کہ ایسے حکم کے واسطے گواہی قبول نہ ہوگی جو متعلق بحق مولیٰ ہو یعنی غلام فروخت نہ کیا جائے گا مگر ایسے حق کے واسطے جو غلام ہی کی طرف راجع ہو قبول ہوگی پس بعد حق کے اس سے مواخذہ کیا جائے گا اور جیسا کہ مولیٰ کا حاضر ہونا یہاں شرط ہے ایسے ہی

غلام کا حاضر ہونا بھی شرط ہے یہ مغنی میں ہے۔ اگر گواہوں نے کسی غلام محجور پر غصب یا اتلاف ودیعت کی گواہی دی پس اگر گواہوں نے معائنہ کی گواہی دی اس محجور کے اپنے فعل کے اقرار کی گواہی نہ دی تو اس پر گواہی مقبول ہوگی مگر غصب کی ڈگری اس وقت ہو گی جب مولیٰ حاضر ہو اور اتلاف ودیعت و مضاربت کی ضمان کی ڈگری نہ ہوگی جب تک کہ آزاد نہ ہو جائے یہ امام اعظم و امام محمد کا قول ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر دونوں گواہوں نے یوں گواہی دی کہ محجور نے ایسے فعل کا اقرار کیا ہے اور مولیٰ حاضر ہے یا غائب ہے تو ان میں سے کسی کی ڈگری نہ ہوگی تا وقتیکہ غلام آزاد نہ ہو جائے پھر جس وقت آزاد ہوا اس وقت اس پر وہ مال لازم ہو گا جس کی گواہی دی تھی۔ گواہوں نے اس پر قتل عمد یا قذف ۱ حصن یا زنا یا شراب خمر کی گواہی دی حالانکہ غلام انکار کرتا ہے تو امام اعظم و امام محمد کے نزدیک مولیٰ کی غیبت میں اس پر ایسی گواہی قبول نہ ہوگی۔ اگر یوں گواہی دی کہ غلام نے ایسے افعال کا اقرار کیا ہے مگر مولیٰ غائب ہے تو جن افعال میں اقرار سے رجوع کرنا کارآمد ہوتا ہے ان میں یہ گواہی مقبول نہ ہوگی اور جن میں اقرار سے رجوع کرنا کارآمد نہیں ہے جیسے قصاص و حد القذف تو ان میں یہ گواہی مقبول ہو گی یہ مغنی میں ہے۔ جو نا بالغ لڑکا کہ اس کے باپ یا باپ کے وصی نے تجارت کی اجازت دی وہ بمنزلہ غلام ماذون کے ہے کہ اس پر ضمان تجارت کی گواہی مقبول ہو گی اگرچہ اجازت دہندہ غائب ہو اور معتوہ ماذون میں بھی یہی حکم ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر گواہوں نے نابالغ ماذون یا معتوہ ماذون پر قتل عمد یا قذف یا شراب خواری یا زنا کی گواہی دی پس قذف و شراب خواری و زنا میں ان کی گواہی قبول نہ ہو گی اگر چہ اجازت دہندہ حاضر ہو اور قتل میں اگر اجازت دہندہ حاضر ہو تو گواہی قبول ہو کر اس کی مدد گار برادری پر ڈگری ہو گی اور اگر غائب ہو تو گواہی قبول نہ ہوگی اور اگر گواہوں نے یہ گواہی دی کہ اس ماذون غلام یا معتوہ یا ماذون لڑکے نے ان میں سے کسی فعل کا اقرار کیا ہے تو گواہی

قبول نہ ہوگی خواہ اجازت دہندہ حاضر ہو یا غائب ہو کذا فی الذخیرہ۔ اگر گواہوں نے ماذون پر دس

۱ قذف حصن یعنی بیاہے توڑنا کی تہمت دینا شراب خمر شراب پینا مال مسروق چوری کا مال۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 71 Book of the Authorized (Ma'dhun) Slave**

Testimony was given regarding the theft of ten dirhams or more, and he [the slave] denies it. If his master is present, then by unanimous agreement of all Imams, his hand shall be amputated. If the master is absent, the slave shall be liable for the stolen property. According to Imam Azam [Abu Hanifa] and Imam Muhammad, his hand shall not be amputated [in the master's absence]; this is as stated in Al-Mughni. If testimony is given regarding theft of less than ten dirhams, the testimony shall be accepted whether the master is present or absent; this is in Fatawa Qazi Khan.

**Meaning of "Not Issuing a Property Decree"** ☆

If witnesses testified that he confessed to stealing ten dirhams or more, and the authorized slave (Ma'dhun) denies it, the judge shall decree an indemnity amount against him but shall not amputate his hand, even if the master is present; this is in Al-Mughni. If testimony is given against a restrained slave (Mahjur) for stealing ten dirhams while he denies it, the judge shall not issue any decree until his master is present. Then, in the presence of the master, the judge shall decree the amputation of the hand and the return of the specific stolen property, provided the property itself exists, and shall not decree for replacement value (tawan). If witnesses testified to a restrained slave's confession of stealing ten or more dirhams, the judge shall not accept such testimony and shall not decree amputation or property liability, even if the master is present. "Not decreeing for property" means he will not issue a decree concerning the master's right, such that the slave is not sold for that property, but after emancipation, he will be held accountable for it; this is in Al-Muhit. Testimony for ten dirhams theft against a minor Ma'dhun or mentally impaired person will be accepted even if the authorized person (guardian) is absent. If witnesses testify to their confession of theft, it will not be accepted at all; this is in Fatawa Qazi Khan. If a Muslim has authorized his slave for trade and he buys wine or pork, it is valid whether he has debts or not. If he buys carrion or blood, or engages in usury (riba) with a non-Muslim (Kafir), it is void. If two non-Muslims testify against him regarding usurpation (ghasb), consumed deposit, sale, or lease, or testify that he confessed to such acts, even though he and his master deny it, the testimony is valid by 'Istihsan' (legal preference).

Similarly, if a minor non-Muslim is authorized for trade by his Muslim guardian or paternal grandfather, the ruling is the same. If the authorized slave is a Muslim and his master is a non-Muslim, the testimony of non-Muslims against him for any of

these acts will not be valid even if he has no debts. If two non-Muslims testify against a non-Muslim restrained slave regarding usurpation, and his master is a Muslim, the testimony is void; but if the master is a non-Muslim, the testimony is valid. If a Muslim authorized his slave for trade and two non-Muslims testified against him for accidental or intentional homicide, or for drinking wine, or for slander (qadhf), or if four non-Muslims testified against him for adultery (zina), while he and his master deny it, the testimony will be void. Similarly, if the slave is a Muslim and the master is a non-Muslim, the ruling is the same. If a Muslim authorized his non-Muslim slave for trade and two non-Muslims testified against him for stealing ten dirhams or less, a decree for the indemnity of the stolen property will be issued, but not for amputation of the hand, whether the master is present or absent. If the slave is a Muslim and the master is a non-Muslim, the testimony is void. If a Muslim authorized his non-Muslim slave for trade, then two non-Muslims testified against him on behalf of a non-Muslim or Muslim for a debt of a thousand dirhams, and the Ma'dhun denies it, and there is also a thousand dirham debt to a Muslim or non-Muslim, the testimony will be valid even if the first creditor is a Muslim. (If the owner of the first debt is a non-Muslim, judgment is for both debts). If the slave is a Muslim, then the Ma'dhun and whatever he possesses will first be sold for the [Muslim's] debt, and that creditor will receive his debt in full. Then, if anything remains, it will be given to the other creditor for whom two non-Muslims testified. If two Muslims claimed a thousand dirhams each against him, and two Muslims testified for one and two non-Muslims testified for the other, the judge will decree for both, but the debt for which two Muslims testified will be paid first. Then, if anything remains, the other will receive it.

1. The phrase "if he is..." in the original is mentioned exactly like this here, but it seems some part of the text was omitted by the scribe or a letter was dropped. The point is that if the first creditor is a non-Muslim, the ruling for both debts will be applied. This matter is subject to reflection.

दस दिरहम या उससे अधिक की चोरी की गवाही दी गई और वह इनकार करता है। यदि उसका स्वामी (मौली) उपस्थित है, तो सभी इमामों की सर्वसम्मति से उसका हाथ काट दिया जाएगा, और यदि वह अनुपस्थित है, तो वह चोरी के माल का उत्तरदायी (ज़ामिन) होगा। इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार [स्वामी की अनुपस्थिति में] उसका हाथ नहीं काटा जाएगा; ऐसा 'अल-मुग़नी' में वर्णित है। यदि दस दिरहम से कम की चोरी की गवाही दी गई हो, तो गवाही स्वीकार की जाएगी, चाहे स्वामी उपस्थित हो या अनुपस्थित; यह 'फ़तवा क़ाज़ी ख़ान' में है।

## माल की डिक्री न करने का अर्थ ☆

यदि गवाहों ने गवाही दी कि उसने दस दिरहम या उससे अधिक की चोरी का इक़रार (स्वीकारोक्ति) किया है और मअज़ून (व्यापार हेतु अधिकृत गुलाम) इनकार करता है, तो क़ाज़ी उस पर हर्जाने (ज़मानत) की डिक्री करेगा, हाथ नहीं काटेगा, भले ही स्वामी उपस्थित हो; यह 'मुग़नी' में है। यदि महजूर (अनाधिकृत गुलाम) पर दस दिरहम की चोरी की गवाही दी जाए जबकि वह इनकार करता है, तो क़ाज़ी तब तक कोई डिक्री नहीं देगा जब तक उसका स्वामी उपस्थित न हो। फिर स्वामी की उपस्थिति में हाथ काटने और मूल चोरी की संपत्ति वापस करने की डिक्री देगा, बशर्ते कि वह संपत्ति स्वयं मौजूद हो, और वह हर्जाने की डिक्री नहीं देगा। यदि गवाहों ने महजूर द्वारा दस दिरहम या उससे अधिक की चोरी के इक़रार पर गवाही दी, तो क़ाज़ी ऐसी गवाही स्वीकार नहीं करेगा और न ही हाथ काटने या संपत्ति की डिक्री देगा, भले ही स्वामी उपस्थित हो। संपत्ति की डिक्री न करने का अर्थ यह है कि वह स्वामी के अधिकार के संदर्भ में डिक्री नहीं देगा ताकि उस संपत्ति की भरपाई के लिए गुलाम को बेचा न जाए, लेकिन आज़ादी के बाद उससे उस माल की जवाबदेही ली जाएगी; यह 'मुहीत' में है। एक नाबालिग मअज़ून या विक्षिप्त व्यक्ति पर दस दिरहम चोरी की गवाही स्वीकार की जाएगी, भले ही संरक्षक (इजाज़त देने वाला) अनुपस्थित हो। यदि उनके चोरी के इक़रार पर गवाही दी गई हो, तो वह बिल्कुल स्वीकार्य नहीं होगी; यह 'फ़तवा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि एक मुसलमान ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और उसने शराब या सूअर खरीदा, तो यह वैध है, चाहे उस पर ऋण हो या न हो। यदि उसने मुर्दार (शव) या रक्त खरीदा, या किसी काफ़िर के साथ सूद (रिबा) का लेन-देन किया, तो वह बातिल (अमान्य) है। यदि उस पर दो काफ़िरों ने ग़सब (अवैध कब्ज़ा), नष्ट की गई अमानत, बिक्री या किराए की गवाही दी, या यह गवाही दी कि उसने ऐसे कार्यों का इक़रार

किया है, जबकि वह और उसका स्वामी इनकार कर रहे हैं, तो इस्तेहसान (विधिक वरीयता) के आधार पर दोनों की गवाही जायज़ है।

इसी तरह, यदि किसी नाबालिग काफ़िर को उसके मुस्लिम वसीय (संरक्षक) या सगे दादा ने व्यापार की अनुमति दी हो, तो यही नियम लागू होगा। यदि मअज़ून गुलाम मुसलमान है और उसका स्वामी काफ़िर है, तो इन कार्यों में से किसी भी कार्य पर काफ़िरों की गवाही उस पर मान्य नहीं होगी, चाहे उस पर ऋण न भी हो। यदि दो काफ़िरों ने एक महजूर काफ़िर पर ग़सब की गवाही दी और उसका स्वामी मुसलमान है, तो गवाही बातिल होगी; और यदि स्वामी काफ़िर है, तो गवाही जायज़ होगी। यदि एक मुसलमान ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और उस पर दो काफ़िरों ने गलती से या जानबूझकर हत्या, शराब पीने, या क़ज़्फ़ (बदचलनी का आरोप) की गवाही दी, या चार काफ़िरों ने उस पर ज़िना (व्यभिचार) की गवाही दी, जबकि वह और उसका स्वामी इनकार कर रहे हैं, तो गवाही बातिल होगी। इसी तरह, यदि गुलाम मुसलमान और स्वामी काफ़िर हो, तो भी यही हुक्म है। यदि एक मुसलमान ने अपने काफ़िर गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और उस पर दो काफ़िरों ने दस दिरहम या उससे कम की चोरी की गवाही दी, तो उस पर चोरी के माल के हर्जाने की डिक्री होगी, हाथ काटने की नहीं, चाहे स्वामी उपस्थित हो या अनुपस्थित। यदि गुलाम मुसलमान और स्वामी काफ़िर हो, तो गवाही बातिल होगी। यदि एक मुसलमान ने अपने काफ़िर गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर उस पर दो काफ़िरों ने किसी काफ़िर या मुसलमान की ओर से एक हज़ार दिरहम के ऋण की गवाही दी और मअज़ून इससे इनकार करता है, और उस पर किसी मुसलमान या काफ़िर का पहले से एक हज़ार दिरहम का ऋण भी है, तो गवाही जायज़ होगी भले ही पहला लेनदार मुसलमान हो। (यदि पहले ऋण का स्वामी काफ़िर हो, तो दोनों ऋणों का निर्णय होगा)। और यदि वह मुसलमान है, तो मअज़ून और जो कुछ उसके पास है, उसे पहले [मुस्लिम के] ऋण के भुगतान हेतु बेचा जाएगा और वह लेनदार अपना पूरा ऋण प्राप्त करेगा। फिर यदि कुछ शेष रहा, तो वह दूसरे लेनदार को दिया जाएगा जिसके लिए दो काफ़िरों ने गवाही दी थी। यदि उस पर दो मुसलमानों में से प्रत्येक ने एक हज़ार दिरहम का दावा किया, और एक के लिए दो मुसलमानों ने और दूसरे के लिए दो काफ़िरों ने गवाही दी, तो क़ाज़ी दोनों की डिक्री करेगा, लेकिन पहले उसका ऋण दिया जाएगा जिसके लिए दो मुसलमानों ने गवाही दी है; फिर यदि कुछ बचा तो वह दूसरे को मिलेगा।

1. शब्द "फ़न काना (यदि हो...)" मूल पाठ में इसी प्रकार उल्लेखित है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि लिपिक द्वारा कुछ अंश छूट गया है या अक्षर गिर गया है। सार यह है कि यदि पहला लेनदार काफ़िर हो तो दोनों ऋणों का नियम लागू होगा। यह मामला विचारणीय है।

درہم یا زیادہ کی چوری کی گواہی دی اور وہ منکر ہے پس اگر اس کا مولیٰ حاضر ہو بالاتفاق سب ائمہ کے نزدیک اس کا ہاتھ کاٹا جائے گا اور اگر غائب ہو تو مال مسروق کا ضامن ہوگا اور امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک اس کا ہاتھ نہ کاٹا جائے گا کذا فی المغنی۔ اگر دس درہم سے کم کی چوری پر گواہی دی ہو تو گواہی قبول ہوگی خواہ مولیٰ حاضر ہو یا غائب ہو یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

**مال کی ڈگری نہ کرنے سے مراد ☆**

اگر گواہوں نے یوں گواہی دی کہ اس نے دس درہم یا زیادہ کی چوری کا اقرار کیا ہے اور ماذون انکار کرتا ہے تو قاضی اس پر اس قدر مال ضمان کی ڈگری کرے گا ہاتھ نہ کاٹے گا اگرچہ مولیٰ حاضر ہو یہ مغنی میں ہے۔ اگر غلام محجور پر دس درہم کی چوری کی گواہی دی حالانکہ وہ منکر ہے تو قاضی اس پر کچھ ڈگری نہ کرے گا جب تک کہ اس کا مولیٰ حاضر نہ ہو پھر مولیٰ کے سامنے ہاتھ کاٹنے اور مال عین واپس کرنے کی ڈگری کرے گا بشرطیکہ مال مسروق بعینہ قائم ہو اور تاوان کی ڈگری نہ کرے گا اور اگر گواہوں نے محجور کے دس درہم یا زیادہ کی چوری کا اقرار کرنے پر گواہی دی تو قاضی ایسی گواہی قبول نہ کرے گا اور اس پر ہاتھ کاٹنے کی یا مال کی ڈگری نہ کرے گا اگر چہ مولیٰ حاضر ہو۔ مال کی ڈگری نہ کرنے سے یہ مراد ہے کہ حق مولیٰ میں ڈگری نہ کرے گا حتیٰ کہ وہ اس مال کے واسطے فروخت نہ کیا جائے گا مگر بعد آزادی کے اس سے اس مال کا مواخذہ کیا جائے گا یہ محیط میں ہے۔ نابالغ ماذون و معتوہ پر دس درہم چوری کی گواہی مقبول ہوگی اگر چہ اجازت دہندہ غائب ہو۔ اگر ان دونوں کے اقرار سرقہ

پر گواہی دی ہو تو اصلا مقبول نہ ہوگی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر مسلمان نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی اس نے شراب یا سور خریدے تو جائز ہے خواہ اس پر قرضہ ہو یا نہ ہو اگر مردار یا خون خریدا یا کسی کافر کے ساتھ ربوا کا معاملہ کیا تو باطل ہے اور اس پر دو کافروں نے غصب یا ودیعت مستہلکہ یا بیع یا اجارہ کی گواہی دی یا یوں گواہی دی کہ اس نے ایسے افعال کا اقرار کیا ہے حالانکہ وہ اور اس کا مولیٰ اس سے منکر ہیں تو دونوں کی گواہی استحسانا جائز ہے۔

اسی طرح اگر نابالغ کافر کو اس کے وصی مسلم یا سگے دادا نے تجارت کی اجازت دی ہو تو ایسی صورت میں یہی حکم ہے۔ اگر غلام ماذون مسلمان ہو اور اس کا مولیٰ کافر ہو تو کافروں کی گواہی اس پر کسی فعل پر ان افعال میں سے جائز نہ ہوگی اگر چہ اس پر قرضہ نہ ہو اور اگر دو کافروں نے محجور کافر پر غصب کی گواہی دی اور اس کا مولیٰ مسلمان ہے تو گواہی باطل ہوگی اور اگر مولیٰ کافر ہو تو گواہی جائز ہوگی۔ اگر مسلمان نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی اور اس پر دو کافروں نے خطا سے یا عمد قتل کی یا شراب خمر یا قذف کی گواہی دی یا چار کافروں نے اس پر زنا کی گواہی دی حالانکہ وہ اور اس کا مولیٰ اس سے منکر ہیں تو گواہی باطل ہوگی۔ اسی طرح اگر غلام مسلمان اور مولیٰ کافر ہو تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر مسلمان نے اپنے غلام کافر کو تجارت کی اجازت دی اور اس پر دو کافروں نے دس درہم یا کم کی چوری کی گواہی دی تو اس پر تاوان مال مسروق کی ڈگری ہوگی ہاتھ کاٹنے کی نہ ہوگی خواہ مولیٰ حاضر ہو یا غائب ہو اور اگر غلام مسلمان اور مولیٰ کافر ہو تو گواہی باطل ہوگی اور اگر مسلمان نے اپنے غلام کافر کو تجارت کی اجازت دی پھر اس پر دو کافروں نے کسی کافر یا مسلمان کی طرف سے ہزار درہم کی گواہی دی اور ماذون اس سے منکر ہے اور اس پر کسی مسلمان یا کافر کا ہزار درہم قرضہ بھی ہے تو گواہی جائز ہوگی اگرچہ پہلا قرض خواہ مسلمان ہو۔ (فان کان صاحب الدین الاول

کافرا فالدینین) اور اگر مسلمان ہو تو ماذون اور جو کچھ اس کے پاس ہے پہلے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور وہ قرض خواہ اپنا قرضہ تمام و کمال وصول کرلے گا پھر اگر کچھ باقی رہا تو دوسرے قرض خواہ کو جس کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی دیا جائے گا۔ اگر اس پر دو مسلمانوں نے ہر ایک نے ہزار درہم کا دعویٰ کیا پس ایک کے واسطے دو مسلمانوں نے اور دوسرے کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی تو قاضی دونوں کی ڈگری کرے گا مگر پہلے اس کا قرضہ دیا جائے گا جس کے واسطے دو مسلمانوں نے گواہی دی ہے پھر اگر کچھ باقی رہا تو اس کو ملے گا۔

۱۔ قولہ فان کان اصل میں یہ عبارت اسی طرح یہاں مذکور ہے اور کاتب سے کچھ عبارت ساقط ہوگئی یا حرف ہوگئی اور غایت یہ کہ اگر پہلا قرض خواہ کافر ہو تو دونوں قرضوں کا حکم ہوگا۔ وفیہ ما فیہ تامل۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 72 Kitab al-Ma’dhun**

For whomever two infidels (kafirs) have testified. If the slave confirms the debt for which the two kafirs testified, both creditors shall share in his earnings and the price of his neck (the slave’s sale value); this is mentioned in *Al-Mabsut*.

If two kafirs testify for a Muslim and two Muslims testify for a kafir, both creditors shall share and receive payment. If there are three creditors: two Muslims and one kafir; then if two Muslims testify for the kafir, two kafirs testify for one Muslim, and two Muslims testify for the other, and the slave is sold, then the debts of those two for whom Muslims testified shall be paid first, and they shall divide it equally between them. Then, whatever the kafir creditor has received shall be combined with the share of the Muslim whose witnesses are kafirs and divided half-and-half between them; this is in *Al-Mughni*. Then the Muslim shall have the option to take from the one for whom the kafirs testified. If one of the creditors is a Muslim for whom two kafirs testified and the remaining two are kafirs for each of whom two kafirs testified, the Muslim's debt shall be paid first, then if anything remains, it shall be divided half-and-half between the two kafirs. If the slave is a Muslim and the master is a kafir, and among two creditors, one is a Muslim for whom two kafirs testified and one is a kafir for whom two Muslims testified, and the slave denies the debt, the Judge (Qazi) shall nullify the claim of the Muslim whose witnesses are kafirs, and the slave shall be sold for the other creditor who will recover his full debt from the price. If any balance remains from the price, it shall go to his master. Similarly, if in this case the slave is *mahjur* (prohibited from trading), the ruling remains the same; this is in *Al-Mabsut*. If the master is a Muslim and the slave is a kafir and *mahjur*, and two kafir witnesses testify for a Muslim regarding the wrongful seizure (*ghasb*) of a thousand dirhams and two Muslims testify for a kafir regarding the seizure of a thousand dirhams, then a decree of a thousand dirhams shall be issued for the kafir, and the Muslim shall then become his partner in it, and the rest of the Muslim's debt remains upon the slave to be recovered after he is manumitted; this is in *Al-Mughni*.

If a Muslim grants permission to his kafir slave to trade, then two kafirs testify for a Muslim or a kafir regarding a debt of a thousand dirhams due to acknowledgment or seizure, and the Qazi issues a decree and sells the slave for a thousand dirhams and pays the creditor. Then another claimant creditor claims that a thousand dirhams were owed to him before the slave was sold. If this claimant provides two Muslim witnesses, the Qazi shall take back the thousand dirhams from the first creditor for

whom two kafirs testified and give them to the second creditor whose witnesses are Muslims. If the second creditor is a kafir, he shall take half of what the first one received. If the first is a kafir but his witnesses are Muslims and the second is a Muslim or kafir but his witnesses are kafirs, he shall take half of what was received by the first. If a person permits his kafir slave to trade and he trades then converts to Islam, then two people claim a debt against him, and both are Muslims or both are kafirs and the master is a Muslim or a kafir. If one claimant brings two kafir witnesses stating there was a debt of a thousand dirhams from his state of disbelief, and the other brings Muslim witnesses to the same effect, then the testimony of the Muslim witnesses is valid and the one whose witnesses are kafirs shall receive nothing. If a person permits his kafir slave to trade, and that person is a Muslim or a *dhimmi*, then two Muslims testify regarding a debt of a Muslim against the authorized slave (*ma'dhun*), two *dhimmis* testify regarding a debt of a Muslim, and two *mustamins* testify regarding a debt of a Muslim, the Qazi shall nullify the testimony of the two *mustamins* (i.e., two *harbis* who came into the Abode of Islam under safe conduct) and issue a decree based on the testimony of the two *dhimmis* and two Muslims. Then the slave shall be sold and the debt of the creditor for whom two Muslims testified shall be paid first, then if anything remains after paying his debt, it shall be given to him [the other].

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 72 किताब अल-माज़ून**

जिसके लिए दो काफ़िरों ने गवाही दी है। गुलाम ने उसके ऋण की, जिसके लिए दो काफ़िरों ने गवाही दी है, पुष्टि कर दी, तो दोनों ऋणदाता उसकी कमाई और गर्दन (गुलाम) की कीमत में शरीक हो जाएंगे, यह 'मबसूत' में है।

अगर एक मुसलमान के लिए दो काफ़िरों ने और एक काफ़िर के लिए दो मुसलमानों ने गवाही दी, तो दोनों ऋणदाता शरीक होकर वसूली करेंगे। अगर ऋणदाता तीन आदमी हों: दो मुसलमान और एक काफ़िर; फिर काफ़िर के लिए दो मुसलमानों ने, एक मुसलमान के लिए दो काफ़िरों ने और दूसरे के लिए दो मुसलमानों ने गवाही दी, फिर गुलाम बेचा गया, तो पहले उन दोनों का ऋण चुकाया जाएगा जिनके लिए मुसलमानों ने गवाही दी है और वे आपस में बराबर बाँट लेंगे। फिर जो कुछ काफ़िर ऋणदाता ने लिया है, वह उस मुसलमान के साथ जिसके गवाह काफ़िर हैं मिलाकर आधा-आधा दोनों बाँट लेंगे, यह 'मुग़नी' में है। फिर मुसलमान को यह अधिकार होगा कि जिसके लिए काफ़िरों ने गवाही दी है उससे ले ले। और अगर ऋणदाताओं में से एक व्यक्ति मुसलमान हो जिसके लिए दो काफ़िरों ने गवाही दी और बाकी दो काफ़िर हों जिनके लिए भी दो-दो काफ़िरों ने गवाही दी, तो पहले मुसलमान का ऋण चुकाया जाएगा, फिर उसके बाद अगर कुछ बचा तो दोनों काफ़िरों में आधा-आधा बँट जाएगा। अगर गुलाम मुसलमान हो और मालिक काफ़िर हो, और दो ऋणदाताओं में से एक मुसलमान हो जिसके लिए दो काफ़िरों ने गवाही दी और एक काफ़िर हो जिसके लिए दो मुसलमानों ने गवाही दी और गुलाम इससे इनकार करे, तो काज़ी उस मुसलमान के दावे को जिसके गवाह काफ़िर हैं, बातिल (रद्द) कर देगा, और दूसरे के लिए वह गुलाम बेचा जाएगा और वह अपनी कीमत से पूरा ऋण वसूल करेगा। फिर अगर कुछ कीमत बची तो वह उसके मालिक को मिलेगी। इसी तरह अगर इस स्थिति में गुलाम 'महजूर' (प्रतिबंधित) हो तो भी यही हुक्म है, यह 'मबसूत' में है। अगर मालिक मुसलमान हो और गुलाम काफ़िर महजूर हो, और उस पर दो काफ़िर गवाहों ने किसी मुसलमान के लिए हज़ार दिरहम छीनने (ग़सब) की गवाही दी और काफ़िर के लिए दो मुसलमानों ने हज़ार दिरहम छीनने की गवाही दी, तो काफ़िर के लिए हज़ार दिरहम की डिक्री होगी और फिर उसमें मुसलमान उसका शरीक हो जाएगा और मुसलमान का बाकी ऋण गुलाम पर रहेगा जिसे वह आज़ाद होने के बाद उससे लेगा, यह 'मुग़नी' में है।

अगर किसी मुसलमान ने अपने काफ़िर गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर दो काफ़िरों ने किसी मुसलमान या काफ़िर के लिए हज़ार दिरहम ऋण की स्वीकृति या ग़सब के कारण गवाही दी, और

काज़ी ने डिक्री देकर गुलाम को हज़ार दिरहम में बेच दिया और ऋणदाता को भुगतान कर दिया। फिर एक अन्य ऋणदाता ने उस पर दावा किया कि गुलाम के बेचे जाने से पहले उसके भी हज़ार दिरहम ऋण बकाया थे। यदि इस दावेदार ने दो मुसलमान गवाह पेश किए, तो काज़ी पहले ऋणदाता से, जिसके लिए दो काफ़िरों ने गवाही दी थी, हज़ार दिरहम वापस लेकर इस दूसरे ऋणदाता को दे देगा जिसके गवाह मुसलमान हैं। और अगर दूसरा ऋणदाता काफ़िर हो, तो उसने पहले जो कुछ लिया है उसका आधा ले लेगा। और अगर पहला काफ़िर हो पर उसके गवाह मुसलमान हों और दूसरा मुसलमान या काफ़िर हो पर उसके गवाह काफ़िर हों, तो पहले वाले से उसके द्वारा लिए गए का आधा ले लेगा। अगर किसी व्यक्ति ने अपने काफ़िर गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, उसने लेन-देन किया फिर वह मुसलमान हो गया, फिर उस पर दो व्यक्तियों ने ऋण का दावा किया और दोनों मुसलमान हैं या दोनों काफ़िर हैं और मालिक मुसलमान है या काफ़िर है। फिर एक दावेदार दो काफ़िर गवाह लाया कि उस पर काफ़िर रहने की अवस्था का हज़ार दिरहम ऋण है, और दूसरा मुसलमान गवाह उसी विषय में लाया, तो मुसलमान गवाहों की गवाही मान्य है और जिसके गवाह काफ़िर हैं उसे कुछ नहीं मिलेगा। अगर किसी व्यक्ति ने अपने काफ़िर गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और वह व्यक्ति मुसलमान या ज़म्मी है, फिर 'माज़ून' (अधिकृत गुलाम) पर दो मुसलमानों ने एक मुसलमान के ऋण की, और दो ज़म्मियों ने एक मुसलमान के ऋण की, और दो 'मुस्तमिन' (शरणार्थियों) ने एक मुसलमान के ऋण की गवाही दी, तो काज़ी दो मुस्तमिन की गवाही (यानी दो हरबी व्यक्ति जो शरण लेकर दारुल-इस्लाम में आए थे) बातिल कर देगा और दो ज़म्मियों और दो मुसलमानों की गवाही पर डिक्री देगा। फिर गुलाम को बेचकर पहले उस ऋणदाता का ऋण चुकाया जाएगा जिसके लिए दो मुसलमानों ने गवाही दी है, फिर यदि ऋण अदायगी के बाद कुछ शेष रहा तो उसे दिया जाएगा।

---

جس کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی ہے۔ غلام نے اس کے قرضہ کی جس کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی ہے تصدیق کی تو دونوں قرض خواہ اس کی کمائی و ثمنِ رقبہ میں شریک ہوں جائیں گے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر مسلمان کے واسطے دو کافروں نے اور کافر کے واسطے دو مسلمانوں نے گواہی دی تو دونوں قرض خواہ شریک ہو کر وصول پائیں گے۔ اگر قرض خواہ تین آدمی ہوں، دو مسلمان اور ایک کافر پس کافر کے واسطے دو مسلمانوں اور ایک مسلمان کے واسطے دو کافروں نے اور دوسرے کے واسطے دو مسلمانوں نے گواہی دی پھر غلام فروخت کیا گیا تو پہلے ان دونوں کا قرضہ دیا جائے گا جن کے واسطے مسلمانوں نے گواہی دی ہے اور باہم برابر تقسیم کر لیں گے پھر جو کچھ کافر قرض خواہ نے لیا ہے وہ اس مسلمان کے ساتھ جس کے گواہ کافر ہیں ملا کر نصفا نصف دونوں تقسیم کر لیں گے یہ مغنی میں ہے۔ پھر مسلمان کو یہ اختیار ہو گا کہ جس کے واسطے کافروں نے گواہی دی ہے اس سے لے لیں اور اگر ایک شخص قرض خواہوں میں سے مسلمان ہو جس کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی اور باقی دو کافر ہوں کہ ہر ایک کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی تو پہلے مسلمانوں کا قرضہ ادا کیا جائے گا پھر اس کے قرضہ کے بعد اگر کچھ باقی رہا تو دونوں کافروں میں نصفا نصف ہو جائے گا۔ اگر غلام مسلمان ہو اور مولیٰ کافر ہو اور دو قرض خواہ میں سے ایک مسلمان ہو جس کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی اور ایک کافر ہو جس کے واسطے دو مسلمانوں نے گواہی دی اور غلام اس سے منکر ہے تو قاضی اس مسلمان کا دعویٰ جس کے گواہ کافر ہیں باطل کر دے گا اور دوسرے کے واسطے وہ غلام فروخت کیا جائے گا اور وہ ثمن سے اپنا قرضہ پورا وصول کرے گا پھر اگر کچھ ثمن باقی

رہا تو اس کے مولیٰ کو ملے گا اس طرح اگر اس صورت میں غلام محجور ہو تو بھی یہی حکم ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر مولیٰ مسلم ہو اور غلام کافر محجور ہو اور اس پر دو کافر گواہوں نے کسی مسلمان کے واسطے ہزار درہم غصب کرنے کی گواہی دی اور کافر کے واسطے دو مسلمانوں نے ہزار درہم غصب کرنے کی گواہی دی تو کافر کے واسطے ہزار درہم کی ڈگری ہو گی اور پھر اس میں مسلمان اس کا شریک ہو جائے گا اور باقی مسلمان کا قرضہ غلام پر رہا کہ اس کو بعد آزاد ہونے کے اس سے لے گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر مسلمان نے اپنے غلام کافر کو اجازت دی پھر دو کافروں نے کسی مسلمان یا کافر کے واسطے ہزار درہم قرضہ کا بوجہ اقرار یا غصب کے گواہی دی اور قاضی نے ڈگری کر کے ہزار درہم کو غلام فروخت کیا اور قرض خواہ کو ادا کر دیے پھر ایک مدعی قرض خواہ نے اس پر دعویٰ کیا کہ اس کے فروخت کیے جانے سے پہلے کے ہزار درہم میرے اس پر قرض ہیں پس اگر مدعی نے اس پر دو مسلمان گواہ قائم کیے تو قاضی قرض خواہِ اول سے جس کے واسطے دو کافروں نے گواہی دی تھی ہزار درہم واپس لے کر اس دوسرے قرض خواہ کو جس کے گواہ مسلمان ہیں دے دے گا اور اگر دوسرا قرض خواہ کافر ہو تو اس کے واسطے پہلے نے جو کچھ لیا ہے اس کا آدھا لے لے گا اور اگر اول کافر مگر اس کے گواہ مسلمان ہوں اور دوسرا مسلمان یا کافر اس کے گواہ کافر ہوں تو اول سے اس کا لیا ہوا آدھا لے لے گا۔ اگر کسی شخص نے اپنے غلام کافر کو تجارت کی اجازت دے دی اس نے خرید و فروخت کی پھر مسلمان ہو گیا پھر اس پر دو شخصوں نے قرضہ کا دعویٰ کیا اور دونوں مسلمان ہیں یا دونوں کافر ہیں اور مولیٰ مسلمان ہے یا کافر ہے پس ایک مدعی دو کافر گواہ لایا کہ اس پر حالت کفر کا ہزار درہم قرضہ ہے اور دوسرا مسلمان گواہ اسی مضمون کے لایا تو مسلمان گواہوں کی گواہی جائز ہے اور جس کے گواہ کافر ہیں اس کو کچھ نہ ملے گا۔ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کافر کو تجارت کی اجازت دی اور وہ شخص مسلمان یا

ذمی ہے پھر ماذون پر دو مسلمانوں نے ایک مسلمان کے قرضہ کی اور دو ذمیوں نے ایک مسلمان کے قرضہ کی اور دو مستامنوں نے ایک مسلمان کے قرضہ کی گواہی دی تو قاضی دو مستامنوں کی یعنی دو شخص حربی جو امان لے کر دارالاسلام میں آئے تھے اور انھوں نے ایک مسلمان کے واسطے گواہی دی تھی باطل کر دے گا اور دو ذمیوں اور دو مسلمانوں کی گواہی پر ڈگری کر دے گا پھر غلام فروخت کر کے پہلے اس قرض خواہ کا قرضہ ادا کیا جائے گا جس کے واسطے دو مسلمانوں نے گواہی دی ہے پھر اگر اس کے ادائے قرضہ کے بعد کچھ باقی رہا تو اس کو دیا جائے گا۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) [73] Kitab al-Ma'dhun**

For whomever two *Dhimmis* (non-Muslim subjects) have testified, if even after that some of the price (*thaman*) remains, it shall go to the master (*maula*). Similarly, if the master is a *Harbi* (non-Muslim from a territory not at peace with Islam), the ruling remains the same. If both the master and the slave are *Harbis* and the rest of the matter remains as it is, then the ruling will be for all debts, and first, the debt of the one whose witnesses are Muslims shall be paid, then the one whose witnesses are *Dhimmis*, and then if anything remains, it shall be given to the one whose witnesses are *Harbis*. If all creditors are *Dhimmis* and the rest of the matter remains as it is, then one creditor is the one for whom Muslims testified and the second is the one for whom *Dhimmis* testified; they shall satisfy their debts by distributing the price of the *Ma'dhun* (authorized slave) proportionately (*hissa-e-rasad*). Then if anything remains, it shall go to the one whose witnesses are *Harbis*. If all creditors are *Harbi Mustamins* (foreigners under safe conduct), then all creditors shall distribute among themselves proportionately from the price. If the master is a Muslim or a *Dhimmi* and the slave, being a *Harbi*, came to *Dar al-Islam* (Islamic territory) under safe conduct (*aman*) and the master purchased him from his *Harbi* master and granted him permission to trade, and the rest of the matter remains as it is, then the testimony of *Harbis* regarding him shall not be valid. If a *Harbi* came to our country under safe conduct with his slave and the master permitted him to trade, then the testimony of two Muslims regarding him shall be valid just as it is valid regarding his master; this is in 'al-Mabsut'. If for one Muslim, two *Harbis* testified for a thousand dirhams against a *Harbi* slave *Ma'dhun* who entered our country with safe conduct, and for a *Dhimmi*, two *Dhimmis* testified for a thousand dirhams debt against him, and for a *Harbi*, two Muslims testified for a thousand dirhams debt against him, and he was sold for a thousand dirhams, then it shall be divided equally between the *Harbi* and the *Dhimmi*. Then the Muslim creditor shall take half from the property obtained by the *Harbi* creditor; this is in 'al-Mughni'. If the *Dhimmi's* witnesses are two *Harbis* and the Muslim's are two *Dhimmis*, and the rest of the matter remains as it is, then the entire price shall be divided half-and-half between the Muslim and the *Harbi*. Then the *Dhimmi* shall take half of what the *Harbi* received from him; this is in 'al-Mabsut'.

If there are two Muslim witnesses for the *Dhimmi*, two *Dhimmis* for the *Harbi*, and two *Harbis* for the Muslims, then the property shall be divided half-and-half between the *Dhimmi* and the *Harbi*, and the Muslim shall then take half from the *Harbi's* share; this is in 'al-Mughni'. If a debt was incurred by the slave and the master claimed he is

*Mahjur* (prohibited/restricted) while the creditors claimed he is *Ma'dhun* (authorized), then the master's statement shall be accepted. Then, if the creditors bring two witnesses for permission—one testifying that his master allowed him to buy cloth and the second saying he allowed him to buy wheat—then the testimony of both shall be valid even if the debt occurred in a type of trade other than those two. If one saw him buying cloth and did not forbid it, the testimony shall be void (*batil*). If one testified that the master saw him buying grain and did not forbid it, then both testimonies shall be void. If both testified that the master saw him buying cloth and did not forbid it, then the purchase is valid and that slave shall be '*Ma'dhun ut-Tijarah*' (authorized for trade); this is written in 'al-Mabsut'.

**Chapter Two: On the Voidable (*Fasid*) Sale of an Authorized Slave (*Ma'dhun*), and the Deception (*Ghurur*) of the *Ma'dhun* and the Deception of a Child**

Imam Abu Hanifa (RA), Imam Abu Yusuf (RA), and Imam Muhammad (RA) stated that if a person permitted his slave to trade and he sold a slave-girl, a slave, or any goods, etc., as a voidable sale (*bay' al-fasid*), and the purchaser took possession of the slave-girl or slave and manumitted them, or sold the object of sale (*mabi'*)—whatever it may be—to someone else, then all these dealings by the purchaser are valid, and the price of that *mabi'*, whatever it may be, shall be incumbent upon him. Similarly...

(Footnote 1) It will be void because one testified to explicit permission and the second described implied permission. (Footnote 2) Whatever it may be, meaning the *mabi'* was sold to a stranger, whether the *mabi'* was a slave, a slave-girl, or goods.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) [73] किताबुल माज़ून**

जिसके लिए दो ज़िम्मियों ने गवाही दी है, फिर अगर उसके बाद भी कुछ क़ीमत (थमन) बाक़ी रही तो मौला को मिलेगा। इसी तरह अगर मौला हरबी हो तो भी यही हुक्म है और अगर मौला और गुलाम दोनों हरबी हों और बाक़ी मसला उसी हाल पर रहे तो सब क़र्ज़ की डिक्री होगी और पहले उसका क़र्ज़ अदा किया जाएगा जिसके गवाह मुसलमान हैं, फिर उसका जिसके गवाह ज़िम्मी हैं, फिर अगर कुछ रहा तो उसको दिया जाएगा जिसके गवाह हरबी हैं। अगर सब क़र्ज़ख़्वाह ज़िम्मी हों और बाक़ी मसला उसी हाल पर रहे तो वो क़र्ज़ख़्वाह एक वो कि जिसके वास्ते मुसलमानों ने गवाही दी और दूसरा वो जिसके वास्ते ज़िम्मियों ने गवाही दी है, माज़ून की क़ीमत में आनुपातिक रूप से (हिस्सा-ए-रसद) तक़्सीम करके अपना क़र्ज़ पूरा करेंगे, फिर अगर कुछ बाक़ी रहा तो उसको मिलेगा जिसके गवाह हरबी हैं। अगर सब क़र्ज़ख़्वाह हरबी मुस्तअमिन (शरणार्थी) हों तो सब क़र्ज़ख़्वाह उसकी क़ीमत में आनुपातिक रूप से तक़्सीम कर लेंगे और अगर मौला मुसलमान या ज़िम्मी हो और गुलाम हरबी होकर अमान (सुरक्षा) लेकर दारुल-इस्लाम में आया हो और उसको मौला ने उसके हरबी मौला से ख़रीद लिया हो और व्यापार की इजाज़त दी हो और बाक़ी मसला उसी हाल पर रहे तो हरबियों की गवाही उस पर जाइज़ न होगी। अगर हरबी हमारे देश में अमान लेकर आया और उसके साथ उसका गुलाम है और मौला ने उसको व्यापार की इजाज़त दी तो दो मुसलमानों की गवाही उस पर जाइज़ होगी जैसे कि उसके मौला पर जाइज़ होती है, यह 'मबसूत' में है। अगर एक मुसलमान के वास्ते दो हरबियों ने हज़ार दिरहम की गवाही एक हरबी गुलाम माज़ून पर, जो हमारे देश में अमान के साथ दाख़िल हुआ है, अदा की और एक ज़िम्मी के वास्ते दो ज़िम्मियों ने उस पर हज़ार दिरहम क़र्ज़ की और एक हरबी के वास्ते दो मुसलमानों ने उस पर हज़ार दिरहम क़र्ज़ की गवाही दी और वो हज़ार दिरहम को फ़रोख़्त किया गया तो हरबी और ज़िम्मी के दरमियान बराबर तक़्सीम होगा, फिर हरबी क़र्ज़ख़्वाह से मुसलमान क़र्ज़ख़्वाह उस माल से जो उसने पाया है, आधा ले लेगा, यह 'मुग़नी' में है और अगर ज़िम्मी के गवाह दो हरबी हों और मुसलमान के दो ज़िम्मी हों और बाक़ी मसला उसी हाल पर रहे तो तमाम क़ीमत मुसलमान और हरबी के दरमियान आधा-आधा तक़्सीम होगा फिर जो कुछ हरबी को मिला है उसका आधा उससे ज़िम्मी ले लेगा, यह 'मबसूत' में है।

अगर ज़िम्मी के दो मुसलमान गवाह और हरबी के दो ज़िम्मी और मुसलमानों के दो हरबी हों तो ज़िम्मी और हरबी के दरमियान माल आधा-आधा तक़्सीम होकर फिर हरबी के हिस्से से मुसलमान आधा ले लेगा, यह 'मुग़नी' में है। अगर गुलाम पर क़र्ज़ हो गया और मौला ने कहा यह महजूर

(प्रतिबंधित) है और क़र्ज़ख़्वाहों ने कहा कि माज़ून (अनुमति प्राप्त) है तो मौला का कहना मान्य होगा, फिर अगर क़र्ज़ख़्वाह इजाज़त के दो गवाह लाए, एक ने गवाही दी कि उसके मौला ने कपड़ा ख़रीदने की इजाज़त दी थी और दूसरे ने कहा कि गेहूँ ख़रीदने की इजाज़त दी थी तो दोनों की गवाही जाइज़ होगी चाहे क़र्ज़ दोनों प्रकार के व्यापार के अलावा किसी प्रकार के व्यापार में हुआ हो और अगर एक ने उसको कपड़ा ख़रीदते देख कर मना नहीं किया तो गवाही बातिल (अमान्य) होगी और अगर एक ने इस तरह गवाही दी कि मौला ने उसको अनाज ख़रीदते देख कर मना नहीं किया तो दोनों गवाहियां बातिल होंगी और अगर दोनों ने इस तरह गवाही दी कि मौला ने उसको कपड़ा ख़रीदते देख कर मना नहीं किया है तो ख़रीद जाइज़ और वो गुलाम 'माज़ून उत-तिजारा' होगा, यह 'मबसूत' में लिखा है।

## दूसरा अध्याय: गुलाम माज़ून की बिक्री फ़ासिद (दूषित) और माज़ून के धोखे व बच्चे के धोखे के वर्णन में

इमाम अबू हनीफ़ा रह., इमाम अबू यूसुफ़ रह. और इमाम मुहम्मद रह. ने फ़रमाया कि अगर एक व्यक्ति ने अपने गुलाम को व्यापार की इजाज़त दी, उसने कोई बांदी या गुलाम या कोई सामान आदि दूषित बिक्री (बय-ए-फ़ासिद) के तौर पर बेचा और खरीदार ने बांदी या गुलाम पर क़ब्ज़ा करके आज़ाद किया या बिक्री की वस्तु (मबीअ) को, उनमें से जो भी हो, दूसरे के हाथ बेच दिया तो खरीदार का यह सब उपयोग (तसर्रुफ़) जाइज़ है और उस पर उस मबीअ की क़ीमत, चाहे उनमें से कोई भी चीज़ हो, वाजिब होगी। इसी...

(हाशिया 1) बातिल होगी इसलिए कि एक ने स्पष्ट अनुमति की गवाही दी और दूसरे ने सांकेतिक अनुमति का वर्णन किया। (हाशिया 2) कुछ भी हो यानी मबीअ को गैर के हाथ बेच दिया चाहे मबीअ गुलाम हो या बांदी या सामान कुछ भी हो।

---

جس کے واسطے دو ذمیوں نے گواہی دی ہے پھر اگر اس کے بعد بھی کچھ ثمن باقی رہا تو مولیٰ کو ملے گا اسی طرح اگر مولیٰ حربی ہو تو بھی یہی حکم ہے اور اگر مولیٰ و غلام دونوں حربی ہوں اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو سب قرضہ کی ڈگری ہوگی اور پہلے اس کا قرضہ ادا کیا جائے گا جس کے گواہ مسلمان ہیں پھر اس کا جس کے گواہ ذمی ہیں پھر اگر کچھ رہا تو اس کو دیا جائے گا جس کے گواہ حربی ہیں۔ اگر سب قرض خواہ ذمی ہوں اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو وہ قرض خواہ ایک وہ کہ جس کے واسطے مسلمانوں نے گواہی دی اور دوم وہ جس کے واسطے ذمیوں نے گواہی دی ہے، ماذون کے ثمن میں حصہ رسد تقسیم کر کے اپنا قرضہ پورا کریں گے پھر اگر کچھ باقی رہا تو اس کو ملے گا جس کے گواہ حربی ہیں۔ اگر سب قرض خواہ حربی مستامن ہوں تو سب قرض خواہ اس کے ثمن میں حصہ رسد تقسیم کرلیں گے اور اگر مولیٰ مسلمان یا ذمی ہو اور غلام حربی ہو کر امان لے کر دارالاسلام میں آیا ہو اور اس کو مولیٰ نے اس کے حربی مولیٰ سے خرید لیا ہو اور تجارت کی اجازت دی ہو اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو حربیوں کی گواہی اس پر جائز نہ ہو گی۔ اگر حربی ہمارے ملک میں امان لے کر آیا اور اس کے ساتھ اس کا غلام ہے اور مولیٰ نے اس کو تجارت کی اجازت دی تو دو مسلمانوں کی گواہی اس پر جائز ہوگی جیسے کہ اس کے مولیٰ پر جائز ہوتی ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک مسلمان کے واسطے دو حربیوں نے ہزار درہم کی گواہی ایک حربی غلام ماذون پر جو ہمارے ملک میں بامان داخل ہوا ہے ادا کی اور ایک ذمی کے واسطے دو ذمیوں نے اس پر ہزار درہم قرضہ کی اور ایک حربی کے واسطے دو مسلمانوں نے اس پر ہزار درہم قرضہ کی گواہی دی اور وہ ہزار درہم کو فروخت کیا گیا تو حربی و ذمی کے درمیان برابر تقسیم ہوگا پھر حربی قرض خواہ سے مسلمان قرض خواہ اس مال سے جو اس نے پایا

ہے نصف لے لے گا یہ مغنی میں ہے اور اگر ذمی کے گواہ دو حربی ہوں اور مسلمان کے دو ذمی ہوں اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو تمام ثمن مسلمان و حربی کے درمیان نصفا نصف تقسیم ہوگا پھر جو کچھ حربی کو ملا ہے اس کا آدھا اس سے ذمی لے لے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ذمی کے دو مسلمان گواہ اور حربی کے دو ذمی اور مسلمانوں کے دو حربی ہوں تو ذمی اور حربی کے درمیان مال نصفا نصف تقسیم ہو کر پھر حربی کے حصہ سے مسلمان نصف لے لے گا یہ مغنی میں ہے۔ اگر غلام پر قرضہ ہو گیا اور مولیٰ نے کہا یہ محجور ہے اور قرض خواہوں نے کہا کہ ماذون ہے تو مولیٰ کا قول قبول ہوگا پھر اگر قرض خواہ اجازت کے دو گواہ لائے ایک نے گواہی دی کہ اس کے مولیٰ نے کپڑا خریدنے کی اجازت دی تھی اور دوسرے نے کہا کہ گیہوں خریدنے کی اجازت دی تھی تو دونوں کی گواہی جائز ہوگی اگر چہ قرضہ دونوں اقسام تجارت سے علاوہ کسی قسم کی تجارت میں واقع ہوا ہو اور اگر ایک نے اس کو کپڑا خریدتے دیکھ کر منع نہیں کیا تو گواہی باطل ہوگی اور اگر ایک نے یوں گواہی دی کہ مولیٰ نے اس کو اناج خریدتے دیکھ کر منع نہیں کیا تو دونوں گواہی باطل ہوں گی اور اگر دونوں نے یوں گواہی دی کہ مولیٰ نے اس کو کپڑا خریدتے دیکھ کر منع نہیں کیا ہے تو خرید جائز اور وہ غلام ماذون التجارۃ ہو گا یہ مبسوط میں لکھا ہے۔

**باب دوسرا: غلام ماذون کی بیع فاسد اور ماذون کے غرور و طفل کے غرور کے بیان میں**

امام ابوحنیفہؒ و امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ایک شخص نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی اس نے کوئی باندی یا غلام یا کوئی اسباب وغیرہ بطور بیع فاسد فروخت کیا اور مشتری نے باندی یا غلام پر قبضہ کر کے آزاد کیا یا مبیع کو ان میں سے کچھ بھی ہو دوسرے کے ہاتھ فروخت کیا تو مشتری کا یہ سب تصرف جائز اور اس پر اس مبیع کی قیمت خواہ ان میں سے کوئی چیز ہو واجب ہوگی۔ اسی (حاشیہ ۱) باطل ہوگی اس واسطے کہ ایک نے صریح اجازت کی

گواہی دی اور دوسرے نے دلالتی اجازت بیان کی۔ (حاشیہ ۲) کچھ ہی ہو یعنی مبیع کو غیر کے ہاتھ فروخت کیا خواہ مبیع غلام یا باندی یا اسباب کچھ ہو۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (74) Book of the Authorized Slave (Kitab al-Mazun)**

Similarly, if an authorized slave (Mazun) purchases a female slave, a male slave, or goods through an irregular sale (ba'i fasid) and then sells them to another person, this is also permissible. Furthermore, if a Mazun purchases a female slave through an irregular sale and takes possession of her, and subsequently, earnings are generated from the male or female slave while in the Mazun's possession—for instance, if the male slave hires himself out and receives wages, or if someone grants him a gift (hibah) which he accepts—the question arises whether this property belongs to the Mazun. It is stated that if the Mazun's ownership of the slave becomes established (mustaqir)—for example, by selling her to another person or if the slave dies in his possession and he pays the indemnity (price) to the seller—then these earnings shall belong to the Mazun. If ownership is not established, such as when he returns the slave to the seller, it is mentioned that he must also return these earnings to the seller. Some of our scholars have stated that the ruling mentioned in the book—that the earnings must be returned to the seller if the slave is returned—is according to the opinion of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad (may Allah have mercy on them). Otherwise, according to Imam Azam (Imam Abu Hanifa, may Allah have mercy on him), these earnings are given to the Mazun and not returned to the seller. Furthermore, if the original item and its earnings are returned, should the seller give these earnings in charity (sadaqah)? If the seller is a freeman, he must, by consensus (ijma), give the earnings in charity; if he is a Mazun, he shall not give them in charity. If, as a Mazun, he does not give it in charity, it is stated that if he is a debtor and uses it to pay off his creditors, the money shall be lawful (halal) for the creditors. If he is not a debtor and his master (mawla) takes the money, it is preferable (mustahabb) in my view that the master gives it in charity. However, if the master himself is the seller, it becomes obligatory (wajib) for him to give it in charity. Conversely, if the Mazun himself is the seller, it is preferable for the master to give it in charity. All of this applies if the purchased slave hired himself out independently or received a gift so that it counts as his own earning. However, if the Mazun himself hired out the slave, then in all circumstances (1) the earnings shall be given to the Mazun; this is found in 'al-Mughni'.

If a person authorizes a slave to trade, and the Mazun sells a female slave to Zayd in exchange for another female slave through an irregular sale and delivers her to the buyer, who then takes possession and sells/delivers her to 'Amr, the second sale is

valid. The first sale is not annulled, such that Zayd is entitled to the price from ‘Amr, and the Mazun is entitled to the price of the sold item from Zayd, regardless of whether the Mazun is in debt. If Zayd sells the female slave back to the same Mazun from whom he bought her, the first sale is annulled, such that Zayd is no longer entitled to the price from the Mazun, and Zayd is also cleared of liability (dhaman) for the price, regardless of debt. If the buyer sells and delivers the slave to the Mazun’s master, the first sale is annulled if the Mazun is not in debt; if he is in debt, the second sale is valid, making Zayd entitled to the price from the master, and the master must pay the indemnity for the slave's price to the Mazun. If the buyer sells and delivers her to the Mazun’s second master, then if both are in debt, the sale is valid and the first sale is not annulled. If only one is in debt, the first sale is still not annulled. If neither is in debt, the first sale is annulled as soon as the slave is given to the second Mazun. However, it should be clear that the buyer is not cleared of liability at the moment he delivers the slave to the second Mazun, until the second Mazun delivers her to the first Mazun or the master. If the second Mazun does not deliver her, the buyer remains liable; thus, if the slave dies in the possession of the second Mazun, the buyer is liable for her price to the first Mazun. If he sells her to the Mazun through a valid sale (ba’i sahih) but does not deliver her, liability remains; this is found in 'al-Muhit'.

(1) "In all circumstances" means regardless of whether the Mazun’s ownership becomes established or if it must be returned.

इसी तरह अगर माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत गुलाम) ने कोई बांदी या गुलाम या सामान अनियमित बिक्री (बय फ़ासिद) के तौर पर खरीदकर किसी दूसरे के हाथ बेच दिया, तो यह भी जायज़ है। और अगर माज़ून ने बांदी को अनियमित बिक्री के तौर पर खरीदा और उस पर कब्ज़ा कर लिया, फिर उस बांदी या गुलाम से माज़ून को कुछ आय प्राप्त हुई—उदाहरण के तौर पर गुलाम ने खुद को मजदूरी पर दिया और उसे मजदूरी मिली, या किसी ने उसे कुछ उपहार (हिबा) दिया और उसने उसे स्वीकार कर लिया—तो सवाल यह है कि क्या यह धन माज़ून को दिया जाएगा या नहीं? तो फरमाया गया कि अगर बांदी या गुलाम में माज़ून का स्वामित्व स्थायी (मुस्तक़िर) हो गया, जैसे कि उसने उसे किसी दूसरे के हाथ बेच दिया या वह उसके पास मर गया और उसने विक्रेता (बाइ') को हर्जाना (कीमत) दे दिया, तो ऐसी स्थिति में यह आय माज़ून को ही दी जाएगी। यदि बांदी या गुलाम का स्वामित्व स्थायी नहीं हुआ, इस तरह कि उसने उसे विक्रेता को वापस कर दिया, तो उल्लेख है कि वह विक्रेता को यह आय भी वापस करेगा। हमारे कुछ उलेमा ने फरमाया है कि किताब में जो यह आदेश वर्णित है कि यदि माज़ून ने विक्रेता को बांदी या गुलाम वापस किया तो आय भी वापस करेगा, यह इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद (रह.) के कथन पर आधारित है। अन्यथा, इमाम-ए-आज़म (रह.) के अनुसार, यह आय माज़ून को दी जाएगी और वह विक्रेता को वापस नहीं करेगा। फिर जब मूल वस्तु वापस की गई और उसके साथ आय भी वापस की गई, तो क्या विक्रेता इस आय को दान (सदक़ा) कर देगा? यदि विक्रेता स्वतंत्र (आज़ाद) है, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से वह इस आय को दान कर देगा, और यदि वह माज़ून है तो दान नहीं करेगा। जब माज़ून होने की स्थिति में उसने दान नहीं किया, तो उल्लेख है कि यदि वह ऋणी है और उसने उससे ऋणदाताओं का ऋण चुका दिया, तो ऋणदाताओं के लिए यह धन हलाल होगा। और यदि वह ऋणी नहीं है और उसके स्वामी (मौला) ने यह धन ले लिया, तो फरमाया कि मेरे निकट यह मुस्तहब (पसंदीदा) है कि वह इसे दान कर दे। लेकिन अगर स्वामी ही विक्रेता है, तो उस पर दान करना अनिवार्य (वाजिब) होगा। हाँ, यदि माज़ून ही विक्रेता हो, तो फरमाया कि स्वामी पर दान करना मुस्तहब होगा। यह सब जो वर्णन किया गया है, उस स्थिति में है जब खरीदे गए गुलाम ने स्वयं को मजदूरी पर दिया हो या उसे कुछ उपहार दिया गया हो ताकि यह धन उसकी कमाई माना जाए। और यदि माज़ून ने उसे मजदूरी पर दिया हो, तो हर हाल में (१) यह कमाई माज़ून को दी जाएगी, यह 'मुग़नी' में है।

अगर एक व्यक्ति ने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर माज़ून ने ज़ैद के हाथ एक बांदी के बदले दूसरी बांदी अनियमित बिक्री के तौर पर बेचकर खरीदार (मुश्तरी) को दे दी, और उसने कब्ज़ा करके उसे अम्र के हाथ बेचकर सुपुर्द कर दिया, तो दूसरी बिक्री जायज़ होगी और इससे पहली बिक्री रद्द नहीं होगी, यहाँ तक कि ज़ैद के लिए अम्र से कीमत लेना अनिवार्य होगा और माज़ून के लिए ज़ैद को वस्तु की कीमत देना अनिवार्य होगा, चाहे माज़ून ऋणी हो या न हो। अगर ज़ैद ने वही बांदी उसी माज़ून को बेचकर वापस कर दी जिससे उसने खरीदी थी, तो इससे पहली बिक्री रद्द हो जाएगी, यहाँ तक कि ज़ैद पर माज़ून के लिए कीमत अनिवार्य नहीं रहेगी और ज़ैद भी कीमत की देयता (ज़मान) से मुक्त हो जाएगा, चाहे माज़ून ऋणी हो या न हो। अगर खरीदार ने माज़ून के स्वामी के हाथ बेचकर उसे सौंप दिया हो, तो यदि माज़ून ऋणी नहीं है तो पहली बिक्री रद्द हो जाएगी, और अगर ऋणी है तो दूसरी बिक्री जायज़ होगी, यहाँ तक कि ज़ैद का स्वामी पर मूल्य अनिवार्य होगा और वह माज़ून को बांदी की कीमत का हर्जाना देगा। और अगर खरीदार ने माज़ून के दूसरे स्वामी के हाथ बेची हो और सौंप दी हो, तो यदि दोनों पर ऋण है तो बिक्री जायज़ होगी और पहली बिक्री रद्द नहीं होगी। और यदि दोनों में से किसी एक पर ऋण है, तब भी पहली बिक्री रद्द नहीं होगी। और यदि दोनों पर ऋण नहीं है, तो जैसे ही उसने दूसरे माज़ून को दी, उसी समय पहली बिक्री रद्द हो जाएगी। लेकिन यह स्पष्ट रहे कि जिस समय खरीदार ने दूसरे माज़ून को बांदी सौंपी है, उस समय वह दायित्व (ज़मान) से मुक्त नहीं होगा जब तक कि दूसरा माज़ून यह बांदी पहले माज़ून या स्वामी को न सौंप दे। और यदि दूसरे माज़ून ने पहले माज़ून या स्वामी को नहीं सौंपी, तो खरीदार वैसे ही उत्तरदायी बना रहेगा, यहाँ तक कि यदि दूसरे माज़ून के पास वह बांदी मर गई, तो खरीदार पहले माज़ून के लिए उसकी कीमत का उत्तरदायी होगा। यदि उसने माज़ून के हाथ सही बिक्री (बय सही) के तौर पर बेची लेकिन उसे सौंपी नहीं, तो देयता बनी रहेगी, यह 'मुहीत' में है।

(१) हर हाल में, अर्थात चाहे माज़ून का स्वामित्व स्थायी हो जाए या उसे वापस करना पड़े।

---

طرح اگر ماذون نے کوئی باندی یا غلام یا اسباب بطور بیع فاسد خرید کر کے دوسرے کے ہاتھ فروخت کیا تو بھی جائز ہے اور اگر ماذون نے باندی بطور بیع فاسد کے خرید کیا اور اس پر قبضہ کر لیا پھر باندی یا غلام کو کچھ حاصلات ماذون کے پاس حاصل ہوئی مثلاً غلام نے اپنے تئیں کسی کو اجرت پر دیا اس نے اس کو مزدوری دی یا کسی نے اس کو کچھ ہبہ کیا اور اس نے قبول کیا پس آیا یہ مال ماذون کو دیا جائے گا یا نہیں تو فرمایا کہ اگر باندی یا غلام میں ماذون کی ملک مستقر ہوگئی مثلاً اس نے دوسرے کے ہاتھ فروخت کر دیا یا اس کے پاس مر گیا اور اس نے بائع کو قیمت تاوان دے دی تو ایسی صورت میں یہ حاصلات ماذون ہی کو دی جائے گی۔ اگر باندی و غلام کی ملک مستقر نہ ہوئی بایں طور کہ اس نے بائع کو واپس کیا تو مذکور ہے کہ بائع کو یہ حاصلات بھی واپس دے گا اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ کتاب میں یہ حکم جو مذکور ہے کہ اگر ماذون نے بائع کو باندی و غلام واپس کی تو حاصلات بھی بائع کو واپس دے گا تو یہ امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے قول پر ہے ورنہ امام اعظمؒ کے نزدیک یہ حاصلات ماذون کو دی جائے گی اور وہ بائع کو واپس نہ دے گا پھر جب اصل مبیع واپس کی اور اس کے ساتھ حاصلات بھی واپس کی پس آیا بائع اس حاصلات کو صدقہ کر دے گا تو اگر بائع آزاد ہو تو بالاجماع اس حاصلات کو صدقہ کر دے گا اور اگر ماذون ہو تو صدقہ نہ کرے گا اور جب ماذون ہونے کی صورت میں صدقہ نہ کیا تو مذکور ہے کہ اگر وہ قرض دار ہو اور اس نے اس سے قرض خواہوں کا قرضہ ادا کیا تو قرض خواہوں کو یہ مال حلال ہو گا اور اگر قرض دار نہ ہو اور مولیٰ نے یہ مال لے لیا تو فرمایا کہ میرے نزدیک مستحب یہ ہے کہ اس کو صدقہ کر دے لیکن اگر مولیٰ ہی بائع ہو تو اس پر واجب ہو گا کہ صدقہ کر دے ہاں اگر ماذون ہی بائع ہو تو فرمایا کہ مولیٰ پر صدقہ کرنا مستحب ہو

گا اور یہ سب جو ذکر کیا گیا ایسی صورت میں ہے کہ غلام خرید کردہ شدہ نے خود ہی اپنے تئیں اجرت پر دیا ہو یا اس کو کچھ ہبہ کیا گیا تا کہ یہ مال اس کی کمائی شمار ہوا اور اگر ماذون نے اس کو اجرت پر دیا ہو تو بہر حال ۱ـہ میں یہ کمائی ماذون کو دی جائے گی یہ مغنی میں ہے۔

اگر ایک شخص نے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر ماذون نے زید کے ہاتھ ایک باندی بعوض ایک باندی کے بطور بیع فاسد کے فروخت کر کے مشتری کو دے دی اور اس نے قبضہ کر کے عمرو کے ہاتھ فروخت کر کے اس کو سپرد کر دی تو بیع ثانی جائز ہو گی اور اس سے بیع اوّل کا نقض نہ ہو گا حتیٰ کہ زید کا عمرو پر ثمن واجب ہو گا اور ماذون کی زید پر مبیع کی قیمت واجب ہو گی خواہ ماذون مقروض ہو یا نہ ہو۔ اگر زید نے وہ باندی ماذون ہی کے ہاتھ جس سے خریدی تھی فروخت کر کے دے دی تو اس سے بیع اوّل ٹوٹ جائے گی حتیٰ کہ زید کا ماذون پر ثمن واجب نہ ہو گا اور زید بھی ضمان قیمت سے بری ہو جائے گا خواہ ماذون مقروض ہو یا نہ ہو۔ اگر مشتری نے مولائے ماذون کے ہاتھ فروخت کر کے دے دی ہو پس اگر ماذون مقروض نہ ہو تو پہلی بیع ٹوٹ جائے گی اور اگر مقروض ہو تو دوسری بیع جائز ہو گی حتیٰ کہ زید کا مولیٰ پر ثمن واجب ہو گا اور وہ ماذون کو باندی کی قیمت کی ضمان ادا کرے گا اور اگر مشتری نے ماذون کے دوسرے مولیٰ کے ہاتھ فروخت کی ہو اور سپرد کر دی تو پس اگر دونوں پر قرضہ ہو تو بیع جائز ہو گی اور پہلی بیع کا نقض نہ ہو گا اور اگر دونوں میں سے کسی ایک پر قرضہ ہو تو بھی اس سے بیع اوّل نہ ٹوٹے گی اور اگر دونوں پر قرضہ نہ ہو تو جب ہی اس نے دوسرے ماذون کو دی اسی وقت بیع اوّل ٹوٹ جائے گی مگر واضح رہے کہ جس وقت مشتری نے دوسرے ماذون کو باندی سپرد کی ہے اس وقت ضمان سے بری نہ ہو گا جب تک کہ دوسرا ماذون یہ باندی ماذون اوّل یا مولیٰ کے سپرد نہ کرے اور اگر دوسرے ماذون نے ماذون اوّل یا مولیٰ کو سپرد نہ کی تو مشتری ویسا ہی ضامن باقی رہے گا حتیٰ کہ اگر ماذون ثانی کے پاس وہ باندی مر گئی تو مشتری

ماذون اوّل کے واسطے اس کی قیمت کا ضامن ہو گا۔ اگر اس نے ماذون کے ہاتھ بطور بیع صحیح فروخت کی مگر اس کے سپرد نہ کی تو ضمان باقی رہے گا یہ محیط میں ہے۔

۱؎ قولہ بہ ہر حال یعنی خواہ ملک ماذون مستقر ہو جائے یا واپس کرنا پڑے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 75 Kitab al-Ma'zoon**

If he sold to the *mudarib* (investment agent) of the *ma'zoon* (authorized slave), it is permissible, just as if he sold to the *mudarib* of the master, it is also permissible, whether the slave is in debt or not. And if he sold to the son or father or *mukatab* (slave with a contract of manumission) of the master, or to the master for his minor son who is under the father's care, then all these are the same, meaning the sale is permissible. Similarly, if a stranger appointed the master as an agent to purchase her for him and the master purchased her, or if he himself appointed the *ma'zoon* as an agent for her purchase and the *ma'zoon* purchased her, then this female slave, through this sale, will belong to the stranger. The price (*thaman*) from the buyer will be obligatory upon the agent, i.e., the *ma'zoon* [1], and then the *ma'zoon* will recover it from the principal (*muwakil*). Guarantee (*daman*) of the price will be obligatory upon the buyer from the *ma'zoon*. Thus, if the price and the value are exchanged between them [2], then whatever price the slave paid on behalf of the principal, he will take it back from the principal. If the *ma'zoon* seller himself appointed someone as an agent to buy his female slave, and the agent bought her from the buyer for the principal and took possession, then the first sale, i.e., the invalid (*fasid*) sale, will be rescinded, as if the *ma'zoon* himself bought her. If the master appointed someone as an agent to buy for himself, then this case and the case of the master buying himself are the same; meaning the ruling will differ regarding whether the *ma'zoon* slave is in debt or not. If the *ma'zoon* killed the female slave while she was with the buyer, the sale is rescinded. Similarly, if the *ma'zoon* dug a well on a public path, whether before or after the sale, and this female slave fell into it, or due to falling, a defect was created in her, and the buyer [3] did not prevent the female slave from it until she died from that same act, then the first sale will be rescinded. If the master performed this act and the slave was not in debt, the ruling is the same. If the slave was in debt, the master is not capable of taking the slave back in such a condition; he will be like a stranger in his act. It will be obligatory for his helping clan to pay the price of the slave to the buyer over three years, provided she died from that same act. If a defect arose from that act but she died from another act, the buyer will be liable for the price of the slave due to taking possession; he will be unable to return her, but he will recover the loss from the defect from the master's property immediately. If she died by falling into such a well which the *ma'zoon* dug in his commercial premises or the master dug on his own property, the first sale will not be rescinded; this is stated in *Al-Mabsut*.

**Regarding the applicability of the ruling on deception, there is no difference ☆**

If Zaid said to the people, "This is my slave, I have given him permission to trade; you all may buy and sell with him," then he incurred a lot of debt. Later, a person proved ownership (*istihqaq*) and took him. If the rightful owner admitted, "I had given him permission to trade," the *ma'zoon* slave will remain so and be sold to pay off the debt. If he denied giving permission, then for the time being, no debt will be attached to the slave's person. However, since Zaid deceived the creditors by saying "he is my slave" and "trade with him," it will be obligatory upon Zaid to pay the creditors the lesser of the debt and the price as compensation (*tawan*). In this matter, if Zaid did not use these words "this is my slave" or did not say "you people trade with him," he will not be a guarantor for them because he did not deceive them; so it is in *Sharh al-Tahawi*. Regarding the applicability of the ruling on deception, there is no difference between one who heard this speech and one who did not hear it; i.e., there is no difference in being a guarantor due to a claim for a listener or a non-listener. He will be a guarantor for both, provided Zaid uttered these words before the general market people...

[1] The saying "upon the *ma'zoon*": i.e., in a case where the *ma'zoon* was appointed as an agent. [2] The saying "will be exchanged": i.e., as much exchange as possible, after which neither will have a right remaining. [3] The saying "and the buyer etc.": In the Calcutta edition, it is present like this, and perhaps some text was omitted due to a scribe's error, i.e., "the female slave started digging the well and the buyer etc." Understand this.

अगर उसने माज़ून के मुज़ारिब के हाथ फ़रोख़्त की तो जाइज़ है जैसे कि अगर मौला के मुज़ारिब के हाथ फ़रोख़्त की तो भी जाइज़ है ख़्वाह गुलाम पर क़र्ज़ा हो या न हो और अगर उसने मौला के बेटे या बाप या मुकातब के हाथ या मौला के हाथ उसके नाबालिग बेटे के वास्ते जो बाप की अयाल में है फ़रोख़्त की तो ये सब यकसां हैं यानी बैअ (बिक्री) जाइज़ है और इसी तरह अगर किसी अजनबी ने मौला को उसकी ख़रीद के वास्ते वकील किया और मौला ने ख़रीदी या उसने ख़ुद माज़ून को उसकी ख़रीद के वास्ते वकील किया और माज़ून ने ख़रीदी तो ये बांदी उस बैअ से अजनबी के वास्ते होगी और मुश्तरी (खरीदार) का समन (कीमत) वकील पर यानी माज़ून [1] पर वाजिब होगा और फिर माज़ून उसको मुअक्किल से वसूल कर लेगा और माज़ून के मुश्तरी पर ज़मान (गारंटी) क़ीमत वाजिब होगी पस अगर क़ीमत और समन में बाहम बदला [2] हो जाएगा फिर गुलाम ने जो कुछ समन मुअक्किल की तरफ़ से अदा किया है वो मुअक्किल से वापस ले लेगा। अगर ख़ुद माज़ून बाइअ (विक्रेता) ने किसी शख्स को उसकी बांदी के ख़रीदने का वकील किया और वकील ने मुश्तरी से मुअक्किल के वास्ते ख़रीदी और क़ब्ज़ा कर लिया तो उससे बैअ-ए-अव्वल यानी बैअ-ए-फ़ासिद टूट जाएगी गोया माज़ून ने ख़ुद ही ख़रीदी है और अगर मौला ने किसी शख्स को अपने वास्ते ख़रीदने का वकील किया तो ये सूरत और मौला के ख़ुद ख़रीद करने की सूरत में यकसां है यानी गुलाम माज़ून के मक़रूज़ (क़र्ज़दार) होने में और न होने में हुक्म मुख़्तलिफ़ हो जाएगा और अगर माज़ून ने मुश्तरी के पास उस बांदी को क़त्ल किया तो बैअ टूट गई इसी तरह अगर माज़ून ने सरे-राह एक कुआं खोदा ख़्वाह क़ब्ल-ए-बैअ (बिक्री से पहले) के या बाअद-ए-बैअ (बिक्री के बाद) के और उसमें यही बांदी गिर पड़ी या गिरने से उसमें कोई ऐब पैदा हो गया और मुश्तरी [3] ने उससे बांदी को मना न किया यहां तक कि इसी फ़ेल से मर गई तो उससे बैअ-ए-अव्वल टूट जाएगी और अगर मौला ने ये फ़ेल किया हो और गुलाम मक़रूज़ न हो तो भी यही हुक्म है और अगर मक़रूज़ हो तो मौला बांदी के वापस लेने पर ऐसी हालत में क़ादिर नहीं है तो अपने फ़ेल में मिसल अजनबी के होगा और उसकी मददगार बिरादरी पर मुश्तरी के वास्ते तीन साल में बांदी की क़ीमत अदा करनी वाजिब होगी बशर्तेकि बांदी इसी फ़ेल से मरी हो और अगर इस फ़ेल से उसमें ऐब आया मगर किसी और फ़ेल से मरी तो मुश्तरी ब-सबब क़ब्ज़ा करने के बांदी की क़ीमत का ज़ामिन होगा वापस करने से माज़ूर रहेगा मगर मौला से नुक़सान-ए-ऐब फ़िलहाल माल-ए-मौला से वापस लेगा और अगर ऐसे कुएं में

जिसको माज़ून ने अपने तिजारती माल के मकान में या मौला ने अपनी मिलक (मालकियत) में खोदा है गिरकर मर गई तो उससे बैअ-ए-अव्वल न टूट जाएगी ये मबसूद में है।

### धोके का हुक्म जारी होने के हक़ में कुछ फ़र्क़ नहीं ☆

अगर ज़ैद ने लोगों से कहा कि ये मेरा गुलाम है मैंने इसको तिजारत की इजाज़त दी है तुम लोग इससे ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करो फिर उस पर बहुत क़र्ज़ा हो गया फिर एक शख्स ने इस्तिहक़ाक़ साबित करके उसको लिया पस अगर मुस्तहिक़ ने इक़रार किया कि मैंने इसको तिजारत की इजाज़त दी थी तो गुलाम माज़ून बाक़ी रहेगा और क़र्ज़े में फ़रोख़्त किया जाएगा और अगर इजाज़त से इंकार किया तो फ़िलहाल गुलाम के रक़बे से कुछ क़र्ज़ा मुतअल्लिक़ न होगा मगर चूंकि ज़ैद ने क़र्ज़ ख़्वाहों को धोखा दिया कि मेरा गुलाम है और तुम इससे ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करो इस वजह से ज़ैद पर वाजिब होगा कि क़र्ज़ ख़्वाहों को क़र्ज़ा व क़ीमत में से जो कम मिक़दार हो तावान (जुर्माना) अदा करे और अगर इस मसले में ज़ैद ने ये लफ़्ज़ न कहा हो कि ये मेरा गुलाम है या न कहा कि तुम लोग इससे ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करो तो उनके वास्ते ज़ामिन न होगा क्योंकि उसने उनको धोखा नहीं दिया हकज़ा फ़ी शरह अल-तहावी। धोके का हुक्म जारी होने के हक़ में कुछ फ़र्क़ नहीं इसमें कि जिसने ये कलाम न सुना है और जिसने नहीं सुना न जाता है यानी सामअ (सुनने वाला) वग़ैरा सामअ के वास्ते दाअवा की वजह से ज़ामिन होने में कुछ फ़र्क़ नहीं है दोनों के वास्ते ज़ामिन होगा बशर्तेकि ज़ैद ने आम-ए-अहल-ए-बाज़ार के सामने ये लफ़्ज़...

[1] 'माज़ून पर' का अर्थ है: एक स्थिति में जब माज़ून को वकील बनाया गया है। [2] 'बदला हो जाएगा' का अर्थ है: जितना बदला संभव हो सके, जिसके बाद किसी का कोई अधिकार शेष न रहे। [3] 'और मुश्तरी आदि': कलकत्ता संस्करण में मूल रूप से ऐसा ही है, शायद लिपिक की त्रुटि से कुछ शब्द छूट गए हैं, यानी 'बांदी ने कुआं खोदना शुरू किया और मुश्तरी आदि'। इसे समझें।

---

اگر اس نے ماذون کے مضارب کے ہاتھ فروخت کی تو جائز ہے جیسے کہ اگر مولیٰ کے مضارب کے ہاتھ فروخت کی تو بھی جائز ہے خواہ غلام پر قرضہ ہو یا نہ ہو اور اگر اس نے مولیٰ کے بیٹے یا باپ یا مکاتب کے ہاتھ یا مولیٰ کے ہاتھ اس کے نابالغ بیٹے کے واسطے جو باپ کی عیال میں ہے فروخت کی تو یہ سب یکساں ہیں یعنی بیع جائز ہے اور اسی طرح اگر کسی اجنبی نے مولیٰ کو اس کی خرید کے واسطے وکیل کیا اور مولیٰ نے خریدی یا اس نے خود ماذون کو اس کی خرید کے واسطے وکیل کیا اور ماذون نے خریدی تو یہ باندی اس بیع سے اجنبی کے واسطے ہو گی اور مشتری کا ثمن وکیل پر یعنی ماذون 1 پر واجب ہو گا اور پھر ماذون اس کو مؤکل سے وصول کرلے گا اور ماذون کے مشتری پر ضمان قیمت واجب ہو گی پس اگر قیمت اور ثمن میں باہم بدلا 2 ہو جائے گا پھر غلام نے جو کچھ ثمن مؤکل کی طرف سے ادا کیا ہے وہ مؤکل سے واپس لے گا۔ اگر خود ماذون بائع نے کسی شخص کو اس کی باندی کے خریدنے کا وکیل کیا اور وکیل نے مشتری سے مؤکل کے واسطے خریدی اور قبضہ کر لیا تو اس سے بیع اول یعنی بیع فاسد ٹوٹ جائے گی گویا ماذون نے خود ہی خریدی ہے اور اگر مولیٰ نے کسی شخص کو اپنے واسطے خریدنے کا وکیل کیا تو یہ صورت اور مولیٰ کے خود خرید کرنے کی صورت میں یکساں ہے یعنی غلام ماذون کے مقروض ہونے میں اور نہ ہونے میں حکم مختلف ہو جائے گا اور اگر ماذون نے مشتری کے پاس اس باندی کو قتل کیا تو بیع ٹوٹ گئی اسی طرح اگر ماذون نے سر راہ ایک کنواں کھودا خواہ قبل بیع کے یا بعد بیع کے اور اس میں یہی باندی گر پڑی یا گرنے سے اس میں کوئی عیب پیدا ہو گیا اور مشتری 3 نے اس سے باندی کو منع نہ کیا یہاں تک کہ اسی فعل سے مرگئی تو اس سے بیع اول ٹوٹ جائے گی اور اگر مولیٰ نے یہ فعل کیا ہو اور غلام مقروض نہ ہو

تو بھی یہی حکم ہے اور اگر مقروض ہو تو مولیٰ باندی کے واپس لینے پر ایسی حالت میں قادر نہیں ہے تو اپنے فعل میں مثل اجنبی کے ہو گا اور اس کی مددگار برادری پر مشتری کے واسطے تین سال میں باندی کی قیمت ادا کرنی واجب ہو گی بشرطیکہ باندی اسی فعل سے مری ہو اور اگر اس فعل سے اس میں عیب آیا مگر کسی اور فعل سے مری تو مشتری بسبب قبضہ کرنے کے باندی کی قیمت کا ضامن ہو گا واپس کرنے سے معذور رہے گا مگر مولیٰ سے نقصان عیب فی الحال مال مولیٰ سے واپس لے گا اور اگر ایسے کنویں میں جس کو ماذون نے اپنے تجارتی مال کے مکان میں یا مولیٰ نے اپنی ملک میں کھودا ہے گر کر مر گئی تو اس سے بیع اول نہ ٹوٹ جائے گی یہ مبسوط میں ہے۔

**دھوکے کا حکم جاری ہونے کے حق میں کچھ فرق نہیں** ☆

اگر زید نے لوگوں سے کہا کہ یہ میرا غلام ہے میں نے اس کو تجارت کی اجازت دی ہے تم لوگ اس سے خرید و فروخت کرو پھر اس پر بہت قرضہ ہو گیا پھر ایک شخص نے استحقاق ثابت کر کے اس کو لیا پس اگر مستحق نے اقرار کیا کہ میں نے اس کو تجارت کی اجازت دی تھی تو غلام ماذون باقی رہے گا اور قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور اگر اجازت سے انکار کیا تو فی الحال غلام کے رقبہ سے کچھ قرضہ متعلق نہ ہو گا مگر چونکہ زید نے قرض خواہوں کو دھوکا دیا کہ میرا غلام ہے اور تم اس سے خرید و فروخت کرو اس وجہ سے زید پر واجب ہو گا کہ قرض خواہوں کو قرضہ و قیمت میں سے جو کم مقدار ہو تاوان ادا کرے اور اگر اس مسئلہ میں زید نے یہ لفظ نہ کہا ہو کہ یہ میرا غلام ہے یا نہ کہا کہ تم لوگ اس سے خرید و فروخت کرو تو ان کے واسطے ضامن نہ ہو گا کیونکہ اس نے ان کو دھوکا نہیں دیا ہکذا فی شرح الطحاوی۔ دھوکے کا حکم جاری ہونے کے حق میں کچھ فرق نہیں اس میں کہ جس نے یہ کلام نہ سنا ہے اور جس نے نہیں سنا نہ جاتا ہے یعنی سامع وغیرہ سامع کے واسطے دعویٰ کی وجہ سے ضامن ہونے میں کچھ

فرق نہیں ہے دونوں کے واسطے ضامن ہو گا بشرطیکہ زید نے عامہ اہل بازار کے سامنے یہ لفظ...

1 قولہ ماذون پر یعنی ایک صورت میں جبکہ ماذون کو وکیل کیا ہے۔ 2 قولہ بدلا ہو جائے گا یعنی جس قدر بدلا ہو سکتا ہے پھر جس کا کچھ نہ حق رہ جائے گا۔ 3 قولہ اور مشتری الخ مطبوعہ کلکتہ اصل میں یوں ہی موجود اور شائد ساقط عبارت کاتب کی غلطی ہے یعنی باندی نے کنواں کھودنا شروع کیا اور مشتری الخ فافہم۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 72 | Kitab al-Ma'zun (Book of the Authorized Slave)**

It is stated: If Zaid came to the merchants (people of the market) and said to them, "This is my slave; trade in cloth with him, for I have authorized him for cloth trade," and subsequently the merchants engaged in trade of items other than cloth with him. It then became known that he is not a slave but a freeman, or that he rightfully belongs to 'Amr. In this case, whoever traded in items other than cloth and holds a debt against this slave trader shall receive indemnity (daman) from Zaid for the lesser of the two amounts: the debt or the value (of the slave). Zaid's statement, "I have given him permission to trade in cloth," shall be deemed redundant (laghu) [1] — this is mentioned in *Al-Muhit*.

If one authorizes his slave for trade but does not specify anyone to deal with him, and then the master authorizes a specific person or group to deal with him, and those people along with another group trade with him following the master's instruction. Subsequently, debt accumulates upon him, and he is then either reclaimed through rightful ownership (istihqaq) or turns out to be a *mudabbar* (a slave promised freedom upon the master's death). In this case, for those who traded with him in accordance with the master's order, the master shall be liable for indemnity equivalent to the lesser of their share of the debt or his value. No indemnity shall be mandatory for others. If he had authorized a specific group for cloth trade only, and they traded in other types of goods as well, there will be no difference; the master (i.e., the one who deceived them) shall be liable for indemnity. If Zaid brought him to the merchants and said, "Trade with him," but did not say, "This is my slave," and the merchants traded with him and he became indebted, and then he was reclaimed through rightful ownership, turned out to be free, or a *mudabbar*, then Zaid is not liable. If he brought him to the merchants and said, "This is my slave; trade (mubai'at) with him," then later made him a *mudabbar* and he subsequently became indebted, Zaid shall not be a guarantor for them, but the slave shall perform labor (sa'ayat) to pay the debt. Similarly, if he was set free after the authorization and then became indebted, the same ruling applies. If he was sold after the authorization and the merchants traded with him and he became their debtor, then Zaid is not liable.

If a person brought someone to the merchants and said, "This is my slave; trade with him as I have authorized him," and they did so, but then the person was reclaimed or turned out to be free. If the person who ordered the trade turned out to be an

authorized slave (ma'zun), a contracted slave (mukatib), or a minor trader, then no indemnity [2] is mandatory upon the one who gave the order, whether or not the merchants knew the commander's status. If the commander is a *mukatib* and he brought a slave girl to the market, claiming ownership and authorization for trade, and she became indebted, and later it was discovered that she was an *umm walid* (having borne a child to the *mukatib*) prior to the authorization, then the creditors may take indemnity from the *mukatib* for the lesser of the value of that *umm walid* calculated as a slave girl [3] or their debt — this is mentioned in *Al-Mabsut*.

**Footnotes:** [1] "Redundant" (laghu) means the specific restriction to "cloth" in the authorization is void, and the slave becomes authorized for all trade. It does not mean the entire statement is void, as it is the source of the authorization. [2] Indemnity (daman) refers to being liable for the lesser amount between the value and the debt. [3] "Calculated as a slave girl" means despite being an *umm walid*, since she was misrepresented as a "slave girl," she will be valued as such for compensation. For example, if her value is 100 dirhams and the debt is 150, the indemnity will be 100 dirhams.

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 72 | किताब अल-माज़ून (अनुमति प्राप्त गुलाम का अध्याय)**

यह कहा गया है: यदि ज़ैद बाजार के लोगों के पास आया और उनसे कहा, "यह मेरा गुलाम है, तुम लोग इससे कपड़ों का व्यापार करो क्योंकि मैंने उसे कपड़ों के व्यापार की अनुमति दी है," फिर बाजार वालों ने उससे कपड़ों के अलावा अन्य वस्तुओं की खरीद-फरोख्त की। इसके बाद पता चला कि वह गुलाम नहीं है, बल्कि स्वतंत्र (आजाद) है या उसका वास्तविक हकदार अम्र है। तो जिसने कपड़ों के अलावा दूसरी चीज़ का लेन-देन किया है और उसका उस गुलाम व्यापारी पर कर्ज है, वह ज़ैद से कर्ज और (गुलाम की) कीमत में से जो कम राशि हो, उसकी क्षतिपूर्ति (ज़मान) ले। और ज़ैद का यह कहना कि "मैंने उसे केवल कपड़ों के व्यापार की अनुमति दी है," निरर्थक (लघ्व) घोषित किया जाएगा - यह 'मुहीत' में वर्णित है।

यदि किसी ने अपने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, लेकिन उसके साथ लेन-देन करने की अनुमति किसी विशेष व्यक्ति को नहीं दी, फिर स्वामी ने किसी विशेष व्यक्ति या विशेष समुदाय को उसके साथ लेन-देन की अनुमति दे दी, और उन लोगों ने तथा एक अन्य समुदाय ने भी उसके साथ लेन-देन किया और स्वामी के आदेश पर कार्य हुआ। फिर उस पर कर्ज चढ़ गया, और बाद में वह गुलाम किसी के अधिकार में चला गया या मुदब्बर (वह गुलाम जिसे मृत्यु के बाद आजादी का वचन दिया हो) निकला। तो जिन लोगों ने स्वामी के आदेश के अनुसार उसके साथ लेन-देन किया था, उनके लिए स्वामी पर उनके कर्ज के हिस्से और कीमत में से जो भी कम हो, उसकी क्षतिपूर्ति अनिवार्य होगी। दूसरों के लिए कोई क्षतिपूर्ति अनिवार्य नहीं होगी। और यदि उसने किसी विशेष समुदाय को केवल कपड़ों के व्यापार की अनुमति दी हो, और उन्होंने कपड़ों के अलावा अन्य प्रकार के व्यापार में भी उसके साथ लेन-देन किया हो, तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा, बल्कि उनके लिए भी स्वामी पर (यानी जिसने उन्हें धोखा दिया है) क्षतिपूर्ति अनिवार्य होगी। यदि ज़ैद उसे बाजार वालों के पास लाया और कहा, "तुम लोग इससे खरीद-फरोख्त किया करो" और यह नहीं कहा कि "यह मेरा गुलाम है," और बाजार वालों ने उससे व्यापार किया और उस पर कर्ज चढ़ गया, फिर वह किसी के अधिकार में चला गया या स्वतंत्र या मुदब्बर निकला, तो ज़ैद पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा। और यदि वह उसे बाजार वालों के पास लाया और कहा, "यह मेरा गुलाम है, तुम इसके साथ लेन-देन (मुबायअत) करो," फिर उसे मुदब्बर बना दिया और बाद में उस पर कर्ज हो गया, तो ज़ैद उनके लिए ज़ामिन (गारंटर) नहीं होगा, बल्कि गुलाम कर्ज चुकाने के लिए मेहनत-मजदूरी (सआयत) करेगा। इसी

तरह यदि अनुमति के बाद उसे स्वतंत्र कर दिया गया और फिर उस पर कर्ज हो गया, तो भी यही हुक्म है। यदि अनुमति के बाद उसे बेच दिया गया और फिर बाजार वालों ने उसके साथ व्यापार किया और वह उनका कर्जदार हो गया, तो ज़ैद पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा।

यदि कोई व्यक्ति उसे बाजार वालों के पास लाया और कहा, "यह मेरा गुलाम है, तुम इसके साथ व्यापार करो क्योंकि मैंने उसे व्यापार की अनुमति दी है," फिर उन्होंने व्यापार किया, और बाद में वह गुलाम किसी अन्य के अधिकार में चला गया या स्वतंत्र निकला। और जिस व्यक्ति ने बाजार वालों को उसके साथ व्यापार करने का आदेश दिया था, वह स्वयं गुलाम माज़ून (अनुमति प्राप्त) या मुकातब (स्वतंत्रता के लिए अनुबंधित) या व्यापार करने वाला नाबालिग निकला, तो आदेश देने वाले पर बाजार वालों के लिए कोई क्षतिपूर्ति अनिवार्य नहीं होगी, चाहे वे लोग जिन्होंने व्यापार किया है, आदेश देने वाले की वास्तविक स्थिति से वाकिफ हों या नहीं। यदि आदेश देने वाला मुकातब हो और वह बाजार में एक दासी लाया और कहा, "यह मेरी दासी है, मैंने उसे व्यापार की अनुमति दी है, तुम लोग उससे खरीद-फरोख्त करो," फिर उस पर कर्ज हो गया। बाद में पता चला कि अनुमति देने से पहले ही उस दासी से मुकातब को संतान प्राप्त हो चुकी है (यानी वह उम्म-ए-वलद बन चुकी है), तो कर्जदाताओं को यह अधिकार होगा कि वे मुकातिबत से उस उम्म-ए-वलद की क्षतिपूर्ति के रूप में दासी के मूल्य के आधार पर और अपने कर्ज में से जो भी कम हो, उतनी राशि लें - यह 'मब्सूत' में वर्णित है।

**पाद टिप्पणियाँ:** 1. 'लघ्व' (निरर्थक) का अर्थ है कि विवाद निरर्थक माना जाएगा, यानी इस अनुमति में कपड़ों का प्रतिबंध अमान्य होगा और गुलाम सभी व्यापार के लिए अधिकृत माना जाएगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि पूरा कथन व्यर्थ है, क्योंकि यही कथन अनुमति का आधार है। विचार करें। 2. ज़मान (क्षतिपूर्ति) का अर्थ है कि वह कीमत और कर्ज में से जो भी कम राशि होगी, उसका उत्तरदायी होगा। 3. 'दासी के मूल्य के आधार पर' का अर्थ है कि यद्यपि वह उम्म-ए-वलद है, लेकिन चूंकि उसे 'दासी' कहकर धोखा दिया गया, इसलिए दासी मानकर उसकी कीमत लगाई जाएगी। जैसे 100 दिरहम मूल्य और 150 कर्ज हो, तो 100 दिरहम की क्षतिपूर्ति ली जाएगी।

کہا ہو۔ اگر زید نے جب اہل بازار پاس آیا تو ان سے نے کہا کہ یہ میرا غلام ہے تم لوگ اس سے کپڑے کی تجارت کرو کہ میں نے اس کو کپڑے کی تجارت کی اجازت دی ہے پھر اہل بازار نے اس سے کپڑے کے سوائے اور چیزوں کی خرید فروخت کی تھی پھر معلوم ہوا کہ یہ غلام نہیں ہے آزاد ہے یا اس کا مستحق عمرو ہے تو جس نے سوائے کپڑے کے دوسری چیز کی خرید فروخت کی ہے اور اس کا اس غلام تاجر پر قرضہ ہے وہ زید سے قرضہ و قیمت سے کم مقدار کی ضمان لے اور زید کا یہ کلام کہ میں نے کپڑے کی تجارت کی اجازت دی ہے لغو ۱؎ قرار دیا جائے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر اپنے غلام کو تجارت کے واسطے اجازت دی مگر اس کے ساتھ معاملہ کرنے کی اجازت کسی کو نہیں دی پھر مولیٰ نے کسی شخص خاص یا کسی قوم خاص کو اس کے ساتھ معاملہ کرنے کی اجازت دی پس ان لوگوں نے اور ایک دوسری قوم نے اس کے ساتھ معاملہ کیا اور مولیٰ کے حکم پر کارروائی ہوئی پھر اس پر قرضہ چڑھ گیا پھر وہ استحقاق میں لے لیا گیا یا مدبر نکلا تو جن لوگوں نے مولیٰ کے حکم کے موافق اس سے معاملہ کیا ہے ان کے واسطے مولیٰ پر بقدر ان کے حصہ قرض اور قیمت سے جو کم ہو اس کی ضمان واجب ہو گی اور دوسروں کے واسطے کچھ ضمان واجب نہ ہو گی اور اگر اس نے کسی خاص قوم کو اس کے ساتھ کپڑے کی تجارت میں معاملہ کی اجازت دی ہو اور انہوں نے سوائے کپڑے کے دوسری قسم کی تجارت میں بھی اس سے معاملہ کیا تو کچھ فرق نہ ہو گا بلکہ ان کے واسطے مولیٰ پر یعنی جس نے ان کو دھوکا دیا ہے اس پر ضمان واجب ہو گی اگر زید اس کو اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ تم لوگ اس سے معاملہ خرید و فروخت کیا کرو اور نہ کہا کہ یہ میرا غلام ہے اور اہل بازار نے اس سے خرید و

فروخت کی اور اس پر قرضہ ہو گیا پھر وہ استحقاق میں لے لیا گیا یا آزاد نکلا یا مدبر نکلا تو زید پر کچھ واجب نہ ہو گا اور اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ یہ میرا غلام ہے تم لوگ اس سے مبایعت کرو پھر اس کو مدبر کر دیا پھر اس پر قرضہ ہو گیا تو زید ان کے واسطے کچھ ضامن نہ ہو گا مگر غلام قرضہ کے واسطے سعایت کرے گا۔ اسی طرح اگر بعد اجازت کے اس کو آزاد کر دیا پھر اس پر قرضہ ہو گیا تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر بعد اجازت کے اس کو فروخت کیا پھر اہل بازار نے اس سے مبایعت کی اور وہ ان کا قرض دار ہو گیا تو زید پر کچھ واجب نہ ہو گا۔

اگر ایک شخص اس کو اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ یہ میرا غلام ہے تم لوگ اس سے مبایعت کرو کہ میں نے اس کو تجارت کی اجازت دی ہے پس انہوں نے مبایعت کی پھر وہ غلام استحقاق میں لیا گیا یا آزاد نکلا اور جس شخص نے اہل بازار کو اس کے ساتھ معاملہ کرنے کا حکم دیا تھا وہ غلام ماذون یا مکاتب یا نابالغ التجا رت نکلا تو حکم کرنے والے پر اہل بازار کی کچھ ضمان ؎۲ واجب نہ ہو گی خواہ وہ لوگ جنہوں نے اس سے مبایعت کی ہے حکم دہندہ کے حال سے واقف ہوں یا نہ ہوں۔ اگر حکم دہندہ مکاتب ہو اور وہ ایک باندی بازار میں لایا اور کہا کہ میری باندی ہے اس کو میں نے تجارت کی اجازت دی ہے تم لوگ اس سے خرید و فروخت کرو پھر اس پر قرضہ ہو گیا پھر معلوم ہوا کہ قبل اجازت کے اس باندی کے مکاتب سے کتابت میں بچہ پیدا ہو چکا ہے تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا کہ مکاتبت سے اس ام ولد کی قیمت بحساب ؎۳ باندی کے اور اپنے قرضہ سے جو مقدار دونوں میں سے کم ہو اس قدر ضمان لیں یہ مبسوط میں ہے۔

**حواشی:** ؎۱ قولہ لغو یعنی خصومت لغو قرار دی جائے گی یعنی اس اجازت میں کپڑے کی خصوصیت لغو ہو گی اور غلام تمام تجارت کے واسطے ماذون ہو جائے گا اور یہ مراد نہیں ہے کہ یہ کلام سب لغو ہو گا کیونکہ یہی کلام منشا اذان ہے لغو کیونکر ہو سکتا ہے فتامل۔ ؎۲ ضمان یعنی قیمت و قرضہ میں سے کم مقدار کا ضامن ہو گا۔ ؎۳ قولہ بحساب باندی کے یعنی اب وہ ام

ولد ہوگئی ہے اور پہلے بھی تھی مگر چونکہ اس نے باندی کہہ کر دھوکا دیا اس سے باندی قرار دے کر اس کی قیمت لگا کر دیکھیں گے مثلا سو درہم ہے اور قرضہ ڈیڑھ سو درہم ہے پس دونوں میں سے کم مقدار کی ضمان لیں گے۔

**Fatawa-e-Alamgiri …….. Volume 8 Kitab al-Ma'zoon (The Book of Authorized Slaves)**

He said to them, "This is my slave; buy and sell from him, for I have granted him permission to trade." They engaged in transactions, and subsequently, he incurred debt. Later, a person named 'Amr established his rightful ownership (Istihqaq) and took the slave. The situation was that before the slave came into Zaid’s possession, Amr had already granted him permission to trade. In this case, the slave shall be sold to settle the debt. However, if Amr pays a ransom (Fidya) in exchange, the slave will not be sold. Zaid, who commanded the market people to engage in trade with him, shall not be liable for any indemnity (Zaman). If it is discovered that the slave was Amr’s 'Mudabbir' (a slave promised freedom upon the master's death) and was authorized to trade, the creditors have the right to claim indemnity from Zaid equivalent to the lower of either the slave’s value as a common slave ('Qan') or the amount of the debt. This is mentioned in *Al-Muhit*.

If Amr's slave was 'Mahjoor' (restricted/unauthorized), and Zaid brought him to the market people saying, "This is my slave; engage in trade with him," and subsequently the master granted him permission to trade, and after that he incurred debt, Zaid shall not be liable for any indemnity in this matter.

If the slave incurred a debt of one thousand Dirhams before Amr granted permission, and another thousand Dirhams after permission, Zaid shall be liable to the creditors for the lesser of the pre-permission debt (one thousand Dirhams) or half the slave's value. If Zaid brought a slave to the market and said, "This is Amr’s slave; he has appointed me as his agent (Wakil) to authorize him for trade and to command you to deal with him, and I have granted him permission; so, trade with him," and they traded and the slave incurred debt, and then Amr came and denied the agency, the agent (Zaid) shall be liable to the creditors for the lesser of the value or the debt. If another person (Khalid) claimed the slave by right and he turned out to be his master’s Mudabbir or was a free man, the agent would still be liable. Whatever the authorized slave pays, the agent (Zaid) will recover from his principal (Amr), provided Amr admits the agency. If Amr denies it, Zaid cannot recover anything, unless he proves the agency with witnesses. If Zaid said, "This is the slave of my minor son who is under my care," and the slave was subsequently reclaimed by right or turned out to be free, Zaid would be liable for the lesser of the slave’s value or the debt. The same rule applies to the executor (Wasi) of a father or grandfather. If a

mother, brother, or other relatives performed such an act, it would not be counted as deception, and no indemnity would be mandatory upon them. This is in *Al-Mabsut*.

If a person brought a boy to the market and said, "This is my son; I have given him permission to trade; trade with him," and the minor understands the nature of buying and selling, and people traded with him and he incurred debt, and then another person produced witnesses that "this is my son" and this rightful father had not authorized him to trade, then nothing shall be mandatory upon the minor currently or after reaching maturity. However, the creditors shall recover their debt from the person who commanded them to trade with him. This is contrary to the case of a restricted slave, who remains liable after being freed. This is in *Al-Muhit*. If Zaid brought a slave to the market and said, "This is my slave and a Mudabbir; trade with him," and he incurred debt, and then Amr produced witnesses that "this is my Mudabbir," then until the Mudabbir is freed, any demand for debt from him is void, and Zaid shall not be liable for the indemnity of his value or earnings. If that Mudabbir died while with Amr, Zaid would pay his value as a Mudabbir as indemnity to the creditors. If a female slave was brought to the market and it was said, "This is my slave," and she incurred debt encompassing her value, then she gave birth to a child, and Amr proved his right and took the slave along with the child, Zaid would be liable for the value of both the slave and the child. If the value of the slave on the day of the command was different from the day her right was established, Zaid would be liable for the value on the day she was reclaimed by right. If Zaid produced witnesses that Amr had granted him permission before or after the deception and before the slave became indebted, he would be liable; otherwise, if he is also a minor, he should not be held liable. And Allah knows best.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 किताब अल-माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत दासों का अध्याय)**

उसने उनसे कहा कि यह मेरा गुलाम है, तुम लोग इससे खरीद-बिक्री करो क्योंकि मैंने इसे व्यापार की अनुमति दी है। उन्होंने लेन-देन किया और फिर उस पर ऋण (कर्ज) चढ़ गया। फिर उस गुलाम को 'अम्र' ने अपना स्वामित्व सिद्ध करके ले लिया, जबकि स्थिति यह थी कि ज़ैद के कब्जे में आने से पहले अम्र इस गुलाम को व्यापार की अनुमति दे चुका था। ऐसी स्थिति में, गुलाम को उस ऋण के बदले बेचा जाएगा। लेकिन अगर अम्र उसके बदले मुआवज़ा (फ़िदया) दे दे, तो वह बेचा नहीं जाएगा। ज़ैद पर, जिसने बाज़ार वालों को लेन-देन का आदेश दिया था, कोई हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगा। और अगर यह पता चला कि यह गुलाम अम्र का 'मुदब्बर' (वह गुलाम जिसे मालिक की मृत्यु के बाद आज़ादी का वादा हो) था और व्यापार के लिए अधिकृत था, तो ऋणदाताओं को अधिकार होगा कि वे ज़ैद से उसकी कीमत का हर्जाना लें, जो एक सामान्य गुलाम (क़न) की कीमत और ऋण की राशि में से जो भी कम हो, उसके बराबर होगा। यह 'मुहीत' में वर्णित है।

और अगर अम्र का गुलाम 'महजूर' (व्यापार के लिए प्रतिबंधित) हो, और ज़ैद उसे बाज़ार वालों के पास लाकर कहे कि यह मेरा गुलाम है तुम इससे लेन-देन करो, और फिर मालिक ने उसे व्यापार की अनुमति दे दी, और उसके बाद उस पर ऋण चढ़ गया, तो ज़ैद पर इस मामले में कोई हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा।

अगर अम्र की अनुमति से पहले उस पर एक हज़ार दिरहम का ऋण था और अनुमति के बाद फिर एक हज़ार दिरहम का ऋण हो गया, तो ज़ैद पर ऋणदाताओं के प्रति अनुमति से पहले वाले ऋण (यानी एक हज़ार दिरहम) और गुलाम की आधी कीमत में से जो भी कम हो, उसका हर्जाना अनिवार्य होगा। यदि ज़ैद एक गुलाम को बाज़ार में लाया और कहा कि यह अम्र का गुलाम है और उसने मुझे वकील नियुक्त किया है कि मैं इसे व्यापार की अनुमति दूँ और तुम लोगों को इसके साथ व्यापार करने का आदेश दूँ, और मैंने इसे अनुमति दे दी, तो तुम लोग इससे लेन-देन करो। उन्होंने लेन-देन किया और गुलाम पर कर्ज चढ़ गया। फिर अम्र आया और उसने वकील नियुक्त करने से इनकार कर दिया, तो वकील (ज़ैद) ऋणदाताओं के लिए गुलाम की कीमत और ऋण में से जो भी कम हो, उसका उत्तरदायी होगा। यदि वह गुलाम किसी तीसरे व्यक्ति (ख़ालिद) ने अपना अधिकार सिद्ध करके ले लिया और वह अपने मालिक का मुदब्बर निकला या स्वतंत्र निकला, तब भी वकील उत्तरदायी होगा। और अधिकृत गुलाम जितना भुगतान करेगा, वकील उसे अपने मुवक्किल (अम्र) से

वापस लेगा, बशर्ते अम्र वकालत स्वीकार करे। यदि अम्र ने इनकार किया, तो ज़ैद कुछ भी वापस नहीं ले सकता, लेकिन यदि वह गवाहों से वकालत साबित कर दे, तो ले सकता है। यदि ज़ैद ने कहा कि यह मेरे नाबालिग बेटे का गुलाम है जो मेरे आश्रित है, और फिर उस गुलाम का मालिकाना हक साबित होकर उसे ले लिया गया या वह स्वतंत्र निकला, तो ज़ैद गुलाम की कीमत और ऋण में से जो कम होगा उसका उत्तरदायी होगा। पिता और दादा के वसीयतदार (वसी) के लिए भी यही नियम है। यदि माँ, भाई या अन्य रिश्तेदारों ने ऐसा किया, तो इसे धोखा नहीं माना जाएगा और उन पर कोई हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। यह 'मबसूत' में है।

यदि कोई व्यक्ति एक लड़के को बाज़ार में लाया और कहा कि यह मेरा बेटा है, मैंने इसे व्यापार की अनुमति दी है, तुम लोग इससे लेन-देन करो, और वह नाबालिग खरीद-बिक्री समझता है, तो लोगों ने उससे लेन-देन किया और उस पर कर्ज हो गया। फिर एक व्यक्ति ने गवाह पेश किए कि यह मेरा बेटा है और इस वास्तविक पिता ने उसे व्यापार की अनुमति नहीं दी थी, तो उस नाबालिग पर वर्तमान में या वयस्क होने के बाद भी कुछ अनिवार्य नहीं होगा। लेकिन ऋणदाता उस व्यक्ति से अपना कर्ज वसूल करेंगे जिसने उन्हें लेन-देन का आदेश दिया था। यह प्रतिबंधित गुलाम के मामले के विपरीत है जहाँ वह आज़ादी के बाद उत्तरदायी होता है। यह 'मुहीत' में है। यदि ज़ैद एक गुलाम को बाज़ार लाया और कहा कि यह मेरा गुलाम और मुदब्बर है, तुम इससे लेन-देन करो, और फिर उस पर कर्ज हो गया। फिर अम्र ने गवाह दिए कि यह मेरा मुदब्बर है, तो जब तक मुदब्बर आज़ाद न हो जाए, उससे ऋण की वसूली बातिल (अमान्य) होगी और ज़ैद पर उसकी कीमत या कमाई का हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। यदि वह मुदब्बर अम्र के पास मारा गया, तो ज़ैद मुदब्बर होने के नाते उसकी कीमत ऋणदाताओं को हर्जाने के रूप में देगा। यदि कोई दासी बाज़ार में लाई गई और कहा गया कि यह मेरी दासी है, फिर उस पर इतना कर्ज हुआ जो उसकी कीमत के बराबर है, फिर उसके बच्चा पैदा हुआ और अम्र ने अपना हक साबित कर दासी और बच्चे को ले लिया, तो ज़ैद दासी और बच्चे की कीमत का उत्तरदायी होगा। यदि लेन-देन के आदेश वाले दिन दासी की कीमत और हक साबित होने वाले दिन की कीमत में अंतर हो, तो ज़ैद उस दिन की कीमत का उत्तरदायी होगा जिस दिन उसे हक के आधार पर लिया गया। यदि ज़ैद ने गवाह पेश किए कि अम्र ने ऋणदाता होने से पहले अनुमति दे दी थी, तो वह उत्तरदायी होगा, अन्यथा यदि वह भी नाबालिग हो तो उसे उत्तरदायी नहीं होना चाहिए। अल्लाह ही बेहतर जानता है।

---

سے کہا کہ یہ میرا غلام ہے تم لوگ اس سے خرید فروخت کرو کہ میں نے اس کو تجارت کی اجازت دی ہے اور انہوں نے مبایعت کی پھر اس پر قرضہ ہو گیا پھر اس غلام کو عمرو نے باثبات استحقاق خود لے لیا اور حال یہ تھا کہ زید کے قبضہ میں آنے سے پہلے عمرو اس غلام کو تجارت کی اجازت دے چکا تھا تو غلام اس قرضہ میں فروخت کیا جائے گا لیکن اگر عمرو اس کے عوض فدیہ دے دے تو فروخت نہ ہو گا اور زید پر جس نے بازاریوں کو مبایعت کا حکم دیا ہے کچھ ضمان لازم نہ ہو گی اور اگر یہ معلوم ہوا کہ یہ غلام عمرو کا مدبر ماذون التجارۃ تھا تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا کہ زید سے اس کی قیمت بحساب قن یعنی محض مملوک ہونے کے اعتبار سے اور قرضہ میں سے جو کم ہو اس قدر ضمان لیں یہ محیط میں ہے۔

اور اگر عمرو کا غلام محجور ہو اس کو زید اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ یہ میرا غلام ہے تم لوگ اس سے مبایعت کرو پھر مولیٰ نے اس کو تجارت کی اجازت دے دی پھر اس کے بعد اس پر قرضہ چڑھ گیا تو زید پر اس معاملہ میں کچھ ضمان واجب نہ ہو گی۔

اگر عمرو کی اجازت دینے سے پہلے اس پر ہزار درہم قرض ہو گئے پھر عمرو کے اجازت دینے کے بعد اس پر ہزار درہم قرض ہو گئے تو قرض خواہوں کے زید پر پہلے قرضہ یعنی ہزار درہم قرض قبل اجازت میں سے اور غلام کی نصف قیمت میں سے کم مقدار کی ضمان واجب ہو گی اور اگر زید ایک غلام کو اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ یہ عمرو کا غلام ہے اس نے مجھے وکیل کیا ہے کہ میں اس کو تجارت کی اجازت دے دوں اور تم لوگوں کو اس کے ساتھ معاملہ کرنے کا حکم دوں اور میں نے اس کو تجارت کی اجازت دے دی پس تم لوگ اس سے مبایعت کرو پس

انہوں نے معاملہ کیا اور غلام پر خرید و فروخت میں قرضہ چڑھ گیا پھر عمرو آیا اور اس نے توکیل سے انکار کیا تو وکیل یعنی زید قرض خواہوں کے واسطے قیمت اور قرضہ میں سے کم مقدار کا ضامن ہو گا اور اگر وہ غلام خالد نے استحقاق میں لے لیا اور اپنے مولیٰ کا مدبر نکلا یا محض آزاد تھا تو بھی وکیل ضامن ہو گا اور جس قدر ماذون ادا کرے گا اس قدر موکل یعنی عمرو سے واپس لے گا بشرطیکہ عمرو توکیل کا اقرار کرے اور اگر انکار کیا تو کچھ واپس نہیں لے سکتا ہے لیکن اگر وکالت کو گواہوں سے ثابت کرے تو لے سکتا ہے اور اگر زید نے کہا کہ یہ میرے بیٹے نا بالغ کا جو میرے عیال میں ہے غلام ہے تم لوگ اس سے مبایعت کرو پھر وہ غلام استحقاق ثابت کر کے لے لیا گیا یا محض آزاد نکلا تو زید غلام کی قیمت اور قرضہ میں سے کم مقدار کا ضامن ہو گا اور باپ و دادا کے وصی کا بھی یہی حکم ہے۔ اگر ماں یا بھائی وغیرہ ایسے قرابت کے لوگوں نے یہ فعل کیا تو دھوکا شمار نہ ہو گا اور نہ ان لوگوں پر ضمان واجب ہو گی یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ایک شخص ایک لڑکے کو اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ یہ میرا بیٹا ہے میں نے اس کو تجارت کی اجازت دی ہے تم لوگ اس سے مبایعت کرو اور وہ نا بالغ خرید و فروخت کو سمجھتا ہے پس ان لوگوں نے اس سے معاملہ کیا اور اس پر قرضہ ہو گیا پھر ایک شخص نے گواہ قائم کئے کہ یہ میرا بیٹا ہے اور اس مستحق نے اس کو تجارت کی اجازت نہیں دی تھی تو نا بالغ پر فی الحال یا بعد بلوغ کے بھی کچھ لازم نہ ہو گا لیکن قرض خواہ لوگ اس شخص سے جس نے ان لوگوں کو اس سے مبایعت کرنے کا حکم کیا تھا اپنا قرضہ بھر لیں گے بخلاف غلام محجور کے کہ ایسی صورت میں غلام محجور بعد آزادی کے ماخوذ ہوتا ہے یہ محیط میں ہے اگر زید ایک غلام کو اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ یہ میرا غلام ہے اور مدبر ہے تم لوگ اس سے مبایعت کرو پس ان لوگوں نے اس سے مبایعت کی اور وہ قرض دار ہو گیا پھر عمرو نے گواہ دیے کہ یہ میرا

مدبر ہے تو جب تک مدبر آزاد نہ ہو جائے تب تک اس کے ذمہ سے قرضہ کا مطالبہ باطل ہو گا اور زید پر اس کے رقبہ کی قیمت یا کمائی کی ضمان واجب نہ ہو گی۔ اگر وہ مدبر عمرو کے پاس مقتول ہوا تو زید مدبر ہونے کے حساب سے اس کی قیمت قرض خواہوں کو تاوان دے گا۔ اگر ایک باندی کو اہل بازار کے پاس لایا اور کہا کہ یہ میری باندی ہے تم لوگ اس سے مبایعت کرو پھر اس پر اس قدر قرضہ چڑھ گیا جو اس کے رقبہ کو محیط ہے پھر اس کے بچہ پیدا ہوا اور پھر عمرو نے استحقاق ثابت کر کے باندی مع بچہ کے لے لی تو زید اس کے اور اس کے بچہ کی قیمت کا ضامن ہو گا اور اگر یہ حال ہو کہ جس دن لوگوں کو اس سے مبایعت کا حکم کیا ہے اس دن باندی کی قیمت یوم استحقاق کی بنسبت زیادہ یا کم ہو تو زید اس دن کی قیمت کا ضامن ہو گا جس دن استحقاق میں لی گئی ہے۔ اگر زید نے اس امر کے گواہ پیش کیے کہ میرے دھوکا دینے سے پہلے یا دھوکا دینے کے بعد باندی کے قرض دار ہونے سے پہلے عمرو اس کو تجارت کی اجازت دے دے چکا تھا تو مأخوذ ہو گا ورنہ وہ بھی نا بالغ ہو تو چاہیے کہ مأخوذ نہ ہو واللہ تعالیٰ اعلم۔

---

Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 78 The Book of the Authorized Slave (Kitab al-Ma'zoon)

...then Zaid shall be absolved from the liability, as stated in Al-Mabsoot.

**Chapter Eleven: Concerning the offenses committed by an authorized slave (Ma'zoon) or his slave, or offenses committed against them.**

If an authorized slave commits an unintentional offense (wrongful killing) against a free person or a slave, and he (the authorized slave) is in debt, his master (Mawla) shall be told to either surrender him or pay the ransom (Fidiya). If the master agrees to pay the ransom, the authorized slave is cleared of the offense, and the rights of the creditors remain, so he shall be sold to repay their debts. If the master surrenders him, the creditors shall apprehend the authorized slave at the hands of the legal heirs of the victim and have him sold for their debt. However, if the victim's heirs pay the ransom for this murderous authorized slave, this shall not be the case; this is in Al-Mabsoot.

Then, when that slave is sold for the creditors to the legal heirs of the offense, the victim's heirs shall have no right to take back anything from the master thereafter. Contrary to this, if the offense was committed before the debt was incurred and the master surrendered the authorized slave to the heirs and he was sold for the creditors' debt, in this case, the victim's heirs shall have the right to reclaim the price of the authorized slave from the master; this is in Al-Muheet. And if one of the slaves of an authorized slave commits an offense and kills a free person or a slave by mistake, the authorized slave (not the master) shall be asked to either surrender him or pay his ransom; this is in Al-Mughni. If the authorized slave has a trading slave-girl and she kills someone by mistake, the authorized slave has the option to either surrender her or pay her ransom, whether the authorized slave is in debt or not. Thus, if the slave-girl's crime is that she killed a person, and her price is one thousand dirhams, and the authorized slave paid ten thousand dirhams as ransom, it is permissible according to the analogy (qiyas) of Imam al-Azam (Abu Hanifa), but not according to the two companions (Sahibayn). If the slave-girl kills intentionally and retaliation (qisas) becomes mandatory, and then the authorized slave settles with the victim's heir, it is permissible. But if the authorized slave himself is the killer and he makes a settlement for his own life, whether he is in debt or not, the settlement is not valid; this is in Al-Mabsoot. When the judge has invalidated the authorized slave's settlement for himself, the victim's heir shall not have the right to have him executed

or to take anything from the settlement amount until he becomes free; this is in Al-Muheet. If an authorized slave kills someone intentionally and he is in debt, and the master settles with the victim's heirs by giving them the slave in place of their right, it is not permissible. It will no longer be permissible for those people to kill him, i.e., by way of retaliation, and retaliation is waived (saqit). The slave shall be sold to pay the debt, and the creditors' debt shall be paid. Then, if anything remains, it shall be given to the victim's heirs; otherwise, they shall receive nothing; this is in Al-Mughni.

If the authorized slave has a house for his trade and a murdered person is found in it, whether the authorized slave is in debt or not, then...

---

1- Ma'zoon, i.e., the killer slave. The authorized slave is handed over to the heirs of the victim's master. The victim's heirs are those who have a claim to his blood, and they are called 'Awliya-e-Maqtool'. It should be clear that when a slave is an unintentional killer, the ruling is that the claimants of the blood should either be given that criminal slave or his ransom, i.e., his price, whether in full or as much as is mutually agreed upon. (12) 2- Waived (Saqit), because they agreed to waive the blood-retaliation in exchange for settlement property; thus, the retaliation for blood is waived and he shall not pardon, even if the form of settlement was illegal.

फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 78 किताब अल-माज़ून

...है तो ज़ैद ज़मान (गारंटी) से बरी हो जाएगा, जैसा कि 'मबसूत' में है।

**अध्याय ग्यारह: माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत गुलाम) या माज़ून के गुलाम द्वारा अपराध करने, या उस पर किसी व्यक्ति द्वारा अपराध किए जाने के वर्णन में।**

यदि किसी माज़ून ने किसी स्वतंत्र व्यक्ति या गुलाम पर गलती से अपराध किया, यानी हत्या की, और उस पर कर्ज है, तो उसके मालिक (मौला) से कहा जाएगा कि या तो उसे (माज़ून को) सुपुर्द कर दे या उसका फ़िदिया (हर्जाना) दे दे। यदि मालिक ने फ़िदिया देना स्वीकार कर लिया, तो माज़ून अपराध के दोष से मुक्त हो गया, और उस पर कर्जदारों का हक बना रहा, अतः उसे उनके कर्ज के बदले में बेचा जाएगा। यदि उसने माज़ून को सुपुर्द कर दिया, तो कर्जदार लोग अपराध के उत्तराधिकारियों (औलिया) के पास जाकर माज़ून को पकड़कर अपने कर्ज के बदले में बेचवाएंगे। लेकिन यदि मृतक के वारिस उस कातिल माज़ून का फ़िदिया अदा कर दें, तो ऐसा नहीं होगा; यह 'मबसूत' में है।

फिर जब वह गुलाम कर्जदारों के लिए अपराध के वारिसों के पास बेचा गया, तो मृतक के वारिसों को इसके बाद मालिक से कुछ वापस लेने का अधिकार नहीं होगा। इसके विपरीत, यदि कर्ज चढ़ने से पहले माज़ून से अपराध हुआ और मालिक ने माज़ून को अपराध के वारिसों के हवाले कर दिया और वह कर्जदारों के कर्ज के बदले में बेचा गया, तो इस स्थिति में मृतक के वारिसों को अधिकार होगा कि वे मालिक से माज़ून की कीमत वापस लें; यह 'मुहीत' में है। और यदि माज़ून के गुलामों में से किसी गुलाम ने अपराध किया और किसी स्वतंत्र व्यक्ति या गुलाम को गलती से मार दिया, तो उसे सुपुर्द करने या उसका फ़िदिया देने के लिए माज़ून से कहा जाएगा, न कि मालिक से; यह 'मुगनी' में है। यदि माज़ून के पास व्यापार के लिए कोई दासी हो और उसने किसी को गलती से मार दिया, तो माज़ून को अधिकार होगा कि चाहे उसे सुपुर्द कर दे या उसका फ़िदिया दे दे, चाहे माज़ून ऋणी हो या न हो। अतः यदि दासी का अपराध यह हो कि उसने किसी व्यक्ति को मार डाला और दासी की कीमत एक हजार दिरहम हो और माज़ून ने दस हजार दिरहम फ़िदिया में दिए, तो इमाम-ए-आज़म के कयास (तर्क) पर यह जायज़ है, लेकिन साहिबैन के निकट जायज़ नहीं है। और यदि दासी ने जानबूझकर (अमदन) हत्या की और उस पर किसास (प्रतिशोध) अनिवार्य हो गया, फिर माज़ून ने मृतक के वारिस से सुलह (समझौता) कर ली, तो यह जायज़ है। और यदि स्वयं माज़ून ही कातिल हो और उसने अपनी जान के बदले सुलह कर ली, चाहे उस पर कर्ज हो या न हो, तो सुलह जायज़ नहीं

है; यह 'मबसूत' में है। जब काजी ने माज़ून के अपने लिए सुलह करने को अवैध (बातिल) करार दे दिया, तो मृतक के वारिस को यह अधिकार नहीं होगा कि वह माज़ून की हत्या करवा दे या उससे समझौते के बदले में कुछ ले, जब तक कि वह स्वतंत्र न हो जाए; यह 'मुहीत' में है। यदि माज़ून ने जानबूझकर किसी की हत्या की और उस पर कर्ज है, और मालिक ने मृतक के वारिसों के साथ इस तरह सुलह की कि वह गुलाम उन्हें दे दे, तो यह जायज़ नहीं है। उन लोगों के लिए उसकी हत्या करना यानी किसास जायज़ नहीं रहेगा, और किसास समाप्त (साकित) हो गया। वह गुलाम कर्ज के बदले में बेचा जाएगा और कर्जदारों का कर्ज चुकाया जाएगा। फिर यदि कुछ बच गया, तो मृतक के वारिसों को दिया जाएगा, अन्यथा उन्हें कुछ नहीं मिलेगा; यह 'मुगनी' में है।

यदि माज़ून के पास उसके व्यापार का कोई मकान हो और उसमें कोई व्यक्ति मृत पाया जाए, और माज़ून ऋणी हो या न हो, तो...

---

1- माज़ून यानी कातिल गुलाम। माज़ून को उसके मृतक के मौला के वारिसों के हवाले किया गया। मृतक के वारिस वे लोग हैं जो उसके खून के दावेदार हों, उन्हें ही औलिया-ए-मकतुल कहते हैं। स्पष्ट हो कि जब गुलाम गलती से कातिल हो जाए, तो नियम यह है कि खून के दावेदारों को या तो वही अपराधी गुलाम दे दिया जाए या उसका फ़िदिया यानी उसकी कीमत, चाहे पूरी या जितनी आपसी सहमति से हो, दे दी जाए। (12) 2- साकित, क्योंकि वे लोग खून माफ करके सुलह की संपत्ति लेने पर सहमत हुए थे, तो खून का किसास समाप्त हो गया और वह माफ़ी नहीं देगा, भले ही सुलह की स्थिति अवैध थी।

ہے تو زید ضمان سے بری ہو جائے گا کذا فی المبسوط۔

## باب گیارہ: ماذون یا ماذون کی غلام کی جنایت کرنے یا اس پر کسی شخص کی جنایت کرنے کے بیان میں

اگر ماذون نے کسی شخص آزاد یا مملوک پر خطا سے جنایت کی یعنی قتل کیا اور اس پر قرض ہے تو اس کے مولیٰ سے کہا جائے گا کہ یا تو اس کو دے دے یا اس کا فدیہ دے دے پس اگر اس نے فدیہ دینا قبول کیا تو ماذون جرم جنایت سے بری ہو گیا پس اس پر قرض خواہوں کا حق باقی رہ گیا سو ان کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا۔ اگر اس نے ماذون کو دے دیا تو قرض خواہ لوگ اولیاء جنایت کے پاس ماذون کے دستگیر ہو کر اس کو اپنے قرضہ میں فروخت کروائیں گے ، لیکن اگر والیان مقتول اس ماذون قاتل کا فدیہ ادا کریں تو ایسا نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

پھر جب وہ غلام قرض خواہوں کے واسطے والیان جنایت کے پاس فروخت کیا گیا تو اولیاء مقتول کو اس کے بعد مولیٰ سے کچھ واپس لینے کا اختیار نہ ہو گا بخلاف اس کے اگر قرضہ میں چڑھ جانے سے پہلے ماذون سے جنایت صادر ہوئی اور مولیٰ نے ماذون کو اولیاء جنایت کے حوالہ کیا اور وہ قرض خواہوں کے قرضہ میں فروخت کیا گیا پس اس صورت میں والیان مقتول کو اختیار ہو گا کہ مولیٰ سے ماذون کی قیمت واپس لیں یہ محیط میں ہے اور اگر ماذون کے غلاموں میں سے کسی غلام نے جنایت کی اور کسی آزاد یا غلام کو خطا سے قتل کیا تو اس کو دے دینے یا اس کا فدیہ دینے کے واسطے ماذون سے کہا جائے گا نہ مولا سے ماذون سے یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون کے پاس تجارت کی باندی ہو اور اس نے کسی کو خطا سے قتل کیا تو ماذون کو اختیار ہو گا

کہ چاہے اس کو دے دے یا اس کا فدیہ دے دے خواہ ماذون مقروض ہو یا نہ ہو پس اگر باندی کا جرم یہ ہو کہ اس نے کسی نفس کو مار ڈالا اور باندی کی قیمت ہزار درہم ہو اور ماذون نے دس ہزار درہم فدیہ میں دیئے تو امام اعظمؒ کے قیاس پر جائز ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے اور اگر باندی نے عمدًا قتل کیا اور اس پر قصاص واجب ہوا پھر ماذون نے اس سے ولی مقتول سے صلح کر لی تو جائز ہے اور اگر خود ماذون قاتل ہوا اور اس نے اپنی جان سے صلح کر لی خواہ اس پر قرضہ ہے یا نہیں ہے تو صلح جائز نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔ جب قاضی نے ماذون کو اپنی ذات کے واسطے صلح کر لینا باطل کر دیا تو ولی مقتول کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ ماذون کو قتل کرا دے یا اس سے بدل اصلح میں سے کچھ لے تا وقتیکہ وہ آزاد نہ ہو جائے یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون نے عمدًا کسی کو قتل کیا اور اس پر قرض ہے پس مولیٰ نے والیان مقتول سے اس طور پر صلح کی کہ ان کے حق میں غلام ان کو دے دے تو جائز نہیں ہے اور ان لوگوں کو اس کا قتل کرنا یعنی قصاصاً جائز نہ رہے گا اور قصاص ساقط ہو گیا اور وہ غلام قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور قرض خواہوں کا قرضہ ادا کیا جائے گا پھر اگر کچھ بچ رہا تو والیان مقتول کو دیا جائے گا ورنہ ان کو کچھ نہیں ملے گا یہ مغنی میں ہے۔

اگر ماذون کے پاس اس کی تجارت کا کوئی مکان ہو اور اس میں ایک شخص مقتول پایا گیا اور ماذون مقروض ہے یا نہیں ہے تو...

---

1- ماذون یعنی قاتل غلام ماذون کو اس کے مولیٰ مقتول کے والیوں کے حوالہ کیا مقتول کے والی وہ لوگ ہیں جو اس کے خون کے دعویدار ہوں اور انہی کو اولیائے مقتول کہتے ہیں اور واضح ہو کہ غلام جب خطا سے قاتل ہو تو حکم یہ ہے کہ خون کے دعویداروں کو یا تو وہی مجرم غلام قرار دیا جائے یا اس کا فدیہ یعنی اس کی قیمت خواہ پوری یا جس قدر پر باہمی رضامندی ہو دے دی

جائے۔ ۱۲ 2- ساقط کیونکہ وہ لوگ خون معاف کر کے مال صلح لینے پر راضی ہوئے تھے تو خون کا قصاص ساقط ہو کر عفو نہ کرے گا اگرچہ صلح کی صورت ناجائز تھی۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) [79] Kitab al-Ma'dhun**

According to Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA), the *diyat* (blood money) for this shall be borne by the master's supporting kinsmen (*aqilah*). According to Imam Azam (Abu Hanifa RA), if the debt on the slave does not exceed his full value (*muheet*), then the same ruling applies. If the debt exceeds his value, then according to *qiyas* (analogical reasoning), nothing shall be mandatory upon the master's kinsmen; however, it will be said to the master to either surrender the slave or pay his ransom (*fidya*). Nevertheless, through *istihsan* (juristic preference), Imam Azam has placed the *diyat* on the master's kinsmen. Similarly, if a wall of his house was leaning and witnesses were called against the *ma'dhun* (authorized slave) to rectify it, but he did not demolish it until it fell upon a person and they died, the *diyat* shall be upon the master's kinsmen. The *Sahibain* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) stated that this case is equivalent to the first case where a person was found murdered in that house. A direct statement from Imam Azam on this specific issue is not mentioned, but some scholars (*mashaykh*) have said that his ruling is based on *istihsan*. This ruling is contrary to a case where the wall falls upon an animal and kills it; in that case, the value of the animal shall be charged against the *ma'dhun*, for which either the slave will be sold or the master will pay his ransom. This is stated in 'Al-Mabsut'. Our scholars, namely Imam Azam, Imam Abu Yusuf, and Imam Muhammad, stated that if a *ma'dhun* has a debt and commits an offense (*jinayat*), and the master sells him to the creditors in lieu of their debt, then if the master was aware of the offense, this act shall deem him as having chosen to pay the ransom. If he was unaware of the offense, the value of the slave will be due from him, but this ruling does not apply if the penalty is less than the slave's price. It is further stated that if the master sold the *ma'dhun* to creditors until the claimants of the offense (*awliya al-jinayat*) arrived, and the master handed over the slave to them without a judge's (*qazi*) order, then according to *qiyas*, he becomes a guarantor of the price for the creditors, but through *istihsan*, he shall not be a guarantor. Since he is not a guarantor via *istihsan* and the handover was valid, the creditors will have the right to have him sold for their debt. However, if the claimants pay his ransom, this shall not happen. This is in 'Al-Muheet'. Imam Abu Hanifa, Imam Abu Yusuf, and Imam Muhammad stated that if creditors appear and request the sale of the *ma'dhun* for his debt while he is with the master, and he has not yet paid for the offense, and the claimants of the offense (*as-hab al-jinayat*) have not yet appeared to claim their right, though the master and creditors have acknowledged the offense and informed the

*qazi*, the *qazi* shall not sell him for the creditors until the claimants of the offense appear. Upon their arrival, he will be handed over to them unless the master pays the ransom. Thereafter, he will be sold for the creditors so they may fully recover their debt. If the claimants or the *qazi* deem it appropriate to sell the *ma'dhun* to the creditors for their debt, the sale is valid, and the claimants will no longer have any claim against the master or the slave, and their right regarding the offense becomes void. This is in 'Al-Mughni'.

If the *qazi* sold him to creditors or a third party for more than the amount of the debt, the creditors shall be paid their debt from the proceeds. The remainder, up to the amount of the penalty for the offense, shall be given to the claimants, even if the penalty exceeds the slave's price. If any balance remains after paying the penalty, it shall be given to the master. Conversely, if the master himself sold the slave for more than his price without a *qazi's* order and was unaware of the offense—for example, he sold the slave for five thousand dirhams when his value was one thousand and the debt was also one thousand—then after the one thousand dirham debt is paid and the master is left with four thousand dirhams, the claimants shall be given an amount equal to the slave's value (one thousand dirhams), even if the penalty for the offense is greater than one thousand; the remaining three thousand dirhams will belong to the master. In contrast, if the claimant (*wali*) arrived and the master surrendered the slave for the offense, then after this handover, the *qazi* had the slave sold from the claimant for the creditors' debt and the price obtained exceeded the debt, then from that...

---

1. "Deemed etc.": Because he was obligated to either surrender the offending slave or pay his ransom, his act of retaining the slave is proof that he agreed to pay the ransom, as the right of blood (*haqq al-khun*) takes precedence.

इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार, इसकी दीयत (रक्त-मुआवज़ा) मौला (स्वामी) की मददगार बिरादरी (आक़िला) पर होगी। इमाम-ए-आज़म (रह.) के अनुसार, यदि ग़ुलाम पर ऋण उसकी पूरी कीमत को घेरे हुए (मुहीत) न हो, तो यही आदेश है, और यदि ऋण मुहीत हो, तो क़यास (तुलनात्मक तर्क) के अनुसार मौला की मददगार बिरादरी पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा। लेकिन उससे यह कहा जाएगा कि या तो ग़ुलाम को सौंप दे या उसका फ़िद्या (मुआवज़ा) दे। मगर इमाम-ए-आज़म (रह.) ने इस्तेहसान (न्यायिक प्राथमिकता) के आधार पर दीयत मौला की मददगार बिरादरी पर डाली है। इसी प्रकार यदि उसके घर की कोई दीवार झुकी हुई हो और माज़ून (व्यापार की अनुमति प्राप्त ग़ुलाम) पर गवाह बना दिए गए, लेकिन उसने उस दीवार को नहीं गिराया यहाँ तक कि वह स्वयं किसी व्यक्ति पर गिर पड़ी और वह मर गया, तो उसकी दीयत मौला की मददगार बिरादरी पर होगी। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) ने फरमाया कि यह स्थिति पहली स्थिति के समान है जहाँ उस घर में कोई व्यक्ति मृत पाया गया। इस मसले में इमाम-ए-आज़म का कोई स्पष्ट कथन उल्लिखित नहीं है। कुछ मशाइख़ (विद्वानों) ने फरमाया कि इमाम-ए-आज़म के अनुसार इस्तेहसान के जवाब में यही आदेश है। यह आदेश उस स्थिति के विपरीत है जहाँ यह दीवार किसी जानवर पर गिर पड़ी और वह मर गया; उस स्थिति में जानवर की कीमत माज़ून की गर्दन पर होगी, जिसके लिए या तो ग़ुलाम को बेचा जाएगा या मौला उसका फ़िद्या देगा, यह 'मबसूत' में है। हमारे उलेमा, जैसे इमाम-ए-आज़म, इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद ने फरमाया कि यदि माज़ून पर ऋण हो और उसने कोई अपराध (जिनायत) किया हो, और मौला ने उसे ऋणदाताओं के हाथों उनके ऋण के बदले बेच दिया, तो यदि उसे जिनायत का ज्ञान था, तो इस कृत्य से उसे फ़िद्या देने का विकल्प चुनने वाला माना जाएगा। और यदि वह जिनायत को नहीं जानता था, तो उस पर ग़ुलाम की कीमत अनिवार्य होगी, लेकिन यदि जुर्माना कीमत से कम हो, तो यह आदेश नहीं होगा। फरमाया कि यदि मौला ने माज़ून को ऋणदाताओं के हाथ बेच दिया, यहाँ तक कि जिनायत के उत्तराधिकारी (औलिया) उसके पास आए और मौला ने काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश के बिना वह ग़ुलाम उन्हें सौंप दिया, तो क़यास के अनुसार वह ऋणदाताओं के लिए कीमत का ज़ामिन (गारंटर) होगा, लेकिन इस्तेहसान के अनुसार वह ज़ामिन नहीं होगा। फिर जब इस्तेहसान के अनुसार वह ज़ामिन न हुआ और ग़ुलाम देना वैध ठहरा, तो ऋणदाताओं को यह अधिकार प्राप्त होगा कि वे उसे अपने ऋण के लिए बिकवा दें। लेकिन यदि जिनायत के औलिया उसका फ़िद्या चुका दें, तो ऐसा नहीं

होगा, यह 'मुहीत' में है। इमाम अबू हनीफ़ा (रह.), इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि यदि ऋणदाता उपस्थित हुए और माज़ून के ऋण के लिए उसे बेचने का अनुरोध किया और वह अपने मौला के पास मौजूद है, और अभी तक उसने जिनायत का मुआवज़ा नहीं दिया है, और जिनायत के दावेदार (असह़ाब-ए-जिनायत) अपना हक मांगने नहीं आए हैं, और मौला और ऋणदाताओं ने जिनायत को स्वीकार कर लिया है और काज़ी को भी सूचित कर दिया है, तो जब तक जिनायत के दावेदार उपस्थित न हों, काज़ी उसे ऋणदाताओं के लिए नहीं बेचेगा। फिर जिनायत के दावेदारों की उपस्थिति पर वह ग़ुलाम उन्हें सौंप दिया जाएगा, बशर्ते मौला उसका फ़िद्या न दे दे। इसके बाद ऋणदाताओं के लिए उसे बेचा जाएगा ताकि वे अपना ऋण पूरा प्राप्त करें। और यदि जिनायत के दावेदारों की या काज़ी की राय में यह आया कि माज़ून को ऋणदाताओं के लिए उनके ऋण में बेच दिया जाए, तो बिक्री वैध है, और फिर जिनायत के दावेदारों का मौला या ग़ुलाम पर कुछ अधिकार न रहेगा और उनकी जिनायत शून्य हो जाएगी, यह 'मुग़नी' में है।

यदि काज़ी ने उसे ऋणदाताओं या किसी अन्य व्यक्ति को ऋण से अधिक कीमत पर बेचा, तो उसमें से ऋणदाताओं को उनका ऋण दे दिया जाएगा, फिर जो शेष बचेगा वह जिनायत के जुर्माने की सीमा तक जिनायत के दावेदारों को दिया जाएगा, भले ही जिनायत का जुर्माना ग़ुलाम की कीमत से अधिक हो। फिर यदि जिनायत का जुर्माना देने के बाद कुछ बचता है, तो वह मौला को दिया जाएगा। इसके विपरीत, यदि मौला ने स्वयं काज़ी के आदेश के बिना ग़ुलाम को उसकी कीमत से अधिक दाम पर बेचा और वह जिनायत से अनभिज्ञ था; उदाहरण के लिए, उसने ग़ुलाम को पाँच हज़ार दिरहम में बेचा जबकि उसकी कीमत एक हज़ार दिरहम थी और ऋण भी एक हज़ार दिरहम था, तो जब एक हज़ार दिरहम का ऋण चुका दिया गया और मौला के पास चार हज़ार दिरहम बचे, तो उसमें से जिनायत के दावेदारों को ग़ुलाम की कीमत के बराबर यानी एक हज़ार दिरहम दिए जाएंगे, भले ही जिनायत का जुर्माना एक हज़ार से अधिक हो; शेष तीन हज़ार दिरहम मौला को मिलेंगे। इसके विपरीत, यदि जिनायत का उत्तराधिकारी (वली) उपस्थित हुआ और मौला ने जिनायत के बदले ग़ुलाम दे दिया, फिर काज़ी ने उसे सौंपने के बाद वली-ए-जिनायत के पास से ऋणदाताओं के ऋण के लिए बिकवाया और उसकी कीमत ऋण से अधिक आई, तो उसमें से...

---

१ करार दिया आदि: क्योंकि उस पर अपराधी ग़ुलाम सौंपना या उसका फ़िद्या देना अनिवार्य था, तो जब उसने ग़ुलाम को अपने पास रोक लिया, तो यह इस बात का प्रमाण है कि उसे फ़िद्या देना स्वीकार है, क्योंकि रक्त का अधिकार (जिनायत) ऋण पर प्राथमिकता रखता है।

امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک اس کی دیت مولیٰ کی مددگار برادری پر ہوگی۔ امام اعظمؒ کے نزدیک اگر غلام پر قرضہ محیط نہ ہو تو یہی حکم ہے اور اگر قرضہ محیط ہو تو قیاساً مولیٰ کو مددگار برادری پر کچھ واجب نہ ہوگا لیکن اس سے یوں کہا جائے گا کہ یا غلام کو دے دے یا اس کا فدیہ دے مگر امام اعظمؒ نے استحساناً دیت مولیٰ کی مددگار برادری پر ڈالی ہے۔ اس طرح اگر اس کی گھر کی کوئی دیوار جھکی ہوئی ہو اور ماذون پر گواہ کر دیے گئے مگر اس نے اس دیوار کو نہیں گنوایا یہاں تک کہ وہ خود ایک شخص پر گر پڑی اور وہ مر گیا تو اس کی دیت مولیٰ کی مددگار برادری پر ہوگی اور صاحبین نے فرمایا کہ یہ صورت بمنزلہ صورت اولیٰ کے ہے کہ اس گھر میں کوئی شخص مقتول پایا گیا۔ اس مسئلہ میں امام اعظمؒ کا قول مذکور نہیں ہے۔ بعض مشائخ نے فرمایا کہ امام اعظمؒ کے نزدیک بجواب الاستحسان یہی حکم ہے۔ یہ حکم بخلاف ایسی صورت کے حکم ہے کہ یہ دیوار کسی جانور پر گر پڑی اور وہ مر گیا کہ اس صورت میں جانور کی قیمت ماذون کی گردن پر ہوگی کہ اس کے واسطے یا تو غلام فروخت کیا جائے گا یا مولیٰ اس کا فدیہ دے گا یہ مبسوط میں ہے۔ ہمارے علماء مثلاً یعنی امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ماذون پر قرضہ ہو اور اس کی جنایت کی اور مولیٰ نے اس کو قرض خواہوں کے ہاتھ ان کے قرضہ میں فروخت کیا پس اگر اس کو جنایت کا حال معلوم تھا تو اس فعل سے فدیہ دینے کو اختیار کرنے والا قرار دیا جائے گا اور اگر جنایت کو نہیں جانتا تھا تو اس پر غلام کی قیمت واجب ہوگی لیکن اگر جرمانہ قیمت سے کم ہو تو یہ حکم نہ ہوگا۔ فرمایا کہ اگر مولیٰ نے ماذون کو قرض خواہوں کے ہاتھ فروخت کیا یہاں تک کہ اولیاء جنایت اس کے پاس آئے اور مولیٰ نے بلا حکم قاضی وہ غلام ان کو دے دیا تو قیاساً یہ حکم ہے کہ قرض خواہوں کے واسطے

قیمت کا ضامن ہو مگر استحساناً کچھ ضامن نہ ہوگا پھر جب استحساناً کچھ ضامن نہ ہوا اور دے دینا جائز ٹھہرا تو قرض خواہوں کو یہ اختیار حاصل ہوگا کہ اس کو اپنے قرضہ میں فروخت کرا دیں لیکن اگر اولیاء جنایت اس کا فدیہ ادا کریں تو یہ نہ ہوگا یہ محیط میں ہے۔ امام ابو حنیفہؒ و امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر قرض خواہ لوگ حاضر ہوئے اور ماذون کے قرضہ کے واسطے فروخت کی درخواست کی اور وہ اپنے مولیٰ کے پاس موجود ہے اور اس نے ہنوز جنایت میں نہیں دیا ہے اور اصحابِ جنایت اپنے حق طلب کرنے کے واسطے حاضر نہیں ہوئے اور مولیٰ اور قرض خواہوں نے جنایت کا اقرار کر لیا ہے اور قاضی کو بھی خبر کر دی ہے تو جب تک اصحابِ جنایت حاضر نہ ہوں تب تک قاضی اس کو قرض خواہوں کے واسطے نہ فروخت کرے گا پھر اس اصحابِ جنایت کی حاضری پر ان کو دے دے گا مگر مولیٰ اس کا فدیہ اگر ادا کر دے تو ایسا نہ کرے گا پھر اس کے بعد قرض خواہوں کے واسطے فروخت کیا جائے گا تاکہ وہ لوگ اپنا قرضہ پورا وصول کریں اور اگر اصحابِ جنایت کی رائے میں یا قاضی کی رائے میں آیا کہ ماذون کو قرض خواہوں کے واسطے ان کے قرضہ میں فروخت کرے تو بیع جائز ہے اور اصحابِ جنایت کی مولیٰ یا غلام پر کچھ نہ ہوگا اور ان کی جنایت باطل ہوگئی یہ مغنی میں ہے۔

اگر قاضی نے اس کو قرض خواہوں کے ہاتھ یا غیر کے ہاتھ قرضہ سے زیادہ داموں کو فروخت کیا تو اس میں سے قرض خواہوں کو ان کا قرضہ دے دیا جائے گا پھر جو اس میں سے کچھ بچا وہ بقدر جرمانہ جنایت کے اصحابِ جنایت کو دیا جائے گا اگرچہ جنایت کا جرمانہ غلام کی قیمت سے زیادہ ہو پھر اگر جرمانہ جنایت دے کر کچھ باقی رہا تو وہ مولیٰ کو دیا جائے گا۔ بخلاف اس کے اگر مولیٰ نے خود بدون حکم قاضی کے غلام کی قیمت سے زیادہ داموں کے فروخت کیا اور وہ جنایت سے واقف نہ تھا مثلاً اس نے پانچ ہزار درہم کو غلام فروخت کیا حالانکہ اس کی قیمت ہزار درہم تھی اور قرضہ کے ہزار درہم تھے پھر جب قرضہ کے ہزار درہم دے دیئے گئے اور مولیٰ

کے پاس چار ہزار درہم رہے تو اس میں سے اصحابِ جنایت کو غلام کی قیمت کے برابر یعنی ہزار درہم دے دیئے جائیں گے اگرچہ جنایت کا جرمانہ ہزار درہم سے زیادہ ہو پس باقی تین ہزار درہم مولیٰ کو ملیں گے۔ بخلاف اس کے اگر ولیِ جنایت حاضر ہوا اور مولیٰ جنایت کو دے دیا پھر قاضی نے دے دینے کے بعد ولیِ جنایت کے پاس سے قرض خواہوں کے قرضہ میں فروخت کیا اور اس کا ثمن قرضہ سے زیادہ آیا پس اس میں سے ...

---

۱ قرار دیا الخ کیونکہ اس پر مجرم غلام دینا یا اس کا فدیہ دینا لازم تھا تو جب اس نے غلام روک لیا تو دلیل ہے کہ فدیہ دینا منظور ہے کیونکہ حق خون مقدم ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | 80 | Book of the Authorized Slave (Kitab al-Mazun)**

If the debt is paid off, the entire remainder shall be given to the legal guardians of the victim (*awliya al-jinayat*), even if the penalty for the crime exceeds the remaining amount, and the master (*moula*) shall receive nothing from it; this is stated in *Al-Muhit*. The Great Imam (Abu Hanifa), Imam Abu Yusuf, and Imam Muhammad stated that if someone intentionally murders an authorized slave (*ma'dhun*), the right to retaliation (*qisas*) belongs to the master against the killer, and creditors have no claim to it, whether the slave was in debt or not. If the killer reaches a settlement (*sulh*) by paying some Dirhams, Dinars, or goods (small or large quantity) in exchange for the *qisas*, such a settlement is valid. From this settlement, the creditors shall recover their full debt because the right to *qisas* has been transformed (*munqalib*) into property (*mal*), and the creditors' rights are now attached to that property. Therefore, if the consideration for the settlement consists of Dirhams or Dinars, the creditors shall take their debt from it, as it is of the same kind as their original claim. If the consideration is in the form of goods or another slave, it shall be applied toward their debt. However, if the master pays the ransom (*fidyah*) along with the full debt, this process shall not apply. All this pertains to cases where the authorized slave was murdered intentionally, regardless of his debt status. If it was not the authorized slave himself but one of the slaves he had earned through trade who was murdered, and if the authorized slave has no debt, the master has the right to take *qisas* from the killer, but the authorized slave himself does not have the right to execute *qisas*. This is as mentioned in *Al-Mughni*.

**A Scenario in Which a Settlement by the Authorized Slave is Not Considered Valid ★**

Accordingly, if an authorized slave reaches a settlement with a killer for some property, Imam Muhammad has not explicitly mentioned its validity or invalidity in *Zahir al-Riwayah*. However, it is narrated from the jurist Abu Bakr al-Balkhi that he believed this issue should be based on two narrations. That is, it should be reasoned by analogy (*qiyas*) with the case of a guardian (*wasi*): if a guardian enters into a settlement for *qisas* that was due to an orphan from a killer, one narration says the guardian's settlement is invalid. By analogy with this narration, the authorized slave's settlement would also be invalid. The second narration states that the guardian's settlement is valid; thus, by analogy with this, the authorized slave's settlement is also valid. This is mentioned in *Al-Mabsoot*. However, if the authorized slave is in debt,

whether the amount is small or large, neither the master, the creditors, nor the authorized slave shall individually or collectively (*ali al-ijtima*) have the right to *qisas*; this is according to *Al-Mughni*. In such a case, the killer is obligated to pay the blood-money (the value of the deceased) from his own property over three years. If the value reaches ten thousand, ten Dirhams shall be deducted from it, and all this shall go to the creditors of the authorized slave. This is in *Al-Mabsoot*. Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad stated that if a slave belonging to Zaid commits a crime and kills 'Amr by mistake, and subsequently Zaid grants him permission to trade (whether Zaid knows about the crime or not), and the slave then incurs debt through trading, this act by Zaid shall not be considered an election to pay the ransom (*fidyah*). Instead, Zaid will be told to either hand over the slave or pay the ransom. If Zaid pays the penalty to the victim's guardians, the slave shall be sold for the benefit of his creditors, and no further claim can be made against the master. If Zaid, instead of paying the fine, hands the slave over to the guardians, the creditors have the right to pursue the slave and have him sold to satisfy their debt. However, if the victims of the crime pay off the creditors, this right ceases. If they pay the slave's debt (or even if they don't) and the slave is sold for their debt, they have the right to reclaim from Zaid any amount by which the slave's value exceeds the debt. Conversely, if the master utilized the authorized slave for a service that resulted in his death, the master is not liable to the victim's guardians; this is in *Al-Muhit*. If, after a crime, the master sees the slave trading and does not stop him, this silence shall be deemed as explicit permission for trade; this is in *Al-Mabsoot*.

It was stated that if a master permits a slave to trade and his value is one thousand Dirhams, and he then incurs a debt of one thousand Dirhams, then he...

---

1: For example, the penalty for the crime is one thousand Dirhams and the remainder is four thousand Dirhams. 2: *Munqalib* means the right to retaliation has turned into property, so only this property will be received. 3: *Ali al-ijtima'* means either everyone agrees on retaliation or individually, in no case is there retaliation.

## फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 80 | किताबुल माज़ून (अधिकृत गुलाम की किताब)

क़र्ज़ अदा कर दिया गया तो बाकी सब औलिया-ए-जिनायत (अपराध के पीड़ितों के संरक्षक) को दिया जाएगा, चाहे जुर्माना जिनायत (अपराध के दंड) से ज़्यादा बाकी रहा हो और मौला (मालिक) को इसमें से कुछ न मिलेगा, यह मुहीत में है। इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा), इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद ने फ़रमाया कि अगर गुलाम-ए-माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत गुलाम) को किसी व्यक्ति ने जानबूझकर (अमदन) क़त्ल किया, तो क़ातिल पर मालिक के वास्ते क़िसास (बदले का अधिकार) वाजिब होगा और क़र्ज़दार होने का कोई हक़ वाजिब नहीं होगा, चाहे गुलाम ऋणी हो या न हो। फिर अगर क़ातिल ने क़िसास के बदले कुछ दरहम या दीनार, कम या अधिक सामान देकर सुलह (समझौता) कर ली, तो सुलह जायज़ है। फिर इसमें से क़र्ज़ख़्वाह (लेनदार) अपना पूरा क़र्ज़ा वसूल करेंगे क्योंकि क़िसास मुनक़लिब[2] (परिवर्तित) होकर माल बन गया और माल से लेनदारों का हक़ जुड़ गया। अतः यदि समझौते के बदले में दरहम या दीनार आए हैं, तो वे लोग उनमें से अपना क़र्ज़ा ले लेंगे क्योंकि यह उनके हक़ की ही श्रेणी (जिन्स) है। और यदि बदले में सामान या गुलाम हो, तो वह उनके क़र्ज़े में दिया जाएगा। लेकिन यदि मालिक इसका फ़िदया (मुआवज़ा) पूरे क़र्ज़े के साथ दे दे, तो ऐसा नहीं होगा। यह सब उस स्थिति में है जब माज़ून को जानबूझकर मारा गया हो, चाहे वह क़र्ज़दार हो या न हो। यदि माज़ून को नहीं, बल्कि उसकी कमाई के किसी गुलाम को मारा गया हो, और यदि माज़ून पर क़र्ज़ा न हो, तो मालिक को अधिकार होगा कि वह क़ातिल से क़िसास ले, मगर माज़ून को क़िसास वसूल (इस्तेफ़ा) करने का अधिकार नहीं होगा। ऐसा मुग़नी में है।

### मसला की एक सूरत जिसमें माज़ून की सुलह जायज़ क़रार नहीं पाती ★

अतः यदि माज़ून ने क़ातिल के साथ कुछ माल पर सुलह कर ली, तो 'ज़ाहिर-उर-रिवायत' में इमाम मुहम्मद ने इसके जायज़ होने या न होने का उल्लेख नहीं किया है। मगर फ़क़ीह अबू बक्र बल्ख़ी से वर्णित है कि वे कहते थे कि यह मसला दो रिवायतों (वर्णनों) पर होना चाहिए, यानी इसे 'वसी' (अभिभावक) के मसले पर क़यास (तर्क) किया जाना चाहिए कि यदि उसने ऐसे क़िसास पर सुलह कर ली जो यतीम के लिए क़ातिल पर वाजिब था, तो एक रिवायत में वसी की सुलह जायज़ नहीं है। इस रिवायत पर क़यास करने से पता चलता है कि माज़ून की सुलह भी नाज़ायज़ होगी। और दूसरी रिवायत में है कि वसी की सुलह जायज़ होगी, अतः इस रिवायत के अनुसार माज़ून की सुलह भी जायज़ है। यह 'मबसूत' में है। लेकिन यदि माज़ून पर क़र्ज़ा हो, चाहे कम हो या अधिक, तो मालिक या लेनदारों या माज़ून को अलग-अलग या सामूहिक रूप से (अली-अल-इज्तिमा)[3] क़िसास का

अधिकार नहीं होगा, ऐसा 'मुग़नी' में है। और क़ातिल पर वाजिब होगा कि वह अपने माल से तीन साल में मक़्तूल (मृतक) की क़ीमत अदा करे। लेकिन यदि क़ीमत दस हज़ार तक पहुँच जाए, तो उसमें से दस दरहम कम कर दिए जाएँगे और यह सब माज़ून के लेनदारों को मिलेंगे। यह 'मबसूत' में है। इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद ने फ़रमाया कि अगर ज़ैद के गुलाम ने कोई अपराध (जिनायत) करके'अम्र' को ग़लती से (ख़ता से) मार दिया, फिर ज़ैद ने उसे व्यापार की अनुमति दे दी, चाहे ज़ैद को उसके अपराध का पता हो या नहीं, और माज़ून ने उसके बाद ख़रीद-बिक्री की और उस पर क़र्ज़ा चढ़ गया, तो ज़ैद का यह कार्य फ़िदया देना नहीं माना जाएगा। इसके बाद ज़ैद से कहा जाएगा कि या तो गुलाम दे दे या उसका फ़िदया भरे। फिर यदि ज़ैद ने पीड़ित के संरक्षकों को जुर्माना दे दिया, तो माज़ून को उसके लेनदारों के लिए बेचा जाएगा और मालिक के विरुद्ध किसी प्रकार का दावा नहीं किया जा सकेगा। यदि ज़ैद ने जुर्माना देने के बजाय गुलाम ही सौंप दिया, तो लेनदारों को अधिकार होगा कि वे गुलाम का पीछा करें और उसे अपने क़र्ज़े की वसूली के लिए बिकवा दें। लेकिन यदि अपराध के पीड़ित लेनदारों को उनका क़र्ज़ा चुका दें, तो ऐसा नहीं होगा। फिर यदि उन्होंने गुलाम का क़र्ज़ा चुका दिया या नहीं चुकाया और गुलाम उनके क़र्ज़े के एवज में बेचा गया, तो उन्हें अधिकार होगा कि वे ज़ैद से गुलाम की क़ीमत और क़र्ज़े से कम मात्रा वापस लें। इसके विपरीत, यदि मालिक ने माज़ून से कोई ऐसी सेवा ली जिससे उसकी मृत्यु हो गई, तो उस स्थिति में मालिक पीड़ितों के प्रति ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है। और यदि अपराध के बाद मालिक ने उसे व्यापार करते देखा और मना नहीं किया, तो यह चुप्पी स्पष्ट अनुमति के समान मानी जाएगी, यह 'मबसूत' में है।

फ़रमाया कि अगर मालिक ने गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और उसकी क़ीमत एक हज़ार दरहम है, फिर उस पर एक हज़ार दरहम क़र्ज़ा हो गया, फिर उसने...

---

1: अपराध का जुर्माना मान लें एक हज़ार दरहम हो और शेष चार हज़ार दरहम हो। 2: मुनक़लिब यानी क़िसास का अधिकार धन में बदल गया, अतः यही धन मिलेगा। 3: अली-अल-इज्तिमा यानी सभी लोग क़िसास पर सहमत हों, या अलग-अलग, किसी भी स्थिति में क़िसास नहीं है।

---

قرضہ ادا کیا گیا تو باقی سب اولیاء جنایت کو دیا جائے گا اگر چہ جرمانہ جنایت سے زیادہ باقی رہا ہو اور مولیٰ کو اس میں سے کچھ نہ ملے گا یہ محیط میں ہے۔ امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر غلام ماذون کو کسی شخص نے عمداً قتل کیا تو قاتل پر مولیٰ کے واسطے قصاص واجب ہوگا اور قرض خواہ ہونے کا کچھ حق واجب نہ ہو گا خواہ غلام مقروض ہو یا نہ ہو پس اگر قاتل نے قصاص سے کچھ درہم یا دینار عروض قلیل یا کثیر دے کر صلح کی تو صلح جائز ہے پس اس میں سے قرض خواہ لوگ اپنا قرضہ پورا وصول کریں گے اور قصاص منقلب ۲ بمال ہو گیا اور مال سے قرض خواہوں کا حق متعلق ہو گیا پس اگر بدل صلح میں درہم یا دینار آئے تو ان میں سے وہ لوگ اپنا قرضہ لے لیں گے کیونکہ یہ ان کے حق کی جنس ہے اور اگر بدل صلح میں عروض یا غلام ہو تو ان کے قرضہ میں کیا جائے گا لیکن اگر مولیٰ اس کا فدیہ پورے قرضہ کے ساتھ دے دے تو ایسا نہ ہو گا اور یہ سب اس وقت ہے کہ ماذون کو عمداً قتل کیا ہو اور وہ قرض دار ہو یا نہ ہو اگر ماذون کو نہیں بلکہ اس کی کمائی کے کسی غلام کو قتل کیا ہو پس اگر ماذون پر قرضہ نہ ہو تو مولیٰ کو اختیار ہو گا کہ قاتل سے قصاص لے مگر ماذون کو استیفاء قصاص کا اختیار نہ ہو گا کذا فی المغنی۔

**مسئلہ کی ایک صورت جس میں ماذون کی صلح جائز قرار نہیں پاتی ★**

پس اگر ماذون نے قاتل کے ساتھ کچھ مال پر صلح کی تو ظاہر الروایت میں امام محمدؒ نے اس کے جواز یا عدم جواز کو نہیں ذکر فرمایا ہے مگر فقیہ ابو بکر بلخیؒ سے منقول ہے کہ وہ فرماتے تھے کہ یہ مسئلہ دو روایتوں پر ہونا چاہیے یعنی مسئلہ وصی پر قیاس کیا جائے کہ اگر اس نے

ایسے قصاص سے جو یتیم کے واسطے قاتل پر واجب ہوا تھا صلح کر لی تو ایک روایت میں ہے کہ وصی کی صلح جائز نہیں ہے پس اس روایت پر قیاس کرنے سے معلوم ہوتا ہے کہ ماذون کی صلح نا جائز ہو گی اور دوسری روایت میں ہے کہ وصی کی صلح جائز ہو گی پس اس روایت پر قیاس کرنے سے معلوم ہوا کہ ماذون کی صلح بھی جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ لیکن اگر ماذون پر قرضہ ہو خواہ تھوڑا ہو یا بہت تو مولیٰ یا قرض خواہوں یا ماذون کو قصاص کا استحقاق نہ ہو گا علیحدہ علیحدہ علیٰ الاجتماع ۳ کذا فی المغنی اور قاتل پر واجب ہو گا کہ اپنے مال سے تین برس میں مقتول کی قیمت ادا کرے لیکن اگر قیمت دس ہزار تک پہنچ جائے تو اس میں سے دس درہم کم کر دیے جائیں گے اور یہ سب ماذون کے قرض خواہوں کو ملیں گے یہ مبسوط میں ہے۔ امام ابو یوسفؒ اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر زید کے غلام نے جنایت کر کے عمرو کو خطا سے قتل کیا پھر زید نے اس کو تجارت کی اجازت دے دی خواہ زید کو اس کی جنایت کا حال معلوم ہے یا نہیں ہے پھر ماذون نے اس کے بعد خرید و فروخت کی اور اس پر قرضہ چڑھ گیا تو یہ فعل زید کا فدیہ اختیار کرنا شمار نہ ہو گا اور زید سے اس کے بعد کہا جائے گا کہ یا تو غلام کو دے دے یا اس کا فدیہ دے پس اگر زید نے اولیائے جنایت کو جرمانہ ادا کیا تو ماذون اپنے قرض خواہوں کے واسطے فروخت کیا جائے گا اور کسی کو مولیٰ سے مواخذہ کرنے کی کوئی راہ نہ ہو گی ۔ اگر زید نے جرمانہ دیا بلکہ اولیاء جنایت کو غلام دے دیا تو قرض خواہوں کو اختیار ہو گا کہ غلام کا پیچھا کریں اور اپنے قرضہ میں فروخت کروائیں لیکن اگر اصحاب جنایت قرض خواہوں کو ان کا قرضہ ادا کر دیں تو ایسا نہ ہو گا پھر اگر انہوں نے غلام کا قرضہ ادا کر دیا یا نہ ادا کیا اور غلام ان کے قرضہ میں فروخت کیا گیا تو ان کو اختیار ہو گا کہ زید سے غلام کی قیمت اور قرضہ سے کم مقدار واپس لیں بخلاف اس کے اگر مولیٰ نے ماذون سے کوئی ایسی خدمت لی جس سے وہ مر گیا تو اس صورت میں اولیائے جنایت کے واسطے مولیٰ کچھ ضامن نہ ہو گا یہ محیط میں ہے اور

اگر بعد جنایت کے مولیٰ نے اس کو خرید و فروخت کرتے دیکھ کر منع نہ کیا تو یہ سکوت بمنزلہ صریح اجازت تجارت کے قرار دیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔

فرمایا کہ اگر مولیٰ نے غلام کو تجارت کی اجازت دی اور اس کی قیمت ہزار درہم ہے پھر اس پر ہزار درہم قرضہ ہو گئے پھر اس نے...

---

۱: جرمانہ جنایت مثلاً ہزار درہم ہو اور جو باقی رہا وہ چار ہزار درہم ہو ۔ ۲: منقلب یعنی قصاص کا حق بدل کر مال ہو گیا پس یہی مال ملے گا یا زیادہ و ادھار ہے یعنی درہم و دینار میں حتیٰ کہ اگر غلام کا ثمن پنچومتہ (۵۰۰) الاصوب یا لونڈی غلام ہو تو اولیائے خون کے واسطے یہ چیزیں فروخت کی جائیں۔ ۳: علی الاجتماع سب لوگ قصاص پر متفق ہوں یا علیحدہ علیحدہ کسی صورت میں قصاص نہیں ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 81 Kitab al-Ma'zun (The Book of the Authorized Slave)**

If a slave commits an offense (jinayat), the master (mawla) has the right to hand over the slave to the heirs of the victim. If he hands the slave over and the creditors sell him to satisfy their debt, the heirs shall not have the right to reclaim the slave's price from the master. This is in contrast to a case where the offense occurred before the debt was incurred; in such a situation, they may take the price of the slave from the master, as stated in *Al-Muhit*. If an authorized slave (*ma'zun*) had a debt of one thousand dirhams before the offense, and then incurred another debt of one thousand dirhams after the offense, and his value is one thousand dirhams, and the master gave him up for the offense, the slave shall be sold to satisfy both debts. If sold, or if the heirs pay off both debts, the heirs shall take half of the slave's price (i.e., the portion corresponding to the subsequent debt) from the master; this is mentioned in *Al-Mabsut*. If an authorized or restricted slave kills someone by mistake and the master then acknowledges a debt, this acknowledgment shall not be interpreted as the master choosing to pay compensation (*fidiya*), even if he was aware of the offense at the time of acknowledgment. Rather, the master shall be told: either hand over this slave or pay his compensation. If he chooses to pay compensation, the slave shall be sold for the creditors' debt so that no further claim remains against the master. If he does not pay compensation but hands the slave to the heirs, the creditors shall have him sold for their debt; however, if the heirs pay the compensation, this will not occur, as noted in *Al-Mughni*. Then the heir of the offense shall take his price from the master; this is in *Al-Mabsut*.

If a master confesses that the slave killed one person by mistake, and then confesses to the accidental killing of another person, but the first heirs deny the master's second confession, the master shall be told to either hand the slave over to the heirs of both victims or pay compensation for both. If he hands over the slave to both, the first heirs shall take half the slave's price from the master. There is a distinction between this case and another: if a slave has a recognized debt that encompasses his entire value, and the master then confesses to an offense or another debt, the master's confession shall not be valid; this is in *Al-Muhit*. If an authorized slave intentionally kills someone and has debts, and the master settles (*sulh*) with the heirs by giving the slave, this settlement shall not be binding upon the creditors. However, after this settlement, the heirs shall lose the right to seek retaliation (*qisas*). The slave shall then be sold for his debt. If any proceeds remain after the debt is paid, they

shall go to the heirs; if nothing remains, the victim's heir shall have no further claim against the master or the slave, whether in slavery or after manumission. If the heirs entitled to *qisas* do not settle, but one heir forgives the blood, the master shall give half the slave to the other heir or pay compensation, and the entire slave shall then be sold for the debt. If the slave confesses to intentional murder while having debts, his confession shall be accepted regardless of whether the master confirms or denies it. If one of the heirs forgives, the entire blood claim is waived (no *qisas*), and the slave shall be sold for the debt. However, if the master pays the full debt as compensation, this shall not apply. If the master pays compensation and confirms the slave's confession, he shall be told to give half the slave to the heir who did not forgive. If the master denies the confession of the offense, the slave remains with the master, provided he has paid the debt as compensation; this is in *Al-Mabsut*.

If an authorized slave kills someone and has a debt, and both the creditors and the heirs of the deceased are present, then:

Half goes in the case where two people are entitled to *qisas*. Note: Regarding the phrase "such and such person," the original text refers to "a man," but the translator specified it because a confession of killing an unknown person does not carry legal weight; thus, a specific man is meant.

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 81 किताब अल-माज़ून (अधिकृत दास की पुस्तक)**

यदि किसी दास ने अपराध (जिनायत) किया, तो स्वामी (मौली) उस दास को अपराध के वारिसों (औलिया-ए-जिनायत) को सौंप सकता है। यदि स्वामी ने उसे सौंप दिया और लेनदारों (कर्ज़-ख्वाहों) ने उसे अपने कर्ज़ के बदले बेच दिया, तो वारिसों को स्वामी से दास की कीमत वापस लेने का अधिकार नहीं होगा। इसके विपरीत, यदि अपराध कर्ज़ होने से पहले हुआ हो, तो ऐसी स्थिति में वे स्वामी से दास की कीमत ले सकते हैं; यह 'मुहीत' में है। यदि अपराध से पहले माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत दास) पर एक हज़ार दिरहम का कर्ज़ हो गया हो, फिर अपराध के बाद एक हज़ार दिरहम का और कर्ज़ हो गया हो और उसकी कीमत एक हज़ार दिरहम हो, और स्वामी ने उसे अपराध के बदले सौंप दिया हो, तो दास को दोनों कर्ज़ों के लिए बेचा जाएगा। यदि बेचा गया या वारिसों ने दोनों कर्ज़ अदा कर दिए, तो वारिस स्वामी से दास की आधी कीमत (यानी पिछले कर्ज़ के अनुपात में जो हिस्सा बनता है) ले लेंगे; यह 'मबसूत' में है। यदि माज़ून या महजूर (प्रतिबंधित दास) ने किसी व्यक्ति की गलती से (खता से) हत्या कर दी और स्वामी ने दास पर कर्ज़ का इकरार किया, तो इस इकरार को यह नहीं माना जाएगा कि स्वामी ने हरजाना (फिदिया) देना स्वीकार कर लिया है, भले ही वह इकरार के समय अपराध से अवगत हो। बल्कि स्वामी से कहा जाएगा कि या तो यह दास दे दे या इसका फिदिया दे। यदि उसने फिदिया देना चुना, तो दास लेनदारों के कर्ज़ के लिए बेचा जाएगा ताकि स्वामी से किसी और की कोई मांग न रहे। यदि फिदिया नहीं दिया और दास वारिसों को दे दिया, तो लेनदार उसे अपने कर्ज़ के लिए बिकवा देंगे, लेकिन यदि वारिस फिदिया दे दें तो ऐसा नहीं होगा; जैसा कि 'मुग्नी' में है। फिर अपराध का वारिस स्वामी से उसकी कीमत ले लेगा; यह 'मबसूत' में है।

यदि स्वामी ने स्वीकार किया कि दास ने गलती से किसी की हत्या की है, फिर दूसरे व्यक्ति की हत्या का इकरार किया, लेकिन पहले वारिसों ने दूसरे इकरार को झुठला दिया, तो स्वामी से कहा जाएगा कि या तो दोनों के वारिसों को दास सौंप दे या दोनों का फिदिया दे। यदि उसने दास सौंप दिया, तो पहले वारिस स्वामी से आधी कीमत ले लेंगे। इस मसले और दूसरे मसले में अंतर है: यदि दास पर पहले से ऐसा कर्ज़ साबित हो जो उसके पूरे मूल्य के बराबर हो, फिर स्वामी ने अपराध या नए कर्ज़ का इकरार किया, तो स्वामी का इकरार वैध नहीं होगा; यह 'मुहीत' में है। यदि माज़ून ने जानबूझकर (अमदन) किसी की हत्या की और उस पर कर्ज़ भी है, फिर स्वामी ने दास सौंपने पर वारिसों से समझौता (सुलह) कर लिया, तो यह समझौता लेनदारों के हक में लागू नहीं होगा। लेकिन इस

समझौते के बाद वारिस को दास से बदला (किसास) लेने का अधिकार नहीं रहेगा। फिर दास कर्ज़ के लिए बेचा जाएगा। यदि कर्ज़ चुकाने के बाद मूल्य में से कुछ बचा, तो वह वारिस को मिलेगा, और यदि कुछ न बचा, तो वारिस का स्वामी या दास पर (चाहे दास की स्थिति में हो या आज़ाद होने के बाद) कोई अधिकार नहीं रहेगा। यदि किसास वालों ने समझौता नहीं किया लेकिन एक वारिस ने खून माफ कर दिया, तो स्वामी आधा दास दूसरे वारिस को दे देगा या उसका फिदिया देगा, फिर पूरा दास कर्ज़ के लिए बेचा जाएगा। यदि दास ने इकरार किया कि मैंने अमुक व्यक्ति की जानबूझकर हत्या की है और उस पर कर्ज़ है, तो उसकी बात सच मानी जाएगी, चाहे स्वामी उसकी पुष्टि करे या खंडन। यदि वारिसों में से एक ने माफ कर दिया, तो पूरा खून माफ हो जाएगा (किसास नहीं होगा) और दास कर्ज़ के लिए बेचा जाएगा। लेकिन यदि स्वामी फिदिया के रूप में पूरा कर्ज़ चुका दे तो ऐसा नहीं होगा। यदि स्वामी फिदिया दे दे और दास के इकरार की पुष्टि करे, तो उससे कहा जाएगा कि आधा दास उस वारिस को दे दे जिसने माफ नहीं किया है। यदि स्वामी इकरार को झुठला दे, तो दास स्वामी का ही रहेगा जबकि उसने कर्ज़ फिदिया के रूप में चुका दिया हो; यह 'मबसूत' में है।

यदि माज़ून दास ने किसी की हत्या की और उस पर कर्ज़ है, और लेनदार और मृतक के वारिस दोनों उपस्थित हों, तो:

आधा हिस्सा इस स्थिति में जब किसास के दो हकदार हों। "अमुक व्यक्ति" के बारे में स्पष्टीकरण है कि मूल में "एक पुरुष" है, लेकिन अनुवादक ने इसे स्पष्टता के लिए लिखा है क्योंकि अज्ञात व्यक्ति की हत्या का इकरार मान्य नहीं होता।

---

جنایت کی تو مولیٰ اس غلام کو اولیائے جنایت کو دے سکتا ہے پس اگر اس نے دے دیا اور وہاں سے قرض خواہوں نے اپنے قرضہ میں فروخت کرا لیا تو اولیائے جنایت کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ مولیٰ سے غلام کی قیمت واپس لیں بخلاف اس کے اگر جنایت قرضہ سے پہلے واقع ہوئی ہو تو ایسی صورت میں غلام کی قیمت مولیٰ سے لے سکتے ہیں یہ محیط میں ہے۔ اگر جنایت سے پہلے ماذون پر ہزار درہم قرضہ ہو گئے ہوں پھر جنایت کے بعد ہزار درہم قرضہ ہو گئے اور اس کی قیمت ہزار درہم ہے پھر مولیٰ نے اس کو جنایت میں دے دیا تو غلام دونوں قرضوں کے واسطے فروخت کیا جائے گا پس اگر فروخت کیا گیا یا اولیاء جنایت نے دونوں قرضے ادا کر دیے تو اولیاء جنایت مولیٰ سے غلام کی نصف قیمت یعنی پچھلے قرضہ کے حساب سے جو حصہ ہوتا ہے لے لیں گے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون یا محجور نے کسی شخص کو خطا سے قتل کیا پھر مولیٰ نے اس پر قرضہ کا اقرار کیا تو یہ اقرار یوں قرار نہ دیا جائے گا کہ اس نے فدیہ دینا اختیار کیا ہے اگر چہ وقت اقرار کے جنایت سے آگاہ ہو بلکہ مولیٰ سے کہا جائے گا کہ یا تو یہ غلام دے دے یا اس کا فدیہ دے پس اگر اس نے فدیہ دینا اختیار کیا تو غلام قرض خواہوں کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا کہ اور کسی کو مولیٰ سے مطالبہ کا کچھ استحقاق باقی نہ رہے گا اور اگر فدیہ نہ دیا بلکہ غلام اولیاء جنایت کو دے دیا تو قرض خواہ لوگ اس کو اپنے قرضہ میں فروخت کرا دیں گے لیکن اگر اولیاء جنایت ان کا فدیہ دے دیں تو ایسا نہ ہوگا کذا فی المغنی۔ پھر ولی جنایت مولیٰ سے اس کی قیمت لے لے گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر مولیٰ نے اس پر کسی شخص کو خطا سے قتل کرنے کا اقرار کیا پھر دوسرے شخص کو خطا سے قتل کرنے کا اقرار کیا مگر اوّل اولیاء جنایت نے مولیٰ کے دوسرے اقرار جنایت کی تکذیب

کی تو مولیٰ سے کہا جائے گا کہ یا تو دونوں جنایتوں کے والیوں کو غلام دے دے یا دونوں کا فدیہ ادا کر پس اگر اس نے دونوں کو غلام دے دیا تو اوّل اولیاء جنایت مولیٰ سے غلام کی نصف قیمت لے لیں گے اور اس مسئلہ میں اور ایک دوسرے مسئلہ میں فرق ہے اور وہ مسئلہ یہ ہے کہ اگر غلام پر معروف قرضہ یا مولیٰ کے اقرار سے ثابت ہوا ہو کہ اس کے تمام رقبہ کو محیط ہو پھر مولیٰ نے اس پر جنایت کا یا دوسرے قرضہ کا اقرار کیا تو مولیٰ کا اقرار صحیح نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون نے کسی کو عمداً قتل کیا اور اس پر قرضہ ہے پھر مولیٰ نے جنایت سے غلام کے دینے پر اولیاء جنایت سے صلح کی تو یہ صلح قرض خواہوں کے حق میں نافذ نہ ہو گی مگر ولی جنایت کو اس صلح کے بعد یہ اختیار نہ رہے گا کہ غلام کو قصاص میں قتل کرا دے پھر وہ غلام اپنے قرضہ کے واسطے فروخت کیا جائے گا پس اگر بعد ادائے قرضہ کے اس کے ثمن میں سے کچھ باقی رہا تو اولیاء جنایت کو ملے گا اور اگر کچھ نہ رہا تو صاحب جنایت کا مولیٰ پر یا غلام پر اس کی حالت رقیت میں یا بعد عتق کے کچھ حق واجب نہ ہوگا۔ اگر اصحابِ قصاص نے صلح نہ کی مگر ایک ولی نے خون عفو کیا تو مولیٰ آدھا غلام دوسرے کو دے دے گا یا اس کا فدیہ دے گا پھر پورا غلام قرضہ میں فروخت کیا جائے گا اور اگر غلام نے اقرار کیا کہ میں نے فلاں شخص کو عمداً قتل کیا ہے اور اس پر قرضہ ہے تو اس کے قول کی تصدیق کی جائے گی خواہ مولیٰ تصدیق کرے یا تکذیب کرے اور اگر اولیاء جنایت میں سے ایک شخص نے عفو کیا تو پورا خون معاف ہو جائے گا یعنی قصاص نہ لیا جائے گا پس غلام قرضہ میں فروخت کیا جائے گا لیکن اگر مولیٰ پورا قرضہ فدیہ میں ادا کر دے تو ایسا نہ ہوگا پس اگر مولیٰ نے فدیہ دے دیا اور جنایت میں غلام کے قول کی تصدیق کی تو اس سے کہا جائے گا کہ آدھا غلام اس ولی کو دے دے جس نے خون معاف نہیں کیا ہے اور اگر مولیٰ نے اقرار جنایت کی تکذیب کی ہو تو پورا غلام مولیٰ کا ہو گا درحالیکہ اس نے قرضہ فدیہ میں ادا کر دیا ہے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر غلام ماذون نے کسی شخص کو قتل کیا اور اس پر قرضہ ہے پس اگر قرض خواہ لوگ اور مقتول کے وارث دونوں حاضر ہوئے تو

آدھا یہ اس صورت میں کہ قصاص کے مستحق دو شخص ہوں۔ قولہ فلاں شخص اقول اصل میں ہے کہ ایک مرد کو قتل کیا اور مترجم نے اس کو اس واسطے معین کر دیا کہ مجہول کردہ کے اقرار قتل سے یہ علم متعلق نہیں ہے پس مراد مردِ معین ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (82) Kitab al-Ma'dhun (The Book of Authorized Slaves)**

The Judge (Qadi) shall hand over the slave to the heirs of the deceased. The creditors may then pursue the slave and have him sold to satisfy their debt, taking an amount equal to their debt from the proceeds. Whatever remains shall go to the heirs of the deceased. This ruling applies when both parties are present. If the heirs of the deceased appear first, the ruling remains the same: the slave is given to them, and the judge shall not wait for the creditors to appear. If the creditors appear first, and if the judge becomes aware of a crime (jinayah) committed by the slave, he shall not sell the slave for their debt. However, if the judge was unaware and proceeded with the sale, the rights of the heirs are nullified, and the master (Mawla) is not liable; this is recorded in the 'Sharh Tahawi'. If a Ma'dhun (a slave authorized for trade) is found slain in his master's house and carries no debt, his blood is 'hadar' (wasted), meaning there is no legal recourse or compensation. If there is debt upon him, the master must immediately pay from his wealth either the value of the slave or the amount of the debt, whichever is less, similar to the ruling if the master had killed the slave himself. If one of the trading slaves of the Ma'dhun is found slain in the master's compound and the Ma'dhun has no debt, his blood is 'hadar'. If the Ma'dhun has a debt encompassing his value and earnings, then the master is obligated to pay the value of the slain slave from his own wealth over three years; this is based on the analogical reasoning (qiyas) of Imam al-A'zam (Abu Hanifa). According to the 'Sahibayn' (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the payment is due immediately. In cases where the debt does not encompass everything, the master is unanimously required to pay the value immediately, as per the ruling of the master himself killing the slave; this is in 'Al-Mabsut'. If non-believing enemies capture a Ma'dhun and keep him in their territory, and later Muslims prevail and the original master reclaims his slave, even if there was a prior crime or debt associated with the slave, both claims shall be restored. Similarly, if someone buys him and the master buys him back from that person, the same rule applies. If the master does not pay for him, the debt is restored but the claim for the crime is not. When the slave is sold for debt, some scholars have said that the one who received the slave as part of their war booty should be compensated from the public treasury (Bayt al-Mal), similar to the ruling for 'Mudabbar' or 'Mukatib' slaves. Others said no compensation is given, just as a debt-ridden slave given for a crime and then sold for debt receives no compensation. If the non-believers convert to Islam, the slave belongs to them, and

any claim for crime is nullified, but the debt remains. Likewise, if a non-believer brings the slave to our territory under a pledge of safety (aman), the debt remains restored, and the master has no right to take him. If the master buys him from that non-believer, the debt is restored, but not the crime; this is in 'Al-Mughni'.

If the master is found slain in the house of the Ma'dhun, his blood money (diyat) becomes obligatory on the Ma'dhun's supporting community (tribe) to be paid to the heirs over three years. This is the reasoning of Imam al-A'zam, whereas according to the Sahibayn, his blood is 'hadar'. If a Ma'dhun slave is found slain in his trading house and has no debt, his blood is 'hadar'. If he has debt, the master must pay the value or the debt amount, whichever is less, immediately from his wealth, as is the ruling when a Ma'dhun is found slain in another of the master's houses. It is mentioned in 'Ma'dhun al-Saghir' (1) that this ruling is based on 'Istihsan' (juristic preference), whether there is debt or not. If a creditor of the Ma'dhun is found slain in the Ma'dhun's trading house, his blood money must be paid by the master's supporting community over three years. Similarly, if the slave of a creditor is found slain, the same ruling applies: the blood money is due from the master's community over three years; his slave and someone else's slave are treated equally in this ruling. If a 'Mukatib' (a slave earning his freedom) authorizes his slave to trade, and someone is found slain in that Ma'dhun's house, whether the Ma'dhun is in debt or not, the Mukatib is obligated to pay the value of the slave's person from his wealth immediately to the heirs, just as the ruling would be if someone were slain in another house of the Mukatib's earnings. If the Mukatib himself is found slain in the house of his Ma'dhun slave, his blood is 'hadar'. (1). 'Ma'dhun al-Saghir' and 'Ma'dhun al-Kabir' are the names of two books where the rulings regarding authorized slaves are mentioned.

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (82) किताब अल-माज़ून

क़ाज़ी उस गुलाम को मक़्तूल (मृतक) के वारिसों को दे देगा, फिर वहाँ से क़र्ज़ख़्वाह (लेनदार) लोग उसका पीछा करके उसे अपने क़र्ज़े में बिकवा देंगे और क़ीमत में से अपने क़र्ज़े के बराबर हिस्सा ले लेंगे, फिर जो बाक़ी बचेगा वह मक़्तूल के वारिसों को मिलेगा। यह हुक्म उस वक्त है जब दोनों पक्ष मौजूद हों। अगर पहले मक़्तूल के वारिस हाज़िर हुए तो भी यही हुक्म है कि गुलाम उनको दे दिया जाएगा और वह लेनदारों के आने का इंतज़ार नहीं करेगा। और अगर लेनदार पहले हाज़िर हुए, तो यदि क़ाज़ी को पता चला कि इस पर कोई अपराध (जिनायत) है, तो वह उसे उनके क़र्ज़े के बदले नहीं बेचेगा; और अगर पता न चला और क़ाज़ी ने बेच दिया, तो मक़्तूल के वारिसों का हक़ खत्म हो गया और स्वामी (मौली) कुछ भी ज़िम्मेदार न होगा, यह 'शरह तहावी' में है। यदि माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत गुलाम) अपने स्वामी के घर में मक़्तूल पाया गया और उस पर कोई क़र्ज़ नहीं है, तो उसका खून व्यर्थ (हदर) है, यानी उसका कोई बदला नहीं। और अगर उस पर क़र्ज़ हो, तो तत्काल स्वामी के माल से उसकी क़ीमत और क़र्ज़ में से जो भी कम हो, वह लिया जाएगा, जैसा कि स्वामी द्वारा खुद कत्ल करने की स्थिति में हुक्म है। यदि माज़ून के व्यापारिक गुलामों में से कोई गुलाम स्वामी के अहाते में मक़्तूल पाया गया और माज़ून क़र्ज़दार नहीं है, तो उसका खून व्यर्थ है। और अगर माज़ून पर क़र्ज़ हो जो उसकी क़ीमत और कमाई को घेर ले, तो स्वामी पर उस मक़्तूल की क़ीमत अपने माल से तीन साल में अदा करना वाजिब होगा; यह इमाम-ए-आज़म का क़यास (तर्क) है। और साहिबैन के अनुसार उसकी क़ीमत तुरंत वाजिब होगी। जहाँ क़र्ज़ उस सबको न घेरे, तो सर्वसम्मति से स्वामी पर उसकी क़ीमत तुरंत वाजिब होगी, जैसा कि स्वामी द्वारा खुद कत्ल करने की स्थिति में हुक्म है; यह 'मब्सूत' में है। अगर दुश्मन काफिरों ने माज़ून को कैद करके अपने देश में रख लिया, फिर मुसलमान उन पर हावी हो गए और गुलाम के स्वामी ने अपना गुलाम वापस ले लिया, जबकि गुलाम पर पहले से कोई अपराध या क़र्ज़ था, तो दोनों वापस आ जाएँगे (यानी उन दावों की बहाली होगी)। इसी तरह अगर उसे किसी व्यक्ति ने खरीदा और स्वामी ने पैसे देकर उसे ले लिया, तो भी यही हुक्म है। और अगर स्वामी ने पैसे देकर नहीं लिया, तो क़र्ज़ बहाल होगा पर अपराध (जिनायत) बहाल नहीं होगी। और जब वह गुलाम क़र्ज़ के बदले बेचा जाए, तो कुछ विद्वानों ने कहा कि जिसके गनीमत (युद्ध में प्राप्त धन) के हिस्से में वह गुलाम आया था, उसे बैत-अल-माल (राजकोष) से मुआवज़ा दिया जाए, जैसा कि मुदब्बर या मुकातिब गुलामों के मामले में हुक्म है। कुछ ने कहा मुआवज़ा नहीं दिया जाएगा, जैसा कि क़र्ज़दार गुलाम को अपराध के बदले दिया गया और फिर वह

क़र्ज़ के लिए बेचा गया, तो मुआवज़ा नहीं मिलता। और अगर वे सब काफिर मुसलमान हो गए, तो यह गुलाम उन्हीं का होगा और अपराध का दावा खत्म हो जाएगा, पर क़र्ज़ खत्म नहीं होगा। इसी तरह अगर काफिर उस गुलाम को हमारे मुल्क में शरण (अमान) लेकर लाया, तो भी क़र्ज़ बहाल होगा और स्वामी को उसे लेने का कोई अधिकार न होगा। और अगर स्वामी ने उस काफिर से उसे खरीद लिया, तो क़र्ज़ बहाल होगा, अपराध नहीं; यह 'मुग़नी' में है।

अगर माज़ून के घर में उसका स्वामी मक़्तूल पाया गया, तो उसकी दियत (रक्त-मूल्य) माज़ून की मददगार बिरादरी पर तीन साल में वाजिब होगी ताकि वे वारिसों को अदा करें। यह इमाम-ए-आज़म का क़यास है और साहिबैन के नज़दीक उसका खून व्यर्थ होगा। अगर गुलाम माज़ून अपने व्यापारिक घर में मक़्तूल पाया गया और उस पर क़र्ज़ नहीं है, तो उसका खून व्यर्थ होगा। और अगर उस पर क़र्ज़ हो, तो स्वामी पर उसकी क़ीमत और क़र्ज़ में से जो कम हो, वह वाजिब होगा कि तत्काल अपने माल से अदा करे, जैसा कि स्वामी के दूसरे घर में माज़ून के मक़्तूल पाए जाने की स्थिति में हुक्म है। 'माज़ून-ए-सगीर' (1) में ज़िक्र है कि यह हुक्म इस्तिहसान (विशेष प्राथमिकता) है, चाहे उस पर क़र्ज़ हो या न हो। और अगर माज़ून का लेनदार माज़ून के व्यापारिक घर में मक़्तूल पाया गया, तो उसकी दियत माज़ून के स्वामी की बिरादरी पर तीन साल में अदा करनी वाजिब होगी। इसी तरह यदि गुलाम के लेनदार का गुलाम मक़्तूल पाया जाए, तो उसका भी यही हुक्म है कि उसकी दियत स्वामी की बिरादरी पर तीन साल में वाजिब होगी; उसका गुलाम और पराया गुलाम इस हुक्म में समान हैं। और अगर मुकातिब (आज़ादी की शर्त पर काम करने वाला गुलाम) ने अपने गुलाम को व्यापार की इजाज़त दी, फिर माज़ून के घर में कोई व्यक्ति मक़्तूल पाया गया, चाहे माज़ून क़र्ज़दार हो या न हो, तो मुकातिब पर वाजिब होगा कि माज़ून के शरीर की क़ीमत अपने माल से तत्काल वारिसों को दे, जैसे कि मुकातिब की कमाई के दूसरे घर में किसी के मक़्तूल पाए जाने पर हुक्म होता है। अगर मुकातिब के माज़ून के घर में खुद मुकातिब ही मक़्तूल पाया गया, तो उसका खून व्यर्थ होगा। (1). माज़ून-ए-सगीर और माज़ून-ए-कबीर दो किताबों के नाम हैं जिनमें माज़ून से संबंधित मसले बताए गए हैं।

---

قاضی اس غلام کو مقتول کے وارثوں کو دے دے گا پھر وہاں سے قرض خواہ لوگ اس کا پیچھا کر کے اپنے قرضہ میں فروخت کرا دیں گے اور ثمن میں سے بقدر قرضہ کے لے لیں گے پھر جو باقی رہا وہ مقتول کے وارثوں کو ملے گا یہ حکم اس وقت ہے کہ دونوں فریق حاضر ہوئے ہوں۔ اگر پہلے مقتول کے وارث حاضر ہوئے تو بھی یہی حکم ہے کہ غلام ان کو دے دے گا اور قرض خواہوں کے حاضر ہونے کا انتظار نہ کرے گا اور اگر قرض خواہ لوگ پہلے حاضر ہوئے پس اگر قاضی کو معلوم ہوا کہ اس پر جنایت ہے تو ان کے قرضہ میں اس کو فروخت نہ کرے گا اور اگر معلوم نہ ہوا اور قاضی نے فروخت کر دیا تو وارثانِ مقتول کا حق باطل ہو گیا اور مولیٰ کچھ ضامن نہ ہو گا یہ شرح طحاوی میں ہے۔ اگر ماذون اپنے مولیٰ کے گھر میں مقتول پایا گیا اور اس پر قرضہ نہیں ہے تو اس کا خون ہدر ہے یعنی باطل ہے اور اگر اس پر قرضہ ہو تو فی الحال مولیٰ کے مال سے اس کی قیمت اور قرضہ سے جو کم مقدار ہو لی جائے گی جیسا کہ مولیٰ کے خود قتل کرنے کی صورت میں حکم ہے۔ اگر ماذون کے تجارتی غلاموں میں سے کوئی غلام مولیٰ کے احاطہ میں مقتول پایا گیا اور ماذون مقروض نہیں ہے تو اس کا خون ہدر ہے اور اگر ماذون پر قرضہ ہو کہ اس کی قیمت اور کمائی کو محیط ہو تو مولیٰ پر اس مقتول کی قیمت مولیٰ کے مال سے تین برس میں ادا کرنی واجب ہو گی یہ قیاس قول امام اعظمؒ ہے اور صاحبین کے نزدیک فی الحال اس کی قیمت واجب ہوگی درآنکہ قرضہ اس سب کو محیط نہ ہو تو بالا جماع مولیٰ پر فی الحال اس کی قیمت واجب ہو گی جیسا کہ مولیٰ کے خود قتل کرنے کی صورت میں حکم ہے یہ مبسوط میں ہے۔ کافر دشمنوں نے ماذون کو قید کر کے اپنے احراز میں کر لیا یعنی اپنے ملک میں محفوظ کر لیا پھر مسلمان لوگ ان پر غالب ہوئے اور غلام کے مولیٰ نے اپنا غلام لے لیا حالانکہ

غلام پر پہلی جنایت یا قرضہ ہے تو دونوں عود کریں گے اسی طرح اگر اس کو کسی شخص نے خریدا اور مولیٰ نے دام دے کر لے لیا ہو تو بھی یہی حکم ہے اور اگر مولیٰ نے دام دے کر نہ لیا ہو تو قرضہ عود کرے گا جنایت عود نہ کرے گی اور جب قرضہ میں وہ غلام فروخت کیا جائے تو بعض نے فرمایا کہ جس کے حصہ غنیمت میں وہ غلام پڑا تھا اس کو بیت المال سے عوض دیا جائے جیسا کہ غلام کے مدبر یا مکاتب ہونے کی صورت میں یہی حکم ہے اور بعض نے فرمایا کہ عوض نہ دیا جائے گا جیسا کہ مقروض غلام جنایت میں دیا گیا پھر وہ قرضہ میں فروخت ہوا تو عوض نہیں دیا جاتا ہے اور اگر وہ سب کافر مسلمان ہو گئے تو یہ غلام انہی کا ہو گا اور جنایت باطل ہو جائے گی قرضہ باطل نہ ہو گا اسی طرح اگر کافر اس غلام کو ہمارے ملک میں امان لے کر لایا تو بھی قرضہ عود کرے گا اور مولیٰ کو اس کے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی اور اگر اس کافر سے اس کے مولیٰ نے خرید لیا تو قرضہ عود کرے گا نہ جنایت یہ مغنی میں ہے۔

اگر ماذون کے دار میں مولیٰ مقتول پایا گیا تو اس کی دیت اس کی مدد گار برادری پر تین برس میں واجب ہو گی کہ اس کے وارثوں کو ادا کریں یہ قیاس قول امام اعظمؒ ہے اور صاحبین کے نزدیک اس کا خون ہدر ہو گا۔ اگر غلام ماذون اپنے تجارتی گھر میں مقتول پایا گیا اور اس پر قرضہ نہیں ہے تو اس کا خون ہدر ہو گا اور اگر اس پر قرضہ ہو تو مولیٰ پر اس کی قیمت اور قرضہ میں سے کم مقدار واجب ہو گی کہ فی الحال اپنے مال سے ادا کرے جیسا کہ مولیٰ کے دوسرے گھر میں ماذون مقتول پائے جانے کی صورت میں حکم ہے اور ماذونِ صغیر ۱ میں مذکور ہے کہ یہ حکم استحسان ہے خواہ اس پر قرضہ ہو یا نہ ہو اور اگر ماذون کا قرض خواہ ماذون کے تجارتی گھر میں مقتول پایا گیا تو اس کی دیت ماذون کے مولیٰ کی مدد گار برادری پر تین برس میں ادا کرنی واجب ہو گی۔ اسی طرح اگر غلام کے قرض خواہ کا غلام مقتول پایا جائے تو اس کا بھی یہی حکم ہے کہ اس کی دیت مولیٰ کی مدد گار برادری پر تین برس میں واجب ہوگی اس کا غلام اور غیر کا

غلام اس حکم میں یکساں ہیں اور اگر مکاتب نے اپنے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر ماذون کے گھر میں ایک شخص مقتول پایا گیا اور ماذون مقروض ہے یا نہیں ہے تو مکاتب پر واجب ہو گا کہ ماذون کے رقبہ کی قیمت اپنے مال سے فی الحال وارثان کو ادا کرے جیسے کہ مکاتب کی کمائی کے دوسرے گھر میں اگر کوئی مقتول پایا جائے تو اس میں یہی حکم ہوتا ہے۔ اگر مکاتب کے ماذون کے گھر میں مکاتب ہی مقتول پایا گیا تو اس کا خون ہدر ہو گا ۱۔ ماذون صغیر و ماذون کبیر نام دو کتابوں کا ہے جس میں مسائل ماذون مذکور ہیں۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 83 | Kitab al-Ma’zun (The Book of the Authorized Person)**

...as if he were found murdered in his own other house, then the same ruling applies. Let it be clear that Imam-e-Azam (Abu Hanifa) distinguishes between a *Mukatab* (a slave who has contracted for freedom) and a free person in such a case. If an authorized person (*Ma’zun*) is found murdered in the house of a *Mukatab*, it will be obligatory upon the *Mukatab* to immediately pay his value from his assets and an amount less than his own price to the creditors of his authorized slave; thus it is stated in *Al-Mabsut*.

**Chapter Twelve: Regarding the granting of permission for trade to a minor, a person of unsound mind, or the slave of either, by their father, executor, or judge, and an explanation of their legal actions before such permission is granted.**

If a minor who understands buying and selling is given permission for trade, it is valid. This means that he understands that selling transfers ownership away and buying acquires ownership, and he knows the difference between a small loss and a large loss. It does not mean that he merely knows the terminology of buying and selling, i.e., understanding the act through words alone; this is mentioned in *Fatawa Sughra*. If a minor is given permission to trade by his guardian (*Wali*), he shall be like an authorized slave in matters of buying and selling, provided he understands the trade, and his transactions shall be legally effective. Legal actions are of three types: First, those that are purely detrimental, such as divorce, manumission of slaves, gifting (*Hiba*), and charity (*Sadqa*); a minor does not possess the authority for such actions even if the guardian permits him. Second, those that are purely beneficial, such as accepting gifts or charity; he possesses authority for these even without permission. Third, those that oscillate between profit and loss, such as buying and selling, hiring (*Ijarah*), and marriage, etc.; he possesses authority for these with permission, but not without it. The primary guardian of a minor is his father, then the father's executor (*Wasi*), then the paternal grandfather, then the grandfather's executor, then the ruler, the judge, and the judge's executor. It is not valid for a mother or her executor to grant him permission for trade; this is in *Al-Kafi*. Permission from an uncle, brother, a conditional guardian, or a guardian not appointed for judicial matters (*Ghayr Mawalli al-Qaza*) is invalid; this is in *Mughni*.

Permission granted by a minor’s sister, paternal aunt, or maternal aunt is invalid; this is in *Khizanat al-Muftin*. Once permission for the minor is validly established, everything that falls under that permission places the minor in the same position as a free adult. Thus, he shall have the right to hire himself out or hire others for himself. He may sell whatever he has inherited, whether movable or immovable property, just as an adult free person is permitted to do. However, he does not have the authority to make any of his owned slaves a *Mukatab*; this is in *Al-Muhit*. It is stated in *Jami al-Fatawa* that if a father grants trade permission to his two minor sons and one trades with the other, it is valid; however, it is invalid if an executor grants such permission. It is narrated from Ibn Sama'ah that if a person grants trade permission to two minors and then instructs another person to buy something from one for the other; if that person acts as a spokesperson (*Mu'abbir*) for both sides, it is not valid. But if he represents one side and the other minor personally performs the proposal (*Ijab*) or acceptance (*Qabul*), it is valid. This is in *Tatarkhaniyah*. If an authorized minor buys a slave and grants that slave permission for trade, it is valid; this is in *Al-Mabsut*. If a minor sells something from his property or buys something for himself but has not yet received permission, even though he understands buying and selling, according to us, his action is initiated but remains pending based on whether it is profitable or harmful; this is in *Quduri*. This is because a guardian is required who is responsible for his affairs, and his guardianship does not extend to such matters. Furthermore, the authority of a guardian who has not been delegated judicial power by the Sultan (*Ghayr Mawalli al-Qaza*) is also considered deficient.

जैसे कि अपने दूसरे घर में खुद मक़तूल पाया जाए तो यही हुक्म होता है और यह स्पष्ट हो कि इमाम-ए-आज़म ऐसी सूरत में मुकातिब और आज़ाद में फ़र्क करते हैं। अगर मुकातिब के मकान में उसका माज़ून मक़तूल पाया गया तो मुकातिब पर वाजिब होगा कि अपने माल से तत्काल उसकी कीमत और अपनी कीमत से कम मात्रा अपने माज़ून के ऋणदाताओं को अदा करे, जैसा कि 'अल-मबसूत' में है।

## अध्याय बारह: नाबालिग और विक्षिप्त या उन दोनों के गुलाम को उनके पिता, वसीयतदार या काज़ी द्वारा व्यापार की अनुमति देने और अनुमति से पहले उन दोनों के कार्यों (تصرفات) के विवरण में।

अगर एक नाबालिग को, जो खरीद-बिक्री को समझता है, व्यापार के लिए अनुमति दी गई तो यह जायज़ है। इसका अर्थ यह है कि वह समझता हो कि 'बय' (बिक्री) से स्वामित्व चला जाता है और खरीद से स्वामित्व आ जाता है, और वह थोड़े और बड़े नुकसान को जानता हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह खरीद-बिक्री की शब्दावली को जानता हो, यानी केवल शब्दों से खरीद-बिक्री को समझता हो; यह 'फ़तावा-ए-सुग़रा' में है। अगर नाबालिग को उसके वली (संरक्षक) ने व्यापार की अनुमति दी, तो वह खरीद-बिक्री में माज़ून (अधिकृत गुलाम) के समान होगा, बशर्ते वह खरीद-बिक्री को समझता हो, यहाँ तक कि उसका व्यवहार प्रभावी होगा। व्यवहार तीन प्रकार के होते हैं: पहला वह जिसमें केवल नुकसान है जैसे तलाक, दास-मुक्ति, उपहार (हिबा) और दान (सदक़ा); नाबालिग ऐसे व्यवहारों का मालिक नहीं होता, भले ही संरक्षक उसे अनुमति दे दे। दूसरा वह जो केवल लाभदायक है जैसे उपहार और दान स्वीकार करना; ऐसे व्यवहारों का वह बिना अनुमति के भी मालिक होता है। तीसरा वह जो लाभ और हानि के बीच घूमता है जैसे खरीद-बिक्री, किराया (इजारा) और निकाह आदि; ऐसे व्यवहारों का वह अनुमति के साथ मालिक होता है, बिना अनुमति के नहीं। नाबालिग का प्रथम संरक्षक उसका पिता है, फिर पिता का वसीयतदार (कार्यकारी), फिर सगा दादा, फिर दादा का वसीयतदार, फिर शासक और काज़ी तथा काज़ी का वसीयतदार। माँ और माँ के वसीयतदार का उसे व्यापार के लिए अनुमति देना सही नहीं है; यह 'अल-काफ़ी' में है। चाचा, भाई और शर्त वाले वली तथा 'गैर-मूली-अल-कज़ा' (जिसे सुल्तान ने न्याय का अधिकार न दिया हो) वली की अनुमति नाजायज़ है; यह 'मुग़नी' में है।

नाबालिग की बहन, बुआ और मौसी की अनुमति नाजायज़ है; यह 'खज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है। और जब नाबालिग के लिए अनुमति वैध हो गई, तो जो चीज़ उसकी अनुमति के दायरे में आई, उसमें नाबालिग को एक स्वतंत्र बालिग के समान माना जाएगा। अतः उसे अधिकार होगा कि वह खुद को किराए पर दे या अपने लिए किराएदार नियुक्त करे। जो चीज़ उसे विरासत में मिली है, चाहे वह चल (मन्कूल) हो या अचल, उसे बेच सकता है, जैसा कि एक स्वतंत्र बालिग के लिए जायज़ होता है। लेकिन उसे यह अधिकार नहीं है कि वह अपने किसी गुलाम को 'मुकातिब' (मुक्ति-अनुबंध वाला) बनाए; यह 'मुहीत' में है। 'जामे-उल-फ़तावा' में है कि अगर पिता ने अपने दो नाबालिग बेटों को व्यापार की अनुमति दी और एक ने दूसरे से खरीद-बिक्री की, तो यह जायज़ है; लेकिन वसीयतदार द्वारा अनुमति देने में यह नाजायज़ है। इब्न समाआ से रिवायत है कि अगर एक व्यक्ति ने अपने दो नाबालिगों को व्यापार की अनुमति दी, फिर एक व्यक्ति को आदेश दिया कि वह उन दोनों में से एक के लिए दूसरे से कोई चीज़ खरीदे; तो यदि वह व्यक्ति दोनों की ओर से प्रवक्ता (मुअब्बिर) है, तो यह सही नहीं है, और अगर उसने एक की ओर से प्रतिनिधित्व किया और दूसरे ने स्वयं प्रस्ताव (ईजाब) या स्वीकृति (क़ुबूल) की, तो यह जायज़ है। यह 'तातारखानिह' में है। अगर अधिकृत नाबालिग (माज़ून) ने कोई गुलाम खरीदा और उसे व्यापार की अनुमति दी, तो यह जायज़ है; यह 'मबसूत' में है। अगर नाबालिग ने अपने माल से कोई चीज़ बेची या अपने लिए कोई चीज़ खरीदी, लेकिन अभी तक उसे अनुमति प्राप्त नहीं हुई है, हालाँकि वह खरीद-बिक्री को समझता है, तो हमारे निकट उसका व्यवहार उस बिक्री में प्रभावी माना जाएगा जिसमें लाभ या हानि का संदेह हो; यह 'क़ुदूरी' में है। क्योंकि संरक्षक (वली) अनिवार्य है जो अपने कार्यों का उत्तरदायी है, और ऐसी परिस्थितियों में उसकी अभिभावकता लागू नहीं होती। और 'गैर-मूली-अल-कज़ा' वली, यानी वह वली जिसे सुल्तान ने न्याय का कार्य नहीं सौंपा है, उसका अधिकार भी अपूर्ण है।

---

جیسے کہ اپنے دوسرے گھر میں خود مقتول پایا جائے تو یہی حکم ہوتا ہے اور اور واضح ہو کہ امام اعظم ایسی صورت میں مکاتب اور آزاد میں فرق کرتے ہیں۔ اگر مکاتب کے مکان میں اس کا ماذون مقتول پایا گیا تو مکاتب پر واجب ہوگا کہ اپنے مال سے فی الحال اس کی قیمت اور اپنی قیمت سے کم مقدار اپنے ماذون کے قرض خواہوں کو ادا کرے کذا فی المبسوط۔

## باب بارہ: نابالغ و معتوہ یا ان دونوں کے غلام کو ان کے باپ یا وصی یا قاضی کی تجارت کی اجازت دینے اور قبل اجازت کے ان دونوں کے تصرفات کے بیان میں

اگر نابالغ کو جو خرید و فروخت کو سمجھتا ہے تجارت کے واسطے اجازت دی تو جائز ہے اور اس سے یہ مراد ہے کہ یہ سمجھتا ہو کہ بیع سے ملک جاتی رہتی ہے اور خرید سے آجاتی ہے اور قلیل نقصان اور کثیر نقصان کو جانتا ہو اور یہ مراد نہیں ہے کہ خرید و فروخت کی مثلاً عبارت کو جانتا ہو یعنی نفس خرید و فروخت کو بالفاظ سے سمجھتا ہو یہ فتاویٰ صغریٰ میں ہے۔ اگر نابالغ کو اس کے ولی نے تجارت کی اجازت دی تو وہ خرید و فروخت میں مثل ماذون کے ہوگا جب کہ خرید و فروخت کو سمجھتا ہو یہاں تک کہ اس کا تصرف نافذ ہوگا اور تصرفات تین قسم کے ہیں ایک وہ کہ جس میں محض ضرر ہے جیسے طلاق عتاق و ہبہ و صدقہ پس ایسے تصرف کا نابالغ مالک نہیں ہوتا ہے اگر چہ ولی اس کو اجازت دے دے دوسرے وہ کہ محض نافع ہیں جیسے ہبہ و صدقہ قبول کرنا پس ایسے تصرف کا بلا اجازت مالک ہوتا ہے تیسرے وہ کہ نفع و ضرر میں دائر ہیں جیسے خرید و فروخت و اجارہ و نکاح وغیرہ پس ایسے تصرف کا با اجازت مالک ہوتا ہے بلا اجازت مالک نہیں ہوتا ہے۔ نابالغ کا ولی اول اس کا باپ ہے پھر باپ کا وصی سگا دادا پھر دادا کا

وصی ہے پھر والی ملک اور قاضی اور قاضی کا وصی ہے اور ماں اور ماں کے وصی کا اس کو تجارت کے واسطے اجازت دینا صحیح نہیں ہے یہ کافی میں ہے۔ چچاو بھائی و والی شرط و والی غیر مولی القضاء کی اجازت ناجائز ہے یہ مغنی میں ہے۔

نابالغ کی بہن و پھوپھی و خالہ کی اجازت ناجائز ہے یہ خزانہ المفتین میں ہے اور جب کہ نابالغ کے واسطے اجازت صحیح ہو گئی تو جو چیز اس کی اجازت کے تحت میں داخل ہوئی اس میں نابالغ مثل آزاد بالغ کے قرار دیا جائے گا پس اس کو اختیار ہوگا کہ اپنے تئیں اجرت پر دے یا اپنے واسطے اجیر مقرر کرے اور جو چیز اس کو ورثہ میں ملی ہے خواہ منقول ہو یا غیر منقول اس کو فروخت کرے جیسا کہ بالغ آزاد کو ایسا تصرف جائز ہوتا ہے اور اس کو یہ اختیار نہیں ہے کہ اپنے کسی مملوک کو مکاتب کرے یہ محیط میں ہے۔ جامع الفتاویٰ میں ہے کہ اگر باپ نے اپنے دو نابالغ لڑکوں کو تجارت کی اجازت دی پس ایک نے دوسرے سے خرید و فروخت کی تو جائز ہے اور وصی کی اجازت دینے میں یہ نا جائز ہے اور ابن سماعہ سے روایت ہے کہ اگر ایک شخص نے اپنے دو نابالغوں کو تجارت کی اجازت دی پھر ایک شخص کو حکم کیا کہ ان دونوں میں سے ایک سے دوسرے کے واسطے کوئی چیز خریدے پس اگر وہ شخص دونوں کی طرف سے معبر (کلام کرنے والا) ہو تو صحیح نہیں ہے اور اگر اس نے ایک کی طرف سے تعبیر کی اور دوسرے نے خود ہی ایجاب یا قبول کیا تو جائز ہے۔ یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر نابالغ ماذون نے کوئی غلام خریدا اور اس کو تجارت کی اجازت دی تو جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر نابالغ نے اپنے مال سے کوئی چیز فروخت کی یا اپنے واسطے کوئی چیز خریدی مگر ہنوز اس کو اجازت حاصل نہیں ہوئی ہے حالانکہ وہ خرید فروخت کو سمجھتا ہے تو ہمارے نزدیک اس کا تصرف منعقد دائر اس بیع میں ہے کہ نفع ہوگا یا ضرر ہوگا یہ قدوری میں ہے اس واسطے کہ ولی مشروط ہے جو اپنے

کاموں کا ذمہ دار ہے اس کی ولایت ایسے امور میں نہیں ہے اور با والی غیر مولی القضاء یعنی ایسے والی جس کی ولایت میں قضا کا کام سلطان نے نہیں دیا تو اس کی ولایت بھی ناقص ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) Page 84 Kitab al-Mazoon**

...however, it will only be valid and enforceable when the guardian (Wali) grants permission. Similarly, if a minor who understands the nature of buying and selling accepts an agency (Wakalat) on behalf of another person and conducts a purchase or sale, it is permissible according to our scholars. This is mentioned in 'Al-Muheet'.

An authorized (Mazoon) boy has the authority to marry off his female slave; this is the opinion of Imam Muhammad (R.A.) and Imam Azam (R.A.), even if his father or executor (Wasi) also has that authority. However, neither the authorized boy nor his father or executor has the authority to marry off his male slave. If the minor grants permission for this after reaching maturity, it will still not be permissible. The same rule applies if a stranger does so. In contrast, if a stranger marries off the minor's female slave, it is a different matter. Furthermore, if a stranger enters into a contract of manumission (Kitabat) with the minor's slave and the minor permits it after reaching maturity, then the Kitabat is valid. The underlying principle in this chapter is that regarding actions concerning a minor's property that his father or executor cannot perform: if a stranger performs such an action and the minor permits it, the permission is void. Conversely, for actions that a father or executor can validly perform: if a stranger performs them and the minor permits them after reaching maturity, they are valid. This is because granting permission at the end is like granting it at the beginning. Such disposals, upon permission, are enforceable from the start as the act of the person whose judgment has been substituted for the minor's judgment. Thus, they become enforceable either by the permission of the grantor at the end or by the permission of the boy after reaching maturity, because the boy himself is the original party considered for his own affairs. This is found in 'Al-Mabsut'. As for what a minor has inherited from his mother, the mother's executor does not have the authority over trade regarding that inheritance; this is in 'Az-Zakheerah'. If an authorized minor marries his male slave to his female slave, or if his father or his father's executor does so, it is not permissible according to us, regardless of whether the boy has debts or not; there will be no difference in this ruling. If a minor has a wife and his father or a stranger performs Khula (divorce initiated by the wife) with her, or divorces her, or manumits his slave, and the minor later permits it after reaching maturity, it is void. However, if after reaching maturity he says, "I have made effective the divorce that such-and-such person gave to that woman," or "I have made effective the manumission that such-and-such person gave

to the slave," then the divorce and manumission shall take effect. This is in 'Al-Mabsut'.

**Regarding Apparent Benefit (Manfat-e-Zahira)** ☆

It is written in 'Al-Mughni' that a father's executor and the father have as much authority over a minor's property as an authorized (Mazoon) slave has, meaning for slight charity and hospitality; this is in 'An-Nihayah'. If a minor who understands sales sells a slave to someone for a thousand dirhams, receives the price, and delivers the slave, and then Zaid stands as a guarantor (Daman-e-Dark) for the purchaser, and subsequently, the slave is taken from the purchaser through a legal claim (Istihqaq): then if the minor was authorized (Mazoon), the purchaser has the option to reclaim his money from either the authorized minor or the guarantor (Kafeel). If he takes it from the guarantor, the guarantor will recover it from the authorized minor, provided the guarantee was given with the minor's permission. If the minor was restricted (Mahjoor), the guarantee on his behalf is void. If the price is lost or destroyed by the restricted minor, and if it still exists in its original form, the purchaser may take it. If Zaid provided a guarantee during the original purchase or undertook to pay if the purchaser paid the price, and the purchaser paid based on the guarantor's guarantee, and then the slave was legally reclaimed from the purchaser, the guarantee is valid, and the purchaser shall take his price from the guarantor. This is in 'Al-Mabsut'. If an authorized minor sells a slave to his father, there are several scenarios: either he sold it at a fair price like other people, or at a price higher by an amount that people typically consider a reasonable loss, or at a lower price but within the range of what people find acceptable. In all these cases, it is effective because what occurred is sufficient for a new initiation, as if he himself has now divorced or manumitted.

## फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) पृष्ठ 84 किताबुल माज़ून

...लेकिन यह तभी प्रभावी होगा जब वली (अभिभावक) इसकी अनुमति दे दे। इसी तरह, यदि कोई नाबालिग जो खरीद-बिक्री की समझ रखता है, किसी दूसरे व्यक्ति की ओर से खरीद-बिक्री की वकालत स्वीकार कर ले और खरीद या बिक्री करे, तो हमारे विद्वानों के अनुसार यह जायज़ है। यह 'अल-मुहीत' में वर्णित है।

माज़ून (व्यापार के लिए अनुमत) लड़के को यह अधिकार है कि वह अपनी लौंडी का विवाह करा दे, यह इमाम मुहम्मद (रह.) और इमाम आज़म (रह.) का मत है, भले ही उसके पिता और उसके वसी (अभिभावक/निष्पादक) को अधिकार हो। और गुलाम का निकाह करा देने का अधिकार न तो उस माज़ून को है और न ही उसके पिता या वसी को। इसी प्रकार यदि नाबालिग ने वयस्क होने के बाद इसकी अनुमति दे दी, तब भी यह जायज़ नहीं होगा। यदि किसी अजनबी ने ऐसा किया हो, तब भी यही हुक्म है। इसके विपरीत, यदि अजनबी ने उसकी लौंडी का निकाह कर दिया हो तो ऐसा नहीं है। और यदि अजनबी ने उसके गुलाम को मुकातिब (आज़ादी का अनुबंध करने वाला) बनाया और वयस्क होने के बाद उसने अनुमति दे दी, तो किताबत जायज़ होगी। इस अध्याय में मूल नियम यह है कि नाबालिग की संपत्ति में जो कार्य उसका पिता और वसी नहीं कर सकते, यदि वह किसी अजनबी ने किया और नाबालिग ने अनुमति दी, तो अनुमति बातिल (अमान्य) है। और जो कार्य उसका पिता और वसी कर सकते हैं और वह जायज़ होता है, यदि उसे किसी अजनबी ने किया और नाबालिग ने वयस्क होने के बाद उसकी अनुमति दे दी, तो वह जायज़ है। क्योंकि अंत में अनुमति देना वैसा ही है जैसे प्रारंभ में अनुमति देना। ऐसे व्यवहार अनुमति मिलने पर प्रारंभ से ही प्रभावी माने जाते हैं, उस व्यक्ति के कार्य से जिसकी राय इस नाबालिग की राय की प्रतिनिधि मानी गई है। अतः अंत में अनुमति देने वाले की अनुमति से या वयस्क होने के बाद लड़के की अनुमति से वे प्रभावी होंगे, क्योंकि लड़का स्वयं अपने मामलों के प्रबंधन के लिए मूल अधिकार रखता है। यह 'अल-मबसूत' में है। और नाबालिग को अपनी माता से विरासत में जो कुछ मिला है, उसमें माता के वसी को व्यापार का अधिकार नहीं होगा, यह 'अज़-ज़खीरा' में है। यदि माज़ून नाबालिग ने अपने गुलाम का निकाह अपनी लौंडी से कर दिया, या उसके पिता या पिता के वसी ने ऐसा किया, तो हमारे निकट यह जायज़ नहीं है, चाहे लड़के पर ऋण हो या न हो, इस हुक्म में कोई अंतर नहीं होगा। यदि नाबालिग की पत्नी हो और उसके पिता या किसी अजनबी ने उस महिला से खुला करा लिया या तलाक दे दिया, या उसके गुलाम को आज़ाद कर दिया, और फिर वयस्क होने के बाद उसने (लड़के ने) अनुमति दी, तो

यह बातिल है। और यदि उसने वयस्क होने के बाद यह कहा कि 'मैंने उस महिला पर वह तलाक प्रभावी किया जो अमुक व्यक्ति ने दिया था' या 'गुलाम पर वह आज़ादी प्रभावी की जो अमुक व्यक्ति ने दी थी', तो तलाक और आज़ादी प्रभावी हो जाएगी। यह 'अल-मबसूत' में है।

**स्पष्ट लाभ (मनफ़त-ए-ज़ाहिरा) के वर्णन में** ☆

'मुग़नी' में लिखा है कि पिता के वसी और पिता को नाबालिग की संपत्ति में उतना ही अधिकार है जितना कि माज़ून गुलाम को होता है, अर्थात थोड़ा बहुत दान और आतिथ्य सत्कार; यह 'निहाया' में है। यदि एक नाबालिग, जो खरीद-बिक्री समझता है, ने एक गुलाम को किसी व्यक्ति के हाथ एक हज़ार दिरहम में बेच दिया और कीमत वसूल कर ली तथा गुलाम सौंप दिया, फिर ज़ैद ने खरीदार के लिए ज़मानत (गारंटी) ले ली, और फिर वह गुलाम खरीदार के पास से हक़दार द्वारा वापस ले लिया गया, तो यदि नाबालिग माज़ून है, तो खरीदार को अधिकार होगा कि वह अपनी कीमत चाहे नाबालिग माज़ून से मांगे या ज़मानतदार (कफ़ील) से वापस ले। यदि उसने ज़मानतदार से लिया, तो ज़मानतदार उस माज़ून नाबालिग से वापस लेगा, बशर्ते कि नाबालिग की अनुमति से गारंटी दी गई हो। और यदि नाबालिग महजूर (प्रतिबंधित) हो, तो उसकी ओर से दी गई ज़मानत बातिल है। यदि कीमत नष्ट हो गई या महजूर ने उसे नष्ट कर दिया, और यदि वह वैसी ही मौजूद हो, तो खरीदार उसे ले लेगा। यदि ज़ैद ने मूल खरीद में गारंटी दी हो या खरीदार द्वारा भुगतान के समय ज़ैद ने गारंटी दी हो, फिर खरीदार ने ज़मानतदार की गारंटी पर कीमत चुकाई हो और फिर वह गुलाम खरीदार से ले लिया गया हो, तो गारंटी जायज़ है और खरीदार ज़मानतदार से अपनी कीमत वापस लेगा; यह 'अल-मबसूत' में है। यदि माज़ून नाबालिग ने अपने पिता के हाथ एक गुलाम बेचा, तो इसकी कई स्थितियाँ हैं: या तो उसने लोगों की तरह बराबर कीमत पर बेचा, या कीमत से इतना अधिक कि लोग उतना नुकसान सामान्यतः नहीं उठाते, या उससे कम कीमत पर बेचा लेकिन इतना कम जिसे लोग सामान्य मान लेते हैं। इन सभी स्थितियों में प्रभावी होने का कारण यह है कि नए अनुबंध के लिए इतना पर्याप्त है, मानो अब स्वयं तलाक दे दी या आज़ाद किया।

ہوگا مگر نافذ جب ہوگا کہ جب ولی اجازت دے دے اسی طرح جو نابالغ خرید فروخت کو سمجھتا ہے اگر اس نے دوسرے شخص کی طرف سے خرید فروخت کی وکالت قبول کی اور خرید یا فروخت کی تو ہمارے علماء کے نزدیک جائز ہے یہ محیط میں ہے۔

ماذون لڑکے کو یہ اختیار ہے کہ اپنی باندی کو بیاہ دے یہ امام محمدؒ اور امام اعظمؒ کا قول ہے اگرچہ اس کے باپ اور اس کے وصی کو اختیار ہے اور غلام کا نکاح کر دینا سوا اس کا اختیار نہ اس ماذون کو ہے اور نہ اس کے باپ یا وصی کو ہے اس طرح اگر نابالغ نے بعد بلوغ کے اس کی اجازت دے دی تو بھی جائز نہ ہوگا اسی طرح اگر کسی اجنبی نے ایسا کیا تو بھی یہی حکم ہے بخلاف اس کے کہ اگر اجنبی نے اس کی باندی کا نکاح کردیا تو ایسا نہیں ہے اور اگر اجنبی نے اس کے غلام کو مکاتب کیا اور بعد بلوغ کے اس نے اجازت دی تو کتابت جائز ہوگی۔ اصل اس باب میں یہ ہے کہ نابالغ کے مال میں جو فعل اس کا باپ اور وصی نہیں کر سکتا ہے، اگر اس کو کسی اجنبی نے کیا اور نابالغ نے اجازت دی تو اجازت باطل ہے اور جو فعل اس کا باپ وصی کر سکتا ہے اور وہ جائز ہوتا ہے اگر اس کو اجنبی نے کیا اور نابالغ نے بعد بلوغ کے اس کی اجازت دے دی تو جائز ہے کیونکہ انتہاء میں اپنی اجازت دہندہ کی اجازت مثل ابتداء میں واقع ہونے کے ہے اور ایسے تصرفات اجازت سے ابتداء میں ایسے شخص کے فعل سے نافذ ہوتے ہیں، جس کی رائے اس نابالغ کی رائے کے قائم مقام کی گئی ہے پس انتہاء میں اسی اجازت دہندہ کی اجازت سے نافذ ہوں گے یا بعد بلوغ کے لڑکے کی اجازت سے نافذ ہوں گے کیونکہ لڑکا خود اپنے معاملات میں لحاظ کرنے کے واسطے اصل ہے یہ مبسوط میں ہے اور نابالغ کو جو چیز اپنی ماں کے ورثہ میں ملی ہے اس میں ماں کے وصی کو تجارت کی ولایت حاصل نہ ہوگی یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر

نابالغ ماذون نے اپنے غلام کا نکاح اپنی باندی سے کردیا یا اس کے باپ یا باپ کے وصی نے ایسا کیا تو ہمارے نزدیک جائز نہیں ہے خواہ لڑکے پر قرضہ ہو یا نہ ہو اس حکم میں کچھ فرق نہ ہوگا۔ اگر نابالغ کی بیوی ہو اور اس کے باپ یا اجنبی نے اس عورت سے خلع کر دیا یا طلاق دے دی یا اس کا غلام آزاد کر دیا پھر بعد بلوغ کے اس نے اجازت دی تو باطل ہے اور اگر اس نے بعد بلوغ کے یوں کہا کہ میں نے اس عورت پر وہ طلاق جو فلاں شخص نے دی تھی واقع کی یا غلام پر وہ عتاق جو فلاں شخص نے کیا تھا واقع کیا تو طلاق و عتاق واقع ہو جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔

منفعت ظاہرہ کے بیان میں ☆

مغنی میں لکھا ہے کہ باپ کے وصی و باپ کو نابالغ کے مال میں اس قدر اختیار ہے جس قدر ماذون غلام کو ہوتا ہے یعنی خفیف صدقہ وضیافت یہ نہایہ میں ہے۔ اگر ایک نابالغ نے جو بیع کو سمجھتا ہے ایک غلام کسی شخص کے ہاتھ ہزار درہم کو فروخت کر کے ثمن وصول کر لیا اور غلام دے دیا پھر زید نے مشتری کے واسطے ضمان درک کر لی پھر وہ غلام مشتری کے پاس سے استحقاق میں لے لیا گیا پس اگر نابالغ ماذون ہو تو مشتری کو اختیار ہوگا کہ اپنا ثمن چاہے نابالغ ماذون سے اور چاہے کفیل سے واپس لے پس اگر کفیل سے لیا تو کفیل اس ماذون نابالغ سے واپس لے گا بشرطیکہ نابالغ کی اجازت سے کفالت کی ہو اور اگر نابالغ محجور ہوگا تو اس کی طرف سے ضمان باطل ہے اگر ثمن تلف ہو گیا یا محجور نے تلف کردیا ہو اور اگر بعینہ قائم ہو تو مشتری اس کو لے لے گا۔ اگر زید نے اصل خرید میں ضمانت کرلی ہو یا تحمل اس کے مشتری ثمن ادا کرے زید نے ضمانت کی ہو پھر کفیل کی ضمان پر مشتری نے ثمن ادا کیا ہو پھر وہ غلام مشتری سے استحقاق میں لیا گیا تو ضمانت جائز ہے اور مشتری کفیل سے اپنا ثمن لے گا یہ مبسوط میں ہے اگر نابالغ ماذون نے اپنے باپ کے ہاتھ ایک غلام فروخت کیا تو اس کی چند صورتیں ہیں یا تو اس نے لوگوں کی طرح برابر قیمت پر فروخت کیا یا قیمت سے زیادہ اس قدر کہ لوگ اتنا

خسارہ اندازہ میں اٹھاتے ہیں یا نہیں اٹھاتے ہیں یا تو اس سے کم قیمت پر فروخت کیا مگر اس قدر کی کہ لوگ اندازہ میں اٹھاتے ہیں پس ان سب صورتوں میں واقع اس واسطے کہ انشاء جدید کے لیے اس قدر کافی ہے گویا اب خود طلاق دے دی یا آزاد کیا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 85 | Kitab al-Mazun**

By consensus (Ijma), a sale is valid, or if he sold at such a reduced price that people usually do not accept such a reduction in their estimation. In this situation, there are conflicting narrations from Imam Azam (RA). In some copies of the chapter on Mazun (the authorized person), it is written that such a sale is not valid according to Imam Azam, Imam Abu Yusuf, and Imam Muhammad (RA). However, if he sold to his executor (Wasi) at an equal, higher, or lower price, provided the reduction is within what people normally tolerate, then it is mentioned that the sale is valid. The Mashaykh (scholars) have stated that a detailed ruling is mandatory in this matter and there should be a distinction based on different scenarios. That is, if a benefit is apparent for the minor, for example, if he sold at a higher price but with an increase that people normally bear, then it is valid according to Imam Azam and Imam Abu Yusuf (RA). If the benefit is not apparent, for example, if he sold at an equal price or at such a low price that people usually accept, then it is not valid according to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad (RA), just as if the executor had sold the minor's property to himself. However, according to the opinion of Imam Azam (RA), there should be two narrations on this issue, as mentioned by Sheikh-ul-Islam in his commentary. This is recorded in 'Al-Mughni'.

If property was sold to a stranger at a lower price, but the reduction is within what people normally bear in their estimations, then according to the consensus of narrations, it is valid in the view of Imam Azam (RA), but it is not valid according to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad). If a minor admits (Iqrar) to receiving payment that was due to his father or executor, various narrations exist on this matter. Some state that the admission is valid, while others say it is not valid. Sheikh-ul-Islam Khwaharzada mentioned in his commentary that this difference in narrations should be based on the opinion of Imam Azam (RA); otherwise, according to the Sahibayn, the admission in favor of the father or executor is not valid. This is in 'Al-Dhakirah'. It is mentioned in 'Zahir al-Riwayah' that just as his admission is valid regarding his own earnings, it is also valid regarding what he inherited from his father, as stated in 'Al-Mabsut'. If he admits to receiving his property from his executor, it is not valid; however, if the executor gave him his property after obtaining permission, it is valid, as noted in 'Al-Muhit'. In 'Mutafarraqat', it is stated that if he admits to a commercial debt, it is correct; this is in 'Al-Dhakirah'. In 'Ghiyathiyyah', it is noted that if the executor permitted him, and then he admitted to a debt against his deceased father or admitted to usurpation (Ghasb) before receiving permission, it is

valid. Similarly, if he managed his father's estate, it is valid, though one narration states it is invalid; this is in 'Tatar-Khaniyah'.

If an authorized minor (Mazun) or a discerning mentally disabled minor (Ma'tuh Mazun) admits to usurpation or destroying property but attributes this act to the state of restriction (Hajr), he will be held accountable immediately, whether the person in whose favor the admission was made (Muqarr-lahu) confirms or denies it, as is the rule in the case of an authorized slave. If he admits, "I took a loan or destroyed a trust (Wadi'at) during the state of restriction," the same rule applies according to Imam Abu Yusuf (RA). According to Imam Azam and Imam Muhammad (RA), if the Muqarr-lahu confirms that the act occurred during the state of restriction, he will not be held accountable now or after reaching maturity. However, if the Muqarr-lahu denies it, he will be held accountable immediately; this is in 'Fatawa Qazi Khan'.

A discerning mentally disabled person (Ma'tuh) who understands buying and selling is treated like a minor who becomes authorized (Mazun) by the permission of the father, executor, or grandfather. However, he does not become authorized by the permission of anyone else. The ruling for him is the same as for a minor, as stated in 'Khizanat al-Muftin'. If the Ma'tuh does not understand buying and selling and the father or the father's executor gave him permission to trade, it is not valid. If a discerning Ma'tuh was given permission by his son, it is void (Batil). Similarly, if anyone other than the father or grandfather among relatives, such as a brother or uncle, gave permission, it is also void; this is in 'Al-Mabsut'. If someone gives permission to trade to their adult Ma'tuh son, his ruling is like that of a minor. That is, if he claimed, "I usurped or destroyed during the state of restriction," it should be clear that denying the admission does not mean denying the act itself, but rather denying that it occurred during the state of restriction, meaning it was claimed to have occurred during the state of authorization.

इज्मा (सर्वसम्मति) के अनुसार बिक्री वैध है, या यदि उसने ऐसी कम कीमत पर बेचा कि लोग सामान्यतः इतनी कमी नहीं करते, तो इस स्थिति में इमाम आज़म (रह.) से विभिन्न विवरण प्राप्त हुए हैं। माज़ून (व्यापार के लिए अनुमत व्यक्ति) के कुछ संस्करणों में लिखा है कि ऐसी बिक्री इमाम आज़म, इमाम अबू युसूफ और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार वैध नहीं है। यदि उसने अपने वसी (अभिभावक) के हाथों समान मूल्य, अधिक मूल्य या कम मूल्य पर बेचा, परंतु कमी इतनी ही है जिसे लोग सामान्यतः सहन कर लेते हैं, तो उल्लेख है कि बिक्री वैध है। मशाइख़ (विद्वानों) ने फ़रमाया है कि इसमें विस्तार से निर्णय होना आवश्यक है और मतभेद होना चाहिए। अर्थात यदि नाबालिग के हित में लाभ स्पष्ट हो, उदाहरण के लिए उसने कीमत से अधिक पर बेचा लेकिन वृद्धि इतनी ही है जिसे लोग सामान्यतः स्वीकार करते हैं, तो इमाम आज़म और इमाम अबू युसूफ (रह.) के अनुसार यह वैध है। और यदि लाभ स्पष्ट न हो, जैसे उसने समान मूल्य पर या इतनी कम कीमत पर बेचा जिसे लोग स्वीकार करते हैं, तो इमाम अबू युसूफ और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार यह वैध नहीं है। ठीक वैसे ही जैसे यदि वसी ने नाबालिग की संपत्ति स्वयं के हाथ बेची हो, तो इस स्थिति में भी यही नियम है। परंतु इमाम आज़म (रह.) के कथन पर इस मसले में दो विवरण होने चाहिए, जैसा कि शेखुल इस्लाम ने अपनी शरह (व्याख्या) में उल्लेख किया है। यह 'मुग़नी' में है।

यदि किसी अजनबी के हाथ कीमत से कम पर, लेकिन इतनी ही कमी पर जिसे लोग सामान्यतः स्वीकार करते हैं, बेचा गया तो सभी विवरणों के अनुसार इमाम आज़म (रह.) के निकट यह वैध है, परंतु साहिबैन (इमाम अबू युसूफ और इमाम मुहम्मद) के निकट वैध नहीं है। यदि नाबालिग ने अपनी उस कीमत को प्राप्त करने का स्वीकार (इकरार) किया जो उसके पिता या वसी पर देय थी, तो इस संबंध में विभिन्न विवरण हैं। कुछ में उल्लेख है कि यह इकरार वैध है और कुछ में है कि वैध नहीं है। शेखुल इस्लाम ख़्वाहरज़ादा ने अपनी शरह में उल्लेख किया है कि इकरार में यह मतभेद इमाम आज़म (रह.) के कथन पर आधारित होना चाहिए, अन्यथा साहिबैन के निकट पिता या वसी के पक्ष में उसका इकरार वैध नहीं है। यह 'ज़खीरा' में है। 'ज़ाहिरुल रिवायत' में उल्लेख है कि जैसे उसकी स्वयं की कमाई में उसका इकरार वैध है, वैसे ही पिता से प्राप्त विरासत में भी वैध है, जैसा कि 'मबसूत' में वर्णित है। यदि उसने अपने वसी से अपनी संपत्ति प्राप्त करने का इकरार किया, तो यह वैध नहीं है; परंतु यदि वसी ने अनुमति के पश्चात उसे उसकी संपत्ति दी, तो यह वैध है, यह 'मुहीत' में है। 'मुतफ़र्रिकात' में बताया गया है कि यदि उसने व्यापारिक ऋण का इकरार किया तो वह सही है, यह

'ज़खीरा' में है। और 'ग़ियासिया' में है कि यदि वसी ने उसे अनुमति दी, फिर उसने अपने मृत पिता पर ऋण का, या अनुमति प्राप्त करने से पूर्व किसी संपत्ति को छीनने (ग़सब) का इकरार किया, तो यह वैध है। इसी प्रकार यदि उसने पिता की छोड़ी हुई संपत्ति में कोई लेन-देन किया तो वह वैध है, परंतु एक विवरण में इसे अवैध बताया गया है, यह 'तातारी-ख़ानिया' में है।

नाबालिग माज़ून या विक्षिप्त (मातूह) माज़ून ने यदि ग़सब (अवैध कब्ज़ा) करने या संपत्ति नष्ट करने का इकरार किया, परंतु इस कृत्य को कानूनी प्रतिबंध (हज्र) की स्थिति की ओर संबद्ध किया, तो वर्तमान में उससे जवाबदेही ली जाएगी, चाहे मुक़र्र-लहू (जिसके पक्ष में इकरार किया गया) उसकी पुष्टि करे या उसे झुठलाए, जैसा कि ग़ुलाम माज़ून के मामले में नियम है। यदि उसने स्वीकार किया कि मैंने कानूनी प्रतिबंध (हज्र) की स्थिति में ऋण लिया या धरोहर (वदीअत) नष्ट कर दी, तो इमाम अबू युसूफ (रह.) के अनुसार यही नियम है। और इमाम आज़म तथा इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार, यदि मुक़र्र-लहू ने इसे प्रतिबंध की स्थिति से संबद्ध करने की पुष्टि की, तो उससे वर्तमान में और न ही बालिग होने के बाद कभी भी जवाबदेही नहीं ली जाएगी। और यदि उसने झुठलाया हो, तो वर्तमान में जवाबदेही होगी, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

जो विक्षिप्त (मातूह) व्यक्ति खरीद-फरोख्त को समझता है, वह नाबालिग के समान है जो पिता, वसी या दादा की अनुमति से माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत) हो जाता है। परंतु इनके अतिरिक्त अन्य लोगों की अनुमति से वह माज़ून नहीं होता। उसका नियम वही है जो नाबालिग का है, यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है। यदि विक्षिप्त व्यक्ति खरीद-फरोख्त को नहीं समझता और उसे पिता या पिता के वसी ने व्यापार की अनुमति दी, तो वह सही नहीं है। यदि खरीद-फरोख्त समझने वाले विक्षिप्त व्यक्ति को उसके पुत्र ने अनुमति दी, तो वह अमान्य (बातिल) है। इसी प्रकार यदि पिता और दादा के अतिरिक्त किसी रिश्तेदार जैसे भाई या चाचा आदि ने अनुमति दी, तो वह भी अमान्य है, यह 'मबसूत' में है। और यदि अपने वयस्क (बालिग) विक्षिप्त पुत्र को व्यापार की अनुमति दी, तो उसका नियम नाबालिग के समान है। अर्थात यदि उसने यह कहा कि मैंने प्रतिबंध की स्थिति में ग़सब या नुकसान किया, तो यह स्पष्ट होना चाहिए कि इकरार को झुठलाने का अर्थ मूल इकरार को झुठलाना नहीं है, बल्कि प्रतिबंध की स्थिति में होने के दावे को झुठलाना है, यानी यह कहना कि यह कृत्य अनुमति प्राप्त होने की स्थिति में किया गया था।

---

بالاجماع بیع جائز ہے یا اس نے اس قدر کمی پر فروخت کیا کہ لوگ اپنے اندازہ میں ایسی کمی نہیں اٹھاتے ہیں پس اس صورت میں امام اعظمؒ سے روایات مختلف آئی ہیں اور ماذون کے بعض نسخوں میں لکھا ہے کہ ایسی بیع امام اعظمؒ و امام ابویوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے اور اگر اس نے اپنے وصی کے ہاتھ برابر قیمت یا زیادہ قیمت یا کم پر مگر اس قدر کم کہ لوگ اپنے اندازہ میں برداشت کرتے ہیں فروخت کیا تو مذکور ہے کہ بیع جائز ہے اور مشائخ نے فرمایا کہ اس میں حکم بتفصیل ہونا واجب ہے اور باختلاف ہونا چاہیے یعنی اگر نابالغ کے حق میں منفعت ظاہر ہو مثلاً اس نے قیمت سے زیادہ کو مگر اس قدر زیادتی کہ لوگ اپنے اندازہ میں برداشت کرتے ہیں فروخت کیا تو امام اعظمؒ و امام ابویوسفؒ کے نزدیک جائز ہے اور اگر منفعت ظاہر نہ ہو مثلاً اس نے برابر قیمت پر یا اس قدر کمی پر کہ لوگ برداشت کرتے ہیں فروخت کیا تو امام ابویوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے جیسا کہ اگر وصی نے نابالغ کا مال اپنے ہاتھ فروخت کیا تو ایسی صورت میں یہی حکم ہے مگر امام اعظمؒ کے قول پر اس مسئلہ میں دو روایتیں ہونی چاہیے ہیں ایسا ہی شیخ الاسلام نے اپنی شرح میں ذکر فرمایا ہے۔ یہ مغنی میں ہے۔ اگر اجنبی کے ہاتھ قیمت سے کم پر مگر اس قدر کمی کہ لوگ اپنے اندازہ میں اٹھاتے ہیں فروخت کیا تو باتفاق الروایات امام اعظمؒ کے نزدیک جائز ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز نہیں ہے۔ اگر نابالغ نے اپنا ثمن جو اس کے باپ یا وصی پر واجب ہوا تھا وصول پانے کا اقرار کیا تو اس صورت میں روایات مختلف وارد ہیں بعض میں مذکور ہے کہ اقرار جائز ہے اور بعض میں ہے کہ اقرار نہیں جائز ہے اور شیخ الاسلام خواہر زادہ نے اپنی شرح میں ذکر فرمایا کہ اقرار میں یہ اختلاف روایات امام اعظمؒ کے قول پر ہونا چاہیے ورنہ صاحبین کے نزدیک باپ یا وصی کے واسطے اس کا اقرار

جائز نہیں ہے۔ یہ ذخیرہ میں ہے۔ ظاہر الروایت میں مذکور ہے کہ جیسے اس کا اقرار اپنی کمائی میں جائز ہے ویسے ہی جو چیز اپنے باپ سے میراث پائی ہے اس میں بھی جائز ہے کذا فی المبسوط اگر اس نے اپنے وصی سے اپنا مال وصول پانے کا اقرار کیا تو جائز نہیں ہے اور اگر وصی نے بعد اجازت کے اس کو اس کا مال دیا تو جائز ہے یہ محیط میں ہے۔ متفرقات میں بیان کیا کہ اگر اس نے قرضہ تجارت کا اقرار کیا تو صحیح ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور غیاثیہ میں ہے کہ اگر وصی نے اس کو اجازت دی پھر اس نے اپنے پدر متوفی پر قرضہ کا یا قبل حصول اجازت کے غصب کا اقرار کیا تو جائز ہے اسی طرح اگر اس نے باپ کے ترکہ میں تصرف کیا تو جائز ہے مگر ایک روایت میں ناجائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ نابالغ ماذون یا معتوہ ماذون نے اگر غصب یا مال تلف کر دینے کا اقرار کیا مگر اس فعل کو حالت حجر کی طرف منسوب کیا تو فی الحال اس سے مواخذہ کیا جائے گا خواہ مقررلہ اس کی تصدیق کرے یا تکذیب کرے جیسا کہ غلام ماذون کے مسئلہ میں حکم ہے۔ اگر اس نے اقرار کیا کہ میں نے حالت حجر میں قرض لیا یا ودیعت تلف کر دی ہے تو بھی امام ابویوسفؒ کے نزدیک یہی حکم ہے اور امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک اگر مقررلہ نے اس کی حالت حجر کی طرف منسوب کرنے کی تصدیق کی تو اس سے فی الحال اور نہ بعد بلوغ کے کبھی مواخذہ نہ کیا جائے گا اور اگر تکذیب کی ہو تو فی الحال ماخوذ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ جو معتوہ کہ خرید و فروخت کو سمجھتا ہے وہ بمنزلہ نابالغ کے ہے کہ بلفظ باپ و وصی و دادا کی اجازت سے ماذون ہو جاتا ہے مگر ان کے سوائے اور لوگوں کی اجازت سے ماذون نہیں ہوتا ہے پھر اس کا حکم وہی ہے جو نابالغ کا ہے یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ اگر معتوہ خرید و فروخت کو نہ سمجھتا ہو اور اس کو باپ یا باپ کے وصی نے تجارت کی اجازت دی تو صحیح نہیں ہے۔ اگر معتوہ جو خرید و فروخت کو سمجھتا ہے اس کے پسر نے اجازت دی تو باطل ہے اور اسی طرح اگر سوائے باپ و دادا کے کسی اہل قرابت نے مثل بھائی یا

چچا وغیرہ کے اجازت دی تو بھی اجازت باطل ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر اپنے بالغ فرزند معتوہ کو تجارت کی اجازت دی تو اس کا حکم مثل نابالغ کے ہے یعنی اگر خرید نے حالت حجر یعنی میں نے غصب یا تلف اس وقت کیا جب میں محجور تھا واضح ہو کہ مقرر لہ کی تصدیق و تکذیب کے یہ معنی نہیں ہیں کہ نفس اقرار کی تکذیب کی بلکہ اضافہ بحالت حجر کی تکذیب کی ہو یعنی یہ کہا ہو کہ نہیں بلکہ حالت اذن میں ایسا کیا ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (Page 86) Kitab al-Ma'zoon**

If an individual understands the nature of buying and selling, then the permission (to trade) is valid; however, if they do not understand it, the permission is not valid, as stated in *Al-Dhakhira*. This rule applies when a person who is mentally deficient (ma'tooh) reaches the age of maturity (baligh) in that state. If a person was sane at the time of maturity but later became mentally deficient, and their father granted them permission to trade, Faqih Abu Bakr al-Balkhi (RA) stated that based on *Istihsan* (juridical preference), the permission is valid. This is also the opinion of Imam Muhammad. Faqih Abu Bakr Muhammad bin Ibrahim al-Hamid stated that based on *Istihsan*, it is correct, and this is the view of our three main scholars (*Ulama-e-Thalatha*). Similarly, if someone was sane at maturity but subsequently became insane, the same rule applies. If a father himself becomes interdicted (*mahjoor*) or insane, he loses the right of guardianship (*walayat*) over property management for his son; he retains only the right of guardianship for marriage (*tazweej*), not other matters, as mentioned in *Al-Dhakhira*. Furthermore, whoever holds the right of guardianship over a minor's property for trade and management also has the authority to grant the minor permission to trade. Similarly, he may grant permission to the minor's slave. Having established this, we clarify that if a father grants a minor's slave permission to trade, it is valid. Likewise, if the father's executor (*wasi*) does so after the father's death, it is valid. If, after the father's death, the grandfather grants permission and there is no executor appointed by the father, the permission is valid. However, if the father is alive, the grandfather's permission is invalid. Even if the father's executor is present, the grandfather's permission remains invalid; this is the established rule in our school of law and is what is followed for legal rulings (*mufta bihi*).

If a judge (*Qadi*) grants a minor orphan's slave permission to trade, and there is no executor appointed by the father, the judge's permission is valid, as noted in *Al-Dhakhira*. In a situation where permission from a father, executor, or judge is valid and the slave incurs debt, our view is that the slave shall be sold to settle the trade debts. If a woman dies and leaves a will appointing someone as her executor, leaving behind a minor son but no father, father's executor, or grandfather, and she leaves substantial inheritance for the minor; if that executor then grants trade permission to any of the slaves the minor inherited from his mother, it is not valid, as stated in *Al-Dhakhira*. If a judge tells a slave to trade only in grain or wheat, and the slave trades in other goods, it is valid because the judge acts as the minor's representative in

granting permission. It is evident that if a master (*mawla*) is an adult and tells his slave to trade only in wheat, the slave nevertheless gains authority for all types of trade. Thus, if a judge grants him permission only for wheat, he still gains authority for all types of trade. Similarly, if the judge explicitly tells the slave, "Trade only in wheat and nothing else, for I have restricted (*mahjoor*) you from other things," and the slave trades in other things, he is still authorized for all goods, and the judge's specific restriction is considered void; this is found in *Al-Mabsut*.

If such a slave carries out transactions and incurs heavy debts—partly due to trades authorized by the judge and partly due to unauthorized trades—and creditors file a complaint with the judge, and the judge voids the debts from unauthorized trades, then any subsequent transactions of that type by the slave will not be binding. If an appeal against this judge's decision is made to another judge, the second judge does not have the authority to overturn the first judge's decision, as is the rule in matters of legal interpretation (*mujtahad fiiha*). Similarly, if the judge authorizes all transactions of the slave and upholds all creditors' debts, his decision shall be enforced, and no other judge can revoke it; this is in *Al-Muhit*. If a judge grants a minor or a mentally deficient person permission to trade and is later removed from office, the permission for the minor and the mentally deficient remains in effect; this is in *Al-Mabsut*.

If the father, executor, or paternal grandfather of a minor or a mentally deficient person is present, and the judge deems it appropriate to grant them permission to trade, and he does so despite the father's refusal, the judge's permission shall be valid, as the judge’s authority supersedes that of the father or executor. It is stated that if he trades in anything else, he shall be considered interdicted (*mahjoor*).

खरीद-फरोख्त को समझता हो तो अनुमति (इजाज़त) सही है, और यदि वह खरीद-फरोख्त को न समझता हो तो अनुमति सही नहीं है, यह 'ज़खीरा' में उल्लेखित है। यह उस समय के लिए है जब वह व्यक्ति मंदबुद्धि (मअतूह) ही रहते हुए वयस्क (बालिग) हुआ हो। यदि वह बालिग होते समय बुद्धिमान था और बाद में मंदबुद्धि हो गया, और उसके पिता ने उसे व्यापार की अनुमति दी, तो फ़क़ीह अबू बक्र बल्खी (रह.) फरमाते थे कि इस्तेहसानन (लोकहित में) अनुमति सही है; और यही इमाम मुहम्मद का कथन है। फ़क़ीह अबू बक्र मुहम्मद बिन इब्राहिम अल-हमीद ने कहा कि इस्तेहसानन यह सही है, और यही हमारे तीन मुख्य विद्वानों (उलेमा-ए-सलासा) का कथन है। इसी प्रकार, यदि कोई बालिग होने पर बुद्धिमान था और बाद में पागल हो गया, तब भी यही नियम लागू होगा। यदि पिता स्वयं विवर्जित (महजूर) या पागल हो गया हो, तो पुत्र को संपत्ति के प्रबंधन (तसर्रुफ़) का अधिकार (विलायत) प्राप्त नहीं होगा; उसे केवल विवाह (तज़्वीज) कराने का अधिकार होगा, अन्य कार्यों का नहीं; जैसा कि 'ज़खीरा' में वर्णित है। जिस व्यक्ति को किसी अवयस्क (नाबालिग) की संपत्ति में व्यापार और प्रबंधन का अधिकार प्राप्त है, उसे यह भी अधिकार है कि वह नाबालिग को व्यापार की अनुमति दे। इसी तरह, वह नाबालिग के दास (गुलाम) को भी अनुमति दे सकता है। जब यह स्पष्ट हो गया, तो हम यह बयान करते हैं कि यदि पिता ने नाबालिग के दास को व्यापार की अनुमति दी, तो वह जायज़ है। इसी प्रकार, पिता की मृत्यु के बाद यदि उसके वसीयतदार (वसी) ने ऐसा किया, तो वह भी जायज़ है। पिता की मृत्यु के बाद यदि दादा ने ऐसा किया और पिता की ओर से कोई वसी नियुक्त नहीं है, तो अनुमति सही होगी। लेकिन यदि पिता जीवित है, तो दादा की अनुमति सही नहीं होगी। और यदि पिता का वसी मौजूद है, तब भी दादा की अनुमति मान्य नहीं होगी; हमारे मज़हब में यही नियम है और इसी पर फतवा दिया जाता है।

यदि किसी काज़ी (न्यायाधीश) ने किसी अनाथ (यतीम) के दास को व्यापार की अनुमति दी और पिता की ओर से यतीम का कोई वसी मौजूद नहीं है, तो काज़ी की अनुमति सही है; यह 'ज़खीरा' में है। जिस स्थिति में पिता, उसके वसी या काज़ी की अनुमति मान्य हो जाए और दास पर व्यापार का ऋण हो जाए, तो हमारे विचार में उस दास को व्यापारिक ऋण चुकाने के लिए बेचा जा सकता है। यदि किसी महिला की मृत्यु हो गई और उसने किसी व्यक्ति को अपना वसी बनाया, और वह एक नाबालिग बेटा छोड़ गई, जबकि उसका पिता, पिता का वसी या दादा मौजूद नहीं हैं, और महिला ने उस नाबालिग बच्चे के लिए विरासत में बहुत सी संपत्ति छोड़ी है; फिर उस वसी ने उन दासों में से

किसी को व्यापार की अनुमति दी जो नाबालिग को अपनी माँ से विरासत में मिले हैं, तो यह अनुमति सही नहीं है; यह 'ज़खीरा' में है। यदि काज़ी ने दास से कहा कि केवल अनाज या गेहूँ का व्यापार करो, और दास ने अन्य वस्तुओं का व्यापार किया, तो वह जायज़ है क्योंकि काज़ी अनुमति देते समय नाबालिग का प्रतिनिधि होता है। और यह स्पष्ट है कि यदि मालिक (मौली) वयस्क हो और उसने दास से कहा कि केवल गेहूँ का व्यापार करो, तो भी दास को सभी प्रकार के व्यापारों का अधिकार प्राप्त हो जाता है। अत; यदि काज़ी ने उसे केवल गेहूँ के व्यापार की अनुमति दी, तो उसे भी सभी प्रकार के व्यापार का अधिकार होगा। इसी प्रकार, यदि काज़ी ने दास से कहा कि "तुम केवल गेहूँ का व्यापार करो और किसी अन्य चीज़ का व्यापार न करना, क्योंकि मैंने तुम्हें इसके अलावा अन्य के लिए वर्जित (महजूर) कर दिया है", और दास ने उसके सिवा दूसरा व्यापार किया, तो भी वह सभी चीज़ों के व्यापार का पात्र माना जाएगा और काज़ी के इस प्रतिबंध को निरस्त माना जाएगा; यह 'मबसूत' में है।

यदि ऐसे दास ने व्यापार किया और उस पर बहुत सा कर्ज हो गया—कुछ उन व्यापारों के कारण जिनकी अनुमति काज़ी ने दी थी और कुछ उन व्यापारों के कारण जिनकी अनुमति नहीं दी गई थी—और ऋणदाताओं ने काज़ी के पास शिकायत की, और काज़ी ने उन व्यापारों के ऋण को अवैध (बातिल) कर दिया जिनकी अनुमति उसने नहीं दी थी; तो उसके बाद उस दास के उस श्रेणी के व्यापारिक लेन-देन लागू नहीं होंगे। और यदि इसके बाद काज़ी के इस फैसले की अपील दूसरे काज़ी के पास की गई, तो दूसरे काज़ी को पहले काज़ी के फैसले को रद्द करने का अधिकार नहीं होगा, जैसा कि इस्तेहादी मामलों (मुज्तहद फिहा) में नियम है। इसी प्रकार, यदि काज़ी ने दास को सभी प्रकार के व्यापारिक लेनदेन की अनुमति दी और सभी ऋणदाताओं के ऋण को वैध माना, तो उसका फैसला प्रभावी होगा, और किसी अन्य काज़ी को इसे रद्द करने का अधिकार नहीं होगा; यह 'मुहीत' में है। यदि काज़ी ने किसी नाबालिग या मंदबुद्धि (मअतूह) को व्यापार की अनुमति दी और फिर वह काज़ी पदच्युत (माज़ूल) हो गया, तो नाबालिग और मंदबुद्धि अपनी अनुमति पर बरकरार रहेंगे; यह 'मबसूत' में है।

यदि किसी नाबालिग या मंदबुद्धि का पिता, वसी या सगा दादा मौजूद हो और काज़ी की राय में यह आए कि नाबालिग या मंदबुद्धि को व्यापार की अनुमति दी जाए; उसने अनुमति दे दी लेकिन पिता ने इनकार कर दिया, तो काज़ी की अनुमति प्रभावी होगी, यद्यपि काज़ी का अधिकार पिता और वसी से ऊपर है। यह कहा गया है कि यदि वह इसके अलावा किसी और चीज़ का व्यापार करेगा तो वह विवर्जित (महजूर) माना जाएगा।

د فروخت کو سمجھتا ہو تو اجازت صحیح ہے اور اگر خرید و فروخت کو نہ سمجھتا ہو تو اجازت صحیح نہیں ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ یہ اس وقت ہے کہ وہ معتوہ ہی بالغ ہوا ہو اور اگر بالغ ہونے کے وقت عاقل ہو پھر معتوہ ہو گیا اور باپ نے اس کو تجارت کی اجازت دی تو فقیہ ابو بکر بلخی رحمتہ اللہ فرماتے تھے کہ استحساناً اجازت صحیح ہے اور یہ امام محمد کا قول ہے اور فقیہ ابو بکر محمد بن ابراہیم الحمید نے فرمایا کہ استحساناً صحیح ہے اور یہ ہمارے علماءِ ثلاثہ کا قول ہے۔ اسی طرح اگر بالغ ہونے پر عاقل تھا پھر مجنون ہو گیا تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر باپ خود محجور دیا مجنون ہو گیا تو بیٹے کو تصرف کی ولایت حاصل نہ ہوگی فقط اس کو تزویج کی ولایت حاصل ہوگی نہ غیر ہکذا فی الذخیرہ اور جس شخص کو نابالغ کے مال میں ولایتِ تجارت و تصرف حاصل ہے اس کو یہ ولایت بھی حاصل ہے کہ نا بالغ کو تجارت کی اجازت دے اسی طرح نابالغ کے غلام کو بھی اجازت دیتا ہے اور جب یہ بات معلوم ہوگئی تو ہم بیان کرتے ہیں کہ اگر باپ نے نابالغ کے غلام کو اجازتِ تجارت دی تو جائز ہے اسی طرح باپ کے وصی نے باپ کے مرنے کے بعد اگر ایسا کیا تو جائز ہے اور باپ کے مرنے کے بعد اگر دادا نے ایسا کیا اور باپ کی طرف سے کوئی وصی نہیں ہے تو صحیح اجازت صحیح ہوگی اور اگر باپ زندہ موجود ہو تو باپ کے باپ یعنی دادا کی اجازت صحیح نہ ہوگی اور اگر باپ کا وصی موجود ہو تو بھی دادا کی اجازت صحیح نہ ہوگی اور یہ ہمارے مذہب میں ہے یہ مفتی میں ہے۔

اگر قاضی نے یتیم کے غلام کو اجازتِ تجارت دی اور یتیم کا کوئی وصی اس کے باپ کی طرف سے موجود نہیں ہے تو قاضی کی اجازت صحیح ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ جس صورت میں باپ یا اس کے وصی یا قاضی کی اجازت صحیح ہوگئی اور غلام پر قرضہ چڑھ گیا تو ہمارے نزدیک وہ

غلام قرضہ تجارت میں فروخت کیا جائے گا۔ اگر ایک عورت مر گئی اور کسی شخص کو وصیت کر گئی یعنی وصی بنا گئی اور ایک لڑکا نا بالغ چھوڑا کہ اس کا باپ یا باپ کا وصی یا دادا موجود نہیں ہے اور عورت اس فرزندِ نا بالغ کے واسطے بہت سا مالِ میراث چھوڑ کر مری پھر اس شخص وصی نے ان غلاموں میں سے جن کو نا بالغ نے اپنی ماں کی میراث میں پایا ہے کسی غلام کو تجارت کی اجازت دی تو صحیح نہیں ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر قاضی نے غلام سے کہا کہ فقط اناج یا گیہوں کی تجارت کر اور غلام نے دوسری چیزوں کی تجارت کی تو جائز ہے کیونکہ قاضی اس اجازت دہی ہے نا بالغ کا نائب ہے اور ظاہر ہے کہ اگر مولیٰ بالغ ہو اور اس نے غلام سے کہا کہ فقط گیہوں کی تجارت کر تو غلام کو تمام تجارتوں کا اختیار ہوتا ہے پس اس طرح اگر قاضی نے اس کو فقط گیہوں کی تجارت کی اجازت دی تو بھی اس کو تمام تجارات کا اختیار حاصل ہوگا اس طرح اگر قاضی نے اس غلام سے کہا کہ تو فقط گیہوں کی تجارت کر دوسری چیز کی تجارت نہ کرنا کہ میں نے تجھے محجور کیا اگر تو اس کے سوائے دوسری تجارت کرے تو یہ غلام تمام چیزوں کی تجارت کا مجاز ہوگا اور قاضی کا یہ قول باطل قرار دیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ایسے غلام نے تصرف کیا اور اس پر بہت قرضے ہو گئے بعض ان تجارتوں کی وجہ سے جن کی قاضی نے اجازت دی ہے اور بعض بوجہ ان تجارتوں کے جن کی اجازت نہیں دی اور قرض خواہوں نے قاضی کے پاس نالش کی اور قاضی نے اس تجارت کے قرضے جس کی اجازت نہیں دی تھی باطل کر دیے تو اس کے بعد اس غلام کے تصرفات اس قسم کی تجارت میں نافذ نہ ہوں گے اور اگر اس کے بعد اس قاضی کے فیصلے کا مرافعہ دوسرے قاضی کے پاس کیا گیا تو دوسرے کو اختیار نہ ہوگا کہ قاضی اول کے فیصلے کو منسوخ کرے جیسا کہ امورِ مجتہد فیہا میں حکم ہے اسی طرح اگر قاضی نے اس غلام کو تمام تجارتوں کے جوازِ تصرفات کا حکم دیا اور تمام قرض خواہوں کا قرضہ ثابت رکھا تو اس کا فیصلہ نافذ ہو جائے گا اور اس کے بعد کسی

دوسرے قاضی کو اس فیصلے کے منسوخ کرنے کا اختیار نہ ہوگا یہ محیط میں ہے۔ اگر قاضی نے کسی نا بالغ یا معتوہ کو تجارت کی اجازت دی پھر قاضی معزول ہوا تو نا بالغ و معتوہ اپنی اجازت پر رہیں گے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر نا بالغ یا معتوہ کا باپ یا وصی یا سگا دادا موجود ہو اور قاضی کی رائے میں آیا کہ اس نا بالغ یا معتوہ کو تجارت کی اجازت دے پس اس نے اجازت دے دی مگر باپ نے انکار کیا تو قاضی کی طرف سے اجازت جائز ہوگی اگرچہ قاضی کی ولایت باپ و وصی کی یہ قول کہا اگر سوائے اس کے کسی چیز کی تجارت کرے گا تو محجور ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8, Page 84, Kitab al-Mazoon**

It is subsequent to guardianship (*wilayah*), as stated in *Al-Muhit*. During the lifetime [1] of this judge (*qadi*), if a father or an executor (*wasi*) interdicts (*mahjur*) the person (authorized to trade), it is not valid, as per *Al-Mughni*. If this judge dies or is dismissed, and subsequently any of these guardians interdicts him, the interdiction is void. Similarly, if the judge interdicts him after his own dismissal, it is also void. However, the judge who is appointed in his place after his death or dismissal may interdict him; this is mentioned in *Al-Mabsut*. It is narrated from Imam Muhammad (RA) in *Nawadir Ibrahim* that if a judge grants permission to trade to the slave of a minor, even if his executor is not in agreement, the permission is valid; this is in *Tatar Khaniyah*. And if the judge grants permission to the slave of a minor while the father is alive and does not agree, it is still valid; this is in *Al-Mughni*. It is stated in *Mazoon Sheikh al-Islam* that if a judge remains silent after seeing the slave of a minor or a mentally disabled (*ma'tuh*) minor engaging in buying and selling, this silence does not constitute permission for trade on their behalf. It is further stated that if a restricted (*mahjur*) minor who understands the nature of trade buys, sells, or enters into a lease, this transaction depends on the guardian's approval. If the guardian grants permission seeing a profit, it is valid; if he cancels it seeing a loss, it stands cancelled; this is in *Al-Muhit*. If a father grants trade permission to his minor or mentally disabled son who understands trade, or if the father's executor grants it, and then the father or executor makes an admission (*iqrar*) regarding a debt, sale, purchase, lease, or a deposit (*wadi'at*), partnership (*mudarabat*), or pledge (*rahn*) [2] currently held by him, or an admission of a crime, such admission shall not be verified if the minor or mentally disabled person denies it. In contrast, if the admission of debt or crime concerns his authorized (*mazoon*) slave, this rule does not apply; this is in *Al-Mughni*.

If a father or executor admits to a debt or crime on behalf of the minor’s authorized slave, the admission is void. However, if the minor or mentally disabled person himself admits to a debt or crime regarding his authorized slave, or regarding a specific item in his possession such as a deposit, it shall be valid; this is in *Al-Muhit*. The translator notes [3] that validity (*jawaz*) does not necessarily imply immediate execution (*nafadh*); and Allah knows best. If a person grants his son permission to trade and then restricts (*mahjur*) him, the interdiction is valid, provided the interdiction is clear/public in the same manner as the permission [4]. Similarly, if an executor grants permission and then interdicts, it is valid. Likewise, if a judge grants

permission to a minor, a mentally disabled person, or their slave and then interdicts them, it is valid, provided the interdiction matches the permission (in clarity). If a father grants permission to his minor son or his slave and then the father dies while the son is still a minor, the son does not become restricted; as per *Al-Dhakhirah*. If an executor grants permission to an orphan or his slave and then dies, having appointed another executor, the authorized person becomes restricted upon the first executor's death. If a judge grants permission and is then dismissed, dies, or becomes insane, the authorized person (*mazoon*) remains authorized; this is in *Khazanat al-Muftin*. If a person grants permission to the slave of his minor son, the son dies, and the father inherits the slave, the slave becomes restricted. Similarly, if the father buys the slave from his son, the slave becomes restricted; this is in *Al-Mabsut*. If a father grants trade permission to his minor son's slave and the boy then reaches maturity (*baligh*), the slave remains authorized. The same applies if a mentally disabled person recovers; this is in *Zahiriyya*. If the father dies after the minor reaches maturity or the mentally disabled person recovers, the slave remains authorized.

If a person, after granting trade permission to his minor son, apostatizes (*irtidad*), then restricts him, and then reverts to Islam, the restriction is valid. If he is killed while in a state of apostasy, the restriction also takes effect, similar to the case of a father dying before his authorized son reaches maturity.

---

1. During his lifetime, meaning as long as this judge is appointed and active in his office.
2. The phrase "held by him" does not necessarily mean it is specifically a deposit, but rather refers to money in his possession which he identifies as a deposit, partnership, pledge, etc.
3. The translator states that validity (*jawaz*) does not necessarily mean it will be immediately effective (*nafidh*).
4. *Mithl-e-Idhn* (Like the permission); its explanation has passed in the first chapter.

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 पृष्ठ 84 किताब अल-माज़ून

यह विलायत (संरक्षण) के बाद आता है, जैसा कि अल-मुहीत में है। इस काज़ी (न्यायाधीश) के जीवनकाल [1] में यदि पिता या वसीयत निष्पादक (वसी) ने उसे महज़ूर (व्यापार से प्रतिबंधित) कर दिया, तो यह सही नहीं है, जैसा कि अल-मुग़नी में है। यदि यह काज़ी मर गया या उसे पदमुक्त कर दिया गया, और फिर उन अभिभावकों में से किसी ने उसे महज़ूर किया, तो यह प्रतिबंध (हज्र) शून्य है। इसी तरह यदि उस काज़ी ने अपनी पदमुक्ति के बाद उसे महज़ूर किया, तो वह भी शून्य है। हाँ, उसे वह काज़ी महज़ूर कर सकता है जो उस काज़ी की मृत्यु या पदमुक्ति के बाद उसके स्थान पर नियुक्त हो, यह अल-मबसूत में है। और नवादिर इब्राहिम में इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि यदि काज़ी ने एक नाबालिग के गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, जबकि उसका वसी (अभिभावक) सहमत नहीं है, तो अनुमति वैध है, यह तातारखानिया में है। और यदि काज़ी ने नाबालिग के गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, जबकि उसका पिता जीवित है और सहमत नहीं है, तो भी यह वैध है, यह अल-मुग़नी में है। और माज़ून शैख़ अल-इस्लाम में है कि यदि काज़ी ने किसी नाबालिग या मअतूह (मानसिक रूप से कमजोर) नाबालिग के गुलाम को खरीद-बिक्री करते देखकर मौन साधे रखा, तो यह उसके लिए व्यापार की अनुमति नहीं माना जाएगा। और यह भी कहा गया है कि यदि एक महज़ूर नाबालिग, जो खरीद-बिक्री की समझ रखता है, कुछ खरीदता है, बेचता है या किराए पर लेता है, तो यह लेनदेन उसके अभिभावक की अनुमति पर निर्भर करेगा। यदि अभिभावक लाभ देखकर अनुमति दे दे, तो यह वैध है, और यदि हानि देखकर उसे रद्द कर दे, तो वह रद्द हो जाएगा, यह अल-मुहीत में है। यदि पिता ने अपने नाबालिग या मअतूह पुत्र को, जो व्यापार समझता है, व्यापार की अनुमति दी, या पिता के वसी ने अनुमति दी, और फिर पिता या वसी ने उस पर ऋण, बिक्री, खरीद, किराया, या उसके पास मौजूद धरोहर (वदीअत), मुदारबत (साझेदारी), या गिरवी (रहन) [2] या किसी अपराध का स्वीकार (इकरार) किया, तो पिता या वसी के ऐसे किसी इकरार की पुष्टि नहीं की जाएगी, बशर्ते कि नाबालिग या मअतूह उसके कथन को झुठलाए। इसके विपरीत, यदि उसने अपने माज़ून (अधिकृत) गुलाम के संबंध में ऋण या अपराध का इकरार किया, तो यह नियम लागू नहीं होता, यह अल-मुग़नी में है।

यदि पिता या वसी ने नाबालिग के माज़ून गुलाम पर ऋण या अपराध का इकरार किया, तो वह इकरार अमान्य होगा। और यदि नाबालिग या मअतूह ने स्वयं अपने माज़ून गुलाम पर ऋण, अपराध या उसके अधिकार वाली किसी निश्चित वस्तु के संबंध में वदीअत आदि का इकरार किया, तो यह वैध

होगा, यह अल-मुहीत में है। अनुवादक कहते हैं [3] कि वैधता का अर्थ यह नहीं है कि यह तत्काल प्रभावी होगा, और अल्लाह ही बेहतर जानता है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने पुत्र को व्यापार की अनुमति दी और फिर उसे महज़ूर (प्रतिबंधित) कर दिया, तो यह प्रतिबंध सही है, बशर्ते कि प्रतिबंध की घोषणा अनुमति की तरह ही सार्वजनिक/स्पष्ट [4] हो। इसी तरह यदि वसी ने अनुमति दी और फिर प्रतिबंधित किया, तो भी सही है। इसी तरह यदि काज़ी ने किसी नाबालिग, मअतूह या उनके गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और फिर उसे प्रतिबंधित किया, तो वह सही है, बशर्ते कि प्रतिबंध अनुमति की तरह (स्पष्ट) हो। और यदि पिता ने अपने नाबालिग पुत्र या उसके गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और फिर पिता मर गया जबकि पुत्र अभी भी नाबालिग है, तो वह प्रतिबंधित नहीं हो जाएगा, जैसा कि अज़-ज़खीरा में है। यदि वसी ने अनाथ या उसके गुलाम को अनुमति दी और फिर मर गया और किसी दूसरे को वसी नियुक्त कर गया, तो उसकी मृत्यु से वह (व्यापारी) प्रतिबंधित हो जाएगा। और यदि काज़ी ने अनुमति दी और फिर पदमुक्त हो गया, मर गया या पागल हो गया, तो माज़ून अपनी अनुमति पर कायम रहेगा, यह ख़ज़ाना अल-मुफ़्तीन में है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने नाबालिग पुत्र के गुलाम को व्यापार की अनुमति दी, फिर नाबालिग मर गया और पिता को वह गुलाम विरासत में मिला, तो वह गुलाम प्रतिबंधित हो जाएगा। इसी तरह यदि पिता ने उसे अपने बेटे से खरीद लिया, तो भी वह प्रतिबंधित हो जाएगा, यह अल-मबसूत में है। यदि पिता ने अपने नाबालिग पुत्र के गुलाम को व्यापार की अनुमति दी और फिर वह लड़का वयस्क (बालीग) हो गया, तो गुलाम अपनी अनुमति पर बना रहेगा। इसी तरह यदि मअतूह स्वस्थ हो गया, तो भी यही नियम है, यह ज़हीरिया में है। यदि नाबालिग के वयस्क होने या मअतूह के स्वस्थ होने के बाद पिता मर जाए, तो गुलाम अपनी अनुमति पर बना रहेगा।

यदि किसी व्यक्ति ने नाबालिग पुत्र को व्यापार की अनुमति देने के बाद धर्मत्याग (इरतिदाद) कर दिया, फिर उसे प्रतिबंधित किया, और फिर से मुसलमान हो गया, तो प्रतिबंध वैध होगा। और यदि धर्मत्याग की स्थिति में वह मारा गया, तो भी वह प्रतिबंधित हो जाएगा, जैसे कि माज़ून पुत्र के वयस्क होने से पहले पिता की मृत्यु की स्थिति में होता है।

---

1. जीवनकाल में, अर्थात जब तक यह काज़ी अपने पद पर नियुक्त और कार्यरत है।
2. वाक्यांश "उसके पास मौजूद है" का अर्थ यह नहीं है कि वह वस्तु अनिवार्य रूप से उसके पास धरोहर के रूप में है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि उसने अपने कब्जे वाले धन के बारे में कहा कि यह धरोहर, मुदारबत या गिरवी आदि है।

3. अनुवादक का कहना है कि वैधता (जवाज़) का अर्थ यह नहीं है कि वह तुरंत प्रभावी (नाफ़िज़) होगा।
4. 'मिस्ल-ए-इज़न' (अनुमति के समान), इसका विवरण पहले अध्याय में बीत चुका है।

ولایت سے مؤخر ہے کذانی المحیط اس قاضی کی زندگی ۱ـہ میں اگر باپ یا وصی نے اس کو محجور کیا تو صحیح نہیں ہے کذانی المغنی۔ اگر یہ قاضی مر گیا یا معزول ہو گیا پھر ان میں سے کسی ولی نے اس کو محجور کیا تو حجر باطل ہے اس طرح اگر اس قاضی نے بعد اپنی معزولی کے اس کو محجور کیا تو بھی باطل ہے ہاں اس کو محجور وہ قاضی کر سکتا ہے جو اس قاضی کی موت یا معزول ہونے کے بعد اس کی جگہ مقرر ہو یہ مبسوط میں ہے اور نوادر ابراہیم میں امام محمدؒ سے مروی ہے کہ اگر قاضی نے نابالغ کے غلام کو تجارت کی اجازت دی حالانکہ اس کا وصی راضی نہیں ہے تو اجازت جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے اور اگر قاضی نے نابالغ کے غلام کو تجارت کی اجازت دی حالانکہ اس کا باپ زندہ موجود ہے اور راضی نہیں ہے تو جائز ہے یہ مغنی میں ہے اور ماذون شیخ الاسلام میں ہے کہ اگر قاضی نے نابالغ یا معتوہ نابالغ کے غلام کو خرید و فروخت کرتے دیکھ کر سکوت کیا تو یہ امر اس کے حق میں تجارت کی اجازت نہ ہوگا اور فرمایا کہ اگر نابالغ محجور نے جو خرید و فروخت کو سمجھتا ہے کچھ خرید لیا یا فروخت کیا یا اجارہ لیا تو یہ تصرف اس کے ولی کی اجازت پر موقوف رہے گا پس اگر ولی نے اجازت میں نفع دیکھ کر اجازت دی تو جائز ہے اور اگر نقصان دیکھ کر توڑ دیا تو ٹوٹ جائے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر باپ نے اپنے نابالغ یا معتوہ فرزند کو جو خرید فروخت کو سمجھتا ہے تجارت کی اجازت دی یا باپ کے وصی نے اجازت دی پھر باپ یا وصی نے اس پر قرضہ یا بیع یا خرید یا اجارہ یا ودیعت کا جو اس کے پاس موجود ہے یا مضاربت کا جو اس کے پاس موجود ہے یا رہن وغیرہ کا جو اس کے پاس ہے ۲ـہ یا جنایت کا اقرار کیا تو باپ یا وصی کے ایسے کسی اقرار کی تصدیق نہ

کی جائے گی بشرطیکہ نابالغ یا معتوہ اس کے قول کی تکذیب کرے بخلاف اس کے اگر اپنے غلام ماذون پر قرضہ یا جنایت کا اقرار کیا تو یہ حکم نہیں ہے یہ مغنی میں ہے۔

اگر باپ یا وصی نے اس نابالغ کے غلام ماذون پر قرضہ یا جنایت کا اقرار کیا تو اقرار باطل ہوگا اور اگر نابالغ یا معتوہ نے اپنے غلام ماذون پر قرضہ یا جنایت کا یا اس کے مقبوضہ معین چیز کی نسبت ودیعت وغیرہ کا اقرار کیا تو جائز ہوگا یہ محیط میں ہے۔ قال المترجم ۳ـہ والجواز لا یستلزم النفاذ فی الحال واللہ تعالی اعلم۔ اگر ایک شخص نے اپنے فرزند کو تجارت کی اجازت دی پھر اس کو محجور کیا تو حجر صحیح ہے بشرطیکہ حجر مثل اذن ۴ـہ کے ہو اسی طرح اگر وصی نے اس کو اجازت دی پھر محجور کیا تو بھی صحیح ہے اسی طرح اگر قاضی نے نابالغ یا معتوہ یا ان میں سے کسی کے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر اس کو محجور کیا تو صحیح ہے بشرطیکہ حجر مثل اذن کے ہو اور اگر باپ نے اپنے فرزند نابالغ یا اس کے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر مر گیا اور ہنوز فرزند نابالغ ہے تو محجور نہ ہو جائے گا کذانی الذخیرہ۔ اگر وصی نے یتیم یا اس کے غلام کو اجازت دی پھر مر گیا اور دوسرے کو وصی مقرر کر گیا تو اس کی موت سے وہ محجور ہو جائے گا اور اگر قاضی نے اجازت دی پھر معزول ہوا یا مر گیا یا مجنون ہو گیا تو ماذون اپنے اذن پر رہے گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنے نابالغ فرزند کے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر نابالغ مر گیا اور باپ نے وہ غلام میراث میں پایا تو اس سے وہ غلام محجور ہو جائے گا اس طرح اگر باپ نے اس کو بیٹے سے خرید لیا تو بھی محجور ہو جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر باپ نے اپنے نابالغ فرزند کے غلام کو تجارت کی اجازت دی پھر وہ لڑکا بالغ ہوا تو غلام اپنی اجازت پر رہے گا اسی طرح اگر معتوہ اچھا ہو گیا تو بھی یہی حکم ہے یہ ظہریہ میں ہے۔ اگر نا بالغ کے بالغ ہونے یا معتوہ کے اچھے ہونے کے بعد باپ مر گیا تو غلام اپنی اجازت پر رہے گا۔

اگر ایک شخص نابالغ فرزند کو تجارت کی اجازت دینے کے بعد مرتد ہو گیا پھر اس کو محجور کر دیا پھر دوبارہ مسلمان ہو گیا تو حجر جائز ہوگا اور اگر حالت ارتداد میں مقتول ہوا تو بھی محجور ہو جائے گا جیسا کہ فرزند ماذون کے بلوغ سے پہلے باپ کے مرجانے کی صورت میں

---

۱؎ زندگی میں یعنی جب تک یہ قاضی اپنے عہدہ پر مقرر و موجود ہے۔ ۲؎ قولہ اس کے پاس موجود ہے اس لفظ سے یہ مراد نہیں ہے کہ وہ ودیعت ہے جو اس کے پاس موجود ہے بلکہ یہ فرض ہے کہ اس کے مقبوضہ مال کی نسبت کہا کہ ودیعت ہے یا مضاربت ہے یا رہن وغیرہ ذالک۔ ۳؎ مترجم کہتا ہے کہ جواز سے یہ لازم نہیں آتا کہ فی الحال نافذ ہوگا۔ ۴؎ مثل اذن اس کا بیان باب اول میں گذر چکا ہے۔

(Header) Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (88) Kitab al-Ma'zun (The Book of Authorized Slaves) (Text) ...the ruling is similar to this case. If a person, after apostatizing, granted permission to his son who then engaged in trade and became indebted, and subsequently placed him under restriction (mahjur), and then the father embraced Islam, all transactions carried out by the minor son are valid. However, if the father was killed or died while in the state of apostasy, all actions taken by the authorized (ma'zun) son shall be void, a point upon which there is consensus among all leading jurists (Imams). If a non-Muslim subject (Dhimmi) granted permission for trade to his minor son or a mentally impaired (ma'tuh) person who follows his religion, then in all matters we have described, the ruling for them is the same as for Muslims. For example, if his son becomes a Muslim either due to his mother's faith or of his own accord (e.g., upon attaining sound mind), the permission of the Dhimmi father becomes void regarding him. And if the Dhimmi father converts to Islam after granting permission, this permission will not 1remain valid. This is recorded in al-Mabsut.

**Chapter Number: Miscellaneous**

If an individual enters a city and claims, "I am the slave of such-and-such person," and proceeds to engage in trade, then all matters pertaining to that trade shall be binding upon him. There are two scenarios to this issue: first, if the slave reports that his master has authorized him to trade, then, based on juristic preference (istihsan), his statement shall be accepted regardless of whether he is upright ('adil) or not. Second, if the slave provided no information but continued to engage in buying and selling, then, based on analogy (qiyas), authorization would not be established in his favor; however, it is established based on juristic preference. Once his status as an authorized (ma'zun) slave is confirmed, all his transactions shall be valid, and whatever debt he incurs will be his responsibility and shall be recovered from his earnings. If the entire debt cannot be settled through his earnings, the slave shall not be sold until his master is present. If the master then appears and acknowledges the authorization, the slave will be sold to settle the debt. If the master claims the slave is under restriction (mahjur), then the master's word shall be accepted. Thus in al-Kafi.

If Zaid hired a slave as an employee (ajir) for trading purposes, then in relation to Zaid, that slave shall be treated like an agent (wakil). All rulings of agency (wakalat) shall apply between the slave and the employer (mustajir), rather than the rulings of an authorized trader (ma'zun at-tijara). Consequently, the responsibilities will fall upon the employer, and the slave will have the right to demand the sale price from

the employer before the seller demands it from the slave. Other rulings pertaining to agents will similarly apply. In relation to his master, the slave shall be treated like an authorized (ma'zun) slave, and the rulings of authorization will apply between them; this is in al-Mughni. Imam Muhammad (R.A) stated that if Zaid hired a slave from Umar for ten dirhams per month to conduct trade on Zaid's behalf according to the slave's judgment, this is permissible. Therefore, if the slave conducted trade for Zaid according to instructions and incurred significant debt, the creditors cannot demand repayment from the employer; they can only demand it from the slave. The slave then has the right to demand that amount from the employer both before and after settling the debt. If the employer is insolvent and possesses nothing, and the slave also has no earnings, the slave shall be sold to settle the creditors' debts. However, if the master pays a ransom (fidya) for the slave, this sale cannot proceed. If the master pays the ransom, he shall recover whatever he paid from the employer, a right belonging solely to the master and not to the slave. If the master refuses to pay the ransom and the slave is sold for one thousand dirhams, and the creditors' total debt is, for example, ten thousand dirhams, then the one thousand dirhams shall be distributed proportionally (pro-rata) among the creditors, and then the creditors...

(Footnote) 1 will not be, meaning it will not become valid now by virtue of change.

(Header) फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (88) किताब अल-माज़ून (Text) ...हुक्म है। ब-मंजिलह इसी सूरत के यहाँ भी हुक्म है। अगर मुर्तद होने के बाद अपने फर्जन्द (पुत्र) को इजाज़त दी, उसने ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त की और क़र्ज़दार हो गया, फिर उसको महज़ूर (प्रतिबंधित) कर दिया, फिर वह मुसलमान हुआ तो फर्जन्द ना-बालिग ने जो कुछ तसर्रुफ़ (लेनदेन) किया है सब जायज़ होगा और अगर हालत-ए-रुद्दत में कत्ल किया गया या मर गया तो जो कुछ फर्जन्द माज़ून ने किया है सब बातिल होगा और इसमें तमाम अइम्मा (इमामों) का इत्तेफ़ाक़ है। अगर ज़िम्मी ने अपने ना-बालिग फर्जन्द को जो उसके दीन पर है या मअतूह (मंदबुद्धि) को जो उसके दीन पर है, तिजारत की इजाज़त दी तो सब बातों में जो हमने बयान की हैं उसका हुक्म ब-मंजिलह मुसलमानों के है कि अगर उसका लड़का ब-वजह अपनी माँ के या ब-ज़ात-ए-खुद मुसलमान हो यानी मसलन आकिल होकर मुसलमान हो गया तो ज़िम्मी बाप की इजाज़त उसके हक़ में बातिल होगी और अगर इजाज़त देकर ज़िम्मी बाप मुसलमान हो गया तो यह इजाज़त जायज़ 1नहीं होगी यह मबसूत में है।

**बाब नम्बर: मुतफ़र्रिकात (विविध)**

अगर एक शख्स शहर में आया और कहा कि मैं फलां शख्स का गुलाम हूँ और उसने ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त की तो तिजारत की हर चीज़ उस पर लाज़िम होगी और इस मसअले की दो सूरतें हैं एक यह कि वह गुलाम यह खबर दे कि मेरे मौला ने मुझे तिजारत की इजाज़त दी पस इस्तेहसानान उसके क़ौल की तस्दीक की जाएगी ख़्वाह वह आदिल हो या गैर-आदिल हो और दूसरी यह कि गुलाम ने कुछ खबर नहीं दी और ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करता रहा, पस इस सूरत में कयासान उसके हक़ में इजाज़त साबित न होगी मगर इस्तेहसानान साबित होगी। फिर जब उसका माज़ून होना साबित हुआ तो उसके सब तसर्रुफ़ात सही होंगे और उस पर जिस क़दर क़र्ज़ा हो जाए सब उसके ज़िम्मे लाज़िम होगा और उसकी कमाई से वसूल किया जाएगा। और अगर सब क़र्ज़ा उसकी कमाई से अदा न हो सके तो वह गुलाम फ़रोख़्त न किया जाएगा तावक्तेकि उसका मौला हाज़िर न हो, फिर अगर मौला ने हाज़िर होकर इजाज़त का इकरार किया तो क़र्ज़े के वास्ते फ़रोख़्त किया जाएगा और अगर कहा कि यह महज़ूर है तो मौला का क़ौल क़बूल होगा, कज़ा फ़िल काफ़ी।

अगर ज़ैद ने कोई गुलाम कार-ए-तिजारत के वास्ते अजीर (मज़दूर) लिया तो ज़ैद के हक़ में वह गुलाम मिस्ल-ए-वकील के क़रार दिया जाएगा और गुलाम व मुस्ताजिर (नियोक्ता) के दरमियान तमाम अहकाम-ए-वकालत के मरई (लागू) होंगे न कि अहकाम-ए-माज़ून अत-तिजारा के यहाँ तक कि ज़िम्मेदारी मुस्ताजिर के ज़िम्मे लाहिक होगी और गुलाम को इख़्तियार होगा कि मसलन समन-ए-

बयअ (बिक्री मूल्य) का मुस्ताजिर से मुतालबा करे क़ब्ल इसके कि बाएअ (विक्रेता) उससे समन का मुतालबा करे। ऐसे ही और अहकाम भी मिस्ल-ए-वकील के मरई होंगे। और वह गुलाम अपने मौला के हक़ में मिस्ल-ए-माज़ून के क़रार दिया जाएगा और उसके व मौला के दरमियान माज़ून के अहकाम मरई होंगे, यह मुग़नी में है। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि ज़ैद ने उमर से एक गुलाम दस दिरहम माहवारी पर अपनी राय के मुवाफ़िक़ ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त के काम के वास्ते इजारा (ठेके) पर लिया कि मेरे वास्ते ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त करे तो जायज़ है। पस अगर गुलाम ने ज़ैद के वास्ते उसके हुक्म के मुवाफ़िक़ ख़रीद-ओ-फ़रोख़्त की और उस पर बहुत क़र्ज़ा हो गया तो क़र्ज़ख्वाह लोग मुस्ताजिर से अपने क़र्ज़े का मुतालबा नहीं कर सकते हैं बल्कि फ़क़त उस गुलाम से मुतालबा कर सकते हैं। फिर गुलाम को इख़्तियार है कि मुस्ताजिर से अपने अदा करने से पहले और उसके बाद इस क़दर माल का मुतालबा करे। और अगर मुस्ताजिर तंगदस्त हो कि उसके पास कुछ न हो और गुलाम के पास भी कुछ कमाई न हो तो वह गुलाम क़र्ज़ख्वाहों के क़र्ज़े में फ़रोख़्त किया जाएगा। लेकिन अगर मौला उसका फ़िदया दे दे तो ऐसा नहीं हो सकता है। पस अगर मौला ने उसका फ़िदया दे दिया तो जिस क़दर उसने दिया है उसको मुस्ताजिर से वापस लेगा और वापस लेने का इस्तेहक़ाक़ खुद मौला को हासिल होगा और गुलाम को यह इस्तेहक़ाक़ न होगा। और अगर मौला ने फ़िदया देने से इंकार किया और गुलाम एक हज़ार दिरहम में फ़रोख़्त किया गया और क़र्ज़ख्वाहों का क़र्ज़ा मसलन दस हज़ार दिरहम है तो ये हज़ार दिरहम उसके क़र्ज़ख्वाहों में हिस्सा रसद (अनुपातिक रूप से) तक़्सीम होंगे और फिर क़र्ज़ख्वाहों को...

(Footnote) 1 नहीं होगी यानी बदल कर अब जायज़ न हो जाएगी।

---

(Header) فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ۸ (۸۸) کتاب الماذون (Text) حکم ہے بمنزلہ اسی صورت کے یہاں بھی حکم ہے۔ اگر مرتد ہونے کے بعد اپنے فرزند کو اجازت دی اس نے خرید فروخت کی اور قرض دار ہو گیا پھر اس کو محجور کر دیا پھر وہ مسلمان ہوا تو فرزند نا بالغ نے جو کچھ تصرف کیا ہے سب جائز ہو گا اور اگر حالت ردت میں قتل کیا گیا یا مر گیا تو جو کچھ فرزند ماذون نے کیا ہے سب باطل ہو گا اور اس میں تمام ائمہ کا اتفاق ہے۔ اگر ذمی نے اپنے نابالغ فرزند کو جو اس کے دین پر یا معتوہ کو جو اس کے دین پر ہے تجارت کی اجازت دی تو سب باتوں میں جو ہم نے بیان کی ہیں اس کا حکم بمنزلہ مسلمانوں کے ہے کہ اگر اس کا لڑکا بوجہ اپنی ماں کے یا بذات خود مسلمان ہو یعنی مثلاً عاقل ہو کر مسلمان ہو گیا تو ذمی باپ کی اجازت اس کے حق میں باطل ہو گی اور اگر اجازت دے کر ذمی باپ مسلمان ہو گیا تو یہ اجازت جائز 1نہ ہو گی یہ مبسوط میں ہے۔

**باب نمبر: متفرقات**

اگر ایک شخص شہر میں آیا اور کہا کہ میں فلاں شخص کا غلام ہوں اور اس نے خرید فروخت کی تو تجارت کی ہر چیز اس پر لازم ہو گی اور اس مسئلہ کی دو صورتیں ہیں ایک یہ کہ وہ غلام یہ خبر دے کہ میرے مولیٰ نے مجھے تجارت کی اجازت دی پس استحساناً اس کے قول کی تصدیق کی جائے گی خواہ عادل ہو یا غیر عادل ہو اور دوسری یہ کہ غلام نے کچھ خبر نہیں دی اور خرید فروخت کرتا رہا پس اس صورت میں قیاساً اس کے حق میں اجازت ثابت نہ ہو گی مگر استحساناً ثابت ہو گی پھر جب اس کا ماذون ہونا ثابت ہوا تو اس کے سب تصرفات صحیح ہوں گے اور اس پر جس قدر قرضہ ہو جائے سب اس کے ذمہ لازم ہو گا اور اس کی کمائی سے وصول کیا جائے گا اور اگر سب قرضہ اس کی کمائی سے ادا نہ ہو سکے تو وہ غلام فروخت نہ کیا جائے گا تا وقتیکہ

اس کا مولیٰ حاضر نہ ہو پھر اگر مولیٰ نے حاضر ہو کر اجازت کا اقرار کیا تو قرضہ کے واسطے فروخت کیا جائے گا اور اگر کہا کہ یہ محجور ہے تو مولیٰ کا قول قبول ہو گا کذا فی الکافی۔

اگر زید نے کوئی غلام کارِ تجارت کے واسطے اجیر لیا تو زید کے حق میں وہ غلام مثل وکیل کے قرار دیا جائے گا اور غلام و مستاجر کے درمیان تمام احکام وکالت کے مرعی ہوں گے نہ احکام ماذون التجارہ کے یہاں تک کہ عہدہ مستاجر کے ذمہ لاحق ہو گا اور غلام کو اختیار ہو گا کہ مثلاً ثمنِ بیع کا مستاجر سے مطالبہ کرے قبل اس کے کہ بائع اس سے ثمن کا مطالبہ کرے ایسے ہی اور احکام بھی مثل وکیل کے مرعی ہوں گے اور وہ غلام اپنے مولیٰ کے حق میں مثل ماذون کے قرار دیا جائے گا اور اس کے و مولیٰ کے درمیان ماذون کے احکام مرعی ہوں گے یہ مغنی میں ہے۔
امام محمدؒ نے فرمایا کہ زید نے عمر سے ایک غلام دس درہم ماہواری پر اپنی رائے کے موافق خرید فروخت کے کام کے واسطے اجارہ پر لیا کہ میرے واسطے خرید فروخت کرے تو جائز ہے پس اگر غلام نے زید کے واسطے اس کے حکم کے موافق خرید فروخت کی اور اس پر بہت قرضہ ہو گیا تو قرض خواہ لوگ مستاجر سے اپنے قرضہ کا مطالبہ نہیں کر سکتے ہیں بلکہ فقط اس غلام سے مطالبہ کر سکتے ہیں پھر غلام کو اختیار ہے کہ مستاجر سے اپنے ادا کرنے سے پہلے اور اس کے بعد اس قدر مال کا مطالبہ کرے اور اگر مستاجر تنگ دست ہو کہ اس کے پاس کچھ نہ ہو اور غلام کے پاس بھی کچھ کمائی نہ ہو تو وہ غلام قرض خواہوں کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا لیکن اگر مولیٰ اس کا فدیہ دے دے تو ایسا نہیں ہو سکتا ہے پس اگر مولیٰ نے اس کا فدیہ دے دیا تو جس قدر اس نے دیا ہے اس کو مستاجر سے واپس لے گا اور واپس لینے کا استحقاق خود مولیٰ کو حاصل ہو گا اور غلام کو یہ استحقاق نہ ہو گا اور اگر مولیٰ نے فدیہ دینے سے انکار کیا اور غلام ایک ہزار درہم کو فروخت کیا گیا اور قرض خواہوں کا قرضہ مثلاً دس

ہزار درہم ہے تو یہ ہزار درہم اس کے قرض خواہوں میں حصہ رسد تقسیم ہوں گے اور پھر قرض خواہوں کو

(Footnote) 1 نہ ہو گی یعنی بدل کر اب جائز نہ ہو جائے گی۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 89 Kitab al-Ma'zun**

...there shall be no recourse to claim the remaining debt from the slave until the slave is manumitted (freed). Once he is free, they may hold him responsible for the remaining debt; this is mentioned in *Al-Muhit*. It is stated that the master (Mawla) shall have the right to recover the price of the slave, i.e., one thousand Dirhams, from the hirer (Mustajir), and all of this shall be given to the master. The creditors shall have no claim over it. For the creditors, the Qazi (judge) shall appoint an agent (Wakil) to demand the remaining debt from the hirer. It is mentioned in *Kitab al-Ma'zun* that the master himself shall litigate against the hirer, collect the amount, and give it to the creditors. Sheikh Hakim Abdul Rahman stated that there is no difference in the narrations; rather, the master himself will litigate against the hirer as mentioned in the section on 'Ma'zun'. If the hirer refuses, the Qazi shall appoint an agent as mentioned here; this is in *Al-Mughni*. If the hirer died without paying anything and left five thousand Dirhams, this wealth shall be divided into ten parts between the master and the creditors, of which one part goes to the master and nine parts to the creditors. If the slave was not sold for the debt until another slave worth one thousand Dirhams was gifted (Hiba) to him, and the master refused to pay the ransom (Fidya), then both slaves shall be sold for the debt. It is mentioned in the book that whether the slave was gifted after or before the debt was incurred on the Ma'zun, both cases are identical. Thus, when it becomes obligatory to sell both the Ma'zun and the gifted (Mawhub) slave, and suppose both are sold for two thousand Dirhams, the total proceeds shall be distributed pro-rata among the creditors. The master shall recover the price of the Ma'zun from the hirer but cannot take the price of the gifted slave. The Qazi shall appoint an agent to demand nine thousand Dirhams from the hirer—representing eight thousand Dirhams for the creditors' remaining debt and one thousand Dirhams for the price of the gifted slave—and the agent shall collect this and hand it over to the master, meaning it will be given to the master. If the hirer did not pay the price of the gifted slave or the remaining debt of the creditors until he died leaving five thousand Dirhams, it shall be divided into ten parts. Accordingly, one thousand Dirhams for the price of the gifted slave, one thousand for the Ma'zun, and eight thousand for the creditors' remaining debt. Therefore, from the hirer's estate, whatever falls into the pro-rata share of the eight thousand Dirhams shall go to the creditors; likewise, the share for the price of the gifted slave shall go to the creditors. Whatever falls into the share for the price of the

Ma'zun shall go to the master. The master has no right to claim anything from the share pertaining to the price of the gifted slave; this is as stated in *Al-Muhit*.

**Regarding the Case Where the Sold Object Becomes a 'Commodity' (Arz)** ☆

If the creditors did not collect anything from their debt until finally they gifted the debt back to the Ma'zun or exonerated him—whether before or after the Ma'zun slave was sold, and whether before or after the hirer's death—nothing of the right obligatory upon the hirer shall be dropped. Thus, if the Ma'zun slave has not been sold, he himself shall recover that right from the hirer, and if he has been sold, his master shall recover this right from the hirer; this is as stated in *Al-Mughni*. If the hirer hired this slave for the purpose of buying and selling cotton cloth (1) for him, and the slave made a profit from such trade, the profit belongs to the hirer, and any loss is the hirer's responsibility. However, if the slave traded in silk cloth and made a profit, this profit shall go to the master, and the hirer has no share in it. If a loss occurs in this case, it shall be 'on the slave's neck' (meaning the slave may be sold to cover it), and the master shall not be liable for any of it; this is in *Al-Muhit*. If the Ma'zun bought one yard of wheat worth one hundred Dirhams from Zaid for a certain amount and before...

(1) Cotton fabric.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 89 किताब अल-माज़ून**

...उनके शेष ऋण के लिए गुलाम से वसूल करने का कोई रास्ता नहीं होगा जब तक कि वह गुलाम आज़ाद न हो जाए, फिर आज़ाद होने के बाद वे अपने शेष ऋण के लिए उसे पकड़ सकेंगे, यह 'मुहीत' में है। कहा गया है कि मालिक (मौला) को यह अधिकार होगा कि वह किरायेदार (मुस्ताजिर) से गुलाम की कीमत यानी एक हज़ार दिरहम वापस ले ले और यह सब मालिक को दिया जाएगा और लेनदारों के पास इससे वसूल करने का कोई रास्ता नहीं होगा, और लेनदारों के लिए काजी एक वकील नियुक्त करेगा जो किरायेदार से लेनदारों के शेष ऋण की माँग करेगा। 'किताब अल-माज़ून' में उल्लेख है कि मालिक स्वयं किरायेदार से मुकदमा करेगा और उससे उतनी राशि वसूल करके लेनदारों को देगा, और शेख हाकिम अब्दुल रहमान ने कहा कि रिवायतों में कोई मतभेद नहीं है, बल्कि मालिक ही किरायेदार से मुकदमा करेगा जैसा कि 'माज़ून' में उल्लेख है, फिर यदि उसने इनकार किया तो काजी एक वकील नियुक्त करेगा जैसा कि यहाँ उल्लेख है, यह 'मुग्नी' में है। यदि किरायेदार ने अभी तक कुछ भी भुगतान नहीं किया था कि उसकी मृत्यु हो गई और उसने पाँच हज़ार दिरहम छोड़े, तो यह धन मालिक और लेनदारों के बीच दस भागों में विभाजित होगा, जिसमें से एक भाग मालिक को और नौ भाग लेनदारों को दिए जाएँगे। यदि गुलाम को ऋण के बदले नहीं बेचा गया यहाँ तक कि उसे एक हज़ार दिरहम मूल्य का एक गुलाम उपहार (हिबा) में दिया गया और मालिक ने फिदिया (मुक्तिदंड) देने से इनकार कर दिया, तो दोनों गुलामों को ऋण के बदले बेचा जाएगा। किताब में उल्लेख है कि यदि माज़ून पर ऋण होने के बाद उसे गुलाम उपहार में दिया गया या ऋण होने से पहले दिया गया, दोनों स्थितियाँ समान हैं। फिर जब यह आदेश अनिवार्य हो गया कि माज़ून और उपहार में मिले (मौहूब) दोनों गुलाम बेचे जाएँ और दोनों को मान लीजिए दो हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो यह सारा धन लेनदारों के बीच आनुपातिक रूप (हिस्सा रसद) से विभाजित होगा और मालिक किरायेदार से माज़ून की कीमत वसूल लेगा, लेकिन उपहार वाले गुलाम की कीमत नहीं ले सकता। काजी एक वकील नियुक्त करेगा जो किरायेदार से नौ हज़ार दिरहम की माँग करेगा, यानी आठ हज़ार दिरहम लेनदारों का शेष ऋण और एक हज़ार दिरहम उपहार वाले गुलाम की कीमत, और वकील यह सब वसूल करके मालिक को सौंप देगा, यानी मालिक को दिया जाएगा। यदि किरायेदार ने उपहार वाले गुलाम की कीमत और लेनदारों का शेष ऋण कुछ भी अदा नहीं किया यहाँ तक कि उसकी मृत्यु हो गई और उसने पाँच हज़ार दिरहम छोड़े, तो इसके दस हिस्से किए जाएँगे। इस हिसाब से एक हज़ार दिरहम उपहार वाले गुलाम की कीमत, एक हज़ार दिरहम माज़ून

की कीमत और आठ हज़ार दिरहम लेनदारों का शेष ऋण होगा। अतः किरायेदार की संपत्ति से जिस अनुपात में आठ हज़ार दिरहम का हिस्सा बनेगा, वह लेनदारों को मिलेगा, और उपहार वाले गुलाम की कीमत का जो हिस्सा बनेगा, वह भी लेनदारों को मिलेगा, और माज़ून की कीमत का जो हिस्सा बनेगा, वह मालिक को मिलेगा, और उपहार वाले गुलाम की कीमत के हिस्से में से मालिक को कुछ लेने का अधिकार नहीं होगा, ऐसा 'मुहीत' में है।

**विक्रय वस्तु (मबीअ) के'माल' (अराज़) होने के वर्णन में** ☆

यदि लेनदारों ने अपने ऋण में से कुछ भी वसूल नहीं किया यहाँ तक कि अंततः उन्होंने माज़ून को अपना ऋण उपहार में दे दिया या माज़ून को ऋणमुक्त कर दिया, चाहे माज़ून गुलाम के बेचे जाने से पहले या उसके बाद, या किरायेदार की मृत्यु से पहले या उसके बाद, तो किरायेदार के जिम्मे जो अधिकार अनिवार्य हुआ है, उसमें से कुछ भी समाप्त नहीं होगा। अतः यदि माज़ून गुलाम न बेचा गया हो, तो वह यही अधिकार किरायेदार से वसूल कर लेगा और यदि बेचा जा चुका हो, तो उसका मालिक किरायेदार से यह अधिकार वसूल करेगा, ऐसा 'मुग़्नी' में है। यदि किरायेदार ने इस गुलाम को जिस समय किराये (इजारा) पर लिया, उस समय इस उद्देश्य से लिया कि वह मेरे लिए सूती कपड़े (1) का क्रय-विक्रय करे, और उस गुलाम ने कपड़ा खरीदकर और बेचकर लाभ कमाया, तो लाभ किरायेदार का होगा, और यदि कुछ घाटा हुआ, तो वह किरायेदार के जिम्मे होगा। और यदि उसने रेशमी कपड़े का क्रय-विक्रय करके लाभ प्राप्त किया, तो यह लाभ मालिक को मिलेगा, इसमें किरायेदार का कुछ नहीं है, और यदि कुछ घाटा हो, तो वह गुलाम की गर्दन पर होगा (अर्थात गुलाम उसके लिए बेचा जाएगा) और इसमें से मालिक पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है। यदि माज़ून ने ज़ैद से सौ दिरहम मूल्य का एक गज़ गेहूँ इतने दिरहम में खरीदा और इससे पहले...

(1) सूती कपड़ा।

...اپنے باقی قرضہ کے واسطے غلام سے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی یہاں تک کہ وہ غلام آزاد ہو جائے پھر آزاد ہو جانے کے بعد اپنے باقی قرضہ کے واسطے اس کے دستگیر ہوں گے یہ محیط میں ہے۔ فرمایا کہ مولیٰ کو یہ اختیار ہوگا کہ مستاجر سے غلام کا ثمن یعنی ہزار درہم واپس لے اور یہ سب مولیٰ کو دیے جائیں گے اور قرض خواہوں کو اس سے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی اور قرض خواہوں کے واسطے قاضی ایک وکیل مقرر کرے گا جو مستاجر سے قرض خواہوں کے باقی قرضہ کا مطالبہ کرے۔ کتاب الماذون میں مذکور ہے کہ مولیٰ خود مستاجر سے مخاصمہ کرے گا اور اس قدر اس سے وصول کر کے قرض خواہوں کو دے گا اور شیخ حاکم عبدالرحمن نے فرمایا کہ اختلاف الروایت نہیں ہے بلکہ مولیٰ ہی مستاجر سے مخاصمہ کرے گا جیسا کہ ماذون میں مذکور ہے پس اگر اس نے انکار کیا تو قاضی ایک وکیل مقرر کرے گا جیسا کہ یہاں مذکور ہے یہ مغنی میں ہے۔ اگر مستاجر نے ہنوز کچھ نہ ادا کیا تھا کہ مر گیا اور پانچ ہزار درہم چھوڑے تو یہ مال مولیٰ اور قرض خواہوں کے درمیان دس حصہ ہو کر تقسیم ہو گا جس میں سے ایک حصہ مولیٰ کو اور نو حصے قرض خواہوں کو دیے جائیں گے۔ اگر غلام قرضہ میں فروخت نہ کیا گیا یہاں تک کہ اس کو ایک غلام ہزار درہم قیمت کا ہبہ کیا گیا اور مولیٰ نے فدیہ سے انکار کیا تو دونوں غلام قرضہ میں فروخت کیے جائیں گے اور کتاب میں مذکور ہے کہ اگر ماذون پر قرضہ ہو جانے کے بعد اس کو غلام ہبہ کیا گیا یا لحوق قرضہ سے پہلے ہبہ کیا گیا دونوں صورتیں یکساں ہیں پھر جب یہ حکم واجب ہوا کہ ماذون وموہوب دونوں غلام فروخت کیے جائیں اور دونوں مثلاً دو ہزار درہم میں فروخت کیے گئے تو یہ سب مال قرض خواہوں کے درمیان حصہ رسد تقسیم ہو گا اور مولیٰ مستاجر سے ماذون کا ثمن بھر لے گا مگر موہوب کا ثمن نہیں لے سکتا ہے قاضی

ایک وکیل کھڑا کرے گا جو مستاجر سے نو ہزار درہم کا مطالبہ کرے گا یعنی آٹھ ہزار درہم قرض خواہوں کا باقی قرضہ اور ہزار درہم موہوب غلام کا ثمن اور وکیل یہ سب وصول کر کے مولیٰ کو سپرد کرے گا یعنی مولیٰ کو دیا جائے گا۔ اگر مستاجر نے موہوب غلام کا ثمن اور قرض خواہوں کا باقی قرضہ کچھ ادا نہ کیا یہاں تک کہ مر گیا اور پانچ ہزار درہم چھوڑے تو اس کے دس حصے کیے جائیں گے اس حساب سے ہزار درہم غلام موہوب کا ثمن اور ہزار درہم ماذون کا ثمن اور آٹھ ہزار درہم قرض خواہوں کا باقی قرضہ پس مستاجر کے ترکہ میں سے جس قدر آٹھ ہزار درہم کے پرتے میں پڑے وہ قرض خواہوں کو ملے گا اور بھی جس قدر موہوب غلام کے ثمن کے پرتے میں پڑے وہ بھی قرض خواہوں کو ملے گا اور جس قدر ماذون کے ثمن کے پرتے میں پڑے وہ مولیٰ کو ملے گا اور جس قدر غلام موہوب کے ثمن کے پرتے میں آیا ہے اس کے لینے کی مولیٰ کو کوئی راہ نہیں ہے کذا فی المحیط۔

**مبیع کے "عرض" ہونے کے بیان میں ☆**

اگر قرض خواہوں نے اپنے قرضہ سے کچھ وصول نہ کیا یہاں تک کہ آخر کار انہوں نے ماذون کو اپنا قرضہ ہبہ کر دیا یا ماذون کو بری کر دیا خواہ غلام ماذون کے فروخت کیے جانے سے پہلے یا اس کے بعد خواہ مستاجر کے مرنے سے پہلے یا اس کے بعد جو حق مستاجر کے ذمہ واجب ہوا ہے اس میں سے کچھ ساقط نہ ہو گا پس اگر غلام ماذون فروخت نہ ہوا ہو تو یہ حق وہی مستاجر سے وصول کر لے گا اور اگر فروخت ہو گیا ہو تو یہ حق اس کا مولیٰ مستاجر سے وصول کرے گا کذا فی المغنی۔ اگر مستاجر نے اس غلام کو جس وقت اجارہ پر لیا ہے اس وقت اس غرض سے اجارہ پر لیا ہو کہ میرے واسطے خامہ سوتی(۱) کپڑے کی خرید و فروخت کرے پس اس غلام نے کپڑا خرید و فروخت کر کے نفع اٹھایا تو نفع مستاجر کا ہو گا اور اگر کچھ گھٹی پڑی تو مستاجر کے ذمہ ہوگی اور اگر اس نے ریشمی کپڑا خرید و فروخت کر کے نفع حاصل کیا تو یہ نفع

مولیٰ کو ملے گا اس میں مستاجر کا کچھ نہیں ہے اور اگر کچھ گھٹی پڑے تو غلام کی گردن پر ہو گی کہ اس کے واسطے فروخت کیا جائے گا اور اس میں سے مولیٰ پر کچھ واجب نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون نے زید سے سو درہم قیمت کے ایک گز گیہوں اتنی درہم کو خریدے اور قبل

(۱) پارچہ پنبہ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 90 | Kitab al-Mazoon (The Book of the Authorized Slave)**

...poured water into it after taking possession, due to which it became defective and its value was reduced to eighty dirhams. Then the seller poured water into it, further damaging it so its value dropped to sixty dirhams. In this case, the Mazoon (authorized slave) shall have the option (khiyar). If he chooses to take it, he can do so for sixty-four dirhams. If he rejects it, he shall not be liable for the damage he caused. If the seller was the first to pour water into it and then the buyer added water, the buyer will be compelled to take possession of it by paying sixty-four dirhams. This same rule applies to all items measured by capacity (makil) or weight (mawzun). If the subject of sale is a commodity and it was first damaged by the buyer and then by the seller: if the buyer chooses to keep it, the extent of damage caused by the seller shall be deducted from the price (thaman). If he wishes, he may cancel the sale and pay the price corresponding to the extent of his own damage. If the buyer damaged it after the seller had already done so, it will be mandatory for him to take the item, but the amount of damage caused by the seller will be deducted from his liability. This is mentioned in al-Mabsut.

It is stated that if an outsider owes property to a master (Mawla), and the master, for security, pawns something as collateral and leaves it with his Mazoon, and it gets lost, it will be considered lost in exchange for what it was pawned for, and the master is absolved from the debt. This is mentioned in al-Mughni. If a Mazoon bought one Kur of high-quality dates in exchange for one Kur of specified inferior dates, and then the Mazoon poured water into the purchased dates causing them to spoil, andその後, the seller also poured water into them causing further spoilage, he (the buyer) shall have the option: either to give the exchange Kur for the purchased Kur he takes, or to cancel the sale. In both cases, neither party shall have the right to claim damages from the other. However, if the buyer had poured water into it after the seller, it would be mandatory for him to pay the full exchange for the Kur he bought, and he would not have the option to return it due to a defect, whether discovered before or after taking possession, because he spoiled it by pouring water. This is in al-Mabsut. If a father or a legal guardian (wasi) buys a slave girl for a minor or a mentally incapacitated person (ma'tuh), and she is a close blood relative (dhat rahm mahram) of the minor or ma'tuh, then this contract will not be valid for either of them; rather, it will be valid only for the father or the guardian. This is in al-Kafi. If a Mazoon sells ten qafiz of wheat and ten qafiz of barley to Zaid, saying, "I have sold these ten qafiz

of wheat and these ten qafiz of barley to you at the rate of one dirham (each)," then the sale is valid. If, in this case, where each qafiz was sold for one dirham, both parties took mutual possession, and then Zaid found a defect in the wheat, he should return them at half the price, at the rate of one dirham per qafiz. If he had said that each qafiz of both together is for one dirham and mutual possession took place, and then a defect was found in the wheat, Zaid can return half a qafiz of wheat and half a qafiz of barley for one dirham. The method for this is to distribute the total price (twenty dirhams) over the market values of the wheat and barley. For instance, if the value of wheat is twenty dirhams and barley is ten dirhams, then all the defective wheat will be returned in exchange for two-thirds of the price.

Similarly, if he said that one qafiz of both combined is at the rate of one dirham, this statement is legally equivalent to the first statement. If he said, "I have sold this wheat and this barley to you," stating the rate as one dirham per qafiz but without specifying the total quantity, then according to Imam Azam (RA), the sale is invalid (fasid) until the total measure and quantity are known. However, if the total measure is then specified, the buyer will have the choice to either buy each qafiz of wheat for one dirham and each qafiz of barley for one dirham, or cancel the sale. According to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the sale is valid at the rate of one dirham per qafiz for wheat and one dirham per qafiz for barley. I note that it is not explicitly mentioned here whether the buyer has the option to claim for the loss from the defect caused by the seller, as the damage resulted from the seller's action. Dhat rahm refers to those with blood relations; mahram refers to a relative with whom marriage is permanently prohibited, such as maternal and paternal aunts, etc.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 90 | किताब-अल-माज़ून**

...क़ब्ज़े के उसमें पानी डाल दिया जिससे वह फ़ासिद होकर अस्सी (80) दरहम के रह गए फिर उसके बाद बाये (विक्रेता) ने उसमें पानी डाल दिया जिससे वह बिगड़ कर साठ दरहम के रह गए तो माज़ून को ख़ियार (विकल्प) होगा पस अगर उसने लेना इख़्तियार किया तो चौंसठ दरहम में ले सकता है और अगर छोड़ दिया तो उस पर जो कुछ बिगाड़ा है उसकी ज़मान (मुआवजा) न होगी। अगर अव्वलन बाये ने उसमें पानी डाल दिया हो फिर मुश्तरी (क्रेता) ने पानी मिलाया तो मुश्तरी मजबूर किया जाएगा कि चौंसठ दरहम देकर उस पर क़ब्ज़ा करे और यही हुक्म हर मकील (माप योग्य) व मौज़ून (तोलने योग्य) में है। अगर मबी (बिक्री की वस्तु) कोई अर्ज़ (सामान) हो कि उसको पहले मुश्तरी ने बिगाड़ा फिर बाये ने बिगाड़ा पस अगर मुश्तरी ने लेना इख़्तियार किया तो उसके ज़िम्मे से समन (क़ीमत) से जिस क़दर बाये ने बिगाड़ा है साक़ित (ख़त्म) हो जाएगा और अगर चाहे तो बय (बिक्री) तोड़ दे और जिस क़दर नुक़सान किया है उस क़दर समन अदा करे और अगर मुश्तरी ने बाये के बाद उसको बिगाड़ा तो मबी का लेना उसके ज़िम्मे लाज़िम होगा मगर समन से जिस क़दर बाये ने बिगाड़ा है उसके ज़िम्मे से साक़ित हो जाएगा यह मब्सूत में है।

फ़रमाया कि अगर किसी अजनबी का कुछ माल मौला पर आता हो और मौला ने ब-नज़रे वसाक़त (भरोसे के लिए) उसके एवज़ (बदले) कुछ चीज़ रहन (गिरवी) करके अपने माज़ून के पास रखी और वह ज़ाया हो गई तो जिसके एवज़ रहन थी उसके एवज़ गई और मौला क़र्ज़ से बरी (मुक्त) हो गया यह मुग़नी में है। अगर माज़ून ने एक कुर (एक माप) खजूरें जय्यद (अच्छी) ब-एवज़ एक कुर खजूरें रद्दी के जो मुअय्यन (निश्चित) हैं खरीदे फिर जिसको खरीदा है उसमें माज़ून ने पानी डाल दिया और वह ख़राब हो गए फिर बाये ने उसमें पानी डाल दिया और वह ख़राब हो गए तो उसको ख़ियार होगा चाहे खरीदी हुई कुर लेकर उसके मुआवज़े की कुर दे दे या बय तोड़ दे और दोनों सूरतों में किसी को दूसरे से नुक़सान लेने का इख़्तियार न होगा और अगर मुश्तरी ने बाये के बाद उसमें पानी डाला होता तो उस पर लाज़िम होगा कि जो कुर उसने जिस कुर के एवज़ खरीदी है पूरा एवज़ देकर ले और उसको यह इख़्तियार न होगा कि उसको ऐब (दोष) की वजह से वापस करे। ख़्वाह क़ब्ज़े से पहले पाए या उसके बाद ब-वजह इसके कि उसने पानी डाल कर उसको ख़राब कर दिया है यह मब्सूत में है। अगर बाप या वसी (वसीयतदार) ने नाबालिग़ या माअतूह (मानसिक रूप से अक्षम) के वास्ते एक बांदी जो नाबालिग़ या माअतूह की ज़ाते-रहम-ए-महरम (रक्त संबंधी जिससे निकाह हराम हो) है खरीद कर दी तो यह अक़्द (अनुबंध) उन दोनों पर नाफ़िज़ (लागू) न होगा बल्कि बाप या वसी पर

नाफ़िज़ होगा यह काफ़ी में है। अगर माज़ून ने ज़ैद के हाथ दस कफ़ीज़ गेहूँ और दस कफ़ीज़ जौ यह कह कर फ़रोख्त (बेचे) किए कि मैंने यह दस कफ़ीज़ गेहूँ और यह दस कफ़ीज़ जौ तेरे हाथ एक दरहम के हिसाब से फ़रोख्त किए तो बय जायज़ है पस अगर इस सूरत में कि हर कफ़ीज़ एक दरहम के हिसाब से फ़रोख्त किया है दोनों ने बाहम (आपस में) क़ब्ज़ा कर लिया फिर ज़ैद ने गेहूँ में ऐब पाया तो उनको आधे समन पर ब-हिसाब हर कफ़ीज़ एक दरहम के वापस करे और अगर उसने यह कहा हो कि दोनों में से हर कफ़ीज़ एक दरहम को है और बाहमी क़ब्ज़ा हो गया फिर गेहूँ में ऐब पाया हो तो ज़ैद उनको हर दोनों के एक कफ़ीज़ एक दरहम के हिसाब से यानी आधे गेहूँ और आधे जौ एक दरहम के हिसाब से वापस कर सकता है और इसकी यह सूरत होगी कि तमाम समन यानी बीस दरहम गेहूँ और जौ की क़ीमत पर फैलाया जाए पस अगर गेहूँ की क़ीमत मसलन बीस दरहम है और जौ की क़ीमत दस दरहम हो तो सब गेहूँ जिनमें ऐब पाया है ब-एवज़ दो तिहाई के वापस करेगा।

इसी तरह अगर यह कहा हो कि दोनों के एक कफ़ीज़ एक दरहम के हिसाब से है तो यह क़ौल (कथन) और पहला क़ौल यानी दोनों में से हर कफ़ीज़ एक दरहम को है यकसां (समान) है। अगर उसने यूँ कहा कि मैंने यह गेहूँ और यह जौ तेरे हाथ फ़रोख्त किए और दोनों का हर एक कफ़ीज़ का एक दरहम का हिसाब बतलाया मगर दोनों की तमाम मिक़दार (मात्रा) न बयान की तो इमाम-ए-आज़म (रह.) के नज़दीक ता-वक़्त ये कि सब कैल (माप) व पैमाना मालूम न हो बय फ़ासिद है फिर अगर उसको सब पैमाना बतला दिया तो मुश्तरी मुख़्तार होगा चाहे हर कफ़ीज़ गेहूँ एक दरहम के हिसाब से और जौ हर कफ़ीज़ एक दरहम के हिसाब से खरीद ले या बय तर्क(छोड़) कर दे और साहिबैन के नज़दीक बय जायज़ है गेहूँ हर कफ़ीज़ एक दरहम के हिसाब से और जौ हर कफ़ीज़ एक दरहम के हिसाब से मैं कहता हूँ कि यहाँ मज़कूर नहीं कि क्या उसको इख़्तियार है कि बाये से वह नुक़सान ऐब जो पैदा हुआ है ले सकता है या नहीं क्योंकि नुक़सान बाये के फ़ेल (कार्य) से पैदा हुआ है। ज़ाते रहम जिससे क़राबते-नस्बी (रक्त संबंध) हो महरम वह निस्बत में उस पर दायमी हराम हो जैसे खाला, फूफी वगैरह में।

---

قبضہ کے اس میں پانی ڈال دیا جس سے وہ فاسد ہو کر اسی درہم کے رہ گئے پھر اس کے بعد بائع نے اس میں پانی ڈال دیا جس سے وہ بگڑ کر ساٹھ درہم کے رہ گئے تو ماذون کو خیار ہو گا پس اگر اس نے لینا اختیار کیا تو چونسٹھ درہم میں لے سکتا ہے اور اگر چھوڑ دیا تو اس پر جو کچھ بگاڑا ہے اس کی ضمان نہ ہو گی ۔ اگر اولاً بائع نے اس میں پانی ڈال دیا ہو پھر مشتری نے پانی ملایا تو مشتری مجبور کیا جائے گا کہ چونسٹھ درہم دے کر اس پر قبضہ کرے اور یہی حکم ہر مکیل و موزون میں ہے ۔ اگر مبیع کوئی عرض ہو کہ اس کو پہلے مشتری نے بگاڑا پھر بائع نے بگاڑا پس اگر مشتری نے لینا اختیار کیا تو اس کے ذمہ سے ثمن سے جس قدر بائع نے بگاڑا ہے ساقط ہو جائے گا اور اگر چاہے تو بیع توڑ دے اور جس قدر نقصان کیا ہے اس قدر ثمن ادا کرے اور اگر مشتری نے بعد بائع کے اس کو بگاڑا تو مبیع کا لینا اس کے ذمہ لازم ہو گا مگر ثمن سے جس قدر بائع نے بگاڑا ہے اس کے ذمہ سے ساقط ہو جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔

فرمایا کہ اگر کسی اجنبی کا کچھ مال مولیٰ پر آتا ہو اور مولیٰ نے بنظر وثاقت اس کے عوض کچھ چیز رہن کر کے اپنے ماذون کے پاس رکھی اور وہ ضائع ہوگئی تو جس کے عوض رہن تھی اس کے عوض گئی اور مولیٰ قرضہ سے بری ہو گیا یہ مغنی میں ہے۔ اگر ماذون نے ایک کُر چھوہارے جید بعوض ایک کُر چھوہارے ردی کے جو معین ہیں خریدے پھر جس کو خریدا ہے اس میں ماذون نے پانی ڈال دیا اور وہ خراب ہو گئے پھر بائع نے اس میں پانی ڈال دیا اور وہ خراب ہو گئے تو اس کو خیار ہوگا چاہے خرید کردہ کُر لے کر اس کے معاوضہ کا کُر دے دے یا بیع توڑ دے اور دونوں صورتوں میں کسی کو دوسرے سے نقصان لینے کا اختیار نہ ہوگا اور اگر مشتری نے بعد بائع کے اس کو پانی ڈالا ہوتا اس پر لازم ہوگا کہ جو کُر اس نے جس کُر کے عوض خریدا

ہے پورا عوض دے کر لے اور اس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اس کو عیب کی وجہ سے واپس کرے۔ خواہ قبضہ سے پہلے پائے یا اس کے بعد بوجہ اس کے کہ اس نے پانی ڈال کر اس کو خراب کر دیا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر باپ یا وصی نے نابالغ یا معتوہ کے واسطے ایک باندی جو نابالغ یا معتوہ کی ذات رحم محرم ہے خرید کر دی تو یہ عقد ان دونوں پر نافذ نہ ہوگا بلکہ باپ یا وصی پر نافذ ہوگا یہ کافی میں ہے۔ اگر ماذون نے زید کے ہاتھ دس قفیز گیہوں اور دس قفیز جو یہ کہہ کر فروخت کیے کہ میں نے یہ دس قفیز گیہوں اور یہ دس قفیز جو تیرے ہاتھ ایک درہم کے حساب سے فروخت کیے تو بیع جائز ہے پس اگر اس صورت میں کہ ہر قفیز ایک درہم کے حساب سے فروخت کیا ہے دونوں نے باہم قبضہ کر لیا پھر زید نے گیہوں میں عیب پایا تو ان کو آدھے ثمن پر بحساب ہر قفیز ایک درہم کے واپس کرے اور اگر اس نے یہ کہا ہو کہ دونوں میں سے ہر قفیز ایک درہم کو ہے اور باہمی قبضہ ہو گیا پھر گیہوں میں عیب پایا ہو تو زید ان کو ہر دونوں کے ایک قفیز ایک درہم کے حساب سے یعنی آدھے گیہوں اور آدھے جو ایک درہم کے حساب سے واپس کر سکتا ہے اور اس کی یہ صورت ہوگی کہ تمام ثمن یعنی بیس درہم گیہوں اور جو کی قیمت پر پھیلایا جائے پس اگر گیہوں کی قیمت مثلاً بیس درہم ہے اور جو کی قیمت دس درہم ہو تو سب گیہوں جن میں عیب پایا ہے بعوض دو تہائی کے واپس کرے گا۔

اسی طرح اگر یہ کہا ہو کہ دونوں کے ایک قفیز ایک درہم کے حساب سے ہے تو یہ قول اور پہلا قول یعنی دونوں میں سے ہر قفیز ایک درہم کو ہے یکساں ہے۔ اگر اس نے یوں کہا کہ میں نے یہ گیہوں اور یہ جو تیرے ہاتھ فروخت کیے اور دونوں کا ہر ایک قفیز کا ایک درہم کا حساب بتلایا مگر دونوں کی تمام مقدار نہ بیان کی تو امام اعظمؒ کے نزدیک تا وقت یہ کہ سب کیل و پیمانہ معلوم نہ ہو بیع فاسد ہے پھر اگر اس کو سب پیمانہ بتلا دیا تو مشتری مختار ہو گا چاہے ہر قفیز گیہوں ایک درہم کے حساب سے اور جو ہر قفیز ایک درہم کے حساب سے خرید لے یا بیع ترک کر دے

اور صاحبین کے نزدیک بیع جائز ہے گیہوں ہر قفیز ایک درہم کے حساب سے اور جو ہر قفیز ایک درہم کے حساب سے میں کہتا ہوں کہ یہاں مذکور نہیں کہ کیا اس کو اختیار ہے کہ بائع سے وہ نقصان عیب جو پیدا ہوا ہے لے سکتا ہے یا نہیں کیونکہ نقصان بائع کے فعل سے پیدا ہوا ہے۔ ذات رحم جس سے قرابت نسبی ہو محرم وہ نسبت میں اس پر دائمی حرام ہو جیسے خالہ پھوپھی وغیرہ میں۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (91) Kitab al-Ma'zun (The Book of the Authorized Representative)**

...will purchase from him. If it was said that every 'qafiz' of both is for one dirham, according to Imam-e-Azam (Abu Hanifa), the sale (Bai') will be valid for one qafiz containing half wheat and half barley for one dirham. As for the quantity exceeding one qafiz, if the entire measure is known, the buyer (mushtari) has the choice either to purchase every qafiz at the rate of one dirham for each or to cancel the sale. According to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, the sale of the whole quantity is valid, and every qafiz, consisting of half wheat and half barley, will be taken at the rate of one dirham. If it was said, "I have sold you this wheat on the condition that it is more than one 'kur'," and the buyer bought it on this condition, then found it to be less than a kur, the sale is valid. However, if it was found to be one kur or more, the sale is 'fasid' (invalid). And if it was said, "on the condition that it is one kur or less," then if the buyer found it to be one kur or less, the sale is valid; if found to be more than a kur, it is mandatory for the buyer to take one kur, and the seller (ba'i) will have the option to reduce it even to less than a kur, and any excess belongs to the seller. If sold on the condition that "it is one kur or more," then if the buyer finds it as per the condition, the sale is valid; if less is found, the buyer has the option (Khiyar) to either take the existing quantity at its proportionate price or leave it. This is mentioned in 'Al-Mabsut'.

If someone made a claim against a 'safir ma'zun' (authorized representative), the scholars have differed on whether an oath should be taken from him or not. In 'Kitab al-Iqrar', it is written that an oath will be taken from the ma'zun, and this is the fatwa, which is in 'Fatawa Qazi Khan'. If a ma'zun bought ten 'ratl' of oil (zayt) from Zaid for one dirham and ordered him to "measure it into this glass (bottle) brought by the ma'zun," and the seller began measuring it, and when two ratls had been measured, the bottle broke, while both seller and buyer were unaware. If the seller then measured all the oil sold into it and it all spilled, the ma'zun is not liable for anything except the price of the first ratl. If the first ratl did not spill entirely when the seller poured the second ratl, the seller is liable for whatever remains of the first ratl in the bottle. If the bottle was already broken when the ma'zun gave it, and the ma'zun ordered, "measure into this," and both were unaware of the break, and the seller measured ten ratls into it and it all spilled, the ma'zun is liable for the full price; this is in Mabsut. Zaid authorized his 'mudabbar' (a slave promised freedom after the master's death) to trade. Then Amr ordered him to "buy a slave girl for me for five

thousand dirhams." He bought the slave girl according to Amr's order and gave her to him. Then she died at Amr's house, or Amr freed her, or made her an 'umm-e-walad', or she died with the mudabbar before being handed over to Amr. In all these cases, the ruling is the same: it is Amr's loss. The seller will have the right to hold the mudabbar responsible for the price, but if he intended to demand it from Amr, he cannot do so directly. When the seller holds the mudabbar for the price, he will have the right to make the mudabbar work (sa'yat) for the price. The mudabbar, before and after making payment, has the right to demand the price from his client (Amr). If the client has nothing, and then a slave cut off the mudabbar's hand, and that slave was given to the mudabbar as compensation (arsh/jinayat), and the mudabbar acquired a slave girl through trade or gift, then the slave received as compensation and the slave girl will both be sold for the mudabbar's debt. However, if the master (mawla) pays the ransom (fidya) for both, they will not be sold. If the master pays the ransom, he will recover the full ransom from the mudabbar's client, and the one recovering will be the master himself, not the mudabbar. If the master refuses to pay the ransom and both are sold for two thousand dirhams (i.e., the slave for one thousand and the slave girl for one thousand), the seller will take all this towards his debt. The master himself will take the price of that slave received as compensation from the client, and he cannot take the price of the slave girl himself, but the mudabbar will recover her price. Any remaining debt of the seller will also be recovered, taking the existing quantity according to the proportionate price calculated per kur.

---

1. Share of the price, i.e., applying the price relative to the 'kur' and taking the current quantity according to that calculation.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 (91) किताब अल-माज़ून**

...से खरीद लेगा। अगर ऐसा कहा गया कि दोनों में से प्रत्येक 'क़फ़ीज़' एक दिरहम का है, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार, एक क़फ़ीज़ पर जिसमें आधा गेहूं और आधा जौ होगा, एक दिरहम पर बिक्री (बैय) लागू होगी। और जितना एक क़फ़ीज़ से अधिक है, यदि उस पूरे माप का ज्ञान हो गया, तो खरीदार (मुश्तरी) को अधिकार होगा कि चाहे तो प्रत्येक क़फ़ीज़ दोनों में से एक दिरहम के हिसाब से खरीद ले या बिक्री रद्द कर दे। इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद के अनुसार पूरी बिक्री जायज़ होगी, और दोनों में से प्रत्येक क़फ़ीज़ आधा गेहूं और आधा जौ, एक दिरहम के हिसाब से लिया जाएगा। यदि ऐसा कहा गया कि "मैंने तुम्हारे हाथ यह गेहूं इस शर्त पर बेचे कि ये एक 'कुर' से अधिक हैं" और खरीदार ने इसी शर्त पर खरीदे, फिर उन्हें एक कुर से कम पाया, तो बिक्री जायज़ है। लेकिन अगर उसे एक कुर या उससे अधिक पाया, तो बिक्री 'फ़ासिद' (अमान्य) है। और यदि ऐसा कहा कि "इस शर्त पर कि ये एक कुर या उससे कम हैं", फिर यदि खरीदार ने एक कुर या उससे कम पाए तो बिक्री जायज़ है, और अगर कुर से अधिक पाए तो खरीदार को एक कुर लेना अनिवार्य होगा, और विक्रेता (बाइ) को अधिकार होगा कि एक कुर से भी कम कर दे और जो अतिरिक्त है वह विक्रेता का होगा। और यदि इस शर्त पर बेचे कि "ये एक कुर या उससे अधिक हैं", फिर यदि खरीदार ने शर्त के अनुसार पाए तो बिक्री जायज़ है, और अगर कम पाए तो खरीदार को अधिकार (ख़ियार) होगा कि चाहे तो मौजूद मात्रा को उसके मूल्य के हिस्से के बदले ले ले या छोड़ दे। ऐसा 'मबसूत' में उल्लेखित है।

एक व्यक्ति ने 'सफ़ीर माज़ून' (अधिकृत प्रतिनिधि) पर किसी चीज़ का दावा किया, तो उलेमाओं में इस बात पर मतभेद है कि उससे कसम ली जाएगी या नहीं। 'किताब अल-इकरार' में लिखा है कि माज़ून से कसम ली जाएगी और इसी पर फ़तवा है, यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। यदि माज़ून ने ज़ैद से दस 'रतल' जैतून का तेल (ज़ैत) एक दिरहम में खरीदा और उसे आदेश दिया कि "इस शीशे (बोतल) में, जिसे माज़ून लाया था, माप दो", फिर विक्रेता ने उसमें मापना शुरू किया, और जब दो रतल माप चुका तो शीशा टूट गया, जबकि विक्रेता और खरीदार दोनों इससे अनजान थे। फिर विक्रेता ने उसके बाद उसमें सारा तेल, जितना बेचा गया था, माप दिया और वह सब बह गया, तो माज़ून पर पहले रतल की कीमत के अलावा कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा। यदि पहला रतल सारा न बहा हो जब विक्रेता ने दूसरा रतल उसमें डाला, तो शीशे में जितना पहला रतल बचा है, विक्रेता उसका जिम्मेदार होगा। और यदि शीशा पहले से ही टूटा हुआ था जब माज़ून ने उसे दिया, और

माज़ून ने आदेश दिया कि "इसमें माप दो" और दोनों उसके टूटे होने से अनजान थे, और विक्रेता ने उसमें दस रतल माप दिया और सब बह गया, तो माज़ून पर पूरी कीमत अनिवार्य होगी, यह मबसूत में है। ज़ैद ने अपने 'मुदब्बर' (गुलाम) को व्यापार की अनुमति दी, फिर अम्र ने उसे आदेश दिया कि "मेरे लिए एक दासी पांच हजार दिरहम में खरीद लाओ"। उसने अम्र के आदेशानुसार दासी खरीदकर उसे दे दी। फिर वह अम्र के पास मर गई या अम्र ने उसे आज़ाद कर दिया या उसे 'उम-ए-वलद' बना लिया, या अम्र को सौंपने से पहले ही मुदब्बर के पास मर गई, तो इन सभी स्थितियों में समान आदेश है, यानी वह अम्र का नुकसान हुआ। और विक्रेता को अधिकार होगा कि वह कीमत के लिए मुदब्बर को पकड़े, लेकिन यदि उसने अम्र से मांग करने का इरादा किया तो ऐसा नहीं कर सकता। और जब विक्रेता कीमत के लिए मुदब्बर को पकड़ लेगा, तो उसे अधिकार होगा कि कीमत के लिए मुदब्बर से मेहनत (सा'यत) करवाए। और मुदब्बर को भुगतान करने से पहले और बाद में यह अधिकार होगा कि वह अपने मुवक्किल (अम्र) से कीमत की मांग करे। और यदि मुवक्किल के पास कुछ न हो, फिर एक गुलाम ने मुदब्बर का हाथ काट दिया और वह गुलाम मुआवजे (अर्श व जिनायत) के रूप में मुदब्बर को दिया गया, और मुदब्बर ने व्यापार या उपहार के माध्यम से एक दासी प्राप्त की, तो वह गुलाम जो मुआवजे में मिला है और वह दासी, दोनों मुदब्बर के कर्ज के भुगतान के लिए बेचे जाएंगे। लेकिन यदि मालिक (मौला) दोनों का फ़िदया (मुआवज़ा) दे दे, तो वे नहीं बेचे जाएंगे। फिर यदि मालिक ने दोनों का फ़िदया दे दिया, तो वह पूरा फ़िदया मुदब्बर के मुवक्किल से वापस लेगा और वापस लेने वाला मालिक स्वयं होगा न कि मुदब्बर। और यदि मालिक ने फ़िदया देने से इनकार कर दिया और दोनों को दो हजार दिरहम में बेचा गया (अर्थात गुलाम एक हजार और दासी एक हजार में), तो विक्रेता यह सब अपने कर्ज में ले लेगा। और मालिक स्वयं मुवक्किल से उस गुलाम की कीमत ले लेगा जो मुआवजे में मिला था, और दासी की अपनी कीमत नहीं ले सकता, लेकिन मुदब्बर उसकी कीमत वापस लेगा। और जितना विक्रेता का कर्ज बाकी रह गया वह भी वापस लेगा और मूल्य का हिस्सा यानी कीमत को कुर के अनुपात में लगाकर वर्तमान मात्रा के हिसाब से ले लेगा।

---

1. मूल्य का हिस्सा यानी कीमत को कुर के अनुपात में लगाकर वर्तमान मात्रा के हिसाब से ले लेगा।

سے خرید لے گا۔ اگر یوں کہا کہ دونوں میں سے ہر قفیز ایک درہم کو ہے امام اعظم کے نزدیک ایک قفیز پر جس میں آدھے گیہوں اور آدھے جو ہوں گے ایک درہم پر بیع واقع ہو گی اور جس قدر ایک قفیز سے زیادہ ہے ان میں اگر تمام پیمانہ معلوم ہو گیا تو مشتری مختار ہو گا چاہے ہر قفیز دونوں میں سے ایک درہم کے حساب سے خرید لے یا بیع ترک کر دے اور امام ابو یوسف و امام محمد کے نزدیک کل کی بیع جائز ہو گی دونوں میں سے ہر قفیز آدھے گیہوں اور آدھے جو بحساب ایک درہم کے لے گا۔ اگر یوں کہا کہ میں نے تیرے ہاتھ یہ گیہوں اس شرط سے کہ یہ ایک کر سے زائد ہیں فروخت کیے اور مشتری نے اسی شرط سے خریدے پھر ان کو کر سے کم پایا تو بیع جائز ہے اور اگر اس کو ایک کر یا زیادہ پایا تو بیع فاسد ہے اور اگر یوں کہا کہ اس شرط سے کہ یہ ایک کر یا اس سے کم ہیں پس اگر مشتری نے ایک کر یا اس سے کم پائے تو بیع جائز ہے اور اگر کر سے زیادہ پائے تو اس میں سے مشتری کو ایک کر لینے لازم ہوں گے اور بائع کو یہ اختیار ہو گا کہ ایک کر سے بھی کم کر دے اور جو زائد ہے وہ بائع کے ہوں گے اور اگر اس شرط سے فروخت کیے کہ یہ ایک کر یا اس سے زیادہ ہیں پس اگر مشتری نے موافق شرط کے پائے تو بیع جائز ہے اور اگر کم پائے تو مشتری کو خیار ہو گا کہ چاہے مقدار موجودہ کو اس کے حصہ ثمن کے عوض لے لے یا ترک کر دے۔ کذا فی المبسوط۔

ایک شخص نے سفیر ماذون پر کسی چیز کا دعویٰ کیا تو مشائخ نے اختلاف کیا ہے کہ آیا اس سے قسم لی جائے گی یا نہیں اور کتاب الاقرار میں لکھا ہے کہ ماذون سے قسم لی جائے گی اور اسی پر فتویٰ ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر ماذون نے زید سے دس رطل زیت ایک درہم کو خریدا اور اس کو حکم کیا کہ اس شیشے میں جس کو ماذون لایا تھا ناپ دے پس بائع نے اس میں

ناپنا شروع کیا پھر جب دو رطل ناپ چکا تو شیشہ ٹوٹ گیا حالانکہ بائع و مشتری دونوں اس سے لاعلم ہیں پھر بائع نے اس کے بعد اس میں سب تیل جس قدر فروخت کیا تھا ناپ دیا اور سب بہہ گیا تو ماذون کے ذمہ اس میں سے سوائے ثمن رطل اول کے کچھ لازم نہ ہو گا۔ اگر رطل اول سب نہ بہا ہو جس وقت بائع نے دوسرا رطل اس میں ڈالا ہے تو شیشہ میں جس قدر رطل اول میں سے رہا ہے اس کا بائع ضامن ہو گا اور اگر شیشہ پہلے ٹوٹا ہوا ہو جس وقت ماذون نے اس کو دیا ہے اور ماذون نے حکم دیا کہ اس میں ناپ دے اور دونوں اس کے ٹوٹے ہونے سے بے خبر ہیں اور بائع نے اس میں دس رطل ناپ دیا اور سب بہہ گیا تو ماذون کے ذمہ کل ثمن لازم ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ زید نے اپنے مدبر کو تجارت کی اجازت دی پھر اس کو عمرو نے حکم دیا کہ میرے واسطے ایک باندی پانچ ہزار درہم کو خرید دے اس نے موافق عمرو کے حکم کے باندی خرید کر کے اس کو دے دی پھر عمرو کے پاس مرگئی یا عمرو نے اس کو آزاد کر دیا یا ام ولد بنا لیا یا مدبر کے پاس قبل سپردگی عمرو کے مر گئی تو ان سب صورتوں میں یکساں حکم ہے یعنی وہ عمرو کا مال گیا اور بائع کو اختیار ہو گا کہ ثمن کے واسطے مدبر کا دستگیر ہو لیکن اگر اس نے عمرو سے مطالبہ کا قصد کیا تو ایسا نہیں کر سکتا ہے اور جب بائع ثمن کے واسطے مدبر کا دستگیر ہوا تو اس کو اختیار ہو گا کہ ثمن کے واسطے مدبر سے سعایت کرادے اور مدبر کو اپنے ادا کرنے سے پہلے اور اس کے بعد یہ اختیار ہو گا کہ اپنے موکل سے ثمن کا مطالبہ کرے اور اگر مدبر موکل کے پاس کچھ نہ ہو پھر ایک غلام نے مدبر کا ہاتھ کاٹ ڈالا اور وہ غلام ارش و جنایت میں مدبر کو دیا گیا اور مدبر نے بطور تجارت یا ہبہ کے ایک باندی حاصل کی تو وہ غلام جو جنایت میں ملا ہے اور یہ باندی دونوں مدبر کے قرضہ میں فروخت کی جائیں گی لیکن مولیٰ دونوں کا فدیہ دے دے تو فروخت نہ ہوں گے پس اگر مولیٰ نے دونوں کا فدیہ دے دیا تو پورا فدیہ مدبر کے موکل سے واپس لے گا اور واپس لینے والا مولیٰ خود مولیٰ ہو گا نہ مدبر اور اگر مولیٰ نے فدیہ دینے

سے انکار کیا اور دونوں دو ہزار درہم کو یعنی غلام ہزار درہم کو اور باندی ہزار درہم کو فروخت کی گئی تو بائع یہ سب اپنے قرضہ میں لے لے گا اور مولیٰ خود موکل سے اس غلام کا ثمن جو جنایت میں ملا تھا لے لے گا اور باندی کا خود ثمن نہیں لے سکتا ہے مگر مدبر اس کا ثمن واپس لے گا اور جس قدر بائع کا قرضہ رہ گیا وہ بھی واپس لے گا اور حصہ ثمن یعنی ثمن کو کر کے مقابلے میں لگا کر اس کے حساب سے مقدار موجودہ کو لے لے۔

---

۱۔ حصہ ثمن یعنی ثمن کو کر کے مقابلے میں لگا کر اس کے حساب سے مقدار موجودہ کو لے لے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 92 Book of Al-Ma'dhun**

These amount to four thousand dirhams, of which three thousand dirhams will be given to the seller, while his debt is five thousand dirhams and he has already received two thousand dirhams. Thus, the remaining one thousand dirhams will go to the master.

If the master of a *Mudabbar* (a slave promised freedom upon the master's death) did not return anything from the principal until the principal died leaving two thousand dirhams, then it will be divided into five parts: one part will be given to the master and four parts to the *Mudabbar* so that he may pay the seller. If the *Mudabbar*'s hand was not severed but he was killed by mistake and the killer paid his blood money (value), then this value will be given to his seller, and the master will recover the value from his principal, unlike the price of a gifted slave; this is recorded in '*Al-Mughni*'. If an authorized slave (*Ma'dhun*) purchased a female slave and, before paying the price, took possession of her without permission or the seller took possession, and she died in his custody, or his master killed her although the *Ma'dhun* was not in debt, or he manumitted her, the seller would not have the right to seek a guarantee (surety) for the female slave's value from the *Ma'dhun* or his master. Instead, he shall demand the price from the *Ma'dhun*, and the *Ma'dhun* shall be sold for that price. If the proceeds from the *Ma'dhun*'s sale are less than the seller's right, the master is obliged to make up the deficiency from the value of the female slave he destroyed. If the *Ma'dhun* appointed an agent (*Wakil*) to take possession of the female slave, and the agent took possession and she died while in the agent's custody, the agent shall give a guarantee for her value to the seller and then recover the amount of the guarantee from his principal, i.e., the *Ma'dhun*; this is in '*Al-Mabsut*'. If a *Ma'dhun* entered the state of *Ihram* without his master's permission, the master has the authority to have him released from it (make him '*halal*'), meaning removing him from *Ihram*. If the *Ma'dhun* entered *Ihram* with the master's permission and then the master sold him, the purchaser has the authority to have him released from *Ihram*; this is in '*Fatawa Qadi Khan*'. If Zaid has an authorized slave named Salim and Amr has an authorized slave named Aflah, and each bought the other from his respective master, then if it is known that first, for example, Salim bought Aflah from Amr and he was not in debt, then Aflah bought Salim from Zaid, Salim's purchase of Aflah is valid, and Aflah becomes the property of Salim's master and becomes restricted (*Mahjur*). Then, Aflah's purchase of Salim would be void. If it is not known which sale occurred first, both sales are voided as if they happened simultaneously. Just as they are voided

when occurring simultaneously, they are similarly voided when the order is unknown. If both authorized slaves are in debt, then even the first sale is invalid, but if their creditors grant permission, it becomes valid; this is in '*Al-Mabsut*'.

It is written in '*Al-Muntaqa*' that Mu'alla narrated from Imam Abu Yusuf that if a *Ma'dhun* appointed an agent to pay or collect a debt, and then the master restricted (made *Mahjur*) the slave, and subsequently the agent paid or collected the debt without knowledge of the *Ma'dhun* being restricted, it is valid. Mu'alla said: I heard Imam Muhammad saying that the agent's action is valid whether or not he knew of the *Ma'dhun*'s restriction, and they said this is the opinion of Imam Abu Yusuf. Also in '*Al-Muntaqa*': if a restricted (*Mahjur*) slave bought a garment unknown to the master until the master sold the slave and then authorized the purchase, the purchase is invalid. However, if the slave sold a garment to someone unknown to the master until the master sold the slave and then authorized the sale, it is valid; this is in '*Al-Dhakhira*'. If Zaid's authorized slave is owed a thousand dirhams by Amr, and Zaid gifts that slave to Amr and grants possession, the gift is valid, and Amr's debt of a thousand dirhams to Zaid remains as is. If a *Ma'dhun* owes five hundred dirhams and his value is one thousand dirhams, and with the master's permission, he accepts a guarantee (*Kafalat*) of one thousand dirhams for someone else, then he borrows one thousand dirhams, and then accepts another guarantee of one thousand dirhams for another person, and then the slave is sold for one thousand dirhams, we say that half of the first guarantee is void...

---

1- "Have him released" means by intentionally performing acts contrary to *Ihram*, because after the circumambulation of the Ka'bah, shaving the head makes one '*halal*'. A master can make a female slave '*halal*' through intercourse, though it is disliked (*Makruh*).

ये चार हज़ार दिरहम हुए जिसमें से तीन हज़ार दिरहम विक्रेता (बाइ) को दिए जाएंगे जबकि उसका क़र्ज़ पाँच हज़ार दिरहम हो और दो हज़ार दिरहम उसको मिल चुके तो बाक़ी एक हज़ार दिरहम स्वामी (मौला) को मिलेंगे।

अगर मुद़ब्बर (वह गुलाम जिसे स्वामी ने अपनी मृत्यु के बाद आज़ादी का वचन दिया हो) स्वामी ने मोक्किल (नियुक्तकर्ता) से कुछ वापस न किया यहाँ तक कि मोक्किल दो हज़ार दिरहम छोड़ कर मर गया, तो उसके पाँच हिस्से किए जाएँगे जिसमें से एक हिस्सा मौला को दिया जाएगा और चार हिस्से मुद़ब्बर को दिए जाएँगे ताकि विक्रेता को भुगतान कर दे। और अगर मुद़ब्बर का हाथ न काटा गया बल्कि ग़लती से मारा गया और कातिल ने उसकी क़ीमत अदा कर दी, तो यह क़ीमत उसके विक्रेता को दी जाएगी और मौला उसकी क़ीमत अपने मोक्किल से वापस लेगा, इसके विपरीत जो हिबा किए गए गुलाम की क़ीमत के मामले में होता है; यह 'मुग़नी' में लिखा है। अगर माज़ून (व्यापार के लिए अधिकृत गुलाम) ने एक दासी ख़रीद कर भुगतान से पहले स्वामी की अनुमति के बिना या विक्रेता द्वारा उस पर क़ब्ज़ा कर लिया और वह उसके पास मर गई या उसके मौला ने उसे मार डाला जबकि माज़ून कर्ज़दार नहीं है या उसे आज़ाद कर दिया, तो विक्रेता को यह अधिकार नहीं होगा कि माज़ून या उसके मौला से दासी की क़ीमत की गारंटी (ज़मानत) ले, बल्कि माज़ून से उसके मूल्य का दावा करेगा और माज़ून उस मूल्य के लिए बेचा जाएगा। फिर अगर माज़ून के मूल्य में विक्रेता के अधिकार से कमी हो, तो मौला पर अनिवार्य होगा कि जिस दासी को उसने नष्ट किया है उसकी क़ीमत से उस कमी को पूरा करे। और अगर माज़ून ने किसी को उस दासी पर क़ब्ज़ा करने के लिए वकील (एजेंट) नियुक्त किया और वकील ने क़ब्ज़ा कर लिया और वह वकील के पास मर गई, तो वकील विक्रेता को उसकी क़ीमत की गारंटी देगा, फिर गारंटी की मात्रा के बराबर अपने मोक्किल यानी माज़ून से वापस लेगा; यह 'मब्सूत' में है। अगर माज़ून ने अपने मौला की अनुमति के बिना एहराम (हज का संकल्प) बाँध लिया तो मौला को अधिकार होगा कि उसे हलाल करा दे यानी एहराम से बाहर निकाल दे। और अगर माज़ून ने मौला की अनुमति से एहराम बाँधा और उसके बाद मौला ने उसे बेच दिया तो खरीदार को अधिकार होगा कि उसे एहराम से बाहर करा दे; यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। अगर ज़ैद का गुलाम माज़ून जिसका नाम सालिम है और अम्र का गुलाम जिसका नाम अफ़्लह है, और हर एक ने दूसरे को उसके स्वामी से ख़रीदा, फिर अगर यह पता चले कि पहले सालिम ने अफ़्लह को अम्र से ख़रीदा है और उस पर कोई क़र्ज़ नहीं है, फिर अफ़्लह ने सालिम को

ज़ैद से ख़रीदा है, तो सालिम का अफ़्लह को ख़रीदना मान्य होगा और अफ़्लह अपने खरीदार सालिम के मौला की संपत्ति बन जाएगा और महजूर (अधिकारहीन) हो जाएगा, फिर अफ़्लह का सालिम को ख़रीदना अवैध होगा। और अगर यह पता न हो कि पहले कौन सी बिक्री हुई, तो दोनों बिक्री रद्द हो जाएँगी, जैसे कि दोनों एक साथ हुई हों। जिस तरह एक साथ होने पर दोनों रद्द होती हैं, वैसे ही अज्ञात होने पर भी रद्द होंगी। और अगर दोनों माज़ून कर्ज़दार हों तो पहली बिक्री भी अमान्य होगी, लेकिन अगर उसके लेनदार अनुमति दे दें तो मान्य हो जाएगी; यह 'मब्सूत' में है।

'मुनतकी' में लिखा है कि मुअल्ला ने इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत की है कि अगर माज़ून ने किसी को अपना क़र्ज़ अदा करने या वसूल करने के लिए वकील बनाया, फिर मौला ने उसे महजूर कर दिया, फिर वकील ने क़र्ज़ अदा किया या वसूल किया और उसे माज़ून के अधिकार छीनने की सूचना नहीं थी, तो यह मान्य है। और मुअल्ला ने कहा कि मैंने इमाम मुहम्मद से सुना है कि वे फ़रमाते थे कि वकील का यह कार्य मान्य है चाहे उसे माज़ून के महजूर होने का ज्ञान हो या न हो, और वे कहते थे कि यह इमाम अबू यूसुफ़ का कथन है। और भी मुनतकी में है कि अगर महजूर गुलाम ने एक कपड़ा ख़रीदा और मौला को पता नहीं है, यहाँ तक कि उसने गुलाम को बेच दिया फिर उस ख़रीद की अनुमति दी तो ख़रीद मान्य नहीं होगी। और अगर गुलाम ने एक कपड़ा किसी व्यक्ति को बेचा और मौला को पता नहीं है, यहाँ तक कि उसने गुलाम को बेच दिया फिर बिक्री की अनुमति दी तो मान्य होगी; यह 'ज़ख़ीरा' में है। अगर ज़ैद के गुलाम माज़ून का अम्र पर एक हज़ार दिरहम क़र्ज़ हो फिर ज़ैद ने अम्र को वह गुलाम उपहार (हिबा) कर के क़ब्ज़ा करा दिया तो उपहार मान्य है और ज़ैद का अम्र पर एक हज़ार दिरहम क़र्ज़ यथावत रहेगा। अगर माज़ून पर पाँच सौ दिरहम का क़र्ज़ हो और उसकी क़ीमत एक हज़ार दिरहम हो, फिर उसने एक व्यक्ति की ओर से दूसरे के लिए एक हज़ार दिरहम की गारंटी (कफ़ालत) मौला की अनुमति से स्वीकार कर ली, फिर उसने एक हज़ार दिरहम उधार लिए, फिर उसने दूसरे व्यक्ति की ओर से एक हज़ार दिरहम की गारंटी स्वीकार की, फिर वह गुलाम एक हज़ार दिरहम में बेचा गया, तो हम कहते हैं कि पहली गारंटी में से आधी अवैध...

---

१- करा दे यानी एहराम के विरुद्ध कार्यों को जानबूझकर करवा कर, क्योंकि काबा के तवाफ़ के बाद सिर मुँडाने से व्यक्ति स्वयं हलाल हो जाता है। स्वामी दासी को संभोग द्वारा स्वयं हलाल कर सकता है यद्यपि यह मकरूह (नापसंद) है।

یہ چار ہزار درہم ہوئے جس میں سے تین ہزار درہم بائع کو دیے جائیں گے جبکہ اس کا قرضہ پانچ ہزار درہم ہو اور دو ہزار درہم اس کو مل چکے پس باقی ایک ہزار درہم مولیٰ کو ملیں گے۔

اگر مدبر مولیٰ نے موکل سے کچھ واپس نہ کیا یہاں تک کہ موکل دو ہزار درہم چھوڑ کر مر گیا تو اس کے پانچ حصہ کئے جائیں گے جس میں سے ایک حصہ مولیٰ کو دیا جائے گا اور چار حصہ مدبر کو دیے جائیں گے تاکہ بائع کو ادا کر دے اور اگر مدبر کا ہاتھ نہ کاٹا گیا بلکہ خطا سے قتل کیا گیا اور قاتل نے اس کی قیمت ادا کر دی تو یہ قیمت اس کے بائع کو دی جائے گی اور مولیٰ اُس کی قیمت اُس کے موکل سے واپس لے گا بخلاف ثمن غلام موہوب کے یہ مغنی میں لکھا ہے۔ اگر ماذون نے ایک باندی خرید کر قبل ادائے ثمن کے بلا اجازت یا بائع اس پر قبضہ کر لیا اور وہ اس کے پاس مر گئی یا اس کے مولیٰ نے اس کو قتل کیا حالانکہ ماذون مقروض نہیں ہے یا اس کو آزاد کر دیا تو بائع کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ ماذون یا اس کے مولیٰ سے باندی کی قیمت کی ضمان حاصل کرے مگر ماذون سے اس کے ثمن کا مطالبہ کرے گا اور ماذون اس ثمن کے واسطے فروخت کیا جائے گا پس اگر ماذون کے ثمن میں بائع کے حق سے کمی ہو تو مولیٰ پر واجب ہوگا کہ جس باندی کو اس نے تلف کیا ہے اس کی قیمت سے اس کی کو پورا کرے اور اگر ماذون نے کسی کو اس باندی پر قبضہ کرنے کے واسطے وکیل کیا اور وکیل نے قبضہ کیا اور وہ وکیل کے پاس مر گئی تو وکیل بائع کو اس کی قیمت کی ضمان دے پھر بقدر ضمان اپنے موکل یعنی ماذون سے واپس لے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ماذون نے اپنے مولیٰ کی بلا اجازت احرام باندھ لیا تو مولیٰ کو اختیار ہو گا کہ اس کو حلال کرا دے یعنی احرام سے باہر کرا دے اور اگر ماذون نے باجازت مولیٰ احرام باندھا اور اس کے بعد مولیٰ نے اس کو فروخت کیا تو مشتری کو اختیار ہو گا کہ اس کو

احرام سے باہر کرا دے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر زید کا غلام ماذون سالم نام اور عمرو کا غلام افلح نام ہو اور ہر ایک نے دوسرے کو اس کے مولیٰ سے خرید کیا پس اگر یہ معلوم ہو جائے کہ پہلے مثلاً سالم نے افلح کو عمرو سے خریدا ہے اور اس پر قرضہ نہیں ہے پھر افلح نے سالم کو زید سے خریدا ہے تو سالم کا افلح کو خریدنا جائز ہوگا اور افلح اپنے خریدار سالم کے مولیٰ کی ملک ہو جائے گا اور محجور ہو جائے گا پھر افلح کا سالم کو خریدنا باطل ہوگا اور اگر یہ معلوم نہ ہو کہ اول کون سی بیع واقع ہوئی ہے تو دونوں بیع رد ہو جائیں گی گویا کہ دونوں ایک بارگی واقع ہوئی ہیں پس معا واقع ہونے میں جس طرح دونوں رد ہوتی ہیں ایسے ہی نہ معلوم ہونے کی صورت میں بھی رد ہوں گی اور اگر دونوں ماذون قرض دار ہوں تو اول کی بیع بھی ناجائز ہوگی لیکن اگر اس کے قرض خواہ اجازت دے دیں تو جائز ہو جائے گی یہ مبسوط میں ہے۔

منقی میں لکھا ہے کہ معلیٰ نے امام ابو یوسف سے روایت کی ہے کہ اگر ماذون نے کسی کو اپنا قرض ادا کرنے یا قرض وصول کرنے کے واسطے وکیل کیا پھر مولیٰ نے اس کو محجور کر دیا پھر وکیل نے قرضہ ادا کیا یا وصول کیا اور اس کو ماذون کے محجور ہونے کی خبر نہیں ہے تو جائز ہے اور معلیٰ نے کہا کہ میں نے امام محمد سے سنا ہے کہ وہ یوں فرماتے تھے کہ وکیل کا یہ تصرف جائز ہے خواہ اس کو ماذون کے محجور ہونے کا علم ہو یا نہ ہو اور کہتے تھے کہ یہ امام ابو یوسف کا قول ہے اور بھی منقی میں ہے کہ اگر غلام محجور نے ایک کپڑا خریدا اور مولیٰ کو معلوم نہیں ہے یہاں تک کہ اس نے غلام کو فروخت کیا پھر اس خریداری کی اجازت دے دی تو خرید جائز نہ ہوگی اور اگر غلام نے ایک کپڑا کسی شخص کے ہاتھ فروخت کیا اور مولیٰ کو معلوم نہیں ہے یہاں تک کہ اس نے غلام کو فروخت کیا پھر بیع کی اجازت دی تو جائز ہوگی یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر زید کے غلام ماذون کا عمرو پر ہزار درہم قرضہ ہو پھر زید نے عمرو کو وہ غلام ہبہ کر کے قبضہ کرا دیا تو ہبہ جائز اور زید کا عمرو پر ہزار درہم قرضہ بحالہ رہے گا اگر

ماذون پر پانچ سو درہم کا قرضہ ہو اور اس کی قیمت ایک ہزار درہم ہو پھر اس نے ایک شخص کی طرف سے دوسرے کے واسطے ہزار درہم کی کفالت مولیٰ کی اجازت سے قبول کر لی پھر اس نے ایک ہزار درہم قرضہ کر لیے پھر اس نے دوسرے شخص کی طرف سے ہزار درہم کی کفالت قبول کی پھر وہ غلام ہزار درہم کو فروخت کیا گیا تو ہم کہتے ہیں کہ پہلی کفالت میں سے نصف باطل

---

۱- کرادے یعنی احرام کے مخالف افعال سے بالقصد کیونکہ طواف کعبہ کے بعد سر منڈانے سے خود حلال ہو جاتا ہے باندی کو مولیٰ خود وطی سے حلال کر سکتا ہے اگرچہ مکروہ ہے۔

...and for the remaining half, the beneficiary of the guarantee (*Makful Lahu*) shall be considered a partner in its price (*Thaman*), and the second guarantee shall be void. Thus, the first creditor will share in the price at the rate of five hundred dirhams. Then, the price of the slave—one thousand dirhams—will be divided among these people into four parts, and every five hundred dirhams will be considered one share (*Sahm*). Accordingly, two hundred and fifty dirhams shall go to the first creditor, the same amount to the first beneficiary of the guarantee, and five hundred dirhams to the second creditor. This is stated in *Al-Mabsut*.

**A Legal Issue Mentioned in the Chapter of Al-Hajr of Al-Muntaqa**☆

If a *Ma'dhun* (a slave authorized to trade) says, "I sell this house to you on the condition that its area is less than a thousand yards," and the buyer finds it to be less, exactly a thousand, or more, then the sale (*Bay'*) is valid. If he says on the condition that it is "more than a thousand yards" and the buyer finds it slightly more than a thousand yards, the sale becomes binding (*Lazim*). However, if the buyer finds it to be a thousand yards or less, the buyer has the option (*Khiyar*) to either purchase it for the full price or reject it. If he chooses to take it, the full price becomes mandatory upon him. This is in *Al-Mabsut*. If a slave places something in trust (*Wadi'ah*) with someone, the master (*Mawla*) shall not have the right to take that trust, whether the slave is authorized (*Ma'dhun*) or restricted (*Mahjur*). If the depositary returns the trust to the master and there is no debt upon the slave, it is permissible; this is in *Fatawa Qadi Khan*. If a person buys a piece of cloth for ten dirhams on the condition that it is ten yards and finds it to be eight yards, and the seller claims, "I sold it on the condition that it was eight yards," then the seller's statement under oath shall be accepted, and it is mandatory for the buyer to bring witnesses for his claim regarding the condition. This is similar to the case where a slave is bought on the condition that he is a scribe or a baker (*Khabbaz*)[1]; the ruling is that the seller's word is accepted, and the buyer is required to produce witnesses. If the buyer says, "I bought it for ten dirhams on the condition that it is ten yards, at one dirham per yard," and then finds it to be eight yards, while the seller says, "I sold it to you for ten dirhams on the condition that it is eight yards, and I did not set a condition of one dirham per yard," then both shall take an oath and rescind the sale. This is in *Al-Mabsut*. In the Chapter of *Al-Hajr* of *Al-Muntaqa*, it is written that if a master restricts a *Ma'dhun* and there is a term-debt upon him, the debt remains term-bound. So it is in *Al-Mufti*.

It is stated in *Al-Muntaqa* that if a master restricts his *Ma'dhun* and forbids his debtors from paying him, yet the debtors pay him, they shall be absolved of the debt. Similarly, if the master sells the slave and the debtors pay the slave after the sale, they are still absolved. This is in *Al-Dhakhiroh*. Zaid pledged his indebted *Ma'dhun* to 'Amr, and the slave fled from the pledgee (*Murtahin*); the creditors have the right to seek a guarantee from 'Amr; this is in *Al-Qunyah*. A master gave permission for a pledged slave to trade, and the slave conducted trade and incurred debt; it was ruled that the pledge (*Rahn*) remains as is, but the creditors will have no claim over the slave as long as he is pledged; this is in *Al-Mughni*. If a *Ma'dhun* slave finds an abandoned child (*Laqeet*) and this fact is proven only by his word, while the master claims, "You are a liar, he is my slave," then the statement of the *Ma'dhun* shall be accepted, and subsequently, the freedom of that foundling will be established based on the original status; this is in *Al-Dhakhiroh*. If a *Ma'dhun* buys a slave girl for a thousand dirhams on the condition that "if I pay the price within three days, the sale stands, otherwise there is no sale between us," this is permissible. It will be treated as an option of condition (*Khiyar al-Shart*) for three days, which is permissible for a free man. Similarly, if he buys her, pays the price, and takes possession on the condition that "if the seller returns the price to the buyer within three days, there is no sale between us," this is also permissible according to the condition and will be treated as an option of condition for the seller. And if he buys on the condition that "if I do not pay the price within three days, there is no sale between us," and he takes possession and sells her, the sale shall be effective. Then, if three days pass...

1. Khabbaz: A cook, specifically one who bakes bread.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | किताब अल-माज़ून 93**

...होगी और बाकी आधे के लिए मकफ़ूल लहू (जिसके लिए ज़मानत दी गई) को उसकी कीमत (सुमन) में भागीदार माना जाएगा और दूसरी ज़मानत (कफ़ालत) बातिल होगी। अतः पहला लेनदार पाँच सौ दिरहम के हिसाब से उसकी कीमत में भागीदार होगा। फिर गुलाम की कीमत एक हज़ार दिरहम इन लोगों में चार हिस्सों में विभाजित होगी और हर पाँच सौ दिरहम को एक हिस्सा (सह्म) माना जाएगा। इस हिसाब से दो सौ पचास दिरहम पहले लेनदार के और उतने ही (दो सौ पचास) पहले मकफ़ूल लहू के और पाँच सौ दिरहम दूसरे लेनदार के हिस्से में आएंगे और दिए जाएंगे। यह 'मबसूत' में है।

**मुनतका के'बाब अल-हज्र' में वर्णित एक मसला☆**

यदि माज़ून (वह गुलाम जिसे व्यापार की अनुमति हो) ने कहा कि "मैं तुम्हारे हाथ यह घर इस शर्त पर बेचता हूँ कि इसका क्षेत्रफल हज़ार गज़ से कम है" और खरीदार ने इसे कम, हज़ार गज़ या उससे अधिक पाया, तो बिक्री (बैय) जायज़ है। और यदि उसने इस शर्त पर कहा कि "हज़ार गज़ से अधिक है" और खरीदार ने इसे हज़ार गज़ से थोड़ा बहुत ज़्यादा पाया, तो बिक्री अनिवार्य (लाज़िम) होगी। लेकिन यदि खरीदार ने इसे हज़ार गज़ या उससे कम पाया, तो खरीदार को अधिकार (खियार) होगा कि चाहे तो उसे पूरी कीमत पर खरीद ले या छोड़ दे। यदि उसने लेना स्वीकार किया, तो उस पर पूरी कीमत अनिवार्य होगी। यह 'मबसूत' में है। यदि गुलाम ने किसी व्यक्ति के पास कोई चीज़ अमानत (वदीअत) रखी, तो मालिक (मौली) को वह अमानत वापस लेने का अधिकार नहीं होगा, चाहे गुलाम माज़ून हो या महजूर (प्रतिबंधित)। और यदि अमानत रखने वाले ने वह अमानत गुलाम के मालिक को दे दी और गुलाम पर कोई कर्ज़ न हो, तो यह जायज़ है। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। यदि किसी व्यक्ति से एक कपड़ा दस दिरहम में इस शर्त पर खरीदा गया कि वह दस गज़ है और वह आठ गज़ निकला, और विक्रेता ने कहा कि "मैंने आठ गज़ की शर्त पर बेचा है", तो विक्रेता का कथन कसम के साथ स्वीकार किया जाएगा और खरीदार पर अपनी शर्त के दावे के लिए गवाह पेश करना अनिवार्य होगा। जैसे कि इस स्थिति में कि एक गुलाम इस शर्त पर खरीदा गया कि वह 'कातिब' (लेखक) या 'खब्बाज़' (बावर्ची) है, तो यहाँ भी विक्रेता का कथन स्वीकार्य है और खरीदार पर गवाह लाना अनिवार्य है। और यदि खरीदार ने कहा कि "मैंने दस दिरहम में इस शर्त पर खरीदा है कि यह दस गज़ है, हर गज़ एक दिरहम का" और फिर उसे आठ गज़ पाया, और विक्रेता ने कहा कि "मैंने दस दिरहम में इस शर्त पर बेचा है कि यह आठ गज़ है और मैंने प्रति गज़ एक दिरहम की शर्त नहीं लगाई", तो दोनों

आपसी कसम खाकर बिक्री रद्द कर देंगे। यह 'मबसूत' में है। 'मुनतका' के'बाब अल-हज्र' में लिखा है कि यदि मालिक ने माज़ून को महजूर कर दिया और उस पर मियादी (समयबद्ध) कर्ज़ है, तो कर्ज़ मियादी ही रहेगा। 'मुफ़्ती' में ऐसा ही है।

'मुनतका' में है कि एक माज़ून को उसके मालिक ने महजूर किया और उसके कर्जदारों को मना किया कि उसे कुछ न दें, तो बताया गया कि यदि कर्जदारों ने उसे कर्ज़ दे दिया तो वे बरी हो जाएंगे। इसी तरह यदि मालिक ने उस गुलाम को बेच दिया और कर्जदारों ने बिक्री के बाद उसे भुगतान किया, तो भी वे बरी हो जाएंगे। यह 'ज़ख़ीरा' में है। ज़ैद ने अपने ऋणी माज़ून को अम्र के पास गिरवी (रहन) रखा और वह गिरवी रखने वाले (मुर्तहिन) के पास से भाग गया, तो लेनदारों को अम्र से ज़मानत लेने का अधिकार होगा, यह 'कुनिया' में है। गिरवी रखे हुए गुलाम को उसके मालिक ने खरीद-फरोख्त की अनुमति दी, उसने व्यापार किया और उस पर कर्ज़ हो गया, तो बताया गया कि गिरवी (रहन) अपनी स्थिति में रहेगा लेकिन लेनदारों का गुलाम पर तब तक कोई अधिकार नहीं होगा जब तक वह गिरवी है, यह 'मुग़नी' में है। यदि माज़ून गुलाम ने किसी लावारिस बच्चे (लकीत) को उठाया और यह बात केवल उसी के कहने से सिद्ध होती है, जबकि मालिक कहता है कि "तू झूठा है, यह तो मेरा गुलाम है", तो माज़ून का कथन स्वीकार किया जाएगा और फिर मूल रूप से उस बच्चे की स्वतंत्रता सिद्ध होगी, यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि माज़ून ने एक दासी एक हज़ार दिरहम में इस शर्त पर खरीदी कि "यदि मैं तीन दिन के भीतर कीमत चुका दूँ तो बिक्री होगी अन्यथा नहीं", तो यह जायज़ है। इसे तीन दिन तक 'खियार-ए-शर्त' (शर्त का अधिकार) के समान माना जाएगा जो एक स्वतंत्र व्यक्ति के लिए जायज़ है। इसी तरह यदि उसे खरीदकर कीमत अदा कर कब्ज़ा कर लिया इस शर्त पर कि "यदि विक्रेता ने तीन दिन में खरीदार को कीमत वापस कर दी तो बिक्री रद्द मानी जाएगी", तो यह भी शर्त के अनुसार जायज़ है और इसे विक्रेता के लिए 'खियार-ए-शर्त' माना जाएगा। और यदि इस शर्त पर खरीदी कि "यदि मैंने तीन दिन में कीमत अदा नहीं की तो हमारे बीच बिक्री नहीं होगी", और फिर उस पर कब्ज़ा करके उसे बेच दिया, तो वह बिक्री प्रभावी (नाफ़िज़) हो जाएगी। फिर यदि तीन दिन गुज़र गए...

1. खब्बाज़: बावर्ची यानी रोटी पकाने वाला।

---

ہوگی اور باقی نصف کے واسطے مکفول لہ اس کے ثمن میں شریک قرار دیا جائے گا اور دوسری کفالت باطل ہو گی پس پہلا قرض خواہ پانچ سو درہم کے حساب سے اس کے ثمن میں شریک ہو گا پس غلام کا ثمن ہزار درہم ان لوگوں میں چار حصہ ہو کر تقسیم ہو گا اور ہر پانچ سو درہم ایک سہم قرار دیا جائے گا پس اس حساب سے دو سو پچاس درہم پہلے قرض خواہ کے اور اس قدر پہلے مکفول لہ کے اور پانچ سو درہم دوسرے قرض خواہ کے حصہ میں آئیں گے اور دیے جائیں گے یہ مبسوط میں ہے۔

**منتقٰی کے باب الحجر میں مذکورہ ایک مسئلہ☆**

اگر ماذون نے کہا کہ میں تیرے ہاتھ یہ گھر اس شرط سے فروخت کرتا ہوں کہ ہزار گز سے رقبہ کم ہے اور مشتری نے اس کو کم یا ہزار گز یا زیادہ پایا تو بیع جائز ہے اور اگر کہا کہ اس شرط سے کہ ہزار گز سے زیادہ ہے پس اس کو ہزار گز سے تھوڑا بہت زیادہ پایا تو بیع لازم ہو گی اور اگر اس کو ہزار گز یا کم پایا تو مشتری کو خیار ہو گا چاہے اس کو پورے ثمن میں خرید لے یا ترک کر دے پس اگر اس نے لینا اختیار کیا تو اس پر پورا ثمن لازم ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر غلام نے کسی شخص کو کوئی چیز ودیعت دی تو مولیٰ کو ودیعت لے لینے کا اختیار نہ ہو گا خواہ غلام ماذون ہو یا محجور ہو اور اگر مودع نے ودیعت اس کے مولیٰ کو دے دی پس اگر غلام پر قرضہ نہ ہو تو جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر ایک شخص سے ایک کپڑا دس درہم کو اس شرط سے کہ دس گز ہے خریدا اور اس کو آٹھ گز پایا پس بائع نے کہا کہ میں نے اس شرط سے کہ آٹھ گز ہے فروخت کیا ہے تو قسم سے قول بائع کا قبول ہو گا اور مشتری پر واجب ہو گا کہ

اپنی شرط کے دعویٰ پر گواہ لادے جیسا کہ اس صورت میں کہ ایک غلام اس شرط سے خریدا گیا کہ یہ کاتب یا خباز ۱ـہ ہے حکم ہے یعنی بائع کا قول قبول اور مشتری پر گواہ لانا واجب ہوتے ہیں اور اگر مشتری نے کہا کہ میں نے دس درہم کو اس شرط سے خریدا ہے کہ دس گز ہے ہر گز ایک درہم کو اور پھر میں نے اس کو آٹھ گز پایا ہے اور بائع نے کہا کہ میں نے تیرے ہاتھ اس شرط سے دس درہم کو فروخت کیا ہے کہ آٹھ گز ہے اور میں نے فی گز ایک درہم کی شرط نہیں لگائی تو دونوں باہم قسم کھا کر بیع واپس کر دیں گے یہ مبسوط میں ہے۔ منتقٰی کے باب الحجر میں لکھا ہے کہ اگر مولیٰ نے ماذون کو محجور کیا اور اس پر میعادی قرضہ ہے تو قرضہ میعادی رہے گا۔ کذا فی المفتٰی۔

منتقٰی میں ہے کہ ایک ماذون کو اس کے مولیٰ نے محجور کیا اور اس کے قرض داروں کو منع کیا کہ اس کو قرضہ کچھ نہ دیں تو فرمایا کہ اگر اس کے قرض داروں نے اس کو قرضہ دے دیا تو بری ہو جائیں گے اسی طرح اگر مولیٰ نے اس غلام کو فروخت کر دیا اور قرض داروں نے بعد فروخت کے اس کو دیا تو بھی بری ہو جائیں گے یہ ذخیرہ میں ہے۔ زید نے اپنے ماذون مقروض کو عمرو کے پاس رہن کیا اور وہ مرتہن کے پاس بھاگ گیا تو قرض خواہوں کو عمرو سے ضمان لینے کا اختیار ہو گا یہ قنیہ میں ہے۔ غلام مرہون کو اس کے مولیٰ نے خرید و فروخت کی اجازت دی اس نے خرید و فروخت کی اور اس پر قرضہ ہو گیا تو فرمایا کہ رہن بحالہ باقی رہے گا لیکن قرض خواہوں کو غلام پر جب تک رہن ہے کوئی راہ نہ ہو گی یہ مغنی میں ہے۔ غلام ماذون نے اگر کوئی لقیط اٹھایا اور یہ امر صرف اسی قول سے ثابت ہوتا ہے اور مولیٰ نے کہا کہ تو جھوٹا ہے یہ تو میرا غلام ہے تو قول ماذون کا قبول ہو گا پھر اس کے بعد باعتبار اصل کے اس لقیط کی آزادی ثابت ہو گی یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر ماذون نے ایک باندی ہزار درہم کو اس شرط سے خریدی کہ اگر میں تین روز تک ثمن ادا کروں تو ہم دونوں میں بیع نہیں ہے تو یہ جائز ہے بمنزلہ تین روز

تک خیار شرط کے قرار دیا جائے گا جو کہ مرد آزاد سے جائز ہے۔ اسی طرح اگر اس کو خرید کر ثمن ادا کر کے قبضہ کر لیا اس شرط سے کہ اگر بائع نے تین روز میں مشتری کو ثمن واپس کیا تو دونوں میں بیع نہیں ہے تو یہ بھی موافق شرط کے جائز ہے اور یہ بمنزلہ بائع کے واسطے شرط خیار ہونے کے قرار دیا جائے گا اور اگر اس شرط سے خریدی کہ اگر میں نے تین روز میں ثمن ادا نہ کیا تو ہم دونوں میں بیع نہیں ہے پس اس پر قبضہ کر کے فروخت کر دی تو بیع نافذ ہو جائے گی پھر اگر تین روز گزر گئے ---

۱۔ خباز: باورچی یعنی روٹی پکانے والا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | Page 93 | Kitab al-Ma'dhun**

If the buyer fails to pay the price, the seller has no right to retake the slave-girl, but the seller may proceed against the buyer for the recovery of the price. Similarly, if the buyer kills her, or she dies in his possession, or if a third party (stranger) kills her and pays the indemnity (value) within three days, the same rule applies.

If the buyer has sexual intercourse (*waty*) with her within three days—regardless of whether she was a virgin (*bakirah*) or non-virgin (*thayyibah*)—or commits an offense against her, or if a defect arises in her without the intervention of any person, and then three days pass before the price is paid, the seller shall have the option (*khiyar*). He may choose to take her back, but he will receive nothing else, or he may leave her with the buyer. If the person who had intercourse or committed the offense was a stranger and compensation (*uqr* or *arsh*) became due, the seller has no way to retake the slave-girl. However, if a defect arises due to the action of a stranger after three days have passed, the seller has the choice to either retake the slave-girl and seek compensation (*uqr* or *arsh*) from the stranger for his act (be it intercourse or injury) or hand her over to the buyer in exchange for the price. If he hands her over to the buyer, the buyer will have the right to seek compensation from the stranger. This option is available to the seller only if the slave-girl is a virgin and her value has decreased due to the stranger's intercourse. If she was a non-virgin and her value did not decrease, the seller shall take her and collect the compensation from the stranger, having no right to abandon the slave-girl.

If the buyer himself cuts off the hand of the slave-girl after three days, or if she was a virgin and he deflowered (*afdzaz*) her, the seller has the option to either leave her with the buyer for the price or, in the case of the severed hand, take her back along with half the price. In the case of defloration, compensation (*uqr*) is not considered; instead, the extent of the decrease in her value due to the act will be determined. A portion of the price corresponding to that decrease will be obligatory upon the buyer. This is the opinion of Imam al-A’zam (Abu Hanifa). According to the *Sahibayn* (Abu Yusuf and Muhammad), one must look at both the compensation (*uqr*) and the loss in value and see which is greater; based on that, a portion of the price will be due from the buyer.

If no decrease in value occurred due to intercourse, according to Imam al-A’zam, the seller takes back the slave-girl and nothing is due from the buyer. According to the *Sahibayn*, the price is divided between her original value and her compensation (*uqr*);

thus, the seller takes back the slave-girl along with the portion of the price representing the *uqr*. If she gives birth within three days and both remain alive after three days and the buyer has not yet paid, the buyer keeps both the mother and child for the price, and the seller has no option. If the child is born after three days and the birth causes a decrease in her value, the seller has an option. If she dies after three days without giving birth, the full price is due from the buyer. If she gives birth after three days then dies but the child lives, the seller has the choice to give the child to the buyer and take the full price, or retake the child along with the mother's share of the price from the buyer. This is in *Al-Mabsut*. A restricted slave (*mahjur*) gave a loan to Zaid, then his master forbade Zaid from paying the debt to the slave. If Zaid paid him back anyway, and it was the exact same coins he borrowed, he is absolved of the debt; if they were different coins, he is not absolved. This is the opinion of Imam Abu Yusuf; according to Imam al-A'zam, he is not absolved in either case. This is in *Al-Muheet*. If a slave-girl is bought for a specific commodity (*'ardh*) on the condition that if the commodity is not delivered within three days, the sale is void, this is valid as a conditional option (*shart al-khiyar*). If a defect appears, or her eye is put out, or intercourse occurs—by the buyer or a stranger—and three days pass before the commodity is delivered, this situation is identical to the one involving purchase for cash as described previously.

---

1. i.e., For example, if the value decreases by half, half the price becomes due.
2. Intercourse indemnity, similar to *mahr al-mithl* (proper dower).

यदि क्रेता (खरीददार) ने मूल्य अदा नहीं किया, तो विक्रेता के पास उस दासी को वापस लेने का कोई रास्ता नहीं होगा, लेकिन वह मूल्य के लिए क्रेता को ज़िम्मेदार ठहरा सकता है। इसी प्रकार, यदि क्रेता ने उसे मार डाला या वह उसके पास मर गई, या किसी अजनबी ने उसे मार डाला और तीन दिनों के भीतर उसकी कीमत का दंड (मुआवज़ा) दे दिया, तो भी यही नियम लागू होगा।

यदि क्रेता ने तीन दिनों के भीतर उसके साथ संभोग (वति) किया, चाहे वह कुँवारी (बाकिरा) थी या विवाहिता (सय्येबा), या उसके साथ कोई अपराध किया, या बिना किसी व्यक्ति के कृत्य के उसमें कोई दोष (ऐब) पैदा हो गया और फिर मूल्य चुकाने से पहले तीन दिन बीत गए, तो विक्रेता को अधिकार (खियार) होगा कि वह चाहे तो उसे वापस ले ले, लेकिन उसे और कुछ नहीं मिलेगा, या फिर उसे क्रेता के पास ही रहने दे। यदि संभोग करने वाला या अपराध करने वाला कोई अजनबी हो और मुआवज़ा (उक़्र या अर्श) अनिवार्य हो जाए, तो विक्रेता के पास दासी वापस लेने का कोई रास्ता नहीं होगा। और यदि तीन दिन बीतने के बाद किसी अजनबी के कृत्य से उसमें कोई दोष पैदा हो गया, तो विक्रेता को विकल्प होगा कि वह दासी को वापस लेकर अजनबी से उसके कृत्य (चाहे संभोग हो या अपराध) के अनुसार मुआवज़ा (उक़्र या अर्श) वसूल करे, या फिर उसे मूल्य के बदले क्रेता के सुपुर्द कर दे। यदि उसने उसे क्रेता को सौंप दिया, तो क्रेता अजनबी से मुआवज़ा वसूल करने का हकदार होगा। विक्रेता को यह विकल्प तभी मिलेगा जब वह दासी कुँवारी हो और अजनबी के संभोग से उसके मूल्य में कमी आई हो। यदि वह विवाहिता थी और संभोग से मूल्य में कोई कमी नहीं आई, तो विक्रेता उसे वापस लेकर अजनबी से मुआवज़ा वसूल करेगा और उसे दासी को छोड़ने का कोई विकल्प नहीं होगा।

यदि स्वयं क्रेता ने तीन दिन बीतने के बाद दासी का हाथ काट दिया या यदि वह कुँवारी थी और उसने कौमार्य भंग (अफ़्ज़ाज़) किया, तो विक्रेता को विकल्प होगा कि वह मूल्य के बदले दासी को क्रेता के पास रहने दे, या हाथ काटने की स्थिति में आधा मूल्य और दासी वापस ले ले। कौमार्य भंग की स्थिति में मुआवज़े (उक़्र) पर विचार नहीं किया जाएगा, बल्कि यह देखा जाएगा कि संभोग से उसके मूल्य में कितनी कमी आई है। मूल्य में जितनी कमी आई होगी, उसी के अनुपात में मूल्य का वह हिस्सा क्रेता पर अनिवार्य होगा। यह इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) का मत है। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार, उसके मुआवज़े (उक़्र) और मूल्य की कमी दोनों में से जो अधिक हो, उसी के आधार पर क्रेता पर मूल्य का हिस्सा अनिवार्य होगा।

यदि संभोग से दासी के मूल्य में कोई कमी न आई हो, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार विक्रेता उस दासी को ले लेगा और क्रेता पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा। साहिबैन के अनुसार, कुल मूल्य को उसके वास्तविक मूल्य और मुआवज़े (उक्र) के बीच विभाजित किया जाएगा, और विक्रेता दासी को मुआवज़े के हिस्से सहित मूल्य के बदले वापस लेगा। यदि तीन दिनों के भीतर उसे बच्चा पैदा हुआ और तीन दिन बीत गए और वे दोनों जीवित हैं और क्रेता ने अभी तक मूल्य नहीं चुकाया है, तो दासी और बच्चा मूल्य के बदले क्रेता को मिलेंगे और विक्रेता का कोई अधिकार नहीं होगा। यदि तीन दिन बीतने के बाद बच्चा पैदा हुआ और जन्म के कारण दासी के मूल्य में कमी आई, तो विक्रेता को विकल्प होगा। यदि तीन दिन बीतने के बाद वह मर गई और कोई बच्चा पैदा नहीं हुआ, तो क्रेता पर पूरा मूल्य अनिवार्य होगा। यदि तीन दिन बीतने के बाद बच्चा हुआ और फिर दासी मर गई लेकिन बच्चा जीवित रहा, तो विक्रेता को विकल्प होगा कि वह बच्चा क्रेता को देकर पूरा मूल्य ले ले, या बच्चा और माँ के मूल्य के हिस्से के बराबर राशि क्रेता से वापस ले ले। यह 'मबसूत' में उल्लेखित है। एक दास (जो स्वतंत्र रूप से लेनदेन करने से वर्जित हो - महजूर) ने ज़ैद को ऋण दिया, फिर उसके स्वामी ने ज़ैद को मना किया कि ऋण का धन उसे न दे, फिर ज़ैद ने उसे वही धन दे दिया। यदि ज़ैद ने वही सिक्के लौटाए जो उसने लिए थे, तो वह ऋणमुक्त हो जाएगा, लेकिन यदि उसने दूसरे सिक्के दिए, तो वह ऋणमुक्त नहीं होगा। यह इमाम अबू यूसुफ़ का मत है; इमाम-ए-आज़म के अनुसार दोनों स्थितियों में वह ऋणमुक्त नहीं होगा। यह 'मुहीत' में है। यदि कोई दासी किसी विशिष्ट वस्तु (अरज़) के बदले इस शर्त पर खरीदी गई कि यदि वह वस्तु तीन दिन में न दी गई तो बिक्री रद्द मानी जाएगी, तो यह 'शर्ते-खियार' की तरह वैध है। यदि क्रेता के पास दासी में कोई दोष आ गया, या उसकी आँख फूट गई, या उसने संभोग किया, या किसी अजनबी ने ऐसा किया, और वस्तु देने से पहले तीन दिन बीत गए, तो यह स्थिति और नकद मूल्य से खरीदने की स्थिति समान हैं।

---

^1 अर्थात, उदाहरण के लिए यदि मूल्य में आधे की कमी आई, तो आधा मूल्य अनिवार्य होगा। ^2 संभोग का दंड जो मेहर-ए-मिस्ल के समान होता है।

---

نے ثمن ادا نہ کیا تو بائع کو اس باندی کے لینے کی کوئی راہ نہ ہو گی لیکن مشتری ثمن کے واسطے دستگیر ہو گا۔ اسی طرح اگر مشتری نے اس کو قتل کیا یا اس کے پاس مر گئی یا کسی اجنبی نے اس کو قتل کر کے اس کی قیمت تین روز کے درمیان تاوان ادا کی تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر مشتری نے اس سے تین روز کے درمیان وطی کی خواہ وہ باکرہ تھی یا ثیبہ تھی یا اس پر کوئی جنایت کی یا بدون کسی شخص کے فعل کے اس میں کوئی عیب پیدا ہو گیا پھر ثمن ادا کرنے سے پہلے تین روز گزر گئے تو بائع کو خیار ہو گا کہ چاہے اس کو لے لے مگر اور کچھ اس کو نہ ملے گا یا مشتری کے سپرد کرے اور اگر وطی کرنے والا یا جنایت کرنے والا کوئی اجنبی ہو اور عقر یا ارش واجب ہوا تو بائع کو باندی لینے کی کوئی راہ نہ ہو گی اور اگر تین روز گزرنے کے بعد کسی اجنبی کے فعل سے اس میں کوئی عیب پیدا ہو گیا تو بائع کو اختیار ہو گا چاہے باندی کو لے کر اجنبی سے بموجب حکم اس کے فعل کے خواہ وطی ہو یا جنایت ہو مواخذہ کر کے عقر یا ارش وصول کرے یا مشتری کو بعوض ثمن کے سپرد کرے پس اگر اس نے مشتری کے سپرد کر دی تو مشتری اجنبی کا دستگیر ہو کر عقر یا ارش وصول کرنے کا مختار ہو گا اور یہ خیار بائع کو اس وقت حاصل ہو گا کہ وہ باندی باکرہ ہو کہ جس سے اجنبی کے وطی کرنے سے اس کی مالیت میں نقصان آگیا ہو اور اگر ثیبہ ہو کہ اس سے وطی کرنے سے نقصان نہ آیا ہو تو بائع اس کو لے کر اجنبی سے اس کا عقر وصول کرے گا اور اس کو باندی ترک کرنے کا کچھ اختیار نہ ہو گا۔ اگر خود مشتری نے تین روز گزرنے کے بعد باندی کا ہاتھ کاٹ ڈالا یا باکرہ تھی اور اس سے افضاض کیا تو بائع کو خیار ہو گا چاہے ثمن کے عوض وہ باندی مشتری کے سپرد کرے یا ہاتھ کاٹنے کی صورت میں نصف ثمن مع باندی کے واپس لے اور در صورت افضاض کے اس کے

عقر پر لحاظ نہ کیا جائے گا بلکہ دیکھا جائے گا کہ وطی سے اس کی قیمت میں کس قدر نقصان آیا ہے پس اس قدر ۱۸ حصہ اس کے ثمن میں سے مشتری پر واجب ہو گا اور یہ امام اعظم کا قول ہے اور صاحبین کے نزدیک اس کے عقر اور نقصانِ قیمت دونوں میں سے دیکھا جائے گا کہ کون زیادہ ہے اس کے حساب سے مشتری پر اس کے ثمن میں سے حصہ واجب ہو گا۔ اگر وطی سے باندی میں کچھ نقصان نہ آیا ہو تو امام اعظم کے نزدیک بائع اس باندی کو لے لے گا اور مشتری پر کچھ واجب نہ ہو گا اور صاحبین کے نزدیک ثمن اس کی قیمت اور اس کے عقر پر تقسیم کیا جائے گا پس بائع وہ باندی مع حصہ عقر کے اس کے ثمن سے مشتری سے واپس لے گا اور اگر تین روز کے اندر اس کے بچہ پیدا ہوا پھر تین روز گزر گئے اور وہ دونوں زندہ موجود ہیں اور مشتری نے ہنوز نہیں ادا کیا ہے تو باندی مع بچہ کے ثمن کے عوض مشتری کو ملے گی اور بائع کو کچھ اختیار نہ ہو گا اور اگر بعد تین روز گزرنے کے بچہ پیدا ہوا اور ولادت سے باندی میں نقصان آیا تو بائع کو خیار حاصل ہو گا اور اگر بعد تین روز گزرنے کے مر گئی اور بچہ نہیں پیدا ہوا تو مشتری پر ثمن واجب ہو گا۔ اگر تین روز گزرنے کے بعد اس کے بچہ ہوا پھر وہ مر گئی اور بچہ باقی رہا تو بائع کو خیار ہو گا چاہے اس کا بچہ مشتری کو دے کر اس سے سب ثمن وصول کر لے یا بچہ مع اس کی ماں کے حصہ ثمن کے مشتری سے واپس کرلے یہ مبسوط میں ہے۔ ایک غلام محجور نے زید کو قرضہ دیا پھر اس کے مولیٰ نے زید کو منع کر دیا کہ مالِ قرض اس کو نہ دینا پھر زید نے اسی کو دیا پس اگر بعینہ وہی درہم دے دیے جو اس سے لیے تھے تو قرض دار بری ہو جائے گا اور اگر دوسرے درہم دیے تو بری نہ ہو گا اور یہ امام ابو یوسف کا قول ہے امام اعظم کے نزدیک دونوں صورتوں میں بری نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر کوئی باندی کسی عرض معین کے عوض اس شرط سے خریدی کہ اگر میں یہ عرض تین روز میں نہ دے دوں تو میرے اور بائع کے درمیان بیع نہیں ہے تو بمنزلہ شرط خیار کے یہ جائز ہے پس اگر مشتری کے پاس باندی میں

عیب آگیا یا اس نے باندی کی آنکھ پھوڑ دی یا اس سے وطی کی اور وہ باکرہ یا ثیبہ تھی یا کسی اجنبی نے ایسا فعل کیا پھر وہ عرض معین دینے سے پہلے تین روز گزر گئے تو یہ صورت اور درہموں سے خریدنے کی صورت جو ہم نے بیان کی ہے دونوں یکساں ہیں اور اگر مشتری نے بائع کو مالِ مشروط نہ دیا اور تین روز گزر گئے۔

---

۱۸ قولہ اس قدر مثلاً نصف قیمت کا نقصان آیا تو نصف ثمن واجب ہو گا۔ ۲۸ جرمانہ وطی بطور مہر المثل۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Book of the Authorized (Kitab al-Ma'dhun) Page 95**

...went. If the slave-girl died in the possession of the buyer or the buyer killed her, the buyer is liable for the price to the seller, but the seller cannot take the consideration (thaman) in any way.

If the slave-girl lost an eye or the buyer gouged it out, the seller will take back the slave-girl along with half the price, and there will be no way for him to take the consideration.

If a stranger gouged out her eye or killed her, the seller has the choice: in the case of killing, he may immediately take her price from the buyer's property or recover it from the killer's supporting kin (aqila) within three years. If he takes it from the buyer, the buyer will recover it from the killer's supporting kin. In the case of gouging the eye, he will take the slave-girl back. In none of these cases will the seller have a way to take the consideration; this is mentioned in 'Al-Mabsut'.

If an authorized slave (ma'dhun) has a debt of five hundred dirhams and the master (mawla) sells the ma'dhun to his creditor for one thousand dirhams, the sale (bay') is valid. The creditor will deduct his debt of five hundred dirhams and give the remaining five hundred dirhams to the master. In this instance, the creditor's debt is not deemed waived; it is stated that he will deduct five hundred dirhams for his debt, even though he has become the owner of the ma'dhun; this is in 'Al-Muhit'.

If a ma'dhun or a free man sells a slave-girl for one thousand dirhams and possession is exchanged, with the condition that if the seller returns the money to the buyer within three days, the sale is void. Then, if the buyer has intercourse (wat'i) with the slave-girl or gouges out her eye within the three days, and the seller returns the price to the buyer within three days, he can take back his slave-girl and can take 'uqr' (compensation for intercourse) and half the price for the eye. If three days pass and the price is not yet returned, the sale becomes final, and no 'arsh' (fine) or 'uqr' will be due from the buyer. If a stranger did this and then the seller returned the price within three days, he can take back his slave-girl. In the case of gouging the eye, he takes half the price either from the buyer (who then recovers from the stranger) or directly from the person who gouged the eye. In the case of intercourse, if she was a virgin (bakira), this same rule applies. If she was a non-virgin (thayyiba) who suffered no harm from intercourse, he will take back the slave-girl and take 'uqr' from the stranger who had intercourse, and there is no way to take from the buyer. If

the seller did not return the price within three days, the sale was completed, and the buyer will take 'uqr' or 'arsh' from the person who had intercourse or gouged the eye. If the seller himself had intercourse with her or gouged her eye, the sale is void, whether he returns the price after that or not, and he will take back his slave-girl. If the seller did this after three days and did not return the price, then 'uqr' or 'arsh' will be due from him to the buyer; this is in 'Al-Mabsut'.

It is in 'Al-Jami' that if the master gives permission to trade to his slave who has committed a crime (jinayat), and a debt is incurred on him or he is given in pledge or hired out, this act will not signify that the master has chosen to pay his ransom (fidya); this is in 'Al-Dhakhira'.

If a ma'dhun sold a slave-girl to Zaid, and Zaid took possession in front of the slave-girl and her status was unknown, then 'Amr claimed that she is his daughter and both the buyer and the slave confirmed his claim, then the slave-girl will be declared 'Amr's daughter and given to him, and the sale between the two will not be voided. If the ma'dhun had bought her from Bakr and taken possession, and the seller made such an admission, then all sales would be voided and they would return the prices to each other. If the ma'dhun bought her from Bakr in the presence of the slave-girl and she took possession while remaining silent and not denying anything, then sold her to 'Amr and received the price, then Zaid claimed she is his daughter and the ma'dhun, the slave-girl, and the buyer confirmed his word...

---

1. Arsh: Fine, Uqr: Compensation for intercourse. 2. Fidya: i.e., it is mandatory for the master in the said crime to hand over the slave or pay his ransom, whichever he chooses. By giving permission to trade etc., he will not be considered to have chosen the ransom. 3. Because the said admission was not valid during the master's ownership, and due to the admission itself, it had to be given to the buyer, but the effect of their admission will not be upon the master.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 किताब अल-माज़ून (अधिकृत दास का अध्याय) पृष्ठ 95**

गए, फिर ग्राहक (मुलतरी) के पास वह दासी मर गई या ग्राहक ने उसे मार डाला, तो विक्रेता (बाइ) की कीमत ग्राहक पर वाजिब होगी, लेकिन वह किसी भी तरह से मूल्य (थमन) नहीं ले सकता है।

अगर दासी की आँख चली गई या ग्राहक ने फोड़ दी, तो विक्रेता दासी को आधी कीमत के साथ वापस ले लेगा और मूल्य लेने का कोई रास्ता नहीं होगा।

यदि किसी अजनबी ने उसकी आँख फोड़ दी या उसे मार डाला, तो विक्रेता के पास विकल्प होगा: चाहे तो हत्या की स्थिति में ग्राहक की संपत्ति से तत्काल उसकी कीमत ले ले, या हत्यारे के मददगार कबीले (आकिला) से तीन साल में वसूल करे। फिर यदि वह ग्राहक से ले लेता है, तो ग्राहक उसे हत्यारे के मददगार कबीले से वसूल करेगा, और आँख फोड़ने की स्थिति में वह दासी को वापस ले लेगा। इन स्थितियों में से किसी में भी विक्रेता के पास मूल्य लेने का कोई रास्ता नहीं होगा, यह 'मबसूत' में है।

एक माज़ून (अधिकृत दास) पर पाँच सौ दिरहम का कर्ज है और स्वामी (मौला) ने माज़ून को उसके लेनदार के हाथ एक हज़ार दिरहम में बेच दिया, तो बिक्री (बय) जायज़ है। वह अपने पाँच सौ दिरहम का कर्ज काटकर शेष पाँच सौ दिरहम स्वामी को दे देगा। इस स्थान पर लेनदार के ऋण के समाप्त होने का आदेश नहीं दिया गया, यहाँ तक कि यह कहा गया कि वह अपने ऋण के पाँच सौ दिरहम निकाल लेगा, हालांकि वह माज़ून का मालिक हो गया है; यह 'मुहीत' में है।

यदि किसी माज़ून या स्वतंत्र व्यक्ति ने एक हज़ार दिरहम में एक दासी बेची और आपसी कब्ज़ा हो गया, इस शर्त के साथ कि यदि विक्रेता तीन दिनों के भीतर ग्राहक को राशि वापस कर दे तो बिक्री रद्द मानी जाएगी। फिर यदि ग्राहक ने तीन दिनों के भीतर दासी के साथ सहवास (वति) किया या उसकी आँख फोड़ दी, और फिर विक्रेता ने तीन दिनों में ग्राहक को मूल्य लौटा दिया, तो वह अपनी दासी वापस ले सकता है और सहवास के लिए 'उक्र' (मुआवज़ा) और आँख फोड़ने के लिए आधी कीमत ले सकता है। यदि तीन दिन पूरे हो गए और अभी तक मूल्य वापस नहीं किया गया, तो बिक्री पूर्ण हो जाएगी और ग्राहक पर कोई 'अर्श' (जुर्माना) या 'उक्र' अनिवार्य नहीं होगा। यदि किसी अजनबी ने ऐसा किया और फिर विक्रेता ने तीन दिनों में मूल्य लौटा दिया, तो वह अपनी दासी वापस ले सकता है। आँख फोड़ने की स्थिति में आधी कीमत चाहे ग्राहक से ले, फिर ग्राहक उस अजनबी से ले लेगा, या सीधे आँख फोड़ने वाले से ले सकता है। सहवास की स्थिति में यदि वह कुंवारी (बाकिरा)

हो, तो यही नियम है। यदि वह शादीशुदा (सय्यिबा) हो जिससे सहवास से कोई नुकसान नहीं होता, तो वह दासी वापस ले लेगा और अजनबी सहवास करने वाले से उसका 'उक्र' लेगा, और ग्राहक से लेने का कोई रास्ता नहीं है। यदि विक्रेता ने तीन दिनों में मूल्य वापस नहीं किया, तो बिक्री पूर्ण हो गई और ग्राहक सहवास करने वाले या आँख फोड़ने वाले से 'उक्र' या 'अर्श' ले लेगा। यदि स्वयं विक्रेता ने उससे सहवास किया या आँख फोड़ दी, तो बिक्री रद्द हो गई, चाहे वह उसके बाद मूल्य लौटाए या न लौटाए, वह अपनी दासी ले लेगा। यदि तीन दिन बाद विक्रेता ने ऐसा किया और मूल्य वापस नहीं किया, तो ग्राहक का उस पर 'उक्र' या 'अर्श' अनिवार्य होगा, यह 'मबसूत' में है।

'जामे' में है कि यदि स्वामी ने अपने उस दास को, जिसने अपराध (जिनायत) किया है, व्यापार की अनुमति दे दी और उस पर ऋण हो गया, या उसे गिरवी रख दिया या किराए पर दे दिया, तो इसका अर्थ यह नहीं होगा कि इस कार्य से स्वामी ने उसका जुर्माना (फिदिया) देना स्वीकार कर लिया है; यह 'ज़ख़ीरा' में है।

यदि माज़ून ने ज़ैद के हाथ एक दासी बेची और ज़ैद ने दासी की उपस्थिति में उस पर कब्ज़ा कर लिया और उस दासी की स्थिति ज्ञात नहीं हुई, फिर अम्र ने दावा किया कि यह मेरी बेटी है और ग्राहक तथा दास ने उसके दावे की पुष्टि की, तो वह दासी अम्र की बेटी मानी जाएगी और उसे दे दी जाएगी, और उन दोनों के बीच बिक्री रद्द नहीं होगी। यदि माज़ून ने उसे बक्र से खरीदकर कब्ज़ा किया हो और विक्रेता ने ऐसा इकरार कर लिया हो, तो सभी बिक्रियां रद्द हो जाएंगी और आपस में मूल्य लौटा देंगे। यदि माज़ून ने उसे बक्र से दासी की उपस्थिति में खरीदकर उस पर कब्ज़ा किया हो और वह चुप रही, कुछ इनकार नहीं किया, फिर उसने अम्र के हाथ बेच दी और मूल्य प्राप्त कर लिया, फिर ज़ैद ने दावा किया कि यह मेरी बेटी है और माज़ून, दासी तथा ग्राहक ने उसकी बात की पुष्टि की...

---

1. अर्श: जुर्माना, उक्र: सहवास का मुआवज़ा। 2. फिदिया: यानी स्वामी के लिए उक्त अपराध में दास को सौंपना या उसका जुर्माना देना अनिवार्य है, वह जो चाहे चुने। व्यापार की अनुमति आदि से वह जुर्माना चुनने वाला नहीं कहलाएगा। 3. क्योंकि उक्त स्वीकारोक्ति (इकरार) स्वामी के स्वामित्व में सही नहीं थी और केवल स्वीकारोक्ति के कारण ग्राहक को देनी पड़ी, लेकिन उनकी स्वीकारोक्ति का प्रभाव स्वामी पर नहीं होगा।

گئے پھر مشتری کے پاس وہ باندی مرگئی یا مشتری نے اس کو قتل کیا تو بائع کی قیمت مشتری پر واجب ہوگی مگر ثمن کسی راہ سے نہیں لے سکتا ہے۔

اگر باندی کی آنکھ جاتی رہی یا مشتری نے پھوڑ دی تو بائع باندی کو مع نصف قیمت واپس لے گا اور ثمن لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی۔

اگر کسی اجنبی نے اس کی آنکھ پھوڑ دی یا قتل کیا تو بائع کو اختیار ہوگا چاہے قتل کی صورت میں مشتری کے مال سے فی الحال اس کی قیمت لے لے یا قاتل کی مددگار برادری سے تین سال میں وصول کرے۔ پس اگر مشتری سے لے لے تو وہ قاتل کی مددگار برادری سے وصول کر لے گا اور آنکھ پھوڑنے کی صورت میں باندی کو واپس لے گا۔ ان صورتوں میں سے کسی صورت میں بائع کو ثمن لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی یہ مبسوط میں ہے۔

ایک ماذون پر پانچ سو درہم قرضہ ہے اور مولیٰ نے ماذون اس کے قرض خواہ کے ہاتھ ہزار درہم کو بیچا تو بیع جائز ہے اور وہ پانچ سو درہم اپنے قرضہ کے نکال کر باقی پانچ سو درہم مولیٰ کو دے دے گا پس اس مقام پر قرض خواہ کے قرضہ ساقط ہونے کا حکم نہ کیا حتیٰ کہ کہا کہ پانچ سو درہم اپنے قرضہ کے نکالے گا حالانکہ وہ ماذون کا مالک ہو گیا ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر ماذون نے یا آزاد مرد نے ہزار درہم کو ایک باندی فروخت کی اور باہمی قبضہ ہو گیا اس شرط سے کہ اگر تین روز میں بائع نے مشتری کو دام واپس کیے تو دونوں میں بیع نہیں ہے پھر مشتری نے تین روز کے اندر باندی سے وطی کی یا آنکھ پھوڑ دی پھر اگر بائع نے تین روز میں مشتری کو ثمن واپس دیا تو اپنی باندی لے سکتا ہے اور وطی میں عقر اور آنکھ پھوڑنے میں نصف قیمت

لے سکتا ہے۔ اگر تین روز پورے ہو گئے اور ہنوز ثمن واپس نہ کیا تو بیع تمام ہو جائے گی اور مشتری پر ارش یا عقر کچھ واجب نہ ہوگا۔ اگر کسی اجنبی نے ایسا کیا پھر بائع نے تین روز میں ثمن واپس دیا تو اپنی باندی واپس لے سکتا ہے اور اس کے ساتھ آنکھ پھوڑنے کی صورت میں نصف قیمت خواہ مشتری سے پھر مشتری اس اجنبی سے لے لے گا یا آنکھ پھوڑنے والے سے واپس لے سکتا ہے اور وطی کی صورت میں اگر باکرہ ہو تو یہی حکم ہے اور اگر ثیبہ ہو کہ جس کو وطی سے کچھ نقصان نہیں پہنچتا تو باندی واپس لے گا اور اجنبی وطی کنندہ سے اس کا عقر لے گا اور مشتری سے لینے کی کوئی راہ نہیں ہے اور اگر بائع نے تین روز میں ثمن واپس نہ کیا تو بیع پوری ہوگئی اور مشتری وطی کنندہ یا آنکھ پھوڑنے والے سے عقر یا ارش لے لے گا اور اگر خود بائع نے اس سے وطی کی یا آنکھ پھوڑ دی تو بیع ٹوٹ گئی خواہ اس کے بعد ثمن واپس کرے یا نہ کرے اور اپنی باندی لے لے گا اور اگر تین روز بعد بائع نے ایسا کیا اور ثمن واپس نہیں کیا ہے تو مشتری کا اس پر عقر یا ارش واجب ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔

جامع میں ہے کہ اگر مولیٰ نے اپنے غلام کو جس نے جنایت کی ہے تجارت کی اجازت دی اور اس پر قرضہ ہو گیا یار ہن یا اجرت پر دیا تو یہ نہ ہوگا کہ اس فعل سے مولیٰ اس کا فدیہ دینا اختیار کرنے والا قرار دیا جائے یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر ماذون نے زید کے ہاتھ ایک باندی فروخت کی اور زید نے باندی کے سامنے اس پر قبضہ کیا اور اس باندی کا حال معلوم نہ ہوا پھر عمرو نے دعویٰ کیا کہ یہ میری بیٹی ہے اور اس کے دعویٰ کی مشتری اور غلام نے تصدیق کی تو وہ باندی عمرو کی بیٹی قرار پا کر اس کو دے دی جائے گی اور ان دونوں میں بیع نہ ٹوٹے گی۔ اگر ماذون نے اس کو بکر سے خرید کر قبضہ کیا ہو اور بائع نے ایسا اقرار کر دیا تو سب بیوع ٹوٹ جائیں گی اور باہم ثمن واپس کرلیں گے اور اگر ماذون نے اس کو بکر سے باندی کے حضور میں خرید کر باندی پر قبضہ کیا ہو اور وہ ساکت رہی کچھ

منکر نہ ہوئی پھر عمرو کے ہاتھ فروخت کیا اور ثمن وصول کرلیا پھر زید نے دعویٰ کیا کہ یہ میری بیٹی ہے اور ماذون اور باندی اور مشتری نے اس کے قول کی تصدیق کی

---

1۔ ارش: جرمانہ، عقر: وطی کا عوض۔ 2۔ فدیہ یعنی مولیٰ پر جرم مذکور میں غلام دینا یا اس کا فدیہ دینا لازم ہے جو چاہے اختیار کرے پھر تجارت کی اجازت وغیرہ سے وہ فدیہ کا اختیار کرنے والا نہیں ٹھہرے گا۔ 3۔ کیونکہ اقرار مذکور ملک مولیٰ میں صحیح نہ ہوا اور نفس اقرار سے مشتری کو دینی پڑی مگر ان کے اقرار کا اثر مولیٰ پر نہ ہوگا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 Kitab al-Ma'zoon (The Book of the Authorized Slave) 96**

However, if Bakr denied [the claim], the slave-girl would be declared free and considered the daughter of Zaid due to the buyer's acknowledgment. Nevertheless, the sale that took place between the authorized slave (Ma'zoon) and 'Amr would not be annulled (because an acknowledgment made by a slave is legally void). Similarly, if 'Amr claimed that Bakr had manumitted her or designated her as a *mudabbara* (a slave promised freedom upon the master's death) before selling her to the Ma'zoon, and she used to bear children, and the Ma'zoon who sold her to 'Amr confirmed this, then 'Amr's acknowledgment would be valid while the Ma'zoon's acknowledgment remains void. Thus, if her freedom (*hurriyat*) was acknowledged, the slave-girl would become free, but her *wala* (rights of patronage) would remain suspended. If it was acknowledged that she was a *mudabbara* or *Umm-ul-Walad* (a slave-mother of her master's child), the matter would depend on 'Amr; if the first seller then died, she would become free. 'Amr cannot reclaim the purchase price (*thaman*) from the Ma'zoon until the Ma'zoon himself is manumitted; however, he may reclaim it once the Ma'zoon is free. This ruling applies when the Ma'zoon denies all such acknowledgments made by the buyer. The distinction, however, is that in this case, even after the Ma'zoon is freed, 'Amr cannot reclaim the price from him. Furthermore, if the buyer, i.e., 'Amr, claimed that Bakr had entered into a *mukataba* contract (a contract of manumission for a price) with her before selling her to the Ma'zoon, and the Ma'zoon either confirmed or denied this, and the slave-girl made the same claim, then the slave-girl remains the property of the buyer, i.e., 'Amr, and he may sell her if he wishes. Thus it is stated in *Al-Mabsut*.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 किताब अल-माज़ून (अधिकृत दास का अध्याय) 96**

लेकिन यदि बक्र ने इनकार किया, तो खरीदार (मुश्तरी) के स्वीकारोक्ति के कारण दासी आज़ाद मानी जाएगी और ज़ैद की बेटी ठहराई जाएगी, परंतु जो बिक्री (बय) माज़ून और अम्र के बीच हुई थी वह निरस्त नहीं होगी (क्योंकि दास की स्वीकारोक्ति शून्य/बातिल है)। इसी प्रकार यदि अम्र ने दावा किया कि बक्र ने माज़ून के हाथ बेचने से पहले उसे आज़ाद या 'मुदब्बरा' (वह दासी जिसे मालिक की मृत्यु के बाद आज़ादी का वचन दिया गया हो) कर दिया था, और वह उससे संतान उत्पन्न करती थी, और माज़ून जिसने उसे अम्र के हाथ बेचा है, उसने इसकी पुष्टि की, तो अम्र की स्वीकारोक्ति सही होगी परंतु माज़ून की स्वीकारोक्ति बातिल होगी। अतः यदि दासी की स्वतंत्रता (हुर्रियत) को स्वीकार किया गया हो, तो वह दासी आज़ाद हो जाएगी परंतु उसका 'वला' (संरक्षण का अधिकार) स्थगित रहेगा। और यदि उसके'मुदब्बरा' या 'उम्म-ए-वलद' होने की स्वीकारोक्ति की गई, तो यह अम्र पर निर्भर होगा; फिर यदि पहला विक्रेता मर गया तो वह आज़ाद हो जाएगी, और अम्र अपनी कीमत (थमन) माज़ून से तब तक वापस नहीं ले सकता जब तक कि माज़ून स्वयं आज़ाद न हो जाए। हाँ, उसके आज़ाद होने पर वह इसे वापस ले सकेगा। यह आदेश उस स्थिति में है जब माज़ून खरीदार की इन सभी स्वीकारोक्तियों से इनकार करे। लेकिन अंतर यह है कि इस स्थिति में माज़ून के आज़ाद हो जाने के बाद भी वह अपनी कीमत उससे वापस नहीं ले सकता। और यदि खरीदार यानी अम्र ने यह दावा किया कि बक्र ने माज़ून के हाथ बेचने से पहले उसे 'मुकातब' (वह दास जिसने अपनी आज़ादी के लिए मूल्य चुकाने का अनुबंध किया हो) बनाया था, और माज़ून ने इसकी पुष्टि या खंडन किया और दासी ने भी यही दावा किया, तो वह दासी खरीदार यानी अम्र की संपत्ति (ममलूका) बनी रहेगी, चाहे वह उसे बेचना चाहे। जैसा कि 'अल-मबसूद' में वर्णित है।

---

مگر بکر نے انکار کیا تو باندی بسبب اقرار مشتری کے آزاد اور زید کی بیٹی قرار پائے گی، مگر جو بیع ماذون اور عمرو کے درمیان تھی وہ منقض نہ ہوگی (لان اقرار العبد باطل) اس طرح اگر عمرو نے دعویٰ کیا کہ بکر نے ماذون کے ہاتھ فروخت کرنے سے پہلے اس کو آزاد یا مدبرہ کر دیا تھا اس سے بچہ جنتی تھی اور ماذون نے جس نے عمرو کے ہاتھ بیچی ہے اس کی تصدیق کی تو عمرو کا اقرار صحیح ہوگا مگر ماذون کا اقرار باطل ہوگا پس اگر باندی کی حریت کا اقرار کیا ہو تو وہ باندی آزاد ہو جائے گی مگر اس کی ولاء موقوف رہے گی اور اگر اس کے مدبرہ یا ام ولد ہونے کا اقرار کیا تو عمرو پر متوقف ہوگی پھر اگر بائع اول مر گیا تو آزاد ہو جائے گی اور عمرو اپنا ثمن ماذون سے تا وقتیکہ آزاد نہ ہو واپس نہیں لے سکتا ہے ہاں بر وقت آزاد ہو جانے کے واپس لے گا اور یہ حکم اس صورت میں ہے کہ جب ماذون اس سب اقرار مشتری سے منکر ہو لیکن فرق یہ ہے کہ اس صورت میں ماذون کے آزاد ہو جانے کے بعد بھی اپنا ثمن اس سے واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر مشتری یعنی عمرو نے یوں دعویٰ کیا کہ بکر نے ماذون کے ہاتھ بیچنے سے پہلے اس کو مکاتب کیا تھا اور ماذون نے تصدیق کی یا تکذیب کی اور باندی نے بھی یہی دعویٰ کیا تو وہ باندی مشتری یعنی عمرو کی مملوکہ رہے گی چاہے اس کو فروخت کرے۔ کذافی المبسوط

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 (97) Kitab al-Ghasb**

**The Book of Ghasb (Usurpation) It contains fourteen chapters.**

## Chapter One: On the Definition, Conditions, and Ruling of Ghasb, and its Supplements regarding Fungibles (Mithliyat), etc.

In the commentary (Sharah), taking a person's valued and protected property (mal-e-mutaqawwim-e-muhtaram) without the owner's permission such that if it were in the owner's possession, it is removed, and if not in possession, the owner is prevented from reaching it, is called *Ghasb* (usurpation); this is stated in *Al-Muhit*. If someone comes between a person and his property, that individual is not liable (damin) because this is not considered usurpation. If one prevents an owner from protecting his property until it is destroyed, he is not liable; this is mentioned in *Niyat al-Bai'*. According to the Great Imam (Abu Hanifa), a condition of usurpation is that the seized item must be movable property (mal-e-manqool), and this is also the final view of Imam Abu Yusuf. Thus, if someone seizes immovable property (aqar), then according to these two Imams, compensation (daman) is not mandatory; this is in *Al-Nihayah*. The ruling for usurpation is that if done intentionally, the person is a sinner and must pay a penalty (tawan). If done without knowledge—for instance, taking something believing it to be one's own, or buying property only to later discover that someone other than the seller is the rightful owner—then in such a case, paying the penalty is mandatory, but the person is not a sinner. It is mandatory upon the usurper (ghasib) to return the actual property if it still exists. If he is unable to return it—for example, if it was destroyed by his action or without his action—then if it was fungible property (mal-e-mithli), he must return its equivalent, such as measured or weighed items. If he cannot return an equivalent because that item is no longer available in the market, then according to Imam Azam, he must pay its price based on its value on the day the lawsuit (nalish) was filed. According to Imam Abu Yusuf, the price on the day of usurpation must be paid, and according to Imam Muhammad, the price on the day it ceased to be available in the market; this is according to *Al-Kafi*.

If non-fungible property (which has no equivalent) is usurped, then by consensus (ijma), the price on the day it was usurped must be paid; this is in *Siraj al-Wahaj*. The criteria for being "unavailable" (munqata') is that the item cannot be found in the market, even if it is present in people's homes; this is in *At-Tabyin*. Most scholars (mashayikh) have issued fatwas based on Imam Muhammad's view, and Burhan al-

Aimmah Sadr al-Kabir Burhan al-Din and Sadr Shahid Husam al-Din also issued fatwas based on this view. Some of our scholars have issued fatwas based on Imam Abu Yusuf's view; this is written at the end of *Kitab al-Sarf* in *Al-Kifayah*. Sadr al-Islam Abu al-Yusr wrote in the commentary of *Kitab al-Ghasb* that not every measured or weighed item is fungible (mithli); rather, among measured and weighed items, only those that are closely similar (mutaqarib) are fungible, while those that vary significantly (mutafawat)—such as watermelons and goats—are not fungible. The author of *Al-Muhit* wrote in the commentary of *Jami' Saghir* that considering measurement, weight, and count, all varying countable items (adadiyat mutafawat) are fungible, and similar ones are non-fungible (dhawatul qiyam), meaning their price must be paid. Items whose individual units differ in value are considered "varying countables" (adadi mutafawat), such as goats, and those whose individual units do not differ in value, though their types may differ, such as...

---

1. *Mutaqawwim*: Refers to protected property, unlike a carcass, etc., which is prohibited for others to interfere with.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (97) किताब अल-ग़सब**

**किताब अल-ग़सब (अपहरण/छीनने की किताब) इसमें चौदह अध्याय हैं**

## पहला अध्याय: ग़सब (अपहरण) की व्याख्या, शर्तें और हुक्म, अनुलग्नक यानी मिस्लियात (सजातीय वस्तुएं) आदि के वर्णन में

शराह में किसी व्यक्ति के माल-ए-मुतक़व्विम-ए-मुहतरम १ को उसके मालिक की अनुमति के बिना इस तरह ले लेना कि यदि वह उसके हाथ में हो तो उसके हाथ से निकल जाए और यदि हाथ में न हो तो उस चीज़ तक उसका हाथ न पहुँच सके, उसे 'ग़सब' कहते हैं; यह 'मुहीत' में है। यदि कोई व्यक्ति किसी के और उसके अधिकार (स्वामित्व) के बीच में आ जाए, तो वह व्यक्ति उत्तरदायी (ज़ामिन) नहीं होगा क्योंकि यह ग़सब नहीं है। और यदि किसी ने मालिक को उसके माल की सुरक्षा करने से रोक दिया यहाँ तक कि वह माल नष्ट हो गया, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा; यह 'नियात अल-बैया' में है। इमाम आज़म के अनुसार ग़सब की शर्त यह है कि जो चीज़ ली गई हो वह 'चल संपत्ति' (माल-ए-मनक़ूल) हो, और इमाम अबू यूसुफ का भी अंतिम विचार यही है। अतः यदि किसी व्यक्ति ने 'अचल संपत्ति' (अक़ार) ले ली, तो इन दोनों इमामों के अनुसार हरजाना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगा; यह 'निहाया' में है। ग़सब का हुक्म यह है कि यदि जान-बूझकर ऐसा किया तो वह गुनहगार हुआ और उसे दंड (तावान) देना होगा, और यदि बिना जानकारी के ऐसा किया, उदाहरण के लिए जो चीज़ ली उसे अपना माल समझकर लिया, या कोई चीज़ खरीदी और बाद में पता चला कि विक्रेता के अलावा कोई अन्य व्यक्ति उसका हकदार है, तो इस स्थिति में दंड देना अनिवार्य है परंतु वह गुनहगार नहीं होगा। ग़ासिब (अपहरणकर्ता) पर अनिवार्य है कि यदि मूल माल मौजूद हो तो वह मालिक को उसे वापस करे, और यदि वह वापस करने में असमर्थ हो, उदाहरण के लिए उसके पास उसके कृत्य से नष्ट हो गया हो या बिना उसके कृत्य के नष्ट हो गया हो, तो यदि वह 'मिस्ली' (समान वस्तु वाली संपत्ति) हो तो वैसी ही दूसरी चीज़ वापस करे जैसे मापने या तौलने वाली चीज़ें। और यदि इस कारण से वैसी ही चीज़ वापस न कर सके कि वह चीज़ उन दिनों बाज़ार में नहीं मिल रही है, तो इमाम आज़म के अनुसार जिस दिन मुक़दमा (नालिश) हुआ उस दिन के भाव से उसकी क़ीमत दे दे, और इमाम अबू यूसुफ के अनुसार ग़सब के दिन की क़ीमत, और इमाम मोहम्मद के अनुसार जिस दिन से बाज़ार से वह चीज़ मिलनी बंद हुई उस दिन की क़ीमत वापस करे; ऐसा 'अल-काफ़ी' में लिखा है।

यदि ऐसी चीज़ का ग़सब किया जिसका कोई विकल्प (मिस्ल) नहीं होता, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से जिस दिन ग़सब किया गया है उस दिन की क़ीमत देनी अनिवार्य है; यह 'सिराज अल-वहाज' में है। और 'खत्म हो जाने' (मुन्क़ता) में यही मानक है कि बाज़ार में वह चीज़ न मिलती हो, भले ही लोगों के पास घरों में मौजूद हो; ऐसा 'अत-तब्बीन' में है। अधिकांश विद्वानों (मशायिख) ने इमाम मोहम्मद के कथन पर फतवा दिया है, और बुरहान अल-आइम्मा सद्र अल-कबीर बुरहानुद्दीन और सद्र शहीद हुसामुद्दीन ने भी इसी कथन पर फतवा दिया है। हमारे कुछ मशायिख ने इमाम अबू यूसुफ के कथन पर फतवा दिया है, यह 'किफ़ाया' की 'किताब अल-सर्फ़ के अंत में लिखा है। सद्र अल-इस्लाम अबुल यसर ने 'शराह किताब अल-ग़सब' में लिखा है कि हर मापने वाली या तौलने वाली चीज़ 'मिस्ली' नहीं होती, बल्कि मापने और तौलने वाली चीज़ों में केवल वही 'मिस्ली' होती हैं जो एक-दूसरे के बहुत समान (मुतकारिब) हों, और जो भिन्न (मुतफ़ावत) हों (जैसे तरबूज़ और बकरियाँ) वे 'मिस्ली' नहीं हैं। 'साहिब अल-मुहीत' ने 'शराह जामे सगीर' में लिखा है कि माप, तौल और संख्या के आधार पर सभी भिन्न होने वाली गिनती वाली चीज़ें (अददियात मुतफ़ावत) 'मिस्ली' हैं और समान वाली 'ज़वातुल क़ियाम' (मूल्यवान) हैं, यानी उनकी क़ीमत दी जानी चाहिए। जिस चीज़ की इकाइयों में मूल्य के आधार पर अंतर हो वह 'अददी मुतफ़ावत' है जैसे बकरियाँ, और जिसकी इकाइयों में मूल्य का अंतर न हो लेकिन उनकी किस्मों में अंतर हो जैसे...

---

1. मुतक़व्विम: यानी वह सम्मानित चीज़ जो मृत पशु आदि की तरह न हो, जिस पर दूसरे का दखल हराम हो।

**کتاب الغصب اِس میں چودہ ابواب ہیں**

**باب اول: غصب کی تفسیر و شروط و حکم، ملحقات یعنی مثلیات وغیرہ کے بیان میں**

شرح میں کسی شخص کے مالِ متقومِ محترم ۱ کو بلا اجازت اس کے مالک کے اس طرح لے لینا کہ اگر اس کے ہاتھ میں ہو تو اس کے ہاتھ سے زائل ہو جائے اور اگر ہاتھ میں نہ ہو تو اس چیز تک اس کا ہاتھ نہ پہنچ سکے غصب کہتے ہیں یہ محیط میں ہے۔ اگر کسی شخص اور اس کی ملک کے درمیان کوئی شخص حائل ہو جائے تو وہ شخص ضامن نہ ہو گا کیونکہ یہ غصب نہیں ہے اور اگر کسی نے مالک کو اس کے مال کی حفاظت سے روک دیا یہاں تک کہ وہ مال تلف ہو گیا تو ضامن نہ ہو گا یہ نیا بیع میں ہے اور امام اعظم کے نزدیک غصب کی شرط یہ ہے کہ جو چیز لے لی وہ مال منقول ہو اور یہی آخر قول امام ابو یوسف کا ہے پس اگر کسی شخص نے مال غیر منقول یعنی عقار لے لیا تو ان دونوں اماموں کے نزدیک ضمان واجب نہ ہو گی یہ نہایہ میں ہے حکم غصب کا یہ ہے کہ اگر جان بوجھ کر ایسا کیا تو گنہگار ہوا اور تاوان دے اور بدون علم ایسا کیا تو مثلاً جو چیز لے لی اس کو اس گمان سے لیا کہ یہ میرا مال ہے یا کوئی مال خریدا پھر معلوم ہوا کہ سوائے بائع کے اس کا کوئی شخص غیر مستحق ہے تو اس صورت میں واجب ہے کہ تاوان دے دے اور گنہگار نہ ہو گا۔ غاصب پر واجب ہے کہ مالک کو اس کا مال بعینہ اگر موجود ہو تو واپس کرے اور اگر اس کے واپس کرنے سے عاجز ہو مثلاً اس کے پاس اس کے فعل سے تلف ہو گیا یا بدون اس کے فعل کے تلف ہو گیا پس اگر وہ مالِ مثلی ہو تو اس کا مثل واپس دے جیسے کیلی و وزنی چیزیں اور اگر مثل اس وجہ سے نہ واپس کر سکے کہ وہ چیز ان دنوں بازار میں نہیں ملتی

ہے تو امام اعظم کے نزدیک جس روز نالش ہوئی ہے اس دن کے حساب سے اس کی قیمت دے دے اور امام ابو یوسف کے نزدیک غصب کے روز کی قیمت اور امام محمد کے نزدیک جس دن سے بازار سے منقطع ہوئی اس دن کی قیمت واپس دے کذا فی الکافی۔

اگر ایسی چیز غصب کی جس کا مثل نہیں ہوتا ہے تو بالاجماع جس روز غصب کی ہے اس روز کی قیمت دینی واجب ہے یہ سراج الوہاج میں ہے اور منقطع ہو جانے میں یہی اعتبار ہے کہ بازار میں وہ چیز نہ ملتی ہو اگرچہ لوگوں کے پاس گھروں میں موجود ہو کذا فی التبیین اور اکثر مشایخ نے امام محمد کے قول پر فتویٰ دیا اور برہان الائمہ صدر الکبیر برہان الدین اور صدر شہید حسام الدین نے بھی اسی قول پر فتویٰ دیا ہے اور ہمارے بعض مشایخ نے امام ابو یوسف کے قول پر فتویٰ دیا ہے یہ کفایہ کی آخر کتاب الصرف میں لکھا ہے اور صدر الاسلام ابو الیسر نے شرح کتاب الغصب میں لکھا ہے کہ ہر کیلی چیز یا وزنی چیز مثلی نہیں ہوتی ہے بلکہ کیلی و وزنی چیزوں میں فقط وہی مثلی ہوتی ہیں جو باہم متقارب ہوں اور جو متفاوت ہوں (جیسے تربوز اور بکریاں) وہ مثلی نہیں ہیں اور صاحب المحیط نے شرح جامع صغیر میں لکھا ہے کہ کیل و وزن و عدد کے اعتبار سے تمام عددیات متفاوت سب مثلی ہیں اور متقارب سب ذوات القیم ہیں یعنی ان کی قیمت دینا چاہیے۔ جس چیز کے احاد میں باعتبار قیمت کے تفاوت ہو وہ عددی متفاوت ہے جیسے بکریاں اور جس کے احاد میں تفاوت قیمت نہ ہو ہاں اس کے انواع میں تفاوت ہو جیسے

---

۱۔ مستقوم یعنی نہ مانند مردار وغیرہ کے محترم جس پر دوسرے کی دست اندازی حرام ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (Page 98) Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

Eggplant is considered a close fungible (*mithli mutaqarib*); hence, by analogy, it appears that onions and garlic are both fungibles. If eggs are of the same kind, large and small ones are subject to the same ruling. Sheikh al-Islam Ali al-Asbijabi mentioned in *Sharh Azha* that copper and brass are both fungible, as are raisins and walnuts because they are countable items with close similarity (*adadi mutaqarib*); this is noted in *Fusul Imadiya*. Grapes are considered one genus despite different types and names, and the same ruling applies to *zabib* (dried grapes/raisins), as stated in *Fatawa Qazi Khan*.

It is mentioned in *Siyar Kabir* that if someone destroys another's cheese (*jubn*), its price must be paid as compensation. Despite cheese being a weighed item, it is not classified as fungible because it inherently possesses significant variation. If it was considered fungible in *Bay' al-Salam* (forward sale), it was only to facilitate its validity; this is in *Zakhira*. Honey is fungible, coal (*tukhm*) is fungible, but soil (*turab*) is non-fungible/valued by price (*zawat al-qiyam*). Yarn and items made from it are fungible, as noted in *Quniyah*. In the *Fatawa*, it is stated that vinegar and grape juice (*aseer*) are both fungible. Similarly, flour, bran, lime, bread, wool, flax, silk, lead, iron, henna, hair dye (*wasma*), and dried herbs are all fungible. Ice is considered fungible, though *Fatawa Rashid al-Din* elsewhere classifies it as non-fungible. According to the author of *Al-Muhit*, Imam Azam and Imam Abu Yusuf consider water to be non-fungible, while paper is fungible. Pomegranates, apples, and cucumbers are non-fungible because their individual units vary. Soap, oxymel (*sekunjabin*), and rose-petal jam are non-fungible. *Fatawa Rashid al-Din* notes that if two weighed items are mixed such that they cannot be distinguished, they cease to be fungible and become non-fungible. This is because, for example, soap may have different oil content or oxymel may have different acidity levels. If soaps are made with identical oil content, they remain fungible, and compensation must be provided in kind. Firewood and tree leaves are valued by price. Carpets and mats are non-fungible. Skins and hides, like cloth, are non-fungible. Needles are non-fungible. Fresh herbs, stalks, and wood are non-fungible. Milk is fungible, but yogurt (*janfrat*) should be non-fungible due to variations in texture and acidity. *Fatawa Qazi Zahir al-Din* states that if cooked meat is destroyed, compensation by price is mandatory by consensus. The same applies to raw meat. Meat and fat are non-fungible. If wheat is mixed with barley, the price must be paid because there is no exact like (*mithl*) for the mixture. The translator

notes that in India, a mixture of wheat and barley is known as *Gojani*; in his view, it has no exact like. Allah knows best.

In the first 'Book of Sales' of *Fatawa Qazi Khan*, it is stated that according to *Zahir al-Riwayah*, cotton is non-fungible. Silk cocoons are fungible if dried well in the sun; otherwise, they are valued by price. Some scholars stated that oils are non-fungible, while Qazi Khan stated they are fungible. Regarding bricks (raw or baked), there are two reports from Imam Azam. It should be clear that seized (*maghsoob*) property is either immovable (such as houses, land, vineyards, and mills) or movable. Movable property is either fungible (measured by volume or weight, where division does not cause harm) or countable items with close similarity, such as walnuts and coins.

बैंगन तो मिस्ली (समान वस्तु वाला) मुतकारिब है, अतः इस पर कयास (अनुमान) करने से स्पष्ट होता है कि प्याज और लहसुन दोनों मिस्ली हैं। और यदि अंडे एक ही जाति के हों, तो उनमें बड़े और छोटे का हुक्म समान है। शेख-उल-इस्लाम अली अस्बीजाबी ने 'शरह अज़हा' में लिखा है कि तांबा और पीतल दोनों मिस्ली हैं, और किशमिश तथा अखरोट भी मिस्ली हैं क्योंकि ये गिनती में एक जैसे (अददी मुतकारिब) हैं; यह 'फ़ुसूल-ए-इमादिया' में दर्ज है। अंगूर एक ही जाति है, चाहे उसकी किस्में और नाम अलग-अलग हों, और यही नियम ज़बीब (सूखे अंगूर/किशमिश) का है; यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

'सैर-ए-कबीर' में उल्लेख है कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे का पनीर (जबन) नष्ट कर दिया, तो उस पर उसकी कीमत देना अनिवार्य होगा। हालांकि पनीर वजन की जाने वाली वस्तुओं में से है, फिर भी इसे मिस्ली नहीं माना गया क्योंकि इसमें स्वाभाविक रूप से स्पष्ट अंतर होता है। यदि 'बय-ए-सल्लम' (अग्रिम भुगतान बिक्री) में इसे मिस्ली माना गया है, तो वह केवल उसकी वैधता के लिए है; यह 'ज़खीरा' में है। शहद मिस्ली है, कोयला (तुख्म) मिस्ली है, और मिट्टी 'ज़वात-उल-क़यम' (कीमती/अद्वितीय) है। सूत मिस्ली है और सूत से बनी वस्तुएं भी मिस्ली हैं; यह 'कुनिया' में है। फ़तावा में है कि सिरका और अंगूर का रस दोनों मिस्ली हैं। इसी तरह आटा, चोकर, चूना, रोटी, सूत, ऊन, पटसन, रेशम, सीसा, लोहा, मेंहदी, वसमा और सूखी घास आदि सभी मिस्ली हैं। बर्फ भी मिस्ली है, हालांकि 'फ़तावा रशीद-उद-दीन' में अन्य स्थान पर इसे कीमती (क़ीमी) लिखा गया है। 'फ़वाइद साहिब-उल-मुहीत' के अनुसार, इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ के निकट पानी 'ज़वात-उल-क़यम' में से है और काग़ज़ मिस्ली है। अनार, सेब, खीरा, ककड़ी और खरबूजा, इन सबके दाने अलग-अलग होते हैं, अतः ये सब 'ज़वात-उल-क़यम' हैं। साबुन, शिकंजी और गुलकंद भी 'ज़वात-उल-क़यम' हैं। 'फ़तावा रशीद-उद-दीन' में लिखा है कि दो वजन वाली चीज़ें जिन्हें इस तरह मिला दिया जाए कि उन्हें अलग न किया जा सके, तो वे मिस्ली नहीं रहेंगी और 'ज़वात-उल-क़यम' बन जाएँगी। यह नियम इसलिए है क्योंकि उदाहरण के तौर पर एक साबुन में तेल कम और दूसरे में अधिक हो सकता है, या शिकंजी में सिरके की मात्रा भिन्न हो सकती है। यदि साबुन एक ही तेल से बनाए गए हों, तो वे मिस्ली रहेंगे और नष्ट किए गए साबुन के बदले वैसा ही साबुन हर्जाने (ज़मान) में दिया जाएगा। ईंधन की लकड़ी और पेड़ों के पत्ते कीमती हैं। कालीन, चटाई और बोरिया भी 'ज़वात-उल-क़यम' हैं। खालें भी कपड़े की तरह 'ज़वात-उल-क़यम' हैं। सुई भी इसी श्रेणी में आती है। ताज़ी सब्जियाँ, साग और

लकड़ियाँ 'ज़वात-उल-क़यम' हैं। दूध मिस्ली है, लेकिन दही (जनफ़रात) 'ज़वात-उल-क़यम' होना चाहिए क्योंकि इसमें खटास और गाढ़ेपन का अंतर होता है। 'फ़तावा काज़ी ज़हीर-उद-दीन' में लिखा है कि पका हुआ मांस नष्ट करने पर सर्वसम्मति से उसकी कीमत का हर्जाना देना होगा। कच्चा मांस भी यही नियम रखता है। मांस और चर्बी 'ज़वात-उल-क़यम' हैं। यदि गेहूं और जौ को मिला दिया जाए, तो कीमत देना अनिवार्य होगा क्योंकि उसका कोई समान (मिस्ल) उपलब्ध नहीं है। अनुवादक का कहना है कि भारत में गेहूं और जौ का मिश्रण 'गोजनी' के नाम से प्रसिद्ध है, मेरे विचार में इसका कोई समान मिस्ल नहीं होगा। अल्लाह बेहतर जानता है।

'फ़तावा काज़ी खान' की पहली किताब 'बय' में है कि ज़ाहिर-उर-रिवाया के अनुसार रुई 'ज़वात-उल-क़यम' में से है। रेशम के कोयों को यदि अच्छी तरह धूप में सुखाया गया हो तो वे मिस्ली हैं, अन्यथा कीमती हैं। कुछ विद्वानों ने कहा कि तेल 'ज़वात-उल-क़यम' है, जबकि काज़ी खान ने इसे मिस्ली कहा है। कच्ची और पकी ईंटों के मिस्ली होने के बारे में इमाम-ए-आज़म से दो रिवायतें हैं। स्पष्ट रहे कि छीना हुआ (मग़सूब) माल या तो अचल (ग़ैर-मनक़ूला) होगा जैसे घर, ज़मीन, बाग और चक्की आदि, या चल (मनक़ूला) होगा। चल संपत्ति में या तो वह मिस्ली होगी (जैसे नापी जाने वाली या तोली जाने वाली चीज़ें जिन्हें बांटने से नुकसान न हो) या फिर ऐसी चीज़ें जिनकी गिनती में समानता हो जैसे अखरोट और सिक्के आदि।

---

بادنجان تو مثلی متقارب ہے پس اس پر قیاس کرنے سے ظاہر ہوتا ہے کہ پیاز و لہسن دونوں مثلی ہیں اور اگر انڈے ایک جنس کے ہوں تو اس میں بڑا و چھوٹا یکساں حکم میں ہے۔ اور شیخ الاسلام علی اسپیجابی نے شرح اضح میں لکھا ہے کہ نحاس و صفر دونوں مثلی ہیں اور کشمش و اخروٹ سب مثلی ہیں کیونکہ یہ عددی متقارب ہیں یہ فصول عمادیہ میں ہے۔ انگور ایک جنس ہے اگرچہ اس کے انواع و اسماء مختلف ہیں اور یہی حکم زبیب (خشک انگور) کا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

سیر کبیر میں مذکور ہے کہ اگر کسی شخص نے دوسرے کا جبن تلف کیا تو اس پر قیمت واجب ہوگی پس باوجود اس کے کہ جبن موزونات میں سے ہے اس کو مثلی نہیں قرار دیا کیونکہ اس میں فی نفسہ کھلا ہوا تفاوت ہوتا ہے اگر بیع سلم میں جواز کے واسطے اس کو مثلی اعتبار کیا ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ شہد مثلی ہے اور تخم یعنی کوئلہ مثلی ہے اور تراب یعنی مٹی ذوات القیم ہے اور سوت مثلی ہے اور جو چیز سوت سے تیار ہوتی ہے وہ بھی مثلی ہے یہ قینہ میں ہے۔ فتاویٰ میں ہے کہ سرکہ اور عصیر (شیرہ انگور) دونوں مثلی ہیں اسی طرح آٹا اور چوکر اور گنج اور چونا اور روٹی اور اس کا سوت اور صوف اور اس کا سوت اور سب طرح کا تبن (بھوسہ) اور کتان و ابریشم و رصاص و حدید شبیہ و حنا و وسمہ اور جس قدر خشک ریا میں ہیں سب مثلی ہیں اور برف مثلی ہے اور فتاویٰ رشید الدین میں دوسرے مقام پر لکھا ہے کہ برف قیمی ہے اور فوائد صاحب المحیط میں ہے کہ امام اعظم و امام ابو یوسف کے نزدیک پانی ذات القیم میں سے ہے اور کاغذ مثلی ہے اور انار و سیب و کھیرا و ککڑی و خربوزہ سب کے احاد متفاوت ہوتے ہیں پس سب ذوات القیم ہیں اور صابون و سکنجبین و گلقتند ذوات القیم میں سے ہیں اور فتاویٰ رشید الدین میں

لکھا ہے کہ ہر دو وزنی چیزیں جو باہم اسی طرح مخلوط کی جائیں کہ ان میں تمیز نہ ہو سکے تو مثلی نہ رہے گی اور ذوات القیم میں سے ہو جائے گی اور یہ حکم اس واسطے ہے کہ مثلاً ایک صابون میں روغن کم اور دوسرے میں زیادہ ہوتا ہے ایک سکنجبین میں سرکہ زیادہ اور دوسری میں سرکہ کم ہوتا ہے حتیٰ کہ اگر دونوں صابون مثلاً ایک ہی روغن سے بنائے گئے ہوں تو مثلی رہیں گے اور جس قدر صابون تلف کیا ہے اسی قدر یعنی اس کے مثل ضمان دے گا اور گور بزات القیم میں سے ہے اور ہیزم (ایندھن) اور درختوں کے پتے سب قیمتی ہیں اور بساط و حصیر و بور یہ واس کے امثال سب ذوات القیم ہیں اور آدم و حرم و جلود سب مثل کپڑے کے ذوات القیم ہیں اور سوئی ذوات القیم میں سے ہوتی ہے اور ریاحین تازہ بقول (ساگ) وقصب و حسب یعنی لکڑیاں ذوات القیم ہیں اور دودھ مثلی ہے اور جنفرات (دہی) ذوات القیم میں سے ہونا چاہیے کیونکہ اس میں باعتبار چٹکی و ترشی کے تفاوت ہوتا ہے فتاویٰ قاضی ظہیر الدین کی بیوع میں لکھا ہے کہ اگر گوشت پختہ ہو تو بالا جماع بعد ی تلف کرنے سے باعتبار قیمت کے اس کی ضمان واجب ہوتی ہے اور اگر خام ہو تو بھی یہی حکم ہے اور یہی صحیح ہے کذا فی الفصول العمادیہ اور گوشت و چربی و چکنی ذوات القیم ہیں کذا فی القنیہ اور اگر گیہوں جو کے ساتھ مخلوط کر دیے تو قیمت واجب ہوگی کیونکہ اس کا مثل نہیں ہے کذا فی الہدایہ قال المترجم اور ہندوستان میں گیہوں اور جو مخلوط جو گوجنی کے نام سے معروف ہے میرے نزدیک اس کا مثل نہ ہوگی۔ واللہ اعلم۔

فتاویٰ قاضی خان کی اول کتاب البیوع میں ہے کہ ظاہر الروایہ کے موافق روئی ذوات القیم میں سے ہے کذا فی الفصول العمادیہ۔ قال رضی اللہ عنہ کرم پیلہ یعنی ابریشم کے ساتھ اگر خوب دھوپ دیا گیا تو مثلی ہے اور اگر خوب نہ سوکھا ہو تو قیمتی ہے یہ قنیہ میں ہے اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ روغنیں ذات القیم میں سے ہے اور قاضی خان نے فرمایا کہ مثلی ہے یہ فصول عمادیہ میں ہے۔ خشت خام و پختہ کے مثلی ہونے میں امام اعظم سے دو روایتیں ہیں کذا فی القنیہ اور

واضح ہو کہ مغصوب مال ضرور ہے کہ یا تو غیر منقول ہوگا جیسے دار وارض و کرم یعنی باغ انگور و طاحونہ وغیرہ یا منقول ہو گا اور منقول میں ضرور ہے کہ یا تو مثلی ہو گا جیسے کیلی چیزیں اور وزنی چیزیں کہ جن کی صبیحیں یعنی ٹکڑے کرنے میں ضرر نہیں ہے یعنی غیر مصوغ ہوں اور عددی متقارب جیسے اخروٹ اور فلوس وغیرہ عددیات جن کے آحاد

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 99 Book of Seizure (Kitab al-Ghasb)**

... are not dissimilar, or they will be non-fungible (*ghair-mithli*), such as animals and agricultural products measured by length (yards), and non-approximate countable items, i.e., variable items like melons, seeds, etc., and items sold by weight whose fragmentation is harmful, like manufactured goods. Thus, if the seized property (*mal-e-maghsub*) is immovable, such as a house, landed property, or shop, and it is destroyed by a natural calamity, or washed away by a flood, or if buildings and trees are carried away by water, or if a field is submerged under silt, making the land defective and ruined under water, then according to the opinion of Imam Azam (Abu Hanifa) and the later opinion of Imam Abu Yusuf, the usurper (*ghasib*) will not be liable for compensation (*zaman*). This is stated in *Sharh al-Tahawi* and is correct. It is also in *Jawahir al-Akhlati*. However, if these damages occurred due to the action of some person, then the one who caused the destruction will be liable for compensation; this is the opinion of Imam Azam and Imam Abu Yusuf. There is a difference of opinion on this. If these damages occurred specifically due to the usurper's actions or residency, then by consensus (*ijma*), he will be liable for compensation. It is written in '*Zad*' that the correct opinion is that of Imam Azam and Imam Abu Yusuf; this is mentioned in *Al-Mudmarat*.

If any loss occurred due to the usurper's residency and cultivation, he will be liable for the extent of the loss by consensus, similar to movable property. There is a difference in the interpretation of loss. Sheikh Nasir bin Yahya stated that loss should be determined by comparing how much the land could be leased for before use and how much it could be leased for after use. The difference between the two is the loss for which he is liable. This is in *Al-Tabyin* and this is most appropriate (*alyaq*), and the fatwa is based on this; it is in *Al-Kubra*. Furthermore, the usurper shall take from the agricultural produce an amount equal to his capital investment, i.e., the seeds, the compensation paid for the loss, and cultivation expenses, and distribute the rest as charity according to Imam Azam and Imam Abu Yusuf. For instance, if he usurped a piece of land and sowed two yards' worth of wheat, and eight yards' worth was produced, and the expenses incurred were one yard's worth, and he paid one yard's worth as compensation for the loss, he will take four yards out of the eight and give the remaining as charity. This is in *Al-Tabyin*. One person sleeping on another's bedding or sitting on another's floor will not be considered a usurper because, according to Imam Azam, the usurpation of movable property is not established without moving or transferring it. Thus, as long as he does not destroy it by his

action, he will not be liable; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If Amr put Zaid's slave to work, it is considered usurpation, such that if the slave dies due to that work, Amr will be liable for his price, whether he knew the person was another's slave or not—for example, if the slave claimed to be free and asked for work, and Amr hired him. This rule applies when the slave was put to any of his (Amr's) tasks; if he was not put to any task, he would not be a usurper; this is in *Al-Zakheerah*. If Zaid said to Amr's slave, "Climb this tree and shake down raisins for yourself to eat," and the slave fell and died, Zaid would not be liable. But if he said, "Shake them down for me to eat," with the rest of the circumstances the same, he would be liable. This is in *Al-Muheet* and *Fatawa Qazi Khan*. If one told a minor, "Break this wall," and he did so and died in the process, the person would not be liable. But if he said, "Break this wall for me," he would be liable by consensus. If someone told a boy, "Climb this tree and pick fruit for me," and he climbed and ate a fruit there that got stuck in his throat and he died, the one who gave the order would not be liable because the minor's action (eating) became an intervening cause (opposing his command); this is in *Al-Usool al-Wajiba* by Muhammad bin Mahmud bin al-Hasan al-Ashtrushni. If someone led an animal by its bridle, or drove it, or rode it, or loaded something on it without the owner's permission, he will be liable whether the animal died from that service or otherwise. This is in *Al-Niabi'* and *Fusul-e-Imadiya*.

**Chapter Two: Regarding changes occurring in seized property due to the action of the usurper or someone else.** If the seized property itself was altered by the action of the usurper to the extent that its name and its entire utility changed, then the ownership of the one from whom it was seized...

---

1. *Alyaq*: More suitable and appropriate.

मुतफावित (असमान) नहीं हैं या ग़ैर-मिस्ली होगा जैसे हैवानात व जरइयात यानी गज़ों से नापने की चीजें और अददयात ग़ैर-मुतक़ारिब यानी अददी मुतफावित जैसे खरबूजा दाना वगैरह और वज़नी चीजें जिनके टुकड़े करने में ज़रर है मसूग़ (ढला हुआ)। पस अगर माले-मग़सूब (छीना हुआ माल) ग़ैर-मनक़ूला (अचल संपत्ति) हो जैसे दार (घर) व अक़ार (ज़मीन) व हानूत (दुकान) वगैरह और वह आसमानी किसी आफ़त से मुनहदिम (ध्वस्त) हो गया या पानी की बाढ़ आई और इमारत व दरख़्त वगैरह बहा ले गई या किसी ज़मीन पर सैलाब चढ़ गया, जिससे ज़मीन नाक़िस (खराब) हो गई और पानी के नीचे बर्बाद हो गई, तो कौले-इमाम-ए-आज़म (रह.) व आख़िर कौले-इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के मुवाफ़िक़ ग़ासिब पर ज़मान (हर्जाना) वाजिब न होगी। कज़ा फ़ी शरहुल-तहवी और यही सही है। कज़ा फ़ी जवाहिबुल-अख़्लाती। और अगर ये चीजें किसी शख़्स के फ़ेल (कार्य) से हादिस (घटित) हुई हों, तो उस तलफ़ (नष्ट) करने वाले पर ज़मान वाजिब होगी, ये इमाम-ए-आज़म (रह.) व इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) का कौल है। पस इसमें इख़्तिलाफ़ (मतभेद) है। और अगर ये चीजें ख़ुद ग़ासिब के फ़ेल और उसकी सुकूनत (रहने) से हादिस हुई हों, तो बिल-इज्मा (सर्वसम्मति से) उसी पर ज़मान वाजिब होगी और ज़ाद में लिखा है कि सही कौल इमाम-ए-आज़म (रह.) व इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) का है, ये मुज़मिरात में है।

अगर ग़ासिब की सुकूनत व ज़राअत से कुछ नुक़सान आया तो मिस्ल माले-मनक़ूला (चल संपत्ति की तरह) के बिल-इज्मा बक़दरे-नुक़सान के ज़ामिन होगा। और नुक़सान की तफ़्सीर में इख़्तिलाफ़ है। शैख़ नसीर बिन यह्या (रह.) ने फ़रमाया कि नुक़सान यों दरयाफ़्त (ज्ञात) किया जाए कि ये ज़मीन इस्तिमाल से पहले कितने पर इजारा (किराए) पर होती थी और इस्तिमाल के बाद कितने पर इजारा हुई है। पस जिस क़दर तफ़ावुत (अंतर) हो वही नुक़सान है, उसका ज़ामिन होगा। कज़ा फ़ी अल-तबीन और यही अलयक़ (अधिक उपयुक्त) है और इसी पर फ़तवा है, ये कुबरा में है। फिर ग़ासिब पैदावार-ए-ज़राअत में से बक़दरे-अपने रास-उल-माल यानी बीज और ज़माने-नुक़सान व ख़र्चा-ए-ज़राअत के लेकर बाक़ी को इमाम-ए-आज़म (रह.) व इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के नज़दीक सदक़ा कर देगा। पस अगर उसने एक ज़मीन ग़सब की और उसमें दो गज़ गेहूं बोये और आठ गज़ पैदा हुए और बक़दरे-एक गज़ के उस पर ख़र्चा पड़ा और उसने एक गज़ ज़माने-नुक़सान दिया, तो आठ गज़ में से चार गज़ लेकर बाक़ी सदक़ा कर देगा, ये तबीन में है। एक शख़्स दूसरे के बिछौने पर सोया, दूसरे के फ़र्श पर बैठा तो ग़ासिब न होगा क्योंकि इमाम-ए-आज़म (रह.) के नज़दीक माले-मनक़ूला

का ग़सब बिना नक़्ल व तहवील (जगह बदलने) के मुतहक़्क़िक (सिद्ध) नहीं होता है। पस जब तक अपने फ़ेल से उसको तलफ़ न करे तब तक ज़ामिन न होगा, ये फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। जैद के ग़ुलाम को अम्र ने अपने काम में लगाया तो ये ग़सब है हत्ताकि (यहाँ तक कि) अगर उस फ़ेल से मर गया तो अम्र उसकी क़ीमत का ज़ामिन होगा, ख़्वाह ये जानता हो कि ये शख़्स ग़ैर का ग़ुलाम है या न जानता हो, मसलन ग़ुलाम ने आकर कहा कि मैं आज़ाद हूँ मुझे मज़दूर कर ले और अम्र ने मज़दूर कर लिया। और ये हुक्म उस वक़्त है कि अपने कामों में से किसी काम में लगाया हो और अगर अपने किसी काम में न लगाया हो तो ग़ासिब न होगा, ये ज़ख़ीरा में है। अगर जैद ने अम्र के ग़ुलाम से कहा कि तू इस दरख़्त पर चढ़ कर इसमें से किशमिश झाड़ ताकि तू खाए और वह दरख़्त से गिर कर मर गया तो जैद ज़ामिन न होगा और अगर कहा कि मेरे खाने के वास्ते झाड़ और बाक़ी मसला बहाल रहे तो ज़ामिन होगा। कज़ा फ़ी अल-मुहीत व कज़ा फ़ी फ़तावा क़ाज़ी ख़ान। और अगर ना-बालिग़ से कहा कि ये दीवार तोड़ दे, उसने ऐसा ही किया और उस काम में मर गया तो ज़ामिन न होगा। और अगर कहा हो कि मेरे वास्ते इस दीवार को तोड़ दे, तो बिल-इज्मा ज़ामिन होगा। और अगर लड़के से कहा कि इस दरख़्त पर चढ़ कर मेरे वास्ते फल तोड़ दे, वह चढ़ गया और वहां उसने एक फल खाया जो उसके हलक़ में अटक रहा और वह मर गया, तो हुक्म देने वाला ज़ामिन न होगा क्योंकि फ़ेले-ना-बालिग़ उसके कौल का मुआरिज़ (विरोधी) हो गया, ये उहूदुल वाजिबा मुहम्मद बिन महमूद बिन अल-हसन अल-अश्तरुशनी में है। अगर किसी चौपाये की नकेल थाम कर ले चलाया या हंकाया, सवार हुआ और उस पर कुछ लाद दिया और ये सब मालिक की बिला-इजाज़त किया तो ज़ामिन होगा, ख़्वाह वह चौपाया उस ख़िदमत से मरा हो या दूसरी तरह मरा हो, ये नवाबिए व फ़सूल-ए-इमादिया में है।

**बाब दुवम: ग़ासिब या ग़ैर के फ़ेल से माले-मग़सूब मुतग़य्यर (परिवर्तित) हो जाने के बयान में**

अगर ऐने-मग़सूब ग़ासिब के फ़ेल से मुतग़य्यर हो गई हत्ताकि उसने उसका नाम और पूरी मन्फ़अत (लाभ/उपयोगिता) बदल दी तो उससे मग़सूब मिन्हु (जिससे छीना गया) की मिल्कियत...

१ अलयक़: अधिक उपयुक्त और सही है।

---

متفاوت نہیں ہیں یا غیر مثلی ہوگا جیسے حیوانات و ذرعیات یعنی گزوں سے ناپنے کی چیزیں اور عددیات غیر متقارب یعنی عددی متفاوت جیسے خربوزہ دانہ وغیرہ اور وزنی چیزیں جن کے ٹکڑے کرنے میں ضرر ہے مصوغ پس اگر مال مغصوب غیر منقول ہو جیسے دار و عقار و حانوت وغیرہ اور وہ آسمانی کسی آفت سے منہدم ہو گیا یا پانی کی بہہ آئی اور عمارت و درخت وغیرہ بہا لے گئی یا کسی زمین پر سیل چڑھ گئی۔ جس سے زمین ناقص ہو گئی اور پانی کے نیچے برباد ہو گئی تو قول امام اعظمؒ و آخر قول امام ابو یوسفؒ کے موافق غاصب پر ضمان واجب نہ ہو گی کذا فی شرح الطحاوی اور یہی صحیح ہے کذا فی جواہر الاخلاطی اور اگر یہ چیزیں کسی شخص کے فعل سے حادث ہوئی ہوں تو اس تلف کرنے والے پر ضمان واجب ہو گی یہ امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کا قول ہے پس اس میں اختلاف ہے اور اگر یہ چیزیں خود غاصب کے فعل اور اس کی سکونت سے حادث ہوئی ہوں تو بالاجماع اسی پر ضمان واجب ہو گی اور زاد میں لکھا ہے کہ صحیح قول امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کا ہے یہ مضمرات میں ہے۔

اگر غاصب کی سکونت و زراعت سے کچھ نقصان آیا تو مثل مال منقول کے بالاجماع بقدر نقصان کے ضامن ہو گا اور نقصان کی تفسیر میں اختلاف ہے شیخ نصیر بن یحییٰؒ نے فرمایا کہ نقصان یوں دریافت کیا جائے کہ یہ زمین قبل استعمال کے کتنے پر اجارہ ہوتی تھی اور بعد استعمال کے کتنے پر اجارہ ہوئی ہے پس جس قدر تفاوت ہو وہی نقصان ہے اس کا ضامن ہو گا کذا فی التبیین اور یہی الیق۱ ہے اور اسی پر فتویٰ ہے یہ کبریٰ میں ہے۔ پھر غاصب پیداوار زراعت میں سے بقدر اپنے راس المال یعنی بیج اور ضمان نقصان و خرچہ و زراعت کے لے کر باقی کو امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک صدقہ کر دے گا پس اگر اس نے ایک زمین غصب کی اور اس میں

دو گز گیہوں بوئے اور آٹھ گز پیدا ہوئے اور بقدر ایک گز کے اس پر خرچہ پڑا اور اس نے ایک گز ضمان نقصان دیا تو آٹھ گز میں سے چار گز لے کر باقی صدقہ کر دے گا یہ تبین میں ہے۔ ایک شخص دوسرے کے بچھونے پر سویا دوسرے کے فرش پر بیٹھا تو غاصب نہ ہو گا کیونکہ امام اعظمؒ کے نزدیک مال منقول کا غصب بدون نقل و تحویل کے متحقق نہیں ہوتا ہے پس جب تک اپنے فعل سے اس کو تلف نہ کرے تب تک ضامن نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ زید کے غلام کو عمرو نے اپنے کام میں لگایا تو یہ غصب ہے حتیٰ کہ اگر اس فعل سے مر گیا تو عمرو اس کی قیمت کا ضامن ہو گا خواہ یہ جانتا ہو کہ یہ شخص غیر کا غلام ہے یا نہ جانتا ہو مثلاً غلام نے آکر کہا کہ میں آزاد ہوں مجھے مزدور کر لے اور عمرو نے مزدور کر لیا اور یہ حکم اس وقت ہے کہ اپنے کاموں میں سے کسی کام میں لگایا ہو اور اگر اپنے کسی کام میں نہ لگایا ہو تو غاصب نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر زید نے عمرو کے غلام سے کہا کہ تو اس درخت پر چڑھ کر اس میں سے کشمش جھاڑتا کہ تو کھائے اور وہ درخت سے گر کر مر گیا تو زید ضامن نہ ہو گا اور اگر کہا کہ میرے کھانے کے واسطے جھاڑ اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو ضامن ہو گا کذا فی المحیط و کذا فی فتاویٰ قاضی خان اور اگر نابالغ سے کہا کہ یہ دیوار توڑ دے اس نے ایسا ہی کیا اور اس کام میں مر گیا تو ضامن نہ ہو گا اور اگر کہا ہو کہ میرے واسطے اس دیوار کو توڑ دے تو بالاجماع ضامن ہو گا اور اگر لڑکے سے کہا کہ اس درخت پر چڑھ کر میرے واسطے پھل توڑ دے وہ چڑھ گیا اور وہاں اس نے ایک پھل کھایا جو اس کے حلق میں اٹک رہا اور وہ مر گیا تو حکم دہندہ ضامن نہ ہو گا کیونکہ فعل نابالغ اس کے قول کا معارض ہو گیا یہ اس اسولہ واجبہ محمد بن محمود بن الحسن الاشتروشنی میں ہے۔ اگر کسی چوپایہ کی نکیل تھام کر لے چلایا یا ہنکایا سوار ہوا اور اس پر کچھ لاد دیا اور یہ سب مالک کی بلا اجازت کیا تو ضامن ہو گا خواہ وہ چوپایہ اس خدمت سے مرا ہو یا دوسری طرح مرا ہو یہ نیابیع و فصول عمادیہ میں ہے۔

**باب دوم: غاصب یا غیر کے فعل سے مال مغصوب متغیر ہو جانے کے بیان میں** اگر عین مغصوب یہ بفعل غاصب متغیر ہوگئی حتیٰ کہ اس نے اس کا نام اور پوری منفعت بدل دی تو اس سے مغصوب منہ کی ملک

۱ الیق زیادہ لائق و مناسب ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 100 Kitab al-Ghasab (Book of Usurpation)**

...will cease to exist, and the usurper (Ghasib) will become its owner and liable for it, but deriving benefit from it is not lawful (halal) until he pays the compensation for it. This is in 'al-Hidayah'. If the usurped property (Maghsoob) becomes defective in the hands of the usurper, he shall be liable to the extent of the loss; hence, he shall return the property to the original owner (Maghsoob minhu) along with the compensation for the loss. However, if the loss was caused by the act of someone other than the usurper, the owner has the option to either take compensation from the usurper—and the usurper may then recover it from the third party—or take the indemnity from the third party, and the third party cannot recover it from the usurper. If the usurped item increases in value while with the usurper, the owner has the right to take it back along with the increase. This is in 'al-Khulasah'. If a piece of cloth belongs to the usurper, or if the owner takes his cloth and pays the usurper the amount by which the value increased due to the dye, or if the cloth is sold, the owner shall share in the sale proceeds (thaman) according to the price of the white (undyed) cloth, and the usurper shall share according to the increase caused by the dye. This is in 'al-Mabsut'.

If one person's cloth falls into another's dye and becomes colored, the owner has the choice to either pay for the dye or sell the cloth, in which case both will share the proceeds according to their respective rights. This is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. If a usurper dyes the usurped cloth black, Imam al-A'zam (Abu Hanifah) said that black dye causes a loss in value for the cloth. Thus, the owner has the choice to either leave it with the usurper and take the price of his white cloth as indemnity, or take the cloth and receive compensation for the loss. Imams Abu Yusuf and Muhammad said that black dye is also considered an increase (value addition), and its ruling is the same as that for 'Asfar' (safflower/yellow-orange dye), as stated in 'Sharh al-Tahawi'. The correct view is that there is no actual disagreement, as Imam al-A'zam's fatwa was issued at a time when black dye was considered a defect or caused loss, whereas the fatwa of the Sahibayn (his two disciples) was issued when black dye was considered value-enhancing. Therefore, it is obligatory to respect custom and usage ('Irf wa 'Adat) regarding colors. This is in 'al-Mudmarat'. If the cloth is of a type where the dye causes a loss—for example, if the value was thirty dirhams and after dyeing it becomes twenty—it is narrated from Imam Muhammad that consideration should be given to such cloth where the dye increases the value. If, for instance, there is an increase of five dirhams, the owner will take his cloth plus five dirhams. This is in 'al-

Tabyin'. If the owner of a cloth usurps 'Asfar' and dyes his own cloth with it, he shall pay an indemnity equivalent to the Asfar. This is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. Zaid usurped cloth from Amr and Asfar from Bakr and dyed the cloth with it. If both appear and claim it, the owner of the Asfar will hold the cloth until he is paid an equivalent of his Asfar; if an equivalent is not found, its price shall be paid. In this situation, by consensus (Ijma'), the ruling for black dye is the same as other colors. If Zaid usurped cloth from Amr and dye from Bakr, and possession could not be regained, then by legal preference (Istihsan), the ruling is that if the owner of the cloth takes it, he shall compensate the owner of the dye for the increase in value caused by the dye, or he may choose to sell the cloth. Then, in the sale proceeds, the owner of the cloth shall share according to the price of white cloth, and the owner of the dye shall share according to the price of the dye. This is in 'al-Mabsut'. If the cloth and Asfar were usurped from the same person and dyed, the owner has the choice to take the dyed cloth, and the usurper is absolved of liability, or he may take the price of white cloth and an equivalent of his Asfar. This is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'.

If the Asfar belongs to Zaid and the cloth to Amr, and both agree to take the dyed cloth, they shall not have this right except for the cloth... [This is not so. I say: this is how reconciliation was given, but the correct view is that there is a difference in legal reasoning (Ijtihad), and the school's position is that custom and usage ('Irf wa 'Adat) should be considered in this matter.]

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 100 किताबुल ग़सब (छीनी हुई चीज़ों का अध्याय)**

...समाप्त हो जाएगी और ग़ासिब (हड़पने वाला) उसका मालिक होगा और उसका ज़ामिन (ज़िम्मेदार) होगा, लेकिन उससे लाभ उठाना तब तक हलाल नहीं है जब तक कि वह उसका मुआवज़ा (क्षतिपूर्ति) अदा न कर दे। यह 'हिदाया' में है। और यदि ग़सब की गई संपत्ति ग़ासिब के हाथ में दोषपूर्ण (नुकसान वाली) हो गई, तो ग़ासिब नुकसान की सीमा तक उत्तरदायी होगा। अतः वह संपत्ति नुकसान के मुआवज़े के साथ मालिक को वापस करेगा। लेकिन यदि नुकसान ग़ासिब के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के कृत्य से हुआ हो, तो मालिक को अधिकार होगा कि वह चाहे तो ग़ासिब से हर्जाना ले, और ग़ासिब उसे उस तीसरे व्यक्ति से वापस ले ले या उससे मुआवज़ा ले; और वह तीसरा व्यक्ति उसे ग़ासिब से वापस नहीं ले सकता। और यदि ग़सब की गई चीज़ ग़ासिब के पास रहते हुए बढ़ गई (मूल्यवान हो गई), तो मालिक को अधिकार है कि वह बढ़ी हुई चीज़ के साथ उसे वापस ले ले। यह 'ख़ुलासा' में है। यदि कोई कपड़ा ग़ासिब का हो, या अपना कपड़ा लेकर ग़ासिब को उतने दिरहम दे दे जितनी रंग के कारण मूल्य में वृद्धि हुई है, या उसके कपड़े को बेच दे, तो उसकी बिक्री की राशि (थमन) में मालिक सादे (सफेद) कपड़े की कीमत के अनुपात में और ग़ासिब रंग द्वारा हुई वृद्धि के अनुपात में भागीदार होगा। यह 'मबसूत' में है।

यदि एक व्यक्ति का कपड़ा दूसरे व्यक्ति के रंग में गिर गया और वह रंग गया, तो मालिक को अधिकार होगा कि वह उसे रंग के दाम दे दे या कपड़ा बेच दे; बिक्री की राशि में दोनों अपने अधिकार के अनुसार भागीदार होंगे। यह 'मुहीत सरख़सी' में है। यदि ग़ासिब ने ग़सब किए हुए कपड़े को काले रंग में रंगा, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) रह. ने फ़रमाया कि काले रंग से कपड़े की कीमत में कमी (नुकसान) आती है। अतः मालिक को अधिकार होगा कि चाहे तो कपड़ा ग़ासिब के पास ही छोड़ दे और उससे अपने सादे कपड़े की कीमत हर्जाने के रूप में ले ले, या कपड़ा लेकर उससे हुए नुकसान का मुआवज़ा ले ले। और इमाम अबू यूसुफ़ रह. व इमाम मोहम्मद रह. ने फ़रमाया कि काला रंग भी मूल्य में वृद्धि है, अतः उसका वही नियम है जो 'असफ़र' (केसरिया/कुसुम रंग) का है, जैसा कि 'शह-अल-तहावी' में वर्णित है। सही बात यह है कि वास्तव में इनके बीच कोई मतभेद नहीं है, क्योंकि इमाम-ए-आज़म रह. का फ़तवा उस समय का था जब काला रंग नुकसान या दोष माना जाता था, और साहिबैन (दोनों शिष्यों) का फ़तवा उस समय का है जब काला रंग मूल्यवर्धन माना जाने लगा। अतः रंग के मामले में 'उर्फ़ (प्रथा और परंपरा) का पालन करना अनिवार्य होगा। यह 'मुज़मरात' में है। यदि कपड़ा ऐसा हो जिसमें रंग से नुकसान होता हो, उदाहरण के तौर पर कीमत

तीस दिरहम हो और रंगने के बाद बीस रह जाए, तो इमाम मोहम्मद रह. से रिवायत है कि ऐसे कपड़े पर ध्यान दिया जाए जिसमें रंग से मूल्य बढ़ जाता हो। यदि उदाहरण के लिए पांच दिरहम बढ़ जाते हों, तो मालिक अपना कपड़ा और पांच दिरहम ले लेगा। यह 'तबीईन' में है। यदि कपड़े के मालिक ने 'असफ़र' ग़सब करके उससे अपना कपड़ा रंगा, तो वह असफ़र के बराबर हर्जाना दे। यह 'मुहीत सरख़सी' में है। ज़ैद ने अम्र से कपड़ा ग़सब किया और बकर से असफ़र ग़सब किया और उससे वह कपड़ा रंगा। फिर दोनों ने उपस्थित होकर दावा किया, तो असफ़र वाला वह कपड़ा तब तक अपने पास रखेगा जब तक कि वह उसे उसके असफ़र के समान वापस न कर दे; और यदि समान उपलब्ध न हो, तो कीमत अदा करे। इस स्थिति में सर्वसम्मति (इज्मा) से काले रंग का नियम अन्य रंगों के समान ही है। यदि ज़ैद ने अम्र से कपड़ा और बकर से रंग ग़सब किया, फिर उस पर अधिकार प्राप्त न हो सका, तो 'इस्तेहसान' (न्यायसंगत प्राथमिकता) के आधार पर यह नियम है कि यदि कपड़े के मालिक ने कपड़ा ले लिया, तो वह रंग के मालिक को रंग के कारण हुई मूल्य वृद्धि के बराबर मुआवज़ा देगा, या उसे अधिकार होगा कि कपड़ा बेच दे। फिर बिक्री की राशि में मालिक को सफेद कपड़े की कीमत के अनुपात में और रंग के मालिक को रंग की कीमत के अनुपात में भागीदार बनाया जाएगा। यह 'मबसूत' में है। यदि कपड़ा और असफ़र एक ही व्यक्ति से ग़सब किया और रंगा, तो मालिक को अधिकार होगा कि रंगा हुआ कपड़ा ले ले और ग़ासिब ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाए, या वह उससे सादे कपड़े की कीमत ले ले और अपने असफ़र के समान असफ़र ले ले। यह 'मुहीत सरख़सी' में है।

यदि असफ़र ज़ैद का हो और कपड़ा अम्र का, और दोनों रंगे हुए कपड़े को लेने पर सहमत हो जाएं, तो उन्हें यह अधिकार नहीं होगा सिवाय कपड़े के.. [ऐसा नहीं है। मैं कहता हूँ कि इसी तरह समाधान दिया गया है, लेकिन सही बात यह है कि इज्तिहाद (कानूनी व्याख्या) में मतभेद है और धर्मशास्त्र यह है कि इसमें 'उर्फ़ (प्रथा) और परंपरा का विचार किया जाएगा।]

---

جاتی رہے گی اور غاصب اس کا مالک ہو گا اور اس کا ضامن ہو گا مگر اس سے انتفاع حلال نہیں ہے تا وقتیکہ اس کا بدلہ بضمان ادا نہ کرے یہ ہدایہ میں ہے اور اگر مال مغصوب غاصب کے ہاتھ میں ناقص ہو گیا تو غاصب بقدر نقصان ضامن ہو گا پس مال کو مع نقصان مغصوب منہ کو واپس دے گا لیکن اگر نقصان سوائے غاصب کے دوسرے کے فعل سے پیدا ہو گیا ہو تو مغصوب منہ کو اختیار ہو گا چاہے غاصب سے نقصان لے اور غاصب اس کو غیر سے واپس لے یا غیر سے ضمان لے اور غیر اس کو غاصب سے واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر مغصوب چیز غاصب کے پاس بڑھ گئی تو مغصوب منہ کو اختیار ہو گا کہ مع زیادتی واپس کر لے یہ خلاصہ میں ہے۔ اگر کوئی کپڑا غاصب کا ہو گا یا اپنا کپڑا لے کر غاصب کو اس قدر درہم دے دے جس قدر رنگ سے زیادتی ہوئی ہے یا اس کے کپڑے کو فروخت کر دے پس اس کے ثمن میں مالک اس کی قیمت میں سپید ہونے کے حساب شریک ہو گا اور جس قدر رنگ سے زیادتی ہوئی اس کے حساب سے غاصب شریک ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ایک شخص کا کپڑا دوسرے شخص کے رنگ میں گر پڑا پس اگر رنگ گیا تو مالک کو اختیار ہو گا کہ اس کو اس کے رنگ کے دام دے دے یا کپڑا فروخت کرے اس کے ثمن میں دونوں بقدر اپنے حق کے شریک ہو جائیں گے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر غاصب نے غصب کیے ہوئے کپڑے کو سیاہ رنگا تو امام اعظمؒ نے فرمایا کہ سیاہ رنگ کے کپڑے کے حق میں نقصان ہوتا ہے پس مالک کو اختیار ہو گا چاہے غاصب کے پاس چھوڑ کر اس سے اپنے سپید کپڑے کی قیمت تاوان لے یا کپڑا لے کر اس سے نقصان لے لے اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ سیاہ رنگ بھی زیادتی ہے پس اس کا حکم وہی ہے جو عصفر میں حکم ہے کذا فی شرح الطحاوی اور

صحیح یہ ہے کہ باہم کچھ اختلاف در حقیقت نہیں ہے اس واسطے کہ امام اعظمؒ کا فتویٰ ایسے وقت میں ہوا جس وقت کہ سیاہ رنگ نقصان قرار دیا جاتا تھا یا عیب شمار کیا جاتا تھا اور صاحبین کا فتویٰ ایسے وقت میں ہوا کہ جب سیاہ رنگ زیادتی شمار کیا جاتا تھا پس رنگ میں عرف و عادت کی رعایت رکھنی واجب ہو گی یہ مضمرات میں ہے اور اگر کپڑا اس قسم کا ہو کہ جس میں رنگ سے نقصان ہوتا ہو مثلاً تیس درہم قیمت ہو اور رنگ کے بعد بیس درہم رہ جائے تو امام محمدؒ سے روایت ہے کہ ایسے کپڑے کی طرف لحاظ کیا جائے جس میں سے رنگ سے زیادتی قیمت ہو جاتی ہے پس اگر پانچ درہم مثلاً زیادہ ہوتے ہوں تو مالک اپنا کپڑا اور پانچ درہم لے لے گا یہ تبیین میں ہے۔ اگر کپڑے کے مالک نے عصفر غصب کر کے اس سے اپنا کپڑا رنگا تو عصفر کے مثل تاوان دے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ زید نے عمرو سے کپڑا غصب کیا اور بکر سے عصفر غصب کیا اور اس سے وہ کپڑا رنگا پھر دونوں نے حاضر ہو کر دعویٰ کیا تو عصفر والا وہ کپڑا لے لے گا یہاں تک کہ اس کو اس کے عصفر کے مثل ادا کرے اور اگر مثل نہ ملتا ہو تو قیمت ادا کرے اور اس صورت میں بالاجماع سیاہ رنگ کا حکم مثل اور رنگوں کے ہے اور اگر زید نے عمرو سے کپڑا اور بکر سے رنگ غصب کیا پھر اس پر قدرت حاصل نہ ہوئی تو استحساناً یہ حکم ہے کہ اگر کپڑے کے مالک نے کپڑا لیا تو رنگ کے مالک کو بقدر اس کے رنگ کی زیادتی کے ضمان دے گا یا اس کو اختیار ہو گا کہ کپڑے کو فروخت کرے پس اس کے ثمن میں مالک بحساب سپید کپڑے کی قیمت کے اور مالک رنگ بحساب قیمت رنگ کے شریک کیے جائیں گے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کپڑا اور عصفر ایک ہی شخص کا غصب کیا اور رنگا تو مالک کو اختیار ہو گا کہ رنگا ہوا کپڑا لے لے اور غاصب ضمان سے بری ہو گیا یا اس سے سپید کپڑے کی قیمت لے لے اور اپنے عصفر کے مثل عصفر لے لے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر عصفر زید کا اور کپڑا عمرو کا ہو اور دونوں راضی ہوئے کہ رنگا ہوا کپڑا لے لیں تو دونوں کو یہ اختیار حاصل نہ ہو گا مگر کپڑے [نہیں ہے اقول یوں ہی توفیق دی گئی لیکن صواب یہ کہ اجتہاد میں اختلاف ہے اور مذہب یہ کہ اس میں عرف و عادت کا اعتبار ہے ۔]

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 101 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

The owner of the cloth has the option to take back their dyed cloth and pay the dyer an amount equivalent to the increase in value caused by the dye. Subsequently, the owner of the safflower (dye) shall hold the usurper (*ghasib*) accountable to recover the equivalent of their dye; this is stated in *Siraj al-Wahaj*. If Amr's cloth is pledged (*rahn*) to Zaid and Amr dyes it with safflower, it is removed from the pledge, and Amr shall be liable for its value. If both the cloth and the dye were pledged, the pledgee (*murtahin*) has the choice to either demand compensation for the cloth's value and the equivalent of the dye, or to accept the dyed cloth, in which case the dyed cloth remains pledged with him; this is mentioned in *Muhit al-Sarakhsi*. If the owner of the cloth usurps dye, dyes their cloth with it and sells it, the owner of the dye has no claim against the purchaser (*mushtari*); this is in *Tatarkhaniya*. If someone usurps a cloth, dyes it with their own dye, sells it and disappears, and the cloth's owner files a lawsuit, the court shall decree the cloth in favor of the owner against the purchaser, but a guarantor shall be taken for the owner of the dye, and the sale between the seller and purchaser shall be voided; this is in *Siraj al-Wahaj*. Starching or sizing a cloth is similar to dyeing it. Engraving it with a pure substance is also like dyeing, but printing it with an impure substance constitutes a reduction in value (*tanqis*). If a cloth is usurped and then blued or washed, the owner may take it back, and the usurper receives nothing, as washing or arranging does not add any substance to the cloth; it only alters its attributes. Soap or alkali used for cleaning does not remain in the cloth but is washed away with water.

If a person usurps parched grain flour (*sattu*) and mixes it with butter (*maska*), the owner has the choice to either leave the mixture with the usurper and take an equivalent amount of flour as compensation, or take the mixture and compensate the usurper for the increase in value due to the butter. Originally, it is stated that the usurper is liable for the price of the flour because flour varies in quality due to husk content. According to *al-Hidayah*, price stands in place of the equivalent. If musk is mixed with oil and the oil's value increases, the musk is treated like dye in cloth. However, if the oil's quality does not improve (e.g., if it is rancid oil), the musk is considered destroyed; this is in *Fatawa al-Karkhi*. If Zaid usurps Amr's cloth and cuts it but has not yet sewn it, it will be observed: if no obvious defect is created by cutting, the owner may take the cloth and claim compensation for the loss due to cutting. If the cutting creates a severe defect equivalent to destruction, the owner may either take the cloth and compensation for the loss or leave the cloth and claim the price of

a sound cloth. If the usurper cuts and sews the cloth, the owner's right to the physical item is severed, and they shall claim the value at the time of usurpation; this is in *Sharh al-Tahawi*. If a person tears another's cloth extensively, the owner may claim the full price as indemnity, and the cloth becomes the property of the usurper since it is effectively destroyed for its original purpose. Alternatively, the owner may take the cloth and claim compensation for the loss in value. If it is only slightly torn, the usurper is liable for the loss in value, and the owner takes back the cloth as it still essentially exists...

कपड़े के मालिक को यह अधिकार होगा कि अपना रँगा हुआ कपड़ा लेकर रंग वाले को, रंग की वजह से हुई मूल्य वृद्धि के बराबर हर्जाना दे दे, फिर रंग (असफ़र) का मालिक ग़ासिब (हथियाने वाले) से अपने रंग के बराबर हर्जाना वसूल करेगा; यह 'सिराज-उल-वहाज' में है। यदि अम्र का कपड़ा ज़ैद के पास गिरवी (रहन) हो और अम्र ने उसे असफ़र से रँग दिया, तो वह रहन से बाहर हो गया और अम्र उसकी कीमत का ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा। यदि कपड़ा और रंग दोनों गिरवी हों, तो गिरवी रखने वाले (मुर्तहिन) को अधिकार होगा कि वह कपड़े की कीमत का हर्जाना और रंग के बराबर रंग ले ले, या रँगे हुए कपड़े पर सहमत हो जाए; तब वह रँगा हुआ कपड़ा उसके पास गिरवी रहेगा; यह 'मुहीत-ए-सरख़्सी' में है। यदि कपड़े के मालिक ने रंग छीनकर उससे कपड़ा रँगकर बेच दिया, तो रंग के मालिक का खरीदार (मुश्तरी) पर कोई दावा नहीं होगा; यह 'तातारख़ानिया' में है। यदि किसी ने अपने व्यक्तिगत रंग से एक छीना हुआ कपड़ा रँगा और उसे बेचकर गायब हो गया, और कपड़े का मालिक आकर शिकायत करता है, तो खरीदार के खिलाफ कपड़े की डिग्री हो जाएगी, लेकिन रंग के मालिक के लिए एक ज़मानतदार लिया जाएगा और विक्रेता तथा खरीदार के बीच की बिक्री रद्द हो जाएगी; यह 'सिराज-उल-वहाज' में है। कपड़े पर कलफ़ (मांड) लगाना या लेई लगाना रँगने के समान है। पाक (शुद्ध) चीज़ से उस पर नक़्क़ाशी करना भी रँगने जैसा है, लेकिन अपवित्र वस्तु से छपाई करना नुक़सान (तन्क़ीस) है। यदि कपड़ा छीनकर उसे नील से रँगा या धोया गया, तो मालिक को अधिकार है कि उसे ले ले और ग़ासिब को कुछ नहीं मिलेगा, क्योंकि धोने या सँवारने से कपड़े में कोई चीज़ बढ़ती नहीं है, बल्कि केवल गुणों में परिवर्तन होता है। धोने से मैल साफ हो जाता है और साबुन आदि कपड़े में नहीं रहते बल्कि पानी के साथ बह जाते हैं।

यदि किसी व्यक्ति ने सत्तू छीनकर उसे मक्खन (मस्का) में मिला दिया, तो मालिक को अधिकार है कि सत्तू ग़ासिब के पास छोड़कर उसके बराबर सत्तू का हर्जाना ले ले, या उन्हें लेकर मक्खन की वजह से हुई मूल्य वृद्धि का हर्जाना दे दे। मूल रूप से कहा गया है कि वह सत्तू की कीमत का ज़िम्मेदार होगा क्योंकि सत्तू की गुणवत्ता में अंतर होता है। 'हेदाया' के अनुसार कीमत और वस्तु का मूल्य बराबर माना जाता है। यदि तेल के साथ कस्तूरी (मुश्क) मिला दी जाए और तेल की कीमत बढ़ जाए, तो कस्तूरी कपड़े के रंग की तरह मानी जाएगी। लेकिन यदि तेल की गुणवत्ता न बढ़े, जैसे कि वह बदबूदार तेल हो, तो कस्तूरी का नष्ट होना माना जाएगा; यह 'फ़तावा-ए-करख़ी' में है। यदि ज़ैद ने अम्र का कपड़ा छीनकर काट दिया लेकिन अभी सिला नहीं है, तो देखा जाएगा कि क्या काटने से

कोई बड़ा दोष पैदा हुआ है। यदि नहीं, तो मालिक कपड़ा लेकर कटाई के नुक़सान का हर्जाना ले सकता है। यदि काटने से कपड़ा पूरी तरह खराब (तलफ़) हो गया हो, तो मालिक के पास दो विकल्प हैं: या तो कपड़ा लेकर नुक़सान का हर्जाना ले, या कपड़ा छोड़ दे और साबुत कपड़े की कीमत ले ले। यदि ग़ासिब ने उसे काटकर सिल दिया, तो मालिक का अधिकार उससे समाप्त हो गया और वह केवल गबन के समय की कीमत का हर्जाना लेगा। यदि किसी ने दूसरे का कपड़ा फाड़ दिया और वह बहुत फट गया, तो मालिक पूरी कीमत का दावा कर सकता है और कपड़ा ग़ासिब का हो जाएगा क्योंकि वह अब अपने पुराने उपयोग के लायक नहीं रहा। या फिर कपड़ा वापस ले और नुक़सान का हर्जाना ले। यदि थोड़ा फटा हो, तो ग़ासिब नुक़सान की भरपाई करेगा और मालिक अपना कपड़ा वापस ले लेगा।

---

کے مالک کو یہ اختیار ہو گا کہ اپنا کپڑا رنگا ہوا لے کر رنگ والے کو جس قدر رنگ سے زیادتی ہو گئی ہے تاوان دے پھر عصفر والا غاصب کا دامن گیر ہو کر اپنے عصفر کے مثل لے لے گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر عمرو کا کپڑا زید کے پاس رہن ہو اور عمرو نے عصفر سے اس کو رنگ دیا تو وہ رہن سے نکل گیا اور عمرو اس کی قیمت کا ضمان ہوگا اور اگر کپڑا اور عصفر دونوں رہن ہوں تو مرتہن کو اختیار ہوگا کہ اس سے کپڑے کی قیمت کی ضمان اور عصفر کے مثل عصفر لے لے یا رنگے ہوئے کپڑے پر راضی ہوجائے پس وہ رنگا ہوا اس کے پاس رہن رہے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر کپڑے کے مالک نے عصفر غصب کر کے اس سے کپڑا رنگ کر فروخت کیا تو عصفر کے مالک کا مشتری پر کچھ واجب نہ ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر اپنے ذاتی عصفر سے ایک کپڑا غصب کر کے رنگا اور اس کو فروخت کر کے غائب ہو گیا اور مالکِ ثوب نے حاضر ہو کر نالش کی تو اس کے نام کپڑے کی مشتری پر ڈگری ہو جائے گی مگر اس سے عصفر کے مالک کے واسطے کفیل لے لیا جائے گا اور بائع و مشتری کے درمیان بیع ٹوٹ جائے گی یہ سراج الوہاج میں ہے۔ کپڑے پر نشاستہ و سریش سے کنڈی کرنا مثل رنگنے کے ہے اور پاک چیز سے اس پر نقش کرنا مثل رنگنے کے ہے مگر نجس سے چھاپنا تنقیص ہے یعنی ناقص کرنا ہے یہ قنیہ میں ہے اور اگر کپڑا غصب کر کے اس کو نیل دیا یا دھویا تو مالک کو اختیار ہو گا کہ اس کو لے لے اور غاصب کو کچھ نہ ملے گا کیونکہ کپڑے کے چناؤ میں کوئی شے زیادہ نہیں ہو جاتی ہے بلکہ چناؤ میں صرف اس کی صفتِ اجزاء کا تغیر ہوتا ہے اور غسل دینے میں اس کا میل صاف ہو جاتا ہے اور صابون یا اشنان جس سے میل چھانٹتا ہے وہ کچھ کپڑے میں نہیں رہ جاتا ہے بلکہ وہ تو پانی کے ساتھ دھل جاتا ہے اور واضح ہو کہ چناؤ سے مراد یہ ہے

کہ بغیر حریر کے ہو جیسے اس کے کونے مل دے کر ایک دوسرے کے ساتھ چن دے اور اگر حریر کے ساتھ اس کا چناؤ کیا ہو تو زیادتی ہوگئی جیسے رنگ سے زیادتی ہوتی ہے یہ سراج الوہاج میں ہے۔

اگر کسی شخص نے ستو غصب کر کے مسکہ میں لتھ کر دیے تو مالک کو اختیار ہوگا چاہے یہ ستو غاصب کے پاس چھوڑ کر اس کے مثل غاصب سے تاوان لے لے یا انہی کو لے کر جس قدر مسکہ سے زیادتی ہوئی ہے اس کو تاوان دے دے اور اصل میں فرمایا کہ ستو کی قیمت کا ضامن ہوگا اس واسطے کہ ستوؤں میں باعتبار بھوسی کے تفاوت ہوتا ہے پس مثلی نہ رہے اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ قیمت سے امام محمدؒ کی مراد مثل ہے اسی کو قیمت کہا ہے مثل کے قائم مقام قیمت ہوتی ہے کذانی الہدایہ اور شہد و مسکہ دونوں اصل ہیں جبکہ دونوں مخلوط ہوں۔ اگر تیل کے ساتھ مشک مخلوط ہو جائے پس اگر تیل کی قیمت بڑھ جائے اور اچھا ہو جائے تو مشک بمنزلہ رنگ کے کپڑے کے حق میں ہوگا اور اگر تیل سے اچھا نہ ہو اور قیمت نہ بڑھی مثلاً تیل بدبو دار تلیوں میں سے ہے تو مشک کا تلف کر دینا قرار دیا جائے گا یہ فتاویٰ کرخی میں ہے۔ اگر زید نے عمرو کا کپڑا غصب کر کے قطع کرایا مگر ہنوز نہیں سلایا تو دیکھا جائے گا کہ اگر قطع کرنے سے کھلا ہوا عیب نہیں پیدا ہو گیا تو مالک کو یہ اختیار ہوگا کہ اس سے کپڑا لے کر بقدر نقصان قطع کے ضمان لے اور یہ نہیں ہو سکتا ہے کہ کپڑا اسی کے ذمہ ڈالے اور اگر قطع سے ایسا عیب فاحش پیدا ہو گیا کہ بمنزلہ اس کے تلف کے ہے تو مالک کو اختیار ہوگا کہ چاہے اس سے کپڑا لے کر بقدر نقصان کے ضمان لے یا کپڑا اسی کے پاس چھوڑ دے اور اپنے صحیح سالم کپڑے کی قیمت لے لے اور اگر غاصب نے قطع کر کے سلایا تو مالک کا حق اس سے منقطع ہو گیا پس غصب کے وقت کی قیمت اس سے ضمان لے گا یہ شرح طحاوی میں ہے۔ اگر کسی شخص نے دوسرے کا کپڑا پھاڑ دیا اور بہت پھٹ گیا تو مالک کو اختیار ہوگا چاہے اس سے کپڑے کی پوری

قیمت تاوان لے اور وہ کپڑا غاصب کا ہو جائے گا کیوں کہ وہ کپڑا ایک وجہ سے گویا تلف ہو گیا کیونکہ جن کاموں کے لائق پہلے تھا ان کے لائق اب نہ رہا یا کپڑا لے کر اُس سے نقصان کی ضمان لے ایک وجہ سے وہ عیب دار ہو گیا ہے اسی لیے درحقیقت تو وہ کپڑا باقی موجود ہے اور ایسے ہی بعض منافع بھی اس سے حاصل ہو سکتے ہیں اور اگر تھوڑا پھٹا ہوا ہو تو غاصب بقدر نقصان کے ضامن ہوگا اور مالک اپنا کپڑا واپس لے لے گا اس لیے کہ وہ کپڑا بہر وجہ سے قائم موجود ہے اب رہا کہ بہت پھٹا ہوا...

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 102 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

What is defined as a 'slight tear'? The correct view is that a 'major tear' (kharq fahish) is one that causes the essence of the item and the type of its benefit to perish, even if some of the physical item and some benefit remains. A 'minor tear' (kharq yaseer) is one where no benefit is lost, but some damage occurs to the item. We have provided this correct explanation of a major tear because Imam Muhammad (RA) in 'Kitab al-Asl' designated the cutting of cloth as a 'major damage' even though only some of its benefit is lost. This is mentioned in 'Al-Kafi'.

Shams al-A'immah al-Sarakhsi stated that the ruling mentioned regarding tears in cloth is: if it is a major tear, the owner has the option to either take the cloth along with compensation for the loss or take the full price. If it is a minor tear, they take the cloth and compensation for the loss. This rule applies to every specific asset (Mal-e-Ayn). However, in the case of 'Ribawi' goods (items subject to the rules of interest/usury), this ruling does not apply. In causing a defect to Ribawi goods—whether the tear is major or minor—the owner has the choice to either take back the defective goods and claim nothing from the usurper (ghasib), or give the goods to the usurper and take an equivalent replacement or its price. This is because taking compensation for a loss in such goods is avoided as it may lead to Riba (interest). This is in 'Al-Nihayah'. If a cloth is usurped and it becomes malodorous or turns yellow in the usurper's possession, the owner will take it back along with compensation for the loss, provided the loss is minor. If the loss is major, the owner has the choice to leave the cloth with the usurper and take the full price or take the cloth and compensation for the loss. If the usurped property is a measurable or weighable item, such as wheat, and it becomes malodorous with the usurper, the usurper must provide an equivalent replacement, and the spoiled wheat belongs to the usurper. Alternatively, if the owner wishes, they may take the spoiled wheat, and nothing further will be due from the usurper. This is as stated in 'Al-Muhit'. I say: this is because if they took compensation for the loss, it would lead to Riba. And Allah knows best.

If the usurped property is a male or female slave and the usurper cuts off their hand or foot, the owner has the option to either give the slave to the usurper and take the full price as compensation or take the slave back along with compensation for the loss. This is in 'Al-Zahiriyyah'.

If someone slaughters Zaid's goat, Zaid has the option to either give the slaughtered goat to that person and recover the price, or take the slaughtered goat along with

compensation equal to the loss in value. The same rule applies to camels, etc. Similarly, if the hand/leg of a goat or camel is cut, the same rule applies. This is the ruling of 'Zahir al-Riwayah'. If the animal is non-edible (whose meat is not consumed) and the usurper cuts off its hand or foot, the owner has the option to claim the full price from the usurper because, in this case, it is considered complete destruction in every respect. This is contrary to cutting the limb of a slave, where the slave can be taken back with compensation (Arsh), as it is not considered total destruction since a human can still provide benefit even after losing a limb. This is in 'Al-Hidayah' and 'Al-Kubra'. In 'Al-Nawadir', it is mentioned that if an animal's ear or part of it is cut, the person is liable for the loss; cutting an ear is considered a minor loss. Similarly, if an animal's tail is cut, the person is liable for the loss. It is narrated from 'Al-Sharh' that if someone cuts the tail of a Judge's (Qazi's) mule, they are liable for the full price, but if they cut the tail of someone else's mule, they are only liable for the loss in value. This is in 'Al-Dhakhirah'. I say: it seems he intended this as a discretionary punishment (Tazir) by making them liable for the full price; otherwise, there is no apparent reason. If someone cuts the limb of a mule and then the owner slaughters it, according to Imam-e-Azam (Abu Hanifa RA), nothing will be due from the one who cut the limb. This is in 'Fatawa Qazi Khan'.

1. I say that the reason for this is that if he takes compensation for the loss, it would fall under the ruling of a sale.
2. I say that perhaps this ruling is discretionary (Tazir), requiring liability for the full price; otherwise, there is no other reason.

**फतवा आलमगिरी ..... जिल्द (8) | 102 | किताब अल-गसब (छीनने की किताब)**

और 'थोड़ा फटा हुआ' किसे कहते हैं? सही यह है कि 'खर्क़ए-फ़ाहिश' (बड़ा छेद या फटन) उसे कहते हैं जिससे उस चीज़ का वजूद और उसके फ़ायदे की क़िस्म ख़त्म हो जाए, हालाँकि कुछ चीज़ और कुछ फ़ायदा बाकी रह जाए। और 'खर्क़ए-यसीर' यानी मामूली फटन वह है जिससे फ़ायदा ख़त्म न हो, केवल उसमें कुछ नुकसान आ जाए। हमने 'खर्क़ए-कसीर' (बड़ी फटन) की यह व्याख्या इसलिए सही बयान की क्योंकि इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाह अलैह ने 'किताब अल-अस्ल' में कपड़ा काटने को 'नुकसान-ए-फ़ाहिश' करार दिया है, जबकि उससे केवल कुछ फ़ायदा ही खत्म होता है। यह 'काफी' में है।

शम्स अल-आइम्मा सरख़सी ने फ़रमाया कि कपड़े की फटन के बारे में जो हुक्म बयान हुआ, यानी अगर फटन बड़ी हो तो मालिक को अधिकार है कि चाहे कपड़ा लेकर नुकसान का मुआवज़ा ले ले या पूरी कीमत ले ले। और अगर फटन मामूली हो तो कपड़ा लेकर नुकसान का मुआवज़ा ले ले। यही नियम हर चीज़ (माल-ए-ऐन) में है। लेकिन हाँ, 'अमवाल-ए-रबविया' (ऐसी चीज़ें जिनमें ब्याज का नियम लागू होता है) में यह हुक्म नहीं है। क्योंकि ऐसी चीज़ों को दोषपूर्ण करने में, चाहे फटन बड़ी हो या छोटी, मालिक को यह अधिकार होगा कि चाहे वह दोषपूर्ण माल वापस ले ले और छीनने वाले (गासिब) से कुछ न ले, या वह माल उसे देकर उसकी जगह वैसी ही चीज़ या उसकी कीमत ले ले। क्योंकि ऐसी चीज़ों में नुकसान का मुआवज़ा लेना इसलिए मना है कि यह सूद (ब्याज) तक पहुँच जाएगा। यह 'निहाया' में है। अगर एक कपड़ा छीना गया और वह गासिब के पास बदबूदार हो गया या पीला पड़ गया, तो मालिक उसे नुकसान के मुआवज़े के साथ वापस लेगा, और यह तब है जब नुकसान मामूली हो। अगर नुकसान ज़्यादा हो, तो उसे अधिकार होगा कि चाहे कपड़ा उसी के पास छोड़ दे और कीमत ले ले, या उसे लेकर साथ में नुकसान का मुआवज़ा ले। और अगर छीना हुआ माल नापने या तोलने वाला हो, जैसे गेहूँ, और वह गासिब के पास बदबूदार हो जाए, तो गासिब पर उसके बराबर माल देना ज़रूरी होगा और वह खराब गेहूँ गासिब के ही हो जाएँगे। या मालिक चाहे तो बदबूदार गेहूँ ले ले और गासिब पर कुछ वाजिब न होगा। जैसा कि 'मुहीत' में है। मैं कहता हूँ क्योंकि अगर वह नुकसान का मुआवज़ा लेता तो यह ब्याज हो जाता। अल्लाह बेहतर जानता है।

और अगर छीना हुआ माल लौंडी या गुलाम हो और गासिब ने उसका हाथ या पाँव काट दिया, तो मालिक को अधिकार होगा कि चाहे गुलाम उसे देकर पूरी कीमत गासिब से मुआवज़े के तौर पर ले ले, या गुलाम को लेकर उसके साथ नुकसान का मुआवज़ा ले। यह 'ज़हीरिया' में है।

अगर किसी व्यक्ति ने ज़ैद की बकरी ज़बह (ज़बह) कर दी, तो ज़ैद को अधिकार है कि चाहे ज़बह की हुई बकरी उसे देकर कीमत वापस ले ले, या बकरी लेकर नुकसान की मात्रा के बराबर मुआवज़ा ले। ऊँट आदि का भी यही हुक्म है। इसी तरह अगर बकरी या ऊँट आदि का हाथ काट दिया, तो भी यही हुक्म है। यह 'ज़ाहिर अल-रवाया' का हुक्म है। और अगर जानवर ऐसा हो जिसका मांस नहीं खाया जाता, और गासिब ने उसका हाथ या पाँव काट दिया, तो मालिक को अधिकार होगा कि गासिब से उसकी पूरी कीमत का मुआवज़ा ले, क्योंकि इस स्थिति में हर तरह से चीज़ का नष्ट होना साबित हुआ। यह गुलाम का हाथ-पाँव काटने के विपरीत है, क्योंकि उस स्थिति में गुलाम को मुआवज़े के साथ वापस लिया जा सकता है (क्योंकि यह पूरी तरह से विनाश नहीं है), क्योंकि हाथ-पाँव कटने के बाद भी इंसान से लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि 'हिदाया' और 'कुबरा' में है। 'नवादिर' में है कि अगर जानवर का कान या उसका थोड़ा सा हिस्सा काट दिया, तो वह नुकसान का ज़िम्मेदार होगा; जानवर का कान काटने को मामूली नुकसान करार दिया गया है। इसी तरह अगर जानवर की दुम काट दी, तो वह नुकसान का ज़िम्मेदार होगा। 'शरह' में उल्लेख है कि अगर काज़ी के खच्चर की दुम काटी, तो पूरी कीमत का ज़िम्मेदार होगा, और अगर किसी और के खच्चर की दुम काटी, तो केवल नुकसान का ज़िम्मेदार होगा। यह 'ज़खीरा' में है। मैं कहता हूँ कि शायद इससे मुराद सज़ा (ताज़ीर) के तौर पर पूरी कीमत दिलाना है, वरना कोई और वजह नहीं दिखती। और अगर किसी ने खच्चर का हाथ या पाँव काट दिया, फिर मालिक ने उसे ज़बह कर दिया, तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक काटने वाले पर मालिक का कुछ वाजिब न होगा। यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है।

1. मैं कहता हूँ कि इसकी वजह यह है कि अगर वह नुकसान का हर्जाना ले तो यह खरीद-बिक्री के हुक्म में होगा।
2. मैं कहता हूँ कि शायद यह हुक्म सज़ा के तौर पर है कि पूरी कीमत का ज़िम्मेदार होगा, वरना कोई वजह नहीं है।

---

اور تھوڑا پھٹا ہوا کس کو کہتے ہیں پس صحیح یہ ہے کہ خرق فاحش اُس کو کہتے ہیں جس سے کسی قدر وہ شے عین اور جنس منفعت زائل ہو جائے اور بعض وہ شے اور بعض منفعت باقی رہ جائے اور خرق یسیر یعنی قلیل وہ ہے کہ جس سے کچھ منفعت زائل نہ ہو جائے فقط اُس میں کچھ نقصان آجائے اور یہ تفسیر خرق کثیر کی ہم نے اس واسطے صحیح بیان کی کہ امام محمدؒ نے کتاب الاصل میں کپڑا قطع کرنے کو نقصانِ فاحش قرار دیا ہے حالانکہ بعض منفعت اُس سے زائل ہوتی ہے یہ کافی میں ہے۔

شمس الائمہ سرخسی نے فرمایا کہ جو حکم کپڑے کی خرق میں مذکور ہوا یعنی اگر خرق فاحش ہو تو مالک مختار ہے چاہے کپڑا لے کر نقصان لے لے یا بالکل قیمت لے لے اور اگر یسیر ہو تو کپڑا لے کر نقصان لے لے یہی حکم ہر مال عین میں ہے ۔ مگر ہاں اموال ربویہ یعنی جن میں ربا جاری ہوتا ہے یہ حکم نہیں ہے کیوں کہ اموال ربویہ کے عیب دار کرنے میں خواہ خرق فاحش کثیر ہو یا قلیل ہو مالک کو یہ اختیار ہوگا کہ چاہے وہ مال معیب واپس کر لے اور غاصب سے کچھ نہ لے یا وہ مال اس کو دے کر اُس کے مثل یا اُس کی قیمت لے لے کیونکہ نقصان کی ضمان لینا ایسے مالوں میں اس وجہ سے محذور ہے کہ ربوتک پہنچ جائے گا یہ نہایہ میں ہے اگر ایک کپڑا غصب کیا اور غاصب کے پاس متعفن ہو گیا یا زرد پڑ گیا تو مالک اُس کو مع ضمانِ نقصان واپس لے گا اور یہ اُس وقت ہے کہ نقصان یسیر ہو اور اگر نقصان کثیر ہو تو مختار ہوگا چاہے کپڑا اسی کے پاس چھوڑ کر قیمت لے لے یا اُس کے ساتھ نقصان لے اور اگر مال مغصوب کیلی یا وزنی چیز ہو مثلاً گندم ہو اور وہ غاصب کے پاس متعفن ہو گئے تو اُس پر اُس کے مثل واجب ہوں گے اور یہ

فاسد گیہوں اُسی کے ہو جائیں گے یا مالک چاہے تو متعفن گیہوں لے لے اور غاصب پر کچھ واجب نہ ہوگا کذا فی المحیط قلت لانہ لو اخذ ضمان النقصان لادی الربوا واللہ اعلم ۔

اور اگر مال مغصوب باندی یا غلام ہو اور غاصب نے اُس کا ہاتھ یا پاؤں کاٹ ڈالا تو مالک کو اختیار ہوگا کہ چاہے مغصوب اس کو دے کر پوری قیمت غاصب سے ضمان لے لے یا اس مغصوب کو لے کر اُس کے ساتھ ضمانِ نقصان لے یہ ظہیر یہ میں ہے۔

اگر کسی شخص نے زید کی بکری ذبح کر ڈالی تو زید کو اختیار ہے چاہے مذبوحہ اس کو دے کر اُس سے قیمت واپس لے یا بقدر نقصانِ مذبوحہ کے ساتھ ضمان لے اور یہی حکم اونٹ وغیرہ کا ہے اسی طرح اگر بکری یا اونٹ وغیرہ کا ہاتھ کاٹ ڈالا تو بھی یہی حکم ہے یہ ظاہر الروایہ کا حکم ہے اور اگر چوپایہ غیر ماکول اللحم ہو یعنی اُس کا گوشت حلال نہ ہو اور غاصب نے اُس کا ہاتھ یا پاؤں کاٹ ڈالا تو مالک کو یہ اختیار ہوگا کہ غاصب سے اُس کی پوری قیمت کی ضمان لے کیونکہ اس صورت میں ہر وجہ سے تلف کرنا ثابت ہوا بخلاف مملوک کے ہاتھ یا پاؤں کاٹنے کے کہ اس صورت میں اُس مملوک کو مع ارش بھی واپس لے سکتا ہے (اس وجہ سے کہ ہر وجہ سے استہلاک نہیں ہے) کیونکہ ہاتھ یا پاؤں کٹ جانے کے بعد بھی آدمی سے نفع حاصل ہوسکتا ہے کذا فی الہدایۃ والکبریٰ نوادر میں ہے کہ اگر چوپایہ کا کان یا تھوڑا سا کان کاٹ ڈالا تو نقصان کا ضامن ہوگا پس چوپایہ کے کان کاٹنے کو نقصان خفیف قرار دیا ہے اسی طرح اگر چوپایہ کی دُم کاٹ ڈالی تو نقصان کا ضامن ہوگا اور "شرح" سے منقول ہے کہ اگر قاضی کے خچر کی دُم کاٹی تو پوری قیمت کا ضامن ہوگا یہ اور اگر دوسرے کے خچر کی دُم کاٹی تو فقط نقصان کا ضامن ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے قلت کانہ اراد التعزیر بضمان جمیع القیمۃ والا فلاوجہ لا ولعلہ تعریض اور اگر کسی نے خچر کا ہاتھ یا پاؤں کاٹ ڈالا پھر مالک نے اُس کو ذبح کیا تو امامِ اعظمؒ کے نزدیک مالک کا کاٹنے والے پر کچھ واجب نہ ہوگا یہ فتاویٰ قاضی خان میں اے۔

۱؎ میں کہتا ہوں کہ اس کی وجہ یہ ہے کہ اگر وہ نقصانِ تاوان لے تو یہ بیع کے حکم میں ہوگا۔

۲؎ میں کہتا ہوں کہ شاید یہ حکم تعزیری ہے کہ پوری قیمت کا ضامن ہوگا ورنہ کوئی وجہ نہیں اور شاید تعریض ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 103 Kitab al-Ghasab (Book of Usurpation)**

...is. If Zaid strikes Amr's ox so severely that its ribs are broken, according to Imam Azam (Abu Hanifa), Zaid shall be liable for its full price, while according to the Sahibayn (his disciples), he shall be liable for the loss in value; this is mentioned in *Al-Qunyah*. If both eyes of a donkey are gouged out, Imam Azam stated that the owner has the option to surrender the body of the donkey to the perpetrator and claim the full price as compensation; he cannot keep the blind donkey and also claim compensation for the loss. This is the same as the ruling regarding a blind carcass (*jussah al-amya'*), as stated in *Al-Zahiriyyah*.

If a goat is slaughtered, skinned, and its limbs are separated, the owner has the choice to either abandon the slaughtered animal (*mazbuha*) and claim its full price as compensation, or keep the slaughtered animal and claim compensation for the loss in value. It is narrated from Faqih Abu Ja'far that if the owner takes the slaughtered animal, he cannot claim compensation for the loss, but the official ruling (*fatwa*) is based on *Zahir al-Riwayah*. This is mentioned in *Jawahir al-Ikhlati*. If Zaid slaughters Amr's mule, Amr does not have the right to claim compensation for the loss; rather, he has the right to claim the full price as compensation. This is the view of Imam Azam. According to Imam Muhammad, the owner has the option to keep the slaughtered animal and take compensation for the loss, or surrender it and take the full price. If Zaid merely killed it, the owner shall not have the right to claim compensation (1) for loss; this is in *Al-Zahiriyyah*. Regarding any metallic vessel, if someone breaks it: if it is made of silver, it is mandatory for the person to pay the value of the vessel based on its weight in gold (i.e., in dinars). If the vessel is made of gold, its value should be paid in silver; this is in *Al-Mabsut*. If someone forcibly breaks Zaid's silver bracelet, Zaid has the option to either keep the broken bracelet and claim nothing more, or surrender the bracelet and claim the price of a sound, crafted equivalent in gold. If Zaid wants to keep the broken bracelet and also take compensation for the loss, that is not permissible. When a judge (*Qadi*) decrees payment in a different metal and both parties separate before mutual possession occurs, the ruling remains valid because the price has stood in place of the original property (i.e., it is not treated as a *sarf* exchange where immediate possession is a condition). It should be clarified that gold and silver, even after casting, do not cease to be weighed items (*mawzun*). Metals other than these, such as iron, brass, and copper, may remain weighed items or become countable items (*adadi*) after casting. If an item made of these metals is treated as a weighed item and someone breaks it,

causing minor or major damage, the ruling is similar to that of cast gold and silver. The owner may either keep the broken item or surrender it and receive its price in Dirhams or Dinars; mutual possession is not a consensus condition here. However, if the item is classified as a countable item and no gross defect (*ayb-e-fahish*) occurred due to breaking, the owner cannot abandon it but shall take compensation for the loss in value. If a gross defect occurred, the owner may either keep the broken item and receive compensation for the loss or surrender it and receive the full price of a sound equivalent. This is recorded in *Sharh al-Tahawi*.

If someone destroys an already broken sword, they must provide an equivalent amount of iron; this is in *Khizanat al-Muftin*. If a Dirham or Dinar is broken, an equivalent must be provided, and the broken pieces belong to the perpetrator. Shaykh al-Islam stated that our masters said this ruling applies when the breaking results in a loss of its market value; if there is no such loss, the owner only receives the broken pieces.

(1) He can take the full price and that's it.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 103 किताबुल गसब (छीनी हुई संपत्ति की किताब)**

...है। ज़ैद ने अम्र के बैल को इतना मारा कि उसकी पसलियाँ टूट गईं, तो इमाम-ए-आज़म के नज़दीक वह उसकी पूरी कीमत का ज़िम्मेदार होगा और साहिबैन के नज़दीक वह नुकसान का ज़िम्मेदार होगा, यह 'कुनिया' में लिखा है। अगर किसी गधे की दोनों आँखें फोड़ दी जाएं, तो इमाम-ए-आज़म ने फ़रमाया कि मालिक को यह अधिकार है कि वह आँखें फोड़ने वाले को गधे का शरीर दे दे और हर्जाने के रूप में पूरी कीमत वसूल करे; यह संभव नहीं है कि वह अंधा गधा भी रख ले और नुकसान का हर्जाना भी ले। यही 'जुस्सतुल अम्या' (अंधी लाश) का मसला है, जैसा कि 'ज़हीरिया' में उल्लेखित है।

बकरी को ज़बह करने के बाद यदि उसकी खाल खींचकर उसके अंग अलग-अलग कर दिए गए हों, तो मालिक को अधिकार है कि वह चाहे तो ज़बह की हुई बकरी (मज़बूहा) को छोड़ दे और उसकी कीमत का हर्जाना ले, या मज़बूहा को रखकर केवल नुकसान की भरपाई ले। फ़कीह अबू जाफ़र से वर्णित है कि यदि मालिक मज़बूहा को ले लेता है, तो वह नुकसान का हर्जाना नहीं ले सकता, लेकिन फ़तवा 'ज़ाहिरुर-रिवाया' पर आधारित है। यह 'जवाहर अल-इख़लाती' में है। यदि ज़ैद ने अम्र के खच्चर को ज़बह कर दिया, तो अम्र को नुकसान का हर्जाना लेने का अधिकार नहीं है, बल्कि पूरी कीमत लेने का अधिकार है; यह इमाम-ए-आज़म का कथन है। इमाम मुहम्मद के अनुसार, मालिक को अधिकार है कि वह मज़बूहा को रख ले और नुकसान का हर्जाना ले, या उसे देकर पूरी कीमत ले ले। और यदि ज़ैद ने उसे केवल मार डाला हो, तो मालिक को नुकसान (1) का हर्जाना लेने का अधिकार नहीं होगा, यह 'ज़हीरिया' में है। यदि कोई व्यक्ति किसी धातु के बर्तन को तोड़ देता है: यदि वह चांदी का है, तो उस पर अनिवार्य है कि वह बर्तन की कीमत ढले हुए चांदी के हिसाब से सोने (दीनार) में चुकाए। यदि बर्तन सोने का है, तो उसकी कीमत चांदी में चुकाए; यह 'मबसूत' में है। यदि किसी ने ज़बरदस्ती ज़ैद का चांदी का कंगन तोड़ दिया, तो ज़ैद को अधिकार है कि वह या तो टूटा हुआ कंगन ले ले और कुछ अतिरिक्त न मांगे, या कंगन को छोड़ दे और सही-सलामत ढले हुए कंगन की कीमत सोने में ले ले। यदि ज़ैद टूटा कंगन भी रखना चाहे और नुकसान का हर्जाना भी लेना चाहे, तो यह संभव नहीं है। जब काज़ी ने किसी अन्य धातु में कीमत चुकाने का आदेश दे दिया हो और दोनों पक्ष कब्ज़ा होने से पहले अलग हो जाएं, तो आदेश रद्द नहीं होगा क्योंकि कीमत ने असल माल का स्थान ले लिया है (अर्थात यह 'बैअ-ए-सरफ़' नहीं है जहाँ कब्ज़ा शर्त हो)। यह स्पष्ट रहे कि सोना-चांदी ढलने के बाद भी वज़नी वस्तुओं की श्रेणी से बाहर नहीं होते। उनके अतिरिक्त लोहा, पीतल,

तांबा आदि ढलने के बाद कभी वज़नी रहते हैं और कभी गिनती की वस्तुओं (अददी) में बदल जाते हैं। यदि इन धातुओं से बनी कोई वस्तु वज़नी श्रेणी में ही हो (जैसे जहाँ ये वज़न से बिकती हों) और उसे कोई तोड़ दे, तो उसका नियम सोने-चांदी की ढली वस्तुओं जैसा ही है। मालिक को अधिकार होगा कि वह या तो टूटी हुई वस्तु ले ले, या उसे तोड़ने वाले को देकर उसकी कीमत दिरहम या दीनार में ले ले; यहाँ आपसी कब्ज़ा शर्त नहीं है। यदि वस्तु ढलने के बाद गिनती की श्रेणी (अददी) में आ गई हो और टूटने से उसमें कोई बड़ा दोष (ऐब-ए-फ़ाहिश) न आया हो, तो मालिक उसे छोड़ नहीं सकता, बल्कि नुकसान के बराबर हर्जाना लेगा। यदि बड़ा दोष आ गया हो, तो वह या तो टूटी वस्तु रखकर नुकसान का हर्जाना ले, या उसे देकर सही-सलामत की कीमत ले; यह 'शरह-ए-तहावी' में लिखा है।

यदि किसी ने टूटी हुई तलवार को नष्ट कर दिया, तो उसे उसके बराबर लोहा देना होगा; यह 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। यदि दीनार या दिरहम को तोड़ दिया, तो उसके जैसा देना वाजिब होगा और टूटा हुआ हिस्सा तोड़ने वाले का हो जाएगा। शैखुल इस्लाम ने फ़रमाया कि यह नियम तब है जब टूटने से उसकी बिक्री मूल्य में कमी आई हो; यदि कमी नहीं आई, तो मालिक को केवल टूटा हुआ हिस्सा मिलेगा।

(1) वह पूरी कीमत ले सकता है और बस।

---

ہے۔ زید نے عمرو کے بیل کو اس قدر مارا کہ اُس کی پسلیاں ٹوٹ گئیں تو امام اعظمؒ کے نزدیک اُس کی قیمت کا ضامن ہوگا اور صاحبین کے نزدیک نقصان کا ضامن ہوگا یہ قنیہ میں ہے۔ اگر حمار کی دونوں آنکھیں پھوڑ ڈالیں تو امام اعظمؒ نے فرمایا کہ مالک کو اختیار ہے کہ آنکھیں پھوڑنے والے کو اُس کا جثہ دے دے اور پوری قیمت تاوان لے اور یہ نہیں ہو سکتا ہے کہ اندھا گدھا رکھ لے اور اُس سے نقصان کی ضمان لے اور یہی جثہ العمیاء کا مسئلہ ہے یہ ظہیریہ میں ہے۔

بعد ذبح کیے جانے کے بکری کی کھال کھینچ کر اُس کا عضو الگ الگ کر دیا تو مالک کو اختیار ہے چاہے مذبوحہ چھوڑ کر اُس سے قیمت کی ضمان لے یا مذبوحہ کو لے کر نقصان کی ضمان لے اور فقیہ ابو جعفر سے مروی ہے کہ اگر مالک نے مذبوحہ کو لے لیا تو ضمان نقصان نہیں لے سکتا ہے مگر فتوٰی ظاہر الروایہ پر ہے یہ جواہر اخلاطی میں ہے اگر زید نے عمرو کا خچر ذبح کر دیا تو عمرو کو ضمان نقصان لینے کا اختیار نہیں ہے ہاں پوری قیمت تاوان لینے کا اختیار ہے یہ امام اعظمؒ کا قول ہے اور امام محمدؒ کے قول پر کہ مالک کو اختیار ہے کہ مذبوحہ کو رکھ لے اور ضمان نقصان لے لے یا مذبوحہ کو دے کر پوری قیمت تاوان لے لے اور اگر زید نے اُس کو فقط قتل کر ڈالا ہو تو مالک کو ضمان (۱) نقصان لینے کا اختیار نہ ہوگا یہ ظہیریہ میں ہے۔ ہر ذوالآلات برتن کہ اگر اس کو کسی شخص نے توڑ ڈالا پس اگر چاندی کا ہو تو اُس پر واجب ہوگا کہ اس برتن کی قیمت ڈھلے ہوئے کے حساب سے سونے سے ادا کرے یعنی دینار یا اشرفی وغیرہ سے ادا کرے اور اگر وہ ظرف سونے کا ہو تو اس کی قیمت ڈھلے ہوئے کے حساب سے چاندی سے ادا کرے یہ مبسوط میں ہے اگر کسی شخص نے زبردستی زید کا کنگن توڑ ڈالا اور کنگن

چاندی کا تھا تو زید کو اختیار ہوگا چاہے ٹوٹا ہوا کنگن لے لے اور زیادہ کچھ نہیں لے سکتا ہے یا کنگن چھوڑ دے اور صحیح سالم ڈھلے ہوئے کی قیمت سونے سے لے لے اور اگر زید نے یہ چاہا کہ ٹوٹا ہوا کنگن لے کر ضمان نقصان لے تو ایسا نہیں ہو سکتا ہے اور جب توڑنے والے پر خلاف جنس سے قیمت ادا کرنے کی ڈگری قاضی نے کر دی اور جانبین سے باہمی قبضہ ہونے سے پہلے دونوں جدا ہو گئے تو حکم قضا باطل نہ ہوگا کیونکہ قیمت قائم مقام عین مال کی ہوگئی (یعنی بیع صرف نہیں ہوئی تاکہ تقابض شرط ہوتا) پھر واضح ہو کہ سونا چاندی دونوں ڈھالنے سے وزنی ہونے سے خارج نہیں ہوتے ہیں اور ان کے سوائے لوہا پیتل و تانبا وغیرہ ڈھالنے سے کبھی وزنی رہتے ہیں اور کبھی وزنی نہیں رہتے ہیں یعنی مثلاً عددی ہو جاتے ہیں پس اگر ان چیزوں سے بنی ہوئی کوئی چیز ہو اور وزنی ہونے سے خارج نہ ہوئی ہو مثلاً ایسی جگہ ہو جہاں یہ چیزیں ساختہ ہو کر وزن سے فروخت ہوتی ہیں عدد سے شمار نہیں ہوتی ہیں اور اُس کو کسی شخص نے توڑ ڈالا اور اُس میں خفیف یا کثیر نقصان پیدا ہو گیا تو اُس کا حکم سونے چاندی کی ڈھلی ہوئی چیز کے مثل ہے یعنی مالک کو اختیار ہوگا چاہے شکستہ لے لے اور زیادہ کچھ نہیں لے سکتا ہے یا شکستہ اُس شخص توڑنے والے کو دے دے اور اُس کی قیمت میں درہم و دینار لے لے اور باہمی قبضہ ہونا بالا جماع شرط نہیں ہے اور اگر ڈھالنے سے وہ چیز وزنی نہ رہی بلکہ عددی ہو گئی پس اگر ٹوٹنے سے اُس میں کوئی عیب فاحش نہیں آیا تو اُس کے مالک کو چھوڑ دینے کا اختیار نہ ہوگا بلکہ اُس کے ساتھ قیمت کی راہ سے اُس میں جس قدر نقصان آگیا ہو اُس کی ضمان لے لے اور اگر ٹوٹنے سے اُس میں عیب فاحش پیدا ہو گیا تو مالک کو اختیار ہوگا چاہے شکستہ کو لے کر اُس کے ساتھ نقصان کی ضمان لے لے یا شکستہ کو دے کر اُس کے ساتھ صحیح سالم کی قیمت کی ضمان لے یہ شرح طحاوی میں لکھا ہے۔

اگر کسی شخص نے شکستہ تلوار تلف کر دی تو اُس پر اُس کے مثل لوہا دینا لازم ہوگا یہ خزانہ المفتین میں ہے اگر درہم یا دینار توڑ ڈالا تو اُس کے مثل دینا واجب ہوگا اور ٹوٹا ہوا توڑنے والے کا ہو جائے گا اور شیخ الاسلام نے فرمایا کہ ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ یہ حکم اُس وقت ہے کہ ٹوٹنے سے اُس کے بیچنے میں نقصان آگیا ہو اور اگر نقصان نہ آیا ہو تو مالک کو فقط ٹوٹا ہوا ملے گا اور یہ ویسا ہی ہے جیسا کہ ہم نے

(۱) قیمت لے سکتا ہے اور بس۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | 104 | Kitab al-Ghasb (Book of Usurpation)**

It is stated that if a person breaks another's round loaf of bread, the owner shall only receive that broken bread. Imam Shams al-A'imma al-Sarkhasi stated that if someone breaks dirhams or dinars, they are liable to provide an equivalent (mithl), and the owner has the option to take them back; the owner cannot take more than that, regardless of whether its value decreased due to the breaking or not. If Zaid usurps Amr's female slave and she remains with him until she becomes old, Amr has the right to take her back along with compensation for the loss in value. Similarly, if a young male slave is usurped and becomes old while with the usurper, the owner takes him back with compensation for the loss. This rule applies when the loss is minor. If the loss is severe (fahish), the owner has the choice to either take him back with compensation for the loss or abandon the slave and take his full price; this is the opinion of the majority of scholars. If a boy is usurped and remains with the usurper until he reaches puberty or grows a beard, the owner takes him back and cannot claim compensation. If a young female slave whose breasts were developing is usurped, and her breasts sag (become flaccid) while with the usurper, she is returned along with compensation for the loss. If a slave possessing a craft is usurped and forgets that craft while with the usurper, the usurper is liable for the amount of loss; this is mentioned in *Al-Muhit*.

A person usurped a slave with a beautiful voice, and his voice changed; the owner is entitled to compensation for the loss. If the slave was eloquent and forgot this skill while with the usurper, the usurper is not liable; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If Zaid shaves the locks of Amr's slave and they regrow but not as they were before, Zaid is not liable for anything; this is in *Muhit al-Sarkhasi*. If Zaid usurps Amr's gold or silver and makes coins or vessels from it, then according to Imam Azam (Abu Hanifa), his ownership is not terminated; therefore, the owner takes them, and the usurper receives nothing for his labor, nor does the owner pay any compensation for the work. Imams Abu Yusuf and Imam Muhammad stated that the owner has no way to take the struck dirhams and dinars; rather, it is mandatory for the usurper to provide an equivalent, and after payment, the usurper becomes the owner of the appropriated item. Sheikh Khujandi stated that if silver or gold is usurped and fashioned into jewelry, the owner can take it back and pay nothing to the usurper for the craftsmanship. However, if the silver or gold is attached to some property in such a way that its removal causes damage (e.g., making the mouth of a water skin or embedding stones in a ceiling), the owner's right is severed, and the usurper must

pay equivalent compensation based on the value at the time of usurpation. If the usurped silver was merely melted but not fashioned into anything or into struck coins, but rather made into a square, round, or rectangular block, then by consensus (ijma), the owner's right is not severed; this is in *Siraj al-Wahaj*. If dirhams are usurped and rubbed/filed without making anything new, the owner's right is not severed; there is no disagreement on this; this is in *Al-Muhit*.

If copper coins (fulus) are usurped and made into vessels, the usurper is liable for the coins because he has removed them from being currency; this is in *Muhit al-Sarkhasi*. If brass is usurped and made into a jug (kuza), the owner's right is severed. Sheikh Karkhi used to say that this rule applies when the vessel is not sold by weight; if it is sold by weight, then according to Imam Azam, the owner's right should not be severed, similar to silver. Sheikh Shams al-A'imma al-Sarkhasi stated that the correct view is that in this case, unlike silver, according to Imam Azam, the owner's right is absolutely severed, whether the owner of the brass has already been paid the price by the usurper or before.

---

1. "Munkasir" means they have become withered and sagging, no longer firm. The term "hurfa" refers to a craft like weaving, but singing is considered a flaw (in a legal/moral context of that era).
2. Absolutely, whether it is sold by weight or not, there is no difference.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 104 | किताबुल ग़स्ब (छीना-झपटी का बयान)**

बयान किया गया कि अगर किसी शख़्स ने दूसरे की सूखी रोटी तोड़ दी, तो मालिक को केवल वही टूटी हुई रोटी मिलेगी। इमाम शम्सुल आइम्मा सरख़सी ने फ़रमाया कि दिरहम या दीनार तोड़ने वाले पर उसके समान (मिसल) वाजिब होगा और मालिक को यह भी अधिकार है कि उसे ले ले, और वह उससे ज़्यादा कुछ नहीं ले सकता, चाहे तोड़ने से उसकी मालियत में कमी आई हो या न आई हो। अगर ज़ैद ने अम्र की दासी (बांदी) का अपहरण (ग़स्ब) किया और वह ज़ैद के पास रही यहाँ तक कि बुढ़िया हो गई, तो अम्र को यह अधिकार होगा कि उसे नुक़सान के मुआवज़े (ज़मान) के साथ वापस ले ले। इसी प्रकार यदि जवान दास (ग़ुलाम) छीना गया और वह उसके पास रहते-रहते बूढ़ा हो गया, तो मालिक उसे नुक़सान के मुआवज़े के साथ ले लेगा। यह नियम तब है जब नुक़सान मामूली (ख़फ़ीफ़) हो। और अगर नुक़सान बहुत ज़्यादा (फ़ाहिश) हो, तो मालिक को विकल्प होगा कि चाहे नुक़सान के मुआवज़े के साथ उसे ले ले या उसे छोड़ दे और उसकी पूरी क़ीमत ले ले; यही अधिकांश उलमा का मत है। अगर कोई बच्चा छीना गया और वह उसके पास रहते-रहते बालिग हो गया या उसकी दाढ़ी निकल आई, तो मालिक उसे ले लेगा और कोई मुआवज़ा नहीं ले सकता। और अगर ऐसी दासी छीनी जिसके स्तन उभर रहे थे और अपहरणकर्ता के पास उसके स्तन ढीले (मुनकसिर) हो गए, तो वह नुक़सान के साथ वापस लेगा। अगर कोई हुनरमंद दास छीना गया और वह अपहरणकर्ता के पास रहते हुए अपना हुनर भूल गया, तो अपहरणकर्ता नुक़सान की मात्रा के बराबर मुआवज़े का ज़िम्मेदार होगा; यह 'मुहीत' में है।

एक व्यक्ति ने मधुर आवाज़ वाला दास छीना और उसके पास उसकी आवाज़ बदल गई, तो मालिक को नुक़सान का मुआवज़ा मिलेगा। और यदि दास वाकपटु (बोलने में कुशल) था और अपहरणकर्ता के पास यह कौशल भूल गया, तो अपहरणकर्ता ज़िम्मेदार नहीं होगा; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। अगर ज़ैद ने अम्र के दास के बाल मुँड़वा दिए और फिर वे उग आए, लेकिन वैसे नहीं रहे जैसे पहले थे, तो ज़ैद किसी मुआवज़े का ज़िम्मेदार नहीं होगा; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। अगर ज़ैद ने अम्र का सोना या चांदी छीनकर उसके सिक्के या बर्तन बना लिए, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) के अनुसार उसकी मालिकियत समाप्त नहीं होगी; अतः मालिक उसे ले लेगा और अपहरणकर्ता को उसके काम का कोई मुआवज़ा नहीं मिलेगा। इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद ने फ़रमाया कि मालिक को वे सिक्के लेने का अधिकार नहीं है, बल्कि अपहरणकर्ता पर अनिवार्य होगा कि वह उसके समान सोना/चांदी अदा करे और भुगतान के बाद वह उस छीनी हुई चीज़ का मालिक हो

जाएगा। शेख़ ख़ुजंदी ने फ़रमाया कि अगर चांदी या सोना छीनकर उसका ज़ेवर बनाया गया, तो मालिक उसे वापस ले सकता है और अपहरणकर्ता को उसकी ढलाई का कुछ नहीं देगा। लेकिन अगर उस चांदी या सोने को उसने अपने किसी माल में इस तरह जड़ दिया कि उसे निकालने में नुक़सान हो (जैसे सुराही का मुँह बनाना या छत में पत्थर जड़ना), तो मालिक का हक़ समाप्त हो जाएगा और अपहरणकर्ता पर उसके बराबर का मुआवज़ा देना वाजिब होगा, जो अपहरण के समय की क़ीमत के अनुसार होगा। अगर सोने/चांदी को केवल पिघलाया गया लेकिन कोई चीज़ या सिक्के नहीं बनाए गए, बल्कि उसे चौकोर या गोल ईंट जैसा बना दिया गया, तो सर्वसम्मति (इजमा) से मालिक का हक़ समाप्त नहीं होगा; यह 'सिराजुल वहाज' में है। अगर सिक्के छीनकर उन्हें घिसा गया और कोई नई चीज़ नहीं बनाई गई, तो मालिक का हक़ समाप्त नहीं होगा, इसमें कोई मतभेद नहीं है; यह 'मुहीत' में है।

अगर तांबे के सिक्के(फ़ुलूस) छीनकर बर्तन बनाए गए, तो वह सिक्कों का ज़िम्मेदार होगा क्योंकि उसने उन्हें मुद्रा के रूप में समाप्त कर दिया है। अगर पीतल छीनकर उससे लोटा (कूज़ा) बनाया गया, तो मालिक का हक़ समाप्त हो जाएगा। शेख़ करख़ी फ़रमाते थे कि यह नियम तब है जब वह बर्तन वज़न के हिसाब से न बिकता हो; अगर वज़न से बिकता हो तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार चांदी की तरह इसमें भी मालिक का हक़ समाप्त नहीं होना चाहिए। शेख़ शम्सुल आइम्मा सरख़सी फ़रमाते थे कि सही बात यह है कि इस मामले में, चांदी के विपरीत, इमाम-ए-आज़म के अनुसार मालिक का हक़ पूरी तरह समाप्त हो जाता है, चाहे पीतल के मालिक ने अपहरणकर्ता से क़ीमत ले ली हो या नहीं।

---

1. मुनकसिर यानी ढीले होकर लटक गए। 'हर्फ़ा' का अर्थ है हुनर जैसे बुनाई, लेकिन गाना गाना एक ऐब (दोष) है।
2. पूर्णत; चाहे वज़न से बेचा जाए या नहीं, कोई अंतर नहीं है।

بیان کیا کہ اگر کسی شخص نے دوسرے کی گرد روٹی توڑ ڈالی تو مالک کو فقط وہی ٹوٹی ہوئی روٹی ملے گی اور امام شمس الائمہ سرخسی نے فرمایا کہ درہم یا دینار توڑنے والے پر اس کے مثل واجب ہوں گے اور مالک کو یہ بھی اختیار ہے کہ اس کو لے لے اور زیادہ کچھ نہیں لے سکتا ہے خواہ توڑنے سے اس کی مالیت میں نقصان آگیا ہو یا نہ آیا ہو اور اگر زید نے عمرو کی باندی غصب کی اور زید کے پاس رہی یہاں تک کہ بڑھیا ہوگئی تو عمرو کو یہ اختیار ہوگا کہ اس کو مع ضمان نقصان کے لے لے اسی طرح اگر جوان غلام غصب کیا اور اس کے پاس رہا یہاں تک کہ بوڑھا ہو گیا تو مالک اس کو مع ضمان نقصان لے لے گا اور یہ حکم اس وقت ہے کہ نقصان خفیف ہوا ہو اور اگر نقصان فاحش ہو تو مالک کو اختیار ہوگا چاہے مع ضمان نقصان لے یا چھوڑ دے اور قیمت لے لے اور یہی اکثر مشائخ کا قول ہے اور اگر لڑکا غصب کیا اور اس کے پاس رہا یہاں تک کہ بالغ ہو گیا یا ڈاڑھی نکل آئی تو مالک اس کو لے لے گا اور کچھ ضمان نہیں لے سکتا ہے اور اگر باندی جس کی کونچیں چھاتیوں کے اُبھارتی غصب کی اور غاصب کے پاس اس کی چھاتی یعنی پستان منکسر ہو گئیں تو مع نقصان واپس لے گا اور اگر کوئی حرفہ جانتا ہوا غلام غصب کیا اور وہ غاصب کے پاس رہ کر یہ حرفہ بھول گیا تو غاصب بقدر نقصان ضامن ہو گا یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نے غلام خوش آواز غصب کیا اور اس کے پاس اس کی آواز متغیر ہوگئی تو مالک کو نقصان ملے گا اور اگر غلام گویا تھا اور غاصب کے پاس یہ فعل بھول گیا تو غاصب ضامن نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر زید نے عمرو کے غلام کی زلفیں منڈوا دیں پھر جم آئیں لیکن جیسی تھیں ویسی نہ جمیں تو زید کچھ ضامن نہ ہو گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر زید نے عمرو

کا سونا یا چاندی غصب کر کے دینار و درہم یا برتن بنائے تو امام اعظمؒ کے نزدیک اس کی ملک اس سے زائل نہ ہو گی پس مالک اس کو لے لے گا اور غاصب کو اس سے کچھ نہ ملے گا اور نہ اس کے کام کا عوض مالک کچھ دے گا اور امام ابو یوسف و امام محمدؒ نے فرمایا کہ مالک کو درہم و دینار مضروب لینے کی کوئی راہ نہیں ہے اور غاصب پر واجب ہو گا کہ اس کے مثل ادا کرے اور بعد ادا کے مغصوب کا مالک ہو جائے گا اور شیخ خجندی نے فرمایا کہ اگر چاندی یا سونا غصب کر کے اس کا زیور ڈھال کر بنایا تو مالک اس کو واپس لے سکتا ہے اور غاصب کو اس کی ڈھلوائی کچھ نہ دے گا لیکن اگر اس چاندی و سونے کو اس نے اپنے کسی مال میں اس طرح جڑ دیا کہ اس کے اکھاڑنے میں مضرت ہے مثلاً اپنی مشک کا دہانہ بنایا یا چھت میں پتھر جڑ دیئے یا مثل اس کے کوئی فعل کیا تو ایسے فعل سے مالک کا حق منقطع ہو جائے گا اور غاصب پر اس کے مثل ضمان دینا واجب ہو گا اور وقت غصب کے حساب سے ضمان دے گا اور اگر اس بنے ہوئے چاندی کو فقط گلایا مگر ڈھال کر کوئی چیز یا درہم و دینار مضروب نہ کیے بلکہ فقط اس کو مربع یا مدور یا مستطیل پتھر بنایا تو بالاجماع اس سے مالک کا حق منقطع نہ ہو گا یہ سراج الوہاج میں ہے اور اگر درہم غصب کر کے اس کو گھس کر کوئی چیز نہیں بنائی تو اس سے مالک کا حق منقطع نہ ہوگا اس میں کچھ اختلاف نہیں ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر فلوس غصب کر کے برتن بنائے تو فلوس کا ضامن ہو گا کیونکہ اس نے فلوس کو ثمن ہونے سے خارج کر دیا یہ محیط سرخسی میں ہے اور اگر پیتل غصب کر کے اس سے کوزہ بنایا تو مالک کا حق منقطع ہو جائے گا اور شیخ کرخیؒ فرماتے تھے کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ بعد ساخت کے وہ برتن وزن کر کے فروخت نہ ہوتا ہو اور اگر وزن سے فروخت ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک مثل چاندی کے اُس میں بھی حق مالک منقطع نہ ہونا چاہیے اور شیخ شمس الائمہ سرخسی فرماتے تھے کہ صحیح یہ ہے کہ اس صورت میں بخلاف چاندی کے امام اعظمؒ کے نزدیک مطلقاً حق

مالک منقطع ہو جاتا ہے اور اگر پیتل کے مالک نے بعد ازاں کہ غاصب اس کو اس کے پیتل کی قیمت ادا کر چکا ہے یا قبل

---

اـہ منکسر یعنی مضمحل ہو کر لٹک گئیں کڑی نہیں رہیں اور قولہ حرفہ یعنی ہنر مثلاً بینا لیکن گانا عیب ہے۔

۲ـہ مطلقاً خواہ وزن سے فروخت ہو یا نہ ہو کچھ فرق نہیں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 105 Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

Since a decree for the price of an equivalent item is issued against him, if he breaks the pitcher (kuza), it is ruled that a decree for the price of a whole pitcher shall be issued against the owner [as compensation], and the broken pieces shall be returned to the owner. Shams al-A'imma stated that there shall not be a mutual offsetting of prices between the two; rather, the price of the pitcher is obligatory upon the owner. In compensation, 'muqasa' (offsetting) is not the primary form of settlement. The book mentions that if the usurper (ghasib) settles the due amount with the owner, some of our scholars say it means they reach a compromise (sulh); in such a case, substitution is permissible, otherwise it is not. Some scholars explain that this ruling applies when the usurped item does not have a readily available equivalent (mithl), making the price obligatory on the usurper so that an offset can occur. This is noted in 'al-Muhit'.

If Zaid usurps an animal and it grows large while in his possession, increasing its value, the owner has the right to take it back, and the usurper receives nothing. Similarly, if a wounded or sick animal is usurped and treated until it recovers, the same ruling applies. If land with crops or a palm grove is usurped and the usurper irrigates the crop or tends the trees, everything goes to the owner, and the usurper is not reimbursed for his expenses. If the usurper harvests the crop or picks the fruit and then destroys them, he is liable (zamin) for damages, as stated in 'Tatarkhaniya'. If date leaves are usurped and made into a basket, the owner's right to reclaim the physical item is lost. However, if a hide is usurped and converted into leather pieces, the owner retains the right to reclaim it because the identity (name) of the item is not yet lost, only its parts have been reorganized, similar to cutting cloth to sew a garment. This is in 'Siraj al-Wahhaj'. If a person usurps a copy of the Quran (Mushaf) and adds diacritical marks (dots), this is considered an unauthorized addition; the owner may take the Mushaf and compensate the usurper for the value added, or claim the price of an unmarked Mushaf as damages. This is Imam Muhammad's view. Abu Yusuf narrated that the owner may take it without paying anything, similar to a case where a usurped slave is taught to write. If paper is usurped and written upon, Shaykh al-Islam mentions the owner's right is terminated, though other scholars disagree, the sounder view being it is not terminated. This is in 'al-Muhit'. If someone usurps flax, spins it, and weaves cloth, he must provide an equivalent amount of flax as compensation, or its price if an equivalent is unavailable. The owner has no claim over the cloth. This is in 'al-Mabsut'.

**What is the ruling if usurped wheat is ground into flour?**

If Zaid usurps a needle and cuts it up, or usurps yarn and weaves it, the owner's right is terminated. If cotton is usurped and spun into thread but not yet woven, scholars differ, but the correct view is that the owner's right is terminated. In the case of grinding usurped wheat, according to us, the flour belongs to the usurper, provided he compensates the owner with an equivalent amount of wheat. This is in 'al-Mabsut'. If the flour is then kneaded into dough, the owner's right is terminated. If flour is usurped and baked into bread, or meat is roasted, or oil is extracted from sesame seeds, according to the Zahir al-Riwayah of our companions, the owner's right is terminated. Similarly, if wood (sal wood) is usurped to make doors or iron to make a sword, the owner's right is terminated, and these items become the property of the usurper upon payment of the raw material's price. 'Muqasa' refers to a mutual settlement based on equality of compensation.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 105 किताब अल-ग़सब (छीना-झपटी का बयान)**

चूंकि उस पर वैसी ही चीज़ की कीमत की डिक्री (हुक्म) हो, यदि उसने वह कूज़ा (मिट्टी का पात्र) तोड़ दिया, तो फरमाया गया कि मालिक पर सही कूज़े की कीमत की डिक्री की जाएगी और टूटा हुआ हिस्सा मालिक को दे दिया जाएगा। शम्स अल-आइम्मा ने फरमाया कि दोनों के बीच कीमत का आपसी मुक़ाबला (विनिमय) नहीं होगा, बल्कि मालिक पर कूज़े की कीमत अनिवार्य होगी। दंड में 'मक़ासा' (बदला) सीधे तौर पर नहीं होता। किताब में कहा गया है कि यदि ग़ासिब (छीनने वाला) अपने ऊपर देय अधिकार का मालिक के साथ हिसाब कर ले, तो हमारे कुछ विद्वानों (मशायख) के अनुसार इसका अर्थ यह है कि दोनों समझौता कर लें; ऐसी स्थिति में विनिमय वैध होगा, अन्यथा नहीं। कुछ विद्वानों का मत है कि यह हुक्म तब है जब छीनी गई चीज़ का कोई और विकल्प (मिसल) मौजूद न हो, ताकि ग़ासिब पर उसकी कीमत अनिवार्य हो और आपसी बदला हो सके। यह 'मुहीत' में वर्णित है।

यदि ज़ैद ने कोई जानवर छीना और वह उसके पास बड़ा हो गया और उसकी कीमत बढ़ गई, तो मालिक को अधिकार है कि वह उसे ले ले, और ग़ासिब को कुछ नहीं मिलेगा। इसी प्रकार यदि कोई घायल या बीमार जानवर छीना और उसका इलाज किया जिससे वह ठीक हो गया, तो भी यही हुक्म है। इसी तरह यदि ऐसी ज़मीन जिसमें खेती हो या खजूर के पेड़ हों, ग़ासिब ने छीनी और खेती की सिंचाई की या पेड़ों की देखभाल की, तो यह सब मालिक को मिलेगा और ग़ासिब को उसका खर्च नहीं दिया जाएगा। यदि ग़ासिब ने फसल काट ली या फल तोड़ लिए और उन्हें नष्ट कर दिया, तो वह हर्जाने का उत्तरदायी (ज़ामिन) होगा, यह 'तातारखानिया' में है। यदि खजूर के पत्तों से टोकरी बनाई, तो मालिक का उन्हें लेने का अधिकार समाप्त हो गया। यदि खाल छीनकर उससे चमड़े के टुकड़े (या उत्पाद) बनाए, तो मालिक को उसे लेने का अधिकार है क्योंकि उसका नाम (पहचान) अभी समाप्त नहीं हुआ है, केवल अंग अलग हुए हैं, जैसे कपड़े को काटकर सिला गया हो। 'सिराज अल-वहाज' में ऐसा ही है। यदि किसी ने दूसरे का क़ुरान (मुसहफ़) छीना और उसमें नुक्ते (बिंदु) लगाए, तो यह ज़्यादती है; मालिक चाहे तो मुसहफ़ ले ले और ग़ासिब के काम का हक़ उसे दे दे, या फिर बिना नुक्तों वाले मुसहफ़ की कीमत का हर्जाना ले। इमाम मोहम्मद का यही मत है। इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार, मालिक उसे बिना कुछ दिए ले सकता है, जैसा कि उस स्थिति में होता है जब कोई ग़ुलाम को लिखना सिखा दे। यदि कागज़ छीनकर उस पर लिखा, तो शेख अल-इस्लाम के अनुसार मालिक का अधिकार समाप्त हो जाएगा, जबकि कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि अधिकार समाप्त नहीं

होगा। यदि किसी ने सन (जूट) छीनकर उसे काता और कपड़ा बुनाया, तो उस पर वैसा ही सन देना अनिवार्य होगा, और यदि न मिले तो उसकी कीमत। मालिक का उस कपड़े पर कोई अधिकार नहीं रहेगा। यह 'मबसूत' में है।

### यदि गेहूँ छीनकर पीसा गया, तो उसकी स्थिति क्या होगी?

यदि ज़ैद ने सुई छीनकर उसे काट दिया या सूत छीनकर उससे कुछ बुनाया, तो मालिक का हक़ समाप्त हो जाएगा। यदि रुई छीनकर काती गई और बुनाई नहीं हुई, तो विद्वानों में मतभेद है, परंतु सही मत यह है कि मालिक का हक़ समाप्त हो जाएगा। गेहूँ पीसने की स्थिति में हमारे अनुसार आटा ग़ासिब का होगा, लेकिन उसे गेहूँ का हर्जाना देना होगा। यदि आटे को गूँध लिया, तो मालिक का हक़ समाप्त हो जाएगा। आटा छीनकर रोटी बनाई, माँस भुना या तिलों का तेल निकाला, तो हमारे साथियों के अनुसार मालिक का अधिकार समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार लकड़ी (साखू) से दरवाज़े बनाए या लोहे से तलवार बनाई, तो भी मालिक का हक़ समाप्त होगा और सामग्री की कीमत चुकाने पर ये चीज़ें ग़ासिब की हो जाएंगी। 'मक़ासा' का अर्थ है आपसी बराबरी का समझौता करना।

---

ازاں کہ اس پر مثل کی قیمت کی ڈگری ہو وہ کوزہ توڑ ڈالا تو فرمایا کہ مالک پر صحیح کوزہ کی قیمت کی ڈگری کی جائے گی اور شکستہ مالک کو دیا جائے۔ اور شمس الائمہ نے فرمایا کہ دونوں میں باہم قیمت کا تقابل بدلہ نہ ہو جائے گا بلکہ مالک پر کوزہ کی قیمت واجب ہوگی اور وہ تاوان میں مقاصہ یعنی اولاً بدلہ نہیں ہوتا ہے اور کتاب میں فرمایا کہ لیکن اگر غاصب اُس حق سے جو اُس پر ہے باہم مالک کے ساتھ حساب کر لے اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ اس قول سے یہ مراد ہے کہ دونوں باہم صلح کریں تو ایسی صورت میں استبدال ہو جائے گا اور جائز ہوگا مگر بدون اس کے تو نا جائز ہے اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ تاویل یہ ہے کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ غصب کیا ہوا مثل ایسا مثل ہو کہ اُس کا مثل موجود نہ ہو تا کہ اُس کی قیمت غاصب پر واجب ہو پس مقاصہ یعنی باہم بدلا ہو جائے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر زید نے کوئی حیوان غصب کیا اور اُس کے پاس بڑا ہو گیا اور اُس کی قیمت زیادہ ہوگئی تو مالک کو اختیار ہوگا کہ اس کو لے لے اور غاصب کو کچھ نہیں ملے گا اسی طرح اگر زخمی یا مریض غصب کیا اور دوا کی یہاں تک کہ وہ اچھا ہو گیا تو بھی یہی حکم ہے اسی طرح اگر ایسی زمین جس میں زراعت موجود ہے یا نخل غصب کیا اور کھیتی کو سینچا یا نخل کو گوڑ کر اُس میں نر مادی لگائی اور اصلاح میں مستعد رہا تو بھی یہ سب مالک کو ملے گا اور غاصب کو اُس کا خرچہ نہیں ملے گا اور اگر غاصب نے کھیتی کاٹ لی یا پھل جھاڑ لیے اور تلف کر دے تو ضامن ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے اور اگر خرما کے پتے غصب کر کے اُس سے زنبیل بنائی تو مالک کو اس کے لینے کی کوئی راہ نہیں رہی اور اگر کھال کو غصب کر کے اُس سے چمڑا کڑھنیاں بنوائیں تو مالک کو اُس کے لینے کا اختیار ہے کیونکہ نام ابھی تک زائل نہیں ہوا صرف اُس کے

اجزا متفرق ہو گئے ہیں پس ایسا ہو گیا کہ جیسے کپڑا غصب کر کے اُس کو قطع کرایا یہ سراج الوہاج میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کا مصحف غصب کر کے اُس میں نقطہ لگائے تو یہ زیادتی ہے اور مالک کو اختیار ہوگا چاہے مصحف لے کر غاصب کی زیادتی کرنے کا حق اُس کو دے دے اور چاہے غیر منقوطہ مصحف کی قیمت اُس سے ضمان لے اور یہ امام محمد کا قول ہے اور معلی نے امام ابویوسف سے روایت کی کہ مالک اُس کو بدون کچھ دیے ہوئے لے لے گا جیسا کہ اس صورت میں حکم ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کا غلام غصب کر کے اُس کو لکھنا سکھلا دیا اور اگر ایک شخص نے دوسرے کا کاغذ غصب کر کے اُس پر لکھا تو شیخ الاسلام نے ذکر کیا کہ مالک کا حق اُس سے منقطع ہو جائے گا اور قاضی رکن الاسلام علی سغدی نے ذکر کیا کہ اس میں مشائخ کا اختلاف ہے مگر صحیح یہ ہے کہ مالک کا حق منقطع نہ ہوگا یہ محیط میں ہے اگر ایک شخص نے دوسرے کی کتان غصب کر کے اُس کو کاتا اور کپڑا بنوایا تو اُس پر اس کے مثل واجب ہوگا اور اگر مثل نہ پایا جائے تو قیمت واجب ہوگی اور مالک کو اُس کپڑے کے لینے کی کوئی راہ نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔

**اگر گیہوں کو غصب کر کے پیسا تو اُس کی صورت کیا ہوگی؟**

زید نے عمر کی سوئی غصب کر کے اُس کو کاٹ کر بنوایا یا سوت غصب کر کے اُس کو بنوایا تو مالک کا حق منقطع ہو جائے گا اور اگر روئی غصب کر کے اُس کو کاتا اور نہ بنا تو اُس میں مشائخ کا اختلاف ہے مگر صحیح یہ ہے کہ مالک کا حق منقطع ہو جائے گا یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر غصب کے گیہوں پیسے تو ہمارے نزدیک آٹا اُس کا ہوگا مگر اُس کے مثل گیہوں ضمان ادا کر دے یہ مبسوط میں ہے اگر غاصب نے آٹے کو گوندھ ڈالا تو مالک کا حق منقطع ہو جائے گا یہ قنیہ میں ہے۔ آٹا غصب کر کے روٹی پکائی یا گوشت کو بھون ڈالا یا تلوں کا تیل نکالا تو ہمارے اصحاب سے ظاہر الروایہ کے موافق مالک کا حق منقطع ہو جائے گا اسی طرح اگر ساکھو غصب

کر کے اُس کے کواڑ بنائے یا لوہا غصب کر کے اُس کی تلوار بنائی تو بھی مالک کا حق منقطع ہوگا اور ساکھو اور لوہے کی قیمت ادا کرنے پر یہ چیزیں غاصب کی ہو جائیں گی یہ "توڑ ڈالا یعنی مالک نے توڑا قبل از آں کہ غاصب پر تاوان کا حکم ہو یا بعد حکم کے اور قول استبدال باہم بدلا کر لینا مقاصہ ہر ایک کا جو کچھ دوسرے پر قصاص یعنی برابری کا سمجھوتہ کرے۔"

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 106 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

It is stated in 'Al-Muhit' that if someone usurps teakwood or lumber and incorporates it into his own building, or usurps baked bricks and incorporates them into a building, or takes mortar and builds a structure with it; then according to us, in all these cases, the price will be obligatory upon him, and the owner shall not have the right to demolish the usurper's building. This is the correct view, as stated in 'Al-Mabsut'. However, if he usurps an open field and constructs a building on it, the owner's right is not terminated, and he shall have the choice to take it back. Qazi Imam Abu Ali al-Nasafi used to narrate from Sheikh al-Karkhi that he detailed this in some of his books as follows: if the value of the field is less than the value of the building, he cannot take it; but if it is more, he can. He stated that the ruling mentioned in the book refers to what we have explained. It is presumed that this is the established doctrine. Our scholars have stated that this view is similar to those recorded from Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) in several cases. For instance, if a person holds a pearl in his hand and it falls and is swallowed by someone's hen, the value of both the hen and the pearl shall be considered. If the value of the hen is less, the owner of the pearl shall have the choice: he may either take the hen and pay its price to its owner, or he may leave the hen and take back his pearl (meaning the owner of the hen will be liable for the price of the pearl). Similarly, if Zaid leaves a camel calf as a trust (wadi'ah) with Amr, and Amr raises it in his house until it becomes a full-grown camel, and it is impossible to take it out of the house without demolishing a wall, then the values of the wall and the camel shall be considered. The choice shall be given to the owner of whichever item has the higher value. End. Furthermore, it should be clear that Imam Muhammad did not explicitly mention in the original text whether it is permissible for a usurper to demolish a building and return the field (on which he built) if he wishes to do so. There are two scenarios: if the judge (Qazi) has already decreed the price of the field against the usurper, it is not permissible for him to demolish the building, and if he does, he cannot return the field. If the judge has not yet issued a decree, the scholars differ. Some say demolishing is permissible, while others say it is not. This is in 'Al-Muhit'. If a carpenter usurps wood and incorporates it into someone else's building without the owner's permission, neither the carpenter nor the building owner becomes its owner. This is in 'Al-Qiniyah'. If a plank is usurped and fixed into a boat, or if silk is usurped and used to stitch one's own or one's slave's abdomen, the owner's right is terminated. This is in 'Al-Wajiz al-Kardari'.

If Zaid usurps Amr's land and plants trees or constructs a building on it, he shall be told to remove the trees and the building and return the land to the owner. If the removal of trees etc., diminishes the value of the land, Amr shall have the choice to pay the price of the broken building and the uprooted trees and thus become the owner of the building and trees himself. This means he should pay based on the value on the day the order for removal was given, because his right arises on that day. Therefore, the value of the land without the trees and building should be estimated, and then the value of the same land with the building and trees (which were ordered to be removed) should be estimated. The difference between the two values shall be fixed as the price for the broken building and the uprooted trees. The usurper must then be compensated to that extent. This is in 'Al-Kafi'. If a person constructs a boundary wall on usurped land using soil from that same land, Faqih Abu Bakr al-Balkhi stated that the wall shall belong to the landowner, and the builder shall have no claim, because if an order were given to demolish it, it would return to being the same soil it was before. Sheikh Abu al-Qasim said the same. Apart from these two, it is narrated from other scholars that if a person builds a boundary wall in another's vineyard without permission: if the soil has no value, the wall belongs to the owner of the vineyard, and the builder is considered a benefactor. If the soil has value, the wall belongs to the builder, and he is liable for the price of the soil. This is in 'Fatawa Qazi Khan' and 'Al-Kubra'. If a person usurps land from another and constructs a building or sows crops on it, and the owner then demolishes the building or uproots the crops, he shall not be liable, provided that the usurper's wood and bricks etc., are not broken.

**फतावी आलमगिरी ..... जिल्द (८) १०६ किताबुल गसब (छीनने का अध्याय)**

'मुहीत' में है कि अगर सागवान या लकड़ी छीनकर उसे अपनी इमारत में लगा लिया, या पकी हुई ईंटें छीनकर इमारत में लगा लीं, या चूना लेकर उससे इमारत बना ली, तो हमारे नज़दीक इन सब सूरतों में उस पर कीमत वाजिब होगी और मालिक को यह अधिकार नहीं होगा कि वह ग़ासिब (छीनने वाले) की इमारत तुड़वा दे। और यही सही है। यह 'मबसूत' में है। और अगर मैदान छीनकर उसमें इमारत बना ली, तो मालिक का हक़ खत्म नहीं होगा और उसे लेने का अधिकार होगा। और क़ाज़ी इमाम अबू अली नसफ़ी, शैख़ करख़ी से नक़ल करते थे कि उन्होंने अपनी कुछ किताबों में इस तरह तफसील की है कि अगर मैदान की कीमत इमारत की कीमत से कम हो तो नहीं ले सकता है, और अगर ज़्यादा हो तो ले सकता है। और फ़रमाया कि किताब में जो हुक्म ज़िक्र है, उससे यही मुराद है जो हमने बयान की है। और यह गुमान किया गया है कि यही मज़हब है। हमारे मशायख ने फ़रमाया कि यह बात उन बातों के करीब है जो इमाम मुहम्मद (रह.) से कुछ मसलों में सुरक्षित हैं कि अगर एक आदमी के हाथ में एक मोती हो और वह गिर पड़े और उसे किसी व्यक्ति की मुर्गी निगल जाए, तो मुर्गी और मोती की कीमत का अंदाज़ा लगाया जाएगा। फिर अगर मुर्गी की कीमत कम हो, तो मोती के मालिक को अधिकार होगा कि चाहे मुर्गी लेकर उसकी कीमत उसके मालिक को दे दे, या मुर्गी छोड़कर अपना मोती ले ले, यानी मुर्गी का मालिक मोती की कीमत का ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा। इसी तरह अगर ज़ैद ने अम्र के पास ऊँट का बच्चा अमानत (वदीअत) रखा और अम्र ने उसे अपने घर में पाला, फिर वह बच्चा पूरा ऊँट बन गया और घर से उसे बिना दीवार तोड़े निकालना मुमकिन न हो, तो दीवार और ऊँट की कीमत पर विचार किया जाएगा। फिर जिस चीज़ की कीमत ज़्यादा हो, उसके मालिक को अधिकार दिया जाएगा। इति। फिर यह स्पष्ट हो कि इमाम मुहम्मद ने असल में यह ज़िक्र नहीं किया कि अगर ग़ासिब चाहे कि इमारत तोड़कर मैदान (जिसमें इमारत बनाई थी) वापस कर दे, तो क्या उसके लिए यह हलाल (वैध) है या नहीं। इसकी दो सूरतें हैं: अगर क़ाज़ी ने ग़ासिब पर मैदान की कीमत का फैसला कर दिया, तो उसके लिए इमारत तोड़ना हलाल नहीं है, और अगर उसने तोड़ डाली तो वह मैदान वापस नहीं कर सकता है। और अगर क़ाज़ी ने उस पर फैसला न किया हो, तो मशायख में मतभेद है। कुछ ने कहा कि इमारत तोड़ना हलाल है और कुछ ने कहा कि हलाल नहीं है। यह 'मुहीत' में है। और अगर बढ़ई ने लकड़ी छीनकर बिना मालिक की अनुमति के दूसरे की इमारत में लगा दी, तो बढ़ई और इमारत का मालिक कोई भी उसका मालिक नहीं हो जाएगा। यह 'क़ूनिया' में है। अगर तख़्ता (पटरा) छीनकर नाव में लगा दिया, या रेशम

छीनकर अपना या अपने गुलाम का पेट उससे सिया (सिलाई की), तो मालिक का हक़ खत्म हो जाएगा। यह 'वजीज़ करदरी' में है।

अगर ज़ैद ने अम्र की ज़मीन छीनकर उसमें पेड़ लगाए या इमारत बनाई, तो उससे कहा जाएगा कि पेड़ और इमारत हटाकर मालिक को (ज़मीन) वापस दे। और अगर पेड़ आदि उखाड़ने से ज़मीन की कीमत कम हो जाती हो, तो अम्र को अधिकार होगा कि वह टूटी हुई इमारत और उखड़े हुए पेड़ों की कीमत दे दे और इमारत व पेड़ों का खुद मालिक हो जाए। और इसका मतलब यह है कि जिस दिन उखाड़ने का हुक्म हुआ है, उस दिन के हिसाब से कीमत दे, क्योंकि उसका हक़ उसी दिन पैदा होता है। अतः पेड़ों और इमारत के बिना ज़मीन की कीमत का अंदाज़ा किया जाए और उसी ज़मीन का इमारत और पेड़ों के साथ (जिन्हें हटाने का हुक्म दिया गया है) अंदाज़ा किया जाए। फिर दोनों के बीच जो अंतर हो, वही टूटी हुई इमारत और उखड़े हुए पेड़ों की कीमत मानी जाएगी। अतः ग़ासिब को उतनी ही रकम का हर्जाना (ज़मान) देना होगा। यह 'काफी' में है। एक व्यक्ति ने छीनी हुई ज़मीन में उसी ज़मीन की मिट्टी से चहारदीवारी बनाई, तो फकीह अबू बक्र बल्ख़ी ने फ़रमाया कि वह चहारदीवारी ज़मीन के मालिक की होगी, बनाने वाले का कोई हक़ नहीं होगा, क्योंकि अगर उसे तोड़ने का हुक्म दिया जाए तो वह फिर से वैसी ही मिट्टी हो जाएगी जैसी थी। और ऐसा ही शैख़ अबुल कासिम ने फ़रमाया है। और इन दोनों के अलावा मशायख से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने दूसरे के अंगूर के बाग़ में उसकी अनुमति के बिना चहारदीवारी बनाई। अगर मिट्टी की कोई कीमत न हो, तो चहारदीवारी बाग़ के मालिक की होगी और बनाने वाला इस काम में उपकार करने वाला माना जाएगा। और अगर मिट्टी की कीमत हो, तो चहारदीवारी बनाने वाले की होगी और उस पर मिट्टी की कीमत वाजिब होगी। ऐसा 'फतावा क़ाज़ी ख़ान' और 'अल-कुबरा' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे से ज़मीन छीनकर उसमें इमारत बनाई या खेती की, फिर मालिक ने इमारत ढहा दी या खेती उखाड़ डाली, तो वह उसका ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा, बशर्ते कि ग़ासिब की लकड़ी और ईंटें आदि न टूटी हों।

محیط میں ہے اور اگر ساگھو یا لکڑی غصب کر کے اُس کو اپنی عمارت میں داخل کیا یا پختہ اینٹ غصب کر کے عمارت میں داخل کی یا گچ کو لے کر اُس سے عمارت بنائی تو ہمارے نزدیک ان سب صورتوں میں اُس پر قیمت واجب ہو گی اور مالک کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ غاصب کی عمارت توڑ دے اور یہی صحیح ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر میدان غصب کر کے اُس میں عمارت بنائی تو مالک کو حق منقطع نہ ہو گا اور اُس کو لینے کا اختیار ہو گا اور قاضی امام ابوعلی نسفی شیخ کرخی سے نقل کرتے تھے کہ اُنہوں نے اپنی بعض کتابوں میں یوں تفصیل کی ہے کہ اگر میدان کی قیمت قیمت عمارت سے کم ہو تو نہیں لے سکتا ہے اور زیادہ ہو تو لے سکتا ہے اور فرمایا کہ جو حکم کتاب میں مذکور ہے اُس سے یہی مراد ہے جو ہم نے بیان کی ہے اور زعم کیا ہے کہ یہی مذہب ہے اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ یہ قول اُن اقوال سے قریب ہے جو چند مسائل میں امام محمدؒ سے محفوظ ہیں کہ اگر ایک شخص کے ہاتھ میں ایک موتی ہو اور وہ گر پڑا اور اُس کو کسی شخص کی مرغی نگل گئی تو مرغی اور موتی کی قیمت پر لحاظ کیا جائے گا پس اگر مرغی کی قیمت کم ہو تو موتی کے مالک کو اختیار ہو گا چاہے مرغی کو لے کر اُس کی قیمت اُس کے مالک کو دے دے یا چھوڑ کر اپنا موتی لے لے یعنی مرغی کا مالک موتی کی قیمت کا ضامن ہو گا اسی طرح اگر زید نے عمرو کے پاس اونٹ کا بچہ مثلاً ودیعت رکھا اور عمرو نے اپنے گھر میں پالا پھر وہ بچہ پورا اونٹ ہو گیا اور گھر سے اُس کا نکالنا بدون دیوار توڑنے ممکن نہ ہو تو دیوار و اونٹ کی قیمت پر غور کیا جائے گا پس جس چیز کی قیمت زیادہ ہو اُس کے مالک کو اختیار دیا جائے گا انتہیٰ۔ پھر واضح ہو کہ امام محمدؒ نے اصل میں یہ ذکر نہ کیا کہ اگر غاصب نے چاہا کہ عمارت توڑ کر میدان یعنی جس میں عمارت بنائی تھی واپس کر دے پس آیا اُس کو یہ حلال ہے یا

نہیں اور اس کی دو صورتیں ہیں اگر قاضی نے غاصب پر میدان کی قیمت کی ڈگری کر دی تو اُس کو عمارت توڑنا حلال نہیں ہے اور اگر توڑ ڈالی تو میدان واپس نہیں کر سکتا ہے اور اگر قاضی نے اُس پر ڈگری نہ کی ہو تو مشائخ نے اختلاف کیا ہے بعض نے کہا کہ عمارت توڑنا حلال ہے اور بعض نے کہا کہ نہیں حلال ہے یہ محیط میں ہے اور اگر بڑھئی نے لکڑی غصب کر کے غیر کی عمارت میں مالک کی بلا اجازت داخل کر دی تو بڑھئی اور صاحب عمارت کوئی اس کا مالک نہ ہو جائے گا یہ قینہ میں ہے اگر تختہ غصب کر کے کشتی میں لگایا یا ابریشم غصب کر کے اپنا یا اپنے غلام کا پیٹ اُس سے ٹانکا تو مالک کا حق منقطع ہو جائے گا یہ وجیز کر دیری میں ہے۔

اگر زید نے عمرو کی زمین غصب کر کے اُس میں درخت لگائے یا عمارت بنائی تو اُس سے کہا جائے گا کہ درخت و عمارت دور کر کے مالک کو واپس دے اور اگر درخت وغیرہ اکھاڑنے سے زمین ناقص ہو جاتی ہو تو عمرو کو اختیار ہو گا کہ اس کو عمارت شکستہ اور اکھیڑے ہوئے درختوں کی قیمت دے دے اور عمارت و درخت کا خود مالک ہو جائے گا اور مراد یہ ہے کہ جس دن اکھاڑنے کا حکم ہوا ہے اس دن کے حساب سے دے دے کیونکہ حق اُس کا اُسی دن ہے پس بدون درخت و عمارت کے زمین کی قیمت اندازہ کی جائے اور وہی زمین مع عمارت و درخت جن کے دور کرنے کا حکم دیا گیا ہے اندازہ کی جائے پس دونوں کے درمیان جو فرق ہو وہی عمارت شکستہ و درخت پر کندہ کی قیمت قرار دی جائے گی پس اُسی قدر غاصب کو ضمان دے یہ کافی میں ہے۔ ایک شخص نے غصب کی زمین میں اُسی زمین کی مٹی سے چار دیواری بنائی تو فقیہ ابو بکر بلخی نے فرمایا کہ وہ چار دیواری مالک زمین کی ہو گی بنانے والے کا کچھ استحقاق نہ ہو گا کیونکہ اگر اُس کے توڑ دینے کا حکم دیا جائے تو جیسی مٹی تھی ویسے ہی ہو جائے گی اور ایسی ہی شیخ ابوالقاسم نے فرمایا ہے اور ان دونوں کے سوائے مشائخ سے منقول ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کے باغ انگور میں اس کی بلا اجازت چار دیواری بنائی پس اگر مٹی کی کچھ قیمت نہ ہو

تو چار دیواری باغ کے مالک کی ہو گی اور بنانے والا اس فعل میں احسان کرنے والا شمار ہو گا اور مٹی کی قیمت ہو تو چار دیواری بنانے والے کی ہو گی اور اُس پر مٹی کی قیمت واجب ہو گی کذا فی فتاویٰ قاضی خان والکبریٰ ایک شخص نے دوسرے سے زمین غصب کر کے اُس میں عمارت بنائی یا کھیتی بوئی پس مالک نے عمارت ڈھادی یا کھیتی اُکھاڑ ڈالی تو ضامن نہ ہو گا بشرطیکہ غاصب کی لکڑی و اینٹیں وغیرہ نہ ٹوٹی ہوں یہ

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) - Kitab al-Ghasb (Book of Usurpation) [Page 107]**

It is stated in *Al-Hawi*: In *Fatawa Qadi Khan*, it is mentioned that if a person breaks someone else's staff (walking stick), they are liable for the damages. If they break it so severely that it is only fit for firewood or for moving ice, and its primary use is lost, the owner has the right to demand full compensation. Regarding people like the Ati and Turk who usurp paddy/crops and timber and break them extensively, the owner's right is not terminated, even if their value increases due to being broken; this is mentioned in *Al-Qunyah*.

If a person usurps a house and applies plaster (lime) to it, the owner shall be told to pay the usurper for the added value caused by the plaster. However, if the owner agrees that the usurper takes a portion of the property instead, that is permissible. Similarly, if the usurper paints the house, the owner has the choice to take the house and pay the usurper for the increase in value due to the paint. If the owner refuses to pay, then the usurper shall be made to pay the price of the house to the owner, provided the cost of painting was significant. Hisham narrated from Imam Abu Yusuf that if the owner refuses to pay for the added value from the paint, he (the judge) would order the removal of the paint and decree compensation for any damage caused during that removal process. This same ruling applies if usurped door panels are decorated with paint; this is mentioned in *Al-Muhit al-Surkhi*. If, after usurping door panels, one does not paint them but instead carves patterns into them, this is considered destruction of the original item. Consequently, the usurper is liable for the price of the doors, and the doors become their property. The same ruling applies if patterns are carved onto silver vessels; this is mentioned in *Al-Muhit*.

**Question: If a Muslim usurps another's wine and turns it into vinegar, does the owner have the right to take it back or not?**

If a person purchases a usurped house from a usurper and demolishes its structure to incorporate it into their own building, and then the original owner appears: if the new construction is minor and can be dismantled without difficulty, it should be dismantled and returned to the owner. However, if it is extensive, difficult to dismantle, and requires significant time, the owner has the choice to either not dismantle it and leave it, taking compensation from the buyer for the land and the previous building. Faqih Abu Ja'far stated that this is the unanimous view of the

Imams. However, other scholars besides Abu Ja'far stated that this is only the view of Imam Muhammad; this is quoted in *At-Tatarkhaniyya* from *Ad-Dhakhirah*.

Regarding a Muslim who usurps another's wine and turns it into vinegar: the text states that the owner can take it back. Scholars have differed on this. Some say it means the usurper turned it into vinegar using something valueless, such as moving it from shade to sun or vice-versa, or adding a negligible amount of salt or vinegar that has no market value. If they added salt or vinegar in a quantity that has value, then according to Imam al-A'zam (Abu Hanifa), the entire vinegar becomes the property of the usurper, and they owe nothing to the owner. According to the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad), if salt was added, the owner takes the vinegar and pays the usurper for the added value from the salt. If vinegar was added, the total amount is shared between them according to their respective proportions.

---

**Footnotes:** 1. I say that this does not mean that there is a report from other scholars on this specific issue, although it may appear so at first glance. The earlier mentioned scenario is not the same as the one following it. In the first instance, the usurpation involved land, which is not the case in the subsequent one, hence the distinction. 2. The point regarding "carving" is that no additional material is added; rather, material is consumed to create the relief patterns.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) - किताब-अल-ग़स्ब (पृष्ठ 107)**

हावी में है। फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की लाठी (असा) तोड़ दी, तो वह नुकसान का ज़िम्मेदार होगा। और यदि उसे इतना तोड़ दिया कि वह ईंधन या बर्फ(हटाने) के लायक ही रह गई और लाठी का लाभ जाता रहा, तो मालिक को मुआवज़ा लेने का अधिकार होगा। अत्ती और तुर्क लोग जो धान और लकड़ियाँ छीनकर (ग़स्ब करके) उन्हें बहुत तोड़ देते हैं, तो उनसे मालिक का अधिकार समाप्त नहीं होता, भले ही टूटने के कारण उनका मूल्य बढ़ जाए। यह 'कुनिया' में है। और यदि किसी ने घर छीनकर उस पर पलस्तर (गच) कराया, तो मालिक से कहा जाएगा कि पलस्तर के कारण जो मूल्य बढ़ा है वह ग़ासिब (छीनने वाले) को दे दे। लेकिन यदि मालिक इस बात पर सहमत हो जाए कि ग़ासिब उसी घर का कुछ हिस्सा ले ले, तो ऐसा हो सकता है। इसी तरह यदि ग़ासिब ने उस पर रंग कराया, तो मालिक को अधिकार होगा कि वह घर लेकर रंग के कारण जो मूल्य बढ़ा है वह ग़ासिब को दे दे। और यदि उसने मना किया, तो ग़ासिब को घर की कीमत दिलाई जाएगी और मालिक कीमत ले लेगा, बशर्ते कि रंगाई का खर्च बहुत अधिक हो। हिशाम ने इमाम अबू यूसुफ से रिवायत की है कि यदि मालिक ने ग़ासिब को रंग के कारण बढ़ी हुई कीमत देने से मना किया, तो मैं उसे रंग हटाने का आदेश दूँगा और इस प्रक्रिया में जो नुकसान होगा, उसका हर्जाना ग़ासिब से दिलवाऊंगा। इसी तरह यदि दरवाज़े के किवाड़ छीनकर उन पर रंग से नक्काशी कराई जाए, तो यही हुक्म है। यह 'मुहीत सुख़्र्ी' में है। और यदि दरवाज़े के किवाड़ पर छीनने के बाद रंग से नहीं बल्कि खुदाई करके नक्काशी कराई, तो इसे किवाड़ को नष्ट करना माना जाएगा। ऐसी स्थिति में ग़ासिब पर किवाड़ की कीमत वाजिब होगी और किवाड़ उसके(ग़ासिब के) हो जाएंगे। इसी तरह यदि चाँदी के बर्तन पर नक्काशी की जाए, तो यही हुक्म है। यह 'मुहीत' में है।

## एक मुसलमान ने दूसरे की शराब छीनकर (ग़स्ब करके) सिरका बनाई, तो मालिक को उसे वापस लेने का अधिकार होगा या नहीं?

यदि किसी व्यक्ति ने ग़ासिब से छीना हुआ घर खरीदा और उसकी इमारत को ढहाकर अपनी इमारत का हिस्सा बना लिया, फिर मूल मालिक आया, तो यदि नई इमारत छोटी है और उसे हटाना आसान है, तो उसे हटाकर मालिक को वापस कर दिया जाए। लेकिन यदि वह बहुत बड़ी है जिसे ढहाने में कठिनाई हो और समय लगे, तो मालिक को अधिकार है कि वह चाहे तो उसे न ढहाए बल्कि छोड़ दे और खरीदार से ज़मीन और पुरानी इमारत का मुआवज़ा ले ले। फकीह अबू जाफ़र ने कहा कि यह सभी इमामों का सर्वसम्मत विचार है। हालांकि, अबू जाफ़र के अलावा अन्य विद्वानों का कहना है कि

यह केवल इमाम मोहम्मद का विचार है। यह 'तातारख़ानिया' में 'ज़खीरा' से उद्धृत है। एक मुसलमान ने दूसरे की शराब छीनकर सिरका बनाई, तो किताब में लिखा है कि मालिक उसे ले सकता है। विद्वानों में इसमें मतभेद है। कुछ का कहना है कि इसका अर्थ यह है कि ग़ासिब ने उसे ऐसी चीज़ से सिरका बनाया जिसकी कोई कीमत नहीं है, जैसे धूप से छाँव में या छाँव से धूप में रख दिया, या उसमें बहुत थोड़ा नमक या सिरका डाला जिसका कोई मूल्य नहीं है। यदि उसमें नमक या सिरका इतनी मात्रा में डाला जिसका मूल्य है, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफा) के अनुसार वह पूरा सिरका ग़ासिब का हो जाएगा और उसे कुछ भी (मालिक को) देना वाजिब नहीं होगा। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मोहम्मद) के अनुसार यदि नमक डाला है, तो मालिक सिरका ले लेगा और नमक के कारण जो मूल्य बढ़ा है वह ग़ासिब को दे देगा। यदि सिरका मिलाया है, तो कुल सिरका दोनों के बीच उनकी मात्रा के अनुसार बाँट दिया जाएगा।

---

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد (۸) - کتاب الغصب (صفحہ ۱۰۷)**

حاوی میں ہے۔ فتاویٰ قاضی خان میں ہے کہ اگر ایک شخص نے دوسرے کا عصا توڑ ڈالا تو نقصان کا ضامن ہوگا اور اگر بہت شکستہ کردی کہ ایندھن یا یخ کے لائق ہو گیا عصا کا فائدہ اُس سے جاتا رہا تو مالک کو ضمان لینے کا اختیار حاصل ہوگا اٹی اور ترک لوگ جو دھان و عوارض اور لکڑیاں غصب کر کے نہایت شکستہ کر ڈالتے ہیں تو اُن سے مالک کا حق منقطع نہیں ہوتا ہے اگر چہ اُن کی قیمت شکستگی کے سبب زیادہ ہو جائے یہ قنیہ میں ہے اور اگر کسی شخص نے ایک دار غصب کر کے اُس پر گچ کرائی تو مالک سے کہا جائے گا کہ اس میں بسبب گچ کے جو کچھ زیادتی ہو گئی ہے غاصب کو دے دے لیکن اگر مالک راضی ہو جائے کہ غاصب اسی میں سے کچھ حصہ لے لے تو ہو سکتا ہے اسی طرح اگر غاصب نے اُس پر رنگ کرایا تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے مکان کو لے کر رنگ سے جس قدر زیادتی ہوگئی ہے غاصب کو دے دے اور اگر انکار کیا تو وہ دار غاصب کو قیمت دلایا جائے گا اور قیمت مالک لے لے گا بشرطیکہ رنگ کرائی کا خرچہ کثیر ہو اور ہشام نے امام ابو یوسف سے روایت کی ہے کہ اگر مالک نے غاصب کو جس قدر رنگ سے زیادتی ہوئی ہے دینے سے انکار کیا تو میں اس کو رنگ دور کرنے کا حکم دوں گا اور اس دور کرنے اور رنگ جدا کرنے میں جو کچھ نقصان پہنچے گا اُس کی ضمان کی ڈگری کروں گا اسی طرح اگر دروازہ کے کواڑ غصب کر کے رنگ سے نقش کرائے تو اس میں بھی یہی حکم ہے یہ محیط سرخی میں ہے اور اگر دروازہ کے کواڑ پر بعد غصب کے رنگ سے نقش نہ کرائے بلکہ کھدوا کر نقش کرائے تو اس میں کواڑ کا تلف کرنا ہے پس غاصب پر اس کی قیمت واجب ہوگی اور کواڑ اُس کے ہو جائیں گے۔ اسی طرح اگر چاندی کے برتن پر کھدوائی کے نقش کرے تو بھی یہی حکم ہے یہ محیط میں ہے۔

**ایک مسلمان نے دوسرے کی شراب غصب کر کے سرکہ بنائی تو مالک کو واپس لینے کا اختیار ہو گا یا نہیں؟**

اگر غاصب سے کسی شخص نے دار مغصوب خرید اور اُس کی عمارت منہدم کر کے اپنی عمارت میں داخل کر لی پھر مالک حاضر ہوا پس اگر اس کی عمارت قلیل ہو کہ جس کے دہرانے میں مشکل نہ ہو تو دہرا کر مالک کو واپس دے اور اگر بہت ہو کہ جس کے دہرانے میں مشکل پڑے اور اُس کے واسطے ایک زمانہ درکار ہو تو مالک کو اختیار ہے کہ چاہے نہ دہرائے بلکہ چھوڑ دے اور مشتری سے زمین اور عمارت سابق کی ضمان لے اور فقیہ ابو جعفر نے فرمایا کہ یہ بالاتفاق ائمہ کا قول ہے اور البتہ ابوجعفر کے سوائے مشائخ نے فرمایا کہ یہ فقط امام محمد کا قول ہے یہ تاتارخانیہ میں ذخیرہ سے منقول ہے۔ ایک مسلمان نے دوسرے کی شراب غصب کر کے سرکہ بنائی تو کتاب میں لکھا ہے کہ مالک اُس کو لے سکتا ہے اور مشائخ نے اختلاف کیا ہے بعض نے کہا کہ اس سے یہ مراد ہے کہ غاصب نے اُس کو ایسی چیز کے ساتھ سرکہ بنایا کہ جس کی کچھ قیمت نہیں ہے مثلاً سایہ سے دھوپ میں یا دھوپ سے سایہ میں رکھ دیا یا اُس میں بہت قلیل نمک یا سرکہ کہ جس کی قیمت کچھ نہیں ہے ڈالا اور اگر اُس میں نمک یا سرکہ اس قدر ڈالا کہ جس کی قیمت ہے تو امام اعظمؒ کے نزدیک سب سرکہ غاصب ہو جائے گا اور اُس پر کچھ واجب نہ ہو گا اور صاحبین کے نزدیک اگر اُس میں نمک ڈالا ہے تو مالک اُس کو لے گا اور جو کچھ نمک سے اس میں زیادتی ہوئی ہے وہ غاصب کو دے دے گا اور اگر سرکہ ڈالا ہے تو تمام سرکہ دونوں میں ہر ایک کی ناپ کے موافق تقسیم ہو گا خواہ اسی وقت سرکہ ہو کر

---

**حواشی:** 1. میں کہتا ہوں کہ یہ مراد نہیں ہے کہ اسی مسئلہ میں دیگر مشائخ سے روایت ہے اگرچہ بظاہر وہم ہوتا ہے اس لئے کہ اول میں جو مذکور ہے وہ ذیل کی روایت میں نہیں ہے کیونکہ اوّل

میں غصب کی زمین سے کی تھی اور ذیل میں ایسا نہیں ہے تو فرق بعید ہو گیا لیکن مابعد میں قول بنانے والا اس فعل میں الجھ مشعر ہے کہ مٹی اسی باغ کی غصب سے تھی فتاحی فیہ۔ 2. کھدوائی سے یہ غرض ہے کہ اس میں زائد مال نہ لگایا جائے کیونکہ ابھرے نقوش میں مال زائد صرف ہوگا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 108 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

...whether it becomes ready immediately or after some time. Our masters (jurists) have stated that if one adds a large amount of vinegar to wine such that it instantly turns into vinegar, it shall all belong to the usurper (ghasib). If a small amount was added and it turned into vinegar later, it shall be divided between them according to their respective measures; this is mentioned in *Al-Muhit*.

If a Muslim's wine is usurped by a *Zimmi* (non-Muslim citizen) and it turns into vinegar in the latter's possession, or the *Zimmi* turns it into vinegar, the Muslim owner has the right to take it back. If it is lost in the *Zimmi's* possession after turning into vinegar, no indemnity (*zaman*) is due. However, if the *Zimmi* usurper himself destroys it, he must provide the Muslim with an equivalent amount of vinegar as compensation; this is stated in *Siraj al-Wahaj*.

If a Muslim usurps wine from another Muslim, is it mandatory for the usurper to return it so that he is not held accountable on the Day of Judgment? If he knows for certain that the person is taking it back to make vinegar, then returning it is obligatory; otherwise, he will be held accountable. If the case is brought before a Judge (*Qazi*), the Judge should deliberate. If the Judge is certain the claimant seeks its return for making vinegar, he should issue a decree for its return. But if it is known that the person wants it for drinking, the Judge should order the usurper to pour it away. This issue is akin to one person holding another's sword; if the possessor knows the owner wants it to kill a Muslim (as per his previous intent), he should not return it but keep it. If he knows the owner has abandoned such intent and now wants it for a permissible (*mubah*) benefit, then returning it is obligatory.

If a Muslim usurps wine from another Muslim and drinks it, there is no legal claim against him in this world. However, in the Hereafter, if that wine belonged to vinegar-makers and they had purchased grapes or juice (*aseer*) for that purpose, the usurper will be a sinner. But if the owner had grapes or juice for the purpose of wine-drinking, then even in the Hereafter, the owner has no right over the usurper; only the sin of drinking wine (a major sin/Kabira) will rest upon the drinker. This is mentioned in *Jawahir al-Fatawa*. Zaid found wine in Amr's house and added salt to it, turning it into vinegar; it becomes Zaid's property even if the vat was not moved. The Sheikh (may Allah be pleased with him) said this report shows that merely adding salt makes one the owner of the vinegar, as in *Al-Taqniya*.

If grape juice (*aseer*) is usurped and it turns into wine in the usurper's possession, the owner can demand indemnity equivalent to the juice, provided it is still the season for juice. If it is off-season, he should take its value as compensation. If the owner wishes to take the wine instead of indemnity, jurists differ; Shams al-Aimma al-Halwani stated that the correct view is that the owner does not have this choice.

If milk is usurped and it becomes curd/yogurt, or grapes are usurped and they dry into raisins (*zabib*), the owner has the choice to take indemnity of the original or take the existing product without additional compensation. This rule applies to all fungible goods (*mithliyat*), as in *Al-Muhazzab*. If fresh dates (*rutab*) are usurped and they ripen into dried dates (*tamr*), the owner may take them as they are or demand indemnity; this is in *Khizanat al-Muftin*.

If the skin of a carcass is usurped and tanned using worthless materials, the owner takes it back for free. If tanned using valuable materials, the owner takes it but must reimburse the usurper for the increase in value caused by the tanning, as in *Al-Muhit*.

---

1. For vinegar, meaning for the purpose of making vinegar; there is no doubt that this is permissible. However, when juice becomes wine due to heat, the question is whether it is permissible to make good vinegar from this impurity. The *Sahabayn* (Abu Yusuf and Muhammad) and the majority considered it disliked (*makruh*). In one report from the *Sahabayn* and Imam Abu Hanifa, it is permitted without dislike, but it is advised to add salt where it lies so it is not transported as wine. *Mithliyat* refers to things for which an equivalent can be given. *Madbugh* refers to leather tanned by sun or spices.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 108 | किताब अल-ग़स्ब (हड़पने की किताब)**

तैयार हो जाए या कुछ देर बाद तैयार हो और हमारे मशाइख़ (विद्वानों) ने फ़रमाया कि अगर उसने शराब में बहुत सिरका डाल दिया यहाँ तक कि उसी वक़्त वह सब सिरका हो गई, तो सब ग़ासिब (हड़पने वाले) को मिलेगी। और अगर थोड़ा सिरका डाला जिससे देर बाद सिरका हुई, तो दोनों में अपनी-अपनी नाप के मुताबिक़ तक़सीम (विभाजन) होगी, यह 'मुहीत' में है।

अगर मुसलमानों की शराब किसी ज़िम्मी (ग़ैर-मुस्लिम नागरिक) ने ग़स्ब कर ली और वह उसके पास सिरका हो गई या उसने सिरका बनाई, तो मुसलमान को उसे वापस लेने का अख्तियार होगा। और अगर सिरका हो जाने के बाद ज़िम्मी के पास तलफ़ (नष्ट) हो गई तो उस पर ज़मान (हर्जाना) वाजिब न होगा। और अगर खुद ज़िम्मी ग़ासिब ने नष्ट कर डाला तो मुसलमान को उसके मिसल (समान) सिरका तावान (जुर्माना) देगा, यह 'सिराज अल-वहाज' में है। अगर एक मुसलमान ने दूसरे मुसलमान से शराब ग़स्ब की, तो क्या ग़ासिब पर वाजिब है कि उसे वापस दे ताकि क़यामत में उसकी पकड़ न हो? तो अगर वह जानता है, यानी निश्चित रूप से जानता है कि यह व्यक्ति सिरका बनाने के लिए वापस लेता है, तो उसे वापस करना वाजिब है, अन्यथा क़यामत में पकड़ होगी। और अगर क़ाज़ी (न्यायाधीश) के पास यह मुक़दमा पेश हुआ तो वह विचार करे। अगर क़ाज़ी को यक़ीन हो जाए कि यह व्यक्ति सिरका बनाने के लिए वापस माँगता है, तो वापस करने की डिक्री (आदेश) करे। और अगर यह मालूम हुआ कि यह व्यक्ति शराब पीने के लिए वापस माँगता है, तो ग़ासिब को हुक्म दे कि वह उसे बहा दे। यह मसला वैसा ही है जैसे एक व्यक्ति के पास दूसरे की तलवार है और मालिक उसे लेने आया; यदि क़ाबिज़ (क़ब्ज़ा रखने वाले) को पता चले कि वह किसी मुसलमान की हत्या के लिए माँग रहा है जैसा कि उसकी पुरानी राय थी, तो उसे न दे बल्कि अपने पास रखे। और अगर क़ाबिज़ ने जाना कि उसने पुरानी राय छोड़ दी है और अब मुबाह (वैध) लाभ उठाने के लिए माँग रहा है, तो वापस करना वाजिब है।

एक मुसलमान ने दूसरे मुसलमान की शराब ग़स्ब करके पी ली, तो दुनिया में उस पर कोई दावा नहीं है, लेकिन आख़िरत (परलोक) में, अगर वह शराब सिरका बनाने वालों की थी और उसने अंगूर या असीर (रस) सिरका बनाने के लिए खरीदे थे, तो वह गुनहगार होगा। और अगर उसने अंगूर व असीर शराब पीने के लिए लिए थे, तो आख़िरत में भी ग़ासिब पर उसका कोई हक़ न होगा, केवल शराब पीने वाले पर शराब पीने का गुनाह-ए-कबीरा (बड़ा पाप) होगा, यह 'जवाहर अल-फ़तावा' में है। ज़ैद ने अम्र के घर में शराब पाई, उसमें नमक डाल दिया और वह सिरका हो गई, तो वह उसी की हो

जाएगी चाहे मटके को अपनी जगह से न हटाया हो। शेख़ रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि इस रिवायत से ज़ाहिर हुआ कि केवल नमक मिला देने से सिरका का मालिक हो जाता है, जैसा कि 'तक़निया' में है। अगर असीर (रस) को ग़स्ब किया और वह उसके पास शराब हो गया, तो मालिक उससे असीर के मिसल ज़मान (मुआवज़ा) ले सकता है यदि असीर का समय शेष हो। और अगर बे-वक़्त हो तो उसकी क़ीमत तावान ले। और अगर उसने चाहा कि शराब ले ले और ग़ासिब से हर्जाना न ले, तो इसमें विद्वानों में मतभेद है। शम्स अल-आइम्मा हलवानी ने फ़रमाया कि सही यह है कि उसे यह अधिकार नहीं है।

अगर दूध ग़स्ब किया और वह दही हो गया, या अंगूर ग़स्ब किए और वह सूखकर ज़बीब (मुनक्का/किशमिश) हो गए, तो मालिक को उसके मिसल ज़मान लेने का अधिकार है, या चाहे तो जो मौजूद है उसे ले ले और नुक़सान का दावा न करे। यही हुक्म तमाम 'मिस्लियात' (समान वस्तुओं) में है। और अगर उसने रतब (ताज़ा खजूर) ग़स्ब किए और वे पककर तम्र (सूखे खजूर) हो गए, तो मालिक को अधिकार है कि चाहे उन्हें वैसा ही ले ले या उनके मिसल ज़मान ले, यह 'ख़ज़ाना अल-मुफ़्तीन' में है।

और अगर मुर्दार (मरे हुए जानवर) की खाल ग़स्ब करके उसे बिना क़ीमत की चीज़ से मबदूग़ (टैन) किया, तो मालिक उसे मुफ्त ले लेगा। और अगर क़ीमत वाली चीज़ से मबदूग़ किया, तो मालिक उसे लेकर दबाग़त (टैनिंग) से जो मूल्य बढ़ा है वह ग़ासिब को दे दे, जैसा कि 'मुहीत' में है।

---

1. सिरके के लिए यानी सिरका बनाने के लिए, और इसमें कोई शक नहीं कि ऐसा करना जायज़ है। लेकिन जब असीर (रस) गर्मी पाकर शराब हो गया, तो सवाल यह है कि क्या इस नजासत से उम्दा सिरका बनाना जायज़ है या नहीं? तो साहबैन (इमाम अबू यूसुफ़ व इमाम मोहम्मद) और जम्हूर (बहुमत) ने इसे मकरूह माना है। और एक रिवायत में साहबैन व इमाम अबू हनीफ़ा से बिना कराहत के जवाज़ (अनुमति) है, लेकिन यह कहा गया है कि जहाँ पड़ी हो वहीं नमक डाल दे ताकि शराब उठाने वाला (शराब पीने वाला) न हो। 'मिस्लियात' का अर्थ है वे चीज़ें जिनका विकल्प दिया जा सके। 'मबदूग़' वह चमड़ा है जिसे धूप या मसालों से टैन किया गया हो।

---

تیار ہو جائے یا کچھ دیر بعد تیار ہو اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ اگر اُس نے شراب میں بہت سرکہ ڈال دیا یہاں تک کہ اُسی وقت وہ سب سرکہ ہوگئی تو سب غاصب کو ملے گی اور اگر تھوڑا زہر کہ ڈالا کہ جس سے دیر بعد سرکہ ہوئی تو دونوں میں اپنی اپنی ناپ کے موافق تقسیم ہوگی یہ محیط میں ہے۔

اگر مسلمانوں کی شراب کسی ذمی نے غصب کر لی اور وہ اُس کے پاس سرکہ ہوگئی یا اُس نے سرکہ بنائی تو مسلمان کو اُس کے واپس لینے کا اختیار ہوگا اور اگر سرکہ ہو جانے کے بعد ذمی کے پاس تلف ہوگئی تو اُس پر ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر خود ذمی غاصب نے تلف کر ڈالا تو مسلمان کو اُس کے مثل سرکہ تاوان دے گا یہ سراج الوہاج میں ہے اگر ایک مسلمان نے دوسرے مسلمان سے شراب غصب کی پس آیا غاصب پر واجب ہے کہ اُس کو واپس دے حتیٰ کے اگر نہ دے گا تو قیامت میں ماخوذ ہوگا یا نہیں تو اگر جانتا ہے یعنی قطعاً جانتا ہے کہ یہ شخص سرکہ بنانے کے واسطے واپس لیتا ہے تو اُس پر واپس کرنا واجب ہے ورنہ قیامت میں ماخوذ ہوگا اور اگر قاضی کے پاس یہ مقدمہ پیش ہوا تو تامل کرے پس اگر قاضی کو یہ یقین معلوم ہوا کہ یہ شخص سرکہ بنانے کے واسطے واپس مانگتا ہے تو واپس کرنے کی ڈگری کرے اور اگر یہ معلوم ہوا کہ یہ شخص شراب خواری کے واسطے واپس مانگتا ہے تو غاصب کو حکم دے کہ وہ بہا دے اور یہ مسئلہ ویسا ہی ہے کہ ایک شخص کے پاس دوسرے کی تلوار ہے اور مالک اُس سے لینے کو آیا پس اگر قابض نے یہ معلوم کیا کہ اس واسطے مانگتا ہے کہ کسی مسلمان کو قتل کرے جیسا کہ سابق میں اُس کی رائے تھی تو اُس کو نہ دے بلکہ اپنے پاس رکھے اور اگر قابض نے معلوم کیا کہ اس نے رائے سابق کو ترک کیا ہے اور اب اس واسطے مانگتا ہے کہ بطور مباح اُس سے فائدہ

اُٹھائے تو اُس پر واپس کرنا واجب ہے۔ ایک مسلمان نے دوسرے مسلمان کی شراب غصب کر کے اُس کو پی لیا تو اُس پر دنیا میں کچھ دعویٰ اُس کا نہیں ہے مگر آخرت میں اگر وہ شراب سرکہ سازوں کی تھی اور اُس نے انگور یا عسیر سرکہ کے واسطے خریدے تھے تو گنہگار ہوگا اور اگر اُس نے انگور و عسیر واسطے شراب خواری کے لیے تھے تو آخرت میں بھی اُس کا غاصب پر کچھ حق نہ ہوگا فقط شراب خوار پر شراب خواری کا گناہ کبیرہ ہوگا یہ جواہر الفتاویٰ میں ہے۔ زید نے عمرہ کے گھر میں شراب پائی اس میں نمک ڈال دیا اور وہ سرکہ ہوگئی تو اُسی کی ہو جائے گی اگر چہ مٹکے کو اپنی جگہ سے منتقل نہ کیا ہو قال الشیخ رضی اللہ عنہ اس روایت سے ظاہر ہوا کہ فقط نمک ملا دینے سے سرکہ کا مالک ہو جاتا ہے کذا فی التقنیہ۔ اگر عسیر کو غصب کیا اور وہ اُس کے پاس شراب ہو گیا تو مالک اُس سے عسیر کے مثل ضمان لے سکتا ہے اگر زمانہ عسیر باقی ہو یعنی اُس وقت عسیر مل سکتا ہو اور اگر بے وقت ہو تو اُس کی قیمت تاوان لے اور اگر اُس نے چاہا کہ شراب لے لے اور غاصب سے ضمان نہ لے تو اس میں مشائخ نے اختلاف کیا ہے اور شمس الائمہ حلوانی نے فرمایا کہ صحیح یہ ہے کہ اس کو یہ اختیار نہیں ہے قال المھر جو ھو الحق لا حق بلا تباء فانفھم۔ اگر دودھ غصب کیا پس وہ دہی ہو گیا یا انگور غصب کیے اور وہ خشک ہو کر زبیب ہو گئے تو مالک کو اُس کے مثل ضمان لینے کا اختیار ہے اور اگر چاہے تو اُسی کو جو موجود ہے لے لے اور کچھ نقصان نہیں لے سکتا ہے اور یہی حکم تمام مثلیات میں ہے کذا فی المہذب اور اگر اُس نے رطب غصب کیے اور وہ پک کر تمر ہو گئے تو مالک کو اختیار ہے چاہے ان کو بعینہ لے لے اور کچھ نہ لے یا ان کے مثل ضمان لے یہ خزانہ المفتین میں ہے۔

اور اگر مردار کی کھال غصب کر کے اُس کو بے قیمت چیز سے مدبوغ کیا تو مالک اُس کو مفت لے لے گا اور اگر قیمت دار چیز سے مدبوغ کیا تو مالک اُس کو لے کر جو کچھ دباغت سے زیادتی ہوگئی ہے غاصب کو دے دے کذا فی المحیط اور زیادتی کی مقدار پہچاننے کا

ـــ ۱ سرکہ کے واسطے یعنی سرکہ بنانے کے واسطے اور کچھ شک نہیں کہ اس سے بنانا جائز ہے لیکن عسیر جب گرمی پا کر شراب ہو گیا تو اب سوال یہ ہے کہ اس نجس سے عمدہ سرکہ بنانا جائز ہے یا نہیں تو صاحبین وجمہور نے اس کو مکروہ جانا اور ایک روایت میں صاحبین و امام ابوحنیفہ سے بلا کراہت جواز ہے لیکن کہا یہ کہ جہاں پڑی ہو وہیں نمک ڈال دے تا کہ شراب اٹھانے والا نہ ہو اور بحث طویل ہے۔ قولہ مثلیات یعنی جن چیزوں کا مثل دیا جاتا ہے اور مدبوغ جو چمڑا دھوپ یا مصالحہ سے دباغت کیا گیا ہو۔

---

The procedure is to observe: if this skin had been of a slaughtered animal but untanned, what would it have been bought for, and what is its value now? Thus, whatever difference (1) is found between the two, the usurper (Ghasib) should pay that amount of increase [to the owner], as stated in 'al-Dhakhirah'. Imam Quduri has written in his book that this rule applies when the usurper has taken the carcass, from which he extracted the skin, from within the owner's house and then tanned the skin. However, if the owner (2) threw the carcass onto the road and someone picked it up and tanned its skin using valueless materials, the owner shall have no right to take it back. Instead, the usurper will have the right to withhold the skin until he is paid its value. If the owner wishes to leave the skin with the usurper and claim compensation (Dhaman) for its value from him, he shall not have this choice. But if the usurped skin belonged to a slaughtered animal, the owner shall have the choice. Our masters (jurists) have said that the distinction mentioned between the skin of a carcass and a slaughtered animal is the view held by Hakim al-Shaheed, meaning this distinction is his school of thought; otherwise, in such a case, the ruling for the skin of a carcass and a slaughtered animal is the same, as per 'al-Muhit'. If the skin is destroyed in the usurper's possession without any person's act, no compensation is obligatory on the usurper, whether he tanned it with valuable materials or valueless ones, as per 'al-Dhakhirah'.

And if the usurper destroys it after tanning: if he tanned it with valueless materials, then according to Imam Azam (Abu Hanifa), no compensation is obligatory upon him, as per 'Sharh al-Tahawi'. If the usurper makes this skin into leather, a water-skin, a folder, a sock, or a fur garment (Furdah), the person from whom it was usurped (Maghsoob-min-hu) will have no way of reclaiming it. If it was the skin of a slaughtered animal, he will pay the owner compensation equivalent to its value on the day of usurpation. If it was the skin of a carcass, the owner will receive nothing; this is in 'al-Nihayah'. If someone makes a flask (koozah) from another's clay, it belongs to the maker. But if the owner of the clay said, "I commanded him to do so," then it belongs to the owner of the clay. If clay is usurped and made into baked bricks or vessels: if the clay had a price, then the ruling is the same as for usurping wheat and grinding it. If it had no value, then these things belong to the usurper and no compensation is due from him. It should be clear that in cases where the right of the original owner over the usurped item is severed, if the usurper has creditors, the original owner of that usurped item will be considered more entitled to it among all

creditors until his right is fulfilled. If the item is lost, the usurper's property is gone, and this ruling will not be like that of a pledge (Rahn); this is mentioned in 'al-Muntaqa'. In 'Quduri', it states that the original owner will share in the price like other creditors and will have no special preference over others; this is in 'al-Muhit'. A person usurped a slave whose value was five hundred dirhams, then castrated him. Afterwards, he recovered and his value became one thousand dirhams. It was stated that the owner has a choice: either take five hundred dirhams (the value on the day of castration) and give the slave to the usurper, or take the slave, in which case he will receive nothing more, nor will anything else be due upon him; this is in 'Fatawa Qazi'.

Zaid usurped Amr's animals in Kufa and returned them in Khorasan: if their value in Khorasan is equal to that in Kufa, Amr will be ordered to take them. If their value in Khorasan is less than in Kufa, Amr shall have the option (Khiyar) to take the animals or not. From this case of usurpation and the distinction, it appeared that the skin of a carcass without tanning is valueless. It should be noted that in current times, polytheists (non-Muslims) buy all kinds of skins for high prices, so in this case, a Mufti should adopt the opinion of 'permissibility' (jawaz). Similarly, appointing an agent (wakeel) for its purchase is also permissible. 'Furdah' is a fur garment that is worn. 'Khadim' refers to every owned person (mamluk) who serves, whether male or female slave, small or large. (1) Between the current price and that. (2) i.e., the one who owned the animal during its lifetime.

यह तरीक़ा है कि यूँ देखा जाए कि अगर यह खाल ज़बह की हुई ग़ैर-मदबूह (बिना कमाई हुई) होती तो कितने की ख़रीदी जाती और अब कितने की है। बस जिस क़द्र दोनों में तफ़ावत (अंतर) (१) मालूम हो, वही मात्रा ज़ियादती की उसी क़द्र ग़ासिब (ग़ैर-क़ानूनी तौर पर कब्ज़ा करने वाला) को दे दे, जैसा कि 'अज़-ज़ख़ीरा' में है। और इमाम क़ुदूरी ने अपनी किताब में लिखा है कि यह हुक्म उस वक्त है जब ग़ासिब ने वह मुरदार (मरा हुआ जानवर) जिसकी खाल निकाली है, मालिक के मकान के अंदर से ले कर उसकी खाल को मदबूह (कमाई हुई/टैन्ड) किया हो। और अगर मालिक (२) ने वह मुरदार राह में फेंक दिया और किसी शख़्स ने उसको उठा कर उसकी खाल बे-क़ीमत चीज़ से मदबूह की, तो मालिक को अधिकार न होगा कि उसे ले ले, और ग़ासिब को यह अधिकार होगा कि जब तक उसे खाल की क़ीमत न मिल जाए, तब तक खाल को रोक रखे। और अगर मालिक ने चाहा कि वह खाल ग़ासिब के पास छोड़ कर ग़ासिब से उसकी क़ीमत का हर्जाना (ज़मान) ले, तो उसे यह अधिकार न होगा। लेकिन अगर मग़सूब (ज़बरदस्ती ली गई) खाल ज़बह किए हुए जानवर की हो, तो मालिक को अधिकार होगा। और हमारे मशाइख़ ने फ़रमाया कि मुरदार और ज़बह किए हुए की खाल में यह जो फ़र्क़ बयान किया गया है, इस तरफ़ 'हाकिम शहीद' गए हैं, यानी यह फ़र्क़ उनका मज़हब है, वर्ना ऐसी सूरत में मुरदार और ज़बह किए हुए की खाल का एक समान हुक्म है, जैसा कि 'अल-मुहीत' में है। और अगर ग़ासिब के पास बिना किसी शख़्स के काम के वह खाल नष्ट हो गई, तो ग़ासिब पर हर्जाना वाजिब न होगा, चाहे क़ीमत वाली चीज़ से उसे मदबूह किया हो या बे-क़ीमत चीज़ से, जैसा कि 'अज़-ज़ख़ीरा' में है।

और अगर दबाग़त (टैनिंग) के बाद ग़ासिब ने उसे नष्ट कर दिया, तो अगर उसे बे-क़ीमत चीज़ से मदबूह किया गया हो, तो इमाम-ए-आज़म के नज़दीक उस पर कोई हर्जाना वाजिब न होगा, जैसा कि 'शरह़ अत-तह़ावी' में है। और अगर ग़ासिब ने इस खाल को अदीम (चमड़ा) या मशक या दफ़्तर या जुराब या फ़ुर्दह (पोस्तीन) बना लिया, तो मग़सूब-मिन्हु (जिसका माल छीना गया) को उसे लेने का कोई रास्ता न होगा। फिर अगर ज़बह किए हुए जानवर की खाल हो, तो ग़सब के दिन की क़ीमत मालिक को हर्जाने के तौर पर देगा, और अगर मुरदार की खाल होगी, तो मालिक को कुछ न मिलेगा, यह 'निहाया' में है। और अगर ग़ैर की मिट्टी से एक कूज़ा (मटका) बना लिया, तो वह बनाने वाले का होगा। और अगर मिट्टी के मालिक ने कहा कि मैंने उसे ऐसा ही हुक्म दिया था, तो मिट्टी के मालिक को मिलेगा। और अगर मिट्टी ग़सब करके उसकी पक्की ईंटें बनाईं या बर्तन बनवाए, तो अगर मिट्टी

की क़ीमत हो, तो उसका वही हुक्म है जो गेहूँ ग़सब करके पीस डालने में है। और अगर कुछ क़ीमत न हो, तो ये चीज़ें ग़ासिब की होंगी और उस पर कोई हर्जाना वाजिब न होगा। और स्पष्ट रहे कि जिन सूरतों में वस्तु मग़्सूब से मग़्सूब-मिन्हु का हक़ कट जाता है, उन सूरतों में अगर ग़ासिब के लेनदार हों, तो सभी लेनदारों में से मग़्सूब-मिन्हु उस वस्तु मग़्सूब का अधिक हकदार माना जाएगा, यहाँ तक कि वह अपना हक़ पूरा कर ले। और अगर यह चीज़ ज़ाया हो गई, तो ग़ासिब का माल गया और यह हुक्म 'रहन' (गिरवी) के समान न होगा, ऐसा ही 'मुंतक़ा' में उल्लेखित है। और 'क़ुदूरी' में है कि मग़्सूब-मिन्हु भी लेनदारों की तरह क़ीमत में भागीदार होगा और किसी चीज़ के साथ उसकी दूसरों की तुलना में अधिक विशेषता नहीं होगी, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने एक ग़ुलाम ग़सब किया और उसकी क़ीमत पाँच सौ दिरहम है, फिर उसे खस्सी (नपुंसक) कर डाला, फिर वह स्वस्थ हो गया और उसकी क़ीमत हज़ार दिरहम हो गई, तो फ़रमाया कि मालिक को विकल्प है चाहे पाँच सौ दिरहम खस्सी करने के दिन की क़ीमत लेकर ग़ुलाम ग़ासिब को दे दे या ग़ुलाम ले ले और उसे अधिक कुछ न मिलेगा और न ही उस पर कुछ अनिवार्य होगा, यह 'फ़तावा क़ाज़ी' में है।

ज़ैद ने कूफ़ा में अम्र के जानवर ग़सब किए और खुरासान में उन्हें वापस दिया, तो अगर खुरासान में उनकी क़ीमत कूफ़ा के बराबर हो, तो अम्र को हुक्म दिया जाएगा कि उन्हें ले ले, और अगर खुरासान में उनकी क़ीमत कूफ़ा की तुलना में कम हो, तो अम्र को विकल्प (ख़ियार) होगा चाहे जानवरों को ले ले। इसी स्थिति यानी ग़सब में और फ़र्क़ से ज़ाहिर हुआ कि मुरदार की खाल बिना दबाग़त के बे-क़ीमत है, और स्पष्ट रहे कि वर्तमान समय में हर प्रकार की खालें मुशरिक (मूर्तिपूजक/ग़ैर-मुस्लिम) बहुत क़ीमत से लेते हैं, तो इस स्थिति में मुफ़्ती को 'जवाज़' (वैधता) का रुख़ लेना चाहिए और इसी आधार पर इसकी ख़रीद में वकील होना भी जायज़ है। फ़ुर्दह वह पोस्तीन है जो पहनी जाती है। 'ख़ादिम' हर वह ग़ुलाम (ममलूक) है जो सेवा करता है, चाहे वह पुरुष ग़ुलाम हो या दासी, चाहे छोटा हो या बड़ा। (१) वर्तमान दामों और इसमें। (२) यानी जीवन की अवस्था में जिसका जानवर था।

یہ طریقہ ہے کہ یوں دیکھا جائے کہ اگر یہ کھال ذبح کی ہوئی غیر مدبوغ ہوتی تو کتنے کو خریدی جاتی اور اب کتنے کی ہے پس جس قدر دونوں میں تفاوت (۱) معلوم ہو وہی مقدار زیادتی کی اُسی قدر غاصب کو دے دے کذا فی الذخیرہ اور امام قدوری نے اپنی کتاب میں لکھا ہے کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ غاصب نے وہ مردار جس کی کھال نکالی ہے مالک کے مکان کے اندر سے لے کر اُس کی کھال کو مدبوغ کیا ہو اور اگر مالک (۲) نے وہ مردار راہ میں پھینک دیا اور کسی شخص نے اُس کو اُٹھا کر اُس کی کھال بے قیمت چیز سے مدبوغ کی تو مالک کو اختیار نہ ہوگا کہ اُس کو لے لے اور غاصب کو یہ اختیار ہوگا کہ جب تک اُس کو کھال کی قیمت نہ پہنچ جائے تب تک کھال کو روک رکھے اور اگر مالک نے چاہا کہ وہ کھال غاصب کے پاس چھوڑ کر غاصب سے اُس کی قیمت کی ضمان لے تو اُس کو یہ اختیار نہ ہوگا لیکن اگر مغصوب کھال ذبح کیے ہوئے جانور کی ہو تو مالک کو اختیار ہوگا اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ مردار اور ذبح کیے ہوئے کی کھال میں یہ جو فرق بیان کیا گیا ہے اس طرف حاکم شہید گئے ہیں یعنی یہ فرق اُن کا مذہب ہے ورنہ ایسی صورت میں مردار اور ذبح کیے ہوئے کی کھال کا یکساں حکم ہے کذا فی المحیط اور اگر غاصب کے پاس بدون کسی شخص کے فعل کے وہ کھال تلف ہوگئی تو غاصب پر ضمان واجب نہ ہوگی خواہ قیمت دار چیز سے اُس کو مدبوغ کیا ہو یا بے قیمت چیز سے مدبوغ کیا ہو کذا فی الذخیرہ۔

اور اگر بعد دباغت کے غاصب نے اُس کو تلف کر دیا پس اگر اُس کو بے قیمت چیز سے مدبوغ کیا ہو تو امام اعظم کے نزدیک اُس پر کچھ ضمان واجب نہ ہوگی کذا فی شرح الطحاوی اور اگر غاصب نے اس کھال کو ادیم یا مشک یا دفتر یا جراب یا فردہ بنا لیا تو مغصوب منہ کو اُس کے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی پھر اگر ذبح کیے ہوئے جانور کی کھال ہو تو غصب کے روز کی قیمت

مالک کو ضمان دے گا اور اگر مردار کی کھال ہو گی تو مالک کو کچھ نہ ملے گا یہ نہایہ میں ہے اور اگر غیر کی مٹی سے ایک کوزہ بنا لیا تو بنانے والے کا ہوگا اور اگر مٹی کے مالک نے کہا کہ میں نے اس کو ایسا حکم دیا تھا تو مٹی کے مالک کو ملے گا اور اگر مٹی غصب کر کے اُس کی پکی اینٹیں بنائیں یا برتن بنوائے پس اگر مٹی کی قیمت ہو تو اُس کا وہی حکم ہے جو گیہوں کو غصب کر کے پس ڈالنے میں ہے اور اگر کچھ قیمت نہ ہو تو یہ چیزیں غاصب کی ہوں گی اور اُس پر کچھ ضمان واجب نہ ہو گی اور واضح ہو کہ جن صورتوں میں شئے مغصوب سے مغصوب منہ کا حق منقطع ہو جاتا ہے اُن صورتوں میں اگر غاصب کے قرض خواہ ہوں تو سب قرض خواہ ہوں میں سے مغصوب منہ اُس شئے مغصوب کا زیادہ حقدار قرار دیا جائے گا یہاں تک کہ وہ اپنا حق پورا کرے اور اگر یہ چیز ضائع ہوگئی تو غاصب کا مال گیا اور اس حکم بمنزلہ رہن کے نہ ہو گا ایسا ہی منتقیٰ میں مذکور ہے اور قدوری میں ہے کہ مغصوب منہ بھی اور قرض خواہوں کے مانند شمن میں شریک ہوگا اور کسی شئے کے ساتھ اُس کے بنسبت دوسروں کی زیادہ خصوصیت نہ ہوگی یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے ایک غلام غصب کیا اور اُس کی قیمت پانچ سو درہم ہے پس اُس کو خصی کر ڈالا پھر وہ اچھا ہو گا اور اُس کی قیمت ہزار درہم ہو گئی تو فرمایا کہ مالک کو اختیار ہے چاہے پانچ سو درہم خصی کرنے کے روز کی قیمت لے کر غلام غاصب کو دے دے یا غلام لے لے اور زیادہ اس کو نہ ملے گا اور نہ اُس پر کچھ واجب ہو گا یہ فتاویٰ قاضی میں ہے۔

زید نے کوفہ میں عمرو کے جانور غصب کیے اور خراسان میں اُس کو واپس دیئے پس اگر خراسان میں ان کی قیمت کوفہ کے برابر ہو تو عمرو کو حکم دیا جائے گا کہ ان کو لے لے اور اگر خراسان میں ان کی قیمت کوفہ کے بنسبت کم ہو تو عمرو کو خیار ہوگا چاہے جانوروں کو لے لے اسی صورت یعنی غصب میں اور فرق سے ظاہر ہوا کہ مردار کی کھال بدون دباغت کے بے قیمت ہے اور واضح ہو کہ فی زمانہ ہر قسم کی کھالیں مشرکین بہت قیمت سے لیتے ہیں تو اس

صورت میں مفتی کو جواز کا قول لینا چاہیے اور علی ہذا اس کی خرید میں وکیل ہونا بھی جائز ہے

فردہ پوستین جو پہنی جاتی ہے خادم ہر مملوک جو خدمت کرتا ہے خواہ غلام ہو یا لونڈی ہو خواہ چھوٹا ہو یا بڑا ہو۔ (۱) موجودہ کے داموں اور اس میں۔ (۲) یعنی حالتِ زندگی میں جس کا جانور تھا۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 5 (110) Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...he may take its price equivalent to that in Kufa. Similarly, for a servant or anything whose transportation and expenses to another location are required, the same ruling applies. It is stated that this ruling applies to all items measured by weight or volume; this is mentioned in *Al-Muhit*. If dirhams and dinars are usurped, the owner shall take them wherever he finds them, and he will not have the right to demand the price, even if the currency rates differ. If a specific asset (*mal-e-ayn*) is usurped and the owner later encounters the usurper in another city where the exact property is present, if its price there is equal to or greater than its price at the place of usurpation, the owner can take the property but cannot demand its price. However, if its price is less than at the place of usurpation, the owner has the choice to either take the price based on the place of usurpation or wait. If the usurped property is fungible (*mithli*) and has been destroyed, and its price is identical in both places or higher at the place of demand, the usurper must return the equivalent price. If the rate at the place of demand is lower, the owner can choose to take its equivalent there, take the price from the place of usurpation, or wait until the usurper returns to the original city and take the equivalent from him there. If the price at the place of demand is higher, the usurper has the option to either give the equivalent to the owner at the place of demand or pay the price according to the place of usurpation. However, if the victim (*maghsub-minhu*) agrees to delay and wait, he has that right. If the price is the same in both locations, the owner can demand the equivalent (*mithl*); this is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

If the owner finds the usurper at the place of usurpation but the market rate of the property has fallen, the owner shall take his usurped property and will not have the right to leave the property and demand the price at the time of usurpation. This is in *Fatawa Qazi Khan*. It is mentioned in *Al-Muntaqa* that Zaid usurped a basket of wheat from 'Amr worth 100 dirhams. Then the price rose to 150 dirhams, after which it became scarce and unavailable in the market. The price then rose further to 200 dirhams. If the usurper then destroyed it, 'Amr has the right to claim an indemnity of 200 dirhams from Zaid, the price on the day it was destroyed. Conversely, if Zaid usurped a basket of wheat worth 200 dirhams, then the price fell to 150 dirhams, then it became unavailable among people, and finally, its price fell to 100 dirhams before the usurper destroyed it, 'Amr has the right to demand 150 dirhams—the price at the last time it was available. He cannot claim more than that indemnity; this is in *Al-Zakhiroh*. Increments (*zawaid*) of usurped property, whether attached (like

weight gain) or detached (like offspring, wool, milk, etc.), are not categorized as usurped property themselves. Instead, they are considered a trust (*amanat*) born in the usurper's possession, and he is not liable for indemnity unless he destroys them or refuses to return them to the owner. If the owner requests the return of the increments and the usurper refuses, he becomes liable (*zamin*) by consensus. If the usurper sells the increments and delivers them to a buyer, in the case of detached increments, the owner can choose to seek indemnity for the price on the day of sale/delivery from either the usurper or the buyer. If attached increments of something other than a human are destroyed, according to Imam Abu Hanifa, the usurper is not liable, but according to the *Sahibayn* (his two disciples), he is liable, and this is the correct view. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

1. He will not have the right because the original essence is the property itself. When it is destroyed or lost, price or equivalent is granted out of necessity, so this applies only as far as the necessity goes. (12)
2. *Zawaid* (Increments): Things that increased along with the usurped property, such as a calf born to a usurped cow or goat, wool sheared, wages earned by a slave or from oil-pressing, or a slave-girl becoming a mother, or physical growth. (12)

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 (110) किताबुल ग़सब (अवैध कब्जे का अध्याय)**

...तो उनकी कूफ़ा की क़ीमत ले ले। इसी तरह ख़ादिम (सेवक) और हर उस चीज़ का जिसकी दूसरी जगह तक ढुलाई और ख़र्चा हो, यही हुक्म है। और फ़रमाया कि हर वज़नी (तोलने वाली) और कैली (मापने वाली) चीज़ का यही हुक्म है, यह 'मुहीत' में है। और अगर दिरहम और दीनार ग़सब किए तो मालिक उन्हें जहाँ पाएगा ले लेगा और मालिक को क़ीमत के मुतालबे (मांग) का अधिकार नहीं होगा, चाहे दर (रेट) में दोनों जगह की नक़दी अलग-अलग हो। और अगर किसी माल-ए-ऐन (निश्चित संपत्ति) को ग़सब किया, फिर मालिक से दूसरे शहर में मिला और वह माल वैसा का वैसा उसके पास मौजूद है, तो अगर उसकी क़ीमत यहाँ उतनी ही हो जितनी ग़सब के स्थान पर थी या उससे ज़्यादा हो, तो मालिक उस माल को ले सकता है, लेकिन उसकी क़ीमत की मांग नहीं कर सकता। और अगर ग़सब के स्थान से यहाँ उसकी क़ीमत कम हो, तो मालिक को अधिकार होगा कि चाहे तो ग़सब के स्थान के हिसाब से क़ीमत ले ले या इंतज़ार करे। और अगर मग़सूब माल (छीना गया माल) मिस्ली (समान वस्तु वाला) हो और वह नष्ट हो गया हो, तो अगर इन दोनों जगहों पर उसकी क़ीमत एक समान हो या मुतालबे की जगह पर ज़्यादा हो, तो ग़ासिब (हड़पने वाला) उसके समान की क़ीमत वापस देगा। और अगर मुतालबे की जगह पर दर (रेट) कम हो, तो मालिक को अधिकार होगा कि चाहे तो उसके जैसा यहाँ ले ले या ग़सब के स्थान की क़ीमत ले ले या इंतज़ार करे जब तक कि ग़ासिब उसी शहर वापस जाए और फिर वहाँ उससे उसके जैसा ले ले। और अगर मुतालबे की जगह पर उसकी क़ीमत ज़्यादा हो, तो ग़ासिब को अधिकार होगा कि चाहे तो मुतालबे के स्थान पर उसके जैसा मालिक को दे दे या जहाँ ग़सब किया था उसके हिसाब से क़ीमत दे दे। लेकिन अगर मग़सूब-मिन्हु (जिससे छीना गया) इस बात पर राज़ी हो कि मैं देरी करता हूँ और इंतज़ार करता हूँ, तो उसे अधिकार है। और अगर दोनों जगह क़ीमत एक समान हो, तो मालिक उससे मिस्ल (समान) की मांग कर सकता है, यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है।

अगर मालिक ने ग़ासिब को ग़सब के स्थान पर पाया, लेकिन मग़सूब (छीनी हुई चीज़) का भाव सस्ता हो चुका है, तो मालिक अपना मग़सूब माल ले लेगा और उसे यह अधिकार नहीं होगा कि माल को छोड़कर ग़ासिब से ग़सब के दिन की क़ीमत की मांग करे। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। 'मुंतक़ी' में है कि ज़ैद ने अम्र के एक टोकरे गेहूँ (कीमत 100 दिरहम) ग़सब किए, फिर भाव बढ़कर 150 दिरहम हो गया, फिर वे मिलना बंद हो गए और बाज़ार में अनुपलब्ध हो गए और भाव और बढ़ गया तथा उसके जैसा मिलना असंभव हो गया और क़ीमत बढ़कर 200 दिरहम हो गई। फिर ग़ासिब ने

उन्हें नष्ट कर दिया, तो अम्र को अधिकार होगा कि ज़ैद से नष्ट करने के दिन की क़ीमत 200 दिरहम का हर्जाना ले। और अगर ज़ैद ने अम्र का एक टोकरा गेहूँ 200 दिरहम का ग़सब किया, फिर भाव घटकर 150 दिरहम रह गया, फिर लोगों के पास मिलना बंद हो गया और फिर उसकी क़ीमत 100 दिरहम रह गई, फिर ग़ासिब ने उन्हें नष्ट कर दिया, तो अम्र को अधिकार होगा कि उससे 150 दिरहम क़ीमत की मांग करे, यानी अंतिम समय तक जो क़ीमत थी वह हर्जाना ले, और उससे ज़्यादा हर्जाना नहीं ले सकता। यह 'ज़ख़ीरा' में है। और मग़सूब चीज़ की वृद्धि (ज़वाइद), चाहे वह जुड़ी हो (जैसे मोटापा) या अलग हो (जैसे बच्चा, ऊन, दूध आदि), उन्हें मग़सूब (छीना हुआ) नहीं माना जाता, बल्कि वे ग़ासिब के पास अमानत के तौर पर पैदा होते हैं और उन पर हर्जाना भी वाजिब नहीं होता, सिवाय उस स्थिति के जब ग़ासिब उन्हें नष्ट कर दे या मालिक को देने से मना कर दे। यहाँ तक कि अगर मालिक ने आकर ग़ासिब से मांग की कि वृद्धि (ज़वाइद) वापस दे और ग़ासिब ने इनकार किया, तो सर्वसम्मति से वह हर्जाने का उत्तरदायी (ज़ामिन) होगा। और अगर वृद्धि को बेचकर ग्राहक को सौंप दिया, तो अलग होने वाली वृद्धि की स्थिति में मालिक को अधिकार होगा कि चाहे तो बिक्री और सौंपने के दिन की क़ीमत का हर्जाना ग़ासिब से ले या ग्राहक से। और अगर इंसान के अलावा किसी चीज़ की जुड़ी हुई वृद्धि (ज़वाइद-ए-मुत्तसिला) को नष्ट कर दिया, तो इमाम (अबू हनीफ़ा) के नज़दीक वह उत्तरदायी नहीं होगा, और साहिबैन के नज़दीक उत्तरदायी होगा और यही सही है। यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है।

1. अधिकार नहीं होगा क्योंकि असल चीज़ इसमें माल ही है, और जब वह नष्ट हो गया या गुम हो गया तो विवशता में क़ीमत या उसके जैसा दिलाया जाता है, तो यह केवल ज़रूरत पड़ने पर होगा। १२
2. ज़वाइद: वे चीज़ें जो मग़सूब (छीनी हुई चीज़) के ज़रिए उसके साथ बढ़ गईं, जैसे ग़सब की गई गाय या बकरी का बच्चा होना, या ऊन उतारना, या गुलाम या तेल की मज़दूरी मिलना, या दासी का माँ बनना, या शरीर का बढ़ जाना। १२

لے ان کی کوفہ کی قیمت لے لے۔ اسی طرح خادم اور ہر چیز کا جس کی دوسری جگہ تک باربرداری وخرچہ ہو یہی حکم ہے اور فرمایا کہ ہروزنی وکیلی چیز کا یہی حکم ہے یہ محیط میں ہے اور اگر درہم ودینار غصب کئے تو مالک ان کو جہاں پائے گا لے گا اور مالک کو قیمت کے مطالبہ کا اختیار نہ ہو گا اگرچہ نرخ میں دونوں نقد مختلف ہوں اور اگر کسی مال عین کو غصب کیا پھر مالک سے دوسرے شہر میں ملا اور وہ مال بعینہ اس کے پاس موجود ہے پس اگر اس کی قیمت یہاں اسی قدر ہو جس قدر مقام غصب میں تھی یا اس سے زیادہ ہو تو مالک اس مال کو لے سکتا ہے مگر اس کی قیمت کا مطالبہ نہیں کر سکتا ہے اور اگر مقام غصب سے یہاں اس کی قیمت کم ہو تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے مقام غصب کے حساب سے قیمت لے لے یا انتظار کرے اور اگر مال مغصوب مثلی ہو اور وہ تلف ہو گیا ہو پس اگر ان دونوں جگہ اس کی قیمت یکساں ہو یا مطالبہ کی جگہ زائد ہو تو غاصب قیمت مثل واپس دے گا اور اگر مطالبہ کی جگہ نرخ کم ہو تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے اس کے مثل یہاں لے لے یا مقام غصب کی قیمت لے لے یا انتظار کرے یہاں تک کہ غاصب اسی شہر میں واپس جائے پھر وہاں اس سے اس کے مثل لے لے اور اگر مطالبہ کی جگہ اس کی قیمت زائد ہو تو غاصب کو اختیار ہو گا چاہے مقام مطالبہ میں اس کے مثل مالک کو دے دے یا جہاں غصب کیا ہے اس کے حساب سے قیمت دے دے لیکن اگر مغصوب منہ اس بات پر راضی ہو کہ میں تاخیر دیتا ہوں اور انتظار کرتا ہوں تو اس کو اختیار ہے اور اگر دونوں جگہ قیمت یکساں ہو تو مالک اس سے مثل کا مطالبہ کر سکتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر مالک نے غاصب کو مقام غصب میں پایا مگر مغصوب کا نرخ ارزاں ہو چکا ہے تو مالک اپنا مال مغصوب لے لے گا اور اس کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ مال کو چھوڑ کر غاصب سے روز غصب

کی قیمت کا مطالبہ کرے۔ یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ منتقٰی میں ہے کہ زید نے عمرو کے ایک ٹکر گیہوں سو درہم قیمت کے غصب کیے پھر نرخ گراں ہوا کہ ایک سو پچاس درہم کی قیمت ہو گئی پھر نایاب ہو گئے اور بازار میں ملنا موقوف ہو گیا اور نرخ گراں ہو گیا اور مثل اس کا دستیاب نہیں ہو سکتا ہے اور قیمت بڑھ کر دو سو درہم ہو گئی پھر غاصب نے ان کو تلف کر دیا تو عمرو کو اختیار ہو گا کہ زید سے تلف کرنے کے روز کی قیمت دو سو درہم ضمان لے اور اگر زید نے عمرو کا ایک ٹکر گیہوں دوسو درہم کا غصب کیا پھر نرخ گھٹ کر ڈیڑھ سو درہم قیمت رہ گئی پھر لوگوں کے ہاتھ سے منقطع ہو گئے پھر اس کی قیمت ایک سو درہم رہ گئی پھر غاصب نے ان کو تلف کر دیا تو عمرو کو اختیار ہو گا کہ اس سے ڈیڑھ سو درہم قیمت کا مطالبہ کرے یعنی آخر وقت موجودگی تک جو قیمت تھی وہ ضمان لے اور اس سے زیادہ ضمان نہیں لے سکتا ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور مغصوبہ چیز کے زوائد خواہ متصل ہوں یا منفصلہ از قسم اولاد وصوف وشیر و جمال وغیرہ کے مغصوبہ نہیں قرار دیئے جاتے ہیں بلکہ غاصب کے پاس بطور امانت پیدا ہو کر رہتے ہیں اور اس پر ضمان بھی واجب نہیں ہوتی ہے مگر اس صورت میں غاصب نے ان کو تلف کر دیا یا مالک کو منع کیا حتیٰ کہ اگر مالک نے آکر غاصب سے درخواست کی کہ زوائد واپس دے اور غاصب نے انکار کیا اور نہ دیئے تو بالاجماع ضامن ہو گا اور اگر زوائد کو فروخت کر کے مشتری کے سپرد کیا تو زوائد منفصلہ کی صورت میں مالک کو اختیار ہو گا چاہے روز فروخت و سپردگی کی قیمت غاصب سے تاوان لے یا مشتری سے اور اگر آدمی کے سوائے اور چیز کے زوائد متصلہ کو تلف کر دیا تو امام کے نزدیک ضامن نہ ہو گا اور صاحبین کے نزدیک ضامن ہو گا اور یہی صحیح ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

۱۔ نہ ہو گا اس واسطے کہ اصل اس میں عین المال ہے اور جب وہ تلف ہوا یا تیا گیا ہو تو ناچاری سے قیمت یا مثل دلائی جاتی ہے تو یہ فقط بعد ضرورت تک ہو گا ۱۲ ۲۔ زوائد جو چیزیں کہ

مغصوب کے ذریعہ سے مغصوب کے ساتھ زائد ہو گئیں جیسے غصبی گائے یا بکری کے بچہ ہوا یا اون اتاری یا غلام یا تیل کی مزدوری ملی یا باندی سوئی ہوگئی یا بدن زائد ہو گیا ۱۲

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 111 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

If an increase occurs in the usurped property while in the possession of the usurper (Ghasib), the owner has the right to take it back along with the increase, whether the increase is in its market rate or its physical state. If a defect occurs and the item is subsequently destroyed while with the usurper, all jurists agree he is liable for its value on the day it was usurped. If the item still exists, it must be returned to the owner. If physical damage has occurred, he is liable for the extent of that loss; however, if only the market rate has dropped, he is not liable for that decrease. If the usurper destroys the item after its value has decreased, he remains liable for its value at the time of usurpation.

If the item is destroyed after its value has increased—for instance, if the usurper sells it to a buyer and it is destroyed while with the buyer—the owner has a choice: he may either claim compensation from the usurper for the value on the day of usurpation (in which case the sale becomes valid and the usurper keeps the sale price), or he may claim the value from the buyer as of the day the buyer took possession (in which case the sale becomes void and the buyer recovers his payment from the usurper). According to Imam Azam (Abu Hanifa), compensation cannot be claimed based on the value on the day of delivery; this is mentioned in *Wajiz al-Kardari*.

If a slave worth one thousand Dirhams is usurped and his value later rises to two thousand Dirhams, and he is then killed by someone, the owner has the choice to either take one thousand Dirhams from the usurper (the value on the day of usurpation) or two thousand Dirhams from the killer (the value on the day of the killing). If he chooses to take it from the usurper, the usurper will collect two thousand from the killer and must give the surplus over one thousand to charity. If the slave commits suicide while with the usurper, the usurper is liable for the initial one thousand Dirhams only.

According to Imam Muhammad, if someone usurps a single grain of wheat, nothing is due because it has no significant market value. According to Imam Abu Yusuf, if someone usurps an egg and destroys it, he is liable for its equivalent. If the usurped property is among 'Dhawat-ul-Qim' (valuable items) (1) and compensation becomes due, its value should be appraised in the currency (Dirhams or Dinars) commonly used for such items in the market. The judge (Qazi) should award the compensation in whichever currency is most beneficial to the victim; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If one usurps another's goat and milks it, he is liable for the value of the milk. If meat is

usurped and then roasted or cooked, Imam Azam stated the owner no longer has a legal path to reclaim the physical meat (compensation is due instead).

**(1) Meaning: something that possesses value.**

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 111 | किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

यदि ग़ासिब (हड़पने वाले) के पास म़ग़सूब (हड़पी हुई वस्तु) में बढ़ोतरी हो जाए, तो मालिक उसे बढ़ोतरी के साथ वापस ले सकता है, चाहे बढ़ोतरी बाज़ार भाव (रेट) में हो या वस्तु के स्वरूप में। और यदि उसमें कमी आ जाए और फिर ग़ासिब के पास वह वस्तु नष्ट हो जाए, तो सभी के अनुसार वह ग़सब (हड़पने) के दिन की क़ीमत का ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा। यदि वस्तु मौजूद है, तो वह मालिक को वापस लौटाएगा; यदि स्वरूप में कमी आई है, तो कमी के बराबर हर्जाना देगा। यदि बाज़ार भाव में कमी हुई है, तो कोई हर्जाना नहीं। यदि कमी आने के बाद ग़ासिब ने उसे नष्ट कर दिया, तो वह हड़पने के समय की क़ीमत का ज़िम्मेदार होगा।

यदि बढ़ोतरी के बाद ग़ासिब ने उसे नष्ट किया, उदाहरण के लिए बेचकर खरीदार को दे दिया और खरीदार के पास वह नष्ट हो गई, तो मालिक को अधिकार होगा: चाहे तो ग़ासिब से हड़पने के दिन की क़ीमत का हर्जाना ले ले (जिससे बिक्री वैध हो जाएगी और मूल्य ग़ासिब का होगा), या खरीदार से उस दिन की क़ीमत ले ले जिस दिन उसने कब्ज़ा किया था (जिससे बिक्री रद्द हो जाएगी और खरीदार अपना मूल्य ग़ासिब से वापस लेगा)। इमाम-ए-आज़म के अनुसार, सुपुर्दगी के दिन की क़ीमत का हर्जाना नहीं लिया जा सकता।

यदि किसी ने एक हज़ार दिरहम का ग़ुलाम हड़पा, फिर उसकी क़ीमत बढ़कर दो हज़ार हो गई, और फिर किसी ने उसे मार डाला, तो मालिक को विकल्प है: चाहे ग़ासिब से हड़पने के दिन की एक हज़ार क़ीमत ले ले, या क़ातिल (हत्यारे) से हत्या के दिन की दो हज़ार क़ीमत वसूल करे। यदि वह ग़ासिब से लेना स्वीकार करता है, तो ग़ासिब क़ातिल से दो हज़ार वसूल करके एक हज़ार से अधिक राशि सदक़ा (दान) कर देगा। यदि गुलाम ने ग़ासिब के पास आत्महत्या कर ली, तो ग़ासिब हड़पने के दिन की एक हज़ार क़ीमत का ज़िम्मेदार होगा, आत्महत्या के दिन की क़ीमत का नहीं।

इमाम मुहम्मद से रिवायत है कि यदि किसी ने गेहूँ का एक दाना हड़पा, तो ग़ासिब पर कुछ वाजिब नहीं क्योंकि उसकी कोई क़ीमत नहीं। इमाम अबू यूसुफ के अनुसार, यदि किसी ने अंडा हड़प कर नष्ट कर दिया, तो उस पर उसके जैसा (मिसल) वाजिब होगा। यदि हड़पी हुई चीज़ 'ज़वातुल क़ीम' (क़ीमती वस्तु) (1) है और उसका हर्जाना वाजिब हुआ, तो देखा जाएगा कि वह बाज़ार में दिरहम में बिकती है या दीनार में; काज़ी (न्यायाधीश) को चाहिए कि उस मुद्रा में मूल्यांकन करे जिसमें पीड़ित का अधिक लाभ हो। यदि किसी ने दूसरे की बकरी हड़प कर दूध निकाला, तो दूध की क़ीमत का

हर्जाना देना होगा। यदि मांस हड़प कर उसे भून या पका लिया, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार मालिक के पास उसे वापस लेने का कोई रास्ता नहीं रहता।

**(1) क़ीमत वाला।**

---

اگر غاصب کے پاس مغصوب میں زیادتی ہوگئی تو مالک اس کو مع زیادتی کے واپس کر سکتا ہے اگرچہ زیادتی نرخ میں یا بدن میں ہو اور اگر نقصان آگیا پھر غاصب کے پاس وہ شئے تلف ہوگئی تو سب کے نزدیک روز غصب کی قیمت کا ضامن ہوگا اور اگر وہ چیز قائم ہو تو مالک کو واپس دے گا پس اگر بدن میں نقصان آیا ہو تو بقدر نقصان ضامن ہوگا اور اگر نرخ میں نقصان ہوا تو نہیں اور اگر بعد نقصان آ جانے کے غاصب نے تلف کردی تو وقت غصب کی قیمت کا ضامن ہوگا اور اگر بعد زیادتی کے تلف کی مثلاً فروخت کر کے مشتری کو دے دی اور مشتری کے پاس تلف ہوگئی تو مالک کو اختیار ہوگا چاہے غاصب سے روز غصب کی قیمت کی ضمان لے لے اور بیع جائز ہو جائے گی اور ثمن غاصب کو ملے گا یا مشتری سے قبضہ کے روز کی قیمت لے لے اور بیع باطل ہو جائے گی اور مشتری اپنا ثمن غاصب سے واپس لے گا اور غاصب سے سپرد کرنے کے روز کی قیمت امام اعظم کے نزدیک تاوان نہیں لے سکتا یہ وجیز کردری میں ہے اور اگر ایک غلام ہزار درہم قیمت کا غصب کیا پھر اس کی قیمت بڑھ کر بعد غصب کے دو ہزار درہم ہو گئے پھر اس کو کسی شخص نے قتل کیا تو مولیٰ کو اختیار ہوگا چاہے غاصب سے روز غصب کی ہزار درہم قیمت لے لے یا قاتل سے روز قتل کے دو ہزار لینا اختیار کرے کہ جس کو قاتل کی مدد گار برادری سے وصول پائے گا پس اگر اس نے غاصب سے لینا منظور کیا تو غاصب دو ہزار درہم قاتل کی مدد گار برادری سے وصول کر کے ہزار درہم سے زائد سب صدقہ کر دے گا اور اگر غاصب کے پاس خود غلام نے اپنے تئیں قتل کر ڈالا تو غاصب روز غصب کے ہزار درہم قیمت کا ضامن ہوگا۔ اور روز خود کشی کی قیمت کا ضامن نہ ہوگا یہ سراج الوہاج میں ہے اگر زید نے عمرو کا گیہوں کا کھلیان پھونک دیا تو عمرو اس سے بھوسے کی قیمت تاوان لے لے گا پھر

اگر بالیوں کے گیہوں کی بنسبت نکالے ہوئے کی زیادہ قیمت ہو تو اس پر قیمت واجب ہوگی اور اگر نکلے ہوئے زیادہ قیمت کے ہوں تو اس پر اس کے مثل گیہوں اور بھوسے میں قیمت واجب ہوگی۔ ایک شخص نے کھلیان غصب کر کے اس کو روندوایا تو اس پر بھوسے کی قیمت واجب ہوگی اور گیہوں کے مثل گیہوں واجب ہوں گے یہ وجیز کردری میں ہے۔ امام محمد سے روایت ہے کہ اگر زید نے عمرو کا ایک دانہ گیہوں غصب کر لیا تو غاصب پر کچھ واجب نہ ہوگا اس لیے کہ اس کی قیمت کچھ نہیں ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر بہت آدمیوں نے زید کا ایک ایک دانہ گیہوں غصب کیا یہاں تک کہ سب دانے مل کر ایک قفیز گیہوں ہو گئے تو امام ابو یوسف نے فرمایا ہے کہ اگر ایک قوم نے ایک ایک شخص کی کچھ چیز جس کی کچھ قیمت ہے غصب کی تو ان سب سے ضمان لے گا اور اگر ایک نے بعد دوسرے کے آکر غصب کی ہو تو میں اس کو کچھ تاوان نہیں دلاؤں گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ اگر ایک شخص نے کسی شخص سے ایک انڈا غصب کر کے اس کو تلف کر دیا تو اس پر اس کے مثل واجب ہو گا اور یہ امام ابو یوسف کا دوسرا قول ہے اور پہلا قول ان کا یہ تھا کہ اس پر قیمت واجب ہو گی یہ محیط میں ہے غاصب نے اگر مال مغصوب کو تلف کر دیا حالانکہ وہ ذوات القیم (۱) میں سے تھا حتیٰ کہ اس پر ضمان قیمت واجب ہوئی تو دیکھا جائے گا کہ اگر بازار میں یہ چیز درہموں سے فروخت ہوتی تو درہموں سے اندازہ کی جائے گی اور اگر دینار سے فروخت ہوتی ہے تو دینار سے اندازہ کی جائے گی اور اگر دونوں سے فروخت ہوتی ہے تو قاضی کی رائے ہے پس اس کو چاہیے کہ جس نقد سے قیمت لگانے میں مغصوب منہ کا نفع ہو اس سے اندازہ کر کے ضمان کی ڈگری کرے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر ایک شخص نے دوسرے کی بکری غصب کر کے اس کا دودھ دوھ لیا تو دودھ کی قیمت کا ضمان ہوگا اور اگر باندی غصب کی جس نے غاصب کے بچے کو دودھ پلایا تو اس کے دودھ کی قیمت کا ضامن نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے اگر

گوشت غصب کر کے اس کو بھونا یا پکایا تو امام اعظم نے فرمایا کہ مالک کو اس کے لینے کی کوئی راہ نہیں ہے یہ سراج الوہاج میں ہے اگر کسی مسلمان کا زیتون کا تیل یا چربی پگھلائی ہوئی جس میں چوہا گر گیا تھا بہا دی تو اس کی قیمت کا

**حواشی:** ا: امام اول یعنی اس مسئلہ پر قیاس کر کے حکم نکل سکتا ہے ۔ ب: پس یعنی اولیٰ یہ کہ مغصوب منہ کے نفع کا لحاظ کرے نہ غاصب کا اگرچہ وہ مختار ہے۔ (۱) قیمت والا ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 112 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...responsible. If a cheetah or hawk trained by a Muslim is destroyed by another Muslim, then according to us, he will be responsible for its value. If a Muslim puts manure in his land and someone else destroys it, he will be liable for the price; this is in al-Wajiz al-Kardari. If a person enters someone's house when no one is there, without the owner's permission, then according to Imam Azam and Imam Abu Yusuf, he will not be declared a usurper of the house. Similarly, if he stays in it, the ruling is the same. It is in Siraj al-Wahhaj: if a person destroys one of a pair of shoes, socks, or ka'b[1], the owner will have the option to give him the other one as well and take the price of both as compensation. This is in Fatawa Qazi Khan, al-Khulasah, and al-Jami' al-Kabir. And if a person destroys the ring of another's finger ring, he will only be liable for the ring (the band), not the gemstone; this is in al-Wajiz al-Kardari. And if someone destroys the two side-panels (palla) of a saddle, i.e., those attached to it, he will be liable for them, but not for the saddle itself. It was said that for any two things that are separate or a single thing whose parts can be separated without harm, like the two panels of a saddle and the internal stuffing etc., in such a case, the usurper will only be liable for what was destroyed by his excess, not for the whole. Thus it is in al-Dhakhirah and al-Wajiz al-Kardari.

## Chapter Three: Regarding instances where compensation (daman) is not mandatory upon destruction

If someone breaks a person's egg or walnut and then whatever came out of it was rotten (fasid), then no compensation will be mandatory upon him because it became clear that he did not destroy property; this is in al-Muhit. And if a person breaks someone's dirham and it later appears that it was a sattuq[2] or lead (rasas), even though it was circulating before being broken, then no compensation will be mandatory on the one who broke it because its circulation was based on deception and treachery; this is in Sharh al-Tahawi. If a person spoils a mat by pulling out its weave or binding, or removes the door shutters from their place, or opens up the components of a saddle, or breaks the assembly of any other assembled object, then it will be seen: if it is possible for it to be restored to how it was, the one who broke it will be told to restore it. If this is not possible, the owner will take the price of the complete assembled item as compensation and return the broken, i.e., disassembled, parts to him; this is in al-Muhit al-Sarakhsi. If a person unties the lace of someone's shoe: if it is the kind of shoe common people wear, no compensation will be mandatory because its lace can be re-threaded and there is no significant

burden (1). If it is an Arabic shoe, then if re-attaching it does not diminish the strap (dawal) or cause a defect, it will be ordered that he re-attach it and there will be no liability. If the strap gets torn or damaged and a defect arises in it, then he will be liable to the extent of the loss; this is in al-Dhakhirah. And if someone opens the links of a gold chain, he will be liable for its value in silver[3] [to avoid usury]. Similarly, if someone bound a slave's teeth with gold and another person untied them, the ruling is the same. If a person untied a weaver's warp (tana) and scattered it, it was said that since it was a warp...

1 Ka'b: Linguistically it is a type of sock; here it refers to the tip of that area, which is considered in trade, as in Radd al-Muhtar. 2 Sattuq: According to lexicons, these are dirhams with so much alloy that merchants do not accept them. Ghash-khot: i.e., dealing dishonestly with people. Mu'allaf: components joined in a composition. Dawal: strap/lace. 3 With silver so that there is no suspicion of interest (usury), and suspicion here is like the reality. (1) Expense and effort.

जामिन होगा और अगर मुसलमान का सिखाया हुआ चीता या बाज़ किसी मुसलमान ने तलफ़ कर दिया तो हमारे नज़दीक उसकी कीमत का जामिन होगा। मुसलमान ने अगर अपनी ज़मीन में खाद डाली और उसको किसी शख़्स ने तलफ़ कर दिया तो कीमत का जामिन होगा, यह वजीज़ करदरी में है। अगर कोई शख़्स किसी ऐसे घर (दार) में, जिसमें कोई न हो, मालिक की इजाज़त के बिना दाख़िल हुआ तो इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के नज़दीक उसे घर का ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाला) नहीं माना जाएगा। इसी तरह अगर उसमें रहा तो भी यही हुक्म है। सिराज अल-वहाज में है: अगर किसी शख़्स ने दूसरे की जोड़ी का एक हिस्सा या मोज़ा या का'ब[1] में से एक तलफ़ कर दिया तो मालिक को अख्तियार होगा कि दूसरा भी उसको देकर उससे दोनों की कीमत हर्जाने के रूप में ले ले। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान, खुलासः और जामे कबीर में है। और अगर किसी शख़्स ने दूसरे की अंगूठी का छल्ला तलफ़ कर दिया तो सिर्फ़ छल्ले का जामिन होगा, नगीने का जामिन नहीं होगा। यह वजीज़ करदरी में है। और अगर ज़ीन (घोड़े की काठी) के दोनों तरफ़ के पल्ले तलफ़ कर दिए, यानी जो उसमें जुड़े हुए हैं, तो उनका जामिन होगा, ज़ीन का जामिन नहीं होगा। और फ़रमाया कि हर दो चीज़ें जो अलग-अलग हों या एक ही चीज़ हो मगर उसके टुकड़े बिना नुकसान के अलग हो जाते हों, जैसे ज़ीन के दोनों पल्ले और अंदर की भरती वग़ैरा, तो ऐसी सूरत में जो चीज़ ग़ासिब की ज़्यादती से तलफ़ हुई है सिर्फ़ उसी का जामिन होगा, सबका जामिन नहीं होगा। ऐसा ही अल-ज़ख़ीरा और वजीज़ अल-करदरी में है।

## अध्याय तीन: उन स्थितियों के वर्णन में जिनमें तलफ़ करने से ज़मान (हर्जाना) वाजिब नहीं होता है

किसी शख़्स का अंडा या अखरोट तोड़ डाला, फिर जो कुछ उसमें से निकला वह सड़ा हुआ (फ़ासिद) था, तो उस पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा क्योंकि यह बात ज़ाहिर हो गई कि उसने माल तलफ़ नहीं किया है, यह मुहीत में है। और अगर एक शख़्स का दिरहम तोड़ डाला, फिर ज़ाहिर हुआ कि वह सतूक[2] या सीसा (रसास) था, हालाँकि टूटने से पहले चलता था, तो तोड़ने वाले पर कुछ हर्जाना वाजिब नहीं होगा क्योंकि उसका चलन धोखा और ख्यानत था, यह शरह तहावी में है। अगर एक शख़्स ने दूसरे के बोरिए की बनावट यानी उसके जोड़ निकाल कर बोरिया ख़राब कर दिया या दरवाज़े के किवाड़ अपनी जगह से उखाड़ दिए या ज़ीन के हिस्से खोल डाले या और कोई चीज़ जुड़ी हुई थी उसकी बनावट तोड़ दी, तो देखा जाएगा कि अगर ऐसा मुमकिन है कि जैसी थी वैसी ही हो

जाए तो तोड़ने वाले से कहा जाएगा कि उसको वैसा ही कर दे। और अगर यह मुमकिन न हो तो मालिक उससे सही-सलामत जुड़ी हुई चीज़ की कीमत हर्जाने में ले लेगा और टूटी हुई यानी गैर-मुअल्लफ़ (बिना जुड़ी हुई) चीज़ उसे दे देगा, यह मुहीत सरख़सी में है। अगर किसी शख़्स के जूते का तस्मा खोल डाला, फिर अगर ऐसा जूता हो जैसे आम लोग पहनते हैं, तो उस पर कुछ हर्जाना वाजिब नहीं होगा क्योंकि उसके तस्मे को फिर से दोबारा लगा लेते हैं और कोई विशेष मशक्क़त (1) नहीं है। और अगर अरबी जूता हो, फिर अगर उसे दोबारा लगाने से उसकी पट्टी (दवाल) में कमी न आती हो और न कोई ऐब पैदा होता हो, तो हुक्म दिया जाएगा कि उसे दोबारा लगा दे और कुछ हर्जाना नहीं होगा। और अगर उसकी पट्टी में टूट-फूट और नुकसान आता हो और उसमें कोई ऐब पैदा हो जाता हो तो नुकसान के बराबर का जामिन होगा, यह ज़ख़ीरा में है। और अगर सोने की ज़ंजीर की कड़ियाँ खोल डालीं तो चाँदी[3] से उसकी कीमत का जामिन होगा। इसी तरह अगर किसी शख़्स ने गुलाम के दाँत सोने से बाँधे और उन्हें किसी शख़्स ने खोल फेंका तो भी यही हुक्म है। अगर एक शख़्स ने जुलाहे का ताना खोल कर तितर-बितर कर दिया तो फ़रमाया कि ताना होने की...

1 का’ब: शब्द के अनुसार एक प्रकार का मोज़ा होता है, यहाँ उस स्थान का सिरा मुराद है, जो ख़रीद-फरोख्त में विश्वसनीय है, जैसा कि रद अल-मुह्तार में है। 2 सतूक: लुग़त के अनुसार वह दिरहम है जिसमें मिलावट इतनी ज़्यादा हो कि व्यापारी उसे स्वीकार न करें। ग़श-खोट यानी बेईमानी का मामला करना। मुअल्लफ़: बनावट से मिलाई हुई चीज़। दवाल: तस्मा। 3 चाँदी से ताकि ब्याज का संदेह न रहे, और यहाँ संदेह असल की तरह है। (1) ख़र्चा और मशक्क़त।

ضامن ہوگا اور اگر مسلمان کا سکھلایا ہوا چیتا یا باز کسی مسلمان نے تلف کردیا تو ہمارے نزدیک اُس کی قیمت کا ضامن ہوگا مسلمان نے اگر اپنی زمین میں کھاد ڈالی اور اُس کو کسی شخص نے تلف کر دیا تو قیمت کا ضامن ہوگا یہ وجیز کردری میں ہے۔ اگر کسی شخص کے دار میں جس میں کوئی نہیں ہے مالک کی بلا اجازت داخل ہوا تو امام اعظمؒ وامام ابو یوسفؒ کے نزدیک دار کا غاصب نہیں قرار دیا جائے گا اسی طرح اگر اس میں رہا تو بھی یہی حکم ہے سراج الوہاج میں ہے اگر کسی شخص نے دوسرے کی جوڑی کواڑا جوڑی موزہ یا کعب ۱ میں سے ایک تلف کر دیا تو مالک کو اختیار ہوگا کہ دوسرا بھی اُس کو دے کر اُس سے دونوں کی قیمت تاوان لے یہ فتاویٰ قاضی خان و خلاصہ و جامع کبیر میں ہے اور اگر کسی شخص نے دوسرے کی انگوٹھی کا حلقہ تلف کر دیا تو فقط حلقہ کا ضامن ہو گا نگینہ کا ضامن نہ ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے اور اگر زین کے دونوں طرف کے پلے تلف کر دیئے یعنی جو اُس میں جڑے ہوئے ہیں تو ان کا ضامن ہوگا زین کا ضامن نہ ہوگا اور فرمایا کہ ہر دو چیز جو علیحدہ علیحدہ ہوں یا ایک ہی شئے ہو مگر اس کے ٹکڑے بلا ضرر کے الگ ہو جاتے ہوں جیسے زین کے دونوں پلے واندر کی بھرت وغیرہ تو ایسی صورت میں جو چیز غاصب کی زیادتی سے تلف ہوئی ہے فقط اُسی کا ضامن ہو گا سب کا ضامن نہ ہو گا کذا فی الذخیرہ وکذا فی الوجیز الکردری۔

## باب سوم: ان صورتوں کے بیان میں جن میں تلف کرنے سے ضمان واجب نہیں ہوتی ہے

کسی شخص کا انڈا یا اخروٹ توڑ ڈالا پھر جو کچھ اُس میں سے نکلا وہ فاسد تھا تو اُس پر ضمان واجب نہ ہوگی کیونکہ یہ بات ظاہر ہو گئی کہ اس نے مال تلف نہیں کیا ہے یہ محیط میں ہے اور

اگر ایک شخص کا درہم توڑ ڈالا پھر ظاہر ہوا کہ ستوق۲ یا رصاص تھا حالانکہ ٹوٹنے سے پہلے چلتا تھا تو توڑنے والے پر کچھ ضمان واجب نہ ہوگی کیونکہ اُس کا رواج غش و خیانت تھا یہ شرح طحاوی میں ہے اگر ایک شخص نے دوسرے کے بوریہ کی تالیف یعنی بندش کا جوڑ نکال کر بوریہ خراب کر دیا یا دروازہ کے کواڑ اپنی جگہ سے اُکھاڑ دیئے یا زین کے اجزا کھول ڈالے یا اور کوئی چیز مؤلف تھی اُس کی تالیف توڑ دی تو دیکھا جائے گا کہ اگر ایسا ممکن ہے کہ جیسی تھی ویسی ہی ہو جائے تو توڑنے والے سے کہا جائے گا کہ اس کو ویسا ہی کر دے اور اگر یہ ممکن نہ ہو تو مالک اُس سے صحیح سالم مولف کی قیمت تاوان لے لے گا اور ٹوٹی ہوئی یعنی غیر مؤلف اُس کو دے دے گا یہ محیط سرخسی میں ہے اگر کسی شخص کے جوتے کا تسمہ کھول ڈالا پس اگر ایسی جوتی ہو جیسے عام لوگ پہنتے ہیں تو اُس پر کچھ ضمان واجب نہ ہوگی کیونکہ اُس کے تسمہ کو پھر دہر ا کر لگا لیتے ہیں اور کچھ مؤنت (۱) نہیں ہے اور اگر عربی جوتی ہو پس اگر اعادہ کرنے سے اُس کا دوال ناقص نہ ہوتا ہو اور نہ عیب پیدا ہوتا ہو تو حکم دیا جائے گا کہ اس کو دہر ا کر لگا دے اور کچھ ضامن نہ ہوگا اور اگر اُس کے دوال میں شکست و نقصان آتا ہو اور اُس میں عیب پیدا ہو جاتا ہو تو بقدر نقصان کے ضامن ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر سونے کی زنجیر کی کڑیاں کھول ڈالیں تو چاندی۳ سے اُس کی قیمت کا ضامن ہوگا اسی طرح اگر کسی شخص نے غلام کے دانت سونے سے باندھے اور ان کو کسی شخص نے کھول پھینکا تو بھی یہی حکم ہے اگر ایک شخص نے جولا ہے کا تانا کھول کر پریشان کر دیا تو فرمایا کہ تانا ہونے کی

۱ کعب لغتہ دار ایک قسم کا موزہ ہوتا ہے جس میں اسی مقام کا سرا مراد لیا ہے لینا بیع میں معتبر ہے کما فی رد المحتار۔ ۲ ستوق بقول لغات یہ ہیں ستوق جس درہم میں میل بہت ہو کہ تاجر قبول نہ کرے غش کھوٹ یعنی کسر خیانت لوگوں سے بے ایمانی کا معاملہ کرنا مولف ترکیب سے ملائی

ہوئی دوال تسمہ۔ ۳ چاندی سے تا کہ بیاج کا شبہ نہ رہے اور شبہ یہاں بمنزلہ اصل ہے۔ (۱) خرچہ و مشقت۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (113) Kitab al-Ghasb (Book of Usurpation)**

In such a case, the value of the object and its value after being damaged/ deteriorated shall be estimated. The person shall be liable for the difference between the two values; this is mentioned in *Fatawa Qadi Khan*. If a person demolishes his neighbor's wall, the neighbor has the choice: either take the value of the wall from him and keep the debris, or take the broken wall and claim compensation for the loss in value. The neighbor cannot compel him to reconstruct the wall exactly as it was. It should be clarified that the method for determining the value of a wall is to estimate the value of the house with the walls and then estimate it without the walls; the difference between the two shall be the value of the wall. This is recorded in *Al-Dhakhira*.

If Zaid demolishes Amr's mud wall and then rebuilds it exactly as it was, he is absolved of liability. If the wall was made of wood and he rebuilt it using the same wood, he is also absolved. However, if he rebuilt it with different wood, he is not absolved because wood varies in quality, unless it is determined that the new wood is better than the original, in which case he is absolved. This is in *Wajeez al-Kardari*. If a person demolishes the wall of a mosque, he shall be ordered to level and repair it; this is in *Al-Qunyah*. If a tailor ruins someone's cloth and the owner wears it despite knowing this, he cannot claim damages; this is in *Wajeez al-Kardari*. If soil is taken from another's land: if the soil has no market value there but its removal makes the land defective, he is liable for the loss. If the land does not become defective, he is not liable, and he shall not be ordered to fill the pit, although some scholars have given such a ruling. If the soil has a value, he shall be liable for its price, whether the land was damaged or not. If a person digs a pit in another's land which causes damage to the land, he is liable for the loss. It is clear from the phrase "which causes damage to the land" that if no damage occurs, he is not liable. Thus it is in *Al-Dhakhira*.

If a money-changer tests dirhams with the owner's permission and presses a dirham causing it to break, he is not liable. For the purpose of legal ruling (*fatwa*), the preferred view is that if the owner commanded him to test it by pressing, he is not liable. If there was no command but it is the custom of people to test dirhams by pressing them, he is still not liable; otherwise, if they do not typically test by pressing and he did so, he shall be liable. This is in *Siraj al-Wahaj*. If a person cooks someone else's meat without permission, he is liable. However, if the owner placed the meat in a pot on the stove and laid the firewood beneath it, and then another person came

and lit the fire to cook the meat, then by way of *Istihsan* (juristic preference), he is not liable. There are five similar legal issues of this nature: the first is the one just mentioned. The second is that if someone grinds another's wheat without permission, he is liable. But if the owner filled the mill with wheat and harnessed the ox, and another person came and drove the ox, resulting in the wheat being ground, he is not liable. The third is that if someone lifts another's lens/glass without permission and it breaks, he is liable. But if the owner himself lifted it and tilted it toward himself, and another person assisted in lifting it and it broke in the process, he is not liable. The fourth issue is that if a person loads a burden onto someone else's mule without permission and it dies, he is liable. But if the owner loaded it and the load fell on the way, and a stranger came and reloaded it without permission and the animal died, he is not liable. The fifth issue is that if a person slaughters another's sacrificial animal without permission: if he slaughters it outside the days of *Eid al-Adha*, it is not permissible and he is liable. But if he slaughters it during the days of sacrifice, it is permissible and he is not liable, because in such matters, permission is established by implication (*dalala*), and an implied indication is valid as long as there is no explicit instruction to the contrary. This is in *Al-Dhakhira*.

उस स्थिति में उसकी (वस्तु की) कीमत और उसके खराब (परेशान/टूटने) होने के बाद की कीमत का अंदाज़ा किया जाए। दोनों कीमतों में जितना अंतर होगा, वह उसका जामिन (हर्जाना देने वाला) होगा। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में दर्ज है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने पड़ोसी की दीवार गिरा दी, तो पड़ोसी को अधिकार है कि वह चाहे तो दीवार की कीमत ले ले और मलबा उसका होगा, या टूटी हुई दीवार रखकर उससे नुकसान (कमी) का हर्जाना ले ले। पड़ोसी को यह अधिकार नहीं होगा कि वह उसे वैसी ही दीवार बनाने के लिए मजबूर करे। फिर स्पष्ट हो कि दीवार की कीमत जानने का तरीका यह है कि उस घर का अंदाज़ा दीवारों के साथ किया जाए और उसके बिना अंदाज़ा किया जाए; दोनों के बीच जो अंतर होगा, वही दीवार की कीमत होगी। यह 'ज़खीरा' में है।

यदि ज़ैद ने अम्र की मिट्टी की दीवार गिरा दी और फिर उसे वैसा ही बनवा दिया जैसा वह थी, तो वह ज़िम्मेदारी (ज़मानत) से बरी हो गया। यदि वह लकड़ी की थी और उसने उसी लकड़ी से बनवा दी, तो भी बरी हो गया। लेकिन यदि दूसरी लकड़ी से बनवाई, तो बरी नहीं होगा क्योंकि लकड़ी में अंतर होता है; सिवाय इसके कि यदि यह मालूम हो जाए कि दूसरी लकड़ी पहली से बेहतर है, तो वह बरी हो जाएगा। यह 'वजीज़-ए-करदरी' में है। यदि किसी व्यक्ति ने मस्जिद की दीवार गिरा दी, तो उसे हुक्म दिया जाएगा कि उसे बराबर करके दुरुस्त कर दे। यह 'कुनया' में है। यदि दर्जी ने किसी का कपड़ा बिगाड़ दिया और मालिक ने यह जानते हुए भी उसे पहन लिया, तो वह हर्जाना (तावान) नहीं ले सकता। यह 'वजीज़-ए-करदरी' में है। यदि किसी दूसरे की ज़मीन से मिट्टी उठाई, तो यदि वहां मिट्टी की कोई कीमत न हो लेकिन मिट्टी उठाने से ज़मीन खराब (नाक़िस) हो गई, तो वह नुकसान का उत्तरदायी होगा। यदि ज़मीन खराब नहीं हुई, तो कुछ भी उत्तरदायी नहीं होगा, और उसे यह हुक्म नहीं दिया जाएगा कि वह गड्ढा भरे, हालांकि कुछ विद्वानों ने ऐसा हुक्म दिया है। यदि वहां मिट्टी की कीमत है, तो वह उसकी कीमत का उत्तरदायी होगा, चाहे ज़मीन में नुकसान हुआ हो या न हुआ हो। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन में गड्ढा खोदा जिससे ज़मीन खराब हो गई, तो वह नुकसान का ज़िम्मेदार होगा। स्पष्ट हो कि इस कथन से संकेत मिलता है कि यदि ज़मीन खराब नहीं हुई, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। जैसा कि 'ज़खीरा' में है।

यदि सर्राफ (मुद्रा परीक्षक) ने मालिक की अनुमति से सिक्कों को परखा और किसी सिक्के को दबाया जिससे वह टूट गया, तो उस पर कोई हर्जाना नहीं है। फ़तवे के लिए पसंदीदा राय यह है कि यदि मालिक ने उसे सिक्का दबाकर देखने का हुक्म दिया हो, तो हर्जाना नहीं है। यदि हुक्म नहीं दिया

लेकिन लोग आमतौर पर सिक्कों को इसी तरह दबाकर परखते हैं, तब भी हर्जाना नहीं होगा; अन्यथा यदि वे दबाकर नहीं परखते और उसने ऐसा किया, तो वह उत्तरदायी होगा। यह 'सिराज अल-वहाज' में है। यदि किसी व्यक्ति का मांस उसकी अनुमति के बिना पकाया गया, तो वह उत्तरदायी होगा। लेकिन यदि मालिक ने मांस पतीली में डालकर चूल्हे पर रख दिया और नीचे लकड़ियाँ लगा दीं, फिर किसी दूसरे व्यक्ति ने आकर आग जला दी और मांस पक गया, तो 'इस्तेहसान' (न्यायविधिक प्राथमिकता) के तौर पर वह उत्तरदायी नहीं होगा। इस प्रकार के पाँच मसले हैं: पहला यही जो ऊपर वर्णित हुआ। दूसरा यह कि यदि किसी दूसरे के गेहूं उसकी अनुमति के बिना पीस दिए, तो उत्तरदायी होगा। परंतु यदि मालिक ने चक्की में गेहूं भर दिए और बैल को चक्की से बाँध दिया, फिर किसी दूसरे ने आकर बैल को हाँक दिया और गेहूं पिस गए, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। तीसरा यह कि यदि किसी दूसरे का शीशा/लेंस उसकी अनुमति के बिना उठाया और वह टूट गया, तो वह उत्तरदायी होगा। परंतु यदि मालिक ने खुद उसे उठाकर अपनी ओर झुकाया और किसी ने उसे उठाने में मदद की और उस दौरान वह टूट गया, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। चौथा मसला यह है कि यदि किसी ने मालिक की अनुमति के बिना उसके खच्चर पर बोझ लाद दिया और वह मर गया, तो उत्तरदायी होगा। परंतु यदि मालिक ने स्वयं लादा और रास्ते में बोझ गिर गया, फिर किसी दूसरे ने अनुमति के बिना आकर उसे वापस लाद दिया और जानवर मर गया, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। पांचवां मसला यह है कि यदि किसी ने दूसरे का कुर्बानी का जानवर उसकी अनुमति के बिना ज़बह कर दिया; यदि कुर्बानी के दिनों के अलावा ज़बह किया तो यह जायज़ नहीं है और वह उत्तरदायी होगा। लेकिन यदि कुर्बानी के दिनों में ज़बह किया तो यह जायज़ है और वह उत्तरदायी नहीं होगा, क्योंकि ऐसे मामलों में अनुमति क्रिया/संकेत (दलाला) से सिद्ध मानी जाती है, और यह तब तक मान्य है जब तक कि स्पष्ट रूप से इसके विरुद्ध कुछ न पाया जाए। यह 'ज़खीरा' में है।

---

صورت میں اُس کی قیمت اور پریشان ہونے کے بعد اُس کی قیمت اندازہ کی جائے جس قدر دونوں قیمتوں میں فرق ہو اُس کا ضامن ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر ایک شخص نے اپنے پڑوسی کی دیوار گرا دی تو ہمسایہ کو اختیار ہے چاہے اس سے دیوار کی قیمت لے لے اور شکستہ اُس کی ہو گی یا ٹوٹی ہوئی دیوار لے کر اُس سے نقصان لے لے اور ہمسایہ کا یہ اختیار نہ ہوگا کہ اُس کو جیسی تھی ویسی بنانے پر مجبور کرے پھر واضح ہو کہ دیوار کی قیمت پہچاننے کا یہ طریقہ ہے کہ اس دار (گھر) کو مع دیواروں کے اندازہ کرایا جائے اور بدون اُس کے اندازہ کرایا جائے جس قدر دونوں میں فرق ہو وہی دیوار کی قیمت ہو گی یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر زید نے عمرو کی مٹی کی دیوار گرا دی پھر اُس کو جیسی تھی ویسی ہی بنوا دیا تو ضمان سے بری ہو گیا اور اگر لکڑی کی تھی اور اُس کو اُسی لکڑی سے بنوا دیا تو بھی بری ہو گیا اور اگر دوسری لکڑی سے بنوایا تو بری نہ ہو گا کیونکہ لکڑی میں فرق ہوتا ہے حتیٰ کہ اگر یہ معلوم ہو جائے کہ دوسری لکڑی پہلی سے بہتر ہے تو بری ہو جائے گا یہ وجیز کردری میں ہے اگر کسی شخص نے مسجد کی دیوار گرا دی تو حکم دیا جائے گا کہ اس کو برابر کر کے درست (بنادے) کر دے یہ قنیہ میں ہے درزی نے ایک شخص کا کپڑا بگاڑ دیا اور مالک نے باوجود جاننے کے اُس کو پہن لیا تو پھر تاوان نہیں لے سکتا ہے یہ وجیز کردری میں ہے اگر غیر کی زمین سے مٹی اٹھائی پس اگر وہاں مٹی کی کچھ قیمت نہ ہو لیکن مٹی اُٹھانے سے زمین ناقص ہو گئی تو نقصان کا ضامن ہو گا اور اگر ناقص نہ ہوئی تو کچھ ضامن نہ ہو گا اور اس کو یہ حکم نہ دیا جائے گا کہ گڈھا پاٹ دے اگرچہ بعض علما نے یہ حکم دیا ہے اور اگر وہاں مٹی کی قیمت ہو تو اُس کی قیمت کا ضامن ہو گا خواہ زمین میں نقصان آگیا ہو یا نہ آیا ہو اگر کسی شخص نے دوسرے کی زمین میں

گڈھا کھودا جس سے اُس کی زمین میں نقصان آگیا تو نقصان کا ضامن ہوگا اور واضح ہو کہ اس قول سے جس سے اُس کی زمین میں نقصان آگیا یہ اشارہ نکلتا ہے کہ اگر اُس کی زمین میں نقصان نہ آیا تو کچھ ضامن نہ ہو گا کذا فی الذخیرہ۔

اگر صراف نے مالک کی اجازت سے درہموں کو پرکھا اور کسی درہم کو دبایا جس سے وہ ٹوٹ گیا تو اُس پر ضمان نہیں ہے مگر فتوٰی کے واسطے یہ مختار ہے کہ اگر مالک نے اُس کو درہم کے دبا کر دیکھنے کا حکم کیا ہو تو اُس پر ضمان نہیں ہے اور اگر حکم نہ کیا ہو مگر لوگ درہموں کو اسی طرح دبا کر پرکھتے ہوں تو بھی اُس پر ضمان نہیں ہے ورنہ اگر دبا کر نہیں پرکھتے ہوں تو ضامن ہو گا یہ سراج الوہاج میں ہے اگر غیر شخص کا گوشت اس کی بلا اجازت پکایا تو ضامن ہو گا اور اگر مالک نے گوشت دیگچی میں کر کے چولہے پر چڑھا دیا اور اُس کے نیچے لکڑیاں لگا دیں پھر ایک شخص نے آکر آگ جلا کر گوشت پکا دیا تو استحساناً ضامن نہ ہوگا اور اس جنس کے پانچ مسئلہ ہیں ایک اُن میں سے یہی مسئلہ ہے جو مذکور ہوا دوسرا یہ ہے کہ اگر غیر شخص کے گیہوں اُس کی بلا اجازت پیس ڈالے تو ضامن ہو گا اور اگر مالک نے نیل چکی یا گدھے چلانے کی چکی میں گیہوں بھر دیئے اور بیل کو چکی میں باندھ دیا پھر ایک شخص نے آکر بیل ہانک دیے اور گیہوں پس گئے تو ضامن نہ ہو گا۔ تیسرا یہ ہے کہ اگر غیر شخص کا عدسہ (شیشہ) اس کی بلا اجازت اُٹھا دیا اور وہ ٹوٹ گیا تو ضامن ہو گا اور اگر مالک نے خود اُس کو اٹھا کر اپنی طرف جھکایا اور ایک شخص نے اُٹھانے میں اُس کی مدد کی اور اس بیچ میں وہ ٹوٹ گیا تو ضامن نہ ہو گا ۔ چوتھا مسئلہ یہ ہے کہ اگر ایک شخص نے مالک کی بلا اجازت اُس کے خچر پر بوجھ لاد دیا اور وہ مر گیا تو ضامن ہوگا اور اگر خود مالک نے لاد دیا پھر راہ میں بوجھ گر پڑا اور غیر شخص نے اس کی بلا اجازت آ کر لاد دیا اور جانور مر گیا تو ضامن نہ ہوگا پانچواں مسئلہ یہ ہے کہ اگر ایک شخص نے دوسرے کی قربانی کا جانور اُس کی بلا

اجازت ذبح کر دیا پس اگر غیر ایام قربانی میں ذبح کر دیا تو جائز نہیں ہے اور ضامن ہو گا اور اگر ایام قربانی میں ذبح کیا تو جائز ہے اور وہ ضامن نہ ہو گا کیوں کہ ایسے مسائل میں اجازت بدلالت ثابت ہوتی ہے اور حکم دلالت کا اس وقت تک اعتبار ہے جس وقت تک صریح اُس کے بر خلاف نہ پایا جائے یہ ذخیرہ میں ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 113 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**
**Stipulating Conditions in Dealings** ❀ Among the issues of this nature is the one mentioned by Imam Muhammad (RA) in the chapter on 'Sharecropping with Stipulated Dealings' (Muzara'ah). If a person invites several people to demolish their house, and another person arrives and begins demolishing it without the owner's explicit permission, according to 'Istihsan' (juridical preference), they shall not be held liable (damin). Thus, a principle is established for issues of this category: for tasks where the actions of people do not significantly differ from one another, implied consent for assistance is established by indication. However, if the task is such that people's actions differ significantly, then permission for every individual is not established. For instance, if after slaughtering a goat, it is hung to be skinned and someone comes and skins it without the owner's permission, they shall be liable; this is mentioned in 'Al-Muhit'. A butcher bought a goat, and someone else came and slaughtered it. If the butcher had tied its legs to prepare it for slaughter, the one who slaughtered it is not liable. If its legs were not tied, the slaughterer is liable, as stated in 'Al-Sughra'. I say: this is known in places where tying a goat's legs for slaughter is customary. Otherwise, it is not. You know that the intention is to perform an act from which the immediate intent to slaughter is understood; understand this, and Allah knows best. If a person finds a stray animal in their vineyard or field that has caused damage, and they tie it up until it dies, they shall be liable. If they drive it out, the preferred (mukhtar) opinion is that if they drove it out and chased it and it died, they are liable, but if they only drove it out without chasing it, they are not liable. Similarly, if an outsider drives an outsider's animal out of an outsider's field, the same detailed ruling applies. If the animal was chased only far enough to ensure it was away from one's own crops, the ruling is the same as simply driving it out, i.e., no liability. However, according to most of our Shaikhs, they would be liable, and the fatwa is based on this. If an animal is found in a field, and someone loads a burden on it causing it to move fast, any mishap that befalls it makes the person liable. If after driving it out, they pursued it for a long distance and it disappeared, they are also liable. If a stranger drove it out, the owner is not liable; this is in 'Khizanat al-Muftin'. If a shepherd sees another person's cow in a cowshed or camel-pen and drives it out such that it leaves the pen, they are not liable. However, if they continue to drive it even after it is out of the pen, they shall be liable; this is in 'Al-Muhit' and 'Fatawa al-Kubra'. If someone sees another's animal in their field and drives it out with the intent of returning it to its owner, and it dies on the way or its leg breaks, they shall be liable. Faqih Abu al-Layth (RA) stated: "We are not among those who adopt this

narration; we follow the narration from Imam Muhammad (RA) who said they are not liable." This is in 'Al-Zahiriyya'. If Zaid sees Amr's animal straying in his field and informs Amr of the situation, and in the meantime, the animal damages the crops, and if Zaid then orders him to remove his animal from the field, Amr will not be liable for the interim damage; this is in 'Al-Muhit'. If someone drives another's mule without permission and a wolf eats its young foal such that it is lost, while the mule returns to its owner: if they drove the mule along with the foal, they are liable. If the foal followed on its own without being driven, they are not liable for its loss; this is in 'Wajiz al-Kardari'. If a shepherd leads the flock so close to crops that an animal could reach in and eat, then if damage occurs, the shepherd is liable; this is in 'Fusul al-Imadiyya'. If Zaid's animal escapes by itself during the night or day without Zaid having set it free, and it causes damage in someone's field, then according to us...

1 Regarding sharecropping where the dealing is stipulated. 2 The butcher was stipulated because slaughtering is apparent from his professional status. The phrase "I say" means this recognition can occur where tying a goat's leg is customary; there it is understood that the butcher performs an act from which an immediate intent to slaughter is evident.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 113 | किताब अल-ग़सब मुआमला शर्त करना** ❦ और इसी प्रकार के मसलों में से वह मसला भी है जिसे इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'मुज़ारअत' में 'बाबुल मुज़ारअतिल्लती युश्तरतु फ़ीहल मुआमला' से पहले ज़िक्र किया है कि यदि किसी व्यक्ति ने कुछ लोगों को अपना घर गिराने के लिए बुलाया, फिर एक अन्य व्यक्ति आया और मालिक की अनुमति के बिना गिराना शुरू कर दिया, तो 'इस्तेहसान' (न्यायिक पसंद) के आधार पर वह ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा। अतः इस प्रकार के मसलों में यह सिद्धांत तय हुआ कि जिस काम को करने में लोगों के कार्य में कोई अंतर नहीं होता, उसमें प्रत्येक व्यक्ति को संकेत (दलालत) द्वारा सहायता प्राप्त मानी जाती है। और यदि काम ऐसा हो जिसमें लोगों का कार्य अलग-अलग होता है, तो उसमें प्रत्येक व्यक्ति को अनुमति प्राप्त नहीं मानी जाएगी। उदाहरण के तौर पर, यदि बकरी ज़बह (वध) करने के बाद खाल उतारने के लिए लटकाई गई और किसी व्यक्ति ने आकर मालिक की अनुमति के बिना उसकी खाल उतार दी, तो वह ज़िम्मेदार होगा, जैसा कि 'मुहीत' में है। एक कसाई ने एक बकरी खरीदी, फिर एक व्यक्ति ने आकर उसे ज़बह कर दिया; यदि कसाई ने उसे पकड़कर ज़बह करने के लिए उसके पैर बांध दिए हों, तो वध करने वाला ज़िम्मेदार नहीं होगा, और यदि पैर न बांधे हों, तो ज़िम्मेदार होगा, जैसा कि 'सग़ीरी' में है। मैं कहता हूँ कि यह उस स्थान पर जाना जाता है जहाँ ज़बह के लिए बकरी की टांग बांधना प्रचलित है, और जहाँ नहीं है वहाँ ऐसा नहीं है। आप जानते हैं कि इसका उद्देश्य ऐसा कार्य करना है जिससे वर्तमान में वध का इरादा स्पष्ट हो जाए, इसे समझें, और अल्लाह ही बेहतर जानता है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने अंगूर के बाग या खेत में कोई जानवर घूमता हुआ पाया जिसने नुक़सान कर दिया था, और उसने उसे बांध दिया यहाँ तक कि वह मर गया, तो वह ज़िम्मेदार होगा। और यदि उसे निकाल दिया, तो पसंद किया गया (मुफ़्तार) मत यह है कि यदि निकालकर उसे हाँका (भगाया) और वह मर गया, तो ज़िम्मेदार होगा, और यदि केवल निकाला और हाँका नहीं, तो ज़िम्मेदार नहीं होगा। इसी प्रकार यदि किसी अजनबी के खेत से किसी अजनबी का जानवर निकाला गया, तो भी यही विस्तृत नियम है। और यदि उस जानवर को केवल इतनी दूर तक हाँका कि वह अपने खेत से सुरक्षित हो गया, तो नियम वैसा ही है जैसे उसने उसे केवल खेत से बाहर निकाला, अर्थात ज़िम्मेदार नहीं होगा। परंतु हमारे अधिकांश मशायख़ (विद्वानों) के अनुसार वह ज़िम्मेदार होगा और इसी पर फ़तवा है। यदि खेत में कोई जानवर पाया गया और उस पर बोझ लाद दिया गया और वह तेज़ चला, तो उसे जो भी विपत्ति पहुँचेगी, वह व्यक्ति उसका ज़िम्मेदार होगा। और यदि उसे निकालने के बाद बहुत दूर तक उसका पीछा किया और वह कहीं चला गया (खो गया), तो भी वह ज़िम्मेदार होगा। और यदि उसे किसी अजनबी ने निकाल दिया हो, तो वह स्वयं ज़िम्मेदार नहीं होगा,

यह 'खज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। चरवाहे ने यदि पशुशाला या ऊंटखाने में दूसरे व्यक्ति की गाय देखकर उसे हाँक दिया ताकि वह बाहर निकल जाए, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। और यदि बाहर निकलने के बाद भी उसे हाँका, तो ज़िम्मेदार होगा, यह 'मुहीत' और 'फ़तावा-ए-कुबरा' में है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने खेत में दूसरे का जानवर देखकर उसे इस उद्देश्य से बाहर निकाला कि उसे मालिक तक पहुँचा दे, और वह रास्ते में मर गया या उसकी टांग टूट गई, तो वह ज़िम्मेदार होगा। फ़क़ीह अबुल लैस (रह.) ने फ़रमाया कि हम इस रिवायत को अपनाने वाले नहीं हैं, हम वही रिवायत लेते हैं जो इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि उन्होंने फ़रमाया कि वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'ज़हीरिया' में है। यदि ज़ैद ने अम्र का जानवर अपने खेत में घूमता हुआ देखा और अम्र को इसकी सूचना दी, और इसी बीच जानवर ने खेत ख़राब कर दिया, फिर यदि ज़ैद ने उसे आदेश दिया कि अपना जानवर खेत से बाहर कर ले, तो अम्र ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे की खच्चरी को उसकी अनुमति के बिना हाँका और उसके छोटे बच्चे को भेड़िया खा गया, जिससे वह नष्ट हो गया, और खच्चरी अपने मालिक के पास वापस पहुँच गई; तो यदि उसने खच्चरी के साथ उसके बच्चे को भी हाँका था, तो वह ज़िम्मेदार होगा, और यदि बच्चा बिना उसके हाँके स्वयं गया था, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'वजीज़ करदरी' में है। यदि चरवाहा झुंड को खेत के इतने नज़दीक ले गया कि जानवर चाहे तो खेत में मुँह डालकर खा ले, तो ऐसी स्थिति में यदि खेत में नुक़सान हुआ, तो चरवाहा ज़िम्मेदार होगा, यह 'फ़ुसूल इमादिया' में है। यदि ज़ैद का जानवर रात या दिन में बिना ज़ैद के छोड़े हुए खुद छूट गया और उसने किसी के खेत में नुक़सान किया, तो हमारे नज़दीक...

1 ऐसी मुज़ारअत के बयान में जिसमें मुआमला शर्त किया गया हो। 2 कसाई इसलिए शर्त हुआ क्योंकि ज़बह करना उसके पद से प्रकट होता है। 'कुलतु अक़ूलु' का अर्थ है कि यह पहचान वहाँ हो सकती है जहाँ बकरी की टांग बाँधना प्रचलित हो, वहाँ यह अर्थ लिया जाए कि कसाई ऐसा कार्य करे जिससे वर्तमान में वध का इरादा ज्ञात हो।

مسائل سے وہ مسئلہ بھی ہے جس کو امام محمدؒ نے مزارعت میں باب المزارعۃ التی یشترط فیہا المعاملۃ سے پہلے ذکر کیا ہے کہ اگر ایک شخص نے چند لوگوں کو اپنے گھر کے منہدم کرنے کے واسطے بلایا پھر ایک شخص نے آکر مالک کی بلا اجازت گرانا شروع کیا تو استحساناً ضامن نہ ہوگا پس اس جنس کے مسائل میں یہ اصل قرار پائی کہ جس کام کے کرنے میں لوگوں کا فعل باہم متفاوت نہیں ہوتا ہے اُس میں ہر شخص کو استعانت بدلالت ثابت ہوتی ہے اور اگر ایسا کام ہو جس میں لوگوں کا فعل متفاوت ہوتا ہے تو اس میں ہر شخص کو اجازت ثابت نہ ہوگی چنانچہ اگر بکری ذبح کرنے کے بعد کھال کھینچنے کے واسطے لٹکائی اور ایک شخص نے آکر بلا اجازت مالک اُس کی کھال کھینچ دی تو ضامن ہو گا یہ محیط میں ہے ایک قصاب نے ایک بکری خریدی پس ایک شخص نے آکر اس کو ذبح کردیا پس اگر قصاب نے اُس کو پکڑ کر ذبح کرنے کے واسطے اس کے پاؤں باندھ دیئے ہوں تو ذبح کرنے والا ضامن نہ ہوگا اور اگر پاؤں نہ باندھے ہوں تو ضامن ہو گا کذا فی الصغریٰ - قلت ھذا انما یعرف فی موضع یتعارف فیہ شد رجل الشاۃ للذبح و فیما لا فلاوانت تعلم ان المراد ان یعقل بھا فعلا یعلم منہ قصد الذبح فی الحال فافھم واللہ تعالٰی اعلم - اگر کسی شخص نے اپنے باغ انگور یا زراعت میں کوئی چوپایہ ہلا ہوا پایا کہ اُس نے نقصان کر دیا تھا پس اُس کو باندھ رکھا یہاں تک کہ وہ مر گیا تو ضامن ہوگا اور اُس کو نکال دیا تو مختار یہ ہے کہ اگر اُس کو نکال کر ہانکا اور وہ مر گیا تو ضامن ہوگا اور نہ ہانکا فقط نکال دیا تو ضامن نہ ہوگا اسی طرح اگر کسی اجنبی کی زراعت سے کسی اجنبی کا چوپایہ نکالا تو بھی اسی تفصیل سے حکم ہے اور اگر اُس چوپایہ کو صرف اتنی دور تک ہانکا کہ وہاں سے اپنی زراعت سے بخوف ہو گیا تو ایسا حکم ہے کہ جیسے اُس نے اپنی زراعت سے فقط باہر نکال دیا یعنی ضامن نہ

ہوگا اور ہمارے اکثر مشائخ کے نزدیک ضامن ہوگا اور اسی پر فتویٰ ہے اگر زراعت میں کوئی چوپایہ پایا اور اُس پر لادا اور اُس نے تیز روی کی تو جو مصیبت اس کو پہنچے گی اُس کا ضامن ہوگا اور اگر اُس کو نکال دینے کے بعد بہت دور تک اُس کا پیچھا کیا اور وہ کہیں چلا گیا تو بھی ضامن ہوگا اور اگر اُس کو کسی اجنبی نے نکال دیا ہو تو خود ضامن نہ ہوگا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ چرواہے نے اگر گاؤ خانہ یا شتر خانہ میں دوسرے شخص کی گائے دیکھ کر ہانک دی کہ وہ گاؤ خانہ سے باہر ہو گئی تو ضامن نہ ہوگا اور اگر گاؤ خانہ سے باہر ہونے کے بعد بھی اُس کو ہانکا تو ضامن ہوگا یہ محیط و فتاویٰ کبریٰ میں ہے اگر کسی شخص نے اپنی زراعت میں دوسرے کا جانور دیکھ کر اُس کو باہر نکال کر اس غرض سے ہانکا کہ اس کے مالک تک پہنچائے اور وہ راستہ میں مر گیا یا اُس کا پاؤں ٹوٹ گیا تو ضامن ہوگا اور فقیہ ابو اللیثؒ نے فرمایا کہ ہم ایسے نہیں ہیں کہ اس روایت کو اختیار کریں ہم تو وہی روایت لیتے ہیں جو امام محمدؒ سے مروی ہے کہ انھوں نے فرمایا کہ ضامن نہ ہوگا یہ ظہیریہ میں ہے اگر زید نے عمرو کا چوپایہ اپنی کھیتی میں ہلا ہوا دیکھ کر عمرو کو اس حال کی خبر دی اور اتنے میں چوپایہ نے کھیتی کو خراب کر دیا پس اگر زید نے اُس کو یہ حکم دیا کہ اپنا جانور کھیت سے باہر کر دے تو عمرو کچھ ضامن نہ ہو گا یہ محیط میں ہے ایک شخص نے غیر کی خچری کو اُس کی بلا اجازت ہانکا اور اُس کے نوجوان بچے کو بھیڑیا کھا گیا کہ وہ ضائع ہو گیا اور خچری اپنے مالک کے پاس واپس پہنچی پس اگر اُس نے خچری کو مع نوجوان بچے کے ہانکا ہو تو ضامن ہوگا اور اگر بچہ بدون اس کے ہانکنے کے خود گیا ہو تو ضائع ہونے سے ضامن نہ ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے اگر چرواہا گلہ کو زراعت سے اتنا قریب قریب لے کر چلا کہ جانور چاہے تو کھیت میں منہ ڈال کر کھا لے تو ایسی صورت میں اگر زراعت میں نقصان پہنچا تو چرواہا ضامن ہوگا یہ فصول عمادیہ میں ہے اگر زید کا چوپایہ

رات یا دن میں بدون زید کے چھوڑے ہوئے چھوٹ کر چلا گیا اور اُس نے کسی شخص کے کھیت میں نقصان پہنچایا تو ہمارے نزدیک

۱ ایسی مزارعت کے بیان میں جس میں معاملہ شرط کیا گیا ہو۔ ۲ قصاب اس واسطے شرط ہوا کہ ذبح کرنا اس کی شان سے ظاہر ہوتا ہے قولہ قلت اقول یعنی یہ شناخت وہاں ہو سکتی ہے جہاں بکری کی ٹانگ باندھنا متعارف ہو وہاں یہ مراد لی جائے کہ قصاب ایسا فعل کرے جس سے فی الحال قصد ذبح معلوم ہو۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 115 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasab)**

The owner is not held liable (for damages); this is recorded in al-Muhit al-Sarakhsi. Zaid gave land to Amr on a sharecropping (mudaraba) basis along with seeds and oxen. Amr gave the oxen to a shepherd, and they were lost; in this case, neither Amr nor the shepherd shall be held liable. This is found in Khazanat al-Muftin. Zaid wanted to irrigate his crops, but Amr forcibly prevented him until the crops were ruined; Zaid is not liable. This is in al-Khulasa. If a stranger sees a cow in a stable and lets it out, and it dies, he shall be held liable. If Zaid usurps Amr’s stable and ties his own animals there, and Amr lets them out, Amr shall be liable; this is in Fusul al-Imadi. Zaid owed Amr one hundred rupees. He came to repay the debt and gave the money to Amr to inspect. While Amr was inspecting it, the money was lost from his hand; the loss falls on Zaid, and the debt remains outstanding because Amr acted as Zaid’s agent (wakil) for the purpose of inspection. Thus, Amr's hand is like Zaid's hand. Conversely, if Zaid handed over the debt money to Amr and said nothing, and then Amr gave it back to Zaid to inspect, and it was lost while in Zaid’s hand, the loss falls on Amr because he had already received his due; Zaid then became Amr’s agent for inspection. If it was lost with Zaid thereafter, it is as if it was lost with Amr. This is in Fatawa Qazi Khan. If someone has intercourse with another's slave girl and she dies as a result, he is liable for her price; this is quoted in Tatarkhaniyya from Ghiyathiyya. If Zaid’s cat kills Amr’s pigeon, Zaid is not liable; this is in al-Mudammarat. If Zaid catches a cat and throws it at Amr’s chicken or pigeon, and it kills it, Zaid is liable if the cat caught it upon being thrown. However, if it caught and killed it later after being thrown, Zaid is not liable; this is in Fatawa Qazi Khan. If Zaid kills Amr’s lion or wolf, he is not liable. But if he kills a monkey, he is liable because a monkey provides service in the house and has a value, thus being categorized like a dog; this is in al-Muhit al-Sarakhsi.

If someone destroys wine or a pig: if it belonged to a Muslim, the destroyer is not liable, whether the destroyer is a Muslim or a Dhimmi (non-Muslim citizen). If it belonged to a Dhimmi, the destroyer is liable, whether they are a Muslim or a Dhimmi. The difference is that a Dhimmi must provide wine for wine, while a Muslim must pay the value of the wine as compensation. For destroying a pig, both must pay its value. If a Muslim or a Dhimmi destroys a Dhimmi's pig, and then the claimant or the defendant (or both) become Muslim, the defendant is not absolved of the liability already incurred. If one Dhimmi destroys another Dhimmi's wine and is ordered to provide wine as compensation, and then the claimant or both become Muslim, by

consensus, the compensation is waived, and the defendant is absolved. If the defendant becomes Muslim first and then the claimant, according to Imam Abu Yusuf and one narration from Imam Azam, the defendant is absolved of the liability for wine, and the compensation is not converted into a monetary value. The same ruling applies if they become Muslim after taking possession; this is in Sharh al-Tahawi. If someone destroys a slaughtered goat where the slaughterer intentionally omitted saying 'Bismillah Allahu Akbar', he is not liable; as stated in Tatarkhaniyya.

**Chapter Four: Description of the Nature of Liability (Dhaman)**

Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) stated: If Zaid tears Amr’s fringed shawl (taylasan) (1) and then mends it, he shall not be liable in either state—whether mended or whole. If desired, Zaid may be punished for his misconduct and for causing distress, and the degree of distress shall be assessed along with such damage. (1) A fringed wrap/shawl. * [Footnote marker]: This refers to knowing it is a Prophetic Sunnah... (The rest of the note discusses the intention behind the act).

मालिक पर ज़मान (दायित्व) नहीं आता, यह मुहीत-ए-सरख़्सी में है। ज़ैद ने अम्र को मज़ारात (बटाई) पर ज़मीन दी और बीज और बैल दिए, और अम्र ने बैल किसी चरवाहे को दे दिए और वे नष्ट हो गए, तो अम्र या चरवाहा कोई ज़ामिन (उत्तरदायी) न होगा, यह खज़ानतुल मुफ़्तीन में है। ज़ैद अपनी खेती को सींचना चाहता था कि अम्र ने उसे ज़बरदस्ती रोका यहाँ तक कि खेती खराब हो गई, तो वह ज़ामिन न होगा, यह ख़ुलासा में है। अगर किसी बाड़े में गाय को देखकर किसी बाहरी व्यक्ति ने उसे बाहर निकाल दिया और वह नष्ट हो गई, तो वह ज़ामिन होगा। और अगर ज़ैद ने अम्र का बाड़ा छीनकर उसमें अपने जानवर बांध दिए, फिर उन्हें अम्र ने बाहर निकाल दिया, तो ज़ामिन होगा, यह फ़ुसूल-ए-इमादिया में है। ज़ैद अम्र का ऋणी था, सौ रुपये लेकर अम्र के पास ऋण चुकाने आया और अम्र को रुपये परखने के लिए दिए, इसी बीच अम्र के हाथ से वे सब रुपये नष्ट हो गए, तो ज़ैद का धन गया और ऋण यथावत बना रहा, क्योंकि परखने में अम्र ज़ैद की ओर से वक़ील है, इसलिए इस स्थिति में अम्र का हाथ ज़ैद के हाथ के समान है। और यदि ज़ैद ने ऋण की राशि अम्र को दे दी और कुछ नहीं कहा, फिर अम्र ने ज़ैद को परखने के लिए दिया और ज़ैद के हाथ में नष्ट हो गया, तो अम्र का धन गया क्योंकि वह अपना हक़ प्राप्त कर चुका था; फिर जो उसने परखने को दिया तो ज़ैद उसका वक़ील हो गया, इसके बाद यदि ज़ैद के पास से नष्ट हुआ तो मानो अम्र के पास से नष्ट हुआ, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। यदि किसी की दासी के साथ संभोग किया जिससे उसकी मृत्यु हो गई, तो वह उसकी कीमत का ज़ामिन होगा, यह तातारख़ानिया में गयासिया से उद्धृत है। ज़ैद की बिल्ली ने अम्र का कबूतर मार डाला, तो ज़ैद ज़ामिन न होगा, यह मुज़मरात में है। ज़ैद ने एक बिल्ली पकड़कर अम्र की मुर्गी या कबूतर की ओर फेंकी और उसने उसे दबाकर मार डाला, तो यदि ज़ैद के फेंकने पर उसने पकड़ा हो तो वह ज़ामिन होगा, और यदि फेंकने के बाद उसने पकड़कर मारा है तो ज़ामिन न होगा, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। ज़ैद ने अम्र का शेर या भेड़िया मार दिया तो ज़ामिन न होगा, और यदि बंदर मार दिया तो ज़ामिन होगा क्योंकि बंदर घर में सेवा करता है और उसका मूल्य होता है, अतः वह कुत्ते के समान हो गया, यह मुहीत-ए-सरख़्सी में है।

और यदि शराब या सूअर को नष्ट कर दिया, तो यदि वह किसी मुसलमान का था तो नष्ट करने वाले पर कोई ज़मान न होगा, चाहे नष्ट करने वाला मुसलमान हो या ज़िम्मी (गैर-मुस्लिम नागरिक)। और यदि ज़िम्मी का था तो नष्ट करने वाला ज़ामिन होगा चाहे वह मुसलमान हो या ज़िम्मी। अंतर केवल इतना है कि यदि ज़िम्मी होगा तो उसे शराब के बदले शराब देनी होगी, और यदि मुसलमान होगा तो

शराब की कीमत जुर्माने के रूप में देगा। सूअर को नष्ट करने पर दोनों को कीमत देनी होगी। यदि किसी मुसलमान या ज़िम्मी ने किसी ज़िम्मी का सूअर नष्ट किया, फिर वादी या प्रतिवादी या दोनों मुसलमान हो गए, तो प्रतिवादी उस दायित्व से मुक्त नहीं होगा जो उस पर लागू हो चुका था। और यदि एक ज़िम्मी ने दूसरे ज़िम्मी की शराब नष्ट की और शराब के बदले शराब का जुर्माना तय हुआ, फिर वादी या दोनों मुसलमान हो गए, तो सर्वसम्मति से प्रतिवादी के जिम्मे से जुर्माना समाप्त हो जाएगा और वह मुक्त हो जाएगा। और यदि पहले प्रतिवादी मुसलमान हुआ फिर वादी, तो यह इमाम अबू यूसुफ के अनुसार है और इमाम आज़म से भी एक रिवायत है कि प्रतिवादी शराब के ज़मान से मुक्त हो जाएगा और क्षतिपूर्ति कीमत में नहीं बदली जाएगी। इसी तरह यदि कब्ज़े के बाद मुसलमान हुआ तब भी यही हुक्म है, यह शरह तहावी में है। यदि ऐसी ज़बह की हुई बकरी जिसे जानबूझकर 'बिस्मिल्लाह अल्लाहू अकबर' कहे बिना ज़बह किया गया था, उसे नष्ट कर दिया तो ज़ामिन न होगा, जैसा कि तातारख़ानिया में है।

**अध्याय चार: ज़मान (दायित्व/क्षतिपूर्ति) के स्वरूप के वर्णन में**

इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) ने फरमाया कि ज़ैद ने अम्र की तलैसान (१) (एक प्रकार की चादर) फाड़कर फिर उसे रफू कर दिया, तो वह रफू की हुई और सही-सलामत दोनों तरह से ज़ामिन न होगा। यदि चाहें तो दुर्व्यवहार और कष्ट देने की सज़ा मिल सकती है, और कष्ट का अनुमान ऐसे नुकसान के साथ किया जाएगा। (१) किनारी वाली चादर। * अर्थात् जानते-बूझते कि यह सुन्नत-ए-नबवी ﷺ है, उसे ... (स्पष्ट अर्थ के लिए संदर्भ आवश्यक)।

---

مالک پر ضمان نہیں آتی ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ زید نے عمرو کو مزارعت یعنی بٹائی پر زمین دی اور بیج اور بیل دیئے اور عمرو نے بیل کسی چرواہے کو دیئے اور وہ ضائع ہو گئے تو عمرو یا چرواہا کوئی ضامن نہ ہوگا یہ خزانۃ المفتین میں ہے۔ زید اپنی کھیتی کو سینچنا چاہتا تھا کہ عمرو نے اس کو زبردستی روکا یہاں تک کہ زراعت خراب ہوگئی تو ضامن نہ ہوگا یہ خلاصہ میں ہے اگر مربط میں گائے کو دیکھ کر کسی شخص غیر نے باہر نکال دیا اور وہ تلف ہو گئی تو ضامن ہو گا اور اگر زید نے عمرو کا مربط غصب کر کے اس میں اپنے جانور باندھے پھر ان کو عمرو نے باہر نکال دیا تو ضامن ہوگا یہ فصول عمادیہ میں ہے زید عمرو کا مقروض تھا سو روپے لے کر عمرو کے پاس اس کا قرضہ ادا کرنے آیا اور عمرو کو روپے پرکھنے کے واسطے دیا کہ اتنے میں عمرو کے ہاتھ سے وہ سب روپے تلف ہو گیا تو زید کا مال گیا اور قرضہ بحالہ باقی رہا کیونکہ پرکھنے میں عمرو زید کی طرف سے وکیل ہے پس اس صورت میں عمرو کا ہاتھ مثل زید کے ہاتھ کے ہے اور اگر زید نے زرِ قرضہ عمرو کو دے دیا اور کچھ نہ کہا پھر عمرو نے زید کو پرکھنے کے واسطے دیا اور زید کے ہاتھ میں تلف ہو گیا تو عمرو کا مال گیا کیونکہ اپنا حق پا چکا تھا پھر جو اس نے پرکھنے کو دیا تو زید اس کا وکیل ہو گیا پھر اس کے بعد اگر زید کے پاس سے تلف ہوا تو گویا عمرو کے پاس سے تلف ہوا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر غیر کی باندی سے جماع کیا کہ جس سے وہ مرگئی تو اس کی قیمت کا ضامن ہوگا یہ تاتارخانیہ میں غیاثیہ سے منقول ہے۔ زید کی بلی نے عمرو کا کبوتر مار ڈالا تو زید ضامن نہ ہوگا یہ مضمرات میں ہے زید نے ایک بلی پکڑ کر عمرو کی مرغی یا کبوتر کی طرف پھینکی اور اس نے مرغی یا کبوتر کو داب کر مار ڈالا پس اگر زید کے پھینکنے پر اس نے پکڑا ہو تو ضامن ہوگا اور اگر بعد

پھینکنے کے اس نے پکڑ کر مارا ہے تو ضامن نہ ہوگا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے زید نے عمرو کا شیر یا بھیڑیا قتل کر دیا تو ضامن نہ ہوگا اور اگر بندر قتل کیا تو ضامن ہوگا کیونکہ بندر گھر میں خدمت کرتا ہے اس کی قیمت ہوتی ہے پس بمنزلہ سگ (کتا) کے ہو گیا یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اور اگر شراب یا سور تلف کر دی پس اگر کسی مسلمان کی تھی تو تلف کرنے والے پر کچھ ضمان نہ ہو گی خواہ تلف کرنے والا مسلمان ہو یا ذمی ہو اور اگر ذمی کی تھی تو تلف کرنے والا ضامن ہو گا خواہ مسلمان ہو یا ذمی ہو فرق صرف اس قدر ہے کہ اگر ذمی ہوگا تو اس پر مثلِ شراب کے شراب واجب ہوگی اور اگر مسلمان ہوگا تو شراب کی قیمت تاوان دے گا اور سور کے اتلاف میں دونوں کو قیمت دینی پڑے گی اور اگر مسلمان یا ذمی نے ذمی کی سور تلف کر دی پھر طالب یا مطلوب یا دونوں مسلمان ہو گئے تو مطلوب تلف کنندہ اُس ضمان سے جو اُس پر لازم ہو چکی تھی بری نہ ہوگا اور اگر ذمی نے دوسرے ذمی کی شراب تلف کردی اور حلف پر شراب کے مثل شراب تاوان واجب ہوئی پھر طالب یا دونوں مسلمان ہو گئے تو بالاجماع مطلوب کے ذمہ سے تاوان ساقط ہو کر بری ہو جائے گا اور اگر پہلے مطلوب مسلمان ہوا پھر اس کے بعد طالب مسلمان ہوا یہ تو امام ابو یوسف کے قول کے موافق اور یہی امام اعظم سے بھی ایک روایت ہے کہ مطلوب شراب کی ضمان سے بری ہو جائے گا اور مثل کی تحویل بجانبِ قیمت نہ ہو گی اسی طرح اگر بعد قبضہ کے مسلمان ہوا تو بھی یہی حکم ہے یہ شرح طحاوی میں ہے اگر ایسی مذبوحہ بکری جس کے ذبح نے عمداً بسم اللہ اللہ اکبر کہنا ترک کیا تھا تلف کردی تو ضامن نہ ہوگا کذا فی التاتار خانیہ۔

**باب چہارم: کیفیت ضمان کے بیان میں**

امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ زید نے عمرو کی طیلسان (۱) پھاڑ کر پھر اس کو رفو کیا تو میں رفو کی ہوئی اور صحیح سالم دونوں طرح ضامن نہ ہوگا اگر چاہیں بد کرداری وانذیت دینے کی سزا پائے اور اذیت کا اندازہ ایسے نقصان سمیت کیا جائے گا۔ (۱) چادر کنارہ دار۔ * یعنی جانتے بوجھتے کہ یہ سنتِ نبویہ ﷺ ہے اس کو دور خورا متناوہ سمجھتا ہو نہ کہ محض سستی وکاہلی کے باعث ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 116 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

After assessing the value of the shawl (Tailasan), I will compel Zayd to pay Amr the difference in value along with the shawl. If Zayd dug a well on his property and Amr filled it back with the excavated soil, it is stated: "I will estimate the cost of the dug well versus the un-dug ground and award the difference as compensation." If Amr used his own soil to fill it, I would force him to remove it. If Zayd dug in a wilderness and water had not yet emerged, filling it back incurs no liability (Zaman). However, if water had emerged, Zayd becomes entitled to it as a 'Shabr Atn' (a watering place for livestock), where camels and goats rest after drinking; thus, anyone who fills it would be liable based on the previous calculation. This is mentioned in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. Regarding the destruction of another's documents or account ledgers, the scholars have deliberated on what is due. The most correct opinion is that the offender is liable for the value of the written document; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If someone breaks another person's musical instruments such as a lute (Barbat), tambura, or tambourine (Daf), according to the two companions (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), there is no liability, but according to Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa), compensation is mandatory. In *Jami' al-Saghir*, it is mentioned that compensation is due according to Imam al-A'zam, unless it was broken by the order of the ruler of the time, in which case there is no liability. Imam Qazi Sadru'l Islam stated that the fatwa follows the opinion of the two companions because corruption has spread extensively among the people. Imam Fakhrul Islam mentioned in the commentary of *Jami' al-Saghir* that Imam al-A'zam's view is based on analogical reasoning (Qiyas), while the companions' view is based on juristic preference (Istihsan). Sadru'l Islam further stated that when compensation was established according to Imam al-A'zam for musical instruments, it is based on the fact that these items can be utilized for a beneficial/legal purpose^1. A similar disagreement exists regarding dice and chess, as it is possible to make scales (for weighing) out of these items. In *Quduri*, regarding the issue of tamburas and lutes, it is mentioned that one is liable for the value of the worked wood, and in *Muntaqa*, it is the value of the wooden board. This is in *Al-Muhit* and *Al-Dhakhira*.

Destruction of a drum used to amuse children carries liability without dispute; this is in *Tatarkhaniyya*. Imam Muhammad (RA) stated that if a Muslim destroys unbaked engraved bricks, and if the engravings consist of living beings' figures, one is liable for the value of non-engraved bricks. If the figures are headless, one is liable for the value of the engraved bricks because such images are not prohibited, much like

engravings of trees. If a floor covering featuring human figures is burnt, one is liable for the value of the decorated carpet because figures on a floor covering are not prohibited, as they are trodden upon. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. Hisham reports asking Imam Muhammad about someone burning another's door carved with figures of living beings; he replied that according to his view, the person is liable for the price of a plain door. If the owner of the door had already decapitated the figures, then the person would be liable for the value of the carved door, as it is then akin to carvings of trees. This is in *Al-Muhit*. If someone demolishes a house decorated with painted figures of living beings, they are liable for the value of the house and only the cost of the paint; the images themselves are not valued because keeping such images in a house is prohibited in Shariah; this is in *Siraj al-Wahaj*. If a silver vessel with complete figures of living beings is destroyed, the price of an undecorated silver vessel is due. If the figures are headless, the person is liable for the value of the decorated vessel; this is in *Khizanat al-Muftin*. If a singing slave-girl (Mughanniya) is killed^2, one is liable for the value of a non-singing slave-girl. However, if being a singer causes a decrease in her value, it is considered a defect, and this will be held against the usurper (Ghasib). This is in *Siraj al-Wahaj*. *Al-Bahr* states the intent is that the killer took possession of her before the act.

^1 Beneficial/Legal purpose: Meaning in a Shariah-compliant way, such as using the materials to construct boxes etc. ^2 Killed: In this context, it refers to seizing the slave-girl and then killing her to establish that possession/seizure took place.

तैलसान (एक विशेष प्रकार का दुपट्टा/वस्त्र) की कीमत का अनुमान लगवाकर, जितना दोनों स्थितियों में अंतर होगा, उतनी राशि ज़ैद से लेकर अम्र को तैलसान के साथ दिलवाऊंगा। ज़ैद ने अपनी संपत्ति में कुआँ खोदा और अम्र ने निकली हुई मिट्टी से उसे भर दिया, तो कहा गया कि खोदे हुए और बिना खोदे हुए कुएँ दोनों की लागत का अनुमान लगाकर दोनों के अंतर का मुआवजा (ज़मान) दिलवाऊंगा। और यदि उसने अपनी मिट्टी उसमें डाली हो, तो उसे मजबूर करूँगा कि उसे निकाल ले। और यदि उसने जंगल में कुआँ खोदा हो और अभी तक पानी न निकला हो, तो उसे भरने पर कोई मुआवजा अनिवार्य नहीं होगा। यदि पानी निकल आया हो, तो ज़ैद उसका पात्र हो जाएगा क्योंकि वह 'शब्र-ए-अतन' (पशुओं के पानी पीने का स्थान) है, अर्थात ऊंट और बकरियां उसके आसपास पानी पीकर विश्राम करेंगे; अतः उसे भरने वाला उसी हिसाब से मुआवजा देगा जिसका पहले उल्लेख हुआ है। यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में वर्णित है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे के दस्तावेज या हिसाब की फाइल फाड़ दी, तो विद्वानों ने इस पर चर्चा की है कि उस पर क्या अनिवार्य होगा। सबसे सही मत यह है कि वह लिखे हुए दस्तावेज़ के मूल्य का उत्तरदायी होगा, यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। यदि किसी ने दूसरे का बरबत (सरोद जैसा वाद्य), तंबूरा या डफ़ आदि मनोरंजन के उपकरण तोड़ दिए, तो 'साहबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार वह किसी मुआवाज़े का उत्तरदायी नहीं होगा, लेकिन इमाम-ए-आज़म (इमाम अबू हनीफ़ा रह.) के अनुसार मुआवज़ा अनिवार्य है। 'जामे सगीर' में उल्लेख है कि इमाम-ए-आज़म के अनुसार मुआवज़ा वाजिब होगा, लेकिन यदि समय के शासक के आदेश से तोड़ा गया हो, तो कोई मुआवज़ा नहीं है। इमाम क़ाज़ी सदरुल इस्लाम ने कहा कि फ़तवा 'साहबैन' के मत पर है क्योंकि लोगों में बिगाड़ बहुत फैल चुका है। इमाम फ़ख्रुल इस्लाम ने 'शर्ह जामे सगीर' में उल्लेख किया कि इमाम-ए-आज़म का मत तर्क (क़ियास) पर आधारित है और साहबैन का मत प्राथमिकता (इस्तहसान) पर है। सदरुल इस्लाम ने कहा कि जब इमाम-ए-आज़म के अनुसार मुआवज़ा अनिवार्य ठहरा, तो मनोरंजन के उपकरणों में इस आधार पर मुआवज़ा वाजिब होगा कि उन उपकरणों का उपयोग किसी वैध कार्य^१ में किया जा सकता है। पासा और शतरंज के खेल में भी इसी प्रकार का मतभेद है, क्योंकि संभव है कि इन चीजों से तराजू के पलड़े बनाए जा सकें। 'क़ुदूरी' में तंबूरा और रबात के मामले में उल्लेख है कि नक्काशीदार लकड़ी के मूल्य का उत्तरदायी होगा, और 'मुंतक़ा' में है कि लकड़ी के तख्ते के मूल्य का उत्तरदायी होगा। यह 'मुहीत' और 'ज़ख़ीरा' में है।

वह ढोल जो बच्चों को बहलाने के लिए बजाया जाता है, उसे नष्ट करने पर बिना किसी मतभेद के मुआवज़ा देना होगा, यह 'ततारख़ानिया' में है। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि यदि किसी मुसलमान ने नक्काशीदार कच्ची ईंटें नष्ट कर दीं, और यदि नक्काशी में सजीव प्राणियों के चित्र हों, तो वह बिना नक्काशी वाली ईंटों के मूल्य का उत्तरदायी होगा। और यदि चित्र बिना सिर के हों, तो वह नक्काशीदार ईंटों के मूल्य का उत्तरदायी होगा, क्योंकि ऐसे चित्र पेड़ों के चित्रों की तरह वर्जित नहीं हैं। यदि ऐसा फर्श जिसमें इंसानी चित्र बने हों, जला दिया गया, तो वह नक्काशीदार फर्श का उत्तरदायी होगा, क्योंकि फर्श पर चित्र वर्जित नहीं हैं क्योंकि फर्श पैरों तले रौंदा जाता है। यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। हिशाम कहते हैं कि मैंने इमाम मुहम्मद से पूछा कि यदि किसी ने दूसरे का दरवाज़ा जला दिया जिस पर सजीव प्राणियों के चित्र खुदे हुए थे, तो उन्होंने कहा कि मेरे मत के अनुसार वह बिना नक्काशी वाले दरवाज़े के मूल्य का उत्तरदायी होगा। और यदि दरवाज़े के मालिक ने चित्रों के सिर काट दिए हों, तो वह पेड़ों के चित्रों वाले दरवाज़े की तरह नक्काशीदार दरवाज़े के मूल्य का उत्तरदायी होगा। यह 'मुहीत' में है। यदि किसी ने ऐसा घर गिरा दिया जिसमें रंगों से सजीव प्राणियों के चित्र बने थे, तो वह घर के मूल्य और केवल रंग की लागत का उत्तरदायी होगा, चित्रों को महत्त्व नहीं दिया जाएगा क्योंकि घर में ऐसे चित्र रखना शरिया में वर्जित है, यह 'सिराज अल-वहाज' में है। यदि चांदी का ऐसा बर्तन नष्ट कर दिया गया जिस पर सजीव प्राणियों के पूर्ण चित्र हों, तो बिना चित्र वाले बर्तन का मूल्य अनिवार्य होगा। यदि चित्र बिना सिर वाले हों, तो चित्रित बर्तन के मूल्य का उत्तरदायी होगा, यह 'खज़ाना अल-मुफ्तीन' में है। यदि किसी ने गाने वाली दासी (मुग़न्निया) की हत्या^२ की, तो वह साधारण दासी के मूल्य का उत्तरदायी होगा। लेकिन यदि गाने वाली होने के कारण मूल्य में कमी आती है, तो इसे दोष (ऐब) माना जाएगा और अपहरणकर्ता (ग़ासिब) के विरुद्ध इसे ध्यान में रखा जाएगा। यह 'सिराज अल-वहाज' में है। 'बहर' में कहा गया है कि इसका अर्थ अपराधी द्वारा उस पर कब्जा करने के बाद हत्या करना है।

^१ सलाह: अर्थात शरिया के अनुसार वैध तरीका, जैसे उन चीजों का उपयोग संदूक आदि बनाने में करना। ^२ दासी की हत्या से यहाँ तात्पर्य है कि उस पर कब्जा करने के बाद उसकी हत्या की गई ताकि कब्जा प्रमाणित हो सके।

---

طیلسان کی قیمت اندازہ کرا کے جس قدر دونوں میں فرق ہوا اُس قدر زر زید سے عمرو کو مع طیلسان دلواؤں گا۔ زید نے اپنی ملک میں کنواں کھودا اور عمرو نے نکلی ہوئی مٹی سے اُس کو پاٹ دیا تو فرمایا کہ میں کھودے ہوئے اور بے کھودے ہوئے دونوں کا خرچہ اندازہ لگا کر دونوں کا فرق دلواؤں گا اور اگر اُس نے اپنی مٹی اُس میں ڈالی ہو تو اُس کو مجبور کروں گا کہ نکال لے اور اگر اُس نے جنگل میں کھودا ہو پس اگر ہنوز پانی نہ نکلا ہو تو پاٹ دینے سے کچھ ضمان لازم نہ ہو گی اور پانی نکل آیا ہو تو زید اُس کا مستحق ہو جائے گا کیونکہ وہ شبر عطن ہے یعنی اُس سے پانی پلا کر اونٹ بکری وغیرہ اُس کے گرد آرام پائیں گے پس اُس کا پاٹ دینے والا اُسی حساب سے اندازہ لگا کر ضامن ہوگا جو پہلے مذکور ہوا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے کسی شخص نے دوسرے کی دستاویز یا دفتر حساب پھاڑ ڈالا تو مشائخ نے گفتگو کی ہے کہ اُس پر کیا واجب ہوگا اور اصح قول یہ ہے کہ لکھی ہوئی دستاویز کی قیمت کا ضامن ہوگا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر کسی نے دوسرے کا بربط یا طنبورہ یا دف وغیرہ آلات لہو کو توڑ ڈالا تو صاحبین کے نزدیک کچھ ضامن نہ ہوگا مگر امام اعظمؒ کے نزدیک ضمان واجب ہوتی ہے اور جامع صغیر میں مذکور ہے کہ امام اعظمؒ کے نزدیک ضمان واجب ہو گی لیکن اگر امام وقت کے حکم سے توڑا ہو تو کچھ ضمان نہیں ہے اور امام قاضی صدر الاسلام نے فرمایا کہ فتویٰ صاحبین کے قول پر ہے کیونکہ لوگوں میں کثرت سے فساد پھیلا ہوا ہے اور امام فخر الاسلام شرح جامع صغیر میں ذکر کیا کہ امام اعظمؒ کا قول یہ قیاس ہے اور صاحبین کا قول استحسان ہے اور امام صدر الاسلام نے فرمایا کہ جب امام اعظمؒ کے نزدیک ضمان واجب ٹھہری تو آلات لہو میں اسی وجہ کے اعتبار سے ضمان واجب ہوگی کہ جس وجہ پر ان آلات سے بطور صلاح۱۸ انتفاع ممکن ہو اور ایسا ہی

اختلاف نرد و شطرنج میں ہے کیونکہ ممکن ہے کہ ان چیزوں سے ترازو کا پائنٹ بنایا جائے اور قدوری میں مسئلہ طنبور و ربط میں مذکور ہے کہ گدھی ہوئی لکڑی کی قیمت کا ضامن ہو گا اور منتقٰی میں ہے کہ لکڑی کی لوح کے اعتبار سے قیمت کا ضامن ہو گا یہ محیط وذخیرہ میں ہے۔

طبل جو لڑکوں کے بہلانے کو بجایا جاتا ہے اس کے تلف کرنے سے بلاخلاف ضامن ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ ایک مسلمان نے کچی اینٹیں نقش تلف کر ڈالیں پس اگر نقش میں جاندار کی صورتیں بنی ہوں تو غیر منقوش اینٹوں کا ضامن ہوگا اور اگر سر کٹی ہوئی تصویریں ہوں تو نقشی اینٹوں کا ضامن ہو گا کیونکہ ایسی تصویریں بمنزلہ درختوں کے نقش کے حرام نہیں ہیں اور اگر ایسا فرش جس میں آدمیوں کی صورتیں بنی ہوئی تھیں جلا دیا تو نقشی بساط کا ضامن ہو گا اس لیے کہ فرش میں تمثال حرام نہیں ہے اس لیے کہ فرش روندا جاتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے ہشام کہتے ہیں کہ میں نے امام محمدؒ سے دریافت کیا کہ اگر کسی نے دوسرے کا دروازہ جس پر جاندار کی تصویریں کھدی ہوئی تھیں جلا دیا تو فرمایا کہ میرے قول کے موافق بے نقش دروازہ کی قیمت کا ضامن ہو گا اور اگر دروازہ کے مالک نے تصویروں کے سرکاٹ ڈالے ہوں تو بمنزلہ تصویر درخت کے نقشی دروازے کی قیمت کا ضامن ہو گا یہ محیط میں ہے اگر کسی نے ایسا گھر جس میں رنگ سے جاندار کی تصویریں بنی ہوئی تھیں ڈھا دیا تو گھر کی قیمت اور فقط رنگ کی قیمت کا ضامن ہو گا تصویر کا اعتبار نہ کیا جائے گا اس واسطے کہ گھر میں ایسی تصویروں کا رکھنا شرع میں حرام ہے یہ سراج الوہاج میں ہے اور اگر چاندی کا ایسا برتن جس پر جاندار کی پوری تصویریں ہوں تلف کر دیا تو اُس پر بے تصویر برتن کی قیمت واجب ہو گی اور اگر تصویریں جاندار کی بے سر ہوں تو با تصویر برتن کی قیمت کا ضامن ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ اگر مغنیہ (گانے والی باندی) کو قتل۲۸ کیا تو غیر مغنیہ باندی کی قیمت کا ضامن ہو گا لیکن اگر باعث مغنیہ ہونے کے قیمت میں نقصان آتا ہو تو یہ عیب قرار دیا جائے گا

اور حق غاصب میں اس کا اعتبار کیا جائے گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔ قال البحر جملہ مراد تقبیل الجانی مقتولہ قبضھا

۱۸ صلاح یعنی شرعی طریقہ سے وہ ان چیزوں کو صندوق وغیرہ بنانے کے کام میں لاسکے ۲۸ قال یعنی باندی قتل کرنے سے یہ مراد ہے کہ اس پر قبضہ کر کے تب قتل کیا گیا تا کہ قبضہ ثابت ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 117 Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

...If a slave girl has a pleasant voice but is not a professional singer, then in determining her indemnity (compensation), the pleasantness of her voice shall be taken into account. If a pigeon or a turtledove coos with a pleasant voice, its value shall be estimated accordingly. However, if a pigeon is known to return from a great distance (homing pigeon), this shall not be considered in determining its price. If there is a horse that allows a rider to excel in a race, its price shall be set based on that excellence. If a pigeon flies well, its price shall not be increased on that account, and the same rule applies to anything that performs naturally without training; this is stated in *Al-Muhit*. If a fighting ram or a fighting rooster is destroyed, its value shall not be calculated based on that fighting quality, because this quality is forbidden (haram) in both, and there is no value against it; this is mentioned in *Al-Muhit al-Surkhi*.

If a walnut tree bears small, fresh walnuts and someone destroys those fruits, he shall be liable for the damage to the tree. This is because although these fruits currently have no market value and are not considered property (mal) in themselves yet, their loss causes a decrease in the tree's value. Therefore, it will be assessed what the value of the tree was with those fruits and what its value is without them. The difference between the two prices shall be the amount of liability. Similarly, if buds appear on a tree in spring and someone causes such damage that the buds fall off, the same ruling applies; this is found in *Al-Zahiriyya*.

If a branch of a tree is broken and the value of the branch is small, the owner has the option to either claim compensation for the damage to the entire tree and give the broken branch to the one who broke it, or take compensation for the tree's damage without the branch and keep the broken branch himself; this is stated in *Al-Multaqit*. If Zaid cuts down the grapevines in Amr's orchard, he shall be liable for the value because he destroyed a *ghayr-mithli* (non-fungible) item. The method to determine the price is to estimate the value of the vineyard with the standing trees and then estimate the value of the same vineyard with the trees cut down (i.e., without standing trees). The difference between these two estimates shall be the value of the trees. After this, the owner has the option to either give the cut trees to Zaid and take the full estimated price from him, or keep the cut trees himself and deduct their value from the total price, taking the remainder.

If a person cuts down a tree in another person's house without permission, the owner has the choice to give the cut tree to the person who cut it and take the price of a standing tree as indemnity. The method to ascertain its price is to estimate the value of the house with the standing tree and then estimate the value of the house without the tree. The difference between the two values shall be established as the price of the standing tree. Alternatively, the owner may keep the tree and take compensation from that person equal to the loss incurred—meaning the loss caused by cutting down the standing tree. The way to find this loss is that once the price of the standing tree is determined by the aforementioned method, determine the value of the cut wood; the difference between the two is the amount of loss. If the value of the standing tree and the cut tree is equal, the person shall not be liable for any compensation; this is in *Al-Kubra*.

If someone cuts down and destroys a dry tree from another's land, he shall be liable for the price of firewood (*hatab*); this is in *Fusul al-Imadiyya*. If a person comes to an oven (tandoor) that was heated through usurpation (*ghasb*) and pours water into it, the value shall be assessed based on the difference between the heated (*masjoor*) and unheated state of the oven, and he shall be liable for that difference. It is mentioned in *Waqi'at al-Natiqi* that if a person opens the mouth of another's oven until it becomes cold, he is liable for the cost of the wood used to heat the oven to that degree. It is also possible to say that for a heated oven that can be used without reheating, one should see how much it would cost to rent it, thus...

अगर दासी मधुर स्वर वाली हो लेकिन पेशेवर गायिका न हो, तो उसकी क्षतिपूर्ति की कीमत में मधुर स्वर का विचार किया जाएगा। और यदि कबूतर या कुमरी मधुर स्वर में बोलती हो, तो उसकी कीमत उसके अनुसार आंकी जाएगी। यदि कबूतर दूर से वापस आता हो, तो कीमत लगाने में इसका विचार नहीं किया जाएगा। यदि ऐसा घोड़ा हो जिस पर घुड़दौड़ में व्यक्ति बढ़त हासिल करता हो, तो उस बढ़त के आधार पर उसकी कीमत लगाई जाएगी। यदि कबूतर अच्छी उड़ान भरता हो, तो उसकी कीमत उस आधार पर नहीं लगाई जाएगी। इसी प्रकार जो वस्तु बिना प्रशिक्षण के हो, उसका यही नियम है; यह 'मुहीत' में है। यदि लड़ाई वाला मेंढ़ा या लड़ाई वाला मुर्गा मार दिया गया, तो उस विशेषता के साथ उसकी कीमत नहीं लगाई जाएगी क्योंकि यह गुण दोनों में हराम (वर्जित) है और इसके बदले में कोई कीमत नहीं है; यह 'मुहीत सुख़्सी' में है। यदि अखरोट के पेड़ में छोटे-छोटे ताज़ा अखरोट लगे हों और किसी व्यक्ति ने उन फलों को नष्ट कर दिया, तो वह पेड़ के नुकसान का उत्तरदायी होगा, क्योंकि यद्यपि ये फल अभी कोई कीमत नहीं रखते और न ही संपत्ति हैं, फिर भी पेड़ को नुकसान पहुँचता है। अतः यह देखा जाएगा कि उन फलों के साथ पेड़ की क्या कीमत थी और उनके बिना क्या कीमत है। दोनों कीमतों के बीच जो अंतर होगा, वह उतनी क्षतिपूर्ति का उत्तरदायी होगा। इसी प्रकार यदि वसंत ऋतु में पेड़ पर कलियाँ आईं और किसी ने उन्हें इस तरह नुकसान पहुँचाया कि कलियाँ झड़ गईं, तो उसका भी यही नियम है; यह 'ज़हीरिया' में है।

यदि किसी पेड़ की टहनी तोड़ दी गई और टहनी की कीमत बहुत कम है, तो मालिक को अधिकार होगा कि वह पूरे पेड़ के नुकसान की क्षतिपूर्ति ले ले और टूटी हुई टहनी तोड़ने वाले को दे दे, या टहनी के बिना पेड़ के नुकसान की क्षतिपूर्ति लेकर टूटी हुई टहनी स्वयं रख ले; यह 'मुल्तक़ित' में है। ज़ैद ने अम्र के अंगूर के बाग के पेड़ काट डाले, तो वह कीमत का उत्तरदायी होगा क्योंकि उसने 'ग़ैर-मिस्ली' (ऐसी चीज़ जिसकी उपमा न हो) को नष्ट किया है। कीमत जानने का तरीका यह है कि अंगूर के बाग का अनुमान खड़े पेड़ों के साथ लगाया जाए और उसी बाग का अनुमान कटे हुए पेड़ों के साथ (यानी पेड़ों के बिना) लगाया जाए। दोनों कीमतों में जो अंतर होगा, वही पेड़ों की कीमत होगी। इसके बाद मालिक को अधिकार होगा कि वह कटे हुए पेड़ ज़ैद को देकर उससे पूरी कीमत ले ले, या कटे हुए पेड़ स्वयं रख ले और कुल कीमत में से कटे हुए पेड़ों की कीमत घटाकर बाकी राशि ले ले। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे के घर का पेड़ बिना अनुमति के काट दिया, तो मालिक को अधिकार होगा कि वह काटने वाले को वह पेड़ देकर खड़े पेड़ की कीमत के बराबर जुर्माना ले। इसकी कीमत जानने

का तरीका यह है कि घर की कीमत खड़े पेड़ के साथ आंकी जाए और घर की कीमत बिना पेड़ के आंकी जाए। दोनों कीमतों का अंतर ही खड़े पेड़ की कीमत माना जाएगा। या फिर वह पेड़ अपने पास रखे और उस व्यक्ति से पेड़ के नुकसान के बराबर यानी खड़े पेड़ को काटने से हुए नुकसान की कीमत ले ले। इस नुकसान का पता लगाने का तरीका यह है कि जब पूर्वोक्त विधि से खड़े पेड़ की कीमत पता चल जाए, तो कटे हुए पेड़ की कीमत ज्ञात करें; दोनों के बीच का अंतर ही नुकसान की राशि है। यदि खड़े पेड़ और कटे हुए पेड़ की कीमत बराबर हो, तो वह व्यक्ति किसी क्षतिपूर्ति का उत्तरदायी नहीं होगा; यह 'कुबरा' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन से सूखा पेड़ काटकर नष्ट कर दिया, तो उस पर 'हत़ब' (ईंधन की लकड़ी) की कीमत अनिवार्य होगी; यह 'फ़ुसूल इमादिया' में है। एक व्यक्ति एक तंदूर पर आया जिसे ग़सब (अवैध अधिकार) से गर्म किया गया था, और उसने उसमें पानी डाल दिया, तो तंदूर के गर्म (सज्जूरी) और ठंडे होने के अंतर के आधार पर कीमत आंकी जाएगी और वह उतने अंतर का उत्तरदायी होगा। 'वाक़ियात नातिक़ी' में है कि यदि किसी ने दूसरे के तंदूर का मुँह खोल दिया जिससे तंदूर ठंडा हो गया, तो उस पर उतनी लकड़ी की कीमत अनिवार्य होगी जितनी से तंदूर गर्म किया गया था। और यह भी संभव है कि यह कहा जाए कि एक गर्म तंदूर जिससे दोबारा गर्म किए बिना लाभ उठाया जा सके, उसे कितने किराए पर लिया जाता, अतः...

---

ثمہ قتلها معا تستحق الغصب فتمل اور اگر باندی خوش آواز ہو مگر مغنیہ نہ ہو تو اُس کے تاوان قیمت میں خوش آواز ی معتبر ہو گی اور اگر کبوتر یا قمری خوش آواز ی سے بولتی ہو تو اُس کی قیمت اُس کے اعتبار سے اندازہ کی جائے گی اور اگر کبوتر دور سے چلا آتا ہو تو قیمت لگانے میں اُس کا اعتبار نہ کیا جائے گا اور اگر ایسا گھوڑا جس پر گھوڑ دوڑ آدمی سبقت لے جاتا ہو تو سبقت پر اُس کی قیمت لگائی جائے گی اور اگر کبوتر خوب اُڑتا ہو تو از ان پر اُس کی قیمت نہیں لگائی جائے گی اور اسی طرح جو چیز بلا تعلیم ہو اُس کا یہی حکم ہے یہ محیط میں ہے اور اگر لڑائی کا مینڈھا یا لڑائی کا مرغ تلف کر دیا تو اُس صفت کے ساتھ اُس کی قیمت نہیں لگائی جائے گی اس واسطے کہ یہ صفت دونوں میں حرام ہے اُس کے مقابلہ میں کچھ قیمت نہیں ہے یہ محیط سرخی میں ہے اگر اخروٹ کے درخت میں چھوٹے چھوٹے تر و تازہ اخروٹ پھلے اور کسی شخص نے اُن پھلوں کو تلف کر دیا تو درخت کے نقصان کا ضامن ہو گا اس واسطے کہ یہ پھل اگرچہ کچھ قیمت نہیں رکھتے اور نہ مال ہیں حتیٰ کہ درخت میں نقصان بیٹھ جاتا ہے پس لحاظ کیا جائے گا کہ ان پھلوں سمیت اس درخت کی کیا قیمت اٹھتی تھی اور بدون ان کے کیا قیمت اٹھتی ہے پس جس قدر دونوں قیمتوں میں فرق ہو اس قدر ضامن ہو گا اسی طرح اگر موسم بہار میں درخت پر کلیاں آئیں اور کسی شخص نے اُس میں ایسا نقصان کر دیا کہ اُس کی کلیاں جھڑ گئیں تو اُس کا بھی یہی حکم ہے یہ ظہیر یہ میں ہے اور اگر کسی درخت کی شاخ توڑ ڈالی اور شاخ کی قیمت قلیل ہے تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے پورے درخت کے نقصان کی ضمان لے لے اور وہ شاخ شکستہ توڑنے والے کو دے دے یا بدون شاخ کے درخت کے نقصان کی ضمان لے کر شاخ شکستہ خود لے لے یہ ملتقط میں ہے زید نے عمرو کے باغ انگور کے درخت کاٹ ڈالے تو قیمت کا ضامن ہو

گا اسی لیے کہ اُس نے غیر مثلی تلف کیا ہے پھر قیمت پہچاننے کا یہ طریقہ ہے کہ باغ انگور مع جتے ہوئے درختوں کے اندازہ کی جائے اور وہی باغ انگور درخت کٹا ہوا یعنی بدون درخت کے اندازہ کی جائے پس جس قدر دونوں قیمتوں میں فرق ہو وہی درختوں کی قیمت ہو گی پھر اس کے بعد مالک کو اختیار ہو گا چاہے کٹے ہوئے درخت زید کو دے کر اُس سے یہ قیمت لے لے یا کٹے ہوئے درخت خود لے لے پس قیمت میں سے ان درختوں کی قیمت منہا کر کے باقی قیمت لے لے گا۔ ایک شخص نے دوسرے کے گھر کا درخت بدون اُس کی اجازت کے قطع کر دیا تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے قطع کرنے والے کو وہ درخت دے کر اُس سے لگے ہوئے درخت کی قیمت تاوان لے اور اُس کی قیمت پہچاننے کا یہ طریقہ ہے کہ گھر کی مع لگے ہوئے درخت کی قیمت اندازہ کی جائے اور گھر کی بدون درخت کے قیمت اندازہ کی جائے پس جس قدر دونوں قیمتوں میں فرق ہو وہی درخت قائم کی قیمت قرار پاتی ہے یا درخت اپنے پاس رکھے اور اُس شخص سے بقدر نقصان درخت کے یعنی درخت قائم کو قطع کر دیا ہے اس قدر نقصان کی قیمت لے لے اس واسطے کہ اُس نے قیام درخت کو ضائع کر کے نقصان کیا ہے اور اس نقصان کے دریافت کرنے کا یہ طریقہ ہے کہ جب تھو کو طریقہ مذکورہ سابقہ سے درخت قائم کی قیمت دریافت ہو گئی تو پھر درخت مقطوعہ کی قیمت دریافت کر کے جس قدر دونوں میں فرق ہو وہی مقدار نقصان قیام ہے اور اگر غیر مقطوعہ یعنی قائمہ اور مقطوعہ کی قیمت برابر ہو تو وہ شخص کچھ ضامن نہ ہو گا یہ کبریٰ میں ہے۔

اگر کسی شخص نے دوسرے کی زمین سے خشک درخت کاٹ کر تلف کر دیا تو اُس پر حطب کی قیمت واجب ہو گی یہ فصول عمادیہ میں ہے ایک شخص ایک تنور پر آیا اور وہ تنور غصب سے گرم کیا گیا تھا پس اُس میں پانی ڈال دیا تو اُس تنور کے مسجور (روشن کردہ) و غیر مسجور دونوں اعتبار سے قیمت دریافت کر کے جس قدر دونوں میں فرق ہو اُس قدر ضامن ہو گا اور

واقعات ناطقی میں ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کے تنور کا منہ کھول دیا یہاں تک کہ تنور سرد ہو گیا تو اُس پر اس قدر لکڑیوں کی قیمت واجب ہو گی جس قدر سے تنور گرم کیا گیا تھا اور ممکن ہے کہ یوں کہا جائے کہ تنور مسجور ایسا کہ بدون دوبارہ گرم کرنے کے اُس سے انتفاع حاصل کیا جائے کتنے کو اجارہ لیا جائے گا پس

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 118 Kitab al-Ghasab (Book of Usurpation)**

He will be liable for that much, or it will be seen what the difference is between the rent of it being heated and not being heated. Thus, whatever the difference between the two is, that will be the amount of liability (compensation), as stated in 'al-Muhit'. If a person opens the mouth of another person's oven (tandoor) until it becomes cold, then he will be liable for the cost of the amount of wood with which the oven was heated. And Imam Fakhruddin Qazi Khan said that the correct view is that for obtaining benefit from a heated oven, before it is heated again, he will be liable for the amount it could be rented for, or looking at its rent in the state of being heated and in the state of not being heated, he will be liable for whatever the difference between the two rents is, as in 'al-Lammam'. If a person unstitched another's shirt, he will be liable according to the difference in value between the stitched and unstitched shirt. This is in 'Fatawa Qazi Khan'. If a well is private, meaning it belongs to a specific person or community, and filth is thrown into it, he will not be liable for the cost of emptying the entire well, but only for the extent of the damage. And if it is a public well, an order will be given to empty it completely, as in 'al-Quniya'. 'Al-Muharr' says that 'emptying the entire well' means that an order of purity should be given according to the ruling (fatwa) of the jurist. And Allah knows best.

**Chapter Five: In explanation of mixing the property of two persons or another's property with one's own, or properties becoming mixed without intentional mixing.**

If the usurper (ghasib) mixes the usurped property with his own property or the property of another, then it is of two types: mixing by commingling (khalat-e-mamazajat - where substances merge) and mixing by proximity (khalat-e-mujawarat - where substances are together but distinct). Then mixing by commingling is of two types: one where separation is not possible after division, and second where separation is possible in this manner. If it is such a mixture that separation is not possible through division, such as almond oil mixed with sesame oil, or wheat flour mixed with barley flour, then the one who mixed it will be liable, and by consensus, the original owner's right over the existing mixture will be terminated. And if separation is possible through division, such as mixing one kind with the same kind, for example, wheat with wheat or milk with milk, then according to Imam al-Azam (Abu Hanifa), the same ruling applies. But according to the 'Sahibayn' (Imams Abu Yusuf and Muhammad), the owner will have the option, whether to take compensation from the usurper for an amount equal to his right or to become a

partner in that mixture, then they shall divide it among themselves according to their rights. Mixing by proximity is also of two types: one where it is possible to separate without hardship and effort, and second where it is possible to separate with hardship and effort. So if it is a case where it is possible to separate without hardship and effort, like mixing dirhams and dinars, or mixing white dirhams with black ones, the person who mixed them will not be liable, and they will be separated and given to the owner. And if differentiation is possible through hardship and effort, as in the mixing of wheat and barley, then it is mentioned in the Book that he will take compensation from the usurper, and there is no explicit mention of the owner having an option, but the scholars (mashayikh) have differed. Some said that the owner will have the option, whether to enter into partnership, as is the saying of the 'Sahibayn'. And according to Imam al-Azam, he will only take compensation and will not become a partner, because wheat is not free from grains of barley, so it is as if he has mixed one genus with another. Therefore, according to the Imam, the owner's right will be terminated and the usurper will become its owner. And some scholars said that by consensus, according to all, the owner will have the option. Some said that the correct view is that by consensus, according to all, he will not be a partner in that mixture. And if a usurper mixes the wheat of one person, Zaid, and the barley of another, Amr, and disappears, then if Zaid and Amr reach a settlement that one of them will take this mixture and give the other a compensation equal to the measure of that kind or its price, it is permissible. This is because the existing mixture is shared between the two, and from a shared mixture if one partner...

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 118 किताब अल-ग़सब (हथियाने या छीनी हुई संपत्ति की किताब)**

उतने ही का ज़ामिन (ज़िम्मेदार) होगा या देखा जाएगा कि उसके किराए पर गरम होने की और बिना गरम होने की हालत में कितना अंतर है। तो जो भी अंतर होगा वह ज़मानत (हर्जाने) की राशि होगी, जैसा कि 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे के तंदूर का मुँह खोल दिया यहाँ तक कि वह ठंडा हो गया, तो उस पर उतनी लकड़ियों की कीमत वाजिब होगी जिनसे तंदूर गरम किया गया था। और इमाम फ़ख़रुद्दीन काज़ी खान ने फरमाया कि सही यह है कि गरम तंदूर से लाभ प्राप्त करने के लिए, उसे दोबारा गरम करने से पहले, जितने में किराए पर लिया जा सकता था, उतनी राशि का वह ज़ामिन होगा, या किराए पर गरम होने की और बिना गरम होने की हालत को देखकर जो भी अंतर हो, उतनी राशि का ज़ामिन होगा, जैसा कि 'लम्म' में है। अगर किसी व्यक्ति ने दूसरे की कमीज़ उधेड़ दी तो उस कमीज़ की सिली हुई और बिना सिली हुई स्थिति के आधार पर कीमत लगाकर अंतर के बराबर ज़ामिन होगा। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। अगर कोई कुआँ निजी हो, यानी किसी विशेष व्यक्ति या समुदाय का हो, और उसमें गंदगी डाल दी जाए, तो कुआँ पूरी तरह साफ़ करवाने का ज़ामिन नहीं होगा, बल्कि केवल नुकसान की सीमा तक ज़ामिन होगा। और अगर वह सार्वजनिक कुआँ हो, तो आदेश दिया जाएगा कि इसे पूरी तरह साफ़ किया जाए, जैसा कि 'कुनिया' में है। 'अल-मुहर' में कहा गया है कि 'कुआँ पूरी तरह साफ़ करना' से तात्पर्य यह है कि मुफ्ती के फैसले के अनुसार उसकी पवित्रता का आदेश दिया जाए। वल्लाहू आलम (अल्लाह बेहतर जानता है)।

## पाँचवाँ अध्याय: दो व्यक्तियों के माल को या दूसरे के माल को अपने माल के साथ मिलाने या बिना मिलाए मिश्रित हो जाने के वर्णन में।

हथियाने वाले (ग़ासिब) ने अगर छीने हुए माल को अपने माल या किसी और के माल के साथ मिला दिया, तो इसकी दो किस्में हैं: 'ख़ल्त-ए-मुमाज़जत' (ऐसा मेल जिसमें चीजें घुल-मिल जाएं) और 'ख़ल्त-ए-मुजावरत' (चीजें साथ हों पर अलग पहचानी जा सकें)। फिर 'ख़ल्त-ए-मुमाज़जत' की दो किस्में हैं: एक यह कि विभाजन के बाद दोनों में पहचान संभव न हो, और दूसरी यह कि इस प्रकार पहचान संभव हो। यदि ऐसा मिश्रण हो कि विभाजन के बाद पहचान संभव न हो, जैसे बादाम के तेल को तिल के तेल के साथ मिला दिया गया, या गेहूँ के आटे को जौ के आटे में मिला दिया गया, तो मिलाने वाला ज़ामिन होगा और सर्वसम्मति से मौजूद मिश्रण से मालिक का अधिकार समाप्त हो जाएगा। और अगर विभाजन से पहचान संभव हो, जैसे एक ही श्रेणी को उसी श्रेणी में मिलाया गया, उदाहरण के लिए गेहूँ

को गेहूँ में या दूध को दूध में मिलाया गया, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफा) के अनुसार यही आदेश है। लेकिन 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मोहम्मद) के अनुसार मालिक को अधिकार होगा कि वह चाहे तो ग़ासिब से अपने हक के बराबर हर्जाना ले या उस मिश्रण में भागीदार बन जाए, और फिर अपने हक के अनुसार आपस में बाँट लें। 'ख़ल्त-ए-मुजावरत' की भी दो किस्में हैं: एक यह कि बिना किसी परेशानी और मेहनत के अलग करना संभव हो, और दूसरी यह कि मेहनत और कठिनाई के साथ अलग करना संभव हो। यदि ऐसी स्थिति हो कि बिना परेशानी और मेहनत के अलग करना संभव हो, जैसे दिरहम और दीनार को मिला दिया गया, या सफ़ेद दिरहम को काले के साथ मिला दिया गया, तो मिलाने वाला ज़ामिन नहीं होगा और मालिक को अलग करके दिया जाएगा। और अगर कठिनाई और मेहनत से पहचान संभव हो, जैसे गेहूँ और जौ के मिश्रण में, तो किताब में उल्लेख है कि वह ग़ासिब से हर्जाना लेगा, और मालिक को विकल्प मिलने का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, लेकिन विद्वानों (मशायख) में मतभेद है। कुछ ने कहा है कि मालिक को विकल्प होगा, चाहे वह भागीदारी करे जैसा कि 'साहिबैन' का कथन है। इमाम-ए-आज़म के अनुसार वह केवल हर्जाना ही लेगा, भागीदार नहीं बनेगा, क्योंकि गेहूँ जौ के दानों से खाली नहीं होते, इसलिए जैसे उसने एक श्रेणी को दूसरी में मिला दिया है। अतः इमाम के अनुसार मालिक का अधिकार समाप्त हो जाएगा और ग़ासिब उसका मालिक बन जाएगा। कुछ विद्वानों ने कहा कि सर्वसम्मति से सबके अनुसार मालिक को विकल्प होगा। कुछ ने कहा कि सही यह है कि सर्वसम्मति से सबके अनुसार वह उस मिश्रण में भागीदार नहीं होगा। और अगर ग़ासिब ने एक व्यक्ति ज़ैद के गेहूँ और अम्र के जौ को आपस में मिला दिया और वह गायब हो गया, तो यदि ज़ैद और अम्र ने आपस में समझौता कर लिया कि इस मिश्रण को हम दोनों में से एक व्यक्ति ले ले और दूसरे को उसकी नाप के बराबर की वस्तु या उसकी कीमत का हर्जाना दे दे, तो यह जायज़ है, क्योंकि मौजूद मिश्रण दोनों में साझा है, और साझे मिश्रण में से अगर एक साझीदार अपना...

اسی قدر کا ضامن ہو گا یا دیکھا جائے گا کہ اُس کی اُجرت مسجور ہونے کی اور غیر مسجور ہونے کی حالت میں کس کس قدر ہے پس جس قدر دونوں میں فرق ہو وہ مقدار ضمان ہو گی کذا فی المحیط۔ ایک شخص نے دوسرے کے تنور کا منہ کھول دیا یہاں تک کہ وہ سرد ہو گیا تو اس پر اس قدر لکڑیوں کی جس سے تنور گرم کیا گیا قیمت واجب ہو گی اور امام فخر الدین قاضی خان نے فرمایا کہ صحیح یہ ہے کہ تنور مسجور انتفاع حاصل کرنے کے واسطے قبل از آنکہ دوبارہ گرم کیا جائے جتنے کو اجارہ لیا جائے اتنے مقدار کا ضامن ہو گا یا اس کی اجرت مسجور ہونے کی اور اجرت حالت غیر مسجور ہونے کی دیکھ کر جس قدر دونوں اجرتوں میں فرق ہو اس قدر مقدار کا ضامن ہو گا کذا فی اللمم۔ اگر کسی شخص نے دوسرے کی قمیص ادھیڑ ڈالی تو اُس قمیص کی سلی ہوئی اور بے سلی ہونے کے اعتبار سے قیمت لگا کر بقد رفرق کے ضامن ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر کوئی کنواں خاص ہو یعنی کسی خاص شخص یا قوم کا ہو اور اس میں نجاست ڈال دی تو کنواں تمام الچھوانے کا ضامن نہ ہو گا مگر بقدر نقصان کے ضامن ہو گا اور اگر عام کنواں ہو تو حکم دیا جائے گا کہ اس کو بالکل الچھوا دے کذا فی القنیۃ قال المحر جم نرخ المبر یعنی کنواں تمام الچھوانے سے یہ مراد ہے کہ موافق مسئلہ مفتی بہا کے پاکی کا حکم دیا جائے واللہ اعلم۔

## باب پنجم: دو شخصوں کے مال کو یا غیر کے مال کو اپنے مال کے ساتھ خلط کرنے یا بدون خلط کیے مختلط ہو جانے کے بیان میں

غاصب نے اگر مال مغصوب کو اپنے مال یا غیر کے مال کے ساتھ خلط کر دیا تو اُس کی دو قسمیں ہیں خلط ممانزجت اور خلط مجاہرت پھر خلط ممازجت کی دو قسمیں ہیں ایک یہ کہ تقسیم سے دونوں میں تمیز ممکن نہ ہو اور دوسرے یہ کہ اس طور سے تمیز ممکن ہو لیس اگر ایسا خلط ہو کہ تقسیم سے تمیز ممکن نہ ہو جیسے روغن (تیل) بادام کو روغن سمسم (تلی) کے ساتھ خلط کیا یا آرد گندم کو آرد جو میں ملا دیا تو ملانے والا ضامن ہو گا اور بالا جماع موجود مخلوط سے مالک کا حق منقطع ہو جائے گا اور اگر تقسیم سے تمیز ممکن ہو جیسے ایک جنس کو اسی جنس میں ملایا مثلاً گیہوں کو گیہوں میں یا دودھ کو دودھ میں ملا دیا تو بھی امام اعظم کے نزدیک یہی حکم ہے اور صاحبین کے نزدیک مالک کو اختیار ہو گا چاہے غاصب سے اپنے حق کے مثل ضمان لے یا اس مخلوط میں شریک جائے پس موافق اپنے حق کے باہم تقسیم کرلیں گے اور خلط مجاورت کی بھی دو قسمیں ہیں ایک یہ کہ بلا کلفت و مشقت جدا کرنا ممکن ہو اور دوسرے یہ کہ مشقت و کلفت کے ساتھ علیحدہ کرنا ممکن ہو پس اگر ایسی صورت ہو کہ بلا کلفت و مشقت جدا کرنا ممکن ہو جیسے درہم و دینار کا خلط کیا یا درہم اسپید کو سیاہ کے ساتھ مخلوط کیا تو ملانے والا ضامن نہ ہو گا اور مالک کو جدا کر کے دیا جائے گا اور اگر تکلیف و مشقت سے تمیز ممکن ہو جیسے گیہوں و جو کے خلط میں ہے تو کتاب میں مذکور ہے کہ غاصب سے ضمان لے گا اور مالک کو خیار حاصل ہونا صریح مذکور نہیں ہے مگر مشائخ نے اختلاف کیا ہے بعض نے فرمایا کہ مالک کو خیار حاصل ہو گا چاہے شرکت کرنے جیسا صاحبین کا قول ہے اور امام اعظم کے نزدیک تاوان ہی لے گا شریک نہ ہو جائے گا اس واسطے کہ گیہوں دانہ ہائے جو سے خالی نہیں ہوتے نہیں پس گویا اُس نے جنس کو جنس میں خلط کیا ہے پس امام کے نزدیک مالک کا حق منقطع ہو گا اور غاصب اُس کا مالک ہو جائے گا اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ بالاتفاق سب کے نزدیک مالک کو خیار حاصل ہو گا اور بعض نے فرمایا کہ صحیح یہ ہے کہ بالاتفاق سب کے نزدیک اُس

کے ساتھ مخلوط میں شریک نہ ہو گا اور اگر غاصب ایک شخص زید کے گیہوں و عمرو کے جو باہم خلط کر کے غائب ہو گیا پس اگر زید و عمرو نے باہم صلح کر لی کہ اس مخلوط کو ایک شخص ہم دونوں میں سے لے کر دوسرے کو اُس کی ناپ کے مثل جنس یا اس کی قیمت ضمان دے دے تو جائز ہے اس واسطے کہ مخلوط مو جود دونوں میں مشترک ہے اور مخلوط مشترک میں سے اگر ایک شریک اپنا...

- If a partner sells his share to the other partner, it is permissible. If they do not reach a settlement, both should sell the property and divide the proceeds (thaman) such that Zaid is made a partner according to the agreed price of the wheat, and 'Amr is not made a partner according to the agreed price of the barley mixed with the wheat. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.
- In *Al-Muntaqa*, it is narrated from Hisham and Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) that if Zaid has sattu (roasted grain flour) and 'Amr has oil or olive oil, and Bakr ties both men up and mixes 'Amr's oil into Zaid's sattu, Zaid must provide indemnity (tawan) to 'Amr equivalent to the oil or olive oil, meaning he will give indemnity based on the measurement of the oil; this is in *Al-Muhit*. If, without any person's intervention, one person's *nura* (lime/ depilatory powder) gets mixed into another's wheat flour, the mixture shall be sold, and the proceeds divided between them according to the value of each one's original property, because this loss did not occur due to any person's act; therefore, neither party has a greater claim to be held liable than the other. This is in *Fatawa Qazi Khan*. If a low-quality item is mixed into a high-quality one, the mixer shall be liable for the equivalent of the high-quality item. If the low-quality portion is small, both shall be partners according to the amount mixed. It is written in *Quduri* that if someone pours water into another's grain and spoils it, causing its measure (volume) to increase, the owner of the grain has the option to take indemnity equal to the value of the grain before the water was added; he does not have the option to take an equivalent amount of grain. The same rule applies if water is poured into oil or olive oil, because soaked grain or oil mixed with water has no exact equivalent. Therefore, the person will be liable for the price. It is not permissible for him to take indemnity according to the quantity measured before the water was added because usurpation (*ghasb*) was not fully established by the usurper before that act. However, if he first usurped the item and then added water, he would be liable for its equivalent; this is in *Al-Muhit*.
- If a person mixes genuine dirhams and base (*zuyuf*) dirhams together, and it becomes known that there were base coins among the genuine ones and genuine ones among the base ones, the person who mixed them shall be liable because distinguishing them is practically impossible. But if it is known that there were no base coins in the genuine ones and no genuine ones in the base

ones, he shall not be liable because it is possible to separate them, thus mixing them does not constitute destruction (*istihlak*). This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. If a person holding some dirhams was looking at them and some of them fell and got mixed with another person's dirhams, the person from whose hand they fell shall be considered the usurper and liable, and this act shall be deemed an offense even if he did not do it intentionally; this is in *Al-Zahiriyyah*. If a person’s citron (*turanj*) gets stuck inside someone else's glass vessel, the relative values shall be considered. The owner of the more valuable item shall be ordered to pay the other the value of their property. If a third party places one person's citron into another's vessel, he must pay each owner the value of their property and neither owner shall have any other option, as he has destroyed the property of both; the citron and the vessel then become his. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. If a camel swallows someone’s pearl and the pearl is very valuable (i.e., worth more than the camel), the owner of the pearl has the option to pay the camel's value to its owner and take it. If the pearl's value is insignificant (e.g., one dirham or less), nothing is required of the camel's owner. If a person swallows another's pearl and dies, the indemnity for the pearl shall be paid from his estate (*tarka*) if he left any; if he left no assets, his stomach shall not be cut open for the pearl. If he is alive after swallowing it, he is liable for its price, and one need not wait for it to pass naturally. If a pumpkin vine grows on Zaid's property and its fruit hangs into 'Amr's jar and grows large inside it, such that it cannot be removed without breaking the jar...

- *Nura* (lime) which was ground became mixed with wheat flour and could not be separated; perhaps it was purchased for some use such as by bookbinders.

- (यदि कोई अपना) हिस्सा दूसरे साझेदार के हाथ बेचे तो यह जायज़ है, और यदि दोनों में समझौता न हो तो दोनों उसे बेच दें और प्राप्त धन (थमन) को आपस में इस प्रकार विभाजित करें कि ज़ैद को गेहूं के तय मूल्य के हिसाब से हिस्सा दिया जाए और अम्र को गेहूं के साथ मिले जौ के मूल्य के हिसाब से भागीदार न बनाया जाए, यह मुहीत-ए-सरख़सी में है।
- मुंतक़ा में यह रिवायत हिशाम और इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि यदि ज़ैद के पास सत्तू है और अम्र के पास तेल या जैतून का तेल है, और बक्र ने दोनों व्यक्तियों को मज़बूती से बाँधकर अम्र का तेल ज़ैद के सत्तू में मिला दिया, तो ज़ैद अम्र को तेल या जैतून के तेल के समान मुआवज़ा (तावान) देगा, यानी उसके तेल के बराबर नापकर मुआवज़ा देगा; यह मुहीत में है। यदि बिना किसी व्यक्ति के मिलाए, एक व्यक्ति का 'नूरा' (चूना/लेप) दूसरे के गेहूं के आटे में मिल गया, तो उसे मिश्रित अवस्था में बेचकर प्राप्त मूल्य में से प्रत्येक को उसके माल के मूल्य के अनुपात में हिस्सा दिया जाएगा, क्योंकि यह नुक़सान किसी के कृत्य से नहीं हुआ है, अतः कोई भी दूसरे के प्रति क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होने में प्राथमिकता नहीं रखता है। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। यदि किसी रद्दी चीज़ को अच्छी चीज़ में मिला दिया जाए तो वह अच्छी चीज़ के समान का उत्तरदायी होगा, और यदि रद्दी चीज़ कम हो तो मिलाई गई मात्रा के हिसाब से दोनों साझेदार होंगे। कुदूरी में लिखा है कि यदि किसी ने दूसरे के अनाज में पानी डाल कर उसे बिगाड़ दिया और उसका माप बढ़ गया (अर्थात आयतन में वृद्धि हो गई), तो अनाज के मालिक को अधिकार होगा कि वह पानी मिलाने से पहले जो मूल्य था, उतना मुआवज़ा ले ले, उसे अनाज के समान अनाज लेने का अधिकार नहीं होगा। इसी प्रकार यदि तेल या जैतून के तेल में पानी डाल दिया जाए तो भी यही नियम है, क्योंकि भीगे हुए अनाज या तेल का कोई समान विकल्प नहीं होता, अतः वह मूल्य की क्षतिपूर्ति का उत्तरदायी होगा। यह जायज़ नहीं है कि पानी मिलाने से पहले अनाज या तेल की जो मात्रा थी, उतनी क्षतिपूर्ति ली जाए, क्योंकि ग़ासिब (हड़पने वाले) की ओर से हड़पने की स्थिति अभी पूरी तरह स्थापित नहीं हुई थी। हाँ, यदि उसने पहले हड़पा और फिर पानी डाला, तो उस पर उस चीज़ के समान वस्तु देना अनिवार्य होगा; यह मुहीत में है।
- यदि किसी व्यक्ति ने शुद्ध दिरम और खोटे (ज़ियूफ़) दिरम एक साथ मिला दिए, और यदि यह ज्ञात हो जाए कि शुद्ध सिक्कों में खोटे और खोटे सिक्कों में शुद्ध दिरम थे, तो मिलाने वाला

उत्तरदायी होगा क्योंकि उन्हें अलग करना असंभव है। और यदि यह ज्ञात हो जाए कि शुद्ध में कोई खोटा नहीं था और खोटे में कोई शुद्ध नहीं था, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा क्योंकि उन्हें अलग करना संभव है, अतः मिलाने से चीज़ नष्ट नहीं मानी जाएगी। यह मुहीत-ए-सरख़सी में है। एक व्यक्ति के हाथ में कुछ दिरम थे और वह उन्हें देख रहा था कि उनमें से कुछ दिरम किसी अन्य व्यक्ति के दिरमों में गिरकर मिल गए, तो जिसके हाथ से दिरम गिरे हैं, वही हड़पने वाला और उत्तरदायी माना जाएगा, और यह उसका अपराध माना जाएगा चाहे उसने जानबूझकर ऐसा न किया हो; यह ज़हीरिया में है। और यदि किसी व्यक्ति का चकोतरा (तरंज) दूसरे के कांच के बर्तन में फंस गया, तो देखा जाएगा कि किसका मूल्य अधिक है। जिसका मूल्य अधिक होगा, उसे आदेश दिया जाएगा कि वह दूसरे को उसके माल का मूल्य अदा कर दे। और यदि किसी व्यक्ति ने एक का चकोतरा दूसरे के बर्तन में डाल दिया, तो प्रत्येक मालिक को उसके माल का मूल्य अदा किया जाएगा और किसी मालिक को कोई अन्य विकल्प नहीं होगा क्योंकि उसने दोनों का माल नष्ट कर दिया है, फिर वह चकोतरा बर्तन सहित उसका हो जाएगा; यह मुहीत-ए-सरख़सी में है। यदि किसी का ऊँट किसी का मोती निगल जाए और मोती बहुमूल्य हो (अर्थात ऊँट से महँगा हो), तो मोती के मालिक को अधिकार होगा कि वह ऊँट के मालिक को ऊँट का मूल्य देकर उसे ले ले। और यदि मोती का मूल्य बहुत कम हो (जैसे एक दिरम या उससे कम), तो ऊँट के मालिक पर कुछ अनिवार्य न होगा। यदि कोई व्यक्ति दूसरे का मोती निगल ले और मर जाए, तो मोती का हर्जाना उसके छोड़े गए धन (तरके) से दिया जाएगा यदि उसने कुछ छोड़ा हो, और यदि उसने कुछ नहीं छोड़ा तो मोती के लिए उसका पेट नहीं चीरा जाएगा। यदि मोती निगलने के बाद व्यक्ति जीवित है, तो वह उसके मूल्य का उत्तरदायी होगा और इसके पेट से बाहर आने का इंतज़ार नहीं किया जाएगा। और यदि ज़ैद की ज़मीन में कद्दू का पौधा उगा और उसका फल अम्र के मटके में लटक गया और मटके के अंदर ही बड़ा हो गया, यहाँ तक कि मटका तोड़े बिना न निकल सके..

- नूरा (चूना) जो पिसा हुआ था, गेहूं के आटे में मिलकर अलग करने योग्य नहीं रहा, और शायद वह किसी काम के लिए जैसे जिल्दसाज़ों (जिल्द बनाने वालों) के लिए खरीदा गया हो।

---

حصہ دوسرے شریک کے ہاتھ فروخت کرے تو جائز ہے اور اگر دونوں نے صلح نہ کی تو دونوں اُس کو فروخت کریں اور ثمن کو باہم اس طرح تقسیم کریں کہ زید جو طے ہوئے گیہوں کی قیمت کے حساب سے شریک کیا جائے گا اور عمرو گیہوں طے ہوئے جو کی قیمت کے حساب سے شریک نہ کیا جائے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔

منتقٰی میں یہ روایت ہشام اور امام محمدؒ سے مروی ہے کہ اگر زید کے پاس ستو اور عمرو کے پاس روغن یا زیتون کا تیل ہے اور بکر نے دونوں آدمیوں کو مضبوط باندھ کر عمرو کا روغن یا تیل زید کے ستوؤں میں ملایا تو زید مثلِ روغن یا روغن زیتون کے عمرو کا تاوان دے گا یعنی اس کے روغن یا تیل کے برابر ناپ کر تاوان دے گا یہ محیط میں ہے اگر بدون کسی شخص کے ملانے کے ایک شخص کا نورہ دوسرے کے آردِ گندم میں مل گیا تو مختلط فروخت کر کے اُس کے ثمن میں ہر ایک اپنے مال کی قیمت ملی ہوئی کے حساب سے شریک کیا جائے گا کیونکہ یہ نقصان کسی شخص کے فعل سے نہیں ہوا ہے پس کوئی شخص بنسبت دوسرے کے ضامن ہونے میں مرجح نہیں ہو سکتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر ردی چیز کو کھری چیز میں ملا دیا تو کھری کے مثل ضامن ہوگا اور اگر ردی قلیل ہو تو جس قدر ملائی ہے اس کے حساب سے دونوں شریک ہوں گے اور قدوری میں لکھا ہے کہ اگر کسی شخص نے دوسرے کے اناج میں پانی ڈال کر اُس کو بگاڑ دیا تو اُس کا اندازہ بڑھ گیا یعنی کیل میں زیادتی ہوگئی تو اناج والے کو اختیار ہوگا کہ قبل پانی ملانے کے جو کچھ اُس کی قیمت تھی اُس قدر تاوان لے اور یہ اختیار نہ ہوگا کہ اپنے اناج کے مثل تاوان لے اسی طرح اگر روغن یا روغن زیتون میں پانی ڈال دیا تو بھی یہی حکم ہے اس واسطے کہ بھیگے ہوئے اناج کا یا جس تیل میں ملا دیا ہے اُس کا کچھ مثل نہیں ہے پس

قیمت کا ضامن ہوگا اور یہ نہیں جائز ہو سکتا ہے کہ پانی ملانے سے پہلے جو کچھ مقدار پیمانہ کے حساب سے اناج یا روغن کی تھی اس قدر ضمان لے اس واسطے کہ غاصب کی طرف سے قبل اس کے غصب متحقق نہیں ہوا تھا ہاں اگر اُس نے پہلے غصب کر کے پھر پانی ڈال دیا ہو تو اس پر اُس کے مثل واجب ہوگا یہ محیط میں ہے۔

اگر کسی شخص نے کھرے درہم اور زیوف درہم ایک میں ملا دیئے پس اگر یہ امر معلوم ہو جائے کہ کھروں میں کھوئے اور کھوٹوں میں کھرے درہم تھے تو ملانے والا ضامن ہو گا اس واسطے کہ درحقیقت تمیز کرنا متعذر ہے اور اگر یہ معلوم ہو جائے کہ کھروں میں کوئی کھوٹا نہ تھا اور نہ کھوٹوں میں کھرا تھا تو ضامن نہ ہوگا اس واسطے کہ کھرے دکھوٹے کو الگ کر لینا ممکن ہے پس خلط سے استہلاک نہ ہو گا یہ محیط سرخسی میں ہے ایک شخص کے ہاتھ میں کچھ درہم تھے وہ ان کو دیکھ رہا تھا کہ اس میں سے کچھ درہم غیر شخص کے درہموں میں گر کر مخلوط ہو گئے تو جس کے ہاتھ سے درہم گرے ہیں وہ غاصب و ضامن ہوگا اور یہ فعل اُس کی طرف سے جرم قرار دیا جائے گا اگرچہ اُس نے عمداً نہیں کیا ہے یہ ظہیریہ میں ہے اور اگر کسی شخص کا ترنج دوسرے کے شیشے میں گھس گیا تو دیکھا جائے گا کہ کس کی زیادہ قیمت ہے پس زیادہ قیمت والے کو حکم دیا جائے گا کہ دوسرے کو اس کے مال کی قیمت ادا کرے اور اگر کسی شخص نے ایک شخص کا ترنج دوسرے کے شیشے میں داخل کر دیا تو ہر ایک مالک کو اُس کے مال کی قیمت ادا کرے گا اور کسی مالک کو کچھ اختیار نہ ہو گا کیونکہ اُس نے دونوں کا مال تلف کر دیا ہے پھر وہ ترنج مع قاروزہ اس کا ہو جائے گا یہ محیط سرخسی میں ہے اگر اونٹ کسی شخص کا موتی نگل گیا اور موتی بیش قیمت ہے یعنی اونٹ سے زیادہ قیمت کا ہے تو موتی کے مالک کو اختیار ہوگا کہ اونٹ والے کو اونٹ کی قیمت دے دے اور اگر موتی کی قیمت یوں ہی خفیف ہو (یعنی ایک درہم یا اُس سے کم ہو) تو اونٹ کے مالک پر کچھ واجب نہ ہو گا۔ ایک شخص

دوسرے کا موتی نگل گیا اور مر گیا تو موتی کی ضمان اُس کے ترکہ میں سے دی جائے گی اگر اُس نے ترکہ چھوڑا ہو اور اگر مال نہ چھوڑا تو موتی کے واسطے اُس کا پیٹ چاک نہ کیا جائے گا اور اگر موتی نگل جانے کے بعد زندہ موجود ہو تو اُس کی قیمت کا ضامن ہوگا اور اس قدر انتظار نہ کیا جائے گا کہ اُس کے پیٹ سے باہر نکلے اور اگر زید کی ملک میں ایک کدو کا درخت اُگا اور اس کا پھل عمرو کے مٹکے میں لٹکا اور مٹکے کے اندر بڑا ہو گیا حتیٰ کہ بدون مٹکا توڑے نہ نکل۔

۱۔ نورا بنوں جو کہ پیسا ہوا تھا آردِ گندم میں مختلط ہو کر جدا کرنے کے قابل نہ رہا اور شاید وہ کسی کام کے واسطے مانند جلد سازوں کے خرید کیا جائے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 120 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...cannot be [separated], then this situation is equivalent to a case where someone's hen swallows another person's pearl. In such a case, it shall be determined which of the two properties has a higher value. The owner of the more valuable item will be given the option to pay the price of the other person's item and take ownership of it. If he refuses, the items will be ordered to be sold, and the sale will be binding on both parties (the parties themselves should not sell; if sold for them, the sale is binding). Then, the proceeds will be divided between them according to their respective rights. This is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*.

If a tenant in a rented house has a bead (manka) that cannot be removed without breaking down some part of a wall, consideration will be given to whether the value of the portion of the wall to be broken is higher or the value of the bead. This is as per *al-Muhit*. If a person's dirham (coin) or pearl enters another's inkwell and cannot be removed without breaking it: if the pearl or dirham is more valuable than the inkwell and it entered due to the action of the inkwell's owner, the inkwell shall be broken, and the owner of the pearl/dirham shall not be liable for any compensation. If it entered due to the action of the pearl/dirham owner or without any specific action, the inkwell will still be broken, but the owner of the pearl/dirham shall be liable for the price of the inkwell. If he wishes, he may wait until the inkwell breaks naturally. This is in *al-Jawhara al-Nayyira*. Similarly, if a person's animal puts its head into someone else's pot and cannot withdraw it without breaking the pot, the owner of the animal has the choice to pay the price of the pot and become its owner. There are many such precedents where the owner of the more valuable item has the right to pay the owner of the less valuable item and take ownership. If both items are equal in value, both shall be sold, the sale shall be binding on both, and they shall share the proceeds. It is narrated from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) that if Zaid's pearl falls into Amr's pile of flour, if searching through the flour causes damage, he would not order it to be overturned; rather, the owner of the pearl must wait as the flour is sold off portion by portion. If searching causes no harm, then he would order a search. Sheikh Bishr (a student of Imam Abu Yusuf) stated that the one seeking the pearl shall perform the search. This is in *Fatawa Qazi Khan*.

A person left a camel calf as a trust (wadiah) with another, and the trustee (mustawda') kept it inside his house until it grew so large that it could not be removed without dismantling the doorway. The depositor (muda') has the choice to

either pay the value of the camel (based on its value on the day it became stuck) to avoid personal loss, or dismantle his door and return the camel calf. Sheikh Sadr al-Shahid stated in his *Waqi'at* that this ruling must be interpreted to apply when the cost of rebuilding the house exceeds the value of the camel. If the camel's value is higher and the trustee refuses to dismantle the door, the owner of the camel calf shall be ordered to pay the trustee the cost of the damage to the house and then remove the calf. According to *Kitab al-Hitan*, this applies if the trustee kept the trust in his own home. However, if one borrowed a house (musta'ar) and kept a camel calf there until it grew large, the owner of the calf will be told: "Remove it if you can; otherwise, slaughter it and remove it in pieces." If the trust consists of a mule or a donkey, and the damage from breaking the door...

1. That which is of lower value relative to the animal. 2. Search, i.e., whether by the owner or his agent.

...नहीं हो सकता है, तो यह सूरत उस सूरत के समान है कि किसी की मुर्गी दूसरे का मोती निगल गई। तब यह देखा जाएगा कि दोनों मालों में से किस माल की कीमत अधिक है। अतः अधिक कीमत वाले से कहा जाएगा कि यदि तू चाहे तो दूसरे को उसके माल की कीमत दे दे और वह माल तेरा हो जाएगा। और यदि उसने इनकार किया, तो वह मंगवाकर (अनिवार्यतः) बेच दिया जाएगा और उसकी बिक्री दोनों पर लागू होगी (स्वयं न बेचें, उनके लिए बेचा जाए तो बिक्री दोनों पर लागू हुई)। फिर उसकी कीमत में दोनों अपने हक के अनुसार हिस्सेदार हो जाएंगे। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

यदि किराए के मकान में किराएदार का कोई मनका (बीड) ऐसा हो कि बिना किसी हद तक दीवार तोड़े उसका निकलना संभव न हो, तो दोनों चीज़ों पर विचार किया जाएगा कि दीवार कितनी टूटती है और वह अधिक मूल्यवान है या मनका। ऐसा ही 'अल-मुहीत' में है। और यदि किसी व्यक्ति का दरहम (सिक्का) या मोती किसी की दवात (इंकपॉट) में घुस गया और अब बिना दवात तोड़े नहीं निकलता है, तो यदि मोती या दरहम दवात की तुलना में अधिक मूल्यवान है और दवात के मालिक की हरकत से उसमें घुसा है, तो दवात तोड़ दी जाएगी और जिसका मोती या दरहम है उस पर कोई हर्जाना अनिवार्य न होगा। और यदि मोती या दरहम के मालिक के कार्य से या उसके कार्य के बिना घुसा है, तो भी दवात तोड़ दी जाएगी और मोती या दरहम का मालिक दवात की कीमत का ज़िम्मेदार होगा। और यदि वह चाहे तो सब्र करे यहाँ तक कि दवात स्वयं टूट जाए। यह 'जौहरा नय्यिरा' में है। और यदि किसी व्यक्ति के मवेशी (चौपाये) ने दूसरे की हाँडी में सिर डाल दिया और अब बिना हाँडी तोड़े उसका सिर नहीं निकलता है, तो मवेशी का मालिक स्वतंत्र है कि दूसरे को उसकी हाँडी की कीमत चुकाकर हाँडी का मालिक हो जाए। इसके उदाहरण बहुत हैं कि अधिक मूल्यवान माल वाले को अधिकार है कि कम मूल्यवान माल वाले को कीमत चुकाकर उसका मालिक हो जाए। और यदि दोनों की कीमत बराबर हो, तो दोनों चीज़ें बेची जाएँगी और बिक्री दोनों पर लागू होगी और दोनों उसकी राशि आपस में बाँट लेंगे। इमाम अबू यूसुफ रह. से रिवायत है कि ज़ैद का मोती अम्र के आटे के ढेर में गिर गया, तो उन्होंने कहा कि यदि आटे को उलटने-पलटने में नुकसान हो, तो मैं उसे उलटने-पलटने का हुक्म नहीं दूँगा और मोती का मालिक इंतज़ार करेगा यहाँ तक कि आटा धीरे-धीरे बिकता जाए। और यदि उलटने-पलटने में नुकसान न हो, तो हुक्म दूँगा कि उसे ढूँढ ले। और शेख बिश्र (जो इमाम अबू यूसुफ के शिष्य रावी हैं) ने कहा कि वही उलटने-पलटने का कार्य करेगा जो मोती ढूँढना चाहता है। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

एक व्यक्ति ने दूसरे के पास ऊँट का बच्चा अमानत (वदीअत) रखा और रखने वाले (मस्तौदअ) ने उसे अपने घर में दाखिल कर लिया, यहाँ तक कि वह रहते-रहते बड़ा हो गया। फिर नौबत यहाँ पहुँची कि बिना दरवाज़ा उखाड़े वह निकल नहीं सकता। तो रखने वाले को विकल्प होगा कि चाहे अपनी हानि रोकने के लिए ऊँट के मालिक को उसकी उस दिन की कीमत दे दे जिस दिन वह ऐसा हुआ था कि निकल नहीं सकता था, या अपना दरवाज़ा उखाड़कर ऊँट का बच्चा वापस करे। और शेख सद्र अल-शहीद ने कहा कि इस मामले में जो हुक्म वर्णित है उसकी व्याख्या इस तरह करना अनिवार्य है कि यह तब है जब घर का हिस्सा गिराने की कीमत ऊँट के बच्चे की कीमत से अधिक हो। और यदि ऊँट के बच्चे की कीमत अधिक हो और रखने वाला दरवाज़ा उखाड़ने से इनकार करे, तो ऊँट के मालिक को हुक्म दिया जाएगा कि घर गिरने की कीमत मस्तौदअ को देकर ऊँट का बच्चा बाहर निकाल ले। और 'किताब अल-हईतान' में है कि यह हुक्म तब है जब मस्तौदअ ने अपने घर में अमानत का ऊँट रखा हो। और यदि कोई घर उधार (मुस्तआर) लेकर उसमें ऊँट रखा हो और वह बड़ा हो गया हो, तो ऊँट के मालिक से कहा जाएगा कि यदि निकाल सको तो निकाल लो, अन्यथा उसे ज़िब्ह (हलाल) करके टुकड़ों में निकाल लो। और यदि अमानत में खच्चर या गधा हो, और दरवाज़ा गिराने का नुकसान...

१ जो चौपाये (पशु) की तुलना में कम कीमत की हो। २ तलाश, यानी चाहे मालिक करे या उसका वकील।

---

نہیں ہو سکتا ہے تو یہ صورت بمنزلہ ایسی صورت کے ہے کہ کسی کی مرغی دوسرے کا موتی نگل گئی پس دیکھا جائے گا کہ دونوں مالوں میں سے کس مال کی زیادہ قیمت ہے پس زیادہ قیمت والے سے کہا جائے گا کہ تیرا جی چاہے دوسرے کے اُس کے مال کی قیمت دے دے اور وہ مال تیرا ہو جائے گا اور اگر اس نے انکار کیا تو وہ منگوا ہی فروخت کیا جائے گا اور اُس کی بیع دونوں پر نافذ ہے (خود فروخت نہ کریں ان دونوں کے لیے فروخت کرے تو بیع دونوں پر نافذ ہوئی ۱۲) ہو گی پھر اُس کے ثمن میں دونوں اپنے حق کے موافق حصہ دار ہو جائیں گے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر کرایہ کے مکان میں کرایہ دار کا کوئی منکا ایسا ہو کہ بدون کسی قدر دیوار توڑے اُس کا نکالنا ممکن نہ ہو تو دونوں چیزوں پر لحاظ کیا جائے گا کہ جس قدر دیوار ٹوٹتی ہے اور زیادہ قیمت کی ہے یا منکا کذائی المحیط اور اگر درہم یا موتی کسی شخص کی دوات میں گھس گیا اور اب بدون دوات توڑے وہ نہیں نکلتا ہے پس اگر موتی یا درہم بنسبت دوات کے زیادہ قیمت کا ہے اور دوات کے مالک کی حرکت سے اس میں گھس گیا ہے تو دوات توڑ دی جائے گی اور جس کا موتی یا درہم ہے اُس پر کچھ تاوان لازم نہ ہوگا اور اگر موتی یا درہم کے مالک کے فعل سے یا بدون اُس کے فعل کے گھس گیا ہے تو بھی دوات توڑ دی جائے گی اور موتی یا درہم کا مالک دوات کی قیمت کا ضامن ہوگا اور اگر وہ چاہے تو صبر کرے یہاں تک کہ دوات خود ہی ٹوٹے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے اور اگر کسی شخص کے چوپایہ نے دوسرے کی ہانڈی میں سر ڈال دیا اور اب بدون ہانڈی توڑے اُس کا سر نہیں نکلتا ہے تو چوپایہ کا مالک مختار ہے کہ دوسرے کو اُس کی ہانڈی کی قیمت ادا کر کے ہانڈی کا مالک ہو جائے اور اُس کے نظائر بہت ہیں کہ زیادہ قیمت کے

مال والے کو اختیار ہے کہ کم قیمت کے مال والے کو قیمت ادا کر کے اُس کا مالک ہو جائے اور اگر دونوں کی قیمت برابر ہو تو دونوں چیزیں فروخت کی جائیں گی اور بیع اُن دونوں پر نافذ ہو گی اور دونوں اُس کا ثمن باہم تقسیم کرلیں گے۔ امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ زید کا موتی عمرو کے آٹے کے ڈھیر میں گر پڑا تو فرمایا کہ اگر آٹے کے لوٹ پوٹ کرنے میں ضرر ہو تو میں اُس کو لوٹ پوٹ کرنے کا حکم نہ دوں گا اور موتی کا مالک منتظر رہے گا یہاں تک کہ ایک سرے سے آٹا ایک بار بعد دوسری بار کے فروخت ہوتا جائے اور اگر لوٹ پوٹ کرنے میں ضرر نہ ہو تو حکم دوں گا کہ لوٹ پوٹ کر کے تلاش کر لے اور شیخ بشر نے (جو امام ابو یوسفؒ کے شاگرد راوی ہیں) فرمایا کہ وہی لوٹ پوٹ کرے گا جو موتی تلاش کرتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

ایک شخص نے دوسرے کے پاس ایک اونٹ کا بچہ ودیعت رکھا اور مستودع نے اُس کو اپنے گھر میں داخل کر لیا یہاں تک کہ وہ رہتے رہتے بڑا ہو گیا پھر یہ نوبت پہنچی کہ بدون دروازہ اکھاڑے وہ نکل نہیں سکتا ہے تو مودع کو اختیار ہو گا چاہے اپنی ذات سے ضرر دور کرنے کی غرض سے مودع کو اُس کی قیمت اُس روز کی قیمت کے حساب سے جس دن وہ ایسا ہو گیا تھا کہ نکل نہیں سکتا تھا دے دے یا اپنا دروازہ اکھاڑ کر مودع کو اُس کا اونٹ کا بچہ واپس کرے اور شیخ صدر الشہید نے اپنے واقعات میں فرمایا کہ اس مسئلہ میں جو حکم مذکور ہے اس کی اس طرح تاویل کرنی واجب ہے کہ یہ حکم اُس وقت ہے کہ جب گھر میں سے جس قدر منہدم کرنا پڑتا ہے اُس کی قیمت اونٹ کے بچہ کی قیمت سے زائد ہو اور اگر اونٹ کے بچہ کی قیمت اُس سے زائد ہو اور مستودع نے اونٹ کا بچہ نکالنے کے واسطے دروازہ اکھاڑنے سے انکار کیا تو واجب ہے کہ شتر بچہ کے مالک کو حکم دیا جائے کہ گھر سے جس قدر منہدم ہوتا ہے اُس کی قیمت مستودع کو دے کر شتر بچہ کو باہر نکال لے اور کتاب الحیطان میں ہے کہ یہ حکم اُس وقت ہے کہ مستودع

نے اپنے گھر میں ودیعت کا شتر بچہ داخل کر لیا ہو اور اگر کوئی گھر مستعار لے کر اُس میں شتر بچہ داخل کیا ہو یہاں تک کہ وہ بڑا ہو گیا اور باقی مسئلہ بحالہ ہے تو شتر بچہ کے مالک سے کہا جائے گا کہ اگر تو اپنے شتر بچہ کو نکال سکے تو نکال لے ورنہ اُس کو ذبح کر کے ٹکڑے ٹکڑے کر کے نکال لے اور اگر ودیعت میں خچر یا گدھا ہو پس اگر دروازہ گرانے کا ضرر نقصان...

۱ جو نسبت چوپایہ کے کم قیمت ہے۔ ۲ تلاش یعنی خواہ مالک یا اُس کا وکیل۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 121 Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

Even if it is excessive (fahish), the ruling remains the same; and if it is minor or negligible (yasir wa qalil), the owner has the right to remove it through the door and must pay for any damage caused to the door. This is considered a form of trial. This is mentioned in *Al-Muhit*, and in *Waqi'at al-Natiqi*, it is stated that if two people each possess an icehouse (mushkaja)*, and one takes some ice from the other's icehouse and puts it into his own, there are two scenarios: Did the one from whose icehouse the ice was taken have a place where ice accumulated naturally without manual collection, or a place where manual collection was necessary? In the first scenario, the person whose ice was taken has the option to reclaim his ice from the taker's icehouse if it is still distinct; if it has been mixed with other ice, he should receive the value[1] of the ice based on the day it was mixed. In the second scenario, the issue is twofold: either the taker took it from the person's boundary rather than the icehouse itself, or he took it directly from the icehouse. In the first case, the ice belongs to the one who took it, and in the second case, the ruling follows the first scenario. This is found in* Tatarkhaniya*. If a person mixes his property with another's, he becomes liable (damin), except for an authorized slave (ghulam mazun) who is a debtor and was given a thousand dirhams by his master to buy goods; if he mixes them with his own dirhams and buys goods with all of them, the goods will be shared between him and his master. This was narrated by Ibn Sama'ah from Imam Muhammad (RA). Imam Muhammad (RA) said that if Zaid gave Amr two dirhams and Bakr gave him one, and both instructed him to mix them, and he did so, and later one dirham was found to be counterfeit (satuq), then regarding whether the dirham belongs to Zaid or Bakr, the word of the trustee (Amr) will be accepted. If the trustee says he does not know whose it is, I will take compensation (daman) from him, even if he mixed them with the permission of both. This is in* Al-Muhit al-Sarakhsi*.

## Chapter Nine: Regarding the instances where a usurper (ghasib) is absolved of liability (daman) upon the restitution of usurped property (mal-e-maghsub), and those where he is not.

Sheikh Karkhi (RA) stated that if the victim of usurpation (maghsub minhu) treats the usurped property in a manner that would typically define a usurper, and if this occurs on another's property, then he himself is considered to have re-usurped the property, and the original usurper is absolved of liability. An example of this is taking service from the property (proof of termination of liability), because establishing one's possession over the subject matter constitutes 'ghasb' (usurpation). Therefore, when he acts in a way that makes him a usurper, he has established his possession over

the property (mamluk). The establishment of the owner's possession causes the liability of the usurper to lapse, whether the owner recognizes it as such or not, because legal rulings are based on the cause (sabab) and not on knowledge (ilm). In such a case, the original usurper will no longer be considered a usurper due to the initial act. However, if he subsequently commits a new act of usurpation, he will become a usurper again. Similarly, if a usurper dresses the owner in a usurped garment and the owner wears it until it tears, the same ruling applies, whether the owner recognizes the garment or not. The same applies if the owner sells the garment.

---

[1] The mention of 'first price' indicates that ice here is considered a specific item ('ayni) rather than a fungible one (mithli), and it should ideally be in the form of manufactured ice. * Mushkaja: Icehouse/Ice-storage.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 121 किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

अत्यधिक (फ़ाहिश) हो तब भी यही हुक्म होगा और यदि कम व मामूली (यसीर व क़लील) हो तो मालिक को अधिकार होगा कि दरवाज़े से निकाल ले और दरवाज़े में जो कुछ नुकसान आए उसका हर्जाना (तावान) दे दे। यह एक प्रकार का इम्तिहान है। यह 'मुहीत' में है और 'वाक़िआत नातिक़ी' में है कि दो व्यक्तियों में से प्रत्येक के पास एक बर्फ़खाना (मुश्कजा)* है। उनमें से एक व्यक्ति ने दूसरे के बर्फ़खाने से कुछ बर्फ़ लेकर अपने बर्फ़खाने में डाल ली। इसकी दो स्थितियाँ हैं: जिस बर्फ़खाने से बर्फ़ ली गई है, क्या उसने ऐसी जगह बनाई थी जहाँ बिना एकत्र किए बर्फ़ जमा हो जाती थी, या ऐसी जगह थी जहाँ उसे बर्फ़ एकत्र करने की आवश्यकता पड़ती थी? पहली स्थिति में, जिस व्यक्ति के बर्फ़खाने से बर्फ़ ली गई है, उसे अधिकार होगा कि लेने वाले के बर्फ़खाने से अपनी बर्फ़ यदि अलग हो तो ले ले, और यदि दूसरी बर्फ़ के साथ मिला दी गई हो, तो जिस दिन मिलाई गई उस दिन के हिसाब से उसकी कीमत[1] ले ले। दूसरी स्थिति में मामला दो प्रकार का है: एक यह कि लेने वाले ने उस व्यक्ति के बर्फ़खाने से नहीं बल्कि उसकी सीमा से लिया, और दूसरा यह कि उसके बर्फ़खाने से लिया। पहली स्थिति में वह बर्फ़ उसी की है जिसने उसे लिया, और दूसरी स्थिति में हुक्म पहली सूरत की तरह होगा। यह 'तातारीखानिया' में है। और यदि किसी व्यक्ति ने अपना माल दूसरे के माल में मिला दिया तो वह ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा, सिवाय उस दास (ग़ुलाम माज़ून) के जो कर्जदार हो और जिसे उसके स्वामी ने सामान खरीदने के लिए एक हज़ार दिरहम दिए हों, और उसने अपने दिरहमों में मिलाकर उन सब दिरहमों से सामान खरीद लिया हो, तो वह सामान उसके और उसके स्वामी के बीच साझा होगा। इसे इब्न समाआ ने इमाम मुहम्मद (रह.) से उद्धृत किया है। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि यदि ज़ैद ने अम्र को दो दिरहम दिए और बक्र ने उसे एक दिरहम दिया और दोनों ने उसे मिलाने का आदेश दिया, और उसने तीनों दिरहम मिला दिए, फिर उनमें से एक दिरहम खोटा (सतूक़) पाया गया, तो इस बारे में कि यह दिरहम ज़ैद का है या बक्र का, अमीन (अम्र) का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि अमीन ने कहा कि मैं नहीं जानता कि यह किसका है, तो मैं अमीन से उसकी क्षतिपूर्ति (ज़मान) लूँगा, भले ही अमीन ने उसे दोनों की अनुमति से मिलाया हो। यह 'मुहीत सुर्ख़सी' में है।

**अध्याय नौ: उन स्थितियों के वर्णन में जिनमें अपहृत संपत्ति (माल-ए-मग़सूब) की वापसी के समय हड़पने वाला (ग़ासिब) दायित्व (ज़मान) से मुक्त हो जाता है और जिनमें मुक्त नहीं होता।**

शेख कर्खी (रह.) ने फरमाया कि यदि जिसके माल को हड़पा गया (मग़सूब मिन्हु) उसने उस माल के साथ ऐसा व्यवहार किया जिससे वह स्वयं हड़पने वाला करार दिया जाता है, और यदि यह कार्य किसी और की संपत्ति में हुआ, तो वह व्यक्ति पुनः माल को हड़पने वाला माना जाएगा और मूल हड़पने वाला दायित्व से मुक्त हो जाएगा। इसकी एक स्थिति यह है कि, उदाहरण के लिए, उसने उस संपत्ति से सेवा ली (दायित्व समाप्ति का प्रमाण), क्योंकि उस स्थान पर अपना कब्ज़ा स्थापित करना ही 'ग़सब' है। अतः जब उसने ऐसा कार्य किया जिससे वह हड़पने वाला बन जाता है, तो उसने उस दास (ममलूक) पर अपना कब्ज़ा स्थापित कर लिया। मालिक का कब्ज़ा स्थापित होना हड़पने वाले के दायित्व के समाप्त होने का कारण है, चाहे मालिक उसे पहचाने या न पहचाने, क्योंकि हुक्म कारण (सबब) पर आधारित होता है, ज्ञान (इल्म) पर नहीं। ऐसी स्थिति में, पहला व्यक्ति पूर्व के हड़पने के कारण अब 'ग़ासिब' नहीं रहेगा। हाँ, यदि वह पुनः कोई हड़पने जैसा कार्य करे, तो वह पुनः ग़ासिब होगा। इसी प्रकार, यदि ग़ासिब ने हड़पा हुआ कपड़ा मालिक को पहनाया और उसने पहन लिया यहाँ तक कि वह फट गया, तो भी यही हुक्म है, चाहे मालिक उसे पहचाने या न पहचाने। और इसी प्रकार यदि मालिक ने वह कपड़ा बेच दिया।

---

[1] पहली कीमत से यह स्पष्ट होता है कि बर्फ यहाँ 'ऐनी' (विशिष्ट वस्तु) है न कि 'मिस्ली' (समान वस्तु), और यहाँ वास्तव में निर्मित बर्फ के स्वरूप में होनी चाहिए। * मुश्कजा : बर्फ़खाना (बर्फ़ रखने का स्थान)।

---

فاحش ہو تو بھی یہی حکم ہوگا اور اگر یسیر و قلیل ہو تو مالک کو اختیار ہوگا کہ دروازہ سے نکال لے اور جو کچھ نقصان دروازہ میں آئے اُس کا تاوان دے دے اور یہ ایک طرح کا امتحان ہے یہ محیط میں ہے اور واقعات ناطقی میں ہے کہ دو شخصوں میں سے ہر ایک کے پاس مشکجہ* ہے ان میں سے ایک شخص نے دوسرے کے مشکجہ میں سے کچھ برف لے کر اپنے مشکجہ میں ڈال لیا تو اُس کی دو صورتیں ہیں تو جس مشکجہ سے برف لیا ہو اُس نے کوئی ایسی جگہ بنائی تھی جس میں بدون جمع کیے ہوئے برف جمع ہو جاتا تھا یا ایسی جگہ تھی جس میں اُس کو برف جمع کرنے کی حاجت پڑتی تھی پس اوّل صورت میں اُس شخص کو جس کے مشکجہ سے برف لیا ہے اختیار ہوگا کہ لینے والے کے مشکجہ سے اپنا برف اگر جدا ہو تو لے لے اور اگر دوسرے برف سے مخلوط کر دیا ہو تو جس دن مخلوط کیا ہے اُس دن کے حساب سے اُس کی قیمت[1] لے لے اور دوسری صورت میں مسئلہ دو قسم پر ہے ایک یہ کہ لینے والے نے اُس شخص کے مشکجہ میں سے نہیں لیا بلکہ اُس کی حد میں سے لے لیا اور دوسرے یہ کہ اُس کے مشکجہ میں سے لے لیا پس پہلی قسم میں وہ برف اُسی کا ہے جس نے اُس کو لے لیا اور دوسری قسم میں حکم صورت اوّل کے مانند ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے اور اگر کسی شخص نے اپنا مال دوسرے کے مال میں مخلوط کر دیا تو ضامن ہوگا مگر غلام ماذون قرض دار نے جس کو اُس کے مولیٰ نے ہزار درہم اپنے واسطے اسباب خریدنے کے لیے دیئے تھے اور اُس نے اپنے درہموں میں خلط کر کے سب درہموں سے کوئی اسباب خرید تو یہ اسباب اُس کے و اُس کے مولیٰ کے درمیان مشترک ہوگا اس کو ابن سماعہ نے امام محمدؒ سے ذکر کیا ہے اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر زید نے عمرو کو دو درہم دیئے اور بکر نے اُس کو ایک درہم دیا اور دونوں نے اُس کو خلط کرنے کے واسطے حکم

دے دیا اور اُس نے تینوں درہم خلط کر دیئے پھر ان میں ایک درہم ستوق پایا تو اس باب میں کہ یہ درہم زید کا ہے یا بکر کا ہے عمرو امین کا قول قبول ہوگا اور اگر عمرو امین نے کہا کہ میں نہیں جانتا ہوں کہ یہ کس کا ہے تو میں امین سے اس کی ضمان لوں گا اگرچہ امین نے اُس کو دونوں کی اجازت سے خلط کیا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

**باب نُہم: غاصب سے مالِ مغصوب کے استرداد کے وجہن صورتوں میں غاصب ضمان سے بری ہوتا ہے اور جن میں نہیں بری ہوتا ہے اُن کے بیان میں**

شیخ کرخیؒ نے فرمایا کہ اگر مغصوب منہ نے مال مغصوب میں ایسی بات کی جس سے غاصب قرار دیا جاتا ہے پس اگر یہ بات ملک غیر میں واقع ہوئی تو غصب کا پھر لینے والا قرار دیا جائے گا اور اُس سے غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا اور اُس کی یہ صورت ہے کہ مثلاً مغصوب سے خدمت لی (دلیل سقوط ضمان) اس واسطے کہ محل پر اپنا قبضہ مقرر کرنا غصب ہے پس جب اُس نے ایسی بات کی کہ جس سے غاصب ہو جاتا ہے تو مملوک پر اُس نے اپنا قبضہ قائم کیا اور مالک کا قبضہ قائم ہونا غاصب سے ضمان ساقط ہونے کا موجب ہے خواہ مالک اس کو پہچانے یا نہ پہچانے اس لیے کہ حکم تو سبب پر مبنی ہوتا ہے نہ علم پر اور ایسی حالت میں غاصب پہلے غصب کی وجہ سے غاصب نہ رہے گا ہاں اگر پھر از سر نو کوئی غصب کا فعل کرے تو غاصب ہوگا اسی طرح اگر غاصب نے غصب کیا ہوا کپڑا مالک کو پہنایا اور اُس نے پہن لیا حتیٰ کہ پھٹ گیا تو بھی یہی حکم ہے خواہ مالک اُس کو پہچانے یا نہ پہچانے اور اسی طرح اگر مالک نے وہ کپڑا فروخت کیا

---

[1] قیمت اول اس سے ظاہر ہوتا ہے کہ برف عینی ہے نہ مثلی اور یہاں بالفعل ساختہ برف شکلی ہونا چاہئے۔ * مشکجہ : برف خانہ

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation) Page 122**

- ...or if he gifted it to him until he wore it and it wore out, the ruling is the same. Similarly, if the usurper (ghasib) seized grain and gave it to the owner to eat, and the owner ate it—whether the owner recognized it or not—similarly, if the owner himself came to the usurper's house and ate the same grain that the usurper had seized—whether he recognized it or not—the same ruling applies: the usurper will be absolved of liability (daman). However, if the usurper baked bread from the [seized] flour(1) or roasted meat and then fed it to the owner, he will not be absolved of liability because, in this situation, the owner did not establish possession over the usurped property. And if a usurped slave-girl became disabled in one eye or lost a tooth while with the usurper, and the usurper then returned her to the owner, and subsequently, the eye defect disappeared or the tooth grew back while with the owner, the usurper will be absolved of the liability for that loss; this is mentioned in 'Al-Dhakirah'.
- If a slave was usurped and then developed a cataract in his eye, and the usurper returned him to the owner, and the owner collected a penalty for this loss, then the owner sold him and the eye became clear while with the buyer, the owner must return the penalty amount he took from the usurper back to him, because the effect of the offense has vanished; this is in 'Al-Zahiriyyah'. If a person usurped another's house and then rented it from the owner, while the house was not present before both of them, he will not be absolved of liability. However, if the usurper lives in it or is capable of living in it, he will be absolved because rent has become obligatory upon him; this is in 'Al-Wajiz al-Kardari'. If Zaid rented a slave, whom he had usurped from 'Amr, back from 'Amr to build a wall for him, then the slave remains under his liability until he starts working on the wall. Once he begins the wall work, the usurper is absolved of liability. Similarly, the same ruling applies if he rented him for service from the owner; this is in 'Fatawa Qadi Khan'. Imam Muhammad (RA) stated that if a person usurps another's slave and then rents him from the owner, it is valid, and the hirer will be considered the possessor solely by the contract, and will be absolved of the liability of usurpation, because the possession of usurpation will be substituted by the possession of hire. Just as the possession of usurpation is substituted by the possession of purchase, it is substituted by the possession of hire with greater reason (a fortiori). Thus, when he is declared the possessor by way of hire through the contract alone, he ceases to be a usurper and becomes

a trustee (amin), and liability is removed and will not return unless he commits a new transgression.(1) Therefore, if the slave dies during the rental period, he dies as a trust, and the rent for the duration that has passed will be obligatory on the usurper, while the rest is waived. Furthermore, if the rental period expires and the slave remains alive and present, liability does not return—meaning the property does not become guaranteed. It is stated in 'Al-Muntaqa' that if one usurps a slave and then hires him for some work, at the moment the slave begins that work, the usurper is absolved of liability because rent becomes obligatory on the usurper; this is in 'Al-Dhakirah'.

- If the owner lends (ariyah) the usurped property back to the usurper, the usurper will not be absolved [of liability] by this alone, such that if the property is destroyed before use, the usurper remains liable for its value. If the owner says to the usurper, "I have placed the usurped property as a deposit (wadi'ah) with you," and then it is destroyed while with the usurper, he remains liable because explicit absolution from liability is not found, and the contract of deposit and the command for safekeeping are not inconsistent with the liability of usurpation. This is in 'Fusul al-'Imadiyyah'. It should be clear that if a usurped slave-girl is married off, then according to the analogy (qiyas) of Imam Abu Yusuf, the usurper is immediately absolved of liability, whereas according to Imam Azam (RA), he is not absolved; this disagreement is a branch of the disagreement regarding sales.
- (1) The pronoun does not refer to a specific person, but to whoever the item is delivered to. (1) i.e., it refers to the usurped grain. (2) Then some act occurs that necessitates liability.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय) पृष्ठ 122**

- या उसे उपहार में दे दिया यहाँ तक कि उसने पहन लिया और वह फट गया तो भी यही हुक्म है। इसी तरह अगर ग़ासिब (हड़पने वाले) ने अनाज हड़प कर मालिक को खाने को दिया और उसने खा लिया, चाहे मालिक ने उसे पहचाना हो या न पहचाना हो; इसी तरह अगर मालिक खुद ग़ासिब के घर आया और वही अनाज जो ग़ासिब ने हड़पा था, खुद खा लिया, चाहे पहचाना हो या न पहचाना हो, तो भी यही हुक्म है, ग़ासिब ज़मान (मुआवज़े की ज़िम्मेदारी) से बरी हो जाएगा। और अगर ग़ासिब ने आटे (1) की रोटियाँ पकाकर या मांस को भूनकर फिर मालिक को खिला दिया तो ज़मान से बरी न होगा, क्योंकि मालिक ने इस स्थिति में माल-ए-मग़सूब (हड़पे हुए माल) पर अपना कब्ज़ा स्थापित नहीं किया। और अगर हड़पी हुई दासी ग़ासिब के पास एक आँख से अक्षम हो गई या उसका दाँत गिर गया, फिर ग़ासिब ने मालिक को वापस कर दी, फिर मालिक के पास उसकी आँख का दोष दूर हो गया या दाँत वापस आ गया, तो ग़ासिब उसकी ज़मानत से बरी हो जाएगा, यह 'ज़ख़ीरा' में है।
- अगर कोई गुलाम हड़प लिया गया, फिर उसकी आँख में फुली पड़ गई, फिर ग़ासिब ने मालिक को वापस कर दिया और मालिक ने इस नुकसान का जुर्माना ले लिया, फिर मालिक ने उसे बेच दिया और खरीदार के पास उसकी आँख साफ़ हो गई, तो जितना मालिक ने आँख के नुकसान का जुर्माना ग़ासिब से लिया है, वह ग़ासिब को वापस मिल जाएगा, क्योंकि अपराध का प्रभाव समाप्त हो गया, यह 'ज़हीरिया' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे का घर हड़प लिया, फिर मालिक से उसे किराए पर ले लिया, जबकि वह घर दोनों के सामने नहीं है, तो वह ज़मान से बरी न होगा; और अगर ग़ासिब उसमें रहता हो या उसमें रहने में सक्षम हो तो ज़मान से बरी हो जाएगा क्योंकि उस पर किराया अनिवार्य हो गया, यह 'वजीज़ करदरी' में है। और अगर ज़ैद ने अम्र के हड़पे हुए गुलाम को अम्र से अपनी किसी दीवार बनाने के लिए किराए पर लिया, तो जब तक वह गुलाम दीवार का काम शुरू न करे, तब तक वह उसकी ज़मानत में रहेगा, फिर जब दीवार का काम शुरू करेगा तब से ग़ासिब ज़मान से बरी हो जाएगा। इसी तरह अगर मालिक से सेवा के लिए किराए पर लिया हो तो भी यही हुक्म है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि अगर एक व्यक्ति ने दूसरे का गुलाम हड़प लिया फिर मालिक से उसे किराए पर लिया तो यह सही है, और किराएदार को केवल अनुबंध (अक़्द) के आधार पर उस पर काबिज़ माना जाएगा और वह ग़सब के ज़मान से बरी हो जाएगा, क्योंकि

ग़सब का कब्ज़ा किराए के कब्ज़े का प्रतिनिधि होगा, क्योंकि जब ग़सब का कब्ज़ा खरीद के कब्ज़े का प्रतिनिधि होता है तो प्राथमिकता के आधार पर किराए के कब्ज़े का प्रतिनिधि होगा। अतः जब केवल अनुबंध के माध्यम से किराए के रूप में काबिज़ घोषित किया गया, तो वह ग़ासिब नहीं रहेगा बल्कि अमीन (विश्वस्त) हो जाएगा और ज़मान समाप्त हो जाएगा, और फिर ज़मान दोबारा नहीं लौटेगा जब तक कि वह दोबारा कोई उल्लंघन न करे। (1) अतः यदि किराए की अवधि में गुलाम मर गया तो वह अमानत की स्थिति में मरा और जितनी अवधि गुज़र गई उसका किराया ग़ासिब पर अनिवार्य होगा और शेष समाप्त हो जाएगा। फिर यदि किराए की अवधि बीत गई और गुलाम जीवित मौजूद है, तो ज़मान नहीं लौटेगा यानी वह हर्जाने वाला माल नहीं बनेगा। 'मुन्तक़ी' में है कि यदि किसी व्यक्ति ने गुलाम हड़प लिया और फिर उससे किसी काम के लिए किराए पर लिया, तो जिस समय गुलाम उस काम को शुरू करेगा, उस समय ग़ासिब ज़मान से बरी हो जाएगा, क्योंकि ग़ासिब पर किराया अनिवार्य होगा, यह 'ज़ख़ीरा' में है।

- यदि हड़पे हुए माल को मालिक ने ग़ासिब को उधारी (आरियत) पर दे दिया, तो ग़ासिब केवल इतने से बरी नहीं होगा, यहाँ तक कि यदि इस्तेमाल से पहले वह माल नष्ट हो गया तो ग़ासिब पर उसकी ज़मानत अनिवार्य होगी। और अगर मालिक ने ग़ासिब से कहा कि मैंने हड़पा हुआ माल तेरी धरोहर (वदीअत) में दिया और फिर वह माल ग़ासिब के पास नष्ट हो गया, तो ग़ासिब ज़िम्मेदार होगा क्योंकि स्पष्ट रूप से ज़मान से बरी होना नहीं पाया गया और वदीअत का अनुबंध और सुरक्षा का आदेश दोनों ग़सब के ज़मान के विरुद्ध नहीं हैं। यह 'फ़ुसूल इमादिया' में है। स्पष्ट रहे कि यदि हड़पी हुई दासी का निकाह कर दिया, तो इमाम अबू यूसुफ़ के कयास पर ग़ासिब तत्काल ज़मान से बरी हो जाएगा और इमाम आज़म (रह.) के निकट बरी नहीं होगा, और यह मतभेद बिक्री के मतभेद की शाखाओं में से है।
- (1) ज़मीर (सर्वनाम) किसी विशेष व्यक्ति की ओर नहीं बल्कि उस व्यक्ति की ओर है जिसे वह चीज़ पहुँचाई जाए। (1) यानी हड़पा हुआ अनाज हो। (2) फिर कोई ऐसा कार्य हो जिससे ज़मान (हर्जाना) अनिवार्य हो जाए।

- یا اُس کو ہبہ کر دیا یہاں تک کہ اُس نے پہن لیا اور پھٹ گیا تو بھی یہی حکم ہے اسی طرح اگر غاصب نے اناج غصب کر کے مالک کو کھانے کو دیا اور اس نے کھایا خواہ مالک نے اُس کو جانا ہو یا نہ جانا ہو اسی طرح اگر مالک خود غاصب کے گھر میں آیا اور وہی اناج جو غاصب نے غصب کیا تھا خود کھا لیا خواہ پہچانا ہو یا نہ پہچانا ہو تو بھی یہی حکم ہے غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا اور اگر غاصب نے آٹے(۱) کی روٹیاں پکا کر یا گوشت کو بھون کر پھر مالک کو کھلادیا تو ضمان سے بری نہ ہو گا اس واسطے کہ مالک نے مال مغصوب پر اس صورت میں اپنا قبضہ ثابت نہیں کیا اور اگر مغصوبہ باندی غاصب کے پاس ایک آنکھ سے معذور ہو گئی یا اُس کا دانت گر گیا پھر غاصب نے مالک کو واپس کر دی پھر مالک کے پاس اُس کی آنکھ کا عذر زائل ہو گیا یا دانت جم آیا تو اُس کی ضمان سے غاصب بری ہو جائے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔
- اگر کوئی غلام غصب کیا پھر اُس کی آنکھ میں پھلی پڑ گئی پھر غاصب نے مالک کو واپس دیا اور مالک نے اس نقصان کا جرمانہ لے لیا پھر مالک نے اُس کو فروخت کیا اور مشتری کے پاس اُس کی آنکھ صاف ہو گئی تو جس قدر مالک نے آنکھ کے نقصان کا جرمانہ غاصب سے لیا ہے اُس کو غاصب واپس لے گا اس واسطے کہ جرم کا اثر زائل ہو گیا یہ ظہریہ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کا دار غصب کیا پھر مالک سے اُس کو کرایہ پر لیا حالانکہ وہ دار دونوں کے حضور میں نہیں ہے تو ضمان سے بری نہ ہوگا اور اگر غاصب اس میں رہتا ہو یا اس میں رہنے پر قادر ہو تو ضمان سے بری ہو جائے گا کیونکہ اُس پر کرایہ واجب ہو گیا یہ وجیز کردری میں ہے اور اگر زید نے عمرو کے غصب کیے ہوئے غلام کو عمرو سے اپنی

کوئی دیوار معلوم بنانے کے واسطے اجارہ پر لیا تو جب تک وہ غلام دیوار کا کام شروع نہ کرے تب تک وہ اُس کی ضمان میں رہے گا پھر جب دیوار کا کام شروع کرے گا تب سے غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا اسی طرح اگر مالک سے خدمت کے واسطے اجارہ لیا ہو تو بھی یہی حکم ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ایک شخص نے دوسرے کا غلام غصب کیا پھر مالک سے اس کو اجارہ پر لیا تو صحیح ہے اور مستاجر فقط عقدی سے اُس پر قابض قرار دیا جائے گا اور ضمان غصب سے بری ہو جائے گا اس واسطے کہ قبضہ غصب قبضہء اجارہ کا نائب ہوگا اس لیے کہ جب قبضہ غصب قبضہ خرید کا نائب ہوتا ہے تو بدرجہ اولیٰ قبضہء اجارہ کا نائب ہوگا پس جب فقط عقدی سے بطریق اجارہ قابض قرار دیا گیا تو وہ غاصب نہ رہے گا بلکہ امین ہو جائے گا اور ضمان مرتفع ہو جائے گی اور پھر ضمان عود نہ کرے گی مگر جب کہ دوبارہ کوئی تعدی کرے۔(۱) پس اگر مدت اجارہ میں غلام مر گیا تو امانت میں مرا اور جس قدر مدت گذری ہو اُس کی اجرت غاصب پر واجب ہو گی اور باقی ساقط ہو جائے گی پھر اگر اجارہ کی مدت گذر گئی اور غلام زندہ موجود ہے تو ضمان عود نہ کرے گی یعنی مال مضمون نہ ہو جائے گا اور منتقی میں ہے کہ اگر کسی شخص سے غلام غصب کر کے پھر اُس سے کسی کام کے واسطے اجارہ لیا تو جس وقت غلام اُس کام کو شروع کرے گا اُس وقت غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا اس واسطے کہ غاصب پر اجرت واجب ہو گی یہ ذخیرہ میں ہے۔

- اگر مال مغصوب کو مالک نے غاصب کو عاریت دیا تو غاصب فقط اتنے سے بری نہ ہو جائے گا حتیٰ کہ اگر قبل استعمال کے وہ مال تلف ہو گیا تو غاصب پر اُس کی ضمان واجب ہوگی اور اگر مالک نے غاصب سے کہا کہ میں نے مال مغصوب تیری ودیعت میں دیا پھر وہ مال غاصب کے پاس تلف ہو گیا تو غاصب ضامن ہو گا اس واسطے کہ ضمان سے بری کرنا

صریحاً نہیں پایا گیا اور عقد ودیعت و حکم بحفاظت دونوں ضمان غصب کے منافی نہیں ہیں یہ فصول عمادیہ میں ہے واضح ہو کہ مغصوبہ باندی کا نکاح کر دیا تو امام ابو یوسف کے قیاس پر غاصب فی الحال ضمان سے بری ہو جائے گا اور امام اعظمؒ کے نزدیک نہیں بری ہو گا اور یہ اختلاف فروع اختلاف بیع۔

- (۱) ضمیر کسی خاص شخص کی طرف نہیں بلکہ جس شخص کو وہ چیز پہنچائی جائے۔ (۱) یعنی مغصوب آنا ہو۔ (۲) پھر کوئی فعل موجب ضمان صادر ہو۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) [123] The Book of Usurpation (Al-Ghasb)**

The question arises: does marriage make the owner the possessor? If her husband has consummated the marriage with her, the usurper (Ghasib) is exonerated by legal consensus (Ijma). This is stated in 'Siraj al-Wahaj'. If the victim of usurpation (Maghsub minhu) hires the usurper to teach a skill to the usurped property, it is permissible; however, the property remains under the liability (Daman) of the usurper. If the subject dies before or after starting the apprenticeship, the usurper remains liable. Similarly, if the victim hires the usurper to wash usurped clothes, the same ruling applies, as mentioned in 'Al-Muhit'. If Zaid usurps wheat from Amr and then gives it back to Amr to grind for him, and Amr grinds it before realizing it was his own wheat, Amr has the right to keep all the flour. Likewise, if yarn is usurped from Amr and given back to him to weave into cloth, and Amr later realizes it was his own yarn, the same ruling applies. Furthermore, if Zaid usurps an animal from Amr, and Amr dies, and his heir comes to Zaid and borrows that same animal (Ariyat), and it dies in the heir's possession, Zaid is exonerated from liability for its value. This is stated in 'Fatawa Qazi Khan'.

If the usurper sells the usurped property by the order of a judge (Qazi), he is exonerated from liability, just as he would be if sold by the owner's order. This is found in 'Khazanat al-Muftin'. If the owner orders the usurper to sell a usurped slave, it is valid, and the usurper is considered an agent (Wakil); however, merely receiving the order or conducting the sale does not exonerate him until the slave is delivered to the buyer. If the slave dies after the sale but before delivery, the sale is voided, and the usurper remains liable for the value. Similarly, if the victim sells the usurped property himself, the usurper is not exonerated until delivery to the buyer. It is further clarified that if the usurper sells the property by the victim's order and the buyer returns it due to a defect, then if it was returned before possession was established, it remains under the usurper's liability. If returned after possession, it no longer remains a liability in the usurper's hands. This is in 'Al-Zakhirah'. If the owner orders the usurper to sacrifice a usurped goat, the usurper is not exonerated until the sacrifice is performed, as per 'Fusul Imadiyyah'. Regarding returning usurped property, the general rule is exoneration. Imam Khwaharzadah states in 'Kitab al-Iqrar' that there are several scenarios: if the victim is an adult, the standard rule applies. If they are a minor and authorized to trade (Ma’dhun), the same applies. If the minor is legally restricted (Mahjur) and lacks understanding of possession and protection, and the usurper returns the property after having moved it (Tahwil[1]), he is

not exonerated. However, if returned before moving it, he is exonerated based on legal preference (Istihsan). If a restricted minor has understanding, scholars differ; 'Fatawa Fazli' states that if the minor understands transactions, the usurper is exonerated. If usurped coins (Dirhams) were spent and equivalent coins returned to a rational minor, the usurper is exonerated if the minor is 'Ma’dhun', but not if 'Mahjur'. This is in 'Al-Muhit'. Returning a usurped saddle to an animal's back does not exonerate liability, as per 'Wajiz Kurdari'. If one usurps firewood and later hires the victim to cook for him, and the victim unknowingly burns his own usurped wood, the scholars state that while there is no specific precedent, the correct ruling is that the usurper is exonerated from liability. This is found in 'Jawahir al-Akhlati'.

---

[1] Tahwil: Moving property from one place to another to establish the act of usurpation and where a price difference may occur.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) [123] किताबुल ग़सब (छीनने का अध्याय)**

यह चर्चा है कि क्या निकाह करने से मालिक का उस पर अधिकार (कब्ज़ा) हो जाएगा या नहीं? और यदि उसके पति ने उसके साथ समागम (सहवास) कर लिया, तो सर्वसम्मति (इज्मा) के अनुसार ग़ासिब (हड़पने वाला) दोषमुक्त हो जाएगा। यह 'सिराज अल-वहाज' में है। यदि पीड़ित (जिसका माल छीना गया) ने ग़ासिब को छीनी हुई वस्तु का कोई काम सिखाने के लिए नौकर रखा, तो यह जायज़ है, लेकिन वह वस्तु ग़ासिब के पास उसी प्रकार दायित्व (ज़मानत) में रहेगी। यदि वह काम सीखने से पहले या बाद में मर गया, तो ग़ासिब ज़िम्मेदार होगा। इसी प्रकार यदि पीड़ित ने ग़ासिब को कपड़े धोने के लिए नौकर रखा, तो भी यही हुक्म है। यह 'मुहीत' में वर्णित है। यदि ज़ैद ने अम्र के गेहूं छीन लिए और फिर अम्र को दिए कि मेरे लिए इन्हें पीस दो, और अम्र ने पीस दिए, फिर उसे पता चला कि ये मेरे ही गेहूं हैं, तो उसे अधिकार होगा कि वह पूरा आटा अपने पास रख ले। इसी तरह यदि अम्र का सूत छीनकर फिर अम्र को देकर कहा कि मेरे लिए इसका कपड़ा बुन दो, और अम्र को बाद में पता चला कि यह मेरा ही सूत है, तो भी यही हुक्म है। इसी तरह यदि ज़ैद ने अम्र का जानवर छीना और अम्र मर गया, और उसका वारिस ज़ैद के पास आया और वही जानवर उधार (आरियत) मांगा और ज़ैद ने दे दिया, फिर वह जानवर वारिस के पास मर गया, तो ज़ैद उसके जुर्माने से बरी हो जाएगा। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

यदि ग़ासिब ने छीने हुए माल को काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से बेचा, तो वह हर्ज़ाने (ज़मानत) से बरी हो जाएगा, जैसे मालिक के आदेश से बेचने पर बरी होता है। यह 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। यदि मालिक ने ग़ासिब को आदेश दिया कि छीने हुए गुलाम को बेच दे, तो यह सही है और ग़ासिब को प्रतिनिधि (वकील) माना जाएगा। लेकिन केवल आदेश देने से ग़ासिब ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं होगा, और न ही केवल बेच देने से, जब तक कि वह गुलाम ग्राहक को सुपुर्द न कर दिया जाए। यदि सुपुर्दगी से पहले गुलाम मर गया, तो बिक्री रद्द हो जाएगी और ग़ासिब उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा। इसी प्रकार यदि पीड़ित ने स्वयं छीना हुआ माल बेच दिया, तो ग्राहक को सुपुर्द करने से पहले ग़ासिब ज़िम्मेदारी से बरी नहीं होगा। आगे स्पष्ट है कि यदि ग़ासिब ने पीड़ित के आदेश से माल बेच दिया और ग्राहक ने किसी दोष (ऐब) के कारण उसे लौटा दिया, तो यदि कब्ज़ा करने से पहले लौटाया है, तो वह ग़ासिब के पास दायित्व (ज़मानत) के साथ रहेगा। और यदि कब्ज़ा करने के बाद लौटाया है, तो ग़ासिब के हाथ में वह दायित्व के रूप में नहीं रहेगा। यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि मालिक ने ग़ासिब को आदेश दिया कि छीनी हुई बकरी की कुर्बानी कर दे, तो कुर्बानी करने से पहले ग़ासिब उसकी

ज़िम्मेदारी से बरी नहीं होगा। यह 'फ़ुसूल एमादिया' में है। यदि ग़ासिब ने पीड़ित को माल लौटा दिया, तो किताब में सामान्य नियम है कि वह ज़िम्मेदारी से बरी हो जाएगा। इमाम ख़्वाहरज़ादा ने 'किताबुल इक़रार' में फरमाया कि इसके कई रूप हैं: यदि पीड़ित बालिग़ (वयस्क) है, तो वही हुक्म है। यदि नाबालिग है और व्यापार की अनुमति प्राप्त (माज़ून) है, तो भी यही हुक्म है। यदि वह प्रतिबंधित (महजूर) है और कब्ज़े व सुरक्षा की समझ नहीं रखता, और ग़ासिब ने माल छीनकर और उसकी जगह बदलकर[1] उसे वापस किया, तो वह बरी नहीं होगा। लेकिन यदि जगह बदलने से पहले वापस कर दिया, तो इस्तेहसानन (कानूनी प्राथमिकता के आधार पर) बरी हो जाएगा। यदि नाबालिग महजूर ऐसा है जो समझ रखता है, तो इसमें विद्वानों का मतभेद है। 'फ़तावा फ़ज़ली' के अनुसार यदि नाबालिग लेन-देन समझता है, तो ग़ासिब बरी हो जाएगा। यदि छीना हुआ माल नक़द (दरहम) हो और ग़ासिब ने उसे ख़र्च (तलफ़) कर दिया, फिर वैसा ही नाबालिग को लौटा दिया और वह नाबालिग बुद्धिमान (आक़िल) है: यदि वह माज़ून है तो ग़ासिब बरी होगा, यदि महजूर है तो नहीं। यह 'मुहीत' में है। यदि जानवर की पीठ से जीन छीनकर फिर उसी पर रख दी, तो ज़िम्मेदारी से बरी नहीं होगा। यह 'वजीज़ कुरदरी' में है। यदि किसी ने ईंधन की लकड़ी छीनी और फिर पीड़ित को ही खाना पकाने के लिए मज़दूरी पर लगाया और उसने वही लकड़ियां जला दीं और यह नहीं जाना कि ये वही हैं, तो विद्वानों ने फरमाया कि इस पर कोई स्पष्ट रिवायत नहीं है, परंतु सही हुक्म यही है कि ग़ासिब ज़िम्मेदारी से बरी हो जाएगा। यह 'जवाहर अख़लाती' में है।

---

[1] तहवील: एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना, जिससे छीनने (ग़सब) की क्रिया पुष्ट हो जाए और कीमत में अंतर आ सके।

ہے آیا نکاح کرنے سے مالک قابض ہو جائے گا یا نہیں اور اگر اس کے شوہر نے اس سے وطی کر لی تو بالاجماع غاصب بری ہو جائے گا یہ سراج الوہاج میں ہے اور مغصوب منہ نے مغصوب کو کوئی کام سکھلانے کے واسطے غاصب کو اجیر مقرر کیا تو جائز ہے مگر وہ غاصب کے پاس اسی طرح مضمون رہے گا کہ اگر یہ کام سیکھنا شروع کرنے سے پہلے یا بعد مر گیا تو غاصب ضامن ہو گا اسی طرح اگر غاصب کو مغصوب نے کپڑے کے دھونے کے واسطے اجیر مقرر کیا تو بھی یہی حکم ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر زید نے عمرو کے گیہوں غصب کر کے پھر عمرو کو دیئے کہ میرے واسطے ان کو پیس دے اُس نے پیسی پھر اُس کو معلوم ہوا کہ یہ وہی میرے گیہوں ہیں تو اُس کو اختیار ہو گا کہ آٹا سب داب رکھے اسی طرح اگر عمرو کا سوت غصب کر کے پھر عمرو کو دے کر کہا کہ میرے واسطے اس کا کپڑا بُن دے پھر عمرو کو معلوم ہوا کہ میرا سوت ہے تو بھی یہی حکم ہے اسی طرح اگر زید نے عمرو کا جانور غصب کیا اور عمرو مر گیا اور اُس کا وارث زید کے پاس آیا اور وہ جانور عاریت مانگا اور زید نے دے دیا اور وہ وارث کے پاس مر گیا تو زید اس کے تاوان سے بری ہو جائے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

غاصب نے اگر مال مغصوب کو بحکم قاضی فروخت کیا تو ضمان سے بری ہو جائے گا جیسے بحکم مالک فروخت کرنے میں بری ہوتا ہے یہ خزانۃ المفتین میں ہے اگر مالک نے غاصب کو حکم دیا کہ غلام مغصوب فروخت کرے تو صحیح ہے اور غاصب وکیل قرار دیا جائے گا مگر فقط حکم دینے سے غاصب ضمان سے بری نہ ہو گا اور نہ فقط بیع کر دینے سے بری ہو گا حتی کہ اگر بعد بیع کے مشتری کو سپرد کرنے سے پہلے وہ غلام مر گیا تو بیع ٹوٹ جائے گی اور غاصب اُس کی قیمت کا ضامن ہو گا اسی طرح اگر مغصوب منہ نے مال مغصوب خود ہی فروخت کیا تو

مشتری کو سپرد کرنے سے پہلے غاصب اُس کی ضمان سے بری نہ ہو گا۔ پھر واضح ہو کہ اگر غاصب نے مغصوب منہ کے حکم سے مال مغصوب فروخت کر دیا پھر مشتری نے بسبب عیب کے غاصب کو واپس کیا پس اگر قبضہ سے پہلے واپس کیا ہو تو بحال غاصب کے پاس مضمون رہے گا اور اگر بعد قبضہ کے واپس کیا تو غاصب کے ہاتھ میں مضمون ہو کر نہ رہے گا یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر مالک نے غاصب کو حکم دیا کہ غصب کی ہوئی بکری کی قربانی کر دے تو قربانی کر دینے سے پہلے غاصب اُس کی ضمان سے بری نہ ہو گا یہ فصول عمادیہ میں ہے۔ اگر غاصب نے مغصوب منہ کو مال مغصوب واپس کیا تو کتاب میں حکم مطلق مذکور ہے کہ ضمان سے بری ہو جائے گا اور امام خواہر زادہ نے کتاب الاقرار میں فرمایا کہ حاصل مسئلہ کی چند صورتیں ہیں اگر مغصوب منہ بالغ ہو تو وہی حکم ہے جو کتاب میں مذکور ہے اور اگر نابالغ ہو پس اگر ماذون التجارۃ ہو تو بھی وہی حکم ہے اور اگر محجور ہو پس اگر قبضہ و حفاظت کو نہ سمجھتا ہو اور غاصب نے وہ مال اُس سے غصب کرنے اور اپنی جگہ سے تحویل[1] کرنے کے بعد اُس کو واپس کیا تو بری نہ ہو گا اور اگر اپنی جگہ سے تحویل کرنے سے پہلے اُس کو واپس کیا تو استحساناً بری ہو جائے گا اور اگر نابالغ محجور ایسا ہو کہ قبضہ و حفاظت کو سمجھتا ہو تو اس میں مشائخ کا اختلاف ہے اور فتاویٰ فضلی میں لکھا ہے کہ اگر نابالغ لینا و دینا سمجھتا ہو تو غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا اور کچھ اختلاف ذکر نہیں کیا اور اگر نہ سمجھتا ہو تو بری نہ ہو گا اور کچھ تفصیل ذکر نہیں فرمائی اور بھی فتاویٰ فضلی میں لکھا ہے کہ اگر مال مغصوب درہم ہوں اور غاصب نے ان کو تلف کر دیا پھر اُن کے مثل نابالغ کو واپس دیئے اور وہ نابالغ عاقل ہے پس اگر وہ نابالغ عاقل ماذون ہو تو غاصب بری ہو جائے گا اور اگر محجور ہو تو بری نہ ہو گا یہ محیط میں ہے اگر جانور کی پیٹھ پر سے زین غصب کر کے پھر اس کی پیٹھ پر لوٹا دی تو ضمان سے بری نہ ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے ایک شخص نے ایندھن کی لکڑی غصب کر کے

پھر مغصوب منہ کو اپنی ہانڈیاں پکانے کے واسطے مزدور کیا اور اُس نے ہانڈیوں کے نیچے وہی لکڑیاں جلائیں اور یہ نہ جانا کہ یہ وہی لکڑیاں ہیں تو مشائخ نے فرمایا کہ اُس کی کوئی روایت نہیں ہے اور صحیح یہ حکم ہے کہ غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا یہ جواہر اخلاطی میں ہے۔

---

۱ تحویل ایک جگہ سے دوسری جگہ منتقل کرنا اور یہ اس واسطے کہ غصب متحقق ہو اور قیمت میں فرق ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 124 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

If Zaid has a debt against Amr, and Zaid takes property from Amr's assets equivalent to his right, Sadr al-Shaheed has stated that the preferred view (Mukhtar) is that Zaid shall not be considered a usurper (Ghasib) because he took it with the permission of Sharia. However, he will be liable (Mazmun alaihi) for it. This is considered a method of debt repayment, as mentioned in 'Al-Muhit'. If one person owes a debt to another, and a third party takes from the debtor's property and gives it to the creditor, the scholars (Mashaykh) differ. Sheikh Nasir bin Yahya stated that this property will be considered as an offset (Qisas) for the debt, meaning an exchange occurs because the person who facilitated it acted as an assistant in the creditor's recovery. The fatwa is based on this view, as found in 'Fatawa Qazi Khan'. If a person removes a ring from a sleeping individual and puts it back while they are still asleep, he is absolved of liability. However, if the person wakes up and then falls asleep again, and the ring is replaced during the second sleep, he is not absolved because in the first instance, the obligation was to return it to a sleeper which was fulfilled, but in the second, the obligation was to return it upon awakening, which was not fulfilled. In summary, regarding returning a ring to a sleeper's finger, socks to their feet, or a cap to their head, Imam Abu Yusuf considers 'Ittihad al-Naum' (unity of sleep - same sleep session) as the criterion. According to Imam Muhammad, the unity of the assembly (Ittihad al-Majlis) is reliable; if the person returns it at the same place where it was removed, he is absolved of indemnity, even if returned during sleep. If the location was not changed and it was put back on the finger or foot, the liability (Dhaman) lapses. If the location changed and it was returned during the same or another sleep, he is not absolved until it is returned while the owner is awake. This is mentioned in 'Al-Wajiz al-Kardari'.

If a person wears another's garment in their absence without permission and then puts it back, he is not absolved of liability. The scholars stated that this rule applies if he wore it in the manner he habitually wears clothes. If it was just a shirt placed over the shoulder and then returned, unanimously, he is not liable. It is narrated from Imam Muhammad in 'Al-Muntaqa' via Ibn Sama'ah that if a person takes a garment from someone's house without permission, wears it, and returns it to its original place, and it subsequently perishes, then by judicial preference (Istihsan), there is no liability on him. Similarly, if someone takes another's animal from its stall (tethering post) without permission and returns it, by Istihsan, he is not liable. However, if an animal is taken forcibly from someone's hand and brought back, but the owner or

servant is not found and the person ties it at its stall, he remains liable; Shams al-A'imma al-Sarakhsi stated this clearly in 'Sharh Kitab al-Ariya'. This is also in 'Al-Zakhira'. If a person has a bag with a thousand dirhams and someone removes half, then returns the same amount after a few days, he is liable only for the amount he removed and replaced, not for the rest. Simply putting it back in the bag does not absolve him of the initial liability. If a usurper brings back usurped property and places it in the owner's lap without the owner realizing it is theirs, and then someone else takes it, the correct view is that the usurper is absolved (Al-Muhit al-Sarakhsi). If usurped property is destroyed and the usurper wants to pay its value to the owner without a judge's order, but the owner refuses and the usurper leaves it before him, he is not absolved of liability. However, if he places it in the owner's hand or lap, he is absolved. If a usurper returns property to one heir of the person it was taken from, he is not absolved regarding the other heirs' shares if returned without a judge's order (Sirajiyyah). If the usurper returned the property but the owner refused to accept it, and the usurper took it back to his own home, then if...

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 124 | किताब अल-ग़सब (छीनने का बयान)**

ज़ैद का उम्र पर क़र्ज़ है, ज़ैद ने उम्र के माल से अपने हक़ के बराबर ले लिया। सदर अल-शहीद ने फ़रमाया कि पसंदीदा राय (मुख्तार) यह है कि ज़ैद ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाला) नहीं होगा क्योंकि उसने शरीयत की इजाज़त से लिया है, लेकिन वह उस माल का ज़िम्मेदार (मज़मून अलैहि) हो जाएगा। यह ऋण अदायगी का एक तरीक़ा है, जैसा कि 'मुहीत' में वर्णित है। यदि किसी व्यक्ति पर दूसरे का क़र्ज़ है, और एक तीसरे व्यक्ति ने ऋणी (देयदार) के माल से लेकर लेनदार को दे दिया, तो विद्वानों (मशायख़) में मतभेद है। शेख नसीर बिन यह्या ने फ़रमाया कि यह माल क़र्ज़ के बदले में माना जाएगा (किसास होगा), यानी यह विनिमय हो जाएगा क्योंकि जिसने लेकर दिया है वह लेनदार की मदद करने वाले के समान हो गया। फ़तवा इसी राय पर है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि किसी ने सोते हुए व्यक्ति की अंगूठी उतार ली और फिर सोते हुए ही उसे वापस पहना दी, तो वह ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाएगा। लेकिन यदि वह व्यक्ति जाग गया और फिर सो गया, और दूसरी नींद के दौरान उसने उसे वापस पहनाई, तो वह मुक्त नहीं होगा, क्योंकि पहली स्थिति में सोते हुए व्यक्ति को वापस देना अनिवार्य था जो पूरा हो गया, जबकि दूसरी स्थिति में जागने पर वापस देना अनिवार्य था जो पूरा नहीं हुआ। संक्षेप में, सोते हुए व्यक्ति की उंगली में अंगूठी, पैरों में मोज़े या सिर पर टोपी वापस करने के मामले में, इमाम अबू यूसुफ़ 'इत्तेहादे नौम' (एक ही नींद की निरंतरता) का विचार करते हैं। इमाम मुहम्मद के निकट 'इत्तेहादे मजलिस' (एक ही बैठक) का होना विश्वसनीय है, यहाँ तक कि अगर उसने उसी स्थान पर जहाँ से चीज़ उतारी थी, वहीं वापस पहना दी तो वह हर्जाने से मुक्त हो जाएगा, चाहे उसने नींद में ही वापस दी हो। यदि वस्तु का स्थान नहीं बदला गया और उसे फिर से उंगली या पैर में पहना दिया गया तो ज़िम्मेदारी (ज़मान) समाप्त हो जाएगी। यदि स्थान बदल गया और उसी या दूसरी नींद में फिर से पहनाया गया, तो वह तब तक मुक्त नहीं होगा जब तक जागने की स्थिति में वापस न कर दे। यह 'वजीज़ करदरी' में उल्लेखित है।

यदि किसी ने दूसरे के कपड़े उसकी अनुपस्थिति और बिना अनुमति के पहन लिए, फिर उतार कर वहीं रख दिए, तो वह ज़िम्मेदारी (ज़मान) से मुक्त नहीं होगा। विद्वानों ने फ़रमाया कि यह नियम तब है जब वह उन कपड़ों को अपनी आदत के अनुसार पहनता हो। यदि वह केवल क़मीज़ थी जिसे उसने कंधे पर डाल लिया था और फिर उतार कर रख दिया, तो सर्वसम्मति से वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। 'मुन्तक़ा' में इब्न समाआ की रिवायत से इमाम मुहम्मद से वर्णित है कि यदि किसी ने दूसरे के घर से बिना अनुमति कपड़ा लिया, पहना और फिर वहीं रख दिया जहाँ से लिया था, और वह नष्ट हो गया,

तो 'इस्तेहसान' (न्यायिक औचित्य) के आधार पर वह ज़िम्मेदार नहीं है। इसी प्रकार, यदि किसी ने दूसरे का जानवर उसके थान (बाड़े) से बिना अनुमति लिया और फिर वापस वहीं पहुँचा दिया, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। परंतु यदि किसी के हाथ से ज़बरदस्ती जानवर छीना और फिर वापस करने लाया, लेकिन मालिक या सेवक नहीं मिला और उसने उसे थान पर बाँध दिया, तो वह ज़िम्मेदार होगा; इसे शम्स अल-अइम्मा सरख़सी ने 'शराह किताब अल-आरिया' में स्पष्ट किया है। यह 'ज़खीरा' में भी है। यदि किसी की थैली में एक हज़ार दिरहम हों और किसी ने आधे निकाल लिए, फिर कुछ दिनों बाद उतने ही वापस रख दिए, तो वह केवल उन दिरहमों का ज़िम्मेदार होगा जो उसने निकाले और वापस रखे, बाक़ी के लिए नहीं। थैली में वापस रखने मात्र से वह पिछली ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं होगा। यदि ग़ासिब छीना हुआ माल लाया और मालिक की गोद में रख दिया, जबकि मालिक को पता नहीं चला कि यह उसका अपना माल है, और फिर किसी और ने उसे उठा लिया, तो सही राय यह है कि ग़ासिब ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाएगा (मुहीत सरख़सी)। यदि ग़ासिब ने माल नष्ट होने पर क़ाज़ी के आदेश के बिना मालिक को उसकी क़ीमत देनी चाही और मालिक ने स्वीकार नहीं की, और ग़ासिब उसे उसके सामने छोड़ गया, तो वह ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं होगा। लेकिन यदि वह मालिक के हाथ या गोद में रख दे, तो मुक्त हो जाएगा। यदि ग़ासिब ने छीना हुआ माल मृतक के उत्तराधिकारियों में से किसी एक को वापस किया, तो वह अन्य उत्तराधिकारियों के हिस्से के प्रति तब तक मुक्त नहीं होगा जब तक कि यह वापसी क़ाज़ी के आदेश के बिना हो। यदि ग़ासिब ने माल वापस किया और मालिक ने स्वीकार नहीं किया, और वह उसे अपने घर ले गया, तो ऐसी स्थिति में...

---

زید کا عمرو پر قرضہ آتا ہے زید نے عمرو کے مال سے بقدر اپنے حق کے لے لیا تو صدر الشہید نے فرمایا کہ مختار یہ ہے کہ زید غاصب نہ ہوگا اس لیے کہ اس نے باجازت شرع لیا ہے لیکن اس سے مضمون علیہ ہو جائے گا اور پیاس واسطے کہ یہ ادائے قرض کا طریقہ ہے یہ محیط میں ہے ایک شخص کا دوسرے پر قرضہ آتا ہے پھر ایک شخص غیر نے مقروض کے مال سے لے کر قرض خواہ کو دے دیا تو مشائخ نے اختلاف کیا ہے شیخ نصیر بن یحییٰ نے فرمایا کہ یہ مال قرضہ کا قصاص ہو جائے گا یعنی ادلا بدلا جائے گا اس واسطے کہ جس نے لے کر دیا ہے وہ بمنزلہ قرض خواہ کے وصول کرنے کے مددگار کے ہو گیا اور فتویٰ اسی قول پر ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے ایک شخص نے سوتے ہوئے آدمی کی انگوٹھی اتار لی اور پھر سوتے ہی میں اس کو پہنا دی تو بری ہو جائے گا اور اگر وہ جاگا پھر سو گیا پھر دوسری نیند میں اس نے اس کو پہنا دی تو بری نہ ہوگا کیونکہ پہلی صورت میں سوتے کو واپس دینا واجب ہوا تھا اور وہ پایا گیا اور دوسری صورت میں جاگنے کو واپس دینا واجب ہوا تھا اور یہ نہ پایا گیا اور حاصل یہ ہے کہ سوتے آدمی کی انگلی میں انگوٹھی یا پاؤں میں موزہ یا سر پر ٹوپی واپس کرنے میں امام ابو یوسف ضمان سے بری ہونے کے واسطے اتحاد نوم یعنی نیند کا متحد ہونا اعتبار کرتے ہیں جیسا کہ اس مقام پر مذکور ہے اور امام محمد کے نزدیک مجلس کا متحد ہونا معتبر ہے حتی کہ اگر اس نے اسی مجلس میں جہاں سے چیز اتاری تھی وہیں پہنا دی تو تاوان سے بری ہو جائے گا اگرچہ نیند میں واپس دی ہو پس اگر اس کی جگہ سے تحویل نہ پائی گئی اور اس کی انگلی چاہے کوئی انگلی ہو یا پاؤں میں دوبارہ پہنا دی تو ضمان ساقط ہو جائے گی اور اگر اپنی جگہ سے تحویل پائی

گئی پھر اسی نیند میں یا دوسری نیند میں دوبارہ پہنا دی تو بری نہ ہو گا جب تک کہ اس کو جاگنے میں واپس نہ کرے یہ وجیز کردری میں ہے۔

اگر دوسرے شخص کا کپڑا اس کی غیبت میں بدوں اس کی اجازت کے پہن لیا پھر اتار کر اس کی جگہ پر رکھ دیا تو ضمان سے بری نہ ہوگا اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ یہ حکم اس صورت میں ہے کہ وہ کپڑا اس طرح پہنتا ہو جس طرح اس کے پہننے کی عادت جاری ہو اور اگر قمیص تھی اور اس کو اپنے کاندھے پر ڈال لیا پھر اتار کر اس کی جگہ پر رکھ دیا تو بالاتفاق ضامن نہ ہو گا اور منتقٰی میں ابن سماعہ کی روایت سے امام محمد سے مروی ہے کہ اگر ایک شخص نے دوسرے کے گھر سے اس کا کپڑا بدون اس کی اجازت کے لے لیا اور پہنا پھر اس کو اس کے گھر میں جہاں سے لیا تھا رکھ دیا اور وہ تلف ہو گیا تو استحساناً اس شخص پر ضمان نہیں ہے اسی طرح اگر دوسرے کا جانور اس کے تھان پر سے جہاں چارہ پاتا ہے بدون مالک کی اجازت کے لے لیا پھر اس کو اس کی جگہ پر واپس پہنچا دیا تو استحساناً ضامن نہ ہوگا اور اگر کسی شخص کے ہاتھ سے اس کا جانور براہ غصب لے لیا پھر اس کو واپس کرنے کو لایا مگر مالک یا خادم کو نہ پایا اور جانور کو اس کے تھان پر باندھ دیا تو وہ شخص ضامن ہوگا اس کو شمس الائمہ سرخسی نے شرح کتاب العاریہ میں صریح بیان فرمایا ہے یہ ذخیرہ میں ہے اگر ایک شخص کی تھیلی میں ہزار درہم ہوں اور ایک شخص نے اس تھیلی میں سے آدھے درہم نکال لیے پھر چند روز بعد جس قدر نکالے تھے واپس لا کر اس تھیلی میں رکھ دیے تو وہ شخص فقط اسی قدر درہموں کا ضامن ہوگا جتنے اس نے نکال کر واپس لا کر تھیلی میں رکھے ہیں دوسرے درہموں کا ضامن نہ ہو گا اور تھیلی میں واپس لا کر رکھنے سے ضمان سے بری نہ ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے اگر غاصب مال مغصوب کو لایا اور مالک کی گود میں رکھ دیا حالانکہ مالک کو معلوم نہ ہوا کہ یہ میری ملک ہے پھر ایک شخص نے آکر اس کو اٹھالیا تو صحیح یہ ہے کہ غاصب بری ہو جائے گا

کذا فی المحیط السرخسی اور اگر مال مغصوب کو تلف کر کے بلا حکم قاضی مالک کو قیمت دینی چاہی اور مالک نے قبول نہ کی اور غاصب اس کے سامنے رکھ گیا تو ضمان سے بری نہ ہو گا لیکن اگر مالک کے ہاتھ یا گود میں رکھ جائے تو بری ہو جائے گا یہ وجیز کردری میں ہے اور اگر غاصب نے مغصوب مال کسی ایک وارث منصوب منہ کو واپس دیا تو دوسرے وارثوں کے حصہ سے بری نہ ہو گا بشرطیکہ یہ واپس کرنا بدون حکم قاضی ہو یہ سراجیہ میں ہے غاصب نے مال مغصوب مالک کو واپس دیا مگر اس نے قبول نہ کیا اور غاصب اس کو اپنے گھر واپس لے گیا پس اگر اس

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 125 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...had not kept it with the owner and it perished while with the usurper (ghasib), he shall not be held liable (zamin). Taking it back to his house shall not establish a new act of usurpation as long as he has not returned it to the owner. If he placed it with the owner in such a manner that the owner's possession reached that item, and then the usurper took it back to his house and the item was destroyed while with the usurper, he shall be held liable. However, if the item remained in the usurper's hand and he did not place it with the owner but told the owner to take it, and the owner refused, then the item becomes a trust (amanat) in the usurper's hand (meaning he will not be liable for its destruction). This is mentioned in *Wajiz Kardari*. It is written in *Taymiyyah* that Sheikh Abu Ismah was asked: A man usurped dirhams from another's pouch and spent them, then he put an equivalent amount back into that person's pouch and mixed them with the owner's remaining dirhams without informing the owner. The Sheikh (Rh.) said that the ruling remains suspended until it is determined whether the owner spent all the dirhams that were in the pouch or picked up the pouch from where it was kept; at that moment, the liability (zaman) shall be discharged from the usurper. It is narrated from Sheikh Nasir that if one sees an animal standing in the path and moves it aside, he shall be liable. It is narrated from Sheikh Ibn Salama that if after being moved it stood still and then walked away, he shall not be liable; this is in *Tatarkhaniyah*.

A person had two *kur* (a measure) of wheat. One *kur* was usurped from him. Then the owner deposited the second *kur* as a trust (*wadi'at*) with that same usurper. The usurper then mixed it with the usurped *kur*. If all the wheat is subsequently destroyed, he shall be liable for the usurped *kur* but not for the entrusted *kur*. This is in *Muhit al-Sarakhsi*. If a person usurps a boat and boards it, and while in the middle of the river the owner meets him, the owner does not have the right to take his boat back right there, but he may lease (*ijarah*) it to him until they reach the shore. This ruling is based on mutual consideration for both parties. Similarly, if a person usurps another's animal and the owner meets the usurper in a dangerous place in the wilderness, he cannot take it back there, but he may lease it to him; this is in *Muhit*. A person was shrouded in usurped cloth and buried, and soil was thrown over him, whether three days passed or not, and then the owner of the shroud arrived. If the deceased left an estate or even if someone else pays its price, it is mandatory for the owner to accept it and not dig up the grave; this is by way of *Istihsan* (juridistic preference). However, if the owner does not receive the price, he has the choice to

either leave it for the sake of reward in the hereafter or dig up the grave and take his shroud. But the former is better as it contains his welfare in both religion and the world. If he digs up the grave and takes the shroud, and it has become damaged, he has the choice to claim compensation from those who shrouded and buried the deceased; this is in *Kubra*. If a person usurps a cloth, dirham, or animal, and it is still existing in its original form, and the owner exonerates the usurper (from the crime of usurpation), it is valid, and the usurped item becomes a trust in his possession. Similarly, if the owner declares it lawful for him (1), the usurper is discharged from liability whether the property exists or has perished. If it has perished, this statement is a discharge (*ibra*) from a debt (2), and if it exists, it is a discharge from the liability of usurpation, and the usurped item which is present with him (3) becomes a trust. This is in *Fatawa Qazi Khan*.

If a person cuts off a branch of another's tree and a new branch grows in its place, he shall not be discharged from liability. Similarly, if crops or greens are cut and new ones grow in their place, he shall not be discharged from liability for the cut crops or greens; this is in *Fusul al-Imadiyah*. It is written in *Fatawa Nasafi* that if a person usurps another's field and incorporates it into his building, or usurps another's plant and plants it in his own land and it grows large to the point that the owner's right is severed from it, then the owner says to the usurper, "I have gifted you the field and the plant," it is valid, and this statement is a discharge from liability. This is in *Muhit*. In *Nawazil* it is written that if a person usurps another's ewer...

---

(1) By saying: "You are released from my ownership" or similar. (2) He becomes free from compensation and price. (3) It will be a trust with the owner [as the legal status].

---

उसने मालिक के पास नहीं रखा था और वह ग़ासिब (हथियाने वाला) के पास नष्ट हो गया तो वह ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा, और उसे अपने घर वापस ले जाने से नया ग़सब (हथियाना) साबित नहीं होगा जब तक कि उसने उसे मालिक के पास न रख दिया हो। और यदि उसने मालिक के पास इस तरह रख दिया हो कि मालिक का कब्ज़ा उस चीज़ तक पहुँच जाए, फिर ग़ासिब उसे दोबारा अपने घर उठा ले गया और वह चीज़ ग़ासिब के पास नष्ट हो गई, तो वह ज़िम्मेदार होगा। लेकिन जब वह चीज़ ग़ासिब के हाथ में ही रही और उसने मालिक के पास नहीं रखी, मगर मालिक से कहा कि इसे ले लो और मालिक ने स्वीकार नहीं किया, तो वह चीज़ ग़ासिब के हाथ में अमानत हो गई (अर्थात नष्ट होने पर वह ज़िम्मेदार नहीं होगा)। यह 'वजीज़ करदरी' में है। 'तैमिया' में लिखा है कि शेख अबू अस्मा से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने दूसरे की थैली से दरहम हथिया कर अपने खर्च में ले आया, फिर जितने लिए थे उतने ही उस व्यक्ति की थैली में डालकर उसके दरहमों में मिला दिए बिना मालिक को बताए, तो शेख (रह.) ने फरमाया कि अभी हुक्म रुका रहेगा यहाँ तक कि यह पता चले कि उसके मालिक ने थैली में जो कुछ दरहम थे सब खर्च कर दिए या थैली जहाँ रखी थी वहाँ से उठा ली, तो उस समय ग़ासिब के ज़िम्मे से मुआवज़ा (ज़मान) समाप्त हो जाएगा। और शेख नसीर से वर्णित है कि यदि रास्ते में एक जानवर खड़ा देखकर उसे एक तरफ हटा दिया तो वह ज़िम्मेदार होगा, और शेख इब्न सलमा से वर्णित है कि यदि हटाने के बाद वह खड़ा हो गया फिर चला गया तो ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'ततारखानिया' में है।

एक व्यक्ति के पास दो 'कुर' (मात्रा) गेहूँ थे, उसमें से एक कुर हथिया लिया गया। फिर मालिक ने दूसरा कुर उसी ग़ासिब के पास अमानत (वदीअत) रखा। फिर ग़ासिब ने उसे हथियाए हुए कुर में मिला दिया, फिर ये सब गेहूँ नष्ट हो गए, तो वह हथियाए हुए कुर का ज़िम्मेदार होगा और अमानत वाले कुर का ज़िम्मेदार नहीं होगा। यह 'मुहीत सरख़सी' में है। यदि किसी व्यक्ति की नाव हथिया कर उस पर सवार हुआ, जब बीच दरिया में पहुँचा तो नाव का मालिक उसे मिला, तो मालिक को यह अधिकार नहीं होगा कि वहीं उससे अपनी नाव वापस ले, लेकिन वहाँ से किनारे तक उसे किराए (इजारा) पर दे दे। और यह हुक्म दोनों पक्षों की सुविधा को देखते हुए है। इसी तरह यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे का जानवर हथिया लिया और जंगल में किसी खतरनाक स्थान पर उसका मालिक ग़ासिब से मिला, तो वहीं उससे वापस नहीं ले सकता, बल्कि वहाँ से उसे किराए पर दे दे, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति को हथियाए हुए कपड़े का कफ़न देकर दफन कर दिया गया और उस पर मिट्टी

डाल दी गई, और तीन दिन बीत गए या नहीं बीते, फिर कफ़न का मालिक आया। अब यदि मृतक की संपत्ति (तरका) मौजूद हो या न हो, मगर कोई उसकी कीमत दे दे, तो मालिक पर अनिवार्य होगा कि उसे ले ले और कब्र को न खोदे, और यह 'इस्तेहसान' (न्यायसंगत प्राथमिकता) है। और यदि मालिक को कीमत नहीं मिली, तो उसे अधिकार होगा कि चाहे अपनी आख़िरत के सवाब के लिए छोड़ दे या कब्र खोदकर अपना कफ़न ले ले, मगर पहली बात श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें उसके दीन और दुनिया की भलाई है। और यदि उसने कब्र खोदकर कफ़न ले लिया और वह कफ़न ख़राब हो गया है, तो उसे अधिकार होगा कि जिन्होंने मृतक को कफ़ना कर दफ़नाया है उनसे मुआवज़ा ले, यह 'कुबरा' में है। यदि किसी व्यक्ति ने कपड़ा या दरहम या जानवर हथियाया और वह वैसा ही मौजूद है, और मालिक ने ग़ासिब को उससे बरी कर दिया (ग़सब के अपराध से), तो यह सही है और वह धन उसके पास अमानत हो जाएगा। इसी तरह यदि मालिक ने उसे उसके लिए वैध (हलाल) कर दिया (1), तो ग़ासिब मुआवज़े से मुक्त हो जाएगा, चाहे वह माल मौजूद हो या नष्ट हो गया हो। यदि नष्ट हो गया होगा तो यह कथन ऋण से मुक्ति (इब्रा) (2) है, और यदि मौजूद होगा तो यह ग़सब के मुआवज़े से मुक्ति है, और वह हथियाई हुई चीज़ जो उसके पास (3) मौजूद है, वह उसके पास अमानत हो जाएगी, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे के पेड़ की शाखा काट डाली और उसकी जगह दूसरी शाखा निकल आई, तो वह मुआवज़े से बरी नहीं होगा। इसी तरह यदि फसल या साग काट डाला और उसकी जगह दूसरा उग आया, तो काटी गई फसल या साग के मुआवज़े से मुक्त नहीं होगा, यह 'फ़ुसूल-ए-इमादिया' में है। 'फ़तावा नसफ़ी' में लिखा है कि एक व्यक्ति ने दूसरे का मैदान हथिया कर उसे अपनी इमारत में शामिल कर लिया या दूसरे का पौधा हथिया कर अपनी ज़मीन में लगा दिया और वह बड़ा हो गया यहाँ तक कि मालिक का अधिकार उससे समाप्त हो गया, फिर मालिक ने ग़ासिब से कहा कि मैंने तुम्हें मैदान और पौधा दान (हिबा) कर दिया, तो यह सही है और यह कथन मुआवज़े से मुक्ति है। यह 'मुहीत' में है और 'नवाज़िल' में लिखा है कि किसी व्यक्ति ने दूसरे की सुराही...

---

(1) ऐसा कह दिया कि "अन्ता फी हल्लिम मिन मिल्की" (तुम्हें मेरी मिल्कियत से छूट है)। (2) जुर्माने और कीमत से बरी हो जाएगा। (3) मालिक के पास अमानत होगी।

---

نے مالک کے پاس رکھانہ تھا اور وہ غاصب کے پاس تلف ہو گیا تو ضامن نہ ہو گا اور اپنے گھر واپس لے جانے سے غصب جدید ثابت نہ ہو گا جب کہ اُس نے مالک کے پاس نہ رکھ دیا ہو اور اگر مالک کے پاس اس طرح رکھ دیا ہو کہ مالک کا قبضہ اُس چیز تک پہنچتا ہو پھر غاصب اُس کو دوبارہ اپنے گھر اٹھا لے گیا اور وہ چیز غاصب کے پاس ضائع ہو گئی تو ضامن ہو گا لیکن جب کہ وہ چیز غاصب کے ہاتھ ہی میں رہی اور اُس نے مالک کے پاس نہ رکھی مگر مالک سے کہا کہ اس کو لے لے اور مالک نے قبول نہ کیا تو وہ چیز غاصب کے ہاتھ میں امانت ہو گئی (یعنی ضائع ہونے سے ضامن نہ ہو گا) یہ وجیز کردری میں ہے تیمیّہ میں لکھا ہے کہ شیخ ابو عصمہ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص دوسرے کی تھیلی سے درہم غصب کر کے اپنے خرچ میں لایا پھر جس قدر لیے تھے اس کے مثل اُس شخص کی تھیلی میں ڈال کر اُس کے درہموں میں مخلوط کر دیے بدون اس کے کہ اُس کے مالک کو آگاہ کرے تو شیخ رحمہ اللہ نے فرمایا کہ ابھی حکم موقوف رہے گا یہاں تک کہ یہ دریافت ہو کہ اُس کے مالک نے جو کچھ تھیلی میں درہم تھے سب خرچ کر دیے یا تھیلی جہاں رکھی تھی وہاں سے اٹھالی تو اُس وقت غاصب کے ذمہ سے ضمان ساقط ہو جائے گی اور شیخ نصیر سے مروی ہے کہ اگر راستہ میں ایک چوپایہ کھڑا دیکھ کر اس کو ایک طرف ہٹا دیا تو ضامن ہو گا اور شیخ ابن سلمہ سے مروی ہے کہ اگر ہٹانے کے بعد وہ کھڑا ہو گیا پھر چلا گیا تو ضامن نہ ہو گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

ایک شخص کے پاس دو کُر گیہوں تھے اس میں سے ایک کُر غصب کر لیا پھر مالک نے دوسرا کُر اُس غاصب کے پاس ودیعت رکھا پھر غاصب نے اُس کو غصب کیے ہوئے کُر میں ملا دیا پھر یہ سب گیہوں ضائع ہو گئے تو غصب کیے ہوئے کُر کا ضامن ہو گا اور کُر ودیعت کا ضامن نہ ہو

گا یہ محیط سرخسی میں ہے اگر ایک شخص کی کشتی غصب کر کے اُس پر سوار ہوا جب بیچ دریا میں پہنچا تو کشتی کا مالک اُس سے جا ملا تو مالک کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ وہیں اُس سے اپنی کشتی واپس لے لیکن وہاں سے کنارہ تک اس کو اجارہ پر دے دے اور یہ حکم بنظرِ مراعاتِ طرفین ہے اسی طرح اگر کسی شخص نے چوپایہ دوسرے کا غصب کر لیا اور بیچ جنگل میں مہلکہ کے مقام پر اُس کا مالک غاصب سے جا ملا تو وہیں اُس سے واپس نہیں لے سکتا ہے مگر وہاں سے اس کو اجارہ پر دے دے یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص کو غصب کیے ہوئے کپڑے کا کفن دے کر دفن کر کے اس پر مٹی ڈال دی گئی اور تین روز گذر گئے یا نہ گذرے پھر کفن کا مالک آیا پس اگر میت کا ترکہ موجود ہو یا نہ ہو مگر کسی نے اُس کی قیمت دے دے تو مالک پر واجب ہو گا کہ اُس کو لے لے اور قبر کو نہ کھودے اور یہ استحسان ہے اور اگر مالک کو قیمت نہ پہنچی تو اس کو اختیار ہو گا چاہے اپنی آخرت کے ثواب کے واسطے چھوڑ دے یا قبر کھود کر اپنا کفن لے لے مگر پہلی بات افضل ہے کہ اُس میں اُس کی دین و دنیا کی بہتری ہے اور اگر اُس نے قبر کھود کر کفن لے لیا اور وہ کفن ناقص ہو گیا ہے تو اُس کو اختیار ہو گا کہ جنہوں نے میت کو کفنا کر دفنایا ہے ان سے ضمان لے یہ کبریٰ میں ہے اگر کسی شخص نے کپڑا یا درہم یا چوپایہ غصب کیا اور وہ بعینہ موجود ہے اور مالک نے غاصب کو اُس سے بری کر دیا (جرم غصب سے) تو صحیح ہے اور غصب (مال) اُس کے پاس امانت ہو جائے گا اسی طرح اگر مالک نے اُس کو اس سے حلال کر دیا (۱) تو غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا خواہ وہ مال قائم ہو یا تلف ہو گیا ہو پس اگر تلف ہو گیا ہو گا تو یہ قول قرض سے ابراء (۲) ہے اور اگر قائم ہو گا تو ضمان غصب سے ابراء ہے اور وہ چیز غصب جو اُس کے پاس (۳) موجود ہے وہ اُس کے پاس امانت ہو جائے گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر کسی شخص نے دوسرے کے درخت کی شاخ کاٹ ڈالی اور اُس کی جگہ دوسری شاخ پھوٹ نکلی تو ضمان سے بری نہ ہو گا اسی طرح اگر کھیتی یا ساگ کاٹ ڈالا اور بجائے اُس کے دوسرا اُگا تو کاٹی ہوئی کھیتی یا ساگ کے ضمان سے بری نہ ہو گا یہ فصولِ عمادیہ میں ہے۔ فتاویٰ نسفی میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کا میدان غصب کر کے اپنی عمارت میں داخل کر لیا یا دوسرے کا پودا غصب کر کے اپنی زمین میں جمادیا اور وہ بڑا ہو گیا یہاں تک کہ مالک کا حق اُس سے منقطع ہو گیا پھر مالک نے غاصب سے کہا کہ میں نے تجھے میدان و پودا ہبہ کر دیا تو صحیح ہے اور یہ قول ضمان سے ابراء ہے یہ محیط میں ہے اور نواز ل میں لکھا ہے کہ کسی شخص نے دوسرے کی ابریق

---

(۱) یوں کہہ دیا کہ انت فی حل من ملک یا ملک ۔ (۲) تاوان اور قیمت سے بری ہو جائے گا۔ (۳) مالک کے پاس امانت ہوگی۔

---

**Fatawa Alamgiri .... Volume 8 | 126 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation/ Unlawful Seizure)**

If a piece of silver is broken, and then another person comes and breaks it further, the first person is absolved of liability (indemnity), and the second person shall provide indemnity for its equivalent. Similarly, if a person pours water into wheat, and then another person comes and pours more water, causing increased damage, the first person is absolved of liability, and the second person shall be liable for the price of the wheat on the day he poured the water; this is mentioned in *Fusul al-Imadiyya*. If a person breaks another's silver vessel, and then the owner destroys it before returning it to the breaker, nothing shall be incumbent upon the breaker. This is because the condition for claiming indemnity is to hand over the remnants of the broken item (the *makhsur*), but the owner lost this condition by making it disappear himself; this is in *Al-Muhit*. If a person usurps someone else's property and holds it for safekeeping, and the owner orders him to keep it safe in the manner he took it, the usurper is absolved of liability. However, if the usurper derived some benefit from it and then the owner ordered him to keep it safe, he shall not be absolved of liability. Likewise, if a person gives someone else's property as a trust (deposit) to a third party and then the owner gives permission, the giver shall be absolved of liability; this is in *Al-Khulasa*. If a person usurps another's property, and then the usurped party (victim) goes missing, and the usurper appears before the Judge (Qazi) requesting that the Judge either take the item from him or determine its maintenance costs, the Judge shall neither take the item nor fix maintenance. However, if the usurper is known to destroy things and there is a fear regarding his character, and the Judge's opinion is to take it and sell it, there is no harm in that (1). This is because in this situation, there is a form of compassion and a form of public interest (Maslahat); thus, the Judge’s opinion in this matter shall be valid; as stated in *Al-Zahiriyya*.

**Chapter Seven: On Making a Claim in Usurpation, Disagreements Between the Usurper and the Usurped, and the Presentation of Testimony therein.**

Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) stated that if a person produces witnesses for a claim against another that he has usurped his female slave (bandi), then I (the judge) will imprison him until he brings the slave girl so she can be returned to the claimant. Sheikh Abu al-Yasir and Imam Sarakhsi mentioned that what Imam Muhammad stated—that such a claim and testimony are admissible—is the most correct view. This is because usurpation can occur suddenly, making it

impossible for witnesses to identify the specific attributes and value of the slave girl. Therefore, due to this impossibility, the requirement for witnesses to know her exact characteristics is waived, and the act of usurpation will be proven by their testimony. Bakr mentioned that if this testimony is not conclusive in terms of legal judgment, it will be conclusive in establishing the right to the genus, similar to the ruling on theft (*sarqa*). It is written in *Al-Aqdiya* that all of this applies if the claimant asserts that the slave girl is still present/alive. If the claim is that she died, then by consensus, stating the price is a condition for the validity of the claim. Imam Muhammad's statement "until he brings the slave girl" means when he presents witnesses again regarding her specific identity (2). The purpose is that if after producing the slave girl, the two parties disagree about her identity, fresh testimony will be required. If the usurper claims that the slave girl fled, died, or that he sold her and handed her over to the buyer and is no longer able to produce her, and the claimant confirms his statement, then a decree for her price shall be issued against the usurper.

(1) It is permissible to take and sell it. (2) i.e., that it is the same slave girl.

चांदी की (छैल/टुकड़ा) तोड़ दी, फिर दूसरे व्यक्ति ने आकर और ज़्यादा तोड़ दी, तो पहला व्यक्ति क्षतिपूर्ति (ज़मान) से मुक्त हो गया और दूसरा व्यक्ति उसके समान हर्जाना देगा। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति ने गेहूं में पानी डाल दिया, फिर दूसरे ने आकर और पानी डाल दिया और नुकसान बढ़ गया, तो पहला व्यक्ति क्षतिपूर्ति से मुक्त हो गया और दूसरा व्यक्ति अपने पानी डालने वाले दिन के गेहूं की कीमत का ज़िम्मेदार होगा; यह 'फ़ुसूल इमादिया' में है। यदि एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति का चांदी का बर्तन तोड़ दिया, फिर मालिक ने उसे तोड़ने वाले को सौंपने से पहले ही खुद बर्बाद कर दिया, तो तोड़ने वाले पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा, क्योंकि क्षतिपूर्ति की शर्त यह है कि टूटी हुई चीज़ का ढांचा उसके सुपुर्द किया जाए, मगर उसने खुद ही उसे नष्ट करके यह शर्त खो दी; यह 'मुहीत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की चीज़ छीन ली (ग़सब की) और सुरक्षा के लिए उस पर कब्ज़ा रखा, और मालिक ने उसे वैसे ही सुरक्षित रखने का आदेश दिया जैसे उसने ली थी, तो छीनने वाला क्षतिपूर्ति से मुक्त हो गया। और यदि छीनने वाले ने उससे कुछ लाभ प्राप्त किया, फिर मालिक ने उसे सुरक्षित रखने का आदेश दिया, तो वह क्षतिपूर्ति से मुक्त नहीं होगा। इसी तरह यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे का माल किसी अन्य व्यक्ति को अमानत (वदीअत) के तौर पर दिया और फिर मालिक ने अनुमति दे दी, तो देने वाला क्षतिपूर्ति से मुक्त हो जाएगा; यह 'ख़ुलासा' में है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की चीज़ छीनी, फिर जिसका माल छीना गया था वह गायब हो गया और छीनने वाला काज़ी (न्यायाधीश) के पास उपस्थित हुआ और प्रार्थना की कि या तो मुझसे यह चीज़ ले लें या इसका खर्च निर्धारित कर दें, तो काज़ी न वह चीज़ लेगा और न ही उसका खर्च निर्धारित करेगा। और यदि वह छीनने वाला ऐसा व्यक्ति हो जो चीज़ों को नष्ट कर देता हो और उसके स्वभाव से ऐसा डर हो, और काज़ी की राय में आए कि उससे लेकर बेच दिया जाए, तो इसमें कोई हर्ज नहीं है (1), क्योंकि इस स्थिति में भी एक प्रकार की सहानुभूति और हित (मसलहत) है; अतः इस विषय में काज़ी की राय मान्य होगी; जैसा कि 'ज़हीरिया' में है।

## अध्याय सात: छीनने (ग़सब) में दावा पेश होने और छीनने वाले व जिसके साथ ज़्यादती हुई है उनके बीच मतभेद होने और उसमें गवाही देने के वर्णन में

इमाम मुहम्मद रह. ने फ़रमाया कि यदि एक व्यक्ति ने दूसरे पर इस दावे के गवाह पेश किए कि उसने मेरी एक दासी (बांदी) छीन ली है, तो मैं उसे तब तक कैद रखूँगा जब तक कि वह दासी लेकर न आए और वह दावेदार (मुद्दई) को वापस न दी जाए। शेख़ अबुल यसीर और इमाम सरख़सी ने

ज़िक्र किया कि इमाम मुहम्मद रह. का यह फ़रमाना कि ऐसा दावा और गवाही सुनवाई योग्य है, यही सबसे सही बात है, क्योंकि छीनने की घटना कभी अचानक हो जाती है, तो गवाहों के लिए दासी के गुणों और कीमत की पहचान करना संभव नहीं होता। अतः असमर्थता के कारण गवाहों से गुणों के ज्ञान का विचार समाप्त हो जाएगा और उनकी गवाही से छीनने का कार्य सिद्ध होगा। और बक्र ने ज़िक्र किया कि यदि अदालती फ़ैसले में यह गवाही निर्णायक न हो, तो भी यह मूल अधिकार की पुष्टि करेगी जैसा कि चोरी (सरक़ा) के हुक्म में है। 'अक़्ज़िया' में लिखा है कि यह सब उस स्थिति में है जब दावेदार ने दासी के जीवित/मौजूद होने का दावा किया हो। और यदि उसने यह दावा किया कि वह मर गई है, तो सर्वसम्मति से दावे की वैधता के लिए उसकी कीमत का विवरण देना शर्त है। और इमाम मुहम्मद रह. ने जो कहा कि "जब तक वह दासी लाए", इससे तात्पर्य यह है कि जब वह दासी के स्वयं (ऐन) पर दोबारा गवाह पेश करे(2) और उद्देश्य यह है कि दासी को पेश करने के बाद यदि दोनों में उसकी पहचान को लेकर मतभेद हो, तो दोबारा गवाही की आवश्यकता होगी। और यदि छीनने वाले ने कहा कि वह दासी भाग गई या मर गई या मैंने उसे बेचकर खरीदार को सौंप दिया और अब मैं उसे वापस लाने में असमर्थ हूँ, तो यदि दावेदार ने उसके कथन की पुष्टि कर दी, तो छीनने वाले पर उसकी कीमत का आदेश (डिक्री) दिया जाएगा।

(1) लेकर बेच देना जायज़ है। (2) यानी यह वही दासी है।

---

چاندی کی (چھائل) توڑ دی پھر دوسرے شخص نے آ کر اور زیادہ توڑ دی تو پہلا شخص ضمان سے بری ہو گیا اور دوسرا اُس کے مثل ضمان دے گا اسی طرح اگر کسی شخص نے گیہوں میں پانی ڈال دیا پھر دوسرے نے آ کر پانی ڈال دیا اور نقصان زیادہ ہو گیا تو پہلا شخص ضمان سے بری ہو گیا اور دوسرا شخص اپنے پانی ڈالنے کے روز کی گیہوں کی قیمت کا ضامن ہوگا یہ فصول عمادیہ میں ہے اگر ایک شخص نے دوسرے شخص کا چاندی کا برتن توڑ ڈالا پھر مالک نے اُس کو برباد کر دیا قبل اس کے کہ توڑنے والے کو دے دے تو توڑنے والے پر کچھ واجب نہ ہو گا اس لیے کہ تضمین کی شرط یہ ہے کہ مکسور اس کا سر (ٹھکانے) کے سپرد کرے مگر اُس نے خود ہی ناپید کر کے یہ شرط کھو دی یہ محیط میں ہے ایک شخص نے دوسرے کی چیز غصب کر کے حفاظت کے واسطے اُس پر قبضہ کیا اور مالک نے اُس کو حفاظت کے واسطے حکم دیا جس طرح اُس نے لی تھی تو غاصب ضمان سے بری ہو گیا اور اگر غاصب نے اُس سے کچھ نفع حاصل کیا پھر مالک نے اس کو حفاظت کا حکم دیا تو ضمان سے بری نہ ہو گا اور علیٰ ہذا اگر کسی شخص نے دوسرے کا مال کسی غیر شخص کو ودیعت دیا پھر مالک نے اجازت دے دی تو دینے والا ضمان سے بری ہو جائے گا یہ خلاصہ میں ہے۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کی چیز غصب کی پھر مغصوب منہ غائب ہو گیا اور غاصب قاضی کے پاس حاضر ہوا اور قاضی سے درخواست کی کہ یا تو مجھ سے یہ چیز لے لے یا اُس کا خرچہ مقرر کر دے تو قاضی نہ اُس چیز کو لے گا اور نہ اُس کا نفقہ مقرر کرے گا اور اگر وہ شخص غاصب ایسا ہو کہ چیزوں کو تلف کر ڈالتا ہو اُس کی ذات سے ایسے امر کا خوف ہو اور قاضی کی رائے میں آیا کہ اس سے لے کر فروخت کر دے تو کچھ ڈر نہیں ہے (1) اس واسطے کہ اس صورت میں بھی ایک طرح کی

نظر شفقت تھی اور اس صورت میں بھی ایک طرح کی نظر مصلحت ہے پس اس باب میں قاضی کی رائے جائز ہو گی کذا فی الظہیر یہ۔

**باب ہفتم: غصب میں دعویٰ واقع ہونے اور غاصب و مغصوب منہ میں اختلاف واقع ہونے اور اُس میں گواہی ادا ہونے کے بیان میں**

امام محمدؒ نے فرمایا کہ ایک شخص نے دوسرے پر اس دعویٰ کے گواہ قائم کیے کہ اس نے میری ایک باندی غصب کر لی ہے تو میں اُس کو قید کروں گا یہاں تک کہ باندی لائے وہ مدعی کو واپس دی جائے گی شیخ ابوالیسیر وامام سرخسی نے ذکر کیا کہ یہ جو امام محمدؒ نے ذکر فرمایا کہ ایسا دعویٰ و گواہی مسموع ہے یہی اصح ہے اس واسطے کہ غصب کبھی اچانک واقع ہو جاتا ہے تو گواہوں سے باندی کی صفت و قیمت کی شناخت نہیں ہو سکتی ہے پس تعذر کی وجہ سے گواہوں سے علم اوصاف کا اعتبار ساقط ہو جائے گا اور اُن کی گواہی سے فعل غصب ثابت ہو گا اور بکر نے ذکر کیا کہ اگر حق قضا میں یہ گواہی مثبت نہ ہو تو حق ایجاب جنس میں مثبت ہو گی جیسا کہ سرقہ میں حکم ہے اور اقضیہ میں لکھا ہے کہ یہ سب اُس صورت میں ہے کہ مدعی نے باندی کے موجود ہونے کا دعویٰ کیا ہو اور اگر یہ دعویٰ کیا کہ وہ مر گئی تو بالاتفاق صحت دعویٰ کے واسطے بیان قیمت شرط ہے اور امام محمدؒ نے جو فرمایا کہ یہاں تک کہ باندی لائے وہ مدعی کو واپس دی جائے گی اس سے یہ غرض ہے کہ جب اُس کے عین پر دوبارہ گواہ قائم کرے (2) اور غرض یہ ہے کہ باندی کے حاضر کرنے کے بعد اگر دونوں نے اُس کے عین میں اختلاف کیا تو دوبارہ گواہی کی ضرورت ہے اور اگر غاصب نے کہا کہ وہ باندی بھاگ گئی یا مر گئی یا میں نے اُس کو فروخت کر کے مشتری کے سپرد کر دیا اور اب میں اُس پر قادر نہیں ہوں پس اگر مدعی نے اُس کے قول کی تصدیق کی تو غاصب پر قیمت کی ڈگری کی جائے گی اگر

(1) لے کر فروخت کر دے جائز ہے۔ (2) یعنی یہ وہی باندی ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 127 Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

The claimant made a request, and if the claimant contradicted the usurper's statement, the judge shall imprison the usurper until the judge's opinion leans towards the belief that if the usurper were capable of producing the slave-girl, he would have done so. Then the judge shall release him from prison and ask the claimant: "Do you wish to wait for the appearance of the slave-girl, or do you want the indemnity of her price?" If the claimant chooses the price and both parties agree on a certain amount, the judge shall issue a decree for that amount. If they disagree on the value, the claimant is responsible for providing witnesses, and the statement of the usurper shall be accepted under oath. If the usurper refuses to take the oath, it is equivalent to a confession, and a decree for the full value shall be issued against him. If he takes the oath, the claimant shall receive the amount admitted by the usurper. If the slave-girl subsequently appears, and if the claimant had taken her price based on the evidence of witnesses or if the usurper had confirmed the claim to the price, the owner has no legal recourse to take back the slave-girl. However, if the price was taken based solely on the usurper's statement while the owner was not satisfied with that amount, the owner has the choice to either return the price and take the slave-girl or remain satisfied with the price, in which case the slave-girl becomes the property of the usurper. Sheikh al-Karkhi stated that this ruling applies when it is evident that the value of the slave-girl is more than what the usurper stated; if it turns out to be exactly what he stated, the owner has no way to take her back. This is mentioned in al-Tartashi. In Zahir al-Riwayah, the aforementioned ruling is absolute, and that is what is correct; this is found in al-Mabsut.

If the person from whom the property was usurped (maghsub minhu) claimed a slave-girl in the possession of the usurper while the usurper denies it, and the claimant produced two witnesses: one testified that the slave-girl belongs to the claimant as he bought her from a specific person, and the other testified that she belongs to the claimant as he inherited her from his father, then the testimony is not valid. If one witness testified to purchasing her from a specific person and the other testified to purchasing from someone else, or obtaining her as a gift (hiba) or charity (sadaqah), the testimony is not valid. If both testified that the slave-girl belongs to the claimant and that the usurper snatched her from him, and the usurper has already sold her and handed her over to the buyer, and subsequently the owner authorized the sale, it is ruled as permissible. If the usurper has already collected the price and it was lost while in his possession, then the owner loses the value of the

slave-girl. Whatever was produced from the slave-girl while with the buyer, such as children, earnings, or indemnity for injuries (arsh), all belongs to the buyer. If the owner did not authorize the sale and took back his slave-girl, he takes all these things along with her. If the buyer manumitted (freed) her, then according to our school, the right is not effective before the owner's permission for the sale. If the owner gave permission for the sale after the buyer's manumission, the sale becomes valid, and the manumission becomes effective. This is the opinion of Imam al-A'zam (Abu Hanifa) and Imam Abu Yusuf, and Imam Muhammad narrates the same from both. This is mentioned in al-Mabsut. If Zaid and Amr both claimed a slave-girl from Bakr: Zaid produced witnesses that Bakr usurped her from him at a certain time, and Amr produced witnesses that Bakr usurped her at a later time (i.e., after the first claimant's stated time), then based on the analogy (qiyas) of Imam al-A'zam, the slave-girl shall go to the second claimant, and the price of the first claimant shall be mandatory upon the usurper. Based on the analogy of Imam Abu Yusuf, the slave-girl shall go to the first claimant, and the second claimant shall have no right of indemnity against the usurper. This is in Fatawa Qadi Khan.

If Zaid claimed against Amr that he usurped his owned slave-girl from him, and Amr replied that the slave-girl this person claims...

---

(1) This detail is not found in that [work] as mentioned by Sheikh al-Karkhi.

वादी ने इसकी प्रार्थना की और यदि वादी ने उसके कथन को झुठलाया तो काज़ी उसे तब तक कैद करेगा जब तक कि काज़ी का विचार इस ओर प्रबल न हो जाए कि यदि ग़ासिब (अवैध कब्जा करने वाला) उस पर सक्षम होता तो उसे प्रकट कर देता, फिर उसे कैद से बाहर निकालेगा और वादी से कहेगा कि क्या तू इस बांदी (दासी) के प्रकट होने तक प्रतीक्षा करना चाहता है या उसकी कीमत (हर्जाना) चाहता है। यदि उसने कीमत चाही और दोनों किसी कीमत पर सहमत हो गए, तो उतनी कीमत की डिक्री कर देगा। यदि कीमत की मात्रा में मतभेद हुआ, तो वादी पर गवाह लाना अनिवार्य है और शपथ के साथ ग़ासिब का कथन स्वीकार किया जाएगा। यदि ग़ासिब ने शपथ लेने से इनकार किया, तो यह स्वीकृति के समान है और उस पर पूरी कीमत की डिक्री कर दी जाएगी। यदि उसने शपथ ले ली, तो ग़ासिब ने जितना स्वीकार किया है, वादी उतनी ही कीमत ले लेगा। फिर यदि वह बांदी प्रकट हुई, और यदि वादी ने उसकी कीमत गवाहों के प्रमाण से ली थी या ग़ासिब ने उसके कीमत के दावे की पुष्टि की थी, तो मालिक को उस बांदी को लेने का कोई अधिकार नहीं है। और यदि ग़ासिब के कथन पर उसकी कीमत ली गई थी जबकि वह उतने पर सहमत न था, तो वह स्वतंत्र होगा, चाहे तो कीमत लौटा कर बांदी ले ले या कीमत पर संतुष्ट रहे, तो बांदी ग़ासिब की हो जाएगी। शेख करखी ने कहा है कि यह आदेश उस समय है जब यह स्पष्ट हो कि इस बांदी की कीमत ग़ासिब के बयान से अधिक है, और यदि उतनी ही निकली जितनी ग़ासिब ने बयान की थी, तो मालिक को उसे लेने का कोई रास्ता न होगा। ऐसा ही तारताशी में है और ज़ाहिर-उर-रिवायत में जो आदेश वर्णित है वह निरपेक्ष है और वही सही है, यह मबसूत में है।

यदि पीड़ित व्यक्ति (मग़सूब मिन्हु) ने आकर ग़ासिब के कब्जे वाली बांदी का स्वयं दावा किया जबकि ग़ासिब इनकार करता है, फिर वादी ने दो गवाह पेश किए; एक ने गवाही दी कि यह बांदी वादी की है, उसने इसे अमुक व्यक्ति से खरीदा है, और दूसरे ने गवाही दी कि यह बांदी वादी की है, उसने इसे अपने पिता से विरासत में पाया है, तो गवाही मान्य नहीं होगी। यदि एक गवाह ने अमुक व्यक्ति से खरीदने की गवाही दी और दूसरे ने किसी अन्य व्यक्ति से खरीदने की, या उपहार (हिबा) या दान (सदक़ा) के रूप में प्राप्त करने की गवाही दी, तो गवाही मान्य नहीं होगी। और यदि दोनों ने यह गवाही दी कि यह बांदी इस वादी की है, इस ग़ासिब ने उससे छीन ली है, और ग़ासिब उसे बेचकर खरीदार (मुश्तरी) को सौंप चुका है, फिर उसके बाद मालिक ने बिक्री (बय) की अनुमति दे दी, तो कहा गया है कि यह जायज़ है। यदि ग़ासिब कीमत (थमन) वसूल कर चुका हो और वह उसके पास

नष्ट हो गई हो, तो मालिक की दासी का मूल्य गया, और बांदी से जो कुछ खरीदार के पास संतान, आय, या क्षतिपूर्ति (अर्श) आदि के रूप में उत्पन्न हुआ, वह सब खरीदार का होगा। और यदि मालिक ने बिक्री की अनुमति नहीं दी और अपनी बांदी को ले लिया, तो वह उसके साथ इन सबको भी ले लेगा। यदि खरीदार ने उसे स्वतंत्र (आज़ाद) कर दिया, तो हमारे अनुसार मालिक की अनुमति से पहले यह अधिकार प्रभावी नहीं होगा। और यदि खरीदार के स्वतंत्र करने के बाद मालिक ने बिक्री की अनुमति दी, तो बिक्री जायज़ हो जाएगी और वह अधिकार प्रभावी हो जाएगा। यह इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ का कथन है, और इमाम मुहम्मद भी इन दोनों इमामों से ऐसा ही वर्णन करते हैं। यह मबसूत में है। यदि जैद और उम्र ने बकर पर एक बांदी का दावा किया, जैद ने गवाह दिए कि बकर ने मुझसे यह बांदी अमुक समय में छीन ली थी, और उम्र ने गवाह दिए कि बकर ने यह बांदी अमुक बाद के समय में छीनी थी, यानी ऐसा समय बताया जो पहले वादी के समय के बाद है, तो इमाम-ए-आज़म के कयास (अनुमान) पर वह बांदी दूसरे वादी को मिलेगी और पहले वादी की कीमत ग़ासिब पर अनिवार्य होगी। और इमाम अबू यूसुफ के कयास पर वह बांदी पहले वादी को मिलेगी और दूसरे वादी का हर्जाने का कोई अधिकार ग़ासिब पर अनिवार्य न होगा। यह फतावा क़ाज़ी खान में है।

यदि जैद ने उम्र पर दावा किया कि उसने मुझसे मेरी स्वामित्व वाली बांदी छीन ली है, और उम्र ने कहा कि जिस बांदी का यह व्यक्ति दावा...

---

(1) इसमें वह विस्तार नहीं है जो शेख करखी ने बयान किया है।

مدعی نے اس کی درخواست کی اور اگر مدعی نے اس کے قول کی تکذیب کی تو قاضی اُس کو قید کرے گا یہاں تک کہ قاضی کی رائے اس طرف غالب ہو جائے کہ اگر غاصب اُس پر قادر ہوتا تو اُس کو ظاہر کرتا پھر اس کو قید سے باہر نکالے گا اور مدعی سے کہے گا کہ تو اس باندی کے ظاہر ہونے تک انتظار کرنا چاہتا ہے یا تاوان قیمت چاہتا ہے پس اگر اُس نے قیمت چاہی اور دونوں نے کسی قدر قیمت پر اتفاق کیا تو اس قدر قیمت کی ڈگری کر دے گا اور اگر مقدارِ قیمت میں اختلاف کیا تو مدعی کے ذمہ گواہ لانا ہے اور قسم کے ساتھ غاصب کا قول قبول ہوگا اور اگر غاصب نے قسم سے انکار کیا تو یہ مثل اقرار کے ہے پس اُس پر کل سے ڈگری کر دی جائے گی اور اگر قسم کھا گیا تو جس قدر غاصب نے اقرار کیا ہے اسی قدر قیمت مدعی لے لے گا پھر اگر وہ باندی ظاہر ہوئی پس اگر مدعی نے اس کی قیمت بثبوتِ گواہان لی یا غاصب نے اُس کے دعویٰ قیمت کی تصدیق کی تھی وہی قیمت لی یا غاصب کے مکول پر اپنے دعویٰ کی قیمت لی ہو تو مالک کو اُس باندی کی طرف کوئی راہ نہیں ہے اور اگر غاصب کے قول پر اُس کی قیمت لی ہو حالانکہ اس قدر پر راضی نہ تھا تو مختار ہو گا چاہے قیمت واپس کر کے باندی لے لے یا قیمت پر راضی رہے تو باندی غاصب کی ہو جائے گی اور شیخ کرخی نے فرمایا کہ یہ حکم اُس وقت ہے کہ جب یہ ظاہر ہے کہ اس باندی کی قیمت غاصب کے بیان سے زائد ہے اور اگر اُسی قدر نکلی کہ جس قدر غاصب نے بیان کی ہے تو مالک کو اُس کے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی کذا فی التارتاشی اور ظاہر الروایت میں جو حکم مذکور ہے وہ مطلق ہے (۱) اور وہی صحیح ہے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر مغصوب منہ نے آ کر غاصب کے قبضہ کی باندی کا خود دعویٰ کیا حالانکہ غاصب انکار کرتا ہے پس مدعی نے دو گواہ قائم کیے ایک نے یہ گواہی دی کہ یہ باندی مدعی کی ہے مدعی نے اس کو فلاں شخص سے خریدا ہے اور دوسرے نے یہ گواہی دی کہ یہ باندی مدعی کی ہے اُس نے اُس کو اپنے باپ سے میراث پایا ہے تو گواہی جائز نہ ہو گی اور اگر ایک گواہ نے فلاں شخص سے خریدنے کی گواہی دی یا دوسرے نے کسی اور دوسرے شخص سے خریدنے کی یا بطور ہبہ یا صدقہ پانے کی گواہی دی تو گواہی جائز نہ ہوگی اور اگر دونوں نے یہ گواہی دی کہ یہ باندی اس مدعی کی ہے اس سے اس غاصب نے غصب کر لی ہے اور غاصب اُس کو فروخت کر کے مشتری کے سپرد کر چکا ہے پھر اس کے بعد مالک نے بیع کی اجازت دے دی تو فرمایا کہ جائز ہے پس اگر غاصب ثمن وصول کر چکا ہو اور وہ اُس کے پاس تلف ہو گیا ہو تو مالک کنیز کا مال گیا اور جو کچھ باندی سے مشتری کے پاس از قسم اولاد یا کمائی یا ارش جنایت یا اُس کے مانند پیدا ہوئی وہ سب مشتری کی ہوگی اور اگر مالک نے بیع کی اجازت نہ دی اور اپنی باندی کو لے لیا تو اُس کے ساتھ یہ سب بھی لے لے گا اور اگر مشتری نے اُس کو آزاد کر دیا تو ہمارے نزدیک مالک کی اجازت بیع سے پہلے حق نافذ نہ ہوگا اور اگر مشتری کے آزاد کرنے کے بعد مالک نے بیع کی اجازت دی تو بیع جائز ہو جائے گی اور استحساناً حق نافذ ہو جائے گا یہ امام اعظم وامام ابو یوسف کا قول ہے ایسا ہی امام محمدؒ ان دونوں اماموں سے روایت فرماتے ہیں یہ مبسوط میں ہے اگر زید وعمرو نے بکر پر ایک باندی کا دعویٰ کیا پس زید نے گواہ دیئے کہ بکر نے مجھ سے یہ باندی فلاں وقت میں غصب کر لی اور عمرو نے گواہ دیئے کہ بکر نے یہ باندی فلاں وقت متاخر میں غصب کر لی ہے یعنی ایسا وقت بیان کیا جو پہلے مدعی کے وقت کے بعد ہے تو فرمایا کہ امام اعظمؒ کے قیاس پر وہ باندی دوسرے مدعی کو ملے گی اور پہلے مدعی کی قیمت غاصب پر

واجب ہو گی اور امام ابو یوسفؒ کے قیاس پر وہ باندی پہلے مدعی کو ملے گی اور دوسرے مدعی کا کچھ حق ضمان غاصب پر واجب نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر زید نے عمرو پر دعویٰ کیا کہ اس نے مجھ سے میری مملوکہ باندی غصب کر لی ہے اور عمرو نے کہا کہ جس باندی کا یہ شخص دعویٰ

---

(۱) ایسی میں یہ تفصیل نہیں ہے جو شیخ کرخی نے بیان کی ہے۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Vol. 8, Page 128, Kitab al-Ghasb (Book of Usurpation)**

...claims "I bought it for a hundred dirhams" and both parties present their witnesses, the witnesses of Amr shall be accepted; this is in *Jawahir al-Ikhlati*. If a person claims ownership of a slave girl in the possession of another, stating, "This slave girl is mine; this possessor has usurped her from me," but the claimant's witnesses testify only to the ownership and not to the act of usurpation, and the judge (Qazi) intends to issue a decree in the name of the claimant, should he take an oath from the claimant saying, "By Allah, I did not sell this slave girl to him nor did I grant him permission to dispose of her"? The ruling is no; however, if the possessor claims any of these things, then an oath shall indeed be taken. It is narrated from Imam Abu Yusuf that the judge shall take an oath from him even if the possessor does not request it, so that the judicial ruling may be more firm and absolute. There is a consensus (*ijma*) that if a person claims a debt against a deceased person's estate, the judge shall take an oath from him despite the presence of witnesses, saying, "By Allah, I have not received this debt nor have I exonerated the debtor," even if the defendant does not make such a claim. This issue supports Imam Abu Yusuf's view and is found in *Al-Muhit*. The translator notes: A deceased person cannot look after their own rights, so the judge stands in their place to demand an oath due to his general authority, unlike a living person who can look after their own interests.

If a person usurps another's cloth, and someone acts as a guarantor (*kafeel*) for the price of the usurped cloth on behalf of the usurper (*ghasib*) to the owner (*maghsoob minhu*), and subsequently they disagree on the price—the guarantor says ten dirhams, the usurper says twenty, and the owner says thirty—the word of neither the usurper nor the owner shall be confirmed against the guarantor. This is because the owner claims more than what the guarantor admits, while the guarantor denies it, and the usurper admits to an additional ten dirhams. An admission (*iqrar*) by an admitter is valid against themselves but not against others. Therefore, the usurper shall be liable for the additional ten dirhams, but the guarantor shall not; this is in *Muhit Sarakhsi*. If the usurper and the owner disagree regarding the usurped item, its quality, or its price, the statement of the usurper given under oath shall be accepted. If the owner makes a claim and the usurper admits it but then says, "I have returned it all to you; whatever liability I owed, I have paid and you have taken possession," his statement of return shall not be confirmed. The statement of the owner under oath shall be accepted, stating, "I have not received it from him nor did he give it to me." However, if the usurper provides witnesses for his statement, the ruling shall be in

his favor. If the usurper admits to seizing a cloth or a slave in sound condition but claims the owner caused the damage through his own actions, his statement shall not be confirmed, and he shall remain liable for the damage, provided that an oath is first taken from the owner that they did not cause the damage themselves; this is in *Siraj al-Wahhaj*.

If the owner provides witnesses that the value of the usurped item was a certain amount and the usurper provides witnesses that the value was another amount, the owner's witnesses shall be accepted. If the owner has no witnesses and the usurper wishes to present witnesses, he shall have the option to do so. If the owner presents witnesses where one testifies to the value and the other testifies that the usurper admitted to that value, the testimony shall not be accepted; this is in *Wajiz al-Kardari*. If the usurper says, "I returned the usurped property to you," and the owner says, "No, rather it was lost/destroyed while in your possession," the owner's statement shall be accepted, just as in the case where the usurper says, "I, with your permission, did this..."

(Footnote): The translator says that a deceased person cannot look after their rights properly, unlike a living person who failed to claim a beneficial matter for themselves. Thus, there is a difference between the two cases, and bringing testimony here is not appropriate; reflect upon this.

**फ़तावा आलमगीरी ..... खंड 8, पृष्ठ 128, किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

...दावा करता है कि मैंने इसे सौ दिरहम में खरीदा है और दोनों ने अपने-अपने गवाह पेश किए, तो अम्र के गवाह स्वीकार किए जाएंगे; यह 'जवाहर अल-इख्लाती' में है। यदि एक व्यक्ति ने दूसरे के अधिकार वाली दासी पर दावा किया कि यह दासी मेरी है और इस कब्जेदार ने इसे मुझसे हड़प लिया है, लेकिन वादी (दावा करने वाले) के गवाहों ने हड़पने की गवाही नहीं दी, केवल वादी के स्वामित्व की गवाही दी, और न्यायाधीश (काज़ी) ने चाहा कि वादी के नाम डिक्री कर दे, तो क्या वह वादी से शपथ लेगा कि 'अल्लाह की कसम, मैंने यह दासी इसके हाथ नहीं बेची और न ही इसे इसमें हस्तक्षेप करने की अनुमति दी'? कहा गया कि नहीं, लेकिन यदि कब्जेदार इनमें से किसी बात का दावा करे, तो अवश्य शपथ ली जाएगी। इमाम अबू यूसुफ से वर्णित है कि न्यायाधीश उससे शपथ लेगा, भले ही कब्जेदार इसकी मांग न करे, ताकि न्यायिक आदेश अधिक पुख्ता और दृढ़ हो। इस बात पर आम सहमति (इज्मा) है कि यदि किसी व्यक्ति ने मृतक की संपत्ति (तरका) में अपने ऋण का दावा किया, तो गवाह होने के बावजूद न्यायाधीश उससे शपथ लेगा कि 'अल्लाह की कसम, मैंने यह ऋण प्राप्त नहीं किया और न ही कर्जदार को मुक्त किया है', भले ही प्रतिवादी इसका दावा न करे। यह मुद्दा इमाम अबू यूसुफ के कथन का समर्थन करता है और 'अल-मुहीत' में वर्णित है। अनुवादक का कहना है: मृतक अपने अधिकारों की रक्षा स्वयं नहीं कर सकता, इसलिए न्यायाधीश ने अपनी व्यापक सत्ता के कारण शपथ की मांग करके मृतक का स्थान लिया है, जीवित व्यक्ति के विपरीत जो स्वयं अपनी बात रख सकता है।

यदि एक व्यक्ति ने दूसरे का कपड़ा हड़प लिया और हड़पने वाले (ग़ासिब) की ओर से मालिक (मग़्बूब मिन्हु) के लिए किसी व्यक्ति ने कपड़े की कीमत की ज़मानत ली, फिर उन सभी के बीच कीमत को लेकर विवाद हुआ: ज़मानतदार ने कहा दस दिरहम, ग़ासिब ने कहा बीस दिरहम और मालिक ने कहा तीस दिरहम, तो ज़मानतदार पर न तो ग़ासिब और न ही मालिक के कथन की पुष्टि होगी, क्योंकि मालिक ज़मानतदार से अधिक का दावा कर रहा है और वह इनकार कर रहा है, जबकि ग़ासिब दस दिरहम अधिक होने का इकरार कर रहा है। प्रत्येक इकरार करने वाले का इकरार उसके अपने विरुद्ध तो सही होता है लेकिन दूसरे के विरुद्ध नहीं। अतः ग़ासिब पर शेष दस दिरहम अनिवार्य होंगे, लेकिन ज़मानतदार पर नहीं; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। यदि ग़ासिब और मालिक के बीच हड़पी गई चीज़, उसके गुण या उसकी कीमत को लेकर विवाद हो, तो शपथ के साथ ग़ासिब का कथन स्वीकार होगा। यदि ऐसा हुआ कि मालिक ने जो दावा किया, ग़ासिब ने उसे स्वीकार कर लिया

लेकिन फिर कहा, 'मैंने यह सब तुम्हें लौटा दिया है, जो भी हर्जाना मुझ पर अनिवार्य था मैंने दे दिया और तुमने उस पर कब्ज़ा कर लिया', तो उसके इस कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी। शपथ के साथ मालिक का कथन स्वीकार होगा कि 'मैंने इसे प्राप्त नहीं किया और न ही उसने मुझे दिया है'। लेकिन यदि ग़ासिब अपने कथन के गवाह पेश कर दे, तो उसके पक्ष में निर्णय होगा। यदि ग़ासिब ने स्वीकार किया कि उसने कपड़ा या दास सही-सलामत स्थिति में हड़पा था, लेकिन मालिक ने अपने किसी कार्य से उसमें क्षति पहुँचाई है, तो उसके कथन की पुष्टि नहीं होगी और वह क्षति का उत्तरदायी होगा, बशर्ते पहले मालिक से शपथ ली जाए कि उसने यह क्षति स्वयं नहीं की है; यह 'सिराज अल-वहाज' में है।

मालिक ने गवाह दिए कि हड़पी गई वस्तु की कीमत इतनी थी और ग़ासिब ने गवाह दिए कि कीमत उतनी थी, तो मालिक के गवाह स्वीकार होंगे। यदि मालिक के पास गवाह न हों और ग़ासिब गवाह पेश करना चाहे, तो उसे अधिकार होगा। यदि मालिक ने दो गवाह दिए, जिनमें से एक ने गवाही दी कि कीमत इतनी थी और दूसरे ने गवाही दी कि ग़ासिब ने स्वीकार किया था कि कीमत इतनी थी, तो गवाही स्वीकार नहीं होगी; यह 'वजीज़ करदरी' में है। यदि ग़ासिब ने कहा, 'मैंने हड़पा हुआ माल तुम्हें लौटा दिया' और मालिक ने कहा 'नहीं, बल्कि तुम्हारे पास ही नष्ट हुआ है', तो मालिक का कथन स्वीकार होगा, जैसा कि उस स्थिति में होता है जब ग़ासिब कहे कि 'मैंने तुम्हारी अनुमति से यह...'

(पाद टिप्पणी): अनुवादक कहता है कि मृतक अपने अधिकारों के बारे में सही निर्णय नहीं ले सकता, जीवित के विपरीत जिसने अपने लाभदायक मामले का दावा नहीं किया। इसलिए दोनों स्थितियों में अंतर है, और यहाँ गवाही लाना उचित नहीं रहा, इस पर विचार करें।

---

کرتا ہے میں نے اُس کو سو درہم میں خریدا ہے اور دونوں نے اپنے اپنے گواہ قائم کیے تو عمرو کے گواہ قبول ہوں گے یہ جواہر اخلاطی میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کی مقبوضہ باندی کا دعویٰ کیا کہ یہ باندی میری ہے اس قابض نے مجھ سے غصب کرلی ہے مگر مدعی کے گواہوں نے غصب کی گواہی نہ دی صرف مدعی کی ملک ہونے کی گواہی دی اور قاضی نے چاہا کہ مدعی گواہ قائم کرنے والے کے نام ڈگری کر دے تو کیا مدعی سے یوں قسم لے گا کہ واللہ میں نے یہ باندی اس کے ہاتھ فروخت نہیں کی اور نہ اُس کو اس میں تصرف کرنے کی اجازت دی ہے یا نہیں تو فرمایا کہ نہیں لیکن اگر قابض ان باتوں میں سے کسی بات کا دعویٰ کرے تو البتہ قسم لے گا اور امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ قاضی اُس سے قسم لے گا اگر چہ قابض درخواستِ دعویٰ نہ کرے تاکہ حکمِ قضا احکم و ابرم ہو اور اس بات پر اجماع ہے کہ اگر کسی شخص نے دوسرے کے ترکہ میں اپنے قرضہ کا دعویٰ کیا تو باوجود گواہ قائم کرنے کے قاضی اُس سے قسم لے گا کہ واللہ میں نے یہ قرضہ وصول نہیں پایا اور نہ میں نے قرض دار کو بری کیا ہے اگر چہ مدعاعلیہ اس کا دعویٰ نہ کرے اور یہ مسئلہ اجماعی امام ابو یوسف کے قول کا شاہد ہے یہ محیط میں ہے۔ قال المترجم: المیت غیر ناظر فی حقوقه فجعل القاضی مقامه فی النظر بطلب الحلف لعموم ولایته بخلاف الحی حیث لم یدع ما فیه نظرة فالتفت فلا یتم الاشهاد۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کا کپڑا غصب کر لیا اور غاصب کی طرف سے مغصوب منہ کے واسطے ایک شخص کپڑے کی قیمت کا ضامن کفیل ہوا پھر باہم سب نے قیمت میں اختلاف کیا، کفیل نے کہا کہ دس درہم ہے اور غاصب نے کہا کہ بیس درہم ہے اور مالک نے کہا کہ تیس درہم ہے تو کفیل پر مکفول عنہ و مکفول لہ کسی کے قول کی تصدیق نہ ہو گی کیونکہ مکفول لہ کفیل پر زیادتی کا دعویٰ کرتا ہے

اور وہ انکار کرتا ہے اور غاصب دس درہم زیادتی کا اقرار کرتا ہے اور ہر مقر کا اقرار اُسی کے حق میں صحیح ہوتا ہے دوسرے کے حق میں صحیح نہیں ہوتا ہے پس غاصب پر دوسرے دس درہم واجب ہوں گے مگر کفیل پر واجب نہ ہوں گے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر غاصب و مغصوب منہ نے مغصوبہ چیز میں یا اُس کی صفت یا قیمت میں اختلاف کیا تو قسم سے غاصب کا قول قبول ہو گا اور اگر ایسا ہوا کہ مغصوب منہ نے جو کچھ ان وجوہ میں دعویٰ کیا اُس کا غاصب نے اقرار کر لیا پھر کہا کہ میں نے یہ سب تجھے دے دیا جو کچھ مجھ پر ضمان واجب ہوئی تھی میں نے تجھے دے دی اور تو نے مجھ سے لے کر قبضہ کر لیا تو اُس کے اس قول کی تصدیق نہ کی جائے گی اور قسم کے ساتھ مغصوب منہ کا قول قبول ہو گا کہ میں نے اس سے وصول نہیں پایا اور نہ اس نے مجھے دی ہے لیکن اگر غاصب اپنے قول کے گواہ قائم کرے تو اُس کے موافق حکم ہو گا اور اگر غاصب نے اقرار کیا کہ میں نے یہ کپڑا یا یہ غلام صحیح سالم غصب کر لیا تھا اور مغصوب منہ نے یہ جرم و نقصان غلام یا کپڑے میں اپنے فعل سے پیدا کیا ہے تو اس کے قول کی تصدیق نہ ہو گی اور جو کچھ غلام یا کپڑے میں نقصان آیا ہو اُس کا ضامن ہو گا مگر پہلے مغصوب منہ سے قسم لی جائے گی کہ اُس نے یہ نقصان خود نہیں کیا ہے یہ سراج الوہاج میں ہے۔

مالک نے گواہ دیئے کہ مغصوب کی قیمت اس قدر تھی اور غاصب نے گواہ دیئے کہ اس کی قیمت اتنی تھی تو مالک کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر مالک کے پاس گواہ نہ ہوں اور غاصب نے گواہ پیش کرنے چاہے تو اُس کو اختیار ہو گا کہ پیش کرے مالک نے گواہ دیئے پس ایک نے گواہی دی کہ مغصوب کی قیمت اس قدر تھی اور دوسرے نے گواہی دی کہ غاصب نے اقرار کیا ہے کہ مغصوب کی قیمت اس قدر تھی تو گواہی قبول نہ ہو گی یہ وجیز کردری میں ہے۔ اگر غاصب نے کہا کہ میں نے مالِ مغصوب تجھے واپس دیا اور مالک نے کہا کہ نہیں بلکہ تیرے پاس تلف ہوا ہے

تو مالک کا قول قبول ہو گا جیسا کہ اس صورت میں ہے کہ اگر غاصب نے کہا کہ میں نے تیری اجازت سے یہ...

(حاشیہ) مترجم کہتا ہے کہ میت اپنے حقوق میں نیک نظر نہیں کر سکتا بخلاف زندہ کے کہ اس نے اپنے مفید امر کا دعویٰ نہ کیا تو دونوں میں فرق ہو گیا تو اس سے شہادت لانا ٹھیک نہ رہا غور کرو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (129) Book of Ghasb (Usurpation)**

If property was taken and the owner denied [a certain claim], the owner's statement is accepted. If the usurper (ghasib) provided witnesses saying, "I have returned the usurped animal to the owner," and the owner provided witnesses saying, "That animal died due to the usurper's riding or the usurper destroyed it," then the usurper shall be liable (damin). This is because there is no contradiction between the testimonies of both sets of witnesses; it is possible that the usurper returned the animal and then, after returning it, rode it again and it died from his riding. If the usurper gave witnesses that he returned it and it died in the owner's possession, and the owner gave witnesses that it died in the usurper's possession, but the owner's witnesses did not testify that it died from the usurper's riding, then the usurper shall not be liable. This is recorded in Muhit al-Sarakhsi. If the usurped property is a house and its owner provided witnesses that the usurper demolished it, and the usurper provided witnesses saying, "I returned it, and it was demolished after that," then the owner's witnesses shall be accepted. This is in Fatawa Qazi Khan.

If the usurper has destroyed the usurped cloth and a dispute arises between the owner and the usurper regarding the value/amount of that cloth, the owner's witnesses shall be accepted because their testimony establishes an increase [in value]. If the owner has no witnesses, then the usurper's statement under oath shall be accepted because he denies the excess amount. If the usurper presented witnesses that the price of his cloth was such-and-such, no attention shall be paid to those witnesses, and this act shall not waive the requirement of an oath for him. If neither party has witnesses and the owner wishes to take an oath from the usurper regarding his claim, and the usurper says, "I return the oath to the owner (plaintiff), and whatever amount the owner swears to, I will give him that much," the usurper shall not have this option. Similarly, if the owner agrees to this and says, "I will take the oath," the ruling remains the same; the mutual agreement of both parties on a matter contrary to Shariah is void. If the usurper brings a damaged cloth and says, "This is the very cloth I usurped from you," and the owner says, "You are lying, it is not this; rather it was Hirwi or Marwi (specific types)," then the usurper's statement under oath shall be accepted. The oath shall be taken as follows: "By God, this is the cloth of this person that I usurped from him, and I did not usurp a Hirwi or Marwi cloth from him." If he takes the oath, a decree for that cloth shall be issued in the owner's name, and the usurper shall be exonerated from the claim. If he refuses the oath (nukul), a decree shall be issued according to the plaintiff's claim. Then, if the

owner wishes, he may take it or leave it. If the usurper brings a Hirwi cloth and says, "This is what I usurped from you and it is present in its original state," and the owner says, "No, rather my cloth was new when you usurped it," then the usurper's statement under oath shall be accepted. If both parties produce witnesses, the owner's witnesses shall be accepted [stating] that the cloth was new. If neither party produces witnesses and the usurper takes the oath and the owner takes the cloth, but later witnesses are established that the usurper had taken a new cloth from the plaintiff, then the usurper shall be liable for the difference between the old and the new. This is what is mentioned in the original text. Shams al-A'immah al-Sarakhsi stated that this ruling applies when the amount of loss is slight; if it is substantial, the owner has the choice to either take the cloth and receive compensation for the loss or leave the cloth with the usurper and take the full price of his [original] cloth from him. This is in al-Muhit. If Zaid has a cloth and Amr establishes witnesses that this cloth belongs to Amrad and Zaid has usurped it, and Zaid provides witnesses that Amr gifted this cloth to Zaid, it is stated that I (the judge) will issue a decree in the name of the Qazi. Similarly, if the Qazi provides witnesses that the plaintiff sold it to someone for a certain price, or the plaintiff admitted that this cloth belongs to the possessor, the same ruling applies. If the cloth is in the possession of both and each establishes witnesses against the other claiming, "He usurped it from me," then both...

1- His statement: He rode [it] and now, having become a new usurper, he was held liable.

माल लिया गया और मालिक ने इनकार किया तो मालिक की बात स्वीकार की जाएगी। और अगर गसिब (छीनने वाले) ने गवाह दिए कि "मैंने छीना हुआ जानवर मालिक को वापस कर दिया है" और मालिक ने गवाह दिए कि "वह जानवर गसिब की सवारी के कारण मर गया या गसिब ने उसे नष्ट कर दिया है", तो गसिब उत्तरदायी होगा क्योंकि दोनों के गवाहों की गवाही में कोई अंतर्विरोध नहीं है। क्योंकि यह संभव है कि गसिब ने वह जानवर वापस कर दिया हो, फिर वापस करने के बाद वह उस पर सवार हो गया हो और वह उसकी सवारी से मर गया हो। और अगर गसिब ने गवाह दिए कि उसे वापस कर दिया और वह मालिक के पास मर गया, और मालिक ने गवाह दिए कि वह गसिब के पास मरा है, और मालिक के गवाहों ने यह गवाही नहीं दी कि वह गसिब की सवारी से मरा है, तो गसिब उत्तरदायी नहीं होगा। यह मुहीत-ए-सरख़सी में है। और अगर छीनी हुई संपत्ति कोई घर हो और उसके मालिक ने गवाह दिए कि गसिब ने उसे ढहा दिया है, और गसिब ने गवाह दिए कि "मैंने उसे वापस कर दिया था, उसके बाद वह ढहा है", तो मालिक के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है।

अगर गसिब ने छीने हुए कपड़े को नष्ट कर दिया है, फिर मालिक और गसिब में उस कपड़े की कीमत की मात्रा को लेकर विवाद हो, तो मालिक के गवाह स्वीकार किए जाएंगे क्योंकि उसके गवाहों की गवाही में अधिकता का प्रमाण है। और अगर मालिक के पास गवाह न हों, तो शपथ के साथ गसिब की बात स्वीकार की जाएगी क्योंकि वह अधिकता से इनकार कर रहा है। और अगर गसिब ने गवाह पेश किए कि उसके कपड़े की कीमत इतनी थी, तो उसके गवाहों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा और इस क्रिया से उसके ज़िम्मे से शपथ समाप्त नहीं होगी। और अगर दोनों में से किसी के पास गवाह न हों और मालिक चाहे कि गसिब से उसके दावे पर शपथ ले, तो गसिब ने कहा कि "मैं शपथ मालिक (वादी) को लौटाता हूँ और जिस राशि पर मालिक शपथ खाएगा, उतनी मैं उसे दे दूँगा", तो गसिब को यह अधिकार नहीं होगा। और इसी तरह अगर मालिक इस बात पर सहमत हो जाए और कहे कि "मैं शपथ खाऊँगा", तो भी यही आदेश है। अतः इन दोनों की ऐसी बात पर सहमति जो शरीयत के विरुद्ध है, व्यर्थ होगी। और अगर गसिब एक क्षतिग्रस्त कपड़ा लाया और कहा कि "यही वह कपड़ा है जो मैंने तुझसे छीना था" और मालिक ने कहा कि "तू झूठा है, यह वह नहीं है, बल्कि वह तो हिरवी या मरवी (विशेष प्रकार का) था", तो शपथ के साथ गसिब की बात स्वीकार की जाएगी और इस प्रकार शपथ ली जाएगी कि "ईश्वर की शपथ, यही उस व्यक्ति का कपड़ा है जो मैंने उससे

छीना था और मैंने उससे हिरवी या मरवी कपड़ा नहीं छीना है"। फिर अगर उसने शपथ खा ली, तो मालिक के नाम उस कपड़े की डिक्री की जाएगी और गसिब को उसके दावे से बरी कर दिया जाएगा। और अगर उसने शपथ से इनकार (नुकूल) किया, तो उस पर वादी के दावे की डिक्री की जाएगी। फिर अगर मालिक चाहे तो उसे ले ले और चाहे तो छोड़ दे। और अगर गसिब हिरवी कपड़ा लाया और कहा कि "यही मैंने तुझसे छीना है और वैसा ही मौजूद है" और मालिक ने कहा कि "नहीं, बल्कि मेरा कपड़ा नया था जब तूने उसे छीना था", तो शपथ के साथ गसिब की बात स्वीकार की जाएगी। और अगर दोनों ने गवाह पेश किए, तो मालिक के गवाह स्वीकार किए जाएंगे कि वह कपड़ा नया था। और अगर दोनों में से किसी ने गवाह पेश नहीं किए और गसिब ने शपथ खा ली और मालिक ने वह कपड़ा ले लिया, फिर गवाह पेश किए कि गसिब ने वादी से नया कपड़ा छीना था, तो गसिब उस पुराने और नए के बीच जितना अंतर हो, उसका उत्तरदायी होगा। ऐसा ही मूल ग्रन्थ में वर्णित है। और शम्स-उल-आइम्मा सरख़सी ने कहा कि यह आदेश तब है जब हानि की मात्रा कम हो, और अगर अधिक हो तो मालिक को अधिकार होगा कि चाहे वह कपड़ा लेकर उससे हानि का हर्जाना ले ले या कपड़ा उसके ज़िम्मे छोड़ कर उससे अपने कपड़े की कीमत ले ले। यह मुहीत में है। अगर ज़ैद के पास एक कपड़ा हो और अम्र ने उस पर गवाह पेश किए कि यह कपड़ा अम्रद का है, जिसे ज़ैद ने छीन लिया है, और ज़ैद ने गवाह देकर कहा कि अम्र ने ज़ैद को यह कपड़ा उपहार (हिबा) में दे दिया है, तो फ़रमाया गया कि मैं क़ाज़ी के नाम डिक्री करूँगा। इसी तरह अगर क़ाज़ी ने इस बात के गवाह दिए कि वादी ने उसे किसी के हाथों इतनी कीमत पर बेच दिया है या वादी ने स्वीकार किया कि यह कपड़ा इस क़ाबिज़ (कब्ज़ा रखने वाले) का है, तो भी यही आदेश है। और अगर वह कपड़ा दोनों के कब्ज़े में हो और प्रत्येक ने दूसरे पर इस दावे के साथ गवाह पेश किए कि "उसने मुझसे छीना है", तो दोनों...

1- उनका कथन: सवार हो गया और अब वह नया गसिब होकर उत्तरदायी घोषित हुआ।

---

مال لیا ہے اور مالک نے انکار کیا تو مالک کا قول قبول ہوتا ہے اور اگر غاصب نے گواہ دیئے کہ میں نے مغصوبہ جانور مالک کو واپس دیا ہے اور مالک نے گواہ دیئے کہ وہ جانور غاصب کی سواری سے مر گیا یا غاصب نے اس کو تلف کر دیا ہے تو غاصب ضامن ہو گا اس واسطے کہ دونوں کے گواہوں کی گواہی میں تناقض و منافات نہیں ہے کیونکہ جائز ہے کہ غاصب نے وہ جانور واپس دیا ہو پھر بعد واپس دینے کے اس پر سوار ہو گیا ہو اور وہ اس کی سواری سے مر گیا ہو اور اگر غاصب نے گواہ دیئے کہ اس کو واپس دیا اور وہ مالک کے پاس مر گیا اور مالک نے گواہ دیئے کہ وہ غاصب کے پاس مرا ہے اور مالک کے گواہوں نے یہ گواہی نہ دی کہ وہ غاصب کی سواری سے مرا ہے تو غاصب ضامن نہ ہو گا یہ محیط سرخسی میں ہے اور اگر مال مغصوب کوئی دار ہو اور اس کے مالک نے گواہ دیئے کہ غاصب نے اس کو منہدم کر دیا ہے اور غاصب نے گواہ دیئے کہ میں نے اس کو واپس کیا اس کے بعد منہدم ہوا ہو تو مالک کے گواہ قبول ہوں گے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر غاصب غصب کیے ہوئے کپڑے کو تلف کر چکا ہے پھر مالک و غاصب میں اس کپڑے کی مقدار قیمت میں اختلاف ہوا تو مالک کے گواہ قبول ہوں گے کیونکہ اس کے گواہوں کی گواہی میں زیادتی کا اثبات ہے اور اگر مالک کے پاس گواہ نہ ہوں تو قسم سے غاصب کا قول قبول ہو گا کیونکہ وہ زیادت سے منکر ہے اور اگر غاصب نے گواہ پیش کیے کہ اس کے کپڑے کی قیمت اس قدر تھی تو اس کو گواہوں کی طرف التفات نہ کیا جائے گا اور اس فعل سے اس کے ذمہ سے قسم ساقط نہ ہو گی اور اگر دونوں میں سے کسی کے پاس گواہ نہ ہوں اور مالک نے چاہا کہ غاصب سے اپنے دعویٰ پر قسم لے پس غاصب نے کہا کہ میں قسم کو مالک مدعی پر لوٹا دیتا ہوں اور

جس مقدار پر مالک قسم کھائے گا اس قدر میں اس کو دے دوں گا تو غاصب کو یہ اختیار نہ ہو گا اور اسی طرح اگر مالک اس امر پر راضی ہو جائے اور کہے کہ میں قسم کھاؤں گا تو بھی یہی حکم ہے پس ان دونوں کی رضامندی ایسے امر پر جو مخالف شرع ہے لغو ہو گی اور اگر غاصب ایک زخمی کپڑا لایا اور کہا کہ یہی وہ کپڑا ہے جو میں نے تجھ سے غصب کیا تھا اور مالک نے کہا کہ تو جھوٹا ہے یہ وہ نہیں ہے بلکہ وہ تو ہروی یا مروی تھا تو قسم سے غاصب کا قول قبول ہو گا اور یوں قسم لی جائے گی کہ واللہ یہی اس شخص کا کپڑا ہے جو میں نے اس سے غصب کیا تھا اور میں نے اس سے ہروی یا مروی کپڑا غصب نہیں کیا ہے پھر اگر وہ قسم کھا گیا تو مالک کے نام اس کپڑے کی ڈگری کی جائے گی اور غاصب اس کے دعویٰ سے بری کر دیا جائے گا اور اگر قسم سے نکول کیا تو اس پر مدعی کے دعویٰ کی ڈگری کی جائے گی پھر اگر مالک چاہے تو اس کو لے لے اور چاہے چھوڑ دے اور اگر غاصب ہروی کپڑا لایا اور کہا کہ یہی میں نے تجھ سے غصب کیا ہے اور ویسا ہی موجود ہے اور مالک نے کہا کہ نہیں بلکہ میرا کپڑا نیا تھا جب تو نے اُس کو غصب کیا ہے تو قسم سے غاصب کا قول قبول ہو گا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو مالک کے گواہ قبول ہوں گے کہ وہ کپڑا نیا تھا اور اگر دونوں میں سے کسی نے گواہ قائم نہ کیے اور غاصب قسم کھا گیا اور مالک نے وہ کپڑا لے لیا پھر گواہ قائم کیے کہ غاصب نے مدعی سے کپڑا نیا غصب کیا تھا تو غاصب اُس پرانے اور نئے کے درمیان جس قدر فرق ہو اُس کا ضامن ہو گا ایسا ہی اصل میں مذکور ہے اور شمس الائمہ سرخسی نے فرمایا کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ مقدارِ نقصان خفیف ہو اور اگر کثیر ہو تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے یہ کپڑا لے کر اُس سے تاوان نقصان لے لے یا کپڑا اُس کے ذمہ چھوڑ کر اُس سے اپنے کپڑے کی قیمت لے لے یہ محیط میں ہے اگر زید کے پاس ایک کپڑا ہو اور عمرو نے اس پر گواہ قائم کئے کہ یہ کپڑا امر د کا ہے اس سے زید نے غصب کر لیا ہے اور زید نے گواہ دے کر عمرو نے زید کو یہ کپڑا ہبہ کر دیا ہے تو

فرمایا کہ میں قاضی کے نام ڈگری کروں گا اسی طرح اگر قاضی نے اس امر کے گواہ دیئے کہ مدعی نے اُس کے ہاتھ بعوض اس قدر ثمن کسی کے فروخت کیا ہے یا مدعی نے یہ اقرار کیا کہ یہ کپڑا اس قابض کا ہے تو بھی یہی حکم ہے اور اگر وہ کپڑا دونوں کے قبضہ میں ہو اور ہر ایک نے دوسرے پر اس دعویٰ کے گواہ قائم کیے کہ مجھ سے اُس نے غصب کیا ہے تو دونوں

۱- قولہ سوار ہو گیا اور اب وہ جدید غاصب ہو کر ضامن قرار پایا۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 130 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...I shall issue a decree for half each in their names. If one presents witnesses for the claim that "This cloth is mine; I kept it as a trust with the deceased person of whom this man is the heir," and the other presents witnesses for the claim that "This cloth is mine; the deceased usurped it from me," then I shall issue a decree for half each in both their names. If a person brings witnesses that "These specific dirhams present in the estate of this deceased belong to me; the deceased had usurped them from me," then this person shall have a greater right to these dirhams than the creditors of the deceased (1). This is mentioned in *Al-Mabsut*.

### ☆ Claiming Ownership of an Object in Another's Possession and Both Parties Producing Witnesses ☆

If a person claims that a certain cloth in the possession of another belongs to him and was usurped from him, and provides witnesses for this claim, while another claimant provides witnesses against the possessor stating that the possessor admitted the cloth belongs to him (the second claimant), then the decree shall be in the name of the claimant whose witnesses testified that the cloth belongs to him. This is in *Al-Muhit*. If a person says to another, "You usurped this padded robe from me," and the usurper replies, "I did not usurp this robe, but I did usurp its outer fabric (abra) from you," then the statement of the usurper shall be accepted upon oath. If he takes the oath, he shall be liable for the value of the outer fabric, as stated in *Al-Mabsut*.

If he admits, "I usurped this robe from you," but then claims, "The padding inside it or its lining belongs to me," or admits, "I usurped this ring from you but the gemstone is mine," or "I usurped this house from you but the building structure is mine," or "I usurped this land from you but the trees on it are mine," then in all such cases, the usurper's claim (regarding the part he claims as his own) shall not be verified. This is in *Wajiz al-Kardari*. The translator notes: 'Non-verification' means his statement regarding what he claimed as his own will not be accepted as true; understand this.

If the usurper says, "I usurped this cow from such-and-point person but its calf is mine," his statement shall be accepted; this is in *Al-Muhit*. If the owner produces witnesses that the usurped item died while in the usurper's possession, and the usurper produces witnesses that it died while with the owner, the owner's witnesses shall be accepted. If the owner's witnesses testify that the defendant usurped the

slave and he died in his possession, while the usurper's witnesses testify that the slave died with the owner before the act of usurpation, then the witnesses of the usurper shall not be accepted. This is because the death of a slave with the master before usurpation carries no legal consequence, as it does not prove the slave was returned; it only negates the act of usurpation. Conversely, the owner's witnesses establish both usurpation and liability (daman), therefore his witnesses are preferred.

If the owner produces witnesses that this person usurped his slave in Kufa on the Day of Sacrifice (2), and the usurper produces witnesses that he himself or the slave was present in Makkah on that day, then liability (daman) shall still be mandatory upon the usurper. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

An owner regained control of his slave from the usurper while the slave possessed some property. The usurper then claimed, "The property is mine," while the owner claimed, "No, it is mine." If the slave was in the usurper's house at the time and the property was found with him, it belongs to the usurper. If he was not in the usurper's house, the property belongs to the slave's owner. This is in *Wajiz al-Kardari*. Bishr (RA) narrated from Imam Abu Yusuf that if the usurper of a cloth said that...

1. The term "deceased" refers to the person from whom the current possessor inherited; the item was placed as a trust during his lifetime, and upon his death, the possessor became his heir. Using the term "deceased" is a common linguistic simplification. (1) i.e., they shall be given to him. (2) The 10th of Dhul-Hijjah.

...के नाम पर आधा-आधा डिक्री करूँगा। और यदि एक ने इस दावे के गवाह दिए कि यह कपड़ा मेरा है, मैंने उस मृतक के पास अमानत (वसीयत) के रूप में रखा था जिसका यह व्यक्ति वारिस है, और दूसरे ने इस दावे के गवाह दिए कि यह कपड़ा मेरा है और इस मृतक ने मुझसे इसे हड़प लिया था, तो मैं दोनों के नाम पर आधा-आधा डिक्री करूँगा। और यदि कोई व्यक्ति गवाह लाया कि ये विशेष दिरहम जो इस मृतक की विरासत में मौजूद हैं, वे मेरे हैं और इस मृतक ने मुझसे इन्हें हड़प लिया था, तो मृतक के लेनदारों की तुलना में यह व्यक्ति इन दिरहमों का अधिक हकदार होगा (1)। यह 'मबसूत' में वर्णित है।

## ☆ दूसरे व्यक्ति के कब्ज़े वाली चीज़ पर यह दावा करना कि वह मेरी मिल्कियत है, और दोनों पक्षों द्वारा गवाह पेश करना ☆

यदि एक व्यक्ति ने दावा किया कि यह कपड़ा जो इस व्यक्ति के कब्ज़े में है मेरा है और उसने मुझसे इसे हड़प लिया है, और इस दावे के गवाह पेश कर दिए, और दूसरे वादी ने कब्ज़ा करने वाले के विरुद्ध गवाह दिए कि कब्ज़ा करने वाले ने स्वीकार किया है कि यह कपड़ा उसका है, तो डिक्री उस वादी के नाम होगी जिसके गवाहों ने यह गवाही दी है कि यह कपड़ा उस वादी का है। यह 'मुहीत' में है। यदि एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा कि तूने यह भरा-भराया जुब्बा (लबादा) मुझसे हड़प लिया है, और हड़पने वाले (ग़ासिब) ने कहा कि मैंने यह जुब्बा नहीं हड़पा बल्कि इसका बाहरी कपड़ा (अब्रह) तुझसे हड़पा है, तो शपथ के साथ हड़पने वाले की बात स्वीकार की जाएगी। फिर यदि उसने शपथ ले ली, तो वह बाहरी कपड़े की कीमत का ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा, जैसा कि 'मबसूत' में है।

और यदि उसने स्वीकार किया कि मैंने तुझसे यह जुब्बा हड़प लिया है, फिर कहा कि इसके अंदर जो भरा हुआ है वह या इसका अस्तर (लाइनिंग) मेरा है, या इस तरह स्वीकार किया कि मैंने यह अंगूठी तुझसे हड़पी है लेकिन इसका नगीना मेरा है, या यह घर मैंने तुझसे हड़पा है और इसकी इमारत मेरी है, या यह ज़मीन मैंने तुझसे हड़पी है और इसके पेड़ मेरे हैं, तो इन सभी स्थितियों में हड़पने वाले की बात की पुष्टि नहीं की जाएगी। यह 'वजीज़ करदरी' में है। अनुवादक के अनुसार, 'पुष्टि न होने' का अर्थ यह है कि उसने जो चीज़ अपनी बताई है, उसमें उसके बयान को सच नहीं माना जाएगा, इसे समझें।

और यदि हड़पने वाले ने कहा कि मैंने यह गाय फलां व्यक्ति से हड़पी है और इसका बछड़ा मेरा है, तो उसकी बात स्वीकार की जाएगी, यह 'मुहीत' में है। और यदि मालिक ने इस बात के गवाह पेश किए कि हड़पी गई वस्तु हड़पने वाले के पास मर गई है, और हड़पने वाले ने गवाह दिए कि वह वस्तु मालिक के पास मरी है, तो मालिक के गवाह स्वीकार किए जाएँगे। और यदि मालिक के गवाहों ने यह गवाही दी कि इस प्रतिवादी ने वह गुलाम हड़पा था और वह उसके पास मर गया, और हड़पने वाले के गवाहों ने गवाही दी कि वह गुलाम हड़पने से पहले मालिक के पास मर गया था, तो हड़पने वाले के गवाहों की ऐसी गवाही स्वीकार नहीं होगी, क्योंकि स्वामी (मौली) के पास हड़पने से पहले गुलाम के मरने से कोई कानूनी आदेश संबंधित नहीं होता, क्योंकि इससे यह साबित नहीं होता कि उसे वापस कर दिया गया है; हाँ, इससे केवल 'हड़पने' का खंडन होता है, जबकि स्वामी के गवाहों से 'हड़पना और मुआवज़ा' (ज़मान) साबित होता है, इसलिए उसके गवाह स्वीकार्य होंगे।

और यदि मालिक ने गवाह पेश किए कि इस व्यक्ति ने वादी मालिक से कुर्बानी के दिन (2) उसका गुलाम कूफ़ा में हड़प लिया है, और हड़पने वाले ने गवाह दिए कि वह स्वयं या वह गुलाम कुर्बानी के दिन मक्का मुअज़्ज़मा में मौजूद था, तो हड़पने वाले पर मुआवज़ा (ज़मान) अनिवार्य होगा, यह 'मुहीत सरख़सी' में है।

मालिक ने अपने गुलाम को पाकर उसे हड़पने वाले से ले लिया, जबकि गुलाम के पास कुछ माल (संपत्ति) था। फिर हड़पने वाले ने कहा कि यह माल मेरा है और मालिक ने कहा नहीं बल्कि मेरा है। तो यदि गुलाम उस समय हड़पने वाले की हवेली में हो और उसके पास माल निकले, तो वह हड़पने वाले का होगा। और यदि वह उसकी हवेली में न हो, तो वह माल गुलाम के मालिक का होगा। यह 'वजीज़ करदरी' में है। बिश्र (रह.) ने इमाम अबू यूसुफ से रिवायत की है कि यदि कपड़े को हड़पने वाले ने कहा कि...

1. 'मृतक' से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसका यह वारिस है, उसके जीवनकाल में अमानत रखी गई थी, फिर वह मर गया और यह कब्ज़ा करने वाला उसका वारिस बना। 'मृतक' शब्द का प्रयोग करना प्रथागत रूप से एक सहजता (मुसामहा) है। (1) अर्थात उसी को दिए जाएँगे। (2) दस ज़िल-हिज्जा।

---

کے نام نصفاً نصف کی ڈگری کروں گا اور اگر ایک نے اس دعویٰ کے گواہ دیئے کہ یہ کپڑا میرا ہے میں نے اُس میت کے پاس ودیعت رکھا تھا جس کا یہ شخص وارث ہے اور دوسرے نے اس دعویٰ کے گواہ دیئے کہ یہ کپڑا میرا ہے مجھ سے اس میت نے غصب کر لیا تھا تو میں دونوں کے نام نصفاً نصف کی ڈگری کروں گا اور اگر ایک شخص گواہ لایا کہ یہ دراہم معینہ جو اس میت کے ترکہ میں موجود ہیں یہ میرے ہیں مجھ سے اس میت نے غصب کر لیے تھے تو میت کے قرض خواہوں کی بہ نسبت یہ شخص ان درہموں کا حقدار ہوگا(۱) یہ مبسوط میں ہے۔

**☆ دوسرے شخص کے قبضہ کی گئی چیز پر دعویٰ کیا کہ وہ میری ملکیت ہے اور فریقین نے گواہ پیش کر دیئے ☆**

اگر ایک شخص نے دعویٰ کیا کہ یہ کپڑا جو اس شخص کے قبضہ میں ہے میرا ہے اور اُس نے مجھ سے غصب کر لیا ہے اور اس دعویٰ کے گواہ قائم کر دیئے اور ایک دوسرے مدعی نے قابض پر اس دعویٰ کے گواہ دیئے کہ قابض نے اقرار کیا ہے کہ یہ کپڑا اس کا ہے تو اُس مدعی کے نام ڈگری ہو گی جس کے گواہوں نے یہ گواہی دی ہے کہ یہ کپڑا اس مدعی کا ہے۔ یہ محیط میں ہے اگر ایک شخص نے دوسرے سے کہا کہ تو نے یہ جبہ بھرا بھرایا مجھ سے غصب کر لیا ہے اور غاصب نے کہا کہ میں نے یہ جبہ غصب نہیں کیا مگر اس کا ابرہ تجھ سے غصب کر لیا ہے تو قسم سے غاصب کا قول قبول ہو گا پھر اگر وہ قسم کھا گیا تو ابرہ کی قیمت کا ضامن ہو گا کذا فی المبسوط اور اگر اقرار کیا کہ میں نے تجھ سے یہ جبہ غصب کیا ہے پھر کہا کہ جو کچھ اس میں بھرا ہے وہ اس کا استر میرا ہے یا یوں اقرار کیا کہ میں نے یہ انگوٹھی تجھ سے غصب

کی ہے اور اس کا نگینہ میرا ہے یا یہ دار میں نے تجھ سے غصب کیا ہے اور اس کی عمارت میری ہے یا یہ زمین میں نے تجھ سے غصب کی ہے اور اُس کے درخت میرے ہیں تو سب صورتوں میں غاصب کی بات کی تصدیق نہ ہو گی یہ وجیز کردری میں ہے قال المترجم عدم تصدیق سے یہ مراد ہے کہ جو چیز اُس نے اپنی بیان کی ہے اُس میں اس کے بیان کی تصدیق نہ ہو گی فافہم اور اگر غاصب نے کہا کہ میں نے یہ گائے فلاں شخص سے غصب کر لی ہے اور اُس کا بچہ میرا ہے تو اُس کا قول قبول ہو گا یہ محیط میں ہے اور اگر مالک نے اس امر کے گواہ قائم کیے کہ غاصب کے پاس مغصوب مر گیا ہے اور غاصب نے گواہ دیئے کہ مغصوب مالک کے پاس مرا ہے تو مالک کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر مالک کے گواہوں نے یوں گواہی دی کہ اس مدعا علیہ نے وہ غلام غصب کیا اور اُس کے پاس مر گیا اور غاصب کے گواہوں نے یوں گواہی دی کہ وہ غلام غصب سے پہلے مالک کے پاس مر گیا ہے تو غاصب کے گواہوں کی ایسی گواہی قبول نہ ہو گی اس واسطے کہ مولیٰ کے پاس غصب سے پہلے غلام کے مر جانے سے کوئی حکم متعلق نہیں ہوتا کیونکہ اس سے یہ ثابت نہیں ہوتا ہے کہ واپس دیا ہے ہاں فقط اس سے نفی غصب ثابت ہوتی ہے اور مولیٰ کے گواہوں سے غصب وضمان ثابت ہوتی ہے پس اُس کے گواہ مقبول ہوں گے اور اگر مالک نے گواہ قائم کیے کہ اس شخص نے مالک مدعی سے قربانی کے روز (۲) اُس کا غلام کوفہ میں غصب کیا ہے اور غاصب نے گواہ دیئے کہ غاصب خود یا وہ غلام قربانی کے روز مکہ معظمہ میں موجود تھا تو غاصب پر ضمان واجب ہو گی یہ محیط سرخسی میں ہے۔

مالک نے اپنا غلام قابو پا کر غاصب سے لے لیا حالانکہ غلام کے پاس مال تھا پھر غاصب نے کہا کہ میرا مال ہے اور مالک نے کہا نہیں بلکہ میرا ہے پس اگر غلام اُس وقت غاصب کی حویلی میں ہو اور اُس کے پاس مال نکلا تو وہ غاصب کا ہو گا اور اگر اُس کی حویلی میں نہ ہو تو وہ مال

مالک غلام کا ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے بشرؒ نے امام ابو یوسف سے روایت کی ہے کہ اگر غاصب الثوب (کپڑا) نے کہا کہ

۱ قولہ میت یعنی اس شخص کے پاس جس کا یہ وارث ہے اس کی حین حیات میں ودیعت رکھا تھا پھر وہ مرا اور یہ قابض اس کا وارث ہوا اور بلفظ میت تعبیر کرنا مسامحہ بطریق عرف ہے۔ (۱) یعنی اسی کو دیئے جائیں گے۔ (۲) دسویں ذی الحجہ۔

**Fatawa-e-Alamgiri, Volume 8, Kitab al-Ghasab (The Book of Usurpation)**

[If a person says] "I dyed this cloth," and the dispossessed person (the one whose property was seized) says, "You seized it already dyed," then the statement of the dispossessed person will be accepted. Similarly, if both parties disagree regarding the construction of a seized house or the ornamentation of a sword, the same ruling applies. If both provide witnesses, the witnesses of the usurper (ghasib) will be accepted. If they disagree about goods kept inside a seized house, or burnt bricks, or a pair of door leaves, then the statement of the usurper and the witnesses of the dispossessed will be accepted. If a person seizes another person's slave, sells him, delivers him to the buyer, and receives the price, and then the slave dies while in the buyer's possession, and the dispossessed person says, "I commanded this person to sell him," then his statement will be accepted. However, if he says, "I did not command the sale, but when I received news of the sale, I authorized it," then his statement will not be considered, and he will have no right to receive the proceeds. But if he produces witnesses that he authorized the sale before the slave's death, then he may take the price. Hisham mentioned in his 'Nawadir' that he asked Imam Muhammad about a person who comes into a market and spills someone's olive oil, fat, vinegar, or any similar substance, and witnesses observed the act and testified to it. The person who committed the act replied, "It was impure (najis) because a mouse had died in it, so I spilled it." In this case, his statement will be accepted. I (Hisham) then said to Imam Muhammad, "What if a person came to the butchers' market and intentionally threw down a tray (tabaq) of meat, destroying all the meat, and witnesses saw and testified to it, but he then replied, 'It was carrion (meat of a dead animal)'?" Imam Muhammad replied, "I will not confirm his statement, and witnesses (who have knowledge based on customary practice) are permitted to testify that it was the meat of a slaughtered animal because carrion meat is not sold in markets, unlike oil or olive oil in which a mouse has died, as such oil is indeed sold in markets." Ibrahim narrated from Imam Muhammad that if a person makes sun-dried bricks or a wall using someone else's soil, it will belong to him (the maker), and he will be liable for the price of the soil. If the owner of the soil says, "I ordered him to make it," then the bricks or the wall will belong to the owner of the soil; this is recorded in 'al-Muhit'. If a person seizes a slave girl and then frees her, or makes her a 'Mudabbarah' (freed upon his death), or an 'Umm al-Walad' (mother of his child), and later confesses, "I seized her from so-and-so," but the claimant has no witnesses, then he (the usurper) will be liable for her price, his actions will not be invalidated, and he will not be liable

for the value of any child. If the claimant then produces witnesses, the decree for the slave girl and her child will be in his name; this is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. If a person confesses, "We seized one thousand dirhams from so-and-so," and there were ten of us involved, then a decree will be issued against him for the full one thousand dirhams, as stated in 'al-Tatarkhaniyya'.

**Chapter Eight: Regarding the Usurper Becoming the Owner of Seized Property and Benefiting From It.**

If a person seizes another person's meat and cooks it, or seizes his wheat and grinds it into flour, thereby becoming the owner and becoming liable for its price, then according to Imam Azam (Abu Hanifa), eating that item is lawful (halal) for him, but according to Imam Abu Yusuf, eating it is forbidden (haram).

1. The statement and acceptance of the owner apply when there are no witnesses or evidence contradicting his statement.
2. 'Tabaq' is used here to mean a large plate, dish, or bowl.

## फ़तावा-ए-आलमगीरी जिल्द 8 किताबुल गसब

"उस कपड़े को मैंने रंगा है" और मग़सूब मिन्हु (जिसका माल छीना गया) ने कहा कि "तूने रंगा हुआ गसब किया है," तो मग़सूब मिन्हु का कहना स्वीकार किया जाएगा। इसी प्रकार यदि दोनों ने मग़सूब घर की इमारत या तलवार के आभूषण के बारे में विवाद किया, तो भी यही नियम है। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो ग़ासिब (अपहर्ता) के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। और यदि दोनों ने मग़सूब घर के अंदर रखे हुए सामान या पक्की ईंटों या दरवाजों की जोड़ी के बारे में विवाद किया, तो ग़ासिब का कथन और मग़सूब मिन्हु के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे का गुलाम गसब किया, उसे बेचकर खरीदार को सौंप दिया और कीमत वसूल कर ली, और वह गुलाम खरीदार के पास मर गया, फिर मग़सूब मिन्हु ने कहा कि "मैंने इस व्यक्ति को बेचने का आदेश दिया था," तो उसी का कहना स्वीकार किया जाएगा। और यदि उसने कहा कि "मैंने इसे बेचने का आदेश नहीं दिया था, लेकिन जब मुझे बिक्री की खबर मिली तो मैंने उसे स्वीकार कर लिया," तो उसके कहने पर ध्यान नहीं दिया जाएगा और उसे कीमत लेने का कोई अधिकार नहीं होगा। लेकिन अगर वह गवाह पेश करे कि "मैंने गुलाम की मृत्यु से पहले बिक्री की अनुमति दी थी," तो वह कीमत ले सकता है। हिशाम ने अपनी 'नवादिर' में उल्लेख किया है कि मैंने इमाम मुहम्मद से पूछा कि "एक व्यक्ति बाजार में आया और उसने किसी के जैतून का तेल या सिरका आदि बहा दिया, और गवाहों ने इस कृत्य को देखा और गवाही दी। जिस व्यक्ति ने यह कृत्य किया था उसने उत्तर दिया कि वह अपवित्र (नजिस) था क्योंकि उसमें चूहा मर गया था, इसलिए मैंने उसे बहा दिया।" तो उसी का कहना स्वीकार किया जाएगा। मैंने इमाम मुहम्मद से कहा कि "यदि वह व्यक्ति कसाई के बाजार में आया और जानबूझकर मांस का बर्तन (तबाक) फेंककर सारा मांस नष्ट कर दिया, और गवाहों ने उसे देखा और गवाही दी, फिर उसने उत्तर दिया कि वह मुर्दा जानवर का मांस था।" तो इमाम मुहम्मद ने कहा कि "मैं उसके इस कथन की पुष्टि नहीं करूँगा, और गवाहों को (जिन्हें केवल सामान्य अभ्यास का ज्ञान है) इस प्रकार गवाही देने की अनुमति है कि वह ज़बह किए हुए जानवर का मांस था। क्योंकि बाजार में मुर्दा जानवर का मांस नहीं बेचा जाता है, तेल या जैतून के तेल के विपरीत जिसमें चूहा गिर गया हो, क्योंकि वह बाजार में बेचा जाता है।" इब्राहिम ने इमाम मुहम्मद से रिवायत की है कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की मिट्टी से कच्ची ईंटें या दीवार बनाई, तो वह उसी (बनाने वाले) की होगी और उसे मिट्टी की कीमत चुकानी होगी। और यदि मिट्टी के मालिक ने कहा कि "मैंने उसे बनाने का आदेश दिया था," तो वे ईंटें या दीवार मिट्टी के मालिक की होगी; यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने एक दासी का गसब

किया, फिर उसे आजाद कर दिया या मुदब्बर (मरने के बाद आजाद होने की घोषणा) बनाया या उम्म-ए-वलद बनाया, फिर स्वीकार किया कि "मैंने अमुक व्यक्ति से गसब किया है," और दावेदार के पास गवाह नहीं हैं, तो वह उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा, और उसने जो कुछ किया है वह अवैध नहीं होगा, और बच्चे की कीमत का ज़िम्मेदार नहीं होगा। फिर यदि दावेदार ने गवाह पेश किए, तो दासी और बच्चे की डिक्री उसके नाम हो जाएगी; यह 'मुहीत सरखसी' में है। एक व्यक्ति ने स्वीकार किया कि "हमने अमुक व्यक्ति से एक हजार दिरहम गसब किए हैं, जबकि हम दस लोग थे," तो उस पर पूरे एक हजार दिरहम की डिक्री दी जाएगी, जैसा कि 'ततार खानिया' में है।

## अध्याय आठ: ग़ासिब का छीने हुए माल का मालिक बन जाने और उससे लाभ प्राप्त करने का वर्णन

यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे का मांस गसब करके उसे पकाया, या उसके गेहूं गसब करके उन्हें पिसवाया और वह उसका मालिक बन गया और उस पर कीमत वाजिब हो गई, तो इमाम आज़म के अनुसार उस चीज़ को खाना उसके लिए हलाल है, और इमाम अबू यूसुफ के अनुसार उसे खाना हराम है।

1. मालिक का कहना और स्वीकार्यता तब है जब उसके पास कोई गवाह या उसके बयान का खंडन करने वाला कोई प्रमाण न हो।
2. 'तबाक' का अर्थ है बड़ी थाली, रकाबी या प्याला।

اس کپڑے کو میں نے رنگا ہے اور مغصوب منہ نے کہا کہ تو نے رنگا ہوا غصب کیا ہے تو مغصوب منہ کا قول قبول ہوگا اسی طرح اگر دونوں نے دار مغصوب کی عمارت یا تلوار کے حلیہ میں اختلاف کیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو غاصب کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر دونوں نے دار مغصوب کے اندر رکھی ہوئی متاع یا خشت ہائے پختہ یا جوڑی کواڑ میں ایسا اختلاف کیا تو غاصب کا قول اور مغصوب منہ کے گواہ قبول ہوں گے اگر ایک شخص نے دوسرے کا غلام غصب کر کے اس کو فروخت کر کے مشتری کے سپرد کر دیا اور ثمن وصول کر لیا اور وہ غلام مشتری کے پاس مر گیا پھر مغصوب منہ نے کہا کہ میں نے اس شخص کو بیع کے واسطے حکم دیا تھا تو اسی کا قول قبول ہوگا اور اگر کہا کہ میں نے اس کو بیع کا حکم نہیں دیا تھا مگر جس وقت مجھے بیع کی خبر پہنچی اس وقت میں نے بیع کی اجازت دے دی ہے تو اس کے قول پر التفات نہ ہو گا اور اس کو ثمن لینے کی کوئی راہ نہ ہو گی لیکن اگر اس امر کے گواہ پیش کرے کہ میں نے غلام کے مرنے سے پہلے بیع کی اجازت دی ہے تو ثمن لے سکتا ہے ہشام نے اپنی نوادر میں ذکر کیا ہے کہ میں نے امام محمد سے پوچھا کہ ایک شخص بازار میں آیا اور کسی شخص کا زیتون کا تیل یا روغن یا اور کوئی چیز سرکہ یا روغن کی قسم سے بہا دی اور گواہوں نے اس فعل کو معائنہ کیا اور اس پر گواہی دی اور اس شخص نے جس نے یہ جرم کیا تھا یہ جواب دیا کہ وہ نجس تھا اس میں ایک چوہا مر گیا تھا میں نے اس کو بہا دیا تو اسی کا قول قبول ہو گا میں نے امام محمد سے کہا کہ اگر وہ شخص قصابوں کے بازار میں آیا اور قصد کر کے اس نے گوشت کے طباق* پھینک کر تمام گوشت تلف کر دیا اور گواہوں نے اس کا معائنہ کیا اور اس پر گواہی دی پس اس نے جواب دیا کہ یہ مردار کا گوشت تھا تو امام محمد نے

فرمایا کہ میں اس قول میں اس کی تصدیق نہ کروں گا اور گواہوں (گواہوں کو صرف عادت کے علم پر گواہی کی اجازت دی) کو گنجائش ہے کہ یوں گواہی دیں کہ وہ ذبح کیے ہوئے جانور کا گوشت تھا اس واسطے کہ بازار میں مردار کا گوشت فروخت نہیں ہوتا ہے بخلاف روغن کے کہ ایسا روغن زیتون یا تیل جس میں چوہا مر گیا ہو بازار میں فروخت کیا جاتا ہے اور ابراہیم نے امام محمد سے روایت کی کہ اگر ایک شخص نے دوسرے کی مٹی سے کچی اینٹیں یا دیوار بنائی تو اسی کی ہو گی اور اس پر مٹی کی قیمت واجب ہو گی اور اگر مٹی کے مالک نے کہا کہ میں نے اس کو اس کے بنانے کا حکم کیا تھا تو فرمایا کہ وہ اینٹیں یا دیوار مٹی کے مالک کی ہو گی یہ محیط میں ہے ایک شخص نے ایک باندی غصب کی پھر اس کو آزاد کر دیا یا مدبر کر دیا یا ام ولد بنایا پھر اقرار کیا کہ میں نے فلاں شخص سے غصب کی ہے اور مدعی کے پاس گواہ نہیں ہیں تو اس کی قیمت کا ضامن ہو گا اور جو کچھ اس نے کیا ہے وہ باطل نہ ہو گا اور بچہ کی قیمت کا ضامن نہ ہوگا پھر اگر مدعی نے گواہ قائم کیے تو اس کے نام باندی اور باندی کے بچہ کی ڈگری ہو جائے گی یہ محیط سرخسی میں ہے ایک شخص نے یوں اقرار کیا کہ ہم نے فلاں شخص سے ہزار درہم غصب کر لیے در حالیکہ ہم دس آدمی تھے تو اس پر پورے ہزار درہم کی ڈگری کی جائے گی کذا فی التاتار خانیہ۔

**باب ہشتم: غاصب کے مال مغصوب کے مالک ہو جانے اور اس سے نفع حاصل کرنے کا بیان**

اگر ایک شخص نے دوسرے کا گوشت غصب کر کے اس کو پکایا یا اس کے گیہوں غصب کر کے ان کو پسایا اور ملک اس کی ہو گئی اور اس پر قیمت واجب ہوئی تو امام اعظم کے نزدیک اس چیز کا کھانا اس کو حلال ہے اور امام ابو یوسف کے نزدیک اس کا کھانا حرام ہے۔

ا قول و قبول جب مالک کے پاس گواہ یا اس کے قول کا معارض ثابت نہ ہو فہم۔ * طباق کی معنی میں مستعمل ہے جیسا کہ بڑی رکابی۔ تھالی۔ کاسہ سر۔ کھوپڑی۔ پنجہ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 ..... 132 ..... Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

...Until he satisfies the person from whom the property was usurped (the *maghsub minhu*). It is recorded in *Fatawa Ahl Samarqand* that if someone usurps another person's grain and chews it until it is destroyed by the chewing process, and then swallows it, according to Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa), it becomes lawful (*halal*) for him [after swallowing], contrary to the views of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad. The basis for this is that according to Imam al-A'zam, the condition for lawfulness is the acquisition of ownership through the obligation of compensation (*badal*), whereas according to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), it is through the actual payment of compensation. This is stated in *Al-Muhit*, and the fatwa follows the opinion of the *Sahibayn* as mentioned in *Al-Khulasah*.

Furthermore, if someone usurps wheat and sows it, and then the owner arrives when the crop is ripe or still raw, the usurper is liable to pay an equivalent amount of wheat. According to us, the original owner has no right to take the standing crop, but it is not lawful for the usurper to benefit from the crop beyond the amount he paid as compensation for the wheat. Similarly, if someone usurps a seed and grows it, or usurps a sapling and plants it, the same rule applies. It is narrated from Imam Abu Yusuf regarding the sapling that the usurper cannot lawfully benefit from it until he pays the compensation (*daman*); however, regarding crops and seeds, he said it is lawful to benefit before payment. Nevertheless, in *Zahir al-Riwayah*, the ruling is the same for both cases with no difference. Likewise, if someone usurps a hen's egg and places it under a hen and a chick hatches, the ruling for it is the same as the ruling for crops; this is stated in *Al-Mabsut*.

If a person uproots a sapling from someone else's land and plants it in a different part of that same land, and it grows into a tree, the tree belongs to the one who planted it (the usurper). The usurper must pay the owner the value of the sapling on the day it was uprooted, and the usurper shall be ordered to remove the tree. If removing it would damage the land, the landowner may pay the usurper the value of the tree, specifically the value of an uprooted tree; this is mentioned in *Al-Kubra*.

If Zaid uproots a sapling from Amr's land and plants it in Bakr's land, and it grows and bears fruit, all of it belongs to Zaid, but it is not lawful (*halal*) for him because he acquired it through prohibited means. Bakr has the right to order the removal of the tree. If Zaid asks for a grace period until the spring season (*Rabi*) to relocate it, the

period shall not be granted, unless the landowner agrees. If both parties agree to buy or sell the tree and Bakr buys it from Zaid, the sale is valid, and Zaid is obligated to pay Amr the value of the sapling as of the day it was uprooted; this is found in *Jawahir al-Fatawa*. (The translator's note in Arabic discusses the legal theory of ownership according to Imam Abu Hanifa, debating whether profit is lawful before or after compensation is paid).

1. The *Sahibayn* have spoken against this.
2. Ownership by replacement means that when compensation becomes mandatory, ownership is established, making it lawful.
3. Translator's Note: This case aligns with Imam Abu Hanifa's view, as a sale is valid when the profit is lawful for the usurper.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 ..... 132 ..... किताबुल ग़सब (छीनी हुई वस्तुओं का अध्याय)**

जब तक वह उस व्यक्ति को प्रसन्न न कर दे जिससे वस्तु छीनी गई है (मग़सूब मिन्हु)। फ़तावा अहल-ए-समरकंद में लिखा है कि यदि किसी ने दूसरे का अनाज छीनकर उसे चबाया, यहाँ तक कि चबाने से वह नष्ट हो गया, फिर जब उसने उसे निगल लिया, तो इमाम-ए-आज़म (रह.) के निकट वह हलाल (वैध) हो गया, जबकि इमाम अबू यूसुफ और इमाम मोहम्मद (रह.) का मत इसके विपरीत है। इमाम-ए-आज़म के निकट हलाल होने की शर्त यह है कि मुआवज़े (बदल) के दायित्व से स्वामित्व प्राप्त हो जाता है, जबकि साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और मोहम्मद) के निकट मुआवज़ा अदा करने पर स्वामित्व प्राप्त होता है। अल-मुहीत और खुलासत में साहिबैन के मत पर फतवा दिया गया है। और यदि किसी ने गेहूँ छीनकर उसकी खेती की, फिर मालिक आया, जबकि खेती पक चुकी थी या कच्ची थी, तो ग़ासिब (छीनने वाले) पर उन गेहूँ के बराबर गेहूँ देना अनिवार्य होगा, और हमारे निकट मालिक को खेती लेने का कोई अधिकार नहीं है, परंतु ग़ासिब ने जितना हर्जाना दिया है, उससे अधिक खेती में से लेना उसके लिए हलाल नहीं है। इसी प्रकार यदि उसने गुठली छीनकर उसे उगाया या पौधा छीनकर उसे लगाया, तो भी यही नियम है। इमाम अबू यूसुफ से रिवायत है कि उन्होंने पौधे के मामले में फ़रमाया कि जब तक मुआवज़ा अदा न कर दे, उससे लाभ उठाना ग़ासिब के लिए हलाल नहीं है, जबकि खेती और गुठली के मामले में उन्होंने कहा कि मुआवज़े से पहले भी लाभ उठाना हलाल है, लेकिन ज़ाहिर-अर-रिवायत में दोनों स्थितियों में एक ही नियम है। इसी प्रकार यदि किसी ने मुर्गी का अंडा छीनकर किसी मुर्गी के नीचे रखा और उससे चूज़ा निकला, तो उसका और खेती का नियम एक ही है, यह मब्सूत में दर्ज है। यदि किसी ने दूसरे की ज़मीन से पौधा उखाड़कर उसी ज़मीन के एक ओर लगा दिया और वह पेड़ बन गया, तो वह पेड़ उसी का होगा जिसने उसे लगाया है (यानी ग़ासिब का), और ग़ासिब पर अनिवार्य होगा कि वह मालिक को पौधा उखाड़ने के दिन की कीमत दे, और ग़ासिब को आदेश दिया जाएगा कि वह उस पेड़ को उखाड़ ले। यदि उखाड़ने में ज़मीन को नुकसान होता हो, तो ज़मीन का मालिक उस पेड़ की कीमत ग़ासिब को दे देगा, परंतु उखड़े हुए पेड़ की कीमत दी जाएगी, यह 'कुब्रा' में लिखा है।

यदि ज़ैद ने अम्र की ज़मीन से एक पौधा उखाड़कर बक्र की ज़मीन में लगाया और वह बड़ा होकर फल देने लगा, तो यह सब ज़ैद का होगा, परंतु उसके लिए हलाल नहीं होगा क्योंकि उसने इसे हराम तरीके से प्राप्त किया है। बक्र को अधिकार होगा कि वह उसे पेड़ उखाड़ने का आदेश दे। यदि ज़ैद

रबी (वसंत) के मौसम तक की मोहलत माँगे ताकि उसे उखाड़कर दूसरी जगह लगा सके तो मोहलत नहीं दी जाएगी, लेकिन यदि ज़मीन का मालिक सहमत हो जाए तो संभव है। यदि दोनों पेड़ की खरीद-फरोख्त पर सहमत हो जाएँ और बक्र उसे ज़ैद से खरीद ले, तो यह विक्रय वैध (जायज़) है और ज़ैद पर अनिवार्य होगा कि वह अम्र को पौधा उखाड़ने के दिन की कीमत दे, यह जवाहर-उल-फ़तावा में है। (अनुवादक का नोट: अरबी इबारत का सारांश यह है कि इमाम अबू हनीफा के अनुसार स्वामित्व और विक्रय की वैधता पर चर्चा की गई है, जिसमें मुआवज़े की अदायगी और हलाल-हराम के सूक्ष्म अंतरों को स्पष्ट किया गया है।)

1. साहिबैन ने इसके विरुद्ध कहा है।
2. मुआवज़े के बदले स्वामित्व प्राप्त होने का अर्थ है कि मुआवज़ा अनिवार्य होते ही स्वामित्व मिल गया, अतः हलाल हुआ।
3. अनुवादक का मत है कि यह स्थिति इमाम अबू हनीफ़ा के मत के अनुकूल है, क्योंकि जब ग़ासिब के लिए लाभ हलाल हो तो विक्रय जायज़ होता है।

---

تا وقتیکہ مغصوب منہ کو راضی نہ کرے۔ فتاویٰ اہل سمرقند میں لکھا ہے کہ کسی نے دوسرے کا اناج غصب کر کے اس کو چبایا حتیٰ کہ چبانے سے وہ شخص تلف کنندہ ہو گیا پھر جب اس کو نگل گیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک حلال نکلا بخلاف قولِ امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے (۱) بناء بر اینکہ امام اعظمؒ کے نزدیک شرط حلتِ ۳ حصول الملک ببدل ہے اور صاحبین کے نزدیک بادائے بدل ہے کذا فی المحیط اور فتویٰ صاحبین کے قول پر ہے کذا فی الخلاصۃ۔ اور اگر گیہوں غصب کر کے ان کی زراعت کی پھر ان کا مالک آیا درحالیکہ زراعت پختہ ہو گئی تھی یا ہنوز خام تھی تو غاصب پر اس کے گیہوں کے مثل گیہوں واجب ہوں گے اور ہمارے نزدیک مالک کو زراعت لینے کی کوئی راہ نہیں ہے مگر غاصب نے جس قدر گیہوں تاوان دیئے ہیں ان سے زیادہ زراعت میں سے لینا حلال نہیں ہے اور علی ہذا اگر اس نے گٹھلی غصب کر کے اس کو اگایا یا پودا غصب کر کے اس کو جمایا تو بھی یہی حکم ہے اور امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ انہوں نے پودے کی صورت میں فرمایا کہ جب تک ضمان ادا نہ کرے تب تک اس سے نفع حاصل کرنا غاصب کو حلال نہیں ہے اور زراعت اور گٹھلی کی صورت میں فرمایا کہ قبل ضمان کے اس کو نفع حاصل کرنا حلال ہے مگر ظاہر الروایت میں دونوں صورتوں میں ایک ہی حکم ہے کچھ فرق نہیں ہے اور علی ہذا اگر اس نے مرغی کا انڈا غصب کر کے کسی مرغی کے نیچے بٹھلایا اور اس سے بچہ نکلا تو اس کا اور مسئلہ زراعت کا ایک حکم ہے یہ مبسوط میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کی زمین سے پودا اکھاڑ کر اسی زمین میں ایک طرف جما دیا اور وہ بڑھ کر درخت ہو گیا تو یہ درخت اس شخص کا ہو گا جس نے لگایا ہے (یعنی غاصب کا) اور غاصب پر واجب ہو گا کہ مالک کو اس کا پودا اکھاڑنے کے روز کی قیمت ادا کرے اور غاصب کو حکم دیا جائے گا کہ اس

درخت کو اکھاڑ لے اور اگر اس کے اکھاڑنے میں زمین کو نقصان پہنچتا ہو تو زمین کا مالک اس کو اس درخت کی قیمت دے دے گا مگر اکھڑے ہوئے درخت کی قیمت دے گا یہ کبریٰ میں ہے۔

اگر زید نے عمرو کی زمین سے ایک پودا اکھاڑ کر بکر کی زمین میں جمایا اور وہ بڑا ہو کر پھل لایا تو یہ سب زید کا ہو گا مگر اس کو حلال نہ ہو گا اس واسطے کہ اس نے حرام طور سے حاصل کیا ہے اور بکر کو اختیار ہو گا کہ اس کو یہ درخت اکھاڑ لینے کا حکم دے اور اگر زید نے موسم ربیع تک مہلت مانگی تاکہ ایام ربیع میں اس کو اکھاڑ کر دوسری جگہ جما دے تو مہلت نہ دی جائے گی لیکن اگر زمین کا مالک راضی ہو جائے تو ہو سکتا ہے اور اگر دونوں آدمی اس درخت کی خرید فروخت پر راضی ہوئے اور بکر نے اس کو زید سے خرید لیا تو بیع جائز ہے اور زید پر واجب ہو گا کہ عمرو کو اس کے پودے کے اکھاڑنے کے روز کی قیمت دے یہ جواہر الفتاویٰ میں ہے۔ قال المترجم ۲ ینبغی ان یکون هذا الوضع للمسئلة علی قیاس قول الامام ابی حنیفة فانه قد ذکر ان صاحب الارض الثانیة لو اشتری الشجرة من الغاصب فانه یجوز البیع اذاتر اضیا فا نما یصح لانلملك لغاصب بالانتفاع بالشجرة و ذلك انما یکون فی الحال عند الاعظم فانه لم یود الضمان الی صاحب التآلة بعد اللهم الا ان پیال ان المراد بالجواز نفاذه الی اداء فالضمان ان الجواز لا یستلزم النفاذولکن الشئ اذا کان محرماً علی البائع لایجوز للمشتری مع علمه شراة ویمکن ان یقال انه اذا انقطع حق المالك صار محلاً بجواز البیع لانه ملك الغاصب بالاتفاق وانما الخلاف فی انه هل یجوز الانتفاع قبل اداء الضمان ام لا و ذلك لا ینافی جواز البیع ویرد علیه ما اور د علی الاول و یمکن ان یجاب عنه بان التورع لا یتنافی الاحکام و لو قیل لان المراد بالبیع هو

۱۔ صاحبین نے اس کے خلاف کہا ہے۔ ۲۔ قول حصول الملک ببدل یعنی ضمان واجب ہونے سے ملکیت حاصل ہوئی تو حلال ہوا۔ ۳۔ قال المترجم یعنی یہ صورت موافق قول ابو حنیفہ ہے کیونکہ جب غاصب کو نفع حلال ہو تب بیع جائز ہے اور یہی قول امام ہے اور ہنوز اس نے پودے کی

ضمان نہیں دی اور اگر مراد بعد ادائے ضمان ہے تو وضع بیان میں قصور ہے اگرچہ سب کے نزدیک جواز ہو فتأمل۔ (۱) صاحبین کے نزدیک کبھی حلت کا حکم نہیں ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (Page 133) Book of Usurpation (Kitab-ul-Ghasb)**

After paying the compensation to the first party, there is no need for it [further claim], and it is valid by consensus. However, show leniency at that time, and Allah knows best. If a person takes another person's goat without their permission, slaughters it, and then cooks or roasts it, the owner has the right to demand the value of the goat as compensation from the usurper (Ghasib). If the owner is absent, or present but does not agree to take the compensation, the person who slaughtered and cooked or roasted it is not allowed to eat the meat himself, nor can anyone else eat it or be fed by him, until the usurper pays the price to the owner. If the owner receives compensation for the price of the goat by the judge's order or without it, then it is permissible for the usurper to eat it himself or feed others, provided the compensation is paid or becomes a debt upon him. If the owner refuses to take the compensation, the usurper should give the slaughtered meat as charity (Sadaqah). If the owner refuses compensation but wants the cooked or roasted meat, he does not have that right; this is in *Siraj-ul-Wahaj*. If a person usurps another's safflower to dye a cloth or usurps oil to mix with roasted flour (Sattu), he is not allowed to benefit from it until he satisfies the original owner; this is in *Al-Muheet*. It is narrated from Imam Muhammad (RA) that if a person usurps ten dinars from another and adds one of his own dinars to them, then gives one dinar out of the collection to someone, it is permissible. However, if he wants to give the second one, it is not permissible; this is quoted in *Tatarkhania* from *Jami-ul-Jawami*. If a person usurps another's slave girl and causes her to be defective, and the owner and the usurper disagree on her value—the owner claiming it was two thousand dirhams and the usurper claiming one thousand, swearing an oath on it—and the judge decrees one thousand dirhams against the usurper, it is not permissible for the usurper to take service from her, have sexual intercourse (wati), or sell her until he pays the full original price to the owner. If he sets the slave girl free after a decree for a lower price, the manumission will be valid, and the full price will be mandatory upon the usurper, just as in an invalid sale (*Bay' al-Fasid*), where freeing a purchased item makes the full price mandatory and the manumission effective; this is in *Fatawa Qazi Khan*. It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that if water washes away someone's wheat into another's land and it grows there, the Imam said: if the wheat is of such a quantity that it has a price, then whatever grows belongs to the owner of the original wheat. However, he should give as charity anything in excess of the original amount of wheat, and no compensation for land damage will be due; this is in *Al-Muheet*. If a

person marries a woman by fixing usurped cloth as the dower (Mahr), sexual intercourse with her is lawful because if the cloth is reclaimed by its rightful owner, the marriage remains valid; this is in *Niya Bay'*. Sadr-ul-Islam mentioned in *Jami-us-Saghir* that if a person buys a slave girl with one thousand usurped dirhams, is sexual intercourse with her lawful? The correct view is that he does not have the right of intercourse because there is a type of impurity (*khubth*) in the cause; this is in *Al-Nihaya*. Ibrahim narrated from Imam Muhammad (RA) that if a person usurps another's dirhams and buys dinars with them, he is not allowed to spend those dinars. This is because if those dirhams are reclaimed after the transaction is completed, the currency exchange (*Bay' al-Sarf*) becomes void. However, if a decree is issued against the usurper for an equivalent amount of those dirhams, then those dinars become lawful for him; this is also mentioned in *Al-Dhakheera*. Some scholars have stated that if one marries a woman using usurped dirhams, there is scope for sexual intercourse; this is in *Siraj-ul-Wahaj*.

If one usurps one thousand dirhams and buys grain worth two thousand dirhams in exchange, then eats it or gives it as a gift, by consensus the profits gained... (1) i.e., Prohibition/Impurity.

पहले व्यक्ति को हर्जाना देने के बाद इसकी आवश्यकता नहीं रही और सहमति से यह सही हो गया, लेकिन उस समय रियायत देना बेहतर है, और अल्लाह बेहतर जानता है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की बकरी उसकी अनुमति के बिना लेकर ज़बह (वध) की और उसे पका लिया या भून लिया, तो उसके मालिक को यह अधिकार होगा कि वह ग़ासिब (हड़पने वाले) से उसकी कीमत का मुआवज़ा ले ले। और यदि उसका मालिक अनुपस्थित हो या उपस्थित हो लेकिन मुआवज़ा लेने पर सहमत न हो, तो जिस व्यक्ति ने उसे ज़बह किया और पकाया या भूना है, उसके लिए यह गुंजाइश नहीं होगी कि वह स्वयं उसका मांस खाए और न ही कोई दूसरा उसे खा सकता है, और न ही वह किसी और को खिला सकता है, जब तक कि ग़ासिब, जिसने बकरी को इस प्रकार ज़बह किया है, उसके मालिक को उसकी कीमत अदा न कर दे। फिर यदि मालिक ने काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से या बिना काज़ी के आदेश के बकरी की कीमत का मुआवज़ा ले लिया, तो ग़ासिब के लिए गुंजाइश होगी कि वह स्वयं उसमें से खाए और जिसे चाहे खिलाए, बशर्ते कि वह मुआवज़ा अदा कर दे या वह उस पर ऋण हो जाए। और यदि मालिक ने मुआवज़ा लेने से इनकार कर दिया, तो ग़ासिब को चाहिए कि उस ज़बह किए हुए जानवर का मांस दान (सदक़ा) कर दे। और यदि मालिक ने मुआवज़ा लेने से इनकार किया और चाहा कि वह पका हुआ या भुना हुआ मांस ले ले, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा, यह सिराज-उल-वहाज में है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे का 'अस्फ़र' (रंगने वाला पदार्थ) छीनकर उससे कपड़ा रंगा या तेल छीनकर सत्तू में मिलाया, तो उसे उससे लाभ उठाने की अनुमति नहीं होगी जब तक कि वह मूल स्वामी को संतुष्ट न कर दे, यह 'मुहीत' में है। इमाम मुहम्मद रह. से रिवायत है कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे के दस दीनार छीनकर उसमें अपना एक दीनार मिला दिया, फिर किसी को उसमें से एक दीनार निकालकर दे दिया, तो यह जायज़ है; लेकिन यदि वह दूसरा दीनार निकालकर देना चाहे, तो यह जायज़ नहीं है। यह तातारख़ानिया में जामे-उल-जवामे से उद्धृत है। एक व्यक्ति ने दूसरे की दासी (बांदी) छीन ली और उसे दोषपूर्ण (ऐबदार) कर दिया, फिर मालिक और ग़ासिब में मूल्य की मात्रा पर विवाद हुआ। मालिक ने कहा कि उसकी कीमत दो हज़ार दिरहम थी और ग़ासिब ने कहा कि उसकी कीमत एक हज़ार दिरहम थी और उसने इस पर शपथ ली। काज़ी ने ग़ासिब पर एक हज़ार दिरहम का आदेश दिया, तो ग़ासिब के लिए यह उचित नहीं होगा कि वह उस दासी से सेवा ले या सहवास (वती) करे या उसे बेचे, जब तक कि वह मालिक को उसकी पूरी मूल कीमत अदा न कर दे। और यदि कम कीमत पर आदेश होने के बाद उसने उस दासी को

आज़ाद कर दिया, तो आज़ादी वैध होगी और ग़ासिब पर पूरी कीमत अनिवार्य होगी, जैसे 'बय-ए-फ़ासिद' (अवैध व्यापार) में यदि फ़ासिद तरीके से खरीदकर आज़ाद कर दिया जाए, तो पूरी कीमत अनिवार्य होती है और आज़ादी लागू हो जाती है, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। इमाम अबू यूसुफ़ रह. से रिवायत है कि यदि पानी के बहाव से किसी व्यक्ति का गेहूँ बहकर दूसरे की ज़मीन में चला गया और वहाँ उग आया, तो इमाम ने फ़रमाया कि यदि गेहूँ इतनी मात्रा में हों कि उनकी कुछ कीमत हो, तो जो कुछ पैदा होगा वह सब गेहूँ के मालिक का होगा, लेकिन वह उसमें से अपने मूल गेहूँ की मात्रा से अधिक दान कर दे और उस पर ज़मीन के नुकसान का कोई मुआवज़ा अनिवार्य नहीं होगा, यह मुहीत में है। यदि किसी व्यक्ति ने छीने हुए कपड़े को मेहर (निकाह की रक़म) तय करके किसी महिला से विवाह किया, तो सहवास हलाल (वैध) है क्योंकि यदि कपड़े का हकदार सामने आ जाए और वह कपड़ा ले लिया जाए, तो भी निकाह निरस्त नहीं होगा, यह 'निया बे' में है। सदरुल इस्लाम ने 'जामे सग़ीर' में उल्लेख किया है कि यदि किसी व्यक्ति ने एक हज़ार हड़पे हुए (मग़सूबा) दिरहम से एक दासी खरीदी, तो क्या उससे सहवास हलाल है? सही बात यह है कि उसे सहवास का अधिकार नहीं है क्योंकि इसके कारण में एक प्रकार की बुराई (ख़बथ) है, यह 'निहाया' में है। इब्राहिम ने इमाम मुहम्मद रह. से रिवायत की है कि एक व्यक्ति ने दूसरे के दिरहम छीनकर उससे दीनार खरीदे, तो उसके लिए दीनारों को खर्च करने की गुंजाइश नहीं है क्योंकि यदि अलग होने के बाद वे दिरहम अपने असली मालिक के पास चले गए, तो दीनार की 'बय-ए-सर्फ़' टूट जाएगी। अतः यदि ग़ासिब पर उन दिरहमों के समान राशि का आदेश कर दिया गया, तो वे दीनार उसके लिए हलाल हो जाएंगे, जैसा कि 'ज़ख़ीरा' में है। और विद्वानों ने कहा है कि यदि छीने हुए दिरहम पर किसी महिला से विवाह किया गया, तो सहवास की गुंजाइश है, यह सिराज-उल-वहाज में है।

यदि एक हज़ार दिरहम छीनकर उसके बदले दो हज़ार दिरहम मूल्य का अनाज खरीदकर खाया या उपहार में दिया, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से लाभ अर्जित करने वाले को (1) यानी निषेध/अपवित्रता।

بعد اداء الضمان للاول لم یحتج الی ذلك وصح بالاتفاق ولکن بالوضع مسامحه حینئذ واللہ تعالیٰ اعلم۔

اگر کسی شخص نے دوسرے کی بکری بدون اُس کی اجازت کے لے کر ذبح کر کے پکائی یا بھونی تو اُس کے مالک کو غاصب سے تاوان قیمت لینے کا اختیار ہو گا اور اگر اس کا مالک غائب ہو یا حاضر ہو مگر غاصب سے تاوان قیمت لینے پر راضی نہ ہوا تو جس نے اُس کو ذبح کیا اور پکایا بھونا ہے اُس کو یہ گنجائش نہ ہو گی کہ اُس کا گوشت خود کھائے اور نہ کوئی دوسرا کھا سکتا ہے کسی اور شخص کو وہ شخص اس میں سے کھلا سکتا ہے جب تک کہ غاصب جس نے بکری کو اس طرح ذبح کیا ہے اُس کے مالک کو اس کی قیمت ادا نہ کرے پھر اگر اس کے مالک نے غاصب سے بحکم قاضی یا بلا حکم قاضی بکری کی قیمت ضمان کر لی تو پھر غاصب کو گنجائش ہو گی کہ خود اُس میں سے کھائے اور جس کو چاہے کھلائے جب کہ ضمان قیمت ادا کر دے یا اُس پر قرضہ ہو جائے اور اگر اُس کے مالک نے ضمان قیمت لینے سے انکار کیا تو غاصب کو چاہیے کہ مذبوحہ کو صدقہ کر دے اور اگر مالک نے ضمان قیمت لینے سے انکار کر کے چاہا کہ پکا ہوا یا بھنا ہوا گوشت لے لے تو اُس کو یہ اختیار نہ ہو گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔

اگر کسی شخص نے دوسرے کا عصفر غصب کر کے اُس سے کپڑا رنگا یا روغن غصب کر کے ستوؤں میں لتھا کیا تو اس کو اُس سے نفع اُٹھانے کی گنجائش نہ ہو گی جب تک کہ مغصوب من کو راضی نہ کرے یہ محیط میں ہے امام محمدؒ سے روایت ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کے دس دینار غصب کر کے اُس میں اپنا ایک دینار ڈال دیا پھر کسی شخص کو اُس میں سے ایک دینار نکال کر دیا تو جائز ہے پھر اگر دوسرا نکال کر دینا چاہا تو جائز نہیں ہے یہ تاتارخانیہ میں جامع الجوامع سے منقول ہے ایک شخص نے دوسرے کی باندی غصب کر کے اُس کو عیب دار کر دیا

پھر مالک و غاصب نے مقدار قیمت میں اس طرح اختلاف کیا کہ مالک نے کہا کہ اس کی قیمت دو ہزار درہم تھی اور غاصب نے کہا کہ اُس کی قیمت ایک ہزار درہم تھی اور اس پر قسم کھا گیا پس قاضی نے غاصب پر ہزار درہم کی ڈگری کی تو غاصب کو یہ روا نہ ہو گا کہ اس باندی سے خدمت لے یا وطی کرے یا فروخت کرے تا وقتیکہ مالک کو اُس کی اصلی پوری قیمت ادا نہ کرے اور اگر کم قیمت پر ڈگری ہونے کے بعد اس باندی کو آزاد کر دیا تو عتق جائز ہو گا اور غاصب پر پوری قیمت واجب ہو گی جیسے بیع فاسد میں اگر بطور فاسد خرید کر کے آزاد کر دیا ہو تو قیمتِ کاملہ واجب ہوتی ہے اور عتق نافذ ہوتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے امام ابویوسفؒ سے روایت ہے کہ اگر پانی کے بہانے کسی شخص کے گیہوں بہا کر دوسرے کی زمین میں ڈالے اور وہ اُس زمین میں اُگے تو امام نے فرمایا کہ اگر گیہوں اس قدر ہوں کہ اُن کا کچھ ثمن ہے تو جو کچھ پیدا ہو گا وہ سب گیہوں کے مالک کا ہو گا مگر اُس میں سے اپنے گیہوں کی مقدار سے زائد صدقہ کر دے اور اُس پر نقصان زمین کا تاوان کچھ واجب نہ ہو گا یہ محیط میں ہے اگر کسی شخص نے غصب کیے ہوئے کپڑے کو مہر قرار دے کر کسی عورت سے نکاح کیا تو اُس سے وطی حلال ہے اس واسطے کہ اگر کپڑا استحقاق میں لے لیا جائے تو نکاح فسخ نہ ہو گا یہ نیا بیع میں ہے اور صدر الاسلام نے جامع صغیر میں ذکر فرمایا ہے کہ اگر کسی شخص نے ہزار درہم مغصوبہ سے ایک باندی خریدی تو کیا اُس سے وطی حلال ہے پس صحیح یہ ہے کہ اُس کو وطی کا اختیار نہیں ہے اس وجہ سے کہ سبب میں ایک نوع کا خَبث (۱) ہے یہ نہایہ میں ہے ابراہیم نے امام محمدؒ سے روایت کی ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کے درہم غصب کر کے اُس سے دینار خریدے تو اُس کو دیناروں کے خرچ کرنے کی گنجائش نہیں ہے اس واسطے کہ اگر بعد افتراق کے وہ درہم استحقاق میں لے لیے گئے تو دینار کی بیع صرف ٹوٹ جائے گی پس اگر غاصب پر اُس کے ان درہموں کے مثل کی ڈگری کر دی گئی تو وہ دینار اس کو حلال ہو جائیں گے کذا فی الذخیرہ اور

مشائخ نے فرمایا ہے کہ اگر درہم مغصوب پر کسی عورت سے نکاح کیا تو اُس سے وطی کرنے کی گنجائش ہے یہ سراج الوہاج میں ہے۔

اگر ہزار درہم غصب کر کے اُس کے عوض دو ہزار درہم قیمت کا اناج خرید کر اُس کو کھایا یا ہبہ کیا تو بالاجماع منافع حاصل کو (۱) یعنی حرمت۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 133 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

He shall not give it in charity (*Sadaqah*); this is mentioned in *Wajiz Kardari*. If a person gains profit by utilizing usurped property (*Maghsoob*), there are several scenarios: either the item is something that becomes specified when it is designated (such as commodities/*Arooz*), or it is something that does not (such as currency, i.e., Dirhams and Dinars). If it is the first type, it is not lawful (*Halal*) to consume it before paying compensation (*Dhaman*). Afterwards, it becomes lawful (1), except for the amount exceeding the original value—that is, the profit—which remains unlawful; therefore, he should give it in charity. Regarding the second type (currency), Sheikh Karkhi stated there are four scenarios: 1) Pointing to the usurped money at the time of purchase and paying with it; 2) Pointing to it but paying with other money; 3) Not pointing to it specifically but paying with it; 4) Pointing to other money but paying with the usurped money. In all these cases, except the first one (2), the profit is lawful for him. However, our scholars (*Mashaikh*) have stated that before paying compensation, consuming anything from it is unlawful in every circumstance, and even after compensation, the profit is not lawful; this is the preferred (*Mukhtar*) view. This is supported by the rulings in *Jami'in* (Saghir and Kabir) and *Kitab al-Mudaraba*. Some scholars followed Sheikh Karkhi's view because of the prevalence of unlawful gains in our times. All of this follows the rulings of Imam al-A'zam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad. According to Imam Abu Yusuf, one does not need to give any of it in charity. Note that the disagreement among Imams applies when the object has transformed (*Taqallub*) into the same genus as what was given in compensation (e.g., Dirhams for Dirhams). If the genus has changed (e.g., grain instead of Dirhams), then by consensus (*Ijma*), charity is not obligatory. This is in *Al-Tabyin*. If a person says, "If so-and-so person takes something from my property, it is lawful for him," and the person takes it without knowing it was permitted, Sheikh Nasir bin Yahya stated it is permissible and no compensation is due. If he said (3), "Any human who takes from my property, it is lawful for him," Sheikh Abu Nasr bin Salam stated it is permissible, as the scholar regarded such an act as 'permission' (*Ibahat*), and permission for an unknown person is valid; the *fatwa* is based on this. If he said to another (4), "Whatever you eat from my property, I have made it lawful (5) for you," it is unanimously lawful. If he said, "I have absolved you of whatever you ate," the correct view is that the person is absolved. This is in *Fatawa Qazi Khan*.

If he said (6), "I have made you lawful in this world" or "I have made you lawful in this hour (*Sa'at*)," then worldly lawfulness is established for all hours. If he said, "I will not

dispute or demand what is mine that is with you," it has no legal weight (it is not a full release); this is in *Khizanat al-Muftin*. If usurped property earns a profit and the owner takes back the property with the profit, the owner should not give the profit in charity. But if the usurper (*Ghasib*) pays compensation for the value after the property is destroyed or lost, making the profit his own, he should give it in charity; this is in *Al-Dhakirah*. If a slave is usurped and rented out, the wages belong to the usurper, but according to the *Tarafayn* (Abu Hanifa and Imam Muhammad), he should give it in charity...

---

1. *Taqallub*: transformed or changed into something else. 2. *Making lawful*: It is lawful in this world, although accountability remains for the hereafter. Saying "this hour" applies the lawfulness to all times. (1) After paying compensation (*Dhaman*). (2) Pointing to the usurped property and paying from it. (3) "Every human who consumes from my property, it is lawful for him." (4) "Everything you eat from my property, I have made it lawful for you." (5) Made it *Halal* for you. (6) "I have made you lawful in the world."

वह सदक़ा नहीं करेगा, यह 'वजीज़ करदरी' में है। और अगर म़ग़सूब (छीनी हुई चीज़) में तसर्रुफ़ (इस्तेमाल) करके नफ़ा (लाभ) हासिल किया, तो इस मसले की कई सूरतें हैं: या तो वह ऐसी चीज़ होगी जो तय करने से मुतय्यन (निर्दिष्ट) हो जाती है जैसे 'अरूज़' (माल-ओ-मसाले/वस्तुएँ), या मुतय्यन नहीं होती जैसे नक़दी यानी दरहम और दीनार। पस, अगर पहली क़िस्म हो तो 'ज़मान' (मुआवज़ा अदा करने) से पहले उसका इस्तेमाल हलाल नहीं है, और फिर हलाल (1) होगा, सिवाय उस हिस्से के जो असल क़ीमत से ज़्यादा है, यानी वह लाभ जो असल क़ीमत से अधिक है वह उसके लिए हलाल नहीं होगा, इसलिए वह उसे सदक़ा कर दे। और अगर दूसरी क़िस्म हो, यानी ऐसी चीज़ जो मुतय्यन करने से मुतय्यन न होती हो, तो शेख़ कर्ख़ी ने फ़रमाया कि इसमें चार सूरतें हैं: या तो ख़रीदते वक़्त उसी छीने हुए माल की तरफ़ इशारा किया और उसी में से क़ीमत भी अदा की; या उसकी तरफ़ इशारा किया लेकिन दूसरे माल से अदा की; या मुतलक़ (बिना इशारे के) छोड़ दिया था लेकिन उसी में से अदा की; या ख़रीदते वक़्त छीने हुए माल के अलावा किसी और की तरफ़ इशारा किया लेकिन छीने हुए माल में से अदा की। इन सभी सूरतों में, पहली सूरत के अलावा (2), उसे लाभ हलाल होगा। मगर हमारे मशाइख़ (रहम.) ने फ़रमाया कि ज़मान अदा करने से पहले हर हाल में इस चीज़ का इस्तेमाल हलाल नहीं है, और ज़मान के बाद भी हर हाल में लाभ हलाल नहीं है; और यही मुख़्तार (चुना हुआ) क़ौल है। 'जामिईन' (सग़ीर ओ कबीर) और 'किताब-अल-मुज़ारबा' का हुक्म भी इसी पर दलालत करता है। कुछ मशाइख़ ने इमाम कर्ख़ी के क़ौल पर फ़तवा दिया है क्योंकि हमारे ज़माने में हराम की बहुतायत है। यह सब इमाम-ए-आज़म और इमाम मोहम्मद के क़ौल पर है। इमाम अबू यूसुफ़ के नज़दीक इसमें से कुछ भी सदक़ा न करे। यह स्पष्ट रहे कि इमामों के बीच यह मतभेद तब है जब वह चीज़ उसके हाथ में 'तक़ल्लुब' (परिवर्तन) से उसी जिन्स (श्रेणी) की हो गई हो जो उसने ज़मान में दी है, जैसे उसने दरहम ज़मान में दिए और बदले में भी दरहम ही आए। अगर जिन्स बदल गई हो, जैसे दरहम के बदले अनाज या वस्तुएँ आ गईं, तो सर्वसम्मति (इजमा) से उस पर सदक़ा वाजिब नहीं है। यह 'तबीन' में है। यदि किसी ने कहा कि "अगर फ़लां व्यक्ति ने मेरे माल से कुछ हथिया लिया तो वह हलाल है," और उस व्यक्ति ने बिना इसकी जानकारी के माल ले लिया, तो शेख़ नसीर बिन यह्या ने कहा कि यह जायज़ है और ज़मान वाजिब नहीं होगा। और अगर यूँ कहा (3) कि "जिस किसी इंसान ने मेरे माल से कुछ लिया वह उसके लिए हलाल है," तो शेख़ अबू नसर बिन सलाम ने इसे जायज़ बताया है। शेख़ (रहम.) ने ऐसे काम को 'इबाहत' (अनुमति) माना है और

अनजान व्यक्ति के लिए इबाहत जायज़ है, और इसी पर फ़तवा है। अगर दूसरे से कहा कि (4) "जो कुछ भी तू मेरे माल में से खाए, मैंने तुझे हिल्लत (5) में रखा," तो इत्तेफ़ाक़ से वह हलाल है। अगर कहा कि "जो कुछ तूने खाया मैंने तुझे बरी (माफ़) किया," तो सही यह है कि वह बरी हो जाएगा। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

अगर यूँ कहा कि (6) "मैंने तुझे दुनिया में हलाल किया" या "मैंने तुझे इस घड़ी (साअत) में हलाल किया," तो उसे दुनिया की हिल्लत हासिल होगी और सभी घड़ियों के लिए हिल्लत साबित होगी। अगर यूँ कहा कि "जो मेरा माल तेरे पास है, उस पर तुझसे झगड़ा नहीं करूँगा या माँगूँगा नहीं," तो इसका कोई क़ानूनी प्रभाव नहीं है, यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है। अगर म़ग़सूब (चीज़) ने कुछ कमाया, फिर मालिक ने वह चीज़ कमाई सहित वापस ले ली, तो मालिक उस कमाई को सदक़ा न करे। और अगर ग़ासिब (छीनने वाले) ने चीज़ के नष्ट होने या भाग जाने पर उसकी क़ीमत का ज़मान दे दिया, यहाँ तक कि कमाई ग़ासिब की हो गई, तो वह उसे सदक़ा कर दे, यह 'ज़ख़ीरा' में है। और अगर ग़ुलाम ग़स्ब करके उसे किराए पर दिया, तो उजरत (किराया) ग़ासिब की होगी, लेकिन तरफ़ैन के नज़दीक उसे सदक़ा कर...

---

1. तक़ल्लुब यानी बदल कर परिवर्तित होकर। 2. हिल्लत देना यानी दुनिया में उसके लिए हलाल है, हालाँकि आख़िरत में भी आवश्यक है। 'साअत' कहने से सभी समय के लिए हलाल हो जाएगा। (1) ज़मान अदा करने के बाद। (2) कि म़ग़सूब की तरफ़ इशारा किया और उसी में से अदा किया। (3) "प्रत्येक व्यक्ति जिसने मेरे माल से कुछ लिया, वह उसके लिए हलाल है।" (4) "जो कुछ भी तू मेरे माल से खाए, उसे मैंने तेरे लिए हलाल किया।" (5) तुझ पर हलाल किया। (6) "मैंने तुझे दुनिया में हलाल किया।"

---

صدقہ نہ کرے گا یہ وجیز کردری میں ہے اور اگر مغصوب میں تصرف کر کے نفع حاصل کیا تو مسئلہ کی چند صورتیں ہیں یا تو ایسی چیز ہو گی کہ معین کرنے سے متعین ہو جاتی ہے جیسے عروض یا متعین نہ ہو جیسے نقد میں یعنی درہم و دینار پس اگر قسم اول ہو تو قبل ضمان کے اُس سے تناول حلال نہیں ہے اور پھر حلال (۱) ہو گا سوائے اِس قدر کے کہ قدر قیمت سے زائد ہے یعنی نفع کہ بقدر نفع کے اُس کو حلال نہ ہو گی پس اس کو صدقہ کر دے اور اگر دوسری قسم یعنی ایسی چیز ہو کہ معین کرنے سے متعین نہ ہوتی ہو تو شیخ کرخیؒ نے فرمایا کہ اس میں چار صورتیں ہیں یا تو وقت خرید کے اُسی مغصوب کی طرف اشارہ کیا اور اسی میں سے ثمن بھی ادا کیا یا ہو یا اُس کی طرف اشارہ کیا مگر دوسری میں سے ادا کیا یا مطلقاً چھوڑ دیا تھا مگر اُسی میں سے ادا کیا یا وقت خرید کے سوائے مغصوب کے دوسرے کی طرف اشارہ کیا مگر مغصوب میں سے ادا کیا اور ان سب صورتوں میں سوائے صورت اولیٰ کے (۲) اُس کو نفع حلال ہو گا مگر ہمارے مشائخ رحمۃ اللہ نے فرمایا کہ قبل ضمان کے ہر حال میں اس کو اس چیز میں سے تناول حلال نہیں ہے اور بعد ضمان کے ہر حال میں اُس کو نفع حلال نہیں ہے اور یہی مختار ہے اور جامعین (صغیر و کبیر) اور کتاب المضاربہ میں جو حکم مذکور ہے وہ اسی پر دلالت کرتا ہے اور بعض مشائخ نے امام کرخی کے قول پر فتویٰ اختیار کیا ہے کیونکہ ہمارے زمانہ میں حرام کی کثرت ہے اور یہ سب امام اعظم و امام محمدؒ کے قول پر ہے اور امام ابو یوسف کے نزدیک اُس میں سے کچھ صدقہ نہ کرے اور واضح ہو کہ اماموں میں اختلاف مذکور ایسی صورت میں ہے کہ وہ شے اُس کے ہاتھ میں تقلب سے اسی جنس سے ہو گئی ہو جو اُس نے ضمان میں دی ہے مثلاً اُس نے دراہم ضمان دیئے اور بدل مضمون بھی اُس کے ہاتھ میں دراہم ہو گئے تو حکم میں اختلاف

مذکور جاری ہے اور اگر بدل مضمون اُس کے ہاتھ میں مضمون کی جنس کے خلاف ہو گیا ہو مثلاً دراہم ضمان دیئے اور بدل مضمون اُس کے پاس اناج یا عروض موجود ہے تو بالاجماع اُس پر کچھ صدقہ کر دینا واجب نہیں ہے۔ یہ تبیین میں ہے۔ ایک شخص نے یوں کہا کہ اگر فلاں شخص نے میرے مال سے کچھ ہتھیا لیا تو حلال ہے اور فلاں شخص نے اُس کے مال سے کچھ ہتھیا لیا بدون اس کے کہ اس کے مباح کر دینے سے آگاہ ہو تو شیخ نصیر بن یحییٰ نے فرمایا کہ یہ جائز ہے اور اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی اور اگر یوں کہا (۳) یعنی جس انسان نے میرے مال سے کچھ ہتھیا لیا تو وہ اُس کو حلال ہے تو شیخ ابو نصر بن سلام نے فرمایا کہ یہ جائز ہے اور شیخ رحمۃ اللہ نے ایسے فعل کو اباحت قرار دیا ہے اور مجہول کے واسطے اباحت جائز ہے اور اسی پر فتویٰ ہے اور اگر دوسرے سے کہا کہ (۴) سب جو کچھ تو میرے مال میں سے کھائے میں نے تجھے حلت (۵) میں رکھا تو بالاتفاق اُس کو حلال ہے اور اگر یوں کہا کہ سب جو کچھ تو میرے مال میں سے کھائے میں نے تجھے بری کیا تو صحیح یہ ہے کہ وہ شخص بری ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر یوں کہا کہ (۶) او قال جعلتك في حل الساعة میں نے تجھے حل دنیا میں رکھا یا کہا کہ میں نے تجھے حل ساعت میں رکھا تو اُس کو حلتِ دنیا حاصل ہوگی اور تمام ساعات کے واسطے حلت ثابت ہو گی اگر یوں کہا کہ جو میرا مال تیری طرف ہو اُس کا تجھ سے مخاصمہ نہ کروں گا یا مطالبہ نہ کروں گا تو یہ کچھ نہیں ہے یہ خزانہ المفتین میں ہے اگر مغصوب نے کچھ کمایا پھر مالک نے مغصوب کو مع کمائی کے واپس کیا تو کمائی کو صدقہ نہ کرے اور اگر غاصب نے وقت ہلاک یا اباق کے قیمت کی ضمان دی یہاں تک کہ کمائی غاصب کی ہو گئی تو اُس کو صدقہ کر دے یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر غلام غصب کر کے اُس کو اجارہ پر دیا تو اجرت غاصب کی اور طرفین کے نزدیک اُس کو صدقہ کر

۱۔ تقلب یعنی بدل کر متغیر ہو کر۔ ۲۔ حلت دینا یعنی دنیا میں اس کو حلال ہے۔ اگرچہ عاقبت میں بھی لازم ہے اور اس ساعت کہنے سے تمام ساعات کیلئے حلت ہو جائے گی۔ (۱) بعد ادائے ضمان۔ (۲) کہ مغصوب کی طرف سے اشارہ کیا اور اُس میں سے ادا کیا۔ (۳) کل انسان تناول من مالی فهو حلال لہ۔ (۴) جمیع ما تاکل من مالی فقد جعلتك فی حل۔ (۵) تجھ پر حلال کیا۔ (۶) جعلتك فی حل الدنیا

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 135 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...and according to Imam Abu Yusuf, it will be lawful for him; this is mentioned in Al-Muhit al-Sarakhsi. If one takes the produce of usurped property and its value decreases, he shall be liable for the amount of loss. According to both sides (Imam Abu Hanifa and Imam Muhammad), he should give it as charity, as stated in Al-Kafi. If the usurped property is destroyed due to the usurper's (ghasib) actions or otherwise, and the owner takes compensation for its value from him, it will be permissible for him to pay the price with the help of rent, and then give the remainder in charity. No distinction between the rich and the poor was mentioned in this regard, but the correct view is that this ruling applies when the usurper is poor, as stated in Al-Khulasah. If the usurped property is sold to someone else and its price is taken, then the property dies in the possession of the buyer (mushtari), and the owner takes compensation from the buyer, the buyer then seeks his price back from the usurper; if the usurper is poor, he can use the wages (1) of the usurped property to help pay the price, but if he is rich, he cannot. This is in Al-Muhit al-Sarakhsi. If a tree grows on the bank of a public canal, or if a person who is not a partner in the canal comes with the intention of uprooting it, if it is harmful to the majority of the people, he has the authority. However, it is better to present this matter before the ruler (hakim) so that the hakim orders the uprooting in his name; this is in Fatawa Kubra.

If a shop is usurped and trade is conducted in it, the profit earned will be lawful for him; this is in Al-Wajiz al-Kardari. If a house or shop (2) is jointly owned by two people and one of them resides in it, rent will not be obligatory on him; if a spinning wheel is kept to be run for rent, this is in Khazanat al-Muftin. A public canal was located alongside a piece of land and the force of water cut the bank of the canal until the canal entered a person's land. If that person wants to install a watermill in his land, he has the right to do so because he is placing it on his own property. If he wants to install a watermill in the public canal, he has the right to do so because he is not placing it on his own property. This is mentioned in Fatawa Kubra and Fatawa Abu al-Fadl Kirmani. If a person usurps silkworms and rears them, the silk will belong to the usurper. According to Imam Azam, nothing will be due from him, but according to Imam Muhammad, its price will be due from him. Sheikh (may Allah have mercy on him) said that in our time, the fatwa is based on the statement of Imam Muhammad; this is in Al-Qunyah. If someone usurps leaves and feeds them to silkworms, on the day the silk is sold, whatever amount exceeds the price of the silkworms should be given in charity; this is in Al-Wajiz al-Kardari. It is in Al-Muntaqa that Imam Abu Yusuf

said that if someone usurps another's land and builds shops, a bathhouse (hammam), and a mosque on it, there is no harm in praying in such a mosque, but one should not enter the hammam nor rent the shops. He further said there is no harm in going to the shops for the purpose of purchasing goods. Hisham said: I consider praying in such a mosque disliked (makruh) until the original owners give permission wholeheartedly, and I consider purchasing goods from usurped land or shops to be makruh. And if, despite knowing that these shops are usurped, the usurper sells in them, I do not know if the testimony of such a seller will be accepted or not; this is in Al-Muhit.

**Chapter Nine: Regarding Ordering the Destruction of Another's Property and Related Matters**

If a tax collector (jabi) orders the royal attendants (1), meaning the guards, to take another's property, then this matter is worth considering in two ways, that according to apparent appearance...

---

(1) Meaning, before the sale, if the wages of the usurped slave are available, he may pay the price from the wages on the condition of being poor, otherwise not. (2) It is permissible to go there for purchase even though it was not permissible for the seller to take rent. (1) Tax collector.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 135 किताब अल-ग़सब (छीनने का अध्याय)**

...दे और इमाम अबू यूसुफ़ के नज़दीक उसके लिए हलाल होगी, यह मुहीत सरखसी में है। और अगर हड़पी हुई चीज़ से हासिल हुई पैदावार ली और उसमें कमी आ गई तो वह नुकसान की मात्रा के बराबर ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा, और तरफ़ैन (दोनों पक्षों) के नज़दीक उसे सदक़ा (दान) कर दे, जैसा कि अल-काफ़ी में है। और अगर हड़पने वाले (ग़ासिब) के कार्य या बिना कार्य के हड़पी हुई चीज़ नष्ट हो गई और मालिक ने उससे उसकी कीमत का हर्जाना ले लिया, तो उसके लिए यह जायज़ होगा कि वह किराए की मदद से कीमत अदा करे, फिर बाकी को सदक़ा कर दे। इसमें अमीर और गरीब का कोई विस्तार नहीं दिया गया है और सही बात यह है कि यह नियम तब है जब ग़ासिब गरीब हो, जैसा कि अल-ख़ुलासा में है। और अगर हड़पी हुई चीज़ को दूसरे के हाथ बेचकर उसकी कीमत ले ली, फिर वह चीज़ खरीदार (मुश्तरी) के पास मर गई, फिर मालिक ने खरीदार से कीमत का हर्जाना ले लिया, तब खरीदार ने ग़ासिब से अपनी कीमत वापस लेनी चाही, तो यदि ग़ासिब गरीब हो तो वह हड़पी हुई चीज़ की उजरत (1) से कीमत की अदायगी में मदद ले सकता है, और यदि वह अमीर हो तो नहीं ले सकता, यह मुहीत सरखसी में है। अगर सार्वजनिक नहर के किनारे एक पेड़ उग आया या फिर एक व्यक्ति जो नहर में भागीदार नहीं है, इस इरादे से आया कि उसे उखाड़ ले, तो यदि यह अधिकांश लोगों के लिए नुकसानदेह हो तो उसे अधिकार है, और बेहतर यह है कि इस मामले को शासक (हाकिम) के सामने पेश करे ताकि हाकिम उसके नाम पर उसे उखाड़ने का आदेश दे, यह फ़तावा कुबरा में है।

अगर एक दुकान छीन (ग़सब) कर उसमें व्यापार किया और लाभ कमाया तो वह लाभ उसके लिए हलाल होगा, यह वजीज़ करदरी में है। अगर कोई घर या दुकान (2) दो व्यक्तियों में साझा हो, फिर उनमें से एक व्यक्ति उसमें रहने लगा, तो उस पर किराया वाजिब नहीं होगा, यदि चरखा किराए पर चलाने के लिए रखा गया हो, यह ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन में है। एक सार्वजनिक नहर एक ज़मीन के पहलू में स्थित थी और पानी के ज़ोर ने नहर के तट को काट दिया यहाँ तक कि एक व्यक्ति की ज़मीन में नहर बन गई, और उस व्यक्ति ने चाहा कि अपनी ज़मीन में पनचक्की लगा दे, तो उसे इसका अधिकार होगा क्योंकि उसने अपनी मल्कियत में खड़ी की है। और अगर उसने चाहा कि सार्वजनिक नहर में पनचक्की लगा दे, तो यह उसे अधिकार होगा क्योंकि वह अपनी मल्कियत में खड़ी नहीं कर रहा है। यह फ़तावा कुबरा और फ़तावा अबुल फ़ज़ल किरमानी में उल्लेखित है कि एक व्यक्ति ने रेशम के कीड़े छीनकर उनका पालन-पोषण किया तो रेशम हड़पने वाले का होगा और इमाम आज़म

के नज़दीक उस पर कुछ वाजिब नहीं होगा, जबकि इमाम मुहम्मद के नज़दीक उसकी कीमत उस पर वाजिब होगी। शेख़ (रहमतुल्लाह अलैह) ने फरमाया कि हमारे समय में इमाम मुहम्मद के कथन पर फ़तवा है, यह क़ुनिया में है। अगर दूसरे व्यक्ति के पत्ते छीनकर रेशम के कीड़ों को खिलाए, तो रेशम बेचने के दिन कीड़ों की कीमत से जितना अधिक लाभ हो वह सब सदक़ा कर दे, यह वजीज़ करदरी में है। मुंतका में है कि इमाम अबू यूसुफ़ ने फरमाया कि यदि किसी ने दूसरे की ज़मीन छीनकर उसमें दुकानें, हमाम और मस्जिद बनाई, तो ऐसी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने में कोई डर नहीं है, लेकिन हमाम में नहीं जाना चाहिए और न ही दुकानें किराए पर लेनी चाहिए। और फरमाया कि दुकानों में खरीदारी और सामान के उद्देश्य से जाने में कोई डर नहीं है। और हिशाम ने फरमाया कि मैं ऐसी मस्जिद में नमाज़ मकरूह (नापसंद) मानता हूँ जब तक कि असली मालिक प्रसन्नतापूर्वक अनुमति न दे दें, और छीनी हुई ज़मीन या दुकानों से सामान खरीदना मकरूह मानता हूँ। और अगर यह जानते हुए भी कि ये दुकानें छीनी हुई हैं, ग़ासिब उन्हें बेचता है, तो मैं नहीं जानता कि ऐसे विक्रेता की गवाही स्वीकार होगी या नहीं, यह मुहीत में है।

## अध्याय नौ: दूसरे की संपत्ति के नुकसान का आदेश देने और उससे संबंधित विषयों के वर्णन में

जाबी (कर वसूलने वाला) ने यदि शाही प्यादों (1) यानी सिपाहियों को दूसरे की संपत्ति छीनने का आदेश दिया तो यह मामला दो तरह से देखने योग्य है, कि ज़ाहिरी तौर पर...

---

(1) यानी बिक्री से पहले यदि हड़पे गए गुलाम की उजरत मौजूद हो, तो गरीब होने की शर्त पर उसकी उजरत से कीमत अदा करे अन्यथा नहीं। (2) खरीदारी के लिए जाना जायज़ है हालांकि विक्रेता के लिए किराया लेना जायज़ न था। (1) टैक्स वसूल करने वाला।

دے اور امام ابو یوسف کے نزدیک اُس کو حلال ہوگی یہ محیط سرخسی میں ہے اور اگر حاصلات مغصوب نے لی اور اُس میں کمی پڑ گئی تو بقدر نقصان کے ضامن ہوگا اور طرفین کے نزدیک اُس کو صدقہ کر دے کذا فی الکافی اور اگر غاصب کے عمل یا غیر عمل سے مغصوب ہلاک ہو گیا اور مالک نے اُس سے قیمت کی ضمان لی تو اُس کو جائز ہوگا کہ اجرت کی مدد سے قیمت ادا کرے پھر باقی کو صدقہ کر دے اور اس میں کچھ تفصیل غنی و فقیر کی نہ فرمائی اور صحیح یہ ہے کہ یہ حکم اُس وقت ہے کہ غاصب فقیر ہو کذا فی الخلاصۃ اور اگر مغصوب کو دوسرے کے ہاتھ فروخت کر کے اُس کا ثمن لے لیا پھر وہ مغصوب اپنے مشتری کے پاس مر گیا پھر مالک نے مشتری سے ضمان قیمت لے لی پس مشتری نے غاصب سے اپنا ثمن واپس لینا چاہا پس اگر غاصب فقیر ہو تو مغصوب کی اجرت (1) سے ادائے ثمن میں مدد لے سکتا ہے اور اگر غنی ہو تو نہیں لے سکتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے اگر نہر عام کے کنارے ایک درخت جماد یا پھر ایک شخص جو نہر کا شریک نہیں ہے اس ارادے سے آیا کہ اُس کو اکھاڑ لے پس اگر اکثر لوگوں کے حق میں مضر ہو تو اُس کو اختیار ہے اور اولیٰ یہ ہے کہ اس امر کو حاکم کے سامنے پیش کرے یہاں تک کہ حاکم اُس کے نام اکھاڑ لینے کا حکم دے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔

اگر ایک دکان غصب کر کے اُس میں تجارت کی اور نفع اٹھایا تو نفع اُس کو حلال ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے اگر کوئی بیت یا حانوت (دکان (2)) دو شخصوں میں مشترک ہو پھر اُس میں دونوں میں سے ایک شخص ساکن رہا تو اُس پر کرایہ واجب نہ ہو گا اگر چرخہ کرایہ پر چلانے کے واسطے رکھی گئی ہو یہ خزانۃ المفتین میں ہے۔ ایک نہر عام ایک زمین کے پہلو میں واقع تھی اور پانی کے زور نے حریم نہر کو کاٹ ڈالا یہاں تک کہ ایک شخص کی زمین میں نہر ہو گئی اور

اُس شخص نے چاہا کہ اپنی زمین میں پن چکی لگا دے تو اس کو یہ اختیار ہو گا کیوں کہ اس نے اپنی ملک میں کھڑی کی ہے اور اگر اس نے چاہا کہ نہر عام میں پن چکی لگا دے تو یہ اس کو اختیار ہو گا کیونکہ اپنی ملک میں نہیں کھڑی کرتا ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں اور فتاویٰ ابوالفضل کرمانی میں مذکور ہے کہ ایک شخص نے کرم پیلوں غصب کر کے ان کو تربیت کیا تو ابریشم غاصب کا ہو گا اور اس پر امام اعظمؒ کے نزدیک کچھ واجب نہ ہو گا اور امام محمدؒ کے نزدیک اُس کی قیمت اُس پر واجب ہو گی۔ شیخ رحمہ اللہ نے فرمایا کہ ہمارے زمانہ میں امام محمدؒ کے قول پر فتویٰ ہے یہ قنیہ میں ہے اگر دوسرے شخص کے پتے غصب کر کے کرم پیلوں کو کھلائے تو ابریشم فروخت کرنے کے روز کرم کی قیمت سے جس قدر زائد ہو وہ سب صدقہ کر دے یہ وجیز کردری میں ہے منتقٰی میں ہے کہ امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ اگر کسی نے دوسرے کی زمین غصب کر کے اُس میں دکانیں و حمام و مسجد بنائی تو ایسی مسجد میں نماز پڑھنے میں کچھ ڈر نہیں ہے مگر حمام میں نہ جانا چاہیے اور نہ دکانیں کرایہ پر لینی چاہئیں۔ اور فرمایا کہ دکانوں میں خرید و متاع کی غرض سے جانے میں کچھ ڈر نہیں ہے اور ہشامؒ نے فرمایا کہ میں ایسی مسجد میں نماز مکروہ جانتا ہوں تا وقتیکہ مالکان اصلی بہ طیب خاطر اجازت نہ دے دیں اور زمین غصب یا دکان ہائے غصب سے خرید متاع کو مکروہ جانتا ہوں اور اگر باوجود علم اس امر کے کہ یہ دکانیں مغصوب ہیں غاصب ان دکانوں میں فروخت کرتا ہے تو میں نہیں جانتا ہوں کہ ایسے بائع کی گواہی مقبول ہو گی یا نہیں یہ محیط میں ہے۔

**باب نہم : اتلافِ مالِ غیر کا حکم دینے اور اُس کے متصلات کے بیان میں ہے**

جابی نے اگر سلطانی عوان (1) یعنی سرہنگوں کو مالِ غیر لے لینے کا حکم دیا تو یہ امر دو طرح سے نظر کے لائق ہے کہ با اعتبارِ ظاہر

(1) یعنی سابق میں فروخت سے پہلے اگر غلام مغصوب کی اجرت موجود ہو تو بشرط فقیر ہونے کے اس کی اجرت کی رو سے ثمن ادا کرے ورنہ نہیں۔ (2) خرید کے لیے جانا جائز ہے اگرچہ بائع کو کرایہ لینا جائز نہ تھا۔ (1) ٹیکس وصول کرنے والا

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8), Page 136, Kitab al-Ghasb (Book of Usurpation)**

No liability (dhaman) shall be incumbent upon the informant (jabi); rather, it shall be incumbent only upon the person who takes the property. However, in consideration of the effort (sa'i), liability may fall upon the informant. Therefore, careful consideration is required in such cases when issuing a fatwa. Imam Fakhruddin Qazi Khan stated that the fatwa is as follows: the person who takes the property shall be liable in all circumstances. As for whether he can reclaim the amount from the person who gave the order (hukam dahinda): if he has handed over the taken item to the order-giver, he may claim restitution. But if the item was destroyed while in the taker's possession, or if he destroyed it himself, he cannot claim restitution. If he spent it on the essential needs of the order-giver with the latter's permission, it is equivalent to a situation where one person orders another to spend the latter's own personal wealth on the former's needs. Some have stated that this warrants restitution even if no condition for repayment was made at the time, and this is the most correct (asah) opinion. In 'al-Muheet', regarding the ruling of the informant (jabi), it is mentioned that the preferred (mukhtar) view is that no liability is incumbent upon the informant; this is also written in 'Fusul al-Imadiya'. If an informant points out the owner's storage/house to a guard (sarhang) but gives no order, or if one partner points out the property of another partner to the guard until the property is seized or taken as collateral for a claim, and that collateral is subsequently lost, the partner or the informant shall not be held liable, as no direct order or action originated from them. This is found in 'al-Muheet'.

If a person orders another, "Slaughter this goat for me," while the goat actually belongs to his neighbor, the person who slaughters it shall be liable, whether he knew the goat belonged to someone else or not. The question then arises whether he has the right to reclaim the liability amount from the order-giver. If he knew the goat belonged to another person and was aware that the order to slaughter it was invalid, he shall have no right of restitution from the order-giver. If he was unaware and assumed the order was valid, he shall reclaim the indemnity from the order-giver; this is in 'al-Dhakhira'. Zaid ordered Amr to slaughter a goat belonging to him (Zaid), but before Amr could do so, Zaid sold it to Bakr. Amr then slaughtered it; he shall be liable for its price to Bakr, regardless of whether he knew of the sale or not. He shall not have the right to reclaim the indemnity from Zaid, whether he knew of the sale or not, because Zaid did not deceive him in this specific instance; this is in 'al-Zahiriya'. It is mentioned in 'Fatawa Abu al-Layth' that Shaykh Abu Bakr was asked

about a person who brought a horse to a riverbank to wash it. Zaid was standing there, and the person told Zaid, "Drive it into the river." Zaid did so, and the horse drowned. The ruling was that if the condition of the water is such that people habitually drive their horses into it for watering or washing, no liability shall fall on anyone, as the groom (sais) has the discretion to perform this act himself or have another do it. However, if the water is not in such a state that people usually drive horses into it, the owner has the choice to claim indemnity from either the groom or from Zaid, the appointee (mamoor). This is mentioned in this place, but there is an objection (nadhar) to it; rather, it should be that liability is not incumbent upon the order-giver or the groom. Thus, if the owner takes indemnity from the groom, the groom cannot reclaim it from Zaid. But if the owner takes it from Zaid, and Zaid was unaware that the order-giver was merely the groom and believed the order to be valid, then he may reclaim the indemnity from the groom. If the taker spent the wealth on the essential needs of the order-giver, he is liable to the original owner but shall reclaim it from the order-giver whose needs were met, even if no repayment condition was made. There is no liability [in certain cases], but the grave sin of malicious reporting (bad sa'ayat) lies upon him. The phrase "order-giver" in the original text refers to the groom as an explanation, and evidently, the order-giver should be referred to as the appointee (mamoor). Understand this well.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 136 किताब अल-ग़सब (छीनने का अध्याय)**

उस व्यक्ति (जाबी) पर जो माल की ओर इशारा करता है, हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगा, बल्कि केवल लेने वाले पर अनिवार्य होगा। लेकिन कोशिश (सई) के ऐतबार से जाबी पर भी हर्जाना अनिवार्य होगा। अतः फतवा देते समय ऐसी घटना में सोच-विचार करना चाहिए। इमाम फखरुद्दीन काज़ी खान ने फरमाया कि फतवा इस प्रकार है कि लेने वाला हर स्थिति में ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा। अब रही बात यह कि क्या वह आदेश देने वाले (हुक्म दहिन्दा) से हर्जाना वापस ले सकता है या नहीं; तो यदि ली हुई चीज़ उसने आदेश देने वाले को दे दी है, तो वह उससे वापस मांग सकता है। और यदि लेने वाले के पास वह चीज़ नष्ट हो गई या उसने स्वयं नष्ट कर दी, तो वह वापस नहीं मांग सकता। यदि उसने आदेश देने वाले की अनुमति से उसकी अनिवार्य आवश्यकताओं (हवाइज-ए-ज़रूरिया) में उसे खर्च कर दिया, तो यह उस स्थिति के समान है जहाँ किसी ने दूसरे को अपने निजी धन को अपनी ज़रूरत में खर्च करने का आदेश दिया हो। कुछ विद्वानों ने कहा कि यह वापसी का कारण बनता है, भले ही उसने वापस लेने की कोई शर्त न रखी हो, और यही अधिक सही (असह) मत है। 'मुहीत' में जाबी के हुक्म के विषय में उल्लेख है कि पसंदीदा (मुख्तार) राय यह है कि जाबी पर हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा; यह 'फ़ुसूल-ए-इमादिया' में लिखा है। यदि जाबी ने सिपाही (सरहंग) को मालिक के घर की ओर इशारा कर दिया लेकिन उसे कोई आदेश नहीं दिया, या एक साझेदार ने दूसरे साझेदार के घर की ओर इशारा किया यहाँ तक कि सिपाही ने माल ले लिया, या उस माल के बदले गिरवी (रहन) के रूप में लिया जिसका उससे दावा किया गया था, और वह गिरवी चीज़ नष्ट हो गई, तो साझेदार या जाबी निश्चित रूप से ज़िम्मेदार नहीं होंगे क्योंकि उन दोनों की ओर से कोई आदेश या क्रिया नहीं पाई गई। यह 'मुहीत' में है।

यदि एक व्यक्ति ने दूसरे को आदेश दिया कि "मेरे लिए यह बकरी ज़बह कर दो", जबकि वह बकरी उसके पड़ोसी की थी, तो ज़बह करने वाला ज़िम्मेदार होगा, चाहे उसे पता हो कि बकरी दूसरे की है या न पता हो। फिर क्या उसे आदेश देने वाले से हर्जाने की राशि वापस लेने का अधिकार है या नहीं? यदि उसे पता था कि बकरी किसी और की है और वह जान चुका था कि इसे ज़बह करने का आदेश सही नहीं है, तो ज़बह करने वाले को आदेश देने वाले से वापसी का अधिकार नहीं होगा। और यदि उसे यह ज्ञात नहीं था और उसने समझा कि आदेश सही है, तो वह आदेश देने वाले से हर्जाना वापस लेगा; यह 'ज़खीरा' में है। ज़ैद ने अम्र को अपनी मल्कियत की बकरी ज़बह करने का आदेश दिया, फिर अम्र के ज़बह करने से पहले ज़ैद ने उसे बक्र को बेच दिया। इसके बाद अम्र ने उसे ज़बह कर

दिया, तो वह बक्र के लिए उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा, चाहे उसे यह स्थिति पता हो या न हो। उसे यह अधिकार नहीं होगा कि हर्जाने की राशि ज़ैद से वापस ले, चाहे उसे बिक्री का पता हो या न हो, क्योंकि ज़ैद ने इस मामले में उसे धोखा नहीं दिया है; यह 'ज़हीरिया' में है। 'फ़तावा अबुल लैस' में उल्लेख है कि शेख अबू बक्र से पूछा गया कि एक व्यक्ति घोड़े को नहर के किनारे नहलाने के लिए लाया, वहाँ ज़ैद खड़ा था। लाने वाले ने ज़ैद से कहा कि इसे नहर में घुसाओ, ज़ैद ने उसे घुसाया और घोड़ा डूबकर मर गया। तो हुक्म दिया गया कि यदि पानी की स्थिति ऐसी है कि लोग अपने घोड़े वहाँ नहलाने और पानी पिलाने के लिए घुसाते हैं, तो किसी पर हर्जाना नहीं होगा क्योंकि साईस (घोड़े की देखभाल करने वाला) को अधिकार है कि वह स्वयं यह कार्य करे या किसी और से कराए। और यदि पानी की स्थिति ऐसी नहीं है कि लोग वहाँ घोड़े घुसाते हों, तो घोड़े के मालिक को अधिकार होगा कि वह चाहे साईस से हर्जाना ले या नियुक्त व्यक्ति (मामूर) ज़ैद से। इस स्थान पर ऐसा ही उल्लेख है और इसमें आपत्ति (नज़र) है, यानी सही यह होना चाहिए कि आदेश देने वाले और साईस पर हर्जाना अनिवार्य न हो। अतः यदि मालिक ने साईस से हर्जाना लिया, तो साईस उस हर्जाने की राशि ज़ैद (मामूर) से वापस नहीं ले सकता। और यदि उसने ज़ैद से हर्जाना लिया, और ज़ैद को यह पता नहीं था कि आदेश देने वाला घोड़े का साईस है और उसने आदेश को सही समझा, तो वह साईस से हर्जाना वापस ले सकता है। यदि उसने आदेश देने वाले की अनिवार्य आवश्यकताओं में खर्च कर दिया, तो लेने वाला मूल मालिक के लिए ज़िम्मेदार होगा, फिर आदेश देने वाले से वापस लेगा जिसके आदेश पर उसकी ज़रूरत में खर्च किया गया है, भले ही खर्च करते समय वापसी की शर्त न रखी गई हो। हर्जाना नहीं होगा लेकिन गलत सूचना देने (बद सअयत) का भारी पाप उसकी गर्दन पर होगा। हुक्म दहिन्दा के कथन का मूल में इसी तरह उल्लेख है, और 'साईस' शब्द यहाँ व्याख्या के रूप में है, यानी साईस जो आदेश देने वाला है, और ज़ाहिर है कि आदेश देने वाले को 'मामूर' (आदेश प्राप्तकर्ता) कहा जाए। समझ लें।

---

کے جابی پر ضمان نہ واجب ہوگی بلکہ فقط لینے والے پر واجب ہوگی لیکن باعتبار سعی کے جابی پر واجب ہوگی پس فتوٰی کے وقت ایسے واقعہ میں تامل چاہیے اور امام فخر الدین قاضی خاں نے فرمایا کہ فتوٰی اس طرح ہے کہ لینے والا ہر حال میں ضامن ہوگا پھر رہا یہ امر کہ حکم دہندہ سے واپس لے سکتا ہے یا نہیں سو اگر لی ہوئی چیز اُس نے حکم دہندہ کو دے دی ہے تو رجوع کر سکتا ہے اور اگر لینے والے کے پاس تلف ہوگئی یا اُس نے تلف کر ڈالی ہو تو رجوع نہیں کر سکتا ہے اور اگر اُس نے حکم دہندہ کی اجازت سے حکم دہندہ کے حوائج ضروریہ میں خرچ کر دی ہو تو یہ بمنزلہ ایسی صورت کے ہے کہ کسی نے دوسرے کو اُس کے ذاتی مال سے اپنی ضرورت میں خرچ کرنے کا حکم دیا ہو بعض لوگوں نے فرمایا کہ یہ موجب رجوع ہے بدون اس کے کہ اُس نے واپس لینے کی کوئی شرط کرلی ہو اور یہی اصح ہے اور محیط میں مسئلہ جابی کے حکم میں یوں مذکور ہے کہ مختار یہ ہے کہ جابی پر ضمان واجب نہ ہوگی یہ فصول عمادیہ میں لکھا ہے۔

اگر جابی نے سرہنگ کو صاحبِ مال کا بیت دکھلا دیا مگر اُس کو کچھ حکم نہ کیا یا شریک نے سرہنگ کو دوسرے شریک کا بیت دکھلا دیا یہاں تک کہ اُس نے مال لے لیا یا اُس کے بیت سے رہن بعوض اُس مال کے جس کا اُس سے مطالبہ کیا گیا ہے بسبب اُس کی ملک پائی جانے کے لئے لیا اور وہ رہن ضائع ہو گیا تو شریک یا جابی بلا شبہ ضامن نہ ہوگا کیونکہ ان دونوں سے کوئی حکم یا عمل نہیں پایا گیا ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر ایک شخص نے دوسرے کو حکم دیا کہ میرے واسطے یہ بکری ذبح کر دے حالانکہ یہ بکری اُس کے پڑوسی کی تھی تو ذبح کرنے والا ضامن ہوگا خواہ اس کو معلوم ہو کہ یہ بکری غیر کی ہے یا نہ معلوم ہو پھر آیا اُس کو حکم دہندہ سے بقدر ضمان واپس لینے کا اختیار ہے یا نہیں ہے سو

اگر اُس کو معلوم تھا کہ یہ بکری غیر شخص کی ہے حتی کہ جان چکا تھا کہ اس کے ذبح کرنے کا حکم صحیح نہیں ہے تو ذبح کرنے والے کو حکم دہندہ سے واپس لینے کا اختیار نہ ہوگا اور اگر اُس نے یہ نہیں جانا حتی کہ گمان کیا کہ حکم صحیح ہے تو ضمان حکم دہندہ سے واپس لے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ زید نے عمرو کو اپنی مملوکہ بکری ذبح کر دینے کا حکم دیا پھر عمرو کے ذبح کرنے سے پہلے زید نے اُس کو بکر کے ہاتھ فروخت کر دیا پھر عمرو نے اُس کو ذبح کیا تو بکر کے واسطے اُس کی قیمت کا ضامن ہوگا خواہ اُس کو یہ حال معلوم ہوا ہو یا نہ ہوا ہو اور اُس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ مال ضمان کو زید سے واپس لے خواہ اُس کو فروخت کا علم ہوا ہو یا نہ ہوا ہو اس واسطے کہ زید نے اس کو اس واقعہ میں دھوکا نہیں دیا ہے یہ ظہیریہ میں ہے فتاویٰ ابو الیث میں مذکور ہے کہ شیخ ابو بکر سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص ایک گھوڑا نہر کے کنارے نہلانے کے واسطے لایا اور وہاں ایک شخص زید کھڑا تھا پس لانے والے نے زید سے کہا کہ اُس کو نہر میں گھسا پس اُس نے گھسایا اور گھوڑا ڈوب کر مر گیا تو حکم فرمایا کہ اگر پانی کی ایسی حالت ہو کہ لوگ اپنے گھوڑے پانی پلانے اور نہلانے کے واسطے اس میں گھساتے ہوں تو کسی پر ضمان نہ ہوگی کیونکہ سائیس کو اختیار ہے کہ اپنے ہاتھ سے یہ فعل کرے یا دوسرے سے کرادے اور اگر پانی کی حالت ایسی نہ ہو کہ لوگ نہلانے یا پانی پلانے کے واسطے اپنے گھوڑے اُس میں گھساتے ہوں تو گھوڑے کے مالک کو اختیار ہو گا چاہے سائیس سے ضمان لے یا زید مامور سے ایسا ہی اس مقام پر ذکر کیا ہے اور اس میں نظر ہے یعنی اعتراض ہے اور یوں چاہیے کہ حکم دہندہ و سائیس پر ضمان واجب نہ ہو پس اگر اُس نے سائیس سے ضمان لی تو سائیس مالِ ضمان کو مامور یعنی زید سے واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر اُس نے زید سے ضمان لی پس اگر زید کو یہ معلوم نہ ہوا کہ یہ حکم دہندہ اس گھوڑے کا سائیس ہے حتی کہ اُس نے حکم صحیح ہونے کا گمان کیا تو وہ سائیس سے مالِ ضمان واپس لے اگر حکم دہندہ کے حوائج ضروریہ میں

خرچ کر دیا تو لینے والا ضامن ہوگا اصل مالک کے واسطے پھر حکم دہندہ سے جس کے حکم سے اس کی ضرورت میں خرچ کیا ہے واپس لے گا اگر چہ وقت خرچ کرنے کے حکم سے اس نے واپس لینے کی شرط نہ کرلی ہو۔ ع نہ ہوگا لیکن بد سعایت کا گناہ شدید اس کی گردن پر ہے۔ ع قولہ حکم دہندہ اقوال اسی طرح اصل میں مذکور ہے اور شاہد قولہ و سائیس میں داد تفسیر ہو یعنی سائیس جو حکم دہندہ ہے اور ظاہر یہ کہ حکم دہندہ یعنی مامور کہا جائے فافہم۔

---

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) | 137 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

...can take, this is in [the book] Al-Muhit. It is mentioned in Ghasb al-Uddah that if a person tells another to burn so-and-so's cloth, then the one who burned it will be liable for compensation (Daman), not the one who gave the order. The person whose order makes them liable is the Sultan (ruler) or a master when he orders his slave; this is in Fusul al-Imadiyya. If a person tells another to burn this cloth of mine or throw it into the river, and he does so, he will not be liable for compensation because he did it by his order, but he will be a sinner [due to wasting wealth]; this is in Khazanat al-Muftin.

If a person tells another to make a doorway in this wall for me, and he does so, and then the wall turns out to belong to someone else, the one who made the doorway will be liable for compensation because he destroyed someone else's property, but he shall recover the compensation amount from the one who gave the order. However, if he said to him, "Make a doorway in this wall," without saying "for me in my wall," then the one who made it cannot recover the compensation from the one who gave the order. But in this case, if the one who gave the order lives in that house or had hired the person as a laborer to make the doorway, then the maker will recover the compensation; this is in Muhit al-Sarakhsi. A woman told a man to throw out the dust/dirt of the house, and he threw it out. Later, the woman's husband came and said, "I had placed such an amount of gold in that dirt." If it is proven that he had placed gold in the dirt, then compensation will be mandatory upon the person who threw the dirt out; this is written in Khazanat al-Muftin.

**Chapter on: Description of Cultivating Usurped Land**

If a person usurps someone else's land and sows crops in it, and they grow, the landowner will have the choice to take back his land and, for the purpose of freeing his property, order the usurper (Ghasib) to uproot the crops. If the usurper refuses to do so, the owner has the right to do it himself. If the owner was not present until the crops ripened, then the crops belong to the usurper (this is a well-known ruling), and if the land has been damaged due to cultivation, the owner can take compensation from the usurper to the extent of the damage. Scholars have differed on how to determine the amount of damage; some said it should be seen how much the land would rent for before cultivation and how much after cultivation, and the difference is the damage to the land. Shams al-A'imma stated that this view is closer to what is correct. If the owner was present and the crops had not yet sprouted, the owner has

the choice to either leave them until they sprout and then order the usurper to uproot them, or if he wishes, give the usurper the price of his seeds, but on the basis that those seeds are sown (rekhta) in someone else's land. The method for this is to estimate the value of the land once with the seeds sown and once without, and give the difference to the usurper; this is in [the book] Al-Dhakhirah. The commentator says that the clarification of the issue of 'seeds sown in another's land' should be understood from the following: A person sowed wheat in another's land, and before they sprouted, they quarreled. The landowner has the choice to either leave them until they grow and then tell him to uproot his crop, or give him whatever value has been added by the seeds. If the owner chooses to pay compensation, how will he pay? The preferred view is that he will pay the price of the seeds considering they are sown in another's land. The method is to value the land once as sown with seeds where another person has the right to have the crop uprooted after it grows, and value it once without the seeds sown; then whatever among them...

1- "Aqrab" means it appears correct/appropriate.

ले सकता है, यह 'मुहित' में है। 'ग़सब-अल-उदह' में उल्लेख है कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे से कहा कि फलां व्यक्ति का कपड़ा जला दे, तो जिसने जलाया है उस पर हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य होगा, उस पर नहीं जिसने आदेश दिया है। और वह व्यक्ति जो आदेश देने से ज़िम्मेदार होता है, वह सुल्तान है या मालिक जब उसने अपने दास को आदेश दिया हो, यह 'फ़ुसूल इमादिया' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा कि मेरा यह कपड़ा जला दे या उसे दरिया में डाल दे, और उसने वैसा ही किया, तो वह हर्जाने का पात्र नहीं होगा क्योंकि उसने उसके आदेश से ऐसा किया है, लेकिन गुनहगार होगा, यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है।

एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा कि मेरे लिए इस दीवार में एक दरवाज़ा छोड़ दे (बना दे), उसने वैसा ही किया, फिर वह दीवार किसी अन्य व्यक्ति की निकली, तो दरवाज़ा बनाने वाला ज़िम्मेदार होगा क्योंकि उसने दूसरे की संपत्ति को नष्ट किया है, लेकिन हर्जाने की राशि अपने आदेश देने वाले से वापस लेगा। और अगर उसने उससे यूँ कहा हो कि इस दीवार में एक दरवाज़ा छोड़ दे और यह न कहा हो कि 'मेरे लिए मेरी दीवार में', तो बनाने वाला आदेश देने वाले से हर्जाना वापस नहीं ले सकता। और अगर इस स्थिति में आदेश देने वाला उस घर में रहता हो या उस व्यक्ति को दरवाज़ा बनाने पर मज़दूर नियुक्त किया हो, तो बनाने वाला हर्जाना वापस लेगा, यह 'मुहित-ए-सरख़सी' में है। एक औरत ने एक मर्द से कहा कि इस घर की धूल/मिट्टी बाहर फेंक दे, उसने बाहर फेंक दी, फिर उस औरत का पति आया और कहा कि मैंने इस मिट्टी में इतना सोना रखा था; तो अगर यह साबित हो जाए कि उसने मिट्टी में सोना रखा था, तो हर्जाना उस व्यक्ति पर अनिवार्य होगा जिसने मिट्टी बाहर फेंकी है, यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में लिखा है।

## अध्याय: हड़पी गई (मग़सूबा) ज़मीन में खेती करने के विवरण में

एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति की ज़मीन हड़प कर उसमें खेती बोई और वह उग आई, तो ज़मीन के मालिक को अधिकार होगा कि अपनी ज़मीन ले ले और अपनी संपत्ति खाली करने के उद्देश्य से हड़पने वाले (ग़ासिब) को आदेश दे कि खेती उखाड़ ले। और अगर हड़पने वाले ने इस कार्य से इंकार किया, तो मालिक को अधिकार होगा कि स्वयं ऐसा करे। और अगर मालिक उपस्थित न हुआ यहाँ तक कि खेती पक गई, तो खेती हड़पने वाले की होगी और यह प्रसिद्ध (मसला) है, और अगर खेती के कारण ज़मीन में नुक़सान आया हो तो वह हड़पने वाले से नुक़सान की मात्रा के बराबर ले सकता

है। फिर उलेमाओं ने नुक़सान की मात्रा का पता लगाने में मतभेद किया है, कुछ ने कहा कि यह देखा जाए कि खेती से पहले वह कितने पर (किराए/ठेके पर) उठती थी और खेती के बाद कितने पर उठती है, तो जो अंतर हो वही ज़मीन का नुक़सान है। शम्स-उल-आइम्मा ने कहा कि यह कथन सच्चाई के अधिक निकट है। और अगर मालिक उपस्थित हुआ और अभी खेती नहीं उगी थी, तो मालिक को अधिकार है चाहे तो छोड़ दे यहाँ तक कि खेती उगे, फिर हड़पने वाले को उसे उखाड़ने का आदेश दे, या चाहे तो हड़पने वाले को उसके बीजों की कीमत दे दे, लेकिन इस हिसाब से कि वे बीज दूसरे की ज़मीन में पड़े (रीख़्ता) हैं। और उसका तरीका यह है कि ज़मीन का एक बार बीजों के साथ और फिर बिना बीजों के मूल्यांकन कराया जाए, तो दोनों में जितना अंतर हो उतना हड़पने वाले को दे दे, यह 'ज़ख़ीरा' में है। व्याख्याकार ने कहा कि 'दूसरे की ज़मीन में बीज पड़े होने' के मसले की व्याख्या निम्नलिखित से समझनी चाहिए: एक व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन में गेहूँ बोए और अभी नहीं उगे थे कि दोनों में झगड़ा हो गया, तो ज़मीन के मालिक को अधिकार है चाहे छोड़ दे यहाँ तक कि उगें फिर उससे कहे कि अपनी खेती उखाड़ ले, या जो कुछ बीजों से अधिक मूल्य हुआ है उसे दे दे। तो अगर मालिक ने हर्जाना देने का विकल्प चुना, तो वह किस तरह हर्जाना देगा? पसंदीदा मत यह है कि वह बीजों की कीमत इस आधार पर देगा कि वे बीज दूसरे की ज़मीन में बोए गए हैं, और इसका तरीका यह है कि एक बार ज़मीन का मूल्यांकन ऐसे बीजों के साथ किया जाए जिनके उगने के बाद दूसरे व्यक्ति को खेती उखाड़ने का अधिकार है, और एक बार बिना बीजों के मूल्यांकन किया जाए, तो जो उनमें से...

1- "अक़रब" यानी ठीक प्रतीत होता है।

---

لے سکتا ہے یہ محیط میں ہے۔ غصب العدۃ میں مذکور ہے کہ اگر کسی شخص نے دوسرے سے کہا کہ فلاں شخص کا کپڑا جلا دے تو جس نے جلایا ہے اُس پر ضمان واجب ہوگی نہ اس پر جس نے حکم کیا ہے اور جو شخص حکم دینے سے ضامن ہوتا ہے وہ سلطان ہے یا مولیٰ جبکہ اُس نے اپنے غلام کو حکم دیا ہو یہ فصول عمادیہ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے سے کہا کہ میرا یہ کپڑا جلا دے یا اُس کو دریا میں ڈال دے اور اُس نے ایسا ہی کیا تو ضامن نہ ہوگا کیونکہ اُس کے حکم سے ایسا کیا ہے لیکن گنہگار ہوگا یہ خزانۃ المفتین میں ہے ایک شخص نے دوسرے سے کہا کہ میرے واسطے اس دیوار میں ایک دروازہ چھوڑ دے اُس نے ایسا ہی کیا پھر وہ دیوار کسی غیر شخص کی نکلی تو دروازہ چھوڑنے والا ضامن ہوگا کیونکہ اُس نے ملکِ غیر کو تلف کر دی مگر مالِ ضمان کو اپنے حکم دہندہ سے واپس لے گا اور اگر اس سے یوں کہا ہو کہ اس دیوار میں ایک دروازہ چھوڑ دے اور یہ نہ کہا کہ میرے واسطے میری دیوار میں تو چھوڑنے والا حکم دہندہ سے مالِ ضمان واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر اس صورت میں حکم دہندہ اس دار میں رہتا ہو یا اس شخص کو دروازہ چھوڑنے پر اجیر مقرر کیا ہو تو چھوڑنے والا مالِ ضمان واپس لے گا یہ محیطِ سرخسی میں ہے ایک عورت نے ایک مرد سے کہا کہ یہ گھر کی خاک باہر ڈال دے اُس نے باہر ڈال دی پھر اس عورت کا خاوند آیا اور کہا کہ میں نے اس خاک میں اس قدر سونا رکھا تھا پس اگر ثابت ہو جائے کہ اُس نے خاک میں سونا رکھا تھا تو ضمان اُس شخص پر واجب ہوگی جس نے خاک باہر ڈال دی ہے یہ خزانۃ المفتین میں لکھا ہے۔

**باب در: زمین مغصوبہ میں زراعت کرنے کے بیان میں**

ایک شخص نے دوسرے شخص کی زمین غصب کر کے اُس میں کھیتی بوئی اور وہ اُگی تو مالکِ زمین کو اختیار ہوگا کہ اپنی زمین لے لے اور اپنی ملکیت فارغ کرنے کی غرض سے غاصب کو حکم دے کہ کھیتی اکھاڑ لے اور اگر غاصب نے اس فعل سے انکار کیا تو مالک کو اختیار ہوگا کہ خود ایسا کرے اور اگر مالک حاضر نہ ہوا یہاں تک کہ کھیتی پک گئی تو کھیتی غاصب کی ہوگی اور یہ معروف (مسئلہ) ہے اور اگر بسبب زراعت کے زمین میں نقصان آیا ہو تو غاصب سے بقدرِ نقصان لے سکتا ہے۔ پھر مشائخ نے مقدارِ نقصان کی دریافت میں اختلاف کیا ہے بعض نے فرمایا کہ یوں دیکھا جائے کہ قبل زراعت کے کتنے پر اُٹھتی تھی اور بعد زراعت کے کتنے پر اُٹھتی ہے پس جس قدر تفاوت ہو وہی نقصانِ زمین ہے شمس الائمہ نے فرمایا کہ یہ قول اقرب اِلی الصواب ہے اور اگر مالک حاضر ہوا اور ہنوز کھیتی نہیں اُگی تھی تو مالک کو اختیار ہے چاہے چھوڑ دے یہاں تک کہ کھیتی اُگے پھر غاصب کو اُس اکھاڑ لینے کا حکم کرے یا چاہے تو غاصب کو اُس کے بیجوں کی قیمت دے دے لیکن اس حساب سے کہ وہ تخم دوسرے کی زمین میں ریختہ ہیں اور اُس کی صورت یہ ہے کہ زمین ایک دفعہ تخم ریختہ اور پھر بغیر تخم ریختہ اندازہ کرائی جائے پس جس قدر دونوں میں فرق ہوا اسی قدر غاصب کو دے دے یہ ذخیرہ میں ہے۔ قال المخرجم ریختہ در زمین غیر کی توضیح مسئلہ ذیل سے دریافت کرنی چاہیے ایک شخص نے دوسرے کی زمین میں گیہوں بوئے اور ہنوز نہیں اُگے تھے کہ دونوں نے باہم جھگڑا کیا تو مالکِ زمین کو اختیار ہے چاہے چھوڑ دے یہاں تک کہ اُگیں پھر اُس سے کہے کہ اپنی کھیتی اکھاڑ لے یا جو کچھ تخم سے زیادتی ہوگئی ہے اُس کو دے دے پس اگر مالک نے ادائے ضمان کو اختیار کیا تو کس طرح ضمان دے گا پس مختار یہ ہے کہ اُس کے بیج کی قیمت بدیں اعتبار کہ وہ بیج غیر کی زمین میں ریختہ ہیں ضمان دے گا اور اُس کا یہ طریقہ ہے کہ ایک بار زمین ایسے بیجوں سے بوئی ہوئی

اندازہ کی جائے کہ جن کے اُگنے کے بعد شخص غیر کو کھیتی اکھڑوا دینے کا اختیار ہے اور ایک بار بغیر تخم ریختہ اندازہ کی جائے پس جو کچھ ان سے ا اقرب یعنی ٹھیک نظر آتا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 138 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

The difference between the two is the value of those seeds which were scattered in another's land; this is mentioned in 'al-Zahiriyya'. If a person sowed seeds in his own land, then another person came and sowed his own seeds in that same land, and before the landowner's seeds sprouted, he did not hoe or irrigate the land until both sets of seeds sprouted, then according to Imam Azam (Abu Hanifa), whatever has grown belongs to the second person. This is because, according to the Imam, the mixing (khalt) of the same genus or destruction (istihlak) is the primary state. The second person shall be liable for the price of the landowner's seeds, but based on the consideration that those seeds were sown in one's own land. Therefore, the land will be appraised once without the scattered seeds and a second time with the scattered seeds. Whatever difference exists between the two appraisals, that amount shall be given to the landowner. And if the landowner subsequently came and re-sowed his seeds in that land, and before they sprouted, he either hoed it or did not hoe it and irrigated the land until all seeds sprouted, then everything that has grown belongs to the landowner. He shall be liable to return similar seeds to the usurper (ghasib), but based on the calculation that they were scattered in someone else's land. This is similarly mentioned in 'Fatawa Fazli'. This is not the comprehensive answer; the comprehensive answer is that the landowner shall pay the usurper the price of his seeds as if they were sown in his own land, and then the landowner shall indemnify the usurper for the price of both sets of seeds based on the fact that they were scattered in someone else's land, as the loss occurred in this manner. All this applies if the crop has not yet grown. If the owner's crop had grown and then another person came, sowed his seeds, and irrigated the land, then if the land was not hoed until the second seeds sprouted, the ruling is the same as we stated. If the land was hoed and the original crop grew again after hoeing, the ruling remains the same. If it did not grow back, then whatever grew belongs to the usurper, and the usurper shall be liable to the landowner for the price of his grown crop, because the loss occurred in this way; this is in 'al-Zakhira'. Sheikh Naseer was asked about a person who sowed wheat in his land, then another came and sowed his own; he replied that the price of the owner's scattered wheat is mandatory. This was narrated by Ibn Sima'ah from Imam Muhammad bin al-Hasan. Faqih Abu Laith said this applies if the wheat owner agrees to accept the price of his scattered seeds. If he does not agree, he has the option to leave it until the crop grows, and then he may uproot it or choose to discharge the usurper from liability. When harvest time comes and the crops cannot

be separated, the harvest shall be shared between them according to their respective shares; this is in 'al-Zahiriyya'. The author of 'al-Muhit' was asked about a person who usurped land and cotton grew in it, then the owner ploughed the land and sowed something else; is the landowner liable for anything to the usurper? The Sheikh replied that he is not liable for anything, for he did what a judge (Qadi) would have done; this is in 'Fusul Imadiyya'. If someone wrongfully threw cotton seeds in another's land and they grew, and the landowner nurtured them, the cotton (bolls) shall belong to the usurper, but he shall be liable for any damage to the land. The owner's care for them shall not be considered as consent. This is in 'al-Qunya'.

An incident occurred for which a fatwa was sought: One of two partners farmed common land. Does the other partner have the right to demand a third or a quarter share according to village custom? The answer was that he cannot do so, but if the farming caused any damage to the land, he can take compensation for the loss according to his share...

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 138 किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

दोनों के बीच का अंतर वही है जो उन बीजों की कीमत है जो दूसरे की ज़मीन में बिखेरे गए हों, यह 'ज़हीरिया' में वर्णित है। यदि किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन में बीज बोए, फिर किसी अन्य व्यक्ति ने आकर उसी ज़मीन में अपने बीज बो दिए, और ज़मीन के मालिक ने उसके बीज उगने से पहले ज़मीन को नहीं गोडा और न ही सींचा, यहाँ तक कि दोनों बीज उग आए, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार जो कुछ भी उगा है वह दूसरे व्यक्ति का होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि इमाम के अनुसार एक ही प्रकार की वस्तुओं का मिल जाना (ख़ल्त) या नष्ट हो जाना पहली स्थिति है। और दूसरे व्यक्ति पर मालिक के बीजों की कीमत अनिवार्य होगी, लेकिन इस आधार पर कि वे बीज अपनी ज़मीन में बोए गए हैं। अतः ज़मीन का मूल्यांकन एक बार बिना बीज बोए किया जाएगा और दूसरी बार बीज बोए जाने के साथ किया जाएगा। इन दोनों मूल्यांकनों में जो अंतर होगा, उतनी राशि वह ज़मीन के मालिक को देगा। और यदि फिर ज़मीन के मालिक ने आकर दोबारा अपने बीज उस ज़मीन में बो दिए और उगने से पहले ज़मीन को गोडा या नहीं गोडा और सींचा, यहाँ तक कि सभी बीज फूट निकले, तो जो कुछ भी उगा है वह सब ज़मीन के मालिक का है। और उस पर ग़ासिब (हड़पने वाले) के लिए उसके बीजों के समान बीजों की वापसी अनिवार्य होगी, लेकिन इस हिसाब से कि वे दूसरे की ज़मीन में बिखरे हुए हैं। ऐसा ही 'फ़तावा फ़ुज़ली' में उल्लेखित है। और यह उत्तर पर्याप्त नहीं है, बल्कि विस्तृत उत्तर यह है कि ज़मीन का मालिक ग़ासिब को उसके बीजों की कीमत अपनी ज़मीन में बोए जाने के हिसाब से देगा, फिर ज़मीन का मालिक ग़ासिब को दोनों बीजों की कीमत का हर्जाना (ज़मान) देगा क्योंकि हानि इसी प्रकार हुई है। यह सब उस स्थिति में है जब फसल न उगी हो। और यदि मालिक की फसल उगी हो और फिर दूसरे ने आकर अपने बीज बोकर ज़मीन सींची हो, तो यदि ज़मीन नहीं गोडी गई और दूसरे बीज उग आए, तो वही नियम लागू होगा जो ऊपर बताया गया है। और यदि ज़मीन गोडी गई और गोडने के बाद पुरानी फसल दोबारा उग आई, तब भी वही नियम लागू होगा। और यदि दोबारा नहीं उगी, तो जो कुछ भी उगा है वह ग़ासिब का होगा और ग़ासिब ज़मीन के मालिक को उसकी उगी हुई फसल की कीमत का हर्जाना देगा। यह 'ज़खीरा' में है। शेख नसीर से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन में गेहूँ बोए, फिर दूसरे ने आकर उसमें अपने बीज डाल दिए, तो उन्होंने कहा कि मालिक के बिखेरे हुए गेहूँ की कीमत अनिवार्य होगी। इसे इब्न समाआ ने इमाम मुहम्मद बिन हसन से रिवायत किया है। फ़क़ीह अबुल लैस ने कहा कि यह तब है जब गेहूँ का मालिक बिखेरे गए बीजों की कीमत लेने पर सहमत हो। यदि वह सहमत न हो, तो उसे

अधिकार होगा कि वह फसल उगने दे और उगने पर उसे उखाड़ ले या ग़ासिब को हर्जाने से मुक्त कर दे। फिर जब फसल कटाई का समय आए और दोनों फसलें अलग न की जा सकें, तो वह फसल दोनों में उनके हिस्से के अनुसार साझा होगी। यह 'ज़हीरिया' में है। 'साहबुल मुहीत' से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने ज़मीन हड़प ली और उसमें कपास उगी, फिर मालिक ने ज़मीन जोतकर उसमें कुछ और बो दिया, तो क्या ज़मीन का मालिक उस ग़ासिब के लिए किसी चीज़ का उत्तरदायी होगा? शेख ने उत्तर दिया कि वह किसी चीज़ का उत्तरदायी नहीं होगा, क्योंकि उसने वही किया जो एक न्यायाधीश (क़ाज़ी) करता। यह 'फ़ुसूल इमादिया' में है। यदि किसी ने हड़पकर दूसरे की ज़मीन में कपास के बीज डाले और वे उग आए, फिर ज़मीन के मालिक ने उनकी देखभाल की, तो रुई (कपास के लच्छे) ग़ासिब के होंगे, लेकिन उसे ज़मीन के नुकसान की भरपाई करनी होगी। ज़मीन के मालिक की देखभाल को उसकी सहमति नहीं माना जाएगा। यह 'क़ुनिया' में है।

एक घटना हुई जिस पर फतवा माँगा गया था: दो साझेदारों में से एक ने साझा ज़मीन पर खेती की। क्या दूसरा साझेदार गाँव की प्रथा के अनुसार एक-तिहाई या एक-चौथाई हिस्से की माँग कर सकता है? उत्तर दिया गया कि वह ऐसा नहीं कर सकता, लेकिन यदि खेती से ज़मीन को कोई नुकसान हुआ हो, तो वह अपने हिस्से के अनुसार हर्जाना ले सकता...

دونوں میں تفاوت ہو وہی ایسے بیجوں کی قیمت ہے جو دوسرے کی زمین میں ریختہ کیے گئے ہوں یہ ظہریہ میں ہے۔ ایک شخص نے اپنی زمین میں تخم ریزی کی پھر دوسرے شخص نے آکر اُسی زمین میں اپنے بیج بوئے اور مالک زمین کے بیج اُگنے سے پہلے اُس کو گوڑا نہیں گوڑا اور زمین کو سینچا یہاں تک کہ دونوں بیج اُگے تو امام اعظم کے نزدیک جو کچھ اُگا ہے وہ دوسرے کا ہو گا اس لیے کہ امام کے نزدیک خلطاً جنس یا تکلس استہلاک اول ہے اور دوسرے شخص پر مالک کے بیجوں کی قیمت واجب ہو گی مگر بدیں اعتبار کہ وہ بیج اپنی زمین میں بوئے ہوئے ہیں پس ایک بار زمین بغیر تخم ریختہ اندازہ کی جائے گی اور دوسری بار تخم ریختہ اندازہ کی جائے گی پس جو کچھ دونوں میں فرق ہو اس قدر مالک زمین کو دے گا اور اگر پھر مالک زمین نے آکر دوبارہ اپنے بیج اُس زمین میں بوئے اور زمین کو قبل اُگانے کے کوڑا یا نہ گوڑا اور زمین کو سینچا یہاں تک کہ سب بیج پھوٹ نکلے تو جو کچھ اُگا ہے سب مالک زمین کا ہے اور اُس پر غاصب کے واسطے اُسی کے بیج کے مثل بیج واجب ہوں گے لیکن بدیں حساب کہ وہ دوسرے کی زمین میں ریختہ ہیں ایسا ہی فتاویٰ فضلی میں مذکور ہے اور یہ جواب مشیع(۱) نہیں ہے بلکہ مشیع جواب (۲) یہ ہے کہ مالک زمین کو غاصب اُس کے بیجوں کی قیمت اپنی زمین میں بوئے ہوئے کے حساب سے دے گا پھر مالک زمین غاصب کو دونوں بیجوں کی قیمت بدیں اعتبار کہ وہ غیر کی زمین میں ریختہ ہیں ضمان دے گا اس واسطے کہ اتلاف یوں ہی وارد ہوا ہے اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ کھیتی اُگی نہ ہو اور اگر مالک کی کھیتی اُگی ہو پھر دوسرے نے آکر اپنی تخم ریزی کر کے زمین کو سینچا پس اگر زمین کو نہ گوڑا ہو یہاں تک کہ دوسرے بیج اُگے تو حکم وہی ہے جو ہم نے بیان کیا ہے اور اگر زمین کو گوڑا ہو پس اگر اُگی ہوئی کھیتی بعد گوڑنے

کے دوبارہ اُگی ہے تو بھی حکم وہی ہے جو ہم نے بیان کیا ہے اور اگر دوبارہ نہیں اُگی تو جو کچھ اُگا ہے وہ غاصب کی ہو گی اور غاصب زمین کے مالک کے واسطے اُس کی اُگی ہوئی کھیتی کی قیمت کا ضامن ہو گا کیونکہ اتلاف یوں ہی وارد ہوا ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اور شیخ نصیرؒ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے اپنی زمین میں گیہوں بوئے پھر دوسرے نے آکر اُس میں اپنے بوئے تو فرمایا کہ جو ڈالے پر مالک کے ریختہ گیہوں کی قیمت واجب ہو گی اس کو ابن سماعہؒ نے امام محمد بن الحسن سے روایت کیا ہے اور فقیہ ابواللیثؒ نے فرمایا کہ یہ اس وقت ہے کہ گیہوں کا مالک اپنے گیہوں کے ریختہ کے حساب سے قیمت لینے پر راضی ہو جائے اور اگر وہ اُس پر راضی نہ ہو تو اس کو اختیار ہو گا چاہے چھوڑ دے یہاں تک کہ کھیتی اُگے پھر جب اُگی تو اس کو اُکھاڑ لے یا چاہے تو غاصب کو ضمان سے بری کر دے پھر جب کھیتی کاٹنے کا وقت آئے اور دونوں کھیتی کا نہیں تو وہ کھیتی دونوں میں بقدر اُن کے حصہ کے مشترک ہو گی یہ ظہریہ میں ہے۔ صاحب المحیط سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے زمین غصب کر کے اُس میں کپاس ہوئی پھر مالک نے زمین جوت کر اُس میں کوئی اور چیز بوئی پس آیا مالک زمین اُس غاصب کے واسطے کچھ ضامن ہو گا تو شیخؒ نے جواب دیا کہ کچھ نہیں ضامن ہو گا کیونکہ اُس نے ایسا فعل کیا ہے کہ اگر یہ مقدمہ قاضی کے سامنے پیش ہوتا تو وہ بھی یہی کرتا یہ فصول عمادیہ میں ہے۔ ایک شخص نے حب القطن (بیج ۱۲) دوسرے کی زمین میں ازراہ غصب ڈالے اور وہ اُگے پس مالک زمین نے ان کو تربیت کیا تو خورہائے پنبہ (روئی کے لچھے ۱۲) غاصب کے ہوں گے اور اُس پر نقصان زمین کا تاوان واجب ہو گا اور مالک کا تعہد اُس کے ساتھ رضامندی شمار نہ ہوگا اور الظہریہ کہ مالک کا تعہد غاصب کے لئے ہے یہ قنیہ میں ہے۔

ایک حادثہ واقعہ ہوا جس پر فتویٰ لیا گیا تھا وہ یہ ہے کہ دو شریکوں میں سے ایک شریک نے زمین مشترک میں زراعت کی پس آیا دوسرے شریک کو پہنچتا ہے کہ بقدر اپنے حصہ زمین کے

موافق عرف دیہ کے تہائی یا چوتھائی کا مطالبہ کرے تو جواب دیا گیا کہ ایسا نہیں کر سکتا ہے لیکن اگر کاشتکاری سے زمین کو کچھ نقصان پہنچا ہو تو بقدر اپنے حصہ کے تاوان نقصان لے سکتا

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 139 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

This is recorded in the twentieth section of Fusul al-Imadiya: A piece of land was jointly owned by two persons. One partner sowed the entire land without the permission of the other. Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) stated that if the crop has grown and both parties settle such that the one who did not sow gives half the cost of seeds to the sower, and the entire crop becomes shared, then it is permissible. However, if such a settlement is reached before the crop has sprouted, it is not permissible. If the crop has sprouted and the non-cultivating partner intends to uproot it, the land shall be divided equally. The non-cultivating partner may uproot the crop on his portion, and for any resulting damage to his land, the cultivator shall be held liable. This is found in Fatawa Qazi Khan.

It is narrated from Imam Muhammad (r.a.) that if land is shared and one partner is absent, the present partner has the right to cultivate half of the land. If he intends to cultivate in the following year, he should use the same half as the previous year. This is mentioned similarly in this context. The ruling is that if it is known that cultivation benefits the land without causing harm, the partner has the right to cultivate the entire land. When the absent partner returns, he shall be entitled to derive benefit from the entire land for the same duration that the present partner did, as implied consent is established in such matters. However, if cultivation is known to be harmful and leaving it fallow is beneficial for the soil's strength, the present partner has no right to cultivate at all, as consent is not established; this is according to al-Zahiriyyah. My grandfather (r.a.) was asked about a person who sowed crops on another's land without permission. The owner asked why he did so. He replied, "Give me the value of the seeds I sowed, and I will be your sharecropper, and the crop shall be shared according to custom." The owner compensated him for the seeds. When the crop matured, the question arose as to its ownership. The answer was that the entire crop belongs to the landowner, and the cultivator is entitled to 'Ajr al-Mithl' (fair wages). This is in Fusul al-Imadiya. Sheikh al-Islam Ata ibn Hamza (r.a.) was asked if a landowner can claim a portion of the produce when someone cultivates his land without permission using their own seeds. The Sheikh replied: Yes, provided there is a local custom ('Urf) where people plow others' land for a fixed share (one-third, one-fourth, etc.); that customary share shall then be mandatory. When asked for a precedent, he cited the end of the Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'at). Sheikh Abu Ja'far (r.a.) was asked about a person who contracted his vineyard to another. The owner's family often visited, ate, and took away fruits, while the contractor

visited rarely. Is the owner liable for damages? The Sheikh replied: If they took fruit without the contractor's permission, liability lies with those who took it, not the owner. However, if they did so with permission, and they were the owner's dependents for whom maintenance was mandatory, then the owner [is liable] to the extent of (1)...

1. Mixing (Khalt) refers to mixing the same kind of substance into another, causing the original quantity to be lost. 2. "Plow/Sow" refers to the known custom of cultivating vacant land without explicit permission. (1) One who satisfies/ assuages. (2) One who consoles.

यह फुसूल अल-इमादिया के बीसवें अध्याय में लिखा है। एक ज़मीन दो व्यक्तियों के बीच साझा थी और उस पूरी ज़मीन को केवल एक साझीदार ने दूसरे की अनुमति के बिना बोया, तो इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि यदि फसल उग आई है और दोनों ने इस तरह समझौता कर लिया कि जिसने नहीं बोया है वह बोने वाले को आधे बीज (का मूल्य) दे दे और पूरी फसल दोनों में साझा हो जाए, तो यह जायज़ है। और यदि फसल अभी तक न उगी हो और दोनों ने इस तरह सुलह की हो, तो यह जायज़ नहीं है। और यदि फसल उग चुकी हो और जिसने खेती नहीं की है उसने यह इरादा किया कि फसल को उखाड़ दे, तो वह ज़मीन दोनों में बराबर विभाजित कर दी जाएगी। फिर जितनी ज़मीन गैर-कृषि करने वाले को मिलेगी, उसमें से जितनी फसल है उसे वह उखाड़ दे, और उखाड़ने से उसकी ज़मीन को जो कुछ भी नुकसान होगा, कृषि करने वाला उसका ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा। यह फ़तावा क़ाज़ी खान में है।

इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि एक ज़मीन दो व्यक्तियों में साझा है, उनमें से एक व्यक्ति अनुपस्थित (ग़ायब) हो गया, तो उसके उपस्थित साझीदार को यह अधिकार है कि वह आधी ज़मीन में खेती करे। और यदि उसने दूसरे वर्ष भी खेती का इरादा किया, तो वह उसी आधी ज़मीन में खेती करे जिसमें पिछले वर्ष खेती की थी। इसी स्थान पर ऐसा ही उल्लेख है। और फ़तवा इस तरह है कि यदि उसे यह ज्ञात हो कि खेती ज़मीन के लिए लाभदायक होगी और नुकसान नहीं पहुँचाएगी, तो उसे पूरी ज़मीन में खेती करने का अधिकार है। और जब अनुपस्थित साझीदार आ जाए, तो उसे यह अधिकार होगा कि जितने समय तक उपस्थित साझीदार ने पूरी ज़मीन से लाभ उठाया है, वह भी उतने ही समय तक पूरी ज़मीन से लाभ प्राप्त करे, क्योंकि ऐसी बातों में अनुपस्थित व्यक्ति की मौन सहमति सिद्ध होती है। और यदि उसे ज्ञात हो कि खेती करना ज़मीन के लिए नुकसानदेह है और इसे खाली छोड़ना लाभदायक होगा और ज़मीन की शक्ति बढ़ाएगा, तो उपस्थित व्यक्ति को बिल्कुल भी खेती करने का अधिकार नहीं होगा, क्योंकि यहाँ साझीदार की सहमति सिद्ध नहीं है, जैसा कि अल-ज़हीरिय्या में है। मेरे दादा (रह.) से सवाल किया गया कि एक व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन में बिना अनुमति के फसल बो दी, फिर ज़मीन के मालिक ने पूछा कि तुमने क्यों बोई? उसने कहा कि मैंने जितने बीज डाले हैं वे तुम मुझे दे दो और मैं तुम्हारा बटाईदार बन जाऊँगा और फसल हमारे बीच रिवाज के अनुसार साझा होगी। फिर मालिक ने उसे उसके बीजों के बराबर मूल्य दे दिया, फिर फसल तैयार हुई, तो क्या वह दोनों के बीच साझा होगी या पूरी फसल किसी एक की होगी? उत्तर

दिया गया कि पूरी फसल ज़मीन के मालिक की होगी और बटाईदार को 'अज्र अल-मिसल' (उचित पारिश्रमिक) मिलेगा। यह फुसूल अल-इमादिया में है। शैखुल इस्लाम अता इब्न हमज़ा (रज़ि.) से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने अपने बीजों से दूसरे की ज़मीन में बिना मालिक की अनुमति के खेती की, तो क्या फसल तैयार होने पर ज़मीन के मालिक को यह अधिकार है कि वह उससे ज़मीन के हिस्से के अनुसार पैदावार का दावा करे? तो शैख (रह.) ने फ़रमाया कि हाँ, बशर्ते कि उस गाँव में ऐसा रिवाज (उर्फ़) हो कि लोग दूसरों की ज़मीन एक-तिहाई, एक-चौथाई, आधी या किसी निश्चित हिस्से पर जोतते हों, तो वह हिस्सा जो रिवाज के अनुसार ज्ञात हो, अनिवार्य होगा। फिर शैख से पूछा गया कि क्या इसकी कोई रिवायत भी आई है? उन्होंने फ़रमाया कि हाँ, किताब अल-मुज़ाराअत के अंत में आई है। शैख अबू जाफ़र (रह.) से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने अपना अंगूर का बाग दूसरे को अनुबंध (मुआमला) पर दिया, फिर उस बाग में फल आए। बाग देने वाला और उसके परिवार वाले अक्सर बाग में जाते, फल खाते और तोड़कर ले आते थे, जबकि अनुबंध करने वाला (आमिल) कभी-कभार ही जाता था। तो क्या देने वाले पर हर्जाना (ज़मानत) वाजिब होगा? तो शैख ने फ़रमाया कि यदि वे लोग उस व्यक्ति की अनुमति के बिना खाते और ले जाते थे जिसने बाग लिया है, तो देने वाले पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा, बल्कि खाने और ले जाने वालों पर वाजिब होगा। और यदि उसकी अनुमति से ऐसा करते थे, और वे लोग ऐसे थे जिनका भरण-पोषण (नफ़क़ा) उस व्यक्ति पर वाजिब था, तो देने वाला (1) की सीमा तक ज़िम्मेदार होगा।

१- खलत (मिश्रण) का अर्थ है एक ही श्रेणी की चीज़ में उसी श्रेणी की चीज़ मिलाना, जिससे प्रारंभिक मात्रा नष्ट हो जाती है। २- जोतते हों यानी रिवाज यह है कि खाली ज़मीन को बिना अनुमति के बोते हैं और बिना अनुमति का रिवाज ज्ञात है। (१) संतुष्ट करने वाला। (२) दिलासा देने वाला।

---

ہے یہ فصول عمادیہ کی بیسویں فصل میں لکھا ہے ۔ ایک زمین دو شخصوں میں مشترک تھی اور اس سب زمین کو فقط ایک شریک نے بدون اجازت دوسرے شریک کے بویا تو امام محمد رح نے فرمایا ہے کہ اگر کھیتی اُگ آئی اور دونوں نے اس طرح باہم تصفیہ کر لیا کہ جس نے نہیں بویا ہے وہ بونے والے کو آدھے بیج دے دے اور تمام کھیتی دونوں میں مشترک ہو جائے تو جائز ہے اور اگر ہنوز نہ اُگی ہو کہ دونوں نے اس طرح مصالحہ کیا تو جائز نہیں ہے۔ اور اگر کھیتی اُگ چکی ہو اور جس نے زراعت نہیں کی ہے اُس نے یہ ارادہ کیا کہ زراعت کو اُکھاڑ دے تو وہ زمین دونوں میں برابر تقسیم کر دی جائے گی پس جس قدر زمین غیر زراعت کنندہ کو ملے گی اس میں سے جس قدر کھیتی ہے اُکھاڑ دے اور اُکھاڑنے سے اس کی زمین کو جو کچھ نقصان پہنچے گا یا اس کا زراعت کنندہ ضامن ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

امام محمد رح سے مروی ہے کہ ایک زمین دو شخصوں میں مشترک ہے اُن میں سے ایک شخص غائب ہو گیا تو اُس کے شریک حاضر کو اختیار ہے کہ نصف زمین میں زراعت کرے اور اگر اُس نے دوسرے برس بھی زراعت کا قصد کیا تو اسی نصف زمین میں زراعت کرے جس میں سال گزشتہ میں کھیتی ہوئی تھی ایسا ہی اس مقام پر ذکر فرمایا ہے اور فتویٰ اس طرح پر ہے کہ اگر اُس کو یہ معلوم ہے کہ زراعت زمین کے حق میں نافع ہو گی نقصان نہ پہنچائے گی تو اس کو تمام زمین کی زراعت کا اختیار ہے اور جب شریک غائب حاضر ہو تو اُس کو اختیار حاصل ہو گا کہ جتنی مدت تک شریک حاضر نے تمام زمین سے نفع اٹھایا ہے وہ بھی اُس قدر مدت تک کل زمین سے انتفاع حاصل کرے اس واسطے کہ ایسی باتوں میں غائب کی رضامندی دلالتہ ثابت ہے اور اگر اُس کو معلوم ہے کہ کھیتی کرنا زمین کے حق میں نقصان ہے اور چھوڑ دینا نافع ہو گا اور

زمین کی قوت بڑھا دے گا تو حاضر کو بالکل کھیتی کرنے کا اختیار نہ ہو گا اس واسطے کہ رضامندی شریک یہاں ثابت نہیں ہے کذا فی الظہیریہ۔ میرے جد رحمہ اللہ سے استفتا کیا گیا کہ ایک شخص نے غیر کی زمین میں اُس کی بلا اجازت کھیتی بوئی پس مالک زمین نے کہا کہ تو نے کیوں بوئی اُس نے کہا کہ میں نے جس قدر بیج ڈالے ہیں تو مجھے دے دے اور میں تیرا کاشتکار ہو جاؤں گا اور کھیتی میرے تیرے درمیان موافق رسم کے مشترک ہو گی پس مالک نے اُس کو اس کے بیج کے مثل دے دیے پھر کھیتی تیار ہوئی تو آیا دونوں میں مشترک ہو گی یا کل کھیتی کسی ایک کی ہو گی تو جواب دیا کہ سب کھیتی مالک زمین کی ہو گی اور کاشتکار کو اجر المثل ملے گا یہ فصول عمادیہ میں ہے شیخ الاسلام عطاء ابن حمزہ رضی اللہ عنہ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے اپنے بیجوں سے دوسرے کی زمین میں بدون مالک کی اجازت کے کھیتی کی پس آیا کھیتی تیار ہونے پر مالک زمین کو اختیار ہے کہ اُس سے بقدر حصہ زمین کے پیداوار کا مطالبہ کرے تو شیخ رح نے فرمایا کہ ہاں بشرطیکہ اُس گاؤں میں ایسا عرف جاری ہو کہ لوگ دوسروں کی زمین تہائی چوتھائی آدھی وغیرہ کسی جز معین شائع پر جوتے ہوں گئو اس قدر جزء جو عرفاً معروف ہو واجب ہو گا پھر شیخ رح سے پوچھا گیا کہ اس کی کوئی روایت بھی آئی ہے تو فرمایا کہ ہاں آخر کتاب المزارعت میں آئی ہے۔ شیخ ابو جعفر رح سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے اپنا باغ انگور دوسرے کو معاملہ دیا پس باغ مذکور میں پھل آئے پس دینے والا اور اس کے گھر والے اکثر باغ میں جاتے اور کھاتے اور باندھ لاتے تھے اور عامل نہیں جاتا مگر کبھی کبھی پس آیا دینے والے پر ضمان واجب ہو گی تو شیخ نے فرمایا کہ اگر وہ لوگ بدون اجازت اُس شخص کے جس نے دیا ہے کھاتے اور لاد لاتے تھے تو اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی بلکہ انھیں کھانے والوں اور لادنے والوں پر واجب ہو گی اور اگر اس کی اجازت سے ایسا کرتے تھے پس اگر وہ لوگ ایسے تھے کہ ان کا نفقہ اُس شخص پر واجب تھا تو دینے والا بقدر (۱)

۱- خلط یعنی ایک جنس میں ہی اسی جنس کو خلط کرنے سے اوّل مقدار کا تلف ہے۔ ۲ جوتے ہوں یعنی رواج یہ ہے کہ خالی زمین کو بلا اجازت کاشت کریں اور رواج بے اجازت معلوم ہے۔ (۱) آسودہ کرنے والا۔ (۲) تسکین دینے والا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (140) Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation) 1**

He shall be liable for the inclined portion, and their food shall be treated as if he consumed it himself. If those people were not such that their maintenance was obligatory upon that person, then compensation (daman) shall not be mandatory upon him (1). This is because it is as if he guided them to destroy another's property, as stated in al-Zahiriyya.

**Chapter Eleven: Regarding matters occurring to a usurped slave for which compensation is mandatory upon the usurper (Ghasib).**

Imam al-Humam al-Quduri stated in his book that if a person usurped another's male or female slave, and the male slave ran away from the usurper although he had never run away before, or the female slave committed adultery or theft although she had never done so before, then the usurper is liable for the loss in value caused by the theft, absconding, or the defect of adultery. Similarly, any physical defect arising while in the usurper's possession, such as one-eyedness or similar conditions, makes the usurper liable for compensation. The slave's value shall be appraised first as sound and healthy, and then appraised with the defect. The owner shall then take the slave along with the difference between the two prices from the usurper; this is mentioned in al-Muhit.

If a person usurps a female slave and commits adultery with her, and she subsequently dies, he shall be liable for her full price. By consensus (ijma), the legal punishment (hadd) for adultery shall not be applicable to him because, in usurpation, the payment of compensation grants ownership retroactive to the time of usurpation. However, if he committed adultery first, then usurped her, and she died and he paid her value, then according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, the punishment is not waived, whereas according to Imam Abu Yusuf, it is waived, as stated in al-Tatarkhaniyya.

If the female slave developed a fever while with the usurper or her eyes turned white (blindness), and the usurper returned her along with compensation for the loss, and then the fever or blindness disappeared while with the owner, the master must return the compensation he received to the usurper, as stated in Muhit al-Sarakhsi.

If the female slave became pregnant due to adultery while with the usurper, the owner shall take her back along with compensation for the loss. Imam Abu Yusuf stated that the loss due to pregnancy and the loss due to the defect of adultery

should both be evaluated; the usurper is liable for whichever is greater. Imam Muhammad held that compensation for both defects should be taken. If after giving birth, the pregnancy-related defect disappears but the adultery-related defect remains, and if the adultery compensation is higher than what was paid for pregnancy, the usurper must pay the difference. If the pregnancy compensation was higher and that defect has now vanished, it is mandatory to return the excess to the usurper.

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (140) किताब अल-ग़सब 1**

हिस्सा माइल का ज़ामिन (ज़िम्मेदार) होगा और उनका खाना ऐसा करार दिया जाएगा कि गोया खुद उसने खाया है और अगर वे लोग ऐसे न थे कि उनका नफ़क़ा (खर्च) उस शख्स पर वाजिब हो तो उस पर ज़मान (हर्जाना) वाजिब न होगा (1) इसलिए ऐसा वाक़या हुआ कि गोया उसने दूसरे के माल को नष्ट करने का उन्हें रास्ता बताया, जैसा कि अल-ज़हीरिया में है।

## ग्यारहवाँ अध्याय: उन विषयों के वर्णन में जो छीने हुए (ग़सब किए हुए) गुलाम को पेश आएँ, जिसका हर्जाना छीनने वाले (ग़ासिब) पर वाजिब हो।

इमाम हुमाम क़ुदूरी ने अपनी किताब में फरमाया कि एक व्यक्ति ने दूसरे का गुलाम या दासी छीनी, फिर वह गुलाम छीनने वाले के पास से भाग गया जबकि इससे पहले वह नहीं भागा था, या दासी ने व्यभिचार (ज़िना) या चोरी की जबकि इससे पहले उसने ऐसा नहीं किया था, तो चोरी, भागने या व्यभिचार के दोष के कारण जो नुकसान हुआ, उसका हर्जाना ग़ासिब पर वाजिब होगा। इसी तरह वह भी मामला होगा जब मूल्य में कमी ग़ासिब के पास पैदा हो जाए जैसे कि एक आँख का काना होना या इसी तरह के अन्य दोष। तो उसका हर्जाना भी ग़ासिब पर वाजिब होगा। अतः एक बार गुलाम की कीमत पूर्ण स्वस्थ अवस्था के अनुसार आंकी जाएगी और फिर उस दोष के साथ आंकी जाएगी। फिर मालिक उस गुलाम को लेकर दोनों कीमतों के अंतर की राशि ग़ासिब से ले लेगा, यह अल-मुहीत में है।

यदि एक दासी को छीनकर उसके साथ व्यभिचार किया और फिर वह मर गई, तो वह उसकी पूरी कीमत का ज़ामिन होगा और सर्वसम्मति (इज्मा) से उस पर व्यभिचार की सज़ा (हद) वाजिब नहीं होगी, क्योंकि ग़सब में हर्जाना देने से छीनने के समय से ही स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। लेकिन यदि पहले व्यभिचार किया, फिर उसे ग़सब किया और फिर वह मर गई और उसकी कीमत का हर्जाना दिया, तो इमाम आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार सज़ा समाप्त नहीं होगी, जबकि इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार समाप्त हो जाएगी, जैसा कि तातारख़ानिया में है।

यदि ग़ासिब के पास दासी को बुखार आने लगा या उसकी दोनों आँखें सफेद हो गईं (अंधापन), फिर ग़ासिब ने दासी वापस कर दी और साथ में नुकसान का हर्जाना भी दिया, फिर मालिक के पास उसका बुखार चला गया या आँखों की सफेदी ठीक हो गई, तो मालिक ने जो हर्जाना लिया था वह ग़ासिब को वापस कर दे, जैसा कि मुहीत अल-सरख़सी में है।

यदि ग़ासिब के पास दासी व्यभिचार से गर्भवती हो गई, तो मालिक उसे उसके नुकसान के हर्जाने के साथ ले लेगा। इमाम अबू यूसुफ़ ने फरमाया कि गर्भ के नुकसान और व्यभिचार के दोष के नुकसान, दोनों को देखा जाएगा, जो अधिक होगा ग़ासिब उसका ज़ामिन होगा। इमाम मुहम्मद के अनुसार दोनों दोषों का हर्जाना लिया जाएगा। यदि बच्चा पैदा होने से गर्भ का दोष समाप्त हो गया और व्यभिचार का दोष बना रहा, तो यदि व्यभिचार का हर्जाना गर्भ के हर्जाने से अधिक है तो ग़ासिब को कमी पूरी करनी होगी। यदि गर्भ का हर्जाना अधिक था और अब वह दोष (गर्भ) समाप्त हो गया, तो वह अतिरिक्त राशि ग़ासिब को वापस करना वाजिब है।

---

حصہ مائل کے ضامن ہوگا اور اُن کا کھانا ایسا قرار دیا جائے گا کہ گویا خود اُس نے کھایا ہے اور اگر وہ لوگ ایسے نہ تھے کہ اُن کا نفقہ اُس شخص پر واجب ہو تو اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی (۱) اس واسطے ایسا واقعہ ہوا کہ گویا اُس نے دوسرے کے مال تلف کرنے پر اُن کو راہ بتائی کذا فی الظہریہ۔

## باب گیارہواں : اُن امور کے بیان میں جو غلام مغصوب کو لاحق ہوں کہ اُن کی ضمان غاصب پر واجب ہو

امام ہمام قدوری نے اپنی کتاب میں فرمایا کہ ایک شخص نے دوسرے کا غلام یا باندی غصب کی پس غلام غاصب کے پاس سے بھاگ گیا حالانکہ اس سے پہلے نہیں بھاگا تھا یا باندی نے زنا یا چوری کی حالانکہ اس سے پہلے باندی نے ایسا نہ کیا تھا تو بسبب سرقہ یا اباق یا عیب زنا کے جو نقصان پیدا ہوا اُس کی ضمان غاصب پر واجب ہو گی اور ایسا ہی جو امر ہو جب نقصان قیمت غاصب کے پاس پیدا ہو جائے جیسے عور یا مثل واس کے اشباہ تو اُس کی ضمان بھی غاصب پر واجب ہو جائے گی پس ایک بار غلام کی قیمت بغرض صحیح و سالم اندازہ کی جائے گی اور پھر اس عیب کے ساتھ اندازہ کی جائے گی پس مالک اُس غلام کو لے کر اُس کے ساتھ جو کچھ دونوں قیمتوں میں تفاوت ہے غاصب سے لے لے گا یہ محیط میں ہے اگر ایک باندی غصب کر کے اس کے ساتھ زنا کیا پھر وہ مر گئی تو اس کی قیمت کا ضامن ہو گا اور بالاجماع اس پر حد زنا واجب نہ ہو گی اس واسطے کہ غصب میں ضمان دینے سے وقت غصب سے ملک حاصل ہو جاتی ہے لیکن اگر اُس کے ساتھ زنا کیا پھر اُس کو غصب کیا پھر مر گئی اور اُس کی قیمت کی ضمان دی

تو امام اعظم و امام محمدؒ کے نزدیک حد زنا ساقط نہ ہو گی اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ساقط ہو جائے گی کذا فی التاتار خانیہ اور غاصب کے پاس باندی کو بخار آنے لگا یا اس کی دونوں آنکھیں سپید ہو گئیں پس غاصب نے باندی کو واپس دیا اور اس کے ساتھ تاوان نقصان بھی دیا پھر مالک کے پاس اُس کا بخار جاتا رہا یا سپیدی چشم جاتی رہی تو مولیٰ نے جس قدر تاوان نقصان لیا ہے غاصب کو واپس دے کذا فی محیط السرخسی اور اگر غاصب کے پاس باندی زنا سے حاملہ ہو گئی تو مالک اُس کو مع اُس کے نقصان کے لے لے گا اور امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ نقصان حمل اور نقصان عیب زنا دونوں پر نظر کر کے جو زیادہ ہو اُس کا ضامن ہو گا اور اس میں کم داخل ہو جائے گا اور یہ استحسان ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک دونوں عیبوں کا تاوان لے گا اور یہ قیاس ہے اور اگر زنا سے حاملہ ہو کر پھر بچہ جنی تو ولادت سے عیب حمل جاتا رہا اور عیب زنا باقی رہے گا۔ پس اگر عیب زنا بنسبت عیب حمل کے زیادہ تاوان رکھتا ہو اور غاصب عیب حمل کا تاوان دے چکا ہو تو اُس پر واجب ہو گا کہ تاوان عیب زنا کو پورا (یعنی کمی ۱۲) کر دے اور اگر تاوان عیب حمل زیادہ ہو تو غاصب پر فقط بقدر عیب زنا کے تاوان واجبی رہے گا اور باقی زائد بسبب زوال حمل کے زائل ہو گیا پس اُس کا غاصب کو واپس دینا واجب ہوا اور اگر مالک کو اُس کی باندی بحالت حمل واپس کی پھر مالک کے پاس بسبب ولادت کے ہلاک ہوئی اور اُس کا بچہ رہ گیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک اُس کی پوری قیمت کا ضامن ہو گا اور صاحبین نے فرمایا کہ نہیں فقط نقصان حمل کا ضامن ہو گا اور اگر ولادت (۲) سے ہلاک ہوئی اور اُس کا بچہ باقی رہا تو امام اعظمؒ کے نزدیک یوم غصب کی پوری قیمت باندی کا ضامن ہو گا اور بچہ کے ساتھ جبر نقصان نہ کیا جائے گا اور امام ابو یوسف اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ فقط اسی قدر ضامن ہو گا جس قدر اس میں حمل سے نقصان آیا اور اگر بچہ مر گیا تو غاصب باندی کو واپس کرے اور اُس کے ساتھ نقصان ولادت کا تاوان۔

۱ عور کا کانا ہونا اور نقصان بینائی مثل گھیا و تمام بدن رہ جانا۔ اشباہ اس کے مانند عیوب۔ ۲ وقت الخ یعنی جب ضمان دی تو حکم یہ کہ جس وقت غصب کیا تھا اسی وقت مالک ٹھہرا پس گویا اپنی مملوکہ سے وطی کی۔ (۱) مگر چونکہ اُس نے اجازت دی تھی۔ (۲) غاصب کے پاس۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 131 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...and nothing will be obligatory upon him due to the death of the child. If the bondwoman dies along with the child while in the usurper's (ghasib) possession, Imam Abu Yusuf (RA) stated that the usurper must pay the value of the bondwoman as of the day of seizure, but he will not be liable for the value of the child. This is mentioned in *Siraj al-Wahaj*.

If a person usurps a bondwoman and commits adultery (zina) with her, then returns her to her master (mowla), and subsequently, her pregnancy becomes apparent while with the master, and she dies during childbirth or in the postnatal period (nifas); then, according to the opinion of Imam al-A'zam (Abu Hanifa RA), if she gives birth within less than six months from the time the usurper returned her, the usurper shall be liable for her value as of the day of usurpation. This is in contrast to the case where a person commits adultery with a free woman who then becomes pregnant and dies during childbirth or nifas; in that case, the fornicator (zani) is not liable for any compensation. This is in *Fatawa Qadi Khan*.

If the usurped bondwoman commits adultery or theft while in the usurper's possession, and after she is returned to the owner, her hand is amputated or the prescribed punishment (hadd) for adultery is carried out; then, according to Imam al-A'zam, in the case of adultery, the usurper is liable for either the loss caused by the physical punishment or the depreciation due to the act of adultery, whichever is greater. In the case of hand amputation for theft, he is liable for half of the bondwoman's value. According to the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad), he is liable for the loss due to both adultery and theft but not for the loss caused by the physical punishment. This is in *al-Muhit al-Sarakhsi*. If the usurper returns a pregnant bondwoman to the owner and the prescribed punishment is carried out on her, leading to her death, then by consensus (ijma), the usurper is liable for the loss. This is in *al-Khulasah*.

If the usurped bondwoman had committed adultery or theft while with her master, was then usurped, and subsequently faced the punishment for adultery or theft and died because of it, then no indemnity (dhaman) is due from the usurper because her destruction resulted from a cause that originated while she was with the master. Similarly, if she became pregnant while with the usurper from a husband who was also present with the master, and she died due to this, the same ruling applies. Likewise, if the master had intercourse with her and she became pregnant, then she

was usurped and died in the usurper's possession due to the pregnancy, the usurper is not liable because the cause of death existed while she was with the master. Thus, it is as if the master killed her while she was with the usurper. However, if the usurper seized her and she became pregnant, but not by the master or by a husband she had with the master, and then she died in the usurper's possession due to said pregnancy, then the usurper is liable for her value because she died in his possession without any act or cause originating from the master. This is in *al-Jawharah al-Nayyirah*.

If a bondwoman who was suffering from fever, was pregnant, ill, or injured was usurped and died due to that cause, the usurper is liable for her value, estimated with that defect. This is in *al-Muhit al-Sarakhsi*. If a bondwoman developed a fever while with the usurper, who then returned her to the owner in that condition, and she died of the same fever while with the owner, then by consensus, the usurper is only liable for the loss in value caused by the illness (nuqsan-e-hayy). This is in *al-Khulasah*.

If a usurped slave runs away from the usurper, the owner has the choice to either wait until the slave reappears and then take him, or not wait and take his value from the usurper. If the owner takes the value and the slave subsequently reappears, it will be examined: If the owner took the value he himself stated and agreed upon—whether by mutual agreement, established witnesses, or because the usurper refused to take an oath—then, according to our view, the owner has no right to reclaim the slave. But if the value taken by the owner was based on the usurper's statement (2) and the usurper took an oath regarding the owner's claim for a higher amount, then the owner has the choice to either keep the value and be satisfied with it, leaving the slave to the usurper, or if the owner claimed a higher value but the usurper swore an oath upon his own stated amount, then upon the owner's demand... etc.

(1) The loss in value due to the illness of fever. (2) The amount which the usurper stated.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 131 | किताब अल-ग़सब (छीन-झपट/अपहरण की पुस्तक)**

दे और बच्चे की मृत्यु से उस पर कुछ अनिवार्य न होगा, और यदि दासी बच्चे सहित अपहर्ता (ग़ासिब) के पास मर गई, तो इमाम अबू यूसुफ़ रह. ने फ़रमाया कि दासी के कब्ज़े के दिन की कीमत का हर्जाना दे और बच्चे की कीमत का ज़िम्मेदार (ज़ामिन) न होगा, यह 'सिराज अल-वहाज' में है।

एक व्यक्ति ने एक दासी का अपहरण किया और उसके साथ व्यभिचार (ज़िना) किया, फिर उसे उसके स्वामी (मौली) को वापस कर दिया। फिर स्वामी के पास उसका गर्भ प्रकट हुआ और स्वामी के पास उसने बच्चा जनना और प्रसव या प्रसवोपरांत रक्तस्राव (निफ़ास) की स्थिति में मर गई। तो इमाम-ए-आज़म रह. के मत के अनुसार, यदि अपहर्ता के वापस करने के समय से छह महीने से कम समय में स्वामी के पास बच्चा जना हो, तो अपहर्ता उसके अपहरण के दिन की कीमत का ज़िम्मेदार होगा। इसके विपरीत यदि किसी स्वतंत्र स्त्री के साथ व्यभिचार किया गया हो और वह गर्भवती होकर प्रसव या निफ़ास में मर गई हो, तो व्यभिचारी (ज़ानी) कुछ भी हर्जाना देने का ज़िम्मेदार न होगा; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

और यदि अपहृत दासी ने अपहर्ता के पास व्यभिचार या चोरी की, फिर मालिक को वापस करने के बाद उसका हाथ काटा गया या व्यभिचार का दंड (हद्द) लगाया गया, तो इमाम-ए-आज़म रह. के निकट व्यभिचार की स्थिति में, दंड की चोट के कारण होने वाले नुकसान या व्यभिचार के कारण मूल्य में आई कमी में से जो अधिक हो, उसका अपहर्ता ज़िम्मेदार होगा। और चोरी के कारण हाथ कटने की स्थिति में, वह दासी की आधी कीमत का ज़िम्मेदार होगा। और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ व इमाम मुहम्मद) के निकट वह व्यभिचार और चोरी दोनों के नुकसान का ज़िम्मेदार होगा, लेकिन दंड की चोट के नुकसान का ज़िम्मेदार न होगा; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। और यदि अपहर्ता ने मालिक को गर्भवती दासी वापस की और उसे दंड दिया गया और दंड के कारण उसकी मृत्यु हो गई, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से अपहर्ता नुकसान का ज़िम्मेदार होगा; यह 'ख़ुलासा' में है।

और यदि अपहृत दासी ने अपने स्वामी के पास व्यभिचार या चोरी की थी, फिर अपहर्ता ने उसे अपहृत किया, फिर वह व्यभिचार और चोरी के दंड में पकड़ी गई और इस कारण मर गई, तो उस पर कोई हर्जाना अनिवार्य न होगा क्योंकि वह ऐसे कारण से नष्ट हुई जिसका अस्तित्व स्वामी के पास ही शुरू हो गया था। इसी प्रकार यदि अपहर्ता के पास वह ऐसे पति से गर्भवती हुई जो स्वामी के पास

भी मौजूद था और इस कारण उसकी मृत्यु हुई, तो भी यही आदेश है। इसी प्रकार यदि स्वामी ने उसके साथ सहवास करके उसे गर्भवती किया हो, फिर अपहर्ता ने उसे छीन लिया और अपहर्ता के पास गर्भ के कारण उसकी मृत्यु हो गई, तो भी अपहर्ता ज़िम्मेदार न होगा, क्योंकि उसकी मृत्यु ऐसे कारण से हुई जिसका अस्तित्व स्वामी के पास पाया गया था। अतः यह वैसा ही हुआ जैसे स्वामी ने उसे अपहर्ता के पास मार डाला हो। और यदि अपहर्ता ने उसे गर्भवती अवस्था में अपहृत किया, लेकिन गर्भ ऐसा नहीं था कि स्वामी ने उसे गर्भवती किया हो या स्वामी के पास किसी पति ने उसे गर्भवती किया हो, और फिर वह दासी अपहर्ता के पास उक्त गर्भ के कारण मर गई, तो अपहर्ता उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा, क्योंकि वह दासी अपहर्ता के पास स्वामी के किसी कृत्य के बिना और स्वामी की ओर से पाए जाने वाले किसी कारण के बिना मरी है; यह 'जौहरा नय्यिरा' में है।

और यदि ऐसी दासी अपहृत की गई जिसे बुखार आता था या जो गर्भवती थी या बीमार थी या घायल थी, और वह इसी कारण से मर गई, तो उस दोष (दोषपूर्ण स्थिति) के साथ उसकी कीमत का आकलन करके अपहर्ता ज़िम्मेदार होगा; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। और यदि अपहर्ता के पास दासी को बुखार आने लगा, फिर उसने मालिक को वैसे ही वापस कर दी, फिर मालिक के पास उसी बुखार से उसकी मृत्यु हो गई, तो सर्वसम्मति से अपहर्ता केवल बीमारी के कारण हुए नुकसान (नुकसान-ए-हय्य) का ज़िम्मेदार होगा; यह 'ख़ुलासा' में है।

यदि अपहर्ता के पास से अपहृत दास भाग गया, तो मालिक को अधिकार है कि चाहे वह अपने दास के प्रकट होने तक प्रतीक्षा करे और प्रकट होने के बाद उसे ले ले, या प्रतीक्षा न करे और अपहर्ता से उसकी कीमत ले ले। फिर यदि कीमत लेने के बाद दास प्रकट हो जाए, तो देखा जाएगा: यदि मालिक ने वह कीमत ली है जो उसने स्वयं बताई थी और उस पर सहमत हुआ था (चाहे दोनों ने परस्पर सहमति जताई हो या गवाह पेश हुए हों या अपहर्ता ने शपथ लेने से इनकार किया हो), तो इस स्थिति में हमारे निकट मालिक को उस दास को वापस लेने का कोई मार्ग न होगा। और यदि मालिक ने अपहर्ता से जो कीमत ली है, वह अपहर्ता के कथन पर आधारित है (2) और मालिक के अतिरिक्त दावे पर अपहर्ता ने शपथ ले ली है, तो मालिक को अधिकार होगा कि चाहे वह कीमत अपने पास रखे और उस पर संतुष्ट रहे और वह दास अपहर्ता को दे दे, या यदि मालिक ने अतिरिक्त कीमत का दावा किया लेकिन अपहर्ता ने अपनी बताई हुई राशि पर शपथ ले ली, तो मालिक की मांग पर इस स्थिति में मालिक को आदि...

(1) बुखार की बीमारी से होने वाली मूल्य में कमी। (2) जितनी राशि अपहर्ता ने बताई थी।

---

دے اور بچہ کی موت سے اُس پر کچھ واجب نہ ہوگا، اور اگر باندی مع بچہ کے غاصب کے پاس مرگئی تو امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ باندی کے یوم قبضہ کی قیمت تاوان دے اور قیمتِ ولد کا ضامن نہ ہوگا، یہ سراج الوہاج میں ہے۔

ایک شخص نے ایک باندی غصب کر کے اُس کے ساتھ زنا کیا پھر اُس کے مولیٰ کو واپس کر دی، پھر مولیٰ کے پاس اُس کا حمل ظاہر ہوا اور مولیٰ کے پاس بچہ جنی اور ولادت یا نفاس میں مرگئی تو امام اعظمؒ کے قول پر اگر غاصب کے واپس کرنے کے وقت سے چھ مہینہ سے کم میں مولیٰ کے پاس بچہ جنی ہو تو غاصب اُس کے یوم غصب کی قیمت کا ضامن ہوگا بخلاف اُس کے اگر کسی آزاد عورت سے زنا کیا ہو اور وہ حاملہ ہو کر ولادت یا نفاس میں مرگئی ہو تو زانی کچھ ضامن نہ ہوگا، یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اور اگر مغصوبہ باندی نے غاصب کے پاس زنا یا چوری کی پھر مالک کو واپس کر دینے کے بعد اُس کا ہاتھ کاٹا گیا یا حدِ زنا ماری گئی تو امام اعظمؒ کے نزدیک زنا کی صورت میں نقصان ضرب حد یا نقصان زنا میں سے جو زیادہ ہو اُس کا غاصب ضامن ہوگا اور چوری سے ہاتھ کٹنے کی صورت میں باندی کی نصف قیمت کا ضامن ہوگا اور صاحبین کے نزدیک نقصان زنا و نقصان سرقہ کا ضامن ہوگا اور نقصان ضربِ حد کا ضامن نہ ہوگا، یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اور اگر غاصب نے مالک کو حاملہ باندی واپس کی اور اُس کی حد ماری گئی اور حد ماری جانے سے وہ ہلاک ہوئی تو بالاجماع غاصب نقصان کا ضامن ہوگا، یہ خلاصہ میں ہے۔ اور اگر مغصوبہ باندی نے اپنے مولیٰ کے پاس زنا یا چوری کی ہو پھر غاصب نے اُس کو غصب کیا پھر وہ حدِ زنا و سرقہ میں ماخوذ ہوئی اور اس سبب سے مرگئی تو اُس پر ضمان واجب نہ ہوگی کیونکہ ایسے سبب سے تلف ہوئی جس کا وجود مولیٰ کے پاس ہوا ہے، اسی

طرح اگر غاصب کے پاس ایسے شوہر سے حاملہ ہوئی جو مولیٰ کے پاس بھی موجود تھا اور اس سبب سے ہلاک ہوئی تو بھی یہی حکم ہے، اسی طرح اگر مولیٰ نے اُس سے وطی کر کے حاملہ کیا ہو پھر غاصب نے غصب کر لی اور غاصب کے پاس بسبب حمل کے مرگئی تو بھی غاصب ضامن نہ ہوگا کیونکہ اس کا تلف ہونا ایسے سبب سے ہوا جس کا وجود مولیٰ کے پاس پایا گیا تھا پس یہ ایسا ہوا کہ جیسے مولیٰ نے اُس کو غاصب کے پاس قتل کر دیا، اور اگر غاصب نے اُس کو حاملہ غصب کیا مگر حمل اُس کو اس طرح نہ تھا کہ مولیٰ نے اُس کو حاملہ کیا تھا یا مولیٰ کے پاس کسی شوہر نے اس کو حاملہ کیا تھا پھر وہ باندی غاصب کے پاس بسبب حمل مذکور کے تلف ہوئی تو غاصب اُس کی قیمت کا ضامن ہوگا کیونکہ وہ باندی غاصب کے پاس بدون فعلِ مولیٰ اور بدون ایسے سبب کے جو مولیٰ کی طرف سے پایا جائے ہلاک ہوئی ہے، یہ جوہرہ نیرہ میں ہے۔

اور اگر ایسی باندی غصب کی جس کو بخار آتا تھا یا حاملہ تھی یا مریضہ یا مجروحہ تھی اور وہ اسی سبب سے ہلاک ہو گئی تو اس عیب داری کے ساتھ اس کی قیمت اندازہ کر کے اس کا غاصب ضامن ہوگا، یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اور اگر غاصب کے پاس باندی کو بخار آنے لگا پھر اُس نے مالک کو اسی طرح واپس دی پھر مالک کے پاس اسی بخار سے مرگئی تو بالاجماع غاصب فقط نقصانِ حی(۱) کا ضامن ہوگا، یہ خلاصہ میں ہے۔

اگر غاصب کے پاس سے غلامِ مغصوب بھاگ گیا تو مالک کو اختیار ہے کہ چاہے اپنے غلام کے ظاہر ہونے تک انتظار کرے پس بعدِ ظہور کے اُس کو لے لے یا نہ انتظار کرے اور غاصب سے اُس کی قیمت لے لے، پھر اگر بعدِ قیمت لے لینے کے غلام ظاہر ہوا تو دیکھا جائے گا کہ اگر مالک نے وہ قیمت لی ہے جو اُس نے بیان کی تھی اُس پر راضی ہوا تھا خواہ اس طرح کہ دونوں نے اس مقدارِ قیمت پر باہم اتفاق کیا تھا یا گواہ قائم ہوئے تھے یا غاصب نے قسم سے نکول کیا تھا اس صورت میں ہمارے نزدیک مالک کو اُس غلام کے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی اور اگر مالک

نے غاصب سے جو قیمت لی ہے وہ غاصب کے قول پر لی ہے (۲) اور مالک کی زیادتِ مدعویہ سے غاصب نے قسم کھا لی تو مالک کو اختیار ہوگا چاہے قیمت رکھ لے اور اُس پر راضی ہو جائے اور وہ غلام غاصب کو دے دے اور یا مالک نے زیادتِ قیمت کا دعویٰ کیا مگر غاصب نے اپنی مقدارِ مسمیٰ پر قسم کھا لی طلبِ مالک تو اس صورت میں مالک کو الخ۔

(۱) بخار آنے کی بیماری کا نقصان۔ (۲) جس قدر غاصب نے بیان کی ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) Book of Usurpation (Al-Ghasb) (142)** If he (the owner) wishes, he can return whatever price he had taken to the usurper (ghasib) and take back his slave. The usurper shall have the right to withhold the slave for the purpose of recovering his price. If the slave dies while in the usurper's possession before the usurper could return the price, he (the owner) shall not return the price. However, if the slave's value at the time was more than the price received, he shall recover the excess amount from the usurper. If there is no increase in its value, the owner shall receive nothing more than the price already taken. It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that he said: If the runaway slave (abaq) reappears and his value turns out to be exactly what the usurper stated, the one whose property was usurped (maghsub minhu) shall have no option (khiyar), nor any way to take back the slave. However, according to the 'Zahir al-Riwayah', the owner shall have the option as detailed in Sharh al-Tahawi.

And if the usurped slave commits a murder of a free person or another slave while with the usurper, or causes an injury (jinayat) that is less than life-threatening, the master (owner) shall be given the choice to either surrender the slave or pay his ransom (fidyah). Then the master shall recover from the usurper whichever is less: the penalty for the injury or the value of the slave. If the usurped slave destroys someone's property and the master is addressed to sell him or pay his ransom, the master shall recover from the usurper whichever amount is less: the value of the slave or the debt he paid on behalf of the slave. If the value of the slave on the day of usurpation was one thousand dirhams, then it increased to two thousand dirhams, and someone then killed him while he was with the usurper, the master shall have the option to either take one thousand dirhams (the value on the day of usurpation) from the usurper—in which case the usurper will recover two thousand dirhams from the killer's supporting tribe (aqilah) but must give one thousand dirhams of the excess as charity—or he can take two thousand dirhams (the value on the day of killing) from the killer's supporting tribe, after which the killer cannot take anything from the usurper. If, in this situation, the slave killed himself, the master shall take one thousand dirhams from the usurper as compensation (tawan) for the value on the day of usurpation and cannot take compensation for the value on the day of death; this is in 'Al-Muhit'. If the usurped slave runs away from the usurper, the reward for his capture (ju'al) becomes obligatory upon the owner according to Imam Abu Yusuf (RA), and he cannot recover this amount from the usurper, but he can recover from the usurper the loss caused by the act of running away, provided the

slave had not run away before. Imam Muhammad (RA) said that the master shall also recover the capture reward from the usurper; this is in 'Al-Yanabi'.

**Chapter Twelve: Regarding the Usurper of a Usurper (Ghasib al-Ghasib) and the Depositee of a Usurper (Mustawda' al-Ghasib), etc.** If a person usurps property that was already usurped from another, the owner shall have the choice to demand compensation (daman) from either the first or the second usurper. If he takes compensation from the first usurper, the first usurper shall then recover the amount from the second usurper. If he takes compensation from the second usurper, the second usurper cannot recover it from the first. When the owner chooses to take compensation from one of them, then according to Imam Azam (RA) and Imam Muhammad (RA), he no longer has the option to hold the other liable. Imam Abu Yusuf (RA) said that until he actually recovers the compensation from one...

1. In detail, whether the price was taken based on the usurper's statement or based on his own claim. 2. 'Ju'al' is the remuneration given to the person who brings back a runaway slave. 3. Then its reverse, i.e., once he has chosen to take compensation from one of them, even if he hasn't received it yet, he no longer has the option to leave him and choose to take it from the other, although initially, he had the choice to take from the first or hold the second as a guarantor.

फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) किताब अल-ग़सब (142) अगर चाहे तो जिस क़दर उसने क़ीमत ली हो वह ग़ासिब को वापस करके अपना ग़ुलाम ले ले और ग़ासिब को इख़्तियार होगा कि अपनी क़ीमत वसूल करने की ग़र्ज़ से ग़ुलाम को रोक रखे और अगर ग़ासिब को क़ीमत वापस देने से पहले वह ग़ुलाम ग़ासिब के पास मर गया तो क़ीमत वापस न करेगा लेकिन अगर ग़ुलाम की क़ीमत में इस क़ीमत वसूल करदा से ज़्यादती हो तो बक़दर-ए-ज़्यादती के ग़ासिब से वापस लेगा और अगर उसकी क़ीमत में कुछ ज़्यादती न होगी मालिक को सिवाए इस क़ीमत माख़ूज़ा के और कुछ न मिलेगा और इमाम अबू यूसुफ़ रह. से मरवी है कि उन्होंने फ़रमाया कि अगर ग़ुलाम आबिक़ (भागा हुआ) ज़ाहिर हुआ और उसकी क़ीमत उतनी ही निकली जितनी ग़ासिब ने बयान की है तो मग़सूब मिन्हु (जिसका माल छीना गया) को ख़ियार (विकल्प) न होगा और न उसको ग़ुलाम लेने की कोई राह होगी मगर ज़ाहिरुल रिवायत के मुवाफ़िक़ ब-तफ़सील मालिक को ख़ियार हासिल होगा, यह शरह तहावी में है।

और अगर मग़सूब ग़ुलाम ने ग़ासिब के पास किसी आज़ाद व्यक्ति या ग़ुलाम को क़त्ल किया या कोई जिनायत (चोट) की जो जान जाने से कम हो, तो मौला (मालिक) को इख़्तियार दिया जाएगा कि चाहे ग़ुलाम को दे दे या उसका फ़िदया (मुआवज़ा) दे, फिर मौला जिनायत के जुर्माने और ग़ुलाम की क़ीमत में से जो भी कम हो, ग़ासिब से ले लेगा। और अगर मग़सूब ग़ुलाम ने किसी का माल नष्ट कर दिया और मालिक से कहा गया कि इसे बेच दे या इसका फ़िदया दे, तो मालिक ग़ुलाम की क़ीमत और जो उसने ग़ुलाम की तरफ से क़र्ज़ अदा किया है, दोनों में से कम राशि को ग़ासिब से ले लेगा। और अगर ग़सब के दिन ग़ुलाम की क़ीमत एक हज़ार दिरहम हो, फिर बढ़कर दो हज़ार दिरहम हो गई, फिर किसी व्यक्ति ने ग़ासिब के पास उसे क़त्ल कर दिया, तो मालिक को इख़्तियार होगा चाहे ग़ासिब से ग़सब के दिन की क़ीमत एक हज़ार दिरहम ले ले और ग़ासिब उस क़ातिल की मददगार बिरादरी से दो हज़ार दिरहम ले लेगा, मगर उसमें से एक हज़ार दिरहम ज़्यादा सदक़ा कर देगा। या चाहे तो क़ातिल की मददगार बिरादरी से क़त्ल के दिन की दो हज़ार दिरहम क़ीमत ले ले, फिर क़ातिल उसके ग़ासिब से कुछ नहीं ले सकता। और अगर इस स्थिति में ग़ुलाम ने खुद ही अपनी जान ले ली हो, तो मालिक ग़ासिब से ग़सब के दिन की एक हज़ार दिरहम क़ीमत तावान (हर्जाना) के तौर पर लेगा और क़त्ल के दिन की क़ीमत नहीं ले सकता, यह 'मुहीत' में है। अगर ग़ासिब के पास से मग़सूब ग़ुलाम भाग गया तो उसका 'जअल' (पकड़ने का इनाम) वापस मालिक पर वाजिब होगा, यह इमाम अबू यूसुफ़ रह. के नज़दीक है और इस जअल की राशि को वह ग़ासिब से नहीं ले सकता है, लेकिन भागने के कारण होने वाले नुकसान को ग़ासिब से ले सकता है, बशर्ते कि इससे पहले ग़ुलाम

न भागा हो। और इमाम मोहम्मद रह. ने फ़रमाया कि मालिक जअल की राशि भी ग़ासिब से वापस लेगा, यह 'यनाबी' में है।

**अध्याय बारहवां: ग़ासिबुल ग़ासिब और मुस्तौदाउल ग़ासिब (अपहर्ता का अपहर्ता और अपहर्ता का अमानतदार) आदि के वर्णन में।** अगर एक व्यक्ति ने मग़सूब माल को ग़ासिब से छीन लिया, तो मालिक को इख़्तियार होगा कि पहले या दूसरे जिस ग़ासिब से चाहे हर्जाना ले ले। अगर पहले ग़ासिब से हर्जाना लिया तो पहला ग़ासिब हर्जाने की राशि दूसरे ग़ासिब से वसूल करेगा, और अगर उसने दूसरे से हर्जाना लिया तो दूसरा उसे पहले से वसूल नहीं कर सकता। और जब मालिक ने दोनों में से किसी एक से हर्जाना लेना चुन लिया, तो इमाम आज़म रह. और इमाम मोहम्मद रह. के नज़दीक फिर उसे दूसरे को ज़िम्मेदार ठहराने का विकल्प नहीं रहेगा। और इमाम अबू यूसुफ़ रह. ने फ़रमाया कि जब तक उससे हर्जाना वसूल न कर ले तब तक...

१. विस्तार से, चाहे ग़ासिब के बयान पर क़ीमत ली गई हो या अपने दावे पर। २. जअल वह पारिश्रमिक है जो भागे हुए ग़ुलाम को वापस लाने वाले को मिलता है। ३. फिर उसका विपरीत, यानी जब उनमें से एक से हर्जाना लेना तय कर लिया, भले ही अभी वसूल न किया हो, तो फिर यह अधिकार नहीं रहा कि उसे छोड़कर दूसरे से हर्जाना लेने का विकल्प चुने, हालांकि शुरुआत में उसे अधिकार था कि चाहे पहले से ले या दूसरे को ज़िम्मेदार ठहराए।

فتاوی عالمگیری ..... جلد (۸) کتاب الغصب (۱٤۲) اگر چاہے تو جس قدر اُس نے قیمت لی ہو وہ غاصب کو واپس کر کے اپنا غلام لے لے اور غاصب کو اختیار ہو گا کہ اپنی قیمت وصول کرنے کی غرض سے غلام کو روک رکھے اور اگر غاصب کو قیمت واپس دینے سے پہلے وہ غلام غاصب کے پاس مر گیا تو قیمت واپس نہ کرے گا لیکن اگر غلام کی قیمت میں اِس قیمت وصول کردہ سے زیادتی ہو تو بقد رز یادتی کے غاصب سے واپس لے گا اور اگر اُس کی قیمت میں کچھ زیادتی نہ ہو گی مالک کو سوائے اس قیمت ماخوذہ کے اور کچھ نہ ملے گا اور امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ انھوں نے فرمایا کہ اگر غلام آبق ظاہر ہوا اور اُس کی قیمت اتنی ہی نکلی جتنی غاصب نے بیان کی ہے تو مغصوب منہ کو خیار نہ ہو گا اور نہ اُس کو غلام لینے کی کوئی راہ ہو گی مگر ظاہر الروایت کے موافق بال تفصیل مالک کو خیار حاصل ہو گا یہ شرح طحاوی میں ہے۔ اور اگر غلام مغصوب نے غاصب کے پاس کسی شخص آزاد یا غلام کو قتل کیا یا کوئی جنابت جو جان تلف کرنے سے کم ہو واقع کی تو مولیٰ کو اختیار دیا جائے گا کہ چاہے غلام کو دے دے یا اُس کا فدیہ دے پھر مولیٰ جرمانہ جنایت و قیمت غلام دونوں میں جو مقدار کم ہو غاصب سے لے لے گا اور اگر غلام مغصوب نے کسی کا مال تلف کر دیا اور مولیٰ سے خطاب کیا گیا کہ اُس کو فروخت کر یا اُس کا فدیہ دے تو مولیٰ قیمت غلام اور جو اُس نے غلام کی طرف سے قرضہ ادا کیا ہے دونوں میں سے کم مقدار کو غاصب سے لے لے گا اور اگر یومِ غصب میں غلام کی قیمت ہزار درہم ہو پھر زائد ہو کر دو ہزار درہم ہو گئی پھر کسی شخص نے غاصب کے پاس اُس کو قتل کر ڈالا تو مولیٰ کو اختیار ہو گا چاہے غاصب سے یومِ غصب کی قیمت ہزار درہم لے لے اور غاصب اُس قاتل کی مدد گار برادری سے دو ہزار درہم لے لے گا مگر اُس میں سے ایک ہزار درہم زائد صدقہ کر دے گا یا چاہے تو قاتل کی مدد گار برادری سے روزِ قتل کی دو ہزار درہم قیمت لے لے

پھر قاتل اُس کے غاصب سے کچھ نہیں لے سکتا ہے اور اگر اس صورت میں غلام نے خود ہی اپنے تئیں قتل کر ڈالا ہو تو مولیٰ غاصب سے یومِ غصب کی ہزار درہم قیمت تاوان لے گا اور یومِ قتل کی قیمت تاوان نہیں لے سکتا ہے یہ محیط میں ہے اگر غاصب کے پاس سے غلام مغصوب بھاگ گیا تو اُس کا جعل واپس مالک پر واجب ہو گا یہ امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ہے اور اس مقدار جعل کو غاصب سے نہیں لے سکتا ہے لیکن نقصان اباق کو غاصب سے لے سکتا ہے بشرطیکہ اس سے پہلے غلام نہ بھاگا ہو اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ مولیٰ مقدار جعل بھی غاصب سے واپس لے گا یہ ینابیع میں ہے۔ باب بارھواں: غاصب الغاصب اور مستودع الغاصب وغیرہ کے بیان میں اگر ایک شخص نے مال مغصوب کو غاصب سے غصب کر لیا تو مالک کو اختیار ہو گا کہ اول و ثانی جس غاصب سے چاہے ضمان لے لیں اگر غاصب اول سے ضمان لی تو غاصب اول مال ضمان کو غاصب ثانی سے لے لے گا اور اگر اُس نے دوسرے سے ضمان لی اور دوسرا اس کو اول سے نہیں لے سکتا ہے اور جب مالک نے دونوں میں سے کسی ایک سے ضمان لینا اختیار کیا تو امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک پھر اُسے اُس کو دوسرے کی تضمین کا اختیار نہ ہو گا اور امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ جب تک اُس سے تاوان وصول نہ کرے تب تک ۱۔ بال تفصیل خواہ قیمت پر بیان غاصب لی ہو یا اپنے دعوئی پر۔ ۲۔ جعل وہ اجرت جو غلام آبق کے لانے والے کو ملتی ہے۔ ۳۔ پھر اس کو اُلٹ یعنی جب ان سے ایک سے تاوان لینا اختیار کیا اگر چہ ابھی وصول نہ کیا ہو تو پھر یہ اختیار نہ رہا کہ اس کو چھوڑ کر دوسرے سے تاوان لینا اختیار کرے مگر ابتدا میں اس کو اختیار تھا چاہے اول سے لے یا دوسرے کو ضامن ٹھہراتا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 133 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

The owner possesses such authority as mentioned in *Muhit al-Sarakhsi*. When the owner recovers compensation (*tawan*) from one of the two—either the original usurper (*ghasib*), the usurper's usurper (*ghasib al-ghasib*), or the usurper’s depositary (*mustawda*)—the other is exonerated; this is stated in *al-Khulasa*. If the second usurper destroys the usurped property and pays its value to the first usurper, he is exonerated from liability (*zaman*). It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that he would not be exonerated. However, if he returns the usurped item itself to the first usurper, he is exonerated according to the consensus (*ijma*) of all scholars; this is found in *Fatawa Qadi Khan*. If the usurped property is destroyed while in the possession of the second usurper and he pays its value to the first usurper, he is still exonerated, to the point that the owner no longer has the right to hold the second usurper liable thereafter, as the value stands in place of the object itself. This ruling applies when the first usurper’s act of usurpation is established through the testimony of witnesses or the owner’s acknowledgment. If only the first usurper makes such an acknowledgment, it will not be verified in favor of the owner, though it will be verified regarding his own rights. Consequently, the owner retains the choice to demand compensation from whichever of the two he wishes. (1) If the second usurper sells the usurped property and receives the price, the first usurper has no right to take that price from him, as he is neither the owner nor the owner’s deputy, and he has no authority to authorize the sale; this is in *Khazanat al-Muftin*. The owner has the choice to seek compensation from either the usurper or his depositary, for from the owner’s perspective, both are transgressors (*mut'addi*). (2) This is in *al-Muhit*.

If the usurper gives the property to someone as a loan (*ariyah*), the owner may choose to seek compensation from either the lender (*mu'ir*) or the borrower (*musta'ir*). Whomever he takes it from cannot then reclaim it from the other. If the borrower destroys it, liability is fixed upon him; this is in *Wajiz al-Kardari*. If the usurper gifts the property to someone and it is destroyed while in the donee's possession, and the owner takes compensation from the donee, the donee cannot reclaim it from the donor (the usurper); this is in *Muhit Sarakhsi*. If the usurper sells the property and delivers it to the buyer, the owner may choose to take compensation from the usurper—thereby validating the sale and allowing the usurper to keep the price—or from the buyer. In the latter case, the buyer will reclaim his payment from the usurper, the sale becomes void (*batil*), and he cannot

reclaim the compensation amount. If the usurper sells the item but does not deliver it, he is not liable; this is in *Wajiz al-Kardari*. In *al-Muntaqa*, there is a narration by Ibn Sama'ah from Imam Muhammad (RA) that if the owner chooses to take compensation from the first usurper—whether the usurper agrees or not—and the judge issues a decree (*degree*) for the price in favor of the owner against the first usurper, the owner can no longer abandon that claim to seek compensation from the second usurper. However, if the judge has not issued a decree in the owner's name, the owner retains the right to turn back and seek compensation from the second usurper. If the owner chooses the first usurper but the usurper is insolvent and pays nothing, the judge will order the first usurper to recover the property from the second usurper to give to the owner. If the first usurper refuses, and the owner presents witnesses against both, such witnesses will be accepted on behalf of the first usurper against the second, until the property is recovered and returned to the original owner (*mughsoob minhu*); this is in *al-Muhit*.

If the owner wishes to take partial compensation—such as a third, a fourth, or half of the value—from one of the two, he has the right to do so and then take the remaining value from the other. It is written in *al-Dhakhira* that if a person usurps a slave girl worth a thousand dirhams... however, the first cannot then turn back to the second for liability. (2) That is, he is a wrongdoer.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 133 | किताब अल-ग़स्ब (छीनने का अध्याय)**

उसे ऐसा अधिकार है जैसा कि मुहीत अल-सरख़सी में वर्णित है। जब मालिक ने दोनों में से किसी एक से, अर्थात् मूल ग़ासिब (छीनने वाला), या ग़ासिब के ग़ासिब से, या ग़ासिब के पास अमानत रखने वाले से हर्जाना ले लिया, तो दूसरा मुक्त हो गया; यह 'ख़ुलासा' में है। यदि ग़ासिब के ग़ासिब ने छीनी हुई वस्तु को नष्ट कर दिया और उसका मूल्य पहले ग़ासिब को चुका दिया, तो वह दायित्व (ज़मान) से मुक्त हो गया। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से वर्णित है कि वह मुक्त नहीं होगा। और यदि उसने छीनी हुई वस्तु ज्यों की त्यों पहले ग़ासिब को लौटा दी, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से वह सभी के निकट मुक्त हो जाएगा; यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। यदि छीनी हुई वस्तु दूसरे ग़ासिब के पास नष्ट हो गई और उसने पहले ग़ासिब को उसका मूल्य हर्जाने के रूप में दे दिया, तो भी वह दायित्व से मुक्त हो जाएगा। यहाँ तक कि मालिक को यह अधिकार नहीं रहेगा कि वह इसके बाद दूसरे ग़ासिब को उत्तरदायी ठहराए, क्योंकि मूल्य वस्तु का स्थान ले लेता है। यह नियम तब लागू होता है जब पहले ग़ासिब द्वारा छीनने की घटना गवाहों की गवाही या मालिक की स्वीकारोक्ति से सिद्ध हो। यदि केवल पहले ग़ासिब ने स्वीकारोक्ति की हो, तो मालिक के अधिकार में उसकी स्वीकारोक्ति सत्यापित नहीं मानी जाएगी, लेकिन उसके स्वयं के अधिकार में उसकी बात मानी जाएगी। अतः मालिक को विकल्प होगा कि वह दोनों में से जिससे चाहे हर्जाना ले। (1) यदि दूसरे ग़ासिब ने छीनी हुई वस्तु बेच दी और उसकी कीमत प्राप्त कर ली, तो पहले ग़ासिब को उससे वह राशि लेने का अधिकार नहीं होगा क्योंकि वह मालिक नहीं है और न ही मालिक का प्रतिनिधि (नायब) है, और न ही उसे बिक्री की अनुमति देने का अधिकार होगा; यह 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। मालिक को अधिकार होगा कि वह चाहे ग़ासिब से हर्जाना ले या उसके पास अमानत रखने वाले (मुस्तौदअ) से, क्योंकि मालिक के अधिकार में दोनों ही उल्लंघनकर्ता (मुतअद्दी) हैं। (2) यह 'मुहीत' में है।

यदि ग़ासिब ने छीनी हुई वस्तु किसी को ऋण (आरियत) पर दी, तो मालिक को विकल्प होगा कि वह ऋण देने वाले (मुईर) से हर्जाना ले या ऋण लेने वाले (मुस्तईर) से। फिर जिससे उसने हर्जाना ले लिया, वह दूसरे से उसकी मांग नहीं कर सकता। यदि ऋण लेने वाले ने उसे नष्ट कर दिया, तो दायित्व उसी पर तय हो जाएगा; यह 'वजीज़ करदरी' में है। यदि ग़ासिब ने छीनी हुई वस्तु किसी को उपहार (हिबा) में दे दी और वह उपहार प्राप्तकर्ता के पास नष्ट हो गई, और मालिक ने उससे हर्जाना ले लिया, तो वह अपने उपहार देने वाले (अर्थात् ग़ासिब) से उसे वापस नहीं माँग सकता; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। यदि ग़ासिब ने छीनी हुई वस्तु बेचकर खरीदार को सौंप दी, तो मालिक को अधिकार है कि वह चाहे

तो ग़ासिब से हर्जाना ले, जिससे बिक्री वैध हो जाएगी और राशि ग़ासिब की होगी; या खरीदार से हर्जाना ले, ऐसी स्थिति में खरीदार अपनी दी हुई राशि ग़ासिब से वापस लेगा और बिक्री रद्द (बातिल) हो जाएगी और वह हर्जाने की राशि वापस नहीं ले सकता। यदि ग़ासिब ने वस्तु बेच दी पर उसे सौंपा नहीं, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा; यह 'वजीज़ करदरी' में है। 'मुंतक़ा' में इब्न समाआ की रिवायत है, जो इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि यदि मालिक ने पहले ग़ासिब से हर्जाना लेने का निर्णय लिया, चाहे वह ग़ासिब सहमत हो या न हो, और काज़ी ने मालिक के पक्ष में पहले ग़ासिब के विरुद्ध मूल्य चुकाने का आदेश (डिग्री) दे दिया, तो मालिक को यह अधिकार नहीं रहेगा कि वह पहले ग़ासिब को छोड़कर दूसरे से हर्जाना मांगे। लेकिन यदि काज़ी ने मालिक के नाम का आदेश जारी नहीं किया, तो मालिक को विकल्प होगा कि वह उससे हटकर दूसरे ग़ासिब से हर्जाना मांगे। यदि मालिक ने पहले ग़ासिब से हर्जाना मांगना तय किया और उसने कुछ नहीं दिया और वह निर्धन है, तो काज़ी पहले ग़ासिब को आदेश देगा कि वह दूसरे ग़ासिब से अपनी वस्तु वसूल कर मालिक को दे। यदि पहले ने इनकार किया और मालिक ने दोनों ग़ासिबों को उपस्थित कर गवाह पेश किए, तो पहले ग़ासिब के पक्ष में दूसरे के विरुद्ध मालिक की ओर से गवाही स्वीकार की जाएगी, जब तक कि दूसरे ग़ासिब से वह वस्तु वसूल न कर ली जाए, फिर उसे मूल मालिक (मख़्सूब मिन्हु) ले लेगा; यह 'मुहीत' में है।

यदि मालिक चाहे कि दोनों में से प्रत्येक से मूल्य का कुछ हिस्सा—जैसे एक तिहाई, एक चौथाई या आधा—हर्जाने के रूप में ले, तो उसे यह अधिकार है कि शेष मूल्य दूसरे से ले। 'ज़ख़ीरा' में लिखा है कि एक व्यक्ति ने किसी की दासी (बांदी), जिसका मूल्य एक हज़ार दिरहम था, छीन ली... परन्तु पहला फिर दूसरे से दायित्व के लिए वापस नहीं मुड़ सकता। (2) अर्थात् वह अत्याचारी है।

---

اُس کو ایسا اختیار ہے کذا فی محیط السرخسی اور جب مالک نے دونوں میں سے ایک یعنی غاصب یا غاصب الغاصب یا مستودع الغاصب سے تاوان لے لیا تو دوسرا بری ہو گیا یہ خلاصہ میں ہے۔ غاصب الغاصب نے اگر مال مغصوب کو تلف کر کے اُس کی قیمت غاصب اول کو ادا کر دی تو ضمان سے بری ہو گیا اور امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ بری نہ ہو گا اور اگر بعینہ مال مغصوب کو غاصب اول کو واپس دیا تو بالاجماع سب کے نزدیک بری ہو جائے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر مال مغصوب غاصب الغاصب کے پاس تلف ہو گیا اور اُس نے غاصب اول کو اُس کی قیمت تاوان دے دی تو بھی ضمان سے بری ہو جائے گا یہاں تک کہ مالک کو یہ اختیار نہ رہے گا کہ اس کے بعد غاصب الغاصب کو ضامن ٹھہرائے کیونکہ قیمت مقام قائم عین ہے اور یہ حکم اُس وقت ہے کہ غاصب اول کا غصب کرنا گواہوں کی گواہی یا اقرارِ مالک کے ذریعہ سے معروف و معلوم ہو اور اگر فقط غاصب اول نے ایسا اقرار کیا ہو تو مالک کے حق میں اُس کے اقرار کی تصدیق نہ کی جائے گی مگر اپنے حق میں اُس کے قول کی تصدیق کی جائے گی پس مالک کو اختیار رہے گا کہ دونوں میں سے جس سے چاہے ضمان لے (۱) اور اگر غاصب الغاصب نے مغصوب کو فروخت کر کے اُس کا ثمن وصول کیا تو غاصب اول کو اُس سے اس ثمن کے لینے کا اختیار نہ ہو گا کیونکہ وہ مالک نہیں ہے اور نہ مالک کی طرف سے نائب ہے اور اُس کو اجازت بیع کا بھی اختیار نہ ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے اور مالک کو اختیار ہو گا کہ چاہے غاصب سے ضمان لے یا اُس کے مستودع سے کیونکہ اُس کے حق میں دونوں میں سے ہر ایک متعدی ہے (۲) یہ محیط میں ہے۔

اور اگر غاصب نے مال مغصوب کسی کو عاریۃ دیا تو مالک مختار ہو گا چاہے معیر سے تاوان لے یا مستعیر سے پھر جس سے لے لیا وہ دوسرے سے مال تاوان نہیں لے سکتا ہے اور اگر مستعیر نے اُس کو تلف کر دیا ہو تو ضمان اُسی پر مقرر ہو جائے گی یہ وجیز کردری میں ہے اگر غاصب نے مال مغصوب کسی کو ہبہ کر دیا اور موہوب لہ کے پاس تلف ہو گیا اور مالک نے اُس سے تاوان لے لیا تو وہ اپنے واہب (یعنی غاصب) سے واپس نہیں لے سکتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے اور اگر مغصوب کو غاصب نے فروخت کر کے مشتری کے سپرد کر دیا تو مالک کو اختیار ہے چاہے غاصب سے ضمان لے پس بیع جائز ہو جائے گی اور ثمن غاصب کا ہو گا یا مشتری سے تاوان لے تو مشتری اپنا ثمن غاصب سے واپس لے گا اور بیع باطل ہو جائے گی اور مال ضمان واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر غاصب نے فروخت کر کے سپرد نہ کیا ہو تو ضامن نہ ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے۔ منتقٰی میں ابن سماعہ کی روایت ہے امام محمدؒ سے مروی ہے کہ اگر مالک نے غاصب اول سے ضمان لینا اختیار کیا ہے خواہ غاصب اول اس امر پر راضی ہوا یا نہ ہوا مگر قاضی نے غاصب اول پر مالک کے واسطے قیمت کی ڈگری کر دی تو مالک کو یہ اختیار نہ رہے گا کہ غاصب اول سے ضمان لینا ترک کر کے دوسرے سے ضمان لینا اختیار کرے اور اگر غاصب اول راضی ہوا یا نہ ہو اور قاضی نے اُس پر مالک کے نام کی ڈگری نہ کی تو مالک کو اختیار رہے گا کہ اس سے رجوع کر کے غاصب ثانی سے ضمان لینا اختیار کرے اور اگر مالک نے غاصب اول سے ضمان لینا اختیار کر لیا اور اُس نے مالک کو کچھ نہ دیا اور وہ نادار ہے تو قاضی غاصب اول کو حکم دے گا کہ دوسرے غاصب سے اپنا مال وصول کر کے مالک کو دے دے پس اگر اول نے اس بات سے انکار کیا اور مالک نے ان دونوں غاصبوں کو حاضر کر کے گواہ پیش کئے تو مالک سے دوسرے پر پہلے غاصب کے واسطے ایسے گواہ

مقبول ہوں گے یہاں تک کہ دوسرے غاصب سے یہ مال وصول کر لیا جائے گا پھر اُس کو مغصوب منہ لے لے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر مالک نے چاہا کہ دونوں میں سے ایک سے کسی قدر جزو قیمت تہائی و چوتھائی و نصف وغیرہ تاوان لے تو اُس کو اختیار ہے گا کہ باقی قیمت دوسرے سے تاوان لے یہ ذخیرہ میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے کسی کی باندی ہزار درہم قیمت کی غصب کی مگر اول پھر ثانی سے رجوع ضمان نہیں کر سکتا ہے۔ (۲) یعنی ظالم ہے۔

(Fatawa Alamgiri ..... Volume 5) (144) (Book of Usurpation)

...usurped, then another person usurped it from the [first] usurper, and on the day of the second usurpation, its value was also one thousand dirhams. If it then escaped from the second usurper, the first usurper would have the option to take its value as compensation from the second one, even if the owner had not yet taken compensation from the first usurper. Then, when the first usurper has taken the price, the second usurper is freed from the guarantee/liability, and this price received from the second will remain guaranteed against the first usurper such that if it is destroyed while with the first usurper, the owner will have the option to take the compensation for the slave girl's usurpation from him. Then, when the owner appears, he will have the option to either take from the first usurper the price that he took from the second usurper; thus, the usurped slave girl will become the property of the second usurper on behalf of the original owner. Or, if he wishes, he can take its price as compensation anew from the first usurper; thus, from the owner's side, the slave girl will become the property of the first usurper and then, from him, become the property of the second usurper. And if the price of the slave girl was one thousand dirhams on the day of the first usurpation and two thousand dirhams on the day of the second usurpation, and then she escaped from the second usurper and the first took two thousand dirhams as price from the second, and that price was destroyed while with the first usurper, then the owner will not have the option to take a guarantee of two thousand from the first; rather, he can only take one thousand dirhams as compensation, which was its price on the day of his usurpation. And if the master (owner) appeared and at that time the price which he [the first usurper] had received from the second was still present with the first usurper exactly as it was, and the situation was such that the slave girl had also appeared, then the owner would have these options: either take the slave girl from wherever she appeared, or take from the first usurper the price he received from the second usurper, or take from the first usurper the price on the day of his usurpation. So, if the owner chose to take his slave girl, the second usurper would take back from the first the price he paid him. And if that price had been destroyed while with the first, then the first would be the guarantor for it to the second. And if the owner took from the first usurper the price he received from the second, then the slave girl would be handed over to the second usurper. And if the owner took the price on the day of his [first's] usurpation from the first, then the price that the first received from the second would be handed over to him [the first], but the first usurper should give in charity the one thousand

dirhams which are in excess of the amount of liability he gave to the owner. This is the saying of Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, but according to Imam Abu Yusuf, he should not give anything in charity; rather, this excess is lawful for him. This is in the miscellaneous sections of 'Al-Muheet'.

It is written in 'Fatawa Atabiyya' that if a usurped slave girl gives birth to a child while with the usurper and another person usurps both of them, and the first gives the price of the slave girl as compensation to the owner, then the first usurper will take the compensation for both from the second and will give the price of the child in charity; this is a narration regarding the child becoming the owner's through the guarantee price of the mother. And if the person whose property was usurped made a settlement with the first usurper for less than the price of the usurped property, then the first usurper will take the full price from the second and give in charity the amount of the excess; this is in 'Tatar-Khaniya'. It is narrated from Ibn Sama'ah that he wrote to Imam Muhammad that a person usurped another's slave and a third person killed him by mistake. Then the owner wanted to take half the slave's price from the usurper immediately and take the half price along with blood money (Diyat) from the killer's supporting clan (Aqila); so Imam Muhammad replied that the owner has such an option; this is in 'Al-Muheet'. A person usurped someone's property, then a creditor of the owner usurped this property from that usurper; the preferred opinion is that the person whose property was usurped (the owner) has the option to either take compensation from the first usurper or from the second. Thus, if compensation is taken from the first, the second will not be freed [from liability towards the first], and if compensation is taken from the second, the first will be freed; this is in 'Al-Zahiriyya'.

(फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5) (144) (किताब अल-ग़सब)

...कर ली, फिर ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाले) से दूसरे व्यक्ति ने ग़सब कर ली और दूसरे ग़सब के दिन भी उसकी कीमत एक हज़ार दिरहम थी, फिर दूसरे ग़ासिब के पास से भाग गई तो पहले ग़ासिब को अधिकार होगा कि दूसरे से उसकी कीमत तावान (मुआवजा) ले, हालांकि मालिक ने पहले ग़ासिब से अभी तक तावान न लिया हो। फिर जब ग़ासिब अव्वल (पहले) ने कीमत ले ली तो दूसरा ग़ासिब ज़मान (ज़िम्मेदारी) से मुक्त हो गया और यह कीमत जो दूसरे से वसूल की है वह ग़ासिब अव्वल पर मक़बूल (ज़िम्मेदार) रहेगी, यहाँ तक कि अगर ग़ासिब अव्वल के पास नष्ट हो गई तो मालिक को अधिकार होगा कि उससे दासी (बांदी) की कीमत ग़सब का तावान ले। फिर जब मालिक उपस्थित हुआ तो उसको अधिकार होगा कि चाहे ग़ासिब अव्वल से वह कीमत ले ले जो उसने ग़ासिब-ए-सानी (दूसरे) से ली है, अतः मक़बूज़ा (अपहृत) दासी असल मालिक की ओर से ग़ासिब-ए-सानी की मिल्क (संपत्ति) हो जाएगी; या चाहे तो ग़ासिब अव्वल से नए सिरे से उसकी कीमत तावान ले, अतः मालिक की ओर से दासी पहले ग़ासिब अव्वल की संपत्ति होकर फिर उसकी ओर से ग़ासिब-ए-सानी की संपत्ति होगी। और अगर पहले ग़सब के दिन दासी की कीमत एक हज़ार दिरहम हो और दूसरे ग़सब के दिन दो हज़ार दिरहम हो, फिर वह दूसरे ग़ासिब के पास से भाग गई और पहले ने दूसरे से दो हज़ार दिरहम कीमत ले ली और वह कीमत ग़ासिब अव्वल के पास नष्ट हो गई, तो मालिक को यह अधिकार न होगा कि अव्वल से दो हज़ार की ज़मानत ले, बल्कि केवल उससे उसके ग़सब के दिन की कीमत एक हज़ार दिरहम तावान ले सकता है। और अगर स्वामी उपस्थित हुआ और उस समय तक ग़ासिब अव्वल के पास वह कीमत, जो उसने सानी से वसूल की है, ज्यों की त्यों मौजूद थी और स्थिति यह थी कि दासी भी प्रकट हो गई थी, तो मालिक को ये अधिकार होंगे कि चाहे दासी को जहाँ वह प्रकट हुई है वहाँ से ले ले, या चाहे ग़ासिब अव्वल से वह कीमत ले ले जो उसने ग़ासिब-ए-सानी से वसूल की है, चाहे ग़ासिब अव्वल से उसके ग़सब के दिन की कीमत ले ले। अतः यदि मालिक ने अपनी दासी लेना चुना तो दूसरा ग़ासिब पहले से वह कीमत वापस ले लेगा जो उसने दूसरे से वसूल की है, और अगर वह कीमत पहले के पास नष्ट हो गई हो तो पहला दूसरे के लिए उसका ज़मान (ज़िम्मेदार) होगा। और अगर मालिक ने ग़ासिब अव्वल से वह कीमत ले ली जो उसने दूसरे से वसूल की है, तो दासी दूसरे ग़ासिब के सुपुर्द की जाएगी। और अगर मालिक ने अव्वल से उसके ग़सब के दिन की कीमत तावान ली, तो जो कीमत अव्वल ने दूसरे से वसूल की है वह उसके सुपुर्द की जाएगी, लेकिन पहला ग़ासिब उसमें से एक हज़ार दिरहम, जो ज़मानत की मात्रा से अधिक हैं जो उसने

मालिक को दिए हैं, सदक़ा (दान) कर देगा; और यह इमाम-ए-आज़म और इमाम मोहम्मद का कथन है, मगर इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार कुछ सदक़ा न करे बल्कि यह अधिकता उसके लिए हलाल (वैध) है; यह 'मुहीत' के मतफ़र्रिक़ात (विविध खंडों) में है।

फ़तावा अताबिया में लिखा है कि अगर मक़बूज़ा दासी ने ग़ासिब के पास बच्चा जना और उन दोनों को दूसरे व्यक्ति ने ग़सब कर लिया और पहले ने मालिक को दासी की कीमत तावान दे दी, तो पहला ग़ासिब दूसरे से दोनों की कीमत तावान ले लेगा और उसमें से बच्चे की कीमत सदक़ा कर देगा; और माँ की ज़मानत की कीमत से बच्चे के मालिक हो जाने की यह रिवायत (कथा/परंपरा) है। और अगर मक़बूज़ा व्यक्ति ने ग़ासिब अव्वल से अपहृत माल की कीमत से कम पर समझौता कर लिया, तो पहला ग़ासिब दूसरे से पूरी कीमत लेकर उसमें से अधिकता के बराबर सदक़ा कर देगा; यह 'ताता़रख़ानिया' में है। इब्न समाआ से रिवायत है कि उन्होंने इमाम मोहम्मद को लिखा कि एक व्यक्ति ने दूसरे का ग़ुलाम ग़सब कर लिया और उसे एक तीसरे व्यक्ति ने गलती से मार डाला, तो मालिक ने चाहा कि फिलहाल आधी कीमत ग़ुलाम ग़ासिब से ले और आधी कीमत क़ातिल की मददगार बिरादरी (आक़िला) से दियत के रूप में ले, तो इमाम मोहम्मद ने उत्तर लिखा कि मालिक को ऐसा अधिकार है; यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे का माल ग़सब किया, फिर ग़ासिब से यह माल मालिक के लेनदार ने ग़सब कर लिया, तो पसंदीदा राय यह है कि मक़बूज़ा व्यक्ति (मालिक) को अधिकार है चाहे ग़ासिब-ए-अव्वल से तावान ले या दूसरे से। अतः यदि अव्वल से तावान लिया तो दूसरा मुक्त नहीं होगा और यदि दूसरे से तावान लिया तो पहला मुक्त हो जाएगा; यह 'ज़हीरिया' में है।

کر لی پھر غاصب سے دوسرے شخص نے غصب کر لی اور دوسرے غصب کے روز بھی اُس کی قیمت ہزار درہم تھی پھر دوسرے غاصب کے پاس سے بھاگ گئی تو پہلے غاصب کو اختیار ہوگا کہ دوسرے سے اُس کی قیمت تاوان لے اگرچہ مالک نے پہلے غاصب سے ہنوز تاوان نہ لیا ہو پھر جب غاصب اوّل نے قیمت لے لی تو دوسرا غاصب ضمان سے بری ہو گیا اور یہ قیمت جو دوسرے سے وصول کی ہے وہ غاصب اوّل پر مضمون رہے گی حتیٰ کہ اگر غاصب اوّل کے پاس تلف ہو گئی تو مالک کو اختیار ہو گا کہ اُس سے باندی کی قیمت غصب کا تاوان لے پھر جب مالک حاضر ہوا تو اُس کو اختیار ہوگا کہ چاہے غاصب اوّل سے وہ قیمت لے لے جو اُس نے غاصبِ ثانی سے لی ہے پس باندی مغصوبہ اصل مالک کی طرف سے غاصبِ ثانی کی ملک ہو جائے گی یا چاہے تو غاصب اوّل سے از سر نو اُس کی قیمت تاوان لے پس مالک کی طرف سے باندی پہلے غاصب اوّل کی مملوکہ ہو کر پھر اُس کی طرف سے غاصبِ ثانی کی مملوکہ ہو گی اور اگر غصب اوّل کے روز باندی کی قیمت ہزار درہم ہو اور غصبِ ثانی کے روز دو ہزار درہم ہو پھر وہ دوسرے غاصب کے پاس سے بھاگ گئی اور پہلے نے دوسرے سے دو ہزار درہم قیمت لے لی اور وہ قیمت غاصب اوّل کے پاس تلف ہو گئی تو مالک کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اوّل سے دو ہزار کی ضمان لے بلکہ فقط اُس سے اُس کے غصب کے روز کی قیمت ہزار درہم تاوان لے سکتا ہے اور اگر مولیٰ حاضر ہوا اور اُس وقت تک غاصب اوّل کے پاس وہ قیمت جو اُس نے ثانی سے وصول کی ہے بعینہ موجود تھی اور حال یہ تھا کہ باندی بھی ظاہر ہوگئی تھی تو مالک کو یہ اختیارات ہوں گے کہ چاہے باندی کو جہاں ظاہر ہوئی ہے وہاں سے لے لے یا چاہے غاصب اوّل سے وہ قیمت لے لے جو اُس نے غاصبِ ثانی سے وصول کی ہے چاہے غاصب اوّل سے اُس کے غصب

کے روز کی قیمت لے لے پس اگر مالک نے اپنی باندی لینا اختیار کیا تو دوسرا غاصب پہلے سے وہ قیمت جو اُس نے دوسرے سے وصول کی ہے پھیر لے گا اور اگر وہ قیمت پہلے کے پاس تلف ہوگئی ہو تو پہلا دوسرے کے واسطے اُس کا ضامن ہوگا اور اگر مالک نے غاصب اوّل سے وہ قیمت جو اُس نے دوسرے سے وصول کی ہے لے لی تو باندی دوسرے غاصب کے سپرد کی جائے گی اور اگر مالک نے اوّل سے اُس کے غصب کے روز کی قیمت تاوان لی تو جو قیمت اوّل نے دوسرے سے وصول کی ہے اُس کے سپرد کی جائے گی لیکن پہلا غاصب اُس میں سے ایک ہزار درہم جو مقدارِ ضمان سے اُس نے مالک کو دے دیئے ہیں زائد ہیں صدقہ کر دے گا اور یہ قول امام اعظمؒ و امام محمدؒ کا ہے مگر امام ابو یوسفؒ کے نزدیک کچھ صدقہ نہ کرے گا بلکہ یہ زیادتی اُس کو حلال ہے یہ محیط کے متفرقات میں ہے۔

فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے کہ اگر مغصوبہ باندی غاصب کے پاس بچہ جنی اور اُن دونوں کو دوسرے شخص نے غصب کر لیا اور اوّل نے مالک کو باندی کی قیمت تاوان دے دی تو اوّل غاصب دوسرے سے دونوں کی قیمت تاوان لے لے گا اور اُس میں سے بچہ کی قیمت صدقہ کر دے گا اور ماں کی ضمان قیمت سے بچہ کے مالک ہو جانے کی یہ روایت ہے اور اگر مغصوبہ منہ نے غاصب اوّل سے مال مغصوب کی قیمت سے کم پر صلح کر لی تو پہلا غاصب دوسرے سے پوری قیمت لے کر اُس میں سے بقدر زیادتی کے صدقہ کر دے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ابن سماعہ سے روایت ہے کہ انہوں نے امام محمدؒ کو لکھا کہ ایک شخص نے دوسرے کا غلام غصب کر لیا اور اُس کو ایک شخص ثالث نے خطا سے قتل کر ڈالا پس مالک نے چاہا کہ فی الحال نصف قیمت غلام غاصب سے لے اور نصف قیمت بمعہ دیت قاتل کی مددگار برادری سے لے تو امام محمدؒ نے جواب لکھا کہ مالک کو ایسا اختیار ہے یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کا مال غصب کیا پھر غاصب سے یہ مال مالک کے قرض خواہ نے غصب کر لیا تو مختار یہ ہے کہ

مغصوبہ منہ کو اختیار ہے چاہے غاصبِ اوّل سے تاوان لے یا دوسرے سے پس اگر اوّل سے تاوان لیا تو دوسرا بری نہ ہوگا اور اگر دوسرے سے تاوان لیا تو پہلا بری ہو جائے گا یہ ظہیر یہ میں ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (145) Kitab al-Ghasb (Book of Usurpation)**

**Main Heading: The usurper (Ghasib) does not have the right to take service from a usurped female slave or to give her into someone else's possession before the owner (Mawla) makes a choice.**

A person usurped a male slave, then another usurped him from the first, and the slave fled. The owner stated, "At the time of your usurpation, his price was 1,500, and then at the time of the second person's usurpation, it was 2,000." The first usurper claimed, "No, it was 500 at my time, but increased to 1,500 while with me." In determining the price, the owner's statement will be accepted. However, if the first usurper did not claim the value increased while in his possession, his word would be accepted. If the slave later reappears and his actual price is found to be higher, the owner has the choice to return what he received and take the slave. If he chooses to take the slave and then the second usurper kills the slave, the owner can either maintain the retaliation (Qisas) and hold the killer's clan responsible, or cancel it and take the price from the first usurper as of the day of usurpation. This is mentioned in 'Al-Kafi'. I read in some books of jurisprudence that if someone usurps a slave, another usurps from him, and the slave dies with the second, the owner has the choice to take compensation from the first usurper (who then recovers it from the second), or release the first and take compensation from the second. The second's claim will not hold. This is in 'Fusul-e-Imadiya'. If someone usurps a slave and leaves him as a deposit (Wadi'at) with Zaid, and the slave flees from Zaid's possession, and the owner chooses to take compensation from the depositary (Zaid), the usurper becomes the owner of that slave to the extent that his act of manumission would be valid. The depositary has the right to recover from the usurper before paying the compensation himself. If the slave returns to Zaid's possession, Zaid is authorized to withhold him until full compensation is received. If the slave dies before withholding, he dies as a trust; if after, he is considered in lieu of his price. In such cases, the ruling of 'Rahm-Dastbar' is like that of a depositary. The usurper has no right to use the services of a usurped female slave or give her to others before the owner chooses. If the owner chooses to take the price, he must perform 'Istibra' (purification period) for the female slave anew. If he chooses to take the slave, all actions taken by the usurper become void, except for making her an 'Umm al-Walad' (mother of his child); in this case, the child's lineage is established as a matter of legal preference (Istihsan), and the child will be a slave. This is in 'Tatar Khaniya'.

The second usurper has no right to cohabit with the female slave until the owner chooses to take the price from the first usurper that the first took from the second. If the female slave menstruates after the first usurper takes the price from the second but before the owner chooses any compensatory action, this menstruation is not sufficient for 'Istibra'. If the first usurper admits to taking the price from the second, this admission is equivalent to proof by witnesses. However, there is a difference: in the case of admission, the owner still has the choice to hold the second usurper liable, whereas in the case of proof by witnesses, he does not. The same rule applies if a judge (Qadi) has decreed the price against the second, and then the usurper admits to receiving the payment.

**Footnotes:** 1. Regarding the amount of the price, the owner's word is final unless the usurper provides witnesses to the contrary. 2. Meaning the legal order will be executed, and he can recover from the first usurper before paying the amount placed upon him. 3. Referring to the choice he has regarding taking compensation; since he had not yet made a choice when the slave menstruated while with the usurper, she had not yet entered his legal possession, so 'Istibra' was not accomplished. The rule is that 'Istibra' must occur through one menstrual cycle after coming into one's own possession to ensure the womb is free.

**फ़तावा आलमगिरी ..... जिल्द 8 (145) किताब अल-ग़सब**

## मुख्य शीर्षक: ग़ासिब (हड़पने वाले) को मालिक की अनुमति से पहले हड़पी हुई दासी से सेवा लेने या किसी और की मिलकियत में देने का अधिकार नहीं है।

एक व्यक्ति ने एक गुलाम हड़पा, फिर दूसरे ने उससे हड़प लिया और वह भाग गया। मालिक ने कहा कि तुम्हारे हड़पने के समय उसकी कीमत एक हज़ार पाँच सौ थी, फिर दूसरे के हड़पने के समय दो हज़ार थी। पहले ग़ासिब ने कहा कि नहीं, बल्कि मेरे हड़पने के समय पाँच सौ दिरहम थी, लेकिन एक हज़ार पाँच सौ मेरे पास ज़्यादा हो गए। ऐसी स्थिति में कीमत तय करने में मालिक की बात मानी जाएगी। और अगर पहले ग़ासिब ने यह नहीं कहा कि मेरे पास ज़्यादा हो गए, तो उसकी बात मानी जाएगी। फिर अगर गुलाम मिल जाए और उसकी कीमत ज़्यादा निकले, तो मालिक को अधिकार होगा कि जो कुछ उसने लिया है उसे वापस करके गुलाम ले ले। यदि उसने गुलाम लेना चुना और फिर दूसरे ग़ासिब ने उसे मार डाला, तो मालिक को विकल्प होगा कि वह सज़ा (क़िसास) जारी रखे या कातिल के रिश्तेदारों से हर्जाना ले, अथवा पहले ग़ासिब से हड़पने के दिन की कीमत ले ले। यह 'काफ़ी' में है। मैंने कुछ फ़िक़्ह की किताबों में पढ़ा है कि यदि एक व्यक्ति गुलाम हड़पे, दूसरा उससे हड़प ले और गुलाम दूसरे के पास मर जाए, तो मालिक को अधिकार है कि वह पहले ग़ासिब से हर्जाना ले और पहला ग़ासिब दूसरे से वसूलेगा, या पहले को मुक्त कर दे और दूसरे से हर्जाना ले। और दूसरे का कहना मान्य नहीं होगा। यह 'फुसूल ए इमादिया' में है। अगर किसी ने गुलाम हड़प कर ज़ैद के पास अमानत रखी और वह ज़ैद के कब्ज़े से भाग गया, फिर मालिक ने अमानत रखने वाले (ज़ैद) से हर्जाना लेने का फैसला किया, तो ग़ासिब उस गुलाम का मालिक हो जाएगा, यहाँ तक कि उसका उसे आज़ाद करना भी वैध होगा। और यह अमानतदार, हर्जाना खुद देने से पहले ग़ासिब से वसूली के लिए अधिकार रखता है। यदि गुलाम वापस ज़ैद के पास आ जाए, तो ज़ैद को अधिकार है कि हर्जाना पूरा मिलने तक उसे रोके रखे। यदि रोकने से पहले मर जाए तो अमानत में मरा, और रोकने के बाद मरे तो वह अपनी कीमत के बदले माना जाएगा। और ग़ासिब को मालिक के चुनने से पहले हड़पी हुई दासी से सेवा लेने या दूसरों को देने का हक नहीं है। यदि मालिक कीमत लेना चुनता है, तो उसे नए सिरे से दासी की इस्तेबरा (शुद्धि की अवधि) करनी होगी। और यदि दासी लेना चुना तो ग़ासिब का किया हुआ हर कार्य शून्य हो जाएगा, सिवाय उसे 'उम्मे वलद' (बच्चे की माँ) बनाने के, क्योंकि इस स्थिति में बच्चे का नसब (पितृत्व) साबित होगा और बच्चा गुलाम होगा। यह 'तातार खानिया' में है।

दूसरे ग़ासिब को दासी से शारीरिक संबंध का अधिकार नहीं है जब तक कि मालिक पहले ग़ासिब से वह कीमत वसूलने का फैसला न कर ले जो पहले ने दूसरे से ली थी। और यदि पहले ग़ासिब के दूसरे से कीमत लेने के बाद और मालिक के किसी हर्जाने की बात तय करने से पहले दासी को मासिक धर्म (हैज़) आ जाए, तो यह इस्तेबरा के लिए काफी नहीं होगा। यदि पहले ग़ासिब ने दूसरे से कीमत लेने का इकरार (स्वीकारोक्ति) की, तो यह इकरार और गवाहों द्वारा साबित होना समान है। लेकिन एक अंतर है कि इकरार की सूरत में मालिक को दूसरे ग़ासिब से हर्जाना लेने का अधिकार है, जबकि गवाहों से साबित होने की सूरत में नहीं है। और यही हुक्म तब है जब काज़ी ने दूसरे पर कीमत की डिग्री कर दी हो और फिर ग़ासिब ने वसूली का इकरार किया हो।

**फुटनोट्स:** 1. कीमत की मात्रा बताने में मालिक की बात मानी जाएगी, जब तक कि ग़ासिब इसके विरुद्ध गवाह न लाए। 2. यानी अधिकार का आदेश पूरा किया जाएगा और वह रकम देने से पहले पहले ग़ासिब से वसूल कर सकता है। 3. यानी हर्जाना लेने के बारे में जो उसे अधिकार है और अभी उसने कुछ तय नहीं किया था कि ग़ासिब के पास दासी को मासिक धर्म आया, तो वह अभी उसकी मिलकियत में नहीं आया, इसलिए इस्तेबरा नहीं हुआ। क्योंकि नियम यह है कि अपनी मिलकियत में आने के बाद एक मासिक धर्म से इस्तेबरा करना ज़रूरी है ताकि पता चले कि गर्भ नहीं है।

---

## غاصب کو قبل اختیار مولیٰ کے باندی مغصوبہ سے خدمت لینے یا دوسرے کی ملک میں دینے کا اختیار نہیں ہے

ایک شخص نے ایک غلام غصب کیا اور اس سے دوسرے نے غصب کر لیا اور وہ بھاگ گیا پس مالک نے کہا کہ تیرے غصب کے وقت اس کی قیمت ہزار اور ہم تھی پھر دوسرے کے غصب کے وقت دو ہزار تھی اور غاصب اول نے کہا کہ نہیں بلکہ میرے غصب کے وقت پانچ سو درہم تھی مگر ایک ہزار اور پانچ سو درہم میرے پاس زیادہ ہو گئے تو حق قیمت لے میں مالک کا قول قبول ہو گا اور اگر غاصب اول نے یہ نہ کہا کہ میرے پاس زیادہ ہو گئے تو اس کا قول قبول ہو گا پھر اگر غلام ظاہر ہوا اور قیمت اس کی زائد نکلی تو مالک کو اختیار ہو گا کہ جو کچھ اس نے لیا ہے وہ واپس کر کے غلام لے لے پس اگر اس نے غلام لینا اختیار کیا پھر اس کو غاصب ثانی نے قتل کر ڈالا تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے فتح کو باقی رکھے اور قاتل کی مدد گار برادری کا دامن گیر ہو یا فتح کو توڑ کر غاصب اول سے اس کے غصب کے روز کی قیمت لے لے یہ کافی میں ہے۔

میں نے بعض کتب فقہ میں مطالعہ کیا کہ ایک شخص نے ایک غلام غصب کیا پھر اس سے دوسرے نے غصب کر لیا اور اس کے پاس مر گیا تو مولیٰ کو اختیار ہے چاہے غاصب سے بقول ضمان لے اور اوّل اس کو دوسرے سے لے لے گا یا اوّل کو بری کر دے اور دوسرے سے قیمت تاوان لے اور دوسرے کا قول پر کچھ نہ ہو گا یہ فصول عمادیہ میں ہے اور اگر کوئی غلام غصب کر کے زید کے پاس ودیعت رکھا اور وہ زید کے قبضہ سے بھاگ گیا پھر مالک نے ودیعت لینے والے یعنی زید سے ضمان لیتی اختیار کی غاصب اس غلام کا مالک ہو جائے گا حتیٰ کہ اُس کا آزاد کرنا نافذ ہو گا اور یہ مال ضمان خود ادا کرنے سے پہلے غاصب سے رجوع کرنے کے لیے

کانتا ہے اور اگر وہ غلام واپس ہو کر زید کے قبضہ میں آ گیا تو مودوع یعنی زید مختار ہے کہ مالِ ضمان بھر پور حاصل کرنے تک غاصب سے روک رکھے اور اگر روکنے سے پہلے زید کے پاس مر گیا تو امانت میں مرا اور روکنے کے بعد مرے تو اپنی قیمت کے عوض ہو گا اور ایسی صورت میں رحم دستبر کا حکم مثل ودیعت لینے والے کے ہے کذا فی الکافی اور غاصب کو قبل اختیار مولیٰ کے باندی مغصوبہ سے خدمت لینے یا دوسرے کی ملک میں دے دینے کا اختیار نہیں ہے پھر اگر مالک نے قیمت لینا اختیار کیا تو از سر نو باندی کا استبراء کرے اور اگر باندی لیتا اختیار کیا تو جو کچھ اُس نے تصرف کیا سب باطل ہو جائے گا سوائے ام ولد بنانے کے کہ اس صورت میں استحساناً بچہ کا نسب ثابت ہو گا اور بچہ رقیق ہو گا یہ تاتار خانیہ میں ہے۔

غاصب ثانی کو باندی سے وطی کا اختیار نہیں ہے یہاں تک کہ مولیٰ غاصب اول سے وہ قیمت لے لینا اختیار کرے جو اوّل نے ثانی سے لی ہے یا غاصب اول سے ضمان لینا اختیار کرے اور اگر غاصب اول کے ثانی سے قیمت لینے کے بعد اور مولیٰ کے کسی امر تضمینی کے اختیار کرنے سے پہلے باندی کو حیض آیا تو یہ حیض حکم استبراء کے واسطے کافی نہ ہو گا اور اگر غاصب اول نے دوسرے سے قیمت لینے کا اقرار کیا تو یہ اقرار اور گواہوں سے قیمت لینا ثابت ہو جانا دونوں یکساں ہیں ہاں ان دونوں میں دوسری وجہ سے اتنا فرق ہے کہ اس صورت اقراری میں مولیٰ کو دوسرے غاصب کی تضمین کا اختیار ہے اور صورت ثبوت گواہان میں دوسرے کی تضمین کا اختیار نہیں ہے اور اسی طرح جب قاضی نے دوسرے پر قیمت کی ڈگری کر دی ہو پھر غاصب نے وصول قیمت کا اقرار کیا ہو تو بھی یہی حکم ہے

۱ حق قیمت یعنی مقدار قیمت بیان کرنے میں قول مالک کا قول ہے اور غاصب اس کے خلاف اپنے گواہ لائے تو قبول ہوں گے۔ ۲ نفاذ یعنی حق کا حکم پورا کر دیا جائے گا اور جو مال اس پر رکھا گیا اس کو ادا کرنے سے پہلے اوّل غاصب سے وصول کر سکتا ہے۔ ۳ تضمینی یعنی ضمان

لینے کی بابت جو اس کو اختیار ہے اور ہنوز اس نے کوئی بات اختیار نہیں کی تھی کہ غاصب کے پاس باندی کو حیض آیا تو ابھی اس کی ملک میں حیض نہیں آیا پس استبراء نہ ہوا کیونکہ اگر مالک اسی قابض سے ضمان لینا اختیار کرتا تب البتہ یہ حیض کافی ہوتا کیونکہ حکم یہ ہے کہ اپنی ملک میں آنے کے بعد ایک حیض سے باندی کا استبراء کرے یعنی بذریعہ حیض کے دریافت کرے کہ اس کا رحم نطفہ سے بری وپاک ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) [136] Kitab-ul-Ghasab (The Book of Usurpation)**

Similarly, if the first usurper (Ghasib) admits that he took back the female slave from the second usurper into his possession and admits that she died while with him, his statement will not be accepted (1) insofar as the owner shall have the right to seek indemnification (Tazmeen) from the second usurper in all these cases. However, the second usurper shall recover his price from the first usurper; this is mentioned in 'Al-Zakheera'. If a person usurped another's horse, then a third person usurped it from him, then the owner stole it back from the third person, and then the second usurper forcibly snatched it back from the owner, and the owner was unable to litigate against him, the owner shall not have the right to sue the first usurper. This is because once the horse reached the owner, the first usurper was absolved of responsibility; this is in 'Wajeez al-Kardari'.

Zaid usurped the property of Amr, then Bakr took it from Zaid with the intention of returning it to the owner. If the owner could not be found, there is no way for Bakr to be released from the liability of indemnity (Daman). However, if he gives it in charity (Sadaqah) on behalf of the owner, I hope that the owner would be satisfied with its spiritual reward. If a person takes a usurped object from the possession of a usurper to return it to the owner but cannot find the owner, he shall be deemed 'the usurper of the usurper'. Therefore, he should return it to the first usurper to be absolved of liability. If he returns it to the first usurper and it then perishes with him, the second person owes nothing as he is already absolved; this is in 'Jawahir al-Fatawa'. Ibn Sama'ah reported from Imam Muhammad (RA) that if usurped property is stolen from a usurper by a thief and the Judge (Qadi) becomes aware of this while the owner is absent, the Qadi shall take that property and safeguard it under the usurper's responsibility. It is permissible for the Qadi to deal with the usurper's property in a way that ensures the preservation of the property, not in a way that leads to the loss of the rights of the absent person. Liability for property on a usurper and a thief is among the rights of the absent; thus, such a right shall not be forfeited by the Qadi, as stated in 'Muheet al-Sarkhasi'.

**Chapter Number (7): Regarding the Usurpation of a Freeman (Azad), a Mudabbar, a Mukatab, and an Umm-ul-Walad**

If a person deceives a woman or a minor girl and takes her out of her husband's or father's house, that person shall be imprisoned until he brings her back or provides

information about her status. It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that if a person stole a minor who then was stolen from him, and the minor's death was not evident beforehand, the thief shall not be liable for indemnity but shall be imprisoned until he produces the minor or informs of their condition; this is in 'Al-Muheet'. If a person usurps a free minor from their family and the child falls ill and dies in his custody, Imam-e-Azam (Abu Hanifa RA) stated that indemnity (Daman) shall not be mandatory. However, if the child did not fall ill or die naturally but was killed by a wild beast or died of a snake bite, then blood money (Diyat) shall be mandatory upon the usurper's helpers and himself. In summary, the ruling is that a free person, whether minor or adult, is not subject to indemnity (Mazmun) due to usurpation because the indemnity of usurpation necessitates a transfer of ownership (Tamleek), and a free person cannot be owned. However, indemnity is due for a criminal act (Jinayah) because a criminal act constitutes destruction (Itlaf). Thus, when this is established, we say that when a minor dies due to a cause that allows for destruction, indemnity follows. Meaning, a Mudabbar (a slave who is promised freedom upon the owner's death) is also no longer purely property but has a right to freedom in one aspect; nevertheless, indemnity becomes mandatory upon usurping him. (1) Regarding the right of the owner.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) [136] किताब-उल-ग़सब**

इसी तरह अगर पहले ग़ासिब (ग़सब करने वाले) ने इक़रार किया कि मैंने दूसरे ग़ासिब से दासी अपने कब्ज़े में वापस ले ली और इक़रार किया कि वह मेरे पास मर गई, तो भी उसका कहना स्वीकार नहीं किया जाएगा (1) जब तक कि मालिक को इन सभी स्थितियों में दूसरे ग़ासिब से हर्जाना (तज़मीन) लेने का अधिकार होगा, लेकिन दूसरा ग़ासिब पहले ग़ासिब से अपनी क़ीमत वापस लेगा, यह 'ज़खीरा' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे का घोड़ा ग़सब किया, फिर उससे तीसरे ने ग़सब कर लिया, फिर तीसरे से मालिक ने चुरा लिया, फिर दूसरे ग़ासिब ने मालिक से ज़बरदस्ती छीन लिया और मालिक उसके साथ विवाद करने में असमर्थ रहा, तो मालिक को यह अधिकार नहीं होगा कि वह पहले पर मुक़दमा करे क्योंकि जब घोड़ा मालिक के पास पहुँच गया था, तो पहला ग़ासिब उससे बरी हो गया था, यह 'वजीज़ कर दरी' में है।

ज़ैद ने अम्र का माल ग़सब किया, फिर ज़ैद से बक्र ने इस उद्देश्य से ले लिया कि उसे मालिक को लौटा दे, फिर मालिक नहीं मिला तो बक्र के लिए क्षतिपूर्ति (ज़मानत) की ज़िम्मेदारी से बाहर होने का कोई रास्ता नहीं है। लेकिन अगर वह उसे मालिक की ओर से सदक़ा (दान) कर दे, तो मुझे आशा है कि मालिक उसके पुण्य (सवाब) से प्रसन्न हो जाए। एक व्यक्ति ने ग़सब की गई वस्तु को ग़ासिब के कब्ज़े से निकाला ताकि उसे मालिक को लौटा दे, फिर मालिक नहीं मिला तो यह व्यक्ति 'ग़ासिब-उल-ग़ासिब' (ग़ासिब का ग़ासिब) माना जाएगा, अतः वह पहले ग़ासिब को लौटा दे ताकि ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाए। और यदि उसने पहले ग़ासिब को लौटा दिया और फिर पहले ग़ासिब के पास वह चीज़ नष्ट हो गई, तो दूसरे ग़ासिब पर कुछ नहीं है, वह बरी हो चुका है, यह 'जवाहर-उल-फ़तावा' में है। इब्न समाअह ने इमाम मुहम्मद (रह.) से रिवायत की है कि अगर ग़सब किया हुआ माल ग़ासिब से किसी चोर ने चुरा लिया और क़ाज़ी को यह बात मालूम हो गई और मालिक अनुपस्थित (ग़ायब) है, तो क़ाज़ी उस माल को लेकर ग़ासिब की ज़िम्मेदारी पर उसकी सुरक्षा करेगा। और क़ाज़ी के लिए यह जायज़ है कि वह ग़ासिब के माल में ऐसा हस्तक्षेप करे जो माल की सुरक्षा के लिए हो, न कि ऐसा जिससे अनुपस्थित व्यक्ति के अधिकार नष्ट हों। क़ाज़ी की ओर से ऐसा अधिकार नष्ट नहीं होगा, जैसा कि 'मुहीत अल-सरख़सी' में वर्णित है।

## अध्याय संख्या (7): स्वतंत्र (आज़ाद), मुदब्बर, मुकातब और उम्म-उल-वलद को ग़सब करने के विवरण में

यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री या अवयस्क कन्या को धोखा देकर उसके पति या पिता के घर से निकाल ले गया, तो उस व्यक्ति को कैद किया जाएगा जब तक कि वह उसे वापस न लाए या उसके बारे में जानकारी न दे। इमाम अबू यूसुफ (रह.) से वर्णित है कि एक व्यक्ति ने एक अवयस्क (नाबालिग) को चुराया, फिर वह उसके हाथ से चोरी हो गया और उसकी मृत्यु का प्रमाण पहले प्रकट नहीं हुआ, तो चोर ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा बल्कि कैद किया जाएगा जब तक कि वह उसे लाए या उसकी स्थिति बताए, यह 'मुहीत' में है। यदि किसी ने एक स्वतंत्र अवयस्क को उसके परिजनों से ग़सब कर लिया और वह बीमार हो गया और फिर उसके पास मर गया, तो इमाम-ए-आज़म (रह.) ने फरमाया कि उस पर क्षतिपूर्ति (ज़मानत) अनिवार्य नहीं होगी। और यदि वह बीमार नहीं हुआ और न ही स्वाभाविक रूप से मरा, बल्कि उसे किसी जंगली जानवर ने घायल करके मार डाला या साँप ने काटा और वह मर गया, तो ग़ासिब के मददगार और उसी पर उसकी दियत (खून-बहा) अनिवार्य होगी। कुल मिलाकर नियम यह है कि स्वतंत्र व्यक्ति चाहे बालक हो या वयस्क, ग़सब के कारण क्षतिपूर्ति (मज़मून) का पात्र नहीं होता, क्योंकि ग़सब की ज़मानत स्वामित्व (तमलीक) की माँग करती है और स्वतंत्र व्यक्ति में स्वामित्व की योग्यता नहीं होती। हाँ, अपराध (जिनायत) के कारण क्षतिपूर्ति होती है क्योंकि अपराध विनाश (इतलाफ़) है। अतः जब यह बात सिद्ध हो गई, तो हम कहते हैं कि जब अवयस्क ऐसे कारण से मरा जो विनाश का कारण हो सकता है, तो क्षतिपूर्ति होगी। यानी मुदब्बर (वह गुलाम जिसके बारे में कहा गया हो कि मेरी मौत के बाद आज़ाद है), वह भी अब पूरी तरह माल नहीं रहा बल्कि एक तरह से उसमें स्वतंत्रता का अधिकार है, लेकिन उसे ग़सब करने से उसकी क्षतिपूर्ति अनिवार्य हो जाती है। (1) मालिक के अधिकार के संबंध में।

---

اسی طرح اگر غاصب اول نے اقرار کیا کہ میں نے غاصب دوم سے باندی اپنے قبضہ میں واپس لی اور اقرار کیا کہ وہ میرے پاس مر گئی تو بھی اُس کا قول قبول نہ ہوگا (۱) یہاں تک کہ مالک ان سب صورتوں میں غاصب ثانی کی تضمین کا اختیار ہوگا مگر غاصب ثانی غاصب اول سے اپنی قیمت واپس لے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کا گھوڑا غصب کیا پھر اُس سے تیسرے نے غصب کر لیا پھر تیسرے سے مالک نے چرا لیا پھر غاصب ثانی نے مالک سے زبردستی چھین لیا اور مالک اس کے ساتھ مخاصمہ سے عاجز رہا تو مالک کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اول پر نالش کرے کیونکہ جب گھوڑا مالک کے پاس پہنچ گیا تو غاصب اول اُس سے بری ہو گیا تھا یہ وجیز کر دری میں ہے۔

زید نے عمرو کا مال غصب کیا پھر زید سے بکر نے اس غرض سے لے لیا کہ اس کو مالک کو واپس دے پھر مالک کو نہ پایا تو بکر کے عہدہ ضمان سے باہر ہونے کی کوئی صورت نہیں ہے لیکن اگر اُس کو مالک کے واسطے صدقہ کر دے تو مجھے اُمید ہے کہ مالک اُس کے ثواب سے راضی ہو جائے۔ ایک شخص نے عین مغصوبہ غاصب کے قبضہ میں سے نکال لی تاکہ اُس کو مالک کو واپس دے پھر مالک کو نہ پایا تو یہ شخص غاصب الغاصب قرار پائے گا پس غاصب اول کو واپس کر دے تاکہ عہدہ ضمان سے بری ہو جائے اور اگر اُس نے غاصب اول کو واپس کر دی پھر غاصب اول کے پاس تلف ہو گئی تو غاصب ثانی پر کچھ نہیں ہے وہ عہدہ سے بری ہو چکا ہے یہ جواہر الفتاویٰ میں ہے ابن سماعہ نے امام محمدؒ سے روایت کی ہے کہ اگر مال مغصوب غاصب سے کسی چور نے چرایا اور قاضی کو یہ امر معلوم ہو گیا اور مالک غائب ہے تو قاضی اُس مال کو لے کر غاصب کی ذمہ داری پر اس کی حفاظت کرے گا اور یہ امر قاضی کو جائز ہے

کہ غاصب کے مال میں ایسا تصرف کرے جو مودی تحفظ المال ہو نہ اس طرح جو مودی بائر حقوق غائب ہو اور غاصب و سارق پر مال کا مضمون ہونا حقوق غائب میں سے ہے پس از جانب قاضی ایسا حق بائر اساقط نہ ہوگا کذا فی محیط السرخسی۔

**باب نمبر (۷): آزاد، مدبر، مکاتب وام ولد کو غصب کرنے کے بیان میں**

ایک شخص ایک عورت یا نابالغ دختر کو دھوکا دے کر اُس کے شوہر یا باپ کے گھر سے نکال لے گیا تو وہ شخص قید کیا جائے گا یہاں تک کہ اس کو لائے یا اس کے حال سے آگاہ کرے امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ ایک شخص نے ایک نابالغ کو چرایا پھر وہ اُس کے ہاتھ سے چوری گیا اور اس کی موت ما قبل ظاہر نہ ہوا تو چور ضامن نہ ہو گا بلکہ قید کیا جائے گا یہاں تک کہ اُس کو لائے یا اُس کے حال سے آگاہ کرے یہ محیط میں ہے اگر ایک شخص نے ایک آزاد نابالغ کو اُس کے اہل میں سے غصب کر لیا اور وہ بیمار ہو گیا پھر اُس کے پاس مر گیا تو امام اعظمؒ نے فرمایا کہ اُس پر ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر مریض نہ ہوا اور نہ مرا لیکن اُس کو کسی درندہ نے زخمی کر کے ہلاک کیا یا اُس کو سانپ نے کاٹا اور وہ مر گیا تو غاصب کی مددگار پر اور ہی پر اُس کی دیت واجب ہوگی و بالجملہ حکم یہ ہے کہ آزاد خواہ صغیر ہو یا کبیر ہو غصب سے مضمون نہیں ہوتا ہے اس واسطے کہ ضمان غصب مقتضی تملیک ہے اور آزاد میں صلاحیت تملیک نہیں ہے ہاں مضمون بالجنایہ ہوتا ہے اس واسطے کہ جنایت اتلاف ہے پس جب یہ امر ثابت ہوا تو ہم کہتے ہیں کہ جب نابالغ ایسے سبب سے مرا جو با تلاف ممکنہ مضمون یعنی مدبر وہ غلام کہ جس کو کہدیا کہ میری موت کے بعد آزاد ہے تو اب بھی یہ محض مال نہ رہا بلکہ ایک وجہ سے اس میں حق آزادی ہے لیکن غصب کرنے سے اس کی ضمان لازم آتی ہے۔ (۱) حق مالک میں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 137 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

If the cause of death is something that does not vary by location, then the usurper (*ghasib*) shall not be liable for compensation (*zaman*) (1). However, if the person died due to a cause that varies according to location, the liability falls upon the usurper's aiding clan (*aqila*). If someone kills the usurped person while in the possession of the usurper (2), the heirs of the usurped (*maghsoob*) have the option: they may demand the blood money (*diyat*) from either the usurper or the killer. If they take compensation from the usurper, he may then seek recourse against the killer. If they pursue the killer, the killer cannot seek recourse against the usurper. This entire compensation will be the responsibility of the *aqila* (clan) because it is compensation for a criminal act (*jinayat*). If the usurped person committed suicide, fell into a well, or a wall fell upon him and he died, the usurper is liable, and his clan must pay the blood money. In the case of the wall, if the usurper had previously notified the owner of the wall to demolish it (3), the usurper's clan has the right to recover the amount from the wall's owner. If the person was murdered intentionally, the heirs have the option: either they execute the killer in retaliation (*qisas*), in which case the usurper is exonerated, or they hold the usurper liable and take blood money from his clan. The usurper's clan will then recover the amount from the killer, but they do not have the right to execute the killer in retaliation. This is stated in *Siraj al-Wahaj*.

If a free minor is usurped and subsequently drowns or is burnt to death, the usurper is liable. However, if the minor dies of natural causes, there is no liability; this is in *Khazana al-Muftin*. If the minor commits suicide, the blood money is due from the usurper's clan, and they cannot recover it from the minor’s own clan. Similarly, if the minor commits an act of self-harm (4) such as cutting off a hand or foot, the same ruling applies. The same holds true if the minor was riding an animal and threw themselves off it. This is according to the opinion of Imam Abu Yusuf. Imam Muhammad stated that the usurper is not liable for a minor's self-inflicted injury; this is in *Al-Muhit*. If the minor kills someone while with the usurper, and the usurper later returns the minor to his father, and the minor’s clan pays the blood money to the victim's family, they have no right of recourse against the usurper; this is in *Siraj al-Wahaj*. If someone usurps a slave who is carrying the master's property, the person becomes the usurper of the property as well; thus, if the slave runs away, the usurper is liable for both the value of the property and the price of the slave. If someone usurps a free person who is wearing clothes, the usurper is not liable for the clothes because the person is free and in his own possession. However, if a slave is usurped

instead of a free person, the usurper is liable for the slave's clothes just as he is for the slave himself, and the liability for the clothes follows the liability for the slave; this is in *Fusul Imadiyya*.

If the usurped person is a *Mudabbar* slave (one promised freedom upon the master's death) and he runs away from the usurper, the usurper is liable for his value. A *Mudabbar* is subject to compensation due to usurpation, but paying the compensation does not make the usurper his owner. If the slave reappears, the usurper must return him to the master and recover his paid compensation. The usurper does not have the right to withhold the slave for the purpose of recovering his money; this is in *Sharh Tahawi*. If a person usurps a *Mudabbar* slave whose value was one thousand, and while with the usurper, the value increases to two thousand, and then a second person usurps him from the first, and he subsequently runs away or dies, the owner has the option to seek compensation from either...

[1] *Mudabbar* refers to a slave whom the master has told, "You are free after my death." Such a slave is no longer purely property as there is a vested right to freedom, yet compensation is mandatory if they are usurped. (1) Because direct destruction was not established. (2) Killed by mistake. (3) Warned to demolish it because it was in danger of falling. (4) For example, cutting off one's own hand.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 137 | किताब अल-ग़स्ब (छीनी हुई चीज़ों का अध्याय)**

यदि (मृत्यु का कारण) भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग नहीं होता है, तो ग़ासिब (हथियाने वाला) पर कोई हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगा (1)। और यदि वह ऐसे कारण से मरा जो स्थान बदलने से बदल जाता है, तो ग़ासिब के मददगार कबीले (अक़ीला) पर हर्जाना अनिवार्य होगा। और यदि ग़ासिब के पास रहते हुए उसे किसी ने मार दिया (2), तो छीने गए व्यक्ति के उत्तराधिकारियों को विकल्प होगा: चाहे वे ग़ासिब से दियत (रक्त-मूल्य) माँगें या हत्यारे से। यदि उन्होंने ग़ासिब से हर्जाना लिया, तो वह हत्यारे से उसकी वसूली करेगा। और यदि उन्होंने हत्यारे का पीछा किया, तो वह ग़ासिब से कुछ नहीं माँग सकता। यह सारा हर्जाना कबीले पर होगा क्योंकि यह अपराध का हर्जाना है। और यदि छीने गए व्यक्ति ने स्वयं को मार लिया या कुएँ में गिर गया या उस पर दीवार गिर गई और वह मर गया, तो ग़ासिब ज़िम्मेदार है, और उसके कबीले पर दियत अनिवार्य होगी। दीवार की स्थिति में, यदि ग़ासिब ने दीवार के मालिक को पहले ही दीवार हटाने की चेतावनी दे दी थी (3), तो ग़ासिब के कबीले को दीवार के मालिक से वसूली का अधिकार होगा। और यदि उसे किसी ने जानबूझकर मारा, तो उत्तराधिकारियों को अधिकार होगा: चाहे वे हत्यारे को 'क़िसास' (बदले) में मारें और ग़ासिब बरी हो जाए, या ग़ासिब को दोषी मानकर उसके कबीले से दियत लें। फिर ग़ासिब का कबीला हत्यारे से वह राशि वसूल करेगा, लेकिन उन्हें हत्यारे को क़िसास में मारने का अधिकार नहीं होगा। यह 'सिराज अल-वहाज' में दर्ज है।

यदि किसी ने एक स्वतंत्र नाबालिग का अपहरण (ग़स्ब) किया और वह डूब गया या जल गया, तो ग़ासिब ज़िम्मेदार होगा। लेकिन यदि वह प्राकृतिक मृत्यु मर गया, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'खज़ाना अल-मुफ़्तीन' में है। यदि नाबालिग ने स्वयं को मार लिया, तो उसकी दियत ग़ासिब के कबीले पर होगी और वे इसे नाबालिग के अपने कबीले से वसूल नहीं कर सकते। इसी तरह, यदि नाबालिग ने अपने शरीर के किसी अंग जैसे हाथ या पैर को नुकसान पहुँचाया (4), तो यही नियम लागू होगा। और यदि वह किसी सवारी पर सवार था और स्वयं को उससे गिरा दिया, तब भी यही नियम है। यह सब इमाम अबू यूसुफ का मत है। इमाम मोहम्मद ने कहा है कि नाबालिग द्वारा स्वयं को चोट पहुँचाने पर ग़ासिब पर कोई हर्जाना नहीं है, यह 'मुहीत' में है। यदि ग़ासिब के पास रहते हुए नाबालिग ने किसी व्यक्ति की हत्या कर दी, फिर ग़ासिब ने वह नाबालिग उसके पिता को लौटा दिया, और नाबालिग के कबीले ने मृतक की दियत अदा की, तो उनके कबीले को ग़ासिब से कुछ भी वसूल करने का अधिकार नहीं होगा, यह 'सिराज अल-वहाज' में है। यदि किसी ने एक दास का अपहरण

किया जिसके पास उसके स्वामी का धन था, तो वह व्यक्ति उस धन का भी अपहरणकर्ता माना जाएगा; यहाँ तक कि यदि दास भाग गया, तो ग़ासिब उस धन और दास की कीमत, दोनों का ज़िम्मेदार होगा। और यदि किसी ने स्वतंत्र व्यक्ति को हथिया लिया और उसके पास कपड़े हैं, तो चूंकि वह व्यक्ति स्वतंत्र है, ग़ासिब कपड़ों के लिए ज़िम्मेदार नहीं होगा। लेकिन यदि स्वतंत्र व्यक्ति के बजाय दास को हथियाया और उसके पास कपड़े हैं, तो वह दास के साथ-साथ उसके कपड़ों का भी ज़िम्मेदार होगा, और कपड़ों का हर्जाना दास के मूल्य के अधीन होगा, यह 'फ़ुसूल इमादिया' में है।

यदि छीना गया दास 'मुदब्बर' (जिसे स्वामी की मृत्यु के बाद स्वतंत्र करने का वचन दिया गया हो) है और वह ग़ासिब के पास से भाग गया, तो ग़ासिब उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा। मुदब्बर ग़स्ब की वजह से हर्जाने के अधीन होता है, लेकिन हर्जाना देने से ग़ासिब उसका मालिक नहीं बन जाएगा। यदि वह दास मिल जाए, तो ग़ासिब उसे उसके असली स्वामी को लौटाकर अपनी दी गई राशि वापस ले सकता है। ग़ासिब को यह अधिकार नहीं होगा कि वह अपनी कीमत वसूल करने के लिए दास को अपने पास रोक कर रखे, यह 'शरह तहावी' में है। यदि किसी व्यक्ति ने एक मुदब्बर दास को हथियाया जिसकी कीमत एक हज़ार थी और फिर ग़ासिब के पास रहते हुए उसकी कीमत बढ़कर दो हज़ार हो गई, फिर किसी दूसरे व्यक्ति ने उसे हथिया लिया और वह दूसरे के पास से भाग गया या मर गया, तो स्वामी को अधिकार होगा कि वह दोनों में से किसी से भी...

[1] मुदब्बर वह दास है जिसके लिए स्वामी ने कह दिया कि "मेरी मृत्यु के बाद तुम स्वतंत्र हो", वह पूरी तरह संपत्ति नहीं रहा बल्कि उसमें स्वतंत्रता का अधिकार जुड़ गया है, फिर भी अपहरण करने पर उसका हर्जाना देना पड़ता है। (1) क्योंकि नुकसान सीधे ग़ासिब द्वारा नहीं हुआ। (2) गलती से हत्या। (3) उसे गिराने की चेतावनी दी क्योंकि वह गिरने वाली स्थिति में थी। (4) उदाहरण के लिए अपना हाथ काट लिया।

مختلف نہیں ہوتا ہے تو غاصب پر ضمان واجب نہ ہوگی (۱) اور اگر ایسے سبب سے ہلاک ہوا جو باختلاف امکنہ مختلف ہوتا ہے تو غاصب کی مددگار برادری پر ضمان واجب ہوگی اور اگر غاصب کے پاس اس کو کسی نے قتل کیا (۲) تو اولیا مغصوب کو اختیار ہوگا چاہیں غاصب سے دیت کے واسطے دامن گیر ہوں یا قاتل کے دامن گیر ہوں پس اگر انہوں نے غاصب سے ضمان دیت لی تو وہ قاتل سے رجوع کرے گا اور اگر انہوں نے قاتل کا پیچھا کیا تو وہ غاصب پر رجوع نہیں کرتا ہے اور یہ سب ضمان نگار برادری پر واجب ہوگی کیوں کہ یہ ضمان جنایت ہے اور اگر مغصوب نے خود اپنے تئیں قتل کر لیا یا کنوئیں میں گر گیا یا اُس پر دیوار گر گئی اور وہ مر گیا تو غاصب ضامن ہے پس اُس کی مددگار برادری پر دیت واجب ہوگی اور دیوار کی صورت میں اگر غاصب دیوار کے مالک کو دیوار توڑنے کے واسطے پہلے اعلام کر چکا ہے (۳) تو عاقلہ غاصب کو مالک دیوار سے واپس لینے کا اختیار ہو گا اور اگر اس کو کسی نے عمداً قتل کیا تو اولیا مغصوب کو اختیار ہوگا چاہیں قاتل کو قصاصاً قتل کریں اور غاصب بری ہو جائے گا یا غاصب کو ضامن قرار دے کر اُس کی مددگار برادری سے دیت لے لیں پھر غاصب کی مددگار برادری مال ضمان قاتل سے واپس لے گی مگر اُس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ قاتل کو قصاصاً قتل کرے یہ سراج الوہاج میں ہے۔

اگر آزاد نابالغ کو غصب کیا پھر وہ غرق ہو گیا یا جل گیا تو غاصب ضامن ہوگا اور اگر خود قضا سے مر گیا تو ضامن نہ ہوگا یہ خزانہ المفتین میں ہے اور اگر نابالغ نے خود اپنے تئیں قتل کر لیا تو اُس کی دیت غاصب کی مددگار برادری پر ہوگی اور اُس کی مددگار برادری نابالغ کی مددگار برادری سے واپس نہیں لے سکتی ہے اور اسی طرح اگر اُس نابالغ نے اپنے بدن کے کسی عضو

پر مثل ہاتھ یا پاؤں وُاس کے اشباہ کے جنایت کی (۴) تو بھی یہی حکم ہے اور اسی طرح اگر جانور سواری پر سوار ہو کر اپنے تئیں اُس پر سے گرا دیا تو بھی یہی حکم ہے اور یہ سب امام ابو یوسف کا قول ہے اور امام محمد نے فرمایا کہ نابالغ کی اپنے نفس پر جنایت کرنے سے غاصب پر ضمان نہیں ہے یہ محیط میں ہے اور اگر غاصب کے پاس نابالغ نے کسی شخص کو قتل کیا پھر غاصب نے وہ نابالغ اُس کے باپ کو واپس دیا پھر نابالغ کی مددگار برادری نے شخص مقتول کی دیت ادا کی تو اُس کی مددگار برادری کو غاصب سے کچھ واپس لینے کا اختیار نہ ہوگا یہ سراج الوہاج میں ہے اگر کسی نے ایک غلام جس کے ساتھ اُس کے مولیٰ کا مال ہے غصب کیا تو وہ شخص مال کا بھی غاصب ہو جائے گا حتیٰ کہ اگر غلام بھاگ گیا تو غاصب اُس مقدار مال اور قیمت غلام کا ضامن ہوگا اور اگر کسی نے آزاد کو غصب کیا اور اُس کے تن پر کپڑے موجود ہیں تو بدیں وجہ کہ مغصوب اُس کے قبضہ میں ہے اُس کے کپڑوں کی ضمان غاصب پر واجب نہ ہوگی لیکن اگر بجائے آزاد کے غلام کو غصب کیا اور اُس پر لباس ہے تو مثل اُس کے عین کے اُس کے لباس کا بھی ضامن ہو گا اور اُس کے پاس لباس کی ضمان اُس کے عین کی ضمان کی تابع ہو گی یہ فصول عمادیہ میں ہے۔

اور اگر مغصوب مملوک مدبر ہو اور وہ غاصب کے پاس سے بھاگ گیا تو غاصب اُس کی قیمت کا ضامن ہو گا اس لیے کہ مدبر بسبب غصب کے مضمون ہوتا ہے لیکن ادائے ضمان سے غاصب اُس کا مالک نہ ہو جائے گا حتیٰ کہ اگر وہ ظاہر ہو جائے تو اس کے مولیٰ کو واپس کر کے اپنی قیمت واپس کر لے اور غاصب کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ اپنی قیمت وصول کرنے کی غرض سے اُس کو روک رکھے یہ شرح طحاوی میں ہے ایک شخص نے ایک مدبر کو غصب کیا کہ جس کی قیمت ایک ہزار اور ہم تئیں پھر اُس کے پاس بڑھ کر دو ہزار درہم ہو گئی پھر اس سے دوسرے شخص نے غصب کر لیا پھر وہ دوسرے کے پاس سے بھاگ گیا یا مر گیا تو مالک کو اختیار ہوگا

کہ دونوں میں سے جس سے [۱] مضمون یعنی مدبر وہ غلام کہ جس کو کہہ دیا کہ میری موت کے بعد آزاد ہے تو اب بھی یہ محض مال نہ رہا بلکہ ایک وجہ سے اس میں حق آزادی ہے لیکن غصب کرنے سے اس کی ضمان لازم آتی ہے۔ (۱) اس لیے کہ اتلاف متحقق نہ ہوا۔ (۲) خطا سے قتل کیا۔ (۳) اُس کو ڈھائے کہ یہ مرض سقوط میں ہے۔ (۴) مثلاً اپنا ہاتھ کاٹ ڈالا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 128 Kitab al-Ghasb (The Book of Unlawful Seizure)**

Whether one takes the indemnity of the value at the time of seizure; that is, if one wishes, they may take one thousand Dirhams as indemnity from the first usurper, and that first usurper shall recover two thousand Dirhams from the second one. However, out of that, one thousand is lawful (halal) for him, and he should give the remaining one thousand Dirhams as charity. Then, if the person turns out to be a *Madabbir* (a slave to be freed upon the master's death), they shall return to the ownership of the master, and it will be mandatory for the master to return the one thousand Dirhams to the first usurper, and it will be mandatory for the first usurper to return the two thousand Dirhams to the second one. If the master chose to take liability from the first one, and after this choice but before receiving the full amount, the *Madabbir* returned to the possession of the second usurper and died while with him, the second one shall not be liable. This is because the second usurper was absolved of the liability of seizure as soon as the master chose to take indemnity from the first one, and no subsequent refusal was found on his part. However, if the master had demanded the return of the slave and he refused, and then the slave died, the second one shall be liable because refusing to return to the owner constitutes a new act of seizure (*Ghasb*). Similarly, if the second person killed the slave by mistake, the same ruling applies. Thus, the master will have the choice to return the one thousand Dirhams to the first one and take two thousand Dirhams as blood money (*Diyat*) from the supporting kin (*Aqila*) of the second one. If the master had not yet held the first one liable until the second one killed him, and then he held the first one liable, whether he knew about the second's act of killing or not, the second one shall be absolved, and the first one will have the choice to either take the indemnity for seizure from the second one or take the indemnity for the offense from the second's supporting kin. This is mentioned in *Al-Kafi*.

If someone seized an *Umm al-Walad* (a female slave who has borne her master a child) and she died in his possession, then according to Imam al-A’zam (Abu Hanifa), if she died a natural death, the usurper shall not be liable. But if she died due to a cause that would necessitate liability in the case of a free minor, the usurper shall immediately be liable for her value from his own property. This is because an *Umm al-Walad* is more deserving of being subject to liability than a free minor, as her status as "property" (*Mal*) is more primary compared to a free minor. And if someone seized

a *Madabbira* female slave and she died in his possession, he shall be liable for her value; this is in *Siraj al-Wahhaj*.

**Chapter Fourteen: On Miscellaneous Matters**

If a usurper sold the seized item to someone and the owner gave permission for the sale, the permission shall be valid, provided the conditions for permission are met. These conditions are that the seller, the buyer, and the subject matter of the contract (*Ma'qud Alayh*) must still exist, and the permission must be given before any litigation (*Khusumat*); this is according to Imam al-A'zam. According to the *Zahir al-Riwayah*, the continued existence of the price (*Thaman*) is not a condition when the sale occurred in exchange for Dirhams and Dinars. If the owner engaged in litigation with the usurper and requested the judge (*Qadi*) to decree the ownership in his name and then gave permission for the sale, such permission is not valid according to the view of Imam al-A'zam. This was similarly mentioned by Shams al-A'immah al-Halwani and Shaykh al-Islam Khwaharzada. However, Shams al-A'immah al-Sarakhsi mentioned in his commentary that according to the *Zahir al-Riwayah*, the permission is valid. Therefore, if the existence of the sold item (*Mabi'*) is unknown at the time of permission—for example, if the slave ran away from the buyer—it is mentioned in the *Zahir al-Riwayah* that the permission is valid. If the usurper took possession of the price and it was lost while with him, this statement requires reflection because the liability for a free child is not due to property value but due to the offense (*Jinayat*). The answer could be that it was analogized with seizure (*Ghasb*) because both involve exceeding limits and transgression. Thus, it was preferable that his essence leans towards property value along with the existence of the offense.

चाहे वह ग़सब (अवैध कब्ज़े) के समय की कीमत का हर्जाना ले, यानी यदि वह चाहे तो पहले ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाले) से एक हज़ार दिरहम हर्जाना ले और वह (पहला ग़ासिब) दूसरे से दो हज़ार दिरहम वापस ले लेगा, लेकिन उसमें से एक हज़ार उसके लिए हलाल और पाक हैं और बाकी एक हज़ार दिरहम वह दान कर दे। फिर अगर वह मदब्बिर (ऐसा गुलाम जिसे स्वामी की मृत्यु पर स्वतंत्र किया जाना हो) प्रकट हुआ, तो वह स्वामी के स्वामित्व में वापस लौट आएगा और स्वामी पर यह अनिवार्य होगा कि वह पहले ग़ासिब को उसके एक हज़ार दिरहम वापस कर दे, और पहले ग़ासिब पर यह अनिवार्य होगा कि वह दूसरे को उसके दो हज़ार दिरहम वापस कर दे। फिर यदि स्वामी ने पहले ग़ासिब से हर्जाना लेना चुना और इस चुनाव के बाद धन की प्राप्ति से पहले वह मदब्बिर दूसरे ग़ासिब के कब्ज़े में वापस आ गया और उसके पास मर गया, तो दूसरा ग़ासिब ज़िम्मेदार नहीं होगा। क्योंकि दूसरा व्यक्ति ग़सब के हर्जाने से तभी मुक्त हो गया था जब स्वामी ने पहले वाले से हर्जाना लेने का फैसला किया था और उसके बाद उसकी ओर से कोई रुकावट नहीं पाई गई थी। यहाँ तक कि यदि स्वामी ने उससे (गुलाम) माँगा हो और उसने देने से इंकार किया हो और फिर वह गुलाम मर गया हो, तो दूसरा व्यक्ति ज़िम्मेदार होगा क्योंकि स्वामी को देने से इंकार करना नए सिरे से ग़सब (अवैध कब्ज़ा) है। और इसी प्रकार यदि दूसरे ने उसे गलती से मार दिया हो, तो भी यही हुक्म है। तब स्वामी के पास यह विकल्प होगा कि पहले को उसके एक हज़ार दिरहम वापस करके दूसरे की मददगार बिरादरी (आक़िला) से दो हज़ार दिरहम दीयत (रक्त मूल्य) के रूप में ले ले। और यदि स्वामी ने पहले वाले को अभी तक ज़िम्मेदार नहीं ठहराया था यहाँ तक कि दूसरे ने उसे मार दिया, फिर उसने पहले वाले को ज़िम्मेदार ठहराया, चाहे वह दूसरे द्वारा की गई हत्या के बारे में जानता हो या नहीं, तो दूसरा व्यक्ति (ज़िम्मेदारी से) मुक्त हो जाएगा और पहले वाले को यह अधिकार होगा कि चाहे तो दूसरे से ग़सब का हर्जाना ले ले या दूसरे की मददगार बिरादरी से अपराध का हर्जाना ले। यह 'अल-काफी' में लिखा है।

यदि किसी ने 'उम्मुल-वल्द' (वह दासी जिसने स्वामी की संतान को जन्म दिया हो) का अपहरण किया और वह उसके पास मर गई, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) के अनुसार यदि वह अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मरी है, तो ग़ासिब उसका ज़िम्मेदार नहीं होगा। और यदि वह किसी ऐसे कारण से मरी जिससे नाबालिग स्वतंत्र बच्चे की स्थिति में हर्जाना अनिवार्य होता है, तो ग़ासिब तत्काल अपने धन से उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा। क्योंकि उम्मुल-वल्द हर्जाने के मामले में नाबालिग स्वतंत्र बच्चे

की तुलना में अधिक हक़दार है, क्योंकि नाबालिग स्वतंत्र बच्चे की तुलना में उसका 'संपत्ति' (माल) होना अधिक प्राथमिकता रखता है। और यदि किसी ने 'मदब्बिर' दासी का अपहरण किया और वह उसके पास मर गई, तो वह उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा। यह 'सिराज अल-वहाज' में दर्ज है।

## चौदहवाँ अध्याय: विविध मामलों में

यदि ग़ासिब ने छीनी हुई वस्तु किसी व्यक्ति को बेच दी और स्वामी ने उस बिक्री की अनुमति दे दी, तो अनुमति वैध होगी बशर्ते कि उस अनुमति में आवश्यक शर्तें पाई जाएँ। वे शर्तें ये हैं कि विक्रेता, खरीदार और बेची गई वस्तु (मऊक़ूद अलैह) मौजूद हों और यह अनुमति विवाद (मुकदमेबाजी) से पहले दी गई हो; यह इमाम-ए-आज़म के अनुसार है। ज़ाहिर अल-रिवाया के अनुसार, कीमत (थमन) की मौजूदगी शर्त नहीं है जब बिक्री दिरहम और दीनार के बदले हुई हो। और यदि स्वामी ने ग़ासिब के साथ विवाद किया और न्यायाधीश (काज़ी) से अनुरोध किया कि मेरे नाम स्वामित्व की डिक्री जारी कर दी जाए, फिर बिक्री की अनुमति दी, तो इमाम-ए-आज़म के कथन के अनुसार ऐसी अनुमति वैध नहीं है। ऐसा ही शम्सुल-अइम्मा हलवानी और शैख़ुल-इस्लाम ख़्वाहरज़ादा ने उल्लेख किया है। और शम्सुल-अइम्मा सरख़सी ने अपनी व्याख्या में उल्लेख किया है कि ज़ाहिर अल-रिवाया के अनुसार अनुमति वैध है। अतः यदि अनुमति के समय बेची गई वस्तु की स्थिति अज्ञात हो, उदाहरण के लिए वह गुलाम खरीदार के पास से भाग गया हो, तो ज़ाहिर अल-रिवाया में उल्लेख है कि अनुमति वैध है। और यदि ग़ासिब ने कीमत पर कब्ज़ा कर लिया और वह उसके पास नष्ट हो जाए, तो इस कथन में विचार करने की आवश्यकता है क्योंकि एक स्वतंत्र बालक के लिए ज़िम्मेदारी उसकी मालियत (कीमत) के कारण नहीं बल्कि अपराध (जिनायत) के कारण होती है। यह उत्तर हो सकता है कि इसे ग़सब पर आधारित माना गया क्योंकि सीमा उल्लंघन और ज़्यादती दोनों में मौजूद है। तो बेहतर यह था कि उसका अस्तित्व अपराध की उपस्थिति के साथ-साथ मालियत (संपत्ति होने) की ओर झुका हुआ है।

---

چاہے اس کے وقت غصب کی قیمت تاوان لے یعنی چاہے تو غاصب اول سے ایک ہزار درہم تاوان لے اور وہ دوسرے سے دو ہزار درہم واپس لے لے گا مگر اُس میں سے ایک ہزار اُس کو حلال طیب ہیں اور باقی ایک ہزار درہم صدقہ کردے پھر اگر وہ مدبر ظاہر ہوا تو ملک مولیٰ میں عود کرے گا اور مولیٰ پر واجب ہوگا کہ غاصب اول کو اُس کے ہزار درہم واپس کردے اور غاصب اول پر واجب ہوگا کہ دوسرے کو اُس کے دو ہزار درہم واپس کردے ۔ پھر اگر مولیٰ نے اول سے ضمان لینا اختیار کیا اور بعد اختیار کے قبل استیفاء مال کے وہ مدبر دوسرے غاصب کے قبضہ میں عود کر آیا اور اُس کے پاس مر گیا تو دوسرا ضامن نہ ہوگا کیونکہ دوسرا اُس کے ضمان غصب سے جبھی بری ہو گیا کہ جب مولیٰ نے اول سے ضمان لینا اختیار کیا اور پھر اس کے بعد اُس کی طرف سے منع نہیں پایا گیا حتیٰ کہ اگر مولیٰ نے اُس سے طلب کیا ہو اور اُس نے دینے سے انکار کیا ہو اور پھر وہ غلام مر گیا تو دوسرا ضامن ہوگا اس واسطے کہ مالک کو دینے سے انکار کرنا یہ از سر نو غصب ہے اور اسی طرح اگر دوسرے نے اُس کو خطا سے قتل کیا ہو تو بھی یہی حکم ہے پس مولیٰ کو اختیار ہوگا کہ اول کو ہزار درہم اس کے واپس کر کے دوسرے کی مددگار برادری سے دو ہزار درہم تاوان دیت لے اور اگر مولیٰ نے اوّل کو ہنوز کچھ ضامن نہ کیا ہو یہاں تک کہ دوسرے نے اُس کو قتل کیا پھر اس نے اول کو ضامن کیا خواہ وہ دوسرے کے قتل کرنے کو جانتا ہو یا نہ جانتا ہو تو دوسرا بری ہو جائے گا اور پہلے کو یہ اختیار ہوگا کہ چاہے دوسرے سے ضمان غصب لے لے یا دوسرے کی مددگار برادری سے ضمان جنایت لے یہ کافی میں ہے ۔

اگر کسی نے ام ولد غصب کر لی اور وہ اُس کے پاس مرگئی تو امام اعظمؒ کے نزدیک اگر اپنی موت سے مری ہے تو غاصب اُس کا ضامن نہ ہوگا اور اگر کسی ایسے سبب سے مری جس سے نابالغ آزاد کی صورت میں ضمان واجب ہوتی ہے تو غاصب فی الحال اپنے مال سے اس کی قیمت کا ضامن ہوگا اس واسطے کہ ام ولد مضمون ہونے میں بنسبت نابالغ آزاد کے احق ہے اس لیے کہ اُس کا مال ہونا بہ نسبت نابالغ آزاد کے اولیٰ ہے اور اگر کسی نے مدبرہ باندی کو غصب کیا اور وہ اس کے پاس مرگئی تو اُس کی قیمت کا ضامن ہوگا یہ سراج الوہاج میں ہے ۔

**باب چودہم: متفرقات میں**

اگر غاصب نے مغصوب کو کسی شخص کے ہاتھ فروخت کیا اور مالک نے اس کے بیع کی اجازت دے دی تو اجازت صحیح ہو جائے گی بشرطیکہ اس اجازت میں شرائط اجازت پائی جائیں اور وہ شرائط یہ ہیں کہ بائع و مشتری و معقود علیہ قائم ہوں اور یہ کہ اجازت قبل خصومت کے ہو یہ امام اعظمؒ کے نزدیک ہے اور موافق ظاہر الروایہ کے قیام ثمن شرط نہیں ہے جب کہ دو بیع بعوض دراہم و دینار کے واقع ہوئی ہو اور اگر مالک نے غاصب کے ساتھ خصومت کر کے قاضی سے درخواست کی کہ میرے نام ملک کی ڈگری فرمادے پھر بیع کی اجازت دی تو امام اعظم کے قول پر ایسی اجازت صحیح نہیں ہے ایسا ہی شمس الائمہ حلوانی و شیخ الاسلام خواہر زادہ نے ذکر فرمایا ہے اور شمس الائمہ سرخسی نے اپنی شرح میں ذکر فرمایا کہ موافق ظاہر الروایہ کے اجازت صحیح ہے پس اگر وقت اجازت کے قیام مبیع معلوم نہ ہو مثلاً وہ غلام مشتری کے پاس سے بھاگ گیا تو ظاہر الروایہ میں مذکور ہے کہ اجازت صحیح ہے اور اگر غاصب نے ثمن پر قبضہ کر لیا اور وہ اُس کے پاس تلف ہو جائے تو قول اس میں تامل ہے کیونکہ طفل آزاد کا مضمون ہونا بوجہ مالیت نہیں بلکہ بوجہ جنایت ہے ۔ یہ جواب ہوسکتا ہے کہ غصب پر قیاس کیا گیا

کیونکہ حد سے تجاوز و تعدی دونوں میں موجود ہے تو اولیٰ یہ تھا کہ اس کا نفس مائل بمالیت ہے مع وجود جرم کے ۔

---

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 Kitab al-Ghasab (The Book of Usurpation/Seizure) Page 149**

...Then the owner granted permission for the sale, thus the price (thaman) that was lost is considered the owner's property that has gone to waste (*hadar*). The reason being that permission granted at the conclusion is regarded as permission from the beginning; this is mentioned in *Al-Muheet*. If a usurper (*ghasib*) becomes the owner of the usurped property from the side of the original owner through sale, gift, or inheritance, and then sells it to another, the sale shall be void (*batil*). This is because absolute ownership (*mulk-e-qatai*) superseded the suspended ownership (*mulk-e-mowquf*); this is in *Al-Khulasa*.

If a person says to another, "Travel by this path as it is safe," and he takes that path and is caught by robbers (*lusoos*), the one who pointed out the path shall not be held liable (*zamin*). However, if the one pointing out the path said, "If this path proves dangerous and your goods are snatched, I am liable," and the situation remains as such, then he shall be liable. Thus, the rule in this category of issues is that the right to liability for the one deceived against the deceiver is established only when this matter occurs within a contract of exchange (*aqd-e-muawiza*) or if the deceiver explicitly guarantees safety. Similarly, if someone says to another, "Eat this food for it is wholesome (*tayyib*)," and it turns out to be poisoned, he shall not be liable; this is in *Al-Muheet*.

A person loaded a burden onto another's animal without permission, until the animal's legs became swollen. The owner then incised them (for treatment). Faqih Abu al-Layth stated that one should wait; if the wound heals (*mundamil*), no liability (*zaman*) is due from anyone. If harm persists, and if it is due to the incision, the ruling remains the same; if it is due to the swelling, the usurper shall be liable. Similarly, if the animal dies, the same ruling applies. If the two parties disagree, the statement of the person who used the animal shall be accepted upon oath. If he takes the oath, he shall be absolved from the compensation of the animal but not from the liability of the damage; this is in *Fatawa Qazi Khan*.

A person has a tree standing on his property whose branches have grown out towards his neighbor’s side. If the neighbor wishes to cut them to clear his airspace (*hawa-e-faza*), he has the authority to do so. This was mentioned by Imam Muhammad (may Allah have mercy on him). Sheikh al-Natifi states in his *Waqi'at* that the apparent wording of Imam Muhammad suggests the neighbor has the authority

to cut them without the permission of a judge (*Qazi*). Some have stated there are two scenarios: if clearing the space is possible by pulling the branches back towards the tree and tying them with a rope, the neighbor may not cut them. If he does cut them, he shall be liable, but he may demand the tree owner to pull and tie the branches. If there is a dispute, the Qazi shall mandate this upon the owner. Similarly, if some branches can be tied back, he may not cut those specific branches. In any case, if clearing the space is impossible without cutting, it is preferable to inform the tree owner so he may cut them or grant permission. If he refuses after being informed, the matter should be brought before the Qazi so the judge may compel him to cut them. If the neighbor did none of these things and initially cut the branches himself, then if they were cut from a place where the cutting does not harm the owner's interests more than elsewhere, he shall not be liable. This was similarly mentioned by Sheikh al-Islam in *Sharh Kitab al-Sulh*. Shams al-A'imma al-Halwani also mentioned in *Sharh Kitab al-Sulh* that when a neighbor intends to cut them, he may only cut within his own property and does not have the authority to enter the neighbor's garden (*bustaan*) to cut the branches. The author states that our scholars have said the authority to cut from one's own side exists only if the harm from cutting from one's own side is perceived to be the same as cutting from the owner's side. If cutting from the owner's side causes less harm, the neighbor may not cut them but must present the case to the Qazi so the judge can order the owner to cut them. Then if he disputed [1]...

**Footnotes:** 1- Overflowed / Filled up. 2- *Hawa-e-Faza* refers to open field or airspace; *Tafreegh* means to vacate or clear.

**फतावा आलमगिरी ..... खंड 8 किताब-अल-ग़सब (हड़पने/अनाधिकृत कब्जे की किताब) 149**

...गया फिर मालिक ने बिक्री (बय) की अनुमति दे दी, तो वह नष्ट हुई कीमत (थमन) मालिक का धन माना जाएगा और वह व्यर्थ (हदर) जाएगा, क्योंकि अंत में दी गई अनुमति प्रारंभ से ही अनुमति के समान मानी जाती है, यह 'मुहीत' में है। और यदि हड़पने वाला (ग़ासिब), हड़पी गई संपत्ति के मालिक की ओर से बिक्री, उपहार या उत्तराधिकार के माध्यम से बाद में दूसरे के हाथ उसे बेचने का मालिक बन गया, तो वह बिक्री शून्य (बातिल) हो जाएगी, क्योंकि पूर्ण स्वामित्व (मिल्क-ए-क़तई) निलंबित स्वामित्व (मिल्क-ए-मौक़ूफ़) पर प्रभावी हो गया, यह 'खुलासा' में वर्णित है।

यदि एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा कि तुम इस रास्ते से चले जाओ क्योंकि यह सुरक्षित है, और वह उसी रास्ते से गया और रास्ते में उसे लुटेरों (चोरों) ने पकड़ लिया, तो रास्ता बताने वाला उत्तरदायी (ज़ामिन) नहीं होगा। और यदि रास्ता बताने वाले ने इस तरह कहा कि "यदि यह रास्ता भयानक निकला और तुम्हारा माल छिन गया तो मैं ज़िम्मेदार हूँ", और बाकी मामला वैसा ही रहा तो वह ज़िम्मेदार होगा। अतः इस श्रेणी के मामलों में नियम यह है कि धोखे के कारण धोखा खाने वाले का क्षतिपूर्ति का अधिकार धोखा देने वाले पर तभी सिद्ध होता है जब यह मामला किसी विनिमय अनुबंध (अक़्द-ए-मुआविज़ा) के अंतर्गत हो या स्पष्ट रूप से धोखा देने वाला उसकी सुरक्षा की गारंटी ले। इसी तरह, यदि किसी ने दूसरे से कहा कि "यह खाना खा लो क्योंकि यह शुद्ध (तय्यब) है" और वह ज़हरीला निकला, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है।

एक व्यक्ति ने दूसरे के पशु की पीठ पर उसकी अनुमति के बिना बोझ लाद दिया, यहाँ तक कि पशु के पैरों में सूजन आ गई। फिर मालिक ने उन्हें चीर दिया (इलाज के लिए), तो फकीह अबुल्लैथ ने फरमाया कि प्रतीक्षा की जाए; यदि घाव भर जाता है तो किसी पर कोई ज़िम्मेदारी (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगी। और यदि क्षति बनी रही, तो यदि वह चीरने के कारण हुई तो भी यही नियम है, और यदि वह सूजन के कारण रही तो हड़पने वाला ज़िम्मेदार होगा। इसी प्रकार यदि पशु मर गया तो भी यही नियम है। और यदि दोनों ने विवाद किया, तो शपथ के साथ उस व्यक्ति का कथन स्वीकार किया जाएगा जिसने पशु का उपयोग किया है; यदि उसने शपथ ले ली तो वह पशु की कीमत चुकाने से मुक्त हो जाएगा, लेकिन क्षति की ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं होगा, यह 'फतावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

एक व्यक्ति के एक पेड़ से, जो उसकी अपनी भूमि पर स्थित है, शाखाएं निकलकर पड़ोसी की तरफ चली गईं। पड़ोसी ने चाहा कि अपने हवाई क्षेत्र को साफ करने के लिए उन्हें काट दे, तो उसे ऐसा अधिकार है। ऐसा ही इमाम मुहम्मद (रह.) ने उल्लेख किया है और शेख नातिफ़ी अपने 'वाक़ियात' में फरमाते हैं कि इमाम मुहम्मद (रह.) के शब्दों का स्पष्ट अर्थ यह है कि पड़ोसी को न्यायाधीश (क़ाज़ी) की अनुमति के बिना भी काटने का अधिकार प्राप्त है। कुछ विद्वानों ने फरमाया कि इसकी दो स्थितियाँ हैं: यदि शाखाओं को पेड़ की ओर खींचकर रस्सी से बांधने से हवाई क्षेत्र खाली करना संभव हो, तो पड़ोसी उन्हें काट नहीं सकता। यदि वह काटता है तो वह ज़िम्मेदार होगा, लेकिन वह पेड़ के मालिक से मांग करेगा कि वह शाखाओं को पेड़ की ओर खींचकर अपनी रस्सी से बांध दे। यदि उसने विवाद किया, तो क़ाज़ी उसके लिए यह अनिवार्य कर देगा। इसी प्रकार यदि कुछ शाखाओं को पेड़ की ओर खींचकर बांध देना संभव हो, तो वह ऐसी शाखाओं को नहीं काट सकता। बहरहाल, यदि शाखाओं को काटे बिना हवाई क्षेत्र खाली करना संभव न हो, तो बेहतर यह है कि पेड़ के मालिक को सूचित किया जाए कि वह शाखाओं को काट दे या उन्हें काटने की अनुमति दे दे। यदि सूचित करने पर उसने इनकार किया, तो इस मामले को क़ाज़ी के सामने पेश किया जाए ताकि क़ाज़ी उसे काटने के लिए मजबूर करे। और यदि पड़ोसी ने इनमें से कुछ नहीं किया बल्कि सीधे खुद ही शाखाएं काट दीं, तो यदि वे ऐसी जगह से काटी गई हैं जहाँ से काटना मालिक के हित में अधिक लाभदायक नहीं है, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। शेखुल इस्लाम ने 'शराह किताबुल सुलह' में ऐसा ही उल्लेख किया है। शम्सुल अइम्मा हलवाई ने भी 'शराह किताबुल सुलह' में उल्लेख फरमाया है कि जब पड़ोसी ने उन्हें काटने का इरादा किया, तो वह केवल अपनी निजी संपत्ति की सीमा में ही काट सकता है और उसे यह अधिकार नहीं होगा कि वह पड़ोसी के बगीचे (बुस्तान) में जाकर शाखाएं काटे। लेखक फरमाते हैं कि हमारे शिक्षकों (मशायख़) ने फरमाया कि अपनी ओर से काटने का अधिकार तभी होगा जब अपनी तरफ से काटने में उतना ही नुकसान माना जाए जितना मालिक की ओर से काटने में है। और यदि मालिक की ओर से काटने में कम नुकसान हो, तो पड़ोसी उन्हें नहीं काट सकता, बल्कि वह क़ाज़ी के सामने मामला पेश करेगा ताकि क़ाज़ी मालिक को उन्हें काटने का आदेश दे। फिर यदि उसने झगड़ा किया १...

**फुटनोट्स:** १- भर आए। २- 'हवा-ए-फ़ज़ा' का अर्थ है खुला मैदान या हवाई क्षेत्र; 'तफरीग़' का अर्थ है खाली करना।

---

... گیا پھر مالک نے بیع کی اجازت دے دی تو وہ ثمن تلف شدہ مالک کا مال گیا ہدر ہے وجہ کہ اجازت انتہا میں ابتداء سے اجازت کے اعتبار میں ہے یہ محیط میں ہے اور اگر غاصب مال مغصوب کا مغصوب منہ کی طرف سے بسبب بیع یا ہبہ یا ارث کے بعد دوسرے کے ہاتھ اُس کے فروخت کرنے کے مالک ہوا تو بیع باطل ہو جائے گی بسبب اُس کے کہ ملک قطعی ملک موقوف پر طاری ہوئی یہ خلاصہ میں ہے۔

اگر ایک شخص نے دوسرے سے کہا کہ تو اس راہ سے چلا جا کہ یہ مامون ہے پس وہ اسی راستہ سے گیا اور راہ میں اُس کو لصوص (چوروں) نے پکڑا تو راہ بتلانے والا ضامن نہ ہو گا اور اگر راہ بتلانے والے نے یوں کہا کہ اگر یہ راستہ خوفناک نکلا اور تیرا مال چھن گیا تو میں ضامن ہوں اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو ضامن ہو گا پس اس جنس کے مسائل میں قاعدہ یہ ہوا کہ فریب کی وجہ سے دھوکا کھانے والے کا حق ضمان دھوکا دینے والے پر جب ہی ثابت ہوتا ہے کہ یہ امر کسی عقد معاوضہ کے ضمن میں واقع ہو یا صریحا دھوکا دینے والا بضمانت اُس سے سلامتی کو بیان کرے اور اسی طرح اگر اُس نے دوسرے سے کہا کہ تو یہ کھانا کھالے کہ یہ طیب ہے پس وہ زہر ملا ہوا نکلا تو ضامن نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کے جانور کی پیٹھ پر بدون اُس کی اجازت کے بار لاد دیا یہاں تک کہ جانور کے پاؤں ورم کر گئے پس مالک نے اُن کو چیرا تو فقیہ ابواللیث نے فرمایا کہ انتظار کیا جائے پس اگر جراحت مندمل ہو جائے تو کسی پر ضمان واجب نہ ہو گی اور اگر نقصان رہا پس اگر چیرنے سے رہا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر ورم سے رہا تو غاصب ضامن ہو گا اسی طرح اگر جانور مر گیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر دونوں نے اختلاف کیا تو قسم کے ساتھ اُس شخص کا قول قبول ہو گا جس نے جانور سے کام لیا ہے

پس اگر قسم کھا گیا تو جانور کے تاوان سے بری ہو جائے گا مگر ضمان نقصان سے بری نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص کے ایک درخت سے جو اُس کی ملک میں قائم ہے شاخیں پھوٹ کر پڑوسی کی طرف گئیں پس پڑوسی نے چاہا کہ اپنی ہوائے فضا۲ صاف کرنے کے واسطے اُن کو قطع کرے تو اُس کو ایسا اختیار ہے ایسا ہی امام محمدؒ نے ذکر فرمایا اور شیخ ناطفی اپنے واقعات میں فرماتے ہیں کہ ظاہر لفظ امام محمدؒ اس امر کو مفید ہے کہ پڑوسی کو بدوں اجازت قاضی کے قطع کرنے کی ولایت حاصل ہے اور بعض نے فرمایا کہ اس کی دو صورتیں ہیں کہ اگر تفریغ ہوا شاخوں کے درخت کی جانب کھینچ کر رسی سے باندھنے سے ممکن ہو تو پڑوسی قطع نہیں کر سکتا ہے اور اگر قطع کرے گا تو ضامن ہو گا لیکن مالک درخت سے طالب ہو گا کہ شاخیں درخت کی طرف کھینچ کر اپنی رسی سے باندھ دے اور اگر اُس نے جھگڑا کیا تو قاضی اُس کے ذمہ یہ امر لازم کرے گا اور اسی طرح اگر بعض شاخوں کا درخت کی طرف کھینچ کر باندھ دینا ممکن ہو تو ایسی شاخوں کو نہیں قطع کر سکتا ہے بہرحال اگر تفریغ ہوا بدون کاٹنے شاخوں کے ممکن نہ ہو تو اولیٰ یہ ہے کہ مالک درخت کو خبر کرے کہ وہ شاخوں کو کاٹ دے یا اُس کو کاٹنے کی اجازت دے دے اور اگر آگاہی پر اُس نے انکار کیا تو یہ امر قاضی کے سامنے پیش کرے تاکہ قاضی اس کو کاٹ ڈالنے پر مجبور کرے اور اگر پڑوسی نے ان باتوں میں سے کچھ نہ کیا بلکہ ابتداءً خود ہی شاخیں کاٹ ڈالیں پس اگر ایسی جگہ سے کاٹی ہیں کہ اُس جگہ سے لوشی یا پینچی کاٹنا مالک کے حق میں مفید تر نہیں ہے تو ضامن نہ ہو گا ایسا ہی شیخ الاسلام نے شرح کتاب الصلح میں ذکر کیا ہے اور شمس الائمہ حلوائی نے بھی شرح کتاب الصلح میں ذکر فرمایا کہ جب پڑوسی نے اُن کے کاٹنے کا قصد کیا تو فقط اپنی ذاتی ملک میں کاٹ سکتا ہے اور اُس کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ اپنے پڑوسی کے بستان میں جا کر شاخوں کو کاٹے مصنف فرماتے ہیں کہ ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ اپنی جانب سے اُس کو کاٹنے کا اختیار جب ہی ہو گا کہ جب

اپنی طرف سے کاٹنے میں ویسا ہی ضرر منصور ہو جیسا مالک کی طرف سے جا کر کاٹنے میں ہے اور اگر مالک کی طرف سے کاٹنے میں کم ضرر ہو تو پڑوسی اُن کو نہیں کاٹ سکتا ہے مگر اُس کو قاضی کے سامنے پیش کرے گا تاکہ قاضی مالک کو اُن کے کاٹنے کا حکم کرے پس اگر اُس نے جھگڑا کیا ۱

**حواشی:** ۱؎ بھر آئے ۔ ۲؎ ہوائے فضا میدان خالی تفریغ فارغ و خالی کرنا۔

And if [the owner] refused to cut [the branches], the Judge (Qazi) will appoint a deputy and send him so that he may prune them on behalf of the tree's owner. Furthermore, let it be clear that in a situation where the neighbor is not held liable for cutting them, if the neighbor cuts them himself, he cannot recover any expenses incurred for the cutting from the tree owner. This is in *al-Muhit*.

A person had placed beams on a neighbor's wall in such a way that their ends protruded, and it was evident from the condition of the wall that it could not bear such a load. Consequently, the owner of the wall cut them. If the owner of the beams had been warned to remove them or they would be cut, then [the wall owner] will not be liable. This is in *Khizanat al-Muftin*. Zayd usurped a cloth from 'Amr, cut it into a shirt, and sewed it. Then Khalid established a rightful claim to that shirt and took it. In this case, 'Amr will recover the price of the cloth from Zayd as compensation. Similarly, if wheat was usurped and ground into flour, and then Khalid took the flour by establishing a rightful claim, 'Amr will take the equivalent of his wheat from Zayd. Likewise, if meat was usurped and roasted, and then Khalid took the roasted meat by right, 'Amr can still recover the price of his meat from Zayd. However, if Khalid produced witnesses to prove that "this cloth was mine before it was sewn," or "this wheat was mine before it was ground," or "this meat was mine before it was roasted," then the person from whom it was usurped (the *magsūb minhu*), i.e., 'Amr, will have no right to claim compensation from Zayd. This is in *al-Muhit*. If someone usurps a cloth and cuts it but does not sew it, or usurps a goat and slaughters it, such that the owner's right to the usurped property is not terminated, and then another person takes it by establishing a rightful claim, the usurper (ghasib) is absolved of liability. This is in *Fusul al-'Imadiyya*.

A servant was carrying his master's water jug towards his master's house with his master's permission. Then, without permission, a person gave the jug to the servant and told him, "Fill this with water from the tank and bring it for me." If the servant died on the way, this person will be liable for the full price of the servant because his task superseded the servant's original task for his master; thus, the servant became "usurped" by him. This is in *Khizanat al-Muftin*. If a Muslim usurps and destroys a *mautūzah* (an animal killed by a blow or strangulation) belonging to a Magian (Majusi), Santāqī has explicitly stated that the Muslim will be liable, and this is the correct view. This is in *Jawahir al-Akhlati*. A person cut his tree, and its roots became embedded under the foundation of another person's building. If the building owner

prevents him from cutting the roots, the tree owner will be liable for the roots of his tree. This is in *al-Multaqit*. A person usurped two eggs, placed one under a hen, and another hen took the other egg of her own accord. Two chicks hatched. Both chicks belong to the usurper, and he is liable for the price of the two eggs. In the aforementioned case, if the eggs were an entrustment (*wadi'at*) instead of usurped, then the chick that hatched from the hen's own sitting belongs to the trustee (*mustawda'*), not the egg owner. This is in *Wajiz al-Kardari*. If a person has one usurped egg and one entrusted egg, and a hen broods over them and two chicks hatch, the chick from the entrusted egg belongs to the owner of the entrustment, and the chick from the usurped egg belongs to the usurper. This is similar to a case where a person has two *qafiz* (a measure) of wheat—one entrusted and one usurped—and the wind blows them into a field where both *qafiz* sprout. The crop from the entrustment belongs to its owner, and the crop from the usurped wheat belongs to the usurper, and he must compensate the owner for the one *qafiz* of wheat. If the two chicks cannot be distinguished from each other, then for the certainty of the entrustment—that this is the chick from the entrustment—the word of the usurper will be accepted. If the usurper says, "I do not know," then neither will happen because ownership was established at the time of usurpation. (12) *Mautūzah* means a Magian killed a chicken etc. by throwing it down or strangling it; since he eats it, it is lawful for him.

और अगर काटने से इनकार किया तो क़ाज़ी एक प्रतिनिधि नियुक्त करके भेजेगा ताकि वह पेड़ के मालिक की ओर से जाकर उन्हें छाँट दे। फिर यह स्पष्ट रहे कि जिस स्थिति में पड़ोसी उनके काटने से ज़िम्मेदार नहीं ठहरता है, यदि पड़ोसी ने स्वयं उन्हें काटा तो काटने की लागत में जो कुछ भी उसका खर्च हुआ, वह पेड़ के मालिक से वापस नहीं ले सकता। यह 'मुहीत' में है।

एक व्यक्ति ने पड़ोसी की दीवार पर शहतीर इस तरह रखे हुए थे कि उनके किनारे बाहर निकले हुए थे और उस दीवार की स्थिति से स्पष्ट था कि वह इतना भार नहीं उठा सकती। तब दीवार के मालिक ने उन्हें काट दिया। अतः यदि शहतीरों के मालिक को इस तरह सूचित कर दिया गया था कि उन्हें उठा ले अन्यथा मैं काट दूँगा, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। यह 'ख़ज़ाना-अल-मुफ्तीन' में है। ज़ैद ने अम्र का कपड़ा छीनकर (ग़स्ब करके) उसकी क़मीज़ काटकर सिली, फिर उस क़मीज़ को ख़ालिद ने अपना अधिकार सिद्ध करके ले लिया, तो अम्र कपड़े की क़ीमत ज़ैद से मुआवज़े के रूप में लेगा। इसी प्रकार यदि गेहूँ छीनकर उन्हें पीसा गया, फिर ख़ालिद ने आटा अपना अधिकार सिद्ध करके ले लिया, तो अम्र अपने गेहूँ के बराबर मूल्य ज़ैद से ले लेगा। इसी प्रकार यदि मांस छीनकर उसे भूना गया और भुने हुए को ख़ालिद ने अधिकार में ले लिया, तो भी अम्र अपने मांस की क़ीमत ज़ैद से ले सकता है। और यदि ख़ालिद ने इस प्रकार गवाह पेश किए हों कि यह कपड़ा सिलने से पहले से मेरा है या ये गेहूँ पीसने से पहले से मेरे हैं या यह मांस भूनने से पहले से मेरा है, तो फिर पीड़ित (मग़्सूब मिन्हु) यानी अम्र को ज़ैद से कोई मुआवज़ा लेने का अधिकार नहीं होगा। यह 'मुहीत' में है। और यदि किसी ने एक कपड़ा छीनकर काटा लेकिन उसे सिला नहीं, या बकरी छीनकर उसे ज़ब्ह किया, यहाँ तक कि छीनी हुई संपत्ति से मालिक का अधिकार समाप्त नहीं हुआ, फिर किसी व्यक्ति ने अपना अधिकार सिद्ध करके उसे ले लिया, तो छीनने वाला (ग़ासिब) मुआवज़े से बरी हो जाएगा। यह 'फ़ुसूल-ए-इमादिया' में है।

एक ग़ुलाम पानी का लोटा अपने मालिक के घर की ओर अपने मालिक की आज्ञा से ले जा रहा था, फिर बिना आज्ञा के उसके मालिक के एक व्यक्ति ने वह लोटा उसे दिया कि मेरे लिए हौज से पानी भरकर ले चल, फिर रास्ते में वह ग़ुलाम मर गया, तो यह व्यक्ति ग़ुलाम की पूरी क़ीमत का ज़िम्मेदार होगा क्योंकि उसका काम ग़ुलाम के मालिक के काम का विकल्प (नासिख़) हो गया, अतः पूरा ग़ुलाम उसका 'मग़्सूब' (छीना हुआ) हो गया। यह 'ख़ज़ाना-अल-मुफ्तीन' में है। यदि किसी मुसलमान ने किसी पारसी (मजूसी) के'मौतूज़ह' (गला घोंटकर मारा गया जानवर) को छीनकर नष्ट कर दिया, तो

संताकी ने स्पष्ट कहा है कि मुसलमान ज़िम्मेदार होगा और यही सही है। यह 'जवाहर-अल-इख़लाती' में है। एक व्यक्ति ने अपना पेड़ काटा और उसकी जड़ें दूसरे व्यक्ति की इमारत की नींव के नीचे धँस गई हैं, फिर इमारत के मालिक ने जड़ें काटने से उसे रोका तो पेड़ का मालिक उसके पेड़ की जड़ों का ज़िम्मेदार होगा। यह 'मुल्तक़ित' में है। एक व्यक्ति ने दो अंडे छीनकर एक को एक मुर्गी के नीचे रखा और दूसरे को दूसरी मुर्गी ने स्वयं ले लिया और दोनों से दो बच्चे निकले, तो दोनों बच्चे छीनने वाले के होंगे और उसे उन दो अंडों का मुआवज़ा देना होगा। और उक्त मामले में छीनने के बजाय दोनों अंडे अमानत (वदीअत) हों, तो जो बच्चा मुर्गी के स्वयं सेने से निकला है, वह अमानतदार (मुस्तौदा) का होगा, अंडे के मालिक का नहीं होगा। यह 'वजीज़-ए-करदरी' में है। और यदि एक व्यक्ति के पास एक अंडा छीना हुआ और दूसरा अमानत का हो और उन्हें एक मुर्गी ने सेया और उनसे दो बच्चे निकले, तो अमानत वाले अंडे का बच्चा अमानत के मालिक का होगा और छीने हुए वाला बच्चा छीनने वाले का होगा। और यह उस स्थिति के समान है कि एक व्यक्ति के पास दो 'क़फ़ीज़' गेहूँ हों, एक अमानत का और एक छीना हुआ, फिर दोनों को हवा ने उड़ाकर एक ज़मीन में डाल दिया और दोनों 'क़फ़ीज़' उग आए, तो अमानत से जो फ़सल उगी वह अमानत के मालिक की और जो छीने हुए से उगी वह छीनने वाले की होगी और पीड़ित व्यक्ति को वह एक 'क़फ़ीज़' गेहूँ का मुआवज़ा देगा। फिर यदि दोनों बच्चों की एक-दूसरे से पहचान न हो, तो अमानत के प्रति विश्वास में कि यह अमानत का बच्चा है, छीनने वाले का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि छीनने वाले ने कहा कि मैं नहीं जानता, तो दोनों नहीं होगा क्योंकि छीनने की स्थिति में उसका स्वामित्व सिद्ध हुआ। (12) मौतूज़ह यानी मजूसी ने किसी मुर्गी वगैरह को पटककर या गला घोंटकर मारा था, चूँकि वह उसे खाता है तो उसके हक़ में हलाल है।

اور کاٹنے سے انکار کیا تو قاضی ایک نائب کر کے بھیجے گا تا کہ مالک درخت کی طرف سے جا کر اُن کو چھانٹ دے پھر واضح ہو کہ جس صورت میں پڑوسی اُن کے کاٹنے سے ضامن نہیں ٹھہرتا ہے اگر پڑوسی نے خود اُن کو قطع کیا تو مؤنت قطع میں جو کچھ اُس کو خرچہ پڑا وہ مالک درخت سے واپس نہیں لے سکتا ہے یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نے شہتیر پڑوسی کی دیوار پر اس طرح رکھے ہوئے تھے کہ اُن کے کنارے باہر نکلے تھے اور اُس دیوار کے حال سے ظاہر تھا کہ ایسا بار نہیں اٹھا سکتی ہے پس مالک دیوار نے اُن کو کاٹ دیا پس اگر شہتیروں کے مالک کو اس طرح آگاہ کر دیا تھا کہ اُن کو اٹھا لے ورنہ میں کاٹ ڈالوں گا تو ضامن نہ ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ زید نے عمرہ کا کپڑا غصب کر کے اُس کی قمیص قطع کر کے سی پھر اُس قمیص کو خالد نے استحقاق ثابت کر کے لے لیا تو عمر و کپڑے کی قیمت زید سے تاوان لے گا اسی طرح اگر گیہوں غصب کر کے اُن کو پیسا پھر خالد نے آٹا استحقاق ثابت کر کے لے لیا تو عمر و اپنے گیہوں کے مثل زید سے لے لے گا اسی طرح اگر گوشت غصب کر کے اُس کو بھونا اور بھونے ہوئے کو خالد نے استحقاق میں لیا تو بھی عمرو اپنے گوشت کی قیمت زید سے لے سکتا ہے اور اگر خالد نے اس طرح گواہ قائم کیے ہوں کہ یہ کپڑا سینے سے پہلے سے میرا ہے یا یہ گیہوں پینے سے پہلے سے میرے ہیں یا یہ گوشت بھونے سے پہلے سے میرا ہے تو پھر مغصوب منہ یعنی عمرو کو زید سے کچھ تاوان لینے کا اختیار نہ ہو گا یہ محیط میں ہے اور اگر کسی نے ایک کپڑا غصب کر کے قطع کیا مگر اُس کو نہیں سیا یا بکری غصب کر کے ذبح کی حتیٰ کہ مال مغصوب سے حق مالک منقطع نہیں ہوا پھر کسی شخص نے باثبات استحقاق اُس کو لے لیا تو غاصب ضمان سے بری ہو جائے گا یہ فصول عمادیہ میں ہے۔

ایک غلام پانی کا کوزہ مولیٰ کے بیت کی طرف اپنے مولیٰ کی اجازت سے اٹھائے لئے جاتا تھا پھر بغیر اجازت اُس کے مولیٰ کے ایک شخص نے کوزہ اُس کو دیا کہ میرے واسطے حوض سے پانی بھر کر اُٹھائے لیے چل پس راستہ میں وہ غلام مر گیا تو یہ شخص کل قیمت غلام کا ضامن ہو گا کیونکہ اُس کا کام غلام کے مولیٰ کے کام کا ناسخ ہو گیا پس کل غلام اُس کا مغصوب ہو گیا یہ خزانہ المفتین میں ہے اگر موتو ذ ہ " مجوسی کو کسی مسلمان نے غصب کر کے تلف کر دیا تو سنتاقی نے صریح بیان فرمایا ہے کہ مسلمان ضامن ہو گا اور یہی صحیح ہے یہ جواہر اخلاطی میں ہے ایک شخص نے اپنا درخت کاٹا اور اُس کی جڑیں دوسرے شخص کی عمارت کے نیو کے نیچے پیوست ہو گئی ہیں پس صاحب عمارت نے جڑیں کاٹنے سے اُس کو روکا تو مالک درخت کے واسطے اُس کے درخت کی جڑوں کا ضامن ہو گا یہ ملتقط میں ہے ایک شخص نے دو انڈے غصب کر کے ایک کو ایک مرغی کے نیچے بٹھایا اور دوسرے کو دوسری مرغی نے خود سے لیا اور دونوں سے دو بچے نکلے تو دونوں بچے غاصب کے ہوں گے اور اُس پر تاوان دو انڈے واجب ہوں گے اور مسئلہ مذکورہ میں بجائے غصب کے دونوں انڈے ودیعت ہوں تو جو بچہ مرغی کے خود ہی سینے سے نکلا ہے وہ مستودع کا ہو گا انڈے کے مالک کا نہ ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے اور اگر ایک شخص کے پاس ایک انڈہ غصب کا اور دوسرا ودیعت کا ہو اور اُن کو ایک مرغی نے سیا اور اُن سے دو بچہ نکلے تو ودیعت کے انڈے کا بچہ مالک ودیعت کا ہو گا اور غصب والے کا بچہ غاصب کا ہو گا اور یہ بمنزلہ اُس صورت کے ہے کہ ایک شخص کے پاس دو قفیز گیہوں ایک قفیز ودیعت اور ایک قفیز غصب تھے پھر دونوں کو ہوانے اُڑا کر ایک زمین میں ڈالا اور دونوں قفیز آگئے تو ودیعت سے جو کھیتی اُگی وہ صاحب ودیعت کی اور جو غصب سے اُگی وہ غاصب کی ہو گی اور مغصوب منہ کو ایک قفیز گیہوں غاصب تاوان دے گا پھر اگر دونوں بچوں کی ایک دوسرے سے شناخت نہ ہو تو یقین ودیعت میں کہ یہ ودیعت کا بچہ ہے غاصب کا

قول قبول ہو گا اور اگر غاصب نے کہا کہ میں نہیں پہچانتا ہوں تو دونوں نہ ہو گا اس واسطے کہ حالت غصب سے اُس کی ملکیت ثابت ہوئی۔ ۱۲ موتوذہ یعنی مجوسی نے کوئی مرغی وغیرہ پٹک کر یا گلا گھونٹ کر ماری تھی چونکہ وہ اس کو کھاتا ہے تو اس کے حق میں حلال ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | 151 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

The chicks will remain common between both parties, and the usurper (ghasib) will be liable for one egg as compensation for the usurpation; this is mentioned in *Muhit-e-Sarakhsi*. If a tyrant seizes property belonging to a deceased person from their debtors, the debt of the deceased remains as it was upon the debtors; this is quoted in *Tatarkhaniya* from *Burhaniya*.

If a usurper sells a house and hands it over to the buyer, and later confesses to the usurpation while the owner has no witnesses, the usurper's confession regarding the buyer's right will be void. According to Imam Azam and the final opinion of Imam Abu Yusuf, the usurper will not be liable for any guarantee to the owner; this is in *Mabsut*. If a person brings wheat to a miller and leaves it in the courtyard of the mill (tahuna), instructing the miller to bring it inside at night, but the miller fails to do so and it is stolen by breaking in, then if the courtyard is enclosed by high walls that cannot be climbed without a ladder, the miller is not liable. If it is otherwise, he is liable; this is in *Muhit*. If a person gives shoes to a cobbler to be sewn, and the cobbler leaves them in the outer shop and goes to pray with the door open and no guard, and the shoes are stolen, the cobbler is liable because he was negligent; this is in *Kubra*. If a washerman was given clothes and he placed loaves of bread in them while going to work and they were stolen; if the bread was wrapped in the clothes like items in a handkerchief, he is liable, but if he tucked the clothes under his arm and stuffed bread into them, he is not liable; this is in *Wajiz Kardari*. If a porter unloads a burden in the wilderness and despite being able to move it, fails to do so until it is destroyed by rain or theft, the porter is liable; the interpretation of this ruling is that it applies when there is a strong probability of rain or theft; this is in *Khazanat-ul-Muftin*. If a person gives goods to a porter to be delivered to a city, and while traveling the porter reaches a large river with floating ice blocks, and he boards one block with others following in the current, and due to the flow, the block goes out of his control and the load falls into the water; if people generally cross in this manner without objection, he is not liable; this is in *Kubra*. If someone comes to a line of camels and unties some of them, he is not liable because he did not technically usurp any camel; this is in *Fasul Imadiya*.

If a person gives his slave, who is bound in chains, to another to take home along with the chains, and that person takes him without the chains and the slave runs away, he is not liable. If someone shears the wool (suf) of another's sheep without

permission and makes felt from it, the felt belongs to the usurper because it was manufactured by his labor. Subsequently, it must be seen if shearing the wool caused any decrease in the value of the sheep; if not, the usurper must return an equivalent amount of wool. If there was a loss in value, the owner has the choice to either take equivalent wool from the usurper or compensation for the loss in the sheep's value; this is in *Muhit*. A person usurped a slave from another, and the victim (magsoub minhu) went missing; the usurper petitioned the judge (qazi) to take the usurped property from him or order maintenance (nafaqa) for it so he could recover the expenses from the owner. The judge will not grant his request, and maintenance remains the usurper's responsibility. If the judge decreed maintenance against the victim, nothing is due from him. If, for instance, due to fear of the usurper, the judge decided not to sell the slave or animal, then compensation for usurpation does not apply, but since this act is injurious, he shall be punished.

बच्चे दोनों में साझा रहेंगे और ग़ासिब (हड़पने वाले) पर ग़सब का तावान (मुआवजा) एक अंडा वाजिब होगा, यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। यदि मृतक के कर्जदारों से किसी ज़ालिम ने मृतक का वह धन ले लिया जो उन पर देय था, तो मृतक का ऋण उन पर वैसा ही बना रहेगा; यह 'तातारख़ानिया' में 'बुरहानिया' से उद्धृत है।

यदि ग़ासिब ने घर बेचकर खरीदार (मुश्तरी) को सौंप दिया, फिर ग़सब का इकरार किया और घर के मालिक के पास गवाह नहीं हैं, तो खरीदार के अधिकार में ग़ासिब का इकरार अमान्य होगा। फिर इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के अंतिम मत के अनुसार, मालिक के लिए ग़ासिब पर कोई हर्ज़ाना (ज़मानत) नहीं होगा, यह 'मबसूत' में है। यदि कोई व्यक्ति चक्की चलाने वाले (तहान) के पास गेहूं लाया और चक्की (ताहून) के आँगन में रखकर चक्की वाले को आदेश दे गया कि रात को इसे अंदर रख लेना, उसने अंदर नहीं रखा और रात को सेंध लगाकर चोरी हो गई, तो यदि चक्की का आँगन ऊंची दीवारों से घिरा हो जिस पर बिना सीढ़ी के चढ़ना असंभव हो, तो चक्की वाला ज़िम्मेदार नहीं होगा। और यदि इसके विपरीत हो, तो हर्ज़ाना वाजिब होगा, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने मोची (मोज़ा-दोज़) को सीने के लिए मोज़ा दिया, मोची ने उसे बाहर की दुकान में रखा और दुकान का दरवाज़ा खुला छोड़कर बिना किसी निगहबान के नमाज़ पढ़ने चला गया और मोज़ा चोरी हो गया, तो मोची ज़िम्मेदार होगा क्योंकि उसने लापरवाही की है, यह 'कुब्रा' में है। धोबी को जो कपड़ा दिया गया था, उसने काम पर जाते समय उसमें रोटियाँ रख दीं और वह चोरी हो गया; यदि रोटियाँ इस तरह लिपटी थीं जैसे रुमाल में चीज़ रखी जाती है, तो वह ज़िम्मेदार होगा, और यदि उसने कपड़े को अपनी बगल में दबाया और फिर उसमें रोटियाँ ठूँस लीं, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'वजीज़ करदरी' में है। कुली (हमाल) ने यदि जंगल में सामान उतारा और वहाँ से हटाना संभव होने के बावजूद नहीं हटाया यहाँ तक कि बारिश या चोरी से सामान नष्ट हो गया, तो कुली ज़िम्मेदार होगा; इसकी व्याख्या यह है कि यह तब है जब बारिश या चोरी की प्रबल संभावना हो, यह 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। यदि किसी ने कुली को सामान शहर तक पहुँचाने के लिए दिया और कुली चलते-चलते एक बड़ी नहर पर आया जिसमें बर्फ के टुकड़े बह रहे थे, कुली एक टुकड़े पर सवार हुआ और पीछे से अन्य टुकड़े आ रहे थे, बहाव के कारण वह टुकड़ा कुली के नियंत्रण से निकल गया और सामान पानी में गिर गया; यदि लोग सामान्यतः बिना किसी आपत्ति के इस तरह पार करते हैं, तो उस पर हर्ज़ाना नहीं होगा, यह

'कुब्रा' में है। यदि कोई व्यक्ति ऊंटों की कतार में आया और कुछ को खोल दिया, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा क्योंकि उसने कोई ऊंट हड़पा नहीं है, यह 'फ़सूल-ए-इमादिया' में है।

एक व्यक्ति ने अपना ज़ंजीर से बंधा हुआ गुलाम दूसरे को दिया कि उसे ज़ंजीर सहित घर ले जाए, वह व्यक्ति उसे बिना ज़ंजीर के ले गया और गुलाम भाग गया, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। यदि किसी ने दूसरे की बकरियों की ऊन (सूफ़) मालिक की अनुमति के बिना उतारकर उससे नमदा (एक प्रकार का कालीन) बनाया, तो वह नमदा ग़ासिब का होगा क्योंकि वह उसकी मेहनत से बना है। इसके बाद देखना चाहिए कि यदि ऊन उतारने से बकरियों की कीमत में कोई कमी नहीं आई, तो ग़ासिब पर उतनी ही ऊन देना वाजिब है, और यदि नुकसान हुआ है, तो मालिक को अधिकार है कि वह ग़ासिब से उतनी ही ऊन ले ले या बकरियों के मूल्य में जो कमी आई है उसका मुआवज़ा ले ले, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे से एक गुलाम ग़सब किया और जिसका माल हड़पा गया था (मग़सूब मिन्हु) वह गायब हो गया; ग़ासिब ने काज़ी (न्यायाधीश) से प्रार्थना की कि यह हड़पा हुआ माल मुझसे ले लिया जाए या मुझे इसके भरण-पोषण (नफ़क़ा) का आदेश दिया जाए ताकि मैं मालिक से खर्च वापस ले सकूँ काज़ी उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेगा और भरण-पोषण का खर्च ग़ासिब के ज़िम्मे रहेगा। यदि काज़ी ने मालिक पर भरण-पोषण का फैसला सुना दिया, तो मालिक पर कुछ वाजिब नहीं होगा। और यदि उदाहरण के तौर पर ग़ासिब के डर से काज़ी ने गुलाम या जानवर को नहीं बेचा, तो ग़सब का मुआवज़ा नहीं हुआ, लेकिन चूंकि यह कार्य पीड़ादायक है, इसलिए उसे दंड दिया जाएगा।

---

بچے دونوں میں مشترک رہیں گے اور غاصب پر غصب کا تاوان ایک انڈا واجب ہوگا یہ محیط سرخسی میں ہے اگر میت کے قرض داروں سے کسی ظالم نے مال میت جو اُن پر آتا ہے لے لیا تو میت کا قرضہ ان پر بحالہ باقی رہے گا یہ تاتارخانیہ میں بر ہانیہ سے منقول ہے۔

اگر غاصب نے وار فروخت کر کے مشتری کے سپرد کر دیا پھر غصب کا اقرار کیا اور مالک دار کے پاس گواہ نہیں ہیں تو غاصب کا اقرار حق مشتری میں باطل ہوگا پھر امام اعظمؒ اور آخر قول امام ابو یوسفؒ کے موافق مالک کے واسطے غاصب پر کچھ ضمان نہ ہو گی یہ مبسوط میں ہے اگر ایک شخص طحان کے پاس گیہوں لایا اور طاحونہ (چکی ۱۲) کے صحن میں رکھ کر طحان کو حکم دے گیا کہ رات کو اندر داخل کر لینا اُس نے داخل نہ کیے اور رات کو سینہ لگا کر چوری ہو گئی پس اگر صحن طاحونہ بلند دیوار سے کہ جس پر بدون سیڑھی لگائے نہ چڑھا جا سکتا ہو محیط ہو تو طحان ضامن نہ ہو گا اور اگر اُس کے برخلاف ہو تو ضمان واجب ہو گی یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے موزہ دوز کو سینے کے واسطے موزہ دیا اُس موزہ کو موزہ دوز باہر کی دکان میں رکھ کر دکان کا دروازہ کھلا ہوا چھوڑ کر بدون نگہبان بٹھلانے کے نماز کو چلا گیا اور وہ موزہ چوری ہو گیا تو موزہ دوز ضامن ہو گا اس لیے کہ وہ مضیع ہے یہ کبریٰ میں ہے۔ دھوبی کو جو کپڑا دیا گیا تھا اُس میں اُس نے اپنے کام پر جانے کے وقت روٹیاں رکھیں اور وہ چوری ہو گیا پس اگر اُس میں اس طرح لپٹی ہوں جیسے رومال میں چیز رکھ کر لپٹی جاتی ہے تو ضامن ہو گا اور اگر اُس نے وہ کپڑا اپنی بغل میں دبایا پھر اُس میں روٹیاں ٹھونس لیں تو ضامن نہ ہوگا یہ وجیز کردری میں ہے۔ حمال نے اگر بیابان میں بوجھ اتارا اور باوجود اس کے کہ وہاں سے منتقل کرنا اُس کو ممکن تھا مگر منتقل کر کے نہ چلا یہاں تک کہ بسبب بارش یا چوری کے وہ متاع

برباد ہوئی تو حمال ضامن ہو گا اور اس مسئلہ کی تاویل یہ ہے کہ یہ اُس وقت ہے کہ جب بارش یا چوری کا گمان غالب ہو یہ خزانہ المفتین میں ہے اگر ایک شخص نے حمال کو کچھ اسباب کسی شہر تک پہنچانے کے واسطے دیا اور حمال لاد کر چلتے چلتے ایک بڑی نہر پر آیا اور اس نہر میں برف کے ٹکڑے پانی میں بہتے تھے جیسا کہ موسم سرما میں ہوتا ہے پس حمال ایک ٹکڑے پر سوار ہوا اور اُس ٹکڑے کے پیچھے پیچھے اور ٹکڑے پانی کی رو میں آتے جاتے تھے پس ٹکڑوں کے بہاؤ سے وہ ٹکڑا حمال کے قابو سے نکل گیا اور بوجھ پانی میں گر پڑا پس اگر لوگ ایسی صورت سے بدون کسی نکیر کے عبور کرتے ہیں تو اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی یہ کبریٰ میں ہے اگر ایک شخص اونٹوں کی قطار میں آیا اور بعض کو کھول دیا تو ضامن نہ ہو گا کیوں کہ اُس نے کوئی اونٹ غصب نہیں کیا ہے یہ فصول عمادیہ میں ہے۔

ایک شخص نے اپنا غلام زنجیر سے بندھا ہوا دوسرے کو دیا کہ اس کو مع زنجیر اپنے گھر کو لے جا پس وہ شخص بدون زنجیر کے لے چلا پھر وہ غلام بھاگ گیا تو ضامن نہ ہو گا۔ ایک شخص نے دوسرے کی بکریوں کے صوف بدون مالک کی اجازت کے جھاڑ کر اُس کے نمدے بنائے تو نمدے غاصب کے ہوں گے کیوں کہ اُس کی ساخت سے تیار ہوئے ہیں پھر اس کے بعد دیکھنا چاہئے کہ اگر صوف جھاڑ لینے سے بکریوں کی قیمت میں کچھ نقصان نہیں آیا تو غاصب پر اس کے مثل صوف واجب ہے اور اگر نقصان آیا ہو تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے غاصب سے اس کے مثل صرف لے لے یا بکریوں میں جو کچھ نقصان آیا ہے وہ نقصان لے لے یہ محیط میں ہے ایک شخص نے دوسرے سے ایک غلام جو پایہ غاصب کیا اور مغصوب منہ غائب ہو گیا پس غاصب نے قاضی سے درخواست کی کہ مجھ سے یہ مال مغصوب لے لیا جائے یا مجھے اُس کے نفقہ دینے کا حکم دیا جائے تا کہ میں مالک سے خرچہ واپس لوں تو قاضی اُس کی درخواست کو منظور نہ فرمائے گا اور اُس کا نفقہ غاصب کے ذمہ رہے گا اور اگر قاضی نے مغصوب منہ پر

اُس کے نفقہ کی ڈگری کر دی تو اُس سے مغصوب منہ پر کچھ واجب نہ ہو گا اور اگر مثلاً اس وجہ سے کہ غاصب کی ذات سے خوف ہے قاضی کی رائے میں آیا کہ غلام یا جانور کو فروخت کر نہیں کیا پس تاوان غصب نہ ہوا لیکن یہ حرکت ایذا ہے تو اس کو سزا دی جائے گی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume ⑧ | 152 | Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...if he keeps its price for the owner, he may do so. This is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*. Sheikh-ul-Islam Khawaharzada mentioned in *Kitab al-Sarf* that if someone purchased a silver bracelet for one dinar, paid the dinar but did not take possession of the bracelet, and then another person came and took possession of it with the buyer's permission, and the bracelet was subsequently lost while in that person's possession, the possessor shall not be held liable (as a guarantor/dhamin). This is in *Al-Dhakhira*. A person set up a target in his house and shot an arrow at it. The arrow overshot the target, reached a neighbor's house, and damaged something or killed someone. The archer shall be liable. The liability for property damage shall be upon the archer's personal wealth, and the liability for a life (*diyat* or blood money) shall be upon the archer's supporting kinsmen (*aqila*). This is in *Al-Zahiriyya*. Sheikh Abu al-Qasim was asked about a person passing through a village with a bundle of kindling loaded on a donkey. Some boys in a lane had lit a fire and threw some into the kindling, which then caught fire. The donkey ran under a shed containing firewood, and the fire spread to that wood. The owners of the firewood then threw the burning wood back onto the donkey, and the donkey was burned to death. The Sheikh stated that if the firewood was already ablaze along with the kindling, then both the ones who threw the initial fire and the ones who threw the wood onto the donkey are liable. This is in *Al-Hawi*.

A fire broke out in a neighborhood, and a person demolished someone else's house without permission to prevent the fire from spreading, successfully stopping it. He shall be liable if he did not do so by the ruler's command, although he is not sinful because he acted for the greater good, yet he demolished property without the owner's or guardian's consent. However, he should be reprimanded (*ta'zir*). This case is analogous to a person in dire necessity (*muztarr*) eating another's food without permission. This is in *Al-Muhit*. A boat is loaded with the cargo of several people and gets stuck near an island. A person removes some cargo to lighten the boat. Then another person comes and takes that cargo away. Is the one who removed the cargo liable? There are two scenarios: If there was no imminent fear of the boat sinking, he is liable as he is considered a usurper (*ghasib*). If there was a fear of sinking and someone took it before the danger subsided, the one who removed it is not liable. However, if it was taken after the danger had passed, the remover is liable. This is in *Al-Zahiriyya*. A person lit a fire in his clay oven (*tandoor*) and put more wood than it could withstand. The fire burnt his house and spread to the neighbor's house,

burning it down as well. The owner of the tandoor shall be liable. This is in *Khazanat al-Muftin*. In *Fatawa Nasafi*, the Sheikh was asked about a person who lit a fire on someone else's land without permission, which then spread and burnt wheat piles or other property. Is he liable? He said no, but if it burnt something exactly where it was lit, he would be liable. This is in *Fusul Imadiyya*. The Sheikh was asked about a person who dug a pit without permission in a village common where livestock spend the night, intending to store grain. Someone else lit a fire in that pit, and a donkey fell in and died. The Sheikh stated that this issue follows the principle established by our companions: if someone digs a well on a wide public road and another person puts a stone in it, and a third person falls in and dies from striking the stone, the blood money (*diyat*) is the responsibility of the one who dug the well. Similarly, in this case, since the donkey fell in and was burnt, the liability lies with the person who dug the pit. This is in *Al-Hawi*.

...कि उसका मूल्य स्वामी के लिए रख छोड़े तो वह ऐसा कर सकता है। यह फ़तावा काज़ी ख़ान में है। शैखुल इस्लाम ख़्वाहिरज़ादा ने किताबुस सर्फ़ में ज़िक्र फ़रमाया है कि यदि किसी ने चाँदी का कंगन एक दीनार के बदले ख़रीद कर दीनार उसे दे दिया और कंगन पर क़ब्ज़ा नहीं किया, यहाँ तक कि एक व्यक्ति ने आकर कंगन पर क़ब्ज़ा कर लिया और खरीदार ने उसे क़ब्ज़े की अनुमति दे दी, फिर कंगन उसके क़ब्ज़े में नष्ट हो गया, तो क़ाबिज़ (क़ब्ज़ा करने वाला) उत्तरदायी नहीं होगा। यह ज़ख़ीरा में है। एक व्यक्ति ने अपने घर में एक लक्ष्य (निशाना) बनाया था, फिर उसने लक्ष्य की ओर तीर मारा और वह तीर सीमा लाँघकर पड़ोसी के घर में पहुँचा और वहाँ किसी चीज़ को नष्ट कर दिया या किसी व्यक्ति की हत्या कर दी, तो तीरंदाज उत्तरदायी होगा। धन की क्षति का दायित्व तीरंदाज की संपत्ति पर होगा और प्राणों की क्षति का दायित्व (दियत) तीरंदाज की सहायक बिरादरी (आक़िला) पर होगा। यह ज़हीरिया में है। शैख़ अबुल क़ासिम से पूछा गया कि एक व्यक्ति एक गाँव से गुज़रा, उसके साथ गधे पर लकड़ी का एक गट्ठा लदा हुआ था और वहाँ लड़कों ने गली में आग जला रखी थी। उन्होंने थोड़ी आग गट्ठे में डाल दी, जिससे गट्ठे में आग लग गई। वह गधा एक छप्पर के नीचे घुस गया जिस पर जलाने की लकड़ियाँ थीं, और गट्ठे की आग लकड़ियों में लग गई। लकड़ियों के मालिकों ने वे लकड़ियाँ गधे पर डाल दीं, जिससे गधा जल गया। शैख़ ने फ़रमाया कि यदि ये लकड़ियाँ आग के साथ सुलग रही थीं, तो आग डालने वाले और लकड़ियाँ डालने वाले दोनों उत्तरदायी होंगे। यह हावी में है।

एक मोहल्ले में आग लग गई, तो एक व्यक्ति ने दूसरे का घर उसकी अनुमति के बिना गिरा दिया यहाँ तक कि आग उसके घर से आगे बढ़ना बंद हो गई। वह उत्तरदायी होगा बशर्ते कि उसने सुल्तान (शासक) के आदेश के बिना ऐसा किया हो, लेकिन वह पापी नहीं होगा क्योंकि उसने दूसरे की संपत्ति को बिना अनुमति के गिराया है। हालाँकि, उसे ताज़ीर (दंड) दिया जाएगा। यह मसला उस विवश (मुज़्तर) व्यक्ति के समान है जिसने विवशता की स्थिति में दूसरे का भोजन बिना अनुमति के खा लिया हो। यह मुहीत में है। एक नाव पर कई लोगों का सामान लदा हुआ है और वह नाव किसी द्वीप के पास फंस गई। एक व्यक्ति ने कुछ सामान हटा दिया ताकि नाव हल्की हो जाए, फिर कोई और आया और वह हटाया गया सामान ले गया। अब प्रश्न यह है कि सामान हटाने वाले पर उत्तरदायित्व (ज़मान) है या नहीं? इसकी दो स्थितियाँ हैं: यदि नाव डूबने का डर नहीं था, तो वह उत्तरदायी होगा क्योंकि वह 'ग़ासिब' (छीनने वाला) माना जाएगा। और यदि डूबने का डर था, तो यदि सामान ले जाने वाला डूबने

के भय के समाप्त होने से पहले ले गया, तो हटाने वाला उत्तरदायी नहीं होगा। और यदि भय समाप्त होने के बाद ले गया, तो हटाने वाला उत्तरदायी होगा। यह ज़हीरिया में है। एक व्यक्ति ने अपने तंदूर में आग जलाई और उसमें तंदूर की क्षमता से अधिक लकड़ी डाल दी। आग ने उसका घर जला दिया और उसका प्रभाव पड़ोसी के घर तक पहुँचा, जिससे उसका घर भी जल गया, तो तंदूर का मालिक उत्तरदायी होगा। यह ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन में है। फ़तावा नसफ़ी में है कि शैख़ से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने दूसरे की भूमि में उसकी अनुमति के बिना आग जलाई और वह फैलकर गेहूँ के खलिहान या दूसरे माल तक पहुँची और माल जला दिया, तो क्या वह व्यक्ति उत्तरदायी होगा? फ़रमाया कि नहीं, लेकिन यदि उसी स्थान पर जहाँ आग जलाई गई थी कोई चीज़ जल गई, तो वह उत्तरदायी होगा। यह फ़ुसूल इमादिया में है। शैख़ से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने एक गाँव के खुले मैदान में, जो गाँव के पशुओं के रात बिताने की जगह है, बिना अनुमति के एक गड्ढा खोदा ताकि उसमें अपना अनाज भर सके। फिर उस गड्ढे में किसी ने आग जलाई और उसमें किसी का गधा गिरकर मर गया। शैख़ ने फ़रमाया कि यह मसला उस अनुमान (क़यास) पर आधारित है जो हमारे साथियों ने कहा है कि यदि किसी ने चौड़े सार्वजनिक रास्ते पर कुआँ खोदा और दूसरे ने उसमें एक पत्थर डाल दिया, फिर उसमें कोई व्यक्ति गिर पड़ा और पत्थर की चोट से मर गया, तो उसकी दियत (रक्त मूल्य) कुआँ खोदने वाले पर होगी। इसी तरह हमारे इस मसले में, जब गधा उसमें गिरकर जल गया, तो उत्तरदायित्व उसे खोदने वाले पर होगा। यह हावी में है।

---

کے اس کا ثمن مالک کے واسطے رکھ چھوڑے تو ایسا کر سکتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے شیخ الاسلام خواہر زادہ نے کتاب الصرف میں ذکر فرمایا ہے کہ اگر کسی نے چاندی کا کنگن ایک دینار کے عوض خرید کر کے دینار اُس کو دے دیا اور کنگن پر قبضہ نہ کیا یہاں تک کہ ایک شخص نے آ کر کنگن پر قبضہ کر لیا اور مشتری نے اُس کے قبضہ کی اجازت دی پھر کنگن اُس کے قبضہ میں تلف ہو گیا تو قابض ضامن نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے ایک شخص نے اپنے گھر میں ہدف بنایا تھا پس اُس نے ہدف کی طرف تیر مارا اور وہ تیر تجاوز کر کے پڑوسی کے گھر میں پہنچا اور وہاں کسی چیز کو خراب کیا یا کسی آدمی کو قتل کیا تو تیر انداز ضامن ہو گا پس مال کی ضمان تیر انداز کے مال پر اور جان کی ضمان دیت تیر انداز کی مدد گار برادری پر ہو گی یہ ظہیریہ میں ہے شیخ ابو القاسم سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص ایک گاؤں میں گزرا اُس کے ساتھ ایک گٹھا زکل کا گدھے پر لدا ہوا تھا اور وہاں لڑکوں نے ایک کوچے میں آگ جلائی تھی انہوں نے تھوڑی آگ زکل میں ڈال دی پس گٹھے میں آگ لگ گئی پس وہ گدھا ایک سطح کے نیچے جس پر جلانے کی لکڑیاں تھیں گھس گیا اور زکل سے آگ بلند ہو کر لکڑیوں میں جا لگی اور لکڑی والوں نے وہ لکڑیاں گدھے پر ڈال دیں پس گدھا جل گیا تو شیخ نے فرمایا کہ اگر یہ لکڑیاں زکل کے ساتھ افروختہ ہوئی ہوں تو آگ ڈالنے والے اور لکڑیاں ڈالنے والے دونوں ضامن ہوں گے یہ حاوی میں ہے۔

ایک محلہ میں آگ لگ گئی پس ایک شخص نے دوسرے کا گھر بدون اُس کی اجازت کے ڈھا دیا حتی کہ آگ اُس کے گھر سے منقطع ہوگئی تو وہ ضامن ہوگا بشرطیکہ بحکم سلطان ایسا نہ کیا ہو مگر اس پر گناہ نہ ہوگا اس واسطے کہ اُس نے خیر کی ملک اُس کی بلا اجازت اور بلا اجازت اُس

شخص کے جو اُس پر والی ہے منہدم کر دی ہے لیکن اس کو تعزیر دی جائے گی اور یہ مسئلہ نظیر مسئلہ مضطر کا ہے جب کہ مضطر نے دوسرے کا کھانا بدون اُس کی اجازت کے حالتِ اضطرار میں کھایا ہو یہ محیط میں ہے۔ ایک کشتی میں چند آدمیوں کا بار لدا ہوا ہے اور وہ کشتی بعض جزائر میں اڑ گئی پس ایک شخص نے بعض بار کو دور کر دیا تا کہ کشتی ہلکی ہو جائے پھر ایک شخص آیا اور وہ بار اتارا گیا ہے لے گیا پس آیا اُتارنے والے پر ضمان عائد ہے یا نہیں تو اُس کی دو صورتیں ہیں اگر غرق کشتی کا خوف نہ تھا تو ضامن ہو گا اس واسطے کہ وہ شخص غاصب ہو جائے گا اور اگر خوفِ غرق تھا پس اگر غرق سے بے خوف ہونے سے پہلے لے جانے والا لے گیا تو نکالنے والا ضامن نہ ہوگا اور اگر غرق سے بے خوف ہو جانے کے بعد لے گیا تو اُتارنے والا ضامن ہو گا یہ ظہیریہ میں ہے ایک شخص نے اپنے تنور میں آگ روشن کی اور اُس میں تنور کی برداشت سے زیادہ لکڑی ڈالی پس آگ نے اُس کا گھر جلایا اور اُس کا اثر پڑوسی کے گھر تک پہنچا کہ جس سے اُس کا گھر بھی جل گیا تو تنور کا مالک ضامن ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ فتاویٰ نسفی میں ہے کہ شیخ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے دوسرے کی ملک میں بدون اُس کی اجازت کے آگ روشن کی اور وہ متعدی ہو کر گیہوں کے کھلیان یا دوسرے مال پر پہنچی اور مال کو سوخت کر دیا پس آیا یہ شخص ضامن ہو گا فرمایا کہ نہیں اور اگر ایسی جگہ جہاں آگ روشن کی گئی ہے کوئی چیز جلا دی تو ضامن ہو گا یہ فصول عمادیہ میں ہے۔ شیخ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے ایک قریہ کے صحراء میں جو اہل قریہ کے چوپاؤں کی شب گذاری کی جگہ ہے بدون کسی کی اجازت کے ایک گڑھا کھودا کہ اس میں اپنا غلہ بھرتا تھا پھر اُس گڑھے میں ایک شخص نے آگ روشن کی بغرض اور اُس میں کسی کا گدھا گر کر مر گیا تو شیخ نے فرمایا کہ یہ مسئلہ اس قیاس پر ہے جو ہمارے اصحاب نے فرمایا ہے کہ کسی شخص نے چوڑے عام راستہ پر ایک کنواں کھودا اور دوسرے نے اُس میں ایک پتھر ڈال دیا پھر اُس میں ایک

شخص گر پڑا اور اُس کے پتھر کا صدمہ اُٹھا کر مر گیا تو اُس کی دیت کنواں کھودنے والے پر ہو گی اسی طرح ہمارے اس مسئلہ میں جب کہ گدھا اس میں گر کر جل گیا تو ضمان اُس کے کھودنے والے پر ہو گی یہ حاوی میں ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 153 | Kitab al-Ghasab (Book of Usurpation)**

**In the mentioned legal issue, 'Ba'eer Mukham' refers to a camel that has become uncontrollable due to excessive lust:**

If a person brings a 'Mukham' camel (1) into another person's house without permission, and the owner of the house has a camel there, and the Mukham camel mates with it, the scholars have differed on the liability. Faqih Abu al-Layth (RA) stated that if it was brought in with the house owner's permission, the person is not liable (dhamin), but if brought in without permission, they are liable. This is the official fatwa. 'Ba'eer Mukham' is a camel maddened by lust, as recorded in *az-Zahiriyyah*. Sheikh Dabari (RA) was asked about a person who irrigated his land but did not properly secure the mouth of the canal, leading to water damage to a neighbor's property. He replied that if it was a shared canal, the person would be liable if he was negligent in closing the mouth. This is mentioned in *al-Tatarkhaniyyah*.

If a woman spins her husband's cotton into thread, several scenarios arise: either the husband permitted her, forbade her, gave no specific permission or prohibition (remained silent), or was unaware. If he gave permission, there are four sub-scenarios: 1) He told her "spin it for me," 2) "spin it for yourself," 3) "spin it so the cloth belongs to both of us," or 4) "spin it" without saying anything further. In the first case ("spin for me"), all the thread belongs to the husband. If he specified a certain wage, the thread is his, and she is owed the specified wage (*ajr-e-musamma*). If no wage was mentioned, the thread is his, and nothing is owed to the woman because outwardly she acted voluntarily. In case of disagreement—she claims a wage and he denies it—the husband's statement under oath is accepted.

If he told her "spin it for yourself," the thread belongs to the woman, and the husband is considered to have gifted the cotton. If they disagree—he says he only told her to spin it and she says he said "for yourself"—his word is accepted under oath. If he said "spin it so the cloth is shared," all the thread belongs to the husband, and the woman is owed a fair wage (*ajr al-mithl*) because the husband hired her for a portion of the result, which makes it a voidable contract (*ijarah fasid*), necessitating a fair market wage. This is similar to giving thread to a weaver for half the product; all cloth belongs to the thread owner, and the weaver gets a fair wage. If he just said "spin it" and nothing more, all thread belongs to the husband and nothing is owed.

All this applies when permission was given. If he forbade her and she spun it anyway, the thread belongs to the woman, and she owes the husband the equivalent amount

of cotton, as she became an "unauthorized consumer" (*ghasiba mustahlika*) and is liable. This is similar to someone who usurps wheat and grinds it into flour; according to Imam Azam (Abu Hanifa), the flour belongs to the usurper, who must compensate with equivalent wheat. If there was neither permission nor prohibition: if the husband is a cotton merchant, the thread belongs to the woman and she owes compensation. If he is not a merchant but bought it for household use, the thread belongs to the husband, and the woman gets no wage. Hisham mentioned that if someone spun another's cotton and they disagreed—the owner saying "you spun with my permission, so the thread is mine" and the other saying "I spun without permission, so..." [text continues on next page].

(1) One who causes darkness/oppression. * Thirsty buffalo, or as used in our local idiom 'mast bok' (a lustful he-goat).

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 153 | किताब अल-ग़सब (हथियाने का अध्याय)**

**उल्लिखित समस्या में 'ब'ईर मुखम' से तात्पर्य उस ऊँट से है जो अत्यधिक कामेच्छा के कारण पागल या मदमस्त हो गया हो:**

यदि किसी ने दूसरे के घर में बिना अनुमति के'मुखम' ऊँट (1) घुसा दिया और उस घर में घर के मालिक का ऊँट मौजूद था, और मुखम ऊँट ने उसके साथ मैथुन किया, तो विद्वानों ने इस पर मतभेद किया है। फ़क़ीह अबू अल-लैथ (रह.) ने कहा कि यदि घर के मालिक की अनुमति से लाया गया हो तो लाने वाला उत्तरदायी (ज़ामिन) नहीं होगा, लेकिन यदि बिना अनुमति के लाया गया हो तो वह उत्तरदायी होगा। और इसी पर फ़तवा है। 'ब'ईर मुखम' वह ऊँट है जो कामेच्छा की अधिकता से मदमस्त हो गया हो, जैसा कि 'ज़हीरिया' में लिखा है। शेख़ दबरी (रज़ि.) से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन की सिंचाई की लेकिन नहर का मुँह ठीक से बंद नहीं किया, जिससे पानी के बहाव से पड़ोसी का नुकसान हुआ। उन्होंने कहा कि यदि वह साझा नहर थी, तो मुँह बंद करने में लापरवाही बरतने पर वह ज़िम्मेदार होगा। यह 'ततारख़ानिया' में वर्णित है।

यदि कोई स्त्री अपने पति की रूई का सूत कातती है, तो इसकी कई स्थितियाँ हैं: या तो पति ने उसे अनुमति दी, या मना किया, या न अनुमति दी न मना किया (चुप रहा), या उसे पता ही नहीं था। यदि पति ने अनुमति दी, तो चार स्थितियाँ हैं: 1) उससे कहा "मेरे लिए कातो", 2) कहा "अपने लिए कातो", 3) कहा "कातो ताकि कपड़ा मेरा और तुम्हारा हो", 4) कहा "कातो" और कुछ न कहा। पहली स्थिति में ("मेरे लिए कातो"), सारा सूत पति का होगा। यदि उसने मज़दूरी तय की थी, तो सूत पति का होगा और पत्नी को तयशुदा मज़दूरी (अज्र-ए-मुसम्मा) मिलेगी। यदि मज़दूरी का ज़िक्र नहीं था, तो सूत पति का होगा और पत्नी को कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि ज़ाहिर तौर पर उसने स्वेच्छा (नफ़्ल) से काम किया। मतभेद की स्थिति में पति की बात शपथ पर स्वीकार की जाएगी।

यदि कहा "अपने लिए कातो", तो सूत पत्नी का होगा और पति को रूई दान करने वाला माना जाएगा। मतभेद होने पर पति की बात शपथ पर मानी जाएगी। यदि कहा "कातो ताकि कपड़ा साझा हो", तो सारा सूत पति का होगा और पत्नी को 'अज्र अल-मिस्ल' (उचित बाज़ार मज़दूरी) मिलेगी क्योंकि पति ने उसे लाभ के हिस्से पर काम पर रखा, जो एक दोषपूर्ण अनुबंध (इजारा फासिद) है। यह वैसे ही है जैसे किसी बुनकर को आधे कपड़े पर सूत देना; सारा कपड़ा सूत के मालिक का होता

है और बुनकर को उचित मज़दूरी मिलती है। यदि केवल "कातो" कहा, तो सूत पति का होगा और पत्नी को कुछ नहीं मिलेगा।

यह सब अनुमति की स्थिति में है। यदि पति ने मना किया था और फिर भी उसने काता, तो सूत पत्नी का होगा और वह पति को उतनी ही रूई लौटाने की ज़िम्मेदार होगी, क्योंकि वह 'ग़ासिबा' (अवैध उपयोग करने वाली) बन गई। जैसे गेहूँ हड़प कर आटा पीसने वाले के मामले में इमाम आज़म (रह.) के अनुसार आटा हड़पने वाले का होता है और वह गेहूँ की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी होता है। यदि न अनुमति थी न मनाही: यदि पति रूई का व्यापारी है, तो सूत पत्नी का और वह रूई की क्षतिपूर्ति की ज़िम्मेदार होगी। यदि व्यापारी नहीं है और घर के लिए रूई लाया था, तो सूत पति का होगा और पत्नी को कोई मज़दूरी नहीं मिलेगी। हिशाम ने उल्लेख किया कि यदि किसी ने दूसरे की रूई काती और मतभेद हुआ—मालिक ने कहा "मेरी अनुमति से काता, सूत मेरा है" और दूसरे ने कहा "बिना अनुमति काता, तो..." [अपूर्ण]।

(1) अंधेरा/अन्याय करने वाला। * प्यासा भैंसा, या जैसा हमारे मुहावरे में 'मस्त बोक' (मदहोश बकरा) कहा जाता है।

---

**مسئلہ مذکورہ میں بعیر مکھم سے مراد وہ اونٹ ہے جو فرطِ شہوت سے مست ہو گیا:**

اگر کسی نے دوسرے کے دار میں بغیر مکھم (1) داخل کر دیا اور دار میں مالکِ دار کا بعیر تھا پس مکھم اس کے ساتھ جفتی کر بیٹھا تو مشائخ نے اس میں اختلاف کیا ہے فقیہ ابواللیثؒ نے فرمایا کہ اگر مالکِ دار کی اجازت سے داخل کیا ہو تو ضامن نہ ہوگا اور اگر بدون اس کی اجازت کے داخل کیا ہو تو ضامن ہوگا اور اسی پر فتویٰ ہے اور بعیر مکھم وہ اونٹ ہے جو فرطِ شہوت سے مست ہو گیا ہو یہ ظہیریہ میں لکھا ہے شیخ دبری رضی اللہ عنہ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے اپنی زمین سینچ کر نہر کا منھ خوب مضبوط بند نہ کیا یہاں تک کہ پانی کے فساد سے پڑوسی کو ضرر پہنچا پس آیا اس پر ضمان واجب ہو گی تو فرمایا کہ اگر وہ نہر مشترک ہو تو ضامن ہو گا جب کہ منھ نہر کے بند کرنے میں قصور کرے یہ تاتارخانیہ میں لکھا ہے اگر عورت نے اپنے شوہر کی روئی کا سوت کاتا تو اس کی چند صورتیں ہیں یا تو شوہر نے اس کو کاتنے کی اجازت دی ہو یا کاتنے سے منع کیا ہو یا اجازت نہ دی ہو اور منع بھی نہ کیا ہو بلکہ سکوت کیا ہو یا عورت کے کاتنے سے آگاہ نہ ہوا ہو پس اگر اس کو اجازت دی ہو تو اس کی چار صورتیں ہیں یا تو اس سے کہا کہ اس کو میرے واسطے کات دے یا کہا کہ اپنے واسطے کات لے یا کہا کہ اس کو کات تاکہ کپڑا میرا اور تیرا ہو یا کہا کہ اس کو کات اور اس سے زیادہ کچھ نہ کہا پس اول صورت میں یعنی جب کہ یوں کہا کہ میرے واسطے کات دے وہ تمام سوت شوہر کا ہو گا پس اگر کہا ہو کہ میرے واسطے اس قدر اجرت پر کات دے تو سوت شوہر کا ہو گا اور اس پر عورت کے واسطے اجرِ مسمیٰ واجب ہو گا اور اگر اجرت کا ذکر نہ کیا ہو تو سوت شوہر کا ہو گا اور شوہر پر کچھ واجب نہ ہو گا کیونکہ وہ عورت از راہِ ظاہر متطوعہ ہے اور اگر دونوں نے اختلاف کیا عورت

نے کہا کہ میں نے باجرت کاتا ہے اور شوہر نے کہا کہ میں نے اجرت کا ذکر نہیں کیا تو قسم سے شوہر کا قول قبول ہو گا اور اگر عورت سے کہا ہو کہ اپنے واسطے کات لے تو سوت عورت کا ہو گا اور شوہر اس کو روئی ہبہ کرنے والا قرار دیا جائے گا اور اگر دونوں نے اختلاف کیا شوہر نے کہا کہ میں نے فقط تجھ سے یہ کہا تھا کہ تو سوت کات اور عورت نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے کہا کہ اپنے واسطے کات لے تو قسم سے شوہر کا قول قبول ہو گا اور اگر شوہر نے کہا کہ اس کو کات تاکہ کپڑا میرے اور تیرے درمیان مشترک ہو تو تمام سوت شوہر کا ہو گا اور اس پر عورت کے واسطے اجرِ المثل واجب ہو گا کیونکہ شوہر نے اس کو جزوِ حاصل پر اجیر کیا پس اجارہ فاسد ہو گا تو اجر المثل واجب ہو گا جیسا کہ اس صورت میں ہے کہ کسی جولا ہے کو آدھے پر کپڑا بننے کو سوت دیا تو تمام کپڑا مالک سوت کا ہوتا ہے اور اس پر جولا ہے کا اجر المثل واجب ہوتا ہے اور اگر شوہر نے اس سے کہا کہ اس کو کات اور اس سے زیادہ کچھ نہ کہا تو تمام سوت شوہر کا ہو گا اور اس پر واجب نہ ہو گا کیونکہ عورت نے من حیث الظاہر تبرعاً کات دیا ہے۔ یہ سب اس صورت میں ہے کہ عورت کو شوہر نے کاتنے کی اجازت دی ہو اور اگر اس کو کاتنے سے منع کیا ہو اور عورت نے بعد ممانعت کے کاتا تو سوت عورت کا ہو گا اور اس پر شوہر کے واسطے اس کی روئی کے مثل روئی واجب ہو گی کیوں کہ عورت غاصبہ مستہلکہ ہو گئی پس ضامن ہو گی جیسے کہ ایک شخص نے گیہوں غصب کر کے ان کو پیس ڈالا تو امام اعظمؒ کے نزدیک آٹا غاصب کا ہو گا اور اس پر مغصوبہ گیہوں کے مثل واجب ہوں گے اور اگر شوہر نے نہ اس کو اجازت دی ہو اور نہ منع کیا ہو پھر عورت نے کاتا تو دو صورتیں ہیں اگر اس کا شوہر روئی فروش ہو تو سوت عورت کا ہو گا اور عورت پر اس کے مثل روئی شوہر کے واسطے واجب ہو گی کیونکہ شوہر روئی کو تجارت کے واسطے خریدتا تھا پس ممانعت من حیث الظاہر پائی گئی تھی اور اگر شوہر روئی فروش نہ ہو بلکہ وہ بازار سے روئی خرید کر اپنے گھر لایا ہو اور

عورت نے سوت کات دیا تو اس کا سوت شوہر کا ہو گا اور عورت کو کچھ اجرت نہ ملے گی اور ہشام نے اپنے نوادر میں ذکر کیا کہ ایک شخص نے دوسرے کی روئی کو کاتا پھر دونوں نے اختلاف کیا اور مالک نے کہا کہ تو نے میری اجازت سے سوت کاتا ہے پس سوت میرا ہے اور دوسرے نے کہا کہ میں نے بدون تیری اجازت کے کاتا ہے پس

(1) ظلام کرنے والا * پیاسے بھینسا کہ ہمارے ہاں محاورہ بولا جاتا ہے مست بوک، یعنی مستی میں بھرا ہوا بکرا

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) | 154 | Book of Seizure (Kitab al-Ghasb)**

If a person says, "The thread is mine, and it is obligatory upon me to give you the equivalent of your cotton," the statement of the cotton owner shall be accepted. This is recorded in *Fatawa Qadhi Khan*.

If a usurped slave dies in the possession of the usurper (ghasib), and the usurper confesses, "I seized him from such-and-such person," he shall be ordered to pay the value as compensation (dhaman) to the person in whose favor the confession was made (muqarra lahu). If another person later arrives and provides witnesses proving, "He was my slave and he usurped him from me," the judge (Qadhi) shall issue a decree in his name for the value. Once the judge decrees in favor of the witness-provider and he receives the payment, the first person shall have no further claim against the usurper. Furthermore, if the usurper subsequently receives that exact value from the decree-holder through a gift (hiba), inheritance (irth), bequest (wasiyyat), or sale (muba'at), he shall be ordered to return it to the first person. However, if the usurper receives a different sum, say a thousand dirhams, from the decree-holder, and it was through a gift or sale, he shall not be ordered to give it to the first person. But if it was through inheritance or bequest, he shall be ordered to do so; this is found in *Al-Dhakhira*. It is stated in *Siyar al-'Uyun* that if a Muslim punctures another Muslim's wine-skin, he is not liable for the wine but is liable for the skin, except if the person who did so is the Imam of the Muslims (the ruler) and he deems it appropriate; in such a case, he is not liable as this is a matter of legal disagreement. This is in *Tatar-Khaniyah*. If a protected non-Muslim citizen (Dhimmi) openly sells wine in a city, he shall be forbidden. If a Muslim destroys his wine, he shall be liable. However, if the destroyer is the Imam of the Muslims and he deems it proper, he shall not be liable due to the legal disagreement; this is in *Al-Muhit*. It is written in *Fatawa Khulasa* that if Dhimmis display wine among Muslims and a Muslim, acting on the principle of 'enjoining good' (amr bi'l-ma'ruf), pours out their wine, breaks the jars, and tears the skins, he shall not be liable; this is in *Tatar-Khaniyah*. In the Fatawa, it is mentioned that if a person grabs another's garment and pulls it from the owner's hand, causing it to tear, he is liable for its full value. If the owner pulled it from the grabber's hand, the grabber is liable for half its value; this is in *Fusul-i 'Imadi*. If a person sits on another's garment without the owner's knowledge, and the owner stands up causing the garment to tear due to the sitter, the sitter is liable for half the loss of the tear. It is narrated from Imam Muhammad (RA) that he is liable for the full damage of the tear, but the reliance is on the *Zahir al-Riwayah*; this is in *Fatawa Qadhi*

*Khan*. If a person gives specific goods to a broker (dalal) for sale, and the broker shows them to a shopkeeper and leaves them with him, and the shopkeeper subsequently absconds with the goods, the broker is liable. However, Sheikh Nasafi (RA) narrated in his Fatawa from Sheikh-ul-Islam Abul Hasan that the broker is not liable, and this is the correct view because the broker's action was necessary; this is in *Al-Muhit*.

Sheikh Abul Fadl Kirmani mentioned in *Isharat al-Jami'* that the seizure (ghasb) of goods (mata') is not legally established, while it is mentioned in *Al-Aqdiya* that it is established, and the fatwa follows this; this is in *Wajiz Karwari*. If a person enters someone's house and the owner permits him to sit on a cushion (balish/bolster), and there was a bottle of oil underneath which he was unaware of, and the bottle breaks and the oil spills, the sitter is liable for the oil, the torn cushion, and the broken bottle. However, if the bottle was under a sheet (mula'at) that covered it, and the owner gave permission to sit on the sheet, then the sitter is not liable. Faqih Abu al-Layth stated that even in the case of a cushion, according to some, he is not liable, and this is closer to legal reasoning because, like a sheet, a cushion is not intended to support a seated person firmly.

1. Here, no oath is required from the cotton owner; however, if the other party claims wages against him, an oath would be applicable.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 154 | किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

"सूत मेरा है और तेरे लिए मुझ पर तेरी रुई के समान अनिवार्य है", तो रुई के मालिक की बात स्वीकार की जाएगी। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है।

यदि हड़पा हुआ (म़ग़सूब) गुलाम हड़पने वाले (ग़ासिब) के पास मर गया और ग़ासिब ने इकरार किया कि "मैंने अमुक व्यक्ति से इसे हड़पा था", तो उसे आदेश दिया जाएगा कि वह उस व्यक्ति (जिसके पक्ष में इकरार किया गया) को हर्ज़ाना (ज़मानत) के तौर पर उसकी कीमत दे दे। फिर यदि कोई दूसरा व्यक्ति आया और उसने गवाह पेश किए कि "वह मेरा गुलाम था और मुझसे इसने हड़पा था", तो क़ाज़ी उसके नाम पर कीमत की डिक्री कर देगा। जब क़ाज़ी ने गवाह पेश करने वाले के नाम पर डिक्री कर दी और उसने कीमत ले ली, तो पहले व्यक्ति का ग़ासिब पर कोई अधिकार नहीं रहेगा। फिर यदि डिक्री पाने वाले की ओर से वही कीमत उपहार (हिबा), विरासत (विरासत), वसीयत या बिक्री के कारण ग़ासिब के पास वापस पहुँची, तो उसे आदेश दिया जाएगा कि वह उसे पहले व्यक्ति को दे दे। और यदि ग़ासिब को डिक्री पाने वाले से उस कीमत के अलावा अन्य एक हज़ार दिरहम प्राप्त हुए, और वे उपहार या बिक्री के कारण मिले हों, तो उसे पहले व्यक्ति को देने का आदेश नहीं दिया जाएगा। लेकिन यदि वे विरासत या वसीयत के कारण मिले हों, तो उसे देने का आदेश दिया जाएगा; यह 'ज़ख़ीरा' में है। 'सियर अल-उयून' में है कि यदि एक मुसलमान ने दूसरे मुसलमान की शराब की मशक फाड़ दी, तो वह शराब का हर्ज़ाना नहीं देगा, लेकिन मशक का हर्ज़ाना देगा, सिवाय उस स्थिति के जब फाड़ने वाला मुसलमानों का इमाम (शासक) हो और उसकी राय में यह उचित हो; ऐसी स्थिति में वह हर्ज़ाना नहीं देगा क्योंकि यह मतभेदों वाला मामला है। यह 'तातारख़ानिया' में है। यदि किसी ज़म्मी (गैर-मुस्लिम नागरिक) ने शहर में शराब बेचना ज़ाहिर किया, तो उसे रोका जाएगा। यदि किसी मुसलमान ने उसकी शराब नष्ट कर दी, तो वह हर्ज़ाना देगा। लेकिन यदि नष्ट करने वाला मुसलमानों का इमाम हो और उसकी राय में यह उचित हो, तो वह हर्ज़ाना नहीं देगा क्योंकि यह विवादित मामला है; यह 'अल-मुहीत' में है। 'फ़तावा ख़ुलासा' में लिखा है कि यदि ज़म्मियों ने मुसलमानों के बीच शराब का प्रदर्शन किया और किसी मुसलमान ने 'अम्र बिल-मारूफ़' (नेकी का हुक्म) के तहत उनकी शराब बहा दी, मटके तोड़ दिए और मशकें फाड़ दीं, तो उस पर हर्ज़ाना अनिवार्य नहीं होगा; यह 'तातारख़ानिया' में है। फ़तावा में है कि एक व्यक्ति दूसरे के कपड़े में उलझ गया और कपड़े को मालिक के हाथ से अपनी ओर खींचा और वह फट गया, तो वह पूरी कीमत का हर्ज़ाना देगा। और यदि मालिक ने छीनने वाले के हाथ से खींचा हो, तो छीनने वाला उसकी आधी

कीमत का हर्ज़ाना देगा; यह 'फ़ुसूल-ए-इमादिया' में है। यदि एक व्यक्ति दूसरे के कपड़े पर बैठ गया और कपड़े के मालिक को पता नहीं था, फिर मालिक खड़ा हुआ और बैठने वाले के बैठने के कारण वह कपड़ा फट गया, तो बैठने वाले पर फटने के नुकसान का आधा हर्ज़ाना अनिवार्य होगा। इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि वह फटने के नुकसान का पूरा हर्ज़ाना देगा, लेकिन भरोसा 'ज़ाहिर अल-रवाया' पर है; यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। एक व्यक्ति ने अपना माल किसी दलाल को बेचने के लिए दिया और दलाल ने किसी दुकानदार को दिखाया और उसके पास छोड़ दिया, फिर दुकानदार भाग गया और माल भी ले गया, तो दलाल हर्ज़ाना देगा। शेख़ नसफ़ी (रह.) ने अपने फ़तावा में शेख़ुल इस्लाम अबुल हसन से रिवायत की है कि दलाल हर्ज़ाना नहीं देगा और यही सही है क्योंकि दलाल ने जो किया वह आवश्यक था; यह 'अल-मुहीत' में है।

शेख़ अबुल फ़ज़ल किरमानी ने 'इशारात अल-जामि' में उल्लेख किया है कि वस्तुओं (मताअ) का ग़सब (हड़पना) सिद्ध नहीं होता है, जबकि 'अक़्ज़िया' में उल्लेख है कि यह सिद्ध होता है, और इसी पर फ़तवा है; यह 'वजीज़ करवरी' में है। एक व्यक्ति दूसरे के घर में घुसा और घर के मालिक ने उसे तकिए (ग़ाओ तकिया) पर बैठने की अनुमति दी। वह बैठ गया और उसके नीचे तेल की एक शीशी थी जिसे वह नहीं जानता था। शीशी टूट गई और तेल बह गया। तो तेल का हर्ज़ाना और जो तकिया फटा और शीशी टूटी, उसका हर्ज़ाना बैठने वाले पर अनिवार्य होगा। लेकिन यदि वह शीशी किसी चादर (मुलाअत) के नीचे हो जिसने उसे ढक दिया हो और मालिक ने चादर पर बैठने की अनुमति दी हो, तो ऐसी स्थिति में बैठने वाला ज़िम्मेदार नहीं होगा। फ़क़ीह अबुल लैस ने कहा कि तकिए के मामले में भी कुछ विद्वानों के अनुसार वह ज़िम्मेदार नहीं होगा और यही तर्क के अधिक निकट है क्योंकि चादर की तरह तकिया भी बैठने वाले को थामने के लिए नहीं होता है।

1. यहाँ रुई वाले पर शपथ नहीं है, और यदि दूसरे ने उस पर मज़दूरी का दावा किया, तो उस पर शपथ लागू होगी।

---

سوت میرا ہے اور تیرے واسطے مجھ پر تیری روئی کے مثل واجب ہے تو روئی کے مالک کا قول قبول ہوگا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر غلام مغصوب غاصب کے پاس مر گیا اور غاصب نے اقرار کیا کہ میں نے فلاں شخص سے غصب کیا تھا تو اس کو حکم کیا جائے گا کہ مقرہ لہ کو اس کی قیمت بطور ضمان دے دے پھر اگر دوسرا شخص آیا اور اس نے گواہ قائم کیے کہ وہ میرا غلام تھا اور مجھ سے اس نے غصب کر لیا تھا تو قاضی اس کے نام قیمت کی ڈگری کر دے گا پھر جب قاضی نے گواہ قائم کنندہ کے نام قیمت کی ڈگری کردی اور اس نے قیمت لے لی تو مقرہ لہ کا غاصب پر کچھ حق نہ ہوگا پھر اگر ڈگری دار کی طرف سے بعینہ وہی قیمت بوجہ ہبہ یا ارث یا وصیت یا مباعت کے غاصب کے پاس پہنچی تو اس کو حکم دیا جائے گا کہ مقرہ لہ کو دے دے اور اگر غاصب کو ڈگری دار کی طرف سے سوائے قیمت ماخوذہ کے دوسرے ہزار درہم پہنچے پس اگر بوجہ ہبہ یا مباعت کے پہنچے ہوں تو مقرہ لہ کو دے دینے کا حکم نہ کیا جائے گا اور اگر بوجہ میراث یا وصیت کے پہنچے ہوں تو مقرہ لہ کو دے دینے کا حکم کیا جائے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ سیر العیون میں ہے کہ اگر مسلمان نے دوسرے مسلمان کی شراب کی مشک پھاڑ ڈالی تو شراب کا ضامن نہ ہوگا مگر مشک کا ضامن ہوگا الا اس صورت میں کہ پھاڑنے والا امام المسلمین ہو کہ اس کی رائے میں یہ مناسب معلوم ہوا تو ایسی صورت میں ضامن نہ ہو گا کیونکہ یہ مختلف فیہ ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ذمی نے شہر میں شراب فروشی ظاہر کی تو اس سے منع کیا جائے گا اور اگر کسی مسلمان نے اس کی شراب کو تلف کر دیا تو ضامن ہو گا لیکن اگر متلف کنندہ امام المسلمین ہو کہ اس کی رائے میں یہ امر مناسب معلوم ہو تو ضامن نہ ہوگا کیوں کہ یہ امر مختلف فیہ ہے یہ محیط میں ہے اور فتاویٰ

خلاصہ میں لکھا ہے کہ اگر ذمیوں نے مسلمانوں کے درمیان شراب ظاہر کی اور کسی مسلمان نے پابندی امر بالمعروف ان کی شراب بہا دی اور خم توڑ ڈالے اور مشکیں پھاڑ ڈالیں تو اس پر ضمان واجب نہ ہو گی یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ فتاویٰ میں ہے کہ ایک شخص دوسرے کے کپڑے میں چمٹ گیا اور کپڑے کو مالک کے ہاتھ سے اپنی طرف کھینچا پس وہ پھٹ گیا تو پوری قیمت کا ضامن ہوگا اور اگر مالک نے چھننے والے کے ہاتھ سے کھینچا ہو تو چھننے والا اس کی نصف قیمت کا ضامن ہوگا یہ فصول عمادیہ میں ہے اگر ایک شخص دوسرے کے لباس پر بیٹھ گیا اور صاحب لباس کو معلوم نہیں پھر صاحب لباس کھڑا ہوا اور بیٹھنے والے کے بیٹھنے سے وہ کپڑا پھٹ گیا تو بیٹھنے والے پر نصف ضمان شق واجب ہو گی اور امام محمدؒ سے مروی ہے کہ نقصان شق کا ضامن ہو گا مگر اعتماد ظاہر الروایہ پر ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص نے ایک مال عین کسی دلال کو اس کے فروخت کرنے کے واسطے دیا اور دلال نے کسی دکان دار کو دکھلایا اور اس کے پاس چھوڑ دیا پھر دکان دار بھاگ گیا اور مال بھی لے گیا تو دلال ضامن ہوگا اور شیخ نسفیؒ نے اپنے فتاویٰ میں شیخ الاسلام ابوالحسن سے روایت کی ہے کہ دلال ضامن نہ ہوگا اور یہی صحیح ہے کیونکہ جو فعل دلال سے سرزد ہوا اس سے چارہ نہیں ہے یہ محیط میں ہے۔

شیخ ابوالفضل کرمانی نے اشارات الجامع میں ذکر کیا ہے کہ متاع کا غصب متحقق نہیں ہوتا ہے اور اقضیہ میں مذکور ہے کہ تحقق ہوتا ہے اور اسی پر فتویٰ ہے یہ وجیز کروری میں ہے۔ ایک شخص دوسرے کے بیت میں داخل ہوا اور مالک بیت نے اس کو بالش (گاؤ تکیہ) پر بیٹھنے کی اجازت دی پس وہ بیٹھ گیا اور اس کے نیچے ایک تیل کی شیشی تھی جس میں تیل تھا کہ جس کو وہ نہیں جانتا تھا پس شیشی ٹوٹ گئی اور تیل بہہ گیا تو تیل کی ضمان اور جو بالش پھٹ گئی اور شیشی ٹوٹ گئی اس کا تاوان بیٹھنے والے پر واجب ہوگا اور اگر اپنا شیشہ کسی ملاءۃ (چادر) کے نیچے ہو کہ اس کو ڈھانک دیا ہو اور ملاءۃ پر بیٹھنے کی مالک نے اجازت دی ہو تو ایسی صورت

میں بیٹھنے والا ضامن نہ ہوگا اور فقیہ ابواللیث نے فرمایا کہ بالش کی صورت میں بھی بعض کے نزدیک ضامن نہ ہوگا اور یہ اقرب القیاس ہے کیونکہ مثل ملاءۃ کے بالش بھی متمسک جالسا نہیں

۱ یہاں روئی والے پر قسم نہیں ہے اور اگر دوسرے نے اس پر اجرت کا دعویٰ کیا تو اس پر البتہ قسم عائد ہو گی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 155 | Kitab al-Ghasab (Book of Usurpation)**

This is mentioned in Fatawa Qazi Khan. Similarly, if someone was given permission to sit on a roof, and that roof collapsed onto a slave belonging to the grantor of permission, the person sitting on the roof shall be liable (zamin). This is stated in 'al-Khulasa'. A broker had a garment that he was selling; it was later revealed to be stolen. He returned it to the person who had originally given it to him for sale. Then, the person from whom it was stolen demanded the garment from the broker. The broker stated: "I have returned it to the one who gave it to me." In this case, the broker is exonerated. This is in 'al-Muhit'. Sheikh Najmuddin was asked regarding a school where the boys and their teacher were suffering from the cold, and there was an open ventilator in the wall. The teacher expressed a wish that a boy would use a cloth (fota) to block it. A boy did so, and the cloth was subsequently ruined. Is the teacher or the boy liable? He replied: No, because in their presence, placing the cloth in the ventilator is not considered an act of destruction of the cloth. Therefore, there is no liability. Sheikh Najmuddin was also asked about some people preparing 'dobs' (1) (grape syrup) in a vineyard. A woman came to assist and, without permission from anyone, took a bowl to collect some juice. It was extremely hot, and due to the intense heat, she slammed it onto the ground, causing it to break. Is the woman liable? The Sheikh replied: Yes, because she slammed it down. Had it accidentally fallen from her hand, she would not have been liable. Sheikh Najmuddin was also asked about a man who died, and after his death, a wall of his house collapsed, revealing cash (1). When the judge (Qazi) learned of this, he ordered the money to be brought so he could distribute it among the heirs. The money remained with the Qazi for a few days. Then, the regional governor (Amir-e-Wilayat) sent a messenger to the Qazi requesting the money be sent to him for distribution among the heirs. The Qazi complied, but the governor failed to give it to the heirs. Do the heirs have the right to claim compensation from the Qazi? The Sheikh replied: Yes. This is mentioned in 'al-Zahiriyya'. It is recorded in 'Majmu al-Nawazil' that one girl engaged in sexual acts with another girl, resulting in the loss of her virginity. Imam Muhammad ibn al-Hasan stated that the perpetrator is liable for the 'Mahr-e-Misl' (proper dower) to the other girl. He noted that this ruling reached us from Hazrat Umar ibn al-Khattab. This is in 'al-Muhit'.

It is narrated from Imam Muhammad that a person usurped another's slave. A third party then acted as a guarantor for the victim, stating: "The usurper will return the slave to you tomorrow; if he fails, I shall be liable for one thousand dirhams." The

slave's actual value was only fifty dirhams. When the usurper failed to return the slave the next day, the guarantor was held liable only for the slave's actual value of fifty dirhams, and the excess amount was deemed void. If there is a dispute over the slave's value, the victim's claim up to one thousand dirhams is accepted with an oath; for any amount exceeding that, the guarantor's statement is accepted. This is according to Imam al-A'zam (Abu Hanifa) and Imam Abu Yusuf. If a specific guarantee amount was named and it is only slightly higher than the slave's value—an amount typically tolerated in human estimation—then that named amount remains due. However, if the excess is so great that people would not normally tolerate such a discrepancy in estimation, the portion exceeding the normal limit of tolerance is void. This is in 'al-Muhit'. A person usurped another's garment and wore it. The victim then came and snatched his garment back without the usurper realizing that he was the actual owner...

---

1. Grape juice syrup. (1) Meaning Dirhams and Dinars.

यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। इसी तरह अगर उसे छत पर बैठने की इजाज़त दी गई, फिर वह छत इजाज़त देने वाले के गुलाम पर गिर पड़ी, तो बैठने वाला ज़ामिन (ज़िम्मेदार) होगा, यह 'खुलासः में है। एक दलाल के पास एक कपड़ा था जिसे वह बेच रहा था। फिर पता चला कि वह चोरी का कपड़ा है। उसने वह कपड़ा उसी व्यक्ति को वापस कर दिया जिसने उसे बेचने के लिए दिया था। फिर जिस व्यक्ति का कपड़ा चोरी हुआ था उसने दलाल से कपड़ा माँगा। दलाल ने कहा कि जिसने मुझे दिया था मैंने उसे वापस कर दिया है। तो दलाल बरी (मुक्त) हो जाएगा, यह 'मुहीत' में है। शेख नजमुद्दीन से पूछा गया कि एक मदरसे के लड़कों और उनके शिक्षक को ठंड लग रही थी और दीवार में एक रोशनदान खुला था। शिक्षक ने कहा कि काश कोई लड़का इस कपड़े (फ़ोता) से इसे बंद कर दे। फिर एक लड़के ने वैसा ही किया और वह कपड़ा खराब हो गया। क्या शिक्षक या वह लड़का ज़ामिन होगा? फ़रमाया कि नहीं, क्योंकि उन लोगों की मौजूदगी में कपड़े को रोशनदान में रखना कपड़े का विनाश नहीं माना जाएगा। शेख नजमुद्दीन से यह भी पूछा गया कि कुछ लोग एक अंगूर के बाग में 'दौराब' (अंगूर का रस/सीरप) तैयार कर रहे थे। एक औरत उनकी मदद के लिए आई और उसने बिना किसी की इजाज़त के एक बर्तन लिया ताकि उसमें कुछ रस ले सके। बर्तन बहुत गर्म था, औरत ने गर्मी की वजह से उसे ज़मीन पर पटक दिया जिससे वह टूट गया। क्या वह औरत ज़ामिन होगी? शेख ने फ़रमाया कि हाँ, क्योंकि उसने उसे पटका है। अगर उसके हाथ से गिर जाता तो वह ज़ामिन न होती। शेख नजमुद्दीन से यह भी पूछा गया कि एक व्यक्ति मर गया, उसकी मृत्यु के बाद उसके घर की दीवार गिर गई और उसमें से नकद धन निकला। क़ाज़ी को पता चला तो उसने आदेश दिया कि वह धन लाया जाए ताकि वारिसों में बाँट दिया जाए। वह धन क़ाज़ी के पास रहा, फिर इलाक़े के हाकिम (अमीर-ए-विलायत) ने क़ाज़ी के पास आदमी भेजा कि वह धन मेरे पास भेज दो ताकि मैं वारिसों में बाँट दूँ। क़ाज़ी ने भेज दिया, पर हाकिम ने वारिसों को नहीं दिया। क्या वारिसों को क़ाज़ी से हर्जाना (ज़मानत) लेने का अधिकार है? शेख ने फ़रमाया कि हाँ। यह 'ज़हीरिया' में है। 'मज्मू अल-नवाज़िल' में लिखा है कि एक लड़की ने दूसरी लड़की के साथ यौन क्रिया की जिससे उसका कौमार्य भंग हो गया। इमाम मुहम्मद बिन हसन ने फ़रमाया कि कर्ता (फ़ाएला) पर दूसरी लड़की का 'महर-ए-मिस्ल' (प्रचलित मेहर) वाजिब होगा। फ़रमाया कि यह हुक्म हमें हज़रत उमर बिन ख़त्ताब से पहुँचा है। यह 'मुहीत' में है।

इमाम मुहम्मद से वर्णित है कि एक व्यक्ति ने दूसरे का गुलाम छीन लिया (ग़सब किया)। फिर एक व्यक्ति ने गुलाम के मालिक के लिए ज़मानत ली कि छीनने वाला कल तुम्हें गुलाम लौटा देगा, और यदि उसने ऐसा न किया तो मुझ पर एक हज़ार दिरहम का जुर्माना होगा। गुलाम की क़ीमत केवल पचास दिरहम थी। दूसरे दिन गुलाम नहीं लौटाया गया। तो ज़ामिन पर गुलाम की वास्तविक क़ीमत यानी पचास दिरहम ही अनिवार्य होंगे और अधिक राशि निरस्त मानी जाएगी। अगर गुलाम की क़ीमत पर विवाद हो, तो मालिक का दावा एक हज़ार दिरहम तक शपथ के साथ मान्य होगा, उससे अधिक पर ज़ामिन की बात मानी जाएगी। यह इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार है। यदि ज़मानत की राशि तय की गई थी और वह गुलाम की क़ीमत से थोड़ी ज़्यादा है जिसे लोग सामान्य रूप से अनुमान में स्वीकार कर लेते हैं, तो वही राशि वाजिब होगी। लेकिन अगर अंतर बहुत अधिक है तो सामान्य सीमा से अधिक का हिस्सा बातिल (अमान्य) होगा। यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे का कपड़ा छीनकर पहन लिया, फिर मालिक ने आकर अपना कपड़ा छीन लिया और छीनने वाले को पता न चला कि यही कपड़े का असली मालिक है...

---

1. अंगूर का रस/शीरा। (1) यानी दिरहम और दीनार।

ہوتی ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اسی طرح اگر اُس کو سطح پر بیٹھنے کی اجازت دی پس وہ سطح اجازت دینے والے کے مملوک پر گر پڑی تو بھی جالس ضامن ہو گا یہ خلاصہ میں ہے۔ ایک دلال کے پاس ایک کپڑا تھا وہ اس کو بیچتا تھا پھر ظاہر ہوا کہ وہ چوری کا کپڑا ہے پھر اُس نے اُسی شخص کو واپس کر دیا جس نے اُس کو فروخت کرنے کے واسطے دیا تھا پھر مسروق منہ نے دلال سے وہ کپڑا طلب کیا پس دلال نے کہا کہ مجھے جس نے دیا تھا میں نے اُسی کو واپس کر دیا ہے تو دلال بری ہو گا یہ محیط میں ہے۔ شیخ نجم الدین سے دریافت کیا گیا کہ ایک مکتب کے لڑکوں مع معلم کو سردی کی تکلیف پہنچی اور دیوار میں ایک روشن دان کھلا ہوا تھا پس معلم نے کہا کہ کاش کوئی لڑکا اس فوطہ ضائع ہو گیا پس آیا معلم یا وہ لڑکا جس نے لے کر ایسا کیا ہے ضامن ہو گا فرمایا کہ نہیں کیونکہ ان لوگوں کی موجودگی میں فوطہ (تسمہ لباس) کو جو اس فلاں لڑکے کے پاس ہے اس روشندان کو بند کر دیتا تو سردی دفع ہو جاتی پس ایک لڑکے نے ایسا ہی کیا پھر فوطہ ضائع ہو گیا آیا معلم یا وہ لڑکا جس نے لے کر ایسا کیا ہے ضامن ہو گا فرمایا کہ نہیں کیونکہ ان لوگوں کی موجودگی میں فوطہ اس سوراخ میں رکھنا فوطہ کی تضییع نہیں ہے پس ضامن نہ ہو گا اور بھی شیخ نجم الدین سے دریافت کیا گیا کہ کچھ لوگ ایک باغ انگور کے اندر وبس (۱) تیار کرتے تھے پس ایک عورت ان کی مدد کے واسطے آئی اور اُس نے بدون اُن میں سے کسی کی اجازت کے ایک طاس اس غرض سے لیا کہ کچھ عصیر اس میں لے اور وہ بہت گرم تھا پس عورت نے نہایت گرمی کے باعث اسے زمین پر دے پٹکا کہ وہ ٹوٹ گیا پس آیا وہ عورت ضامن ہوگی تو شیخ نے فرمایا کہ ہاں اس واسطے کہ اُس نے دے پٹکا ہے اور اگر اُس کے ہاتھ سے گر جاتا تو ضامن نہ ہوتی اور بھی شیخ نجم الدین سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص مر گیا

اُس کے مرنے کے بعد اُس کے گھر کی دیوار منہدم ہو گئی اور نقد مال (۱) نکلے پس قاضی کو یہ بات معلوم ہوئی اور اُس نے حکم دیا کہ اُس مال کو حاضر کرو تاکہ میں وارثوں میں تقسیم کر دوں پس وہ لوگ اُس مال کو قاضی کے پاس لے آئے اور چند روز اُس کے پاس رہا پھر امیر ولایت نے قاضی کے پاس آدمی بھیجا کہ وہ مال میرے پاس بھیج دے تاکہ میں وارثوں میں تقسیم کردوں پس قاضی نے اُس کے پاس بھیج دیا پھر امیر ولایت نے وارثوں کو نہ دیا پس آیا وارثوں کو قاضی سے ضمان مال لینے کا اختیار ہے شیخ نے فرمایا کہ ہاں کذافی الظہیر یہ مجموع النوازل میں لکھا ہے کہ ایک لڑکی (ہنت) نے دوسری لڑکی کے ساتھ فعلِ جماع کیا اور اُس کا پردہ بکارت جاتا رہا تو امام محمد بن الحسن نے فرمایا کہ فاعلہ پر مفعولہ کا مہر مثل واجب ہو گا اور فرمایا کہ یہ حکم ہم کو حضرت عمر بن الخطاب سے پہنچا ہے یہ محیط میں ہے۔

امام محمد سے مروی ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کا غلام غصب کیا پس ایک شخص مغصوب منہ کے واسطے ضامن (کفیل ۱۲) ہوا کہ غاصب کل کے روز تجھے وہ غلام دے دے گا اور اُس نے ایسا نہ کیا تو مجھ پر ہزار درہم ضمانت کے ہوں گے اور غلام کی قیمت فقط پچاس درہم ہے پھر غاصب نے دوسرے روز مغصوب منہ کو وہ غلام نہ دیا تو ضامن پر غلام کی قیمت پچاس درہم لازم ہوں گے اور زیادتی باطل ہو گی اور اگر غلام کی قیمت میں دونوں نے اختلاف کیا تو مغصوب منہ کی قیمت متدعیہ میں سے ہزار درہم تک قسم سے مغصوب منہ کا قول قبول ہو گا اور ہزار سے زیادہ میں ضامن کا قول قبول ہو گا یہ امام اعظم اور امام ابو یوسف کے نزدیک ہے اور اگر قیمت کی ضمان لی اور اُس کو مسمیٰ کر دیا پھر دیکھا گیا تو یہ مقدار مسمیٰ قیمت غلام سے اس قدر زیادہ ہے کہ ایسی زیادتی لوگ اپنے اندازہ میں برداشت کر جاتے ہیں تو یہی مقدار غلام کی قیمت قرار دی جائے گی پس ضامن پر اس قدر مقدار مسمیٰ واجب ہو گی اور اگر اس قدر زیادہ ہو کہ لوگ اپنے اندازہ میں ایسی زیادتی کا خسارہ نہیں اُٹھاتے ہیں تو جس قدر اٹھا جاتے ہیں اس

سے جس قدر زیادہ ہے وہ باطل ہو جائے گی یہ محیط میں ہے ایک شخص نے دوسرے کا کپڑا غصب کر کے پہن لیا پھر مغصوب منہ نے آکر اپنا کپڑا اکھسیٹا اور غاصب کو یہ معلوم نہ ہوا کہ یہی کپڑے کا مالک ہے

---

۱۔ بس نحستیں دوشاب شیرہ انگور۔ (۱) یعنی درہم و دینار

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb) 156**

...So if the cloth is torn during a struggle, the usurper (ghasib) will not be liable for compensation; this is stated in al-Tatarkhaniyya. Damaging someone's property in a known (customary) manner ☆ If the owner of a cloth says, "This is my cloth, return it to me," and the usurper refuses, and the owner pulls it with such force that is not customary for such a cloth, and the cloth tears, even then the usurper will not be liable. However, if he pulls it in a customary manner as people usually do, and it tears, the usurper will be liable for half the price. If someone wears a cloth belonging to his own property and another person pulls it in a way that is not customary for such a cloth, and it tears, the one who pulled it will be liable for the full price; this is in Fusul al-'Imadiyya. If a person falls ill in a house that was wrongfully taken (dar maghsuba), he should not be visited for convalescence. It is narrated from Sufyan al-Thawri (RA) that he used to visit the moneychangers (Ashab al-Lubna'i [1]) and eat and drink with them, and the Jurist (RA) said, "We follow this view"; this is in al-Multaqit. If a wrongfully taken female slave gives birth to a child, earns some wealth, is given a gift, has her hand cut off, or is cohabited with under a doubt of legality, and then she dies and a decree is issued for her value on the day of usurpation, then the child, the gift, and the earnings will all belong to the master (owner). The compensation for cohabitation ('uqr) and the indemnity for injury (arsh) will go to the usurper. However, if a mutual settlement is reached regarding her price without a judge's order, then all of this will belong to the owner; this is in al-Tatarkhaniyya. If a wood-seller brings wood into his house located in a thoroughfare (kucha-e-nafiza), and the residents of the alley want to stop him, then if the person brings it loaded on an animal's back, they do not have the right to stop him because he is only exercising a right within their property by entering the animal into the alley, and he has that right. But if he throws the wood in a way that damages their buildings, they can stop him; this is in al-Fatawa al-Kubra. If a usurper regrets his action and the owner of the usurped property does not allow him to touch it, our scholars have said that as long as he has hope for the owner's arrival, he should keep the usurped property with him. When hope of his arrival is lost, he has the option to give that property in charity (sadaqa) on behalf of the owner. It is better to present this matter before the Imam of the Muslims because the Imam possesses a prudent judgment; hence, it was deemed better not to finalize the decision based on his own opinion alone [2]. Imam Muhammad (RA) stated in al-Jami' al-Saghir that if a person usurps another's slave and the slave hires himself out and remains safe after the work, the hiring is valid

according to custom. Thus, if the slave received wages and the usurper took them and destroyed them, then according to Imam A'zam (RA), the usurper will not be liable for compensation, while the Two Disciples (Sahibayn) stated that he would be liable. If the wages themselves are still present, then by consensus (ijma'), they belong to the owner; this is in al-Muhit. It is narrated from Shaykh Najm al-Din (RA) that he quoted from his teacher (may Allah have mercy on him) that a person took the turban off his debtor's head, saying it is a pledge (rahn) for my debt, and gave him a small scarf (mandil) to tie around his head, saying, "When you bring my debt, I will return your turban." Then the debtor brought the debt, but the turban had been destroyed while with the creditor. The teacher of Shaykh (may Allah have mercy on him) said that it will be treated like the destruction of pledged property, not like the destruction of usurped property, because he took it as a pledge, and the debtor's leaving it behind constitutes consent to it being a pledge; this is in Fatawa Qadi Khan.

If a person's animal dies in someone else's house, then if its skin has some value, the owner should take it out; if it has no value, the homeowner should take it out. A person who was appointed as an agent (wakil) for taking possession of property received that property from his client's debtor and...

[1] Ashab: People who practice money-changing (sarrafi). The point of doubt is that in cash transactions involving exchange (sarf), there is a suspicion of interest due to credit, but mere suspicion is not taken into account. [2] He gives charity himself.

...तो खींचातानी में कपड़ा फट गया तो ग़ासिब (अवैध कब्जा करने वाला) पर जुर्माना वाजिब न होगा, यह तातारख़ानिया में है। किसी के माल को ऐसे तरीके से नुक़सान पहुँचाना जो प्रसिद्ध हो ☆ अगर कपड़े के मालिक ने कहा कि यह कपड़ा मेरा है, मुझे वापस दे और ग़ासिब ने इनकार किया, फिर मालिक ने इसे इतने ज़ोर से खींचा कि ऐसे कपड़े को इस ज़ोर से खींचने की आदत नहीं है, फिर वह कपड़ा फट गया तो भी ग़ासिब ज़िम्मेदार (ज़ामिन) न होगा। और अगर आदत के अनुसार जिस तरह लोग खींचा करते हैं उसी तरह खींचा और वह फट गया तो ग़ासिब आधी क़ीमत का ज़िम्मेदार होगा। और अगर किसी ने अपनी मिलकियत का कपड़ा पहना और उसे एक व्यक्ति ने इस तरह खींचा कि ऐसे कपड़े को इस तरह खींचने की आदत नहीं है और वह कपड़ा फट गया, तो खींचने वाले पर पूरी क़ीमत वाजिब होगी, यह फ़सूल इमादिया में है। अगर कोई व्यक्ति ग़ासिब के घर में बीमार हुआ तो उसमें उसकी बीमारपुरसी न की जाएगी और सुफ़यान सौरी (रह.) से रिवायत है कि वे असहाब-ए-लुबनाई [1] के पास जाते और उनके साथ खाते-पीते थे और फ़क़ीह (रह.) ने फ़रमाया कि हम इसी को लेते हैं, यह मुल्तक़ित में है। एक ग़सब की हुई दासी ने बच्चा जना और उसने कुछ माल कमाया और कुछ उपहार (हिबा) किया गया और उसका हाथ काटा गया और उससे शुबहा (संदेह) में संभोग किया गया, फिर वह मर गई और ग़सब के दिन की क़ीमत की डिक्री हुई, तो बच्चा और हिबा और कमाई सब मालिक (मौला) की होगी और उक़्र (संभोग का मुआवज़ा) और अर्श (अंग भंग का मुआवज़ा) ग़ासिब को मिलेगा। और अगर क़ाज़ी के हुक्म के बिना उसकी क़ीमत पर आपसी सुलह कर ली तो यह सब मालिक को मिलेगा, यह तातारख़ानिया में है। अगर एक लकड़ियों वाला अपने मकान में, जो एक बंद गली (कूचा-ए-नाफ़िज़ह) में स्थित है, लकड़ियाँ लाता हो और गली वालों ने उसे इस काम से रोकना चाहा, तो अगर वह व्यक्ति जानवर की पीठ पर लाद कर लाता हो तो उन्हें रोकने का अधिकार नहीं है क्योंकि यह व्यक्ति उनकी मिलकियत में केवल इतना हस्तक्षेप करता है कि जानवर को गली में दाखिल करता है और ऐसा उसे अधिकार है। और अगर लकड़ियों को इस तरह फेंकता हो जिससे उनकी इमारतों को नुक़सान पहुँचता हो तो वे लोग उसे रोक सकते हैं, यह फ़तावा कुबरा में है। अगर ग़ासिब को अपने कृत्य पर पछतावा हुआ और मालिक ग़सब किए हुए माल को हाथ न लगाने दे, तो हमारे मशायख़ ने फ़रमाया कि जब तक उसे मालिक के आने की उम्मीद रहे तब तक ग़सब किए हुए माल को अपने पास रहने दे, जब उसके आने की उम्मीद टूट जाए तो अधिकार है कि वह माल मालिक के नाम से दान (सदक़ा) कर दे। और बेहतर यह है कि इस मामले

को मुसलमानों के इमाम के सामने पेश करे क्योंकि इमाम को एक समझदार राय प्राप्त है, अतः बेहतर यही ठहरा कि उसकी राय को यहीं [2] तक सीमित न करे। और इमाम मोहम्मद (रह.) ने 'जामे सगीर' में फ़रमाया कि एक व्यक्ति ने दूसरे का गुलाम ग़सब किया और गुलाम ने खुद को किराए पर दे दिया और काम से सही-सलामत रहा तो आम रिवाज के मुताबिक किराया सही है, अतः अगर गुलाम ने मज़दूरी ली और उसे ग़ासिब ने लेकर नष्ट (तलफ़) कर दी तो इमाम आज़म (रह.) के अनुसार ग़ासिब पर जुर्माना वाजिब न होगा और साहिबैन ने फ़रमाया कि वाजिब होगा। और अगर वह मज़दूरी उसी रूप में मौजूद हो तो सर्वसम्मति (इज्मा) से मालिक को मिलेगी, यह 'मुहीत' में है। शेख नजमुद्दीन (रह.) से रिवायत है कि उन्होंने अपने उस्ताद (अलैहि रहम) से नक़ल किया कि एक व्यक्ति ने अपने कर्जदार के सिर से उसका साफ़ा (अमामा) उतार लिया कि मेरे कर्ज में गिरवी (रहन) है और उसे एक छोटा रुमाल (मंदील) दे दिया कि अपने सिर पर बाँध ले और कहा कि जब तू मेरा कर्ज ले आएगा तो मैं तेरा साफ़ा तुझे वापस दूँगा, फिर कर्जदार उसका कर्ज ले आया जबकि लेनदार के पास वह साफ़ा नष्ट हो गया था, तो शेख रहमतुल्ला के उस्ताद (अलैहि रहम) ने फ़रमाया कि इसे गिरवी रखे हुए माल के नष्ट होने की तरह माना जाएगा, न कि ग़सब किए हुए माल के नष्ट होने की तरह, क्योंकि उसने उसे गिरवी के तौर पर लिया है और कर्जदार का उसे छोड़कर चला जाना गिरवी होने के साथ रजामंदी है, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

एक व्यक्ति का मवेशी दूसरे के घर में मर गया, तो अगर उसकी खाल की कुछ क़ीमत हो तो मालिक उसे बाहर निकाले और अगर क़ीमत न हो तो घर वाला उसे बाहर निकाले। जिस व्यक्ति को माल पर कब्ज़ा करने के लिए वकील नियुक्त किया गया, उसने अपने मुवक्किल के कर्जदार से वह माल वसूल करके अपने...

[1] असहाब यानी वे लोग जो सर्राफ़ी (पैसों का लेनदेन) का पेशा करते हैं। संदेह की गुंजाइश यह है कि नकदी के लेन-देन में उधार आदि से ब्याज का संदेह होता है, लेकिन केवल संदेह का कोई एतबार नहीं होता। [2] स्वयं दान करता है।

پس کشمکش میں کپڑا پھٹ گیا تو غاصب پر تاوان واجب نہ ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ کسی کے مال کو ایسے طریقے سے نقصان پہنچانا جو معروف ہو ☆ اگر کپڑے کے مالک نے کہا کہ یہ کپڑا میرا ہے مجھے واپس دے اور غاصب نے انکار کیا پس مالک نے اس زور سے کھینچا کہ ایسا کپڑا اس زور سے کھینچنے کی عادت نہیں ہے پس وہ کپڑا پھٹ گیا تو بھی غاصب ضامن نہ ہوگا اور عادتاً جس طرح لوگ کھینچا کرتے ہیں اسی طرح کھینچا اور وہ پھٹ گیا تو غاصب نصف قیمت کا ضامن ہوگا اور اگر کسی نے اپنے ملک کا کپڑا پہنا اور اس کو ایک شخص نے اس طرح کھینچا کہ ایسے کپڑے کی اس طرح کھینچنے کی عادت نہیں ہے اور وہ کپڑا پھٹ گیا تو کھینچنے والے پر پوری قیمت واجب ہوگی یہ فصول عمادیہ میں ہے اگر کوئی شخص غاصب دار مغصوبہ میں بیمار ہوا تو اُس میں اُس کی عیادت نہ کی جائے گی اور سفیان ثوریؒ سے مروی ہے کہ وہ اصحاب لبنائی [۱] کے پاس جاتے اور ان کے ساتھ کھاتے پیتے تھے اور فقیہؒ نے فرمایا کہ ہم اسی کو لیتے ہیں یہ ملتقط میں ہے۔ ایک مغصوبہ باندی بچہ جنی اور اُس نے کچھ مال کمایا اور کچھ ہبہ کیا گیا اور اُس کا ہاتھ کاٹا گیا اور اس سے شبہہ میں وطی کی گئی پھر وہ مرگئی اور یوم غصب کی قیمت کی ڈگری ہوئی تو بچہ اور ہبہ اور کمائی سب مولیٰ کی ہوگی اور عقر اور ارش غاصب کو ملے گا اور اگر بلا حکم قاضی اُس کی قیمت پر باہمی صلح کر لی تو یہ سب مالک کو ملے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے اگر ایک لکڑیوں والا اپنے مکان میں جو ایک کوچہ نافذہ میں واقع ہے لکڑیاں لاتا ہو اور اہل کوچہ نے اُس کو اس امر سے منع کرنا چاہا پس اگر وہ شخص جانور کی پیٹھ پر لاد کر لاتا ہو تو اُن کے منع کرنے کا اختیار نہیں ہے کیونکہ یہ شخص اُن کی ملک میں فقط یہی تصرف کرتا ہے کہ جانور کو کوچہ میں داخل کرتا ہے اور ایسا اُس کو اختیار ہے اور اگر لکڑیوں

کو اس طرح پھینکتا ہو کہ جس سے اُن کی عمارات کو ضرر پہنچتا ہو تو وہ لوگ اُس کو منع کر سکتے ہیں یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے اگر غاصب کو اپنے فعل پر ندامت ہوئی اور اُس کو مالک مغصوب ہاتھ نہ لگانے دے تو ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ جب تک اُس کو مالک کے آنے کی اُمید رہے تب تک مال مغصوب کو اپنے پاس رہنے دے جب اُس کے آنے کی اُمید ٹوٹ جائے تو اختیار ہے کہ وہ مال مالک کے نام سے صدقہ کر دے اور احسن یہ ہے کہ اس معاملہ کو امام المسلمین کے سامنے پیش کرے اس لیے کہ امام کو ایک مدبر رائے حاصل ہے پس احسن ٹھہرا کہ اس کی رائے کو یہیں [۲] تک قطع نہ کرے اور امام محمدؒ نے جامع صغیر میں فرمایا کہ ایک شخص نے دوسرے کا غلام غصب کیا اور غلام نے اپنے تئیں اجارہ پر دیا اور کام سے صحیح سالم رہا تو موافق معروف کے اجارہ صحیح ہے پس اگر غلام نے اجرت لی اور اس سے غاصب نے لے کر تلف کر دی تو امام اعظمؒ کے نزدیک غاصب پر ضمان واجب نہ ہوگی اور صاحبین نے فرمایا کہ واجب ہوگی اور اگر وہ اجرت بعینہ قائم ہو تو بالا جماع مالک کو ملے گی یہ محیط میں ہے شیخ نجم الدینؒ سے روایت ہے کہ اُنھوں نے اپنے استاد علیہ الرحمۃ سے نقل کیا کہ ایک شخص نے اپنے قرضدار کے سر سے اُس کا عمامہ اتار لیا کہ میرے قرضہ میں رہن ہے اور اُس کو ایک مندیل صغیرہ دے دی کہ اپنے سر پر باندھ لے اور کہا کہ جب تو میرا قرضہ لے آئے گا تو میں تیرا عمامہ تجھے واپس دوں گا پس قرض دار اُس کا قرضہ لایا حالانکہ قرض خواہ کے پاس وہ عمامہ تلف ہو گیا تھا تو شیخ رحمۃ اللہ کے استاد علیہ الرحمۃ نے فرمایا کہ مثل تلف مال مرہون کے قرار دیا جائے گا نہ تلف مال مغصوب کے اس لیے کہ اُس نے بطور رہن لیا ہے اور قرض دار کا چھوڑ کر چلا جانا رہن ہو جانے کے ساتھ رضامندی ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص کا چوپایہ دوسرے کے گھر میں مر گیا پس اگر اس کی کھال کی کچھ قیمت ہو تو مالک اُس کو باہر

نکالے اور اگر قیمت نہ ہو تو گھر والا اُس کو باہر نکالے۔ جو شخص قبضہ مال کے واسطے وکیل کیا گیا اُس نے اپنے موکل کے قرضدار سے وہ مال وصول کر کے اپنے...

[۱] اصحاب یعنی جو لوگ صرافی پیشہ کرتے ہیں۔ وہم کا موقع یہ کہ نقدی بیع صرف میں اُدھار وغیرہ سے بیاج کا شبہہ ہے لیکن خالی وہم کا کچھ اعتبار نہیں ہوتا۔ [۲] خود صدقہ کرتا

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) (157) Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

If someone places dirhams in a donkey's nosebag and hangs it on the donkey, and those dirhams are subsequently lost, they shall not be held liable (Zamin). This is because they acted towards that property with the same degree of care as they would for their own property. This is as stated in 'Al-Hadi'. If a person's animal enters another's house, its removal is mandatory upon the owner because it is their property that is occupying another's domain. Similarly, if a person's bird or animal dies in someone else's well, its removal is mandatory upon the owner, but bailing out the water of the well is not mandatory upon them. This is mentioned in 'Fatawa Kubra'. It is written in the Book of Usurpation in 'Tafrid' that if a person purchases a slave girl and makes her an 'Umm Walad' (mother of his child), and later the slave girl is reclaimed through legal entitlement (Istihqaq) by another, her child will be considered free-born (Hurr al-Asl). The purchaser will be obligated to pay the price of the child to the original master of the slave girl. This was the judgment issued by the Commander of the Faithful, Ali (may Allah honor his face), in the presence of the Companions. The value of the child is to be determined based on the day of litigation (Yawm al-Khusumat). If the child dies and leaves behind an inheritance, the entire inheritance shall go to the father, and nothing will be due to the slave girl's master from it.

If a person usurps another's slave girl and sells her to a buyer who is unaware that she is usurped property, and the buyer has intercourse with her, children are born, and the slave girl subsequently dies in the buyer's possession. Then the original owner files a claim and presents witnesses before the judge (Qazi) proving that the slave girl was theirs. The owner shall have the right to take compensation for intercourse (Uqr) from the buyer, regardless of whether they chose to seek indemnity (indemnity of price) from the seller or the buyer. In the case where a slave girl is purchased through an invalid sale (Bay' Fasid) and Uqr becomes due upon the buyer, and then the slave girl dies or her return becomes impossible for some reason, there are two narrations regarding the owner of that Uqr. Since usurpation (Ghasb) is analogous to an invalid sale, there will likewise be two narrations regarding Uqr in the case of usurpation. This is in 'Tatarkhaniyya'.

Imam Muhammad stated in 'Al-Jami' that if one person usurps a slave girl from another, and a second person usurps a male slave from the same victim, and both usurpers exchange the male slave and female slave in a sale and take mutual possession. If the owner subsequently learns of this and grants permission for this

sale, it shall be void (Batil). However, if there are two separate owners of the male slave and the female slave, and both learn of this matter and give their permission, the sale shall become valid. Upon validation, the male slave becomes the property of the one who usurped the female slave, and the female slave becomes the property of the one who usurped the male slave. The usurper of the male slave shall be obligated to pay the value of the slave as indemnity to his original master, and the usurper of the female slave shall be obligated to pay the value of the slave girl to her original master. This same ruling applies if both owners grant permission initially, for instance, if the owner of the male slave says to his usurper, "Purchase such-and-and person's slave girl in exchange for this slave of mine," and the owner of the female slave says to her usurper, "Purchase such-and-such person's male slave in exchange for this slave girl." Similarly, if one person usurps a hundred Dinars from another, and another usurper usurps a thousand Dirhams from the same person, then both usurpers conduct a sale and mutual exchange of those Dirhams and Dinars, then separate, and the owner subsequently learns of it and gives permission, the sale shall be valid. This is in 'Al-Muhit'.

If a person usurps a melon and cuts a slice from it, the owner's right to the melon is not terminated. However, if they slice the entire melon, the right is terminated because the essence/identity of 'melon' has been lost. This is as stated in 'Al-Qunya'. If a person orders another's slave to run away or says to him, "Kill yourself," and he does so, the person who gave the order shall not be liable for the price of the slave. This is because both belong to the same property. The translator notes that in the first situation, the slave's appearance will return to the one who gave the order; remember this.

**फ़तावी आलमगीरी ..... जिल्द (8) (157) किताब अल-ग़सब (छीनने का अध्याय)**

यदि किसी ने दिरहम गधे की थैली (तोबड़े) में रखकर उसे गधे पर लटका दिया और उनमें से वे दिरहम नष्ट हो गए, तो वह व्यक्ति उत्तरदायी (ज़ामिन) नहीं होगा क्योंकि उसने उस धन की सुरक्षा के लिए वही किया जो वह अपने धन के साथ करता। ऐसा 'अल-हादी' में वर्णित है। यदि किसी व्यक्ति का चौपाया जानवर दूसरे के घर में घुस जाए, तो उसे निकालना उसके मालिक का कर्तव्य है क्योंकि वह उसकी संपत्ति है जिसने दूसरे के घर को घेरा हुआ है। इसी प्रकार, यदि किसी व्यक्ति का पक्षी या जानवर दूसरे के कुएं में मर जाए, तो उसे निकालना मालिक पर अनिवार्य है, परंतु कुएं का पानी निकलवाना उस पर अनिवार्य नहीं है। यह 'फ़तावी कुबरा' में है। 'तफ़रीद' की किताब अल-ग़सब में लिखा है कि यदि किसी व्यक्ति ने एक दासी (बांदी) खरीदी और उसे 'उम्म-ए-वलद' बनाया, फिर वह दासी मालिकाना हक (इस्तिहक़ाक़) के तहत (मूल स्वामी द्वारा) ले ली गई, तो उसका बच्चा जन्म से स्वतंत्र (हुर अल-अस्ल) होगा और खरीदार पर अनिवार्य होगा कि वह दासी के पूर्व स्वामी को बच्चे की कीमत अदा करे। ऐसा ही फैसला हज़रत अमीरुल मोमिनीन अली (रज़ि.) ने सहाबा की उपस्थिति में दिया था। बच्चे की कीमत का निर्धारण मुकदमे के दिन (यौम-ए-ख़ुसूमत) के आधार पर होगा। यदि वह बच्चा मर गया और उसने कुछ विरासत छोड़ी, तो उसकी पूरी विरासत उसके पिता को मिलेगी और दासी के स्वामी के लिए उस पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा।

यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे की दासी छीन ली (ग़सब की) और उसे किसी खरीदार को बेच दिया, जबकि खरीदार नहीं जानता कि यह छीनी हुई दासी है। फिर खरीदार ने उसके साथ संभोग किया और बच्चे पैदा हुए, और वह दासी खरीदार के पास मर गई। फिर मूल स्वामी ने दावा करके काजी के सामने गवाह पेश किए कि यह दासी उसकी थी, तो स्वामी को अधिकार होगा कि वह खरीदार से दासी का मुआवज़ा (उक़्र) ले ले, चाहे उसने विक्रेता से हर्जाना लेने का विकल्प चुना हो या खरीदार से। और यदि दासी 'बै-ए-फ़ासिद' (अवैध बिक्री) के रूप में खरीदी गई हो और खरीदार पर उसके लिए उक़्र अनिवार्य हुआ हो, फिर दासी नष्ट हो गई या उसे वापस करना किसी कारणवश असंभव हो गया, तो क्या ऐसी स्थिति में वह उक़्र का मालिक होगा या नहीं? इसमें दो विवरण (रिवायतें) हैं। और ग़सब (छीनने) की स्थिति अवैध बिक्री के समान है, अतः ग़सब की स्थिति में भी उक़्र के बारे में दो रिवायतें होंगी। यह 'तातारीख़ानिया' में है।

इमाम मुहम्मद ने 'जामे' में फ़रमाया कि यदि एक व्यक्ति ने दूसरे से एक दासी छीनी और दूसरे व्यक्ति ने उसी पीड़ित स्वामी से एक दास (गुलाम) छीना, और दोनों छीनने वालों (ग़ासिबों) ने आपस

में दास और दासी का क्रय-विक्रय (मुआविज़ा) कर लिया और कब्ज़ा कर लिया। फिर मालिक को पता चला और उसने इस बिक्री की अनुमति दे दी, तो यह बातिल (शून्य) होगी। और यदि दास और दासी के दो अलग स्वामी हों और दोनों को इस मामले की खबर मिले और दोनों अनुमति दे दें, तो बिक्री वैध हो जाएगी। वैधता के बाद दास, दासी को छीनने वाले का हो जाएगा और दासी, दास को छीनने वाले की हो जाएगी। और दास छीनने वाले पर अनिवार्य होगा कि वह दास की कीमत उसके स्वामी को हर्जाने के रूप में दे, और दासी छीनने वाले पर अनिवार्य होगा कि वह दासी की कीमत उसके स्वामी को दे। यदि दोनों स्वामियों में से प्रत्येक ने शुरुआत में ही इस तरह अनुमति दे दी कि दास के स्वामी ने छीनने वाले से कहा 'अमुक व्यक्ति की दासी मेरे इस दास के बदले खरीद लो' और दासी के स्वामी ने अपने छीनने वाले से कहा 'अमुक व्यक्ति का दास इस दासी के बदले खरीद लो', तो भी यही नियम होगा। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे से सौ दीनार छीने और दूसरे ग़ासिब ने उसी व्यक्ति से हज़ार दिरहम छीने, फिर दोनों ग़ासिबों ने आपस में उन दिरहमों और दीनारों की बिक्री करके कब्ज़ा कर लिया, फिर दोनों अलग हो गए, फिर मालिक को पता चला और उसने अनुमति दे दी, तो बिक्री वैध हो जाएगी। यह 'मुहीत' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने एक खरबूजा छीना और उसकी एक फांक काट ली, तो खरबूजे से मालिक का अधिकार समाप्त नहीं होगा। परंतु यदि पूरे खरबूजे की फांकें कर दीं, तो अधिकार समाप्त हो जाएगा क्योंकि इससे खरबूजे का मूल स्वरूप नष्ट हो गया। जैसा कि 'अल-क़ुनिया' में है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे के गुलाम को भाग जाने का आदेश दिया या उससे कहा कि 'अपने आप को मार डाल' और उसने वैसा ही किया, तो आदेश देने वाले पर गुलाम की कीमत अनिवार्य नहीं होगी, क्योंकि दोनों ही उसी की संपत्ति हैं। अनुवादक कहते हैं कि दास का प्रकट होना आदेश देने वाले को वापस करेगा, इसे याद रखें।

---

گدھے کے توبڑے میں رکھ کر گدھے پر لٹکا لیا پس اس میں سے وہ دراہم تلف ہو گئے تو ضامن نہ ہو گا کیونکہ اس نے اس مال کے ساتھ حفاظت کے حق میں وہی فعل کیا جو اپنے مال سے کرتا کذافی الحادی۔ ایک شخص کا چوپایہ دوسرے کے گھر میں گھس گیا تو اُس کا نکالنا اُس کے مالک پر واجب ہے کیونکہ وہ اُس کی ملک ہے کہ غیر کے دار کو مشغول کیا۔ اسی طرح اگر کسی شخص کا پرندہ جانور دوسرے کے کنویں میں مر گیا تو اُس کا نکالنا مالک پر واجب ہے مگر کنویں کا پانی الچھوانا اُس پر واجب نہیں ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے تفرید کی کتاب الغصب میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے باندی خرید کر اس کو ام ولد بنایا پھر وہ باندی استحقاق میں لے لے گی تو اُس کا بچہ حر الاصل ہوگا اور مشتری پر واجب ہوگا کہ باندی کے مولیٰ کو بچہ کی قیمت ادا کرے ایسا ہی حضرت امیر المومنین علی کرم اللہ وجہہ نے محضر صحابہ میں فیصلہ صادر فرمایا تھا اور بچہ کی قیمت میں اعتبار یوم خصومت کا ہے اور اگر وہ بچہ مر گیا اور اُس نے کچھ میراث چھوڑی تو اُس کی تمام میراث اُس کے باپ کو ملے گی اور اُس پر باندی کے مولیٰ کے واسطے کچھ واجب نہ ہوگا۔ ایک شخص نے دوسرے کی باندی غصب کر کے کسی مشتری کے ہاتھ فروخت کر دی حالانکہ مشتری نہیں جانتا ہے کہ یہ مغصوبہ باندی ہے پھر مشتری نے اُس سے وطی کی اور اُس کے بچے پیدا ہوئے اور وہ باندی مشتری کے پاس مرگئی پھر مغصوب منہ نے نالش کر کے قاضی کے سامنے گواہ قائم کیے کہ یہ باندی میری تھی تو مالک کو اختیار حاصل ہو گا کہ مشتری سے باندی کا عقر لے لے خواہ اُس نے بائع سے ضمان (ضمان قیمت ۱۲) لینا اختیار کیا ہو یا مشتری سے اور جو باندی بطور بیع فاسد خریدی گئی ہو اور مشتری پر اس کے بابت عقر واجب ہوا ہو پھر باندی ہلاک ہوگئی یا اُس کا واپس کرنا کسی وجہ سے متعذر ہو گیا ہو

پس آیا ایسی صورت میں عقر کا مالک ہوگا نہیں تو اُس میں دو روایتیں ہیں اور صورت غصب نظیر بیع فاسد ہے پس صورت غصب میں بھی عقر کی بابت دو روایتیں ہوں گی یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

امام محمد نے جامع میں فرمایا کہ ایک شخص نے دوسرے سے ایک باندی غصب کی اور دوسرے شخص نے اُسی مغصوب منہ سے ایک غلام غصب کیا اور دونوں غاصبوں نے غلام و باندی کا باہم خرید و فروخت میں معاوضہ کر لیا اور باہمی قبضہ کر لیا پھر مالک کو خبر پہنچی اور اُس نے اس بیع کی اجازت دے دی تو باطل ہوگی اور غلام و باندی کے دو شخص مالک ہوں اور دونوں کو اس معاملہ کی خبر پہنچی اور دونوں نے اجازت دے دی تو بیع جائز ہو جائے گی بعد جواز کے غلام تو باندی کے غاصب کا اور باندی غلام کے غاصب کی ہو جائے گی اور غاصب غلام پر واجب ہوگا کہ غلام کی قیمت اُس کے مولیٰ کو تاوان دے اور غاصب باندی پر واجب ہوگا کہ باندی کی قیمت باندی کے مولیٰ کو تاوان دے اور اگر دونوں میں سے ہر ایک مالک نے ابتدا میں اجازت دے دی بایں طور کہ مالک غلام نے اس کے غاصب سے کہا کہ فلاں شخص کی باندی بعوض میرے اس غلام کے خرید اور مالک باندی نے اس کے غاصب سے کہا کہ فلاں شخص کا غلام بعوض اس باندی کے خرید تو بھی یہی حکم ہے اگر ایک شخص نے دوسرے سے سو دینار غصب کر لیے اور دوسرے غاصب نے اُسی شخص سے ہزار درہم غصب کر لیے پھر دونوں غاصبوں نے باہم ان درہموں و دیناروں کی بیع کر کے باہمی قبضہ کر لیا پھر دونوں جدا ہو گئے پھر مالک کو معلوم ہوا اور اُس نے اجازت دے دی تو بیع جائز ہو جائے گی یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے ایک خربوزہ غصب کر کے اُس کی پھانک اتاری تو خربوزہ سے مالک کا حق منقطع نہ ہو گا اگر پورے خربوزے کی پھانکیں کر ڈالیں تو منقطع ہو جائے گا کیونکہ اس سے خربوزے کا اسم زائل ہو گیا کذافی القنیہ۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کے غلام کو بھاگ جانے کا حکم کیا یا

اُس سے کہا کہ اپنے تئیں قتل کر ڈال پس اُس نے ایسا ہی کیا تو حکم دہندہ پر غلام کی قیمت واجب نہ ہو گی اس واسطے کہ دونوں اسی کے مال ہیں پس شرائط بیع تحقق نہ ہو گی وفینظر ۔ ۲ قال المترجم قولہ قیمت واجب ہونی محرر صورت اولی میں --- ہے ظہور غلام کے حکم دہندہ کو واپس کرے گا نہ صورت ثانیہ میں فاحفظ

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 158 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

If a slave is instructed to destroy his master's property and he does so, the ruling is that the slave shall not be held liable (damin); this is mentioned in *Khazanat al-Muftin*. Sheikh (may Allah be pleased with him) was asked regarding a person who usurped another's rice and dehusked it, or usurped wheat and crushed it: does the owner's right cease? He replied, "No, because the essence of the usurped property (*ayn al-maghsub*) remains intact, just as the owner's right remains if someone slaughters another's goat and skins it." This is found in *Fusul al-Imadiyya*.

If a person, without the permission of the mosque's attendant, brings several of his cows into the mosque by taking the key and opening it, and the cows damage the floor of the mosque, the person shall be held liable; this is recorded in *Quniyah*. It is narrated from Ali bin Abi al-Ja'd that he said, "I heard Ali bin Asim say that he asked Imam Abu Hanifa (RA): 'A person's one dirham and another's two dirhams became mixed, then two dirhams were lost, and only one remained, and it is unknown to whom it belongs.' The Great Imam (Abu Hanifa) replied, 'The remaining dirham shall be divided into three parts (i.e., the owner of two dirhams gets two-thirds and the owner of one gets one-third).'" Later, I met Sheikh Ibn Shubruma and asked the same. He said, "Imam Abu Hanifa erred; of the two lost coins, one certainly belonged to the owner of two, while the second could belong to either. Thus, the remaining coin should be split half-and-half." I found this persuasive and returned to Imam Abu Hanifa. The Imam himself recited Ibn Shubruma’s counter-argument and asked if he had said that. I replied, "Yes." The Imam then explained, "When the coins were mixed, they became a joint partnership (*shirkat*) such that they are indistinguishable. Every single dirham now contains a two-thirds share for one and a one-third share for the other. Therefore, what was lost was lost proportionally, and what remains remains according to the same ratio (three-thirds shares)." This is in *Jawahara al-Nayyirah*.

A person usurped a slave and sold him to another for 500 dirhams on one-year credit. The original owner claimed the usurper had purchased the slave from him for 1000 dirhams cash before reselling. The usurper denied purchasing it, claiming he sold it only upon the owner's command. Since the slave is physically with the buyer and both parties agree on the validity of the sale, the slave remains with the buyer. No liability for usurpation is due from the usurper because the owner himself acknowledged a transaction that rendered the return impossible. An oath will then be taken from the usurper: "By Allah, I did not [buy] this slave..."

*1. Note: 'Jawahara' is the famous name; some have said 'Jawani'. Here, 'credit' is intended.*

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ८ | १५८ | किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

और अगर उस ग़ुलाम से कहा गया कि अपने मालिक का माल नष्ट कर दे और उसने उसे नष्ट कर दिया, तो निर्णय के अनुसार वह दास उत्तरदायी (ज़ामिन) नहीं होगा; यह 'ख़ज़ाना अल-मुफ़्ती' में वर्णित है। शेख (रज़ि.) से पूछा गया कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे के चावल हड़प लिए और उनका छिलका उतार दिया, या गेहूँ हड़प कर उन्हें कूट दिया, तो क्या मूल मालिक का अधिकार समाप्त हो जाएगा? उन्होंने कहा, "नहीं, क्योंकि हड़पी गई वस्तु का मूल अस्तित्व (ऐन) बना हुआ है, ठीक वैसे ही जैसे किसी की बकरी ज़ब्ह करके उसकी खाल उतार देने से मालिक का अधिकार समाप्त नहीं होता।" यह 'फ़ुसूल-ए-इमादिया' में है।

किसी व्यक्ति ने मस्जिद के सेवक की अनुमति के बिना अपनी कुछ गाएँ मस्जिद में घुसा दीं, मस्जिद की चाबी लेकर उसे खोला, और गाओं ने मस्जिद का फ़र्श खराब कर दिया, तो वह व्यक्ति उत्तरदायी होगा; यह 'क़ुनैया' में है। अली बिन अबी अल-जअद से रिवायत है कि उन्होंने कहा, "मैंने अली बिन आसिम को कहते सुना कि मैंने इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) से पूछा: 'एक व्यक्ति का एक दिरहम और दूसरे के दो दिरहम आपस में मिल गए, फिर दो दिरहम खो गए और केवल एक बचा। यह पता नहीं कि वह किसका है।' इमाम-ए-आज़म ने फ़रमाया, 'बचा हुआ दिरहम दोनों में तीन हिस्सों में विभाजित होगा (यानी दो दिरहम वाले को दो हिस्से और एक वाले को एक हिस्सा मिलेगा)।' फिर मैं शेख इब्न शुबरमा से मिला, उन्होंने पूछा, 'क्या तुमने यह किसी और से पूछा?' मैंने कहा, 'हाँ, इमाम अबू हनीफ़ा से।' उन्होंने उनका जवाब सुनकर कहा, 'अबू हनीफ़ा से चूक हुई; क्योंकि दो खोए हुए सिक्कों में से एक निश्चित रूप से दो सिक्के वाले का है, और दूसरा किसी का भी हो सकता है, इसलिए बचा हुआ सिक्का आधा-आधा बँटना चाहिए।' मैंने उनका तर्क सही माना और इमाम अबू हनीफ़ा के पास वापस गया। इमाम ने इब्न शुबरमा का तर्क स्वयं ही दोहराते हुए पूछा कि क्या उसने ऐसा कहा? मैंने 'हाँ' कहा। तब इमाम ने समझाया, 'जब सिक्के मिल गए, तो वे अविभाज्य साझेदारी बन गए। हर सिक्के में दो सिक्के वाले का दो-तिहाई और एक सिक्के वाले का एक-तिहाई हिस्सा है। इसलिए जो खोया वह अपने अनुपात में खोया, और जो बचा वह भी उसी अनुपात (तीन तिहाई हिस्सों) में बचा है'।" यह 'जवाहरा नय्यिरा' में है।

एक व्यक्ति ने एक गुलाम हड़प लिया और उसे किसी दूसरे को 500 दिरहम के उधार पर एक साल के वादे के साथ बेच दिया। मूल मालिक ने हड़पने वाले (ग़ासिब) से कहा कि तुमने मुझसे इसे 1000 दिरहम नक़द में खरीदा था और फिर आगे बेचा। ग़ासिब ने कहा, "मैंने खरीदा नहीं था, बल्कि तुम्हारे

कहने पर ही बेचा था।" गुलाम खरीदार के पास मौजूद है। इस स्थिति में गुलाम खरीदार के पास ही रहेगा क्योंकि दोनों पक्षों ने बिक्री की वैधता स्वीकार की है। ग़ासिब पर हर्जाना (ज़मान) नहीं होगा क्योंकि मालिक की ओर से ही ऐसी स्थिति पैदा हुई जिसने वापसी को असंभव बना दिया। अब ग़ासिब से शपथ ली जाएगी कि "ईश्वर की कसम, मैंने इस गुलाम को..."

---

१. 'जवाहरा' प्रसिद्ध नाम है, कुछ ने 'जवानी' कहा है, और यहाँ उधार का संदर्भ है।

اور اگر اُس غلام سے کہا کہ اپنے مولیٰ کا مال تلف کر دے پس اُس نے تلف کر دیا تو حکم وہ بندہ ضامن نہ ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے شیخ رضی اللہ عنہ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے دوسرے کے ارُز غصب کر کے اُن کو مقشر کر ڈالا یا گیہوں غصب کر کے اُن کو کٹھک بنایا پس آیا حق مالک منقطع ہو جائے گا فرمایا کہ نہیں اس واسطے کہ عین المغصوب قائم ہے جیسا کہ اگر کسی غیر کی ایک بکری ذبح کر کے اُس کی کھال کھینچ ڈالی تو حق مالک منقطع نہیں ہوتا ہے یہ فصول عمادیہ میں ہے۔

کسی شخص نے بدون اجازت خادم مسجد کے اپنی چند گو نہیں مسجد میں داخل کیں اور مسجد میں داخل کیں اور مسجد کی کنجی لے کر کھول لی اور بہیا آئی اور اُس نے مسجد کا فرش تباہ کر دیا تو یہ شخص ضامن ہو گا یہ قنیہ میں ہے۔ علی بن ابی الجعد سے روایت ہے کہ انہوں نے فرمایا کہ میں نے علی بن عاصم سے سنا کہ وہ فرماتے تھے کہ میں نے امام ابو حنیفہؒ سے دریافت کیا کہ ایک شخص کا ایک درہم اور ایک شخص کے دو درہم باہم خلط ہو گئے پھر دو درہم ضائع ہو گئے اور ایک درہم باقی رہ گیا اور یہ معلوم نہیں کہ یہ تینوں میں سے کونسا درہم ہے تو امام اعظمؒ نے فرمایا کہ یہ باقی درہم دونوں میں تین حصہ ہو کر تقسیم ہو گا (یعنی ایک درہم والے کو ایک حصہ اور دو درہم والے کو دو حصہ ملیں گے) پھر میں نے شیخ ابن شبرمہ سے ملاقات کی اور ان سے بھی یہی مسئلہ پوچھا انہوں نے فرمایا کہ تو نے یہ مسئلہ کسی سے دریافت کیا ہے میں نے کہا کہ ہاں میں نے امام ابو حنیفہؒ سے دریافت کیا تھا پس کہا کہ انہوں نے تجھ سے یوں فرمایا کہ باقی درہم دونوں میں تین حصے ہو کر تقسیم ہو گا میں نے کہا کہ ہاں تو فرمایا کہ امام ابو حنیفہؒ چوک گئے اس واسطے کہ ہم کہتے ہیں کہ دونوں درہموں ضائع شدہ میں کا ایک درہم بیشک دو درہموں

والے کا ہے اور ضائع شدہ میں کا دوسرا درہم محتمل ہے کہ دو درہم والے کا ہو اور محتمل ہے کہ ایک درہم والے کا ہو پس جو درہم باقی موجود ہے وہ دونوں میں نصفا نصف تقسیم ہو گا پس میں نے ان کا جواب خوب مستحسن جانا اور لوٹ کر میں امام ابو حنیفہؒ کے پاس آیا اور میں نے کہا کہ جو مسئلہ میں نے آپ سے دریافت کیا تھا اُس میں آپ سے مخالفت کی گئی ہے پس امام ابو حنیفہؒ نے فرمایا کہ کیا تو نے ابن شبرمہ سے ملاقات کی تھی اور اُس نے تجھ سے اس طرح بیان کیا ہے یعنی امام نے بعینہ ابن شبرمہ کا جواب ذکر فرمایا پس میں نے کہا کہ ہاں تو آپ نے فرمایا کہ جب تینوں درہم باہم خلط ہو گئے تو دونوں کی شرکت میں ہو گئے اس طرح کہ دونوں میں تمیز نہیں ہو سکتی پس دو درہم والے کا ہر درہم میں سے دو تہائی حصہ اور ایک درہم والے کا ہر درہم میں سے ایک تہائی حصہ رہا پس جو درہم ضائع ہوا وہ اپنے حصہ سمیت ضائع ہوا پس جو درہم باقی رہا وہ اسی حصہ کے موافق تین تہائی حصص پر باقی رہا یہ جواہرہ نیرہ میں ہے۔

ایک شخص نے ایک غلام غصب کیا اور دوسرے کے ہاتھ اُس کو پانچ سو درہم کو بوعدہ ایک سال کے اُدھار فروخت کیا حالانکہ وہ غلام مغصوب منہ کا مصروف تھا اور مغصوب منہ نے غاصب سے کہا کہ تو نے مجھ سے یہ غلام ہزار درہم کو فی الحال قیمت ادا کرنے پر خرید کر کے مجھ سے اپنے قبضہ میں لے کر پھر تو نے اُس شخص کے ہاتھ پانچ سو درہم کو ایک سال کے وعدہ پر فروخت کیا ہے اور غاصب نے کہا کہ میں نے تجھ سے یہ غلام ہرگز نہیں خریدا ہے لیکن تو نے مجھے حکم دیا تھا پس میں نے تیرے حکم سے اس شخص کے ہاتھ پانچ سو درہم کو ایک سال کے وعدہ پر فروخت کر دیا ہے اور وہ غلام مشتری کے پاس بعینہ قائم ہے تو وہ غلام مشتری کو سپرد رہے گا اس واسطے کہ انہوں نے اُس کی صحت خرید پر اتفاق کیا ہے اور غاصب پر غصب کی وجہ سے ضمان بھی واجب نہ ہو گی کیونکہ مالک کو واپس کرنا ایسی بات سے متعذر ہوا جو

مالک کی طرف سے پائی گئی یعنی اُس نے غاصب کے ہاتھ خود فروخت کر دینے کا اقرار کیا پس غاصب سے قسم لی جائے گی کہ واللہ میں نے اس غلام کو ۱۔

---

۱۔ قولہ اور مشہور یہی جواہرہ ہے اور بعض نے جوانی کہا اور یہاں ادھار مراد ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

...not purchased; therefore, if the usurper (ghasib) takes an oath, nothing shall be mandatory upon him. However, if he refuses to take the oath (nakool), then whatever amount of price (thaman) the owner (maghsub-minhu) has claimed against him shall be mandatory. If, in the aforementioned case, the slave dies while in the possession of the buyer, and the rest of the circumstances remain the same, then an oath shall be taken from each of them regarding the claim of the other. If the usurper gave the slave as a gift (hiba) to someone and handed him over, then claimed he did so by the order of the owner, but the owner claimed, "You bought him from me for a thousand dirhams and then gifted him yourself," then the ruling for this follows the same detail we mentioned in the case of a sale (bai'). If the usurper beat the slave in such a way that he died, and then the usurper claimed he did so by the order of the owner, but the owner denied this, saying, "On the contrary, I had sold him to you, and then you beat your own property (mamluk) in such a way," then first, an oath shall be taken from the usurper. If he refuses the oath (nakool), the price claimed by the owner becomes mandatory upon him. If he takes the oath, then the price of the slave becomes mandatory because the impossibility of returning the property arose from the usurper's side. Then an oath shall be taken from the owner. If he refuses, the price becomes void; if he takes the oath, the price of the slave remains mandatory upon the usurper. This is analogous to the case of destruction mentioned earlier; this is in 'Al-Muhit'.

If a person is unconscious (la-ya'qal) due to intoxication and is sleeping on the path, and another person takes his clothes for safekeeping, he shall not be liable (zamin). However, if he removes the cloth from under his head, or takes a ring off his finger, or unties a purse (humyani) from his waist, or takes dirhams from his sleeve, even if for the purpose of protecting this property, he shall be liable because this property was secure with its owner; this is in 'Wajiz Kurdi'. A person confessed that he accidentally cut off the hand of someone's slave, and his supporting clan (the aqila) denied his confession. Later, that disabled (aqta') slave was usurped from his master (mawla) by another person and died in the usurper's possession. In this case, the master has an option: he can either take the full price of the slave from the person who caused the injury (the perpetrator) out of his wealth over three years, or he can immediately take the price of a disabled slave from the usurper from his wealth and also take the compensation for the hand (arsh) from the perpetrator's wealth. This 'arsh' will be equivalent to half the price. If the owner chose to take the price of the

slave from the perpetrator based on his confession, then the perpetrator can recover the price of the disabled slave from the usurper's wealth; this is in 'Al-Muhit'. If someone usurped an authorized slave who is in debt (ghulam-e-mazun madyun) and the slave died in his possession, the creditors have the right to demand the slave's value from the usurper; this is in 'Al-Qunya'. Sheikh Abu Hamid was asked about a person who held a mortgaged house (dar-e-marhuna) that was then usurped. Does the mortgagee (murtahin) have the right to demand his debt from the mortgagor (rahin)? He replied that it depends: if the mortgagor had permitted the mortgagee to use (intifa) the property, and it was usurped during the period of use, then the mortgagee has the right to demand his debt. If it was usurped when not in a state of use, it shall be considered as destroyed (halak) in lieu of the debt; this is in 'Tatarkhaniya'.

If a Muslim usurps or steals anything from a non-Muslim citizen (dhimmi), the Muslim will be reprimanded on the Day of Judgment. The dispute with a dhimmi on the Day of Judgment will be very severe. An injustice against a non-believer will be harsher than an injustice against a Muslim, because a non-believer will be in hell eternally, and their punishment in the fire will be lightened because of the injustices committed against them by those among his people; thus, letting go of those victims on his behalf...

1- Nakool: Refusal to take an oath; Thaman-e-Mutda'wiya: The price that has been claimed; La-ya'qal: One who lacks understanding; Aqta': One whose hand is cut; Arsh: Compensation for injury; Dar-e-Marhuna: A mortgaged house. 2- Intifa: I.e., saying that whatever profit you gain from the mortgage is lawful (halal) for you. Scholars have said that in this way, it becomes lawful for the mortgagee to take profit, but this is against piety (taqwa) because any benefit derived due to a loan is, by consensus, disliked (makruh) and prohibited (tahrimi). (1) Destroyed in exchange for the debt.

[यह मामला उस समय का है जब] नहीं खरीदा है, तो यदि हड़पने वाले (ग़ासिब) ने कसम खाई तो उस पर कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा, और यदि उसने कसम खाने से इनकार (नकौल) किया तो जिस मूल्य (थमन) का मूल स्वामी (मग़्हसब मिन्हु) ने दावा किया है, वह उस पर अनिवार्य होगा। और यदि उक्त मामले में वह गुलाम खरीदार के पास मर गया हो और बाकी मामला वैसा ही रहे, तो इस स्थिति में दोनों पक्षों से एक-दूसरे के दावे पर कसम ली जाएगी। और यदि ग़ासिब ने उस गुलाम को किसी व्यक्ति को दान (हिबा) करके सुपुर्द कर दिया, फिर दावा किया कि मैंने मूल स्वामी के आदेश से ऐसा किया है, और मूल स्वामी ने कहा कि तुमने मुझसे हज़ार दिरहम में खरीदकर फिर खुद दान किया है, तो इसका फैसला भी उसी विस्तार से है जो हमने बिक्री (बेअ) की स्थिति में बताया है। और यदि ग़ासिब ने उस गुलाम को इस तरह मारा कि वह मर गया, फिर ग़ासिब ने कहा कि मैंने उसके मालिक के आदेश से मारा है, और मालिक ने कहा कि नहीं, बल्कि मैंने उसे तुम्हारे हाथ बेच दिया था और फिर तुमने अपने गुलाम को इस तरह मारा है, तो पहले ग़ासिब से कसम ली जाएगी। यदि उसने कसम से इनकार (नकौल) किया, तो उस पर मालिक द्वारा दावा किया गया मूल्य अनिवार्य होगा। और यदि उसने कसम खा ली, तो उस पर गुलाम की कीमत अनिवार्य होगी क्योंकि वापस करने में असमर्थता ग़ासिब की ओर से हुई है। फिर मालिक से कसम ली जाएगी। यदि उसने इनकार किया तो कीमत रद्द हो जाएगी, और यदि उसने कसम खा ली तो ग़ासिब पर उसकी कीमत अनिवार्य रहेगी। यह उदाहरण नष्ट होने की उसी स्थिति का है जो पहले उल्लेखित हो चुकी है, यह 'मुहीत' में है।

एक व्यक्ति नशे में धुत बेहोश (ला-यक़ल) रास्ते में सो रहा था। एक व्यक्ति ने सुरक्षा की दृष्टि से उसका कपड़ा ले लिया, तो वह क्षतिपूर्ति (ज़ामिन) के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। लेकिन यदि उसने उसके सिर के नीचे से कपड़ा निकाला या उसकी उंगली से अंगूठी उतार ली या उसकी कमर से थैली (हम्यानी) खोल ली या उसकी आस्तीन से दिरहम निकाल लिए, इस उद्देश्य से कि वह इस धन की रक्षा करेगा, तो वह उत्तरदायी (ज़ामिन) होगा क्योंकि यह धन अपने मालिक के पास सुरक्षित था, यह 'वजीज़ कुर्दी' में है। एक व्यक्ति ने स्वीकार किया कि मैंने अमुक व्यक्ति के गुलाम का हाथ गलती से काट दिया है, और इस स्वीकारोक्ति (मुक़र) के सहायक बिरादरी ने उसकी बात को झुठला दिया। फिर उस कटे हाथ वाले (अक्ता) गुलाम को किसी दूसरे ने उसके स्वामी (मौली) से छीन लिया और वह ग़ासिब के पास मर गया। तो स्वामी को विकल्प है: चाहे तो अपराध करने वाले से उसकी कीमत तीन वर्षों में उसके माल से ले ले, या ग़ासिब से उस गुलाम की कीमत कटे हुए हाथ के हिसाब से

उसके माल से तत्काल ले ले और अपराध करने वाले से हाथ का मुआवजा (अर्श) उसके माल से ले ले। यह 'अर्श' आधी कीमत के बराबर होगा। फिर यदि मालिक ने अपराध करने वाले की स्वीकारोक्ति पर उस गुलाम की कीमत का मुआवजा लेने का फैसला किया, तो अपराध करने वाला व्यक्ति ग़ासिब से उस कटे हाथ वाले गुलाम की कीमत ग़ासिब के माल से वसूल करेगा, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने ऋणग्रस्त अनुमत गुलाम (गुलाम-ए-माज़ून मदयून) को हड़प लिया और वह उसके पास मर गया, तो ऋणदाताओं (क़र्ज़-ख्वाहों) को ग़ासिब से उसकी कीमत मांगने का अधिकार होगा, यह 'क़ुन्या' में है। शेख अबू हामिद से पूछा गया कि एक व्यक्ति के पास गिरवी रखा हुआ घर (दार-ए-मरहूना) था, उसे किसी ग़ासिब ने छीन लिया। क्या अब गिरवी रखने वाले (मुर्तहिन) को अपने ऋण के लिए गिरवी देने वाले (राहिन) से ऋण मांगने का अधिकार है? उन्होंने उत्तर दिया कि देखा जाएगा: यदि राहिन ने मुर्तहिन को गिरवी वस्तु के उपयोग (इंतिफा) की अनुमति दी थी और उपयोग की स्थिति में वह छीन लिया गया, तो मुर्तहिन को अपना ऋण मांगने का अधिकार है। और यदि उपयोग की स्थिति के बिना छीना गया, तो उसे ऋण के बदले नष्ट (हलाक़) माना जाएगा, यह 'ताता़र खानिया' में है।

यदि किसी मुसलमान ने किसी गैर-मुस्लिम नागरिक (ज़िम्मी) से कुछ छीना या चुराया है, तो कयामत के दिन उस मुसलमान को फटकार (अताब) लगाई जाएगी। कयामत के दिन ज़िम्मी का मुकदमा बहुत गंभीर होगा। मुसलमान के खिलाफ अन्याय की तुलना में काफिर के प्रति अन्याय का मामला अधिक सख्त होगा, क्योंकि काफिर हमेशा के लिए नर्क में रहेगा और उन मज़लूमों (पीड़ितों) के कारण जो उसके लोगों की तरफ से होंगे, उसके नर्क के दंड में कमी की जाएगी, इसलिए उनकी ओर से उन पीड़ितों को छोड़ देने...

१- नकौल: कसम से इनकार करना; थमन-ए-मुतदौविया: वह मूल्य जिसका दावा किया गया है; ला-यक़ल: जिसे समझ न हो; अक्ता: जिसका हाथ कटा हो; अर्श: चोट का मुआवजा; दार-ए-मरहूना: गिरवी रखा हुआ घर। २- इंतिफा: यानी कह दिया कि तुम गिरवी वस्तु से जो लाभ उठाओगे वह तुम्हारे लिए हलाल (वैध) है। विद्वानों ने कहा है कि इस तरह मुर्तहिन के लिए लाभ उठाना वैध हो जाता है, लेकिन यह परहेजगारी (तक़वा) के विरुद्ध है क्योंकि ऋण के कारण प्राप्त होने वाला लाभ सर्वसम्मति से मकरूह (अनुचित) और निषिद्ध (तहरीमी) है। (१) ऋण के बदले नष्ट माना गया।

نہیں خریدا ہے پس اگر غاصب نے قسم کھائی تو اس پر کچھ واجب نہ ہوگا اور اگر اس نے نکول کیا تو جس قدر ثمن کا مغصوب منہ نے اس پر دعویٰ کیا ہے اُس پر واجب ہوگا اور اگر مسئلہ مذکورہ میں وہ غلام مشتری کے پاس مر چکا ہو اور باقی مسئلہ بحالہ ہو تو اس صورت میں دونوں میں سے ہر ایک سے دوسرے کے دعویٰ پر قسم لی جائے گی اور اگر غاصب نے وہ غلام کسی شخص کو ہبہ کر کے سپرد کر دیا پھر دعویٰ کیا کہ میں نے مغصوب منہ کے حکم سے ایسا کیا ہے پس مغصوب منہ نے کہا کہ تو نے مجھ سے ہزار درہم کو خرید کر پھر خود ہبہ کیا ہے تو اُس کا حکم بھی اسی تفصیل سے ہے جو ہم نے بیع کی صورت میں بیان کی ہے اور اگر غاصب نے اُس غلام کو اس طرح مارا کہ وہ قتل ہو گیا پھر غاصب نے کہا کہ میں نے اُس کے مالک کے حکم سے مارا ہے اور مالک نے کہا کہ نہیں بلکہ میں نے تیرے ہاتھ فروخت کر دیا تھا پھر تو نے اپنے مملوک کو اس طرح مارا ہے تو پہلے غاصب سے قسم لی جائے گی پس اگر اُس نے نکول کیا تو اُس پر ثمن متدعویہ مالک لازم ہو گا اور اگر اُس نے قسم کھائی تو اس پر غلام کی قیمت لازم ہوگی کیونکہ واپسی کا تعذر ایسی بات سے ہوا جو غاصب کی طرف سے پائی گئی پھر مالک سے قسم لی جائے گی پس اگر اُس نے نکول کیا تو قیمت باطل ہو جائے گی اور اگر قسم کھا لے تو غاصب پر اُس کی قیمت واجب رہے گی اور یہ نظیر اُس صورت ہلاک کی ہے جو سابق میں مذکور ہوئی یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نشہ میں مدہوش لا یعقل راستہ میں سو رہا پس ایک شخص نے اُس کا کپڑا حفاظت کی غرض سے لے لیا تو ضامن نہ ہوگا اور اگر اُس کے سر کے نیچے سے کپڑا نکالا یا اُس کی اُنگلی میں سے انگوٹھی اتار لی یا اُس کی کمر سے ہمیانی کھول لی یا اُس کی آستین سے درہم نکال لیے

بدیں غرض کہ اس مال کی حفاظت کرے تو ضامن ہو گا کیونکہ یہ مال اپنے مالک کے پاس محفوظ تھا یہ وجیز کردی میں ہے ایک شخص نے اقرار کیا کہ میں نے فلاں شخص کے غلام کا ہاتھ خطا سے کاٹ ڈالا ہے اور اس مقر کی مددگار برادری نے اُس کے اقرار کی تکذیب کی پھر اُس غلام اقطع کو اُس کے مولیٰ کے پاس سے کسی دوسرے نے غصب کر لیا اور وہ غاصب کے پاس مر گیا تو مولیٰ کو اختیار ہے چاہے جنایت کنندہ سے اُس کی قیمت اُس کے مال سے تین سال میں لے یا غاصب سے اُس غلام کی قیمت کٹے ہوئے کے حساب سے اُس کے مال سے فی الحال لے لے اور جنایت کنندہ سے اُس کے ہاتھ کا ارش اُس کے مال سے لے لے اور یہ ارش بقدر نصفی قیمت کے ہوگا پھر اگر مالک نے جنایت کنندہ سے اُس کے اقرار پر غلام مذکور کی قیمت ضمان لینا اختیار کی تو جنایت کنندہ غاصب سے اُس غلام اقطع کی قیمت غاصب کے مال سے لے لے گا یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے غلام ماذون مدیوں کو غصب کر لیا اور وہ اُس کے پاس مر گیا تو قرض خواہ ہوں کو غاصب سے اُس کی قیمت کے مطالبہ کا اختیار ہو گا یہ قنیہ میں ہے۔ شیخ ابو حامد سید ریافت کیا گیا کہ ایک شخص کے پاس دار مرہونہ تھا اُس سے یہ دار کسی غاصب نے غصب کر لیا پس آیا مرتہن کو اپنے قرضہ اور راہن سے اپنے قرضہ کے مطالبہ کا اختیار ہے فرمایا کہ دیکھا جائے گا کہ اگر راہن نے مرتہن کو انتفاع ۲ مباح کیا تھا پھر حالت انتفاع میں غصب کر لیا گیا تو مرتہن کو اپنے قرض کے مطالبہ کا اختیار ہے اور اگر غیر حالت انتفاع میں غصب کر لیا گیا تو بمنزلہ (۱) ہلاک کے قرار دیا جائے گا یہ تا تار خانیہ میں ہے۔

اگر مسلمان نے کسی ذمی سے کچھ غصب کیا یا چُرالیا تو قیامت کے دن مسلمان پر عتاب کیا جائے گا اور ذمی کو مخاصمہ قیامت کے روز بہت سخت ہوگا اور کافر کا مظلمہ بنسبت مظلمہ مسلمان کے زیادہ سخت ہوگا اس واسطے کہ کافر دائمی دوزخی ہوگا اور اُس کے حق میں بوجہ اُن

مظلوموں کے جو اُس کے لوگوں کی جانب ہوں گے عذاب نار کی تخفیف ہوگی پس اُس کی طرف سے اُن مظلوموں کے چھوڑنے

۱- نکول قسم سے انکار کرنا ثمن متدعویہ جس ثمن کا دعویٰ کیا گیا ہے لا یعقل جنہیں سمجھ اقطع ہاتھ کٹا ہوا ارش جرمانہ دار مرہونہ رہن بیا ہوا گھر۔ ۲- انتفاع یعنی کہہ دیا کہ تو رہن سے جو نفع اٹھائے تجھے حلال ہے۔ علماء نے کہا کہ اس طرح مرتہن کو نفع لینا حلال ہو جاتا ہے لیکن یہ تقویٰ کے خلاف ہے کیونکہ قرض کی وجہ سے جو منفعت ہو وہ بالا جماع مکروہ و تحریمی ہے۔ (۱) بعوض قرضہ تلف شدہ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) --- 160 --- Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

...there is no hope from [him], while such hope exists from a Muslim. Furthermore, when a disbeliever engages in a dispute, there is no way for him to be granted the reward of a Muslim’s obedience, nor is it possible for the burden of his disbelief to be placed upon a Muslim. Thus, it is determined that a Muslim shall face punishment for the injustice (mazlimah) committed against him. For this reason, it is said that the complaint of an animal against a human on the Day of Resurrection will be more severe than the complaint of one human against another. This is mentioned in 'Al-Kubra'. Sheikh Ali bin Ahmad was asked about a tribal chief who seized members of his tribe to extract wealth from them through oppression. The tribespeople fled and hid, except for one man. The chief forcibly collected the levy (jabayah) from this man. Later, when the tribespeople reappeared, the man began demanding compensation from the tribe for what had been taken from him, and the tribe also paid the same amount taken through oppression. The chief later repented for his action; is he obligated to return what he took from the tribe? He replied, "Yes." This is in 'Tatarkhaniya'.

A woman had 'Raiti' wheat in one jar and 'Khariqi' wheat in another. She ordered her sister to give the 'Khariqi' wheat to her farmer (tenant). The sister made a mistake and gave the 'Raiti' wheat instead. The woman then sent her daughter with the farmer to deliver the wheat for sowing. The daughter delivered them, and the farmer sowed them, but the wheat did not sprout. It was then discovered that they were 'Raiti' seeds (unsuitable for sowing). The woman may claim damages (tawan) from whichever of the three she wishes, because when the sister committed the error, she became a usurper (ghasibah), and the daughter and the farmer both became 'usurpers from a usurper' (ghasib al-ghasib). The Sheikh remarked that this is a precise legal deduction from which the ruling for many incidents can be derived. This is in 'Al-Qunya'. Sheikh Abu Hamid was asked: A traveler loaded his goods onto a ship to transport them to his city, but then died. His son was with him, so the son unloaded the goods from that ship and loaded them onto another ship with the intention of delivering them to the remaining heirs. He took a route frequently traveled by people, but it was not the route the deceased had intended to take. The ship subsequently sank, the son died, and the goods were lost. Will the son be held liable (zamin) for the shares of the other heirs? The Sheikh said, "No." When the Sheikh was asked again regarding the same issue, he clarified that if the son had

unloaded the goods and taken them to a place other than the heirs' homeland, he would then be held liable. This is in 'Tatarkhaniya'.

In 'Za'i al-Misr', it is stated that if someone ordered another to give a piece (of material) to a goldsmith (saffar) for repair, and the person ordered gave it to a goldsmith but forgot which one, he is not liable. This is similar to a bailee (mustawdi') who forgets where the entrusted item (wadi'ah) is kept; he is not liable. Similarly, in 'Fatawa Samid', it is mentioned that if someone was ordered to give yarn to a weaver without specifying which weaver, and without saying "give it to whomever you wish," and the person gave it and the recipient fled, the person who gave it is not liable. This is unlike the case of a principal (muwakkil) who tells his agent (wakil), "appoint someone as an agent," as this is not valid. It would only be valid if he said, "appoint whomever you wish as an agent." Similarly, if the Caliph told the governor of a city to "appoint someone to the office of judge (qada)," it is not valid, but if he said, "appoint whomever you wish," it is valid. This is in 'Al-Qunya'. Sheikh Abu Yusuf bin Muhammad was asked about a usurper who, regretting his action, wished to return the property to its owner but, despairing of finding the owner, gave the property as charity to the poor. Is it permissible for the poor to benefit from this property? He replied regarding wealth taken as oppressive taxes.

(1) The weaver's farmer. (2) The condition of liability should be recovered from his estate.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) --- 160 --- किताब-उल-ग़सब**

...की उम्मीद नहीं है और मुसलमान की तरफ से ऐसी उम्मीद है। फिर जब काफ़िर ने मुक़दमा किया तो उसका कोई रास्ता नहीं है कि उसे मुसलमान के आज्ञापालन (ताअत) का सवाब दिया जाए, और न ही यह संभव है कि मुसलमान पर उसके कुफ्र का बोझ डाला जाए। अतः यही तय हुआ कि मुसलमान को उसके द्वारा किए गए अन्याय (मज़लिमा) के कारण दंड मिले। इसी कारण कहा गया है कि क़यामत के दिन जानवर का इंसान पर नालिश करना, इंसान का इंसान पर नालिश करने से अधिक कठिन है। यह 'कुबरा' में है। शेख अली बिन अहमद से पूछा गया कि एक जाति के मुखिया ने अपनी जाति के लोगों को पकड़ा ताकि उनसे ज़ुल्म के तौर पर कुछ धन वसूल कर सके। फिर जाति के लोग एक व्यक्ति के अलावा सब छिप गए। मुखिया ने उस एक व्यक्ति से वह अवैध कर (जबायत) वसूल कर लिया। फिर जब जाति के लोग सामने आए, तो उस व्यक्ति ने उन लोगों से वह धन माँगना शुरू किया जो मुखिया ने उससे पहले लिया था, और मुखिया ने भी वही धन जाति के लोगों से ज़ुल्म के तौर पर वसूल किया। फिर मुखिया अपने इस कार्य पर शर्मिंदा हुआ, तो क्या उस पर अनिवार्य है कि जो कुछ उसने जाति के लोगों से लिया है उन्हें वापस कर दे? उत्तर मिला कि हाँ, यह 'ताताारख़ानिया' में है।

एक महिला के'रेती' गेहूँ एक मटके में और 'ख़रीक़ी' गेहूँ दूसरे मटके में भरे थे। महिला ने अपनी बहन को आदेश दिया कि मेरे किसान (कस्तकार) को 'ख़रीक़ी' गेहूँ दे दे। वह चूक गई और उसने 'रेती' गेहूँ दे दिए। फिर उक्त महिला ने अपनी बेटी को किसान के साथ भेजा ताकि वह बुवाई के लिए गेहूँ पहुँचा दे। बेटी ने गेहूँ पहुँचा दिए और किसान ने बुवाई कर दी, लेकिन वे गेहूँ नहीं उगे। फिर पता चला कि वे 'रेती' बीज थे। तो वह महिला उन तीनों में से जिससे चाहे हर्जाना (तावान) ले सकती है, क्योंकि उसकी बहन ने जब गलती की तो वह ग़ासिबा (अवैध कब्जा करने वाली) हो गई, और बेटी व किसान दोनों 'ग़ासिब-उल-ग़ासिब' ठहरे। शेख ने कहा कि यह एक सूक्ष्म इस्तहाद (कानूनी राय) है जिससे कई घटनाओं का समाधान निकलता है। यह 'कुनिया' में है। शेख अबू हामिद से पूछा गया कि एक यात्री ने अपना सामान एक नाव पर अपने शहर पहुँचाने के लिए लादा, फिर उसकी मृत्यु हो गई। उसके साथ उसका बेटा था। बेटे ने वह सामान उस नाव से उतारकर दूसरी नाव पर इस उद्देश्य से लाद दिया कि उसे ले जाकर बाकी वारिसों को सौंप दे। उसने ऐसा रास्ता चुना जहाँ से लोग आते-जाते थे, लेकिन यह वह रास्ता नहीं था जिससे मृतक ने जाने का इरादा किया था। फिर वह नाव डूब गई, बेटा मर गया और सामान नष्ट हो गया। तो क्या वह बेटा (2) बाकी वारिसों के हिस्से का ज़िम्मेदार

(ज़ामिन) होगा? शेख ने कहा कि नहीं। और शेख से दोबारा इसी मसले पर पूछा गया तो उन्होंने कहा कि यदि वह बेटा उस सामान को नाव से उतारकर दूसरी नाव में रखकर वारिसों के वतन के अलावा किसी और जगह ले जा रहा होता, तो वह ज़िम्मेदार होता। यह 'ताज़ारख़ानिया' में है।

'ज़ाए-उल-मिस्र' में है कि किसी ने दूसरे को आदेश दिया कि यह टुकड़ा (लुक़्मा) किसी सुनार (सफ़ार) को दे दे ताकि वह उसे ठीक कर दे। उस व्यक्ति ने किसी सुनार को दिया लेकिन वह भूल गया (कि किसको दिया), तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, जैसे अमानत रखने वाला (मुस्तौदह) यदि भूल जाए कि अमानत कहाँ है, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होता। इसी तरह 'फ़तावा सामिद' में है कि आदेश दिया कि यह सूत एक जुलाहे को दे दे और उसे निर्दिष्ट (मुअय्यन) नहीं किया और न ही यह कहा कि 'जिसे तेरा जी चाहे दे दे', फिर उस व्यक्ति ने दे दिया और जिसे दिया था वह भाग गया, तो देने वाला ज़िम्मेदार नहीं होगा। यह वफ़ादार (मुवक्किल) के मामले के विपरीत है जिसने अपने वकील से कहा कि 'किसी को वकील बना दे', क्योंकि यह सही नहीं है। यह तभी सही होगा जब वह कहे 'जिसे तेरा जी चाहे वकील बना दे'। इसी तरह यदि खलीफा ने शहर के हाकिम से कहा कि किसी को काज़ी का पद दे दे, तो यह सही नहीं है, लेकिन अगर कहा कि 'जिसे तेरा जी चाहे दे दे', तो सही है। यह 'कुनिया' में है। शेख अबू यूसुफ बिन मुहम्मद से पूछा गया कि एक अत्याचारी (ग़ासिब) ने अपने कृत्य पर शर्मिंदा होकर वह धन उसके मालिक को लौटाना चाहा, लेकिन मालिक तक पहुँचने से पहले उसे निराशा (यास) हो गई (मालिक न मिला), तो उसने वह धन गरीबों को दान कर दिया। क्या गरीब के लिए उस धन से लाभ उठाना जायज़ है? तो कहा गया—वह धन जो ज़ुल्म के कर (टैक्स) के रूप में लिया गया हो।

(1) जुलाहे का किसान। (2) उसके उत्तराधिकार (तरका) से हर्जाने की शर्त वसूल की जाए।

---

کی امید نہیں ہے اور مسلمان کی طرف سے ایسی امید ہے پھر جب کافر نے مخاصمہ کیا تو اس کی کوئی راہ نہیں ہے کہ اُس کو مسلمان کا ثوابِ طاعت دیا جائے اور نہ اُس کی کوئی راہ ہے کہ مسلمان پر اُس کے کفر کا وبال رکھا جائے پس یہی متعین ہوا کہ مسلمان پر اُس کے مظلمہ کی وجہ سے عذاب ہو اسی وجہ سے فرمایا ہے کہ جانور کا آدمی پر قیامت کے روز نالش کرنا آدمی پر نالش کرنے سے زیادہ سخت ہے۔ یہ کبریٰ میں ہے شیخ علی بن احمد سے دریافت کیا گیا کہ ایک رئیس قوم نے اہل قوم کو پکڑا تا کہ ان سے کچھ مال از راہِ ظلم لے پھر اہل قوم روپوش ہو گئے سوائے ایک آدمی کے پس اُس آدمی سے اس رئیس نے یہ جبایت وصول کر لی پھر جب قوم کے لوگ ظاہر ہوئے تو اُس آدمی کو اہل قوم پر اُس مال کے عوض جو اُس نے اُس شخص سے قبل ازیں لے لیا تھا حوالہ کرنا شروع کیا اور اہل قوم سے وہی جو اس شخص سے لیا تھا از راہِ ظلم لیا پھر اپنے فعل سے نادم ہوا پس آیا اُس پر واجب ہے کہ جو کچھ اُس نے اہل قوم سے لیا ہے اُن کو واپس کر دے فرمایا کہ ہاں یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

ایک عورت کے ریتی گیہوں ایک مٹکے میں اور خریقی گیہوں دوسرے مٹکے میں بھرے تھے پس عورت نے اپنی بہن کو حکم دیا کہ میرے کاشتکار (1) بنائی کو خریقی دے لے وہ چوک گئی اور اُس نے ریتی گیہوں دے دیئے پھر عورت مذکور نے اپنی بیٹی کو کاشتکار کے ساتھ بھیجا تاکہ تخم ریزی کے واسطے گیہوں پہنچائے پس اُس کی بیٹی نے پہنچا دیئے اور کاشتکار نے تخم ریزی کر دی مگر وہ گیہوں نہ اُگے پھر معلوم ہوا کہ وہ ریتی بیج تھے تو وہ عورت تینوں میں سے جس سے چاہے تاوان لے کیونکہ اس کی بہن نے جب خطا کی تو وہ غاصبہ ہو گئی اور بیٹی اور کاشتکار دونوں غاصب الغاصب ٹھہرے شیخ نے فرمایا کہ یہ قولِ اجتہادِ دقیق ہے اس سے بہت

سے واقعات کا حکم نکلتا ہے یہ قنیہ میں ہے۔ شیخ ابو حامد سے دریافت کیا گیا کہ ایک مسافر نے اپنا مالِ متاع ایک کشتی پر اپنے شہر پہنچانے کے واسطے لاد دیا پھر مر گیا اور اس کے ساتھ اس کا بیٹے تھا پس بیٹے نے یہ متاع اُس کشتی پر سے اتار کر دوسری کشتی پر اس غرض سے لاد دیا کہ اس کو لے جا کر باقی وارثوں کے سپرد کر دے اور اُس نے ایسا راستہ اختیار کیا کہ جس سے لوگ آتے جاتے تھے مگر یہ وہ راستہ نہ تھا جس سے میت نے جانے کا قصد کیا تھا پھر وہ کشتی ڈوب گئی اور بیٹا مر گیا اور مالِ متاع ضائع ہو گیا پس آیا وہ بیٹا (2) باقی وارثوں کے حصہ کا ضامن ہوگا تو شیخ نے فرمایا کہ نہیں اور شیخ سے دوسری بار حق مسئلہ دریافت کیا گیا تھا تو فرمایا کہ اگر وہ بیٹا یہ متاع کشتی سے اُتار کر دوسری کشتی میں لاکر باقی سوائے وارثوں کے وطن کے دوسری جگہ لے چلا ہو تو ضامن ہو گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

ضائع المصر میں ہے کہ کسی نے دوسرے کو حکم دیا کہ یہ لقمہ کسی صفار کو دے دے تاکہ وہ اُس کو درست کر دے پس مامور نے کسی صفار کو دیا مگر بھول گیا تو ضامن نہ ہوگا جیسے مستودع اگر بھول گیا کہ ودیعت کہاں ہے تو ضامن نہیں ہوتا ہے اور اسی کے مثل فتاویٰ سامد میں ہے کہ حکم دیا کہ یہ سوت ایک جولا ہے کو دے دے اور اُس کو معین نہ کیا اور نہ یہ کہا کہ جس کو تیرا جی چاہے دے دے پس مامور نے دے دیا اور جس کو دیا تھا وہ بھاگ گیا تو مامور ضامن نہ ہوگا اور یہ بخلاف موکل کے ہے کہ اُس نے اپنے وکیل سے یوں کہا کہ وکل احداً یعنی کسی کو وکیل کر دے کیوں کہ یہ صحیح نہیں ہے اور صحیح جبھی ہو گا کہ جب یوں کہے کہ جس کو تیرا جی چاہے وکیل کر دے اسی طرح اگر خلیفہ نے والی شہر سے کہا کہ کسی کو عہدِ قضاء دے دیئے تو صحیح نہیں ہے اور اگر کہا کہ جس کو تیرا جی چاہے دے دے تو صحیح ہے یہ قنیہ میں ہے شیخ ابو یوسف بن محمد سے دریافت کیا گیا کہ ایک غاصب نے اپنے فعل سے نادم ہو کر وہ مال اُس کے مالک کو واپس کرنا چاہا مگر مالک کے ہاتھ آنے سے اُس کو یاس ہو گئی پس یہ مال

اُس نے فقیروں کو صدقہ کر دیا پس آیا فقیر کو جائز ہے کہ اس مال سے انتفاع حاصل کرے تو فرمایا وہ مال جو ظلمی ٹیکس کے طور پر لیا جائے۔

(1) بنائی کا کاشتکار۔ (2) اس کے ترکہ سے شرط ضمان وصول کیا جائے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Vol 8 | 161 | Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

It is stated that it is not permissible for a poor person (*faqir*) to accept or benefit from usurped property. It is obligatory for the poor person to return it to the one who gave it. The author mentions that the Sheikh gave this stern answer as a deterrent so that people do not neglect the rights of fellow human beings (*Huquq al-Ibad*). Otherwise, if the usurper sought the owner but could not find them, the ruling would be similar to that of *Luqta* (lost property). Sheikh Abu Yusuf bin Muhammad was asked: if benefiting from this wealth is not allowed and the poor person wants to return it to the usurper but cannot find them, and the item is perishable in summer heat, what should be done? He replied: keep it as long as possible; if there is fear of it spoiling, sell it and keep the proceeds to eventually return them to the provider. This is cited in *Tatarkhaniya*.

(Regarding the replacement of usurped property, if it is subsequently returned, it is not valid according to Abu Yusuf - *Al-Multaqat*). *Translator's note: These are the words found in the current manuscript; corrections will be made post-printing if a more authentic copy is found.*

If a person dies leaving usurped property/debts held by others, and the heirs receive nothing from it, by analogy (*qiyas*), the reward in the afterlife shall go to the heirs because the property technically became their inheritance. However, by juristic preference (*istihsan*), if the property was lost/destroyed before death, the reward goes to the deceased, as inheritance does not apply to lost property. If lost after death, the reward goes to the heirs. This is from *Fatawa Ghiyasiyya*.

**A variation of the above issue where scholars stated that the deceased (*muris*) no longer has a legal grievance against the debtor in the hereafter** ☆

If a person who owed a debt forgot about it and died, will they be held accountable on the Day of Judgment? If the debt was for trade, it is hoped they won't be held accountable, but if it was due to usurpation (*ghasb*), they will be. This is in *Fatawa Kubra*. If a person died owing a forgotten debt and his son knew of it, the son should pay it. If the son also forgot and died, he won't be held accountable in the hereafter (*Zahiriyya*). If someone stole from their father and the father died, there is no accountability for the theft's value in the hereafter because the property transferred to the thief as inheritance, though they remain a sinner for the act of theft itself (*Fatawa Atabiyya*). If a creditor demanded a debt but the debtor oppressively refused until the creditor died, the debt transfers to the heir. Scholars differ; most say the

deceased's grievance against the debtor ends, but the preferred view is that while the financial right transfers to the heir, the grievance for the "oppression" of non-payment remains with the deceased. If someone forgives a debt thinking the debtor is dead, and then discovers they are alive, they cannot reclaim it as it was an unconditional gift/forgiveness (*Fatawa Qazi Khan*).

---

**Footnotes:** 1. This text was found in the current manuscript and noted in the preface of the Calcutta print. It implies that if the victim of usurpation legalized the act through compensation and then retracted, the retraction is invalid. Allah knows best. 2. Based on the Hadith: "Delay in payment of debt by a person who has the means is oppression."

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 161 | किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

कहा गया है कि एक फ़कीर (निर्धन) के लिए हड़पी हुई चीज़ को स्वीकार करना या उससे लाभ उठाना जायज़ नहीं है। फ़कीर पर वाजिब है कि जिसने उसे वह चीज़ दी है, उसे वापस कर दे। लेखक ने कहा कि शेख ने उन्हें डराने के लिए ऐसा उत्तर दिया ताकि लोग दूसरों के अधिकारों (हुकूक अल-इबाद) में लापरवाही न बरतें। अन्यथा, यदि हड़पने वाले ने ऐसी राह अपनाई कि मालिक का पता मिल जाए और फिर भी मालिक न मिले, तो उसका नियम 'लुक़्ता' (खोई हुई वस्तु) जैसा होगा। फिर शेख अबू यूसुफ़ बिन मुहम्मद से पूछा गया कि जब इस माल से लाभ उठाना जायज़ नहीं ठहरा और फ़कीर ने उसे हड़पने वाले को वापस करना चाहा लेकिन वह नहीं मिला, और वह चीज़ ऐसी है कि गर्मी के मौसम में नष्ट हो जाएगी, तो वह क्या करे? उन्होंने फ़रमाया कि जब तक संभव हो उसे अपने पास रखे, फिर जब उसके नष्ट होने का डर हो तो उसे बेचकर उसकी राशि अपने पास रखे, ताकि जिसने दी थी उसे लौटा सके। ऐसा तातारखानीया में है।

(हड़पी हुई वस्तु का बदला देने के बाद यदि वह वापस ले, तो अबू यूसुफ़ के अनुसार यह सही नहीं है - अल-मुल्तक़त)। अनुवादक का नोट: मुझे मौजूदा पांडुलिपि में यही शब्द मिले हैं, छपाई के बाद सही प्रति मिलने पर इसे दुरुस्त किया जाएगा।

यदि कोई व्यक्ति मर जाए और उसने लोगों के पास अपना हड़पा हुआ धन छोड़ा हो और वारिसों को उसमें से कुछ न मिला हो, तो तर्क(क़ियास) के अनुसार उसका परलौकिक पुण्य (सवाब) वारिसों को मिलेगा क्योंकि वह धन विरासत के रूप में उनकी संपत्ति बन गया। लेकिन बेहतर तर्क(इस्तेहसान) के अनुसार, यदि धन मृत्यु से पहले डूब/खो गया था, तो पुण्य मृतक को ही मिलेगा क्योंकि खोए हुए माल पर विरासत लागू नहीं होती। और यदि मृत्यु के बाद डूबा, तो पुण्य वारिस को मिलेगा। यह फ़तावा गयासिया में है।

## उपरोक्त मसले की एक स्थिति जिसमें विद्वानों ने कहा कि मृतक (मौरिस) का कर्जदार के साथ परलोक में कोई विवाद शेष नहीं रहा ☆

एक व्यक्ति जिस पर कर्ज था और वह उसे भूल गया था, मर गया। क्या कयामत में उससे पूछताछ (मवाख़ज़ा) होगी? यदि कर्ज व्यापार के कारण था, तो आशा है कि पूछताछ नहीं होगी, लेकिन यदि हड़पने (ग़सब) के कारण था, तो पकड़ होगी। यह फ़तावा कुबरा में है। यदि कोई मृतक कर्ज भूल गया था और उसका बेटा यह जानता था, तो बेटे को उसे चुकाना चाहिए। यदि बेटा भी भूल गया और

मर गया, तो बेटे से परलोक में पूछताछ नहीं होगी (ज़हीरिया)। यदि किसी ने अपने पिता की कोई चीज़ चुराई और पिता मर गया, तो चोर से परलोक में पूछताछ नहीं होगी क्योंकि वह धन विरासत में उसी का हो गया, लेकिन वह चोरी के पाप का दोषी होगा (फ़तावा अताबिया)। यदि किसी का दूसरे पर कर्ज था, कर्जदाता ने मांगा लेकिन कर्जदार ने ज़ुल्म करते हुए नहीं दिया और कर्जदाता मर गया, तो वह कर्ज वारिस की मिल्कियत बन गया। विद्वानों में मतभेद है, लेकिन बहुमत का विचार है कि मृतक का कर्जदार के साथ विवाद खत्म हो गया, हालांकि पसंदीदा विचार यह है कि 'ज़ुल्म' (न देने के अन्याय) पर विवाद रहेगा, भले ही धन का अधिकार वारिस को हस्तांतरित हो गया हो। यदि किसी ने कर्जदार को मरा हुआ समझकर कर्ज माफ़ कर दिया और बाद में पता चला कि वह जीवित है, तो वह उसे वापस नहीं मांग सकता क्योंकि उसने बिना शर्त माफ़ किया था (फ़तावा क़ाज़ी ख़ान)।

---

فرمایا کہ فقیر کو اس کا قبول کرنا جائز نہیں ہے اور نہ اس سے انتفاع جائز ہے فقیر پر واجب ہے کہ جس نے اس کو دیا ہے اسی کو واپس کر دے مصنفؒ نے فرمایا کہ شیخؒ نے ان کے زجر کے واسطے ایسا جواب فرمایا ہے تاکہ وہ لوگ حقوق العباد میں تساہل نہ کریں ورنہ اگر غاصب نے ایسی راہ اختیار کی کہ مالک کا پتہ ونشان مل جائے پھر اُس کو نہ پایا تو اُس کا حکم مثل حکم لقطہ کے ہوگا۔ پھر شیخ ابو یوسف بن محمدؒ سے کہا گیا کہ جب اس مال سے انتفاع جائز نہ ٹھہرا اور فقیر نے چاہا کہ غاصب کو واپس کر دے مگر اُس نے غاصب کو نہ پایا اور یہ چیز ایسی ہے کہ موسم گرما میں تلف ہو جائے گی اور غاصب کے ملنے تک یا اُس کی طرف رجوع کرنے تک باقی نہیں رہ سکتی ہے تو کیا کرے فرمایا کہ جب تک اُس سے ممکن ہو اپنے پاس رکھے پھر جب اُس کے تلف ہو جانے کا خوف ہو تو فروخت کر کے اُس کا ثمن اپنے پاس رکھے یہاں تک کہ جس نے اُس کو دی تھی اُس کو واپس کرے۔ کذا فی تاتارخانیہ۔

(والواجب بدل المغصوب ثم رجع لا یصح رجوعہ عند ابی یوسف کذا فی الملتقط)

قال المترجم ھکذا وجدت الا الفاظ لھذہ المسئلۃ فی الموجودۃ ولم یتمسر لی الرجوع الی الصحیحۃ و ساصححہ بعد الطبع انشاء اللہ تعالیٰ اذا حصلت النسخۃ الصحیحۃ بتوفیق اللہ سبحانہ و تعالیٰ۔

ایک شخص مر گیا اور اُس نے اپنا دین و دین لوگوں کے پاس مغصوب چھوڑ اور وارثوں کو اُس میں سے کچھ نہ ملا تو قیاساً اُس کا ثواب آخرت میں وارثوں کو ملے گا کیونکہ یہ مال اس کی میراث میں وارثوں کی ملک میں آیا اور استحساناً یہ مال ڈوبا ہوا قرضہ ہے پھر اگر قبل موت کے ڈوبا ہو تو اُس کا ثواب میت ہی کو ملے گا اس واسطے کہ ڈوبے ہوئے مال میں ارث جاری نہیں

ہوتا ہے اور اگر بعد موت کے ڈوبا تو اُس کا ثواب وارث کو ملے گا کیونکہ موت کے وقت اُس کے قیام کی وجہ سے اُس میں میراث جاری ہو گئی یہ فتاویٰ غیاثیہ میں ہے۔

**مسئلہ مذکورہ کی ایک صورت جس میں مشائخ نے فرمایا کہ مورث کو قرضدار کے ساتھ آخرت میں حق خصومت نہ رہا ☆**

ایک شخص جس پر قرضہ تھا اور وہ اُس کو بھولا ہوا تھا مر گیا کیا قیامت میں اُس سے مواخذہ کیا جائے گا اور اگر قرضہ بجہت تجارت کے ہو تو امید ہے کہ اُس سے مواخذہ نہ کیا جائے اور اگر بوجہ غصب کے ہو تو ماخوذ ہو گا یہ فتاویٰ کبرٰی میں ہے۔ ایک شخص مر گیا اور اُس پر دین تھا جس کو وہ بھولا ہوا تھا اور اُس کا بیٹا اس امر کو جانتا تھا تو بیٹے کو چاہیے کہ اس کو ادا کر دے اور اگر بیٹا بھی بھول گیا حتیٰ کہ وہ بھی مر گیا تو بیٹے سے آخرت میں مواخذہ نہ ہو گا یہ ظہریہ میں ہے ایک شخص نے اپنے باپ کی کوئی چیز چرائی پھر باپ مر گیا تو سارق سے آخر میں مواخذہ نہ ہو گا اس واسطے کی دین یعنی تاوان مال مسروق اُسی کی ملک میں منتقل ہو گیا مگر سرقہ کا گنہگار ہوگا کیونکہ اُس نے مسروق منہ پر جنایت کی ہے یہ فتاویٰ عتابیہ میں ہے ایک شخص کا دوسرے پر قرضہ ہے پس قرض خواہ نے اس سے تقاضا کیا مگر قرضدار نے ظلم سے اُس کو نہ دیا یہاں تک کہ قرض خواہ مر گیا اور وہ قرضہ منتقل ہو کر وارث کی ملک میں آیا پس مشائخ نے باہم اختلاف کیا ہے اور اکثر مشائخ نے فرمایا ہے کہ مورث کو قرضدار کے ساتھ آخرت میں حق خصومت نہ رہا لیکن مختار یہ ہے کہ قرضہ تو وارث کا ہے مگر مورث کو قرضدار کے ساتھ ظلماً نہ دینے کا حق خصومت ہے مگر قرضہ کا حق خصومت نہیں ہے اس واسطے کہ قرضہ وارث کی طرف منتقل ہو گیا یہ ظہریہ میں ہے۔ ایک شخص کا دوسرے پر دین تھا اُس کو یہ خبر پہنچی کہ مدیون مر گیا پس اُس نے کہا کہ میں نے اس کو حلت میں کر دیا یا کہا کہ میں نے اس کو

ہبہ کر دیا پھر ظاہر ہو کہ مدیون زندہ ہے تو طالب کو روا نہیں ہے کہ اُس سے مواخذہ کرے اس واسطے کہ اُس نے بلا شرط مدیون کو ہبہ کیا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

---

**حواشی:** ۱۔ اسی طرح یہ عبارت نسخہ موجودہ میں پائی گئی اور بعد تصحیح مطبوعہ کلکتہ کے مقدمہ لکھا گیا ہے۔ وہاں بنظر کرو شاید مراد یہ کہ اگر مغصوب منہ نے ضمان غصب و عوض سے حلال کر دیا پھر رجوع کیا تو صحیح نہیں ہے فاہم۔ واللہ تعالیٰ اعلم۔ ۲۔ کیونکہ حدیث میں ہے کہ جس کو قدرت ہو پھر وہ قرضہ نہ دے تو ظلم ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8), Page 162, Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

If a person had an adversary (to whom he owed something) who died without leaving an heir, then the holder of the right (the debtor) should give in charity an amount equal to the right of the deceased on his behalf. This is so that the wealth remains as a trust with Allah Almighty, to be delivered to the adversary on the Day of Resurrection; this is written in Fatawa Atabiyya. If a man has a legal claim or right over a woman, he has the choice to remain in her presence, sit with her, or hold her garment, as this is not prohibited (haram). If the woman flees to a private place, he may enter there provided he is safe from temptation (of his own self), and even then, if safe, he should only guard her with his eyes from a distance. If a person wrongfully seized another's property, it is better for the owner to declare it lawful (halal) for him; this is found in Khizana al-Muftiin. If someone is owed a debt by another who lacks the means to pay, it is better to absolve the debtor rather than sue him, for in doing so, one saves him from the punishment of the hereafter and gains a great reward; this is in Fatawa Kubra. If a seal-engraver mistakenly carves another person's name on a ring, and if it cannot be corrected, according to Imam Abu Yusuf (RA), he shall be liable, while according to Imam-e-Azam (Abu Hanifa RA), he shall not be liable in any case; this is in Wajiz al-Kardari. A man hired two laborers to gather fodder for donkeys and provided them with two donkeys. A powerful individual forcibly took both donkeys from them. Later, the two laborers went and took the donkeys back. Then, one gave both donkeys to the other. The second laborer then drove the donkey and it died. The owner has the choice to claim damages from either the one who gave the donkeys to the other or the one who drove the donkey, for the first committed an excess by giving it away and the second by driving it without the first's consent; this is in Jawahir al-Fatawa.

The Sheikh was asked: If a person usurps the upper and lower floors of another's building and the building then deteriorates or collapses, what is incumbent upon the usurper? He replied that the owner has the choice: he may leave the debris with the usurper and claim the full price as liability, or take the debris and claim compensation for the loss of the structure; this is in Fatawa Abul Fatah Muhammad bin Mahmud bin al-Hasan al-Ustrushani. If someone usurps a calf and destroys it, causing its mother's milk to dry up, Sheikh Abu Bakr Balkhi (RA) stated that the usurper is liable for the price of the calf and the loss caused to the mother, as the calf's death caused the loss to the mother; this is in Fatawa Qazi Khan. If someone usurps another's slave and binds him with a rope, and the slave then kills himself or

dies, the usurper is liable because the slave was under his guarantee; this is in Fatawa Kubra. A man sold some clothes and died before collecting the debts (price) from the buyers, leaving no apparent heir. The Sultan collected the debts from the debtors. Later, an heir appeared. In this case, the debtors are obligated to pay the debts to the heir, for when the heir appeared, it became evident that the Sultan had no right to take the debts; this is in Fatawa Qazi Khan.

In Muhit al-Muhit, it is stated that if a deceased person's wall collapsed and treasure was found beneath it, which the Qazi (judge) took, but upon hearing of it from oppressors, the Qazi gave the wealth to them, then the Qazi is liable; this is in Tatarkhaniya. If a person sent a minor slave on an errand for his personal needs without the master's permission, and the slave, while dragging some wood, reached a room's roof, fell, and died, then the one who sent him is liable because by using the slave for his work without permission, he became a 'ghasib' (usurper); this is in Fatawa Qazi Khan. Shams al-Islam was asked about a person who... children of another... so that it may be divided among heirs.

एक व्यक्ति का कोई प्रतिद्वंद्वी (दावेदार) था, वह मर गया और कोई वारिस नहीं छोड़ा, तो हक़ वाले (लेनदार) को चाहिए कि मरने वाले की तरफ़ से उसके हक़ के बराबर सदक़ा (दान) कर दे ताकि इतना माल अल्लाह ताला के पास अमानत रहे और क़यामत के दिन उसके प्रतिद्वंद्वी को पहुँचाया जाए, यह फ़तावा इताबिया में लिखा है। एक व्यक्ति का किसी औरत पर कोई हक़ है, तो उसे अधिकार है कि वह उस औरत के साथ रहे, उसके पास बैठे और उसके कपड़े पकड़े, क्योंकि यह हराम नहीं है। और यदि वह औरत भागकर किसी एकांत स्थान पर चली जाए, तो वह वहाँ जा सकता है बशर्ते कि वह व्यक्ति स्वयं पर संयम रखता हो (असुरक्षित न हो), और सुरक्षित होने के बावजूद उसे दूर से केवल आँखों से उसकी रक्षा करनी चाहिए। यदि किसी व्यक्ति ने ज़ुल्म से दूसरे का माल छीन लिया, तो माल के मालिक के लिए बेहतर यह है कि उसे उसके लिए जायज़ (हलाल) कर दे, यह ख़ज़ाना अल-मुफ़्तीन में है। यदि किसी का दूसरे पर क़र्ज़ है जिसे चुकाने की उसमें शक्ति नहीं है, तो उस पर दावा करने के बजाय उसे माफ़ कर देना बेहतर है, क्योंकि माफ़ कर देने से वह आख़िरत (परलोक) के अज़ाब से बच सकता है और इसमें बड़ा सवाब है, यह फ़तावा कुबरा में है। यदि किसी मुहर बनाने वाले ने अंगूठी में ग़लती से दूसरे व्यक्ति का नाम उकेर दिया, और अगर उसे सुधारना मुमकिन न हो, तो इमाम अबू यूसुफ़ रह. के अनुसार वह ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा, और इमाम आज़म रह. के अनुसार वह किसी भी हाल में ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह वजीज़ करदरी में है। एक व्यक्ति ने दो लोगों को मज़दूरी पर रखा कि वे उसके लिए गधों का चारा जमा करें और उन्हें दो गधे दिए। फिर एक ताक़तवर व्यक्ति ने उनसे दोनों गधे छीन लिए। बाद में उन दोनों ने जाकर गधे वापस ले लिए, फिर एक ने दोनों गधे दूसरे को दे दिए। फिर दूसरे ने गधे को हाँका और वह मर गया, तो मालिक को अधिकार है कि वह चाहे तो दूसरे को गधा देने वाले से मुआवज़ा ले या गधा हाँकने वाले से, क्योंकि पहले ने गधा देने में ज़्यादती की और दूसरे ने बिना पहले की अनुमति के हाँकने में, यह जवाहर अल-फ़तावा में है।

शेख़ से पूछा गया कि यदि किसी ने दूसरे की इमारत की ऊपरी और निचली मंज़िल पर अवैध कब्ज़ा (ग़सब) कर लिया और फिर इमारत गिर गई, तो कब्ज़ा करने वाले पर क्या वाजिब होगा? उन्होंने फ़रमाया कि मालिक को अधिकार होगा, चाहे तो वह मलबा कब्ज़ा करने वाले के पास छोड़कर उससे पूरी क़ीमत ले ले, या मलबा लेकर इमारत के नुकसान का मुआवज़ा ले, यह फ़तावा अबुल फ़तह मुहम्मद बिन महमूद बिन अल-हसन अल-उस्तरूशनी में है। यदि किसी ने बछड़ा छीनकर

उसे मार डाला जिससे उसकी माँ (गाय) का दूध सूख गया, तो शेख़ अबू बक्र बल्ख़ी रह. ने फ़रमाया कि कब्ज़ा करने वाला बछड़े की क़ीमत और गाय के दूध के नुकसान का भी ज़िम्मेदार होगा, क्योंकि बछड़े की मौत से ही माँ का नुकसान हुआ, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। यदि किसी ने दूसरे के गुलाम को छीनकर रस्सी से बाँधा और गुलाम ने आत्महत्या कर ली या वह मर गया, तो कब्ज़ा करने वाला ज़िम्मेदार होगा क्योंकि गुलाम उसके कब्ज़े में था, यह फ़तावा कुबरा में है। एक व्यक्ति ने कुछ कपड़े बेचे और अपने क़र्ज़ की वसूली से पहले मर गया और कोई वारिस नहीं छोड़ा। सुल्तान ने उसके क़र्ज़दारों से पैसे वसूल कर लिए, फिर उसका वारिस सामने आया। ऐसी स्थिति में क़र्ज़दारों को चाहिए कि वे वारिस को दोबारा भुगतान करें, क्योंकि वारिस के आने पर यह ज़ाहिर हुआ कि सुल्तान को वह क़र्ज़ वसूलने का हक़ नहीं था, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है।

मुहीत अल-मुहीत में लिखा है कि यदि किसी मृतक की दीवार गिर गई और उसके नीचे से धन निकला जिसे क़ाज़ी (न्यायाधीश) ने ज़ब्त कर लिया, फिर ज़ालिमों को इसकी ख़बर हुई और क़ाज़ी ने वह माल उन्हें दे दिया, तो क़ाज़ी ज़िम्मेदार होगा, यह ततारख़ानिया में है। यदि किसी ने एक नाबालिग गुलाम को मालिक की अनुमति के बिना अपने निजी काम के लिए भेजा, और वह गुलाम लकड़ी खींचते हुए किसी घर की छत पर चढ़ गया और वहाँ से गिरकर मर गया, तो जिसने उसे भेजा था वह ज़िम्मेदार होगा, क्योंकि बिना अनुमति काम में लगाने से वह उसका 'ग़ासिब' (अवैध कब्ज़ा करने वाला) बन गया, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। शम्सुल इस्लाम से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने दूसरे के बच्चों को... ताकि वारिसों में तक़सीम (वितरित) किया जा सके।

---

ایک شخص کا کوئی خصم تھا وہ مر گیا اور کوئی وارث نہ چھوڑا تو صاحبِ حق کی طرف سے جو مر گیا ہے بقدر اُس کے حق کے صدقہ کر دے تاکہ اس قدر مال اللہ تعالیٰ کے پاس ودیعت رہے تاکہ قیامت کے روز اُس کے خصم کو پہنچایا جائے یہ فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے۔ ایک شخص کا ایک عورت پر حق آتا ہے تو اُس شخص کو اختیار ہے کہ اُس عورت کے ساتھ ملازم رہے اور اُس عورت کے ساتھ بیٹھے اور اُس کا کپڑا پکڑے اس واسطے کہ یہ حرام نہیں ہے اور اگر وہ عورت بھاگ کر کسی مقام تخلیہ میں چلی گئی تو وہاں داخل ہو بشرطیکہ یہ شخص اپنے نفس سے مامون ہو اور بعد مامون ہونے کے بھی باوجود امن کے اس سے دور فقط آنکھ سے حفاظت کرے ایک شخص نے ظلماً دوسرے کا مال قطع کیا تو صاحبِ مال کو افضل یہ ہے کہ اس کو حلال کر دے یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ ایک شخص کا دوسرے پر دین آتا ہے کہ اُس کے بھر پانے کی قدرت نہیں رکھتا ہے تو اُس پر دعویٰ کرنے سے اُس کو بری کر دینا بہتر ہے اس واسطے کہ بری کر دینے میں عذابِ آخرت سے چھڑانا ہے اور اُس میں ثوابِ عظیم ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے مہر کن نے خاتم میں دوسرے شخص کا نام غلطی سے نقش کر دیا پس اگر نقاش سے اُس کی اصلاح ممکن نہ ہو تو امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ضامن ہو گا اور امام اعظمؒ کے نزدیک ہر حال میں ضامن نہ ہو گا یہ وجیز کر دری میں ہے۔ ایک شخص نے دو آدمیوں کو اس واسطے مزدور کیا کہ دونوں مستاجر کے واسطے گدھے کا چارہ جمع کریں اور دونوں کو دو گدھے دے پھر ایک زبردست نے دونوں سے دونوں گدھے لے لیے پھر ان دونوں نے جا کر دونوں گدھے اُس سے واپس لیے پھر ایک نے دونوں گدھے دوسرے کو دے دیئے پھر دوسرے نے گدھے کو ہانکا اور وہ مر گیا تو مالک کو اختیار ہے چاہے دوسرے کو دینے والے سے تاوان لے یا گدھا ہانکنے والے سے ضمان لے اس

واسطے کہ اول نے تو دوسرے کو دینے میں تعدی کی اور دوسرے نے بدونِ اول کے ہانکنے میں تعدی کی یہ جواہر الفتاویٰ میں ہے۔

شیخ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے دوسرے کا علو سفلی غصب کر لیا پھر علو خراب ہو گیا تو غاصب پر کیا واجب ہو گا تو فرمایا کہ مالک کو اختیار ہو گا چاہے ٹوٹن کو غاصب کے پاس چھوڑ کر اُس سے قیمت کی ضمان لے یا ٹوٹن کو لے کر غاصب سے عمارت مبینہ کا نقصان لے یہ فتاویٰ ابو الفتح محمد بن محمود بن الحسن الاستروشنی میں ہے۔ ایک شخص نے گوسالہ غصب کر کے اُس کو تلف کر دیا پس اُس کی ماں کا دودھ خشک ہو گیا تو شیخ ابوبکر بلخیؒ نے فرمایا کہ غاصب گوسالہ کی قیمت اور اُس کی ماں کے نقصان کا ضامن ہو گا اس لیے کہ بچہ کا ہلاک اُس کی ماں کے نقصان کا موجب ہوا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کے غلام کو غصب کر کے رسی سے باندھا پھر غلام نے اپنے تئیں قتل کر ڈالا یا اپنی موت سے مر گیا تو غاصب ضامن ہو گا اس واسطے کہ غلام اس کی ضمان میں تھا یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ ایک شخص نے چند کپڑے فروخت کیے اور اپنے دیون (یعنی من چاہا) مشتریوں سے بھر پانے سے پہلے مر گیا اور کوئی ظاہر وارث نہ چھوڑا پس سلطان نے اُس کے قرض داروں سے اُس کے دیوں وصول کر لیے پھر اُس کا وارث ظاہر ہوا تو قرضداروں پر واجب ہو گا کہ اس کے دیون اس کے وارث کو ادا کریں اس واسطے کہ جب وارث ظاہر ہوا تو یہ بات ظاہر ہوئی کہ سلطان کو قرضے لے لینے کا کچھ حق نہ تھا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

محیط المحیط میں ہے کہ اگر میت کی دیوار منہدم ہوئی اور اس کے نیچے سے مال برآمد ہوا پس اُس کو قاضی نے لے لیا پھر ظالموں کو یہ خبر پہنچی اور قاضی نے وہ مال اُن کو دے دیا تو قاضی ضامن ہو گا یہ تاتار خانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک نابالغ غلام کو اپنی ضرورت ذاتیہ کے واسطے بدونِ اجازت مولیٰ غلام کے بھیجا پس اُس غلام نے کچھ لکڑ کے کھینچتے دیکھ کر

اپنے آپ کو وہاں تک پہنچایا اور وہاں کسی کی کوٹھری کی چھت پر چڑھ گیا اور وہاں سے گر کر مر گیا تو جس نے اپنی حاجت کے واسطے بھیجا ہے ضامن ہو گا کیوں کہ وہ اُس غلام کو اپنے کام میں لگانے سے غاصب ہو گیا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ شمس الاسلام سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے دوسرے ... کے بچوں کے ... تاکہ وارثوں کو تقسیم کرے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (164) Kitab al-Ghasab (The Book of Usurpation)**

If someone employs another person's male or female slave for their own work and the slave runs away during use, the Sheikh (may Allah have mercy on him) stated that the user shall be liable (zamin), following the rule of the usurped property (maghsoob); just as a usurper is liable if the property runs away from them. If a person uses a slave or a donkey shared between themselves and another person without the partner's permission, they shall be considered a usurper regarding the partner's share. In 'Ajnas al-Natifi', it is recorded that there are two narrations regarding the unauthorized use of a shared slave: the narration of Hisham (RA) states the user becomes a usurper, while the narration of Ibn Rustam says they do not. In the case of a four-legged animal, whether ridden or loaded, both narrations agree that the user becomes a usurper. In our time, a legal inquiry (istifta) arrived from some cities: a man was chopping wood when another's slave came and asked for the axe and wood to chop. The owner brought them, the slave chopped some, then asked for more. While the slave was chopping the second piece, a splinter flew into his eye, causing him to lose his sight. The scholars of Bukhara issued a fatwa that no liability is due upon the wood owner; this is mentioned in 'Zahiriyyah'.

A group of people were in someone's house. One of them picked up a mirror to look at himself and passed it to another, who also looked, and then the mirror was destroyed. In this case, no one is liable because for items like a mirror, implied permission (dalalatan) is established. Had it been an item that people are typically stingy with, it would be considered usurpation (ghasab). If a person picks up a carpenter's adze while the carpenter watches and does not object, and it breaks during use, the user is liable; this is in 'Qinah'. A person sent their female slave to a slave-broker (nakhasi) with instructions to sell her. The broker's wife sent the slave on an errand, and she ran away. The owner has the choice to claim damages from the broker's wife but not from the broker himself, because a common employee (ajir mushtarak), according to Imam Azam (Abu Hanifa), is not held liable. The same ruling applies to clothing brokers; this is written in 'Kubra'. In 'Fatawa Abu al-Layth', it is stated that if a female slave comes to a broker without her master's permission to be sold and then disappears, and the broker claims he sent her back to her master, his word is accepted and no liability falls on him. This applies if the broker did not physically seize her but merely told her to go home. If he had intercepted her on the road or taken her from the master's house without permission, his claim would not be verified; this is in 'Muhit'.

If a person rides another's animal without permission and then dismounts, and the animal subsequently dies, the correct view according to Imam Azam is that the person is not liable unless they moved the animal from its original place, as movement is necessary to establish the act of usurpation (ghasab). This is the preferred view in 'Ghiyathiyyah'. If a person sits on the back of another's animal but does not move it or transfer its location, and then another person comes and cuts the animal's hamstrings, the liability for damages lies solely on the one who cut the hamstrings, not the one who was sitting on it, provided the animal did not die as a result of the sitting.

---

[Footnote 1: This ruling on permission serves as proof that usurpation occurs in matters where no indication of permission exists; this is a major legal principle that a Mufti must be aware of.]

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 (164) किताब अल-ग़सब (हथियाने का अध्याय)**

यदि किसी ने दूसरे के गुलाम या दासी को अपने काम में लगाया और वह उपयोग के दौरान भाग गया, तो शेख (रह.) ने फरमाया कि वह व्यक्ति उत्तरदायी (ज़ामिन) होगा, क्योंकि अपहरण (ग़सब) की स्थिति में यदि वह अपहरणकर्ता के पास से भाग जाए तो वह उत्तरदायी होता है। यदि किसी व्यक्ति ने अपने और दूसरे के बीच साझे के गुलाम या साझे के गधे को साझीदार की अनुमति के बिना उपयोग किया, तो वह साझीदार के हिस्से का अपहरणकर्ता माना जाएगा। 'अजनास-ए-नातिफ़ी' में लिखा है कि साझीदार की अनुमति के बिना साझे के गुलाम के उपयोग के बारे में दो रिवायतें हैं: हिशाम (रह.) की रिवायत में है कि उपयोग करने वाला अपहरणकर्ता होगा, जबकि इब्न रुस्तम की रिवायत में है कि वह अपहरणकर्ता नहीं होगा। चौपाया जानवर के मामले में, चाहे उस पर सवारी की गई हो या बोझ लादा गया हो, दोनों रिवायतों के अनुसार वह अपहरणकर्ता माना जाएगा। हमारे समय में कुछ शहरों से एक प्रश्न (इस्तफ़ता) आया जिसका स्वरूप यह था: एक व्यक्ति लकड़ियाँ चीर रहा था कि तभी दूसरे व्यक्ति का गुलाम आया और उसने कहा कि कुल्हाड़ी और लकड़ी मुझे दे दो ताकि मैं चीर दूँ। लकड़ी का मालिक कुल्हाड़ी लाया, गुलाम ने उससे ली और कुछ लकड़ी चीर दी, फिर कहा कि और लकड़ी लाओ ताकि मैं चीरूँ। मालिक दूसरी लकड़ी लाया, गुलाम ने उसे चीरा, तो लकड़ी की एक छाल (फांस) उड़कर गुलाम की आँख में लगी और उसकी आँख चली गई। बुखारा के उलेमाओं ने फ़तवा दिया कि लकड़ी के मालिक पर कोई मुआवज़ा अनिवार्य नहीं होगा; यह 'ज़हीरिया' में दर्ज है।

एक समूह एक व्यक्ति के घर में था। उनमें से एक ने आईना उठाकर देखा, फिर दूसरे को दे दिया, उसने भी देखा और फिर वह आईना नष्ट हो गया। ऐसी स्थिति में कोई भी उत्तरदायी नहीं होगा, क्योंकि आईना जैसी चीजों में सांकेतिक अनुमति (इजाज़त-ए-दलालतन) मानी जाती है। यदि कोई ऐसी चीज़ होती जिसके उपयोग में लोग कंजूसी करते हैं, तो उसे अपहरण माना जाता। यदि किसी ने बढ़ई का बसूला (छोटा औजार) उठा लिया, बढ़ई देखता रहा और मना नहीं किया, फिर उपयोग के दौरान वह टूट गया, तो उपयोग करने वाला उत्तरदायी होगा; यह 'क़ीना' में है। एक व्यक्ति ने अपनी दासी को एक दलाल (नख़ासी) के पास बेचा और आदेश दिया कि इसे बेच दे। दलाल की पत्नी ने उस दासी को अपने किसी काम के लिए भेजा और वह भाग गई। दासी के मालिक को अधिकार होगा कि वह दलाल की पत्नी से मुआवज़ा (ज़मान) ले, लेकिन दलाल से नहीं ले सकता, क्योंकि साझा कर्मचारी (अजीरे मुश्तरक) इमाम आज़म (रह.) के अनुसार उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता। यही नियम कपड़ों

के दलाल पर लागू होता है; यह 'कुबरा' में लिखा है। फ़तावा अबुल लैस में है कि एक दासी बिना अपने स्वामी की अनुमति के दलाल के पास आई और खुद को बेचने का अनुरोध किया। फिर वह चली गई और पता नहीं चला कहाँ गई। दलाल ने कहा कि मैंने उसे स्वामी के पास वापस भेज दिया था, तो दलाल की बात मानी जाएगी और उस पर मुआवज़ा अनिवार्य नहीं होगा। इसका अर्थ यह है कि दलाल ने दासी को अपने कब्ज़े में नहीं लिया था, बल्कि उसे वापस जाने का आदेश दिया था। यदि दलाल ने उसे रास्ते से पकड़ा होता या स्वामी की अनुमति के बिना उसके घर से लाया होता, तो उसकी बात की पुष्टि नहीं की जाती; यह 'मुहीत' में है।

यदि कोई व्यक्ति मालिक की अनुमति के बिना दूसरे के जानवर पर सवार हुआ और फिर उतर गया, और बाद में वह जानवर मर गया, तो इमाम आज़म (रह.) के अनुसार सही मत यह है कि वह व्यक्ति उत्तरदायी नहीं होगा जब तक कि उसने जानवर को उसकी जगह से न हिलाया हो, ताकि स्थानांतरण से अपहरण (ग़सब) सिद्ध हो सके; 'ग़ियासिया' में यही विकल्प चुना गया है। यदि कोई दूसरे के जानवर की पीठ पर बैठ गया लेकिन उसे हिलाया नहीं और न ही उसे स्थानांतरित किया, यहाँ तक कि किसी अन्य व्यक्ति ने आकर उस जानवर की नसें (कोचें) काट दीं, तो मुआवज़ा उसी पर अनिवार्य होगा जिसने नसें काटी हैं, उस पर नहीं जो उस पर बैठा था, बशर्ते वह बैठने के कारण न मरा हो।

---

[पाद-टिप्पणी 1: अनुमति का यह नियम इस बात का प्रमाण है कि अपहरण उन चीज़ों में माना जाता है जहाँ अनुमति का कोई संकेत मौजूद न हो, और यह एक महत्वपूर्ण मूल सिद्धांत है जिससे मुफ्ती का अवगत होना आवश्यक है।]

---

کے غلام یا باندی کو اپنے کام میں لگایا اور وہ حالتِ استعمال میں بھاگ گیا تو شیخؒ نے فرمایا کہ وہ شخص ضامن ہوگا بقولہ مغصوب کے کہ اگر وہ غاصب کے پاس سے بھاگ گیا تو غاصب ضامن ہے اور اگر ایک شخص نے اپنے اور دوسرے کے درمیان مشترک غلام یا مشترک گدھے کو بدوں اجازتِ شریک کے استعمال کیا تو حصہ شریک کا غاصب ہوگا اور اجناس ناطفی میں لکھا ہے کہ بدوں اجازتِ شریک کے غلام مشترک کے استعمال میں دو روایتیں آئی ہیں ہشامؒ کی روایت میں مذکور ہے کہ استعمال کرنے والا غاصب ہوگا اور انہی سے روایت ابن رستم میں مذکور ہے کہ غاصب نہ ہو جائے گا اور چو پایہ جانور کی صورت میں خواہ سوار ہوا ہو یا لادا ہو دونوں روایتوں کے موافق غاصب ہو جائے گا۔ ہمارے زمانہ میں بعض شہروں سے استفتا آیا اُس کی صورت یہ تھی کہ ایک شخص لکڑیاں چیرتا تھا کہ اتنے میں دوسرے شخص کا غلام آیا اور اُس نے کہا کہ کلہاڑی اور لکڑی مجھے دے تاکہ میں چیر دوں پس لکڑی کا مالک لایا اور غلام نے اُس سے کلہاڑی لی اور لکڑی لی اور کچھ لکڑی چیر دی اور کہا کہ دوسرے لکڑی لاتا کہ اُسے چیر دوں پس وہ شخص دوسری لکڑی لایا اور غلام نے اُس کو چیرا پس اُس کی لکڑی کی بعض چھنٹی اُڑ کر غلام کی آنکھ میں لگی اور اُس کی آنکھ جاتی رہی تو مشائخ بخاراؒ نے فتویٰ دیا کہ لکڑی کے مالک پر کچھ واجب نہ ہوگا یہ ظہیریہ میں ہے۔

ایک جماعت ایک شخص کی بیت میں تھی کہ ان میں سے ایک شخص نے آئینہ اُٹھا کر دیکھا پھر دوسرے کو دے دیا اُس نے بھی دیکھا پھر وہ آئینہ ضائع ہو گیا تو کوئی شخص ضامن نہ ہوگا کیونکہ آئینہ کے مثل چیزوں میں دلالتہً اجازت ثابت ہے حتیٰ کہ اگر کوئی ایسی چیز ہوتی کہ جس کے استعمال میں بخل کی عادت جاری ہے تو غصب قرار دیا جاتا۔ ایک شخص نے بڑھئی کا بسولا

اُٹھا لیا وہ دیکھتا رہا اور منع نہ کیا پس اُس شخص نے استعمال کیا اور وہ ٹوٹ گیا تو ضامن ہو گا یہ قینہ میں ہے۔ ایک شخص نے اپنی باندی نخاسی کے پاس بھیجی اور اس کو حکم کیا کہ اس کو فروخت کر دے پھر نخاسی کی جورو نے اس باندی کو اپنے کسی کام کے واسطے بھیجی پھر وہ بھاگ گئی تو مالک باندی کو اختیار ہو گا کہ نخاسی کی جورو سے ضمان لے اور نخاسی سے ضمان نہیں لے سکتا ہے اس واسطے کہ نکاح اجیر مشترک ہوتا ہے اور اجیر مشترک امام اعظمؒ کے نزدیک ضامن نہیں ٹھہرایا جاتا ہے اور یہی حکم کپڑوں کے دلال میں ہے یہ کبریٰ میں لکھا ہے۔ فتاویٰ ابواللیث میں ہے کہ ایک باندی بدون اجازت اپنے مولیٰ کے نخاسی کے پاس آئی اور اُس سے بیع کی درخواست کی پھر وہ چلی گئی اور معلوم نہ ہوا کہ کہاں چلی گئی اور نخاسی نے کہا کہ میں نے اُس کے مولیٰ کو واپس کردی تو نخاسی کا قول قبول ہوگا اور اُس پر ضمان واجب نہ ہوگی اور اس کے معنی یہ ہیں کہ نخاسی نے باندی کو اخذ نہیں کیا اور واپس کر دینے کے یہ معنی ہیں کہ نخاسی نے اُس کو حکم دیا کہ اپنے مولیٰ کے گھر کو واپس جائے اور نخاسی غصب کا منکر تھا اور اگر نخاسی نے باندی کو راستہ سے پکڑ لیا ہو یا اُس کے مولیٰ کے گھر سے بلا اجازت مولیٰ کے اُس کو لے گیا ہو تو اُس کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص دوسرے کے جانور چو پایہ پر بدوں مالک کی اجازت کے سوار ہوا پھر اُتر پڑا پس وہ جانور مر گیا تو صحیح یہ ہے کہ یہ شخص امام اعظمؒ کے قول کے موافق ضامن نہ ہو گا تا وقتیکہ اُس جانور کو اُس کی جگہ سے حرکت نہ دے تاکہ حرکت انتقال سے غصب متحقق ہو اور یہی مختار ہے یہ غیاثیہ میں ہے۔ ایک شخص دوسرے کے جانور کی پیٹھ پر بیٹھ گیا مگر جانور کو حرکت نہ دی اور نہ اُس کی جگہ سے اُس کی تحویل کی یہاں تک کہ ایک دوسرے شخص نے آکر اُس جانور کی کونچیں کاٹ لیں تو تاوان اُسی شخص پر واجب ہوگا جس نے اُس کی کونچیں کاٹی

ہیں نہ اُس شخص پر جو اُس پر سوار ہو گیا تھا بشرطیکہ سوار ہونے سے وہ نہ مرا ہو اور اگر سوار ہونے والے نے اُس جانور کی کونچیں کاٹی جانے...

---

[حاشیہ 1: اجازت یہ قول یہ مسئلہ دلیل ہے کہ غصب ایسی چیزوں میں ہوا ہے جہاں اجازت کی دلالت موجود نہ ہو اور یہ اصل کبیر ہے جس سے مفتی کو آگاہ ہونا ضروری ہے۔]

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 163 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

If someone initially refused to return a property to its owner and withheld it without moving it from its place, and then another person came and hamstrung it (e.g., an animal), the owner has the option to seek compensation from either of them. Similarly, if someone enters another person's house, takes their goods, refuses to return them, and withholds them, they shall be held liable (guarantor). If they did not move the goods from their place or withhold them, they are not liable. However, if the goods are destroyed due to their action or if they move them out of the house, they shall be liable; this is stated in Fatawa Qazi Khan. If a person enters another's residence, takes a cloth from one floor and places it on another floor, and it is subsequently lost, they are liable if there is a difference in the degree of security (1) between the two floors; otherwise, they are not; this is in al-Kubra. If someone murders another in a forest and the victim had property that was subsequently lost, the murderer is liable for that property; this is mentioned in al-Uyun, though Imam Zahir-ud-Din Marghinani (RA) issued a fatwa stating there is no liability, which is also consistent with the view of Imam al-Azam; this is in al-Sirajiyya. Two people shared a stable and kept their cows separately within it. One partner tied up the other partner's cow so it wouldn't harm the other cows; the cow struggled, was strangled by the rope, and died. In this case, the one who tied it is not liable, provided they did not move the cow from one place to another; this is in Khazanat al-Muftin.

If a Sultan takes someone's property and pledges (rahn) it to another, and it is lost while with the pawnbroker (murtahin), then if the pawnbroker was aware and compliant in taking the pledge, he is liable. The owner has the choice to seek compensation from either the Sultan or the pawnbroker. Based on this, if a tax collector (jabi) forcibly takes something as a pledge and is compliant, he is liable. Similarly, a money changer (sarraf) would be liable if compliant, and both the sarraf and the jabi would have their legal testimony (shahadah) invalidated; this is in al-Muhit. If a community leader (mehtar-e-mahalla) took something while being compliant, he would be liable. If he then pledged it to another and the pawnbroker was compliant, the ruling is the same as mentioned, meaning the owner has the right to seek indemnity from either party; this is in Tatarkhaniyya. In Fatawa Samarqand, it is written that if one person removes a hat from another's head and places it on a third person's head, and that person throws it away: if the hat remained within the owner's sight and it was possible for him to retrieve it, neither is liable. If otherwise, the owner may choose to seek compensation from the one who removed

it or the one who threw it; this is in al-Dhakhirah. If someone starts praying and their hat falls in front of them, and another person moves it aside: if it was placed where the owner could reach it but was then stolen, the person is not liable because it was still within sight. If it was placed further away and lost, and it was within the owner's sight and reachable, the person who moved it is not liable; otherwise, they are; this is in al-Bahr. In Fatawa al-Hayu', it is mentioned that Sheikh Abu Bakr was asked about a person who took a bowl from a potter to drink from, and it fell from his hand and broke; he ruled that there is no liability; this is in al-Hawi. In Fatawa Ahl-e-Samarqand, it is recorded that a person went to a potter and, with permission, took a clay vessel to inspect it; it slipped from his hand, fell onto the potter's other vessels, and they all broke. There is no liability for the vessel he took to inspect, but he is liable for the compensation of the other vessels; this is in al-Zahiriyya. A person went to a bathhouse (hammam), began bathing, took a vessel and gave it to another, and it fell from that person's hand and broke; the first person is not liable; this is in al-Muhit. If a person enters a shop with permission and an item gets snagged on their clothing and falls and breaks, they are not liable, provided the fall was not due to their own deliberate action or pulling. Similarly, if an item is taken for inspection from a shop without permission and it falls, the person is liable; however, while it is necessary to be a guarantor, yet if...

(1) Note on security: Meaning one residence is more secure compared to the other.

यदि किसी ने मालिक को चीज़ लौटाने से मना कर दिया और उसे उसकी जगह से नहीं हिलाया, फिर किसी अन्य व्यक्ति ने आकर (मसलन जानवर की) नसों को काट दिया, तो जानवर के मालिक को यह अधिकार होगा कि वह उन दोनों में से जिससे चाहे हर्जाना वसूल करे। इसी प्रकार, यदि कोई व्यक्ति दूसरे के घर जाकर उसका कोई सामान ले ले और उसे लौटाने से मना कर दे, तो वह उत्तरदायी (ज़ामिन) होगा। यदि उसने सामान को उसकी जगह से नहीं हटाया और न ही रोका, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा। लेकिन यदि उसके कार्य से वह नष्ट हो जाए या उसे घर से बाहर कर दे, तो वह उत्तरदायी होगा; यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। यदि कोई व्यक्ति दूसरे के घर गया और एक मंजिल से कपड़ा निकालकर दूसरी मंजिल पर रख दिया और वहाँ कपड़ा खो गया, तो यदि दोनों मंजिलों की सुरक्षा (1) के स्तर में अंतर है, तो वह उत्तरदायी होगा, अन्यथा नहीं; यह कुबरा में है। यदि किसी ने जंगल में दूसरे की हत्या कर दी और मृतक के पास धन था जो नष्ट हो गया, तो हत्यारा उस धन का उत्तरदायी होगा; ऐसा ही उयून में वर्णित है, हालाँकि इमाम ज़हीर उद्दीन मर्ग़ीनानी (रह.) ने उत्तरदायी न होने का फ़तवा दिया है और यह भी इमाम-ए-आज़म के कथन के अनुरूप है; यह सिराजिया में है। एक अस्तबल दो व्यक्तियों का साझा था और उसमें उनकी अलग-अलग गाएं थीं। एक साथी ने दूसरे साथी की गाय को बांध दिया ताकि वह दूसरी गायों को न मारे, फिर उस गाय ने ज़ोर लगाया और रस्सी से गला घुटने के कारण मर गई, तो बांधने वाले पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा, बशर्ते उसने गाय को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित न किया हो; यह ख़ज़ाना-उल-मुफ़्तीन में है।

यदि सुल्तान ने किसी व्यक्ति की वस्तु लेकर दूसरे के पास गिरवी (रहन) रख दी और वह गिरवी रखने वाले के पास नष्ट हो गई, तो यदि गिरवी रखने वाला इसमें शामिल था, तो वह उत्तरदायी होगा और मालिक को अधिकार होगा कि वह सुल्तान से हर्जाना ले या गिरवी रखने वाले से। इसी पर आधारित है कि यदि कोई कर वसूलने वाला (जाबी) जबरन कोई चीज़ गिरवी रख ले, तो वह उत्तरदायी होगा। इसी तरह सर्राफ़ (मुद्रा परिवर्तक) भी उत्तरदायी होगा, और ऐसे में सर्राफ़ और जाबी दोनों की गवाही अमान्य हो जाएगी; यह मुहीत में है। यदि मुहल्ले के मुखिया ने कोई चीज़ ली और वह उसमें शामिल था, तो वह उत्तरदायी होगा। फिर यदि उसने उसे दूसरे के पास गिरवी रख दिया, तो नियम वही है जो हमने बताया, यानी मालिक को दोनों में से किसी से भी हर्जाना लेने का अधिकार है; यह तातार ख़ानिया में है। फ़तावा समरकंद में लिखा है कि यदि एक व्यक्ति ने दूसरे के सिर से टोपी उतारकर

किसी और के सिर पर रख दी और उसने उसे फेंक दिया, तो यदि वह टोपी मालिक की नज़रों के सामने रही और उसे उठाना संभव था, तो उन दोनों में से किसी पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा। इसके विपरीत होने पर मालिक को अधिकार है कि वह उतारने वाले से या फेंकने वाले से हर्जाना ले; यह ज़खीरा में है। यदि किसी ने नमाज़ पढ़ना शुरू किया और उसकी टोपी उसके सामने गिर गई, फिर किसी ने उसे एक तरफ हटा दिया, तो यदि उसने उसे ऐसी जगह रखा जहाँ से मालिक उसे उठा सके, लेकिन वह चोरी हो गई, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा क्योंकि वह अब भी सामने ही थी। और यदि उसने उसे बहुत दूर रख दिया और वह नष्ट हो गई, तो यदि वह टोपी मालिक की नज़रों में थी और वह उसे उठा सकता था, तो रखने वाले पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा, अन्यथा वह उत्तरदायी होगा; यह बहर में है। फ़तावा की हयौ' में है कि शेख़ अबू बकर से पूछा गया कि यदि किसी ने कुम्हार (या दुकानदार) से पीने के लिए एक प्याला लिया और वह उसके हाथ से गिरकर टूट गया, तो उन्होंने कहा कि उस पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा; यह हावी में है। फ़तावा-ए-अहल-ए-समरकंद में है कि एक व्यक्ति कुम्हार के पास गया और उसकी अनुमति से मिट्टी का बर्तन देखने के लिए लिया, फिर वह बर्तन उसके हाथ से छूटकर अन्य बर्तनों पर गिरा और सब बर्तन टूट गए, तो जिस बर्तन को उसने देखने के लिए लिया था उसका हर्जाना वाजिब नहीं होगा, लेकिन बाकी बर्तनों का हर्जाना देना होगा; यह ज़हीरिया में है। एक व्यक्ति हमाम (स्नानघर) गया, नहाना शुरू किया और एक लोटा लेकर दूसरे को दिया, वह दूसरे के हाथ से गिरकर टूट गया, तो पहले पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा; यह मुहीत में है। यदि कोई व्यक्ति दुकानदार की अनुमति से उसकी दुकान में गया और उसके कपड़ों में दुकान की कोई चीज़ फंस गई और गिरकर टूट गई, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा, बशर्ते यह गिरना उस व्यक्ति की अपनी क्रिया या खिंचाव के कारण न हो। इसी तरह, यदि कोई चीज़ बिना अनुमति के देखने के लिए ली और वह गिर गई, तो वह उत्तरदायी होगा; हालाँकि कुछ स्थितियों में यह अनिवार्य है, लेकिन हाँ...

(1) सुरक्षा के संदर्भ में: एक हवेली दूसरे की तुलना में अधिक सुरक्षित हो सकती है।

---

ہے پہلے اُس کو اُس کے مالک کو دینے سے انکار کیا اور روکا ہو گا اُس کو اُس کی جگہ سے جنبش نہ دی پھر ایک شخص نے آکر اُس کی کونچیں کاٹ ڈالیں تو جانور کے مالک کو اختیار ہو گا کہ دونوں میں سے جس سے چاہے تاوان لے اور اسی طرح اگر کسی شخص نے دوسرے کے گھر میں جا کر اس کی کوئی متاع لے لی اور انکار کیا اور روکا تو ضامن ہو گا اور اگر متاع کو اپنی جگہ سے تحویل نہ کیا اور نہ روکا ہو تو ضامن نہ ہو گا لیکن اگر اُس کے فعل سے تلف ہو جائے یا گھر سے باہر کر دے تو ضامن ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر ایک شخص دوسرے کے دار میں گیا اور اُس کی ایک منزل سے کوئی کپڑا نکال کر دوسرے منزل میں رکھا اور وہاں سے کپڑا ضائع ہو گیا پس اگر دونوں منزلوں میں از راہ حفاظت (۱) کے فرق ہو تو ضامن ہو گا ورنہ نہیں یہ کبریٰ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کو جنگل میں قتل کیا اور مقتول کے ساتھ مال تھا اور وہ ضائع ہوا تو قاتل اس مال کا ضامن ہو گا ایسا ہی عیون میں مذکور ہے اور امام ظہیر الدین مرغینانی علیہ الرحمتہ نے ضامن نہ ہونے کا فتویٰ دیا ہے اور یہ بھی لایق بقول امام اعظم ہے یہ سراجیہ میں ہے ایک اصطبل دو شخصوں میں مشترک تھا اور دونوں کی اُس میں علیحدہ علیحدہ گائیں تھیں پس ایک شریک اصطبل میں گیا اور دوسرے شریک کی گائے کو باندھ دیا تاکہ وہ اور گایوں کو نہ مارے پھر اُس گائے نے جنبش کی اور رسی سے گلا گھٹ کر مرگئی تو باندھنے والے پر ضمان واجب نہ ہوگی بشرطیکہ اُس نے اس گائے کو ایک جگہ سے دوسرے جگہ منتقل نہ کیا ہو یہ خزانہ المفتین میں ہے۔

سلطان نے اگر کسی شخص کا مال عین لے کر دوسرے کے پاس رہن کیا اور وہ مرتہن کے پاس تلف ہو گیا پس اگر مرتہن رہن کر لینے میں طالع ہو تو ضامن ہو گا اور مالک کو اختیار ہو گا کہ

چاہے سلطان سے تاوان لے یا مرتہن سے اور اسی پر مبنی ہے کہ اگر جابی یعنی بیگار نے کوئی چیز رہن لے لی اور وہ طائع تھا تو ضامن ہوگا اور ایسے ہی صراف اگر طائع ہو تو ضامن ہوگا اور اس سے صراف اور جابی دونوں مجروح الشہادۃ ہو جائیں گے یہ محیط میں ہے اگر مہتر محلہ نے کوئی چیز لے لی اور وہ طائع تھا تو ضامن ہو گا۔ پھر اگر اُس نے دوسرے کے پاس رہن دے دی اور مرتہن طائع تھا تو اس کا حکم وہی ہے جو ہم نے ذکر کیا یعنی مالک کو دونوں میں سے ہر ایک کی تضمین کا اختیار ہے یہ تاتار خانیہ میں ہے۔ فتاویٰ سمرقند میں لکھا ہے کہ اگر ایک شخص نے دوسرے کے سر سے ٹوپی اتار کر دوسرے کے سر پر رکھ دی اُس نے پھینک دی پس اگر وہ ٹوپی مالک کے پیشِ نظر رہی اور اُس سے ٹوپی کا اٹھا لینا ممکن رہا تو اُن دونوں میں سے کسی پر ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر اس کے برخلاف ہو تو مالک کو اختیار ہو گا چاہے اتارنے والے سے تاوان لے یا پھینکنے والے سے ضمان لے یہ ذخیرہ میں ہے ایک شخص نے نماز پڑھنی شروع کی پس اُس کی ٹوپی اُس کے سامنے گر پڑی پس ایک شخص نے اُس کو ایک طرف کر دیا تو اگر اُس نے ایسی جگہ رکھی کہ مالک اس کو ہاتھ سے لے سکتا ہے مگر وہ چوری ہو گئی تو ضامن نہ ہو گا اس لیے کہ اب بھی وہ سامنے ہی رکھی تھی اور اگر اس سے زیادہ دور رکھی اور وہ ضائع ہو گئی تو اگر وہ ٹوپی مالک کے پیش نظر تھی اور اُس کو وہاں سے اٹھا لے سکتا تھا تو رکھنے والے پر تاوان واجب نہ ہو گا ورنہ ضامن ہو گا یہ بحر میں ہے۔ فتاویٰ کی ہیوع میں ہے کہ شیخ ابو بکر سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے قفاعی سے ایک کوزہ یا ایک پیالہ فتاع پینے کے واسطے لیا پھر وہ اُس کے ہاتھ سے گر کر ٹوٹ گیا تو فرمایا کہ اُس پر ضمان واجب نہ ہوگی یہ حاوی میں ہے۔ فتاویٰ اہل سمرقند میں لکھا ہے کہ ایک شخص کمہار کے پاس گیا اور اُس کی اجازت سے ایک مٹی کا برتن دیکھنے کے واسطے لیا پھر وہ برتن اُس کے ہاتھ سے چھوٹ کر کمہار کے دوسرے برتنوں پر گرا اور سب برتن ٹوٹ گئے تو جو برتن اُس نے دیکھنے کو لیا تھا

اس کی ضمان واجب نہ ہوگی اور باقی برتنوں کا تاوان واجب ہو گا یہ ظہیریہ میں ہے۔ ایک شخص حمام میں گیا اور نہانا شروع کیا اور ایک تاش لے کر دوسرے شخص کو دیا وہ دوسرے کے ہاتھ سے گر کر ٹوٹ گیا تو اوّل پر تاوان واجب نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص کسی دکان دار کی دوکان میں اُس کی اجازت سے داخل ہوا اور اُس کے کپڑے میں دوکان کی چیزوں میں سے کوئی چیز چمٹ گئی اور گر کر ٹوٹ گئی تو یہ شخص ضامن نہ ہو گا لیکن تاویل مسئلہ یوں ہے کہ یہ سقوط اس شخص کے فعل و کشش سے نہ ہو۔ اسی طرح اگر کوئی چیز بدون اُس کی اجازت کے دکان کی چیزوں میں سے دیکھنے کو لی اور وہ گر پڑی تو ضامن نہ ہوگا مگر واجب ہے کہ ضامن ہو مگر ہاں

(۱) قولہ حفاظت ایک حویلی زیادہ محفوظ ہو بنسبت دوسرے کے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 165 Book of Usurpation (Kitab al-Ghasb)**

If something is taken with permission, whether explicit or implicit (dalalatan), then the person shall not be liable (zamin). If a person enters another's house without permission and takes a vessel from the house just to look at it, and it falls from his hand and breaks, he shall not be liable. The justification for this is that the owner did not prohibit him from doing so, as implicit permission is established in the absence of prohibition. Do you not see that if one takes a water ewer to drink water, and after drinking, it falls from his hand and breaks, no liability (daman) is incumbent upon him? This is mentioned in 'al-Kubra'. It is stated in 'Multaqi' that a person held a deposit (wadi'at) belonging to another, which consisted of some clothes. The depositary (mustawda') then placed one of his own clothes among them. Later, the owner of the deposit demanded its return, and the depositary gave him all the clothes. If the depositary's cloth was subsequently lost, the owner of the deposit shall be liable for that cloth. At this point, the author Sheikh said that if a person took something under the assumption that it was his, but it was not, he shall be liable. This is in 'al-Muhit'.

A person hosted another as a guest, and the guest forgot a garment with him. The host took the garment and followed the guest to return it, but on the way, a usurper (ghasib) seized it. If the usurpation took place within the city, the host shall not be liable for compensation; however, if it was seized outside the city, the host shall be liable. This is stated in 'Khizanat al-Muftin'. A person got into a scuffle with another, and during the struggle, something belonging to the person being held fell and was destroyed. The scholars (Mashaykh) stated that the one who held him shall be liable. The author (may Allah be pleased with him) says that there should be detail in this ruling: if the property fell near the owner and the owner could see it and was able to pick it up, then the one holding him shall not be liable. This is mentioned in 'Fatawa Qadi Khan'.

**The Translator says: If you argue that the person holding him is physically grasping him and not allowing him to take his property, I reply: Yes, but as long as taking it remains possible, it does not constitute usurpation (ghasb), just as if someone stands between a person and his cattle until they perish, where no liability is incurred. Therefore, reflect on this. There is an indication here towards the answer given by the Mashaykh based on the implication of the circumstances (dalalat al-hal); understand this.**

A person sent someone to a washerman (dhobi) to collect his garment. The washerman mistakenly gave another garment, which was subsequently lost while with the messenger. If that garment belonged to the washerman himself, he would not be liable. However, if it belonged to someone else, the owner has the choice to claim compensation from either the washerman or the messenger. Whomever he claims from cannot then seek reimbursement from the other. This is in 'Wajiz Kardari'. Sheikh Abu Bakr was asked about a person who sent another to a pasture for his livestock; the messenger rode the sender's beast, and the animal died on the way. The Sheikh said that if there was such a degree of familiarity (inbisat) between the two that (1) he could act thus with the sender's property, then he is not liable; otherwise, he is. This is in 'al-Hawi'.

**If the mouth of a water-skin (mashk) opens and a passerby sees it but does not hold its mouth closed, he shall not be liable.** ☆

Two persons were partners in a game. One partner, without the other's permission, took the other's private donkey and yoked it to a mill to grind flour. The donkey ate wheat from the mill and died. This person shall not be liable because in such a case, implicitly...

---

**Footnotes:** (1) With explicit permission. 1. Because he took it out of the city to a place where no help could reach; thus, it is considered as destroying the garment. The translator says: if it is asked whether the one holding him is not obstructing him and preventing him from taking his property? The answer is yes, but the possibility exists. Moreover, the obstruction is a punishable offense but not an act of 'ghasb' (usurpation), like if someone holds another until his goats are lost; he is not a usurper but shall be punished. From this, the scholars' ruling on the mentioned issue is derived; understand this.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 165 किताब-उल-ग़स्ब (छीनने का बयान)**

यदि स्पष्ट रूप से या सांकेतिक रूप से (दलालतन) उसकी अनुमति से लिया हो तो वह ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा। एक व्यक्ति दूसरे के घर में बिना अनुमति के प्रवेश किया और उसने उसके घर से कोई बर्तन देखने के लिए लिया और वह उसके हाथ से गिरकर टूट गया, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। इसकी पुष्टि यह है कि मालिक ने उसे ऐसा करने से नहीं रोका, क्योंकि बिना मनाही के सांकेतिक अनुमति सिद्ध होती है। क्या तुम नहीं देखते कि यदि उसने पानी पीने के लिए पानी का प्याला लिया और पीने के बाद वह उसके हाथ से गिरकर टूट गया, तो उस पर हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगा, यह 'कुबरा' में है। 'मुल्तक़ी' में है कि एक व्यक्ति की अमानत (वदीअत) दूसरे के पास थी और वह अमानत कुछ कपड़े थे। फिर अमानत रखने वाले (मुस्तौदह) ने उनमें अपना एक कपड़ा रख दिया। फिर अमानत के मालिक ने अमानत वापस माँगी और अमानत रखने वाले ने सारे कपड़े उसे दे दिए। फिर अमानत रखने वाले का कपड़ा नष्ट हो गया, तो अमानत का मालिक उसके कपड़े का ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा। इसी स्थान पर शेख मुसन्निफ (लेखक) ने फ़रमाया है कि जिस व्यक्ति ने कोई चीज़ इस गुमान पर ली कि वह मेरी है, मगर वह उसकी नहीं थी, तो वह ज़िम्मेदार होगा, यह 'मुहीत' में है।

एक व्यक्ति ने दूसरे को मेहमान बनाया, फिर मेहमान उसके पास एक कपड़ा भूल गया। मेज़बान उस कपड़े को लेकर उसके पीछे चला, रास्ते में एक लुटेरे (ग़ासिब) ने उसे छीन लिया। यदि वह छीना जाना शहर के अंदर हुआ हो तो मेज़बान पर हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा और यदि शहर के बाहर छीना गया हो तो मेज़बान ज़िम्मेदार होगा, यह 'ख़ज़ानत-उल-मुफ़्तीन' में है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से झगड़ा करने के दौरान उससे चिपट गया, जिससे उस व्यक्ति की कोई चीज़ गिरकर नष्ट हो गई। उलेमा (मशायख) ने फ़रमाया कि वह व्यक्ति जिसने पकड़ रखा था, ज़िम्मेदार होगा। लेखक फ़रमाते हैं कि इस नियम में विवरण होना चाहिए कि यदि वह माल मालिक के पास गिरा और मालिक उसे देख रहा है और उठा सकता है, तो पकड़ने वाला ज़िम्मेदार नहीं होगा, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

**अनुवादक का कथन: यदि तुम कहो कि पकड़ने वाला उसे थामे हुए है और उसे लेने का अवसर नहीं दे रहा है, तो मैं कहूँगा हाँ, लेकिन लेने की संभावना बनी रहने पर यह छीना जाना (ग़स्ब) नहीं माना जाएगा, जैसे किसी और उसके पशुओं के बीच कोई रुकावट आ जाए यहाँ तक कि वे नष्ट हो जाएं वहाँ भी वह ज़िम्मेदार नहीं होता। अतः इस पर विचार करें। इसमें**

**मशायख के उस उत्तर की ओर संकेत है जो उन्होंने परिस्थिति के संकेत (दलालत-उल-हाल) से दिया है, इसे समझें।**

एक व्यक्ति ने धोबी के पास एक आदमी भेजा ताकि धोबी से अपना कपड़ा ले आए। धोबी ने गलती से दूसरा कपड़ा दे दिया और वह उस आदमी के पास नष्ट हो गया। यदि वह कपड़ा धोबी का स्वयं का हो तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा और यदि किसी दूसरे का हो तो उसका मालिक स्वतंत्र है चाहे धोबी से हर्जाना ले या उस आदमी से, और दोनों में से जिससे भी हर्जाना लिया जाए वह दूसरे से उसे वापस नहीं ले सकता, यह 'वजीज़ करदरी' में है। शेख अबू बक्र से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने दूसरे को अपने मवेशियों के चरागाह की ओर भेजा, फिर वह व्यक्ति भेजने वाले के जानवर पर सवार हो गया और वह जानवर रास्ते में मर गया। शेख ने फ़रमाया कि यदि दोनों में इतनी घनिष्ठता (इन्बिसात) थी कि वह (1) आदेश देने वाले के माल का ऐसा उपयोग कर सके तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, और यदि ऐसी घनिष्ठता नहीं थी तो वह ज़िम्मेदार होगा, यह 'हावी' में है।

**एक मश्क (पानी का थैला) का मुँह खुल गया और वहाँ से एक व्यक्ति गुज़रा, यदि उसने उसका मुँह नहीं पकड़ा तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा** ☆

दो व्यक्ति खेल में साझेदार थे, उनमें से एक साझेदार ने दूसरे की अनुमति के बिना उसका निजी गधा लेकर उसे चक्की में जोत दिया और आटा पीसा। गधे ने चक्की से गेहूँ खा लिए और मर गया, तो वह व्यक्ति ज़िम्मेदार नहीं होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में सांकेतिक रूप से...

---

**पाद-टिप्पणियाँ:** (1) स्पष्ट अनुमति के साथ। 1. क्योंकि वह उसे शहर से ऐसी जगह ले जाता जहाँ कोई सहायता के लिए न पहुँचता, अतः यह कपड़े को नष्ट करना माना जाता है। अनुवादक कहता है कि यदि कहा जाए कि क्या पकड़ने वाला उसे रोक नहीं रहा और लेने से मना नहीं कर रहा? उत्तर है हाँ, लेकिन अवसर विद्यमान है। इसके अतिरिक्त रोकना दंड का कारण है न कि 'ग़स्ब' (छीनने) का, जैसे एक ने दूसरे को पकड़ लिया यहाँ तक कि उसकी बकरियाँ चली गईं, तो वह छीनने वाला नहीं होगा बल्कि दंडित किया जाएगा। इसी से मशायख का उक्त समस्या में समाधान निकला है, इसे समझें।

---

صریحاً یا دلالۃً اُس کی اجازت سے لی ہو تو ضامن نہ ہو گا۔ ایک شخص دوسرے کے مکان میں بلا اجازت داخل ہوا اور اُس کے بیت میں سے کوئی برتن دیکھنے کے واسطے لیا اور وہ اُس کے ہاتھ سے گر کر ٹوٹ گیا تو ضامن نہ ہو گا توثیقہ مالک نے اُس کو اس سے منع نہ کیا ہو اس لیے کہ بدون ممانعت کے دلالۃً اِس کو اجازت ثابت ہے آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ اگر اُس نے پانی کا کوزہ پانی پینے کے واسطے لیا اور اس کے پینے کے بعد اس کے ہاتھ سے گر کر ٹوٹ گیا تو اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی یہ کبریٰ میں ہے۔ ملتقطی میں ہے کہ ایک شخص کی دوسرے کے پاس ودیعت ہے اور وہ ودیعت کچھ کپڑے تھے پس مستودع نے اس میں ایک اپنا کپڑا رکھ دیا پھر مالک ودیعت نے ودیعت کو طلب کیا اور مستودع نے سب کپڑے اُس کو دے دیئے پھر مستودع کا کپڑا ضائع ہو گیا تو مالک ودیعت اُس کے کپڑے کا ضامن ہو گا اِسی مقام پر شیخ مصنفؒ نے فرمایا ہے کہ جس شخص نے کوئی چیز اس گمان پر لی کہ وہ میری ہے مگر اُس کی نہ تھی تو ضامن ہو گا یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نے دوسرے کو مہمان کیا پھر مہمان اُس کے پاس ایک کپڑا بھول گیا پس میزبان اُس کو لے کر اُس کے پیچھے چلا پس راہ میں ایک غاصب نے اُس کو غصب کر لیا پس اگر غاصب نے شہر کے اندر غصب کیا ہو تو میزبان پر ضمان واجب نہ ہو گی اور اگر شہر کے باہر غصب کیا ہو تو میزبان ضامن ہو گا یہ خزانۃ المفتین میں ہے۔ ایک شخص دوسرے شخص سے جھگڑا کرنے میں چمٹ گیا پس جس شخص سے لپٹا تھا اُس کی کوئی چیز گر کر ضائع ہو گئی تو مشائخ نے فرمایا چھڑانے والا ضامن ہو گا مصنف رضی اللہ عنہ فرماتے ہیں کہ حکم میں تفصیل ہونی

چاہئے کہ اگر مالک سے قریب وہ مال گرا اور مالک مال اس کو دیکھتا ہے اور اُٹھا لے سکتا ہے تو چننے والا ضامن نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

**قال المترجم : فان قلت المس المتعلّق امسکه ولا یمهله لیاخذه قلت نعم فتم با مکان الاخذ علی ان المنع منه غیر موجب الغصب کن حال بینه وبین ماشیته حتی هلکت حیث لا یضمن فتأمل وفیه اشارة الی الجواب من المشائخ بالمخر اجو الوجہ الذی ذکره من المسئلة بدلالة الحال فافهم .**

ایک شخص نے دھوبی کے پاس ایک شخص کو بھیجا تا کہ دھوبی سے اُس کا کپڑا وصول کر لائے پس دھوبی نے غلطی سے اور دوسرا کپڑا دے دیا اور وہ ایلچی کے پاس ضائع ہو گیا پس اگر وہ کپڑا دھوبی کی ملک ہو تو ضامن نہ ہو گا اور اگر غیر کی ملک ہو تو اُس کا مالک مختار ہے چاہے دھوبی سے تاوان لے یا ایلچی سے اور دونوں میں سے جس سے اُس نے تاوان لیا وہ دوسرے سے واپس نہیں لے سکتا ہے یہ وجیز کردری میں ہے شیخ ابو بکرؒ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے دوسرے کو اپنے مویشی کی طرف چراگاہ بھیجا پھر وہ شخص بھیجنے والے کے چوپایہ پر سوار ہوا اور وہ جانور راہ میں مر گیا تو شیخؒ نے فرمایا کہ اگر دونوں میں ایسا انبساط تھا کہ (۱) حکم دہندہ کے مال میں ایسا کر سکے تو ضامن نہ ہو گا اور اگر ایسا انبساط نہ تھا تو ضامن ہو گا یہ حاوی میں ہے۔

**ایک مشک کا دہانہ کھل گیا اور وہاں ایک شخص گذرا پس اگر اُس نے منہ نہیں پکڑا تو ضامن نہ ہو گا ☆**

دو اشخاص باہم شریک کھیل تھے ان میں سے ایک شریک نے بدون دوسرے کی اجازت کے اُس کا خاص ذاتی گدھا لے کر اُس کو چکی میں جوت کر آٹا پیسا اور گدھے نے چکی میں سے گیہوں کھائے اور مر گیا تو یہ شخص ضامن نہ ہو گا کیونکہ ایسی صورت میں دلالۃً

**حواشی:** (۱) با اجازت صریح۔ ۱۲ کیونکہ شہر سے ایسی جگہ نکال لے جاتا جہاں کوئی فریاد رس نہ پہنچے کپڑے کا تلف کر دینا شمار ہے۔ ۱۲ مترجم کہتا ہے کہ اگر کہا جائے کہ کیا چننے والا اس کو روکنے والا نہیں ہے اور لینے سے مانع نہیں ہے جواب ہاں لیکن موجودہ امکان ہے علاوہ بریں روکنا موجب سزا ہے نہ موجب غصب جیسے ایک نے دوسرے کو پکڑ لیا حتیٰ کہ اس کی بکریاں لے گیا تو غاصب نہ ہو گا بلکہ مارا جائے گا اسی سے مشائخ کا قول مسئلہ مذکور میں نکلا ہے فافہم۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (Page 166) Kitab al-Ghasb (The Book of Usurpation)**

Permission is established. The author states that this is not accepted by us because the custom (Urf) is contrary to it. However, from the explanation of this ruling, it is understood that where implied permission (dalalatan) is found, even if not explicitly stated, the actor shall not be liable (damin). For example, if a father uses his son's donkey in this manner, or vice versa, or if one spouse uses the other's donkey and it dies, the actor shall not be liable because implied permission is established. If a husband sends his wife's maidservant for his personal work without the wife's permission and the maid runs away, the husband shall not be liable; this is mentioned in *Al-Quniyah*. If the mouth of a water-skin opens and a person passing by does not close it, they are not liable. If they close it and then leave it, they are not liable if the owner is present; but if the owner is absent, they become liable. Similarly, if something falls from a person's sleeve and another person sees it, the same detailed ruling applies; this is in *Fusul al-Imadiya*. If an animal enters someone else's house and the homeowner turns it out, and it subsequently perishes, the homeowner is not liable; this is in *Khazanat al-Muftin*. If a person leaves their cloth in another's house and the homeowner throws it out while the owner of the cloth is absent, the homeowner shall be liable; this is written in *Al-Hawi*.

The translation of *Kitab al-Ghasb* from *Al-Fatawa al-Hindiyya*, known as *Al-Fatawa al-Alamgiriyya*, is completed with the help of Allah, the Glorified and Exalted, and His success. It will be followed by the translation of *Kitab al-Shufa* (The Book of Pre-emption), if Allah wills. I pray to Allah Almighty to grant me success, assist me, protect me from lapses, and safeguard me from errors and defects. Truly, He is my Guardian, sufficient for me, and the best Disposer of affairs. May Allah's peace and blessings be upon our master Muhammad, the leader of the first and the last, and upon his family and all his companions. All praise is due to Allah, the Lord of the worlds.

**In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful** Praise be to Allah, who is unique in the majesty of His Essence... (Summary of the Arabic preface). To proceed: The servant in need of Allah's mercy, Abdul Razzaq Muhammad, known as Al-Amhar Ali, says: After completing the translation of *Kitab al-Ghasb*, I have begun the translation of *Kitab al-Shufa* from the renowned *Fatawa Alamgiri* despite various hardships. Simplicity of language has been maintained so that complex subjects are

easily understood, avoiding rhetorical flourishes to ensure the clarity of the translation.

---

! The translator notes: Perhaps the author meant to critique the Mufti for giving a fatwa contrary to custom, or perhaps the intention is that since our custom differs, the Mufti's ruling was correct for his own custom, whereas our ruling follows our own custom, as the basis of this ruling is custom itself, and this is the most preferred view.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ८ (१६६) किताब अल-ग़सब (हड़पने का अध्याय)**

इजाज़त साबित है, शेख मुसन्निफ (लेखक) फरमाते हैं कि हमें ऐसा मुसल्लम (स्वीकार्य) नहीं मालूम हुआ क्योंकि उर्फ़(प्रचलन) इसके बरख़िलाफ़ है। लेकिन इस हुक्म के बयान से यह मालूम हुआ कि जहाँ दलालातन (संकेतात्मक) इजाज़त पाई जाए, अगरचे सरीहन (स्पष्ट रूप से) साबित न हो, वहाँ फाइल (कार्य करने वाला) ज़ामिन (ज़िम्मेदार/क्षतिपूर्ति करने वाला) न होगा। यहाँ तक कि अगर बाप ने अपने बेटे के गधे को इस तरह इस्तेमाल किया या इसके विपरीत, या शौहर व जोरू (पति-पत्नी) में से एक ने दूसरे के गधे से इस तरह काम लिया और वह मर गया, तो फाइल ज़ामिन न होगा क्योंकि दलालातन इजाज़त साबित है। और अगर अपनी जोरू की बांदी (दासी) को बिना जोरू की इजाज़त के अपने निजी काम के लिए भेजा और वह बांदी भाग गई, तो शौहर ज़ामिन न होगा, यह 'कुनिया' में है। एक मश्क (पानी की थैली) का मुँह खुल गया और वहाँ से एक व्यक्ति गुज़र रहा था, पस अगर उसने मुँह नहीं पकड़ा तो वह ज़ामिन न होगा। और अगर पकड़ कर फिर छोड़ दिया, तो अगर मालिक वहाँ मौजूद हो तो यह व्यक्ति ज़ामिन न होगा, और अगर मालिक ग़ायब हो तो ज़ामिन होगा। इसी तरह अगर किसी व्यक्ति की आस्तीन से कुछ गिरा और दूसरे व्यक्ति ने उसे देखा, तो भी यही तफ़सील (विस्तार) से हुक्म है, यह 'फ़ुसूल-ए-इमादिया' में है। एक व्यक्ति का चौपाया दूसरे के घर में दाख़िल हुआ और उसे घर के मालिक ने निकाल दिया, फिर वह नष्ट हो गया, तो मालिक ज़ामिन न होगा, यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे के घर में अपना कपड़ा रख दिया, फिर मकान मालिक ने उसे बाहर फेंक दिया, जबकि कपड़े का मालिक ग़ायब था, तो मकान मालिक ज़ामिन होगा, यह 'हावी' में लिखा है।

फ़तावा हिन्दिया, जो फ़तावा आलमगीरी के नाम से मशहूर है, के किताब अल-ग़सब का अनुवाद अल्लाह सुब्हानहू व तआला की सहायता और उसकी तौफ़ीक़ से मुकम्मल हुआ। इसके बाद किताब अल-शुफ़ा (अग्रक्रय का अध्याय) का अनुवाद होगा, इंशाअल्लाह। मैं अल्लाह तआला से दुआ करता हूँ कि वह मुझे तौफ़ीक़ अता फरमाए, मेरी मदद करे, मुझे फिसलने से बचाए और ग़लतियों व कमियों से सुरक्षित रखे। बेशक वही मेरा कार्यसाधक है, वही मेरे लिए काफ़ी है और वह बेहतरीन कारसाज़ है। अल्लाह हमारे सरदार, पहले और आख़िरी लोगों के सरदार, मौलाना मुहम्मद और उनकी आल व अस्हाब सब पर दुरूद ओ सलाम भेजे। सब तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो तमाम जहानों का रब है।

**बिस्मिल्लाह हिर्रहमान निर्रहीम** अल्लाह के नाम से शुरू जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहम वाला है। तमाम तारीफें अल्लाह के लिए हैं जो अपनी ज़ात के जलाल में यकता है... (अरबी प्रस्तावना का भावार्थ)। इसके बाद, अल्लाह के रहम का मोहताज बंदा अब्दुल रज़ाक़ मुहम्मद, जो अल-अम्हर अली के नाम से प्रसिद्ध है, कहता है कि किताब अल-ग़सब के अनुवाद के मुकम्मल होने के बाद, मैंने तमाम मुश्किलों के बावजूद फ़तावा आलमगीरी की किताब अल-शुफ़ा का अनुवाद शुरू किया। इबारत में सादगी का ध्यान रखा गया है ताकि मुश्किल विषय आसानी से समझ में आ जाए। दिखावटी भाषा से परहेज़ किया गया है।

---

! अनुवादक ने कहा: शायद लेखक ने यहाँ इस बात की ओर इशारा किया है कि शेख मुफ़्ती ने उर्फ़ (प्रचलन) के खिलाफ फ़तवा दिया, या शायद मक़सद यह है कि हमारा उर्फ़ उनके मुक़ाबले अलग है, इसलिए उनका हुक्म उनके अपने उर्फ़ के हिसाब से सही है और हमारे यहाँ हमारे उर्फ़ के मुताबिक़ हुक्म होगा, क्योंकि इस हुक्म की बुनियाद ही उर्फ़ पर है, और यही बात ज़्यादा सही है।

---

اجازت ثابت ہے شیخ مصنف فرماتے ہیں کہ ہم کو ایسا مسلّم نہیں معلوم ہوا کیونکہ عرف اس کے بر خلاف ہے لیکن اس حکم کے بیان سے یہ معلوم ہوا کہ جہاں دلالۃً اجازت پائی جائے اگر چہ صریحاً ثابت نہ ہو وہاں فاعل ضامن نہ ہوگا حتیٰ کہ اگر باپ نے اپنے بیٹے کے گدھے کو اس طرح استعمال کیا یا بالعکس یا شوہر وجورو میں ایک نے دوسرے کے گدھے سے اس طرح کام لیا اور وہ مر گیا تو فاعل ضامن نہ ہو گا کیونکہ دلالۃً اجازت ثابت ہے اور اگر اپنی جورو کی باندی کو بدوں جورو کی اجازت کے اپنے ذاتی کام کے واسطے بھیجا اور وہ باندی بھاگ گئی تو شوہر ضامن نہ ہو گا یہ قنیہ میں ہے۔ ایک مشک کا دہانہ کھل گیا اور وہاں ایک شخص گذر رہا پس اگر اُس نے منہ نہیں پکڑا تو ضامن نہ ہو گا اور اگر پکڑ کر پھر چھوڑ دیا پس اگر مالک وہاں حاضر ہو تو یہ شخص ضامن نہ ہو گا اور اگر غائب ہو تو ضامن ہو گا اسی طرح اگر کسی شخص کی آستین سے کچھ گرا اور ایک شخص نے اس کو دیکھا تو بھی اسی تفصیل سے حکم ہے یہ فصول عمادیہ میں ہے ایک شخص کا چوپایہ دوسرے کے گھر میں داخل ہوا اور اُس کو گھر کے مالک نے نکال دیا پس وہ تلف ہو گیا تو مالک ضامن نہ ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے ایک شخص نے دوسرے کے گھر میں اپنا کپڑا رکھ دیا پھر مالک مکان نے اُس کو باہر پھینک دیا حالانکہ کپڑے کا مالک غائب تھا تو مالک مکان ضامن ہو گا یہ حاوی میں لکھا ہے۔

تمت ترجمہ کتاب الغصب من الفتاوی الہندیۃ المعروف بالفتاوی العالمگیریہ بعون اللہ سبحانہ و تعالی و حسن توفیقہ و تلوھا ترجمۃ کتاب الشفعہ انشاء اللہ تعالیٰ وارجو اللہ تعالیٰ ان یوفقنی توفیقاً و یعیننی عوناً و یحفظنی عن الزلل و یعصمنی من الخطاء والخلل انہ تعالی ولیی و حسبی و نعم الوکیل و صلی اللہ علی محمد نا سید الاولین و الآخرین مولانا محمد و آلہ و اصحابہ اجمعین والحمد للہ رب العالمین۔

**بسم الله الرحمن الرحيم** الحمد لله المتوحد بجلال ذاته لا كوحدة الآحاد المتفرد بكمال صفاته لا كفردية الافراد لا اله الا هو نوّر الانام بمشيته جعل للكائنات بقدرته من غير امر ممتثل ولا فعل مفتعل والصلوة والسلام على رسوله سيدنا سلطان ذوى الامجاد مولانا محمد و آله و اصحابه الى يوم التناد اما بعد بنده مفتقر الى الله الغنى العلى عبدالرزاق محمد المعروف بالامہر على اظله الله بظل رحمته و تجاوز عن سيئاته بفيض مغفرته کہتا ہے میں نے بعد اتمام ترجمہ کتاب الغصب کتاب مستغنی عن الا وصاف معروف بفتاوی عالمگیریہ کے باستعجال تمام باوجود ہجوم آلام کتاب الشفعہ فتاوی موصوف کا ترجمہ شروع کیا عبارت میں سلاست ملحوظ ہے کہ مضمون دقیق بالجملہ سہولت عبارت سے جلد ذہن نشین ہو جائے اور لحن القول و عبارت آرائی سے پر ہیز کیا کہ قطع نظر از دائم دیگر مفاخر ترجمہ ہاتھ سے نہ کھو جائے اور باقی مدارک متعلقہ ترجمہ مقدمہ میں مصرح ہیں واسال الله عز وجل ان يعصمني من الزلل و يجتنبنى عن الخطاء والخلل وهو ولى و حسبى و نعم الوكيل -

---

! قال المترجم شاید یہ مصنف نے تعریض کی کہ شیخ مفتی نے خلافِ عرف فتویٰ دیا اور شاید یہ غرض کہ ہمارا عرف اس کے خلاف ہے تو شیخ مفتی کا حکم اپنے عرف پر صحیح ہے اور ہمارے عرف پر ہمارے یہاں حکم ہے کیونکہ عرف ہی پر اس حکم کا مدار ہے اور یہی اوجہ ہے۔

---

## Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)

It contains seventeen chapters.

# Chapter One ☆

## किताब अश्-शुफ़'अ (शुफ़'अ की पुस्तक)

इसमें सत्रह अध्याय हैं।

# अध्याय प्रथम ☆

**کتاب الشفعۃ**

---

اس میں سترہ ابواب ہیں

## باب اول ☆

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 | 168 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

...it will be [valid]. However, if such a settlement (sulh) is based on an acknowledgement [without valid legal basis], then the settlement is not valid, and pre-emption (shufa) will not be mandatory in either house, because both houses belong to the claimant. Among the conditions is that property must be exchanged for property, and from this condition, the ruling follows that if a settlement was made on a house for a crime that warrants retribution less than life[1] (qisas fima dun al-nafs), then pre-emption will not be mandatory. But if a settlement was made on a house for a crime that warrants blood-money (arsh)[2] rather than retribution (qisas), then the right of pre-emption will be mandatory in it. Similarly, if a slave was manumitted in exchange for a house, pre-emption will not be mandatory. Among the conditions is that the sold item must be immovable property (aqar) or something that falls under the definition of immovable property, whether this property is divisible or not, such as a bathhouse (hamam), a mill, a well, a canal, a spring, and small houses. If the item is anything else, then according to the majority of scholars, there will be no right of pre-emption in it. Another condition is that the ownership (milk) of the seller must be extinguished from the sold item. Therefore, if ownership is not extinguished, pre-emption will not be mandatory, as is the case in a sale with an option for the seller(1) (bay' bi-shart al-khiyar). If the seller waives their condition of option, pre-emption becomes mandatory. If the option in the sale belongs to the buyer (mushtari), pre-emption is mandatory; but if both(2) have the option, pre-emption is not mandatory. If the seller stipulate an option for the pre-emptor (shafi'), the pre-emptor shall not have the right of pre-emption. Thus, if the pre-emptor permits the sale, the sale becomes valid and their right of pre-emption is lost; and if they rescind it, their right of pre-emption is also lost. In such a situation, the strategy (hila) for the pre-emptor is to neither permit nor rescind until the seller themselves permits it or the sale becomes final by the expiration of the option period; then the pre-emptor will obtain the right of pre-emption. The option of defect (khiyar al-'ayb) and the option of inspection (khiyar al-ru'yat) do not prevent the right of pre-emption from becoming mandatory. Another condition is the extinction of the seller's right; therefore, pre-emption is not mandatory in an invalid purchase (khareed-e-fasid). If a buyer sells property purchased through an invalid transaction via a valid sale, and then the pre-emptor comes, they have the choice either to take it based on the first sale or the second sale. If they choose to take it based on the second sale, they take it for the price (thaman); if they choose the first sale, they take it for the value (qimat) of the

item. The value considered will be the value of the item on the day the buyer took possession, because an item bought under an invalid sale becomes a liability[3] similar to a usurped (maghsub) item upon possession. Based on this principle, in the case where a person bought land through an invalid sale and built a building on it, it follows from the saying of Imam al-A'zam (Abu Hanifa) that the pre-emptor will have the right of pre-emption, while according to the Sahibayn (Imams Abu Yusuf and Muhammad), they will not. Among the conditions is that the house through which the pre-emptor seeks pre-emption must be in their ownership at the time of the purchase of the subject property (mashfu'a). Therefore, if a person seeking pre-emption lives in a house through lease (ijara) or on loan ('ariyat), they will not have the right of pre-emption through it. Nor through a house they sold before the buyer purchased the subject property, nor through a house they turned into a mosque. Among the conditions is that the pre-emptor's ownership must be clearly proven at the time of the buyer's denial, meaning it is a condition that it be established through witnesses or the buyer's confirmation. This condition is actually for the manifestation of the right, not for the existence of the right itself. Thus, when the buyer denies that the property on the basis of which pre-emption is claimed[(3)] belongs to the pre-emptor, the pre-emptor will not have the power to take it through pre-emption until they produce witnesses that this house is their property. This is the view of Imam al-A'zam and Imam Muhammad, and according to one of the two reports, it is also the view of Imam Abu Yusuf. Another condition is that the subject property must not be in the pre-emptor's ownership at the time of sale; for if it were the pre-emptor's own property, pre-emption would not be mandatory. Among the conditions is that there should be no express or implied consent from the pre-emptor regarding the sale or the order of sale. Therefore, if the pre-emptor expressly consented to the sale or order of sale, or gave implied consent[(4)]—for example, the owner of the house made them an agent (wakil) for the sale of that house and they sold it—then the pre-emptor [loses the] right...

---

1- 'Fima dun...' i.e., in retribution, full life is not taken, but something less, such as an ear for an ear. 2- Compensation (jurmana) and blood-money (diyat) become mandatory. 3- Its value becomes mandatory as a guarantee/liability. (1) A sale in which there is a condition of option for the seller. (2) Seller and Buyer. (3) The property through which pre-emption is sought. (4) Implied consent is found.

होगा और यदि ऐसी संधि (सुलह) स्वीकृति (इकरार) के साथ हो तो संधि सही नहीं है, अतः दोनों में से किसी भी घर में शुफ़ा (पूर्वक्रयाधिकार) अनिवार्य (वाजिब) नहीं होगा क्योंकि दोनों घर वादी (मुद्दई) के स्वामित्व (मिल्क) में हैं। इनमें से एक बात यह है कि संपत्ति का मुआवजा संपत्ति से हो, और इस शर्त से यह नियम निकलता है कि यदि ऐसे अपराध (जिनायत) से जिसमें जान के बदले जान (क़िसास) से कम[1] का प्रावधान हो, एक घर पर संधि की गई, तो शुफ़ा वाजिब नहीं होगा। और यदि ऐसे अपराध से जो 'अर्श' (अर्थदंड)[2] का कारण बने न कि क़िसास का, एक घर पर संधि की गई, तो उसमें शुफ़ा का अधिकार वाजिब होगा। इसी प्रकार यदि एक दास को एक घर के बदले में आज़ाद किया गया तो शुफ़ा वाजिब नहीं होगा। इनमें से यह भी है कि बेची गई चीज़ अचल संपत्ति (अक़ार) हो या जो अचल संपत्ति के अर्थ में हो, चाहे यह अचल संपत्ति विभाजित होने योग्य हो या न हो, जैसे स्नानघर (हमाम), चक्की, कुआं, नहर, चश्मा और छोटे-छोटे घर। और यदि इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ होगी तो अधिकांश विद्वानों के अनुसार उसमें शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। इनमें से एक शर्त यह है कि विक्रेता (बाये) का स्वामित्व (मिल्क) संपत्ति से समाप्त (ज़ाइल) हो जाना चाहिए। अतः यदि स्वामित्व समाप्त नहीं हुआ तो शुफ़ा वाजिब नहीं होगा, जैसा कि विक्रेता के अधिकार (ख़यार) की शर्त(1) वाली बिक्री में होता है। यहाँ तक कि यदि विक्रेता ने अपने अधिकार की शर्त छोड़ दी तो शुफ़ा वाजिब हो जाएगा। यदि बिक्री में खरीदार (मुश्तरी) का अधिकार हो तो शुफ़ा वाजिब होगा, और यदि दोनों(2) का अधिकार हो तो शुफ़ा वाजिब नहीं होगा। और यदि विक्रेता ने शफ़ीअ (पूर्वक्रयाधिकारी) के लिए अधिकार की शर्त रखी तो शफ़ीअ को शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। फिर यदि शफ़ीअ ने बिक्री की अनुमति दे दी तो बिक्री वैध हो गई और उसे शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा, और यदि उसने रद्द (फ़स्ख़) कर दिया तो भी उसे शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। ऐसी स्थिति में शफ़ीअ के लिए उपाय (हीला) यह है कि वह न तो अनुमति दे और न ही रद्द करे, जब तक कि विक्रेता स्वयं अनुमति न दे दे या अधिकार की अवधि बीतने से बिक्री स्वयं पूर्ण न हो जाए; तब शफ़ीअ को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। दोष का अधिकार (ख़यार-ए-ऐब) और वस्तु देखने का अधिकार (ख़यार-ए-रोयत) शुफ़ा के अधिकार के अनिवार्य होने में बाधक नहीं हैं। इनमें से यह भी शर्त है कि विक्रेता का अधिकार समाप्त हो जाए, अतः त्रुटिपूर्ण खरीद (ख़रीद-ए-फ़ासिद) में शुफ़ा वाजिब नहीं होगा। और यदि खरीदार ने त्रुटिपूर्ण तरीके से खरीदी गई संपत्ति को सही तरीके से बेच दिया और फिर शफ़ीअ आया, तो उसे विकल्प होगा कि वह पहली बिक्री पर ले या दूसरी बिक्री पर। यदि उसने दूसरी बिक्री पर लेना चुना

तो वह मूल्य (थमन) के बदले लेगा, और यदि पहली बिक्री पर लेना चुना तो वह वस्तु के मूल्य (क़ीमत) के बदले लेगा, और वही मूल्य मान्य होगा जो खरीदार के कब्ज़े के दिन वस्तु का मूल्य था, क्योंकि त्रुटिपूर्ण बिक्री के तहत ली गई चीज़ कब्ज़े के बाद छीनी हुई वस्तु (मग़सूब) की तरह उत्तरदेही[3] होती है। इसी आधार पर इस मामले में कि एक व्यक्ति ने त्रुटिपूर्ण बिक्री के तहत ज़मीन खरीदी और उस पर इमारत बना ली, इमाम आज़म का यह मत है कि शफ़ीअ को शुफ़ा का अधिकार होगा, जबकि साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ व इमाम मोहम्मद) के अनुसार प्राप्त नहीं होगा। इनमें से एक शर्त यह है कि जिस घर के माध्यम से शफ़ीअ शुफ़ा के अधिकार की मांग कर रहा है, वह संपत्ति की बिक्री के समय शफ़ीअ के स्वामित्व में हो। अतः जिस घर में शुफ़ा की मांग करने वाला किराये पर या अस्थायी प्रयोग (आरियत) के तौर पर रहता है, उसके माध्यम से उसे शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। न ही उस घर के माध्यम से प्राप्त होगा जिसे उसने खरीदार द्वारा संपत्ति खरीदने से पहले ही बेच दिया हो, और न ही उस घर के माध्यम से जिसे उसने मस्जिद बना दिया हो। इनमें से यह भी है कि खरीदार के इनकार के समय शफ़ीअ का स्वामित्व स्पष्ट रूप से सिद्ध होना चाहिए, यानी गवाहों द्वारा या खरीदार की पुष्टि से प्रकट होना शर्त है। यह शर्त वास्तव में अधिकार के प्रकट होने की शर्त है, न कि अधिकार के अस्तित्व की। अतः जब खरीदार ने शुफ़ा के आधार वाले घर[(3)] के शफ़ीअ के स्वामित्व में होने से इनकार किया, तो शफ़ीअ को शुफ़ा में लेने का अधिकार तब तक नहीं होगा जब तक वह गवाह पेश न करे कि यह घर मेरा स्वामित्व है। यह इमाम आज़म और इमाम मोहम्मद का मत है, और दो रिवायतों में से एक के अनुसार इमाम अबू यूसुफ़ का भी यही मत है। इनमें से यह भी है कि बिक्री के समय वह संपत्ति शफ़ीअ के स्वामित्व में न हो, अतः यदि वह शफ़ीअ का अपना स्वामित्व हो तो शुफ़ा वाजिब नहीं होगा। इनमें से यह भी है कि शफ़ीअ की ओर से बिक्री या बिक्री के आदेश पर स्पष्ट या प्रतीकात्मक सहमति न पाई गई हो। अतः यदि शफ़ीअ बिक्री या बिक्री के आदेश पर स्पष्ट रूप से सहमत हो गया या प्रतीकात्मक[(4)] रूप से सहमत हुआ, उदाहरण के तौर पर घर के मालिक ने उसे उस घर को बेचने के लिए वकील बनाया और उसने उसे बेच दिया, तो शफ़ीअ को अधिकार...

---

1- 'फ़ीमा दून' ... यानी क़िसास में पूर्ण प्राण न लिए जाएँ बल्कि उससे कम, जैसे कान के बदले कान काटना। 2- जुर्माना और दियत की राशि अनिवार्य होती है। 3- इसके हर्जाने में मूल्य अनिवार्य होता है। (1) ऐसी बिक्री जिसमें विक्रेता के लिए विकल्प (ख़यार) की शर्त हो। (2) विक्रेता और खरीदार। (3) जिसके माध्यम से शुफ़ा चाहता है। (4) प्रतीकात्मक सहमति पाई जाए।

---

ہوگا اور اگر ایسی صلح باقرار ہو تو صلح صحیح نہیں ہے پس دونوں میں سے کسی دار میں شفعہ واجب نہ ہوگا اس لیے دونوں گھر ملکِ مدعی ہیں از آنجملہ مال کا معاوضہ مال سے ہو اور اس شرط سے یہ حکم نکلتا ہے کہ اگر ایسی جنایت سے جو موجب قصاص فیما دون النفس[1] ہے ایک دار پر صلح کی تو شفعہ واجب نہ ہوگا اور اگر ایسی جنایت سے موجب ارش[2] ہے نہ موجب قصاص ایک دار پر صلح کی تو اس میں حقِ شفعہ واجب ہوگا اسی طرح اگر غلام کو ایک دار پر آزاد کیا تو شفعہ واجب نہ ہوگا از جملہ مبیع عقار ہو یا جو عقار کے معنی میں ہے خواہ یہ عقار محتمل قسمت ہو یا نہ ہو جیسے حمام و چکی و کنواں و نہر و چشمہ و چھوٹے چھوٹے دار اور اگر اس کے سوا دوسری چیز ہوگی تو اس میں عامہ علماء کے نزدیک حقِ شفعہ نہ ہوگا اور از آنجملہ مبیع سے بائع کی ملک زائل ہو جانا شرط ہے پس اگر زائل نہ ہوئی تو شفعہ واجب نہ ہوگا جیسا کہ بیع[1] بشرط الخیار للبائع میں ہے حتیٰ کہ اگر بائع نے اپنے خیار کی شرط ساقط کر دی تو شفعہ واجب ہو جائے گا اور اگر بیع میں مشتری کا خیار ہو تو شفعہ واجب ہوگا اور اگر دونوں[2] کا خیار ہو تو شفعہ واجب نہ ہوگا اور اگر بائع نے شفیع کا خیار شرط کیا تو شفیع کو حقِ شفعہ نہ ہوگا پس اگر شفیع نے بیع کی اجازت دے دی تو بیع جائز ہوئی اور اس کا حقِ شفعہ نہ ہوگا اور اگر فسخ کر دی تو بھی اس کا حقِ شفعہ نہ ہوگا اور ایسی صورت میں شفیع کے واسطے حیلہ یہ ہے کہ وہ اجازت دے اور نہ فسخ کرے یہاں تک کہ خود بائع اجازت دے یا مدت خیار گزر جانے سے خود بیع تمام ہو جائے پس شفیع کو حقِ شفعہ حاصل ہوگا و خیار عیب و خیار رویت وجوبِ حقِ شفعہ سے مانع نہیں ہے۔ از آنجملہ حق بائع زائل ہو جانا شرط ہے پس خرید فاسد میں شفعہ واجب نہ ہوگا اور اگر بطور فاسد خریدے ہوئے عقار کو مشتری نے بطور صحیح فروخت کر دیا پھر شفیع آیا تو

اس کو اختیار ہوگا چاہے بیع کو بیع اول پر لے یا بیع ثانی پر پس اگر بیع ثانی پر لینا اختیار کیا تو ثمن کے عوض لے اور اگر بیع اول پر لینا اختیار کیا تو مبیع کی قیمت کے عوض لے اور وہ قیمت معتبر ہوگی جو مشتری کے قبضہ کرنے کے روز مبیع کی قیمت تھی اس واسطے کہ بطور بیع فاسد خریدی ہوئی چیز قبضہ سے مثلِ مغصوب کے مضمون[3] ہوتی ہے اور اسی اصل سے اس صورت میں کہ ایک شخص نے بطور بیع فاسد ایک زمین خرید کر اس پر عمارت بنائی امام اعظم کا یہ قول نکلتا ہے کہ شفیع کو حقِ شفعہ حاصل ہوگا اور صاحبین کے نزدیک حاصل نہ ہوگا۔ اور از آنجملہ یہ ہے کہ جس دار کے ذریعہ سے شفیع حقِ شفعہ کا خواستگار ہے وہ دار مشفوعہ کی خرید کے وقت شفیع کی ملک ہو پس جس دار میں خواستگار شفعہ باجارہ یا بعاریت رہتا ہے اس کے ذریعہ سے اس کو حقِ شفعہ حاصل نہ ہوگا اور نہ ایسے دار کے ذریعہ سے جس کو اس نے مشتری کے دار مشفوعہ خریدنے سے پہلے فروخت کر دیا ہو اور نہ ایسے دار کے ذریعہ سے جس کو اس نے مسجد کر دیا ہو اور از آنجملہ یہ ہے کہ مشتری کے انکار کے وقت شفیع کی ملک ہونا ثابت مطلقہ یعنی گواہان یا بتصدیق مشتری ظاہر ہونا شرط ہے اور یہ شرط در حقیقت ظہورِ حق کی شرط ہے نہ ثبوتِ حق کی پس جب مشتری نے دار مشفوعہ بہا[(3)] کے ملکِ شفیع ہونے سے انکار کیا تو شفیع کو حقِ شفعہ میں لینے کا اختیار نہ ہوگا جب تک اس بات کے گواہ قائم نہ کرے کہ یہ دار میری ملک ہے اور یہ قول امام اعظم و امام محمد کا ہے اور دو روایتوں میں سے ایک روایت کے موافق امام ابو یوسف کا ہے اور از آنجملہ یہ ہے کہ دار مشفوعہ وقت بیع کے شفیع کی ملک نہ ہو پس اگر شفیع کی ملک ہوگا تو شفعہ واجب نہ ہوگا اور از آنجملہ یہ ہے کہ شفیع کی جانب سے بیع یا حکمِ بیع کی صریحاً یا دلالتاً رضامندی نہ پائی جائے پس اگر شفیع بیع یا حکمِ بیع پر صریحاً راضی ہو گیا یا دلالتاً[(4)] راضی ہوا مثلاً مالک دار نے اس کو اس دار کی فروخت کے واسطے وکیل کیا اور اس نے فروخت کر دیا تو شفیع کو حق۔

۱- فیما دون ... یعنی قصاص میں کامل جان نہ ماری جائے بلکہ اس سے کم مثلاً کان کے عوض کان کاٹنا۔ ۲- جرمانہ و دیت کا مال واجب ہوتا ہے۔ ۳- اس کی ضمان میں قیمت واجب ہوتی ہے۔

(۱) ایسی بیع جس میں بائع کے واسطے خیار کی شرط ہو۔ (۲) بائع و مشتری۔ (۳) جس کے ذریعہ سے شفعہ چاہتا ہے۔ (۴) دلالتہً رضامندی پائی جائے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 169 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

...the right of pre-emption will not be established. Similarly, if a manager (*mudharib*) sells a house from the *mudharaba* (partnership) assets, and the capital provider (*rabb al-mal*) is a pre-emptor (*shafi*) by virtue of another personal house he owns, the capital provider shall not be granted the right of pre-emption, regardless of whether there was profit in the *mudharaba* or not. Being a Muslim is not a condition for the obligation of pre-emption; therefore, pre-emption is mandatory among *Dhimmis* (non-Muslim subjects), and a *Dhimmi* has the right of pre-emption over a Muslim. Likewise, freedom, being male, sanity, maturity, and uprightness are not conditions. Thus, the right of pre-emption is mandatory for authorized slaves (*ma'dhun*), contracted slaves (*mukatab*), partially manumitted slaves (*mu'taq al-ba'dh*), women, girls, eunuchs, and hermaphrodites. However, regarding the right mandatory for a minor or against a minor, the representative shall be the guardian who manages their property, namely the father, the father's executor, the paternal grandfather, his executor, the judge (*qadhi*), or the judge's executor; as stated in *al-Badai'*. The nature of pre-emption is that taking possession through pre-emption is akin to an initial purchase; therefore, whatever rights a buyer holds unconditionally, such as the right to return due to the option of inspection (*khiyar al-ru'yah*), shall also be available to the pre-emptor. Conversely, what is not available to the buyer unconditionally shall not be available to the pre-emptor unconditionally; this is mentioned in *Khizanat al-Muftin*.

The ruling on pre-emption is that it is permissible to demand pre-emption upon the discovery of its cause, and the right becomes firm after the demand. Ownership is established after the buyer's consent or a judge's decree; this is in *al-Nihayah*. Our scholars have stated that pre-emption is not inherently mandatory for movable goods (*manqulat*), but becomes mandatory only as an adjunct to immovable property (*uqar*). Inherently, pre-emption is mandatory only for immovable properties like houses, walled vineyards (*karam*)*, and other lands, and it applies to lands that are fully owned (*mamluk*). This even applies to lands reserved by the Imam of Muslims for the Public Treasury (*Bait al-Mal*) and leased to people for cultivation; if those cultivators construct buildings or plant trees, or fill the land with soil brought from their own property, then if such land is sold, its sale is void (*batil*), but the sale of the structures is permissible, provided they are specified, though the right of pre-emption will not apply therein. Similarly, the sale of communal village lands plowed by cultivators is not permissible. In al-Khassaf's* Adab al-Qadhi*, in the chapter on pre-emption, it is stated that*

*pre-emption is only mandatory by virtue of the right of ownership (1). Consequently, if a house adjacent to an endowed property (*waqf*) is sold, the endower (*waqif*) does not have the right of pre-emption, nor can the trustee (*mutawalli*) claim it. It is written in the* Fatawa *(2) of Faqih Abu al-Layth that similarly, if this house is endowed for a specific person, even that beneficiary of the endowment does not acquire the right of pre-emption due to that endowed property; this is in* al-Muhit*.

If a person's house is on endowed (*waqf*) land, they shall not have the right of pre-emption, and if they sell their own building, their neighbor also shall not have the right of pre-emption; this is in *al-Sirajiyyah*. It is stated in *al-Tahrir* that regarding immovable property similar to *waqf* property whose sale is not permissible, even those who believe in the permissibility of the sale of *waqf* (3) do not grant the right of pre-emption; this is in *al-Khulasah*. If a person bought a house and had not yet taken possession when the adjacent house was sold, that person shall have the right of pre-emption; this is in *al-Muhit al-Sarakhsi*. Pre-emption is not mandatory for a house designated as a woman's dower (*mahr*) or as consideration for manumission; this is in *al-Tabyin*. If a man marries a woman without specifying a dower (3), and then sells one of his houses to her in exchange for her proper dower (*mahr al-mithl*), the right of pre-emption shall be mandatory; and if from the woman...

---

- Karam: Grape vineyards surrounded by walls. (1) It cannot be obtained through the right of the endower (*waqif*), etc. (2) Summary: Through the endowment, neither the endower, the beneficiary, nor the trustee acquires the right of pre-emption. (3) Description of dower (*mahr*).

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 169 | किताब-अल-शुफ़ा (शुफ़ा का बयान)**

शुफ़ा (अग्रक्रय का अधिकार) प्राप्त नहीं होगा। इसी प्रकार यदि किसी 'मुज़ारिब' (व्यापारिक भागीदार) ने मुज़ारबत के माल से एक घर बेचा और 'रब्बुल माल' (पूंजीपति) अपने किसी दूसरे निजी घर के कारण उसका शफ़ी (अग्रक्रय का अधिकार रखने वाला) है, तो रब्बुल माल को शुफ़ा का अधिकार नहीं मिलेगा, चाहे मुज़ारबत में लाभ हुआ हो या नहीं। शुफ़ा के अनिवार्य होने के लिए शफ़ी का मुसलमान होना शर्त नहीं है; अतः ज़िमियों के बीच परस्पर शुफ़ा अनिवार्य होगा और ज़िमी का मुसलमान पर शुफ़ा का अधिकार होगा। इसी प्रकार स्वतंत्रता, पुरुष होना, विवेक, वयस्क होना और न्यायप्रियता भी शर्त नहीं है। अतः'माज़ून', 'मुकातब', 'मुअत्तकुल बाज़' (जिसका कुछ हिस्सा स्वतंत्र हो गया हो), स्त्रियों, लड़कियों, नपुंसकों और हिजड़ों का शुफ़ा अधिकार अनिवार्य होगा। लेकिन नाबालिग का जो अधिकार अनिवार्य हो या नाबालिग पर अनिवार्य हो, उसमें उसका प्रतिनिधि (वली) उसे माना जाएगा जो उसके माल का प्रबंध करता है, अर्थात् पिता, या पिता का वसीयतदार, या सगा दादा, या उसका वसीयतदार, या काज़ी (न्यायाधीश), या काज़ी का वसीयतदार; जैसा कि 'बिदाया' में वर्णित है। शुफ़ा की प्रकृति यह है कि शुफ़ा के माध्यम से लेना प्रारंभिक खरीद के समान है; अतः जो अधिकार खरीदार को बिना किसी शर्त के प्राप्त हैं, जैसे 'खियार-ए-रुय्यत' (देखने के विकल्प) के कारण वापस करना, वह शफ़ी को भी प्राप्त होगा, और जो बिना शर्त खरीदार को प्राप्त नहीं है, वह बिना शर्त शफ़ी को भी प्राप्त नहीं होगा; यह 'खज़ानतुल मुफ़्तीन' में है।

शुफ़ा का नियम यह है कि शुफ़ा का कारण पाए जाने पर शुफ़ा की मांग करना जायज़ है, और मांग के बाद यह पुख्ता हो जाएगा। खरीदार की सहमति या काज़ी के आदेश के बाद स्वामित्व सिद्ध होगा; यह 'निहाया' में है। हमारे विद्वानों ने कहा है कि चल संपत्तियों (मनकूलात) में स्वतः शुफ़ा अनिवार्य नहीं होता, केवल अचल संपत्ति (अकार) के अधीन होने पर अनिवार्य हो जाता है। स्वतः शुफ़ा केवल अचल संपत्तियों जैसे घर, अंगूर के बाग* और अन्य भूमियों में अनिवार्य होता है, और ऐसी भूमि में अनिवार्य होता है जो पूर्णतः स्वामित्व (ममलूक) में हो। यहाँ तक कि वह भूमि जिसे मुसलमानों के इमाम ने बैतुल माल (राजकोष) के लिए रखा हो और लोगों को खेती के लिए देता हो, फिर उन किसानों द्वारा उसमें किया गया कार्य जैसे इमारतें और पेड़ हों, और मिट्टी भरकर किया गया भराव, बशर्ते उन्होंने ऐसी मिट्टी भरी हो जो वे अपने स्वामित्व वाली भूमि से लाए हों, तो यदि ऐसी भूमि बेची गई, तो उसकी बिक्री बातिल (शून्य) है, लेकिन उस निर्माण कार्य की बिक्री जायज़ है, बशर्ते वह ज्ञात हो, परंतु उसमें शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। इसी प्रकार गाँव के बीच की भूमि जिसे किसान जोतते

हों, उसकी बिक्री भी जायज़ नहीं है। खसाफ़ की 'अदबुल काज़ी' के शुफ़ा अध्याय में है कि शुफ़ा केवल स्वामित्व के अधिकार (1) के माध्यम से अनिवार्य होता है। यहाँ तक कि यदि वक्फ़ (धर्मार्थ संपत्ति) के घर के बगल में कोई घर बेचा गया, तो वक्फ़ करने वाले को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा और न ही वक्फ़ का प्रबंधक (मुतवल्ली) उसे ले सकता है। फतावा (2) फकीह अबुल लैथ में लिखा है कि इसी प्रकार यदि यह घर किसी विशेष व्यक्ति पर वक्फ़ हो, तो उस व्यक्ति को भी जिसके लिए वक्फ़ है, उस वक्फ़ संपत्ति के कारण शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा; यह 'मुहीत' में है।

यदि वक्फ़ भूमि में किसी व्यक्ति का घर हो, तो उसे शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा, और यदि उसने स्वयं अपनी इमारत बेची, तो उसके पड़ोसी को भी शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा; यह 'सिराजिया' में है। 'तहरीर' में है कि अचल संपत्तियों में से वक्फ़ जैसी संपत्तियों में, जिनकी बिक्री जायज़ नहीं है, जो व्यक्ति वक्फ़ की बिक्री (3) के जायज़ होने का कायल है, उसके पास भी शुफ़ा नहीं है; यह 'खुलासा' में है। यदि किसी व्यक्ति ने एक घर खरीदा और अभी तक उस पर कब्ज़ा नहीं किया था कि उसके बगल में दूसरा घर बेच दिया गया, तो उस व्यक्ति को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। जो घर किसी महिला का 'महर' (स्त्रीधन) निर्धारित किया गया हो या स्वतंत्रता के बदले में दिया गया हो, उसमें शुफ़ा अनिवार्य नहीं होता; यह 'तबीन' में है। और यदि किसी व्यक्ति ने किसी महिला से बिना महर तय किए (3) निकाह किया, फिर उसके'महर-ए-मिसल' के बदले अपना एक घर उसे बेच दिया, तो उसमें शुफ़ा अनिवार्य होगा; और यदि महिला से...

---

- करम: अंगूर के बाग जिनके चारों ओर दीवार हो। (1) वाक़िफ़ (वक्फ़ करने वाले) आदि के अधिकार से नहीं मिल सकता। (2) सारांश: वक्फ़ के माध्यम से वाक़िफ़, लाभार्थी और मुतवल्ली में से किसी को भी शुफ़ा का अधिकार नहीं पहुँचता। (3) महर का विवरण।

---

مشفعہ حاصل نہ ہو گا اسی طرح اگر مضارب نے مال مضاربت سے ایک دار فروخت کیا اور رب المال ایک دوسرے اپنے ذاتی دار کی وجہ سے اس کا شفیع ہے تو رب المال کو حق شفعہ نہ ملے گا خواہ دار مضاربت میں نفع ہوا ہو یہ نہ ہوا ہو اور شفیع کا مسلمان ہونا وجوب شفعہ کے واسطے شرط نہیں ہے پس ذمیوں میں باہم شفعہ واجب ہو گا اور ذمی کا مسلمان پر حق شفعہ ہو گا اور اسی طرح حریت و ذکورۃ و عقل و بلوغ و عدالت بھی شرط نہیں ہے پس ماذون اور مکاتب و معتق البعض (جس کا کچھ حصہ آزاد ہو گیا ہو) وعورتوں ولڑکیوں و مجبوبوں اور اہل ہنستی کا حق شفعہ واجب ہو گا لیکن نابالغ کا جو حق واجب ہو یا نابالغ پر واجب ہو اُس میں خصم اُس کا وہ ولی قرار دیا جائے گا جو اُس کے مال میں تصرف کرتا ہے یعنی باپ یا باپ کا وصی یا سگا دادا یا اُس کا وصی یا قاضی یا وصی قاضی کذا فی البدائع اور صفت شفعہ یہ ہے کہ حق شفعہ سے لینا بمنزلہ ابتدائی خرید کے ہے پس جو امر مشتری کو بلا شرط حاصل ہو جیسے خیار رویت کی وجہ سے واپس کرنا وہ شفیع کو بھی حاصل ہو گا اور جو بدون شرط کے مشتری کو حاصل نہ ہو وہ بدون شرط کے شفیع کو بھی حاصل نہ ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔

حکم شفعہ کا یہ ہے کہ بسبب شفعہ پائے جانے پر شفعہ طلب کرنا جائز ہے اور بعد طلب کے متاکد ہو جائے گا اور بعد رضا ئے مشتری یا حکم قاضی کے ملک ثابت ہو گی یہ نہایہ میں ہے ہمارے اصحاب نے فرمایا کہ منقولات میں بالذات شفعہ واجب نہیں ہوتا ہے فقط عقار کی تبعیت میں واجب ہو جاتا ہے اور بالذات شفعہ فقط عقارات مثل دار و کرم* و غیرہ اراضی میں واجب ہوتا ہے اور ایسی اراضی میں واجب ہوتا ہے جو ہر طرح مملوک ہو حتی کہ ایسی اراضی جس کو امام المسلمین نے بیت المال کے واسطے رکھا ہو اور لوگوں کو مزارعت پر دیتا ہو پھر ان کاشتکاروں کی اُس

میں کردار مثل عمارت و درخت ہو گئی اور مٹی کے پاٹے ہوئے بھراؤ بشرطیکہ انہوں نے ایسی مٹی سے پاٹا ہو جس کو اپنی ملک سے لائے ہوں پھر اگر ایسی اراضی فروخت کی گئی تو اس کی بیع باطل ہے اور اس کردار کی بیع جائز ہے بشرطیکہ معلوم ہو مگر اُس میں حق شفعہ نہ ہو گا۔ اسی طرح اراضی میان دیہی اگر اس کو کاشتکار لوگ جو تتے ہوں تو اُس کی بیع بھی جائز نہیں ہے اور خصاف کے ادب القاضی کے باب شفعہ میں ہے کہ شفعہ فقط حق الملک (۱) کے ذریعہ سے واجب ہوتا ہے حتی کہ اگر دار وقف کے پہلو میں کوئی فروخت کیا گیا تو وقف کنندہ کو اُس کا حق شفعہ حاصل نہ ہو گا اور متولی وقف اس کو نہیں لے سکتا ہے اور فتاویٰ (۲) فقیہ ابواللیث میں لکھا ہے کہ اسی طرح اگر یہ دار کسی خاص شخص پر وقف ہو تو اُس شخص کو بھی جس پر وقف ہے اس دار وقف کے سبب سے حق شفعہ حاصل نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔

اگر زمین وقف میں ایک شخص کا گھر ہو تو اُس کو استحقاق شفعہ حاصل نہ ہو گا اور اگر اُس نے خود اپنی عمارت فروخت کی تو اس کے پڑوسی کو بھی حق شفعہ نہ ہو گا یہ سراجیہ میں ہے اور تحریر میں ہے کہ عقار میں سے مثل عقار وقف کے جس کی بیع جائز نہیں ہے اُس میں جو شخص وقف کی بیع (۳) کے جائز ہونے کا قائل ہے اُس کے نزدیک شفعہ نہیں ہے یہ خلاصہ میں ہے اگر ایک شخص نے ایک دار خریدا اور ہنوز اس پر قبضہ نہ کیا تھا کہ اُس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو اُس شخص کو حق شفعہ حاصل ہو گا یہ محیط سرخسی میں ہے اور جو دار کسی عورت کا مہر قرار دیا گیا یا آزادی کا عوض قرار دیا گیا اُس میں شفعہ واجب نہیں ہوتا ہے یہ تبیین میں ہے اور اگر کسی شخص نے ایک عورت سے بدون تسمیہ مہر (۳) کے نکاح کیا پھر اُس کے مہر مثل کے عوض اُس کے ہاتھ اپنا ایک دار فروخت کیا تو اس میں شفعہ واجب ہو گا اور اگر عورت سے...

• کرم: باغات انگور جن میں چار دیواری ہو۔ (۱) حق الواقف وغیرہ سے نہیں مل سکتا ہے۔ (۲)

خلاصہ: وقف کے ذریعہ سے واقف و موقوف علیہ و متولی وقف کسی کو حق شفعہ نہیں پہنچتا ہے۔ (۳) بیان مہر۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 170 | Kitab ash-Shufa (The Book of Pre-emption)**

If a person marries by designating a specific house as the dower (mahr), or mentions the dower and then the woman takes possession of that house by way of dower, the right of pre-emption (shufa) will not be mandatory. This is stated in 'Khazana al-Muftin'. If he marries a woman after stating a dower and then sells a house to her in exchange for that dower, then the pre-emptor (shafi) will have the right of pre-emption in it. Similarly, if he marries a woman without specifying a dower ^(1) as a condition, and later the Qazi (judge) fixes a dower for her, and then a house is sold to her in exchange for that fixed dower, the pre-emptor's right of pre-emption will still be mandatory; this is in 'Al-Muhit'. If he marries a woman on the condition of a house, provided that the woman returns one thousand dirhams to him, then according to Imam Azam (Abu Hanifa), may Allah have mercy on him, pre-emption will not be mandatory in any part of the house. However, according to the 'Sahibayn' (Abu Yusuf and Muhammad ash-Shaybani), may Allah have mercy on them, pre-emption will be mandatory to the extent of the share of one thousand dirhams. Similarly, if a woman takes a 'khula' (divorce at the wife's request) from her husband in exchange for a house on the condition that the husband returns one thousand dirhams to her, there is the same disagreement, as mentioned in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'.

**In what situation the pre-emptor will not be entitled to the right of pre-emption**☆

If, in a case of intentional murder, the murderer makes a settlement (sulh) for a house on the condition that the guardian of the victim returns one thousand dirhams to him, then according to Imam Azam, there will be no pre-emption in the house. According to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, the pre-emptor can take one part out of eleven parts of that house for one thousand dirhams. Similarly, if a settlement is made for head wounds ^(2) that entail retaliation (qisas), there is also disagreement. If a settlement is made for a house regarding two 'maudihah' wounds (wounds exposing bone), one being intentional and the other accidental, then according to Imam Azam, there will be no pre-emption in the house, but according to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, the pre-emptor can take half the house for five hundred dirhams, because the compensation (arsh) for an accidental 'maudihah' wound is five hundred dirhams; this is in 'Al-Mabsut'. If someone marries a woman without a specified dower and designates his house as her dower, or says "I have

settled with you on the condition that I designate this house of mine as your dower," or says "I gave you this house as dower," then in these cases, the pre-emptor will have no right of pre-emption; this is in 'Az-Zahirah'. A man married a woman and did not mention any dower for her, then gave her a house. There are two scenarios: if the husband says, "I have designated this house as your dower," there is no right of pre-emption in the house. But if he says, "I have given this house in exchange for your dower," then pre-emption will apply; this is in 'Az-Zakheerah'. If a person marries off his minor daughter for a house, then a pre-emptor demands pre-emption for that house, and the father gives it in exchange for her 'mahr-i-misl' (proper dower) at a known price or the value of the house, then this is considered a sale (bay') and the pre-emptor will have the right of pre-emption. Similarly, if the girl is an adult and she herself delivers it, it will be a sale and the pre-emptor will have the right of pre-emption. If a settlement for a house is made based on personal guarantee (kafalat bin-nafs), there will be no pre-emption, whether the guarantee of the person is for the right of retaliation (qisas), a prescribed legal punishment (hadd), or property. All these cases are identical regarding the ruling of pre-emption and the invalidity of settlement. If a settlement is made for the amount of wealth demanded from a debtor; if it is said, "I have settled with you on the condition that such-and-such person is cleared of the entire demanded wealth," then it is permissible, and the pre-emptor will have the right of pre-emption. This is because a stranger settling a debt on his own property is valid, similar to a settlement by the debtor themselves. But if he says, "I have given [this property] into your possession on behalf of the debtor," then the settlement is void; this is in 'Al-Mabsut'.

And any person whose gifting (hibah) without consideration is not permissible, such as a father gifting the property of his minor son, or a 'mukatib' (slave seeking freedom via contract) or a 'ghulam-i-madhun' (slave authorized for trade) gifting property; if such a person...

---

1. Re: "wound of the other" etc. - i.e., referring to wounds of another. Let it be clear that the original term is 'shajaj', plural of 'shajjah'. Jurists primarily use it for head wounds. Every 'maudihah' wound where the bone becomes visible. 2. Re: "in pre-emption" etc. - But here there is no pre-emption. Then if the daughter's father sold it to this claimant in this manner, he becomes the buyer (mushtari), now any third party who is a pre-emptor can exercise pre-emption. (1) "which is not dower for you". (2) It refers to head wounds.

उसी मकान को मेहर तय करके निकाह किया या मेहर बयान कर दिया, फिर औरत ने उस मकान पर मेहर के तौर पर कब्ज़ा किया तो शुफ़ा (पूर्वक्रय का अधिकार) अनिवार्य नहीं होगा, यह 'खज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है। और अगर औरत से मेहर तय करके निकाह किया फिर उसके हाथ उस मेहर के बदले एक मकान बेचा तो शफ़ी (पूर्वक्रय करने वाला) को उसमें शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। इसी तरह अगर किसी औरत से बिना ^(1) मेहर की शर्त पर निकाह किया फिर काज़ी (न्यायाधीश) ने उसके लिए मेहर मुक़र्रर कर दिया, फिर उस मुक़र्रर मेहर के बदले उसके हाथ एक मकान बेचा तो भी उसमें शफ़ी का शुफ़ा का अधिकार वाजिब होगा, यह 'मुहीत' में है। और अगर किसी औरत से एक मकान पर इस शर्त पर निकाह किया कि औरत उसे एक हज़ार दिरहम वापस दे, तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक मकान के किसी हिस्से में शुफ़ा वाजिब नहीं होगा और साहिबैन रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक एक हज़ार दिरहम के हिस्से के बराबर शुफ़ा वाजिब होगा। इसी तरह अगर औरत ने शौहर से एक मकान पर इस शर्त पर 'खुलअ' (तलाक का एक प्रकार) लिया कि शौहर उसे एक हज़ार दिरहम वापस दे, तो उसमें भी वैसा ही मतभेद है, यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में है।

## शफ़ी किस स्थिति में शुफ़ा का हक़दार नहीं होगा☆

अगर जानबूझकर हत्या (क़त्ल-ए-अमद) के मामले में क़ातिल ने एक मकान पर इस शर्त पर समझौता (सुलह) किया कि मक़्तूल (मृतक) का वारिस उसे एक हज़ार दिरहम वापस दे, तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक मकान में शुफ़ा नहीं होगा। और इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाह अलैह और इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक शफ़ी उस मकान के ग्यारह हिस्सों में से एक हिस्सा एक हज़ार दिरहम में ले सकता है। इसी तरह अगर सिर के उन ज़ख्मों ^(2) के लिए समझौता किया जिनमें क़िसास (बदला) अनिवार्य होता है, तो भी मतभेद है। और अगर दो 'मौजिया' (हड्डी दिखाने वाले) ज़ख्मों के लिए समझौता किया जिनमें से एक जानबूझकर था और दूसरा गलती से, तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक मकान में शुफ़ा नहीं होगा और इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाह अलैह और इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाह अलैह के नज़दीक शफ़ी आधे मकान को पांच सौ दिरहम में ले सकता है, क्योंकि गलती से लगे 'मौजिया' ज़ख्म का 'अर्श' (मुआवज़ा) पांच सौ दिरहम है, यह 'मबसूत' में है। अगर किसी औरत से बिना मेहर के निकाह किया और उसके लिए अपना मकान मेहर घोषित कर दिया, या कहा कि मैंने तुझसे इस शर्त पर सुलह की

कि अपना यह मकान तेरा मेहर घोषित किया, या कहा कि मैंने तुझे यह मकान मेहर में दिया, तो इन स्थितियों में शफ़ी के लिए शुफ़ा का कोई अधिकार नहीं होगा, यह 'ज़हीरा' में है। एक व्यक्ति ने एक औरत से निकाह किया और उसका कोई मेहर बयान नहीं किया, फिर उसे एक मकान दिया तो इसकी दो स्थितियाँ हैं: अगर शौहर ने यों कहा कि "मैंने यह मकान तेरा मेहर करार दिया" तो मकान में शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा, और अगर यों कहा कि "यह मकान तेरे मेहर के बदले में कर दिया" तो उसमें शुफ़ा होगा, यह 'ज़खीरा' में है। अगर किसी व्यक्ति ने अपनी नाबालिग बेटी का निकाह एक मकान पर कर दिया, फिर उस मकान को शफ़ी ने शुफ़ा में माँगा और बाप ने उसे 'मेहर-ए-मिस्ल' के बदले तयशुदा कीमत पर या मकान की कीमत पर दे दिया तो यह बिक्री (बैअ) है और शफ़ी को इसमें शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। इसी तरह अगर वह लड़की बालिग हो और उसने स्वयं उसे सौंप दिया हो तो यह बिक्री होगी और शफ़ी को उसमें शुफ़ा प्राप्त होगा। और अगर किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत ज़मानत (कफ़ालत बिल-नफ़्स) के बदले एक मकान पर सुलह की तो उसमें शुफ़ा नहीं होगा, चाहे ज़मानत क़िसास के अधिकार में हो या शरीअत की सज़ा (हद) में या माल में, ये सभी स्थितियाँ शुफ़ा के आदेश और सुलह के निरस्त होने में समान हैं। और अगर वांछित व्यक्ति से जितने माल की माँग है, उस माल का समझौता किया गया; तो अगर यों कहा गया कि "मैंने तुझसे इस शर्त पर सुलह की कि अमुक व्यक्ति पूरे वांछित माल से मुक्त हो गया" तो यह जायज़ है और शफ़ी को उसमें शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा, क्योंकि किसी अजनबी व्यक्ति का किसी व्यक्ति के ऋण के बदले अपनी संपत्ति पर समझौता कर देना ऋणी के समझौते के समान सही है। और अगर यों कहा कि "मैंने देनदार की तरफ से तेरे कब्ज़े में दिया" तो सुलह बातिल (अमान्य) है, यह 'मबसूत' में है।

और जिस व्यक्ति का बिना बदले के दान (हिबा) करना जायज़ नहीं है, जैसे पिता ने अपने छोटे पुत्र का माल दान कर दिया या 'मुकातिब' (स्वतंत्रता चाहने वाला दास) या 'गुलाम-ए-माज़ून' (व्यापार की अनुमति प्राप्त दास) का दान करना, अगर ऐसा व्यक्ति...

---

1. शब्द 'ज़ख्महाए दूसरे' आदि—यानी दूसरे के ज़ख्मों से। स्पष्ट हो कि मूल में यह 'शजाज' है, 'शजाह' का बहुवचन। फकीह इसे सिर के ज़ख्मों के लिए विशेष मानते हैं। प्रत्येक 'मौजिया' जिसमें हड्डी निकल आए। 2. शब्द 'शुफ़ा में' आदि—लेकिन यहाँ कुछ शुफ़ा नहीं है, फिर अगर लड़की के पिता ने इस माँग करने वाले के हाथ इस तरह बेच दिया तो यह खरीदार (मुश्तरी) हुआ, अब जो कोई तीसरा व्यक्ति शफ़ी हो वह शुफ़ा में ले सकता है। (1) तेरे लिए जो मेहर नहीं। (2) सिर के ज़ख्मों से संबंधित है।

اسی دار کو مہر ٹھہر کر نکاح کیا یا مہر بیان کر دیا پھر عورت نے اس دار پر مہر کی راہ سے قبضہ کیا تو شفعہ واجب نہ ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے اور اگر عورت سے مہر بیان کر کے نکاح کیا پھر اُس کے ہاتھ اس مہر کے عوض ایک دار فروخت کیا تو شفیع کو اُس میں حق شفعہ واجب ہو گا ۔ اسی طرح اگر کسی عورت سے بغیر ۸(۱) مہر کی شرط پر نکاح کیا پھر قاضی نے اس کے واسطے مہر مقرر کر دیا پھر اس مقررہ مہر کے عوض اُس کے ہاتھ ایک دار فروخت کیا تو بھی اُس میں شفیع کا حق شفعہ واجب ہو گا یہ محیط میں ہے اور اگر کسی عورت سے ایک دار پر اس شرط سے نکاح کیا کہ عورت اُس کو ہزار درہم واپس دے تو امام اعظمؒ کے نزدیک دار کے کسی حصہ میں شفعہ واجب نہ ہو گا اور صاحبینؒ کے نزدیک بقدر حصہ ہزار درہم کے شفعہ واجب ہو گا اسی طرح اگر عورت نے شوہر سے ایک دار پر اس شرط سے خلع لیا کہ شوہر اُس کو ہزار درہم واپس دے تو اُس میں ایسا ہی اختلاف ہے یہ محیطِ سرخسی میں ہے۔

**شفیع کس صورت میں حق شفعہ کا حقدار نہ ہوگا☆**

اگر قتل عمد سے قاتل نے ایک دار پر اس شرط سے صلح کی کہ ولی مقتول اُس کو ایک ہزار درہم واپس دے تو امام اعظمؒ کے نزدیک دار میں شفعہ نہ ہوگا اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک شفیع اس دار کے گیارہ جزوں میں سے ایک جزو ہزار درہم میں سے لے سکتا ہے اسی طرح اگر زخما ئے رُوسر ۸(۲) سے جن میں قصاص لازم آتا ہے صلح کی تو بھی اختلاف ہے اور اگر دو موضحہ زخم سے جن میں ایک عمد اور دوسرا خطاء تھا ایک دار پر صلح کی تو امام اعظمؒ کے نزدیک دار میں شفعہ نہ ہوگا اور امام ابو یوسفؒ اور امام محمدؒ کے نزدیک شفیع نصف دار کو

پانچ سو درہم میں لے سکتا ہے اس واسطے کہ موضحہ خطا کا ارش پانچ سو درہم ہے یہ مبسوط میں ہے اگر کسی عورت سے بغیر مہر نکاح کیا اور اُس کے واسطے اپنا دار مہر قرار دیا یا کہا کہ میں نے تجھ سے اس شرط سے صلح کی کہ اپنا یہ دار تیرا مہر قرار دیا یا کہا کہ میں نے تجھے یہ دار مہر میں دیا تو ان صورتوں میں شفیع کے واسطے کچھ حق شفعہ نہ ہوگا یہ ظہیرہ میں ہے ایک شخص نے ایک عورت سے نکاح کیا اور اُس کا کچھ مہر بیان نہ کیا پھر اُس کو ایک دار دیا تو اس کی دو صورتیں ہیں اگر شوہر نے یوں کہا کہ میں نے یہ دار تیرا مہر قرار دیا تو دار میں حق شفعہ نہ ہوگا اور اگر یوں کہا کہ یہ دار بعوض تیرے مہر کے کر دیا تو اس میں شفعہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے اگر ایک شخص نے اپنی نابالغہ بیٹی کو ایک دار پر بیاہ دیا پھر اس دار کو شفیع نے شفعہ میں طلب کیا اور باپ نے اُس کے مہر مثل کے عوض ثمن مسمی معلوم پر یا دار کی قیمت پر دے دیا تو یہ بیع ہے اور شفیع کو اس میں حق شفعہ حاصل ہو گا اسی طرح اگر وہ لڑکی بالغہ ہو اور اُس نے خود سپرد کیا تو یہ بیع ہو گی اور شفیع کو اُس میں شفعہ حاصل ہو گا ۔ اور اگر کسی شخص کی کفالت بالنفس سے ایک دار پر صلح کی تو اُس میں شفعہ نہ ہو گا خواہ مکفول عنہ کی کفالت بالنفس حق قصاص میں ہو یا حد شرع میں یا مال میں یہ سب صورتیں حکم شفعہ و بطلان صلح میں یکساں ہیں اور اگر مطلوب سے جس قدر مال کا مطالبہ ہے اُس مال کی صلح کی پس اگر یوں کہا کہ میں نے تجھ سے اس شرط پر صلح کی کہ فلاں شخص تمام مال مطلوب سے بری ہوا تو یہ جائز ہے اور شفیع کو اُس میں حق شفعہ حاصل ہو گا اس واسطے کہ مرد اجنبی کا کسی شخص کے قرضہ سے اپنی ملک پر صلح کر دینا مثل صلح قرض دار کے صحیح ہے اور اگر یوں کہا کہ میں نے مدیوں کی طرف سے تیرے قبضہ میں دیا تو صلح باطل ہے یہ مبسوط میں ہے۔

اور جس شخص کا ہبہ کرنا بغیر عوض نہیں جائز ہے جیسے باپ نے پسر صغیر کا مال ہبہ کیا یا مکاتب یا غلام ماذون کا ہبہ کرنا اگر ایسے شخص

---

۱ قولہ زخم ہائے دوسرے الخ۔ یعنی پر و دوسرے کے زخموں سے واضح ہو کہ اصل میں شجاج ہے جمع شجہ فقہا اس کو زخم سر میں غالب رکھتے ہیں ہر موضعہ جس میں ہڈی نکل جائے۔ آسر جوامع المہ داغ تک پہنچے۔ ۲ قولہ شفعہ میں الخ۔ لیکن یہاں کچھ شفعہ نہیں ہے پھر اگر صفیہ کے باپ نے اس طالب کے ہاتھ اس طرح فروخت کیا تو یہ مشتری ہوا اب جو کوئی ثالث شفیع ہو وہ شفعہ میں لے سکتا ہے۔ (۱) تیرے واسطے جو مہر نہیں۔ (۲) سر درد کے زخموں سے ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 / 171 / Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

If a gift (Hiba) is made in exchange for a consideration ( عوض ), according to Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), it is not valid and pre-emption (Shufa) will not be mandatory. However, according to Imam Muhammad (may Allah have mercy on him), it is valid and pre-emption will be mandatory; this is mentioned in al-Muhit al-Sarakhsi. If a person gifts a house to another on the condition that the donee (recipient) gifts one thousand dirhams back to the donor, the pre-emptor (Shafi') will not have the right of pre-emption (1) until both parties have taken mutual possession. If a person makes a will stating, "I bequeath to sell my house to so-and-so for one thousand dirhams," and the testator dies, and the legatee accepts it, the pre-emptor shall have the right of pre-emption. If an executor (Wasi) is instructed, "I bequeath that my house be gifted to so-and-so in exchange for one thousand dirhams," this scenario and the testator making the gift personally (2) are identical in legal ruling. If a specified share in a house is gifted on the condition of a consideration and both parties take possession, it is not permissible, and according to us, there is no pre-emption in it. Similarly, if the consideration is divisible property and it is kept undivided, the ruling remains the same. If a person gifts a house on the condition that the donee discharges the donor from a debt owed to the donee, and the amount of debt is not specified, and the donee takes possession, the pre-emptor shall have the right of pre-emption in the house. Likewise, if the gift is made on the condition that the donee waives any claims he has regarding another house, and the donee takes possession of the gifted house, this scenario is also like the aforementioned in terms of entitlement to pre-emption; this is in al-Mabsut. If a person buys a slave-girl for one thousand dirhams and then settles (Sulah) with the seller for a house due to a defect in the slave-girl (whether the seller admits the defect or denies it), the pre-emptor will have the right of pre-emption in that house; this is in Jami al-Kabir under the chapter 'Pre-emption in Settlements'. If, after taking possession, a settlement is made with the seller for a house due to a defect, the statement of the settler regarding the loss from the defect shall be accepted; this is in Tatarkhaniya.

If Zaid has a debt against Amr, whether Amr admits it or denies it, and Zaid settles the debt for a house or buys a house from Amr in exchange for that debt and takes possession, the pre-emptor shall have the right of pre-emption in it. If Zaid and the pre-emptor disagree on the amount or type of the debt, this is treated like a dispute over the price (Thaman) between a buyer and a pre-emptor, and no regard (3) shall

be given to the statement of the debtor (Amr); this is in al-Mabsut. If a house is jointly owned by, for example, three people, and an outsider claims a right in it, and one of the partners settles with the claimant for some property on the condition that the claimant's share will belong exclusively to the settling partner, and then the remaining two partners demand pre-emption: if this settlement occurred with the acknowledgment of all partners (e.g., they admitted the claim and then one settled), the remaining partners have the right of pre-emption. However, if the settlement occurred while the partners denied the claim, they do not have the right of pre-emption. If the settling partner admits the claim but the other two deny it, the judge (Qadi) will demand witnesses from the settling partner regarding the claimant's right; if he provides witnesses, they will be accepted because he is in the position of a buyer who has proven his seller's ownership to validate his purchase. Once the witnesses are accepted, what is proven through them is like what is proven by the partners' acknowledgment, and in such cases, the other two partners are entitled to pre-emption. If a claimant claims a right in a house and the defendant settles by granting him the right of residence (Sukna) in another house, there is no pre-emption for the pre-emptor in the house settled upon; this is in al-Muhit. If a claimant claims a debt, a trust (Wadi'at), or accidental injury (4) and the defendant settles it for a house or a wall of a house, then...

---

1. The purpose of mentioning this report is to determine how much the pre-emptor must pay for the house, as the extent of the loss is proven by whose statement. (1) In the house. (2) Making the gift with his own hands. (3) The amount will be determined based on their description. (4) Accidental wounding.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 / 171 / किताबुश शुफ़आ (शुफ़आ का बयान)**

यदि बदले के साथ हिबा (उपहार) किया गया हो, तो इमाम अबू यूसुफ रह. के निकट यह सही नहीं है और शुफ़आ (अग्रक्रयाधिकार) अनिवार्य नहीं होगा, जबकि इमाम मुहम्मद रह. के निकट यह सही है और शुफ़आ अनिवार्य होगा; यह मुहीत सरख्सी में है। और यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे को एक घर इस शर्त पर हिबा किया कि वह व्यक्ति दाता (वाहिब) को एक हज़ार दिरहम हिबा करे, तो जब तक दोनों परस्पर कब्ज़ा न कर लें, तब तक शुफ़ई (शुफ़आ माँगने वाले) को इसमें (1) शुफ़आ का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। और यदि किसी ने वसीयत की कि 'मैं अपना घर फलां व्यक्ति को एक हज़ार दिरहम में बेचने की वसीयत करता हूँ', फिर वसीयत करने वाला (मूसी) मर गया और वसीयत पाने वाले (मूसी लह) ने कहा कि 'मैंने इसे स्वीकार किया', तो शुफ़ई को शुफ़आ का हक हासिल होगा। और यदि वसीयतकर्ता के वसी (निष्पादक) से कहा गया कि 'मैंने यह वसीयत की कि मेरा घर फलां व्यक्ति को एक हज़ार दिरहम के बदले हिबा कर दिया जाए', तो यह स्थिति और मूसी का स्वयं व्यक्तिगत रूप से (2) हिबा करना, दोनों हुक्म में समान हैं। और यदि घर में से एक विशिष्ट हिस्सा बदले की शर्त पर हिबा किया और दोनों ने कब्ज़ा कर लिया, तो यह जायज़ नहीं है और हमारे निकट इसमें शुफ़आ नहीं होगा। इसी तरह यदि बदले वाला माल बँटवारे के योग्य हो और उसे अविभाजित रखा गया, तब भी यही हुक्म है। और यदि किसी ने एक घर इस शर्त पर हिबा किया कि प्राप्तकर्ता (मौहूब लह) दाता को उस ऋण से मुक्त कर दे जो दाता पर उसका बकाया है, और उस ऋण की राशि निश्चित नहीं की गई, और प्राप्तकर्ता ने कब्ज़ा कर लिया, तो शुफ़ई को घर में शुफ़आ का हक होगा। इसी प्रकार यदि इस शर्त पर हिबा किया कि प्राप्तकर्ता दूसरे घर में अपने किसी भी दावे से दाता को मुक्त कर दे, और प्राप्तकर्ता ने घर पर कब्ज़ा कर लिया, तो यह स्थिति भी शुफ़आ की हकदारी में पिछली सूरत के समान है; यह मबसूत में है। यदि एक व्यक्ति ने एक हज़ार दिरहम में एक दासी खरीदी, फिर विक्रेता (बाइ) से दासी के दोष के कारण (चाहे विक्रेता दोष स्वीकार करे या इनकार करे) एक घर पर सुलह (समझौता) कर ली, तो इसमें शुफ़ई को शुफ़आ का अधिकार होगा; यह जामे कबीर के'बाबुल शुफ़आ फ़िस-सुलह' में है। और यदि कब्ज़ा करने के बाद विक्रेता के साथ दोष के बदले में एक घर पर सुलह की, तो दोष के कारण हुए नुकसान के बारे में सुलह करने वाले की बात स्वीकार की जाएगी; यह तातार खानिया में है।

यदि ज़ैद का अम्र पर ऋण हो और अम्र उसे स्वीकार करता हो या इनकार करता हो, फिर ज़ैद ने उस ऋण के बदले एक घर पर सुलह कर ली या उस ऋण के बदले अम्र से घर खरीद कर कब्ज़ा कर

लिया, तो शुफ़ई को उसमें शुफ़आ का हक होगा। फिर यदि ज़ैद और शुफ़ई में ऋण की मात्रा या प्रकार को लेकर विवाद हो जाए, तो यह क्रेता और शुफ़ई के बीच मूल्य (समन) के विवाद की तरह माना जाएगा, और जिस पर ऋण है (अम्र) उसकी बात पर ध्यान (3) नहीं दिया जाएगा; यह मबसूत में है। यदि एक घर तीन लोगों के बीच साझा हो, फिर किसी अन्य व्यक्ति ने आकर उस घर में अपना दावा किया, फिर साझीदारों में से एक ने दावेदार के साथ कुछ माल पर इस शर्त पर सुलह कर ली कि दावेदार का वह हिस्सा केवल सुलह करने वाले का होगा, और फिर शेष दो साझीदारों ने शुफ़आ की मांग की, तो यदि यह सुलह साझीदारों की स्वीकृति के साथ हो (जैसे साझीदारों ने दावे को स्वीकार किया हो और फिर एक ने सुलह की हो), तो बाकी साझीदारों को शुफ़आ का हक होगा। और यदि यह सुलह साझीदारों के इनकार के साथ हो, तो उन्हें शुफ़आ नहीं मिलेगा। और यदि सुलह करने वाला दावे को स्वीकार करे लेकिन बाकी दो साझीदार इनकार करें, तो काज़ी सुलह करने वाले से दावेदार के गवाह मांगेगा; यदि उसने गवाह पेश कर दिए तो वे स्वीकार किए जाएंगे, क्योंकि वह क्रेता की स्थिति में है जिसने अपने विक्रेता का स्वामित्व सिद्ध किया ताकि उसकी खरीद सही हो सके। जब गवाह स्वीकार हो गए, तो जो बात उन गवाहों से सिद्ध हुई वह वैसी ही है जैसे साझीदारों की स्वीकृति से सिद्ध होती है, और साझीदारों की स्वीकृति में शुफ़आ का हक मिलता है, अतः यहाँ भी हक मिलेगा। यदि किसी दावेदार ने घर में अपने अधिकार का दावा किया और प्रतिवादी ने उससे दूसरे घर में रहने (निवास) के अधिकार पर सुलह कर ली, तो जिस घर के बारे में सुलह की गई है उसमें शुफ़ई को शुफ़आ नहीं होगा; यह मुहीत में है। यदि दावेदार ने ऋण, अमानत या अनजाने में लगी चोट (4) का दावा किया और प्रतिवादी ने उसके बदले एक घर या घर की दीवार पर सुलह कर ली, तो उस...

---

1. इस वर्णन के उल्लेख का उद्देश्य यह है कि शुफ़ई उस घर को कितने में ले सकता है, क्योंकि नुकसान की मात्रा किसके कथन से सिद्ध होगी। (1) घर में। (2) स्वयं अपने हाथों से हिबा करे। (3) उनके विवरण पर निश्चित मात्रा तय की जाएगी। (4) गलती से घाव पहुँचाना।

نے بعوض ہبہ کیا تو امام ابو یوسفؒ کے نزدیک نہیں صحیح ہے اور شفعہ واجب نہ ہو گا اور امام محمدؒ کے نزدیک صحیح ہے اور شفعہ واجب ہو گا یہ محیط سرخسی میں ہے اور اگر ایک شخص کو ایک دار اس شرط پر ہبہ کیا کہ وہ شخص واہب کو ہزار درہم ہبہ کرے تو جب تک دونوں باہم قبضہ نہ کرلیں تب تک شفیع کو اس میں (۱) حق شفعہ نہ ہوگا اور اگر کہا کہ میں فلاں شخص کے ہاتھ ہزار درہم میں اپنا دار فروخت کرنے کی وصیت کی پھر موصی مر گیا پھر موصی لہ نے کہا کہ میں نے قبول کیا تو شفیع کو حق شفعہ حاصل ہوگا اور اگر وصی سے کہا کہ میں نے یہ وصیت کی کہ میرا دار فلاں شخص کو بعوض ہزار درہم کے ہبہ کیا جائے تو یہ صورت اور موصی کا خود بنفسہ (۲) مباشر ہبہ ہونا دونوں حکم میں یکساں ہیں اور اگر دار میں سے ایک نصیب مسمی بشرط عوض ہبہ کیا اور دونوں نے باہم قبضہ کر لیا تو جائز نہیں ہے اور ہمارے نزدیک اس میں شفعہ نہ ہوگا۔ اسی طرح اگر مال عوض قابل قسمت ہو اگر اس کو غیر منقسم رکھا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر ایک شخص کو ایک دار اس شرط پر ہبہ کیا کہ موہوب لہ واہب کو اپنے دین سے جو اُس کا واہب پر آتا ہے بری کرے اور اس دین کو مسمی نہ کیا اور موہوب لہ نے قبضہ کرلیا تو شفیع کو دار میں حق شفعہ حاصل ہوگا اسی طرح اگر اس کو اس شرط سے ہبہ کیا کہ موہوب لہ اس دوسرے دار میں جو کچھ اپنا دعویٰ کرتا ہے اس سے بری کرے اور موہوب لہ نے دار ہبہ پر قبضہ کر لیا تو یہ صورت بھی استحقاق شفعہ میں مثل صورت مذکورہ کے ہے یہ مبسوط میں ہے ایک شخص نے ہزار درہم میں ایک باندی خریدی پھر بائع سے باندی کے عیب سے خواہ بائع کی طرف سے اقرار عیب ہو یا انکار ہوا ایک دار پر صلح کی تو اس میں شفیع کو حق شفعہ حاصل ہوگا یہ جامع کبیر کے باب الشفعہ فی الصلح میں ہے اور اگر بعد قبضہ کرنے کے بائع کے ساتھ

عیب سے ایک دار پر صلح کی تو نقصان عیب میں صلح کنندہ کا قول قبول ہو گا یہ تاتار خانیہ میں ہے۔

اگر زید کا عمرو پر دین ہو اور عمرو اس کا مقر ہو یا منکر ہو پھر اُس نے اس دین سے ایک دار پر صلح کی یا بعوض اس دین کے عمرو سے ایک دار خرید کر قبضہ کر لیا تو شفیع کو اُس میں حق شفعہ حاصل ہو گا پھر اگر زید نے اور شفیع نے مبلغ دین اور جنس دین میں باہم اختلاف کیا تو یہ بمنزلہ مشتری نہ شفیع کے ثمن میں اختلاف کرنے کے ہے اور جس شخص پر دین ہے اُس کے قول پر التفات (۳) نہ کیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے اگر ایک دار مثلاً تین آدمیوں میں مشترک ہو پھر ایک شخص نے آکر اُس دار میں کچھ اپنا دعویٰ کیا پھر شرکاء دار میں سے ایک نے مدعی کے ساتھ کسی قدر مال پر اس شرط سے صلح کر لی کہ حصہ مدعی خاصہ اس صلح کرنے والے کا ہو گا پھر باقی دونوں شریکوں نے شفعہ طلب کیا پس اگر یہ صلح شرکاء دار کے اقرار کے ساتھ ہو مثلاً شرکاء دار نے دعویٰ مدعی کا اقرار کیا پھر اُس سے فقط ایک شریک نے اس شرط پر صلح کی کہ حصہ مدعی خاصہ صلح کنندہ کا ہو گا تو باقی شریکوں کو حق شفعہ حاصل ہو گا اور اگر یہ صلح شریکوں کے انکار کے ساتھ ہو تو ان کو شفعہ حاصل نہ ہوگا اور اگر صلح کنندہ دعویٰ تو مدعی کا مقر ہو اور باقی دونوں شریک حق مدعی ہونے سے منکر ہوں تو قاضی شریک صلح کنندہ سے دعویٰ مدعی کے گواہ طلب کرے گا پس اگر اُس نے گواہ قائم کر دیئے تو اُس کے گواہ مقبول ہوں گے اس واسطے کہ وہ مشتری ہے کہ اُس نے خرید کردہ چیز میں اپنے بائع کی ملکیت اس غرض سے ثابت کی کہ اُس کی خرید صحیح ہو جائے پھر جب گواہ مقبول ہو گئے تو جو امران گواہوں سے ثابت ہوا وہ مثل اُس کے ہے جو اقرار شرکاء سے ثابت ہوا اور جو کچھ اقرار شرکاء سے ثابت ہوتا ہے اُس میں باقی دونوں شریکوں کو حق شفعہ پہنچتا تھا پس ویسا ہی اس طرح ثابت شدہ میں بھی اُن کا حق شفعہ حاصل ہو گا اگر کسی مدعی نے ایک دار میں اپنے حق

کا دعویٰ کیا اور مدعا علیہ نے اُس سے ایک دوسرے دار کی سکونت پر صلح کر لی تو جس دار سے صلح کی گئی ہے اُس میں شفیع کو حق شفعہ نہ ہوگا یہ محیط میں ہے۔ اگر مدعی نے دین یا ودیعت یا جراحت خطا (۴) کا دعویٰ کیا اور مدعا علیہ نے اس سے ایک دار پر یا دار کی دیوار پر صلح کر لی تو اُس

---

۱۔ اس روایت کے ابراد سے یہ غرض ہے کہ شفیع اس دار کو کتنے میں لے سکتا ہے کیونکہ مقدار نقصان کس کے قول سے ثابت ہوگی۔ (۱) دار میں۔ (۲) خود اپنے ہاتھوں ہبہ کرے۔ (۳) ان کے بیان پر مقدار معین کے جائے گی۔ (۴) غلطی سے زخم پہنچایا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (5) 172 Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

The pre-emptor (Shafi) shall not have the right of pre-emption (Shufa) in a case where a settlement (Sulh) is made for a room in lieu of a right to reside in a house bequeathed to them, or in lieu of the services of a slave. If a plaintiff claims property from a defendant, and the defendant settles with the condition that the plaintiff may place their rafters (beams) on the defendant's wall, or that the space for placing rafters becomes the plaintiff's permanently, or for a known fixed period (1), this is valid by analogy (Qiyas), because the subject of the settlement is known, whether it be the substance or the usufruct. However, the Imam (RA) abandoned this analogy and stated that such a settlement is void (batil) and the pre-emptor shall not have the right of pre-emption. Similarly, if a settlement is made on the condition that the plaintiff diverts their water drainage path towards the defendant's house, the neighbor of that house shall not have the option to take this water path by pre-emption. However, if a settlement is made regarding a defined and known path inside the house, the immediate adjoining neighbor (Jar-e-Mulasik) shall have the option to take it by pre-emption, because a path inside a house is not like a watercourse (2), as the path itself is owned property (mamluk). Thus, the pre-emptor becomes a partner in the path, but not in the placement of rafters on a wall or in a water drain. This is mentioned in 'Mabsut'. In 'Mulkhasi', it is narrated from Imam Muhammad (RA) that if a person bought a house and stipulated a three-day option (Khiyar) for the pre-emptor, Imam Muhammad (RA) said: If the pre-emptor said, "I permitted the sale on the condition that I take it by pre-emption," then their right remains; but if they did not mention taking it by pre-emption, they shall not have the right. This is in 'Tatarkhania'.

If a person sold their house on the condition that the pre-emptor acts as a guarantor for the price due from the buyer, and the pre-emptor was present and accepted the guarantee, the sale becomes valid and the pre-emptor loses the right of pre-emption because the sale was completed with the pre-emptor's involvement, thus ending their right. Similarly, if a buyer bought a house on the condition that the pre-emptor acts as a guarantor against defects (Zaman-e-Dark) on behalf of the seller, and the pre-emptor accepted, the sale is valid and they lose the right of pre-emption. This is in 'Sharh Tahawi'. If the buyer stipulates an indefinite option, the pre-emptor has no right of pre-emption. However, if the buyer waives their option and completes the sale before three days have passed, the right of pre-emption becomes established. According to the two disciples (Sahibayn), the same rule applies after three days (3)

have passed. This is in 'Mabsut'. If the buyer stipulates an option for themselves for a month or a similar period, then according to Imam Azam (RA), the pre-emptor has no right of pre-emption. But if the buyer waives their option before three days pass such that the sale becomes absolute and valid, the right of pre-emption is established. This is in 'Muheet'. In 'Fatawa Itabiyya', it is stated: If a house was sold with a three-day option and then the period was extended, and the pre-emptor had already demanded pre-emption at the time of sale, they shall take it upon the expiry of the first option period. If one of two neighbors rejects it fundamentally, the other neighbor shall take it. This is in 'Tatarkhania'. If a house is bought in exchange for a specific slave or a specific number, and an option is stipulated for either party, if it is for the seller, the pre-emptor has no right until the sale is finalized, whether the option is for the house or the slave. This is in 'Muheet'. If a house is bought for a slave and a three-day option is stipulated for the buyer, the pre-emptor has the right of pre-emption. Thus, if the pre-emptor takes the house from the buyer's possession, the sale becomes binding for them, even if the buyer later permitted the sale and waived their option.

**Footnotes:** 1. If the deceased bequeathed that a person may live in a certain house for a year or that a slave serve them for a year, and the heirs settle with the legatee for a room in lieu of this right, it is valid, but there is no pre-emption because it is not a verified exchange of property for property. 2. The ruling for a drain and a private path is not the same. 3. The point is that if the buyer's purchase is completed with the pre-emptor's involvement, it is as if the pre-emptor waived their right. (1) Known years. (2) Water drainage channel. (3) After three days pass, such a ruling applies.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (5) 172 किताबुश शुफ़ा**

इसमें शफ़ी (अग्रक्रयाधिकार रखने वाला) को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा और यदि घर में रहने के अधिकार से, जिसकी वसीयत उसके पक्ष में की गई थी, या किसी गुलाम की सेवा के बदले एक कमरे पर समझौता (सुलह) कर लिया गया, तो उसमें शुफ़ा नहीं होगा। और यदि वादी ने प्रतिवादी पर संपत्ति का दावा किया और प्रतिवादी ने उसके साथ इस शर्त पर सुलह कर ली कि वादी मेरी दीवार पर अपनी कड़ियाँ (शहतीर) रख ले या कड़ियाँ रखने की जगह हमेशा के लिए उसकी हो जाए या किसी निश्चित अवधि (1) तक के लिए हो जाए, तो कयास (तर्क) के अनुसार यह जायज़ है, क्योंकि जिस चीज़ पर समझौता हुआ है वह ज्ञात है, चाहे वह वस्तु हो या उसका लाभ। लेकिन इमाम (रह.) ने इस कयास को छोड़कर फ़रमाया कि ऐसी सुलह बाटिल (अमान्य) है और शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। इसी तरह यदि इस शर्त पर सुलह की कि वादी अपने पानी बहने का रास्ता मेरे घर की ओर कर दे, तो भी घर के पड़ोसी को यह अधिकार नहीं होगा कि वह इस पानी बहने के रास्ते को शुफ़ा में ले ले। और यदि घर के भीतर एक सीमित और ज्ञात रास्ते पर सुलह की गई, तो निकटतम पड़ोसी (जार-ए-मुलासिक) को अधिकार होगा कि वह उसे शुफ़ा में ले ले, क्योंकि घर के भीतर का रास्ता पानी की नाली (2) की तरह नहीं है, क्योंकि रास्ता स्वयं स्वामित्व वाली वस्तु (ममलूक) होता है। अतः शफ़ी रास्ते में भागीदार हो जाएगा, लेकिन दीवार पर कड़ियाँ रखने और पानी की नाली में भागीदार नहीं होगा। यह 'मबसूत' में है। 'मुल्ख़सी' में इमाम मोहम्मद (रह.) से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा और शफ़ी के लिए तीन दिन के ख़ियार (विकल्प) की शर्त रखी, तो इमाम मोहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि यदि शफ़ी ने यह कहा कि मैंने इस शर्त पर बिक्री की अनुमति दी कि मैं इसे शुफ़ा में ले लूँगा, तो उसे शुफ़ा का अधिकार रहेगा, और यदि शुफ़ा में लेने का ज़िक्र नहीं किया, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा। यह 'तातारख़ानिया' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपना घर इस शर्त पर बेचा कि शफ़ी उस कीमत का ज़मानती (गारंटर) बने जो खरीदार (मुश्तरी) पर है, और शफ़ी मौजूद था और उसने ज़मानत स्वीकार कर ली, तो बिक्री वैध हो जाएगी और शफ़ी को शुफ़ा नहीं मिलेगा, क्योंकि शफ़ी की ओर से बिक्री पूर्ण हो गई, अतः उसका शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो गया। इसी तरह यदि खरीदार ने इस शर्त पर घर खरीदा कि शफ़ी विक्रेता (बाइ) की ओर से क्षतिपूर्ति (ज़मान-ए-दरक) का ज़मानती बने और शफ़ी मौजूद है और उसने ज़मानत स्वीकार कर ली, तो बिक्री वैध हो जाएगी और उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा। यह 'शराह तहावी' में है। और यदि खरीदार स्थायी ख़ियार की शर्त रखे, तो शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

फिर यदि खरीदार ने अपना ख़ियार समाप्त कर दिया और बिक्री पूर्ण कर दी और अभी तीन दिन नहीं गुज़रे थे, तो शुफ़ा अनिवार्य (वाजिब) हो जाएगा। इसी प्रकार 'साहबैन' के अनुसार भी तीन दिन (3) गुज़रने के बाद यही हुक्म है। यह 'मबसूत' में है। और यदि खरीदार ने अपने लिए एक महीने या उसके समान किसी अवधि की शर्त रखी, तो इमाम आज़म (रह.) के अनुसार शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। फिर यदि खरीदार ने तीन दिन गुज़रने से पहले अपना ख़ियार समाप्त कर दिया यहाँ तक कि बिक्री पूर्ण और वैध हो गई, तो शुफ़ा वाजिब हो जाएगा। यह 'मुहीत' में है और 'फ़तावा इताबिया' में है। यदि कोई घर तीन दिन के ख़ियार की शर्त पर बेचा गया और फिर तीन दिन और बढ़ा दिए गए, और शफ़ी बिक्री के समय ही शुफ़ा की माँग कर चुका है, तो पहली ख़ियार की अवधि समाप्त होने पर शफ़ी उसे ले लेगा। और यदि दो पड़ोसियों में से एक ने उसे मूल रूप से अस्वीकार कर दिया, तो दूसरा पड़ोसी उसे ले लेगा। यह 'तातारख़ानिया' में है। यदि कोई घर एक निश्चित गुलाम या निश्चित संख्या के बदले खरीदा गया और इस खरीद में दोनों में से किसी एक के लिए ख़ियार की शर्त है, तो यदि यह शर्त विक्रेता के लिए है, तो बिक्री पूर्ण होने से पहले शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा, चाहे ख़ियार घर के लिए हो या गुलाम के लिए। यह 'मुहीत' में है। यदि एक घर एक गुलाम के बदले खरीदा गया और खरीदार के लिए तीन दिन के ख़ियार की शर्त रखी गई, तो शफ़ी को उसमें शुफ़ा प्राप्त होगा। अतः यदि शफ़ी ने खरीदार के कब्ज़े से वह घर ले लिया, तो उसके हक में बिक्री अनिवार्य हो गई, फिर भले ही खरीदार ने बिक्री की अनुमति दे दी और अपना ख़ियार समाप्त कर दिया हो।

**फुटनोट:** 1- यदि मृतक ने किसी व्यक्ति के पक्ष में वसीयत की कि वह मेरे फलां घर में एक साल तक रहे या मेरा गुलाम एक साल तक उसकी सेवा करे, और वारिसों ने इस अधिकार के बदले एक कमरे पर सुलह कर ली, तो यह जायज़ है, लेकिन इसमें शुफ़ा नहीं होगा क्योंकि यह माल के बदले माल का पूर्ण विनिमय नहीं है। 2- यानी नाली और निजी रास्ते का हुक्म एक समान नहीं है। 3- मूल बात यह है कि जिस स्थिति में खरीदार का खरीदना शफ़ी की ओर से पूरा हो जाए, तो मानो शफ़ी ने शुफ़ा छोड़ दिया। (1) ज्ञात वर्ष। (2) पानी बहने की नाली। (3) तीन दिन बीतने पर ऐसा हुक्म होगा।

میں شفیع کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا اور اگر سکونتِ دار سے جس کی اُس کے حق میں وصیت کی گئی تھی یا خدمتِ غلام سے ایک بیت پر صلح کرلی تو اُس میں شفعہ نہ ہوگا اور اگر مدعی نے مدعاعلیہ پر مال کا دعویٰ کیا اور مدعاعلیہ نے اُس کے ساتھ اس شرط پر صلح کرلی کہ مدعی میری دیوار پر اپنی دھنیاں رکھ لے یا دھنیاں رکھنے کی جگہ ہمیشہ کے واسطے اُس کی ہو جائے یا کسی قدر مدت معلومہ (۱) تک ہو جائے تو قیاساً یہ جائز ہے اس واسطے کہ جس چیز پر صلح واقع ہوئی وہ معلوم ہے خواہ عین ہو یا منفعت ہے لیکن امامؒ نے اس قیاس کو ترک کر کے فرمایا کہ ایسی صلح باطل ہے اور شفیع کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا اسی طرح اگر اس شرط پر صلح کی کہ مدعی اپنے پانی بہنے کا راستہ میرے دار کی جانب کر دے تو بھی اس دار کے پڑوسی کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اس پانی بہنے کے راستہ کو شفعہ میں لے لے اور اگر دار کے اندر ایک راستہ محدود و معروف پر صلح کی تو جارِ ملاصق کو اختیار ہوگا کہ اس کو شفعہ میں لے لے اور دار کے اندر راستہ مثل مسیل (۲) آب کے نہیں ہے اس واسطے کہ عین راستہ مملوک ہوتا ہے پس شفیع راستہ میں شریک ہو جائے گا اور دیوار پر دھنیاں و شہتیر رکھنے میں اور مسیل آب میں شریک نہ ہوگا یہ مبسوط میں ہے ملخصی میں امام محمدؒ سے املاء میں روایت ہے کہ ایک شخص نے ایک دار خرید اور شفیع کے واسطے تین روز کے خیار کی شرط کی تو امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر شفیع نے یوں کہا کہ میں نے اس شرط پر بیع کی اجازت دی کہ میں اُس کو شفعہ میں لے لوں گا تو اُس کو شفعہ حاصل رہے گا اور اگر شفعہ میں لینے کا ذکر نہ کیا تو اُس کو شفعہ نہ ملے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر ایک شخص نے اپنا دار اس شرط سے فروخت کیا کہ میرے واسطے شفیع اُس ثمن کا جو مشتری پر ہوا ہے ضامن ہو اور شفیع حاضر تھا پس اُس نے ضمانت قبول کرلی تو بیع جائز ہو جائے گی اور شفیع کو شفعہ نہ ملے گا اس واسطے کہ شفیع کی طرف سے بیع تمام ہوئی پس اُس کو حقِ شفعہ نہ رہا۔ اسی طرح اگر مشتری نے اس شرط پر دار خریدا کہ شفیع بائع کی طرف سے ضمانِ درک کا ضامن ہو اور شفیع حاضر ہے پس اُس نے ضمان قبول کرلی تو بیع جائز ہو جائے گی اور اُس کو شفعہ نہ ملے گا یہ شرح طحاوی میں ہے اور اگر مشتری خیارِ ابدی شرط کرے تو شفیع کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا پس اگر مشتری نے اپنا خیار باطل کر دیا اور بیع تمام کردی اور ہنوز تین روز نہیں گزرے تھے تو شفعہ واجب ہو جائے گا اسی طرح صاحبین کے نزدیک بھی بعد تین روز (۳) گزرنے کے یہی حکم ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر مشتری نے اپنے واسطے ایک مہینہ یا اُس کے مشابہ کسی مدت کی شرط کی تو امام اعظمؒ کے نزدیک شفیع کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا پھر اگر مشتری نے تین روز گزرنے سے پہلے اپنا خیار باطل کر دیا حتیٰ کہ بیع سابقِ مطلب ہو کر بیع صحیح ہوگئی تو شفعہ واجب ہو جائے گا محیط میں ہے اور فتاویٰ عتابیہ میں ہے اگر کوئی دار تین روز کی خیار کی شرط پر فروخت کیا پھر تین روز اور زیادہ کر دیے اور شفیع وقتِ بیع کے اُس کا شفعہ طلب کر چکا ہے تو پہلے مدتِ خیار گزرنے پر شفیع اُس کو لے لے گا اور اگر دو پڑوسیوں میں سے ایک نے اُس کو علی الاصل رد کر دیا تو دوسرا پڑوسی اُس کو لے لے گا۔ یہ تاتارخانیہ میں ہے اگر کوئی دار بعوض ایک غلام معین یا عدد معین کے خرید اور اس خرید میں دونوں میں سے ایک کے واسطے خیارِ مشروط ہے پس اگر بائع کے واسطے مشروط ہو تو قبل بیع تمام ہونے کے شفیع کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا خواہ شرط خیار دار میں ہو یا غلام میں یہ محیط میں ہے۔ اگر ایک دار بعوض ایک غلام کے خرید اور مشتری کے واسطے تین روز کے خیار کی شرط کی تو شفیع کو اس میں شفعہ حاصل ہو گا پس اگر شفیع نے مشتری کے قبضہ سے

وہ دار لے لیا تو اس کے حق میں بیع واجب ہوگئی پھر اگر مشتری نے بیع کی اجازت دی اور اپنا خیار باطل کر دیا۔

**حواشی:** ۱- اگر میت نے کسی شخص کے حق میں وصیت کی کہ وہ میرے فلاں دار میں ایک سال تک رہے یا یہ کہ میرا غلام اس کی ایک سال تک خدمت کرے اور وارثوں نے موسیٰ لہ کے ساتھ اس حق کے عوض ایک بیت پر صلح کرلی تو جائز ہے مگر اس میں شفعہ نہ ہوگا لعدم تحقیق معاوضة المال بالمال فانہنم۔ ۲- قولہ نہیں یعنی مسیل اور خاص راستہ کا حکم یکساں نہیں ہے۔ ۳- قولہ بیع تمام الخ اصل یہ کہ جس صورت میں مشتری کا خریدنا شفیع کی طرف سے پورا ہو تو گویا شفیع نے شفعہ چھوڑا۔ (۱) سالہائے معلوم۔ (۲) پانی بہنے کی نالی۔ (۳) تین روز گزرے ایسا حکم ہوگا۔

...given, it will be handed over to the seller. If the buyer denies the sale and cancels it, he will take back his slave from the seller and give the seller the price of the slave which he received from the pre-emptor (Shafi). The pre-emptor's taking of the house through pre-emption shall not be counted as the buyer's exercise of choice (ikhtiyar) in the sale, nor shall it be counted as a waiver of the option (khiyar) regarding the slave. Conversely, if the buyer himself sold the house, then this act shall be established as an exercise of the buyer's choice in the sale. If the house is in the possession of the seller, the pre-emptor shall have the option to take the house from the seller in exchange for the price of the slave, and the slave shall be handed over to the buyer. If the house is in the possession of the buyer, and then the slave dies in the hands of the seller, the sale shall be cancelled, and the buyer shall return the house, and the pre-emptor shall have the right to take it from the seller in exchange for the price of the slave; this is in 'Al-Mabsut'. If the seller of a house has an option (khiyar), and then another house adjacent to the sold house is sold, the seller shall have the right of pre-emption (shufa) in it. If the seller takes it through pre-emption, this act will be considered a revocation (naqz) of the sale by the seller; this is in 'Al-Muhit'.

If the option (khiyar) belongs to the buyer and a second house is sold adjacent to the sold house, the buyer shall have the right of pre-emption in it. If he takes it through pre-emption, this shall be considered an authorization of the sale on his part. If the pre-emptor then comes and takes the first house from the buyer through pre-emption, he shall have no way to take the second house because the pre-emptor has just acquired ownership of the first house; thus, he was not a neighbor of the second house at the time of the contract, unless the pre-emptor has another house situated next to the second house. The second house shall remain with the buyer, because the pre-emptor's taking of the first house from his possession does not contradict the fact that his original ownership was established. For this reason, the pre-emptor's liability for the sale lies with this buyer. Therefore, when the pre-emptor took the first house from him, the cause for the second house's acquisition became non-existent for the buyer; this is in 'Al-Mabsut'. If someone bought a house without having seen it, then another house adjacent to it was sold and the pre-emptor took it through pre-emption, then according to the authentic narration, the buyer's option of inspection (Khiyar-e-Ruyat) shall not be waived, because taking the right of pre-emption indicates implied consent, and the option of inspection is not waived even

by explicit consent, so it shall not be waived by implied consent; this is in 'As-Siraji'. If co-owners of an immovable property divide the property among themselves, their neighbor shall not have the right of pre-emption due to the division, whether the division was by court order (qaza of the Qadi) or by mutual consent; this is in 'An-Nihayah'. There is no right of pre-emption in an irregular sale (bay' fasid), whether the object sold becomes owned upon possession or not, and whether the buyer has taken possession of it or not. This ruling applies when the sale is declared irregular from the beginning. If it was concluded correctly and then became irregular, the pre-emptor's right remains as it was. Do you not see that if a Christian bought a house from another Christian in exchange for wine, and neither had taken possession yet when both or one of them converted to Islam, or if this happened after possession of the house but before possession of the wine, the sale becomes irregular, yet the pre-emptor will have the right to take the second house through pre-emption if the first sale became irregular? If the buyer took possession of a house purchased through an irregular sale until he became its owner, and then another house adjacent to it was sold, the buyer shall have the right of pre-emption. If he had not yet taken the second house through pre-emption before his seller took back the first house due to the irregularity of the sale, the buyer shall lose the right to take the second house. But if the buyer has already taken the second house by right of pre-emption and then his seller takes back the first house from him by order of irregularity, his taking by right of pre-emption shall remain valid; this is in 'Al-Muhit'.

---

1. Statement 'Munafi' etc.: Rather, in reality, the buyer became the owner of the house, and then the Shafi took it from his ownership.
2. Statement 'In'idam' meaning: It did not necessarily follow that the buyer took the second house through pre-emption without his owned house; rather, through the ownership of the first house, he obtained the pre-emption for the second house.
3. Statement 'Saqit' etc.: However, if he returns the sold object, he will not receive the second house through pre-emption either.
4. 'Bataur-e-Fasid' etc.: Perhaps it means that irregularity occurred after a valid sale, so there would be no pre-emption without possession; and if possession was taken, etc. (1) If division (batwara) is in the sense of compensation (mu'awiza).

...दिया तो वह गुलाम विक्रेता (बाइ') के सुपुर्द होगा और अगर खरीदार (मुश्तरी) ने बिक्री (बै') से इनकार करके सौदा रद्द कर दिया, तो अपना गुलाम विक्रेता से लेकर वह कीमत गुलाम की जो उसने शुफ़ा (पूर्व-क्रयकर्ता) से ली है विक्रेता को दे देगा। और पूर्व-क्रयकर्ता (शफ़ी) का मकान को शुफ़ा में लेना, यह खरीदार की ओर से बिक्री को स्वीकार करना नहीं माना जाएगा और न ही गुलाम में 'खियार' (विकल्प) समाप्त करना माना जाएगा। इसके विपरीत यदि खरीदार ने स्वयं उस मकान को बेच दिया, तो यह कार्य खरीदार की ओर से बिक्री को स्वीकार करना माना जाएगा। और अगर वह मकान विक्रेता के कब्जे में हो तो पूर्व-क्रयकर्ता को अधिकार होगा कि विक्रेता से वह मकान गुलाम की कीमत के बदले ले ले और वह गुलाम खरीदार को सुपुर्द कर दिया जाएगा। और अगर वह मकान खरीदार के कब्जे में हो, फिर गुलाम विक्रेता के पास मर गया तो बिक्री रद्द हो जाएगी और खरीदार उस मकान को वापस कर देगा और पूर्व-क्रयकर्ता को अधिकार होगा कि विक्रेता से उसे गुलाम की कीमत के बदले ले ले, यह 'मबसूत' में है। यदि मकान बेचने वाले को विकल्प (खियार) प्राप्त हो, फिर उस बिके हुए मकान के बगल में दूसरा मकान बेचा गया तो विक्रेता को उसमें पूर्व-क्रय का अधिकार (हक़-शुफ़ा) प्राप्त होगा। अतः यदि विक्रेता ने उसे शुफ़ा में ले लिया, तो यह विक्रेता की ओर से पहली बिक्री को रद्द करना माना जाएगा, यह 'मुहीत' में है।

यदि खरीदार को विकल्प प्राप्त हो और बिके हुए मकान के बगल में दूसरा मकान बेचा गया, तो खरीदार को उसमें पूर्व-क्रय का अधिकार प्राप्त होगा। फिर यदि उसने उसे शुफ़ा में ले लिया, तो यह उसकी ओर से बिक्री की अनुमति माना जाएगा। फिर यदि पूर्व-क्रयकर्ता (शफ़ी) ने आकर खरीदार से पहला मकान शुफ़ा में ले लिया, तो उसे दूसरे मकान को लेने का कोई रास्ता न होगा, क्योंकि पूर्व-क्रयकर्ता को पहले मकान में स्वामित्व अभी प्राप्त हुआ है, अतः वह दूसरे मकान के लिए अनुबंध (अक़्द) के समय से पड़ोसी नहीं होगा, सिवाय उस स्थिति के जब पूर्व-क्रयकर्ता का कोई दूसरा मकान उस दूसरे मकान के बगल में स्थित हो। और दूसरा मकान खरीदार के पास ही रहेगा, क्योंकि पूर्व-क्रयकर्ता द्वारा पहला मकान उसके कब्जे से ले लेना उसकी मूल रूप से स्वामित्व सिद्ध होने के विरुद्ध नहीं है। इसी कारण पूर्व-क्रयकर्ता का बिक्री का उत्तरदायित्व इसी खरीदार पर होता है। अतः जब पूर्व-क्रयकर्ता ने पहला मकान उससे ले लिया, तो इससे खरीदार के पक्ष में दूसरे मकान के स्वामित्व के कारण का अभाव प्रकट हुआ, यह 'मबसूत' में है। यदि कोई मकान खरीदा और उसे कभी देखा न था, फिर उसके बगल में दूसरा मकान बेचा गया और उसे पूर्व-क्रयकर्ता ने शुफ़ा में ले

लिया, तो सही रिवायत के अनुसार खरीदार का 'खियार-ए-रुयत' (देखने का विकल्प) समाप्त नहीं होगा, क्योंकि शुफ़ा का अधिकार लेने से संकेततः रजामंदी सिद्ध होती है और 'खियार-ए-रुयत' तो स्पष्ट रजामंदी से भी समाप्त नहीं होता है, अतः संकेततः रजामंदी से भी समाप्त नहीं होगा, यह 'सिराजी' में है। यदि एक अचल संपत्ति के भागीदारों ने संपत्ति को आपस में बाँट लिया, तो बँटवारे से उनके पड़ोसी को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा, चाहे बँटवारा न्यायाधीश (काज़ी) के आदेश से हो या आपसी सहमति से हो, यह 'निहाया' में है। और दोषपूर्ण खरीद (बै-ए-फ़ासिद) में शुफ़ा का अधिकार नहीं होता है, चाहे वह वस्तु कब्जे से स्वामित्व में आ जाती हो या नहीं, और चाहे खरीदार ने उस पर कब्जा किया हो या नहीं। और यह नियम तब है जब बिक्री आरंभ से ही दोषपूर्ण (फ़ासिद) करार दी गई हो। और यदि सही रूप से संपन्न होने के बाद फिर दोषपूर्ण हो गई हो, तो पूर्व-क्रयकर्ता का अधिकार अपनी स्थिति पर बना रहेगा। क्या तुम नहीं देखते कि यदि एक ईसाई ने दूसरे ईसाई से शराब के बदले एक मकान खरीदा और अभी तक दोनों ने आपस में कब्जा न किया था कि दोनों या एक मुसलमान हो गया, या मकान पर कब्जा होने और शराब पर कब्जा न होने की स्थिति में ऐसा हुआ, तो बिक्री दोषपूर्ण हो जाएगी, लेकिन पूर्व-क्रयकर्ता को अधिकार होगा कि दूसरे मकान को शुफ़ा में ले यदि पहली बिक्री दोषपूर्ण हो गई। यदि खरीदार ने दोषपूर्ण तरीके से खरीदे गए मकान को अपने कब्जे में कर लिया यहाँ तक कि वह उसका मालिक बन गया, फिर उस मकान के बगल में दूसरा मकान बेचा गया तो खरीदार को शुफ़ा प्राप्त होगा। अतः यदि उसने अभी तक दूसरे मकान को शुफ़ा में न लिया था कि उसके विक्रेता ने दोषपूर्ण बिक्री के कारण उस मकान को वापस ले लिया, तो खरीदार को दूसरे मकान को लेने का अधिकार नहीं रहेगा। और यदि खरीदार दूसरे मकान को शुफ़ा के अधिकार से ले चुका हो, फिर उसके विक्रेता ने उससे पहला मकान दोषपूर्ण बिक्री के आदेश से वापस ले लिया, तो शुफ़ा के अधिकार से लेना बरकरार रहेगा, यह 'मुहीत' में है।

---

1. कथन 'मुनाफ़ी' इत्यादि: बल्कि वास्तव में खरीदार उस मकान का मालिक हुआ था फिर शफ़ी ने उसके स्वामित्व से लिया है।
2. कथन 'इनदिआम' अर्थात्: यह आवश्यक नहीं हुआ कि खरीदार ने जो दूसरा मकान शुफ़ा में लिया वह बिना अपने स्वामित्व वाले मकान के लिया, बल्कि पहले मकान के स्वामित्व से उसे दूसरे मकान का शुफ़ा मिला है।
3. कथन 'साक़ित' इत्यादि: लेकिन यदि वस्तु को वापस करे तो दूसरा मकान शुफ़ा में भी नहीं मिलेगा।

4. 'बतौर-ए-फ़ासिद' इत्यादि: शायद तात्पर्य यह है कि सही बिक्री के बाद दोष उत्पन्न हो गया था, तो बिना कब्जे के शुफ़ा न होगा और यदि कब्जा कर लिया इत्यादि। (1) यदि बँटवारा विनिमय (मुआविज़ा) के अर्थ में है।

دیا تو وہ غلام بائع کے سپرد ہوگا اور اگر مشتری نے بیع سے انکار کر کے بیع توڑ دی تو اپنا غلام بائع سے لے کر وہ قیمت غلام سے جو اس نے شفیع سے لی ہے بائع کو دے دے گا اور شفیع کا دار کو شفعہ میں لینا یہ مشتری کی طرف سے بیع کو اختیار کرنا شمار نہ ہوگا اور نہ غلام میں خیار ساقط کرنا شمار ہوگا بخلاف اس کے اگر مشتری نے خود اس دار کو فروخت کیا تو یہ امر مشتری کی طرف سے بیع کا اختیار کرنا قرار دیا جائے گا اور اگر وہ دار بائع کے قبضہ میں ہو تو شفیع کو اختیار ہوگا کہ بائع سے وہ دار غلام کی قیمت کے عوض لے لے اور وہ غلام مشتری کو سپرد کر دیا جائے گا اور اگر وہ دار مشتری کے قبضہ میں ہو پھر غلام بائع کے پاس مر گیا تو بیع ٹوٹ جائے گی اور مشتری اس دار کو واپس کر دے گا اور شفیع کو اختیار ہوگا کہ بائع سے اس کو بعوض قیمت غلام کے لے لے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر دار فروخت کرنے والے کو خیار حاصل ہو پھر اس دار مبیعہ کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو بائع کو اس میں حق شفعہ حاصل ہوگا پس اگر بائع نے اس کو شفعہ میں لیا تو یہ امر بائع کی طرف سے بیع کا نقض قرار دیا جائے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر خیارِ مشتری کا ہو اور دار مبیعہ کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو مشتری کو اس میں حق شفعہ حاصل ہوگا پھر اگر اس کو شفعہ میں لے لیا تو یہ امر اس کی طرف سے بیع کی اجازت قرار دیا جائے گا پھر اگر شفیع نے آکر مشتری سے دار اول شفعہ میں لیا تو اس کو دوسرے دار کے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی اس واسطے کہ شفیع کو دار اول میں ملکیت ابھی حاصل ہوئی ہے پس اس سے وہ دوسرے دار کا وقت عقد سے پڑوسی نہ ہوگا الّا اس صورت میں کہ شفیع کا کوئی دوسرا دار اس دارِ ثانیہ کے پہلو میں واقع ہو اور دوسرا دار مشتری کے سپرد رہے گا اس واسطے

کہ شفیع کا دار اول اس کے قبضہ سے لے لینا اس کی ملک فی الاصل ثابت ہونے کے منافی نہیں ہے اسی واسطے شفیع کا عہدہ بیع اسی مشتری پر ہوتا ہے پس جب شفیع نے دار اول اس سے لیا تو اس سے مشتری کے حق میں انعدامِ سبب تملکِ ثانیہ ظاہر ہوا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کوئی دار خریدا اور کبھی اس کو دیکھا نہ تھا پھر اس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا اور اس کو شفیع نے شفعہ میں لیا تو روایتِ صحیحہ کے موافق مشتری کا خیارِ رؤیت ساقط نہ ہوگا اس واسطے کہ حقِ شفعہ لینے سے دلالتہً رضا مندی ثابت ہوتی ہے اور خیارِ رؤیت تو صریحاً رضا مندی سے ساقط نہیں ہوتا ہے پس دلالتہً رضا مندی سے بھی ساقط نہ ہوگا یہ سراجی میں ہے۔ اگر ایک عقار کے شریکوں نے عقار کو باہم تقسیم کیا تو تقسیم سے ان کے جار کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا خواہ تقسیم بقضاء (1) قاضی ہو یا برضاءِ باہمی ہو یہ نہایہ میں ہے اور خریدِ فاسد میں حق شفعہ نہیں ہوتا ہے خواہ مبیع ایسی چیز ہو جو قبضہ سے مملوک ہو جاتی ہے یا ایسی نہ ہو اور خواہ مشتری نے مبیع پر قبضہ کر لیا ہو یا نہ کیا ہو اور یہ حکم اس وقت ہے کہ ابتدا سے بیع فاسد قرار پائی ہو اور اگر بطورِ صحیح منعقد ہونے کے بعد پھر فاسد ہوگئی ہو تو شفیع کا حق اپنے حال پر باقی رہے گا آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ اگر ایک نصرانی نے دوسرے نصرانی سے ایک دار بعوض شراب کے خریدا اور ہنوز دونوں نے باہم قبضہ نہ کیا تھا کہ دونوں یا ایک مسلمان ہو گیا یا دار پر قبضہ ہو جانے اور شراب پر قبضہ نہ ہونے کی حالت میں ایسا ہوا تو بیع فاسد ہو جائے گی مگر شفیع کو اختیار ہوگا کہ دوسرے دار کو شفعہ میں لے اگر بیع فاسد ہوگئی۔ اگر مشتری نے بطورِ فاسد مبیع خریدے ہوئے دار کو اپنے قبضہ میں کر لیا حتیٰ کہ اس کا مالک ہو گیا پھر اس دار کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو مشتری کو شفعہ حاصل ہوگا پس اگر اس نے ہنوز دوسرے دار کو شفعہ میں نہ لیا تھا کہ اس کے بائع نے اس دار مبیعہ کو بوجہِ فسادِ بیع کے واپس کر لیا تو مشتری کو دوسرے دار کے لینے کا اختیار نہ رہے گا اور اگر مشتری دوسرے دار کو

بحقِ شفعہ لے چکا ہو پھر اس کے بائع نے اس سے دار مبیعہ بحکمِ فسادِ بیع واپس لیا تو بحقِ شفعہ لینا برقرار رکھا یہ محیط میں ہے۔

---

1. قولہ منافی الخ بلکہ اصل میں مشتری اس دار کا مالک ہوا تھا پھر شفیع نے اس کی ملک سے لیا ہے۔
2. قولہ انعدام یعنی یہ لازم نہ آیا کہ مشتری نے دوسرا دار جو شفعہ میں لیا وہ بدون اپنے مملوکہ دار کے شفعہ میں لیا بلکہ اول دار کی ملکیت سے اس کو دوسرے دار کا شفعہ ملا ہے۔
3. قولہ ساقط الخ لیکن اگر مبیع کر واپس کرے تو دوسرا دار شفعہ بھی نہ ملے گا۔
4. بطورِ فاسد الخ شاید مراد یہ کہ بیع صحیح کے بعد فساد آ گیا تھا تو بغیر قبضہ کے شفعہ نہ ہوگا اور اگر قبضہ کر لیا الخ۔ (1) اگر بٹوارہ بمعنی معاوضہ ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) --- 174 --- Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

If a buyer purchased a house through an irregular (fasid) sale and had not yet taken possession of it when the house adjacent to it was sold, the seller would have the right to claim pre-emption (shufa) for that house. This is because the first house is still in his ownership; thus, the seller is a neighbor to the second house with his own property. If the seller handed over that house to the buyer before the decree of pre-emption was passed, the seller's right of pre-emption is nullified, and the buyer will not gain the right of pre-emption in it because he only acquired neighborly status (jiwar) after the sale of the second house. This is stated in 'Al-Mabsut'. If a person purchased a house through an irregular sale, the right of pre-emption will not apply to it (1); not before possession because ownership remains with the seller, and not after possession because there is a possibility of rescission (faskh). If the buyer then constructs a building on it, according to Imam al-A'zam, the seller's right of reclamation is terminated, and the buyer is liable for the price of the house, and the pre-emptor (shafi) will have the right of pre-emption. According to the 'Sahibayn' (Imams Abu Yusuf and Muhammad), the seller's right of reclamation is not terminated; thus, pre-emption for the shafi is not mandatory, and the shafi has the right to order the buyer to demolish the building he constructed. If the buyer turns the house into a mosque, the same disagreement (2) applies. Some scholars have stated that by consensus, the owner's (seller's) right is terminated, as mentioned in 'Al-Kafi'. If in a 'salam' sale for one hundred qafiz of wheat, a house is designated as the capital (ra's al-mal) and delivered, the shafi will have pre-emption. If not delivered until the parties separate, both the salam sale and pre-emption become void as the separation acts as a rescission. If they rescind the sale after delivery and separation, the shafi still has the right of pre-emption because for the shafi, this is not a rescission but a new sale. This is in 'Al-Qinah'. If a house is bequeathed to someone and they are unaware until the adjacent house is sold, and then the legatee (musi lahu) accepts the bequest, they will not get pre-emption. But if the legatee dies before knowing of the bequest and then the adjacent house is sold, his heirs will have the right of pre-emption, as his death is considered equivalent to acceptance. This is in 'Fatawa al-Kubra'.

If a person bequeaths the yield (income) of their house to one person and its corpus (land) to another, and then the adjacent house is sold, the right of pre-emption belongs to the one to whom the corpus was bequeathed (3). This is in 'Al-Sarakhsi'. If the lower floor belongs to one person and the upper floor (balakhana) to another,

and the owner of the lower floor sells it, the owner of the upper floor has the right of pre-emption. Conversely, if the upper floor is sold, the lower owner gets the right. Furthermore, it should be known that if the path to the upper floor is through the lower one, the right of pre-emption arises due to 'partnership in path'. If the path is from a main street, it arises due to 'neighboring status'. If the upper owner does not take the lower house through pre-emption and then the upper floor collapses, then according to Imam al-A'zam and Imam Abu Yusuf, his right of pre-emption is voided, but according to Imam Muhammad, it is not. If the lower house is sold while the upper floor is in a collapsed state, according to Imam Abu Yusuf, the upper owner has no right of pre-emption because pre-emption is based on the structure; however, according to Imam Muhammad, he has the right because pre-emption is based on the 'right of stability' (haqq al-istiqrar) of the building, even if the structure itself is not present. This is in 'Al-Dhakhirah'. If the lower and upper houses belong to different people and an adjacent house is sold, both have the right of pre-emption. If both the upper and lower houses collapse before pre-emption is exercised, then...

---

1. Neither before possession, nor after possession. (2) According to the Imam, the right of reclamation is terminated; according to the Sahibayn, it is not.
2. Reference to 'Mulaf Qabiyah'. (Footnotes at bottom): 1. Salāt Sarāyā Ghaniyya. 2. 'Haqq-i Istiqrar' means the right to keep the building established; this is the cause for pre-emption even if the building is not physically present at the moment. 3. Reference to 'Mulaf Qabiyah'.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) --- 174 --- किताब-अल-शुफ़ा**

यदि किसी खरीदार (मुश्तरी) ने कोई घर अनियमित तरीके(बै' फ़ासिद) से खरीदा और अभी तक उस पर कब्ज़ा नहीं किया था कि उसके बगल में दूसरा घर बेच दिया गया, तो विक्रेता (बये) को यह अधिकार होगा कि वह उस घर के लिए शुफ़ा (अग्रक्रय का अधिकार) का दावा करे, क्योंकि पहला घर अभी भी उसी के स्वामित्व में है। इस प्रकार, विक्रेता अपने स्वामित्व वाले घर के साथ दूसरे घर का पड़ोसी (जार) होगा। यदि शुफ़ा का आदेश जारी होने से पहले विक्रेता ने वह घर खरीदार को सौंप दिया, तो विक्रेता का शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा और खरीदार को इसमें शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि दूसरे घर की बिक्री होने के बाद उसे पड़ोस (जवार) प्राप्त हुआ है। यह 'मबसूत' में उल्लेखित है। यदि किसी व्यक्ति ने अनियमित तरीके से घर खरीदा, तो उसमें शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा (1); कब्ज़े से पहले इसलिए नहीं क्योंकि स्वामित्व विक्रेता के पास है, और कब्ज़े के बाद इसलिए नहीं क्योंकि बिक्री रद्द होने की संभावना रहती है। फिर यदि खरीदार ने उसमें कोई इमारत बना ली, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार विक्रेता का उसे वापस लेने का अधिकार समाप्त हो गया और खरीदार पर उस घर की कीमत वाजिब होगी, और शुफ़ा चाहने वाले (शफ़ी) को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। लेकिन 'साहिबैन' के अनुसार विक्रेता का वापसी का अधिकार समाप्त नहीं होगा, अतः शफ़ी का शुफ़ा वाजिब नहीं होगा और शफ़ी को अधिकार होगा कि वह खरीदार को अपनी बनाई इमारत गिराने का आदेश दे। यदि खरीदार ने उस घर को मस्जिद बना दिया, तो भी यही मतभेद है (2)। कुछ आचार्यों ने कहा है कि सर्वसम्मति से मालिक (विक्रेता) का अधिकार समाप्त हो जाएगा, जैसा कि 'काफ़ी' में है। यदि किसी ने 'सल्लम' बिक्री में सौ क़फ़ीज़ गेहूँ के बदले एक घर को मूलधन (रास-उल-माल) के रूप में सौंप दिया, तो शफ़ी को शुफ़ा मिलेगा। यदि नहीं सौंपा और दोनों पक्ष अलग हो गए, तो सल्लम और शुफ़ा दोनों रद्द हो जाएंगे क्योंकि यह अलगाव बिक्री रद्द होने के समान है। यदि सौंपने और अलग होने के बाद दोनों ने बिक्री रद्द कर दी, तो भी शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार होगा क्योंकि शफ़ी के मामले में यह निरसन नहीं बल्कि नई बिक्री मानी जाएगी। यह 'क़ीना' में है। यदि किसी व्यक्ति के लिए घर की वसीयत की गई और उसे पता नहीं चला यहाँ तक कि बगल का घर बिक गया, फिर वसीयत प्राप्तकर्ता (मूसी-लहू) ने वसीयत स्वीकार की, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा। लेकिन यदि जानकारी से पहले वसीयत प्राप्तकर्ता की मृत्यु हो गई और बगल का घर बिका, तो उसके वारिसों को शुफ़ा मिलेगा, क्योंकि उसका मरना वसीयत स्वीकार करने के समान है। यह 'फ़तावा-ए-कुबरा' में है।

यदि किसी ने अपने घर की आय (हासिल) एक व्यक्ति के लिए और उसकी ज़मीन (रक़बा) दूसरे के लिए वसीयत की, फिर बगल का घर बिका, तो शुफ़ा उस व्यक्ति को मिलेगा जिसे ज़मीन की वसीयत (3) हुई थी। यह 'सरख़सी' में है। यदि नीचे का घर एक व्यक्ति का हो और ऊपर का बालाख़ाना (ऊपरी मंज़िल) दूसरे का, और नीचे के मालिक ने अपना हिस्सा बेचा, तो ऊपर वाले को शुफ़ा का हक़ होगा। यदि ऊपर वाले ने अपना हिस्सा बेचा, तो नीचे वाले को शुफ़ा मिलेगा। इसके बाद यह जानना चाहिए कि यदि ऊपर का रास्ता नीचे से होकर जाता है, तो शुफ़ा का हक़ 'रास्ते की साझेदारी' के कारण होगा, और यदि रास्ता बड़ी सड़क की तरफ से है, तो 'पड़ोस' (जवार) के कारण होगा। यदि ऊपर वाले ने नीचे का मकान शुफ़ा में नहीं लिया और ऊपर का हिस्सा गिर गया, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार उसका शुफ़ा का हक़ समाप्त हो जाएगा, पर इमाम मुहम्मद के अनुसार समाप्त नहीं होगा। यदि ऊपर का हिस्सा गिरा हुआ हो और नीचे का मकान बिका, तो इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार ऊपर वाले को शुफ़ा नहीं होगा क्योंकि उनके अनुसार शुफ़ा इमारत के कारण होता है, जबकि इमाम मुहम्मद के अनुसार उसे शुफ़ा मिलेगा क्योंकि उनके अनुसार शुफ़ा इमारत के'स्थायित्व के अधिकार' (हक़-ए-इस्तक़रार) के कारण होता है, भले ही इमारत स्वयं न हो। यह 'ज़खीरा' में है। यदि नीचे और ऊपर के घर अलग-अलग मालिकों के हों और बगल का घर बिके, तो दोनों को शुफ़ा का हक़ होगा। यदि शुफ़ा लेने से पहले दोनों (ऊपर और नीचे के) घर गिर जाएँ तो...

---

1. न कब्ज़े से पहले, न कब्ज़े के बाद। (2) इमाम के अनुसार वापसी का अधिकार समाप्त होगा, साहिबैन के अनुसार नहीं।
2. जवाब 'मुलफ़ क़बिया'। (निचे की टिप्पणी): 1. सलात सराया गनिया। 2. 'हक़-ए-इस्तक़रार' का अर्थ है इमारत को बनाए रखने का अधिकार, यही शुफ़ा का कारण है भले ही इमारत मौजूद न हो। 3. जवाब 'मुलफ़ क़बिया'।

---

اگر مشتری نے کوئی دار بطور فاسد خریدا اور اس پر ہنوز قبضہ نہ کیا تھا کہ اس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو بائع کو اختیار ہوگا کہ اس دار کو شفعہ میں لائے اس واسطے کہ دار اول ہنوز اس کی ملک میں ہے پس بائع اپنی ملک کے ساتھ دوسرے دار کا جار ہوگا اگر شفعہ کا حکم ہونے سے پہلے بائع نے وہ دار مشتری کے سپرد کیا تو بائع کا حق شفعہ باطل ہو گیا اور مشتری کو اس میں حق شفعہ حاصل نہ ہوگا اس واسطے کہ دوسرے دار کی بیع ہو جانے کے بعد اس کو جوار حاصل ہوا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کسی شخص نے بطور فاسد ایک دار خریدا تو اس میں حق شفعہ نہ ہو گا (۱) سو قبضہ سے پہلے اس وجہ سے نہ ہوگا کہ اس میں ملک بائع باقی ہے اور بعد قبضہ کے اس وجہ سے نہ ہو گا کہ فسخ کا احتمال ہے پھر اگر مشتری نے اس میں کچھ عمارت بنائی تو امام اعظمؒ کے نزدیک بائع کا حق استرداد منقطع ہو گیا اور مشتری پر اس دار کی قیمت واجب ہوگی اور شفیع کو حق شفعہ حاصل ہوگا اور صاحبینؒ کے نزدیک بائع کا حق استرداد منقطع نہ ہوگا پس شفیع کا اس میں شفعہ واجب نہ ہو گا اور شفیع کو اختیار حاصل ہوگا کہ مشتری کو حکم کرے کہ اپنی بنائی ہوئی عمارت منہدم کر دے اور اگر مشتری نے اس دار کو مسجد بنایا تو بھی ایسا ہی اختلاف (۲) ہے اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ بالاجماع حق مالک یعنی حق بائع منقطع ہو جائے گا کذا فی الکافی۔ اگر کسی نے سو قفیز گیہوں کی بیع سلم میں راس المال ایک دار ٹھہرا کر سپرد کر دیا تو شفیع کو شفعہ حاصل ہوگا اور اگر سپرد نہ کیا یہاں تک کہ دونوں جدا ہو گئے تو سلم و شفعہ باطل ہو جائے گا کیونکہ یہ جدائی فسخ ہے اور اگر سپرد کرنے اور جدا ہو جانے کے بعد دونوں نے بیع کو توڑ لیا تو شفیع کو حق شفعہ حاصل ہوگا اس واسطے کہ یہ شفیع کے حق میں فسخ نہیں بلکہ بیع جدید ہے یہ قینہ میں ہے۔ ایک شخص کے واسطے ایک دار

کی وصیت کی گئی اور اس نے یہ نہیں جانا حتیٰ کہ اس دار کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا پھر موصی لہ نے وصیت قبول کی تو اس کو شفعہ نہ ملے گا اور اگر علم وصیت سے پہلے موصی لہ مر گیا پھر اس دار کے پہلو کا دار فروخت کیا گیا اور وارثوں نے اس کے شفعہ کا دعویٰ کیا تو ان کو شفعہ ملے گا اس لیے کہ موصی لہ کا مرنا بمنزلہ اس کے قبول کرنے کے ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔

اگر اپنے دار کے حاصلات کی ایک شخص کے واسطے اور اس کے رقبہ کی دوسرے کے واسطے وصیت کی پھر اس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو اس کا شفعہ اس موصی لہ کو ملے گا جس کے حق میں رقبہ دار کی وصیت (۳) تھی یہ سرخسی میں ہے نیچے کا مکان ایک شخص کا اور اس کے اوپر کا بالا خانہ دوسرے کا ہے پس نیچے کے مالک نے سفل کو فروخت کیا تو بالا خانے والے کو شفعہ کا استحقاق ہے اور اگر بالا خانے والے نے بالا خانہ فروخت کیا تو نیچے والے کو اس کا حق شفعہ حاصل ہوگا۔ پھر اس کے بعد جاننا چاہیے کہ اگر بالا خانہ کا راستہ نیچے سے ہو تو حق شفعہ بسبب شرکت راہ کے حاصل ہوگا اور اگر بالا خانہ کا راستہ بڑے کوچہ کی طرف سے ہو تو حق شفعہ بسبب جوار کے ہوگا۔ پھر اگر بالا خانہ والے نے نیچے کا مکان شفعہ میں نہ لیا یہاں تک کہ بالا خانہ گر گیا تو امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک اس کا حق شفعہ باطل ہو جائے گا اور امام محمدؒ کے قول پر باطل نہ ہوگا اور اگر بالا خانہ گرے ہوئے کی حالت میں نیچے کا مکان فروخت کیا گیا تو بر قیاس قول امام ابو یوسفؒ بالا خانہ والے کو حق شفعہ نہ ہوگا بنا بریں کہ امام ابو یوسفؒ کے نزدیک حق شفعہ بسبب عمارت کے ہوتا ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک اس کو حق شفعہ حاصل ہوگا اس لیے کہ امام محمدؒ کے نزدیک حق شفعہ بسبب حق استقرار عمارت کے ہوتا ہے نہ بسبب نفس عمارت کے اور بالا خانہ کا حق القرار ہنوز باقی ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر نیچے کا مکان ایک شخص کا اور بالا خانہ دوسرے کا ہو اور اس دار کے پہلو

میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو حق شفعہ دونوں کو حاصل ہوگا اور اگر بحق شفعہ لینے سے پہلے بالا خانہ اور نیچے کا مکان دونوں منہدم ہو گئے تو

---

۱۔ نہ قبضہ سے پہلے، نہ قبضہ کے بعد۔ (۲) امام کے نزدیک حق استرداد منقطع ہو گا اور صاحبین کے نزدیک نہیں۔ ۳) جواب ملک قتیہ۔ ۱ صلات سرایہ غنیہ۔ ۲ قولہ حق استقرار یعنی اس عمارت برقرار رکھنے کا حق حاصل ہے تو یہی حق شفعہ کا سبب ہے اگرچہ بالفعل عمارت موجود نہ ہو۔ ۳ جواب ملف قبیہ۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 ... 175 ... Kitab al-Shuf'a (The Book of Pre-emption)**

According to Imam Abu Yusuf (RA), the right of pre-emption (*shuf'a*) will now belong solely to the owner of the lower story (ground floor) because the basis for pre-emption—namely, the land—remains. The owner of the upper story will not have the right of pre-emption because the basis for their right (the structure) has ceased to exist. However, Imam Muhammad (RA) stated that both retain the right of pre-emption because the right of the upper-story owner is still valid. When the owner of the lower level rebuilds, the upper-story owner will also re-establish their story upon it. They also have the option to build the lower story themselves and then build their upper story on it, preventing the lower-story owner from benefiting from it until they fulfill their obligation; this is mentioned in *Al-Kafi*. If two individuals purchase a property and one of them is already a pre-emptor (*shafi*), the pre-emptor retains the right over the portion acquired by the stranger, as the purchase by the stranger is not finalized until the pre-emptor consents; this is in *Fatawa Qazi Khan*.

**Leasing a house for a fixed term but wishing to sell it before the term ends**

If a person leases their house for a specific term and then sells it before the term expires, and the tenant is also the pre-emptor, the sale remains suspended regarding the tenant's right because the lease (*ijara*) is still in effect. If the tenant permits the sale, it becomes finalized in their favor, and they gain the right of pre-emption because the cause for pre-emption exists. If they do not permit the sale but do not demand pre-emption, the lease becomes void; this is in *Muheet Sarkhasi*. If someone purchases sold land and a crop grows which the buyer harvests before the pre-emptor arrives, the pre-emptor may take the land by paying its proportionate price. If a tree is purchased specifically for cutting, there is no pre-emption. Similarly, if it is bought without conditions, the same rule applies. However, if the tree is bought along with its roots and the plot of land it occupies, the right of pre-emption applies. Similarly, if crops are bought specifically for harvesting, there is no pre-emption; but if bought with the land, pre-emption is mandatory for the whole based on juristic preference (*istihsan*). If land with small plants is bought and they later bear fruit or crops mature, the pre-emptor has the option to take everything at the fixed price; this is in *Al-Mabsut*. If a building is bought to be demolished, there is no pre-emption, but if bought with the land, the right exists. If a half-share of a building is bought from the seller, there is no pre-emption, and such a sale is void (*fasid*).

If a person purchases a house including a watermill inside it, along with its water channel and equipment, the pre-emptor has the right over the house and all integrated mill machinery, as these are considered subordinate to the mill house. Likewise, if a *hammam* (bathhouse) is purchased, the pre-emptor is entitled to the hammam along with its integrated equipment, such as boilers, etc.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 ... 175 ... किताब अल-शुफ़ा**

इमाम अबू यूसुफ़ रह. के अनुसार, अब शुफ़ा (अग्रक्रय का अधिकार) केवल नीचे के मकान के मालिक को प्राप्त होगा क्योंकि जिसके माध्यम से शुफ़ा का अधिकार मिलता है, यानी ज़मीन, वह कायम है। ऊपर की मंज़िल के मालिक को शुफ़ा नहीं मिलेगा क्योंकि जिस वजह से उसे शुफ़ा का अधिकार था, वह (इमारत) नष्ट हो गई। इमाम मुहम्मद रह. ने फ़रमाया कि दोनों को शुफ़ा का अधिकार बना रहेगा क्योंकि ऊपर वाले का हक़ भी कायम है। जब नीचे वाला व्यक्ति नीचे का मकान बनाएगा, तो ऊपर वाला भी उस पर अपनी मंज़िल कायम करेगा। उसे यह अधिकार भी है कि वह स्वयं नीचे का मकान बनवाकर फिर उस पर अपनी ऊपर की मंज़िल बनवा ले और नीचे वाले मालिक को उसका लाभ उठाने से तब तक रोक दे जब तक कि वह उसे उसका अधिकार न दे दे; यह 'काफ़ी' में है। यदि दो व्यक्तियों ने एक घर खरीदा और उनमें से एक उसका 'शफ़ी' (शुफ़ा का अधिकारी) है, तो जितना हिस्सा अजनबी का हो गया, उसमें शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार रहेगा क्योंकि उस अजनबी की खरीद तब तक पूरी नहीं हुई जब तक कि शफ़ी ने उसके लिए बिक्री स्वीकार नहीं की; यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है।

## नियत अवधि के लिए मकान किराए पर दिया लेकिन अवधि समाप्त होने से पहले ही बेचने की इच्छा हुई

एक व्यक्ति ने निश्चित अवधि के लिए अपना घर किराए पर दिया, फिर अवधि समाप्त होने से पहले ही उसे बेच दिया और किराएदार ही उसका शफ़ी है, तो यह बिक्री किराएदार के हक़ में रुकी (mouquf) रहेगी क्योंकि किराया (इजारा) कायम है। यदि किराएदार ने बिक्री की अनुमति दे दी, तो बिक्री उसके पक्ष में पूर्ण हो जाएगी और उसे शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा क्योंकि शुफ़ा का कारण मौजूद है। और यदि उसने बिक्री की अनुमति नहीं दी लेकिन शुफ़ा की मांग भी नहीं की, तो किराया निरस्त हो जाएगा; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। यदि किसी ने बिकी हुई ज़मीन खरीदी और फिर उसमें फसल उगी और खरीदार ने उसे काट लिया, फिर शफ़ी आया, तो वह ज़मीन को ज़मीन के हिस्से की कीमत पर ले लेगा। ज़मीन की कीमत के अनुसार हिस्सा लिया जाएगा; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। यदि किसी ने काटने के उद्देश्य से पेड़ खरीदा, तो उसमें शुफ़ा नहीं है। इसी तरह यदि उसे बिना शर्त खरीदा, तब भी यही हुक्म है। लेकिन यदि पेड़ को जड़ों और ज़मीन के उस हिस्से सहित खरीदा जहाँ पेड़ खड़ा है, तो उसमें शुफ़ा का अधिकार होगा। इसी तरह यदि फसल को काटने के लिए खरीदा गया, तो शुफ़ा नहीं होगा। यदि ज़मीन के साथ खरीदी गई हो, तो 'इस्तेहसान' के तौर पर पूरे पर

अनिवार्य होगा। यदि ज़मीन खरीदी गई जिसमें छोटे पौधे थे, फिर उनमें फल आए या फसल तैयार हुई, तो शफ़ी को अधिकार होगा कि वह सब कुछ तयशुदा कीमत पर ले ले; यह 'मबसूत' में है। यदि कोई इमारत ढहाने के लिए खरीदी गई, तो शफ़ी को उसमें शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा, लेकिन यदि ज़मीन सहित खरीदी गई, तो अधिकार होगा। यदि इमारत का आधा हिस्सा विक्रेता से खरीदा गया, तो शुफ़ा नहीं होगा और यह बिक्री अवैध (फ़ासिद) होगी। यदि एक ही मालिक ने अपनी पूरी इमारत का आधा हिस्सा बेचा, तब भी यही हुक्म है।

यदि किसी ने एक घर और उसके अंदर की पनचक्की, पानी की नहर और साजो-सामान सहित खरीदा, तो शफ़ी को घर और चक्की के उन सभी उपकरणों पर शुफ़ा का अधिकार होगा जो घर का हिस्सा हैं। इसी तरह यदि हम्माम (स्नानागार) खरीदा, तो शफ़ी को हम्माम और उसके उपकरणों जैसे देगों (बॉयलर) आदि पर शुफ़ा का अधिकार होगा।

---

امام ابو یوسفؒ کے نزدیک اب شفعہ فقط نیچے والے مکان کے مالک کو حاصل ہوگا کیونکہ جس کے ذریعہ سے استحقاقِ شفعہ ہوتا ہے یعنی زمین وہ قائم ہے اور بالا خانے کے مالک کو شفعہ نہ ملے گا اس وجہ سے کہ جس کے ذریعہ سے استحقاقِ شفعہ تھا وہ زائل ہو گئی اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ دونوں کو استحقاقِ شفعہ حاصل رہے گا اس لیے کہ بالا خانے والے کا حق بھی قائم ہے کیونکہ جب سفل والا نیچے کا مکان بنا دے گا تو وہ بھی اپنا بالا خانہ اس پر قائم کرے گا اور اس کو یہ بھی اختیار ہے کہ خود ہی نیچے کا مکان بنوا کر پھر اس پر بالا خانہ بنوا لے اور سفل کے مالک کو اس سفل سے نفع حاصل کرنے سے منع کرے یہاں تک کہ صاحبِ سفل اس کو اس کا حق دے دے یہ کافی میں ہے۔ دو شخصوں نے ایک دار خریدا حالانکہ ایک ان میں سے اس کا شفیع ہے تو جس قدر حصہ اجنبی کا ہو گیا اس میں شفیع کو حقِ شفعہ رہا اس واسطے کہ اس اجنبی کی خرید تمام نہ ہوئی جب تک کہ شفیع نے اس کے واسطے بیع قبول نہیں کی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

**مقررہ مدت کے لئے مکان کرائے پر دیا لیکن پھر قبل ازیں اختتامِ مدت ہی بیچنے کا خواہش مند ہوا** ۞

ایک شخص نے کسی قدر مدتِ معلومہ کے واسطے اپنا دار کرایہ دیا پھر قبلِ مدت گزرنے کے اس کو فروخت کیا اور مستاجر ہی اس کا شفیع ہے تو یہ بیع حقِ مستاجر میں موقوف رہے گی کیونکہ اجارہ قائم ہے پس اگر مستاجر نے بیع کی اجازت دے دی تو بیع اس کے حق میں تمام ہو جائے گی اور اس کو حقِ شفعہ حاصل ہوگا کیونکہ سببِ شفعہ پایا گیا اور اگر اس نے بیع کی اجازت نہ دی لیکن شفعہ طلب نہ کیا تو اجارہ باطل ہو جائے گا یہ محیطِ سرخسی میں ہے۔ اگر کسی شخص نے

بیع ہوئی زمین خریدی پھر کھیتی اُگی یہاں تک کہ مشتری نے اس کو کاٹ لیا پھر شفیع حاضر ہوا تو زمین کو زمین کا حصہ ثمن لے لے گا پس زمین ہم ریشہ کی قیمت لگائی جائے (۲) پس بعوض مقدار حصہ زمین کے لے لے یہ محیطِ سرخسی میں ہے اور اگر قطع کرنے کے واسطے ایک درخت خریدا تو اس میں شفعہ نہیں ہے اس طرح اگر اس کو مطلقاً خریدا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر درخت کو مع جڑوں اور موضع زمین بقدر قیامِ درخت کے خریدا تو اس میں حقِ شفعہ ہوگا اور اسی طرح اگر کھیتی یار طبہ کاٹ لینے کے واسطے خریدا تو اس میں شفعہ نہ ہوگا اور اگر مع زمین خریدی ہو تو کل میں استحساناً واجب ہوگا اور قیاساً کھیتی میں شفعہ نہ ہونا چاہیے اور اگر ایک زمین خریدی اور اس میں چھوٹے چھوٹے پودے تھے پس اس نے گوڑا پس ان درختوں میں پھل آنے یا اس میں کھیتی تھی پس وہ تیار ہوگئی تو شفیع کو اختیار ہوگا کہ اس سب کو ثمنِ مقرر میں لے لے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کوئی عمارت کھود لینے کے واسطے خریدی تو شفیع کو اس میں حقِ شفعہ نہ ہوگا اور اگر مع اصل اس کو خریدا تو شفیع کو حقِ شفعہ حاصل ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر عمارت میں سے حصہ بائع خریدا اور وہ نصف ہے تو اس میں شفعہ نہ ہوگا اور یہ بیع فاسد ہوگی۔ اسی طرح اگر پوری عمارت ایک ہی شخص کی ہو مگر اس نے اس میں سے نصف فروخت کی تو بھی یہی حکم ہے یہ مبسوط میں ہے اگر قطع کرنے کے واسطے کوئی درخت خریدا پھر اس کے بعد زمین خریدی اور درخت اس میں لگا رہنے دیا تو شفیع کو درخت میں حقِ شفعہ حاصل نہ ہوگا اسی طرح اگر پھلوں کو جھاڑ لینے کے واسطے یا عمارت کو گرا لینے کے واسطے خریدا پھر اس کے بعد زمین خریدی تو بھی یہی حکم ہے کہ شفیع کو فقط زمین میں حقِ شفعہ حاصل ہوگا یہ محیط میں ہے۔

اگر ایک شخص نے ایک بیت اور اس کے اندر کی پن چکی مع اس کے پانی کی نہر و متاع کے خریدا تو شفیع کو بیت میں اور تمام ان آلاتِ پن چکی میں جو پن چکی گھر سے مرکب ہیں حقِ

شفعہ حاصل ہوگا اس واسطے کہ یہ آلات میں چکی گھر کے تابع ہیں اور علیٰ ہذا اگر حمام خریدا تو شفیع کو استحقاق ہوگا کہ حمام کو مع حمام کے آلاتِ مرکبہ کے جیسے دیگیں وغیرہ شفعہ میں لے لے اور مسئلہ اولیٰ میں جو آلاتِ بیت ...

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 176 Kitab al-Shu'fa (The Book of Pre-emption)**

... are the upper room/chamber (Ghurfa) 1, and in the second issue, regarding items that are removable from bathhouse equipment, he can take from them, but he can take the upper stone of a mill by way of preference (istihsan) even if it is not a fixed part; this is in al-Zahiriyya. If one buys a reed-bed (nistan) which contained reeds and such fish that can be caught without hunting equipment, the pre-emptor (shafi') can take that reed-bed and the reeds in pre-emption, but cannot take the fish. And if someone bought a spring, canal, or well along with the original land, the pre-emptor will have the right of pre-emption in it. Similarly, if there is a spring of bitumen with naphtha or a salt mine, he can take all these in pre-emption because in essence, a connection is found. However, if the buyer (mushtari) has removed any amount of these things from their place, he cannot take what has been removed; this is in al-Mabsut. It is written in al-Tafreed that the pre-emptor will have the option to take whatever is included in the building, such as the toilet and every item in pre-emption. Regarding the air-space portion (haz-e-hawa), if it enters into the house, it is included according to the 'Sahibayn' (Imams Abu Yusuf and Muhammad), but according to the Great Imam (Abu Hanifa), the detail is that if the buyer said at the time of purchase 'with every right that belongs to this house', then it will be included, otherwise not. And trees, fruit, and crops are not included without a specific condition, though analogy (qiyas) suggests that fruit should be included without mention; this is in al-Tatarkhaniyya.

A person bought a vineyard (2) and one of its pre-emptors was absent. Then fruit appeared on the trees, then the buyer consumed them. Then the absent pre-emptor arrived and took the garden in pre-emption. If those trees, at the time the buyer took possession, only had flowers such that fruit had not yet appeared, then nothing will be deducted from the price (thaman) in favor of the pre-emptor. But if fruit had appeared at the time the buyer took possession, then a deduction shall be made from their price (3) according to their value, and their value on the day the buyer took possession of the said garden will be considered, as in al-Dhakhira. If there are crops in the purchased land (1) that have no value yet, then those crops matured and the buyer harvested them, then the pre-emptor came and took the land in pre-emption, nothing will be deducted from the price; this is in al-Muhit al-Sarakhsi. If a Mukatab (a slave with a contract of manumission) bought or sold a house and his master (mawla) is a pre-emptor of that house, he will have the right to take it, whether the Mukatab is in debt or not, as in al-Bada'i'. And if the master sold his own house and the

Mukatab is its pre-emptor, he will have the right of pre-emption, as in al-Tatarkhaniyya.

**Chapter Two: On the Explanation of the Ranks of Pre-emption (Shu'fa)**

If several pre-emptors come together, the order of priority (tartib) shall be observed. Thus, the co-sharer (sharik) shall be preferred over the partner in immunities (khaleet), and the khaleet over the neighbor (jaar). Then, if the co-sharer waives his right of pre-emption, the right of the khaleet becomes obligatory. If there are two khaleets, the precedence will be such that the more specific (akhass) comes first, then the more general (a'am). If the khaleet also waives his right of pre-emption, the right of the neighbor becomes obligatory. This ruling is according to Zahir al-Riwayah and is correct because each of these three matters (4) is valid 2 for the entitlement of pre-emption, but some are stronger in effect than others, so they are prioritized. Therefore, when the co-sharer waives his pre-emption, his partnership will be considered non-existent, as if it never existed. Then the order will be observed in the remainder, just as participation (khalt) and neighborhood (jawar) are prioritized when combined at the start. Its explanation is that in a dead-end street (non-through street)...

1. Regarding the word 'Ghurfa': it is written that the jurists mean by 'Ghurfa' the balcony situated over the doorframe, which the translator has clearly explained in the introduction. 2. Sabab-e-Salih: i.e., fit to be a cause for pre-emption. (1) Land with crops and fruit. (2) That which has a boundary wall. (3) From their price. (4) i.e., partnership, participation in immunities/easements, and neighborhood.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (८) १७६ किताबुश शुफ़आ (हक़-ए-शुफ़आ की किताब)**

... से ग़ुरफ़ा १ (ऊपरी कमरा या छज्जा) हैं और मसला-ए-सानिया में जो आलात-ए-हम्मात से मज़ाएल हैं उनमें से ले सकता है लेकिन चक्की का ऊपर का पाट इस्तहसानन ले सकता है हालाँकि वह जुड़ा हुआ नहीं है, यह ज़हीरिया में है। अगर एक नेस्तान (नरकुल का खेत) खरीदा जिसमें नरकुल और ऐसी मछलियाँ थीं जो बिना शिकार के पकड़ी जा सकती हैं, तो शफ़ीअ (हक़-ए-शुफ़आ रखने वाला) उस नेस्तान और नरकुल को शुफ़आ में ले सकता है और मछलियों को नहीं ले सकता है। और अगर कोई चश्मा या नहर या कुआँ असल ज़मीन के साथ खरीदा तो शफ़ीअ को उसमें हक़-ए-शुफ़आ हासिल होगा। इसी तरह अगर चश्मा कोलतार (क़ीर), नैफ्था (नफ़्त) या नमक की खान हो तो यह सब शुफ़आ में ले सकता है क्योंकि अर्थ के रूप में इसमें जुड़ाव पाया जाता है, लेकिन अगर खरीदार ने इन चीज़ों में से कुछ उनकी जगह से हटा लिया हो तो जितना वह ले गया है उसे नहीं ले सकता, यह मबसूत में है। तफ़रीद में लिखा है कि शफ़ीअ को अधिकार होगा कि जो इमारत में शामिल हो जाती है और पाखाना और हर चीज़ शुफ़आ में ले ले। रहा हवा का हिस्सा (हक़-ए-हवा), अगर वह मकान में आता हो तो साहिबैन के नज़दीक शामिल होगा और इमाम-ए-आज़म के नज़दीक विवरण यह है कि अगर खरीदार ने खरीदते समय यह कहा कि 'उस मकान के लिए जो भी हक़ है उसके साथ', तो शामिल होगा वर्ना नहीं। और पेड़ और फल और खेती बिना शर्त के शामिल नहीं होते और क़यास (तर्क) यह चाहता है कि फल बिना ज़िक्र के शामिल हो जाएँ, यह तातार ख़ानिया में है।

एक व्यक्ति ने अंगूर का बाग (२) खरीदा और उसका एक शफ़ीअ अनुपस्थित है। फिर पेड़ों में फल आए, फिर खरीदार ने उन्हें खा लिया। फिर अनुपस्थित शफ़ीअ आया और उसने उस बाग को शुफ़आ में ले लिया। तो अगर वे पेड़ खरीदार के कब्ज़े के समय केवल फूलों वाले हों कि अभी फल प्रकट न हुए हों तो शफ़ीअ के लिए मूल्य (समन) में से कुछ कम न होगा। और अगर खरीदार के कब्ज़े के समय फल प्रकट हो चुके हों तो उनके अनुसार मूल्य में से कटौती (३) की जाएगी और उनकी उस दिन की क़ीमत मानी जाएगी जिस दिन खरीदार ने उक्त बाग पर कब्ज़ा किया, जैसा कि अल-ज़ख़ीरा में है। अगर खरीदी हुई ज़मीन (१) में खेती हो जिसकी अभी कोई क़ीमत न हो, फिर वह खेती तैयार हुई और खरीदार ने उसे काट लिया, फिर शफ़ीअ ने आकर ज़मीन को शुफ़आ में ले लिया, तो मूल्य में से कुछ कम न होगा, यह मुहीते सरख़सी में है। मुकातिब (आज़ादी के अनुबंध वाला दास) ने अगर कोई मकान खरीदा या बेचा और उसका मालिक (मौला) उस मकान का शफ़ीअ है तो उसे हक़ से लेने का अधिकार होगा चाहे वह मुकातिब ऋणी हो या न हो, जैसा कि अल-बदाइअ में

है। और अगर मालिक ने अपना मकान बेचा और मुकातिब उसका शफ़ीअ है तो उसे हक़-ए-शुफ़आ हासिल होगा, जैसा कि तातार ख़ानिया में है।

### दूसरा अध्याय: शुफ़आ के मरतबे (स्तर) के बयान में

अगर कई शुफ़आ के हकदार जमा हो जाएं तो उनमें क्रम (तरतीब) का लिहाज़ रखा जाएगा। अतः साझीदार (शरीक) को ख़लीत (सुविधाओं में साझीदार) पर और ख़लीत को पड़ोसी (जार) पर प्राथमिकता देंगे। फिर अगर शरीक ने अपना हक़-ए-शुफ़आ छोड़ दिया तो ख़लीत का हक़-ए-शुफ़आ वाजिब होगा। और अगर दो ख़लीत हों तो प्राथमिकता ऐसे होगी कि पहले विशेष (अख़स) होगा फिर सामान्य (अअम)। अगर ख़लीत ने भी अपना हक़-ए-शुफ़आ छोड़ दिया तो पड़ोसी का हक़-ए-शुफ़आ वाजिब होगा। और यह उत्तर ज़ाहिरुर रिवायत के अनुसार है और यही सही है, क्योंकि इन तीनों बातों (४) में से हर एक शुफ़आ की पात्रता के लिए सक्षम २ है लेकिन इनमें से कुछ दूसरों की तुलना में अधिक प्रभावशाली हैं इसलिए उन्हें पहले रखा जाएगा। अतः जब शरीक ने अपना शुफ़आ छोड़ दिया तो उसकी साझेदारी को समाप्त समझा जाएगा और ऐसा माना जाएगा जैसे वह थी ही नहीं, फिर शेष में क्रम का लिहाज़ रखा जाएगा जैसा कि शुरुआत में केवल मेल-मिलाप (ख़ल्त) और पड़ोस (जवार) जमा होने में लिहाज़ होता है। और इसका विवरण यह है कि एक बंद गली में एक...

1. मूल पाठ 'ग़ुरफ़ा' के संबंध में लिखा है कि फ़ुक़हा इससे वह छज्जा मुराद लेते हैं जो चौखट पर होता है और अनुवादक ने भूमिका में स्पष्ट बता दिया है। २. सबब-ए-सालेह यानी शुफ़आ होने के कारण के लिए उपयुक्त है। (१) ज़मीन मय खेती और फल। (२) जिसमें चारदीवारी होती है। (३) उनकी क़ीमत से। (४) यानी साझेदारी, सुविधाओं में मेल-मिलाप और पड़ोस।

---

سے غرفہ ۱ ہیں اور مسئلہ ثانیہ میں جو آلاتِ حمام سے مزائل ہیں انہیں سے لے سکتا ہے لیکن چکی کا اوپر کا پاٹ استحساناً لے سکتا ہے اگرچہ مرکب نہیں ہے یہ ظہریہ میں ہے۔ اگر ایک نیستان خریدا جس میں نرسل اور ایسی مچھلیاں تھیں جو بدوں صید کے پکڑی جا سکتی ہیں تو شفیع اس نیستان و نرسل کو شفعہ میں لے سکتا ہے اور مچھلیوں کو نہیں لے سکتا ہے اور اگر کوئی چشمہ یا نہر یا کنواں مع اصل رقبہ کے خریدا تو شفیع کو اس میں حق شفعہ حاصل ہو گا اس طرح اگر چشمہ قیر بالنفط یا کان نمک ہو تو یہ سب شفعہ میں لے سکتا ہے کیونکہ فی المعنیٰ اتصال پایا جاتا ہے لیکن اگر مشتری ان چیزوں میں سے کسی قدر ان کی جگہ سے اٹھا لیا گیا ہو تو جس قدر لے گیا ہے اس کو نہیں لے سکتا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ تفرید میں لکھا ہے کہ شفیع کو اختیار ہو گا کہ جو عمارت میں داخل ہو جاتی ہے اور پاخانہ اور ہر شے شفعہ میں لے لے رہا حظہ ہوا اگر دار میں در آیا ہو تو صاحبین کے نزدیک داخل ہوگا اور امام اعظم کے نزدیک تفصیل ہے کہ اگر مشتری نے وقت خرید کے یہ کہا کہ مع ہر حق کے جو اس دار کے واسطے ہے تو داخل ہوگا ورنہ نہیں اور درخت اور پھل اور کھیتی بدوں شرط کے داخل نہیں ہوتی اور قیاس یہ چاہتا ہے کہ پھل بدون ذکر کے داخل ہو جائیں یہ تاتار خانیہ میں ہے۔

ایک شخص نے باغ (۲) انگور خریدا اور اس کا ایک شفیع غائب ہے پھر درختوں میں پھل آئے پھر مشتری نے ان کو کھا لیا پھر شفیع غائب آیا اور اس نے اس باغ کو شفعہ میں لیا پس اگر وہ درخت وقتِ قبضہ مشتری کے فقط پھول دار ہوں کہ ہنوز پھل نمود نہ ہوئے ہوں تو شفیع کے حق میں ثمن میں سے کچھ ساقط نہ ہو گا اور اگر وقت قبضہ مشتری کے پھل نمود نہ ہوئے ہوں تو بقدر ان کے ثمن میں سے ساقط (۳) کیا جائے گا اور ان کی اس روز کی قیمت معتبر ہو گی جس روز

مشتری نے باغ مذکور پر قبضہ کیا کذا فی الذخیرہ۔ اگر خریدی ہوئی زمین (۱) میں کھیتی ہو کہ جس کی ہنوز کچھ قیمت نہ ہو پھر وہ کھیتی تیار ہوئی اور مشتری نے اس کو کاٹ لیا پھر شفیع نے آکر زمین کو شفعہ میں لے لیا تو ثمن میں سے کچھ ساقط نہ ہو گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ مکاتب نے اگر کوئی دار خریدا یا فروخت کیا اور اس کا مولیٰ اس دار کا شفیع ہے تو اس کو بحق لینے کا اختیار ہو گا خواہ یہ مکاتب قرض دار ہو یا نہ ہو کذا فی البدائع اور اگر مولیٰ نے اپنا دار فروخت کیا اور مکاتب اس کا شفیع ہے تو اس کو حق شفعہ حاصل ہو گا کذا فی التاتار خانیہ۔

**باب دوم: مراتب شفعہ کے بیان میں**

اگر چند شفعہ جمع ہو جائیں تو ان میں ترتیب کا لحاظ کیا جائے گا پس شریک کو خلیط پر اور خلیط کو جار پر مقدم کریں گے پس اگر شریک نے اپنا حق شفعہ کو دے دیا تو خلیط کا حق شفعہ واجب ہو گا اور اگر دو خلیط ہوں تو تقدیم یوں ہو گی کہ پہلے اخص ہو گا پھر اعم۔ اگر خلیط نے بھی اپنا حق شفعہ دے دیا تو جار کا حق شفعہ واجب ہو گا اور یہ جواب موافق ظاہر الروایت کے ہے اور یہی صحیح ہے اس واسطے کہ ہر ایک ان تینوں امور میں (۴) سے استحقاق شفعہ کے واسطے صالح ۲ ہے لیکن بعض ان میں سے بنسبت بعض کے قوی التاثیر ہے پس وہ مقدم رکھا جائے گا پس جب شریک نے اپنا شفعہ دے دیا تو اس کی شراکت نابود سمجھی جائے گی اور ایسی قرار دی جائے گی کہ گویا نہ تھی پھر باقی میں ترتیب کا لحاظ کیا جائے گا جیسے ابتداء فقط خلط و جوار جمع ہونے میں لحاظ ہوتا ہے اور اس کا بیان یہ ہے کہ ایک کوچہ غیر نافذہ میں ایک

۱۔ قولہ غرفہ یعنی نے لکھا ہے کہ فقہاء غرفہ سے وہ چھجا مراد لیتے ہیں جو چوکھٹ پر ہوتا ہے اور مترجم نے مقدمہ میں واضح بیان کر دیا ہے۔ ۲۔ سبب صالح یعنی سبب شفعہ ہونے کے واسطے لائق ہے۔ (۱) زمین مع کھیتی و رطبہ۔ (۲) جس میں چار دیواری ہوتی ہے۔ (۳) ان کی قیمت سے۔ (۴) یعنی شراکت و خلط و جوار۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 177 Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

In a shared house and specific area, where the access path lies within a non-thoroughfare (cul-de-sac/non-navigable lane), if one of the two partners sells his share, the right of pre-emption (*shufa*) belongs to his partner (1). If the partner waives his right, the right of pre-emption then belongs to all the residents of that lane. In this entitlement, both immediate neighbors (*mulasiz*) and others are equal because they are all partners (*khalit*) in the access path. Furthermore, if all of them waive their right, the right of pre-emption goes to the adjacent neighbor (*jar-e-mulasiz*). If a second non-thoroughfare branches off from this lane and a house is sold within it, then only the residents of that specific branch lane will have the right of pre-emption, because their partnership is more specific compared to those in the main lane (*koocha-e-ulya*). Conversely, if a house in the main lane is sold, the residents of both the main and the branch lanes will have the right of pre-emption, as their partnership in the main lane is equal. Imam Muhammad (RA) stated that the residents of a lane are entitled to pre-emption due to the shared path, provided the path is their property or is a non-proprietary open space (*fana*). If a house is sold within a thoroughfare lane (*koocha-e-nafiza*), no one except the immediate neighbor will have the right of pre-emption. Similarly, if there are two houses with a non-proprietary thoroughfare path between them and one is sold, no one except the immediate neighbor will have the right of pre-emption; however, if this path is privately owned, it falls under the rules of a non-thoroughfare.

A thoroughfare path (*tariq-e-nafiz*), which does not give rise to general pre-emption rights, is defined as a path that the residents cannot close. Based on this, it follows that if there is a small canal used to irrigate specific bounded lands or vineyards (2), and a piece of land or vineyard from these is sold, all those who share the water source will be pre-emptors (*shafi*), and immediate neighbors and others will be equal. However, if it is a large canal (*nahr-e-kabir*), pre-emption is granted only to the immediate neighbor. There is a difference in the definition of small and large canals: Imam Azam (RA) and Imam Muhammad (RA) stated that if a boat can navigate it, it is a large canal, as mentioned in 'al-Badai'. Sheikh Imam Abdul Wahid Shaibani clarified that "boats" here refers to small vessels (*shariyat*), as noted in 'al-Zakhira'. If a secondary canal is branched off from a canal to irrigate several lands and gardens, and a land or garden supplied by this secondary canal is sold, those who irrigate from this specific canal have a superior right to pre-emption compared to those on the large canal (3). If land is sold from the large canal area (4), then both the

residents of the small canal (5) and the large canal will have equal rights of pre-emption because their right to water (*haqq-e-shurb*) is equal, according to 'al-Badai'.

If a wide open space (*fana-e-wasi munfarij*) branches off from a main road, or a small alleyway or a non-thoroughfare lane containing several houses, and one of these houses is sold, all the owners of those houses will be pre-emptors. Imam Zahid Sheikh Abdul Wahid Shaibani stated that this rule applies if the space is square; if it is round, the right of pre-emption goes to the immediate neighbor, as per 'al-Zahiriyya'. In a non-thoroughfare lane, there is a house containing a room (*bait*) shared by two people, and a group of people share the rest of the house. If one partner of the room sells his share, the right of pre-emption first goes to the other room partner; if he waives it, it goes to the other co-sharers of the house; if they waive it, it goes to all the residents of the lane, who will be equal in this right. If the lane residents also waive it, the right goes to the adjacent neighbor; the adjacent neighbor is defined as the person living behind the house whose own house entrance is on a different lane. It is written in the commentary on the 'Adab al-Qadi' by Imam Khassaf (RA) in the chapter on Pre-emption that if the neighbor adjacent to that house...

---

A - Regarding 'nafiza': This is because when it is a public path, the residents of a specific lane do not have exclusive rights unless the path is their own property, which they can close at will, as is the case with a non-thoroughfare. Y - Regarding 'munfarij': This refers to an open field branching off from a main road in the shape of an obtuse angle, such as where a building or narrow alley is situated or where a window/ opening has been cut. (1) First of all. (2) Walled vineyards. (3) Only they will get the right of pre-emption, not those on the large canal. (4) Land, garden, or grapevine. (5) That which has been branched off. ☆ Dariqa: A settlement with a courtyard in the middle, surrounded by privately owned houses.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 177 किताबुश-शुफ़आ**

एक मकान और विशिष्ट क्षेत्र जो साझा है और उसका रास्ता एक बंद गली (कूचा-ए-ग़ैर नाफ़िज़) में से है। यदि दोनों साझेदारों में से एक ने अपना हिस्सा बेच दिया, तो शुफ़आ (पूर्व-क्रय) का अधिकार उसके साझेदार को हासिल (1) होगा। यदि उसने अपना अधिकार छोड़ दिया, तो शुफ़आ का अधिकार गली के सभी निवासियों को प्राप्त होगा और इस पात्रता में पड़ोसी (मुलाज़िक़) और गैर-पड़ोसी सब बराबर होंगे क्योंकि वे सभी रास्ते के साझेदार (खलीत) हैं। फिर यदि उन सभी ने अपना शुफ़आ अधिकार छोड़ दिया, तो शुफ़आ बगल के पड़ोसी (जार-ए-मुलाज़िक़) को मिलेगा। और यदि उस गली में से एक दूसरी बंद गली निकलती हो और उसमें कोई मकान बेचा गया, तो केवल उसी विशेष गली के लोगों को शुफ़आ का अधिकार होगा, क्योंकि उन लोगों की साझेदारी मुख्य गली (कूचा-ए-उल्या) वालों की तुलना में अधिक विशिष्ट है। और यदि मुख्य गली का कोई मकान बेचा गया, तो उसका शुफ़आ अधिकार मुख्य और शाखा गली, दोनों के निवासियों को होगा, क्योंकि मुख्य गली में उन सबकी साझेदारी समान है। इमाम मोहम्मद रह. ने फरमाया कि गली वाले रास्ते के कारण शुफ़आ के हकदार होते हैं, बशर्ते रास्ता उनकी मिल्कियत हो या वह ऐसी जगह (फ़ना) हो जो किसी की निजी संपत्ति न हो। और यदि चालू गली (कूचा-ए-नाफ़िज़) के अंदर कोई मकान बेचा गया, तो बगल के पड़ोसी के अलावा किसी को शुफ़आ का अधिकार नहीं मिलेगा। इसी प्रकार यदि दो मकान हों जिनके बीच चालू रास्ता हो जो किसी की मिल्कियत न हो, और उनमें से एक बेचा जाए, तो बगल के पड़ोसी के अलावा किसी को शुफ़आ नहीं मिलेगा; और यदि यह रास्ता निजी मिल्कियत हो, तो यह बंद गली के नियम में आएगा।

चालू रास्ता (तरीक़-ए-नाफ़िज़) वह कहलाता है जिसके कारण शुफ़आ का अधिकार उत्पन्न नहीं होता, जिसे उस रास्ते के लोग बंद न कर सकें। इसी आधार पर यह नियम निकलता है कि यदि कोई छोटी नहर हो जिससे सीमित भूमि या अंगूर के बाग (2) सींचे जाते हों, और फिर उन भूमियों में से कोई ज़मीन या बाग बेचा जाए, तो सभी साझेदार शफ़ीअ (शुफ़आ के हकदार) होंगे, इसमें पड़ोसी और गैर-पड़ोसी सब बराबर होंगे। और यदि बड़ी नहर हो, तो शुफ़आ केवल बगल के पड़ोसी को मिलेगा। छोटी और बड़ी नहर की परिभाषा में मतभेद है; इमाम आज़म रह. और इमाम मोहम्मद रह. ने फरमाया कि यदि उसमें नाव चलती हो तो वह बड़ी है, जैसा कि 'अद-बदाई' में उल्लेख है। और शेख इमाम अब्दुल वाहिद शैबानी ने फरमाया कि यहाँ नाव से तात्पर्य छोटी नावें (शारियात) हैं, यह 'ज़ख़ीरा' में है। और यदि उस नहर से एक दूसरी नहर निकाली गई हो जो कई खेतों और बागों को

सींचती हो, और फिर कोई ज़मीन या बाग जिसका पानी उसी नहर से हो, बेचा गया, तो उस नहर से सिंचाई करने वाले बड़ी नहर वालों की तुलना में इस सौदे के शुफ़आ के अधिक हकदार होंगे (3)। और यदि बड़ी नहर की ज़मीन में से कोई ज़मीन (4) बेची गई, तो छोटी नहर (5) वाले और बड़ी नहर वाले शुफ़आ के हकदार होने में बराबर होंगे क्योंकि उनका पानी का अधिकार (हक़-ए-शर्ब) समान है, यह 'बदाई' में है।

यदि मुख्य मार्ग से एक चौड़ा खुला क्षेत्र (फ़ना-ए-वासिअ मुनफ़रिज) निकलता हो या कोई छोटी तंग गली या बंद गली हो और उसके अंदर कई मकान हों और उनमें से एक बेचा जाए, तो उन घरों के सभी मालिक शफ़ीअ होंगे। इमाम ज़ाहिद शेख अब्दुल वाहिद शैबानी ने फरमाया कि यह नियम तब है जब वह क्षेत्र चौकोर हो, और यदि वह गोल होगा तो शुफ़आ बगल के पड़ोसी को मिलेगा, यह 'ज़हीरिया' में है। एक बंद गली में एक मकान स्थित है, उसके अंदर एक कमरा (बैत) है जो दो व्यक्तियों का साझा है, और पूरे मकान में एक समूह साझीदार है। फिर कमरे के साझीदारों में से एक ने अपना हिस्सा बेचा, तो पहले शुफ़आ का अधिकार दूसरे साझीदार को मिलेगा; यदि उसने छोड़ दिया तो मकान के अन्य साझीदारों को मिलेगा; यदि उन्होंने भी छोड़ दिया तो गली के सभी निवासियों को मिलेगा और वे सब बराबर होंगे। फिर यदि गली वालों ने भी छोड़ दिया, तो बगल के पड़ोसी को मिलेगा; और बगल के पड़ोसी से तात्पर्य वह व्यक्ति है जो उस मकान के पीछे रहता है और उसके घर का दरवाज़ा दूसरी गली की तरफ खुलता है। इमाम खसाफ़ रह. की 'अदबुल क़ाज़ी' की शुफ़आ अध्याय की व्याख्या में लिखा है कि फिर यदि उस मकान के पड़ोसी जिसके..

---

अ- उनके कथन 'नाफ़िज़' का अर्थ है कि जब वह सार्वजनिक रास्ता है तो गली वालों का उस पर कोई विशेष अधिकार नहीं है, सिवाय इसके कि वह रास्ता उनकी अपनी मिल्कियत हो और वे जब चाहें उसे बंद कर सकें, जैसा कि बंद गली में होता है। य- उनके कथन 'मुनफ़रिज' का अर्थ है कि मुख्य सड़क से एक मैदान अलग हो गया जो अधिक कोण (obtuse angle) के आकार का है, जैसे कोई इमारत या तंग गली या जहाँ से कोई खिड़की या झरोखा निकला हो। (1) सबसे पहले। (2) चारदीवारी वाले अंगूर के बाग। (3) उन्हीं को शुफ़आ मिलेगा, बड़ी नहर वालों को नहीं। (4) ज़मीन या बाग या अंगूर की बेल। (5) जो मुख्य नहर से काटकर बनाई गई है। ☆ दरीचा: वह बस्ती या क्षेत्र जिसके बीच में आंगन हो और चारों ओर निजी मकान स्थित हों।

---

دار و مخصوں میں مشترک واقع ہے جس کا راستہ اسی کوچہ غیر نافذ میں سے ہے پس دونوں شریکوں میں سے ایک نے اپنا حصہ فروخت کیا تو حق شفعہ اس کے شریک کو حاصل (۱) ہوگا پس اگر اس نے اپنا حق شفعہ دیا تو حق شفعہ تمام اہل کوچہ کو حاصل ہوگا اور اس استحقاق میں ملاصق وغیرہ ملاصق سب برابر ہوں گے اس لیے کہ وہ سب راستہ میں خلیط ہیں پھر اگر ان سب نے اپنا حق شفعہ دے دیا تو حق شفعہ جار ملاصق کو ملے گا اور اگر اس کوچہ میں سے ایک دوسرا کوچہ غیر نافذہ پھوٹتا ہو اور اس میں کوئی دار فروخت کیا گیا تو فقط خاصہ اسی کوچہ والے لوگوں کو حق شفعہ حاصل ہوگا اس واسطے کہ اس کوچہ والوں کی خلطت بنسبت کوچہ علیا یعنی اگلے کوچہ والوں کے اخص ہے اور اگر اگلے کوچہ کا ایک دار فروخت کیا گیا تو اس کا حق شفعہ اگلے اور پچھلے دونوں کوچہ والوں کو حاصل ہوگا اس واسطے کہ اگلے کوچہ میں ان سب کی خلطت برابر ہے اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ اہل درب (درب والے) بوجہ راستہ کے مستحق شفعہ ہوتے ہیں بشرطیکہ راستہ ان کی ملک ہو یا فناء غیر مملوکہ ہو اور اگر کوچہ نافذہ کے اندر کوئی دار فروخت کیا گیا تو سوائے جار ملاصق کے کسی کو حق شفعہ نہ ملے گا اسی طرح اگر دو دار ہوں کہ ان کے درمیان راستہ نافذ غیر مملوک ہو اور ان میں سے ایک فروخت کیا گیا تو سوائے اس کے جار ملاصق کے کسی کو شفعہ نہ ملے گا اور اگر یہ راستہ مملوک ہو تو غیر نافذ کے حکم میں ہوگا۔

طریق نافذ جس کی وجہ سے استحقاق شفعہ نہیں ہوتا ہے وہ راستہ کہلاتا ہے، جس کو اس راستہ والے بند نہ کر سکیں اور اسی بنا پر نکلتا ہے کہ اگر چھوٹی نہر ہو کہ اس سے اراضی محدودہ یا کروم (۲) محدودہ سینچے جاتے ہیں پھر ان محدودہ میں سے کوئی زمین یا باغ انگور فروخت کیا

گیا تو سب شریک شفیع ہوں گے ملاصق وغیر ملاصق دونوں برابر ہوں گے اور اگر نہر کبیر ہو تو شفعہ فقط جار ملاصق کو ملے گا اور چھوٹی وبڑی نہر کی تعریف میں اختلاف ہے امام اعظمؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر اس میں کشتی چلتی ہو تو بڑی ہے کذا فی البدائع اور شیخ امام عبدالواحد شیبانی نے فرمایا کہ کشتی سے اس مقام پر شاریات جو چھوٹی چھوٹی کشتیاں ہوتی ہیں مراد رکھی ہیں یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر اس نہر سے ایک دوسری نہر کائی گئی کہ چند اراضی و بساتین و کروم کو سینچتی ہے پھر ایک زمین یا باغ جس کا پانی اسی نہر سے ہے فروخت کی گئی تو اس نہر سے سینچنے والے بہ نسبت نہر کبیر والوں کے اس مبیع کے شفعہ کے احق ہوں گے (۳) اور اگر نہر کبیر کی اراضی میں سے کوئی زمین (۴) فروخت کی گئی تو چھوٹی نہر (۵) والے اور بڑی نہر والے حق شفعہ میں برابر ہوں گے کیونکہ ان کا حق شرب یکساں ہے یہ بدائع میں ہے۔

اگر طریق اعظم سے ایک فناء واسع منفرج ے ہو یا زقاق یا درب غیر نافذہ اور اس کے اندر چند دار ہوں اور ان میں سے ایک دار فروخت کیا گیا تو ان گھروں کے مالک سب شفیع ہوں گے امام زاہد شیخ عبدالواحد شیبانی نے فرمایا کہ یہ حکم اس وقت ہے کہ یہ فناء مربع ہو اور اگر مدور ہو گی تو حق شفعہ جار ملاصق کو ملے گا یہ ظہیریہ میں ہے۔ ایک کوچہ غیر نافذہ میں ایک دار واقع ہے اس کے اندر ایک بیت ہے اور وہ بیت دو آدمیوں کا ہے اور دار میں ایک قوم شریک ہے پھر بیت میں سے ایک شریک نے اپنا حصہ فروخت کیا تو پہلے حق شفعہ شریک کو ملے گا اگر اس نے دے دیا تو پھر شرکاء دار کو ملے گا پس اگر انہوں نے دے دیا تو سب اہل کوچہ کو ملے گا اور حق شفعہ میں یہ سب لوگ برابر ہوں گے پھر اگر اہل کوچہ نے بھی دے دیا تو جار ملاصق کو ملے گا اور جار ملاصق وہ شخص جو اس دار کی پشت پر رہتا ہے اور اس کے دار کا دروازہ

دوسرے کوچہ کی طرف ہے امام خصافؒ کے ادب القاضی کے باب شفعہ کی شرح میں لکھا ہے کہ پھر اگر اس دار کے ملاصق جس۔

---

ا قولہ نافذہ اس واسطے کہ جب عام راستہ ہے تو اس خاص کوچہ والے خصوصیت نہیں رکھتے ہیں مگر آنکہ یہ راستہ انہی کی ملکیت ہو کہ جب چاہیں اس کو بند کر دیں۔ جیسے غیر نافذہ ہوتا ہے۔ ے قولہ منفرج یعنی عام سڑک سے ایک میدان چھوٹ گیا وہ بشکل زاویہ منفرجہ ہے جیسے یا عمارہ زقاق تنگ ہے یا ادھر سے دریچہ کٹ گیا ہے۔ (۱) سب سے پہلے۔ (۲) باغہائے انگور چاردیواری دار۔ (۳) انہی کو حق شفعہ ملے گا نہ نہر کبیر والوں کو۔ (۴) زمین یا بستان یا تاک۔ (۵) جو کاٹ کر آئی ہے۔ ☆ دریچہ: وہ آبادی جن کے درمیان صحن ہو اور گردو پیش مکانات مملوکہ واقع ہوں۔

---

**Fatawa 'Alamgiri..... Volume 8 | 178 | Book of Pre-emption (Kitab al-Shuf'a)**

...in which this sold room (bayt mabi'ah) is located, if there are several people, then the neighbor who is adjacent to this sold room and the one who is adjacent to the end of the house (dar), but not to this room, will both be equal in the right of pre-emption (shuf'a). This is mentioned in *Al-Muhit*.

A house is shared between two partners located in a dead-end alley (kucha ghair nafidh). If one partner sells his share to someone, the right of pre-emption first goes to the partner. If he waives his right to the buyer, then it goes to the person who shares the wall between his house and this house. If he also waives it, then it goes to the residents of the alley, and all residents of the alley will have an equal right of pre-emption. If they also waive it, then it goes to that neighbor(1) whose house is at the back of this house and whose door opens into another alley. In Imam Khassaf's *Adab al-Qadhi*, it is written: let it be clear that the neighbor who ranks after the partner in the path is one who does not share the land under the common wall of both houses. If he is a partner in the land, he will not be ranked later, but rather will have priority in claiming pre-emption. The scenario is: a piece of land is shared by two people and is undivided; they build a wall in the middle and then divide the rest of the land between them. In this case, the wall and the land beneath it remain common to both. Thus, such a neighbor becomes a partner in part of the sold property. If they had divided the entire land first, drawn a line, and then each contributed some funds to build the wall, then each would only be a neighbor to the other regarding the land, while being partners in the structure (building). Partnership in the structure alone does not create a right of pre-emption. Imam Quduri mentioned that one who shares the land beneath the wall is, according to Imam Muhammad and in one of two narrations from Imam Abu Yusuf, entitled to the right of pre-emption in the entire sale by virtue of partnership. Thus, he will have priority over a neighbor whose property is merely adjacent to the entire sold property. This is in *Al-Dhakhira*. Imam Karkhi stated that among the narrations from Imam Abu Yusuf, the most authentic is that a person who shares the wall has priority in pre-emption over a mere neighbor. It is narrated from Imam Muhammad that several issues indicate that a partner in a wall has priority. For instance, Imam Muhammad said: if there is a wall between two persons and both have placed beams on it, and the partnership is known only because of these beams, and then one of the houses is sold, Imam Muhammad said: if the owner of the other house produces witnesses that "this wall is common between us," he will have a greater right to pre-emption than a neighbor because he

is a partner. If he does not produce witnesses, I will not consider him a partner. Imam Muhammad's statement that he has more right than a neighbor means he is entitled to the whole house, not just the shared wall; this is the meaning of the apparent general ruling. This is in *Bada'i*.

Imam Muhammad stated that where a partner waives his right of pre-emption to the buyer, the neighbor's right is established only if he claimed pre-emption as soon as he heard of the sale. If he did not claim it then, he has no right of pre-emption. This is in *Al-Muhit*. In a large house (dar kabir) there are several chambers (maqsurat). If the owner sells one chamber or a specific plot or a room from it, then the neighbor of this sold property has the right of pre-emption, regardless of which side of the house he is on, because this sale is from the entire house and the pre-emptor (shafi') is a neighbor of this house, thus he is also a neighbor of this sold portion. If he waives the right to the buyer, and then the buyer sells this chamber or plot, then that first neighbor will not get pre-emption; instead, it will go to the person who is the neighbor of that specific chamber or plot. This is because the property has become a separate intended object in the buyer's ownership, thus exiting from being just a part of the house. This is in *Muhit Sarasi*.

(1) The end of the house means this room is located inside the house; the one adjacent at the end of the house and the one adjacent to this room are both equal.
(1) Neighbor.

...जिसमें यह बेत-ए-मबीआ (बिकी हुई कोठरी) स्थित है, यदि कई व्यक्ति हों, तो जो पड़ोसी (जार) इस बेत-ए-मबीआ से सटा हुआ है और जो घर (दार) के अंत से सटा हुआ है न कि इस कोठरी से, दोनों शुफ़ा के अधिकार में बराबर होंगे। यह 'मुहीत' में है।

एक घर दो साझेदारों के बीच साझा है और एक बंद गली (कूचा-ए-ग़ैर नाफ़िज़) में स्थित है। उनमें से एक साझेदार ने अपना हिस्सा किसी व्यक्ति के हाथ बेच दिया, तो शुफ़ा पहले साझेदार को मिलेगा। यदि उसने अपना शुफ़ा का अधिकार खरीदार को दे दिया, तो उस व्यक्ति को मिलेगा जो अपने घर और इस घर के बीच की साझा दीवार में साझेदार है। यदि उसने भी छोड़ दिया, तो गली के निवासियों को मिलेगा, और गली के सभी निवासी शुफ़ा के अधिकार में बराबर होंगे। यदि उन्होंने भी छोड़ दिया, तो उस पड़ोसी(१) को मिलेगा जिसके घर की तरफ़ इस घर की पीठ है और उसके घर का दरवाज़ा दूसरी गली में खुलता है। इमाम खसाफ़ की 'अदब अल-काज़ी' में लिखा है कि यह स्पष्ट रहे कि जो पड़ोसी रास्ते के साझेदार के बाद आता है, वह ऐसा पड़ोसी है जो दोनों घरों के बीच की साझा दीवार के नीचे की ज़मीन में साझेदार न हो। यदि वह ज़मीन में साझेदार होगा, तो वह बाद में नहीं गिना जाएगा, बल्कि शुफ़ा के अधिकार में उसे प्राथमिकता मिलेगी। इसकी सूरत यह है कि एक ज़मीन दो आदमियों में साझा हो और बँटी हुई न हो; उन्होंने बीच में एक दीवार बनाई फिर बाकी ज़मीन आपस में बाँट ली। ऐसे में दीवार और उसके नीचे की ज़मीन दोनों में साझा रहेगी। अतः ऐसा पड़ोसी बिकी हुई चीज़ के कुछ हिस्से में साझेदार ठहरा। यदि उन दोनों ने पूरी ज़मीन को पहले ही बाँट लिया होता, एक लकीर खींच दी होती, फिर दोनों ने कुछ-कुछ पैसे देकर दीवार बनाई होती, तो दोनों ज़मीन के लिहाज़ से एक-दूसरे के केवल पड़ोसी होते और केवल इमारत में साझेदार होते। इमारत की साझेदारी शुफ़ा का कारण नहीं बनती है। इमाम कुदूरी ने ज़िक्र किया है कि जो व्यक्ति दीवार के नीचे की ज़मीन में साझेदार है, वह इमाम मुहम्मद के नज़दीक और इमाम अबू यूसुफ़ की दो रिवायतों में से एक के अनुसार, साझेदारी के हुक्म से पूरी बिकी हुई चीज़ में शुफ़ा का हक़दार होता है। अतः वह उस पड़ोसी से पहले होगा जिसका घर पूरी बिकी हुई चीज़ से सटा हुआ है। यह 'ज़खीरा' में है। इमाम करखी ने फरमाया कि इमाम अबू यूसुफ़ से जो रिवायतें आई हैं उनमें सबसे सही यह है कि जो व्यक्ति दीवार में साझेदार है, वह बाक़ी घर के शुफ़ा के अधिकार में पड़ोसी के मुक़ाबले में प्राथमिकता रखता है। इमाम मुहम्मद से ऐसे कई मसले रिवायत हैं जो इस बात पर दलालत करते हैं कि दीवार का साझेदार प्राथमिकता रखता है। इमाम मुहम्मद ने फरमाया कि एक दीवार दो व्यक्तियों

के बीच है और दोनों ने उस पर अपनी कड़ियाँ (लकड़ियाँ) रखी हुई हैं, और साझेदारी केवल इसी वजह से साबित है, फिर उन घरों में से एक को बेचा गया, तो इमाम मुहम्मद ने फरमाया: यदि दूसरे घर के मालिक ने गवाह पेश कर दिए कि "यह दीवार हम दोनों में साझा है," तो वह पड़ोसी के मुक़ाबले शुफ़ा का ज़्यादा हक़दार होगा क्योंकि वह साझेदार है। यदि उसने गवाह पेश नहीं किए, तो मैं उसे साझेदार नहीं ठहराऊँगा। इमाम मुहम्मद का यह कहना कि वह पड़ोसी के मुक़ाबले ज़्यादा हक़दार होगा, इसका मतलब है कि वह पूरे घर का हक़दार होगा न कि केवल साझा दीवार का; और यही अर्थ स्पष्ट और व्यापक नियम के अनुरूप है। यह 'बदाए' में है।

इमाम मुहम्मद ने फरमाया कि जहाँ साझेदार ने अपना शुफ़ा का अधिकार खरीदार को दे दिया, तो पड़ोसी के लिए शुफ़ा का हक़ तभी साबित होगा जब पड़ोसी ने बिक्री की ख़बर सुनते ही शुफ़ा की माँग की हो। यदि उसने माँग नहीं की, तो उसे शुफ़ा का हक़ नहीं मिलेगा। यह 'मुहीत' में है। एक बड़े घर (दार-ए-कबीर) में कई छोटे कमरे (मक़सूरात) हैं। यदि घर के मालिक ने उनमें से एक कमरा या कोई निश्चित टुकड़ा या कोठरी बेची, तो उसके पड़ोसी को उस बिकी हुई चीज़ में शुफ़ा का हक़ मिलेगा, चाहे वह घर के किसी भी तरफ़ का पड़ोसी हो, क्योंकि यह बिक्री पूरे घर में से है और शुफ़ा माँगने वाला इस घर का पड़ोसी है, इसलिए वह इस बिकी हुई चीज़ का भी पड़ोसी हुआ। यदि उसने खरीदार को शुफ़ा का हक़ दे दिया, फिर खरीदार ने वह कमरा या टुकड़ा बेचा, तो अब उस पुराने पड़ोसी को शुफ़ा नहीं मिलेगा, बल्कि उस व्यक्ति को मिलेगा जो उस विशेष कमरे या टुकड़े का पड़ोसी है। क्योंकि वह चीज़ खरीदार की मिल्कियत में एक अलग मक़सूद चीज़ बन गई, अतः पूरे घर का हिस्सा होने से बाहर हो गई। यह 'मुहीत सरसी' में है।

(१) घर का अंत यानी यह कोठरी जिस घर के अंदर स्थित है, उस घर के आख़िर पर जो सटा हुआ है और जो इस कोठरी से सटा हुआ है, दोनों बराबर हैं। (१) पड़ोसी।

---

میں یہ بیت مبیعہ واقع ہے کئی آدمی ہوں تو جو جار ملاصق اس بیت مبیعہ کا ہے وہ اور جو انتہائے دار سے ملاصق ہے نہ اس بیت سے دونوں حق شفعہ میں یکساں ہوں گے یہ محیط میں ہے۔

ایک دار دو شریکوں میں مشترک ایک کوچہ غیر نافذ میں واقع ہے ان میں سے ایک شریک نے اپنا حصہ وار کسی شخص کے ہاتھ فروخت کر دیا تو شفعہ پہلے شریک دار کو ملے گا پس اگر اس نے حق شفعہ مشتری کو دے دیا تو اس شخص کو ملے گا جو اپنے دار اور اس دار کی درمیانی دیوار میں شریک ہے پس اگر اس نے بھی دے دیا تو اہل کوچہ کو ملے گا اور سب کوچہ والے اس حق شفعہ میں برابر ہوں گے پس اگر انہوں نے بھی دے دیا تو اس جار(۱) کو ملے گا جس کے دار کی طرف اس دار کی پشت ہے اور اس کے دار کا دروازہ دوسرے کوچے میں ہے اور امام خصافؒ کے ادب القاضی میں لکھا ہے کہ پھر واضح ہو کہ جو جار راستہ کے شریک سے مؤخر ہے وہ ایسا جار ہے جو دونوں داروں کی درمیانی دیوار مشترک کے نیچے کی زمین میں شریک نہ ہو اور اگر شریک ہوگا تو وہ مؤخر نہ ہوگا بلکہ استحقاق شفعہ میں مقدم ہوگا اور اس کی صورت یہ ہے کہ ایک زمین دو آدمیوں میں مشترک ہو اور مقسوم نہ ہو اس میں ان دونوں نے بیچ میں ایک دیوار بنائی پھر باقی زمین کو باہم تقسیم کر لیا پس دیوار اور جو زمین میں دیوار کے نیچے رہی وہ دونوں میں مشترک ہوگی پس ایسا جار بعض مبیع میں شریک ٹھہرا اور اگر ان دونوں نے تمام زمین کو باہم تقسیم کر کے اس کے درمیان میں ایک خط کر دیا پھر دونوں میں سے ہر ایک نے کچھ کچھ مال دے کر دیوار بنائی تو دونوں میں سے ہر ایک زمین کے لحاظ سے دوسرے کا فقط پڑوسی ہوگا اور عمارت میں شریک ہوگا اور عمارت کی شرکت موجب شفعہ نہیں ہوتی ہے اور

امام قدوریؒ نے ذکر کیا کہ جو شخص دیوار کے نیچے کی زمین میں شریک ہے وہ امام محمدؒ کے نزدیک اور دو روایتوں میں سے ایک روایت موافق امام ابو یوسفؒ کے نزدیک بحکم شرکت تمام مبیع میں مستحق شفعہ ہوتا ہے پس اس پڑوسی سے جس کا پڑوسی تمام مبیع سے ملاصق ہے مقدم ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے اور امام کرخیؒ نے فرمایا کہ امام ابو یوسفؒ سے جو روایتیں آئی ہیں ان میں سے اصح روایت یہ ہے کہ جو شخص دیوار میں شریک ہے وہ باقی دار کے حق شفعہ میں بنسبت جار کے اولیٰ و مقدم ہے اور فرمایا کہ امام محمدؒ سے ایسے چند مسائل مروی ہیں جو اس بات پر دلالت کرتے ہیں کہ جو شخص دیوار میں شریک ہے وہ اولیٰ و اقدم ہے چنانچہ امام محمدؒ نے فرمایا کہ ایک دیوار دو شخصوں کے درمیان میں ہے کہ ہر ایک کی اس پر لکڑیاں رکھی ہوئی ہیں اور دیوار کا دونوں میں مشترک ہونا فقط اس وجہ سے ثابت و معلوم ہوتا ہے کہ اس پر دونوں کی لکڑیاں رکھی ہیں پھر ان دونوں داروں میں سے ایک فروخت کیا گیا تو امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر دوسرے کے مالک نے اس امر کے گواہ قائم کیے کہ یہ دیوار ہم دونوں میں مشترک ہے تو وہ بنسبت پڑوسی کے شفعہ کا احق ہوگا اس لیے کہ وہ شریک ہے اور اگر اس نے گواہ قائم کیے تو میں اس کو شریک نہ ٹھہراؤں گا اور امام محمدؒ کا یہ قول کہ وہ بہ نسبت پڑوسی کے شفعہ کا احق ہوگا یعنی تمام دار کا حقدار ہوگا نہ فقط اس دیوار مشترک کا اور یہ معنی مقتضائے ظاہر اطلاق ہے یہ بدائع میں ہے۔

امام محمدؒ نے فرمایا کہ جہاں شریک نے اپنا حق شفعہ مشتری کو دے دیا تو جار کے واسطے جبھی حق شفعہ ثابت ہوگا کہ جب جار نے بیع کی خبر سنتے ہی شفعہ طلب کیا ہو اور اگر نہ طلب کیا ہو تو اس کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا یہ محیط میں ہے۔ ایک دار کبیر میں چند مقصورات ہیں پس مالک دار نے ان میں سے ایک مقصورہ یا قطعہ معلومہ یا بیت فروخت کیا تو اس کے پڑوسی کو اس مبیع میں حق شفعہ حاصل ہوگا چاہے دار کے کسی جانب کا پڑوسی ہو اس لیے کہ یہ مبیع

تمام دار میں سے ہے اور شفیع اس دار کا جار ہے پس اس مبیع کا بھی جار ہوا اور اگر اس نے مشتری کو حق شفعہ دے دیا پھر مشتری نے یہ مقصورہ یا قطعہ مبیعہ فروخت کیا تو اب اس جار کو شفعہ نہ ملے گا بلکہ اس شخص کو ملے گا جو اس مقصورہ یا قطعہ مبیعہ کا جار ہے اس واسطے کہ مبیع مشتری کی ملک میں ایک علیحدہ مقصود چیز ہوگئی بس منجملہ دار ہونے سے خارج ہو گئی ہے یہ محیط سرسی میں ہے۔

(۱) انتہائے دار یعنی یہ بیت جس دار کے اندر واقع ہے اس دار کے آخر پر جو ملاصق ہے اور جو اس بیت سے ملاصق ہے دونوں برابر ہیں۔ (۱) پڑوسی۔

**Fatawa-e-Alamgiri..... Volume (8), Page 179, Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

...it is stated: In a house, the lower story is jointly owned by two persons (1), and its upper story (balakhana) is jointly owned by two persons, Zaid and Khalid. If Zaid, who is a partner in both lower parts, sells his share, then the person who is a partner with him in the lower house shall have the right of pre-emption (shufa) in the lower portion. And the person who is a partner in the upper story shall have the right of pre-emption in the upper story's portion. However, the person who is a partner in the lower house shall not have the right of pre-emption in the vendor's share of the upper story, nor shall the partner of the upper story have the right of pre-emption in the vendor's share of the lower house. This is because the partner of the lower house is merely a neighbor (jar) to the upper story or a sharer in the rights (easements) of the upper story. If the pathway for the upper story passes through the lower house, and the partner of the upper story is a neighbor or a partner in the rights of the lower house, and if the path of the upper story is within the premises (dar), then the person who is a partner in the actual specific site (ayn-e-baq'a) is most entitled and has priority for pre-emption. If a person owns an upper story on a house and the pathway of that upper story is through that house, and the rest of the house belongs to another person, and the owner of the upper story sells it along with its pathway, then based on *istihsan* (juristic preference), the right of pre-emption belongs to the owner of the lower house. If the path to the upper story is through another person's property and the upper story is sold, then the person through whose property the path to the upper part (uluw) passes will be more entitled to pre-emption compared to the person upon whose house the upper story is situated. Furthermore, if the owner of the pathway (Sahib-at-Tariq) relinquishes his right of pre-emption to the buyer, and if there is no adjacent neighbor (jar-e-mulaziq) for the upper story, the right of pre-emption due to neighborhood shall go to the one upon whose property the upper story is located. If an adjacent neighbor exists, then that person along with the person upon whose property the upper story is situated may both exercise the right of pre-emption, as both are neighbors. If the neighbor of the upper story is not adjacent but there is a portion of land between the upper story and his residence, that neighbor shall not have the right of pre-emption. If the owner of the lower house sells it, the owner of the upper story shall be his pre-emptor (shafi). If the property through which the path to the upper story passes is sold, the owner of the

upper story shall be more entitled to pre-emption than the neighbor. This is mentioned in *Badai*.

**Some Subtle Issues Regarding the Right of Pre-emption (Shufa)** ☆

A house (dar) is jointly owned by Zaid and Amr, and within this house, a wall is jointly owned by Zaid and Khalid. If Zaid sells his share in the house and the wall, the person who is a partner in the whole house shall be more entitled to pre-emption of the house compared to the partner of the wall. However, the partner of the wall is more entitled to pre-emption of the wall and is a neighbor to the rest of the house. Similarly, if a house is jointly owned by two persons and a well within it is jointly owned by one partner and someone else, and the owner of the shares in the well and house sells his portion, the house-partner is entitled to pre-emption as a partner, while the well-partner is entitled as a neighbor to the rest of the house; this is in *Nihaya*. In a house, three persons are equal partners except for the site of the well or path. If the person who is a partner in the whole property sells his share, the partner whose share is in the whole house is more entitled to pre-emption than the partner who only has a share in a part of the house, because his partnership is more comprehensive (amm), and the stronger interest takes precedence in the right of pre-emption. This is in *Mabsut*. The owner of the pathway (Sahib-at-Tariq) has priority in the right of pre-emption over the owner of the watercourse (Sahib-e-Maseel-al-Ma), provided the land of the watercourse is not his property. This scenario occurs when a house is sold where one person has a right of way and another has a right of drainage; the owner of the path has priority over the owner of the drainage; this is in *Muheet*. In a house there are three rooms (bayt) arranged such that there is one room in the front of the house, another beside it, and a third beside the second, each owned by a single individual. If one of these owners sells his room, and if the path for these rooms is through the house, then the rest...

---

(1) For example, Zaid and Amr. The phrase "will not have" means that in this case, the partner of the upper story has priority; however, if he waives his pre-emption, then the neighbor's right arises.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी..... जिल्द (8) 179 किताबुश-शफ़ा (अग्रक्रय का अध्याय)**

...में है। एक मकान में से नीचे का मकान दो व्यक्तियों के बीच साझा (مشترک) है (1) और उसका ऊपरी कमरा (बालाखाना) ज़ैद और खालिद दो व्यक्तियों के बीच साझा है। अतः ज़ैद ने, जो नीचे वाले दोनों में साझीदार है, अपना हिस्सा बेचा, तो नीचे के मकान में जो व्यक्ति उसके साथ साझीदार है, उसे उसके नीचे के हिस्से में शफ़ा (अग्रक्रय) का अधिकार प्राप्त होगा। और जो व्यक्ति ऊपरी कमरे में साझीदार है, उसे ऊपरी कमरे के हिस्से में शफ़ा का अधिकार होगा। और नीचे के मकान में जो व्यक्ति साझीदार है, उसे विक्रेता के ऊपरी कमरे के हिस्से में शफ़ा का अधिकार नहीं होगा, और जो ऊपरी कमरे में साझीदार है, उसे नीचे के मकान के विक्रेता के हिस्से में शफ़ा का अधिकार नहीं होगा। इसका कारण यह है कि नीचे के मकान का साझीदार ऊपरी कमरे का पड़ोसी (जार) है या ऊपरी कमरे के अधिकारों में साझीदार है। यदि ऊपरी कमरे का रास्ता नीचे के मकान में से हो और ऊपरी कमरे का साझीदार नीचे के मकान का पड़ोसी हो या अधिकारों का साझीदार हो, और यदि ऊपरी कमरे का रास्ता उस घर (दार) में से हो, तो वह व्यक्ति जो उसी विशिष्ट स्थान (ऐन बक़आ) में साझीदार है, शफ़ा के अधिकार के लिए सबसे पहले और योग्य है। यदि एक घर पर एक व्यक्ति का ऊपरी कमरा हो और ऊपरी कमरे का रास्ता उस घर में से हो और बाकी घर दूसरे व्यक्ति का हो, फिर ऊपरी कमरे के मालिक ने ऊपरी कमरे को उसके रास्ते सहित बेचा, तो इस्तेहसान (न्यायिक वरीयता) के आधार पर शफ़ा का अधिकार नीचे के मकान के मालिक को प्राप्त होगा। और यदि उस ऊपरी कमरे का रास्ता दूसरे व्यक्ति के घर में से हो और ऊपरी कमरा बेचा गया, तो जिसके घर में ऊपरी हिस्से (अुलू) का रास्ता है, वह उस व्यक्ति की तुलना में जिसके घर पर ऊपरी कमरा स्थित है, शफ़ा के अधिकार का अधिक पात्र होगा। फिर यदि रास्ते के मालिक (साहब-ए-तरीक़) ने अपना शफ़ा का अधिकार खरीदार को दे दिया, तो यदि ऊपरी कमरे का कोई सटा हुआ पड़ोसी (जार-ए-मुलाज़िक़) न हो, तो पड़ोस के शफ़ा के कारण उसे शफ़ा का अधिकार मिलेगा जिसके घर पर ऊपरी कमरा है। और यदि ऊपरी कमरे का सटा हुआ पड़ोसी मौजूद हो, तो वह व्यक्ति उस व्यक्ति के साथ जिसके घर पर ऊपरी कमरा स्थित है, दोनों शफ़ा के अधिकार का उपयोग कर सकते हैं क्योंकि दोनों ही पड़ोसी हैं। यदि ऊपरी कमरे का पड़ोसी उससे सटा हुआ न हो बल्कि ऊपरी कमरे और उसके निवास के बीच घर का कोई टुकड़ा स्थित हो, तो उस पड़ोसी को शफ़ा का अधिकार नहीं मिलेगा। और यदि नीचे के मकान के मालिक ने नीचे का मकान बेचा, तो ऊपरी कमरे वाला उसका

शफ़ी (अग्रक्रय का अधिकारी) होगा। और यदि वह घर बेचा गया जिसमें ऊपरी हिस्से का रास्ता है, तो ऊपरी कमरे वाला पड़ोसी की तुलना में शफ़ा का अधिक पात्र होगा। यह 'बदाए' में उल्लेखित है।

**शफ़ा के अधिकार (अग्रक्रय) के संबंध में कुछ सूक्ष्म मसले** ☆

एक घर (दार) ज़ैद और अम्र के बीच साझा है और उस घर में एक दीवार ज़ैद और खालिद के बीच साझा है। अतः ज़ैद ने घर और दीवार में अपना हिस्सा बेचा, तो जो व्यक्ति पूरे घर में साझीदार है, वह दीवार के साझीदार की तुलना में घर के शफ़ा का अधिक पात्र होगा। और जो दीवार में साझीदार है, वह दीवार के शफ़ा में अधिक योग्य है और बाकी घर का पड़ोसी है। इसी तरह यदि एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और उसमें एक कुआँ एक साझीदार और किसी अन्य व्यक्ति के बीच साझा हो, फिर घर और कुएँ के साझीदार ने अपने कुएँ और घर का हिस्सा बेचा, तो घर का साझीदार, साझीदार के शफ़ा के अधिकार का पात्र है और कुएँ का साझीदार, पड़ोसी के शफ़ा के अधिकार का पात्र है और बाकी घर के हिस्से का पड़ोसी है; यह 'निहाया' में है। एक घर में तीन व्यक्ति बराबर के साझीदार हैं, सिवाय कुएँ या रास्ते के स्थान के। अतः जो व्यक्ति सब कुछ में साझीदार है, उसने पूरे घर में से अपना हिस्सा बेचा, तो जो साझीदार ऐसा है जिसका पूरे घर में हिस्सा है, वह उस साझीदार की तुलना में जिसका घर के केवल कुछ भाग में हिस्सा है, शफ़ा के अधिकार का अधिक पात्र है, क्योंकि उसकी साझीदारी अधिक व्यापक (आम) है और जो अधिक प्रबल (अक़वा) है वही शफ़ा की पात्रता में प्राथमिकता पाएगा। यह 'मबसूत' में है। रास्ते का स्वामी (साहब-ए-तरीक़), जल निकास के अधिकार वाले (साहब-ए-मसील-उल-मा) की तुलना में शफ़ा के अधिकार में प्राथमिकता रखता है, बशर्ते कि जल निकास का क्षेत्र उसकी अपनी संपत्ति न हो। इसकी स्थिति यह है कि एक घर बेचा गया और उसमें एक व्यक्ति का रास्ता है और दूसरे का पानी बहने का अधिकार है, तो रास्ते का स्वामी जल निकास के अधिकार वाले की तुलना में शफ़ा की पात्रता में प्रथम है; यह 'मुहीत' में है। एक घर में तीन कमरे (बेत) इस प्रकार हैं कि मुख्य घर में एक कमरा है, फिर दूसरा उसके बगल में, फिर तीसरा दूसरे के बगल में, और प्रत्येक कमरे का केवल एक-एक व्यक्ति मालिक है। फिर उन मालिकों में से एक ने अपना कमरा बेचा, तो यदि इन कमरों का रास्ता घर में हो तो बाकी...

---

(1) उदाहरण के लिए ज़ैद और अम्र। "नहीं होगा" का अर्थ है कि इस स्थिति में ऊपरी कमरे का साझीदार प्रथम है, यहाँ तक कि यदि वह शफ़ा छोड़ दे, तो फिर पड़ोसी का अधिकार है।

---

میں ہے۔ ایک مکان میں سے نیچے کا مکان دو شخصوں میں مشترک ہے (۱) اور اس کا بالا خانہ زید و خالد دو شخصوں میں مشترک ہے پس زید نے جو نیچے والے دونوں میں شریک ہے اپنا حصہ فروخت کیا تو نیچے کے مکان میں جو شخص اس کے ساتھ شریک ہے اس کو اس کے نیچے کے حصہ میں حق شفعہ حاصل ہوگا اور بالا خانہ میں جو شخص شریک ہے اس کو حصہ بالا خانہ میں حق شفعہ ہوگا اور نیچے کے مکان میں جو شخص شریک ہے اس کو بائع کے حصہ بالا خانہ میں حق شفعہ نہ ہوگا اور جو بالا خانہ میں شریک ہے اس کو نیچے کے مکان کے حصہ بائع میں حق شفعہ نہ ہوگا اس واسطے کہ نیچے کے مکان کا شریک بالا خانہ کا جار ہے یا حقوق بالا خانہ میں شریک ہے اگر بالا خانہ کا راستہ نیچے کے مکان میں سے ہو اور بالا خانہ کا شریک نیچے کے مکان کا جار ہے یا حقوق کا شریک ہے اور اگر بالا خانہ کا راستہ اس دار میں سے ہو پس جو شخص عین بقعہ میں شریک ہے وہ حق شفعہ کے واسطے اولیٰ واقدم ہے اگر ایک دار پر ایک شخص کا بالا خانہ ہو اور بالا خانہ کا راستہ اس دار میں سے ہو اور باقی دار دوسرے شخص کا ہو پھر بالا خانہ کے مالک نے بالا خانہ مع اس کے راستہ کے فروخت کیا تو استحساناً حق شفعہ نیچے کے مکان کے مالک کو حاصل ہوگا اور اگر اس بالا خانہ کا راستہ دوسرے شخص کے دار میں سے ہو اور بالا خانہ فروخت کیا گیا تو جس کے دار میں علو کا راستہ ہے وہ بنسبت اس کے جس کے دار پر بالا خانہ ہے حق شفعہ کا مستحق ہوگا پھر اگر صاحب الطریق نے اپنا حق شفعہ مشتری کو دے دیا پس اگر بالا خانہ کا کوئی جار ملازق نہ ہو تو بسبب شفعہ جوار کے اس کو حق شفعہ ملے گا جس کے دار پر بالا خانہ ہے اور اگر بالا خانہ کا جار ملازق موجود ہو تو وہ شخص مع اس شخص کے جس کے دار پر بالا خانہ واقع ہے دونوں حق شفعہ میں لے سکتے ہیں اس

واسطے کہ دونوں جار ہیں۔ اگر بالا خانہ کا جار اس کے ملازق نہ ہو بلکہ بالا خانہ اور اس کے مسکن کے درمیان دار کا کوئی ٹکڑا واقع ہو تو اس جار کو حق شفعہ نہ ملے گا اور اگر نیچے کے مکان کے مالک نے نیچے کا مکان فروخت کیا تو بالا خانہ والا اس کا شفیع ہوگا اور اگر وہ دار فروخت کیا گیا جس میں علو کا راستہ ہے تو بالا خانہ والا بنسبت جار کے مستحق شفعہ ہوگا یہ بدائع میں ہے۔

**حق شفعہ کی بابت کچھ باریک مسائل ☆**

ایک دار زید و عمرو کے درمیان مشترک ہے اور اس دار میں ایک دیوار زید و خالد کے درمیان مشترک ہے پس زید نے اپنا حصہ دار و دیوار فروخت کیا تو جو شخص دار میں شریک ہے وہ بنسبت شریک دیوار کے حق شفعہ دار کا مستحق ہوگا اور جو دیوار میں شریک ہے وہ دیوار کی شفعہ میں زیادہ مستحق ہے اور باقی دار کا جار ہے اسی طرح اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو اور اس میں ایک کنواں ایک شریک اور کسی دوسرے کے درمیان مشترک ہو پس دار و کنوئیں کے حصہ دار نے اپنا کنوئیں و دار کا حصہ فروخت کیا تو دار کا شریک حصہ دار کے حق شفعہ کا مستحق ہے اور کنوئیں کا شریک حصہ جار کے حق شفعہ کا مستحق ہے اور باقی دار کے حصہ کا جار ہے یہ نہایہ میں ہے۔ ایک دار میں تین شخص برابر شریک ہیں سوائے موضع چاہ یا طریق کے پس جو شخص تمام میں شریک ہے اس نے تمام دار میں سے اپنا حصہ فروخت کیا تو جو شریک ایسا ہے کہ اس کا تمام دار میں حصہ ہے بنسبت اس شریک کے جس کا بعض دار میں حصہ ہے حق شفعہ کا زیادہ مستحق ہے اس واسطے کہ اس کی شرکت اعم ہے اور جو اقویٰ ہے وہی استحقاق شفعہ میں مقدم ہوگا۔ یہ مبسوط میں ہے۔ صاحب الطریق بہ نسبت صاحب مسیل الماء کے حق شفعہ میں اولیٰ ہے بشرطیکہ رقبہ مسیل الماء اس کی ملک نہ ہو اور اس کی صورت یہ ہے کہ ایک دار فروخت کیا گیا اور اس میں ایک شخص کا راستہ ہے اور دوسرے کا پانی بہنے کا

استحقاق ہے تو صاحب الطریق بہ نسبت صاحب مسیل الماء کے استحقاق شفعہ میں اولیٰ ہے یہ محیط میں ہے۔ ایک دار میں تین بیت ہیں اس طرح کہ مقدم دار میں ایک بیت ہے پھر دوسرا اس کے پہلو میں پھر تیسرا دوسرے کے پہلو میں اور ہر بیت کا ایک ہی ایک شخص مالک ہے پھر ان مالکوں میں سے ایک نے اپنا بیت فروخت کیا پس اگر ان بیوت کا راستہ دار میں ہو تو باقی...

---

(۱) مثلاً زید و عمرو۔ قولہ نہ ہوگا یعنی اس صورت میں شریک بالا خانہ مقدم ہے حتی کہ اگر وہ شفعہ دے دے تو پھر جار کا حق ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 180 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

Two individuals shall have the right of *Shufa* (pre-emption) due to their partnership in a shared path. If the doors of these houses (*buyut*) do not open into a courtyard (*dar*) but into a non-thoroughfare alley (*kucha ghair nafiza*), then if the middle house is sold, the right of pre-emption belongs to the owners of the first and the last houses. If the first house is sold, the pre-emption right belongs to the owner of the middle house, and if the last one is sold, the right belongs solely to the owner of the middle house. In a large house (*dar*) where three smaller houses are situated adjacent to or above each other and each is owned by a different person, if one sells their house, the other two will be partners in the pre-emption, provided the path for all houses lies within that *dar*. If the doors open into an alley, then if the middle owner sells, the owners of the upper and lower houses have the right of pre-emption. If the upper owner sells, the middle one has the right, and if the lower owner sells, the middle one also has the right. This is mentioned in *Khazanat al-Muftin*.

In a *dar*, there are three houses and the rest is open ground. The ground is shared by three people, while the houses are shared by two of them. If one of the house owners sells their share in the houses and the ground to their partner in those houses and ground, the other two individuals who share only the courtyard will not have the right of pre-emption. This is in *Dhakhirat al-Salimiyya*. If a *dar* belongs to one person but contains a house shared with another, and the owner sells the *dar*, and both the neighbor and the house partner claim pre-emption, the partner in the house will have priority regarding the house's share, and the rest of the pre-emption right may be divided equally between the neighbor and the partner. This is in *Bada'i*. It is narrated from Imam Abu Yusuf that if a person buys a wall along with its land, then buys the rest of the house, and the neighbor of the wall claims pre-emption, he will get pre-emption for the wall but not for the rest of the house. This is in *Muhit al-Sarkhasi*.

In a non-thoroughfare alley (*darbah ghair nafiza*), there are houses of a community. If one owner sells a room facing a major street on the condition that the buyer opens its door toward the main road and does not include the path through the alley in the sale, the alley residents retain pre-emption rights because their partnership in the path existed at the time of sale. If the alley residents waive their right to the buyer and the buyer later sells that room, the alley residents lose their pre-emption right as the partnership no longer exists; the right then belongs to the immediate neighbor. Similarly, if a portion of a house is sold without the alley path, the same rule applies.

This is in *Dhakhira*. If at the end of a non-thoroughfare alley there is a designated mosque (*masjid khitta*) whose door is in the alley but its back faces a main road, such an alley is treated as a thoroughfare (*darbah nafiza*). If a house is sold there, only the immediate neighbor has pre-emption. A *masjid khitta* refers to a mosque designated by the Imam of Muslims during the distribution of spoils. This rule applies because if no houses intervene between the mosque and the main road, the alley functions as a thoroughfare. If houses intervene, the alley residents retain pre-emption due to partnership. If such a mosque is at the beginning of the alley and allows passage, pre-emption is limited to the immediate neighbor; otherwise, all alley residents share the right. If an individual converts their house into a mosque, the alley residents still retain pre-emption rights due to partnership. This is in *Muhit*.

---

! Will not be, meaning the partner takes precedence over him. ہـ 'Darbah' refers to a residential area with a central courtyard surrounded by privately owned houses.

**फतावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 180 किताब-उश-शफ़ा**

दो व्यक्तियों को रास्ते की साझेदारी के कारण शफ़ा (पूर्वाधिकार) का अधिकार प्राप्त होगा। यदि इन घरों (बयुत) के दरवाजे आंगन (दार) में न होकर एक बंद गली (कूचा-ए-ग़ैर नाफ़िज़) में हों, तो यदि बीच वाला घर बेचा गया, तो शफ़ा का अधिकार पहले और आखिरी घर वाले को मिलेगा। यदि पहला बेचा गया, तो शफ़ा बीच वाले घर के मालिक को मिलेगा, और यदि आखिरी वाला बेचा गया, तो शफ़ा केवल बीच वाले घर के मालिक को मिलेगा। एक बड़े घर (दार) में तीन छोटे घर एक-दूसरे के ऊपर स्थित हैं और प्रत्येक का अलग मालिक है। फिर एक ने अपना घर बेचा, तो शेष दोनों शफ़ा में भागीदार होंगे, बशर्ते कि सभी घरों का रास्ता उस मुख्य घर के भीतर हो। यदि घरों के दरवाजे गली में हों, तो यदि बीच वाले ने बेचा, तो ऊपर और नीचे वाले को शफ़ा का अधिकार होगा। यदि ऊपर वाले ने बेचा, तो बीच वाले को, और यदि नीचे वाले ने बेचा, तो भी बीच वाले को शफ़ा का अधिकार होगा। यह 'खज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है।

एक बड़े घर में तीन छोटे घर हैं और शेष मैदान है। मैदान तीन व्यक्तियों में साझा है और घर उनमें से दो व्यक्तियों के साझा हैं। यदि दोनों घर मालिकों में से एक ने घरों और मैदान में अपना हिस्सा उस व्यक्ति को बेच दिया जो घरों और मैदान में उसका साझेदार है, तो आंगन में साझेदार अन्य दो व्यक्तियों को शफ़ा का अधिकार नहीं होगा। यह 'ज़खीरा-ए-सलीमिया' है। यदि एक घर एक व्यक्ति का है और उसमें एक छोटा घर है जो उसके और दूसरे के बीच साझा है, फिर घर के मालिक ने अपना पूरा घर बेच दिया और पड़ोसी ने शफ़ा मांगा और छोटे घर के साझेदार ने भी शफ़ा मांगा, तो छोटे घर का साझेदार उस हिस्से के लिए अधिक हकदार होगा, और शेष घर पड़ोसी और साझेदार के बीच आधा-आधा बांटा जा सकता है। यह 'बदाए' में है। इमाम अबू यूसुफ से वर्णित है कि एक व्यक्ति ने एक दीवार और उसकी जमीन खरीदी, फिर शेष घर खरीदा, फिर दीवार के पड़ोसी ने शफ़ा मांगा, तो उसे दीवार का शफ़ा मिलेगा लेकिन शेष घर में शफ़ा नहीं मिलेगा। यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में है।

एक बंद गली (दरबा-ए-ग़ैर नाफ़िज़) में एक समुदाय के घर स्थित हैं। फिर उन घरों में से एक के मालिक ने एक कमरा, जो बड़ी गली की ओर है, इस शर्त पर बेचा कि खरीदार उसका दरवाजा बड़े रास्ते की ओर खोले और उस कमरे का रास्ता जो बंद गली में था, वह नहीं बेचा, तो गली के निवासियों को शफ़ा का अधिकार होगा क्योंकि बिक्री के समय रास्ते में उनकी साझेदारी मौजूद थी। यदि गली वालों ने अपना शफ़ा का अधिकार खरीदार को दे दिया, फिर खरीदार ने उसके बाद वह कमरा बेचा,

तो गली वालों को शफ़ा नहीं मिलेगा क्योंकि अब साझेदारी समाप्त हो चुकी है। अब शफ़ा निकटतम पड़ोसी को मिलेगा जो घर का मालिक है। इसी तरह यदि घर का कोई हिस्सा गली वाले रास्ते के बिना बेचा जाए, तो भी यही नियम है। यह 'ज़खीरा' में है। एक बंद गली के अंत में एक सरकारी मस्जिद (मस्जिद-ए-खित्ता) है जिसका दरवाजा गली में है और पिछला हिस्सा बड़े रास्ते की ओर है, तो ऐसी गली खुली गली (दरबा नाफ़िज़) मानी जाएगी। यदि इसमें कोई घर बेचा जाए, तो उसका शफ़ा केवल सटा हुआ पड़ोसी लेगा। मस्जिद-ए-खित्ता से तात्पर्य उस मस्जिद से है जिसे मुस्लिम शासक ने गनीमत के बंटवारे के समय नियत किया हो। यह नियम इसलिए है क्योंकि जब मस्जिद और बड़े रास्ते के बीच कोई अन्य घर न हो, तो यह गली खुली गली की तरह होगी। यदि बीच में घर हों, तो गली वालों को साझेदारी के कारण शफ़ा मिलेगा। यदि मस्जिद अंत में न होकर गली की शुरुआत में हो और वहां से रास्ता खुला हो, तो केवल सटे हुए पड़ोसी को शफ़ा मिलेगा, अन्यथा सभी गली वालों को अधिकार होगा। यदि किसी व्यक्ति ने अपना घर मस्जिद बना दिया हो, तो भी गली वालों को साझेदारी के कारण शफ़ा का अधिकार होगा। यह 'मुहीत' में है।

---

! नहीं होगा अर्थात साझेदार उससे पहले है। ہ 'दरबा' वह बस्ती है जिसके बीच में आंगन हो और चारों ओर निजी घर स्थित हों।

---

دونوں آدمیوں کو راستہ کی شرکت کی وجہ سے حق شفعہ حاصل ہوگا اور اگر ان بیوت کے دروازہ دار میں نہ ہوں ایک کوچہ غیر نافذہ میں ہوں پس اگر درمیانی بیت بیچا گیا تو حق شفعہ اول و آخر کو ملے گا اور اگر اول بیچا گیا تو حق شفعہ درمیانی بیت والے کو ملے گا اور اگر آخر والا بیچا گیا تو حق شفعہ فقط درمیانی بیت کے مالک کو ملے گا۔ ایک دار میں تین بیت ایک دوسرے پر واقع ہیں اور ہر ایک کا ایک ایک شخص مالک ہے پھر ایک نے اپنا بیت فروخت کیا تو باقی دونوں اس کی شفعہ میں شریک ہوں گے بشرطیکہ سب بیوت کا راستہ اس دار میں ہو اور اگر بیوت کے دروازے کوچہ میں ہوں پس اگر بیچ والے نے فروخت کیا تو اعلیٰ و اسفل کو استحقاق شفعہ ہوگا اور اگر اعلیٰ نے فروخت کیا تو درمیانی کو اور اگر اسفل نے فروخت کیا تو بھی درمیانی کو حق شفعہ حاصل ہوگا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔

ایک دار میں تین بیت ہیں اور باقی میدان ہے اور میدان تین آدمیوں میں مشترک ہے اور بیوت ان میں سے دو شخصوں میں مشترک ہیں پس ہر دو مالکان بیوت میں سے ایک نے اپنا حصہ بیوت و میدان اس شخص کے ہاتھ بیوت و میدان میں اس کا شریک ہے فروخت کیا تو باقی دونوں آدمیوں کو جو صحن میں اس کے شریک ہیں استحقاق شفعہ نہ ہوگا یہ ذخیرہ سلیمیہ ہے۔ ایک دار ایک شخص کا ہے اور اس میں ایک بیت ہے جو اس کے اور ایک دوسرے کے درمیان مشترک ہے پس مالک دار نے اپنا دار فروخت کیا اور جار نے شفعہ طلب کیا اور بیت کے شریک نے بھی شفعہ طلب کیا تو بیت کا شریک حصہ بیت کے حق شفعہ میں اولیٰ ہوگا اور باقی دار پڑوسی اور اس شریک کے درمیان نصفا نصف حق شفعہ میں مل سکتا ہے یہ بدائع میں ہے۔ امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ ایک شخص نے ایک دیوار مع اس کی زمین کے خریدی پھر باقی دار خریدا پھر دیوار کے جار نے

شفعہ طلب کیا تو اس کو دیوار کا شفعہ ملے گا اور باقی دار میں حق شفعہ نہ ملے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ ایک دربہ غیر نافذہ میں ایک قوم کے گھر واقع ہیں پھر ان گھروں میں سے ایک گھر کے مالک نے ایک بیت جو بڑے کوچہ کی راہ پر ہے۔ اس شرط سے فروخت کیا کہ مشتری اس کا دروازہ بڑے راستہ کی طرف توڑے اور اس بیت کا جو راستہ دربہ میں تھا وہ فروخت نہ کیا تو اصحاب دربہ کو استحقاق شفعہ حاصل ہوگا اس واسطے کہ وقت بیع کے راستہ میں ان کی شرکت موجود تھی اور اگر اہل دربہ نے اپنا حق شفعہ مشتری کو دے دیا پھر مشتری نے اس کے بعد وہ بیت فروخت کیا تو اہل دربہ کو استحقاق شفعہ اس وجہ سے حاصل نہ ہوگا کہ دوسری بیع کے وقت ان کی شرکت باقی نہیں رہی پس حق شفعہ جار ملازق کو ملے گا اور وہ مالک دار ہے اس طرح اگر دار میں سے کوئی قطعہ بغیر اس کے اس راستہ کے جو دربہ میں ہو فروخت کیا تو بھی یہی حکم ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور ایک دربہ غیر نافذہ کی انتہا پر ایک مسجد محطہ ہے اور اس مسجد محطہ کا دروازہ دربہ میں ہے اور مسجد کی پشت دوسری جانب بڑے راستہ کی طرف ہے تو ایسا دربہ دربہ نافذہ ہے اگر اس میں کوئی دار فروخت کیا جائے تو اس کا حق شفعہ فقط جار کر لے گا اور مسجد خطہ سے وہ مسجد مراد ہے جس کو امام المسلمین نے وقت تقسیم غنیمت کے خطہ کر دیا ہو اور یہ حکم اس واسطے ہے کہ جب مسجد خطہ ٹھہری اور اس کی پشت بڑے راستے کی طرف ہوئی اور مسجد کے گرد ایسے گھر نہ ہوئے جو مسجد اور بڑے راستے کے درمیان حائل ہوں تو یہ دربہ بمنزلہ دربہ نافذہ کے ہوگا اور اگر مسجد اور بڑے راستے کے درمیان ایسے گھر ہوں جو اس مسجد اور بڑے راستے میں حائل ہوں تو اہل دربہ کو بوجہ شرکت کے شفعہ حاصل ہوگا اس واسطے کہ یہ دربہ نافذہ نہ ہوگا اور اگر مسجد خطہ انتہا پر نہ ہو بلکہ ابتدائے کوچہ میں واقع ہو پس اگر ابتدائے کوچہ سے مسجد تک نافذ پایا جائے تو اس میں سوائے جار ملازق کے کسی کو شفعہ حاصل نہ ہوگا اور اس کے ماسوائے غیر نافذ ہو گا حتیٰ کہ اس کوچہ

کے لوگوں کو سب کو شفعہ حاصل ہوگا اور اگر یہ مسجد خطہ نہ ہو مثلاً اہل دربہ میں سے کسی شخص نے دوسرے سے ایک دار انتہائے دربہ پر خرید کر کے اس کو مسجد بنا دیا اور اس کا دروازہ دربہ کی طرف سے رکھا ہو خواہ بڑے راستے کی طرف سے اس کا دروازہ رکھا ہو یا نہ رکھا ہو پھر ایک شخص نے اہل دربہ میں سے اپنا دار فروخت کیا تو بوجہ شرکت کے اہل دربہ کو شفعہ کا استحقاق ہوگا یہ محیط میں ہے۔

---

! نہ ہوگا یعنی شریک اس سے مقدم ہے۔ ـہ دربہ وہ آبادی جن کے درمیان صحن ہو اور گرد و پیش مکانات مملوکہ واقع ہوں۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 181 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

A person is the owner of a khan (inn), and inside the khan is a mosque which he separated and gave general permission to the people to call the adhan and pray in congregation. So the people did so, and it became a congregational mosque. Then the owner of the khan sold each and every room of the khan to different individuals until it became a 'dariba' (a type of alleyway/enclosure). Then, when one of these rooms was sold, Imam Muhammad (RA) stated that the right of pre-emption (shufa) belongs to all the owners of the rooms. This is mentioned in Fatawa Qazi Khan. In a house, if one door opens towards the 'dariba' and the other door opens towards the main road, then if this main road is a public thoroughfare, the people of the 'dariba' will not have the right of pre-emption because it is an 'open-ended lane' (koocha-e-nafizah). However, if this path is exclusive to the people of the 'dariba', then all the people of the 'dariba' will be pre-emptors because it is a 'dead-end lane' (koocha-e-ghair nafizah). This is from Muheet-e-Sarakhsi. Regarding alleys (zuqaiqat) that have a back entrance, there are two possibilities: If the site of the valley was originally owned property and they then turned it into a valley, then this and the mosque built at the end of the lane are legally considered equal. If the valley was originally as such, then this and the mosque's boundary are legally equal. This is reported from Imam Zahid Sheikh Abdul Wahid Shaibani. The mentioned Sheikh used to say that regarding the alleys of Bukhara which have a valley behind them, if a house in any of these alleys is sold, all the people of that alley will be pre-emptors, and it will not be considered like an open-ended path. Perhaps the Sheikh knew that valley was owned property. Sheikh al-Ajal Shams al-A'imma al-Sarakhsi (RA) used to rule that these alleys are like open-ended lanes. Others said it is permissible that those in Bukhara at the end of which there is a valley should be compared to what was mentioned before, and the matter of pre-emption should be based on accidental passage or the boundary of the area. This is in al-Muheet. In a dead-end lane, if any house is sold, the right of pre-emption will belong to all the residents of the lane. Whether the dead-end lane is circular, curved, or straight, it doesn't change the ruling. This is in al-Multaqat. In a dead-end lane, there is a bend (atf) which is called 'kham gard' in Persian, and there are several stories in this bend. Then a person sold a mansion in the upper or lower part of the lane within the bend; the right of pre-emption will belong to all partners. If this bend is square, for example, the aforementioned lane goes far and has an alley on each side, and there are houses in the lane and both alleys, then if a person sells his mansion in the bend, the right of pre-emption will

only belong to the people of the bend, not to the people of the main lane. If someone in the lane sells their mansion, then everyone will be pre-emptors. The conclusion is that due to the roundness of the bend, that lane does not legally become two lanes. Do you not see that in such a bend the shape of houses does not change, just as it does not change by having two alleys in a lane? But if the bend is square, it takes the ruling of a separate lane. Do you not see that in such a bend the shape of houses changes? So it is as if there is a lane within a lane. This is in al-Zakhira.

**Some Issues Regarding Dead-end Lanes** ☆

A lane extends in length, and at its lower end is another lane that is not open-ended, and between them is a 'dariba' acting as a barrier. The people of the first lane have no right in the second. Thus, if a house in the upper lane is sold, the people of the lower lane will also have the right of pre-emption because their partnership exists. But if a house in the lower lane is sold, pre-emption will only belong to the people of the lower lane. Similarly, if an extension (za'ida) occurs in the mentioned lane, the same ruling applies. This is in al-Qunya. It is written in al-Muntaqa that Ibn Sima'ah (RA) narrated from Imam Abu Yusuf (RA) from Imam Abu Hanifa (RA) that in a 'dariba' there is an extension which surrounds the entire 'dariba'. If a house on the door where this extension is located is sold, then all these people will be partners in its pre-emption. If this 'dariba' is rectangular and has an extension, but not like what I described to you, but rather resembles a lane, then the right of pre-emption for the houses in the extension will belong to the people of the extension, and the people of the 'dariba' will not be partners in their right. Imam Abu Yusuf (RA) said that both are equal, and the people of the extension will be partners in the right of pre-emption for their houses, and the people of the 'dariba' will not be partners with them. This is in al-Zakhira. Hisham (RA) narrated from Imam Muhammad (RA) that a person bought a room from another house which is adjacent to that person's house...

**फ़तावा आलमगीरी ..... खंड 8 | 181 | किताब अल-शुफ़ा (शुफ़ा की किताब)**

एक व्यक्ति एक खान (सराय) का मालिक है और खान में एक मस्जिद है जिसे उसने अलग करके लोगों को उसमें अज़ान देने और जमात के साथ नमाज़ पढ़ने की सामान्य अनुमति दे दी। तो लोगों ने ऐसा ही किया और वह जामा मस्जिद बन गई। फिर खान के मालिक ने खान का हर एक कमरा अलग-अलग व्यक्तियों के हाथ बेच दिया यहाँ तक कि वह 'दरीबा' (एक प्रकार का गलियारा/अहाता) बन गया। फिर उनमें से एक कमरा बेचा गया तो इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि इसका हक़-ए-शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) उन सभी लोगों को प्राप्त होगा जो कमरों के मालिक हैं। यह फ़तावा क़ाज़ी खान में है। एक घर में एक दरवाज़ा दरीबा की तरफ से और घर का दूसरा दरवाज़ा बड़े रास्ते की तरफ निकलता है, तो अगर यह रास्ता आम लोगों का रास्ता हो तो दरीबा वालों को हक़-ए-शुफ़ा नहीं होगा क्योंकि वह कूचा-ए-नाफ़िज़ा (खुली गली) है। और अगर यह रास्ता विशेष रूप से दरीबा वालों का हो तो दरीबा वाले सभी शुफ़ी (पूर्व-क्रेता) होंगे क्योंकि वह कूचा-ए-ग़ैर नाफ़िज़ा (बंद गली) है। यह मुहीत-ए-सरखसी में है। ज़क़ीक़ात (गलियाँ) जिनकी पीठ की ओर कुछ है, दो स्थितियों से खाली नहीं हैं: यदि वादी (घाटी) का स्थान वास्तव में निजी संपत्ति हो और उन्होंने उसे वादी बना दिया हो, तो यह और वह मस्जिद जिसे गली के अंत में बनाया गया है, क़ानूनी रूप से एक समान हैं। और अगर वह वादी वास्तव में ऐसी ही वादी हो तो यह और मस्जिद की सीमा क़ानूनी रूप से समान हैं। ऐसा ही इमाम ज़ाहिद शेख अब्दुल वाहिद शैबानी से वर्णित है। और उक्त शेख फ़रमाते थे कि बुखारा की गलियाँ जिनकी पीठ पर वादी है, अगर उन गलियों में से किसी गली का घर बेचा जाए तो उस गली के सभी लोग शुफ़ी होंगे, और इसे खुली गली की तरह नहीं माना जाएगा। शायद उक्त शेख ने उस वादी का निजी संपत्ति होना जान लिया हो। शेख अल-अजल शम्स अल-अइम्मा सरखसी (रह.) इन गलियों का हुक्म खुली गली के हुक्म की तरह ठहराते थे। और कुछ अन्यों ने कहा कि यह जायज़ है कि बुखारा में जिनके अंत में वादी है, उन्हें पहले बताई गई बातों पर क़यास किया जाए और शुफ़ा का मामला अचानक मार्ग या क्षेत्र की सीमा पर रखा जाए। यह मुहीत में है। बंद गली (कूचा-ए-ग़ैर नाफ़िज़ा) में अगर कोई घर बेचा गया तो हक़-ए-शुफ़ा गली के सभी लोगों को मिलेगा और गली के गोल, टेढ़े या सीधे होने से हुक्म में कोई फ़र्क़ नहीं होगा। यह मुल्तक़त में है। एक बंद गली में एक मोड़ (अतफ़) है जिसे फ़ारसी में (खम गर्द) कहते हैं और इस मोड़ में कई मंज़िलें हैं। फिर एक व्यक्ति ने गली के ऊपरी या निचले हिस्से के मोड़ में एक हवेली बेची तो हक़-ए-शुफ़ा सभी भागीदारों को मिलेगा। और अगर यह मोड़ वर्गाकार हो, उदाहरण के तौर पर उक्त गली दूर चली गई हो और

उसके हर तरफ एक छोटी गली (ज़क़ीक़ा) हो और गली और दोनों छोटी गलियों में घर हों, फिर एक व्यक्ति ने मोड़ में अपनी हवेली बेची तो हक़-ए-शुफ़ा केवल मोड़ वालों को मिलेगा, गली वालों को नहीं मिलेगा। और अगर गली में किसी ने अपनी हवेली बेची तो उसमें सब लोग शुफ़ी होंगे। निष्कर्ष यह है कि मोड़ के गोल होने से वह गली क़ानूनी रूप से दो गलियाँ नहीं बन जाती। क्या तुम नहीं देखते कि ऐसे मोड़ में घरों की बनावट नहीं बदलती, जैसे गली में दो छोटी गलियाँ होने से नहीं बदलती। और अगर मोड़ वर्गाकार हो तो वह दूसरी गली के हुक्म में हो जाता है। क्या तुम नहीं देखते कि ऐसे मोड़ में घरों की बनावट बदल जाती है? तो मानो गली के अंदर गली हो गई। यह ज़ख़ीरा में है।

**बंद गली के बारे में कुछ मसले** ☆

एक गली लंबाई में चली गई है और उसके निचले हिस्से में दूसरी गली है जो खुली नहीं है और उन दोनों के बीच में दरीबा आड़ है। और पहली गली के लोगों का दूसरी में कोई हक़ नहीं है। अतः ऊपरी गली में कोई घर बेचा गया तो निचली गली वालों को भी हक़-ए-शुफ़ा मिलेगा क्योंकि उनकी साझेदारी मौजूद है। और अगर निचली गली में बेचा गया तो शुफ़ा केवल निचली गली वालों को मिलेगा। इसी तरह अगर उक्त गली में कोई अतिरिक्त हिस्सा (ज़ायदा) हो तो भी यही हुक्म है। यह क़ुनिया में है। मुंतक़ा में लिखा है कि इब्न समाआ (रह.) ने इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से और उन्होंने इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) से वर्णन किया कि एक दरीबा में एक अतिरिक्त हिस्सा है जो पूरे दरीबा को घेरे हुए है। और उस अतिरिक्त हिस्से में जिस दरवाज़े पर यह है, एक घर बेचा गया तो ये लोग सब इसके शुफ़ा में भागीदार होंगे। और अगर यह दरीबा आयताकार हो और उसमें अतिरिक्त हिस्सा हो पर वैसा न हो जैसा मैंने तुमसे बयान किया बल्कि वह गली के समान हो, तो अतिरिक्त हिस्से के घरों का हक़-ए-शुफ़ा अतिरिक्त हिस्से वालों को मिलेगा और दरीबा वाले उनके हक़ में भागीदार न होंगे। और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) ने फ़रमाया कि ये दोनों समान हैं और अतिरिक्त हिस्से वाले अपने घरों के हक़-ए-शुफ़ा में भागीदार होंगे और दरीबा वाले उनके भागीदार न होंगे। यह ज़ख़ीरा में है। हिशाम (रह.) ने इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णन किया कि एक व्यक्ति ने दूसरे घर में से एक कमरा, जो उस व्यक्ति के घर के बगल में है, खरीद कर...

ایک شخص مالک خان (سرائے) ہے اور خان میں ایک مسجد ہے جس کو اس نے جدا کر کے لوگوں کو اس میں اذان دینے و جماعت سے نماز پڑھنے کا اذنِ عام دے دیا پس لوگوں نے ایسا ہی کیا اور وہ مسجدِ جماعت ہو گئی پھر مالکِ خان نے خان کا ہر ہر حجرہ ایک ایک شخص کے ہاتھ فروخت کر دیا یہاں تک کہ وہ دریبہ ہو گیا پھر ان میں سے ایک حجرہ فروخت کیا گیا تو امام محمدؒ نے فرمایا کہ اس کا حقِ شفعہ سب لوگوں کو جو حجروں کے مالک ہیں حاصل ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک دار میں ایک دروازہ دریبہ کی طرف سے اور دار کے دوسرے دروازہ سے بڑے راستہ کی طرف سے نکل گیا ہے پس اگر یہ راستہ عام لوگوں کی رہ گزر ہو تو اہل دریبہ کو حقِ شفعہ نہ ہو گا اس لیے کہ کوچہ نافذہ ہے اور اگر یہ راستہ خاص اہل دریبہ کا ہو تو اہل دریبہ سب شفیع ہوں گے کیونکہ کوچہ غیر نافذہ ہے یہ محیطِ سرخسی میں ہے۔ زقیقات کہ جس کی پشت داری ہے دو صورت سے خالی نہیں اگر موضع وادی دراصل مملوک ہو پھر انہوں نے اس کو وادی بنا دیا تو یہ اور وہ مسجد جس کو انتہائے کوچہ پر بنالیا ہے حکماً یکساں ہیں اور اگر وہ وادی دراصل ایسا ہی وادی ہو تو یہ اور وہ مسجد جس کو انتہائے کوچہ پر بنالیا ہے حکماً یکساں ہیں اور اگر وہ وادی دراصل ایسا ہی وادی ہو تو یہ اور مسجد خطہ حکماً یکساں ہیں ایسا ہی امام زاہد شیخ عبد الواحد شیبانی سے منقول ہے اور شیخ موصوف فرماتے تھے کہ بخارا کے زقیقات جن کی پشت پر وادی ہے اگر ان زقیقات میں سے کسی زقیقہ کا دار فروخت کیا جائے تو سب اہل زقیقہ شفیع ہوں گے اور یہ مثل طریقِ نافذہ کے قرار نہ دیا جائے گا پس شاید شیخ موصوفؒ نے اس وادی کا مملوک ہونا معلوم کیا ہو اور شیخ اجل شمس الائمہ سرخسیؒ ان زقیقات کا حکم مثل حکم کوچہ نافذہ کے قرار دیتے تھے اور بعض علاوہ نے فرمایا کہ جائز ہے کہ بخارا میں جن کی

انتہا پر وادی ہے وہ ما تقدم پر قیاس کیے جائیں اور امرِ شفعہ کا مبنی نفاذِ حادث و نفاذِ خطہ پر رکھا جائے یہ محیط میں ہے۔ کوچہ غیر نافذہ میں اگر کوئی دار فروخت کیا گیا تو حقِ شفعہ تمام اہل کوچہ کو ملے گا اور کوچہ غیر نافذہ کے مدور یا معوج یا مستقیم ہونے سے حکم میں فرق نہ ہو گا یہ ملتقط میں ہے۔ ایک کوچہ غیر نافذہ میں ایک عطف مدر ہے جس کو فارسی میں (خم گرد) کہتے ہیں اور اس عطف میں چند منزل ہیں پھر ایک شخص نے اعلیٰ یا اسفل کوچہ میں عطف میں ایک حویلی فروخت کی تو حقِ شفعہ تمام شریکوں کو ملے گا اور اگر یہ عطف مربع ہو مثلاً کوچہ مذکورہ دور چلا گیا ہو اس کے ہر جانب زقیقہ ہو اور کوچہ میں اور دونوں زقیقات میں گھر ہوں پھر ایک شخص نے عطف میں اپنی حویلی فروخت کی تو حقِ شفعہ فقط اصحابِ عطف کو ملے گا اہل کوچہ کو نہ ملے گا اور اگر کوچہ میں کسی نے اپنی حویلی فروخت کی تو اس میں سب لوگ شفیع ہوں گے اور حاصل یہ ہے کہ عطف کے مدور ہونے سے وہ کوچہ حکم میں دو کوچوں کے نہیں ہو جاتا ہے آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ ایسے عطف میں گھروں کی ہیات متغیر نہیں ہوتی ہے جیسے کہ کوچہ میں دوز قیق ہونے سے متغیر نہیں ہوتی ہے اور اگر عطف مربع ہو تو وہ دوسرے کوچہ کے حکم میں ہو جاتا ہے کیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ ایسے عطف میں گھروں کی ہیئت بدل جاتی ہے پس گویا کوچہ کے اندر کوچہ ہو گیا یہ ذخیرہ میں ہے۔

**کوچہ غیر نافذہ کی بابت کچھ مسائل** ☆

ایک کوچہ طول میں چلا گیا ہے اور اس کے اسفل میں دوسرا کوچہ ہے جو نافذ نہیں ہے اور ان دونوں کے بیچ میں دریبہ حائل ہے اور اوّل کوچہ کے لوگوں کا دوسرے میں کچھ حق نہیں ہے پس کوچہ علیاء میں کوئی دار فروخت کیا گیا تو کوچہ اسفل والوں کو بھی حقِ شفعہ ملے گا کیونکہ ان کی شرکت موجود ہے اور اگر کوچہ اسفل میں فروخت کیا گیا تو شفعہ فقط اہل اسفل کو ملے گا اسی طرح اگر کوچہ مذکور میں زائدہ واقع ہو تو بھی یہی حکم ہے یہ قنیہ میں ہے منتقٰی میں لکھا

ہے کہ ابن سماعہؒ نے امام ابو یوسفؒ سے انہوں نے امام ابو حنیفہؒ سے روایت کی کہ ایک دریبہ میں ایک زائدہ ہے جو تمام دریبہ کو دور گھیرے ہوئے ہے اور اس زائدہ میں جس در پر یہ ہے ایک دار فروخت کیا گیا تو یہ لوگ سب اس کے شفعہ میں شریک ہوں گے اور اگر یہ دریبہ مستطیل ہو اور اس میں زائدہ ہو مگر ایسا نہ ہو جیسا میں نے تجھ سے بیان کیا ہے بلکہ وہ کوچہ کے مشابہ ہو تو زائدہ کے گھروں کا حقِ شفعہ اہل زائدہ کو ملے گا اور اہل دریبہ ان کے حق میں شریک نہ ہوں گے اور امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ یہ دونوں یکساں ہیں اور اہل زائدہ اپنے گھروں کے حقِ شفعہ میں شریک ہوں گے اور اہل دریبہ ان کے شریک نہ ہوں گے یہ ذخیرہ میں ہے۔ ہشامؒ نے امام محمدؒ سے روایت کی کہ ایک شخص نے دوسرے دار میں سے ایک بیت جو اس شخص کے دار کے پہلو میں ہے خرید کر

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 182 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

He kept the door towards his own house and then sold only that room. When the neighbor of that person came and claimed the right of pre-emption (shufa) for that room, Imam Muhammad (RA) stated that if the buyer had closed the door of that room from the side of that house and opened it towards his own house, to the extent that the room was counted as part of his house, then the neighbor of his house would have the right of pre-emption. It is written in Hasan bin Ziyad's 'Kitab al-Shufa' that in a non-through alley (cul-de-sac), there is a separate bend (atf), and this bend connects back into the same alley at its other end. In this bend (1), if a house is sold, the right of pre-emption will only belong to the person whose house is adjacent to the sold property. However, if this bend does not open back into the alley, then all the residents of the bend will have the right of pre-emption. If they relinquish their right to the buyer, the other residents of the alley will not have any right of pre-emption. This is mentioned in 'Al-Muhit'.

A house was sold which has two doors leading into two different streets (zaqaq). It will be considered: if originally they were two separate houses where each had a door in a separate street and someone bought them, removed the middle wall and joined them, then the residents of each street will have the right to claim pre-emption for the adjacent part of the house on their side. But if it was originally one house with two doors, then the residents of both streets will have equal rights of pre-emption for the entire house. An example of this is: if there is one street and at its lower end another street runs along its entire side, and the middle wall between them is removed so they become one alley, then the residents of each original street will only have the right of pre-emption within their own street's limits, not on the other side. Similarly, if the end wall of a cul-de-sac is removed so that it becomes a through alley, then all the residents of the alley will share the right of pre-emption. This is in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'. It is written at the end of 'Shufat al-Asl' that in a house, a room is jointly owned by two people. One partner sold his share in the room to another person. There are two scenarios: if the room is partitioned between them, then the right of pre-emption will be shared among the partners who share the access path to that house, and the partner of the room alone will not get it. If the partners of the path relinquish their right, then the adjacent neighbor of the house will get it. This is in 'Al-Muhit'. A group of people bought land and divided it such that each took a plot for a house and left a common alley for transit. That alley remained a cul-de-sac. If a house at the end of this alley is sold, then all will be partners in its pre-emption. And

the person whose house is in front of the sold property or behind it, both are equal in their right of pre-emption. Similarly, if they inherited it from their forefathers and do not know how it was originally partitioned, this case and the aforementioned case are legally identical. This is stated in 'Al-Mabsut' in the chapter on pre-emption of buildings etc. If from a house, a room is bought whose upper story (balakhana) belongs to someone else and the path to the sold room is through another house, its right of pre-emption belongs only to the person through whose house the room's path lies. If he relinquishes his right, the owner of the upper story will get it based on the right of neighborhood (haqq al-jiwar).

**This is stated in 'Al-Mabsut', chapter 'Pre-emption of Goods'.**

If a sold house has two neighbors, one of whom is absent and the other present. The present neighbor filed a claim before a judge (qadi) who does not believe in pre-emption based on neighborhood. He dismissed the present neighbor's claim. Later, the absent neighbor appeared and filed a claim before a judge who believes in neighborhood pre-emption. That judge will decree the pre-emption of the entire house in the name of the claimant. However, if the first judge had said 'I annul the entire right of pre-emption related to this house', then the absent person's right would not be annulled either. Imam Muhammad (RA) has stated this, and this is the correct view. This is in 'Al-Badai'. A person died...

(1) Non-through alley (cul-de-sac).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 182 किताबुश शुफ़आ**

उसका दरवाज़ा अपने घर की तरफ़ छोड़ लिया, फिर सिर्फ़ उस कमरे (बेत) को बेच दिया। तो उस व्यक्ति का पड़ोसी आया और उसने उस कमरे का हक़-ए-शुफ़आ (Pre-emption) माँगा, तो इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि अगर खरीदार ने उस कमरे का दरवाज़ा उस घर की तरफ़ से बंद कर दिया था और अपने घर की तरफ़ से खोल लिया था यहाँ तक कि वह कमरा उसके घर का हिस्सा गिना जाता था, तो उसके पड़ोसी को उस कमरे का हक़-ए-शुफ़आ मिलेगा। हसन बिन ज़ियाद की 'किताबुश शुफ़आ' में लिखा है कि एक बंद गली (कोचा गैर नाफ़िज़ा) में एक अलग मोड़ (अतफ़) है और यह मोड़ अपने दूसरे किनारे से उसी गली में खुलता है जिसमें यह स्थित है। तो इस मोड़ (1) में एक घर बेचा गया, तो उसका हक़-ए-शुफ़आ केवल उसी व्यक्ति को मिलेगा जिसका घर उस बिके हुए घर से सटा हुआ है। और अगर यह मोड़ उस गली में न खुलता हो, तो हक़-ए-शुफ़आ उस मोड़ के सभी निवासियों को मिलेगा। फिर अगर उन्होंने अपना हक़-ए-शुफ़आ खरीदार को दे दिया, तो गली के निवासियों को इसमें हक़-ए-शुफ़आ हासिल नहीं होगा। यह मुहीत (किताब) में है।

एक घर बेचा गया और उसके दो दरवाज़े दो अलग-अलग गलियों (ज़क़ाक़) में हैं, तो देखा जाएगा कि अगर असल में वे एक घर के बजाय दो घर थे कि हर एक का दरवाज़ा एक-एक गली में हो और किसी व्यक्ति ने उन्हें खरीदकर बीच की दीवार हटाकर दोनों को एक कर दिया हो, तो हर गली वालों को अधिकार होगा कि वे अपनी ओर के सटे हुए घर का हक़-ए-शुफ़आ ले लें। और अगर वास्तव में एक ही घर हो लेकिन उसके दो दरवाज़े हों, तो दोनों गलियों वालों को पूरे घर में बराबर हक़-ए-शुफ़आ मिलेगा। और इसकी मिसाल यह है कि अगर एक गली हो और उसके निचले हिस्से में दूसरी गली उसकी पूरी तरफ़ तक हो, फिर उनकी बीच की दीवार हटा दी गई यहाँ तक कि दोनों एक ही गली हो गए, तो हर गली वालों को केवल अपनी ही गली के बीच में शुफ़आ मिलेगा, दूसरी तरफ़ नहीं मिलेगा। इसी तरह अगर बंद गली की पिछली दीवार हटा दी गई यहाँ तक कि वह खुली गली (कोचा नाफ़िज़ा) बन गई, तो उस गली के सभी निवासियों को शुफ़आ का हक़ साझेदारी के तौर पर हासिल रहेगा। यह मुहीत सरख्सी में है। 'शुफ़अतुल असल' के अंत में लिखा है कि एक घर में एक कमरा दो लोगों के बीच साझा है, फिर एक साझेदार ने कमरे का अपना हिस्सा किसी दूसरे व्यक्ति को बेच दिया, तो इसकी दो स्थितियाँ हैं: कि अगर कमरा दोनों के बीच विभाजित हो, तो हक़-ए-शुफ़आ उस घर के रास्ते के साझेदारों के बीच साझा होगा, केवल कमरे के साझेदार को नहीं मिलेगा। फिर अगर घर के रास्ते के साझेदारों ने शुफ़आ छोड़ दिया, तो घर के सटे हुए पड़ोसी (जार मुलासिक) को

मिलेगा। यह मुहीत में है। एक कौम ने ज़मीन खरीदकर उसे इस तरह बाँटा कि हर एक ने एक घर की जगह ले ली और उसमें से एक साझा गली अपनी आवाजाही के लिए छोड़ दी। फिर वह गली बंद गली (कोचा गैर नाफ़िज़ा) रह गई। फिर उस गली के अंत में एक घर बेचा गया, तो सब लोग उसके शुफ़आ में शरीक होंगे। और जिस व्यक्ति का घर उस बिके हुए घर के आगे या पीछे हो, हक़-ए-शुफ़आ में दोनों बराबर हैं। इसी तरह अगर उन लोगों को यह विरासत में अपने बाप-दादा से मिला हो और वे न जानते हों कि इसकी असल कैसी थी, तो यह सूरत और ऊपर बताई गई सूरत दोनों हुक्म में समान हैं। ऐसा 'अल-मबसूत' के इमारतों आदि के शुफ़आ वाले अध्याय में है। अगर एक घर में से एक कमरा खरीदा जिसका ऊपरी हिस्सा (बाला खाना) दूसरे व्यक्ति का है और बिके हुए कमरे का रास्ता दूसरे घर में है, तो उसका हक़-ए-शुफ़आ केवल उसे मिलेगा जिसके घर में उस कमरे का रास्ता है। फिर अगर उसने शुफ़आ छोड़ दिया, तो हक़-ए-शुफ़आ ऊपर वाले घर (बाला खाना) के मालिक को पड़ोस के अधिकार (हक़-ए-जवार) के कारण मिलेगा।

**ऐसा 'अल-मबसूत' के'बाब अल-शुफ़आ फ़िल उरूज़' में है।**

अगर बिके हुए घर के दो पड़ोसी हों, उनमें से एक अनुपस्थित है और दूसरा उपस्थित है। तो उपस्थित पड़ोसी ने ऐसे काज़ी (न्यायाधीश) के पास शिकायत की जो पड़ोस के आधार पर शुफ़आ (शुफ़आ बिल-जवार) को नहीं मानता। तो उसने उपस्थित पड़ोसी का शुफ़आ रद्द कर दिया। फिर अनुपस्थित पड़ोसी आया और उसने ऐसे काज़ी के पास शिकायत की जो पड़ोस के आधार पर शुफ़आ का क़ायल है, तो वह शुफ़आ माँगने वाले के नाम पूरे घर के शुफ़आ की डिक्री (फैसला) देगा। और अगर पहले काज़ी ने कहा हो कि 'मैं पूरे शुफ़आ को जो इस घर से संबंधित है, रद्द करता हूँ', तो अनुपस्थित व्यक्ति का हक़-ए-शुफ़आ रद्द नहीं होगा। ऐसा ही इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया है और यही सही है। यह 'बदाए' में है। एक व्यक्ति मरा...

(1) बंद गली (कोचा गैर नाफ़िज़ा)।

اس کا دروازہ اپنے دار کی طرف چھوڑ لیا پھر فقط اس بیت کو فروخت کیا پس اس شخص کا جارا آیا اور اس نے اس بیت کو شفعہ میں طلب کیا تو امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر مشتری نے اس بیت کا دروازہ اس دار کی طرف سے بند کر دیا تھا اور اپنے دار کی طرف سے چھوڑ لیا تھا یہاں تک کہ یہ بیت اس کے دار میں سے شمار ہوتا تھا تو اس کے پڑوسی کو اس بیت کا حق شفعہ ملے گا حسن بن زیاد کی کتاب الشفعہ میں لکھا ہے کہ ایک کوچہ غیر نافذہ میں ایک عطف منفر د واقع ہے اور یہ عطف اپنے دوسرے کنارے سے اسی کوچہ میں جس میں واقع ہے نافذ ہو گئی ہے پس اس عطف (۱) میں ایک دار فروخت کیا گیا تو اس کا حق شفعہ فقط اسی شخص کو ملے گا جس کا دار اس مبیعہ سے ملاصق ہے اور اگر یہ عطفہ اس کوچہ میں نافذ نہ ہو تو حق شفعہ تمام اہل عطف کو ملے گا پھر اگر انہوں نے اپنا حق شفعہ مشتری کو دے دیا تو اہل کوچہ کو اس میں حق شفعہ حاصل نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔

ایک دار فروخت کیا گیا اور اس کے دو دروازے دو زقاق میں ہیں تو دیکھا جائے گا کہ اگر دراصل وہ دار واحد دو دار ہوں کہ ہر ایک کا دروازہ ایک ایک زقاق میں ہو اور اس کو کسی شخص نے خرید کر درمیانی دیوار دور کر کے دونوں کو ایک کر دیا ہو تو ہر زقاق والوں کو اختیار ہو گا کہ اپنی طرف کے متصل دار کو حق شفعہ میں لے لیں اور اگر دراصل ایک ہی دار ہو مگر اس کے دو دروازے ہوں تو دونوں زقاق والوں کو پورے دار میں برابر حق شفعہ حاصل ہو گا اور اس کی نظیر یہ ہے کہ اگر ایک زقاق ہو اور اس کے اسفل میں دوسرا زقاق اس کے پوری جانب تک ہو پھر ان کی درمیانی دیوار دور کر دی گئی حتیٰ کہ دونوں ایک کوچہ ہو گئے تو ہر زقاق والوں کو فقط اپنی ہی زقاق کے بیچ میں شفعہ ملے گا دوسری جانب میں نہ ملے گا۔ اس طرح

اگر کوچہ غیر نافذہ کے اسفل کی دیوار دور کر دی گئی یہاں تک کہ کوچہ نافذہ ہو گیا تو سب اہل کوچہ کو بشرکت استحقاق شفعہ حاصل رہے گا یہ محیط سرسی میں ہے شفعۃ الاصل کے آخر میں لکھا ہے کہ ایک دار میں ایک حجرہ دو آدمیوں میں مشترک ہے پس ایک شریک نے اپنا حصہ حجرہ دوسرے شخص کے ہاتھ فروخت کیا تو اس کی دو صورتیں ہیں کہ اگر حجرہ دونوں میں منقسم ہو تو حق شفعہ اس دار کے راستہ کے شریکوں میں مشترک ہو گا فقط شریک حجرہ کو نہ ملے گا پھر اگر دار کے راستہ کے شریکوں نے شفعہ دے دیا تو دار کے جار ملاصق کو ملے گا یہ محیط میں ہے۔ ایک قوم نے ایک زمین خرید کر اس کو اس طرح تقسیم کر لیا کہ ہر ایک نے ایک دار کی جگہ لے لی اور اس میں سے ایک کوچہ مشترک اپنی آمد ورفت کے لیے چھوڑ دیا پس وہ کوچہ مورد غیر نافذہ رہ گیا پس اس کوچہ کی انتہا پر ایک دار فروخت کیا گیا تو سب لوگ اس کے شفعہ میں شریک ہوں گے اور جس شخص کا دار اس زار مبیعہ سے اگلی طرف ہو یا پچھلی طرف ہو حق شفعہ میں دونوں برابر ہیں اس طرح اگر ان لوگوں نے اپنے باپ دادا سے اسی طور پر میراث میں پایا ہو اور یہ نہ جانتے ہوں کہ اس کی اصل کیوں کر تھی تو یہ صورت اور صورت مذکورہ دونوں حکماً یکساں ہیں کذا فی المبسوط ۔ فی باب الشفعة فی البناء وغیرہ۔ اگر ایک دار میں سے ایک بیت خریدا اس کا بالا خانہ دوسرے شخص کا ہے اور بیت مبیعہ کا راستہ دوسرے دار میں ہے تو اس کا حق شفعہ فقط اس کو ملے گا جس کے دار میں اس بیت کا راستہ ہے پھر اگر اس نے شفعہ دے دیا تو حق شفعہ بالا خانہ والے کو بسبب حق جوار کے حاصل ہو گا۔

**کذا فی المبسوط باب الشفعة فی العروض**

اگر ایک دار مبیعہ کے دو جار ہوں ان میں سے ایک غائب ہے اور دوسرا حاضر ہے پس حاضر نے ایسے قاضی سے نالش کی جو شفعہ بالجوار کا قائل نہیں ہے پس اس نے حاضر کا شفعہ باطل کر دیا پھر غائب حاضر ہوا اور اس نے ایسے قاضی سے نالش کی جو شفعہ بالجوار کا قائل ہے تو

اس طالب شفعہ کے نام پورے دار کے شفعہ کی ڈگری کرے گا اور اگر قاضی اول نے فرمایا ہو کہ میں پورے شفعہ کو جو اس دار سے متعلق ہے باطل کرتا ہوں تو غائب کا حق شفعہ باطل نہ ہو گا ایسا ہی امام محمدؒ نے فرمایا ہے اور یہی صحیح ہے یہ بدائع میں ہے۔ ایک شخص مر...

(۱) کوچہ غیر نافذہ۔

...gone and he left a house (dar) as an inheritance for his children. Then one person among the children died and left his share of the inheritance among his three sons. Then, if one of the three sold his share, in the right of pre-emption (shufa), the descendants of the seller's father and the descendants of his grandfather will all be equal pre-emptors (shafi'); no one will have priority over another. This is in 'Al-Muhit'. Regarding pre-emption in Hasan bin Ziyad, it is stated that a group inherited a house consisting of several stories (manzil) and divided it among themselves. Thus, each received one story as his share, and they left the path as common (joint) among them. Then, one owner of a story sold his story, and the owners of the remaining stories gave the right of pre-emption to the purchaser; in this case, the neighbor will have the right of pre-emption if his owned story is adjacent (mulasic) to the sold story. And if he is adjacent (mulaziq) to the path which is common to all, even if it is not adjacent to the sold story itself, he will have the option to take the sold story by pre-emption due to the proximity of the common path. However, if he is not adjacent to the story or the common path, but is adjacent to some other story of that house, he shall not get pre-emption. Thus, this case is proof that just as the right of pre-emption is granted to the neighbor of the sold item, it is also granted to the neighbor of the [access path to] the sold item. This is in 'Al-Dhakirah'.

In the 'Kitab al-Shurb' of Sheikh Abu Umar al-Tahiri, it is mentioned that in a house there are three rooms (bayt), each room having a separate owner, and the path for all rooms is within that house, but the path of that house leads to another house, and the path of the second house leads to a non-thoroughfare alley (koocha-e-ghair nafizah). Therefore, if one room from the inner house is sold, the owners of the remaining two rooms will have priority in pre-emption over the owner of the outer house. Then, if those two relinquish their right to the purchaser, the owner of the outer house shall get pre-emption. If he also relinquishes it, then all residents of the alley shall share in the right of pre-emption. A piece of land was common among several people; they divided it among themselves but left a path as common between them and made it a thoroughfare (nafizah), then built houses on the right and left of the path and kept their doors facing the alley. If some then sold their house, the right of pre-emption would be equal among the people. And if those people had said, "We have made this path a path for Muslims (public)," the ruling remains the same. Sheikh Sadr al-Shahid stated that this is the preferred (mukhtar) ruling; this is in 'Al-Muhit'. If a person bought a house in a non-thoroughfare alley, and then bought

another house in the same alley, the residents of the alley would have the option to take the first house by right of pre-emption, because at the time of buying the first house, the purchaser was not a pre-emptor, but for the second house, the purchaser also became a pre-emptor along with the alley residents. This is in 'Al-Zahiriyyah'. A house is common among three people; then one person bought the share of each one after another; in this case, the neighbor will have the right of pre-emption to take the first third, and he will have no way to take the remaining two-thirds. And if a house is common among four people, and one person bought the shares of three people one after another, and the fourth partner is absent, then if he appears, he shall have the option to take the first one's share in pre-emption and will be a partner with the purchaser in taking the shares of the other two partners. And if one of the four partners bought the shares of two partners one after another, and then the fourth partner appeared, he would be a partner in pre-emption for both shares. This is in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'. In 'Al-Haruni' it is written that a house is common among three people; one person bought one share from them, then another person bought the second share, then the third partner who had not sold his share appeared, so he will have the option to take both shares in pre-emption. And if the third partner is not present until the first purchaser went to the second purchaser and demanded pre-emption, he would have such an option and a decree of pre-emption would be made in his name, so both shares would belong to him. Then after that, if the third partner who was absent appeared and demanded pre-emption, he would take the entire share that the first purchaser had taken, and would take half of the share that the second one had bought. And if the third partner arrived at a time when the Qadi (judge) had not yet... [the share purchased by the second purchaser in the name of the first purchaser]

गया और उसने एक घर अपनी औलाद के लिए विरासत में छोड़ा, फिर औलाद में से एक व्यक्ति मर गया और उसने अपनी विरासत का हिस्सा अपने तीन बेटों के बीच छोड़ दिया। फिर उन तीनों में से एक ने अपना हिस्सा बेच दिया, तो उसके शुफ़ा (Pre-emption) के अधिकार में विक्रेता के पिता की औलाद और उसके दादा की औलाद सब समान रूप से शुफ़ा के अधिकारी (शफ़ी) होंगे, कोई भी किसी की तुलना में श्रेष्ठ (औला) नहीं होगा। यह 'मुहीत' में है। हसन बिन ज़ियाद के शुफ़ा संबंधी प्रकरण में है कि एक कौम ने एक घर विरासत में पाया जिसमें कई मंज़िलें थीं, और उसे आपस में बाँट लिया। इस प्रकार प्रत्येक के हिस्से में एक मंज़िल आई और रास्ता आपस में साझा (संयुक्त) छोड़ दिया। फिर एक मंज़िल के मालिक ने अपनी मंज़िल बेच दी और शेष मंज़िलों के मालिकों ने शुफ़ा का अधिकार क्रेता (ग्राहक) को दे दिया, तो पड़ोसी को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा यदि उसकी मंज़िल बिकी हुई मंज़िल से सटी हुई (मुलासिक) हो। और यदि वह उस रास्ते से जुड़ा हो जो सब में साझा है और बिकी हुई मंज़िल से सटा हुआ न हो, तो उसे यह अधिकार होगा कि साझा रास्ते के पड़ोस के कारण बिकी हुई मंज़िल को शुफ़ा के तहत ले ले। और यदि वह न तो मंज़िल से सटा हो और न ही साझा रास्ते से, बल्कि उसी घर की किसी दूसरी मंज़िल से सटा हो, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा। अतः यह मसला इस बात का प्रमाण है कि जिस प्रकार शुफ़ा का अधिकार बिकी हुई वस्तु के पड़ोसी को मिलता है, उसी प्रकार उस वस्तु (बिकी हुई) के पड़ोसी को भी मिलता है। यह 'ज़खीरा' में है।

शेख अबू उमर अल-तहरी की 'किताब-उश-शुर्ब' में है कि एक घर में तीन कमरे (बैत) हैं, प्रत्येक कमरे का अलग-अलग मालिक है और सभी कमरों का रास्ता उसी घर के रास्ते से है, परंतु उस घर का रास्ता दूसरे घर में है और दूसरे घर का रास्ता एक बंद गली (कूचा-ए-ग़ैर नाफ़िज़ा) में है। अतः यदि अंदर वाले घर के कमरों में से एक कमरा बेचा गया, तो बाकी दो कमरों के मालिक बाहरी घर के मालिक की तुलना में शुफ़ा के अधिकार में अग्रणी होंगे। फिर यदि उन दोनों ने अपना अधिकार क्रेता को दे दिया, तो बाहरी घर के मालिक को शुफ़ा मिलेगा। यदि उसने भी छोड़ दिया, तो गली के सभी निवासी शुफ़ा में भागीदार होंगे। एक ज़मीन कई लोगों में साझा थी, उन्होंने इसे आपस में बाँट लिया लेकिन रास्ता बीच में साझा छोड़ दिया और उसे आम रास्ता (नाफ़िज़ा) बना दिया, फिर रास्ते के दाएँबाएँ घर बनाए और उनके दरवाज़े गली की ओर रखे। फिर यदि किसी ने अपना घर बेचा, तो शुफ़ा का अधिकार सभी लोगों को समान रूप से प्राप्त होगा। और यदि उन लोगों ने कहा हो कि

हमने यह रास्ता मुसलमानों के लिए (सार्वजनिक) कर दिया है, तब भी यही नियम है। शेख सदर शहीद ने फरमाया कि यही नियम मान्य (मुख़्तार) है, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने एक बंद गली में एक घर खरीदा, फिर उसी गली में दूसरा घर खरीदा, तो गली वालों को पहले घर को शुफ़ा के अधिकार से लेने का अधिकार होगा, क्योंकि पहला घर खरीदने के समय क्रेता शफ़ी नहीं था, लेकिन दूसरे घर के मामले में वह भी गली वालों के साथ शफ़ी हो गया। यह 'ज़हीरिया' में है। एक घर तीन लोगों में साझा है, फिर एक व्यक्ति ने प्रत्येक का हिस्सा एक-एक करके खरीद लिया, तो पड़ोसी को शुफ़ा का अधिकार होगा कि वह पहला तिहाई हिस्सा ले ले और बाकी दो तिहाई लेने का उसे कोई अधिकार नहीं होगा। और यदि एक घर चार लोगों में साझा हो और एक व्यक्ति ने तीन लोगों का हिस्सा एक के बाद एक खरीदा और चौथा साझीदार अनुपस्थित हो, फिर वह उपस्थित हो जाए, तो उसे अधिकार होगा कि पहले का हिस्सा शुफ़ा में ले ले और बाकी दो हिस्सों को लेने में वह क्रेता का साझीदार होगा। और यदि चार साझीदारों में से एक ने दो साझीदारों का हिस्सा एक के बाद एक खरीदा, फिर चौथा साझीदार उपस्थित हुआ, तो वह दोनों हिस्सों में शुफ़ा का साझीदार होगा। यह 'मुहीत सरख़सी' में है। 'हारून्नी' में लिखा है कि एक घर तीन लोगों में साझा है, एक व्यक्ति ने उनमें से एक हिस्सा खरीदा, फिर दूसरे व्यक्ति ने दूसरा हिस्सा खरीदा, फिर तीसरा साझीदार जिसने अपना हिस्सा नहीं बेचा था, वह आया, तो उसे अधिकार होगा कि दोनों हिस्से शुफ़ा में ले ले। और यदि तीसरा साझीदार उपस्थित न हो यहाँ तक कि पहला क्रेता दूसरे क्रेता के पास आया और शुफ़ा की माँग की, तो उसे वैसा ही अधिकार होगा और उसके नाम शुफ़ा की डिक्री कर दी जाएगी, अतः दोनों हिस्से उसके हो जाएंगे। फिर इसके बाद यदि तीसरा साझीदार जो अनुपस्थित था, आया और उसने शुफ़ा माँगा, तो जो हिस्सा पहले क्रेता ने लिया था वह उसे पूरा ले लेगा, और जो हिस्सा दूसरे ने खरीदा था उसमें से आधा ले लेगा। और यदि तीसरा साझीदार ऐसे समय आया कि अभी काज़ी (न्यायाधीश) ने पहले क्रेता के नाम पर दूसरे क्रेता द्वारा खरीदे गए हिस्से की...

گیا اور اس نے ایک دار اپنی اولاد کے واسطے میراث چھوڑا پھر اولاد میں سے ایک آدمی مرا اور اس نے اپنا حصہ میراث اپنے تین بیٹوں کے درمیان میراث چھوڑا پس تین میں سے ایک نے اپنا حصہ دار فروخت کیا تو اس کے حق شفعہ میں بائع کے باپ کی اولاد اور اس کے دادا کی اولاد سب برابر شفیع ہوں گے کوئی کسی کی بہ نسبت اولیٰ نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ شفعہ حسن بن زیاد میں ہے کہ ایک قوم نے ایک دار جس میں چند منزل ہیں میراث پایا اور باہم تقسیم کر لیا پس ہر ایک کے حصہ میں ایک منزل آئی اور راستہ باہم مشترک چھوڑ دیا پھر ایک مالک منزل نے اپنی منزل فروخت کردی اور باقی منازل کے مالکوں نے حق شفعہ مشتری کو دے دیا تو پڑوسی کو حق شفعہ حاصل ہوگا اگر اس کی ملک منزل مبیع سے ملاصق ہو اور اگر اس سے ملازق ہو جو سب میں باہم مشترک ہے اور منزل مبیع سے ملاصق نہ ہو تو اس کو اختیار ہوگا کہ منزل مبیع کو بسبب جوار طریق مشترک کے شفعہ میں لے لے اور اگر ملازق منزل یا ملازق طریق مشترک نہ ہو بلکہ اس دار کی کسی دوسری منزل سے ملازق ہو تو اس کو شفعہ نہ ملے گا۔ پس یہ مسئلہ اس بات کی دلیل ہے کہ حق شفعہ جس طرح مبیع کے پڑوسی کو ملتا ہے اسی طرح حق المبیع کے پڑوسی کو بھی ملتا ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔

شیخ ابو عمر والطہری کی کتاب الشرب میں ہے کہ ایک دار میں تین بیت ہیں ہر بیت کا ایک ایک علیحدہ علیحدہ مالک ہے اور سب بیوت کا راستہ اس دار میں کا راستہ اس دار میں ہے مگر اس دار کا راستہ دوسرے دار میں ہے اور دوسرے دار کا ایک کوچہ غیر نافذہ میں ہے پس دار داخلہ کے بیوت میں سے ایک بیت فروخت کیا گیا تو باقی دونوں بیت کے مالک بہ نسبت دار خارجہ کے مالک کے حق شفعہ میں اقدم ہوں گے پھر ان دونوں نے اپنا حق مشتری کو دے دیا تو دار خارجہ

کے مالک کو شفعہ ملے گا پس اگر اس نے بھی دے دیا تو تمام اہل کوچہ حق شفعہ میں شریک ہوں گے۔ ایک زمین چند آدمیوں میں مشترک تھی اس کو انہوں نے باہم تقسیم کر لیا مگر راستہ اپنے درمیان مشترک چھوڑ دیا اور اس کو نافذہ بنایا پھر راستہ کے دائیں بائیں گھر بنائے اور ان کے دروازے کوچہ کی طرف سے رکھے پھر بعض نے اپنا دار فروخت کیا تو حق شفعہ لوگوں کو برابر حاصل ہو گا اور اگر ان لوگوں نے کہا ہو کہ ہم نے یہ راستہ مسلمانوں کا راستہ کر دیا تو بھی یہی حکم ہے شیخ صدر شہیدؒ نے فرمایا کہ یہی حکم مختار ہے یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے ایک کوچہ غیر نافذہ میں ایک دار خریدا پھر اسی کوچہ میں دوسرا دار خریدا تو اہل کوچہ کو دار اول بحق شفعہ لینے کا اختیار ہو گا اس واسطے کہ دار اول خریدنے کے وقت مشتری شفیع نہ تھا دوسرے دار میں مشتری بھی اہل کوچہ کے ساتھ شفیع ہو گیا یہ ظہیریہ میں ہے۔ ایک دار تین آدمیوں میں مشترک ہے پھر ایک شخص نے ہر ایک کا حصہ ہر ایک سے ایک بعد دوسرے کے خرید لیا تو جار کو حق شفعہ اختیار ہو گا کہ اول تہائی لے لے اور باقی دو تہائی لینے کی اس کو کوئی راہ نہ ہو گی اور اگر ایک دار چار آدمیوں میں مشترک ہو پھر ایک شخص نے تین آدمیوں کا حصہ ایک بعد دوسرے کے خرید لیا اور چوتھا شریک غائب ہے پھر وہ حاضر ہوا تو اس کو اختیار ہوگا کہ اول کا حصہ شفعہ میں لے لے اور باقی دو حصہ داروں کا حصہ لینے میں مشتری کا شریک ہوگا اور اگر چاروں شریکوں میں سے ایک شریک نے دو شریکوں کا حصہ ایک بعد دوسرے کے خرید لہو پھر چوتھا شریک حاضر ہوا تو دونوں حصوں میں شریک شفعہ ہو گا۔ یہ محیط سرخسی میں ہے۔ ہارونی میں لکھا ہے کہ ایک دار تین آدمیوں میں مشترک ہے پس ایک شخص نے ان میں سے ایک حصہ خریدا پھر دوسرے شخص نے دوسرے کا حصہ خریدا پھر تیسرا شریک جس نے اپنا حصہ نہیں فروخت کیا ہے آیا ہے تو اس کو اختیار ہوگا کہ دونوں حصے حق شفعہ میں لے لے اور اگر تیسرا شریک حاضر نہ ہو حتیٰ کہ پہلا مشتری دوسرے مشتری کے

پاس آیا اور شفعہ طلب کیا تو اس کو ایسا اختیار ہو گا اور اس کے نام شفعہ کی ڈگری کر دی جائے گی پس دونوں حصے اس کے ہو جائیں گے پھر اس کے بعد اگر تیسرا شریک جو غائب تھا حاضر ہوا اور اس نے شفعہ طلب کیا تو جو حصہ مشتری اول نے لیا تھا وہ پورا لے لے گا اور جو حصہ دوسرے نے خریدا تھا اس میں سے آدھا لے لے گا اور اگر تیسرا شریک ایسے وقت میں آ گیا کہ ہنوز قاضی نے مشتری اول کے نام دوسرے مشتری کے خرید کردہ حصہ

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 | 182 | Kitab al-Shuf'ah (The Book of Pre-emption)**

...if a decree for pre-emption has not been issued for him, then the decree for the entire two portions will be issued in the name of the third partner; this is in *Al-Muhit*. In a sold property, if another person has the right of water discharge (*masil-ul-ma*), he shall have the right of pre-emption by reason of contiguity (*jawar*), but the right of discharge is not like the right of irrigation (*shurb*); this is in *Tatarkhaniyah*. If a canal belonging to one person passes through the land of another, and there is a watermill inside a house on that canal, and the owner of the canal, the watermill, and the house sells all of them together, and the owner of the land claims pre-emption in everything, he shall be granted pre-emption. If there is land belonging to a third person between this land and the site of the watermill, and land belonging to another person on the other side of the canal, and both claim pre-emption, then both shall have the option to take the sold property because they are both equal in the right of contiguity to the canal, even if some of these pre-emptors are closer to the side of the mill; this is in *Al-Mabsut*. If a small canal is branched out from a large river like the Tigris for a specific group of people, and their lands are irrigated by this small canal, and one of the owners of the small canal sells his land along with its right of irrigation (*shurb*), then those whose lands are irrigated by that small canal shall be entitled to pre-emption. Among them, the person whose land is near the sold property and the one whose land is far are equal. If there is another plot of land adjacent to the sold property which is irrigated from the large river, its owner shall not share in the pre-emption of that plot with those whose lands are irrigated from the small canal. It is stated in the book of Hilal al-Basri that if lands in front of or behind a winding canal are sold, and if the winding is such that it doubles back, that canal is legally treated as two canals, and the right of pre-emption shall belong only to the partners up to the point of winding. If they waive their right in favor of the purchaser, it shall go to the rest who have the right of irrigation from that canal. If the winding is circular or an inclination, then all the people of the canal shall have the right of pre-emption, as the scholars have treated such a winding canal as a single canal. In *Al-Muntaqa*, it is narrated from Imam Muhammad (RA) that if a canal is shared by a community, and their lands and gardens are situated on this canal from which they have the right of irrigation, all these people are partners in it. Therefore, if any land or garden among them is sold, all these people shall share in the right of pre-emption. However, if these people turn their lands and gardens into houses and

become indifferent to the water, the right of pre-emption will remain only by reason of contiguity (*jawar*), as is the case with city houses. But if some lands remain for cultivation and some gardens remain to be irrigated by that water, they shall remain partners in the former rights of irrigation and pre-emption; this is in *Al-Muhit*. A community has the right of irrigation from a canal, but the land of the canal belongs to another person. If a person sells his land while the water in the canal was cut off, according to Imam Muhammad (RA), those people shall have the right of pre-emption, but according to the reasoning of Imam Abu Yusuf (RA), in the state where the water was cut off, they shall not have the right of pre-emption, similar to the ruling in *Al-Muhit* regarding a collapsed upper story; this is in *Fatawa Qadi Khan*. If a person purchases a canal along with its surrounding area, and on one side of the upper part of the canal there is land belonging to one person and on one side of the lower part there is land belonging to another, both individuals shall have the right of pre-emption in the entire canal from top to bottom. The same ruling applies to underground water channels (*kariz*), springs, and wells, for these are among immovable properties but the right of pre-emption in them is acquired by reason of contiguity. Similarly, if the mouth of a *kariz* is in someone's land and the place where its water appears and flows is in another's land, then all people who have contiguity from the mouth to the place where the water falls shall be partners in its pre-emption. If a canal belongs exclusively to one person who also has land on it, and other people also have lands there but they do not irrigate from that canal, and the owner of the canal sells only the canal, then all these people shall share in its pre-emption.

1. *Masil* is the right to discharge water, like a drain etc., and *shurb* is water for irrigation.
2. Like the shape of wave-like square right angles, it is mentioned in the margin that up to this all are shared, and from 'B' to 'C' are shared. Likewise, circularity and inclination.

के शुफ़ा की डिक्री नहीं की है, तो तीसरे साझीदार के नाम पूरे दोनों हिस्सों की डिक्री होगी, यह 'मुहीत' में है। एक बेची गई चीज़ में दूसरे व्यक्ति का 'मसील-उल-मा' (पानी बहने का रास्ता) का अधिकार है, तो उसे पड़ोस (जवार) के कारण शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा और 'मसील', 'शुर्ब' (सिंचाई का अधिकार) के समान नहीं है, यह 'तातारख़ानिया' में है। यदि एक व्यक्ति की भूमि में दूसरे की नहर हो और उस पर एक घर के भीतर पनचक्की हो, फिर नहर, पनचक्की और घर के स्वामी ने सब बेच दिया, तो भूमि के स्वामी ने सब में शुफ़ा का दावा किया, तो उसे शुफ़ा मिलेगा। और यदि इस भूमि और पनचक्की के स्थान के बीच किसी दूसरे की भूमि हो और दूसरी ओर नहर के किसी और व्यक्ति की भूमि हो, और उन दोनों ने भी शुफ़ा का दावा किया, तो उन दोनों को भी उस बेची गई संपत्ति (माल-ए-मबीआ) को लेने का अधिकार होगा, क्योंकि दोनों नहर के पड़ोस (जवार) के अधिकार में समान हैं, चाहे उन शुफ़ा का दावा करने वालों (शफ़ीयों) में से कुछ चक्की की ओर अधिक निकट हों, यह 'मबसूत' में है। यदि दजला (दजला नदी) जैसी किसी बड़ी नहर से एक छोटी नहर किसी समुदाय के लिए जारी हो और उन लोगों की भूमि का पानी उसी छोटी नहर से हो गया, फिर छोटी नहर वालों में से किसी ने अपनी भूमि सिंचाई के अधिकार के साथ बेची, तो जिन लोगों की भूमि का पानी उस छोटी नहर से है, वे उसके शुफ़ा के हकदार होंगे। उनमें जो व्यक्ति उस बेची गई भूमि के निकट है वह और जो दूर है वह, सब समान होंगे। और यदि उस बेची गई भूमि से जुड़ी हुई दूसरी भूमि का टुकड़ा हो जिसका पानी बड़ी नहर से आता है, तो उसका स्वामी उस बेची गई भूमि के शुफ़ा में उन लोगों के साथ जिनका पानी छोटी नहर से है, साझीदार नहीं होगा। 'किताब हिलाल अल-बसर' में है कि यदि एक घुमावदार नहर के सामने या पीछे की भूमि बेची गई, तो यदि उसमें दोहरे घुमाव हों तो वह नहर कानूनी तौर पर दो नहरों के समान होगी, और केवल घुमाव वाले स्थान तक के साझीदारों को शुफ़ा का अधिकार मिलेगा। फिर यदि उन्होंने अपना शुफ़ा का अधिकार खरीदार को दे दिया, तो बाकी लोगों को प्राप्त होगा जिन्हें उस नहर से सिंचाई का अधिकार है। और यदि घुमाव गोलाई या मोड़ के साथ हो, तो नहर के सभी लोगों को शुफ़ा का अधिकार होगा, जैसा कि विद्वानों ने ऐसी घुमावदार नहर को एक ही नहर के समान माना है। 'मुंतक़ी' में इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि एक नहर एक समुदाय में साझा है, उनकी भूमि और बाग़ उस नहर पर स्थित हैं जिनका सिंचाई का अधिकार उसी नहर से है, और ये सभी लोग उसमें साझीदार हैं। अतः उनमें से जो भूमि या बाग़ बेचा जाएगा, उसमें ये सभी लोग शुफ़ा के अधिकार में साझीदार होंगे। फिर यदि उन

लोगों ने उन भूमियों और बाग़ों को घर बना लिया और उस पानी से बेपरवाह हो गए, तो उनमें केवल पड़ोस (जवार) के कारण शुफ़ा का अधिकार रह जाएगा जैसा कि शहर के घरों में होता है। और यदि उन भूमियों में से कुछ खेती के लिए और बाग़ों में से कुछ सिंचाई के लिए शेष रह गए, तो वे लोग पुराने सिंचाई और शुफ़ा के अधिकार में परस्पर साझीदार रहेंगे, यह 'मुहीत' में है। एक नहर से एक समुदाय की सिंचाई होती है लेकिन नहर की ज़मीन दूसरे व्यक्ति की है। फिर एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन बेची जबकि नहर का पानी कटा हुआ (बंद) था, तो इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार उन लोगों को शुफ़ा का अधिकार होगा, और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के अनुसार जिस स्थिति में पानी बंद था, उन लोगों को शुफ़ा नहीं मिलेगा, जैसा कि 'मुहीत' में ध्वस्त ऊपरी मंजिल के बारे में कहा गया है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि एक व्यक्ति ने एक नहर उसके क्षेत्र के साथ खरीदी और नहर के ऊपरी हिस्से के एक तरफ एक व्यक्ति की भूमि है और निचले हिस्से के एक तरफ दूसरे की, तो उन दोनों व्यक्तियों को ऊपर से नीचे तक पूरी नहर में शुफ़ा का अधिकार होगा। यही नियम कृत्रिम जलधारा (कारीज़), चश्मे और कुएँ का है, क्योंकि ये अचल संपत्तियाँ हैं लेकिन इनमें पड़ोस (जवार) के कारण शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होता है। इसी तरह यदि कारीज़ का मुहाना किसी की भूमि में हो और जहाँ उसका पानी बाहर निकलता है वह दूसरे की भूमि हो, तो मुहाने से पानी गिरने की जगह तक जितने लोगों को पड़ोस प्राप्त होगा, वे सब उसके शुफ़ा में साझीदार होंगे। और यदि कोई नहर पूरी तरह से एक व्यक्ति की हो जिस पर उसकी भूमि भी हो और अन्य लोगों की भी ज़मीनें हों लेकिन उनकी सिंचाई उस नहर से न होती हो, और नहर के स्वामी ने केवल नहर बेची, तो वे सभी लोग उसके शुफ़ा में साझीदार होंगे।

1. 'मसील' पानी बहाने का अधिकार है जैसे नाली आदि, और 'शुर्ब' सिंचाई का पानी है।
2. लहरदार चौकोर समकोण की आकृति की तरह, हाशिये में है कि इस तक सब साझा हैं और 'ब' से 'ज' तक साझा हैं। इसी प्रकार गोलाई और घुमाव।

---

کے شفعہ کی ڈگری نہیں کی ہے تو تیسرے شریک کے نام پورے دونوں حصوں کی ڈگری ہو گی یہ محیط میں ہے۔ ایک فروخت شدہ میں دوسرے شخص کا حق مسیلِ الماء ہے تو اس کو بسبب جوار کے حق شفعہ حاصل ہو گا اور مسیلِ مثل شرب کے نہیں ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر ایک شخص کی زمین میں دوسرے کی نہر ہو اور اس پر ایک بیت کے اندر ایک پن چکی ہو پھر مالک نہر و پن چکی و بیت نے سب فروخت کیا پس مالک زمین نے سب میں شفعہ طلب کیا تو اس کو شفعہ ملے گا اور اگر اس زمین اور موضع پن چکی کے درمیان کسی دوسرے کی زمین ہو اور دوسری جانب نہر کے دوسرے شخص کی ہو اور ان دونوں نے بھی شفعہ طلب کیا تو ان دونوں کو بھی حق میں اس مال مبیع کے لینے کا اختیار ہو گا کیونکہ دونوں بھی حق جوار نہر میں یکساں ہیں اگرچہ ان شفیعوں میں سے بعض کا جوار چکی کی جانب قریب ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر دجلہ کے مانند کسی نہرِ کبیر سے ایک چھوٹی نہر ایک قوم کے واسطے جاری ہو اور ان لوگوں کی اراضی کا پانی اسی نہر صغیر سے ہو گیا پھر نہرِ صغیر والوں میں سے کسی نے اپنی زمین مع اس کے شرب کے فروخت کی تو جن لوگوں کی اراضی کا پانی اس نہر صغیر سے ہے وہ لوگ اس کی شفعہ میں حقدار ہوں گے ان میں جو شخص اس زمین مبیعہ سے نزدیک ہے وہ اور جو دور ہے وہ سب یکساں ہوں گے اور اگر اس زمین مبیعہ کے ساتھ ملا ہوا دوسرا قطعہ زمین ہو جس کا پانی بڑی نہر سے ہے تو اس کا مالک اس قطعہ مبیعہ کے شفعہ میں ان لوگوں کے ساتھ جن کی اراضی کا پانی نہرِ صغیر سے ہے مشترک نہ ہو گا اور کتاب ہلال البصری میں ہے کہ ایک نہر پیچیدہ کے سامنے کی یا پیچھے کی زمینیں فروخت کی گئیں پس اگر اس کی پیچیدگی کی طرح پیچ ہو تو وہ نہر حکماً مثل دو نہر کے ہوگی تو فقط موضع پیچیدگی تک کے شریکوں کو حق شفعہ

ملے گا پھر اگر انہوں نے اپنا حق شفعہ مشتری کو دے دیا تو پھر باقیوں کو حاصل ہو گا جن کا اس نہر سے سینچنے کا حق ہے اور اگر پیچیدگی استدارۃ یا انحراف کے ساتھ ہو تو سب اہلِ نہر کو حق شفعہ حاصل ہوگا پس مشائخ نے ایسی پیچیدہ نہر کو مثل نہرِ واحد کے قرار دیا۔ منتقی میں بروایت ابن سماعۃ امام محمدؒ سے مروی ہے کہ ایک نہر ایک قوم میں مشترک ہے ان کی زمینیں و باغات اس نہر پر واقع ہیں جن کا شرب اسی نہر سے ہے اور یہ سب لوگ اس میں شریک ہیں پس جو زمین یا باغ ان میں سے فروخت کیا جائے گا اس میں یہ سب لوگ حق شفعہ میں شریک ہوں گے۔ پھر اگر ان لوگوں نے ان زمینوں و باغات کو گھر بنا لیا اور اس پانی سے بے پرواہ ہو گئے تو ان میں فقط بسبب جوار کے حق شفعہ رہ جائے گا جیسا کہ شہر کے گھروں میں ہوتا ہے اور اگر ان زمینوں میں سے ایسی باقی رہ گئی جو زراعت کی جائے اور باغات میں سے ایسا باقی رہا جو اس پانی سے سینچا جائے تو یہ لوگ بہر حال سابق شرب و شفعہ میں باہم شریک رہیں گے یہ محیط میں ہے۔ ایک نہر سے ایک قوم کا شرب ہے مگر نہر کی زمین دوسرے شخص کی ہے۔ پھر ایک شخص نے اپنی زمین فروخت کی حالانکہ نہر کا پانی منقطع تھا تو بقول امام محمدؒ کے ان لوگوں کو حق شفعہ حاصل ہو گا اور بقیاس قول امام ابو یوسفؒ کے جس حال میں پانی منقطع تھا تو ان لوگوں کو حق شفعہ نہ ملے گا جیسا کہ محیط کا قول ہے بالا خانہ منہدم میں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر ایک شخص نے ایک نہر مع اس کے رقبہ کے خریدی اور اعلیٰ نہر کے ایک طرف ایک شخص کی زمین واقع ہے اور اسفل نہر کے ایک طرف دوسرے کی زمین واقع ہے تو ان دونوں شخصوں کو اعلیٰ سے اسفل تک تمام نہر میں حق شفعہ حاصل ہو گا اور یہی حکم کاریز و چشمہ و کنوئیں کا ہے پس یہ چیزیں عقارات میں سے ہیں مگر ان میں بسبب جوار کے حق شفعہ حاصل ہوتا ہے۔ اس طرح اگر کاریز کا دہانہ کسی کی زمین میں ہو اور جہاں اس کا پانی ظاہر نکل کر بہتا ہے دوسرے کی زمین ہو تو اس کے دہانہ سے اس کے پانی گرنے کی جگہ تک جتنے

لوگوں کو جوار حاصل ہو گا وہ سب لوگ اس کی شفعہ میں شریک ہوں گے اور اگر کوئی نہر خالص ایک شخص کی ہو جس پر اس کی زمین بھی واقع ہو اور اس پر اور لوگوں کی بھی زمینیں واقع ہوں مگر ان کا شرب اس نہر سے نہ ہو پھر مالک نہر نے فقط نہر کو فروخت کیا تو یہ سب لوگ اس کے شفعہ میں شریک ہوں

۱۔ مسیل پانی بہانے کا حق مانند موری وغیرہ کے اور شرب سینچنے کا پانی۔ ۲۔ تموج چوکور بزاد یہ قائمہ مانند صورت اب حاشیہ پس اس تک سب مشترک ہیں اور ب سے ج تک مشترک ہیں۔ علی ہذا اور استدارہ مدور

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 185 | The Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

...because their property is contiguous to that canal. If he sells only the land without the canal, then the person whose property is adjacent to that land will have priority in the right of pre-emption (Shufa) over others. However, if he sells both the canal and the land, then all these people will be equal partners in the right of pre-emption for the canal because everyone's property is contiguous to that canal; regarding the pre-emption right for the land, the person whose property is adjacent to that land will have priority over the others because his property is directly connected to it. Similarly, regarding a pathway situated within a person's house (Dar) which is his exclusive property, if he sells the pathway, then the person who is a neighbor (Jar) of that pathway will be primary in the right of pre-emption, similar to a neighbor of land. If that person is a partner in the pathway, he will take it by right of pre-emption, because a partner (Sharik) takes precedence over a neighbor (Jar). Likewise, if he is a partner in the canal, he will take the share of the land and will have greater right and priority over the remaining neighbors. The pathway and the canal are equal in every respect; this is mentioned in *Al-Mabsut*. If a person is a partner in the canal, compared to the person through whose land the canal flows, he will have a greater right of pre-emption; this is in *Fatawa Qazi Khan*.

The upper part of a canal belongs to one person and the lower part (Asfal) to another, and this canal flows through the land of a third person. If someone purchases the share of the canal from the upper owner, and both the lower owner and the person through whose land the canal flows claim pre-emption, both will be granted pre-emption due to neighborhood (Jawar). Similarly, if someone purchases the share of the lower owner and the upper owner seeks pre-emption, he will be granted it due to neighborhood. Likewise, if there is a *Karez* (underground canal) whose mouth (opening) is shared between two men up to a known point, and below that point, it belongs only to one of them, and the lower owner sells only his lower portion, then the partner and the neighbor will be equal in the right of pre-emption. There is a canal belonging to one person; another person requested to dig through it to lead a canal to his own land, and this was done. Later, the first canal was sold, even though it flows through someone else's land; the owner of that land will be considered primary for the right of pre-emption; this is in *Al-Mabsut*.

In *Nawadir Ibn Sama'ah*, it is narrated from Imam Muhammad (RA) that if a house is situated in a private alley (Kocha-e-Khasa) and its owner sells it without the right of way, the residents of the alley will have the right of pre-emption. Similarly, if land is

sold without the right of water (Shurb), those who have the right of water will have the right of pre-emption. If this land or house is sold again, these people will not have the right of pre-emption in it. This is in *Al-Zahiriyya*. Imam Muhammad (RA) stated in a case where a plot of land (*Qarah*) with a watercourse (*Saqiya*) running through its middle—irrigating both sides of the plot—is sold, and two claimants (Shafi') appear, one having property adjacent to one side of the plot and the other to the other side, he ruled that both will be pre-emptors of the plot, and this watercourse is not considered part of the rights of that plot. Therefore, it will not be considered a separating boundary, just like Muhammad's wall. If this watercourse is in the neighborhood of the plot and a thousand *Jaribs* outside this plot are irrigated by it, then in any case, the owner of the watercourse will have a greater right of pre-emption; this is in *Al-Bada'i*.

**Chapter Three: Regarding the Demand for Pre-emption (Talab-e-Shufa)**

Pre-emption becomes obligatory through contract (Aqd) and neighborhood (Jawar), and it is confirmed by demand (Talab) and witnessing (Ishhad), and ownership is acquired by taking possession. Then the demand...

---

1) Meaning its passage is through that land, not that the land is his property. 2) Those people waived their primary right of pre-emption, then the buyer sold it. 4) His saying 'Aqd' (contract) etc., meaning it is in the original text and it has been established that partnership and neighborhood give rise to the right of pre-emption. 3) 'Si-Fasil' (separating boundary), meaning the watercourse is not a separating boundary for pre-emption between the two.

...गा, क्योंकि उनकी मिलकियत उस नहर से जुड़ी हुई है। और यदि उसने केवल ज़मीन को बिना नहर के बेचा, तो जिसकी मिलकियत उस ज़मीन से सटी हुई है, वह शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) के अधिकार में दूसरों से अग्रणी होगा। और यदि उसने नहर और ज़मीन दोनों को बेचा, तो नहर के शुफ़ा के अधिकार में ये सभी लोग बराबर के भागीदार होंगे क्योंकि सबकी मिलकियत उस नहर से जुड़ी है; और ज़मीन के शुफ़ा के अधिकार में वह व्यक्ति जिसकी मिलकियत उस ज़मीन से सटी हुई है, दूसरों से अग्रणी होगा क्योंकि उसकी मिलकियत उस ज़मीन से जुड़ी है। इसी प्रकार एक रास्ते के मामले में जो किसी व्यक्ति के घर (दार) में स्थित है और पूरी तरह उसकी मिलकियत है, और उसने वह रास्ता बेच दिया, तो जो व्यक्ति उस रास्ते का पड़ोसी (जार) है, वह शुफ़ा के अधिकार में ज़मीन के पड़ोसी के समान प्राथमिक होगा। और यदि वह व्यक्ति रास्ते में हिस्सेदार है, तो वह शुफ़ा के अधिकार के तहत इसे ले लेगा, क्योंकि हिस्सेदार (शारीक) पड़ोसी (जार) से अग्रणी होता है। इसी प्रकार यदि वह नहर में हिस्सेदार है, तो वह ज़मीन का हिस्सा ले लेगा और बाकी पड़ोसियों के मुकाबले अधिक हकदार और अग्रणी होगा। रास्ता और नहर हर मामले में बराबर हैं, यह 'मब्सूत' में है। यदि कोई व्यक्ति नहर में हिस्सेदार हो, उस व्यक्ति की तुलना में जिसकी ज़मीन में नहर बहती है, तो वह शुफ़ा के अधिकार में अधिक हकदार होगा, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

नहर का ऊपरी हिस्सा (आला) एक व्यक्ति का है और निचला हिस्सा (अस्फ़ल) दूसरे का है, और यह नहर किसी तीसरे व्यक्ति की ज़मीन से होकर बहती है। फिर एक व्यक्ति ने ऊपरी हिस्से के मालिक से उसका नहर का हिस्सा खरीद लिया, और निचले हिस्से के मालिक तथा उस व्यक्ति ने जिसकी ज़मीन में नहर बहती है, दोनों ने शुफ़ा का दावा किया, तो दोनों को पड़ोस (जवार) के कारण शुफ़ा मिलेगा। इसी तरह यदि किसी ने निचले हिस्से के मालिक से उसका हिस्सा खरीदा और ऊपरी हिस्से के मालिक ने शुफ़ा चाहा, तो पड़ोस के कारण उसे मिलेगा। इसी प्रकार यदि कोई कारेज़ (भूमिगत नहर) हो जिसका मुहाना (दहाना) दो आदमियों के बीच किसी निश्चित स्थान तक साझा हो, और उससे नीचे वह केवल एक की हो, फिर नीचे वाले मालिक ने केवल अपना निचला हिस्सा बेचा, तो हिस्सेदार और पड़ोसी शुफ़ा के अधिकार में बराबर होंगे। एक नहर एक व्यक्ति की है, दूसरे ने उससे प्रार्थना की कि मैं तुम्हारी नहर से खुदाई करके अपनी ज़मीन के लिए एक नहर ले जाना चाहता हूँ और ऐसा ही हुआ। फिर पहली नहर बेची गई, हालांकि वह किसी और की ज़मीन में बहती है, तो ज़मीन के मालिक को उसके शुफ़ा के अधिकार के लिए प्राथमिक माना जाएगा, यह 'मब्सूत' में है।

'नवादिर इब्न समाआ' में इमाम मोहम्मद रह. से रिवायत है कि एक घर एक निजी गली (कूचा-ए-खासा) में स्थित है, उसके मालिक ने उसे रास्ते के अधिकार के बिना बेचा, तो गली वालों को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। इसी तरह यदि ज़मीन पानी के अधिकार (शर्ब) के बिना बेची गई, तो पानी के हिस्सेदारों को शुफ़ा मिलेगा। फिर यदि यह ज़मीन या घर दोबारा बेचा गया, तो उन लोगों को इसमें शुफ़ा नहीं मिलेगा। यह 'ज़हीरिया' में है। इमाम मोहम्मद रह. ने उस स्थिति में जहाँ एक ज़मीन (क़राह) जिसके बीच में एक नाली (साक़िया) बहती है जिससे ज़मीन के दोनों ओर सिंचाई होती है, बेची गई और दो दावेदार आए जिनमें से एक की मिलकियत ज़मीन के इस ओर सटी है और दूसरे की दूसरी ओर, तो फ़रमाया कि दोनों उस ज़मीन के दावेदार होंगे और यह नाली उस ज़मीन के अधिकारों में से नहीं है। अतः इसे विभाजक सीमा नहीं माना जाएगा जैसे कि मोहम्मद की दीवार। और यदि यह नाली ज़मीन के पड़ोस में हो और इस नाली से उस ज़मीन के बाहर हज़ार जरीब की सिंचाई होती हो, तो हर हाल में नाली का मालिक शुफ़ा के अधिकार का अधिक हकदार होगा, यह 'बदाइ' में है।

### तीसरा अध्याय: शुफ़ा की माँग (तलबी) के वर्णन में

शुफ़ा अनुबंध (अक़्द) और पड़ोस (जवार) से अनिवार्य होता है, और माँग (तलब) और गवाही (इशहाद) से पुख्ता हो जाता है, और कब्ज़ा कर लेने से मिलकियत प्राप्त होती है। फिर माँग...

---

1) अर्थात् उसका गुज़र उस ज़मीन से है, न कि ज़मीन उसकी मिलकियत है। 2) उन लोगों ने शुफ़ा का प्राथमिक अधिकार छोड़ दिया, फिर खरीदार ने उसे बेच दिया। 4) उनका कथन 'अक़्द' आदि, अर्थात् यह मूल ग्रंथ में है और यह ज्ञात हो चुका है कि साझेदारी और पड़ोस से शुफ़ा का अधिकार उत्पन्न होता है। 3) सी फासिल (विभाजक सीमा) अर्थात् नाली दोनों के बीच शुफ़ा के लिए विभाजक सीमा नहीं है।

---

...گے کیونکہ ان کی ملک اس نہر سے متصل ہے اور اگر اس نے فقط زمین کو بدون نہر کے فروخت کیا تو جس کی ملک اس زمین سے ملاصق ہے وہ حق شفعہ میں باقیوں سے اقدم ہوگا اور اگر اس نے نہر و زمین دونوں کو فروخت کیا تو نہر کے حق شفعہ میں یہ سب لوگ برابر شریک ہوں گے کیونکہ سب کی ملک اس نہر سے متصل ہے اور زمین کے حق شفعہ میں وہ شخص جس کی ملک اس زمین سے متصل ہے باقیوں سے اقدم ہوگا کیونکہ اس کی ملک اس زمین سے متصل ہے۔ بمولہ ایک راستہ کے جو ایک شخص کے دار میں واقع ہے اور خالص اس کی ملک ہے اور اس نے راستہ فروخت کیا تو جو شخص اس راستہ کا جار ہے وہ حق شفعہ میں بموقع زمین کے جار کے اولیٰ ہوگا اور اگر وہ شخص راستہ میں شریک ہو تو شفعہ دار میں لے لے گا اس واسطے کہ جار سے شریک مقدم ہوتا ہے۔ اسی طرح اگر نہر میں شریک ہو تو حصہ زمین سے لے لے گا اور بصورت باقی پڑوسیوں کے احق واقدم ہوگا اور راستہ اور نہر ہر بات میں برابر ہیں یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نہر میں شریک ہو بصورت اس شخص کے جس کی زمین میں نہر بہتی ہے حق شفعہ میں احق ہوگا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اعلیٰ نہر ایک شخص کا اور نہر کا اسفل دوسرے کا ہے اور یہ نہر کسی غیر شخص کی زمین میں جاری ہے پھر ایک شخص نے مالکِ اعلیٰ سے اس کا حصہ نہر خرید لیا اور مالکِ اسفل اور اس شخص نے جس کی زمین میں نہر بہتی ہے دونوں نے شفعہ کا دعویٰ کیا تو دونوں کو بسبب جوار کے شفعہ ملے گا۔ اسی طرح اگر مالکِ اسفل نہر سے کسی نے اس کا حصہ خرید اور اعلیٰ النہر کے مالک نے شفعہ چاہا تو بسبب جوار کے اس کو ملے گا۔ اسی طرح اگر ایک کاریز ہو کہ اس کا منفتح (دہانہ) دو آدمیوں میں کسی مقام معلوم تک مشترک ہو اور اس سے نیچے دونوں میں سے

فقط ایک کی ہو پھر نیچے کے مالک نے فقط اپنا اسفل فروخت کیا تو شریک اور پڑوسی حق شفعہ میں برابر ہوں گے۔ ایک نہر ایک شخص کی ہے اس سے دوسرے نے درخواست کی کہ میں تیری نہر میں سے کھود کر اپنی زمین میں ایک نہر لے جاؤں اور ایسا ہی ہوا پھر نہر اوّل فروخت کی گئی حالانکہ وہ کسی دوسرے کی زمین میں جاری ہے تو صاحب زمین اس کے حق شفعہ کے واسطے اولیٰ قرار دیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔

نوادر ابن سماعہ میں امام محمدؒ سے روایت ہے کہ ایک دار ایک کوچہ خاصہ میں واقع ہے اس کے مالک نے اس کو بالاطریق فروخت کیا تو اہل کوچہ کو حق شفعہ حاصل ہوگا اسی طرح اگر زمین بدون شرب کے فروخت کی تو اہل شرب کو حق شفعہ ملے گا پھر اگر یہ زمین یا یہ دار دوبارہ فروخت کیا گیا تو ان لوگوں کو اس میں حق شفعہ نہ ملے گا۔ یہ ظہیریہ میں ہے۔ امام محمدؒ نے اس صورت میں کہ ایک زمین قراح جس کے بیچ میں ایک ساقیہ جاری ہے کہ قراح دونوں جانب اسی ساقیہ سے سینچی جاتی ہے فروخت کی گئی اور دو شخص شفیع آئے جن میں سے ایک شخص قراح کے اس جانب اپنی ملک متصل رکھتا ہے اور دوسرا دوسری جانب رکھتا ہے فرمایا کہ دے دونوں قراح کے شفیع ہوں گے اور یہ ساقیہ اس قراح کے حقوق میں سے نہیں ہے۔ پس حد فاصل سمجھنے نہ ہوگی جیسے دیوارِ محمد اور اگر یہ ساقیہ جوارِ قراح میں ہو اور اس ساقیہ سے ہزار جریب اس قراح سے خارج سینچا جاتا ہو تو یہ بہر صورت جار کے صاحب ساقیہ حق شفعہ کا احق ہوگا یہ بدائع میں ہے۔

**باب سوم: طلبِ شفعہ کے بیان میں**

شفعہ بہ عقد و جوار سے واجب ہوتا ہے اور طلب واشہاد سے متاکد ہو جاتا ہے اور لے لینے سے ملک حاصل ہوتی ہے پھر طلب...

۱) یعنی مرور اس کا اس سرزمین سے ہے نہ یہ کہ زمین اس کی ملک ہے۔ ۲) ان لوگوں نے حق شفعہ بمع اولیٰ کا دے دیا پھر مشتری نے اسکو فروخت کیا۔ ۴) قولہ عقد الخ یعنی اصل میں ہے اور معلوم ہو چکا کہ شرکت و جوار سے حق شفعہ ہوتا ہے۔ ۳) سی فاصل یعنی ساقیہ دونوں میں شفعہ کے لیے حدِ فاصل نہیں ہے۔

There are three types (1) of claims for pre-emption (shufa): (1) Talab al-Muwasabat (immediate demand), (2) Talab al-Taqrir wa al-Ishhad (demand of confirmation and attestation), and (3) Talab al-Tamlik (demand of ownership). Thus, Talab al-Muwasabat means that as soon as the pre-emptor (shafi') becomes aware of the sale, he must demand pre-emption at that very instant. If he remains silent and does not make the demand, his right of pre-emption will become void. This is the original narration and is well-known among our scholars. Hisham has narrated from Imam Muhammad (RA) that if the pre-emptor makes the demand in the session where he learned of the sale, it will be granted to him, otherwise not. This is similar to the options of selection (Khiyar al-Mukhayyara) and acceptance (Khiyar al-Qabul) (3). Furthermore, the jurists (Mashayikh) have discussed the wording of the demand. The correct view is that if he makes the demand using any words from which the intention for pre-emption is understood, it is valid, regardless of the specific words used. Even if he says, "I have demanded pre-emption," or "I am demanding pre-emption," it is valid. However, if he says to the purchaser, "I am your pre-emptor and I will take this house from you through pre-emption," then the right of pre-emption will become void. If upon learning of the sale, the pre-emptor said, "Alhamdulillah" (Praise be to God), "SubhanAllah" (Glory be to God), or "Allahu Akbar" (God is Greatest), or if one of his companions sneezed and he replied with "Tashmit" (God have mercy on you), or if he said "As-salamu alaykum" (Peace be upon you) and then demanded pre-emption for the house, his right would not be voided. Similarly, if he asked, "Who bought it?" and "For how much?", the same rule applies. But if he said in Persian, "Shifa'at khwaham" (I want pre-emption), the pre-emption right becomes void. In a voidable sale (bay' al-fasid), the demand for pre-emption is considered valid only when the seller's right has been completely terminated; it is not valid at the time of purchase. Regarding 'bay' al-fuzuli' (sale by an unauthorized person) and a sale with a condition of option for the buyer, according to Imam Abu Yusuf (RA), the time for the demand is at the time of the sale, while according to Imam Muhammad (RA), it is at the time when permission is granted. In the case of 'hibah bi-shart al-iwad' (gift with a condition of return), there are two narrations: one considers the time of possession, and the other the time of the contract. If a partner and a neighbor of a house heard about its sale and both were present in the same place, and the partner demanded pre-emption while the neighbor remained silent, and later the partner gave up his claim, the neighbor would not have the right to take the house under pre-emption. If a house is

sold and there are two pre-emptors, one present and one absent, and the one present demands pre-emption for only half the house, his entire claim becomes void. Similarly, if both are present and one demands only half, the claim of both becomes void. This is mentioned in 'Muhit al-Sarakhsi'. Furthermore, it should be clarified that the pre-emptor's knowledge of the sale is sometimes obtained by hearing it himself and sometimes through information from another person. Is the condition of a specific number of witnesses or their integrity (adalah) required for this information? Our scholars have differed on this. Imam al-A'zam Abu Hanifah (RA) stated that one of these is a condition: either the full number of informants (i.e., two men or one man and two women) or that the informant be a person of integrity. Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad (RA) stated that neither integrity nor number is a condition for the informant. Thus, if a person informs the pre-emptor of the sale, whether the informant is righteous or sinful, free or slave, authorized or unauthorized, adult or minor, male or female; and if the pre-emptor remains silent and does not demand pre-emption immediately upon hearing the news (according to the original narration) or in the same session (according to Imam Muhammad's narration), his right will be voided in the view of the two Companions (Sahibayn), provided the truth of the information becomes apparent later. Al-Karkhi (RA) mentioned that of the two narrations, this one is more correct; this is in 'Bada'i'. If the informant is a single non-righteous person and the pre-emptor confirms his report, then by consensus (ijma'), the sale is established through his report. But if he denies it, the sale is not established, even if the report later turns out to be true; this is according to Imam al-A'zam. According to the two Companions, the sale is established by the report alone, provided it is true; this is in 'Dhakhirah'.

Talab al-Ishhad (demand by attestation) is done by taking witnesses for his Talab al-Muwasabat so that the demand becomes obligatory and firm.

---

(1) The phrase "types etc." refers to: first, Talab al-Muwasabat, meaning demanding pre-emption immediately upon hearing the news. Talab al-Ishhad means taking witnesses that "I have demanded immediately" so that pre-emption is established. Talab al-Tamlik means asking the Qadi (judge) for the ownership of the property under pre-emption. (2) Nikah after five. (3) That is, until the acceptance of the offer (which is limited to the end of the session).

(शफ़ा के दावे) की तीन किस्में (१) हैं: (१) तलब-ए-मुवासाबत (तत्काल दावा), (२) तलब-ए-तकरीर-ओ-इशहाद (पुष्टि और साक्ष्य का दावा), (३) तलब-ए-तमलीक (स्वामित्व का दावा)। अतः तलब-ए-मुवासाबत यह है कि जैसे ही शफी (दावेदार) को बिक्री का पता चले, उसे उसी क्षण और उसी समय शफ़ा (पुनर्खरीद का अधिकार) का दावा कर लेना चाहिए। और यदि उसने चुप्पी साध ली और दावा नहीं किया, तो उसका शफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। और यही असल रिवायत है और हमारे विद्वानों के बीच प्रसिद्ध है। और हिशाम ने इमाम मुहम्मद (रह.) से रिवायत की है कि यदि शफी ने इल्म की महफ़िल (सभा) में शफ़ा का दावा किया, तो उसे अधिकार मिलेगा अन्यथा नहीं। यह खियार-ए-मुतय्यारा और खियार-ए-क़बूल (विकल्प) के समान है (३)। फिर मशायख ने इस पर चर्चा की है कि किस शब्द से दावा किया जाना चाहिए। सही यह है कि यदि उसने ऐसे किसी शब्द से शफ़ा का दावा किया जिससे शफ़ा का इरादा समझ में आता हो, तो वह वैध है, चाहे किसी भी शब्द से किया गया हो। यहाँ तक कि यदि उसने कहा "मैंने शफ़ा का दावा किया" या "मैं शफ़ा का दावा करता हूँ" तो यह जायज़ है। लेकिन यदि उसने खरीदार से कहा कि "मैं तुम्हारा शफी हूँ और यह घर तुमसे शफ़ा के तहत ले लूँगा", तो शफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। और यदि शफी ने बिक्री की सूचना मिलने पर कहा "अलहमदु लिल्लाह" या "सुभान अल्लाह" या "अल्लाहु अकबर", या उसके किसी साथी को छींक आई और उसने "तशमीत" (यहरहमुकल्लाह) कहा, या "अस्सलामु अलैकुम" कहा और फिर इस घर के लिए शफ़ा का दावा किया, तो उसका शफ़ा का अधिकार समाप्त नहीं होगा। इसी प्रकार यदि उसने पूछा कि "किसने खरीदा है?" और "कितने में खरीदा है?", तो भी यही नियम है। और यदि फारसी भाषा में इस तरह कहा गया (शफ़ाअत ख़्वाहम - मैं शफ़ा चाहता हूँ), तो शफ़ा समाप्त हो जाएगा। और दोषपूर्ण बिक्री (बय-ए-फ़ासिद) में शफ़ा का दावा तब मान्य होगा जब विक्रेता का अधिकार पूरी तरह समाप्त हो गया हो; खरीद के समय यह मान्य नहीं होगा। और 'बय-ए-फज़ूली' तथा ऐसी बिक्री जिसमें खरीदार के पास विकल्प हो, इमाम अबू यूसुफ (रह.) के अनुसार दावे का समय बिक्री का समय है, और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार दावे का समय अनुमति मिलने का समय है। और 'हिबा बिशर्त-उल-इवज़' (बदले की शर्त के साथ उपहार) में दो रिवायतें हैं: एक में क़ब्ज़े के समय का दावा मान्य है और दूसरी में अनुबंध के समय का। यदि एक ही घर के हिस्सेदार और पड़ोसी ने घर की बिक्री के बारे में सुना और दोनों एक ही स्थान पर मौजूद थे, तो हिस्सेदार ने शफ़ा का दावा कर लिया और पड़ोसी चुप रहा, फिर हिस्सेदार ने अपना दावा छोड़ दिया, तो पड़ोसी

को यह अधिकार नहीं होगा कि वह घर को शफ़ा के तहत ले ले। एक घर बेचा गया और उसके दो शफी (दावेदार) हैं, जिनमें से एक उपस्थित है और एक अनुपस्थित है। यदि उपस्थित व्यक्ति ने आधे घर के लिए शफ़ा का दावा किया, तो उसका पूरा शफ़ा का दावा शून्य हो जाएगा। इसी प्रकार यदि दोनों उपस्थित हों और एक ने आधे के लिए दावा किया, तो दोनों का शफ़ा शून्य हो जाएगा। यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में है। फिर यह स्पष्ट हो कि शफी को बिक्री का ज्ञान कभी स्वयं सुनने से प्राप्त होता है और कभी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा सूचना दिए जाने से। लेकिन क्या इस सूचना में गवाहों की संख्या या उनकी सत्यनिष्ठा (अदालत) की शर्त है? इस बारे में हमारे विद्वानों में मतभेद है। इमाम-ए-आजम अबू हनीफ़ा (रह.) ने फरमाया कि इनमें से एक बात शर्त है, चाहे मुखबिरों (सूचना देने वालों) की संख्या पूरी हो, यानी दो पुरुष या एक पुरुष और दो महिलाएं या मुखबिर (अकेला) सत्यनिष्ठ हो। और इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि मुखबिर में न तो सत्यनिष्ठा शर्त है और न ही संख्या। यहाँ तक कि यदि शफी को किसी व्यक्ति ने बिक्री की सूचना दी, चाहे वह सूचना देने वाला नेक हो या पापी, स्वतंत्र हो या दास, वयस्क हो या नाबालिग, पुरुष हो या स्त्री; फिर शफी चुप रहा और सूचना मिलते ही (रिवायत-ए-अस्ल के अनुसार) या उसी सभा में (इमाम मुहम्मद की रिवायत के अनुसार) शफ़ा का दावा नहीं किया, तो साहिबैन के अनुसार उसका शफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। यदि सूचना की सत्यता बाद में स्पष्ट हो जाए। करखी (अलैहिर्रहमा) ने उल्लेख किया है कि दोनों रिवायतों में से यह रिवायत अधिक सही है; यह 'बदाइ' में है। यदि सूचना देने वाला अकेला व्यक्ति है और नेक नहीं है, और शफी ने उसकी सूचना की पुष्टि की, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से बिक्री साबित हो जाएगी। लेकिन यदि उसने उसे झुठलाया, तो बिक्री साबित नहीं होगी, भले ही बाद में सूचना सच निकले; यह इमाम-ए-आजम के अनुसार है। और साहिबैन के अनुसार, सूचना से ही बिक्री साबित हो जाएगी बशर्ते कि सूचना सच निकले; यह 'ज़खीरा' में है।

तलब-ए-इशहाद (पुष्टि का दावा) इस तरह होता है कि अपने तत्काल दावे (तलब-ए-मुवासाबत) के गवाह बना ले ताकि दावा करना अनिवार्य और पक्का हो जाए।

---

(१) "क़िस्में" आदि - पहला है तलब-ए-मुवासाबत, यानी सूचना मिलते ही तुरंत शफ़ा मांगना। तलब-ए-इशहाद का अर्थ है गवाह बना लेना कि "मैंने तुरंत मांग की है" ताकि शफ़ा का अधिकार पक्का हो जाए। तलब-ए-तमलीक का अर्थ है काजी (न्यायाधीश) से वह संपत्ति अपने स्वामित्व में मांगना। (२) निकाह के पांच बाद। (३) यानी प्रस्ताव स्वीकार करने तक (जो सभा के अंत तक सीमित होता है)।

کی تین قسمیں (۱) ہیں (۱) طلب مواثبہ ۔ (۲) طلب تقریر و اشہاد ۔ (۳) طلب تملیک ۔ پس طلب مواثبہ یہ ہے کہ جس وقت شفیع نے بیچ کو معلوم کیا تو چاہیے کہ اس وقت اور اسی دم شفعہ طلب کر لے اور اگر اس نے سکوت کیا اور طلب نہ کیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اور یہی روایت الاصل اور ہمارے اصحاب سے مشہور ہے اور ہشام نے امام محمدؒ سے روایت کی کہ اگر شفیع نے مجلس علم میں شفعہ طلب کیا تو اس کو ملے گا ورنہ نہیں۔ بمنزلہ خیار (۲) مخیرہ و خیار القبول کے (۳) پھر مشائخ نے کیفیت لفظ سے طلب کیا ہو اور صحیح یہ ہے کہ اگر اس نے ایسے لفظ سے شفعہ طلب کیا جس سے طلب شفعہ سمجھی جائے خواہ کسی لفظ سے طلب کیا ہو تو جائز ہے حتیٰ کہ اگر اس نے کہا کہ میں نے شفعہ طلب کیا یا شفعہ طلب کرتا ہوں یا میں میں شفعہ طلب کرتا ہوں تو جائز ہے اور اگر اس نے مشتری سے کہا کہ میں تیرا شفیع ہوں اور یہ دار تجھ سے شفعہ میں لے لوں گا تو شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر شفیع نے بیع معلوم کرنے پر کہا کہ الحمد للہ یا سبحان اللہ واللہ اکبر یا اس کا کوئی ساتھی چھینکنا اور اس نے تشمیت کی یا کہا کہ السلام علیک اور میں نے اس دار کا شفعہ طلب کیا تو اس سے حق شفعہ باطل نہ ہوگا اس طرح اگر یہ کہا کہ کس نے خریدا ہے اور کتنے کو خریدا ہے تو بھی یہی حکم ہے اور اگر فارسی زبان میں یوں کہا کہ (شفاعت خواہم) تو شفعہ باطل ہو جائے گا اور بیع فاسد میں طلب شفعہ کا اعتبار اس وقت ہو گا جب حق بائع منقطع ہوا ہے وقت خرید کے نہ ہو گا اور بیع فضولی اور بیع بشرط الخائیع میں امام ابو یوسفؒ کے نزدیک طلب کا اعتبار وقت بیع ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک وقت اجازت کے طلب شفعہ کا اعتبار ہے اور رہبہ بشرط العوض میں دو روایتیں ہیں ایک میں وقت قبضہ کے طلب کا اعتبار ہے اور دوسری میں وقت عقد ہبہ کے اعتبار ہے۔ اگر ایک دار کے شریک و جار نے اس

دار کے فروخت ہونے کو سنا اور وہ دونوں ایک ہی جگہ موجود تھے پس شریک نے شفعہ طلب کر لیا اور جار خاموش رہا پھر شریک نے شفعہ چھوڑ دیا تو جار کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ دار کو شفعہ میں لے لے ایک دار فروخت کیا گیا اس کے دو شفیع ہیں ان میں سے ایک حاضر اور ایک غائب ہے پس حاضر نے نصف دار شفعہ میں طلب کیا تو اس کا شفعہ باطل ہو گیا اسی طرح اگر دونوں حاضر ہوں اور ایک نے نصف میں شفعہ طلب کیا تو دونوں کا شفعہ باطل ہو گیا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ پھر واضح ہو کہ شفیع کو بیع کا علم کبھی خود سننے سے حاصل ہوتا ہے اور کبھی اس کو دوسرے شخص کے خبر دینے سے حاصل ہوتا ہے لیکن اس خبر میں آیا عدد عدالت شرط ہے یا نہیں سو اس میں ہمارے اصحاب نے اختلاف کیا ہے امام اعظم ابوحنیفہؒ نے فرمایا کہ ان دونوں میں سے ایک بات شرط ہے خواہ مخبر کی تعداد پوری ہو یعنی دو مرد ہوں یا ایک مرد دو عورتیں ہوں اور خواہ مخبر (واحد) میں عدالت ہو اور امام ابو یوسف و امام محمدؒ نے فرمایا کہ مخبر میں نہ عدالت شرط ہے اور نہ عدد حتیٰ کہ اگر شفیع کو ایک شخص نے بیع کی خبر دی خواہ یہ مخبر عادل ہو یا فاسق خواہ آزاد ہو یا غلام ماذون ہو یا محجور خواہ بالغ ہو یا نابالغ خواہ مذکر ہو یا مونث پس شفیع نے سکوت کیا اور خبر پر فی الفور بنا بر روایت الاصل کے یا فی المجلس بنا بر روایت امام محمدؒ کے شفعہ طلب نہ کیا تو صاحبینؒ کے نزدیک اس کا حق شفعہ باطل ہو جائے گا۔ اگر خبر کا صدق ظاہر ہوا اور کرخی علیہ الرحمتہ نے ذکر فرمایا کہ ہر دو روایت میں سے یہ روایت اصح ہے یہ بدائع میں ہے اگر خبر دہندہ ایک ہی شخص غیر عادل ہو پس اگر شفیع نے اس خبر میں اس کی تصدیق کی تو بالاجماع اس کی خبر سے بیع ثابت ہو جائے گی اور اگر اس امر میں اس کی تکذیب کی تو اس کی خبر سے بیع ثابت نہ ہوگی اگرچہ صدق خبر ظاہر ہو جائے یہ امام اعظمؒ کے نزدیک ہے اور صاحبین کے نزدیک اس کی خبر سے بیع ثابت ہو جائے گی جبکہ صدق خبر ظاہر ہو یہ ذخیرہ میں ہے۔

طلب اشہاد یوں ہوتی ہے کہ اپنے طلب مواثبہ کے گواہ کر لے تاکہ وجوب طالب علی الفور متاکد ہو جائے اور ایسا اشہاد صحت

---

(۱) قولہ قسمیں الخ اول طلب مواثبہ یعنی فوراً خبر ہوتے ہی شفعہ طلب کرنا طلب اشہاد گواہ کر لینا کہ میں نے فوراً طلب کیا ہے تاکہ شفعہ مقرر ہو جائے۔ طلب تملیک قاضی سے جو شفعہ اس کی ملکیت مانگنا ۔ (۲) نکاح بعد پانچ ۔ (۳) یعنی قبول ایجاب کے (کہ آخر مجلس تک محدود ہوتا ہے)

**Fatawa Alamgiri, Volume 8, Page 187, Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

Providing witnesses for the demand of pre-emption (shufa) is not a mandatory condition, but it strengthens the claim, especially if the buyer (mushtari) denies that the pre-emptor (shafi) made the claim. If the buyer claims that the pre-emptor did not demand it immediately upon learning of the sale and instead left the meeting, the buyer's statement is accepted. Therefore, for legal certainty, it is necessary to involve witnesses at the time of demand. The 'Talab-i-Ishhad' (demand with witnesses) is valid only when made in the presence of the buyer, the seller (ba'e), or the property itself (mabi). The pre-emptor should state: "So-and-so has purchased this house (defining its four boundaries); I am its pre-emptor and have already demanded pre-emption, and I demand it again now. You are witnesses to this."

If the pre-emptor has the opportunity to bring witnesses and fails to do so, their right of pre-emption becomes void to prevent harm to the buyer. If the pre-emptor goes to a distant party among the three mentioned while they are all in the same city, the right is not lost (by juristic preference/istihsan). However, if the party is in another city or village, the right is lost, as a city and its outskirts are considered one location. If the buyer has not yet taken possession, the pre-emptor may make the demand in the presence of the seller or at the site of the property.

'Talab-i-Ishhad' is required after the 'Talab-i-Muwathabat' (immediate demand) only if it was not possible to have witnesses during the immediate demand, such as when hearing of the sale in the absence of the parties. If witnesses are present during the immediate demand, it suffices for both types of demands.

'Talab-i-Tamlik' (demand for legal possession) refers to filing a lawsuit before a judge (qazi) for a decree of pre-emption in one's name. If the litigation is abandoned without a valid excuse (like illness or imprisonment), according to Imam-e-Azam (Abu Hanifa) and one report from Imam Abu Yusuf, the right is not lost. However, other reports suggest it is lost after a month's delay. The fatwa (legal ruling) follows the view of Imam-e-Azam and Imam Abu Yusuf.

The procedure for a court claim is for the pre-emptor to describe the property's boundaries and state the grounds for their right, requesting the court to order its transfer. Ownership is not transferred to the pre-emptor until a court decree is issued or the buyer voluntarily hands over the property. Consequently, if another adjacent property is sold before this legal transfer is complete, the pre-emptor cannot claim pre-emption on that second property based on the first one yet.

**Footnotes from the text:** 1. [Claiming that] "You did not demand pre-emption immediately." 2. Outskirts: Meaning surroundings and adjacent areas are considered a single place. (1) Legally considered as a single house/place. (2) In the presence of any of these three. (3) The view of Imam Abu Yusuf is consistent with the view of Imam-e-Azam.

**फ़तावा आलमगीरी, जिल्द 8, पृष्ठ 187, किताब-उश-शुफ़ा (अग्रक्रय का अधिकार)**

शुफ़ा (pre-emption) की माँग के लिए गवाह बनाना शर्त नहीं है, लेकिन इससे अधिकार मज़बूत हो जाता है, विशेषकर जब खरीदार (मुश्तरी) अधिकार से इनकार कर दे और कहे कि तुमने बिक्री की जानकारी मिलने पर तुरंत दावा नहीं किया था। ऐसी स्थिति में खरीदार की बात मानी जाएगी, इसलिए मज़बूती के लिए गवाह बनाना ज़रूरी है। 'तलब-ए-इशहाद' (गवाहों के सामने माँग) तभी सही होती है जब वह खरीदार, विक्रेता (बाए') या बेची गई संपत्ति (मबीअ') की मौजूदगी में हो। शुफ़ा का अधिकार रखने वाला (शफ़ी) इस तरह कहे: "फ़लां व्यक्ति ने यह घर (जिसकी चारों सीमाएँ ये हैं) खरीदा है, मैं इसका शफ़ी हूँ और पहले भी इसकी माँग कर चुका हूँ और अब भी कर रहा हूँ, तुम लोग इस पर गवाह रहो।"

यदि शफ़ी गवाह बनाने में सक्षम हो और फिर भी न बनाए, तो खरीदार के नुकसान को रोकने के लिए उसका शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। यदि वह एक ही शहर में पास के व्यक्ति को छोड़कर दूर वाले के पास जाए, तो अधिकार समाप्त नहीं होगा, लेकिन यदि वह व्यक्ति दूसरे शहर या गाँव में हो, तो अधिकार समाप्त हो जाएगा क्योंकि एक शहर और उसके आसपास के इलाकों को एक ही स्थान माना जाता है। यदि खरीदार ने अभी संपत्ति पर कब्ज़ा न किया हो, तो शफ़ी विक्रेता या संपत्ति के पास जाकर माँग कर सकता है।

तुरंत की जाने वाली माँग (तलब-ए-मुवासाबात) के बाद गवाहों वाली माँग की ज़रूरत तब पड़ती है जब पहली बार में गवाह संभव न हों, जैसे अनुपस्थिति में बिक्री की खबर मिलना। यदि खबर मिलते ही गवाहों के सामने माँग कर ली जाए, तो यह दोनों माँगों के बराबर होगा।

'तलब-ए-तमलीक' (स्वामित्व की माँग) यह है कि काज़ी (न्यायाधीश) की अदालत में मुकदमा दायर किया जाए ताकि संपत्ति शफ़ी के नाम हो सके। यदि बीमारी या जेल जैसे किसी वैध कारण के बिना मुकदमा छोड़ दिया जाए, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार अधिकार समाप्त नहीं होगा, लेकिन कुछ मान्यताओं के अनुसार एक महीने की देरी से अधिकार समाप्त हो जाता है। फ़तवा इमाम-ए-आज़म के मत पर है।

अदालत में माँग का तरीका यह है कि शफ़ी संपत्ति की सीमाओं का वर्णन करे और अपने अधिकार का आधार बताते हुए उसे अपने सुपुर्द करने की प्रार्थना करे। अदालत के आदेश या खरीदार की सहमति से सुपुर्दगी तक शफ़ी उस संपत्ति का मालिक नहीं बनता। इसलिए यदि इस बीच कोई और

पड़ोसी संपत्ति बिकती है, तो शफ़ी उस पर अधिकार नहीं जता पाएगा जब तक कि पहली संपत्ति कानूनी रूप से उसकी न हो जाए।

---

**فتاویٰ عالمگیری، جلد 8، صفحہ 187، کتاب الشفعہ**

حقِ شفعہ کے مطالبے کے لیے گواہ بنانا شرط نہیں ہے، لیکن اس سے حق مستحکم ہو جاتا ہے، خصوصاً جب خریدار (مشتری) شفعہ کے مطالبے سے انکار کر دے اور یہ دعویٰ کرے کہ تم نے سودے کی خبر ملنے پر فوراً مطالبہ نہیں کیا تھا بلکہ مجلس سے اٹھ گئے تھے۔ ایسی صورت میں خریدار کی بات مانی جائے گی، اس لیے احتیاطاً گواہ بنا لینا ضروری ہے۔ گواہوں کی موجودگی میں مطالبہ (طلبِ اشہاد) تبھی صحیح ہوتا ہے جب وہ خریدار، بیچنے والے (بائع) یا فروخت شدہ جائیداد (مبیع) کی موجودگی میں ہو۔ شفیع (حقِ شفعہ رکھنے والا) یوں کہے: "فلاں شخص نے یہ گھر (جس کی چاروں حدود یہ ہیں) خریدا ہے، میں اس کا شفیع ہوں اور پہلے بھی اس کا مطالبہ کر چکا ہوں، اب بھی کر رہا ہوں، تم لوگ اس پر گواہ رہو۔"

اگر شفیع گواہ بنانے کی قدرت رکھتا ہو اور پھر بھی نہ بنائے تو خریدار کے نقصان کو دور کرنے کے لیے اس کا حقِ شفعہ باطل ہو جائے گا۔ اگر وہ ایک ہی شہر میں موجود قریبی شخص کو چھوڑ کر دور والے کے پاس جائے تو حق باطل نہیں ہو گا، لیکن اگر دوسرا شخص دوسرے شہر یا گاؤں میں ہو تو حق باطل ہو جائے گا کیونکہ ایک شہر اور اس کے مضافات کو ایک ہی جگہ تصور کیا جاتا ہے۔ اگر خریدار نے ابھی جائیداد پر قبضہ نہ کیا ہو تو شفیع بائع یا مبیع کے پاس جا کر مطالبہ کر سکتا ہے۔ امام محمدؒ کے نزدیک جائیداد خریدار کے حوالے کرنے کے بعد بھی بائع کے سامنے گواہ بنانا درست ہے۔

فوری مطالبے (طلبِ مواثبہ) کے بعد گواہوں والے مطالبے کی ضرورت تب پڑتی ہے جب پہلے موقع پر گواہ میسر نہ ہوں، مثلاً غیر موجودگی میں سودے کی خبر ملنا۔ اگر سودے کی خبر ملتے

ہی ان تینوں (بائع، مشتری، مبیع) میں سے کسی کے سامنے گواہوں کے ساتھ مطالبہ کر لیا جائے تو یہ کافی ہے اور دونوں مطالبوں کے برابر ہوگا۔

قانونی مطالبہ (طلبِ تملیک) یہ ہے کہ قاضی (جج) کی عدالت میں مقدمہ دائر کیا جائے تاکہ جائیداد شفیع کے نام منتقل ہو سکے۔ اگر بیماری یا قید جیسے کسی عذر کے بغیر مقدمہ ترک کر دیا جائے تو امامِ اعظمؒ اور امام ابو یوسفؒ کے ایک قول کے مطابق حق باطل نہیں ہوگا، لیکن بعض روایات کے مطابق ایک ماہ کی تاخیر سے حق ختم ہو جاتا ہے۔ فتویٰ امامِ اعظمؒ کے قول پر ہے۔

عدالت میں مطالبے کا طریقہ یہ ہے کہ شفیع جائیداد کی حدود بیان کرے اور اپنے حق کی بنیاد (مثلاً پڑوسی ہونا) بتاتے ہوئے اسے اپنے سپرد کرنے کی درخواست کرے۔ عدالت کے فیصلے یا خریدار کی رضامندی سے سپردگی تک شفیع اس جائیداد کا مالک نہیں بنتا۔ اس لیے اگر اس دوران کوئی اور قریبی جائیداد فروخت ہو، تو شفیع اس نئی جائیداد پر حقِ شفعہ کا دعویٰ نہیں کر سکے گا جب تک کہ پہلی جائیداد قانونی طور پر اس کی نہ ہو جائے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 188 | Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

If a person sells their property or dies, their right of pre-emption (Shufa) becomes void. Imam Khassaf (RA) has mentioned this in his work 'Adab al-Qadi'. The pre-emptor (Shafee) has the choice to refuse the right of pre-emption until the Qadi (Judge) issues a decree in their name, even if the purchaser (Mushtari) offers it to them. This is recorded in 'Al-Muhit'.

When the pre-emptor presents the case before the Qadi, the Qadi shall not hear the claim until the opponent is present. If the property is in the possession of the seller (Ba'i), the presence of both the seller and the purchaser is a condition for hearing the claim, because the pre-emptor seeks a ruling for both ownership and possession. In this case, ownership belongs to the purchaser and possession to the seller, hence the presence of both is required. However, if the property is in the possession of the purchaser, the presence of the purchaser alone is sufficient. This is stated in 'Fatawa Qadi Khan'. If the pre-emptor is absent, after being informed, they shall be given enough time to come and make the 'Talab-i-Ishhad' (claim with witnesses). If they or their representative appear, it is well; otherwise, their right of pre-emption becomes void. If they appeared and then disappeared after making the 'Talab-i-Ishhad', their right remains intact. According to Imam Azam (Abu Hanifa RA), a delay in 'Talab-i-Tamlika' (claim for ownership) does not void the pre-emption, whereas according to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), it does, except when there is a valid excuse. In this scenario, the delay occurred due to a valid excuse. If the purchaser appears in a city where the sold property is not located, the pre-emptor is not obligated to make a claim there; rather, it is mandatory where the property is located. This is in 'Muhit Sarkhi'. If the pre-emptor learns of the sale while on the way to Makkah and performs 'Talab-i-Muwathaba' (immediate claim) but is unable to perform 'Talab-i-Ishhad' himself, he should appoint an agent (Wakil) to claim pre-emption for him. If he fails to do so and leaves, the pre-emption is voided. If he finds no one to act as an agent but a messenger (Paik) is available, he should send a letter through him appointing an agent. If he fails to do so, the pre-emption is voided. If he finds neither an agent nor a messenger, the pre-emption is not void until he finds one. This is in 'Zahiriya'. If a person's pre-emption claim is against the Qadi, the Qadi should be taken before the Sultan (ruler) who appointed him. If it is against the Sultan and the Qadi refuses to summon him, the person's right of pre-emption remains as this constitutes an excuse. This is in 'Muhit Sarkhi'. If the pre-emptor learns of the sale at night and is unable to go out for witnesses, and then does so at

daybreak, it is valid. This is in 'Khulasa'. Imam Muhammad bin al-Fadl (RA) stated that if the time is such that people normally go out for their needs, he should go out and make the claim. This is in 'Hawi'.

- It is stated in the Fatawa that if a Jew learns of a sale on Saturday[1] but does not claim pre-emption, the pre-emption becomes void. This is in 'Khizanat al-Muftin'. If a neighbor pre-emptor did not claim pre-emption through the Qadi out of fear that the Qadi does not recognize the right of pre-emption for neighbors and would void the claim, the person retains their right because this is considered a valid excuse. This is in 'Muhit Sarkhi'. If a person among rebels buys property in another's camp and the pre-emptor is in the camp of the righteous (Ahl-i-Haq), then if the pre-emptor is unable to go himself or send an agent, his right remains, and omitting 'Talab-i-Ishhad' will not harm his right. If he had the power to go or send an agent but did not, the pre-emption is voided.
- If the pre-emptor is in the camp of the Kharijites or rebels and fears that going to the camp of the righteous will result in his death, and thus omits 'Talab-i-Ishhad', his right is voided because he is capable of leaving the rebellion and joining the righteous. This is in 'Muhit Sarkhi'. If the seller and purchaser agree that the pre-emptor knew of the sale for several days, then after both...

---

1. Saturday is the day of worship for Jews.

यदि किसी ने अपना घर बेच दिया या उसकी मृत्यु हो गई, तो उसका शुफ़ा (Pre-emption) का अधिकार शून्य हो जाएगा। इमाम खसाफ़ रह. ने इसका उल्लेख अपनी पुस्तक 'अदब अल-काज़ी' में किया है। शुफ़ी (Pre-emptor) को यह अधिकार है कि वह तब तक शुफ़ा के अधिकार से इनकार करे जब तक कि काज़ी उसके नाम पर शुफ़ा की डिक्री जारी न कर दे, भले ही खरीदार उसे वह संपत्ति दे रहा हो। यह 'मुहीत' में वर्णित है।

जब शुफ़ी काज़ी के सामने यह मामला पेश करे, तो काज़ी तब तक दावे की सुनवाई नहीं करेगा जब तक कि विरोधी पक्ष उपस्थित न हो। यदि वह संपत्ति विक्रेता (बाइ) के कब्जे में है, तो सुनवाई के लिए विक्रेता और खरीदार (मुश्तरी) दोनों की उपस्थिति अनिवार्य है, क्योंकि शुफ़ी स्वामित्व और कब्ज़ा दोनों के लिए आदेश मांगता है। इस स्थिति में स्वामित्व खरीदार का है और कब्ज़ा विक्रेता का, इसलिए दोनों की उपस्थिति आवश्यक है। यदि संपत्ति खरीदार के कब्जे में है, तो केवल खरीदार की उपस्थिति पर्याप्त है। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। यदि शुफ़ी अनुपस्थित हो, तो उसे सूचना मिलने के बाद इतना समय दिया जाएगा कि वह आकर 'तलब-ए-इशहाद' (गवाहों के साथ दावा) कर ले। यदि वह या उसका वकील उपस्थित हो गया तो ठीक, अन्यथा उसका शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। यदि वह उपस्थित हुआ और फिर गायब हो गया, जबकि उसने 'तलब-ए-इशहाद' कर ली है, तो उसका अधिकार बना रहेगा। इमाम आज़म रह. के अनुसार 'तलब-ए-तम्लीक' में देरी से शुफ़ा का अधिकार शून्य नहीं होता, जबकि साहिबैन के अनुसार शून्य हो जाता है, जब तक कि देरी का कोई ठोस कारण (उज़्र) न हो। और यदि खरीदार किसी ऐसे शहर में दिखाई दे जहाँ बेची गई संपत्ति स्थित नहीं है, तो वहां शुफ़ी पर दावा करना अनिवार्य नहीं है, बल्कि वहीं अनिवार्य होगा जहाँ संपत्ति स्थित है। यह 'मुहीत सरखी' में है। यदि शुफ़ी को मक्का के रास्ते में बिक्री की सूचना मिले और उसने 'तलब-ए-मुवातिबा' (तत्काल दावा) कर लिया, लेकिन 'तलब-ए-इशहाद' करने में असमर्थ रहा, तो उसे किसी को वकील नियुक्त करना चाहिए जो उसकी ओर से शुफ़ा का दावा करे। यदि उसने ऐसा नहीं किया और चला गया, तो शुफ़ा शून्य हो जाएगा। यदि उसे कोई वकील नहीं मिला लेकिन कोई संदेशवाहक (कासिद) मिल गया, तो उसे पत्र भेजकर उसे वकील बनाना चाहिए। यदि उसने ऐसा नहीं किया, तो शुफ़ा शून्य हो जाएगा। यदि उसे वकील या संदेशवाहक कोई नहीं मिला, तो शुफ़ा शून्य नहीं होगा जब तक कि वह किसी को पा न ले। यह 'ज़हीरिया' में है। यदि किसी व्यक्ति का शुफ़ा का दावा काज़ी पर हो, तो उसे काज़ी को सुल्तान के पास ले जाना चाहिए जिसकी ओर से

काज़ी नियुक्त है। यदि दावा सुल्तान पर हो और काज़ी उसे उपस्थित करने से इनकार करे, तो व्यक्ति का अधिकार बना रहेगा क्योंकि यह एक विवशता है। यह 'मुहीत सरखी' में है। यदि शुफ़ी को रात में बिक्री का पता चला और वह गवाहों के पास जाने में असमर्थ था, तो यदि उसने सुबह होते ही ऐसा किया तो वह वैध होगा। यह 'खुलासा' में है। इमाम मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल रह. ने कहा कि यदि समय ऐसा हो जब लोग अपनी जरूरतों के लिए बाहर निकलते हों, तो वह निकलकर दावा करेगा। यह 'हावी' में है।

- फ़तावा में है कि यदि किसी यहूदी ने शनिवार[1] को बिक्री की सूचना सुनी लेकिन शुफ़ा का दावा नहीं किया, तो शुफ़ा शून्य हो जाएगा। यह 'खज़ाना-उल-मुफ़्तीन' में है। यदि पड़ोसी शुफ़ी ने इस डर से काज़ी से शुफ़ा नहीं मांगा कि काज़ी पड़ोसी के शुफ़ा को वैध नहीं मानता और दावा करने पर उसे रद्द कर देगा, तो वह व्यक्ति अपने अधिकार पर बना रहेगा क्योंकि यह एक वैध कारण (उज़्र) है। यह 'मुहीत सरखी' में है। यदि विद्रोहियों में से एक व्यक्ति ने दूसरे के लश्कर (सेना) में संपत्ति खरीदी और उसका शुफ़ी न्यायपूर्ण सेना (अहल-ए-हक) में है, तो यदि शुफ़ी स्वयं वहां जाने या वकील भेजने में असमर्थ है, तो उसका अधिकार बना रहेगा। लेकिन यदि वह सक्षम था और फिर भी नहीं किया, तो अधिकार शून्य हो जाएगा।
- यदि शुफ़ी विद्रोहियों के लश्कर में हो और उसे डर हो कि न्यायपूर्ण सेना में जाने पर उसे मार दिया जाएगा, और उसने इस कारण दावा नहीं किया, तो उसका अधिकार शून्य हो जाएगा क्योंकि वह विद्रोह छोड़कर न्यायपूर्ण सेना में आने में सक्षम है। यह 'मुहीत सरखी' में है। यदि विक्रेता और खरीदार इस बात पर सहमत हों कि शुफ़ी को कुछ दिनों से बिक्री की जानकारी थी, फिर उसके बाद दोनों...

---

1. शनिवार यहूदियों की इबादत का दिन है।

---

نے اپنا در فروخت کر دیا یا خود مر گیا تو اس کا حقِ شفعہ باطل ہو جائے گا اس کو امام خصافؒ نے اپنے ادب القاضی میں ذکر فرمایا ہے اور شفیع کو اختیار ہے کہ اس وقت تک بحقِ شفعہ لینے سے انکار کرے اگر چہ مشتری اس کو دیتا رہے جب تک کہ قاضی اس کے نام شفعہ کی ڈگری نہ کرے۔ یہ محیط میں ہے۔

جب شفیع نے قاضی کے سامنے یہ مقدمہ پیش کیا تو قاضی اس کے دعویٰ کی سماعت نہ کرے گا جب تک کہ خصم حاضر نہ ہو پس اگر وہ دار بائع کے قبضہ میں ہو تو سماعتِ دعویٰ کے واسطے بائع و مشتری دونوں کا حاضر ہونا شرط ہے اس واسطے کہ شفیع ملکیت و قبضہ دونوں کے واسطے حکم طلب کرتا ہے اور اس صورت میں ملکیت تو مشتری اور قبضہ بائع کا ہے پس دونوں کی موجودگی شرط ہوئی اور اگر وہ دار مشتری کے قبضہ میں ہو تو فقط مشتری کا حاضر ہونا کافی ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر شفیع غائب ہو تو بعد آگاہ ہونے کے اس کو اس قدر مہلت دی جائے گی کہ چل کر طلبِ اشہاد کر لے پس اگر وہ یا اس کا وکیل حاضر ہوا تو خیر ورنہ اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا پھر اگر وہ حاضر ہوا پھر غائب ہو گیا اور اس نے طلبِ اشہاد کر لی ہے تو وہ اپنی شفعہ پر باقی رہے گا اس واسطے کہ امام اعظمؒ کے نزدیک تاخیر طلب التملیک سے اس کا شفعہ باطل نہیں ہوتا ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک باطل ہوتا ہے مگر بسبب عذر کے نہیں باطل ہوتا ہے اور اس صورت میں بسبب عذر کے طلب التملیک میں تاخیر واقع ہوئی ہے اور اگر مشتری ایسے شہر میں ظاہر ہوا جہاں دارِ مبیعہ نہیں واقع ہے تو وہاں شفیع پر طلب واجب نہ ہوگی بلکہ وہیں واجب ہو گی جہاں دارِ مبیعہ واقع ہے یہ محیط سرخی میں ہے اگر شفیع کو راہِ مکہ میں بیع کا حال معلوم ہوا پس اس نے طلبِ مواثبہ کر لی مگر طلبِ اشہاد سے خود عاجز رہا تو کوئی

وکیل کر دے جو اس کے واسطے شفعہ طلب کرے پس اگر اس نے نہ کیا اور چلا گیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر اس نے ایسا شخص نہ پایا جس کو وکیل کرے مگر اس کو ایک پیک دستیاب ہوا تو اس کے ہاتھ ایک خط بھیجے اور اس میں وکیل کر دے پس اگر اس نے ایسا نہ کیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر اس نے وکیل یا پیک نہ پایا تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا یہاں تک کہ پیک کو پائے یہ ظہریہ میں ہے ایک شخص کا شفعہ قاضی پر ہے تو چاہئے کہ قاضی کو سلطان کے پاس لے جائے جس کی طرف سے یہ قاضی متولیِ قضاء ہے اور اگر سلطان پر ہو اور قاضی نے اس کے حاضر کرنے سے انکار کیا تو وہ شخص اپنی شفعہ پر باقی رہے گا اس واسطے کہ یہ عذر ہے یہ محیط سرخی میں ہے شفیع کو اگر رات میں بیع کا علم ہوا اور وہ نکل کر اشہاد پر قادر نہ ہوا پس اگر صبح ہوتے ہی اس نے اشہاد کیا تو صحیح ہے یہ خلاصہ میں ہے۔ امام محمد بن الفضلؒ نے فرمایا کہ اگر وہ وقت ایسا ہو کہ لوگ اس وقت نیک اپنی حاجت کے واسطے نکلتے ہوں تو نکل کر طلب کر لے گا یہ حاوی میں ہے۔

- فتاویٰ میں ہے کہ اگر یہودی نے سنیچر[1] کو بیع کا حال سنا مگر شفعہ نہ طلب کیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا یہ خزانہ المفتین میں ہے شفیع بالجوار نے اگر اس خوف سے قاضی سے شفعہ طلب نہ کیا کہ وہ قاضی شفعہ بالجوار کو جائز نہیں جانتا پس اگر میں طلب کروں تو باطل کر دے گا پس طلب نہ کیا تو یہ شخص اپنی شفعہ پر رہے گا اس واسطے کہ یہ عذر ہے یہ محیط سرخی میں ہے۔ اگر باغیوں میں سے ایک شخص نے دوسرے جوان کے لشکر میں ہے ایک دار خریدا اور اس کا شفیع اہل حق کے لشکر میں ہے پس اگر شفیع کو یہ قدرت نہیں کہ خود اس کے لشکر میں جائے یا کوئی وکیل بھیجے تو وہ اپنے شفعہ پر رہے گا اور طلب الاشہاد کا ترک کرنا اس کے حق میں مضر نہ ہو گا اور اگر شفیع کو قدرت تھی کہ خود ان

کے لشکر میں جائے یا کوئی وکیل بھیجے مگر اس نے طلب الاشہاد نہ کیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا یہ محیط میں ہے۔

- شفیع اگر خارجیوں یا باغیوں کے لشکر میں ہو اور اس نے خوف کیا کہ اگر میں اہل عدل کے لشکر میں جاؤں تو مجھے قتل کریں گے پس اس نے طلب الاشہاد نہ کی تو اس کا حقِ شفعہ باطل ہو جائے گا کیونکہ وہ قادر ہے کہ بغاوت چھوڑ کر اہل عدل کے لشکر میں جائے یہ محیط سرخی میں ہے اگر بائع و مشتری نے اس بات پر اتفاق کیا کہ شفیع کو چند روز سے بیع کا حال معلوم ہوا ہے پھر اس کے بعد دونوں

---

1. سنیچر یہودی کی عبادت کا روز۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 189 Kitab-ul-Shufa (The Book of Pre-emption)**

If there is a dispute regarding the demand (of pre-emption), and the pre-emptor (*Shafi*) says, "I made the demand as soon as I became aware of the sale," while the purchaser (*Mushtari*) says, "You did not make the demand," then the statement of the purchaser shall be accepted, and it will be mandatory for the pre-emptor to bring witnesses. However, if the pre-emptor says, "I have just learned of it now and I am claiming pre-emption," and the purchaser says, "You knew about it beforehand and did not claim it," then the statement of the pre-emptor shall be accepted. It is narrated from Sheikh Zahid Imam Abdul Wahid Shaibani that when the pre-emptor learns of the sale and immediately makes the initial demand (*Muwathabat-e-Shufa*), his right is established. But thereafter, if he says, "I knew of the sale at such-and-such a time and then claimed pre-emption," his statement will not be validated. If he says, "I have just learned of the sale this moment," and it is false, he will be considered a liar. The legal stratagem (*hila*) in this matter is for him to ask someone, "Inform me of the purchase," and then say, "I have been informed just now," in which case he would be truthful in his statement, even if he had received the news previously. Muhammad bin Muqatil mentioned in his *Nawadir* that if the pre-emptor claimed pre-emption from the purchaser at the time of the dispute but fears that admitting this would require witnesses, he may say: (**Al-Sa'ah 1 'alimtu wa ana atlub-ush-shufa** - "At this hour I learned, and I am claiming pre-emption"). There is scope for him to say this and swear such an oath, making an exception in his oath; this is recorded in *Al-Muhit*. Furthermore, if the purchaser requests the judge (*Qadi*) to take an oath from the pre-emptor that, by Allah, he made the valid demand for pre-emption without delay at the moment he learned of the sale, the judge shall administer the oath in this manner. If the purchaser presents witnesses that the pre-emptor knew of the sale for a long time but did not claim pre-emption, and the pre-emptor presents witnesses that he claimed pre-emption the moment he learned of the sale, the pre-emptor’s witnesses will not be accepted, and the judge will decree in favor of the purchaser; this is according to Imam Abu Hanifa, whereas according to Imam Abu Yusuf, the purchaser’s witnesses will be accepted (2); this is in *Al-Zakheera*. If the purchaser denies that the pre-emptor made a demand upon hearing of the sale, an oath will be taken from the purchaser regarding his knowledge. If he denies a demand was made at the time of their meeting, a definitive oath will be taken from him; this is in *Al-Multaqat*. If the pre-emptor comes before the judge and files a claim against the purchaser, the judge, before addressing the defendant, shall address the plaintiff and

inquire about the location of the house—the city, neighborhood, and boundaries—because he has claimed a right in that property, and it must be specified, as an undefined claim is invalid. Once he describes all this, the judge will ask whether the purchaser has taken possession of the house or not, because if the purchaser has not taken possession, the claim against the purchaser alone is not valid until the seller (*Ba'ye*) is present. Once this is also stated, the judge will inquire about the cause of pre-emption and the boundaries of the pre-empted property, because people differ in their causes; it is possible he claimed based on an invalid cause or is excluded (3) from the right of pre-emption due to another factor. Once he states a valid cause and is not found to be excluded, he will be asked, "When did you learn of the sale and what did you do at the time of learning?" This is because the right of pre-emption becomes void due to the passage of time, or due to waiver or any act indicating waiver. Thus, it is necessary for the facts to be clarified. Once he has stated this as well, he will be asked how he made the demand before witnesses (*Talab-e-Ishhad*) and who he called as witnesses.

---

1. The phrase "Al-Sa'ah" (The Hour) by common usage means "this very moment," but according to Arabic grammar with the prefix "Alif-Lam," it can refer to the specific time he had learned and demanded, which he cannot explicitly state out of fear; this is the intended meaning here. Understand this. 2. Here, "acceptance" means establishing the entitlement, even if those witnesses were later rejected due to some deficiency. 3. This refers to a plaintiff claiming by right of neighborhood (*haqq-e-jiwar*) while another pre-emptor is present by right of partnership (*haqq-e-shirkat*).

यदि मांग (शफ़ा का दावा) के संबंध में विवाद हो, तो शफ़ीअ (पूर्व-क्रयाधिकारी) ने कहा कि जब से मुझे पता चला, तभी से मैंने मांग की है, और मुश्तरी (खरीदार) ने कहा कि तुमने मांग नहीं की है, तो मुश्तरी का बयान स्वीकार किया जाएगा और शफ़ीअ के लिए गवाह लाना अनिवार्य होगा। और यदि शफ़ीअ ने कहा कि मुझे इसी समय पता चला है और मैं शफ़ा की मांग करता हूँ, और मुश्तरी ने कहा कि तुम्हें पहले से पता था और तुमने मांग नहीं की, तो शफ़ीअ का बयान स्वीकार किया जाएगा। शेख ज़ाहिद इमाम अब्दुल वाहिद शैबानी से वर्णित है कि उन्होंने फ़रमाया कि जब शफ़ीअ को बिक्री का पता चला और उसने तुरंत मांग (मुवासबात-ए-शफ़ा) कर ली, तो उसका अधिकार सिद्ध हो जाएगा। लेकिन इसके बाद यदि वह कहता है कि मैंने अमुक समय से बिक्री को जानकर शफ़ा की मांग की है, तो उसके कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी। और यदि वह कहता है कि मैंने इसी समय बिक्री के बारे में जाना है, तो वह झूठा होगा। इस मामले में युक्ति (हीला) यह है कि वह किसी व्यक्ति से कहे कि 'तुम मुझे बिक्री की खबर दो', फिर कहे कि 'इस समय मुझे खबर दी गई', तो वह अपने कथन में सच्चा होगा, भले ही उसे पहले भी खबर मिल चुकी हो। मुहम्मद बिन मुक़ातिल ने अपनी 'नवादिर' में उल्लेख किया है कि यदि शफ़ीअ ने मुश्तरी से विवाद के समय शफ़ा की मांग की हो, लेकिन उसे इस बात का डर हो कि यदि मैं ऐसा स्वीकार करता हूँ तो गवाहों की आवश्यकता पड़ेगी, तो उसने इस प्रकार कहा: (**अस-साअह १ अलम्तु व अना अतलुब-उश-शुफ़ा** - इसी क्षण मुझे पता चला और मैं शफ़ा मांगता हूँ), तो उसके लिए ऐसा कहने और ऐसी शपथ लेने की गुंजाइश होगी, और वह अपनी शपथ में अपवाद रखे, यह 'मुहीत' में है। फिर यदि मुश्तरी ने काज़ी (न्यायाधीश) से अनुरोध किया कि वह शफ़ीअ से शपथ ले कि अल्लाह की कसम, उसने जिस समय बिक्री का हाल जाना, उसी समय बिना देरी के यह सही मांग की, तो काज़ी उससे इस प्रकार शपथ लेगा। फिर यदि मुश्तरी ने इस बात के गवाह पेश किए कि शफ़ीअ को काफी समय से बिक्री का पता था लेकिन उसने शफ़ा की मांग नहीं की, और शफ़ीअ ने गवाह पेश किए कि जिस समय मुझे पता चला, उसी समय मैंने शफ़ा की मांग की है, तो शफ़ीअ के गवाह स्वीकार नहीं होंगे और काज़ी मुश्तरी के पक्ष में फैसला देगा; यह इमाम-ए-आज़म का मत है, जबकि इमाम अबू यूसुफ के अनुसार मुश्तरी के गवाह स्वीकार २ होंगे; यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि मुश्तरी ने बिक्री के बारे में सुनते समय शफ़ीअ द्वारा मांग करने से इनकार किया, तो मुश्तरी से उसके ज्ञान पर शपथ ली जाएगी, और यदि मुश्तरी से मिलते समय मांग करने से इनकार किया, तो उससे अंतिम शपथ ली जाएगी; यह 'मलक़त' में है। यदि शफ़ीअ काज़ी के पास

आया और मुश्तरी पर दावेदार के रूप में दावा किया और अपने लिए शफ़ा की मांग की, तो काज़ी प्रतिवादी (मुश्तरी) की ओर ध्यान देने से पहले वादी (शफ़ीअ) की ओर ध्यान देगा और संपत्ति का स्थान यानी शहर, मोहल्ला और सीमाएं पूछेगा, क्योंकि उसने उस घर में अधिकार का दावा किया है, इसलिए उसका स्पष्ट होना आवश्यक है क्योंकि अस्पष्ट दावा मान्य नहीं है। फिर जब वह यह सब बता दे, तो उससे पूछा जाएगा कि क्या मुश्तरी ने घर पर कब्जा कर लिया है या नहीं, क्योंकि यदि मुश्तरी ने कब्जा न किया हो, तो केवल मुश्तरी पर शफ़ीअ का दावा सही नहीं है जब तक कि विक्रेता (बाये) उपस्थित न हो। फिर जब वह यह भी बता दे, तो उससे शफ़ा का कारण और संबंधित संपत्ति की सीमाएं पूछी जाएंगी, क्योंकि कारणों में लोग भिन्न होते हैं; संभावना है कि उसने अयोग्य कारण से दावा किया हो या किसी अन्य कारण से वह इस शफ़ा के अधिकार से वंचित (महजूब ३) हो। फिर जब वह उचित कारण बता दे और यह स्पष्ट हो जाए कि वह वंचित नहीं है, तो उससे पूछा जाएगा कि तुम्हें बिक्री का पता कब चला और पता चलने पर तुमने क्या किया, क्योंकि समय बीतने या उपेक्षा के कारण शफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाता है। अतः उसकी स्थिति स्पष्ट होना आवश्यक है। फिर जब वह यह भी बता दे, तो उससे पूछा जाएगा कि उसने गवाहों के सामने मांग (तलब-ए-इशहाद) कैसे की और किसे गवाह बनाया।

---

१ वाक्य 'अस-साअह' का सामान्य अर्थ 'इसी घड़ी' है, लेकिन अरबी व्याकरण के अनुसार 'अलिफ़-लाम' के साथ इसका अर्थ वह विशिष्ट समय हो सकता है जब उसने जानकर मांग की थी जिसे वह डर के कारण स्पष्ट नहीं कर पा रहा था; यहाँ यही अर्थ अभिप्रेत है। २ यहाँ 'स्वीकार्यता' का अर्थ अधिकार सिद्ध होना है, चाहे वे गवाह दोषपूर्ण होने के कारण अस्वीकार कर दिए गए हों। ३ यह वादी पड़ोसी के अधिकार (हक़-ए-जवार) से दावा कर रहा है जबकि दूसरा शफ़ीअ साझेदारी (हक़-ए-शिरकत) के कारण उपस्थित है।

---

نے طلب میں اختلاف کیا پس شفیع نے کہا کہ جب سے مجھے معلوم ہوا تبھی سے میں نے طلب کیا ہے اور مشتری نے کہا کہ تو نے نہیں طلب کیا ہے تو قول مشتری کا قبول ہو گا اور شفیع پر واجب ہو گا کہ گواہ لائے اور اگر شفیع نے کہا کہ مجھے اسی وقت معلوم ہوا ہے اور میں شفعہ طلب کرتا ہوں اور مشتری نے کہا کہ تجھے پہلے سے معلوم ہوا ہے اور تو نے طلب نہیں کیا تو قول شفیع کا قبول ہو گا اور شیخ زاہد امام عبدالواحد شیبانی سے منقول ہے کہ انہوں نے فرمایا کہ جب شفیع کو خرید کا حال معلوم ہوا اور اس نے مواثبہ شفعہ طلب کر لیا تو اس کا حق ثابت ہو گا لیکن اس کے بعد اگر وہ کہتا ہے کہ میں نے فلاں وقت سے بیع کو جان کر شفعہ طلب کر لیا ہے تو اس کے قول کی تصدیق نہ ہو گی اور اگر کہتا ہے کہ میں نے اسی وقت بیع کا حال معلوم کیا ہے تو جھوٹا ہو گا پس اس بات میں حیلہ یہ ہے کہ کسی شخص سے کہے کہ تو مجھے خرید کی خبر دے پھر کہے کہ اس وقت مجھے خبر دی گئی تو اپنے قول میں سچا ہو گا اگرچہ اس سے پہلے بھی خبر پا چکا ہے اور محمد بن مقاتل نے اپنی نوادر میں ذکر کیا کہ اگر شفیع نے مشتری سے وقتِ حقدّم میں شفعہ طلب کیا ہو مگر اس کو اس بات کا خوف ہے کہ اگر میں ایسا اقرار کرتا ہوں تو گواہوں کی ضرورت پڑے گی پس اس نے یوں کہا کہ **(الساعۃ ۱ علمت و انا اطلب الشفعۃ)** تو اس کو ایسا کہنے کی اور ایسی قسم کھا جانے کی گنجائش ہو گی اور اپنی قسم میں استثناء کرے یہ محیط میں ہے۔ پھر اگر قاضی سے مشتری نے درخواست کی کہ شفیع سے قسم لے کہ واللہ اس نے جس وقت بیع کا حال جانا اسی وقت بدون تاخیر کے یہ شفعہ طلب صحیح طلب کیا تو قاضی اس سے اس طور سے قسم لے گا پھر اگر مشتری نے اس بات کے گواہ پیش کئے کہ شفیع نے ایک زمانہ سے بیع کا حال جانا مگر شفعہ طلب نہیں کیا اور شفیع نے گواہ پیش کئے کہ میں نے جس وقت بیع کا حال جانا

اسی وقت شفعہ طلب کیا ہے تو شفیع کے گواہ قبول نہ ہوں گے اور قاضی اس کے واسطے شفعہ کی ڈگری کر دے گا یہ امام اعظم کا مذہب ہے اور امام ابو یوسف کے نزدیک مشتری کے گواہ مقبول ۲ ہوں گے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر مشتری نے شفیع سے بیع کا حال سننے کے وقت شفعہ طلب کرنے سے انکار کیا تو مشتری سے اس کے علم پر قسم لی جائے گی اور اگر مشتری سے ملاقات کرنے کے وقت شفعہ طلب کرنے سے انکار کیا تو اس سے قطعی قسم لی جائے گی یہ ملقط میں ہے۔ اگر شفیع قاضی کے پاس آیا اور مشتری پر خرید دار کا دعویٰ کیا اور قاضی سے اپنے واسطے شفعہ کی درخواست کی تو قاضی مدعا علیہ کی طرف توجہ کرنے سے پہلے مدعی کی طرف متوجہ ہو کر موضع دار یعنی شہر و محلہ وحدود دریافت کرے گا اس واسطے کہ اس نے اس دار میں حق کا دعویٰ کیا ہے پس ضرور اس کا متعین ہونا چاہئے کیونکہ دعویٰ مجھول صحیح نہیں ہے پس ایسا ہو گیا کہ گویا اس نے رقبہ دار کا دعویٰ کیا پھر جب اس نے یہ سب بیان کیا تو اس سے دریافت کرے گا کہ آیا مشتری نے دار پر قبضہ کر لیا یا نہیں کیونکہ اگر مشتری نے قبضہ نہ کیا ہو تو شفیع کا دعویٰ فقط مشتری پر صحیح نہیں ہے یہاں تک کہ بائع حاضر ہو پھر جب اس نے یہ بھی بیان کیا تو اس سے سببِ شفعہ اور مشفوع بہا کے حدود دریافت کرے گا اس واسطے کہ سبب میں لوگ مختلف ہوتے ہیں پس احتمال ہے کہ اس نے سببِ غیر صالح کی وجہ سے دعویٰ کیا ہو یا کسی دوسرے کی وجہ سے یہ قدعی حق شفعہ سے محجوب ۳ ہو پھر جب اس نے سببِ صالح بیان کیا اور دوسرے کی وجہ سے محجوب نہ نکلا تو اس سے دریافت کرے گا کہ تجھ کو کب بیع کا علم ہوا اور وقتِ علم کے تو نے کیا کیا اس واسطے کہ شفعہ بسبب طول زمان اور بسب اعراض کے یا جو امر اعراض پر دلالت کرے پائے جانے سے باطل ہو جاتا ہے پس اس کا حال کھل جانا ضرور ہے پھر جب اس نے یہ بھی بیان کر لیا تو اس سے دریافت کرے گا کہ اس نے کیونکر طلبِ اشہاد کی اور کس کو گواہ کیا ہے

۱ قولہ الساعۃ متبادر الاطلاق سے یہ ہے کہ اسی ساعت میں نے معلوم کیا مگر بقاعدہ عربی الف لام سے معہود وقت مراد ہو سکتا ہے یعنی وہ ساعت جس میں اس نے معلوم کر کے مشتری سے طلب کیا تھا جو بخوف بیان نہیں کر سکتا ہے اور یہاں یہی مراد ہے فافہم۔ ۲ یہاں قبولیت سے استحقاق مراد ہے اگر چہ وہ گواہ مجروح ہونے کے باعث سے مردود ہو جائیں۔ ۳ یہ مدعی بحق جوار ہے اور دوسرا شفیع بحق شرکت موجود ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 190 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

And whether the person in whose presence the witnesses were produced was nearer to the other or not, as we have explained above. Then, once he has stated the cause and no defect is found in the conditions of the formal demand (talab), his claim is complete. Then the Qazi (Judge) will turn towards the defendant (mud'a-alaihi) and ask him whether the house (dar) due to which the claimant (mud'ai) is seeking pre-emption is the property of the pre-emptor (shafi) or not. Even if this house is in the possession of the pre-emptor, which apparently indicates ownership, mere apparent ownership is not sufficient for the right of pre-emption. Therefore, it is necessary for the right of pre-emption that his ownership be proven. Thus, this matter shall be investigated. Then, if the defendant denies the claimant's ownership, the claimant will be told to produce witnesses to prove that "this house is your property."

If the claimant is unable to produce such witnesses and requests an oath from the defendant, the Qazi shall take an oath from the purchaser (mushtari) saying: "By Allah, I do not know that this claimant is the owner of the house by virtue of which he claims pre-emption." This is because the claimant has asserted a right against him which, if he were to admit, would become binding upon him. However, since the property is in the possession of another, the oath shall be taken regarding his 'knowledge' (ilm). This is according to Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), as stated in 'al-Tabyin', and the legal decree (fatwa) is based on this as in 'al-Sirajiyyah'. If the purchaser refuses to take the oath (nukul), or if the pre-emptor's witnesses are established, or if the purchaser himself admits it, then the pre-emptor's ownership in the house by which he claims pre-emption is proven, and the cause is also established.

The Qazi will then ask the defendant whether he bought the property or not. If he denies the purchase, the pre-emptor will be ordered to produce witnesses to prove that he bought it. If the pre-emptor is unable to produce witnesses and requests an oath from the purchaser, the Qazi shall take an oath from him saying: "By Allah, I have not bought it," or "By Allah, this person has no right of pre-emption against me in this house for the reason he mentioned." This is termed 'tahlif alal-hasil' (oath regarding the final outcome), and it is the view of Imam Azam and Imam Muhammad (may Allah have mercy on them). The first view is 'tahlif alas-sabab' (oath regarding the cause), which is the view of Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him). If he refuses to swear, or admits the fact, or the pre-emptor's witnesses are established,

the Qazi shall grant the decree for pre-emption because the right has become manifest.

It is written in 'al-Tabyin' that in 'al-Ajnas', the manner of giving testimony is described as follows: witnesses should testify that "this house, located adjacent to the sold house, has been the property of this pre-emptor since before this purchaser bought this house (1), and it remains his property to this moment; we do not know of it having left his ownership." If the witnesses merely say, "This house belongs to this neighbor," it is not sufficient. If they testify that "the pre-emptor bought this house from such-and-such person and it is in his possession," or "such-and-such person gifted (hiba) this house to him," that is sufficient. If the pre-emptor intends to request an oath from the purchaser, he has the right to do so, as stated in 'al-Zakhirah' and 'al-Muhit'. It is narrated from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) that if a person claims a house and produces witnesses that this house was in the hands of the claimant's father and remained in his possession until he died, a decree for the house shall be issued in the claimant's name. However, if an adjacent house is sold, this person will not be entitled to pre-emption until he produces witnesses of his own ownership. If a house is in someone's possession and he admits it belongs to another, and then an adjacent house is sold, the former cannot claim pre-emption unless he establishes with witnesses that "this house is mine." This is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. Al-Khassaf mentioned regarding the forfeiture (isqat) of pre-emption that if a seller admits a co-sharer's right for someone and then sells the remaining house to him, his neighbor will not be entitled to pre-emption.

**Footnotes:** 1. His statement "for this reason etc." refers to situations where the claimant's ownership is proven by the defendant's admission; an oath shall be taken on such a matter. An oath is taken from the defendant based on his knowledge because when the house is in the claimant's possession, how can the defendant swear a categorical oath that it is not his property? Therefore, if he refuses to swear (nukul), it is treated as an admission. 2. This refers to taking an oath on the final outcome of the case. 3. The oath means the purchaser knows that this house is my property. 4. House, meaning that which was in his father's possession until death, because an apparent cause exists, but this is not sufficient for pre-emption. (1) The sold house.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 190 किताबुश-शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार की पुस्तक)**

और क्या जिसके सामने गवाह पेश किए गए, वह दूसरे से ज़्यादा क़रीब था या नहीं, जैसा कि हमने ऊपर बयान किया है। फिर जब उसने यह कारण बयान कर दिया और मांग (तलब) की शर्तों में कोई कमी नहीं पाई गई, तो उसका दावा पूरा हो गया। फिर काज़ी प्रतिवादी (मुदा-अलैहि) की ओर मुड़कर उससे पूछेगा कि जिस घर (दार) के कारण वादी (मुद्दई) शुफ़ा का अधिकार चाहता है, वह शफ़ी (अग्रक्रय का अधिकार रखने वाला) की संपत्ति है या नहीं। भले ही यह घर शफ़ी के क़ब्ज़े में हो, जो ज़ाहिर तौर पर स्वामित्व को दर्शाता है, क्योंकि केवल प्रकट स्वामित्व शुफ़ा के अधिकार के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए ज़रूरी है कि शुफ़ा के अधिकार के लिए उसका मालिकाना हक़ साबित हो। तो इस बात की जाँच की जाएगी। फिर यदि प्रतिवादी ने वादी के मालिकाना हक़ से इनकार किया, तो वादी से कहा जाएगा कि वह इस मामले के गवाह पेश करे कि यह घर तुम्हारी संपत्ति है।

यदि वादी ऐसे गवाह पेश करने में असमर्थ रहा और उसने प्रतिवादी की शपथ की माँग की, तो काज़ी खरीदार (मुश्तरी) से शपथ लेगा कि "ईश्वर की शपथ, मैं नहीं जानता कि यह वादी उस घर का मालिक है जिसके कारण वह शुफ़ा का दावा कर रहा है।" क्योंकि वादी ने उस पर ऐसे अधिकार का दावा किया है कि यदि वह इसे स्वीकार कर ले, तो उसके लिए यह अनिवार्य हो जाएगा। लेकिन चूँकि यह दूसरे के क़ब्ज़े में है, इसलिए उससे 'ज्ञान' (इल्म) पर शपथ ली जाएगी। यह इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के अनुसार है, जैसा कि 'अत-तबीन' में है और इसी पर फ़तवा है जैसा कि 'अस-सिराजिया' में है। फिर यदि खरीदार ने शपथ लेने से इनकार (नकुल) किया या शफ़ी के गवाह पेश हो गए या खरीदार ने स्वयं इसे स्वीकार कर लिया, तो जिस घर के कारण शफ़ी शुफ़ा का दावा कर रहा है, उसमें शफ़ी का मालिकाना हक़ साबित हो जाएगा और शुफ़ा का कारण भी साबित हो जाएगा।

फिर काज़ी इसके बाद प्रतिवादी से पूछेगा कि क्या तुमने इसे खरीदा है या नहीं। यदि उसने खरीदने से इनकार किया, तो शफ़ी को आदेश दिया जाएगा कि गवाह पेश करे कि उसने खरीदा है। यदि शफ़ी गवाह पेश करने में असमर्थ रहा और उसने खरीदार से शपथ की माँग की, तो काज़ी उससे शपथ लेगा कि "ईश्वर की शपथ, मैंने नहीं खरीदा है" या "ईश्वर की शपथ, मुझ पर यह व्यक्ति इस घर में शुफ़ा का अधिकार नहीं रखता जैसा उसने उल्लेख किया है।" यह 'तहलीफ अलुल-हासिल' (परिणाम पर शपथ लेना) है और यह इमाम आज़म और इमाम मुहम्मद (रह.) का मत है। पहला मत 'तहलीफ अलस-सबब' (कारण पर शपथ लेना) है जो इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) का मत है। यदि उसने शपथ से इनकार किया या स्वीकार किया या शफ़ी के गवाह साबित हो गए, तो काज़ी शुफ़ा की डिक्री

दे देगा क्योंकि हक़ साबित हो गया। 'तबीन' में लिखा है कि 'अजनास' में गवाही देने की विधि इस प्रकार बताई गई है कि गवाहों को इस तरह गवाही देनी चाहिए कि "यह घर जो बेचे गए घर के पड़ोस में स्थित है, वह इस खरीदार के द्वारा इस घर (1) को खरीदने से पहले से ही इस शफ़ी की संपत्ति है और वह आज तक उसी की संपत्ति है। हम नहीं जानते कि यह उसकी संपत्ति से बाहर गया हो।" और यदि गवाहों ने केवल यह कहा कि "यह घर इस पड़ोसी का है", तो यह पर्याप्त नहीं है। यदि इस तरह गवाही दी कि "शफ़ी ने यह घर फ़लां व्यक्ति से खरीदा है और वह शफ़ी के क़ब्ज़े में है" या "फ़लां व्यक्ति ने यह घर उसे उपहार (हिबा) में दिया है", तो यह पर्याप्त है। यदि शफ़ी खरीदार से शपथ लेने का इरादा करे, तो उसे इसका अधिकार है, जैसा कि 'ज़खीरा' और 'मुहीत' में है। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से रिवायत है कि यदि किसी व्यक्ति ने एक घर का दावा किया और गवाह पेश किए कि यह घर वादी के पिता के अधिकार में रहा और जब तक वे मरे, उन्हीं के क़ब्ज़े में था, तो वादी के नाम घर की डिक्री की जाएगी। फिर यदि उसके बराबर वाला कोई घर बेचा गया, तो यह व्यक्ति शुफ़ा का हक़दार नहीं होगा जब तक कि वह अपने स्वामित्व के गवाह पेश न करे। एक घर एक व्यक्ति के क़ब्ज़े में है और उसने स्वीकार किया कि वह फ़लां व्यक्ति का है, फिर उसके पड़ोस में दूसरा घर बेचा गया, तो वह व्यक्ति शुफ़ा नहीं माँग सकेगा जब तक कि वह गवाहों से साबित न कर दे कि यह घर मेरा है। यह 'मुहीत सरखी' में है। खसाफ़ ने शुफ़ा के पतन (इस्क़ात) के लिए ज़िक्र किया कि यदि विक्रेता (बाइ) ने किसी व्यक्ति के लिए हिस्सेदारी स्वीकार की और फिर बाकी घर उसके हाथ बेच दिया, तो उसका पड़ोसी शुफ़ा का पात्र नहीं होगा।

**पाद-टिप्पणियाँ:** 1. उक्त कथन 'इसलिए आदि' और जहाँ ऐसा हो कि प्रतिवादी की स्वीकृति से वादी का स्वामित्व सिद्ध हो जाए, वहाँ ऐसे मामले पर शपथ ली जाएगी। फिर प्रतिवादी से उसके ज्ञान पर इसलिए शपथ ली गई कि घर वादी के कब्जे में है, तो वह निश्चित शपथ कैसे ले सकता है कि वह उसका मालिक नहीं है? फिर यदि वह शपथ से इनकार (नकुल) करे, तो उसे स्वीकृति माना जाएगा। 2. यह यानी अंतिम परिणाम पर शपथ दिलाना। 3. शपथ यानी खरीदार जानता है कि यह घर मेरी संपत्ति है। 4. घर यानी जो मृत्यु तक उसके पिता के कब्जे में था, क्योंकि स्पष्ट कारण मौजूद है, लेकिन यह शुफ़ा के लिए पर्याप्त नहीं है। (1) बिका हुआ घर।

اور آیا جس کے حضور میں گواہ کئے وہ دوسرے سے اقرب تھا یا نہ تھا جیسا کہ ہم نے اوپر بیان کیا ہے پھر جب اس نے یہ سبب بیان کر لیا اور شروط طلب میں کچھ خلل نہ پایا گیا تو اس کا دعویٰ تمام ہو گیا پھر مدعاعلیہ کی طرف متوجہ ہو کر اس سے دریافت کرے گا کہ جس دار کی وجہ سے مدعی خواستگار شفعہ ہے وہ شفیع کی ملک ہے یا نہیں اگر چہ یہ دار شفیع کے قبضے میں ہو جو بظاہر ملکیت پر دلالت کرتا ہے اس واسطے کہ ملک ظاہر استحقاق شفعہ کے واسطے کافی نہیں ہے پس ضروری ہے کہ استحقاق شفعہ کے واسطے اس کی ملکیت ثابت ہو پس اس بات کو دریافت کرے گا پھر اگر مدعا علیہ نے ملک مدعی ہونے سے انکار کیا تو مدعی سے کہے گا کہ اس امر کے گواہ پیش کرے کہ یہ دار تیری ملک ہے پس اگر مدعی ایسے گواہ قائم کرنے سے عاجز ہوا اور اس نے مدعا علیہ کی قسم طلب کی تو قاضی مشتری سے قسم لے گا کہ واللہ میں نہیں جانتا ہوں کہ یہ مدعی اس دار کا مالک ہے جس کی وجہ سے شفعہ کا دعویٰ کرتا ہے اس لئے کہ مدعی نے اس پر ایسے حق کا دعویٰ کیا ہے کہ اگر اس کا اقرار کر لے تو اس کے ذمہ لازم ہو جائے گا مگر چونکہ دوسرے کے قبضہ میں ہے اس واسطے اس سے علم پر قسم لی جائے گی اور یہ امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ہے کذانی التبیین اور اسی پر فتویٰ ہے کذا فی السراجیہ پس اگر مشتری نے قسم سے نکول کیا یا شفیع کے گواہ قائم ہو گئے یا مشتری نے خود ہی ایسا اقرار کر لیا تو جس دار کی وجہ سے شفیع حق شفعہ کا دعویٰ کرتا ہے اس میں شفیع کی ملک ثابت ہو گئی اور سبب بھی ثابت ہو گیا پھر قاضی اس کے بعد مدعا علیہ سے دریافت کرے گا کہ آیا تو نے خریدا ہے یا نہیں پھر اگر اس نے خرید سے انکار کیا تو شفیع کو حکم دے گا کہ تو گواہ قائم کر کہ اس نے خریدا ہے پس اگر شفیع ایسے گواہ قائم کرنے سے عاجز رہا اور اس نے مشتری کی قسم طلب کی

تو قاضی اس سے قسم لے گا کہ واللہ میں نے نہیں خریدا ہے یا واللہ مجھ پر یہ شخص اس دار میں استحقاق شفعہ جس وجہ سے اس نے ذکر کیا ہے نہیں رکھتا ہے پس یہ تحلیف علی الحاصل ہے اور یہ امام اعظم و امام محمدؒ کا قول ہے۔ اوّل تحلیف علی السبب ہے اور وہ امام ابو یوسفؒ کا قول ہے پس اگر اس نے قسم سے نکول کیا یا اقرار کیا یا شفیع کے گواہ قائم ہو گئے تو قاضی شفعہ کی ڈگری کر دے گا اس واسطے کہ حق ثابت ظاہر ہو گیا یہ تبیین میں لکھا ہے اجناس میں گواہی ادا کرنے کی کیفیت اس طرح بیان فرمائی کہ گواہوں کو یوں گواہی دینی چاہئے کہ یہ دار جو دار مبیعہ کے جوار میں واقع ہے وہ اس مشتری کے اس دار (۱) خریدنے سے پہلے سے اس شفیع کی ملک ہے اور وہ اس دم تک اسی کی ملک ہے ہم نہیں جانتے ہیں کہ اس کی ملک سے نکلا ہو اور اگر گواہوں نے کہا کہ یہ دار اس جار کا ہے تو کافی نہیں ہے۔ اگر یوں گواہی دی کہ شفیع نے یہ دار فلاں شخص سے خریدا ہے اور وہ شفیع کے قبضہ میں ہے یا فلاں شخص نے یہ دار اس کو ہبہ کیا ہے تو یہ کافی ہے پس اگر شفیع نے مشتری سے قسم لینے کا ارادہ کیا تو اس کو ایسا اختیار حاصل ہے یہ ذخیرہ و محیط میں ہے۔ امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ اگر ایک شخص نے ایک دار کا دعویٰ کیا اور گواہ قائم کئے کہ یہ دار اس مدعی کے باپ کے ہاتھ میں رہا اور جب تک وہ مرا ہے اسی کے قبضہ میں تھا تو مدعی کے نام دار کی ڈگری کی جائے گی پھر اگر اس کے پہلو میں کوئی دار فروخت کیا گیا تو یہ شخص شفعہ کا مستحق نہ ہو گا یہاں تک کہ اپنی ملک کے گواہ قائم کرے ایک دار ایک شخص کے قبضہ میں ہے اس نے اقرار کیا کہ فلاں شخص کا ہے پھر اس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا پس مقرر نے شفعہ طلب کیا تو اس کو شفعہ نہ ملے گا یہاں تک کہ اس بات کے گواہ قائم کرے کہ یہ دار میرا ہے یہ محیط سرخی میں ہے۔ خصاف نے اسقاط

شفعہ کے واسطے ذکر کیا کہ بائع نے اگر ایک شخص کے واسطے ایک حصہ دار کا اقرار کیا پھر باقی دار اس کے ہاتھ فروخت کر دیا تو اس کا جار مستحق شفعہ نہ ہو گا

1. قولہ اس لئے الخ اور جہاں ایسا ہو کہ مدعاعلیہ کے اقرار سے مدعی کو مولیٰ ثابت ہو جائے تو ایسے امر پر قسم لی جائے گی۔ پھر مدعا علیہ سے اس کے علم پر اس واسطے قسم لی کہ دار مدعی کے قبضہ میں ہے تو قطعی قسم کیونکر کھائے کہ اس کی ملکیت نہیں ہے پھر اگر قسم سے نکول یعنی انکار کرے تو گویا اقرار کر لیا۔
2. یہ یعنی حاصل مطلب پر قسم دینا۔ ۳. قسم یعنی مشتری جانتا ہے کہ یہ دار میری ملکیت ہے۔ ۴. دار یعنی جو مرتے دم تک اس کے باپ کے قبضہ میں تھا کیونکہ ظاہری سبب موجود ہے لیکن یہ شفعہ کے لئے کافی نہیں چنانچہ پھر اتر الخ۔ (۱) دار مبیعہ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 (191) Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

Sheikh Abu Bakr Khwarazmi used to point out the error of Sheikh Khassaf in this matter and personally issued fatwas stating that the neighbor would have the right of pre-emption (Shufa), as partnership could not be established in any way except through the seller's admission; this is recorded in 'al-Zakheer-ah'. Two individuals inherited a reed-bed (neestan) from their father. One of the two heirs was unaware of the inheritance and did not know he had a share in it. Subsequently, an adjacent reed-bed was sold. He did not claim pre-emption. When he later discovered his share, he claimed pre-emption in the sold reed-bed. The jurists (Mashayikh) stated that his right of pre-emption became void because the condition for the confirmation of pre-emption is that the "immediate demand" (Talab-i-Muwasaba) must be made at the moment the sale becomes known. Since he did not make the demand, his right of pre-emption no longer exists, and ignorance is not a valid excuse. This is mentioned in 'Fatawa Qazi Khan'.

**Chapter Four: Regarding the Entitlement of the Pre-emptor (Shafi') to the Whole or Part of the Sold Property**

A person purchased five residences from a single individual in a single transaction (contract) located in a dead-end alley. The pre-emptor (Shafi') wished to take only one residence (mansion). The jurists stated that if the pre-emptor claimed pre-emption due to partnership in the right-of-way, he cannot take only a portion, as this would necessitate an unnecessary splitting of the bargain (Tafriq al-Safqa). However, if he claimed pre-emption based on the validity of pre-emption and his neighborhood is only with that specific residence he is claiming, then he shall have the right to take that one residence. This is in 'Fatawa Qazi Khan'. If the pre-emptor wishes to take a portion of the sold property in pre-emption and leave the rest, and if that portion is not distinct—for instance, if the purchaser bought a house and the pre-emptor wanted to take one part but not the other, or take the side adjacent to the door but leave the rest—then according to our companions, without disagreement, he shall not have such an option. He must either take the whole or leave it all. This is because if he takes some and leaves some, it would result in the splitting of the bargain to the detriment of the purchaser, whether one purchaser bought from one person or from two or more. Furthermore, if the pre-emptor wishes to take the share of only one of two sellers, then according to the 'Zahir al-Riwayah' of our companions, he shall not have this option, whether the purchaser has taken possession of the house or not, and this is the correct view. If two persons purchased a single house from one

person, then by consensus (Ijma'), the pre-emptor has the option to take the share of one purchaser, whether before or after taking possession. This is the 'Zahir al-Riwayah' because the contract was split from the beginning; thus, taking a part does not constitute a splitting of the bargain. It is immaterial whether half the price was stated separately for each or a single price was stated for the whole. In both cases, it matters not whether the purchaser acted for himself or for another. Even if two persons jointly appointed one person as an agent to purchase, and then the agent bought a house from two individuals, and then the pre-emptor came, he would not have the option to take the share of only one of the two sellers in pre-emption. However, if one person appointed two agents and both bought a house from one person, then the pre-emptor has the option to take as much as one agent purchased. Similarly, if there were ten agents and they bought a house for one person, the pre-emptor has the choice to take from one, two, or three of them. Imam Muhammad (R) stated that in this matter we look at the purchaser and not the person for whom it was purchased, and this is the view. If parts of the sold property are distinct—for example, two houses purchased in a single transaction—and the pre-emptor wished to take one house instead of the other, then if he is the pre-emptor for both, he shall not have this option... although for pre-emption, ownership is necessary.

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 (191) किताब-अश-शुफ़ा

और शेख अबू बक्र ख्वारजमी इस मसले में शेख खसाफ़ की गलती बयान करते थे और खुद यूँ फतवा देते थे कि पड़ोसी को शुफ़ा (Pre-emption) का हक हासिल होगा क्योंकि शिरकत (साझेदारी) विक्रेता के इकरार के बिना किसी भी तरह साबित नहीं हुई है, यह 'जखीरा' में है। दो व्यक्तियों को अपने पिता से विरासत में एक सरकंडों का बाग (नीस्तान) मिला। उन दोनों में से एक वारिस को विरासत का ज्ञान नहीं हुआ और वह नहीं जानता था कि इसमें मेरा हिस्सा है। फिर उस बाग के बगल वाला दूसरा बाग बेचा गया। उसने शुफ़ा का दावा नहीं किया। फिर जब उसे पता चला कि इसमें मेरा हिस्सा है, तो उसने बिके हुए बाग में शुफ़ा की मांग की। मशायख ने फरमाया कि उसका शुफ़ा का हक खत्म हो गया, क्योंकि शुफ़ा के पक्का होने की शर्त यह है कि बिक्री की जानकारी मिलते ही तत्काल मांग (तलब-ए-मुवासाबा) की जाए। जब उसने मांग नहीं की, तो उसका शुफ़ा का हक बाकी नहीं रहेगा और अज्ञानता कोई बहाना नहीं है। यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है।

## अध्याय चौथा: शफ़ी (दावेदार) के पूरे या कुछ हिस्से के हक के बयान में

एक व्यक्ति ने एक ही सौदे में एक ही व्यक्ति से एक बंद गली में पांच घर खरीदे। शफ़ी ने चाहा कि वह एक घर (हवेली) ले ले। मशायख ने फरमाया कि यदि शफ़ी ने रास्ते की साझेदारी के कारण शुफ़ा की मांग की है, तो वह कुछ हिस्से को नहीं ले सकता, क्योंकि इसमें बिना जरूरत सौदे का बंटवारा (तफ़रीक़-ए-सफ़क़त) लाज़िम आता है। और अगर उसने शुफ़ा की अनुमति के हुक्म से मांग की और उसका पड़ोस केवल उसी घर से है जिसकी वह मांग कर रहा है, तो उसे उस एक घर को लेने का अधिकार होगा। यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। यदि शफ़ी ने चाहा कि वह बेची गई संपत्ति का कुछ हिस्सा शुफ़ा में ले ले और कुछ न ले, तो यदि वह हिस्सा अलग न हो, जैसे किसी ने एक घर खरीदा और शफ़ी ने चाहा कि कुछ हिस्सा ले ले और कुछ छोड़ दे, या वह हिस्सा ले ले जो दरवाजे से सटा है, तो हमारे विद्वानों के अनुसार बिना किसी मतभेद के उसे ऐसा अधिकार नहीं होगा। वह या तो पूरा ले ले या सब छोड़ दे। क्योंकि यदि वह कुछ लेगा और कुछ छोड़ेगा, तो खरीदार के लिए सौदे का बंटवारा हो जाएगा। चाहे एक खरीदार ने एक ही से खरीदा हो या एक ने दो या अधिक से। यहाँ तक कि यदि शफ़ी ने चाहा कि दो विक्रेताओं में से एक का हिस्सा ले ले, तो हमारे विद्वानों के अनुसार 'ज़ाहिर-अर-रवाया' के मुताबिक उसे यह अधिकार नहीं होगा, चाहे खरीदार ने उस घर पर कब्जा किया हो या नहीं, और यही सही है। यदि दो व्यक्तियों ने एक व्यक्ति से एक घर खरीदा, तो सर्वसम्मति से शफ़ी को अधिकार होगा कि वह एक खरीदार का हिस्सा ले ले, चाहे कब्जे से पहले हो

या बाद में, यही 'ज़ाहिर-अर-रवाया' है। क्योंकि सौदा शुरू से ही अलग-अलग हुआ है, अतः कुछ हिस्सा लेना सौदे का बंटवारा नहीं माना जाएगा। और यह बराबर है चाहे प्रत्येक के लिए आधी कीमत अलग से बताई गई हो या सबके लिए एक ही कीमत बताई गई हो। दोनों स्थितियों में चाहे खरीदार अपने लिए सौदा कर रहा हो या किसी और के लिए। यहाँ तक कि यदि दो व्यक्तियों ने साथ मिलकर एक व्यक्ति को खरीदने के लिए वकील बनाया, फिर वकील ने दो व्यक्तियों से घर खरीदा, और फिर शफ़ी आया, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा कि दोनों विक्रेताओं में से किसी एक का हिस्सा शुफ़ा में ले ले। और यदि एक व्यक्ति ने दो व्यक्तियों को वकील बनाया और दोनों ने एक ही व्यक्ति से घर खरीदा, तो शफ़ी को अधिकार होगा कि एक वकील ने जितना खरीदा है उसे ले ले। इसी प्रकार यदि वकील दस लोग हों और उन्होंने एक व्यक्ति के लिए घर खरीदा हो, तो शफ़ी को अधिकार होगा कि चाहे एक से ले ले, या दो से या तीन से। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि इस मामले में हम खरीदार को देखते हैं, न कि उसे जिसके लिए खरीदा गया है, और यही दृष्टिकोण है। और यदि बेची गई संपत्ति का कुछ हिस्सा दूसरे से अलग हो, जैसे एक ही सौदे में दो घर खरीदे गए और शफ़ी ने चाहा कि एक घर ले ले और दूसरा छोड़ दे, तो यदि वह शफ़ी उन दोनों का शफ़ी है, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा... हालांकि शुफ़ा के लिए मिल्कियत का होना आवश्यक है।

---

اور شیخ ابوبکر خوازمی اس مسئلہ میں شیخ خصاف کی خطا بیان کرتے تھے اور خود یوں فتویٰ دیتے تھے کہ جار کو حق شفعہ حاصل ہو گا اس واسطے کہ شرکت سوائے اقرار بائع کے کسی طرح ثابت نہیں ہوئی ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ دو شخصوں نے ایک نیستان اپنے باپ سے میراث پایا اور دونوں میں سے ایک وارث معین کو میراث کا علم نہ ہوا اور اس نے نہ جانا کہ میرا اس میں حصہ ہے پھر اس نیستان کے پہلو میں دوسرا نیستان فروخت کیا گیا پس اس نے شفعہ بھی طلب نہ کیا پھر جب اس کو معلوم ہوا کہ اس میں میرا حصہ ہے تو اس نے نیستان مبیعہ میں شفعہ طلب کیا تو مشائخ نے فرمایا کہ اس کا حق شفعہ باطل ہو گیا اس واسطے کہ شفعہ متاکد ہونے کی شرط یہ ہے کہ بیع کا حال معلوم ہونے کے وقت طلب مواثبہ پائی جائے پھر جب اس نے طلب نہ کیا تو اس کا حق شفعہ باقی نہ رہے گا اور جہالت کچھ عذر نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

**باب چہارم : شفیع کے کل یا بعض مبیع کے استحقاق کے بیان میں**

ایک شخص نے پانچ منزلیں ایک ہی شخص سے ایک ہی عقدہ میں ایک کوچہ غیر نافذ میں خریدیں پس شفیع نے چاہا کہ ایک منزل (حویلی) لے لے تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر شفیع نے راستہ کی شرکت کی وجہ سے شفعہ طلب کیا ہو تو بعض کو نہیں لے سکتا اس واسطے کہ اس میں بلا ضرورت تفریق صفقت لازم آتی ہے اور اگر اس نے بحکم جواز شفعہ طلب کیا اور اس کا جوار صرف اسی منزل سے ہے جس کو طلب کرتا ہے تو اس کو اس ایک منزل کے لینے کا اختیار ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر شفیع نے چاہا کہ بعض مبیع کو شفعہ میں لے لے اور بعض کو نہ لے پس اگر بعض سے ممتاز نہ ہو مثلاً مشتری نے ایک دار خریدا اور شفیع نے بعض دار سوائے

بعض کے یا وہ جانب جو دروازہ سے متصل ہے سوائے باقی کے لینا چاہا تو ہمارے اصحاب کے نزدیک بلا خلاف اس کو ایسا اختیار نہ ہو گا مگر چاہے تو کل لے لے یا سب چھوڑ دے اس لئے کہ اگر اس نے کچھ لیا اور کچھ نہ لیا تو مشتری کے حق میں تفریق صفقت ہو جائے گی خواہ ایک مشتری نے ایک ہی سے خریدا ہو یا ایک نے دو سے خریدا ہو یا زیادہ سے حتیٰ کہ اگر شفیع نے چاہا کہ دو بائع میں سے ایک کا حصہ لے لے تو ہمارے اصحاب سے ظاہر الروایہ کے موافق اس کو یہ اختیار نہ ہو گا خواہ مشتری نے دار مذکور پر قبضہ کر لیا ہو یا نہ کیا ہو اور یہی صحیح ہے۔

اگر دو شخصوں نے ایک شخص سے ایک دار خریدا تو بالاجماع شفیع کو اختیار ہو گا کہ ایک مشتری کا حصہ لے لے خواہ قبضہ سے پہلے یا اس کے بعد یہی ظاہر الروایہ ہے اس واسطے کہ عقدہ ابتدا سے متفرق ہوا ہے پس بعض کا لینا تفریق صفقت نہ ہو گی اور برابر ہے چاہے ہر واحد کے واسطے نصف ثمن علیحدہ بیان کیا ہو یا سب کے واسطے ایک ہی ثمن بیان کیا ہو اور دونوں صورتوں میں چاہے مشتری اپنی ذات کے واسطے عاقد ہو یا کسی غیر کے واسطے حتیٰ کہ اگر دو شخصوں نے ساتھ ہی ایک شخص کو خرید کے واسطے وکیل کیا پھر وکیل نے دو آدمیوں سے دار خریدا پھر شفیع آیا تو اس کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ دونوں بائعوں میں سے ایک کا حصہ شفعہ میں لے لے اور اگر ایک شخص نے دو آدمیوں کو وکیل کیا اور دونوں نے ایک شخص سے دار خریدا تو شفیع کو اختیار ہو گا کہ ایک وکیل نے جس قدر خریدا ہے اس کو لے لے اسی طرح اگر وکیل دس آدمی ہوں اور انہوں نے ایک شخص کے واسطے دار خریدا تو شفیع کو اختیار ہو گا کہ چاہے ایک سے لے لے یا دو سے یا تین سے اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ اس بات میں ہم مشتری کی طرف دیکھتے ہیں اور جس کے واسطے خریدا ہے اس کی طرف نہیں دیکھتے ہیں اور یہ نظریہ ہے اور اگر بعض مبیع بعض سے ممتاز ہو مثلاً دو دار ایک ہی صفقت میں خریدے اور شفیع

نے چاہا کہ ایک دار سوائے دوسرے کے لے لے پس اگر یہ شفیع ان دونوں کا شفیع ہو تو اس کو یہ اختیار نہ ہو گا نہیں الخ حالانکہ شفعہ کے لئے ملک بخبث چاہئے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri... Volume 5 [163] Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...But if he wishes, he may take both or leave both. This is the opinion of our three associates (Ashab ath-Thalatha) [1], may Allah have mercy on them, whether the two properties are contiguous or separate, in the same city or two different cities. If a pre-emptor (Shafi) has the right of pre-emption over only one of the two properties and not the other, and the sale occurred in a single transaction, does the pre-emptor have the option to take everything under pre-emption? It is narrated from Imam al-A'zam (Abu Hanifa) that he does not have this option; he can only take the proportional part of which he is the neighbor (Jar). Similarly, if two houses are contiguous and a person is a pre-emptor for one of them due to proximity, it is also narrated from Imam Muhammad that he can only get pre-emption for the part of which he is the neighbor. Imam Muhammad also stated regarding this issue that if several fields (qarah) are contiguous and one field is adjacent to a person's land, and there is no path or canal between these fields except for a boundary ridge (manah), he said that the neighbor will only have the right of pre-emption for the specific field adjacent to his land. Similarly, regarding the issue of a village, if a village is sold along with its houses and lands, every pre-emptor will have the right only to take the specific field adjacent to them. Hasan bin Ziyad narrated from Imam al-A'zam that the pre-emptor will have the option to take everything under pre-emption. Sheikh Karkhi said that the narration of Hasan bin Ziyad indicates that Imam Abu Hanifa's opinion was like that of Imam Muhammad, then he recanted from it and treated both properties like a single house, as mentioned in Al-Hidayah.

**Chapter Five: On the ruling of pre-emption (Shufa) and litigation therein:**

At the time of making a claim, it is not mandatory for the pre-emptor to produce the price (thaman); rather, it is permissible for him to litigate on his part even if he has not produced the price in the judge's (Qadi) council. Then, once the Qadi has issued a decree of pre-emption in his name, he may produce the price. This narration is from Kitab al-Asl. It is narrated from Imam Muhammad that the Qadi shall not issue a decree of pre-emption in his name until he produces the price. If the Qadi issues the decree before the production of the price, the buyer (mushtari) shall have the right to withhold the real estate (aqar) from him until he receives his price. According to Imam Muhammad, such a judicial ruling will be enforceable because this situation is subject to juristic discretion (mujtahad fih) [2]. If the pre-emptor delays paying the price after the Qadi's order to pay the buyer, the ruling of pre-emption will not become void by consensus (ijma'); this is in Al-Tabyin. Thus, if the pre-emptor takes

the purchased house from the buyer and pays him the price, the liability and guarantee (uhda wa dhaman) of the property will be upon the buyer. If he takes it from the seller (ba'i) and pays him the price, then according to us, the liability and guarantee will be upon the seller. Abu Sulayman narrated from Imam Abu Yusuf that if the buyer has paid the seller the price for the house but has not taken possession of it, until the Qadi issued a decree of pre-emption for the pre-emptor in the presence of both, then the pre-emptor will take possession of the house from the seller and pay the price to the buyer, and the liability will be upon the buyer. If the buyer has not yet paid the price, the pre-emptor will pay the price to the seller, and the liability will be upon the seller. Furthermore, if the pre-emptor finds a defect in the house in this situation and returns it to the seller or buyer by the Qadi's order, and then the buyer wishes to take it back based on his previous purchase or the seller wishes to return it to the buyer based on that same purchase ruling, the buyer shall have the option to take it or leave it. If the pre-emptor, after taking the purchased house from the buyer, wishes to write a document (nawishta) for the buyer's satisfaction so that the pre-emptor's claim against the buyer remains strong, he shall have that option. In the document, he should record the details such that first the buyer purchased it, then describe the process of his taking it under pre-emption in order, and the pre-emptor should take that document which the buyer wrote to his seller, and if...

[1] By "associates," it refers to Imam Abu Hanifa, Abu Yusuf, and Muhammad, may Allah Almighty have mercy on them. [2] "Mujtahad fih" means there is room for juristic reasoning on both sides; therefore, whichever side the Qadi rules upon becomes valid.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी... खंड 5 [163] किताब अल-शुफ़ा (शुफ़ा की पुस्तक)**

...लेकिन चाहे दोनों ले ले या दोनों छोड़ दे और यह हमारे तीनों साथियों (असहब सलासा) [1] रहिमहुमुल्लाह का कहना है, चाहे ये दोनों घर जुड़े हुए हों या अलग-अलग हों, एक ही शहर में हों या दो शहरों में हों। और अगर शफी (पूर्व-क्रय अधिकार रखने वाला) उन दोनों में से एक का शफी हो और दूसरे का न हो, और बिक्री एक ही सौदे में हुई हो, तो क्या शफी को यह अधिकार है कि वह सब कुछ शुफ़ा में ले ले? इमाम-ए-आज़म से रिवायत है कि उसे यह अधिकार नहीं है, वह केवल उसी हिस्से को ले सकता है जिसका वह पड़ोसी (जार) है। इसी तरह अगर दो घर जुड़े हुए हों और उनमें से एक का एक व्यक्ति पड़ोसी होने के कारण शफी हो, तो इमाम मुहम्मद से भी रिवायत है कि उसे शुफ़ा केवल उसी हिस्से में मिल सकता है जिसका वह पड़ोसी है। और इमाम मुहम्मद ने इस मसले में फरमाया है कि अगर कई खेत (कराह) आपस में मिले हुए हों और उनमें से एक खेत एक व्यक्ति की ज़मीन से सटा हो, और उन खेतों के बीच न रास्ता हो और न नहर, बल्कि सिर्फ एक मेड़ (मनाह) हो, तो पड़ोसी को केवल उसी खेत का शुफ़ा अधिकार मिलेगा जो उसकी ज़मीन से सटा है। इसी तरह गाँव के मसले में कि एक गाँव अपने घरों और ज़मीन सहित बेचा गया, तो हर शफी को यही अधिकार होगा कि वह केवल उसी खेत को ले ले जो उससे सटा है। हसन बिन ज़ियाद ने इमाम-ए-आज़म से रिवायत किया है कि शफी को अधिकार होगा कि वह सब कुछ शुफ़ा में ले ले। शेख करखी ने फरमाया कि हसन बिन ज़ियाद की रिवायत इस बात का प्रमाण है कि इमाम अबू हनीफा का विचार इमाम मुहम्मद के विचार जैसा था, फिर उन्होंने इससे रुजू (परिवर्तन) किया और दोनों को एक ही घर की तरह माना, जैसा कि 'हिदाया' में वर्णित है।

**अध्याय पाँच: शुफ़ा का निर्णय और शुफ़ा में मुकदमा (خصومت) करने के विवरण में:**

मुक़दमे के समय शफी पर कीमत (थमन) पेश करना अनिवार्य नहीं है, बल्कि उसके लिए अपनी ओर से मुकदमा करना जायज़ है, चाहे उसने काज़ी की सभा में कीमत पेश न की हो। फिर जब काज़ी ने उसके नाम शुफ़ा की डिक्री कर दी, तो वह कीमत पेश कर सकता है। यह रिवायत 'किताब अल-अस्ल' की है। इमाम मुहम्मद से रिवायत है कि जब तक वह कीमत पेश न कर दे, काज़ी उसके नाम शुफ़ा की डिक्री नहीं करेगा। और यदि कीमत पेश करने से पहले काज़ी ने डिक्री कर दी, तो खरीदार (मुश्तरी) को अधिकार होगा कि जब तक वह अपनी कीमत न ले ले, तब तक संपत्ति (अक़ार) उसे देने से रोक रखे। इमाम मुहम्मद के अनुसार ऐसा फैसला इसलिए प्रभावी होगा क्योंकि यह मामला 'मुजतहद फीह' [2] है। यदि काज़ी के यह कहने के बाद कि खरीदार को कीमत दे दी जाए, शफी ने

कीमत देने में देरी की, तो शुफ़ा का आदेश सर्वसम्मति (इजमा) से अमान्य नहीं होगा, यह 'तबीन' में वर्णित है। अतः यदि शफी ने खरीदी गई संपत्ति खरीदार से ली और उसे कीमत दी, तो उसकी जिम्मेदारी और गारंटी खरीदार पर होगी। यदि विक्रेता (बाए) से लेकर उसे कीमत दी, तो हमारे अनुसार इसकी जिम्मेदारी और गारंटी विक्रेता पर होगी। अबू सुलेमान ने इमाम अबू यूसुफ से रिवायत की कि यदि खरीदार ने विक्रेता को संपत्ति की कीमत दे दी हो लेकिन संपत्ति पर कब्ज़ा न किया हो, यहाँ तक कि काज़ी ने दोनों की उपस्थिति में शफी के लिए शुफ़ा की डिक्री कर दी, तो शफी विक्रेता से उस संपत्ति को अपने कब्ज़ा में लेकर खरीदार को कीमत अदा कर देगा और उसकी जिम्मेदारी खरीदार पर होगी। और यदि खरीदार ने अभी तक कीमत न दी हो, तो शफी विक्रेता को कीमत देगा और उसकी जिम्मेदारी विक्रेता पर होगी। फिर यदि शफी ने इस स्थिति में संपत्ति में दोष (ऐब) पाया और काज़ी के आदेश से विक्रेता या खरीदार को वापस कर दिया, फिर खरीदार ने चाहा कि उसे अपनी पिछली खरीद पर ले ले या विक्रेता ने चाहा कि उसी खरीद के आदेश से खरीदार को वापस कर दे, तो खरीदार को अधिकार होगा कि वह चाहे तो ले ले या छोड़ दे। और यदि शफी ने खरीदार से खरीदी गई संपत्ति लेकर चाहा कि खरीदार की संतुष्टि के लिए एक दस्तावेज़ (नविश्ता) लिखे ताकि शफी का खरीदार पर अधिकार मज़बूत रहे, तो उसे ऐसा अधिकार होगा। दस्तावेज़ में इस प्रकार विवरण लिखे कि पहले खरीदार ने इसे खरीदा है, फिर उस पर अपने शुफ़ा के तहत लेने का विवरण क्रमवार लिखे, और शफी वह दस्तावेज़ ले ले जो खरीदार ने विक्रेता को लिखा है, और यदि...

[1] साथियों से तात्पर्य इमाम अबू हनीफा, अबू यूसुफ और मुहम्मद (रहि.) हैं। [2] 'मुजतहद फीह' का अर्थ है कि दोनों पक्षों में तर्क की गुंजाइश है, अतः काज़ी जिस पक्ष में फैसला करेगा वह जायज़ होगा।

لیکن چاہے دونوں لے لے یا دونوں چھوڑ دے اور یہ ہمارے اصحابِ ۱ ثلاثہ رحمہم اللہ کا قول ہے خواہ یہ دونوں دار متلاصق ہوں یا متفرق ہوں ایک ہی شہر میں ہوں یا دو شہروں میں ہوں اور اگر شفیع دونوں میں سے ایک کا شفیع ہو دوسرے کا شفیع نہ ہو اور بیع ایک ہی صفقہ میں واقع ہوئی پس آیا شفیع کو یہ اختیار ہے کہ کل کو شفعہ میں لے لے سوا امام اعظم سے مروی ہے کہ اس کو یہ اختیار نہیں ہے فقط اسی قدر حصہ رسد لے سکتا ہے جس کا وہ جار ہے۔ اسی طرح اگر دو دار متلاصق ہوں اور ان میں سے ایک کا ایک شخص بسبب جوار کے شفیع ہو تو امام محمدؒ سے بھی مروی ہے کہ اس کو شفعہ فقط اسی قدر میں مل سکتا ہے جس کا وہ جار ہے اور ایسا ہی امام محمدؒ نے اس مسئلہ میں فرمایا ہے کہ اگر چند قراح (کھیت) متلاصق ہیں اور ان میں سے ایک قراح ایک شخص کی زمین سے متصل ہے اور ان قراحوں کے درمیان نہ راستہ ہے اور نہ نہر مگر ایک مناہ ہے تو فرمایا کہ جار کو فقط اسی قراح کا حق شفعہ ملے گا جو اس کی زمین سے متصل ہے اسی طرح گاؤں کے مسئلہ میں کہ ایک گاؤں مع اپنے گھروں وزمن کے فروخت کیا گیا تو ہر شفیع کو یہی اختیار ہو گا کہ فقط جو قرح اس سے متصل ہے اسی کو لے لے اور حسن بن زیادؒ نے امام اعظمؒ سے روایت کیا ہے کہ شفیع کو اختیار ہو گا کہ سب کو شفعہ میں لے شیخ کرخیؒ نے فرمایا کہ حسن بن زیاد کی روایت اس امر پر دلالت کرتی ہے کہ امام ابو حنیفہؒ کا قول مثل قول امام محمدؒ کے تھا پھر انہوں نے اس سے رجوع کر کے دونوں کو مثل دارِ واحد کے قرار دیا کذا فی الہدایہ۔

باب پنجم: حکم بالشفعة اور شفعہ میں خصومت کرنے کے بیان میں دعویٰ کے وقت شفیع پر ثمن حاضر کرنا لازم نہیں ہے بلکہ اس کو اپنی طرف سے خصومت کرنا جائز ہے اگر چہ اس نے مجلسِ قاضی میں ثمن حاضر نہ کیا ہو پھر جب قاضی نے اس کے نام شفعہ کی ڈگری کر دی تو

ثمن حاضر کر سکتا ہے اور یہ روایت کتاب الاصل کی ہے اور امام محمدؒ سے مروی ہے کہ جب تک ثمن حاضر نہ کرے تب تک قاضی اس کے نام شفعہ کی ڈگری نہ کرے گا اور اگر قبلِ احضارِ ثمن کے قاضی نے ڈگری کر دی تو مشتری کو اختیار ہو گا کہ جب تک اپنا ثمن نہ لے لے تب تک عقار اس کو دینے سے روک رکھے اور ایسا حکم قضاء امام محمدؒ کے نزدیک اس وجہ سے نافذ ہو جائے گا کہ یہ صورت مجتہد فیہ ۲ ہے۔ اگر قاضی کے اس کہنے کے بعد کہ مشتری کو ثمن دے دے شفیع نے ثمن دینے میں تاخیر کی تو حکم بالشفعۃ بالا جماع باطل نہ ہو گا یہ تبیین میں ہے پس اگر شفیع نے دارِ مشتراہ مشتری سے لیا اور اس کو ثمن دیا تو اس کا عہدہ وضمان مال مشتری پر ہو گا۔ اگر بائع سے لے کر اس کو ثمن دیا تو ہمارے نزدیک اس کا عہدہ وضمان مال بائع پر ہو گا۔ ابو سلیمانؒ نے امام ابو یوسفؒ سے روایت کی کہ اگر مشتری نے بائع کو دار کا ثمن دے دیا اور دار پر قبضہ نہ کیا ہو یہاں تک کہ قاضی نے دونوں کے حضور میں شفیع کے واسطے شفعہ کی ڈگری کر دی تو شفیع اس دار کو بائع سے اپنے قبضہ میں لے کر مشتری کو ثمن ادا کر دے گا اور اس کا عہدہ مشتری پر ہو گا اور اگر مشتری نے ہنوز ثمن نہ دیا ہو تو شفیع ثمن بائع کو دے گا اور اس کا عہدہ بائع پر ہو گا پھر اگر شفیع نے اس صورت میں دار میں عیب پایا اور بحکم قاضی بائع یا مشتری کو واپس دیا پھر مشتری نے چاہا کہ اس کو اپنی خرید سابق پر لے لے یا بائع نے چاہا کہ اسی خرید کے حکم سے مشتری کو واپس دے تو مشتری کو اختیار ہو گا چاہے لے لے یا چھوڑ دے اور اگر شفیع نے مشتری سے دار مشتراہ لے کر چاہا کہ مشتری کی پسند کے واسطے ایک نوشتہ لکھے تا کہ شفیع کے واسطے مشتری پر مضبوطی رہے تو اس کو ایسا اختیار ہو گا اور نوشتہ میں یوں بیان تحریر کرے کہ اولاً مشتری نے اس کو خریدا ہے پھر اس پر اپنی شفعہ میں لینے کا حال بترتیب لکھے اور شفیع وہ نوشتہ جو مشتری نے اپنے بائع پر لکھا ہے لے لے اور اگر

۱ اصحاب سے امام ابو حنیفہ، ابو یوسف و محمد رحمہم اللہ تعالیٰ۔ ۲ مجتہد فیہ دونوں طرف اجتہاد ہے تو جس طرف قاضی حکم کرے جائز ہو جائے گا۔

If the purchaser refuses to hand over that document, he has the choice; however, the pre-emptor (Shafi') should exercise caution for his own sake. Therefore, he should have a group of people witness that the purchaser has handed over this house to the pre-emptor under the right of pre-emption. And if the pre-emptor has taken the said house from the seller, then a document should be written in the name of the seller as was described for the case of taking it from the purchaser. In that document, it should be stated that the purchaser admitted that whatever is written in this document, he has accepted and permitted, and acknowledged that he has no right over this house or its price; this is in 'Al-Muhit'. If he wishes, he can write a document in both their names with the content that the sold property was handed over to the pre-emptor under the right of pre-emption, and the seller took possession of the price with the purchaser's consent, and the seller became the guarantor of title (Dhaman al-Dark); this is in 'Al-Mabsut'. If the judge orders the right of pre-emption for the pre-emptor or the purchaser hands it over himself, the rules of sale will apply between them both, i.e., the option of sight (Khiyar al-Ru'yah), the option of defect (Khiyar al-Aib), and the return of the price at the time of claim of entitlement. However, the pre-emptor cannot reclaim the damages of deception (Tawan-e-Ghurur) (1), even if he constructed a building on the pre-empted property and later that property was proven to belong to someone else and taken away, and the pre-emptor was ordered to demolish his building, the pre-emptor would have the choice to reclaim his price from the person he took the property from. According to the famous narration, he will not have the option to reclaim the price of the building, but there is a narration from Imam Abu Yusuf that he can take the price of the building too, and the purchaser (1) will return it; this is written in 'Tatarkhania'.

If the purchase took place on credit with a promise of payment after, say, one year, and the pre-emptor appeared and demanded pre-emption and wanted to take it on the same credit terms, he shall not have this choice without the consent of the one from whom it was taken (Makhooz Minhu) (2). If the one from whom it was taken does not agree, the judge will tell the pre-emptor to either pay the cash price now or wait until the term expires. Then, if he paid the cash price immediately and obtained possession from the seller, the liability of the price would be removed from the purchaser. And if he took possession from the purchaser after paying the cash price immediately, the term for the payment of the price in favor of the purchaser would remain as it is, such that the seller would not have the authority to demand payment

from the purchaser before the term expires. And if the pre-emptor waited until the term expired, the pre-emptor would remain on his right of pre-emption. All this applies when the credit term is known. If the term for payment is unknown, such as at the time of harvesting or threshing the crops, etc., and the pre-emptor says, "I will take the property by paying the price now," he shall not have this choice; this is in 'Al-Muhit', 'Al-Zakheera', and 'Fatawa Itabiya'. If someone purchased on a credit term that is invalid (Fasid) and then the purchaser paid the price immediately, the sale becomes valid and pre-emption will be established. Similarly, if land was sold in which the farmer's crop is present, pre-emption should be demanded at the time of sale. It is narrated in 'Al-Mujarrad' (3) regarding 'Khiyar al-Muwand' and credit on the term of a gift, that it is permissible for him to take it in pre-emption immediately, and if he did not demand it immediately, the pre-emption will become void; this is in 'Tatarkhania'. If a follower of the Shafi'i school demanded pre-emption based on neighborliness, the judge will ask him whether he believes in pre-emption by neighborliness or not. If he says yes, the judge will decree pre-emption in his name, otherwise not; this is in 'Al-Sirajiyah'. Zaid purchased a house from Amr for a thousand Dirhams, then sold it to someone else for two thousand Dirhams and handed it over. Then the pre-emptor appeared and wanted to take the house based on the first sale, Imam Abu Yusuf said that he will take it from whoever has possession and pay him one thousand Dirhams, and then that person will be told to take the remaining one thousand Dirhams from his seller who sold it to him. And Hasan bin Ziyad narrated from Imam Abu Hanifa that if the pre-emptor appears at a time when the house has already been sold and handed over to a second person and that person is absent, and the pre-emptor wants to take it on the first sale, then between the pre-emptor and the second purchaser...

---

1. Damages of deception, i.e., he cannot claim back whatever he spent while being deceived. 2. Similarly, if the purchaser was deceived, he will reclaim his expenditure on the building in addition to the price, and the pre-emptor cannot reclaim it. 3. If the sale became invalid (Fasid) due to a corrupting condition, pre-emption will not follow. 4. 'Mujarrad' refers to Kitab-al-Hasan, stating that if there is an option of more than three days for payment in a sale or it's said "I will pay when the gift is distributed," such that the sale becomes invalid, then apparently pre-emption cannot take place, but 'Mujarrad' states "immediately etc." (1) Damages of deception in such a case. (2) From whom it was taken.

यदि खरीदार ने वह दस्तावेज़ देने से इनकार कर दिया, तो उसे अधिकार है, लेकिन शफ़ी (पूर्व-क्रयकर्ता) को अपने बचाव के लिए सावधानी बरतनी चाहिए। अतः वह एक समूह को इस बात पर गवाह बनाए कि खरीदार ने यह घर शफ़ी को हक़-ए-शफ़ा के तहत सौंप दिया है। और यदि शफ़ी ने उक्त घर विक्रेता से लिया हो, तो विक्रेता के नाम पर भी वैसा ही दस्तावेज़ लिखे जैसा खरीदार से लेने के मामले में बताया गया था। और उस दस्तावेज़ में यह लिखे कि खरीदार ने यह स्वीकार किया कि जो कुछ इस दस्तावेज़ में लिखा है उसे स्वीकार किया, अनुमति दी और माना कि मेरा इस घर या इसकी कीमत में कोई अधिकार नहीं है; यह 'मुहीत' में है। यदि वह चाहे, तो दोनों के नाम पर इस विषय के साथ दस्तावेज़ लिख सकता है कि बेची गई संपत्ति हक़-ए-शफ़ा के तहत शफ़ी को सौंप दी गई और विक्रेता ने खरीदार की सहमति से कीमत पर कब्ज़ा कर लिया और विक्रेता दोषों की गारंटी (ज़मानुद-दरक) का ज़िम्मेदार हुआ; यह 'मबसूत' में है। यदि न्यायाधीश ने शफ़ी के पक्ष में हक़-ए-शफ़ा का फैसला दिया या खरीदार ने स्वयं सौंप दिया, तो उन दोनों के बीच बिक्री के नियम लागू होंगे, जैसे देखने का विकल्प (ख़ियार-ए-रुय्यत), दोष का विकल्प (ख़ियार-ए-एब) और स्वामित्व प्रमाणित होने के समय कीमत वापस लेना। लेकिन शफ़ी धोखे का हर्जाना (तावान-ए-ग़ुरूर) (१) वापस नहीं ले सकता, यहाँ तक कि यदि उसने संपत्ति में कोई इमारत बनाई और फिर वह संपत्ति किसी और की साबित होकर ले ली गई और शफ़ी को इमारत गिराने का आदेश दिया गया, तो शफ़ी को यह अधिकार होगा कि जिससे उसने संपत्ति ली है, उससे अपनी कीमत वापस ले ले। और प्रसिद्ध रिवायत के अनुसार उसे यह अधिकार नहीं होगा कि इमारत की कीमत वापस ले, लेकिन इमाम अबू यूसुफ से एक रिवायत है कि वह इमारत की कीमत भी ले सकता है और खरीदार (१) उसे वापस लेगा; यह 'तातारख़ानिया' में लिखा है।

यदि खरीद एक वर्ष की उधारी पर हुई हो, और शफ़ी ने आकर शफ़ा की मांग की और चाहा कि वह उसी उधारी की अवधि पर ले ले, तो जिससे संपत्ति ली गई है (माख़ूज़ मिन्हु) (२) की सहमति के बिना उसे यह अधिकार नहीं होगा। यदि वह सहमत न हो, तो न्यायाधीश शफ़ी से कहेगा कि या तो अभी नकद कीमत दे दो या अवधि पूरी होने तक प्रतीक्षा करो। फिर यदि उसने अभी नकद भुगतान कर दिया और विक्रेता से कब्ज़ा प्राप्त कर लिया, तो खरीदार की ज़िम्मेदारी से कीमत समाप्त हो जाएगी। और यदि अभी नकद भुगतान करके खरीदार से कब्ज़ा लिया, तो खरीदार के लिए भुगतान की अवधि यथावत रहेगी, यहाँ तक कि विक्रेता को अवधि समाप्त होने से पहले खरीदार से मांग करने का

अधिकार नहीं होगा। और यदि शफ़ी ने प्रतीक्षा की यहाँ तक कि अवधि आ गई, तो शफ़ी अपने शफ़ा के अधिकार पर रहेगा। यह सब तब है जब उधारी की अवधि ज्ञात हो। यदि भुगतान की अवधि अज्ञात हो, जैसे फसल कटने या रौंदने आदि के समय, और शफ़ी कहे कि मैं अभी कीमत देकर संपत्ति ले लेता हूँ, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा; यह 'मुहीत', 'ज़ख़ीरा' और 'फ़तावा इताबिया' में है। यदि किसी गलत (फ़ासिद) अवधि की उधारी पर खरीदा और फिर खरीदार ने तुरंत कीमत दे दी, तो बिक्री वैध हो जाएगी और शफ़ा साबित होगा। इसी तरह यदि ऐसी ज़मीन बेची गई जिसमें किसान की फसल मौजूद हो, तो बिक्री के समय शफ़ा की मांग करे। 'मुजर्रद' (३) में 'ख़ियार-ए-मवांद' और अनुदान की अवधि पर उधारी के मामले में वर्णित है कि उसका वर्तमान में शफ़ा में लेना जायज़ है, और यदि तुरंत मांग नहीं की तो शफ़ा निरस्त हो जाएगा; यह 'तातारख़ानिया' में है। शफ़ीई मत के व्यक्ति ने यदि पड़ोस के कारण शफ़ा की मांग की, तो न्यायाधीश उससे पूछेगा कि क्या वह पड़ोसी के शफ़ा का समर्थक है या नहीं। यदि वह कहे कि हाँ, तो उसके नाम शफ़ा की डिक्री कर देगा, अन्यथा नहीं; यह 'सिराजिया' में है। ज़ैद ने अम्र से एक घर एक हज़ार दिरहम में खरीदा, फिर दूसरे व्यक्ति को दो हज़ार में बेचकर सौंप दिया। फिर शफ़ी आया और उसने पहली बिक्री के आधार पर घर लेना चाहा, तो इमाम अबू यूसुफ ने फ़रमाया कि जिसके कब्ज़े में घर मौजूद है, उससे लेकर उसे एक हज़ार दिरहम देगा, और फिर उससे कहा जाएगा कि अपने विक्रेता से, जिसने तुझे बेचा है, बाकी एक हज़ार दिरहम वापस ले ले। और हसन बिन ज़ियाद ने इमाम अबू हनीफ़ा से रिवायत की है कि यदि शफ़ी ऐसे समय आए कि घर दूसरे को बेचकर सौंपा जा चुका है और वह गायब हो गया है, और शफ़ी ने उसे पहली बिक्री पर लेना चाहा, तो शफ़ी और दूसरे खरीदार के बीच...

---

१- तावान-ए-ग़ुरूर अर्थात धोखे में आकर जो कुछ खर्च किया उसका हर्जाना वापस नहीं ले सकता। २- ऐसा यदि खरीदार ने धोखा खाया तो कीमत के अतिरिक्त अपनी इमारत का खर्च भी वापस लेगा और शफ़ी वापस नहीं ले सकता है। ३- शर्त के खराब होने से बिक्री फ़ासिद (दूषित) हुई तो शफ़ा लागू नहीं होगा। ४- मुजर्रद अर्थात किताब-ए-हसन में है कि यदि बिक्री में भुगतान के लिए तीन दिन से अधिक का विकल्प हो या कहा कि जब अनुदान बँटेगा तब पैसे दूँगा, यहाँ तक कि बिक्री फ़ासिद हुई तो स्पष्ट रूप से शफ़ा नहीं हो सकता लेकिन मुजर्रद में है कि वर्तमान में आदि। (१) ऐसी स्थिति में तावान-ए-ग़ुरूर। (२) जिससे लिया है।

مشتری نے وہ نوشتہ دینے سے انکار کیا تو اس کو اختیار ہے لیکن شفیع کو اپنی ذات کے واسطے احتیاط چاہئے پس ایک قوم کو اس بات پر گواہ کرے کہ مشتری نے یہ دار شفیع کو بحق شفعہ سپرد کیا ہے اور اگر شفیع نے دار مذکور بائع سے لیا ہو تو جیسا نوشتہ مشتری سے لینے میں تحریر کرنا بیان کیا گیا ویسا ہی بائع پر تحریر کرے اور اس نوشتہ میں یہ تحریر کرے کہ مشتری نے یہ اقرار کیا کہ جو کچھ اس نوشتہ میں لکھا ہے یعنی تسلیم کیا اور اجازت دی اور اقرار کیا کہ میرا اس دار یا اس کے ثمن میں کچھ حق نہیں ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر چاہے تو نوشتہ دونوں پر بدیں مضمون تحریر کرے کہ دار مبیعہ بحق شفعہ شفیع کو سپرد کیا اور بائع نے مشتری کی رضامندی سے ثمن پر قبضہ کیا اور بائع ضمان الدرک کا ضامن ہوا یہ مبسوط میں ہے اگر قاضی نے شفیع کے واسطے بحق شفعہ دینے کا حکم دیا یا مشتری نے خود سپرد کر دیا تو ان دونوں میں بیع کے احکام ثابت ہوں گے یعنی خیار رویت و خیار عیب اور وقت استحقاق کے ثمن واپس لینا لیکن شفیع تاوان غرور (۱) واپس نہیں لے سکتا ہے حتی کہ اگر اس نے دار مشفوعہ میں عمارت بنائی پھر وہ دار استحقاق ثابت کر کے لے لیا گیا اور شفیع کو حکم دیا گیا کہ اپنی عمارت توڑے تو شفیع کو یہ اختیار ہوگا کہ جس سے اس نے دار لیا ہے اس سے اپنا ثمن واپس لے اور مشہور روایت کے موافق یہ اختیار نہ ہوگا کہ عمارت کی قیمت واپس لے مگر امام ابو یوسف سے ایک روایت ہے کہ قیمت عمارت بھی لے سکتا ہے اور مشتری (۱) واپس لے گا یہ تاتارخانیہ میں لکھا ہے۔

اگر خرید ادھار بوعدہ ایک سال کے مثلاً واقع ہوئی پس شفیع نے حاضر ہو کر شفعہ طلب کیا اور چاہا کہ اسی مدت کے وعدہ پر ادھار لے لے تو بدوں رضامندی ماخوذ منہ (۲) کے اس کو یہ اختیار نہ ہوگا اور اگر ماخوذ منہ راضی نہ ہو تو قاضی شفیع سے کہے گا کہ یا تو فی الحال ثمن نقد

دے دے یا صبر کر یہاں تک کہ میعاد آجائے پس اگر اس نے فی الحال ثمن نقد ادا کیا اور قبضہ کرنا بائع سے حاصل ہوا تو مشتری کے ذمہ سے ثمن ساقط ہو جائے گا اور اگر فی الحال ثمن نقد ادا کر کے مشتری سے قبضہ حاصل کیا تو مشتری کے حق میں ادائے ثمن کی میعاد بحالہ باقی رہے گی حتی کہ بائع کو قبل میعاد آنے کے ولایت مطالبہ مشتری حاصل نہ ہوگی اور اگر شفیع نے صبر کیا یہاں تک کہ میعاد آگئی تو شفیع اپنے حق شفعہ پر ہوگا اور یہ سب اس وقت ہے کہ ادھار کی میعاد معلوم ہو اور اگر میعاد ادائے ثمن مجہول ہو جیسے کھیتی کٹنا وروندی جانا وغیرہ اس کے اشباہ اور شفیع نے کہا کہ میں فی الحال ثمن دے کر مبیع لے لیتا ہوں تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا یہ محیط و ذخیرہ و فتاویٰ عتابیہ میں ہے۔ اگر کسی میعاد فاسد کے ادھار پر خریدا پھر مشتری نے ثمن فی الحال دیدیا تو بیع جائز ہو جائے گی اور شفعہ ثابت ہوگا اسی طرح اگر ایسی زمین فروخت کی گئی جس میں مزارع کی کھیتی موجود ہے تو بیع کے وقت شفعہ طلب کرے اور مجرد (۳) میں خیار موند اور ادھار بمیعاد عطاء کی صورت میں مروی ہے کہ اس کا فی الحال شفعہ میں لینا جائز ہے اور اگر فی الحال طلب نہ کیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ شافعی المذہب نے اگر بسبب جوار کے شفعہ طلب کیا تو قاضی اس سے دریافت کرے گا کہ آیا شفعہ بالجوار کا قائل ہے یا نہیں پس اگر اس نے کہا کہ ہاں تو اس کے نام شفعہ کی ڈگری کر دے گا ورنہ نہیں یہ سراجیہ میں ہے۔ زید نے عمرو سے ایک دار ہزار درہم کو خرید کر پھر دوسرے کے ہاتھ دو ہزار کو فروخت کر کے سپرد کر دیا پھر شفیع حاضر ہوا اور اس نے بیع اول پر دار لینا چاہا تو امام ابو یوسف نے فرمایا کہ جس کے قبضہ میں موجود ہے اس سے لے کر اس کو ہزار درہم دے گا اور پھر اس سے کہا جائے گا کہ اپنے بائع سے جس نے تیرے ہاتھ فروخت کیا ہے باقی ہزار درہم لے لے اور حسن بن زیاد نے امام ابوحنیفہ سے روایت کی کہ اگر شفیع ایسے وقت

حاضر ہو کہ اس دار کو دوسرے کے ہاتھ فروخت کر کے سپرد کر چکا ہے اور غائب ہو گیا ہے اور شفیع نے اس کو بیع اول پر لینا چاہا تو شفیع اور دوسرے مشتری کے درمیان

---

۱- تاوان غرور یعنی دھوکہ کھا کر جو کچھ خرچ کیا اس کا تاوان نہیں لے سکتا۔ ۲- ایسا اگر مشتری نے فریب کھایا تو علاوہ ثمن کے اپنا خرچ عمارت بھی واپس لے گا اور شفیع واپس نہیں لے سکتا ہے۔ ۳- شرط مفسد سے بیع فاسد ہوئی تو شفعہ مترتب نہ ہوگا۔ ٤- مجرد یعنی کتاب حسن میں ہے کہ اگر بیع میں تین روز سے زیادہ ادائیگی خیار ہو یا کہا کہ جب عطیہ تقسیم ہوگا اس وقت دام دوں گا حتیٰ کہ بیع فاسد ہوئی تو بظاہر شفعہ نہیں ہو سکتا لیکن مجرد میں ہے کہ فی الحال الخ۔ (۱) ایسی صورت میں تاوان غرور۔ (۲) جس سے لیا ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Vol (9) | 194 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

...litigation will not be established. The conclusion is that if the pre-emptor (Shafee) wishes to take the property based on the first sale, then according to Imam al-Azam (Abu Hanifa), the presence of the first purchaser (Mushtari-e-Awwal) is a prerequisite. This is also the view of Imam Muhammad. However, according to Imam Abu Yusuf, the presence of the first purchaser is not a condition. If the pre-emptor wishes to claim based on the second sale, then there is no disagreement that the presence of the first purchaser is not a condition. This is mentioned in *Al-Muhit*.

Furthermore, if the pre-emptor states, "If I do not bring the price within three days, I relinquish my right of pre-emption," and subsequently fails to bring the price within that period, Ibn Rustam narrates from Imam Muhammad that his right of pre-emption becomes void. However, the scholars (*Mashaikh*) have stated that his right of pre-emption will not be voided, and this is the correct view. If the pre-emptor presented gold dinars while the price was in silver dirhams (or vice-versa), the scholars have differed; the correct position is that his right of pre-emption will not be voided. This is found in *Fatawa Qazi Khan*. It is written in *Fatawa Atabiyyah* that if, during litigation, the purchaser requests a postponement until a certain time and the pre-emptor agrees, it shall remain so. In *Al-Muntaqa*, narrated by Bishr from Imam Abu Yusuf, it is reported that if a pre-emptor says, "I have no right against such and such person," it constitutes an exoneration from the right of pre-emption. This is in *Tatar-khaniyah*.

If a property is in the possession of a person and a claimant comes and sues the possessor, claiming, "He bought this house from such and such person and I am its pre-emptor," and presents witnesses for this, and the possessor presents witnesses that the house was left with him as a trust (*wadi'at*) by such and such person; then the judge (Qazi) shall grant a decree of pre-emption in favor of the claimant. This is because the possessor is treated as the adversary due to the claim of a specific act (buying the property). However, if the claimant does not claim the purchase against the possessor but against someone else, a decree will not be issued against the possessor. For instance, the claimant tells the possessor, "Such and such person (a non-possessor) bought this house from such and such seller for this amount and paid the price, and I am the pre-emptor," and provides witnesses, while the possessor provides witnesses that it was a trust; in this case, litigation will not proceed (no order will be issued in the pre-emptor's name) until the absent person is present. This is because the possessor in this scenario is only held as a defendant

based on apparent possession, not because of a claimed act. This is in *Al-Muhit*. If a person bought a house with genuine coins but paid with adulterated or lower-quality dirhams (*ziyoof* or *nahr-u-dirham*), the pre-emptor can take the property in exchange for genuine (standard) dirhams. This is also in *Al-Sirajiyyah*. If the seller agreed to accept adulterated coins instead of standard dirhams, the purchaser still has the right to demand genuine dirhams from the pre-emptor. This is in *Al-Muzmarat*.

**Chapter Six: Regarding the sale of a single property where multiple pre-emptors are present**

It should be known that if multiple pre-emptors are present, then before the satisfaction of rights and the judge's decree, the right of each pre-emptor is established over the entire property. Thus, if there are two pre-emptors for one property and one pre-emptor waives his right in favor of the purchaser before the court's decree, the other pre-emptor has the right to take the entire property. After the satisfaction of rights and the court's decree, the right of each is extinguished to the extent decreed for the other. For instance, if there are two pre-emptors for a house and the judge decrees half of the property for each, and then one pre-emptor waives his half...

---

(1) Footnote: If the pre-emptor takes it, he must pay in standard (good quality) dirhams.

मुक़दमा कायम नहीं होगा, अतः निष्कर्ष यह निकला कि यदि शुफ़ा (pre-emptor) ने मकान को पहली बिक्री (first sale) पर लेना चाहा, तो इमाम-ए-आज़म रह. के अनुसार पहले क्रेता (first buyer) का उपस्थित होना अनिवार्य है। यही इमाम मुहम्मद रह. का कथन है और इमाम अबू यूसुफ़ रह. के अनुसार पहले क्रेता की उपस्थिति शर्त नहीं है। और यदि शुफ़ा ने दूसरी बिक्री पर लेना चाहा, तो निर्विवाद रूप से पहले क्रेता की उपस्थिति शर्त नहीं है। यह 'अल-मुहीत' में वर्णित है।

पुनः यदि शुफ़ा ने कहा कि "यदि मैं तीन दिनों तक मूल्य (thaman) न लाऊं तो मैं शुफ़ा के अधिकार से मुक्त हूँ," और फिर वह उस अवधि तक मूल्य नहीं लाया, तो इमाम मुहम्मद रह. से इब्न रुस्तम ने रिवायत की है कि उसका शुफ़ा का अधिकार रद्द हो जाएगा। परंतु मशाईख (विद्वानों) ने कहा है कि उसका शुफ़ा रद्द नहीं होगा और यही सही मत है। और यदि शुफ़ा ने दीनार पेश किए जबकि मूल्य दरहम में था या इसके विपरीत, तो इसमें मशाईख के बीच मतभेद है, और सही यह है कि उसका शुफ़ा रद्द नहीं होगा। यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। 'फ़तावा अताबिया' में लिखा है कि यदि शुफ़ा होने की स्थिति में विवाद के दौरान क्रेता ने अनुरोध किया कि विवाद को अमुक समय तक टाल दिया जाए और शुफ़ा ने इसे स्वीकार कर लिया, तो वह वैसा ही रहेगा। 'मुन्तक़ा' में बिश्र की रिवायत के अनुसार इमाम अबू यूसुफ़ रह. से वर्णित है कि शुफ़ा का यह कहना कि "मेरा अमुक व्यक्ति के पास कोई अधिकार नहीं है," शुफ़ा से त्याग माना जाएगा। यह 'तातारख़ानिया' में है।

एक व्यक्ति के कब्ज़े में एक मकान है। एक वादी (दावेदार) ने आकर उस कब्ज़ेदार पर दावा किया कि उसने यह मकान अमुक व्यक्ति से खरीदा है और मैं इसका शुफ़ा (pre-emptor) हूँ, और इस पर गवाह पेश कर दिए। कब्ज़ेदार ने इस बात के गवाह पेश किए कि अमुक व्यक्ति ने मेरे पास यह मकान अमानत (deposit) के रूप में रखा है। तो क़ाज़ी वादी के नाम शुफ़ा की डिक्री कर देगा, क्योंकि कब्ज़ेदार को उसके कार्य के दावे के कारण (यानी उसने खरीदा है) प्रतिद्वंद्वी (khashm) माना गया है। और यदि वादी ने कब्ज़ेदार पर खरीदने का दावा नहीं किया बल्कि किसी अन्य व्यक्ति पर किया, तो कब्ज़ेदार पर डिक्री नहीं होगी। इसकी सूरत यह है कि वादी कब्ज़ेदार से कहे कि अमुक व्यक्ति (जो कब्ज़े में नहीं है) ने यह मकान अमुक विक्रेता से इतने दामों में खरीदा और मूल्य चुका दिया, और मैं उसका शुफ़ा हूँ, और इस दावे के गवाह पेश कर दे, और कब्ज़ेदार इस बात के गवाह दे दे कि अमुक व्यक्ति ने मेरे पास यह मकान अमानत रखा है, तो उन दोनों के बीच विवाद नहीं होगा (शुफ़ा के नाम हुक्म नहीं दिया जाएगा) जब तक कि अनुपस्थित व्यक्ति उपस्थित न हो

जाए। क्योंकि कब्ज़ेदार इस स्थिति में केवल भौतिक कब्ज़े के कारण प्रतिवादी ठहराया गया है, न कि किसी कार्य के दावे के कारण। यह 'अल-मुहीत' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने असली सिक्कों (khare daam) से एक मकान खरीदा, लेकिन खोटे या घटिया दरहम (ziyoof ya nahr-u-dirham) चुकाए, तो शुफ़ा उस मकान को असली दरहमों के बदले ले सकता है। 'सिराजिया' में ऐसा ही है। और यदि विक्रेता अच्छे दरहमों के बदले खोटे सिक्के लेने पर सहमत हो गया है, तब भी क्रेता को अधिकार होगा कि वह शुफ़ा से असली दरहम ही ले। यह 'मुज़मरात' में है।

## अध्याय छठा: इस विवरण में कि एक घर बेचा जाए और उसके कई शुफ़ा (pre-emptors) एकत्र हों

यह जानना चाहिए कि यदि कई शुफ़ा एकत्र हों, तो अधिकारों की प्राप्ति और क़ाज़ी के निर्णय से पहले, प्रत्येक का अधिकार पूरे मकान में स्थापित होगा। यहाँ तक कि यदि एक घर के दो शुफ़ा हों और एक शुफ़ा ने लेने से पहले और अदालती निर्णय से पहले अपना अधिकार क्रेता को त्याग दिया, तो दूसरे को अधिकार होगा कि वह पूरे घर को ले ले। और अधिकारों की प्राप्ति तथा निर्णय के बाद, प्रत्येक का अधिकार उतने हिस्से से समाप्त हो जाता है जितने का निर्णय दूसरे के पक्ष में हो चुका है। यहाँ तक कि यदि एक घर के दो शुफ़ा हों और क़ाज़ी ने दोनों के लिए आधे-आधे घर के शुफ़ा का अधिकार तय कर दिया, फिर एक शुफ़ा ने अपना आधा हिस्सा त्याग दिया...

---

(1) टिप्पणी: यदि शुफ़ा लेता है, तो उसे अच्छे दरहम ही देने होंगे।

---

خصومت قائم نہ ہوگی پس حاصل یہ نکلا کہ اگر شفیع نے دار کو بیع اول پر لینا چاہا تو امام اعظمؒ کے نزدیک مشتری اول کا حاضر ہونا شرط ہے۔ یہی قول امام محمدؒ کا ہے اور امام ابو یوسفؒ کے قول میں مشتری اول کا حاضر ہونا شرط نہیں ہے اور اگر شفیع نے بیع ثانی پر لینا چاہا تو مشتری اول کا حاضر ہونا بلا خلاف شرط نہیں ہے یہ محیط میں ہے۔

پھر اگر شفیع نے کہا کہ اگر میں تین روز تک ثمن نہ لاؤں تو میں شفعہ سے بری ہوں پھر وہ اس مدت تک ثمن نہ لایا تو امام محمدؒ سے ابن رستم نے روایت کی کہ اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اور مشائخ نے فرمایا کہ اس کا شفعہ نہیں باطل ہوگا اور یہی صحیح ہے اور اگر شفیع نے دینار حاضر کئے حالانکہ ثمن درہم ہیں یا علی العکس تو اس میں مشائخ نے اختلاف کیا ہے اور صحیح یہ ہے کہ اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے کہ اگر شفیع ہونے کی حالت خصومت میں مشتری نے درخواست کی کہ فلاں وقت تک خصومت ملتوی کرے اور شفیع نے اس کو قبول کر لیا تو ایسا ہی رہے گا اور منتقیٰ میں بروایت بشر کے امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ شفیع کا یہ قول کہ میرا کچھ حق فلاں شخص کے پاس نہیں ہے شفعہ سے بریت ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص کے قبضہ میں ایک دار ہے پس ایک مدعی نے آکر اس قابض پر دعویٰ کیا کہ اس نے یہ دار فلاں شخص سے خریدا ہے اور میں اس کا شفعہ ہوں اور اس پر گواہ قائم کر دیئے اور قابض نے اس امر کے گواہ پیش کئے کہ فلاں شخص نے میرے پاس یہ دار ودیعت رکھا ہے تو قاضی مدعی کے نام شفعہ کی ڈگری کر دے گا اس واسطے کہ قابض بسبب دعویٰ فعل کے یعنی اس نے خریدا ہے خصم قرار دیا گیا ہے اور اگر مدعی نے قابض پر خرید کا دعویٰ نہ کیا بلکہ یہ دعویٰ کسی اور ہی شخص پر کیا تو قابض پر ڈگری نہ ہوگی اور اس

کی صورت یہ ہے کہ یہ مدعی قابض سے یوں کہے کہ فلاں شخص یعنی غیر قابض نے یہ دار فلاں بائع سے اس قدر داموں کو خرید اور ثمن ادا کیا اور میں اس کا شفیع ہوں اور اس دعویٰ کے گواہ قائم کر دے اور قابض نے اس امر کے گواہ دیئے کہ فلاں شخص نے میرے پاس یہ دار ودیعت رکھا ہے تو ان دونوں (شفیع کے نام حکم نہ دیا جائے گا ۱۲) میں خصومت نہ ہوگی یہاں تک کہ غائب حاضر ہو اس واسطے کہ قابض اس صورت میں بعینہ ظاہری قبضہ کے معصم ٹھہرایا گیا ہے۔ نہ بسبب دعویٰ فعل کے یہ محیط میں ہے ایک شخص نے کھرے داموں سے ایک دار خریدا مگر زیوف یا نہر و درہم ادا کئے تو شفیع اس دار کو کھرے (۱) درہموں کے عوض لے سکتا ہے۔ کذا فی السراجیہ اور اگر بائع جید درہم کے بدلے زیوف لینے پر راضی ہو گیا ہے تو بھی مشتری کو اختیار ہوگا کہ شفیع سے کھرے درہم لے لے یہ مضمرات میں ہے۔

**باب ششم: اس بیان میں کہ ایک دار فروخت کیا جائے اور اس کے چند شفیع جمع ہوں**

جاننا چاہئے کہ اگر چند شفیع جمع ہوں تو قبل استیفاء حقوق وقضائے قاضی کے ہر ایک کا حق پورے دار میں ثابت ہو گا حتیٰ کہ اگر ایک دار کے دو شفیع ہوں اور ایک شفیع نے لینے سے اور حکم قضاء سے پہلے اپنا حق شفعہ مشتری کو دے دیا تو دوسرے کو اختیار ہو گا کہ کل دار کو لے لے اور بعد استیفاء و بعد قضاء کے ہر ایک کا حق اس قدر سے جتنے کا دوسرے کے واسطے حکم ہو گیا ہے معدوم ہو جاتا ہے حتیٰ کہ اگر ایک دار کے دو شفیع ہوں اور قاضی نے دونوں کے واسطے آدھے آدھے دار کے حق شفعہ کا حکم دے دیا پھر ایک شفیع نے اپنا حق شفعہ نصف دے۔

---

ا قولہ تو خفت نہ ہو گی میں کہتا ہوں کہ اس بنا پر اگر بائع و مشتری نے حیلہ کیا کہ زید نے ہزار درہم کو اپنا مکان بکر کے ہاتھ فروخت کیا اور گواہ کر دیئے پھر بکر نے خالد کے ہاتھ جو اصلی مشتری ہوتا چاہتا ہے پانچ ہزار درہم کو فروخت کیا اور گواہ کر دیئے اور غائب ہو گیا کیونکہ وہ

نہیں معلوم کہاں کا تھا تو شفیع کو پانچ ہزار سے کم نہیں مل سکتا فہم۔ ۱۲ کہ بے اس واسطے کہ اصل ثمن یہی ہے اور گواہ کے بجائے زیوف لینا بائع کی مہربانی بحال مشتری ہے۔ (۱) اگر شفیع لے تو جید درہم دینے پڑیں گے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 195 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...was granted, the other party shall not have the right to take the entire property. If the right of pre-emption of some is stronger (aqwa) compared to others, and a decree (1) is issued in the name of the one with the stronger right, then the weaker right shall become void. For example, if there are two pre-emptors (shafis), one being a partner (sharik) and the other a contiguous neighbor (jar-e-mulasik), and the partner relinquishes his right of pre-emption to the buyer before the judge's (Qazi's) decree, the neighbor shall have the right to take the entire property through pre-emption. However, if the judge has already decreed the right of pre-emption in the name of the partner shafi and then the partner relinquishes it, the neighbor shall not receive the right of pre-emption. This is mentioned in other sources. If one of two pre-emptors is absent, the present pre-emptor shall have the right to take the entire property under pre-emption. If he wishes to take only half and the buyer agrees, he shall have that option. If the buyer insists, "I will not give you more than half," the pre-emptor shall then have the right to take the whole property, as stated in *Al-Mabsut*. If the present pre-emptor states in the absence of the other, "I will take half or a third" (based on his share), he shall not have that option; rather, he must either take the whole or leave it all. This is in *Siraj al-Wahaj*.

If the judge decrees the entire property for the present pre-emptor and later a second pre-emptor appears, the judge shall decree half for him. If a third pre-emptor then appears, the judge shall decree that he take one-third from the portions held by the first two so that they all become equal. If the pre-emptor who was first granted the whole property says to the second, "I give you the entire house, take it all or leave it all," the second shall not have that option; instead, he has the right to take his designated half. This is in *Al-Muheet*. If among several pre-emptors, one person appears first and establishes his right of pre-emption, the judge shall decree the entire property to him. If a second pre-emptor subsequently appears and proves his right, the judge shall evaluate: if the second pre-emptor is equal in status to the first, the judge shall decree half the property to him. If the second pre-emptor is superior (awla) to the first (e.g., the first is a neighbor and the second is a partner in rights/ khalit), the judge shall annul the first pre-emptor's right and decree the whole property for the second. If the second pre-emptor is of lower status (adwan) than the first, no decree shall be issued in his name. This is in *Siraj al-Wahaj*.

If a person buys a house in which he is already a partner, and another pre-emptor of equal status appears, the judge shall decree half the property for him. If a superior

pre-emptor appears, the judge shall decree the whole property in his name. If an inferior pre-emptor appears, he shall receive no share. This is in *Sharh al-Tahawi*. If a decree for the entire property is issued in the name of a present pre-emptor and he subsequently returns the property upon discovering a defect (ayb), and then the absent pre-emptor appears, the latter shall not have the right to take more than half the property based on the original sale, regardless of whether the return due to defect was by a judge's order or without it, and whether it occurred before or after taking possession. If the newly arrived pre-emptor wishes to take the whole property because the first pre-emptor returned it, thereby bypassing the first sale, the situation will be examined: if the return was without a judge's order, he shall have that option because a return without a judge's order is considered a new, absolute sale (bay-e-mutlaq). Thus, for the purpose of pre-emption, it is treated as a new transaction, and he can take the whole property just as in an initial sale. Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) mentioned this generally for both cases —whether the return due to defect was before or after possession—without providing further detail. Some of our scholars stated that this general answer applies when the return is after possession, because returning property due to defect before possession without a judge's order is considered a new sale, yet according to Imam Muhammad’s principle, the sale of immovable property (aqar) before possession is not valid. However, this general answer aligns with the principles of Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on them). Some scholars stated that this general answer is correct according to all Imams. If the return due to defect was by a judge's order, he cannot take the whole property because such a return is an absolute annulment (faskh-e-mutlaq), essentially erasing the sale as if it never occurred, and the right of pre-emption is specifically tied to the existence of a sale. If the present pre-emptor became aware of a defect in the property before the decree was issued...

(1) If a decree has been issued, it shall not be invalidated.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 195 किताबुश-शफ़ा**

दिया तो दूसरे को पूरे मकान (दार) को लेने का अधिकार नहीं होगा और यदि कुछ का शफ़ा का अधिकार कुछ की तुलना में अधिक प्रबल (अक़वा) हो और प्रबल अधिकार वाले के नाम शफ़ा का फैसला (1) दिया गया तो कमज़ोर अधिकार स्वतः समाप्त हो जाएगा। यहाँ तक कि यदि दो शफ़ी (शफ़ा का अधिकार रखने वाले) हों, एक साझीदार (शरीक) और दूसरा पड़ोसी (जार-ए-मुलासिक), और साझीदार ने क़ाज़ी के फैसले से पहले अपना शफ़ा का अधिकार खरीदार (मुश्तरी) को सौंप दिया, तो पड़ोसी को अधिकार होगा कि वह पूरा मकान अपने शफ़ा के अधिकार में ले ले। और यदि क़ाज़ी ने साझीदार शफ़ी के नाम शफ़ा की डिक्री कर दी और फिर साझीदार ने शफ़ा छोड़ दिया, तो पड़ोसी को शफ़ा नहीं मिलेगा। यह और अन्य बातें इसमें हैं। यदि दो शफ़ियों में से एक अनुपस्थित हो, तो उपस्थित शफ़ी को अधिकार होगा कि वह पूरा मकान शफ़ा में ले ले। और यदि उसने आधा लेना चाहा और खरीदार उस पर सहमत हो गया, तो उसे ऐसा अधिकार होगा। और यदि खरीदार ने कहा कि मैं तुम्हें केवल आधे के अलावा और कुछ नहीं दूँगा, तो उसे पूरा ले लेने का अधिकार होगा, जैसा कि 'मबसूत' में है। यदि उपस्थित शफ़ी ने अनुपस्थित शफ़ी की पीठ पीछे कहा कि मैं आधा या एक तिहाई लूँगा और वही उसके अधिकार की मात्रा है, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा, बल्कि चाहे तो पूरा ले ले या पूरा छोड़ दे। यह 'सिराजुल वहाज' में है।

यदि क़ाज़ी ने उपस्थित शफ़ी के लिए पूरे मकान का फैसला दे दिया, फिर दूसरा शफ़ी आया और उसके लिए आधे का फैसला दिया, फिर तीसरा शफ़ी आया और उसके लिए यह फैसला दिया कि दोनों (पहले वाले) के कब्जे वाले हिस्से से एक तिहाई ले ले ताकि तीनों बराबर हो जाएँ। फिर जिस शफ़ी के लिए पहले पूरे मकान का फैसला हुआ था, उसने दूसरे से कहा कि मैं तुम्हें पूरा मकान देता हूँ, तो तुम सब ले लो या सब छोड़ दो, तो दूसरे को यह अधिकार नहीं होगा, बल्कि उसे अधिकार होगा कि अपना आधा हिस्सा ले ले। यह 'मुहीत' में है। यदि कई शफ़ियों में से एक व्यक्ति ने पहले उपस्थित होकर अपना शफ़ा साबित कर दिया, तो क़ाज़ी उसके लिए पूरे मकान का फैसला देगा। फिर यदि दूसरा शफ़ी उपस्थित होकर अपना शफ़ा साबित करे, तो क़ाज़ी विचार करेगा। यदि दूसरा शफ़ी पहले के समान है, तो क़ाज़ी उसके लिए आधे मकान के शफ़ा का फैसला देगा। और यदि दूसरा शफ़ी पहले से श्रेष्ठ (औला) है, उदाहरण के लिए पहला पड़ोसी है और दूसरा रास्तों या पानी का साझीदार (खलीत) है, तो क़ाज़ी पहले शफ़ी का शफ़ा निरस्त कर दूसरे के लिए पूरे मकान का फैसला

देगा। और यदि दूसरा शफ़ी पहले से निम्न श्रेणी (अदना) का है, तो उसके नाम कोई डिक्री नहीं करेगा। यह 'सिराजुल वहाज' में है।

यदि किसी ऐसे व्यक्ति ने मकान खरीदा जो उसका साझीदार है, फिर उसके समान दूसरा शफ़ी आया, तो क़ाज़ी उसके नाम आधे मकान का फैसला देगा। और यदि दूसरा शफ़ी उससे श्रेष्ठ आया, तो क़ाज़ी उसके नाम पूरे मकान की डिक्री करेगा। और यदि दूसरा शफ़ी उससे निम्न आया, तो उसे कुछ शफ़ा नहीं मिलेगा। यह 'शरह तहावी' में है। यदि उपस्थित शफ़ी के नाम पूरे मकान की डिक्री हो गई और उसने मकान में कोई दोष (ऐब) पाकर उसे वापस कर दिया, फिर अनुपस्थित शफ़ी आया, तो उसे पहली बिक्री (बय-ए-अव्वल) पर आधे मकान से अधिक लेने का अधिकार नहीं होगा, चाहे यह दोष के कारण वापसी क़ाज़ी के फैसले से हो या बिना फैसले के, और चाहे कब्जे से पहले हो या बाद में। और यदि उपस्थित होने वाले (अनुपस्थित) शफ़ी ने यह चाहा कि उपस्थित शफ़ी द्वारा वापस करने के कारण मैं पूरा मकान शफ़ा में ले लूँ और पहली बिक्री को छोड़ दूँ, तो देखा जाएगा कि यदि वापसी क़ाज़ी के आदेश के बिना हुई है, तो उसे ऐसा अधिकार होगा क्योंकि क़ाज़ी के आदेश के बिना वापसी एक नई बिक्री (बय-ए-मुतलक़) मानी जाती है, इसलिए शफ़ा के अधिकार में इसे नई बिक्री माना जाएगा और वह पूरा मकान शफ़ा में ले सकता है जैसे शुरुआती बिक्री में ले सकता था। ऐसा ही इमाम मोहम्मद (रह.) ने अपने उत्तर में स्पष्ट रूप से दोनों स्थितियों का उल्लेख किया है कि यदि दोष के कारण वापसी कब्जे से पहले हो या बाद में, उन्होंने विस्तार से नहीं बताया। हमारे कुछ विद्वानों ने कहा कि यह उत्तर उस स्थिति पर आधारित है जब वापसी कब्जे के बाद हो, क्योंकि कब्जे से पहले दोष के कारण बिना क़ाज़ी के आदेश के वापसी नई बिक्री है, लेकिन इमाम मोहम्मद (रह.) के सिद्धांत के अनुसार अचल संपत्ति (अक़ार) की बिक्री कब्जे से पहले जायज़ नहीं है। हाँ, यह उत्तर इमाम आज़म (रह.) और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के सिद्धांत के अनुसार ठीक है। कुछ विद्वानों ने कहा कि यह उत्तर सभी इमामों के अनुसार ठीक है। और यदि दोष के कारण वापसी क़ाज़ी के फैसले से हुई हो, तो वह (पूरा) नहीं ले सकता क्योंकि ऐसी वापसी बिक्री को पूरी तरह समाप्त (फ़स्ख-ए-मुतलक़) कर देती है, मानो बिक्री कभी हुई ही नहीं थी, और शफ़ा का अधिकार बिक्री के साथ ही जुड़ा होता है। और यदि उपस्थित शफ़ी ने मकान के किसी दोष को शफ़ा की डिक्री होने से पहले ही देख लिया था...

(1) यदि आदेश दे दिया गया तो वह निरस्त नहीं होगा।

---

دیا تو دوسرے کو پورے دار کے لینے کا اختیار نہ ہوگا اور اگر بعض کا حق شفعہ بنسبت بعض کے اقویٰ ہو اور حقدار اقویٰ کے نام شفعہ کا حکم (۱) دیا تو حق ضعیف باطل ہو جائے گا حتیٰ کہ اگر دو شفیع ایک شریک ہو دوسرا جارِ ملصق ہو اور شریک نے قبل حکم قاضی کے حق شفعہ مشتری کو دے دیا تو جار کو اختیار ہوگا کہ کل دار اپنے حق شفعہ میں لے لے اور اگر قاضی نے شفیع شریک کے نام شفعہ دار کی ڈگری کر دی پھر شریک نے شفعہ سپرد کیا تو پھر جار کو شفعہ نہ ملے گا یہ وغیرہ میں ہے۔ اگر دو شفیع میں سے ایک غائب ہو تو حاضر کو اختیار ہوگا کہ پورا دار شفعہ میں لے لے اور اگر اس نے نصف لینا چاہا اور مشتری اس پر راضی ہو گیا تو اس کو ایسا اختیار ہوگا اور اگر مشتری نے کہا کہ میں تجھے فقط آدھے کے سوائے نہ دوں گا تو اس کو کل لے لینے کا اختیار ہوگا کذا فی المبسوط اگر حاضر نے غائب کے پیٹھ پیچھے کہا کہ میں آدھا یا تہائی لوں گا اور اسی قدر اس کے حق کی مقدار ہے تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا لیکن چاہے تو کل لے لے یا سب چھوڑ دے۔ یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر قاضی نے شفیع حاضر کے واسطے پورے دار کا حکم دے دیا پھر دوسرا شفیع حاضر ہوا اور اس کے واسطے نصف کا حکم دیا پھر تیسرا شفیع حاضر ہوا اس کے واسطے یہ حکم دیا کہ دونوں میں سے ہر ایک کے مقبوضہ سے ایک تہائی لے لے تاکہ دونوں میں سے ہر ایک کے برابر ہو جائے پھر جس شفیع کے واسطے پہلے پورے دار کا حکم دیا تھا اس نے دوسرے سے کہا کہ میں تجھے پورا دار دیتا ہوں سو تو سب لے لے یا سب چھوڑ دے تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا اور دوسرے کو اختیار ہوگا کہ اپنا نصف لے لے۔ یہ محیط میں ہے۔ اگر چند شفیعوں میں سے ایک شخص نے پہلے حاضر ہو کر اپنا شفعہ ثابت کیا تو قاضی اس کے واسطے پورے دار کا حکم دے گا پھر اگر دوسرے شفیع نے حاضر ہو کر اپنا

شفعہ ثابت کیا تو قاضی نظر فرمائے گا اگر دوسرا شفیع مثل اول کے ہوگا تو قاضی اس کے واسطے نصف دار کے شفعہ کا حکم دے گا اور اگر دوسرا شفیع اول سے اولیٰ ہوگا مثلاً پہلا جار ہو اور دوسرا خلیط ہو تو قاضی شفیع اول کا شفعہ باطل کر کے پورے دار کا دوسرے کے واسطے حکم دے گا اور اگر دوسرا شفیع اول سے ادون (کم مرتبہ) ہو تو اس کے نام کچھ ڈگری نہ کرے گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔

اگر ایک ایسے شخص نے ایک دار خریدا جو اس کا شریک ہے پھر اس کے مثل دوسرا شفیع آیا تو قاضی اس کے نام نصف دار کا حکم دے گا اور اگر دوسرا شفیع اس سے اولیٰ آیا تو قاضی اس کے نام پورے دار کی ڈگری کرے گا اور اگر دوسرا شفیع اس سے ادون آیا تو اس کو کچھ شفعہ نہ ملے گا یہ شرح طحاوی میں ہے۔ اگر حاضر کے نام پورے دار کی ڈگری ہوگئی اور اس نے دار میں عیب پا کر واپس کر دیا پھر شفیع غائب حاضر ہوا تو اس کو بیع اول پر سوائے نصف دار کے زیادہ لینے کا اختیار نہ ہوگا خواہ یہ رد بالعیب بحکمِ قاضی ہو یا بلا حکمِ قاضی ہو اور خواہ قبضہ سے پہلے ہو یا قبضہ کے بعد ہو اور اگر غائب نے جو حاضر ہوا ہے یہ چاہا کہ شفیع حاضر کے واپس کرنے کی وجہ سے میں پورا دار شفعہ میں لوں بیع اول کو چھوڑ دوں تو دیکھا جائے گا کہ اگر رد کرنا بغیر حکمِ قاضی ہو تو اس کو ایسا اختیار ہوگا اس واسطے کہ جو رد بغیر حکمِ قاضی ہو وہ بیعِ مطلق ہے پس شفعہ کے حق میں بیعِ جدید قرار دی جائے گی پس پورا دار شفعہ میں لے سکتا ہے جیسے کہ ابتدائی بیع میں لے سکتا ہے ایسا ہی امام محمدؒ نے جواب میں مطلقاً ذکر فرمایا ہے ان دونوں صورتوں کی کہ اگر رد بالعیب قبضہ سے پہلے یا قبضہ کے بعد ہو کچھ تفصیل نہ فرمائی اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ جواب مطلق اس صورت پر محمول ہے کہ جب رد بالعیب قبضہ کے بعد ہو اس واسطے کہ قبضہ سے پہلے بسبب عیب کے بغیر حکمِ قاضی واپس کرنا بیع جدید ہے لیکن امام محمدؒ کی اصل پر عقار بیع کی قبضہ سے پہلے جائز نہیں ہے ہاں یہ

جواب مطلق امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کی اصل کے موافق ٹھیک ہے اور بعضے مشائخ نے فرمایا کہ یہ جواب مطلق سب ائمہ کے موافق ٹھیک ہے اور اگر رد بالعیب بحکمِ قاضی ہو تو لے نہیں سکتا ہے اس واسطے کہ ایسی واپسی فسخِ مطلق اور سرے سے عقد بیع کا اس طرح دور کر دینا ہے کہ گویا تھا ہی نہیں اور حقِ شفعہ لینا بیع کے ساتھ مختص ہوتا ہے اور اگر شفیع حاضر نے دار مشفوعہ کے کسی عیب پر قبل اس کے کہ اس کے نام شفعہ کی ڈگری ہو مطلع

(۱) اگر حکم دیا تو باطل نہ ہوگا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | The Book of Pre-emption (Page 196)**

...and the right of pre-emption was granted to the buyer, and then the absent pre-emptor (Shafi-e-Ghaib) arrived, he would have the option to take the entire property or leave it. If the present pre-emptor returned the pre-empted property due to a defect after a decree of pre-emption was issued in his name, and then two present pre-emptors appeared, both could take two-thirds of the property under the right of pre-emption. The ruling remains the same if there are two or three pre-emptors (Sadi), meaning the right of the absent pre-emptor lapses in proportion to the share of the present ones.

If the present pre-emptor purchased the pre-empted property from the buyer, and then the absent pre-emptor arrived, the latter has the choice to take the entire property based on the first sale or the entire property based on the second sale. If the first buyer was himself a pre-emptor for the purchased property, and the present pre-emptor bought it from him, and then the absent pre-emptor arrived, he would have the option to take half the property based on the first sale. This is because the first buyer did not possess the right of purchase before his own purchase, such that his act of purchasing could be deemed a renunciation (I'rad) of his right. Therefore, when the property was sold to the present pre-emptor, the absent one only acquired the right to the portion that would come to him despite the competition from the first buyer, which is half. This is because, at the time of the first sale, the cause for pre-emption (Sabab-e-Shufa) existed for each party for the entire house. Subsequently, the present pre-emptor's right was annulled due to his act of buying, as purchasing is evidence of renunciation. Thus, the right of the first buyer and the absent pre-emptor remained in the entire house, to be divided between them. Consequently, based on the first sale, the absent pre-emptor can take half of the house.

If he wishes, he may take the entire house based on the second sale, because at the time of the second contract, the cause for pre-emption arose for the pre-emptor. The present pre-emptor's right at the time of the first contract became void, and by engaging in the second purchase—since purchasing signifies renunciation (1)—it ceased to apply. Thus, the absent pre-emptor gains the choice to take the entire house based on the second contract.

If the first buyer was a stranger (2) who bought the house for one thousand dirhams and sold it to another stranger for two thousand, and then the pre-emptor arrived,

he would have the choice to take it based on either the first sale or the second, as the cause and conditions for entitlement existed at the time of each sale. If he takes it based on the first sale, he shall pay the price to the first buyer, and the liabilities (Uhda) of the sale will rest with the first buyer; the second sale will be annulled, and the second buyer will reclaim his payment from the first. If he takes it based on the second sale, both sales will be finalized, and the liability will rest with the second buyer. However, if the pre-emptor finds the second buyer and the house is in his possession, he has the option to take the property based on the second sale, whether the first buyer is present or not. If he wishes to take it based on the first sale (3), he shall not have such an option until the first buyer is present. This was mentioned by Qadi Imam al-Asbijabi in his commentary on Mukhtasar al-Tahawi, without noting any disagreement. Imam al-Karkhi mentioned that this is the opinion of Imam al-Azam and Imam Muhammad.

If the buyer sold half of the property instead of the whole, and then the pre-emptor arrived and wished to take the entire property based on the first sale, he may do so, and the second sale of the half property will be annulled. If he chooses to take half the property based on the second sale, he has that right. If the buyer did not sell the property but gifted it (Hiba) or gave it as charity (Sadqa), and the recipient (Mawhub Lahu or Musaddaq Alayhi) took possession, and then the pre-emptor arrived while both the buyer and the recipient (4) were present, the pre-emptor shall take it based on the sale contract, not the gift contract. The presence of the buyer is necessary; if the pre-emptor only finds the recipient, he cannot initiate any dispute (Khusumat) until he finds the buyer. Upon finding the buyer, he shall take it from him based on the sale contract; the buyer will receive the price, and the gift will be annulled. This was stated by Qadi Imam al-Asbijabi without mentioning any contrary opinion. If the buyer partitioned half the property, gifted it, and delivered it, and the recipient took possession, then the pre-emptor...

---

**Footnotes:** (1) It is a renunciation (I'rad) of taking the property under the right of pre-emption. (2) That he is not a pre-emptor. (3) By finding the first buyer, he takes it based on the first sale from him. (4) Or the one to whom charity was given. *Note:* I'tirad/I'rad means turning away from something or from pre-emption, whereby the right of pre-emption is lost.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | किताबुश-शुफ़ा (पृष्ठ 196)**

...होकर हक़-ए-शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) मुश्तरी (क्रेता) को दे दिया, फिर शफ़ी-ए-ग़ाइब (अनुपस्थित प्राधिकृत) हाज़िर हुआ तो उसको यह अख्तियार (विकल्प) होगा कि पूरा घर (दार) ले ले या छोड़ दे। और अगर शफ़ी-ए-हाज़िर ने घर को किसी दोष (ऐब) के कारण, इसके नाम शुफ़ा की डिक्री होने के बाद वापस कर दिया, फिर दो शफ़ी हाज़िर हुए तो दोनों उस घर की दो-तिहाई हक़-ए-शुफ़ा में ले सकते हैं और दो या तीन शफ़ी होने की स्थिति में हुक्म एक समान है (सादी), यानी अनुपस्थित के अधिकार में से उपस्थित के हिस्से के बराबर अधिकार समाप्त हो जाता है। और अगर शफ़ी-ए-हाज़िर ने घर को मुश्तरी से खरीदा हो और फिर शफ़ी-ए-ग़ाइब हाज़िर हुआ तो उसे अख्तियार है कि चाहे तो पूरे घर को पहली बिक्री पर ले ले या दूसरी बिक्री पर। और अगर पहला मुश्तरी खुद उस घर का शफ़ी हो और उससे शफ़ी-ए-हाज़िर ने घर खरीद लिया हो, फिर शफ़ी-ए-ग़ाइब हाज़िर हुआ तो उसे अख्तियार होगा कि चाहे तो आधा घर पहली बिक्री पर ले ले, क्योंकि पहले मुश्तरी को खरीदने का अधिकार स्वयं खरीदने से पहले प्राप्त नहीं हुआ था ताकि उसे स्वयं खरीदने के कारण अधिकार त्यागने वाला (एराज़ करने वाला) माना जाए। अतः जब घर शफ़ी-ए-हाज़िर के हाथ बेचा गया तो अनुपस्थित के लिए केवल उतना ही अधिकार होगा जितना पहले मुश्तरी के विरोध के साथ उसके हिस्से में आता, और यह आधा है क्योंकि पहली बिक्री के समय शुफ़ा का कारण प्रत्येक के लिए पूरे घर के शुफ़ा का आधार बना। फिर शफ़ी-ए-हाज़िर का हक़ स्वयं खरीदने के कारण निरस्त (बातिल) हो गया क्योंकि खरीदना अधिकार त्याग (एराज़) का प्रमाण है। अतः पहले मुश्तरी और शफ़ी-ए-ग़ाइब का हक़ पूरे घर में रह गया, तो वह दोनों में विभाजित किया जाएगा। अतः पहली बिक्री पर शफ़ी-ए-ग़ाइब आधा घर ले सकता है।

यदि वह चाहे तो पूरे घर को दूसरी बिक्री पर ले ले, क्योंकि दूसरी संविदा (अक़्द) के समय शफ़ी के लिए शुफ़ा का कारण बना। फिर शफ़ी-ए-हाज़िर का हक़ पहली संविदा के समय बातिल हो गया और दूसरी खरीद की दिशा में कदम उठाने से, इस कारण कि खरीदना एराज़ (अधिकार त्याग) का प्रमाण है (1), वह संबद्ध नहीं रहा। अतः अनुपस्थित को अधिकार होगा कि दूसरी बिक्री पर पूरे घर को ले ले। और यदि पहला मुश्तरी कोई अजनबी (2) हो जिसने घर एक हजार दिरहम में खरीदकर किसी अन्य अजनबी के हाथ दो हजार में बेच दिया, फिर शफ़ी हाज़िर हुआ तो उसे अख्तियार होगा कि चाहे तो पहली बिक्री पर ले ले या दूसरी पर, क्योंकि अधिकार के कारण और शर्तें दोनों बिक्रियों में से प्रत्येक के समय मौजूद थीं। अतः यदि उसने पहली बिक्री पर लिया तो घर का मूल्य पहले मुश्तरी को

दे और बिक्री का दायित्व (ओहदा) पहले मुश्तरी पर होगा और दूसरी बिक्री रद्द हो जाएगी, और दूसरा मुश्तरी अपना मूल्य पहले मुश्तरी से वापस ले लेगा। यदि उसने दूसरी बिक्री पर लिया तो दोनों बिक्रियां पूरी हो जाएंगी और दायित्व दूसरे मुश्तरी पर होगा। मगर इतनी बात है कि यदि शफ़ी ने दूसरे मुश्तरी को पाया और घर उसके कब्जे में है, तो उसे अख्तियार है कि दूसरी बिक्री पर वह घर ले ले, चाहे पहला मुश्तरी हाज़िर हो या न हो। और यदि वह पहली बिक्री (3) पर लेना चाहता हो, तो उसे ऐसा अख्तियार तब तक नहीं होगा जब तक दूसरा मुश्तरी हाज़िर न हो। ऐसा ही क़ाज़ी इमाम अस्बीजाबी ने अपनी 'शराह मुख़्तसर अल-तह़ावी' में ज़िक्र किया है और कोई मतभेद नहीं बताया। इमाम कर्ख़ी ने ज़िक्र किया कि यह इमाम-ए-आज़म और इमाम मोहम्मद का कथन है।

और यदि मुश्तरी ने घर में से आधा बेचा, पूरा नहीं, फिर शफ़ी आया और उसने चाहा कि पूरा घर पहली बिक्री पर ले ले तो वह पूरा घर ले सकता है और आधे घर की दूसरी बिक्री जो पहले ने दूसरे के हाथ की थी, बातिल हो जाएगी। और यदि उसने चाहा कि दूसरी बिक्री पर आधा घर ले ले तो उसे इसका अधिकार है। और यदि मुश्तरी ने वह घर बेचा नहीं बल्कि किसी को हिबा (दान) कर दिया या सदक़ा (खैरात) में दे दिया और दान प्राप्तकर्ता (मौहूब लहू) या सदक़ा प्राप्तकर्ता ने उस पर कब्ज़ा कर लिया, फिर शफ़ी हाज़िर हुआ और मुश्तरी व दान प्राप्तकर्ता (4) दोनों उपस्थित हैं, तो शफ़ी इसे बिक्री संविदा पर लेगा न कि हिबा संविदा पर। और मुश्तरी का उपस्थित होना अनिवार्य है, यहाँ तक कि यदि शफ़ी आया और उसने केवल दान प्राप्तकर्ता को पाया, तो वह उसके साथ तब तक कोई विवाद (ख़ुसूमत) नहीं कर सकता जब तक कि वह मुश्तरी को न पा ले। फिर मुश्तरी को पाकर उससे बिक्री संविदा पर घर ले लेगा, और मूल्य मुश्तरी को मिलेगा और हिबा बातिल हो जाएगा। ऐसा ही क़ाज़ी इमाम अस्बीजाबी ने बिना किसी मतभेद के उल्लेख के बयान किया है। और यदि मुश्तरी ने आधा घर विभाजित करके हिबा कर दिया और दान प्राप्तकर्ता ने उस पर कब्ज़ा कर लिया, फिर शफ़ी...

---

**पाद-टिप्पणियाँ:** (1) हक़-ए-शुफ़ा में लेने से विमुख होना (एराज़) है। (2) वह शफ़ी न हो। (3) पहले मुश्तरी को पाकर उससे पहली बिक्री के आधार पर ले। (4) या जिससे सदक़ा प्राप्त हुआ हो। एतराज/एराज़ यानी किसी चीज़ या शुफ़ा से मुँह मोड़ लिया तो शुफ़ा जाता रहा।

ہو کر حق شفعہ مشتری کو دے دیا پھر شفیع غائب حاضر ہوا تو اس کو یہ اختیار ہوگا کہ کل دار لے لے یا چھوڑ دے اور اگر شفیع حاضر نے دار مشفوعہ کو بسبب عیب کے بعد ازانکہ اس کے نام شفعہ کی ڈگری ہو گئی ہے واپس کر دیا پھر دو شفیع حاضر ہوئے تو دونوں اس دار کی دو تہائی حق شفعہ میں لے سکتے ہیں اور دو شفیع و تین ہونے کی صورت میں حکم یکساں ہے (سادی) یعنی حق غائب میں سے بقدر حصہ حاضر کے ساقط ہو جاتا ہے اور اگر شفیع حاضر نے دار مشفوعہ کو مشتری سے خریدا ہو پھر شفیع غائب حاضر ہوا تو اس کو اختیار ہے چاہے پورے دار کو پہلی بیع پر لے لے یا پورے کو دوسری بیع پر لے لے اور اگر مشتری اول دار خرید کردہ کا شفیع ہو اور اس سے شفیع حاضر نے خرید لیا پھر شفیع غائب حاضر ہوا تو اس کو اختیار ہوگا چاہے نصف دار کو پہلی بیع پر لے لے اس واسطے کہ مشتری اول کو حق خرید اپنے خریدنے سے پہلے حاصل نہیں ہوا تھا تاکہ اپنے خرید کرنے کی وجہ سے اس سے اعراض کرنے والا قرار دیا جائے پس جب دار کو شفیع حاضر کے ہاتھ فروخت کیا تو غائب کے واسطے فقط اسی قدر حق حاصل ہو گا جس قدر مشتری اول کی مزاحمت کے ساتھ اس کے حصہ میں آئے اور یہ نصف ہے اس لئے کہ بیع اول کے وقت سبب شفعہ ہر ایک کے واسطے پورے دار کے شفعہ کا موجب ہوا پھر شفیع حاضر کا حق بسبب اس کے خریدنے کے باطل ہو گیا کیونکہ خریدنا دلیل اعراض ہے پس مشتری اول و شفیع غائب کا حق پورے دار میں باقی رہ گیا سو وہ دونوں میں تقسیم کیا جائے گا پس بیع اول پر شفیع غائب نصف دار لے سکتا ہے۔ اگر چاہے تو پورے دار کو دوسری بیع پر لے لے اس واسطے کہ سبب شفعہ دوسرے عقد کے وقت شفیع کے واسطے موجب حق شفعہ ہوا پھر شفیع حاضر کا حق پہلے عقد کے وقت باطل ہو گیا اور دوسری خرید پر اس کے اقدام کرنے سے

بدیں وجہ کہ خریدنا دلیل اعراض (۱) ہے متعلق نہ ہوا پس غائب کو اختیار حاصل ہو جائے گا کہ دوسرے عقد پر پورے دار کو لے لے اور اگر مشتری اول کوئی اجنبی (۲) ہو کہ اس نے دار کو ہزار درہم میں خرید کر کسی اجنبی کے ہاتھ دو ہزار کو فروخت کیا پھر شفیع حاضر ہوا تو اس کو اختیار ہوگا کہ چاہے بیع اول پر لے لے یا بیع ثانی پر کیونکہ سبب و شرط استحقاق دونوں بیع میں سے ہر ایک بیع کے انعقاد کے وقت موجود ہے پس اگر اس نے بیع اول پر لیا تو دار کا ثمن مشتری اول کو دے اور عہدہ بیع مشتری اول پر ہو گا اور دوسرے بیع ٹوٹ جائے گی اور دوسرا مشتری اپنا ثمن پہلے مشتری سے واپس لے لے گا۔ اگر اس نے بیع ثانی پر لیا تو دونوں بیع تمام ہو جائیں گی اور عہدہ مشتری ثانی پر ہو گا مگر اتنی بات ہے کہ اگر شفیع نے دوسرے مشتری کو پایا اور دار مذکور اس کے قبضہ میں ہے تو اس کو اختیار ہے کہ دوسری بیع پر دار مذکور کو لے لے خواہ مشتری اول حاضر ہو یا نہ ہو اور اگر پہلی بیع (۳) پر لینا چاہتا ہو تو اس کو ایسا اختیار نہ ہو گا یہاں تک کہ دوسرا مشتری حاضر ہو ایسا ہی قاضی امام اسبیجابی نے اپنی شرح مختصر الطحاوی میں ذکر فرمایا اور کچھ اختلاف نہیں بیان کیا اور امام کرخی نے ذکر کیا کہ یہ امام اعظم و امام محمد کا قول ہے اور اگر مشتری نے دار مذکور میں سے نصف فروخت کیا پورا نہیں فروخت کیا پھر شفیع آیا اور اس نے چاہا کہ پورا دار بیع اول پر لے لے تو پورا دار لے سکتا ہے اور نصف دار کی دوسری بیع جو اول نے دوسرے کے ہاتھ فروخت کیا ہے باطل ہو جائے گی اور اگر اس نے چاہا کہ دوسری بیع پر نصف دار لے لے تو اس کو یہ اختیار ہے اور اگر مشتری نے وہ دار فروخت نہ کیا بلکہ کسی شخص کو ہبہ کیا یا کسی کو صدقہ میں دیا اور موہوب لہ یا مصدق علیہ نے اس پر قبضہ کر لیا پھر شفیع حاضر ہوا اور مشتری و موہوب لہ (۴) دونوں حاضر ہیں تو شفیع اس کو عقد بیع پر لے گا نہ عقد ہبہ پر اور مشتری کا حاضر ہونا ضرور ہے حتی کہ اگر شفیع آیا اور اس نے فقط موہوب لہ کو پایا تو اس کے ساتھ کچھ خصومت نہیں کر سکتا ہے جب تک کہ

مشتری کو نہ پائے پھر مشتری کو پا کر اس سے عقد بیع پر لے لے گا اور اس کا ثمن مشتری کو ملے گا اور ہبہ باطل ہو جائے گا ایسا ہی قاضی امام اسبیجابی نے بلا ذکر خلاف بیان کیا ہے اور اگر مشتری نے نصف دار تقسیم کر کے ہبہ کر کے سپرد کیا اور موہوب لہ نے اس پر قبضہ کر لیا پھر شفیع

---

**حواشی:** (۱) حق شفعہ میں لینے سے اعراض ہے۔ (۲) شفیع نہ ہو۔ (۳) پہلے مشتری کو پا کر اس سے پہلی بیع لے۔ (۴) یا تصدق علیہ۔ اعتراض یعنی کسی کو یا شفعہ سے منہ موڑ لیا تو شفعہ جاتا رہا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 197 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

...presented himself and wished to take the remaining half of the pre-emption in exchange for half the price; he shall not have this option. However, if he wishes, he may take the whole for the full price or relinquish everything. And (1) the gift (hiba) shall become void, and its price shall not go to the donee (mauhub lahu) but to the buyer (mushtari); this is mentioned in 'Bada'i'.

A person purchased a house (dar) for which there are two pre-emptors (shafi), one present and the other absent. The present pre-emptor claimed pre-emption, and the judge (qazi) issued a decree in his favor. Later, the second pre-emptor arrived; he shall claim his right of pre-emption from the pre-emptor in whose favor the judge issued the decree, not from the buyer. This applies if the present pre-emptor claimed the entire house in pre-emption. If he claimed only half, under the impression that he was only entitled to half, then his right of pre-emption becomes void. Similarly, if both are present and each claims pre-emption for only half, the pre-emption of both becomes void. Since each failed to claim pre-emption for the whole, the right to the half not claimed is forfeited, and when it is void for half, it becomes void for the whole; this is stated in 'Fatawa Qazi Khan'.

## Chapter Eight: Regarding the Buyer's Denial of the Pre-emptor's Neighborship and Related Matters

The method of giving testimony in 'Ajnas' is stated as follows: witnesses should testify that "this house, situated in the neighborhood of the sold house, has been the property of this pre-emptor since before the buyer purchased the sold house, and remains his property to this day; we do not know it to have left his ownership." If a witness merely says, "this house belongs to this neighbor," it is insufficient. If both witnesses testify that "the pre-emptor purchased this house from such-and-such person and it is in his possession, or it was gifted to him (2)," then it is sufficient. If the pre-emptor wishes to put the buyer under oath regarding this, he has the right to do so; this is in 'Muhit wa Dhakhira'. It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that if a person claims a house and produces witnesses stating that "this house was in the possession of the claimant's father who passed away, and indeed the house was in his possession," then a decree for the house shall be issued in the claimant's name. However, if a neighboring house is subsequently sold, the said claimant shall not be entitled to pre-emption unless he produces witnesses to his own ownership. A house is in a person's possession, and he acknowledges that "this house belongs to such-

and-such person," then the neighboring house is sold, and the acknowledgee (muqarr lahu) claims pre-emption; it shall not be granted until he produces witnesses to prove that "this house is mine"; this is in 'Muhit Sarkhasi'. If a person buys a house and there is a pre-emptor who acknowledges that "my house, which grants the right of pre-emption, belongs to such-and-such person," then if he remained silent and had not yet claimed pre-emption, the acknowledgee shall not receive it. But if he has already claimed pre-emption, the acknowledgee shall receive it; this is in 'Muhit'. Sheikh Khassaf (RA) mentioned a legal stratagem (hila) to forfeit pre-emption: if the seller acknowledges a partner for the buyer and then sells the remainder of the house to him, the neighboring pre-emptor shall not be entitled to pre-emption. Sheikh Abu Bakr Khwarizmi used to criticize (3) Sheikh Khassaf (RA) on this issue and would issue fatwas stating that pre-emption remains mandatory for the neighbor. And Allah knows best; so it is in 'Al-Dhakhira'.

हाज़िर हुआ और उसने बाकी आधे शुफ़ा में आधे मूल्य (शमन) के बदले लेना चाहा, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा। लेकिन अगर वह चाहे तो पूरे को पूरी कीमत के बदले ले ले या सब छोड़ दे। और (1) उपहार (हिबा) शून्य हो जाएगा और उसका मूल्य प्राप्तकर्ता (मौहूब लहू) को नहीं मिलेगा, बल्कि खरीदार (मुश्तरी) को मिलेगा, यह 'बदाए' में है।

एक व्यक्ति ने एक ऐसा घर (दार) खरीदा जिसके दो पूर्वाधिकारी (शफ़ी) हैं, एक उपस्थित है और दूसरा अनुपस्थित। उपस्थित पूर्वाधिकारी ने पूर्वाधिकार (शुफ़ा) का दावा किया और काज़ी ने उसके नाम शुफ़ा का आदेश दे दिया। फिर दूसरा पूर्वाधिकारी आया, तो वह अपना पूर्वाधिकार का हक उस उपस्थित पूर्वाधिकारी से मांगेगा जिसके नाम काज़ी ने आदेश दिया है, न कि खरीदार से। यह तब है जब उपस्थित पूर्वाधिकारी ने पूरे घर का पूर्वाधिकार मांगा हो। और अगर उसने इस सोच में कि मैं केवल आधे का हकदार हूँ, आधा माँगा, तो उसका पूर्वाधिकार शून्य हो जाएगा। इसी तरह यदि दोनों उपस्थित हों और प्रत्येक ने आधे का पूर्वाधिकार माँगा, तो दोनों का पूर्वाधिकार शून्य हो जाएगा क्योंकि जब प्रत्येक ने पूरे का पूर्वाधिकार नहीं माँगा, तो जिस आधे का पूर्वाधिकार नहीं माँगा, उससे उसका पूर्वाधिकार का अधिकार समाप्त हो गया। और जब आधे में समाप्त हुआ तो पूरे से भी समाप्त हो गया, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

## अध्याय आठवां: खरीदार द्वारा पूर्वाधिकारी के पड़ोसी होने से इनकार करना और उससे संबंधित विवरण

अजनास में गवाही देने की विधि इस प्रकार बताई गई है कि गवाहों को इस तरह गवाही देनी चाहिए कि: "यह घर जो इस बेचे गए घर के पड़ोस में स्थित है, खरीदार द्वारा इस घर को खरीदने से पहले से इस पूर्वाधिकारी (शफ़ी) के स्वामित्व (मिल्क) में है और अभी तक उसी के स्वामित्व में है, हम नहीं जानते कि यह उसके स्वामित्व से बाहर हुआ।" यदि गवाह ने कहा कि "यह घर इस पड़ोसी का है", तो यह पर्याप्त नहीं है। और यदि दोनों गवाहों ने इस तरह गवाही दी कि "पूर्वाधिकारी ने यह घर फलां व्यक्ति से खरीदा था और उसके कब्जे में है या उसे उपहार में मिला था (2)", तो यह पर्याप्त है। यदि पूर्वाधिकारी खरीदार से इस बात पर शपथ (कसम) लेना चाहे, तो उसे यह अधिकार है, यह 'मुहीत व जखीरा' में है। इमाम अबू यूसुफ रह. से वर्णित है कि यदि एक व्यक्ति ने एक घर का दावा किया और गवाह पेश किए कि "यह घर इस दावेदार के पिता के कब्जे में था, वह मर गया और वास्तव में यह

घर उसके कब्जे में था", तो दावेदार के नाम उस घर की डिक्री कर दी जाएगी। फिर यदि उसके बगल में दूसरा घर बेचा गया, तो उक्त दावेदार उसके पूर्वाधिकार का हकदार नहीं होगा जब तक कि वह अपने स्वामित्व (मिल्क) के गवाह पेश न करे। एक घर एक व्यक्ति के कब्जे में है, उसने स्वीकार (इकरार) किया कि "यह घर फलां व्यक्ति का है", फिर उसके बगल में दूसरा घर बेचा गया और जिसके पक्ष में स्वीकारोक्ति की गई थी (मुकर लहू) उसने पूर्वाधिकार मांगा, तो नहीं मिलेगा जब तक कि वह इस बात के गवाह पेश न करे कि "यह घर मेरा है", यह 'मुहीत सरख़सी' में है। एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा और उसका एक पूर्वाधिकारी है, उसने स्वीकार किया कि "मेरा यह घर जिसके कारण पूर्वाधिकार का अधिकार है, फलां व्यक्ति का है", तो यदि वह पूर्वाधिकार पर मौन रहा था और अभी तक पूर्वाधिकार नहीं मांगा था, तो मुकर लहू को पूर्वाधिकार नहीं मिलेगा, और यदि उसने पूर्वाधिकार मांग लिया है, तो मुकर लहू को पूर्वाधिकार मिलेगा, यह 'मुहीत' में है। शेख खसाफ़ रह. ने पूर्वाधिकार को समाप्त करने के लिए यह युक्ति (हीला) बताई कि यदि विक्रेता (बाए) ने खरीदार के लिए एक हिस्सेदार का स्वीकार कर लिया, फिर उसके हाथ बाकी घर बेच दिया, तो पड़ोसी पूर्वाधिकारी शुफ़ा का हकदार नहीं होगा। और शेख अबू बक्र ख्वारज़मी इस मसले में शेख खसाफ़ रह. की आलोचना (3) करते थे और स्वयं पड़ोसी के लिए पूर्वाधिकार अनिवार्य होने का फतवा देते थे। वल्लाहु आलम (अल्लाह बेहतर जानता है), ऐसा ही 'अल-ज़खीरा' में है।

---

حاضر ہوا اور اس نے باقی نصف شفعہ میں آدھے ثمن کے عوض لینا چاہا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا لیکن اگر چاہے تو کل کو پورے داموں کے عوض لے لے یا سب چھوڑ دے اور (1) ہبہ باطل ہوجائے گا اور اس کا ثمن موہوب لہ کو نہ ملے گا بلکہ مشتری کو ملے گا یہ بدائع میں ہے۔

ایک شخص نے ایک ایسا دار جس کے دو شخص شفیع ایک حاضر اور دوسرا غائب ہے خریدا اور شفیع حاضر نے شفعہ طلب کیا اور قاضی نے اس کے نام شفعہ کا حکم دے دیا پھر دوسرا شفیع آیا تو وہ اپنا حق شفعہ شفیع حاضر سے جس کے نام قاضی نے حکم دے دیا ہے طلب کرے گا نہ مشتری سے اور یہ اس وقت ہے کہ شفیع حاضر نے پورا دار شفعہ میں طلب کیا ہو اور اگر اس نے بدیں گمان کہ میں فقط نصف کا مستحق ہوں نصف طلب کیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اسی طرح اگر دونوں حاضر ہوں اور ہر ایک نے نصف کو شفعہ میں طلب کیا تو دونوں کا شفعہ باطل ہو جائے گا کیونکہ جب ہر ایک نے کل کا شفعہ طلب نہ کیا تو جس نصف کا شفعہ طلب نہیں کیا ہے اس سے اس کا حق شفعہ باطل ہو گیا پس جب نصف میں سے باطل ہوا تو کل سے بھی باطل ہو گیا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

**باب ہشتم: مشتری کا جوارِ شفیع سے انکار کرنا اور اس کے متصلات کے بیان میں**

اجناس میں گواہی ادا کرنے کی کیفیت یوں بیان فرمائی ہے کہ گواہوں کو اس طرح گواہی دینا چاہئے کہ یہ دار جو اس دار مبیعہ کے جوار میں واقع ہے مشتری کے اس دار مبیعہ کے خریدنے سے پہلے سے اس شفیع کی ملک ہے اور وہ اس دم تک اسی کی ملک ہے ہم نہیں جانتے ہیں کہ وہ اس کی ملک سے خارج ہوا۔ اگر گواہ نے بیان کیا کہ یہ دار اس جار کا ہے تو کافی نہیں ہے اور

اگر دونوں گواہوں نے اس طرح گواہی دی کہ شفیع نے یہ دار فلاں شخص سے خریدا تھا اور اس کے قبضہ میں ہے یا اس کو ہبہ کیا تھا (2) تو یہ کافی ہے۔ اگر شفیع نے مشتری سے اس بات پر قسم لینی چاہی تو اس کو یہ اختیار ہے یہ محیط و ذخیرہ میں ہے۔ امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ اگر ایک شخص نے ایک دار کا دعویٰ کیا اور گواہ قائم کئے کہ یہ دار اس مدعی کے باپ کے قبضہ میں تھا وہ مر گیا اور حالانکہ یہ دار اس کے قبضہ میں تھا تو مدعی کے نام اس دار کی ڈگری کر دی جائے گی۔ پھر اگر اس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا تو مدعی مذکور اس کے شفعہ کا مستحق نہ ہو گا یہاں تک کہ اپنی ملک کے گواہ قائم کرے۔ ایک دار ایک شخص کے قبضہ میں ہے اس نے اقرار کیا کہ یہ دار فلاں شخص کا ہے پھر اس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا اور مقر لہ نے شفعہ طلب کیا تو نہ ملے گا یہاں تک کہ اس بات کے گواہ قائم کرے کہ یہ دار میرا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار خریدا اور اس کا ایک شفیع ہے اس نے اقرار کیا کہ یہ میرا دار جس کی وجہ سے استحقاق شفعہ ہے فلاں شخص کا ہے پس اگر اس نے شفعہ سے سکوت کیا تھا اور ہنوز شفعہ طلب نہ کیا تھا تو مقر لہ کو شفعہ نہ ملے گا اور اگر اس نے شفعہ طلب کر لیا ہے تو مقر لہ کو شفعہ ملے گا یہ محیط میں ہے۔ شیخ خصافؒ نے اسقاط شفعہ کے واسطے یہ حیلہ ذکر کیا کہ اگر بائع نے ایک حصہ دار کا مشتری کے واسطے اقرار کر دیا پھر اس کے ہاتھ باقی دار فروخت کیا تو جار شفیع مستحق شفعہ نہ ہوگا اور شیخ ابو بکر خوارزمی اس مسئلہ میں شیخ خصافؒ کا تخلیہ (3) کرتے تھے اور خود جار کے واسطے شفعہ واجب ہونے کا فتویٰ دیتے تھے واللہ اعلم کذانی الذخیرہ۔

(1) اس واسطے کہ ظاہر حالت مظہرِ ملک ہے اور معارض موجود نہیں تو ظاہری ملکیت کا حکم دیا جائے گا یہاں تک کہ دوسرا مدعی اپنا استحقاق ثابت کرے تو اس کے گواہوں پر حکم ہوگا پھر اس ظاہری ملکیت کے حکم سے وہ شخص اس دار کے ذریعہ سے شفعہ کا مستحق نہ ہو گا کیونکہ

یہاں ملکیت ظاہری نہیں بلکہ ملکیت نجت ثابت ہونا چاہئے۔ (2) میرا ہے تاکہ حقیقۃً ملکیت نجت ثبوت ہو اسقاط ساقط کرنا اور اگر دینا یعنی دوسرے کا حق شفعہ مٹانا۔ علماء نے کہا کہ وہ حیلہ ہو تو مباح ہے ورنہ حرام ہے۔ (3) تخلیہ لینے کے کہ امام مجتہد خصاف کے اجتہاد میں خطا ہوگئی۔ (1) اگر اس نے کل لے لیا تو۔ (2) بقبضہ ایندم۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 198 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

## Chapter Ten: Regarding the Actions of the Purchaser in the Pre-empted Property Before the Appearance of the Pre-emptor (Shafi')

If a purchaser (buyer) acquires land and constructs a building, plants trees, or sows crops upon it, and subsequently the pre-emptor appears, a decree of pre-emption shall be issued in favor of the pre-emptor. The purchaser shall be compelled to demolish the building or uproot the plants to deliver the land vacant to the pre-emptor. However, if such demolition or uprooting causes harm to the land itself, the pre-emptor has the option: he may either take the land at a portion of the price and pay for the buildings/plants based on their value as "demolished" or "uprooted" materials, or he may compel the purchaser to remove them. This ruling is in accordance with the 'Zahir al-Riwayah'. Regarding crops, there is a consensus (Ijma) that if the purchaser has sown crops and then the pre-emptor appears, the purchaser shall not be forced to uproot them; instead, they shall wait until the harvest is ready, after which the decree of pre-emption shall be executed. The pre-emptor will then take the land for its full price, as stated in 'al-Bada'i'. If the land remains with the purchaser during this waiting period, it shall be without any rent. A similar case in 'Fatawa Abu Laith' states: a person took land for sharecropping and sowed crops; when the crops turned green, he purchased the land along with the share of crops from the owner. If a pre-emptor then arrives, he shall have pre-emption over the land and half of the crop, but he cannot take possession until the harvest is ready. This is mentioned in 'al-Muhit'.

It is written in 'Jami al-Fatawa' that if a person purchases land and sows crops that damage the land, and then a pre-emptor appears, the original price shall be divided proportionately between the current (damaged) value of the land and its value on the day of purchase. The pre-emptor may then take it for the portion of the price corresponding to the depreciated value; this is mentioned in 'Tatarkhaniya'. If a person buys a house and paints it in various colors, the pre-emptor has the option to take the house and pay for the added value of the painting or to decline the purchase; this is in 'al-Qunya'.

If a person buys a house and the building is demolished by him, by a stranger, or it collapses on its own, and then the pre-emptor appears, the purchase price shall be divided between the value of the building as it stood and the value of the land. The pre-emptor shall take the land for the proportion of the price assigned to it. This

applies when the building is demolished but the debris (scrap) remains. However, if demolished by the act of the purchaser or a stranger, the division is based on the value of the "constructed building." If it collapses naturally, the division is based on the value of the "demolished ruins," because demolition makes the perpetrator liable (daman) for the building's standing state, whereas natural collapse involves no liability. For example, if the land's value was 500 dirhams and the building's value was 500 dirhams, and the building collapses leaving debris now worth 300 dirhams, the total price is divided into eight parts (500 for land + 300 for debris). The pre-emptor then takes the land for 5/8ths of the price. If the building burns down or is washed away by a flood leaving no debris, the pre-emptor takes the land for the full purchase price because the purchaser no longer possesses anything for which a price reduction can be claimed.

If the purchaser does not demolish the building but sells it to someone else without the land, and then the pre-emptor appears, the pre-emptor has the right to void that sale and take the entire property for the full price; this is in 'al-Muhit'. If the purchaser has already demolished the building, the pre-emptor is told: "If you wish, take the vacant land for a portion of the price, or leave it." He also has the right to take the debris. The same rule applies if a stranger demolished it or if it collapsed naturally, provided the debris is not lost, as the right of pre-emption over it has been extinguished. [1]

---

1. Al-Hamwi said: This applies when the sharecropping is on a 50/50 basis.
2. The phrase "from it": meaning from the debris/scraps, because it is no longer immovable property.

## दसवाँ अध्याय: शफ़ी (पूर्व-क्रय अधिकारी) के उपस्थित होने से पहले क्रेता द्वारा पूर्व-क्रय वाली संपत्ति में किए गए कार्यों के वर्णन में

यदि क्रेता (खरीदने वाले) ने ज़मीन खरीदकर उसमें इमारत बनाई या पेड़ लगाए या खेती बोई, फिर शफ़ी (पूर्व-क्रय करने वाला) उपस्थित हुआ, तो उसके नाम शुफ़आ की डिग्री कर दी जाएगी। क्रेता को मजबूर किया जाएगा कि वह इमारत गिराकर या पौधे उखाड़कर खाली ज़मीन शफ़ी को सौंप दे। लेकिन यदि गिराने या उखाड़ने से ज़मीन को नुक़सान पहुँचता हो, तो शफ़ी को अधिकार होगा कि वह चाहे तो ज़मीन को मूल्य के कुछ हिस्से के बदले ले ले और इमारत व पौधों का मूल्य 'टूटी हुई' और 'उखड़े हुए' के हिसाब से लगाकर ले ले, या चाहे तो क्रेता को उसे गिराने या उखाड़ने पर मजबूर करे। यह हुक्म 'ज़ाहिर-उर-रवाया' के अनुसार है। खेती के मामले में सर्वसम्मति (इजमा) है कि यदि क्रेता ने ज़मीन में खेती कर ली और फिर शफ़ी आया, तो क्रेता को उसे उखाड़ने पर मजबूर नहीं किया जाएगा, बल्कि फसल पकने तक इंतज़ार किया जाएगा, फिर शफ़ी के नाम शुफ़आ की डिग्री होगी। वह ज़मीन को पूरे मूल्य में ले लेगा, जैसा कि 'बदाए' में है। जब ज़मीन क्रेता के पास छोड़ी गई, तो वह बिना किराए के छोड़ी जाएगी। इसी प्रकार का एक मसला 'फ़तावा अबू लैथ' में है: एक व्यक्ति ने हिस्सेदारी (बटाई) पर ज़मीन ली और उसमें खेती की, जब फसल हरी हो गई तो उसने वह ज़मीन खेती के हिस्से सहित मालिक से खरीद ली। फिर शफ़ी आया, तो उसे ज़मीन और आधी खेती में शुफ़आ मिलेगा, लेकिन जब तक फसल तैयार न हो जाए, वह ज़मीन नहीं ले सकता। यह 'मुहीत' में वर्णित है।

'जामे-उल-फ़तावा' में लिखा है कि यदि किसी ने ज़मीन खरीदकर खेती की और खेती से ज़मीन को नुक़सान हुआ, फिर शफ़ी आया, तो मूल्य को ज़मीन की वर्तमान (दोषपूर्ण) स्थिति और खरीद के दिन की स्थिति के मूल्य के आधार पर विभाजित किया जाएगा। जो हिस्सा दोषपूर्ण स्थिति के अनुपात में आए, उतने में वह ले ले, यह 'तातारीखानिया' में है। यदि किसी ने घर खरीदकर उसे विभिन्न रंगों से रंगा, तो शफ़ी को अधिकार है कि वह चाहे तो उस घर को ले ले और रंग के कारण बढ़ी हुई कीमत अदा कर दे, या उसे छोड़ दे। यह 'कुनिया' में है।

यदि किसी ने घर खरीदा और उसकी इमारत गिरा दी, या किसी अजनबी ने गिरा दी, या वह स्वयं गिर गई, फिर शफ़ी आया, तो मूल्य को बनी हुई इमारत और ज़मीन की कीमत के आधार पर विभाजित

किया जाएगा। जितना हिस्सा ज़मीन के अनुपात में आए, शफ़ी उतने में उसे ले लेगा। इसका अर्थ यह है कि इमारत गिर चुकी है लेकिन मलबा (टूटन) अपनी जगह मौजूद है। परंतु यदि इमारत क्रेता या किसी अजनबी के कृत्य से गिरी हो, तो मूल्य विभाजन 'बनी हुई इमारत' की कीमत पर होगा। और यदि वह स्वयं गिरी हो, तो मूल्य विभाजन 'गिरी हुई इमारत' (मलबे) की कीमत पर होगा, क्योंकि गिराने के कारण वह गिराने वाले की जिम्मेदारी (ज़मान) में आ जाती है, अतः उसकी कीमत उस अवस्था में मानी जाएगी जिस अवस्था में वह जिम्मेदारी में आई थी। स्वयं गिरने पर वह किसी की जिम्मेदारी में नहीं आती, अतः कीमत वर्तमान स्थिति के आधार पर होगी। उदाहरण के तौर पर, यदि ज़मीन की कीमत 500 दिरहम और इमारत की कीमत 500 दिरहम हो, फिर इमारत गिर जाए और मलबा मौजूद हो जिसकी कीमत अब 300 दिरहम है, तो ज़मीन की कीमत (500) और मलबे की कीमत (300) के आधार पर आठ हिस्से किए जाएंगे। शफ़ी ज़मीन को 5/8 हिस्से में ले लेगा। यदि इमारत जल गई या बाढ़ में बह गई और मलबा कुछ न बचा, तो शफ़ी पूरी ज़मीन को पूरे मूल्य में लेगा क्योंकि क्रेता के पास अब ऐसी कोई चीज़ नहीं बची जिसका मूल्य कम किया जा सके।

यदि क्रेता ने इमारत नहीं गिराई बल्कि ज़मीन के बिना उसे किसी को बेच दिया, फिर शफ़ी आया, तो शफ़ी को अधिकार है कि वह उस बिक्री को रद्द करके पूरी संपत्ति को पूरे मूल्य में ले ले, यह 'मुहीत' में है। यदि क्रेता ने इमारत गिरा दी, तो शफ़ी से कहा जाएगा कि यदि वह चाहे तो खाली ज़मीन को मूल्य के एक हिस्से के बदले ले ले या छोड़ दे। उसे मलबे को लेने का भी अधिकार होगा। यही हुक्म तब भी है जब किसी अजनबी ने इमारत गिराई हो, या वह स्वयं गिर गई हो और मलबा नष्ट न हुआ हो, क्योंकि शुफ़आ का अधिकार उससे समाप्त (साक़ित) हो गया है। [1]

---

1. अल-हमवी ने कहा: यह तब है जब खेती आधे की बटाई पर हो।
2. शब्द "उससे": यानी मलबे से, क्योंकि अब वह अचल संपत्ति नहीं रहा।

---

## باب دہم: شفیع کے حاضر ہونے سے پہلے دار مشفوعہ میں مشتری کے تصرف کرنے کے بیان میں

اگر مشتری نے زمین خرید کر وہ میں عمارت بنائی یا پیڑ لگائے یا کھیتی بوئی پھر شفیع حاضر ہوا تو اس کے نام شفعہ کی ڈگری کر دی جائے گی اور مشتری پر جبر کیا جائے گا کہ عمارت کو توڑ کر یا پودے اکھاڑ کر زمین خالی شفیع کے سپرد کرے لیکن اگر توڑنے واکھاڑنے میں زمین کے حق میں ضرر ہو تو شفیع کو اختیار ہوگا کہ چاہے تو زمین کو بعض ثمن کے لے کر عمارت و پودوں کو ٹوٹی ہوئی اور اکھڑے ہوئے کے حساب سے قیمت لگا کر لے لے یا چاہے تو مشتری کو اس کے منہدم کرنے کو اکھاڑ لینے پر مجبور کرے اور یہ حکم ظاہر الروایہ کے موافق ہے اور زراعت کی صورت میں اجماع ہے کہ اگر مشتری نے زمین میں زراعت کر لی پھر شفیع حاضر ہوا تو مشتری اس کے اکھاڑ لینے پر مجبور نہ کیا جائے گا بلکہ کھیتی پکنے تک انتظار کرے پھر اس کے نام شفعہ کی ڈگری کی جائے گی پس زمین کو پورے ثمن میں لے لے گا کذا فی البدائع پھر جب وہ زمین مشتری کے پاس چھوڑی گئی تو بلا اجرت چھوڑی جائے گی اور اس جنس کا ایک مسئلہ فتاویٰ ابو اللیث میں ہے اس کی صورت یہ ہے کہ ایک شخص نے ایک زمین مزارعت پر لی اور اس میں کھیتی بوئی پھر جب کھیتی ساگا ہوئی تو مزارع نے وہ زمین مع حصہ زراعت مالک زمین سے خریدی پھر شفیع آیا تو اس کو زمین اور آدھی کھیتی میں شفعہ ملے گا لیکن جب تک کھیتی تیار نہ ہو جائے تب تک زمین نہیں لے سکتا ہے یہ محیط میں ہے۔

جامع الفتاویٰ میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے زمین خرید کر اس میں کھیتی بوئی اور کھیتی سے زمین کو نقصان پہنچا پھر شفیع حاضر ہوا تو اس کا ثمن اس زمین کی ناقص حالت کی قیمت پر اور جس روز خریدی ہے اس روز کی قیمت پر تقسیم کیا جائے پس جس قدر ثمن قیمت ناقصہ کے پرتے میں پڑے اتنے کو لے لے یہ تاتارخانیہ میں ہے ایک شخص نے ایک دار خرید کر اس کو طرح طرح کے رنگ سے رنگا تو شفیع کو اختیار ہے چاہے اس دار کو لے کر جس قدر رنگ سے زیادتی ہوئی ہے دے دے یا ترک کر دے یہ قنیہ میں ہے۔

ایک شخص نے ایک دار خریدا اور اس کی عمارت منہدم کر دی یا کسی اجنبی نے منہدم کر دی یا خود منہدم ہو گئی پھر شفیع آیا تو اس کا ثمن بنی ہوئی عمارت کی قیمت اور زمین کی قیمت پر تقسیم کیا جائے سو جس قدر زمین کے پرتے میں آئے اتنے کو شفیع لے لے گا اور اس مسئلہ کے معنی یہ ہیں کہ عمارت منہدم ہے اور منقوض یعنی ٹوٹن بحالہ باقی ہو لیکن جب بفعل مشتری یا بفعل اجنبی منہدم ہو تو بنی ہوئی عمارت کی قیمت پر تقسیم ہوگا اور جب خود منہدم ہوئی ہو تو گری ہوئی عمارت کی قیمت پر تقسیم ہو گا اس لئے کہ گرا دینے کی وجہ سے گرانے والے کی ضمان میں داخل ہو گی پس اس کی قیمت اس وصف پر معتبر ہو گی جس وصف پر اس کے ضمان میں داخل ہے اور خود گر جانے سے کسی کی ضمان میں داخل نہیں پس اس کی قیمت اسی حالت پر اعتبار کی جائے گی جس پر وہ گری ہوئی موجود ہے حتیٰ کہ اگر زمین کی قیمت پانچ سو درہم اور عمارت کی قیمت پانچ سو درہم ہو پھر وہ عمارت گر گئی اور ٹوٹن باقی ہے اگر اب اس کی قیمت تین سو درہم ہے تو ثمن قیمت زمین پانچ سو درہم اور قیمت منقوض تین سو درہم پر آٹھ حصے ہو کر تقسیم ہو گا پس شفیع اس زمین کو پانچ آٹھویں حصے میں لے لے گا اور اگر عمارت جل گئی یا اس کو سیل بہا لے گئی اور ٹوٹن میں سے کچھ نہ رہا تو شفیع زمین کو پورے ثمن میں لے گا اس واسطے کہ مشتری کے پاس کوئی ایسی چیز نہیں رہ گئی جس کا کچھ ثمن ہو۔

اگر مشتری نے عمارت کو نہ گرایا بلکہ بدون زمین کے اس کو کسی کے ہاتھ فروخت کر دیا پھر شفیع حاضر ہوا تو اس کو اختیار ہو گا کہ بیع کو توڑ کر سب کو پورے ثمن میں لے لے یہ محیط میں ہے۔ اگر مشتری نے عمارت کو توڑ ڈالا تو شفیع سے کہا جائے گا کہ تیرا جی چاہے خالی زمین کو بعض ثمن کے لے لے یا چھوڑ دے اور اس کو یہ اختیار ہو گا کہ ٹوٹن کو لے لے اسی طرح اگر کسی اجنبی نے عمارت کو گرا دیا ہو تو بھی یہی حکم ہے اسی طرح اگر خود گر گئی ہو اور ٹوٹن ضائع نہ ہوا ہو تو بھی یہی حکم ہے اس لئے کہ حق شفعہ اس سے ساقط ہو ۱؎

---

۱؎ قال الحموی: یہ اس وقت ہے کہ کاشتکاری آدھے کی بٹائی پر ہو۔ ۲؎ قولہ اس سے: یعنی ٹوٹن سے کیونکہ وہ غیر منقول نہیں رہا۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 199 | Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...it is stated that while the essence remains, it is not permissible for it to be given to the buyer (Mushtari) for free. Similarly, if the buyer removes the door of the house and sells it, the value corresponding to its share shall be deducted from the pre-emptor's (Shafi's) liability. This is recorded in Siraj al-Wahaj.

If a person buys a house, half of which becomes submerged in water like a river such that the flow cannot be stopped, the pre-emptor has the option to take the remainder in exchange for its proportionate share of the price. If a person buys a house and gifts its building to someone, or sets it as dower (Mahr) for marriage with a woman, and the building is demolished, the pre-emptor will have no way to take the demolished structure, but he may take the land for its proportionate share of the price. If it is not demolished, he has the option to void the buyer's transaction and take the entire property for the full price. This is in al-Mabsut.

If land containing palm trees or other trees with fruit is purchased, and it is stipulated in the sale that the fruit belongs to the buyer, and then the pre-emptor arrives while the fruit is still on the trees, he has the option to take the entire purchase (land, trees, and fruit); this ruling is based on 'Istihsan' (juridistic preference). However, if the pre-emptor arrives after the seller, buyer, or a third party has harvested the fruit, there shall be no right of pre-emption (Shufa) regarding the fruit. But if he wishes, he may take the land and trees for their proportionate share of the price. To determine the share, the price will be distributed based on the value of the land, trees, and fruit on the day of the contract. After deducting the portion assigned to the fruit, the pre-emptor will be asked if he wishes to take the land and trees for the remaining price. If the pre-emptor takes both and the fruit remains with the seller, Imam Muhammad stated that the buyer is obligated to take the fruit and cannot return them. If the fruit exists but the buyer consumes them, sells them, or they are lost in his possession for any other reason, the share of the price allocated to the fruit shall be deducted from the pre-emptor's liability. If at the time of sale there was no fruit on the trees, but fruit appeared while in the seller's possession before the buyer took delivery, the pre-emptor has the option to take everything—land, trees, and fruit—together; he cannot choose to take some and leave others, and the full price will be mandatory upon him. If these fruits are harvested and are present with either the seller or buyer, the pre-emptor may take the land and trees for their proportionate price. If the fruit is lost without any human action, such as by fire or some calamity, and

nothing of value remains, the pre-emptor has the choice to take the property for the full price or abandon it. If the seller or buyer harvests the fruit and then they are lost without human intervention (e.g., flood or fire), Imam Abu Yusuf stated this is similar to the first case because the fruit had become the buyer's property and the right of pre-emption over them had ceased. If fruit appears while the trees are in the buyer's possession and the pre-emptor arrives while they are still on the trees, he has the option to take the land, trees, and fruit for the original sale price without any increase.

---

Footnote 1: The buyer's disposal (tasarruf), such as setting it as dower, will be voided and the woman will receive 'Mahr al-Mithl' (customary dower). 'Nakhl' means date palm trees, and 'Shajar' refers to all kinds of trees. Footnote 2: Share, because the seller or buyer has already compensated for it by taking damages from a third party.

...गया है जबकि वह वस्तु मौजूद है और यह जायज़ नहीं है कि मुश्तरी (क्रेता) को उसे मुफ़्त दे दिया जाए। इसी तरह यदि मुश्तरी ने घर का दरवाज़ा उखाड़कर बेच दिया, तो शफ़ी (प्री-एम्प्टर) के ज़िम्मे से उसके हिस्से के अनुपात में मूल्य कम हो जाएगा। यह सिराज-अल-वहाज में है।

यदि किसी व्यक्ति ने एक घर खरीदा जिसका आधा हिस्सा पानी में डूबकर दरिया जैसा हो गया और पानी का बहाव रोकना मुमकिन न रहा, तो शफ़ी को अधिकार है कि वह शेष भाग को उसकी आनुपातिक कीमत पर ले ले। यदि किसी व्यक्ति ने घर खरीदकर उसकी इमारत किसी को हिबा (दान) कर दी या उसे महर तय करके किसी महिला से निकाह कर लिया और वह इमारत ढह गई, तो शफ़ी के पास उस गिरी हुई इमारत को लेने का कोई रास्ता नहीं होगा, लेकिन वह ज़मीन को उसके आनुपातिक मूल्य पर ले सकता है। यदि इमारत नहीं ढही है, तो उसे अधिकार होगा कि मुश्तरी के अधिकार को रद्द करके पूरे घर को पूरी कीमत पर ले ले। यह मबसूत में वर्णित है।

यदि फलदार पेड़ों वाली ज़मीन खरीदी गई और शर्त रखी गई कि फल मुश्तरी के होंगे, और शफ़ी उस समय आया जब फल पेड़ों पर ही थे, तो उसे अधिकार होगा कि वह पूरी बिक्री (ज़मीन, पेड़ और फल) ले ले; यह नियम 'इस्तहसान' पर आधारित है। लेकिन यदि शफ़ी ऐसे समय आया जब विक्रेता, मुश्तरी या किसी अजनबी ने फल तोड़ लिए हों, तो फलों पर शुफ़ा (प्री-एम्पशन) का अधिकार नहीं होगा, लेकिन वह ज़मीन और पेड़ों को उनके आनुपातिक मूल्य पर ले सकता है। मूल्य के निर्धारण के लिए अनुबंध के दिन ज़मीन, पेड़ों और फलों की कीमतों के आधार पर अनुपात निकाला जाएगा। फलों का हिस्सा घटाकर शफ़ी से कहा जाएगा कि वह शेष मूल्य पर ज़मीन और पेड़ ले ले। यदि शफ़ी ने दोनों ले लिए और फल विक्रेता के पास रहे, तो इमाम मोहम्मद के अनुसार मुश्तरी के लिए वे फल लेना अनिवार्य होगा और वह उन्हें वापस नहीं कर सकेगा। यदि फल मुश्तरी के पास रहते हुए नष्ट हो जाएं तो शफ़ी के देय मूल्य से फलों का हिस्सा घटा दिया जाएगा। यदि बिक्री के समय पेड़ पर फल नहीं थे, लेकिन मुश्तरी के कब्ज़े से पहले विक्रेता के पास फल आ गए, तो शफ़ी को अधिकार है कि वह ज़मीन, पेड़ और फल सब ले ले; उसे कुछ हिस्सा लेने और कुछ छोड़ने का अधिकार नहीं होगा और पूरी कीमत चुकानी होगी। यदि फल तोड़ लिए गए और वे मौजूद हैं, तो शफ़ी ज़मीन और पेड़ उनकी आनुपातिक कीमत पर ले सकता है। यदि फल बिना किसी मानवीय हस्तक्षेप के नष्ट हो जाएं(जैसे आग या आपदा), तो शफ़ी को अधिकार है कि वह मबी (बिक्री वस्तु) को पूरी कीमत पर ले ले या उसे छोड़ दे। इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार, यदि मुश्तरी द्वारा फल तोड़ने के बाद वे किसी

प्राकृतिक आपदा से नष्ट हो जाएं तो भी यही नियम लागू होगा क्योंकि वे फल मुश्तरी की संपत्ति बन चुके थे और उन पर शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो गया था। यदि मुश्तरी के कब्ज़े के दौरान पेड़ों पर फल आए और शफ़ी उस समय आया जब फल पेड़ों पर लगे थे, तो उसे ज़मीन, पेड़ और फल उसी कीमत पर लेने का अधिकार होगा जिस पर बिक्री हुई थी, और मूल्य में कोई वृद्धि नहीं की जाएगी।

---

1. तसर्रुफ़ (अधिकार का प्रयोग): जैसे महर तय करना रद्द किया जाएगा और महिला 'महर-ए-मिस्ल' की हक़दार होगी। 'नख्ल' का अर्थ है खजूर का पेड़ और 'शजर' का अर्थ है हर तरह के पेड़।
2. हिस्सा: क्योंकि विक्रेता या मुश्तरी ने किसी अजनबी से हर्जाना लेकर उसकी भरपाई कर ली है।

...گیا ہے حالانکہ وہ اصل چیز باقی ہے اور یہ جائز نہیں ہے کہ مشتری (خریدار) کو اسے مفت دے دیا جائے، اسی طرح اگر مشتری نے گھر کا دروازہ اکھاڑ کر بیچ دیا ہو تو شفیع (حقِ شفعہ رکھنے والا) کے ذمے سے اس کے حصے کی قیمت کم ہو جائے گی۔ یہ سراج الوہاج میں مذکور ہے۔

اگر کسی نے ایک گھر خریدا جس کا آدھا حصہ پانی میں ڈوب کر دریا جیسا ہو گیا کہ پانی کا بہاؤ روکنا ممکن نہ رہا، تو شفیع کو اختیار ہے کہ باقی ماندہ حصہ اس کی متناسب قیمت پر لے لے۔ اگر کسی نے گھر خرید کر اس کی عمارت کسی کو ہبہ (تحفہ) کر دی یا مہر مقرر کر کے کسی عورت سے نکاح کیا اور وہ عمارت منہدم ہو گئی، تو شفیع اس گری ہوئی عمارت کو نہیں لے سکے گا، لیکن زمین کو اس کے حصے کی قیمت پر لے سکتا ہے۔ اگر عمارت سلامت ہو تو اسے اختیار ہے کہ مشتری کے تصرف کو باطل کر کے پورا گھر پوری قیمت پر لے لے، یہ مبسوط میں درج ہے۔

اگر پھل دار درختوں والی زمین خریدی جائے اور معاہدہ ہو کہ پھل مشتری کے ہوں گے، اور شفیع اس وقت آئے جب پھل ابھی درختوں پر ہوں، تو اسے اختیار ہے کہ سب کچھ (زمین، درخت اور پھل) خرید لے؛ یہ حکم 'استحسان' پر مبنی ہے۔ لیکن اگر شفیع تب آئے جب بائع، مشتری یا کسی اور نے پھل توڑ لیے ہوں، تو پھلوں پر حقِ شفعہ نہیں ہوگا، مگر وہ زمین اور درختوں کو ان کی متناسب قیمت پر لے سکتا ہے۔ قیمت کی تقسیم کے لیے دیکھا جائے گا کہ سودے کے وقت زمین، درخت اور پھلوں کی الگ الگ کیا قیمت تھی، پھر پھلوں کی قیمت منہا کر کے شفیع سے کہا جائے گا کہ وہ بقیہ قیمت پر زمین اور درخت لے لے۔ اگر شفیع نے زمین و درخت لے لیے اور پھل بائع کے پاس رہے تو امام محمدؒ کے مطابق مشتری ان پھلوں کو لینے کا پابند ہوگا اور واپس نہیں کر

سکے گا۔ اگر پھل مشتری کے پاس ضائع ہو جائیں تو شفیع کی ادا کردہ قیمت میں سے ان کا حصہ کم ہو جائے گا۔ اگر سودے کے وقت پھل نہ تھے مگر مشتری کے قبضے سے پہلے بائع کے پاس پھل آ گئے، تو شفیع کو اختیار ہے کہ سب لے لے، مگر وہ کچھ حصہ لینے اور کچھ چھوڑنے کا مجاز نہیں ہوگا اور اسے پوری قیمت ادا کرنی ہوگی۔ اگر پھل کسی نے توڑ لیے اور وہ موجود ہیں، تو شفیع زمین و درخت ان کی قیمت پر لے سکتا ہے۔ اگر پھل قدرتی آفت (مثلاً آگ یا سیلاب) سے ضائع ہو جائیں تو شفیع کو اختیار ہے کہ پوری قیمت پر زمین و درخت لے لے یا چھوڑ دے۔ امام ابو یوسفؒ کے مطابق اگر مشتری کے پھل توڑنے کے بعد وہ قدرتی آفت سے ضائع ہو جائیں، تب بھی یہی حکم ہے کیونکہ وہ پھل مشتری کی ملکیت بن چکے تھے اور ان پر شفعہ ختم ہو چکا تھا۔ اگر مشتری کے قبضے میں درختوں پر پھل آئے اور شفیع اس وقت آئے جب پھل درختوں پر لگے ہوں، تو وہ اصل قیمت پر زمین، درخت اور پھل سب لے سکتا ہے اور قیمت میں کوئی اضافہ نہیں کیا جائے گا۔

---

حاشیہ ۱: مشتری کے تصرف مثلاً مہر مقرر کرنے کو باطل کیا جائے گا اور عورت مہرِ مثل کی حقدار ہوگی۔ نخل کا مطلب کھجور کا درخت ہے اور شجر سے مراد ہر طرح کے درخت ہیں۔

حاشیہ ۲: قیمت کا وہ حصہ جس کا بائع یا مشتری نے کسی تیسرے شخص سے ہرجانہ لے کر تلافی کر لی ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 200 Book of Pre-emption (Kitab ash-Shuf'ah)**

...were, then the buyer consumed them or sold them and they were lost from his possession, then the pre-emptor (Shafee) will have the choice to take the land and trees for the full price, and there will be no recourse (claim) towards the fruits for him. This is stated in *Siraj-ul-Wahaj*.

If in the purchased property, the buyer acted in such a way before the pre-emptor took it, that he gave it as a gift (Hiba) or charity (Sadqa) and handed it over, or gave it on rent, or declared it a mosque and prayers were held in it, or fully endowed it (Waqf), or made it a graveyard and a dead person was buried in it, then the pre-emptor will have the choice to take it and annul the buyer's action (disposal). This is found in Qazi Khan's commentary on *Jami-us-Saghir*. It should be known that the buyer's disposal in the pre-empted property remains valid until an order of pre-emption (Shuf'ah) is issued for the pre-emptor. The buyer has the right to sell it or rent it out, and the price and rent will be lawful (Halal) for him. He also has the choice to demolish the building of the pre-empted property or perform similar actions. However, the pre-emptor will have the right to annul all his actions except for possession, or whatever completes possession. Do you not see that if the pre-emptor wanted to terminate the buyer's possession of the pre-empted property with the intent that this property returns to the seller's possession so that the pre-emptor takes it from him, the pre-emptor cannot do so; as mentioned in *Al-Dhakhira*. If the buyer purchased an undivided half of the property, the pre-emptor will take that portion of the buyer which remains after division, and the pre-emptor will not have the right to annul this division (1), whether this division was by the Qazi's decree or by mutual agreement of the parties. Contrary to this, if one of two partners sold his share from the joint property and the buyer divided the share with the other partner, then the pre-emptor will have the choice to annul this division because the one who performed the partitioning (Muqasma), no contract of sale occurred from his side, so this division would not be a completion of possession. Furthermore, in a case where the pre-emptor does not have the right to annul the buyer's division, whatever falls in the buyer's share from any side, the pre-emptor will receive that same side; this is narrated from Imam Abu Yusuf (R.A.), and the general wording of the book points to this; this is in *Tabyeen*. Two persons bought a property and they both were also pre-emptors of that property, and besides them, there is a third person who is also its pre-emptor. Then both divided it among themselves. Then the third person came; he will have the choice to break their division, whether they divided it by the Qazi's

decree or by mutual agreement; this is written in *Dhakhira*. A person bought land for one hundred Dirhams, removed soil from it, and sold that soil for one hundred Dirhams. Then the pre-emptor came and demanded pre-emption. So Sheikh Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fazl (R.A.) said that the pre-emptor will take this land for half the price, i.e., fifty Dirhams. The price will be divided based on the value of the land before removing the soil and the value of the soil that was removed. Then, the portion of the price corresponding to the value of the soil will be deducted from the pre-emptor's liability. However, Qazi Sheikh Ali Saghdi (R.A.) stated that half the price and the share of the soil will not be deducted from the pre-emptor's liability. Then if after removing the soil and before the pre-emptor appeared, the buyer filled up that land and restored it to its original state, and then the pre-emptor came, Sheikh Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fazl (R.A.) said that the buyer will be ordered to remove everything he filled; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If a person sold his half of a property to someone who is not a pre-emptor and partitioned his share by the Qazi's decree, then the pre-emptor came and the situation is such that the seller's share is located between the buyer's share and the pre-emptor's house, then the pre-emptor's right of pre-emption will not become void. Then if after division, the seller sold his share before the pre-emptor demanded his first pre-emption, and then the pre-emptor demanded pre-emption, it will be seen that if the Qazi ordered for the latter pre-emption first, he will divide its pre-emption equally between the pre-emptor and the buyer because the buyer also became a neighbor (Jar) to the seller's share like the pre-emptor, so both became equal in being neighbors. And if the Qazi ordered for the first pre-emption first, he will also order the second pre-emption in the name of the pre-emptor...

---

1 *Taraazi* means by mutual consent of both parties or that the Qazi had the partition done through his trustee (*Amin*). (1) Because division completes the possession.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (८) २०० किताबुश शुफ़ा (शुफ़ा का बयान)**

...थे, फिर ख़रीददार ने उन्हें खाकर या बेचकर अपने पास से नष्ट कर दिया, तो शुफ़ा करने वाले (शफ़ी) को अधिकार होगा कि चाहे तो ज़मीन और पेड़ों को पूरी क़ीमत पर ले ले और उसे फलों की तरफ़ कोई रास्ता (दावा) न होगा। यह 'सिराज-उल-वहाज' में है।

यदि ख़रीदे गए मकान में ख़रीददार ने शफ़ी के लेने से पहले इस तरह का व्यवहार (तसर्रुफ़) किया कि उसे उपहार (हिबा) या दान (सदक़ा) करके सौंप दिया, या किराए पर दे दिया, या उसे मस्जिद घोषित कर दिया और उसमें नमाज़ पढ़ी गई, या पूरी तरह से उसे वक़्फ़ कर दिया, या उसे क़ब्रिस्तान बना दिया और उसमें मुर्दा दफ़्न किया गया, तो शफ़ी को अधिकार होगा कि वह उसे ले ले और ख़रीददार के व्यवहार (तसर्रुफ़) को रद्द कर दे। यह 'क़ाज़ी ख़ाँ' की 'जामे सगीर' की व्याख्या में है। और जानना चाहिए कि शुफ़ा वाले घर में ख़रीददार का व्यवहार तब तक सही रहेगा जब तक शफ़ी के लिए शुफ़ा का आदेश न हो जाए। ख़रीददार को अधिकार है कि उसे बेचे या किराए पर दे दे और उसकी क़ीमत और किराया उसके लिए वैध (हलाल) होगा। उसे यह भी अधिकार है कि शुफ़ा वाले घर की इमारत गिरा दे या उसके जैसा कोई और व्यवहार करे, लेकिन शफ़ी को अधिकार होगा कि वह उसके सभी व्यवहारों को रद्द कर दे, सिवाय क़ब्ज़े के या उस बात के जो क़ब्ज़े को पूरा करती है। क्या तुम नहीं देखते कि यदि शफ़ी चाहे कि ख़रीदे गए घर से ख़रीददार का क़ब्ज़ा इस उद्देश्य से हटा दे कि यह घर फिर से अपने विक्रेता (ब़ायअ) के क़ब्ज़े में चला जाए और शफ़ी उससे ले ले, तो शफ़ी ऐसा नहीं कर सकता; जैसा कि 'अज़-ज़ख़ीरा' में है। यदि ख़रीददार ने एक अविभाजित आधे घर को ख़रीदा, तो शफ़ी ख़रीददार का वह हिस्सा ले लेगा जो बँटवारे के बाद उसे प्राप्त होगा, और शफ़ी को यह अधिकार नहीं होगा कि वह इस बँटवारे को रद्द करे(१), चाहे यह बँटवारा क़ाज़ी की ओर से हो या दोनों पक्षों की आपसी सहमति (तराज़ी) से। इसके विपरीत, यदि दो साझेदारों में से एक ने साझा घर में से अपना हिस्सा बेचा और ख़रीददार ने दूसरे साझेदार के साथ हिस्सा बाँट लिया, तो शफ़ी को इस बँटवारे को रद्द करने का अधिकार होगा क्योंकि जिसने बँटवारा (मुक़ासमा) किया है उसकी ओर से बिक्री का अनुबंध (अक़्द-ए-बैअ) नहीं हुआ था, इसलिए यह बँटवारा क़ब्ज़े को पूरा करने वाला नहीं होगा। फिर जिस स्थिति में शफ़ी को ख़रीददार का बँटवारा रद्द करने का अधिकार न हो, तो ख़रीददार के हिस्से में जो तरफ़ आए, वही शफ़ी को मिलेगी; यही इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से वर्णित है और किताब का सामान्य अर्थ भी इसी पर आधारित है; यह 'तबीन' में है। दो व्यक्तियों ने एक घर ख़रीदा और वे दोनों उस घर के शफ़ी भी थे, और उनके अलावा एक तीसरा व्यक्ति भी

उसका शफ़ी है। फिर उन दोनों ने इसे आपस में बाँट लिया। फिर तीसरा व्यक्ति आया, तो उसे अधिकार होगा कि उन दोनों के बँटवारे को रद्द कर दे, चाहे दोनों ने क़ाज़ी के आदेश से बँटवारा किया हो या आपसी सहमति से बाँटा हो; यह 'ज़ख़ीरा' में लिखा है। एक व्यक्ति ने एक ज़मीन सौ दिरहम में ख़रीदी और उसमें से मिट्टी निकालकर सौ दिरहम में बेच दी। फिर शफ़ी आया और उसने शुफ़ा की माँग की। तो शेख़ इमाम अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़्ल (रह.) ने फ़रमाया कि शफ़ी उस ज़मीन को आधी क़ीमत यानी पचास दिरहम में ले लेगा, और क़ीमत उस ज़मीन की मिट्टी हटाने से पहले के मूल्य और हटाई गई मिट्टी के मूल्य के आधार पर विभाजित की जाएगी। फिर शफ़ी के ज़िम्मे से उतनी राशि कम कर दी जाएगी जितनी मिट्टी की क़ीमत के अनुपात में होगी। और क़ाज़ी शेख़ अली सुग़दी (रह.) ने फ़रमाया कि शफ़ी के ज़िम्मे से आधी क़ीमत और मिट्टी का हिस्सा कम नहीं किया जाएगा। फिर यदि मिट्टी निकालने के बाद और शफ़ी के आने से पहले ख़रीददार ने उस ज़मीन को भरकर वैसा ही कर दिया, फिर शफ़ी आया, तो शेख़ इमाम अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़्ल (रह.) ने फ़रमाया कि ख़रीददार को आदेश दिया जाएगा कि जो कुछ तूने भरा है उसे हटा दे; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ाँ' में है। यदि एक व्यक्ति ने अपना आधा घर ऐसे व्यक्ति के हाथ बेचा जो शफ़ी नहीं है और क़ाज़ी के आदेश से अपना हिस्सा बाँट लिया, फिर शफ़ी आया और स्थिति यह है कि ख़रीददार के हिस्से और शफ़ी के घर के बीच विक्रेता का हिस्सा पड़ता है, तो इससे शफ़ी का शुफ़ा का अधिकार समाप्त नहीं होगा। फिर यदि बँटवारे के बाद विक्रेता ने अपना हिस्सा शफ़ी के पहले शुफ़ा की माँग करने से पहले बेच दिया, फिर शफ़ी ने शुफ़ा माँगा, तो देखा जाएगा कि यदि क़ाज़ी ने पहले बाद वाले शुफ़ा का आदेश दिया, तो वह उस शुफ़ा को शफ़ी और ख़रीददार के बीच बराबर आधा-आधा कर देगा, क्योंकि ख़रीददार भी शफ़ी की तरह विक्रेता के हिस्से का पड़ोसी (जार) हो गया है, इसलिए पड़ोसी होने में दोनों बराबर ठहरे। और यदि क़ाज़ी ने पहले पहले वाले शुफ़ा का आदेश दिया, तो शफ़ी के नाम दूसरे शुफ़ा का भी आदेश देगा...

---

१ तराज़ी यानी दोनों की आपसी सहमति से हो या क़ाज़ी ने अपने अमीन (विश्वसनीय व्यक्ति) से बँटवारा करवा दिया हो। (१) क्योंकि बँटवारा क़ब्ज़े को पूरा करता है।

---

...تھے پھر مشتری نے ان کو کھا کر یا فروخت کر کے اپنے پاس سے تلف کر دیا تو شفیع کو اختیار ہوگا کہ چاہے زمین و درخت کو پورے ثمن میں لے لے اور اس کو پھلوں کی طرف کوئی راہ نہ ہو گی۔ یہ سراج الوہاج میں ہے۔

اگر دار خرید کردہ میں مشتری نے شفیع کے لینے سے پہلے اس طرح تصرف کیا کہ اس کو ہبہ یا صدقہ کر کے سپرد کر دیا یا کرایہ پر دے دیا یا اس کو مسجد قرار دیا اور اس میں نماز پڑھی گئی یا پوری طرح سے اس کو وقف کر دیا یا اس کو مقبرہ کر دیا اور اس میں مردہ دفن کیا گیا تو شفیع کو اختیار ہوگا کہ اس کو لے لے اور مشتری کا تصرف توڑ دے یہ قاضی خاں کی شرح جامع صغیر میں ہے اور جاننا چاہئے کہ دار مشفوعہ میں مشتری کا تصرف اس وقت تک صحیح رہے گا جب تک شفیع کے واسطے شفعہ کا حکم نہ ہو اور مشتری کو اختیار ہے کہ اس کو فروخت کرے یا کرایہ پر دے دے اور ثمن و کرایہ اس کو حلال ہو گا اور اس کو یہ بھی اختیار ہے کہ دار مشفوعہ کی عمارت گرا دے یا اس کے مثل کوئی تصرف کرے لیکن شفیع کو استحقاق حاصل ہو گا کہ اس کے سب تصرفات توڑ دے سوائے قبضہ کے یا جو امر قبضہ کو پورا کرتا ہے آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ اگر شفیع نے چاہا کہ دار مشفوعہ سے مشتری کا قبضہ اس غرض سے توڑ دے کہ یہ دار پھر اپنے بائع کے قبضہ میں چلا جائے اور شفیع اس سے لے لے تو شفیع ایسا نہیں کر سکتا ہے کذا فی الذخیرہ۔ اگر مشتری نے نصف دار غیر منقسم خریدا تو شفیع اس قدر حصہ مشتری جو بعد قسمت کے اس کو حاصل ہو گا لے لے گا اور شفیع کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اس تقسیم کو توڑ دے (۱) خواہ یہ تقسیم قاضی کی طرف سے ہو یا تراضی طرفین ہو بخلاف اس کے دو شریکوں میں سے ایک شریک نے دار مشترکہ میں سے اپنا حصہ فروخت کیا اور مشتری نے دوسرے

شریک کے ساتھ حصہ بانٹ کر لیا تو شفیع کو اس تقسیم کے توڑ دینے کا اختیار ہوگا کیونکہ جس نے مقاسمہ کر لیا ہے اس کی طرف سے عقد بیع واقع نہیں ہوا تھا تو یہ تقسیم متمم قبضہ نہ ہو گی۔ پھر جس صورت میں کہ شفیع کو تقسیم مشتری توڑ دینے کا اختیار نہ ہو تو جس جانب سے مشتری کے حصہ میں پڑے وہی شفیع کو ملے گا اور یہی امام ابویوسفؒ سے مروی ہے اور اطلاق کتاب اسی پر دال ہے یہ تبیین میں ہے۔ دو شخصوں نے ایک دار خریدا اور وہ دونوں اس دار کے شفیع بھی تھے اور سوائے ان دونوں کے ایک تیسرا شخص بھی اس کا شفیع ہے پھر دونوں نے اس کو باہم تقسیم کر لیا پھر تیسرا شخص آیا تو اس کو اختیار ہوگا کہ ان دونوں کی تقسیم کو توڑ دے خواہ دونوں نے بقضاء قاضی تقسیم کر لیا ہو یا باہمی رضامندی سے بانٹ لیا ہو یہ ذخیرہ میں لکھا ہے۔ ایک شخص نے ایک زمین سو درہم کو خریدی اور اس میں سے مٹی نکال کر سو درہم کو فروخت کر لی پھر شفیع آیا اور اس نے شفعہ طلب کیا تو شیخ امام ابوبکر محمد بن الفضلؒ نے فرمایا کہ شفیع اس زمین کو نصف ثمن یعنی پچاس درہم میں لے لے گا اور ثمن اس زمین کی اس قیمت پر جو مٹی دور کرنے سے پہلے تھی اور اس مٹی کی قیمت پر جو دور کی گئی ہے تقسیم کیا جائے گا پھر شفیع کے ذمہ سے جس قدر مٹی کی قیمت پر تنے میں پڑے ساقط کیا جائے گا اور قاضی شیخ علی سغدیؒ نے فرمایا کہ شفیع کے ذمہ سے نصف ثمن اور مٹی کا حصہ ساقط نہ کیا جائے گا۔ پھر اگر مٹی نکلوانے کے بعد شفیع کے حاضر ہونے سے پہلے مشتری نے اس زمین کو پاٹ کر ویسی ہی کر دی پھر شفیع آیا تو شیخ امام ابوبکر محمد بن الفضلؒ نے فرمایا کہ مشتری کو حکم دیا جائے گا کہ جو کچھ تو نے پاٹا ہے سب دور کر دے یہ فتاویٰ قاضی خاں میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنا نصف دار دوسرے کے ہاتھ جو شفیع نہیں ہے فروخت کر کے بقضاء قاضی اس کا حصہ بانٹ کر دیا پھر شفیع آیا اور حال یہ ہے کہ حصہ مشتری اور دار شفیع کے درمیان بائع کا حصہ واقع ہے تو اس سے شفیع کا حق شفعہ باطل نہ ہو جائے گا پھر اگر تقسیم کے بعد بائع نے اپنا حصہ

شفیع کے شفعہ اولیٰ طلب کرنے سے پہلے فروخت کیا پھر شفیع نے شفعہ طلب کیا تو دیکھا جائے گا کہ اگر قاضی نے پہلے شفعہ اخیر کے واسطے حکم دیا تو اس کا شفعہ شفیع و مشتری کے درمیان برابر نصفا نصف کر دے گا اس واسطے کہ مشتری بھی مثل شفیع کے حصہ بائع کا جار ہو گیا ہے تو جار ہونے میں دونوں برابر ٹھہرے اور اگر قاضی نے پہلے شفعہ اولیٰ کا حکم دیا تو شفیع کے نام دوسرے شفعہ کا بھی حکم دے گا اس

---

۱ تراضی یعنی دونوں کی باہمی رضامندی سے ہو یا قاضی نے اپنے امین سے بٹوارہ کرا دیا۔ (۱) کیونکہ تقسیم قبضہ کو پورا کرتی ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 201 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...because in this situation, no ownership of the purchaser remains; this is stated in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. It is mentioned in *Al-Muntaqa* that it was said: If a person bought a house for one thousand dirhams and then sold it for two thousand dirhams. Subsequently, the pre-emptor (*shafi*) became aware of the second sale but was unaware of the first, and through litigation, he exercised his right of pre-emption on the second sale, either by the judge's order or without it. Later, when he learned of the first sale, he shall not have the option to revoke his acquisition, and his right of pre-emption regarding the first sale becomes void. Similarly, if the owner sold it for a thousand dirhams, and then the seller and the purchaser mutually rescinded the sale, and the purchaser returned the house to the seller, and then the pre-emptor bought it from the seller for two thousand dirhams without knowing about the first sale, and then learned of it, he shall not have the option to revoke his purchase; this is in *Al-Muhit*. If the purchaser bought it for a thousand dirhams, rescinded the sale with the seller, and then bought it again from the seller for two thousand dirhams, and then the pre-emptor took it through pre-emption for two thousand dirhams without knowing of the first sale, and later found out, he shall not have the option to revoke his acquisition, whether it was taken by the judge's order or without it; this is in *Al-Bada'i*. If the purchaser bought a house for one thousand dirhams and then increased the price (*saman*) by another thousand dirhams, so the pre-emptor was informed of the price being two thousand dirhams and was unaware of the original one thousand; if the pre-emptor took it by the judge's order by paying two thousand dirhams, the increase is void, and only one thousand dirhams shall be obligatory upon the pre-emptor. However, if he took it by mutual consent, such an acquisition will be considered a new purchase, and his right of pre-emption will no longer remain; this is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

If a purchaser bought a house and, at the time of his death, bequeathed it to someone, the pre-emptor shall have the option to revoke the bequest and take the property from the heirs of the purchaser through pre-emption, and the liability (*uhda*) shall rest upon the heirs. This is in *Tatar-Khaniyya*. If a village was purchased containing houses and date palms, and then the purchaser sold the houses and trees, and the second purchaser cut down some trees and demolished some houses; when the pre-emptor arrives, he can take the land, the uncut trees, and the non-demolished houses. He shall not have the option to take the cut trees. The portion of the price corresponding to the cut trees and demolished houses shall be waived from

the pre-emptor's liability; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If a person bought a house, demolished its structure, and then built a more beneficial structure, the pre-emptor can still take such property through pre-emption. According to us, its price shall be apportioned between the value of the land and the value of the building that existed on the day of the original purchase. The portion of the price for the building shall be waived from the pre-emptor because the purchaser himself demolished it. Subsequently, the purchaser shall dismantle the structure he built; this is in *Al-Mabsut*.

**Chapter Nine: Regarding matters by which the right of pre-emption is invalidated after being established, and matters by which it is not invalidated.**

Let it be clear that the matters by which the right of pre-emption is invalidated after being established are of two types: voluntary (*ikhtiyari*) and necessary (*zaroori*). Voluntary invalidation is of two types: explicit (*sarih*) or what stands in place of the explicit, and implied (*dalalat*). An example of explicit invalidation is when the pre-emptor says, "I have waived my right of pre-emption" or "I have validated this sale."

---

1. *Uhda* (Liability): Meaning whatever dispute arises, the heirs are responsible for answering it or for the price because they had become the owners.
2. He shall dismantle: In the event that the pre-emptor does not agree to take it by paying the cost. (1) It is waived by implication.

क्योंकि इस स्थिति में क्रेता (खरीदार) का कोई स्वामित्व शेष नहीं रहा, यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। 'मुन्तक़ा' में उल्लेख है कि फ़रमाया गया: यदि किसी व्यक्ति ने एक घर एक हज़ार दिरहम में खरीदा, फिर उसे दो हज़ार दिरहम के बदले बेच दिया। इसके बाद पूर्वाधिकारी (शफ़ी) को दूसरी बिक्री की जानकारी हुई लेकिन पहली की नहीं, और उसने मुक़दमेबाज़ी करके अपने पूर्वाधिकार (शुफ़ा) के तहत दूसरी बिक्री पर न्यायाधीश (हाकिम) के आदेश से या उसके बिना कब्ज़ा कर लिया। बाद में उसे पहली बिक्री का पता चला, तो उसे अपनी प्राप्ति को रद्द करने का अधिकार नहीं होगा और पहली बिक्री में उसका पूर्वाधिकार का अधिकार शून्य (बातिल) हो गया। इसी प्रकार यदि उसके स्वामी ने उसे हज़ार दिरहम में बेचा, फिर विक्रेता और क्रेता ने आपस में बिक्री को रद्द (मुनाक़ज़ा) कर लिया और क्रेता ने वह घर विक्रेता को वापस कर दिया, फिर पूर्वाधिकारी ने विक्रेता से दो हज़ार दिरहम में उसे खरीद लिया और उसे पहली बिक्री की जानकारी नहीं थी, फिर पता चला, तो उसे अपनी खरीद को रद्द करने का अधिकार नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है। यदि क्रेता ने हज़ार दिरहम में खरीदकर विक्रेता के साथ बिक्री रद्द कर दी, फिर विक्रेता से दो हज़ार दिरहम में खरीदा, फिर पूर्वाधिकारी ने दो हज़ार दिरहम के बदले पूर्वाधिकार के तहत उसे ले लिया और उसे पहली बिक्री का ज्ञान नहीं था, फिर ज्ञान हुआ, तो उसे अपनी प्राप्ति रद्द करने का अधिकार नहीं होगा, चाहे न्यायाधीश के आदेश से लिया हो या बिना आदेश के, यह 'बदाई' में है। यदि क्रेता ने एक हज़ार दिरहम में घर खरीदा और फिर मूल्य (समन) में एक हज़ार दिरहम और बढ़ा दिए, जिससे पूर्वाधिकारी को मूल्य दो हज़ार दिरहम ज्ञात हुआ और एक हज़ार दिरहम की जानकारी नहीं हुई, तो यदि पूर्वाधिकारी ने न्यायाधीश के आदेश से दो हज़ार दिरहम देकर उसे लिया है, तो वृद्धि शून्य होगी और पूर्वाधिकारी पर केवल एक हज़ार दिरहम अनिवार्य होंगे। और यदि आपसी सहमति से लिया, तो ऐसा लेना नए सिरे से खरीदने के समान माना जाएगा, अतः उसका पूर्वाधिकार का अधिकार शेष नहीं रहेगा, यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है।

यदि क्रेता ने घर खरीदकर अपनी मृत्यु के समय किसी व्यक्ति के लिए उसे देने की वसीयत कर दी, तो पूर्वाधिकारी को अधिकार होगा कि वह वसीयत को रद्द करके क्रेता के वारिसों से पूर्वाधिकार के तहत उसे ले ले, और इसका उत्तरदायित्व (ओहदा) वारिसों पर होगा। यह 'ततारख़ानिया' में है। यदि एक गाँव खरीदा गया जिसमें घर और खजूर के पेड़ थे, फिर क्रेता ने घरों और पेड़ों को बेच दिया। इसके बाद दूसरे क्रेता ने कुछ पेड़ काट दिए और कुछ घर गिरा दिए। फिर पूर्वाधिकारी आया, तो

उसे ज़मीन, बिना कटे पेड़ और बिना गिराए गए घर मिल सकते हैं, और उसे कटे हुए पेड़ लेने का अधिकार नहीं होगा। पूर्वाधिकारी के ज़िम्मे से कटे पेड़ों और गिराए गए घरों के हिस्से का मूल्य कम (साक़ित) कर दिया जाएगा, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि किसी व्यक्ति ने एक घर खरीदा और उसकी इमारत गिराकर उससे बेहतर इमारत बनाई, तो पूर्वाधिकारी ऐसे घर को पूर्वाधिकार में ले सकता है। हमारे निकट इसका मूल्य ज़मीन की क़ीमत और उस इमारत की क़ीमत पर विभाजित किया जाएगा जो खरीद के दिन मौजूद थी। पूर्वाधिकारी के ज़िम्मे से इमारत के हिस्से का मूल्य हटा दिया जाएगा क्योंकि क्रेता ने स्वयं इमारत गिराई थी। फिर क्रेता अपनी बनाई हुई इमारत को हटा (तोड़) लेगा, यह 'मबसूत' में है।

## अध्याय नौ: उन मामलों के वर्णन में जिनसे पूर्वाधिकार (शुफ़ा) का अधिकार सिद्ध होने के बाद शून्य हो जाता है और जिनसे शून्य नहीं होता है।

स्पष्ट हो कि जिन मामलों से पूर्वाधिकार का अधिकार सिद्ध होने के बाद शून्य हो जाता है, वे दो प्रकार के हैं: एक ऐच्छिक (इख़्तियारी) और दूसरा अनिवार्य (ज़रूरी)। फिर ऐच्छिक के दो प्रकार हैं: एक स्पष्ट (सरीह) या जो स्पष्ट के समान हो, और दूसरा संकेत (दलालत) द्वारा। स्पष्ट का उदाहरण यह है कि पूर्वाधिकारी कहे, "मैंने अपना पूर्वाधिकार छोड़ दिया" या "मैंने इस बिक्री को मान्य किया"।

---

1. ओहदा: अर्थात् जो भी विवाद उत्पन्न हो, वारिस उसके उत्तरदायी होंगे या मूल्य के ज़िम्मेदार होंगे क्योंकि वे मालिक बन चुके थे।
2. तोड़ लेगा: जब पूर्वाधिकारी लागत देकर उसे लेने को तैयार न हो। (1) संकेत द्वारा समाप्त हो।

لئے کہ اس صورت میں کوئی ملک مشتری کی باقی نہیں رہی یہ محیط سرخسی میں ہے۔ منتقٰی میں مذکور ہے کہ فرمایا کہ اگر کسی شخص نے ایک دار ایک ہزار درہم میں خریدا پھر اس کو دو ہزار درہم کے عوض فروخت کیا پھر شفیع دوسری بیع سے آگاہ ہوا پہلی بیع سے آگاہ نہ ہوا اور اس نے خصومت کر کے بیدار اپنے حق شفعہ میں دوسری بیع پر بحکم حاکم یا بغیر حکم حاکم لے لیا پھر اس کو پہلی بیع کا حال معلوم ہوا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اپنے لینے کو توڑ دے اور بیع اول میں اس کا حق شفعہ باطل ہو گیا اسی طرح اگر اس کے مالک نے اس کو ہزار درہم کے عوض فروخت کیا پھر بائع و مشتری نے باہم بیع کا مناقضہ کر لیا اور مشتری نے وہ دار بائع کو واپس دے دیا پھر شفیع نے بائع سے دو ہزار درہم کو خریدا اور اس کو پہلی بیع کا حال معلوم نہ ہوا پھر معلوم ہوا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اپنی خرید کو توڑ دے یہ محیط میں ہے۔ اگر مشتری نے ہزار درہم کے عوض خرید کر بائع سے بیع کا مناقضہ کر لیا پھر بائع سے دو ہزار درہم کے عوض خریدا پھر شفیع نے بعوض دو ہزار درہم کے شفعہ میں لیا اور اس کو پہلی بیع کا حال معلوم نہ ہوا پھر معلوم ہوا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اپنے لینے کو توڑ دے خواہ بحکم قاضی لیا ہو یا بغیر حکم قاضی لیا ہو یہ بدائع میں ہے۔ اگر مشتری نے ایک ہزار درہم کو دار خریدا پھر ثمن میں ایک ہزار درہم بڑھا دیے پس شفیع کو دو ہزار درہم مقدار ثمن معلوم ہوئی اور ایک ہزار درہم معلوم نہ ہوئی پس اگر شفیع نے بحکم قاضی دو ہزار درہم دے کر لیا ہے تو زیادتی باطل ہو گی اور شفیع پر فقط ایک ہزار درہم واجب ہوں گے اور اگر باہمی رضامندی سے لیا تو ایسا لینا بمنزلہ از سر نو خریدنے کے قرار دیا جائے گا پس اس کا حق شفعہ باقی نہ رہے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر مشتری نے دار خرید کر کے اپنے مرتے وقت کسی شخص کے واسطے اس کے دینے کی وصیت کر دی تو شفیع کو اختیار ہوگا کہ وصیت کو توڑ کر مشتری کے وارثوں سے حق شفعہ میں لے لے اور اس کا عہدہ وارثوں پر ہوگا۔ یہ تتارخانیہ میں ہے۔ اگر ایک گاؤں خریدا اور اس میں گھر اور درخت و خرما کے درخت ہیں پھر مشتری نے گھروں اور درختوں کو فروخت کر دیا پھر دوسرے مشتری نے بعضے درخت کاٹے اور بعضے گھر منہدم کر دیے پھر شفیع آیا تو شفیع کو زمین اور بغیر کٹے ہوئے درخت اور بغیر ڈھائے ہوئے گھر مل سکتے ہیں اور اس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ کٹے ہوئے درخت لے لے اور شفیع کے ذمہ سے کٹے ہوئے درختوں اور ڈھائے ہوئے گھروں کا حصہ ثمن ساقط ہو جائے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر ایک شخص نے ایک دار خرید کر اس کی عمارت گرا کر پھر اس عمارت سے زیادہ نافع عمارت بنائی تو شفیع ایسے دار کو شفعہ میں لے سکتا ہے اور ہمارے نزدیک اس کا ثمن زمین کی قیمت اور اس عمارت کی قیمت پر جو دار مذکور میں خرید کے روز موجود تھی تقسیم کیا جائے گا شفیع کے ذمہ سے عمارت کا حصہ ثمن ساقط کیا جائے گا اس واسطے کہ عمارت کو مشتری نے خود گرایا ہے پھر مشتری اپنی ساختہ عمارت کو توڑ لے گا یہ مبسوط میں ہے۔

**باب نہم : اُن اُمور کے بیان میں جن سے حق شفعہ بعد ثابت کرنے کے باطل ہو جاتا ہے اور جس سے باطل نہیں ہوتا ہے**

واضح ہو کہ جن اُمور سے حق شفعہ بعد ثابت ہونے کے باطل ہو جاتا ہے اُن کی دو قسمیں ہیں ایک اختیاری دوسری ضروری پھر اختیاری کی دو قسمیں ایک صریح یا جو صریح کے قائم مقام ہو اور دوسری دلالت (۱) پس صریح کی یہ صورت ہے کہ مثلاً شفیع یوں کہے کہ میں نے اپنا حق شفعہ چھوڑا یا میں نے اس بیع کو جائز کیا۔

۱ عہدہ یعنی جو مناقشہ پیش آئے وارث اس کی جواب دہی کے یا ثمن کے ذمہ دار ہیں کیونکہ وہ مالک ہو چکے تھے۔ ۲ توڑ لے گا جبکہ شفیع دام دے کر لینا منظور نہ کرے۔ (۱) بدلالت ساقط ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 202 Kitab al-Shufa**

...voided my right of pre-emption (Shufa) or I waived the right of pre-emption or I absolved you from pre-emption or I gave up pre-emption or used similar words. However, it is necessary that he uttered such words after the sale occurred, regardless of whether he was aware of the sale or not, because explicitly waiving one's right is the same whether one knows or not. This is in contrast to the second type, which is by implication (dalalat). If the pre-emptor (Shafi') waived his right by implication, it will not be considered waived until he waives it after knowing the circumstances of the sale. The interpretation of implication is that an act is performed by the pre-emptor which indicates his consent to the contract of sale and its consequences for the buyer. For instance, the pre-emptor came to know of the purchase by the buyer but did not immediately demand pre-emption without any excuse, or he stood up from the meeting where he was informed, or he occupied himself with some other task leaving the demand for pre-emption - according to different narrations. Similarly, if the pre-emptor settled the price of that pre-empted property (dar-e-mashfu'a) with the buyer or requested him to give it to him by way of 'Tawliyah' (sale at cost price), or sought to take the subject matter of sale from the buyer on lease, share-cropping (muzara'at), or management (mu'amalat), and all these matters occurred after the pre-emptor became aware of the buyer's purchase, then the same ruling applies. This is in 'Badai'. If the pre-emptor requested the buyer to keep this subject of sale as a deposit (wadiah) with him, or to make a will of it in his favor, or to give it to him as charity (sadaqah), then these matters are also counted as giving up the right of pre-emption. This is in 'Tatar Khaniya'. And if the buyer said (Arabic text), then the pre-emptor replied "Yes", then this too is acceptance of the sale by way of pre-emption. This is in 'Dhakhira'. An example of the necessary type is if, for instance, the pre-emptor dies after two types of demands but before taking possession in pre-emption, then according to us, the ruling is that his right of pre-emption will be voided. However, the pre-emptor's right will not be voided by the death of the buyer, and the pre-emptor will have the right to take it from the buyer's heir. This is in 'Badai'. Giving up pre-emption before the contract of sale is not valid, but it is valid after the sale, whether the pre-emptor knows that his right of pre-emption has become due or not, and whether the person for whom it was waived knows it or not. This is in 'Muhit'.

If the buyer said to the pre-emptor, "I have spent this much on the building of this house and I am giving it to you by 'Tawliyah' in exchange for this expense and these

prices," then the pre-emptor replied "Yes," then this matter is acceptance of pre-emption on the part of the pre-emptor. In the tenth chapter of 'Kitab al-Sulh', the issues of giving up pre-emption are mentioned, and it is stated that if the pre-emptor took the pre-empted house by right of pre-emption, then giving up pre-emption again is not valid. And if it is a gift on condition of consideration (hiba bi-shart al-iwaz), then giving up pre-emption before mutual possession is not valid. Thus it is in 'Tatar Khaniya'. And if in a gift on condition of consideration, the pre-emptor gave up pre-emption after mutual possession by the donor and donee, then both acknowledged that this was not a contract of gift but a sale had occurred at the amount of consideration, then the pre-emptor will not have the right of pre-emption. And if in a gift without consideration, the pre-emptor gave up pre-emption, then both acknowledged that it was on condition of consideration or it was a contract of sale, then the pre-emptor will have the right of pre-emption. If a person gifted a house to another on condition of a thousand dirhams as consideration, then possession was taken of only one of the two considerations and possession had not yet been taken of the second when the pre-emptor gave up his right of pre-emption, then this is void. Then when possession is taken of the second consideration, the pre-emptor will have the right to take that house in pre-emption because at the time the pre-emptor waived his pre-emption, his right was not even due. Because a gift on condition of consideration becomes like a sale only when mutual possession occurs, and giving up pre-emption before the cause of its being due is void. This is in 'Mabsut'. If the pre-emptor gifted his right of pre-emption to someone or sold it to someone, then this is not acceptance of pre-emption. Similar is written in 'Fatawa Ahl-e-Samarqand'.

**Footnotes:** 1. Fath-e-Tawliyah: "Give it to me for the same price you bought it," thus the buyer's ownership remains. 2. Muzara'at: share-cropping; Mu'amalat: taking care of trees; Ijarah: rent. 3. "I give you the Tawliyah sale at this price," the pre-emptor said "Yes," it is proof that he left the pre-emption. 4. Not valid, rather when the donor took possession of the consideration and the donee took possession of the gift, then if the pre-emptor gave up pre-emption, it is valid. And if he gave it before possession, then after possession he can account for pre-emption. And if he gave up pre-emption after possession and then they both acknowledged it was a sale, then the right of pre-emption will not return.

...ने अपना हक़-ए-शुफ़अ बातिल कराया या मैंने हक़-ए-शुफ़अ साक़ित कर दिया या मैंने तुझे शुफ़अ से बरी कर दिया या मैंने शुफ़अ दे दिया या इसके समान दूसरे शब्द कहे, मगर ज़रूरी है कि उसने ऐसे शब्द बिक्री होने के बाद कहे हों, चाहे उसे बिक्री का ज्ञान हुआ हो या न हुआ हो, क्योंकि स्पष्ट रूप से अपना हक़ साक़ित करने में जानना या न जानना दोनों बराबर हैं। इसके विपरीत दूसरी किस्म 'दलालत' (संकेत) की है कि यदि शफ़ीअ (पड़ोसी या साझीदार जिसका शुफ़अ का हक़ है) ने संकेत के तौर पर अपना हक़ साक़ित किया, तो जब तक बिक्री की स्थिति जानने के बाद साक़ित न करे, तब तक साक़ित नहीं होगा। और संकेत की व्याख्या यह है कि शफ़ीअ की ओर से कोई ऐसा कार्य पाया जाए जो खरीदार के लिए बिक्री के अनुबंध और उसके आदेश पर उसकी सहमति को दर्शाता हो। उदाहरण के तौर पर, शफ़ीअ को खरीदार द्वारा खरीदने की जानकारी हुई, लेकिन उसने बिना किसी बहाने के तुरंत शुफ़अ का दावा नहीं किया, या उस सभा से उठ खड़ा हुआ जिसमें उसे जानकारी मिली, या शुफ़अ के दावे को छोड़कर किसी अन्य काम में लग गया - रिवायतों के मतभेद के अनुसार। इसी प्रकार, यदि शफ़ीअ ने खरीदार से उस विवादित संपत्ति (दार-ए-मशफ़ूआ) का मूल्य तय किया या उससे अनुरोध किया कि मुझे 'तवलिया' (लागत मूल्य पर बिक्री) के तौर पर दे दे, या खरीदार से उस संपत्ति को पट्टे पर लेना चाहा या बटाई पर लेना चाहा, और ये सभी बातें शफ़ीअ द्वारा खरीदार के खरीदने की स्थिति जानने के बाद हुई हों, तो भी यही नियम है। यह 'बदाइ' में है। यदि शफ़ीअ ने खरीदार से अनुरोध किया कि इस संपत्ति को मेरे पास अमानत के तौर पर रख दे, या मेरे लिए इसकी वसीयत कर दे, या मुझे दान में दे दे, तो ये बातें भी हक़-ए-शुफ़अ छोड़ देने में गिनी जाती हैं। यह 'तातारखानिया' में है। और यदि खरीदार ने कहा (अरबी वाक्य का अनुवाद) तो शफ़ीअ ने जवाब दिया "हाँ", तो यह भी शुफ़अ को स्वीकार कर लेना है। यह 'ज़ख़ीरा' में है। और अनिवार्य किस्म का उदाहरण यह है कि मान लीजिए शफ़ीअ दो प्रकार के दावे के बाद और शुफ़अ लेने से पहले मर जाए, तो हमारे निकट यह नियम है कि उसका हक़-ए-शुफ़अ बातिल हो जाएगा, लेकिन खरीदार के मरने से शफ़ीअ का हक़ बातिल नहीं होगा और शफ़ीअ को अधिकार होगा कि वह खरीदार के वारिस से उसे ले ले। यह 'बदाइ' में है। बिक्री का अनुबंध होने से पहले शुफ़अ छोड़ देना सही नहीं है, और बिक्री के बाद सही है, चाहे शफ़ीअ को अपना हक़-ए-शुफ़अ अनिवार्य होने की जानकारी हो या न हो, और जिस व्यक्ति के लिए उसे छोड़ दिया गया है, उसे इसके बारे में पता हो या न हो। यह 'मुहीत' में है।

यदि खरीदार ने शफ़ीअ से कहा कि मैंने इस मकान की इमारत में इतना खर्च किया है और मैं इस खर्च और इन रुपयों के बदले तुझे 'तवलिया' देता हूँ, फिर शफ़ीअ ने जवाब दिया "हाँ", तो यह शफ़ीअ की ओर से शुफ़अ को स्वीकार कर लेना है। 'किताब अल-सुल्ह' के दसवें अध्याय में शुफ़अ देने के मसलों का उल्लेख किया गया है और फरमाया कि यदि शफ़ीअ ने विवादित मकान को शुफ़अ के अधिकार से ले लिया, तो फिर उसे (किसी और को) दे देना सही नहीं है। और यदि 'हिबा बिशर्त-ए-इवज़' (बदले की शर्त पर दान) हो, तो उसमें आपसी कब्जे से पहले शुफ़अ छोड़ देना सही नहीं है। ऐसा ही 'तातारखानिया' में है। और यदि 'हिबा बिशर्त-ए-इवज़' में शफ़ीअ ने दाता और प्राप्तकर्ता के आपसी कब्जे के बाद शुफ़अ छोड़ दिया हो, फिर दोनों ने स्वीकार किया कि यह दान का अनुबंध नहीं था बल्कि जितने बदले पर था उस पर बिक्री हुई थी, तो शफ़ीअ को हक़-ए-शुफ़अ प्राप्त नहीं होगा। और यदि बिना किसी बदले के दान में शफ़ीअ ने शुफ़अ छोड़ दिया हो, फिर दोनों ने स्वीकार किया कि वह बदले की शर्त पर था या बिक्री का अनुबंध था, तो शफ़ीअ को हक़-ए-शुफ़अ प्राप्त होगा। यदि एक व्यक्ति ने दूसरे को एक मकान एक हज़ार दिरहम के बदले की शर्त पर दान किया, फिर दोनों बदले में से केवल एक पर कब्जा हुआ और अभी दूसरे पर कब्जा नहीं हुआ था कि शफ़ीअ ने अपना हक़-ए-शुफ़अ छोड़ दिया, तो यह बातिल है। फिर जब दूसरे बदले पर कब्जा हो जाए, तो शफ़ीअ को अधिकार होगा कि वह उस मकान को शुफ़अ के अधिकार में ले ले, क्योंकि जिस समय शफ़ीअ ने अपना शुफ़अ छोड़ा था, उस समय उसका हक़ अनिवार्य ही नहीं हुआ था। क्योंकि 'हिबा बिशर्त-ए-इवज़' बिक्री के समान तभी होता है जब आपसी कब्जा हो जाए, और अनिवार्यता के कारण से पहले शुफ़अ छोड़ देना बातिल है। यह 'मबसूद' में है। यदि शफ़ीअ ने अपना हक़-ए-शुफ़अ किसी को दान कर दिया या किसी के हाथ बेच दिया, तो यह शुफ़अ को स्वीकार करना नहीं है। ऐसा ही 'फ़तावा अहल-ए-समरकंद' में लिखा है।

**पाद टिप्पणियाँ (Footnotes):** 1. फ़तहे तवलिया: जितने रुपयों में खरीदा है, उतने में ही मुझे दे दे, अतः खरीदार का मालिकाना हक़ समाप्त हो गया। 2. मज़ारअत: खेती करना; मुआमलात: पेड़ों की देखभाल की शर्त पर लेना; इजारा: किराया। 3. मैं तुझे इतने रुपयों में तवलिया बिक्री दे दूँ, शफ़ीअ ने कहा "हाँ", तो यह प्रमाण है कि उसने शुफ़अ छोड़ दिया। 4. सही नहीं है, बल्कि जब दाता ने बदले पर और प्राप्तकर्ता ने दान पर कब्जा कर लिया, फिर शफ़ीअ ने शुफ़अ छोड़ दिया तो सही है। और यदि कब्जे से पहले छोड़ा हो, तो कब्जे के बाद वह शुफ़अ का हिसाब कर सकता है। और यदि कब्जे के बाद शुफ़अ छोड़ दिया और फिर उन दोनों ने स्वीकार किया कि वह बिक्री थी, तो उससे हक़-ए-शुफ़अ दोबारा जीवित नहीं होगा।

نے اپنا حق شفعہ باطل کرایا یا میں نے حق شفعہ ساقط کر دیا یا میں نے تجھے شفعہ سے بری کر دیا یا میں نے شفعہ دے دیا یا اس کے مشابہ دوسرے الفاظ کہے مگر ضرور ہے کہ اس نے ایسے الفاظ بیع واقع ہونے کے بعد کہے ہوں خواہ اس کو بیع کا علم ہوا ہو یا نہ ہوا ہو کیونکہ صریحاً اپنا حق ساقط کرنے میں جاننا نہ جاننا دونوں یکساں ہیں بخلاف دوسری قسم دلالت کے کہ بطریق دلالت اگر شفیع نے اپنا حق ساقط کیا تو جب تک بیع کا حال جاننے کے بعد ساقط نہ کرے تب تک ساقط نہ ہوگا اور دلالت کی یہ تفسیر ہے کہ شفیع کی طرف سے کوئی ایسا فعل پایا جائے جو مشتری کے واسطے عقد بیع و اس کے حکم کے رضامندی پر دلالت کرتا ہو مثلاً شفیع کو مشتری کے خریدنے کا علم ہوا مگر اس نے بلا عذر فی الفور شفعہ طلب نہ کیا یا اس مجلس سے جس میں آگاہ ہوا ہے اٹھ کھڑا ہوا یا طلب شفعہ کو چھوڑ کر کسی دوسرے کام میں مشغول ہو گیا علیٰ اختلاف الروایتین اسی طرح اگر شفیع نے مشتری سے اس دار مشفوعہ کا مول چکایا یا اس سے درخواست کی کہ مجھے بطور بیع تولیہ دے دے یا مشتری سے اس مبیع کو اجارہ پر لینا یا مزارعت یا معاملت پر لینا چاہا اور یہ سب امور شفیع کی طرف سے مشتری کے خریدنے کا حال معلوم کرنے کے بعد واقع ہوئے تو بھی یہی حکم ہے یہ بدائع میں ہے اگر شفیع نے مشتری سے درخواست کی کہ اس مبیع کو میرے پاس ودیعت رکھ دے یا میرے واسطے اس کی وصیت کر دے یا مجھے صدقہ میں دے دے تو یہ امور بھی حق شفعہ دے دینے میں شمار ہیں یہ تاتارخانیہ میں ہے اور اگر مشتری نے کہا کہ (انا١ او لیمکھا کذا) پس شفیع نے جواب دیا کہ ہاں تو یہ بھی تسلیم شفعہ ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور قسم ضروری کی یہ مثال ہے کہ مثلاً شفیع دو طرح کی طلب کے بعد شفعہ میں لے لینے سے پہلے مر جائے تو ہمارے نزدیک یہ حکم کہ اس کا حق شفعہ باطل ہو

جائے گا مگر مشتری کے مر جانے سے شفیع کا حق باطل نہ ہوگا اور شفیع کو اختیار رہے گا کہ مشتری کے وارث سے لے لے یہ بدائع میں ہے۔ عقد بیع سے پہلے شفعہ کا دے دینا صحیح نہیں ہے اور بعد بیع کے صحیح ہے خواہ شفیع کو اپنا حق شفعہ واجب ہونا معلوم ہو یا نہ معلوم ہو اور جس شخص کو ساقط کر کے دے دیا ہے اس کو معلوم ہوا ہو یا نہ معلوم ہوا ہو یہ محیط میں ہے۔

اگر مشتری نے شفیع سے کہا کہ میں نے اس دار کی عمارت میں اس قدر خرچ کیا ہے اور میں بعوض اس خرچہ اور ان داموں کے تجھے تولیہ دیتا ہوں پس شفیع نے جواب دیا کہ ہاں تو یہ امر شفیع کی طرف سے تسلیم شفعہ ہے۔ کتاب الصلح کے دسویں باب میں شفعہ دینے کے مسائل ذکر فرمائے اور فرمایا کہ اگر شفیع نے دار مشفوعہ کو بحق شفعہ لے لیا تو پھر شفعہ دے دینا صحیح نہیں ہے اور اگر ہبہ بشرط عوض ہو تو اس میں باہمی قبضہ سے پہلے شفعہ دے دینا صحیح۳ نہیں ہے۔ کذا فی التاتارخانیہ اور اگر ہبہ بشرط عوض میں شفیع نے واہب و موہوب لہ کے باہمی قبضہ کے بعد شفعہ دے دیا ہو پھر دونوں نے اقرار کیا کہ یہ عقد ہبہ نہ تھا بلکہ جس قدر عوض ہے اس پر بیع واقع ہوئی تھی تو شفیع کو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا اور اگر ہبہ بغیر عوض میں شفیع نے شفعہ دے دیا ہو پھر دونوں نے اقرار کیا کہ یہ بشرط عوض تھا یا عقد بیع تھا تو شفیع کو حق شفعہ حاصل ہوگا۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کو ایک دار بشرط ہزار درہم عوض کے ہبہ کیا پھر ہر دو عوض میں سے فقط ایک پر قبضہ ہوا اور ہنوز دوسرے پر قبضہ نہ ہوا تھا کہ شفیع نے اپنا حق شفعہ دے دیا تو یہ باطل ہے پھر جب دوسرے عوض پر قبضہ ہو تو شفیع کو استحقاق ہوگا کہ چاہے اس دار کو حق شفعہ میں لے لے اس واسطے کہ جس وقت شفیع نے اپنا شفعہ ساقط کیا ہے اس وقت اس کا حق واجب ہی نہیں تھا کیونکہ ہبہ بشرط عوض جبھی مثل بیع کے ہو جاتا ہے جب باہمی قبضہ ہو جائے اور سبب وجوب مستحق ہونے سے پہلے شفعہ دے دینا باطل ہے یہ مبسوط

میں ہے۔ اگر شفیع نے اپنا حق شفعہ کسی کو ہبہ کیا یا کسی کے ہاتھ فروخت کیا تو یہ تسلیم شفعہ نہیں ہے ایسا ہی فتاویٰ اہل سمرقند میں لکھا

۱۔ہ فتح تولیہ جن داموں کو مول لیا ہے اتنے کو مجھے دے دے پس مشتری کی ملیت باقی رکھی۔ ۲۔ہ مزارعت کاشت بنائی معاملت درختوں کی بنائی پر لینا واجارہ کرایہ۔ ۳۔ہ میں تجھے اتنے دام کو بیع تولیہ دے دوں شفیع نے کہا کہ ہاں تو دلالت ہے کہ اس نے شفعہ چھوڑ دیا۔ ۴۔ہ صحیح نہیں بلکہ جب واہب نے عوض پر اور موہوب لہ نے ہبہ پر قبضہ کرلیا پھر شفیع نے شفعہ دیا تو صحیح ہے اور اگر قبضہ سے پہلے دیا ہو تو بعد قبضہ سے شفعہ حساب کرسکتا ہے اور اگر بعد قبضہ سے شفعہ دیا پھر ان دونوں نے اقرار کیا کہ وہ بیع تھی تو اس سے حق شفعہ عود نہ کرے گا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Vol. 8 (203) Kitab-ash-Shufa (Book of Pre-emption)**

Shams-ul-Aimma Sarakhsi mentioned in 'Sharh Kitab-ash-Shufa', shortly before the 'Chapter on Evidence', that if the pre-emptor (Shafi) sells his right of pre-emption (Shufa), this act shall be considered a waiver (1) of the right of pre-emption, but the price (Thaman) shall not be due (1), and this is the correct view. Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) also mentioned a similar point in 'Al-Jami' which supports this; this is stated in 'Al-Muhit'. If the pre-emptor waives the pre-emption and then the seller (Ba'i) adds a slave girl or a slave to the subject of sale (Mabi), the pre-emptor shall regain the right to choose whether to take the pre-empted property (Dar-e-Mashfu'a) in exchange for its proportionate share of the price. Similarly, if the pre-emptor waives the pre-emption and then the seller reduces the price, the pre-emptor regains the right because this reduction is retroactively attached to the original contract. For instance, if the pre-emptor was informed that the sale occurred for one thousand dirhams and he waived the pre-emption, but it later emerged that the sale was for five hundred dirhams, his right of pre-emption is restored; this is in 'Az-Zakhira'. If the pre-emptor says, "I have given up the pre-emption of this house," this surrender (Taslim) is valid, even if he did not specify to whom it was given. Likewise, if the pre-emptor says to the seller, while the property is still in the seller's possession, "I have given you the pre-emption of this house," the same rule applies; this is in 'Al-Muhit'. If the seller has already handed over the property to the buyer (Mushtari) and then the pre-emptor says to the seller, "I have given you the pre-emption of this house," this surrender is valid based on *Istihsan* (juridical preference). If he says to the seller, "I have waived it because of you or for your sake," this surrender is valid according to both *Qiyas* (analogy) and *Istihsan*. This is recorded in 'Fatawa Qazi Khan'.

If the buyer of the property is an agent (Wakil) for someone else, and the pre-emptor says, "I have given up the pre-emption of this house," without specifying to whom, the surrender is valid. Similarly, if the property is in the agent's possession and the pre-emptor says to the agent, "I have given you the pre-emption of this house," it is valid according to *Qiyas* and *Istihsan*. However, if the pre-emptor says this to the agent after the agent has already delivered the property to the principal (Muwakkil), then the surrender is valid only based on *Istihsan*. If the buyer is an agent for another and the pre-emptor tells the buyer, "I have given the pre-emption specifically to you and not to the other," it shall not be valid for the principal (2); thus it is in 'Al-Muhit'. If the pre-emptor tells a stranger (stranger to the transaction), "I have given up the pre-

emption of this house," it shall be extinguished; this is in 'Al-Muhit as-Sarakhsi'. If the pre-emptor initially says to a stranger, "I have given you the pre-emption of this house and refrained from it because of you," the surrender is not valid and his right of pre-emption shall not be voided according to *Qiyas* or *Istihsan*. However, if he says to a stranger, "Because of you or your recommendation, I have given the pre-emption to the principal" or gifted it to him or waived it for him, then this is valid for the principal and his right of pre-emption will be void; this is in 'Fatawa Qazi Khan'. If a stranger asks the pre-emptor, "Give your pre-emption to the principal (3)," and he replies, "I have given it (1) or gifted it or waived it for your sake," this is considered surrender by *Istihsan*. Because when the stranger said "Give it to Zaid" and he replied "I gave it for you," it stands as a response, as if he said, "Because of you, I gave it to Zaid." But if, in response to the stranger, the pre-emptor says, "I gave the pre-emption to you" or "I gifted it to you" or "I sold it to you," this is not a surrender of pre-emption, because this statement is an independent proposition and cannot be necessarily deemed a responsive waiver since it is self-sufficient; this is in 'Siraj-ul-Wahhaj'. If a stranger says to the pre-emptor, "I settle (Sulh) with you for this much property on the condition that you give the pre-emption to him," and the pre-emptor agrees, the surrender is valid, but the settlement amount (Badal-e-Sulh) will not be mandatory. And if he says, "I settle with you for this much property on this condition..."

**(Footnotes)** 1. "Giving it" serves as evidence that pre-emption is not desired, even though selling this right is void (*batil*). 2. The statement is correct, but it is necessary that the property remains in the agent's possession at that time. 3. Pre-emption and the basis of the issue revolve around this pronoun. 4. "Correct" means the settlement is void, but the surrender of pre-emption is valid. (1) Upon the buyer (*Mushtari*). (2) Al-Harjam stated that there is disagreement and two narrations on this. (3) The buyer is the agent.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 (203) किताब-अश-शुफ़ा (पूर्व-क्रयाधिकार की पुस्तक)**

शम्स-उल-आइम्मा सरख़सी ने 'शरह किताब-अश-शुफ़ा' में 'बाब-अश-शहादत' (गवाही के अध्याय) से कुछ पहले उल्लेख किया है कि यदि शुफ़ा करने वाले (शफ़ी) ने अपना शुफ़ा (पूर्व-क्रयाधिकार) बेच दिया, तो इसे शुफ़ा का त्याग (1) माना जाएगा, लेकिन उसकी कीमत (थमन) अनिवार्य नहीं होगी (1), और यही सही है। इमाम मुहम्मद (रह.) ने भी 'अल-जामी' में ऐसी ही बात लिखी है जो इस पर दलील देती है, यह 'मुहीत' में है। यदि शफ़ी ने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर विक्रेता (बाइ) ने बेची गई चीज़ (मबी) में कोई दासी या दास जोड़ दिया, तो शफ़ी को यह अधिकार मिल जाएगा कि वह चाहे तो उस संपत्ति (दार-ए-मश्फ़ूआ) को उसके मूल्य के हिस्से के बदले ले ले। और यदि शफ़ी ने शुफ़ा त्याग दिया, फिर विक्रेता ने मूल्य में से कुछ घटा दिया, तो शफ़ी को फिर से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त हो जाएगा क्योंकि यह कटौती मूल अनुबंध (अक़्द) से जुड़ी मानी जाएगी। जैसे कि यदि शफ़ी को सूचना दी गई कि बिक्री एक हज़ार दिरहम में हुई है और उसने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर पता चला कि बिक्री पाँच सौ दिरहम में हुई थी, तो उसे शुफ़ा का अधिकार फिर से मिल जाता है; यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि शफ़ी ने कहा कि "मैंने इस घर का शुफ़ा दे दिया," तो यह समर्पण (तस्लीम) सही है, भले ही उसने यह स्पष्ट न किया हो कि किसे दिया। इसी तरह, यदि घर अभी विक्रेता के अधिकार में हो और शफ़ी ने विक्रेता से कहा कि "मैंने तुम्हें इस घर का शुफ़ा दे दिया," तो भी यही नियम है; यह 'मुहीत' में है। यदि विक्रेता ने घर खरीदार (मुश्तरी) को सौंप दिया, फिर शफ़ी ने विक्रेता से कहा कि "मैंने तुम्हें इस घर का शुफ़ा दे दिया," तो यह समर्पण 'इस्तेहसानन' (न्यायिक विवेक के आधार पर) सही है। यदि उसने विक्रेता से कहा कि "मैंने तुम्हारी वजह से या तुम्हारे लिए शुफ़ा छोड़ दिया," तो यह 'क़ियासन' (तर्क) और 'इस्तेहसानन' दोनों तरह से सही है। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

यदि घर का खरीदार किसी और की ओर से एजेंट (वकील) हो और शफ़ी ने कहा कि "मैंने इस घर का शुफ़ा दे दिया," जबकि उसने यह निर्दिष्ट नहीं किया कि किसे दिया, तो यह समर्पण सही है। इसी तरह यदि घर वकील के अधिकार में होने की स्थिति में वकील से कहा कि "मैंने तुम्हें इस घर का शुफ़ा दे दिया," तो यह 'क़ियासन' और 'इस्तेहसानन' सही है। लेकिन यदि शफ़ी ने वकील से यह तब कहा जब वकील घर खरीदार (मोक्किल) को सौंप चुका हो, तो समर्पण केवल 'इस्तेहसानन' सही होगा। यदि खरीदार किसी अन्य की ओर से एजेंट हो और शफ़ी ने खरीदार से कहा कि "मैंने विशेष रूप से तुम्हें शुफ़ा दिया है, दूसरे को नहीं," तो यह खरीदार (मोक्किल) के लिए मान्य नहीं होगा (2); ऐसा 'मुहीत' में है। यदि शफ़ी ने किसी अजनबी से कहा कि "मैंने इस घर का शुफ़ा दे दिया," तो

उसका अधिकार समाप्त हो जाएगा; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। यदि शफ़ी ने शुरू में किसी अजनबी से कहा कि "मैंने तुम्हें इस घर का शुफ़ा दे दिया है और तुम्हारी वजह से शुफ़ा से पीछे हट गया," तो यह समर्पण सही नहीं है और 'क़ियासन' व 'इस्तेहसानन' उसका शुफ़ा रद्द नहीं होगा। लेकिन यदि किसी अजनबी से कहा कि "तुम्हारी वजह से या तुम्हारी सिफ़ारिश पर मैंने खरीदार (मोक्किल) को शुफ़ा दे दिया" या उसे उपहार (हिबा) कर दिया या उसके पक्ष में त्याग दिया, तो यह खरीदार के लिए सही है और शफ़ी का अधिकार समाप्त हो जाएगा; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि किसी अजनबी ने शफ़ी से कहा, "अपना शुफ़ा खरीदार (3) को दे दो" और उसने जवाब दिया, "वह (1) मैंने तुम्हारे लिए दे दिया या उपहार किया या त्याग दिया," तो यह 'इस्तेहसानन' समर्पण है। क्योंकि जब अजनबी ने कहा "ज़ैद को दे दो" और उसने कहा "तुम्हारे लिए दे दिया," तो यह जवाब के तौर पर माना गया, मानों उसने कहा हो, "तुम्हारी वजह से मैंने ज़ैद को दे दिया।" लेकिन यदि अजनबी के कहने पर शफ़ी ने कहा, "मैंने तुम्हें शुफ़ा दिया" या "तुम्हें उपहार किया" या "तुम्हारे हाथ बेच दिया," तो यह शुफ़ा का समर्पण नहीं है, क्योंकि यह एक नया वाक्य है जिसे अनिवार्य रूप से जवाब नहीं माना जाएगा क्योंकि यह अपने आप में स्वतंत्र है; यह 'सिराज-उल-वहाज' में है। यदि किसी अजनबी ने शफ़ी से कहा कि "मैं तुमसे इतनी राशि पर इस शर्त पर समझौता (सुलह) करता हूँ कि तुम शुफ़ा उसे दे दो" और शफ़ी ने दे दिया, तो समर्पण सही है, लेकिन समझौते की राशि देना अनिवार्य नहीं होगा। और यदि कहा, "मैं तुमसे इतने माल पर इस शर्त पर..."

**(पाद टिप्पणियाँ)** 1. 'दे देना' का अर्थ यह प्रमाण है कि शुफ़ा स्वीकार नहीं है, यद्यपि इस अधिकार को बेचना अमान्य (बातिल) है। 2. यह कथन सही है, लेकिन आवश्यक है कि उस समय तक घर वकील के अधिकार में हो। 3. शुफ़ा और मामले का आधार इसी सर्वनाम (ज़मीर) पर है। 4. सही का अर्थ है कि समझौता अमान्य है लेकिन शुफ़ा का समर्पण सही है। (1) मुश्तरी (खरीदार) पर। (2) 'अल-हरजम' में कहा गया है कि इसमें विवाद और दो विवरण हैं। (3) मुश्तरी एजेंट है।

---

ہے اور شمس الائمہ سرخسی نے شرح کتاب الشفعة میں باب الشہادة سے کچھ پہلے ذکر فرمایا کہ اگر شفیع نے شفعہ فروخت کر دیا تو یہ امر شفعہ کا دے دینا (1) قرار دیا جائے گا مگر ثمن واجب نہ ہو گا (1) اور یہی صحیح ہے اور امام محمدؒ نے بھی شفعہ الجامع میں ایسی بات ذکر فرمائی ہے جو اس پر دلالت کرتی ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر شفیع نے شفعہ دے دیا پھر بائع نے مبیع میں کوئی لونڈی یا غلام بزداد یا تو شفیع کو اختیار حاصل ہو جائے گا کہ چاہے دار مشفوعہ کو اس کے حصہ ثمن کے عوض لے لے اور اگر شفیع نے شفعہ دے دیا پھر بائع نے ثمن میں سے کسی قدر گھٹا دیا تو شفیع کو پھر شفعہ حاصل ہو جائے گا اس واسطے کہ یہ گھٹانا اصل عقد سے ملحق ہوگا جیسا کہ اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ بیع بعوض ہزار درہم کے واقع ہوئی پس اس نے شفعہ دے دیا پھر مبیع بعوض پانچ سو درہم کے نکلی تو اس کو حق شفعہ حاصل ہوتا ہے یہ ذخیرہ میں ہے اگر شفیع نے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ دے دیا تو یہ تسلیم صحیح ہے اگرچہ اس نے جس کو دیا ہے معین نہیں کیا اسی طرح اگر دار مشفوعہ بائع کے قبضہ میں موجود ہونے کی حالت میں شفیع نے بائع سے کہا کہ میں نے تجھے اس دار کا شفعہ دے دیا تو بھی یہی حکم ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر بائع نے دار مبیعہ مشتری کے سپرد کر دیا پھر شفیع نے بائع سے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ تجھے دے دیا تو یہ تسلیم استحساناً صحیح ہے۔ اگر بائع سے یوں کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ تیرے سبب سے یا تیرے واسطے دیا تو یہ تسلیم قیاساً و استحساناً صحیح ہے۔ یہ فتاوی قاضی خان میں ہے۔

اگر دار کا مشتری کسی دوسرے کی طرف سے اس کے خریدنے کا وکیل ہو اور شفیع نے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ دے دیا حالانکہ اس نے جس کو دیا ہے معین نہ کیا تو یہ تسلیم صحیح ہے

اسی طرح اگر دار مبیعہ وکیل کے قبضہ میں ہونے کی صورت میں وکیل سے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ تجھے دے دیا تو یہ تسلیم قیاساً و استحساناً صحیح ہے اور اگر شفیع نے یہ کلام وکیل سے ایسے وقت کہا کہ جب وکیل اس دار کو موکل کے سپرد کر چکا ہے تو تسلیم استحساناً صحیح ہو گی اور اگر مشتری کسی دوسرے کی طرف سے خرید کا وکیل ہو اور شفیع نے مشتری سے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ خاص کر تجھے دیا نہ دوسرے کو تو تسلیم موکل کے واسطے صحیح نہ ہو گی (2) کذا فی المحیط اور اگر کسی اجنبی سے شفیع نے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ دے دیا تو ساقط ہو جائے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر شفیع نے ابتداءً کسی اجنبی سے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ تجھے دے دیا ہے تیری وجہ سے اس کے شفعہ سے اعتراض کیا تو تسلیم صحیح نہیں ہے اور قیاساً و استحساناً اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا اور اگر کسی اجنبی سے کہا کہ میں نے اس کا شفعہ تیری وجہ سے یا تیری سفارش سے موکل کو دے دیا یا موکل کو ہبہ کر دیا یا موکل کے لئے شفعہ سے اعراض کیا تو یہ تسلیم موکل کے واسطے صحیح ہے اور اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا یہ فتاوی قاضی خان میں ہے اور اگر کسی اجنبی نے شفیع سے کہا کہ تو اپنا شفعہ موکل (3) کو دے دے پس اس نے کہا کہ وہ (1) میں نے تیرے واسطے دیا یا ہبہ کیا یا اس سے اعراض کیا تو استحساناً یہ تسلیم ہے کیونکہ جب اجنبی نے اس سے کہا کہ تو اپنا شفعہ زید کو دے دے پس اس نے کہا کہ وہ میں نے تیرے واسطے دے دیا پس یہ کلام بجائے جواب کے ٹھہرا پس ایسا ہو گیا کہ گویا اس نے یوں جواب دیا کہ میں نے تیری وجہ سے اس کا شفعہ زید کو دے دیا اور اگر اجنبی کے مخاطب کرنے پر شفیع نے یوں کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ تجھے دیا یا میں نے اس کا شفعہ تجھے ہبہ کیا یا میں نے اس کا شفعہ تیرے ہاتھ فروخت کیا تو یہ کلام تسلیم شفعہ نہیں ہے اس واسطے کہ یہ کلام مبتدا ہے خواہ مخواہ جواب نہ ٹھہرایا جائے گا کیونکہ مستقل بنفسہ ہے پس یہ کلام تسلیم نہ ہو گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر کسی اجنبی نے شفیع سے کہا کہ میں

تجھ سے اس قدر مال پر اس شرط سے صلح کرتا ہوں کہ تو اس کا شفعہ اس کو دے دے پس شفیع نے دے دیا تو یہ تسلیم صحیح ہے مگر مال بدل صلح واجب نہ ہو گا اور اگر یوں کہا کہ میں تجھ سے اس قدر مال پر اس شرط ...

**(حواشی)** 1 دے دینا یعنی دلیل ہے کہ شفعہ منظور نہیں ہے اگر چہ یہ حق بیع کرنا باطل ہے۔ 2 قولہ صحیح لیکن ضروری ہے کہ اس وقت تک دار مذکور وکیل کے قبضہ میں ہو۔ 3 شفعہ اور مدار مسئلہ کا اسی ضمیر پر ہے۔ 4 صحیح یعنی صلح باطل ہے اور تسلیم شفعہ صحیح ہے۔ (1) مشتری پر۔ (2) قال الحرجم و فیہ خلاف و روایتان۔ (3) مشتری وکیل ہے۔

**Fatawa Alamgiri... Vol 8 (203) Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

"...I settle with you on the condition that its pre-emption will be mine," then this settlement is void, and the pre-emptor (Shafi') remains with his right of pre-emption. This is mentioned in Tatarkhaniya. If a stranger says to the pre-emptor, "I settle with you for this many dirhams on the condition that you give up your right of pre-emption," and the pre-emptor accepts, the money will not be obligatory for the stranger, and the pre-emptor's right will not be void. If the pre-emptor says to the seller, "I have surrendered your sale to you," or says to the buyer, "I have given your purchase to you," then his right of pre-emption is invalidated. However, if he says to a stranger, "I have given the purchase of this house to you," this statement is not considered a surrender of pre-emption, and his right remains valid; this is in Fatawa Qazi Khan.

**Conditioning the Waiver of Pre-emption on a Condition***

It is not permissible to make the waiver (isqat) of pre-emption conditional. For example, if the pre-emptor says, "I have waived its pre-emption on the condition that you purchased it for yourself," then (1) if he purchased it for someone else, the pre-emption is not void. This validity exists because such a waiver (2) is capable of being conditional; this is in Wajiz al-Kardi. If the pre-emptor says to the seller, "I have given up its pre-emption to you on the condition that you sold it to so-and-so person for yourself," but the seller had sold it for someone else, the pre-emptor's statement will not be a surrender of pre-emption. It is stated in Fatawa Faqih Abu al-Layth that if a pre-emptor says to the buyer, "I have given up the pre-emption of this house to you," and it later transpires that the buyer purchased the house for someone else, the pre-emptor remains with his right. In Fatawa Fazli, it is written that this statement is a surrender of pre-emption in favor of the principal (muwakkil), but the preferred view is what is mentioned in Fatawa Abu al-Layth; Sheikh Sadr al-Shahid has also mentioned the same. In 'Hawi', it is stated that if a buyer tells the pre-emptor, "I have purchased this house for myself," and the pre-emptor waives the pre-emption, but it later appears he purchased it for another, Imam Muhammad (rh) said his pre-emption is void, while Imam Abu Hanifa (rh) said it is not; this is in 'Muhit'.

If, in the presence of a partner (sharik), a neighbor (jar) first gives up his right of pre-emption, this surrender is valid. Even if the partner subsequently gives up his right, the neighbor will not have the option to claim pre-emption; this is in 'Zakheera'. If a right of pre-emption becomes due for an authorized slave (ma'zun) and he gives it

up, it is valid regardless of whether he has debts or not. If his master (mawla) gives up the pre-emption, it is valid provided the slave is not in debt; if he is in debt, the master's waiver is not valid concerning the slave's right; this is in 'Mabsut'. Giving up the pre-emption of a slave after being forced is not valid, as in Tatarkhaniya. If a Mukatab slave (under a contract of manumission) gives up his right of pre-emption, it is also valid; this is in 'Mabsut'.

If the pre-emptor is informed that the sale was for a certain price, in a certain currency, or to a certain buyer, and he waives his pre-emption, but reality turns out otherwise, is his waiver valid? In issues of this kind, the general principle established is to see whether the pre-emptor's motive for waiving would not have differed in both cases; if the motive remains unchanged, the surrender is valid and pre-emption is void. If the motive would have differed, the surrender is not valid, and the pre-emptor keeps his right; this is in 'Badai'. If the pre-emptor is told the price is a thousand dirhams and he waives pre-emption, then it transpires the price was one hundred dinars whose value is a thousand dirhams, or less, or more; then according to us, if the value of the dinars is less than a thousand dirhams, the pre-emptor keeps his right, otherwise his surrender remains valid; this is in 'Mabsut'. If the pre-emptor is told the buyer is a certain person and he waives pre-emption, then it is discovered the buyer is someone else, the pre-emptor shall have his right. If informed the buyer is Zaid and he waives, but it's found the buyers are Zaid and Amr, then his waiver is valid for Zaid's share, and he has the option to claim pre-emption for Amr's share; this is in 'Jawhara Nayyira'. If informed the price is a thousand dirhams and he waives, meaning "it is up to you to buy it." (2) This is essentially Imam Muhammad's (rh) qiyas (analogy), while Imam Azam's (rh) word is istihsan (legal preference), and it is the preferred choice.

Footnotes: (1) If he purchased it for himself, the pre-emption shall be dropped. (2) Waiver of the right of pre-emption.

**फ़तावा आलमगिरी..... जिल्द 8 (203) किताबुश शुफ़ा**

"...मैं तुमसे सुलह करता हूँ कि इसका शुफ़ा मेरा होगा", तो यह सुलह बातिल (व्यर्थ) है और शुफ़ी (हक़-ए-शुफ़ा रखने वाला) अपने शुफ़ा के हक़ पर बना रहेगा। यह तातारख़ानिया में है। यदि किसी अजनबी ने शुफ़ी से कहा, "मैं आपसे इतने दिरहमों पर इस शर्त पर सुलह करता हूँ कि आप अपना शुफ़ा का हक़ त्याग दें" और शुफ़ी ने इसे स्वीकार कर लिया, तो अजनबी पर वह राशि अनिवार्य नहीं होगी और शुफ़ी का शुफ़ा समाप्त नहीं होगा। यदि शुफ़ी ने विक्रेता से कहा, "मैंने आपकी बिक्री आपके पक्ष में मान ली," या खरीदार से कहा, "मैंने आपकी खरीद आपको दे दी," तो उसका शुफ़ा का हक़ समाप्त हो जाएगा। और यदि किसी अजनबी से कहा, "मैंने इस घर की खरीद आपको दे दी," तो यह कथन शुफ़ा का त्याग नहीं माना जाएगा और उसका शुफ़ा का हक़ समाप्त नहीं होगा, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है।

**शर्त के साथ शुफ़ा त्यागने को जोड़ना (इस्क़ात-ए-शुफ़ा को शर्त के साथ मुअल्लाक़ करना)***

शुफ़ा त्यागने को किसी शर्त से जोड़ना जायज़ नहीं है। अतः यदि शुफ़ी ने कहा, "मैंने इसका शुफ़ा त्याग दिया इस शर्त पर कि आपने इसे अपने लिए खरीदा है," तो (1) यदि उसने किसी और के लिए खरीदा हो, तो शुफ़ा समाप्त नहीं होगा। इसकी अनुमति इसलिए है क्योंकि यह त्याग (2) शर्त पर निर्भर होने की संभावना रखता है, यह वजीज़-ए-कर्दी में है। यदि शुफ़ी ने विक्रेता से कहा, "मैंने इसका शुफ़ा आपको दे दिया बशर्ते आपने इसे अपने लिए अमुक व्यक्ति को बेचा हो," लेकिन विक्रेता ने इसे किसी और के लिए बेचा था, तो शुफ़ी का यह कथन शुफ़ा का समर्पण नहीं माना जाएगा। फ़तावा फ़क़ीह अबुल लैस में है कि यदि शुफ़ी ने खरीदार से कहा, "मैंने इस घर का शुफ़ा आपको दे दिया," फिर पता चला कि खरीदार ने यह घर किसी और के लिए खरीदा था, तो शुफ़ी अपने शुफ़ा के हक़ पर रहेगा। फ़तावा फ़ज़ली में लिखा है कि यह कथन मुवक्किल (प्रतिनिधि) के लिए शुफ़ा का समर्पण है, लेकिन विश्वसनीय मत वही है जो फ़तावा अबुल लैस में वर्णित है; इमाम सद्रुश शहीद ने भी यही उल्लेख किया है। 'हावी' में है कि यदि खरीदार ने शुफ़ी से कहा, "मैंने यह घर अपने लिए खरीदा है," और शुफ़ी ने अपना शुफ़ा त्याग दिया, फिर पता चला कि उसने किसी और के लिए खरीदा था, तो इमाम मुहम्मद (रह.) ने कहा कि उसका शुफ़ा समाप्त हो जाएगा, और इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) ने कहा कि समाप्त नहीं होगा, यह 'मुहीत' में है।

यदि किसी साझीदार (शरीक) की उपस्थिति में पड़ोसी (जार) ने पहले अपना शुफ़ा का हक़ त्याग दिया, तो यह त्याग वैध है, यहाँ तक कि इसके बाद साझीदार ने भी अपना हक़ त्याग दिया, तो पड़ोसी को यह अधिकार नहीं होगा कि वह शुफ़ा का दावा करे, यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि एक अधिकृत गुलाम (माज़ून) के लिए शुफ़ा का हक़ अनिवार्य हुआ और उसने उसे त्याग दिया, तो यह जायज़ है, चाहे उस पर ऋण हो या न हो। यदि उसके स्वामी (मौला) ने वह शुफ़ा त्याग दिया, तो यह तब जायज़ है जब गुलाम पर कोई ऋण न हो; यदि ऋण है, तो स्वामी का त्याग गुलाम के हक़ में मान्य नहीं होगा, यह 'मबसूत' में है। विवश (मजबूर) हो जाने के बाद गुलाम का शुफ़ा त्यागना जायज़ नहीं है, ऐसा ही तातारख़ानिया में है। यदि मुक़ातब (वह गुलाम जिसने अपनी स्वतंत्रता के लिए अनुबंध किया हो) ने अपना शुफ़ा का हक़ त्याग दिया, तो वह भी जायज़ है, यह 'मबसूत' में है।

यदि शुफ़ी को सूचना दी गई कि अमुक मूल्य पर या अमुक मुद्रा में या अमुक खरीदार को बेचा गया है, और उसने शुफ़ा त्याग दिया, फिर वास्तविकता इसके विपरीत निकली, तो क्या उसका त्याग मान्य होगा? इस प्रकार के मामलों में मूल सिद्धांत यह तय किया गया है कि यह देखा जाए कि क्या दोनों स्थितियों में त्याग करने का शुफ़ी का उद्देश्य नहीं बदलता; यदि उद्देश्य नहीं बदलता तो त्याग वैध रहेगा और शुफ़ा समाप्त हो जाएगा, और यदि उद्देश्य बदल जाता है तो त्याग वैध नहीं होगा और शुफ़ा का अधिकार बना रहेगा, यह 'बदाइ' में है। यदि शुफ़ी को बताया गया कि मूल्य एक हज़ार दिरहम है और उसने शुफ़ा त्याग दिया, फिर पता चला कि मूल्य सौ दीनार है जिनकी कीमत एक हज़ार दिरहम है, या एक हज़ार से कम या ज़्यादा है, तो हमारे अनुसार यदि दीनारों की कीमत एक हज़ार दिरहम से कम है तो शुफ़ी का शुफ़ा का हक़ बना रहेगा, अन्यथा उसका त्याग करना मान्य होगा, यह 'मबसूत' में है। यदि शुफ़ी को बताया गया कि खरीदार अमुक व्यक्ति है और उसने शुफ़ा त्याग दिया, फिर पता चला कि वह कोई दूसरा व्यक्ति है, तो शुफ़ी को शुफ़ा का हक़ मिलेगा। और यदि बताया गया कि खरीदार ज़ैद है, शुफ़ा त्याग दिया गया, फिर पता चला कि खरीदार ज़ैद और उम्रू हैं, तो ज़ैद के हिस्से के संबंध में त्याग मान्य होगा और उम्रू के हिस्से में उसे अधिकार होगा कि वह शुफ़ा का दावा करे, यह 'जौहरा नय्यिरा' में है। यदि बताया गया कि मूल्य एक हज़ार दिरहम है और उसने शुफ़ा त्याग दिया, यानी 'तुम्हारी मर्जी है इसे खरीद लो'। (2) यह इमाम मुहम्मद (रह.) का क़ियास (तर्क) है और इमाम आज़म (रह.) का वचन 'इस्तहसान' (सुविधा/वरीयता) है और वही विश्वसनीय है।

पाद टिप्पणियाँ (फ़ुटनोट्स): (1) यदि उसने स्वयं के लिए खरीदा है तो शुफ़ा समाप्त हो जाएगा। (2) हक़-ए-शुफ़ा का त्याग।

سے صلح کرتا ہوں کہ اس کا شفعہ میرا ہو گا تو یہ صلح باطل ہے اور شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر شفیع سے اجنبی نے یوں کہا کہ میں تجھ سے اس قدر درہموں پر اس شرط سے صلح کرتا ہوں کہ تو اپنا حق شفعہ دے دے اور یوں کہا کہ مجھے دے دے اور شفیع نے اس کو قبول کر لیا تو اجنبی پر مال واجب نہ ہوگا اور شفیع کا شفعہ باطل نہ ہو گا اور اگر شفیع نے بائع سے کہا کہ میں نے تیری بیع تجھے تسلیم کر دی یا مشتری سے کہا کہ میں نے تیری خرید تجھے دی تو اس کا حق شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر کسی اجنبی سے کہا کہ میں نے اس دار کی خرید تجھے دے دی تو یہ کلام تسلیم شفعہ نہیں ہے اور اس کا حق شفعہ باطل نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

**اسقاط شفعہ کو شرط کے ساتھ معلق کرنا ***

اسقاط شفعہ کو شرط کے ساتھ معلق کرنا نا جائز ہے چنانچہ اگر شفیع نے یوں کہا کہ میں نے اس کا شفعہ دیا بشرطیکہ تو نے اپنے واسطے خریدا ہو پس (۱) اگر اس نے دوسرے کے واسطے خریدا ہو تو شفعہ باطل نہ ہوگا اور یہ جواز اس واسطے ہے کہ یہ اسقاط (۲) محتمل تعلیق ہوتا ہے یہ وجیز کردی میں ہے اور اگر شفیع نے بائع سے کہا کہ میں نے اس کا شفعہ تجھے دیا بشرطیکہ تو نے اس کو اپنے واسطے فلاں شخص کے ہاتھ فروخت کیا ہو مگر بائع نے اس کو دوسرے کے واسطے فروخت کیا تھا تو شفیع کا یہ کلام تسلیم شفعہ نہ ہوگا۔ فتاویٰ فقیہ ابو اللیث میں ہے کہ اگر شفیع نے مشتری سے کہا کہ میں نے اس دار کا شفعہ تجھے دے دیا پھر یہ بات نکلی کہ مشتری نے یہ دار کسی دوسرے کے واسطے خریدا تھا تو شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا فتاویٰ فضلی میں لکھا ہے کہ یہ کلام موکل کے واسطے تسلیم شفعہ ہے لیکن مختار وہی ہے جو فتاویٰ ابو اللیث میں

مذکور ہے ایسا ہی شیخ صدر الشہید نے ذکر فرمایا اور حاوی میں ہے کہ اگر مشتری نے شفیع سے کہا کہ میں نے یہ دار اپنے واسطے خریدا ہے پس شفیع نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ اس نے دوسرے کے واسطے خریدا تھا تو امام محمد رح نے فرمایا کہ اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اور امام ابو حنیفہ رح نے فرمایا کہ باطل نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر شریک کے ہوتے ہوئے جار (پڑوسی) نے پہلے اپنا حق شفعہ دے دیا تو یہ تسلیم صحیح ہے حتیٰ کہ اس کے بعد شریک نے بھی اپنا حق شفعہ دے دیا تو پڑوسی کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ حق شفعہ میں لے لے یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر غلام ماذون کے واسطے حق شفعہ واجب ہوا اور اس نے شفعہ دے دیا تو جائز ہے خواہ اس پر دین (قرضہ) ہو یا نہ ہو اور اگر اس کے مولیٰ نے یہ شفعہ دے دیا تو جائز ہے بشرطیکہ ماذون پر دین نہ ہو اور اگر ماذون پر دین ہو تو مولیٰ کا دے دینا ماذون غلام کے حق میں جائز نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے اور بعد مجبور ہو جانے کے ماذون کا شفعہ دے دینا جائز نہیں ہے کذا فی التاتارخانیہ اور اگر مکاتب نے اپنا حق شفعہ دے دیا تو بھی جائز ہے یہ مبسوط میں ہے اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ اس قدر ثمن یا اس جنس کے ثمن سے یا فلاں مشتری کے ہاتھ فروخت کیا گیا ہے پس اس نے شفعہ دے دیا پھر اس کے خلاف نکلا پس آیا اس کا دے دینا صحیح ہو گیا سو اس جنس کے مسائل میں اصل یہ قرار پائی ہے کہ دیکھنا چاہئے کہ اگر دونوں حالتوں میں شفیع کی غرض دے دینے میں مختلف نہ ہوتی ہو تو تسلیم صحیح رہے گی اور شفعہ باطل ہو گا اور اگر غرض مختلف ہوتی جاتی ہو تو تسلیم صحیح نہ ہو گی اور شفعہ اپنے شفعہ پر رہے گا یہ بدائع میں ہے۔ اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ ثمن ہزار درہم ہے پس اس نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ ثمن سو دینار ہیں کہ ان کی قیمت ہزار درہم ہے یا ہزار درہم سے کم ہے یا زیادہ ہے تو ہمارے نزدیک اگر دیناروں کی قیمت ہزار درہم سے کم ہو تو شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا ورنہ اس کا تسلیم کرنا صحیح رہے گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ مشتری فلاں شخص ہے پس اس

نے شفعہ دے دیا پھر معلوم ہوا کہ دوسرا شخص ہے تو شفیع کو اس کا شفعہ ملے گا اور اگر خبر دی گئی کہ مشتری زید ہے پس اس نے شفعہ دے دیا پھر معلوم ہوا کہ زید وعمرو ہے تو زید کے حق میں اس کا دے دینا صحیح ہو کر حصہ عمرو میں اس کو اختیار ہو گا چاہے شفعہ میں لے لے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے۔ اگر خبر دی گئی کہ ثمن ہزار درہم ہیں پس اس نے شفعہ دے دیا یعنی تیرا جی چاہے اس کو خرید کر۔ (۲) امام محمد رح کا گویا یہ قیاس ہے و قول امام اعظم رح استحسان ہے اور وہی مختار ہے۔

(۱) اگر اس نے اپنے واسطے خریدا ہے تو شفعہ ساقط ہو جائے گا۔ (۲) اسقاط حق شفعہ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 205 | Kitab ash-Shuf'a (The Book of Pre-emption)**

...gave; then if it turned out to be less than a thousand dirhams, he remains on his right of pre-emption, and if it turned out to be a thousand dirhams or more, his right of pre-emption becomes void; this is mentioned in *Al-Zakheerah*. If the price (*thaman*) was stated to the pre-emptor (*shafi'*) as a measurable (*kaili*) or weighable (*wazni*) item, and he waived his right, but it later became known that the price was a different kind of measurable or weighable item, the pre-emptor retains his right of pre-emption in all cases, whether the actual price is more, less, or equal in value to what was reported. This is in *Al-Muhit*. If the pre-emptor was informed that the price was a valuable item, and it turned out to be a measurable or weighable item, or if he was told the price was a thousand dirhams and it turned out to be a measurable or weighable item, the pre-emptor retains his right in all circumstances. This is in *Khazanat al-Muftin*. If the pre-emptor was informed that the price was a specific valuable item and he waived his right, but it later turned out that the price was a different kind of valuable item (for example, he was told it was a house, but it turned out to be a slave), Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) stated in the book that the pre-emptor retains his right, without providing further detail. Sheikh al-Islam Khawhar Zada remarked that this answer is correct in a situation where the actual value of the price is less than the value reported earlier. If the actual price is equal to or more than the reported value, then the waiver is valid and pre-emption is lost (1). Furthermore, if the pre-emptor was told the price was a slave worth a thousand dirhams or some other similar valuable item (*dhawat al-qiyam* 2), and it later became known that the price was actually in dirhams or dinars, Imam Muhammad stated without detail that the pre-emptor retains his right. Some of our scholars (*Mashayikh*) have said that this ruling applies when the actual price is less than what was reported. If it is equal or more, the ruling is that the pre-emptor does not get the right of pre-emption. Some *Mashayikh* said that unlike the first case, in this (1) scenario, this ruling (2) is absolutely correct. If the pre-emptor was informed that the price was a slave worth a thousand dirhams, and it turned out to be less, he gets pre-emption; if it turned out to be a thousand dirhams or more, he does not. If told the price was a thousand dirhams and he waived, but it turned out to be a valuable item (*dhawat al-qiyam*), he loses the right unless the value of that item is less than a thousand dirhams. This is in *Al-Muhit*. If informed half a property was purchased and he waived, but it turned out the whole was purchased, his right

remains. If informed the whole was purchased and he waived, but only half was purchased, he loses the right. Sheikh al-Islam stated that this applies when the price of the half is equal to the reported price of the whole (e.g., told whole for 1000, half sold for 1000). If not (e.g., told whole for 1000, half sold for 500), his right remains. This is in *Al-Zakheerah*.

---

## If the pre-emptor waived his right for half, it becomes void for the whole. If he claimed pre-emption for half the property, does this act...

1. Type/Category: For example, it was first stated the price is 10 maunds of wheat not grown in the pre-emptor's village, so he waives. Later it emerges the price is 50 maunds of chickpeas abundant in his village; he can then claim pre-emption.
2. Valuable items (*dhawat al-qiyam*): Those items whose liability is satisfied by their price, not by a similar item.
3. This statement is incorrect because there is no difference in price.
4. Valuable items (*dhawat al-qiyam*) for which the liability is only the price... compensation for a mere right is void. (1) In the second case. (2) Which Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) described.

**फ़तावा आलमगिरी ..... खंड 8 | 205 | किताब-अश-शुफ़ा (पूर्वक्रय का अधिकार)**

...दिया, फिर अगर वह एक हज़ार दिरहम से कम निकला तो वह अपने शुफ़ा पर कायम रहेगा, और अगर एक हज़ार दिरहम या उससे अधिक निकला तो उसका शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। यह 'अज़-ज़खीरा' में है। यदि शुफ़ा करने वाले (शफ़ी) को बताया गया कि मूल्य (थमन) कोई मापने वाली (कैली) या तौलने वाली (वज़नी) चीज़ है, और उसने अपना अधिकार छोड़ दिया, फिर ज्ञात हुआ कि मूल्य दूसरी श्रेणी की मापने या तौलने वाली चीज़ है, तो शफ़ी हर हाल में अपने शुफ़ा के अधिकार पर रहेगा, चाहे वह चीज़ मूल्य के लिहाज़ से बताई गई चीज़ से अधिक हो, कम हो या बराबर हो। यह 'अल्-मुहीत' में है। यदि शफ़ी को सूचना दी गई कि मूल्य कोई मूल्यवान चीज़ है, फिर पता चला कि वह कोई मापने या तौलने वाली चीज़ है, या सूचना दी गई कि मूल्य एक हज़ार दिरहम है, फिर पता चला कि मूल्य कोई मापने या तौलने वाली चीज़ है, तो शफ़ी हर हाल में अपने शुफ़ा के अधिकार पर रहेगा। यह 'ख़ज़ानत-अल्-मुफ़्तीन' में है। यदि शफ़ी को सूचना दी गई कि मूल्य अमुक मूल्यवान चीज़ है और उसने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर ज्ञात हुआ कि मूल्य उसके स्थान पर कोई दूसरी मूल्यवान चीज़ है (उदाहरण के लिए बताया गया कि मूल्य एक घर है, फिर पता चला कि एक गुलाम है), तो किताब में इमाम मुहम्मद (रह.) ने यह उत्तर दिया है कि शफ़ी अपने शुफ़ा पर रहेगा और इसमें कोई विस्तार नहीं किया। शेख-अल्-इस्लाम ख़्वाहरज़ादा ने फरमाया कि यह उत्तर उस स्थिति में सही है जब वास्तव में सामने आए मूल्य की कीमत उस मूल्य की कीमत से कम हो जिसकी सूचना पहले दी गई थी। यदि सामने आए मूल्य की कीमत पहले दी गई सूचना के बराबर या अधिक हो, तो पूर्वक्रय का अधिकार समाप्त हो जाएगा (1)। और यदि शफ़ी को बताया गया कि मूल्य एक गुलाम है जिसकी कीमत एक हज़ार दिरहम है या उसके समान कोई 'ज़वात-अल्-क़ियाम' (2) बताई गई, फिर पता चला कि मूल्य वास्तव में दिरहम या दीनार हैं, तो इमाम मुहम्मद (रह.) ने बिना किसी विवरण के फरमाया कि शफ़ी अपने शुफ़ा पर कायम रहेगा। हमारे कुछ मशायख ने फरमाया कि यह उत्तर उस स्थिति पर आधारित है जब सामने आई चीज़ की कीमत उस चीज़ की कीमत से कम हो जिसकी सूचना दी गई थी। यदि कीमत बराबर या अधिक हो, तो आदेश यह है कि शफ़ी को शुफ़ा नहीं मिलेगा। कुछ मशायख ने फरमाया कि पहले मामले के विपरीत इस (1) स्थिति में यह नियम (2) पूरी तरह सही है। यदि शफ़ी को बताया गया कि मूल्य एक गुलाम है जिसकी कीमत एक हज़ार दिरहम है, फिर पता चला कि उसकी कीमत एक हज़ार दिरहम से कम है, तो शफ़ी को शुफ़ा मिलेगा; और अगर एक हज़ार दिरहम या अधिक निकली, तो नहीं मिलेगा। यदि शफ़ी को बताया गया कि मूल्य

एक हज़ार दिरहम है और उसने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर पता चला कि मूल्य 'ज़वात-अल्-क़ियाम' में से कोई चीज़ है, तो शफ़ी को शुफ़ा नहीं मिलेगा, लेकिन यदि उस चीज़ की कीमत एक हज़ार दिरहम से कम हो, तो मिलेगा। यह 'अल्-मुहीत' में है। यदि शफ़ी को बताया गया कि मकान का आधा हिस्सा खरीदा गया है और उसने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर पता चला कि पूरा मकान खरीदा गया है, तो शफ़ी अपने शुफ़ा पर रहेगा। यदि सूचना मिली कि पूरा मकान खरीदा गया है और उसने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर पता चला कि ग्राहक ने केवल आधा मकान खरीदा है, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा। शेख-अल्-इस्लाम ने अपनी व्याख्या में फरमाया कि यह उत्तर तब लागू होता है जब आधे का मूल्य पूरे के मूल्य के बराबर हो। उदाहरण के लिए, सूचना मिली कि पूरा मकान 1000 दिरहम में खरीदा गया और शफ़ी ने अधिकार छोड़ दिया, फिर पता चला कि आधा मकान 1000 दिरहम में खरीदा गया है; तो यही नियम है। लेकिन अगर ऐसा न हो, जैसे सूचना मिली कि पूरा घर 1000 में खरीदा और फिर पता चला कि आधा घर 500 में खरीदा है, तो शफ़ी अपने शुफ़ा पर रहेगा। यह 'अज़-ज़खीरा' में है।

---

## यदि शफ़ी ने आधे में शुफ़ा छोड़ दिया, तो पूरे के लिए समाप्त हो जाएगा; और यदि शफ़ी ने आधे मकान के लिए शुफ़ा का दावा किया, तो क्या यह मामला...

1. किस्म का प्रकार, उदाहरण के तौर पर पहले बताया गया कि मूल्य 10 मन गेहूं है जो शफ़ी के गाँव में नहीं उगते, उसने शुफ़ा छोड़ दिया। बाद में पता चला कि मूल्य 50 मन चने हैं जो शफ़ी के यहाँ बहुत होते हैं, तो वह शुफ़ा का दावा कर सकता है।
2. कीमती, अर्थात वे चीज़ें जिनकी भरपाई केवल कीमत से होती है, समान वस्तु से नहीं।
3. यह कथन सही नहीं है, क्योंकि कीमत में कोई अंतर नहीं है।
4. 'ज़वात-अल्-क़ियाम' जिनकी ज़िम्मेदारी केवल कीमत है... केवल अधिकार के बदले मुआवज़ा देना अमान्य है। (1) दूसरे मसले में। (2) जो इमाम मुहम्मद (रह.) ने वर्णित किया।

---

دیا پھر ہزار درہم سے کم نکلا تو وہ اپنے شفعہ پر رہے گا اور ہزار درہم یا زیادہ نکلا تو اس کا حق شفعہ باطل ہو گیا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر شفیع سے ثمن کوئی کیلی یا وزنی چیز بیان کی گئی پس اس نے شفعہ دے دیا پھر معلوم ہوا کہ ثمن دوسری صنف کی کیلی یا وزنی چیز ہے تو شفیع ہر حال میں اپنے شفعہ پر رہے گا خواہ جو چیز ثمن ظاہر ہوئی ہے وہ ازراہ قیمت اس سے زیادہ ہو یا کم یا برابر ہو یہ محیط میں ہے۔ اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ ثمن کوئی چیز قیمتی چیزوں میں سے ہے پھر ظاہر ہوا کہ کوئی کیلی یا وزنی چیز ہے یا خبر دی گئی کہ ثمن ہزار درہم ہیں پھر معلوم ہوا کہ ثمن کوئی کیلی یا وزنی چیز ہے تو شفیع ہر حال میں اپنے شفعہ پر رہے گا یہ خزانۃ المفتین میں ہے۔ اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ ثمن فلاں چیز قیمتی چیزوں میں سے ہے پس اس نے شفعہ دے دیا پھر معلوم ہوا کہ ثمن اس کے سوائے دوسری چیز قیمتی چیزوں میں سے ہے مثلاً خبر دی گئی کہ ثمن ایک دار ہے پھر معلوم ہوا کہ ثمن ایک غلام ہے تو کتاب میں امام محمدؒ نے یہ جواب فرمایا ہے کہ شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا اور کوئی تفصیل نہیں فرمائی اور شیخ الاسلام خواہر زادہ نے فرمایا کہ یہ جواب ایسی صورت میں صحیح ہے کہ جب اس چیز کی قیمت جو ثمن ظاہر ہوئی ہے اس چیز کی قیمت سے جو خبر دی گئی تھی کم ہو اور اگر اس کی قیمت جو ثمن ظاہر ہوئی اس چیز کی قیمت سے جو خبر دی گئی تھی زیادہ ہو یا برابر ہو تو صحیح ۱؎ ہے اور اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ ثمن ایک غلام ہے جس کی قیمت ایک ہزار درہم ہے یا اور اس کے مانند کوئی چیز ذوات القیم ۲؎ میں سے بیان کی گئی پھر معلوم ہوا کہ اس کا ثمن درہم یا دینار ہیں تو امام محمدؒ نے بغیر تفصیل کے یہ جواب فرمایا ہے کہ شفیع اپنی شفعہ پر رہے گا اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ جواب ایسی صورت پر محمول ہے کہ جب اس چیز کی قیمت جو ظاہر ہوئی ہے اس

کی قیمت سے کم ہو جس کے ثمن ہونے کی شفیع کو خبر دی گئی تھی اور اگر اس کی قیمت سے جو خبر دی گئی تھی زیادہ ہو یا برابر ہو تو حکم یہ ہے کہ شفیع کو شفعہ نہ ملے گا اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ بخلاف مسئلہ اولی کے اس (۱) صورت میں یہ حکم (۲) علی الاطلاق صحیح ہے۔ اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ ثمن ایک غلام ہے جس کی قیمت ہزار درہم ہے پھر ظاہر ہوا کہ اس کی قیمت ہزار درہم سے کم ہے تو شفیع کو شفعہ ملے گا اور اگر ظاہر ہوا کہ اس کی قیمت ہزار درہم یا اس سے زیادہ ہے تو شفعہ نہ ملے گا۔ اگر شفیع کو خبر دی گئی کہ ثمن ہزار درہم ہے پس اس نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ ثمن ذوات القیم میں سے کوئی چیز ہے تو شفیع کو شفعہ نہ ملے گا لیکن اگر اس چیز کی قیمت ہزار درہم ثمن سے کم ہو تو ملے گا۔ یہ محیط میں ہے۔ اگر شفیع کو نصف دار خریدنے کی خبر دی گئی پس اس نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ اس نے کل دار خریدا ہے تو شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا اور اگر شفیع کو پورے دار کے خریدنے کی خبر دی گئی پس اس نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ مشتری نے نصف دار خریدا ہے تو اس کو شفعہ نہ ملے گا اور شیخ الاسلام نے اپنی شرح میں فرمایا کہ یہ جواب ایسی صورت پر محمول ہے کہ جب آدھے کا ثمن پورے کے ثمن کے برابر ہو مثلاً خبر دی گئی کہ اس نے پورا دار ہزار درہم کو خریدا ہے پس شفیع نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ اس نے نصف دار ہزار درہم میں خریدا ہے تو یہی حکم ہے اور اگر ایسا نہ ہو مثلاً اس کو خبر دی گئی کہ مشتری نے پورا دار ہزار درہم میں خریدا ہے پس اس نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ اس نے نصف دار پانچ سو درہم میں خریدا ہے تو شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

## اگر شفیع نے آدھے میں شفعہ دے دیا تو پورے میں باطل ہو جائے گا اور اگر شفیع نے نصف دار شفعہ میں طلب کیا تو آیا یہ امر

۱ـہ صنف قسم مثلاً اول بیان ہوا کہ ثمن گیہوں دس من ہیں اور وہ شفیع کے گاؤں میں پیدا نہیں ہوئے اس نے شفعہ دے دیا پھر نکلا کہ پچاس من چنے ہیں جو شفیع کے یہاں بافراط پیدا ہوئے ہیں تو وہ شفعہ لے سکتا ہے۔ ۲ـہ قیمتی یعنی جن چیزوں کے بدل قیمت ہوتی ہے اور مثل نہیں ہوتا۔ ۳ـہ قول صحیح نہیں اقوال اس وجہ سے کہ قیمت میں فرق نہیں ہے۔ ۴ـہ ذوات القیم جن کی ضمانت فقط قیمت ہے نہ کہ مثل غیر ملائم یعنی شفعہ سے مناسب نہیں ہے محض حق کا معاوضہ باطل ہے۔

(۱) دوسرے مسئلہ میں۔ (۲) جو امام محمدؒ نے بیان فرمایا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (5) 206 Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

There is a disagreement between Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad regarding whether a pre-emption claim can be made for only a part of a house. Imam Abu Yusuf stated that this does not constitute a valid claim for the entire house's pre-emption; this is as mentioned in 'al-Badai' and is the more correct view because it implies accepting half and rejecting the rest. It is neither explicitly nor implicitly valid, according to 'al-Muhit al-Sarkhi'. If a pre-emptor (Shafi) sells a portion—whether it be half, a third, or more—while retaining some, and the part sold is undivided (musha), the pre-emptor retains the right of pre-emption through the remaining portion; this is mentioned in 'Siraj al-Wahaj'. If the pre-emptor claims ownership of the land subject to pre-emption (dar-e-mashfu'ah), stating it belongs to him for reasons other than pre-emption (1), his right of pre-emption is voided. If he claims ownership of the land after having already demanded the right of pre-emption, his claim will not be heard; this is in 'Fatawa Qazi Khan'. If he enters into a settlement (sulh) for some compensation in exchange for his right of pre-emption, the right is voided and the compensation must be returned. This is because the right of pre-emption was established contrary to analogy (qiyas) for the purpose of preventing harm. Therefore, it cannot be legally compensated (i'tiyad). If it is not waived through a valid condition, it certainly won't be through an invalid (fasid) one. For instance, if the pre-emptor says, "I waive my right of pre-emption on what you bought on the condition that you waive yours on what I bought," his right is waived even if the buyer (mushtari) does not waive theirs. Waiving pre-emption for financial gain is an invalid condition because it is irrelevant; such compensation is merely taking payment for a right within the same context. Thus, such an exchange is forbidden (haram) and considered a bribe; this is in 'al-Kafi'. If a person is both a partner (sharik) and a neighbor (jar) and sells the portion through which he held partnership, he still retains the right to claim pre-emption based on being a neighbor; this is in 'al-Badai'. Sheikh Abu Bakr was asked about a pre-emptor who greeted the buyer (salam) before claiming pre-emption. The Sheikh ruled that the right is voided. Layth bin Musawir stated the same. However, Sheikh Ibrahim bin Yusuf ruled it is not voided; this is narrated from Imam Muhammad and is the view we adopt, as per 'al-Hawi', and it is the preferred choice in 'al-Khulasat al-Mufasserat'. If the buyer is standing with his son and the pre-emptor greets the son first before claiming pre-emption, his right is voided. In contrast, if he had greeted the buyer, it would not be voided. If he offers a general greeting like "As-salamu alaykum" such that it is unclear who he

intended, the pre-emptor will be questioned. If he says he greeted the father, the right is not voided; if the son, it is voided. If the buyer and pre-emptor dispute—i.e., the buyer says "You greeted my son, so your right is voided" and the pre-emptor says "I greeted you"—then the pre-emptor's word is accepted; this is in 'al-Zakhirah'. If the pre-emptor is informed of the sale of the house and says "Praise be to Allah, I have surely demanded its pre-emption" or "Glory be to Allah, I have surely demanded its pre-emption"...

**Footnotes:** 1. I'tiyad (compensation), meaning when something is proven against analogy, it remains strictly within its boundaries and does not exceed them, such that compensation for the right of pre-emption is not established. 2. I say, this is our preferred opinion because greeting (salam) is a right before speaking. Thus, greeting first is a religious right, and the delay caused by it is a reasonable excuse (udhr-e-maqool). A reasonable excuse does not void pre-emption by consensus. If someone argues that jurists voided it due to delay for voluntary (nafl) prayers despite it being prayer, the response is that we do not concede the priority of voluntary prayers here because greeting is a confirmed sunnah (mu'akkadah). The discussion is about delay, not personal merit. There is a choice in voluntary acts, is there not? Jurists gave this reason: the delay in greeting is not optional because the Sharia does not mandate greeting after speaking. If you say jurists ruled that greeting the son voids pre-emption, the answer is that according to Sharia, the younger greets the elder, so doing so is not a Sharia-compliant excuse. However, there is room for further research on this issue as the Prophet (PBUH) himself used to greet the younger. Understand this, and Allah knows best. (1) Rather, he claimed ownership for another reason.

पूरे घर के शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) का देना है या नहीं, इसमें इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद के बीच मतभेद है। इमाम अबू यूसुफ़ ने फरमाया कि यह पूरे घर का शुफ़ा देना नहीं है, जैसा कि 'बदाइ' में है और यही अधिक सही है क्योंकि इसमें आधे को स्वीकार करना और शेष को छोड़ना है। न तो स्पष्ट रूप से और न ही परोक्ष रूप से, जैसा कि 'मुहीत सर्खी' में है। यदि शफ़ी (अग्रक्रयाधिकारी) ने अपना आधा, या तिहाई, या आधे से अधिक हिस्सा रखकर कुछ बेच दिया और जो बेचा वह अविभाजित है, तो शफ़ी को शेष हिस्से के माध्यम से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा, यह 'सिराज अल-वहाज' में है। यदि शफ़ी ने उस संपत्ति (दार-ए-मश्फ़ुआ) के क्षेत्रफल का दावा किया कि यह मेरा है, यानी शुफ़ा के कारण नहीं (1), तो उसका शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। और यदि उसने शुफ़ा का दावा करने के बाद संपत्ति के क्षेत्रफल पर अपना दावा किया, तो उसका दावा स्वीकार नहीं किया जाएगा, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। यदि उसने शुफ़ा के अधिकार के बदले किसी वस्तु पर सुलह कर ली, तो शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो गया और उसे वह वस्तु वापस कर देनी चाहिए, क्योंकि शुफ़ा का अधिकार हानि को दूर करने के लिए अनुमान (क़यास) के विरुद्ध सिद्ध हुआ है। इसलिए बदले (एतियाज़) में इसकी वैधता नहीं होगी। यदि यह जायज़ शर्त के साथ समाप्त नहीं होता, तो अनुचित (फासिद) शर्त के साथ तो बिल्कुल नहीं होगा। उदाहरण के लिए, यदि शफ़ी ने कहा कि "तूने जो खरीदा है, उससे मैंने अपना शुफ़ा का अधिकार छोड़ दिया इस शर्त पर कि जो मैंने खरीदा है उससे तू अपना शुफ़ा छोड़ दे," तो शफ़ी का शुफ़ा समाप्त हो जाएगा, भले ही खरीदार (मुश्तारी) उस चीज़ पर अपना शुफ़ा न छोड़े। वित्तीय मुआवज़े के बदले शुफ़ा छोड़ना एक अनुचित शर्त है क्योंकि यह अप्रासंगिक है, क्योंकि यह मुआवज़ा एक ही स्थान पर केवल अधिकार के बदले में लेना है। अतः ऐसा लेना हराम और रिश्वत है, यह 'काफ़ी' में है। यदि शफ़ी साझीदार (शरीक) और पड़ोसी (जार) दोनों हो और उसने अपना वह हिस्सा बेच दिया जिसके कारण उसे शुफ़ा का अधिकार था, तो उसे पड़ोसी होने के कारण शुफ़ा मांगने का अधिकार होगा, यह 'बदाइ' में है। शेख अबू बक्र से पूछा गया कि एक शफ़ी ने पहले खरीदार को सलाम किया फिर शुफ़ा मांगा, तो शेख ने कहा कि उसका शुफ़ा समाप्त हो जाएगा। लैथ बिन मुसाविर ने भी यही कहा है, परंतु शेख इब्राहिम बिन यूसुफ़ ने कहा कि उसका शुफ़ा समाप्त नहीं होगा, यह इमाम मुहम्मद से वर्णित है और हम इसी को अपनाते हैं, जैसा कि 'अल-हावी' में है और यही पसंदीदा विचार है जैसा कि 'अल-खुलासा अल-मुफ़स्सेरात' में है। और यदि खरीदार अपने बेटे के साथ खड़ा हो और शफ़ी ने खरीदार के बेटे को

सलाम किया और फिर शुफ़ा मांगा, तो उसका शुफ़ा समाप्त हो जाएगा। इसके विपरीत यदि उसने खरीदार को सलाम किया होता तो ऐसा नहीं होता। यदि उसने दोनों में से किसी एक को 'अस्सलामु अलैकुम' कहा और यह पता नहीं चला कि किसे सलाम किया, तो शफ़ी से पूछा जाएगा। यदि वह कहे कि बाप को सलाम किया तो शुफ़ा समाप्त नहीं होगा, और यदि कहे कि बेटे को सलाम किया तो समाप्त हो जाएगा। यदि खरीदार और शफ़ी में विवाद हो जाए, यानी खरीदार कहे कि "तूने मेरे बेटे को सलाम किया इसलिए तेरा शुफ़ा समाप्त हो गया" और शफ़ी कहे कि "मैंने तुझे सलाम किया," तो शफ़ी की बात स्वीकार की जाएगी, यह 'ज़खीरा' में है। यदि शफ़ी को घर बिकने की सूचना मिली और उसने कहा "अलहम्दुलिल्लाह, मैंने उसका शुफ़ा मांग लिया" या "सुब्हानअल्लाह, मैंने उसका शुफ़ा मांग लिया," यानी "सब प्रशंसा ईश्वर के लिए है और मैंने निश्चित रूप से इसका शुफ़ा मांगा है" या "पवित्र है ईश्वर और मैंने इसका शुफ़ा मांगा है"...

**पाद-टिप्पणी:** 1. एतियाज़ (मुआवज़ा) अर्थात् जब अनुमान के विरुद्ध कुछ सिद्ध होता है, तो वह केवल अपनी सीमा तक रहता है और उससे आगे नहीं बढ़ता, यहाँ तक कि शुफ़ा के अधिकार का मुआवज़ा लेना सिद्ध नहीं होगा। 2. मैं कहता हूँ कि यही हमारा पसंदीदा मत है, क्योंकि बातचीत से पहले सलाम करना सुन्नत है। अतः पहले सलाम करना शरीअत का हक़ है और उसने सलाम करने के कारण जो देरी की वह एक तर्कसंगत बहाना (उज़्र-ए-मक़ूल) है, और तर्कसंगत बहाने से शुफ़ा समाप्त नहीं होता। यदि कोई कहे कि न्यायविदों ने सुन्नत के अलावा नफ़ल नमाज़ की देरी के कारण शुफ़ा को बातिल (अमान्य) माना है, जबकि वह नमाज़ है, तो उत्तर यह है कि नफ़ल नमाज़ की प्राथमिकता हमें मान्य नहीं है क्योंकि सलाम सुन्नत-ए-मुअक्कदा है। देरी के विषय में चर्चा है, व्यक्तिगत श्रेष्ठता में नहीं। नफ़ल में चयन का अधिकार है, क्या नहीं? न्यायविदों ने यही कारण बताया है कि सलाम में देरी करना वैकल्पिक नहीं है क्योंकि शरीअत में यह नहीं आया कि बातचीत के बाद सलाम करो। यदि आप कहें कि न्यायविदों ने कहा है कि बेटे को सलाम करने से शुफ़ा समाप्त हो जाता है, तो उत्तर यह है कि शरीअत के अनुसार छोटा बड़े को सलाम करता है, अतः यह शरीयत के तरीके पर बहाना नहीं हुआ। हालाँकि इस मसले में भी शोध की गुंजाइश है क्योंकि स्वयं पैग़ंबर (स.अ.व.) छोटों को सलाम करते थे। इसे समझें और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। (1) बल्कि किसी अन्य कारण से अपनी मिल्कियत होने का दावा किया।

---

پورے دار کے شفعہ کا دے دینا ہے یا نہیں سوا اس میں امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے باہم اختلاف کیا ہے پس امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ یہ امر پورے دار کا شفعہ دینا نہیں ہے کذا فی البدائع اور یہی اصح ہے اس واسطے کہ آدھے کی تسلیم چاہتا باقی کا سپرد کرنا نہیں ہے۔ نہ صریحاً نہ دلالتہ یہ محیط سرخی میں ہے۔ اگر شفیع نے اپنا نصف، یا تہائی یا نصف سے زیادہ کچھ باقی رکھ کر فروخت کیا اور جس قدر فروخت کیا وہ غیر مقسوم ہے تو شفیع کو بذریعہ بقیہ کے حقِ شفعہ حاصل ہو گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر شفیع نے دارِ مشفوعہ کے رقبہ کا دعویٰ کیا کہ یہ میرا ہے یعنی بوجہ شفعہ کے نہیں (۱) تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر اس نے حقِ شفعہ طلب کرنے کے بعد دارِ مشفوعہ کے رقبہ کا دعویٰ کیا کہ یہ میرا ہے تو اس کے دعویٰ کی سماعت نہ ہو گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر حقِ شفعہ سے کچھ عوض پر صلح کر لی تو شفعہ باطل ہو گیا اور عوض کو واپس کر دے اس لئے کہ حقِ شفعہ دفعِ ضرر کی غرض سے بخلاف قیاس ثابت ہوا ہے پس حقِ اعتیاض میں اس کا ثبوت ظاہر نہ ہو گا اور شرطِ جائز کے ساتھ ساقط نہیں ہوتا ہے تو فاسد سے بدرجہ اولیٰ نہ ہو گا چنانچہ اگر شفیع نے کہا کہ جو تو نے خریدا ہے اس سے میں نے اپنا حقِ شفعہ ساقط کر دیا اس شرط سے کہ جو میں نے خریدا ہے اس سے تو اپنا حقِ شفعہ ساقط کر دے تو شفیع کا شفعہ ساقط ہو جائے گا اگر چہ مشتری اس چیز سے جس کو شفیع نے خریدا ہے اپنا شفعہ ساقط نہ کرے اور مالی عوض کے ساتھ حقِ شفعہ ساقط کرنا ایک فاسد شرط ہے کیونکہ وہ غیر ملائم ہے اس واسطے کہ یہ عوض ایک محل کے اندر محض حق کے بدلے میں لینا ہے پس ایسا لینا حرام ورشوت ہے یہ کافی میں ہے۔ اگر شفیع شریکِ و جار دونوں ہو اور اس نے اپنا وہ حصہ جس کی شرکت کے ذریعہ سے شفعہ لے سکتا تھا فروخت کر دیا تو اس کو اختیار ہو گا

کہ بوجہ جوار کے شفعہ طلب کرے یہ بدائع میں ہے۔ شیخ ابوبکرؒ سے دریافت کیا گیا کہ ایک شفیع نے پہلے مشتری کو سلام کیا پھر شفعہ طلب کیا تو شیخؒ نے فرمایا کہ اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا ایسا ہی لیث بن مساور نے فرمایا ہے اور شیخ ابراہیم بن یوسفؒ نے فرمایا کہ اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا یہ امام محمدؒ سے مروی ہے اور ہم اسی کو لیتے ہیں کذا فی الحاوی اور یہی مختار ہے کذا فی الخلاصہ المفصرات اور اگر مشتری اپنے بیٹے کے ساتھ کھڑا ہو اور شفیع نے مشتری کے بیٹے کو سلام کر کے پھر شفعہ طلب کیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا بخلاف اس کے اگر مشتری کو سلام کیا تو ایسا نہیں ہے اور اگر اس نے دونوں میں ایک کو اس طرح سلام کیا کہ السلام علیک اور یہ معلوم نہیں ہوتا کہ اس نے کس کو سلام کیا تو شفیع سے دریافت کیا جائے گا کہ تو نے باپ کو سلام کیا یا بیٹے کو پھر اگر اس نے کہا کہ میں نے باپ کو سلام کیا تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا اور اگر اس نے کہا کہ بیٹے کو سلام کیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا۔ اگر مشتری و شفیع نے اختلاف کیا یعنی مشتری نے کہا کہ تو نے میرے بیٹے کو سلام کیا پس تیرا شفعہ باطل ہو گیا اور شفیع نے کہا کہ میں نے تجھے سلام کیا ہے تو شفیع کا قول قبول ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر شفیع کو دار فروخت ہونے کی خبر دی گئی اور اس نے کہا کہ (الحمد للہ فقد ادعیت شفعتھا او سبحان اللہ فقد ادعیت شفعتھا) یعنی سب تعریف خدا تعالیٰ کو سزا وار ہے اور میں نے ضرور اس کا شفعہ طلب کیا یا پاک ہے خداوند تعالیٰ اور میں نے ضرور اس کا شفعہ طلب کیا...

**حواشی:** ۱ اعتیاض یعنی جب خلاف قیاس کے ثبوت ہوا تو فقط اپنی حد پر رہے گا اور اس سے زیادہ تجاوز نہ کرے گا حتی کہ حق شفعہ کا معاوضہ کرنا ثبوت نہ ہوگا۔ ۲ اقول یعنی یہی ہمارا مختار ہے اس واسطے کہ سلام کرنا حقِ سلام قبل الکلام ہے تو پہلے سلام کرنا حقِ شرع ہے تو اس نے جانب میں عذر معقول تاخیر کی اور عذر معقول سے بالاتفاق شفعہ باطل نہیں ہوتا اگر کوئی کہے کہ فقہاء نے سنتوں کے سوائے نفل نماز کی تاخیر سے باطل کیا حالانکہ وہ نماز ہے ۔ جواب

یہ کہ نماز نفل کا اولیٰ ہونا ہم کو مسلم نہیں ہے کیونکہ سلام سنت مؤکدہ ہے اس کے بیان تو تاخیر میں گفتگو ہے ۔ ذاتی فضیلت میں بحث نہیں ہے تو نوافل میں اختیار خیر حاصل ہے کیا نہیں دیکھئے کہ فقہاء نے یہی علت بتلائی کہ وہ جو اختیار کے اس نے تاخیر کی سلام میں یہ اختیار حاصل نہیں کیونکہ شرع میں نہیں آیا کہ بعد کلام کے سلام کرو اگر کہو کہ فقہاء نے کہا کہ اگر فرزند کو سلام کیا تو شفعہ باطل ہوا جواب یہ کہ بایں اس وجہ سے شرعاً چھوٹا بڑے کو سلام کرے تو طریقہ شرعی پر عذر نہ ہوا حالانکہ اس مسئلہ میں بھی تحقیق کو گنجائش ہے اس واسطے کہ آنحضرت صلی اللہ علیہ وسلم خود چھوٹوں کو سلام فرماتے تھے فافہم واللہ تعالیٰ اعلم۔ (۱) بلکہ اور سبب سے اپنی ملک ہونے کا دعویٰ کیا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 207 | Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

According to the narration of Imam Muhammad (RA), the pre-emptor (*shafi*) retains his right of pre-emption (*shufa*); this is as stated in *Al-Badai'*. If the pre-emptor, upon hearing about the sale, says, "Alhamdulillah, I certainly demand its pre-emption," his right is not invalidated according to the preferred legal opinion (*madhab-e-mukhtar*); this is mentioned in *Wajeez Kardaari*. Al-Natiqi stated that phrases like "SubhanAllah" (Glory be to Allah), "Kaifa Asbahta" (How did you pass the morning?), or "Kaifa Amsaita" (How was your evening?) used before demanding pre-emption do not invalidate the right. By analogy, it is said that if the pre-emptor meets the purchaser and says, "May Allah prolong your life," and then demands pre-emption, his right is not invalidated. This is mentioned in *Al-Zahiriyya*. Similarly, if he says, "Pre-emption (1) was my intention/desire," he retains his right; this is in *Al-Dhakhira*. However, if he requests a favor from the purchaser or presents a personal need to him and only then demands pre-emption, his right will be forfeited. Likewise, if he inquires about the price of the sold property from the purchaser and, after being told, demands pre-emption, his right is forfeited; this is in *Al-Mudmarat*. If a property is sold and the seller or purchaser asks the pre-emptor to release them from any existing dispute, and the pre-emptor agrees without knowing that he has an accrued right of pre-emption against them, then in legal judgment (*hukm-e-qaza*), he will not be granted pre-emption (2). However, between him and Allah Almighty, his right remains, provided that if he had known the facts, he would not have waived his right; this is in *Al-Muheet*.

If the pre-emptor was in prayer when informed of the sale and completed the prayer, then if it was an obligatory (*fard*) prayer, his pre-emption is not invalidated. The same applies to a necessary (*wajib*) prayer or a regular sunnah (*sunnan-e-ratiba*) prayer, as these are treated like *wajib* prayers. This holds whether the sunnah prayer is two or four units (*rak'ats*), such as the four *rak'ats* before the Zuhr prayer. Even if informed after two *rak'ats* and he completes all four from the middle sitting position (*qa'da*), his right is not forfeited because both sets of two *rak'ats* are treated like one *wajib* prayer; this is in *Al-Badai'*. It is written in *Fatawa Abu al-Layth* and *Waqi'at-e-Natiqi* that if informed during a voluntary (*tatawwu*) prayer (3) and he completes the two or four units, according to Imam Muhammad (RA), his right is not forfeited. However, Sheikh Sadr al-Shaheed stated that the preferred view is that it is invalidated because the pre-emptor is not considered excused (4) in this case; this is in *Al-Dhakhira*, *Al-Muheet*, *Al-Mudmarat*, and *Al-Kubra*. In *Fatawa Ahu*, it is stated that if informed during the

Friday sermon (*khutbah*) and he did not demand pre-emption until the Imam finished the prayer, then if he was close enough to hear the sermon, his right is not forfeited; otherwise, there is a scholarly disagreement (A) about it. If informed during the final sitting of the prayer and he did not demand it until he completed the entire supplication "Allahumma Rabbana Atina..." and offered the salutations (*salam*), his pre-emption is invalidated; this is in the 11th chapter of *Tatar-Khaniya* regarding the invalidators of pre-emption. It is written in *Al-Nawazil* that if informed at a time when he intended to join the congregational prayer with the Imam and did not go to demand pre-emption, his right (A) is invalidated. This is in the 13th chapter of *Tatar-Khaniya*.

---

**A:** It is stated that there is a disagreement, but the correct view is that whether one hears the Friday sermon or not, silence is mandatory, so the right of pre-emption is not forfeited. **A:** It is stated that this narration is weak because the congregation is among the emphasized sunnahs (*sunnan-e-mu'akkada*), and some consider it mandatory, so failing to join is not an acceptable excuse. (1) Pre-emption is mine; I demanded and obtained it. (2) Before Allah, religiously (*diyanatan*), his right of pre-emption is not invalidated. (3) Specifically, two *rak'ats* of voluntary prayer other than the sunnah. (4) There is no excuse for delaying the demand for pre-emption.

**फ़तावा आलमगिरी ..... जिल्द 8 | 207 | किताबुश-शुफ़ा (प्रिमशन की पुस्तक)**

इमाम मुहम्मद (रह.) की रिवायत के अनुसार, शफ़ी (शुफ़ा का अधिकार रखने वाला) अपने शुफ़ा के अधिकार पर बना रहेगा, जैसा कि 'बदाई' में वर्णित है। यदि शफ़ी ने बिक्री के बारे में सुनकर कहा, "अल्हम्दुलिल्लाह, मैंने निश्चित रूप से इसका शुफ़ा माँगा है," तो प्रामाणिक मत (मज़हब-ए-मुख़्तार) के अनुसार उसका शुफ़ा निरस्त नहीं होगा; यह 'वजीज़ कर दरी' में उल्लेखित है। नातिक़ी ने फ़रमाया कि "सुब्हानअल्लाह" (अर्थात अल्लाह पवित्र है), "कैफ़ असबहत" (अर्थात सुबह कैसी रही?), या "कैफ़ अमसैत" (अर्थात शाम कैसी रही?) जैसे वाक्यों को कहकर शुफ़ा माँगने की स्थिति में जो नियम बताया गया है, उसी के आधार पर यह कहा जाता है कि यदि खरीदार (मुश्तरी) से मिलते समय शफ़ी ने कहा, "अल्लाह आपकी आयु लंबी करे," और फिर शुफ़ा माँगा, तो उसका शुफ़ा निरस्त नहीं होगा। जैसा कि 'ज़हीरिया' में है। इसी प्रकार, यदि उसने कहा कि "शुफ़ा (1) मेरा उद्देश्य था, मैंने इसे चाहा," तो भी शफ़ी अपने शुफ़ा पर बना रहेगा; यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि उसने खरीदार से अपनी किसी आवश्यकता का निवेदन किया या उसके सामने कोई माँग रखी और फिर शुफ़ा माँगा, तो उसका शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। और यदि उसने खरीदार से बिकी हुई संपत्ति की क़ीमत पूछी और उसके बताने के बाद शुफ़ा माँगा, तो उसका शुफ़ा निरस्त हो जाएगा; यह 'मुज़मरात' में है। यदि कोई घर बेचा गया और विक्रेता या खरीदार ने शफ़ी से कहा कि "तुम हमें अपनी हर उस शत्रुता से मुक्त कर दो जो तुम्हारी हमारी ओर हो," और शफ़ी ने ऐसा ही किया, जबकि उसे यह ज्ञात नहीं था कि उनकी ओर उसका शुफ़ा का अधिकार अनिवार्य हो चुका है, तो कानूनी निर्णय (हुक्म-ए-क़ज़ा) में उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा (2), परंतु उसके और अल्लाह के बीच उसे शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा, बशर्ते कि यदि उसे वास्तविकता का पता होता तो वह शुफ़ा का त्याग न करता; यह 'मुहीत' में है।

यदि शफ़ी नमाज़ पढ़ रहा था और उसे बिक्री की सूचना मिली, और उसने नमाज़ पूरी कर ली, तो यदि वह फ़र्ज़ नमाज़ थी तो उसका शुफ़ा निरस्त नहीं होगा। यही नियम वाजिब नमाज़ के लिए भी है, और यदि सुन्नत हो तब भी यही नियम है, क्योंकि ये 'सुनन-ए-रातबा' (नियमित सुन्नतें) वाजिब नमाज़ के समकक्ष मानी जाती हैं। चाहे वह सुन्नत नमाज़ दो रकात हो या चार, जैसे ज़ुहर से पहले की चार रकात सुन्नत होती हैं; यहाँ तक कि यदि दो रकात के बाद उसे सूचना मिली और उसने बीच के क़ादा से उठकर दूसरी दो रकात मिला लीं, तो भी उसका शुफ़ा निरस्त नहीं होगा, क्योंकि ये दोनों दो-दो रकात एक वाजिब नमाज़ के समान हैं; यह 'बदई' में है। 'फ़तावा अबुल लैस' और 'वाक़ियात-ए-

नातिक़ी' में लिखा है कि यदि नमाज़-ए-नफ़्ल (ततव्वु) (3) के दौरान शफ़ी को सूचना मिली और उसने वह दो या चार रकात पूरी कर लीं, तो इमाम मुहम्मद (रह.) से रिवायत है कि उसका शुफ़ा का अधिकार निरस्त नहीं होगा, परंतु शेख सदरुश-शहीद ने फ़रमाया कि प्रामाणिक मत यह है कि निरस्त हो जाएगा, क्योंकि इस स्थिति में शफ़ी मजबूर (4) नहीं है; यह 'ज़ख़ीरा', 'मुहीत', 'मुज़मरात' और 'कुबरा' में उल्लेखित है। 'फ़तावा आहू' में लिखा है कि यदि शफ़ी को खुतबे के समय बिक्री की सूचना मिली और उसने तब तक माँग नहीं की जब तक इमाम नमाज़ से फ़ारिग नहीं हुआ, तो यदि वह इमाम के इतना समीप हो कि खुतबा सुन सके तो उसका शुफ़ा निरस्त नहीं होगा, अन्यथा विद्वानों में मतभेद (अ) है। यदि शफ़ी को नमाज़ के अंतिम क़ादा में सूचना मिली और उसने पूरी दुआ "अल्लाहुम्मा रब्बना आतिना..." समाप्त करने और सलाम फेरने तक माँग नहीं की, तो उसका शुफ़ा निरस्त हो गया; यह 'तातारख़ानिया' के ग्यारहवें अध्याय 'मुबतिल-ए-शुफ़ा' में है। 'नवाज़िल' में लिखा है कि यदि शफ़ी को ऐसे समय सूचना मिली जब वह जमात में सम्मिलित होना चाहता था और वह शुफ़ा माँगने नहीं गया, तो उसका शुफ़ा (अ) निरस्त हो जाएगा। यह 'तातारख़ानिया' के तेरहवें अध्याय में है।

---

**अ:** कहा गया है कि मतभेद है, परंतु सही मत यह है कि जुमे का खुतबा सुनने या न सुनने की स्थिति में मौन रहना अनिवार्य है, इसलिए शुफ़ा निरस्त नहीं होगा। **अ:** कहा गया है कि यह रिवायत कमज़ोर है, क्योंकि जमात में सम्मिलित होना 'सुनन-ए-मुअक्कदा' है, बल्कि कुछ के अनुसार वाजिब है, अतः न जाना स्वीकार्य नहीं है। (1) शुफ़ा मेरा है, मैंने माँगा और प्राप्त किया। (2) अल्लाह के समक्ष धार्मिक दृष्टि से उसका शुफ़ा निरस्त नहीं होगा। (3) मुख्य रूप से दो रकात नफ़्ल, सुन्नत के अतिरिक्त। (4) शुफ़ा माँगने में कोई विवशता मान्य नहीं होती।

تو امام محمدؒ کی روایت میں شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا کذا فی البدائع۔ شفیع نے بیع کا حال سن کر کہا کہ الحمدللہ میں نے ضرور اس کا شفعہ طلب کیا تو مذہب مختار کے موافق اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا یہ وجیز کر دری میں ہے۔ ناطقی نے فرمایا کہ سبحان اللہ یعنی پاک ہے خدا تعالیٰ یا کیف اصبحت یعنی شب بغیر گزری یا کیف امسیت یعنی اچھی طرح گزارا ان اقوال کو کہہ کر شفعہ طلب کرنے کی صورت میں جو حکم ذکر فرمایا ہے اس پر قیاس کر کے کہا جاتا ہے کہ اگر مشتری سے ملنے کے وقت شفیع نے کہا کہ خدا تیری عمر دراز کرے پھر شفعہ طلب کیا تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا۔ کذا فی الظہیر یہ۔ اسی طرح اگر کہا کہ شفعہ (۱) مرادست خواستم دیلقہ تو بھی شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر مشتری سے اپنی حاجتوں کی درخواست کی یا مشتری کے سامنے کوئی حاجت پیش کی پھر شفعہ طلب کیا تو اس کا حق شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر مشتری سے دار مبیعہ کا ثمن دریافت کر کے اس کے بتلانے کے بعد پھر شفعہ طلب کیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا یہ مضمرات میں ہے۔ ایک دار فروخت کیا گیا پھر بائع یا مشتری نے شفیع سے بات کہی کہ تو اپنی ہر خصومت سے جو تیری ہماری طرف ہو ہم کو بری کر دے پس شفیع نے ایسا ہی کیا حالانکہ اس کو یہ نہیں معلوم ہے کہ ان کی طرف میرا حق شفعہ واجب ہوا ہے تو حکم قضاء میں اس کو شفعہ نہ ملے گا (۲) مگر فیما بینہ و بین اللہ تعالیٰ اس کو شفعہ ملے گا بشرطیکہ ایسی صورت ہو کہ اگر شفیع کو اس کا حال معلوم ہو جاتا تو وہ شفعہ سے بری نہ کرتا یہ محیط میں ہے۔

اگر شفیع نماز میں تھا کہ اس کو بیع کی خبر دی گئی پس اس نے نماز پوری کر لی پس اگر یہ نماز فرض ہو تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا اسی طرح اگر واجب ہو تو بھی یہی حکم ہے اور اگر سنت

ہو تو بھی یہی حکم ہے اس لئے کہ یہ سنن راتبہ نماز واجب کے معنی میں ہیں۔ خواہ نماز سنت دو رکعت ہو یا چار رکعت ہو جیسے نماز ظہر سے پہلے کی چار رکعتیں سنت ہوتی ہیں حتیٰ کہ اگر دو رکعت پڑھنے کے بعد اس کو خبر دی گئی پس اس نے بیچ کے قعدہ سے اٹھ کر اس میں دوسرا دو گانہ ملا کر چار پوری کرلیں تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا اس لئے کہ یہ دونوں دو گانہ بمنزلہ ایک نماز واجب کے ہیں یہ بدائع میں ہے۔ فتاویٰ ابو الیث و واقعات ناطقی میں لکھا ہے کہ اگر نماز (۳) تطوع میں شفیع کو بیع سے آگاہی حاصل ہوئی پس اس نے یہ دو گانہ پورا رکعت یا چار رکعت کر لیا تو امام محمدؒ سے روایت ہے کہ اس کا حق شفعہ باطل نہ ہو گا اور شیخ صدر الشہید نے فرمایا کہ مذہب مختار یہ ہے کہ باطل ہو جائے گا اس واسطے کہ شفیع معذور نہیں (۴) ہے یہ ذخیرہ و محیط و مضمرات و کبریٰ میں ہے۔ فتاویٰ آہو میں لکھا ہے کہ شفیع کو وقت خطبہ کے بیع کی خبر دی گئی پس اس نے طلب نہ کیا یہاں تک کہ امام نماز سے فارغ ہوا پس اگر شفیع امام سے اس قدر قریب ہو کہ خطبہ کو سنتا ہو تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا ورنہ اس میں مشائخ کا اختلاف ا ہے۔ اگر شفیع کو ختم نماز کے قعدہ اخیر میں خبر دی گئی پس اس نے طلب نہ کیا یہاں تک کہ تمام دعا اللہم ربنا آتنا فی الدنیا والآخرۃ حسنہ ختم کر کے پھر سلام پھیرا تو اس کا شفعہ باطل ہو گیا یہ تاتارخانیہ کی گیارھویں فصل مبطل شفعہ میں ہے۔ نواز میں لکھا ہے کہ اگر شفیع کو ایسے وقت خبر ملی کہ وہ امام کے ساتھ جماعت کی نماز شروع کرنا چاہتا تھا پس وہ شفعہ طلب کرنے کے واسطے نہ گیا تو اس کا شفعہ ع باطل ہو جائے گا۔ یہ تاتارخانیہ کی تیرھویں فصل میں ہے۔

---

ا قولہ اختلاف ہے اور صحیح قول یہ ہے کہ جمعہ کا خطبہ سنتا ہو یا نہ سنتا ہو اس پر سکوت واجب ہے تو شفعہ باطل نہ ہو گا۔ ع قولہ یہ روایت ضعیف ہے اس لیے کہ جماعت سنن موکدہ میں سے ہے بلکہ بعض کے نزدیک واجب ہے تو نہ جانا طر مقبول ہے۔ (۱) شفعہ میرا ہے میں نے

طلب کیا اور پایا۔ (۲) اللہ کے نزدیک دیا نتاً اس کا حق شفعہ باطل نہ ہو گا۔ (۳) اصلی دو رکعت نفل سوائے سنت کے۔ (۴) شفعہ مانگنے میں معذور نہیں ہوتا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 208 Kitab-ush-Shufa (Book of Pre-emption)**

## Chapter Ten: Regarding testimony in matters of pre-emption and the occurrence of disputes between the pre-emptor (Shafi'), the buyer (Mushtari), and the seller (Ba'i).

Any dispute arising between the pre-emptor and the buyer will relate either to the price (thaman) or the item sold (mabi'). Disputes relating to the price fall into three categories: a dispute regarding the currency/kind (jins) of price, the amount of price, or the quality of price. If the dispute is about the kind of price—for example, the buyer claims he bought it for one hundred dinars and the pre-emptor claims it was bought for one thousand dirhams—the buyer's statement will be accepted because the buyer is more knowledgeable about the kind of price paid. Therefore, his statement is referred to in determining the kind. This is stated in 'Bada'i'. If the pre-emptor and the buyer dispute the amount of the price, the buyer's word is accepted, and an oath will not be administered to either. If both produce their respective witnesses, then according to Imam Azam (RA) and Imam Muhammad (RA), the pre-emptor's witnesses will be accepted, while Imam Abu Yusuf (RA) stated that the buyer's witnesses should be accepted. If the buyer claims a certain price and the seller claims a lower price, and the seller has not yet taken possession of the price, the pre-emptor will take the item for the price stated by the seller. This will be considered as if the seller has reduced the price for the buyer. If the seller claims a higher price than the buyer's claim, both shall be required to take an oath, and then both can rescind the sale. If one of them refuses to take the oath, the amount claimed by the other will be established. Thus, the pre-emptor will take it at that amount in pre-emption. If both take an oath, the judge (Qazi) will annul the sale between them, and the pre-emptor can take the item based on the seller's statement (1). If the seller has already received the price, the pre-emptor may take the item for the amount stated by the buyer, and no regard will be given to the seller's statement. If the payment is not evident and the seller says, "I sold this house for one thousand dirhams and received the price," the pre-emptor can take it for one thousand dirhams. If he says, "I have taken possession of the price and it is one thousand dirhams," his statement will not be disregarded; this is in 'Hidayah'. If a house was bought in exchange for goods ('ard) (2) and before mutual possession, those goods were destroyed, or the buyer took possession of the house but the goods were not handed over to the seller and were destroyed, or the sale between buyer and seller was canceled (3) such that the pre-emptor's right to take the property for the value of

the goods remained, and then the buyer and seller disputed the value of those goods, the seller's statement under oath will be accepted. If one of them produces witnesses, his witnesses will be accepted. If both produce witnesses, then according to Imam Azam and Imam Muhammad, the seller's witnesses will be accepted, and this is also the opinion of Imam Abu Yusuf. If the buyer demolished the building of the house such that the portion of the price corresponding to the value of the building was waived for the pre-emptor, and then they disputed the value of the building while agreeing that the vacant land's value is one thousand dirhams, or they disputed the value of both building and land: if the dispute is only about the building's value, the buyer's statement under oath is accepted. If they dispute both, the land's value will be estimated, and the buyer's statement regarding the building's value will be accepted. If one of them brings witnesses, they will be accepted. If both bring witnesses, Imam Abu Yusuf said that some manuscripts state an oath will be taken from both. 1. Al-Asahhu fal-Manhum 2. Az-Zahir Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad 3. Az-Zahir Imam Azam. (1) The amount stated by the seller. (2) Assets or goods other than cash price. (3) For example, rescission (Iqala) took place.

## अध्याय दस: शुफ़ा के मामले में गवाही और शुफ़ई (हक़-ए-शुफ़ा रखने वाला), मुश्तरी (खरीदार) और बा'ई (विक्रेता) के बीच विवाद होने के विवरण में

शुफ़ई और मुश्तरी के बीच जो विवाद होगा, वह या तो मूल्य (थमन) से संबंधित होगा या बेची गई वस्तु (मबी') से संबंधित। जो विवाद मूल्य से संबंधित है, वह तीन स्थितियों से बाहर नहीं: या तो मूल्य की मुद्रा (जिंस) में विवाद होगा, या मूल्य की मात्रा में, या मूल्य के गुणों में। यदि विवाद मूल्य की मुद्रा में हो, उदाहरण के लिए मुश्तरी ने कहा कि मैंने सौ दीनार में खरीदा है और शुफ़ई ने कहा कि हज़ार दिरहम में खरीदा है, तो मुश्तरी का बयान स्वीकार किया जाएगा क्योंकि मूल्य की मुद्रा की पहचान में मुश्तरी शुफ़ई से अधिक जानकारी रखता है। अतः मुद्रा के निर्धारण में उसी के कथन की ओर रुजू किया जाएगा। यह 'बदाए' में दर्ज है। यदि शुफ़ई और मुश्तरी ने मूल्य की मात्रा में विवाद किया, तो मुश्तरी का बयान स्वीकार्य होगा और दोनों से शपथ नहीं ली जाएगी। यदि दोनों ने अपने-अपने गवाह पेश किए, तो इमाम आज़म (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार शुफ़ई के गवाह स्वीकार किए जाएंगे, जबकि इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) ने फरमाया कि गवाह मुश्तरी के ही स्वीकार होंगे। यदि मुश्तरी ने मूल्य की एक निश्चित राशि का दावा किया और बा'ई (विक्रेता) ने उससे कम मूल्य का दावा किया और स्थिति यह है कि विक्रेता ने अभी तक मूल्य प्राप्त नहीं किया है, तो शुफ़ई उस वस्तु को उसी मूल्य पर ले लेगा जिसका विक्रेता ने उल्लेख किया है। इसे इस तरह माना जाएगा कि विक्रेता ने खरीदार के हिस्से से मूल्य घटा दिया है। यदि विक्रेता ने खरीदार के दावे से अधिक मूल्य का दावा किया, तो दोनों से शपथ ली जाएगी, फिर दोनों सौदे को निरस्त कर देंगे। यदि दोनों में से किसी ने शपथ से इनकार किया, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि मूल्य की मात्रा वही है जो दूसरा कह रहा है। अतः शुफ़ई उसी मूल्य पर शुफ़ा का अधिकार प्राप्त कर लेगा। यदि दोनों शपथ ले लें, तो काज़ी (न्यायाधीश) दोनों के बीच का विक्रय निरस्त कर देगा और शुफ़ई उस वस्तु को विक्रेता के बयान (1) के आधार पर ले सकता है। यदि विक्रेता मूल्य प्राप्त कर चुका हो, तो शुफ़ई उस वस्तु को उस मूल्य पर ले सकता है जिसे मुश्तरी (खरीदार) ने बताया है, और विक्रेता के बयान पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। यदि मूल्य का भुगतान स्पष्ट नहीं है और विक्रेता ने कहा कि मैंने यह घर हज़ार दिरहम में बेचकर मूल्य प्राप्त कर लिया है, तो शुफ़ई इसे हज़ार दिरहम के बदले ले सकता है। यदि उसने इस प्रकार कहा कि मैंने मूल्य प्राप्त कर लिया है और वह हज़ार दिरहम है, तो उसके कथन पर ध्यान नहीं दिया जाएगा, यह 'हिदाया' में वर्णित है। यदि कोई घर किसी वस्तु (अ़रज़) (2) के बदले खरीदा गया

और अभी आपसी कब्ज़ा नहीं हुआ था कि वह वस्तु नष्ट हो गई, या खरीदार ने घर पर कब्ज़ा कर लिया था लेकिन वस्तु विक्रेता को नहीं सौंपी थी और वह नष्ट हो गई, या विक्रेता और खरीदार के बीच सौदा इस तरह रद्द (3) हो गया कि शुफ़ई का उक्त वस्तु के मूल्य के बदले शुफ़ा लेने का अधिकार शेष रह गया, फिर विक्रेता और खरीदार ने उक्त वस्तु के मूल्य पर विवाद किया, तो शपथ के साथ विक्रेता का कथन स्वीकार्य होगा। यदि दोनों में से किसी ने गवाह पेश किए, तो उसके गवाह स्वीकार होंगे। यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो इमाम आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार विक्रेता के गवाह स्वीकार होंगे और यही इमाम अबू यूसुफ़ का भी मत है। यदि खरीदार ने घर की इमारत गिरा दी जिससे शुफ़ई के जिम्मे मूल्य से इमारत की कीमत के बराबर राशि कम हो गई, फिर दोनों ने इमारत की कीमत पर विवाद किया और इस बात पर सहमति बनी कि खाली मैदान की कीमत हज़ार दिरहम है, या इमारत और मैदान दोनों की कीमत में विवाद हुआ। यदि केवल इमारत की कीमत में विवाद है, तो शपथ के साथ खरीदार का बयान स्वीकार होगा। यदि इमारत और मैदान दोनों की कीमत में विवाद है, तो मैदान की कीमत का अनुमान लगाया जाएगा और इमारत की कीमत के मामले में खरीदार का बयान स्वीकार्य होगा। यदि दोनों में से एक ने गवाह दिए, तो उसके गवाह स्वीकार होंगे। यदि दोनों ने गवाह दिए, तो इमाम अबू यूसुफ़ ने फरमाया कि कुछ प्रतियों में लिखा है कि अन्यथा दोनों से शपथ ली जाएगी। 1. अल-असहु फल-मनहुम 2. अज़-ज़ाहिर इमाम अबू यूसुफ़ व इमाम मुहम्मद 3. अज़-ज़ाहिर इमाम आज़म। (1) जितना विक्रेता ने मूल्य बताया था। (2) नकद राशि के अलावा अन्य संपत्ति या वस्तुएं। (3) उदाहरण के लिए सौदा आपसी सहमति से रद्द (इक़ाला) हो गया।

---

## باب دہم: شفعہ کے معاملہ میں گواہی اور شفیع ومشتری وبائع کے درمیان اختلاف واقع ہونے کے بیان میں

شفیع و مشتری کے درمیان جو اختلاف واقع ہو وہ یا ثمن کی طرف راجع ہوگا یا مبیع کی طرف راجع ہو گا پس جو اختلاف ثمن کی طرف راجع ہو وہ تین حال سے خالی نہیں یا جنس ثمن میں اختلاف ہوگا یا مقدار ثمن میں یا صفت ثمن میں۔ پس اگر جنس ثمن میں اختلاف ہو مثلاً مشتری نے کہا کہ میں نے سو دینار کو خریدا ہے اور شفیع نے کہا کہ ہزار درہم کو خریدا ہے تو قول مشتری کا قبول ہو گا کیونکہ جنس ثمن کے پہچاننے میں شفیع سے مشتری زیادہ ہے پس جنس کے دریافت میں اس کے قول کی طرف رجوع کیا جائے گا۔ یہ بدائع میں ہے۔ اگر شفیع و مشتری نے ثمن میں اختلاف کیا تو مشتری کا قول قبول ہو گا اور دونوں سے باہم قسم نہ لی جائے گی۔ اگر دونوں نے اپنے اپنے گواہ قائم کئے تو امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک شفیع کے گواہ قبول ہوں گے اور امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ گواہ بھی مشتری کے قبول ہوں گے۔ اگر مشتری نے کسی قدر ثمن کا دعویٰ کیا اور بائع نے اس سے کم ثمن کا دعویٰ کیا اور حال یہ ہے کہ بائع نے ہنوز ثمن پر قبضہ نہیں کیا ہے تو شفیع اس مبیع کو بعوض اس قدر ثمن کے جس کو بائع بیان کرتا ہے لے لے گا اور اس قدر کی یوں قرار دی جائے گی کہ بائع نے مشتری کے ذمہ سے گھٹا دی ہے اور اگر بائع نے دعویٰ مشتری سے زیادہ ثمن کا دعویٰ کیا تو دونوں سے قسم لی جائے گی پھر دونوں بیع پھیر لیں گے اور اگر دونوں میں سے کسی نے قسم سے انکار کیا تو ظاہر ہو جائے گا کہ ثمن کی مقدار اسی قدر ہے جس قدر دوسرا کہتا ہے۔ پس شفیع اسی قدر پر شفعہ میں لے لے گا اور اگر دونوں نے قسم کھا لی تو قاضی دونوں کے درمیان بیع فسخ کر دے گا اور شفیع اس مبیع کو بائع کے بیان پر لے

(۱) سکتا ہے۔ اگر بائع ثمن پر قبضہ کر چکا ہو تو شفیع اس مبیع کو اس قدر داموں کے عوض لے سکتا ہے جس کو مشتری نے بیان کیا ہے اور بائع کے قول پر التفات نہ کیا جائے گا اگر ثمن کا ادا کرنا ظاہر نہ ہوا اور بائع نے کہا کہ میں نے یہ دار ہزار درہم کو فروخت کر کے ثمن وصول کر لیا ہے تو شفیع اس کو ہزار درہم کے عوض لے سکتا ہے۔ اگر اس نے یوں کہا کہ میں نے ثمن پر قبضہ کر لیا اور وہ ہزار درہم ہے تو اس کے قول پر التفات نہ کیا جائے گا یہ ہدایہ میں ہے۔ اگر کوئی دار بعوض عرض (۲) کے خریدا اور ہنوز باہمی قبضہ نہ ہوا تھا کہ یہ عرض تلف ہو گیا یا مشتری نے دار پر قبضہ کر لیا تھا مگر عرض بائع کے قبضہ میں نہ دیا تھا کہ عرض تلف ہو گیا یا بائع ومشتری میں بیع اس طرح ٹوٹ (۳) گئی کہ شفیع کو بعوض قیمت عرض دار مذکور شفعہ میں لینے کا حق باقی رہ گیا پھر بائع ومشتری نے عرض مذکور کی قیمت میں اختلاف کیا تو قسم سے بائع کا قول قبول ہو گا اور اگر دونوں میں سے کسی نے گواہ قائم کئے تو اس کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر دونوں نے گواہ قائم کئے تو امام اعظمؒ ۲ و امام محمدؒ کے نزدیک بائع کے گواہ قبول ہوں گے اور یہی قول امامؒ نے ابو یوسفؒ کا ہے۔ اگر مشتری نے عمارت دار کو گرا دیا یہاں تک کہ شفیع کے ذمہ سے ثمن سے بقدر قیمت عمارت کے ساقط ہو گیا۔ پھر دونوں نے قیمت عمارت میں اختلاف کیا اور اس بات پر اتفاق کیا کہ خالی میدان کی قیمت ہزار درہم ہے یا عمارت و میدان دونوں کی قیمت میں اختلاف کیا پس اگر فقط عمارت کی قیمت میں اختلاف کیا تو قسم سے مشتری کا قول قبول ہو گا اور اگر عمارت و میدان دونوں کی قیمت میں اختلاف کیا تو میدان کی قیمت اندازہ کی جائے گی اور عمارت کی قیمت کے بارے میں مشتری کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں میں سے ایک نے گواہ کئے تو اس کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر دونوں نے گواہ قائم کئے تو امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ کچھ بعض نسخوں میں لکھا ہے کہ والا ینما و قانہ ورنہ دونوں کی قسم لی

جائے گی۔ ۱۔ الاصح فالمنہم ۲۔ الظاہر امام ابو یوسف و امام محمدؒ ۳۔ الظاہر امام اعظمؒ۔ (۱) جس قدر بائع نے ثمن بیان کیا تھا۔ (۲) اسباب سوائے نقد ثمن کے۔ (۳) مثلاً اقالہ ہو گیا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 209 Book of Preemption (Kitab al-Shufa)**

Based on the legal reasoning (Qiyas) of Imam-e-Azam (Abu Hanifa), the witnesses of the preemptor (Shafi) shall be accepted. However, Imam Muhammad stated that, based on the reasoning of Imam-e-Azam, the witnesses of the buyer (Mushtari) should be accepted. If the two disagree on the nature of the price (Sifat-e-Saman)—for example, the buyer claims he bought it for cash, while the preemptor claims it was bought on credit for a specific term—the statement of the buyer shall be accepted. Disagreements relating to the subject of sale (Mubee) involve situations where both parties differ on whether the entire property was sold under one contract or two separate contracts. For example, if a buyer purchases a house and later claims he bought the courtyard separately for one thousand dirhams, while the preemptor claims both (1) were bought together for two thousand dirhams, the preemptor's statement is preferred. If either party produces witnesses, their testimony shall be accepted. If both produce witnesses but neither specifies the timing (2) of the sale, then according to Imam-e-Azam and Imam Abu Yusuf, the buyer's witnesses shall be accepted, whereas according to Imam Muhammad, the preemptor's witnesses shall be accepted. This is mentioned in 'Badai'.

In 'Muntaqa', it is narrated from Imam Muhammad on the authority of Ibn Sama'ah that a man bought a house, and there are two (1) preemptors. One preemptor came to the buyer to claim preemption, and the buyer stated he bought the house for one thousand dirhams. The preemptor confirmed his statement and took the house by paying one thousand dirhams. Later, the second preemptor arrived and produced witnesses proving the buyer had actually bought it for five hundred dirhams. In this case, the second preemptor shall take half of the house from the first preemptor by paying two hundred and fifty dirhams, and the first preemptor shall reclaim two hundred and fifty dirhams from the buyer. The first preemptor will then retain half the house at a cost of five hundred dirhams. It is also recorded in 'Muntaqa' that if a person buys a house from another for one thousand dirhams and takes possession, and a preemptor claims his right while the buyer asserts the price was two thousand dirhams and the preemptor insists it was one thousand dirhams, if the preemptor has no witnesses and the buyer takes an oath, the preemptor takes the house for two thousand dirhams. If a second preemptor then arrives and proves with witnesses against the first preemptor that the seller sold the house to the buyer for one thousand dirhams, the second preemptor takes half the house for five hundred dirhams. The first preemptor then reclaims five hundred dirhams from the buyer

(pertaining to the half taken by the second preemptor). The first preemptor is then told that regarding the half still in his possession, he may produce witnesses again if he wishes; otherwise, he is entitled to nothing further. This means that if the first preemptor simply tells the buyer that since the second preemptor proved the sale was for one thousand dirhams, his own half is worth five hundred and he wants five hundred back, he has no such right automatically. However, if he produces witnesses again to prove the one-thousand-dirham price, it is permissible. The reason, as hinted in the book, is that the second preemptor's witnesses only establish his right to half the property. Thus, the one-thousand-dirham sale price is proven only for the half the second preemptor claimed, not for the half in the first preemptor's possession. Therefore, the first preemptor must produce witnesses again to establish the one-thousand-dirham sale price for his own half in order to be entitled to a refund of the excess five hundred dirhams from the buyer. This is in 'Muheet'.

It is written in 'Fatawa Atabiyya' that if a buyer purchased a house, and a preemptor came and exercised preemption by paying one thousand dirhams based on the buyer's word.

**(Footnotes)** (1) Building and field. (2) No time of purchase was mentioned during testimony. (1) There are two preemptors and both have claimed preemption.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 209 किताब अल-शुफ़ा**

इमाम-ए-आज़म के कथन पर कयास (अनुमान) करते हुए शफ़ी (अग्रक्रयाधिकारी) के गवाह स्वीकार किए जाएंगे, और इमाम मुहम्मद ने कहा कि इमाम-ए-आज़म के कथन पर कयास करते हुए मुश्तरी (खरीददार) के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यदि दोनों ने मूल्य की प्रकृति (सिफ़त-ए-समन) में मतभेद किया, उदाहरण के लिए मुश्तरी ने कहा कि मैंने नकद भुगतान पर खरीदा है और शफ़ी ने कहा कि नहीं, बल्कि उधार (सावधि) पर खरीदा है, तो मुश्तरी का कथन स्वीकार किया जाएगा। और जो मतभेद बेची गई वस्तु (मबीअ) के संबंध में होता है, वह यह है कि दोनों इस तरह मतभेद करें कि पूरी चीज़ जिस पर बिक्री हुई, वह एक ही अनुबंध (अक़द) से हुई या दो अनुबंधों से। उदाहरण के लिए, मुश्तरी ने एक घर खरीदा और फिर कहा कि मैंने इसका मैदान अलग से एक हज़ार दिरहम में खरीदा है, और शफ़ी ने कहा कि नहीं, बल्कि तुमने दोनों (1) को एक साथ दो हज़ार दिरहम में खरीदा है, तो शफ़ी का कथन स्वीकार किया जाएगा। दोनों में से जिसने गवाह पेश किए, उसके गवाह स्वीकार होंगे। यदि दोनों ने गवाह पेश किए और किसी पक्ष ने समय (2) का उल्लेख नहीं किया, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार मुश्तरी के गवाह स्वीकार होंगे, और इमाम मुहम्मद के अनुसार शफ़ी के गवाह स्वीकार होंगे। यह 'बदाए' में उल्लेखित है।

'मुनतकी' में इब्न समाआ की रिवायत से इमाम मुहम्मद से वर्णित है कि एक व्यक्ति ने किसी से एक घर खरीदा और उसके दो (1) शफ़ी हैं। उनमें से एक शफ़ी मुश्तरी के पास शुफ़ा का दावा करने आया और मुश्तरी ने कहा कि मैंने यह घर एक हज़ार दिरहम में खरीदा है। शफ़ी ने उसके कथन की पुष्टि करते हुए एक हज़ार दिरहम देकर घर ले लिया। फिर दूसरे शफ़ी ने आकर गवाह पेश किए कि मुश्तरी ने इसे पाँच सौ दिरहम में खरीदा है। ऐसी स्थिति में दूसरा शफ़ी उस घर का आधा हिस्सा दो सौ पचास दिरहम पहले शफ़ी को देकर ले लेगा, और पहला शफ़ी मुश्तरी से दो सौ पचास दिरहम वापस लेगा। पहले शफ़ी के पास आधा घर पाँच सौ दिरहम के बदले शेष रह जाएगा। 'मुनतकी' में यह भी लिखा है कि एक व्यक्ति ने दूसरे से एक घर एक हज़ार दिरहम में खरीदा और उस पर कब्ज़ा कर लिया। फिर शफ़ी ने आकर शुफ़ा का दावा किया और मुश्तरी ने कहा कि मैंने इसे दो हज़ार दिरहम में खरीदा है, जबकि शफ़ी ने कहा कि नहीं, बल्कि तुमने एक हज़ार दिरहम में खरीदा है। शफ़ी के पास गवाह नहीं थे, इसलिए मुश्तरी ने जो कहा उस पर शपथ ली। शफ़ी ने दो हज़ार दिरहम देकर घर ले लिया। फिर दूसरा शफ़ी आया और उसने पहले शफ़ी के विरुद्ध गवाह पेश किए कि विक्रेता ने यह घर मुश्तरी को एक हज़ार दिरहम में बेचा था। तब दूसरा शफ़ी उसमें से आधा घर पाँच

सौ दिरहम में ले लेगा, और पहला शफ़ी मुश्तरी से उस आधे के मूल्य (पाँच सौ दिरहम) के बराबर राशि वापस लेगा। फिर पहले शफ़ी से कहा जाएगा कि जो आधा हिस्सा तेरे कब्ज़े में है, उसके बारे में यदि तू चाहे तो दोबारा गवाह पेश कर, अन्यथा तुझे कुछ नहीं मिल सकता। इसका अर्थ यह है कि यदि पहले शफ़ी ने मुश्तरी से यह कहा कि दूसरे शफ़ी ने गवाहों से यह सिद्ध कर दिया है कि खरीद एक हज़ार दिरहम में हुई है, इसलिए जो आधा मेरे कब्ज़े में है वह पाँच सौ का हुआ, अतः मैं तुझसे पाँच सौ वापस लूँगा, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा। लेकिन यदि उसने दोबारा गवाह पेश किए कि खरीद एक हज़ार दिरहम में हुई है, तो ऐसा संभव है। इसका कारण वह है जिसकी ओर पुस्तक में संकेत किया गया है कि दूसरा शफ़ी अपने गवाहों से केवल आधे घर का हकदार होगा। इसका अर्थ यह है कि दूसरे शफ़ी के गवाह जब आधे घर के लिए प्रभावी हुए, तो एक हज़ार दिरहम में खरीद केवल उसी आधे में सिद्ध होगी जिसका दूसरा शफ़ी हकदार हुआ, न कि उस आधे में जो पहले शफ़ी के कब्ज़े में है। अतः पहला शफ़ी अपने कब्ज़े वाले आधे हिस्से के लिए एक हज़ार दिरहम के मूल्य पर खरीद सिद्ध करने हेतु दोबारा गवाह पेश करने का मोहताज होगा, तभी वह मुश्तरी से अतिरिक्त पाँच सौ दिरहम वापस लेने का हकदार होगा। यह 'मुहीत' में है।

'फ़तावा अताबिया' में लिखा है कि यदि मुश्तरी ने एक घर खरीदा, फिर शफ़ी आया और मुश्तरी के कहने पर एक हज़ार दिरहम मूल्य देकर शुफ़ा प्राप्त किया।

**(फ़ुटनोट)** (1) इमारत और मैदान। (2) गवाही देते समय खरीद के समय का उल्लेख नहीं किया। (1) दो शफ़ी हैं और दोनों ने शुफ़ा का दावा किया।

---

امامِ اعظمؒ کے قول پر قیاس کر کے شفیع کے گواہ قبول ہوں گے اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ امامِ اعظمؒ کے قول پر قیاس کر کے مشتری کے گواہ قبول ہوں گے۔ اگر دونوں نے صفتِ ثمن میں اختلاف کیا مثلاً مشتری نے کہا کہ میں نے نقدی ثمن دینے پر خریدا ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ ادھار میعادی پر خریدا ہے تو مشتری کا قول قبول ہو گا اور جو اختلاف مبیع کی طرف راجع ہوتا ہے وہ یہ ہے کہ دونوں اس طرح اختلاف کریں کہ اس میں تمام چیز پر جس پر بیع واقع ہوئی آیا ایک ہی عقد سے واقع ہوئی یا دو عقد سے واقع ہوئی مثلاً مشتری نے ایک دار خریدا پھر مشتری نے کہا کہ میں نے اس کا میدان علیحدہ بعوض ایک ہزار درہم کے خریدا ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے دونوں (۱) کو اکٹھا دو ہزار درہم میں خریدا ہے تو قول شفیع کا مقبول ہو گا اور دونوں میں سے جس نے گواہ قائم کئے اس کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر دونوں نے گواہ قائم کئے اور دونوں فریق نے کوئی وقت بیان (۲) نہ کیا تو امامِ اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک مشتری کے گواہ قبول ہوں گے اور امام محمدؒ کے نزدیک شفیع کے گواہ قبول ہوں گے یہ بدائع میں ہے۔

منتقٰی میں بروایت ابن سماعہؒ امام محمدؒ سے مروی ہے کہ ایک شخص نے کسی سے ایک دار خریدا اور اس کے دو (۱) شفیع ہیں ان میں سے ایک شفیع مشتری کے پاس شفعہ طلب کرنے آیا اور مشتری نے کہا کہ میں نے یہ دار ہزار درہم کو خریدا ہے پس شفیع نے اس کے قول کی تصدیق کر کے ہزار درہم دے کر لے لیا پھر دوسرے شفیع نے آکر اس امر کے گواہ قائم کئے کہ مشتری نے اس کو پانچ سو درہم میں خریدا ہے تو دوسرا شفیع اس دار میں آدھا دار بعوض دوسو پچاس درہم کے پہلے شفیع کو دے کر لے لے گا اور پہلا شفیع مشتری سے دوسو پچاس درہم واپس

لے گا اور پہلے شفیع کے پاس نصف دار بعوض پانچ سو درہم کے باقی رہ جائے گا اور بھی منتقی میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے دوسرے سے ایک دار ایک ہزار درہم کو خرید کر اس پر قبضہ کر لیا پھر شفیع نے آکر شفعہ طلب کیا اور مشتری نے کہا کہ میں نے اس کو دو ہزار درہم کے عوض خریدا ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے ایک ہزار درہم کو خریدا ہے مگر شفیع کے پاس گواہ نہ تھے اور مشتری نے جو کچھ کہا تھا اس پر قسم کھائی پس شفیع نے دو ہزار درہم دے کر دارِ مذکور کو لے لیا پھر دوسرا شفیع آیا اور اس نے شفیعِ اوّل پر اس امر کے گواہ قائم کئے کہ بائع نے یہ دار فلاں مشتری کے ہاتھ ہزار درہم کو فروخت کیا تھا تو دوسرا شفیع اس میں سے نصف دار بعوض پانچ سو درہم کے لے لے گا اور پہلا شفیع مشتری سے اس نصف کے ثمن سے جس کو دوسرے شفیع نے لیا ہے پانچ سو درہم واپس لے گا پھر شفیعِ اوّل سے کہا جائے گا کہ جو نصف تیرے قبضہ میں ہے اسی بابت اگر تیرا جی چاہے تو دوبارہ گواہ پیش کر ورنہ تجھے کچھ نہیں مل سکتا ہے۔ اس کے معنی یہ ہیں کہ شفیعِ اوّل نے اگر مشتری سے یہ کہا کہ شفیعِ ثانی نے گواہوں سے یہ بات ثابت کر دی کہ خرید بعوض ہزار درہم کے واقع ہوئی ہے پس جو نصف میرے قبضہ میں ہے اس کے مقابلہ میں پانچ سو درہم ہوئے سو میں تجھ سے پانچ سو درہم واپس لوں گا تو اس کو یہ اختیار نہ ہو گا لیکن اگر اس نے دوبارہ گواہ قائم کئے کہ خرید بعوض ہزار درہم کے واقع ہوئی ہے تو ایسا ہو سکتا ہے اس کا سبب وہ ہے جس کی طرف کتاب میں اشارہ فرمایا ہے کہ شفیعِ ثانی اپنے گواہوں سے فقط نصف دار کا مستحق ہو گا اور اس کے معنی یہ ہیں کہ شفیعِ ثانی کے گواہ ہرگاہ کہ نصف دار میں کار آمد ہوئے تو ہزار درہم کے عوض خرید واقع ہونا فقط اسی نصف میں ثابت ہو گا جس کا شفیعِ ثانی مستحق ہوا ہے نہ اس نصف میں جو شفیعِ اوّل کے قبضہ میں ہے پس شفیعِ اوّل اپنے نصف مقبوضہ کے حق میں بعوض ہزار درہم کے خرید ثابت ہونے کے

واسطے دوبارہ گواہ پیش کرنے کا محتاج ہو گا پھر مشتری سے پانچ سو درہم زائدہ واپس لینے کا مستحق ہو گا یہ محیط میں ہے۔

فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے کہ اگر مشتری نے ایک دار خریدا پھر شفیع آیا اور اس نے مشتری کے کہنے پر ہزار درہم ثمن دے کر شفعہ طلب کیا۔

**(حاشیہ)** (۱) عمارت و میدان۔ (۲) ادائے شہادت میں کوئی وقت خرید بیان نہ کیا۔ (۱) دو شفیع ہیں اور دونوں نے شفعہ طلب کیا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | 210 | Kitab-al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...took it, then found witnesses that the buyer (*Mushtari*) had purchased it for five hundred Dirhams, then his witnesses shall be accepted (1). However, if the pre-emptor (*Shafi*) had previously confirmed the buyer's statement regarding the price being one thousand Dirhams, then witnesses contrary to that will not be accepted; this is in *Tatar-khaniya*. If the seller (*Ba'i*) and the buyer agree that this sale occurred with a condition of option (*Khiyar-e-Shart*) in favor of the seller, and the pre-emptor denies it, then according to Imam-e-Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, and according to one of two reports from Imam Abu Yusuf, the statement of the seller and buyer will be accepted, and the pre-emptor will not be entitled to pre-emption. This is because the sale was established by the acknowledgment of the seller and buyer, and it is established exactly as they acknowledged it (2). It is mentioned in *Al-Jami* that if the seller claimed an option condition and the buyer and pre-emptor denied it, then by way of *Istihsan* (juridical preference), the buyer's statement will be accepted because an option is established only by stipulation, and the seller is claiming the initiation of a condition while the buyer is denying it. Similarly, if the buyer claimed an option condition and the seller and pre-emptor denied it, the seller's statement will be accepted and the pre-emptor may take the property in pre-emption; this is in *Al-Muhit*. If two persons conducted a sale and purchase between them, and the pre-emptor demanded pre-emption in their presence, and then the seller said the sale was not a genuine sale but merely a symbolic (3) transaction, and the buyer confirmed his statement (4), then their statement will not be accepted against the right of the pre-emptor. Instead, the word of the one who claims the validity of the sale will be authoritative. However, if the circumstances themselves indicate what the seller and buyer are stating, it will be otherwise. For example, if the property is very expensive and was sold for such a meager price that such a thing is never sold for so little, in that case, the word of the seller and buyer will be accepted and the pre-emptor will not get pre-emption; this is in *Khizanat al-Muftin*.

**In which case will the judge not issue a verdict despite both parties being in agreement?** ☆

It is written in *Al-Muntaqa* that a person sold a house (*Dar*) to another, then both the seller and buyer agreed that this was an irregular (*Fasid*) sale, but the pre-emptor claimed it was a valid (*Ja'iz*) sale; in this case, the pre-emptor's word will be authoritative, and I will not at all confirm the acknowledgment of the seller and buyer

regarding the irregularity of the sale against the pre-emptor's right. If one of them claimed irregularity and the other denied it, then I will accept the word of the one who claims the validity of the sale. Thus, if both agree on an irregularity due to a factor where I would normally consider the claimant of irregularity's word as authoritative, I will confirm their word and not establish the right of pre-emption for the pre-emptor. My meaning is that if the seller and buyer agree on a reason for irregularity such that if they had disagreed, the word of the one claiming irregularity would not have been accepted, but rather the word of the one claiming validity—for example, only one of them claimed an irregular time limit or an irregular option condition—then upon their agreement on such a reason, their (5) confirmation will not be accepted against the pre-emption. However, if they agree on a reason where, had they disputed, the word of the claimant of irregularity would have been accepted, then upon their agreement, they will be confirmed against the pre-emptor as well. *Al-Muntaqa* explains this scenario as follows: If the buyer said to the seller, "You sold this house to me for a thousand Dirhams and one *ratl* of wine," and the seller confirmed it, I will not accept their word regarding the pre-emptor's right. But if the buyer said, "You sold this house to me for wine only," and the seller confirmed it, then the pre-emptor will not have the right of pre-emption. This is from *Al-Muntaqa*...

---

1. This is a new point, so proof is required for it. (1) If he establishes it. (2) Sale with a condition of option. (3) By this, we intended a secret/sham transaction. (4) The word of the pre-emptor provided he denies their statement. (5) Although it was confirmed for both due to agreement, i.e., he will get pre-emption.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 210 | किताब-उश-शुफ़ा (शुफ़ा का बयान)**

... में ले लिया, फिर इस बात के गवाह पाए कि मुश्तरी (ख़रीददार) ने पाँच सौ दिरहम में खरीदा था, तो उसके गवाह स्वीकार्य (1) होंगे। और अगर शफ़ी (प्री-एम्प्टर) ने पहले हजार दिरहम कीमत होने में मुश्तरी के कथन की पुष्टि कर दी हो, तो फिर उसके खिलाफ उसके गवाह स्वीकार्य नहीं होंगे; यह तातारख़ानिया में है। अगर बाए (विक्रेता) और मुश्तरी ने इस बात पर सहमति जताई कि यह बिक्री बाए के लिए 'ख़ियार-ए-शर्त' (विकल्प की शर्त) के साथ हुई है, और शफ़ी ने इससे इनकार किया, तो इमाम-ए-आज़म रह. और इमाम मोहम्मद रह. के अनुसार, और इमाम अबू यूसुफ़ रह. की दो में से एक रिवायत के अनुसार, बाए और मुश्तरी का बयान स्वीकार किया जाएगा और शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार नहीं मिलेगा। इसका कारण यह है कि बिक्री बाए और मुश्तरी के इकरार से ही साबित हुई है, और वैसी ही साबित मानी जाएगी जैसा उन्होंने इकरार किया है। जामेअ में उल्लेख है कि यदि बाए ने ख़ियार-ए-शर्त का दावा किया और मुश्तरी व शफ़ी ने इससे इनकार किया, तो इस्तिहसानन (न्यायसंगत आधार पर) मुश्तरी की बात स्वीकार की जाएगी, क्योंकि ख़ियार केवल शर्त रखने से साबित होता है और बाए शर्त जोड़ने का दावा कर रहा है जबकि मुश्तरी मुनकिर (इनकार करने वाला) है। इसी तरह यदि मुश्तरी ने ख़ियार-ए-शर्त का दावा किया और बाए व शफ़ी ने इनकार किया, तो बाए की बात मानी जाएगी और शफ़ी बेची गई चीज़ (मबीअ) को शुफ़ा के तहत ले लेगा; यह मुहीत में है। दो व्यक्तियों ने आपस में खरीद-फरोख्त की, फिर शफ़ी ने उन दोनों के सामने शुफ़ा की मांग की। तब बाए ने कहा कि यह हमारे बीच वास्तविक बिक्री नहीं थी, बल्कि महज़ दिखावटी (3) मामला था, और मुश्तरी ने भी इसकी पुष्टि की, तो शफ़ी के अधिकार के मामले में उन दोनों की बात नहीं मानी जाएगी, बल्कि उसी की बात मान्य होगी जो बिक्री के वैध होने का दावा करता है। लेकिन यदि परिस्थितियाँ वही इशारा करती हों जो बाए और मुश्तरी कह रहे हैं, तो ऐसा नहीं होगा। उदाहरण के लिए, चीज़ बहुत महँगी हो और उसे बहुत कम कीमत पर बेचा गया हो, जिस कीमत पर वैसी चीज़ आमतौर पर नहीं बिकती, तो ऐसी स्थिति में बाए और मुश्तरी की बात मान ली जाएगी और शफ़ी को शुफ़ा नहीं मिलेगा; यह ख़ज़ाना-उल-मुफ़्तीन में है।

## क़ाज़ी किस स्थिति में दोनों पक्षों की सहमति के बावजूद फैसला नहीं सुनाएगा ☆

मुंतक़ा में लिखा है कि एक व्यक्ति ने दूसरे को एक मकान बेचा, फिर बाए और मुश्तरी दोनों ने मिलकर इकरार किया कि यह बिक्री 'फ़ासिद' (दूषित/अवैध) थी, जबकि शफ़ी ने कहा कि यह वैध थी; ऐसी स्थिति में शफ़ी की बात विश्वसनीय मानी जाएगी और शफ़ी के अधिकार के मामले में बाए

और मुश्तरी के बिक्री के अवैध होने के इकरार को स्वीकार नहीं किया जाएगा। और यदि दोनों में से किसी एक ने बिक्री के अवैध होने का दावा किया और दूसरे ने इनकार किया, तो उस व्यक्ति की बात मानी जाएगी जो बिक्री के सही होने का दावा करता है। अतः यदि दोनों ने ऐसी बात पर सहमति जताई जिससे बिक्री अवैध होती हो, और उस मामले में मैं अवैधता का दावा करने वाले की बात को विश्वसनीय मानता हूँ, तो मैं उन दोनों की बात मान लूँगी और शफ़ी के लिए शुफ़ा का अधिकार तय नहीं करूँगा। मेरा अभिप्राय यह है कि यदि बाए और मुश्तरी ऐसी किसी वजह से बिक्री के अवैध होने पर सहमत हों कि यदि उनमें उस पर मतभेद होता, तो अवैधता का दावा करने वाले की बात न मानी जाती बल्कि वैधता का दावा करने वाले की मानी जाती—उदाहरण के लिए, दोनों में से किसी एक ने बिक्री में अवैध अवधि या अवैध विकल्प की शर्त का दावा किया—तो ऐसी स्थिति में उन (5) दोनों की बात शफ़ी के खिलाफ स्वीकार नहीं की जाएगी। लेकिन यदि वे ऐसी वजह पर सहमत हों कि यदि वे आपस में झगड़ते तो भी अवैधता का दावा करने वाले की बात मानी जाती, तो उस स्थिति में उन दोनों की बात शफ़ी के विरुद्ध भी स्वीकार की जाएगी। मुंतक़ा में इसकी सूरत इस प्रकार बताई गई है कि यदि मुश्तरी ने बाए से कहा, "तुमने यह मकान मुझे एक हज़ार दिरहम और एक रत्तल शराब के बदले बेचा है," और बाए ने इसकी पुष्टि कर दी, तो मैं शफ़ी के अधिकार के मामले में उनकी बात नहीं मानूँगा। और यदि मुश्तरी ने कहा कि "तुमने यह मकान मुझे केवल शराब के बदले बेचा है" और बाए ने इसकी पुष्टि की, तो शफ़ी को शुफ़ा नहीं मिलेगा। यह मुंतक़ा की...

---

1. यह नई बात है तो इस पर प्रमाण देना आवश्यक है। (1) यदि वह स्थापित कर दे। (2) विकल्प की शर्त के साथ बिक्री। (3) इससे हमारा उद्देश्य कोई गुप्त कार्रवाई थी। (4) शफ़ी का कथन बशर्ते कि वह उन दोनों के कथन का खंडन करे। (5) यद्यपि सहमति के कारण दोनों के हक में पुष्टि हुई, यानी उसे शुफ़ा मिलेगा।

---

میں لے لیا پھر اس بات کے گواہ پائے کہ مشتری نے پانچ سو درہم کو خریدا تھا تو اس کے گواہ مقبول (۱) ہوں گے اور اگر شفیع نے پہلے ہزار درہم ثمن خرید ہونے میں مشتری کے قول کی تصدیق کی ہو تو پھر اس کے بر خلاف پر اس کے گواہ مقبول نہ ہوں گے یہ تاتارخانیہ میں ہے اگر بائع و مشتری نے اس بات پر اتفاق کیا کہ یہ بیع بائع کے واسطے شرط خیار کر کے واقع ہوئی ہے اور شفیع نے اس سے انکار کیا تو امام اعظمؒ، امام محمدؒ اور دو روایتوں میں سے ایک روایت کے موافق امام ابو یوسفؒ کے نزدیک قول بائع و مشتری کا قبول ہو گا اور شفیع کو شفعہ نہ ملے گا اس لئے کہ بیع بائع و مشتری کے اقرار سے ثابت ہوئی اور ویسی ہی ثابت ہوئی (۲) جیسا دونوں نے اقرار کیا ہے۔ جامع میں مذکور ہے کہ اگر بائع نے شرط خیار ہونے کا دعویٰ کیا اور مشتری و شفیع نے اس سے انکار کیا تو استحساناً قول مشتری کا قبول ہو گا اس واسطے کہ خیار فقط شرط کرنے سے ثابت ہوتا ہے اور بائع احداثِ شرط کا دعویٰ کرتا ہے اور مشتری اس سے منکر ہے اسی طرح اگر مشتری نے خیار شرط ہونے کا دعویٰ کیا اور بائع و شفیع نے اس سے انکار کیا تو قول بائع کا قبول ہو گا اور شفیع مبیع کو شفعہ میں لے لے گا یہ محیط میں ہے۔ دو آدمیوں میں باہم خرید فروخت کی پس شفیع نے دونوں کے سامنے شفعہ طلب کیا پس بائع نے کہا کہ یہ بیع ہم دونوں میں سچی بیع نہ تھی بلکہ از راہ (۳) معاملہ تھی اور مشتری نے اس کے قول (۴) کی تصدیق کی تو شفیع کے حق میں ان دونوں کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی بلکہ قول اسی کا معتبر ہو گا جو جواز بیع کا دعویٰ کرتا ہے لیکن اگر صورتِ حال اسی بات پر دلالت کرتی ہو جو بائع و مشتری نے بیان کیا ہے تو ایسا نہ ہو گا مثلاً بیع بیش قیمت چیز ہو اور اس بیع میں ایسے قلیل

ثمن کے عوض فروخت کی گئی کہ ایسی چیز اس قدر قلیل ثمن کو نہیں فروخت ہوتی ہے تو ایسی صورت میں قول بائع و مشتری کا قبول ہو گا اور شفیع کو شفعہ نہ ملے گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔

**قاضی کس صورت میں باوجودیکہ دونوں فریقین متفق ہیں فیصلہ صادر نہ کرے گا** ☆

منتقٰی میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کے ہاتھ ایک دار (مکان) فروخت کیا پھر بائع و مشتری دونوں نے بالاتفاق اقرار کیا کہ یہ بیع فاسد تھی اور شفیع نے کہا کہ جائز واقع ہوئی ہے تو قول شفیع کا معتبر ہو گا اور میں شفیع کے حق میں بائع و مشتری کے فسادِ بیع کے اقرار کی بالکل تصدیق نہ کروں گا اور اگر دونوں میں سے ایک نے فساد بیع کا دعویٰ کیا اور دوسرے نے انکار کیا تو اس صورت میں میں اس کا قول قبول کروں گا جو صحت بیع کا مدعی ہے سو اگر دونوں نے ایسی چیز کی وجہ سے فسادِ بیع پر اتفاق کیا کہ جس میں مدعی فساد کا قول معتبر رکھتا ہوں تو میں دونوں کے قول کی تصدیق کروں گا اور شفیع کے واسطے حق شفعہ نہ ٹھہراؤں گا اور اس سے میری یہ مراد ہے کہ اگر بائع و مشتری دونوں نے ایسے سبب سے فسادِ بیع پر اتفاق کیا کہ اسی سبب سے بیع فاسد ہونے میں اگر بائع و مشتری دونوں اختلاف کرتے تو مدعی فساد کا قول قبول نہ ہوتا بلکہ جو شخص صحت بیع کا مدعی ہوتا اسی کا قول مقبول ہوتا مثلاً دونوں میں سے فقط ایک نے بیع میں میعاد فاسد یا خیار فاسد ہونے کے شرط کا دعویٰ کیا تو جب ایسے سبب سے بیع فاسد ہونے پر دونوں اتفاق کریں تو بیع کے حق میں ان (۵) دونوں کی تصدیق نہ کی جائے گی۔ اگر دونوں نے ایسے سبب سے فساد بیع پر اتفاق کیا کہ اسی سبب سے اگر بیع فاسد ہونے میں دونوں باہم اختلاف کرتے تو مدعی فساد کا قول قبول ہوتا تو جب ایسے سبب سے بیع فاسد ہونے پر دونوں اتفاق کریں گے تو شفیع کے حق میں بھی دونوں کی تصدیق کی جائے گی اور منتقٰی میں اس کی صورت یوں بیان فرمائی کہ اگر مشتری نے بائع سے کہا کہ تو نے یہ دار میرے ہاتھ بعوض ہزار درہم و ایک رطل شراب کے فروخت کیا ہے اور بائع نے کہا کہ تو نے سچ کہا تو میں شفیع

کے حق میں ان دونوں کے قول کی تصدیق نہ کروں گا اور اگر مشتری نے یوں کہا کہ تو نے یہ دار میرے ہاتھ بعوض شراب کے فروخت کیا اور بائع نے اس کی تصدیق کی تو شفیع کو شفعہ نہ ملے گا یہ منتقٰی کی...

۱۔ یہ جدید بات ہے تو اس پر ثابت کرنا لازم ہے۔ (۱) اگر قائم کرے۔ (۲) بیع بشرط خیار۔ (۳) اس سے ہم کو کوئی خفیہ کاروائی مقصود تھی۔ (۴) قول شفیع بشرطیکہ وہ دونوں کے قول کا انکار کرے۔ (۵) اگرچہ دونوں کے حق میں بسبب اتفاق کے تصدیق ہوئی یعنی اس کو شفعہ ملے گا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | 211 | Book of Pre-emption (Kitab al-Shuf'a)**

It is stated that Imam Quduri, in his book, regarding what is mentioned in "Al-Muntaqa," has established the opinion of Imam Abu Yusuf (R.A.) according to one of the two narrations from him. Imam Quduri stated that based on this narration, Imam Abu Yusuf (R.A.) seems to apply an analogy of such a dispute to the dispute occurring between the two contracting parties. For instance, if the two contracting parties dispute in such a way that the buyer (Mushtari) claims: "You sold this house to me for one thousand dirhams and one ratl (a unit of measure) of wine," and the seller (Ba'i) says: "No, rather I sold it to you for one thousand dirhams," then the word of the seller shall be accepted. However, if the buyer says: "You sold this house to me for wine or pigs," and the seller says: "I sold it to you for one thousand dirhams," then the word of the buyer shall be accepted. This is because a sale for the consideration of wine is not valid under any circumstances, and the claim of validity is accepted only in a contract that can be valid in some cases, unlike a contract of sale that is inherently void (fasid) or for one thousand dirhams and a ratl of wine. As for the opinion according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad (R.A.), if the buyer and seller agree on the invalidity of the sale and the pre-emptor (Shafi') denies both of them, the pre-emptor shall not get the right of pre-emption in any case. This is similar to a situation where both agree that there was a condition of option (Khiyar) for the seller in the sale, and the pre-emptor denies it; the pre-emptor shall not receive pre-emption. This is mentioned in "Al-Zakhira."

If one-tenth of a field is bought for a high price and the remainder of the field is then bought for a low price, the pre-emptor shall have the right of pre-emption in the one-tenth portion, but not in the rest. If the pre-emptor wishes to make the buyer swear an oath, saying: "By Allah, I did not intend to nullify your right of pre-emption by selling it this way," he (the pre-emptor) does not have this right. This is because even if the buyer makes such an admission, nothing would become mandatory upon him. However, if he wishes to make him swear: "By Allah, the first sale was truly not intended for fragmentation (tajziya)," then he has this right. This is because if the adversary makes such an admission during a dispute, it becomes binding upon him. Regarding what is mentioned in the "Kitab" that if he wishes to take an oath saying: "By Allah, I did not intend to nullify your right of pre-emption by selling it this way," he can take such an oath—the interpretation of this is that the oath is taken on the claim that the first sale occurred for the purpose of fragmentation. This is in "Al-Quniya."

It is written in "Al-Ajnas" that if the buyer says, "I bought this house for my minor son," and denies the pre-emptor's right, and if the pre-emptor admits that the minor son exists, then no oath shall be required of the buyer. But if the pre-emptor denies the existence of the minor son, an oath shall be taken from the pre-emptor: "By Allah, I do not know that he has any minor son." If the son is an adult and the buyer has handed over the house to him, the legal dispute is removed from the buyer personally. As long as he has not handed it over to the adult son, he remains the adversary of the pre-emptor. This is in "Al-Zakhira."

If a person buys something from a woman and wishes to have witnesses for the sale, but finds no one who knows the woman except the person entitled to pre-emption, their testimony against the woman (if she denies selling) will not be accepted. This is in "Al-Muheet." If the two sons of the seller testify against the pre-emptor that he has relinquished his right of pre-emption, and at that time the sold property is still with the seller: if the seller claims that the pre-emptor relinquished his right, their testimony will not be accepted. If the seller denies this, their testimony will be accepted. If the sold property is in the possession of the buyer, their testimony will be accepted because, in such a case, they neither benefit their father nor avert harm from him through this testimony. However, if the two sons testify that the pre-emptor surrendered (taslim) the pre-emption, their testimony will not be accepted even if the property is in the buyer's possession. This is because both were adversaries regarding the property before it was handed over to the buyer, and the testimony of someone who was once an adversary in a matter is not accepted, even if they are no longer an adversary. The testimony of the seller’s two sons was accepted [in the previous case] because they were never adversaries regarding that house. This ruling applies when the two sons testify that the pre-emptor surrendered the pre-emption. If both testify against the buyer that the buyer gave the pre-empted house to the pre-emptor, their testimony shall not be accepted whether the house is in their father's possession or the buyer's.

**(Footnotes):** 1. There is no difference between the text of "Al-Muntaqa" and the explanation of Imam Quduri; the point is that Imam Quduri has provided more detail. 2. There are two narrations from Imam Abu Yusuf, and this statement is established according to one of them. 3. This is an indication that the subject of analogy (Muqais 'Alayh) is a sale where the seller has the right of option (Khiyar).

इबारत है और इमाम.क़ुद्दूरी ने अपनी किताब में जो कुछ मुन्तक़ा में मज़कूर है, इमाम अबू यूसुफ़ रह. का क़ौल उन से दो रिवायतों में से एक रिवायत के मुवाफ़िक़ क़रार दिया है। इमाम.क़ुद्दूरी ने फ़रमाया कि इस रिवायत की बिना पर गोया इमाम अबू यूसुफ़ रह. ऐसे इख़्तिलाफ़ को उस इख़्तिलाफ़ पर क़यास फ़रमाते हैं जो दोनों मुताक़िदीन (सौदा करने वालों) में वाक़े हो। चुनाँचे अगर दोनों मुताक़िदीन ने बाहम इस तरह इख़्तिलाफ़ किया कि मुश्तरी (ख़रीदार) ने कहा कि तूने यह घर मेरे हाथ हज़ार दिरहम और एक रतल शराब के बदले फ़रोख़्त किया है, और बाए (बेचने वाले) ने कहा कि नहीं बल्कि मैंने तेरे हाथ इसको हज़ार दिरहम के बदले फ़रोख़्त किया है, तो क़ौल बाए का मक़बूल होगा। और अगर मुश्तरी ने कहा कि तूने यह घर मेरे हाथ शराब या सूअर के बदले फ़रोख़्त किया है और बाए ने कहा कि मैंने तेरे हाथ इसको हज़ार दिरहम के बदले फ़रोख़्त किया है, तो क़ौल मुश्तरी का मक़बूल होगा। इस वास्ते कि शराब के बदले बैअ (सौदा) वाक़े होना किसी हाल में जायज़ नहीं है और मुद्दई-ए-जवाज़ (जायज़ होने का दावा करने वाले) का क़ौल उसी अक़्द (अनुबंध) में मक़बूल होता है जो अक़्द किसी हाल में जायज़ हो सके, बरख़िलाफ़ ऐसे अक़्द-ए-बैअ के जो बुनियादी तौर पर फ़ासिद हो या हज़ार दिरहम और एक रतल शराब के बदले हो। अब रहा इमाम आज़म रह. और इमाम मुहम्मद रह. के नज़दीक, तो उन दोनों के नज़दीक अगर बाए और मुश्तरी ने फ़साद-ए-बैअ (सौदे की ख़राबी) पर इत्तिफ़ाक़ किया और शफ़ीअ (हक़-ए-शुफ़ा रखने वाले) ने दोनों को झुठलाया तो हर हाल में शफ़ीअ को शुफ़ा न मिलेगा, जैसा कि इस सूरत में होता है कि दोनों ने इस बात पर इत्तिफ़ाक़ किया कि इस बैअ में बाए के लिए ख़ियार (विकल्प) की शर्त थी और शफ़ीअ ने दोनों को झुठलाया तो शफ़ीअ को शुफ़ा न मिलेगा, यह ज़ख़ीरा में है।

अगर किसी खेत का दसवां हिस्सा महँगे दाम पर ख़रीदा फिर बाक़ी खेत सस्ते दामों में मोल लिया, तो शफ़ीअ को दसवें हिस्से में शुफ़ा मिलेगा न कि बाक़ी में। फिर अगर शफ़ीअ ने उससे इस तरह क़सम लेनी चाही कि 'वल्लाह (ख़ुदा की क़सम) मैंने इस तरह बैअ करने में तेरा हक़-ए-शुफ़ा बातिल (ख़त्म) करना नहीं चाहा', तो उसको यह इख़्तियार न होगा क्योंकि अगर उसने ऐसा इक़रार किया तो उस पर कुछ लाज़िम न आएगा। और अगर यूँ क़सम लेनी चाही कि 'वल्लाह सचमुच पहली बैअ टुकड़े करने (तजज़िया) के तौर पर न थी', तो उसको यह इख़्तियार है क्योंकि यह ऐसी बात है कि अगर उसने फ़रीक़ होने की सूरत में इसका इक़रार किया तो उस पर लाज़िम होगी। और किताब में यह जो मज़कूर है कि अगर उसने इस तरह क़सम लेनी चाही कि 'वल्लाह मैंने इस तरह बैअ करने में

तेरा हक़-ए-शुफ़ा बातिल करना नहीं चाहा' तो ऐसी क़सम ले सकता है, इसकी तावील (व्याख्या) यही है यानी इस दावे पर क़सम लेनी चाही कि बैअ-ए-अव्वल (पहला सौदा) तजज़िया (टुकड़े करने) के तौर पर वाक़े हुई, यह 'क़ुनिया' में है।

'अजनास' में लिखा है कि अगर मुश्तरी से कहा कि मैंने यह घर अपने ना-बालिग बेटे के लिए ख़रीदा है और शफ़ीअ के शुफ़ा से इंकार किया, पस अगर शफ़ीअ ने इस बात का इक़रार किया कि उसका ना-बालिग लड़का मौजूद है तो मुश्तरी पर क़सम वाजिब न होगी। और अगर शफ़ीअ ने उसके ना-बालिग लड़का होने से इंकार किया तो शफ़ीअ से क़सम ली जाएगी कि 'वल्लाह मैं नहीं जानता हूँ कि उसका कोई ना-बालिग लड़का मौजूद है'। और अगर लड़का बालिग हो और मुश्तरी ने यह घर उसके क़ब्ज़े में दे दिया तो मुश्तरी की ज़ात से मुक़दमेबाज़ी (ख़ुसूमत) दूर हो गई, और जब तक उसने बालिग बेटे को नहीं सौंपा है तब तक वह शफ़ीअ का मुक़ाबिल (ख़स्म) रहेगा। यह 'ज़ख़ीरा' में है।

अगर एक शख़्स ने एक औरत से कुछ ख़रीदा और चाहा कि उसके बेचने पर गवाह बना ले, मगर सिवाए ऐसे शख़्स के जो शुफ़ा का हक़दार है, किसी दूसरे को उस औरत का जानने वाला न पाया, तो उस औरत पर उन लोगों की गवाही (अगर वह बेचने से इंकार करे) मक़बूल न होगी। यह 'मुहीत' में है। अगर बाए के दो बेटों ने शफ़ीअ पर यह गवाही दी कि उसने शुफ़ा छोड़ दिया है और उस वक़्त तक बिकी हुई चीज़ (मबीआ) बाए के पास है, तो अगर बाए इस बात का दावा करे कि शफ़ीअ ने शुफ़ा छोड़ दिया है तो उन दोनों की गवाही मक़बूल न होगी, और अगर बाए इस बात से मुन्किर (इंकारी) हो तो उन दोनों की गवाही क़बूल होगी। और अगर यह चीज़ मुश्तरी के क़ब्ज़े में हो तो उन दोनों की गवाही मक़बूल होगी क्योंकि ऐसी सूरत में वे दोनों इस गवाही से न अपने बाप को कोई नफ़ा पहुँचाते हैं और न उससे कोई नुक़सान दूर करते हैं। और अगर उन दोनों बेटों ने शफ़ीअ पर शुफ़ा मान लेने (तस्लीम) की गवाही दी तो दोनों की गवाही मक़बूल न होगी चाहे चीज़ मुश्तरी के क़ब्ज़े में हो, क्योंकि वे दोनों चीज़ मुश्तरी के क़ब्ज़े में देने से पहले उसी चीज़ की बाबत मुद्दई/मुदालैह (ख़स्म) थे, और जो शख़्स जिस चीज़ में कभी मुक़ाबिल रहा हो उसमें उसकी गवाही मक़बूल न होगी चाहे अब वह मुक़ाबिल न रहा हो। और बाए के दो बेटों की गवाही इसलिए मक़बूल हुई कि वे दोनों उस चीज़ की बाबत कभी मुक़ाबिल न थे। और यह हुक्म उस वक़्त है जब बाए के दोनों बेटों ने शफ़ीअ पर शुफ़ा तस्लीम करने की गवाही दी हो। और अगर दोनों ने मुश्तरी पर यह गवाही दी कि मुश्तरी ने वह चीज़ शफ़ीअ को दे दी है, तो उन दोनों की गवाही मक़बूल न होगी चाहे वह घर उनके बाप के क़ब्ज़े में हो या मुश्तरी के।

**(फ़ुटनोट्स):** 1. मुन्तक़ा की इबारत और इमाम.क़ुद्दूरी की तफ़्सीर में कोई इख़्तिलाफ़ नहीं है, मक़सद यह है कि इमाम.क़ुद्दूरी ने ज़्यादा विस्तार से बयान किया है। 2. इमाम अबू यूसुफ़ से दो रिवायतें हैं, उनमें से एक रिवायत के अनुसार यह बात कही गई है। 3. इशारा है कि जिसकी तुलना की गई है (मुक़ैस अलौह) वह ऐसा सौदा है जिसमें बेचने वाले को ख़ियार (विकल्प) हासिल हो।

---

عبارت ہے اور امام قدوری نے اپنی کتاب میں جو کچھ منتقی میں مذکور ہے امام ابو یوسفؒ کا قول اُن سے دو روایتوں میں سے ایک روایت کے موافق قرار دیا ہے اور امام قدوری نے فرمایا کہ بنابر اس روایت کے گویا امام ابو یوسفؒ ایسے اختلاف کو اس اختلاف پر قیاس فرماتے ہیں جو دونوں متعاقدین میں واقع ہو چنانچہ اگر دونوں متعاقدین نے باہم اس طرح اختلاف کیا کہ مشتری نے کہا کہ تو نے یہ دار میرے ہاتھ بعوض ہزار درہم و ایک رطل شراب کے فروخت کیا ہے اور بائع نے کہا کہ نہیں بلکہ میں نے تیرے ہاتھ اس کو بعوض ہزار درہم کے فروخت کیا ہے تو قول بائع کا مقبول ہوگا اور اگر مشتری نے کہا کہ تو نے یہ دار میرے ہاتھ بعوض شراب یا سور کے فروخت کیا ہے اور بائع نے کہا کہ میں نے تیرے ہاتھ اس کو بعوض ہزار درہم کے فروخت کیا ہے تو قول مشتری کا مقبول ہوگا اس واسطے کہ شراب کے عوض بیع واقع ہونا کسی حال میں جائز نہیں ہے اور مدعی جواز کا قول اسی عقد میں مقبول ہوتا ہے جو عقد کسی حال میں جائز ہو سکے بخلاف ایسے عقد بیع کے جو بنیاداً فاسد ہو یا بعوض ہزار درہم و ایک رطل شراب کے ہو۔ اب رہا امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک سو ان دونوں کے نزدیک اگر بائع و مشتری نے فساد بیع پر اتفاق کیا اور شفیع نے دونوں کی تکذیب کی تو ہر حال میں شفیع کو شفعہ نہ ملے گا جیسا کہ اس صورت میں ہوتا ہے کہ دونوں نے اس بات پر اتفاق کیا کہ اس بیع میں بائع کے واسطے خیار کی شرط تھی اور شفیع نے دونوں کی تکذیب کی تو شفیع کو شفعہ نہ ملے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر کسی کھیت کا دسواں حصہ بعوض ثمن کثیر کے خریدا پھر باقی کھیت قلیل داموں کو مول لیا تو شفیع کو دسویں حصہ میں شفعہ ملے گا نہ باقی میں پھر اگر شفیع نے اس سے اس طرح قسم لینی چاہی کہ واللہ میں نے اس طرح بیع کرنے میں تیرا حق شفعہ باطل کرنا نہیں چاہا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا اس لئے

کہ اگر اس نے ایسا اقرار کیا تو اس پر کچھ لازم نہ آئے گا اور اگر یوں قسم لینی چاہی کہ واللہ سچ اول بطور تجزیہ نہ تھی تو اس کو یہ اختیار ہے اس لئے کہ یہ ایسی بات ہے کہ اگر اس نے خصم ہونے کی صورت میں اس کا اقرار کیا تو اس پر لازم ہوگی اور کتاب میں یہ جو مذکور ہے کہ اگر اس نے اس طرح قسم لینی چاہی کہ واللہ میں نے اس طرح بیع کرنے میں تیرا حق شفعہ باطل کرنا نہیں چاہا تو ایسی قسم لے سکتا ہے اس کی تاویل یہی ہے یعنی اس دعویٰ پر قسم لینی چاہی کہ بیع اول بطور تجزیہ واقع ہوئی یہ قنیہ میں ہے۔

اجناس میں لکھا ہے اگر مشتری سے کہا کہ میں نے یہ دار اپنے نا بالغ بیٹے کے واسطے خریدا ہے اور شفیع کے شفعہ سے انکار کیا پس اگر شفیع نے اس بات کا اقرار کیا کہ اس کا نا بالغ لڑکا موجود ہے تو مشتری پر قسم عائد نہ ہوگی اور اگر شفیع نے اس کے نا بالغ لڑکے کے ہونے سے انکار کیا تو شفیع سے قسم لی جائے گی کہ واللہ میں نہیں جانتا ہوں کہ اس کا کوئی نا بالغ لڑکا موجود ہے اور اگر لڑکا بالغ ہو اور مشتری نے یہ دار اس کے قبضہ میں دے دیا تو مشتری کی ذات سے خصومت دور ہو گئی اور جب تک اس نے بالغ بیٹے کو نہیں سپرد کیا ہے تب تک وہ شفیع کا خصم رہے گا۔ یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر ایک شخص نے ایک عورت سے کچھ خریدا اور چاہا کہ اس کے فروخت کرنے پر گواہ کرلے مگر سوائے ایسے شخص کے جو شفعہ کا مستحق ہے کسی دوسرے کو اس عورت کا شناسہ نہ پایا تو اس عورت پر ان لوگوں کی گواہی اگر اپنے فروخت کرنے سے انکار کرے مقبول نہ ہوگی۔ یہ محیط میں ہے۔ اگر بائع کے دو بیٹوں نے شفیع پر یہ گواہی دی کہ اس نے شفعہ دے دیا ہے اور اس وقت تک دار مبیعہ بائع کے پاس ہے پس اگر بائع اس بات کا مدعی ہو کہ شفیع نے شفعہ دے دیا ہے تو ان دونوں کی گواہی مقبول نہ ہوگی اور اگر بائع اس بات سے منکر ہو تو ان دونوں کی گواہی قبول ہوگی اور اگر یہ دار مبیعہ مشتری کے قبضہ میں ہو تو ان دونوں کی گواہی مقبول ہوگی اس واسطے کہ ایسی صورت میں وہ دونوں اس

گواہی سے نہ اپنے باپ کو کوئی نفع پہنچاتے ہیں اور نہ اُس سے کوئی ضرر دور کرتے ہیں۔ اور اگر ان دونوں بیٹوں نے شفیع پر تسلیم شفعہ کی گواہی دی تو دونوں کی گواہی مقبول نہ ہوگی اگرچہ دار مبیعہ مشتری کے قبضہ میں ہو اس لئے کہ وہ دونوں دار مبیعہ مشتری کے قبضہ میں دینے سے پہلے اسی دار کی بابت خصم تھے اور جو شخص جس چیز میں کبھی خصم ہو اس چیز میں اُس کی گواہی مقبول نہ ہوگی اگرچہ اب وہ خصم نہ رہا ہو اور بائع کے دو بیٹوں کی گواہی اس واسطے مقبول ہوئی کہ دے دونوں اس دار کی بابت کبھی خصم نہ تھے۔ اور یہ حکم اس وقت ہے کہ جب بائع کے دونوں بیٹوں نے شفیع پر تسلیم شفعہ کی گواہی دی ہو اور اگر دونوں نے مشتری پر یہ گواہی دی کہ مشتری نے دار مشفوعہ شفیع کو دے دیا ہے تو ان دونوں کی گواہی مقبول نہ ہوگی خواہ مبیعہ دار ان کے باپ کے قبضہ میں ہو یا مشتری کے۔

(۱) منتقی کی عبارت اور رفع تقریر امام قدوری میں کچھ اختلاف نہیں ہے غرض یہ ہے کہ امام قدوری نے زیادہ تفصیل فرمائی ہے۔ (۲) امام ابو یوسف سے دو روایتیں ہیں ان میں سے ایک روایت کے موافق یہ قول قرار دیا ہے۔ (۳) اشارہ ہے کہ مقیس علیہ یہ ہے یعنی بیع جس میں بائع کا خیار ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 212 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...in his possession, and whether their (1) father is a claimant of it or not; this is mentioned in 'al-Muhit'. If a house (dar) is shared among three individuals, and one or two of the partners testify, saying, "We all sold this house to such-and-such person," and that person makes the same claim, but a third partner denies it, then the testimony of those two against the partner shall not be valid. In such a case, the pre-emptor (shafi') shall have the right to take two-thirds of the house under the right of pre-emption (shufa). If the purchaser (mushtari) denies having bought it, but all three partners affirm that he has, then the testimony of these people (2) shall be void, yet the pre-emptor will still have the option to take the entire house under pre-emption; this is in 'al-Mabsut'. If a person appoints another as an agent (wakil) to purchase or sell a house, and the agent completes the transaction, and subsequently two sons of the principal (muwakkil) testify against the pre-emptor regarding the surrender of the house (taslim-e-shufa), then if the agency was for purchasing, their testimony will not be accepted, whether the house is in the possession of the seller (ba'i), the agent, or the principal. If the agency was for selling, and the sold property is in the possession of the principal or the agent, then the testimony of both will not be accepted because it results in establishing ownership for their father. However, if the sold property is in the possession of the purchaser, then their testimony will be accepted; this is recorded in 'al-Muhit'.

If two sellers testify against the purchaser that as soon as the pre-emptor heard about the sale, he immediately demanded pre-emption, while the pre-emptor himself admits that he had known about the sale (3) for several days (4), and the purchaser contends that he never demanded it, then the testimony of those two sellers shall be void. Likewise, the testimony of their offspring will also be void, as in the case mentioned where both testified that the purchaser had handed over (5) the sold house to the pre-emptor. If the pre-emptor asserts that he only just learned of the sale, his statement will be accepted upon taking an oath. If two sellers testify that he has known about the sale for several days, their testimony will be void provided the property is in the possession of those two sellers or the purchaser; this is in 'al-Mabsut'. If two witnesses establish that the pre-emptor has waived his right, and two other witnesses establish that the seller and purchaser have surrendered the property under pre-emption, then the decree will be issued in favor of the party who currently possesses the house; this is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'.

If two individuals acted as guarantors for the purchaser against future claims (dark), and they then testified against the purchaser that he had surrendered the property to the pre-emptor, their testimony will be void. Similarly, if they testify that the pre-emptor has given up his right, they will be treated like those two witnesses (6) whose testimony is ineligible for acceptance; this is in 'al-Mabsut'. If the purchaser admitted to buying the house for one thousand dirhams and the pre-emptor took it for that amount, but then the seller claimed the price (thaman) was actually two thousand dirhams and presented witnesses, his witnesses will be accepted, and the purchaser will have the right to claim the remaining one thousand dirhams from the pre-emptor, despite his previous admission. Likewise, if the seller claims he sold the house to the purchaser in exchange for specific goods (asbab-e-muayyan) and provides witnesses, the judge (qadi) will hear the witnesses and issue a decree against the purchaser for those goods. The pre-emptor will receive the house in exchange for the value of those specific goods. If the amount taken by the purchaser from the pre-emptor (one thousand dirhams) is less than the total value of the goods, the purchaser shall recover the difference from the pre-emptor. If it exceeds the value, the pre-emptor shall recover the excess amount. Furthermore, if a man marries a woman on the condition of a house, provided that she returns one thousand dirhams to him, until...

---

**Footnotes:** le: Meaning it is proven that the sold house is the necessary property of their father because the pre-emptor has surrendered the right. (1) In favor of the purchaser. (2) "It has been several days since the news reached me" or "I learned of it". (3) Regarding the sale. (4) The testimony is inadmissible. (5) As mentioned previously. (6) Handover of the house to the pre-emptor.

---

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 212 किताब अल-शफ़ा (अग्रक्रयाधिकार की पुस्तक)**

...के क़ब्ज़े में हो और चाहे उनका (1) बाप इसका दावेदार हो या न हो, यह 'मुहीत' में है। अगर एक मकान (दार) तीन आदमियों के बीच साझा हो और उनमें से एक या दो साझीदारों ने गवाही दी कि "हम सबने यह मकान अमुक व्यक्ति को बेच दिया है" और उस व्यक्ति ने भी ऐसा ही दावा किया, परंतु तीसरा साझीदार इससे इनकार करता है, तो उन दोनों की गवाही उस साझीदार के विरुद्ध मान्य नहीं होगी। ऐसी स्थिति में, 'शफ़ी' (अग्रक्रयाधिकार रखने वाला) को अधिकार होगा कि वह इस मकान का दो-तिहाई हिस्सा शफ़ा (Pre-emption) के अधिकार के तहत ले ले। और यदि खरीदार (मुश्तरी) ने खरीदने से इनकार किया, लेकिन तीनों साझीदारों ने स्वीकार किया कि उसने खरीदा है, तो भी उन लोगों (2) की गवाही अमान्य होगी, परंतु शफ़ी को अधिकार होगा कि वह पूरा मकान शफ़ा के तहत ले ले; यह 'मबसूत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे को मकान खरीदने या बेचने के लिए अपना प्रतिनिधि (वकील) नियुक्त किया, और उसने उसे खरीद या बेच दिया, और फिर उस मुख्य व्यक्ति (मुवक्किल) के दो पुत्रों ने शफ़ी के विरुद्ध मकान सौंपने (तस्लीम-ए-शफ़ा) की गवाही दी, तो यदि उसे खरीदने के लिए नियुक्त किया गया था, तो उन दोनों की गवाही स्वीकार नहीं की जाएगी, चाहे वह मकान विक्रेता (बाये), प्रतिनिधि या मुख्य व्यक्ति के क़ब्ज़े में हो। और यदि उसे बेचने के लिए नियुक्त किया गया था और बेची गई संपत्ति मुख्य व्यक्ति या प्रतिनिधि के क़ब्ज़े में है, तो दोनों की गवाही स्वीकार नहीं होगी क्योंकि इससे उनके पिता को मालिकाना हक स्थापित होने का लाभ मिलता है। लेकिन यदि वह संपत्ति खरीदार के क़ब्ज़े में हो, तो उनकी गवाही स्वीकार होगी; यह 'मुहीत' में है।

यदि दो विक्रेताओं ने खरीदार के विरुद्ध गवाही दी कि जैसे ही शफ़ी ने बिक्री की सूचना सुनी, उसने तुरंत शफ़ा की माँग की, और शफ़ी स्वयं स्वीकार करता है कि उसने इसके बारे में (3) कुछ दिनों पहले जान (4) लिया था, और खरीदार कहता है कि उसने शफ़ा की माँग नहीं की, तो उन दोनों विक्रेताओं की गवाही अमान्य होगी। इसी प्रकार, उनकी संतानों की गवाही भी अमान्य होगी, जैसा कि उस स्थिति में हुआ जहाँ दोनों ने गवाही दी कि खरीदार ने बेची गई संपत्ति शफ़ी के सुपुर्द (5) कर दी है। यदि शफ़ी कहे कि उसने उसी समय बिक्री के बारे में जाना था, तो शपथ के साथ उसकी बात मान ली जाएगी। और यदि दो विक्रेताओं ने गवाही दी कि उसे बिक्री के बारे में जाने कुछ दिन बीत चुके हैं, तो उनकी गवाही अमान्य होगी, बशर्ते कि वह संपत्ति उन दोनों के क़ब्ज़े में या खरीदार के क़ब्ज़े में हो; यह 'मबसूत' में है। यदि दो गवाह इस बात पर सहमत हों कि शफ़ी ने अपना अधिकार

त्याग दिया है, और दो गवाह इस बात पर सहमत हों कि विक्रेता और खरीदार ने संपत्ति शफ़ा के तहत दे दी है, तो डिक्री उस व्यक्ति के पक्ष में दी जाएगी जिसके क़ब्ज़े में वह संपत्ति वर्तमान में है; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है।

यदि दो व्यक्ति खरीदार के लिए भविष्य के दावों (दरक) के लिए ज़मानतदार बने और फिर उन्होंने खरीदार के विरुद्ध गवाही दी कि उसने संपत्ति शफ़ी को सौंप दी है, तो उनकी गवाही अमान्य होगी। इसी तरह, यदि वे गवाही दें कि शफ़ी ने अपना अधिकार त्याग दिया है, तो उन्हें उन दो गवाहों (6) के समान माना जाएगा जिनकी गवाही स्वीकार नहीं की जाती; यह 'मबसूत' में है। यदि खरीदार ने स्वीकार किया कि उसने मकान एक हज़ार दिरहम में खरीदा और शफ़ी ने उसे उसी मूल्य पर ले लिया, परंतु फिर विक्रेता ने दावा किया कि मूल्य दो हज़ार दिरहम था और गवाह पेश कर दिए, तो उसके गवाह स्वीकार किए जाएँगे और खरीदार को अधिकार होगा कि वह शेष एक हज़ार दिरहम शफ़ी से प्राप्त करे, भले ही उसने पहले एक हज़ार दिरहम होने की बात मानी थी। इसी प्रकार, यदि विक्रेता दावा करे कि उसने मकान खरीदार को किसी विशिष्ट वस्तुओं (अस्बाब-ए-मुअय्यन) के बदले बेचा है और गवाह पेश करे, तो न्यायाधीश (क़ाज़ी) गवाहों को सुनकर खरीदार के विरुद्ध उन वस्तुओं की डिक्री दे देगा। शफ़ी को वह मकान उन विशिष्ट वस्तुओं के मूल्य के बदले दिया जाएगा। यदि खरीदार ने शफ़ी से जो राशि ले ली है (एक हज़ार दिरहम) वह वस्तुओं के कुल मूल्य से कम है, तो खरीदार कमी के बराबर राशि शफ़ी से लेगा। यदि वह मूल्य से अधिक है, तो शफ़ी अतिरिक्त राशि वापस प्राप्त करेगा। और यदि किसी महिला से एक मकान की शर्त पर विवाह किया गया और शर्त यह थी कि वह उसे एक हज़ार दिरहम लौटा देगी, यहाँ तक कि...

---

**पाद-टिप्पणियाँ (Footnotes):** ले: अर्थात यह सिद्ध होता है कि बेची गई संपत्ति उनके पिता की आवश्यक संपत्ति है क्योंकि शफ़ी ने अधिकार सौंप दिया है। (1) खरीदार के पक्ष में। (2) मुझे कुछ दिन हो गए जब समाचार मिला था या मैंने जाना था। (3) बिक्री की स्थिति। (4) गवाही अस्वीकार्य है। (5) जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। (6) मकान शफ़ी को सुपुर्द करना।

---

کے قبضہ میں ہو اور خواہ ان کا (۱) باپ اس کا مدعی ہو یا نہ ہو یہ محیط میں ہے۔ اگر ایک دار تین آدمیوں میں مشترک ہو ان میں سے ایک یا دو شریکوں نے گواہی دی کہ ہم سب نے یہ دار فلاں شخص کے ہاتھ فروخت کیا ہے اور فلاں شخص نے ایسا دعویٰ کیا مگر ایک شریک ثالث اس سے منکر ہے تو شریک پر ان دونوں کی گواہی جائز نہ ہوگی اور شفیع کو اختیار ہوگا کہ اس دار کی دو تہائی حق شفعہ میں لے لے اور اگر مشتری نے خریدنے سے انکار کیا مگر تینوں شریکوں نے یوں اقرار کیا کہ اس نے خریدا ہے تو بھی ان لوگوں (۲) کی گواہی باطل ہوگی مگر شفیع کو اختیار ہوگا کہ پورا دار شفعہ میں لے لے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کو کسی دار کے خریدنے یا فروخت کرنے کے واسطے وکیل کیا پس اس نے خرید لیا یا فروخت کیا اور موکل کے دو بیٹوں نے شفیع پر تسلیم شفعہ کی گواہی دی پس اگر خریدنے کے واسطے وکیل کیا ہو تو ان دونوں کی گواہی مقبول نہ ہوگی خواہ یہ دار بائع کے قبضہ میں ہو یا وکیل کے یا موکل کے قبضہ میں ہو اور اگر بیع کے واسطے وکیل کیا ہو پس اگر دار مبیعہ موکل یا وکیل کے قبضہ میں ہو تو دونوں کی گواہی مقبول نہ ہوگی اس واسطے کہ ان دونوں کی گواہی سے ان کے باپ کو تقرر ملک کا نفع حاصل ہوتا ہے اور اگر دار مبیعہ مشتری کے قبضہ میں ہو تو دونوں کی گواہی مقبول ہوگی یہ محیط میں ہے۔ اگر دو بائوں نے مشتری پر گواہی دی کہ شفیع نے جس وقت بیع کا حال سنا اسی وقت شفعہ طلب کیا ہے اور شفیع اقرار کرتا ہے کہ میں نے ایسا (۳) چند روز سے معلوم (۴) کیا ہے اور مشتری کہتا ہے کہ اس نے شفعہ نہیں طلب کیا تو دونوں بائوں کی گواہی باطل ہوگی ایسے ہی ان دونوں کی اولاد کی گواہی بھی باطل ہوگی جیسا کہ اس صورت میں مذکور ہوا کہ دونوں نے یہ گواہی دی کہ مشتری نے دار مبیعہ شفیع کے سپرد (۵) کر دیا ہے اور اگر شفیع نے کہا کہ میں

نے اسی وقت بیع کا حال جانا ہے تو قسم سے اسی کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں بائوں نے یہ گواہی دی کہ اس نے چند روز ہوئے جب سے بیع کا حال معلوم کیا ہے تو ان دونوں کی گواہی باطل ہو گی بشرطیکہ دار مشفوعہ ان دونوں کے قبضہ میں یا مشتری کے قبضہ میں ہو یہ مبسوط میں ہے۔ دو گواہ اس بات کے قائم ہوئے کہ شفیع نے شفعہ دے دیا ہے اور دو گواہ اس بات کے قائم ہوئے کہ بائع و مشتری نے دار مشفوعہ دے دیا ہے تو اس شخص کے نام ڈگری ہوگی جس کے قبضہ میں دار مذکور موجود ہے۔ یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر دو شخص مشتری کے واسطے درک کے ضامن ہوئے پھر دونوں نے مشتری پر یہ گواہی دی کہ اس نے دار مشفوعہ شفیع کے سپرد کر دیا ہے تو دونوں کی گواہی باطل ہو گی اسی طرح اگر دونوں نے یہ گواہی دی کہ شفیع نے شفعہ دے دیا ہے تو بھی یہ دونوں بمنزلہ دو بائوں (۶) کے قرار دیئے جائیں گے کہ ان دونوں کی گواہی قبول نہ ہوگی یہ مبسوط میں ہے۔ اگر مشتری نے یہ اقرار کیا کہ میں نے یہ دار ایک ہزار درہم کو خریدا پس شفیع نے اسی قدر درہموں کے عوض شفعہ میں لے لیا پھر بائع نے دعویٰ کیا کہ ثمن دو ہزار درہم ہیں اور اس پر گواہ قائم کر دیئے تو اس کے گواہ مقبول ہوں گے اور مشتری کو اختیار ہوگا کہ شفیع سے باقی ایک ہزار درہم لے لے اگر چہ اس نے اقرار کیا تھا کہ ثمن ایک ہزار درہم ہے اسی طرح اگر بائع نے یوں دعویٰ کیا کہ میں نے مشتری کے ہاتھ یہ دار بعوض ایک اسباب معین کے فروخت کیا ہے اور اس پر گواہ قائم کئے تو قاضی اس کے گواہوں کی سماعت کر کے مشتری پر اسی اسباب کی ڈگری کر دے گا۔ شفیع کو وہ دار اس اسباب معین کی قیمت کے عوض دیا جائے گا پس اگر وہ مقدار جو مشتری نے شفیع سے لی ہے یعنی ہزار درہم اسباب کی پوری قیمت سے کم ہو تو مشتری بقدر کمی کے شفیع سے لے لے گا اور اگر اس اسباب کی قیمت سے زیادہ ہو تو ہزار درہم میں سے جس قدر اس اسباب

کی قیمت سے زیادہ ہے اس کو شفیع واپس لے گا اور اگر کسی عورت سے ایک دار پر اس شرط سے نکاح کیا کہ عورت اس کو ایک ہزار درہم واپس دے یہاں تک کہ

---

**حواشی:** لے: یعنی ثابت ہوتا ہے کہ دار مبیعہ ان کے باپ کی ضروری ملک ہے کیونکہ شفیع نے شفعہ دے دیا ہے۔ (۱) مشتری کے حق میں۔ (۲) مجھے چند روز ہوئے جب خبر پہنچی تھی یا میں نے جانا تھا۔ (۳) بیع کا حال۔ (۴) گواہی نامقبول ہے۔ (۵) جیسا کہ اوپر گذرا ہے۔ (۶) تسلیم الدار الی الشفیع۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 214 Book of Shufa (Pre-emption)**

According to Imam Azam (RA), except for Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA), pre-emption became obligatory to the extent of a portion worth one thousand dirhams. Subsequently, both parties disagreed regarding the 'Mahr al-Mithl' (proper dower) of the woman at the time of the contract. Specifically, the husband claimed that her proper dower was one thousand dirhams and the pre-emptor (Shafi') should receive half of the house through pre-emption, while the pre-emptor claimed that her proper dower was five hundred dirhams and he should receive two-thirds of the house. In this situation, the statement of the husband shall be accepted upon oath. If both parties produce witnesses, then according to both Imams (Abu Yusuf and Muhammad), the witnesses of the buyer (mushtari) shall be accepted, as is the case when there is a dispute over the value of a destroyed building. Furthermore, if someone makes a claim regarding their right in some land or house and then settles (sulh) for a house in exchange for that right, the pre-emptor shall receive pre-emption in that house in exchange for the value of the claimed right. If both parties dispute the value of that right, the statement of the claimant (the one from whom the right was taken) shall be accepted. If both present witnesses to prove the value, it is mentioned here that according to Imam Azam (RA), the pre-emptor's witnesses shall be accepted. This is recorded in 'Al-Muhit'.

If a person buys a house for one thousand dirhams and then a dispute arises between the pre-emptor and the buyer, where the buyer claims to have constructed the building on that property and the pre-emptor denies it, the statement of the buyer shall prevail. If both present witnesses, the pre-emptor's witnesses shall be accepted. The same ruling applies if they dispute regarding trees on the land. However, it should be clear that the buyer's statement is only acceptable if it is plausible; for instance, if he claims to have prepared (matured) these trees yesterday, his claim will not be verified. Similar items like buildings, etc., follow the same rule. If he says he bought it ten years ago and has recently prepared these trees, his statement will be accepted. This is in 'Al-Mabsut'. If the buyer says the owner first sold only the land to him and then gifted (hiba) the building, or vice versa, and the pre-emptor claims both were bought simultaneously, the buyer's statement is accepted, and the pre-emptor may take the sold property through pre-emption without the building if he wishes. This is in 'Muhit Surkhi'. If the seller says "I did not gift the building to you," his statement under oath is accepted, and he may take the building. If he says "I definitely gifted it to you," it is valid; this is in 'Al-Mabsut'. If the

buyer claims the owner gifted him a room (bayt) along with its pathway within the house and then he bought the rest, while the pre-emptor claims the whole house was bought, the pre-emptor only gets pre-emption on what the buyer admits to buying, not on what is claimed as a gift. In case of conflicting witnesses, if both present them, according to Imam Abu Yusuf (RA), the buyer's witnesses are accepted as they prove the extent of the gift, but according to Imam Muhammad (RA), the pre-emptor's witnesses should be accepted as they prove the extent of the entitlement. This is in 'Bada'i'. If a neighbor admits a room was gifted to the buyer and the buyer claims the gift happened before the purchase, the neighbor should not get pre-emption because the buyer was already a partner in rights at the time of purchasing the rest. If the neighbor claims the purchase happened before the gift, seeking pre-emption on the purchased portion, the pre-emptor's statement is accepted. If witnesses prove the gift happened before the purchase, the recipient of the gift takes precedence in pre-emption over the neighbor.

a. Meaning, by paying whatever value that right has, the pre-emptor can take that settled house through pre-emption. (1) "His statement" refers to the seller's, and he may take his building.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 214 किताब-उश-शुफ़ा**

इमाम आज़म (र.) के नज़दीक, इमाम अबू यूसुफ़ (र.) और इमाम मुहम्मद (र.) के अलावा, एक हज़ार दिरहम के हिस्से के बराबर शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) वाजिब हुआ। फिर उन दोनों ने उस महिला के निकाह के समय 'महर-ए-मिस्ल' (उचित मेहर) के बारे में विवाद किया। यानी शौहर ने कहा कि उसका महर-ए-मिस्ल एक हज़ार दिरहम है और शफ़ी (शुफ़ा का हकदार) को घर का आधा हिस्सा शुफ़ा में मिलना चाहिए, जबकि शफ़ी ने कहा कि उसका महर-ए-मिस्ल पाँच सौ दिरहम है और मुझे घर का दो-तिहाई हिस्सा शुफ़ा में मिलना चाहिए। ऐसी स्थिति में शपथ के साथ शौहर का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो दोनों इमामों के अनुसार खरीदार के गवाह स्वीकार किए जाएंगे, जैसा कि नष्ट हो चुकी इमारत की कीमत की मात्रा में विवाद के मामले में होता है। अतः यदि किसी ने किसी ज़मीन या घर में अपने हक का दावा किसी व्यक्ति पर किया और फिर उस हक के बदले में एक घर पर सुलह कर ली, तो शफ़ी को उस विवादित हक की कीमत के बदले उस घर में शुफ़ा मिलेगा। फिर यदि दोनों ने उस हक की कीमत की मात्रा में विवाद किया, तो वादी (दावेदार) यानी जिससे हक लिया गया है, उसका कथन मान्य होगा। और यदि दोनों ने इसकी कीमत साबित करने के लिए अपने-अपने गवाह पेश किए, तो यहाँ उल्लेख है कि इमाम आज़म (र.) के अनुसार शफ़ी के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यह 'मुहीत' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने एक हज़ार दिरहम में एक घर खरीदा, फिर शफ़ी और खरीदार के बीच विवाद हुआ और खरीदार ने कहा कि इस घर में यह इमारत मैंने बनाई है, और शफ़ी ने उसे झुठलाया, तो खरीदार का कथन मान्य होगा। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो शफ़ी के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। इसी तरह यदि दोनों ने ज़मीन के पेड़ों के बारे में ऐसा विवाद किया, तो भी यही नियम है। लेकिन स्पष्ट रहे कि खरीदार का कथन तभी स्वीकार होगा जब उसका कथन सत्य होने की संभावना रखता हो; यहाँ तक कि यदि वह दावा करे कि मैंने ये पेड़ इस ज़मीन में कल ही तैयार किए हैं, तो उसके इस कथन की पुष्टि नहीं होगी। इसी तरह अन्य चीजें जो पेड़ों के समान हैं जैसे इमारत आदि, उनमें भी इसी स्थिति में यही नियम है। और यदि उसने कहा कि मुझे इसे खरीदे दस साल हो गए हैं और इसमें ये पेड़ आदि मैंने नए तैयार किए हैं, तो उसी का कथन मान्य होगा। यह 'मबसूत' में है। यदि खरीदार ने कहा कि घर के मालिक ने पहले मुझे केवल ज़मीन बेची और फिर उसकी इमारत मुझे हिबा (दान) कर दी, या कहा कि पहले मुझे इमारत हिबा की और फिर मेरे हाथ ज़मीन बेची, और शफ़ी ने कहा कि नहीं, बल्कि तूने दोनों को एक साथ खरीदा है, तो खरीदार का कथन स्वीकार

किया जाएगा और शफ़ी चाहे तो बिना इमारत के केवल बिकी हुई चीज़ को शुफ़ा में ले ले। यह 'मुहीत सुख़्ख़ी' में है। यदि बेचने वाले ने कहा कि मैंने तुझे इमारत हिबा नहीं की है, तो शपथ के साथ उसका कथन मान्य होगा और वह इमारत ले सकता है। यदि उसने कहा कि ज़रूर मैंने तुझे इमारत हिबा की है, तो यह जायज़ होगा। यह 'मबसूत' में है। और यदि खरीदार ने कहा कि घर के मालिक ने मुझे यह कोठरी (बैत) उसके रास्ते के साथ, जो इस घर में से है, हिबा कर दी, फिर मैंने बाकी घर खरीद लिया, और शफ़ी ने कहा कि नहीं, बल्कि तूने पूरा घर खरीदा है, तो शफ़ी को केवल उतना ही हिस्सा शुफ़ा में मिल सकता है जितना खरीदने का खरीदार स्वीकार करता है, और जिसका वह हिबा का दावा करता है उसमें शुफ़ा नहीं मिल सकता। और दोनों में से जिसने गवाह पेश किए उसके गवाह स्वीकार होंगे। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो इमाम अबू यूसुफ़ (र.) के अनुसार खरीदार के गवाह स्वीकार होंगे क्योंकि उन गवाहों से हिबा की अधिकता सिद्ध होती है, लेकिन इमाम मुहम्मद (र.) के अनुसार शफ़ी के गवाह स्वीकार होने चाहिए क्योंकि उन गवाहों से अधिकार की अधिकता सिद्ध होती है। यह 'बदाए' में है। यदि पड़ोसी (जार) ने स्वीकार किया कि इस घर में से यह कोठरी खरीदार को हिबा की गई है, और खरीदार ने दावा किया कि हिबा खरीदने से पहले हुआ था, तो पड़ोसी को शुफ़ा नहीं मिलना चाहिए क्योंकि खरीदार बाकी घर खरीदने के समय अधिकारों में भागीदार था। और पड़ोसी कहता है कि नहीं, बल्कि खरीदना हिबा से पहले हुआ था, अतः जितना खरीदा गया है उसमें मुझे शुफ़ा मिलना चाहिए, तो शफ़ी (पड़ोसी) का कथन मान्य होगा। और यदि खरीदने से पहले हिबा होने के गवाह पेश कर दिए गए, तो हिबा पाने वाला पड़ोसी के मुकाबले शुफ़ा के अधिकार में अग्रिम होगा।

अ. यानी जो कीमत उस हक की हो, उतनी कीमत देकर शफ़ी उस सुलह वाले घर को शुफ़ा में ले सकता है। (1) उसका कथन यानी बेचने वाले का, और वह अपनी इमारत ले ले।

---

امام اعظمؒ کے نزدیک سوائے امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے بقدر حصہ ہزار درہم کے شفعہ واجب ہوا پھر دونوں نے اس عورت کے وقت عقد کے مہر مثل میں اختلاف کیا یعنی شوہر نے کہا کہ اس کا مہر مثل ایک ہزار درہم ہے اور شفیع کو نصف دار شفعہ میں ملنا چاہئے اور شفیع نے کہا کہ اس کا مہر مثل پانچ سو درہم ہے اور مجھے دو تہائی دار شفعہ میں ملنا چاہئے تو قسم کے ساتھ شوہر کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کئے تو دونوں اماموں کے نزدیک مشتری کے گواہ قبول ہوں گے جیسا کہ عمارت تلف کردہ شدہ کی مقدار قیمت میں اختلاف کرنے کی صورت میں ہوتا ہے پس اگر کسی زمین یا دار میں اپنے حق کا کسی شخص پر دعویٰ کیا پھر اس سے اس حق کے عوض ایک دار پر صلح کرلی تو اس حق مندعویہ کی قیمت کے عوض شفیع کو اس دار میں شفعہ ملے گا پھر اگر دونوں نے اس حق کی مقدار قیمت میں اختلاف کیا تو قول مدعی کا یعنی ماخوذ منہ کا مقبول ہوگا اور اگر دونوں نے اس کی قیمت کے ثبوت کے واسطے اپنے اپنے گواہ پیش کئے تو اس مقام پر مذکور ہے کہ امام اعظمؒ کے نزدیک شفیع کے گواہ قبول ہوں گے یہ محیط میں ہے۔

اگر ایک شخص نے ایک دار ایک ہزار درہم کو خریدا پھر شفیع و مشتری نے باہم اختلاف کیا اور مشتری نے کہا کہ اس دار میں یہ عمارت میں نے ایجاد کی ہے اور شفیع نے اس کی تکذیب کی تو قول مشتری کا قول ہوگا اور اگر دونوں نے اپنے اپنے گواہ قائم کئے تو شفیع کے گواہ قبول ہوں گے اسی طرح اگر دونوں نے زمین کے درختوں کی نسبت ایسا اختلاف کیا تو بھی یہی حکم ہے لیکن واضح رہے کہ مشتری کا قول جبھی قبول ہوگا کہ جب اس کا قول محتمل صدق ہو حتیٰ کہ اگر اس نے اسی طرح دعویٰ کیا کہ میں نے یہ درخت اس زمین میں کل کے روز تیار کر دیئے ہیں

تو اس کے اس قول کی تصدیق نہ ہوگی اس طرح اور چیزیں جو درختوں کے مانند ہوں جیسے عمارت وغیرہ ان میں بھی اسی صورت میں یہی حکم ہے اور اگر اس نے یوں کہا کہ میں نے دس برس ہوئے کہ اس کو خریدا ہے اور اس میں یہ درخت وغیرہ نئے تیار کئے ہیں تو اسی کا قول قبول ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر مشتری نے کہا کہ مالک دار نے پہلے میرے ہاتھ فقط زمین فروخت کر کے پھر اس کی عمارت مجھے ہبہ کر دی یا کہا کہ پہلے مجھے عمارت ہبہ کر کے پھر میرے ہاتھ زمین فروخت کردی ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے دونوں کو ایکبارگی خریدا ہے تو قول مشتری کا مقبول ہوگا اور شفیع کا جی چاہے مبیع کو بلا عمارت شفعہ میں لے لے یہ محیط سرخی میں ہے۔ اگر بائع نے کہا کہ میں نے تجھے عمارت ہبہ نہیں کی ہے تو قسم سے اس کا قول قبول ہوگا اور عمارت کو لے سکتا ہے۔ اگر کہا کہ ضرور میں نے تجھے عمارت ہبہ کردی ہے تو یہ جائز ہو گا یہ مبسوط میں ہے اور اگر مشتری نے کہا کہ مالک دار نے مجھے یہ بیت مع اس کے راستہ کے جو اس دار میں سے ہے ہبہ کر دیا پھر میں نے باقی دار خرید لیا ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے کل دار خریدا ہے تو شفیع کو فقط اس قدر شفعہ میں مل سکتا ہے جس قدر خریدنے کا مشتری اقرار کرتا ہے اور جس کے ہبہ کا مدعی ہے اس میں شفعہ نہیں مل سکتا ہے اور دونوں میں سے جس نے گواہ قائم کئے اس کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر ان دونوں نے اپنے اپنے گواہ قائم کئے تو امام ابو یوسفؒ کے نزدیک مشتری کے گواہ قبول ہوں گے کیونکہ ان گواہوں سے ہبہ کی زیادتی ثابت ہوتی ہے مگر امام محمدؒ کے نزدیک شفیع کے گواہ مقبول ہونے چاہئے ہیں کیونکہ ان گواہوں سے استحقاق کی زیادتی ثابت ہوتی ہے یہ بدائع میں ہے۔ اگر جار نے اقرار کیا کہ اس دار میں سے یہ بیت مشتری کو ہبہ کیا ہے اور مشتری نے دعویٰ کیا کہ ہبہ خریدنے سے پہلے ہوا ہے پس جار کو شفعہ نہ ملنا چاہئے اس واسطے کہ مشتری باقی دار خریدنے کے وقت حقوق میں شریک تھا اور جار کہتا ہے کہ نہیں بلکہ خریدنا ہبہ سے پہلے واقع

ہوا ہے پس جس قدر خریدا ہے اس میں مجھے شفعہ ملنا چاہئے تو شفیع کا قول قبول ہوگا اور اگر خریدنے سے پہلے ہبہ واقع ہونے کے گواہ قائم ہو گئے تو صاحب ہبہ بنسبت جار کے حق شفعہ میں مقدم ہوگا ا۔

ا یعنی جو قیمت اس حق کی ہو اس قدر قیمت دے کر شفیع اس دار صلح کو شفعہ میں لے سکتا ہے۔

(۱) قولہ اس کا یعنی بائع کا اور وہ اپنی عمارت لے لے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 214 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

As stated in *Al-Muhit*, if the seller (Bayi) denies having gifted the aforementioned room, his statement under oath shall be accepted. If he confirms the buyer's (Mushtari) statement (1), then that room shall belong to the donee; however, their statements shall not be accepted to invalidate the pre-emption (Shufa) regarding the rest of the house. But if witnesses are established to prove that this gift occurred before the purchase, then the buyer shall indeed become a partner in that house and shall have priority in entitlement over the neighbor (Jar). This is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*.

If a person purchases two houses that share the same neighbor (Shafi' Mulasilaq), and the buyer says, "I bought them one after the other, so I am a partner with you in the right of pre-emption for the second house," and the pre-emptor (Shafi') says, "No, rather you bought them both in a single transaction (Safqa), so I am entitled to pre-emption in both," then the pre-emptor's statement shall be accepted. This is because the buyer has admitted to buying both, which is the cause for establishing pre-emption, but then he claimed separate transactions to establish a right for himself; hence, the pre-emptor's statement is preferred. If the buyer says, "I bought one-fourth of the house and then bought three-fourths, so your full right of pre-emption is only in the one-fourth," and the pre-emptor says, "No, rather you bought three-fourths and then bought one-fourth," then the pre-emptor's statement shall be accepted. This is because the buyer admitted to purchasing three-fourths, which establishes the right of pre-emption, but then claimed something that would waive that right (i.e., that the one-fourth purchase was prior); thus, his statement shall not be verified. If the buyer says, "I bought the entire house in a single transaction," and the pre-emptor says, "No, rather you bought half first, so I will take that half," then the buyer's statement is accepted, and the pre-emptor has the option to either take the entire house or leave it. This is in *Muhit al-Sarakhsi*.

Suppose a person, Zaid (for example), produced witnesses that he bought this house from a person, Khalid (for example), for one thousand dirhams; and Amr produced witnesses that he bought a room of this house from Khalid for one hundred dirhams a month ago. In this case, I (the judge) will decree the room in the name of the one whose witnesses specified the time of purchase, and then he will have the right of pre-emption in the rest of the house. If Amr's witnesses did not specify the time, I will decree the room to be shared equally between the two claimants, and the rest of the house will be decreed to Zaid, who produced witnesses for buying the entire house,

and neither shall have the right of pre-emption over the other because it was not proven who bought first. If two houses are adjacent and one person provides witnesses that he bought one house for a thousand dirhams a month ago, and another provides witnesses for the other house that he bought it two months ago, I will decree the purchase in his name from two months ago according to the time stated by his witnesses, and then establish his right of pre-emption in the other house. If neither party's witnesses specified a time, I will decree each claimant's purchase of their respective claimed house and will not decree a right of pre-emption for either over the other. The same rule applies if one person has already taken possession of his claimed house and the other has not. If one claimant's witnesses specified the time and the other's did not, I will decree the right of pre-emption in favor of the one whose witnesses specified the time over the other claimant. This is in *Al-Mabsut*. If a person buys a house and the pre-emptor claims that the buyer has demolished part of it, and the buyer denies it, the buyer's statement shall be accepted, and the pre-emptor's witnesses shall be heard. Thus it is in *Fatawa Qazi Khan*.

---

(1) His statement: He has made a claim, so let him bring witnesses; otherwise, only the pre-emptor's statement is accepted. (1) The gift occurred before the purchase.

इसी प्रकार 'मुहीत' में है कि यदि विक्रेता (बायी) ने उक्त घर को उपहार (हिबा) करने से इनकार किया, तो शपथ के साथ उसका कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि उसने खरीदार (मुश्तरी) के कथन की पुष्टि की (1), तो वह घर उपहार प्राप्त करने वाले का हो जाएगा, लेकिन शेष घर के शुफ़ा (पूर्व-क्रय अधिकार) को रद्द करने के मामले में उन दोनों के कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी। लेकिन यदि इस बात के गवाह मिल जाएं कि यह उपहार खरीदने से पहले हुआ था, तो निश्चित रूप से खरीदार उस घर का साझीदार बन जाएगा और पड़ोसी की तुलना में हकदारी में उसे प्राथमिकता दी जाएगी। यह 'फतावा काज़ी खान' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने ऐसे दो घर खरीदे जिनका एक ही पड़ोसी (शफी मुलासिक) है, और खरीदार ने कहा कि मैंने इन दोनों को एक के बाद एक खरीदा है, इसलिए मैं दूसरे घर के शुफ़ा के अधिकार में तुम्हारे साथ साझीदार हूँ; और शुफ़ा के हकदार (शफी) ने कहा कि नहीं, बल्कि तुमने दोनों को एक ही सौदे (सफ़का) में खरीदा है, इसलिए मुझे दोनों में शुफ़ा मिलना चाहिए, तो शफी का कथन स्वीकार किया जाएगा। इसका कारण यह है कि खरीदार ने दोनों को खरीदने का स्वीकार किया है और यह शुफ़ा साबित होने का कारण है, फिर उसने अलग-अलग सौदे का दावा करके अपने लिए अधिकार साबित करने का दावा किया है, इसलिए शफी का कथन स्वीकार होगा। यदि खरीदार ने कहा कि मैंने पहले एक-चौथाई घर खरीदा फिर तीन-चौथाई खरीदा, इसलिए तुम्हारा पूरा शुफ़ा का अधिकार केवल एक-चौथाई घर में है; और शफी ने कहा कि नहीं, बल्कि तुमने पहले तीन-चौथाई खरीदकर फिर एक-चौथाई खरीदा है, तो शफी का कथन स्वीकार होगा। इसका कारण यह है कि खरीदार ने तीन-चौथाई खरीदने का स्वीकार किया है और यह शुफ़ा का अधिकार साबित होने का कारण है, फिर उसने ऐसी बात का दावा किया जो उस अधिकार को समाप्त करती है (अर्थात एक-चौथाई की खरीद पहले थी), इसलिए उसके कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी। और यदि खरीदार ने कहा कि मैंने पूरा घर एक ही सौदे में खरीदा है और शफी ने कहा कि नहीं, बल्कि तुमने पहले आधा खरीदा है, इसलिए मैं आधा ले लूंगा, तो खरीदार का कथन स्वीकार्य होगा और शफी को विकल्प होगा कि वह पूरा घर ले ले या छोड़ दे। यह 'मुहीत सरख़्सी' में है।

एक व्यक्ति जैद (उदाहरण के तौर पर) ने गवाह पेश किए कि मैंने यह घर फलां व्यक्ति यानी खालिद से एक हजार दिरहम में खरीदा है; और अम्र ने गवाह पेश किए कि मैंने इस घर का यह हिस्सा खालिद से सौ दिरहम में एक महीने पहले खरीदा है, तो जिसके गवाहों ने खरीद का समय बताया है,

मैं उसी के नाम उस हिस्से का फैसला दूँगा, फिर उसे शेष घर में शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। और यदि अम्र के गवाहों ने समय नहीं बताया, तो मैं दोनों दावेदारों के लिए उस हिस्से को आधा-आधा बाँटने का आदेश दूँगा, और शेष घर का फैसला जैद के नाम दूँगा जिसने पूरा घर खरीदने के गवाह पेश किए हैं, और दोनों में से किसी का दूसरे पर शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा क्योंकि दोनों में से किसी का पहले खरीदना साबित नहीं हुआ। यदि दो घर एक-दूसरे से सटे हुए हों और एक व्यक्ति ने गवाह दिए कि मैंने इसमें से यह घर एक हजार दिरहम के बदले एक महीने पहले खरीदा है, और दूसरे ने दूसरे घर के संबंध में गवाह पेश किए कि मैंने इसे दो महीने पहले खरीदा है, तो उसकी गवाही के समय के अनुसार मैं उसके नाम वह घर दो महीने पहले से खरीदने का फैसला दूँगा और फिर दूसरे घर में उसका शुफ़ा का अधिकार मानूंगा। और यदि दोनों पक्षों के गवाहों ने गवाही में समय नहीं बताया, तो मैं प्रत्येक दावेदार के नाम उसके दावाकृत घर को खरीदने का आदेश दूँगा और किसी के लिए दूसरे पर शुफ़ा का आदेश नहीं दूँगा। इसी तरह यदि एक व्यक्ति अपने दावाकृत घर पर कब्जा कर चुका हो और दूसरे ने न किया हो, तो भी यही नियम है। यदि एक दावेदार के गवाहों ने समय बताया और दूसरे के गवाहों ने नहीं बताया, तो जिसके गवाहों ने समय बताया है, उसके नाम दूसरे दावेदार पर शुफ़ा का अधिकार दूँगा। यह 'मबसूत' में है। एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा फिर शफी ने दावा किया कि उसने घर का कुछ हिस्सा ढहा दिया है और खरीदार ने इससे इनकार किया, तो खरीदार का कथन स्वीकार किया जाएगा और शफी के गवाहों को सुना जाएगा। इसी प्रकार 'फतावा काज़ी खान' में है।

---

(1) उसका कहना है कि दावा किया है तो गवाह लाओ और केवल शफी का कथन स्वीकार्य है। (1) उपहार खरीदने से पहले हुआ है।

کذا فی المحیط اور اگر بائع نے بیت مذکور ہبہ کرنے سے انکار کیا تو قسم سے اس کا قول قبول ہوگا اور اگر اس نے مشتری کے قول کی تصدیق (۱) کی تو وہ بیت موہوب لہ کا ہو جائے گا مگر باقی گھر کے شفعہ باطل کرنے میں ان دونوں کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی لیکن اگر اس امر کے گواہ قائم ہو جائیں کہ یہ ہبہ خریدنے سے پہلے واقع ہوا تھا تو البتہ مشتری اس دار کا شریک ہو جائے گا اور بنسبت جار کے استحقاق میں مقدم ہوگا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر ایک شخص نے ایسے دو دار جن کا ایک شفیع ملاصق (جار) ہے خریدے اور مشتری نے کہا کہ میں نے ان دونوں کو ایک بعد دوسرے کے خریدا ہے پس میں دوسرے دار کے حق شفعہ میں تیرے ساتھ شریک ہوں اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے دونوں کو ایک ہی صفقہ میں خریدا ہے پس مجھے دونوں شفعہ میں ملنے چاہئیں تو شفیع کا قول قبول ہوگا اس واسطے کہ مشتری نے دونوں کے خریدنے کا تو اقرار کیا اور یہ امر ثبوت شفعہ کا سبب ہے پھر اس نے جدا جدا صفقہ کا دعویٰ کر کے اپنے واسطے حق ثابت ہونے کا دعویٰ کیا ہے تو شفیع کا قول قبول ہوگا اگر مشتری نے کہا کہ میں نے چوتھائی دار خریدا پھر تین چوتھائی خریدا ہے پس تیرا پورا حق شفعہ چوتھائی دار میں ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے تین چوتھائی خرید کر پھر چوتھائی خریدا ہے تو قول شفیع کا قبول ہوگا اس واسطے کہ مشتری نے تین چوتھائی خریدنے کا اقرار کیا اور یہ امر حق شفعہ ثابت ہونے کا سبب ہے پھر ایسی بات کا دعویٰ کیا جو اس حق کو ساقط کرتی ہے یعنی چوتھائی کی خرید مقدم تھی پس اس کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی اور اگر مشتری نے کہا کہ میں نے دار تمام ایک ہی صفقہ میں خریدا ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے پہلے نصف خریدا ہے پس میں نصف لے لوں گا تو قول مشتری کا مقبول ہوگا اور شفیع کو اختیار ہوگا چاہے

کل دار کو لے لے یا چھوڑ دے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ ایک شخص زید (مثلاً) نے گواہ قائم کئے کہ میں نے یہ دار فلاں شخص یعنی خالد (مثلاً) سے ہزار درہم کو خریدا ہے اور عمرو نے گواہ قائم کئے کہ میں نے اس دار کا یہ بیت خالد سے ایک سو درہم کو ایک مہینہ ہوا کہ خریدا ہے تو جس کے گواہوں نے خرید کا وقت بیان کیا ہے میں اسی کے نام اس بیت کی ڈگری کروں گا پھر اس کو باقی دار میں حق شفعہ حاصل ہوگا اور اگر عمرو کے گواہوں نے وقت نہ بیان کیا تو دونوں مدعیوں کے واسطے اس بیت کے نصفا نصف ہونے کا حکم دوں گا اور باقی دار کا زید کے نام جس نے پورا دار خریدنے کے گواہ قائم کئے ہیں حکم دوں گا اور دونوں میں سے کسی کا دوسرے پر حق شفعہ نہ ہوگا کیونکہ دونوں میں سے کسی کا پہلے خریدنا ثابت نہیں ہوا۔ اگر دو دار باہم ملے ہوئے ہوں اور ایک شخص نے گواہ دیئے کہ میں نے اس میں سے یہ دار بعوض ہزار درہم کے ایک مہینہ ہوا کہ خریدا ہے اور دوسرے نے دوسرے دار کی نسبت گواہ قائم کئے کہ میں نے اس کو دو مہینے ہوئے کہ خریدا ہے تو اس کی گواہی کے بیان وقت کے موافق میں اس کے نام یہ دار دو مہینہ سے خریدنے کا حکم دوں گا پھر دوسرے دار میں اس کا حق شفعہ قرار دوں گا اور اگر دونوں فریق گواہوں نے گواہی میں وقت نہ بیان کیا ہو تو ہر ایک مدعی کے نام اس کے دار مندعویہ کے خریدنے کا حکم دوں گا اور کسی کے واسطے دوسرے پر حق شفعہ کا حکم نہ دوں گا اسی طرح اگر ایک شخص اپنے دار مندعویہ پر قبضہ کر چکا ہو اور دوسرے نے نہ کیا ہو تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر ایک مدعی کے گواہوں نے وقت بیان کیا اور دوسرے کے گواہوں نے بیان نہ کیا تو جس کے گواہوں نے وقت بیان کیا ہے اس کے نام دوسرے مدعی پر حق شفعہ کا حکم دوں گا یہ مبسوط میں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار خریدا پھر شفیع نے دعویٰ کیا کہ اس نے کچھ دار منہدم کر دیا ہے اور مشتری نے اس کی تکذیب کی تو قول مشتری کا قبول ہوگا اور گواہ شفیع کے مسموع ہوں گے۔ کذا فی فتاویٰ قاضی خان۔

(۱) قولہ دعویٰ کیا ہے پس گواہ لادے اور قول فقط شفیع کا قبول ہے۔ (۱) ہبہ قبل خرید کے واقع ہوا ہے۔

**Kitab-ush-Shu'fa (The Book of Pre-emption) 215 Fatawa Alamgiri ..... Volume 8**

**Chapter Eleven: Concerning the appointment of an agent for pre-emption, the agent surrendering the right of pre-emption, and matters related thereto.**

If a buyer admits to purchasing a house and it is in his possession, pre-emption becomes obligatory. The agent will be the adversary in this matter. Witnesses from the buyer stating "I bought this house from its owner" will not be accepted if the owner is absent. However, if the owner appears at the time when the buyer has already presented witnesses for the purchase, and the owner confirms the buyer's admission of ownership but denies the claim of purchase, then that house will be taken from the pre-emptor's hand and given back to the seller. This is because their statements prove the original ownership belongs to the seller and the transfer of ownership from the buyer's side is not established. However, the owner of the house will be asked to swear an oath: "By Allah, I did not sell this house to this buyer." If he takes the oath, the said house will be returned to him. After that, if witnesses appear before the owner proving he sold the house to this buyer, the purchase will be established and the house will be given to the pre-emptor. Such witnesses (1) shall be accepted from both the buyer and the pre-emptor. If the seller admits the sale and the buyer denies it, while the sold property is still in the seller's possession, pre-emption will be decreed; this is stated in 'Muheet'.

If the buyer admits to purchasing but says that a certain person has no right of pre-emption, then I [the judge] will ask the agent (1) for witnesses regarding the reason (partnership or vicinity) by which the right of pre-emption became obligatory. If he presents such witnesses, I will decree pre-emption for him. The manner of this is to establish witnesses like this: "The house situated adjacent to the sold house is the property of my client, so-and-so." If he gives witnesses saying the house adjacent to the sold house is in my client's "possession," then I will not accept such witnesses from him. It is also stated that in such a case, I will not accept the testimony of the client's two sons, parents, or spouse. I will also not accept the testimony of his master if the agent (2) or the client is a slave or a 'mukatib' of that master; this is in 'Mabsut'.

If the pre-emption agent intended to establish the right of pre-emption due to partnership and established witnesses that his client, so-and-so, has a share in this sold house, but the witnesses did not specify the amount of the share, then such witnesses from the agent will not be accepted, nor will a decree for the right of pre-

emption be issued in his name; this is written in 'Zakheera'. If a person appoints another as an agent to acquire a certain house through pre-emption for him but does not inform the agent of the price, the agency is valid. Then, if the agent acquires it through pre-emption for the same amount as the buyer purchased it, it will be binding on the client, even if this price is so high that people normally would not suffer such a loss, whether he took it by the Qazi's order or without it; this is in 'Muheet'. If a person appoints a pre-emptor as an agent, saying, "Acquire the pre-empted house for me under your right of pre-emption," and the pre-emptor expresses this, then he cannot take the said house through pre-emption for himself. This is because the pre-emptor seeking the house for someone else is a surrender of his own pre-emption right. He is essentially seeking to have the sale made to the client, whereas if he sought the sale for himself, he would be declared as one who yields the pre-emption.

1- The agent, i.e., the agent of pre-emption, will be told: "Do you have a claim of pre-emption due to partnership or vicinity? In any case, present your witnesses."

(1) They should be in the presence and confrontation of the original owner. (2) For example, if a 'ma'zun' (authorized slave) appoints someone as an agent or pre-emptor, the testimony of the 'ma'zun's master will not be accepted.

## अध्याय ग्यारहवाँ: शफ़ा के लिए वकील नियुक्त करने, वकील-ए-शफ़ा द्वारा शफ़ा छोड़ देने और उससे संबंधित विषयों के वर्णन में

यदि क्रेता ने किसी घर को खरीदने का इकरार किया और वह उसके कब्जे में है, तो उसमें शफ़ा (अग्रक्रय का अधिकार) वाजिब हो जाएगा। इस मामले में वकील विपक्षी होगा। क्रेता की ओर से इस बात के गवाह कि "मैंने यह घर इसके मालिक से खरीदा है", ऐसी स्थिति में स्वीकार नहीं किए जाएंगे जब उसका मालिक अनुपस्थित हो। यहाँ तक कि यदि उसका मालिक उस समय उपस्थित हो जाए जब क्रेता खरीद के गवाह पेश कर चुका हो, और उसने हाज़िर होकर क्रेता के उस इकरार की पुष्टि की हो कि वह (विक्रेता) मालिक था, लेकिन क्रेता के खरीदने के दावे को झुठला दिया हो, तो वह घर शफ़ीअ (अग्रक्रय करने वाला) के हाथ से लेकर विक्रेता को दे दिया जाएगा। क्योंकि इन लोगों के बयान से यह साबित है कि मूल स्वामित्व उस विक्रेता का है और क्रेता की ओर से इस संपत्ति का हस्तांतरण साबित नहीं हुआ है। लेकिन घर के मालिक से इस बात पर कसम ली जाएगी कि "अल्लाह की कसम, मैंने यह घर इस क्रेता के हाथ नहीं बेचा है"। यदि उसने कसम खा ली, तो वह घर उसे वापस कर दिया जाएगा। फिर उसके बाद यदि मालिक के सामने इस बात के गवाह पेश कर दिए गए कि उसने यह घर इस क्रेता के हाथ बेचा है, तो खरीद साबित हो जाएगी और वह घर शफ़ीअ के कब्जे में दे दिया जाएगा। ऐसे गवाह (१) क्रेता और शफ़ीअ दोनों की तरफ से स्वीकार्य होंगे। और यदि विक्रेता ने बिक्री का इकरार किया और क्रेता ने इनकार किया, और बिकी हुई वस्तु अभी भी विक्रेता के कब्जे में है, तो शफ़ा का हुक्म दे दिया जाएगा; यह 'मुहीत' में है। यदि क्रेता ने अपने खरीदने का इकरार किया लेकिन कहा कि "फलां व्यक्ति का इसमें शफ़ा का कोई अधिकार नहीं है", तो मैं वकील (१) से साझेदारी (शिरकत) या पड़ोस (जवार) की जिस वजह से उसका शफ़ा का अधिकार वाजिब हुआ है, गवाह मांगूँगा। यदि उसने ऐसे गवाह पेश कर दिए, तो उसके लिए शफ़ा का हुक्म दूँगा। इसकी सूरत यह है कि वह इस प्रकार गवाह पेश करे कि "बिकी हुई संपत्ति के पास जो घर स्थित है, वह मेरे मुवक्किल फलां व्यक्ति की मिल्कियत है"। और यदि उसने इस प्रकार गवाह दिए कि "बिकी हुई संपत्ति के पास जो घर स्थित है, वह मेरे मुवक्किल के कब्जे में है", तो मैं उसकी तरफ से ऐसे गवाह स्वीकार नहीं करूँगा। और फरमाया कि ऐसे मामले में मुवक्किल के दो बेटों, माता-पिता, या पति/पत्नी की गवाही स्वीकार नहीं करूँगा। और उसके स्वामी (मौला) की गवाही भी स्वीकार नहीं करूँगा जब वकील (२) या मुवक्किल उस स्वामी का गुलाम या मुकातिब हो; यह

'मबसूत' में है। यदि वकील-ए-शफ़ा ने साझेदारी के कारण शफ़ा का अधिकार साबित करने का इरादा करके इस प्रकार गवाह पेश किए कि इस वकील के फलां व्यक्ति मुवक्किल का इस बिकी हुई संपत्ति में हिस्सा है, और गवाहों ने उस हिस्से की मात्रा नहीं बताई, तो वकील की तरफ से ऐसे गवाह स्वीकार्य नहीं होंगे और न ही उसके नाम पर शफ़ा के हक का हुक्म होगा; यह 'ज़खीरा' में लिखा है। यदि एक व्यक्ति ने दूसरे को अपने लिए कोई घर शफ़ा में लेने का वकील नियुक्त किया और वकील को कीमत (समन) के बारे में नहीं बताया, तो वकालत सही है। फिर यदि वकील ने उतनी राशि के बदले, जितने में क्रेता ने खरीदा है, उसे शफ़ा में लिया, तो यह मुवक्किल पर अनिवार्य होगा, चाहे यह राशि इतनी अधिक हो कि लोग सामान्यतः इतना घाटा न उठाते हों, चाहे उसने काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से लिया हो या बिना आदेश के; यह 'मुहीत' में है। यदि एक व्यक्ति ने शफ़ीअ को वकील नियुक्त किया कि "शफ़ा वाली संपत्ति अपने शफ़ा के अधिकार में मेरे लिए ले लो", और शफ़ीअ ने इसे ज़ाहिर कर दिया, तो वह उस घर को शफ़ा में नहीं ले सकता। क्योंकि शफ़ीअ का किसी दूसरे के लिए घर मांगना उसकी तरफ से अपना शफ़ा का अधिकार छोड़ना है। वह तो यही मांग रहा है कि मुवक्किल के हाथ बिक्री हो, जबकि यदि वह अपने लिए बिक्री मांगता तो उसे शफ़ा देने वाला माना जाता।

१- वकील यानी शफ़ा के वकील से कहा जाएगा कि "तू साझेदारी की वजह से शफ़ा का दावा रखता है या पड़ोस की वजह से, बहरहाल गवाह पेश कर।"

(१) वे असली मालिक के सामने और मुकाबले में हों। (२) उदाहरण के लिए, यदि किसी 'माज़ून' ने किसी को वकील नियुक्त किया या शफ़ा किया, तो माज़ून के स्वामी की गवाही स्वीकार नहीं होगी।

---

## باب گیارہواں: شفعہ کے واسطے وکیل کرنے اور وکیل شفعہ کے شفعہ دے دینے اور اس کے متصلات کے بیان میں

اگر مشتری نے کسی دار کے خریدنے کا اقرار کیا اور وہ اس کے قبضہ میں موجود ہے تو اس میں شفعہ واجب ہو جائے گا اور وکیل اس میں خصم ہوگا اور مشتری سے اس امر کے گواہ کہ میں نے یہ دار اس کے مالک سے خریدا ہے ایسی حالت میں مقبول نہ ہوں گے کہ جب اس کا مالک غائب ہو حتیٰ کہ اگر اس کا مالک اس وقت حاضر ہوا کہ جب مشتری اس سے خریدنے کے گواہ پیش کر چکا ہے اور اس نے حاضر ہو کر جو کچھ مشتری نے اس کے مالک ہونے کا اقرار کیا ہے اس اقرار کی تصدیق کی مگر مشتری نے جو اپنے خریدنے کا دعویٰ کیا ہے اس کی تکذیب کی تو وہ دار شفیع کے ہاتھ سے لے کر بائع کو دے دیا جائے گا کیونکہ ان لوگوں کے بیان سے یہ ثابت ہے کہ اصل ملک اس بائع کی ہے اور مشتری کی جانب سے اس ملک کا انتقال ثابت نہیں ہوا مگر مالک دار سے اس بات پر قسم لی جائے گی کہ واللہ میں نے یہ دار اس مشتری کے ہاتھ نہیں فروخت کیا ہے پس اگر اس نے قسم کھا لی تو دار مذکور اس کو واپس کر دیا جائے گا پھر اس کے بعد اگر مالک دار کے سامنے اس بات کے گواہ قائم ہوئے کہ اس نے یہ دار اس مشتری کے ہاتھ فروخت کیا ہے تو خرید ثابت ہو جائے گی اور وہ دار شفیع کے قبضہ میں دے دیا جائے گا اور ایسے گواہ (۱) مشتری و شفیع دونوں کی طرف سے قبول ہوں گے اور اگر بائع نے بیع کا اقرار کیا اور مشتری نے انکار کیا اور مبیعہ ہنوز بائع کے قبضہ میں موجود ہے تو شفعہ کا حکم دے دیا جائے گا محیط میں ہے۔ اگر مشتری نے اپنے خریدنے کا اقرار کیا مگر کہا کہ فلاں شخص کا اس میں کچھ حق شفعہ نہیں ہے تو میں وکیل (۱) سے شرکت یا جوار کے جس وجہ سے اس کا حق

شفعہ واجب ہوا ہے گواہ طلب کروں گا پس اگر اس نے ایسے گواہ قائم کر دیئے تو اس کے واسطے شفعہ کا حکم دوں گا اور اس کی صورت یہ ہے کہ یوں گواہ قائم کرے کہ دار مبیعہ کے پہلو میں جو دار واقع ہے وہ میرے موکل فلاں شخص کی ملک ہے اور اگر اس نے یوں گواہ دیئے کہ دار مبیعہ کے پہلو میں جو دار واقع ہے وہ میرے موکل کے قبضہ میں ہے تو میں ایسے گواہ اس کی طرف سے قبول نہ کروں گا اور فرمایا کہ ایسے مقدمہ میں موکل کے دو بیٹوں یا اس کے والدین یا اس کے زوج یا زوجہ کی گواہی قبول نہ کروں گا اور اس کے مولیٰ کی گواہی بھی قبول نہ کروں گا جب کہ وکیل (۲) یا موکل اس مولیٰ کا غلام یا مکاتب ہو یہ مبسوط میں ہے۔ اگر وکیل شفعہ نے بسبب شرکت کے حق شفعہ ثابت کرنے کا ارادہ کر کے اسی طرح گواہ قائم کئے کہ اس وکیل کے فلاں شخص موکل کا اس دار مبیعہ میں حصہ ہے اور گواہوں نے اس حصہ کی مقدار بیان نہ کی تو وکیل کی طرف سے ایسے گواہ مقبول نہ ہوں گے اور نہ اس کے نام حق شفعہ کا حکم ہو گا یہ ذخیرہ میں لکھا ہے۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کو اپنے واسطے کوئی دار شفعہ میں لینے کا وکیل کیا اور وکیل کو ثمن سے آگاہ نہ کیا تو وکیل صحیح ہے پھر اگر وکیل نے اس قدر مال کے عوض جتنے کو مشتری نے خریدا ہے شفعہ میں لیا تو موکل کے ذمہ لازم ہوگا اگرچہ یہ مال ثمن اس قدر کثیر ہو کہ لوگ اپنے اندازہ میں ایسا خسارہ نہ اٹھاتے ہوں خواہ اس نے بحکم قاضی لیا ہو یا بغیر حکم قاضی لیا ہو یہ محیط میں ہے اگر ایک شخص نے شفیع کو وکیل کیا کہ دار مشفوعہ اپنے شفعہ میں میرے واسطے لے لے پس شفیع نے اس کو ظاہر کر دیا تو دار مذکور کو شفعہ میں نہیں لے سکتا ہے کیونکہ شفیع کا غیر کے واسطے دار مذکور طلب کرنا اس کی طرف سے تسلیم شفعہ ہے پس وہ تو یہی طلب کرتا ہے کہ موکل کے ہاتھ بیع کرے حالانکہ وہ اپنے واسطے بیع طلب کرتا تو شفعہ کا دے دینے والا قرار دیا جاتا۔

۱- وکیل یعنی شفعہ کے وکیل سے کہا جائے گا تو شرکت کی وجہ سے دعویٰ شفعہ رکھتا ہے یا جوار سے بہر حال گواہ پیش کر۔

(۱) بمقابلہ و مواجہہ اصل مالک کے ہوں۔ (۲) مثلاً ماذون نے کسی کو وکیل یا شفعہ کیا تو ماذون کے مولیٰ کی گواہی مقبول نہ ہوگی۔

---

Thus, when he demands a sale for another, he shall foremost be considered as one who waives the right of pre-emption (shuf'a). Since manifesting this fact is equivalent to waiving the pre-emption right, the ruling is the same whether the purchaser (mushtari) is present or absent. If the pre-emptor (shafi) kept this hidden until he took possession of the pre-empted property, and then revealed it; if the purchaser gave him the said house without a judge's (qadi) order, it is valid, and the house shall belong to his principal (muwakkil). Even though it became clear that the pre-emptor had waived his right and then took it, the act of the purchaser surrendering it simply without a court order is treated as an initial sale. Consequently, it is as if the pre-emptor waived the pre-emption and then purchased the said house from the buyer on behalf of the principal. However, if the judge had ordered the surrender by right of pre-emption, then the house must be returned to the purchaser, because it became evident that the pre-emptor had waived his right before taking it. Thus, it is proven that the judge's ruling against the purchaser was without cause, and such a ruling is void, necessitating the return of the house to the purchaser; this is mentioned in *Al-Mabsut*.

If the pre-emptor appoints the purchaser himself as his agent (wakil) to take the house through pre-emption, it is not valid, whether the house is in the possession of the purchaser or the seller (ba'i); as stated in *Al-Muhit*. If he appoints the seller as an agent to take the house for him through pre-emption, it is permissible by analogy (*qiyas*) but not by juristic preference (*istihsan*). If he said, "I have appointed you as an agent to take it through pre-emption for this many dirhams," and the agent took it; if the purchase was for that amount or less, he is a valid agent. But if it was for more than that amount, he is not considered an agent. Similarly, if he said, "I appoint you to demand pre-emption on the condition that such-and-such person bought it," and it was later found that someone else bought it, the person will not be an agent.

If the pre-emptor appoints two agents for pre-emption, either one has the authority to litigate alone even in the absence of the other, but the authority to take the pre-empted house does not exist without the presence of the other. If one of the two agents waives the pre-emption before the judge, it is binding (1) on the principal; this is in *Al-Mabsut*. If the pre-emptor appoints an agent to claim the right of pre-emption, the agent cannot appoint a sub-agent unless the principal has given him broad authority such as "whatever you do is valid." If such authority was given and the

agent appointed a second agent with similar powers, this second agent still does not have the authority to appoint another agent.

Regarding an agent for pre-emption waiving the right: it is stated in *Shuf'a al-Asl* that if he waives it in the judge's court, it is valid. However, if he waives it outside the court, then according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad—and the initial opinion of Imam Abu Yusuf—it is not valid. Later, Imam Abu Yusuf recanted and stated that waiving pre-emption is valid both inside and outside the court. Therefore, based on the narration in *Kitab al-Shuf'a*, the agent's waiver in court is valid and no disagreement is mentioned there. *Kitab al-Wakala* and *Madhun al-Kabir* mention that such a waiver in court is valid according to Imam Azam and Imam Abu Yusuf, while Imam Muhammad disagrees. Thus, from *Kitab al-Wakala* and *Madhun al-Kabir*, it appears that the ruling in *Kitab al-Shuf'a* represents only the opinion of Imam Azam and Imam Abu Yusuf; this is in *Al-Muhit*.

If there are two pre-emptors for a house and both appoint the same person as their agent, and he waives the right of one specific principal in court while claiming the entire house for the other, it is valid. However, if he states before the judge, "I have waived the pre-emption of one and claimed only for the other," he cannot do so until he specifies which one he waived and which one he claimed; this is in *Al-Mabsut*. If the agent for pre-emption demanded pre-emption and the purchaser surrendered...

(1) It shall be valid upon acceptance by the principal.

तो जब वह किसी गैर के लिए बिक्री की मांग करता है, तो उसे प्राथमिकता के आधार पर शुफ़ा (पूर्व-क्रय अधिकार) छोड़ने वाला करार दिया जाएगा। और जब इस बात को ज़ाहिर कर देना शुफ़ा छोड़ने के समान मान लिया गया, तो चाहे खरीदार (मुश्तरी) मौजूद हो या न हो, दोनों स्थितियों में नियम समान है। यदि शुफ़ा का अधिकार रखने वाले (शफ़ी) ने इस बात को छिपा कर रखा यहाँ तक कि शुफ़ा वाली संपत्ति ले ली, फिर इस बात को ज़ाहिर किया; तो यदि खरीदार ने उसे वह घर बिना न्यायाधीश (काज़ी) के आदेश के दे दिया है, तो यह जायज़ है और वह घर उसके मुवक्किल (प्रधान) का होगा। क्योंकि यद्यपि यह स्पष्ट हो गया कि शफ़ी अपना शुफ़ा छोड़ चुका था और फिर ले लिया, लेकिन खरीदार का बिना काज़ी के आदेश के उसे दे देना प्रारंभिक बिक्री के समान माना जाएगा। अतः ऐसा हो गया मानो शफ़ी ने शुफ़ा छोड़कर फिर मुवक्किल के लिए वह घर खरीदार से खरीदा है। यदि काज़ी ने शुफ़ा के अधिकार में देने का आदेश दिया हो, तो उक्त घर खरीदार को वापस दिया जाएगा क्योंकि यह स्पष्ट हो गया कि शफ़ी लेने से पहले शुफ़ा छोड़ने वाला सिद्ध हो चुका है। अतः यह प्रमाणित हुआ कि खरीदार पर काज़ी का निर्णय बिना कारण था, इसलिए निर्णय शून्य होगा और घर खरीदार को वापस दिया जाएगा; यह 'मबसूत' में है। यदि शफ़ी ने खरीदार को ही शुफ़ा में घर लेने का वकील (प्रतिनिधि) बनाया, तो यह सही नहीं है, चाहे वह घर खरीदार के कब्ज़े में हो या विक्रेता (बाइ) के कब्ज़े में; ऐसा 'मुहीत' में है।

यदि विक्रेता को वकील बनाया कि मेरे लिए शुफ़ा में घर ले ले, तो यह कयास (तर्क) के अनुसार जायज़ है लेकिन इस्तिहसान (विवेक) के अनुसार जायज़ नहीं है। और यदि उसने कहा कि मैंने तुझे इतने दिरहमों में शुफ़ा में लेने का वकील बनाया और उसने ले लिया; तो यदि खरीद उतने ही दिरहमों पर या उससे कम पर हुई, तो वह व्यक्ति वकील होगा, और यदि उस राशि से अधिक पर हुई, तो वह व्यक्ति वकील नहीं माना जाएगा। इसी प्रकार यदि कहा कि मैंने तुझे शुफ़ा की मांग करने का वकील बनाया बशर्ते कि उसे फलां व्यक्ति ने खरीदा हो, और फिर पता चला कि उसे किसी और ने खरीदा है, तो भी वह व्यक्ति वकील नहीं होगा।

यदि शफ़ी ने दो व्यक्तियों को शुफ़ा के लिए वकील बनाया, तो उनमें से एक को अकेले मुकदमेबाजी करने का अधिकार होगा भले ही दूसरा उसके साथ न हो, लेकिन शुफ़ा वाला घर लेने का अधिकार दूसरे की मौजूदगी के बिना नहीं होगा। और यदि दोनों में से किसी एक वकील ने काज़ी के सामने खरीदार को शुफ़ा सौंप दिया (त्याग दिया), तो यह मुवक्किल पर मान्य (1) होगा; यह 'मबसूत' में है।

यदि शफ़ी ने शुफ़ा का अधिकार लेने के लिए एक वकील नियुक्त किया, तो उस वकील को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी और को वकील बनाए, सिवाय इसके कि मुवक्किल ने उसे ऐसा अधिकार दिया हो कि "तू जो कुछ करे वह मान्य है"। यदि मुवक्किल ने उसे ऐसा अधिकार दिया और उसने इसके अनुसार दूसरा वकील बनाया और उसे भी वही अधिकार दिए, तो इस दूसरे वकील को यह अधिकार नहीं होगा कि वह किसी अन्य को वकील बनाए।

जो व्यक्ति शुफ़ा के लिए वकील है, यदि उसने शुफ़ा छोड़ दिया, तो 'शुफ़ा अल-अस्ल' में लिखा है कि यदि उसने काज़ी की सभा में छोड़ा तो सही है, और यदि काज़ी की सभा के बाहर छोड़ा, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार और इमाम अबू यूसुफ़ के पहले मत के अनुसार सही नहीं है। फिर इमाम अबू यूसुफ़ ने अपने मत से रुजू (वापसी) की और कहा कि काज़ी की सभा और सभा के बाहर दोनों जगह शुफ़ा छोड़ना सही है। अतः'किताब अल-शुफ़ा' के वर्णन के अनुसार काज़ी की सभा में उक्त वकील का शुफ़ा छोड़ना सही है और इसमें कोई मतभेद वर्णित नहीं है। 'किताब अल-वकाला' और 'माज़ून-ए-कबीर' में उल्लेख है कि काज़ी की सभा में वकील का शुफ़ा छोड़ना इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार सही है, जबकि इमाम मुहम्मद इसमें असहमति जताते हैं। अतः 'किताब अल-वकाला' और 'माज़ून-ए-कबीर' के वर्णन से स्पष्ट हुआ कि 'किताब अल-शुफ़ा' में वर्णित नियम केवल इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ का मत है; यह 'मुहीत' में है।

यदि एक ही घर के दो शफ़ी हों और दोनों ने एक ही व्यक्ति को शुफ़ा के लिए वकील बनाया, और उसने काज़ी की सभा में एक मुवक्किल का शुफ़ा छोड़ दिया और दूसरे के लिए पूरा घर शुफ़ा में ले लिया, तो यह जायज़ है। यदि उसने काज़ी के सामने बयान दिया कि "मैंने दोनों मुवक्किलों में से एक का शुफ़ा छोड़ दिया और केवल दूसरे का मांगा", तो वह ऐसा नहीं कर सकता जब तक कि यह स्पष्ट न करे कि उसने किसका छोड़ा और किसका लिया। यह 'मबसूत' में है। यदि शुफ़ा के वकील ने शुफ़ा मांगा और खरीदार ने उसे सौंप...

(1) मुवक्किल द्वारा स्वीकार करने पर मान्य होगा।

---

سو جب غیر کے واسطے بیع طلب کرتا ہے تو بدرجہ اولیٰ شفعہ دے دینے والا قرار دیا جائے گا اور جب اس بات کا ظاہر کر دینا بمنزلہ شفعہ دے دینے کے قرار دیا گیا تو خواہ مشتری حاضر ہو یا حاضر نہ ہو دونوں صورتوں میں حکم یکساں ہے۔ اگر شفیع نے اس بات کو پوشیدہ رکھا یہاں تک کہ دار مشفوعہ لے لیا پھر اس بات کو ظاہر کیا پس اگر مشتری نے اس کو دار مذکور بغیر حکم قاضی دے دیا ہے تو یہ جائز ہے اور دار مذکور اس کے موکل کا ہو گا کیونکہ اگر چہ یہ بات ظاہر ہو گئی کہ شفیع اپنا شفعہ ڈال چکا تھا پھر لے لیا لیکن مشتری کا سادگی سے بغیر حکم قاضی اس کو دے دینا بمنزلہ ابتدائی بیع کے قرار دیا جائے گا پس ایسا ہو گیا کہ گویا شفیع نے شفعہ دے کر پھر موکل کے واسطے دار مذکور مشتری سے خریدا ہے۔ اگر قاضی نے بحق شفعہ دینے کا حکم دیا ہو تو دار مذکور مشتری کو واپس دیا جائے گا کیونکہ یہ بات ظاہر ہو گئی کہ شفیع لینے سے پہلے شفعہ کا دے دینے والا قرار پا چکا ہے تو ثابت ہوا کہ مشتری پر قاضی کا حکم قضاء بلا سبب تھا پس حکم قضاء باطل ہوگا اور دار مذکور مشتری کو واپس دیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر شفیع نے مشتری کو دار مشفوعہ شفعہ میں لینے کا وکیل کیا تو نہیں صحیح ہے خواہ دار مذکور مشتری کے قبضہ میں ہو یا بائع کے قبضہ میں ہو کذا فی المحیط اگر بائع کو وکیل کیا کہ میرے واسطے دار مشفوعہ شفعہ میں لے لے تو قیاساً جائز ہے مگر استحساناً جائز نہیں ہے اور اگر یوں کہا کہ میں نے تجھے اس قدر درہموں سے شفعہ میں لینے کا وکیل کیا اور اس نے لیا پس اگر خرید بھی اسی قدر درہموں پر یا اس سے کم پر واقع ہوئی ہے تو یہ شخص وکیل ہوگا اور اگر اس قدر درہموں سے زیادہ پر واقع ہوئی ہو تو یہ شخص وکیل نہ ہو گا اسی طرح اگر کہا کہ میں نے تجھے اس کو شفعہ میں طلب کرنے کا وکیل کیا بشرطیکہ اس کو فلاں شخص نے خریدا ہو پھر

معلوم ہوا کہ فلاں شخص کے سوائے دوسرے شخص نے خریدا ہے تو بھی یہ شخص وکیل نہ ہوگا۔ اگر شفیع نے دو آدمیوں کو شفعہ کے واسطے وکیل کیا تو دونوں میں ایک شخص کو تنہا خصومت کرنے کا اختیار ہو گا اگر چہ دوسرا اس کے ساتھ نہ ہو مگر دار مشفوعہ لینے کا اختیار بدون دوسرے کی موجودگی کے نہ ہو گا اور اگر دونوں میں سے ایک وکیل نے قاضی کے سامنے مشتری کو شفعہ دے دیا تو موکل پر جائز (۱) ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر شفیع نے حق شفعہ لینے کے واسطے ایک وکیل کیا تو وکیل کو یہ اختیار نہیں ہے کہ دوسرے کو وکیل کرے لیکن اگر موکل نے وکیل کو اس طرح اختیار دیا ہو کہ جو کچھ تو کرے وہ جائز ہے تو ہو سکتا ہے پس اگر موکل نے وکیل کو ایسا اختیار دیا ہو اور اس سے اختیار کے موافق اس نے دوسرا وکیل کر کے اس کو بھی اختیار دیا کہ جو کچھ تو کرے وہ جائز ہے تو اس وکیل ثانی کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ کسی غیر کو وکیل کرے جو شخص شفعہ کے واسطے وکیل ہے اگر اس نے شفعہ دے دیا تو شفعہ الاصل میں لکھا ہے کہ اگر اس نے قاضی کی مجلس میں دے دیا تو صحیح ہے اور اگر غیر مجلس قاضی میں دیا تو امام اعظم و امام محمد کے نزدیک اور پہلے قول میں امام ابو یوسف کے نزدیک نہیں صحیح ہے پھر امام ابو یوسف نے اس سے رجوع کیا اور فرمایا کہ مجلس قاضی اور غیر مجلس قاضی دونوں جگہ اس کا شفعہ دے دینا صحیح ہے پس بنا بر روایت کتاب الشفعہ کے مجلس قاضی میں وکیل مذکور کا شفعہ دے دینا صحیح ہے اور بیان کوئی اختلاف بیان نہیں کیا ہے اور کتاب الوکالہ اور ماذون کبیر میں ذکر فرمایا ہے کہ مجلس قاضی میں وکیل مذکور کا شفعہ دے دینا امام اعظم و امام ابو یوسف کے نزدیک صحیح ہے اور امام محمد اس میں خلاف کرتے ہیں پس کتاب الوکالہ و ماذون کبیر کی رویت سے ظاہر ہوا کہ جو حکم کتاب الشفعہ میں مذکور ہے وہ فقط امام اعظم و امام ابو یوسف کا قول ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر دار مشفوعہ کے دو شخص شفیع ہوں اور دونوں نے ایک شخص کو اپنے واسطے حق شفعہ لینے کا وکیل کیا پس اس نے مجلس قاضی

میں خاص ایک موکل کا شفعہ دے دیا اور دوسرے کے واسطے پورا دار شفعہ میں لے لیا تو یہ جائز ہے۔ اگر اس نے قاضی کے سامنے بیان کیا کہ میں نے دونوں موکلوں میں سے ایک کا شفعہ دیا اور فقط دوسرے کا شفعہ طلب کیا تو ایسا نہیں کر سکتا ہے جب تک یہ بیان نہ کرے کہ اس نے دونوں میں سے کس کا شفعہ دیا اور کس کا شفعہ لیتا ہے۔ یہ مبسوط میں ہے۔ وکیل بالشفہ نے اگر شفعہ طلب کیا اور مشتری نے شفعہ سپرد

(۱) تسلیم موکل پر جائز ہوگی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 217 | The Book of Pre-emption (Kitab al-Shuf'a)**

...a claim was made. If a claim is made against the principal (mokal) regarding the granting of pre-emption (shufa), and an application is made for the agent (wakeel) to take an oath saying, "By Allah! I do not know if my principal has granted pre-emption," or the principal is asked to swear, "By Allah! I have not given this pre-emption to this purchaser (mushtari)," then if the application is for the agent to take the oath, the judge (qazi) shall not administer it to him. However, if the application is for the principal to take the oath, the judge shall say to him, "Hand it over to the alert agent so that he may take it for his principal by right of pre-emption," even if the purchaser has already requested an oath from the principal. If the purchaser claims against the agent that pre-emption was surrendered and asks for an oath from him, then according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, the judge shall not administer an oath to him, though Imam Abu Yusuf disagrees on this point. Similarly, if two witnesses testify against the agent that he surrendered the pre-emption outside the judge's court, then according to Imam Azam and Imam Muhammad, the testimony of both is void (batil), and Imam Abu Yusuf also disagrees here. Furthermore, if two witnesses testify that the agent surrendered the pre-emption before a judge, but the agent was dismissed before that judge could issue an order, it is still not permissible according to Imam Azam and Imam Muhammad. If the said agent confesses before the judge, "I surrendered the pre-emption outside the court or before another judge," this confession is valid, and it will be as if he has granted pre-emption anew before the current judge. This is recorded in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'.

### ☆ If the pre-emptor (shafi) demands pre-emption from the agent before the said property is handed over to the principal's possession, it is valid. ☆

If the agent’s two sons testify that he surrendered pre-emption outside the court, I will accept their testimony; however, the testimony of the agent's or principal's sons is not permissible for establishing the agency (wakalat). This is in 'Al-Mabsut'. If a person appoints another as an agent to sell his house and he sells it for a thousand dirhams, then reduces the price by a hundred dirhams for the purchaser and compensates the principal for this loss, the pre-emptor can only take that house in pre-emption for one thousand dirhams. This is in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'. If an agent for purchasing a house buys it and takes possession, and the pre-emptor demands pre-emption from the agent before possession is handed over to the principal, it is

valid. But if it is demanded after possession is handed over to the principal, it is not valid and the right of pre-emption will be void. This is the preferred opinion, as stated in 'Khizanat al-Muftin' and 'Fatawa Kubra'. Authors of standard texts (mutoon) have mentioned the same. If the seller (ba'i) is an agent for sale on behalf of someone, the pre-emptor can take it from him provided it is in his possession, as the agent is the contracting party. Similarly, if the seller is the executor (wasi) of a deceased person, the pre-emptor has the same right regarding items whose sale is permissible by him. This is in 'Siraj al-Wahaj'. If a purchaser says before litigation by the pre-emptor, "I bought this house for so-and-so," and hands it over, and then the pre-emptor appears, there shall be no litigation between him and the purchaser. But if he says this after litigation has begun, the litigation shall not be dropped from him. If the purchaser presents witnesses saying, "I said before buying that I am the agent for so-and-so," the witnesses will not be accepted. It is narrated from Imam Muhammad that such witnesses may be accepted to postpone the litigation until the designated person (muqarr lahu) appears. This is in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'. If a person is appointed as an agent to claim the right of pre-emption for a specific house, the said agent cannot litigate in any other pre-emption case except for that house, because agency becomes restricted when defined specifically. Yes, according to Imam Muhammad, this is not permissible because, in his view, granting pre-emption before a judge is fundamentally not permissible, contrary to the view of Imam Azam. Accordingly, what follows should be according to the view of Imam Azam only.

...दावा किया गया। फिर अगर मोक्कल (प्रिंसिपल) पर शफ़ा (pre-emption) दे देने का दावा करके वकील से इस तरह क़सम लेने की दरख्वास्त की कि 'वल्लाह! मैं नहीं जानता कि मेरे मोक्कल ने शफ़ा दे दिया है', या मोक्कल से इस तरह क़सम लेने की दरख्वास्त की 'वल्लाह! मैंने इस मुश्तरी (क्रेता) को अपना यह शफ़ा नहीं दिया है', तो अगर उसने वकील से क़सम लेने की दरख्वास्त की, तो क़ाज़ी उसे क़सम नहीं दिलाएगा। और अगर उसने मोक्कल से क़सम लेने की दरख्वास्त की, तो क़ाज़ी उससे कहेगा कि तुम वकील को सौंप दो ताकि वह अपने मोक्कल के लिए शफ़ा के अधिकार के तहत ले ले, भले ही मुश्तरी मोक्कल से क़सम लेने की दरख्वास्त कर चुका हो। अगर मुश्तरी ने वकील पर तस्लीम-ए-शफ़ा (शफ़ा स्वीकार करने) का दावा किया और उससे क़सम लेने की दरख्वास्त की, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के नज़दीक क़ाज़ी उससे क़सम नहीं लेगा, और इमाम अबू यूसुफ़ इसमें मतभेद रखते हैं। इसी तरह, अगर दो गवाहों ने वकील पर यह गवाही दी कि उसने क़ाज़ी की सभा के बाहर शफ़ा दे दिया है, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के नज़दीक उन दोनों की गवाही बातिल (अमान्य) है, और इसमें भी इमाम अबू यूसुफ़ मतभेद रखते हैं। इसी तरह, अगर दो गवाहों ने वकील पर यह गवाही दी कि उसने किसी क़ाज़ी के सामने शफ़ा दे दिया है, लेकिन उस क़ाज़ी के आदेश देने से पहले यह वकील पदमुक्त (dismissed) कर दिया गया था, तो भी इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के नज़दीक यह जायज़ नहीं है। और अगर उक्त वकील ने क़ाज़ी के सामने इक़रार (स्वीकार) किया कि मैंने क़ाज़ी की सभा के बाहर या किसी दूसरे क़ाज़ी के सामने शफ़ा दे दिया है, तो यह इक़रार सही है और ऐसा माना जाएगा जैसे उसने फिर से उस समय उस क़ाज़ी के सामने शफ़ा दे दिया हो। यह 'मुहीत सरखी' में दर्ज है।

### ☆ यदि शफ़ीअ (अग्रक्रेता) ने उक्त संपत्ति को मोक्कल के कब्ज़े में देने से पहले वकील से शफ़ा की माँग की, तो यह मान्य है ☆

अगर वकील के दो बेटों ने गवाही दी कि उसने (वकील ने) क़ाज़ी की सभा के बाहर शफ़ा दे दिया है, तो मैं उनकी गवाही स्वीकार करूँगा; लेकिन वकालत साबित करने के लिए वकील या मोक्कल के दो बेटों की गवाही जायज़ नहीं है। यह 'मबसूत' में है। अगर किसी व्यक्ति ने अपना घर बेचने के लिए किसी को वकील नियुक्त किया और उसने उसे एक हज़ार दरहम में बेच दिया, फिर मुश्तरी के लिए सौ दरहम कम कर दिए और मोक्कल को उस कमी का मुआवज़ा दे दिया, तो शफ़ीअ उस घर को शफ़ा में केवल एक हज़ार दरहम में ही ले सकता है। यह 'मुहीत सरखी' में है। घर खरीदने के वकील

ने अगर घर खरीदकर उस पर कब्ज़ा कर लिया और मोक्कल को कब्ज़ा सौंपने से पहले शफ़ीअ ने वकील से शफ़ा माँगा, तो यह सही है। लेकिन अगर मोक्कल को कब्ज़ा सौंपने के बाद माँगा, तो सही नहीं है और उसका शफ़ा बातिल हो जाएगा। यही पसंदीदा मत है, जैसा 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' और 'फ़तावा कुबरा' में लिखा है। मतून (मूल पाठों) के लेखकों ने भी ऐसा ही ज़िक्र किया है। अगर विक्रेता (बाइ) किसी की ओर से बेचने का वकील हो, तो शफ़ीअ उससे ले सकता है बशर्ते वह उसके कब्ज़े में हो, क्योंकि यह वकील अनुबंधकर्ता (contractor) है। इसी तरह, अगर विक्रेता किसी मृतक का वसी (executor) हो, तो जिन चीज़ों की बिक्री उसकी ओर से जायज़ है, उनमें शफ़ीअ को यही अधिकार प्राप्त है। यह 'सिराजुल वहाज' में है। अगर मुश्तरी ने शफ़ीअ के मुक़दमा (خصومت/ khusumat) शुरू करने से पहले कहा कि 'मैंने यह घर फलां व्यक्ति के लिए खरीदा है' और फिर उसे सौंप दिया, फिर शफ़ीअ उपस्थित हुआ, तो उसके और मुश्तरी के बीच कोई मुक़दमा नहीं होगा। लेकिन अगर शफ़ीअ के मुक़दमा शुरू करने के बाद उसने ऐसा कहा, तो मुक़दमा उसके ऊपर से समाप्त नहीं होगा। और अगर मुश्तरी ने इस बात के गवाह पेश किए कि 'मैंने खरीदने से पहले कहा था कि मैं फलां व्यक्ति का वकील हूँ', तो गवाह स्वीकार नहीं किए जाएँगे। इमाम मुहम्मद से वर्णित है कि जिसके पक्ष में स्वीकारोक्ति (muqarr lahu) की गई है, उसके उपस्थित होने तक मुक़दमे को टालने के लिए ये गवाह स्वीकार किए जा सकते हैं। यह 'मुहीत सरखी' में है। अगर किसी व्यक्ति को किसी विशेष घर के लिए शफ़ा का दावा करने हेतु वकील नियुक्त किया गया है, तो वह वकील उस घर के अलावा किसी अन्य शफ़ा के मामले में मुक़दमा नहीं लड़ सकता, क्योंकि वकालत विशिष्ट होने से सीमित हो जाती है। हाँ, इमाम मुहम्मद के नज़दीक यह इस वजह से जायज़ नहीं है क्योंकि उनके अनुसार क़ाज़ी के सामने शफ़ा देना जायज़ ही नहीं है, इमाम-ए-आज़म के विपरीत। और इसी तरह, आगे जो कुछ लिखा है, वह केवल इमाम-ए-आज़म के नज़दीक होना चाहिए।

---

کر دینے کا دعویٰ کیا پس اگر موکل پر شفعہ دے دینے کا دعویٰ کر کے وکیل سے اس طرح قسم لینے کی درخواست کی کہ واللہ میں نہیں جانتا ہوں کہ میرے موکل نے شفعہ دے دیا ہے یا موکل سے اس طرح قسم لینے کی درخواست کی واللہ میں نے اس مشتری کو اپنا یہ شفعہ نہیں دیا ہے پس اگر اس نے وکیل سے قسم لینے کی درخواست کی تو قاضی اس کو قسم نہ دلائے گا اور اگر اس نے موکل سے قسم لینے کی درخواست کی تو قاضی اس سے یوں کہے گا کہ تو بیدار وکیل کو دے دے تاکہ وہ اپنے موکل کے واسطے بحق شفعہ لے لے اگرچہ مشتری موکل سے قسم لینے کی درخواست کر چکا ہے۔ اگر مشتری نے وکیل پر تسلیم شفعہ کا دعویٰ کیا اور اس سے قسم لینے کی درخواست کی تو امام اعظم و امام محمد کے نزدیک قاضی اس سے قسم نہ لے گا اور اس میں امام ابو یوسف خلاف کرتے ہیں۔ اسی طرح اگر دو گواہوں نے وکیل پر یہ گواہی دی کہ اس نے غیر مجلس قاضی میں شفعہ دے دیا ہے تو بھی امام اعظم و امام محمد کے نزدیک دونوں کی گواہی باطل ہے اور اس میں بھی امام ابو یوسف خلاف کرتے ہیں اسی طرح اگر دو گواہوں نے وکیل پر یوں گواہی دی کہ اس نے کسی قاضی کے سامنے شفعہ دے دیا ہے مگر اس قاضی کے حکم دے دینے سے پہلے یہ وکیل معزول کیا گیا ہے تو بھی امام اعظم و امام محمد کے نزدیک نہیں جائز ہے اور اگر وکیل مذکور نے قاضی کے سامنے اقرار کیا کہ میں نے غیر مجلس قاضی میں یا کسی دوسرے قاضی کے سامنے شفعہ دے دیا ہے تو یہ اقرار صحیح ہے اور ایسا ہوگا کہ گویا اس نے از سر نو اس وقت اس قاضی کے سامنے شفعہ دے دیا۔ یہ محیط سرسی میں ہے۔

**☆ دایر مذکور اپنے موکل کے قبضہ میں دینے سے قبل شفیع نے اگر وکیل سے شفعہ طلب کیا تو صحیح ہے ☆**

اگر وکیل کے دو بیٹوں نے یوں گواہی دی کہ اس نے غیر مجلس قاضی میں شفعہ دے دیا ہے تو میں ان کی گواہی جائز رکھوں گا اور وکالت ثابت ہونے کے واسطے وکیل یا موکل کے دو بیٹوں کی گواہی جائز نہیں ہے۔ یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنا دار فروخت کرنے کے واسطے ایک شخص کو وکیل کیا اور اس نے ہزار درہم کو فروخت کر دیا پھر مشتری سے سو درہم گھٹا دیئے اور موکل کو اس گھٹی کا تاوان دے دیا تو شفیع اس دار کو شفعہ میں فقط ہزار درہم میں لے سکتا ہے یہ محیط سرسی میں ہے۔ کسی دار کے خریدنے کے وکیل نے اگر دار خرید کر اس پر قبضہ کر لیا اور قبل اس کے کہ دار مذکور اپنے موکل کے قبضہ میں دے شفیع نے اگر وکیل سے شفعہ طلب کیا تو صحیح ہے اور اگر موکل کے دے دینے کے بعد طلب کیا تو صحیح نہیں ہے اور اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اور یہی مختار ہے یہ خزانۃ المفتین و فتاویٰ کبریٰ میں لکھا ہے۔ ایسا ہی اصحاب متون نے ذکر کیا ہے۔ اگر بائع کسی شخص کی طرف سے وکیل بیع ہو تو شفیع اس سے لے سکتا ہے بشرطیکہ اس کے قبضہ میں موجود ہو اس وجہ سے کہ یہ وکیل عاقد ہے اسی طرح اگر بائع کسی میت کا وصی ہو تو جن چیزوں کی بیع اس کی طرف سے جائز ہے اس میں شفیع کو یہی اختیار ہے یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر مشتری نے شفیع کے خصومت کرنے سے پہلے یہ کہا کہ میں نے یہ دار فلاں (خلا) شخص کے واسطے خریدا ہے پھر اس کو دے دیا پھر شفیع حاضر ہوا تو اس کے مشتری کے درمیان کچھ خصومت نہ ہوگی اور اگر شفیع کے خصومت کرنے کے بعد اس نے ایسا کہا تو خصومت اس کے ذمہ سے ساقط نہ ہوگی اور اگر مشتری مذکور نے اس بات کے گواہ پیش کئے کہ میں نے خریدنے سے پہلے یہ کہا تھا کہ میں فلاں شخص کا وکیل ہوں تو گواہ مقبول نہ ہوں گے اور امام محمد سے مروی ہے کہ مقر لہ کے حاضر ہونے تک اس کے سر سے خصومت دور ہونے کے واسطے یہ گواہ مقبول ہوں گے یہ محیط سرسی میں ہے۔ اگر کسی شخص کو کسی دار معین کا حق شفعہ طلب کرنے کے واسطے

وکیل کیا تو وکیل مذکور سوائے اس دار کے دوسرے مقدمہ شفعہ میں خصومت نہیں کر سکتا ہے کیونکہ وکالت مقید کرنے سے مقید ہو جاتی ہے اور اس صورت میں موکل نے جس دار کو معین کیا ہے اس کی خصومت کے ساتھ وکالت کو مقید کر دیا ہے ہاں امام محمد کے نزدیک اس وجہ سے نہیں جائز ہے کہ ان کے نزدیک قاضی کے سامنے شفعہ دینا جائز ہی نہیں بخلاف امام اعظم کے وعلی ہذا آگے جو کچھ لکھا ہے وہ فقط امام اعظم کے نزدیک ہونا چاہئے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 218 | Kitab al-Shu'fa (The Book of Pre-emption)**

If an agent (Wakil) is appointed to litigate for every right of pre-emption (Shu'fa) that is due to the principal (Muwakkil), it is certainly permissible. The agent shall have the authority to litigate for every right of pre-emption that may arise for the principal, just as he can litigate for the rights of pre-emption existing at that time. However, he cannot litigate for any other rights like debt, etc., except for the right of pre-emption, because the agency (Wikalat) is restricted to pre-emption. But he can litigate to prove the right by which he claims pre-emption. If a person is appointed as an agent to claim his pre-emption and he takes it under pre-emption, and then a claimant comes and makes a claim regarding that pre-empted property (Dar-e-Mashfoo'a), this agent shall not be the adversary (opponent) of that claimant. And if this agent finds any defect in the said property, he shall have the authority to return it due to that defect. In this (1), there will be no need to wait for the absent principal to appear; this is in 'al-Mabsut'.

If a person is appointed as an agent for every right established for him, to claim, litigate, and take possession, the agent shall not have the authority to claim his pre-emption. Yes, he can take possession of the pre-emption for which a decree has already been passed in his name; this is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. If a person is appointed as an agent to claim his pre-emption and then the agent comes and the situation is that the building of the pre-empted property has been submerged or the trees of the pre-empted land have been burnt, and the agent takes the object of sale at the full price by right of pre-emption but the principal does not agree, then this taking shall be the responsibility of the principal; the principal cannot reject it; this is in 'al-Mabsut'. If the buyer requests the agent for claiming pre-emption to refrain from litigation with him for a certain number of days on the condition that the said agent's right of litigation and pre-emption will remain as it is, then this is permissible. This is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. If before those days passed, the agent died and the principal did not know about his death, he shall remain on his right of pre-emption. Then when the period passed and the principal came to know about his death but did not claim pre-emption or did not send another agent to claim pre-emption for himself, he shall not get pre-emption, as was the ruling initially before sending the said agent (2). So, there will be a respite for such a period that it takes to reach there from where the pre-emptor (Shafi') is present, by walking at the normal pace of people; thus it is in 'al-Mabsut'.

**Twelfth Chapter: In explanation of the pre-emption of a minor**

A minor is like an adult in the right of pre-emption; this is in 'al-Mabsut'. It is stated that a fetus (Haml) is like an adult in the right of pre-emption. Thus, if childbirth occurs within less than six months from the time the purchase took place, the child shall get pre-emption. And if childbirth occurs in six months or more from the time of purchase, he shall not get pre-emption because at the time of the sale, the existence of this child was neither proven in reality nor legally. But if his father died before the sale and this child became his heir, then in this case he will be entitled to pre-emption even if childbirth occurred in six months or more from the time of sale, because at the time of sale his existence is legally established since he became an heir to his father. Furthermore, it should be clear that when pre-emption becomes mandatory for a minor, the person in charge of claiming and taking that pre-emption will be the same person who is legally his representative (guardian) for the fulfillment of his rights, and this person is his father or...

---

1. For example, if refused due to the buyer, the agent can prove that the house adjacent to the sold house is the property of my principal, provided that... 2. The child who is in the womb is also entitled to pre-emption. (1) In this, the absence of the principal will not be considered. (2) And if the principal is not in this city.

अगर हर हक़ शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) में जो मुवक्किल (Principal) के वास्ते वाजिब हो खुसूमत (विवाद/मुकदमा) करने का वकील नियुक्त किया हो, तो अलबत्ता जायज़ है और वकील को अधिकार होगा कि हर हक़ शुफ़ा में जो मुवक्किल के वास्ते पैदा हो जाए उसमें खुसूमत करे, जैसा कि जो हक़ शुफ़ा उस वक्त मौजूद हैं उनमें खुसूमत कर सकता है, मगर सिवाय हक़ शुफ़ा के ऋण आदि दूसरे किसी हक़ में खुसूमत नहीं कर सकता है क्योंकि वकालत शुफ़ा के साथ सीमित है। लेकिन जिस कारण से वह शुफ़ा माँगता है उस हक़ के प्रमाण में खुसूमत कर सकता है। और अगर किसी व्यक्ति को अपना शुफ़ा माँगने के लिए वकील नियुक्त किया और उसने शुफ़ा में ले लिया, फिर किसी दावेदार ने आकर उस 'दार-ए-मशफ़ूआ' (वह संपत्ति जिस पर शुफ़ा का हक़ हो) में अपना कुछ दावा किया, तो यह वकील उसका प्रतिद्वंद्वी (विपक्ष) न होगा। और अगर इस वकील ने उक्त संपत्ति में कोई दोष पाया, तो उसे अधिकार होगा कि उस दोष के कारण उसे वापस कर दे। इसमें (1) मुवक्किल जो गायब है, उसके आने तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता न होगी, यह 'मब्सूत' में है।

अगर एक व्यक्ति को अपने हर हक़ के लिए, जो उसके लिए सिद्ध है, माँगने, खुसूमत करने और वसूल व कब्ज़ा कर लेने का वकील बनाया गया, तो वकील को यह अधिकार न होगा कि उसका शुफ़ा माँगे। हाँ, जिस शुफ़ा का उसके नाम आदेश हो चुका है उस पर कब्ज़ा कर सकता है, यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में है। अगर किसी व्यक्ति को अपना शुफ़ा माँगने का वकील बनाया गया, फिर वह वकील आया और स्थिति यह थी कि दार-ए-मशफ़ूआ की इमारत डूब चुकी थी या शुफ़ा वाली ज़मीन के पेड़ जल चुके थे, फिर वकील ने पूरी कीमत पर शुफ़ा के अधिकार से चीज़ ले ली लेकिन मुवक्किल राज़ी न हुआ, तो यह लेना मुवक्किल के ज़िम्मे पड़ेगा, मुवक्किल इसे रद्द नहीं कर सकता, यह 'मब्सूत' में है। अगर शुफ़ा माँगने के वकील से खरीदार ने विनती की कि इतने दिनों तक मेरे साथ झगड़ा करने से इस शर्त पर बाज़ रहे कि उक्त वकील का अपना मुक़दमेबाज़ी और शुफ़ा का अधिकार यथावत बना रहेगा, तो यह जायज़ है। यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में है। अगर इतने दिन बीतने से पहले वकील मर गया और मुवक्किल को उसकी मृत्यु का हाल मालूम न हुआ, तो वह अपने शुफ़ा के अधिकार पर रहेगा। फिर जब अवधि बीत गई और मुवक्किल को उसकी मृत्यु का पता चल गया, लेकिन उसने शुफ़ा नहीं माँगा या किसी दूसरे वकील को अपने लिए शुफ़ा माँगने के लिए नहीं भेजा, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा जैसा कि उक्त वकील को भेजने से पहले शुरुआत में आदेश था (2)। तो

इतनी अवधि की मोहलत होगी कि जहाँ शफ़ी (शुफ़ा का हक़दार) मौजूद है, वहाँ से लोगों की सामान्य चाल से चलकर यहाँ पहुँच जाए, ऐसा 'मब्सूत' में उल्लेखित है।

**बारहवाँ अध्याय: नाबालिग के शुफ़ा के वर्णन में**

नाबालिग शुफ़ा के अधिकार में बालिग की तरह होता है, यह 'मब्सूत' में है। फ़रमाया कि 'हम्ल' (गर्भ में पल रहा बच्चा) शुफ़ा के अधिकार में बालिग की तरह है। अतः यदि खरीदारी होने के समय से छह महीने से कम में जन्म हुआ, तो उस बच्चे को शुफ़ा मिलेगा। और यदि खरीदारी के समय से छह महीने या उससे अधिक में जन्म हुआ, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा क्योंकि बिक्री होने के समय उस बच्चे का अस्तित्व न तो वास्तव में सिद्ध हुआ और न ही कानूनी तौर पर। लेकिन यदि बिक्री से पहले उसका पिता मर गया हो और यह बच्चा उसका वारिस बना हो, तो इस स्थिति में वह शुफ़ा का पात्र होगा, चाहे बिक्री के समय से छह महीने या अधिक में जन्म हुआ हो, क्योंकि बिक्री के समय उसका अस्तित्व कानूनी तौर पर सिद्ध है क्योंकि वह अपने पिता का वारिस बना है। फिर स्पष्ट हो कि जब नाबालिग के लिए शुफ़ा अनिवार्य हो, तो उस शुफ़ा को माँगने और लेने का कार्यवाहक वही व्यक्ति होगा जो उसके अधिकारों की पूर्ति के लिए शरीयत के अनुसार उसका प्रतिनिधि (वली) हो, और यह व्यक्ति उसका पिता होता है या...

---

1. उदाहरण के लिए, यदि खरीदार के कारण मना कर दिया गया, तो वकील यह सिद्ध कर सकता है कि बेची गई संपत्ति के बगल में जो घर है वह मेरे मुवक्किल की संपत्ति है, बशर्ते कि... 2. जो बच्चा गर्भ में है वह भी शुफ़ा का पात्र है। (1) इसमें मुवक्किल की अनुपस्थिति पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। (2) और अगर मुवक्किल इस शहर में न हो।

اگر ہر حق شفعہ میں جو موکل کے واسطے واجب ہو خصومت کرنے کا وکیل کیا ہو تو البتہ جائز ہے اور وکیل کو اختیار ہوگا کہ ہر حق شفعہ میں جو موکل کے واسطے پیدا ہو جائے اس میں خصومت کرے جیسا کہ جو حقوق شفعہ اس وقت موجود ہیں ان میں خصومت کر سکتا ہے مگر سوائے حق شفعہ کے دین وغیرہ دوسرے کسی حق میں خصومت نہیں کر سکتا ہے کیونکہ وکالت شفعہ کے ساتھ مقید ہے لیکن جس سبب سے شفعہ طلب کرتا ہے اس حق کے اثبات میں خصومت کر سکتا ہے اور اگر کسی شخص کو اپنا شفعہ طلب کرنے کے واسطے وکیل کیا اور اس نے شفعہ میں لے لیا پھر کسی مدعی نے آکر اس دار مشفوعہ میں اپنا کچھ دعویٰ کیا تو یہ وکیل اس کا خصم نہ ہوگا اور اگر اس وکیل نے دار مذکور میں کوئی عیب پایا اس کو اختیار ہوگا کہ اس عیب کی وجہ سے اس کو واپس کر دے اس (1) میں بچہ موکل غائب کے حاضر ہونے تک انتظار کرنے کی ضرورت نہ ہوگی یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ایک شخص کو اپنے ہر حق کے جو اس کے واسطے ثابت ہے طلب کرنے اور خصومت کرنے اور وصول و قبضہ کر لینے کا وکیل کیا تو وکیل کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اس کا شفعہ طلب کرے ہاں جس شفعہ کا اس کے نام حکم ہو چکا ہے اس پر قبضہ کر سکتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر کسی شخص کو اپنا شفعہ طلب کرنے کا وکیل کیا پھر وہ وکیل آیا اور حال یہ تھا کہ دار مشفوعہ کی عمارت غرق ہو چکی تھی یا زمین مشفوعہ کے درخت جل چکے تھے پس وکیل نے پورے ثمن میں مبیع بحق شفعہ لے لی مگر موکل راضی نہ ہوا تو یہ لینا موکل کے ذمہ پڑے گا موکل اس کو رد نہیں کر سکتا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر شفعہ طلب کرنے کے وکیل سے مشتری نے درخواست کی کہ اتنے دنوں تک میرے ساتھ جھگڑا کرنے سے اس شرط سے باز رہے کہ وکیل

مذکور کو اپنا استحقاق خصومت و شفعہ بحالہ باقی رہے گا تو یہ جائز ہے۔ یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر اتنے دن گزرنے سے پہلے وکیل مر گیا اور موکل کو اس کے مرنے کا حال معلوم نہ ہوا تو وہ اپنے استحقاق شفعہ پر رہے گا پھر جب میعاد گزر گئی اور موکل کو اس کے مرنے کا علم ہو گیا مگر اس نے شفعہ طلب نہ کیا یا کسی دوسرے وکیل کو اپنے واسطے شفعہ طلب کرنے کو نہ بھیجا تو اس کو شفعہ نہ ملے گا جیسا کہ وکیل مذکور کے بھیجنے سے پہلے ابتداء حال میں حکم تھا (۲) تو اتنی مدت تک مہلت ہو گی کہ جہاں شفیع موجود ہے وہاں سے لوگوں کی چال چل کر یہاں پہنچ جائے کذا فی المبسوط۔

**بارہواں باب: نابالغ کے شفعہ کے بیان میں**

نابالغ استحقاق شفعہ میں مثل بالغ کے ہوتا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ فرمایا کہ حمل استحقاق شفعہ میں بالغ کے مثل ہے پس اگر خرید واقع ہونے کے وقت سے چھ مہینے سے کم میں وضع حمل ہوا تو اس بچہ کو شفعہ ملے گا اور اگر چھ مہینہ یا زیادہ میں وقت خرید سے وضع حمل ہوا تو اس کو شفعہ نہ ملے گا کیونکہ بیع واقع ہونے کے وقت اس بچہ کا وجود نہ حقیقتاً ثابت ہوا نہ حکماً لیکن اگر بیع سے پہلے اس کا باپ مر گیا ہو اور یہ بچہ اس کا وارث ہوا ہو تو اس صورت میں شفعہ کا مستحق ہوگا اگرچہ وقت بیع سے چھ مہینہ یا زیادہ میں وضع حمل ہوا ہو کیونکہ وقت بیع کے اس کا وجود حکماً ثابت ہے اس لئے کہ وہ اپنے باپ کا وارث ہوا ہے۔ پھر واضح ہو کہ جب صغیر کے واسطے شفعہ واجب ہو تو اس شفعہ کے طلب کرنے اور لینے کا کارپرداز وہی شخص ہوگا جو اس کے استیفاء حقوق کے واسطے شرعاً اس کا قائم مقام ہو اور یہ شخص اس کا باپ ہوتا ہے یا

---

ا مثلاً مشتری کے سبب سے انکار کیا تو وکیل ثابت کر سکتا ہے کہ دار مبیع کے پہلو میں جو دار ہے وہ میرے موکل کی ملک ہے بشرطیکہ ۔ ۲ جس بچہ کے پیٹ میں ہے وہ بھی شفعہ کا مستحق

ہے (۱) اس میں موکل کے غائب ہونے کی طرف لحاظ نہ کیا جائے گا۔ (۲) اور اگر موکل اس شہر میں نہ ہو۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 [219] Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

The executor (Wasi) of the father, then the paternal grandfather, then the executor of the paternal grandfather, then the executor appointed by the judge (Qazi). If none of these are present, the boy, upon reaching puberty, shall retain his right of pre-emption (Shufa). If he reaches puberty and attains both the option of puberty (Khiyar al-Bulugh) and the right of pre-emption, he may choose to annul the marriage or claim pre-emption. Whichever action is taken first shall be valid, and the second shall become void. A legal device for this is to say, "I have claimed both: the pre-emption and the option of puberty." If a guardian or representative of the minor is present and waives the claim of pre-emption despite having the opportunity to exercise it, the right of pre-emption is forfeited. Even when the minor reaches adulthood, he will not have the right to claim it. This is the view of Imam al-Azam (Abu Hanifa) and Imam Abu Yusuf. If the minor's father, the father's executor, or anyone who stands in as a legal guardian waives the minor's right of pre-emption, such waiver is valid according to Imam al-Azam and Imam Abu Yusuf. Consequently, when the minor reaches adulthood, he shall not have the option to take the property sold under pre-emption, regardless of whether the waiver was made in the judge's court or elsewhere. This is mentioned in 'Al-Muhit'.

If a purchaser buys a house for such an exorbitant price that people would not typically consider such a loss acceptable, and the pre-emptor (Shafi) of that house is a minor whose father waived the pre-emption, some of our associates have stated that according to Imam Muhammad, the surrender of pre-emption is valid. However, the more correct view is that the surrender is not valid by consensus (Ijma). This is because, due to such a high price, the father does not have the authority to take it on behalf of the minor. Silence or waiver of pre-emption is only valid when the person is actually in a position to take the property. Therefore, the minor will retain his right of pre-emption upon reaching puberty. This is in 'Al-Mabsut'. If the property was purchased at a price much lower than its actual value but the father of the minor waived the pre-emption, it is narrated from Imam al-Azam that this is valid, while it is narrated from Imam Muhammad that it is not valid. There is no narration from Imam Abu Yusuf regarding this. This is in 'Al-Kafi'.

If a person buys a house for his minor son and the father himself is the pre-emptor (e.g., as a neighbor or partner), then according to our school, the father can take it through pre-emption, just as it is permissible for a father to buy his minor son's property for himself. The procedure for taking it in pre-emption is to say, "I

purchased it and took it through pre-emption myself." If instead of the father, there is an executor, then if taking the house through pre-emption is beneficial for the minor—for instance, if the purchase involved a slight overpayment (ghabn-e-yasir), such as the house being worth ten dirhams but purchased for eleven—such slight overpayment is tolerated when the executor deals with a stranger. By taking it through pre-emption himself, this overpayment is neutralized. In such a scenario, since taking it through pre-emption proves beneficial for the minor, then according to the view of Imam al-Azam and one of the two narrations from Imam Abu Yusuf, the executor may take it through pre-emption, just as it is permissible for an executor to buy something for himself from the minor's property. If taking the house through pre-emption is not beneficial for the minor—for example, if the house was bought for the minor at its actual market price—then by consensus, the executor would not have the right to take it through pre-emption. This is similar to the rule that if an executor wants to buy a minor's property for himself at its market price, it is not permissible by consensus. In the case where taking through pre-emption is allowed, the executor should say, "I have purchased and claimed pre-emption," and then file an appeal before the judge so that the judge may appoint a representative on behalf of the minor. The executor can then take the property through pre-emption from this representative and pay the price, and the representative will then return the price to the executor. This is in 'Al-Muhit'.

1. Khiyar al-Bulugh (Option of Puberty) refers to a situation where a guardian other than the father or grandfather conducted the marriage during childhood; upon reaching puberty, the individual has the option to annul it, but the right is lost if delayed. If both the right of pre-emption and the option of puberty coincide... 2. And the executor, i.e., if the executor takes it through pre-emption, it will remain as a valid obligation upon the minor even if there is slight overpayment, but the executor himself...

**फतावी आलमगीरी ..... जिल्द 8 [219] किताबुश-शुफ़ा**

बाप का वसी (कार्यकारी), फिर सगा दादा, फिर सगे दादा का वसी, फिर वह वसी जिसे काज़ी (न्यायाधीश) नियुक्त करे; फिर यदि इन लोगों में से कोई मौजूद न हो, तो जिस समय यह लड़का बालिग (वयस्क) होगा, उस समय वह अपने शुफ़ा (अग्रक्रय) के अधिकार पर होगा। फिर यदि वह बालिग हुआ और उसे ख्यार-ए-बलूग (यौवन का विकल्प) और शुफ़ा प्राप्त हुआ, तो वह निकाह को रद्द करने का विकल्प चुनेगा या शुफ़ा की मांग करेगा। इन दोनों में से जो कार्य पहले घटित होगा, वह मान्य हो जाएगा और दूसरा रद्द हो जाएगा। इस मामले में युक्ति (तदबीर) यह है कि वह कहे कि "मैंने शुफ़ा और ख्यार दोनों की मांग की।" यदि नाबालिग का कोई कानूनी प्रतिनिधि मौजूद हो और उसने सामर्थ्य होने के बावजूद शुफ़ा की मांग छोड़ दी, तो शुफ़ा का अधिकार समाप्त हो जाएगा। यहाँ तक कि जब यह नाबालिग बालिग हो जाए, तब भी उसे इसे लेने का अधिकार नहीं होगा। यह इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ का मत है। और यदि नाबालिग के पिता या पिता के वसी, या जो व्यक्ति उनके समान उसका कानूनी प्रतिनिधि है, उनमें से किसी ने नाबालिग का शुफ़ा अधिकार छोड़ दिया, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार उनका ऐसा करना सही होगा। यहाँ तक कि जब नाबालिग बालिग हो जाए, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा कि वह उस संपत्ति को शुफ़ा के तहत ले ले, चाहे अधिकार छोड़ने वाले ने काज़ी की सभा में छोड़ा हो या उसके बाहर। यह 'मुहीत' में है।

यदि खरीदार ने एक घर को इतने अधिक मूल्य पर खरीदा जिसे लोग सामान्यतः घाटा मानकर स्वीकार नहीं करते, और उस घर का शफ़ी (अग्रक्रय का हकदार) एक नाबालिग है, और उसके पिता ने उसका शुफ़ा छोड़ दिया, तो हमारे कुछ साथियों ने कहा कि इस स्थिति में शुफ़ा का समर्पण इमाम मुहम्मद के अनुसार भी सही है। परंतु अधिक सही बात यह है कि सर्वसम्मति (इज्मा) से यह समर्पण सही नहीं है। इसका कारण यह है कि इतने अधिक मूल्य के कारण पिता को इसे लेने का अधिकार नहीं होता, और शुफ़ा से मौन रहना या उसे छोड़ देना तभी सही हो सकता है जब वह व्यक्ति उसे ले सकने की स्थिति में हो। अतः नाबालिग बालिग होने पर अपने शुफ़ा के अधिकार पर बना रहेगा। यह 'मबसूत' में है। यदि खरीदी गई संपत्ति का मूल्य बहुत कम तय हुआ हो, लेकिन नाबालिग के पिता ने उसका शुफ़ा अधिकार छोड़ दिया, तो इमाम-ए-आज़म से रिवायत है कि यह जायज़ है, और इमाम मुहम्मद से रिवायत है कि यह जायज़ नहीं है, और इमाम अबू यूसुफ़ से इस बारे में कोई रिवायत नहीं है। यह 'काफ़ी' में है।

एक व्यक्ति ने अपने नाबालिग बेटे के लिए एक घर खरीदा और पिता स्वयं उसका शफ़ी (पड़ोसी/साझेदार) है, तो हमारे अनुसार पिता उसे शुफ़ा में ले सकता है, जैसे कि यदि पिता ने अपने नाबालिग बेटे की संपत्ति अपने लिए खरीदी हो तो वह जायज़ होता है। वह शुफ़ा में इसे इस प्रकार लेगा कि कहे, "मैंने इसे खरीदा और स्वयं शुफ़ा के तहत ले लिया।" और यदि पिता के स्थान पर पिता का वसी हो, और यदि वसी द्वारा उस घर को लेने में नाबालिग का लाभ हो—उदाहरण के लिए, खरीद मामूली घाटे (ग़ब्न-ए-यसीर) पर हुई हो, जैसे घर का मूल्य दस दिरहम था और वसी ने उसे ग्यारह दिरहम में खरीदा, तो ऐसा मामूली घाटा वसी की ओर से किसी अजनबी के साथ लेन-देन में स्वीकार कर लिया जाता है, और वसी द्वारा स्वयं शुफ़ा में लेने से यह घाटा समाप्त हो जाता है। जब ऐसी स्थिति हो, तो वसी का शुफ़ा में लेना नाबालिग के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ, तो इमाम-ए-आज़म के कथन और दो रिवायतों में से एक के अनुसार इमाम अबू यूसुफ़ के निकट वसी इसे शुफ़ा में ले सकता है, जैसे कि यदि वसी ने नाबालिग की संपत्ति में से कोई चीज़ अपने लिए खरीदी हो, तो ऐसी स्थिति में वह जायज़ है। यदि वसी द्वारा शुफ़ा में घर लेने से नाबालिग का लाभ न हो, जैसे संपत्ति की खरीद नाबालिग के लिए उसके वास्तविक मूल्य के बराबर पर हुई हो, तो सर्वसम्मति से वसी को शुफ़ा में लेने का अधिकार नहीं होगा। यह वैसा ही है जैसे वसी नाबालिग की किसी चीज़ को उसके वास्तविक मूल्य के बराबर दाम पर अपने लिए खरीदना चाहे, तो वह सर्वसम्मति से जायज़ नहीं है। फिर जिस स्थिति में वसी के लिए शुफ़ा में लेना जायज़ है, तो वसी कहे कि "मैंने खरीदा और शुफ़ा की मांग की", फिर काज़ी के पास अपील करे ताकि काज़ी नाबालिग की ओर से एक कार्यवाहक नियुक्त करे जिससे वसी शुफ़ा में संपत्ति ले ले और उसे मूल्य चुका दे, फिर वह कार्यवाहक वह मूल्य लेकर वसी को वापस कर देगा। यह 'मुहीत' में है।

1. ख्यार-ए-बलूग यह है कि बचपन में पिता या दादा के अलावा किसी अन्य संरक्षक ने उसका निकाह कराया हो, तो बालिग होने पर उसे अधिकार होगा कि चाहे तो उसे निरस्त कर दे, परंतु देरी करने से यह अधिकार समाप्त हो जाएगा। यदि शुफ़ा और ख्यार दोनों के अधिकार एक साथ आ जाएँ..। 2. और वसी यानी यदि वसी शुफ़ा में ले ले तो वह जायज़ तौर पर नाबालिग के ज़िम्मे रहेगा, चाहे वह मामूली घाटा ही क्यों न हो, लेकिन वसी के स्वयं...।

---

باپ کا وصی پھر سگا دادا پھر سگے دادا کا وصی پھر وہ وصی جس کو قاضی مقرر کرے پھر اگر ان لوگوں میں سے کوئی موجود نہ ہو تو جس وقت یہ لڑکا بالغ ہو اس وقت اپنے استحقاق شفعہ پر ہوگا پھر اگر وہ بالغ ہوا اور اس کو خیارِ ۱ بلوغ و شفعہ حاصل ہوا پس وہ رد نکاح اختیار کرے گا یا طلب شفعہ سو ان دونوں میں سے جو امر پہلے واقع ہوگا وہ جائز ہو جائے گا اور دوسرا باطل ہو جائے گا اور اس بات میں حیلہ یہ ہے کہ یوں کہے کہ میں نے دونوں کو طلب کیا شفعہ کو اور خیار کو۔ اگر نا بالغ کا قائم مقام ان لوگوں میں سے کوئی موجود ہو اور اس نے با وجود امکان کے طلب شفعہ کو ترک کیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا حتیٰ کہ یہ نابالغ بلوغ کو پہنچے تو اس کو لینے کا حق حاصل نہ ہوگا اور یہ امام اعظم و امام ابو یوسف کا قول ہے اور اگر نا بالغ کے باپ یا باپ کے وصی یا جو شخص ان کے مانند اس کا شرعی قائم مقام ہے کسی نے صغیر کا شفعہ دے دیا تو امام اعظم و امام ابو یوسف کے نزدیک اس کا دے دینا صحیح ہوگا حتیٰ کہ جب نابالغ اپنے بلوغ کو پہنچا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ بیع مشفوعہ کو شفعہ میں لے لے خواہ شفعہ دینے والے نے مجلس قاضی میں شفعہ دیا ہو یا غیر مجلس قاضی میں دیا ہو یہ محیط میں ہے۔ اگر مشتری نے ایک دار کو اس قدر ثمن کثیر کے عوض خریدا کہ لوگ اپنے اندازہ میں اس قدر خسارہ نہیں اٹھاتے ہیں اور اس دار کا شفیع ایک نابالغ ہے پس اس کے باپ نے اس کا شفعہ دے دیا تو ہمارے بعض اصحاب نے فرمایا کہ اس صورت میں تسلیم شفعہ امام محمد کے نزدیک بھی صحیح ہے اور اصح یہ ہے کہ تسلیم بالاجماع صحیح نہیں ہے۔ اس وجہ سے کہ ایسے ثمن کثیر ہونے کے باعث سے باپ اس کے لینے کا اختیار نہیں رکھتا ہے اور طلب شفعہ سے سکوت کرنا یا شفعہ دے دینا جبھی صحیح ہو سکتا ہے کہ جب وہ شخص اس کو لے سکتا ہو پس نا بالغ وقت بلوغ کے اپنے استحقاق

شفعہ پر ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر خریدے ہوئے مشفوعہ کی اس کی قیمت سے بہت کم ثمن پر واقع ہوئی مگر نابالغ کے باپ نے اس کا شفعہ دے دیا تو امام اعظم سے روایت ہے کہ یہ جائز ہے اور امام محمد سے روایت ہے کہ یہ نہیں جائز ہے اور امام ابو یوسف سے اس میں کوئی روایت نہیں ہے۔ یہ کافی میں ہے ایک شخص نے اپنے نابالغ لڑکے کے واسطے ایک دار خریدا اور باپ ہی اس کا شفیع ہے تو ہمارے نزدیک باپ اس کو شفعہ میں لے سکتا ہے جیسا کہ اگر باپ نے اپنے نابالغ لڑکے کا مال اپنے واسطے خریدا تو جائز ہوتا ہے پھر کس طرح شفعہ میں لے گا اس کی یہ صورت ہے کہ یوں کہے کہ میں نے اس کو خریدا اور خود شفعہ میں لے لیا اور اگر بجائے باپ کے باپ کا وصی ہو پس اگر وصی کے اس دار کے لینے میں نابالغ کے حق میں منفعت ہو مثلاً خرید بغبنِ یسیر واقع ہوئی کہ دار کی قیمت مثلاً دس درہم تھی اور وصی نے گیارہ درہم کو خریدا تو ایسا غبنِ یسیر وصی کی جانب سے اجنبی کے ساتھ اس کے تصرف کرنے میں برداشت کر لیا جاتا ہے اور وصی کے خود شفعہ میں لینے سے یہ غبن مرتفع ہوتا ہے جب ایسی صورت ہوئی تو وصی کا شفعہ میں لینا نابالغ کے حق میں نافع ٹھہرا تو بصیاس قول امام اعظم و دو روایتوں میں سے ایک روایت کے موافق امام ابو یوسف کے نزدیک وصی اس کو شفعہ میں لے سکتا ہے جیسا کہ اگر وصی نے مالِ صغیر میں سے کوئی چیز اپنے واسطے خریدی تو ایسی صورت میں جائز ہے۔ اگر وصی کے شفعہ میں یہ دار لینے میں نابالغ کے حق میں منفعت نہ ہو مثلاً دار مذکور کی خرید نا بالغ کے واسطے اس دار کی قیمت کے برابر ثمن پر واقع ہوئی تو بالاتفاق وصی کو شفعہ میں لینے کا اختیار نہ ہوگا جیسا کہ اگر وصی نے اپنے واسطے نابالغ کا کوئی مال اس کی قیمت کے برابر ثمن پر خریدنا چاہا تو بالاتفاق جائز نہیں ہے۔ پھر جس صورت میں وصی کو شفعہ میں لینا جائز ہے تو وصی یوں کہے کہ میں نے خرید کیا اور شفعہ طلب کیا پھر قاضی کے پاس مرافعہ کرے تاکہ قاضی اس نابالغ کی طرف سے ایک کارپرداز مقرر کرے کہ جس سے وصی شفعہ میں

لے لے اور اس کو ثمن دے دے پھر وہ کارپرداز یہ ثمن لے کر وصی کو دے دے گا۔ یہ محیط میں ہے۔

۱ خیار بلوغ یہ کہ بچپن میں سوائے باپ دادا کے کسی ولی نے اس کا نکاح کیا تھا اب بلوغ کے وقت اس کو اختیار ہوگا کہ چاہے فسخ کر دے مگر تاخیر سے باطل ہو گا پس اگر حق شفعہ و حق خیار دونوں جمع ہوئے الخ۔ ۲ اور وصی یعنی اگر وصی شفعہ میں لے لے تو بطور جائز نابالغ کے ذمہ رہے گا اگر چہ غبنِ یسیر ہے لیکن وصی کے خود الخ۔

**Header:** Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 220 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)

**Main Body Text - First Section:** If a father purchased a house and his minor son is the pre-emptor (shafi'), but the father did not claim pre-emption for the said minor until the minor reached maturity, then upon reaching maturity, the son will not have the right to take the said house through pre-emption. This is because his father was capable of exercising the right of pre-emption, and purchasing does not conflict with exercising pre-emption; therefore, the father's silence regarding pre-emption renders the right of pre-emption void (mubtil). However, if the father sold a house of his own and his minor son is the pre-emptor, and the father did not claim pre-emption for him, then his right of pre-emption will not be void, such that when the minor reaches maturity, he will have the right to take it through pre-emption. This is because the father, in this case, was not capable of claiming pre-emption as he himself was the seller (ba'i), and the silence of a person who is unable to exercise the right does not invalidate pre-emption. If an executor (wasi) sold a house of his own or purchased one for himself while the minor is the pre-emptor, but the executor did not claim pre-emption for him, then the minor will retain his right of pre-emption until he reaches maturity, as stated in *Al-Dhakhirah* and *Al-Muhit*. However, the correct view is that in a case where a father purchases a house for himself and the minor is the pre-emptor, the answer should be detailed: that is, if there is no harm to the minor (i.e., in his interest), such as the house being purchased at a price equal to its value or at a price slightly higher within a range that people usually tolerate, then in the event of the father's silence, the minor will not have the right of pre-emption even after reaching maturity (1). But if taking it would be harmful to the minor, for example, if the father purchased the house at a price significantly higher than its value, a difference that people do not usually tolerate, and the father remained silent regarding pre-emption for him, then the minor shall have the right of pre-emption after reaching maturity. This is because the father does not have the authority to dispose of the minor's property in a manner that causes harm to the minor's interests; thus, in this case, the father did not even have the authority to exercise pre-emption for the minor, so his silence would not invalidate the pre-emption. This is mentioned in *Al-Muhit*. If the father or executor said, "I have purchased this house for the minor for one thousand dirhams," and the pre-emptor said to him, "Fear God, for you purchased it for five hundred dirhams," and the father or executor then confirmed the pre-emptor's statement, this confirmation will not be accepted against the interests of the minor,

and the pre-emptor may take it for one thousand dirhams. However, if the pre-emptor produces witnesses proving that the buyer purchased it for five hundred dirhams, then it shall be confirmed; this is in *Tatar-khaniya*. If a father purchased a house for his minor son and then he and the pre-emptor disagreed over the price, the father's word shall be accepted, because the father, in response to the pre-emptor's claim regarding the price, is denying the pre-emptor's acquisition of ownership, and in this situation, no oath is required from the father, as denying the oath is of no benefit. This is mentioned in *Al-Muhit*.

**Chapter No. (5): Regarding the Ruling of Pre-emption if the Purchase is made in Exchange for Goods (Chattels).**

If the buyer purchased the property, it must be that he purchased it either in exchange for something that has an equivalent (mithli), such as items measured by volume (kayli), weight (wazni), or count ('adadi) which are similar to one another, or he purchased it in exchange for something that has no equivalent (qimi), such as measured items 1ـه (items measured by yards which vary significantly) like pieces of cloth, or like slaves and similar things. Thus, if he purchased it in exchange for something that has an equivalent, the pre-emptor shall take it in exchange for an equivalent of that item. If he purchased it in exchange for something that has no equivalent, the pre-emptor shall take it in exchange for the price (value) of that item. This is the view according to the generality of scholars. And if the seller and buyer...

1ـه Items measured by yards in which there is disparity among them. (1) Because pre-emption became void.

**हेडर:** फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) २२० किताब अल-शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार की पुस्तक)

**मुख्य पाठ - पहला खंड:** यदि पिता ने एक घर खरीदा और उसका नाबालिग बेटा उसका शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकारी) है, तो पिता ने उक्त नाबालिग के लिए शुफ़ा का दावा नहीं किया, यहाँ तक कि उक्त नाबालिग वयस्क हो गया, तो वयस्क को यह अधिकार नहीं होगा कि उक्त घर को शुफ़ा के तहत ले, क्योंकि उसका पिता शुफ़ा के अधिकार के साथ लेने में सक्षम था क्योंकि खरीदारी करना शुफ़ा में लेने के विपरीत नहीं है, इसलिए उसका शुफ़ा से मौन रहना शुफ़ा को रद्द (मुब्तिल) करने वाला हो गया। और यदि पिता ने अपना कोई घर बेचा और उसका नाबालिग लड़का उसका शुफ़ा है और पिता ने उसका शुफ़ा नहीं माँगा, तो उसका शुफ़ा रद्द नहीं होगा, यहाँ तक कि जब उक्त नाबालिग वयस्क हो जाए तो उसे शुफ़ा में लेने का अधिकार होगा, इस कारण से कि पिता इस स्थिति में शुफ़ा माँगने में सक्षम नहीं था क्योंकि वह स्वयं विक्रेता (बाइ) था और ऐसे व्यक्ति का मौन रहना जो ले नहीं सकता, शुफ़ा को रद्द नहीं करता है। अगर वसी (अभिभावक) ने अपना कोई घर बेचा या अपने लिए खरीदा और नाबालिग उसका शुफ़ा है, लेकिन वसी ने उसके लिए शुफ़ा नहीं माँगा, तो नाबालिग अपने शुफ़ा के अधिकार पर रहेगा, यहाँ तक कि जब वह वयस्क हो जाए तो ले सकता है, यह ज़खीरा और मुहीत सुर्खी में है। लेकिन उचित यह है कि जिस स्थिति में पिता ने अपने लिए कोई घर खरीदा और नाबालिग उसका शुफ़ा है, तो उस स्थिति में उत्तर में विस्तार होना चाहिए, अर्थात यदि नाबालिग के लिए यानी उसके हक में कोई नुकसान न हो, उदाहरण के लिए उस घर की खरीद उसके मूल्य के बराबर मूल्य (थमन) पर या मूल्य से इतनी अधिक कीमत पर हुई हो जिसे लोग सामान्यतः बर्दाश्त कर लेते हैं, तो पिता के मौन रहने की स्थिति में नाबालिग को भी वयस्क होने के बाद शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा (1)। और यदि नाबालिग के लिए लेने में नुकसान हो, उदाहरण के लिए पिता ने उक्त घर को उसकी कीमत से इतनी अधिक कीमत देकर खरीदा जिसे लोग बर्दाश्त नहीं करते हैं, और पिता ने उसके लिए शुफ़ा में लेने से मौन धारण किया, तो नाबालिग को वयस्क होने के बाद शुफ़ा का अधिकार होगा क्योंकि पिता को नाबालिग के धन में इस तरह से हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है जिसमें नाबालिग के हक में नुकसान हो, अतः इस स्थिति में पिता को नाबालिग के लिए शुफ़ा में लेने का अधिकार ही नहीं था, तो उसका शुफ़ा लेने से मौन रहना शुफ़ा को रद्द नहीं करेगा, यह मुहीत में है। यदि पिता या वसी ने कहा कि मैंने नाबालिग के लिए यह घर एक हजार दिरहम के बदले खरीदा है, फिर शुफ़ा के हकदार ने उससे कहा कि तुम खुदा से डरो कि तुमने इसे पाँच सौ दिरहम में खरीदा है, तो पिता या वसी ने उसके कथन की पुष्टि कर दी, तो

नाबालिग के हक में उनके कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी और शुफ़ा का हकदार उसे हजार दिरहम में ले सकता है, लेकिन यदि शुफ़ा का हकदार गवाह पेश करे कि ग्राहक (मुश्तरी) ने इसे पाँच सौ दिरहम में खरीदा है, तो निश्चित रूप से पुष्टि होगी, यह तातारखानिया में है। यदि पिता ने अपने नाबालिग लड़के के लिए कोई घर खरीदा, फिर उसके और शुफ़ा के हकदार के बीच कीमत को लेकर विवाद हुआ, तो पिता की बात स्वीकार की जाएगी क्योंकि पिता शुफ़ा के हकदार के कीमत के दावे के बदले शुफ़ा के हकदार के मालिक बनने से इनकार करता है और इस स्थिति में पिता पर शपथ (कसम) लागू नहीं होती है क्योंकि शपथ से इनकार करना कुछ लाभदायक नहीं है। यह मुहीत में है।

**अध्याय संख्या (5): यदि क्रय वस्तुओं के बदले में हुआ हो तो उसके शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) के आदेश के वर्णन में।**

यदि ग्राहक ने खरीदा तो आवश्यक है कि या तो ऐसी वस्तु के बदले खरीदेगा जिसका समान (मिसली) उपलब्ध है जैसे माप (कैली), वजन (वज़नी) और गिनती (अददी) वाली वस्तुएं जो आपस में समान हैं, या ऐसी वस्तु के बदले खरीदेगा जिसका समान उपलब्ध नहीं है जैसे 'मजरूआत' १ (गज़ों से नापी जाने वाली चीज़ें जिनमें आपस में अंतर होता है) जैसे थान के कपड़े या जैसे गुलाम और उसके समान वस्तुएं। अतः यदि उसने ऐसी वस्तु के बदले खरीदा जिसका समान उपलब्ध है, तो शुफ़ा का हकदार उसे समान वस्तु के बदले ले लेगा और यदि ऐसी वस्तु के बदले खरीदा जिसका समान नहीं है, तो शुफ़ा का हकदार उस वस्तु के मूल्य के बदले उसे लेगा और यह आम विद्वानों के अनुसार है, और यदि विक्रेता और ग्राहक...

१ गज़ों से नाप की चीज़ें जिनमें परस्पर अंतर होता है। (१) क्योंकि शुफ़ा रद्द हो गया।

اگر باپ نے ایک دار خریدا اور اس کا نا بالغ بیٹا اس کا شفیع ہے پس باپ نے نا بالغ مذکور کے واسطے شفعہ طلب نہ کیا یہاں تک کہ نا بالغ مذکور بالغ ہو گیا تو بالغ کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ دار مذکور کو شفعہ میں لے اس واسطے کہ اس کا باپ بحق شفعہ لینے پر قادر تھا کیونکہ خرید کرنا شفعہ میں لینے کا منافی نہیں ہے پس اس کا شفعہ سے سکوت کرنا شفعہ کا مبطل ہو گیا ہے اور اگر باپ نے اپنا کوئی دار فروخت کیا اور اس کا نا بالغ لڑکا اس کا شفیع ہے اور باپ نے اس کا شفعہ طلب نہ کیا تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا حتیٰ کہ جس وقت نا بالغ مذکور بالغ ہو تو اس کو شفعہ میں لینے کا اختیار ہو گا اس وجہ سے کہ باپ اس صورت میں شفعہ طلب کرنے پر قادر نہ تھا اس لئے کہ وہی بائع تھا اور ایسے شخص کا سکوت کرنا جو نہیں لے سکتا ہے شفعہ کا مبطل نہیں ہوتا ہے۔ اگر وصی نے اپنا کوئی دار فروخت کیا یا اپنے واسطے خرید کیا اور نا بالغ اس کا شفیع ہے مگر وصی نے اس کے واسطے شفعہ طلب نہ کیا تو نا بالغ اپنے شفعہ پر رہے گا حتیٰ کہ جس وقت بالغ ہو تو لے سکتا ہے یہ ذخیرہ و محیط سرخی میں ہے۔ مگر واجب یہ ہے کہ جس صورت میں باپ نے اپنے واسطے کوئی دار خریدا اور نا بالغ اس کا شفیع ہے تو اس صورت میں جواب میں تفصیل ہونی چاہئے یعنی اگر نا بالغ کے واسطے یعنی اس کے حق میں کوئی ضرر نہ ہو مثلاً اس دار کی خرید اس کی قیمت کے برابر ثمن پر یا قیمت سے اس قدر زیادہ ثمن پر کہ ایسی زیادتی کو لوگ اندازہ میں برداشت کر لیتے ہیں واقع ہوئی ہو تو درصورت باپ کے سکوت کے نا بالغ کو بھی بعد بالغ ہونے کے استحقاق شفعہ نہ ہوگا (۱) اور اگر نا بالغ کے واسطے لینے میں ضرر ہو مثلاً باپ نے دار مذکور کی قیمت سے اس قدر زیادہ ثمن دے کر خریدا کہ ایسی زیادتی کو لوگ اپنے اندازہ میں برداشت نہیں کرتے ہیں اور باپ نے اس کے واسطے شفعہ میں لینے سے

سکوت کیا تو نا بالغ کو بعد بالغ ہونے کے استحقاق شفعہ ہو گا کیونکہ باپ کو نا بالغ کے مال میں اپنے ساتھ اس طرح تصرف کرنے کا اختیار نہیں ہے کہ جس میں نا بالغ کے حق میں ضرر ہو پس اس صورت میں باپ کو نا بالغ کے واسطے شفعہ میں لینے کا اختیار ہی نہ تھا تو اس کا شفعہ لینے سے سکوت کرنا شفعہ کا مبطل نہ ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اگر باپ نے یا وصی نے کہا کہ میں نے نا بالغ کے واسطے یہ دار بعوض ہزار درہم کے خریدا ہے۔ پس شفیع نے اس سے کہا کہ تو خدا سے ڈر کہ تو نے اس کو پانچ سو درہم کو خریدا ہے پس باپ یا وصی نے اس کے قول کی تصدیق کی تو نا بالغ کے حق میں ان کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی اور شفیع اس کو ہزار درہم میں لے سکتا ہے لیکن اگر شفیع اس بات کے گواہ قائم کرے کہ مشتری نے اس کو پانچ سو درہم میں خریدا ہے تو البتہ تصدیق ہو گی یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ باپ نے اگر اپنے نا بالغ لڑکے کے واسطے کوئی دار خریدا پھر اس نے اور شفیع نے ثمن میں اختلاف کیا تو باپ کا قول قبول ہو گا کیونکہ باپ شفیع کے ثمن دعویٰ کے عوض شفیع کے مالک ہونے سے انکار کرتا ہے اور اس صورت میں باپ پر قسم عائد نہیں ہوتی ہے اس لئے کہ قسم سے انکار کرنا کچھ مفید نہیں ہے۔ یہ محیط میں ہے۔

**باب نمبر (۵): اگر خرید بعوض عروض واقع ہو تو اس کے حکم شفعہ کے بیان میں**

اگر مشتری نے خریدا تو ضروری ہے کہ یا تو ایسی چیز کے عوض خریدے گا جس کا مثل موجود ہے جیسے کیلی ووزنی وعددی چیزیں جو باہم متقارب ہیں یا ایسی چیز کے عوض خریدے گا جس کا مثل نہیں ہے جیسے مذروعات ۱ـہ متفاوتہ المثل کپڑے کے یا جیسے غلام اور اس کے مانند چیزیں پس اگر اس نے ایسی چیز کے عوض خریدا جس کا مثل موجود ہے تو شفیع اس کو بعوض مثل کے لے لے گا اور اگر ایسی چیز کے عوض خریدا جس کا مثل نہیں ہے تو شفیع اس چیز کی قیمت کے عوض لے گا اور یہ عامہ علماء کے نزدیک ہے اور اگر بائع و مشتری...

۱۔ گزوں سے ناپ کی چیزیں جن میں باہم تفاوت ہوتا ہے۔ (۱) کیونکہ شفعہ باطل ہو گیا۔

**Fatawa Alamgiri..... Volume 8 | 221 | Kitab al-Shafa (Book of Pre-emption)**

If two parties exchanged one house for another house, the pre-emptor (*shafi*) of each house has the right to take the other house through pre-emption (*shafa*) in exchange for the value of the other house. This is because a house is not a fungible (*mithli*) commodity; hence, it is impossible to take it for an exact equivalent. From this, the rule is derived that if a house was purchased in exchange for non-monetary goods (*'arz*) and the goods perish before mutual possession is taken, the sale contract (*bai'*) between the buyer and seller will be annulled by consensus, and the pre-emptor will still have the right of pre-emption. Similarly, if the buyer took possession of the house but the goods were not handed over to the seller and they perished, the same ruling applies. However, it should be clear that the pre-emptor shall take the property for the value that became obligatory due to the contract, and not for what the buyer actually gave in place of the obligatory price. For instance, if a buyer bought a house for dirhams or dinars and then gave goods in lieu of that price, the pre-emptor will take the house for the value in dirhams or dinars, not for the value of the goods; this is recorded in *Bada'i*.

If a house was purchased in exchange for a specific slave, according to our school, the pre-emptor has the right to take the house for its market value. If the slave dies before the seller takes possession, the sale is annulled, and according to us, the pre-emptor may take the house for the value of that slave. Likewise, if the seller discovers a defect in the slave and returns him, thereby annulling the sale, the same ruling holds. If none of these events occur and the pre-emptor takes the house from the seller, he will take it for the value of the slave, and the slave will remain with his owner; the seller has no way to claim him. If the pre-emptor took the property from the buyer for the value of the slave, whether by a judge's (*qazi*) order or otherwise, and then the slave died before possession or a defect appeared, this value belongs to the seller; this is mentioned in *Mabsut*.

Imam Muhammad (RA) stated in *Kitab al-Asl* that if a person bought a house for a specific slave and the pre-emptor took the house for the slave's value by a judge's order, and then a third party proved ownership (*istihqaq*) of that slave, the pre-emption becomes void (*batil*). The pre-emptor must return the house. This applies when the pre-emptor took it by judicial decree. If the buyer voluntarily gave the house to the pre-emptor for the slave's value without a decree, and the buyer had clearly stated the price to the pre-emptor such that the price was fully known, and subsequently the slave was taken through *istihqaq*, the buyer has no right to reclaim

the house. In such a case, the transaction between the buyer and the pre-emptor is considered a new sale, and the buyer remains liable to the original seller for the value of the house. However, if the buyer did not specify the value but simply said, "I give you this house for the value of the slave," the buyer has the right to reclaim the house from the pre-emptor; this is written in *Muheet*.

If a house was bought for a slave and then the slave was returned due to a defect, the pre-emptor takes the house for the value of a sound slave, because the original contract stipulated a sound slave. The same applies if a slave was bought in exchange for a house. This is in *Mabsut*. If a person bought a house for someone else's slave with the owner's permission, the pre-emptor has the right of pre-emption. If the purchase was for a measured (*kili*) or weighed (*wazni*) commodity and it was taken via *istihqaq*, pre-emption is void. But if the commodity was a liability upon the buyer and he delivered it before separation, and then it was claimed via *istihqaq*, the pre-emption remains valid because it is treated as a debt (*dayn*). It is narrated from Imam Muhammad (RA) in *Muntaqa* that if a person bought a house for a specific or non-specific 'kur' (measure) of wheat in the city of Kufa...

---

1. *'Arz* means goods, belongings, or non-monetary assets.
2. The phrase "paid it" means even if paid before separation, it remains a debt and pre-emption persists; it does not mean that pre-emption fails if not paid immediately.

**फतावा आलमगीरी..... खंड 8 | 221 | किताब-उश-शफ़ा (पूर्व-क्रय का अधिकार)**

यदि दो व्यक्तियों ने आपस में एक मकान के बदले दूसरा मकान खरीदा या बेचा, तो प्रत्येक मकान के'शफी' (पूर्व-क्रय के अधिकार रखने वाले) को यह अधिकार होगा कि वह दूसरे मकान की कीमत के बदले उसे 'शफ़ा' (पूर्व-क्रय) में ले ले। इसका कारण यह है कि मकान 'मिसली' (ऐसी वस्तु जिसकी वैसी ही दूसरी वस्तु उपलब्ध हो) नहीं है, अतः उसके समान वस्तु के बदले उसे लेना संभव नहीं है। इसी से यह मसला निकलता है कि यदि कोई मकान किसी सामान (अज़) के बदले खरीदा गया और अभी तक आपसी कब्जा नहीं हुआ था कि वह सामान नष्ट हो गया, तो सर्वसम्मति से क्रेता और विक्रेता के बीच की बिक्री (बैअ) टूट जाएगी और शफी को शफ़ा का अधिकार मिलेगा। इसी प्रकार यदि क्रेता ने केवल मकान पर कब्जा कर लिया हो और वह सामान विक्रेता के कब्जे में न दिया हो और वह नष्ट हो जाए, तो भी यही नियम है। परन्तु यह स्पष्ट रहे कि शफी उसी वस्तु के बदले उसे लेगा जो अनुबंध (अक़्द) के कारण अनिवार्य हुई थी, न कि उस वस्तु के बदले जो क्रेता ने अनिवार्य वस्तु के स्थान पर विक्रेता को दी है। अतः यदि क्रेता ने एक मकान दिरहम या दीनारों के बदले खरीदकर फिर उस कीमत के बदले कोई सामान दे दिया, तो शफी पूर्व-क्रय वाले मकान को दिरहम या दीनारों के बदले ही लेगा, न कि उस सामान के बदले; यह 'बदाइ' में लिखा है।

और यदि कोई मकान किसी विशिष्ट गुलाम के बदले खरीदा गया, तो हमारे निकट शफी को अधिकार होगा कि वह उस मकान को उसकी कीमत पर ले ले। यदि वह गुलाम विक्रेता के कब्जे में आने से पहले मर गया, तो बिक्री रद्द हो जाएगी, और हमारे निकट शफी को अधिकार होगा कि वह उस मकान को उस गुलाम की कीमत के बदले ले ले। इसी प्रकार यदि विक्रेता ने गुलाम में कोई दोष पाकर उसे वापस कर दिया और बिक्री तोड़ दी, तो भी यही नियम है। यदि इनमें से कोई बात घटित नहीं हुई और शफी ने वह मकान विक्रेता से ले लिया, तो वह गुलाम की कीमत के बदले लेगा और गुलाम उसके मालिक के पास ही रहेगा, विक्रेता के पास उसे लेने का कोई रास्ता नहीं होगा। और यदि शफी ने पूर्व-क्रय वाला मकान क्रेता से गुलाम की कीमत के बदले काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से या बिना आदेश के ले लिया, फिर कब्जे से पहले वह गुलाम मर गया या उसमें कोई दोष उत्पन्न हो गया, तो यह कीमत विक्रेता को मिलेगी; यह 'मबसूत' में है।

इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'किताब अल-अस्ल' में फरमाया कि यदि एक व्यक्ति ने एक मकान एक विशिष्ट गुलाम के बदले खरीदा और शफी ने वह मकान गुलाम की कीमत के बदले काज़ी के आदेश से ले लिया, फिर वह गुलाम किसी तीसरे पक्ष के अधिकार (इस्तिहक़ाक़) के कारण ले लिया गया, तो

शफ़ा शून्य (बातिल) हो जाएगा। वह मकान शफी से वापस ले लिया जाएगा। यह नियम तब है जब शफी ने मकान काज़ी के आदेश से लिया हो। यदि क्रेता ने बिना काज़ी के आदेश के वह मकान शफी को गुलाम की कीमत के बदले दे दिया हो, और यदि क्रेता ने शफी को गुलाम की कीमत स्पष्ट कर दी हो कि इतनी है, जिससे कीमत पूरी तरह ज्ञात हो गई, फिर वह गुलाम इस्तिहक़ाक़ में ले लिया गया, तो क्रेता के पास मकान वापस लेने का कोई रास्ता नहीं होगा और क्रेता का इस तरह देना एक नई बिक्री माना जाएगा, और विक्रेता के लिए क्रेता पर मकान की कीमत अनिवार्य होगी। और यदि क्रेता ने शफी को गुलाम की कीमत विस्तार से न बताई हो, बल्कि केवल यह कहा हो कि मैंने तुम्हें यह मकान उस गुलाम की कीमत के बदले दिया है, तो क्रेता को अधिकार होगा कि वह मकान शफी से वापस ले ले; यह 'मुहीत' में लिखा है।

यदि गुलाम के बदले मकान खरीदा गया, फिर गुलाम में दोष पाकर उसे वापस कर दिया गया, तो शफी उस स्वस्थ गुलाम की कीमत के बदले मकान ले लेगा क्योंकि अनुबंध के समय स्वस्थ गुलाम की बात हुई थी, और शफी पर वही कीमत वाजिब होगी जो अनुबंध में तय हुई थी। यदि कोई गुलाम किसी मकान के बदले खरीदा गया, तो यह स्थिति और मकान के बदले गुलाम खरीदने की स्थिति दोनों समान हैं। यह 'मबसूत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने किसी दूसरे के गुलाम के बदले मकान खरीदा और गुलाम के मालिक ने अनुमति दे दी, तो शफी को शफ़ा का अधिकार होगा। यदि किसी नापी जाने वाली (कीली) या तोली जाने वाली (वज़नी) वस्तु के बदले खरीदा गया और वह वस्तु इस्तिहक़ाक़ के कारण ले ली गई, तो शफ़ा बातिल हो जाएगा। परन्तु यदि वह वस्तु क्रेता की जिम्मेदारी पर तय हुई और उसने अलग होने से पहले दे दी, फिर वह इस्तिहक़ाक़ में चली गई, तो शफ़ा बहाल रहेगा क्योंकि वह ऋण (दौन) के समान है। 'मुंतक़ी' में इमाम मुहम्मद (रह.) से वर्णित है कि यदि एक व्यक्ति ने दूसरे से मकान के बदले एक 'कुर' (माप) गेहूं के बदले खरीदा...

---

1. अज़ यानी सामान या संपत्ति।
2. कथन "अदा कर दी" का अर्थ है कि यदि वह अलग होने से पहले अदा कर दे, तो भी वह ऋण की श्रेणी से बाहर नहीं होगी और शफ़ा बना रहेगा; इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि अभी अदा न करे तो शफ़ा नहीं होगा।

---

نے باہم دار کو دار کے عوض خرید فروخت کیا تو ہر دار کے شفیع کو اختیار ہوگا کہ دوسرے دار کی قیمت کے عوض شفعہ میں لے لے اس واسطے کہ دار مثلی نہیں ہے پس اس کے مثل کے عوض لینا ممکن نہیں ہے اور اسی سے یہ مسئلہ نکلتا ہے کہ اگر کوئی دار بعوض عرض کے خریدا اور ہنوز باہمی قبضہ نہ ہوا تھا کہ یہ عرض تلف ہو گیا تو بالاتفاق مشتری کے درمیان بیع ٹوٹ جائے گی اور شفیع کو شفعہ ملے گا اسی طرح اگر مشتری نے فقط دار پر قبضہ کر لیا ہو اور عرض مذکور بائع کے قبضہ میں نہ دیا ہو یہاں تک کہ وہ تلف ہو گیا تو بھی یہی حکم ہے مگر واضح ہو کہ شفیع اسی چیز کے عوض لے لے گا جو بوجہ عقد کے واجب ہوئی نہ اس چیز کے عوض جو مشتری نے واجب شدہ کے بدلے بائع کو دی ہے چنانچہ اگر مشتری نے ایک دار بعوض درہم یا دیناروں کے خرید کر پھر اس ثمن کے بدلے کوئی عرض دیا تو شفیع دار مشفوعہ کو بعوض درہم یا دینار کے لے گا نہ بعوض عرض کے یہ بدائع میں لکھا ہے اور اگر کوئی دار بعوض ایک غلام معین کے خریدا تو ہمارے نزدیک شفیع کو اختیار ہو گا کہ دار مذکور کو اس کی قیمت کے لے لے اور اگر غلام مذکور بائع کے قبضہ سے پہلے مر گیا تو بیع ٹوٹ جائے گی اور ہمارے نزدیک شفیع کو اختیار ہو گا کہ دار مذکور کو بعوض اس غلام کی قیمت کے لے لے اسی طرح اگر بائع نے غلام مذکور میں کوئی عیب پا کر واپس کر کے بیع توڑ دی تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر ان میں سے کوئی بات نہ واقع ہوئی یہاں تک کہ شفیع نے وہ دار بائع سے لے لیا تو غلام مذکور کی قیمت کے عوض لے گا اور غلام مذکور اس کے مالک کے پاس رہے گا بائع کو اس کے لینے کی کوئی راہ نہ ہو گی اور اگر شفیع نے دار مشفوعہ کو مشتری سے غلام مذکور کی

قیمت کے عوض بحکم قاضی یا بغیر حکم قاضی لیا پھر قبضہ سے پہلے یہ غلام مر گیا یا اس میں کوئی عیب پیدا ہو گیا تو یہ قیمت بائع کو ملے گی یہ مبسوط میں ہے۔

امام محمدؒ نے کتاب الاصل میں فرمایا کہ اگر ایک شخص نے ایک دار بعوض ایک غلام معین کے خریدا اور شفیع نے دار مذکور بعوض غلام معین کی قیمت کے بحکم قاضی لے لیا پھر وہ غلام استحقاق ثابت کر کے لے لیا گیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا۔ وہ دار مذکور کو شفیع سے لے لے گا۔ یہ حکم اس وقت ہے کہ شفیع نے دار مذکور بعوض قیمت غلام کے بحکم قاضی لیا ہو اور اگر مشتری نے بغیر حکم قاضی وہ دار شفیع کو بعوض قیمت غلام مذکور کے دے دیا ہو پس اگر مشتری نے شفیع سے غلام مذکور کی قیمت بیان کر دی ہو کہ اس قدر ہے یہاں تک کہ ثمن ہر طرح سے معلوم ہو گیا پھر وہ غلام استحقاق میں لیا گیا تو مشتری کو دار مذکور لینے کی کوئی راہ نہ ہو گی اور مشتری کا اس طرح دینا از سر نو بیع قرار دی جائے گی اور بائع کے واسطے مشتری پر دار مذکور کی قیمت واجب ہو گی اور اگر مشتری نے شفیع سے غلام کی قیمت مفصل نہ بیان کی ہو بلکہ یوں کہا کہ میں نے تجھے یہ دار بعوض قیمت غلام مذکور کے دیا تو مشتری کو اختیار ہو گا کہ اس صورت میں دار مذکور شفیع سے واپس لے یہ محیط میں لکھا ہے۔ اگر غلام کے عوض ایک دار خریدا پھر غلام میں عیب پا کر اس کو واپس کر دیا تو دار مشفوعہ کو شفیع اس غلام صحیح و سالم کی قیمت کے بدلے لے لے گا کیونکہ عقد بیع میں صحیح سالم غلام ٹھہرا تھا اور شفیع پر ویسے ہی غلام کی قیمت واجب ہو گی جو عقد میں ٹھہرا تھا اور اگر کوئی غلام بعوض کسی دار کے خریدا تو یہ صورت اور دار کو بعوض غلام کے خریدنے کی صورت دونوں یکساں ہیں۔ یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کسی شخص نے غیر کے غلام کے عوض ایک دار خریدا اور مالک غلام نے اجازت دے دی تو شفیع کو شفعہ کا استحقاق ہو گا اور اگر معین کیلی یا وزنی چیز کے عوض خریدا پھر یہ چیز استحقاق ثابت کر کے لے لی گئی تو شفعہ باطل ہو گیا کیونکہ جب

کیلی و وزنی چیز عقد میں معین قرار پائی ہے تو اس کا و غلام کا یکساں حکم ہوتا ہے اور اگر کیلی یا وزنی چیز مشتری کے ذمہ قرار پائی اور اس نے جدا ہونے سے پہلے ادا کر دی پھر وہ استحقاق میں لے لی گئی تو شفیع کا شفعہ بحال رہے گا کیونکہ جب کیلی یا وزنی چیز بطور دین کے مشتری کے ذمہ ٹھہری تو اس کا اور دراہم کا یکساں حکم ہے منتقٰی میں بروایت ابن سماعہؒ سے امام محمدؒ سے مروی ہے کہ ایک شخص نے دوسرے سے ایک دار بعوض ایک کر گیہوں معین یا غیر کے شہر کوفہ میں...

---

۱۔ عرض یعنی اسباب۔ ۲۔ قولہ ادا کر دی یعنی اگر چہ وہ جدائی سے پہلے ادا کر دے تو بھی وہ دین ہونے سے خارج نہ ہو گی اور شفعہ باقی رہے گا اور یہ مطلب نہیں کہ اگر ابھی ادا نہ کرے تو شفعہ نہ ہوگا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 - 222 - Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

The purchase was made, and both parties took mutual possession. Later, in the city of Merv, the *shafi* (pre-emptor) contested for the pre-emption of the *dar-e-mashfooah* (the property subject to pre-emption), and a decree was issued in favor of the *shafi* against the *mushtari* (purchaser). If the mentioned property is located in Kufa or Merv, it is stated that the purchaser has the option: either to settle with the *shafi* by taking wheat in Merv equivalent to the wheat of Kufa and then handing over the property in Merv, or, intending to hand over the mentioned property, take the price of that wheat in Kufa from him in Merv and then give him the property. In *al-Muntaqa*, it is stated in another place that if the price of one yard of such wheat is equal in both places, the purchaser should give the yard to him where the decree of pre-emption was issued in the name of the *shafi*. If there is a difference in price, it must be seen where the *shafi* wishes to pay; if the price of that yard is higher there, it is within the *shafi*'s discretion to pay wherever he wishes. If the price is lower there but the purchaser agrees to it, then the option lies with the purchaser. If there is equality, the purchaser should pay the price at the place where the price of such wheat is equal to the place of purchase. This is in *al-Muheet*. If a person purchased a property in exchange for one yard of fresh dates, and the *shafi* arrived at a time when *rutab* (fresh dates) were no longer available to the people, the *shafi* shall take the property in exchange for the price of those dates. Thus it is in *al-Kafi*.

**Chapter Fourteen: On the entitlement to pre-emption in the rescission of sale (Faskh al-Bay') and Iqala (cancellation by mutual consent) and its related matters.**

If the purchaser found a defect in the purchased property after taking possession and returned it due to that defect, and it became clear at that time that the *shafi* had already given up his pre-emption right, then the *shafi* shall have the option to take this property in pre-emption, provided that the return due to the defect occurred without the order of a *qadi* (judge). If it was returned by the order of a *qadi*, the *shafi* cannot take it in pre-emption. If the purchaser returned the property due to a defect before taking possession, if returned by the order of a *qadi*, there shall be no pre-emption for the *shafi*. If it was returned without the order of a *qadi*, then according to Imam Muhammad (R.A.), the ruling is the same. However, based on the saying of Imam Azam (R.A.) and Imam Abu Yusuf (R.A.), the scholars have differed; some said the *shafi* shall have the right of pre-emption, and others said he shall not. If the purchaser returned the mentioned property based on *khiyar al-ru'yat* (option of

inspection) or *khiyar al-shart* (option of condition), the *shafi* shall not gain the right of pre-emption anew, whether this return occurred before possession or after possession, whether by mutual consent or without mutual consent. This is in *al-Muheet*. If the *shafi* gave up the pre-emption right and then the purchaser returned the property as it was, if he returned it for a reason that is a complete rescission (*faskh*) in every way—such as returning due to the option of inspection or option of condition, or due to a defect before possession without or with a judge's order, or after possession due to a defect by a judge's order—then in such a case, the *shafi* shall not gain the right of pre-emption anew. If the return is for a reason that is a rescission (*faskh*) between the seller and purchaser but a new sale (*bay' jadeed*) regarding a third party—such as returning after possession without a judge's order due to a defect or performing *iqala*—then the *shafi* shall gain the right of pre-emption anew. If the *shafi* initially did not exercise pre-emption until the seller and purchaser mutually rescinded the contract of sale, the right of pre-emption shall not be void, whether this rescission is due to a reason that is a rescission in every way or due to a reason that is a rescission in some aspects and a new sale in others. This is in *al-Zakheera*. If a person purchased a house or land and the *shafi* gave up his pre-emption, then both the seller and purchaser jointly declared that this sale was a sham (*talji'a*) and the purchaser returned the sold item to the seller, the *shafi* shall not gain the right of pre-emption anew because after yielding the pre-emption, the *shafi* has no remaining right. Therefore, their admission does not imply the invalidation of his right; thus, the outcome will be established by their admission, and this return will be due to the sham sale. Hence, the *shafi* shall not gain the right of pre-emption anew. It is written in *al-Muntaqa* that a person purchased a property and took possession, and the *shafi* gave up the pre-emption, then the purchaser...

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 - 222 - किताब-उश-शुफ़ा**

खरीद और दोनों ने आपसी कब्ज़ा कर लिया, फिर शहर 'मर्व' में शफ़ी (पूर्व-क्रयाधिकारी) ने 'दार-ए-मशफ़ूआ' (वह घर जिस पर शुफ़ा का अधिकार हो) के शुफ़ा का दावा किया और मुश्तरी (खरीदार) पर शफ़ी के पक्ष में फैसला हो गया और उक्त घर 'कूफ़ा' में स्थित है या 'मर्व' में, तो फ़रमाया कि मुश्तरी को अधिकार है, चाहे वह शफ़ी से हिसाब-किताब करके कूफ़ा के गेहूँ की तरह पहले गेहूँ लेकर उसे मर्व के दार-ए-मशफ़ूआ में सुपुर्द कर दे, या उक्त घर उसे सुपुर्द करने का इरादा करके मर्व में उससे उन गेहूँ की कूफ़ा की कीमत लेकर उक्त घर उसे दे दे। और 'मुंतक़ा' में दूसरी जगह फ़रमाया गया है कि यदि ऐसे एक गज़ गेहूँ की कीमत दोनों स्थानों पर समान हो, तो जहाँ शफ़ी के नाम शुफ़ा का फैसला हुआ है, वहीं मुश्तरी उसे गज़ दे दे। अतः यदि कीमत में अंतर हो, तो यह देखना चाहिए कि जहाँ शफ़ी देना चाहता है, यदि वहाँ उस गज़ की कीमत अधिक है, तो यह शफ़ी के अधिकार में है कि जहाँ चाहे दे दे, और यदि वहाँ उसकी कीमत कम हो लेकिन मुश्तरी उस पर सहमत हो गया हो, तो यह मुश्तरी के अधिकार में है। और यदि समानता हो, तो जिस स्थान पर ऐसे गेहूँ की कीमत खरीद के स्थान के बराबर हो, वहाँ मुश्तरी को कीमत दे दे। यह 'मुहीत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने एक घर एक गज़ ताज़े खजूरों के बदले खरीदा, फिर शफ़ी ऐसे समय आया जब 'रतब' यानी ताज़े खजूर लोगों के हाथ आने बंद हो चुके थे, तो शफ़ी उस घर को उन खजूरों की कीमत के बदले ले लेगा। ऐसा ही 'काफ़ी' में है।

## चौदहवाँ अध्याय: बिक्री रद्द करने (फ़स्ख़-ए-बैअ) और इक़ाला में शुफ़ा का अधिकार होने तथा उससे संबंधित विषयों के वर्णन में

यदि मुश्तरी ने खरीदे हुए घर में कब्ज़ा करने के बाद कोई दोष पाया और उस दोष के कारण उसे वापस कर दिया, और यह बात उस समय स्पष्ट हुई जब शफ़ी अपना शुफ़ा का अधिकार छोड़ चुका था, तो फिर शफ़ी को अधिकार होगा कि चाहे तो वह घर शुफ़ा में ले ले, बशर्ते कि दोष के कारण वापसी बिना काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश के हुई हो। और यदि काज़ी के आदेश से वापस किया गया है, तो शफ़ी उसे शुफ़ा में नहीं ले सकता। और यदि मुश्तरी ने उक्त घर दोष के कारण कब्ज़े से पहले वापस कर दिया, तो यदि काज़ी के आदेश से वापस किया गया, तो शफ़ी के लिए शुफ़ा नहीं होगा। और यदि बिना काज़ी के आदेश के वापस किया गया, तो इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार यही आदेश है, परंतु इमाम आज़म (रह.) और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के अनुसार विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने कहा कि शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार होगा और कुछ ने कहा कि नहीं होगा। और

यदि मुश्तरी ने उक्त घर 'खियार-ए-रुय्यत' (देखने के विकल्प) या 'खियार-ए-शर्त' (शर्त के विकल्प) के आधार पर वापस किया हो, तो शफ़ी को नए सिरे से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा, चाहे यह वापसी कब्ज़े से पहले हुई हो या कब्ज़े के बाद, चाहे आपसी सहमति से हुई हो या बिना आपसी सहमति के। यह 'मुहीत' में है। यदि शफ़ी ने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर मुश्तरी ने घर उसी रूप में वापस कर दिया, तो यदि ऐसे कारण से वापस किया जो हर तरह से बिक्री का निरस्तीकरण (फ़स्ख़) है, जैसे खियार-ए-रुय्यत या खियार-ए-शर्त के कारण वापस करना, या दोष के कारण कब्ज़े से पहले बिना काज़ी के आदेश या काज़ी के आदेश से वापस करना, या कब्ज़े के बाद दोष के कारण काज़ी के आदेश से वापस करना, तो ऐसी स्थिति में शफ़ी को नए सिरे से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। यदि वापसी ऐसे कारण से हो जो विक्रेता और खरीदार के हक़ में निरस्तीकरण (फ़स्ख़) है और तीसरे व्यक्ति के हक़ में नई बिक्री (बैअ-ए-जदीद) है, जैसे कब्ज़े के बाद बिना काज़ी के आदेश के दोष के कारण वापस किया या इक़ाला (आपसी सहमति से बिक्री रद्द करना) कर लिया, तो शफ़ी के लिए नए सिरे से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। यदि शफ़ी ने प्रारंभ में शुफ़ा नहीं माँगा यहाँ तक कि विक्रेता और खरीदार ने आपस में बिक्री का अनुबंध रद्द कर दिया, तो शुफ़ा का अधिकार समाप्त नहीं होगा, चाहे यह निरस्तीकरण ऐसे कारण से हो जो हर तरह से फ़स्ख़ है या ऐसे कारण से हो जो कुछ दृष्टि से फ़स्ख़ है और कुछ दृष्टि से नई बिक्री है। यह 'ज़खीरा' में है। यदि किसी व्यक्ति ने कोई घर या ज़मीन खरीदी, फिर शफ़ी ने अपना शुफ़ा छोड़ दिया, फिर विक्रेता और खरीदार दोनों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया कि यह बिक्री केवल दिखावे (तल्जिया) के लिए थी और मुश्तरी ने उक्त वस्तु विक्रेता को वापस कर दी, तो शफ़ी के लिए नए सिरे से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा क्योंकि शुफ़ा छोड़ देने के बाद शफ़ी का कोई अधिकार नहीं रहा। अतः उन दोनों की स्वीकृति उसके अधिकार की समाप्ति को प्रभावित नहीं करती, इसलिए परिणाम उन दोनों की स्वीकृति से सिद्ध होगा और यह वापसी दिखावे के कारण होगी, अतः शफ़ी को नए सिरे से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। और 'मुंतक़ा' में लिखा है कि एक व्यक्ति ने एक घर खरीदकर कब्ज़ा कर लिया और शफ़ी ने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर मुश्तरी...

---

خرید اور دونوں نے باہمی قبضہ کر لیا پھر شہر مرو میں شفیع نے دار مشفوعہ کے شفعہ کا مخاصمہ کیا اور مشتری پر شفیع کی ڈگری ہو گئی اور دار مذکور کوفہ میں واقع ہے یا مرو میں تو فرمایا کہ مشتری کو اختیار ہے چاہے شفیع سے مواخذہ کر کے اول گیہوں کے مثل کوفہ میں گیہوں لے کر اس کو دار مشفوعہ مرو میں سپرد کر دے یا دار مذکور اس کے سپرد کرنے کا قصد کر کے مرو میں اس سے ان گیہوں کی کوفہ کی قیمت لے کر دار مذکور اس کو دے دے اور منتقٰی میں دوسرے مقام پر فرمایا کہ اگر ایسے ایک گز گیہوں کی قیمت دونوں جگہ یکساں ہو تو جہاں شفیع کے نام شفعہ کی ڈگری ہوئی ہے وہیں مشتری کو گز دے دے پس اگر قیمت میں تفاوت ہو تو دیکھنا چاہئے کہ جہاں شفیع دینا چاہتا ہے اگر وہاں اس گز کی قیمت گراں ہو تو یہ امر شفیع کے اختیار میں ہے جہاں چاہے دے دے اور اگر وہاں اس کی قیمت ارزاں ہو مگر مشتری اس پر راضی ہو گیا تو یہ مشتری کو اختیار ہے اور اگر مساوات ہو تو جس جگہ ایسے گیہوں کی قیمت موضع خرید سے مساوی ہو وہاں مشتری کو قیمت دے دے یہ محیط میں ہے۔ اگر کسی شخص نے ایک دار بعوض ایک گز تر چھوارے کے خریدا پھر شفیع ایسے وقت حاضر ہوا کہ جب رطب یعنی تر چھوارے لوگوں کے ہاتھ آنے سے منقطع ہو چکے تھے تو شفیع اس دار کو ان چھواروں کی قیمت کے بدلے لے لے گا کذا فی الکافی۔

## باب چودھواں: فسخ بیع واقالہ میں استحقاق شفعہ ہونا اور اس کے متصلات کے بیان میں

اگر مشتری نے دار خرید کردہ میں بعد قبضہ کے عیب پا کر بسبب عیب کے اس کو واپس کیا اور یہ امر اس وقت واضح ہوا کہ شفیع اپنا شفعہ دے چکا ہے تو پھر شفیع کو اختیار ہوگا چاہے یہ دار

شفعہ میں لے لے بشرطیکہ عیب کی وجہ سے واپس کرنا بغیر حکم قاضی واقع ہوا ہو اور اگر بحکم قاضی واپس کیا ہے تو شفیع اس کو شفعہ میں نہیں لے سکتا ہے اور اگر مشتری نے دار مذکور عیب کی وجہ سے قبضہ سے پہلے واپس کیا پس اگر بحکم قاضی واپس کیا تو شفیع کے واسطے شفعہ نہ ہوگا اور اگر بغیر حکم قاضی واپس کیا تو بھی امام محمدؒ کے نزدیک یہی حکم ہے مگر بنا بر قول امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے مشائخ نے اختلاف کیا ہے بعض مشائخ نے فرمایا کہ شفیع کو استحقاق شفعہ ہوگا اور بعضوں نے فرمایا کہ نہ ہوگا اور اگر مشتری نے دار مذکور بخیار رویت یا بخیار شرط واپس کیا ہو تو شفیع کو از سر نو استحقاق شفعہ حاصل نہ ہوگا خواہ یہ واپسی قبضہ سے پہلے واقع ہوئی ہو یا قبضہ کے بعد واقع ہوئی ہو خواہ باہمی رضامندی سے واقع ہوئی ہو یا بغیر باہمی رضامندی کے واقع ہوئی ہو یہ محیط میں ہے۔ اگر شفیع نے شفعہ دے دیا پھر مشتری نے دار بعینہ واپس کیا پس اگر ایسے سبب سے واپس کیا جو ہر طرح فسخ ہے جیسے خیار رویت یا خیار شرط کی وجہ سے واپس کرنا یا عیب کی وجہ سے قبضہ سے پہلے بغیر حکم قاضی یا بحکم قاضی واپس کرنا یا بعد قبضہ کے عیب کی وجہ سے بحکم قاضی واپس کرنا تو ایسی صورت میں شفیع کو از سر نو استحقاق شفعہ حاصل نہ ہوگا۔ اگر واپس کرنا ایسے سبب سے ہو جو بائع و مشتری کے حق میں فسخ اور تیسرے کے حق میں بیع جدید ہے جیسے قبضہ کے بعد بغیر حکم قاضی بسبب عیب کے واپس کیا یا اقالہ کر لیا تو شفیع کے واسطے از سر نو استحقاق شفعہ حاصل ہوگا۔ اگر شفیع نے اولاً شفعہ نہ دیا ہو یہاں تک کہ بائع و مشتری نے باہم عقد بیع کو فسخ کر دیا تو حق شفعہ باطل نہ ہو گا خواہ یہ فسخ ایسے سبب سے ہو جو ہر طرح سے فسخ ہے یا ایسے سبب سے ہو جو بعض وجہ سے فسخ ہے اور بعض وجہ سے بیع جدید ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر کسی شخص نے کوئی دار یا زمین خریدی پھر شفیع نے اپنا شفعہ دے دیا پھر بائع و مشتری دونوں نے باتفاق اقرار کیا کہ یہ بیع بطور تلجئہ تھی اور مشتری نے مبیع مذکور بائع کو واپس کر دی تو

شفیع کے واسطے از سر نو استحقاق شفعہ حاصل نہ ہو گا کیونکہ تسلیم شفعہ کے بعد شفیع کا کچھ حق نہیں رہا پس ان دونوں کا اقرار اس کے بطلان حق کو متضمن نہیں ہے سو نتیجہ ان دونوں کے اقرار سے ثابت ہوگا اور یہ واپسی بسبب تلجئہ کے ہو گی پس شفیع کو از سر نو استحقاق شفعہ حاصل نہ ہوگا اور منتقٰی میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے ایک دار خرید کر قبضہ کر لیا اور شفیع نے شفعہ دے دیا پھر مشتری...

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 223 Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

...said, "I had purchased this house for such and such a person," and the pre-emptor (Shufi) said, "No, rather you purchased it for yourself, and now you are selling it anew; therefore, I will take it through pre-emption upon this sale." In this case, the statement of the pre-emptor shall be accepted. Then, if that person is absent ^1, the pre-emptor shall not have the right to take the said house until the absent person arrives. If the buyer (Mushtari) says, "I establish witnesses that such and such a person had ordered me so, and I purchased it for him," then the testimony of the witnesses for this claim shall be accepted from the buyer's side until the absent person is present ^2; this is mentioned in *Al-Muhit*. If the pre-emptor waives his right of pre-emption and then the buyer gives the seller (Ba'i) an option (Khiyar) for one day, it is permissible. If the seller cancels the sale within that day ^3, Ibn Sama'ah has narrated from Imam Muhammad that the pre-emptor shall not have the right of pre-emption anew. However, Hasan bin Ziyad from Imam Azam, and Ibn Sama'ah from Imam Abu Yusuf, have narrated that the pre-emptor shall have the right of pre-emption; as stated in *Muhit al-Sarakhsi*.

**Chapter Fifteen: Regarding the Pre-emption of Non-Believers (Ahl-e-Kufr)**

If a Christian purchases a house from another Christian in exchange for a carcass (unslaughtered dead animal) or blood, the pre-emptor shall have no right of pre-emption in it ^4. If a Dhimmi purchases a house from another Dhimmi in exchange for wine and both take possession, and then said wine turns into vinegar, and thereafter both buyer and seller become Muslims, and half of the house is taken away due to a prior claim (Istihqaq), then the pre-emptor arrives; he shall take half of the house in exchange for half of the price of the wine, and he cannot take it for half of the vinegar. The buyer shall then take back half of the vinegar from his seller if it exists in its original state; if it has been consumed, he shall take back the equivalent of half the vinegar; this is in *Al-Muhit*. If a Dhimmi purchases a house from another Dhimmi for wine or swine and its pre-emptor is either a Dhimmi or a Muslim, then according to our associates, pre-emption is mandatory. Once pre-emption becomes mandatory, if the pre-emptor is a Dhimmi, he shall take the pre-empted property for the price of the wine and swine, and if he is a Muslim, he shall take it for the price of the wine and swine; this is in *Al-Bada'i*. If a house is sold for wine and there are two pre-emptors, one a non-believer and the other a Muslim, the non-believer shall take half of the house for half the wine, and the Muslim shall take half the house for half the price of the wine. If swine was stipulated as the price, then each pre-emptor shall

take half for half the price; this is in *Muhit al-Sarakhsi*. If the pre-emptors are one Muslim and one Dhimmi, and then the Dhimmi becomes Muslim, the (formerly Dhimmi) pre-emptor shall also take half of the house for the price of half the wine, just as it would have been if he were Muslim at the time of the contract, and his pre-emption shall not be void; this is in *Al-Kafi*. If a house is purchased for wine, and then one of the buyer or seller becomes Muslim before possession of the wine is taken, regardless of whether possession of the house has been taken or not, the sale will be annulled, but the pre-emptor's right of pre-emption will not be void. Thus, if the pre-emptor is Muslim or the person from whom he takes is Muslim, the pre-emptor shall take it for the price of the wine. If both are non-believers, the pre-emptor shall take the house for the equivalent (Misl) of that wine. If after possession of the wine but before possession of the house, either the buyer or seller becomes Muslim, the sale contract remains valid. If a Dhimmi sells a Church (Kanisah) ^5, a Synagogue (Bi'ah), or a Fire-temple (Aatish-khanah) ^6, the sale is valid, and the pre-emptor shall have the right of pre-emption in it; this is in *Al-Mabsut*.

---

1. The buyer for whom he acknowledges the purchase. 2. Present so that... if his presence is acknowledged, then the ruling of proxy over the absent one can be given and... 3. Is void. 4. Pre-emption will not occur because the commodity is specified from one side. 5. Direction of prayer/Place of worship for Jews or Christians. 6. Fire-temple, when they are fire-worshippers.

...ने कहा कि मैंने तो इस घर (दार) को फ़लाँ व्यक्ति के लिए खरीदा था और शुफ़ी (शफ़ा का दावा करने वाला) ने कहा कि नहीं, बल्कि तुमने अपने लिए खरीदा था और अब तुम यह नए सिरे से बेच रहे हो, इसलिए मैं इस बिक्री पर शुफ़ा के अधिकार से यह घर ले लूँगा, तो शुफ़ी की बात मानी जाएगी। फिर यदि वह फ़लाँ व्यक्ति अनुपस्थित हो ^१ तो शुफ़ी को अधिकार न होगा कि उक्त घर ले ले जब तक कि वह अनुपस्थित व्यक्ति आ न जाए। और यदि खरीदार (मुश्तरी) ने कहा कि मैं इस बात के गवाह पेश करता हूँ कि मुझे फ़लाँ व्यक्ति ने ऐसा आदेश दिया था और मैंने उसके लिए खरीदा है, तो इस दावे के गवाह खरीदार की ओर से स्वीकार किए जाएँगे जब तक कि वह अनुपस्थित व्यक्ति उपस्थित न हो जाए ^२, यह मुहीत में है। यदि शुफ़ी ने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर खरीदार ने विक्रेता (बाइ) को एक दिन का अधिकार (ख़ियार) दिया तो यह जायज़ है। फिर यदि विक्रेता ने उस दिन बिक्री रद्द कर दी ^३ तो इब्ने समाह ने इमाम मुहम्मद से रिवायत की है कि शुफ़ी को नए सिरे से शुफ़ा का अधिकार प्राप्त न होगा और हसन बिन ज़ियाद ने इमाम आज़म से और इब्ने समाह ने इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत की है कि शुफ़ी को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा, ऐसा ही मुहीत अस-सरख़्सी में है।

## अध्याय पंद्रहवाँ: ग़ैर-मुस्लिमों (अहल-ए-कुफ़्र) के शुफ़ा के बयान में

यदि एक ईसाई ने दूसरे ईसाई से एक घर किसी मृत जानवर (मुरदार) या रक्त (खून) के बदले में खरीदा, तो शुफ़ी के लिए उसमें शुफ़ा का अधिकार न होगा ^४। यदि एक ज़िम्मी ने दूसरे ज़िम्मी से एक घर शराब के बदले खरीदा और उन दोनों ने आपस में कब्ज़ा कर लिया, फिर वह शराब सिरका बन गई, फिर विक्रेता और खरीदार दोनों मुसलमान हो गए, फिर आधा घर किसी अन्य दावे (इस्तेहक़ाक़) के कारण ले लिया गया, फिर शुफ़ी आया तो वह आधे घर को आधी शराब की कीमत के बदले ले लेगा और आधे सिरके के बदले नहीं ले सकता है। फिर खरीदार अपने विक्रेता से आधा सिरका वापस लेगा यदि वह वैसा ही मौजूद हो, और यदि उसने उसे नष्ट कर दिया हो तो आधे सिरके के समान वस्तु वापस लेगा, यह मुहीत में है। यदि एक ज़िम्मी ने दूसरे ज़िम्मी से एक घर शराब या सूअर के बदले खरीदा और उसका शुफ़ी कोई ज़िम्मी या मुसलमान है, तो हमारे विद्वानों के अनुसार शुफ़ा अनिवार्य होगा। फिर जब शुफ़ा अनिवार्य हुआ, यदि शुफ़ी ज़िम्मी हो तो वह शुफ़ा वाले घर को शराब और सूअर की कीमत के बदले ले लेगा, और यदि वह मुसलमान हो तो वह शुफ़ा वाले घर को शराब और सूअर की कीमत के बदले लेगा, यह बदाइ में है। एक घर शराब के बदले बेचा गया और

उसके दो शुफ़ी हैं, एक काफ़िर है और दूसरा मुसलमान, तो काफ़िर उसमें से आधा घर आधी शराब के बदले ले लेगा और मुसलमान आधा घर आधी शराब की कीमत के बदले ले लेगा। और यदि कीमत में सूअर तय हुआ हो तो हर शुफ़ी आधी कीमत के बदले ले लेगा, यह मुहीत सरख़्सी में है। यदि उसका शुफ़ी एक मुसलमान और एक ज़िम्मी हो, फिर ज़िम्मी मुसलमान हो गया, तो वह ज़िम्मी भी उसमें से आधा घर आधी शराब की कीमत के बदले ले लेगा, जैसा कि यदि वह अनुबंध के समय मुसलमान होता तो यही आदेश था, और उसका शुफ़ा रद्द नहीं होगा, यह काफ़ी में है। यदि कोई घर शराब के बदले खरीदा गया, फिर विक्रेता और खरीदार में से एक मुसलमान हो गया और अभी तक शराब पर कब्ज़ा नहीं हुआ है, और घर पर कब्ज़ा हो गया है या नहीं हुआ है, तो बिक्री टूट जाएगी लेकिन शुफ़ी का शुफ़ा का अधिकार रद्द नहीं होगा। अतः यदि शुफ़ी मुसलमान हो या जिससे वह लेता है वह मुसलमान हो, तो शुफ़ी उसे शराब की कीमत के बदले ले लेगा, और यदि दोनों काफ़िर हों तो शुफ़ी उस घर को उस शराब जैसी चीज़ के बदले ले लेगा। और यदि शराब पर कब्ज़ा होने के बाद लेकिन घर पर कब्ज़ा होने से पहले विक्रेता या खरीदार में से कोई मुसलमान हो गया तो बिक्री का अनुबंध सही रहेगा। और यदि किसी ज़िम्मी ने कनीसा (चर्च) ^५ या बयआ (सिनागॉग) या आतिश-ख़ाना (अग्नि मंदिर) ^६ बेचा तो बिक्री जायज़ है और उसमें शुफ़ी को शुफ़ा का अधिकार होगा, यह मबसूत में है।

---

1. खरीदार जिसके लिए खरीदने का इकरार करता है। २. उपस्थित होना इसलिए ताकि वह उपस्थित रहे तो अनुपस्थित पर वकील होने का आदेश हो जाए और ३. बातिल (रद्द) है। ४. शुफ़ा नहीं होगा क्योंकि एक तरफ से माल निश्चित है। ५. ईसाइयों या यहूदियों का प्रार्थना स्थल। ६. अग्नि मंदिर, यदि वह अग्नि-पूजक हो।

نے کہا کہ میں نے تو اس دار کو فلاں شخص کے واسطے خریدا تھا اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے اپنے واسطے خریدا تھا اور اب تو یہ از سر نو بیع کرتا ہے پس میں اس بیع پر بدار شفعہ میں لے لوں گا تو قول شفیع کا قبول ہوگا پھر اگر فلاں شخص غائب ہو ۱۸ تو شفیع کو اختیار نہ ہوگا کہ دار مذکور لے لے یہاں تک کہ وہ شخص غائب آ جائے اور اگر مشتری نے کہا کہ میں اس بات کے گواہ قائم کرتا ہوں کہ مجھے فلاں شخص نے ایسا حکم دیا تھا اور میں نے اس کے واسطے خریدا ہے تو اس دعویٰ کے گواہ مشتری کی طرف سے مقبول ہوں گے جب تک کہ وہ شخص غائب حاضر نہ ہو جائے ۲۸ یہ محیط میں ہے۔ اگر شفیع نے شفعہ دے دیا پھر مشتری نے بائع کے واسطے ایک روز کا خیار دیا تو یہ جائز ہے پھر اگر بائع نے اس دن میں بیع توڑ دی ۳۸ تو ابن سماعہؒ نے امام محمدؒ سے روایت کی ہے کہ شفیع کو از سر نو حق شفعہ حاصل نہ ہوگا اور حسن بن زیاد نے امام اعظمؒ سے اور ابن سماعہؒ نے امام ابو یوسفؒ سے روایت کی کہ شفیع کو شفعہ حاصل ہوگا کذا فی محیط السرخسی۔

**باب پندرھواں: اہلِ کفر کے شفعہ کے بیان میں**

اگر ایک نصرانی نے دوسرے نصرانی سے ایک دار بعوض مُردار یا خون کے خریدا تو شفیع کے واسطے اس میں حق شفعہ نہ ہوگا ۴۸۔ ایک ذمی نے دوسرے ذمی سے ایک دار بعوض شراب کے خریدا اور ان دونوں نے باہم قبضہ کر لیا پھر شراب مذکور سرکہ ہو گئی پھر بائع و مشتری دونوں مسلمان ہو گئے پھر نصف دار استحقاق میں لے لیا گیا پھر شفیع حاضر ہوا تو نصف دار کو نصف شراب کی قیمت کے بدلے لے لے گا اور نصف سرکہ کے بدلے نہیں لے سکتا ہے پھر مشتری اپنے بائع سے آدھا سرکہ واپس لے گا اگر بعینہ موجود ہو اور اگر اس نے تلف کر دیا ہو تو نصف

سرکہ کے مثل واپس لے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر ایک ذمی نے دوسرے ذمی سے ایک دار بعوض شراب یا سور کے خریدا اور اس کا شفیع کوئی ذمی یا مسلمان ہے تو ہمارے اصحاب کے نزدیک شفعہ واجب ہوگا پھر جب شفعہ واجب ہوا پس اگر شفیع ذمی ہو تو دار مشفوعہ کو شراب اور سور کی قیمت کے بدلے لے لے گا اور اگر مسلمان ہو تو دار مشفوعہ کو شراب و سور کی قیمت کے بدلے لے گا یہ بدائع میں ہے۔ ایک دار بعوض شراب کے فروخت کیا گیا اور اس کے دو شفیع ہیں ایک کافر ہے اور دوسرا مسلمان ہے تو کافر اس میں سے نصف دار کو نصف شراب کے بدلے لے لے گا اور مسلمان نصف دار کو نصف شراب کے بدلے لے لے گا اور اگر ثمن میں سور قرار پائی ہو تو ہر شفیع نصف قیمت کے بدلے لے لے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر اس کا شفیع ایک مسلمان اور ایک ذمی ہو پھر ذمی مسلمان ہو گیا تو ذمی بھی اس میں سے نصف دار بعوض نصف شراب کی قیمت کے لے لے گا جیسا کہ اگر وقت عقد کے مسلمان ہوتا تو یہی حکم تھا اور اس کا شفعہ باطل نہ ہوگا یہ کافی میں ہے۔ اگر کوئی دار بعوض شراب کے خریدا پھر بائع و مشتری میں سے ایک مسلمان ہو گیا اور ہنوز شراب پر قبضہ نہیں ہوا ہے اور دار پر قبضہ ہو گیا ہے یا نہیں ہوا ہے تو بیع ٹوٹ جائے گی لیکن شفیع کا حق شفعہ باطل نہ ہوگا پس اگر شفیع مسلمان ہو یا جس سے لیتا ہے وہ مسلمان ہو تو شفیع اس کو قیمت شراب کے بدلے لے لے گا اور اگر دونوں کافر ہوں تو شفیع اس دار کو اس شراب کے مثل کے بدلے لے لے گا اور اگر شراب پر قبضہ ہو جانے کے بعد دار پر قبضہ ہونے سے پہلے بائع و مشتری دونوں میں سے کوئی مسلمان ہو گیا تو عقد بیع صحیح رہے گا اور اگر ذمی نے کنیسہ ۵۸ یا بیعہ یا آتش خانہ ۶۸ فروخت کیا تو بیع جائز ہے اور اس میں شفیع کو شفعہ کا استحقاق ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔

---

۱؎ مشتری جس کے لئے خریدنے کا اقرار کرتا ہے۔ ۲؎ حاضر اس واسطے کہ زید اس کی حاضری کے قول ہوں تو اس غائب پر موکل ہونے کا حکم ہو جائے اور ۳؎ باطل ہے۔ ۴؎ شفعہ نہ

ہوگا اس واسطے کہ ایک طرف سے مال معین ہے۔ ۵۔ قبلہ یہودی یا نصرانی ہو۔ ۶۔ آتش خانہ جب کہ آتش پرست ہو۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | Page 223 | Kitab ash-Shufa (The Book of Pre-emption)**

If an apostate (*Murtad*) buys a house and is subsequently killed, the pre-emption right (*Shufa*) of the pre-emptor (*Shafi*) shall not be invalidated. Pre-emption is related to the exit (*Khurooj*[1]) of the sold property from the owner's possession, which has occurred, and the subsequent annulment of the contract does not cause the invalidation of the pre-emption. According to Imam-e-Azam (Abu Hanifa), if an apostate sells a house and is then killed or joins the *Dar al-Harb* (enemy territory), there will be no pre-emption in it; this is mentioned in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. If the apostate seller becomes a Muslim before joining the *Dar al-Harb*, the sale remains valid and the pre-emptor retains the right of pre-emption. However, if he becomes a Muslim after joining the *Dar al-Harb* and after his property has been distributed, there will be no right of pre-emption in that sale. According to the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad), the sale is valid and the pre-emptor retains the right of pre-emption regardless of whether he becomes a Muslim or joins the *Dar al-Harb*. If a Muslim buys a house and the pre-emptor is an apostate who is then killed due to his apostasy, or dies naturally, or joins the *Dar al-Harb*, he shall have no right of pre-emption in that house, nor shall his heirs. If a female apostate gains a right of pre-emption and then joins the *Dar al-Harb*[2], her right is invalidated. If this female apostate is the seller of a house, the pre-emptor will have the right of pre-emption. If an apostate (male or female) is a pre-emptor and grants pre-emption, it is valid. However, if they do not grant it and wish to claim the property through pre-emption, the Judge (*Qadi*) will not rule in their favor unless they become Muslim. If the Judge invalidates their pre-emption and they later become Muslim, they will not regain the right. If the Judge grants them time to reflect on their matter[3] (faith) and they become Muslim during that time, they retain their right, provided they demanded pre-emption immediately upon learning of the sale. If they did not demand pre-emption until they converted to Islam, they lose the right because they failed to make the immediate demand (*Talab al-Muwathabah*[4]) after learning of the sale. If an apostate joins the *Dar al-Harb* and the house is sold before his estate is distributed among his heirs, the heirs shall have the right of pre-emption. If an apostate buys a house from a Muslim or a *Dhimmi* (non-Muslim citizen) in exchange for wine, the sale is void and there is no pre-emption; this is in *Al-Mabsut*.

**If the Pre-emptor is a Foreigner under Temporary Protection (*Harbi Mustamin*) and has Appointed an Agent for the Demand of Pre-emption**

If a *Harbi Mustamin* buys a house and then returns to the *Dar al-Harb*, the pre-emptor retains his right and can demand it when they meet, because his departure to the *Dar al-Harb* is like his death, and the death of the buyer does not invalidate the pre-emptor's right. This is in *Al-Muhit*. If a Muslim buys a house in the *Dar al-Islam* and the pre-emptor is a *Harbi Mustamin* who then returns to the *Dar al-Harb*, his pre-emption right is invalidated, whether he knew about the sale or not. If a *Harbi Mustamin* buys a house and the pre-emptor is also a *Harbi Mustamin*, and both return to the *Dar al-Harb*, the pre-emptor loses the right because his departure is akin to a resident of *Dar al-Islam* dying in *Dar al-Islam*, and it is clear that the property in question is in *Dar al-Islam*. If both pre-emptor and buyer are in *Dar al-Harb*, and the pre-emptor is a Muslim or *Dhimmi* who entered *Dar al-Harb* under protection, he retains his right upon learning of the sale. If he then comes to *Dar al-Islam* knowing of the sale but fails to demand pre-emption until he leaves again, his right is invalidated. If he demands it and then has to travel to *Dar al-Harb* etc., he remains on his right. If a *Harbi Mustamin* pre-emptor appoints an agent to demand pre-emption and then himself returns to *Dar al-Harb*, he loses the right, similar to the ruling of dying after appointing an agent. If the pre-emptor is a Muslim or *Dhimmi* and appoints a *Harbi Mustamin* as an agent, and then this agent returns to *Dar al-Harb...*

---

1. Exit of the sold item: meaning it leaves the ownership of the seller in exchange for financial consideration. 2. There is a linguistic variation noted; if she remains there, the pre-emption is suspended or the preference is obtained based on differing views. 3. Matter: specifically referring to reflection upon faith/Islam. 4. *Talab al-Muwathabah*: The immediate demand for pre-emption.

अगर किसी मुर्तद (धर्मत्यागी) ने कोई मकान खरीदा, फिर वह मुर्तद मारा गया, तो शफ़ी (अग्रक्रयाधिकारी) का शुफ़ा बातिल (अमान्य) नहीं होगा। शुफ़ा का संबंध 'खुरूज[1]-ए-मबी' (बिकी हुई चीज़ के मालिक के अधिकार से निकलने) से है और यह घटित हो चुका है, और उसके बाद सौदे का रद्द हो जाना शुफ़ा के अमान्य होने का कारण नहीं बनता। अगर मुर्तद ने मकान बेचा, फिर वह मारा गया या दारुल-हर्ब (शत्रु देश) में जा मिला, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार इसमें शुफ़ा नहीं होगा। यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में दर्ज है। यदि विक्रेता मुर्तद, दारुल-हर्ब जाने से पहले मुसलमान हो गया, तो उसकी बिक्री जायज़ होगी और शफ़ी को इसमें शुफ़ा का अधिकार होगा। यदि वह दारुल-हर्ब में मिलने और उसकी संपत्ति के बँटवारे के बाद मुसलमान हुआ, तो उसकी बिक्री में शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। साहबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार उसकी बिक्री जायज़ है और इसमें शफ़ी का शुफ़ा का अधिकार बना रहता है, चाहे वह मुसलमान हो जाए या दारुल-हर्ब में जा मिले। यदि किसी मुसलमान ने कोई मकान खरीदा और उसका शफ़ी मुर्तद है, और वह मुर्तद होने के कारण मारा गया या मर गया या दारुल-हर्ब में जा मिला, तो उस मकान में उसका शुफ़ा नहीं होगा और न ही उसके वारिसों का। यदि किसी मुर्तदा (धर्मत्यागी महिला) का शुफ़ा वाजिब हुआ और वह दारुल-हर्ब चली गई[2], तो उसका शुफ़ा बातिल हो गया। यदि यह मुर्तदा महिला मकान बेचने वाली हो, तो शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार होगा। यदि कोई व्यक्ति मुर्तद या मुर्तदा शफ़ी हो और उसने शुफ़ा दे दिया तो जायज़ है, और अगर उसने नहीं दिया और शुफ़ा के तहत मकान लेना चाहा, तो क़ाज़ी (न्यायाधीश) उसके पक्ष में शुफ़ा का आदेश नहीं देगा। लेकिन यदि वह मुसलमान हो जाए तो आदेश देगा। यदि क़ाज़ी ने उसका शुफ़ा बातिल कर दिया और फिर वह मुसलमान हुआ, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा। यदि क़ाज़ी ने उसे मोहलत दी ताकि वह अपने मामले[3] (धर्म) पर विचार करे और फिर वह मुसलमान हो गया, तो वह अपने शुफ़ा के अधिकार पर रहेगा, लेकिन यह हुक्म तभी है जब उसने खरीद की जानकारी मिलते ही शुफ़ा की मांग की हो। यदि इस्लाम लाने तक उसने शुफ़ा की मांग नहीं की, तो इस स्थिति में उसे शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा, क्योंकि उसने 'तलब-ए-मुवाथ़बा'[4] (तुरंत मांग) को बिक्री की जानकारी मिलने के बाद छोड़ दिया। यदि मुर्तद दारुल-हर्ब चला गया और उसकी विरासत वारिसों में बँटने से पहले मकान बेचा गया, तो उसके वारिसों को शुफ़ा का अधिकार होगा। यदि मुर्तद ने किसी मुसलमान या ज़िम्मी से शराब के बदले मकान खरीदा, तो बिक्री बातिल है और इसमें शुफ़ा नहीं होगा। यह 'मबसूत' में है।

**यदि शफ़ी कोई हर्बी मुस्तमिन (शत्रु देश का निवासी जिसे सुरक्षा मिली हो) हो और उसने शुफ़ा की मांग के लिए वकील नियुक्त किया हो**

यदि किसी हर्बी मुस्तमिन ने कोई मकान खरीदा, फिर वह दारुल-हर्ब चला गया, तो शफ़ी अपने शुफ़ा के अधिकार पर बना रहेगा; जब उससे मुलाकात हो तो मांग कर सकता है, क्योंकि उसका दारुल-हर्ब जाना उसके मरने के समान है और खरीदार का मरना शफ़ी के शुफ़ा को बातिल नहीं करता। यह 'मुहीत' में है। यदि किसी मुसलमान ने दारुल-इस्लाम में कोई मकान खरीदा और उसका शफ़ी हर्बी मुस्तमिन है, फिर वह दारुल-हर्ब चला गया, तो उसका शुफ़ा बातिल हो जाएगा, चाहे उसे खरीद का पता चला हो या नहीं। यदि किसी हर्बी मुस्तमिन ने मकान खरीदा और उसका शफ़ी भी हर्बी मुस्तमिन है, फिर दोनों दारुल-हर्ब चले गए, तो शफ़ी को इसमें शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा, क्योंकि उसका दारुल-हर्ब जाना वैसा ही है जैसा दारुल-इस्लाम के निवासी का दारुल-इस्लाम में मर जाना, और यह स्पष्ट है कि विवादित मकान दारुल-इस्लाम में है। यदि शफ़ी और मुश्तरी (खरीदार) दोनों दारुल-हर्ब में हों, और शफ़ी मुसलमान या ज़िम्मी हो जो सुरक्षा लेकर दारुल-हर्ब गया है, तो जानकारी मिलते ही वह अपने शुफ़ा के अधिकार पर रहेगा। फिर यदि वह दारुल-इस्लाम आया और उसे बिक्री की जानकारी थी लेकिन उसने शुफ़ा की मांग नहीं की और फिर कहीं चला गया, तो उसका शुफ़ा बातिल हो गया। यदि उसने मांग की और फिर उसे दारुल-हर्ब आदि की यात्रा करनी पड़ी, तो वह अपने शुफ़ा के अधिकार पर रहेगा। यदि शफ़ी हर्बी मुस्तमिन हो और उसने शुफ़ा की मांग के लिए वकील बनाया और खुद दारुल-हर्ब चला गया, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा, जैसे वकील बनाने के बाद मर जाने का हुक्म है। यदि शफ़ी मुसलमान या ज़िम्मी हो और उसने किसी हर्बी मुस्तमिन को वकील बनाया, फिर वह वकील दारुल-हर्ब चला गया...

---

1. खुरूज-ए-मबी: विक्रेता के अधिकार से वस्तु का निकलना जब यह वित्तीय विनिमय के बदले हो। 2. यहाँ 'जाहली' शब्द के अर्थ में विवाद है, यदि वह वहां रह गई हो तो शुफ़ा स्थगित रहेगा या सर्वश्रेष्ठता प्राप्त होगी। 3. मामला: यानी ईमान (विश्वास) के मामले में। 4. तलब-ए-मुवाथ़बा: तुरंत मांग करना।

---

اگر مرتد نے کوئی دار خریدا پھر مرتد قتل کیا گیا تو شفیع کا شفعہ باطل نہ ہو گا شفعہ خروج[1] مبیع سے متعلق ہے اور یہ پایا گیا اور اس کے بعد عقد کا فسخ ہو جانا موجب بطلان شفعہ نہیں ہے۔ اگر مرتد نے دار فروخت کیا پھر وہ قتل کیا گیا یا دارالحرب میں جا ملا تو امام اعظم کے نزدیک اس میں شفعہ نہ ہوگا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر بائع مرتد دارالحرب میں جاملنے سے پہلے مسلمان ہو گیا تو اس کی بیع جائز ہوگی اور شفیع کو اس میں شفعہ کا استحقاق ہوگا اور اگر دارالحرب میں جاملنے واس کا مال تقسیم ہو جانے کے بعد وہ مسلمان ہوا تو اس کی بیع میں استحقاق شفعہ نہ ہو گا۔ صاحبین کے نزدیک اس کی بیع جائز ہے اور اس میں شفیع کا حق شفعہ ہے خواہ وہ مسلمان ہو جائے یا دارالحرب میں جاملے اور اگر مسلمان نے کوئی دار خریدا اور اس کا شفیع ایک مرتد ہے اور وہ بسبب مرتد ہونے کے قتل کیا گیا یا خود مر گیا یا دارالحرب میں جا ملا تو اس دار میں اس کا شفعہ نہ ہوگا اور نہ اس کے وارثوں کا شفعہ ہو گا۔ اگر کسی عورت مرتدہ کا شفعہ واجب ہوا اور وہ دارالحرب میں جائلی[2] تو اس کا شفعہ باطل ہو گیا اور اگر یہ عورت مرتدہ کسی دار کی فروخت کرنے والی ہو تو شفیع کو اس میں استحقاق شفعہ ہو گا اگر کوئی شخص مرتد یا مرتدہ شفیع ہو اور اس نے شفعہ دے دیا تو جائز ہے اور اگر اس نے شفعہ نہ دیا اور شفعہ میں دار مشفعہ لینا چاہا تو قاضی اس کے واسطے شفعہ کا حکم نہ دے گا لیکن اگر مسلمان ہو جائے تو حکم دے گا اور اگر قاضی نے اس کا شفعہ باطل کر دیا پھر وہ مسلمان ہوا تو اس کو شفعہ نہ ملے گا اور اگر قاضی نے اس کو مہلت دی ہو تا کہ اپنے معاملے[3] میں سوچ و فکر کرے پھر وہ مسلمان ہو گیا تو اپنے شفعہ پر ہو گا مگر یہ حکم اس وقت ہے کہ اس نے خرید کا حال جاننے کے وقت شفعہ طلب کیا ہو اور اگر اسلام لانے کے وقت تک اس نے شفعہ نہ طلب کیا ہو تو اس صورت میں

اس کو استحقاق شفعہ نہ ہو گا کیونکہ اس نے طلب مواثبہ[4] کو فروخت ہونے کا حال جاننے کے بعد ترک کیا ہے اور اگر مرتد دارالحرب میں جا ملا پھر اس کی میراث اس کے وارثوں میں تقسیم ہونے سے پہلے دار فروخت کیا گیا تو اس کے وارثوں کو استحقاق شفعہ ہو گا اور اگر مرتد نے کوئی دار کسی مسلمان یا ذمی سے بعوض شراب کے خریدا تو بیع باطل ہے اور اس میں شفعہ نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

**اگر شفیع کوئی حربی مستامن ہو اور اس نے طلبِ شفعہ کے واسطے وکیل کیا**

اگر حربی مستامن نے کوئی دار خریدا پھر دارالحرب میں چلا گیا تو شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا جب اس سے ملاقات ہو طلب کر سکتا ہے کیونکہ اس کا دارالحرب میں چلا جانا مثل اس کے مر جانے کے ہے اور مشتری کا مر جانا شفیع کے شفعہ کو باطل نہیں کرتا ہے۔ یہ محیط میں ہے۔ اگر مسلمان نے دارالاسلام میں کوئی دار خریدا اور اس کا شفیع ایک حربی مستامن ہے پھر وہ دارالحرب میں چلا گیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا۔ خواہ اس کو خرید کا حال معلوم ہوا ہو یا نہ ہوا ہو۔ اگر حربی مستامن نے ایک دار خریدا اور اس کا شفیع بھی حربی مستامن ہے پھر دونوں دارالحرب میں چلے گئے تو شفیع کو اس میں شفعہ کا استحقاق نہ ہو گا کیونکہ اس کا دارالحرب میں چلا جانا ایسا ہے جیسا دارالاسلام والے کا دارالاسلام میں مر جانا اور یہ ظاہر ہے کہ دار مشفعہ دارالاسلام میں ہے۔ اگر شفیع و مشتری دونوں دارالحرب میں ہوں پس اگر شفیع مسلمان یا ذمی ہو جو امان لے کر دارالحرب میں گیا ہے تو جس وقت وہ آگاہ ہوا اپنے استحقاق شفعہ پر ہو گا پھر اگر وہ دارالاسلام میں آیا حالانکہ وہ بیع کا حال جانتا ہے مگر اس نے شفعہ طلب نہ کیا یہاں تک کہ پھر کہیں چلا گیا تو اس کا شفعہ باطل ہو گیا اور اگر اس نے شفعہ طلب کیا پھر اس کو دارالحرب وغیرہ کی طرف کوئی سفر پیش آیا تو وہ اپنے شفعہ پر رہے گا اگر طالب شفعہ ہے۔ اگر شفیع کوئی حربی مستامن ہو اور اس نے طلب شفعہ کے واسطے وکیل کیا اور خود دارالحرب میں

چلا گیا تو اس کو شفعہ نہ ملے گا جیسا کہ شفعہ طلب کرنے کے واسطے وکیل کرنے کے بعد مر جانے کا حکم ہے۔ اگر شفیع کوئی مسلمان یا ذمی ہو اور اس نے کسی حربی مستامن کو وکیل پھر یہ وکیل دارالحرب میں چلا گیا۔

---

۱ خروج مبیع یعنی بائع کی ملک سے خارج ہونا جبکہ بعوض مالی ہو۔ ۲ قولہ جاہلی اور اگر وہ وہاں ہی گئی ہو تو اس کا شفعہ متوقف ہے یا الافضل حاصل ہو گی علی الاختلاف۔ ۳ معاملہ یعنی ایمان کے معاملہ میں غور کرے۔ ۴ طلب مواثبہ فی الفور طلب کرنا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (225) Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

In such a case, his agency (wakalat) becomes void, but the pre-emptor (shafi') will retain his right of pre-emption (shufa). This is because the agent's (wakil) departure to Dar al-Harb (the Abode of War) is equivalent to his death, and the death of an agent voids the agency. However, it does not void the principal's (muwakkil) right of pre-emption. Thus, the departure of the said agent to Dar al-Harb carries the same ruling; this is mentioned in *Al-Mabsut*. If a Muslim purchases a property in Dar al-Harb and the pre-emptor is also a Muslim, and subsequently all the inhabitants of that Dar al-Harb embrace Islam, the pre-emptor shall not have the right (of pre-emption). It should be known that regarding rulings that do not require a judge's decree (qada al-qadi), Dar al-Harb and Dar al-Islam are considered equal. However, rulings that depend on a judge's decree will not be established for Muslims residing in Dar al-Harb, because the cause for such a ruling arose in Dar al-Harb. Examples of the former include the validity of sales and purchases, the status of *Umm al-Walad*^1 (a slave mother), the effectiveness of manumission (freeing a slave), and the obligation of prayer and fasting. Since these are the general laws of Islam, they apply to Muslims even in Dar al-Harb. An example of the latter is the act of adultery (zina); hence, if a Muslim in Dar al-Harb commits adultery and then that Dar al-Harb becomes Dar al-Islam, the prescribed punishment (hadd) shall not be enforced upon him, as stated in *Al-Muhit*.

**Sixteenth Chapter: On Pre-emption (Shufa) During Terminal Illness (Marad al-Mawt)**

If a sick person purchases a house for two thousand dirhams while its market value is one thousand dirhams, and besides this, the sick person possesses another thousand dirhams, and then he dies, the sale is valid and the pre-emptor shall have the right of pre-emption. This is because the deceased made a concession (*muhabat*)^2 of one-third in this transaction, and such a concession is permissible for a sick person in favor of a non-heir (ajnabi). Therefore, the right of pre-emption becomes established for that house. If a sick person sells a house worth three thousand dirhams for two thousand dirhams and the pre-emptor is a non-heir, the pre-emptor has the option to take it for two thousand dirhams; this is in *Al-Mabsut*. If a sick person sells a house for one thousand dirhams when its value is two thousand dirhams, and the deceased has no other assets, the buyer will be told: if you wish, take the house for two-thirds of the value (two thousand dirhams), otherwise leave it. In this case, the pre-emptor will have the option to take the house for one thousand

dirhams plus one-third of a thousand dirhams (1). This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. If a sick person sells a house for two thousand dirhams on credit for a specific term, while its value is three thousand dirhams, the term of credit becomes void. However, the buyer will be given the option to either rescind the sale or pay the two thousand dirhams immediately so that the heirs receive their full due. Whichever option the buyer chooses, the pre-emptor will, in any case, have the right to take the house for two thousand dirhams in cash. If a sick person sells a house for three thousand dirhams on one year's credit, while its value is two thousand dirhams, and then dies, it is the consensus (ijma) that the credit term is void for any amount exceeding one-third. However, there is a difference of opinion on whether this one-third should be calculated based on the agreed price (thaman) or the market value (qimat). Imam Abu Yusuf stated it should be based on the price; thus, the buyer must pay two-thirds of the price, i.e., two thousand dirhams immediately, and the remaining one thousand dirhams at the end of the term, if he accepts the sale. Imam Muhammad (R.A.) stated that this one-third should be based on the market value; thus, if the buyer accepts, he must pay two-thirds, i.e., one thousand three hundred and thirty-three (1333) and one-third dirhams immediately, and the remainder at the end of the term. This is in *Al-Muhit*. If a sick person...

---

^1 *Umm al-Walad*: A female slave who bears a child to her master. This status is recognized even in Dar al-Harb. Similarly, if he frees his slave, the manumission is effective. ^2 *Muhabat*: Selling a property significantly below its market value or buying it significantly above its value as a favor. (1) In exchange for two-thirds of two thousand.

तो उसकी वकालत बातिल (रद्द) हो गई और शफ़ी (हक-ए-शुफ़ा रखने वाला) अपने शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) पर कायम रहेगा, क्योंकि उक्त वकील का दार-उल-हर्ब (शत्रु क्षेत्र) में चला जाना उसके मर जाने के समान है, और वकील का मर जाना वकालत को बातिल कर देता है। यह मोक्किल (नियुक्ता) के शुफ़ा को बातिल नहीं करता है, इसलिए उक्त वकील का दार-उल-हर्ब में जाना भी यही हुक्म रखता है, यह 'मबसूत' में वर्णित है। यदि किसी मुसलमान ने दार-उल-हर्ब में कोई मकान खरीदा और उसका शफ़ी भी मुसलमान है, फिर उस दार-उल-हर्ब के सभी लोग मुसलमान हो गए, तो शफ़ी को (शुफ़ा का) अधिकार नहीं होगा। यह जानना चाहिए कि जो हुक्म काज़ी के फैसले का मोहताज नहीं है, उसमें दार-उल-हर्ब और दार-उल-इस्लाम बराबर हैं। जो हुक्म काज़ी के फैसले का मोहताज है, वह उन मुसलमानों के हक में जो दार-उल-हर्ब में हैं, साबित नहीं होगा क्योंकि इस हुक्म का कारण दार-उल-हर्ब में उत्पन्न हुआ है। पहले की मिसाल यह है कि जैसे खरीद-फरोख्त जायज़ है और 'उम्म-ए-वलद'^1 बनाना सही है, और दासमुक्ति (इतक) प्रभावी हो जाएगी, और नमाज़-रोज़ा उस पर वाजिब है। अतः ये सभी इस्लाम के अहकाम (नियम) हैं और जो मुसलमान दार-उल-हर्ब में हैं, उन पर भी लागू होंगे। दूसरे की मिसाल जैसे ज़िना (व्यभिचार) करना; अतः यदि दार-उल-हर्ब के किसी मुसलमान ने ज़िना किया और फिर वह दार-उल-हर्ब, दार-उल-इस्लाम बन गया, तो उस पर हद्द (सज़ा) लागू नहीं की जाएगी, जैसा कि 'मुहीत' में वर्णित है।

## अध्याय सोलहवाँ: बीमारी की अवस्था में शुफ़ा के बयान में

यदि किसी बीमार व्यक्ति ने दो हज़ार दिरहम में एक मकान खरीदा जबकि उसकी कीमत एक हज़ार दिरहम है, और उस बीमार के पास इसके अलावा एक हज़ार दिरहम और मौजूद हैं, फिर वह मर गया, तो बिक्री जायज़ है और शफ़ी को इसमें शुफ़ा का अधिकार होगा। क्योंकि उक्त बीमार ने इस सौदे में एक-तिहाई के बराबर 'मुहाबात'^2 (रियायत) की है, और एक अजनबी के हक में बीमार की तरफ से इतनी मुहाबात जायज़ होती है। अतः इस मकान में शफ़ी का शुफ़ा वाजिब होगा। और यदि बीमार ने तीन हज़ार दिरहम की कीमत वाले मकान को दो हज़ार दिरहम में बेच दिया और उसका शफ़ी कोई अजनबी है, तो शफ़ी को अधिकार होगा कि वह उसे दो हज़ार दिरहम में ले ले, यह 'मबसूत' में है। एक बीमार ने एक हज़ार दिरहम में एक मकान बेचा जबकि उसकी असली कीमत दो हज़ार दिरहम थी, और उक्त बीमार के पास इसके अलावा कोई और संपत्ति नहीं थी, तो खरीदार (मुश्तरी) से कहा जाएगा कि यदि तू चाहे तो इस मकान को दो हज़ार दिरहम की दो-तिहाई कीमत में

ले ले, अन्यथा छोड़ दे। और शफ़ी को अधिकार होगा कि वह उक्त मकान को एक हज़ार दिरहम और एक हज़ार की एक-तिहाई के बदले शुफ़ा में ले ले (1)। यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में वर्णित है। और यदि बीमार ने दो हज़ार दिरहम के बदले एक निश्चित समय की उधारी पर मकान बेचा जबकि उसकी कीमत तीन हज़ार दिरहम थी, तो वह उधारी की अवधि बातिल हो जाएगी, लेकिन खरीदार को विकल्प दिया जाएगा कि वह बिक्री रद्द कर दे या तुरंत दो हज़ार दिरहम का भुगतान कर दे ताकि वारिसों को उनका पूरा हक मिल जाए। इन दोनों विकल्पों में से खरीदार जो भी चुने, शफ़ी को हर हाल में अधिकार होगा कि वह उक्त मकान को नकद दो हज़ार दिरहम में ले ले। और यदि बीमार ने तीन हज़ार दिरहम का मकान एक साल की उधारी पर बेचा जबकि उसकी असली कीमत दो हज़ार दिरहम थी, और फिर वह मर गया, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से यह हुक्म है कि एक-तिहाई से अधिक में उधारी की अवधि बातिल है। लेकिन इसमें मतभेद है कि यह तिहाई हिस्सा तयशुदा कीमत (थमन) के आधार पर तय होगा या वास्तविक मूल्य (कीमत) के आधार पर। इमाम अबू यूसुफ ने फरमाया कि यह तयशुदा कीमत के हिसाब से मान्य होगा, अतः वह कीमत का दो-तिहाई यानी दो हज़ार दिरहम तुरंत अदा करे और शेष एक हज़ार दिरहम अपनी निर्धारित अवधि पर दे, यदि उसे सौदा मंज़ूर हो। और इमाम मुहम्मद रह. ने फरमाया कि यह तिहाई वास्तविक मूल्य के हिसाब से लगाई जाएगी, अतः यदि उसे मंज़ूर हो तो वह दो-तिहाई यानी एक हज़ार तीन सौ तैंतीस (1333) और एक-तिहाई दिरहम तुरंत अदा करे और शेष अपनी अवधि पर दे, यह 'मुहीत' में वर्णित है। यदि बीमार ने कोई मकान इस...

---

^1 उम्म-ए-वलद: अर्थात किसी दासी को अपने अधीन लाना जिससे संतान उत्पन्न हो। यह दार-उल-हर्ब में भी सही है। इसी तरह यदि अपना गुलाम आज़ाद किया तो उसकी मुक्ति प्रभावी होगी। ^2 मुहाबात: बिक्री में उचित कीमत से बहुत अधिक कमी करना (रियायत देना)। (1) दो हज़ार की दो-तिहाई के बदले।

تو اس کی وکالت باطل ہوگئی اور شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا کیونکہ وکیل مذکور کا دار الحرب میں چلا جانا مثل اس کے مر جانے کے ہے اور وکیل کا مر جانا وکالت کو باطل کرتا ہے۔ مؤکل کے شفعہ کو باطل نہیں کرتا ہے پس ایسا ہی وکیل مذکور کا دار الحرب میں چلا جانا یہی حکم رکھتا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کسی مسلمان نے دار الحرب میں کوئی دار خریدا اور اس کا شفیع بھی مسلمان ہے پھر اس دار الحرب کے سب لوگ مسلمان ہو گئے تو شفیع کو استحقاق نہ ہو گا۔ جاننا چاہئے کہ جو حکم کہ قضاے قاضی کا محتاج نہیں ہے اس میں دار الحرب و دار الاسلام یکساں ہے۔ جو حکم قضاے قاضی کا محتاج ہے وہ حکم ان مسلمانوں کے حق میں جو دار الحرب میں ہیں ثابت نہ ہو گا اس واسطے کہ اس حکم کا سبب دار الحرب میں پیدا ہوا ہے اور اول کی مثال یہ ہے کہ جیسے خرید و فروخت جائز ہے اور ام ولد ۱۸ بنانا صحیح ہے اور عتق نافذ ہو جائے گا اور نماز روزہ اس پر واجب ہے پس یہ احکام سب احکام اسلام ہیں اور جو مسلمان دار الحرب میں ہیں ان پر بھی جاری ہوں گے اور ثانی کی مثال جیسے زنا کرنا چنانچہ اگر دار الحرب والے مسلمان نے زنا کیا پھر دار الحرب دار الاسلام ہو گیا تو اس پر حد قائم نہ کی جائے گی کذا فی المحیط

**باب سولہواں : مرض میں شفعہ کے بیان میں**

اگر مریض نے ایک دار دو ہزار درہم کو خریدا حالانکہ اس کی قیمت ایک ہزار درہم ہے اور اس کے سوائے اس مریض کے پاس ہزار درہم موجود ہیں پھر مر گیا تو بیع جائز اور شفیع کو اس میں شفعہ کا استحقاق ہو گا کیونکہ مریض مذکور نے اس بیع میں بقدر ایک تہائی کے محابات ۲۸ کی

ہے اور اجنبی کے حق میں مریض کی طرف سے اس قدر محابات جائز ہوتی ہے پس اس دار میں شفیع کا شفعہ واجب ہو گا اور اگر مریض نے تین ہزار درہم قیمت کا دار دو ہزار درہم کو فروخت کیا اور اس کا شفیع کوئی اجنبی ہے تو شفیع کو اختیار ہو گا کہ دو ہزار درہم میں لے لے یہ مبسوط میں ہے۔ ایک مریض نے ایک دار ہزار درہم کو فروخت کیا حالانکہ اس کی قیمت دو ہزار درہم ہے اور اس کے سوائے مریض مذکور کا کچھ مال نہیں ہے تو مشتری سے کہا جائے گا کہ تیرا جی چاہے اس دار کو دو ہزار درہم کی دو تہائی میں لے لے ورنہ چھوڑ دے اور شفیع کو اختیار ہو گا کہ دار مذکور کو ایک ہزار درہم اور ایک ہزار کی تہائی کے بدلے شفعہ میں لے لے (۱) یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اور اگر مریض نے ایک دار بعوض دو ہزار درہم کے میعادی ادھار فروخت کیا حالانکہ اس کی قیمت تین ہزار درہم ہے تو میعاد باطل ہو گی مگر مشتری کو اختیار دیا جائے گا کہ بیع فسخ کر دے یانی المحال دو ہزار درہم ادا کر دے تاکہ وارثوں کو ان کا پورا حق پہنچ جائے اور ان دونوں میں جو بات مشتری نے اختیار کی بہر حال شفیع کو اختیار ہو گا کہ دار مذکور کو نقد دو ہزار درہم کو لے لے اور اگر مریض نے ایک دار تین ہزار درہم کو ایک سال کے ادھار پر فروخت کیا حالانکہ اس کی قیمت دو ہزار درہم ہے پھر مر گیا تو بالا جماع یہ حکم ہے کہ ایک تہائی سے زیادہ میں ادھار کی میعاد باطل ہے لیکن اس میں اختلاف ہے کہ یہ تہائی ثمن کے حساب سے اختیار کی جائے گی یا قیمت کی راہ سے معتبر ہو گی پس امام ابو یوسف نے فرمایا کہ ثمن کے حساب سے معتبر ہو گی پس دو تہائی ثمن یعنی دو ہزار درہم فی الحال ادا کرے اور باقی ایک ہزار درہم اپنی میعاد پر دے اگر اس کو بیع منظور ہو اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ یہ تہائی باعتبار قیمت کے لگائی جائے گی پس اگر اس کو منظور ہو تو دو تہائی یعنی ایک ہزار تین سو تینتیس (۱۳۳۳) و یک تہائی درہم فی الحال ادا کرے اور باقی اپنی میعاد پر دے یہ محیط میں ہے۔ اگر مریض نے کوئی دار اس

۱۸ ام ولد یعنی کسی باندی کو تحت میں لانا جس سے اولاد ہو پس وہ دار الحرب میں بھی صحیح ہے اسی طرح اگر اپنا غلام آزاد کیا تو عتق نافذ ہو گا۔ ۲۸ محاباۃ بیع میں عمدہ قیمت سے بہت کمی کرنا۔ (۱) دو ہزار کی دو تہائی کے بدلے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | (226) | Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)**

...sold [an asset] to his heir at a price equal to its value, and the pre-emptor (Shafee) is a stranger, then he [the stranger] shall not receive the right of pre-emption. This is because, for a sick person in their death-illness (Marz-ul-Maut), to sell any specific property to an heir—even if it is for a price equal to its market value—is considered invalid (fasid) (1) according to Imam al-Azam [Abu Hanifa] unless the remaining heirs grant permission. However, according to the Sahibayn [Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad], it is permissible, and thus the right of pre-emption will also be established. If the sick person sold to a stranger while an heir is the pre-emptor, even then, according to Imam al-Azam, the heir will not obtain pre-emption; this is because through pre-emption, it would essentially be as if the sale was made to the heir from the beginning. Conversely, according to the Sahibayn, pre-emption would be mandatory. This all applies when the patient has sold at market price. If there was "muhabaat" (favor/undervaluation) in the sale—for example, a house worth 3,000 was sold for 2,000 dirhams—if it was sold to an heir and the pre-emptor is a stranger, there is no doubt that according to Imam al-Azam, the right of pre-emption will not be granted. According to the Sahibayn, the sale is valid, but the amount of muhabaat will be adjusted, and thereafter pre-emption will be mandatory, as stated in *al-Badai'*. The most authentic opinion of Imam Abu Hanifa is as recorded in *al-Mabsut*.

*Note: One-third reduction, as the total price is 3,000 dirhams, so 1,000 is the muhabaat (undervaluation).*

If the sick person sold to a stranger with muhabaat, then according to Imam al-Azam, the heir shall not receive pre-emption. However, the pre-emptor will take it with the same compensation... [legal technicalities regarding transfer]. Whether the heirs permit it or not, because permission applies to a suspended (mawquf) contract, whereas here the buyer's purchase has already been executed because selling for 2,000 dirhams involves a one-third muhabaat, which is executable. Thus, for the buyer, this muhabaat is considered null [regarding pre-emption rights], so it will also be null in the right of pre-emption; this is in *al-Badai'*. If among two pre-emptors only one is an heir, the other pre-emptor shall take it. If the patient sold his house while in good health and the heir took it via pre-emption, and then the seller reduced the price while in illness, it is not permissible unless the other heirs agree. If this reduction happened before the heir claimed pre-emption, then if the heir takes it, the reduction (2) will be void; but if he did not take it, it remains valid. This is quoted in *Tatarkhaniya* from *Atabiyya*. A sick person sold a house worth 3,000 dirhams for 2,000

dirhams and had no other assets besides this house, then died, and his son is the pre-emptor of the house. The son shall not receive pre-emption because if the aforementioned sick person had sold it to his son for that price, it would not have been valid. It is mentioned in *Kitab al-Wasaya* that according to the opinion of the Sahibayn, if the son wishes, he can take it in pre-emption for its [full] market value. The more correct view is what is mentioned here because it is explicitly stated in *al-Jami'* that this is, by consensus (ijma), the opinion of all [Hanafi] Imams; this is in *al-Mabsut*. If the sick person has other assets besides this house and the heirs have given permission, then by consensus, he will attain pre-emption; this is in *Sharh Majma' al-Bahrayn*. If a sick person sold his house with a muhabaat in the sale and subsequently recovered from the illness, and the heir is the pre-emptor; if the heir was unaware of the sale until then, he can claim it in pre-emption because an illness followed by recovery is considered equivalent to a state of health. But if the heir knew about the sale and did not claim pre-emption until the patient recovered, then he shall not attain pre-emption. As stated in *al-Mabsut*.

(1) Not correct. (2) Taking in pre-emption.

...की कीमत के बराबर दामों को अपने वारिस के हाथ फ़रोख्त किया और उसका शफ़ी (पूर्वक्रय का अधिकार रखने वाला) कोई अजनबी है तो उसको शुफ़ा नहीं मिलेगा इस वास्ते कि मरीज़ का मरज़-उल-मौत (मृत्यु-पूर्व बीमारी) में अपना कोई माल ऐन (विशिष्ट संपत्ति) किसी वारिस के हाथ फ़रोख्त करना, अगरचे उस माल ऐन की कीमत के बराबर दामों के एवज़ हो, इमाम-ए-आज़म [इमाम अबू हनीफ़ा] के नज़दीक फ़ासिद (अमान्य) है (1)। इस सूरत में कि बाक़ी वारिस लोग इसकी इजाज़त दे दें, मगर साहबैन [इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद] के नज़दीक जाइज़ है, तो शुफ़ा भी वाजिब होगा। और अगर मरीज़ ने किसी अजनबी के हाथ फ़रोख्त किया और वारिस उसका शफ़ी है तो भी इमाम-ए-आज़म के नज़दीक उसको शुफ़ा नहीं मिलेगा, इस वास्ते कि शुफ़ा से ऐसा हो जाएगा गोया उसने इब्तिदा (शुरुआत) में वारिस के हाथ फ़रोख्त किया है, और साहबैन के नज़दीक शुफ़ा वाजिब होगा। और यह सब इस सूरत में है कि मरीज़ ने कीमत के बराबर दामों पर फ़रोख्त किया हो। और अगर बैय (बिक्री) में मुहाबात (रियायत) की, मसलन तीन हज़ार कीमत का मकान दो हज़ार दिरहम के एवज़ फ़रोख्त किया; पस अगर वारिस के हाथ फ़रोख्त किया और उसका शफ़ी कोई अजनबी है तो इसमें कुछ शक नहीं है कि इमाम-ए-आज़म के नज़दीक उसको इस्तहक़ाक़-ए-शुफ़ा (पूर्वक्रय का अधिकार) हासिल न होगा, और साहबैन के नज़दीक बैय जाइज़ है मगर मुहाबात की मिक़दार हटा दी जाएगी, पस शुफ़ा वाजिब होगा; जैसा कि 'बदाए' में है। और इमाम अबू हनीफ़ा का अधिक सही क़ौल यही है, जैसा 'मबसूद' में दर्ज है।

नोट: एक तिहाई इस वास्ते कि कुल कीमत तीन हज़ार दिरहम है तो एक हज़ार की मुहाबात (रियायत) है।

अगर मरीज़ ने किसी अजनबी के हाथ मुहाबात (रियायत) के साथ फ़रोख्त किया हो, तो भी इमाम-ए-आज़म के नज़दीक वारिस को शुफ़ा नहीं मिलेगा। लेकिन शफ़ी उसको इसी मुआविज़े के साथ इस तरह लेगा कि उसके पास यह मुआविज़ा पहुँच कर इब्तिदाई मुआविज़ा बन जाएगा, ख्वाह वारिस लोग इसकी इजाज़त दें या न दें। क्योंकि इजाज़त का अवसर उस अनुबंध में होता है जो निलंबित (मवक़ूफ़) हो, और यहाँ खरीदार की खरीद प्रभावी (नाफ़िज़) हो चुकी है क्योंकि दो हज़ार दिरहम के एवज़ फ़रोख्त करने में एक तिहाई की क़द्र मुहाबात है और यह हिस्सा प्रभावी है। पस खरीदार के हक़ में यह मुहाबात व्यर्थ ठहरी तो हक़-ए-शुफ़ा में भी व्यर्थ होगी; यह 'बदाए' में है। अगर दो शफ़ियों में से केवल एक वारिस हो तो दूसरा शफ़ी उसे ले लेगा। और अगर मरीज़ ने स्वास्थ्य की स्थिति में

अपना मकान बेचा और वारिस ने शुफ़ा के तौर पर ले लिया, फिर विक्रेता ने बीमारी की हालत में कीमत कम कर दी, तो यह जाइज़ नहीं है जब तक कि बाक़ी वारिस इसकी इजाज़त न दें। और अगर यह कमी वारिस द्वारा लेने से पहले हुई, तो अगर वारिस ने लिया तो वह कमी (2) बातिल हो जाएगी; और अगर नहीं लिया तो सही रहेगी; यह 'तातारखानिया' में 'अताबिया' के हवाले से है। एक मरीज़ ने तीन हज़ार दिरहम मूल्य का मकान दो हज़ार दिरहम में बेचा और उसके पास इस मकान के सिवा कोई और संपत्ति नहीं थी, फिर वह मर गया और उसका बेटा उस मकान का शफ़ी है; तो बेटे को शुफ़ा नहीं मिलेगा क्योंकि यदि मरीज़ इन दामों में बेटे के हाथ बेचता तो वह जाइज़ न होता। और 'किताब-उल-वसाया' में दर्ज है कि साहबैन के मतानुसार यदि बेटा चाहे तो उसे उसकी [पूर्ण] कीमत के एवज़ शुफ़ा में ले सकता है। अधिक सही यही है जो यहाँ उल्लेखित है क्योंकि 'जामे' में स्पष्ट कहा गया है कि यह सर्वसम्मति (इज्मा) से सभी [हनफ़ी] इमामों का मत है; यह 'मबसूद' में है। यदि मरीज़ के पास इस मकान के अलावा और भी संपत्ति हो और वारिसों ने अनुमति दे दी हो, तो सर्वसम्मति से उसे शुफ़ा प्राप्त होगा; यह 'शरह मजमा-उल-बहरैन' में है। यदि किसी मरीज़ ने अपना मकान बेचा और बिक्री में मुहाबात की, फिर बीमारी से ठीक हो गया और वारिस उसका शफ़ी है; पस यदि वारिस को अब तक बिक्री का पता न चला हो तो वह शुफ़ा में ले सकता है क्योंकि जिस बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ हो जाए वह बीमारी स्वास्थ्य की स्थिति के समान मानी जाती है। और अगर वारिस को बिक्री का ज्ञान था लेकिन उसने शुफ़ा का दावा नहीं किया यहाँ तक कि मरीज़ ठीक हो गया, तो उसे शुफ़ा हासिल नहीं होगा। जैसा 'मबसूद' में उल्लेखित है।

(1) सही नहीं है। (2) शुफ़ा में लेना।

---

کی قیمت کے برابر داموں کو اپنے وارث کے ہاتھ فروخت کیا اور اس کا شفیع کوئی اجنبی ہے تو اس کو شفعہ نہ ملے گا اس واسطے کہ مریض کا مرض الموت میں اپنا کوئی مال عین کسی وارث کے ہاتھ فروخت کرنا اگرچہ اس مال عین کی قیمت کے برابر داموں کے عوض ہو امام اعظم کے نزدیک فاسد ہے (۱) اس صورت میں کہ باقی وارث لوگ اس کی اجازت دے دیں مگر صاحبین کے نزدیک جائز ہے تو شفعہ بھی واجب ہوگا اور اگر مریض نے کسی اجنبی کے ہاتھ فروخت کیا اور وارث اس کا شفیع ہے تو بھی امام اعظم کے نزدیک اس کو شفعہ نہ ملے گا اس واسطے کہ شفعہ سے ایسا ہو جائے گا گویا اس نے ابتدا وارث کے ہاتھ فروخت کیا ہے اور صاحبین کے نزدیک شفعہ واجب ہوگا اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ مریض نے قیمت کے برابر داموں کو فروخت کیا ہو اور اگر بیع میں محابات کی مثلاً تین ہزار قیمت کا دار دو ہزار درہم کے عوض فروخت کیا پس اگر وارث کے ہاتھ فروخت کیا اور اس کا شفیع کوئی اجنبی ہے تو اس میں کچھ شک نہیں ہے کہ امام اعظم کے نزدیک اس کو استحقاقِ شفعہ حاصل نہ ہوگا اور صاحبین کے نزدیک بیع جائز ہے مگر مقدارِ محابات دور کی جائے گی پس شفعہ واجب ہوگا کذا فی البدائع اور اصح قول امام ابوحنیفہ کا ہے یہ مبسوط میں ہے۔

ایک تہائی اس واسطے کہ کل قیمت تین ہزار درہم ہے تو ایک ہزار کی محابات ہے۔

اگر مریض نے کسی اجنبی کے ہاتھ محاباتاً فروخت کیا ہو تو بھی امام اعظم کے نزدیک وارث کو شفعہ نہ ملے گا لیکن شفیع اس کو اسی صلہ کے ساتھ اس طرح لے گا کہ اس کے پاس یہ صلہ تحویل پا کر بمقدر یہ صلہ ابتدائی ہو جائے گا خواہ وارث لوگ اس کی اجازت دیں یا اجازت نہ دیں

کیونکہ اجازت کا محل وہ عقد ہوتا ہے جو موقوف ہو اور یہاں مشتری کی خرید نافذ واقع ہوئی ہے کیونکہ دو ہزار درہم کے عوض فروخت کرنے میں ایک تہائی کی قدر محابات ہے اور اس قدر نافذ ہے پس مشتری کے حق میں یہ محابات لغو ٹھہری تو حقِ شفعہ میں بھی لغو ہو گی یہ بدائع میں ہے۔ اگر دو شفیعوں میں سے فقط ایک وارث ہو تو دوسرا شفیع اس کو لے لے گا اور اگر مریض نے حالتِ صحت میں اپنا دار بیع کیا اور وارث نے شفعہ میں لے لیا پھر بائع نے حالتِ مرض میں ثمن میں سے گھٹادیا تو جائز نہیں ہے مگر اس صورت میں کہ باقی وارث اس کی اجازت دیں اور اگر یہ گھٹانا وارث کے لینے سے پہلے واقع ہوا پس اگر وارث نے لیا تو گھٹانا (۲) باطل ہو جائے گا اور اگر نہ لیا تو صحیح رہے گا یہ تاتارخانیہ میں عتابیہ سے منقول ہے۔ ایک مریض نے تین ہزار درہم قیمت کا دار بعوض دو ہزار درہم کے فروخت کیا اور سوائے اس دار کے اس کا کچھ مال نہیں ہے پھر مر گیا اور اس کا بیٹا اس دار کا شفیع ہے تو بیٹے کو اس میں شفعہ نہ ملے گا اس واسطے کہ اگر مریض مذکور ان داموں کے عوض بیٹے کے ہاتھ فروخت کرتا تو جائز نہ ہوتا اور کتاب الوصایا میں مذکور ہے کہ صاحبین کے قول کے موافق اگر بیٹا چاہے تو اس کو اس کی قیمت کے عوض شفعہ میں لے سکتا ہے۔ اصح یہی ہے جو یہاں مذکور ہے کیونکہ جامع میں صریح فرمایا ہے کہ یہ بالاجماع سب ائمہ (حنفیہ) کا قول ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر مریض کا اس دار کے سوائے کچھ اور مال بھی ہو اور وارثوں نے اجازت دے دی تو بالاتفاق اس کو شفعہ حاصل ہوگا یہ شرح مجمع البحرین میں ہے۔ اگر کسی مریض نے اپنا دار فروخت کیا اور بیع میں محابات کی پھر مرض سے اچھا ہو گیا اور وارث اس کا شفیع ہے پس اگر وارث نے اب تک بیع کا حال نہ جانا ہو تو اس کو شفعہ میں لے سکتا ہے کیونکہ جس مرض کے پیچھے صحت ہو جائے وہ مرض بمنزلہ حالتِ صحت کے ہے اور اگر وارث کو بیع کا علم ہوا ہو مگر اس نے شفعہ طلب نہ کیا یہاں تک کہ مریض اچھا ہو گیا تو اس کو شفعہ حاصل نہ ہوگا۔ کذا فی المبسوط۔

(۱) صحیح نہیں ہے۔ (۲) شفعہ میں لینا۔

---

Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 [227] Book of Pre-emption (Kitab al-Shufa)

**Chapter of Manzula:**

**In the Description of Miscellaneous Matters**

Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) has mentioned in the *Jame Kabeer* that if a pre-emptor (*shafi*), after the sale of the pre-empted property (*dar-e-mashfu'a*), sells a portion of his own property (through which he is entitled to the right of pre-emption) as an undivided share (*musha*), his right of pre-emption shall not be voided. Similarly, if he sells a portion of a partitioned wall that is not connected to the pre-empted property, his right of pre-emption shall also not be voided. However, if he sells a partitioned portion adjacent to the pre-empted property, his right of pre-emption will be voided. There are two houses; one house and the access path for both houses are shared by two individuals, while the second house belongs solely to a third individual. If the third individual sells his specific house, both shared owners shall have the right of pre-emption via the access path. If the shared owners divided the common house between themselves, and a portion of the wall and the entire path went to one person's share, while only some wall without the path went to the other person's share, and the person without the path made an entrance towards the main road for his share, then the person who received the shared path in his portion shall first be entitled to pre-empt the sold property as they are both neighbors (*jar*). If he relinquishes his right, the other neighbor shall exercise the right through adjacency, and this division shall not void his right of pre-emption. This is mentioned in *Al-Muhit*. If a pre-emptor takes land through pre-emption and then constructs a building or plants trees on it, and subsequently another person proves a superior right and takes the land, and this person orders the pre-emptor to demolish his building and uproot his trees, the said pre-emptor shall recover from the buyer an amount equal to the price paid, but he cannot recover the cost of the building and trees from either the seller (if the land was taken from him) or the buyer. This means he cannot recover for the loss incurred due to demolition or uprooting from either party. This is stated in *Al-Tabyin*. According to our view, pre-emption is distributed based on the number of pre-emptors (1). For example, if a house is shared among three people—one owning half, another one-third, and the third one-sixth—and the owner of the half share sells his portion and the remaining two partners claim pre-emption, the sold portion shall be divided equally between them in pre-emption. Similarly, if the owner of the one-sixth share sells his portion, the remaining two shall be granted equal halves. If any pre-emptor relinquishes his right, the sold share shall

be divided among the remaining pre-emptors according to their count. If one of the pre-emptors is absent, the sold share shall be divided among those present according to their number. If a court decree is issued for the entire share in the name of a present pre-emptor, and then another pre-emptor appears, the decree shall be revised to half for each. If a third appears, the decree shall be for one-third of what is held by each. If a present pre-emptor, after being granted a decree for the whole share, relinquishes his right, then the other present pre-emptor can only take half. This is in *Al-Kafi*. If a person says, "I sold my house to such-and-such person for such an amount and have not received the price," and the mentioned person says, "I did not buy it from you," the pre-emptor shall have the option to take it through pre-emption. This ruling applies when the seller has confessed to selling to that person and that person is present but denies the purchase. If that person is absent, there shall be no dispute between the pre-emptor and the buyer. This is in *Al-Muhit*. If a house adjacent to another's property is sold and the neighbor believes that the area of this sold property actually belongs to him, but fears that if he claims the area, his right of pre-emption will be voided, and if he claims pre-emption, he cannot later claim ownership of the area; what should he do to ensure his...

---

1. He did not sell the partitioned portion adjacent to the pre-empted house. (1) It is not based on the magnitude of their respective shares.

फतावा आलमगिरी ..... जिल्द 8 [227] किताबुश-शुफा

**बाब मंज़ूला:**

**मुतफ़र्रक़ात के बयान में**

इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाह अलैहि ने जामिया कबीर में ज़िक्र फ़रमाया है कि अगर शफ़ी (हक़-ए-शुफ़ा रखने वाला) ने दार-ए-मशफ़ूआ (वह घर जिस पर शुफ़ा किया जा रहा हो) फ़रोख्त होने के बाद अपने उस घर में से जिसके ज़रिये वह शुफ़ा का मुस्तहिक़ है, कुछ हिस्सा दार-ए-मुशा यानी गैर-मक़सूम (अविभाजित) फ़रोख्त किया तो उसका शुफ़ा बातिल (रद्द) न होगा। इसी तरह अगर कुछ दीवार मक़सूम (विभाजित) जो दार-ए-मशफ़ूआ से मुत्तसिल (जुड़ी हुई) नहीं है, फ़रोख्त किया तो भी उसका शुफ़ा बातिल न होगा और अगर दार-ए-मशफ़ूआ से मुल्हक़ (लगा हुआ) हिस्सा मक़सूम फ़रोख्त कर दिया तो उसका शुफ़ा बातिल हो जाएगा। दो घर हैं जिनमें से एक घर और दोनों का रास्ता दो शख्सों में मुश्तरक (साझा) है और दूसरा घर फ़क़त तीसरे शख्स का है, फिर तीसरे शख्स ने अपना ख़ास घर फ़रोख्त किया तो दोनों शख्सों को रास्ते के ज़रिये शुफ़ा हासिल होगा। और अगर दोनों ने मुश्तरक घर को आपस में तक़सीम कर लिया और एक के हिस्से में कुछ दीवार और उसका पूरा रास्ता आया और दूसरे के हिस्से में फ़क़त कुछ दीवार बिना रास्ते के आई और जिसके हिस्से में रास्ता नहीं आया उसने अपने हिस्से के लिए बड़े रास्ते (तरीक़-ए-आज़म) की तरफ़ दरवाज़ा तोड़ कर बना लिया, और जो घर फ़रोख्त किया गया है उसके ये दोनों पड़ोसी (जार) हैं, तो जिसके हिस्से में मुश्तरक रास्ता आया है वह उस मबीआ (बिके हुए) घर के शुफ़ा का पहले मुस्तहिक़ होगा। फिर अगर उसने अपना शुफ़ा छोड़ दिया तो दूसरा पड़ोसी होने के नाते उसे शुफ़ा में ले लेगा और इस तक़सीम की वजह से उसका शुफ़ा बातिल न होगा। यह 'मुहीत' में है। अगर शफ़ी ने ज़मीन को शुफ़ा में लिया फिर उसमें इमारत बनाई या दरख्त लगाए, फिर किसी शख्स ने हक़ साबित करके वह ज़मीन ले ली और उस मुस्तहिक़ ने शफ़ी को हुक्म दिया कि अपनी इमारत तोड़ ले और दरख्त उखाड़ ले, तो शफ़ी मज़कूर (उल्लेखित) मुश्तरी (खरीदार) से क़ीमत के बक़द्र वापस लेगा और इमारत और दरख्तों की क़ीमत न बाए (बेचने वाले) से वापस ले सकता है अगर ज़मीन उससे ली हो और न मुश्तरी से ले सकता है, और इसका मतलब यह है कि तोड़ने और उखाड़ने से जो भी नुकसान हो वह दोनों में से किसी से वापस नहीं ले सकता, यह 'तबीन' में है। हमारे नज़दीक शुफ़ा शफ़ीओं की तादाद पर होता है (1), चुनांचे अगर एक घर तीन आदमियों में मुश्तरक हो, एक का आधा, दूसरे का एक-तिहाई और तीसरे का छठा हिस्सा हो और आधे वाले ने अपना हिस्सा फ़रोख्त किया और बाक़ी

दोनों शरीकों ने शुफ़ा माँगा तो बिका हुआ हिस्सा दोनों को आधा-आधा शुफ़ा में दिलाया जाएगा। और अगर छठे हिस्से वाले ने अपना हिस्सा बेचा तो बाक़ी दोनों को आधा-आधा दिलाया जाएगा। और अगर किसी ने अपना हक़ छोड़ दिया तो बिका हुआ हिस्सा बाक़ी शफ़ीओं में उनकी गिनती के हिसाब से तक़सीम होगा। और अगर शफ़ीओं में से कोई गायब हो तो बिका हुआ हिस्सा हाज़िर लोगों के बीच उनकी गिनती के अनुसार तक़सीम होगा। और अगर हाज़िर शफ़ी के नाम पूरे हिस्से के शुफ़ा का हुक्म हो गया, फिर दूसरा हाज़िर हुआ तो उसके नाम आधे का हुक्म होगा और अगर तीसरा हाज़िर हुआ तो उसके नाम हर एक के कब्ज़े की एक-तिहाई का हुक्म होगा। और अगर हाज़िर ने, जिसके नाम पहले पूरे हिस्से का हुक्म दिया गया था, अपना हक़-ए-शुफ़ा छोड़ दिया तो फिर उसके सिवा जो शख्स हाज़िर शफ़ी हो वह फ़क़त आधा ले सकता है, यह 'काफ़ी' में है। एक शख्स ने कहा कि मैंने अपना घर फलां शख्स के हाथ इतनी क़ीमत पर बेचा है और क़ीमत वसूल नहीं की है, और फलां शख्स ने कहा कि मैंने तुझसे नहीं खरीदा है, तो शफ़ी को इख्तियार होगा कि उसे शुफ़ा में ले ले। और यह हुक्म उस वक़्त है जब उसने यह इकरार किया कि मैंने फलां शख्स के हाथ बेचा है और वह शख्स हाज़िर है और खरीदने से इंकार करता है, और अगर वह गायब हो तो शफ़ी का मुश्तरी के साथ कोई विवाद न होगा, यह 'मुहीत' में है। एक शख्स के घर के पहलू में एक घर बेचा गया और उस पड़ोसी को गुमान है कि इस बिके हुए घर का रकबा मेरा है, लेकिन वह इस बात से डरता है कि अगर मैंने इसके रकबे का दावा किया तो शुफ़ा बातिल हो जाएगा और अगर शुफ़ा का दावा किया तो यह दावा न कर सकेगा कि यह रकबा मेरा है, तो उसे क्या करना चाहिए जिससे उसका...

---

1. दार-ए-मशफ़ूआ से लगा हुआ विभाजित हिस्सा नहीं बेचा। (1) उनके हिस्सों की मात्रा पर नहीं होता है।

---

**باب منزولہ:**

**متفرقات کے بیان میں**

امام محمدؒ نے جامع کبیر میں ذکر فرمایا ہے کہ اگر شفیع نے دار مشفوعہ فروخت ہونے کے بعد اپنے اس دار میں سے جس کے ذریعے مستحقِ شفعہ ہے کسی قدر دار مشاع یعنی غیر مقسوم فروخت کیا تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا اسی طرح اگر کسی قدر دیوار مقسوم جو دار مشفوعہ سے متصل نہیں ہے فروخت کیا تو بھی اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا اور اگر دار مشفوعہ سے ملحق حصہ مقسوم فروخت کر دیا تو اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا۔ دو دار ہیں جن میں سے ایک دار اور دونوں کا راستہ دو شخصوں میں مشترک ہے اور دوسرا دار فقط تیسرے شخص کا ہے پھر تیسرے شخص نے اپنا دار خاص فروخت کیا تو دونوں شخصوں کو بذریعہ راستہ کے شفعہ حاصل ہو گا اور اگر دونوں نے دار مشترکہ کو باہم تقسیم کر لیا پس ایک کے حصہ میں کسی قدر دیوار اور اس کا پورا راستہ آیا اور دوسرے کے حصہ میں فقط بعض دیوار بدوں راستہ کے آیا اور جس کے حصہ میں نہیں آیا اس نے اپنے حصہ کے واسطے ایک راستہ طریقِ اعظم کی طرف دروازہ توڑ کر بنا لیا اور جو دار فروخت کیا گیا ہے اس کے یہ دونوں جار ہیں تو جس کے حصہ میں مشترک راستہ آیا ہے وہ اس دار مبیعہ کے شفعہ کا اولاً مستحق ہو گا پھر اگر اس نے اپنا شفعہ دے دیا تو دوسرا بذریعہ جوار کے اس کو شفعہ میں لے لے گا اور اس تقسیم کی وجہ سے اس کا شفعہ باطل نہ ہو جائے گا۔ یہ محیط میں ہے۔ اگر شفیع نے زمین کو شفعہ میں لیا پھر اس میں عمارت بنائی یا درخت لگائے پھر کسی شخص نے استحقاق ثابت کر کے وہ زمین لے لی اور اس مستحق نے شفیع

کو حکم دیا کہ اپنی عمارت توڑ لے اور درخت اکھاڑ لے تو شفیع مذکور مشتری سے بقدرِ ثمن واپس لے گا اور عمارت اور درختوں کی قیمت نہ بائع سے واپس لے سکتا ہے اگر زمین مذکور اس سے لی ہو اور نہ مشتری سے لے سکتا ہے اگر زمین مذکور اس سے لی ہو اور اس کے معنی یہ ہیں کہ توڑنے واکھاڑنے سے جس قدر نقصان ہو وہ دونوں میں سے کسی سے واپس نہیں لے سکتا ہے یہ تبیین میں ہے۔ ہمارے نزدیک شفعہ شفیعوں کی تعداد پر ہوتا ہے (۱) چنانچہ اگر ایک دار تین آدمیوں میں مشترک ہو ایک کا نصف اور دوسرے کا تہائی اور تیسرے کا چھٹا حصہ ہو اور نصف کے حصہ والے نے اپنا حصہ فروخت کیا اور باقی دونوں شریکوں نے شفعہ طلب کیا تو حصہ مبیعہ دونوں کو نصفاً نصف شفعہ میں دلایا جائے گا اور اگر چھٹے کے حصہ والے نے اپنا حصہ فروخت کیا تو باقی دونوں کو نصفاً نصف دلایا جائے گا اور بعض نے اپنا حق دے دیا تو حصہ مبیعہ باقی شفیعوں میں ان کی گنتی پر حصہ ہو کر ہر ایک کو تقسیم ہو گا اور اگر شفیعوں میں سے کوئی غائب ہو تو حصہ مبیعہ حاضرین کے درمیان ان کی گنتی کے موافق حصے ہو کر تقسیم ہو گا اور اگر شفیع حاضر کے نام پورے حصہ کے شفعہ کا حکم ہو گیا پھر دوسرا حاضر ہوا تو اس کے نام آدھے کا حکم ہو گا اور اگر تیسرا حاضر ہوا تو اس کے نام ہر ایک کے مقبوضہ کی تہائی کا حکم ہو گا اور اگر حاضر نے بعد ازاں تک اس کے نام پورے حصہ کا حکم دیا گیا تھا اپنا حقِ شفعہ دے دیا تو پھر اس کے سوائے جو شخص شفیع حاضر ہو وہ فقط نصف لے سکتا ہے یہ کافی میں ہے۔ ایک شخص نے کہا کہ میں نے اپنا دار فلاں شخص کے ہاتھ اس قدر داموں کو فروخت کیا ہے اور ثمن وصول نہیں کیا ہے اور فلاں شخص نے کہا کہ میں نے تجھ سے نہیں خریدا ہے تو شفیع کو اختیار ہو گا کہ اس کو شفعہ میں لے لے اور یہ حکم اس وقت ہے کہ اس نے یہ اقرار کیا کہ میں نے فلاں شخص کے ہاتھ فروخت کیا ہے اور فلاں شخص حاضر ہے اور خرید سے انکار کرتا ہے اور اگر غائب ہو تو شفیع کو مشتری کے ساتھ کچھ خصومت نہ ہو گی یہ محیط

میں ہے۔ ایک شخص کے دار کے پہلو میں ایک دار فروخت کیا گیا اور اس جار کو زعم ہے کہ اس دار مبیعہ کا رقبہ میرا ہے مگر اس بات کا خوف کرتا ہے کہ اگر میں نے اس کے رقبہ کا دعویٰ کیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر شفعہ کا دعویٰ کیا تو یہ دعویٰ نہ کر سکے گا کہ یہ رقبہ میرا ہے تو اس کو کیا کرنا چاہیے جس سے اس کا

---

۱۔ دار مشفوعہ سے ملحق حصہ مقسوم فروخت نہ کیا۔ (۱) ان کے حصص کی مقدار پر نہیں ہوتا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 228 Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

If pre-emption (Shufa) is not to be invalidated, the scholars have said that one should say: "This house is mine, I claim its ownership; if I obtain it, well and good, otherwise I stand by my right of pre-emption over it." (1) This is because the entire statement is considered a single discourse, and silence regarding pre-emption will not be established. This is mentioned in 'Fatawa Qazi'. It is narrated from Imam Abu Yusuf (R.A.) that if the pre-emptor (Shafi) claims ownership of the property and says, "My witnesses are absent, but I am taking it through pre-emption," this statement constitutes an admission that the seller is the owner; therefore, after this, his witnesses will not be accepted. It is also narrated from Imam Abu Yusuf (R.A.) that claiming ownership invalidates one's right of pre-emption. However, if he claims half the house and says, "I will produce witnesses for this and take the rest through partnership," it is permissible. This is in 'Tatar-Khaniya'.

Consider a person whose house has been usurped by a wrongful possessor (Ghasib). Subsequently, an adjacent house is sold, and both the usurper and the buyer deny the person’s ownership and his right of pre-emption. In such a case, the person should demand pre-emption so that when he establishes witnesses for his ownership of the usurped property, his right of pre-emption remains valid. At the time of the demand, he should bring the usurper before the Judge (Qazi) and explain the situation. If he produces witnesses, a decree shall be issued in his name for the ownership of the usurped house and for the pre-emption of the second house. This is because facts established by witnesses are treated as if they were witnessed firsthand. If he fails to produce witnesses, the Judge will require an oath from both parties. If both take the oath, no decree will be issued in the plaintiff's favor for either house. If both refuse the oath, a decree for both houses will be issued in his name. If the usurper takes the oath but the buyer refuses, a decree for the usurped house will not be granted, but the decree for pre-emption will be given. The opposite will hold true in the reverse situation, as refusing an oath is considered an admission. This is in 'Muhit Sarakhsi'.

If a house is sold and it has a pre-emptor, and then an adjacent house is sold and the first buyer demands pre-emption and a decree is issued in his name, and then the original pre-emptor appears, a decree shall be granted to him for the house adjacent to his, while the first buyer's judicial order for the second house remains. If the original pre-emptor is a neighbor to both houses, he shall be granted a decree for the whole of the first house and half of the second. This is in 'Bada'i'. It is narrated

from Imam Abu Yusuf (R.A.) that if one person buys half a house and another buys the remaining half, and the first buyer demands pre-emption from the second and the Judge grants it based on partnership, and subsequently the neighbor disputes both, he will receive half of the first purchase as pre-emption and have no right in the second half.

The principle is that the right of pre-emption arises from ownership existing at the time of purchase, not from ownership acquired later. This is because the cause for pre-emption is the connection between two properties. Thus, existence at the time of sale is the criterion.

---

1. "Silence etc.": If he first claimed ownership but found no proof, and then claimed pre-emption, pre-emption will no longer be granted. According to Imam Abu Yusuf, claiming ownership invalidates pre-emption even if both are sought in the same statement. (1) This shall not invalidate his pre-emption.

**फतवा आलमगिरी ..... जिल्द (8) 228 किताब अल-शुफ़ा**

यदि शुफ़ा (पूर्व-क्रयाधिकार) बातिल न हो, तो मशाइख़ ने फ़रमाया है कि इस प्रकार कहे: "यह घर मेरा है, मैं इसके मूल स्वामित्व का दावा करता हूँ; यदि मुझे यह मिल गया तो ठीक, अन्यथा मैं इसके शुफ़ा के अधिकार पर हूँ।" (1) क्योंकि यह पूरा एक ही कथन है, इसलिए शुफ़ा से चुप्पी सिद्ध नहीं होगी। यह 'फ़तावा क़ाज़ी' में है। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से वर्णित है कि यदि शफ़ी (पूर्व-क्रयाधिकारी) ने इसके मूल स्वामित्व का दावा किया और कहा कि "मेरे गवाह अनुपस्थित हैं, लेकिन मैं इसे शुफ़ा के रूप में लेता हूँ," तो यह कथन इस बात का इकरार है कि विक्रेता इसका मालिक है; अतः इसके बाद उसके गवाह स्वीकार्य नहीं होंगे। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से यह भी वर्णित है कि स्वामित्व का दावा करने से उसका शुफ़ा बातिल हो जाएगा। और यदि उसने आधे घर का दावा किया और कहा कि "मैं इसके लिए गवाह पेश करूँगा और बाकी को साझेदारी के माध्यम से लूँगा," तो यह वैध है। यह 'तातारख़ानिया' में है।

एक व्यक्ति का घर है जिसे किसी ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाले) ने छीन लिया है, फिर उसके बगल में एक घर बेचा गया और ग़ासिब तथा खरीदार दोनों ही घर और शुफ़ा से इनकार करते हैं। ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति को चाहिए कि वह शुफ़ा की मांग करे ताकि जब वह छीने गए घर के बारे में अपने स्वामित्व के गवाह पेश करे, तो उसका शुफ़ा का अधिकार बना रहे। जब वह मांग करे, तो ग़ासिब को क़ाज़ी के पास ले जाए और स्थिति स्पष्ट करे। यदि वह गवाह पेश कर देता है, तो उसके नाम छीने गए घर के स्वामित्व और दूसरे घर के शुफ़ा का आदेश दिया जाएगा; क्योंकि गवाहों से जो सिद्ध होता है वह प्रत्यक्ष देखने के समान है। यदि वह गवाह पेश नहीं कर पाता, तो क़ाज़ी उन दोनों से शपथ लेगा। यदि दोनों शपथ ले लेते हैं, तो क़ाज़ी दावेदार के पक्ष में किसी भी घर की डिक्री नहीं देगा। यदि दोनों शपथ से इनकार करते हैं, तो दोनों घरों की डिक्री उसके नाम होगी। यदि ग़ासिब शपथ लेता है और खरीदार इनकार करता है, तो छीने गए घर की डिक्री नहीं होगी लेकिन शुफ़ा की डिक्री दे दी जाएगी। इसके विपरीत स्थिति में विपरीत आदेश होगा, क्योंकि शपथ से इनकार करना इकरार (स्वीकृति) माना जाता है। यह 'मुहीत सरख़सी' में है।

यदि एक घर बेचा गया और उसका एक शफ़ी है, फिर उसके बगल वाला घर बेचा गया और पहले खरीदार ने उसका शुफ़ा मांगा और उसके पक्ष में आदेश हो गया, फिर मूल शफ़ी उपस्थित हुआ, तो उसे उस घर की डिक्री दी जाएगी जो उसके घर के बगल में है, और दूसरे घर पर पहले खरीदार का अधिकार बना रहेगा। यदि मूल शफ़ी दोनों घरों का पड़ोसी हो, तो उसे पहले घर की पूरी और दूसरे

घर की आधी डिक्री दी जाएगी। यह 'बदाए' में है। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से रिवायत है कि यदि एक व्यक्ति ने आधा घर खरीदा, फिर शेष आधा दूसरे ने, और पहले खरीदार ने उससे शुफ़ा की मांग की और क़ाज़ी ने साझेदारी के कारण उसके पक्ष में डिक्री दे दी, फिर पड़ोसी ने दोनों पर दावा किया, तो उसे पहली खरीद का आधा घर शुफ़ा के रूप में मिलेगा और शेष आधे में उसका कोई अधिकार नहीं होगा।

मूल सिद्धांत यह है कि शुफ़ा का अधिकार उस स्वामित्व पर आधारित होता है जो खरीद के समय मौजूद हो, न कि उस पर जो बाद में पैदा हो। क्योंकि शुफ़ा का कारण दो संपत्तियों का जुड़ाव है। अतः खरीद के समय अस्तित्व का विचार किया जाता है।

---

1. "सुकूत" इत्यादि: यदि उसने पहले स्वामित्व का दावा किया और प्रमाण नहीं मिला, फिर शुफ़ा का दावा किया, तो अब शुफ़ा नहीं मिलेगा। इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार स्वामित्व का दावा शुफ़ा को बातिल कर देता है। (1) इससे उसका शुफ़ा बातिल नहीं होगा।

شفعہ باطل نہ ہو تو مشائخ نے فرمایا کہ یوں کہے کہ یہ دار میرا ہے میں اسکے رقبہ کا دعویٰ کرتا ہوں سوا اگر مجھے مل گیا تو خیر ورنہ میں اسکے حق شفعہ پر ہوں۔ (۱) کیونکہ یہ سب ایک کلام ہے پس شفعہ سے سکوت متحقق نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی میں ہے۔ امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ اگر شفیع نے اس کے رقبہ کا دعویٰ کیا اور کہا کہ میرے گواہ غائب ہیں لیکن میں اس کو شفعہ میں لے لیتا ہوں تو یہ کلام اس بات کا اقرار ہے کہ بائع اس کا مالک ہے پس اسکے بعد اسکے گواہ مقبول نہ ہوں گے اور امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ ملک کا دعویٰ کرنے سے اس کا شفعہ باطل ہو جائے گا اور اگر اس نے نصف دار کا دعویٰ کیا اور کہا کہ میں اسکے گواہ قائم کروں گا اور باقی کو شرکت کے ذریعہ سے لوں گا تو جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

ایک شخص کا دار ہے کہ اس کو ایک غاصب نے غصب کر لیا پھر اس کے پہلو میں ایک دار فروخت کیا گیا اور غاصب و مشتری دار و شفعہ سے انکار کرتے ہیں تو اس شخص کو چاہئے کہ شفعہ طلب کرلے تاکہ جس وقت دار مغصوبہ کی نسبت اپنی ملک کے گواہ قائم کرے تو شفعہ ثابت رہے اور جس وقت طلب کرے تو غاصب کو قاضی کے پاس لے جائے اور قاضی کو صورت حال سے آگاہ کردے پھر اس کے بعد دیکھا جائے گا کہ اگر اس نے گواہ قائم کئے تو اس کے نام دار مغصوبہ کی ملک اور دوسرے دار کے شفعہ کے واسطے حکم دیا جائے گا اس واسطے کہ جو بات گواہوں سے ثابت ہو وہ ایسی ہے جیسے بمعائنہ ثابت ہوئی اور اگر اس نے گواہ قائم نہ کئے تو قاضی ان دونوں سے قسم لے گا پس اگر دونوں قسم کھا گئے تو مدعی کے نام دونوں میں سے کسی دار کی ڈگری نہ کرے گا اور اگر دونوں نے قسم سے انکار کیا تو اس کے نام دونوں داروں کی ڈگری کرے گا اور اگر غاصب نے قسم کھائی اور مشتری نے انکار کیا تو اس کے نام دار مغصوبہ

کی ڈگری نہ کرے گا مگر شفعہ کی ڈگری کر دے گا اور اگر اس کے برعکس واقع ہو تو اس کے برعکس حکم دے گا کیونکہ قسم سے انکار کرنا اقرار ہے اور اقرار خاص اسی کے حق میں حجت ہوتا ہے جس نے اقرار کیا ہے۔ یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر ایک دار فروخت کیا گیا اور اس کا ایک شفیع ہے پس اس دار کے پہلو میں ایک دار فروخت کیا گیا اور مشتری اوّل نے اس کا شفعہ طلب کیا اور اس کے نام حکم ہو گیا پھر شفیع مذکور حاضر ہوا تو اس کے واسطے اس دار کی جو اس کے پہلو میں واقع ہے ڈگری کر دی جائے گی اور دوسرے دار کا مشتری کے نام حکم قضاء باقی رہے گا اور اگر شفیع مذکور دونوں دار کا جار ہو اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو اس کے نام پورے اوّل دار اور نصف دوسرے دار کی ڈگری کی جائے گی یہ بدائع میں ہے۔ امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ ایک شخص نے نصف دار خریدا پھر باقی نصف دوسرے شخص نے خریدا پس مشتری اوّل نے اس سے شفعہ کا مطالبہ کیا اور قاضی نے بوجہ شرکت کے اس کے نام شفعہ کی ڈگری کی پھر جار نے دونوں شفعوں میں مخاصمہ کیا تو پہلی خرید کا نصف دار اس کو استحقاق شفعہ میں ملے گا اور دوسرے نصف میں اس کا کچھ حق نہ ہو گا اس وجہ سے کہ اس کے ساتھ حکم قضاء متعلق ہو چکا ہے اسی طرح اگر ایک ہی مشتری نے پہلے نصف دار خریدا ہو پھر دوسرا نصف خریدا ہو تو بھی یہی حکم ہے۔ اگر دوسرے نصف کا مشتری پہلے نصف کے مشتری کے سوائے دوسرا شخص ہو اور اس نے دوسرے مشتری سے کچھ مخاصمہ نہ کیا یہاں تک کہ جار نے نصف اوّل شفعہ میں لے لیا تو جار ہی اس دوسرے نصف کا اولاً حقدار ہو گا یہ محیط میں ہے۔ اصل یہ ہے کہ شفعہ کا استحقاق اسی ملک سے ہوتا ہے جو خرید کے وقت قائم ہو نہ اس ملک سے جو پھر پیدا ہو جائے اس واسطے کہ سبب شفعہ دو ملکوں کا اتصال ہے پس خرید کے وقت اس کے موجود ہونے کا اعتبار ہے اور جب لے لیا تو بموجب استحقاق کے ہو گیا پس اگر بحکم قاضی لیا ہو تو اس کا ثبوت تمام لوگوں کے حق میں ہو جائے گا اور اگر برضا مندی لیا تو خاصہ

انہی دونوں کے حق میں ثابت ہو گا۔ ایک دار دو ہزار درہم کو خریدا اور دونوں نے باہم قبضہ کر لیا پھر ایک شخص نے کچھ

---

۱ سکوت الخ اور اگر اس نے پہلے رقبہ کا دعویٰ کیا پر ثبوت نہ پایا تو شفعہ کا دعویٰ کیا تو اب شفعہ نہ ملے گا اور امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ رقبہ کا دعویٰ کرنے سے شفعہ باطل ہے اگرچہ ایک ہی کلام سے طلب کرے۔ ۲ قضاء یعنی قاضی نے مشتری اوّل کے واسطے حکم دے دیا ایسی حالت میں کہ مشتری معید ملک شفیع تھا تو اب شفیع وہ نہیں لے سکتا کیونکہ خرید کے وقت شفیع کی ملک نہ تھی۔ (۱) اس سے اس کا شفعہ باطل نہ ہو گا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 229 | Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

A claim was made, and the buyer, while denying it, entered into a settlement with the claimant for five hundred dirhams. Subsequently, the pre-emptor (shafi) took the aforementioned house from the buyer based on the first sale (by order of the judge). Consequently, whatever the claimant received from the buyer must be returned to the buyer. This is because once the judge rules for pre-emption, it necessarily follows that the house belongs to the seller (ba'i). Thus, it becomes evident that there was no valid dispute between the buyer and the claimant, and that the claimant received the assets without a corresponding right or as a valid settlement of a dispute. Therefore, the settlement is annulled. However, if the pre-emptor took the property by mutual consent without a court order, the claimant shall not return the settlement assets to the buyer, because the pre-emptor took it through mutual agreement. Mutual agreement between two parties is binding only between them and is not a proof against a third party. In this case, the acquisition is treated as if a new sale occurred between them. Hence, no dispute between the buyer and the claimant is established. This is mentioned in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

If a person inherited a house and a second house adjacent to it was sold, and he acquired this second house through pre-emption; then a third house adjacent to the second one was sold. If subsequently, the original inherited house was taken by someone proving a rightful claim (istihqaq), and that person claimed pre-emption, then the rightful claimant shall take the second house through pre-emption, and the heir shall be the prioritized claimant for the third house. This is as stated by Imam Quduri, though he did not mention the ruling if the claimant does not seek pre-emption. It is mentioned in *Al-Muntaqa* that the second house shall be returned to the person against whom the pre-emption decree was issued—namely, the one who purchased it—and the third house shall remain in the possession of the current holder. This is found in *Al-Zakhirah*. If a person buys a house and takes possession, and the pre-emptor wishes to acquire it, and the buyer says, "I have sold it to so-and-so, it is out of my possession, and he has placed it with me as a trust (wadi'at)," his statement shall not be verified. The buyer will remain the adversary (khasm) for the pre-emptor. If he produces witnesses for this, their testimony shall not be heard. Similarly, if he says, "I have gifted (hiba) the house to so-and-so, he took possession, and then placed it with me as a trust," his statement and his witnesses' testimony will not be accepted. If, in the first scenario, the second buyer appears, or in the second scenario, the donee (mauhub-lahu) appears after the judge has already decreed pre-

emption for the shafi, and they produce witnesses for the sale or gift, their testimony will not be heard. The court's decree for pre-emption acts as a revocation (naqz) of any subsequent sale or gift, because the person who was in possession became the defendant (mudda'i alayh). Therefore, anyone claiming ownership through him also becomes subject to the decree (maqzi alayh)(1). Suppose a house is in Zaid's possession, and he claims to have purchased it from Amr and paid the price, while Amr is the known owner. Amr claims he gifted the house to Zaid and wishes to revoke (ruju') the gift. Amr's statement will be accepted. If the judge has not yet ordered the revocation for the donor and the pre-emptor appears, the pre-emptor has a stronger right to the house than the donor. If the pre-emptor is not present, the judge will decree the revocation of the gift for the donor. If after such a decree, the pre-emptor appears, the revocation shall be overturned, and the house given to the pre-emptor. If the possessor, Zaid, claims he bought it from Amr with a condition of option (khiyar) for Amr and paid the price, while Amr claims he gifted and delivered it, and the pre-emptor appears, he shall take it through pre-emption, and the option shall be void. This is because once Amr, the owner, acknowledged gifting and delivering it to Zaid, he acknowledged Zaid's ownership and the termination of his own option. Zaid, being the possessor, admits to having purchased it. Thus, by the possessor's admission of purchase and the original owner's loss of option, pre-emption is established. It is written in *Kitab al-Asl* that if the pre-empted house is in the seller's possession and the judge issues a decree against the seller in favor of the pre-emptor, and then the pre-emptor requests a cancellation of the sale (iqala) from the seller, then the seller...

(1) That is, the person against whom the judgment has been issued; meaning a decree has been passed.

दावा किया और मुश्तरी (खरीदार) ने इनकार के साथ उससे पांच सौ दिरहम पर सुलह (समझौता) कर ली। फिर शफ़ी (हक-ए-शुफ़ा रखने वाला) ने मुश्तरी से उक्त घर पहली बिक्री के आधार पर ले लिया (क़ाज़ी के आदेश से)। तो मुद्दई (दावा करने वाला) ने जो कुछ मुश्तरी से लिया है, वह मुश्तरी को वापस कर दे, क्योंकि जब क़ाज़ी ने शुफ़ा (अग्रक्रय) का हुक्म दे दिया, तो यह भी हुक्म दे दिया कि यह घर विक्रेता (बाइ') का है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि उसके और मुद्दई के बीच कोई विवाद नहीं है, और यह भी स्पष्ट हुआ कि मुद्दई ने जो धन लिया है, वह अपने किसी अधिकार के बदले में नहीं लिया और न ही विवाद सुलझाने के बदले में लिया है; अतः सुलह टूट गई। और यदि शफ़ी ने बिना अदालत के आदेश के शुफ़ा लिया हो, तो मुद्दई सुलह का धन मुश्तरी को वापस नहीं करेगा, क्योंकि शफ़ी ने आपसी सहमति से लिया है और दोनों की आपसी सहमति उन्हीं दोनों के अधिकार में प्रमाण है, किसी तीसरे के लिए नहीं। अतः यह लेना ऐसा है मानो उन दोनों के बीच नई बिक्री (बय-ए-जदीद) हुई हो। इससे यह ज़ाहिर हुआ कि मुश्तरी और मुद्दई में कोई विवाद नहीं है। यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में वर्णित है।

यदि किसी व्यक्ति को विरासत में एक घर मिला, फिर उसके बगल में दूसरा घर बेचा गया, उसने उस घर को शुफ़ा के तहत ले लिया। फिर दूसरे घर के बगल में तीसरा घर बेचा गया। फिर विरासत वाले घर पर किसी व्यक्ति ने अपना अधिकार सिद्ध करके उसे ले लिया और हक़दार ने शुफ़ा की मांग की, तो हक़दार दूसरे घर को शुफ़ा में ले लेगा, और तीसरे घर का प्राथमिकता वाला हक़दार वारिस होगा। ऐसा ही इमाम क़ुदूरी ने उल्लेख किया है, और यह उल्लेख नहीं किया कि यदि हक़दार ने शुफ़ा की मांग न की तो क्या हुक्म है। 'मुंतक़ा' में उल्लेख है कि दूसरा घर उस व्यक्ति को वापस कर दिया जाएगा जिसके विरुद्ध शुफ़ा की डिक्री हुई है, यानी जिसने उसे खरीदा था, और तीसरा घर उसी के अधिकार में छोड़ दिया जाएगा जिसके पास वह है। यह 'ज़हीरा' में है। एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा और उस पर कब्ज़ा कर लिया, और शफ़ी ने उसे लेना चाहा। मुश्तरी ने कहा कि मैंने इसे अमुक व्यक्ति को बेच दिया है और यह अब मेरे कब्ज़े से बाहर है, फिर उसने उसे मेरे पास अमानत (वदीअत) के तौर पर रखा है। उसकी इस बात की पुष्टि नहीं की जाएगी। शफ़ी का पक्षकार (خصم) उसे ही माना जाएगा। और यदि उसने इस पर गवाह पेश किए तो गवाही नहीं सुनी जाएगी। इसी प्रकार यदि उसने कहा कि मैंने उक्त घर अमुक को दान (हिबा) कर दिया और उसने कब्ज़ा कर लिया, फिर उसने इसे मेरे पास अमानत रखा है, तो उसकी बात स्वीकार नहीं होगी और गवाहों की

गवाही भी नहीं सुनी जाएगी। और यदि पहली स्थिति में दूसरा खरीदार और दूसरी स्थिति में दान पाने वाला (मौहूब-लहू) सामने आया, और क़ाज़ी शफ़ी के पक्ष में शुफ़ा का आदेश दे चुका हो, फिर खरीदार या दान पाने वाले ने बिक्री या दान के गवाह पेश किए, तो उनकी गवाही नहीं सुनी जाएगी। शुफ़ा का अदालती हुक्म बिक्री और दान का खंडन (नक़्ज़) है, क्योंकि जो व्यक्ति काबिज़ (कब्ज़ा रखने वाला) था, वह मुद्दई अलैहि (प्रतिवादी) बन गया। अतः जो व्यक्ति उसकी ओर से स्वामित्व का दावा करे, वह भी 'मक़ज़ी अलैहि' (1) (जिसके विरुद्ध निर्णय हो चुका हो) हो गया। एक घर ज़ैद के कब्ज़े में है, वह दावा करता है कि मैंने इसे अम्र से खरीदा और कीमत चुका दी है, और यह घर अम्र का ही प्रसिद्ध है। अम्र दावा करता है कि मैंने यह घर ज़ैद को दान किया था और अम्र दान वापस लेना चाहता है, तो अम्र की बात मानी जाएगी। यदि अभी क़ाज़ी ने दान वापस लेने का हुक्म न दिया हो और शफ़ी उपस्थित हो जाए, तो शफ़ी उस घर का दान देने वाले (वाहब) की तुलना में अधिक हक़दार है। और यदि शफ़ी उपस्थित न हो, तो क़ाज़ी दान वापस लेने का आदेश दे देगा। जब दान वापस लेने का हुक्म दे दिया जाए और फिर शफ़ी उपस्थित हो, तो दान की वापसी को निरस्त कर दिया जाएगा और घर शफ़ी को दिया जाएगा। यदि काबिज़ यानी ज़ैद ने यह दावा किया कि मैंने अम्र से इस शर्त पर खरीदा था कि अम्र को विकल्प (ख़यार) प्राप्त है और कीमत अदा कर दी थी, और अम्र ने यह दावा किया कि मैंने दान करके सौंप दिया है, और शफ़ी उपस्थित हुआ, तो वह उसे शुफ़ा में ले लेगा और विकल्प (ख़यार) समाप्त हो जाएगा। क्योंकि घर के मालिक अम्र ने जब यह स्वीकार किया कि मैंने ज़ैद को दान करके सौंप दिया है, तो यह भी स्वीकार किया कि इसमें काबिज़ का स्वामित्व सिद्ध हो गया और विकल्प समाप्त हो गया। और काबिज़ ज़ैद स्वीकार करता है कि उसने खरीदा है। अतः काबिज़ के खरीदारी के स्वीकार से मूल मालिक का विकल्प समाप्त हो जाने के कारण उस घर में शुफ़ा सिद्ध हो जाएगा। 'किताबुल असल' में लिखा है कि यदि शुफ़ा वाला घर विक्रेता के कब्ज़े में हो और क़ाज़ी ने विक्रेता के विरुद्ध शफ़ी के पक्ष में शुफ़ा की डिक्री दे दी हो, फिर शफ़ी ने विक्रेता से सौदे को रद्द करने (इकाला) का अनुरोध किया, तो विक्रेता...

(1) अर्थात जिस पर निर्णय हो चुका है यानी डिक्री हो चुकी है।

دعویٰ کیا اور مشتری نے بانکار اس سے پانچ سو درہم پر صلح کر لی پھر شفیع نے مشتری سے دار مذکور بیع اول پر لے لیا (بحکم قاضی) تو مدعی نے جو کچھ مشتری سے لیا ہے وہ مشتری کو واپس دے کیونکہ قاضی نے ہر گاہ شفعہ کا حکم دے دیا تو ضرور یہ بھی حکم دیا کہ یہ دار بائع کی ملک ہے پس ظاہر ہو گیا کہ اس کے و مدعی کے درمیان کچھ خصومت نہیں ہے اور یہ بھی ظاہر ہوا کہ مدعی نے جو مال لیا ہے وہ اپنے کسی حق کے عوض نہیں لیا اور نہ دفع خصومت کے مقابلہ میں لیا ہے پس صلح ٹوٹ گئی اور اگر شفیع نے بغیر حکم قضا لیا ہو تو مدعی مال صلح مشتری کو واپس نہ دے گا کیونکہ شفیع نے باہمی رضامندی سے لے لیا اور دونوں کی باہمی رضامندی انہی دونوں کے حق میں حجت ہے کسی غیر کے حق میں حجت نہیں ہے پس یہ لینا ایسا ہے کہ گویا دونوں کے درمیان بیع جدید ہوئی پس ظاہر ہوا کہ مشتری و مدعی میں کچھ خصومت نہیں ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر ایک شخص نے ایک دار میراث پایا پھر اس کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا اس نے یہ دار مشفعہ میں لیا پھر دوسرے کے پہلو میں تیسرا دار فروخت کیا گیا پھر موروثی دار کسی شخص نے استحقاق ثابت کر کے لے لیا اور مستحق نے شفعہ طلب کیا تو مستحق دوسرے دار کو شفعہ میں لے لے گا اور تیسرے دار کا مقدم حقدار وارث ہو گا ایسا ہی امام قدوری نے ذکر فرمایا اور یہ ذکر نہ فرمایا کہ اگر مستحق نے شفعہ طلب نہ کیا تو کیا حکم ہے اور منتقٰی میں مذکور ہے کہ دوسرا دار اس شخص کو واپس کر دیا جائے گا جس پر شفعہ کی ڈگری ہوئی ہے یعنی جس نے اس کو خریدا تھا اور تیسرا دار اسی کے قبضہ میں چھوڑ دیا جائے گا جس کے قبضہ میں ہے یہ ظہیرہ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار خرید کر اس پر قبضہ کر لیا اور شفیع نے اس کو لینا چاہا پس

مشتری نے کہا کہ میں نے اس کو فلاں شخص کے ہاتھ فروخت کر دیا اور وہ میرے قبضہ سے باہر ہو گیا پھر اس نے میرے پاس ودیعت رکھا ہے تو اس کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی۔ شفیع کا خصم ضرور ٹھہرایا جائے گا اور اگر اس نے اس بات کے گواہ قائم کئے تو گواہی کی سماعت نہ ہو گی اسی طرح اگر اس نے کہا کہ میں نے دار مذکور فلاں شخص کو ہبہ کیا اور اس نے قبضہ کر لیا پھر میرے پاس ودیعت رکھا ہے تو اس کا قول قبول نہ ہو گا اور اگر اس بات پر گواہ قائم کئے تو اس کے گواہوں کی سماعت نہ ہو گی اور اگر پہلی صورت میں دوسرا مشتری اور دوسری صورت میں موہوب لہ آیا اور حال یہ گذرا کہ قاضی شفیع کے واسطے شفعہ کا حکم دے چکا ہے پھر مشتری یا موہوب لہ نے آکر خرید یا ہبہ کے گواہ قائم کئے تو گواہوں کی سماعت نہ ہو گی اور شفعہ کے واسطے جو حکم قضا ہے وہ خرید و ہبہ کا نقض (توڑنا) ہے اس واسطے کہ جو شخص قابض تھا وہ مدعی علیہ ہوا پس جو شخص اس کی جانب سے ملک حاصل کرنے کا دعویٰ کرے وہ بھی مقضی علیہ(۱) ہو گیا ایک دار زید کے قبضہ میں ہے وہ دعویٰ کرتا ہے کہ میں نے عمرو سے خرید کر اس کو ثمن دے دیا ہے اور یہ دار عمرو کا معروف ہے اور عمرو دعویٰ کرتا ہے کہ میں نے یہ دار مذکور زید کو ہبہ کیا تھا اور عمرو نے زید سے رجوع کرنا چاہا تو عمرو کا قول قبول ہو گا اور اگر ہنوز قاضی نے واہب کے نام واپس لینے کا حکم نہ دیا ہو کہ شفیع حاضر ہوا تو شفیع اس دار کا بنسبت واہب کے زیادہ حقدار ہے اور اگر شفیع حاضر نہ ہوا تو قاضی واہب کے واسطے ہبہ سے رجوع کا حکم دے دے گا اور جب اس نے واہب کے واسطے رجوع کا حکم دے دیا پھر شفیع حاضر ہوا تو رجوع ہبہ توڑ دیا جائے گا اور دار مذکور شفیع کو دیا جائے گا۔ اگر قابض یعنی زید نے یہ دعویٰ کیا کہ میں نے عمرو سے اس شرط سے خریدا تھا کہ عمرو کو خیار حاصل ہے اور ثمن ادا کر دیا تھا اور عمرو نے یہ دعویٰ کیا کہ میں نے ہبہ کر کے سپرد کر دیا ہے اور شفیع حاضر ہوا تو اس کو شفعہ میں لے لے گا اور خیار باطل ہو جائے گا کیونکہ مالک

دار یعنی عمرو نے ہرگاہ اقرار کیا کہ میں نے زید کو ہبہ کر کے سپرد کر دیا ہے تو ضرور یہ اقرار کیا کہ قابض کی ملک اس میں ثابت ہوئی اور خیار ساقط ہو گیا اور قابض یعنی زید مقر ہے کہ میں نے خریدا ہے پس قابض کے اقرار خرید سے اصل مالک کے خیار ساقط ہو جانے سے اس دار میں شفعہ ثابت ہو جائے گا کتاب الاصل میں لکھا ہے کہ اگر دار مشفوعہ بائع کے قبضہ میں ہو اور قاضی نے بائع پر شفیع کے شفعہ کی ڈگری کی پھر شفیع نے بائع سے اقالہ کی درخواست کی تو بائع

(۱) یعنی جس پر حکم وقف ہوا ہے یعنی ڈگری ہوئی ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 230 | Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...Rescission (Iqala) is permissible, and this house shall revert to the ownership of the seller (Ba'i) and not to the buyer (Mushtari). It shall not be considered a rejection in favor of the buyer, as if the seller had purchased this house from the pre-emptor (Shafi). Similarly, if the pre-empted property (Dar-e-mashfu'a) is in the possession of the buyer and the Judge (Qazi) has decreed pre-emption in favor of the Shafi, and the Shafi rescinds with the seller before taking possession from the buyer, then the rescission is valid. According to Imam Azam (RA), the said property shall revert to the ownership of the seller, as stated in *Al-Muhit*.

If the Judge has decreed pre-emption for the Shafi, and the Shafi dies after this decree but before taking possession of the pre-empted property and before paying the price (Thaman), the said property shall go to the heirs of the Shafi. This is because the Judge's decree for pre-emption is equivalent to a sale. If the Shafi dies after taking possession of the pre-empted property, then this house shall be an inheritance for his heirs. If the Judge has decreed pre-emption and the buyer requests the Shafi to return the house to him for an increased price—whether the increase is in the same kind or a different kind—and the Shafi agrees, the property shall revert to the buyer at the original price, and the excess shall be void. This is because returning the property to the buyer is equivalent to rescission (Iqala), and rescission can only occur at the original price.

Similarly, if the Judge has decreed pre-emption for the Shafi, and then the buyer asks the Shafi to return the house to the seller for an increased price, and he does so, this too is considered rescission. Just as rescission occurs between the seller and buyer, it shall be established between the seller and the Shafi, as stated in *Fatawa Qazi Khan*. If the Shafi dies after the sale has occurred but before exercising the right of pre-emption, in our (Hanafi) view, his heir shall not have the right of pre-emption. However, if the sale of the pre-empted property occurs after his death, the heir can claim pre-emption, as stated in *Al-Mabsut*. If both the seller and buyer die while the Shafi is alive, he shall have the option to pre-empt, as stated in *Fatawa Qazi Khan*. If the buyer dies and the Shafi is alive, the Shafi retains the right of pre-emption. If the deceased buyer has debts, the pre-empted property shall not be sold to satisfy his debts; rather, the Shafi shall take it through pre-emption, even if the interests of both the creditors and the Shafi are involved, as stated in *Al-Muhit*.

If the Judge or his executor (Wasi) sells this house to pay the deceased's debts, the Shafi shall have the option to void the sale and take it through pre-emption, just as if the buyer had sold it during his lifetime. Similarly, if the deceased made a bequest (Wasiyat) regarding this house, the Shafi shall still take it, and the bequest shall be void, as stated in *Al-Mabsut*. If a person had established the right of pre-emption through the two types of demands (Talab) and then died, his heir shall not have the option to pre-empt, as mentioned in *Al-Sirajiyyah*. If the Shafi became the owner of the house after it was surrendered by the buyer and then died, the house shall be inherited by his heirs, as stated in *Siraj al-Wahaj*.

If the seller reduces the price owed by the buyer, the amount owed by the Shafi shall also be reduced by the same extent. Likewise, if the Shafi has taken the property after paying the price and then the seller reduces the price for the buyer, the same amount shall be remitted for the Shafi, to the extent that he can reclaim what he has overpaid. If the seller discharges the buyer from part of the price or gifts (Hiba) it to him, the ruling is the same as a reduction in price, and the Shafi shall take the pre-empted property for the remaining price. If the seller waives the entire price for the buyer, it shall not be waived for the Shafi. This ruling applies when the entire price is reduced in a single instance; however, if it is reduced in several increments, the Shafi shall take the property at the final price, as stated in *Siraj al-Wahaj*. If the buyer increases the price for the seller, this increase shall not be binding on the Shafi, and he may take it at the initial price, as stated in *Al-Jawharah al-Nayyirah*. If a person buys something from another for a thousand dirhams and they take possession, and then the price is increased by a thousand dirhams for the seller without a renegotiation of the sale, and later the Shafi learns of the two-thousand-dirham price, the initial excess shall not be binding on the Shafi, only the final terms shall apply.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 230 | किताबुश-शुफ़ा (शुफ़ा का अध्याय)**

... का इक़ाला (विक्रय निरस्तीकरण) करना जायज़ है और यह घर विक्रेता (बाइ) के स्वामित्व में वापस चला जाएगा, खरीदार (मुश्तरी) के स्वामित्व में वापस नहीं आएगा और खरीदार के पक्ष में इसे अस्वीकार नहीं माना जाएगा, मानो विक्रेता ने यह घर शुफ़ा करने वाले (शफ़ीअ) से खरीदा है। इसी प्रकार, यदि शुफ़ा की जाने वाली संपत्ति (दार-ए-मश्फ़ूआ) खरीदार के कब्ज़े में हो और न्यायाधीश (काज़ी) ने शफ़ीअ के पक्ष में शुफ़ा की डिक्री दे दी हो, और शफ़ीअ ने मुश्तरी से कब्ज़ा लेने से पहले बाइ के साथ इक़ाला कर लिया, तो इक़ाला सही है। इमाम आज़म (रह.) के अनुसार, उक्त संपत्ति विक्रेता के स्वामित्व में आ जाएगी, जैसा कि 'मुहीत' में वर्णित है।

यदि न्यायाधीश ने शफ़ीअ के पक्ष में शुफ़ा का आदेश दे दिया हो, और इस आदेश के बाद परंतु संपत्ति पर कब्ज़ा करने और कीमत (समन) का भुगतान करने से पहले शफ़ीअ की मृत्यु हो जाए, तो उक्त संपत्ति शफ़ीअ के वारिसों को मिलेगी। इसका कारण यह है कि न्यायाधीश का शुफ़ा का आदेश बिक्री (बय) के समान है। और यदि संपत्ति लेने के बाद शफ़ीअ की मृत्यु होती है, तो यह घर उसके वारिसों के लिए विरासत होगा। यदि न्यायाधीश ने शुफ़ा का आदेश दे दिया और खरीदार ने शफ़ीअ से अनुरोध किया कि वह कीमत में कुछ वृद्धि करके यह घर उसे वापस कर दे, चाहे वह वृद्धि उसी वस्तु में हो या किसी और वस्तु में, और शफ़ीअ ने ऐसा ही किया, तो उक्त संपत्ति पुरानी कीमत पर ही मुश्तरी की हो जाएगी और अतिरिक्त राशि अमान्य हो जाएगी। इसका कारण यह है कि संपत्ति को मुश्तरी को वापस देना इक़ाला के समान है, और इक़ाला केवल मूल कीमत पर ही होता है।

इसी तरह, यदि न्यायाधीश ने शफ़ीअ के लिए शुफ़ा का आदेश दिया और फिर मुश्तरी ने शफ़ीअ से कहा कि वह कीमत में कुछ वृद्धि करके घर विक्रेता को वापस कर दे और उसने ऐसा ही किया, तो यह भी इक़ाला माना जाएगा। जिस प्रकार बाइ और मुश्तरी के बीच इक़ाला होता है, वैसा ही बाइ और शफ़ीअ के बीच भी सिद्ध होगा, जैसा कि 'फ़तावा काज़ी खान' में है। यदि बिक्री होने के बाद और शुफ़ा के तहत लेने से पहले शफ़ीअ की मृत्यु हो जाए, तो हमारे (हुनफ़ी) मत में उसके वारिस को शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। लेकिन यदि संपत्ति की बिक्री उसकी मृत्यु के बाद होती है, तो वारिस शुफ़ा का दावा कर सकता है, जैसा कि 'मबसूत' में है। यदि बाइ और मुश्तरी दोनों मर जाएँ और शफ़ीअ जीवित हो, तो उसे शुफ़ा का अधिकार होगा, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। यदि मुश्तरी मर जाए और शफ़ीअ जीवित हो, तो उसे शुफ़ा का अधिकार प्राप्त है। यदि मृतक पर ऋण (कर्ज़) हो, तो संपत्ति को उसके ऋण चुकाने के लिए नहीं बेचा जाएगा, बल्कि शफ़ीअ इसे शुफ़ा के

तहत ले लेगा, भले ही ऋणदाता और शफ़ीअ दोनों का अधिकार इससे जुड़ा हो, जैसा कि 'मुहीत' में है।

यदि न्यायाधीश या उसके उत्तराधिकारी (वसी) ने इस घर को मृतक के ऋण चुकाने के लिए बेच दिया, तो शफ़ीअ को अधिकार होगा कि वह उस बिक्री को रद्द करके इसे शुफ़ा में ले ले, जैसे कि यदि मुश्तरी ने अपने जीवनकाल में इसे बेचा होता। इसी तरह, यदि मृतक ने इस घर के लिए कोई वसीयत की थी, तब भी शफ़ीअ इसे ले लेगा और वसीयत अमान्य हो जाएगी, यह 'मबसूत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने दो प्रकार की मांगों (तलब) से शुफ़ा सिद्ध कर लिया था और फिर मर गया, तो उसके वारिस को शुफ़ा लेने का अधिकार नहीं होगा, जैसा 'सिराजिया' में है। और यदि शफ़ीअ मुश्तरी द्वारा सुपुर्दगी किए जाने के बाद संपत्ति का स्वामी बना और फिर मर गया, तो यह संपत्ति उसके वारिसों में विरासत के रूप में जाएगी, यह 'सिराज अल-वहाज' में है।

यदि विक्रेता ने खरीदार की देय राशि (समन) में कुछ कमी कर दी, तो शफ़ीअ की देय राशि में भी उतनी ही कमी हो जाएगी। इसी प्रकार, यदि शफ़ीअ ने कीमत चुकाकर संपत्ति ले ली और फिर बाइ ने मुश्तरी की कीमत कम कर दी, तो शफ़ीअ के हिस्से से भी उतनी राशि कम हो जाएगी, यहाँ तक कि शफ़ीअ ने जो भुगतान किया है उसमें से उतनी राशि वापस ले सकता है। यदि बाइ ने मुश्तरी को कुछ कीमत से मुक्त कर दिया या उसे उपहार (हिबा) में दे दिया, तो इसका नियम भी कीमत कम करने के समान है और शफ़ीअ शेष कीमत के बदले संपत्ति ले लेगा। यदि बाइ ने मुश्तरी की पूरी कीमत माफ कर दी, तो शफ़ीअ के लिए कीमत माफ नहीं होगी। यह नियम तब है जब पूरी कीमत एक बार में कम की गई हो, लेकिन यदि कई बार में कम की गई हो, तो शफ़ीअ अंतिम निर्धारित कीमत पर संपत्ति लेगा, जैसा 'सिराज अल-वहाज' में है। यदि मुश्तरी ने बाइ के लिए कीमत में कुछ वृद्धि कर दी, तो यह वृद्धि शफ़ीअ पर लागू नहीं होगी और वह इसे पहली कीमत पर ही ले सकता है, यह 'जौहरा नय्यिरा' में है। यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे से एक हज़ार दिरहम में कुछ खरीदा और कब्ज़ा कर लिया, फिर बिना किसी सौदेबाजी के बाइ के लिए कीमत में एक हज़ार दिरहम और बढ़ा दिए, और बाद में शफ़ीअ को दो हज़ार दिरहम की बात पता चली, तो पहले वाला अतिरिक्त मूल्य शफ़ीअ के लिए मान्य नहीं होगा, केवल अंतिम वाला ही गिना जाएगा।

---

کا اقالہ کرنا جائز ہے اور یہ دار بائع کی ملک میں عود کر جائے گا مشتری کی ملک میں عود نہ کرے گا اور مشتری کے حق میں رد نہ کیا جائے گا کہ گویا بائع نے یہ دار شفیع سے خریدا ہے اسی طرح اگر دار مشفوعہ مشتری کے قبضہ میں ہو اور قاضی نے شفیع کے واسطے شفعہ دار کی ڈگری کر دی اور شفیع نے مشتری سے لے کر اپنا قبضہ کرنے سے پہلے بائع سے اقالہ کیا تو اقالہ صحیح ہے اور امام اعظمؒ کے نزدیک دار مذکور بائع کی ملک ہو جائے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر شفیع کے واسطے قاضی نے شفعہ کا حکم دے دیا اور بعد اس حکم کے دار مشفوعہ پر قبضہ کرنے سے پہلے اور ثمن ادا کرنے سے پہلے شفیع مر گیا تو دار مذکور وارثان شفیع کو ملے گا اس واسطے کہ شفعہ کے واسطے قاضی کا حکم بمنزلہ بیع کے ہے اور اگر دار مشفوعہ لینے کے بعد شفیع مر گیا تو یہ دار اس کے وارثوں میں میراث ہو گا اور اگر قاضی نے شفعہ کا حکم دے دیا اور مشتری نے شفیع سے درخواست کی کہ یہ دار ثمن میں کچھ بڑھا کر مجھے واپس دے دے اور یہ زیادتی ثمن کی جنس سے ٹھہرائی یا غیر جنس سے ٹھہرائی شفیع نے ایسا ہی کیا تو پہلے داموں کے بدلے دار مذکور مشتری کا ہو جائے گا اور زیادتی باطل ہو جائے گی اس واسطے کہ دار مذکور کو مشتری کو واپس دینا بمنزلہ اقالہ کے ہے اور اقالہ فقط پہلے ہی ثمن پر ہوتا ہے۔ اسی طرح اگر شفیع کے واسطے قاضی نے شفعہ کا حکم دے دیا پھر اس کے بعد مشتری نے شفیع سے کہا کہ یہ دار ثمن میں کچھ بڑھا کر بائع کو واپس دے اور اس نے ایسا ہی کیا تو یہ بھی اقالہ کیا اور اقالہ جس طرح بائع و مشتری میں ہوتا ہے ویسا ہی بائع و شفیع میں محقق ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر بیع واقع ہونے کے بعد شفیع شفعہ میں لینے سے پہلے مر گیا تو ہمارے نزدیک اس کے وارث کو شفعہ میں لینے کا استحقاق نہ ہو گا اور اگر دار مشفوعہ کی بیع اس کی موت کے

بعد ہو تو وارث اس کو شفعہ میں لے سکتا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر بائع و مشتری مر گئے اور شفیع زندہ موجود ہے تو اس کو شفعہ میں لینے کا اختیار ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر مشتری مر گیا اور شفیع زندہ ہے تو اس کو شفعہ حاصل ہے اور اگر میت پر قرضہ ہو تو دار مشفوعہ اس کے دین کے واسطے فروخت نہ کیا جائے گا بلکہ شفیع اس کو شفعہ میں لے لے گا اگر چہ دار مذکور سے قرض خواہ و شفیع دونوں کا حق متعلق ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر قاضی یا اس کے وصی نے اس دار کو میت کے قرضہ میں فروخت کیا تو شفیع کو اختیار ہو گا کہ بیع کو باطل کر کے اس کو شفعہ میں لے لے جیسا کہ اگر مشتری نے اپنی زندگی میں اس کو فروخت کیا تو یہی حکم ہے۔ اسی طرح اگر میت نے اس دار کے لئے وصیت کی تو بھی شفیع اس کو لے لے گا اور وصیت باطل ہو جائے گی یہ مبسوط میں ہے۔ ایک شخص نے دو طرح کی طلب سے شفعہ کو ثابت کر لیا تھا پھر مر گیا تو اس کے وارث کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ شفعہ میں لے لے کذا فی السراجیہ اور اگر شفیع اس دار کا مالک مشتری کے سپرد کرنے سے ہوا پھر مر گیا تو یہ دار اس کے وارثوں میں میراث ہو گا۔ یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر بائع نے مشتری کے ذمہ سے کسی قدر ثمن گھٹا دیا تو شفیع کے ذمہ سے بھی اس قدر کم ہو جائے گا اسی طرح اگر شفیع نے دار مشفوعہ ثمن دے کر لے لیا پھر بائع نے مشتری سے کسی قدر ثمن گھٹا دیا تو بھی شفیع کے ذمہ سے اسی قدر ساقط ہو جائے گا حتیٰ کہ شفیع نے جس کو ثمن ادا کیا ہے اس سے اس قدر واپس لے سکتا ہے اسی طرح اگر بائع نے مشتری کو بعض ثمن سے بری کیا یا اس کو ہبہ کر دیا تو اس کا حکم بھی گھٹا دینے کے مانند ہے اور شفیع دار مشفوعہ کو باقی ثمن کے عوض لے لے گا اور اگر بائع نے مشتری کے ذمہ سے سب ثمن ساقط کر دیا تو شفیع کے ذمہ سے ساقط نہ ہو گا اور یہ حکم اس وقت ہے کہ پورا ثمن گھٹا دینا کلمہ واحدہ ہو اور اگر چند بار کہہ کر گھٹا دیا تو شفیع اس دار مشفوعہ کو اخیر ثمن پر لے لے گا یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر مشتری نے بائع کے واسطے ثمن

میں کچھ بڑھا دیا تو یہ زیادتی شفیع پر لازم نہ ہو گی حتیٰ کہ شفیع اس کو ثمن اول پر لے سکتا ہے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے سے ایک ہزار درہم کو خریدا اور باہم قبضہ کر لیا پھر بائع کے واسطے ثمن میں ایک ہزار درہم بڑھا دیئے بدون اس کے کہ بیع کا مناقصہ کیا ہو پھر شفیع کو دو ہزار درہم کا حال معلوم ہوا یہ معلوم پہلے سب شفیع سے ساقط ہو جائیں گے مگر اخیر ساقط نہ ہو گا۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (5) - 231 - Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

...not the case where the price was one thousand Dirhams, and the pre-emptor (Shafi) took it for two thousand Dirhams by the order of the Qazi (Judge) or without it. If taken by the order of the Qazi, the Qazi shall nullify that order and re-order that the pre-emptor take it in pre-emption (Shufa) for one thousand Dirhams, because the first instance was for something not obligatory under pre-emption. If taken without the order of the Qazi, it is considered a fresh purchase and will not be nullified. It is stated in 'Jami' al-Fatawa' that if a house is purchased and then gifted (Hiba) to another, and then the pre-emptor arrives, according to Imam Abu Yusuf, the pre-emptor shall take the house and deposit its price with a just person. According to Imam Muhammad, he cannot take it as long as the donor is not present. This is mentioned in 'Tatarkhaniyya'.

**A person bought a house in exchange for a slave, then found the slave missing but agreed to the trade; in this case, the pre-emptor shall take the house for the price of a healthy and sound slave.** ☆

A *Mukatib* (a slave working for freedom) died leaving assets sufficient to fulfill his contract (*Kitabat*). Subsequently, a house in his neighborhood was sold, and his heirs paid off the contract amount; those heirs will be entitled to pre-emption. This is because the decree of the Mukatib's freedom is dated from the last moment of his life; thus, the heirs' right of neighborhood was established before the sale of the house. This is in 'al-Kafi'. If someone buys a house and there is a pre-emptor who says, "I permitted the sale and I will take it through pre-emption," or "I agreed to the sale and will take it through pre-emption," or "I accepted the sale and will take it through pre-emption," and it is stated in the Fatawa that if he says "I have no right in this house," the said person retains his right to pre-emption provided his statement was continuous. If there was a gap, such as remaining silent and then saying he will take it, he loses the right. This is in 'Tatarkhaniyya'. It is narrated from Imam Muhammad that if a person bought a house and the pre-emptor claimed he bought it from the seller before the current buyer, and the buyer confirmed this and gave it to him, then a second pre-emptor arrives and denies the first pre-emptor's claim, the second one will take the entire house in pre-emption. This is in 'al-Muhit'. If someone buys a house claiming he bought it for a certain person and provides witnesses, and then the pre-emptor comes, the buyer will be considered the opponent (defendant). However, if the buyer provides witnesses that the person had appointed him as an

agent (Wakil), then he will not be considered the opponent. If the seller and buyer claim the house was sold for a thousand Dirhams and a measure of wine, but the pre-emptor claims it was for a thousand Dirhams only, the pre-emptor's word shall be accepted. It is written in 'Sharh Tahawi' that if an agent for purchase buys a house and the pre-emptor appears, the agent will handle it and the responsibility (*Uhdah*) lies with the agent, regardless of the principal's presence. This is in 'Zahiriyya'. If a house is bought for a slave and then accepted despite the slave's absence, the pre-emptor takes it for the value of a sound slave. This is in 'Muhit Surkhi'. If someone buys real estate (*Aqqar*) for an unspecified heap of Dirhams (*Jazaf*), and both agree the count is unknown, and the Dirhams are lost after possession, the pre-emptor should still take the property.

---

**Footnotes:** 1. *Uhdah* (responsibility): Meaning the legal responsibility for the delivery of the property to the pre-emptor lies with the agent. 2. *Aqqar*: Refers to land, fields, houses, etc. *Bil-jazaf*: Refers to a sale where the quantity (of Dirhams) is not weighed but bought as a heap.

यदि ऐसा नहीं हुआ कि मूल्य एक हज़ार दिरहम था, फिर शफ़ीअ (पूर्वाधिकारी) ने क़ाज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से या उसके बिना इसे दो हज़ार दिरहम में ले लिया, तो यदि क़ाज़ी के आदेश से लिया हो, तो क़ाज़ी उस आदेश को रद्द कर देगा और पुनः आदेश देगा कि शफ़ीअ उसे एक हज़ार दिरहम के बदले पूर्वाधिकार में ले ले। क्योंकि पहले यह उस चीज़ के लिए था जो पूर्वाधिकार के साथ अनिवार्य नहीं थी। और यदि उसने बिना क़ाज़ी के आदेश के लिया है, तो यह नई खरीद मानी जाएगी और रद्द नहीं होगी। 'जामे-उल-फ़तावा' में है कि यदि एक घर खरीदकर दूसरे को दान (हिबा) कर दिया गया और फिर शफ़ीअ आया, तो इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार शफ़ीअ उस घर को लेकर उसका मूल्य किसी विश्वसनीय व्यक्ति के पास रख देगा। इमाम मोहम्मद के अनुसार, जब तक दानकर्ता उपस्थित न हो, वह इसे नहीं ले सकता। यह 'ततारख़ानिया' में है।

**एक व्यक्ति ने एक घर एक गुलाम के बदले खरीदा, फिर गुलाम अनुपस्थित पाया गया लेकिन वह इस पर राज़ी हो गया, तो शफ़ीअ उस घर को उस स्वस्थ गुलाम की कीमत के बदले ले लेगा।** ☆

एक मुकातब (वह गुलाम जिसने अपनी आज़ादी के लिए समझौता किया हो) अपनी आज़ादी की राशि चुकाने के बराबर माल छोड़कर मर गया। फिर उसके पड़ोस में एक घर बेचा गया और उत्तराधिकारियों ने उसकी आज़ादी की राशि चुका दी, तो उन उत्तराधिकारियों को पूर्वाधिकार मिलेगा। क्योंकि मुकातब की आज़ादी का हुक्म उसके जीवन के अंतिम क्षण से दिया गया है, इसलिए उत्तराधिकारियों का पड़ोस घर की बिक्री से पहले ही सिद्ध हो गया। यह 'काफ़ी' में है। एक व्यक्ति ने घर खरीदा और उसका एक शफ़ीअ है। शफ़ीअ ने कहा, "मैंने बिक्री की अनुमति दी और मैं इसे पूर्वाधिकार में ले लूँगा" या "मैं बिक्री पर राज़ी हुआ और पूर्वाधिकार में लूँगा" या "मैंने बिक्री स्वीकार की और पूर्वाधिकार लूँगा"। 'फ़तावा' में है कि यदि उसने यूँ कहा कि "मेरा इस घर में कोई अधिकार नहीं है", तो वह व्यक्ति अपने पूर्वाधिकार पर बना रहेगा, बशर्ते उसने यह बात लगातार कही हो। यदि उसने बीच में चुप्पी साधी और फिर कहा, तो उसे पूर्वाधिकार का अधिकार नहीं होगा। यह 'ततारख़ानिया' में है। इमाम मोहम्मद से रिवायत है कि एक व्यक्ति ने दूसरे से घर खरीदा और उसके शफ़ीअ ने आकर दावा किया कि खरीददार के खरीदने से पहले उसने इसे विक्रेता से खरीदा था। खरीददार ने इसकी पुष्टि की और घर उसे दे दिया। फिर दूसरा शफ़ीअ आया और उसने पहले शफ़ीअ के खरीदने से इनकार किया, तो वह पूरा घर पूर्वाधिकार में ले लेगा। यह 'मुहीत' में है। एक

व्यक्ति ने घर खरीदा और कहा कि उसने फलां व्यक्ति के लिए खरीदा है और गवाह बना लिए। फिर शफ़ीअ आया, तो खरीददार ही उसका विरोधी माना जाएगा। लेकिन यदि खरीददार ने गवाह पेश किए कि फलां व्यक्ति ने उसे वकील (एजेंट) नियुक्त किया था, तो उसे विरोधी नहीं ठहराया जाएगा। यदि विक्रेता और खरीददार ने कहा कि घर एक हज़ार दिरहम और एक रतल शराब के बदले बेचा गया है और शफ़ीअ ने कहा कि नहीं बल्कि केवल एक हज़ार दिरहम में, तो शफ़ीअ की बात मानी जाएगी। 'शरह तहावी' में लिखा है कि यदि खरीद के वकील ने घर खरीदा और शफ़ीअ उपस्थित हुआ, तो वकील उसे ले लेगा और ज़िम्मेदारी वकील पर होगी। 'ज़हीरिया' में है कि मुवक्किल (मुख्य पक्ष) की उपस्थिति पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। एक व्यक्ति ने घर एक गुलाम के बदले खरीदा, गुलाम न मिला पर वह राज़ी हो गया, तो शफ़ीअ उसे स्वस्थ गुलाम की कीमत पर लेगा। यदि दोष (ऐब) के कारण वापस किया तब भी यही हुक्म है। 'मुहीत सुरख़ी' में है कि बिक्री के समय गुलाम स्वस्थ था। एक व्यक्ति ने 'अक़्क़ार' (अचल संपत्ति) दिरहम के बदले खरीदा जो 'जज़ाफ़' (बिना गिने ढेर के रूप में) थे। दोनों सहमत थे कि संख्या ज्ञात नहीं है। कब्ज़े के बाद दिरहम नष्ट हो गए, तो शफ़ीअ को घर पूर्वाधिकार में ले लेना चाहिए।

---

**पाद-टिप्पणियाँ:** 1. 'उहदा' (ज़िम्मेदारी) का अर्थ है कि शफ़ीअ के लिए संपत्ति के हस्तांतरण की गारंटी वकील पर है। 2. 'अक़्क़ार' का अर्थ है भूमि, खेत, घर आदि। 'जज़ाफ़' का अर्थ है दिरहमों का वजन ज्ञात नहीं था, बल्कि वे एक ढेर के रूप में थे और उसी ढेर के बदले खरीदा गया।

---

نہ ہوا کہ ثمن ایک ہزار درہم تھا پس شفیع نے بحکم قاضی یا بغیر حکم قاضی اس کو دو ہزار درہم میں لے لیا پس اگر بحکم قاضی لیا ہو تو قاضی اس حکم کو باطل کر کے پھر حکم دے گا کہ شفیع اس کو شفعہ میں ایک ہزار درہم کے عوض لے لے کیونکہ اول ایسی چیز کے واسطے تھا جو شفعہ کے ساتھ واجب نہ تھی اور اگر اس نے بغیر حکم قاضی لیا ہو تو یہ از سر نو خرید ہے پس نہ ٹوٹے گی۔ جامع الفتاویٰ میں ہے کہ اگر ایک دار خرید کر کے دوسرے کو ہبہ کر دیا پھر شفیع آیا تو امام ابو یوسفؒ کے نزدیک شفیع اس دار کو لے کر اس کا ثمن کسی عادل کے پاس رکھ دے گا و امام محمدؒ کے نزدیک جب تک واہب حاضر نہ ہو تب تک نہیں لے سکتا ہے۔ یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

**ایک شخص نے ایک دار بعوض ایک غلام کے خریدا پھر غلام کو نا پایا مگر اس پر راضی ہو گیا تو شفیع اس دار کو اس غلام صحیح سالم کی قیمت کے بدلے لے گا ☆**

ایک مکاتب بقدر وفائے کتابت مال چھوڑ کر مر گیا پھر اس کے جوار میں ایک دار فروخت کیا گیا پھر وارثوں نے اس کا مال کتابت ادا کر دیا تو ان وارثوں کو شفعہ ملے گا کیونکہ مکاتب کی آزادی کا حکم اس کی آخر حیات سے دیا گیا پس اس کے وارثوں کا جوار اس دار کے بیچ ہونے سے پہلے ثابت ہو گیا یہ کافی میں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار خریدا اور اس کا ایک شفیع ہے پس شفیع نے کہا کہ میں نے بیع کی اجازت دی اور میں اس کو شفعہ میں لے لوں گا یا کہا کہ میں بیع پر راضی ہوا اور میں شفعہ میں لوں گا یا کہا کہ میں نے بیع تسلیم کی اور میں شفعہ لوں گا اور فتاویٰ میں ہے کہ یا یوں کہا کہ میرا اس دار میں کچھ حق نہیں ہے تو شخص مذکور اپنے شفعہ پر رہے گا بشرطیکہ اس نے کلام موصول بیان کیا ہو اور اگر فصل کیا مثلاً سکوت کر کے پھر کہا کہ

میں شفعہ میں لوں گا تو اس کو استحقاق شفعہ نہ ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ امام محمدؒ سے روایت ہے کہ ایک شخص نے دوسرے سے ایک دار خریدا اور اس کے شفیع نے آکر دعویٰ کیا کہ اس مشتری کے خریدنے سے پہلے میں نے یہ دار اس بائع سے خریدا تھا اور مشتری نے اس کے دعویٰ کی تصدیق کی اور دار مذکور اس کو دے دیا پھر ایک دوسرا شفیع آیا اور اس نے شفیع کے خریدنے سے انکار کیا تو پورا دار شفعہ میں لے لے گا اور اگر مشتری نے شفیع سے ابتداء میں یوں کہا کہ تو نے میرے خریدنے سے پہلے یہ دار خریدا تھا اور وہ تیری خرید پر تیرا ہے اور شفیع نے کہا کہ میں نے اس کو نہیں خریدا تھا اور میں اس کو اپنے شفعہ میں لیتا ہوں پس شفیع نے مشتری سے لے لیا پھر دوسرا شفیع آیا تو دوسرے کو فقط نصف دار مل سکتا ہے یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار خریدا اور کہا کہ میں نے فلاں شخص کے واسطے خریدا ہے اور اس پر گواہ کر لئے پھر شفیع آیا تو مشتری اس کا خصم قرار دیا جائے گا لیکن اگر مشتری نے اس بات کے گواہ پیش کئے کہ فلاں شخص نے مجھے وکیل کیا تھا تو البتہ خصم نہ ٹھہرایا جائے گا اور اگر بائع و مشتری نے کہا کہ ہم نے اس دار کی بعوض ہزار درہم و ایک رطل شراب کے خرید فروخت کی ہے اور شفیع نے کہا کہ نہیں بلکہ ہزار درہم کے عوض بیچا ہے تو شفیع کا قول قبول ہوگا اور شرح طحاوی میں لکھا ہے کہ خرید کے وکیل نے اگر کوئی دار خریدا اور شفیع حاضر ہوا تو وکیل لے لے گا اور عہدہ وکیل پر ہوگا اور موکل کی موجودگی کی طرف التفات نہ کیا جائے گا یہ ظہیریہ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار بعوض ایک غلام کے خریدا پھر غلام کو نا پایا مگر اس پر راضی ہو گیا تو شفیع اس دار کو اس غلام صحیح سالم کی قیمت کے بدلے لے گا اور اسی طرح اگر بسبب عیب کے اس کو واپس کیا تو بھی یہی حکم ہے کیونکہ جس وقت بیع واقع ہوئی تو صحیح سالم غلام مہر تھا عیب دار نہیں ٹھہرا تھا یہ محیط سرخی میں ہے۔ ایک شخص نے ایک عقار بعوض درہموں کے جو بطور جزاف تھے خریدا اور بائع و مشتری دونوں نے اس امر پر

اتفاق کیا کہ جزافی درہموں کی تعداد ہم کو نہیں معلوم ہے اور بعد باہمی قبضہ واقع ہونے کے یہ درہم بائع کے پاس تلف ہو گئے تو شفیع کو کیا کرنا چاہئے تو قاضی امام ابوبکرؒ نے فرمایا کہ دار کو شفعہ میں لے۔

---

**حواشی:** 1. عہدہ یعنی شفیع کے واسطے مسلم ہونے کا ذمہ وکیل پر ہے۔ 2. عقار زمین و کھیت و حویلی وغیرہ اراضی و قول بطور جزاف یعنی درہموں کا وزن معلوم نہیں بلکہ ڈھیری لگی ہے اور اسی ڈھیری کے عوض خریدا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 232 | Kitab-ush-Shuf'a (Book of Pre-emption)**

...taking it according to his own assumption and paying the price (*thaman*). However, if the purchaser (*mushtari*) proves a higher amount, this shall not be the case; this is mentioned in *Zahiriyyah*. A person owns land that carries high maintenance costs (*Maunat* - 1) and taxes, due to which no one buys it. The owner then sells it along with a house (*dar*) valued at one thousand dirhams, for a total of one thousand dirhams. There is a pre-emptor (*shafee*) for this house; he shall take the house in exchange for its proportionate share of the price. The price shall be based on the value of the house and the value of the land as estimated by the authorities (*As-hab-us-Sultan*) if they were to buy it. If no one is inclined to buy it at all, its value shall be considered what it was last when people's interest in it remained, because the basis of division is value; so it is in *Al-Quniya*. According to the view of Imam-e-Azam (Abu Hanifa), it can also be said that the entire thousand dirhams should be attributed to the house if the land has absolutely no value; this is in *Al-Muhit*. It is narrated in *Al-Muntaqa* from Imam Abu Yusuf that a person possesses a house, and the Qazi knows it belongs to him. Then, a house adjacent to it is sold. After the sale, the pre-emptor says, "This house of mine belongs to such-and-such person, as I sold it to him a year ago." He made this acknowledgment (*iqrar*) at a time when, if he had claimed pre-emption for himself, he could have obtained it. Thus, he shall not receive pre-emption, nor shall the person in whose favor the acknowledgment was made, until he produces witnesses that he bought it. This is because an acknowledgment is a limited proof (*hujjat-e-qasirah*) which is valid only against the acknowledger and does not extend to the rights of others; this is in *Muhit-e-Surkhi*.

It is stated in *Fatawa Atabiyah* that if the purchaser sets a condition of option (*khiyar*) for the pre-emptor, and the pre-emptor says, "I have accepted the sale on the condition that I retain the right of pre-emption," then it is permissible. If he did not state "on the condition that I retain pre-emption," his right of pre-emption shall be void (*batil*). However, it is preferable for the pre-emptor to delay until the seller himself gives permission or the period expires; this is in *Tatar Khaniya*. A pre-emptor took possession of the pre-empted land without a court order. If this person is among the scholars of legal deduction (*Ahl-e-Istinbat*) and knows that some scholars have allowed this, he shall not be deemed a transgressor (*fasiq*). If he does not know this, he becomes a *fasiq* because he acted as an oppressor; unlike the former who would not be considered an oppressor; this is in *Fatawa Kubra*. A person claimed pre-emption based on neighborly rights against a purchaser who does not believe in

neighborhood-based pre-emption (*shuf'a-e-jawar*) and denied the claim. An oath shall be taken from him in this manner: "By Allah, this person has no right of pre-emption against me according to the view of such a jurist (*mujtahid*) who does not uphold pre-emption based on neighborhood." If a person bought a house and had not yet taken possession when an adjacent house was sold, the purchaser shall have the right of pre-emption. A person requested a house through pre-emption, and the purchaser said, "I have given it to you in pre-emption." If the pre-emptor knows the price and the delivery is valid in this case, the house becomes the property of the pre-emptor. If the price is unknown to the pre-emptor, the house does not become his property, and the pre-emptor remains on his right of pre-emption; this is in *Al-Muhit*. A person died leaving a house valued at two thousand dirhams with a debt of one thousand dirhams against it, and he had bequeathed one-third of his estate to someone. The Qazi deemed it beneficial to sell the entire house. Both the heir and the legatee (*musi-lahu*) are neighbors to it; thus, both shall take it through pre-emption. If there is no debt and there is a minor among the heirs, and the Qazi deems it beneficial to sell the house, then neither the legatee nor the adult heirs shall have pre-emption, nor shall the minor have it if he claims it after reaching maturity; this is in *Jami' al-Kabir*. Sheikh Ali bin Ahmad was asked about a person who bought a shop and the pre-emptor claimed pre-emption. The purchaser gave it to him, but they disputed over the price, and the pre-emptor did not take the shop until a long time passed. Later, he wanted to take it for the price stated by the purchaser. He shall not have this option unless the purchaser agrees (3). If it is proven that the price was what the pre-emptor stated, he shall have the right to take it, and when...

---

1) *Maunat*: Expenses, costs, and land tax. 2) It has no effect on others, so the pre-emptor must bring witnesses who serve as proof against everyone. 3) It is possible because the situation is either: the pre-emption was not yet lost if the price was indeed what the pre-emptor claimed, thus the right was gained with the purchaser's consent; otherwise, it is as if the purchaser has made a new sale.

...लेकर अपने अनुमान के अनुसार मूल्य (थमन) अदा करे, लेकिन यदि खरीदार (मुश्तरी) ने उस राशि पर अधिकता सिद्ध कर दी तो ऐसा नहीं होगा; यह ज़हीरिया में है। एक व्यक्ति के पास एक ऐसी भूमि है जिस पर रखरखाव का खर्च (मुअनत - 1) और लगान बहुत अधिक है, जिसके कारण उसे कोई नहीं खरीदता। मालिक ने उसे अपने एक घर (दार) के साथ, जिसका मूल्य एक हज़ार दिरहम है, कुल एक हज़ार दिरहम में बेच दिया। उस घर का एक पड़ोसी (शफी) है, तो वह उस घर को उसके हिस्से के मूल्य के बदले में लेगा। मूल्य उस घर की कीमत पर और उस भूमि की उस कीमत पर आधारित होगा जो शासक के लोग (असहाब-ए-सुल्तान) यदि खरीदते तो लगाते। और यदि कोई भी उसकी खरीद में रुचि न रखता हो, तो उसकी वह कीमत मानी जाएगी जो अंत में थी जब लोगों की उसमें रुचि समाप्त हुई, क्योंकि विभाजन का आधार कीमत पर है; ऐसा ही 'कुनिया' में है। और इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) के कथन के अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि पूरे एक हज़ार दिरहम घर के बदले में माने जाएंगे यदि उस भूमि का बिल्कुल कोई मूल्य न हो; यह 'मुहीत' में है। 'मुंतक़ा' में इमाम अबू यूसुफ से वर्णित है कि एक व्यक्ति के अधिकार में एक घर है और क़ाज़ी जानता है कि यह घर उसी का है। फिर उसके बगल में एक घर बेचा गया। बिक्री के बाद पड़ोसी (शफी) ने कहा कि मेरा यह घर फलां व्यक्ति का है, क्योंकि एक वर्ष हो गया जब मैंने इसे उसके हाथ बेच दिया था। उसने यह स्वीकारोक्ति (इकरार) ऐसे समय में की कि यदि वह उस समय अपने लिए शुफ़ा (अग्रक्रयाधिकार) मांगता तो ले सकता था, तो उसे शुफ़ा नहीं मिलेगा। और न ही उस व्यक्ति को मिलेगा जिसके नाम इकरार किया गया है, जब तक कि वह इस बात के गवाह न दे कि मैंने खरीदा है; क्योंकि स्वीकारोक्ति एक अधूरा तर्क(हुज्जत-ए-कासिरा) है जो केवल स्वीकार करने वाले के हक में सही होती है और दूसरे के हक में प्रभावी (मुतअद्दी) नहीं होती; यह 'मुहीत-ए-सुरखी' में है।

'फ़तावा अताबिया' में है कि यदि खरीदार ने पड़ोसी (शफी) के लिए शर्त रखी, और शफी ने कहा कि "मैंने इस शर्त के साथ सौदा स्वीकार किया कि मुझे शुफ़ा का अधिकार प्राप्त है," तो यह जायज़ है। और यदि उसने यह न कहा हो कि "इस शर्त के साथ कि मुझे शुफ़ा प्राप्त है," तो उसका शुफ़ा निरस्त (बातिल) हो जाएगा। लेकिन उचित यह है कि शफी देरी करे ताकि विक्रेता स्वयं अनुमति दे दे या समय बीत जाए; यह 'तातॉरख़ानिया' में है। एक शफी ने क़ाज़ी के आदेश के बिना उस ज़मीन पर कब्ज़ा कर लिया जिस पर उसका शुफ़ा था। यदि वह व्यक्ति विद्वानों (अहल-ए-इस्तिन्बात) में से है और जानता है कि कुछ विद्वानों ने ऐसा कहा है, तो वह पापी (फ़ासिक़) नहीं होगा। और यदि नहीं

जानता, तो वह फ़ासिक़ हो गया क्योंकि वह अन्यायी ठहरा; पहले वाले के विपरीत, जो अन्यायी नहीं होगा; यह 'फ़तावा कुबरा' में है। एक व्यक्ति ने पड़ोसी होने के नाते एक खरीदार पर शुफ़ा का दावा किया, और खरीदार पड़ोस के आधार पर शुफ़ा (शुफ़ा-ए-जवार) को नहीं मानता और उसने शुफ़ा से इनकार किया, तो उससे इस प्रकार शपथ (क़सम) ली जाएगी: "अल्लाह की कसम, मेरी ओर से इस व्यक्ति का शुफ़ा का अधिकार ऐसे मुजतहिद (धर्मशास्त्री) के कथन के अनुसार नहीं है जो पड़ोस के आधार पर शुफ़ा का कायल नहीं है।" एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा और अभी उस पर कब्ज़ा नहीं किया था कि उसके बगल में एक और घर बिका, तो खरीदार को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। एक व्यक्ति ने शुफ़ा के तहत एक घर मांगा और खरीदार ने कहा कि "मैंने तुझे शुफ़ा में दे दिया।" यदि शफी को मूल्य ज्ञात है और इस स्थिति में सुपुर्दगी सही है, तो वह घर शफी की संपत्ति हो जाएगा। और यदि शफी को मूल्य ज्ञात नहीं है, तो वह घर शफी की संपत्ति नहीं होगा और शफी अपने शुफ़ा के अधिकार पर बना रहेगा; यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति मर गया और उसने दो हज़ार दिरहम मूल्य का एक घर छोड़ा जिस पर एक हज़ार दिरहम का ऋण है, और उसने अपनी एक-तिहाई संपत्ति की किसी व्यक्ति के लिए वसीयत की है। क़ाज़ी की राय में यह उचित लगा कि पूरा घर बेच दिया जाए। वारिस और वसीयत पाने वाला (मौसी-लहू) दोनों उसके पड़ोसी (शफी) हैं, तो दोनों उसे शुफ़ा में लेंगे। और यदि उस पर ऋण न हो और वारिसों में कोई नाबालिग हो, और क़ाज़ी की राय में घर बेचना उचित हो, तो वसीयत पाने वाले और बालिग वारिसों को शुफ़ा नहीं मिलेगा, और न ही नाबालिग को मिलेगा यदि वह बालिग होने के बाद मांग करे; यह 'जामे कबीर' में है। शेख अली बिन अहमद से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने दुकान खरीदी और शफी ने शुफ़ा मांगा। खरीदार ने उसे शुफ़ा दे दिया लेकिन दोनों में कीमत को लेकर झगड़ा हो गया और शफी ने दुकान नहीं ली यहाँ तक कि काफी समय बीत गया। फिर उसने चाहा कि जितनी कीमत खरीदार ने बताई है उसी पर ले ले, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा। लेकिन यदि खरीदार राजी हो जाए तो हो सकता है (3)। यदि यह बात सिद्ध हो गई कि मूल्य वही था जो शफी ने कहा था, तो उसे लेने का अधिकार होगा और जब...

---

1) मुअनत: बोझ, खर्च और लगान। 2) स्वीकारोक्ति का प्रभाव दूसरों पर नहीं होता, इसलिए शफी को गवाह लाने चाहिए जो सबके विरुद्ध प्रमाण हों। 3) हो सकता है क्योंकि स्थिति दो ही होगी: या तो शुफ़ा अभी तक समाप्त नहीं हुआ यदि मूल्य वही था जो शफी ने कहा था तो खरीदार की सहमति से हक मिल गया, अन्यथा खरीदार ने नए सिरे से बिक्री कर दी।

---

لے کر اپنے زعم کے موافق ثمن ادا کرے لیکن اگر مشتری نے اس مقدار پر زیادتی ثابت کی تو ایسا نہ ہوگا یہ ظہیریہ میں ہے۔ ایک شخص کے پاس ایک زمین ہے کہ جس پر مؤنت (۱) اور خراج بہت ہے کہ جس کی وجہ سے اس کو کوئی نہیں خریدتا ہے پس اس کو مالک نے اپنے ایک دار کے ساتھ جس کی ہزار درہم قیمت ہے ایک ہزار درہم کو فروخت کیا اور اس دار کا ایک شفیع ہے تو اس دار کو اس کے حصہ ثمن کے بدلے لے گا پس ثمن اس دار کی قیمت پر اور زمین کی اس قیمت پر کہ اصحاب سلطان اگر خریدیں تو لگائیں اور اگر کوئی بھی اس کی خرید کی طرف رغبت نہ کرتا ہو تو اس کی وہ قیمت اعتبار کی جائے گی جو آخرت میں تھی جس وقت لوگوں کی رغبت اس سے جاتی رہی ہے کیونکہ تقسیم کا مدار قیمت پر ہے کذا فی القنیہ اور یوں کہا جا سکتا ہے بنا بر قول امام اعظم کے پورے ہزار درہم بمقابلہ دار کے قرار دئیے جائیں اگر اس زمین کی بالکل کچھ قیمت نہ ہو یہ محیط میں ہے۔ منتقٰی میں امام ابو یوسف سے مروی ہے کہ ایک شخص کے قبضہ میں ایک دار ہے اور قاضی جانتا ہے کہ یہ دار اسی کا ہے پس اس کے پہلو میں ایک دار فروخت کیا گیا اور اس کے فروخت ہونے کے بعد شفیع نے کہا کہ میرا یہ دار فلاں شخص کا ہے کہ ایک سال ہوا جب سے میں اس کے ہاتھ فروخت کر چکا ہوں اور یہ اقرار ایسے وقت میں کیا کہ اگر اس وقت اپنے واسطے شفعہ طلب کرتا تو لے سکتا تھا تو اس کو شفعہ نہ ملے گا اور نہ اس مقرر کو ملے گا تا وقتیکہ اس بات کے گواہ نہ دے کہ میں نے خریدا ہے اس لیے کہ اقرار حجتِ قاصرہ ہے کہ فقط مقر کے حق میں صحیح ہوتی ہے اور غیر کے حق میں متعدی نہیں ہوتی ہے یہ محیط سرخی میں ہے۔

فتاویٰ عتابیہ میں ہے کہ اگر مشتری نے شفیع کے واسطے خیار کی شرط کی پس شفیع نے کہا کہ میں نے بیع اس شرط سے اختیار کر لی کہ مجھے شفعہ حاصل ہے تو جائز ہے اور اگر اس نے یہ نہ کہا ہو کہ اس شرط سے کہ مجھے شفعہ حاصل ہے تو اس کا شفعہ باطل ہو گا مگر چاہے یہ ہے کہ شفیع تاخیر کر دے تاکہ خود بائع اجازت دے دے یا مدت گزر جائے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شفیع نے بلا حکم قاضی زمین مشفوعہ پر قبضہ کر لیا پس اگر یہ شخص اہل استنباط میں سے ہے اور جانتا ہے کہ بعض علماء نے ایسا فرمایا ہے تو فاسق نہ ہوگا اور اگر نہیں جانتا ہے تو فاسق ہو گیا اس واسطے کہ وہ ظالم ٹھہرا بخلاف اول کے کہ وہ ظالم نہ ہو گا یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک مشتری پر بذریعہ جوار کے شفعہ کا دعویٰ کیا اور مشتری شفعہ جوار کا قائل نہیں ہے اور اس نے شفعہ سے انکار کیا تو اس سے اس طور سے قسم لی جائے گی کہ واللہ میری جانب اس شخص کا حق شفعہ بنا بر قول ایسے مجتہد کے جو شفعہ بالجوار کا قائل نہیں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار خریدا اور ہنوز اس پر قبضہ نہ کیا تھا کہ اس کے پہلو میں ایک دار فروخت کیا گیا تو مشتری کو شفعہ حاصل ہوگا۔ ایک شخص نے ایک دار شفعہ میں طلب کیا اور مشتری نے کہا کہ میں نے تجھے شفعہ میں دیا پس اگر شفیع کو ثمن معلوم ہے اور اس صورت میں تسلیم صحیح ہے تو دار مذکور شفیع کی ملک ہو جائے گا اور اگر شفیع کو ثمن نہیں معلوم ہے تو دار مذکور شفیع کی ملک نہ ہو جائے گا اور شفیع اپنے شفعہ پر رہے گا یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص مر گیا اور اس نے دو ہزار درہم قیمت کا ایک دار چھوڑا اور اس پر ہزار درہم قرض ہے اور اس نے تہائی مال کی کسی شخص کے واسطے وصیت کی ہے اور قاضی کی رائے میں یہ مصلحت معلوم ہوئی کہ پورا دار فروخت کر دے اور وارث و موصی لہ دونوں اس کے شفیع ہیں تو دونوں اس کو شفعہ میں لیں گے اور اگر اس پر قرضہ نہ ہو اور اس کے وارثوں میں کوئی نابالغ ہو پھر قاضی کی رائے میں دار مذکور کا فروخت کرنا مصلحت معلوم ہوا تو موصی لہ اور وارثان بالغ کو

شفعہ نہ ملے گا اور نہ نابالغ کو ملے گا اگر اس نے بعد بالغ ہونے کے طلب کیا یہ جامع کبیر میں ہے۔ شیخ علی بن احمد سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے دکان خریدی اور شفیع نے شفعہ طلب کیا اور مشتری نے اس کو شفعہ دیا لیکن دونوں نے اس کے ثمن میں جھگڑا کیا اور شفیع نے دکان نہ لی یہاں تک کہ ایک مدت گزر گئی پھر چاہا جس قدر مشتری نے بیان کیا اسی کے عوض لے لے تو اس کو یہ اختیار نہ ہو گا لیکن اگر مشتری راضی ہو جائے تو ہو سکتا (۳) ہے۔ اگر یہ بات ثابت ہو گئی کہ ثمن وہی تھا جو شفیع نے کہا تھا تو اس کو لے لینے کا اختیار ہو گا اور جب

---

۱) مؤنت بار خرچ و لگان۔ ۲) غیر پر اس کا اثر نہیں ہوتا تو شفیع سوائے اقرار کے گواہ لائے جو سب پر حجت ہے۔ ۳) ہو سکتا ہے کیونکہ وہ حال سے خالی نہیں یا تو شفعہ ابھی تک ساقط نہیں ہوا جب کہ ثمن وہی ہو جو شفیع نے کہا تھا تو رضائے مشتری سے حق شفعہ مل گیا ورنہ مشتری نے از سر نو بیع کردی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (Page 233) Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

If it is proven that the price (*thaman*) was indeed the amount stated by the pre-emptor (*shafi*), his right of pre-emption (*shufa*) will not be invalidated; this is mentioned in *Tatar-khaniya*. A person is in possession of a house (*dar*); another person comes forward claiming the right of pre-emption and tells the possessor (*qabiz*), "You bought this from so-and-so person," and that person (the seller or *ba-i*) confirms his statement. However, the possessor claims, "I inherited this from my father," and the pre-emptor provides witnesses that the house belonged to the seller's father, who passed away leaving it as inheritance for the seller, and the seller failed to produce witnesses for the sale. In this case, the judge (*qazi*) shall say to the possessor, "If you wish, confirm the pre-emptor's statement, take the price from him, and the liability (*uhda*) shall rest upon you." If he refuses, the pre-emptor shall take the house and pay the price to the seller, who in turn will return the price to the original buyer (*mushtari*), and the liability will fall upon the seller. Similarly, if the possessor claims the property was gifted (*hiba*) by someone, but the pre-emptor asserts it was a sale and the seller confirms the pre-emptor's claim, the same ruling as detailed above applies; this is found in *Al-Muhit*.

The sale of houses in Makkah al-Mukarramah is not valid, but their structures can be sold, and there is no right of pre-emption in them. Hasan bin Ziyad narrated from Imam al-Azam that the sale of houses in Makkah is valid and pre-emption applies to them as well; this is also the opinion of Imam Abu Yusuf and the decree (*fatwa*) follows this; this is in *Al-Qunyah*. It is stated in *Fatawa Itabiya* that if a pre-emptor constructs a building on the pre-empted property and later finds a defect (*ayb*) in the original property, he shall recover the loss in value from the buyer, and the buyer will recover from the seller, provided the buyer paid by order of the judge; this is in *Tatar-khaniya*. If a buyer purchased a house on the condition that the seller is free from all existing defects, or there was a known defect and the buyer accepted it, the pre-emptor still has the right to reject the defect and return the property; this is in *Fatawa Qazi Khan*.

It is written in *Al-Asl* that a person bought a house and he himself was its pre-emptor, while another person, who is absent, is also a pre-emptor. Then the buyer gave a room (*bayt*) with its access path as charity (*sadqa*) and sold the remainder. The absent pre-emptor returned and wished to nullify the buyer's charitable contract and the subsequent sale. If it is found that the buyer sold the remainder to the same person

who received the charity, the pre-emptor cannot nullify the charity for the entire property; however, he can do so for half. If the remainder was sold to someone else, the absent pre-emptor has the right to nullify the charity for the whole property. It is also mentioned in *Kitab al-Asl* that granting pre-emption in a sale even under the condition of compensation (*shart-e-iwaz*) constitutes acceptance of pre-emption. For instance, if a pre-emptor was informed a property was sold and he waived his right, but later discovered it was not a simple sale but a gift with compensation, he would not have the right to pre-emption. Likewise, waiving pre-emption in a gift with compensation is considered acceptance of pre-emption in a sale contract; this is in *Al-Muhit*.

A person bought a house and is its pre-emptor due to being a neighbor (*jiwar*). Then another neighbor sought pre-emption and the buyer gave him the entire house. In this case, half the house will be considered acquired via pre-emption and half via purchase; this is in *Al-Zahiriya*. If a house is sold on the condition that a specific person acts as a guarantor (*kafeel*) for the price, and that person happens to be the pre-emptor, his right of pre-emption is lost if he accepts the guarantee; this is in *Al-Qunyah*. If a settlement (*sulh*) is reached regarding a property in lieu of a debt, and both parties later admit there was no debt (1), the pre-emptor shall not have the right of pre-emption. However, if the transaction was a sale rather than a settlement, pre-emption applies; this is in *Tatar-khaniya*. A person bought a female slave for one thousand dirhams and both parties...

**Footnotes:** ے. Regarding rent, the seller is responsible for any claims/difficulties (*darak*) that arise. ل. For half, when the charity is half. ج. Acceptance by the seller; for example, if one waived pre-emption thinking it was a gift with compensation, but later it turned out to be a sale, pre-emption is lost. ۴. This occurred due to an error. (1) Even if both parties admit that there was no debt at all.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) (पृष्ठ 233) किताब-उश-शुफ़ा (प्रि-एम्पशन की पुस्तक)**

यदि यह बात सिद्ध हो जाए कि मूल्य (थमन) उतना ही था जितना कि शुफ़ी (pre-emptor) ने कहा था, तो उसका शुफ़ा (pre-emption) बातिल नहीं होगा; यह तातारख़ानिया में है। किसी व्यक्ति के अधिकार में एक घर (दार) है, फिर एक व्यक्ति आकर उसके शुफ़ा का दावा करता है और क़ाबिज़ (अधिकारी) से कहता है कि तुमने इसे अमुक व्यक्ति से खरीदा है, और उस अमुक व्यक्ति (विक्रेता/बाइ') ने उसके कथन की पुष्टि की। परंतु क़ाबिज़ ने कहा कि मुझे यह अपने पिता से विरासत में मिला है, और शुफ़ी ने गवाह दिए कि यह घर उक्त विक्रेता के पिता का था, जो मर गया और विक्रेता के लिए विरासत छोड़ गया, और उसने (विक्रेता ने) बिक्री के गवाह प्रस्तुत नहीं किए, तो क़ाज़ी (न्यायाधीश) क़ाबिज़ से कहेगा: यदि तुम चाहो तो शुफ़ी की बात मानकर उससे मूल्य ले लो, और इसकी जिम्मेदारी (ओहदा) तुम पर होगी। यदि उसने इनकार किया, तो शुफ़ी उस घर को लेकर उसका मूल्य विक्रेता को दे देगा, और विक्रेता वह मूल्य क्रेता (मुश्तरी) को दे देगा, और इसकी जिम्मेदारी विक्रेता पर होगी। इसी प्रकार यदि क़ाबिज़ ने कहा कि मुझे अमुक व्यक्ति ने यह उपहार (हिबा) में दिया है और शुफ़ी ने कहा कि तुमने इसे अमुक व्यक्ति से खरीदा है और विक्रेता ने शुफ़ी की पुष्टि की, तो इसमें भी वही आदेश है जिसका विवरण हमने दिया है; यह 'मुहीत' में है।

मक्का मुअज़्ज़मा के घरों की बिक्री वैध नहीं है, लेकिन उनकी इमारत बेची जा सकती है, और उनमें शुफ़ा भी नहीं है। हसन बिन ज़ियाद ने इमाम-ए-आज़म से रिवायत की है कि मक्का मुअज़्ज़मा के घरों की बिक्री वैध है और उनमें शुफ़ा भी होता है, और यही इमाम अबू यूसुफ़ का कथन है और इसी पर फ़तवा है; यह 'क़ुनया' में है। 'फ़तावा इताबिया' में लिखा है कि यदि शुफ़ी ने शुफ़ा वाले घर में इमारत बनाई और फिर उस घर में कोई दोष (ऐब) पाया, तो वह दोष के कारण हुई कमी के बराबर क्रेता से वापस लेगा, और क्रेता भी विक्रेता से वापस लेगा, बशर्ते क्रेता ने क़ाज़ी के आदेश से दिया हो; यह तातारख़ानिया में है। यदि क्रेता ने घर इस शर्त पर खरीदा कि विक्रेता उसके हर वर्तमान दोष से मुक्त है, या उसमें कोई ऐसा दोष था जिसे क्रेता जानता था लेकिन वह सहमत हो गया, तो शुफ़ी को अधिकार होगा कि वह दोष पर सहमत न हो और उसे वापस कर दे; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

'अस्ल' में लिखा है कि एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा और वह व्यक्ति उसका शुफ़ी था, और एक दूसरा व्यक्ति भी उसका शुफ़ी है जो अनुपस्थित है। फिर क्रेता ने उसमें से एक कमरा (बैत) उसके रास्ते सहित किसी को दान (सदक़ा) में दे दिया, फिर जो शेष बचा उसे बेच दिया। फिर अनुपस्थित शुफ़ी ने आकर चाहा कि क्रेता के दान के अनुबंध (अक़्द) को रद्द कर दे और उसकी बिक्री को भी

रद्द कर दे। फिर जब देखा गया कि क्रेता ने शेष घर उसी व्यक्ति को बेचा है जिसे दान दिया था, तो उसे यह अधिकार नहीं होगा कि पूरे घर में उसका दान रद्द करे, हाँ केवल आधे में रद्द कर सकता है। और यदि उसने शेष घर किसी दूसरे व्यक्ति को बेचा हो, तो अनुपस्थित शुफ़ी को अधिकार होगा कि वह पूरे घर का दान रद्द कर दे। 'किताबुल अस्ल' में यह भी लिखा है कि बिक्री में शुफ़ा देना शर्त-ए-अवज़ (प्रतिफल की शर्त) के मामले में भी शुफ़ा का स्वीकार मान लिया जाता है। यहाँ तक कि यदि शुफ़ी को यह सूचना दी गई कि शुफ़ा वाला घर बेचा गया है और उसने शुफ़ा छोड़ दिया, फिर ज्ञात हुआ कि बेचा नहीं गया बल्कि मालिक ने उसे शर्त-ए-अवज़ के साथ उपहार में दिया है, तो उसे शुफ़ा का अधिकार नहीं होगा। इसी प्रकार शर्त-ए-अवज़ वाले उपहार में शुफ़ा दे देना बिक्री के अनुबंध में भी शुफ़ा की स्वीकृति है; यह 'मुहीत' में है।

एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा और वह पड़ोसी होने के कारण उसका शुफ़ी है। फिर दूसरे पड़ोसी ने शुफ़ा की मांग की और क्रेता ने पूरा घर उसे दे दिया, तो आधा घर शुफ़ा के रूप में और आधा घर खरीद (बिक्री) के कारण माना जाएगा; यह 'ज़हीरिया' में है। यदि कोई घर इस शर्त पर बेचा गया कि अमुक व्यक्ति उसके मूल्य का ज़मानती (कफ़ील) होगा, जबकि वह व्यक्ति उसका शुफ़ी है, तो उसका शुफ़ा समाप्त हो जाएगा यदि उसने ज़मानत (कफ़ालत) स्वीकार कर ली; यह 'क़ुनया' में है। और यदि ऋण के बदले किसी घर पर समझौता (सुलह) हुआ, फिर दोनों ने स्वीकार किया कि कोई ऋण नहीं था (1), तो शुफ़ी को शुफ़ा नहीं मिलेगा। और यदि समझौते के बजाय बिक्री हुई हो, तो शुफ़ी को शुफ़ा मिलेगा; यह तातारख़ानिया में है। एक व्यक्ति ने एक दासी एक हज़ार दिरहम के बदले खरीदी और दोनों ने आपस में...

**पाद-टिप्पणियाँ (Footnotes):** ے. लगान के संबंध में जो कठिनाई (दरक) सामने आए, उसका उत्तरदायी विक्रेता (बाइ') है। ل. आधे में, जबकि दान (सदक़ा) आधा हो। ج. विक्रेता की स्वीकृति; जैसे कि यदि उसने शर्त-ए-अवज़ वाला उपहार समझकर शुफ़ा दे दिया, फिर पता चला कि वह बिक्री थी, तो शुफ़ा समाप्त हो गया। ۴. यह त्रुटिवश हुआ। (1) भले ही दोनों स्वीकार करें कि ऋण कुछ भी नहीं था।

یہ بات صحیح ہو جائے کہ ثمن اسی قدر تھا جس قدر شفیع نے کہا تھا تو اس کا شفعہ باطل نہ ہو جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص کے قبضہ میں ایک دار ہے پھر ایک شخص نے آ کر اس کے شفعہ کا دعویٰ کیا اور قابض سے کہا کہ تو نے اس کو فلاں شخص سے خریدا ہے اور فلاں شخص یعنی بائع نے اس کے قول کی تصدیق کی اور قابض نے کہا کہ میں نے اس کو اپنے باپ سے میراث میں پایا ہے اور شفیع نے اس بات کے گواہ دیئے کہ یہ دار بائع مذکور کے باپ کا تھا اور وہ مر گیا اور اس نے بائع کے واسطے میراث چھوڑا ہے اور اس نے بیع کے گواہ قائم نہ کئے تو قاضی قابض سے فرمائے گا کہ تیرا جی چاہے تو شفیع کے قول کی تصدیق کر کے اس سے ثمن لے لے اور عہدہ اس کا تجھ پر ہو گا پس اگر اس نے انکار کیا تو شفیع اس دار کو لے کر اس کا ثمن بائع کو دے دے گا اور بائع یہ ثمن مشتری کو دے دے گا اور اس کا عہدہ بائع پر ہو گا۔ اسی طرح اگر قابض نے کہا کہ مجھے فلاں شخص نے ہبہ کیا اور شفیع نے کہا کہ تو نے فلاں شخص سے خریدا ہے اور بائع نے شفیع کی تصدیق کی تو اس میں بھی وہی حکم ہے جو ہم نے تفصیل بیان کیا ہے یہ محیط میں ہے۔

دار ہائے مکہ معظمہ کی بیع صحیح نہیں لیکن ان کی عمارت فروخت کر سکتا ہے ان میں شفعہ بھی نہیں ہے اور حسن بن زیاد نے امام اعظم سے روایت کی کہ دار ہائے مکہ معظمہ کی بیع صحیح ہے اور اس میں شفعہ بھی ہوتا ہے اور یہی قول امام ابو یوسف کا ہے اور اسی پر فتویٰ ہے یہ قنیہ میں ہے۔ فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے کہ اگر شفیع نے دار مشفوعہ میں عمارت بنائی پھر دار مذکور میں کوئی عیب پایا تو بقدر نقصان عیب مشتری سے واپس لے گا اور مشتری بھی بائع سے واپس لے گا بشرطیکہ مشتری نے بحکم قاضی دیا ہو یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر مشتری نے ایک

دار اس شرط سے خریدا کہ بائع اس کے ہر عیب موجودہ سے بری ہے یا اس میں کوئی عیب ایسا موجود تھا جس کو مشتری جانتا تھا مگر وہ راضی ہو گیا تو شفیع کو اختیار ہو گا کہ عیب پر راضی نہ ہو اور واپس کر دے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اصل میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے ایک دار خریدا اور یہ شخص اس کا شفیع تھا اور ایک شخص دوسرا اس کا شفیع ہے کہ وہ غائب ہے پھر مشتری نے اس میں سے ایک بیت مع اس کے راستہ کے کسی کو صدقہ میں دے دیا پھر جو کچھ باقی رہا اس کو فروخت کر دیا پھر شفیع غائب نے آکر چاہا کہ مشتری کا عقد صدقہ توڑ دے اور اس کی بیع توڑ دے پھر جو دیکھا تو مشتری نے باقی دار اسی شخص کے ہاتھ فروخت کیا ہے جس کو صدقہ دیا تھا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ کل دار میں اس کا صدقہ توڑ دے ہاں فقط آدھے میں توڑ سکتا ہے اور اگر اس نے باقی دار کسی دوسرے شخص کے ہاتھ فروخت کیا ہو تو شفیع غائب کو اختیار ہو گا کہ اس کا کل دار کا صدقہ توڑ دے اور یہ بھی کتاب الاصل میں لکھا ہے کہ بیع میں شفعہ دینا بہ شرط عوض میں بھی تسلیم شفعہ ہو جاتا ہے حتیٰ کہ اگر شفیع کو یہ خبر دی گئی کہ دار مشفوعہ فروخت کیا گیا ہے پس اس نے شفعہ دے دیا پھر ظاہر ہوا کہ فروخت نہیں کیا گیا بلکہ مالک نے بہ شرط عوض ہبہ کیا ہے تو اس کو استحقاق شفعہ نہ ہوگا اسی طرح ہبہ بشرط عوض میں شفعہ دے دینا عقد بیع میں بھی تسلیم شفعہ ہے یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نے ایک دار خریدا اور وہ بسبب جوار کے اس کا شفیع ہے۔ پھر دوسرے جار نے شفعہ طلب کیا اور مشتری نے پورا دار اس کو دے دیا تو نصف دار شفعہ میں اور نصف دار بوجہ خرید (بیع کیا) کے قرار دیا جائے گا یہ ظہیریہ میں ہے اگر کوئی دار اس شرط سے فروخت کیا کہ فلاں شخص اس کے ثمن کا کفیل ہو حالانکہ یہ شخص اس کا شفیع ہے تو اس کا شفعہ نہ رہے گا اگر کفالت قبول کی یہ قنیہ میں ہے اور اگر قرضہ سے کسی دار پر صلح واقع ہوئی پھر دونوں نے

اقرار کیا کہ قرضہ کچھ نہ تھا (۱) تو شفیع کو شفعہ نہ ملے گا اور اگر بجائے صلح کے بیع واقع ہوئی ہو تو شفیع کو شفعہ ملے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک باندی بعوض ہزار درہم کے خریدی اور دونوں نے باہم

**حواشی:** ے لگان کی بابت جو درک پیش آئے بائع اس کا ذمہ دار ہے۔ ل آدھے میں جبکہ صدقہ نصف ہو۔ ج تسلیم بائع چنانچہ اگر ہبہ بشرط عوض جان کر شفعہ دیا پھر معلوم ہوا کہ بیع ہوا ہے تو شفعہ نہ رہا۔ ۴ غلطی سے ایسا واقع ہوا۔ (۱) اگرچہ دونوں اقرار کریں کہ قرضہ کچھ نہ تھا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (234) Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

Having taken possession, the buyer then discovers a defect in the slave girl that causes a loss of one-tenth of her value. Whether the seller admits to it or denies it, they reach a settlement involving a house (*dar*). The pre-emptor (*shafi'*) may, based on juristic preference (*istihsan*), take this house in exchange for the portion corresponding to the defect. This is because such a defect is considered as property (*mal*); for this reason, if returning the slave girl is impossible, the buyer receives the amount of the loss in value, whereas taking compensation for a mere right is not permissible (1). If the buyer purchases something in exchange for this defective portion, the sale is valid. Thus, it is proven that this house was acquired in exchange for wealth. The buyer has the option to sell both at the full price on a *Murabaha* basis (cost-plus-profit sale where costs are disclosed), but he does not have the option to sell the house and the slave girl on a *Murabaha* basis without disclosure. If the buyer, after finding a defect in the said house, returns it before the pre-emptor exercises the right of pre-emption, the pre-emption becomes void, and the buyer's original argument regarding the defect remains (2). The buyer has the option, as long as he has not taken the compensation for the defect, to sell the slave girl at the full price on a *Murabaha* basis. If a person buys a house and settles for a slave boy in exchange for its defect, the pre-emptor can take that house in exchange for the corresponding portion of the price. If he takes it, and the said slave boy is later rightfully claimed by someone else (*istihqaq*), or returned due to the option of inspection (*khiyar al-ru'yat*), or returned according to a condition of the settlement, the pre-emptor has the choice: either to give the portion for the defect to the buyer or to return the house. The buyer will hold his argument (3) against the seller, provided the buyer took it by court order (4), because this constitutes an annulment (*faskh*) regarding everyone's rights. Similarly, if the buyer returns the said slave boy to the seller due to a defect by court order, the same ruling applies. However, if it was returned by mutual consent, nothing shall be mandatory upon the pre-emptor; this is mentioned in *Al-Kafi*.

It should be clear that any rightful claim (*istihqaq*) arising from a right existing before the sale contract renders the contract void, while that which arises after the contract does not. Suppose a person buys a house for one thousand dirhams, then the buyer increases its price, or someone makes a claim against it and the buyer settles it by paying something while denying the claim. Then, the pre-emptor takes it by court order for one thousand dirhams. The buyer shall recover from the seller whatever amount he added to the price, and he shall recover from the claimant whatever he

gave as consideration for the settlement. This is because, due to the prior right of pre-emption, he had already become the rightful owner of the house before both the settlement's annulment and the price increase. Therefore, his right caused the nullification of both the settlement and the price increase from the outset. If the buyer gives this house to the pre-emptor without a court order, he shall recover from the seller the amount by which he increased the price, but he cannot recover the settlement consideration from the claimant. If the buyer is also a pre-emptor of the house and, after taking possession, gifts the house to someone, another pre-emptor has the option to take half the house through pre-emption. Once he takes it, the gift of the remaining half also becomes void; this is in *Tatar-khaniya*. If a person testifies regarding a house that it belongs to such-and-such person, but his testimony is rejected, and then that same witness buys the house, and there is a pre-emptor for it, that pre-emptor will have a greater right to that house compared to the said witness (5). If there is no pre-emptor, but the buyer bought it for someone else who had commanded him to buy it, the house goes to the principal (*muwakkil*), not the witness. If the buyer bought it for himself and the pre-emptor is absent, the witness has the option to take the house from the buyer. If the buyer subsequently buys the house back from the witness before the pre-emptor appears, then upon the pre-emptor's appearance, he has the choice to take the house based on either the first purchase or the second purchase. If someone else buys the house from the possessor and then the witness buys it from that person, the pre-emptor has the choice to take it based on the first or second sale. Provided he made the sale for the person for whom the witness made the admission and testimony. 1- It shall only go to the pre-emptor.

**Footnotes:** (1) Thus, it is proven that a defect is not merely a right. (2) Then he can claim for the defect and receive compensation. (3) In the argument regarding the defect. (4) That the house was taken back from the pre-emptor by court order.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 (234) किताब अल-शुफ़ा**

कब्ज़ा कर लिया, फिर क्रेता (खरीददार) ने दासी में ऐसा दोष पाया जिससे दासी के मूल्य में दसवें हिस्से की कमी आती है, फिर विक्रेता ने चाहे स्वीकार किया हो या इनकार, मगर एक घर पर समझौता कर लिया, तो शुफ़ा करने वाला (शफ़ी) उस घर को दोष के बदले के रूप में ले सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि यह दोष धन के समान है, इसी कारण यदि वापस करना असंभव हो, तो क्रेता दोष के कारण हुई मूल्य की कमी वापस लेता है, जबकि केवल अधिकार का मुआवजा लेना जायज़ नहीं है (1)। और यदि इस दोष के बदले कोई चीज़ खरीदे तो बिक्री जायज़ होती है। अतः सिद्ध हुआ कि यह घर धन के बदले प्राप्त किया गया है। क्रेता को यह अधिकार है कि वह उन दोनों को पूरे मूल्य पर 'मुराबाहा' (लाभ बताकर) बेच दे, लेकिन उसे यह अधिकार नहीं है कि घर और दासी को बिना बताए मुराबाहा पर बेचे। यदि क्रेता ने उस घर में दोष पाकर शफ़ी के शुफ़ा में लेने से पहले उसे वापस कर दिया, तो शुफ़ा रद्द हो जाएगा और दोष के मामले में क्रेता अपनी पुरानी दलील पर रहेगा (2)। क्रेता को यह अधिकार है कि जब तक उसने दोष का हर्जाना नहीं लिया है, तब तक दासी को पूरे मूल्य पर मुराबाहा से बेच दे। एक व्यक्ति ने एक घर खरीदा और उसके दोष के बदले एक गुलाम पर समझौता कर लिया, तो शफ़ी उस घर को उसके मूल्य के हिस्से के बदले ले सकता है। फिर यदि उसने ले लिया और वह गुलाम किसी अन्य के अधिकार में निकल गया या उसे 'खियार-ए-रुय्यत' (देखने के विकल्प) के कारण वापस कर दिया गया या समझौते की किसी शर्त के अनुसार वापस कर दिया गया, तो शफ़ी को विकल्प होगा कि वह चाहे तो दोष का हिस्सा क्रेता को दे दे या घर वापस कर दे। विक्रेता के मुकाबले क्रेता अपनी दलील (3) पर होगा, बशर्ते क्रेता ने उसे अदालत के आदेश (4) से लिया हो, क्योंकि यह सबके अधिकार में निरस्तीकरण (फ़स्ख) है। इसी प्रकार यदि क्रेता ने उक्त गुलाम को दोष के कारण अदालत के आदेश से विक्रेता को वापस कर दिया हो, तो भी यही नियम है। और यदि आपसी सहमति से वापस किया हो, तो शफ़ी पर कुछ अनिवार्य नहीं होगा, यह 'काफ़ी' में है।

यह स्पष्ट होना चाहिए कि जो अधिकार बिक्री अनुबंध (निकाह-ए-बैय) से पहले किसी हक़ की वजह से हो, वह अनुबंध को अमान्य कर देता है, और जो अनुबंध के बाद उत्पन्न हो, वह अमान्य नहीं करता। एक व्यक्ति ने एक घर एक हज़ार दिरहम में खरीदा, फिर क्रेता ने उसके मूल्य में वृद्धि कर दी या किसी ने उस पर दावा किया और क्रेता ने इनकार करते हुए कुछ देकर समझौता कर लिया, फिर शफ़ी ने अदालत के आदेश से उसे एक हज़ार दिरहम के बदले शुफ़ा में लिया। तो क्रेता ने मूल्य

में जितनी वृद्धि की थी, वह विक्रेता से वापस लेगा, और दावेदार को समझौते के बदले जो कुछ दिया था, वह दावेदार से वापस लेगा। क्योंकि समझौता रद्द होने और मूल्य वृद्धि, दोनों से पहले ही शुफ़ा के अधिकार के कारण वह उस घर का हकदार हो चुका था। अतः उसका अधिकार इन दोनों के अमान्य होने का कारण बना। और यदि क्रेता ने अदालत के आदेश के बिना यह घर शफ़ी को दे दिया हो, तो उसने मूल्य में जितनी वृद्धि की थी, उसे विक्रेता से वापस लेगा, लेकिन दावेदार से समझौते का बदला वापस नहीं ले सकता। यदि क्रेता भी उस घर का शफ़ी हो और उसने कब्ज़ा करके घर किसी को दान (हिबा) कर दिया, तो दूसरे शफ़ी को अधिकार होगा कि वह आधा घर शुफ़ा में ले ले, और जब उसने ले लिया, तो शेष आधे में भी दान अमान्य हो जाएगा, यह 'तातारखानिया' में है। एक व्यक्ति ने किसी घर के बारे में गवाही दी कि यह अमुक व्यक्ति का है, लेकिन उसकी गवाही खारिज कर दी गई, फिर उसी गवाह ने वह घर खरीदा और उसका कोई शफ़ी है, तो वह शफ़ी उस गवाह (5) के मुकाबले उस घर का अधिक हकदार होगा। यदि उसका कोई शफ़ी न हो, बल्कि क्रेता ने उसे किसी अन्य व्यक्ति के लिए खरीदा हो जिसने उसे खरीदने का आदेश दिया था, तो यह घर मुवक्किल (आदेश देने वाले) को मिलेगा, न कि गवाह को। यदि क्रेता ने अपने लिए खरीदा और उसका शफ़ी अनुपस्थित है, तो गवाह को अधिकार होगा कि वह घर क्रेता से ले ले। फिर यदि क्रेता ने गवाह से दोबारा यह घर खरीदा, इससे पहले कि शफ़ी उपस्थित हो, तो शफ़ी के आने पर उसे अधिकार होगा कि वह घर पहली खरीद पर ले या दूसरी पर। और यदि उक्त घर पर कब्ज़ा करने वाले से किसी दूसरे व्यक्ति ने खरीदा और फिर उससे उस गवाह ने खरीदा, तो शफ़ी को अधिकार होगा कि वह पहली बिक्री पर ले या दूसरी पर। अतः यदि उसने बिक्री उस व्यक्ति के लिए की जिसके लिए गवाह ने इकरार और गवाही दी थी। 1- केवल शफ़ी को मिलेगा।

(1) अतः सिद्ध हुआ कि दोष केवल अधिकार नहीं है। (2) फिर दोष का दावा कर सकता है और हर्जाना ले सकता है। (3) दोष की दलील में। (4) घर को शफ़ी से अदालत के आदेश द्वारा वापस लिया गया हो।

---

قبضہ کر لیا پھر مشتری نے باندی میں ایسا عیب پایا کہ جس سے باندی میں دسویں حصہ کا نقصان آتا ہے پھر بائع نے خواہ اقرار کیا یا انکار کیا مگر ایک دار پر صلح کر لی تو شفیع اس دار کو استحساناً بعوض حصہ عیب کے لے سکتا ہے اس واسطے کہ یہ عیب مال ہے اسی وجہ سے اگر واپس کرنا ممتنع ہوتا ہے تو قیمت نقصان مشتری واپس لیتا ہے حالانکہ محض حق کا معاوضہ لینا نہیں جائز (۱) ہے اور اگر اس حصہ عیب کے عوض کوئی چیز خریدے تو بیع جائز ہوتی ہے پس ثابت ہوا کہ یہ دار بمقابلہ مال کے حاصل کیا ہے اور مشتری کو اختیار ہے کہ ان دونوں کو پورے ثمن پر بطور مرابحہ فروخت کرے اور یہ اختیار نہیں ہے کہ دار اور باندی کو بدون بیان کے مرابحہ سے فروخت کرے اور اگر مشتری نے دار مذکور میں عیب پا کر شفیع کے شفعہ میں لینے سے پہلے واپس کر دیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا اور عیب کے بارے میں مشتری اپنی حجت سابقہ پر ہو جائے گا (۲) اور مشتری کو اختیار ہے کہ جب تک اس نے نقصان عیب نہیں لیا ہے تب تک باندی کو پورے ثمن پر مرابحہ سے فروخت کرے ایک شخص نے ایک دار خریدا اور اس کے عیب سے ایک غلام پر صلح کر لی تو شفیع اس دار کو اس کے حصہ ثمن کے عوض لے سکتا ہے پس اگر اس نے لے لیا پھر غلام مذکور استحقاق میں لے لیا گیا یا بخیار رویت واپس دیا گیا یا صلح کی کسی شرط کے موافق واپس دیا گیا تو شفیع کو اختیار ہوگا چاہے حصہ عیب مشتری کو دے دے یا دار واپس کر دے اور مشتری بمقابلہ بائع کے اپنی حجت (۳) پر ہوگا بشرطیکہ مشتری نے اس کو بحکم قضاء (۴) لیا ہو کیونکہ یہ سب کے حق میں فسخ ہے اسی طرح اگر مشتری نے غلام مذکور بسبب عیب کے بحکم قاضی بائع کو واپس دیا ہو تو بھی یہی حکم ہے اور اگر باہمی رضامندی سے واپس دیا ہو تو شفیع پر کچھ لازم نہ آئے گا یہ کافی میں ہے۔

واضح ہو کہ جو استحقاق عقد بیع سے پہلے کسی حق کی وجہ سے ہو وہ عقد کو باطل کر دیتا ہے اور جو عقد سے متاخر پیدا ہوا ہو وہ باطل نہیں کرتا ہے۔ ایک شخص دار نے ایک ہزار درہم کو خریدا پھر مشتری نے اس کے ثمن میں بڑھا دیا یا اس میں کسی نے کچھ دعویٰ کیا اور مشتری نے بانکار کچھ دے کر صلح کر لی پھر شفیع نے اس کو بحکم قاضی ہزار درہم کے عوض شفعہ میں لیا تو مشتری نے جس قدر ثمن میں بڑھا دیا ہے وہ بائع سے واپس لے گا اور مدعی کو جو کچھ بدل صلح میں دیا ہے مدعی سے واپس لے گا اس واسطے کہ فسخ عقد صلح اور زیادتی ثمن دونوں سے سابق حق شفعہ کی وجہ سے اس دار کا مستحق ہو چکا ہے پس اس کا استحقاق اس صلح و زیادہ ثمن دونوں کے بطلان کا سرے سے موجب ہوا اور اگر مشتری نے بغیر حکم قاضی یہ دار شفیع کو دے دیا ہو تو جس قدر اس نے ثمن میں بڑھایا ہے اس کو بائع سے واپس لے گا مگر مدعی سے بدل صلح واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر مشتری بھی اس دار کا شفیع ہو اور مشتری نے قبضہ کر کے دار مذکور کسی کو ہبہ کر دیا تو دوسرے شفیع کو اختیار ہوگا کہ نصف دار شفعہ میں لے لے اور جب اس نے لے لیا تو باقی نصف میں بھی ہبہ باطل ہو جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے کسی دار کی نسبت گواہی دی کہ یہ فلاں شخص کا ہے مگر اس کی گواہی رد کر دی گئی پھر اسی گواہ نے وہ دار خریدا اور اس کا کوئی شخص شفیع ہے تو یہ شفیع نسبت گواہ مذکور کے مقررہ (۵) کے اس دار کا زیادہ حقدار ہوگا اور اگر اس کا کوئی شفیع نہ ہو بلکہ مشتری نے اس کو کسی غیر شخص کے واسطے جس نے مشتری کو اس کے خریدنے کا حکم دیا تھا خریدا کیا تو یہ دار موکل کو ملے گا نہ مقررہ کو اور اگر مشتری نے اپنے واسطے خریدا اور اس کا شفیع غائب ہے تو مقررہ کو اختیار ہوگا کہ دار مذکور مشتری سے لے لے پھر اگر مشتری نے مقررہ سے دوبارہ یہ دار خریدا قبل اس کے کہ شفیع حاضر ہو تو شفیع کو حاضر ہونے کے بعد اختیار ہوگا چاہے دار مذکور کو خرید اول پر لے لے یا خرید ثانی پر لے لے اور اگر دار مذکور

قابض سے کسی دوسرے شخص نے خریدا پھر مشتری سے اس گواہ مذکور نے خریدا تو شفیع کو اختیار ہوگا چاہے بیع اول پر لے لے یا ثانی پر۔ پس اگر اس نے بیع جس شخص کے واسطے گواہ نے اقرار کیا اور گواہی دی ہے۔ ۱- فقط شفیع کو ملے گا۔

(۱) پس ثابت ہوا کہ عیب محض حق نہیں ہے۔ (۲) پھر عیب کا دعویٰ کر سکتا ہے اور نقصان لے سکتا ہے۔ (۳) حجت عیب میں۔ (۴) دار کو شفیع سے بحکم قاضی واپس لیا ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (5) 235 Kitab al-Shufa (Book of Pre-emption)**

If it was taken based on the first [claim], then the second sale will be void, and the mentioned witness will recover his price from his seller. If both the seller and the buyer unanimously admitted that the sale contract was for the purpose of evasion (*talji'a*) or that there was an option of rescission (*khayar*) for either the seller or the buyer in this contract, and both rescinded the contract (1), then their admission will not be verified regarding the right of the pre-emptor (*shafi'*), and the pre-emptor will be granted the right of pre-emption (*shufa*). If a person ordered another to buy a specific house for him in exchange for a specific slave belonging to him, and he did so, then this purchase will be valid on behalf of the principal (*muvakkil*), and the agent (*vakeel*) will recover the price of that specific slave from his principal. If two houses are adjacent to each other and each house is jointly owned by two specific individuals, and then each sells his share of one house in exchange for the other's share in the second house, then the right of pre-emption remains between these two [partners] and will not be available to neighbors; this is mentioned in *Al-Kafi*. If a house is sold and there are three pre-emptors for it, one of whom is present and claims and takes the entire pre-emption, and subsequently, one of the two absentees appears, he shall have the option to take half of what the first one possessed. If he settles with him for one-third, he has that choice. If the third pre-emptor then appears, they shall take the possession of the one-third holder, combine it with the possession of the second, and divide it equally among themselves. If there is a fourth partner with them, they shall take half from the possession of the one-third holder, combine it with the second's possession, and divide it into three thirds; the one-third holder will receive one third. Thus, these people will receive fifteen shares in total, with five shares for each. If the fourth pre-emptor only gained control over the person who took only a third, and the house was divided into eighteen shares, then he will take half of the possession from that one-third holder. There are three pre-emptors for a house, and two of them bought the said house on the condition that one would have a sixth share and the other would have the remainder; the purchase is valid, and neither shall have the right of pre-emption over the other's share. If the third pre-emptor subsequently appears, the said house will be divided into eighteen shares, of which the buyer of the sixth share will receive two shares and the other two will receive eight shares each, and the derivation of the case will be from nine. If the third pre-emptor only found the buyer of the sixth share and not the other, he shall take half from his possession; if he found the other as well, then the said house

will be divided among those people into eighteen shares according to the statement mentioned above. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

A person bought half a house, which a neighbor (*jar*) then took [by pre-emption] and settled its division/exchange (*muqamma/buwara*) with the seller by the judge's order or mutual consent. If a pre-emptor who is a partner in the shared pathway then appears, he shall take all of the neighbor's possession. He cannot overturn this division, contrary to a situation where a house was bought and two pre-emptors took it and divided it among themselves, and then a third pre-emptor appeared; in that case, if he does not meet both pre-emptors but only finds one, he cannot take half from his possession but shall take a quarter. If a buyer says to one of two pre-emptors, "I bought this house by your order and for you," and the beneficiary confirms it but the second pre-emptor denies it, then the house will be jointly shared between both by right of pre-emption. If the buyer said, "This house is yours; it was never mine, or you bought it before me, or I gifted it to you and you took possession of it," and the beneficiary confirmed it while the second pre-emptor denied it, then the beneficiary's pre-emption becomes void, and the entire pre-emption will go to the other; this is in *Al-Kafi*. If a *mufawid* partner sold his specific ancestral house and his partner is a pre-emptor of that house through his own specific ancestral house, then the said pre-emptor will not have the right of pre-emption in it; this is in *Al-Mabsut*. And if one of two *mufawid* partners [bought] from the other's...

(1) But the pre-emptor denied [it].

(Footnote) *Mufawid*: refers to two trading partners who have equality in wealth and where each is a guarantor (*kafeel*) for the other; each is a *mufawid*. A full description is in the *Kitab al-Shirka* (Book of Partnership). It should be clear that the conditions applicable to *mufawid* partners do not apply to the capital provider (*rabb al-mal*) and the working partner (*mudarib*).

यदि पहले पर ले लिया गया तो दूसरी बिक्री शून्य (बातिल) हो जाएगी और उल्लेखित गवाह अपनी क़ीमत (समल) अपने विक्रेता से वापस लेगा। यदि विक्रेता और खरीदार दोनों ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया कि बिक्री का अनुबंध दिखावटी (तलजीआ) था या इस अनुबंध में विक्रेता या खरीदार के लिए विकल्प (ख़यार) था और दोनों ने अनुबंध रद्द कर दिया (1), तो शुफ़ा के अधिकार (हक़-ए-शफ़ी) के संबंध में उन दोनों की स्वीकारोक्ति को सत्यापित नहीं किया जाएगा और शफ़ी को शुफ़ा का अधिकार प्राप्त होगा। एक व्यक्ति ने दूसरे को आदेश दिया कि वह अमुक निश्चित घर को उसके अमुक निश्चित ग़ुलाम के बदले उसके लिए खरीदे; उसने वैसा ही किया, तो यह खरीद मुवक्किल (आदेश देने वाले) के लिए मान्य होगी और वकील (प्रतिनिधि) उस निश्चित ग़ुलाम की क़ीमत अपने मुवक्किल से ले लेगा। दो घर एक-दूसरे से सटे हुए हैं और दोनों में से प्रत्येक घर दो विशिष्ट व्यक्तियों के बीच साझा है, फिर प्रत्येक ने अपने एक घर का हिस्सा दूसरे के दूसरे घर के हिस्से के बदले बेच दिया, तो शुफ़ा का अधिकार उन्हीं दोनों के बीच रहेगा, पड़ोसियों को नहीं मिलेगा; यह 'अल-काफ़ी' में दर्ज है। एक घर बेचा गया और उसके तीन शफ़ी हैं, उनमें से एक उपस्थित है और उसने पूरे शुफ़ा की मांग की और उसे ले लिया, फिर दो अनुपस्थितों में से एक उपस्थित हुआ, तो उसे अधिकार होगा कि वह पहले वाले के कब्जे का आधा हिस्सा ले ले, और यदि उसने एक तिहाई पर उससे समझौता कर लिया, तो उसे ऐसा विकल्प प्राप्त है। फिर यदि तीसरा उपस्थित हुआ, तो वे एक तिहाई वाले के कब्जे को लेकर उसे दूसरे के कब्जे में मिलाकर बराबर विभाजित कर लेंगे। और यदि उनके साथ कोई चौथा भागीदार हो, तो वे एक तिहाई वाले के कब्जे से आधा लेकर दूसरे के कब्जे में मिलाकर तीन तिहाई में बाँट लेंगे, एक तिहाई वाले को एक तिहाई मिलेगा; इस प्रकार उन लोगों को कुल पंद्रह हिस्से मिलेंगे, प्रत्येक को पाँच हिस्से। और यदि चौथे ने केवल उस व्यक्ति पर अधिकार पाया जिसने केवल एक तिहाई लिया था और यह घर अठारह हिस्सों में विभाजित हुआ था, तो वह एक तिहाई वाले से उसके कब्जे का आधा हिस्सा लेगा। एक घर के तीन शफ़ी हैं, उनमें से दो ने उल्लेखित घर को इस शर्त पर खरीदा कि एक का छठा हिस्सा होगा और शेष दूसरे का होगा, तो खरीद मान्य है और किसी को दूसरे के हिस्से में शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। फिर यदि तीसरा उपस्थित हुआ, तो उल्लेखित घर के अठारह हिस्से किए जाएंगे, जिनमें से छठे हिस्से के खरीदार को दो हिस्से और शेष दोनों को आठ-आठ हिस्से मिलेंगे और मसले का समाधान नौ से होगा। और यदि तीसरे शफ़ी ने केवल छठे हिस्से के खरीदार को पाया और दूसरे को नहीं, तो वह उसके कब्जे का आधा हिस्सा ले

लेगा और यदि दूसरे को भी पाया, तो उल्लेखित घर उपरोक्त विवरण के अनुसार उन लोगों के बीच अठारह हिस्सों में विभाजित होगा। यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में दर्ज है।

एक व्यक्ति ने आधा घर खरीदा, उसे पड़ोसी (जार) ने ले लिया और विक्रेता से न्यायाधीश (काजी) के आदेश या आपसी सहमति से उसका बँवारा (मुक़ामा/बवारा) कर लिया, फिर एक शफ़ी जो रास्ते में भागीदार है, उपस्थित हुआ, तो वह पड़ोसी का पूरा कब्जा ले लेगा। वह इस बँवारे को तोड़ नहीं सकता, इसके विपरीत यदि एक घर खरीदा गया और उसे दो शफ़ियों ने ले लिया और आपस में विभाजित कर लिया, फिर तीसरा शफ़ी उपस्थित हुआ, तो यदि वह दोनों शफ़ियों से नहीं मिलता बल्कि केवल एक को पाता है, तो वह उसके कब्जे का आधा हिस्सा नहीं ले सकता बल्कि चौथाई हिस्सा लेगा। एक खरीदार ने दो शफ़ियों में से एक से कहा कि "मैंने यह घर तुम्हारे आदेश से तुम्हारे लिए खरीदा है", तो जिसे संबोधित किया गया उसने इसकी पुष्टि की लेकिन दूसरे शफ़ी ने इसे झुठला दिया, तो उल्लेखित घर शुफ़ा के अधिकार के तहत दोनों के बीच साझा होगा। और यदि खरीदार ने कहा कि "यह घर तुम्हारा है, मेरा था ही नहीं या मुझसे पहले तुमने इसे खरीदा था या मैंने तुम्हें दान (हिबा) कर दिया था और तुमने इस पर कब्जा कर लिया था", फिर मुक़र्र-लहू (जिसके पक्ष में स्वीकार किया गया) ने इसकी पुष्टि की और दूसरे शफ़ी ने झुठला दिया, तो मुक़र्र-लहू का शुफ़ा शून्य हो गया और पूरा शुफ़ा दूसरे को मिलेगा; यह 'अल-काफ़ी' में है। यदि मुफ़ाविद (विशिष्ट साझेदार) ने अपना पैतृक विशेष घर बेचा और उसका भागीदार अपने पैतृक विशेष घर के माध्यम से उस घर का शफ़ी है, तो उक्त शफ़ी को उसमें शुफ़ा का अधिकार प्राप्त नहीं होगा; यह 'मबसूत' में है। और यदि दो मुफ़ाविद भागीदारों में से एक ने दूसरे का...

(1) लेकिन शफ़ी ने इनकार कर दिया।

(पादलेख) मुफ़ाविद: ऐसे दो व्यापारिक भागीदार जिनके बीच संपत्ति में समानता है और प्रत्येक दूसरे का ज़मानतदार (कफ़ील) है, प्रत्येक मुफ़ाविद है। इसका पूर्ण विवरण 'किताब अल-शिरकत' में है। स्पष्ट रहे कि मुफ़ाविद भागीदारों में जो शर्त है, वह रब्बुल-माल और मुदारिब के बीच नहीं होती।

---

اوّل پر لیا تو بیع ثانی باطل ہو جائے گی اور گواہ مذکور اپنا ثمن اپنے بائع سے واپس لے گا۔ بائع و مشتری دونوں نے بالاتفاق اقرار کیا کہ عقد بیع بطور تلجئہ تھا یا اس عقد میں بائع یا مشتری کے واسطے خیار تھا اور دونوں نے عقد فسخ کر دیا (۱) تو حق شفیع میں دونوں کے اقرار کی تصدیق نہ کی جائے گی اور شفیع کو شفعہ ملے گا ایک شخص نے دوسرے کو حکم دیا کہ فلاں دار معین بعوض اپنے فلاں غلام معین کے میرے واسطے خرید دے اس نے ایسا ہی کیا تو یہ خرید موکل کے واسطے صحیح ہوگی اور وکیل اس غلام معین کی قیمت اپنے موکل سے لے لے گا۔ دو دار باہم متصل ہیں اور دونوں میں سے ہر ایک دار خاص دو آدمیوں میں مشترک ہے پھر ہر ایک نے اپنا ایک دار کا حصہ بعوض دوسرے کے دوسرے دار کے حصہ کے فروخت کیا تو شفعہ انہی دونوں میں رہے گا پڑوسیوں کو نہ ملے گا یہ کافی میں ہے۔ ایک دار فروخت کیا گیا اور اس کے تین شفیع ہیں ان میں سے ایک حاضر ہے اور اس نے کل شفعہ میں طلب کیا اور لے لیا پھر دونوں غائب میں سے ایک حاضر ہوا تو اس کو اختیار ہو گا کہ اوّل کے مقبوضہ کا نصف لے لے اور اگر اس نے ایک تہائی پر اس سے صلح کی تو اس کو ایسا اختیار ہے پھر اگر تیسرا حاضر ہوا تو تہائی والے کا مقبوضہ لے کر اس کو دوسرے کے مقبوضہ میں ملا کر برابر تقسیم کر لیں گے اور اگر ان کے ساتھ کوئی چوتھا شریک ہو تو تہائی والے کے مقبوضہ میں سے نصف لے کر دوسرے کے مقبوضہ میں ملا کر تین تہائی تقسیم کر لیں گے تہائی والے کو تہائی ملے گا پس ان لوگوں کو سب پندرہ حصے ہر ایک کو پانچ حصے ملیں گے اور اگر چوتھے نے فقط اس شخص پر قابو پایا جس نے فقط تہائی لیا ہے اور یہ دار اٹھارہ حصوں میں تقسیم ہوا ہے تو تہائی والے سے اس کے مقبوضہ کا آدھا لے گا۔ ایک دار کے تین شفیع ہیں ان میں سے دو نے دار مذکور کو اس شرط سے

خریدا کہ ایک کا چھٹا حصہ اور باقی دوسرے کا ہو گا تو خرید صحیح ہے اور کسی کو دوسرے کے حصہ میں شفعہ حاصل نہ ہو گا پھر اگر تیسرا حاضر ہوا تو دار مذکور کے اٹھارہ حصے کئے جائیں گے جن میں سے چھٹے حصے کے خریدار کو دو حصے اور باقی دونوں کو آٹھ آٹھ حصے ملیں گے اور مسئلہ کی تخریج نو سے ہو گی اور اگر شفیع ثالث نے فقط چھٹے حصے کے خریدار کو پایا اور دوسرے کو نہ پایا تو اس کے مقبوضہ میں سے نصف لے لے گا اور اگر دوسرے کو بھی پایا تو دار مذکور کو موافق بیان مذکور بالا کے ان لوگوں میں اٹھارہ حصوں میں تقسیم ہو گا۔ یہ محیط سرخسی میں ہے۔

ایک شخص نے نصف دار خرید کیا اس کو جار نے لے لیا اور بائع سے بحکم قاضی یا بتراضی اس کا مقامہ (بوارہ) کر لیا پھر ایک شفیع جو راستہ میں شریک ہے حاضر ہوا تو وہ جار کا مقبوضہ سب لے لے گا۔ اس تقسیم کو نہیں توڑ سکتا ہے بخلاف اس کے اگر ایک دار خریدا اور اس کو دو شفیعوں نے لے لیا اور باہم تقسیم کر لیا پھر تیسرا شفیع حاضر ہوا پس اگر اس سے دونوں شفیعوں سے ملاقات نہ ہو گی بلکہ اس نے ایک ہی کو پایا تو اس کے مقبوضہ میں سے نصف نہیں لے سکتا ہے بلکہ چوتھائی لے گا۔ ایک مشتری نے دو شفیعوں میں سے ایک سے کہا کہ میں نے یہ دار تیرے حکم سے تیرے واسطے خریدا ہے پس مقر لہ نے اس کی تصدیق کی مگر دوسرے شفیع نے تکذیب کی تو دار مذکور دونوں کے درمیان بحق شفعہ مشترک ہو گا اور اگر مشتری نے کہا کہ یہ دار تیرا ہے میرا تھا ہی نہیں یا مجھ سے پہلے تو نے اس کو خرید اتھایا میں نے تجھے ہبہ کر دیا اور تو نے اس پر قبضہ کر لیا پس مقر لہ نے اس کی تصدیق کی اور دوسرے شفیع نے تکذیب کی تو مقر لہ کا شفعہ باطل ہو گیا اور پورا شفعہ دوسرے کو ملے گا یہ کافی میں ہے۔ اگر مفاوض نے اپنا موروثی خاص دار فروخت کیا اور اس کا شریک اس دار کا بذریعہ اپنے

موروثی خاص دار کے شفیع ہے تو شفیع مذکور کو اس میں شفعہ حاصل نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اور اگر دو متفاوضین میں سے ایک شریک نے دوسرے کا

(۱) مگر شفیع نے انکار کیا۔

(حاشیہ) مفاوض ایسے دو شریک تجارت جن میں مال میں مساوات ہے اور ہر ایک دوسرے کا کفیل ہے ہر ایک مفاوض ہے اور کتاب الشرکۃ میں پورا بیان ہے اور واضح ہو متفاوضین میں جو شرط ہے وہ رب المال ومضارب میں نہیں ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Vol (8) [236] Kitab al-Shufa (The Book of Pre-emption)**

If a person waives the right of Shufa (pre-emption) that he acquired through a specific inherited property, it is valid; this is stated in *Muhit-e-Sarakhsi*. If a *Mudarib* (managing partner) becomes a *Shafi* (pre-emptor) due to a property belonging to the *Mudarabat* (partnership) which includes profit, and he possesses nothing else from the *Mudarabat* funds besides that property, then if the *Mudarib* waives the shufa, the *Rabb al-Maal* (investor) has the option to take it for himself. Conversely, if the *Rabb al-Maal* waives the shufa, the *Mudarib* has the option to take it for himself; this is in *Mabsut*. If a *Mudarib* purchased a property using some of the *Mudarabat* funds, and adjacent to it, the *Rabb al-Maal* purchased a property for himself, the *Mudarib* has the right to claim that property through shufa using the remaining *Mudarabat* funds; this is in *Muhit-e-Sarakhsi*. If a *Mudarib* purchased two properties with *Mudarabat* funds totaling one thousand dirhams, each property valued at one thousand dirhams, and then a property adjacent to one of them was sold, the *Mudarib* shall not have the right of shufa in it; rather, the *Rabb al-Maal* shall have the shufa because both properties of the *Mudarabat* are occupied (involved in the partnership), and the *Mudarib* cannot take an occupied property. This is because the division of separate houses is not considered a single partition due to the variation in their utility/ benefits; therefore, each is considered individually. If profit is included in either of them, the *Mudarib* shall have the right of shufa along with the *Rabb al-Maal* according to his share of the profit; this is in *Mabsut*. A *Mudarib* has two thousand dirhams of *Mudarabat* funds; he purchased one property for one thousand dirhams, then purchased another with the remaining one thousand dirhams, for which he is a pre-emptor due to the *Mudarabat* property and his own private property, and the *Rabb al-Maal* is also a pre-emptor due to his own private property. In this case, one-third shall go to the *Rabb al-Maal* via shufa, one-third to the *Mudarib* via shufa, and the remaining one-third shall remain in the *Mudarabat* (business). If another person is also a pre-emptor in this situation, one-third shall go to that pre-emptor, and the remaining two-thirds shall be divided equally into three parts among the *Rabb al-Maal*, the *Mudarib*, and the *Mudarabat* fund; this is in *Muhit-e-Sarakhsi*.

It is written in *Fatawa al-Attabia* that if a pre-emptor claims shufa and then acknowledges that the property through which he claimed shufa belongs to someone else, the shufa shall go to that acknowledged person. Similarly, if he pre-empted an adjacent property through his own property, then pre-empted another adjacent to the first one, then pre-empted a third adjacent to the second by order of

the *Qadi* (Judge), and then his first original property was successfully claimed by another (*Istihqaq*), he must return the property he first pre-empted to the buyer, while the remaining property shall remain with him. If one of the two houses is lost through *Istihqaq*, the shufa becomes void; however, if the rightful owner grants permission, it shall not be void. If one of the two buyers is also a pre-emptor, the other pre-emptor shall get half the house at half the price of the second house through shufa; this is in *Tatar-khaniya*. If a person sells a house to a stranger and a pre-emptor takes it, and then the seller becomes terminally ill while he is the ancestor (heir-giver) of the pre-emptor and reduces the price for the buyer, such reduction is void. However, if the buyer sells the said house to the heir of the seller by way of *Bai' al-Tawliya* (sale at cost) or *Bai' al-Murabaha* (cost-plus-profit sale), then the reduction is valid and a similar reduction shall be made from the heir's liability; this is in *al-Kafi*. The testimony of a person (principal) who ordered the purchase, or that of his son, while the property is still in the possession of the seller, shall not be accepted. If it is in the buyer's possession, the testimony of the seller's son shall be accepted. If two witnesses testify to the pre-emptor waiving his shufa and two others testify to the buyer's acceptance, both testimonies shall be disregarded. And if the pre-emptor testifies to the occurrence of the sale, provided he has already claimed shufa, then his testimony [incomplete text]...

---

**Footnotes:** 1. Mudarabat: Meaning, besides the personal property of the *Rabb al-Maal* and the *Mudarib*, one-third will be in the joint trade. 2. *Bai' al-Tawliya*: Selling for the same amount it was bought for. *Bai' al-Murabaha*: Selling with a profit added to the purchase price.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) [236] किताब-उश-शफ़आ (अग्र-क्रया का अध्याय)**

शफ़आ (अग्र-क्रया) जो उसे अपने एक विशेष पैतृक घर (दार) के माध्यम से प्राप्त हुआ है, यदि वह उसे दे दे (छोड़ दे) तो यह जायज़ है; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में वर्णित है। यदि कोई मुज़ारिब (कार्यकारी साझेदार) किसी मुज़ारबत (साझेदारी) के घर के कारण, जिसमें लाभ शामिल है, शफी (अग्र-क्रेता) बन जाता है और उसके पास उस घर के अतिरिक्त मुज़ारबत के माल में से कुछ नहीं है, तो यदि मुज़ारिब ने शफ़आ छोड़ दिया, तो रब्ब-उल-माल (पूंजी निवेशक) को अधिकार होगा कि चाहे तो वह अपने लिए शफ़आ में ले ले। और यदि रब्ब-उल-माल ने शफ़आ छोड़ दिया, तो मुज़ारिब को अधिकार होगा कि चाहे तो वह अपने लिए शफ़आ में ले ले; यह 'मब्सूत' में है। यदि मुज़ारिब ने मुज़ारबत के कुछ धन से कोई घर खरीदा और उसके बगल में रब्ब-उल-माल ने अपने लिए एक घर खरीदा, तो मुज़ारिब को अधिकार होगा कि वह शेष मुज़ारबत के धन से उस घर को शफ़आ के अधिकार से ले ले; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। यदि मुज़ारिब ने मुज़ारबत के एक हजार दिरहम से दो घर खरीदे, जिनमें से प्रत्येक की कीमत एक हजार दिरहम है, फिर उनमें से एक के बगल में एक घर बेचा गया, तो मुज़ारिब को उसमें शफ़आ का अधिकार नहीं होगा, बल्कि रब्ब-उल-माल को उसमें शफ़आ मिलेगा, क्योंकि मुज़ारबत के दोनों घरों में से प्रत्येक व्यस्त (लगा हुआ) है, अतः मुज़ारिब उस व्यस्त संपत्ति को नहीं ले सकता। इसका कारण यह है कि घरों का विभाजन एक समान नहीं होता क्योंकि घरों के लाभ और उपयोग में भिन्नता होती है, इसलिए प्रत्येक को व्यक्तिगत रूप से माना जाता है। यदि दोनों में से किसी में लाभ शामिल हो, तो मुज़ारिब को रब्ब-उल-माल के साथ लाभ के हिस्से के अनुसार शफ़आ प्राप्त होगा; यह 'मब्सूत' में है। एक मुज़ारिब के पास मुज़ारबत के दो हजार दिरहम हैं, उसने एक हजार दिरहम से एक घर खरीदा, फिर शेष एक हजार दिरहम से दूसरा घर खरीदा, जिसका वह मुज़ारबत के घर के कारण और अपने निजी घर के कारण शफी है, और रब्ब-उल-माल भी अपने निजी घर के कारण उसका शफी है, तो उस घर का एक-तिहाई हिस्सा रब्ब-उल-माल को शफ़आ में मिलेगा, एक-तिहाई मुज़ारिब को शफ़आ में मिलेगा, और शेष एक-तिहाई मुज़ारबत (साझेदारी व्यापार) में रहेगा। और यदि इस स्थिति में कोई अन्य व्यक्ति भी शफी हो, तो एक-तिहाई घर उस शफी को मिलेगा और शेष दो-तिहाई हिस्सा रब्ब-उल-माल, मुज़ारिब और मुज़ारबत के बीच तीन बराबर भागों में विभाजित होगा; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है।

'फ़तावा एताबीया' में लिखा है कि यदि शफी ने शफ़आ का दावा किया, फिर जिस आधार पर उसने दावा किया था उसके संबंध में किसी अन्य के स्वामित्व का स्वीकार कर लिया, तो उस व्यक्ति को

शफ़आ मिलेगा। इसी तरह, यदि उसने अपने एक घर के माध्यम से बगल में बिकने वाले घर को शफ़आ में लिया, फिर उस शफ़आ वाले घर के बगल में दूसरा घर बिका और उसे भी शफ़आ में लिया, फिर काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से उसके बगल में तीसरा घर भी शफ़आ में लिया, फिर उसका पहला घर किसी अन्य के कानूनी अधिकार (इस्तहक़ाक़) में चला गया, तो जो घर उसने पहले शफ़आ में लिया था, वह खरीदार (मुश्तरी) को वापस कर दे और शेष घर लेने वाले के पास रहेगा। फिर यदि दोनों घरों में से एक घर इस्तहक़ाक़ में चला गया, तो शफ़आ रद्द हो जाएगा, लेकिन यदि अधिकार रखने वाले ने अनुमति दे दी तो रद्द नहीं होगा। और यदि दो खरीदारों में से एक खरीदार भी शफी हो, तो दूसरे शफी को आधा घर दूसरे घर की आधी कीमत पर शफ़आ में मिलेगा; यह 'ततारख़ानिया' में है। एक व्यक्ति ने अपना घर किसी अजनबी को बेचा और उसे शफी ने ले लिया, फिर बेचने वाला (बाइ') बीमार हो गया, जबकि वह शफी का पूर्वज (वारिस बनाने वाला) है, और उसने खरीदार के ऊपर बकाया राशि में कुछ कमी कर दी, तो वह कमी रद्द मानी जाएगी। लेकिन यदि खरीदार ने उक्त घर को ब़ाइ' के वारिस को 'बय-ए-तवलिया' (लागत मूल्य पर बिक्री) या 'बय-ए-मुरबहा' (लागत पर लाभ लेकर बिक्री) के रूप में बेचा, तो कमी करना वैध होगा और वारिस के ऊपर से भी उतनी ही कमी की जाएगी; यह 'काफ़ी' में है। जिस व्यक्ति (मुवक्किल) ने खरीदने का आदेश दिया है, उसकी या उसके बेटे की गवाही, जब घर अभी भी विक्रेता के कब्जे में हो, स्वीकार नहीं की जाएगी। यदि वह खरीदार के कब्जे में हो, तो विक्रेता के बेटे की गवाही स्वीकार की जाएगी। और यदि दो गवाहों ने शफी के शफ़आ छोड़ने पर और दो ने खरीदार के स्वीकार करने पर गवाही दी, तो दोनों गवाहियाँ निरस्त हो जाएंगी। और यदि शफी ने खरीद संपन्न होने की गवाही दी, बशर्ते वह शफ़आ का दावा कर चुका हो, तो उसकी गवाही [अधूरा पाठ]...

---

**पाद-टिप्पणियाँ:** १. मुज़ारबत अर्थात रब्ब-उल-माल और मुज़ारिब की निजी संपत्ति के अलावा, एक-तिहाई हिस्सा साझा व्यापार में होगा। २. बय-ए-तवलिया: जितनी कीमत पर खरीदा था उतने में ही बेचना। बय-ए-मुरबहा: खरीद मूल्य पर लाभ लेकर बेचना।

---

شفعہ جو اس کو بذریعہ اپنے ایک خاص موروثی دار کے حاصل ہوا ہے دے دیا تو جائز ہے یہ محیطِ سرخسی میں ہے۔ اگر مضارب کسی دار مضاربت کی وجہ سے جس میں نفع شامل ہے شفیع ہوا اور اس کے پاس سوائے اس دار کے مالِ مضاربت میں سے کچھ نہیں ہے پس مضارب نے شفعہ دے دیا تو رب المال کو اختیار ہوگا چاہے اپنے واسطے شفعہ میں لے لے اور اگر رب المال نے شفعہ دے دیا تو مضارب کو اختیار ہوگا چاہے اپنے واسطے شفعہ میں لے لے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر مضارب نے بعض مالِ مضاربت سے کوئی دار خریدا اور اس کے پہلو میں رب المال نے اپنے واسطے ایک دار خریدا تو مضارب کو اختیار ہوگا چاہے باقی مالِ مضاربت سے اس دار کو شفعہ میں لے لے۔ یہ محیطِ سرخسی میں ہے۔ اگر مضارب نے مالِ مضاربت سے جو ہزار درہم ہے دو دار خریدے کہ جن میں سے ہر ایک دار ہزار درہم قیمت کا ہے پھر ان میں سے ایک کے پہلو میں ایک دار فروخت کیا گیا تو مضارب کو اس میں شفعہ حاصل نہ ہوگا اور رب المال کو اس میں شفعہ ملے گا کیونکہ ہر دو دارینِ مضاربت میں سے ہر ایک مشغول ہے پس مشغولی کو مضارب نہیں لے سکتا ہے اور یہ اس واسطے کہ دور کی (گھروں کی) تقسیم قسمتِ واحدہ نہیں ہوتی ہے بوجہ اس کے کہ دور میں منفعت کی راہ سے تفاوت ہوتا ہے پس ہر ایک کا اعتبار علی الانفراد ہوتا ہے اگر دونوں میں سے کسی میں نفع شامل ہو تو مضارب کو رب المال کے ساتھ بقدرِ حصہ نفع کے شفعہ حاصل ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔ ایک مضارب کے پاس مالِ مضاربت کے دو ہزار درہم ہیں پس اس نے ایک ہزار درہم سے ایک دار خریدا پھر باقی ہزار درہم سے دوسرا دار خریدا جس کا وہ دارِ مضاربت کی وجہ سے اور اپنے خاص دار کی وجہ سے شفیع ہے اور رب المال بھی اپنے خاص دار کی وجہ سے اس کا شفیع ہے تو اس میں سے ایک تہائی رب المال کو شفعہ میں

ملے گا اور ایک تہائی مضارب کو شفعہ میں ملے گا اور باقی ایک تہائی مضاربت میں رہے گا اور اگر اس صورت میں کوئی اور شخص شفیع ہو تو ایک تہائی دار شفیع کو ملے گا اور باقی دو تہائی دار رب المال اور مضارب اور مضاربت کے درمیان تین تہائی تقسیم ہوگا۔ یہ محیطِ سرخسی میں ہے۔

فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے کہ اگر شفیع نے شفعہ طلب کیا پھر جس وجہ سے شفعہ طلب کرنا تھا اس کی نسبت کسی دوسرے کی ملک ہونے کا اقرار کر دیا تو مقررہ کو شفعہ ملے گا۔ اسی طرح اگر اپنے ایک دار کے ذریعہ سے ایک دار جو اس کے پہلو میں فروخت کیا گیا شفعہ میں لیا پھر اس دارِ شفعہ کے پہلو میں دوسرا دار فروخت کیا گیا اس کو بھی شفعہ میں لیا پھر اس کے پہلو میں تیسرا بحکمِ قاضی شفعہ میں لیا پھر اس کا دارِ اول استحقاق میں لے لیا گیا تو جو دار اس نے پہلے شفعہ میں لیا ہے وہ مشتری کو واپس دے اور باقی دار اس لینے والے کے واسطے رہ جائے گا پھر اگر دونوں داروں میں سے ایک دار استحقاق میں لیا گیا تو شفعہ باطل ہو جائے گا لیکن اگر مستحق نے اجازت دے دی تو باطل نہ ہوگا اور اگر دونوں مشتریوں میں سے ایک مشتری بھی شفیع ہو تو دوسرے شفیع کو نصف دار دوسرے دار کی نصف قیمت میں شفعہ میں ملے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک دار کسی اجنبی کے ہاتھ فروخت کیا اور اس کو شفیع نے لیا پھر بائع مریض ہو گیا حالانکہ وہ شفیع کا مورث ہے اور اس نے مشتری کے ذمہ سے کچھ دام کم کر دیئے تو گھٹانا باطل ہوگا اور اگر مشتری نے دار مذکور کو اس وارث بائع کے ہاتھ بطور بیعِ تولیہ یا بطورِ بیعِ مرابحہ فروخت کیا تو گھٹانا صحیح ہوگا اور اس کے مثل وارث کے ذمہ سے بھی گھٹایا جائے گا یہ کافی میں ہے۔ جس شخص (موکل) نے خریدنے کے واسطے حکم دیا ہے اس کی یا اس کے بیٹے کی گواہی درحالیکہ دار اپنے بائع کے قبضہ میں ہو تو قبول نہ ہوگی اور اگر مشتری کے قبضہ میں ہو تو بائع کے بیٹے کی گواہی قبول ہوگی اور اگر دو نے شفیع کے شفعہ دینے پر اور دو

نے مشتری کے تسلیم کرنے پر گواہی دی تو دونوں گواہیاں ساقط ہو جائیں گی اور اگر شفیع نے خرید واقع ہونے کی گواہی دی پس اگر شفعہ طلب کر چکا ہے تو اس کی گواہی [ناقص متن]۔

۱۔ مضاربت یعنی رب المال اور مضارب کی ذاتی ملکیت کے علاوہ ایک تہائی مشترک تجارت میں ہوگا۔ ۲۔ بیعِ تولیہ جتنے کے عوض اسے دیا بیعِ مرابحہ خرید پر نفع لے کر دینا۔

---

- It will be void, and if pre-emption was granted, it is valid; and if he said, "I authorized the purchase" and then demanded pre-emption, it is valid. If a person admitted that "I sold this sale to such-and-such person," but the purchaser denied it, pre-emption will be established. And if the purchaser is absent, the pre-emptor cannot take it until the purchaser appears. If the seller admitted the sale but did not specify the purchaser, pre-emption will not be established; this is in Tatarkhania. If a Dhimmi (non-Muslim citizen) appointed a Muslim as an agent for the demand of pre-emption, the testimony of the Muslim agent that neighbors have granted pre-emption will not be accepted, because these people testify to a statement made by the said agent (Muslim) and he denies it, and the testimony of Dhimmis is not proof against a Muslim. If a Dhimmi himself is the agent and the pre-emptor has given permission that whatever the agent does is valid, then their testimony will be accepted and the pre-emption will be void. This is because if the agent made such an admission, it would be valid since the principal gave absolute permission for whatever the agent does. Similarly, if the people of the covenant (Ahl-uz-Zimma) testified to this, the same ruling would apply because their testimony against a Dhimmi is valid to prove that he said such a thing; this is in Al-Mabsut. If the seller said, "I have gifted this sale to him," and the purchaser said, "I bought it from him for this much price," the seller's statement will be accepted, and he can revoke the gift. If the pre-emptor took it in exchange for the price (by the judge's order) upon his appearance, he will get nothing. And if it was taken based on the purchaser's admission, and then the seller appeared and denied the sale, he can take back the sold object. This is in Tatarkhania.
- A Mudarib (manager in a profit-sharing venture) bought a house, and the capital owner (Rabb-ul-Mal) is his pre-emptor. He granted pre-emption, then the Mudarib sold it; the capital owner will not have the right of pre-emption because the Mudarib sold it for him, and pre-emption is not granted to the one for whom it is sold. This is in Al-Muhit as-Sarakhsi. If the judge ruled in favor of pre-emption for the agent, and then the purchaser refused to write the document for him, the judge will write a record of his judicial ruling and have witnesses attest to it. Just as he ordered for the said agent, similarly, if the purchaser refuses compliance and submission, he will write a record of his judicial ruling for him so that it remains as proof, and considering it better for

his right, he will have witnesses attest to it. While in all disputes, the judge grants a 'sijill' (certified decree) to the decree-holder when requested so that he may have proof, so too in the judgment of pre-emption, he will grant him this 'sijill'; this is in Al-Mabsut. It is written in At-Tamima that Sheikh Ali bin Ahmad was asked: a piece of land is common among several partners, some of whom are absent and some are present, and the present partner bought the share of the absent one. Is the neighbor pre-emptor authorized to take it through pre-emption during the absence of the partner? He said, "Yes, and if the absent partner appears, he will be more entitled and prioritized over the neighbor." This is in Tatarkhania. If two persons gifted a house to one person on the condition of a thousand Dirhams as compensation, and both divided the thousand Dirhams and took them from him, and delivered the said house into his possession, the pre-emptor will get pre-emption in it because there is no 'shuyu' (joint ownership/indivisibility) in the house, but rather a single ownership, and there is no 'shuyu' in the thousand Dirhams because when each took possession, he took possession of his partitioned share. However, if the said thousand Dirhams are unpartitioned, then according to the statement of Imam-e-Azam, it will not be valid; the existence of 'shuyu' in a divisible thing prevents the validity of compensation, just as it prevents the validity of a gift. And the thousand Dirhams in this case are divisible. This is in Al-Mabsut.

---

1. Compliance and submission: To accept the judge's order and be obedient to its implementation.
2. Prioritized: Meaning he may take it if he wishes.
3. Validity of compensation without division: The compensation will not be valid without partitioning.

- बातिल होगी और अगर शुफ़ा दे दिया तो जाइज़ है और अगर कहा कि मैंने ख़रीद की इजाज़त दी फिर तलब किया तो जाइज़ है। अगर किसी शख़्स ने इक़रार किया कि मैंने यह बैअ (बिक्री) फ़लां शख़्स के हाथ फ़रोख़्त की है मगर मुश्तरी (ख़रीदार) ने इंकार किया तो शुफ़ा साबित होगा और अगर मुश्तरी ग़ायब हो तो शुफ़ीअ (हक-ए-शुफ़ा रखने वाला) नहीं ले सकता है यहाँ तक कि मुश्तरी हाज़िर हो जाए और अगर बाएअ (विक्रेता) ने बैअ का इक़रार किया मगर मुश्तरी को बयान न किया तो शुफ़ा साबित न होगा यह तातारख़ानिया में है। अगर ज़िम्मी ने मुसलमान को तलब-ए-शुफ़ा के वास्ते वकील किया तो मुसलमान वकील पड़ोसियों का इस तरह गवाही देना कि उसने शुफ़ा दे दिया है मक़बूल न होगी क्योंकि ये लोग वकील-ए-मज़कूर (मुसलमान) पर उससे एक क़ौल सादिर होने की गवाही देते हैं और वह उससे मुनकिर है और ज़िम्मियों की गवाही मुसलमान पर हुज्जत नहीं होती है और अगर कोई ज़िम्मी ही वकील हो और शुफ़ीअ ने यह इजाज़त दे दी हो कि जो अम्र (काम) वकील करे वह जाइज़ है तो उन लोगों की गवाही क़बूल होगी और शुफ़ा बातिल होगा इस वास्ते कि अगर वकील ने ऐसा इक़रार किया तो जाइज़ होगा क्योंकि मुवक्किल ने आम तौर पर मुतलक़न यह इजाज़त दे दी है कि जो कुछ वकील करे वह जाइज़ है ऐसे ही इस बात की अगर उस पर अहल-ए-ज़िम्मा ने गवाही दी तो भी यही हुक्म होगा क्योंकि इस बात के इहबात के वास्ते कि उसने ऐसी बात कही है अहल-ए-ज़िम्मा की गवाही ज़िम्मी पर जाइज़ है यह मबसूत में है। अगर बाएअ ने कहा कि मैंने उसको यह बैअ हिबा कर दी है और मुश्तरी ने कहा कि मैंने उससे इस क़दर दामों को ख़रीदी है तो बाएअ का क़ौल क़बूल होगा और हिबा से रुजूअ कर सकता है और अगर शुफ़ीअ ने हाज़िर होकर ष़मन (क़ीमत) के एवज़ ले लिया (ब-हुक्म-ए-क़ाज़ी) तो उसको कुछ न मिलेगा और अगर मुश्तरी के इक़रार पर लिया हो फिर बाएअ ने आकर बैअ से इंकार किया तो मबीअ (बिकी हुई चीज़) को वापस ले सकता है। यह तातारख़ानिया में है।
- एक मुज़ारिब ने दार (घर) ख़रीदा और रब्बुल माल उसका शुफ़ीअ है उसने शुफ़ा दे दिया फिर मुज़ारिब ने उसको फ़रोख़्त किया तो रब्बुल माल को शुफ़ा हासिल न होगा क्योंकि मुज़ारिब ने इसी के वास्ते फ़रोख़्त किया है और जिसके वास्ते फ़रोख़्त किया जाए उसको शुफ़ा नहीं मिलता है यह मुहीत-ए-सरख़सी में है। अगर क़ाज़ी ने वकील के वास्ते शुफ़ा का हुक्म दे दिया फिर मुश्तरी ने इसके वास्ते दस्तावेज़ लिख देने से इंकार किया तो क़ाज़ी अपने हुक्म-ए-क़ज़ा

की एक तहरीर लिखकर उस पर गवाहियां करा देगा। जैसे उसने वकील-ए-मज़कूर के वास्ते हुक्म दिया है इसी तरह अगर मुश्तरी तस्लीम व इनक़ियाद से बाज़ रहे तो भी अपने हुक्म-ए-क़ज़ा की एक तहरीर उसको लिख देगा ताकि हुज्जत रहे और उसके हक़ में बेहतर ख़याल करके उस पर गवाहियां करा देगा। जबकि तमाम ख़ुसूमात में क़ाज़ी इस डिक्रीदार को एक सिजिल (प्रमाण पत्र) इनायत करता है जबकि वह दरख़्वास्त करे ताकि उसके पास हुज्जत रहे तो ऐसा ही क़ज़ा-ए-शुफ़ा में उसको यह सिजिल इनायत करेगा यह मबसूत में है। तमीमा में लिखा है कि शैख़ अली बिन अहमद से दरयाफ़्त किया गया कि एक ज़मीन चंद शरीकों में मुश्तरक है जिनमें से बाज़ ग़ायब हैं और बाज़ हाज़िर हैं और ग़ायब का हिस्सा हाज़िर ने ख़रीदा तो आया शुफ़ीअ-ए-जार को इख़्तियार है कि शरीक-ए-ग़ायब की ग़ैबत में उसको शुफ़ा में ले ले तो फ़रमाया कि हाँ और अगर शरीक-ए-ग़ायब हाज़िर हुआ तो ब-निस्बत जार के ज़्यादा हक़दार व मुक़द्दम होगा यह तातारख़ानिया में है। अगर दो शख़्सों ने एक शख़्स को एक दार ब-शर्त-ए-एवज़ हज़ार दिरहम के हिबा कर दिया और हज़ार दिरहम दोनों ने बांटे हुए उससे ले लिए और दार-ए-मज़कूर उसके क़ब्ज़े में दे दिया तो शुफ़ीअ को इसमें शुफ़ा मिलेगा क्योंकि दार में श्यूअ नहीं बल्कि तमलुक-ए-वाहिद है और हज़ार दिरहम में श्यूअ नहीं है क्योंकि जब हर एक ने क़ब्ज़ा किया तो अपने हिस्सा-ए-मक़सूमा पर क़ब्ज़ा किया है और अगर हज़ार दिरहम-ए-मज़कूर ग़ैर-मक़सूमा हों तो इमाम-ए-आज़म के क़ौल में जाइज़ न होगा जो चीज़ मुहतमल-ए-क़िस्मत है उसमें श्यूअ होना सेहत-ए-तअवीज़ का मानेअ है जैसा कि सेहत-ए-हिबा का मानेअ है और हज़ार दिरहम इस सूरत में मुहतमल-ए-क़िस्मत हैं यह मबसूत में है।

---

1. तस्लीम व इनक़ियाद: हुक्म-ए-हाकिम मानना और उसकी तामील के वास्ते मुतीअ होना।
2. मुक़द्दम: यानी चाहे तो पहले ले ले।
3. सेहत-ए-तअवीज़: बिदून बँटवारा के मुआवज़ा सही न होगा।

• باطل ہوگی اور اگر شفعہ دے دیا تو جائز ہے اور اگر کہا کہ میں نے خرید کی اجازت دی پھر طلب کیا تو جائز ہے۔ اگر کسی شخص نے اقرار کیا کہ میں نے یہ بیع فلاں شخص کے ہاتھ فروخت کی ہے مگر مشتری نے انکار کیا تو شفعہ ثابت ہو گا اور اگر مشتری غائب ہو تو شفیع نہیں لے سکتا ہے یہاں تک کہ مشتری حاضر ہو جائے اور اگر بائع نے بیع کا اقرار کیا مگر مشتری کو بیان نہ کیا تو شفعہ ثابت نہ ہو گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر ذمی نے مسلمان کو طلب شفعہ کے واسطے وکیل کیا تو مسلمان وکیل پڑوسیوں کا اس طرح گواہی دینا کہ اس نے شفعہ دے دیا ہے مقبول نہ ہوگی کیونکہ یہ لوگ وکیل مذکور (مسلمان) پر اس سے ایک قول صادر ہونے کی گواہی دیتے ہیں اور وہ اس سے منکر ہے اور ذمیوں کی گواہی مسلمان پر حجت نہیں ہوتی ہے اور اگر کوئی ذمی ہی وکیل ہو اور شفیع نے یہ اجازت دے دی ہو کہ جو امر وکیل کرے وہ جائز ہے تو ان لوگوں کی گواہی قبول ہوگی اور شفعہ باطل ہو گا اس واسطے کہ اگر وکیل نے ایسا اقرار کیا تو جائز ہو گا کیونکہ موکل نے عام طور پر مطلقاً یہ اجازت دے دی ہے کہ جو کچھ وکیل کرے وہ جائز ہے ایسے ہی اس بات کی اگر اس پر اہل ذمہ نے گواہی دی تو بھی یہی حکم ہو گا کیونکہ اس بات کے اثبات کے واسطے کہ اس نے ایسی بات کہی ہے اہل ذمہ کی گواہی ذمی پر جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر بائع نے کہا کہ میں نے اس کو یہ بیع ہبہ کر دی ہے اور مشتری نے کہا کہ میں نے اس سے اس قدر داموں کو خریدی ہے تو بائع کا قول قبول ہو گا اور ہبہ سے رجوع کر سکتا ہے اور اگر شفیع نے حاضر ہو کر ثمن کے عوض لے لیا (بحکم قاضی) تو اس کو کچھ نہ ملے گا اور اگر مشتری کے

اقرار پر لیا ہو پھر بائع نے آ کر بیع سے انکار کیا تو مبیع کو واپس لے سکتا ہے۔ یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

- ایک مضارب نے دار خریدا اور رب المال اس کا شفیع ہے اس نے شفعہ دے دیا پھر مضارب نے اس کو فروخت کیا تو رب المال کو شفعہ حاصل نہ ہوگا کیونکہ مضارب نے اسی کے واسطے فروخت کیا ہے اور جس کے واسطے فروخت کیا جائے اس کو شفعہ نہیں ملتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر قاضی نے وکیل کے واسطے شفعہ کا حکم دے دیا پھر مشتری نے اس کے واسطے دستاویز لکھ دینے سے انکار کیا تو قاضی اپنے حکم قضا کی ایک تحریر لکھ کر اس پر گواہیاں کرا دے گا۔ جیسے اس نے وکیل مذکور کے واسطے حکم دیا ہے اسی طرح اگر مشتری تسلیم و انقیاد سے باز رہے تو بھی اپنے حکم قضا کی ایک تحریر اس کو لکھ دے گا تا کہ حجت رہے اور اس کے حق میں بہتر خیال کر کے اس پر گواہیاں کرا دے گا۔ جبکہ تمام خصومات میں قاضی اس ڈگری دار کو ایک سجل عنایت کرتا ہے جبکہ وہ درخواست کرے تاکہ اس کے پاس حجت رہے تو ایسا ہی قضاء شفعہ میں اس کو یہ سجل عنایت کرے گا یہ مبسوط میں ہے۔ تمیمہ میں لکھا ہے کہ شیخ علی بن احمد سے دریافت کیا گیا کہ ایک زمین چند شریکوں میں مشترک ہے جن میں سے بعض غائب ہیں اور بعض حاضر ہیں اور غائب کا حصہ حاضر نے خریدا تو آیا شفیع جار کو اختیار ہے کہ شریک غائب کی غیبت میں اس کو شفعہ میں لے لے تو فرمایا کہ ہاں اور اگر شریک غائب حاضر ہوا تو بنسبت جار کے زیادہ حقدار و مقدم ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر دو شخصوں نے ایک شخص کو ایک دار بشرط عوض ہزار درہم کے ہبہ کر دیا اور ہزار درہم دونوں نے بانٹے ہوئے اس سے لے لئے اور وار مذکور اس کے قبضہ میں دے دیا تو شفیع کو اس میں شفعہ ملے گا کیونکہ دار میں شیوع نہیں بلکہ تملک واحد ہے اور ہزار درہم میں شیوع نہیں ہے کیونکہ جب ہر ایک نے قبضہ کیا

تو اپنے حصہ مقسومہ پر قبضہ کیا ہے اور اگر ہزار درہم مذکور غیر مقسومہ ہوں تو امام اعظم کے قول میں جائز نہ ہو گا جو چیز محتمل قسمت ہے اس میں شیوع ہونا صحت تعویض کا مانع ہے جیسا کہ صحت ہبہ کا مانع ہے اور ہزار درہم اس صورت میں مختمل قسمت ہیں یہ مبسوط میں ہے۔

---

1. تسلیم و انقیاد حکم حاکم ماننا اور اس کی تعمیل کے واسطے مطیع ہونا۔
2. مقدم یعنی چاہے جا رہے لے لے۔
3. صحت تعویض بدون بٹوارہ کے معاوضہ صحیح نہ ہوگا۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) [Page: 238] Kitab al-Qisma**

**Kitab al-Qisma (The Book of Partition)** It contains thirteen chapters.

## Chapter One: Regarding the nature, cause, pillar, condition, and ruling of Partition (Qisma)

Let it be clear that separating and distinguishing some portions from others is called 'Partition' (Qisma). This partition is never detached from the meaning of 'Exchange' (Mubadala). However, in commodities measured by volume (Makilat), weight (Mawzunat), and similar countable items (Adadiyat Mutqariba) (1), i.e., fungible goods (Zawat al-Amthal), the meanings of separation (Afraz) and distinction (Tamyiz) are more apparent and predominant. This is because what one of the two partners takes from the other is like what he leaves with the other. Therefore, receiving the equivalent of one's right is considered akin to receiving the actual right itself. For this reason, each of the two has the option to take his portion without the consent of the other partner, and whoever among them resists is compelled to partition. In non-fungible items (Ghayr-Mithli), the meaning of exchange is more predominant and apparent; thus, it is an exchange both in reality and legally. For this reason, it is not permissible to sell it at a profit (Murabaha) over the original price, whereas in fungible items, it is permissible. However, if any of the partners refuses this partition, he shall also be compelled, because in this partition lies the completion of benefit. Compulsion for exchange is permissible due to a right of which he is not the rightful owner and he cannot attain his aforementioned right without it, just as a purchaser is compelled to give a pre-empted house to the pre-emptor (Shafi'), even though this is an acceptance of compensation; this is mentioned in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. The cause of this partition is that all or some partners request to obtain a specific benefit from their property; this is mentioned in *Al-Tabyin*. The pillar (Rukn) of partition is the act by which separation and distinction between two parts are achieved, such as measuring by volume in measurable items, weighing in weighable items, measuring by yards in cloth/land, and counting in countable items; as stated in *Al-Nihayah*. The condition for partition is that the undivided item must be such that its utility is neither altered nor lost by partitioning. This is because the purpose of dividing is the completion (4) of benefit and the generalization of the fruits of ownership. Thus, where the utility changes, this act becomes a loss (Tafwit) and an alteration, rather than separation and partition; this is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. The ruling of partition is that each partner's share becomes so distinct and determined from the other partner's share

that no partner retains any connection to the other's share; this is in *Al-Tabyin*. In joint properties, there are two types of partition: partition of physical assets (A'yan) and...

---

1- *Afraz*: to separate; and *Mumayyiz*: to distinguish by separate identification. 2- *Mubadala*: i.e., when, for example, two men divide a house into two parts, the part each takes is as if he exchanged it for what was in the other's possession, because every partner's right is attached to every part of both portions. The decision is as if he made it exclusive through exchange. 3- *Zawat al-Amthal*: i.e., fungible things. Here, there is no difference between one part and another, but it is more correct to separate the concept of 'likeness' from the meaning of 'exchange'. 4- *Takmil* (Completion): i.e., the benefit of partition was so that partners could benefit well and fully. (1) Walnuts and eggs.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) [पृष्ठ: 238] किताब अल-क़िस्मत**

**किताब अल-क़िस्मत (बँवारे की पुस्तक)** इसमें तेरह अध्याय हैं।

**अध्याय एक: क़िस्मत (बँवारे) की प्रकृति, कारण, स्तंभ, शर्त और आदेश के वर्णन में**

यह स्पष्ट हो कि कुछ हिस्सों को दूसरों से अलग (मफ़रूज़) और विशिष्ट (मुमय्यिज़) करने को 'क़िस्मत' कहते हैं। यह बँवारा कभी भी विनिमय (तबादला) के अर्थ से अलग नहीं होता है, लेकिन माप योग्य (मकीलात), तोलने योग्य (मौज़ूनात) और समान गिनती वाली वस्तुओं (अददियत मुतकारिबा) (1) यानी समरूप वस्तुओं (ज़वात अल-अमसाल) में पृथक्करण (अफ़राज़) और भेद (तमीज़) के अर्थ अधिक स्पष्ट और प्रबल होते हैं। क्योंकि दो भागीदारों में से जो एक भागीदार दूसरे से लेता है, वह उसी के समान होता है जिसे वह दूसरे के पास छोड़ देता है। अतः अपने अधिकार के बराबर प्राप्त करना, वास्तविक अधिकार प्राप्त करने के समान माना गया है। इसी कारण दोनों में से प्रत्येक को यह अधिकार होता है कि वह अपने साथी की सहमति के बिना अपना हिस्सा ले ले, और दोनों में से जो व्यक्ति अवज्ञा करे उसे बँवारे के लिए विवश किया जा सकता है। और जो वस्तुएँ समरूप नहीं हैं (ग़ैर-मिस्ली), उनमें विनिमय (तबादला) के अर्थ अधिक प्रबल और स्पष्ट होते हैं, अतः वे वास्तव में और कानूनी रूप से विनिमय हैं। इसी कारण यह वैध नहीं है कि उसे मूल मूल्य पर मुनाफ़े(मुरबाहा) के साथ बेचा जाए, जबकि समरूप वस्तुओं में यह वैध है। लेकिन भागीदारों में से जो व्यक्ति इस बँवारे से इनकार करे, उसे भी विवश किया जाएगा क्योंकि इस बँवारे में लाभ की पूर्णता है। और ऐसे अधिकार के कारण जिसका वह हक़दार नहीं है और वह अपने उक्त अधिकार को इसके बिना प्राप्त नहीं कर सकता, विनिमय पर मजबूर करना वैध है, जैसे खरीदार को शुफ़ा वाले घर को पड़ोसी (शफ़ी) को देने के लिए मजबूर किया जाता है, भले ही यह मुआवज़े की स्वीकृति हो; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। इस बँवारे का कारण यह है कि सभी भागीदार या कुछ भागीदार अपनी संपत्ति से विशेष रूप से लाभ प्राप्त करने का अनुरोध करें; यह 'तब्बीन' में है। बँवारे का स्तंभ (रुकन) वह कार्य है जिससे दो हिस्सों में पृथक्करण और भेद प्राप्त हो, जैसे नापने वाली चीजों में माप, तोलने वाली चीजों में वजन, और गज से नापी जाने वाली चीजों में लंबाई की माप, और गिनती वाली चीजों में गिनती; जैसा कि 'अल-निहाया' में है। बँवारे की शर्त यह है कि वह ऐसी अविभाजित वस्तु हो जिसका लाभ बँवारे से न बदले और न ही नष्ट हो जाए। क्योंकि टुकड़े करना तो इस उद्देश्य से है कि लाभ पूर्ण (4) हो और स्वामित्व का फल व्यापक हो। इसलिए जहाँ लाभ बदल गया, वहाँ यह कार्य नष्ट (तफ़वीत) और परिवर्तन हो गया, न कि पृथक्करण और विभाजन; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। और

बँवारे का आदेश यह है कि प्रत्येक का हिस्सा दूसरे भागीदार के हिस्से से इस तरह अलग और निश्चित हो जाए कि किसी भी भागीदार का दूसरे के हिस्से से कोई संबंध न रहे; यह 'तब्बीन' में है। संयुक्त संपत्तियों में दो प्रकार का बँवारा होता है: वस्तुओं का बँवारा और...

---

1- अफ़राज़: अलग करना; और मुमय्यिज़: अलग पहचान से विशिष्ट करना। 2. मुबादला: यानी जब उदाहरण के तौर पर दो लोगों ने एक घर के दो हिस्से किए, तो जो हिस्सा जिसने लिया, मानो उसने दूसरे के कब्जे वाले हिस्से से विनिमय कर लिया, क्योंकि दोनों हिस्सों के हर भाग से हर भागीदार का अधिकार जुड़ा है, तो इसका फैसला यही है कि मानो विनिमय करके उसे विशेष बना लिया गया। 3- ज़वात अल-अमसाल: यानी समरूप चीजें। यहाँ हर हिस्से में दूसरे हिस्से से कोई अंतर नहीं है, बल्कि 'समानता' को विनिमय के अर्थ से अलग करना अधिक मान्य है। 4- तकमील (पूर्णता): यानी बँवारे से यही लाभ था कि साझीदार अच्छी तरह और पूरी तरह से लाभ उठा सकें। (1) अखरोट और अंडे।

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد (8) [صفحہ: 238] کتاب القسمة**

**کتاب القسمة** اس میں تیرہ ابواب ہیں

**باب اول: قسمت کی ماہیت، سبب، رکن، شرط و حکم کے بیان میں**

واضح ہو کہ بعض حصوں کو بعض سے مفروز و ممیز کرنے کو قسمت کہتے ہیں اور یہ قسمت معنی مبادلہ سے کبھی جدا نہیں ہوتی ہے لیکن مکیلات و موزونات و عددیات متقاربہ (1) یعنی ذوات الامثال میں افراز و تمیز کے معنی اظہر و ارجح ہوتے ہیں کیونکہ دو شریکوں میں سے جو کچھ ایک شریک دوسرے سے لیتا ہے وہ مثل اس کے ہوتا ہے جو دوسرے کے پاس چھوڑ دیتا ہے پس اس کا اپنے حق کے مثل وصول پانا مانند عین حق کے وصول پانے کے قرار دیا گیا اسی واسطے دونوں میں سے ہر ایک کو اختیار ہوتا ہے کہ اپنا حصہ بغیر شریک کی رضامندی کے لے لے اور دونوں میں سے جو شخص سرتابی کرے وہ تقسیم کرنے پر مجبور کیا جاتا ہے اور جو چیزیں غیر مثلی ہیں ان میں مبادلہ کے معنی ارجح و اظہر ہوتے ہیں پس حقیقۃً و حکماً مبادلہ ہوتی ہے اسی وجہ سے یہ جائز نہیں ہے کہ اس کو ثمن اول پر مرابحہ سے فروخت کرے حالانکہ مثلی چیزوں میں یہ جائز ہے لیکن شریکوں میں سے جو شخص اس قسمت سے انکار کرے اس پر بھی جبر کیا جائے گا کیونکہ اس قسمت میں منفعت کی تکمیل ہے اور مبادلہ پر بوجہ ایسے حق کے جس کا غیر مستحق ہے اور وہ اپنے حق مذکور کو بدون اس کے نہیں پا سکتا ہے جبر کرنا جائز ہے جیسا کہ مشتری پر دار مشفوعہ شفیع کو دینے کے واسطے جبر کیا جاتا ہے اگرچہ یہ تسلیم معاوضہ ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اس قسمت کا سبب یہ ہے کہ سب شریک یا بعض شریک اپنی ملک سے بطور خاص انتفاع حاصل کرنے کی درخواست کریں یہ تبیین میں ہے۔ رکن قسمت

وہ فعل ہے جس سے دو حصوں میں افراز و تمیز حاصل ہو جیسے کیلی چیزوں میں کیل اور وزنیوں میں وزن اور مذروعات میں گز سے ناپنا اور عددیات میں گنتی کذا فی النہایہ۔ شرط قسمت یہ ہے کہ ایسی غیر منقسم چیز ہو کہ قسمت سے اس کی منفعت تبدیل نہ ہو اور نہ فوت ہو جائے اس لئے کہ ٹکڑے کرنا تو اس غرض سے ہے کہ منفعت کی تکمیل (4) ہو اور ثمرہ ملک کی تمیم ہو سو جہاں منفعت بدل گئی وہاں یہ فعل تفویت (ضائع ہونا) و تبدیل ہو گیا افراز و تقسیم نہ ہوا یہ محیط سرخسی میں ہے اور حکم قسمت یہ ہے کہ ہر ایک کا حصہ دوسرے شریک کے حصہ سے اس طرح ممیز و متعین ہو جائے کہ ہر ایک شریک کو دوسرے کے حصہ سے کچھ تعلق نہ رہے یہ تبیین میں ہے اموال مشترکہ میں دو طرح کی قسمت ہوتی ہے قسمت اعیان اور...

---

1- افراز جدا کرنا اور ممیز علیحدہ شناخت سے ممتاز کرنا۔ 2۔ مبادلہ یعنی جب مثلاً دو آدمیوں نے ایک مکان کے دو حصہ کئے تو جو حصہ جس نے لیا گویا دوسرے کے مقبوضہ کے مبادلہ کر لیا کیونکہ دونوں حصوں میں سے ہر ایک حصہ سے ہر شریک کا حق متعلق ہے تو اس کا فیصلہ یہی ہے کہ گویا مبادلہ کر کے خاص کر لیا۔ 3- ذوات الامثال یعنی مثلی چیزیں تو یہاں ہر حصہ میں دوسرے حصہ سے فرق نہیں بلکہ مثال کو مبادلہ کے معنی سے جدا کرنا زیادہ راجح ہے۔ 4- تکمیل یعنی بٹوارہ سے یہی فائدہ تھا کہ اچھی طرح پورے طور سے ساجھی نفع اٹھاوے۔ (1) اخروٹ وانڈے ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 239 | Kitab al-Qisma (The Book of Division)**

The division of benefits is called *Muhaya'ah* (1). Assets are sometimes immovable (*ghair-manqula*), such as houses and estates (*dawr* and *aqar*), and sometimes movable (*manqula*), such as goods, animals, and grains that are measured by volume or weight. Sometimes division occurs with the consent of all partners, and sometimes with the consent of only some; this depends on the discretion of the Judge (*Qadi*) and his trustee (*Amin*), as stated in *Al-Yanabi*.

**Chapter Two: On the Description of the Mode of Division**

If a ground floor (*sufl*) is shared between two people and the upper floor (*ulwan*) (2) belongs to someone else, or if the upper floor is shared between two people and the ground floor belongs to someone else, and they intend to divide it: according to Imam Azam (RA), 100 yards of the upper floor shall be considered equivalent to 50 yards of the ground floor in terms of area. According to Imam Abu Yusuf (RA), one yard shall be treated as equal to one yard. If two people share a complete house (*bayt kamil*), i.e., both the ground and upper floors, and another ground floor is shared without its upper floor (e.g., the upper floor belongs to a third party), then according to Imam Azam (RA), for the upper floor shared without the ground floor, 33 and 1/3 yards shall be assigned against 100 yards of the complete house, because according to the Imam, the upper floor is valued at half of the ground floor. According to Imam Abu Yusuf (RA), 50 yards of a complete house shall be assigned against 100 yards of that ground floor or upper floor which is not shared, as he considers both floors equal. Imam Muhammad (RA) considers the equality of value in all these cases, and the fatwa is based on this, as mentioned in *Al-Mabsut*.

If partners divide a house (*dar*) among themselves and it contains a latrine with an exit towards a public road or a granary, their area shall not be included in the total measurement of the house. This is because when built on a public way, there is no right to maintain them; rather, they are liable to be demolished. Anything liable to be demolished is treated as if already demolished; hence, it will not be counted in the measurement of the house, though its value will be charged to whoever's portion it falls under. If an upper part is situated over a public window (*nafizah*), its area will be accounted for in the house's measurement, as stated in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

If a person dies leaving two houses as inheritance, and the heirs request a division such that each receives a portion in both properties, the division is valid. However, if one heir wants their share concentrated in one house or land and the other refuses,

Imam Azam (RA) stated that the Qadi shall divide each house and land separately and shall not consolidate a share into one property. The *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) stated that this is at the Qadi's discretion. If the houses are located in different cities, the ruling is not explicitly mentioned in the primary texts, but scholars have said that according to Imam Azam, the Qadi shall not consolidate shares, whether the houses are in the same city or different ones, or whether they are adjacent or distant. Hilal (RA) narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that if they are in two different cities, they shall not be consolidated.

(1) Setting turns (for usage). (2) Upper room/attic. (3) Plural of house (houses).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 239 | किताब अल-क़िस्मत (बँटवारे की किताब)**

मुनाफ़े(लाभ) के बँटवारे को मुहाहात (1) कहते हैं, फिर संपत्तियाँ कभी ग़ैर-मनक़ूला (अचल) होती हैं जैसे घर और भू-संपत्ति (दार का बहुवचन) और कभी मनक़ूला (चल) होती हैं जैसे सामान, जानवर और अनाज जो मापे या तौले जाते हैं, और कभी बँटवारा सभी साझेदारों की सहमति से होता है और कभी कुछ की सहमति से, और यह क़ाज़ी (न्यायाधीश) और उसके अमीन (विश्वस्त अधिकारी) की राय पर निर्भर है, जैसा कि 'यनाबी' में वर्णित है।

**अध्याय दूसरा: बँटवारे के स्वरूप के वर्णन में**

यदि एक निचली मंज़िल (सुफ़्ल) दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और उसकी ऊपरी मंज़िल (उलवान/अलू) उन दोनों के अलावा किसी और की हो, या ऊपरी मंज़िल दो व्यक्तियों में साझा हो और निचली मंज़िल किसी और की हो, और वे इसके बँटवारे का इरादा करें, तो इमाम आज़म (रह.) के अनुसार निचली मंज़िल के पचास गज़ के मुक़ाबले में ऊपरी मंज़िल के सौ गज़ का क्षेत्रफल निर्धारित किया जाएगा। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के अनुसार एक गज़ के मुक़ाबले में एक ही गज़ रखा जाएगा। और यदि दो व्यक्तियों में एक पूर्ण घर (बैत-ए-कामिल) यानी निचली मंज़िल सहित ऊपरी मंज़िल साझा हो और एक निचली मंज़िल बिना ऊपरी मंज़िल के साझा हो (जैसे ऊपरी मंज़िल किसी अन्य की हो), तो इमाम आज़म (रह.) के अनुसार वह ऊपरी मंज़िल जो बिना निचली मंज़िल के साझा है, उसमें सौ गज़ के मुक़ाबले पूर्ण घर के तैंतीस (33) और एक तिहाई गज़ निर्धारित किए जाएंगे, क्योंकि इमाम के अनुसार ऊपरी मंज़िल निचली मंज़िल के आधे के बराबर होती है। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के अनुसार पूर्ण घर के पचास गज़ के मुक़ाबले सौ गज़ उस निचली या ऊपरी मंज़िल के निर्धारित किए जाएंगे जिसका दूसरा हिस्सा साझा नहीं है, क्योंकि उनके अनुसार ऊपरी और निचली मंज़िल बराबर हैं। इमाम मुहम्मद (रह.) इन सब में मूल्य की समानता का विचार करते हैं और इसी पर फ़तवा है, यह 'मबसूत' में है।

यदि साझेदारों ने एक घर (दार) को आपस में बाँटा और उसमें एक शौचालय है जिसका रास्ता आम सड़क की ओर है या कोई अनाज का भंडार है, तो उनके गज़ घर के कुल गज़ों में शामिल नहीं किए जाएंगे क्योंकि जब ये सार्वजनिक रास्ते पर बने हों, तो उन्हें बनाए रखने का अधिकार नहीं होता बल्कि वे गिरा दिए जाने के योग्य हैं, और जो गिराने योग्य हो उसे गिरा हुआ ही माना जाता है। हालाँकि, जिसके हिस्से में वह ज़मीन आएगी, उसके लिए उसका मूल्य लगाया जाएगा। यदि कोई ऊपरी हिस्सा

सार्वजनिक खिड़की (नाफ़िज़ा) पर हो तो घर के गज़ों में उसका हिसाब लगाया जाएगा, यह 'मुहीत सरख़्सी' में है।

यदि कोई व्यक्ति मर गया और उसने दो घर विरासत में छोड़े और वारिसों ने इस तरह बँटवारे की माँग की कि प्रत्येक को दोनों घरों में हिस्सा मिले, तो यह जायज़ है। लेकिन यदि एक वारिस चाहे कि उसका हिस्सा एक ही घर या ज़मीन में इकट्ठा कर दिया जाए और दूसरा इनकार करे, तो इमाम आज़म (रह.) ने फ़रमाया कि क़ाज़ी प्रत्येक घर और ज़मीन को अलग-अलग बाँटेगा और किसी का हिस्सा एक जगह इकट्ठा नहीं करेगा। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) ने फ़रमाया कि यह क़ाज़ी की राय पर है। यदि घर अलग-अलग शहरों में हों, तो इसका स्पष्ट उल्लेख मूल पुस्तकों में नहीं है, लेकिन उलेमा ने कहा है कि इमाम आज़म के अनुसार क़ाज़ी हिस्सा इकट्ठा नहीं करेगा, चाहे घर एक ही शहर में हों या अलग-अलग, या पास हों या दूर। हिलाल (रह.) ने इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से रिवायत की है कि यदि दो शहरों में हों तो इकट्ठा नहीं किया जाएगा।

(1) बारी बाँधना (पालियों में उपयोग)। (2) ऊपरी कमरा/अटारी। (3) घरों का समूह।

---

قسمت منافع اس کو مہاہات (۱) کہتے ہیں پھر اعیان کبھی غیر منقول ہوتے ہیں جیسے دور و عقار (جمع دار) اور کبھی منقول ہوتے ہیں جیسے عروض و حیوانات و حبوب از قسم مکیلات و موزونات وغیرہ اور کبھی قسمت تمام شریکوں کی رضامندی سے ہوتی ہے اور کبھی بعض کی رضامندی سے ہوتی ہے اور یہ قاضی اور اس کے امین کے رائے پر ہے کذا فی الینابیع۔

**باب دوم: کیفیت قسمت کے بیان میں**

ایک سفل دو آدمیوں میں مشترک ہے اور اس کا علوان (۲) دونوں کے سوائے دوسرے کا ہے یا علو دو آدمیوں میں مشترک اور اس کا سفل ان دونوں کے سوائے دوسرے کا ہے اور اس کی تقسیم کا ارادہ کیا تو امام اعظمؒ کے قول پر مساحت سفل کے پچاس گز کے مقابلہ میں سو گز علو کی مساحت قرار دی جائے گی اور امام ابو یوسفؒ کے قول پر ایک گز کے مقابلہ میں ایک ہی گز رکھا جائے گا اور اگر دو آدمیوں میں ایک بیت کامل یعنی سفل مع علو کے مشترک ہو اور ایک سفل بدوں اس کے علو کے مشترک ہو مثلاً علو کسی غیر کا ہو یا ایک علو بدوں اس کے سفل کے مشترک ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک جو علو بدوں سفل کے مشترک ہے اس میں سے سو گز بمقابلہ بیت کامل کے تینتیس ۳۳ تہائی گز کے قرار دیے جائیں گے کیونکہ موافق صورت اول کے امام کے نزدیک علو مثل نصف سفل کے ہوتا ہے اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک بیت کامل کے پچاس گز بمقابلہ سو گز اس سفل کے جس کا علو مشترک نہیں ہے یا اس علو کے جس کا سفل مشترک نہیں ہے قرار دیئے جائیں گے کیونکہ امام ابو یوسفؒ کے نزدیک علو و سفل دونوں برابر ہیں اور امام محمدؒ ان سب میں قیمت کے برابر ہونے کا اعتبار کرتے ہیں اور اسی پر فتویٰ ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر شریکوں نے ایک دار کو باہم تقسیم کیا اور اس میں ایک پاخانہ ہے جس کا راستہ

شارع عام کی طرف ہے یا ایک غلہ ہے تو ان دونوں کے مساحت کے گز اس دار کی مساحت کے گزوں میں شامل نہ کئے جائیں گے اس واسطے کہ پاخانہ و غلہ جب عام راستہ پر بنے ہوئے ہوں تو ان کے بنے رہنے کا استحقاق نہیں ہوتا ہے بلکہ یہ چیزیں توڑ دینے کی مستحق ہیں اور جو چیز توڑ دیئے جانے کی مستحق ہو وہ مثل ٹوٹے ہوئے کے قرار دی جاتی ہے پس وہ دار مذکور کے گزوں میں حساب نہ کی جائے گی مگر جس کے تحت میں پڑے اس کے حق میں اس کی قیمت لگائی جائے گی۔ اگر علو کسی کو بہ نافذہ میں واقع ہو تو دار کے گزوں میں اس کے گزوں کا حساب لگایا جائے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر ایک شخص مر گیا اور اس نے دو دار ترکہ چھوڑے اور اس کے دونوں وارثوں نے اس طرح تقسیم ترکہ کی درخواست کی کہ ہر ایک کو دونوں زمینوں اور دونوں وارثوں میں سے اس کا حصہ مل جائے تو تقسیم جائز ہے اور اگر دونوں وارثوں میں سے ایک نے یہ چاہا کہ میرا حصہ دونوں داروں یا دونوں زمینوں میں سے ایک زمین یا ایک دار میں جمع کر دیا جائے اور دوسرے نے انکار کیا تو امام اعظمؒ نے فرمایا کہ قاضی ہر دار و ہر زمین کو علیحدہ تقسیم کر دے گا اور دونوں میں سے کسی کا حصہ ایک دار یا ایک زمین میں جمع نہ کرے گا اور صاحبینؒ نے فرمایا کہ یہ قاضی کی رائے پر ہے اگر اس کی رائے میں آئے تو جمع کر دے ورنہ نہیں۔ اگر داروں میں سے ہر ایک دار ایک ایک شہر میں واقع ہو تو اس کا حکم کتاب میں مذکور نہیں ہے اور مشائخ نے فرمایا کہ امام اعظمؒ کے قول پر ایک کا حصہ ایک دار میں جمع نہ کرے گا خواہ دونوں دار ایک ہی شہر میں ہوں یا دو شہروں میں ہوں خواہ متصل واقع ہوں یا منفصل واقع ہوں اور ہلال رحمۃ اللہ علیہ نے امام ابو یوسف رحمۃ اللہ علیہ سے روایت کی کہ اگر دو شہروں میں واقع ہوں تو جمع نہ کرے گا اور دور (۳) تکلف بمنزلہ مختلف۔ (۱) باری باندھنا۔ (۲) بال خانہ۔ (۳) جمع دار۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (240) Kitab al-Qisma (Book of Partition)**

They are of various kinds. If two houses are shared between two persons, the Qazi (judge) has the discretion to consolidate the share of one person in a single house, whether the two houses are adjacent or separate. And if two floors (levels of a building) are shared by two people, then if they are situated separately, they are like two different houses; the share of one will not be consolidated in a single floor, but each floor will be partitioned separately. If the two floors are connected, they are like two rooms (bayt), and the Qazi has the discretion to consolidate one's share in a single floor. All of this is the opinion of Imam-e-Azam (Abu Hanifa). The Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) said that house and room are the same, and in this, the Qazi's judgment prevails (1). This is in Fatawa Qazi Khan.

If there is a house and a field, or a house and a shop, each should be partitioned separately because the types (genus) are different. This is in the Hidaya. If the inheritance includes a house and a shop, and all heirs are adults and mutually agree that the house and shop be given to one heir in exchange for their entire share of the inheritance, it is permissible. According to Imam-e-Azam, the rule against consolidating shares means that the Qazi cannot do so by force (compulsion), but if the heirs mutually agree, it is permissible. However, if one heir gives a house to another heir in exchange for their entire share without the consent of the remaining heirs, it is not permissible; that is, it will not be enforceable against the rights of the others unless they grant permission. Without permission, they have the right to take it back from that heir and include it in the partition. This is obvious, but the issue is: will the heir who gave the house receive their share back from it after it is returned? Some scholars (masha'ikh) said they will not. This is in the Muhit. If a house is shared among several people and they want to partition it, and one side of the house has more building structures, one partner might want money (dirhams) as compensation for this excess while the other wants land. In this case, the compensation will be designated from the land itself, and the one whose share includes the building will not be burdened with paying dirhams unless necessary, in which case the Qazi has the discretion to set dirhams as compensation. If there is land and building, it is narrated from Imam Abu Yusuf that he partitions each based on value. It is narrated from Imam Abu Hanifa that he partitions the land by measurement (area), and then whoever receives the building or a better portion compensates the other with dirhams to achieve equality. Thus, these dirhams are included due to the necessity of partition. It is narrated from Imam Muhammad that the person whose share includes

the building should give the other partner an equivalent portion of the courtyard or open space. If there is still an excess and real equality is impossible (e.g., the courtyard isn't large enough to offset the building's value), then dirhams should be paid for the excess. This is in the 'Kafi'. If the partners disagree about a path (access road), some say it should be separated from the partition, while others say it shouldn't. The Qazi shall see: if each can make a path for their own portion, he will partition the path and not leave it shared. If each cannot make a path for their portion, the Qazi will not partition the path portion because in the first case, no benefit is lost by partition, unlike the second case. Our scholars (masha'ikh) have said that the phrase 'can make a path for their portion' refers to a path through which a person can pass, not necessarily a path wide enough for a beast of burden. If a path cannot even be made for a single person to pass, then it is not considered a path at all. (1) Whatever he deems to be in the public interest (maslahat).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (240) किताबुल क़िस्मत (बँटवारे की किताब)**

वे विभिन्न प्रकार के हैं। यदि दो घर दो व्यक्तियों के बीच साझा हैं, तो न्यायाधीश (क़ाज़ी) को अधिकार है कि वह चाहे तो दोनों में से एक का हिस्सा एक ही घर में इकट्ठा कर दे, चाहे दोनों घर आपस में जुड़े हों या अलग-अलग। और यदि दो मंजिलें दो व्यक्तियों के बीच साझा हैं, तो यदि दोनों अलग-अलग स्थित हों, तो वे दो अलग-अलग मकानों की तरह हैं, जहाँ एक व्यक्ति का हिस्सा एक ही मंजिल में इकट्ठा नहीं किया जाएगा, बल्कि हर मंजिल को अलग-अलग विभाजित किया जाएगा। और यदि दोनों मंजिलें जुड़ी हुई हों, तो वे दो कमरों (बेत) की तरह हैं, क़ाज़ी को अधिकार है कि वह एक का हिस्सा एक ही मंजिल में इकट्ठा कर दे, और यह सब इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) रह० का कथन है। साहिबैन ने कहा है कि मकान और कमरा एक समान हैं, इसमें क़ाज़ी की राय सर्वोपरि है (1)। यह फ़तावा क़ाज़ी खान में है।

यदि कोई मकान और खेत हो, या मकान और दुकान हो, तो दोनों में से प्रत्येक को अलग-अलग विभाजित किया जाएगा क्योंकि वे अलग-अलग प्रकार (जिन्स) के हैं। यह हिदाया में है। यदि विरासत में एक मकान और एक दुकान हो और सभी वारिस वयस्क हों और आपस में इस बात पर सहमत हों कि यह मकान और दुकान एक वारिस को उसके पूरे विरासत के हिस्से के बदले दे दिए जाएँ, तो यह जायज़ है। क्योंकि इमाम-ए-आज़म के अनुसार हिस्से को इकट्ठा न करने का अर्थ यह है कि ज़बरदस्ती (बतौर-ए-जबर) क़ाज़ी ऐसा नहीं कर सकता, लेकिन यदि वारिस आपस में सहमत हों तो यह जायज़ है। और यदि विरासत में से एक वारिस के पूरे हिस्से के बदले दूसरे वारिस ने बाकी वारिसों की सहमति के बिना उसे एक मकान दे दिया, तो यह जायज़ नहीं है, यानी बाकी वारिसों के हक़ में यह लागू नहीं होगा, सिवाय इसके कि वे लोग इसकी अनुमति दे दें। बिना अनुमति के, उन्हें यह अधिकार होगा कि वे वारिस से उसे वापस ले लें और उसे बँटवारे में शामिल करें। यह स्पष्ट है, लेकिन समस्या यह है कि जिस वारिस ने वह मकान दिया था, क्या वह दूसरों द्वारा वापस लिए जाने के बाद उसमें से अपना हिस्सा पाएगा या नहीं? कुछ विद्वानों (मशाइख) ने कहा है कि वह हिस्सा नहीं पाएगा। यह 'मुहीत' में है। एक मकान कई लोगों में साझा है, उन्होंने इसके बँटवारे की इच्छा की और मकान के एक तरफ इमारत ज़्यादा है। एक साथी ने चाहा कि इस अधिकता के बदले में नकद पैसे (दिरहम) दिए जाएँ और दूसरे ने चाहा कि उसके बदले ज़मीन दी जाए, तो ज़मीन में से ही उसका बदला तय किया जाएगा, और जिसके हिस्से में वह इमारत आई है, उसे यह कष्ट नहीं दिया जाएगा कि वह इमारत के बदले पैसे दे, सिवाय उस स्थिति में जब यह ज़रूरी हो जाए, तब क़ाज़ी को

अधिकार होगा कि वह इसका बदला पैसे तय करे। और यदि ज़मीन और इमारत दोनों हों, तो इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत है कि वह उनमें से प्रत्येक को कीमत के आधार पर विभाजित करेगा। और इमाम अबू हनीफ़ा से रिवायत है कि वह ज़मीन को माप (क्षेत्रफल) के आधार पर विभाजित करेगा, फिर जिसके हिस्से में इमारत आए या जिसका हिस्सा दूसरे की तुलना में बेहतर हो, वह दूसरे को दिरहम (पैसे) दे दे ताकि दोनों में समानता आ जाए। अतः ये दिरहम बँटवारे की आवश्यकता के कारण शामिल किए जाएँगे। इमाम मुहम्मद से रिवायत है कि जिसके हिस्से में इमारत आए, वह आँगन के उस हिस्से में से, जो इमारत के बराबर महत्व रखता हो, साथी को दे दे। और यदि फिर भी अधिकता रह जाए और वास्तविक समानता असंभव हो (उदाहरण के लिए, आँगन में इतनी जगह न हो कि इमारत की कीमत पूरी हो सके), तो इस स्थिति में अधिकता के बदले दिरहम दे दिए जाएँ। यह 'काफ़ी' में है। यदि साझेदारों ने रास्ते के बारे में विवाद किया, तो कुछ ने कहा कि रास्ते को बँटवारे से अलग रखा जाए और कुछ ने कहा कि अलग न किया जाए। तो क़ाज़ी देखेगा कि यदि हर कोई अपने हिस्से के लिए रास्ता निकाल सकता है, तो वह उक्त रास्ते को विभाजित कर देगा और उसे साझा नहीं छोड़ेगा। और यदि हर कोई अपने हिस्से के लिए रास्ता नहीं निकाल सकता, तो क़ाज़ी रास्ते के हिस्से को विभाजित नहीं करेगा, क्योंकि पहली स्थिति में बँटवारे से उनका कोई लाभ समाप्त नहीं होता, जबकि दूसरी स्थिति इसके विपरीत है। और हमारे विद्वानों (मशाइख) ने कहा है कि 'अपने हिस्से के लिए रास्ता निकाल सकता है' से तात्पर्य ऐसा रास्ता है जिससे एक व्यक्ति गुज़र सके, ऐसा रास्ता नहीं जिससे बोझ लदा हुआ जानवर गुज़र सके। और यदि ऐसा रास्ता भी न निकल सके जिससे एक आदमी गुज़र सके, तो वह वास्तव में रास्ता ही नहीं है। (1) जो कुछ उनकी राय में जनहित (मसलहत) में हो, वह करें।

---

جنسوں کے ہیں۔ اگر دو بیت دو شخصوں میں مشترک ہوں تو قاضی کو اختیار ہے چاہے دونوں میں سے ایک کا حصہ ایک بیت میں جمع کر دے خواہ دونوں بیت متصل ہوں یا منفصل ہوں اور اگر دو منزل دو آدمیوں میں مشترک ہوں پس اگر دونوں منفصل واقع ہوں تو مثل دو داروں کے ہیں کہ ایک کا حصہ ایک منزل میں جمع نہ کرے گا بلکہ ہر منزل کو علیحدہ تقسیم کر دے گا اور اگر دونوں متصل واقع ہوں تو مثل دو بیت کے ہیں قاضی کو اختیار ہے کہ ایک کا حصہ ایک منزل میں جمع کر دے اور یہ سب امام اعظم ﷺ کا قول ہے۔ صاحبین نے فرمایا کہ دار و بیت یکساں ہیں اس میں قاضی کی رائے ہے (۱) یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر کوئی دار و کھیت ہو یا دار و حانوت ہو تو دونوں میں سے ہر ایک کو علیحدہ تقسیم کرے گا کیونکہ جنس مختلف ہے یہ ہدایہ میں ہے۔ اگر ترکہ میں ایک دار و حانوت ہو اور سب وارث بالغ ہوں اور باہم اس بات پر راضی ہوئے کہ یہ دار و حانوت ایک وارث کو اس کے پورے حصہ ترکہ کے بدلے دے دیں تو جائز ہے کیونکہ امام اعظم ﷺ کے نزدیک ایک کا حصہ جمع نہ کرنے کے یہ معنی ہیں کہ بطور جبر کے قاضی جمع نہیں کر سکتا ہے لیکن اگر وارث لوگ باہم اس بات پر رضامند ہو جائیں تو یہ جائز ہے اور اگر ترکہ میں سے ایک وارث کے پورے حصے کے بدلے دوسرے وارث نے بدوں باقیوں کی رضامندی کے اس کو ایک دار دے دیا تو جائز نہیں ہے یعنی باقیوں کے حق میں اس کا نفاذ نہ ہو گا مگر اس صورت میں وہ لوگ اجازت دے دیں اور بدوں اجازت کے ان لوگوں کو یہ اختیار رہے گا کہ وارثہ کو اس سے واپس کر لیں اور اس کو تقسیم میں شامل کریں اور یہ تو ظاہر ہے مگر اشکال یہ ہے کہ جس وارث نے یہ دار دیا تھا وہ باقیوں کے واپس کرنے کے بعد اس میں سے اپنا حصہ لے گا یا نہیں سو بعض مشائخ نے فرمایا کہ نہیں لے گا

یہ محیط میں ہے۔ ایک دار چند لوگوں میں مشترک ہے انہوں نے اس کی تقسیم چاہی اور دار کے ایک جانب عمارت زیادہ ہے پس ایک شریک نے چاہا کہ اس زیادتی کا عوض دراہم ہوں اور دوسرے نے چاہا کہ اس کے عوض میں زمین ہو تو زمین میں سے اس کا عوض قرار دیا جائے گا اور جس کے حصہ میں وہ عمارت پڑی ہے اس کو یہ تکلیف نہ دی جائے گی کہ بمقابلہ عمارت کے درہم دے الّا اس صورت میں کہ یہ حصہ ہو تو قاضی کو اختیار ہو گا کہ اس کا عوض درہم قرار دے اور اگر زمین و عمارت ہو تو امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ ان میں سے ہر ایک کو باعتبار قیمت کے تقسیم کرے گا اور امام ابو حنیفہؒ سے روایت ہے کہ زمین کو بمساحت تقسیم کرے پھر جس کے حصہ میں عمارت پڑے یا جس کا حصہ بہ نسبت غیر کے جید ہو وہ دوسرے کو درہم دے دے تاکہ دونوں میں مساوات ہو جائے پس یہ دراہم بضرورت تقسیم میں داخل ہوں گے اور امام محمدؒ سے روایت ہے کہ جس کے حصہ میں عمارت پڑے وہ میدان صحن میں جس قدر عمارت کے مقابلے میں مساوات رکھتا ہو اس قدر شریک کو دے دے اور اگر پھر بھی زیادتی رہ گئی اور مساوات حقیقی متعذر ہوئی مثلاً میدان صحن میں اس قدر نہیں ہے کہ قیمت عمارت کو وفا کرتا ہو تو اس حال میں زیادتی کے مقابلے میں درہم دے دے یہ کافی میں ہے۔ اگر شریکوں نے طریق (راستہ) کی بابت اختلاف کیا بعض نے کہا کہ یہ طریق قسمت سے الگ کر دیا جائے اور بعض نے کہا کہ الگ نہ کیا جائے تو قاضی دیکھے گا کہ اگر ہر ایک اپنے حصہ کے واسطے راستہ نکال سکتا ہے تو طریق مذکور کو تقسیم کر دے گا الگ نہ کرے گا کہ ان کے درمیان مشترک رہے اور اگر ہر ایک اپنے حصہ کے واسطے نکال سکے تو قاضی بقدر طریق کے تقسیم نہ کرے گا کیونکہ صورت اول میں اس تقسیم سے ان کی کوئی منفعت فوت نہیں ہوتی ہے بخلاف صورت ثانیہ کے کہ اس میں ایسا نہیں ہے اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ اس قول سے کہ اپنے حصہ کے واسطے راستہ نکال سکتا ہے ایسا راستہ مراد لیا ہے کہ جس میں آدمی گزر جائے نہ ایسا راستہ جس میں

جانور مع بوجھ گزر جائے اور اگر ایسا نکل سکتا ہو کہ جس میں ایک آدمی نہ گذر سکے تو یہ اصلاً راستہ نہیں ہے (۱) جو کچھ اس کی رائے میں مصلحت ہو کرے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Vol (8) 241 Book of Partition (Kitab al-Qisma)**

If partners disagree on the width or narrowness of a path within a partitioned house, some scholars have stated that the width of the path should be slightly more than the main gate (Bab-e-Azam), and the height should be enough for a person to pass easily, not necessarily according to the height of the main gate. Others have maintained that its width should be equal to the width of the main gate and its height equal to the height of the main gate (1), because this measure allows them to continue benefiting from it as they did prior to partition. The benefit of having height greater than the main gate is that if any partner wishes to construct a balcony (Janah/Sajja) in their portion, they may do so if it is above the height of the door, but shall be prohibited if it is below. In the case of land, sufficient space should be left for two oxen to pass, but the width of the path should not be such that two oxen can pass through it simultaneously, even if there is a need; for just as there is a need for this, there is also a need for the passage of oxen with a cart, and considering such factors would lead to infinity. This is mentioned in 'Al-Dhakhirah'.

If every claimant of a path asserts that "this path belongs to me," and the true status is unknown, the said path shall be declared shared equally among all, as their possession and usage of it are equal. It shall not be the case that shares in the path are allotted according to the area of the house or premises possessed by each, because the need for the path is equal for both the one with a small premise and the one with a large house. This ruling is contrary to that of water rights (Shurb), for if partners disagree regarding water, it is determined according to the size of their respective lands. If the original status of the path is known—how it is shared between them—then it shall be declared shared according to that origin. Therefore, if a house belongs to one person and the path within it also belongs to another, and the owner of the house dies and his heirs partition the house among themselves but keep the path separate for themselves and the path owner, and they then sell the path and wish to divide the price (Thaman), half the price shall go to the path owner and half to the heirs. If the original state is unknown as to how the house was partitioned as inheritance and they deny the status, the said price shall be divided numerically between those people and the path owner; this is in 'Al-Mabsut'. If the items are of the same genus in every respect—meaning they are identical in name and meaning, such as sheep (Ghanam), cattle (Baqar), or items measured by volume, weight, or cloth—then the Qadi (Judge) shall partition them collectively upon the request of some partners. However, items that are different in every respect shall not be

partitioned collectively by the Qadi upon the request of some partners. If they are of the same genus in reality but different in meaning, such as slaves (Raqiq), and there is something with them that can be partitioned collectively, the Qadi shall partition everything collectively without disagreement. He shall make that item the primary basis for the partition and consider the slaves as subordinate to it; it is permissible for a thing to be established as subordinate to another even if it is not established independently. If there is no such item with them that can be partitioned collectively, Imam Abu Hanifa (RA) stated that the Qadi shall not partition them collectively, whereas the Sahibayn (Imams Abu Yusuf and Muhammad) stated that the Qadi has the discretion to partition them collectively; this is mentioned in 'Al-Asl'. If wheat, dirhams, or cloth are shared between two partners but are of the same genus, and one separates his portion, it is permissible; this is in 'Al-Sirajiyyah'. The partitioner (Qasim) should record what he is dividing on paper for the sake of memory, make all shares equal, and separate one from the other.

1. Large door, gate.
2. There are five heirs and the sixth is the path owner, so the price shall be divided into six equal parts.
3. Female and male slaves. (1) Purposely divide more than the height of the main gate, i.e., include it in the partition.

**फतावा आलमगीरी ..... खंड (8) 241 किताब-अल-क़िस्मा (बँटवारे की किताब)**

और अगर साझीदारों ने विभाजित घर में से रास्ते की चौड़ाई या संकीर्णता में मतभेद किया, तो कुछ विद्वानों (मशायख़) ने कहा कि रास्ते की चौड़ाई मुख्य द्वार (बाब-ए-आज़म) से कुछ अधिक रखी जाए और ऊँचाई ऐसी हो कि इंसान आसानी से निकल सके, न कि मुख्य द्वार की ऊँचाई के बराबर। और कुछ ने कहा कि इसकी चौड़ाई मुख्य द्वार की चौड़ाई के बराबर और ऊँचाई मुख्य द्वार (1) की ऊँचाई के बराबर रखी जाए, क्योंकि इतनी मात्रा से वे लोग उसी प्रकार लाभ उठा सकते हैं जैसे बँटवारे से पहले उठाते थे। मुख्य द्वार से अधिक ऊँचाई रखने का लाभ यह है कि यदि कोई साझीदार अपने हिस्से में छज्जा (सज्जा) निकालना चाहे, तो यदि वह द्वार की ऊँचाई से ऊपर हो तो निकाल सकता है, और यदि नीचे हो तो उसे रोका जाएगा। और यदि भूमि हो, तो उसमें रास्ते के लिए इतनी जगह छोड़ी जाएगी कि दो बैल गुजर सकें, लेकिन रास्ते की मात्रा इतनी नहीं रखी जाएगी कि दो बैल एक साथ उसमें से गुजर सकें, भले ही उसकी आवश्यकता हो; क्योंकि जैसे इसकी आवश्यकता है, वैसे ही बैलगाड़ी गुजरने की भी आवश्यकता है, और इस पर ध्यान देना अनंत की ओर ले जाएगा। यह 'ज़खीरा' में वर्णित है।

यदि रास्ते के हकदारों में से हर एक ने दावा किया कि यह रास्ता मेरा है, और यदि इसकी वास्तविक स्थिति ज्ञात न हो, तो उक्त रास्ता सभी में बराबर का साझी माना जाएगा, क्योंकि उस पर उनका कब्ज़ा और उपयोग बराबर है। ऐसा नहीं किया जाएगा कि घर या मंज़िल का जो क्षेत्रफल प्रत्येक के कब्ज़े में है, उसके अनुपात में उन्हें रास्ते में हिस्सा दिया जाए, क्योंकि जिसके पास छोटी मंज़िल है और जिसके पास बड़ा घर है, दोनों की रास्ते की आवश्यकता समान है। यह नियम पानी के हिस्से (शुर्ब) के विपरीत है, क्योंकि पानी के मामले में साझीदारों के मतभेद पर पानी उनकी भूमि के क्षेत्रफल के हिसाब से तय किया जाता है। यदि रास्ते की वास्तविक स्थिति पता चल जाए कि उनके बीच यह किस प्रकार साझा है, तो उसी के अनुसार बँटवारा होगा। अतः यदि घर एक व्यक्ति का है और उसमें रास्ता दूसरे का भी है, फिर घर का मालिक मर गया और उसके वारिसों ने आपस में घर बाँट लिया लेकिन रास्ते को अपने और रास्ते वाले के लिए बँटवारे से अलग रखा, फिर उन्होंने रास्ता बेच दिया और उसकी कीमत (थमन) बाँटना चाही, तो आधी कीमत रास्ते वाले को और आधी वारिसों को मिलेगी। और यदि वास्तविक स्थिति ज्ञात न हो कि यह घर विरासत में कैसे बँटा है और उन्होंने इससे इनकार किया, तो उक्त कीमत उन लोगों और रास्ते वाले के बीच संख्या के आधार पर समान रूप से बँटेगी; यह 'मबसूत' में है। यदि वस्तुएं हर दृष्टि से एक ही प्रकार (जिन्स) की हों, जैसे भेड़-

बकरियां या गायें, या तौली जाने वाली चीजें या कपड़े, तो काजी (न्यायाधीश) साझीदारों की प्रार्थना पर उन्हें सामूहिक रूप से विभाजित करेगा। और जो वस्तुएं हर दृष्टि से भिन्न हों, उन्हें काजी सामूहिक रूप से विभाजित नहीं करेगा। यदि वास्तविकता में एक ही प्रकार की हों लेकिन अर्थ में भिन्न हों, जैसे दास (रक़ीक़), और उनके साथ कोई ऐसी वस्तु हो जो सामूहिक रूप से बँट सके, तो काजी बिना किसी विवाद के सबको सामूहिक रूप से विभाजित कर देगा। वह उस वस्तु को बँटवारे का आधार बनाएगा और दासों को उसके अधीन रखेगा; और यह जायज़ है कि एक चीज़ दूसरे के अधीन सिद्ध हो जाए भले ही वह स्वतंत्र रूप से न हो। यदि उनके साथ कोई ऐसी वस्तु न हो जो सामूहिक रूप से बँट सके, तो इमाम अबू हनीफा (رحمة الله عليه) ने कहा कि काजी सामूहिक बँटवारा नहीं करेगा, जबकि साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) ने कहा कि काजी को अधिकार है कि वह सामूहिक बँटवारा कर दे; ऐसा ही 'अस्ल' में वर्णित है। यदि दो साझीदारों के बीच गेहूँ, दरहम या कपड़े साझे हों लेकिन वे एक ही प्रकार के हों, और एक ने अपना हिस्सा अलग कर लिया तो यह जायज़ है; यह 'सिराजिया' में है। बँटवारा करने वाले (कासिम) को चाहिए कि वह जिसका बँटवारा कर रहा है उसे एक कागज़ पर लिखता जाए ताकि याद रहे, और बँटवारे में जितने भी हिस्से हों सबको बराबर कर दे और एक को दूसरे से अलग कर दे।

1. बड़ा दरवाज़ा, फाटक।
2. पाँच वारिस हैं और छठा रास्ते वाला है, तो छह हिस्से करके कीमत को छह पर बाँटा जाएगा।
3. दासियाँ और दास। (1) मुख्य द्वार की ऊँचाई से जानबूझकर अधिक विभाजित कर दे, अर्थात उसे बँटवारे में शामिल कर दे।

---

اور اگر شریکوں نے تقسیم دار میں سے راستہ کی فراخی و تنگی میں اختلاف کیا تو بعض مشائخ نے فرمایا کہ راستہ کی چوڑائی باب اعظم سے کچھ زیادہ رکھے اور طول و اونچائی میں آسان تک رکھے نہ بقدر طول باب اعظم کے اور بعضوں نے فرمایا کہ اس کی چوڑائی بقدر باب اعظم کی چوڑائی کے اور طول اعلیٰ بقدر بلندی باب اعظم (1) کے رکھے کیونکہ اتنی مقدار سے وہ لوگ جس طرح قبل قسمت کے انتفاع حاصل کرتے تھے اب بھی حاصل کر سکتے ہیں اور طول باب اعظم سے زیادہ اونچائی کی تقسیم کا فائدہ یہ ہے کہ اگر کسی شریک نے اپنے حصہ میں جناح (سجہ) نکالنا چاہا پس اگر وہ دروازہ کی اونچائی سے اوپر ہو تو نکال سکتا ہے اور اگر نیچے ہو تو اس سے منع کیا جائے گا اور اگر زمین ہو تو اس میں سے اس قدر راستہ کے واسطے چھوڑ دے گا کہ دو بیل گذر جائیں اور طریق کی مقدار اس قدر نہ رکھے گا کہ ساتھ ہی دو بیل اس میں سے گذر جائیں اگر چہ اس کی جانب احتیاج ہے کیونکہ جیسے اس کی جانب احتیاج ہے ویسے ہی نیل مع گاڑی گزرنے کی جانب احتیاج ہے پس اس کا لحاظ غیر متناہی کی طرف مودی ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر اہل طریق میں سے ہر ایک نے دعویٰ کیا کہ یہ راستہ میرا ہے پس اگر اس کا اصل حال معلوم نہ ہو جائے تو طریق مذکور سب میں برابر شریک قرار دیا جائے گا کیونکہ طریق مذکور پر ان کا قبضہ و استعمال برابر ہے اور یہ نہ کیا جائے گا کہ جس قدر مساحت دار و منزل ہر ایک کے قبضہ میں ہے اس کے حساب سے ان کو راستہ میں حصہ دیا جائے کیونکہ جس کے پاس چھوٹی منزل ہے اور جس کے پاس بڑا دار ہے دونوں کی حاجت راستہ کے حق میں یکساں ہے۔ اس کا حکم شرب (پانی کا حصہ) کے بر خلاف ہے کیونکہ اگر شرب میں شریکوں نے اختلاف کیا تو یہ

شرب ان شریکوں میں ان کی زمینوں کی مقدار کے حساب سے قرار دیا جاتا ہے۔ اگر طریق کا اصل حال معلوم ہو جائے کہ ان کے درمیان کیونکر مشترک ہے تو اسی اصل کے موافق ان میں مشترک قرار دیا جائے گا پس اگر دار ایک شخص کا اور اس میں راستہ دوسرے کا بھی ہے پھر دار کا مالک مر گیا اور اس کے وارثوں نے دار مذکور باہم تقسیم کرلیا مگر راستہ اپنے اور راستہ والے کے واسطے تقسیم سے الگ کردیا پھر انہوں نے راستہ کو فروخت کیا اور اس کا ثمن تقسیم کرنا چاہا تو نصف ثمن راستہ والے کو اور نصف ان وارثوں کو ملے گا اور اگر اصل حال معلوم نہ ہوا کہ یہ دار ان لوگوں میں میراث تقسیم ہوا ہے اور ان لوگوں نے اس سے انکار کیا تو ثمن مذکور ان لوگوں اور راستہ والے کے درمیان گنتی کے حساب سے تقسیم ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر اعداد ہر وجہ سے جنس واحد ہوں یعنی ان اعداد میں ازراہ اسم و معنی دونوں طرح سے بجانست ثابت ہو جیسا کہ غنم (بکریاں) یا بقر (گائے) یا کیلی ووزنی چیزیں یا کپڑے تو ایسے اعداد کو قاضی بعض شریکوں کی درخواست پر بطور قسمت جمع تقسیم کرے گا اور جو اجناس ہر وجہ سے مختلف ہوں ان میں بعض شریکوں کی درخواست پر قاضی اعداد کو بطور قسمت جمع تقسیم نہ کرے گا اور اگر ازراہ حقیقت جنس واحد ہوں اور بحسب المعنی اجناس مختلف ہوں جیسے رقیق پس اگر ان کے ساتھ ایسی چیز ہو جو بطور قسمت جمع ہو سکتی ہو تو قاضی بلا خلاف سب کو بطور قسمت جمع تقسیم کر دے گا۔ اس شے کو قسمت میں اصل ٹھہرائے گا اور رقیق کو اس کے تابع قرار دے گا اور یہ جائز ہے کہ ایک بات دوسرے کی تبعیت میں ثابت ہو اگرچہ بالذات و مقصوداً ثابت نہ ہو اور اگر ان کے ساتھ کوئی ایسی چیز جو بطور قسمت جمع تقسیم ہو سکے نہ ہو تو امام ابو حنیفہؒ نے فرمایا کہ قاضی بطور قسمت جمع تقسیم نہ کرے گا اور صاحبینؒ نے فرمایا کہ قاضی کو اختیار ہے کہ بطور قسمت جمع تقسیم کر دے ایسا ہی اصل میں مذکور ہے۔ اگر دو شریکوں میں گیہوں مشترک ہوں یا درہم یا کپڑے ہوں مگر یہ ایک ہی جنس ہو پھر ایک نے اپنا

حصہ ممیز جدا کر لیا تو جائز ہے یہ سراجیہ میں ہے۔ قاسم کو چاہئے کہ جس کو تقسیم کرتا ہے اس کا ایک کاغذ پر تحریر کرتا جائے تا کہ یادداشت ہو سکے اور تقسیم میں جس قدر حصہ ہوں سب کو برابر کر دے اور تقسیم سے ایک کو دوسرے سے جدا کر دے۔

1. بڑا دروازہ، پھاٹک۔
2. پانچ وارث ہیں اور چھٹا راستہ والا ہے تو چھ حصہ کر کے ثمن چھ پر تقسیم کیا جائے گا۔
3. باندیاں و غلام۔ (1) باب اعظم کی بلندی سے زیادہ قصدا تقسیم کر دے یعنی وہ قسمت میں شامل کر دے۔

---

And he should conduct measurements so that the quantity becomes known, and estimate the value of the building because its necessity often arises at the end. He should separate each portion along with its path and water rights (irrigation) from the others so that no one's portion has any connection with another's; thus, the meaning of distinction and separation will be fully realized. He should name the portions, i.e., the first, and the one adjacent to it as the second, and similarly the third, and so on. Then, he should write the names of the partners and draw lots (qura). Whoever's name comes out first in the draw gets the first portion, and whoever's name comes out second gets the second portion. The principle in this chapter is to look at the smallest of the shares. For instance, if the smallest share is a third (1/3), the property should be divided into three parts; if it is a sixth (1/6), it should be divided into six parts to make the partition possible. The explanation is that a piece of land is shared among a group: one has ten shares, another five, and the third has one share. If they wish to partition it, the land will be divided according to the proportions of their shares, i.e., ten, five, and one. The method is to divide the land into equal units corresponding to their shares in every respect. Then, small balls (ghulula) should be made equal to the total number of shares, and lots drawn. Whichever ball comes out first should be placed on one side of the portions, and that will be the first portion. Then see whose name is in that ball. If, for example, the name of the one with ten shares comes out, the judge (Qazi) will give him that portion where the ball was placed, along with the adjacent nine portions, so that all his shares are contiguous. Then lots will be drawn among the remaining partners in the same way. Whichever ball comes out first will be placed on one of the remaining six portions. Then see whose name is in it. If, for example, it is the one with five shares, the Qazi will give him that portion plus the adjacent four portions. Then the one remaining portion will be given to the partner with one share. If the ball contains the name of the one with one share, that portion where the ball was placed will be given to him, and the remaining five portions will belong to the partner with five shares. The way to make the balls is that the Qazi writes the names of the partners on separate slips of paper, then places each slip inside a lump of clay and rolls it between his palms with both hands to form a ball-like shape (ghulula). It is clear that separating each portion with its path and water rights is preferable, but if the Qazi does not do so or it is not possible, it is still permissible. This is in 'al-Kafi'.

☆ If two persons partition shared fodder using ropes (hibal), it is permissible ☆

A man died leaving three sons and fifteen jars (khum), five of which were full of vinegar, five were empty, and five were half-full, and they were all of equal size. The sons wanted to partition these jars equally among themselves without moving them from their place. The scholars (Mashayikh) stated that the way to do this is to give one son two full jars, one half-full, and two empty ones. The second son should be given the same. The third son should be given the remaining five jars, which consist of one full, one empty, and three half-full jars. In this way, equality can be achieved. Two men shared five loaves of bread: one had two loaves and the other had three. They invited a third person, and all three ate equal portions of the bread. Then the third person gave them five dirhams and said, 'Divide this between yourselves according to how much of each of your bread I ate.' Faqih Abu al-Layth stated that the one who had two loaves should get two dirhams and the one who had three loaves should get three dirhams. This is because each person ate one loaf and two-thirds of a loaf from the undivided whole; out of this, two-thirds of a loaf [eaten by the third person] came from the one with two loaves...

☆ Ghulula: Like a ball or a pellet made.

और पैमाइश कर दे ताकि उसकी मात्रा ज्ञात हो जाए और इमारत की कीमत का अंदाज़ा कर दे क्योंकि अक्सर अंत में इसकी ज़रूरत पड़ती है और हर हिस्से को उसके रास्ते और पानी (सिंचाई) के साथ दूसरे से अलग कर दे ताकि किसी के हिस्से का दूसरे से कोई सम्बन्ध न रहे, अतः पृथक्करण और विभाजन के अर्थ पूर्णतः लागू हो जाएँ और हिस्सों के नाम रखे यानी पहला और जो उससे जुड़ा है वह दूसरा, इसी प्रकार तीसरा आदि। फिर साझेदारों के नाम लिखे और पर्चियाँ (क़ुरआ) डाले। सो जिसके नाम पहली पर्ची निकले उसे पहला हिस्सा और जिसके नाम दूसरी निकले उसे दूसरा हिस्सा दे। और इस विषय का मूल यह है कि हिस्सों में जो सबसे छोटा हिस्सा हो उसे देखे, यदि सबसे छोटा हिस्सा तिहाई (1/3) हो तो तीन हिस्सों में विभाजित करे और यदि छठा (1/6) हो तो छह हिस्सों में बाँटे ताकि विभाजन संभव हो। और इसका विवरण यह है कि एक ज़मीन कुछ लोगों के बीच साझा है, उनमें से एक के दस हिस्से हैं, दूसरे के पाँच हिस्से हैं और तीसरे का एक हिस्सा है। और उन लोगों ने इसका विभाजन करना चाहा तो ज़मीन उक्त हिस्सों की मात्रा पर बाँटी जाएगी यानी दस, पाँच और एक। और इसका तरीका यह है कि उनके हिस्सों के अनुसार पूरी तरह से बराबर करके उक्त ज़मीन के हिस्से किए जाएँ। फिर उनके हिस्सों की संख्या के बराबर गोलियाँ बनाकर उनमें पर्ची डाली जाए। सो जो गोली पहले निकले उसे हिस्सों में किसी तरफ रखी जाए और वही पहला हिस्सा होगा। फिर देखा जाए कि इस गोली में किसका नाम है। सो यदि उदाहरण के तौर पर दस हिस्सों वाले का नाम निकले तो काज़ी उसे यह हिस्सा जिसके किनारे गोली रखी गई थी और उससे जुड़े नौ और हिस्से दे देगा ताकि उसके सभी हिस्से आपस में जुड़े रहें। फिर शेष साझेदारों में भी इसी तरह पर्चियाँ डाली जाएँगी। फिर जो गोली पहले निकली उसे शेष छह हिस्सों में किसी तरफ रखेगा फिर गोली को देखेगा कि उसमें किसका नाम है। सो यदि उदाहरण के तौर पर पाँच हिस्से वाले का नाम हो तो काज़ी उसे यह हिस्सा और उससे जुड़े और चार हिस्से देगा। फिर एक हिस्सा जो शेष रह गया वह एक हिस्से वाले साझेदार को दे देगा। और यदि गोली में एक हिस्से वाले का नाम हो तो जिस हिस्से पर वह गोली रखी गई है, वह हिस्सा एक हिस्से वाले को दे देगा और शेष पाँच हिस्से उस पाँच हिस्से वाले साझेदार के रह जाएँगे। और गोली बनाने का तरीका यह है कि काज़ी साझेदारों के नाम अलग-अलग कागज़ों पर लिखे फिर प्रत्येक कागज़ को अलग काटकर एक मिट्टी के लोदे (पिंड) में रखकर अपनी हथेली में रखकर दोनों हाथों से गोल कर दे ताकि 'ग़ुलूला' (गोली) का आकार बन जाए। और यह स्पष्ट

हो कि हर हिस्से को उसके रास्ते और पानी (सिंचाई) के साथ अलग कर देना उत्तम है, लेकिन यदि काज़ी ने ऐसा नहीं किया या ऐसा संभव न हो तो भी जायज़ है। यह 'काफ़ी' में है।

☆ दो व्यक्तियों ने आपसी साझा भूसे को रस्सियों (हिबाल) के माध्यम से विभाजित किया तो जायज़ है ☆

एक व्यक्ति मर गया और उसने तीन बेटे और पंद्रह मटके(ख़म) छोड़े, जिनमें से पाँच मटके सिरके से भरे थे और पाँच खाली थे और पाँच मटके आधे-आधे सिरके से भरे थे और सब बराबर थे। बेटों ने चाहा कि इन मटकों को उनकी जगह से हटाए बिना आपस में बराबर बाँट लें। तो विद्वानों (मशायख) ने फ़रमाया कि इसका तरीका यह है कि एक बेटे को दो मटके पूरे भरे हुए और एक आधा और दो खाली दिए जाएँ। और दूसरे को भी इसी तरह दिए जाएँ। और तीसरे को शेष पाँच मटके जिनमें से एक पूरा भरा हुआ, एक खाली और तीन आधे-आधे भरे हुए हैं, दिए जाएँ। इस प्रकार समानता हो सकती है। दो आदमियों में पाँच रोटियाँ साझा थीं इस तरह कि एक की दो रोटियाँ थीं और दूसरे की तीन रोटियाँ थीं। फिर उन्होंने एक तीसरे व्यक्ति को बुला लिया और तीनों ने बराबर रोटियाँ खाईं। फिर तीसरे व्यक्ति ने उन दोनों को पाँच दरहम दिए और कहा कि मैंने तुम दोनों की रोटियों में से जितना हिस्सा खाया है उस हिसाब से तुम दोनों बाँट लो। तो फ़क़ीह अबुल लैस ने फ़रमाया कि दो रोटियों वाले को दो दरहम और तीन रोटियों वाले को तीन दरहम मिलेंगे। इसलिए कि प्रत्येक ने एक रोटी और दो-तिहाई रोटी अविभाजित खाई है, इसमें से दो-तिहाई रोटी तो दो रोटियों वाले के..

☆ ग़ुलूला: गोली या गेंद के जैसा बनाया हुआ।

اور پیمائش کر دے تا کہ اس کی مقدار معلوم ہو اور عمارت کی قیمت اندازہ کر دے کیونکہ اکثر آخر حال میں اس کی ضرورت پڑتی ہے اور ہر حصہ کو اس کے راستہ و شرب کے ساتھ دوسرے سے علیحدہ کر دے تا کہ کسی کے حصہ کو دوسرے سے کچھ تعلق نہ رہے پس تمیز و افراز کے معنی پورے پورے مستحق ہو جائیں اور حصہ کا نام رکھے یعنی اول اور جو اس سے متصل ہے اس کا ثانی علی ہذا القیاس ثالث وغیرہ پھر شریکوں کے نام لکھے اور قرعہ ڈالے سو جس کے نام اولاً قرعہ نکلے اس کو حصہ اول اور جس کے نام ثانیاً نکلے اس کو قسم ثانی دے اور اصل اس باب میں یہ ہے کہ حصوں میں سے جو سب سے کم ہے اس کو دیکھئے چنانچہ اگر کمتر حصہ تہائی ہو تو تین حصوں پر تقسیم کرے اور اگر کمتر چھٹا حصہ ہو تو چھ حصوں میں بانٹ دے تاکہ تقسیم ممکن ہو اور اس کی شرح یہ ہے کہ ایک زمین ایک جماعت کے درمیان مشترک ہے ان میں سے ایک کے دس حصے ہیں اور دوسرے کے پانچ حصے ہیں اور تیسرے کا ایک حصہ ہے اور ان لوگوں نے اس کا تقسیم کرنا چاہا تو ان کے حصوں کی مقدار پر زمین مذکور تقسیم کی جائے گی یعنی دس اور پانچ اور ایک اور اس کی کیفیت یہ ہے کہ ان کے سہام کے موافق برابر ہر طرح سے تسویہ کر کے زمین مذکور کے حصے کئے جائیں پھر ان کے سہام کی تعداد پر گولیاں بنا کر ان میں قرعہ ڈالا جائے سو جو گوں اولاً نکلے وہ سہام میں کسی طرف رکھی جائے اور وہی اول حصہ ہو گا پھر دیکھا جائے کہ اس گولی میں کس کا نام ہے پس اگر مثلاً دس حصوں والے کا نام نکلے تو قاضی اس کو یہ حصہ جس کے کنارے گولی رکھی گئی تھی اور اس کے متصل نو حصے اور دے دے گا تا کہ اس کے سب حصے باہم متصل ہوں پھر باقی حصہ داروں میں بھی اسی طرح قرعہ ڈالا جائے گا پھر جو گولی اولاً نکلی اس کو باقی چھ حصوں میں کسی جانب

رکھے گا پھر گولی کو دیکھے گا کہ اس میں کس کا نام ہے پس اگر مثلاً پانچ حصے والے کا نام ہو تو قاضی اس کو یہ حصہ اور اس کے متصل اور چار حصے دے گا پھر ایک حصہ جو باقی رہ گیا وہ ایک حصہ کے شریک کو دے دے گا اور اگر گولی میں ایک حصے والے کا نام ہو تو جس حصے پر وہ گولی رکھی گئی ہے وہ حصہ ایک حصے والے کو دے دے گا اور باقی پانچ حصے اس پانچ حصہ والے شریک کے رہ جائیں گے اور گولی بنانے کی یہ صورت ہے کہ قاضی شریکوں کے نام علیحدہ علیحدہ پرچوں پر لکھے پھر ہر پرچہ کو علیحدہ کاٹ کر ایک مٹی کے لوندے میں رکھ کر اپنی ہتھیلی میں رکھ کر دونوں ہاتھوں سے گول کر دے تا کہ غلولہ کی شکل ہو جائے اور واضح ہو کہ ہر حصہ کا اس کے راستہ و شرب کے ساتھ جدا کر دینا افضل ہے سوا اگر قاضی نے ایسا نہ کیا یا ایسا ممکن نہ ہو تو جائز ہے یہ کافی میں ہے۔

☆ دو اشخاص نے باہمی مشترک بھو سے کو بذریعہ حبال کے تقسیم کیا تو جائز ہے ☆

ایک شخص مر گیا اور اس نے تین بیٹے اور پندرہ خم چھوڑے جن میں سے پانچ خم سرکہ سے پُر تھے اور پانچ خالی تھے اور پانچ خم آدھے آدھے سرکہ سے بھرے تھے اور سب برابر تھے پس بیٹوں نے یہ بات چاہی کہ ان مٹکوں کو بدلوں اپنی جگہ سے علیحدہ کرنے کے باہم برابر تقسیم کریں تو مشایخ نے فرمایا کہ اس کی صورت یہ ہے کہ ایک بیٹے کو دو مٹکے پورے بھرے ہوئے اور ایک مٹکا آدھا اور دو خالی دیئے جائیں اور دوسرے کو بھی اسی طرح دیئے جائیں اور تیسرے کو باقی پانچ مٹکے جن میں سے ایک پورا بھرا ہوا اور ایک خالی اور تین آدھے آدھے بھرے ہوئے ہیں دیئے جائیں تو اس طرح مساوات ہو سکتی ہے۔ دو آدمیوں میں پانچ روٹیاں مشترک تھیں اس طرح کہ ایک کی دو روٹیاں تھیں اور دوسرے کی تین روٹیاں تھیں پھر انہوں نے ایک شخص ثالث کو بلا لیا اور تینوں نے برابر روٹیاں کھائیں پھر تیسرے نے ان دونوں کو پانچ درہم دیئے اور کہا کہ میں نے جس قدر تم دونوں کی روٹیوں میں سے کھایا ہے اس حساب سے تم دونوں تقسیم کر

لو تو فقیہ ابواللیث نے فرمایا کہ دو روٹیوں والے کو دو درہم اور تین روٹیوں والے کو تین درہم ملیں گے اس واسطے کہ ہر ایک نے ایک روٹی اور دو تہائی روٹی غیر منقسم کھائی ہے اس میں سے دو تہائی روٹی تو دو روٹیوں والے کے...

☆ غلولہ: بمانند گولی یا گیند جیسا ڈالا الینا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 233 | Kitab-ul-Qisma (The Book of Partition/ Division)**

...and one full loaf is from the share of the person with three loaves. Therefore, I consider every third as equal. Thus, it follows that each person consumed two parts from the share of the person with two loaves, and three parts from the share of the person with three loaves. Consequently, the total food for each person was five parts. Therefore, the compensation paid by the third person shall also be distributed according to this ratio. Faqih Abu Bakr stated that in his view, the person with two loaves should receive one dirham because he consumed one whole loaf and two-thirds of a loaf from his own two loaves, and the third person consumed only one-third of a loaf from his share. On the other hand, each person consumed one whole and two-thirds, meaning the third person consumed one whole loaf and one-third from the three loaves. Thus, the owner of the three loaves should receive four dirhams out of the five dirhams. This is recorded in 'Fatawa Qazi Khan'. If two persons divided shared straw using a 'Habal' (basket), it is permissible because the difference is very slight. This is in 'Zahiriyya'. Sheikh Abu Ja'far was asked regarding a situation where a Sultan imposed a 'Dand' (fine/tax) on villagers and they disagreed —some said it should be divided based on property ownership, while others said it should be per head (number of persons). The Sheikh replied that if this tax is for the protection of their property, then it shall be divided according to the value of the property because it is a maintenance cost (Moanat) for the property. Thus, each will bear it according to their ownership. However, if this 'Gharamat' (reparation/penalty) is for the protection of their lives, then it shall be divided based on the number of heads (1), but in this case, women and children shall not be charged as they are not interfered with. This is in 'Al-Muhit'. If two partners divided their shared grapes using a 'Gyan' (2) or scales, it is valid. Thus it is in 'Al-Zahiriyya'.

**Chapter Three: Regarding the circumstances in which partition shall be carried out and in which it shall not, and what is permissible and what is not.**

If a house (Dar) is shared between two persons, but one has a larger share, and the owner of the larger share requests a partition while the other refuses, the Qazi (judge) shall, by consensus, carry out the partition. If the owner of the smaller share requests partition and the owner of the larger share refuses, the ruling remains the same. This is the view adopted by Sheikh Imam Khwahirzadah, and the Fatwa is based on it. If a small house is shared between two persons such that the smaller shareholder cannot benefit from their portion after partition, and that same

shareholder (3) requests partition, the scholars (Mashaikh) have stated that the Qazi shall carry out the partition. Imam Khassaf mentioned that if a house is shared between two persons and each person's share is such that neither can benefit from it after partition, but both request the partition, the Qazi shall carry it out. However, if only one requests and the other refuses, the Qazi shall not partition it because the requester is acting foolishly/obstinately (4). Furthermore, if the harm of partition only falls on one party—for instance, one has a larger share and can still benefit from it after partition—and the larger shareholder requests partition while the other refuses, the Qazi shall partition it. But if the smaller shareholder (who would suffer the harm) requests it, the Qazi shall not partition it. Sheikh Khassaf has narrated the opposite. Thus it is in 'Fatawa Qazi Khan', and the most correct view is what Khassaf mentioned; this is in 'Al-Tabyeen'. Imam Abu Hanifa (R.A) stated that if a pathway is shared among several people...

---

1. Moanat means expense; as if he imposed this burden for the protection of these properties, so it became like a tax (Kharaj). 'Azamat' means indemnity/ restitution.
2. Gyan: This word is originally the Persian 'Gyan', and it was a very large scale, like the ones used today to weigh heavy loads on railways, etc. (1) The number of persons. (2) A single-pan scale. (3) The smaller shareholder. (4) Rebellious enemy (obstinate).

...वाले की और एक पूरी रोटी तीन रोटियों वाले के हिस्से में से है। अतः मैं हर तिहाई को एक बराबर करार देता हूँ। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक ने दो रोटियों वाले के हिस्से में से दो हिस्से खाए और तीन रोटियों वाले के हिस्से में से तीन हिस्से खाए। इस प्रकार प्रत्येक का कुल भोजन पाँच हिस्से हुआ। अतः तीसरे व्यक्ति ने जो मुआवज़ा दिया है, वह भी इसी अनुपात में विभाजित किया जाएगा। फ़क़ीह अबू बक्र ने फ़रमाया कि मेरे अनुसार दो रोटियों वाले को एक दिरहम मिलना चाहिए, क्योंकि उसने अपनी दो रोटियों में से एक पूरी रोटी और दो-तिहाई रोटी स्वयं खाई है, और तीसरे व्यक्ति ने (उसकी रोटियों में से) केवल एक-तिहाई रोटी ही खाई है। और (दूसरी ओर) प्रत्येक ने एक पूरी रोटी और दो-तिहाई रोटी खाई है, अतः तीसरे ने तीन रोटियों वाले में से एक पूरी रोटी और एक-तिहाई रोटी खाई है। इसलिए तीन रोटियों वाले को पाँच दिरहम में से चार दिरहम मिलने चाहिए। यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में उल्लेखित है। यदि दो व्यक्तियों ने साझा भूसे को 'हबाल' (टोकरी) के माध्यम से विभाजित किया, तो यह जायज़ है क्योंकि इसमें अंतर बहुत कम होता है। यह 'ज़हीरिया' में है। शेख अबू जाफ़र से पूछा गया कि यदि सुल्तान ने गाँव वालों पर 'डांड' (कर/जुर्माना) लगाया और उनमें मतभेद हो गया—कुछ ने कहा कि यह संपत्ति के अनुसार विभाजित होगा और कुछ ने कहा कि व्यक्तियों की संख्या के अनुसार। तब शेख ने फ़रमाया कि यदि यह डांड उनकी संपत्ति की सुरक्षा के उद्देश्य से है, तो यह संपत्ति के मूल्य के अनुपात में विभाजित होगा क्योंकि यह संपत्ति का खर्च (मोअनत) है। अतः प्रत्येक पर उसकी संपत्ति के अनुसार भार पड़ेगा। और यदि यह 'ग़रामत' (जुर्माना) उनके प्राणों की रक्षा के लिए है, तो यह व्यक्तियों की संख्या (1) के अनुसार विभाजित होगा, परंतु इस स्थिति में महिलाओं और बच्चों पर कुछ भी भार नहीं होगा क्योंकि उन्हें लक्षित नहीं किया जाता। यह 'मुहीत' में है। यदि दो साझेदारों ने अपने साझा अंगूरों को 'ग्यान' (2) या तराजू के पैमाने से विभाजित किया, तो यह सही है। 'कज़ानी अज़-ज़हीरिया'।

## अध्याय 3: उस स्थिति के विवरण में जिसमें विभाजन किया जाएगा और जिसमें नहीं किया जाएगा, और जो जायज़ है और जो जायज़ नहीं है।

एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा है, परंतु एक का हिस्सा अधिक है। यदि अधिक हिस्से वाले ने विभाजन का अनुरोध किया और दूसरे ने इनकार कर दिया, तो काज़ी सर्वसम्मति से विभाजन कर देगा। और यदि कम हिस्से वाले ने अनुरोध किया और अधिक हिस्से वाले ने इनकार किया, तब भी यही आदेश है। इसी मत को शेख इमाम ख़्वाहिरज़ादा ने अपनाया है और इसी पर फ़तवा है। यदि

कोई छोटा घर दो व्यक्तियों के बीच साझा हो, और यदि कम हिस्से वाला विभाजन के बाद अपने हिस्से से लाभ न उठा सके और उसी हिस्सेदार (3) ने विभाजन का अनुरोध किया हो, तो उलेमा (मशाइख़) ने फ़रमाया कि काज़ी विभाजन कर देगा। इमाम ख़स्साफ़ ने उल्लेख किया है कि यदि एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा है और प्रत्येक का हिस्सा ऐसा है कि विभाजन के बाद कोई भी अपने हिस्से से लाभ नहीं उठा सकता, परंतु दोनों ने ही विभाजन का अनुरोध किया हो, तो काज़ी विभाजन कर देगा। लेकिन यदि एक ने अनुरोध किया और दूसरे ने इनकार किया, तो काज़ी विभाजन नहीं करेगा क्योंकि अनुरोध करने वाला मूर्ख/उद्दंड (4) है। और यदि विभाजन से हानि केवल एक को पहुँचती हो, इस प्रकार कि एक का हिस्सा अधिक हो और वह विभाजन के बाद भी लाभ उठा सके और अधिक हिस्से वाले ने विभाजन का अनुरोध किया और दूसरे ने इनकार किया, तो काज़ी विभाजन कर देगा। परंतु यदि कम हिस्से वाले ने अनुरोध किया (और उसे हानि हो रही हो), तो काज़ी विभाजन नहीं करेगा। शेख़ ख़स्साफ़ ने इसके विपरीत उद्धृत किया है। 'कज़ानी फ़तावा काज़ी ख़ान' और सबसे सही वही है जो ख़स्साफ़ ने उल्लेख किया है, यह 'तबीईन' में है। इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) ने फ़रमाया कि यदि एक मार्ग कई व्यक्तियों की साझेदारी में हो...

---

1. मोअनत का अर्थ है खर्च; मानो उसने इन संपत्तियों की सुरक्षा के लिए यह भार डाला तो यह खराज की तरह हो गया। 'अज़ामत' का अर्थ हर्जाना है।
2. ग्यान: यह शब्द मूलतः फ़ारसी 'ग्यान' है और यह एक बहुत बड़ी तराजू होती थी, जैसे आजकल रेल आदि पर बोझ तौलने के लिए होती है। (1) जितने व्यक्ति हैं। (2) एक पलड़े की तराजू। (3) कम हिस्से वाले ने। (4) सरकश दुश्मन (विद्रोही शत्रु)।

---

والے کی اور ایک پوری روٹی تین روٹیوں والے کے حصہ میں سے ہے پس میں ہر تہائی کو ایک ہم قرار دیتا ہوں پس یہ ہوا کہ ہر ایک نے دو روٹیوں والے کے حصہ میں سے دو حصہ کھائے اور تین روٹیوں والے کے حصہ میں سے تین حصے کھائے پس کل پانچ حصے ہر ایک کی خوراک ہوئی پس تیسرے نے جو معاوضہ دیا ہے وہ بھی اسی حساب سے تقسیم ہو گا اور فقیہ ابوبکر نے فرمایا کہ میرے نزدیک دو روٹیوں والے کو ایک درہم ملے گا اس واسطے کہ اس نے اپنی دو روٹیوں میں سے ایک روٹی پوری اور دو تہائی روٹی کھائی ہے اور تیسرے نے سوائے ایک تہائی روٹی کے کچھ نہیں کھایا ہے اور دونوں میں سے ہر ایک نے ایک روٹی پوری اور دو تہائی روٹی کھائی ہے پس تیسرے نے تین روٹیوں میں سے ایک روٹی پوری اور تہائی روٹی کھائی ہے پس تین روٹیوں والے کو پانچ درہم میں سے چار درہم ملنے چاہئے ہیں یہ فتاویٰ قاضی خان میں لکھا ہے۔ دو شخصوں نے باہمی مشترک بھوسے کو بذریعہ حبال (کھارا) کے تقسیم کیا تو جائز ہے کیونکہ اس میں تفاوت بہت قلیل ہوتا ہے یہ ظہیریہ میں ہے شیخ ابو جعفر سے دریافت کیا گیا کہ سلطان نے ایک گاؤں والوں پر کچھ مال بطور ڈانڈ لازم کیا اور انہوں نے باہم اختلاف کیا بعض نے کہا کہ بقدر املاک ہم پر تقسیم ہو گا اور بعض نے کہا کہ نہیں بقدر رؤس یعنی تعداد کے تقسیم ہو گا تو شیخ نے فرمایا کہ اگر یہ ڈانڈ ان کی املاک کی حفاظت کی غرض سے ہو تو یہ ڈانڈ مقدار املاک کے حساب سے تقسیم ہوگی کیونکہ یہ ملک کی مؤنت ہے پس ہر ایک پر بقدر اس کی ملک کے پڑے گی اور اگر یہ غرامت ان کی جان کی حفاظت کی غرض سے ہو تو عدد رؤس (۱) کے حساب سے تقسیم ہو گی مگر اس صورت میں عورتوں اور بچوں پر کچھ نہ ہو گا کیونکہ ان

سے تعرض نہیں کیا جاتا ہے۔ یہ محیط میں ہے۔ اگر دو شریکوں نے اپنے مشترک انگوروں کو گمان (۲) یا ترازو پیمانہ سے تقسیم کیا تو صحیح ہے۔ کذانی الظہیریہ۔

**باب سوم: جس صورت میں تقسیم کی جائے گی اور جس صورت میں نہ کی جائے گی اور جو جائز ہے اور جو جائز نہیں ہے اُس کے بیان میں**

ایک دار دو شخصوں کے درمیان مشترک ہے مگر ایک کا حصہ زیادہ ہے پس زیادہ حصہ والے نے تقسیم کی درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا تو قاضی بالا تفاق تقسیم کر دے گا اور اگر کم حصہ والے نے درخواست کی اور زیادہ حصہ والے نے انکار کیا تو بھی حکم یہی ہے اسی کو شیخ امام خواہر زادہ نے اختیار کیا ہے اور اسی پر فتویٰ ہے۔ اگر چھوٹا بیت اس طرح دو شخصوں میں مشترک ہو پس اگر کم حصہ والا بعد تقسیم کے اپنے حصے سے نفع نہ اٹھا سکے اور اسی حصہ دار (۳) نے تقسیم کی درخواست کی تو مشائخ نے فرمایا کہ قاضی تقسیم کر دے گا اور امام خصاف نے ذکر کیا کہ ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہے اور ہر ایک کا حصہ ایسا ہے کہ بعد تقسیم ہو جانے کے وہ اپنے حصے سے نفع نہیں اٹھا سکتا ہے مگر دونوں نے تقسیم کی درخواست کی تو قاضی تقسیم کر دے گا اور اگر ایک نے درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا تو قاضی تقسیم نہ کرے گا کیونکہ درخواست کرنے والا احمق (۴) ہے اور اگر تقسیم کا ضرر فقط ایک کو پہنچتا ہو بایں طور کہ ایک کا حصہ زیادہ ہو کہ بعد تقسیم ہو جانے کے بھی وہ اپنے حصہ سے نفع حاصل کر سکتا ہے پس زیادہ کے حصہ دار نے تقسیم کی درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا تو قاضی تقسیم کر دے گا اور اگر کم کے حصہ دار نے درخواست کی تو تقسیم نہ کرے گا اور شیخ خصاف نے اس کے برعکس نقل کیا ہے کذانی فتاویٰ قاضی خان اور اصح وہی ہے جو خصاف نے ذکر کیا ہے یہ تبیین میں ہے۔ امام ابوحنیفہؒ نے فرمایا کہ اگر ایک طریقہ چند آدمیوں کی شرکت

۱۔ مؤنت یعنی خرچہ ہے گویا اس نے ان املاک کی حفاظت کے لیے یہ بار ڈالا تو بطور خراج ہو گیا عزامت بمعنے تاوان ہے ۲۔ گمیان یہ لفظ اصل میں فارسی گیان ہے اور بہت بڑی ترازو ہوتی تھی جیسے آج کل ریل وغیرہ پر بوجھ تولنے کی ہوتی ہے (۱) جتنے آدمی ہیں۔ (۲) ایک پلہ کی ترازو۔ (۳) کم کے حصہ دار نے۔ (۴) سرکش دشمن۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 242 Kitab al-Qisma (The Book of Division)**

...it is stated that if they divide it among themselves, some will be left with no path or outlet (drainage). Thus, if some requested its division and others refused, I will not divide it among them. However, if a path and outlet remain for each person, then I will divide it among them. Some of our elders (Mashaykh) have stated that this issue is based on a situation where the mentioned path is shared equally among them, such that if it were divided, no path or outlet would disappear for anyone. But if this path is not shared equally, but rather one has a larger share and another a smaller share, such that if divided, the one with the smaller share would have no path or outlet while the one with the larger share would, then—just as in the case of a house (Bayt) where the judge divides at the request of the one with the larger share—in this matter as well, the judge will divide the path at the request of the one with the larger share. Some Mashaykh have stated that, contrary to the case of a house, 1ـــه in the case of a path, he should not divide in either situation; this is in 'Al-Muhit'. If a watercourse (1) is shared between two people and one requested its division while the other refused, then if there is another place besides that drain through which the refuser's water can flow out, I will divide it. But if no other place can be found without causing harm, I will not divide it. This rule is consistent; this is in 'Al-Mabsut'. A house shared by two people collapsed, then one requested the division of the land. Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) said it should be divided between them, while Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) said it should not be. If one of them wanted to rebuild the structure as it was before and the other refused participation, it is mentioned in 'Nawadir bin Rustam' that the refuser shall not be compelled to build. However, if both have beams (dhaniyan) resting on it, they shall be compelled to build. If the refuser is destitute (sand-handed/poor), his partner shall be told to build it himself and to prevent the partner from placing beams on it until he pays his share of the expenses; this is in 'Al-Hawi'. A judge shall not divide a bathhouse (Hammam), a wall, or similar things among partners, but if all partners agree to it, then he may divide it because they have consented to bear the harm. Some of our companions stated that this ruling regarding the bathhouse applies because each person can benefit from the bathhouse in another way after division, for instance, by building a house on their portion, which is often each person's intention. The same applies to a wall; so if they agree to division with the intention that each may benefit from their portion without tearing down the wall, then this is the ruling. If they agree to tear down the wall and divide its foundation, the judge

himself shall not perform such an act, but if they do it themselves, he shall not forbid them. If two people built a shared structure on someone's land with his permission, then both intended to divide the structure while the landowner is absent, they may do so by mutual consent. If one of them refuses, he shall not be compelled. If they intended to demolish the structure, then such division involves a difference of ownership, and we have previously stated that the judge will not perform such a division himself, but if they do it themselves, the judge will not forbid them. If the landowner evicted both of them from his land, they shall demolish their structure; then the salvaged materials (broken pieces/rubble) are subject to division, so the judge will divide them according to the request of some partners; this is in 'Al-Mabsut'.

---

1ـه "Contrary to his saying", and this opinion is more correct because, in the case of a path, besides the loss of utility, there is severe harm, and in such a situation, taking the larger share is inappropriate; thus its state is like the foundation of a wall. (1) A water drain/sewer.

में हो कि अगर इसको आपस में बाँट लें तो कुछ के लिए कोई रास्ता या निकास नहीं बचता है, तो कुछ ने इसके बँटवारे की दरख्वास्त की और दूसरों ने इनकार किया, तो मैं उनका बँटवारा नहीं करूँगा। और अगर हर एक के लिए कुछ रास्ता और निकास बचता हो, तो मैं उनमें बँटवारा कर दूँगा। और हमारे कुछ बुजुर्गों (मशायख) ने फरमाया कि यह मसला ऐसी सूरत पर आधारित है कि ज़िक्र किया गया रास्ता उनमें बराबर का साझा हो, कि अगर उनमें बँटवारा किया जाए तो किसी के लिए रास्ता और निकास नहीं बचता है। और अगर यह रास्ता उनमें इस तरह साझा न हो बल्कि किसी का ज़्यादा हिस्सा हो और किसी का कम हो, कि अगर बँटवारा कर दिया जाए तो कम हिस्से वाले के लिए रास्ता और निकास न रहे और ज़्यादा हिस्से वाले के लिए रास्ता और निकास रहे, तो जैसे घर (बैत) के मसले में ज़्यादा हिस्से वाले की दरख्वास्त पर बँटवारा कर देता है, उसी तरह इस मसले में भी ज़्यादा हिस्से वाले की दरख्वास्त पर काज़ी रास्ता बाँट देगा। और कुछ मशायख ने फरमाया कि घर के मसले के उलट १ــ रास्ते के मसले में दोनों हालतों में से किसी भी हाल में बँटवारा नहीं करेगा, यह 'मुहीत' में है। अगर पानी की नाली (१) दो शख्सों में साझी हो और एक ने इसके बँटवारे की दरख्वास्त की और दूसरे ने इनकार किया, तो अगर उसमें उस मोरी के अलावा कोई दूसरी जगह ऐसी हो जिससे इनकार करने वाले का पानी निकल सकता हो, तो मैं बँटवारा कर दूँगा, और अगर कोई दूसरी जगह बिना नुकसान के ऐसी न निकले, तो बँटवारा नहीं करूँगा, और यह तरीका एक जैसा है, यह 'मबसूत' में है। दो आदमियों का साझा घर गिर गया, फिर एक ने ज़मीन के बँटवारे की दरख्वास्त की तो इमाम अबू यूसुफ़ रह. ने फरमाया कि दोनों में बँटवारा कर दिया जाएगा, और इमाम मोहम्मद रह. ने फरमाया कि नहीं किया जाएगा। और अगर दोनों में से एक ने चाहा कि जैसी इमारत बनी थी वैसी ही बना दे और दूसरे ने साझेदारी से इनकार किया, तो 'नवादिर बिन रुस्तम' में ज़िक्र है कि इनकार करने वाले पर बनाने के लिए ज़बरदस्ती नहीं की जाएगी, लेकिन अगर उस पर दोनों की शहतीरें (धनियाँ) हों तो बनाने के लिए मजबूर किया जाएगा। और अगर इनकार करने वाला गरीब (तंगदस्त) हो, तो उसके साथी से कहा जाएगा कि तू खुद बना ले और साथी को उस पर शहतीरें रखने से मना करे जब तक कि वह तेरा खर्चा तुझे दे न दे, यह 'हावी' में है। और काज़ी हमाम, दीवार और उसके जैसी चीज़ों को साझेदारों में नहीं बांटेगा, और अगर सब साझेदार इस बात पर राज़ी हो गए हों तो बाँट दे, क्योंकि नुकसान उठाने पर वे लोग खुद राज़ी हो गए हैं। और हमारे कुछ साथियों ने फरमाया कि यह हुक्म हमाम में है कि हर एक बँटवारे के बाद हमाम से दूसरी तरह फायदा उठा

सकता है, मसलन अपने हिस्से का घर बनाना और अक्सर हर एक का यही मकसद होता है। और दीवार के हक में भी यही है, तो अगर वे लोग बँटवारे पर इस मकसद से राज़ी हुए कि बिना दीवार गिराए हर एक अपने हिस्से से फायदा उठाए, तो भी यही हुक्म है। और अगर वे लोग इस तरह राज़ी हुए कि दीवार गिरा कर उसकी नींव आपस में बाँट लें, तो काज़ी ऐसा काम खुद नहीं करेगा, लेकिन अगर उन लोगों ने आपस में ऐसा कर लिया तो उन्हें इस काम से मना नहीं करेगा। अगर किसी शख्स की ज़मीन में उसकी इजाज़त से दो आदमियों ने साझी इमारत बनाई, फिर दोनों ने उस इमारत के बँटवारे का इरादा किया और ज़मीन का मालिक गायब है, तो आपसी रज़ामंदी से दोनों ऐसा कर सकते हैं। और अगर दोनों में से एक ने इनकार किया तो उस पर ज़बरदस्ती नहीं की जाएगी। और अगर इमारत गिराने का इरादा किया तो इस तरह बँटवारे में मिल्कियत का अंतर है और हम पहले बयान कर चुके हैं कि काज़ी ऐसा बँटवारा खुद नहीं करेगा, लेकिन अगर उन्होंने खुद ऐसा कर लिया तो काज़ी उन्हें मना नहीं करेगा। और अगर ज़मीन के मालिक ने दोनों को अपनी ज़मीन से निकाल दिया तो दोनों अपनी इमारत गिरा लेंगे, फिर जो मलबा (टूटन) बचेगा वह बँटवारे के लायक है, तो काज़ी कुछ साझेदारों की दरख्वास्त के मुताबिक उसे बाँट देगा, यह 'मबसूत' में है।

---

१ـــ 'कौलुहु बर-खिलाफ' (उनका कहना इसके विपरीत है) और यही बात अधिक मान्य है, क्योंकि रास्ते के मामले में फायदा खत्म होने के अलावा भारी नुकसान है, और ऐसी स्थिति में ज़्यादा हिस्सा लेना अनुचित है, इसलिए इसका हाल दीवार की नींव (मद) की तरह है। (१) पानी की मोरी (नाली)।

میں ہو کہ اگر اس کو باہم تقسیم کر لیں تو بعض کے واسطے کچھ راہ و منفذ (نکاس) نہیں رہتا ہے پس بعضوں نے اس کے تقسیم کی درخواست کی اور دوسروں نے انکار کیا تو میں ان تقسیم نہیں کروں گا اور اگر ہر ایک کے واسطے کچھ راہ و منفذ رہتا ہو تو میں ان میں تقسیم کر دوں گا اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ مسئلہ ایسی صورت پر محمول ہے کہ طریق مذکور ان میں برابر شریک ہو کہ اگر ان میں تقسیم کیا جائے تو کسی کے واسطے راہ و منفذ نہیں رہتا ہے اور اگر یہ راستہ ان میں اس طرح مشترک نہ ہو بلکہ کسی کا زیادہ حصہ ہو اور کسی کا کم ہو کہ اگر تقسیم کر دیا جائے تو کم کے حصہ دار کے واسطے راہ و منفذ نہ رہے اور زیادہ کے حصہ دار کے واسطے راہ و منفذ رہے تو جیسا مسئلہ بیت میں زیادہ کے حصہ دار کی درخواست پر تقسیم کر دیتا ہے اسی طرح اس مسئلہ میں بھی زیادہ کے حصہ دار کی درخواست پر قاضی راستہ کو تقسیم کر دے گا اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ مسئلہ بیت کے برخلاف ۱ـہ مسئلہ طریق میں دونوں حالتوں میں سے کسی حال میں تقسیم نہ کرے گا یہ محیط میں ہے۔ اگر مسیل الماء (۱) دو شخصوں میں مشترک ہو اور ایک نے اس کے تقسیم کی درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا پس اگر اس میں سوائے اس موری کے کوئی دوسری جگہ ایسی ہو کہ جس سے انکار کرنے والے کا پانی نکل جا سکتا ہو تو میں تقسیم کر دوں گا اور اگر کوئی دوسری جگہ بدون ضرر کے ایسی نہ نکلے تو تقسیم نہ کروں گا اور یہ طریق یکساں ہے یہ مبسوط میں ہے۔ دو آدمیوں کا مشترک بیت منہدم ہو گیا پس ایک نے زمین کے تقسیم کی درخواست کی تو امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ دونوں میں تقسیم کر دی جائے گی اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ نہ کی جائے گی اور اگر دونوں میں سے ایک نے چاہا کہ جیسی عمارت بنی تھی ویسی ہی بنا دے اور دوسرے نے شرکت سے انکار کیا تو نوادر بن

رستم میں مذکور ہے کہ منکر پر بنانے کے واسطے جبر نہ کیا جائے گا لیکن اگر اس پر دونوں کی دھنیاں ہوں تو بنانے کے واسطے مجبور کیا جائے گا اور اگر انکار کرنے والا سنگدست ہو تو اس کے شریک سے کہا جائے گا کہ تو خود بنا لے اور شریک کو اس پر دھنیاں رکھنے سے منع کرے یہاں تک کہ تیرا خرچہ تجھے دے دے یہ حاوی میں ہے اور قاضی حمام و دیوار و اس کے مشابہ چیزوں کو شریکوں میں تقسیم نہ کرے گا اور اگر سب شریک اس بات پر راضی ہو ہوئے تو تقسیم کر دے کیونکہ ضرر اٹھانے پر وہ لوگ خود راضی ہو گئے ہیں اور ہمارے بعض اصحاب نے فرمایا کہ یہ حکم حمام میں ہے کہ ہر واحد بعد تقسیم کے حمام سے دوسری طرح نفع اٹھا سکتا ہے مثلاً اپنے حصہ کا بیت بنانے اور بسا اوقات ہر ایک کا یہی مقصود ہوتا ہے اور دیوار کے حق میں پس اگر وہ لوگ تقسیم پر اس غرض سے راضی ہوئے کہ بدون دیوار گرائے ہر ایک اپنے حصے سے نفع اٹھائے تو بھی یہی حکم ہے اور اگر وہ لوگ اس طرح راضی ہوئے کہ دیوار گرا کر اس کی نیو باہم تقسیم کریں تو قاضی ایسا فعل خود نہ کرے گا لیکن اگر ان لوگوں نے باہم ایسا فعل کر لیا تو ان کو اس فعل سے منع نہ کرے گا اگر کسی شخص کی زمین میں اس کی اجازت سے دو آدمیوں نے مشترک عمارت بنائی پھر دونوں نے اس عمارت کی تقسیم کا قصد کیا اور مالک زمین غائب ہے تو باہمی رضامندی سے دونوں ایسا کر سکتے ہیں اور اگر دونوں میں سے ایک نے انکار کیا تو اس پر جبر نہ کیا جائے گا اور اگر عمارت منہدم کرنے کا قصد کیا تو اس طرح تقسیم میں اختلاف ملک ہے اور ہم پہلے بیان کر چکے ہیں کہ قاضی ایسی تقسیم خود نہ کرے گا لیکن اگر انہوں نے خود ایسا کر لیا تو قاضی ان کو منع نہ کرے گا اور اگر مالک زمین نے دونوں کو اپنی زمین سے نکال دیا تو دونوں اپنی عمارت گرا لیں گے پھر منقوضہ (ٹوٹن) محتمل قسمت ہے تو قاضی بعض شریک کی درخواست کے موافق اس کو تقسیم کر دے گا یہ مبسوط میں ہے۔

۱ـہ قولہ برخلاف اور یہی قول ارجح ہے اس واسطے کہ راستہ کی صورت میں منفعت باطل ہونے کے علاوہ مضرت شدید ہے اور ایسی صورت میں زیادہ حصہ الاھوّت ہے پس اس کا حال مثل مد دیوار کے ہے۔ (۱) پانی کی موری۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | Page 245 | Kitab al-Qisma (Book of Partition)**

Originally, Imam Muhammad (RA) stated that if a shop in a market is jointly owned by two individuals where both engage in buying and selling or some handicraft work, and one intends to partition it while the other refuses, and the landowner is absent, the Judge (Qazi) shall evaluate the situation. If after partition, each party can continue the same work in their respective portion as they did prior to the partition, the Judge shall execute the partition. However, if they cannot, the partition shall not be carried out; this is mentioned in *Al-Muhit*. If a crop on someone else's land is shared among several heirs and they intend to partition it, then if the crop has reached maturity, I will not partition it among them without it being harvested, whether they consent or not. This is because wheat (1) is among the *Rubawi* (usurious) goods, and therefore its partition by mere estimation (*Majazafa*) is not permissible. It is permissible by measure, but partition by measure is not possible without harvesting. If the crop is still green (*Saga*), I will not partition it. However, if they stipulate that whatever falls into each person's share will be accepted as legitimate, and they partition it among themselves based on this condition, I will permit it; this is mentioned in *Al-Mabsut*.

If a crop is jointly owned by two people and they wish to partition the crop without the land, the Judge shall not partition it. This is because when the crop reaches maturity (i.e., ears of grain have appeared), it becomes a *Rubawi* commodity, and since partition always entails the essence of exchange (*mubadala*), partition by estimation is not permissible. Furthermore, while it is still green, the Judge (2) shall not partition it if the partition is conditioned upon leaving it in the field. However, if they stipulate that they will uproot it, then the Judge may partition it. This ruling is according to one of two narrations; according to the other narration, the Judge should not partition it even if both parties agree. This rule applies when both have requested the Judge for partition. If only one party requests and the other refuses, the Judge shall not partition under any circumstances. If the two parties partition the crop among themselves privately, and if the crop has matured and developed ears of grain, the ruling has already been mentioned—that it is not permissible by estimation until it is harvested. If the crop is still green and they partition it on the condition that they will leave it in the field, it is not permissible. But if they stipulate that they will uproot it after partition, it is permissible according to all narrations; this is in *Al-Muhit*.

If there is a joint crop on jointly owned land and they request partition of the crop without the land, then if the crop is still green and both parties (or even one) stipulate

leaving it in the mentioned land, the partition is not permissible. If they agree to uproot it, the partition is permissible. If the crop is fully matured and they stipulate harvesting it, the partition is permissible by consensus. However, if both or one stipulate leaving it in the field, then according to Imam Azam and Imam Abu Yusuf (RA), the partition is not permissible, while according to Imam Muhammad (RA), it is. Similarly, if the emergence of date clusters (3) is shared between two people and they wish to partition only the unripe dates (*keriyan*) excluding the tree, then if both or one stipulate leaving them on the tree, the partition is not permissible. If they agree to pluck them immediately, the partition is permissible. If these fruits have matured and they stipulate leaving them on the tree, it is not permissible according to Imam Azam and Imam Abu Yusuf (RA), but permissible according to Imam Muhammad (RA); this is in *Fatawa Qazi Khan*. If forty units (*gard*) [of currency/items] are jointly owned by two people, of which ten are genuine/good and thirty are rejected/bad, and one takes the ten good ones while the other takes the thirty bad ones, and the value of the ten is equal to the thirty, this is not permissible; this is in *Sharh Tahawi*. If a basket of dates or sheep and vinegar are shared between two and one partitions it...

---

**Footnotes:** * *Majazafa*: Division or sale by mere estimation and conjecture without weighing or measuring. * (2) While it is green, it is not considered usurious wealth, so it should be partitioned. However, there is one case where it still cannot be partitioned: if they stipulate that each person will leave their portion in the ground. * (3) It is difficult to know the price of each, and most people do not recognize it. (1) Interest (Riba) rules apply to this. (2) Date pits/seeds.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 245 | किताबुल क़िस्मा (विभाजन की पुस्तक)**

मूल रूप से इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि बाज़ार में एक दुकान दो आदमियों में साझा (मुश्तरक) है, जिसमें दोनों ख़रीद-फ़रोख़्त करते हैं या कोई दस्तकारी का काम करते हैं। यदि उनमें से एक ने इसके विभाजन का इरादा किया और दूसरे ने इनकार किया और ज़मीन का मालिक अनुपस्थित हो, तो क़ाज़ी देखेगा कि यदि विभाजन कर दिया जाए तो क्या हर एक अपने हिस्से में वही काम कर सकता है जो विभाजन से पहले करता था या नहीं। यदि कर सकता हो तो विभाजन कर दे, और यदि न कर सकता हो तो विभाजन न करे, यह 'मुहीत' में है। यदि किसी अन्य की ज़मीन में एक फ़सल कई वारिसों के बीच साझा हो और उन्होंने उस फ़सल के विभाजन का इरादा किया, तो यदि फ़सल पक चुकी हो, तो उसे काटे बिना उनकी आपसी सहमति से या बिना सहमति के किसी भी तरह मैं उस फ़सल को उनमें विभाजित नहीं करूँगा क्योंकि गेहूँ (1) रुबवी माल (ब्याज वाली श्रेणी) में से है, इसलिए अंदाज़े (मजाज़फ़ा) से इसका विभाजन जायज़ नहीं है। हाँ, पैमाने (नाप) से जायज़ है, और काटे बिना पैमाने से विभाजन संभव नहीं है। और यदि फ़सल अभी भी हरी (सागा) हो, तो मैं उनका विभाजन नहीं करूँगा। लेकिन यदि वे हरी फ़सल में यह शर्त कर लें कि जिसके हिस्से में जितना पड़ेगा वह उसे अपने हिस्से के समान जायज़ समझेगा और इस शर्त पर आपस में विभाजन कर लें, तो मैं इसकी अनुमति दूँगा, यह 'मबसूद' में है।

यदि एक फ़सल दो आदमियों में साझा है और दोनों ने उस फ़सल को ज़मीन के बिना आपस में विभाजित करना चाहा, तो क़ाज़ी विभाजन नहीं करेगा। क्योंकि जब फ़सल पक जाती है, यानी उसमें बालियाँ आ गई हों, तो वह रुबवी माल हो जाती है और विभाजन में विनिमय (मुबादला) का अर्थ हमेशा सिद्ध होता है, इसलिए अंदाज़े से विभाजन जायज़ नहीं है। और जब तक वह हरी फ़सल हो, तो क़ाज़ी तब तक विभाजन नहीं करेगा जब तक कि विभाजन छोड़ने की शर्त पर हो, यानी विभाजन के बाद खेत में ही रहने दिया जाए। लेकिन यदि यह शर्त रखी जाए कि हम इसे उखाड़ लेंगे, तो क़ाज़ी विभाजन कर सकता है। यह आदेश दो रिवायतों (वर्णनों) में से एक के अनुसार है, और दूसरी रिवायत के अनुसार क़ाज़ी को विभाजन नहीं करना चाहिए, भले ही दोनों इस पर राज़ी हो जाएँ। यह आदेश उस समय के लिए है जब दोनों ने क़ाज़ी से विभाजन का अनुरोध किया हो। और यदि एक ने अनुरोध किया और दूसरे ने इनकार किया, तो हर हाल में क़ाज़ी विभाजन नहीं करेगा। और यदि दोनों ने फ़सल को स्वयं आपस में विभाजित कर लिया, और फ़सल पूरी होकर बालियों वाली हो गई हो, तो उसका आदेश गुज़र चुका है, यानी जब तक काटी न जाए तब तक अंदाज़े से विभाजन जायज़ नहीं

है। और यदि फ़सल अभी भी हरी है और इस शर्त पर विभाजन किया गया कि उसे खेत में ही छोड़ देंगे, तो जायज़ नहीं है। और यदि यह शर्त की कि विभाजन के बाद उखाड़ लेंगे, तो सभी रिवायतों के अनुसार जायज़ है, यह 'मुहीत' में है।

यदि साझा ज़मीन में साझा फ़सल हो और दोनों ने ज़मीन के बिना फ़सल के विभाजन का अनुरोध किया, तो यदि फ़सल अभी हरी हो और दोनों ने उसे ज़मीन में छोड़ रखने की शर्त रखी, या किसी एक ने ऐसी शर्त रखी, तो विभाजन जायज़ नहीं है। और यदि दोनों इस बात पर सहमत हुए कि उखाड़ लेंगे, तो विभाजन जायज़ है। और यदि फ़सल पक गई और दोनों ने उसे काट लेने की शर्त रखी, तो सर्वसम्मति से विभाजन जायज़ है। लेकिन यदि दोनों ने या किसी एक ने उसे छोड़ रखने की शर्त रखी, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के अनुसार विभाजन जायज़ नहीं है, और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार जायज़ है। इसी तरह यदि खजूर के गुच्छों का निकलना (3) दो आदमियों में साझा हो और खजूर के पेड़ के अलावा उन्होंने केवल कच्ची खजूरों (कीरियों) का विभाजन चाहा, तो यदि दोनों ने या एक ने उन्हें पेड़ पर ही छोड़ने की शर्त रखी, तो विभाजन जायज़ नहीं है। यदि वर्तमान में तोड़ने पर सहमति हुई, तो विभाजन जायज़ है। और यदि ये फल पक गए हों और दोनों ने पेड़ पर ही छोड़ने की शर्त रखी, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के अनुसार जायज़ नहीं है, और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार जायज़ है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि चालीस सिक्के(गर्द) दो आदमियों में साझा हों, जिनमें से दस खरे(असली) हों और तीस रद्दी (खराब) हों, और एक ने दस खरे ले लिए और दूसरे ने तीस रद्दी ले लिए और कीमत में ये दस उन तीस के बराबर हों, तो यह जायज़ नहीं है, यह 'शरह तहावी' में है। यदि खजूर की एक टोकरी या भेड़ और सिरका दोनों के बीच साझा हो और एक ने इसका विभाजन किया...

---

**पाद टिप्पणियाँ:** * मजाज़फ़ा: अंदाज़े और अटकल से विभाजन। * जब हरी फ़सल (सागा) होने की स्थिति में वह सूद (ब्याज) वाला माल नहीं होता, इसलिए विभाजन किया जाना चाहिए, लेकिन एक स्थिति में तब भी बँटवारा नहीं होगा, वह यह कि उन्होंने यह शर्त लगाई कि अपना-अपना हिस्सा ज़मीन में ही लगा रहने देंगे। * प्रत्येक की कीमत जानना कठिन है, अक्सर लोग नहीं पहचानते। (1) इसमें सूद (ब्याज के नियम) लागू होता है। (2) खजूर की गुठलियाँ/बीज।

---

اصل میں امام محمدؒ نے فرمایا کہ بازار میں ایک دکان دو آدمیوں میں مشترک ہے کہ اس میں دونوں خرید وفروخت کرتے ہیں یا دستکاری کا کوئی کام کرتے ہیں پس ایک نے اس کی تقسیم کا قصد کیا اور دوسرے نے انکار کیا اور مالک زمین غائب ہے تو قاضی دیکھے گا کہ اگر تقسیم کر دی جائے تو ہر ایک اپنے حصہ میں وہی کام کر سکتا ہے جو قبل قسمت کے کرتا تھا یا نہیں پس اگر کر سکتا ہو تو تقسیم کر دے اور اگر نہ کر سکتا ہو تو تقسیم نہ کرے یہ محیط میں ہے۔ اگر غیر کی زمین میں ایک کھیتی چند وارثوں میں شریک ہو اور انہوں نے اس کھیتی کی تقسیم کا ارادہ کیا پس اگر کھیتی پختگی پر پہنچ گئی ہو تو بدوں کٹنے ہوئے ان کی رضامندی سے یا بغیر رضامندی کسی طرح میں اس کھیتی کو ان میں تقسیم نہ کروں گا کیونکہ گیہوں (۱) ربوی مال میں سے ہے پس مجازفۃً اس کی تقسیم نہیں جائز ہے ہاں پیمانہ سے جائز ہے سو بدوں کٹنے کے پیمانہ سے تقسیم کرنا ممکن نہیں ہے اور اگر ہنوز وہ کھیتی ساگا ہو تو میں ان میں تقسیم نہ کروں گا لیکن اگر وہ لوگ ساگا میں یہ شرط کر لیں کہ جس قدر جس کے حصہ میں پڑے گا اس کو وہ اپنے حصہ کے مثل جائز سمجھے گا اور اس شرط پر باہم تقسیم کر لیں تو میں اس کی اجازت دوں گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک کھیتی دو آدمیوں میں مشترک ہے پس دونوں نے اس کھیتی کو بدون زمین کے باہم تقسیم کرنا چاہا تو قاضی تقسیم نہ کرے گا کیونکہ جب کھیتی پختگی پر پہنچی یعنی اس میں بالیاں آگئی ہوں تو وہ مال ربوی ہو گئی اور قسمت میں مبادلہ کے معنی ہمیشہ متحقق ہیں تو مجازفۃً جائز نہیں ہے اور جب تک وہ ساگا ہو تو جبہی (۲) قاضی تقسیم نہ کرے گا کہ جب تقسیم بشرطِ ترک ہو یعنی بعد تقسیم کے کھیت میں چھوڑ دیں گے اور اگر یہ شرط کی کہ ہم اکھاڑ لیں گے تو قاضی تقسیم کر سکتا ہے۔ یہ حکم دو روایتوں میں سے ایک کے موافق ہے اور دوسری

روایت کے موافق قاضی کو تقسیم نہ کرنا چاہئے اگر چہ دونوں اس پر راضی ہو جائیں اور یہ حکم اس وقت ہے کہ دونوں نے قاضی سے تقسیم کی درخواست کی ہو اور اگر ایک نے درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا تو ہر حال میں قاضی تقسیم نہ کرے گا اور اگر دونوں نے کھیتی کو خود باہم تقسیم کر لیا پس اگر کھیتی پوری ہو کر بالیوں دار ہو گئی ہو تو اس کا حکم تو گزر چکا یعنی جب تک کاٹی نہ جائے تب تک مجازفۃً جائز نہیں ہے اور اگر یہ کھیتی ہنوز ساگا ہو پس اگر اس شرط سے باہم تقسیم کر لی کہ کھیت میں چھوڑ دیں گے تو جائز نہیں ہے اور اگر یہ شرط کی کہ بعد تقسیم کے اکھاڑ لیں گے تو سب روایتوں کے موافق جائز ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر دونوں کی مشترک زمین میں مشترک کھیتی ہو اور دونوں نے بدون زمین کے کھیتی کی تقسیم کی درخواست کی پس اگر کھیتی ہنوز ساگا ہو اور دونوں نے زمین مذکور میں اس کے چھوڑ رکھنے کی شرط کی یا ایک نے ایسی شرط کی تو قسمت جائز نہیں ہے اور اگر دونوں نے اس امر پر اتفاق کیا کہ اکھاڑ لیں گے تو تقسیم جائز ہے اور اگر کھیتی پوری ہو گئی اور دونوں نے کاٹ لینے کی شرط کی تو بالاتفاق تقسیم جائز ہے اور اگر دونوں نے یا ایک نے چھوڑ رکھنے کی شرط کی تو امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک تقسیم نہیں جائز ہے اور امام محمدؒ کے قول میں جائز ہے اور اسی طرح اگر طلوع النخل (۳) دو آدمیوں میں مشترک ہو اور سوائے درخت خرما کے دونوں نے فقط کیریوں کی تقسیم چاہی پس اگر دونوں نے یا ایک نے درخت پر چھوڑ رکھنے کی شرط کی تو تقسیم جائز نہیں ہے اگر فی الحال توڑنے پر اتفاق کیا تو تقسیم جائز ہے اور اگر یہ پھل پورے ہو گئے ہوں اور دونوں نے درخت پر چھوڑ رکھنے کی شرط کی تو امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر چالیس گرد دو آدمیوں میں مشترک ہوں جس میں سے دس کھرے ہوں اور تمیں ردی ہوں پس ایک نے دس کھرے لے لئے اور دوسرے نے تمیں ردی لے لئے اور قیمت میں یہ دس ان تمیں کے برابر ہیں تو

یہ جائز نہیں یہ شرح طحاوی میں ہے۔ اگر ایک زنبیل خرما یا غنم سرکہ دونوں میں مشترک ہو اور ایک نے اس کی تقسیم کی

---

**حواشی:** * مجازفہ: کوت و اٹکل سے۔ * جبہی ساگا ہونے کی حالت میں سودی مال نہیں لہذا تقسیم کرنا چاہیے لیکن ایک صورت میں اب بھی بٹوارہ نہ کرے گا وہ صورت یہ کہ انھوں نے یہ شرط لگائی کہ اپنا اپنا حصہ زمین میں لگا چھوڑیں گے۔ * ہر ایک قیمت معلوم ہونا دشوار اکثر لوگ نہیں پہچانتے ہیں۔ (۱) اس میں سود جاری ہوتا ہے۔ (۲) خرما کی گریاں۔

---

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) 236 Book of Partition (Kitab al-Qisma)**

If requested, I shall divide it between the two, because it is something that can be measured and weighed, and partition in this case means merely separating and distinguishing them. Since each partner can do this themselves, the Qazi (judge) will also be able to do so upon the request of some partners; this is mentioned in *Al-Mabsut*. Wood, doors, millstones, livestock, and pearls shall not be partitioned without the mutual consent of both parties. It is written in *Al-Tajreed* that the same rule applies to reeds and anything that is divided by splitting or breaking and where damage is feared. The same ruling applies to a single piece of wood, provided that damage is anticipated in cutting it; this is in *Al-Khulasa*. Jewels shall not be partitioned because the ignorance regarding their true value is very high. Do you not see that jewels, without being specifically appraised, are like things that are not considered property (mal)? They cannot serve as compensation, like in marriage or *khul'*; this is in *Al-Tabyeen*. It is written in *Mukhtasar Khawaharzada* that bows, saddles, and copies of the Quran (Mushafs) shall not be partitioned; this is in *Al-Tatarkhaniya*.

If someone bequeathed the wool on the backs of their sheep to two people, and then both intended to partition it before shearing the wool, I would not partition it. The same rule applies to milk within udders because these are usurious (ribawi) goods, being measurable or weighable. Partition can only occur by measure and weight, and partition by measure and weight is not possible without shearing the wool or milking the udders. The fetus of a slave woman cannot be partitioned among partners under any circumstances. Similarly, if both partitioned it by mutual consent, it remains invalid; this is in the chapter 'What Cannot Be Partitioned' in *Al-Mabsut*. If a cloth is shared between two people and both partitioned it among themselves by mutual consent by tearing it along its length and width, this is permissible. After the partition is complete, neither shall have the right to revoke it; this is in the chapter 'Partition of Animals and Goods' in *Al-Mabsut*. If a stitched garment is shared between two people, the Qazi shall not partition it among the partners; this is in *Fatawa Qazi*. Furthermore, the Qazi shall not partition two cloths of different values because equality and balance are not possible without adding Dirhams to the cloth of lesser value, and it is not permissible to include Dirhams in a forced partition. However, if both agree to it, the Qazi may partition; this is in *Ayni Sharh Hidaya*. If *Zatti* cloth, *Harwi* cloth, pillows, and bedding are shared among partners, the Qazi shall not partition them without (1) their consent. If three cloths are shared between two people and one requests partition while the other refuses, I will see if their partition

can be correctly done without cutting, such as if the price of two cloths equals the price of the third. In this case, the Qazi should partition them such that one receives two cloths and the other receives the third. If it cannot be balanced without cutting, he shall not partition them. But if they mutually agree on a method, partition can occur; this is mentioned in the book. The most correct view is that if the price of all is equal and each person's share is one and a half cloths, the Qazi should distribute one cloth to each and leave the third as shared. Similarly, if the partition works out such that one's share is one and two-thirds cloths and the other's is one and one-third, or one's share is one and a quarter and the other's is one and three-quarters, he shall still distribute one cloth to each and leave the remainder shared among them; this is in *Al-Nihaya*. If there is an irrigation canal, river, well, or spring that does not have land attached to it and the partners request partition, the Qazi shall not partition it. If there is land with it whose water comes only from that source, the land shall be partitioned, and the well or spring shall be left in partnership so that each person can access water for their portion of land. It is difficult to know the value, which most people do not recognize. (Note) For example, if a dower was fixed in marriage; if it was specified, it is valid, and if it is a debt, it is not valid because the difference in value becomes very significant due to the delay. (2) A lined channel, and the phrase "if there is no land," meaning only these things without land.

(1) They mutually agree on a method.

**फतावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 236 किताब-उल-क़िस्मत**

यदि अनुरोध किया गया है, तो मैं इसे दोनों के बीच विभाजित कर दूँगा क्योंकि यह एक ऐसी चीज़ है जिसका माप और वजन हो सकता है, और इसमें विभाजन का अर्थ केवल उन्हें अलग करना और विशिष्ट करना है। चूँकि प्रत्येक भागीदार स्वयं ऐसा कर सकता है, इसलिए काज़ी (न्यायाधीश) भी कुछ भागीदारों के अनुरोध पर ऐसा करने में सक्षम होगा; यह 'मबसूत' में है। लकड़ी, दरवाजा, चक्की, मवेशी और मोती का विभाजन दोनों की सहमति के बिना नहीं किया जाएगा। 'तजरीद' में लिखा है कि इसी तरह नरकुल और जो चीजें चीरने या तोड़ने से विभाजित होती हैं और जिनमें नुकसान का डर हो, उन पर भी यही नियम लागू होता है। इसी तरह एक लकड़ी का भी यही नियम है, बशर्ते कि उसे काटने में नुकसान की संभावना हो; यह 'ख़ुलासा' में है। रत्नों (जवाहरात) का विभाजन नहीं किया जाएगा क्योंकि उनके मूल्य के प्रति अज्ञानता बहुत अधिक है। क्या आप नहीं देखते कि बिना मूल्य निर्धारित किए रत्न ऐसी चीज़ हैं जो माल (सम्पत्ति) नहीं हैं? वे 'निकाह' या 'ख़ुला' की तरह मुआवजे के रूप में नहीं हो सकते; यह 'तबीयन' में है। 'मुख़्तसर ख़वाहरज़ादा' में लिखा है कि धनुष, जीन और मुसहफ़ (क़ुरान) को विभाजित नहीं किया जाएगा; यह 'तातारख़ानिया' में है।

यदि किसी ने अपनी भेड़ों की पीठ की ऊन को दो लोगों के लिए वसीयत कर दिया, और फिर दोनों ने ऊन उतारने से पहले उसे विभाजित करने का इरादा किया, तो मैं इसका विभाजन नहीं करूँगा। थनों के अंदर के दूध का भी यही नियम है, क्योंकि ये रिबावी (ब्याज योग्य) माल हैं, क्योंकि वे मापनीय या वजनी हैं। विभाजन केवल माप और वजन से ही हो सकता है, और ऊन काटे बिना या दूध दुहे बिना ऐसा करना संभव नहीं है। दासी के गर्भ में पल रहे बच्चे का विभाजन किसी भी स्थिति में भागीदारों के बीच नहीं हो सकता। इसी तरह, यदि दोनों ने आपसी सहमति से इसे विभाजित कर लिया, तो भी यह जायज़ नहीं है; यह मबसूत के'मा ला युक्समु' (जो विभाजित नहीं किया जा सकता) अध्याय में है। यदि एक कपड़ा दो लोगों के बीच साझा है और दोनों ने आपसी सहमति से इसे लंबाई और चौड़ाई में फाड़कर विभाजित कर लिया, तो यह जायज़ है। विभाजन पूरा होने के बाद, दोनों में से किसी को भी निर्णय बदलने का अधिकार नहीं होगा; यह मबसूत के'पशु और सामानों के विभाजन' अध्याय में है। यदि सिला हुआ कपड़ा दो लोगों के बीच साझा है, तो काज़ी उसे भागीदारों के बीच विभाजित नहीं करेगा; यह 'फ़तावा काज़ी' में है। काज़ी अलग-अलग मूल्य के दो कपड़ों को भी विभाजित नहीं करेगा, क्योंकि बराबरी और समानता तब तक संभव नहीं जब तक कि कम मूल्य वाले कपड़े के साथ नकद (दरहम) न मिलाया जाए, और जबरन विभाजन में नकद शामिल करना

जायज़ नहीं है। हाँ, यदि दोनों इस पर सहमत हो जाएं तो काज़ी विभाजन कर सकता है; यह 'ऐनी शर्ह हिदाया' में है। यदि भागीदारों के बीच ज़ती कपड़ा, हरवी कपड़ा, तकिया और बिछौना साझा हो, तो उनकी सहमति के बिना (1) काज़ी विभाजन नहीं करेगा। यदि तीन कपड़े दो लोगों के बीच साझा हों और एक ने विभाजन का अनुरोध किया और दूसरे ने इनकार किया, तो मैं देखूँगा कि क्या बिना काटे उनका विभाजन सही हो सकता है, जैसे कि दो कपड़ों की कीमत तीसरे के बराबर हो, तो काज़ी इस तरह विभाजित कर दे कि एक को दो कपड़े दे दे और दूसरे को तीसरा। यदि बिना काटे सही नहीं बैठता, तो वह उन्हें विभाजित नहीं करेगा। लेकिन अगर वे आपस में किसी तरीके पर सहमत हो जाएं तो विभाजन हो सकता है; ऐसा ही किताब में वर्णित है। सबसे सही मत यह है कि यदि सबकी कीमत बराबर हो और प्रत्येक का हिस्सा डेढ़ कपड़ा हो, तो काज़ी एक-एक कपड़ा दोनों में विभाजित कर दे और तीसरे को साझा छोड़ दे। इसी तरह, यदि इस तरह विभाजन सही हो कि एक का हिस्सा सवा एक कपड़ा और दूसरे का पौने दो कपड़ा हो, तो भी वह उन्हें एक-एक कपड़ा दे देगा और शेष को साझा छोड़ देगा; यह 'निहाया' में है। यदि कोई नहर, कुआँ या चश्मा हो जिसके साथ ज़मीन न हो और भागीदारों ने विभाजन का अनुरोध किया, तो काज़ी विभाजन नहीं करेगा। यदि उसके साथ ऐसी ज़मीन हो जिसका पानी उसके अलावा और कहीं से न आता हो, तो ज़मीन विभाजित कर दी जाएगी और कुआँ या चश्मा उसी तरह साझा छोड़ दिया जाएगा ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी ज़मीन के हिस्से तक पानी पहुँचा सके। मूल्य जानना कठिन है, जिसे अक्सर लोग नहीं पहचान पाते। (ह) जैसे निकाह में मेहर तय किया गया, यदि वह निश्चित था तो जायज़ है, और यदि वह उधार है तो जायज़ नहीं है क्योंकि इसमें मूल्य का अंतर बहुत अधिक हो जाता है। (2) पक्की नाली और उनका कथन कि ज़मीन न हो, यानी बिना ज़मीन के केवल ये चीजें हों।

(1) किसी तरीके पर आपस में सहमत हो जाएं।

---

درخواست کی تو میں اس کو دونوں میں تقسیم کر دوں گا کیونکہ یہ ایسی چیز ہے جس کا پیمانہ ووزن ہو سکتا ہے اور تقسیم اس میں یہ ہے کہ محض جدا کر کے ممیز کر دیا جائے اور ہر ایک شریک خود ایسا کر سکتا ہے تو قاضی بھی بعض شریکوں کی درخواست پر ایسا کر سکے گا یہ مبسوط میں ہے۔ لکڑی اور دروازہ اور چکی اور چوپایہ اور موتی بدون دونوں کی رضامندی کے تقسیم نہ کیا جائے گا اور تجرید میں لکھا ہے کہ اسی طرح قصب اور جو چیز چیرنے اور توڑنے سے تقسیم ہو اور اس میں ضرر ہو یہی حکم رکھتی ہے اسی طرح ایک لکڑی کا بھی یہی حکم ہے بشرطیکہ اس کے قطع کرنے میں ضرر متصور ہو یہ خلاصہ میں ہے۔ جواہرات تقسیم نہ کئے جائیں گے کیونکہ ان کی جہالت بہت بڑھی ہوئی ہے آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ جواہرات بدون معین کرنے کے ایسی چیز کا جو مال نہیں ہے۔ عوض نہیں ہو سکتے ہیں جیسے نکاح و خلع یہ تبیین میں ہے۔ مختصر خواہر زادہ میں لکھا ہے کہ کمان اور زین اور مصحف تقسیم نہ کیا جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر اپنے غنم (بھیڑ) کی پیٹھ کے پشم کی دو آدمیوں کے واسطے وصیت کر دی پھر دونوں نے یہ پشم جھاڑنے سے پہلے اس کی تقسیم کا ارادہ کیا تو میں اس کی تقسیم نہ کروں گا اسی طرح تھنوں کے اندر دودھ کا حکم ہے کیونکہ یہ اموال ربوی ہیں اس لئے کہ کیلی ہیں یا وزنی ہیں کہ کیل ووزن ہی سے تقسیم ہو سکتی ہیں اور کیل و وزن سے تقسیم کرنا بدون پشم کاٹے ہوئے یا دودھ دو ہے ہوئے ممکن نہیں ہے اور باندی کے پیٹ کا بچہ کسی حال میں شریکوں میں تقسیم نہیں ہو سکتا اسی طرح اگر دونوں نے باہمی رضامندی سے اس کو تقسیم کر لیا تو بھی جائز نہیں ہے یہ مبسوط کے باب مالا تقسیم میں ہے۔ اگر ایک کپڑا دو آدمیوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس کو باہم

تقسیم کیا اور باہمی رضامندی سے طول وعرض میں پھاڑ لیا تو یہ جائز ہے اور بعد تقسیم پوری ہونے کے کسی کو دونوں میں سے رجوع کرنے کا اختیار نہ ہو گا یہ مبسوط کے باب قسمة الحیوان والعروض میں ہے اگر سلا ہوا کپڑا دو آدمیوں میں مشترک ہو تو قاضی اس کو شریکوں میں تقسیم نہ کرے گا یہ فتاویٰ قاضی میں ہے اور بھی قاضی مختلف قیمت کے دو کپڑوں کو تقسیم نہ کرے گا کیونکہ تعدیل ومساوات بدون اس کے ممکن نہیں کہ گھٹی ہوئی قیمت کے کپڑے کے ساتھ درہم ملائے جائیں اور جبر تقسیم میں درہموں کا داخل کرنا جائز نہیں ہے ہاں اگر دونوں اس پر راضی ہو جائیں تو قاضی تقسیم کر سکتا ہے یہ عینی شرح ہدایہ میں ہے۔ اگر شریکوں کے درمیان زطی کپڑا اور ہروی کپڑا اور تکیہ و بچھونا مشترک ہو تو بدون (۱) ان کی رضامندی کے قاضی تقسیم نہ کرے گا اور اگر تین کپڑے دو آدمیوں میں مشترک ہوں اور ایک نے تقسیم کی درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا تو میں دیکھوں گا کہ اگر بدون قطع ان کی تقسیم درست ہو سکتی ہے بایں طور کہ مثلاً دو کپڑوں کی قیمت تیسرے کے برابر ہو تو قاضی دونوں میں اس طرح تقسیم کر دے کہ ایک کو دو کپڑے دے دے اور دوسرے کو تیسرا دے دے اور اگر بدون قطع کرنے کے ٹھیک نہیں پڑتی ہے تو ان میں تقسیم نہ کرے گا لیکن اگر باہم کسی طریقہ پر راضی ہو جائیں تو تقسیم ہو سکتی ہے ایسا ہی کتاب میں مذکور ہے اور اصح یہ ہے کہ یوں کہا جائے کہ اگر سب کی قیمت برابر ہو اور ڈیڑھ کپڑا ہر ایک کا حصہ ہو تو قاضی ایک ایک کپڑا دونوں میں تقسیم کر کے تیسرے کو مشترک چھوڑ دے اسی طرح اگر یوں تقسیم ٹھیک ہوتی ہو یہ ایک کا حصہ ایک کپڑا اور دو تہائی کپڑا اور دوسرے کا حصہ ایک کپڑا اور ایک تہائی کپڑا ہو یا ایک کا حصہ ایک کپڑا اور چوتھائی کپڑا اور دوسرے کا حصہ پونے دو کپڑے ہوں تو بھی دونوں کو ایک ایک کپڑا تقسیم کر کے تیسرا ان میں مشترک چھوڑ دے گا یہ نہایہ میں ہے۔ اگر کاریز یا نہر یا کنواں یا چشمہ ہو کہ اس کے ساتھ زمین نہ ہو اور شریکوں نے تقسیم کی درخواست کی تو قاضی تقسیم نہ کرے گا

اور اگر اس ساتھ ایسی زمین ہو کہ جس کا پانی اس کے سوائے اور کہیں سے نہ ہو تو یہ زمین تقسیم کر دی جائے گی اور یہ کنواں یا چشمہ یا کاریز اسی طرح شرکت میں چھوڑ دیا جائے گا کہ ہر ایک اس میں سے اپنے حصہ زمین کو پہنچے ہر ایک قیمت معلوم ہونا دشوار اکثر لوگ نہیں پہچانتے ہیں۔ ع عوض مثلاً نکاح میں مہر ٹھہرایا پس اگر معین ہوتی پیش کیا تو جائز ہے اور اگر دین ہو تو نہیں جائز ہے کیونکہ دعا سے فرق میں قیمت کا فرق بہت ہو جاتا ہے۔ ۲ پٹی ہوئی نالی اور قولہ زمین نہ ہو یعنی بغیر زمین کے خالی یہی چیزیں ہوں۔

(۱) کسی طریقہ پر باہم راضی ہو جائیں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 247 Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

If both parties have the ability to source water for their land from elsewhere, or if there are multiple plots of land with separate canals and wells, then all these shall be partitioned among them because such partition does not cause harm to anyone's right. The distribution of canals, springs, etc., in this context follows the land. Thus, partition in this scenario is akin to a sale, and in the sale of land, its 'shurb' (irrigation water right) is included, even though the sale of 'shurb' is not valid as a primary objective. Therefore, the same ruling applies to such a partition; this is mentioned in *Al-Mabsut*.

Utensils made from the same material and origin, such as bowls, funnels, and basins made of brass or copper, if they are integrated with something like a stove, the Qadi (judge) cannot partition them by force. This is stated in *Al-Anabiyyah*. Pieces of silver and gold, and similar items that have not been cast, such as pieces of iron, brass, and copper, shall all be partitioned. Similarly, if an upper floor (balakhana) is jointly owned by two persons and each one's share is sufficient for him to derive benefit from it after partition, even if the ground floor (sufal) belongs to someone else or is shared by both while the upper part (uluw) belongs to another, then all this shall be partitioned upon the request of some partners; this is in *Al-Mabsut*. In the partition of houses, the courtyard area shall be partitioned by yards (gaz), and the building shall be partitioned according to its value. It is permissible for some partners to have preference over others based on the increased value of the building and location, because equalization (ta'dil) in shares, both in form and substance, can only be achieved as far as possible. When equalization in form is not possible, equalization in value shall be considered. Then, there are three scenarios: (1) They desired to partition the land equally (half and half) on the condition that whoever receives the building in his share pays half its value to the other, and the value of the building is known. Or (2) they desired to partition it in the same way, but the value of the building is unknown. Or (3) they desired to partition the land equally but did not partition the building. If the first scenario occurs, it is valid. If the second scenario is established, it is valid by way of *istihsan* (juridical preference), though not by *qiyas* (analogy). If the third scenario is established, the partition is valid, and the one who receives the building in his share will become its owner after paying half its value to the other partner; as stated in *Muheet al-Sarakhsi*.

Similarly, we have stated that if land jointly owned by two persons, containing trees and crops, is partitioned without including the trees and crops, and then the trees

and crops fall into the share of one partner, the one who receives them shall become the owner by paying the other partner the value of his share in the trees and crops; this is in *Al-Zakhirah*. It is narrated from Imam Abu Yusuf that several people became owners of a piece of land containing crops through inheritance. Then, the said land was partitioned among them without considering the crops and without estimating their value. In this case, accountability for the crops shall be sought from the one in whose share the cultivated part falls. If he says, "I do not agree to pay the price and I do not need this partition," the ruler shall compel him to pay the price of the crops. The same applies to a house (dar); if the ruler partitions it by yards but does not estimate the value of the building, then the building's value shall be accounted for from the one in whose share it falls, whether the amount was specified or not. This is mentioned in *Wajeezah Kurdi*.

If partners appear before the Qadi regarding a house or immovable property (aqar) in their possession and claim they inherited it from a certain person, Imam-e-Azam (Abu Hanifa) may Allah have mercy on him, stated that the Qadi shall not partition it among them until they provide witnesses for the death of that person and the number of heirs. The 'Sahibayn' (Imams Abu Yusuf and Muhammad) stated that the Qadi should partition it based on their admission (iqrar) and record in the deed (sakk) that he partitioned it based on their acknowledgment. If they claim they purchased the immovable property, he shall partition it among them. If there is joint property other than immovable property and they claim inheritance, then according to all (scholars), he shall partition it. If they claim it is their property without specifying how it was transferred to their ownership, he shall still partition it among them. And this book...

और अगर दोनों में से हर एक को यह सामर्थ्य प्राप्त हो कि अपनी भूमि का पानी कहीं और से निकाले या कई भूमियाँ और अलग-अलग नहरें और कुएँ हों, तो ये सब उनमें विभाजित किए जाएँगे क्योंकि इस विभाजन में उनमें से किसी के अधिकार में कोई हानि नहीं है। नहर और चश्मा आदि का विभाजन इस स्थान पर भूमि के अधीन है, अतः इस स्थिति में विभाजन विक्रय के समान है और भूमि के विक्रय में उसका 'शर्ब' यानी सिंचाई का पानी भी सम्मिलित हो जाता है, यद्यपि 'शर्ब' का विक्रय विशेष रूप से वैध नहीं है, अतः ऐसे ही विभाजन में भी यही आदेश है, यह 'मबसूद' में है।

जो पात्र एक ही चीज़ और मूल से बनाए गए हों जैसे प्याला (तास), कीप (कुमा) और परात (तश्त) जो पीतल या तांबे से बने हों, ऐसे पात्र उदाहरण के तौर पर अंगीठी के साथ मिलाए गए हों, तो काज़ी उन्हें जबरन विभाजित नहीं कर सकता। यह 'अनाबिया' में है। चाँदी और सोने के टुकड़े और जो उसके समान हैं जिन्हें ढाला न गया हो जैसे लोहे, पीतल और तांबे के टुकड़े, ये सब विभाजित किए जाएँगे। इसी प्रकार यदि एक ऊपरी मंजिल (बालाखाना) दो व्यक्तियों में साझा हो और प्रत्येक का हिस्सा इतना हो कि विभाजन के बाद उससे लाभ प्राप्त कर सके और उसका निचला हिस्सा (सुफ़ल) किसी अन्य का हो या निचला हिस्सा उन दोनों में साझा हो और ऊपरी हिस्सा (उलू) किसी अन्य का हो, तो यह सब कुछ साझेदारों के अनुरोध पर विभाजित किया जाएगा, यह 'मबसूद' में है। घरों के विभाजन में अहाते के मैदान का विभाजन गज़ों के हिसाब से किया जाएगा और इमारत का विभाजन मूल्य के अनुसार किया जाएगा। और यह वैध है कि कुछ साझेदारों को इमारत और स्थान के मूल्य की अधिकता के आधार पर कुछ दूसरों पर श्रेष्ठता प्राप्त हो, क्योंकि हिस्सों में स्वरूप और अर्थ के दृष्टिकोण से समानता वहीं तक हो सकती है जहाँ तक संभव हो, और जब स्वरूप के आधार पर समानता संभव न हो तो अर्थ (मूल्य) के आधार पर इसे मान्य माना जाएगा। फिर इसकी तीन स्थितियाँ हैं: या तो (1) भूमि को आपस में आधा-आधा विभाजित करना चाहा और यह शर्त रखी कि इमारत जिसके हिस्से में आएगी वह दूसरे को इमारत के आधे मूल्य का भुगतान कर देगा और इमारत का मूल्य ज्ञात है। या (2) इसी प्रकार विभाजित करना चाहा परंतु इमारत का मूल्य ज्ञात नहीं है। या (3) भूमि को आधा-आधा विभाजित करना चाहा और इमारत का विभाजन नहीं किया। अतः यदि पहली स्थिति हो तो वैध है, और यदि दूसरी स्थिति उत्पन्न हो तो 'इस्तेहसानन' (सद्भावपूर्ण निर्णय के आधार पर) वैध है, 'क़ियासन' (तर्क के आधार पर) वैध नहीं है। और यदि तीसरी स्थिति उत्पन्न हो तो

विभाजन वैध है, फिर इमारत जिसके हिस्से में आएगी वह इमारत का आधा मूल्य दूसरे साझेदार को देकर उसका स्वामी बन जाएगा, ऐसा 'मुहीत अस-सरखसी' में वर्णित है।

इसी प्रकार हमने कहा कि यदि दो व्यक्तियों की साझा भूमि जिसमें वृक्ष और खेती है, वृक्षों और खेती के बिना विभाजित की गई, फिर वृक्ष और खेती दोनों में से एक साझेदार के हिस्से में आ गए, तो जिसके हिस्से में वृक्ष और खेती आई है, वह दूसरे साझेदार को वृक्षों और खेती के हिस्से का मूल्य चुकाकर स्वामी बन जाएगा, यह 'ज़खीरा' में है। इमाम अबू यूसुफ़ से वर्णन है कि कुछ लोग एक भूमि के, जिसके एक टुकड़े में खेती है, विरासत के कारण स्वामी हुए। फिर उक्त भूमि उन लोगों में खेती के बिना और खेती के मूल्य का अनुमान लगाए बिना विभाजित की गई, तो वह टुकड़ा जिसमें खेती है जिसके हिस्से में आएगा, हम उससे खेती का मुआवजा (लेखा-जोखा) लेंगे। और यदि उसने कहा कि मैं मूल्य देने पर सहमत नहीं हूँ और मुझे इस विभाजन की आवश्यकता नहीं है, तो हाकिम (न्यायाधीश) उसे खेती का मूल्य देने के लिए विवश करेगा। और यही स्थिति घर (दार) की है कि यदि घर को हाकिम ने गज़ों से विभाजित किया और उसकी इमारत का मूल्य नहीं आँका, तो उक्त इमारत जिसके हिस्से में आएगी, उससे इमारत के मूल्य का मुआवजा लिया जाएगा, चाहे मूल्य की मात्रा बताई गई हो या न बताई गई हो, यह 'वजीज़ा कुर्दी' में है।

यदि साझेदार काज़ी के पास उपस्थित हुए और उनके कब्ज़े में एक घर या अचल संपत्ति (अक़ार) है और उन्होंने दावा किया कि हमने इसे अमुक व्यक्ति से विरासत में पाया है, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) रहमतुल्लाह अलैहि ने फ़रमाया कि काज़ी उनमें इसे तब तक विभाजित नहीं करेगा जब तक कि ये लोग उस अमुक व्यक्ति की मृत्यु और उत्तराधिकारियों की संख्या के साक्षी न दे दें। 'साहिबैन' ने फ़रमाया कि उनके स्वीकारोक्ति (इक़रार) पर उनमें विभाजित कर दे और दस्तावेज़ (सक) में लिख दे कि मैंने उनके इक़रार पर उनमें विभाजन किया है। और यदि अचल संपत्ति के बारे में उन लोगों ने दावा किया कि हमने इसे खरीदा है, तो वह उनमें विभाजित कर देगा। और यदि अचल संपत्ति के अतिरिक्त कोई साझा माल हो और उन्होंने दावा किया कि हमने इसे विरासत में पाया है, तो सर्वसम्मति से सबके अनुसार वह विभाजित कर देगा। और यदि उन लोगों ने दावा किया कि यह हमारी मिल्कियत है और यह नहीं बताया कि यह उनकी मिल्कियत में कैसे स्थानांतरित हुआ है, तब भी वह उनमें विभाजित कर देगा और यह किताब...

---

اور اگر دونوں میں سے ہر ایک کو یہ قدرت حاصل ہو کہ اپنی زمین کا پانی کہیں اور سے نکالے یا چند زمینیں اور متفرق نہریں اور کنویں ہوں تو یہ سب ان میں تقسیم کئے جائیں گے کیونکہ اس تقسیم میں ان میں سے کسی کے حق میں ضرر نہیں ہے۔ نہر و چشمہ وغیرہ کی تقسیم اس مقام پر زمین کے تابع ہے پس قسمت اس صورت میں بمنزلہ بیع کے ہے اور زمین کی بیع میں اس کا شرب یعنی سینچنے کا پانی بھی داخل ہو جاتا ہے اگرچہ شرب کی بیع مقصوداً جائز نہیں ہے پس ایسی ہی تقسیم میں بھی یہی حکم ہے یہ مبسوط میں ہے۔

جو ظروف ایک ہی چیز و اصل سے بنائے گئے ہوں جیسے طاس و قمہ و طشت جو پیتل یا تانبے سے بنے ہوئے ہوں ایسے ظروف مثلاً انگیٹھی کے ساتھ ملائے گئے ہیں پس قاضی ان کو جبراً نہیں تقسیم کر سکتا ہے۔ یہ عنابیہ میں ہے۔ چاندی وسونے کے ٹکڑے اور جو اس کے مشابہ ہیں کہ ڈھالے ہوئے نہ ہوں جیسے لوہے و پیتل و تانبے کے ٹکڑے یہ سب تقسیم کئے جائیں گے اسی طرح اگر ایک بالا خانہ دو آدمیوں میں مشترک ہو اور ہر ایک کا حصہ اس قدر ہو کہ بعد تقسیم کے اس سے انتفاع حاصل کر سکتا ہے اور اس کا سفل کسی غیر کا ہو یا سفل ان دونوں میں مشترک ہو اور علو کسی غیر کا ہو تو یہ سب بعض شریکوں کی درخواست کے وقت تقسیم کیا جائے گا یہ مبسوط میں ہے۔ داروں کی تقسیم میں میدان احاطہ کا گزوں سے تقسیم کیا جائے گا اور عمارت باعتبار قیمت کے تقسیم کی جائے گی اور جائز ہے کہ بعض شریک کو بعض پر باعتبار زیادتی قیمت عمارت و موضع کے فضیلت حاصل ہو کیونکہ حصوں میں از راہ صورت و معنی کے تعدیل وہیں تک ہو سکتی ہے جہاں تک ممکن ہو اور جب از راہ صورت تعدیل ممکن نہ ہو تو از راہ معنی معتبر ہو گی پھر اس کی تین صورتیں ہیں۔ یا تو زمین (۱) کو باہم نصفاً نصف تقسیم کرنا چاہا

اور یہ شرط کی کہ عمارت جس کے حصہ میں پڑے وہ دوسرے کو عمارت کی نصف قیمت دے دے اور عمارت کی قیمت معلوم ہے۔ یا اسی (۲) طرح تقسیم کرنا چاہا مگر عمارت کی قیمت معلوم نہیں ہے یا زمین (۳) کو نصفاً نصف تقسیم کرنا چاہا اور عمارت کی تقسیم نہ کی پس اگر صورت اوّل ہو تو جائز ہے اور اگر دوسری صورت متحقق ہو تو استحساناً جائز ہے قیاساً جائز نہیں ہے اور اگر تیسری صورت متحقق ہو تو تقسیم جائز ہے پھر عمارت جس کے حصہ میں پڑے وہ عمارت کی نصف قیمت دوسرے شریک کو دے کر اس کا مالک ہو جائے گا کذا فی محیط السرخسی۔

اسی طرح ہم نے کہا کہ اگر دو آدمیوں کی مشترک زمین جس میں درخت ہیں و زراعت ہے بدون درختوں و زراعت کے تقسیم کی گئی پھر درخت و زراعت دونوں میں سے ایک شریک کے حصے میں پڑے تو جس کے حصہ میں درخت و زراعت پڑی ہے وہ دوسرے شریک کو درختوں و زراعت کے حصہ کی قیمت ادا کر کے مالک ہو جائے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ چند لوگ ایک زمین کے جس کے ایک ٹکڑے میں زراعت ہے بوجہ میراث کے مالک ہوئے پھر زمین مذکور ان لوگوں میں بدون زراعت کے اور بدوں زراعت کی قیمت انداز کرنے کے تقسیم کی گئی تو وہ ٹکڑا جس میں کھیتی ہے جس کے حصہ میں آئے گا ہم اس سے زراعت کا مواخذہ کریں گے اور اگر اس نے کہا کہ میں قیمت دینے پر راضی نہیں ہوں اور مجھے اس تقسیم کی ضرورت نہیں ہے تو حاکم اس کو قیمت زراعت ادا کرنے پر مجبور کرے گا اور یہی حال دار کا ہے کہ اگر دار کو حاکم نے گزوں سے تقسیم کیا اور اس کی عمارت کی قیمت انداز نہ کر لی تو عمارت مذکور جس کے حصہ میں پڑے گی اس سے قیمت عمارت کا مواخذہ کیا جائے گا خواہ قیمت کی مقدار بیان ہوئی ہو یا نہ ہوئی ہو یہ وجیزہ کردی میں ہے۔

اگر شریک لوگ قاضی کے پاس حاضر ہوئے اور اس کے قبضہ میں ایک دار یا عقار ہے اور انہوں نے دعویٰ کیا کہ ہم نے فلاں شخص سے اس کو میراث پایا ہے تو امام اعظم رحمۃ اللہ علیہ نے فرمایا کہ قاضی ان لوگوں میں اس کو تقسیم نہ کرے گا یہاں تک کہ یہ لوگ اس فلاں شخص کی موت اور تعداد وارثوں کے گواہ دیں۔ صاحبین نے فرمایا کہ ان کے اقرار پر ان میں تقسیم کر دے اور صک میں تحریر کر دے کہ میں نے ان کے اقرار پر ان میں تقسیم کیا ہے اور اگر عقار کی نسبت ان لوگوں نے دعویٰ کیا کہ ہم نے اس کو خریدا ہے تو ان میں تقسیم کر دے گا اور اگر سوائے عقار کے کوئی مال مشترک ہو اور انہوں نے دعویٰ کیا کہ ہم نے اس کو میراث پایا ہے تو بالاتفاق سب کے نزدیک تقسیم کر دے گا اور اگر ان لوگوں نے دعویٰ کیا کہ یہ ہماری ملک ہے اور یہ بیان نہ کیا کہ یہ کیونکر ان کی ملک میں منتقل ہوا ہے تو بھی ان میں تقسیم کر دے گا اور یہ کتاب

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) (248) Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

It is narrated regarding division (Al-Qisma) and written in *Jame Saghir* that two persons claimed ownership of a piece of land and produced witnesses that the said land is in their possession and requested its division. The Qadi (judge) shall not divide it between them until they produce witnesses stating that "this land is ours," because there is a possibility that it belongs to someone else while being in their possession. Some scholars (Mashaikh) stated that this view is specifically held by Imam-e-Azam (r.a.), while others stated it is the view of all, and this is the most correct (Asah) opinion. This is because partition is of two types: first, by right of ownership (Bi-Haq al-Milk) for the purpose of fully utilizing the benefit; second, by right of possession (Bi-Haq al-Qabd) for the purpose of division and protection. Here, the first type is prohibited because ownership is not established, and the second type is also prohibited because it is unnecessary since land is inherently a secure entity.

If two heirs appear and provide witnesses for the death of the ancestor and the number of heirs, and the inherited property is in their possession, but one of the heirs is absent or a minor, then at the request of the present heirs, the Qadi shall divide the estate. He shall appoint a representative (Wakil) for the absent heir to take possession of their share, or a guardian (Wasi) for the minor heir to take possession of their share, as such appointment is in the interest of the absent party. According to Imam-e-Azam (r.a.), in this case, it is still necessary to establish witnesses for the original inheritance; in fact, it is preferable (Awla). According to the Sahibain (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the Qadi shall divide the property based on their acknowledgment (Iqrar), separate the shares of the absent and minor heirs, and state: "I have partitioned this based on the acknowledgment of the present adult heirs, and the absent or minor parties remain on their own proof (Hujjat)."

If the present partners are purchasers (Mushtari), the Qadi shall not partition in the case of any partner being absent, even if they produce witnesses to the purchase, until the absent partner appears. If the entire immovable property or any portion of it is in the possession of an absent heir, the Qadi shall not partition. Similarly, if it is in the possession of a trustee (Wadi'at), partition shall not occur. Likewise, if it is entirely or partially in the possession of a minor, partition shall not be made based on the acknowledgment of those present. According to the correct school of thought, there is no difference in this case whether witnesses are established or not. If only one heir is present, the Qadi shall not partition, even if he produces witnesses, because there is no opponent (Mukhasim) present with him. Unless this person acts as an opponent

on his own behalf, there is no opponent representing the deceased nor the absent party. If this person represents his ancestor, the deceased, and the absent party, there is no opponent against whom witnesses can be established. If there are two heirs, one minor and one adult, the Qadi shall appoint a guardian (Wasi) for the minor, and if witnesses are established, he shall partition. This is mentioned in *Al-Kafi*.

If any part of the inheritance is in the possession of the minor's mother, the same rule applies as when it is in the possession of an absent party, meaning the Qadi shall not partition. This is mentioned in *Fatawa Qadi Khan*. It should be known that there is an important point here: the Qadi shall only appoint a guardian (Wasi) for a minor when the minor is present. If the minor is absent, he shall not appoint a guardian. Conversely, in the case of an absent adult, according to the opinion of Imam Abu Yusuf (r.a.), the Qadi shall appoint a guardian. The difference between a minor being present or absent regarding the appointment of a guardian is that when present, the Qadi appoints a guardian due to the need for a response (Jawab), as the claim (Da'wa) becomes valid against the minor in his presence, but he is unable to respond. Thus, a guardian is appointed to respond to his opponent. If the minor is not present, the claim against him is not valid, hence a response is not required, and there is no need to appoint a guardian. This is in *Al-Nihayah*. If a person dies and has bequeathed one-third of his estate, and some heirs are present while others are absent, the legatee (Musa-lahu) shall be considered a partner similar to an heir. Therefore, if the legatee is present alone, it is equivalent to a single heir being present. In this case, the Qadi shall not hear the witnesses of the legatee. Otherwise, he shall divide the mentioned property among the partners. If an heir is present along with the legatee, it is equivalent to two heirs being present.

**Footnotes:** 1. One explanation is: firstly, owners have ownership and each wants to take full benefit of their ownership. Secondly, if it is only possession, then each wants to properly secure protective possession through partition. 2. Are purchasers, meaning they are not heirs. 3. Witnesses etc.: This condition is apparently according to the opinion of Imam Abu Hanifa (r.a.), and based on the opinion of the Sahibain, witnesses should also be required.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) (248) किताब अल-क़िस्मत (विभाजन की पुस्तक)**

विभाजन (अल-क़िस्मत) की रिवायत है और जामे सगीर में लिखा है कि दो व्यक्तियों ने एक ज़मीन का दावा किया और इस बात के गवाह दिए कि उक्त ज़मीन हमारे कब्ज़े में है और इसके विभाजन का अनुरोध किया। तो काज़ी (न्यायाधीश) दोनों के बीच विभाजन नहीं करेगा जब तक कि वे इस बात के गवाह न दें कि यह ज़मीन हमारी है; क्योंकि संभावना है कि यह किसी और की मिल्कियत हो और उनके कब्ज़े में हो। फिर कुछ मशाइख़ (विद्वानों) ने कहा कि यह कथन विशेष रूप से इमाम आज़म (र.अ.) का है और कुछ ने कहा कि यह सब का कथन है और यही सबसे अधिक सही (असहा) है। क्योंकि विभाजन दो तरह का होता है: एक 'ब-हक-ए-मिल्क' जो लाभ को पूरा करने के उद्देश्य से है; दूसरा 'ब-हक-ए-क़ब्ज़ा' जो विभाजन और सुरक्षा के उद्देश्य से है। तो यहाँ पहली किस्म वर्जित (मुम्तने) है क्योंकि स्वामित्व (मिल्क) सिद्ध नहीं है, और दूसरी भी वर्जित है क्योंकि इसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ज़मीन अपने आप में एक सुरक्षित चीज़ है।

यदि दो वारिस उपस्थित हुए और दोनों ने अमुक पूर्वज की मृत्यु और वारिसों की संख्या के गवाह दिए और विरासत की संपत्ति उनके कब्ज़े में है, लेकिन उनमें से कोई वारिस अनुपस्थित या नाबालिग है, तो उपस्थित वारिसों के अनुरोध पर काज़ी विरासत का विभाजन कर देगा। और अनुपस्थित व्यक्ति का हिस्सा कब्ज़ा करने के लिए कोई वकील, या नाबालिग का हिस्सा कब्ज़ा करने के उद्देश्य से कोई वसी (अभिभावक) नियुक्त करेगा क्योंकि इस तरह नियुक्त करने में अनुपस्थित व्यक्ति के अधिकार में भलाई है। इमाम आज़म (र.अ.) के अनुसार इस स्थिति में भी मूल विरासत के गवाह स्थापित करना आवश्यक है, बल्कि यह बेहतर (अवली) है। साहिबैन के अनुसार, काज़ी उनकी स्वीकृति (इक़रार) पर उनके बीच विभाजन कर देगा और अनुपस्थित तथा नाबालिग का हिस्सा अलग कर देगा और गवाह बना देगा कि "मैंने बालिग वारिसों की स्वीकृति पर विभाजन कर दिया है, और अनुपस्थित या नाबालिग अपनी दलील (हुज्जत) पर है।"

और यदि उपस्थित साझेदार खरीदार (मुश्तरी) हों, तो किसी साझेदार के अनुपस्थित होने की स्थिति में काज़ी विभाजन नहीं करेगा, चाहे वे लोग खरीदारी के गवाह ही क्यों न पेश कर दें, जब तक कि अनुपस्थित साझेदार उपस्थित न हो जाए। और यदि पूरी अचल संपत्ति या उसका कुछ हिस्सा अनुपस्थित वारिस के कब्ज़े में हो, तो भी काज़ी विभाजन नहीं करेगा। इसी प्रकार, यदि वह संपत्ति धरोहर रखने वाले (वदियत) के कब्ज़े में हो, तो भी विभाजन नहीं होगा। इसी प्रकार, यदि पूरी संपत्ति किसी नाबालिग के कब्ज़े में हो या उसका कुछ हिस्सा हो, तो भी उपस्थित लोगों की स्वीकृति पर

काज़ी विभाजन नहीं करेगा। और सही मज़हब के अनुसार इस स्थिति में गवाह स्थापित करने या न करने में कोई अंतर नहीं है। यदि केवल एक वारिस उपस्थित हो, तो काज़ी विभाजन नहीं करेगा भले ही वह गवाह पेश कर दे, क्योंकि उसके साथ कोई विपक्षी (मुखासिम) नहीं है। सिवाय इसके कि यदि यह व्यक्ति अपनी ओर से विपक्षी होगा तो मृतक की ओर से कोई विपक्षी नहीं है और न ही अनुपस्थित की ओर से कोई विपक्षी है। और यदि यह व्यक्ति अपने पूर्वज, मृतक और अनुपस्थित की ओर से विपक्षी हो, तो उसकी ओर से कोई विपक्षी नहीं है जिस पर गवाह स्थापित हों। और यदि दो वारिस हों, जिनमें से एक नाबालिग हो और दूसरा बालिग हो, तो काज़ी नाबालिग की ओर से एक वसी नियुक्त करेगा और यदि गवाह स्थापित हो जाएँ तो विभाजन करेगा; यह 'काफ़ी' में है।

यदि विरासत में से कुछ हिस्सा नाबालिग की माँ के कब्ज़े में हो, तो उसका वही नियम है जो अनुपस्थित व्यक्ति के कब्ज़े में होने की स्थिति में बताया गया है, यानी काज़ी विभाजन नहीं करेगा; यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। यह जानना चाहिए कि यहाँ एक मसला ऐसा है जिसे जानना ज़रूरी है, और वह यह है कि नाबालिग की ओर से काज़ी किसी वसी को तभी नियुक्त करेगा जब नाबालिग उपस्थित हो। और यदि वह अनुपस्थित हो, तो उसकी ओर से वसी नियुक्त नहीं करेगा। इसके विपरीत, बालिग अनुपस्थित के मामले में, इमाम अबू यूसुफ (र.अ.) के कथन के आधार पर काज़ी बालिग की ओर से वसी नियुक्त करेगा। और नाबालिग के उपस्थित और अनुपस्थित होने के बीच वसी नियुक्त करने में अंतर यह है कि जब नाबालिग उपस्थित हो, तो जवाब देने की आवश्यकता के कारण काज़ी उसकी ओर से वसी नियुक्त कर देगा क्योंकि नाबालिग की उपस्थिति में उस पर दावा (दावा) सही हो गया लेकिन वह जवाब देने में असमर्थ है। इसलिए उसकी ओर से वसी नियुक्त किया जाए ताकि वह अपने विपक्षी को जवाब दे सके। और यदि नाबालिग उपस्थित न हो, तो उस पर दावा सही नहीं होगा, इसलिए जवाब देना अनिवार्य नहीं होगा, और वसी नियुक्त करने की भी आवश्यकता नहीं होगी; यह 'निहाया' में है। यदि एक वारिस मृतक हो और उसमें एक-तिहाई की वसीयत हो और कुछ वारिस उपस्थित हों और कुछ अनुपस्थित हों, तो मौसी-लहु (वसीयत प्राप्तकर्ता) को वारिस के समान साझेदार माना जाएगा। अतः यदि मौसी-लहु अकेला उपस्थित हो, तो वह एक अकेले वारिस की उपस्थिति के समान है। इस स्थिति में भी काज़ी मौसी-लहु के गवाहों को नहीं सुनेगा। अन्यथा, उक्त संपत्ति को साझेदारों के बीच विभाजित करेगा और यदि मौसी-लहु के साथ कोई वारिस उपस्थित हो, तो यह दो वारिसों की उपस्थिति के समान होगा।

**पाद टिप्पणियाँ:** 1. एक अरीह यानी पहला यह कि स्वामियों को मिल्कियत प्राप्त है तो हर एक अपनी मिल्कियत से पूरा फायदा उठाना चाहता है। दूसरा यह कि केवल कब्ज़ा है तो हर एक चाहता

है कि बँटवारे से सुरक्षात्मक कब्ज़ा अच्छी तरह प्राप्त हो। 2. मुश्तरी हों यानी वारिस न हों। 3. गवाह आदि: यह शर्त ज़ाहिर तौर पर अबू हनीफ़ा (र.अ.) का कथन है और साहिबैन के कथन पर गवाह पर भी यही होना चाहिए।

---

القسمۃ کی روایت ہے اور جامع صغیر میں لکھا ہے کہ دو شخصوں نے ایک زمین کا دعویٰ کیا اور اس امر کے گواہ دیئے کہ زمین مذکور ہمارے قبضہ میں ہے اور اس کی تقسیم کی درخواست کی تو قاضی دونوں میں تقسیم نہ کرے گا جب تک اس بات کے گواہ نہ دیں کہ یہ زمین ہماری ہے کیونکہ احتمال ہے کہ دوسرے کی ملک ہو اور ان کے قبضہ میں ہو پھر بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ قول خاص امام اعظمؒ کا ہے اور بعض نے فرمایا کہ یہ سب کا قول ہے اور یہی اصح ہے کیونکہ قسمت دو طرح پر ہوتی ہے ایک بحق الملک ۲ جو تکمیل منفعت کی غرض سے ہے دوئم بحق قبضہ بغرض تقسیم حفاظت سو پہلی قسم یہاں ممتنع ہے کہ ملک ثابت نہیں ہے اور دوسری بھی ممتنع ہے کہ اس کی ضرورت نہیں ہے کیونکہ زمین خود ہی محفوظ چیز ہے۔ اگر دو وارث حاضر ہوئے اور دونوں نے فلاں مورث کی موت اور تعداد وارثوں کے گواہ دیئے اور متورکہ ان کے قبضہ میں ہے مگر ان میں کوئی وارث غائب یا نا بالغ ہے تو حاضرین کی درخواست پر قاضی ترکہ تقسیم کر دے گا اور غائب کا حصہ قبضہ کرنے کے واسطے کوئی وکیل یا نا بالغ کا حصہ قبضہ کرنے کی غرض سے کوئی وصی مقرر کرے گا کیونکہ اس طرح مقرر کرنے میں غائب کے حق میں مصلحت ہے اور امام اعظمؒ کے نزدیک اس صورت میں بھی اصل میراث کے گواہ قائم کرنے ضروری ہیں بلکہ اولیٰ ہے۔ صاحبین کے نزدیک ان کے اقرار پر ان میں تقسیم کر دے گا اور غائب و نا بالغ کا حصہ جدا کر لے گا اور گواہ کر دے گا کہ میں نے بالغ وارثان حاضرین کے اقرار پر تقسیم کر دیا ہے اور غائب یا نا بالغ اپنی اپنی حجت پر ہے اور اگر شرکاء حاضرین مشتری ۳ ہوں تو کسی شریک کے غائب ہونے کی صورت میں تقسیم نہ کرے گا اگرچہ وہ لوگ خرید کرنے کے گواہ قائم کریں یہاں تک کہ شریک غائب حاضر ہو اور پورا عقار ترکہ یا کسی

قدر اس میں سے غائب وارث کے قبضہ میں ہو تو تقسیم نہ کرے گا اسی طرح اگر اس کے ودیعت رکھنے والے کے قبضہ میں ہو تو بھی تقسیم نہ کرے گا اسی طرح اگر کل نا بالغ کے قبضہ میں ہو یا اس میں سے کسی قدر ہو تو بھی حاضرین کے اقرار پر تقسیم نہ کرے گا اور صحیح مذہب کے موافق اس صورت میں گواہ قائم کرنے یا نہ کرنے میں کچھ فرق نہیں ہے۔ اگر فقط ایک وارث حاضر ہوا تو قاضی تقسیم نہ کرے گا اگرچہ وہ گواہ قائم کرے کیونکہ اس کے ساتھ کوئی مخاصم نہیں ہے سوا گر یہ شخص اپنی طرف سے خصم ہوگا تو میت کی طرف سے کوئی خصم نہیں اور نہ غائب کی طرف سے کوئی خصم ہے اور اگر یہ شخص اپنی مورث میت اور غائب کی طرف سے خصم ہو تو اس کی طرف سے کوئی خصم نہیں۔ جس پر گواہ قائم ہوں اور اگر دو وارث ہوں مگر ایک صغیر ہو دوسرا بالغ ہو تو قاضی صغیر کی طرف سے ایک وصی مقرر کرے گا اور اگر گواہ ے قائم ہو جائیں تو تقسیم کروں گا یہ کافی میں ہے۔

اگر ترکہ میں سے کسی قدر صغیر کی والدہ کے قبضہ میں ہو تو اس کا وہی حکم ہے جو غائب کے قبضہ میں ہونے کی صورت میں مذکور ہوا کہ قاضی تقسیم نہ کرے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ جاننا چاہئے کہ یہاں ایک مسئلہ ایسا ہے جس کا جاننا ضروری ہے اور وہ یہ ہے کہ صغیر کی طرف سے قاضی کسی وصی کو جبھی مقرر کرے گا جب کہ صغیر حاضر ہو اور اگر غائب ہو تو اس کی طرف سے وصی مقرر نہ کرے گا بخلاف بالغ غائب کے کہ بنا بر قول امام ابو یوسفؒ کے قاضی بالغ کی طرف سے وصی مقرر کرے گا اور وصی مقرر کرنے میں صغیر حاضر و غائب میں فرق یہ ہے کہ صغیر جب حاضر ہو تو جواب کی ضرورت سے قاضی اس کی طرف سے وصی مقرر کر دے گا کیونکہ صغیر کی حاضری میں اس پر دعویٰ صحیح ہو گیا مگر وہ جواب دہی سے عاجز ہے پس اس کی طرف سے وصی مقرر کیا جائے تا کہ اس کے خصم کو جواب دے اور اگر صغیر حاضر نہ ہو تو اس پر دعویٰ صحیح نہ ہوگا پس جواب دہی لازم نہ ہوگی

تو وصی مقرر کرنے کی بھی ضرورت نہ ہوگی یہ نہایہ میں ہے۔ اگر ایک وارث میت ہو اور اس میں تہائی کی وصیت ہو اور بعض وارث حاضر ہوں اور بعض غائب ہوں تو موصی لہ بمنزلہ وارث کے شریک قرار دیا جائے گا پس اگر موصی لہ تنہا حاضر ہو تو مثل تنہا ایک وارث کے حاضر ہونے کے اس صورت میں بھی قاضی موصی لہ کے گواہوں کی سماعت نہ کرے گا، ورنہ دار مذکور شریکوں میں تقسیم کرے گا اور اگر موصی لہ کے ساتھ کوئی وارث حاضر ہو تو مثل دو وارثوں کے حاضر۔

**حواشی:** ۱ ایک اریح یعنی اول یہ کہ مالکوں کو ملکیت حاصل ہے تو ہر ایک اپنی ملکیت سے پورا فائدہ لینا چاہتا ہے۔ دوئم یہ کہ فقط قبضہ ہے تو ہر ایک چاہتا ہے کہ بٹوارہ سے حفاظتی قبضہ اچھی طرح حاصل ہو۔ ۲ مشتری ہوں یعنی وارث نہ ہوں۔ ۳ گواہ الخ یہ شرطا بظاہر قول ابو حنیفہؒ ہے اور صاحبین کے قول پر گواہ پر بھی یہی ہونا چاہیے۔

---

In such a case, the Qazi (judge) shall hear the witnesses of the partners and divide the mentioned estate (dar) among them; this is recorded in 'Al-Zakheera'. If two partners have excluded a common pathway from the division, and there is a balcony (zhalla) over the said pathway such that one person's access is over it, and this person has the capacity to create another pathway for himself, then if the other person prevents him from passing over the balcony, he shall not have the right [to continue using it]; this is stated in 'Al-Mabsut'. If a house is shared between two persons, and it contains a porch (suffah) within which there is a room (bayt), and the access to that room is through the porch, and the water from the room's roof drains onto the porch's roof, and then the two divide the estate between them such that one person receives the porch and a portion of the courtyard, while the other receives the room and a portion of the courtyard, and they made no mention of the pathway or drainage during the division. Now, if the owner of the room wishes to continue passing through the porch as before and drain water onto its roof, then if he is able to create a new pathway and drainage within his own portion, the division is valid. In this case, the owner of the room will not have the right to pass through the porch or drain water onto it, regardless of whether it was mentioned in the division that each portion includes its respective rights or not.

However, if the owner of the room cannot create an alternative pathway or drainage elsewhere, and if both parties mentioned during division that each person's portion is "with its rights" (ma'a huquqihi), then the pathway and drainage shall be included in the division, and the partition will be valid. If they did not mention this, then the pathway and drainage shall not be included, and the division will be void (fasid). This has all been mentioned by Shaikh al-Islam in the commentary of 'Kitab al-Qisma'. The Shaikh also noted at the end of the chapter that if two partners divided a common estate and after defining the boundaries it became apparent that one party has no access pathway at all, then if that person can create a pathway within his own portion, the division is valid. Even if he cannot create a pathway, but he knew at the time of division that he would have no access, the division is still valid. But if he did not know, then the division is void. Based on the analogy of the 'haqq-nah' issue, it should be stated at the end of this chapter that if an alternative pathway cannot be created within one's own portion, the division is only void when rights were not explicitly mentioned. If rights were mentioned, the pathway becomes part of the division. Thus, considering both issues, the conclusion is that if a pathway cannot be

created elsewhere and rights were mentioned, then the pathway and water drainage are included in the division, and it is not void. If rights were not mentioned such that the pathway and drainage are not under the division, yet the person knew at the time of division that there would be no pathway or drainage, the division remains valid. If he did not know, it is void. Shaikh al-Islam mentioned in the chapter on the division of lands and villages that pathways and water drains are included in division even without explicit mention of rights and facilities if the pathway and drainage pass through third-party land and are not part of the partners' allotted portions, nor can the partners create these rights within their own portions. This inclusion is to prevent the division from becoming void; this is in 'Al-Zakheera'.

If two partners divide a common estate on the condition that one partner buys another house from the other for a thousand dirhams, the division is null and void (batil) due to this condition; this is in 'Al-Mabsut'. Any division made conditional upon a gift (hiba), charity (sadqa), or sale of the divided property or anything else is void (fasid). Similarly, any purchase made conditional upon a division is null. However, a division with a condition that increases something known, such as increasing the price, is valid.

---

1. Included: Meaning the access from the porch and drainage on the roof becomes his right because he accepted his portion along with its rights.
2. Maseel al-Ma: A drain or conduit for flowing water.

ऐसी स्थिति में भी काजी उनके गवाहों को सुनेगा और उक्त संपत्ति (दार) को भागीदारों (शुरका) के बीच विभाजित कर देगा, यह 'ज़खीरा' में है। यदि दो भागीदारों ने साझा रास्ते को विभाजन से अलग कर दिया और उक्त रास्ते पर एक छज्जा (ज़ल्ला) है, जिस पर से एक व्यक्ति का रास्ता गुजरता है, और वह व्यक्ति अपना दूसरा रास्ता निकालने में सक्षम है, तो यदि दूसरा व्यक्ति उसे छज्जे के ऊपर से गुजरने से मना करता है, तो उसे इसका अधिकार नहीं होगा, यह 'मबसूत' में है। यदि एक मकान दो व्यक्तियों में साझा हो, और उसमें एक बरामदा (सुफ़्फ़ा) हो और बरामदे के भीतर एक कमरा (बेत) हो, और उस कमरे का रास्ता बरामदे से होकर जाता हो और कमरे की छत का पानी बरामदे की छत पर बहता हो, फिर दोनों ने उस मकान का आपसी बँटवारा किया और एक के हिस्से में बरामदा और आँगन का कुछ हिस्सा आया, और दूसरे के हिस्से में कमरा और आँगन का कुछ हिस्सा आया, और बँटवारे में उन्होंने रास्ते और पानी के निकास का कोई उल्लेख नहीं किया। अब यदि कमरे वाला चाहे कि वह पहले की तरह बरामदे से होकर जाए और छत का पानी बरामदे की छत पर बहाए, तो यदि कमरे का मालिक अपने हिस्से में कहीं और रास्ता और पानी का निकास निकाल सकता है, तो बँटवारा जायज़ है। ऐसी स्थिति में कमरे के मालिक को बरामदे से गुजरने या छत का पानी बहाने का अधिकार नहीं होगा, चाहे बँटवारे में यह उल्लेख किया गया हो कि प्रत्येक का हिस्सा उसके अधिकारों सहित है या नहीं।

लेकिन यदि कमरे का मालिक दूसरी जगह रास्ता और पानी का निकास न निकाल सके और यदि दोनों ने बँटवारे में यह उल्लेख किया हो कि प्रत्येक का हिस्सा उसके अधिकारों (हुकूक) सहित है, तो रास्ता और पानी का निकास बँटवारे में शामिल माना जाएगा और विभाजन जायज़ होगा। यदि उन्होंने ऐसा उल्लेख नहीं किया है, तो रास्ता और पानी का निकास बँटवारे में शामिल नहीं होगा और बँटवारा फ़ासिद (अमान्य) होगा। यह सब शेख-उल-इस्लाम ने 'शरह किताब अल-किस्मा' में उल्लेख किया है। शेख ने अध्याय के अंत में यह भी बताया कि यदि दो भागीदारों ने साझा मकान का बँटवारा किया और सीमाएं तय होने के बाद पता चला कि एक के लिए कोई रास्ता ही नहीं है, तो यदि वह व्यक्ति अपने हिस्से में कहीं रास्ता निकाल सकता है, तो बँटवारा जायज़ है। और यदि वह रास्ता नहीं निकाल सकता, और बँटवारे के समय वह जानता था कि उसके पास रास्ता नहीं है, तब भी बँटवारा जायज़ है। लेकिन यदि वह नहीं जानता था, तो बँटवारा फ़ासिद है। इस मसले के निष्कर्ष के रूप में यह कहना चाहिए कि यदि अपने हिस्से में दूसरी जगह रास्ता नहीं निकाला जा सकता, तो बँटवारा तभी फ़ासिद

होगा जब अधिकारों का उल्लेख न किया गया हो। यदि अधिकारों का उल्लेख किया गया है, तो रास्ता बँटवारे में शामिल हो जाएगा। अतः दोनों मसलों पर विचार करने से यह परिणाम निकलता है कि यदि रास्ता दूसरी जगह नहीं निकाला जा सकता, और अधिकारों का उल्लेख किया गया है, तो रास्ता और पानी का मार्ग बँटवारे में शामिल होगा और बँटवारा फ़ासिद नहीं होगा। यदि अधिकारों का उल्लेख नहीं किया गया और रास्ता बँटवारे के अधीन नहीं आता, फिर भी यदि बँटवारे के समय व्यक्ति जानता था कि उसके पास रास्ता नहीं होगा, तो बँटवारा जायज़ होगा। यदि नहीं जानता था, तो फ़ासिद होगा। शेख-उल-इस्लाम ने 'बाब किस्मत अल-अरज़ीन वल-कुरा' में उल्लेख किया है कि अधिकारों और सुविधाओं के उल्लेख के बिना भी रास्ता और पानी की नाली बँटवारे में शामिल हो जाते हैं जब रास्ता और पानी का मार्ग किसी अन्य की भूमि पर हो और भागीदारों के हिस्से में न हो, और न ही वे लोग अपने हिस्सों में इन अधिकारों को बना सकते हों। यह इसलिए है ताकि बँटवारा फ़ासिद न हो जाए, यह 'ज़खीरा' में है।

यदि दो भागीदारों ने साझा संपत्ति का बँटवारा इस शर्त पर किया कि एक भागीदार दूसरे का एक घर एक हज़ार दिरहम में खरीदेगा, तो इस शर्त के साथ बँटवारा बातिल (शून्य) है, यह 'मबसूत' में है। कोई भी बँटवारा जो विभाजित चीज़ या उसके अलावा किसी अन्य चीज़ के उपहार (हिबा), दान (सदका) या बिक्री की शर्त पर हो, फ़ासिद है। इसी तरह बँटवारे की शर्त पर की गई कोई भी खरीद बातिल है। हालाँकि, इस शर्त पर बँटवारा जायज़ है कि उसे कोई ज्ञात चीज़ बढ़ा दी जाए, जैसे कीमत में वृद्धि करना।

---

1. शामिल यानी बरामदे से रास्ता और छत पर पानी बहाना उसका अधिकार हो गया क्योंकि उसने अपने हिस्से को अधिकारों के साथ स्वीकार किया है।
2. मसील अल-मा: पानी बहने की नाली।

ہونے کی صورت کے اس صورت میں بھی قاضی ان کے گواہوں کی سماعت کرے گا اور دار مذکور کو شرکاء میں تقسیم کر دے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر دو شریکوں نے مشترک راستہ تقسیم سے الگ کر دیا اور راستہ مذکور پر ظلہ (چھت) ہے کہ ایک شخص کا راستہ اس کے اوپر سے ہے اور یہ شخص استطاعت رکھتا ہے کہ اپنا دوسرا راستہ نکال لے پس دوسرے شخص نے اس کو ظلہ کے اوپر سے گزرنے سے منع کیا تو اس کو یہ اختیار نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو اور اس میں ایک صفہ ہو اور صفہ میں ایک بیت ہو اور اس بیت کا راستہ اس صفہ میں سے ہو اور کوٹھری کی چھت کا پانی صفہ کی چھت پر سے بہتا ہو پھر دونوں نے دار مذکور کو باہم تقسیم کیا اور ایک کے حصہ میں صفہ آیا اور دار کا کچھ صحن آیا اور دوسرے کے حصہ میں بیت اور دار کا کچھ صحن آیا اور دونوں نے تقسیم میں طریق اور پانی بہنے کی راہ کا کچھ ذکر نہیں کیا اور بیت والے نے چاہا کہ اپنے بیت میں بدستور سابق صفہ میں سے ہو کر جائے اور بیت کی چھت کا پرنالہ صفہ کی چھت پر بہا دے پس اگر صاحب بیت ایسا کر سکتا ہو کہ اپنا راستہ اور پانی کا پرنالہ اپنے حصہ میں کسی جگہ نکال لے تو تقسیم جائز ہے اور صاحب بیت کو یہ حق و اختیار نہ ہو گا کہ صفہ میں ہو کر گزرے اور اپنا پرنالہ صفہ پر بہائے خواہ دونوں نے قسمت میں یہ ذکر کیا ہو کہ ہر واحد کے واسطے اس کا حصہ مع اس کے حقوق کے ہے یا ذکر نہ کیا ہو اور اگر صاحب بیت ایسا نہ کر سکے کہ اپنا راستہ اور پانی کا راستہ دوسری جگہ نکال لے پس اگر دونوں نے تقسیم میں یہ ذکر کیا ہو کہ دونوں میں سے ہر ایک کے واسطے اس کا حصہ مع حقوق کے ہے تو راستہ و پانی کا پرنالہ تقسیم میں داخل ہو جائے گا اور قسمت جائز ہو گی اور اگر دونوں نے ایسا ذکر نہ کیا ہو تو راستہ و پانی بہنے کی راہ تقسیم میں

داخل نہ ہو گی اور تقسیم فاسد ہو گی اس سب کو شیخ الاسلام نے شرح کتاب القسمۃ میں ذکر فرمایا ہے اور شیخ نے آخر باب میں ذکر فرمایا کہ دو شریکوں نے دار مشترک باہم تقسیم کر لیا پھر جب حدود قائم ہو گئے تو ظاہر ہوا کہ ایک کے واسطے راستہ ہی نہیں ہے پس اگر وہ شخص اپنے حصہ میں کسی جگہ اپنا راستہ نکال سکتا ہے تو تقسیم جائز ہے اور اگر اپنے حصہ میں کسی جگہ اپنا راستہ نہیں نکال سکتا ہے پس اگر وقت قسمت کے جانتا ہو کہ اس کے واسطے راستہ نہیں ہے تو بھی تقسیم جائز ہے اور اگر نہ جانتا ہو تو تقسیم فاسد ہے اور مسئلہ حقہ نہ کے قیاس پر اس مسئلہ کے آخر باب میں یوں کہنا چاہئے کہ اگر اپنے حصہ میں کسی دوسری جگہ اپنا راستہ نہیں نکال سکتا ہے تو تقسیم جبھی فاسد ہو گی کہ جب حقوق کا ذکر نہ کیا ہو اور اگر حقوق کا ذکر کیا ہو تو راستہ تقسیم میں داخل ہو جائے گا پس دونوں مسئلوں پر نظر کرنے سے حاصل جواب یہ نکلتا ہے کہ اگر اپنے حصہ میں کسی جگہ راستہ نہیں نکال سکتا ہے پس اگر حقوق کا ذکر کیا ہو تو راستہ اور پانی کی راہ تقسیم میں داخل ہو جائے گی اور تقسیم فاسد نہ ہو گی اور اگر حقوق کا ذکر نہ کیا حتی کہ طریق و مسیل قسمت کی تحت میں داخل نہ ہو پس اگر وقت قسمت کے جانتا ہو کہ اس کے واسطے کوئی راستہ نہ ہو گا اور نہ پانی کی راہ ہو گی تو بھی قسمت جائز ہو گی اور اگر نہ جانتا ہو تو تقسیم فاسد ہو گی۔ شیخ الاسلام نے باب قسمۃ الارضین والقرٰی میں ذکر فرمایا کہ راستہ اور پانی بہنے کی موری بدون ذکر حقوق و مرافق کے تقسیم میں داخل ہو جاتے ہیں جب کہ راستہ و مسیل الماء غیر کی زمین ہو اور شریکوں کے حصہ میں نہ ہو اور نہ شریک لوگ اپنے حصوں میں ان حقوق کو ایجاد کر سکتے ہوں اور نہ داخل ہونا اس واسطے ہے کہ تقسیم فاسد نہ ہو جائے یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر دو شریکوں نے دار مشترک کو اس شرط سے تقسیم کیا کہ ایک شریک دوسرے کا ایک دار ہزار درہم کو خریدے تو اس شرط سے تقسیم باطل ہے یہ مبسوط میں ہے ہر تقسیم جو مقسوم یا

مقسوم کے سوائے دوسری چیز کے ہبہ کرنے یا صدقہ دینے یا بیچ کرنے کی شرط پر ہو فاسد ہے اسی طرح ہر خرید جو بشرط تقسیم ہو باطل ہے اور تقسیم بایں شرط کہ اس کو کوئی معلوم چیز بڑھا دے گا جائز ہے جیسے ثمن میں زیادہ کر۔

---

۱ داخل یعنی صفہ سے راستہ و چھت پر پانی بہانا اس کا حق ہو گیا کیونکہ اس نے مع حق کے اپنا حصہ منظور کیا ہے۔ ۲ مسیل الماء پانی بہنے کی موری۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 250 | Book of Partition (Kitab al-Qismat)**

...or if he adds something to the sold item. Ownership is established in the portion taken into possession through an irregular partition (Qismat Fasid), and the power of disposal (Tasarruf) becomes effective, just as the ruling for possession in an irregular purchase (Khareed-e-Fasid). This is mentioned in 'Al-Qunya'. If a house is jointly owned by two persons, there is no harm if one partner resides in the entire house. On this basis, it can be said that if both request a partition of ownership (Qismat-e-Milk), the judge (Qazi) can carry out such a partition. However, if they desire a partition for preservation and utilization (Qismat-e-Hifz-o-Intifa), the Qazi's intervention is not necessary; this is found in 'Al-Zakhira'.

If a house is joint between two persons and they partitioned it on the condition that one takes the entire land and the other takes the entire building without taking any land, there are three scenarios: First, if a condition was placed upon the one taking the building to demolish it, then the partition is valid. Second, if there was silence regarding the condition of demolishing or not demolishing and no condition was specified, the partition is also valid. Third, if both agreed on the condition that the building remains standing, then the partition is irregular (Fasid); this is in 'Al-Zahiriya'.

If, during partition, a wall falls into the portion of one partner while the beams (Dhanniyaan) of the other partner are resting upon it, and the owner of the wall wishes to remove those beams, he cannot do so. However, if both had agreed upon the condition of removing the beams beforehand, then he can do so, regardless of whether before the partition the beams belonged exclusively to one and the wall was joint, or the roof and beams along with the wall were joint, and subsequently, through partition, the wall fell to one's share while the roof and beams fell to the other's. This is in 'Al-Zakhira'. It is written in 'Al-Tajreed' that the same ruling applies to pillars, stairs, and columns (Ustuwanah) upon which beams are resting. Similarly, if a ventilator (Roshandan) belonging to the upper-story owner falls into the portion of the lower-story owner, the lower-story owner cannot block it. However, if both had stipulated a condition for it to be closed, then he may close it. This is in 'Tatar-Khaniya'.

If a field is joint among five heirs—one minor, two absent, and two present—and a buyer (Mushtari) purchases the share of one of the present heirs and requests the Qazi for partition against the other present partner, and informs the Qazi of the matter, the Qazi shall order the partition and appoint a representative (Wakil) for the

two absent heirs and the minor. This is because the aforementioned buyer stands in the place of the seller, and the seller had the right to demand partition from his partner; this is in 'Al-Zahiriya'.

Ibn Sama'ah wrote to Imam Muhammad that a group of people inherited a house, and some sold their shares to a stranger. Subsequently, this stranger buyer went missing, and the heirs requested partition and produced witnesses for the inheritance. Imam Muhammad replied that if two heirs are present in court, the Qazi shall partition it for them, whether the buyer is present or not, because the mentioned buyer holds the same status as the heir who sold the share to him.

It is written in 'Al-Asl' that if a village and its land are joint between two persons due to purchase, and then one dies leaving his share as inheritance for his heirs, and the heir produces witnesses for the inheritance and the original partnership and its state, but his father's partner is absent, the Qazi shall not partition the village until the partner appears. However, if the father's partner is present but some of the heirs are absent, the Qazi shall carry out the partition among them. This is because the presence of some heirs is treated like the presence of the deceased legator (Mooris) himself if he were alive and present, or like the presence of the remaining heirs. If the original partnership was due to inheritance—for instance, two men inherited a village from their father, then before the distribution, one died leaving his share to his heirs, and the heirs of this second deceased person are present while their uncle is absent and they...

! Note: There is no prohibition for a partner in matters of preservation and utilization (Hifz-o-Intifa), i.e., in protecting and benefiting from the property.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ४ | २५० | किताब अल-क़िस्मत**

...कर दे या मबी (बेची गई चीज़) में कुछ बढ़ा दे। और जो हिस्सा बज़रिये क़िस्मत फ़ासिद (अनियमित बंटवारे के माध्यम से) क़ब्ज़े में लिया गया हो, उसमें मिल्क (स्वामित्व) साबित हो जाती है और तसर्रुफ़ (उपभोग/अधिकार) नाफ़िज़ (प्रभावी) हो जाता है, जैसे ख़रीद-ए-फ़ासिद के मक़बूज़ा का हुक्म है। यह 'क़ुनिया' में है। अगर एक दार (मकान) दो आदमियों में मुश्तरक (साझा) हो, तो कुछ डर नहीं है कि एक शरीक पूरे दार में सकूनत (निवास) रखे, और इस बिना पर यों कहा जा सकता है कि अगर दोनों ने क़िस्मत-ए-मिल्क (स्वामित्व के बंटवारे) की दरख्वास्त की, तो क़ाज़ी ऐसी तक़्सीम कर सकता है। और अगर उन्होंने क़िस्मत-ए-हिफ़्ज़ व इन्तेफ़ा (रक्षण और उपयोग के बंटवारे) को चाहा, तो क़ाज़ी की कुछ ज़रूरत नहीं है; यह 'ज़ख़ीरा' में है।

अगर एक दार दो आदमियों में मुश्तरक हो और दोनों ने इस शर्त से तक़्सीम किया कि एक तो पूरी ज़मीन ले ले और दूसरा पूरी इमारत ले ले और ज़मीन में से कुछ न ले, तो इसकी तीन सूरतें हैं: अव्वल यह कि जिसके वास्ते इमारत लेने की शर्त की है, उसके ज़िम्मे यह शर्त लगाई कि अपनी इमारत को तोड़ ले, तो इस सूरत में तक़्सीम जायज़ है। और दूसरी यह कि इमारत तोड़ने या न तोड़ने की शर्त से सकूत (चुप्पी) किया और शर्त न लगाई, तो भी क़िस्म जायज़ है। और तीसरी यह कि दोनों ने इमारत छोड़ रखने की शर्त लगाई, तो तक़्सीम फ़ासिद है; यह 'ज़हीरिया' में है।

अगर तक़्सीम में एक दीवार एक शरीक के हिस्से में आई और उस पर दूसरे शरीक की धनियां (शहतीर/कड़ियां) रखी हैं और उसने चाहा कि दीवार से धनियां दूर कर दे, तो ऐसा नहीं कर सकता है। लेकिन अगर पहले ही दोनों ने धनियां दूर करने की शर्त कर ली है, तो ऐसा कर सकता है; ख़्वाह तक़्सीम से पहले धनियां फ़क़त ख़ास एक की हों और दीवार दोनों में मुश्तरक हो, या छत व धनियां मय (सहित) दीवार के दोनों में मुश्तरक हों, फिर तक़्सीम में दीवार एक के हिस्से में आती और छत व धनियां दूसरे के हिस्से में आएं। यह 'ज़ख़ीरा' में है। और 'तजरीद' में लिखा है कि इसी तरह पाये का और सीढ़ी का और उस्तुआना (पीलिया/खंभा) जिस पर धनियां रखी हों, यही हुक्म है। इसी तरह अगर बाला-ख़ाना (ऊपरी मंज़िल) वाले के हिस्से में एक रौशनदान आया जो सुफ़ली (निचली मंज़िल) वाले के हिस्से में है, तो साहब-ए-सुफ़्ल उसको मसदूद (बंद) नहीं कर सकता है। लेकिन अगर दोनों ने इसके बंद कर लेने की शर्त कर ली हो, तो बंद कर सकता है। यह 'तातारख़ानिया' में है।

अगर एक खेत पांच वारिसों में, जिनमें एक नाबालिग और दो ग़ायब और दो हाज़िर हैं, मुश्तरक हो, पस दोनों हाज़िरीन में से एक का हिस्सा एक मुश्तरी (खरीदार) ने ख़रीदा और दूसरे शरीक-ए-हाज़िर से क़ाज़ी के पास इसकी तक़्सीम कर देने का मुतालबा किया और क़ाज़ी को इस मामले से आगाह कर दिया, तो क़ाज़ी उस शरीक को हुक्म फ़रमाएगा कि तक़्सीम कर दे और हर दो ग़ायब और सग़ीर (नाबालिग) की तरफ़ से वकील कर देगा। और यह इस वास्ते कि मुश्तरी-ए-मज़कूर बाये (विक्रेता) का क़ायम-मक़ाम (प्रतिनिधि) हुआ और बाये को यह इख़्तियार हासिल था कि अपने शरीक से क़िस्मत का मुतालबा करे; यह 'ज़हीरिया' में है।

इब्न समाआ ने इमाम मुहम्मद को लिखा कि एक क़ौम ने एक दार मीरास (विरासत) में पाया और बाज़ ने अपना हिस्सा किसी अजनबी के हाथ फ़रोख्त किया। फिर यह मुश्तरी अजनबी ग़ायब हो गया और वारिसों ने तक़्सीम की दरख्वास्त की और मीरास के गवाह क़ायम कर दिए, तो इमाम मुहम्मद ने जवाब में फ़रमाया कि अगर दो वारिस मुक़दमे में हाज़िर आए तो क़ाज़ी उसको तक़्सीम कर देगा, ख़्वाह मुश्तरी हाज़िर हो या न हो, क्योंकि मुश्तरी-ए-मज़कूर ब-मंज़ला (के समान) उस वारिस के हुआ जिसने उसके हाथ फ़रोख्त किया है।

असल में लिखा है कि अगर एक गांव और उसकी ज़मीन दो शख्सों में ब-सबब ख़रीदने के मुश्तरक हो, फिर दोनों में से एक मर गया और अपना हिस्सा अपने वारिसों के वास्ते मीरास छोड़ा। पस वारिस ने मीरास पाने और असल शिरकत व हालत के गवाह क़ायम किए, मगर उनके बाप का शरीक ग़ायब है, तो जब तक वह हाज़िर न हो जाए तब तक क़ाज़ी उस गांव को तक़्सीम न करेगा। और अगर उनके बाप का शरीक हाज़िर आया मगर बाज़ वारिस ग़ायब हैं, तो क़ाज़ी उनमें तक़्सीम कर देगा, क्योंकि बाज़ वारिस का हाज़िर होना ऐसा है जैसे मौरिस (मृतक वसीयतकर्ता) मुर्दा अगर ज़िंदा और खुद हाज़िर होता या जैसे बाक़ी वारिस हाज़िर हों। और अगर असली शिरकत ब-वजह मीरास के हो, मसलन दो आदमियों ने अपने बाप से एक गांव मीरास पाया, फिर क़ब्ल बटवारा (बंटवारे से पहले) होने के एक मर गया और अपना हिस्सा वारिसों में मीरास छोड़ा, फिर इस मय्यत-ए-सानी के वारिस हाज़िर हुए हालांकि उनका चाचा ग़ायब है और उन्होंने...

! पस हिफ़्ज़ व इन्तेफ़ा यानी हिफ़ाज़त करने और नफ़ा उठाने में शरीक को ममानअत (मनाही) नहीं है।

---

کردے یا مبیع میں کچھ بڑھا دے اور جو حصہ بذریعہ قسمت فاسد قبضہ میں لیا گیا ہو اس میں ملک ثابت ہو جاتی ہے اور تصرف نافذ ہو جاتا ہے جیسے خرید فاسد کے مقبوضہ کا حکم ہے یہ قنیہ میں ہے اگر ایک دار دو آدمیوں میں مشترک ہو تو کچھ ڈر نہیں ہے کہ ایک شریک پورے دار میں سکونت رکھے اور اس بنا پر یوں کہا جاسکتا ہے کہ اگر دونوں نے قسمت ملک کی درخواست کی تو قاضی ایسی تقسیم کر سکتا ہے اور اگر انہوں نے قسمت حفظ و انتفاع کو چاہا تو قاضی کی کچھ ضرورت نہیں ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر ایک دار دو آدمیوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس شرط سے تقسیم کیا کہ ایک تو پوری زمین لے لے اور دوسرا پوری عمارت لے لے زمین میں سے کچھ نہ لے تو اس کی تین صورتیں ہیں اول یہ کہ جس کے واسطے عمارت لینے کی شرط کی ہے اس کے ذمہ یہ شرط لگائی کہ اپنی عمارت کو توڑ لے تو اس صورت میں تقسیم جائز ہے اور دوسری یہ کہ عمارت توڑنے یا نہ توڑنے کی شرط سے سکوت کیا اور شرط نہ لگائی تو بھی قسم جائز ہے اور تیسری یہ کہ دونوں نے عمارت چھوڑ رکھنے کی شرط لگائی تو تقسیم فاسد ہے یہ ظہریہ میں ہے۔ اگر تقسیم میں ایک دیوار ایک شریک کے حصہ میں آئی اور اس پر دوسرے شریک کی دھنیاں رکھی ہیں اور اس نے چاہا کہ دیوار سے دھنیاں دور کر دے تو ایسا نہیں کر سکتا ہے لیکن اگر تھی میں دونوں نے دھنیاں دور کرنے کی شرط کرلی ہے تو ایسا کر سکتا ہے خواہ تقسیم سے پہلے دھنیاں فقط خاصہ ایک کی ہوں اور دیوار دونوں میں مشترک ہو یا چھت و دھنیاں مع دیوار کے دونوں میں مشترک ہوں پھر تقسیم میں دیوار ایک کے حصہ میں آتی اور چھت و دھنیاں دوسرے کے حصہ میں آئیں یہ ذخیرہ میں ہے اور تجرید میں لکھا ہے کہ اسی طرح پایہ کا اور سیڑھی کا اور استوانہ (پیلیای) جس پر دھنیاں رکھی ہوں یہی حکم ہے اسی طرح اگر بالا

خانہ والے کے حصہ میں ایک روشن دان آیا جو سفلی والے کے حصہ میں ہے تو صاحب سفل اس کو مسدود نہیں کر سکتا ہے لیکن اگر دونوں نے اس کے بند کر لینے کی شرط کر لی ہو تو بند کر سکتا ہے۔ یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر ایک کھیت پانچ وارثوں میں جن میں ایک نابالغ اور دو غائب اور دو حاضر ہیں مشترک ہو پس دونوں حاضرین میں سے ایک کا حصہ ایک مشتری نے خریدا اور دوسرے شریک حاضر سے قاضی کے پاس اس کی تقسیم کر دینے کا مطالبہ کیا اور قاضی کو اس معاملہ سے آگاہ کر دیا تو قاضی اس شریک کو حکم فرمائے گا کہ تقسیم کر دے اور ہر دو غائب اور صغیر کی طرف سے وکیل کر دے گا اور یہ اس واسطے کہ مشتری مذکور بائع کا قائم مقام ہوا اور بائع کو یہ اختیار حاصل تھا کہ اپنے شریک سے قسمت کا مطالبہ کرے یہ ظہریہ میں ہے۔ ابن سماعہ نے امام محمد کو لکھا کہ ایک قوم نے ایک دار میراث پایا اور بعض نے اپنا حصہ کسی اجنبی کے ہاتھ فروخت کیا پھر یہ مشتری اجنبی غائب ہو گیا اور وارثوں نے تقسیم کی درخواست کی اور میراث کے گواہ قائم کر دیئے تو امام محمد نے جواب میں فرمایا کہ اگر دو وارث مقدمہ میں حاضر آئے تو قاضی اس کو تقسیم کر دے گا خواہ مشتری حاضر ہو یا نہ ہو کیونکہ مشتری مذکور بمنزلہ اس وارث کے ہوا جس نے اس کے ہاتھ فروخت کیا ہے۔ اصل میں لکھا ہے کہ اگر ایک گاؤں اور اس کی زمین دو شخصوں میں بسبب خریدنے کے مشترک ہو پھر دونوں میں سے ایک مر گیا اور اپنا حصہ اپنے وارثوں کے واسطے میراث چھوڑا پس وارث نے میراث پانے اور اصل شرکت و حالت کے گواہ قائم کئے مگر ان کے باپ کا شریک غائب ہے تو جب تک وہ حاضر نہ ہو جائے تب تک قاضی اس گاؤں کو تقسیم نہ کرے گا اور اگر ان کے باپ کا شریک حاضر آیا مگر بعضے وارث غائب ہیں تو قاضی ان میں تقسیم کر دے گا کیونکہ بعض وارث کا حاضر ہونا ایسا ہے جیسے مورث مردہ اگر زندہ اور خود حاضر ہوتا یا جیسے باقی وارث حاضر ہوں اور اگر اصلی شرکت بوجہ میراث کے ہو مثلاً دو آدمیوں نے اپنے باپ سے ایک گاؤں

میراث پایا پھر قبل بٹوارہ ہونے کے ایک مر گیا اور اپنا حصہ وارثوں میں میراث چھوڑا پھر اس میت ثانی کے وارث حاضر ہوئے حالانکہ ان کا چچا غائب ہے اور انہوں نے

! پس حفظ و انتفاع یعنی حفاظت کرنے نفع اٹھانے میں شریک کو ممانعت نہیں ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 251 | Kitab al-Qisma (Book of Division)**

...having appeared and presented witnesses to receiving inheritance from his father and his father receiving inheritance from his grandfather, the Qazi (judge) shall divide [the property] among them and set aside the uncle's share. Similarly, if the uncle is present but some of the heirs are absent, the Qazi shall still divide it among them. This is mentioned in *Al-Muhit*. In *Al-Nawazil*, it is stated that Sheikh Abu Bakr was asked about a village shared among its inhabitants, where a quarter is an endowment (Waqf), a quarter is for the 'Hajar' marketplace, and the rest is common land (Milk-e-Shaye). They wished to establish a graveyard there and sought the division of a small portion of the land to create a campsite and a graveyard. The Sheikh said that if the entire village were divided according to each party's share, the division would be valid. However, if they wished to divide only a specific spot within the village, the division is not valid. This is in *Al-Tatarkhaniya*. In *Al-Multaqa*, it is narrated from Imam Abu Yusuf that if a person buys a small portion of inheritance from one of the heirs, and both the seller and the buyer appear and request a division, the Qazi shall not divide between them until another heir besides the seller is also present. If the buyer purchased the seller's share and then the seller inherited or purchased more of the same house, the seller would not be an opponent (Khasm) to the buyer in the matter of the first share of the house until the other heir is also present. If the buyer (who bought from an heir) and another heir besides the seller are present, but the selling heir is absent, and the buyer presents witnesses to his purchase, possession, and the number of heirs, then if the buyer is found to be in possession of the house and living there with the heirs, and then he requests a division with the heir other than the seller and presents witnesses as described, the Qazi shall divide the house. Similarly, if heirs other than the buyer request a division, the Qazi shall divide the house upon their request and leave the absent person's share in the buyer's possession but shall not rule on the validity of the sale. If the buyer is not found to be in possession of the house, the Qazi shall separate the absent person's share and not give it to the buyer. If only the buyer requests a division and the heirs deny it, I (the Qazi) will not divide because I do not know if he is the owner or not, and I will not accept witnesses to his purchase of the share in the seller's absence. Also in *Al-Multaqa*, it is narrated from Imam Abu Yusuf that a house is shared between two people, and one sells his undivided shared portion to someone, then the buyer tells the seller to divide and take possession of his share from the other partner; if they perform the division (Muqasama), it is not valid. If a

house is shared between two people and they agree to a division on the condition that one takes the house and the other takes half a house, it is valid even if the house is of higher value than the half-house. This is in *Al-Muhit*. If two people agree on a settlement (Sulh) during a division on the condition that one takes a specific house and the other takes a room (a specific floor) in another house, or each takes a certain known portion from another house, or one takes this house and the other takes a slave or similar items of different kinds, such a settlement is valid. This is in *Al-Mabsut*.

If two houses are shared between two people such that one house is a hundred yards and the other is a hundred yards or more, and they agree on a settlement that one partner takes all the yards (total area) of this house and the other takes his share of the other house, then according to Imam Azam, it is not valid. This is in *Al-Muhit*. If inheritance is shared between two people in one house and shared in another house...

---

**Milk-e-Shaye means shared by everyone.** (Footnote)

उपस्थित होकर अपने पिता से विरासत पाने और अपने पिता के अपने दादा से विरासत पाने के गवाह पेश किए, तो काज़ी उनके बीच बंटवारा कर देगा और उनके चाचा का हिस्सा अलग कर देगा। इसी तरह यदि उनका चाचा उपस्थित हो लेकिन कुछ वारिस अनुपस्थित हों, तो भी काज़ी उनके बीच बंटवारा कर देगा। यह 'मुहीत' में है। 'नवाज़िल' में है कि शेख अबू बकर से पूछा गया कि एक गाँव उसके निवासियों के बीच साझा है, जिसमें से एक चौथाई वक्फ है और एक चौथाई पर खंजर का व्यापार (हट्ट खंजर) है और बाकी ज़मीन लोगों की साझी संपत्ति (मल्केशाय) है। उन्होंने चाहा कि उसमें से एक कब्रिस्तान बना लें, इसलिए थोड़ी ज़मीन के बंटवारे की मांग की ताकि वहां पड़ाव और कब्रिस्तान बनाया जा सके। तो शेख ने फरमाया कि यदि पूरा गाँव हर पक्ष के हिस्से के अनुसार बंटवा दिया जाए तो बंटवारा जायज़ है, और यदि इन लोगों ने चाहा कि इस गाँव में से कोई खास जगह बांट लें, तो बंटवारा जायज़ नहीं है। यह 'तातारखानीया' में है। 'मुल्तका' में इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत है कि यदि वारिसों में से किसी वारिस से एक व्यक्ति ने उसका कुछ हिस्सा खरीद लिया, फिर दोनों यानी विक्रेता और खरीदार उपस्थित हुए और दोनों ने बंटवारे की प्रार्थना की, तो जब तक विक्रेता के अलावा कोई दूसरा वारिस भी उपस्थित न हो, काज़ी उन दोनों के बीच बंटवारा नहीं करेगा। और यदि खरीदार ने विक्रेता से उसका हिस्सा खरीद लिया, फिर विक्रेता ने उस घर (दार) में से कुछ और विरासत में पाया या खरीद लिया, तो विक्रेता उस घर के पहले हिस्से के मामले में खरीदार का विरोधी (खस्म) नहीं होगा जब तक कि दूसरा वारिस भी उपस्थित न हो जाए। और यदि खरीदार, जिसने वारिस से खरीदा है, और विक्रेता के अलावा दूसरा वारिस दोनों उपस्थित हों और विक्रेता वारिस गायब हो जाए, और खरीदार ने अपने खरीदने, कब्ज़ा करने और वारिसों की संख्या के गवाह पेश कर दिए, तो यदि खरीदार का घर पर कब्ज़ा पाया जाए और वह वारिसों के साथ उसमें रहता हो, फिर उसने विक्रेता के अलावा दूसरे वारिस के साथ बंटवारे की मांग की और जैसे हमने बयान किया है वैसे गवाह पेश किए, तो काज़ी उस घर को बांट देगा। इसी तरह यदि खरीदार के अलावा दूसरे वारिसों ने बंटवारे की प्रार्थना की, तो काज़ी उनकी प्रार्थना पर घर बांट देगा और अनुपस्थित व्यक्ति का हिस्सा खरीदार के कब्ज़े में रहने देगा, लेकिन बिक्री के वास्तविक होने का आदेश नहीं देगा। और यदि खरीदार का घर पर कब्ज़ा न पाया गया हो, तो वह अनुपस्थित व्यक्ति का हिस्सा अलग कर देगा और खरीदार को नहीं देगा। यदि केवल खरीदार ने बंटवारे की प्रार्थना की और वारिसों ने इनकार किया, तो मैं (काज़ी) बंटवारा नहीं करूँगा क्योंकि मैं नहीं जानता कि वह मालिक है या नहीं, और

विक्रेता की अनुपस्थिति में उसके हिस्सा खरीदने के गवाहों को स्वीकार नहीं करूँगा। साथ ही 'मुल्तका' में इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत है कि एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा है, फिर एक ने अपना साझा अविभाजित हिस्सा किसी व्यक्ति को बेच दिया, फिर खरीदार ने विक्रेता को आदेश दिया कि दूसरे साझीदार से अपना हिस्सा बांट कर कब्ज़ा कर ले, तो उसने बंटवारा (मुकासमा) किया तो वह जायज़ नहीं है। और यदि एक घर दो व्यक्तियों में साझा हो और दोनों ने इस शर्त पर बंटवारा किया कि दोनों में से एक व्यक्ति पूरे घर को ले ले और दूसरा आधे घर को, तो यह जायज़ है, भले ही पूरा घर आधे घर की तुलना में मूल्य में अधिक हो। यह 'मुहीत' में है। यदि दो व्यक्तियों ने बंटवारे में इस शर्त पर आपस में सुलह की कि दोनों में से एक उस निश्चित घर को ले ले और दूसरा दूसरे घर में से एक कमरा (निश्चित मंजिल) ले ले, या दोनों में से प्रत्येक किसी दूसरे घर में से कुछ निश्चित हिस्सा ले ले, या दोनों में से एक इस घर को ले ले और दूसरा एक गुलाम ले ले या उसके समान और अलग-अलग प्रकार की चीज़ों पर आपस में सुलह की, तो ऐसी सुलह जायज़ है। यह 'मबसूत' में है।

अगर दो व्यक्तियों के बीच दो घर इस तरह साझा हों कि एक घर में सौ गज़ और दूसरे में सौ गज़ या उससे अधिक हों, फिर दोनों ने इस समझौते पर सुलह की कि एक साझीदार इस घर के पूरे गज़ यानी कुल क्षेत्रफल को ले ले और दूसरा दूसरे घर का अपना हिस्सा ले ले, तो इमाम आज़म के अनुसार यह जायज़ नहीं है। यह 'मुहीत' में है। यदि दो व्यक्तियों के बीच एक घर में विरासत साझी हो और दूसरे घर में भी विरासत साझी हो...

---

**मल्केशाय यानी सभी में साझा।** (पाद-टिप्पणी)

حاضر ہو کر اپنے باپ سے میراث پانے اور اپنے باپ کے اپنے دادا سے میراث پانے کے گواہ قائم کر دیے تو قاضی ان میں تقسیم کر دے گا اور ان کے چچا کا حصہ الگ کر دے گا اس طرح اگر ان کا چچا حاضر آیا مگر بعض وارثوں میں سے غائب ہیں تو بھی قاضی ان میں تقسیم کر دے گا یہ محیط میں ہے۔ نواز ل میں ہے کہ شیخ ابوبکر سے دریافت کیا گیا کہ ایک گاؤں اسی کے رہنے والوں میں مشترک ہے جس میں سے چوتھائی وقف ہے اور چوتھائی پر ہٹ خنجر ہے اور آدمی زمین ملک شائع ہے پس انہوں نے چاہا کہ اس میں سے مقبرہ بنا دیں لہٰذا تھوڑی زمین کی تقسیم چاہی تاکہ اس میں فرود گاہ (پڑاؤ) و مقبرہ بنا دیں تو شیخ نے فرمایا کہ اگر پورا گاؤں ہر فریق کے حصہ کے موافق تقسیم کرا دیا گیا تو قسمت جائز ہے اور اگر ان لوگوں نے چاہا کہ اس گاؤں میں سے کوئی جگہ تقسیم کر لیں تو بٹوارہ نہیں جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ملتقی میں امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ اگر وارثوں میں سے کسی وارث سے ایک شخص نے اس کا تھوڑا حصہ خرید لیا پھر دونوں یعنی بائع و مشتری حاضر ہوئے اور دونوں نے تقسیم کی درخواست کی تو جب تک بائع کے سوائے کوئی دوسرا وارث بھی حاضر نہ ہو تب تک قاضی دونوں میں تقسیم نہ کرے گا اور اگر مشتری نے بائع مذکور سے اس کا حصہ خرید لیا پھر بائع مذکور نے اس دار میں سے کچھ اور میراث پایا یا خرید لیا تو بائع مذکور مشتری مذکور کا اس دار کے حصہ اول کے مقدمہ میں خصم نہ ہو گا تا وقتیکہ دوسرا وارث بھی حاضر نہ ہو اور اگر مشتری مذکور جس نے وارث سے خریدا ہے اور سوائے بائع کے دوسرا وارث دونوں حاضر ہوئے اور وارث بائع غائب ہو گیا اور مشتری نے اپنے خریدنے اور قبضہ کرنے اور وار دار و تعداد وارثان کے گواہ قائم کیے پس اگر مشتری نے دار پر قبضہ پایا اور وارثوں کے ساتھ اس میں رہتا ہو پھر اس نے اس

کے ساتھ سوائے بائع کے دوسرے وارث نے تقسیم طلب کی اور جس طرح ہم نے بیان کیا ہے گواہ قائم کئے تو قاضی دار مذکور کو تقسیم کر دے گا اسی طرح اگر سوائے مشتری کے دوسرے وارثوں نے تقسیم کی درخواست کی تو قاضی ان کی درخواست پر دار مذکور کو تقسیم کر دے گا اور غائب کا حصہ مشتری کے قبضہ میں رکھے گا مگر خرید واقع ہونے کا حکم نہ دے گا اور اگر مشتری نے دار پر قبضہ نہ پایا ہو تو غائب کا حصہ جدا کرے گا اور مشتری کو نہ دے گا۔ اگر فقط مشتری نے تقسیم کی درخواست کی اور وارثوں نے انکار کیا تو میں تقسیم نہ کروں گا کیونکہ میں نہیں جانتا ہوں کہ وہ مالک ہے یا نہیں ہے اور بائع کی غیبت میں میں اس کے گواہ اس کے حصہ خریدنے کو قبول نہ کروں گا۔ نیز ملتقی میں امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہے پھر ایک نے اپنا حصہ مشترک غیر مقسوم کسی شخص کے ہاتھ فروخت کیا پھر مشتری نے بائع کو حکم دیا کہ دوسرے شریک سے اپنا حصہ بانٹ کر کے قبضہ کر لے پس اس نے مقاسمہ کیا تو جائز نہیں ہے اور اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس شرط پر حصہ بانٹ کیا کہ دونوں میں سے ایک شخص وار کو لے لے اور دوسرا نصف دار لے تو جائز ہے اگر چہ دار بہ نسبت نصف دار کے ازراہ قیمت افضل ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر دو آدمیوں نے تقسیم میں اس شرط سے باہم صلح ٹھہرائی کہ دونوں میں سے ایک اس معین دار کو لے لے اور دوسرا دوسرے دار میں سے ایک منزل (معین ۱۲) لے لے یا دونوں میں سے ہر ایک کسی دوسرے دار میں سے کچھ حصہ معلوم لے لے یا دونوں میں سے ایک اس دار کو لے لے اور دوسرا ایک غلام لے لے یا اس کے مانند اور اجناس مختلفہ پر باہم صلح کی تو ایسی صلح جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر دو شخصوں میں دو دار اس طرح مشترک ہوں کہ ایک دار میں سو گز اور دوسرے میں سو گز یا زیادہ ہوں پھر دونوں نے اس قرارداد پر صلح کی کہ ایک شریک اس دار کے تمام گز یعنی مقدار

مساحت لے لے اور دوسرا دوسرے دار کا حصہ پیدائشی لے لے تو امام اعظم کے نزدیک جائز نہیں ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر دو آدمیوں میں ایک دار میں میراث مشترک ہو اور ایک دوسرے دار میں میراث مشترک۔

---

**ملک شائع یعنی سب میں مشترک ہے۔** (Footnote)

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | 252 | Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

...then if both parties reconcile on the condition that one partner takes the entire share within one house and the other partner takes the entire share within the other house, but adds a specified amount of Dirhams to it; if both have specified the shares (Saham)—as in how many shares are in each house—then it is permissible. If they have not specified, it is not permissible. However, if instead of shares, they specified the area in 'Gaz-e-Mukassar'^1 (square yards), then according to the opinions of Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA), it is permissible, but according to Imam-e-Azam (Abu Hanifa RA), it is not. If two houses are jointly owned by three people, one being large and the other small, and they all agree on a partition where one person takes the smaller house^2 and the other takes the larger house, but the one who took the larger house pays a specified amount of Dirhams to the third person who received nothing, this is permissible. Similarly, if they reconcile on the basis that two people take the larger house and the third takes the smaller house, it is also permissible. Likewise, if one house is shared among three people and they agree that two people take it in such a way that each takes a specific portion and both pay a specified amount of Dirhams to the third person, it is also permissible. Similarly, if they stipulated that one of the two recipients must pay two-thirds of those specified Dirhams to the non-recipient so that he enters his dwelling, this is also permissible, as this person would be the purchaser of two-thirds of that third share, and the other would be the purchaser of one-third. Similarly, if a house is shared between two people and they partition it such that each takes half and one partner gives a specific slave to the other, provided the other pays him a hundred Dirhams, it is also permissible. Likewise, if they partition a joint property on the condition that one partner takes the building and the other takes the collapsed ruin, provided the one taking the building pays a specified amount of Dirhams to the other, it is also permissible. Similarly, if they partition it such that one partner takes the upper story (Bala-khana) and the other takes the lower floor, with the condition that one pays the other a specified amount of Dirhams, it is permissible; this is mentioned in *Al-Mabsoot*. If two people partition clothes on the condition that whoever receives this cloth returns one Dirham and whoever receives that cloth returns two Dirhams, it is permissible; this is in *Muheet-e-Sarakhsi*. If a village and land are shared among several people and they partition the land by measurement on the condition that whoever receives a portion containing trees or a house must

pay Dirhams equivalent to their value, this is permissible, and this ruling is based on *Istihsan* (juristic preference); this is in *Al-Mabsoot*.

If two partners partition joint property such that one partner takes all the cash (Dirhams and Dinars) and the other takes all the goods, shop inventory, and all outstanding debts owed by people, on the condition that if any debt is lost/ unrecovered, the partner will return half of it to him, such a partition is *fasid* (voidable/corrupt) because this partition contains the essence of a sale (*bay'*), and a sale is not permissible in this manner. Therefore, it is obligatory for each of them to return half of what they took to their partner; this is in *Muheet-e-Sarakhsi*. If a house is shared between two people and they partition it on the condition that one partner increases his share^3 by paying a specified amount of Dirhams to the other, it is permissible. Furthermore, it should be clear that whatever is eligible to serve as consideration (*'awad*)^4 in a contract of sale can also be stipulated as a condition in a contract of partition by mutual consent. Therefore, cash—namely Dirhams and Dinars etc.—whether agreed to be paid immediately or as a debt, and items measured by volume (*kayli*) or weight (*wazni*), whether...

1. *Mukassar*: A yard (Gaz) that represents the product of length and width, i.e., the area in square yards.
2. From this point to that point for person X, and the remainder for person Y.
3. The portion he receives.
4. In the case of it being a sale, paying this consideration would be mandatory.

फिर यदि दोनों ने इस शर्त पर समझौता (सुलह) किया कि एक साझेदार वह पूरा हिस्सा ले ले जो इस घर (दार) में है और दूसरा साझेदार वह पूरा हिस्सा ले ले जो दूसरे घर में है, लेकिन उस पर कुछ निश्चित दिरहम (मुद्रा) बढ़ा दिए जाएँ तो यदि दोनों ने हिस्सों (सहाम) का विवरण दे दिया हो कि प्रत्येक घर में से कितने हिस्से हैं, तो यह जायज़ है। और यदि विवरण न दिया हो, तो जायज़ नहीं है। और यदि हिस्सों के बजाय पैमाइश के'गज़-ए-मुकस्सर'^1 बता दिए हों, तो इमाम अबू यूसुफ रह. और इमाम मुहम्मद रह. के कथन के अनुसार जायज़ है, और इमाम आज़म रह. के कथन के अनुसार जायज़ नहीं है। दो घर तीन आदमियों में साझा हैं, जिनमें से एक बड़ा है और दूसरा छोटा। फिर सबने आपस में इस समझौते से बँटवारा किया कि एक व्यक्ति छोटा घर ले ले^2 और दूसरा बड़ा घर ले ले, लेकिन जिसने बड़ा घर लिया है वह कुछ निश्चित दिरहम तीसरे को दे दे जिसने कुछ नहीं लिया है, तो यह जायज़ है। इसी तरह यदि इस समझौते पर सुलह की कि बड़े घर को दो आदमी ले लें और तीसरा छोटे घर को ले ले, तो भी जायज़ है। इसी तरह यदि एक घर उन तीनों में साझा हो और सबने इस शर्त पर सुलह की कि उस घर को दो आदमी इस तरह ले लें कि प्रत्येक उन दोनों में से उसमें से निश्चित टुकड़े ले ले और दोनों तीसरे को कुछ निश्चित दिरहम दे दें, तो भी जायज़ है। इसी तरह यदि सबने दोनों लेने वालों में से एक के ज़िम्मे यह शर्त लगाई कि वह न लेने वाले को उन निश्चित दिरहमों का दो-तिहाई दे ताकि वह उसके घर में दाखिल हो, तो यह भी जायज़ है क्योंकि यह व्यक्ति उस तीसरे हिस्से का दो-तिहाई खरीदने वाला होगा और दूसरा उसके हिस्से का एक-तिहाई खरीदने वाला होगा। इसी तरह यदि एक घर दो व्यक्तियों में साझा हो और दोनों ने इसे इस समझौते से आपस में बाँट लिया कि प्रत्येक उसमें से आधा ले ले और एक साझेदार दूसरे को एक निश्चित गुलाम दे दे, बशर्ते कि दूसरा उसे सौ दिरहम दे दे, तो भी जायज़ है। इसी तरह यदि दोनों ने साझा घर को इस शर्त पर बाँटा कि एक साझेदार इमारत ले ले और दूसरा साझेदार गिरा हुआ खंडहर ले ले, बशर्ते कि इमारत लेने वाला दूसरे को कुछ निश्चित दिरहम दे, तो भी जायज़ है। इसी तरह यदि इस शर्त पर बँटवारा किया कि एक साझेदार ऊपरी मंज़िल ले और दूसरा साझेदार नीचे का मकान ले और आपस में शर्त की कि कोई साझेदार दूसरे को कुछ निश्चित दिरहम दे, तो भी जायज़ है; यह 'मबसूत' में है। यदि दोनों ने कपड़े इस शर्त पर बाँटे कि जिसके हिस्से में यह कपड़ा आए वह एक दिरहम वापस करे और जिसके हिस्से में यह दूसरा कपड़ा आए वह दो दिरहम वापस करे, तो जायज़ है; यह 'मुहीत-ए-सरख़्सी' में है। यदि गाँव और ज़मीन कुछ लोगों में साझा हो और उन्होंने ज़मीन को पैमाइश से इस शर्त पर बाँटा कि

जिसके हिस्से की ज़मीन में पेड़ या घर आएँगे, उस पर पेड़ और घर की कीमत के दिरहम अनिवार्य होंगे, तो यह जायज़ है और यह हुक्म 'इस्तिहसान' (न्यायिक वरीयता) है; यह 'मबसूत' में है।

दो साझेदारों ने साझे का माल आपस में इस समझौते से बाँटा कि एक साझेदार नकद के रूप में सारे दिरहम और दीनार ले ले और दूसरा दुकान का सारा सामान, माल और लोगों पर बकाया सारा कर्ज़ ले ले, इस शर्त पर कि यदि कर्ज़ में से कुछ डूब गया तो उसका आधा उसका साझेदार उसे वापस करेगा, तो ऐसा बँटवारा 'फ़ासिद' (दोषपूर्ण/अवैध) है क्योंकि इस बँटवारे में 'बैअ' (बिक्री) के अर्थ निहित हैं और बिक्री इस तरह जायज़ नहीं है। अतः दोनों में से प्रत्येक पर यह अनिवार्य है कि जो कुछ उसने लिया है उसका आधा अपने साझेदार को वापस दे; यह 'मुहीत-ए-सरख़्सी' में है। यदि दो व्यक्तियों में एक घर साझा हो और उन्होंने उसे आपस में इस शर्त पर बाँट लिया कि एक साझेदार दूसरे को उसके हिस्से^3 पर कुछ निश्चित दिरहम बढ़ाकर दे, तो यह जायज़ है। फिर यह स्पष्ट हो कि जो चीज़ बिक्री के अनुबंध (अक़्द-ए-बैअ) में बदले (एवज़)^4 के रूप में मान्य होने की योग्यता रखती है, ऐसी चीज़ की शर्त बँटवारे के अनुबंध में आपसी सहमति से लगाना जायज़ है। अतः नकदी यानी दिरहम और दीनार आदि, चाहे तुरंत देना तय हुआ हो या उधार हो, और नापी जाने वाली (कैली) और तौली जाने वाली (वज़नी) चीज़ें, चाहे...

1. मुकस्सर: वह गज़ जो लंबाई और चौड़ाई की पैमाइश का गुणनफल (क्षेत्रफल) वर्ग गज़ में हो।
2. यहाँ से वहाँ तक अमुक व्यक्ति और शेष भाग दूसरा व्यक्ति ले ले।
3. जो हिस्सा वह लेता है।
4. बिक्री की स्थिति में यह बदला देना अनिवार्य हो।

---

ہو پھر دونوں نے اس شرط سے صلح کی کہ ایک شریک وہ سب حصہ جو اس دار میں ہے لے لے اور دوسرا شریک وہ سب حصہ جو دوسرے دار میں ہے لے لے مگر اس پر کچھ دراہم معلومہ زیادہ کئے پس اگر دونوں نے سہام بیان کر دیے ہوں کہ ہر دار میں سے کتنے سہام ہیں تو جائز ہے اور اگر نہ بیان کیے ہوں تو جائز نہیں ہے اور اگر بجائے سہام کے پیمائش کے گز مکسر ۱۸ بیان کر دیے ہوں تو امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے قول میں جائز ہے اور امام اعظمؒ کے قول میں نہیں جائز ہے۔ دو دار تین آدمیوں میں مشترک ہیں ان میں سے ایک بڑا ہے اور دوسرا چھوٹا ہے پس سب نے باہم اس قرارداد سے تقسیم کیا کہ ایک شخص چھوٹا دار لے لے ۲۸ اور دوسرا بڑا دار لے لے مگر جس نے بڑا دار لے لیا وہ کسی قدر دراہم معلومہ تیسرے کو جس نے کچھ نہیں لیا ہے دے دے تو یہ جائز ہے۔ اسی طرح اگر اس قرارداد پر صلح کی کہ بڑے دار کو دو آدمی لے لیں اور تیسرے چھوٹے دار کو لے لے تو بھی جائز ہے اسی طرح اگر ایک دار ان تینوں میں مشترک ہو اور سب نے اس شرط سے صلح کی کہ اس دار کو دو آدمی اس طرح لے لیں کہ ہر ایک دونوں میں سے اس میں سے معین ٹکڑے لے لے اور دونوں تیسرے کو کچھ دراہم معلومہ دے دیں تو بھی جائز ہے۔ اسی طرح اگر سبھوں نے دونوں لینے والوں میں سے ایک کے ذمہ یہ شرط لگائی کہ وہ نہ لینے والے کو دو تہائی ان دراہم معینہ کی دے تاکہ اس کے منزل میں داخل ہو تو یہ بھی جائز ہے کیونکہ یہ شخص اس تیسرے حصے کی دو تہائی خریدنے والا ہوگا اور دوسرا اس کے حصہ کی ایک تہائی خریدنے والا ہوگا اسی طرح اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس کو اس قرارداد سے باہم تقسیم کر لیا کہ ہر ایک اس میں سے نصف لے کر ایک شریک دوسرے کو ایک غلام معین دے دے بشرطیکہ اس کو دوسرا سو درہم دے دے تو بھی جائز ہے

اسی طرح اگر دونوں نے دار مشترکہ کو اس شرط سے تقسیم کیا کہ ایک شریک عمارت لے اور دوسرا شریک کھنڈر گرا ہوا لے بشرطیکہ عمارت لینے والا دوسرے کو کسی قدر دراہم معلومہ دے تو بھی جائز ہے اسی طرح اگر اس شرط سے تقسیم کیا کہ ایک شریک بالا خانہ لے اور دوسرا شریک نیچے کا مکان لے اور باہم شرط کی کہ کوئی شریک دوسرے کو کسی قدر دراہم معلومہ دے تو بھی جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر دونوں نے کپڑے اس شرط سے تقسیم کئے کہ جس کے حصہ میں یہ کپڑا آئے وہ ایک درہم پھیر دے اور جس کے حصہ میں یہ دوسرا کپڑا آئے وہ دو درہم پھیر دے تو جائز ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر گاؤں و زمین چند لوگوں میں مشترک ہو اور انہوں نے زمین کو پیمائش سے اس شرط پر تقسیم کیا کہ جس کے حصہ زمین میں درخت یا گھر اس پر درخت و گھر کی قیمت میں درہم واجب ہوں گے تو یہ جائز ہے اور یہ حکم استحسان ہے یہ مبسوط میں ہے۔

دو شریکوں نے مال شرکت باہم اس قرارداد سے تقسیم کیا کہ ایک شریک تمام نقدی درہم و دینار لے لے اور دوسرا تمام عروض و متاع دکان اور تمام قرضے جو لوگوں پر آتے ہیں لے لے بدیں شرط کہ اگر قرضہ میں سے کچھ کسی پر ڈوب گیا تو اس کا نصف اس کا شریک اس کو واپس دے گا تو ایسی تقسیم فاسد ہے کیونکہ اس قسمت میں بیع کے معنی ضرور ہوتے ہیں اور بیع اس طرح پر جائز نہیں ہے پس دونوں میں سے ہر ایک پر یہ واجب ہے کہ جو کچھ اس نے لیا ہے اس کا نصف اپنے شریک کو واپس دے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر دو شخصوں میں ایک دار مشترک ہو پس انہوں نے اس کو باہم تقسیم کر دیا بدین شرط کہ ایک شریک دوسرے کو کسی قدر دراہم معلومہ اس کے حصہ ۳۸ پر بڑھائے تو یہ جائز ہے پھر واضح ہو کہ جو چیز عقد بیع میں عوض ۴۸ مستحق ہونے کی صلاحیت رکھتی ہے ایسی چیز کا عقد قسمت میں شرط کرنا باہمی رضامندی

کی صورت میں جائز ہے پس نقود یعنی درہم و دینار وغیرہ خواہ فی الحال دینا ٹھہرا ہو یا ادھار ہو اور کیلی و وزنی چیزیں خواہ

۱ مکسرہ وہ گز جو طول و عرض کی پیمائش کا باہم حاصل ضرب رقبہ بحساب گزوں کے حاصل ہو۔ ۲ یہاں سے وہاں تک فلاں شخص اور باقی اس قدر دوسرا شخص لے لے۔ ۳ جو حصہ وہ لیتا ہے۔ ۴ درصورت بیع ہونے کے یہ عوض دینا لازم آئے۔

---

Whether they are specified or described as a liability to be delivered immediately, or agreed to be paid at a fixed term; if these items are entitled as consideration in a contract of sale (Bay'), they can also be made a condition in a contract of partitioning (Qisma). Thus, if there are transportation costs or expenses associated with any of these items, then according to Imam Azam (Abu Hanifa) RA, it is necessary to specify the place of delivery, as is the case in Bay' al-Salam (forward sale) and contracts of hire (Ijarah). According to Imam Abu Yusuf RA and Imam Muhammad RA, if a specific place has been mentioned for the delivery, it is valid; and if not mentioned, the partitioning remains valid and the delivery must be made at the place where the property being partitioned is located. Although, according to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), based on analogy (Qiyas) similar to Bay' al-Salam, the place where the contract was made should have been the designated place for delivery, yet based on juristic preference (Istihsan), they stated that the completion of the partitioning occurs at the site of the property, and the obligation of the item also depends on the completion of the partitioning. Therefore, wherever the partitioning is completed, that same place becomes designated for its delivery. This is similar to the view of the Sahibayn regarding lease contracts, where the place where the lease was agreed upon does not become designated for paying the rent; rather, it must be paid where the leased property is situated. If a specific animal is stipulated without measurement, it is valid. However, if the animal is unspecified, it is not valid, whether its description has been given or not, and whether it is to be given immediately or within a term. If a cloth is stipulated without measurement, but its description is given and a commitment is made to deliver it at a specific time (1), it is valid; but if no specific time is set, it is invalid. This is detailed in the 'Mabsut' under the chapter 'Partitioning of Houses with Money'.

If a house is shared between two persons and they partition it such that one takes the front part (one-third) and the other takes the back part (two-thirds), it is valid. If the house is shared such that one owns one-third and the other two-thirds, and the one with two-thirds takes a room (bayt) with a door opening onto the main road, while the one with a one-third share takes the rest of the house which exceeds his actual right (2), it is valid; and similarly for whatever falls into the other's share. This is valid even if there is no revenue (ghalla) (3) involved. If two partners partition a shared house such that one takes a certain portion and the other takes the remaining portion, leaving a common path with the condition that one has a one-

third right and the other two-thirds right in the path, it is valid, even if the house was originally shared equally. This is because the area of the path remains their property and is subject to compensation. If two partners partition a shared house on the condition that one takes one-third from the back of the house in exchange for his full share, and the other takes two-thirds from the front in exchange for his share, it is valid even if there is an apparent disparity (ghabn) in value. This is detailed in the 'Mabsut' in the chapter 'Partitioning of the House in Detail'.

**In the following issue, there is validity by implication (tab'an). Selling only the right of way (access) may be invalid, as many things are valid indirectly (dimnan) rather than independently (istiqlalan), such as the right to water (shurb), etc.** ☆

If two equal partners partition a shared house such that one takes a portion equal to half and the other takes a portion equal to one-third, leaving the remaining one-sixth as a shared path, it is valid. Similarly, if they agree that the entire area of the path belongs to the person who took the smaller portion, while the one who took the larger portion only has the right of way, it is also valid. Sheikh Imam RA stated that this issue serves as proof that the sale of 'Haq al-Murur' (right of passage) is valid, meaning the right of coming and going can be sold. The gist of the matter is that the right...

---

(1) It is indicated that if the cloth is specific, it is valid. (2) Meaning, by mutual consent. (3) 'Ghalla' refers to some income as rent.

चाहे वे निर्धारित हों या उनके गुणों का वर्णन करके उन्हें ज़िम्मेदारी में लिया गया हो और तत्काल भुगतान का वादा हो, या किसी निश्चित अवधि में भुगतान करने का निर्णय लिया गया हो; ये चीज़ें विक्रय अनुबंध (अक़्द-ए-बै) में प्रतिफल के रूप में दी जाती हैं, तो विभाजन अनुबंध (अक़्द-ए-क़िस्मत) में भी कभी शर्त के रूप में हो सकती हैं। अतः यदि इन चीज़ों में किसी चीज़ के लिए माल ढोने या अन्य खर्चों का मामला हो, तो इमाम-ए-आज़म रह. के अनुसार उनके भुगतान का स्थान स्पष्ट करना आवश्यक है, जैसा कि बै-ए-सल्लम और किराये के अनुबंधों (अक़्द-ए-इजारत) में होता है। इमाम अबू यूसुफ़ रह. और इमाम मुहम्मद रह. के अनुसार, यदि भुगतान के लिए कोई विशेष स्थान बता दिया गया है तो वह जायज़ है, और यदि नहीं बताया गया तो विभाजन जायज़ होगा और उसका भुगतान उसी स्थान पर करना अनिवार्य होगा जहाँ विभाजित की जाने वाली संपत्ति (दार-ए-मुन्क़ासिम) स्थित है। यद्यपि साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के निकट सादृश्य (क़यास) के आधार पर बै-ए-सल्लम की तरह वह स्थान निर्धारित होना चाहिए था जहाँ अनुबंध हुआ था, लेकिन साहिबैन ने 'इस्तेहसान' (न्यायपूर्ण प्राथमिकता) के आधार पर फ़रमाया कि विभाजन की पूर्णता विभाजित संपत्ति के पास ही होती है और उस चीज़ का देय होना भी विभाजन के पूर्ण होने पर ही निर्भर करेगा। अतः जहाँ विभाजन पूर्ण हुआ, वही स्थान उसके भुगतान के लिए भी निर्धारित हो गया। ठीक वैसे ही जैसे किराये के अनुबंधों में साहिबैन के निकट, जिस स्थान पर किराये का अनुबंध हुआ है, वह स्थान किराये की राशि भुगतान के लिए निर्धारित नहीं होता, बल्कि जो घर किराये पर लिया गया है, वहीं भुगतान करना अनिवार्य होता है। और यदि कोई विशेष जानवर बिना माप-तौल के शर्त के रूप में रखा जाए तो जायज़ है, लेकिन यदि जानवर अनिर्धारित हो तो वह जायज़ नहीं है, चाहे उसके गुणों का वर्णन किया गया हो या नहीं, चाहे तुरंत देना तय हो या कोई अवधि हो। और यदि कोई कपड़ा बिना माप-तौल के शर्त के रूप में रखा गया और उसके गुणों का वर्णन करके किसी निश्चित अवधि पर देना १ॺ अपने ज़िम्मे लिया तो जायज़ है, और यदि कोई निश्चित अवधि नहीं लगाई गई तो जायज़ नहीं है। यह 'मबसूत' के अध्याय 'क़िस्मतुल-दूर बिल-दराहमि' में विस्तार से दिया गया है।

यदि एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और उन्होंने आपस में विभाजन कर लिया हो, इस तरह कि एक ने घर का अगला हिस्सा (मुक़द्दम) लिया जो एक-तिहाई है और दूसरे ने पिछला हिस्सा (मुअख़्ख़र) लिया जो दो-तिहाई है, तो यह जायज़ है। और यदि उक्त घर दोनों के बीच इस प्रकार

साझा हो कि एक का हिस्सा एक-तिहाई और दूसरे का दो-तिहाई हो, फिर दो-तिहाई वाले ने अपने हिस्से में एक कमरा (बैत) ले लिया जिसका दरवाज़ा मुख्य सड़क पर है, और दूसरे ने जिसका हक एक-तिहाई है, अपने हिस्से में बाकी पूरा घर ले लिया जो उसके हक से अधिक है २ــ, तो यह जायज़ है, इसी तरह जो कुछ दूसरे के हिस्से में आया। यदि इसके लिए कोई लगान (ग़ल्ला) ३ــ न हो तब भी जायज़ है। और यदि दो साझेदारों ने साझा घर को आपस में इस तरह विभाजित किया कि एक साझेदार ने घर का एक टुकड़ा लिया और दूसरे ने शेष घर का टुकड़ा लिया और दोनों ने एक साझा रास्ता इस शर्त पर छोड़ दिया कि रास्ते में एक का हिस्सा एक-तिहाई और दूसरे का दो-तिहाई है, तो यह जायज़ है, भले ही उक्त घर दोनों में आधा-आधा साझा हो, क्योंकि रास्ते का क्षेत्र (रकबा) दोनों की मिल्कियत है और विनिमय (मुआवज़ा) का स्थान है। और यदि दो साझेदारों ने साझा घर को इस शर्त पर विभाजित किया कि एक साझेदार घर के पिछले हिस्से से एक-तिहाई अपने पूरे हक के बदले ले और दूसरा उसके अगले हिस्से से दो-तिहाई अपने हक के बदले ले, तो जायज़ है, भले ही इसमें मूल्य में स्पष्ट अंतर (ग़बन) हो। यह 'मबसूत' के अध्याय 'अल-क़िस्मतुल-दार' में विस्तार से वर्णित है।

**नीचे दिए गए मसअले में अनुषंगिक (तबअन) तौर पर वैधता है, तो केवल आवागमन के अधिकार (हक़-ए-आमद-ओ-रफ़्त) को बेचना अवैध हो सकता है क्योंकि बहुत सी चीज़ें परोक्ष रूप से (ज़िम्नन) जायज़ होती हैं न कि स्वतंत्र रूप से (इस्तेक़लालन्), जैसे पानी पीने का अधिकार (शर्ब) आदि।** ☆

यदि बराबर के दो साझेदारों ने साझा घर को आपस में विभाजित करके इस तरह लिया कि एक ने आधे के बराबर लिया और दूसरे ने एक-तिहाई के बराबर, और बाकी बचा छठा हिस्सा दोनों ने साझा रास्ता छोड़ दिया, तो यह जायज़ है। इसी प्रकार यदि दोनों ने यह शर्त की कि रास्ते का पूरा क्षेत्र उस व्यक्ति का है जिसने छोटा हिस्सा लिया है और बड़े हिस्से वाले को उसमें केवल आवागमन का अधिकार प्राप्त है, तो भी जायज़ है। और शेख़ इमाम रह. ने फ़रमाया कि यह मसअला इस बात का प्रमाण है कि 'हक़-उल-मुरूर' (रास्ते का अधिकार) का विक्रय जायज़ है, अर्थात आने-जाने का अधिकार बेचना जायज़ है। और बात का सार यह है कि हक...

---

१ــ संकेत किया कि यदि कपड़ा निर्धारित हो तो जायज़ है। २ــ अर्थात आपसी सहमति से। ३ــ ग़ल्ला यानी किराये के रूप में कोई आय न हो।

---

معین ہوں یا ان کا وصف بیان کر کے ذمہ رکھ کر فی الحال دینا ٹھہرا ہو یا کسی میعاد پر ادا کرنا قرار پایا ہو یہ چیزیں عقد بیع میں عوضاً مستحق ہوتی ہیں تو عقد قسمت میں کبھی شرط ہو سکتی ہیں پس اگر ان چیزوں میں کسی چیز کے واسطے بار برداری وخرچہ ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک اس کے ادا کرنے کی جگہ بیان کرنی ضرور ہے جیسا کہ بیع سلم وعقد اجارات میں ہوتا ہے اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک اگر اس کے ادا کرنے کے واسطے کوئی خاص جگہ بیان کر دی تو جائز ہے اور اگر نہ بیان کی ہو تو تقسیم جائز ہوگی اور اس کا ادا کرنا اسی جگہ لازم ہو گا جہاں دار منقسم واقع ہے حالانکہ صاحبین کے نزدیک مثل بیع سلم کے بدلیل قیاس یہ چاہئے تھا کہ اس کے ادا کرنے کے واسطے وہ جگہ متعین ہوتی جہاں عقد واقع ہوا مگر صاحبینؒ نے بدلیل استحسان یوں فرمایا کہ تقسیم کا پورا ہونا دار منقسمہ کے پاس ہوتا ہے اور اس چیز کا واجب ہو جانا بھی تقسیم کے پورے ہونے پر ہوگا پس جہاں تقسیم پوری ہوئی ہے وہی جگہ اس کے ادا کے واسطے بھی متعین ہو گئی جیسا کہ عقود اجارات میں بھی صاحبین کے نزدیک جس جگہ عقد اجارہ قرار پایا ہے یعنی دار کرایہ پر لینا قرار پایا ہے وہ جگہ کرایہ کا ایسا مال ادا کرنے کے واسطے متعین نہیں ہوتی بلکہ جو دار کرایہ پر لیا ہے وہیں ادا کرنا لازم ہوتا ہے اور اگر کوئی حیوان معین بلا مانا شرط کیا تو جائز ہے اور اگر حیوان غیر معین ہو تو جائز نہیں ہے خواہ اس کا وصف بیان کیا ہو یا نہ کیا ہو خواہ فی الحال دینا ٹھہرا ہو یا دینے کے واسطے کچھ میعاد ہو اور اگر کوئی کپڑا بلا مانا شرط کیا اور اس کا وصف بیان کر کے کسی میعاد پر معین دینا ۱ــہ اپنے ذمہ لیا تو جائز ہے اور اگر کچھ میعاد معین نہ لگائی تو جائز نہیں ہے یہ مبسوط باب قسمۃ الدور بالدراہم یزید با میں ہے۔

اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو انہوں نے باہم تقسیم کر لیا اس طرح کہ ایک نے مقدم دار کو جو ایک تہائی ہے لیا اور دوسرے نے مؤخر دار کو جو دو تہائی ہے لیا تو یہ جائز ہے اور اگر دار مذکور دونوں میں اس طرح مشترک ہو کہ ایک کا ایک تہائی اور دوسرے کا دو تہائی ہو پس دو تہائی والے نے اپنے حصہ میں ایک بیت جس کا دروازہ شاہراہ ہے لے لیا اور دوسرے نے جس کا حق ایک تہائی ہے اپنے حق میں باقی سب دار جو اس کے حق سے زیادہ ہے لے لیا ۲ـہ تو یہ جائز ہے اسی طرح جو کچھ دوسرے کے حصہ میں پڑا ہے۔ اگر اس کے واسطے غلہ ۳ـہ نہ تو بھی جائز ہے اور اگر دو شریکوں نے دار مشترک کو باہم اس طرح تقسیم کیا کہ ایک شریک نے دار کا کسی قدر ٹکڑا لیا اور دوسرے نے باقی دار کا ٹکڑا لیا اور دونوں نے مشترک راستہ اس شرط سے چھوڑ دیا کہ راستہ میں سے ایک کا ایک تہائی اور دوسرے کا دو تہائی ہے تو یہ جائز ہے اگر چہ دار مذکور دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو کیونکہ راستہ کا رقبہ دونوں کی ملک اور محل معاوضہ ہے اور اگر دو شریکوں نے دار مشترک کو اس شرط سے تقسیم کر لیا کہ ایک شریک دار کے موخر سے ایک تہائی اپنے پورے حق کے بدلے لے اور دوسرا اس کے مقدم سے دو تہائی اپنے حق کے بدلے لے تو جائز ہے اگر چہ اس میں غبن ظاہر ہے یہ مبسوط باب القسمۃ الدار بتفصیل بعضھا میں ہے۔

**مسئلہ ذیل میں تبعاً جواز ہے تو وہ فقط حق آمد و رفت کو فروخت کرنا غیر جائز ہو سکتا ہے کیونکہ بہت چیزیں ضمناً جائز ہوتی ہیں سوا استقلالاً جیسے شرب وغیرہ ☆**

اگر برابر کے دو شریکوں نے دار مشترک کو باہم تقسیم کر کے اس طرح لیا کہ ایک نے بقدر نصف کے لیا اور دوسرے نے بقدر تہائی کے اور باقی ایک چھٹا حصہ دونوں نے مشترک راستہ چھوڑ دیا تو یہ جائز ہے اسی طرح اگر دونوں نے یہ شرط کی کہ راستہ کا رقبہ تمام اس شخص کا ہے جس نے تھوڑا سا حصہ لیا ہے اور بڑے حصہ والے کو فقط اس میں آمد ورفت کا حق حاصل

ہے تو بھی جائز ہے اور شیخ امامؒ نے فرمایا کہ یہ مسئلہ اس امر کی دلیل ہے کہ حق المرور کی بیع جائز ہے یعنی آمد ورفت کا حق فروخت کرنا جائز ہے اور حاصل کلام یہ ہے کہ حق

---

۱ــہ اشارہ کیا کہ اگر کپڑا معین ہو تو جائز ہے۔ ۲ــہ یعنی باہمی رضامندی سے۔ ۳ــہ غلہ یعنی کچھ آمدنی بطور کرایہ نہ ہو۔

---

**Book of Partition (Kitab al-Qisma) 254 Fatawa Alamgiri ..... Volume 8**

Regarding the sale of the right of passage (haqq al-murur), there are two narrations. Sheikh Imam Shams al-A'immah al-Sarakhsi (RA) stated in his commentary on this book that although there are two narrations regarding the sale of the right of passage, a strong argument in favor of its permissibility in such a partition, according to all narrations, is that the area of the path was the property of both parties, and both had the right of ingress and egress. Then, one party surrendered his share in the path's area to his partner's property in exchange for the share he received from his partner's portion in the partitioned property, while retaining the right of ingress and egress for himself. Doing so under a condition is permissible. For instance, if someone sold his owned path to another person on the condition that he retains the right of passage, the sale is valid. Or, if a person sold the lower floor (sufal) of a house on the condition that he retains the right to maintain the upper room (bala khana), it is permissible. Likewise, it is permissible in this partition as well.

If a house is held jointly by two persons, and a portion of another house is also joint between them, and they partitioned it on the condition that one takes the entire house and the other takes the portion of the other house: if both are aware of the shares (saham) of that portion, the partition is valid. If both are unaware, the partition shall be voided. If one knows and the other does not, the partition is still voided. This is mentioned in the original 'Kitab al-Qisma', though the full details are not provided in the answer. Some scholars (mashaykh) stated that the answer should be detailed as follows: if the person for whom that portion was conditioned knows about it, the partition is valid by consensus without disagreement. If that person does not know, while the one making the condition knows, there will be a disagreement: according to Imam Azam (RA) and Imam Muhammad (RA), this partition is void, whereas according to Imam Abu Yusuf (RA), it is valid. Other scholars have stated that this is not the case; rather, in the matter of partition, such a division is absolutely void according to everyone's consensus, as stated in 'Al-Muhit'.

If a group of people partitioned their ancestral shared village without the order of a judge (qazi), while among them there is a minor heir who has no guardian (wasi), or an absent heir who has no representative (wakil), then this partition shall not be valid. Similarly, if they partitioned it by the order of any 'Sahib al-Shart' (official) other than a qazi, such as a Darogha or an officer like a village officer (Amil al-Rastaqi), a customs officer (Amil al-Tasuj), a land revenue officer (Amil al-Kharaj), or an officer of public expenses (Amil al-Mu'annath), the ruling remains the same.

Likewise, if they agreed upon the decision of a jurist (faqih) who, after hearing their witnesses regarding the original property and inheritance, divided the village among them equitably, while there is a minor heir without a guardian or an absent heir without a representative, the partition remains invalid. This is because the authority of a 'hukm' (judgment) does not extend over minors and absentees, as the decree of such a division is based on the mutual consent of the disputing parties. Consent is the intended basis for whoever gives it. Yes, if the absentee returns or the minor becomes an adult and grants permission, it becomes valid, because it is established that the one granting permission was present at the time the contract ('aqd) was made. Do you not see that if a qazi gave permission, it would become valid? This contract is viewed in the same light as a situation where someone sells a minor's property and the minor, upon reaching adulthood, grants permission, making the sale valid. However, if the absentee or minor dies before granting permission, and then their heir gives permission, it is not valid according to analogy (qiyas). This is the view of Imam Muhammad (RA). Yet, according to juridical preference (istihsan), it is valid because the need for partition that existed during the ancestor's life still persists. Therefore, if this division were to be annulled, it would currently have to be re-executed in the same manner.

1. Permissible in one view and not in another; the indication of permissibility arises here because partition implies sale.
2. Amil Rastaq: District/village officer; Amil Tasuj: Customs officer; Amil Kharaj: Land revenue contractor; Amil Mu'annath: Officer for public utility expenses such as bridges and canals.
3. Hukm: Someone appointed as a judge or by royal authority.

## किताब अल-किस्मा (विभाजन की पुस्तक) २५४ फ़तावा आलमगीरी ..... खंड ८

रास्ता (मुरूर) की बिक्री के अधिकार के संबंध में दो परंपराएं हैं और शेख इमाम शम्स अल-अइम्मा सरखसी रहमतुल्लाह अलैह ने इस किताब की व्याख्या में कहा है कि हालांकि रास्ते के अधिकार की बिक्री में दो परंपराएं हैं, लेकिन ऐसी विभाजित स्थिति में सभी परंपराओं के अनुसार इसके जायज़ होने के पक्ष में एक मजबूत दलील यह है कि उस रास्ते का क्षेत्रफल दोनों के स्वामित्व में था और दोनों को उसमें आने-जाने का अधिकार प्राप्त था। फिर एक ने रास्ते के क्षेत्रफल में से अपना हिस्सा अपने साझेदार को इस अधिकार के बदले दे दिया जो उसने विभाजन में अपने साझेदार के हिस्से से लिया था, और अपने लिए आने-जाने का अधिकार सुरक्षित रखा। ऐसा करना शर्त के आधार पर जायज़ है। उदाहरण के लिए, यदि किसी ने अपना निजी रास्ता इस शर्त पर दूसरे को बेचा कि उसे आने-जाने का अधिकार बना रहेगा, तो बिक्री जायज़ है। या उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति ने नीचे का घर (मकान-ए-सुफ़ल) इस शर्त पर बेचा कि उसे ऊपर का हिस्सा (बाला खाना) बनाए रखने का अधिकार रहेगा, तो यह जायज़ है। इसी प्रकार, इस विभाजन में भी यह जायज़ है।

यदि एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और दूसरे घर का एक हिस्सा भी दोनों के बीच साझा हो, और दोनों ने इस शर्त पर विभाजन किया कि उनमें से एक इस घर को ले ले और दूसरा दूसरे घर के हिस्से को ले ले, तो यदि दोनों को उस हिस्से के शेयरों (सहाम) का पता है कि वे कितने हैं, तो विभाजन जायज़ है। और यदि दोनों नहीं जानते, तो विभाजन रद्द कर दिया जाएगा। और यदि एक जानता है और दूसरा नहीं, तब भी विभाजन रद्द हो जाएगा। मूल 'किताब अल-किस्मा' में ऐसा ही उल्लेख है, लेकिन विस्तारपूर्वक विवरण नहीं दिया गया है। कुछ विद्वानों (मशाइख) ने कहा है कि विवरण इस प्रकार होना चाहिए कि जिसके लिए वह टुकड़ा शर्त रखा गया है, यदि वह व्यक्ति जानता है, तो सर्वसम्मति से बिना किसी मतभेद के विभाजन जायज़ है। और यदि वह व्यक्ति नहीं जानता और शर्त रखने वाला जानता है, तो मतभेद होगा: इमाम आज़म रह. और इमाम मुहम्मद रह. के अनुसार यह विभाजन रद्द माना जाएगा, जबकि इमाम अबू यूसुफ रह. के अनुसार यह जायज़ होगा। कुछ विद्वानों ने कहा है कि ऐसा नहीं है, बल्कि विभाजन के मामले में ऐसी किस्मत (बंटवारा) सर्वसम्मति से सभी के अनुसार बिल्कुल रद्द है, जैसा कि 'मुहीत' में वर्णित है।

यदि किसी समुदाय ने अपने पुश्तैनी साझा गाँव को काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश के बिना आपस में विभाजित कर लिया, जबकि उनमें कोई वारिस नाबालिग (सगीर) है जिसका कोई अभिभावक (वसी) नहीं है, या वारिस अनुपस्थित (ग़ायब) है जिसका कोई प्रतिनिधि (वकील) नहीं है, तो यह विभाजन

जायज़ नहीं होगा। इसी तरह, यदि उन्होंने काज़ी के अलावा किसी 'साहिब अल-शर्त' जैसे दारोगा या किसी अधिकारी के आदेश से, जैसे ग्रामीण अधिकारी (आमिल-ए-रस्ताकी) या चुंगी अधिकारी (आमिल-ए-तसूज) या लगान अधिकारी (आमिल-ए-ख़राज) या खर्च अधिकारी (आमिल-ए-मुअन्नस) के माध्यम से विभाजन किया हो, तब भी यही नियम लागू होगा।

इसी प्रकार, यदि ये लोग किसी फ़कीह (धर्मशास्त्री) के फैसले पर सहमत हुए हों और उसने मूल संपत्ति और विरासत पर उनके गवाहों को सुनकर फिर उस गाँव को उनके बीच न्यायपूर्वक विभाजित कर दिया हो, जबकि उनमें कोई नाबालिग वारिस बिना अभिभावक के या अनुपस्थित वारिस बिना प्रतिनिधि के मौजूद हो, तो भी विभाजन जायज़ नहीं होगा। क्योंकि 'हुक्म' (फैसले) का अधिकार नाबालिगों और अनुपस्थित व्यक्तियों पर नहीं होता, क्योंकि इस तरह के बंटवारे का फैसला विवादित पक्षों की आपसी सहमति पर आधारित होता है। जिसकी ओर से सहमति पाई गई, उस पर यह लागू होता है। हाँ, यदि अनुपस्थित व्यक्ति ने उपस्थित होकर या नाबालिग ने वयस्क होकर अनुमति दे दी, तो यह जायज़ हो जाएगा। क्योंकि यह सिद्ध हो गया कि जिस समय अनुबंध (अक्द) हुआ, अनुमति देने वाला उस समय मौजूद माना जाएगा। क्या आप नहीं देखते कि यदि काज़ी ने इसकी अनुमति दी तो यह जायज़ हो जाएगा? यह अनुबंध उस स्थिति जैसा है जहाँ किसी ने नाबालिग की संपत्ति बेची और फिर नाबालिग ने वयस्क होने पर उसे अनुमति दे दी, तो बिक्री जायज़ हो जाती है। लेकिन यदि अनुमति देने से पहले अनुपस्थित व्यक्ति या नाबालिग की मृत्यु हो गई और फिर उसके वारिस ने अनुमति दी, तो सादृश्य (कियास) के अनुसार यह जायज़ नहीं होगा। यही इमाम मुहम्मद रह. का मत है। हालाँकि, 'इस्तेहसान' (न्यायिक पसंद) के अनुसार यह जायज़ है क्योंकि विभाजन की आवश्यकता जैसे पूर्वज के जीवन में थी, वैसे ही अब भी बनी हुई है। अत; यदि इस बंटवारे को रद्द कर दिया जाता है, तो वर्तमान में उसी प्रकार से पुनः विभाजन करना पड़ेगा।

1. एक मत में जायज़ और दूसरे में नहीं, यहाँ से जायज़ होने का संकेत इस प्रकार निकला कि बंटवारे में बिक्री का अर्थ निहित है।
2. आमिल रस्ताक: गाँव का अधिकारी; आमिल तसूज: चुंगी का दारोगा; आमिल ख़राज: लगान का ठेकेदार; आमिल मुअन्नस: सार्वजनिक लाभ के खर्चों का अधिकारी।
3. हुक्म: जिसे हाकिम नियुक्त किया गया हो या सुल्तानी आदेश।

المرور کی بیع کے حق میں دو روایتیں ہیں اور شیخ امام شمس الائمہ سرخسیؒ نے اس کتاب کی شرح میں فرمایا کہ اگرچہ حق المرور کی بیع میں دو روایتیں ہیں مگر ایسی تقسیم سب روایتوں کے موافق جائز ہونے کے دلائل میں سے ایک دلیل قوی یہ ہے کہ اس راستہ کا رقبہ دونوں کی ملک تھا اور دونوں کو اس میں آمد و رفت کا حق حاصل تھا پھر ایک نے راستہ کے رقبہ میں سے اپنا حصہ اپنے شریک کی ملک بعوض اس حق کے جو اس نے تقسیم دار میں اپنے شریک کے حصہ میں سے لیا ہے کر دیا اور اپنے واسطے آمد و رفت کا حق باقی رکھا تو ایسا کرنا شرط سے جائز ہے چنانچہ اگر کسی نے اپنا مملوکہ راستہ کسی دوسرے کے ہاتھ اس شرط سے فروخت کیا کہ مجھے حق المرور حاصل رہے تو بیع جائز ہے یا مثلاً کسی شخص نے سفل یعنی نیچے کا مکان اس شرط سے فروخت کیا کہ مجھے اس پر بالا خانہ برقرار رکھنے کا حق حاصل رہے تو یہ جائز ہے پس ایسا ہی اس تقسیم میں بھی جائز ہے اور اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو اور دوسرے دار کا ایک ٹکڑا بھی دونوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس شرط سے باہم تقسیم کیا کہ دونوں میں سے ایک اس دار کو لے لے اور دوسرا دوسرے دار کے ٹکڑے کو لے لے پس اگر دونوں نے اس ٹکڑے کے سہام سے آگاہ ہوں کہ کس قدر ہیں تو تقسیم جائز ہے اور اگر دونوں نہ جانتے ہوں تو تقسیم رد ہوگی اور اگر ایک جانتا ہو اور دوسرا نہ جانتا ہو تو بھی تقسیم رد ہے۔ ایسا ہی اصل کی کتاب القسمۃ میں مذکور ہے اور جواب میں جیسا چاہیے پوری تفصیل مذکور نہیں ہے پس بعض مشائخ نے فرمایا کہ جواب میں اس طرح تفصیل ہونی چاہیے کہ جس کے واسطے وہ ٹکڑا شرط کیا گیا ہے اگر وہ شخص جانتا ہو تو بالاتفاق بلا خلاف تقسیم جائز ہے اور اگر وہ شخص نہ جانتا ہو اور شرط کرنے والا جانتا ہو تو مسئلہ میں اس طرح اختلاف ہوگا کہ امام اعظمؒ و امام

محمدؒ کے قول پر یہ تقسیم مردود ہوگی اور امام ابو یوسفؒ کے قول پر جائز ہوگی اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ ایسا نہیں ہے بلکہ مسئلہ تقسیم میں ایسی قسمت بالاتفاق سب کے قول میں مطلقاً مردود ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر ایک قوم نے اپنے موروثی مشترک قریہ کو بغیر حکم قاضی باہم تقسیم کیا حالانکہ ان میں کوئی وارث صغیر بھی ہے جس کا وصی نہیں ہے یا وارث غائب ہے جس کا وکیل نہیں ہے تو یہ تقسیم جائز نہ ہوگی اور اسی طرح اگر انہوں نے سوائے قاضی کے کسی صاحب الشرط یعنی داروغہ یا کسی عامل کے حکم سے مثل عامل ۱ـہ ارستاقی یا عامل طسوج یا عامل خراج یا عامل مؤنث کے باہم تقسیم کیا ہو تو بھی یہی حکم ہے اور اسی طرح اگر کسی فقیہ کے حکم پر یہ لوگ باہم راضی ہوئے ہوں اور اس نے اصل و میراث پر ان لوگوں کے گواہ سن کر پھر اس گاؤں کو ان لوگوں میں بالانصاف تقسیم کر دیا ہو حالانکہ وارث صغیر جس کا کوئی وصی نہیں ہے یا وارث غائب جس کا وکیل نہیں ہے پایا جائے تو بھی تقسیم جائز نہ ہو گی کیونکہ حکم ۲ـہ کی ولایت صغیر و غائب پر نہیں ہے کیونکہ اس قسمت کا حکم تبراضی خصوم ہوا ہے پس جس کی طرف سے رضا مندی پائی گئی اس پر مقصود ہے گاہاں اگر غائب نے حاضر ہو کر یا صغیر نے بالغ ہو کر اجازت دے دی تو جائز ہو گی کیونکہ ثابت ہوا کہ جس وقت پر عقد پایا گیا اسی وقت اس کا اجازت دینے والا تھا آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ اگر قاضی نے اس کی اجازت دی تو جائز ہو جائے گی اور یہ عقد نظر اس صورت کا ہے کہ اگر اس نے صغیر کا مال فروخت کیا پھر صغیر نے بالغ ہو کر اجازت دی تو بیع جائز ہوتی ہے اور اگر اجازت دینے سے پہلے غائب یا صغیر مر گیا پھر اس کے وارث نے اجازت دی تو قیاساً جائز نہ ہو گی اور یہی امام محمدؒ کا قول ہے اور استحساناً جائز ہے کیونکہ تقسیم کی حاجت جیسے مورث کی زندگی میں تھی ویسے ہی اب بھی قائم ہے پس اگر یہ قسمت توڑ دی جائے تو فی الحال اسی صفت کے ساتھ اس تقسیم کا اعادہ کرنا پڑے گا اور اس

۱ـہ ایک میں جائز اور دوسری میں نہیں جائز ہے اور یہاں سے اشارہ جواز اس طرح نکلا کہ بنوارہ میں بیع کے معنی ہوتے ہیں اور یہاں وہ ایک شریک کے حصہ میں موجود ہے لیکن یہ اعتراض ہو سکتا ہے کہ یہاں جعا جواز ہے تو فقط حق آمد و رفت کو فروخت کرنا غیر جائز ہو سکتا ہے کیونکہ بہت چیزیں ضمناً جائز ہوتی ہیں سزا استقلا جیسے شرب وغیرہ۔ ۲ـہ عامل رستاق پدکلہ دار و حاکم پرگنہ و عامل طسوج چنگی کا داروغہ۔ عامل خراج لگان کا ٹھیکیدار عامل مؤنث اخراجات نفع عام کا کائدہ مانند پل و نہر۔ ۳ـہ حکم جس کو حاکم بنا لیا یا سلطانی ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 255 Kitab al-Qisma (The Book of Division)**

...its reinstatement will only be with the consent of the heir. Despite consent being present from their side, there is no benefit in breaking it and reinstating it again; this is in *[Sharah] al-Mabsut*.

Furthermore, let it be clear that the permission of an absent person or their heir, or of an executor (*Wasi*), or of a minor after reaching puberty, will only be effective if the thing on which division is being carried out exists at the time of permission, just as in a purely suspended sale (*Bai' Mauqoof*), permission is only effective when the subject of sale exists at the time of permission. And it became clear that just as permission is proven by explicit verbal statement, the proof of permission can also be through indicative action (*Dalalat-e-Fe'l*), as is the case in purely suspended sales; this is in *[Al-]Dhakhira*. Books of inheritance shall not be divided among heirs, but each one can benefit from them by turns. And if any heir wishes to divide them by leaves (pages), they cannot do so, nor will this request be heard from them, and these books shall not be divided in any way. And even if it is a chest containing the Quran (*Mushaf*), the heir will not have such authority. And even if all heirs agree, the judge (*Qadi*) shall not give such an order. And if the entire *Mushaf* belongs to one person, but one share out of thirty-three (33) shares belongs to another, then the *Mushaf* shall be given to the other for one day out of thirty-three days so that they may derive benefit. Similarly, if a book has many volumes, like *Sharh al-Mabsut* for instance, it shall still not be divided, and there is no way for its division. And the same rule applies to every distinct genus, and the ruler (*Hakim*) shall not order such division despite the consent of everyone. And if they agree among themselves that the price of the book be estimated, then if one person takes some portion of it by voluntarily paying the price, it is permissible; otherwise, it is not permissible. This is in *Jawahir al-Fatawa*. It is written in *Taymiyyah* that Sheikh Ali bin Ahmad was asked about a man who died and left behind minor children, two adult sons, and one heir, and did not appoint anyone as an executor. Then the judge appointed one of the two adults as an executor. Then that executor called two men from among his relatives and, in their presence, divided the estate in such a way that he took all the books for himself and his other adult brother, and declared the said house common for the other two minor children, but first estimated their price and balanced (*Ta'dil*) it. Is such a division permissible? The Sheikh said that if the divider is a scholar and pious, then, God willing, it will be permissible. I asked Sheikh Abu Hamid whether a father has the authority to settle a division with his minor son? He said yes. And Sheikh Ali

bin Ahmad was asked about a person who bought the shares of those present from a piece of land shared among several people, while some partners are absent. How will this land be divided despite their absence? And is there any way for the buyer to cultivate that land? So the Sheikh said that the division of that land is not permissible in the absence of the partners or some partners, but if this land is inherited property, then the judge will appoint a representative (*Wakil*) on behalf of the absent partner, then indeed division can take place. As for its cultivation, if in the judge's opinion it is advisable to allow the buyer partner to cultivate the entire land so that the land tax (*Kharaj*) is not lost, then the judge has such authority; this is in *Tatarkhania*. A person sold something of theirs, and on behalf of the seller, someone accepted an indemnity (*Daman-e-Dark*) for the buyer. Then the guarantor died, so his property will be divided among his heirs because there is nothing to prevent division. And if each of the heirs sold their portion, and then the indemnity (*Daman-e-Dark*) became due upon the deceased, then their sales will be rescinded by returning to the heirs for recovery, because according to one report, this indemnity property is in the position of a debt coinciding with death, and this report is preferred (*Mukhtar*); this is in *Fatawa Kubra*.

---

1. 'Muqarin' means coinciding with or adjacent to death, meaning as if it were a debt from the terminal illness (*Marz-ul-Maut*), thus it will be obligatory.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 255 किताबुल क़िस्मा (विभाजन की पुस्तक)**

...का दोहराव वारिस की रजामंदी से होगा, तो उसकी ओर से रजामंदी पाए जाने के बावजूद इसे तोड़कर फिर से दोहराने में कोई लाभ नहीं है, यह 'मबसूत' में है।

फिर स्पष्ट हो कि अनुपस्थित या उसके वारिस की अनुमति, या वसीयतदार (वसी) की, या बालिग होने के बाद नाबालिग की अनुमति तभी प्रभावी होगी जब अनुमति के समय वह वस्तु जिस पर विभाजन हो रहा है, विद्यमान हो, जैसे कि केवल निलंबित बिक्री (बय मौकूफ) में अनुमति तभी प्रभावी होती है जब अनुमति के समय बेची गई वस्तु विद्यमान हो। और यह स्पष्ट हुआ कि जिस प्रकार मौखिक स्पष्ट अनुमति सिद्ध होती है, उसी प्रकार कार्य के माध्यम से भी अनुमति का प्रमाण मिल सकता है, जैसा कि केवल निलंबित बिक्री में है, यह 'ज़ख़ीरा' में है। विरासत की पुस्तकें वारिसों के बीच विभाजित नहीं की जाएंगी, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति बारी-बारी से उससे लाभ उठा सकता है। और यदि कोई वारिस चाहे कि पन्नों से उन्हें विभाजित कर ले, तो वह ऐसा नहीं कर सकता और न ही उसकी यह बात सुनी जाएगी, और किसी भी तरह से ये पुस्तकें विभाजित नहीं की जाएंगी। और यदि कुरान का संदूक हो, तो भी वारिस को ऐसा अधिकार नहीं होगा। और यदि सभी वारिस राजी हो जाएं तो भी काजी ऐसा आदेश नहीं देगा। और यदि संपूर्ण मुसहफ़ (कुरान) एक का हो लेकिन उसमें से तैंतीस (33) हिस्सों में से एक हिस्सा दूसरे का हो, तो दूसरे को तैंतीस दिनों में से एक दिन यह मुसहफ़ दिया जाएगा ताकि लाभ प्राप्त करे। इसी तरह यदि एक पुस्तक की कई जिल्दें हों, जैसे कि 'शरह मबसूत' उदाहरण के तौर पर, तो भी उसका विभाजन नहीं किया जाएगा और इसके विभाजन का कोई तरीका नहीं है। और हर अलग प्रकार की वस्तु में भी यही नियम है, और शासक (हाकिम) सबके सहमत होने के बावजूद ऐसे विभाजन का आदेश नहीं देगा। और यदि वे आपस में राजी हों कि पुस्तक का मूल्य आंका जाए, फिर एक व्यक्ति उसमें से कुछ हिस्सा मूल्य देकर स्वेच्छा से ले ले, तो यह वैध है, अन्यथा वैध नहीं है, यह 'जवाहरुल फ़तावा' में है। 'तैमिया' में लिखा है कि शेख अली बिन अहमद से पूछा गया कि एक व्यक्ति मर गया और उसने नाबालिग बच्चे और दो बालिग लड़के और एक वारिस छोड़ा और किसी को वसीयतदार नियुक्त नहीं किया, फिर काजी ने दोनों बालिगों में से एक को वसीयतदार नियुक्त कर दिया। फिर उस वसीयतदार ने अपने रिश्तेदारों में से दो लोगों को बुलाया और उनकी उपस्थिति में विरासत (तरका) का विभाजन इस प्रकार किया कि सभी पुस्तकें अपने और अपने दूसरे बालिग भाई के लिए ले लीं और उक्त घर बाकी दोनों नाबालिग बच्चों के लिए दोनों में साझा करार दिया, लेकिन पहले उनका मूल्य आंककर संतुलन (तअदील) कर लिया। तो क्या ऐसा विभाजन वैध

है? शेख ने फरमाया कि यदि विभाजन करने वाला विद्वान और परहेजगार हो, तो इंशा अल्लाह वैध होगा। मैंने शेख अबू हामिद से पूछा कि क्या पिता को अधिकार है कि वह अपने नाबालिग पुत्र के साथ बंटवारा कर ले? तो उन्होंने फरमाया कि हाँ। और शेख अली बिन अहमद से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने कुछ लोगों के साथ साझा जमीन से उपस्थित लोगों का हिस्सा खरीदा और कुछ साझेदार अनुपस्थित हैं, तो उनकी अनुपस्थिति के बावजूद यह जमीन कैसे विभाजित की जाएगी? और क्या खरीदार के लिए उस जमीन में खेती करने का कोई तरीका है? तो शेख ने फरमाया कि साझेदारों या कुछ साझेदारों की अनुपस्थिति में उस जमीन का विभाजन वैध नहीं है, लेकिन यदि यह जमीन पैतृक हो, तो काजी अनुपस्थित साझेदार की ओर से एक वकील नियुक्त कर देगा, तो निश्चित रूप से विभाजन हो सकता है। रही बात उसकी खेती करने की, तो यदि काजी की राय में यह आए कि खरीदार साझेदार को पूरी जमीन की खेती की अनुमति दे दे ताकि कर (खिराज) नष्ट न हो, तो काजी को ऐसा अधिकार है, यह 'तातारखनिया' में है। एक व्यक्ति ने अपनी कोई वस्तु बेची और विक्रेता की ओर से खरीदार के लिए एक व्यक्ति ने 'जमान-ए-दर्क (गारंटी) स्वीकार कर ली, फिर गारंटी देने वाला मर गया, तो उसका धन उसके वारिसों में विभाजित किया जाएगा क्योंकि विभाजन में कोई बाधा नहीं है। और यदि वारिसों में से प्रत्येक ने अपना हिस्सा बेच दिया, फिर मृतक पर 'जमान-ए-दर्क अनिवार्य हो गया, तो वारिसों की ओर लेने के लिए वापस लौटकर उनकी बिक्री तोड़ दी जाएगी, क्योंकि एक रिवायत के अनुसार यह धन उस ऋण के समान है जो मृत्यु के समय के निकट हो, और यही रिवायत पसंदीदा (मुख्तार) है, यह 'फतावा कुबरा' में है।

---

1. मुक़ारिन यानी मृत्यु के ठीक पास, और अर्थ यह है कि मानो यह मृत्यु-शय्या (मरज़-उल-मौत) का कर्ज है, तो यह अनिवार्य होगा।

---

کا اعادہ وارث ہی کی رضامندی سے ہوگا تو باوجود اس کی طرف سے رضامندی پائے جانے کے اس کو توڑ کر پھر اعادہ کرنے میں کچھ فائدہ نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔

پھر واضح ہو کہ غائب یا اس کے وارث کی اجازت یا وصی کی یا بعد بلوغ کے صغیر کی اجازت جبھی کارآمد ہوگی کہ جب اجازت کے وقت وہ چیز جس پر تقسیم جاری ہوئی ہے قائم ہو جیسا کہ محض بیع موقوف میں جبھی اجازت کارآمد ہوتی ہے کہ جب اجازت کے وقت مبیع قائم ہو اور واضح ہوا کہ اجازت جس طرح صریح بالقول ثابت ہوتی ہے اسی طرح اجازت کا ثبوت بدلالت فعل بھی ہوسکتا ہے جیسا بیع محض موقوف میں ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ میراث کی کتابیں وارثوں میں تقسیم نہ کی جائیں گی لیکن ہر واحد اس سے باری باری نفع حاصل کرسکتا ہے اور اگر کسی وارث نے چاہا کہ ورقوں سے ان کو تقسیم کر لے تو ایسا نہیں کرسکتا ہے اور نہ یہ بات اس کی طرف سے مسموع ہوگی اور کسی طرح سے یہ کتابیں تقسیم نہ کی جائیں گی اور اگر صندوق قرآن ہو تو بھی وارث کو ایسا اختیار نہ ہوگا اور اگر سب وارث راضی ہو گئے تو قاضی ایسا حکم نہ دے گا اور اگر تمام مصحف ایک کا ہو مگر اس میں سے تینتیس ۳۳ سہام میں سے ایک سہم دوسرے کا ہو تو دوسرے کو تینتیس ۳۳ روز میں ایک دن یہ مصحف دیا جائے گا تا کہ نفع حاصل کرے اسی طرح اگر ایک کتاب کی بہت سے جلدیں ہوں جیسے شرح مبسوط مثلاً تو بھی اس کی تقسیم نہ کی جائے گی اور اس کے تقسیم کی کوئی راہ نہیں ہے اور ہر جنس مختلف میں بھی یہی حکم ہے اور حاکم ایسی تقسیم کا باوجود سب کی رضامندی کے حکم نہ دے گا اور اگر باہم راضی ہوئے کہ کتاب کی قیمت اندازہ کرائی جائے پھر ایک اس میں بعض ٹکڑا تراضاً قیمت دے کر لے لے تو جائز ہے ورنہ جائز نہیں ہے یہ جواہر الفتاویٰ میں ہے تیمیہ میں لکھا ہے کہ شیخ علی بن

احمد سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص مر گیا اور اس نے نابالغ اولاد اور دو لڑکے بالغ اور ایک وارث چھوڑا اور کسی کو وصی مقرر نہیں کیا پھر قاضی نے دونوں بالغوں میں سے ایک کو وصی مقرر کر دیا پھر اس وصی نے اپنے اقرباء میں سے دو آدمیوں کو بلایا اور ان کے حضور میں ترکہ اس طرح تقسیم کر دیا کہ تمام کتابیں تو اپنے واسطے اور اپنے دوسرے بھائی بالغ کے واسطے لے لیں اور دار مذکور باقی دونوں نابالغ اولاد کے واسطے دونوں میں مشترک قرار دیا مگر پہلے ان کی قیمت اندازہ کرا کے تعدیل (برابر) کر لی ہے پس آیا ایسی قسمت جائز ہے تو شیخ نے فرمایا کہ اگر تقسیم کرنے والا عالم پرہیز گار ہو تو انشاء اللہ تعالیٰ جائز ہوگی۔ میں نے شیخ ابو حامد سے دریافت کیا کہ کیا باپ کو اختیار ہے کہ اپنے نابالغ فرزند کے ساتھ بٹوارہ کر لے تو فرمایا کہ ہاں اور شیخ علی بن احمد سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص نے چند لوگوں میں مشترک زمین سے حاضرین کا حصہ خریدا اور بعضے شریک غائب ہیں تو باوجود ان کے غائب ہونے کے یہ زمین کیونکر تقسیم کی جائے گی اور آیا مشتری کو اس زمین میں زراعت کرنے کی کوئی راہ ہے پس شیخ نے فرمایا کہ شریکوں یا بعض شریکوں کی غیبت میں اس زمین کی تقسیم جائز نہیں ہے لیکن اگر یہ زمین موروثی ہو تو قاضی شریک غائب کی طرف سے ایک وکیل مقرر کر دے گا تو البتہ تقسیم ہو سکتی ہے۔ رہی اس کی زراعت کرنا سو اگر قاضی کی رائے میں آیا کہ شریک مشتری کو پوری زمین کی زراعت کی اجازت دے دے تا کہ خراج ضائع نہ ہو تو قاضی کو ایسا اختیار ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے کوئی اپنی چیز فروخت کی اور بائع کی طرف سے مشتری کے واسطے ایک شخص نے ضمان درک قبول کر لی پھر ضامن مر گیا تو اس کا مال اس کے وارثوں میں تقسیم کیا جائے گا کیونکہ تقسیم سے کوئی مانع نہیں ہے اور اگر وارثوں میں سے ہر ایک نے اپنا حصہ فروخت کر دیا پھر میت پر ضمان درک لازم آئی تو وارثوں کی طرف لینے کے واسطے رجوع کر کے ان کی بیع توڑ دی جائے گی کیونکہ ایک روایت کے

موافق یہ مال ضمان بمنزلہ ایسے دین کے ہے جو مقارن موت ہو اور یہی روایت مختار ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔

---

۱ مقارن یعنی متصل موت اور مراد یہ کہ گویا مرض الموت کا قرضہ ہے تو لازم ہوگا۔

---

Fatawa Alamgiri, Volume (8), Page 256, Kitab al-Qisma (Book of Partition)

**Chapter Four:**

**Regarding things that are included under partition without being specifically mentioned and those that are not included.**

In the partition of lands, trees are included even if rights and appurtenances (huquq wa marafiq) are not mentioned, just as they are included in the sale of land. Crops and fruits are not included, even if rights are mentioned. Similarly, if appurtenances are mentioned instead of rights, then according to the 'Zahir al-Riwaya' (the manifest legal reports), crops and fruits will still not be included. If in the partition it is mentioned that "everything small or large that belongs to this land and is within it," and after this the phrase "whatever is among its rights" is used, then crops and fruits will not be included. However, if the phrase "whatever is among its rights" is used in a specific legal context, they may be included. Any goods or movable property kept on that land shall not be included under any circumstances. Regarding whether the right of irrigation (shurb) and right of way (tariq) are included in a partition without the specific mention of rights: Hakim al-Shahid (RH) mentioned in his 'Mukhtasar' that both are included. Imam Muhammad (RH) also mentioned this in another place in 'al-Asl' in 'Kitab al-Qisma'. He stated that if a piece of land is inherited jointly by several people and they partition it among themselves without a judge's (Qadi) order, and each person receives a separate plot (qarah), then each will have the right of irrigation, way, access to water, and whatever rights are established for it. The correct view, however, is that these two (way and irrigation right) are not included [unless explicitly mentioned]. This is stated in 'al-Muhit'. Suppose land is shared among three people, and they also jointly own some date trees in someone else's land. If they partition in such a way that two people take the land, and the third takes the aforementioned trees along with their roots, this is permissible because trees with their roots are legally analogous to a wall. It is established that if in a partition, a wall is designated as someone's share, it is permissible. The same applies to trees. If a partition is made on the condition that, for example, a certain plot of land and a tree are for Zaid, while the tree is actually located in another plot of land designated for Amr, and Khalid is designated the plot where the tree is situated; if Khalid then wants Zaid to remove the tree from his (Khalid's) share of land, he does not have that right. The aforementioned tree along with its roots belongs to Zaid because a tree is like a wall. It is known that by stipulating a wall in a partition, a person becomes entitled to the wall along with its foundation (asl). A tree is legally considered a "tree" as long as

it remains standing; once cut, it is merely timber. Therefore, to be entitled to the tree, it is necessary to be entitled to it with its roots. If Zaid himself cuts down the tree, he has the right to plant whatever tree he wishes in its place because Zaid is entitled to the specific area of land where the tree stood. If Khalid prevents Zaid from passing through his land to reach the tree, the partition will be invalid (fasid) because there is harm (darar) in such a partition, as no path was provided for Zaid to reach his property. But if it was stated regarding the trees in the partition that the tree is 'with every right established for it', then the partition would be valid and Zaid would have a right of way to reach his tree. This is as stated in 'al-Mabsut'. It should be further clarified that Imam Muhammad (RH) mentioned in the book that Zaid, in this partition, would be entitled to the tree with its roots (bekh), but did not specify the exact dimensions of the space for the roots. Some of our scholars (Mashaikh) stated that the amount of land included in the partition is that which was occupied by the roots on the day of partition. By roots, they meant those essential roots which, if severed, would cause the tree to perish. Shams al-Aimmah al-Sarakhsi (RH) inclined towards this view. Others stated that the amount of land included in the partition is...

(1) That plot, meaning the specific separate plot of land in which there are no trees.

फतवा-ए-आलमगीरी जिल्द (8) 256 किताबुल क़िस्मत

**चौथा अध्याय:**

## उन चीज़ों के बयान में जो बँटवारे (क़िस्मत) के अंतर्गत बिना ज़िक्र किए शामिल हो जाती हैं और जो शामिल नहीं होती हैं।

ज़मीन के बँटवारे में पेड़ शामिल हो जाते हैं, भले ही अधिकारों और सुविधाओं (हुक़ूक़-ओ-मराफ़िक़) का ज़िक्र न किया गया हो, ठीक वैसे ही जैसे वे ज़मीन की बिक्री में शामिल होते हैं। खेती और फल इसमें शामिल नहीं होते, चाहे अधिकारों का ज़िक्र ही क्यों न किया गया हो। इसी तरह, अगर अधिकारों के बजाय सुविधाओं का ज़िक्र किया गया हो, तब भी ज़ाहिर-अल-रिवायत के अनुसार खेती और फल शामिल नहीं होंगे। और यदि बँटवारे में यह ज़िक्र किया गया हो कि "जो कुछ भी कम या ज़्यादा इस ज़मीन में से है और इसमें है", तो इसके बाद अगर यह शब्द कहा गया कि "जो इसके अधिकारों में से है", तो खेती और फल शामिल नहीं होंगे। लेकिन अगर यह शब्द कहा गया कि "जो इसके अधिकारों में से है", तो खेती और फल शामिल हो जाएँगे। और जो सामान (मॉल-ओ-मताअ) उस ज़मीन में रखा हुआ हो, वह किसी भी स्थिति में शामिल नहीं होगा। जहाँ तक पानी के अधिकार (शुर्ब) और रास्ते (तरीक़) का सवाल है कि वे बँटवारे में अधिकारों के ज़िक्र के बिना शामिल होते हैं या नहीं, तो हाकिम शहीद (रह.) ने अपनी 'मुख़्तसर' में ज़िक्र किया है कि ये दोनों शामिल हो जाते हैं। और ऐसा ही इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'अस्ल' की 'किताबुल क़िस्मत' में दूसरी जगह ज़िक्र फ़रमाया है। चुनाँचे उन्होंने फ़रमाया कि अगर कोई ज़मीन कई लोगों के बीच पैतृक साझा संपत्ति हो और उन्होंने बिना काज़ी के आदेश के आपस में बँटवारा कर लिया हो, और हर एक के हिस्से में एक अलग खेत (क़राह) आया हो, तो उसे उसका पानी का अधिकार, रास्ता और पानी की सबील (पहुँच) और जो भी अधिकार उसके लिए साबित हों, प्राप्त होंगे। और सही बात यह है कि ये दोनों (रास्ता और पानी का अधिकार) शामिल नहीं होते हैं। यह 'मुहीत' में है। तीन आदमियों में एक ज़मीन साझा है, और किसी दूसरे की ज़मीन में उन्हीं लोगों के कुछ खजूर के पेड़ साझा हैं। उन्होंने इस तरह बँटवारा किया कि दो आदमियों ने ज़मीन ले ली और तीसरे ने वे पेड़ अपनी जड़ों समेत ले लिए, तो यह जायज़ है। क्योंकि जड़ों समेत पेड़ दीवार की तरह होते हैं। और यह ज्ञात है कि अगर बँटवारे में किसी एक के हिस्से में दीवार तय कर दी जाए, तो वह जायज़ है। इसी प्रकार पेड़ों के मामले में भी जायज़ है। और अगर इस शर्त पर बँटवारा किया गया कि, उदाहरण के लिए, ज़ैद के लिए यह ज़मीन का टुकड़ा और यह पेड़ है, जबकि यह पेड़ दूसरे ज़मीन के टुकड़े में स्थित है, और अमर के लिए वह ज़मीन का टुकड़ा और

खालिद के लिए वह ज़मीन का टुकड़ा तय किया गया जिसमें उक्त पेड़ स्थित है, तो खालिद ने चाहा कि ज़ैद मेरे ज़मीन के हिस्से से अपना पेड़ काट ले, तो उसे ऐसा अधिकार नहीं है। और उक्त पेड़ अपनी जड़ समेत ज़ैद का रहेगा, क्योंकि पेड़ दीवार के समान है। और यह ज्ञात है कि बँटवारे में दीवार के नाम से शर्त रखने पर वह व्यक्ति दीवार का उसकी नींव (अस्ल) समेत हकदार होता है। और यह पेड़ भी तभी तक पेड़ कहलाएगा जब तक उसे काटा न जाए। लेकिन काटने के बाद वह पेड़ नहीं बल्कि लकड़ी का लट्ठा है। इसलिए पेड़ का हकदार होने के लिए ज़रूरी है कि वह जड़ समेत उसका हकदार हो। और अगर ज़ैद ने उस पेड़ को खुद काट दिया, तो ज़ैद को अधिकार होगा कि वह उसकी जगह पर जो चाहे पेड़ लगाए, क्योंकि उक्त ज़मीन में से उतनी जगह का जहाँ पेड़ था, ज़ैद हकदार है। अगर खालिद ने ज़ैद को अपनी ज़मीन से होकर पेड़ तक जाने से रोका, तो बँटवारा अवैध (फ़ासिद) होगा क्योंकि इस बँटवारे में नुकसान है, क्योंकि ज़ैद के लिए अपने पेड़ तक पहुँचने का कोई रास्ता नहीं छोड़ा गया है। लेकिन अगर बँटवारे में पेड़ के बारे में यह कहा गया हो कि 'पेड़ अपने हर उस अधिकार के साथ जो उसे प्राप्त है', तो बँटवारा जायज़ होगा और ज़ैद को अपने पेड़ तक पहुँचने का रास्ता मिलेगा। जैसा कि 'मबसूत' में है। फिर यह स्पष्ट हो कि इमाम मुहम्मद (रह.) ने किताब में इस तरह ज़िक्र किया है कि ज़ैद इस बँटवारे में जड़ (बेख) समेत पेड़ का हकदार होगा, और यह ज़िक्र नहीं फ़रमाया कि जड़ की जगह की मात्रा कितनी है। हमारे कुछ उलेमा (मशाइख़) ने फ़रमाया कि बँटवारे में ज़मीन का उतना हिस्सा शामिल होगा जो बँटवारे के दिन जड़ों के नीचे था। और जड़ों से वे जड़ें मुराद हैं कि अगर उन्हें काट दिया जाए तो पेड़ सूख जाए। शम्स-उल-आइम्मा सरख़सी (रह.) का झुकाव भी इसी मत की ओर है। और कुछ ने फ़रमाया कि बँ؎वारे में उतनी ज़मीन शामिल होगी...

(1) वह टुकड़ा यानी वह विशेष टुकड़ा जिसमें कोई पेड़ नहीं है।

---

**باب چہارم:**

**ان چیزوں کے بیان میں جو قسمت کے تحت میں بلا ذکر داخل ہو جاتی ہیں اور جو نہیں داخل ہوتی ہیں**

اراضی کی تقسیم میں درخت داخل ہو جاتے ہیں اگر چہ حقوق و مرافق کا ذکر نہ کیا ہو جیسا کہ اراضی کی بیع میں داخل ہوتے ہیں اور کھیتی و پھل داخل نہیں ہوتے یہ اگر چہ حقوق کا ذکر کیا ہو اسی طرح اگر بجائے حقوق کے مرافق کا ذکر کیا ہو تو بھی ظاہر الروایت کے موافق کھیتی و پھل داخل نہ ہوں گے اور اگر تقسیم میں یہ ذکر کیا کہ بہر قلیل و کثیر جو اس اراضی میں سے ہے اور اس میں ہے پس اگر اس کے بعد ہر لفظ کہا کہ جو اس کے حقوق میں سے ہے تو کھیتی و پھل داخل نہ ہوں گے اور اگر یہ لفظ کہا کہ جو اس کے حقوق میں سے ہے تو کھیتی و پھل داخل ہو جائیں گے اور جو متاع اس زمین میں رکھی ہوئی ہو وہ کسی حال میں داخل نہ ہو گی اور شرب و طریق آیا تقسیم میں بدون ذکر حقوق داخل ہوتے ہیں یا نہیں سو حاکم شہیدؒ نے اپنی مختصر میں ذکر فرمایا کہ یہ دونوں داخل ہو جاتی ہیں اور ایسا ہی امام محمدؒ نے اصل کی کتاب القسمۃ میں دوسرے مقام پر ذکر فرمایا ہے چنانچہ فرمایا کہ اگر کوئی زمین چند لوگوں میں موروثی مشترک ہو اس کو انہوں نے بدوں حکم قاضی باہم تقسیم کرلیا پس ہر ایک کے حصہ میں ایک قراح علیحدہ آئی تو اس کو اس کا شرب اور طریق اور پانی کی سبیل اور جو حق اس کے واسطے ثابت ہو حاصل ہو گا اور صحیح قول یہ ہے کہ یہ دونوں داخل نہیں ہوتے ہیں۔ یہ محیط میں ہے تین آدمیوں میں ایک زمین مشترک ہے اور کسی غیر کی زمین میں انہیں لوگوں کے کچھ درخت خرما مشترک ہیں اور ان

لوگوں نے اس طرح باہم تقسیم کئے کہ دو آدمیوں میں زمین لے لی اور تیسرے نے درختان مذکور مع اصول لے لئے تو یہ جائز ہے اس واسطے کہ جڑوں سمیت درخت بمنزلہ دیوار کے ہیں اور معلوم ہے کہ اگر تقسیم میں ایک کے حصہ میں دیوار قرار دی جائے تو جائز ہے پس ایسے ہی درختوں میں بھی جائز ہے اور اگر اس شرط سے تقسیم کی کہ مثلاً زید کے واسطے یہ قطعہ زمین اور یہ درخت ہے حالانکہ یہ درخت دوسرے قطعہ زمین میں واقع ہے اور عمرو کے واسطے وہ قطعہ زمین اور خالد کے واسطے وہ قطعہ زمین قرار دیا جس میں درخت مذکور واقع ہے پس خالد نے چاہا کہ زید میرے حصہ زمین میں سے اپنا درخت کاٹ لے تو ایسا اختیار نہیں رکھتا ہے اور درخت مذکور جڑ سمیت زید کا رہے گا کیونکہ درخت بمنزلہ دیوار کے ہے اور معلوم ہے کہ تقسیم میں دیوار کے نام سے شرط کرنے میں وہ شخص دیوار کو مع اصل (نیو) مستحق ہوتا ہے اور یہ درخت بھی جبھی تک درخت کہلائے گا جب تک قطع نہ کیا جائے مگر بعد قطع کر دینے کے وہ درخت نہیں بلکہ لکڑی کی بکی ہے پس درخت کے مستحق ہونے میں ضروری ہے کہ جڑ سمیت اس کا مستحق ہو اور اگر زید نے اس درخت کو خود قطع کیا تو زید کو اختیار ہو گا کہ اس کی جگہ پر جو درخت چاہے لگائے کیونکہ زمین مذکور میں سے اتنی جگہ کا جس میں درخت تھا زید مستحق ہے۔ اگر خالد نے زید کو اپنی زمین میں ہو کر درخت تک جانے سے منع کیا تو تقسیم فاسد ہو گی کیونکہ اس تقسیم میں ضرر ہے اس واسطے کہ زید کو اپنے درخت تک پہنچنے کی کوئی راہ نہیں رکھی گئی ہے لیکن اگر تقسیم میں درخت کے بارے میں یہ کہا گیا ہو کہ درخت مع ہر حق کے جو اس کو ثابت ہے تو تقسیم جائز ہو گی اور زید کو اپنے درخت تک پہنچنے کے واسطے راہ ملے گی کذا فی المبسوط ۔ پھر واضح ہو کہ امام محمدؒ نے کتاب میں یوں ذکر فرمایا کہ زید اس تقسیم میں بیخ سمیت درخت کا مستحق ہو گا اور یہ ذکر نہ فرمایا کہ جڑ کی جگہ کی مقدار کیا ہے اور ہمارے بعضے مشائخ نے فرمایا کہ تقسیم میں زمین سے اس قدر حصہ داخل ہو گا جو تقسیم

کے روز جڑوں کے مقابلے میں ہو اور جڑوں سے وہ جڑیں مراد لیں ہیں کہ اگر وہ قطع کر دی جائیں تو درخت خشک ہو جائے اور اسی قول کی طرف شمس الائمہ سرخسی نے میلان کیا ہے اور بعضوں نے فرمایا کہ تقسیم میں اس قدر زمین داخل ہو گی

(1) وہ قطعہ یعنی خاص قطعہ دیگر جس میں کوئی درخت نہیں ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 257 | Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

The thickness of the tree on the day of partition is what is referred to in the book, because it states that if the thickness of the tree increases, the landowner has the choice to trim the excess growth. This statement indicates that according to Imam Muhammad (RA), the land is considered to be of the extent corresponding to the tree's thickness on the day of partition. This is mentioned in 'Al-Zahiriyya'.

A few people partitioned shared agricultural land among themselves. One partner's share included a vineyard, an orchard, and houses. Whether or not they included the clause "with every right established for it" in the partition agreement, the partner will receive all trees and buildings in his share, but standing crops and fruits are not included. This is in 'Fatawa Qazi Khan'. If a village is a shared inheritance among several people and they partition it, and some receive fields with grain stored in them while others receive a vineyard, this is valid. This is in 'Al-Mabsut'. Several people shared a village, land, and an ancestral watermill. They partitioned it so that one share included the watermill and its canal, another included specific fields and houses, and a third also included specific fields. The partition was based on the agreement that every right established for a share belongs to the shareholder. The one who received the canal wished to pass through the other shareholder's land to reach his canal, but the landowner prohibited him. If the said canal is located within that land and there is no way to reach it without passing through the land, the landowner cannot prohibit him. However, if it is possible to reach the canal without entering the land (for example, the canal is separate from the land's boundary), then the canal owner cannot pass through the other shareholder's land. If the path to the canal lies in the land of a third party (other than the shareholders), that path will be included in the share of the canal owner in the partition, whether or not the mention of "rights" allows him to reach it without crossing that land. If they did not stipulate terms like "rights and easements" (huquq wa marafiq) and the path to the canal is in a third party's land, if the shareholder who received the canal cannot carve a path from his own portion, the partition is void (fasid), unless he was aware of this at the time of partition. If he can create a path through his own portion, it will not be void. If passage through the canal bed is possible—for example, if water flows through a certain spot and the person can go there—it will be ruled that he is capable of reaching the canal within his share, thus the partition is valid. If the canal is not open at any point, the partition is void; this is in 'Al-Zakheera'. If there are embankments (masnat) on both sides of the canal and the path is over them, the partition is valid,

and the person's path will be over those embankments, not through the other partner's land, even if rights were mentioned in the partition, because he can benefit by reaching the canal via the embankments. If the partners did not mention embankments in the partition and later the landowner and canal owner disagree, the embankments will belong to the canal owner so that he may deposit silt from the canal on them and walk over them. This is the opinion of Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA). Imam Abu Hanifa (RA) stated that there is no 'hareem' (protected perimeter) for a canal. If there is no right of way in partitioned land and the partners stipulated that he would have no path through that land, the same rule applies to date palm trees and general trees. If one shareholder's portion is located within another's land and they agreed that neither would have a path through the other's land, the ruling for this and for a canal is the same. If a canal emptied into a reed-bed (neestan), its owner would have...

---

1. The right of passage belongs to the canal owner, not the other.
2. Hareem: The necessary space around something for its maintenance, where no other person may interfere.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 257 | किताबुल क़िस्मत (बँटवारे की किताब)**

पेड़ की उतनी ही मोटाई मानी जाएगी जितनी बँटवारे के दिन थी और किताब में इसी की ओर इशारा किया गया है, क्योंकि किताब में कहा गया है कि यदि पेड़ की मोटाई बढ़ गई, तो ज़मीन के मालिक को यह अधिकार होगा कि वह बढ़ी हुई मोटाई को छाँट दे। यह कथन इस बात का प्रमाण है कि इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार ज़मीन उतनी ही मानी गई है जितनी बँटवारे के दिन पेड़ की मोटाई थी। यह 'ज़हीरिया' में उल्लेखित है।

कुछ लोगों ने साझा उपजाऊ भूमि को आपस में बाँट लिया और किसी हिस्सेदार के हिस्से में अंगूर का बाग, उपवन और घर आए। उन लोगों ने बँटवारे में यह शर्त लिखी हो या न लिखी हो कि "वह अपने सभी अधिकारों के साथ है जो उसे प्राप्त हैं", तो उस हिस्सेदार को उसके हिस्से में आए पेड़ और इमारतें तो मिलेंगी, लेकिन फसल और फल इसमें शामिल नहीं होंगे। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि कोई गाँव कई लोगों के बीच साझा विरासत हो और उन्होंने उसे आपस में बाँट लिया, जिसमें कुछ के हिस्से में खेत और खेतों के अंदर पड़ा अनाज आया और कुछ के हिस्से में अंगूर का बाग, तो यह वैध है। यह 'मबसूत' में है। कुछ लोगों के बीच एक गाँव, ज़मीन और पुश्तैनी पनचक्की साझी थी। उन्होंने उसे आपस में बाँट लिया, जिससे एक के हिस्से में पनचक्की और उसकी नहर आई, दूसरे के हिस्से में कुछ ज्ञात खेत और घर आए, और तीसरे के हिस्से में भी कुछ ज्ञात खेत आए। बँटवारा इस समझौते के साथ हुआ कि हर अधिकार के साथ जो उसे प्राप्त है, हिस्सेदार को मिलेगा। अब जिसके हिस्से में नहर आई, वह चाहता है कि दूसरे हिस्सेदार की ज़मीन से होकर अपनी नहर तक जाए, लेकिन ज़मीन के मालिक ने उसे मना कर दिया। यदि उक्त नहर उसी ज़मीन के अंदर स्थित हो और बिना ज़मीन से गुज़रे नहर तक पहुँचना संभव न हो, तो ज़मीन का मालिक उसे नहीं रोक सकता। और यदि स्थिति ऐसी हो कि बिना ज़मीन में जाए नहर तक पहुँचा जा सके(उदाहरण के लिए, नहर ज़मीन की सीमा से अलग हो), तो नहर का मालिक दूसरे हिस्सेदार की ज़मीन से होकर नहीं जा सकता। यदि नहर का रास्ता हिस्सेदार के अलावा किसी तीसरे व्यक्ति की ज़मीन में हो, तो वह रास्ता बँटवारे में नहर वाले के हिस्से में शामिल हो जाएगा, चाहे 'अधिकारों' (हुक़ूक़) शब्द का उल्लेख करने से नहर वाला बिना उस ज़मीन में गए अपनी नहर तक पहुँच सकता हो या नहीं। और यदि उन्होंने बँटवारे में 'अधिकार और सुविधाओं' (हुक़ूक़ व मराफ़िक़) जैसे शब्दों की शर्त नहीं लगाई और स्थिति यह है कि नहर का रास्ता किसी बाहरी व्यक्ति की ज़मीन में है, तो यदि वह हिस्सेदार जिसके हिस्से में नहर आई है, अपने हिस्से से नहर का रास्ता नहीं निकाल सकता, तो बँटवारा अमान्य (फ़ासिद) होगा,

सिवाय उस स्थिति के जब वह बँटवारे के समय इससे अवगत हो। और यदि वह अपने हिस्से से रास्ता निकाल सकता है, तो बँटवारा अमान्य नहीं होगा। यदि नहर के तल (बैड) से गुज़रना संभव हो, उदाहरण के लिए पानी कहीं से रास्ता बनाता हो और वह व्यक्ति वहाँ जा सके, तो यह माना जाएगा कि वह अपने हिस्से में नहर तक जाने में सक्षम है, अतः बँटवारा वैध होगा। और यदि नहर किसी स्थान से खुली न हो, तो बँटवारा अमान्य होगा, यह 'ज़खीरा' में है। यदि नहर के दोनों ओर तटबंध (मस्नात) हों और रास्ता उन पर से हो, तो बँटवारा वैध होगा और उस व्यक्ति का रास्ता उसी तटबंध पर से होगा, न कि दूसरे साथी की ज़मीन से, भले ही बँटवारे में अधिकारों का उल्लेख किया गया हो, क्योंकि वह व्यक्ति तटबंध का उपयोग करके नहर तक पहुँच सकता है। और यदि साथियों ने बँटवारे में तटबंध का कोई उल्लेख नहीं किया, फिर ज़मीन के मालिक और नहर के मालिक के बीच विवाद हुआ, तो वह तटबंध नहर के मालिक का होगा ताकि वह उस पर नहर की मिट्टी डाल सके और उस पर चल सके। यह इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) का मत है। इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) ने कहा कि नहर के लिए कोई 'हरीम' (सुरक्षित क्षेत्र) नहीं होता। और यदि बँटवारे वाली ज़मीन में रास्ता न हो और साझा मालिकों ने यह शर्त लगाई हो कि इस ज़मीन में उसका रास्ता नहीं होगा, तो खजूर के पेड़ों और सामान्य पेड़ों के लिए भी यही नियम है। यदि एक हिस्सेदार का हिस्सा दूसरे की भूमि में स्थित हो और दोनों ने शर्त रखी हो कि एक को दूसरे की ज़मीन से रास्ता नहीं मिलेगा, तो इसका और नहर का नियम एक समान है। यदि एक नहर किसी नरकुल (नीस्तान) में गिरती थी, तो उसके मालिक को उसका...

---

1. आने-जाने का अधिकार नहर के मालिक को होगा, दूसरे को नहीं।
2. हरीम: उसके चारों ओर उतनी जगह जो उसके सुधार के लिए आवश्यक है, जहाँ दूसरा व्यक्ति हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

---

جس قدر تقسیم کے روز درخت کی موٹائی تھی اور اسی کی طرف کتاب میں اشارہ فرمایا ہے کیونکہ کتاب میں یوں فرمایا کہ اگر درخت کی موٹائی بڑھ گئی تو مالک زمین کو اختیار ہو گا کہ جس قدر بڑھی ہے اس قدر چھانٹ دے پس یہ قول اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ امام محمدؒ کے نزدیک زمین اسی قدر قرار دی ہے جس قدر تقسیم کے روز موٹائی تھی یہ ظہیر یہ میں ہے۔

چند لوگوں نے پیداواری کی زمین مشترک کو باہم تقسیم کرلیا اور کسی حصہ دار کے حصہ میں باغ انگور و بستان اور بیوت آئے اور ان لوگوں نے تقسیم میں یہ شرط کہ مع ہر حق کے جو اس کو ثابت ہے تحریر کی تھی یا نہیں تحریر کی تھی تو اس حصہ دار کو جو کچھ اس کے حصہ میں درخت و عمارت آئی ہے سب ملے گی مگر کھیتی و پھل اس میں داخل نہ ہوں گے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر کوئی گاؤں چند لوگوں میں میراث مشترک ہو اس کو ان لوگوں نے باہم تقسیم کیا پس بعض کے حصہ میں کھیت اور کھیتوں کے اندر پڑا ہوا غلہ آیا اور بعض کے حصہ میں باغ انگور آیا تو یہ جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ چند لوگوں میں ایک گاؤں اور زمین اور پن چکی موروثی مشترک تھی اس کو ان لوگوں نے باہم تقسیم کیا پس ایک کے حصہ میں پن چکی اور اس کی نہر آئی اور دوسرے کے حصہ میں کھیت معلومہ اور بیوت معلومہ آئے اور تیسرے کے حصہ میں بھی کچھ کھیت معلوم آئے اور باہم تقسیم اس قرارداد سے ہوئی کہ ہر حق کے ساتھ جو اس کو ثابت ہے حصہ دار کو ملے گی پس جس کے حصہ میں نہر آئی ہے اس نے چاہا کہ دوسرے حصہ دار کی زمین میں ہو کر اپنی نہر تک جائے مگر زمین والے نے اس کو منع کیا پس اگر نہر مذکور اس زمین کے اندر واقع ہو اور بدون زمین میں ہو کر جانے کے کسی طرح نہر تک نہ پہنچ سکے تو زمین کا مالک اس کو منع نہیں کر سکتا ہے اور اگر اس طرح واقع ہو کہ بدون زمین میں جانے

کے نہر تک پہنچ سکتا ہو۔ مثلاً نہر مذکور حد زمین سے یک سو ہو تو نہر کا مالک دوسرے حصہ دار کی زمین میں ہو کر نہیں جاسکتا ہے۔ اگر نہر مذکور کا راستہ حصہ دار کے سوائے کسی غیر کی زمین میں ہو تو وہ راستہ تقسیم میں نہر والے کے حصہ میں داخل ہو جائے گا خواہ لفظ حقوق ذکر کرنے سے نہر والا اپنی نہر تک بدون اس زمین میں جانے کے پہنچ سکتا ہو یا نہ پہنچ سکتا ہو اور اگر ان لوگوں نے تقسیم میں حقوق و مرافق وغیرہ ایسے الفاظ کی شرط نہ لگائی اور حال یہ ہے کہ نہر مذکور کا راستہ کسی غیر کی زمین میں ہے پس اگر وہ حصہ دار جس کے حصہ میں نہر آئی ہے اپنے حصہ سے اس نہر کا راستہ نہیں نکال سکتا ہے۔ تو تقسیم فاسد ہو گی اِلّا اس صورت میں کہ تقسیم کے وقت اس سے آگاہ ہو اور اگر اپنے حصہ میں سے اس کا راستہ نکال سکتا ہو تو جائز نہ ہوگی۔ اگر بطن نہر میں اس کا مرور (گزر) ممکن ہو مثلاً نہر مذکور کا پانی کسی جگہ سے رستہ ہوتا ہو اور اس جگہ یہ شخص جا سکتا ہو تو یوں قرار دیا جائے گا کہ یہ شخص اپنے حصہ میں نہر تک جانے پر قادر ہے پس تقسیم جائز ہوگی اور اگر کسی جگہ سے نہر کھلی نہ ہو تو تقسیم فاسد ہو گی یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر نہر کے دونوں جانب مسناۃ (کاریز) ہو کہ مسناۃ پر سے اس کا راستہ ہو تو تقسیم جائز ہوگی اور اس شخص کا راستہ اسی مسناۃ پر سے ہوگا نہ دوسرے شریک کی زمین سے اگر چہ تقسیم میں حقوق کا ذکر کیا ہو اس وجہ سے کہ یہ شخص مسناۃ پر سے ہو کر نہر تک پہنچ کر انتفاع حاصل کرسکتا ہے اور اگر شریکوں نے تقسیم میں مسناۃ کا کچھ ذکر نہ کیا پھر مالک زمین اور مالک نہر نے باہم اختلاف کیا تو یہ مسناۃ مالک نہر کی ہوگی کہ اس پر نہر کی مٹی ڈالے اور اس پر ہوکر چلے یہ امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کا قول ہے اور امام ابو حنیفہؒ نے فرمایا کہ نہر کے واسطے کچھ حریم ۲ نہیں ہوتا ہے اور اگر کسی زمین قسمت (منقسمہ) میں راستہ نہ ہو اور باہم شریکوں نے اس کے حصہ دار پر یہ شرط لگائی کہ اس زمین میں اس کا راستہ نہ ہوگا اور درخت خرماء عام درختوں میں بھی یہی حکم ہے۔ ایک حصہ

دار کا ایک حصہ دوسرے کی اراضی میں واقع ہو اور دونوں نے یہ شرط کر لی تھی کہ ایک کو دوسرے کی زمین میں ہو کر راستہ نہ ملے گا تو اس کا اور نہر کا حکم یکساں ہے۔ ایک نہر ایک نیستان میں گرتی تھی تو اس کے مالک کو اس

---

۱۔ آمد و رفت کا استحقاق نہر والے کو حاصل ہوگا دوسرے کو حاصل نہ ہوگا۔ ۲۔ حریم اس کے گرد اس قدر جگہ جو اس کی اصلاح کے واسطے ضروری ہے جہاں دوسرا شخص دخل نہیں کر سکتا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 258 | Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

...the right of flow will remain as it is; this is mentioned in Al-Mabsut.

**Reason for Disagreement between Imam Azam (RA), Imam Abu Yusuf (RA), and Imam Muhammad (RA) regarding the mentioned issue** ☆

If partners divide a joint house (Dar al-Mushtarak) and one person's portion includes a room (bait) containing pigeons: if they did not mention those pigeons along with the said room at the time of partition, the pigeons remain joint between them as before. If they were mentioned, and if these pigeons are such that they cannot be caught without hunting, the partition is invalid (fasid), because partition contains the essence of a sale (bay'). Selling pigeons that cannot be caught without hunting is invalid. However, if these pigeons can be caught without hunting, the partition is valid, because the sale of pigeons that can be caught without hunting is valid; hence, the partition is also valid. This applies when the partners partitioned at night when the pigeons were gathered in their nests. If they partitioned during the day after the pigeons had left their nests, the partition is invalid; this is in Fatawa Kubra.

If two people partition a joint house, where one takes a piece and the other takes another piece, and an external toilet and a balcony/projection (zullah) fall into the second person's portion: in this case, the partition is like a sale. That is, the external toilet will be included in the partition whether or not rights and easements (huquq wa marafiq) were mentioned. According to Imam Azam (RA), the projection will not be included without mentioning rights and easements, while according to Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA), it will be included, provided its entrance is within the house, regardless of whether rights and easements were mentioned. If the authorities (ahl-e-tariqa) demolish this projection, the partition will not be nullified, and the person cannot claim anything back from their partner; this is in Al-Mabsut.

If two people partition a joint vineyard and agree on an old path for one and a new path for the other, and there are trees on this new path: it should be seen whether they both agreed to assign the land area of the new path to him; if so, the trees also belong to him, because partition is like a sale, and trees are included in the sale of land. If they only assigned the right of passage to him, then the trees remain joint as before, because the land of the path has not become his property; this is in Muhit al-Sarakhsi.

If a house is joint between two people and they remove one door and keep it inside the house, then partition the house: this door will not be included in anyone's share without mention, just as in the case of a sale; this is in Al-Dhakhira. And a water tank (hawz) is not partitioned, whether it is "deh dar deh" (ten by ten cubits) or less; as stated in Khizanat al-Fatawa.

**Chapter Five: Regarding Revoking Partition and Casting Lots in Partition**

It should be known that a specific portion does not become the property of a specific partner merely through partition; rather, one of four things must occur after partition: either possession is taken, or there is a judge's (Qazi) decree, or the lot (qur'a) falls in their name, or the partners appoint an agent (wakil) to make a portion mandatory for each; this is in Al-Dhakhira. If the head of a goat is joint between two people and they make two equal parts of it... because the general public/experts have the authority to break/divide it, the first was considered non-existent, as mentioned in the Book of Sales (Kitab al-Buyu). In a "deh dar deh" tank, the rule of water cannot apply after partition; thus, the prohibition in "deh dar deh" is evident, but there was a possibility that it might not be so for a smaller one since it does not have the knowledge of previously flowing water, so it was clarified that the same rule applies to it as well.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 258 | किताबुल क़िस्मत (बँटवारे की किताब)**

...के बहाव का अधिकार यथावत रहेगा, यह अल-मबसूत में है।

## इमाम-ए-आज़म रह. और इमाम अबू यूसुफ़ रह. व इमाम मुहम्मद रह. के दरमियान उक्त मसले में मतभेद का कारण ☆

एक संयुक्त घर (दार-ए-मुश्तरक) को उसके साझेदारों ने आपस में बाँटा और एक के हिस्से में ऐसा कमरा (बैत) आया जिसमें कबूतर थे। यदि उन्होंने बँटवारे के समय उक्त कमरे के साथ उन कबूतरों का उल्लेख नहीं किया, तो ये कबूतर पहले की तरह उनमें संयुक्त रहेंगे। और यदि उल्लेख किया, तो यदि ये कबूतर ऐसे हों जिन्हें बिना शिकार किए पकड़ा न जा सके तो बँटवारा अमान्य (फ़ासिद) होगा क्योंकि बँटवारे में बिक्री (बैअ) के अर्थ मौजूद होते हैं। ऐसे कबूतरों की बिक्री जो बिना शिकार किए हाथ नहीं आ सकते, अमान्य है। और यदि ये कबूतर बिना शिकार किए हाथ आ सकते हों, तो बँटवारा वैध होगा क्योंकि ऐसे कबूतरों की बिक्री जो बिना शिकार के हाथ आ सकते हैं, वैध है; इसलिए बँटवारा भी वैध होगा। और यह सब उस समय है जब साझेदारों ने रात में उन कबूतरों के अपने घोंसलों में इकट्ठा होने के समय बँटवारा किया हो। और यदि दिन में उन कबूतरों के घोंसलों से निकल जाने के बाद बँटवारा किया हो, तो बँटवारा अमान्य होगा, यह फ़तावा कुबरा में है।

यदि दो व्यक्तियों ने एक संयुक्त घर को आपस में बाँटा, एक ने उस घर का एक टुकड़ा लिया और दूसरे ने दूसरा टुकड़ा, और दूसरे के हिस्से में एक बाहरी शौचालय और एक झरोखा (ज़िल्ला) आया, तो इस स्थिति में बँटवारा बिक्री की तरह है, यानी बाहरी शौचालय बँटवारे में शामिल हो जाएगा चाहे अधिकारों और सुविधाओं (हुक़ूक़ व मराफ़िक़) का उल्लेख किया गया हो या नहीं। और झरोखा इमाम-ए-आज़म रह. के अनुसार अधिकारों और सुविधाओं के उल्लेख के बिना शामिल नहीं होगा, और इमाम अबू यूसुफ़ रह. व इमाम मुहम्मद रह. के अनुसार शामिल हो जाएगा, बशर्ते कि उसका दरवाज़ा घर में हो, चाहे अधिकारों और सुविधाओं का उल्लेख हो या न हो। और यदि सक्षम लोगों (अहल-ए-तरीक़ा) ने इस झरोखे को तोड़ दिया, तो बँटवारा नहीं टूटेगा और वह व्यक्ति अपने साझेदार से कुछ वापस नहीं ले सकेगा, यह अल-मबसूत में है।

दो व्यक्तियों ने एक संयुक्त अंगूर के बाग़ को आपस में बाँटा और दोनों ने सहमति से एक के लिए पुराना रास्ता तय किया और दूसरे के लिए नया रास्ता रखा, और उस नए रास्ते पर कुछ पेड़ लगे हैं। तो देखना चाहिए कि यदि दोनों ने सहमति से नए रास्ते की भूमि उसके लिए तय की है, तो ये पेड़ भी

उसी के हो जाएंगे क्योंकि बँटवारा बिक्री के समान है और भूमि की बिक्री में पेड़ शामिल हो जाते हैं। और यदि दोनों ने केवल आवागमन का अधिकार उसके लिए तय किया हो, तो ये पेड़ पहले की तरह उनमें संयुक्त रहेंगे क्योंकि उक्त रास्ता उसकी मिल्कियत (स्वामित्व) नहीं बना है, यह मुहीत सरख़सी में है।

यदि एक घर दो व्यक्तियों में संयुक्त हो और दोनों ने उसका एक दरवाज़ा उखाड़कर उसी घर में रख दिया, फिर दोनों ने उस घर को आपस में बाँटा, तो यह रखा हुआ दरवाज़ा बिना उल्लेख के किसी के हिस्से में शामिल नहीं होगा जैसा कि बिक्री की स्थिति में होता है, यह अल-ज़ख़ीरा में है। और हौज़ का बँटवारा नहीं किया जाता चाहे वह 'दह-दर-दह' (दस गुणा दस) हो या उससे कम, जैसा कि ख़ज़ानतुल फ़तावा में है।

**अध्याय पाँच: बँटवारे से मुकरने और बँटवारे में पर्ची (क़ुरआ) डालने के वर्णन में**

यह जानना चाहिए कि केवल बँटवारे से कोई विशेष हिस्सा किसी विशेष साझेदार का स्वामित्व नहीं बन जाता है, बल्कि इसके लिए बँटवारे के बाद चार बातों में से किसी एक का होना भी आवश्यक है: या तो कब्ज़ा हो जाए, या काज़ी (न्यायाधीश) का आदेश हो, या पर्ची उसके नाम निकले, या साझेदार लोग एक वकील नियुक्त कर दें कि वह हर एक के लिए एक हिस्सा अनिवार्य कर दे, यह अल-ज़ख़ीरा में है। यदि एक बकरी का सिर दो व्यक्तियों में संयुक्त हो और दोनों ने उसके बराबर दो हिस्से किए... क्योंकि जानकारों को इसे तोड़ने का अधिकार है, इसलिए पहले को ही अनुपस्थित मान लिया गया है जैसा कि किताबुल बुयू (बिक्री की किताब) में बीत चुका है। 'दह-दर-दह' हौज़ में बँटवारे के बाद पानी का आदेश नहीं हो सकता, इसलिए पाबंदी 'दह-दर-दह' में स्पष्ट है, लेकिन संभावना थी कि शायद कम में ऐसा न हो क्योंकि वह पहले से बहते पानी का ज्ञान नहीं रखता, इसलिए स्पष्ट कर दिया गया कि इसमें भी यही आदेश है।

---

کے بہاؤ کا اختیار بحالہ رہے گا یہ مبسوط میں ہے۔

**امام اعظمؒ اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے درمیان مسئلہ مذکورہ میں وجہ اختلاف ☆**

ایک دار مشترک کے اس کے شریکوں نے باہم تقسیم کیا اور ایک کے حصہ میں ایسا بیت آیا جس میں کبوتر تھے پس اگر انہوں نے تقسیم کے وقت بیت مذکور کے ساتھ ان کبوتروں کو ذکر نہ کیا ہو تو یہ کبوتر بدستور سابق ان میں مشترک رہیں گے اور اگر ذکر کیا پس اگر یہ کبوتر ایسے ہوں کہ بدون شکار کے پکڑے نہ جاسکتے ہوں تو تقسیم فاسد ہوگی کیونکہ تقسیم میں بیع کے معنی موجود ہوتے ہیں۔ ایسے کبوتروں کی بیع جو بدون شکار کئے نہیں ہاتھ آسکتے ہیں فاسد ہے اور اگر یہ کبوتر بدون شکار کئے ہاتھ آسکتے ہیں تو تقسیم جائز ہوگی کیونکہ ایسے کبوتروں کی بیع جو بدون صید کے ہاتھ آسکتے ہیں جائز ہے پس تقسیم بھی جائز ہوگی اور یہ سب اس وقت ہے کہ جب شریکوں نے رات میں ان کبوتروں کے اپنے گھونسلے میں مجتمع ہونے کے وقت تقسیم کیا ہو اور اگر دن میں ان کبوتروں کے گھونسلوں سے نکل جانے کے بعد تقسیم کیا ہو تو تقسیم فاسد ہوگی یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ اگر دو شخصوں نے ایک دار مشترک کو باہم تقسیم کیا پس ایک نے دار مذکور کا ایک ٹکڑا لیا اور دوسرے نے دوسرا ٹکڑا لیا اور دوسرے کے حصہ میں ایک باہری پائخانہ اور ایک ظلہ (جھروکہ) آیا تو تقسیم اس صورت میں مثل بیع کے ہے یعنی باہری پائخانہ تقسیم میں داخل ہو جائے گا خواہ حقوق و مرافق کا ذکر کیا ہو یا نہ کیا ہو اور ظلہ امام اعظمؒ کے نزدیک بدون ذکر حقوق و مرافق کے داخل نہ ہوگا اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک داخل ہوجائے گا بشرطیکہ اس کا دروازہ دار میں ہو خواہ حقوق و مرافق کا ذکر کیا ہو یا نہ کیا ہو

اور اگر اہل طریقہ نے یہ ظلہ توڑ ڈالا تو تقسیم نہ ٹوٹے گی اور یہ شخص اپنے شریک سے کچھ واپس نہ لے سکے گا یہ مبسوط میں ہے۔ دو شخصوں نے مشترک باغ انگور کو باہم تقسیم کیا اور دونوں نے باتفاق قدیمی راستہ ایک کے واسطے قرار دیا اور نیا راستہ دوسرے کے واسطے رکھا اور اس نئے راستے پر کچھ درخت لگے ہیں تو دیکھنا چاہئے کہ اگر باتفاق دونوں نے نئے راستہ کا رقبہ اس کے واسطے قرار دیا ہے تو یہ درخت بھی اسی کے ہو جائیں گے کیونکہ تقسیم بمنزلہ بیع کے ہے اور زمین کی بیع میں درخت داخل ہوجاتے ہیں اور اگر دونوں نے فقط آمد و رفت کا حق اس کے واسطے قرار دیا ہو تو یہ درخت بدستور سابق اس میں مشترک رہیں گے کیونکہ راستہ مذکور اس کی ملک نہیں ہوا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس کا ایک دروازہ اکھاڑ کر اسی دار میں رکھ دیا پھر دونوں نے اس دار کو باہم تقسیم کیا تو یہ دروازہ رکھا ہوا کسی کے حصہ میں بدون ذکر کے داخل نہ ہوگا جیسا کہ بیع کے صورت میں ہوتا ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور حوض تقسیم نہیں کیا جاتا خواہ وہ دہ دردہ ہو یا اس سے کم ہو۔ کذا فی خزانۃ الفتاویٰ۔

**باب پنجم: تقسیم سے رجوع کرنے اور تقسیم میں قرعہ ڈالنے کے بیان میں**

جاننا چاہیے کہ فقط تقسیم سے کوئی خاص حصہ کسی خاص شریک کی ملک نہیں ہو جاتا ہے بلکہ اس کے واسطے تقسیم کے بعد چار باتوں سے کسی ایک بات کا پایا جانا بھی ضروری ہوتا ہے یا تو قبضہ ہوجائے یا حکم قاضی ہو یا قرعہ اس کے نام نکلے یا شریک لوگ ایک وکیل کر دیں کہ وہ ہر ایک کے واسطے ایک حصہ لازم کر دے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر کلہ بکری دو آدمیوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس کے برابر دو حصے کیے کیونکہ اہل طریق یعنی عام لوگوں کو اس کو توڑ ڈالنے کا اختیار ہے اسی واسطے پہلے ہی کو یا معدوم قرار دیا گیا ہے وقد مر فی کتاب البیوع۔ حوض دہ دردہ میں بعد تقسیم کے پانی کا حکم نہیں ہو سکتا ہے پس امتناع دہ دردہ میں ظاہر

ہے مگر احتمال تھا کہ شاید کم میں ایسا نہ ہو کہ وہ سابق سے علم آب جاری نہیں رکھتا ہے پس تصریح کر دی کہ اس میں بھی یہی حکم ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8), Page 259, Kitab-al-Qisma (Book of Partition/ Division)**

The portions were made and lots were drawn. A portion fell to one person and another portion fell to the second person. Subsequently, if one of them felt regretful and wished to withdraw from the division, he cannot do so because the division became final upon the drawing of lots and the emergence of the shares. Similarly, if both parties agreed to a division conducted by a third party, and that person distributed the shares without any deficiency in making them equal, and then drew lots in their names, the share assigned to each person's name becomes mandatory for them; this is recorded in 'Al-Mabsut'. If there are three partners and a lot has been drawn for one name, then each of the three has the right to withdraw from this division. However, if lots have already been drawn for two names, then none of the three can withdraw if they wish. If there are four partners, until lots for three persons have emerged, each of the four has the option to withdraw from the division; this is recorded in 'Al-Muhit'.

If the divider (Qasim) is distributing based on the mutual consent of the partners, and after some shares are determined by lots, someone withdraws from this division, they have the right to do so. However, if all shares except one have already been drawn, then this rule of withdrawal does not apply. The right to withdraw after some shares are drawn exists because reliance on such a division depends on full mutual consent, and the emergence of only some shares does not constitute completion; thus, everyone has the right to withdraw before completion, as stated in 'Al-Nihayah'. If several people share common goats and, before separating their portions, the partners draw lots stating that whoever's name appears first will receive a certain number of goats, and they proceed similarly for others, this is not permissible. Furthermore, if camels, cows, and goats are shared in an inheritance, and they designate one portion for camels, one for cows, and one for goats, and then draw lots in this manner, it is not permissible; this is in 'Al-Muhit'. However, if there are camels, cows, and goats in an inheritance and they form one portion of camels, one of cows, and one of goats, and then draw lots on the condition that whoever receives the camels must give a specific amount of dirhams to the other two partners so they may divide it equally, then this is permissible; this is in 'Al-Mabsut'.

If a residence (house) is shared between two people and they agree on a division where one partner takes one-third from the rear of the property in exchange for his full right, and the other takes two-thirds from the front for his full right, then until the

boundaries are formally established, each has the choice to withdraw from this division. Verbal consent given before boundaries are set is not considered binding; consent is only valid once boundaries are established, as recorded in 'Al-Zakhirah'. Imam al-Natifī mentioned that drawing lots is of three kinds: First, to establish one's right while nullifying another's; such a lot is invalid. For instance, if a person tells his two slaves, "One of you is free," without specifying which one, and then draws lots, it is invalid. Second, drawing lots for the sake of heartfelt satisfaction (equity in treatment), which is permissible—such as drawing lots among wives before a journey to decide who accompanies him, or to determine the order of visitation. Third, drawing lots to establish the right of one among equal claimants against their counterpart to separate their rights; such a lot is permissible, as stated in 'Fatawa Qazi Khan'. When drawing lots among partners, one should say: "Whoever's lot comes out first among the partners, I will give him a portion from this side, and whoever's name follows, I will give him the portion adjacent to the first one," as stated in 'Sharh al-Tahawi'.

**Chapter Nine: Regarding the Option (Khiyar) in Partition** Partition is of three types: one is a division where a person who refuses is not compelled, such as the division of heterogeneous goods (different types of commodities).

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) पृष्ठ 259, किताब-उल-क़िस्मत (बँटवारे की किताब)**

टुकड़े किए फिर क़ुरआ डाला (पर्चियाँ डालीं), एक के हिस्से में एक टुकड़ा आया और दूसरे के हिस्से में दूसरा टुकड़ा आया, फिर दोनों में से एक ने पछताकर बँटवारे से पीछे हटना चाहा, तो वह ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि क़ुरआ निकलने और हिस्सा साफ़ होने पर बँटवारा पूरा हो गया है। इसी तरह यदि दोनों किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा किए गए बँटवारे पर सहमत हुए और उसने हिस्से बाँटे और बराबर हिस्सा लगाने में कोई कमी नहीं की, फिर दोनों के नाम का क़ुरआ डाला तो प्रत्येक पर उसके नाम का हिस्सा अनिवार्य हो गया, यह 'मबसूत' में है। और यदि साझेदार तीन व्यक्ति हों और एक के नाम का क़ुरआ निकल चुका हो, तो उन तीनों में से हर एक को इस बँटवारे से पीछे हटने का अधिकार है, और यदि दो के नाम का क़ुरआ निकल चुका हो, फिर उन तीनों में से किसी ने पीछे हटना चाहा तो वह नहीं हट सकता। और यदि साझेदार चार व्यक्ति हों, तो जब तक तीन व्यक्तियों के नाम का क़ुरआ न निकल आए, तब तक चारों में से प्रत्येक को बँटवारे से पीछे हटने का अधिकार है, यह 'मुहीत' में है।

यदि क़ासिम (बाँटने वाला) साझेदारों की आपसी सहमति से बाँट रहा हो और क़ुरआ के माध्यम से कुछ हिस्से निकलने के बाद किसी ने इस बँटवारे से पीछे हटना चाहा, तो उसे अधिकार है; लेकिन यदि एक के अलावा बाकी सभी हिस्से निकल चुके हों और फिर पीछे हटना चाहे तो यह आदेश लागू नहीं होगा। कुछ हिस्से निकलने के बाद पीछे हटने का अधिकार इसलिए है क्योंकि ऐसे बँटवारे आदि का भरोसा उनकी पूरी आपसी सहमति पर होता है, और कुछ हिस्से निकलने से कार्य पूरा नहीं होता, अतः प्रत्येक को कार्य पूरा होने से पहले पीछे हटने का अधिकार है, जैसा कि 'अन्-निहाया' में है। और यदि कुछ लोगों में बकरियाँ साझा हों और उनके हिस्से निकालने से पहले साझेदारों ने क़ुरआ डाला कि जिसके नाम का पहला पर्चा निकलेगा उसे इतनी बकरियाँ गिन कर देंगे, और इसी तरह एक के बाद दूसरे के लिए करते जाएँगे, तो यह जायज़ (मान्य) नहीं है। और यदि विरासत में ऊँट, गाय और बकरियाँ साझा हों और उन्होंने ऊँटों का एक हिस्सा, गायों का एक हिस्सा और बकरियों का एक हिस्सा तय किया और फिर क़ुरआ डाला, तो यह जायज़ नहीं है, यह 'मुहीत' में है। यदि विरासत में ऊँट, गाय और बकरियाँ हों और उन्होंने ऊँट का एक हिस्सा, गाय का एक हिस्सा और बकरियों का एक हिस्सा बनाया, फिर आपस में इस शर्त पर क़ुरआ डाला कि जिसके हिस्से में ऊँट आएँगे वह इतने दिरहम अपने दोनों साझेदारों को देगा ताकि वे उसे बराबर-बराबर बाँट लें, तो यह जायज़ है, यह 'मबसूत' में है।

यदि एक मकान दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और दोनों ने इस समझौते पर बँटवारा किया कि एक साझेदार उस मकान के पिछले हिस्से में से एक-तिहाई अपने पूरे हक़ के बदले ले ले और दूसरा उस मकान के अगले हिस्से में से दो-तिहाई अपने पूरे हक़ के बदले ले ले, तो जब तक दोनों के बीच सीमाएँ तय न हो जाएँ, तब तक दोनों में से प्रत्येक को इस बँटवारे से पीछे हटने का अधिकार है, और सीमाएँ तय होने से पहले उनकी मौखिक सहमति मान्य नहीं है; सहमति तभी मान्य होगी जब सीमाएँ स्थापित हो जाएँ, यह 'ज़खीरा' में है। इमाम नातिफ़ी (रह.) ने उल्लेख किया है कि क़ुरआ डालना तीन प्रकार का होता है: पहला यह कि जिसके नाम क़ुरआ निकले उसका हक़ साबित हो जाए और दूसरे का हक़ समाप्त हो जाए, ऐसा क़ुरआ अमान्य है। जैसे यदि किसी व्यक्ति ने अपने दो गुलामों से कहा कि तुम दोनों में से एक आज़ाद है, मगर उसे निश्चित नहीं किया, फिर यदि क़ुरआ डाले तो यह अमान्य है। दूसरा, मन की प्रसन्नता के लिए क़ुरआ डालना, और यह जायज़ है, जैसे यात्रा के समय अपनी पत्नियों के बीच क़ुरआ डालना कि जिसके नाम का पर्चा निकलेगा उसे साथ ले जाएगा, या बारी तय करने के लिए कि किस पत्नी के पास पहले जाएगा। तीसरा प्रकार इसलिए होता है कि समान हकदारों में एक का हक़ उसके प्रतिद्वंद्वी के मुक़ाबले में साबित किया जाए ताकि दोनों में से एक का हक़ अलग कर दिया जाए, और ऐसा क़ुरआ जायज़ है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। जब साझेदारों के बीच क़ुरआ डालना हो, तो इस प्रकार कहना चाहिए कि साझेदारों में से जिसका क़ुरआ पहले निकलेगा, उसे इस तरफ़ से हिस्सा दूँगा और उसके बाद जिसका नाम निकलेगा, उसे पहले वाले के हिस्से के बगल में हिस्सा दूँगा, जैसा कि 'शरह अल-तहावी' में है।

**अध्याय नौ: बँटवारे में विकल्प (ख़यार) के वर्णन में** बँटवारा तीन प्रकार का होता है: एक ऐसा बँटवारा जिसमें मना करने वाले पर दबाव नहीं डाला जाता, जैसे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं (अजनास-ए-मुखतलिफ़ा) का बँटवारा।

---

ٹکڑے کیے پھر قرعہ ڈالا پس ایک کے حصہ میں ایک ٹکڑا آیا اور دوسرے کے حصہ میں دوسرا ٹکڑا آیا پھر دونوں میں سے ایک نے نادم ہو کر تقسیم سے رجوع کرنا چاہا تو رجوع نہیں کر سکتا ہے کیونکہ قرعہ نکلنے اور حصہ برآمد ہونے پر قسمت تمام ہوگئی ہے۔ اس طرح اگر دونوں کسی تیسرے شخص کی تقسیم پر راضی ہوئے اور اس نے حصہ بانٹ کیا اور برابر حصہ لگانے میں کچھ قصور نہ کیا پھر دونوں کے نام قرعہ ڈالا تو ہر ایک پر اس کے نام کا حصہ لازم ہو گیا یہ مبسوط میں ہے اور اگر شریک تین آدمی ہوں اور ایک کے نام قرعہ نکل چکا ہو تو تینوں میں سے یہ ایک کو اس تقسیم سے رجوع کرنے کا اختیار ہے اور اگر دو کے نام قرعہ نکل چکا ہو پھر ان تینوں میں سے کسی نے رجوع کرنا چاہا تو رجوع نہیں کر سکتا ہے اور اگر شریک چار آدمی ہوں تو جب تک تین آدمیوں کے نام قرعہ برآمد نہ ہو تب تک چاروں میں سے ہر ایک کو تقسیم سے رجوع کرنے کا اختیار ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر قاسم یعنی بانٹنے والا شریکوں کی باہمی رضامندی سے بانٹتا ہوا اور قرعہ سے بعض سہام برآمد ہونے کے بعد بعض نے اس تقسیم سے رجوع کیا تو اس کو اختیار ہے لیکن اگر سوائے ایک کے سب سہام برآمد ہو چکے ہیں۔ پھر رجوع کیا تو یہ حکم نہیں ہے اور بعض سہام برآمد ہونے کے بعد رجوع کا اختیار اس وجہ سے ہے کہ ایسی تقسیم وغیرہ کا اعتبار و اعتماد ان کی باہمی رضامندی پوری ہونے پر ہے اور بعض سہام کے برآمد ہونے سے اتمام نہیں ہوتا ہے پس ہر ایک کو قبل اتمام کے رجوع کا اختیار ہے کذا فی النہایہ اور اگر چند لوگوں میں بکریاں مشترک ہوں اور ان کے حصے نکالنے سے پہلے شریکوں نے قرعہ ڈالا کہ جس کے نام اولاً نکلے اس کو اس قدر بکریاں گن دیں گے اس طرح ایک بعد دوسرے کے سب کے واسطے ایسا ہی کرتے جائیں گے تو

یہ جائز نہیں ہے اور اگر میراث میں اونٹ اور گائے اور بکریاں مشترک ہوں پس انہوں نے اونٹوں کا ایک حصہ قرار دیا اور گائے کا ایک حصہ اور بکریوں کا ایک حصہ بنایا پھر اس طرح قرعہ ڈالا تو یہ جائز نہیں ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر میراث میں اونٹ اور گائے اور بکریاں ہوں پھر انہوں نے اونٹ کا ایک حصہ اور گائے کا ایک حصہ اور بکریوں کا ایک حصہ بنایا پھر باہم قرعہ ڈالا اس شرط سے کہ جس کے حصہ میں اونٹ آئیں وہ اس قدر درہم اپنے دونوں شریکوں کو دے کہ وہ نصفا نصف تقسیم کر لیں تو یہ جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہو پھر دونوں نے اس قرار داد سے تقسیم کیا کہ ایک شریک اس دار کا مؤخر میں سے تہائی اپنے پورے حق کے عوض لے لے اور دوسرا اس دار کا مقدم دو تہائی اپنے پورے حق میں لے لے تو جب تک دونوں میں حدود قائم نہ ہو جائیں تب تک دونوں میں سے ہر ایک کو اس تقسیم سے رجوع کا اختیار ہے اور قبل حدود قائم ہونے کے دونوں کی قولی رضامندی کا اعتبار نہیں ہے اور اس رضامندی کا اعتبار جبھی ہوگا کہ جب حدود قائم ہو جائیں یہ ذخیرہ میں ہے۔ امام ناطفیؒ نے ذکر فرمایا کہ قرعہ ڈالنا تین طرح کا ہوتا ہے اس واسطے کہ جس کے نام قرعہ نکلے اس کا حق ثابت ہو جائے اور دوسرے کا حق باطل ہو جائے اور ایسا قرعہ باطل ہے چنانچہ اگر ایک شخص نے اپنے دو غلاموں سے کہا کہ تم دونوں میں سے ایک آزاد ہے مگر اس ایک کو معین نہ کیا پھر اگر قرعہ ڈالا تو یہ باطل ہے اور دوم طیب خاطر کے واسطے قرعہ ڈالنا اور یہ جائز ہے جیسے کہ سفر کے وقت اپنی بیویوں میں قرعہ ڈالنا کہ جس کے نام نکلے اس کو ساتھ لے جائے یا باری کے واسطے کہ کس جورو کے پاس پہلے پہل جاکر سوئے اور سوئم اس واسطے ہوتا ہے کہ برابر حقداروں میں ایک کا حق اس کے دوسرے مقابل کے مقابلہ میں ثابت کرنے کے واسطے تاکہ دونوں میں سے ایک کا حق جدا کر دے اور ایسا قرعہ جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ جب شریکوں میں قرعہ ڈالنا چاہیے کہ یوں کہہ دے کہ شریکوں میں سے جس کا قرعہ پہلے نکلے گا

اس کو اس جانب سے حصہ دوں گا اور اس کے پیچھے جس کا نام نکلے گا اس کو پہلے کے حصہ کے پہلو میں دوں گا کذا فی شرح طحاوی۔

**باب نہم: تقسیم میں خیار ہونے کے بیان میں** تقسیم تین طرح کی ہوتی ہے ایک ایسی تقسیم جس میں انکار کرنے والے پر جبر نہیں کیا جاتا ہے جیسے اجناسِ مختلفہ کی تقسیم۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) [260] Book of Division (Kitab al-Qisma)**

The second type of division is that in which the one who refuses can be compelled, as is the case with weighable and measurable (fungible/misli) items. The third type is that in which compulsion is applied to the one who refuses regarding non-fungibles (ghair-misli), such as clothes of one kind. There are three types of options (Khiyar): option of condition (Khiyar-e-Shart), option of defect (Khiyar-e-Aib), and option of sight (Khiyar-e-Ru'yat). In the division of different species (kinds), all these options are established. In fungibles like measurables and weighables, only the option of defect is established; the options of sight and condition are not. In non-fungibles, like one type of cloth, or cows, goats, etc., the option of defect is established in their division. Whether the options of condition and sight are also established or not, according to the narration of Abu Sulaiman, they are established, and this is correct, and the fatwa is based on this. This is recorded in 'Fatawa Sughra'.

Imam Muhammad (RA) mentioned in the book that regarding wheat, barley, and everything that is measured or weighed, I uphold the option of sight in their division. Our masters (Mashaikh) said that by mentioning wheat and barley, or saying measured and weighed, it is meant that they are in aggregate, and not each thing separately, so that the divided items become several different species. Thus, the division becomes such that the ruling of mutual consent is not its cause; therefore, the option of sight is established in it. If Imam Muhammad (RA) meant only wheat in one share or only barley in another share, then it would be interpreted as a situation where their quality differs—for example, some are hard and solid, some soft, some red, and some white—and both divided it in such a way that the ruling of mutual consent was not the cause. Or, it is interpreted as a case where the quality is the same, but one person's share has the wheat from the top of the pile and the other's from the bottom. It should be clear that the same rule applies to pieces of gold and silver, vessels of gold and silver, jewels and pearls, and all trade goods (arud), and the same rule applies to weapons and swords by weight. This is in 'Al-Muhit'. If two thousand dirhams are shared between two people, and each thousand is in one bag, and they divide it on the basis that each takes one bag, even though one of them had seen the entire amount and the other had not, then for the one who saw it, the division is valid, and neither will have an option. However, if the portion of the person who did not see the money turns out to be defective, he will have an option. If two people divided a house between themselves, and each saw the part and the floors that fell to his share from the outside but not from the inside, then neither would

have an option. Similarly, if they divided a garden and a vineyard, and one got the garden and the other the vineyard, and neither had seen what fell to his share, neither from above nor inside, nor had seen the date palms or other types of trees, but had seen the boundary wall from the outside, then neither would have an option. Seeing from outside is considered like seeing from inside. Similarly, seeing a part of the cloth in a folded bolt from the top is like seeing the entire bolt for the purpose of waiving the option. Thus it is stated in 'Al-Mabsut'.

Some of our masters said that Imam Muhammad's (RA) statement ("he did not see the date palms nor other types of trees") is interpreted to mean that he did not see the entire date palms or entire trees of other kinds, but only saw the tops of the trees and date palms. For if different species were not included... because the issue is based on this. I say that for the one who did not see, it is also valid. Perhaps this phrase has been dropped from the original text, meaning the division will be valid for both.

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) [260] किताबुल किस्मत (बंटवारे की किताब)**

दूसरा वह बंटवारा है जिसमें इनकार करने वाले को मजबूर किया जाता है, जैसे कि मापने (किली) और तोलने (वजनी) वाली चीजों, यानी 'मिस्ली' (एक जैसी) चीजों में होता है। और तीसरा ऐसा बंटवारा है जिसमें गैर-मिस्ली चीजों में इनकार करने वाले को मजबूर किया जाता है। जैसे एक ही प्रकार के कपड़े। 'खियारात' (विकल्प) तीन होते हैं: एक 'खियार-ए-शर्त' (शर्त का विकल्प), दूसरा 'खियार-ए-ऐब' (दोष का विकल्प), और तीसरा 'खियार-ए-रूयत' (देखने का विकल्प)। अतः विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बंटवारे में ये सभी विकल्प लागू होते हैं। 'मिस्ली' चीजों जैसे मापने और तोलने वाली वस्तुओं में 'खियार-ए-ऐब' लागू होता है, 'खियार-ए-रूयत' और 'खियार-ए-शर्त' लागू नहीं होते। गैर-मिस्ली वस्तुओं जैसे एक प्रकार के कपड़े, गाय, बकरी आदि के बंटवारे में 'खियार-ए-ऐब' लागू होता है। और क्या 'खियार-ए-शर्त' और 'खियार-ए-रूयत' भी लागू होते हैं या नहीं, तो अबू सुलेमान की रिवायत के अनुसार वे लागू होते हैं, और यही सही है, और इसी पर फतवा है। यह 'फतावा सुगरा' में है।

फिर इमाम मुहम्मद रह. ने किताब में इस तरह जिक्र फरमाया कि गेहूं, जौ और हर वह चीज जिसे मापा जाता है या तोला जाता है, ऐसी चीजों के बंटवारे में मैं 'खियार-ए-रूयत' को कायम रखता हूँ। हमारे मशाईख (उस्तादों) ने फरमाया कि गेहूं और जौ कहने से, और मापने और तोलने वाली कहने से यह मतलब है कि वे सब साथ हों, प्रत्येक चीज अकेली न हो, ताकि बंटवारा की जाने वाली वस्तुएं विभिन्न प्रकार की हो जाएं। अतः बंटवारा ऐसा हो जाए कि दोनों की रजामंदी का हुक्म इसका कारण न बने, इसलिए इसमें 'खियार-ए-रूयत' लागू हो। और अगर इमाम मुहम्मद रह. ने इससे अलग-अलग केवल गेहूं हिस्से में आना या केवल जौ हिस्से में आना मुराद लिया है, तो इसे ऐसी स्थिति माना जाएगा जब उसकी गुणवत्ता अलग हो, उदाहरण के लिए कुछ सख्त और ठोस हों और कुछ नरम हों, और कुछ लाल हों और कुछ सफेद हों, और दोनों ने उसे इसी तरह बांट लिया हो, यहाँ तक कि बंटवारा इस तरह हुआ कि दोनों की सहमति का हुक्म इसका कारण नहीं है। या इसे ऐसी स्थिति माना जाएगा कि उसकी गुणवत्ता तो एक ही जैसी है, लेकिन एक के हिस्से में ढेर के ऊपर का गेहूं आया और दूसरे के हिस्से में नीचे का आया। और यह स्पष्ट होना चाहिए कि यही नियम सोने के टुकड़ों और चांदी के टुकड़ों में है, और यही नियम चांदी और सोने के बर्तनों, जवाहरात और मोतियों में है, और यही नियम सभी व्यापारिक माल (अरुज) में है, और यही नियम वजन के हिसाब से हथियारों और तलवारों में है। यह 'मुहीत' में है। और अगर दो हजार दिरहम दो आदमियों में साझा

हों, और प्रत्येक हजार एक थैली में हो, फिर दोनों ने इस समझौते पर बंटवारा किया कि प्रत्येक ने एक थैली ले ली, जबकि दोनों में से एक ने सारा माल देखा था और दूसरे ने नहीं देखा था, तो जिसने देखा है उसके लिए बंटवारा जायज हो गया और इसमें दोनों में से किसी को भी विकल्प (खियार) नहीं होगा। लेकिन अगर उस व्यक्ति का हिस्सा जिसने माल नहीं देखा था, बेकार (खराब) निकले तो उसे विकल्प प्राप्त होगा। और अगर दो व्यक्तियों ने आपस में एक मकान का बंटवारा किया, जबकि दोनों में से प्रत्येक ने वह हिस्सा और वह मंजिल जो उसके हिस्से में आई है, बाहर से देखी थी लेकिन अंदर से नहीं देखी थी, तो दोनों में से किसी को भी विकल्प प्राप्त नहीं होगा। इसी तरह अगर दोनों ने एक बाग और अंगूर के खेत का आपस में बंटवारा किया, और एक के हिस्से में बाग आया और दूसरे के हिस्से में अंगूर का खेत आया, और जो कुछ जिसके हिस्से में आया उसे उसने नहीं देखा था, न बाहर से और न अंदर से, न उसने खजूर के पेड़ और न ही अन्य प्रकार के पेड़ देखे थे, लेकिन उसने चारदीवारी को बाहर से देखा था, तो दोनों में से किसी को विकल्प प्राप्त नहीं होगा। बाहर से देखना अंदर से देखने के समान माना जाएगा। इसी तरह कपड़े के तह किए हुए थान में ऊपर से कपड़े का कोई हिस्सा देख लेना, विकल्प खत्म होने के हक में पूरे थान को देखने के समान है। 'मबसूत' में ऐसा ही है।

हमारे कुछ मशाईख ने फरमाया कि इमाम मुहम्मद रह. के इस कथन की कि (न उसने खजूर के पेड़ और न अन्य प्रकार के पेड़ देखे), यह व्याख्या है कि उसने पूरे खजूर के पेड़ और पूरे अन्य प्रकार के पेड़ नहीं देखे बल्कि केवल पेड़ों और खजूर के पेड़ों की चोटियाँ देखी हैं, क्योंकि अगर उसमें विभिन्न प्रकार की कई चीजें शामिल न हुई हों... क्योंकि इसी आधार पर समस्या है। मैं कहता हूँ कि जिसने नहीं देखा उस पर भी (बंटवारा) जायज है। शायद यह इबारत मूल पाठ से छूट गई हो, यानी बंटवारा दोनों पर जायज होगा।

---

دوسری وہ تقسیم جس میں انکار کرنے والے پر جبر کیا جاتا ہے جیسے کیلیات ووزنیات یعنی مثلی چیزوں میں ہوتا ہے اور تیسری ایسی تقسیم جس میں غیر مثلیات میں انکار کرنے والے پر جبر کیا جاتا ہے۔ جیسے ایک قسم کے کپڑے اور خیارات تین ہوتے ہیں ایک خیار شرط، دوسرا خیار عیب، اور تیسرا خیار رویت۔ پس اجناس مختلفہ کی تقسیم میں یہ سب خیارات ثابت ہوتے ہیں اور مثلیات مثل مکیلات و موزونات میں خیار عیب ثابت ہوتا ہے خیار رویت و خیار شرط ثابت نہیں ہوتا ہے اور غیر مثلیات جیسے ایک قسم کے کپڑے اور گائے اور بکری وغیرہ ان کی تقسیم میں خیار عیب ثابت ہوتا ہے اور آیا خیار شرط و خیار رویت بھی ثابت ہوتا ہے یا نہیں سو موافق روایت ابوسلیمانؒ کے ثابت ہوتا ہے اور یہی صحیح ہے اور اسی پر فتویٰ ہے یہ فتاویٰ صغریٰ میں ہے۔

پھر امام محمدؒ نے کتاب میں یوں ذکر فرمایا کہ گیہوں اور جو اور ہر چیز جو کیل کی جاتی ہے اور ہر چیز جو وزن کی جاتی ہے ایسی چیزوں کی تقسیم میں خیار رویت ثابت رکھتا ہوں اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ گیہوں اور جو کہنے سے اور کیل اور موزوں کہنے سے یہ مراد ہے کہ دونوں بالجموع ہوں ہر ایک چیز تنہا نہ ہو تا کہ مقسوم چند اجناس مختلفہ ہو جائیں پس تقسیم ایسی تقسیم ہو جائے کہ دونوں کی رضا مندی کا حکم اس کا موجب نہ ہو پس اس میں خیار رویت ثابت ہو اور اگر امام محمدؒ نے اس سے الگ الگ فقط گیہوں حصہ میں آتا یا جو حصہ میں آتا مراد لیا ہے تو ایسی صورت پر محمول ہو گی کہ جب اس کی صفت مختلف ہو مثلاً بعض سخت و ٹھوس ہو اور بعض نرم ہو اور بعض سرخ اور بعض سپید ہو اور دونوں نے اس کو اسی طرح تقسیم کر لیا حتیٰ کہ تقسیم ایسی وجہ پر واقع ہوئی کہ دونوں کی تراضی کا حکم اس کا موجب نہیں ہے یا ایسی صورت پر محمول ہے کہ اس کی صفت تو ایک ہی طرح کی ہے لیکن ایک کے حصہ میں ڈھیری

کے اوپر کے گیہوں آئے اور دوسرے کے حصہ میں نیچے کے آئے اور واضح ہو کہ یہی حکم سونے کے ٹکڑوں اور چاندی کے ٹکڑوں میں ہے اور یہی حکم چاندی اور سونے کے برتنوں اور جواہرات و موتیوں میں ہے اور یہی حکم تمام عروض میں ہے اور یہی حکم ہتھیاروں اور تلواروں وزن میں ہے۔ یہ محیط میں ہے اور اگر دو ہزار درہم دو آدمیوں میں مشترک ہوں اور ہر ہزار ایک تھیلی میں ہوں پس دونوں نے اس قرار داد پر تقسیم کیا کہ ہر ایک نے ایک تھیلی لے لی حالانکہ دونوں میں سے ایک نے تمام مال دیکھا تھا اور دوسرے نے اس کو نہیں دیکھا تو جس نے دیکھا ہے اس پر تقسیم جائز ہو گئی اور اس میں دونوں میں سے کسی کو خیار نہ ہو گا لیکن اگر اس شخص کا حصہ جس نے مال نہیں دیکھا ہے نا کارہ ہو تو اس کو خیار حاصل ہو گا اور اگر دو شخصوں نے ایک دار باہم تقسیم کیا حالانکہ دونوں میں سے ہر ایک نے وہ حصہ اور وہ منزل جو اس کے حصہ میں آئی ہے اوپر سے دیکھی تھی مگر اندر سے نہیں دیکھی تھی تو دونوں میں سے کسی کا خیار حاصل نہ ہو گا۔ اسی طرح اگر دونوں نے بستان و کرم کو باہم تقسیم کیا پس ایک کے حصہ میں بستان آیا اور دوسرے کے حصہ میں کرم آیا اور جو کچھ جس کے حصہ میں آیا اس کو اس نے نہیں دیکھا تھا نہ اوپر سے اور نہ اندر سے نہ اس نے درخت خرما اور نہ اور قسم کے درخت دیکھے لیکن اس نے چار دیواری کو باہر سے دیکھا تھا تو دونوں میں سے کسی کو خیار حاصل نہ ہو گا اور اوپر سے دیکھنا مثل اندر کے دیکھنے کے قرار دیا جائے گا اس طرح کپڑے کے تہہ کیے تھان میں اوپر سے کپڑے کا کوئی جزو دیکھ لینا خیار ساقط ہونے کے حق میں مثل تمام تھان کے دیکھنے کے ہے کذا فی المبسوط

ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ امام محمدؒ کے اس قول کی کہ (نہ اس نے درخت خرما اور نہ اور قسم کے درخت دیکھے) یہ تاویل ہے کہ پورے درخت خرما اور پورے اور قسم کے درخت نہیں دیکھے بلکہ فقط درختوں اور درختانِ خرما کی چوٹیاں دیکھی ہیں کیونکہ اگر اس میں مختلف

قسم کے چند اجناس داخل نہ ہوارہ ہوئیں کیونکہ اسی بناء پر مدا مسئلہ ہے۔ میں کہتا ہوں کہ جس نے نہیں دیکھا اس پر بھی جائز ہے۔ شاید یہ عبارت اصل سے ساقط ہو گئی ہو یعنی تقسیم دونوں پر جائز ہو گی۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 261 | Kitab al-Qisma**

...[if he] has not even seen the tips of the trees, the Option of Inspection (Khiyar al-Ruyat) shall not be nullified, and the same is stated regarding a pure sale (Bay' Mahdh). Let it be clear that when the Option of Inspection is established in a contract of partition (Aqd al-Qisma), then whatever voids this option in a pure sale will also void it in a contract of partition. The Option of Defect (Khiyar al-Ayb) is established in both types of partition contracts. If any of the partners finds a defect in something belonging to their portion, then if they discover it before taking possession, they may return their entire portion, whether the partitioned item is a single unit or diverse items, as is the rule in a sale. If they discover it after taking possession, then if the partitioned item is something that is physically and legally a single unit (such as a single house) or legally a single unit but not physically (such as items measured by volume or weight), they shall have the option to return the entire portion, but will not have the option to return some and keep some, as is the rule in a pure sale. If the partitioned items are diverse, such as sheep, they shall return only the defective ones, as is the rule in a pure sale. Whatever voids the Option of Defect in a pure sale also voids it in partition. If one discovers a defect in a slave-girl[2] [received in partition] and takes service from her, then by way of Istihsan (juristic preference), they may return her. And if after discovering the defect, they continue to reside in [a house], they may also return it by way of Istihsan. However, if they continue to wear a garment or continue to ride an animal, or continue such actions after knowing the defect, then according to both Qiyas (analogy) and Istihsan, they cannot return them. In the case of a Conditional Option (Khiyar al-Shart), if one chooses to reside in a house during the option period or continues to reside there, Imam Muhammad (RA) stated in 'Kitab al-Buyu' that if the buyer resides in the sold house during the option period, their option is nullified. There can be two scenarios here: one is that the buyer initiates new residence during the option period, and the other is that they were already residing there and continued to do so during the option period. Imam Muhammad (RA) did not provide details for both. Among our senior jurists (Mashaikh), those who differentiated between these two scenarios in the issue of partition also differentiated between them in the Conditional Option and stated that initiating a new residence nullifies the Conditional Option, but if they were already residing and continued to do so, it is not nullified. There is no difference between these two contracts. And those among the Mashaikh who said that in partition the Option of Defect is not nullified either by initiating new residence or by continuing

residence, they say that the Conditional Option is nullified by both initiating and continuing residence; this is in 'Al-Muhit'.

If a partner sells the portion they received in partition without knowing of a defect, and then the buyer returns it due to that same defect: if they accepted it without a judge's (Qadi) order, they shall not have the right to rescind the partition. But if they accepted it by a judge's order, they shall have the right to rescind the partition and return it. Let it be clear that in this chapter, an order based on witness testimony or an order based on the refusal to take an oath are both equal; this is in 'Al-Mabsut'. If the aforementioned buyer demolished part of the house before becoming aware of the defect, they cannot return it due to the defect. However, they can claim compensation for the loss in value due to the defect, as is the rule in a pure sale. And it is stated that the seller shall not have the right to reclaim the compensation given to the buyer from the divider (Qasim); this rule was stated absolutely without mentioning any disagreement. Some of our Mashaikh stated that this rule mentioned here is only the opinion of Imam al-A'zam (RA). According to Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA), the rule is that he shall reclaim the compensation from the Qasim. Some Mashaikh stated that the rule mentioned in 'Kitab al-Qisma' is the unanimous opinion of all. However, the correct view is that by 'pure sale' (Bay' Mahdh)[1], a contract of pure commercial sale is intended, not one which implicitly contains the meaning of sale, such as a contract of partition, etc. i.e., the slave-girl from the portion.

1 By "pure sale", a contract of pure commercial sale is intended, not one which implicitly contains the meaning of sale, such as a contract of partition, etc. 2 i.e., the slave-girl from the portion.

...यदि उसने पेड़ों की टहनियों को भी नहीं देखा हो, तो 'खियार-ए-रुयत' (देखने का विकल्प) समाप्त नहीं होगा, और वे शुद्ध विक्रय (बै-ए-महज़) के बारे में भी यही कहते हैं। फिर यह स्पष्ट हो कि जब बंटवारे के अनुबंध (अक़्द-ए-क़िस्मत) में खियार-ए-रुयत सिद्ध हो गया, तो जिस चीज़ से शुद्ध विक्रय में यह विकल्प शून्य हो जाता है, उसी चीज़ से बंटवारे के अनुबंध में भी यह शून्य हो जाएगा। खियार-ए-ऐब (दोष का विकल्प) बंटवारे के दोनों प्रकारों में सिद्ध होता है। यदि किसी साझीदार ने अपने हिस्से की किसी चीज़ में कोई दोष पाया, तो यदि उसने क़ब्ज़ा करने से पहले जान लिया, तो वह अपना पूरा हिस्सा वापस कर सकता है, चाहे वह विभाजित वस्तु एक हो या विभिन्न वस्तुएँ हों, जैसा कि विक्रय में नियम है। और यदि क़ब्ज़ा करने के बाद जाना, तो यदि विभाजित वस्तु ऐसी है जो भौतिक और कानूनी रूप से एक है (जैसे एक घर) या कानूनी रूप से एक है (जैसे मापने या तोलने वाली वस्तुएँ), तो उसे पूरा हिस्सा वापस करने का अधिकार होगा, और उसे कुछ वापस करने और कुछ रखने का अधिकार नहीं होगा, जैसा कि शुद्ध विक्रय में नियम है। यदि विभाजित वस्तुएँ भिन्न हों (जैसे भेड़ें), तो वह केवल दोषपूर्ण को वापस कर सकता है, जैसा कि शुद्ध विक्रय में नियम है। जिस कार्य से शुद्ध विक्रय में खियार-ए-ऐब शून्य हो जाता है, उससे बंटवारे में भी शून्य हो जाता है। यदि एक दासी[2] में दोष पाने के बाद उससे सेवा ली, तो इस्तेहसान के आधार पर उसे वापस कर सकता है। और यदि दोष पाने के बाद भी उसमें समान रूप से रहता रहा, तो उसे भी इस्तेहसान के आधार पर वापस कर सकता है। परंतु यदि कपड़े को पहनता रहा या पशु पर सवारी करता रहा, या दोष जानने के बाद ऐसा करना जारी रखा, तो क़यास (तर्क) और इस्तेहसान दोनों के अनुसार वह इन्हें वापस नहीं कर सकता। 'खियार-ए-शर्त' (शर्त के विकल्प) की स्थिति में यदि उसने विकल्प की अवधि के दौरान घर में निवास करना चुना या निवास करता रहा, तो इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'किताबुल बुयूं' में फ़रमाया है कि यदि क्रेता ने विकल्प की अवधि में घर में निवास किया, तो उसका विकल्प समाप्त हो जाएगा। इसमें दो स्थितियाँ हो सकती हैं: एक यह कि क्रेता ने विकल्प की अवधि में नया निवास शुरू किया, और दूसरी यह कि वह पहले से ही उसमें रह रहा था और विकल्प की अवधि में भी रहना जारी रखा। इमाम मुहम्मद (रह.) ने इन दोनों का विस्तार से वर्णन नहीं किया है। हमारे जिन उलेमा (मशायख) ने बंटवारे के मसले में इन दोनों स्थितियों में अंतर किया है, उन्होंने खियार-ए-शर्त में भी अंतर किया है और फ़रमाया है कि नया निवास शुरू करने से खियार-ए-शर्त शून्य हो जाता है, और यदि वह पहले से रह रहा था और रहना जारी रखा, तो शून्य नहीं होता। इन दोनों अनुबंधों में कोई

अंतर नहीं है। और जिन मशायख ने यह कहा है कि बंटवारे में खियार-ए-ऐब शून्य नहीं होता, न नया निवास शुरू करने से और न निवास जारी रखने से, वे कहते हैं कि खियार-ए-शर्त नया निवास शुरू करने और जारी रखने, दोनों से शून्य होता है; यह 'मुहीत' में है।

यदि किसी हिस्सेदार ने वह हिस्सा जो उसे बंटवारे में मिला है, दोष जाने बिना बेच दिया, फिर क्रेता ने उसी दोष के कारण उसे वापस कर दिया; तो यदि उसने काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश के बिना उसे स्वीकार कर लिया, तो उसे बंटवारा रद्द करने का अधिकार नहीं होगा। और यदि उसने काज़ी के आदेश से स्वीकार किया है, तो उसे बंटवारा रद्द करके वापस करने का अधिकार होगा। स्पष्ट हो कि इस अध्याय में गवाहों से सिद्ध होकर काज़ी का आदेश होना या शपथ से इनकार करने से सिद्ध होकर आदेश होना, दोनों समान हैं; यह 'मबसूत' में है। यदि उक्त क्रेता ने दोष जानने से पहले उक्त घर का कुछ हिस्सा गिरा दिया, तो वह दोष के कारण उसे वापस नहीं कर सकता, परंतु दोष के कारण मूल्य में हुई कमी का हर्जाना ले सकता है, जैसा कि शुद्ध विक्रय में नियम है। और फ़रमाया कि विक्रेता को यह अधिकार नहीं होगा कि उसने जो हर्जाना क्रेता को दिया है, उसे बंटवारा करने वाले (क़ासिम) से वापस ले ले; इस नियम को बिना किसी मतभेद के वर्णन किया गया है। हमारे कुछ मशायख ने फ़रमाया कि यहाँ वर्णित यह नियम केवल इमाम-ए-आज़म (रह.) का मत है। इमाम अबू यूसुफ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार नियम यह है कि वह हर्जाना क़ासिम से वापस लेगा। कुछ मशायख ने फ़रमाया कि 'किताबुल क़िस्मत' में जो नियम वर्णित है, वह सर्वसम्मति से सबका मत है। परंतु सही यह है कि 'बै-ए-महज़'[1] से तात्पर्य केवल विशुद्ध बिक्री का अनुबंध है, वह नहीं जिसमें गौण रूप से बिक्री के अर्थ हों, जैसे बंटवारे का अनुबंध आदि। यानी हिस्से की दासी।

1 बै-ए-महज़ से तात्पर्य शुद्ध बिक्री का अनुबंध है, वह नहीं जिसमें गौण रूप से बिक्री के अर्थ हों, जैसे बंटवारे का अनुबंध आदि। 2 अर्थात हिस्से की दासी।

---

نے درختوں کی چونیاں بھی نہ دیکھی ہوں تو خیار رویت ساقط نہ ہوگا اور یہ قائل بیع محض میں بھی ایسا ہی فرماتا پھر واضح ہو کہ جب عقد قسمت میں خیار رویت ثابت ہوا تو جہاں ثابت ہوگا وہاں جس چیز سے بیع محض میں خیار باطل ہوتا ہے اس چیز سے عقد قسمت میں بھی خیار باطل ہو جائے گا اور خیار عیب عقد قسمت کی دونوں قسموں میں ثابت ہوتا ہے اور اگر شریکوں میں سے کسی نے اپنے حصہ کی کسی چیز میں عیب پایا پس اگر قبضہ سے پہلے معلوم کر لیا تو اپنا پورا حصہ واپس کر دے خواہ مقسوم کوئی شے واحد ہو یا اشیائے مختلفہ ہوں جیسا بیع میں حکم ہے اور اگر قبضہ کے بعد معلوم کیا پس اگر مقسوم ایسی چیز ہو جو حیزہ و حکماً واحد ہے جیسے دار واحدہ یا حکماً واحد ہو نہ حیزہ جیسے کیل و موزون تو اس کو یہ اختیار ہو گا کہ پورا حصہ واپس کر دے اور یہ اختیار نہ ہو گا کہ کچھ واپس کرے اور کچھ واپس نہ کرے جیسا کہ بیع محض میں حکم ہے اور اگر مقسوم اشیاء مختلفہ ہوں جیسے بکریاں تو فقط عیب دار کو واپس کر دے جیسا کہ بیع محض میں حکم ہے اور جس چیز سے بیع محض میں خیار عیب باطل ہو جاتا ہے اس سے قسمت میں بھی باطل ہوتا ہے اور اگر باندی[2] میں عیب پانے کے بعد اس سے خدمت لی تو استحساناً اس کو واپس کر سکتا ہے اور اگر عیب پانے کے بعد برابر اس میں رہتا رہا تو اس کو بھی استحساناً واپس کر سکتا ہے اور اگر کپڑے کو برابر پہنتا رہا یا چو پایہ پر برابر سوار ہوتا رہا یا عیب جاننے کے بعد برابر اس نے ایسا کیا تو قیاساً و استحساناً ان دونوں کو واپس نہیں کر سکتا ہے اور خیار شرط کی صورت میں اگر اس نے دار میں مدت خیار میں سکونت اختیار کی یا برابر رہتا رہا تو امام محمدؒ نے کتاب البیوع میں فرمایا کہ اگر مشتری نے دار مبیعہ میں مدت خیار میں سکونت کی تو اس کا خیار ساقط ہو جائے گا اور اس میں دو صورتیں ہو سکتی ہیں ایک یہ کہ

مشتری نے مدت خیار میں اپنی سکونت پیدا کی اور ایک یہ کہ وہ اس میں رہتا تھا اور مدت خیار میں بھی برابر رہتا رہا مگر امام محمدؒ نے ان دونوں کی تفصیل نہیں فرمائی اور ہمارے مشائخ میں سے جس نے مسئلہ قسمت میں ان دونوں صورتوں میں فرق کیا ہے اس نے خیار شرط میں بھی ان دونوں صورتوں میں فرق کیا ہے اور فرمایا کہ ازسر نو سکونت پیدا کرنے سے خیار شرط باطل ہوتا ہے اور اگر رہتا تھا اور برابر رہتا رہا تو باطل نہیں ہوتا ہے اور ان دونوں عقدوں میں کچھ فرق نہیں ہے اور مشائخ میں سے جس نے یوں فرمایا ہے کہ قسمت میں خیار عیب باطل نہیں ہوتا ہے نہ سکونت پیدا کرنے سے اور نہ سکونت پر مداومت رکھنے سے وہ فرماتا ہے کہ خیار شرط سکونت پیدا کرنے سے اور سکونت پر مداومت کرنے سے باطل ہوتا ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر حصہ دار نے وہ حصہ دار جو اس کو تقسیم میں ملا ہے، بدون عیب جاننے کے فروخت کر دیا پھر مشتری نے اسی عیب کی وجہ سے اس کو واپس کر دیا پس اگر اس نے بدون حکم قاضی اس کو قبول کر لیا تو اس کو قسمت کے توڑنے کا اختیار نہ ہوگا اور اگر اس نے بحکم قاضی قبول کیا ہے تو اس کو اختیار ہوگا کہ تقسیم توڑ کر واپس کر دے اور واضح ہو کہ اس باب میں گواہوں سے ثابت ہو کر قاضی کا حکم ہونا یا اس کی قسم سے انکار کرنے سے ثابت ہو کر حکم ہونا دونوں یکساں ہیں یہ مبسوط میں ہے اور اگر مشتری مذکور نے دار مذکور میں سے کچھ گرا دیا قبل اس کے کہ عیب سے واقف ہو تو پھر اس کو بسبب عیب کے واپس نہیں کر سکتا ہے۔ مگر نقصان عیب لے سکتا ہے جیسا کہ بیع محض میں حکم ہے اور فرمایا کہ بائع کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ اس نے جس قدر مال نقصان مشتری کو دیا ہے اس کو قاسم سے واپس لے اور اس حکم کو یوں ہی مطلقا بدون ذکر خلاف کے بیان فرمایا اور ہمارے مشائخ میں سے بعض نے فرمایا کہ یہ حکم جو یہاں مذکور ہے فقط امام اعظمؒ رحمۃ اللہ علیہ کا قول ہے اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک یوں حکم ہے کہ مال نقصان کو قاسم سے واپس لے گا اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ کتاب القسمۃ میں

جو حکم مذکور ہے وہ بالاتفاق سب کا قول ہے مگر صحیح یہ ہے کہ مسئلہ بیع محض سے خالص بیع کا عقد مراد ہے نہ وہ جس میں ضمناً بیع کے معنے ہوں جیسے عقد قسمت وغیرہ۔ یعنی حصہ کی باندی۔

1 بیع محض سے خالص بیع کا عقد مراد ہے نہ وہ جس میں ضمناً بیع کے معنے ہوں جیسے عقد قسمت وغیرہ۔ 2 یعنی حصہ کی باندی۔

---

There is a difference of opinion regarding the aforementioned (1); this is stated in *Al-Muhit*. If a partner himself caused a loss in a portion and did not sell it, then discovered a defect, he shall recover the loss due to the defect from the shares of his partners. However, if the partners agree to nullify the partition and this person returns that specific part in its damaged state, then this rule does not apply; this is in *Al-Mabsut*. Let it be clear that wherever the "option of inspection" (*Khiyar-e-Ruyat*) is established, whether by consensus or through varying narrations, the "option of condition" (*Khiyar-e-Shart*) is also established. What invalidates the option of condition in an absolute sale also invalidates it in a contract of partition. Conversely, what establishes the option of condition in an absolute sale also establishes it in a partition contract, to the extent that an option of condition for three days is permissible without dispute. For a period exceeding three days, there is a disagreement between Imam Abu Hanifa and his two companions (*Sahibayn*), as stated in *Al-Muhit*. If three days pass under an option of condition, and then one party claims to have rescinded within those three days while the other claims to have granted permission, the statement of the one claiming permission (2) shall be accepted. If both provide witnesses, the witnesses of the person claiming rescission shall be accepted; this is in *Al-Mabsut*.

## Chapter Seven: Regarding the description of those who can act as executors of partition on behalf of others and those who cannot.

The principle is that whoever has the authority to sell something also has the authority to partition it; this is in *Al-Muhit*. Partition by a father on behalf of a minor or a mentally incapacitated person is permissible for everything, provided there is no "gross deception" (*Ghaban-e-Fahish*) **2**. After the father's death, his executor (*Wasi*) stands in the father's place. If the father's executor is not present, the same rule applies to the paternal grandfather (3). Regarding the inheritance left by a mother (4), partition of assets other than real estate (*Aqar*) by the mother's executor is permissible, provided none of the aforementioned guardians are present, because her executor stands in her place. Since a mother’s disposal of her minor son's property (other than real estate) in the form of a sale is valid, it is likewise valid in the form of a partition. However, partition conducted by a mother, brother, or uncle, or by a husband on behalf of his minor wife or absent adult wife, is not valid; this is stated in *Fatawa Qazi Khan*. Partition by a non-Muslim, a slave, or a *Mukatab* (a slave with a contract for freedom) on behalf of their free minor Muslim child is not

permissible. Similarly, partition by a finder (*Multaqit*) on behalf of a foundling (*Laqit*) **5** is not permissible, even if the foundling is under the finder's care; this is in *Al-Mabsut*. If a judge appoints an executor for an orphan for all matters, and that executor conducts a partition of real estate and goods on behalf of the orphan, it is permissible. But if he is appointed as an executor only for maintenance or the protection of a specific item, it is not permissible. This is in contrast to an executor appointed by a father; if a father appoints someone for a specific matter, that person becomes the executor for all matters; this is in *Al-Muhit*.

If an executor partitions joint property between two minors, it is not permissible, just as it is not permissible if an executor sells the property of one minor to another. This differs from a father's case; if a father partitions property among his minor children, it is permissible, just as it is permissible if a father sells the property of one of his minor children to another. The legal loophole (*heela*) for an executor in this matter is to sell one minor's undivided share to a third-party buyer, then conduct a partition (*Muqasama*) with that buyer regarding the other minor's share, and then purchase it back from that buyer; this is in *Al-Muhit*.

---

**Footnotes:** ے According to Imam Abu Hanifa, it is impermissible, and according to the *Sahibayn* (his two disciples), it is permissible. **2** Gross Deception (*Ghaban-e-Fahish*): An obvious loss that people typically do not tolerate, meaning those who estimate value would not differ by such a large margin. **5** Foundling (*Laqit*): An unclaimed child found abandoned on a path; *Multaqit*: The one who picks up/finds the child. **(1)** As mentioned by some elders (*Mashaikh*). **(2)** The one who had the right gave permission and completed the contract. **(3)** Father's father. **(4)** On behalf of the minor.

उपरोक्त (१) में मतभेद है, यह 'मुहीत' में है। और यदि साझेदार ने स्वयं उसमें से कुछ गिरा दिया और उसे बेचा नहीं, फिर उसमें कोई दोष पाया, तो वह दोष के कारण होने वाले नुकसान को अपने साझेदारों के हिस्सों से लेगा। लेकिन यदि उसके साझेदार इस बात पर सहमत हों कि विभाजन रद्द कर दिया जाए और यह व्यक्ति उस हिस्से को उसी अवस्था में वापस कर दे, तो यह आदेश नहीं है, यह 'मब्सूत' में है। यह स्पष्ट हो कि विभाजन में जहाँ-जहाँ 'खियार-ए-रुय्यत' (देखने का विकल्प) सर्वसम्मति से या मतभेदों के साथ सिद्ध होता है, वहाँ 'खियार-ए-शर्त' (शर्त का विकल्प) भी सिद्ध होता है। और जिससे शुद्ध बिक्री में 'खियार-ए-शर्त' शून्य हो जाता है, उससे विभाजन के अनुबंध में भी शून्य हो जाता है। और जिस प्रकार शुद्ध बिक्री में 'खियार-ए-शर्त' सिद्ध होता है, उसी प्रकार विभाजन के अनुबंध में भी सिद्ध होता है, यहाँ तक कि तीन दिनों के लिए 'खियार-ए-शर्त' बिना किसी विरोध के वैध है। और जो तीन दिनों से अधिक है, उसमें इमाम-ए-आज़म और उनके शिष्यों (साहिबैन) के बीच मतभेद है, जैसा कि 'मुहीत' में है। यदि 'खियार-ए-शर्त' में तीन दिन बीत गए, फिर दोनों में से एक ने तीन दिनों के भीतर विकल्प के आधार पर रद्द करने का दावा किया और दूसरे ने अनुमति देने का दावा किया, तो अनुमति देने वाले (२) का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो जो व्यक्ति रद्द करने का दावा करता है, उसके गवाह स्वीकार किए जाएंगे, जैसा कि 'मब्सूत' में है।

## अध्याय सात: उन लोगों के वर्णन में जो दूसरों की ओर से विभाजन के संरक्षक (मुतवल्ली) हो सकते हैं और जो नहीं हो सकते हैं

मूल सिद्धांत यह है कि जो व्यक्ति किसी वस्तु को बेचने का अधिकार रखता है, वह उसके विभाजन का भी अधिकार रखता है, यह 'मुहीत' में है। नाबालिग और मानसिक रूप से अक्षम व्यक्ति की ओर से उसके पिता का हर चीज़ में विभाजन करना वैध है, बशर्ते कि उसमें 'ग़बन-ए-फ़ाहिश' (अत्यधिक हानि) **२** न हो। पिता की मृत्यु के बाद उसका वसी (कार्यकारी) भी पिता का प्रतिनिधि होता है। और यदि पिता का वसी मौजूद न हो, तो सगे दादा (३) का भी यही आदेश है। और माँ ने जो विरासत छोड़ी (४) है, उसमें अचल संपत्ति (अक़ार) के अलावा बाकी चीज़ों का विभाजन माँ के वसी के कार्य से वैध है, बशर्ते कि ऊपर उल्लेखित संरक्षकों में से कोई मौजूद न हो, क्योंकि उनका वसी उसकी माँ का प्रतिनिधि है। और माँ का उन चीज़ों में हस्तक्षेप करना जो उसके नाबालिग बेटे की संपत्ति हैं, अचल संपत्ति के अलावा बाकी में बिक्री के रूप में सही है, तो इसी प्रकार विभाजन के रूप में भी सही है।

और माँ, भाई और चाचा का विभाजन करना, तथा पति का अपनी नाबालिग पत्नी या अनुपस्थित बालिग पत्नी की ओर से विभाजन करना सही नहीं है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। काफ़िर, दास (ममलुक) या मुकातब (वह दास जिसने अपनी आज़ादी के लिए अनुबंध किया हो) का अपने नाबालिग स्वतंत्र मुस्लिम बेटे की ओर से विभाजन करना वैध नहीं है। और 'मुल्तक़ित' (पाने वाला) का 'लक़ीत' (लावारिस बच्चा) **५** की ओर से विभाजन करना भी वैध नहीं है, भले ही लक़ीत उसके परिवार का हिस्सा हो, यह 'मब्सूत' में है। और यदि काज़ी (न्यायाधीश) ने यतीम (अनाथ) के लिए पूरी संपत्ति के लिए वसी नियुक्त किया और उसने यतीम की ओर से अचल संपत्ति और सामान में विभाजन किया, तो यह वैध है। और यदि उसे केवल भरण-पोषण या किसी विशेष वस्तु की सुरक्षा के लिए वसी नियुक्त किया गया हो, तो वैध नहीं है। यह पिता द्वारा वसी नियुक्त करने के विपरीत है, क्योंकि यदि पिता ने उसे किसी विशेष कार्य के लिए वसी नियुक्त किया, तो वह सभी कार्यों के लिए वसी हो जाएगा, यह 'मुहीत' में है।

यदि वसी ने दो नाबालिगों के बीच साझा संपत्ति का विभाजन किया, तो यह वैध नहीं है, जैसे कि यदि वसी ने एक नाबालिग की संपत्ति दूसरे को बेच दी, तो यह वैध नहीं है। पिता के मामले में यह अलग है; यदि पिता ने अपनी नाबालिग संतानों के बीच संपत्ति का विभाजन कर दिया, तो यह वैध है, जैसे कि यदि पिता ने अपनी एक नाबालिग संतान की संपत्ति दूसरी को बेच दी, तो यह वैध है। इस मामले में वसी के लिए एक कानूनी युक्ति (हीला) यह है कि वह एक नाबालिग का अविभाजित हिस्सा किसी खरीदार को बेच दे, फिर उस खरीदार के साथ दूसरे नाबालिग के हिस्से का विभाजन (मुक़ास्मा) कर ले, और फिर उस खरीदार से उसे वापस खरीद ले, यह 'मुहीत' में है।

---

**पाद-टिप्पणियाँ: ९** इमाम-ए-आज़म के अनुसार अवैध है और साहिबैन के अनुसार वैध है। **२** ग़बन-ए-फ़ाहिश: प्रत्यक्ष और अत्यधिक हानि जिसे लोग सामान्यतः सहन नहीं करते, अर्थात् मूल्य का सही अनुमान लगाने वाले इतना अधिक अंतर नहीं रखते। **५** लक़ीत: वह लावारिस बच्चा जो रास्ते में पड़ा मिले; मुल्तक़ित: उसे उठाने/पाने वाला। **(१)** जैसा कि कुछ विद्वानों (मशाइख़) ने कहा है। **(२)** जिसके पास अधिकार था, उसने अनुमति दे दी और अनुबंध पूरा कर दिया। **(३)** पिता का पिता (दादा)। **(४)** नाबालिग के लिए।

---

مذکورہ (۱) میں اختلاف ہے یہ محیط میں ہے اور اگر شریک ہی نے خود اس میں سے کچھ گرا دیا اور اس کو فروخت نہ کیا پھر اس میں کچھ عیب پایا تو نقصان عیب کو اپنے شریکوں کے حصوں میں سے لے گا لیکن اگر اس کے شریک اس امر پر راضی ہوں کہ تقسیم توڑ دی جائے اور یہ شخص اس حصہ کو بعینہ گرا ہوا واپس کر دے تو یہ حکم نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔

واضح ہو کہ تقسیم جہاں جہاں خیار رویت بالاتفاق و باختلاف الروایات ثابت ہوتا ہے وہاں خیار شرط بھی ثابت ہوتا ہے اور جس سے بیع محض میں خیار شرط باطل ہوتا ہے اس سے عقد قسمت میں بھی باطل ہوتا ہے اور جس طرح بیع محض میں خیار شرط ثابت ہوتا ہے اس طرح عقد قسمت میں بھی ثابت ہوتا ہے حتی کہ تین روز کے واسطے خیار شرط بلا خلاف جائز ہے اور جو تین روز سے زائد ہے اس میں امام اعظمؒ اور ان کے صاحبین میں اختلاف ے ہے کذا فی المحیط اگر خیار شرط میں تین روز گذر گئے پھر دونوں سے ایک نے تین روز کے اندر بخیار شرط رد کر دینے کا دعویٰ کیا اور دوسرے نے اجازت دینے کا دعویٰ کیا تو مدعی (۲) اجازت کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو جو شخص رد کا دعویٰ کرتا ہے اس کے گواہ قبول ہوں گے کذا فی المبسوط

## باب ہفتم: ان لوگوں کے بیان میں جو غیر کی طرف سے متولی تقسیم ہو سکتے ہیں اور جو نہیں ہو سکتے ہیں

اصل یہ ہے کہ جو شخص کسی چیز کی بیع کا اختیار رکھتا ہے وہ اس کی تقسیم کا بھی اختیار رکھتا ہے یہ محیط میں ہے۔ نابالغ و معتوہ کی طرف سے اس کے باپ کی تقسیم ہر چیز میں جائز

ہے بشرطیکہ اس میں غبن ۲ فاحش نہ ہو اور باپ کے مرنے کے بعد اس کا وصی بھی باپ کا قائم مقام ہوتا ہے اور اگر باپ کا وصی موجود نہ ہو تو سگے دادا (۳) کا بھی یہی حکم ہے اور ماں نے جو ترکہ چھوڑا (۴) ہے اس میں سوائے عقار کے باقی چیزوں کا تقسیم کرنا ماں کے وصی کے فعل سے جائز ہے بشرطیکہ اولیاء مذکور بالا میں سے کوئی موجود نہ ہو کیونکہ ان کا وصی اس کی ماں کا قائم مقام ہے اور ماں کا تصرف کرنا ایسی چیزوں میں جو اس کے نابالغ فرزند کی ملک ہے سوائے عقار کے باقی میں بطور بیع کے صحیح ہے پس ایسے ہی بطور قسمت کے بھی صحیح ہے اور ماں اور بھائی اور چچا کا تقسیم کرنا اور شوہر کا اپنی نابالغہ جورو یا بالغہ غائبہ جورو کی طرف سے تقسیم کرنا صحیح نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ کافر یا مملوک یا مکاتب کا اپنے فرزند نابالغ آزاد مسلمان کی طرف سے تقسیم کرنا جائز نہیں ہے اور ملتقط ۵ لقیط کی طرف سے تقسیم کرنا بھی جائز نہیں ہے اگرچہ لقیط اپنے ملتقط کے عیال میں ہو یہ مبسوط میں ہے اور اگر قاضی نے یتیم کے واسطے کل چیز میں کوئی وصی مقرر کیا اور اس نے یتیم کی طرف سے عقار و عروض میں تقسیم کی تو جائز ہے اور اگر اس کو فقط نفقہ یا کسی خاص چیز کی حفاظت کے واسطے وصی مقرر کیا ہو کر جائز نہیں ہے اور یہ بخلاف باپ کے وصی مقرر کرنے کے لئے ہے کہ اگر باپ نے کسی امر خاص میں اس کو وصی مقرر کیا تو وہ سب امور کے واسطے وصی ہو جائے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر وصی نے مالِ مشترک دو نابالغوں میں تقسیم کیا تو جائز نہیں ہے جیسا کہ اگر وصی نے ایک نابالغ کا مال دوسرے کے ہاتھ فروخت کیا تو نہیں جائز ہے بخلاف باپ کے کہ اگر باپ نے اپنے نابالغ اولاد کا مال ان میں باہم تقسیم کر دیا تو جائز ہے جیسا کہ اگر باپ نے اپنی اولاد نابالغ میں سے ایک کا مال دوسرے کے ہاتھ فروخت کر دیا تو جائز ہے اور اس بات میں وصی کے لئے واسطے حیلہ یہ ہے کہ ایک نابالغ کا غیر مقسوم حصہ کسی مشتری کے ہاتھ فروخت کر کے پھر

مشتری کے ساتھ دوسرے نابالغ کے حصہ کا مقاسمہ کر لے پھر اس مشتری سے خرید لے یہ محیط میں ہے۔

---

**حواشی: ے** امام اعظمؒ کے نزدیک نا جائز ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز ہے۔ **۲** غبن فاحش کھلا ہوا ایسا خسارہ کہ جس کو لوگ برداشت نہ کرتے ہوں یعنی اندازہ کرنے والے اس قدر زیادہ اندازہ نہ کرتے ہوں۔ **۵** لقیط لاوارث بچہ جو راستہ میں پڑا ہوا ملے، ملتقط اس کا اٹھانے والا۔ **(۱)** جیسا کہ اذلا بعض مشائخ نے فرمایا ہے۔ **(۲)** جس کو حاصل تھا اس نے اجازت دے دی اور عقد کو پورا کر دیا۔ **(۳)** باپ کا باپ۔ **(۴)** نابالغ کے واسطے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 264 | Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

...purchase the share of the other minor which was sold, then the shares of both minors will become distinct. This division shall be permissible because it occurred between the buyer and the executor (Wasi). Another legal recourse is to sell the shares of both to someone and then purchase back the separated shares from that same person; this is mentioned in *Al-Dhakhira*. If property is jointly held between a minor and an executor, the executor is not permitted to partition it. However, if such a partition entails an evident benefit (*manfa'at zahira*) for the minor, it is permissible according to Imam al-Azam (Imam Abu Hanifa), while according to Imam Muhammad, it is not permissible even if there is an evident benefit. If a father partitions joint property between himself and his minor son, it is permissible even without an evident benefit for the minor; this is in *Al-Muhit*. If the heirs include both minors and adults, and the adult heirs are present, and the executor partitions the shares such that he separates the combined share of all minors from the rest, rather than separating each minor's share individually, then the partition is valid. If, subsequently, the executor partitions the minors' collective share among them, this second partition is not valid. If the heirs are adults but are absent, it is not permissible for the executor to partition immovable property (*uqar*), but it is permissible to partition movable goods (*mal al-aruz*)^1. This refers to a situation where all heirs are adults, some are present, and some are absent; thus, he partitioned with those present and separated their shares. Al-Baqali added in his book regarding movable goods the phrase "movable goods from the father's estate," etc.; this is in *Al-Dhakhira*. If among the heirs there is one minor and one absent adult, and the remaining adult heirs are present, and the executor separates the absent adult's share along with the minor's share and partitions with the present heirs, then according to Imam al-Azam, this partition is valid for both immovable property and otherwise. However, according to the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad), it is not permissible regarding immovable property on behalf of the absent adult. This is based on the principle that, according to Imam al-Azam, the executor's sale of immovable property on behalf of an adult is permissible in three cases: first, when there is a debt upon the deceased; second, when there is a legacy (*wasiyat*) in the estate; and third, when there is a minor among the heirs. Thus, partition follows the same rule as sale, whereas according to the *Sahibayn*, it is not permissible; this is in *Muhit al-Sarakhsi*.

If the heirs include both adults and minors and the executor partitions and distributes each share individually to every adult and minor, it is absolutely not permissible. If a third of the estate is bequeathed (*wasiyat*), and the executor partitions with the legatee (*musa lahu*), giving him his one-third and retaining two-thirds for the heirs, it is valid. If this property is subsequently lost while in the executor's possession, he shall not be liable for indemnity (*daman*). If the heirs are adults and absent, and the executor partitions with the legatee and takes the share for the said heirs, it is permissible; this is mentioned in *Al-Asl*. If the legatee is absent and the heirs are adults and present, and the executor partitions with the heirs and takes the legatee's share, this partition is void (*batil*) according to Imam al-Azam, though Imam Abu Yusuf dissents; this is in *Al-Dhakhira*. If a person dies having appointed someone as his executor, and there is a non-exhaustive debt upon the estate, and the heirs request the executor to separate property equivalent to the debt and partition the remainder among them, the executor has the discretion to refuse partition and may sell the undistributed property to settle the debt; this is in *Al-Zahiriyya*. If two executors partition the property such that one takes the shares of some heirs and the other takes the rest, it is not permissible. If one of the two executors becomes absent before the partition and the other partitions with the heirs, it is not permissible according to Imam al-Azam and Imam Muhammad, while Imam Abu Yusuf dissents. And regarding a person suffering from pleurisy/delirium (*barsam*), or who falls unconscious, or who experiences intermittent bouts of insanity and lucidity...

---

^1 *Aruz*: All types of goods, commodities, and effects.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 264 | किताब-अल-क़िस्मा (बँटवारे की किताब)**

...दूसरे नाबालिग का हिस्सा जो बेचा गया है, उसे उसके लिए खरीद ले, तो दोनों नाबालिगों का हिस्सा अलग-अलग हो जाएगा। यह विभाजन इसलिए जायज़ होगा क्योंकि यह विभाजन खरीदार और वसी (कार्यपालक) के बीच हुआ है। दूसरा उपाय यह है कि दोनों का हिस्सा किसी व्यक्ति को बेच दिया जाए, फिर उसी व्यक्ति से दोनों का अलग किया हुआ हिस्सा वापस खरीद लिया जाए; यह 'ज़ख़ीरा' में वर्णित है। यदि नाबालिग और वसी के बीच साझा संपत्ति हो, तो वसी के लिए उसका विभाजन करना जायज़ नहीं है। लेकिन, यदि इस विभाजन में नाबालिग के लिए स्पष्ट लाभ (मनफ़त-ए-ज़ागिरा) हो, तो इमाम-ए-आज़म रह. के निकट यह जायज़ है, जबकि इमाम मुहम्मद रह. के निकट यह जायज़ नहीं है, चाहे नाबालिग के लिए स्पष्ट लाभ ही क्यों न हो। यदि पिता ने अपनी और अपने नाबालिग पुत्र की साझा संपत्ति का विभाजन किया, तो यह जायज़ है, भले ही इसमें नाबालिग के लिए स्पष्ट लाभ न हो; यह 'मुहीत' में है। यदि वारिसों में नाबालिग और बालिग दोनों हों और बालिग वारिस उपस्थित हों, और वसी ने नाबालिगों का हिस्सा इस तरह बाँटा कि सभी नाबालिगों का हिस्सा एक साथ अलग कर दिया और प्रत्येक नाबालिग का हिस्सा अलग-अलग नहीं किया, तो यह विभाजन जायज़ होगा। इसके बाद यदि वसी ने नाबालिगों के हिस्से का आपस में विभाजन किया, तो यह विभाजन जायज़ नहीं होगा। यदि वारिस बालिग हों और अनुपस्थित (ग़ायब) हों, तो वसी के लिए अचल संपत्ति (अक़ार) का विभाजन करना जायज़ नहीं है, लेकिन चल संपत्ति (माल-ए-अरूज़)^1 का विभाजन करना जायज़ है। इसका अर्थ यह है कि वारिस सभी बालिग हों, जिनमें से कुछ उपस्थित हों और कुछ अनुपस्थित। अतः उसने उपस्थित लोगों के साथ विभाजन किया और उनका हिस्सा अलग किया। बक़ाली ने अपनी पुस्तक में 'माल-ए-अरूज़' के साथ यह शब्द बढ़ाए हैं कि 'पिता की विरासत से प्राप्त माल-ए-अरूज़', इत्यादि; यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि वारिसों में एक छोटा (सगीर) हो और एक बालिग अनुपस्थित हो, और शेष बालिग वारिस उपस्थित हों, और वसी ने अनुपस्थित बालिग का हिस्सा नाबालिग के हिस्से के साथ अलग कर लिया और उपस्थित वारिसों के साथ बँटवारा कर लिया, तो इमाम-ए-आज़म रह. के निकट यह बँटवारा अचल संपत्ति और अन्य सभी में जायज़ है। लेकिन 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के निकट बालिग की ओर से अचल संपत्ति में यह जायज़ नहीं है। यह इस आधार पर है कि इमाम-ए-आज़म रह. के निकट बालिग की ओर से वसी द्वारा अचल संपत्ति की बिक्री तीन स्थितियों में जायज़ है: पहला, जब मृतक पर ऋण हो; दूसरा, जब वसीयत पूरी करनी हो; और तीसरा, जब वारिसों में कोई नाबालिग हो। अतः बिक्री की तरह विभाजन

का मामला भी वैसा ही है, जबकि साहिबैन के निकट यह जायज़ नहीं है; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में वर्णित है।

यदि वारिसों में बालिग और नाबालिग दोनों हों और वसी ने प्रत्येक बालिग और प्रत्येक नाबालिग का हिस्सा अलग-अलग करके बाँट दिया, तो यह बिल्कुल भी जायज़ नहीं है। यदि विरासत में एक-तिहाई (1/3) की वसीयत की गई हो, और वसी ने उस वसीयत पाने वाले (मूसा-लहू) के साथ हिस्सा बाँटकर उसे एक-तिहाई दे दिया और शेष दो-तिहाई वारिसों के लिए रख लिया, तो यह सही है। यदि यह धन वसी के पास नष्ट (तलफ़) हो जाए, तो उस पर हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगा। यदि वारिस बालिग हों और अनुपस्थित हों, और वसी ने वसीयत पाने वाले के साथ हिस्सा बाँटकर उक्त वारिसों का हिस्सा ले लिया, तो यह जायज़ है; ऐसा ही 'अस्ल' में उल्लेखित है। यदि वसीयत पाने वाला अनुपस्थित हो और वारिस बालिग और उपस्थित हों, और वसी ने वारिसों के साथ हिस्सा बाँटकर वसीयत पाने वाले का हिस्सा ले लिया, तो इमाम-ए-आज़म रह. के निकट यह विभाजन शून्य (बातिल) है, लेकिन इमाम अबू यूसुफ़ रह. इस पर असहमति रखते हैं; यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि कोई व्यक्ति मर गया और किसी को अपना वसी नियुक्त कर गया, और विरासत पर ऐसा ऋण है जो पूरी संपत्ति को घेरे हुए नहीं है, और वारिसों ने वसी से अनुरोध किया कि ऋण की मात्रा के बराबर संपत्ति अलग करके शेष हमें बाँट दी जाए, तो वसी को अधिकार होगा कि वह विभाजन न करे और ऋण की अदायगी के लिए अविभाजित संपत्ति को बेच दे; यह 'ज़हीरिया' में है। यदि दो वसीयों ने संपत्ति का विभाजन किया, जिसमें से एक ने कुछ वारिसों का हिस्सा लिया और दूसरे ने शेष का, तो यह जायज़ नहीं है। यदि विभाजन से पहले दो वसीयों में से एक अनुपस्थित हो जाए और दूसरे ने वारिसों के साथ विभाजन किया, तो इमाम-ए-आज़म रह. और इमाम मुहम्मद रह. के निकट यह जायज़ नहीं है, जबकि इमाम अबू यूसुफ़ रह. इसमें मतभेद रखते हैं। और जिस व्यक्ति को प्रलाप (बर्साम) हो या बेहोशी छाई हो, या कभी पागलपन का दौरा पड़ता हो और कभी होश आता हो, तो...

---

^1 अरूज़: हर प्रकार की व्यापारिक वस्तुएं और सामान।

---

سے دوسرے نابالغ کا حصہ جو فروخت کیا ہے اس کے واسطے خرید لے پس دونوں نابالغوں کا حصہ جدا جدا ہو جائے گا اور یہ تقسیم اس واسطے جائز ہوگی کہ یہ تقسیم مشتری اور وصی کے درمیان جاری ہوئی ہے اور دوسرا حیلہ یہ ہے کہ دونوں کا حصہ کسی شخص کے ہاتھ فروخت کر دے پھر اسی شخص سے دونوں کا حصہ جدا کیا ہوا خرید لے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر نابالغ وصی کے درمیان مال مشترک ہو تو وصی کا تقسیم کرنا جائز نہیں ہے لیکن اگر اس تقسیم میں نابالغ کے واسطے منفعت ظاہرہ ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک جائز ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے اگر چہ نابالغ کے واسطے منفعت ظاہرہ نہ ہو اور اگر باپ نے اپنا اور اپنے فرزند نابالغ کا مال مشترک تقسیم کیا تو جائز ہے اور اگرچہ اس میں نابالغ کے واسطے منفعت ظاہرہ نہ ہو یہ محیط میں ہے۔ اگر وارثوں میں نابالغ اور بالغ ہوں اور وارثان بالغ حاضر ہوں پس وصی نے نابالغوں سے حصہ بانٹ اس طرح کیا کہ سب نابالغوں کا حصہ اکھٹا جدا کیا اور یوں نہ کیا کہ ہر نابالغ کا حصہ جدا کر لے تو تقسیم جائز ہوگی پھر اس کے بعد اگر وصی نے نابالغوں کا حصہ باہم تقسیم کر دیا تو یہ تقسیم جائز نہ ہوگی اور اگر وارث لوگ بالغ ہوں اور غائب ہوں تو وصی کا مال عقاران میں تقسیم کرنا جائز نہیں ہے مگر مال عروض[۸]لے ان میں تقسیم کرنا جائز ہے اور اس سے مراد یہ ہے کہ وارث لوگ سب بالغ ہوں اور ان میں سے بعض حاضر ہوں اور بعض غائب ہوں پس اس نے حاضرین سے تقسیم کی اور ان کا حصہ جدا کیا اور بقالی نے اپنی کتاب میں مال عروض کے ساتھ اتنا لفظ زیادہ کیا کہ مال عروض باپ کے ترکہ میں سے الخ یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر وارثوں میں ایک صغیر ہو اور ایک بالغ غائب ہو اور باقی بالغ وارث حاضر ہوں اور وصی نے بالغ غائب کا حصہ مع صغیر کے حصہ کے جدا کر لیا اور وارثان حاضر سے مقاسمہ کر لیا تو امام اعظمؒ

کے نزدیک یہ مقاسمہ عقار وغیرہ عقار سب میں جائز ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک بالغ کی طرف سے عقار میں نہیں جائز ہے اور یہ بنا پر اس کے ہے کہ امام اعظمؒ کے نزدیک بالغ کی طرف سے وصی کی بیع مال عقار میں تین جگہ جائز ہے ایک تو جب میت پر قرضہ ہو اور دوسرے جبکہ ترکہ میں وصیت ہو اور تیسرے جب کہ وارثوں میں کوئی صغیر ہو پس بیع کے مانند تقسیم میں بھی ایسا ہی ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز نہیں ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر وارثوں میں بالغ و نابالغ دونوں ہوں اور وصی نے ہر بالغ و ہر نابالغ کا حصہ جدا جدا کر کے ہر ایک کو تقسیم کر دیا تو بالکل جائز نہیں ہے اور اگر ترکہ کے واسطے ایک تہائی کی وصیت ہو پھر وصی نے اس موسیٰ لہ سے حصہ بانٹ کر کے ایک تہائی موسیٰ لہ کو دیا اور دو تہائی وارثوں کے واسطے رکھ لیا تو صحیح ہے اور اگر یہ مال وصی کے پاس تلف ہو گیا تو اس پر ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر وارث لوگ بالغ ہوں اور غائب ہوں پھر وصی نے موسیٰ لہ سے حصہ بانٹ کر کے وارثان مذکور کا حصہ لے لیا تو جائز ہے ایسا ہی اصل میں مذکور ہے اور اگر موسیٰ لہ غائب ہو اور وارث لوگ بالغ ہوں اور حاضر ہوں اور وصی نے وارثوں سے حصہ بانٹ کر کے موسیٰ لہ کا حصہ لے لیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک یہ تقسیم باطل ہے مگر امام ابو یوسفؒ اس میں خلاف کرتے ہیں یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک شخص مر گیا اور کسی شخص کو اپنا وصی مقرر کر گیا اور ترکہ پر غیر مستغرق قرضہ ہے اور وارثوں نے وصی سے درخواست کی کہ ترکہ میں سے بقد ر قرضہ کے جدا کر کے باقی ہم میں تقسیم کر دے تو اس کو اختیار ہو گا کہ ان میں تقسیم نہ کرے اور بقدر دین کے غیر مقسوم ہونے کی حالت میں فروخت کر دے یہ ظہیریہ میں ہے۔ اگر دو وصیوں نے مال تقسیم کیا پس ایک نے بعض وارثوں کا حصہ لیا اور دوسرے نے باقی وارثوں کا حصہ لیا تو یہ نہیں جائز ہے اور اگر تقسیم سے پہلے دونوں میں سے ایک وصی غائب ہو گیا اور دوسرے نے وارثوں سے تقسیم کی تو امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے

اور امام ابو یوسفؒ اس میں خلاف کرتے ہیں اور جس شخص کو برسام ہو یا خود بیہوشی طاری ہوئی یا کبھی جنون ہو جاتا ہو اور کبھی افاقہ ہو جاتا ہو تو

---

۸؎ عروض متاع و اسباب ہر قسم۔

---

**Book of Division (Kitab al-Qisma) Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (Page 263)**

Handing over the allocated share on his behalf shall not be permissible. However, if he expressed consent while in a state of good health and sound mind, or appointed an agent (wakil), then it is permissible; this is mentioned in *Al-Zakheera*. If the executor (wasi) is on his deathbed and the heirs are Muslims, such an executor shall be removed from his position. However, if he performed the division before being removed, the division shall be valid. Similarly, if someone other than the deceased's own slave is appointed as the executor, he shall remain the executor until he is removed; this is stated in *Muhit al-Sarakhsi*.

Regarding the rules of division, Dhimmis (non-Muslim citizens under Islamic protection) are treated like Muslims, except concerning pigs and wine. If pigs and wine are jointly owned among them and some request division while others refuse, I will compel the refusers to divide, just as I compel the division of things other than wine and pigs. If Dhimmis divided wine among themselves and some took more than their share by measurement, such an excess shall not be permissible even for Dhimmis. If the executor of a Dhimmi is a Muslim, I consider it disliked (makruh) for that Muslim executor to perform the partition (muqasama) of wine and pigs. However, this Muslim may appoint a Dhimmi as his deputy or agent to distribute the share of wine on behalf of a minor and sell it after division. If a Dhimmi appoints a Muslim as an agent for an inheritance containing wine and pigs, such an act is not permissible for the Muslim, just as it is not permissible for a Muslim to buy or sell wine and pigs. Furthermore, this Muslim agent does not have the authority to appoint another person as an agent on his behalf for the partition of wine and pigs, because his principal (muwakkil) did not consent to the opinion of anyone other than him. But if he did consent—for instance, if he entrusted the matter to the agent’s discretion—and the agent then appointed a Dhimmi for the division, it would be permissible; this is in *Al-Mabsut*. If one of the heirs becomes a Muslim and appoints a Dhimmi as an agent to partition the wine and pigs, this is permissible according to Imam Azam (Abu Hanifa). However, the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad) disagreed on this, similar to the ruling when a Muslim appoints a Dhimmi to sell wine; this is written in *Muhit al-Sarakhsi*. If the heir who converted to Islam takes his share of wine and turns it into vinegar, he shall be liable (zamin) to the other heirs for the amount of wine he converted, and that vinegar shall belong solely to him. If a Dhimmi's estate consists only of wine and pigs, and his creditors are Muslims but there is no executor, the judge (qadi) shall appoint a Dhimmi to sell them so that the

deceased's debt can be paid (the text says 'not paid', which appears to be a clerical error given the context of debt settlement); this is in *Al-Mabsut*. If a *Harbi Musta'min* (a non-Muslim foreigner under temporary protection) performs a partition on behalf of his Dhimmi son, it is not permissible. However, if his son is also a *Harbi* like the father, the division is valid; this is in *Muhit al-Sarakhsi*.

If a man who was executed for the crime of apostasy (riddat) performed a partition on behalf of his minor son who is also an apostate like him, it is not permissible; this is in *Al-Mabsut*. The division performed by a *Mazhun* (a slave authorized for trade) is like the division performed by a free man; this is stated in *Muhit al-Sarakhsi*. A *Makatib* (a slave with a contract for manumission) is also treated like a free man in matters of division, and the division carries the meaning of an exchange (compensation). If the *Makatib* becomes unable to pay his debt after the division, his master (mawla) shall not have the right to annul the division. If the master performed a partition on behalf of the *Makatib* without his consent, it is not permissible, whether the *Makatib* is present or absent. If the master performed the partition on his behalf and then the *Makatib* failed to pay and became incapacitated, and the property reverted to the master, this division would not become valid, just as other actions of the master do not become effective solely due to the *Makatib's* incapacitation. If a *Makatib* appoints an agent for division and then becomes incapacitated or dies, his agent shall not have the authority to perform the partition thereafter. However, if the said *Makatib* is set free, his agent may perform the partition under the authority granted to him.

*Footnote:* i.e., he died without leaving enough property to fulfill his manumission contract (kitabat).

**किताब अल-क़िस्मत (विभाजन की पुस्तक) फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (263)**

उसकी ओर से हिस्सा बाँट कर देना जायज़ न होगा, लेकिन अगर उसने स्वास्थ्य और होश-ओ-हवास की हालत में सहमति व्यक्त की हो या वकील नियुक्त कर दिया हो, तो जायज़ है; यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि वसी (वसीयत का निष्पादक) मरज़-उल-मौत (मरणशैया) में है और वारिस लोग मुसलमान हैं, तो ऐसे वसी को उसके वसी पद से हटा दिया जाएगा। परंतु हटाए जाने से पहले यदि उसने विभाजन कर दिया हो, तो वह विभाजन (क़िस्मत) जायज़ होगा। इसी प्रकार यदि मृतक के सिवा किसी अन्य व्यक्ति का गुलाम उस मृतक का वसी हो, तो जब तक उसे हटाया नहीं जाता, तब तक वह वसी माना जाएगा; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है।

विभाजन के नियमों में ज़िम्मी (इस्लामी राज्य में रहने वाले गैर-मुस्लिम) लोग मुसलमानों के समान हैं, सिवाय सूअर और शराब के। यदि सूअर और शराब उनमें साझा हो और कुछ ने विभाजन का अनुरोध किया और कुछ ने इनकार किया, तो मैं इनकार करने वालों को विभाजन के लिए मजबूर करूँगा, जैसे कि सूअर और शराब के अलावा अन्य चीज़ों के विभाजन के लिए मजबूर करता हूँ। यदि ज़िम्मियों ने आपस में शराब का बँटवारा कर लिया और कुछ ने माप के हिसाब से ज़्यादा ले लिया, तो ऐसी अधिकता ज़िम्मियों के हक़ में भी जायज़ नहीं होगी। और यदि किसी ज़िम्मी का वसी मुसलमान हो, तो उस मुसलमान वसी के लिए शराब और सूअर का मुक़ासमा (साझा संपत्ति का बँटवारा) करना मैं मकरूह (नापसंद) समझता हूँ। लेकिन यह मुसलमान किसी ज़िम्मी को अपना प्रतिनिधि या वकील बना दे, जो नाबालिग की ओर से शराब का हिस्सा बाँटकर विभाजन के बाद उसे बेच दे। और यदि किसी ज़िम्मी ने किसी मुसलमान को ऐसी विरासत के लिए जिसमें शराब और सूअर है वकील बनाया, तो मुसलमान के लिए ऐसा कृत्य जायज़ नहीं है, जैसे मुसलमान के लिए शराब और सूअर का बेचना और खरीदना जायज़ नहीं है। और उस मुसलमान वकील को यह भी अधिकार नहीं है कि वह शराब और सूअर के मुक़ासमा के लिए अपनी ओर से किसी दूसरे को वकील बना दे, क्योंकि उसका मुअक्किल (नियोक्ता) उसके अलावा किसी अन्य व्यक्ति की राय पर सहमत नहीं हुआ है। और अगर वह सहमत हुआ हो, जैसे कि उसने यह काम उसकी राय पर छोड़ दिया हो और उसने किसी ज़िम्मी को अपनी ओर से विभाजन का वकील बना दिया हो, तो यह जायज़ है; यह 'मब्सूत' में है। यदि वारिसों में से एक वारिस मुसलमान हो गया और उसने किसी ज़िम्मी को इसलिए वकील बनाया कि वह शराब और सूअर का मुक़ासमा करे, तो इमाम-ए-आज़म (रह.) के नज़दीक यह जायज़ है। परंतु साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) ने इसमें मतभेद किया है, जैसा कि यदि किसी

मुसलमान ने किसी ज़िम्मी को शराब बेचने के लिए वकील बनाया हो, तो यही हुक्म है; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में लिखा है। यदि उस वारिस ने, जो मुसलमान हो गया है, शराब का अपना हिस्सा लेकर उसे सिरका (विनेगर) बना दिया, तो जितनी शराब उसने सिरका बनाई है, उसमें वह दूसरे वारिसों के हिस्से का ज़िम्मेदार (ज़ामिन) होगा और यह सिरका उसी का हो जाएगा। और यदि किसी ज़िम्मी की संपत्ति (तरका) में केवल शराब और सूअर हों और उसके लेनदार मुसलमान हों और उसका कोई वसी न हो, तो क़ाज़ी ज़िम्मियों में से एक व्यक्ति को नियुक्त करेगा ताकि वह उसे बेचकर मृतक का ऋण चुका सके(पाठ में 'अदा न करे' लिखा है जो संभवतः त्रुटि है, संदर्भ 'अदा करे' का है); यह 'मब्सूत' में है। और यदि किसी हर्बी मुस्तअमिन (विदेशी गैर-मुस्लिम) ने अपने ज़िम्मी बेटे की ओर से मुक़ासमा किया, तो जायज़ नहीं है; और यदि उसका बेटा भी बाप की तरह हर्बी हो, तो विभाजन जायज़ होगा; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने, जिसे धर्मत्याग (रद्दत) की स्थिति में हत्या के अपराध में मृत्युदंड दिया गया है, अपने नाबालिग पुत्र की ओर से मुक़ासमा किया जो उसकी तरह ही धर्मत्यागी है, तो यह जायज़ नहीं है; यह 'मब्सूत' में है। माज़ून (व्यापार के लिए अनुमत दास) का विभाजन करना स्वतंत्र व्यक्ति के विभाजन के समान है; जैसा कि 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। मुकातिब (मुक्ति का अनुबंध करने वाला दास) भी विभाजन में स्वतंत्र व्यक्ति के समान है, और विभाजन में विनिमय (एवज़) के अर्थ मौजूद हैं। और यदि मुकातिब विभाजन के बाद ऋण चुकाने में असमर्थ हो गया, तो उसके मालिक (मौला) को विभाजन रद्द करने का अधिकार नहीं होगा। और यदि मालिक ने मुकातिब की सहमति के बिना उसकी ओर से मुक़ासमा किया, तो यह जायज़ नहीं है, चाहे मुकातिब उपस्थित हो या अनुपस्थित। और यदि मालिक ने इस तरह उसकी ओर से मुक़ासमा कर लिया और फिर मुकातिब असमर्थ हो गया और वह संपत्ति मालिक की हो गई, तो यह विभाजन जायज़ नहीं माना जाएगा, जैसे कि मालिक के अन्य कार्य मुकातिब के असमर्थ होने के कारण प्रभावी नहीं हो जाते। और यदि मुकातिब ने विभाजन के लिए कोई वकील नियुक्त किया, फिर वह खुद असमर्थ हो गया या मर गया, तो उसके वकील को यह अधिकार नहीं होगा कि वह उसके बाद मुक़ासमा करे। और यदि उक्त मुकातिब को आज़ाद कर दिया गया, तो उसका वकील अपनी वकालत, जिसकी उसे अनुमति दी गई थी, के तहत मुक़ासमा कर सकता है।

अनुवाद नोट: यानी वह इतना धन छोड़े बिना मर गया जिससे वह अपनी आज़ादी की क़ीमत (किताबत) चुका सके।

---

اس کی طرف سے حصہ بانٹ کر دینا جائز نہ ہو گا لیکن اگر اس نے حالت صحت و افاقہ میں رضامندی ظاہر کی ہو یا وکیل کر دیا ہو تو جائز ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ وصی مروذی ہے اور وارث لوگ مسلمان ہیں تو ایسا وصی اپنے وصی ہونے سے خارج کیا جائے گا مگر قبل خارج کیے جانے کے اگر اس نے تقسیم کی ہو تو قسمت جائز ہو گی اور اس طرح اگر میت کے سوائے کسی غیر کا غلام اس میت کا وصی ہو تو جب تک خارج نہ کیا جائے تب تک وصی قرار پائے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔

قسمت کے احکام میں ذمی لوگ بمنزلہ اہل اسلام کے ہیں سوائے سور و شراب کے کہ اگر سور و شراب ان میں مشترک ہو اور بعض نے تقسیم کی درخواست کی اور بعض نے انکار کیا تو میں انکار کرنے والوں پر تقسیم کے واسطے جبر کروں گا جیسا کہ سوائے سور و شراب کے اور چیزوں کی تقسیم کے واسطے مجبور کرتا ہوں۔ اگر ذمیوں نے باہم شراب کو تقسیم کر لیا اور بعض نے ازراہ پیمانہ زیادہ لی تو ایسی زیادتی ذمیوں کے حق میں بھی جائز نہ ہو گی اور اگر کسی ذمی کا وصی مسلمان ہو تو اس مسلمان وصی کے حق میں شراب و سور کا مقاسمہ کرنا مکروہ جانتا ہوں لیکن یہ مسلمان کسی ذمی کو اپنا نائب یا وکیل کر دے جو نا بالغ کی طرف سے شراب کا حصہ بانٹ کر اسے بعد تقسیم کے اس کو فروخت کر دے اور اگر کسی ذمی نے مسلمان کو ایسی میراث کے واسطے جس میں شراب و سور ہے وکیل کیا تو مسلمان سے ایسا فعل جائز نہیں ہے جیسے کہ مسلمان کو شراب و سور کا فروخت کرنا و خریدنا جائز نہیں ہے اور اس مسلمان وکیل کو یہ بھی اختیار نہیں ہے کہ شراب و سور کے مقاسمہ کے واسطے اپنی طرف سے دوسرے کو وکیل کر دے اس وجہ سے کہ اس کا مؤکل اس کے سوائے غیر شخص کی رائے پر راضی نہیں ہوا ہے اور

اگر راضی ہوا ہو مثلاً اسے یہ کام اس کی رائے پر سونپ دیا ہو اور اس نے کسی ذمی کو اپنی طرف سے وکیل قسمت کر دیا تو جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر وارثوں میں سے ایک وارث مسلمان ہو گیا اور اس نے کسی ذمی کو اس واسطے وکیل کیا کہ جس قدر شراب و سور ہیں ان کا مقاسمہ کرے تو امام اعظمؒ کے نزدیک جائز ہے۔ مگر صاحبین نے اس میں خلاف کیا ہے جیسا کہ اگر کسی مسلمان نے ذمی کو شراب فروخت کرنے کے واسطے وکیل کیا تو یہی حکم ہے یہ محیط سرخسی میں لکھا ہے۔ اگر اس وارث نے جو مسلمان ہو گیا ہے شراب کا اپنا حصہ لے کر اس کو سرکہ کر ڈالا تو جس قدر شراب سرکہ کر ڈالی ہے اس میں سے دوسرے وارثوں کے حصہ کا ضامن ہو گا اور یہ سرکہ اسی کا ہو جائے گا اور اگر کسی ذمی کے ترکہ میں فقط شراب و سور ہوں اور اس کے قرض خواہ لوگ مسلمان ہوں اور اس کا وصی نہ ہو تو قاضی اس کی فروخت کے واسطے ذمیوں میں سے ایک شخص کو مقرر کرے گا کہ وہ اس کو فروخت کر کے میت کا قرضہ ادا نہ کرے یہ مبسوط میں ہے اور اگر حربی مستامن نے اپنے ذمی بیٹے کی طرف سے مقاسمہ کیا تو جائز نہیں ہے اور اگر اس کا بیٹا بھی باپ کے مانند حربی ہو تو تقسیم جائز ہو گی یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر مرد نے جو حالت ردت میں بدیں جرم قتل کیا گیا ہے اپنے نابالغ فرزند کی طرف سے جو مثل اس کے مرتد ہے مقاسمہ کیا تو جائز نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔ ماذون کا تقسیم کرنا مثل آزاد مرد کی تقسیم کے ہے کذا فی محیط السرخسی اور مکاتب بھی تقسیم میں مثل آزاد کے ہے اور تقسیم میں مثل بیع کے معاوضہ کے معنی موجود ہیں اور اگر مکاتب بعد قسمت کے عاجز ہو گیا تو اس کے مولی کو فسخ قسمت کا اختیار نہ ہو گا اور اگر مولی نے بغیر رضامندی مکاتب کے اس کی طرف سے مقاسمہ کیا تو نہیں جائز ہے خواہ مکاتب حاضر ہو یا غائب ہو اور اگر مولی نے اس طرح اس کی طرف سے مقاسمہ کر لیا پھر مکاتب عاجز ہو گیا اور یہ چیز مولی کی ہو گئی تو یہ تقسیم جائز

نہ ہو جائے گی جیسے کہ مولی کے اور تصرفات بسبب مکاتب کے عاجز ہو جانے کے نافذ نہیں ہو جاتے ہیں اور اگر مکاتب نے تقسیم کے واسطے کوئی وکیل کیا پھر خود عاجز ہو گیا یا مر گیا تو اس کے وکیل کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ اس کے بعد مقاسمہ کرے اور اگر مکاتب مذکور آزاد کر دیا گیا تو اس کا وکیل اپنی وکالت جس کو اجازت دی یا جس کو وکیل کیا ہے وہ مقاسمہ کر سکتا ہے۔

ع یعنی یہ بدوں اس قدر مال چھوڑے کہ جس سے ادائے کتابت ہو سکے مر گیا۔

---

Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) [465] Kitab al-Qismat (The Book of Partition)

...it will be upon him. If a 'Mukatab' (a slave who has contracted for their freedom) appointed an executor (Wasi) at the time of their death, and the executor carried out a partition (Muqasama) with the adult heirs on behalf of the deceased's minor child, and the Mukatab died leaving property sufficient to pay the manumission fee (Kitabat), the executor's distribution in this case would be valid, just as it would be if the aforementioned Mukatab had been free. This is because the Kitabat payment will be settled from the estate, and it will be ruled that he died free in the final moment of his life. Thus, it is as if he passed away after personally paying the Kitabat; therefore, his executor's management on behalf of the minor child is like that of an executor for a free person. Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) stated in 'al-Ziyadat' that the Mukatab's executor has the same status as an executor of a free man regarding an absent adult child, to the extent that distributing it is permissible except for real estate ('Aqar). This is the conclusion of his statement, and what is mentioned there is the most correct. However, if the Mukatab did not leave enough property to pay the Kitabat, and the executor made a partition with the adult heirs for the minor child, and the heirs labored (Sa'ayat) to pay off the Kitabat, the distribution will not be valid. Subsequently, if the heirs pay the Kitabat amount before this partition is annulled, the distribution will be sufficient, as stated in 'Sharh al-Mabsut'.

**Chapter Eight: Explanation of the distribution of an estate in a situation where there is a debt owed by or to the deceased, or a legatee (Musa Lahu) is present; concerning the discovery of a debt after distribution; and concerning an heir's claim for a debt in the inheritance or for a specific item among the assets of the inheritance.**

If one of the heirs admits that there is a debt upon the deceased while the others deny it, the estate shall be distributed among them. Then, if the share of the one who admitted (Muqir) is sufficient to cover the entire debt, he shall be ordered, according to our view, to pay the entire debt from his share. This is mentioned in 'Fatawa Qazi Khan'. If the heirs have partitioned a house or land of the deceased while there is a debt upon him, and then creditors appear to demand their debt, they have the option to annul this distribution, whether the debt is small or large. If heirs request the judge (Qazi) to distribute the estate and there is a debt upon the deceased known to the judge, while the creditor is absent: if the debt is 'mustaghraq' (encompassing), meaning it equals or exceeds the entire estate, the judge shall not distribute the said estate among the heirs, because the heirs have no right in it, and thus distribution

would serve no purpose. If the debt is not encompassing, then by analogy (Qiyas) he should also not distribute but withhold the entire estate. However, by juristic preference (Istihsan), the ruling is to withhold an amount equivalent to the debt and distribute the remainder among the heirs. According to Imam Azam (Imam Abu Hanifa, may Allah have mercy on him), in no such case shall a guarantor (Kafeel) be taken from the heirs, though the 'Sahibayn' (his two disciples) differ on this. If the judge is unaware of any debt on the deceased, he shall inquire[1] from the heirs whether there is a debt upon the deceased. If they say yes, he shall inquire about the amount of the debt, because the ruling differs—i.e., there is one ruling if the debt amount encompasses the entire estate and another if it does not. Therefore, inquiring is necessary. If the heirs state that there is no debt on the deceased, their word shall be accepted because the heirs are the representatives (1) of the deceased. Then he shall inquire from them if there is a will (Wasiyat) regarding the estate. If they say yes, he shall ask whether it is a specific bequest (Ta'ayyun) (2) or a general one (Mursala), because the ruling is different in both cases (3). And if they...

**Footnotes:** [1] This testimony was established by the claimant's witnesses or by admission, and this is the meaning intended throughout. (1) During his lifetime, the statement of the deceased was accepted, and the witnesses are those of the creditor. (2) Ta'ayyun, for example, a bequest of a house, and Mursala, for example, a bequest of one-third of the property. (3) (Thus, its explanation will follow shortly, God willing).

...पर होगा और यदि मुकातब (वह दास जिसने मुक्ति का मूल्य चुकाने का अनुबंध किया हो) ने अपनी मृत्यु के समय किसी को वसीयतदार (वसी) नियुक्त किया और वसी ने उसके वयस्क वारिसों के साथ उसके नाबालिग बेटे के लिए संपत्ति का बंटवारा (मुकासिमा) किया, और मुकातब अपनी मुक्ति राशि (किताबत) चुकाने योग्य माल छोड़ कर मरा है, तो इस स्थिति में वसी द्वारा किया गया बंटवारा जायज़ होगा, जैसे कि यदि उक्त मुकातब आज़ाद होता तो जायज़ होता। क्योंकि मुकातब का किताबत का माल चुका दिया जाएगा और यह आदेश दिया जाएगा कि वह अपने जीवन के अंतिम क्षण में आज़ाद होकर मरा है। अतः मानो उसने स्वयं किताबत का माल चुका कर प्राण त्यागे, इसलिए उसका वसी उसके नाबालिग बेटे की ओर से संपत्ति के प्रबंधन में एक स्वतंत्र व्यक्ति के वसी के समान होगा। और इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'ज़ियादात' में फ़रमाया है कि उक्त मुकातब का वसी उसके गायब (अनुपस्थित) वयस्क बेटे के हक में एक आज़ाद पुरुष के वसी के समान है, यहाँ तक कि अचल संपत्ति (अक़ार) के अलावा उसका वितरण करना जायज़ है। यही उनकी बात का निष्कर्ष है और जो वहां वर्णित है वही सबसे सही (असह) है। और यदि उक्त मुकातब ने अपनी किताबत चुकाने योग्य माल नहीं छोड़ा हो और वसी ने उसके नाबालिग बेटे के लिए उसके वयस्क वारिसों से बंटवारा कर लिया और वारिसों ने उसकी किताबत के लिए परिश्रम (सआत) किया, तो वितरण जायज़ नहीं होगा। फिर यदि वारिसों ने इस बंटवारे के रद्द होने से पहले किताबत का माल चुका दिया तो यही वितरण पर्याप्त होगा, जैसा कि 'शराह अल-मबसूत' में है।

## अध्याय आठवाँ: ऐसी स्थिति में विरासत (तरका) के वितरण का वर्णन कि मृतक पर या मृतक का ऋण मौजूद हो या वसीयत पाने वाला (मौसी लहु) मौजूद हो, और वितरण के बाद ऋण प्रकट होने के वर्णन में, और वारिस द्वारा विरासत में ऋण का या विरासत की वस्तुओं में से किसी विशिष्ट संपत्ति का दावा करने के वर्णन में।

यदि वारिसों में से किसी वारिस ने मृतक पर ऋण होने का स्वीकार किया और बाकियों ने इनकार किया, तो विरासत उन लोगों में वितरित की जाएगी। फिर यदि स्वीकार करने वाले (मुक़िर) का हिस्सा पूरे ऋण को चुकाने के लिए पर्याप्त हो, तो हमारे निकट मुक़िर को आदेश दिया जाएगा कि वह अपने हिस्से में से पूरा ऋण चुकाए। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। और यदि वारिसों ने मृतक के घर या ज़मीन का वितरण कर लिया, जबकि मृतक पर ऋण है, फिर ऋणदाता अपना ऋण मांगने उपस्थित हुए, तो उन्हें अधिकार होगा कि वे इस वितरण को तोड़ दें, चाहे ऋण कम हो या अधिक। और यदि

वारिसों ने काज़ी से विरासत के वितरण का अनुरोध किया और मृतक पर ऋण है और काज़ी उसे जानता है, और ऋणदाता अनुपस्थित है, तो यदि ऋण संपूर्ण विरासत को घेरे हुए है (दीन-ए-मुस्तग़रक़), यानी पूरी संपत्ति के बराबर है, तो काज़ी उक्त विरासत को वारिसों में वितरित नहीं करेगा, क्योंकि इसमें वारिसों का कोई अधिकार नहीं है, अतः वितरण का कोई लाभ न होगा। और यदि ऋण पूरी संपत्ति को नहीं घेरे हुए है, तो कयास (तर्क) के अनुसार इस स्थिति में भी वितरण नहीं करना चाहिए बल्कि पूरी विरासत को रोक कर रखना चाहिए, लेकिन इस्तेहसान (न्यायिक प्राथमिकता) के आधार पर यह आदेश है कि ऋण की मात्रा के बराबर संपत्ति रोक कर शेष को वारिसों में वितरित कर दे। इमाम आज़म (रह.) के निकट ऐसी किसी भी स्थिति में वारिसों से कोई ज़मानतदार (कफ़ील) नहीं लिया जाएगा, जबकि साहबैन (उनके शिष्य) इसमें मतभेद रखते हैं। और यदि काज़ी को मृतक पर ऋण होने का ज्ञान न हो, तो वह वारिसों से पूछेगा[1] कि क्या मृतक पर कोई ऋण है। यदि उन्होंने कहा कि हाँ, तो वह उनसे ऋण की मात्रा पूछेगा क्योंकि इससे आदेश बदल जाता है, यानी यदि ऋण की मात्रा इतनी है कि वह पूरी विरासत को घेरे हुए है तो अलग आदेश है और यदि वह पूरी विरासत को नहीं घेरे हुए है तो अलग आदेश है, अतः पूछना अनिवार्य है। और यदि वारिसों ने कहा कि मृतक पर कोई ऋण नहीं है, तो उनकी बात ही स्वीकार की जाएगी क्योंकि वारिस लोग मृतक के प्रतिनिधि (1) हैं। फिर वह उनसे पूछेगा कि क्या विरासत में कोई वसीयत है। यदि उन्होंने कहा कि हाँ, तो वह उनसे पूछेगा कि क्या यह वसीयत विशिष्ट वस्तु की (तअय्युन) (2) है या सामान्य हिस्से की (मुर्सला) है, क्योंकि दोनों स्थितियों में आदेश भिन्न है (3) और यदि उन्होंने...

**फ़ुटनोट्स:** [1] यह गवाही वादी के गवाहों से या स्वीकारोक्ति से सिद्ध हुई और यही अर्थ हर जगह है। (1) जीवन काल में मृतक का कथन स्वीकार्य था और गवाह ऋणदाता के। (2) तअय्युन जैसे घर की वसीयत और मुर्सला जैसे संपत्ति के एक तिहाई की वसीयत। (3) (अतः इसका वर्णन शीघ्र ही आएगा, यदि अल्लाह ने चाहा)।

پر ہے گا اور اگر مکاتب نے اپنی موت کے وقت کسی کو وصی مقرر کر دیا اور وصی نے اس کے بالغ وارثوں سے اس کے نابالغ فرزند کے واسطے مقاسمہ کیا اور مکاتب اپنی کتابت کی ادا کے لائق مال چھوڑ مرا ہے تو اس کے وصی کا بٹوارہ اس صورت میں جائز ہوگا جیسے کہ مکاتب مذکور اگر آزاد ہوتا تو جائز ہوتا کیونکہ مکاتب کا مال کتابت ادا کر دیا جائے گا اور یہ حکم دیا جائے گا کہ وہ اپنی حیات کے آخر جزو میں آزاد ہو کر مرا ہے پس گویا اس نے خود کتابت کا مال ادا کر کے انتقال کیا پس اس کا وصی اس کے نابالغ فرزند کی طرف سے تصرف کرنے میں مثل وصی آزاد کے ہو گا اور امام محمدؒ نے زیادات میں فرمایا کہ مکاتب مذکور کا وصی اس کے فرزندِ بالغ غائب کے حق میں مثل وصی آزاد مرد کے ہے حتیٰ کہ سوائے عقار کے اس کا تقسیم کرنا جائز ہے انتہا کلامہ اور جو وہاں ذکر فرمایا ہے وہی اصح ہے اور اگر مکاتب مذکور نے اپنی کتابت ادا کرنے کے لائق مال نہ چھوڑا ہو اور وصی نے اس کے نابالغ فرزند کے واسطے اس کے بالغ وارثوں سے مقاسمہ کر لیا اور اس کے وارثوں نے اس کی کتابت کے واسطے سعایت کی تو تقسیم جائز نہ ہو گی پھر اگر وارثوں نے قبل اس قسمت کے رد کر دینے کے مالِ کتابت ادا کر دیا تو یہی تقسیم کافی ہو گی کذا فی شرح المبسوط۔

**باب ہشتم: ایسی حالت میں تقسیم ترکہ کا بیان کہ میت پر یا میت کا قرضہ موجود ہو یا موصیٰ لہ موجود ہو اور بعد تقسیم کے قرضہ ظاہر ہونے کے بیان میں اور وارث کا ترکہ میں دین کا یا اعیان ترکہ میں سے کسی مال معین کا دعویٰ کرنے کے بیان میں**

اگر وارثوں میں سے کسی وارث نے میت پر قرضہ ہونے کا اقرار کیا اور باقیوں نے انکار کیا تو ترکہ ان لوگوں میں تقسیم کیا جائے گا کہ پھر جب کہ مقر کا حصہ تمام دین ادا ہونے کے واسطے کافی ہو تو ہمارے نزدیک مقر کو حکم دیا جائے گا کہ اپنے حصہ میں سے تمام قرضہ ادا کرے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر وارثوں نے میت کا دار یا زمین میں تقسیم کر لی حالانکہ میت پر قرضہ ہے پھر قرض خواہ اپنا دین طلب کرنے کو حاضر ہوئے تو ان کو اختیار ہو گا کہ اس تقسیم کو توڑ دیں خواہ قرضہ قلیل ہو یا کثیر ہو اور اگر وارثوں نے قاضی سے تقسیم ترکہ کی درخواست کی اور میت پر قرضہ ہے اور قاضی اس کو جانتا ہے اور قرض خواہ غائب ہے پس اگر دین مستغرق ہو یعنی تمام ترکہ کو محیط ہو تو قاضی ترکہ مذکور وارثوں میں تقسیم نہ کرے گا اس واسطے کہ وارثوں کا اس میں کچھ حق نہیں ہے پس تقسیم کا کچھ فائدہ نہ ہو گا اور اگر قرضہ غیر مستغرق ہو تو قیاساً اس صورت میں بھی تقسیم نہ کرے گا بلکہ سب ترکہ متوقف رکھے گا مگر استحساناً یہ حکم ہے کہ بقدر دین کے موقوف رکھ کر باقی وارثوں میں تقسیم کر دے اور امام اعظمؒ کے نزدیک اس میں کسی صورت میں وارثوں سے کوئی کفیل نہ لے گا اور صاحبینؒ اس میں خلاف کرتے ہیں اور اگر قاضی کو میت پر قرضہ ہونا معلوم نہ ہو تو وارثوں سے دریافت ۱ـہ کرے گا کہ آیا میت پر قرضہ ہے پس اگر انہوں نے کہا کہ ہاں تو ان سے قرضہ کی مقدار دریافت کرے گا کیونکہ اس میں حکم مختلف ہو جاتا ہے یعنی اگر مقدار قرضہ اس قدر ہو کہ تمام ترکہ کو محیط ہو تو اور حکم ہے اور اگر محیط نہ ہو تو اور حکم ہے پس دریافت کرنا ضروری ہے اور اگر وارثوں نے کہا کہ میت پر قرضہ نہیں ہے تو قول انہیں کا مقبول ہو گا کیونکہ وارث لوگ میت کے قائم مقام (۱) ہیں۔ پھر ان سے دریافت کرے گا کہ آیا ترکہ میں وصیت ہے پس اگر انہوں نے کہا کہ ہاں تو ان سے دریافت کرے گا کہ آیا یہ وصیت تعین (۲) ہے یا وصیت مرسلہ ہے کیونکہ دونوں حالتوں میں حکم مختلف ہے (۳) اور اگر انہوں نے

**حواشی:** ۱ــہ یہ گواہی گواہان مدعی یا با قرار ثابت ہوا اور یہی مراد ہر جگہ ہے۔ (۱) حالت زندگی میں میت کا قول مقبول تھا اور گواہ قرض خواہ کے۔ (۲) تعین مثلاً مکان کی وصیت ہو اور مرسلہ مثلاً تہائی مال کی وصیت۔ (۳) (چنانچہ اس کا بیان عنقریب آتا ہے ان شاء اللہ تعالیٰ)۔

**Fatwa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 266 | Kitab al-Qisma (Book of Distribution)**

It is stated that if there is no will regarding the estate (legacy), then the estate shall be distributed among the heirs. Following this, if a debt comes to light, the Qazi (Judge) will annul this distribution. Similarly, if the Qazi did not inquire whether a debt exists and distributed the estate such that the distribution seemingly became valid, and then a debt appeared, the Qazi will still annul the said distribution. However, if the heirs paid this debt from their own wealth, then in both scenarios the Qazi will not annul the distribution. Likewise, if the creditor exonerated the deceased from the debt, the distribution will not be annulled. All this applies to the case where the heirs did not set aside the creditor's share and there is no other property of the deceased except what the heirs distributed. If the heirs had separated the creditor's share, or if there is other property of the deceased besides the distributed assets, the Qazi will not annul the distribution.

Similarly, if another heir appears who was previously unknown to the witnesses, or if a legatee (Musa-la-hu) entitled to a third or a fourth appears, the Qazi will annul the said distribution and redistribute. If the heirs propose to pay the right of this heir or legatee from their own wealth to avoid annulling the distribution, the Qazi shall not heed their statement. However, if this heir or legatee agrees to this arrangement, it can proceed. If a creditor or a legatee of a specific bequest (e.g., a thousand dirhams) appears and the heirs offer to pay from their own wealth, they have the right to do so. This is because the right of an heir or a legatee of a specific fraction is in the estate itself; therefore, heirs paying from their own wealth is akin to purchasing that part of the estate, which requires the beneficiary's consent. Conversely, a creditor's right or a legatee's right to a fixed amount is against the value of the estate. Whether paid from the estate's value or the heirs' wealth, it is equivalent. Furthermore, if an heir pays the creditor from their own wealth on the condition that they will not seek reimbursement from the estate, the Qazi will not annul the distribution, as the creditor's right is extinguished and no new debt against the estate is established. If the heir stipulated reimbursement or remained silent at the time of payment, the distribution will be voided. Note that the rule about annulling distribution upon the appearance of a new heir or legatee applies when the distribution was done without a Qazi's order. If it was by a Qazi's order and then a new heir or legatee of a third (1) appeared, the heir cannot annul the distribution if the Qazi had already separated their share. As for legatees, scholars differ; some say they cannot annul, an opinion indicated by Imam Muhammad (RA) and considered most correct in *Al-Muheet*. If a

person voluntarily pays the deceased's debt, the creditor has no right to demand annulment of the distribution, as noted in *Al-Zakhira*.

If heirs seek distribution while the estate is indebted, the legal stratagem (*hila*) is for a third party, with the creditor's permission, to become a guarantor for the debt on the condition of exonerating the deceased. If guaranteed without exoneration, the distribution will not be valid. Upon a guarantee with exoneration, it becomes a transfer of debt (*Hawala*), transferring the debt to the third party and releasing the estate from the claim. This is in *Wajeez al-Kardari*. And in *Muqabil al-Muhtar...* clarify that "property besides the distributed assets" means wealth sufficient to cover the debt, otherwise the aforementioned situation arises.

---

1. Voluntary act for worldly compensation... exoneration of the deceased means saying "I am a guarantor for this creditor on behalf of the deceased on the condition that the deceased is also exonerated in my right." (1) Or a fourth, etc.

कहा कि विरासत (तरका) में कोई वसीयत नहीं है तो अब विरासत को उनमें बाँट दिया जाएगा। फिर उसके बाद अगर कोई कर्ज़ ज़ाहिर हुआ तो काज़ी (न्यायाधीश) इस बँटवारे को रद्द कर देगा। इसी तरह अगर काज़ी ने उनसे यह नहीं पूछा था कि कोई कर्ज़ है या नहीं और उनमें विरासत बाँट दी यहाँ तक कि ज़ाहिर तौर पर बँटवारा जायज़ हो गया, फिर कर्ज़ ज़ाहिर हुआ, तो भी काज़ी उक्त बँटवारे को रद्द कर देगा। लेकिन अगर उत्तराधिकारियों (वारिसों) ने यह कर्ज़ अपने माल से चुका दिया तो काज़ी दोनों स्थितियों में बँटवारे को रद्द नहीं करेगा। इसी तरह अगर ऋणदाता ने मृतक को कर्ज़ से मुक्त कर दिया तो भी बँटवारा रद्द नहीं होगा। और यह सब उस स्थिति में है जब वारिसों ने ऋणदाता का हिस्सा अलग न किया हो और वारिसों ने जो हिस्सा बाँटा है उसके अलावा मृतक का और कोई माल न हो। और अगर वारिसों ने ऋणदाता का हिस्सा अलग कर दिया हो या जिस माल को बाँटा गया है उसके अलावा मृतक का कुछ और माल हो तो काज़ी इस बँटवारे को रद्द नहीं करेगा।

इसी तरह अगर कोई दूसरा वारिस ज़ाहिर हुआ जिसे गवाहों ने पहले नहीं जाना था, या तिहाई (एक-तिहाई) या चौथाई (एक-चौथाई) का वसीयतदार (मूसा-ल-हू) ज़ाहिर हुआ, तो काज़ी उक्त बँटवारे को रद्द करके फिर से बँटवारा करेगा। और अगर वारिसों ने कहा कि हम इस वारिस या वसीयतदार का हक अपने माल से अदा कर देते हैं और बँटवारा रद्द नहीं करेंगे, तो काज़ी उनकी बात पर ध्यान नहीं देगा। लेकिन अगर यह वारिस या वसीयतदार इस बात पर राजी हो जाए तो ऐसा हो सकता है। और अगर कोई ऋणदाता या हज़ार दिरहम की भेजी गई वसीयत का वसीयतदार ज़ाहिर हुआ और वारिसों ने कहा कि हम इस ऋणदाता या ऐसे वसीयतदार का हक अपने माल से अदा कर देते हैं और बँटवारा रद्द नहीं करेंगे, तो उन्हें यह अधिकार प्राप्त है। इसकी वजह यह है कि वारिस और तिहाई व चौथाई आदि के वसीयतदार का हक तो स्वयं विरासत के माल में है। इसलिए जब वारिसों ने यह चाहा कि हम उसका हक अपने माल से अदा करें, तो इसका मतलब यह हुआ कि विरासत में जो कुछ उसका हिस्सा है उसे हम खरीद लें, और यह उसकी सहमति के बिना सही नहीं हो सकता। जहाँ तक ऋणदाता के हक या हज़ार दिरहम की वसीयत के वसीयतदार के हक की बात है, तो यह हक विरासत के माल में इस अर्थ में है कि विरासत के मूल्य में से इतना हक उन्हें दिया जाए। अतः चाहे विरासत के मूल्य में से दिया जाए या वारिसों के माल से, दोनों बराबर हैं। और इसी तरह अगर वारिसों में से किसी ने ऋणदाता का हक अपने माल से इस शर्त पर अदा कर दिया कि वह विरासत में से वापस नहीं लेगा, तो भी काज़ी इस बँटवारे को रद्द नहीं करेगा बल्कि इसे बरकरार रखेगा,

क्योंकि ऋणदाता का हक समाप्त हो गया और वारिस का कर्ज़ विरासत पर साबित नहीं हुआ क्योंकि उसने शर्त लगा ली थी कि मैं विरासत से वापस नहीं लूँगा। और अगर वारिस ने कर्ज़ चुकाते समय शर्त रखी हो कि मैं विरासत से वापस लूँगा या चुप रहा हो, तो उक्त बँटवारा रद्द हो जाएगा। फिर स्पष्ट हो कि यह जो कहा गया कि "अगर वारिसों ने विरासत बाँट ली और फिर दूसरा वारिस या तिहाई व चौथाई आदि का वसीयतदार ज़ाहिर हुआ तो काज़ी इस बँटवारे को रद्द कर देगा", यह उस समय है जब यह बँटवारा काज़ी के आदेश के बिना हुआ हो। और अगर यह बँटवारा काज़ी के आदेश से हुआ हो और फिर कोई वारिस या तिहाई (१) का वसीयतदार ज़ाहिर हुआ, तो यह वारिस इस बँटवारा को रद्द नहीं कर सकता जबकि काज़ी ने उसका हिस्सा अलग कर दिया हो। जहाँ तक वसीयतदार की बात है, तो इसमें विद्वानों का मतभेद है; कुछ ने कहा कि रद्द नहीं कर सकता और इसी ओर इमाम मोहम्मद (रह.) ने इशारा फ़रमाया है और यही सबसे सही है; यह 'मुहीत' में है। और अगर किसी व्यक्ति ने उपकार के तौर पर (तबर्रुन) मृतक का कर्ज़ चुका दिया, तो ऋणदाता को बँटवारा रद्द करवाने का अधिकार नहीं होगा; यह 'ज़ख़ीरा' में है।

वारिसों ने विरासत का बँटवारा चाहा जबकि विरासत पर कर्ज़ है, तो इसकी युक्ति (हीला) यह है कि कोई अजनबी व्यक्ति ऋणदाता की अनुमति से मृतक की ऋणमुक्ति की शर्त पर इस कर्ज़ का ज़ामिन (गारंटर) बन जाए। और अगर उसने ऋणमुक्ति की शर्त के बिना ज़मानत दी तो यह बँटवारा प्रभावी नहीं होगा। इसलिए कि जब उसने मृतक की ऋणमुक्ति की शर्त पर ज़मानत दी तो यह हस्तांतरण (हवाला) हो गया, अतः कर्ज़ उस अजनबी की ओर स्थानांतरित हो जाएगा और विरासत कर्ज़ के दावे से मुक्त हो जाएगी। यह 'वजीज़ करदरी' में है। और 'मुकाबिल अल-मुहतर...' और स्पष्ट हो कि बँटे हुए माल के अलावा मृतक के माल से तात्पर्य यह है कि वह माल कर्ज़ चुकाने के लिए पर्याप्त हो, अन्यथा उपरोक्त स्थिति पैदा होगी।

---

1. दुनियावी बदले के बदले उपकार... मृतक की ऋणमुक्ति यह कि "मैं इस ऋणदाता के लिए मृतक की ओर से ज़ामिन हूँ इस शर्त पर कि मृतक मेरे हक में भी मुक्त है।" (१) या चौथाई आदि।

کہا کہ ترکہ میں وصیت نہیں ہے تو اب ترکہ کو ان میں تقسیم کر دے گا پھر اس کے بعد اگر قرضہ ظاہر ہوا تو قاضی اس تقسیم کو توڑ دے گا اسی طرح اگر قاضی نے ان سے دریافت نہ کیا ہو کہ دین ہے یا نہیں اور ان میں ترکہ تقسیم کر دیا حتی کہ ظاہراً تقسیم جائز ہو چکی ہو پھر دین ظاہر ہوا تو بھی قاضی تقسیم مذکور کو توڑ دے گا لیکن اگر وارثوں نے یہ قرضہ اپنے مال میں سے ادا کر دیا تو قاضی دونوں صورتوں میں تقسیم کو نہ توڑے گا اسی طرح اگر قرض خواہ نے میت کو قرض سے بری کر دیا تو بھی تقسیم کو نہ توڑے گا اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ وارثوں نے قرض خواہ کا حصہ الگ نہ کیا ہو اور سوائے اس کے جس کو وارثوں نے تقسیم کر لیا ہے میت کا اور کچھ مال بھی نہ ہو اور اگر وارثوں نے قرض خواہ کا حصہ جدا کر دیا ہو یا سوائے اس مال کے جس کو تقسیم کیا ہے میت کا اور کچھ مال ہو تو قاضی اس تقسیم کو نہ توڑے گا۔

اسی طرح اگر کوئی دوسرا وارث ظاہر ہوا جس کو پہلے گواہوں نے نہ جانا تھا یا تہائی یا چوتھائی کا موسیٰ لہ ظاہر ہوا تو قاضی تقسیم مذکور کو توڑ کر پھر دوبارہ تقسیم کرے گا اور اگر وارثوں نے کہا کہ ہم اس وارث یا موسیٰ لہ کا حق اپنے مال سے ادا کیے دیتے ہیں اور تقسیم نہ توڑیں گے تو قاضی ان کے قول پر التفات نہ کرے گا لیکن اگر یہ وارث یا موسیٰ لہ اس امر پر راضی ہو جائے تو ہو سکتا ہے اور اگر کوئی قرض خواہ یا ہزار درہم وصیت مرسلہ کا موسیٰ لہ ظاہر ہوا اور وارثوں نے کہا کہ ہم اس قرض خواہ یا ایسے موسیٰ لہ کا حق اپنے مال سے ادا کیے دیتے ہیں اور تقسیم کو نہ توڑیں گے تو ان کو یہ اختیار حاصل ہے اس وجہ سے کہ وارث اور تہائی و چوتھائی وغیرہ کے موسیٰ لہ کا حق تو عین ترکہ میں ہے سو جب وارثوں نے یہ چاہا کہ ہم اس کا حق اپنے مال سے ادا کریں تو یہ چاہا کہ ترکہ میں سے جو کچھ اس کا حصہ ہے ہم خرید لیں تو یہ

بدوں اس کی رضامندی کے صحیح نہیں ہو سکتا ہے اور رہا قرض خواہ کا حق یا ہزار درہم وصیت مرسلہ کے موسیٰ لہ کا حق سو یہ حق عین ترکہ میں بدیں معنی کہ مالیت ترکہ سے اس قدر حق ان کو پھر دیا جائے پس خواہ مالیت ترکہ میں سے دیا جائے یا وارثوں کے مال سے دیا جائے دونوں برابر ہیں اور اسی طرح اگر وارثوں میں سے کسی نے قرض خواہ کا حق اپنے مال سے اس شرط سے ادا کر دیا کہ ترکہ میں سے واپس نہ لے گا تو بھی قاضی اس تقسیم کو نہ توڑے گا بلکہ برابر باقی رکھے گا کیونکہ قرض خواہ کا حق ساقط ہو گیا اور وارث کا قرضہ ترکہ پر ثابت نہیں ہوا کیونکہ اس نے شرط کر لی تھی کہ میں ترکہ سے واپس نہ لوں گا اور اگر وارث نے ادائے قرضہ کے وقت شرط کر لی ہو کہ میں ترکہ سے واپس لوں گا یا سکوت کیا ہو تو تقسیم مذکور رد ہو جائے گی پھر واضح ہو کہ یہ جو ذکر فرمایا کہ اگر وارثوں نے ترکہ تقسیم کر لیا تو پھر دوسرا وارث یا تہائی و چوتھائی وغیرہ کا موسیٰ لہ ظاہر ہوا تو قاضی اس تقسیم کو توڑے گا یہ اس وقت ہے کہ جب یہ تقسیم بغیر حکم قاضی ہو اور اگر یہ تقسیم بحکم قاضی ہو پھر کوئی وارث یا تہائی(۱) کا موسیٰ لہ ظاہر ہوا تو یہ وارث اس تقسیم کو نہیں توڑ سکتا ہے جب کہ قاضی نے اس کا حصہ جدا کر دیا اور رہا موسیٰ لہ سو اس میں مشائخ نے اختلاف کیا ہے بعضوں نے فرمایا کہ نہیں توڑ سکتا ہے اور اس طرف امام محمدؒ نے اشارہ فرمایا ہے اور یہی اصح ہے یہ محیط میں ہے اور اگر کسی شخص نے ازراہ تبرع میت کا قرضہ ادا کر دیا تو قرض خواہ کو تقسیم توڑنے کا استحقاق حاصل نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

وارثوں نے تقسیم ترکہ چاہی حالانکہ ترکہ پر قرضہ ہے تو اس کا حیلہ یہ ہے کہ کوئی اجنبی باجازت قرض خواہ بشرط براءت میت اس دین کا ضامن ہو جائے اور اگر اس نے بشرط براءت ضمانت نہ کی تو یہ تقسیم نافذ نہ ہو گی اس واسطے کہ جب بشرط براءت میت اس نے ضمانت کی تو یہ حوالہ ہو گیا پس قرض اُس اجنبی کی طرف منتقل ہو جائے گا اور ترکہ مواخذہ دین سے

چھوٹ جائے گا۔ یہ وجیز کروری میں ہے اور مقابل المحترم و واضح ہو کہ سوائے مال مقسوم کے اور مال میت سے یہ مراد ہے کہ وہ مال ادائے دین کے واسطے کافی ہو ورنہ صورت مذکورہ پیش آئے گی۔

---

۱۔ تبرع علی بدن دنیاوی عوض کے براءت میت یہ کہ میں اس قرضخواہ کے لیے میت کی طرف سے ضامن ہوں اس شرط سے کہ میت میرے حق میں بھی بری ہے۔ (۱) یا چوتھائی وغیرہ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 267 Kitab al-Qisma (Book of Partition)**

If some heirs pay off a debt [of the deceased], they shall have the option to recover it from the remaining heirs, whether they stipulated a condition for recovery at the time of payment or not. However, if they paid it as a voluntary donation (tabarru'), they shall not recover it. They may recover because each heir is liable for the demand of that debt, to the extent that if the creditor takes him before the judge (Qadi), the judge will issue a decree for the entire debt against him. Thus, this person will be acting under the compulsion of a judicial order and will not be considered a voluntary donor. But if they specifically intended a donation—for example, by stipulating that they will not recover it from the heirs—then they indeed become a voluntary donor. If the heirs partitioned a house among themselves, and among the heirs is the widow of the deceased, and she later claims her dower (Mahr) after the partition and provides witnesses, then the partition shall be annulled; this is mentioned in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. Furthermore, if an heir claims a debt of theirs from the estate after the partition of the legacy (tarika) is complete, their claim is valid, their witnesses will be heard, and they will have the option to annul the partition; this is in 'al-Muhit'.

In a case where common inherited property is shared among several heirs and there are no debts or wills upon that inheritance, then one of those heirs dies, and that second deceased heir has debts, or made a will, or has an heir who is absent or a minor; if the [original] heirs then partitioned the estate of the first deceased without a judge's order, the creditors of the second deceased have the right to void that partition. Similarly, the beneficiary of the will, the absent heir, and the minor heir also have this same right; this is in 'Tatar-Khaniyya'. If an heir claims that a third of the estate was willed to their minor son and provides witnesses after the heirs have already partitioned the house, this partition does not void the right acquired by the son through the will. However, the father does not have the right to demand what was willed for his son, nor the right to break the partition because the process was completed ^1 through him.

Whoever attempts to break something that was completed with their participation, their effort shall be in vain. By proceeding with the partition, he admitted that there was no will for his son; however, this rule does not apply in the case of a debt. But when the son reaches majority, he will have the option to demand his right from the will and break the partition; this is in 'al-Zahira'. If a house is shared inheritance among several people, and they partitioned it according to the share they received from their father, and then one heir claims that another full brother was a co-heir

with them, who died after the father and the claimant is his heir, and seeks that inheritance saying "you only partitioned the share I received from my father," if the written deed of partition did not state that the portion received by each has no connection to any other's right, and the said heir provides witnesses for his claim, his witnesses will not be accepted and the partition will not break. If they had written that the portion received has no connection to another's right, then this writing is a denial of his claim. The statement "that it was not written in the partition deed" is meant to remove doubt, and the objective is that the answer is the same in both cases ^2. Similarly, if the claimant provides witnesses that they bought this house from the father during his lifetime, or that the father gifted it to them and they took possession, or that this house belonged to their mother and they inherited it from her, their witnesses will still not be accepted; this is in 'al-Mabsut'.

If heirs partitioned a debt (dayn); if this debt was owed by people to the deceased and the heirs partitioned the debt and the tangible assets together in such a way that...

---

**Footnotes:** 1. Fully, meaning the executor (wasi) is the cause for the completion of this partition. 2. Is according to the proportional share. 3. [Jawab/Bawab] Meaning whether or not words of denial are written, the partition will not break; rather, if written, the claim is void.

यदि कुछ वारिसों ने ऋण चुका दिया, तो उन्हें शेष से उसे वसूलने का अधिकार होगा, चाहे उन्होंने भुगतान के समय वसूली की शर्त रखी हो या नहीं। लेकिन यदि किसी ने दान (तबर्रु) के तौर पर भुगतान किया है, तो वह ऐसा न करे और वह वापस इसलिए लेगा क्योंकि वारिसों में से हर एक वारिस उस ऋण की मांग के प्रति उत्तरदायी है, यहाँ तक कि यदि लेनदार उसे न्यायाधीश (काज़ी) के पास ले जाए, तो न्यायाधीश उस पर पूरे ऋण की डिक्री कर देगा। अतः यह व्यक्ति न्यायिक आदेश से विवश और लाचार होगा और दानकर्ता नहीं माना जाएगा। लेकिन यदि उसने दान का इरादा कर लिया हो, उदाहरण के लिए उसने यह शर्त लगा दी कि मैं वारिसों से वापस नहीं लूँगा, तो वह वास्तव में दानकर्ता हो जाएगा। यदि वारिसों ने घर का आपस में बँटवारा कर लिया और वारिसों में मृतक की पत्नी भी हो, और फिर उसने बँटवारे के बाद अपने पति के मेहर का दावा किया और गवाह पेश कर दिए, तो बँटवारा रद्द कर दिया जाएगा; यह 'मुहीत सरख़सी' में है। और यदि कुछ वारिसों ने विरासत (तरके) के बँटवारे के पूरा होने के बाद विरासत में अपने ऋण का दावा किया, तो उसका दावा सही है और उसके गवाहों की सुनवाई होगी, और उसे बँटवारा रद्द करने का अधिकार होगा; यह 'मुहीत' में है। साझा विरासत में कई वारिसों के बीच माल साझा है और उस विरासत पर कोई ऋण या वसीयत नहीं है, फिर किसी वारिस की मृत्यु हो गई और उस मृतक वारिस पर ऋण है या उसने कोई वसीयत की है, या उसका कोई वारिस अनुपस्थित या नाबालिग है; फिर यदि वारिसों ने पहले मृतक की विरासत को न्यायाधीश के आदेश के बिना आपस में बाँट लिया, तो दूसरे मृतक के लेनदारों को अधिकार होगा कि वे इस बँटवारे को रद्द कर दें। इसी प्रकार, वसीयत के लाभार्थी और अनुपस्थित वारिस तथा नाबालिग को भी यही अधिकार है; यह 'तातारख़ानिया' में है। और यदि किसी वारिस ने अपने नाबालिग बेटे के लिए एक-तिहाई की वसीयत होने का दावा किया और गवाह पेश कर दिए, जबकि वारिस घर का बँटवारा कर चुके हैं, तो यह बँटवारा बेटे के उस अधिकार को जो वसीयत के कारण प्राप्त हुआ है, रद्द नहीं करता। लेकिन उसके पिता को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने बेटे के लिए प्राप्त वसीयत की मांग करे और न ही उसे बँटवारा तोड़ने का अधिकार है, क्योंकि यह बँटवारा उसके माध्यम से ही पूरा ^१ हुआ है।

जो व्यक्ति ऐसी चीज़ को तोड़ने का इरादा करे जो उसके साथ ही पूरी हुई हो, उसकी कोशिश व्यर्थ जाएगी। जब उसने बँटवारे की कार्यवाही की, तो उसने इस बात को स्वीकार किया कि मेरे बेटे के लिए कोई वसीयत नहीं है, लेकिन ऋण के मामले में ऐसा नियम नहीं है। किंतु जब उसका बेटा

वयस्क हो जाए, तो उसे अधिकार होगा कि वह अपने वसीयती अधिकार की मांग करे और बँटवारा रद्द कर दे; यह 'ज़हीरा' में है। और यदि एक घर कई लोगों के बीच साझा विरासत हो और उन्होंने उसे उस हिस्से के अनुसार बाँट लिया जो उन्होंने अपने पिता से पाया था, फिर एक वारिस ने दावा किया कि उसका एक सगा भाई (सहोदर) भी उनके साथ पिता की विरासत का वारिस था, जिसकी पिता की मृत्यु के बाद मृत्यु हो गई और मैं उसका वारिस हूँ, और उसने उसकी विरासत की मांग करते हुए कहा कि "तुम लोगों ने मुझे केवल वह हिस्सा बाँटा है जो मैंने अपने पिता से पाया था," और बँटवारे के उस विलेख में उन्होंने यह नहीं लिखा था कि जो हिस्सा जिसे मिला है उससे दूसरे का कोई अधिकार संबंधित नहीं है, और उक्त वारिस ने अपने दावे पर गवाह पेश किए, तो उसके गवाह स्वीकार नहीं होंगे और बँटवारा नहीं टूटेगा। और यदि उन्होंने यह लिखा हो कि प्राप्त हिस्से से दूसरे का कोई अधिकार संबंधित नहीं है, तो यह लेखन उसके दावे का खंडन है। और यह जो कहा गया है कि बँटवारे के विलेख में यह नहीं लिखा गया था, उसका उद्देश्य संदेह दूर करना है, और तात्पर्य यह है कि दोनों स्थितियों में उत्तर समान ^२ है। इसी प्रकार, यदि उक्त दावेदार ने गवाह पेश किए कि उसने यह घर अपने पिता से उनके जीवनकाल में खरीदा था, या पिता ने उसे यह घर उपहार में दिया था और उसने कब्ज़ा कर लिया था, या यह घर उसकी माँ का था और उसे उनसे विरासत में मिला है, तब भी उसके गवाह स्वीकार नहीं होंगे; यह 'मबसूत' में है।

यदि वारिसों ने ऋण (दीन) का आपस में बँटवारा किया; यदि यह ऋण मृतक का लोगों पर बकाया था और वारिसों ने ऋण और संपत्ति का एक साथ इस प्रकार बँटवारा किया कि...

---

**पाद-टिप्पणियाँ (Footnotes):** 1. पूरी, यानी वसीयत का निष्पादक (वसी) इस बँटवारे के पूरा होने का कारण है। 2. आनुपातिक हिस्से के अनुसार है। 3. [जवाब/बवाब] यानी चाहे निषेध के शब्द लिखे हों, बँटवारा नहीं टूटेगा, बल्कि यदि लिखा हो तो दावा ही शून्य हो जाएगा।

اگر بعض وارث نے قرضہ ادا کردیا تو اس کو اختیار ہوگا کہ باقیوں سے واپس لے خواہ اس نے ادا کرنے کے وقت واپس لینے کی شرط کرلی ہو یا نہ کی ہولیکن اگر اس نے تبرعاً ادا کر دیا ہے تو ایسا نہ کرے اور واپس اس وجہ سے لے گا کہ وارثوں میں سے ہر ایک وارث اس قرضہ کے مطالبہ میں گرفتار ہے حتی کہ اگر قرضخواہ اس کو قاضی کے پاس لے گیا تو اس پر پورے قرضہ کی ڈگری کر دے گا پس یہ شخص حکم قضا سے مجبور و مضطر ہوگا متبرع نہ ہوگا لیکن اگر اس نے تبرع کا ارادہ کر لیا مثلاً اس نے شرط کر دی کہ میں وارثوں سے واپس نہ لوں گا تو البتہ متبرع ہو جائے گا اور اگر وارثوں نے دار کو باہم تقسیم کرلیا اور وارثوں میں میت کی جورو بھی ہے پھر اس نے بعد تقسیم کے اپنے شوہر مہر کا دعویٰ کیا اور گواہ قائم کر دیے تو تقسیم توڑ دی جائے گی یہ محیط سرخسی میں ہے اور اگر بعض وارث نے ترکہ کی تقسیم پوری ہو جانے کے بعد ترکہ میں اپنے قرضہ کا دعویٰ کیا تو اس کا دعویٰ صحیح ہے اور اس کے گواہوں کی سماعت ہو گی اور اس کو اختیار ہوگا کہ تقسیم توڑ دے یہ محیط میں ہے۔ چند وارثوں میں مال میراث مشترک ہے اور اس میراث پر قرضہ یا وصیت کچھ نہیں ہے پھر کسی وارث نے انتقال کیا اور اس وارث میت پر قرضہ ہے یا اس نے کچھ وصیت کر دی ہے یا اس کا کوئی وارث غائب ہے یا صغیر ہے پھر میت اول کی میراث کو وارثوں نے بغیر حکم قاضی باہم تقسیم کیا تو میت ثانی کے قرضخواہوں کو اختیار ہوگا کہ اس تقسیم کو باطل کر دیں اسی طرح صاحب وصیت اور وارث غائب اور صغیر کو بھی یہی اختیار ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے اور اگر کسی وارث نے اپنے نا بالغ فرزند کے واسطے تہائی کی وصیت ہونے کا دعویٰ کیا اور گواہ قائم کر دیے حالانکہ وارث لوگ دار کو باہم تقسیم کر چکے ہیں تو یہ تقسیم اس کے فرزند کا حق جو بوجہ وصیت کے حاصل ہوا

ہے باطل نہیں کرتی ہے مگر اس کے باپ کو یہ اختیار نہیں کہ جو وصیت اس کے فرزند کے واسطے حاصل ہوئی اس کا مطالبہ کرے اور نہ یہ اختیار ہے کہ تقسیم کو توڑ دے کیونکہ یہ قیمت اس کے ہاتھ پوری ۱۸ ہوئی ہے۔

جو شخص ایسی چیز کے توڑنے کا قصد کرے جو اس کے ساتھ پوری ہوئی ہے اس کی کوشش برباد ہو جائے گی اور جب اس نے تقسیم پر اقدام کیا تو اس بات کا اعتراف کیا کہ میرے بیٹے کے واسطے وصیت نہیں ہے مگر ایسا حکم قرضہ کی صورت میں نہیں ہے لیکن جب اس کا بیٹا بالغ ہو تو اس کو اختیار ہو گا کہ اپنے حق وصیت کا مطالبہ کرے اور تقسیم کو توڑ دے یہ ظہیرہ میں ہے۔ اور اگر ایک دار چند لوگوں میں میراث مشترک ہو پس اس کو انہوں نے جس قدر باپ سے میراث کا حصہ پایا ہے بانٹ لیا پھر ایک وارث نے دعویٰ کیا کہ میرا ایک سگا بھائی ایک ماں باپ سے ہم لوگوں کے ساتھ باپ کی میراث کا وارث تھا ہوا تھا پھر جدا انتقال باپ کے اس نے بھی انتقال کیا اور میں اس کا وارث ہوں اور اس کی میراث طلب کی اور کہا کہ تم لوگوں نے مجھے فقط وہ حصہ بانٹ دیا ہے جو میں نے اپنے باپ سے میراث پایا ہے اور اسی تقسیم کی جو تحریر ہوئی تھی اس میں ان لوگوں نے یہ نہیں لکھا تھا کہ جو حصہ جس کو پہنچا ہے اس سے دوسرے کا کچھ حق متعلق نہیں ہے اور وارث مذکور نے اپنے دعویٰ پر گواہ قائم کیے تو اس کے گواہ قبول نہ ہوں گے اور تقسیم نہ ٹوٹے گی اور اگر ان لوگوں نے یہ تحریر کیا ہو کہ جو حصہ جس کو پہنچا اس سے دوسرے کا کچھ حق متعلق نہیں ہے تو یہ تحریر اس کے دعویٰ کی نفی ہے اور یہ جو فرمایا ہے کہ اس تقسیم کی جو تحریر ہوئی تھی اس میں ان لوگوں نے یہ نہیں لکھا تھا کہ آخرہ اس سے شبہ دور کیا اور اس کا مقصود یہ ہے کہ دونوں صورتوں میں جواب یکساں ہے ۲۸ اسی طرح اگر مدعی مذکور نے اس دعویٰ کے گواہ قائم کیے کہ میں نے یہ دار اپنے باپ سے باپ کی زندگی میں خریدا ہے یا اس نے مجھے یہ دار ہبہ کیا اور میں نے لے کر قبضہ کر لیا ہے یا یہ دار میری

ماں کا ہے میں نے اس سے میراث پایا ہے تو بھی اس کے گواہ قبول نہ ہوں گے یہ مبسوط میں ہے۔

اگر وارثوں نے دین کو باہم تقسیم کیا پس اگر یہ دین میت کا لوگوں پر ہو اور وارثوں نے دین و عین کو اکٹھے تقسیم کیا بایں طور کہ

---

**حواشی:** ۱ پوری یعنی وصی اس تقسیم کے پورے ہونے کا باعث ہے ۲ بقدر حصہ رسد ہے۔ ۳ بواب یعنی خواہ نفی کے الفاظ لکھے ہوں تقسیم نہیں ٹوٹے گی بلکہ لکھا ہو تو دعویٰ باطل ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 268 Kitab al-Qisma (Book of Partition)**

If a condition is made that the debt owed by a certain person, along with a specific tangible asset ('ain), belongs to one heir, and the debt owed by another person, along with another specific asset, belongs to another heir (and so on), then such a partition of both assets and debts is void (batil). If the heirs partition the tangible assets among themselves and then partition the debts, the partition of the assets shall be valid, while the partition of the debts shall be void. If the debt is owed by the deceased and the heirs partition the estate with the agreement that each one becomes an individual guarantor for the debt of each creditor, or they partition with the agreement that one heir becomes the guarantor for all debts, then if the guarantee is a condition of the partition of the estate, the partition shall be defective (fasid). If the guarantee was not stipulated in the partition, but someone became a guarantor without condition after the partition, and if he became a guarantor on the condition that he would recover it from the estate, then this partition shall not be enforceable; i.e., he will have the right to annul this partition. If he became a guarantor on the condition that he would not recover anything from the deceased or his inheritance, and on the condition that the creditors release the deceased debtor from liability, then this is permissible provided the creditors agree to this guarantee; this is mentioned in 'Al-Zakheera'. If the creditors refuse to accept this, they have the right to annul the partition. If the creditors agreed to the guarantee and released the deceased, but the money was not collected from the guarantor and was lost, they shall have the right to recover it from wherever they find the property of the deceased, as stated in 'Al-Mabsut'. If the condition was not made in the guarantee that the creditors release the deceased debtor, the partition shall not be enforceable, even if the creditors agree to it. If a creditor who has a claim against the deceased permits the partition distributed by the heirs and later wishes to annul said partition, he shall have that right; this is in 'Al-Zakheera'.

If land is held in common inheritance by three individuals from their father, and one of them dies leaving an adult son, and that son and his two uncles partition the said land as the inheritance of his grandfather, and then the grandson produces witnesses that my grandfather had made a will for one-third in my favor and wishes for the partition to be declared void, his claim shall not be heard. However, if he does not claim a will from the grandfather but instead claims a debt owed to him by his father, the claim shall be valid, and if witnesses are produced, the debt shall be established. If both his uncles say that your debt is against your father, not the

grandfather, and we have given you your father's share, so sell it to pay off the debt or keep it as you wish, and you cannot annul the partition because you gain nothing from it, as upon annulment your debt would be paid from your father's share of the inheritance, not from the grandfather's estate, then they cannot say this. For their nephew (the claimant) can argue that this is not so; rather, the benefit in annulling the partition is that there will be an increase in the estate of the deceased. If a piece of land is a common inheritance among several heirs and the said heirs partition and take possession of it, and then one heir purchases another's share and takes possession, and subsequently a debt against the deceased is revealed and proven by witnesses, then both the partition and the purchase of the estate by the heirs shall be reversed (masroof ^2), and in the presence of debt, this transaction shall not be enforceable; this is in 'Al-Mabsut'.

If a person acknowledges that a certain person has died leaving a clear inheritance, without specifying that he left it for these people or for his heirs, and thereafter the declarant claims that the deceased made a will for one-third in his favor or claims a debt against the deceased, his witnesses shall be accepted. But if he had stated in the acknowledgment that the deceased left the inheritance for these people or for his heirs, and the rest of the case remains as it is, then his witnesses shall not be accepted; this is in 'Al-Zakheera'. If a person claims that a house is the inheritance of his father and then claims it as the inheritance of someone other than his father, such a claim shall not be heard due to contradiction; this is in 'Al-Mabsut'. Several heirs partitioned the inherited house of their ancestor, and the wife of the deceased is an acknowledger (muqirr ^3) of it, so the woman received her one-eighth share and it was set aside, then the said woman 1...

---

1. Partitioned the estate after guaranteeing the debt. 2. Masroof means they will be reversed and the debt will be paid first. 3. Muqirr means she did not deny it being an inheritance.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 268 किताबुल क़िस्मत**

यदि इस शर्त पर विभाजन किया गया कि अमुक व्यक्ति पर जो ऋण है वह इस वस्तु (ऐन) के साथ इस वारिस का है, और दूसरे अमुक व्यक्ति पर जो ऋण है वह दूसरी वस्तु के साथ दूसरे वारिस का है (और इसी प्रकार आगे भी), तो ऐसी वस्तुओं और ऋणों दोनों का विभाजन अमान्य (बातिल) है। यदि वारिसों ने वस्तुओं का आपस में विभाजन कर लिया और फिर ऋणों का विभाजन किया, तो वस्तुओं का विभाजन मान्य होगा और ऋणों का विभाजन अमान्य होगा। यदि ऋण मृतक पर हो और वारिसों ने विरासत का विभाजन इस समझौते के साथ किया कि प्रत्येक वारिस प्रत्येक लेनदार के ऋण का अलग से गारंटर (ज़ामिन) बनेगा, या इस समझौते से विभाजन किया कि एक वारिस सभी ऋणों का गारंटर बनेगा, तो यदि विभाजन में गारंटी की शर्त है तो विभाजन दोषपूर्ण (फ़ासिद) होगा। यदि गारंटी शर्त नहीं थी, बल्कि विभाजन के बाद बिना शर्त के कोई गारंटर बन गया, और यदि इस शर्त पर बना कि मैं विरासत से इसे वापस लूँगा, तो यह विभाजन लागू नहीं होगा, अर्थात् उसे विभाजन रद्द करने का अधिकार होगा। और यदि इस शर्त पर गारंटर बना कि मैं मृतक या उसकी विरासत से कुछ वापस नहीं लूँगा और इस शर्त पर कि लेनदार मृतक ऋणी को ऋणमुक्त कर दें, तो यह वैध है बशर्ते लेनदार इस गारंटी पर सहमत हों, यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि लेनदारों ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया, तो उन्हें विभाजन रद्द करने का अधिकार है। यदि लेनदार गारंटी पर सहमत हो गए और मृतक को ऋणमुक्त कर दिया, फिर लेनदारों को गारंटर से पैसा प्राप्त नहीं हुआ बल्कि डूब गया, तो उन्हें अधिकार होगा कि जहाँ कहीं भी मृतक की संपत्ति मिले, वे उससे अपना ऋण वसूल कर लें, जैसा कि 'मबसूत' में है। यदि गारंटी में यह शर्त नहीं थी कि लेनदार मृतक को ऋणमुक्त कर दें, तो विभाजन लागू नहीं होगा, भले ही लेनदार इस पर सहमत हों। जिस लेनदार का मृतक पर ऋण है, यदि उसने उस विभाजन की अनुमति दे दी जिसे वारिसों ने बांटा है, फिर वह उस विभाजन को रद्द करना चाहे, तो उसे यह अधिकार होगा, यह 'ज़ख़ीरा' में है।

यदि तीन व्यक्तियों के बीच उनके पिता की विरासत में ज़मीन साझी हो और उनमें से एक की मृत्यु हो जाए और वह एक वयस्क बेटा छोड़ जाए, और उस बेटे और उसके दोनों चाचाओं ने उक्त ज़मीन को उसके दादा की विरासत मानकर विभाजित कर लिया, फिर उस पोते ने गवाह पेश किए कि मेरे दादा ने मेरे लिए एक-तिहाई की वसीयत की थी और चाहा कि विभाजन अमान्य कर दिया जाए, तो उसके दावे की सुनवाई नहीं होगी। और यदि उसने दादा की ओर से वसीयत का दावा नहीं किया, बल्कि अपने पिता पर अपना ऋण होने का दावा किया, तो दावा सही होगा, और यदि गवाह पेश कर दिए तो

ऋण सिद्ध हो जाएगा। यदि उसके दोनों चाचाओं ने कहा कि तुम्हारा ऋण तुम्हारे पिता पर है, दादा पर नहीं, और हमने तुम्हें तुम्हारे पिता का हिस्सा दे दिया है, अब तुम्हारी इच्छा हो तो इसे ऋण चुकाने के लिए बेच दो या अपने पास रखो, और तुम विभाजन रद्द नहीं कर सकते क्योंकि तुम्हें इसमें कोई लाभ नहीं है, क्योंकि विभाजन रद्द होने पर तुम्हारा ऋण तुम्हारे पिता के विरासत के हिस्से से चुकाया जाएगा, दादा की विरासत से नहीं, तो वे दोनों ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि उनका भतीजा (दावेदार) यह कह सकता है कि ऐसा नहीं है, बल्कि विभाजन रद्द करने में यह लाभ है कि मृतक की संपत्ति में वृद्धि हो जाएगी। यदि कोई भूमि कई वारिसों में साझी विरासत हो और उक्त वारिसों ने उसे आपस में विभाजित करके कब्ज़ा कर लिया हो, फिर एक वारिस ने दूसरे के हिस्से को खरीदकर उस पर कब्ज़ा कर लिया, फिर मृतक पर ऋण निकला और उसके गवाह पेश हुए, तो विरासत का विभाजन और खरीद दोनों वारिस की ओर से निरस्त (मस्नूफ ^२) हो जाएंगे, और ऋण की स्थिति में इस लेन-देन का कार्यान्वयन नहीं होगा, यह 'मबसूत' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने स्वीकार किया कि अमुक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और उसने स्पष्ट विरासत छोड़ी है, और यह नहीं कहा कि इन लोगों के लिए या अपने वारिसों के लिए छोड़ी है, फिर उसके बाद स्वीकारकर्ता ने दावा किया कि मृतक ने मेरे लिए एक-तिहाई की वसीयत की थी या मृतक पर अपने ऋण का दावा किया, तो उसके गवाह स्वीकार्य होंगे। और यदि उसने स्वीकारोक्ति में यह कहा था कि इन लोगों के लिए या अपने वारिसों के लिए विरासत छोड़ी है, और बाकी मामला वैसा ही रहे, तो उसके गवाह स्वीकार्य नहीं होंगे, यह 'ज़ख़ीरा' में है। यदि किसी व्यक्ति ने दावा किया कि घर मेरे पिता की विरासत है, फिर पिता के अतिरिक्त किसी अन्य की विरासत का दावा किया, तो विरोधाभास के कारण ऐसा दावा सुना नहीं जाएगा, यह 'मबसूत' में है। कुछ वारिसों ने अपने पूर्वज का घर विरासत में विभाजित किया और मृतक की पत्नी इसकी स्वीकारकर्ता (मुक़िर ^३) है, तो उस महिला को आठवाँ हिस्सा मिला और उसका आठवाँ हिस्सा अलग कर दिया गया, फिर उक्त महिला ने १...

---

१ ऋण की गारंटी देकर विरासत का विभाजन किया। २ मस्नूफ अर्थात् पलट दी जाएंगी और पहले ऋण चुकाया जाएगा। ३ मुक़िर अर्थात् विरासत होने से इनकार नहीं किया।

یوں شرط کی کہ یہ دین جو فلاں شخص پر آتا ہے مع اس عین کے اس وارث کا ہے اور وہ دین جو فلاں شخص دیگر پر آتا ہے مع اس مال عین دیگر کے اس دوسرے وارث کا ہے (علی ہذا القیاس) تو ایسی تقسیم عین و دین دونوں میں باطل ہے اور اگر وارثوں نے اعیان کو باہم تقسیم کر لیا پھر دیوں کو باہم تقسیم کیا تو اعیان کی تقسیم صحیح ہوگی اور دیوں کی تقسیم باطل ہوگی اور اگر یہ قرضہ میت پر آتا ہو اور وارثوں نے باہم اس قرار داد سے تقسیم ترکہ کیا کہ ہر واحد ہر ایک قرضخواہ کے قرضے کا علیحدہ ضامن ہو جائے یا اس قرار داد سے تقسیم کیا کہ ایک وارث سب دیون کا ضامن ہو جائے پس اگر تقسیم ترکہ میں ضمانت شرط ہو تو تقسیم فاسد ہوگی اور اگر تقسیم میں ضمانت مشروط نہ ہو بلکہ تقسیم کے بعد بغیر شرط کے ضامن ہو گیا پس اگر اس شرط سے ضامن ہوا کہ ترکہ سے واپس لوں گا تو یہ تقسیم نافذ نہ ہو گی یعنی اس کو اس تقسیم کے توڑ دینے کا اختیار ہوگا اور اگر اس شرط سے ضامن ہوا کہ میت سے اور اس کے میراث سے کچھ واپس نہ لوں گا اور اس شرط سے کہ قرض خواہ میت مقروض کو بری کر دے تو یہ جائز ہے بشرطیکہ قرض خواہ لوگ اس کی ضمانت پر راضی ہو جائیں یہ ذخیرہ میں ہے۔ اور اگر قرض خواہوں نے اس کے قبول سے انکار کیا تو ان کو تقسیم توڑنے کا اختیار ہے۔ اور اگر قرض خواہ لوگ اس کی ضمانت پر راضی ہوئے اور انہوں نے میت کو بری کر دیا پھر ان کا مال اس ضامن سے وصول نہ ہوا بلکہ ڈوب گیا تو ان کو اختیار ہوگا کہ جہاں کہیں میت کا مال پائیں اس سے وصول کر لیں کذا فی المبسوط اور اگر ضمانت میں یہ شرط نہ کی کہ قرض خواہ اپنے قرض وار میت کو بری کر دے تو تقسیم نافذ نہ ہو گی اگرچہ قرض خواہ لوگ اس پر راضی ہو جائیں جس قرض خواہ کا میت

پر قرضہ ہے اگر اس نے اس تقسیم کی اجازت دے دی جس کو وارثوں نے بانٹا ہے پھر چاہا کہ تقسیم مذکور کو توڑ دے تو اس کو یہ اختیار ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر اراضی تین آدمیوں میں ان کے باپ کی میراث مشترک ہو اور ان میں سے ایک مر گیا اور ایک بالغ بیٹا چھوڑا پس اس نے اور اس کے دونوں چچاؤں نے اراضی مذکور کو اس کے دادا کی میراث پر تقسیم کیا پھر اس پوتے نے اس بات کے گواہ قائم کیے کہ میرے دادا نے میرے واسطے ایک تہائی کی وصیت کی تھی اور چاہا کہ تقسیم باطل کر دی جائے تو اس کے دعوی کی سماعت نہ ہو گی اور اگر دادا کی طرف سے وصیت کا دعوی نہ کیا بلکہ اپنے باپ پر اپنا قرضہ ہونے کا دعوی کیا تو دعوی صحیح ہو گا اور اگر گواہ قائم کر دیے تو قرضہ ثابت ہو جائے گا اور اگر اس کے دونوں چچاؤں نے یہ کہا کہ تیرا قرضہ تیرے باپ پر ہے دادا پر نہیں ہے اور ہم نے تجھے تیرے باپ کا حصہ دے دیا پس تیرا جی چاہے اس کو قرضے میں فروخت کر دے یا تیرا جی چاہے اس کو اپنے پاس رہنے دے اور تو تقسیم نہیں توڑ سکتا ہے اس واسطے کہ تجھے تقسیم توڑنے میں کچھ فائدہ نہیں ہے اس وجہ سے کہ تقسیم توڑنے پر تیرا قرضہ تیرے باپ کے حصہ میراث سے ادا کیا جائے گا دادا کے ترکہ سے نہیں ادا کیا جائے گا تو دونوں ایسا نہیں کہہ سکتے ہیں کیونکہ ان کا بھتیجا یعنی مدعی مذکور یہ کہہ سکتا ہے کہ ایسا نہیں ہے بلکہ توڑنے میں یہ فائدہ ہے کہ میت کے مال میں زیادتی ہو جائے گی اگر ایک زمین چند وارثوں میں میراث مشترک ہو اور اس کو وارثان مذکور نے باہم تقسیم کر کے قبضہ کر لیا پھر ایک وارث نے دوسرے کے حصہ پر اس سے خرید کر قبضہ کر لیا پھر میت پر قرضہ نکلا اور اس کے گواہ قائم ہوئے تو ترکہ کی تقسیم و خرید دونوں وارث کی طرف سے مصروف ۲۸ ہوں گی اور قرضہ ہونے کی صورت میں اس تصرف کا نفاذ نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ایک شخص نے اقرار کیا کہ فلاں شخص مر گیا اور اس نے بیدار میراث چھوڑا ہے اور یہ نہ کہا کہ ان لوگوں کے واسطے یا اپنے وارثوں کے واسطے میراث چھوڑا ہے پھر اس کے بعد اقرار کنندہ نے دعوی کیا کہ میت مذکور نے میرے واسطے تہائی کی وصیت کر دی ہے یا میت پر اپنے قرضے کا دعویٰ کیا تو اس کے گواہ مقبول ہوں گے اور اگر اس نے اقرار میں یہ کہا کہ ان لوگوں کے واسطے یا اپنے وارثوں کے واسطے میراث چھوڑا ہے اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو پھر اس کے گواہ مقبول نہ ہوں گے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر ایک شخص نے دعویٰ کیا کہ دار میرے باپ کی میراث ہے پھر سوائے باپ کے دوسرے کی میراث کا دعویٰ کیا تو بسبب تناقض کے ایسا دعویٰ مسموع نہ ہو گا یہ مبسوط میں ہے چند وارثوں نے اپنے مورث کا دار متروکہ میراث میں تقسیم کیا اور میت کی جورو اس کی مقر ہے ۳۸ پس اس عورت کو آٹھواں حصہ پہنچا اور اس کا آٹھواں جدا کر دیا گیا پھر عورت مذکورہ نے ۱

---

۱ دین کی ضمانت کر کے ترکہ کو تقسیم کیا۔ ۲ مصروف یعنی پھیری جائیں گی اور پہلے قرضہ دیا جائے گا۔ ۳ مقر یعنی میراث ہونے سے منکر نہ ہوئی۔

**The Book of Division | Page 269 | Fatawa Alamgiri ..... Volume 8**

...claimed that "this house was given to me by my husband as dower (mahr)" or "I bought this house from him in exchange for my dower," then this claim will not be heard. This is because when the woman assisted in the division among the heirs, it was as if she acknowledged that at the time of the husband's death, this house was the property of the husband; therefore, her claim will not be heard. Similarly, if several people divided their father's inheritance of a house or land, and each received a portion, then one of them claimed a building or a tree in another heir's portion, asserting "I built or planted it," his witnesses for this claim will not be accepted. This is as stated in Fatawa Qazi Khan.

**Chapter Nine: Regarding Deception (Ghuroor) in Division**

Let it be clear that the fundamental principle is this: for every division that takes place by the authority of the Qazi (judge) or by the choice of both partners, if it is such a division where, in case of refusal by one, a request is made to the Qazi to compel the refuser to divide (such as the division of a single house or a single piece of land); then in such a division, if one partner built a building or planted trees in his portion, and later one of the portions was proven to be the rightful claim (istihqaq) of another and taken away, he cannot recover the cost of the building and trees from the other. This is because there was no mere deception (ghuroor/fraud) involved, as in such a division, each partner was constrained to separate his property from the other's so that the partner's usage of his property would cease. Therefore, in such a division, each individual was constrained for the purpose of 'Ihya-al-Haq'^1 (preservation of right), and deception is not established from one who is constrained, but rather from one who acts by choice.

However, if it is a division where compulsion is not applied to the refuser in case of refusal, such as the division of different types of goods, then in such a division, upon the establishment of a rightful claim (istihqaq), he shall recover the cost of the building from the other. This is because he was not constrained to this division for the preservation of rights; for if he had divided each type separately such that the benefit he derived from that type was not lost, his right would still have been preserved. This is a forced exchange; thus, each person is considered deceived by the other because they guaranteed the safety (integrity)^2 of the other's portion.

If two partners divided a house or land equally and each built on their portion, then if said property was taken away due to a rightful claim (istihqaq), neither can recover

the cost of the building from the other. But if there were two houses or two plots of land and each took one for their own right, and one built on his house, which was then taken away due to a rightful claim, he will recover half the cost of the building from the other. Some scholars said this ruling is according to Imam Azam (may Allah have mercy on him), while according to the 'Sahibayn' (his two disciples), he cannot recover it. Others stated that this ruling is unanimous among all, and this is correct; this is found in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'.

If two individuals divided two slave girls between them, then one had intercourse with the slave girl he took and she bore him a child, and later that slave girl was taken away after a rightful claim was proven, and the partner paid the indemnity (price) for the child, he shall recover half the price of the child from the other partner. This is the saying of Imam Azam (RA), because according to the Imam, compulsory or forced division does not apply to slaves; therefore, it is a matter of exchange (compensation).

---

^1 'Ihya-al-Haq' means protecting a right from being lost, and here there is necessity because without division, rights cannot be preserved, and since the type is one, no other way of division is possible. ^2 Without hesitation or doubt; meaning each person has done so regarding the other's portion. (1) To be deceived.

## किताब-उल-क़िस्मा (विभाजन की पुस्तक) | पृष्ठ २६९ | फ़तावा आलमगिरी ..... भाग ८

...दावा किया कि यह घर मेरे पति ने मुझे महर में दिया था या मैंने अपने महर के बदले यह घर उससे खरीदा था, तो यह दावा स्वीकार्य नहीं होगा क्योंकि जब महिला ने वारिसों के विभाजन में सहायता की, तो मानो उसने इस बात को स्वीकार कर लिया कि पति की मृत्यु के समय यह घर पति की संपत्ति था, इसलिए उसका दावा स्वीकार्य नहीं होगा। इसी प्रकार यदि कई लोगों ने अपने पिता की विरासत के घर या ज़मीन का बंटवारा किया और प्रत्येक को एक हिस्सा मिला, फिर एक ने दूसरे वारिस के हिस्से में किसी इमारत या पेड़ पर इस दावे के साथ दावा किया कि "इसे मैंने बनाया या लगाया है", तो इस दावे पर उसके गवाह स्वीकार्य नहीं होंगे, जैसा कि फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है।

### नौवां अध्याय: विभाजन में धोखे (ग़ुरूर) के वर्णन में

स्पष्ट हो कि मूल बात यह है कि हर वह विभाजन जो काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से या दोनों भागीदारों की सहमति से हुआ हो, यदि वह ऐसा विभाजन है कि एक के इनकार करने पर काज़ी से अनुरोध करने पर उस इनकार करने वाले पर विभाजन के लिए दबाव डाला जाता (जैसे एक घर या एक ज़मीन का विभाजन), तो ऐसे विभाजन में यदि एक भागीदार ने अपने हिस्से में इमारत बनाई या पेड़ लगाए, फिर दोनों हिस्सों में से एक हिस्सा किसी अन्य के अधिकार (इस्तहक़ाक़) के रूप में साबित होकर ले लिया गया, तो वह इमारत और पेड़ की कीमत दूसरे से वापस नहीं ले सकता है। क्योंकि यह केवल धोखा नहीं दिया गया है, क्योंकि ऐसे विभाजन में हर भागीदार को अपनी संपत्ति को दूसरे की संपत्ति से अलग करने के लिए मजबूर किया गया ताकि भागीदार का हस्तक्षेप उसकी संपत्ति से समाप्त हो जाए। अतः ऐसे विभाजन में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार की रक्षा (इहया-ए-हक़)^१ के उद्देश्य से ऐसे विभाजन के लिए मजबूर किया गया है, और मजबूर व्यक्ति की ओर से धोखा सिद्ध नहीं होता है, बल्कि स्वेच्छा से करने वाले की ओर से होता है।

और यदि ऐसा विभाजन हो जिसमें इनकार करने की स्थिति में इनकार करने वाले पर दबाव न डाला जाए, जैसे विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का विभाजन, तो ऐसे विभाजन में अधिकार (इस्तहक़ाक़) सिद्ध होने की स्थिति में वह इमारत की कीमत दूसरे से वापस लेगा। क्योंकि अधिकार की रक्षा के लिए वह इस विभाजन के लिए मजबूर नहीं है, क्योंकि यदि वह प्रत्येक वस्तु को अलग-अलग इस प्रकार विभाजित कर लेता कि उस वस्तु से जिस प्रकार लाभ प्राप्त करता था वह लाभ समाप्त न हो, तो भी उसके अधिकार की रक्षा हो जाती। और यह एक अनिवार्य विनिमय है, अतः प्रत्येक व्यक्ति दूसरे की

ओर से धोखा खाने वाला माना गया क्योंकि उसने उसके हिस्से की सलामती (सुरक्षा)^२ की गारंटी दी थी।

और यदि दो भागीदारों ने घर या ज़मीन को बराबर विभाजित किया और प्रत्येक ने अपने हिस्से में इमारत बनाई, फिर उक्त घर को अधिकार (इस्तहक़ाक़) में ले लिया गया, तो कोई भी दूसरे से इमारत की कीमत नहीं ले सकता। और यदि दो घर या ज़मीन के दो टुकड़े हों और प्रत्येक ने अपने-अपने अधिकार में एक-एक ले लिया, फिर एक ने अपने घर में इमारत बनाई, फिर वह अधिकार (इस्तहक़ाक़) में ले लिया गया, तो वह इमारत की आधी कीमत दूसरे से वापस लेगा। और कुछ विद्वानों ने कहा कि यह आदेश इमाम आज़म (रह.) के अनुसार है और 'साहिबैन' के अनुसार वापस नहीं ले सकता है, और कुछ ने कहा कि यह आदेश सर्वसम्मति से सभी के अनुसार है और यही सही है, यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में है।

यदि दोनों ने दो दासियों का आपस में विभाजन किया, फिर एक ने उस दासी के साथ सहवास किया जिसे उसने लिया था और उक्त दासी ने उससे बच्चा जना, फिर वह दासी अधिकार (इस्तहक़ाक़) साबित होने पर ले ली गई और भागीदार ने बच्चे की कीमत का हर्जाना दिया, तो वह दूसरे भागीदार से बच्चे की आधी कीमत वापस लेगा। और यह इमाम आज़म (रह.) का कथन है क्योंकि इमाम के अनुसार दासों में अनिवार्य और जबरन विभाजन लागू नहीं होता है, अतः यह एक विनिमय (मुआवज़ा) है।

---

^१ अधिकार की रक्षा अर्थात अधिकार के हनन से बचाना और यहाँ विवशता है क्योंकि विभाजन के बिना अधिकार की रक्षा नहीं हो सकती और चूंकि वस्तु एक ही प्रकार की है इसलिए ऐसे विभाजन के अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं हो सकता। ^२ बिना किसी संदेह और खटके के, यानी प्रत्येक ने दूसरे के हिस्से के बारे में ऐसा ही किया है। (१) धोखा होना।

دعویٰ کیا کہ یہ دار میرے شوہر نے مجھے مہر دیا تھا یا میں نے اپنے مہر کے عوض یہ دار اس سے خریدا تھا تو یہ دعویٰ مسموع نہ ہوگا کیونکہ جب عورت نے وارثوں کی تقسیم میں مساعدت کی تو گویا اس امر کا اقرار کیا کہ شوہر کی موت کے وقت یہ دار شوہر کی ملک تھا پس اس کا دعویٰ مسموع نہ ہوگا۔ اسی طرح اگر چند آدمیوں نے اپنے باپ کی میراث کا دار یا زمین تقسیم کی اور ہر ایک کو ایک ٹکڑا پہنچا پھر ایک نے دوسرے وارث کے حصہ میں کسی عمارت یا درخت کا اس زعم پر دعویٰ کیا کہ اس کو میں نے بنایا یا لگایا ہے تو اس دعویٰ پر اس کے گواہ مقبول نہ ہوں گے کذا فی فتاویٰ قاضی خان۔

## باب نہم: تقسیم میں غرور(۱) کے بیان میں

واضح ہو کہ اصل یہ ہے کہ ہر تقسیم جو باختیار قاضی یا باختیار ہر دو شریک واقع ہوئی اگر ایسی تقسیم ہو کہ درصورت ایک کے انکار کرنے کے قاضی سے درخواست کرنے پر اس منکر پر تقسیم کے واسطے جبر کیا جاتا۔ جیسے دار واحدہ وز میں واحد کی تقسیم تو ایسی تقسیم میں اگر ایک شریک نے اپنے حصہ میں عمارت بنائی یا درخت لگائے پھر دونوں حصوں میں سے ایک حصہ استحقاق ثابت کر کے لے لیا گیا تو عمارت و درخت کی قیمت دوسرے سے واپس نہیں لے سکتا ہے کیونکہ یہ محض مغرور یعنی فریب دیا گیا نہیں ہوا ہے اس واسطے کہ ایسی تقسیم میں ہر شریک اپنی ملک کو دوسرے کی ملک سے بے لگاؤ کر لینے پر مضطر کیا تا کہ شریک کا ارتفاق اس کی ملک سے منقطع ہو جائے پس ایسی تقسیم میں ہر واحد احیاء ۱۸حق کی غرض سے ایسی تقسیم پر مضطر کیا گیا ہے اور مضطر کی طرف سے غرور نہیں متحقق ہوتا ہے بلکہ مختار کی

طرف سے مشتق ہوتا ہے اور اگر ایسی تقسیم ہو کہ جس میں درصورت انکار کے منکر پر جبر نہ کیا جائے جیسے اجناس مختلفہ کی تقسیم ہے تو ایسی تقسیم میں در صورت استحقاق متحقق ہونے کے عمارت کی قیمت دوسرے سے واپس لے گا کیونکہ احیاء حق کے واسطے اس تقسیم پر مضطر نہیں ہے کیونکہ اگر ہر جنس کو علیحدہ علیحدہ اس طرح تقسیم کر لیتا کہ اُس جنس سے جس طور سے نفع حاصل کرتا تھا وہ منفعت فوت نہ ہو جائے تو بھی اُس کا احیاء حق ہو جاتا اور یہ مبادلہ قہر ہے پس ہر واحد دوسرے کی طرف سے مغرور قرار پایا کیونکہ اُس نے اُس کے سلامت ۲۸حصہ کی ضمان کرلی ہے اور اگر دو شریکوں نے دار یا زمین کو برابر تقسیم کر لیا اور ہر واحد نے اپنے حصہ میں عمارت بنائی پھر دار مذکور کو استحقاق میں لے لیا گیا تو کوئی ایک دوسرے سے عمارت کی قیمت نہیں لے سکتا ہے اور اگر دو دار یا دو قطعہ زمین ہوں اور ہر واحد نے ایک ایک اپنے اپنے حق میں لے لیا پھر ایک نے اپنے دار میں عمارت بنائی پھر وہ استحقاق میں لے لیا گیا تو عمارت کی نصف قیمت دوسرے سے واپس لے گا اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ حکم امام اعظم رحمتہ اللہ تعالیٰ کے نزدیک ہے اور صاحبین کے نزدیک واپس نہیں لے سکتا ہے اور بعض نے فرمایا کہ یہ حکم بالاتفاق سب کے نزدیک ہے اور یہی صحیح ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر دونوں نے دو باندیاں باہم تقسیم کرلیں پھر ایک نے اُس باندی سے جس کو اُس نے لے لیا وطی کی اور باندی مذکور اُس سے بچہ جنی پھر وہ باندی استحقاق ثابت کر کے لے لی گئی اور شریک نے بچہ کی قیمت تاوان دے دی تو دوسرے شریک سے بچہ کی نصف قیمت واپس لے گا اور یہ امام اعظمؒ کا قول ہے اس واسطے کہ امام کے نزدیک رقیق میں تقسیم اضطراری و جبری جاری نہیں ہوتی ہے پس یہ معاوضہ ہے۔

۱۸ احیاء حق یعنی حق تلف ہونے سے بچانا اور یہاں لاچاری ہے کیونکہ بدون تقسیم کے احیاء حق نہیں ہوسکتا ہے اور چونکہ جنس واحد ہے اس واسطے سوائے ایسی تقسیم کے اور کوئی صورت نہیں ہو سکتی ہے۔ ۲۸ بے کھٹکے و بے خدشے ہے یعنی ہر واحد نے دوسرے کے حصہ کی بابت ایسا ہی کیا ہے۔ (۱) دھوکا ہونا۔

...shall be mutual and optional. According to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, involuntary division applies to slaves, hence "ghurur" (deception) will not be established. Thus, he cannot take anything from the other partner from the price of the child, and whatever slave-girl remained with his partner, he will take half of her. This is mentioned in "al-Mabsut". If a house and vacant agricultural land are shared between two heirs and they divided it without a judge's (Qazi) order, and one built a structure on his portion, then that portion was claimed by a third party (istihqaq) and the structure was demolished, the division shall be annulled. He cannot take anything for the price of the structure from his partner. This is similarly mentioned in some manuscripts of "Kitab al-Qisma". This ruling is interpreted for the case when they divided the house separately and the land separately as a whole; so this would be a division for which a forced order can be given. In some manuscripts, it is written that he can recover half the price of the building from his partner, and this is interpreted for the case when both divided such that one took the house and the other took the land; so this would be a division for which a court order cannot be mandatory. If several houses are shared among several people, which the Qazi divided among the partners as "Qismat al-Jam'" (aggregate division) in such a way that each partner's share was aggregated into one house and everyone agreed to it, then one built a building in the house of his portion, then this house was claimed (istihqaq) by someone else and his building was demolished, then this partner cannot take the price of the building from his fellow partners. According to "Sahibayn" (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), he cannot take it because since in the Qazi's opinion this method of division seemed better, such a division can become mandatory according to them. According to Imam Azam (Abu Hanifa), he cannot take it because when the Qazi divided it as "Qismat al-Jam'", he ruled on a matter subject to ijtihad. Therefore, in this case, by consensus, these different houses have come under the ruling of a single house. This is in "al-Muhit". A house was shared between two men. One person said to the present partner, "Your partner has appointed me as an agent (wakil) so that I may divide his share with you." The present partner neither confirmed nor denied it, but divided the shares. Then the present partner built a structure on his portion. Later, the absent partner returned and denied appointing him as an agent. In this case, the builder of the structure shall recover the price of the building from that agent. This is mentioned in "Khazanat al-Muftin".

**Chapter 9: Regarding a division in which a claim (istihqaq) is established on a certain portion.**

If two partners divided a shared house among themselves such that one took a third of it and the other took two-thirds, but in terms of value, these two parts are equal. Then a claim (istihqaq) was established on some portion of it. This is not devoid of three situations: either a claim to a common undivided part (juz' sha'i) from both portions will be established, or a claim to a common part from neither portion will be established, or a claim to a specific part (juz' mu'ayyan) from both will be established. If a claim to a common undivided part is established from both portions, the said division shall be annulled. If a claim is established on a specific room (bayt mu'ayyan) from one portion, the division shall remain valid. And if a claim is established for half of the entire possessed share of one of the two partners, the division will not break, but the one whose portion the claim was established in will have the option, whether to [proceed with] the other partner...

---

1. "Qismat al-Jam'" refers to division by combining multiple properties, as has been explained. (1) Whether to annul the division or he shall have the option.

...आपसी वैकल्पिक होगा और इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद के नज़दीक क़िस्मत-ए-इज़तिरारी रक़ीक़ (दासों) में जारी होती है, इसलिए 'ग़ुरूर' (धोखा) प्रमाणित नहीं होगा, तो वह दूसरे शरीक से बच्चे की क़ीमत में से कुछ नहीं ले सकता है, और जो दासी उसके शरीक के पास रही, उसमें से आधा ले लेगा। यह 'मबसूत' में है। अगर एक घर और खेती की खाली ज़मीन दो वारिसों के बीच साझा हो और काज़ी के आदेश के बिना उन्होंने उसे बाँट लिया हो, और एक ने अपने हिस्से में कोई इमारत बना ली, फिर वह हिस्सा किसी दूसरे के अधिकार (इस्तेहक़ाक़) में चला गया और इमारत गिरा दी गई, तो बँटवारा रद्द कर दिया जाएगा और वह अपने साथी से इमारत की क़ीमत में से कुछ नहीं ले सकता। 'किताबुल क़िस्मत' की कुछ प्रतियों में ऐसा ही वर्णित है। यह आदेश उस स्थिति पर आधारित है जब उन्होंने घर और ज़मीन का अलग-अलग बँटवारा किया हो और ज़मीन साझा हो, तो यह ऐसा बँटवारा होगा जिसके लिए ज़बरन आदेश दिया जा सकता है। कुछ प्रतियों में लिखा है कि वह अपने साथी से इमारत की आधी क़ीमत वापस ले सकता है, और यह उस स्थिति पर आधारित है जब दोनों ने इस तरह बँटवारा किया हो कि एक ने घर ले लिया हो और दूसरे ने ज़मीन ले ली हो, तो यह ऐसा बँटवारा होगा जिस पर ज़बरन आदेश लागू नहीं हो सकता। अगर कई घर कई लोगों के बीच साझा हों जिन्हें काज़ी ने 'क़िस्मत-ए-अल-जम' (एकत्रित बँटवारा) के तौर पर शरीकों के बीच इस तरह बाँटा हो कि हर शरीक का हिस्सा एक ही घर में जमा कर दिया गया हो और सब इस पर राज़ी हों, फिर एक ने अपने हिस्से के घर में कोई इमारत बनाई, फिर वह घर किसी और के अधिकार में चला गया और उसकी इमारत गिरा दी गई, तो वह शरीक अपने साथी शरीकों से इमारत की क़ीमत नहीं ले सकता। 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक इसलिए नहीं ले सकता क्योंकि जब काज़ी की राय में इस तरह बँटवारा करना बेहतर लगा, तो ऐसा बँटवारा उनके नज़दीक अनिवार्य (वाजिब) हो सकता है। इमाम-ए-आज़म के नज़दीक इसलिए नहीं ले सकता क्योंकि जब काज़ी ने उसे 'क़िस्मत-ए-अल-जम' के तौर पर बाँटा, तो उसने एक ऐसे मामले में फ़ैसला दिया जिसमें इज्तिहाद (मतभेद) की गुंजाइश थी। अतः इस स्थिति में सर्वसम्मति से ये अलग-अलग घर एक ही घर के समान हो गए हैं। यह 'मुहीत' में है। एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा था। एक व्यक्ति ने हाज़िर शरीक से कहा कि तुम्हारे साथी ने मुझे वकील बनाया है ताकि मैं तुम्हारे साथ उसका हिस्सा बाँटूँ। हाज़िर शरीक ने न तो उसकी पुष्टि की और न ही इनकार किया, लेकिन हिस्सा बाँट दिया। फिर हाज़िर शरीक ने अपने हिस्से में इमारत बना ली। फिर गायब शरीक आया और उसने

वकील बनाने से इनकार कर दिया, तो इमारत बनाने वाला इमारत की क़ीमत उस वकील से ले लेगा। ऐसा ही 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है।

## अध्याय 9: ऐसी तक़सीम (बँटवारे) के बयान में जिसमें किसी हिस्से पर किसी अन्य का अधिकार (इस्तेहक़ाक़) सिद्ध हो जाए।

अगर दो साझेदारों ने एक साझा घर आपस में इस तरह बाँटा कि एक ने उसका एक तिहाई लिया और दूसरे ने दो तिहाई, लेकिन मूल्य में ये दोनों हिस्से बराबर हैं। फिर उसमें किसी हिस्से पर किसी अन्य का अधिकार सिद्ध हो गया, तो तीन स्थितियाँ हो सकती हैं: या तो दोनों हिस्सों में से किसी साझा अंश (जुज़-ए-शाये) का अधिकार सिद्ध होगा, या दोनों में से किसी एक के हिस्से में से साझा अंश का अधिकार सिद्ध नहीं होगा, या दोनों में से किसी निश्चित अंश (जुज़-ए-मुअय्यन) का अधिकार सिद्ध होगा। अगर दोनों हिस्सों में से साझा अंश का अधिकार सिद्ध हो जाए, तो उक्त बँटवारा रद्द हो जाएगा। और अगर एक हिस्से में से किसी निश्चित कमरे (बैत-ए-मुअय्यन) पर अधिकार सिद्ध हो जाए, तो बँटवारा वैध रहेगा। और अगर दोनों हिस्सेदारों में से एक हिस्सेदार के पूरे क़ब्ज़े वाले हिस्से में से आधे पर अधिकार सिद्ध हो जाए, तो बँटवारा नहीं टूटेगा, लेकिन जिसके हिस्से में अधिकार सिद्ध हुआ है, उसे अधिकार प्राप्त होगा, चाहे वह दूसरे शरीक...

---

1. 'क़िस्मत-ए-जम' का अर्थ मिलाकर बँटवारा करना है, जैसा कि वर्णन हो चुका है। (१) चाहे बँटवारा रद्द कर दे या उसे विकल्प होगा।

باہمی اختیاری ہو گا اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے نزدیک قسمت اضطراری رقیق میں جاری ہوتی ہے پس غرور متحقق نہ ہو گا تو دوسرے شریک سے بچہ کی قیمت میں سے کچھ نہیں لے سکتا ہے اور جو باندی اُس کے شریک کے پاس رہی اس میں سے نصف لے لے گا یہ مبسوط میں ہے اگر ایک وار اور زمین خالی زراعت دو وارثوں میں مشترک ہو اور بغیر حکم قاضی اُنہوں نے اُس کو بانٹ لیا اور ایک نے اپنے حصہ میں کوئی عمارت بنائی پھر وہ حصہ استحقاق میں لے لیا گیا اور عمارت توڑ دی گئی تو تقسیم رد کی جائے گی اور اپنے شریک سے عمارت کی قیمت میں کچھ نہیں لے سکتا ہے ایسا ہی کتاب القسمۃ کے بعض نسخوں میں مذکور ہے اور یہ حکم ایسی صورت پر محمول ہے کہ جب اُنہوں نے دار کو علیحدہ تقسیم کیا ہو اور زمین کو علیحدہ بالشا ہو پس یہ ایسی تقسیم ہو گی کہ اس کے واسطے جبراً حکم ہو سکتا ہے اور بعض نسخوں میں یہ لکھا ہے کہ اپنے شریک سے عمارت کی نصف قیمت واپس لے سکتا ہے اور یہ ایسی صورت پر محمول ہے کہ دونوں نے اس طرح تقسیم کیا ہو کہ ایک نے دار لے لیا ہو اور دوسرے نے زمین لے لی ہو پس یہ ایسی قسمت ہو گی کہ حکم اُس کا موجب نہیں ہو سکتا ہے۔ اگر چند دار چند لوگوں میں مشترک ہوں جس کو قاضی نے بطور قسمت الجمع ۱۔ہ کے شریکوں میں اس طرح تقسیم کیا کہ ہر شریک کا حصہ دار میں جمع کر دیا ہو اور سب کو اس پر منبر آمادہ کیا پھر ایک نے اپنے حصہ کے دار میں کوئی عمارت بنائی پھر یہ دار استحقاق میں لے لیا گیا اور اُس کی عمارت توڑ دی گئی تو یہ شریک اپنے ساتھی شریکوں سے عمارت کی قیمت نہیں لے سکتا ہے سو صاحبینؒ کے نزدیک اس وجہ سے نہیں لے سکتا ہے کہ ہرگاہ قاضی کی رائے میں اس طرح تقسیم کرنا بہتر معلوم ہوا تو ایسی تقسیم اُن کے نزدیک جبراً واجب ہو سکتی ہے اور امام اعظمؒ کے نزدیک اس

وجہ سے نہیں لے سکتا ہے کہ ہرگاہ قاضی نے اُس کو بطور قسمت الجمع تقسیم کیا تو اُس نے ایک مجتہد فیہا میں حکم دیا (۱) پس اس صورت میں بالاتفاق یہ دار ہائے مختلفہ ایک ہی وار کے حکم میں ہو گئے ہیں یہ محیط میں ہے۔ ایک دار دو آدمیوں میں مشترک تھا پس ایک شخص نے اگر ایک شریک حاضر سے کہا کہ مجھے تیرے شریک نے اس واسطے وکیل کیا ہے کہ میں تیرے ساتھ اُس کا حصہ بانٹ کروں پس اُس نے نہ اُس کی تصدیق کی اور نہ تکذیب کی مگر حصہ بانٹ کر دیا پھر شریک حاضر نے اپنے حصہ میں عمارت بنائی پھر غائب آیا اور اُس نے اُس کے وکیل کرنے سے انکار کیا تو عمارت بنانے والا عمارت کی قیمت اُس وکیل سے لے لے گا کذا فی خزانہ المفتین۔

**باب ۹ : ایسی تقسیم کے بیان میں جس میں کسی قدر حصہ پر استحقاق ثابت کیا گیا**

اگر دو شریکوں نے ایک دار مشترک باہم اس طرح تقسیم کیا کہ ایک نے اُس کا تہائی لیا اور دوسرے نے دو تہائی لیا مگر قیمت میں یہ دونوں حصے برابر ہیں پھر اس میں کسی قدر ٹکڑے پر استحقاق ثابت کیا گیا تو تین حال سے خالی نہیں یا تو دونوں حصوں میں سے کوئی جزو شائع کا استحقاق ثابت ہو گا یا دونوں میں سے کسی ایک کے حصہ میں سے جزو شائع کا استحقاق ثابت نہ ہو گا یا دونوں میں سے کسی جزو معین کا استحقاق ثابت ہو گا پس اگر ہر دو حصوں میں سے جزو شائع کا استحقاق ہو تو تقسیم مذکور ٹوٹ جائے گی اور اگر ایک حصہ میں سے کسی بیت معین پر استحقاق ثابت کیا گیا تو تقسیم جائز رہے گی اور اگر دونوں حصہ داروں میں سے ایک حصہ دار کے تمام مقبولہ میں سے نصف کا استحقاق ثابت کیا گیا تو تقسیم نہ ٹوٹے گی لیکن جس کے حصہ میں استحقاق ثابت کیا گیا ہے اُس کو اختیار حاصل ہو گا چاہے دوسرے شریک

---

۱؎ قسمۃ الجمع ملا کر بٹوارہ چنا بیان ہو چکا۔ (۱) چاہے قسمت توڑ دے یا اختیار ہوگا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) [271] Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

...shall take a quarter of what is in the possession of the other, or if he wishes, he may break the partition. According to Imam Abu Yusuf (RA), the partition shall be annulled, and the same is narrated from Imam Muhammad (RA). If that shareholder, in whose possession a third part was, sold half of what was in his possession, and then the remainder was taken through entitlement (istihqaq), he shall take a quarter from the possession of the other partner. This is because the establishment of entitlement does not invalidate the partition, but the option (khayar) shall be available. Since breaking the partition and returning in this case is difficult, for this reason, he will take a quarter of what is in his partner's possession. Because whatever was taken in entitlement is half of his property, and half is its compensation which he left with his partner. When this compensation no longer remains secure with him, he shall take back whatever he left with the partner, and its sale remains valid. According to Imam Abu Yusuf (RA), the partition will break, and he will pay the price of whatever he sold as indemnity, and that price will be added to the portion in his partner's possession and divided half-and-half between both. This is stated in 'Muheet Sarkhasi'.

Similarly, a hundred 'jareeb' (a unit of land area) of land is shared equally between two men. Then both divided it based on this agreement that one took ten jareeb of land whose value is one thousand dirhams in exchange for his right, and the other took ninety jareeb whose value is one thousand dirhams. Then each sold the portion he received for more or less than its value. Afterwards, one jareeb out of the ten jareeb was taken in entitlement. Then the buyer returned the remaining portion to his seller. According to the reasoning of Imam-e-Azam (RA), the ruling is that the shareholder with ninety jareeb will return fifty dirhams for the one jareeb. According to Imam Abu Yusuf (RA), the remaining jareeb will be divided half-and-half between both, and the one with ninety jareeb will pay five hundred dirhams as indemnity to the other for the one jareeb. This is in 'Mabsut'. And if a hundred goats are shared equally between two men, and they divided them in such a way that one took forty goats valued at five hundred dirhams and the other took sixty goats valued at five hundred dirhams, then if one goat out of the forty, valued at ten dirhams, was taken in entitlement, then by consensus, the ruling is that the one with sixty goats will return five dirhams, and by consensus, the partition will be valid. The one in whose portion entitlement was proven shall not have the option (1). As stated in 'Al-Muheet'.

**Chapter Eleven: Regarding the statement of claims of error in partition**

One of two partners claimed that an error occurred in the partition regarding the price, for example, a claim of gross discrepancy (ghabn) in the partition. If this is 'ghabn-e-yaseer' (minor discrepancy), i.e., an appraiser would also estimate such an amount, then his claim will not be heard, nor will his witnesses be accepted. And if it is 'ghabn-e-fahish' (gross discrepancy), i.e., an appraiser of price would not estimate it so, then if this partition was by order of the court (qada) and not by mutual consent, then by consensus his witnesses shall be heard. If it was by mutual consent and not by the judge's order, then the ruling for it is not mentioned in the book. It is narrated from Faqih Abu Ja'far (RA) that he used to say that if it is said that his witnesses will be heard, there is a rational reason for it, and if it is said they will not be heard, there is also a rational reason for it. As stated in 'As-Saghra', and this is correct, and the fatwa is based on this. As in 'Al-Ghiyathiya'. And it is narrated from Imam Fazli (RA) that his witnesses shall be heard, just as is the ruling in the case of adjudication by the judge's decree. And this is correct, as in 'Sharh al-Mukhtasar'. And Imam Asbijabi mentioned in his commentary that all this is in the case where the claimant has not acknowledged the full receipt (2) of his right. If he has acknowledged full receipt of the right, then a claim of error or discrepancy from him will not be correct. But if he claims misappropriation (ghasb), then certainly his claim will not be heard. This is from 'Fatawa-e-Saghra'.

(1) Whether he breaks the partition or there will be no option. (2) One who has received in full.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) [271] किताबुल क़िस्मत (विभाजन की पुस्तक)**

...के कब्जे का चौथाई हिस्सा ले ले या चाहे तो विभाजन को रद्द कर दे। इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाही अलैहि के अनुसार विभाजन रद्द हो जाएगा और इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाही अलैहि से भी यही वर्णित है। और यदि उस भागीदार ने, जिसके कब्जे में एक तिहाई हिस्सा था, अपने कब्जे वाले हिस्से का आधा हिस्सा बेच दिया, और फिर शेष हिस्सा हक-शफा (legal entitlement) में ले लिया गया, तो वह दूसरे साथी के कब्जे वाले हिस्से में से चौथाई हिस्सा ले लेगा, क्योंकि हक-शफा साबित होने से विभाजन अमान्य नहीं होगा, लेकिन विकल्प (खियार) प्राप्त होगा। चूँकि इस स्थिति में विभाजन को रद्द करना और वापस करना कठिन है, इसलिए वह अपने साथी के कब्जे वाले हिस्से का चौथाई हिस्सा ले लेगा। क्योंकि हक-शफा में जो हिस्सा लिया गया है, वह उसका आधा स्वामित्व है, और आधा उसका मुआवजा है जो उसने अपने साथी के पास छोड़ दिया था। और जब यह मुआवजा उसके पास सुरक्षित नहीं रहा, तो उसने जो कुछ साथी के पास छोड़ा था उसे वापस लेगा और उसकी बिक्री वैध रहेगी। इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाही अलैहि के अनुसार विभाजन रद्द हो जाएगा और जो कुछ उसने बेचा है उसकी कीमत का हर्जाना देगा, और वह कीमत उस हिस्से के साथ जो उसके साथी के कब्जे में है, दोनों के बीच आधा-आधा बाँट दी जाएगी। यह 'मुहीत सरख़सी' में वर्णित है।

इसी प्रकार, सौ जरीब (भूमि की माप) ज़मीन दो व्यक्तियों के बीच समान रूप से साझा है। फिर उन दोनों ने इस समझौते के साथ इसे बाँट लिया कि एक ने अपने अधिकार के बदले दस जरीब ज़मीन ले ली जिसकी कीमत एक हज़ार दिरहम है, और दूसरे ने नब्बे जरीब ले ली जिसकी कीमत एक हज़ार दिरहम है। फिर प्रत्येक ने अपने प्राप्त हिस्से को उसकी कीमत से कम या अधिक में बेच दिया। इसके बाद दस जरीब में से एक जरीब हक-शफा में ले ली गई, फिर खरीदार ने शेष हिस्सा विक्रेता को वापस कर दिया। तो इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाही अलैहि के कथन के अनुसार यह निर्णय है कि नब्बे जरीब वाला भागीदार एक जरीब के पचास दिरहम वापस देगा। और इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाही अलैहि के अनुसार, शेष ज़मीन दोनों के बीच आधी-आधी होगी और नब्बे जरीब वाला व्यक्ति दूसरे को एक जरीब के पाँच सौ दिरहम का हर्जाना देगा। यह 'मबस्त' में है। और यदि सौ बकरियाँ दो व्यक्तियों के बीच समान रूप से साझा हों, और उन्होंने इस तरह विभाजन किया हो कि एक ने चालीस बकरियाँ ले लीं जिनकी कीमत पाँच सौ दिरहम है और दूसरे ने साठ बकरियाँ ले लीं जिनकी कीमत पाँच सौ दिरहम है, फिर उन चालीस में से एक बकरी, जिसकी कीमत दस दिरहम है, हक-शफा में ले ली गई, तो सर्वसम्मति से यह निर्णय है कि साठ बकरियों वाला व्यक्ति पाँच दिरहम

वापस देगा और सर्वसम्मति से विभाजन वैध होगा। जिसके हिस्से में हक-शफा साबित हुआ है, उसे विकल्प (1) प्राप्त नहीं होगा। जैसा कि 'अल-मुहीत' में है।

## ग्यारहवां अध्याय: विभाजन में त्रुटि होने के दावे के विवरण में

दो भागीदारों में से एक ने विभाजन में मूल्य के आधार पर गलती होने का दावा किया, उदाहरण के लिए विभाजन में गबन (धोखाधड़ी) होने का दावा किया। यदि यह 'गबन-ए-यसीर' (मामूली धोखाधड़ी) हो, अर्थात कोई मूल्यांकनकर्ता भी इतनी मात्रा का अनुमान लगा लेता हो, तो उसके दावे की सुनवाई नहीं होगी और न ही उसके गवाह स्वीकार किए जाएंगे। और यदि 'गबन-ए-फ़ाहिश' (बड़ी धोखाधड़ी) हो, अर्थात कोई भी मूल्यांकनकर्ता मूल्य का ऐसा अनुमान न लगाता हो, तो यदि यह विभाजन न्यायालय के आदेश से हुआ हो न कि आपसी सहमति से, तो सर्वसम्मति से उसके गवाह सुने जाएंगे। और यदि यह आपसी सहमति से हुआ हो न कि काजी (न्यायाधीश) के निर्णय से, तो पुस्तक में इसका निर्णय वर्णित नहीं है। फकीह अबू जाफ़र रहमतुल्लाही अलैहि से वर्णित है कि वे फरमाते थे कि यदि यह कहा जाए कि उसके गवाहों की सुनवाई होगी तो इसका एक तर्कसंगत कारण है, और यदि यह कहा जाए कि सुनवाई नहीं होगी तो इसका भी एक तर्कसंगत कारण है। जैसा कि 'अस-सग़री' में है और यही सही है और इसी पर फतवा है। जैसा कि 'अल-ग़ियाथिया' में है। और इमाम फ़ज़ली रहमतुल्लाही अलैहि से वर्णित है कि उसके गवाहों की सुनवाई होगी, जैसा कि काजी के निर्णय से मुकदमा होने की स्थिति में आदेश है। और यही सही है, जैसा कि 'शर्ह-ए-मुख़्तसर' में है। और इमाम असबीजाबी ने अपनी व्याख्या में उल्लेख किया है कि यह सब उस स्थिति में है जब वादी ने अपना अधिकार पूर्ण प्राप्त करने (2) का स्वीकार न किया हो। और यदि उसने अपना अधिकार पूर्ण प्राप्त करने का स्वीकार कर लिया हो, तो फिर गलती या गबन का दावा उसकी ओर से सही नहीं होगा। लेकिन यदि वह अपहरण (ग़सब) का दावा करे, तो निश्चित रूप से उसके दावे की सुनवाई नहीं होगी। यह 'फ़तावा-ए-सग़री' है।

(1) चाहे विभाजन रद्द कर दे या विकल्प प्राप्त न होगा। (2) पूर्ण अधिकार प्राप्त करने वाला।

فتاویٰ عالمگیری ..... جلد (۸) [۲۷۱] کتاب القسمة کے مقبوضہ کا چوتھائی لے لے یا چاہے تو تقسیم توڑ دے اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک تقسیم ٹوٹ جائے گی اور یہی امام محمدؒ سے مروی ہے۔ اور اگر اُس حصہ دار نے جس کے قبضہ میں تہائی ہے اپنے مقبوضہ کا آدھا فروخت کر دیا پھر باقی استحقاق میں لیا گیا تو دوسرے شریک کے مقبوضہ میں سے چوتھائی لے لے گا کیونکہ استحقاق ثابت ہونے سے تقسیم باطل نہ ہوگی مگر خیار حاصل ہوگا اور چونکہ تقسیم توڑنا اور واپس کرنا اس صورت میں متعذر ہے اس وجہ سے اپنے شریک کے مقبوضہ کا چوتھائی لے لے گا کیونکہ جس قدر استحقاق میں لیا گیا ہے وہ اُس کی نصف ملک ہے اور نصف اُس کا عوض ہے جو اُس نے اپنے شریک کے پاس چھوڑا ہے اور جبکہ یہ عوض اُس کے پاس مسلم نہ رہا تو جو کچھ اُس نے شریک کے پاس چھوڑا ہے واپس لے گا اور اُس کی بیع جائز رہے گی اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک تقسیم ٹوٹ جائے گی اور جو کچھ فروخت کیا ہے اُس کی قیمت تاوان دے گا اور وہ قیمت اُس حصہ کے ساتھ جو اُس کے شریک کے قبضہ میں ملا کر دونوں میں نصفا نصف تقسیم کیا جائے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اسی طرح سو جریب زمین دو آدمیوں میں برابر مشترک ہے پھر دونوں نے اُس کو اس قرارداد سے تقسیم کر لیا کہ ایک نے اپنے حق کے عوض دس جریب زمین جس کی قیمت ہزار درہم ہے لے لی اور دوسرے نے نوے جریب جس کی قیمت ہزار درہم ہے لے لی پھر ہر ایک نے وہ حصہ جو اس کو ملا تھا اُس کی قیمت سے کم یا زیادہ کو فروخت کیا پھر دس جریب میں سے ایک جریب استحقاق میں لے لی گئی پھر مابقی کو مشتری نے اپنے بائع کو واپس کر دیا تو بقیاس قول امام اعظمؒ یہ حکم ہے کہ نوے جریب والے حصہ دار سے ایک جریب کے پچاس درہم واپس لے گا اور بقول امام ابو یوسفؒ تو جریب باقی دونوں میں نصفا نصف ہوگی اور نوے جریب والا ایک جریب کے پانچ سو درہم دوسرے کو تاوان دے گا یہ مبسوط

میں ہے اور اگر سو بکریاں دو آدمیوں میں برابر مشترک ہوں اور دونوں نے اس طرح تقسیم کر لیا کہ ایک نے چالیس بکری جن کی قیمت پانچ سو درہم ہے لے لیں اور دوسرے نے ساٹھ بکریاں جن کی قیمت پانچ سو درہم ہے لے لیں پھر چالیس میں سے ایک بکری کی قیمت دس درہم ہے استحقاق میں لے لی گئی تو بالاتفاق یہ حکم ہے کہ ساٹھ بکریوں والے سے پانچ درہم واپس لے گا اور بالاتفاق تقسیم جائز ہوگی اور جس کے حصہ میں استحقاق ثابت ہوا ہے اس کو خیار (۱) حاصل نہ ہوگا کذا فی المحیط۔ **گیارہواں باب: تقسیم میں غلطی ہونے کے دعویٰ کے بیان میں** دو حصہ داروں میں سے ایک نے تقسیم میں ازراہ قیمت غلطی واقع ہونے کا دعویٰ کیا مثلاً تقسیم میں غبنِ واقع ہونے کا دعویٰ کیا پس اگر یہ غبنِ یسیر ہو یعنی کوئی اندازہ کرنے والا اس قدر کو بھی اندازہ کرتا ہو تو اُس کے دعویٰ کی سماعت نہ ہوگی اور نہ اُس کے گواہ مقبول ہوں گے اور اگر غبنِ فاحش ہو یعنی کوئی اندازہ کرنے والا حکم قیمت کو اندازہ نہ کرتا ہو پس اگر یہ تقسیم بحکم قضا ہو نہ بتراضی۔ تو بالاتفاق اس کے گواہ مسموع ہوں گے اور اگر بتراضی ہو نہ بقضا قاضی تو کتاب میں اس کا حکم مذکور نہیں ہے اور فقیہ ابو جعفرؒ سے منقول ہے کہ وہ فرماتے تھے کہ اگر یہ کہا جائے کہ اس کے گواہوں کی سماعت ہوگی تو اس کی ایک وجہ معقول ہے اور اگر یہ کہا جائے کہ سماعت نہ ہو گی تو اس کی بھی ایک وجہ معقول ہے کذا فی الصغریٰ اور یہی صحیح ہے اور اسی پر فتویٰ ہے کذا فی الغیاثیہ اور امام فضلیؒ سے منقول ہے کہ اُس کے گواہوں کی سماعت ہوگی جیسا کہ قضاء قاضی سے محاکمہ ہونے کی صورت میں حکم ہے اور یہی صحیح ہے کذا فی شرحہ للمختصر اور امام اسبیجابی نے اپنی شرح میں ذکر فرمایا کہ یہ سب اُس صورت میں ہے کہ مدعی نے استیفاء (۲) حق کا اقرار نہ کیا ہو اور اگر استیفاء حق کا اقرار کر لیا ہو تو پھر غلط یا غبن کا دعویٰ اُس کی طرف سے صحیح نہ ہو گا لیکن اگر غصب کا دعویٰ کرے تو البتہ اُس کے

دعویٰ کی سماعت نہ ہو گی یہ فتاویٰ صغریٰ (۱) چاہے قسمت توڑ دے یا اختیار نہ ہوگا۔ (۲) بھر پور پانے والا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 272 Book of Partition (Kitab al-Qismat)**

...is mentioned. If one of two partners claims a mistake in such a way that it does not imply usurpation (*ghasb*) by the defendant, but rather claims an error in obtaining the mandatory amount through partition; for example, one hundred goats were shared equally between two people and both partitioned them. Then one said to the other, "You have mistakenly taken possession of fifty-five goats, while I took only forty-five." The second replied, "I made no mistake in possession; rather, we partitioned it in such a way that I received fifty-five and you received forty-five." If neither of them has witnesses, mutual oaths (*tahaluf*) shall be mandatory because partition is in the sense of a contract of sale (*aqd al-bay*). In a sale, when there is a dispute regarding the quantity of the subject matter while it still exists, oaths are taken from both parties. Similarly, while the divided assets exist, mutual oaths shall be taken. All this applies if there was no prior admission of full receipt of rights (*istifa-e-haqq*) by both. If such an admission was previously made, a claim of error shall not be heard, except if heard as a claim of usurpation (*ghasb*). If one said, "We partitioned equally and took our shares, then you mistakenly took five goats from my share," and the other said, "I took nothing from your share; the partition was such that I get fifty-five and you get forty-five," and there are no witnesses, mutual oaths shall not be taken; rather, the statement of the person claiming a mistake regarding their right shall be accepted. Imam Muhammad (R.A.) stated that a group partitioned land or a house and each took possession, then one claimed an error. Imam Abu Hanifa (R.A.) stated that the partition shall not be repeated until witnesses are established for the claim. If witnesses are established, the partition will be repeated so that every right-holder receives their full due. The original principle was that partition should not be repeated because the case is based on the fact that each individual took possession of their right, and claiming an error after possession is a claim of usurpation, and in a claim of usurpation, a decree is given in the plaintiff's name only for what witnesses have established, and the partition is not repeated. The answer to this problem is that Imam Muhammad (R.A.) only stated that the partition would be repeated upon establishing witnesses for a claim of error, without explaining the nature of the claim. It is possible the claim is such that repeating the partition becomes mandatory. The explanation is: the claimant of the error says to the other, "We partitioned the said house equally (1,000 yards each), but you mistakenly took 100 yards from a specific spot in my share," while the other says, "No, the partition agreement was for me to get 1,100 yards and you 900 yards." If witnesses testified that the partition occurred

equally but did not testify that the defendant took 100 yards from the plaintiff's share, then it is established that the partition was equal but one has an excess in possession. Thus, repeating the partition is mandatory for equality. Such testimony is admissible even if witnesses did not testify to usurpation occurring. If the plaintiff has no witnesses, an oath will be taken from the defendant (the one alleged to have received more), not both. If the defendant takes the oath, the error is not proven; otherwise, it is proven.

[Footnote] 1: A claim of erroneous partition was made, but this does not necessitate it being 'usurpation' so as to make returning it compulsory.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 272 किताब-उल-क़िस्मत (विभाजन की पुस्तक)**

यदि दो साझेदारों में से एक ने इस प्रकार गलती का दावा किया जिससे प्रतिवादी पर 'ग़स्ब' (अवैध कब्जा) सिद्ध नहीं होता, बल्कि विभाजन में अनिवार्य मात्रा प्राप्त करने में गलती होने का दावा किया; उदाहरण के तौर पर, सौ बकरियां दो व्यक्तियों में बराबर साझा थीं और दोनों ने उन्हें बाँट लिया। फिर एक ने दूसरे से कहा कि तुमने गलती से पचपन बकरियों पर कब्जा कर लिया है और मैंने केवल पैंतालीस पर किया है। दूसरे ने उत्तर दिया कि मैंने कब्जे में कोई गलती नहीं की है, बल्कि हमने इसी तरह विभाजन किया था कि मुझे पचपन और तुम्हें पैंतालीस मिलें। यदि दोनों में से किसी के पास गवाह न हों, तो दोनों पर 'तहाल्लुफ़' (पारस्परिक शपथ) अनिवार्य होगा। इसका कारण यह है कि विभाजन 'अक़्द-ए-बै' (बिक्री के अनुबंध) के अर्थ में है, और बिक्री में जब अनुबंध की वस्तु की मात्रा में इस प्रकार विवाद होता है, तो यदि वस्तु मौजूद है, तो दोनों पक्षों से शपथ ली जाती है। इसी प्रकार विभाजित वस्तु के मौजूद होने की स्थिति में दोनों से शपथ ली जाएगी। यह सब तब है जब पहले दोनों की ओर से अपने अधिकार पूर्ण प्राप्त होने (इस्तिका-ए-हक़) का स्वीकार न हुआ हो। यदि पहले ऐसा स्वीकार हो चुका है, तो गलती का दावा नहीं सुना जाएगा, सिवाय इसके कि वह 'ग़स्ब' (अवैध कब्जे) के रूप में सुना जाए। और यदि कोई कहे कि हमने बराबर बांटा और अपना हिस्सा ले लिया, फिर तुमने मेरे हिस्से से गलती से पांच बकरियां ले लीं, और दूसरा कहे कि मैंने कुछ नहीं लिया बल्कि विभाजन पचपन और पैंतालीस का ही था, और गवाह नहीं हैं, तो पारस्परिक शपथ नहीं होगी, बल्कि उस व्यक्ति की बात मानी जाएगी जो अपने अधिकार में गलती का दावा कर रहा है। इमाम मोहम्मद (रह.) ने फरमाया कि एक समूह ने भूमि या घर बाँटा और कब्जे लिए, फिर एक ने गलती का दावा किया। इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) के अनुसार, विभाजन को तब तक नहीं दोहराया जाएगा जब तक वह अपने दावे पर गवाह पेश न करे। यदि उसने गवाह पेश किए, तो विभाजन दोहराया जाएगा ताकि प्रत्येक हकदार को उसका पूरा अधिकार मिले। वैसे नियम यह था कि विभाजन न दोहराया जाए क्योंकि मामला इस पर आधारित है कि प्रत्येक ने अपना अधिकार ले लिया और बाद में दावा करना 'ग़स्ब' का दावा है, जिसमें केवल उसी चीज़ का फैसला होता है जिसके गवाह हों। इस शंका का उत्तर यह है कि इमाम मोहम्मद (रह.) ने केवल यह कहा कि गवाह होने पर विभाजन दोहराया जाएगा, उन्होंने दावे की प्रकृति स्पष्ट नहीं की। संभव है कि दावा ऐसा हो जिससे विभाजन दोहराना आवश्यक हो जाए। इसकी व्याख्या यह है कि वादी ने कहा कि हमने घर बराबर बाँटा था (हज़ार-हज़ार गज़), पर तुमने मेरे हिस्से से सौ गज़ गलती से ले लिया, और दूसरा कहे कि नहीं विभाजन 1100 और 900

का ही था। यदि गवाहों ने गवाही दी कि विभाजन बराबर हुआ था, पर यह नहीं कहा कि प्रतिवादी ने हिस्सा लिया है, तो इससे यह सिद्ध हुआ कि विभाजन बराबर होना था पर एक के पास अधिक है। अतः समानता के लिए विभाजन दोहराना अनिवार्य होगा। ऐसी गवाही स्वीकार होगी भले ही गवाहों ने 'ग़स्ब' की गवाही न दी हो। यदि वादी के पास गवाह न हों, तो प्रतिवादी से शपथ ली जाएगी, दोनों से नहीं। यदि उसने शपथ ली तो गलती सिद्ध नहीं होगी, अन्यथा सिद्ध हो जाएगी।

[फ़ुटनोट] 1: विभाजन गलत होने का दावा किया लेकिन इससे 'ग़स्ब' करना अनिवार्य नहीं होता ताकि उसे वापस करना अनिवार्य रूप से लागू हो।

---

میں ہے۔ اگر دو حصہ داروں میں سے ایک نے غلطی کا دعویٰ اس طرح کیا کہ اُس سے مدعیٰ غصب نہیں ہوتا ہے مگر تقسیم سے مقدارِ واجب حاصل ہونے میں غلطی واقع ہونے کا دعویٰ کیا مثلاً سو بکریاں دو شخصوں میں مساوی مشترک تھیں اور دونوں نے تقسیم کر لیں پھر ایک نے دوسرے سے کہا کہ تو نے غلطی سے بچپن بکریوں پر قبضہ کر لیا ہے اور میں نے فقط پینتالیس بکریوں پر کیا ہے اور دوسرے نے جواب دیا کہ میں نے قبضہ میں کچھ غلطی نہیں کی بلکہ ہم نے اسی طور سے تقسیم کیا تھا کہ مجھے پچپن بکریاں ملیں اور تجھے پینتالیس ملیں اور دونوں میں سے کسی کے گواہ قائم نہ ہوئے تو دونوں میں تحالف واجب ہوگا اس واسطے کہ تقسیم عقدِ بیع کے معنی میں اور بیع میں جب مقدارِ معقود علیہ میں اس طرح اختلاف ہوتا ہے تو معقود علیہ کے بعینہ قائم ہونے کی صورت میں دونوں سے باہم قسم لی جاتی ہے اسی طرح قسم بن منقسم کے بعینہ قائم ہونے کی صورت میں دونوں سے باہم قسم لی جائے گی اور یہ سب اُس صورت میں ہے کہ پہلے دونوں سے استیقاءِ حق کا اقرار نہ پایا گیا ہو اور اگر پہلے استیقاءِ حق کا اقرار صادر ہو چکا ہو تو دعویٰ غلط مسموع نہ ہوگا الا از راہِ غصب مسموع ہو سکتا ہے اور اگر یوں کہا کہ ہم نے برابر تقسیم کیا اور اپنا اپنا حصہ لے لیا پھر تو نے میرے حصہ میں سے غلطی سے پانچ بکریاں لے لیں اور دوسرے نے کہا کہ میں نے تیرے حصہ میں سے غلطی سے کچھ نہیں لیا ہے بلکہ ہم نے تقسیم اس طرح کی تھی کہ مجھے پچپن بکریاں ملیں اور تجھے پینتالیس اور دونوں میں سے کسی کے پاس گواہ نہیں ہیں تو دونوں سے باہم قسم نہ لی جائے گی بلکہ جو شخص اپنے حق میں غلطی کا مدعی ہے اُسی کا قول قبول ہوگا۔ امام محمدؒ نے فرمایا کہ ایک قوم نے ایک زمین یا دار باہم تقسیم کیا اور ہر ایک نے اپنے حصہ پر قبضہ کیا پھر ایک نے غلطی کا دعویٰ کیا تو امام ابوحنیفہؒ نے

فرمایا ہے کہ تقسیم کا اعادہ اس وقت تک نہ کیا جائے گا کہ اپنے دعویٰ پر گواہ قائم کرے اور اُس نے اپنے دعویٰ پر گواہ قائم کیے تو تقسیم دوہرائی جائے گی تاکہ ہر ذی حق اپنا حق بھر پائے اور واجب یہ تھا کہ تقسیم کا اعادہ نہ کیا جاتا اس واسطے کہ وضعِ مسئلہ اس پر ہے کہ ہر واحد نے اپنے حق پر قبضہ کر لیا اور بعد قبضہ کے غلط کا دعویٰ کرنا دعویٰ غصب ہے اور دعویٰ غصب میں مدعیٰ کے نام اس چیز کی ڈگری کی جاتی ہے جس کی بابت گواہ قائم ہوئے ہیں اور تقسیم دوہرائی نہیں جاتی ہے اور اس اشکال کا جواب یہ ہے کہ امام محمدؒ نے فقط یہ بیان کیا ہے کہ دعویٰ غلط کے گواہ قائم ہونے پر تقسیم کا اعادہ کیا جائے گا اور دعویٰ کی کچھ کیفیت بیان نہیں فرمائی پس احتمال ہے کہ اُس کا دعویٰ ایسا ہو جس سے گواہ قائم ہونے پر تقسیم کا اعادہ واجب ہو اور اس کا بیان یہ ہے کہ مدعیِ غلط نے دوسرے سے کہا کہ ہم نے دارِ مذکور کو باہم برابر تقسیم کیا تھا کہ ہزار گز مجھے ملے اور ہزار گز تجھے ملے پھر تو نے سو گز میرے حصہ میں سے کسی خاص جگہ سے غلطی سے لے لیا اور دوسرا کہتا ہے کہ نہیں بلکہ تقسیم اس قرارداد سے تھی کہ مجھے ایک ہزار ایک سو گز ملے اور تجھے نو سو گز ملے اور گواہوں نے یہ گواہی دی کہ تقسیم برابر برابر واقع ہوئی اور یہ گواہی نہ دی کہ مدعاعلیہ نے مدعی کے حصہ میں سے خاص جگہ سے سو گز لے لیا ہے تو گواہوں سے یہ ثابت ہوا کہ تقسیم برابر واقع ہوئی ہے مگر ایک کے قبضہ میں زیادتی موجود ہے اور یہ ثابت نہ ہوا کہ اس میں مدعی کس جانب سے ہے پس تقسیم کا اعادہ واجب ہوگا تاکہ مساوات ہو جائے اور ایسی گواہی مسموع ہوگی اگرچہ گواہوں نے غصب واقع ہونے کی گواہی نہیں دی ہے اس واسطے کہ اس صورت میں مدعیِ غلط نے دو باتوں کا دعویٰ کیا ایک تو برابر برابر تقسیم ہونے کا اور دوسری سو گز غصب واقع ہونے کا اور گواہوں نے ایک بات کی گواہی دی یعنی تقسیم برابر واقع ہوئی ہے اور اگر مدعی کے پاس اپنے دعویٰ کے گواہ نہ ہوں تو جس کی طرف سے غلطی سے زیادہ پہنچنے کا دعویٰ کیا ہے یعنی

مدعاعلیہ سے قسم لی جائے گی اور دونوں سے باہم قسم نہ لی جائے گی پس اگر مدعاعلیہ نے قسم کھائی تو غلطی ثابت نہ ہوگی اور تقسیم بحالہٖ باقی رہے گی اور اگر اُس نے انکار کیا تو غلطی ثابت۔

[حاشیہ] ا: تقسیم غلط ہونے کا دعویٰ کیا لیکن اس سے غصب کرنا لازم نہیں آتا ہے تاکہ واپس کرنا ضروری لازم ہو۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 273 | Kitab al-Qisma (Book of Partition)**

...it will occur, and thus the partition shall be repeated, as is mentioned in the case of producing witnesses. Similarly, if a partition occurs involving goats, cows, camels, clothes, or any measurable (*kayli*) or weighable (*wazni*) items, and after the partition and possession, one of the partners claims an error has occurred, the ruling remains the same. The term "uniform ruling" in all these issues and the primary issue does not mean they are identical in every aspect, but rather uniform in certain specific regards. Namely, a partition shall not be repeated based on a mere claim. Do you not see that in measurable and weighable goods, even if the claimant produces witnesses for their erroneous claim, the partition is not repeated? Instead, the remainder is distributed between the two according to each one's right. However, for cows, goats, clothes, and items subject to variation (*tafawut*), repeating the partition is mandatory, as explained in the case of houses (*dar*).

If Zaid and Amr partition two houses between them such that Zaid takes one house and Amr takes the other, and then, for example, Zaid claims an error and brings witnesses stating that a certain number of yards from the house in Amr’s possession should belong to him due to an excess in the partition, then a decree for those yards shall be issued in the claimant's name, and the partition shall not be repeated. This is unlike the case of a single house (*dar-e-wahid*). This is the opinion of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad. According to the analogy of Imam Azam (Abu Hanifa), such a claim is invalid (*fasid*), whether the claim concerns one house or two houses. The meaning of this issue is that if one of the partners—for example, Zaid—claims that during the partition Amr stipulated a condition to give him a certain number of yards from his own share.

The reason for the invalidity of the partition according to Imam Azam is that when Amr stipulated giving extra yards from his portion, Zaid became like a purchaser from him, and according to Imam Azam, the sale of a few undefined yards from a house is not permissible. Therefore, it is also not permissible in a partition. Once the claim's invalidity is established, repeating the partition becomes mandatory to remove the flaw (*fasad*). According to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the sale of several yards from a house is permissible; hence, the partition would also be valid.

Furthermore, let it be clear that the *Sahibayn* differentiated between a single house and two houses, stating that if there are two houses, the partition is not repeated,

but if there is one house, the partition is repeated. However, it would have been more consistent if the partition were not repeated even in the case of a single house, and instead, a decree for those yards were issued in the claimant's name from the defendant's share, as is the ruling for two houses. The reason for repeating a partition is to prevent the claimant's share from becoming scattered (*mutafarriq*), which would cause harm (*darar*). Here, no such reason exists because the claimant claimed ten specific yards. If a decree is issued in his name for them, he suffers no harm because he was entitled to those yards in the original partition anyway.

Even if he claimed ten undivided yards (*sha'i* [1]), the result is the same. When he stipulated ten undivided yards from the partner's share for himself, knowing that when the partner partitions and gives those undivided yards to him, his share might become scattered, he effectively consented to that potential scattering. Alternatively, the reason for making the repetition of partition mandatory in a single house is that the case is understood as follows: the claimant claims that the partner stipulated ten yards from his share for him, but he does not know how they were stipulated—whether ten specific yards adjacent to his share or ten undivided yards that could be anywhere in the partner's entire share. The witnesses also merely testified to the stipulation of ten yards. Since this situation arose, the claimant's consent to the scattering (*tafarruq*) of the share was not established. If ten specific yards adjacent to his share were stipulated, he would not consent to scattering, but if ten undivided yards were stipulated, he would be considered to have consented. Since the judge (*qazi*) does not know the exact nature of the stipulation, he will base the judgment on that which applies to a single house...

---

[1] Undivided and unspecified, i.e., from anywhere within the whole house.

हो जाएगी, इसलिए बँटवारे को फिर से किया जाएगा जैसा कि गवाह पेश करने की स्थिति में उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार बकरी, गाय, ऊँट, कपड़े, या किसी भी ऐसी चीज़ में जो माप (कैली) या वज़न (वज़नी) द्वारा बाँटी गई हो, और बँटवारे तथा कब्ज़े के बाद कोई हिस्सेदार गलती होने का दावा करे, तो उसमें भी यही हुक्म है। इन सभी मसलों और पहले मसले में समान हुक्म होने से यह तात्पर्य नहीं है कि सभी बातों में हुक्म एक समान है, बल्कि केवल कुछ विशेष बातों में समान हुक्म मुराद है। और वह यह है कि केवल दावा करने मात्र से बँटवारे को दोबारा नहीं किया जाएगा। क्या तुम नहीं देखते कि माप और वज़न वाली चीज़ों में यदि गलत दावेदार ने अपने दावे के गवाह पेश भी कर दिए, तब भी बँटवारे को दोबारा नहीं किया जाता, बल्कि बाकी दोनों में प्रत्येक के हक के अनुसार बँटवारा किया जाता है। जबकि गाय, बकरी, कपड़ों और उन चीज़ों में जिनमें अंतर (तफ़ावुल) होता है, बँटवारे को दोबारा करना अनिवार्य है जैसा कि घर (दार) के मसले में वर्णन हुआ है।

और यदि ज़ैद और अम्र ने आपस में दो घर इस तरह बाँट लिए कि ज़ैद ने एक घर लिया और अम्र ने दूसरा घर लिया, फिर उदाहरण के तौर पर ज़ैद ने गलती का दावा किया और गवाह लाया कि उस घर में से जो अम्र के कब्ज़े में है, बँटवारे में मेरे हिस्से पर अधिकता की वजह से इतने गज़ मुझे मिलने चाहिए, तो इस स्थिति में दावेदार के नाम उन गज़ों की डिग्री हो जाएगी और बँटवारा दोबारा नहीं किया जाएगा। यह एक ही घर (दार-ए-वाहिद) के समान नहीं है, यह इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद का मत है। और इमाम आज़म (अबू हनीफ़ा) के मत के अनुसार यह दावा दोषपूर्ण (फ़ासिद) है, चाहे यह दावा एक घर में हो या दो घरों में। इस मसले का अर्थ यह है कि दोनों हिस्सेदारों में से एक, उदाहरण के तौर पर ज़ैद ने यह दावा किया कि बँटवारे में अम्र ने यह शर्त रखी थी कि मैं अपने हिस्से में से इतने गज़ तुम्हें दूँगा।

इमाम आज़म के निकट बँटवारे के दोषपूर्ण होने का कारण यह है कि जब अम्र ने अपने हिस्से में से कुछ गज़ अधिक देने की शर्त रखी, तो ज़ैद ने उसे खरीदने वाला (खरीदार) माना, और इमाम आज़म के अनुसार घर में से कुछ अनिश्चित गज़ों की बिक्री जायज़ नहीं है। इसलिए बँटवारे में भी यह जायज़ नहीं होगा। और जब दावे का दोषपूर्ण होना सिद्ध हो गया, तो बँटवारे को दोबारा करना अनिवार्य होगा ताकि दोष (फ़साद) दूर हो सके। साहबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के निकट घर में से कुछ गज़ों की बिक्री जायज़ है, इसलिए बँटवारा भी जायज़ होगा।

फिर यह स्पष्ट हो कि साहबैन ने एक घर और दो घरों के बीच अंतर किया है और कहा है कि यदि दो घर हों तो बँटवारा दोबारा नहीं होगा, और यदि एक घर हो तो बँटवारा दोबारा किया जाएगा। हालाँकि उचित यह था कि एक घर में भी बँटवारा दोबारा न किया जाए, बल्कि दावेदार के नाम प्रतिवादी के हिस्से से उन गज़ों की डिग्री कर दी जाए जैसा कि दो घरों की स्थिति में हुक्म है। क्योंकि बँटवारा दोबारा इस वजह से किया जाता है कि दावेदार का हिस्सा बिखरा हुआ (मुतफ़र्रिक) न हो जाए जिससे उसे नुकसान हो, और यहाँ ऐसा कोई कारण नहीं पाया जाता क्योंकि दावेदार ने दस निश्चित गज़ों का दावा किया है। अतः यदि उसके नाम इसकी डिग्री हो जाती है, तो उसे कोई नुकसान नहीं होगा क्योंकि मूल बँटवारे में वह वैसे ही उन गज़ों का हकदार था।

और यदि उसने दस गज़ 'शाए' (अविभाजित हिस्सा) [1] का दावा किया तो भी यही बात है, क्योंकि जब उसने साझीदार के हिस्से में से दस गज़ शाए की शर्त अपने लिए रखी, बावजूद इसके कि वह जानता था कि जब साझीदार उन शाए गज़ों को मुझे बाँट कर देगा, तो हो सकता है कि मेरा हिस्सा बँट जाए, तो वह अपने हिस्से के बँटने पर सहमत हो गया। या एक घर में बँटवारा दोबारा करने का जो अनिवार्य हुक्म दिया गया है, उसका कारण यह है कि मसला इस स्थिति पर आधारित है कि दावेदार ने इस तरह दावा किया कि साझीदार ने मेरे लिए अपने हिस्से में से दस गज़ की शर्त रखी थी और मुझे नहीं पता कि शर्त किस प्रकार की थी, क्या दस गज़ निश्चित मेरे हिस्से से जुड़े हुए शर्त किए थे या दस गज़ शाए शर्त किए थे जो साझीदार के पूरे हिस्से में कहीं भी हो सकते हैं। और गवाहों ने भी केवल दस गज़ शर्त होने की गवाही दी। अतः जब यह स्थिति बनी, तो दावेदार की ओर से हिस्सा बँटने (तफ़र्रुक) पर सहमति सिद्ध नहीं हुई। क्योंकि यदि दस गज़ निश्चित उसके हिस्से के साथ जुड़े हुए शर्त होते, तो वह बँटने पर सहमत न होता, और यदि दस गज़ शाए शर्त होते, तो वह बँटने पर सहमत माना जाता। अतः जब काज़ी को यह पता न चला कि शर्त किस प्रकार की थी, तो वह फैसले का आधार उसी पर रखेगा जिस पर एक घर (दार-ए-वाहिद) का हुक्म है।

---

[1] अविभाजित और अनिश्चित, अर्थात पूरे घर में कहीं से भी।

---

ہو جائے گی پس تقسیم کا اعادہ کیا جائے گا جیسا کہ گواہ قائم کرنے کی صورت میں گزر رہا ہے اسی طرح بکری و گائے و اونٹ و کپڑے یا کسی کیلی ووزنی چیز میں جو تقسیم واقع ہو اور بعد تقسیم و قبضہ کے کوئی حصہ دار غلطی واقع ہونے کا دعویٰ کرے تو اس میں بھی یوں ہی حکم ہے اور ان تمام مسائل اور مسئلہ اولیٰ میں یکساں حکم ہونے سے یہ مراد نہیں ہے کہ تمام باتوں میں یکساں حکم ہے بلکہ فقط بعض باتوں میں یکساں حکم مراد ہے اور وہ یہ ہے کہ مجرد دعویٰ کرنے سے تقسیم کا اعادہ نہ کیا جائے گا آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ کیلی ووزنی چیزوں میں اگر مدعی غلط نے اپنے دعویٰ کے گواہ قائم کیے تو بھی تقسیم کا اعادہ نہیں کیا جاتا ہے بلکہ باقی دونوں میں بقدر ہر ایک کے حق کے تقسیم کی جاتی ہے اور گائے و بکری و کپڑوں میں اور ان چیزوں میں جن میں تفاوت ہوتا ہے تقسیم کا اعادہ واجب ہے کہ جیسا کہ مسئلہ دار میں بیان ہوا ہے اور اگر زید و عمرو نے دو دار باہم اس طرح تقسیم کر لیے کہ زید نے ایک دار لیا اور عمرو نے دوسرا دار لیا پھر مثلاً زید نے غلطی کا دعویٰ کیا اور گواہ لایا کہ اس قدر گز اس دار میں سے جو عمرو کے قبضہ میں ہے تقسیم میں میرے حصہ پر زیادتی کی راہ سے مجھے چاہیے ہیں تو اس صورت میں مدعی کے نام اس قدر گزوں کی ڈگری ہو جائے گی اور تقسیم کا اعادہ نہ کیا جائے گا اور یہ مثل دارِ واحد کے نہیں ہے یہ امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کا قول ہے اور بقیاس قول امام اعظمؒ کے دعویٰ فاسد ہے خواہ یہ دعویٰ ایک دار میں ہو یا دو داروں میں ہو اور اس مسئلہ کے بمعنے یہ ہیں کہ دونوں حصہ داروں میں سے ایک۔ مثلاً زید نے یہ دعویٰ کیا کہ تقسیم میں عمرو نے یہ شرط کر لی تھی کہ اپنے حصہ میں سے اس قدر گز تجھے دوں گا اور امام اعظمؒ کے نزدیک تقسیم فاسد ہونے کی وجہ یہ ہے کہ عمرو نے جب اپنے حصہ میں سے اس قدر گز زیادہ

دینا شرط کیا تو زید کے ہاتھ اس کا فروخت کرنے والا ہوا اور وار میں سے چند گز دن کی بیع امام اعظمؒ کے نزدیک جائز نہیں ہے پس مثل اس کے تقسیم میں بھی جائز نہیں ہے اور جب دعویٰ کا فاسد ہونا ثابت ہوا تو تقسیم کا اعادہ واجب ہوگا کہ فساد دفع ہو اور صاحبین کے نزدیک وار میں سے چند گز دن کی بیع جائز ہے پس تقسیم بھی جائز ہوگی پھر واضح ہو کہ صاحبین نے دار واحد و دارین میں فرق کیا ہے اور فرمایا کہ دو دار ہوں تو تقسیم کا اعادہ نہ کیا جائے گا اور اگر ایک دار ہو تو تقسیم کا اعادہ کیا جائے گا حالانکہ واجب تھا کہ واحد میں بھی تقسیم کا اعادہ نہ کیا جائے بلکہ مدعی کے نام حصہ مدعاعلیہ سے اس قدر گزوں کی ڈگری کر دی جائے جیسا کہ دو دار کی صورت میں حکم ہے کیونکہ اعادہ تقسیم اس وجہ سے ہوتا ہے کہ مدعی کا حصہ متفرق ہو کر اس پر ضرر عائد نہ ہو اور یہاں کوئی وجہ پائی نہیں جاتی کیونکہ مدعی نے دس گز معین کا دعویٰ کیا پس اگر اس کے نام اس کی ڈگری ہو جائے تو اس پر کچھ ضرر عائد نہ ہوگا کیونکہ اصل تقسیم میں وہ یوں ہی ان گزوں کا مستحق ہوا ہے اور اگر اس نے دس گز شائع [1] کا دعویٰ کیا تو بھی یہی بات ہے کیونکہ جب اس نے شریک کے حصہ میں سے دس گز شائع اپنے واسطے شرط کر لیے باوجودیکہ جانتا ہے کہ شریک جب ان گزوں کو جو شائع ہیں مجھے تقسیم کر دے گا تو ہو سکتا ہے کہ میرا حصہ متفرق ہو جائے تو وہ اپنے حصہ کے متفرق ہونے پر راضی ہو گیا ہے یا دار واحد میں جو تقسیم کا اعادہ واجب کیا ہے اس کی وجہ یہی ہے کہ مسئلہ اس صورت پر محمول ہے کہ مدعی نے یوں دعویٰ کیا کہ شریک نے میرے واسطے اپنے حصہ میں سے دس گز کی شرط کی ہے اور میں نہیں جانتا ہوں کہ کیونکہ شرط کی آیا دس گز معین میرے حصہ سے متصل شرط کیے ہیں یا دس گز شائع شرط کیے ہیں جو شریک کے تمام حصہ میں سے ہو سکتے ہیں اور گواہوں نے بھی مطلقاً دس گز مشروط ہونے کی گواہی دی پس جب یہ حالت ٹھہری تو مدعی کی طرف سے حصہ متفرق ہونے کی رضا مندی ثابت نہ ہوئی کیونکہ بر تقدیر یہ کہ دس گز معین اس

کے حصہ سے متصل مشروط ہوں تو تفرق پر راضی نہ ہوگا اور بر تقدیر یہ کہ دس گز شائع مشروط ہوں تو تفرق پر راضی ٹھہرے گا پس جب قاضی کو یہ معلوم نہ ہوا کہ شرط کیونکر ٹھہری تھی تو بناء قضاء اسی پر رکھے گا جس پر دار واحد

---

[1] غیر منقسم غیر معین یعنی تمام گھر میں جہاں سے ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (274) Book of Division (Kitab al-Qisma)**

Each person was entitled by virtue of division, which requires that each person's share be consolidated in one place. This is unlike the case of two separate houses; even if we apply the issue to a situation where the claimant says in their claim, "I do not know how he stipulated ten yards for me," the division will not be repeated. This is because the harm of scattered shares that would affect the claimant through re-division would not be eliminated, regardless of whether he had stipulated these specific ten yards for himself from a particular spot. In most cases, it is possible that in a re-division, these ten yards would not be adjacent to the claimant's house. Thus, re-division is deemed not beneficial. This is mentioned in *Al-Muheet*.

If two men divided ten garments between themselves, one taking four and the other taking six, and the one who took four claims that a specific garment among the six belonged to him in the division and provides witnesses, the decree shall be in his favor. This applies whether the claimant admitted to having possession of the excess or not. If witnesses are not provided, the book states that an oath shall be taken from the one who has the six garments, and *Tahaluf* (mutual oaths from both sides) shall not be mandatory. This is applied to the case where the claimant admitted the possession of the specific garment he is claiming and then claimed against the other that he took it by mistake. Thus, he would be regarded as one claiming wrongful appropriation (*Ghasb*) against the other, and in such a case, mutual oaths do not apply. If the one with four garments claims a specific garment among the six, stating, "This came to me in the division," and the other provides witnesses saying, "It came to me in the division," the ruling will be based on the witnesses of the one who had four, because he is the claimant who is not in possession (*Ghair Qabiz*). It is stated that having witnesses at the time of division does not prevent a claim of excess against another. Conversely, if witnesses were appointed for the full realization of rights (*Istifa-e-Haq*), then such a claim cannot be made; this is in *Al-Zakhira*. If the partners differ and two partitioners testify, their testimony shall be accepted. The Sheikh said that what was mentioned is the view of Imam Abu Hanifa and Imam Abu Yusuf. Khassaf also mentioned Imam Muhammad alongside the two Imams. Whether the partitioners are appointed by the judge (*Qazi*) or otherwise, both are equal. Al-Tahawi stated that if the partitioners divided for a fee, their testimony would not be accepted by consensus (*Ijma*); some masters inclined toward this view, as mentioned in *Al-Hidayah*. The testimony of partitioners is accepted whether they

divided for a fee or without one, and this is the correct view, as stated in *Al-Jawhara al-Nayyirah*.

If a single partitioner (*Qasim*) testifies, it will not be accepted because the testimony of one person is not accepted against another, as per *Al-Hidayah*. If a partitioner appointed by the judge testifies along with another person regarding the division, it will be accepted according to Imam Abu Hanifa and Imam Abu Yusuf; this is in *Fatawa Qazi Khan*. Ibrahim narrated from Imam Muhammad that a partitioner divided a house between two men and mistakenly gave one more than the other, and the one who received more built a structure on his portion. Imam Muhammad stated that they should re-divide. The one whose building ends up in the other's share cannot demolish his building or claim its cost from the partitioner, but he can recover the fee he paid. This is in *Al-Zahiriyyah*. If two men divided several fields, such that two fields fell to one's share and four to the other's, and the one with two fields claimed a specific field among the four of the other, saying it had come to him in his division...

1. The term 'useful' (*Mufid*) is subject to doubt; if they are adjacent, division should be repeated, otherwise not. The answer is that in two separate houses, such adjacency is rare and coincidental, so it is not considered.
2. When both a non-possessor claimant and a possessor claimant make a claim, the ruling is based on the witnesses of the non-possessor. The same rule applies here.
3. *Istifa* means having witnesses confirm that "I have fully received my right." *Qasim* and *Qassam* mean the partitioner.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (274) किताबुल क़िस्मत**

विभाजन (تقسيم) के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति हकदार था और वह यह है कि प्रत्येक का हिस्सा एक ही स्थान पर एकत्रित हो, दो घरों के विपरीत जहाँ भले ही हम समस्या को इस स्थिति पर भी लागू करें कि वादी ने अपने दावे में कहा कि मुझे नहीं पता कि मेरे लिए उसने दस गज़ कैसे शर्त कर दिए थे, तो भी विभाजन को दोहराया (اعادہ) नहीं जाएगा क्योंकि विभाजन को दोहराने से हिस्से के बिखरने की जो हानि वादी को होती है वह दूर नहीं होगी, भले ही उसने ये दस गज़ किसी विशेष स्थान से अपने लिए शर्त कर लिए हों क्योंकि अक्सर ऐसा हो सकता है कि पुनः विभाजन में ये दस गज़ वादी के घर के निकट न हों। अतः विभाजन को दोहराना उपयोगी नहीं रहा, यह 'मुहीत' में है।

यदि दो व्यक्तियों ने परस्पर दस कपड़ों का बँटवारा किया, एक ने चार कपड़े लिए और दूसरे ने छह कपड़े लिए, फिर चार कपड़े लेने वाले ने उन छह में से किसी विशेष कपड़े का यह दावा किया कि यह मुझे बँटवारे में मिला था और उसके गवाह पेश कर दिए, तो उसके नाम डिक्री हो जाएगी, चाहे वादी ने इस वृद्धि पर कब्ज़े का इकरार किया हो या न किया हो। और यदि गवाह पेश न हुए तो पुस्तक में उल्लेख है कि छह वाले से शपथ ली जाएगी और 'तहाल्लुफ़' (दोनों तरफ से शपथ) अनिवार्य नहीं होगी। यह उस स्थिति पर आधारित है जब वादी ने जिस कपड़े का दावा किया है उसके कब्ज़े को स्वीकार किया हो और फिर दूसरे पर दावा किया हो कि उसने गलती से ले लिया है। इस प्रकार दूसरे पर 'ग़सब' (अवैध कब्ज़ा) का दावा करने वाला माना जाएगा और ऐसी स्थिति में दोतरफा शपथ लागू नहीं होती है। और यदि चार वाले ने छह में से किसी विशेष कपड़े का इस तरह दावा किया कि यह मुझे बँटवारे में मिला था और दूसरे ने गवाह दिए कि वह मुझे बँटवारे में मिला था, तो चार वाले के गवाहों के अनुसार निर्णय होगा क्योंकि वही वादी (गैर-काबिज़) है। और कहा गया है कि विभाजन होने पर गवाह बना लेना दूसरे पर अधिकता का दावा करने से रोकता नहीं है, इसके विपरीत यदि 'इस्तीफ़ा-ए-हक़' (हक की पूर्ण प्राप्ति) के गवाह बना लिए गए हों तो यह दावा नहीं कर सकता, यह 'ज़ख़ीरा' में है। और यदि हिस्सेदारों में परस्पर मतभेद हुआ और दो बँटवारा करने वालों (बटाईदारों) ने गवाही दी तो उनकी गवाही स्वीकार्य होगी। शेख ने फरमाया कि जो उल्लेख किया गया वह इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ का मत है। खस्साफ़ ने इमाम मुहम्मद को भी दोनों इमामों के साथ शामिल किया है। बँटवारा करने वाले चाहे काज़ी (न्यायाधीश) की ओर से हों या अन्य, दोनों समान हैं। तहावी ने फरमाया कि यदि बाँटने वालों ने शुल्क (मज़दूरी) लेकर बँटवारा किया हो तो सर्वसम्मति (इज्मा) से उनकी गवाही स्वीकार नहीं होगी, कुछ विद्वानों का झुकाव इसी ओर है, यह

'हिदाया' में है। बँटवारा करने वालों की गवाही स्वीकार्य है चाहे उन्होंने शुल्क लेकर बाँटा हो या बिना शुल्क के और यही सही है, यह 'जौहरा नय्यरा' में है।

यदि एक 'क़ासिम' (बँटवारा करने वाले) ने गवाही दी तो वह स्वीकार्य नहीं होगी क्योंकि एक व्यक्ति की गवाही दूसरे के विरुद्ध स्वीकार्य नहीं होती, यह 'हिदाया' में है। और यदि काज़ी की ओर से नियुक्त बँटवारा करने वाले ने किसी अन्य के साथ मिलकर विभाजन की गवाही दी, तो इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ के निकट वह स्वीकार्य होगी, यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। इब्राहिम ने इमाम मुहम्मद से उल्लेख किया है कि एक बँटवारा करने वाले ने दो व्यक्तियों के बीच एक घर का बँटवारा किया और गलती से एक को दूसरे से अधिक दे दिया और एक ने अपने हिस्से में भवन बना लिया, तो इमाम मुहम्मद ने फरमाया कि नए सिरे से विभाजन करें और जिसका भवन दूसरे के हिस्से में आए, वह अपना भवन तोड़ने और क़ासिम से भवन की कीमत लेने का हकदार नहीं है, लेकिन उसने जो शुल्क दिया था उसे वापस ले सकता है, यह 'ज़हीरिया' में है। दो व्यक्तियों ने कुछ खेतों का बँटवारा किया, एक के हिस्से में दो खेत आए और दूसरे के में चार, फिर दो खेत वाले ने दूसरे के चार खेतों में से एक निश्चित खेत का दावा किया कि यह मेरे विभाजन में आया था और उसी के..

1. 'मुफ़ीद' (उपयोगी) शब्द में स्पष्टतः संदेह है कि जब वे निकट हों तो पुनः विभाजन किया जाए अन्यथा नहीं। उत्तर यह है कि दो घरों के मामले में यह निकटता दुर्लभ है बल्कि संयोगवश है, इसलिए इसका विचार नहीं किया जाएगा।
2. वादी 'गैर-काबिज़' (कब्ज़ा न रखने वाला) और वादी 'काबिज़' (कब्ज़ा रखने वाला) जब दोनों दावा करें, तो गैर-काबिज़ के गवाहों के अनुसार निर्णय होता है। यहाँ भी इसी आदेश का पालन होगा।
3. 'इस्तीफ़ा' का अर्थ है गवाह बनाना कि मैंने अपना पूरा हक प्राप्त कर लिया है। 'क़ासिम' और 'क़स्साम' का अर्थ बँटवारा करने वाला है।

---

میں سے ہر ایک از روئے تقسیم مستحق تھا اور وہ یہ ہے کہ ہر ایک کا حصہ ایک ہی جگہ مجتمع ہوئے بخلاف دو دار کے کہ دو دار میں اگرچہ ہم مسئلہ کو اس صورت پر بھی محمول کریں کہ مدعی نے اپنے دعویٰ میں کہا کہ مجھے نہیں معلوم کہ میرے واسطے اس نے دس گز کیونکر شرط کر دیئے تھے تو بھی تقسیم کا اعادہ نہ ہوگا کیونکہ اعادہ تقسیم سے حصہ متفرق ہونے کا ضرر جو مدعی کو لاحق ہوتا ہے زائل نہ ہوگا ہر چند کہ اس نے یہ دس گز معین اپنے واسطے کسی خاص جگہ سے شرط کر لیے ہوں کیونکہ بیشتر ایسا ہو سکتا ہے کہ اعادہ تقسیم میں یہ دس گز دار مدعی کے متصل نہ واقع ہوں پس اعادہ تقسیم مفید نہ ٹھہرا یہ محیط میں ہے۔

اگر دو آدمیوں نے دس کپڑے باہم تقسیم کیے ایک نے چار کپڑے لیے اور دوسرے نے چھ کپڑے لے لیے پس چار لینے والے نے چھ میں سے ایک خاص کپڑے کا یوں دعویٰ کیا کہ یہ مجھے تقسیم میں ملا تھا اور اس کے گواہ قائم کر دیے تو اس کے نام ڈگری ہو جائے گی خواہ مدعی نے اس زیادت پر قبضہ ہو جانے کا اقرار کیا ہو یا نہ کیا ہو اور اگر گواہ قائم نہ ہوئے تو کتاب میں مذکور ہے کہ چھ والے سے قسم لی جائے گی اور تحالف یعنی دو طرفی قسم واجب نہ ہوگی اور یہ اس صورت پر محمول ہے کہ جب مدعی نے جس کپڑے کا دعویٰ کیا ہے اس کے قبضہ کا اقرار کیا ہو پھر دوسرے پر دعویٰ کیا کہ اس نے غلطی سے لے لیا ہے پس دوسرے پر غصب کا دعویٰ کرنے والا قرار دیا جائے گا اور ایسی صورت میں دو طرفی قسم عائد نہیں ہوتی ہے۔ اور اگر چار والے نے چھ میں سے کسی خاص کپڑے کا اس طرح دعویٰ کیا کہ یہ مجھے تقسیم میں ملا تھا اور دوسرے نے گواہ دیے کہ مجھے تقسیم میں ملا تھا تو چار والے کے گواہوں پر حکم ہوگا کیونکہ وہی مدعی ۲ـہ غیر قابض ہے اور فرمایا کہ تقسیم واقع ہونے پر گواہ کر لینا دوسرے پر زیادتی کا

دعویٰ کرنے سے مانع نہیں ہے بخلاف اس کے اگر استیفاء ۳ـہ حق کے گواہ کر لیے ہوں تو یہ دعویٰ نہیں کر سکتا ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر حصہ داروں نے باہم اختلاف کیا اور دو بٹوارہ کرنے والوں نے گواہی دی تو ان کی گواہی قبول ہوگی اور شیخ نے فرمایا کہ جو مذکور ہوا یہ امام اعظمؒ و امام ابویوسفؒ کا قول ہے اور خصاف نے امام محمدؒ کو بھی دونوں اماموں کے ساتھ ذکر کیا ہے اور بٹوارہ کرنے والے خواہ قاضی کی طرف سے ہوں یا دوسرے ہوں دونوں یکساں ہیں اور طحاوی نے فرمایا کہ اگر بانٹنے والوں نے باجرت تقسیم کیا ہو تو بالا جماع ان کی گواہی مقبول نہ ہوگی اور اسی طرف بعض مشائخ نے میل کیا ہے یہ ہدایہ میں ہے اور بٹوارہ کرنے والوں کی گواہی مقبول ہے خواہ انہوں نے باجرت بانٹا ہو یا بلا اجرت اور یہی صحیح ہے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے۔

اگر ایک قاسم نے گواہی دی تو مقبول نہ ہوگی کیونکہ ایک شخص کی گواہی غیر پر مقبول نہیں ہوتی ہے یہ ہدایہ میں ہے اور اگر قاضی کی طرف سے بٹوارہ کرنے والے نے غیر کے ساتھ ہو کر تقسیم کی گواہی دی تو امام اعظمؒ و امام ابویوسفؒ کے نزدیک مقبول ہوگی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے ابراہیم نے امام محمدؒ سے روایت کی ہے کہ ایک بٹوارہ کرنے والے نے ایک دار دو آدمیوں میں تقسیم کیا اور غلطی سے ایک کو دوسرے سے زیادہ دیا اور ایک نے اپنے حصہ میں عمارت بنائی تو امام محمدؒ نے فرمایا کہ از سر نو تقسیم کریں اور جس کی عمارت دوسرے کے حصہ میں واقع ہو اور وہ اپنی عمارت توڑنے اور قاسم سے عمارت کی قیمت نہیں لے سکتے ہے لیکن جو اجرت اس نے لی ہے اس کو واپس لے سکتے ہیں یہ ظہیریہ میں ہے۔ دو آدمیوں نے چند کھیت تقسیم کیے پس ایک کے حصہ میں دو کھیت آئے اور دوسرے کے حصہ میں چار آئے پھر دو کھیت والے نے دوسرے کے چار کھیتوں میں سے ایک کھیت معین کا اس طرح دعویٰ کیا کہ یہ میری تقسیم میں آیا تھا اور اسی کے

۱ـہ قولہ مفید اس میں بظاہر تردد ہے کہ جب متصل واقع ہوں تو اعادہ کیا جائے ورنہ نہیں جواب یہ کہ دو دار میں یہ اتصال نادر ہے بلکہ اتفاقی ہے تو اس کا اعتبار نہ ہوگا۔ ۲ـہ مدعی غیر قابض اور مدعی قابض جب دونوں میں یعنی ہر ایک نے دعویٰ کیا تو غیر قابض کے گواہوں پر حکم ہوتا ہے اس حکم کے موافق یہاں ہوگا۔ ۳ـہ استیفاء یعنی گواہ کر لیے کہ میں نے بھر پور اپنا حق حاصل کر لیا قولہ قاسم و قسام بٹوارہ کرنے والا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 275 | Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

If witnesses are established, the decree shall be issued in his name, and the same ruling applies to clothes. If he has no witnesses, he shall have the right to demand an oath from the one in possession. If each party provides witnesses stating, "This came into my share," the decree shall be in favor of the plaintiff who is not in possession; this is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*. If the two parties differ regarding the shares—for example, there was a boundary separating the two portions, and each said, "This is part of my share and has entered into the other's side"—and both produced witnesses, then a decree shall be issued for each regarding that boundary which is in the other's possession. If no witnesses are established, an oath shall be taken from both, and whatever is in the possession of each shall remain in their possession, while the location of the boundary remains jointly shared. If, after taking the oath, either party intends to re-partition, they shall not have that right. However, if either party requests the rescission[1] of the partition, the partition shall be broken, but it shall not be annulled without a judge's order, as stated in *al-Bahr*; this is also in *al-Muhit al-Sarakhsi*.

In *al-Muntaqa*, related by Ibn Sama'ah from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), it is reported: A house is jointly owned by two persons; the judge partitioned it between them. Then one shareholder said to the other, "The share I have was meant for you, and what you have is mine," and the other replied, "No, rather what I received is what I have." He [the Imam] said that what is in each person's possession belongs to them, and the word of one shall not be accepted as confirmation against the other; this is in *al-Dhakhirah*. A man died, leaving a house and two sons. They partitioned the said house between them, each taking half, and they called witnesses to the partition, the possession, and the receipt of their full rights. Then one of them claimed a room (bayt) that was in the other's possession; his claim shall not be confirmed unless the defendant[2] confesses to it. It shall not be confirmed because he had already called witnesses to the fact that he had received his full right; thus, any subsequent claim regarding what is in the other's possession is a contradiction (munâqazah) to his previous statement. Therefore, his witnesses for this new claim shall not be accepted. However, if the defendant confesses, this confession is binding upon him, and if the opponent of the contradictor admits to his claim, entitlement is established. If he had not previously called witnesses to having received his full right, nor was an acknowledgment of the partition heard from him, such that he says, "We partitioned this house, and this side came into my share, along with that room which

is currently in my partner's possession," and the partner says, "No, rather this room and everything in my possession came into my share," then I will ask the plaintiff: Was this room in your partner's possession before the partition and he did not give it to you afterward, or did he seize it from your possession after the partition? If he says, "It was in my possession after the partition, then he seized it from me, or I gave it to him as a loan (ariyah) or on lease (ijarah)," then I will not annul the partition. If he says, "It was in my partner's possession after the partition and he did not hand it over to me," then both shall take an oath and the partition shall be rescinded. If a claim of error in measurement in yards (gaz) is made, and one says, "I was supposed to receive 1000 yards and you were to receive 1000 yards, but you now have 1100 yards and I have 900," and the other says, "I received 1000 yards and you received 1000 yards, and I took possession of my 1000 yards without increasing anything," then the word of the defendant shall be accepted along with an oath. If he says, "I received 1100 yards and you received 1100 yards," and the other says, "No, rather I received 1000 yards and you received 1000 yards, then you took possession of 1100 yards and I took possession of 900 yards," then both against each other's claim...

---

[1] *Naqs-e-Qismat*: Breaking or annulling the partition. [2] When the defendant himself confesses that "his room came into my share," his confession serves as proof against him even if it were false. The plaintiff's confirmation is not required because he had previously acknowledged before witnesses that "I have received my full right," so making this new claim would be a contradiction, as if saying "I did not receive my full right."

यदि गवाह पेश कर दिए जाएँ तो डिक्री उसके नाम जारी की जाएगी और यही नियम कपड़ों के मामले में भी है। और यदि उसके पास गवाह न हों, तो उसे अधिकार होगा कि जिसके पास कब्ज़ा है उससे शपथ ले। और यदि प्रत्येक ने इस बात के गवाह पेश कर दिए कि "यह मेरे हिस्से में आया था", तो जो वादी कब्ज़े में नहीं है, डिक्री उसके नाम होगी। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में वर्णित है। और यदि दोनों ने हिस्से के बारे में विवाद किया, उदाहरण के तौर पर दोनों हिस्सों के बीच एक सीमा थी, और दोनों में से प्रत्येक ने कहा कि "यह मेरे हिस्से की है और दूसरे की सीमा में प्रवेश कर गई है", और दोनों ने गवाह पेश किए, तो प्रत्येक के नाम उस सीमा की डिक्री दी जाएगी जो दूसरे के कब्ज़े में है। और यदि गवाह पेश न हों, तो दोनों से आपस में शपथ ली जाएगी और जो जिसके कब्ज़े में है वह उसी के पास रहेगा, और सीमा का स्थान दोनों के बीच साझा रहेगा। और यदि शपथ के बाद दोनों में से किसी ने विभाजन का इरादा किया तो उसे इसका अधिकार नहीं होगा, और यदि दोनों में से किसी ने विभाजन रद्द करने[1] की प्रार्थना की तो विभाजन निरस्त कर दिया जाएगा, लेकिन क़ाज़ी (न्यायाधीश) के आदेश के बिना यह रद्द नहीं होगा, जैसा कि 'बह्र' में है और यह 'मुहीत सरख़सी' में वर्णित है।

'मुंतक़ी' में इब्न समाअह की रिवायत से इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से वर्णित है कि एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा है, क़ाज़ी ने उसे उन दोनों के बीच बाँट दिया। फिर एक हिस्सेदार ने दूसरे से कहा: "जो हिस्सा मेरे पास है वह तुम्हें मिला था और जो तुम्हारे पास है वह मेरा है", और दूसरे ने कहा: "नहीं, बल्कि जो मुझे मिला था वही मेरे पास है", तो कहा गया कि जो जिसके पास है वह उसी का होगा और किसी के कथन की पुष्टि दूसरे पर नहीं की जाएगी, यह 'ज़ख़ीरा' में है। एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई और उसने एक घर और दो बेटे छोड़े। उन दोनों ने उस घर को आपस में बाँट लिया और प्रत्येक ने आधा ले लिया और बँटवारा होने, कब्ज़ा मिलने और पूरा अधिकार प्राप्त करने के गवाह बना लिए। फिर उन दोनों में से एक ने दूसरे के कब्ज़े वाले एक कमरे (बेत) का दावा किया, तो उसके कथन की पुष्टि नहीं की जाएगी, सिवाय इसके कि प्रतिवादी[2] इसका इकरार कर ले। और पुष्टि इसलिए नहीं की जाएगी क्योंकि उसने इस बात के गवाह बना लिए थे कि "मैंने अपना पूरा हक प्राप्त कर लिया है", फिर इसके बाद जो कुछ उसने दूसरे के कब्ज़े वाली संपत्ति पर दावा किया है, वह इस दावे में विरोधाभासी है। अतः इस दावे के लिए उसके गवाह स्वीकार नहीं किए जाएँगे। लेकिन यदि उसके प्रतिवादी ने इकरार कर लिया तो यह इकरार उसे बाध्य करेगा, और यदि विरोधाभासी व्यक्ति

का प्रतिद्वंद्वी उसके दावे को स्वीकार कर ले तो हक़ साबित हो जाता है। और यदि पहले उसने अपना पूरा हक पाने पर गवाह न किए हों और न ही उसकी ओर से बँटवारे का इकरार सुना गया हो, यहाँ तक कि उसने कहा कि "हमने यह घर बाँटा और मेरे हिस्से में यह दिशा आई और वह कमरा जो मेरे साथी के कब्ज़े में है (वह भी मेरे हिस्से में आया)", और साथी ने कहा: "नहीं, बल्कि यह कमरा और जो कुछ मेरे कब्ज़े में है वह सब मेरे हिस्से में आया था", तो मैं वादी से पूछूँगा कि क्या यह कमरा बँटवारे से पहले तुम्हारे साथी के कब्ज़े में था और उसने बँटवारे के बाद तुम्हें नहीं दिया, या बँटवारे के बाद तुम्हारे कब्ज़े से छीन लिया है? तो यदि उसने कहा कि "बँटवारे के बाद वह मेरे कब्ज़े में था, फिर उसने मुझसे छीन लिया या मैंने उसे उधार (आरियत) दिया था या किराए (इजारा) पर दिया था", तो मैं विभाजन नहीं तोड़ूँगा। और यदि उसने कहा कि "विभाजन के बाद वह मेरे साथी के कब्ज़े में था और उसने मुझे सुपुर्द नहीं किया", तो दोनों आपस में शपथ लेंगे और विभाजन रद्द कर देंगे। और यदि गजों की माप में गलती होने का दावा किया और कहा कि "मुझे हज़ार गज मिलने थे और तुम्हें हज़ार गज मिलने थे, फिर तुम्हारे पास ग्यारह सौ गज हो गए और मेरे पास नौ सौ गज रहे", और दूसरे ने कहा कि "मुझे हज़ार गज मिले थे और तुम्हें हज़ार गज मिले थे और मैंने अपने हज़ार गज पर कब्ज़ा किया, कुछ बढ़ाया नहीं है", तो शपथ के साथ प्रतिवादी का कथन स्वीकार होगा। और यदि उसने कहा कि "मुझे ग्यारह सौ गज मिले थे और तुम्हें ग्यारह सौ गज मिले थे", और दूसरे ने कहा: "नहीं, बल्कि मुझे हज़ार गज और तुम्हें हज़ार गज मिले थे, फिर तुमने ग्यारह सौ गज पर कब्ज़ा कर लिया और मैंने नौ सौ गज पर कब्ज़ा किया", तो दोनों आपस में एक दूसरे के दावे...

---

[1] बँटवारा तोड़ना। [2] प्रतिवादी जब स्वयं स्वीकार कर ले कि उसका कमरा मेरे हिस्से में आ गया, तो उसका इकरार स्वयं उस पर प्रमाण है चाहे वह झूठ ही क्यों न हो, और वादी की पुष्टि इस कारण नहीं होगी क्योंकि उसने गवाहों से यह स्वीकार किया था कि "मैंने अपना पूरा हक पा लिया", फिर यह दावा करना एक विरोधाभास है कि "मैंने पूरा नहीं पाया"।

---

گواہ قائم کر دیے تو اس کے نام ڈگری کی جائے گی اور یہی حکم کپڑوں کی صورت میں ہے اور اگر اس کے پاس گواہ نہ ہوں تو اس کو اختیار ہوگا کہ جس کے قبضہ میں ہے اس سے قسم لے اور اگر ہر ایک نے اس امر کے گواہ قائم کر دیے کہ یہ میرے حصہ میں آیا تھا تو غیر قابض مدعی کے نام ڈگری ہو گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر دونوں نے حصہ میں اختلاف کیا مثلاً دونوں حصوں کے بیچ میں حد حائل تھی پس دونوں میں سے ہر ایک نے کہا کہ یہ میرے حصہ کی ہے دوسرے کی سمت داخل ہو گئی ہے اور دونوں نے گواہ قائم کیے تو ہر ایک کے نام اس حد کی جو دوسرے کے قبضہ میں ہے ڈگری کی جائے گی اور اگر گواہ قائم نہ ہوئے تو دونوں سے باہم قسم لی جائے گی اور جو جس کے قبضہ میں ہے اسی کے قبضہ میں رکھا جائے گا اور موضع حد دونوں میں مشترک رہے گا اور اگر باہم قسم کے بعد دونوں میں سے کسی نے تقسیم کا ارادہ کیا تو اس کو یہ اختیار نہ ہوگا اور اگر دونوں میں سے کسی نے نقص۱ قسمت کی درخواست کی تو تقسیم توڑ دی جائے گی اور بغیر حکم قاضی فسخ نہ ہو گی جیسا کہ بح میں ہے یہ محیط سرخسی میں ہے

منتقی میں ابن سماعہ کی روایت سے امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہے اُس کو قاضی نے دونوں میں بانٹ دیا پھر ایک حصہ دار نے دوسرے سے کہا کہ جو حصہ میرے پاس ہے وہ تجھے پہنچا تھا اور جو تیرے پاس ہے وہ میرا ہے اور دوسرے نے کہا کہ نہیں بلکہ جو مجھے پہنچا تھا وہی میرے پاس ہے تو فرمایا کہ جو جس کے پاس ہے وہ اُس کا ہوگا اور کسی کے قول کی دوسرے پر تصدیق نہ کی جائے گی یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک شخص مر گیا اور اُس نے ایک دار اور دو فرزند چھوڑے اُنہوں نے دار مذکور کو باہم تقسیم کر لیا اور ہر ایک

نے آدھا لیا اور تقسیم ہونے اور قبضہ اور پورا حق پانے کے گواہ کر لیے پھر دونوں میں سے ایک نے دوسرے کے قبضہ کے ایک بیت کا دعویٰ کیا تو اُس کے قول کی تصدیق نہ کی جائے گی الا یہ کہ مدعاعلیہ۲ اُس کا اقرار کر لے اور اس وجہ سے تصدیق نہ کی جائے گی کہ اس نے اس امر کے گواہ کر لیے ہیں کہ میں نے پورا حق بھر پایا ہے پھر اس کے بعد جو کچھ اس نے دوسرے کے مقبوضہ میں دعویٰ کیا ہے اس دعویٰ میں مناقض ہے پس اس دعویٰ کے اس کے گواہ مقبول نہ ہوں گے لیکن اگر اس کے مدعاعلیہ نے اقرار کر لیا تو یہ اقرار اس کا ملزم ہے اور مناقض کا خصم اگر اس کے دعویٰ کا اقرار کرے تو استحقاق ثابت ہو جاتا ہے اور اگر پیشتر اُس نے اپنے حق بھر پانے پر گواہ نہ کیے ہوں اور نہ اُس کی طرف سے تقسیم کا اقرار سُنا گیا ہو حتیٰ کہ اُس نے کہا کہ ہم یہ دار تقسیم کیا اور میرے حصہ میں یہ طرف اور وہ بیت جو میرے شریک کے قبضہ میں ہے آیا اور شریک نے کہا کہ نہیں بلکہ یہ بیت اور جو کچھ میرے قبضہ میں ہے سب میرے حصہ میں آیا تھا تو میں مدعی سے دریافت کروں گا کہ آیا یہ بیت تقسیم سے پہلے تیرے شریک کے قبضہ میں تھا کہ اُس نے بعد تقسیم کے تجھے نہ دیا یا بعد تقسیم کے تیرے قبضہ سے غصب کر لیا ہے پس اگر اُس نے کہا کہ بعد تقسیم کے میرے قبضہ میں تھا پھر اُس نے مجھ سے غصب کر لیا یا میں نے اس کو عاریت دیا یا اجارہ پر دیا تھا تو میں تقسیم نہ توڑوں گا اور اگر اُس نے کہا کہ تقسیم کے بعد میرے شریک کے قبضہ میں تھا۔ پھر اُس نے مجھے سپرد نہ کیا تو دونوں باہم قسم کھائیں گے اور تقسیم رد کریں گے اور اگر پیمائش گزوں میں غلطی واقع ہونے کا دعویٰ کیا اور کہا کہ مجھے ہزار گز پہنچے تھے اور تجھے ہزار گز پہنچے تھے پھر تیرے پاس ایک ہزار ایک سو گز ہو گئے اور میرے پاس نو سو گز رہے اور دوسرے نے کہا کہ مجھے ہزار گز پہنچے تھے اور تجھے ہزار گز پہنچے تھے اور میں نے اپنے ہزار گز پر قبضہ کیا کچھ بڑھایا نہیں ہے تو قسم کے ساتھ مدعاعلیہ کا قول قبول ہو گا اور اگر اُس نے کہا کہ مجھے ایک ہزار ایک

سو گز پہنچے تھے اور ایک ہزار ایک سو گز پہنچے تھے اور دوسرے نے کہا کہ نہیں بلکہ مجھے ہزار گز اور تجھے ہزار گز پہنچے تھے پھر تو نے ایک ہزار ایک سو گز قبضہ کر لیا اور میں نے نو سو گز پر قبضہ کیا تو دونوں باہم ایک دوسرے کے دعویٰ

---

۱ نقص قسمت بنوارہ توڑنا۔ ۲ مدعاعلیہ جب خود اقرار کرلے کہ اس کا بیت میرے حصہ میں آگیا تو اس کا اقرار خود اس پر حجت ہے اگرچہ جھوٹا ہو اور مدعی کی تصدیق اس وجہ سے نہ ہوگی کہ اس نے گواہوں سے اقرار کیا کہ میں نے اپنا حق بھر پایا پھر یہ دعویٰ کرنا گویا تناقض ہے کہ میں نے نہیں بھر پایا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 276 | Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

...take an oath and void the partition. If one says, "I took possession of my full share of yardage, but then you usurped a hundred yards," I will not break the partition but will take an oath from the one against whom the claim of excess is made (1). If two partners partitioned a hundred sheep, such that sixty came into the possession of one and forty to the other, and the one with forty claims, "We were each supposed to receive fifty sheep and we both took possession, but then you usurped ten specific sheep from me and mixed them with yours so they are no longer identifiable," and the other denies the usurpation, stating, "No, I received sixty and you received forty," then the word of the latter shall be accepted upon oath. However, if the first claims he was allotted fifty but only received forty while ten remained with the other, and the other maintains he was allotted sixty, both shall take oaths and the partition shall be voided.

**Chapter 12: Regarding Muhayaah (Partition of Usufruct)**

It should be known that *Muhayaah* refers to the partition of benefits or profits. This *Muhayaah* is permissible in jointly owned assets where the benefit can be derived while the asset itself remains intact (non-consumable). When some partners request it and the others have not requested a physical partition of the asset itself, it becomes mandatory. The division of *Muhayaah* can be based on time (periodical usage) or space (partitioning the area of use); this is mentioned in *Al-Zakheera*. If one partner requests *Muhayaah* (partition of usage) while the other requests *Taqseem-e-Ain* (physical partition of the asset), the judge (Qazi) shall order the physical partition; this is in *Al-Kafi*. Scholars have discussed the conditions of its permissibility.

---

**Footnotes:** 1. Provided these sheep are specific and currently present. 2. "Survival of the asset" means: firstly, the property must be a physical asset (not cash/currency), and secondly, it must be something from which benefit can be derived while the original asset remains, unlike milk etc., which are consumed during use. (1) Meaning, at the request of the claimant.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 276 | किताबुल क़िस्मा (बंटवारे की किताब)**

...पर शपथ लें और बंटवारे को रद्द कर दें। और यदि उसने कहा हो कि मैंने अपने हिस्से के पूरे गज (इंच/यार्ड) पर कब्ज़ा कर लिया था, फिर तुमने सौ गज छीन लिए हैं, तो मैं बंटवारे को नहीं तोड़ूंगा और जिसकी ओर अधिकता का दावा किया गया है, उससे (1) शपथ लूँगा। और यदि दो साझेदारों ने सौ बकरियों का बंटवारा किया, फिर एक के कब्ज़े में साठ बकरियाँ आईं और दूसरे के कब्ज़े में चालीस आईं, फिर चालीस वाले ने कहा कि हम दोनों के हिस्से में पचास-पचास बकरियाँ आई थीं और हमने आपस में कब्ज़ा भी कर लिया था, फिर तुमने मुझसे दस निश्चित बकरियाँ छीन कर अपनी बकरियों में मिला दीं, अब उनकी पहचान नहीं हो रही है, और दूसरे ने छीनने से इनकार किया और कहा कि नहीं बल्कि मुझे साठ मिली थीं और तुम्हें चालीस, तो शपथ के साथ उसी का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि पहले ने कहा कि मुझे पचास मिली थीं मगर तुमने मुझे चालीस बकरियाँ दीं और दस तुम्हारे पास रह गईं जो तुमने मुझे नहीं दी हैं, और दूसरे ने कहा कि मुझे साठ मिली थीं और तुम्हें चालीस, तो दोनों आपस में शपथ लेंगे और बंटवारे को रद्द करेंगे।

**अध्याय 12: महायत (लाभों के बंटवारे) के बयान में**

जानना चाहिए कि 'महायत' लाभों के बंटवारे (Partition of Usufruct) को कहते हैं। यह महायत उन साझा संपत्तियों (Ayaan-e-Mushtarka) में जायज़ है जिनसे संपत्ति के मूल स्वरूप (Ain) के बने रहने के बावजूद लाभ उठाना संभव हो। जब कुछ साझेदारों ने इसकी मांग की हो और दूसरे ने संपत्ति के मूल बंटवारे की मांग न की हो, तो यह अनिवार्य हो जाती है। महायत का बंटवारा कभी समय (Zaman) के आधार पर होता है और कभी स्थान (Makan) के आधार पर; यह 'ज़खीरा' में वर्णित है। और यदि दो साझेदारों में से एक ने महायत की मांग की और दूसरे ने मूल संपत्ति के बंटवारे (Taqseem-e-Ain) की मांग की, तो काज़ी (न्यायाधीश) मूल संपत्ति का बंटवारा कर देगा; यह 'काफ़ी' में है। विद्वानों ने महायत की वैधता की गुणवत्ता पर चर्चा की है।

---

پر قسم کھائیں اور تقسیم کو رد کریں اور اگر کہا ہو کہ میں نے اپنے حصے کے گزوں پورے پر قبضہ کیا تھا پھر تو نے سو گز غصب کر لیے ہیں تو میں تقسیم کو نہ توڑوں گا اور جس کی طرف زیادتی کا دعویٰ کیا جاتا ہے اس (۱) سے قسم لوں گا۔ اور اگر دو شریکوں نے سو بکریاں تقسیم کیں پس ایک کے قبضہ میں ساٹھ بکریاں آئیں اور دوسرے کے قبضہ میں چالیس آئیں پھر چالیس والے نے کہا کہ ہم دونوں میں سے ہر ایک کے حصہ میں پچاس پچاس بکریاں پڑی تھیں اور ہم نے باہم قبضہ بھی کر لیا تھا پھر تو نے مجھ سے دس بکریاں معین غصب کر کے اپنی بکریوں میں ملا دیں اب وہ پہچان نہیں پڑتی ہیں اور دوسرے نے غصب سے انکار کیا اور کہا کہ نہیں بلکہ مجھے ساٹھ پہنچی تھیں اور تجھے چالیس تو قسم سے اسی کا قول قبول ہو گا اور اگر اول نے کہا کہ مجھے پچاس پہنچی تھیں مگر تو نے مجھے چالیس بکریاں دیں اور دس تیرے پاس رہ گئیں تو نے مجھے نہیں دی ہیں اور دوسرے نے کہا کہ مجھے ساٹھ پہنچی تھیں اور تجھے چالیس تو دونوں باہم قسم کھائیں گے اور تقسیم کو رد کریں گے۔ اور اگر مدعی نے قبل اس کے اپنا حق بھر پانے پر گواہ نہ کر لیے ہوں تو ساٹھ بکریوں والے کا قول قبول ہو گا اور اُس پر قسم عائد نہ ہو گی اور اگر بعد قبضہ ہو جانے کے غصب کا دعویٰ کیا تو منکر سے قسم لی جائے گی اور اگر مدعی نے اپنا حق بھر پانے پر گواہ نہ کر لیے ہوں پس چالیس والے نے دعویٰ کیا کہ میرے باپ کی سو بکریاں تھیں پس پچاس مجھے پہنچیں اور پچاس تجھے پہنچیں اور ہم نے باہم قبضہ کر لیا پھر تو نے مجھ سے دس بکریاں غصب کر لیں اور وہ یہ ہیں اور ساٹھ والے نے کہا کہ نہیں بلکہ باپ کی بکریاں ایک سو بیس عدد تھیں پس ساٹھ مجھے پہنچیں اور ساٹھ تجھے پہنچیں اور ہم نے باہم قبضہ کر لیا اور میں نے تجھ سے کچھ غصب نہیں کیا پس یہ قول اس بات کا اقرار ہے کہ دس بکریاں

فاضل ہیں جن میں تقسیم جاری نہیں ہوئی ہے پس اگر اُس نے بعینہ ان دس بکریوں کے واسطے قسم کھالی تو دس بکریاں دے گا تا کہ دونوں میں تقسیم کر دی جائیں اور اگر مدعاعلیہ نے سو سے زیادہ ہونے کا اقرار نہ کیا بلکہ کہا کہ باپ کی بکریاں سو عدد تھیں جس میں سے ساٹھ مجھے پہنچیں اور چالیس تجھے پہنچیں تو اس کا قول قبول ہو گا مگر اس کے ساتھ اس سے ان دس بکریوں پر جن کی نسبت مدعی نے بڑھتی ہونے کا دعویٰ کیا ہے قسم لی جائے گی اس وجہ سے کہ شریک نے اُس کو سو کے حصہ میں بری کیا ہے مگر حصہ مذکور پر جو زیادتی اس کے پاس ہے اس سے بری نہیں کیا ہے پس اگر بھیا لیم قائم ہوں تو ان کو دونوں برابر تقسیم کر لیں گے ورنہ تقسیم فاسد ہو جائے گی پس راہ یہ نکلے گی کہ ساٹھ اور چالیس دونوں واپس کر کے پھر دونوں میں از سر نو تقسیم ہوں کیونکہ تقسیم ادنیٰ فاسد تھی کذا فی المبسوط۔

**باب بارہواں: مہایاۃ کے بیان میں**

جاننا چاہیے کہ مہایاۃ تقسیم منافع کو کہتے ہیں اور یہ مہایاۃ اُن اعیان مشترکہ میں جن سے باوجود بقائے عین کے انتفاع ممکن ہو جائز ہے اور جب بعض شریکوں نے اس کی درخواست کی اور دوسرے کسی نے اعیان کی تقسیم کی درخواست نہ کی ہو تو واجب ہو جاتی ہے اور تقسیم مہایاۃ کبھی بزمان ہوتی ہے اور کبھی بمکان ہوتی ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور اگر دونوں شریکوں میں سے ایک نے مہایاۃ کی درخواست کی اور دوسرے نے تقسیم عین کی درخواست تو قاضی تقسیم کر دے گا یہ کافی میں ہے۔ علماء نے مہایاۃ کی کیفیت جواز میں گفتگو کی

---

**حواشی:** ۱- بھیا یعنی یہ بکریاں معین ہوں اور موجود بھی ہوں۔ ۲- بقائے عین یعنی اول تو مال عین ہو پس روپیہ وغیرہ نہ ہو دوم یہ کہ مال میں ایسا ہو کہ نفع لینے سے اصل مال باقی رہتا ہو بخلاف دودھ وغیرہ کے جو صرف ہو جاتا ہے۔ (۱) یعنی بدرخواست مدعی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (777) Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

Some jurists have stated that if "Mahabaha" (partition of usufruct/benefits by rotation) is practiced in specific objects of the same genus that have slight differences, such as pieces of cloth or land, it will be considered "Afraz" (separation of shares) from one perspective and "Mubadala" (exchange) from another. Consequently, one partner alone cannot initiate Mahabaha. However, if one partner requests it and the other does not request the actual division of the property (Ayn), the latter will be compelled to accept Mahabaha. If the goods are of different genera, such as houses or slaves, and Mahabaha is practiced, it will be treated as an "exchange" (1) in all aspects, meaning it is not valid without the mutual consent of both parties. This is the more correct opinion because "Ariyat" (a loan for use) is something given without recompense, whereas this involves recompense since each partner relinquishes their share of the benefit during the other's turn on the condition that the other does the same. This is stated in *Al-Zakhira*. Mahabaha is not voided by the death of one partner, nor by the death of both, because if it were voided, the authority (Hakim) would have to re-implement it, and there is no benefit in repeatedly breaking and re-establishing it. This is mentioned in *Al-Hidayah*.

Both parties have the option to divide the actual property (Ayn) and terminate the Mahabaha whenever one or both deem it appropriate. Imam Muhammad (R.A.) mentioned in the chapter "Mahabaha in Animals" that each partner has the right to terminate Mahabaha, with or without a valid excuse. The commentator Sheikh al-Islam Khwahir Zadah stated in his commentary that this is the "Zahir al-Riwayah" (manifest doctrine), according to which one partner has the right to terminate Mahabaha if it was established by mutual consent. However, if it was established by judicial order, one partner alone cannot terminate it unless both agree. Once a mutually agreed Mahabaha is terminated by both, there is no need to re-establish the exact same arrangement; rather, a more equitable partition is required, preferably by the order of a Qazi (Judge). None of the partners have the right to construct new buildings, demolish existing ones, or create new doorways in the shared mansion (Hawili) without consent; this is noted in *Al-Zakhira*. If a house is shared between two people and has multiple floors, and they agree on Mahabaha such that each partner lives in a specific floor, upper room, or lower portion, or rents it out, this is permissible. If Mahabaha is based on time—for example, one partner lives in the house for one year and the other for the next, or each rents it out for a year in turn—this "Mahabaha Zamani" (temporal partition) for residence is valid by

mutual consent. If it involves renting it out for alternating years, the jurists have differed. Sheikh Imam Khwahir Zadah stated the manifest view is that it is permissible, provided the rental income for both years is equal. If the rent increases during one partner's turn, both partners shall share the excess, and this is the issued fatwa. Similarly, Mahabaha for residence or rental of two separate houses is valid, such that one person lives in one house and the other in the other house, or they rent them out. If both agree to this, it is valid. If one partner requests this and the other refuses, Imam Karkhi (R.A.) noted that according to Imam Azam (R.A.), the Qazi shall not compel him. However, if it is a single house, the Qazi shall compel him. Shams al-A'immah al-Sarakhsi (R.A.) stated that the clearer view is that the Qazi will compel, though the difference is that in the case of two houses...

(1) It cannot be considered "Ariyat" (a gratuitous loan).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (777) किताब अल-क़िस्मा (विभाजन की पुस्तक)**

कुछ विद्वानों ने कहा है कि यदि एक ही प्रकार की भिन्न वस्तुएँ जिनमें मामूली अंतर हो, जैसे कपड़े या ज़मीन आदि, उनमें 'महाबा' (मुनाफ़े के बंटवारे की बारी) लागू हो, तो एक दृष्टि से यह 'अफ़राज़' (हिस्से को अलग करना) होगा और दूसरी दृष्टि से 'मुबादला' (विनिमय) होगा। यहाँ तक कि दोनों साझेदारों में से कोई एक अकेला महाबा नहीं कर सकता। यदि एक ने इसकी प्रार्थना की और दूसरे ने मूल धन यानी वस्तु (ऐन) के विभाजन की प्रार्थना नहीं की, तो उसे महाबा पर मजबूर किया जाएगा। और यदि वस्तुएं भिन्न प्रकार की हों, जैसे घर या गुलाम आदि, और उनमें महाबा जारी हो, तो इसमें हर तरह से 'मुबादला' (1) (विनिमय) का विचार किया जाएगा, यहाँ तक कि दोनों की आपसी सहमति के बिना यह जायज़ नहीं होगा। और यही सबसे सही मत है क्योंकि 'आरियत' (उधार) वह होता है जो बिना किसी बदले के हो, जबकि यह एक बदला है क्योंकि दोनों में से प्रत्येक अपने हिस्से का लाभ दूसरे की बारी आने पर इस शर्त के साथ छोड़ता है कि दूसरा भी अपने हिस्से का लाभ उसकी बारी पर उसके लिए छोड़ दे। यह 'ज़खीरा' में उल्लेखित है। दोनों में से किसी एक की मृत्यु से महाबा समाप्त नहीं होती, और न ही दोनों की मृत्यु से समाप्त होती है, क्योंकि यदि यह समाप्त हो जाए, तो शासक (हाकिम) को इसे फिर से दोहराना होगा, और बार-बार तोड़ने और दोहराने से कोई लाभ नहीं। यह 'हिदाया' में है।

दोनों को अधिकार है कि जब एक की राय हो या दोनों की राय हो, तो वे मूल वस्तु (ऐन) को विभाजित कर लें और महाबा को समाप्त कर दें। इमाम मोहम्मद रह. ने 'बाब अल-महाबा फ़िल हैवान' में ज़िक्र किया है कि दोनों में से प्रत्येक को उचित कारण या बिना कारण महाबा को तोड़ने का अधिकार है। शारह शेखुल इस्लाम ख़्वाहिर ज़ादा ने शरह में फ़रमाया कि यही 'ज़ाहिरुल रिवायत' है और इसी के अनुसार एक पक्ष को महाबा तोड़ने का अधिकार होगा यदि वह आपसी सहमति से हुआ हो। और यदि यह शासक के आदेश से हुआ हो, तो जब तक दोनों इसे तोड़ने पर सहमत न हों, केवल एक पक्ष इसे नहीं तोड़ सकता। जब आपसी सहमति से महाबा हुआ और फिर दोनों ने इसे तोड़ दिया, तो अब वैसी ही दोबारा व्यवस्था करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि अब अधिक न्यायपूर्ण विभाजन की आवश्यकता है, जो क़ाज़ी के निर्णय द्वारा हो। साझेदारों में से किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह अपनी हवेली (साझा संपत्ति) में कोई नया निर्माण करे, उसे तोड़े या कोई दरवाज़ा निकाले; यह 'ज़खीरा' में है। यदि एक घर दो व्यक्तियों के बीच साझा है और उसमें कई मंजिलें हैं, तो उन दोनों ने आपस में इस तरह महाबा किया कि प्रत्येक साझेदार एक निश्चित मंजिल या ऊपरी कमरे या निचले

हिस्से में रहे या उसे किराये पर दे दे, तो यह जायज़ है। और यदि समय के आधार पर महाबा किया गया, जैसे एक साझेदार इस घर में एक साल रहे और दूसरा अगले एक साल रहे, या एक साल एक किराये पर दे और दूसरा अगले साल, तो निवास के लिए आपसी सहमति से 'महाबा ज़मानी' (समय आधारित बंटवारा) जायज़ है। यदि इस तरह हो कि एक साल एक व्यक्ति किराये पर चलाए और अगले साल दूसरा, तो इसमें विद्वानों का मतभेद है। शेख इमाम ख़्वाहिर ज़ादा ने फ़रमाया कि ज़ाहिर यही है कि यह जायज़ है, बशर्ते कि दोनों सालों का किराया बराबर हो। यदि एक की बारी में किराया बढ़ गया, तो बढ़ी हुई राशि में दोनों साझेदार होंगे, और इसी पर फ़तवा है। इसी प्रकार दो घरों में निवास और किराये के लिए महाबा जायज़ है, जैसे एक इस घर में रहे और दूसरा उस घर में, या एक घर किराये पर दे और दूसरा अपना हिस्सा किराये पर दे। यदि दोनों ने आपसी सहमति से ऐसा किया तो जायज़ है। यदि एक ने मांग की और दूसरे ने मना कर दिया, तो इमाम करख़ी रह. ने ज़िक्र किया कि इमाम आज़म रह. के अनुसार क़ाज़ी उस पर ज़बर्दस्ती नहीं करेगा। लेकिन यदि घर एक ही हो, तो ज़बर्दस्ती करेगा। शम्सुल अइम्मा सरख़सी रह. ने फ़रमाया कि अधिक स्पष्ट मत यह है कि क़ाज़ी मजबूर करेगा, मगर अंतर यह है कि दो घर होने की स्थिति में...

(1) यह 'आरियत' (मुफ्त ऋण) नहीं हो सकता।

---

ہے بعضوں نے فرمایا کہ اگر جنسِ واحد کی اعیانِ متفاوتہ جن میں خفیف تفاوت ہے جیسے کپڑے دار اراضی وغیرہ میں مہاباہ جاری ہو تو ایک وجہ سے افراز ہو گا اور ایک وجہ سے مبادلہ ہو گا حتیٰ کہ دونوں شریکوں میں سے ایک اکیلا مہاباہ نہیں کر سکتا ہے اور اگر ایک نے اس کی درخواست کی اور دوسرے نے اصل مال یعنی عین کے تقسیم کی درخواست نہ کی تو وہ مہاباہ پر مجبور کیا جائے گا اور اگر جنسِ مختلف جیسے دور عبید وغیرہ میں مہاباہ جاری ہوئی تو اس میں ہر طرح سے مبادلہ (۱) کا اعتبار کیا جائے گا حتیٰ کہ بدوں دونوں کی رضا مندی کے جائز نہ ہو گا اور یہی اصح ہے کیونکہ عاریت تو وہ ہوتی ہے جو بغیر عوض ہو اور یہ عوض ہے کیونکہ دونوں میں سے ہر ایک اپنے حصہ کی منفعت دوسرے کی باری پر دوسرے کے پاس اس شرط سے چھوڑتا ہے کہ دوسرا اپنے حصہ کی منفعت اس کے پاس اس کی باری پر چھوڑ دے یہ ذخیرہ میں ہے اور دونوں میں سے ایک کے مرنے سے مہاباہ باطل نہیں ہوتی ہے اور نہ دونوں کے مرنے سے باطل ہوتی ہے اس واسطے کہ اگر باطل ہو جائے تو حاکم اُس کو پھر دوہرائے گا پھر توڑنے اور دوہرانے سے کچھ فائدہ نہ ہوا یہ ہدایہ میں ہے۔

دونوں کو اختیار ہے کہ جب ایک کی رائے میں آئے یا دونوں کی رائے میں آئے تو عین کو تقسیم کر لیں اور مہاباہ کو باطل کر دیں اور امام محمدؒ نے باب المہاباہ فی الحیوان میں ذکر فرمایا کہ دونوں میں سے ہر ایک کو عذر یا بلا عذر مہاباہ توڑ دینے کا اختیار ہے اور شارح شیخ الاسلام خواہر زادہ نے شرح میں فرمایا کہ دونوں میں سے ہر ایک کو عذر یا بلا عذر مہاباہ توڑ دینے کا اختیار ہے اور شارح شیخ الاسلام خواہر زادہ نے شرح میں فرمایا کہ یہی ظاہر الروایہ ہے اور موافق اس ظاہر الروایہ کے ایک کو عذر یا بلا عذر مہاباہ توڑنے کا بھی اختیار ہوگا کہ جب یہ

مہاباہ دونوں کی رضامندی سے ہوئی ہو اور اگر بحکمِ حاکم ہوئی ہو تو تا وقتیکہ دونوں اُس کے توڑنے پر اتفاق نہ کریں فقط ایک نہیں توڑ سکتا ہے اور جب مہاباہ دونوں کی رضامندی سے ہوئی پھر اس کو دونوں نے توڑ دیا تو پھر یہ احتیاج نہیں ہے کہ اُسی کے مثل دوبارہ اعادہ کی جائے بلکہ اس بٹوارہ سے زیادہ انصاف کے ساتھ بٹوارہ کی احتیاج ہے اور ایسا بٹوارہ وہ ہے جو بقضاءِ قاضی ہو اور دونوں شریکوں میں سے کسی کو یہ اختیار نہیں ہے کہ اپنی الحویلی میں کوئی جدید عمارت بنادے یا توڑ دے یا کوئی دروازہ چھوڑے یہ ذخیرہ میں ہے ایک دار دو شخصوں میں مشترک ہے اس میں چند منزلیں ہیں پس باہم دونوں نے اس طرح مہاباہ کی ہر ایک شریک منزل معلوم میں یا بالا خانہ معین یا سفل معلوم میں سکونت رکھے یا اُس کو کرایہ پر دے دے تو یہ جائز ہے اور اگر مہاباہ زمانہ کی راہ سے کی مثلاً یوں مہاباہ کی کہ ایک شریک اس دار میں ایک سال تک رہی اور دوسرا اُس میں ایک سال تک رہی یا ایک سال تک یہ کرایہ پر دے اور ایک سال تک وہ کرایہ پر دے پس سکونت کے واسطے باہمی رضامندی سے مہاباہ زمانی جائز ہے اگر اس طور سے کہ ایک سال تک یہ کرایہ پر چلادے اور ایک سال تک وہ کرایہ پر چلا دے اس میں مشائخ نے اختلاف کیا ہے اور شیخ امام معروف بخواہر زادہ نے فرمایا کہ ظاہر یہ ہے کہ جائز ہے بشرطیکہ سال میں دونوں کے کرایہ کا مال برابر ہو اور اگر ایک کی باری میں کرایہ بڑھا تو بڑھتی میں دونوں شریک ہوں گے اور اسی پر فتویٰ ہے اسی طرح دو داروں میں سکونت و کرایہ پر چلانے کی مہاباہ جائز ہے بایں طور کہ ایک اس دار میں رہے اور دوسرا اُس دار میں رہے یا ایک یہ دار کرایہ پر چلا دے اور دوسرا وہ دار کرایہ پر چلا دے پس اگر دونوں نے باہمی رضامندی سے ایسا کیا تو جائز ہے۔ اور اگر ایک نے درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا تو امام کرخیؒ نے ذکر فرمایا کہ امام اعظمؒ کے قول میں قاضی اُس پر جبر نہ کرے گا اور اگر دارِ واحد ہو تو جبر کرے گا اور شمس الائمہ سرخسیؒ نے ذکر فرمایا کہ اظہر یہ ہے کہ قاضی جبر

کرے گا مگر فرق یہ ہے کہ دو دار ہونے کی صورت میں اگر ایک اپنی حویلی یعنی باری باندھنے میں جو حویلی یا حصہ اس کے پاس ہے۔ (۱) عاریت نہیں ہو سکتی ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 278 Book of Partition (Kitab al-Qisma)**

...received more rent compared to the other, the latter cannot take anything from the former. In the case of a single property, if Muhayat (partition of usufruct by time) was established and one received more rent during their turn than the other, they shall both share the excess. If Muhayat was done for two properties located in two different cities, it is permissible if done by mutual consent; however, in case of refusal by one party, the Qadi (judge) shall not compel them. This is the 'Zahir al-Riwayah' and is mentioned in 'Fatawa Qazi Khan'.

If each party has rented out the property under their possession and then one party wishes to terminate the Muhayat and partition the actual property, they have the right to do so, provided the lease period has expired. If the lease period has not expired, the one who rented it out does not have the right to break the Muhayat, in order to protect the rights of the lessee; this is in 'Tatarkhaniya'. If Muhayat is made for the services of a slave, such that the slave serves one partner for a month and the other for a month, it is permissible. This is contrary to a Muhayat for renting out a single slave, where one partner rents him out for a month and takes the wages, followed by the other; this is not permissible without disagreement, as stated in 'al-Dhakhira'. If two partners agree on Muhayat to take services from two slaves for a year, it is permissible. However, if they agree on Muhayat regarding the rental income of two slaves, it is not permissible according to Imam al-Azam (Abu Hanifa), but permissible according to the 'Sahibain' (his two disciples), provided the rent is equal during both turns; this is in 'Muhit al-Sarakhsi'. If two persons jointly own two female slaves and agree that one slave-girl suckles the daughter of one partner and the other suckles the son of the other, it is permissible, as in 'al-Tabyin'. If two persons agree on Muhayat for a jointly owned cow such that it remains with each for fifteen days to take its milk, this is void (batil), and the excess milk is not lawful for anyone even if the partner permits it, because it is 'Hiba Musha' (gift of an undivided share) in a divisible item. This is except in the case where the one who took the excess milk has consumed it; then, if the partner waives the claim, it is considered an exemption from liability and becomes permissible. But as long as the actual excess exists, it remains a matter of gift or ownership of the specific item, and it is void; this is in 'Fatawa Qazi Khan'.

If a date palm or a tree is shared between two partners and they agree that each takes a certain amount of its fruits, it is not permissible. Similarly, if goats are shared between two men and they agree that each takes some goats to graze them and

benefit from their milk, it is also not permissible; this is in 'al-Kafi'. The legal bypass (hila) for fruits or similar items is for one to buy the partner's share and then sell the whole after their turn expires, or to take the partner's share as a loan for usage, as 'Qarz-e-Musha' is permissible; this is in 'al-Tabyin'. Regarding two animals or one animal for riding or renting out, in both cases it is not permissible according to Imam al-Azam. According to the 'Sahibain', Muhayat is permissible in the case of two animals, whether the riding is equal or unequal; if unequal, they should distribute the excess.

1. Equal etc., and if it is unequal, then they should distribute the excess. 2. Musha means this item was capable of being partitioned, yet gifting it as an undivided share without partition is not permissible. 3. Let graze or give fodder. (1) Discharges from the specific item (Ain).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 278 किताब अल-क़िस्मा (बँटवारे की पुस्तक)**

...के पास दूसरे के मुक़ाबले किराया अधिक आया, तो दूसरा उससे कुछ नहीं माँग सकता। और एक ही घर की स्थिति में यदि किराए पर मुहायाह (समय-विभाजन) कर लिया और एक की बारी में दूसरे की तुलना में अधिक किराया आया, तो अधिकता में दोनों साझीदार होंगे। यदि दो घर, जो दो अलग शहरों में स्थित हैं, उनमें मुहायाह किया गया और उसे आपसी सहमति से किया गया तो वह जायज़ है, और किसी के इनकार की स्थिति में क़ाज़ी ज़बरदस्ती नहीं करेगा। यह 'ज़ाहिर अल-रिवायाह' है और यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में दर्ज है।

यदि प्रत्येक ने अपने अधिकार का घर किराए पर दे दिया, फिर एक ने चाहा कि मुहायाह तोड़कर घर को आपस में बाँट ले, तो उसे इसका अधिकार होगा। और यह हुक्म उस समय है जब किराए (इजारा) की अवधि बीत गई हो। यदि अवधि नहीं बीती है, तो किराया देने वाले को मुहायाह तोड़ने का अधिकार नहीं होगा, ताकि किराएदार का हक़ बना रहे। यह 'तत़ारख़ानिया' में है। और यदि दास से सेवा लेने में मुहायाह किया गया कि यह दास इस साझीदार की एक महीने सेवा करे और दूसरे साझीदार की एक महीने सेवा करे, तो मुहायाह जायज़ है। और यह एक ही दास को किराए पर देने के मुहायाह के विपरीत है, जिसमें यह तय हो कि एक साझीदार इसे एक महीने किराए पर दे और किराया खुद रखे, फिर दूसरा उसे किराए पर दे और किराया ले; क्योंकि यह निर्विवाद रूप से जायज़ नहीं है जैसा कि 'अज़-ज़ख़ीरा' में है। और यदि दोनों ने दो दासों से एक साल तक सेवा लेने पर मुहायाह किया तो जायज़ है। और यदि दोनों दासों के किराए के मुनाफ़े पर मुहायाह किया गया तो इमाम-ए-आज़म रह. के अनुसार जायज़ नहीं है, जबकि साहिबैन रह. (इमाम के शिष्यों) के अनुसार जायज़ है, बशर्ते कि दोनों की बारी में किराया बराबर आए; यह 'मुहीत़ अल-सरख़सी' में है। और यदि दो व्यक्तियों में दो दासियाँ साझी हों और दोनों ने इस प्रकार मुहायाह किया कि यह दासी उसकी लड़की को दूध पिला दे और दूसरी दासी दूसरे के लड़के को दूध पिला दे, तो जायज़ है; जैसा कि 'अत-तबीन' में है। दो व्यक्तियों ने आपस में साझी गाय में इस प्रकार मुहायाह किया कि यह गाय प्रत्येक के पास पंद्रह दिन तक रहे और वह उसका दूध निकाल ले, तो यह बातिल (अमान्य) है और किसी के लिए भी वह अतिरिक्त दूध हलाल नहीं होगा, चाहे उसका साझीदार उसे अनुमति ही क्यों न दे दे; क्योंकि यह विभाज्य वस्तु में 'हिबा मुशा' (अविभाजित दान) है। सिवाय उस स्थिति के जब अतिरिक्त दूध पीने वाले ने उसे पूरी तरह समाप्त (तल्फ़) कर दिया हो, फिर जब दूसरा साझीदार उसे माफ़ कर दे तो यह ज़िम्मेदारी से मुक्त करना है और तब जायज़ होगा। और जब तक वह वस्तु

(अतिरिक्त दूध) मौजूद है, तब तक यह दान या वस्तु का मामला है और यह बातिल है; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

यदि कोई खजूर या वृक्ष दो साझीदारों में साझा हो और दोनों ने इस प्रकार मुहायाह किया कि प्रत्येक उसके फलों में से कुछ हिस्सा ले ले, तो यह जायज़ नहीं है। इसी तरह यदि बकरियाँ दो लोगों में साझा हों और दोनों इस पर सहमत हों कि प्रत्येक उनमें से कुछ बकरियाँ लेकर उन्हें चराए और उनके दूध से लाभ उठाए, तो यह भी जायज़ नहीं है; यह 'अल-काफ़ी' में है। फलों या फलों जैसी चीज़ों में जायज़ होने का तरीक़ा (हीला) यह है कि अपने साझीदार का हिस्सा खरीद ले, फिर अपनी बारी बीतने पर कुल को बेच दे, या लेन-देन से जो साझीदार का हिस्सा है उसे ऋण (क़र्ज़) के तौर पर उपयोग करे, क्योंकि 'क़र्ज़-ए-मुशा' जायज़ है; यह 'अत-तबीन' में है। और दो चौपायों या एक चौपाय में सवारी के तौर पर या किराए पर चलाने के लिए, इमाम-ए-आज़म रह. के अनुसार दोनों स्थितियों में मुहायाह जायज़ नहीं है। साहिबैन रह. के अनुसार दो चौपायों की स्थिति में मुहायाह जायज़ है, चाहे सवारी लेना बराबर हो या कम-ज़्यादा हो, तो अधिकता को आपस में बाँट लें।

1. बराबर आदि और यदि कम-ज़्यादा हो तो अधिकता को बाँट लें। २. मुशा यानी यह चीज़ इस योग्य थी कि इसका बँटवारा हो सकता था, फिर भी इसे बिना बँटवारे के दान करना (हिबा) जायज़ नहीं है। ३. चरा दे या चारा दे। (१) ऐन (वस्तु) से बरी करता है।

---

...کے پاس بہ نسبت دوسرے کے کرایہ زیادہ آیا تو کوئی دوسرے سے کچھ نہیں لے سکتا ہے اور دارِ واحد کی صورت میں اگر کرایہ پر مہایاہ کر لی اور ایک کی باری میں بہ نسبت دوسرے کے کرایہ زیادہ آیا تو زیادتی میں دونوں شریک ہو جائیں گے اگر دو دار میں جو دو شہروں میں واقع ہیں مہایاہ کی پس اگر اُس کو باہمی رضا مندی سے کیا تو جائز ہے اور در صورتِ کسی کے انکار کے قاضی جبر نہ کرے گا یہ ظاہر الروایہ ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر ہر ایک نے اپنے قبضہ کا دار کرایہ پر دے دیا پھر ایک نے چاہا کہ مہایاہ کو توڑ کر رقبہ دار کو باہم تقسیم کرلے تو اس کو اختیار ہو گا اور یہ حکم اس وقت ہے کہ مدتِ اجارہ گذر گئی ہو اور اگر مدتِ اجارہ نہ گذری ہو تو کرایہ پر دینے والے کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ مہایاہ کو توڑ دے اور یہ اس وجہ سے ہے کہ مستاجر کا حق معنون رہے یہ تاتارخانیہ میں ہے اور اگر غلام سے خدمت لینے میں مہایاہ کی کہ یہ غلام اس شریک کی ایک مہینہ تک خدمت کیا کرے اور وہ غلام دوسرے شریک کی ایک مہینہ تک خدمت کیا کرے تو مہایاہ جائز ہے اور یہ بخلاف ایک غلام کے اجارہ دینے کی مہایاہ کے ہے کہ یوں مہایاہ کی کہ یہ شریک اس غلام واحد کو ایک مہینہ تک کرایہ پر دے اور اُس کی اجرت کھائے پھر دوسرا اُس کو ایک مہینہ تک کرایہ پر دے اور اُس کی اجرت کھائے کیونکہ یہ بلا خلاف نہیں جائز ہے کذا فی الذخیرہ اور اگر دونوں نے دو غلاموں میں دونوں سے ایک سال تک خدمت لینے پر مہایاہ کی تو جائز ہے اور اگر دونوں غلاموں کی اجرت پر مہایاہ کی تو امام اعظمؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک جائز ہے بشرطیکہ دونوں کی باری میں کرایہ برابر آئے گا ہو یہ محیطِ سرخسی میں ہے اور اگر دو شخصوں میں دو باندیاں مشترک ہوں اور دونوں نے اس طرح مہایاہ کی کہ یہ باندی اس کی لڑکی کو دودھ پلا دے اور

دوسری باندی دوسرے کے لڑکے کو دودھ پلا دے تو جائز ہے کذا فی التبیین۔ دو شخصوں نے اپنے درمیان مشترک گائے میں اس طرح مہایاہ کی کہ یہ گائے ہر ایک کے پاس پندرہ روز تک رہے وہ اس کا دودھ دوھ لیا کرے تو یہ باطل ہے اور کسی کو بڑھتی دودھ حلال نہ ہو گا اگرچہ اُس کا شریک اُس کو حلت میں کر دے کیونکہ یہ ہبہ شائع ہے ایسی چیز میں جو قابلِ تقسیم ہے الّا اس صورت میں کہ بڑھتی والے نے بڑھتی دودھ کو تلف کر دیا ہو پس جب دوسرا شریک اس کو حلت میں کر دے گا تو یہ امر ضمانت سے بری کر دینا ہے پس جائز ہو گا اور جب تک عین زیادتی قائم ہے تب تک یہ امر ہبہ یا امر عین ہے اور یہ باطل ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر کوئی نخل و شجر دو شریکوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس طرح مہایاہ کی کہ ہر ایک اس کے پھلوں میں سے کسی قدر لے تو جائز نہیں ہے اسی طرح اگر بکریاں دو آدمیوں میں مشترک ہوں اور دونوں نے اتفاق کیا کہ ہر ایک ان میں سے کسی قدر بکریاں لے کر ان کو چارہ دے ۱؎ اور ان کے دودھ سے نفع اُٹھاوے تو بھی جائز نہیں ہے یہ کافی میں ہے پھلوں یا پھلوں کی مثل چیزوں میں جواز کا حیلہ ہے کہ اپنے شریک کا حصہ خرید لے پھر اپنی باری گذرنے پر کل کو فروخت کردے یا لین مقدمہ سے جو حصہ شریک ہے بطور قرض انتفاع حاصل کرے کیونکہ قرض مشاع جائز ہے یہ تبیین میں ہے اور دو چاپایہ (۱) وایک چوپایہ میں ازراہِ سواری یا کرایہ پر چلانے کے دونوں طرح امامِ اعظمؒ کے نزدیک مہایاہ جائز نہیں ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک دو چاپایوں کی صورت میں مہایاہ جائز ہے خواہ سواری لینے کی برابر ہو ۱؎ یا کم و بیش ہو تو زیادتی کو تقسیم کرلیں۔

۱؎ برابر الخ و اگر کم و بیش ہو تو زیادتی کو تقسیم کرلیں۔ ۲؎ مشاع یعنی یہ چیز اس قابل تھی کہ بٹوارہ ہو سکتا تھا پھر بھی اسے مشاع بغیر تقسیم کی ہبہ کی جائز نہیں ہے۔ ۳؎ چرادے یا چارہ دے۔ (۱) عین سے بری کرتا ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 279 | Book of Partition (Kitab al-Qisma)**

...whether it be for own use or for the purpose of renting it out. However, in the case of a quadruped animal, if the *muhayat* (partition of usufruct) is established for the purpose of renting it out, it is not permissible. If the *muhayat* is for riding, Shaykh Imam Ma'ruf Khwaharzada stated that it should not be permissible; thus, it is not permissible in any way, whether for riding or for renting out. This ruling is recorded in *Fatawa Qazi Khan*. If two individuals agree on a *muhayat* to receive service from two owned servants, and then one of the servants dies or runs away, the *muhayat* is annulled. If that servant served for three days less than a full month, the other owner will also take three days less service from his own servant. In contrast, if he served for three days more than a month, the other owner will not be entitled to three extra days of service from his servant. If one person's servant ran away for the entire month and the other person took service from his own servant for the whole month, no liability (*zaman*) or wages (*ujrah*) shall be due from him. By analogy (*qiyas*), he would have been liable for half of the fair market wage (*ujr al-mithl*). If a servant dies while serving the person for whom this servant was stipulated in the *muhayat*, no liability or wages are due. Analogically, he would have been liable for half of the fair wage. If a servant dies during service to the person for whom the service was stipulated in the *muhayat*, no liability is due. Similarly, if a house collapses while being occupied by the person for whom it was stipulated, no liability is incurred. Likewise, if this house is burnt down by a fire (1) lit by the person who had the right of occupancy, no liability is due. Similarly, if he performed ablution in the said house and someone slipped on the water, or if he placed an object there and a person tripped (2) over it, no liability is due. However, if he constructed a building in it or dug a well, he will be liable to the extent of his partner's ownership interest. For instance, if the partner owns one-third, he will be liable for one-third. According to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), he will be liable for half in every case. Our Hanafi scholars stated that in the case of constructing a building, the aforementioned answer (regarding non-liability) is incorrect. Shams al-A'imma al-Halwani stated that if the opinion of these scholars is correct, then in the case of a tenant, the ruling should be that if a tenant constructs a building in a rented house and a person is harmed as a result, the tenant should not be held liable, just as is the ruling (2) for placing something in a house. The author notes that the narration mentioned here is contrary to the opinion of those scholars; the narration here is the

same as in the case of leasing (*ijarah*), where the tenant is held liable. This is recorded in *al-Muhit*.

If one of the two co-owners dies and has outstanding debts, his portion will be sold to settle the debt. If one of the two sells his portion via an irregular sale (*bay' fasid*), the *muhayat* remains valid until he delivers it to the buyer, because in an irregular sale, ownership does not cease until delivery, as is the case in (3) a sale with an option for the seller (*bay' bi-shart al-khiyar lil-ba'i*). But if the option is for the buyer, then the *muhayat* (3) becomes void; this is in *Muhit al-Sarakhsi*. If a slave girl is jointly owned by two people and each is suspicious of the other regarding her, and one says, "Let her stay with you for one day and with me for one day," and the other refuses, suggesting instead that she stay with a trustworthy third party, I (the judge) will not place her with a third party but will order that she stay with each of them for one day alternately. And if both...

**Footnotes:** 1ـه "Tripping etc." refers to slipping or tripping. 2ـه A sale where an option is given to the seller, and this refers to a sale where an option may also exist for the buyer. (1) Mentioned a certain part. (2) Riding animals. (3) By the same fire which was lit by the resident beneficiary of the stipulation. (4) Mentioned above. (5) Because the sold item has left the ownership of the seller.

...रास्ते से हो या किराए पर चलाने के रास्ते से हो, मगर एक चौपाया होने की स्थिति में अगर किराए पर चलाने के उद्देश्य से मुहायात (लाभ का बटवारा) की जाए तो यह जायज़ नहीं है। और अगर सवारी के लिए मुहायात की जाए तो शेख इमाम मारूफ़ ख़्वाहुरज़ादा ने फ़रमाया कि जायज़ नहीं होनी चाहिए, अतः न सवारी के लिहाज़ से और न ही किराए पर चलाने के लिहाज़ से किसी भी तरह जायज़ नहीं है, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ाँ में है। और अगर दो व्यक्तियों ने दो दासों से सेवा लेने पर मुहायात की, फिर एक मर गया या भाग गया तो मुहायात टूट जाएगी। और अगर उस दास ने एक महीने में तीन दिन कम सेवा की हो, तो दूसरा भी अपने दास से तीन दिन कम सेवा लेगा। इसके विपरीत, यदि उसने महीने भर से तीन दिन अधिक सेवा की हो, तो दूसरे के लिए उसके दास से तीन दिन अधिक सेवा नहीं ली जाएगी। और यदि एक का दास पूरा महीना भागा रहा और दूसरे ने अपने दास से पूरा महीना सेवा ली, तो उस पर न तो हर्जाना (ज़मान) अनिवार्य होगा और न ही मज़दूरी (उजरत)। और क़यास (तर्क) यह था कि वह आधे अज्र-ए-मिस्ल (उचित मज़दूरी) का उत्तरदायी होता। और यदि एक सेवक उस व्यक्ति की सेवा में रहते हुए हलाक (मृत) हो गया जिसके लिए मुहायात में यह सेवक तय किया गया था, तो उस पर कोई हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा और न ही मज़दूरी अनिवार्य होगी, और क़यास यह था कि वह आधे अज्र-ए-मिस्ल का उत्तरदायी होता। और यदि एक सेवक उस व्यक्ति की सेवा में हलाक हो गया जिसके लिए वह तय था, तो हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। इसी प्रकार यदि वह घर उस व्यक्ति के रहने से गिर गया जिसके लिए वह तय किया गया था, तो भी हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। इसी प्रकार यदि यह घर उस तयशुदा व्यक्ति द्वारा जलाई गई आग (१) से जल गया, तो भी हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। इसी प्रकार यदि उसने उक्त घर में वज़ू किया और कोई व्यक्ति उसके पानी से फिसल गया या उसमें कोई चीज़ रखी और उससे किसी व्यक्ति ने ठोकर (२) खाई, तो उस पर हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। और अगर उसने उसमें कोई इमारत बनाई या कुआँ खोदा, तो वह अपने हिस्सेदार के स्वामित्व की सीमा तक हर्जाने का उत्तरदायी होगा। यहाँ तक कि अगर हिस्सेदार एक तिहाई का मालिक है, तो वह एक तिहाई का उत्तरदायी होगा। और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार हर हाल में आधे का उत्तरदायी होगा। और हमारे यानी हनफ़ी विद्वानों ने फ़रमाया कि इमारत बनाने की स्थिति में उक्त उत्तर (अर्थात् उत्तरदायी न होना) गलत है। और शम्सुल आइम्मा हलवाई ने फ़रमाया कि यदि इन विद्वानों की बात सही हो तो किराएदार के मामले में हुक्म यह होना चाहिए कि यदि किराएदार ने

किराए के मकान में कोई इमारत बनाई और उससे कोई व्यक्ति हलाक हो गया, तो वह उत्तरदायी नहीं होगा, जैसा कि घर में कोई चीज़ रखने की स्थिति में (२) हुक्म है। लेखक ने फ़रमाया कि यहाँ जो रिवायत उल्लेखित है, वह उन विद्वानों के कथन के विरुद्ध है; यहाँ जो रिवायत है वही इजारा (किरायेदारी) के मामले में होगी कि इजारा की स्थिति में भी किराएदार पर हर्जाना अनिवार्य होगा, यह 'मुहीत' में है।

यदि दोनों में से एक की मृत्यु हो जाए और उस पर कर्ज़ हो, तो उसका हिस्सा उसके कर्ज़ में बेच दिया जाएगा। यदि दोनों में से किसी एक ने 'बै-ए-फ़ासिद' (अनियमित बिक्री) के रूप में अपना हिस्सा बेचा, तो जब तक वह खरीदार के सुपुर्द न कर दे, तब तक मुहायात रद्द नहीं होगी, क्योंकि 'बै-ए-फ़ासिद' में स्वामित्व तब तक समाप्त नहीं होता जब तक वह खरीदार के सुपुर्द न कर दिया जाए, जैसा कि (३) 'बै ब-शर्त-ए-ख़ियार' (विक्रेता के विकल्प वाली बिक्री) में होता है। और यदि विकल्प खरीदार के लिए हो, तो मुहायात (३) रद्द हो जाएगी, यह 'मुहीत सरख़सी' में है। एक दासी दो व्यक्तियों में साझी है और दोनों में से हर एक उस दासी के बारे में दूसरे पर संदेह रखता है। फिर एक ने कहा कि यह दासी एक दिन तेरे पास रहे और एक दिन मेरे पास रहे, और दूसरे ने कहा कि नहीं, बल्कि हम इसे किसी ईमानदार व्यक्ति के पास रखेंगे, तो मैं (न्यायाधीश) उसे किसी ईमानदार व्यक्ति के पास नहीं रखूँगा बल्कि आदेश दूँगा कि वह एक-एक दिन दोनों के पास रहे। और अगर दोनों...

**पादलेख:** १ــ ठोकर इत्यादि से तात्पर्य फिसलने या ठोकर खाने से है। २ــ वह बिक्री जिसमें विक्रेता को विकल्प दिया गया है, और इस बिक्री से वह बिक्री मुराद है जिसमें खरीदार के लिए भी विकल्प होता है। (१) कोई हिस्सा बयान किया। (२) सवारी के जानवर। (३) उसी आग से जिसे उस निवासी ने जलाया था जिसे लाभ का अधिकार दिया गया था। (४) ऊपर वर्णन हुआ। (५) क्योंकि बेची गई वस्तु विक्रेता के स्वामित्व से बाहर हो गई।

---

راہ سے ہو یا کرایہ پر چلانے کی راہ سے ہو مگر ایک چو پایہ ہونے کی صورت میں اگر کرایہ چلانے کی راہ سے مہایاۃ کی تو جائز نہیں ہے اور اگر سواری میں مہایاۃ کی تو شیخ امام معروف بخواہرزادہ نے فرمایا کہ جائز نہ ہونا چاہیے پس نہ سواری کی راہ سے اور نہ کرایہ پر چلانے کی راہ سے کسی طرح جائز نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خاں میں ہے۔ اور اگر دونوں نے دو مملوکوں میں خدمت لینے پر مہایاۃ کی پھر ایک مر گیا یا بھاگ گیا تو مہایاۃ ٹوٹ جائے گی اور اگر اس غلام نے تین روز کم مہینہ بھر خدمت کی ہو تو دوسرا بھی اپنے غلام سے تین روز کم خدمت لے گا بخلاف اس کے اگر اس نے مہینہ بھر سے تین روز زیادہ خدمت کر دی ہو تو دوسرے کے واسطے اس کے غلام کی تین روز خدمت زیادہ نہ کی جائے گی اور اگر ایک کا غلام پورا مہینہ بھاگا رہا اور دوسرے نے اپنے غلام سے پورا مہینہ خدمت لی تو اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی اور نہ اُجرت واجب ہو گی اور قیاس یہ تھا کہ نصف اجر المثل کا ضامن ہوتا اور اگر ایک خادم اُس شخص کی خدمت سے جس کے واسطے مہایاۃ میں یہ خادم شرط کیا گیا ہے ہلاک ہو گیا تو اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی اور نہ اجرت واجب ہو گی اور قیاس یہ تھا کہ نصف اجر المثل کا ضامن ہوتا اور اگر ایک خادم اُس شخص کی خدمت سے جس کے واسطے مہایاۃ میں یہ خادم شرط کیا گیا ہے ہلاک ہو گیا تو اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی اور اسی طرح اگر منزل اُس شخص کی سکونت سے جس کے واسطے شرط کی گئی ہے منہدم ہو گئی تو بھی اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی اسی طرح اگر یہ منزل اس مشروط کے آگ (۱) روشن کرنے سے جل گئی تو بھی اُس پر ضمان واجب نہ ہو گی اسی طرح اگر اُس نے منزل مذکور میں وضو کیا اور کوئی شخص اس کے پانی سے پھسل پڑا یا اس میں کوئی چیز رکھی اور اس سے کسی آدمی نے ٹھوکر (۲) کھائی تو اُس پر ضمان واجب نہ

ہو گی اور اگر اس نے اس میں کوئی عمارت بنائی یا کنواں کھودا تو جس قدر اُس کے شریک کی ملک ہے اتنے کا ضامن ہو گا حتی کہ اگر شریک ایک تہائی کا مالک ہو تو تہائی کا ضامن ہو گا اور صاحبین کے نزدیک ہر حال میں نصف کا ضامن ہو گا اور ہمارے یعنی اصحاب حنفیہ نے فرمایا کہ عمارت بنانے کی صورت میں جواب مذکور (یعنی ضامن نہ ہونا) غلط ہے اور شمس الائمہ حلوائی نے فرمایا کہ اگر ان مشایخ کا کہنا صحیح ہو تو مستاجر کی صورت میں حکم یوں ہونا چاہیے کہ اگر مستاجر نے کرایہ کے مکان میں کوئی عمارت بنائی اور اُس سے کوئی آدمی تلف ہو گیا تو ضامن نہ ہو گا جیسا کہ دار میں کوئی چیز رکھنے کی صورت میں (۲) حکم ہے مؤلف نے فرمایا کہ یہاں جو روایت مذکور ہے وہ ان مشایخ کے قول کے بر خلاف ہے اور جو روایت یہاں ہے وہی اجارہ کی صورت میں ہوگی کہ اجارہ کی صورت میں بھی مستاجر پر ضمان واجب ہو گی یہ محیط میں ہے۔

اگر دونوں میں سے ایک مر گیا اور اُس پر قرضہ ہے تو اُس کا حصہ اُس کے قرضہ میں فروخت کیا جائے گا۔ دونوں میں سے ایک نے بطور بیع فاسد اپنا حصہ فروخت کیا تو جب تک مشتری کے سپرد نہ کرے تب تک مہایاۃ باطل نہ ہو گی کیونکہ بیع فاسد میں اُس کی ملک زائل نہ ہو گی جب تک مشتری کے سپرد نہ کرے جیسا کہ (۳) بیع بشرط الخیار للبائع میں ہے اور اگر بیع بشرط خیار للمشتری ہو تو مہایاۃ (۳) باطل ہو جائے گی یہ محیط سرخسی میں ہے۔ ایک باندی دو شخصوں میں مشترک ہے اور دونوں میں سے ہر ایک اس باندی کے بارے میں دوسرے پر بد گمانی رکھتا ہے۔ پھر ایک نے کہا کہ یہ باندی ایک روز تیرے پاس رہے اور ایک روز میرے پاس رہے اور دوسرے نے کہا کہ نہیں بلکہ ہم اس کو کسی عادل کے پاس رکھیں تو میں عادل کے پاس نہ رکھوں گا بلکہ ایک ایک روز دونوں کے پاس رہنے کا حکم دوں گا اور اگر دونوں

**حواشی:** ۱ــہ ٹھوکر الخ یعنی پھسلنے یا ٹھوکر کھانے سے مراد۔ ۲ــہ وہ بیع جس میں بائع کے واسطے اختیار دیا گیا ہے اور اس بیع سے بیع مراد ہے اور مشتری کے واسطے بھی خیار ہوتا ہے۔ (۱) کوئی حصہ بیان کیا۔ (۲) سواری کے جانور۔ (۳) اسی آگ سے جس کو شروط لہ ساکن نے جلایا تھا۔ (۴) اوپر بیان ہوا۔ (۵) کیونکہ مبیع بائع کی ملک سے خارج ہو گئی۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8, Page 280, Kitab al-Qisma (The Book of Division)**

...disputed over who should have possession first; the Qazi (Judge) has the authority to either choose one to begin or to draw lots. Shams al-A'imma stated that drawing lots is preferable to satisfy the hearts of both parties, and this is the view favored by Shams al-A'imma al-Halwani, as mentioned in *Al-Zakhiroh*. If a male slave and a female slave are shared between two people, and they agree on *Muhabatah* (an agreement for the use of joint property) such that one person utilizes the female slave's service and the other utilizes the male slave's service: if both remained silent regarding the provision of their food, then by analogy (*qiyas*), the cost of food for both should be shared equally. However, by juristic preference (*istihsan*), the ruling is that the person for whom the servant's service was stipulated is responsible for that servant's food. Regarding their clothing, if both remained silent, then by both analogy and juristic preference, the cost of clothing for both male and female slaves must be shared equally. If in the *Muhabatah* agreement, it was stipulated that the person receiving the service is responsible for the servant's food, but the quantity of food was not specified, then by analogy it should not be permissible, but by juristic preference, it is permissible. In the case of clothing, if the quantity is not specified, it is impermissible by both analogy and juristic preference. If the quantity of food was specified, it is impermissible by analogy but permissible by juristic preference. Similarly, in the case of clothing, if a known item was stipulated, it is impermissible by analogy but permissible by juristic preference. *Muhabatah* regarding the grazing of livestock is permissible in our view; similarly, if *Muhabatah* is made regarding hiring a shepherd for grazing those livestock, it is also permissible. It is permissible to agree on *Muhabatah* regarding a house and a piece of land such that one partner resides in the house and the other cultivates the land. Likewise, if *Muhabatah* is made regarding a house and a bathhouse (*hammam*), it is permissible. *Muhabatah* regarding a house and a slave, where one partner resides in the house for a year and the other takes service from the slave for a year, is permissible. However, if the *Muhabatah* was based on the slave's wages for a year, it is void according to Imam al-A'zam (Abu Hanifa), but permissible according to the *Sahibayn* (Abu Yusuf and Muhammad); this is mentioned in *Al-Muhit*. If a dispute (1) arises regarding a *Muhabatah* that can be partitioned by either time or space, the Qazi shall order both parties to reach an agreement (i.e., whether it should be by time or by location). If they choose partition by time, the Qazi shall draw lots to determine who starts first (2); this is mentioned in *Al-Tabyin*. If two female slaves are jointly owned by two persons, and one is more

proficient in service than the other, and they agree that one partner takes service from the more proficient slave for one year, while the other takes service from the second slave for two years, this is permissible. If the partners entered into *Muhabatah* for two female slaves and the one being utilized becomes pregnant, the *Muhabatah* becomes void, and a new agreement must be made regarding the other; as stated in *Muhit al-Sarakhsi*.

**Chapter Number (9): Regarding Miscellaneous Matters**

It is permissible for a Qazi to take a fee for performing a division, but it is recommended (*mustahabb*) not to do so; this is in *Al-Zahiriyyah*. The Qazi should appoint a *Qasim* (divider) to perform divisions among the people who does not take a fee, as this is more virtuous. If the Qazi does not do so, he should appoint a *Qasim* who takes a fee from the shareholders, and the amount of the fee shall be what is standard for such work, namely— (1) Whether it is by time or by location. (2) From whose side the beginning should be.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8, पृष्ठ 280, किताबुल क़िस्मत (बँवारे की पुस्तक)**

...में झगड़ा किया कि पहले किसके पास रहे, तो क़ाज़ी (न्यायाधीश) को अधिकार है कि चाहे जिससे शुरुआत करे या कुरआ (लॉटरी) डाल दे। शम्सुल अइम्मा ने फ़रमाया कि दोनों का दिल मुतमईन (संतुष्ट) करने के लिए कुरआ डालना बेहतर है और इसी की ओर शम्सुल अइम्मा हलवाई का झुकाव है, यह 'ज़ख़ीरा' में है। एक गुलाम और एक लौंडी दो व्यक्तियों के बीच साझा हैं और दोनों ने इस बात पर 'मुहाबात' (हितों के उपयोग का समझौता) की कि लौंडी एक व्यक्ति की सेवा करे और गुलाम दूसरे की सेवा करे। यदि दोनों ने उनके भोजन (ख़ुराक) के ज़िक्र पर चुप्पी साधी, तो कयास (तर्क) के अनुसार दोनों का भोजन दोनों पर आधा-आधा वाजिब होगा, लेकिन 'इस्तहसान' (न्यायसंगत प्राथमिकता) के अनुसार यह हुक्म है कि मुहाबात में जो सेवक जिसकी सेवा के लिए तय किया गया है, उसका भोजन उसी पर वाजिब होगा। और यदि दोनों ने कपड़ों के ज़िक्र पर चुप्पी साधी, तो कयास और इस्तहसान दोनों के अनुसार गुलाम और लौंडी का कपड़ा दोनों पर आधा-आधा वाजिब होगा। और यदि मुहाबात में यह शर्त लगा दी गई कि जो सेवक जिसकी सेवा के लिए तय है, उसका खाना उसी के ज़िम्मे है, लेकिन भोजन की मात्रा बयान न की हो, तो कयास के अनुसार जायज़ नहीं होना चाहिए, लेकिन इस्तहसान के अनुसार जायज़ है। कपड़ों की स्थिति में यदि मात्रा बयान न की हो, तो कयास और इस्तहसान दोनों के अनुसार जायज़ नहीं है। और यदि भोजन की मात्रा बता दी, तो कयास के अनुसार जायज़ नहीं है लेकिन इस्तहसान के अनुसार जायज़ है। इसी तरह कपड़ों की स्थिति में यदि कोई ज्ञात चीज़ शर्त की गई, तो कयास के अनुसार जायज़ नहीं है और इस्तहसान के अनुसार जायज़ है। चौपायों (पशुओं) को चराने में मुहाबात करना हमारे नज़दीक जायज़ है, इसी तरह यदि उन पशुओं को चराने के लिए मज़दूरी पर चरवाहा नियुक्त करने में मुहाबात की, तो भी जायज़ है। एक घर और एक ज़मीन में इस तरह मुहाबात करना कि एक साझीदार घर में रहे और दूसरा उस ज़मीन पर खेती करे, जायज़ है। इसी तरह यदि एक घर और एक हमाम (स्नानघर) में मुहाबात की, तो भी जायज़ है। एक घर और एक गुलाम में इस तरह मुहाबात करना कि एक साझीदार घर में एक साल तक रहे और दूसरा उस गुलाम से एक साल तक सेवा ले, जायज़ है। लेकिन यदि गुलाम की मज़दूरी पर एक साल के लिए मुहाबात की, तो इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा रह.) के नज़दीक यह बातिल (अमान्य) है और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद रह.) के नज़दीक जायज़ है, यह 'मुहीत' में है। यदि ऐसी चीज़ की मुहाबात करने में जो समय (ज़मान) और स्थान (मकान) दोनों के आधार पर हो सकती है, दोनों ने मतभेद किया (1), तो क़ाज़ी दोनों को हुक्म देगा कि तुम दोनों किसी

बात पर सहमत हो जाओ (यानी समय के अनुसार हो या स्थान के अनुसार)। फिर यदि दोनों ने समय (ज़मान) का विकल्प चुना, तो शुरुआत (2) तय करने के लिए क़ाज़ी कुरआ डालेगा, यह 'तबीन' में है। दो लौंडियाँ दो व्यक्तियों में साझा हैं और उनमें से एक लौंडी दूसरी की तुलना में सेवा कार्य में अधिक कुशल है, तो दोनों ने यह मुहाबात की कि जो अधिक सेवा करने वाली है उससे एक साझीदार एक साल तक सेवा ले और दूसरी से दूसरा साझीदार दो साल तक सेवा ले, तो यह जायज़ है। और यदि दोनों साझीदारों ने दो लौंडियों में मुहाबात कर ली, फिर वह लौंडी जिससे सेवा ली जा रही थी गर्भवती हो गई, तो मुहाबात बातिल हो जाएगी और दूसरी के बारे में नए सिरे से मुहाबात होगी, जैसा कि 'मुहीत अल-सरख़सी' में वर्णित है।

**अध्याय संख्या (9): विविध विषयों के वर्णन में**

क़ाज़ी के लिए जायज़ है कि वह बँवारा (तक़्सीम) करने के लिए अपनी मज़दूरी ले ले, लेकिन न लेना मुस्तहब (पसंदीदा) है, यह 'ज़हीरिया' में है। क़ाज़ी को चाहिए कि लोगों में बँवारा करने के लिए एक 'क़ासिम' (विभाजनकर्ता) नियुक्त करे जो बँवारा करने पर मज़दूरी न ले, बल्कि यही श्रेष्ठ है। और यदि क़ाज़ी ने ऐसा नहीं किया, तो ऐसा क़ासिम नियुक्त करे जो बँवारे की मज़दूरी हिस्सेदारों से ले, और मज़दूरी की मात्रा वह होगी जो ऐसे काम करने वाले को मिलनी चाहिए, यानी— (1) समय के अनुसार है या स्थान के अनुसार। (2) किसकी तरफ से शुरुआत हो।

---

نے اس میں جھگڑا کیا کہ پہلے کسی کے پاس رہے تو قاضی کو اختیار ہے چاہے جس سے پہل کرے یا قرعہ ڈال دے اور شمس الائمہ نے فرمایا کہ دونوں کا دل مطمئن کرنے کے واسطے قرعہ ڈالنا اولیٰ ہے اور اسی طرف شمس الائمہ حلوائی نے میل کیا ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک غلام و ایک باندی دو آدمیوں میں مشترک ہے اور دونوں نے اس امر پر مہاباۃ کی کہ باندی ایک شخص کی خدمت کرے اور دوسرے کی خدمت غلام کرے پس اگر دونوں نے ان کی خوراک کے ذکر سے سکوت کیا ہو تو قیاساً دونوں کی خوراک دونوں پر نصفاً نصفاً واجب ہوگی مگر استحساناً یہ حکم ہے کہ مہاباۃ میں جو خادم جس کی خدمت کے واسطے مشروط کیا گیا ہے اس کی خوراک اسی پر واجب ہوگی اور ان دونوں کے کپڑے کے ذکر سے اگر دونوں نے سکوت کیا تو قیاساً و استحساناً غلام و باندی کا کپڑا دونوں پر نصفاً نصفاً واجب ہوگا اور اگر مہاباۃ میں یہ شرط بیان کردی ہو کہ جو خادم جس کی خدمت کے واسطے مشروط ہے اس کا کھانا اسی کے ذمہ ہے مگر خوراک کی مقدار بیان نہ کی ہو تو قیاساً جائز نہ ہونا چاہیے مگر استحساناً جائز ہے اور کپڑے کی صورت میں اگر مقدار بیان نہ کی ہو تو قیاساً و استحساناً جائز نہیں ہے اور اگر مقدار خوراک بیان کردی تو قیاساً جائز نہیں ہے اور استحساناً جائز ہے اسی طرح کپڑے کی صورت میں اگر کوئی شے معلوم شرط کی تو قیاساً جائز نہیں ہے اور استحساناً جائز ہے اور چوپاؤں کے چرانے میں مہاباۃ کرنا ہمارے نزدیک جائز ہے اسی طرح اگر ان چوپاؤں کے چرانے کے واسطے اجرت پر چرواہا مقرر کرنے میں مہاباۃ کی تو بھی جائز ہے اور ایک دار اور ایک زمین میں اس طرح مہاباۃ کرنا کہ ایک شریک اس دار میں سکونت کرے اور دوسرا اس زمین میں زراعت کرے جائز ہے اسی طرح اگر ایک دار ایک حمام میں مہاباۃ کی تو بھی جائز ہے اور ایک دار ایک مملوک میں اس

طرح مہاباۃ کرنا کہ یہ شریک اس دار میں ایک سال تک سکونت رکھے اور دوسرا اس غلام سے ایک سال تک خدمت لے جائز ہے لیکن اگر غلام کی مزدوری ایک سال تک یعنی پر مہاباۃ کی تو امام اعظمؒ کے نزدیک باطل ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک جائز ہے یہ محیط میں ہے اگر ایسی چیز کی مہاباۃ کرنے میں جو از راہ زمان و مکان دونوں ہو سکتی ہے دونوں نے اختلاف (۱) کیا تو قاضی دونوں کو حکم دے گا کہ تم دونوں کسی بات پر اتفاق کرو (یعنی بزمان ہو یا بمکان ہو) پس اگر دونوں نے اس بات کو اختیار کیا کہ بزمان ہو تو ہدایت (۲) کے واسطے قاضی قرعہ ڈال دے گا یہ تبیین میں ہے۔ دو باندیاں دو شخصوں میں مشترک ہیں اور ان میں سے ایک باندی بہ نسبت دوسری کے خدمتگاری میں بڑھ کر پس دونوں نے یہ مہاباۃ کی کہ جو باندی خدمت گزاری میں بڑھ کر اس سے ایک شریک ایک سال تک خدمت لے اور دوسری سے دوسرا شریک دو سال تک خدمت لے تو جائز ہے اور اگر دونوں شریکوں نے دو باندیوں میں مہاباۃ کر لی پھر ایک باندی جس کی خدمت کرتی تھی اس سے حاملہ ہو گئی تو مہاباۃ باطل ہو جائے گی اور دوسری کی بابت از سر نو مہاباۃ ہوگی کذا فی محیط السرخسی۔

**باب نمبر (۹): متفرقات کے بیان میں**

قاضی کو جائز ہے کہ بٹوارہ کرنے میں اپنی اجرت لے لے لیکن نہ لینا مستحب ہے یہ ظہیریہ میں ہے۔ قاضی کو چاہیے کہ لوگوں میں بٹوارہ کرنے کے واسطے ایک قاسم مقرر کرے جو بٹوارہ کرنے پر اجرت نہ لے بلکہ یہی افضل ہے اور اگر قاضی نے ایسا نہ کیا تو ایسا قاسم مقرر کرے جو بٹوارہ کرنے کی اجرت حصہ داروں سے لے اور اجرت کی مقدار وہ ہوگی جو ایسے کام کرنے والے کو ملنی چاہیے یعنی (۱) بزمان ہے یا بمکان ہے۔ (۲) کس کی طرف سے پہل ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 281 | Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

Fair wage (Ajr al-Mithl) is specified so that [the partitioner] does not exercise authority[1] to take more from the shareholders. However, it is mandatory that this partitioner (Qasim) be a just man, knowledgeable in the matters of partition, and trustworthy. The judge (Qazi) shall not compel people to hire only one specific partitioner for a fee; this is stated in *Al-Kafi*. If partners hire a partitioner to divide shares among them for a fee, his fee shall be shared equally among them based on their number, not proportionally to their respective shares. However, Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad stated that the fee shall be mandatory for each shareholder in proportion to their share, whether the partitioner is appointed by the judge or otherwise. There is also a similar narration from Imam Abu Hanifa. Regarding the wages for the measurer (Kayyal) and weigher (Wazzan), some scholars mentioned that there is a similar disagreement, but the most correct view is that the Imam's opinion in this regard is like that of the *Sahibayn* (Abu Yusuf and Muhammad). If one of two partners requests a division and the other refuses, and the judge orders his partitioner to divide between them, Hasb bin Ziyad narrated from Imam al-Azam (Abu Hanifa) that the fee shall be borne by the requester. Imam Abu Yusuf said the wage shall be borne by both; this is in *Al-Zahiriyya*. The translator noted that this is the most correct view, as has been said. If partners divide the shares by mutual reconciliation and consent, it is permissible, but if there is a minor among the partners, the judge's order will be necessary, and the partitioner shall not leave them in joint ownership; this is in *Al-Kafi*.

Imam Abu Hanifa stated that the wage of the partitioner for houses and lands shall be divided equally among shareholders based on their number. The *Sahibayn* stated it shall be according to the size of the share. The example is: a house is jointly owned by three people such that one owns half, the second a third, and the third a sixth (according to Imam al-Azam, all three pay equal wages, whereas according to the *Sahibayn*, the owner of the half pays half the wage, the second pays a third, and the third pays a sixth). Scholars stated that this rule applies when partners have requested partition from the judge and the judge's partitioner has carried it out. If they personally appointed a partitioner for a fee, then each shall be equally liable for the fee. Furthermore, can the partner with a smaller share recover the excess payment from the partner with a larger share? Imam al-Azam stated he cannot, while the *Sahibayn* stated he can. Similarly, if partners appoint an agent (Wakil) to hire a partitioner for a fee to divide between them, and the agent does so, the partitioner's

fee is the responsibility of the agent. There is a disagreement regarding how the agent recovers this fee from his principals: Imam al-Azam stated he recovers equally from all, while the *Sahibayn* stated he recovers from each shareholder in proportion to their ownership; this is in *Al-Muhit*.

If partners appoint someone for a fee to measure joint grain or to measure joint cloth by the yard; if the person was hired for the purpose of partitioning, then the same disagreement mentioned above applies. However, if he was hired merely to measure so that the total quantity of the item or cloth becomes known, then each partner must pay the fee in proportion to their share. It is stated in *Al-Muntaqa* that Ibrahim narrated from Imam Muhammad that when shares of joint wheat were separated between two persons, the measurer's fee was mandatory for each according to their share, while the calculator’s fee was mandatory equally for each based on the number of partners. It was stated that in this division and allocation (*Taqsim o Afraz*)...

---

1. Authority (Hukm) here means the partitioner taking more by force.
2. If there are four partners, each will pay a quarter, even if one’s share is a half, another’s a quarter, and another’s an eighth, and so on.

उचित मज़दूरी (अज्र-ए-मिसल) ताकि हिस्सेदारों से ज़्यादा लेने का आदेश[1] न दे, लेकिन यह अनिवार्य (वाजिब) है कि यह व्यक्ति यानी का़सिम (विभाजन करने वाला) एक न्यायप्रिय पुरुष हो, विभाजन के मसलों से अवगत हो और ईमानदार हो। और का़ज़ी (न्यायाधीश) लोगों को किसी एक ही का़सिम को मज़दूरी पर विभाजन के लिए लेने को मजबूर नहीं करेगा, यह 'का़फ़ी' में लिखा है। यदि साझेदारों ने किसी का़सिम को अपने बीच हिस्सा बाँटने के लिए मज़दूरी पर नियुक्त किया, तो उसकी मज़दूरी उन लोगों की संख्या के आधार पर प्रत्येक पर बराबर होगी; प्रत्येक के हिस्से के अनुपात में नहीं होगी। जबकि इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद ने फ़रमाया कि प्रत्येक हिस्सेदार के हिस्से के अनुपात में उस पर मज़दूरी अनिवार्य होगी, चाहे वह का़ज़ी का नियुक्त का़सिम हो या कोई और। इमाम अबू हनीफ़ा से भी एक ऐसी ही रिवायत (कथन) है। रही बात मापने वाले (कय्याल) और तौलने वाले (वज़्ज़ान) की मज़दूरी की, तो उसके बारे में कुछ उलेमाओं ने फ़रमाया कि उसमें भी वैसा ही मतभेद है, परंतु अधिक सही यह है कि इसके बारे में इमाम का कथन 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के कथन के समान है। यदि दो साझेदारों में से एक ने विभाजन की प्रार्थना की और दूसरे ने इनकार किया, और का़ज़ी ने अपने का़सिम को आदेश दिया कि दोनों के बीच विभाजन कर दे, तो हस्ब बिन ज़ियाद ने इमाम आज़म (अबू हनीफ़ा) से रिवायत की है कि उसकी मज़दूरी प्रार्थना करने वाले पर होगी, और इमाम अबू यूसुफ़ ने फ़रमाया कि उसकी मज़दूरी दोनों पर होगी, जैसा कि 'ज़हीरिया' में है। अनुवादक ने कहा कि यही अधिक सही है, ऐसा भी कहा गया है। और यदि साझेदारों ने आपसी सहमति से हिस्सा बाँट लिया तो यह वैध है, लेकिन यदि साझेदारों में कोई नाबालिग हो तो ऐसी स्थिति में का़ज़ी के आदेश की आवश्यकता होगी, और का़सिम उन्हें संयुक्त नहीं छोड़ेगा, यह 'का़फ़ी' में है।

इमाम अबू हनीफ़ा ने फ़रमाया कि मकानों और ज़मीनों के का़सिम की मज़दूरी हिस्सेदारों की संख्या के आधार पर प्रत्येक पर बराबर होगी, जबकि साहिबैन ने फ़रमाया कि हिस्से की मात्रा के हिसाब से प्रत्येक हिस्सेदार पर होगी। इसका उदाहरण यह है कि एक मकान तीन व्यक्तियों के बीच इस प्रकार संयुक्त है कि एक का आधा हिस्सा है, दूसरे का एक-तिहाई और तीसरे का छठा हिस्सा है (तो इमाम आज़म के अनुसार तीनों बराबर मज़दूरी अदा करेंगे, और साहिबैन के अनुसार आधे का हिस्सेदार आधी मज़दूरी, दूसरा एक-तिहाई और तीसरा छठा हिस्सा मज़दूरी देगा)। उलेमाओं ने फ़रमाया कि यह आदेश उस समय है जब साझेदारों ने का़ज़ी से विभाजन की प्रार्थना की हो और का़ज़ी के का़सिम

ने विभाजन किया हो। यदि उन लोगों ने स्वयं ही किसी को मज़दूरी पर क़ासिम नियुक्त किया, तो उसकी मज़दूरी का प्रत्येक बराबर उत्तरदायी होगा। फिर क्या कम हिस्से वाला साझेदार, अधिक हिस्से वाले साझेदार से अधिक भुगतान की गई राशि वापस ले सकता है या नहीं? तो इमाम आज़म ने फ़रमाया कि नहीं ले सकता, और साहिबैन ने फ़रमाया कि ले सकता है। इसी प्रकार यदि साझेदारों ने किसी को वकील नियुक्त किया कि वह हमारे बीच विभाजन के लिए मज़दूरी पर कोई क़ासिम नियुक्त करे, और वकील ने वैसा ही किया, तो क़ासिम की मज़दूरी वकील के ज़िम्मे होगी। फिर वकील वह मज़दूरी अपने मुवक्किलों (साझेदारों) से कैसे वापस लेगा, इसमें यह मतभेद है कि इमाम आज़म ने फ़रमाया कि वह सब से बराबर वापस लेगा, और साहिबैन ने फ़रमाया कि प्रत्येक हिस्सेदार से उसके स्वामित्व के हिसाब से वापस लेगा, यह 'मुहीत' में है।

यदि साझेदारों ने संयुक्त अनाज मापने के लिए या संयुक्त कपड़े को गज़ों से नापने के लिए किसी व्यक्ति को मज़दूरी पर रखा; यदि उसे हिस्सा बाँटने के लिए नियुक्त किया गया है, तो इसमें वही मतभेद है जो ऊपर वर्णित किया गया है। और यदि केवल मापने या नापने के लिए रखा गया है ताकि चीज़ या कपड़े की कुल मात्रा ज्ञात हो जाए, तो उसकी मज़दूरी प्रत्येक साझेदार को अपने हिस्से के अनुपात में देनी होगी। 'मुन्तक़ा' में है कि इब्राहीम ने इमाम मुहम्मद से रिवायत की कि दो व्यक्तियों के बीच संयुक्त गेहूँ के हिस्से अलग किए गए, तो मापने वाले (कय्याल) की मज़दूरी प्रत्येक पर उसके हिस्से के अनुपात में अनिवार्य होगी, और गणना करने वाले (मुहासिब) की मज़दूरी साझेदारों की संख्या के हिसाब से प्रत्येक पर बराबर होगी। फ़रमाया कि इस विभाजन और अलगाव (तक्सीम ओ अफ़राज़) में...

---

1. आदेश (हुक्म) का अर्थ है कि विभाजन करने वाला क़ासिम ज़बरदस्ती ज़्यादा ले।
2. यदि चार साझेदार हों, तो प्रत्येक पर चौथाई भाग होगा, भले ही हिस्से में किसी का आधा हो, किसी का चौथाई और किसी का आठवाँ हिस्सा हो, इत्यादि।

---

اجر المثل تا کہ حصہ داروں سے زیادہ لینے پر حکم ۱ نہ کرے مگر یہ واجب ہے کہ یہ شخص قاسم ایک مرد عادل ہو اور قسمت کے مسائل سے آگاہ ہو اور امین ہو۔ اور قاضی ایک ہی قاسم کو اجرت پر بٹوارہ کے لئے لینے کے واسطے لوگوں کو مجبور نہ کرے گا یہ کافی میں ہے اگر شریکوں نے کسی قاسم کو اپنے درمیان حصہ بانٹ کرنے کے واسطے اجرت پر لیا تو اس کی اجرت ان لوگوں کی تعداد پر ہر ایک کے ذمہ برابر ہو گی ہر ایک کے حصہ کے موافق ہر ایک کے ذمہ نہ ہوگی اور امام ابو یوسف و امام محمد نے فرمایا کہ ہر حصہ دار کے حصہ کے موافق اس پر اجرت واجب ہوگی خواہ قاضی کا قاسم ہو یا دوسرا ہو اور امام ابوحنیفہ سے بھی ایک روایت ہے رہی کیال ووزن (کیل کننده و وزن کننده) قیمت کی اجرت سو اس کی نسبت بعض مشائخ نے فرمایا کہ اس میں بھی ویسا ہی اختلاف ہے مگر اصح یہ ہے کہ اس کی بابت امام کا قول مثل قول صاحبین کے ہے اور اگر دو شریکوں میں سے ایک نے تقسیم کی درخواست کی اور دوسرے نے انکار کیا اور قاضی نے اپنے قاسم کو حکم دیا کہ دونوں میں تقسیم کر دے تو حسب بن زیاد نے امام اعظم سے روایت کی کہ اُس کی اُجرت درخواست کرنے والے پر ہو گی اور امام ابو یوسف نے فرمایا کہ اُس کی مزدوری دونوں پر ہو گی کذا فی الظہیر یہ قال المترجم وھو الاصح کذا قیل اور اگر شریکوں نے باہمی صلح و رضا مندی سے حصہ بانٹ کر لیا تو جائز ہے لیکن اگر شریکوں میں کوئی نابالغ ہو تو ایسی صورت میں حکم قاضی کی ضرورت ہوگی اور قاسم ان کو مشترک نہ چھوڑے گا یہ کافی میں ہے۔

امام ابوحنیفہ نے فرمایا کہ داروں اور زمینوں کے قاسم کی اُجرت حصہ داروں کی تعداد پر ہر ایک کے ذمہ برابر ہو گی اور صاحبین نے فرمایا کہ حصہ کی مقدار کے حساب سے ہر حصہ دار پر ہو

گی اور اس کی صورت یہ ہے کہ ایک دار تین آدمیوں میں اس طرح مشترک ہے کہ ایک کا آدھا ہے اور دوسرے کا تہائی ہے اور تیسرے کا چھٹا حصہ ہے (تو امام اعظم رحمہ اللہ کے نزدیک تینوں برابر مزدوری ادا کریں اور صاحبین کے نزدیک آدھے کا حصہ دار آدھی مزدوری اور دوسرا تہائی اور تیسرا چھٹا حصہ اُجرت دے) اور مشائخ نے فرمایا کہ یہ حکم اُس وقت ہے کہ شریکوں نے اپنے حصہ بانٹ کی قاضی سے درخواست کی ہو اور قاضی کے قاسم نے بانٹ دیا ہو اور اگر ان لوگوں نے خود ہی کسی کو قاسم باجرت مقرر کر لیا تو اُس کی اُجرت کا ہر ایک برابر دین دار ہوگا پھر آیا کم حصہ دار زیادہ حصہ دار سے بقدر زیادتی واپس لے سکتا ہے یا نہیں تو امام اعظم رحمہ اللہ نے فرمایا کہ نہیں لے سکتا ہے اور صاحبین نے فرمایا کہ لے سکتا ہے۔ اسی طرح اگر شریکوں نے کسی کو وکیل مقرر کیا کہ ہمارے درمیان حصہ بانٹ کرنے کے واسطے اجرت پر کوئی قاسم مقرر کرے اور وکیل نے ایسا ہی کیا تو قاسم کی اُجرت وکیل کے ذمہ ہو گی پھر مال اجرت جس کو وکیل اپنے موکلوں سے واپس لے گا اُس کے واپس لینے میں اس طرح اختلاف ہے کہ امام اعظم رحمہ اللہ نے فرمایا کہ سب سے برابر واپس لے گا اور صاحبین نے فرمایا کہ ہر حصہ دار سے اُس کی ملک کے حساب سے واپس لے گا یہ محیط میں ہے۔

اگر شریکوں نے اناج مشترک کی کیل کے واسطے یا مشترک کپڑے کے گز ناپنے کے واسطے کسی شخص کو اجرت پر مقرر کیا پس اگر حصہ بانٹ کے واسطے اجیر کیا ہو تو اس میں وہی اختلاف ہے جو ہم نے اوپر بیان کیا ہے اور اگر فقط کیل کرنے یا گزوں سے ناپنے کے واسطے اجیر کیا ہو تاکہ کلی چیز یا کپڑے کی مقدار معلوم ہو جائے تو اُس کی اجرت ہر شریک کو بقدر اپنے حصہ کے دینی پڑے گی اور منتقٰی میں ہے کہ ابراہیم نے امام محمد سے روایت کی کہ دو شخصوں کے درمیان مشترک گیہوں کے حصے جدا کیے گئے تو کیال کی اُجرت ہر ایک پر بقدر

اُس کے حصے کے واجب ہو گی اور حساب کنندہ کی اُجرت بحساب تعداد شرکاء ہر ایک پر برابر واجب ہو گی فرمایا کہ اس تقسیم و افراز

۱ حکم یعنی زبردستی زیادہ لے قاسم بٹوارہ کرنے والا۔ ۲ اگر چار شریک ہوں تو ہر ایک پر چوتھائی ہوگی اگر چہ حصہ میں کسی کا آدھا ہو کسی کا چوتھائی اور کسی کا آٹھواں حصہ ومثل ذلک۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 282 Kitab al-Qisma (Book of Partition)**

The wages for the actual labor performed shall be mandatory according to the share, while for the accounting work, the wages shall be mandatory per head (i.e., divided equally among the number of partners). This is based on the analogical reasoning (Qiyas) of Imam Azam (Abu Hanifa), may Allah have mercy on him. However, according to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), the wages shall be mandatory according to the share; this is mentioned in 'Al-Dhakirah'. Hisham narrated from Imam Muhammad that two people shared a piece of land. One partner built a structure on it. Then the other told him to remove his structure from the land. In this case, the land shall be divided between them. Whatever portion of the structure falls into the share of the partner who did not build it, he has the option to either have that portion demolished or pay its value to the builder and keep it. This ruling is because if he removes the structure, his right over the whole is nullified, but if the partition is made, his right over what he built on his own portion remains valid. Thus, partition is better; this is found in 'Muheet al-Sarakhsi'.

If one of the partners requested a partition and the others refused, and the applicant appointed a professional partitioner (Qasim) for a wage, then according to Imam Azam, the wages shall be borne solely by the applicant. However, the Sahibayn said it should be shared by all; this is in 'Fatawa Qadi Khan'. Sheikh-ul-Islam (2) mentioned in the commentary of 'Kitab al-Qisma' that if one partner builds a structure on shared land without the permission of the other partner, the other partner has the right to demolish it. Also, in the commentary of 'Kitab al-Qisma', it is mentioned: two individuals share two slaves. One partner went missing. Then, a stranger came to the present partner and said, "Perform the partition of these two slaves with me on behalf of the absent partner, for he approves of my partitioning." So, the present partner partitioned with him, took one slave for himself, and gave the other to the stranger. Later, the absent partner returned and approved the partition. If the slave then died in the stranger's possession, the partition is valid, the stranger's possession is considered valid on behalf of the absent partner, and the stranger is not liable for compensation. But if the slave died in the stranger's possession before the absent partner approved the partition, the partition becomes void. The absent partner would then get half of the remaining slave. Regarding the valuation of his share in the deceased slave, he has the option to claim compensation either from the stranger in whose possession the slave died or from his partner. Whichever of them pays the compensation cannot recover it from the other; this is in 'Al-Muheet'.

**Will a person building a house later be bound to respect another's sunlight, light, etc.?** If two partners divide property and a tree falls to the share of one partner, but its branches hang over the share of the other, the latter cannot force him to cut those branches because he became the rightful owner of the tree along with its branches; the fatwa is based on this, as mentioned in 'Khazanat-ul-Muftin'. If two partners divide property such that one gets a building and the other gets an adjacent empty field, and the second partner wants to build a room on his field, but doing so would block the first partner's air and sunlight, then according to 'Zahir-ur-Riwayah', the second partner has the right to build the room and the first partner cannot stop him; the fatwa is based on this. However, Sheikh Nasir and Sheikh Saffar said that he does have the right to stop him; this is in 'Fatawa Sughra'. Three men inherited a well from their father and divided it into three-thirds... ! The translator says that based on evidence and the nature of the issue, this is the preferred view. This issue was discussed earlier, where based on the context, the opinion of Imam Abu Yusuf was considered correct. In my opinion, both issues are the same, which is why Imam Fakhruddin changed the ruling for reconciliation. (1) Narrated in Dhakirah. (2) Khwaharzadah.

जो काम है उसकी मज़दूरी हिस्से के हिसाब से अनिवार्य होगी और जो हिसाब का काम है उसकी मज़दूरी व्यक्तियों की संख्या (यानी भागीदारों की संख्या पर समान रूप से विभाजित होकर प्रत्येक पर बराबर अनिवार्य होगी)। यह इमाम आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के मत का कयास (तर्क) है और साहिबैन रहमतुल्लाह अलैहिम के मत में मज़दूरी हिस्से के अनुसार अनिवार्य होगी, यह 'ज़खीरा' में है। हिशाम ने इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाह अलैहि से रिवायत की है कि एक ज़मीन दो व्यक्तियों में साझी थी, उनमें से एक साझीदार ने उस पर इमारत बनाई, फिर दूसरे ने उससे कहा कि अपनी इमारत इस ज़मीन से हटा ले, तो उक्त ज़मीन दोनों में विभाजित की जाएगी। जिस साझीदार ने इमारत नहीं बनाई, उसके हिस्से में जितनी इमारत आएगी, उसे अधिकार होगा कि चाहे तो उस इमारत को गिरवा दे या बनाने वाले को उसकी कीमत देकर उसे रहने दे। यह हुक्म इसलिए है क्योंकि यदि वह इमारत गिरवा देता है तो उसका पूरे में अधिकार समाप्त हो जाता है और यदि विभाजन किया गया तो जितनी इमारत उसने अपने स्वामित्व वाले भाग में बनाई है, उसमें उसका अधिकार समाप्त नहीं होगा, अतः विभाजन श्रेष्ठ है, यह 'मुहीत सरख़सी' में है।

और यदि साझीदारों में से एक ने विभाजन का अनुरोध किया और बाकी ने मना कर दिया और अनुरोध करने वाले ने मज़दूरी पर एक विभाजक (कासिम) नियुक्त किया, तो इमाम आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के अनुसार उसकी मज़दूरी केवल उसी अनुरोध करने वाले पर होगी और साहिबैन ने कहा कि सब पर होगी, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। शेखुल इस्लाम (2) ने 'शरह किताबुल क़िस्मत' में उल्लेख किया है कि यदि एक साझीदार ने साझा ज़मीन में दूसरे साझीदार की अनुमति के बिना इमारत बना ली, तो दूसरे साझीदार को अधिकार होगा कि उसकी इमारत तोड़ दे। और 'शरह किताबुल क़िस्मत' में यह भी है कि दो गुलाम दो व्यक्तियों में साझी हैं, फिर एक साझीदार गायब हो गया, फिर दूसरे उपस्थित साझीदार के पास एक अजनबी व्यक्ति आया और कहा कि तुम गायब साझीदार की ओर से मेरे साथ इन दोनों गुलामों का बंटवारा कर लो, वह मेरे द्वारा किए गए विभाजन को पसंद करता है। अतः उपस्थित साझीदार ने उसके साथ बंटवारा करके एक गुलाम स्वयं ले लिया और दूसरा गुलाम उस अजनबी को दे दिया। फिर गायब साझीदार आया और उसने उक्त विभाजन की अनुमति दे दी, फिर अजनबी के पास वह गुलाम मर गया, तो विभाजन मान्य होगा और गायब की ओर से अजनबी का कब्जा वैध माना जाएगा और अजनबी पर उसका हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। और यदि उक्त गुलाम अजनबी के पास गायब साझीदार की विभाजन की अनुमति से

पहले मर गया, तो विभाजन अमान्य हो जाएगा और शेष गुलाम में से गायब साझीदार को आधा गुलाम मिलेगा। मृत गुलाम के अपने हिस्से के अनुमान में उसे अधिकार होगा कि चाहे तो उस अजनबी से हर्जाना ले जिसके पास वह मरा है या अपने साझीदार से हर्जाना ले, और दोनों में से जिससे भी उसने हर्जाना लिया, वह व्यक्ति दूसरे से उस हर्जाने की वसूली नहीं कर सकता, यह 'मुहीत' में है।

**क्या बाद में मकान बनाने वाला दूसरे की धूप, रोशनी आदि का ख्याल रखने के लिए बाध्य होगा?** यदि दो साझीदारों में से एक के हिस्से में एक पेड़ आया जिसकी शाखाएं दूसरे साझीदार के हिस्से में लटकती हैं, तो दूसरा साझीदार उन शाखाओं को काटने के लिए उसे मजबूर नहीं कर सकता क्योंकि वह शाखाओं सहित पेड़ का हकदार हुआ है और इसी पर फतवा है, यह 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। दो साझीदारों में से एक के हिस्से में इमारत आई और दूसरे साझीदार का उसके बगल में खाली मैदान है। अतः दूसरे साझीदार ने अपने मैदान में एक कमरा बनाना चाहा, लेकिन उसके बनने से पहले साझीदार की हवा और धूप रुकती है, तो 'ज़ाहिरुर रिवायत' के अनुसार दूसरे साझीदार को कमरा बनाने का अधिकार है और पहला साझीदार उसे मना नहीं कर सकता और इसी पर फतवा है। और शेख नसीर रहमतुल्लाह अलैहि और शेख सफ़्फ़ार रहमतुल्लाह अलैहि ने फरमाया कि उसे मना करने का अधिकार है, यह 'फ़तावा सुग़रा' में है। तीन व्यक्तियों ने अपने पिता से एक कुआं विरासत में पाया और उसे तीन तिहाई... ! अनुवादक कहता है कि प्रमाण और मसले की प्रकृति को देखते हुए यही विचार प्रबल है और यह मसला पहले भी आया है, वहां मसले की प्रकृति को देखते हुए इमाम अबू यूसुफ के कथन को सही माना गया और मेरे विचार में दोनों मसले एक ही हैं, इसीलिए इमाम फखरुद्दीन ने सामंजस्य के लिए मसला बदल दिया। (1) जाकिरा में रिवायत है। (2) ख्वाहरज़ादा।

---

میں جو عمل ہے اُس کی اُجرت بقدر حصہ کے لازم ہوگی اور جو حساب ہے اُس کی اجرت عدد رؤس پر (یعنی تعدادِ شرکاء پر تقسیم ہو کر ایک پر برابر لازم ہوگی) یہ قیاس قول امام اعظمؒ ہے اور صاحبینؒ کے قول میں بقدر حصہ کے اُجرت لازم ہوگی یہ ذخیرہ میں ہے ہشام نے امام محمدؒ سے روایت کی ہے کہ ایک زمین دو شخصوں میں مشترک اُس میں ایک شریک نے عمارت تیار کی پھر دوسرے نے اُس سے کہا کہ اس زمین سے اپنی عمارت دور کر دے تو زمین مذکور دونوں میں تقسیم کی جائے گی تو جس قدر عمارت ایسے شریک کے حصہ میں پڑی جس نے اُس کو نہیں بنایا ہے اُس کو اختیار ہو گا کہ چاہے عمارت مذکور کو دور کر دے یا بنانے والے کو اُس کی قیمت دے کر راضی کر دے اور یہ حکم اس وجہ سے ہے کہ اگر اُس نے عمارت مذکور دور کر دی تو اُس کا حق پورے میں باطل ہو جاتا ہے اور اگر تقسیم کی گئی تو اُس قدر میں جتنی اُس نے اپنی ملک میں بنائی ہے اُس کا حق باطل نہ ہو گا پس تقسیم اولیٰ ہوئی ہے یہ محیطِ سرخسی میں ہے اور اگر شریکوں میں سے ایک نے تقسیم کی درخواست کی اور باقیوں نے انکار کیا اور درخواست کرنے والے نے ایک قاسم باجرت مقرر کیا تو اُس کی اُجرت امام اعظمؒ کے نزدیک خاصہ اسی درخواست کرنے والے پر ہوگی اور صاحبینؒ نے فرمایا کہ سب پر ہوگی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے شیخ الاسلام (۲) نے شرح کتاب القسمۃ میں ذکر فرمایا کہ اگر ایک شریک نے زمین مشترکہ میں دوسرے شریک کی بلا اجازت عمارت بنا لی تو دوسرے شریک کو اختیار ہو گا کہ اُس کی عمارت توڑ دے اور نیز شرح کتاب القسمۃ میں ہے کہ دو غلام دو شخصوں میں مشترک ہیں پھر ایک شریک غائب ہو گیا پھر دوسرے شریکِ حاضر کے پاس ایک اجنبی آدمی آیا اور کہا کہ تو غائب کی طرف سے میرے ساتھ ان دونوں غلاموں کا بٹوارہ کر لے کہ وہ میری تقسیم کو پسند کرتا ہے پس حاضر نے اُس کے ساتھ بٹوارہ کر کے ایک غلام آپ لیا اور دوسرا غلام اس اجنبی کو دے

دیا پھر شریکِ غائب حاضر ہوا اور اس نے تقسیم مذکور کی اجازت دے دی پھر اجنبی کے پاس وہ غلام مر گیا تو تقسیم جائز ہوگی اور غائب کی طرف سے اجنبی کا قبضہ جائز ہو گا اور اجنبی پر اُس کی ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر غلام مذکور اجنبی کے پاس غائب کی اجازتِ تقسیم سے پہلے مر گیا تو تقسیم باطل ہو جائے گی اور باقی غلام میں سے غائب کو نصف غلام ملے گا اور غلامِ میت کے اپنے حصہ کی تخمین میں اس کو اختیار ہو گا چاہے اس اجنبی سے جس کے پاس مرا ہے تاوان لے یا اپنے شریک سے تاوان لے اور دونوں میں سے جس سے اس نے تاوان لیا وہ مالِ تاوان کو دوسرے سے واپس نہیں لے سکتا ہے یہ محیط میں ہے۔

**کیا بعد میں مکان تعمیر کرنے والے دوسرے کی دھوپ روشنی وغیرہ کا خیال رکھنے کا پابند ہو گا؟** اگر دو شریکوں میں سے ایک شریک کے حصہ میں ایک درخت آیا جس کی شاخیں دوسرے شریک کے حصہ میں لٹکتی ہیں تو دوسرا شریک ان شاخوں کے قطع کرنے کے واسطے اس پر جبر نہیں کر سکتا ہے کیونکہ وہ درخت کا مع شاخوں کے مستحق ہوا ہے اور اسی پر فتویٰ ہے یہ خزانۃ المفتین میں ہے دو شریکوں میں سے ایک کے حصہ میں عمارت آئی اور دوسرے شریک کا اس کے پہلو میں خالی میدان ہے پس دوسرے شریک نے اپنے میدان میں ایک بیت تیار کرنا چاہا مگر اس کے بننے سے پہلے شریک کی ہوا و دھوپ رکتی ہے تو ظاہر الروایۃ کے موافق دوسرے شریک کو بیت تیار کرنے کا اختیار ہے اور پہلا شریک اس کو منع نہیں کر سکتا ہے اور اسی پر فتویٰ ہے اور شیخ نصیرؒ اور شیخ صفارؒ نے فرمایا کہ اس کو منع کرنے کا اختیار ہے یہ فتاویٰ صغریٰ میں ہے۔ تین آدمیوں نے اپنے باپ سے ایک وار میراث پایا اور اس کو تین تہائی ! مترجم کہتا ہے کہ بنظرِ دلیل ووضعِ مسئلہ کے یہاں یہی راجح ہے اور یہ مسئلہ سابق میں بھی گذرا وہاں بنظرِ وضع مسئلہ کے ابو یوسف کا قول صحیح کیا گیا اور میرے گمان میں دونوں مسئلہ واحد میں

اسی واسطے امام فخر الدین نے توفیق کے لیے مسئلہ بدل دیا۔ (۱) ذاکرہ میں روایت کی ہے۔ (۲) خواہر زادہ۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | Book of Division | 283**

After the division, each person took possession of their respective portion. Then a stranger came and bought a portion from one of the shareholders and took possession of it. Subsequently, one of the remaining two shareholders came and claimed that no division had taken place, and the said buyer had bought an undivided third share of all the heirs. Then the third shareholder came and stated that they had already divided this house among themselves and presented witnesses for this fact. The first seller confirmed his claim, but the second seller denied it. The buyer said, "I do not know whether you had divided it or not." In such a case, the division will be considered valid because the fact of division has been proven by witnesses presented by the adversary. A division, once completed, does not become void if some partners later deny it. Therefore, it became clear that the first seller sold his specific portion, and thus his sale was valid. As for the other person's third share being sold as undivided, one-third of it came from his own portion and the remaining two-thirds from the portions of others. Thus, specifically, the sale of one-third of his portion would be valid, but the buyer will have the option to either take one-third of his portion for one-third of the price or leave everything, as the rule of 'tafriq-e-safqa' (splitting of the bargain) applies to the buyer's right. This is mentioned in Fatawa Qazi Khan.

If the heirs have divided the inheritance among themselves by mutual consent according to the divine obligations (Fara'id) and separated each one's portion, and then they wish to annul this division by mutual consent and return the house and land to an undivided joint status as it was before, they shall have the authority to do so. This is mentioned in Al-Tatarkhaniyah. It is stated that if a house is jointly owned by two people and one of them sells his share in one room (bayt) of the house, his partner has the right to annul the sale. Similarly, if he sells an entire room from it, it is not permissible without the partner's permission. If the partner gives permission, the sale becomes valid, the sold room belongs to the buyer, and the rest of the house remains jointly owned by both. If permission is not given, the sale is void. The same rule applies if one yard or a specific spot of a jointly owned land is sold. However, if a portion of a piece of cloth is sold, it is permissible, and according to Imam Muhammad's narration, the partner does not have the right to annul it. According to the narration of Hasan bin Ziyad, this issue and the first issue are identical, meaning the sale would not be valid without the partner's permission. This narration is also adopted by Tahawi. He stated that if a house is jointly owned by two persons and one

of them makes an admission (iqrar) regarding one room in favor of someone, and the other partner denies it, this admission remains suspended and will not affect the other's share because the other partner has a right in it. Consequently, this person will be compelled to undergo a division. If the said room falls into the portion of the one who made the admission (muqirr), he shall give it to the beneficiary of the admission (muqarr lahu). If it falls into the other partner's portion, then whatever is in the muqirr's portion will be divided between the muqirr and the muqarr lahu. According to Imam-e-Azam (Abu Hanifa) and Imam Abu Yusuf, the muqarr lahu shall be made a partner based on the number of yards of the said room, and the muqirr shall be a partner in half the structure of the house after deducting the structure of that room, as stated by the Shaykhayn. The muqarr lahu will be made a partner based on half the yardage of the said room, not the full yardage. The explanation is: suppose the entire house including the room is one hundred yards, and the room alone is ten yards. The house will be divided equally (fifty yards each) between the two partners. Then, whatever falls to the muqirr (50 yards), it will be divided into fifty-five parts, out of which ten parts will belong to the muqarr lahu, representing the total area of the room in yards. The muqirr will have forty-five parts, representing the yardage of half the house after deducting the room. I set every five parts as one 'sahm' (share). Thus, the portion received by the muqirr consists of eleven sahms, of which two sahms go to the muqarr lahu and nine sahms to the muqirr. According to Imam Muhammad, the portion received by the muqirr should be divided into ten sahms because, according to him, the muqarr lahu should be made a partner based on only five yards. This applies when the admission is made regarding something that is divisible, like a house or similar property.

बंटवारा करने के बाद हर एक ने अपने हिस्से पर कब्ज़ा कर लिया। फिर एक अजनबी ने आकर एक हिस्सेदार से उसका हिस्सा खरीद लिया और उस पर कब्ज़ा कर लिया। फिर शेष दो हिस्सेदारों में से एक हिस्सेदार आया और कहा कि हमने बंटवारा नहीं किया है और उक्त खरीदार (मुश्तरी) ने उससे कुल वारिसों के हिस्से का एक तिहाई साझा (शायअ) हिस्सा खरीदा। फिर तीसरा हिस्सेदार आया और कहा कि हमने इस घर (दार) को आपस में बांट लिया है और इस बात के गवाह पेश किए। पहले विक्रेता (बाइए अव्वल) ने उसके दावे की पुष्टि की, लेकिन दूसरे विक्रेता ने उसे झुठलाया। खरीदार ने कहा कि मुझे नहीं मालूम कि तुम लोगों ने बंटवारा कर लिया था या नहीं। तो बंटवारा जायज़ होगा, क्योंकि बंटवारा होना ऐसे गवाहों से साबित हो गया जिन्हें प्रतिपक्षी (ख़सम) ने पेश किया था। और बंटवारा पूरा हो जाने के बाद कुछ साझेदारों के इनकार करने से वह बातिल (अवैध) नहीं होता। अतः यह स्पष्ट हुआ कि पहले विक्रेता ने अपना विशिष्ट हिस्सा बेचा है, इसलिए उसकी बिक्री (बैअ) जायज़ हुई। और दूसरे हिस्सेदार का साझा एक तिहाई हिस्सा बेचा गया, तो उसमें से एक तिहाई उसके हिस्से में से हुआ और बाकी दो तिहाई दूसरों के हिस्सों में से हुआ। तो विशेष रूप से उसके हिस्से के एक तिहाई की बिक्री जायज़ होगी, लेकिन खरीदार को यह अधिकार होगा कि चाहे तो वह उसके हिस्से का एक तिहाई हिस्सा कीमत के एक तिहाई भाग में ले ले या सब छोड़ दे, क्योंकि खरीदार के हक में 'तफ़रीक़-ए-सफ़क़ा' (सौदे का विभाजन) अनिवार्य होता है। यह फ़तावा काज़ी खां में है।

यदि वारिसों ने अल्लाह ताला के आदेशों (फ़राएज़) के अनुसार संपत्ति को आपसी सहमति से आपस में बांट लिया और हर एक का हिस्सा अलग कर दिया, फिर चाहा कि आपसी सहमति से इस बंटवारे को रद्द करके घर और भूमि को पूर्ववत संयुक्त (मुशाअ मुश्तरक) कर दें, तो उन्हें यह अधिकार होगा, ऐसा 'ततारख़ानिया' में है। फ़रमाया कि यदि (कोई संपत्ति) दो व्यक्तियों के बीच संयुक्त हो, फिर एक ने घर के किसी एक कमरे (बैत) में से अपना हिस्सा बेच दिया, तो उसके साझेदार को यह अधिकार होगा कि वह बिक्री को रद्द कर दे। इसी प्रकार यदि उसमें से एक कमरा बेच दिया, तो भी बिना साझेदार की अनुमति के जायज़ नहीं है। अतः यदि साझेदार ने अनुमति दे दी, तो बिक्री जायज़ होकर बेचा गया कमरा खरीदार का हो जाएगा और शेष घर दोनों में संयुक्त रहेगा। और यदि उसने अनुमति नहीं दी, तो बिक्री बातिल होगी। इसी तरह यदि संयुक्त भूमि में से एक गज या कोई निश्चित स्थान बेच दिया, तो भी यही हुक्म है। और यदि कपड़े में से एक हिस्सा बेचा गया, तो यह जायज़ है और इमाम मुहम्मद की रिवायत में साझेदार को इसे बातिल करने का अधिकार नहीं है। हसन बिन ज़ियाद की

रिवायत के अनुसार यह मसला और पहला मसला एक समान हैं, अतः बिना साझेदार की अनुमति के बिक्री जायज़ न होगी और इसी रिवायत को तहावी ने लिया है। और फ़रमाया कि यदि दो व्यक्तियों में एक घर संयुक्त हो, फिर एक ने उसमें से एक कमरे का किसी व्यक्ति के लिए इकरार कर लिया और दूसरे ने इनकार किया, तो यह इकरार मुअल्लक (रुका हुआ) रहेगा, उस (साझेदार के हिस्से) से संबंधित नहीं होगा, क्योंकि उसमें दूसरे साझेदार का हक है। अतः इस व्यक्ति को बंटवारे के लिए मजबूर किया जाएगा। फिर यदि उक्त कमरा इकरार करने वाले के हिस्से में आया, तो वह उसे जिसके पक्ष में इकरार किया है (मुक़र लहू) उसे दे देगा। और यदि दूसरे के हिस्से में आया, तो जो कुछ इकरार करने वाले (मुक़र) के हिस्से में है, वह इकरार करने वाले और जिसके पक्ष में इकरार किया गया है, उनके बीच बांट दिया जाएगा। अतः इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ के अनुसार, मुक़र लहू को उक्त कमरे के गजों की संख्या पर साझेदार बनाया जाएगा और मुक़र को उस घर के आधे निर्माण पर, उक्त कमरे के निर्माण को घटाने के बाद, साझेदार बनाया जाएगा जैसा कि शैख़ैन ने फ़रमाया है। और मुक़र लहू को उक्त कमरे के आधे गजों के हिसाब से साझेदार बनाया जाएगा। पूरे कमरे के गजों की संख्या पर साझेदार नहीं बनाया जाएगा। इसका विवरण यह है कि मान लीजिए कि पूरा घर कमरे सहित सौ गज है और केवल कमरा दस गज है। तो उक्त घर दोनों में आधा-आधा बांटा जाएगा। फिर जितना हिस्सा मुक़र के पास आया, उसके पचपन हिस्से किए जाएंगे, जिसमें से दस हिस्से मुक़र लहू के होंगे, और ये पूरे कमरे के क्षेत्रफल के गज हैं। और मुक़र के पैंतालीस हिस्से होंगे, और यह संख्या उन गजों की है जो कमरे को घटाने के बाद आधे घर के गज हैं। तो मैं हर पांच हिस्से को एक 'सहम' (हिस्सा) मानता हूँ। अतः जितना हिस्सा मुक़र को मिला, उसके ग्यारह सहम हुए, जिसमें से दो सहम मुक़र लहू को मिलेंगे और नौ सहम मुक़र को मिलेंगे। और इमाम मुहम्मद के कथन के अनुसार, जितना मुक़र को मिला, उसके दस सहम करने चाहिए, क्योंकि उनके अनुसार मुक़र लहू को पांच ही गज के हिसाब से साझेदार बनाया जाएगा। और यह कारण उस स्थिति में है जब ऐसी चीज़ का इकरार किया गया हो जो बंटवारे के योग्य हो, जैसे घर या उसके समान।

---

تقسیم کر کے ہر ایک نے اپنے حصہ پر قبضہ کر لیا پھر ایک اجنبی نے آ کر ایک حصہ دار سے اُس کا حصہ خرید کر اُس پر قبضہ کر لیا پھر باقی دونوں حصہ داروں میں سے ایک حصہ دار آیا اور کہا کہ ہم نے تقسیم نہیں کیا ہے اور مشتری مذکور نے اُس سے تمام وارثوں سے سوم حصہ شائع خرید پھر تیسرا حصہ دار آیا اور کہا کہ ہم اس دار کو باہم تقسیم کر چکے ہیں اور اس بات کے گواہ پیش کئے اور بائع اول نے اس کے دعوٰی کی تصدیق کی مگر بائع ثانی نے تکذیب کی اور مشتری نے کہا کہ مجھے نہیں معلوم کہ تم نے تقسیم کر لیا تھا یا نہیں تو تقسیم جائز ہوگی اس واسطے کہ تقسیم ہو جانا ایسے گواہوں سے جس کو خصم نے پیش کیا ہے ثابت ہو گیا اور تقسیم بعد پوری ہو جانے کے بعض شریکوں کے انکار کرنے سے باطل نہیں ہوتی ہے پس ظاہر ہوا کہ بائع اول نے خاص اپنا حصہ فروخت کیا ہے پس اس کی بیع جائز ہوئی اور دوسرے دار کا حصہ سوم شائع فروخت کیا ہے تو اس میں سے ایک تہائی اُس کے حصہ میں سے ہوا اور باقی دو تہائی دوسروں کے حصہ میں سے ہوا تو خاص اس کے حصہ کی تہائی کی بیع جائز ہوگی مگر مشتری کو اختیار ہو گا چاہے اس کے حصہ کی تہائی کو تہائی ثمن میں لے لے یا سب چھوڑ دے کیونکہ مشتری کے حق میں تفریقِ صفقہ لازم آتی ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر وارثوں نے اللہ تعالٰی کے فرائض کے موافق ترکہ کو باہمی رضامندی سے آپس میں تقسیم کر لیا اور ہر ایک کا حصہ جدا کر دیا پھر چاہا کہ باہمی رضامندی کے ساتھ اس تقسیم کو باطل کر کے دور و اراضی کو مشاع مشترک کر دیں جیسے پہلے تھی تو ان کو یہ اختیار ہو گا کذا فی التاتارخانیہ فرمایا کہ اگر دو آدمیوں میں مشترک ہو پھر ایک نے دار میں سے ایک بیت میں سے اپنا حصہ فروخت کر دیا تو اُس کے شریک کو اختیار ہو گا کہ بیع کو باطل کر دے اسی طرح اگر

اس میں سے ایک بیت فروخت کر دیا تو بھی بدون شریک کی اجازت کے جائز نہیں ہے پس اگر شریک نے اجازت دے دی تو بیع جائز ہو کر بیت مبیعہ مشتری کا ہو جائے گا اور باقی دار دونوں میں مشترک رہے گا اور اگر اُس نے اجازت نہ دی تو بیع باطل ہو گی اسی طرح اگر زمین مشترک میں سے ایک گز یا معلوم جگہ فروخت کردی تو بھی یہی حکم ہے اور اگر کپڑے میں سے ایک حصہ فروخت کیا تو یہ جائز ہے اور امام محمد کی روایت میں شریک کو اس کے باطل کرنے کا اختیار نہیں ہے اور حسن بن زیاد کی روایت کے موافق یہ مسئلہ اور مسئلہ اولیٰ یکساں ہے پس بدون شریک کی اجازت کے بیع جائز نہ ہو گی اور اسی روایت کو طحاوی نے لیا ہے اور فرمایا کہ اگر دو شخصوں میں ایک دار مشترک ہو پھر ایک نے اُس میں سے ایک بیت کا کسی شخص کے واسطے اقرار کر دیا اور دوسرے نے انکار کیا تو یہ اقرار موقوف رہے گا اس میں سے متعلق نہ ہو گا کیونکہ اس میں دوسرے شریک کا حق ہے پس یہ شخص تقسیم کے واسطے مجبور کیا جائے گا پس اگر بیت مذکور مقر کے حصہ میں آیا تو اس کو مقر لہ کو دے دے گا اور اگر دوسرے کے حصہ میں آیا تو جو کچھ مقر کے حصہ میں ہے وہ مقر اور مقر لہ کے درمیان بانٹ دیا جائے گا پس امام اعظم اور امام ابو یوسف کے نزدیک مقر لہ بیت مذکور کے گزوں کی تعداد پر شریک کیا جائے گا اور مقر اس دار کی نصف ساخت پر بعد منہائی اس بیت کی ساخت کے شریک کیا جائے گا جیسا کہ شیخین نے فرمایا ہے اور مقر لہ بیت مذکور کے آدھے گزوں کے حساب سے شریک کیا جائے گا۔ پورے بیت کے گزوں کی تعداد پر شریک نہ کیا جائے گا اور اس کا بیان یہ ہے کہ فرض کرو کہ پورا دار مع بیت کے سو گز ہے اور فقط بیت دس گز ہے پس دار مذکور دونوں میں آدھا آدھا تقسیم کیا جائے گا پھر جس قدر مقر کے پاس آیا اس کے پچپن حصے کیے جائیں گے جس میں سے دس حصے مقر لہ کے ہوں گے اور یہ پورے بیت کے مساحتی گز ہیں اور مقر کے پینتالیس حصے ہوں گے اور یہ تعداد ان گزوں کی ہے جو بیت کی منہائی کے بعد

نصف دار کے گز ہیں پس ہر پانچ حصے کو میں ایک سہم ٹھہراتا ہوں پس جس قدر مقر کو ملا ہے اس کے گیارہ سہم ہوئے جس میں سے دو سہم مقر لہ کو ملیں گے اور نو سہم مقر کو ملیں گے اور امام محمد کے قول کے موافق جس قدر مقر کو ملا ہے اس کے دس سہم کرنے چاہیے ہیں اس کیے کہ ان کے نزدیک مقر لہ پانچ ہی گز کے حساب سے شریک کیا جائے گا اور یہ سبب اُس صورت میں ہے کہ ایسی چیز کا اقرار کیا ہو جو محتمل قسمت ہے جیسے دار یا اس کے مانند۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (284) Kitab al-Qisma (The Book of Partition)**

...items. And if an admission is made regarding an item that is not capable of partition (Muhtamal-e-Qismat)[1], such as a public bath (hammam), and one of the partners makes an admission for a specific room in it in favor of a third party, and the other partner denies it, then half[2] of its value will be binding upon the one making the admission. Similarly, if an admission is made for a beam (timber) in a house in favor of a third party, the same ruling applies; this is mentioned in the commentary of al-Tahawi. If an item measured by volume or weight is shared between two persons but is in the possession of only one of them, and then they partition it between themselves, and before the person who was not in possession has taken possession of his share, it is destroyed, then the loss of that share will fall upon both of them. Whatever remains will be shared and divided between both. The principle in this and similar matters is that in the partition of items measured by volume or weight, if one's share is destroyed before possession is taken, the partition is voided, and the situation reverts to what it was before the partition. The translator says: Thus, possession must be found, whether it be old being renewed or new. Understand this. And if the share of the person in whose possession the items were destroyed, while the share of the other remained, then the partition will not be voided. Deriving from this principle, we say that if a landowner says to his sharecropper, "Divide the grain and separate my share from yours," and the sharecropper does so, and then one share is destroyed before the landowner takes possession: if the landowner's share is destroyed, the partition is voided, and the landowner will take half of what remains in the sharecropper's possession because the landowner's share was destroyed before he took possession of it. But if the sharecropper's share is destroyed, the partition is not voided; so it is in al-Dhakhirah. And if he divided the heap and set aside the landowner's share, then took his own share home first, and upon returning saw that the landowner's share he had set aside was destroyed, then such loss shall be borne by the landowner; this is in Fatawa Qazi Khan. If a person dies leaving several heirs and bequeaths one-third of his wealth to the poor, then the Qazi divides the estate and sets aside one-third for the poor and leaves the remaining two-thirds for the heirs, and before anything has been given to them, either the one-third or the two-thirds are destroyed, the loss shall fall upon all of them, and the partition shall be repeated. If the Qazi has already given the one-third to the poor and the two-thirds are destroyed while the heir is absent, or if an heir is absent or a minor, then the loss of the two-thirds falls upon the

heirs. Grain is shared between two persons; one orders the other to divide it and gives him his bag, saying, "Measure out my share from the grain into this," and he does so, then this is valid, and possession is established thereby. Similarly, if he says to that same partner, "Lend (Aariyat) me this bag of yours and measure my share into it for me," the same ruling applies. But if he did not say, "Lend me this bag of yours," but rather said, "Lend me a bag from those with you and measure my share into it for me," and he did so, then possession of his share would not be established; this is in al-Dhakhirah.

---

1. The translator says: Capable of partition (Muhtamal-e-Qismat), according to the jurists (fuqaha), refers to something that can be divided in such a way that after partition, the intended utility is not lost or rendered insignificant.
2. "Half" is mentioned here because when the item was not capable of being partitioned, the admission would exceed into the share of the partner, whereas an admission is only valid against oneself. Thus, it is held valid for half.
3. The translator says that some have said regarding the case of lending (Aariyat) that this is when he takes it as a loan and gives it back saying "measure my share into it"; if he gave the order without taking possession, possession would not be valid. The same ruling applies to sales. The translator says that in my opinion, the ruling is undisputed, and the lack of explicit mention might be because possession is evident in the circumstances, or because possession here is not a physical grasp (girift) but merely vacation/handing over (takhliya). Whoever made it explicit perhaps took possession in the sense of physical grasp, as the saying of Imam Abu Yusuf is well-known in such a case.

चीज़ें और अगर ऐसी चीज़ के संबंध में इकरार कर दिया जो मुहतमिल-ए-क़िस्मत (विभाजन योग्य) १ नहीं है जैसे हमाम और उसमें से एक निश्चित कमरे का एक साझीदार ने किसी गैर के लिए इकरार कर दिया और दूसरे साझीदार ने उससे इंकार किया तो उस मुक़िर (इकरार करने वाले) पर उसकी आधी २ कीमत लाज़िम होगी। इसी तरह अगर घर में से किसी शहतीर का किसी गैर के लिए इकरार कर दिया तो भी यही हुक्म है, यह शरह तहावी में है। अगर नाप या तौल वाली चीज़ दो व्यक्तियों में साझा हो लेकिन वह एक ही के कब्ज़े में हो, फिर दोनों ने उसे आपस में विभाजित किया और अभी उस व्यक्ति ने जो काबिज़ (कब्ज़े वाला) न था अपने हिस्से पर कब्ज़ा न किया था कि उसका हिस्सा नष्ट हो गया तो उसका हिस्सा होना दोनों पर पड़ेगा और जो कुछ शेष रहा है वह साझा दोनों में विभाजित होगा। और इस मसले (मामले) की असल जो इसके सजातीय मसलों में है यह है कि नाप और तौल वाली चीज़ के विभाजन में यदि कब्ज़े से पहले एक का हिस्सा नष्ट हो गया तो विभाजन टूट जाएगा और स्थिति वही हो जाएगी जो विभाजन से पहले थी। अनुवादक ने कहा: अतः कब्ज़ा पाया जाना चाहिए चाहे वह पुराना नवीनीकृत हो जाए या नया हो, समझ लो। और यदि उस व्यक्ति का हिस्सा नष्ट हुआ जिसके कब्ज़े में यह नाप या तौल वाली चीज़ थी और दूसरे का हिस्सा नष्ट हुआ तो विभाजन नहीं टूटेगा। और इसी आधार से निष्कर्ष निकालते हुए हमने कहा कि अगर ज़मींदार ने अपने बटाई वाले किसान से कहा कि अनाज विभाजित करके मेरा हिस्सा अपने हिस्से से अलग कर दे, उसने वैसा ही किया, फिर ज़मींदार के कब्ज़ा करने से पहले एक हिस्सा नष्ट हो गया, तो यदि ज़मींदार का हिस्सा नष्ट हुआ तो विभाजन टूट जाएगा और जो कुछ किसान के कब्ज़े में है उसमें से ज़मींदार अपने हिस्से के लिए आधा बांटेगा क्योंकि ज़मींदार का हिस्सा उसके कब्ज़ा करने से पहले नष्ट हो गया है, और यदि किसान का हिस्सा नष्ट हो गया तो विभाजन नहीं टूटेगा, जैसा कि अज़-ज़खीरा में है। और यदि उसने ढेरी को विभाजित करके ज़मींदार का हिस्सा अलग किया फिर अपना हिस्सा पहले अपने घर ले गया, फिर जब लौटा तो देखा कि जो उसने ज़मींदार का हिस्सा अलग किया था वह नष्ट हो गया है, तो ऐसा नष्ट होना ज़मींदार के ज़िम्मे माना जाएगा, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। यदि एक व्यक्ति मर गया और उसने कई वारिस छोड़े और अपनी एक तिहाई संपत्ति गरीबों को देने की वसीयत की, फिर काज़ी ने विरासत को विभाजित किया और एक तिहाई संपत्ति गरीबों के लिए अलग कर ली और शेष दो तिहाई वारिसों के लिए रखी, और अभी उनमें से किसी को कुछ नहीं दिया था कि एक तिहाई या दो तिहाई कुछ नष्ट हो गया तो उसका नष्ट होना उन सब पर होगा और

विभाजन फिर से दोहराया जाएगा। और अगर काज़ी ने एक तिहाई संपत्ति गरीबों को दे दी और दो तिहाई नष्ट हो गई और वारिस गायब है या कोई वारिस गायब है या नाबालिग है, तो दो तिहाई वारिसों का माल गया। दो व्यक्तियों में अनाज साझा है, फिर एक ने दूसरे को बांटने का आदेश दिया और उसे अपना एक थैला दिया कि अनाज में से मेरा हिस्सा इसमें नाप दे और उसने वैसा ही किया तो यह जायज़ है और इससे कब्ज़ा सिद्ध हो जाएगा। इसी तरह अगर उसी साझीदार से कहा कि मुझे अपना यह थैला उधार (आरियत) दे और इसमें मेरे लिए मेरा हिस्सा नाप दे तो भी यही हुक्म है, और अगर यूँ न कहा कि अपना यह थैला उधार दे बल्कि यूँ कहा कि मुझे अपने पास से कोई थैला उधार दे और मेरे लिए उसमें नाप दे और उसने वैसा ही किया तो इससे उसका अपने हिस्से पर कब्ज़ा सिद्ध न होगा, यह ज़खीरा में है।

---

१ अनुवादक ने कहा: मुहतमिल-ए-क़िस्मत फ़ुक़हा (न्यायविदों) के निकट उसे कहते हैं जिसे इस प्रकार विभाजित किया जा सके कि विभाजन के बाद अभीष्ट लाभ समाप्त न हो या तुच्छ न हो जाए। २ यहाँ आधा इसलिए कहा क्योंकि जब यह चीज़ बंटवारे के योग्य नहीं थी, तो इकरार उसके साझीदार के हिस्से में अतिक्रमण करेगा, जबकि इकरार केवल अपनी ज़ात (स्वयं) पर सही होता है। इसलिए आधे में सही ठहरा। ३ अनुवादक कहता है कि कुछ ने उधार (आरियत) की स्थिति में कहा कि यह उस समय है जब उधार लेकर उसे दे कि मेरा हिस्सा इसमें नाप दे और अगर कब्ज़े के बिना आदेश दिया तो कब्ज़ा सही न होगा और यही हुक्म खरीद-बिक्री में है। अनुवादक कहता है कि मेरे विचार में हुक्म निर्विवाद है और स्पष्ट न करना चाहे इस कारण से हो कि कब्ज़ा स्पष्ट स्थिति है या इस कारण से कि कब्ज़ा यहाँ पकड़ (ग़िरफ़्त) नहीं है बल्कि केवल खाली करना (तख्लिया) है और जिसने स्पष्ट किया शायद उसने कब्ज़ा पकड़ (ग़िरफ़्त) के अर्थ में लिया जैसा कि इमाम अबू यूसुफ का कथन ऐसी स्थिति में प्रसिद्ध है।

چیزیں اور اگر ایسی چیز کی نسبت اقرار کر دیا جو محتمل قسمت ۱ نہیں ہے جیسے حمام اور اس میں سے ایک بیت معین کا ایک شریک نے کسی غیر کے واسطے اقرار کر دیا اور دوسرے شریک نے اس سے انکار کیا تو اس مقر پر اس کی نصف ۲ قیمت لازم ہوگی اسی طرح اگر دار میں سے کسی شہتیر کا کسی غیر کے واسطے اقرار کر دیا تو بھی یہی حکم ہے یہ شرح طحاوی میں ہے۔ اگر کیلی یا وزنی چیز دو شخصوں میں مشترک ہو مگر وہ ایک ہی کے قبضہ میں ہو پھر دونوں نے اس کو باہم تقسیم کیا اور ہنوز اس شخص نے جو قابض نہ تھا اپنے حصے پر قبضہ نہ کیا تھا اس کا حصہ تلف ہو گیا تو اس کا حصہ ہونا دونوں پر پڑے گا اور جو کچھ باقی رہا ہے وہ مشترک دونوں میں تقسیم ہو گا اور اس مسئلہ جو اس کے ہم جنس مسئلوں میں اصل یہ ہے کہ کیلی و وزنی چیز کی تقسیم میں اگر قبضہ سے پہلے ایک کا حصہ تلف ہو گیا تو تقسیم ٹوٹ جائے گی اور حال وہی ہو جائے گا جو تقسیم سے پہلے تھا قال المترجم پس قبضہ پایا جانا چاہیے خواہ قدیم متجدد ہو جائے یا جدید ہو فافہم اور اگر اس شخص کا حصہ تلف ہوا جس کے قبضہ میں یہ کیلی یا وزنی چیز تھی اور دوسرے کا حصہ تلف ہوا تو تقسیم نہ ٹوٹے گی اور اسی اصل سے استخراج کر کے ہم نے کہا کہ اگر زمیندار نے اپنے بٹائی کے کاشتکار سے کہا کہ غلہ تقسیم کر کے میرا حصہ اپنے حصہ سے جدا کر دے اس نے ایسا ہی کیا پھر زمیندار کے قبضہ کرنے سے پہلے ایک حصہ تلف ہو گیا پس اگر زمیندار کا حصہ تلف ہوا تو تقسیم ٹوٹ جائے گی اور جو کچھ کاشتکار کے قبضہ میں ہے اس میں سے زمیندار اپنے حصہ کے لیے نصف بٹوارے گا کیونکہ زمیندار کا حصہ اس کے قبضہ کرنے سے پہلے تلف ہو گیا ہے اور اگر کاشتکار کا حصہ تلف ہو گیا تو تقسیم نہ ٹوٹے گی کذا فی الذخیرہ اور اگر اس نے ڈھیری کو تقسیم کر کے زمیندار کا حصہ الگ کیا پھر اپنا

حصہ اولاً اپنے گھر اٹھا لے گیا پھر جب لوٹا تو دیکھا کہ جو اس نے زمیندار کا حصہ الگ کیا تھا وہ تلف ہو گیا ہے تو ایسا تلف ہونا زمیندار کے ذمہ قرار دیا جائے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اگر ایک شخص مر گیا اور اس نے چند وارث چھوڑے اور اپنا تہائی مال مسکینوں کو دینے کی وصیت کی پھر قاضی نے ترکہ تقسیم کیا اور تہائی مال مساکین کے واسطے الگ کر لیا اور باقی دو تہائی وارثوں کے واسطے رکھا اور ہنوز ان میں سے کسی کو کچھ نہ دیا تھا کہ تہائی یا دو تہائی کوئی ضائع ہو گیا تو اس کا ضائع ہونا ان سب پر ہو گا اور تقسیم پھر دوہرائی جائے گی اور اگر قاضی نے تہائی مال مساکین کو دے دیا اور دو تہائی ضائع ہو گیا اور وارث غائب ہے یا کوئی وارث غائب ہے یا نا بالغ ہے تو دو تہائی وارثوں کا مال گیا دو شخصوں میں اناج مشترک ہے پس ایک نے دوسرے کو بانٹنے کا حکم دیا اور اُس کو اپنا ایک تھیلا دیا کہ اناج میں سے میرا حصہ اس میں ناپ دے اور اُس نے ایسا ہی کیا تو یہ جائز ہے اور اس سے قبضہ متحقق ہو جائے گا اسی طرح اگر اُسی شریک سے کہا کہ مجھے اپنا یہ تھیلا عاریت دے اور اس میں میرے واسطے میرا حصہ ناپ دے تو بھی یہی حکم ہے اور اگر یوں نہ کہا کہ اپنا یہ تھیلا عاریت دے بلکہ یوں کہا کہ مجھے اپنے پاس سے کوئی تھیلا عاریت دے اور میرے واسطے اس میں ناپ دے اور اس نے ایسا ہی کیا تو اس سے اس کا اپنے حصہ پر قبضہ متحقق نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

---

۱ قال المترجم محتمل قسمت فقہا کے نزدیک اس کو کہتے ہیں کہ جو اس طرح تقسیم ہو سکے کہ بعد تقسیم کے منفعت مقصودہ فوت یا حقیر نہ ہو جائے۔ ۲ یہاں نصف اس واسطے کہا کہ جب یہ چیز قابل بٹوارہ نہ تھی تو اقرار اس کے شریک کے حصہ میں تجاوز کرے گا حالانکہ فقط اپنی ذات پر اقرار صحیح ہوتا ہے۔ لہٰذا نصف میں صحیح ٹھہرا۔ ۳ مترجم کہتا ہے کہ بعض نے صورت عاریت میں کہا کہ یہ اس وقت ہے کہ جب مستعار لے کر اسکو دے کہ میرا حصہ اس میں ناپ دے اور اگر بدوں قبضہ کے حکم دیا تو قبضہ صحیح نہ ہو گا اور یہی حکم بیع میں ہے مترجم کہتا ہے

کہ میرے گمان میں حکم بلا خلاف ہے اور تصریح نہ کرنا خواہ اس وجہ سے کہ قبضہ ظاہر حال ہے یا اس وجہ سے قبضہ یہاں گرفت نہیں بلکہ فقط تخلیہ ہے اور جس نے تصریح کی شاید اس نے قبضہ بمعنی گرفت لیا جیسا کہ امام ابو یوسف کا قول ایسی صورت میں معروف ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 285 | Kitab al-Qisma (The Book of Distribution)**

If several heirs appeared before the Qazi and requested that the estate (tarkah) be distributed among them, claiming it as their inheritance, the Qazi shall not distribute it among them until they produce witnesses regarding the death of their predecessor (muwaris) and the number of his heirs. If witnesses are produced and they testify to the death of the predecessor and state that there is no heir for the deceased besides these people, then according to analogy (qiyas), their testimony will not be accepted, but out of juristic preference (istihsan), it will be accepted. If the witnesses say that they do not know of any heir of the deceased besides these people, then the testimony will be accepted according to both qiyas and istihsan. If the witnesses say they do not know of any heir besides these people in this city, then according to Imam-e-Azam (may Allah have mercy on him), this same ruling applies, whereas according to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), it will not be accepted. In view of the aforementioned difference of opinion, once their testimony is accepted, the estate shall be distributed among them according to the prescribed shares (fara'iz) of Allah Almighty. In the distribution, if an heir is such that in any case they would be excluded (mahjub) by the appearance of another heir, and another who is such that they would not be excluded in that case, both are equal, except for the husband and wife; for them, from both their prescribed shares, the larger portion shall be given, i.e., half for the husband and a quarter for the wife. If the witnesses only testified to the death of the predecessor and remained silent about anything else, the Qazi shall not distribute the estate, whether it consists of movable property (arooz) or immovable property (aqar). If the heirs are such that in every scenario they would be excluded by the appearance of another heir, such as an uncle, grandfather, brothers, and sisters, then the Qazi shall not distribute the estate among such heirs, whether it is movable or immovable property. But if the heirs are such that they would not be excluded in any case, such as the mother, father, and children, he shall distribute the estate among them according to the prescribed shares of Allah Almighty. However, for the husband and wife, from their two prescribed shares, according to Imam-e-Azam (RA), he shall give the smaller share (i.e., a quarter to the husband and an eighth to the wife), while according to Imam Muhammad (RA), he shall give the larger of the two prescribed shares. Imam Abu Yusuf (RA) said that he shall give a quarter to the husband and a quarter of an eighth to the wife. In one

report, it is mentioned that he shall give a fifth to the husband and a quarter of a ninth to the wife; this is in 'Yanabi'.

A person died leaving a wife and two sons, and the woman claimed she was pregnant. Sheikh Abu Bakr Muhammad bin al-Fazal (RA) said that this woman should be shown to one reliable midwife or two midwives so that they may examine her womb. If no signs of pregnancy appear to the midwives, the Qazi shall distribute the inheritance. If signs of pregnancy appear, and if the heirs wait until she gives birth, the Qazi shall not distribute it. Similarly, if a man dies leaving a pregnant wife and one son, the Qazi shall not distribute the inheritance until the woman gives birth. If there is more than one heir and they do not wait for the birth, then if the day of delivery is far off, the Qazi shall distribute the estate, and if it is near, he shall not. The definition of near or far is based on the Qazi's discretion. If the estate is distributed, a share for the fetus shall be set aside. The scholars differ on how many shares should be set aside; Khassaf (RA) mentioned, as narrated from Imam Abu Yusuf (RA), that the share of one son shall be set aside, and the fatwa is based on this. This ruling applies when the heirs are such that they could still inherit alongside a living son in any case. But if they are such that they would not inherit alongside a son—for example, if someone died leaving several brothers and a pregnant wife—then the entire estate shall be withheld and not distributed among them; this is in 'Fatawa Qazi Khan'. If the owner of a house died leaving several adult heirs and a pregnant wife, the said inheritance shall be distributed among them, and no share for the fetus shall be set aside; then, when the child is born, the distribution shall be repeated; this is in 'Tatarkhania'. A man died leaving a pregnant wife, two sons, and two daughters, and the children requested the distribution of the inheritance. Faqih Abu Ja'far (RA) said that the woman will receive an eighth of the inheritance, i.e., five out of forty shares (sahm), and the two daughters will receive seven shares each, and the two...

---

1. His statement "both shares etc." refers to the quarter share for the husband and the eighth share for the wife, and a detailed explanation will appear soon in 'Kitab al-Fara'iz', God willing.

यदि कुछ वारिसों ने उपस्थित होकर काज़ी से प्रार्थना की कि विरासत (तरका) हम लोगों में बाँट दी जाए और उन लोगों ने दावा किया कि यह विरासत है, तो काज़ी उसे उन लोगों में तब तक विभाजित नहीं करेगा जब तक कि ये लोग अपने पूर्वज (मौरिस) के मरने और उसके वारिसों की संख्या के साक्षी पेश न करें। फिर यदि गवाह पेश हुए और उन्होंने मौरिस के मरने की गवाही दी और कहा कि इन लोगों के अलावा मृतक का कोई और वारिस नहीं है, तो तर्क(क़यास) के अनुसार उनकी गवाही स्वीकार नहीं होगी, लेकिन इसतहसान (न्यायिकता) के आधार पर स्वीकार की जाएगी। और यदि गवाहों ने कहा कि इन लोगों के अलावा हम मृतक के किसी और वारिस को नहीं जानते हैं, तो क़यास और इसतहसान दोनों के अनुसार गवाही स्वीकार की जाएगी। और यदि गवाहों ने कहा कि हम इस शहर में इन लोगों के अलावा मृतक के किसी और वारिस को नहीं जानते हैं, तो भी इमाम-ए-आज़म (रह.) के नज़दीक यही हुक्म है, और साहिबैन के नज़दीक यह स्वीकार नहीं होगी। इस मतभेद को देखते हुए, जब उनकी गवाही स्वीकार हो जाए, तो अल्लाह के फ़राज़ (नियत हिस्सों) के अनुसार तरका उनमें विभाजित कर दिया जाएगा। और विभाजन में जो वारिस ऐसा हो कि हर स्थिति में किसी दूसरे वारिस के प्रकट होने पर वंचित (महजूब) होता हो, और जो ऐसा हो कि उस स्थिति में वंचित न होता हो, दोनों बराबर हैं सिवाय पति (ज़ौज) और पत्नी (ज़ौजा) के, कि उन दोनों के दोनों निर्धारित हिस्सों में से बड़ा हिस्सा यानी पति को आधा और पत्नी को चौथाई दिया जाएगा। और यदि गवाहों ने केवल मौरिस के मरने की गवाही दी और उसके अलावा चुप रहे, तो काज़ी तरका विभाजित नहीं करेगा चाहे तरका चल संपत्ति (अरूज़) हो या अचल संपत्ति (अक़ार)। और यदि वारिस ऐसे हों कि हर स्थिति में किसी दूसरे वारिस के प्रकट होने पर वंचित होते हों जैसे चचा, दादा, भाई और बहनें, तो काज़ी तरका ऐसे वारिसों में विभाजित नहीं करेगा चाहे तरका चल संपत्ति हो या अचल संपत्ति। और यदि वारिस ऐसे हों कि हर स्थिति में वंचित न होते हों जैसे माँ, बाप और संतान, तो अल्लाह के फ़राज़ के अनुसार उनमें तरका विभाजित कर देगा। लेकिन पति और पत्नी के दोनों निर्धारित हिस्सों में से इमाम-ए-आज़म (रह.) के नज़दीक छोटा हिस्सा (यानी पति को चौथाई और पत्नी को आठवाँ हिस्सा) देगा, और इमाम मुहम्मद (रह.) के नज़दीक दोनों निर्धारित हिस्सों में से बड़ा हिस्सा देगा, और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) ने फ़रमाया कि पति को चौथाई और पत्नी को आठवें हिस्से का चौथाई देगा, और एक रिवायत में पति को पाँचवाँ हिस्सा और पत्नी को नौवें हिस्से का चौथाई देगा, यह 'यनाबीअ' में है।

एक व्यक्ति अपनी पत्नी और दो बेटों को छोड़ कर मर गया और पत्नी ने दावा किया कि वह गर्भवती है, तो शेख अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल ने फ़रमाया कि इस स्त्री को एक भरोसेमंद दाई या दो दाइयों को दिखाया जाए ताकि वे उसकी कोख की जाँच करें। यदि दाइयों को गर्भावस्था के कोई लक्षण दिखाई न दें, तो काज़ी विरासत विभाजित कर देगा, और यदि गर्भावस्था के लक्षण दिखाई दें और वारिसों ने बच्चे के जन्म तक इंतज़ार किया, तो काज़ी विभाजन नहीं करेगा। इसी प्रकार, यदि एक व्यक्ति अपनी गर्भवती पत्नी और एक बेटा छोड़कर मर जाए, तो काज़ी उस स्त्री के प्रसव तक विरासत विभाजित नहीं करेगा। और यदि वारिस एक से अधिक हों और उन्होंने प्रसव तक इंतज़ार न किया हो, तो यदि जन्म का दिन दूर हो तो काज़ी तरका विभाजित कर देगा और यदि नज़दीक हो तो विभाजन नहीं करेगा। नज़दीकी और दूरी की मात्रा काज़ी के विवेक पर है। और यदि तरका विभाजित किया गया तो गर्भ के लिए हिस्सा छोड़ दिया जाएगा। विद्वानों में इस बात पर मतभेद है कि कितने बच्चों का हिस्सा रखा जाए; ख़साफ़ ने इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत किया है कि एक बेटे का हिस्सा रखा जाएगा और इसी पर फ़तवा है। यह हुक्म उस स्थिति में है जब वारिस ऐसे हों जो बेटा जीवित पैदा होने की हर स्थिति में वारिस बन सकते हों। और यदि वारिस ऐसे हों जो बेटे के साथ वारिस न बनते हों, जैसे कई भाई और एक गर्भवती पत्नी छोड़कर मरा हो, तो पूरा तरका रोक दिया जाएगा और उन लोगों में विभाजित नहीं किया जाएगा, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि घर का मालिक मर गया और उसने कई वयस्क वारिस और एक गर्भवती पत्नी छोड़ी, तो उक्त संपत्ति उनमें विभाजित की जाएगी और गर्भ का हिस्सा नहीं रखा जाएगा; फिर जब बच्चा पैदा होगा, तो विभाजन फिर से किया जाएगा, यह 'तातारी ख़ानिया' में है। एक व्यक्ति अपनी गर्भवती पत्नी और दो बेटों तथा दो बेटियों को छोड़कर मरा और बच्चों ने विरासत के विभाजन का अनुरोध किया, तो फ़क़ीह अबू जाफ़र ने फ़रमाया कि पत्नी को विरासत का आठवाँ हिस्सा यानी चालीस हिस्सों (सह्म) में से पाँच मिलेंगे और दोनों बेटियों को सात-सात हिस्से और दोनों...

---

1. कथन "दोनों हिस्से आदि" पति का चौथाई और पत्नी का आठवाँ हिस्सा है, और शीघ्र ही 'किताब अल-फ़राज़' में विस्तार से इसका वर्णन आएगा, इंशा अल्लाह तआला।

اگر چند وارثوں نے حاضر ہو کر قاضی سے التماس کیا کہ ترکہ ہم لوگوں میں تقسیم کر دے اور ان لوگوں نے دعویٰ کیا کہ یہ میراث ہے تو قاضی اس کو ان لوگوں میں تقسیم نہ کرے گا جب تک کہ یہ لوگ اپنے مورث کے مرجانے اور اس کے وارثوں کی تعداد کے گواہ قائم نہ کریں پھر اگر گواہ قائم ہوئے اور انہوں نے مورث کے مرنے کی گواہی دی اور کہا کہ ان لوگوں کے سوائے میت کا کوئی وارث نہیں ہے تو قیاساً ان کی گواہی قبول نہ ہو گی مگر استحساناً مقبول ہو گی اور اگر گواہوں نے کہا کہ ان لوگوں کے سوائے میت کا ہم کوئی وارث نہیں جانتے ہیں تو قیاساً و استحساناً گواہی قبول ہو گی اور اگر گواہوں نے کہا کہ اس شہر میں ان لوگوں کے سوائے میت کا ہم کوئی وارث نہیں جانتے ہیں تو بھی امام اعظم رحمہ اللہ کے نزدیک یہی حکم ہے اور صاحبین کے نزدیک مقبول نہ ہو گی اور نظر بریں اختلاف مذکورہ جب ان کی گواہی مقبول ہوئی تو موافق فرائض اللہ تعالیٰ کے ترکہ اُن میں تقسیم کیا جائے گا اور قسمت میں جو وارث ایسا ہو کہ ہر تقدیر کسی دوسرے وارث کے ظاہر ہونے کے محجوب ہوتا ہو اور جو ایسا ہو کہ اس تقدیر پر محجوب نہ ہوتا ہو دونوں برابر ہیں سوائے زوج و زوجہ کے کہ ان دونوں کے ہر دو حصہ مفروضہ میں سے بڑا فریضہ یعنی زوج کو نصف اور زوجہ کو چوتھائی دیا جائے گا اور اگر گواہوں نے فقط مورث کے مرنے کی گواہی دی اور اس کے ماسوائے سے سکوت کیا تو قاضی ترکہ کو تقسیم نہ کرے گا خواہ ترکہ عروض ہو یا عقار ہو اور اگر وارث ایسے ہوں کہ ہر تقدیر ظہورِ کسی دوسرے وارث کے محجوب ہوتے ہوں جیسے چچا و دادا بھائی و بہنیں تو قاضی ترکہ کو ایسے وارثوں میں تقسیم نہ کرے گا خواہ ترکہ عروض ہو یا عقار ہو اور اگر وارث ایسے ہوں کہ ہر تقدیر غیر محجوب نہ ہوتے ہوں جیسے ماں و باپ و ولد تو ترکہ ان میں موافق فرائض اللہ تعالیٰ کے تقسیم

کرے گا لیکن زوج و زوجہ ان کے ہر دو حصہ مفروضہ میں سے امام اعظم رحمہ اللہ کے نزدیک چھوٹا حصہ (یعنی شوہر کو چوتھائی اور جورو کو آٹھواں حصہ دے گا اور امام محمدؒ کے نزدیک ہر دو مفروضہ میں سے بڑا حصہ دے گا اور امام ابو یوسفؒ نے فرمایا کہ زوج کو چوتھائی اور زوجہ کو آٹھواں حصہ کا چوتھائی دے گا اور ایک روایت میں شوہر کو پانچواں حصہ اور زوجہ کو نویں حصہ کا چوتھائی دے گا یہ ینابیع میں ہے۔

ایک شخص ایک جورو اور دو پسر چھوڑ کر مر گیا اور یہ عورت دعویٰ کرتی تھی کہ میں حاملہ ہوں تو شیخ ابوبکر محمد بن الفضلؒ نے فرمایا کہ یہ عورت ایک ثقہ دائی یا دو دائیوں کو دکھلائی جائے کہ وہ اس کی کوکھ ٹٹول کر دریافت کریں پس اگر دائیوں کو علاماتِ حمل سے کچھ ظاہر نہ ہوا تو قاضی میراث کو تقسیم کر دے گا اور اگر علاماتِ حمل سے کچھ حاضر ہوا پس اگر وارثوں نے اس کے وضع حمل تک انتظار کیا تو قاضی تقسیم نہ کرے گا۔ اسی طرح اگر ایک شخص اپنی حاملہ جورو اور ایک بیٹا چھوڑ کر مرا تو قاضی میراث کو اس عورت کے وضع حمل تک تقسیم نہ کرے گا اور اگر وارث ایک سے زیادہ ہوں اور انہوں نے وضع حمل تک انتظار نہ کیا پس اگر ولادت کے دن دور ہوں تو قاضی ترکہ تقسیم کر دے گا اور اگر نزدیک ہوں تو تقسیم نہ کرے گا اور دونوں کی نزدیکی و دوری کی مقدار قاضی کی رائے پر ہے اور اگر ترکہ تقسیم کیا گیا تو حمل کا حصہ رکھ چھوڑا جائے گا اور مشائخ نے اختلاف کیا ہے کہ کتنے عدد کا حصہ رکھا جائے گا اور خصافؒ نے امام ابو یوسفؒ سے مروی ذکر کیا ہے کہ ایک پسر کا حصہ رکھا جائے گا اور اسی پر فتویٰ ہے اور یہ حکم ایسی صورت میں ہے کہ وارث ایسے ہوں کہ ہر تقدیر بیٹا پیدا ہونے کے جینے کے ساتھ وارث ہو سکتے ہوں اور اگر ایسے ہوں کہ بیٹے کے ساتھ وارث نہ ہوتے ہوں مثلاً چند بھائی اور ایک حاملہ عورت چھوڑ مرا ہو تو پورا ترکہ موقوف رکھا جائے گا ان لوگوں کو تقسیم نہ کیا جائے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر مالکِ دار مر گیا ار اس نے

چند بالغ وارث اور ایک حاملہ جورو چھوڑی تو وارث مذکور ان میں تقسیم کیا جائے گا اور حمل کا حصہ نہ رکھا جائے گا پھر جب اس کے بچہ پیدا ہو گا تو تقسیم مذکور دھرائی جائے گی یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص اپنی حاملہ جورو اور دو پسر و دو دختر چھوڑ مرا اور اولاد نے تقسیمِ میراث کی درخواست کی تو فقیہ ابو جعفرؒ نے فرمایا کہ عورت کو میراث کا آٹھواں حصہ یعنی چالیس سہم میں سے پانچ ملیں گے اور دونوں بیٹیوں کو سات سہم اور دونوں

---

۱ قولہ ہر دو حصہ الخ زوج کا چوتھائی اور زوجہ کا آٹھواں حصہ ہے اور عنقریب کتاب الفرائض میں بالتفصیل بیان آتا ہے ان شاء اللہ تعالیٰ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 286 | Book of Partition (Kitab al-Qisma)**

Sons shall receive fourteen shares, and fourteen shares shall be set aside for the fetus; however, the ruling adopted by the scholars (Mashaikh) for issuing a fatwa is that a share equivalent to one son shall be set aside for the fetus. The resolution of the case shall be based on sixty-four (64) shares, of which eight shares shall go to the wife, fourteen shares to both daughters, twenty-eight shares to both sons, and fourteen shares, equivalent to one son's portion, shall be reserved for the fetus. A pregnant woman died, and the child was felt moving within her womb for a day and a night. Some people said the child had died, while others said it had not. The woman was buried as she was. Later, when people exhumed the grave, they found a dead female infant with her. The deceased woman was survived by her husband and her parents. The question arose: will the girl found with her receive any inheritance from the estate? The scholars of Balkh ruled that if the heirs admit that this girl was the child of the deceased woman and was born alive after her mother's death, then the girl shall inherit from her mother, and subsequently, her heirs will take her share. If the heirs do not make such an admission, the ruling of inheritance shall apply only if just witnesses testify—a testimony permissible under Sharia—that they remained by the grave from the time of burial until exhumation and heard the cry of the child from within the grave, thereby gaining certain knowledge. If there are no witnesses and the heirs are asked to swear on their knowledge and they do so, then no inheritance shall be decreed for the dead girl. Furthermore, if only the head of a child emerges from a pregnant woman and the child cries out loud, but then dies before the rest of the body is delivered, the child shall not inherit; this is recorded in Fatawa Qazi Khan.

A common land was partitioned among partners while one partner was absent. When he became aware of the partition, he stated that he was not satisfied with it due to gross inequality (ghabn). However, if he then permitted his cultivators to farm his portion, this act—performed after initially rejecting the partition—shall not constitute consent to the said partition. In another instance, land was partitioned and a partner expressed dissatisfaction, yet proceeded to cultivate it; this cultivation is of no consequence because the partition was already rescinded by his rejection; this is mentioned in al-Quniyah. If in a house (dar), one room (bayt) is in the possession of one person, another room is in the possession of a second, and a large mansion is in the possession of a third, and each claims full ownership of their respective part, each shall retain what is in their possession, and the courtyard (sahan) shall be

shared equally (one-third each) among the three. If one of them dies leaving heirs, his heirs shall receive one-third of the courtyard. Furthermore, if partners partition a house but leave the pathway (whether narrow or wide) or the water channel as common property among them, it is permissible; as stated in al-Mabsut.

बेटों को चौदह हिस्से मिलेंगे और गर्भ (भ्रूण) के लिए चौदह हिस्से रख छोड़े जाएंगे, मगर मशाईख (विद्वानों) ने जो हुक्म फतवे के लिए अपनाया है वह यह है कि गर्भ के लिए एक पुत्र का हिस्सा रख छोड़ा जाएगा और समस्या का समाधान चौंसठ (64) से होगा, जिसमें से आठ हिस्से उसकी पत्नी को, चौदह हिस्से दोनों बेटियों को और अट्ठाइस दोनों बेटों को दिए जाएंगे, और चौदह हिस्से एक पुत्र के हिस्से के बराबर गर्भ के लिए रख छोड़े जाएंगे। एक गर्भवती महिला मर गई और उसके पेट में बच्चा एक रात-दिन धड़कता रहा, फिर कुछ लोगों ने कहा कि बच्चा मर गया और कुछ ने कहा कि नहीं मरा, फिर वह औरत उसी तरह दफन कर दी गई। बाद में लोगों ने कब्र को खोदा तो देखा कि उसके साथ एक मृत लड़की पड़ी है। उक्त महिला अपने पीछे पति और माता-पिता को छोड़ गई थी। सवाल यह है कि क्या उस लड़की को, जो उसके साथ पाई गई, संपत्ति से कुछ मिलेगा या नहीं? तो बल्ख के मशाईख ने फरमाया कि अगर वारिसों ने स्वीकार किया कि यह लड़की उसी औरत की संतान है जो उसकी मृत्यु के बाद जीवित पैदा हुई थी, तो यह लड़की अपनी माँ की वारिस होगी और फिर उसका हिस्सा उसके वारिस लेंगे। और अगर वारिसों ने ऐसा स्वीकार नहीं किया, तो उसके लिए विरासत का हुक्म तब होगा जब न्यायप्रिय गवाह ऐसी गवाही दें (जिसकी शरीअत में गुंजाइश है) कि वे दफन होने से लेकर कब्र खोदने तक कब्र के पास ही रहे और उन्होंने कब्र के भीतर से बच्चे की आवाज सुनी हो, जिससे उन्हें यह ज्ञान प्राप्त हुआ हो। और अगर इस स्थिति में गवाह न हों और वारिसों से उनके ज्ञान पर कसम ली गई, और उन्होंने कसम खा ली, तो उस मृत लड़की के लिए विरासत का हुक्म नहीं होगा। और अगर किसी गर्भवती महिला से बच्चे का केवल सिर बाहर निकला और वह बच्चा जोर से रोया, फिर शेष शरीर निकलने से पहले बच्चा मर गया, तो उसे विरासत नहीं मिलेगी; यह फ़तावा काज़ी खान में है।

एक साझा ज़मीन शरीकों के बीच बाँटी गई और उनमें से एक शरीक अनुपस्थित था। जब उसे इस बँटवारे का पता चला तो उसने कहा कि घाटे (गबन) के कारण मैं इस बँटवारे पर राजी नहीं हूँ, फिर उसने अपने काश्तकारों (किसानों) को अपने हिस्से की खेती की अनुमति दे दी, तो बँटवारे को रद्द करने के बाद उसका यह कार्य बँटवारे पर सहमति नहीं माना जाएगा। एक ज़मीन बाँटी गई, फिर एक शरीक अपने हिस्से से राजी नहीं हुआ, लेकिन उसके बाद उसने उसमें खेती की, तो इसका कोई महत्व नहीं है क्योंकि बँटवारा रद्द करने से रद्द हो गया; यह 'कुनिया' में है। अगर एक घर (दार) में से एक कमरा (बैत) एक व्यक्ति के कब्जे में हो, दूसरा कमरा दूसरे के कब्जे में हो, और एक बड़ी हवेली

तीसरे के कब्जे में हो, और उनमें से हर कोई पूरी संपत्ति अपनी होने का दावा करता है, तो हर किसी को उसका कब्ज़ा मिलेगा और घर का आँगन तीनों के बीच बराबर (तिहाई) होगा। और अगर उनमें से कोई अपने वारिस छोड़कर मर गया, तो उसके वारिसों को आँगन का तिहाई हिस्सा मिलेगा। और अगर शरीकों ने एक घर का बँटवारा किया और रास्ता (छोटा या बड़ा) या पानी की नाली अपने बीच साझा छोड़ दी, तो यह जायज़ है; जैसा कि 'अल-मबसूत' में है।

---

بیٹوں کو چودہ سہیم ملیں گے اور حمل کے واسطے چودہ سہیم رکھ چھوڑے جائیں گے مگر مشائخ نے جو حکم فتویٰ کے واسطے اختیار کیا ہے وہ یہ ہے کہ حمل کے واسطے ایک پسر کا حصہ رکھ چھوڑا جائے گا اور مسئلہ کی تخریج چونٹھ سے ہو گی جس میں سے آٹھ سہام اس کی جور و کو اور چودہ سہام دونوں بیٹیوں کو اور اٹھائیس دونوں بیٹوں کو دیے جائیں گے اور چودہ سہام ایک پسر کا حصہ حمل کے واسطے رکھ چھوڑا جائے گا ایک حاملہ عورت مرگئی اور اس میں پیٹ میں ایک بچہ ایک رات دن پھڑکتا تھا پھر بعض لوگوں نے کہا کہ بچہ مر گیا اور بعضوں نے کہا کہ نہیں مرا پھر وہ عورت اسی طرح دفن کر دی گئی پھر لوگوں نے اس کو کھودا تو دیکھا کہ اس کے ساتھ ایک مردہ لڑکی پڑی ہے اور عورت مذکورہ اپنا خاوند اور ماں و باپ چھوڑ مری تھی پس آیا اس لڑکی کو جو اُس کے ساتھ پائی گئی ہے مال سے کچھ ملے گا یا نہیں؟ سو مشائخ بلخ نے فرمایا کہ اگر وارثوں نے اقرار کیا کہ یہ لڑکی اسی عورت کی میت ہے کہ اس کی وفات کے بعد زندہ پیدا ہوئی تھی تو یہ لڑکی اپنی ماں کی وارث ہو گی پھر اس کا حصہ اس کے وارث لیں گے اور اگر دونوں وارثوں نے ایسا اقرار نہ کیا تو اس کے واسطے میراث کا حکم ہو گا اور ان عادل گواہوں کو ایسی گواہی دینے کے واسطے شرعاً بھی گنجائش ہو گی کہ جب یہ لوگ عورت مذکورہ کی قبر کے پاس سے دفن ہونے کے وقت سے اکھاڑے جانے کے وقت تک جدا نہ ہوئے ہوں گے اور قبر کے اندر سے انہوں نے بچہ کی آواز سنی ہو تا کہ ان کو ایسا علم حاصل ہوا ہو اور اگر اس صورت میں گواہ نہ ہوں اور وارثوں سے ان کے علم پر قسم لی گئی پس اگر انہوں نے قسم کھالی تو اس مردہ لڑکی کے واسطے میراث کا حکم نہ ہو گا اور اگر کسی حاملہ سے بچہ کا فقط سر باہر

نکلا اور وہ بچہ بآواز روتا تھا پھر باقی بچہ مذکور خارج ہونے سے پہلے مر گیا تو اس کو میراث نہ ملے گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

ایک زمین مشترک شریکوں میں تقسیم کی گئی اور ان میں ایک شریک غائب ہے پھر جب وہ اس تقسیم سے واقف ہوا تو کہا کہ غبن کی وجہ سے میں اس تقسیم پر راضی نہ ہوا پھر اپنے کاشتکاروں کو اپنے حصہ کی زراعت کے واسطے اجازت دی تو تقسیم مذکور کو رد کرنے کے بعد یہ امر اس تقسیم پر رضا مندی نہیں ہے۔ ایک زمین تقسیم کی گئی پھر ایک شریک اپنے حصہ سے راضی نہ ہوا پھر اس کے بعد اس میں زراعت کی تو اس کا کچھ اعتبار نہیں ہے کیونکہ تقسیم رد کرنے سے رد ہو گئی یہ قنیہ میں ہے اگر ایک دار میں سے ایک بیت ایک شخص کے قبضہ میں ہو اور وہ بیت دوسرے کے قبضہ میں ہوں اور ایک بڑی حویلی تیسرے کے قبضہ میں ہو اور ان لوگوں میں سے ہر ایک پورا وار اپنا ملک ہونے کا دعویٰ کرتا ہے تو ان میں سے ہر ایک کو اس کا مقبوضہ ملے گا اور صحن دار تینوں میں تین تہائی ہو گا اور اگر ان میں سے کوئی شخص اپنے وارث چھوڑ کر مر گیا تو اس کے وارثوں کو تہائی صحن ملے گا اور اگر شریکوں نے ایک دار تقسیم کیا اور راستہ چھوٹا یا بڑا یا پانی کی نالی اپنے درمیان ویسے ہی مشترک چھوڑ دی تو یہ جائز ہے کذانی المبسوط

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 287 Kitab al-Muzara'ah**

# Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)

**It contains fourteen chapters.**

# किताब अल-मुज़ारअत

## इसमें चौदह अध्याय हैं

## کتاب المزارعۃ

---

### اس میں چودہ ابواب ہیں

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 288 Kitab al-Muzara'a (The Book of Sharecropping)**

The tenant shall have the choice to sow whatever they wish, but they shall not have the right to plant trees. This is because under the contract of *Muzara'a* (sharecropping), cultivation is included, but planting trees is not. This is mentioned in *Bada'i*.

Specifying the quantity of seeds is not a condition, because informing about the land (1) makes the quantity of seeds known. If both parties have not specified the type of seed, then if the seeds are provided by the landlord, it is permissible because before sowing, the contract of *Muzara'a* is not yet binding upon them, and at the time of sowing, this matter will become known, ensuring that clarity exists at the time of the contract's commencement, just as it existed at the time of the agreement. However, if the seeds are from the tenant and both have not specified the type of seed, the *Muzara'a* shall be *fasid* (invalid/voidable). This is because, regarding the landlord's right, this contract becomes binding before sowing, so ambiguity is not permissible. But if it has been left generally to the tenant's discretion—for instance, the landowner says he gave the land for sharecropping on the agreement that the tenant may cultivate whatever they or the owner sees fit—then it is permissible. When the owner leaves this to the tenant's discretion, he has surely consented. If it was not left generally to the tenant's discretion and the seeds are from the tenant, and both have not specified the type, the contract becomes invalid. However, once the tenant sows any seed, it transforms and becomes permissible because once the landlord has vacated the land for the tenant and left it in their possession to the extent that they have sowed the seed, the landlord has certainly accepted it, thus the invalidating factor is removed and it becomes permissible. This is in *Fatawa Qazi Khan*.

Regarding the conditions related to the predominance of agricultural produce, there are several types. Among them is that it must be mentioned in the contract; if there is silence regarding its mention, the contract is invalid. Another condition is that the produce must be for both parties; if it is stipulated that the entire harvest belongs to only one of them, the contract of *Muzara'a* is not valid. Furthermore, a specific portion of the actual harvest must be stipulated for each; if a condition is set for something other than the produce itself, the contract is invalid, as partnership is essential for this contract. Therefore, any condition that severs the partnership will invalidate the contract. Among these conditions is that the portion of the grain harvest must be known by specifying it as a half, a third, or a quarter, etc.

Additionally, this known share must be an undivided share (*juz-e-sha'i*) (2) of the entire produce. If a specific quantity (e.g., a fixed weight) is stipulated for either party, the contract is not valid. Similarly, if an undivided share is mentioned but a condition is added to increase that share by some known fixed amount, the *Muzara'a* will not be valid. Likewise, if it is stipulated for one party that they receive an amount equal to the seeds spent and the remainder is shared, it is not valid because it is possible the land produces no more than that initial quantity of seeds.

Regarding the conditions related to the *mazru' fihi* (the land being sown), there are several. Among them is that the land must be cultivable. If the land is saline or overly marshy, the contract is not valid. If the land can become cultivable within the term of the *Muzara'a* but at the time of the contract it cannot be cultivated due to a temporary obstacle—such as water being cut off, snowfall, or similar hindrances—and this obstacle is expected to be removed within the term, then the *Muzara'a* is permissible. Another condition is that the land must be known (specified); if it is unknown, the *Muzara'a* will not be valid as such ignorance leads to disputes. If land is given for sharecropping on the agreement that if wheat is sown, this is the share, and if barley is sown, that is the share, the contract is invalid because the area to be sown (*mazru' fihi*) is unknown. Similarly, if it is said that wheat will be sown in some parts and barley in others without specification, it is also invalid.

---

(1) Land etc.: For example, if the land is four *bighas* and the usual requirement is one *man* per *bigha*, then it is clear that four *mans* of seeds are required. (2) Undivided share (*juz-e-sha'i*): This means a one-third or one-fourth of the entire produce. In contrast, if it is said "the produce from the eastern portion" or "whatever grows on the embankments," it is not permissible. Similarly, if a fixed amount like forty *mans* is stipulated, it is also not permissible.

(काश्तकार को) अधिकार होगा कि जो चाहे बो दे, मगर उसे पेड़ लगाने का अधिकार नहीं होगा क्योंकि मुज़ारअत (साझा खेती) के अनुबंध के तहत खेती शामिल है, पेड़ लगाना शामिल नहीं है, यह 'बदाई' में है। बीज की मात्रा का वर्णन करना शर्त नहीं है क्योंकि भूमि (१) से अवगत कराने से बीजों की मात्रा ज्ञात हो जाती है। और यदि दोनों ने बीज की किस्म का वर्णन नहीं किया, तो यदि बीज जमींदार की ओर से तय हुए हों तो यह जायज़ है क्योंकि बुआई से पहले उसके हक में मुज़ारअत का अनुबंध नहीं होगा और बुआई के समय यह बात ज्ञात हो जाएगी, ताकि अनुबंध के समय स्पष्टता पाई जाए जैसे कि अनुबंध के समय स्पष्टता पाई गई। और यदि बीज काश्तकार (किसान) की ओर से हों और दोनों ने बीज की किस्म का उल्लेख न किया हो, तो मुज़ारअत फासिद (अमान्य) होगी। क्योंकि जमींदार के अधिकार में यह मुज़ारअत बुआई से पहले ही अनिवार्य होगी, इसलिए (चीजों का) अज्ञात होना जायज़ नहीं है। लेकिन यदि सामान्य रूप से काश्तकार की राय पर छोड़ दिया गया हो, उदाहरण के लिए भूमि के स्वामी ने उससे कहा हो कि इस समझौते पर मुज़ारअत दी कि इसमें जो तेरी राय में आए या जो मेरी राय में आए उसकी खेती कर, तो यह जायज़ है क्योंकि जब उसने काश्तकार की राय पर यह काम छोड़ा, तो वह निश्चित रूप से सहमत हुआ। और यदि उसने सामान्य रूप से उसकी राय पर नहीं छोड़ा हो और बीज काश्तकार की ओर से हों और दोनों ने बीज की किस्म का वर्णन न किया हो, तो मुज़ारअत फासिद हो जाएगी। मगर जब उसने कोई बीज बो दिया, तो वह बदलकर जायज़ हो जाएगी क्योंकि जब जमींदार ने भूमि और काश्तकार के बीच खाली स्थान (कब्जा) दे दिया और उसे उसके कब्जे में यहाँ तक छोड़ दिया कि उसने बीज भूमि में डाल दिया, तो उसने अवश्य इसे सहन कर लिया, अतः अमान्य करने वाली बात दूर होकर जायज़ हो जाएगी, यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। और जो शर्तें कृषि की पैदावार की प्रबलता की ओर इशारा करती हैं, वे कई प्रकार की हैं। उनमें से एक यह है कि अनुबंध में इसका उल्लेख हो, यदि अनुबंध में इसके उल्लेख पर मौन रहा जाए तो अनुबंध फासिद होगा। और उनमें से एक यह भी शर्त है कि (उत्पाद) दोनों के लिए हो, यदि यह शर्त लगाई गई कि कुल उपज दोनों में से किसी एक के लिए होगी, तो मुज़ारअत का अनुबंध सही नहीं होगा। और उनमें से एक यह कि जमींदार और काश्तकार दोनों में से एक के लिए उपज में से कुछ हिस्से की शर्त हो, यदि उस उपज के अलावा किसी अन्य चीज़ से (हिस्से की) शर्त लगाई गई तो अनुबंध सही नहीं होगा, क्योंकि इस अनुबंध के लिए भागीदारी आवश्यक है। अतः जो शर्त ऐसी होगी जो भागीदारी को समाप्त करती हो, वह अनुबंध को फासिद

कर देगी। उनमें से यह है कि अनाज की पैदावार में से जो हिस्सा तय हुआ है, उसकी मात्रा आधा, एक-तिहाई या एक-चौथाई आदि के वर्णन से ज्ञात हो। उनमें से यह भी है कि यह ज्ञात हिस्सा पूरी पैदावार में से एक साझा अंश (२) हो। यदि दोनों में से किसी के लिए किसी निश्चित मात्रा (जैसे कुछ विशिष्ट मन) की शर्त लगाई गई हो, तो अनुबंध सही नहीं होगा। इसी प्रकार यदि साझा अंश का उल्लेख तो किया लेकिन उस अंश पर कुछ ज्ञात अतिरिक्त चीज़ बढ़ाने की शर्त लगाई, तो मुज़ारअत सही नहीं होगी। इसी प्रकार यदि एक के लिए यह शर्त लगाई कि जितना बीज खर्च हुआ है वह उसे मिले और बाकी दोनों में साझा हो, तो मुज़ारअत सही नहीं होगी क्योंकि संभव है कि भूमि में उस बीज की मात्रा के अतिरिक्त अधिक पैदावार न हो। और जो शर्त 'मज़्रूं फ़ीहि' यानी भूमि से संबंधित है, वह भी कई प्रकार की है। उनमें से एक यह कि यह भूमि खेती के योग्य हो, यहाँ तक कि यदि यह भूमि खारी या अधिक नम होगी तो अनुबंध जायज़ नहीं होगा। और यदि उक्त भूमि मुज़ारअत की अवधि में खेती के योग्य हो सकती हो, लेकिन अनुबंध के समय किसी अस्थायी कारण से खेती न हो सकती हो, जैसे पानी कट गया हो या बर्फ गिर रही हो या इसके समान कोई अन्य बाधा हो, जबकि यह बाधा ऐसी हो जो मुज़ारअत की अवधि के भीतर ही दूर होने वाली हो, तो मुज़ारअत जायज़ होगी। उनमें से एक यह है कि भूमि ज्ञात (निश्चित) हो, और यदि अज्ञात होगी तो मुज़ारअत सही नहीं होगी क्योंकि इस अनभिज्ञता से विवाद पैदा हो सकता है। और यदि भूमि मुज़ारअत पर इस समझौते के साथ दी गई कि जिसमें गेहूँ बोए उसमें यह बँटाई और जिसमें जौ बोए उसमें यह बँटाई है, तो अनुबंध फासिद होगा क्योंकि बोई जाने वाली भूमि (मज़्रूं फ़ीहि) अज्ञात है। इसी तरह यदि यह कहा गया कि इस समझौते से कि कुछ में गेहूँ बोए और कुछ में जौ बोए, तो भी फासिद है।

---

(१) भूमि आदि, उदाहरण के लिए भूमि चार बीघा है तो प्रति बीघा जो सामान्य है, जैसे एक मन, तो स्पष्ट हुआ कि चार मन बीज हुए। (२) साझा अंश (जुज़्व-ए-शाए) यानी पूरी पैदावार का एक-तिहाई या एक-चौथाई आदि। इसके विपरीत यदि कहा कि पूर्व दिशा के टुकड़े में या जो कुछ मेड़ों पर पैदा हो, तो यह जायज़ नहीं है। और इसके विपरीत यदि उदाहरण के लिए चालीस मन तय कर दिया, तो भी जायज़ नहीं है।

---

اختیار ہوگا کہ جو چاہے بو دے مگر اُس کو درخت لگانے کا اختیار نہ ہوگا کیونکہ عقدِ مزارعت کے تحت میں کھیتی داخل ہے درخت لگانا داخل نہیں ہے یہ بدائع میں ہے۔ بیج کی مقدار بیان کرنا شرط نہیں ہے کیونکہ زمین (۱) سے آگاہ کرنے سے بیجوں کی مقدار معلوم ہوجاتی ہے اور اگر دونوں نے بیج کی جنس بیان نہ کی پس اگر زمیندار کی طرف سے بیج ٹھہرے ہوں تو جائز ہے کیونکہ تخم ریزی سے پہلے اُس کے حق میں مزارعت کا عقد نہ ہوگا اور تخم ریزی کے وقت تو یہ امر معلوم ہوجائے گا اور تاکہ عقد کے وقت اعلام پایا جاتا ہے جیسے وقت عقد کے اعلام پایا گیا۔ اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور دونوں نے بیج کی جنس بیان نہ کی تو مزارعت فاسد ہوگی۔ کیونکہ زمیندار کے حق میں یہ مزارعت قبل تخم ریزی کے لازم ہوگی پس نامعلوم ہونا جائز نہیں ہے لیکن اگر بطورِ عموم کاشتکار کی رائے پر سونپا ہو مثلاً مالکِ زمین نے اس سے کہا ہو کہ مزارعت پر اس قرارداد پر دی کہ اس میں جو تیری رائے میں آئے یا جو میری رائے میں آئے زراعت کر تو یہ جائز ہے کیونکہ جب اس نے کاشتکار کی رائے پر یہ کام چھوڑا تو ضرور راضی ہوا اور اگر اس نے بطورِ عموم اس کی رائے پر نہ چھوڑا ہو اور بیج کاشتکار کی طرف سے ٹھہرے ہوں اور دونوں نے جنسِ تخم بیان نہ کی ہو تو مزارعت فاسد ہو جائے گی مگر جب اس نے کوئی بیج بو دیا تو منقلب ہو کر جائز ہو جائے گی کیونکہ جب زمیندار نے زمین اور کاشتکار کے درمیان تخلیہ کر دیا اور یہاں تک اس کے قبضہ میں چھوڑ دی کہ اس نے بیج زمین میں ڈال دیا تو اس نے ضرور برداشت کر لیا پس امر مفسد زائل ہو کر جائز ہو جائے گی یہ فتاوی قاضی خان میں ہے اور جو شرطِ غلبہِ پیداوارِ زراعت کی طرف راجع ہے وہ چند طرح کی شرطیں ہیں از آنجملہ یہ کہ عقد میں اس کا ذکر ہوتی کہ اگر عقد میں اس کے ذکر سے سکوت کیا ہو تو عقد

فاسد ہوگا اور از آنجملہ دونوں کے واسطے ہونے کی شرط ہوتی کہ اگر یہ شرط کی کہ تمام حاصلاتِ پیداوار دونوں میں سے ایک کسی کے واسطے ہو تو عقدِ مزارعت صحیح نہ ہوگا اور از آنجملہ یہ کہ ہر دو زمیندار و کاشتکار میں ایک کے واسطے حاصلات میں سے بعض حصہ کی شرط ہوتی کہ اگر سوائے اس پیداوار کے دوسری چیز سے ہونے کی شرط لگائی تو عقد صحیح نہ ہوگا اس واسطے کہ اس عقد کے واسطے شرکت لازم ہے پس جو شرط ایسی ہوگی کہ شرکت کو قطع کرتی ہے وہ عقد مفسد ہوگی از آنجملہ یہ کہ حاصلاتِ غلہ میں سے جو بعض ٹھہرا ہے اس کی مقدار نصف یا ثلث یا چوتھائی وغیرہ بیان سے معلوم ہو۔ از آنجملہ یہ کہ یہ حصہ معلوم تمام پیداوار میں سے جزوِ شائع (۲) ہوتی کہ اگر دونوں میں سے کسی کے واسطے کسی قدرِ فقیر معلومہ کی شرط لگائی ہو تو عقد صحیح نہ ہوگا اسی طرح اگر جزوِ شائع تو ذکر کیا مگر اس جزو پر کچھ تغیر معلومہ زیادہ کرنے کی شرط لگائی تو مزارعت صحیح نہ ہوگی علیٰ ہذا اگر ایک کے واسطے یہ شرط لگائی کہ جس قدر بیج خرچ ہوئے ہیں وہ اس کو دیگر باقی دونوں میں مشترک ہو تو مزارعت صحیح نہ ہوگی کیونکہ جائز ہے کہ زمین میں سوائے اس مقدار تخم کے زیادہ پیدا نہ ہو اور جو شرط مزروع فیہ یعنی زمین کی طرف راجع ہے وہ چند طرح کی ہے از آنجملہ یہ کہ یہ زمین قابلِ زراعت ہو حتیٰ کہ اگر یہ زمین شور یا نمناک ہوگی تو عقد جائز نہ ہوگا اور اگر زمین مذکور مدتِ مزارعت میں قابلِ زراعت ہو لیکن وقتِ عقد کے کسی عارض بیوجہ سے زراعت نہ ہوسکتی ہوئے مثلاً پانی منقطع ہو یا برف گرتا ہو یا اس کے مثل کوئی امر مانع ہو حالانکہ یہ مانع ایسا ہو کہ مدتِ مزارعت کے اندر ہی دور ہونے والا ہو تو مزارعت جائز ہوگی از آنجملہ یہ ہے کہ زمین معلومہ ہو اور اگر مجہول ہوگی تو مزارعت صحیح نہ ہوگی کیونکہ اس جہالت سے جھگڑا پیدا ہو سکتا ہے اور اگر زمین مزارعت پر اس قرارداد سے دی کہ جس میں گیہوں بودے اس میں یہ بٹائی اور جس میں جو بودے اس میں یہ بٹائی ہے تو عقد فاسد ہوگا کیونکہ مزروع فیہ مجہول

ہے اسی طرح اگر یوں کہا کہ اس قرارداد سے کہ بعض میں گیہوں بودے اور بعض میں جو بودے تو بھی فاسد ہے۔

---

(۱) زمین الخ مثلاً زمین چار بیگہ ہے تو فی بیگہ جو معمول ہے مثلاً ایک من تو ظاہر ہوا کہ چار من بیج ہوئے۔ (۲) جزوِ شائع یعنی تمام پیداوار سے تہائی اور چوتھائی وغیرہ بخلاف اس کے اگر کہا کہ جانب مشرق کے ٹکڑے میں یا جو کچھ ٹالیوں پر پیدا ہو تو یہ نہیں جائز ہے اور بخلاف اس کے مثلاً چالیس من ٹھہرا دیا تو بھی نہیں جائز ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 289 | Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

...because explicitly being vague is certainly a joke. And if it is said by this agreement that "if you sow wheat, then this is the share, or if you sow barley, then this is the share," then it is permissible because he has designated the entire land for sowing either wheat or barley; thus, it is no longer a joke. Among the conditions is that the mentioned land should be handed over vacant to the sharecropper, meaning the landowner should remove obstacles and perform 'Takhliya' (handing over possession) between the land and the sharecropper. So much so that if any of the farming tasks are stipulated as the responsibility of the landowner, the Muzara'ah (sharecropping contract) will not be valid because 'Takhliya' was not achieved. Similarly, if working together is stipulated for both the landowner and the sharecropper, the same ruling applies; this is mentioned in 'Bada'i'.

चूंकि स्पष्ट रूप से कुछ-कुछ करना निश्चित रूप से खेल (मजाक) है और यदि यह कहा गया कि इस अनुबंध से कि जिसमें तू गेहूँ बोए तो यह बटाई है या जो बोए तो यह बटाई है, तो यह जायज़ है क्योंकि उसने पूरी ज़मीन गेहूँ या जो बोने के लिए निर्धारित की है, अतः खेल नहीं रहा। और इनमें से यह है कि उक्त ज़मीन खाली काश्तकार (किसान) के सुपुर्द की गई हो, अर्थात् ज़मीन के मालिक की ओर से बाधाओं को दूर करके ज़मीन और काश्तकार के बीच 'तख्लिया' (कब्ज़ा देना) किया गया हो। यहाँ तक कि यदि ज़मीन के मालिक के ज़िम्मे खेती के कार्यों में से कुछ कार्य शर्त किया गया हो, तो मुज़ाराअत (बटाई का अनुबंध) सही न होगा क्योंकि 'तख्लिया' नहीं पाया गया। इसी प्रकार यदि ज़मींदार और काश्तकार दोनों के ज़िम्मे काम करना शर्त हो, तो भी यही नियम है, यह 'बदाइअ' में है।

کیونکہ صریحا بعض بعض کرنا قطعی کھیل ہے اور اگر یوں کہا کہ اس قرارداد سے کہ جس میں تو گیہوں بودے تو یہ بٹائی یا جو بودے تو یہ بٹائی ہے تو یہ جائز ہے کیونکہ اس نے پوری زمین گیہوں یا جو بونے کے واسطے قرار دی ہے پس کھیل نہ رہی اور از انجملہ یہ ہے کہ زمین مذکور فارغ کاشتکار کے سپرد کی گئی ہو یعنی مالک زمین کی طرف سے موانع دور کر کے زمین اور کاشتکار کے درمیان تخلیہ کیا گیا ہو حتیٰ کہ اگر مالک زمین کے ذمہ کھیتی کے کام میں سے کچھ کام شرط کیا گیا ہو تو مزارعت صحیح نہ ہوگی کیونکہ تخلیہ نہ پایا گیا اسی طرح اگر زمیندار کاشتکار دونوں کے ذمہ کام کرنا مشروط ہو تو بھی یہی حکم ہے یہ بدائع میں ہے۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) 290 Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'a)**

If a sharecropper provides labor but there is no specific clarity, the sharecropping agreement (Muzara'a) will not be valid. This rule applies when the contract does not mention terms that clarify who is responsible for providing seeds. If terms are mentioned that clarify this, for example, if the landowner says, "I gave you this land so that you may sow crops for me," or says, "I have hired you on lease so that you may farm on half-crop sharing," this indicates that the seeds are the responsibility of the landowner. However, if he says, "So that you may farm for yourself," this indicates that the seeds are the responsibility of the farmer. This is stated in Fatawa Qazi Khan.

Ibn Rustam narrated from Imam Muhammad (RA) in his 'Nawadir' that if someone says to another, "I have leased my land to you for one year on half-crop sharing," or "on one-third crop sharing," this Muzara'a is permissible, and the seeds will be the responsibility of the farmer. But if he says, "I gave you my land for sharecropping," without specifying who provides the seeds, it is not permissible because this specification is a mandatory condition. If he says, "I hired you so that you may farm my land for a one-third share," it is permissible, and the landowner is responsible for the seeds; this is mentioned in 'Al-Zakhira'.

There are several types of conditions that invalidate (fasid) a Muzara'a contract. Among them is specifying the entire yield for only one of the parties, as this destroys the essence of partnership. Another is making it a condition for the landowner to perform labor, which is invalidating because it prevents the delivery of the leased object. Another is conditioning the landowner to provide oxen. Another is making it a condition for the farmer to harvest, move crops to the threshing floor, thresh, and clean the grain; this is considered invalidating by some. The principle is that all tasks required for the improvement of the crop before it matures and dries—such as irrigation and protection—are the farmer's responsibility. Tasks required after the crop has matured and dried but before division—such as winnowing and cleaning the grain—are shared by both in proportion to their shares in the produce. After division, tasks required for securing (Ihraz ^1) one's own share, such as transporting it home, are the responsibility of each party for their respective portion.

It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that he considered it permissible to condition the farmer for harvesting, threshing, and cleaning the grain due to common public practice (ta'amul). Some of our scholars and 'Al-Nahr' have also issued fatwas based on this, and it was chosen by scholars of Khorasan like Nasr bin

Yahya and Muhammad bin Salama, as cited in 'Al-Bada'i'. However, according to 'Zahir al-Riwayah', such conditions on the farmer are invalidating, as stated in 'Fatawa Qazi Khan'. Sheikh al-Aimmah al-Sarakhsi stated that in our regions, this (the common practice) is what is correct. Sheikh Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl, when asked for a fatwa on this issue, said the prevailing custom ('urf) is clear.

Other invalidating conditions include: conditioning fodder (straw) for the party who did not provide seeds. Also, if the landowner conditions the farmer to perform tasks whose benefit remains after the sharecropping period ends, such as building walls or digging canals. However, regarding plowing, if it is conditioned generally without specific repetition, scholars state the Muzara'a remains valid.

---

1: Ihraz: To collect and secure the portion in one's own house.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 290 किताब अल-मुज़ाराअत (बटाई के अहकाम)**

काश्तकार (किसान) देता हो, किसी की विशिष्टता न हो तो मुज़ाराअत (बटाई का अनुबंध) सही नहीं होगा। यह हुक्म उस समय है जब अनुबंध में कोई ऐसा शब्द ज़िक्र न किया गया हो जिससे यह पता चले कि बीज किसकी ओर से हैं। और यदि ऐसा सही शब्द ज़िक्र किया गया हो जिससे यह मालूम हो जाए, मिसाल के तौर पर भू-स्वामी ने कहा कि मैंने तुझे यह ज़मीन इस लिए दी कि तू मेरे वास्ते इसमें खेती बोए, या कहा कि मैंने तुझे पट्टे (इज़ारा) पर इस मक़सद से लिया कि तू आधी पैदावार की बटाई पर इसमें खेती करे, तो यह इस बात का वर्णन होगा कि बीज भू-स्वामी के ज़िम्मे हैं। और अगर यों कहा कि ताकि तू अपने लिए इसमें खेती करे, तो यह इस बात का वर्णन है कि बीज किसान के ज़िम्मे हैं। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में दर्ज है।

इब्न रुस्तम ने अपनी नवा़दिर में इमाम मोहम्मद (रह.) से रिवायत किया कि अगर किसी ने दूसरे से कहा कि मैंने अपनी यह ज़मीन एक साल के लिए तुझे आधे की बटाई पर पट्टे पर दी, या कहा कि एक-तिहाई की बटाई पर दी, तो यह मुज़ाराअत जायज़ है और बीज किसान के ज़िम्मे होंगे। और अगर यों कहा कि मैंने अपनी ज़मीन तुझे मुज़ाराअत पर दी, या कहा कि एक-तिहाई की बटाई पर तुझे मुज़ाराअत पर प्रदान की, तो यह जायज़ नहीं है क्योंकि इसमें यह स्पष्ट नहीं है कि बीज किसके ज़िम्मे हैं, जबकि यह एक अनिवार्य शर्त है। और अगर कहा कि मैंने तुझे इसलिए पट्टे पर लिया कि तू एक-तिहाई की बटाई पर मेरी ज़मीन में खेती करे, तो यह जायज़ है और बीज भू-स्वामी के ज़िम्मे होंगे। यह 'ज़ख़ीरा' में है। मुज़ाराअत को अमान्य (फ़ासिद) करने वाली शर्तें कई प्रकार की हैं। इनमें से एक यह है कि पूरी पैदावार दोनों में से किसी एक के लिए शर्त की गई हो, तो यह शर्त अमान्य करने वाली है क्योंकि यह साझेदारी को खत्म करती है। इनमें से एक यह है कि भू-स्वामी पर काम करने की शर्त लगाई गई हो, तो यह अमान्य है। इनमें से एक यह है कि भू-स्वामी के ज़िम्मे बैल देना शर्त किया गया हो। इनमें से एक यह है कि खेती काटकर खलिहान में डालने, रौंदने और अनाज साफ़ करने की शर्त किसान के ज़िम्मे लगाई गई हो, तो यह अमान्य है। असल बात यह है कि खेती तैयार होकर सूखने से पहले खेती की बेहतरी के लिए जिन बातों की ज़रूरत होती है, जैसे सिंचाई, रखवाली आदि, वे सब किसान के ज़िम्मे हैं। और वे कार्य जो खेती पूरी तैयार होकर सूखने के बाद और अनाज के बँटवारे से पहले ज़रूरी होते हैं, जैसे अनाज साफ़ करना आदि, वे दोनों के ज़िम्मे उसी अनुपात में होते हैं जो पैदावार में तय किया गया हो। और अनाज के बँटवारे के बाद अपने हिस्से के संरक्षण (इहराज़ ^1) के लिए जो काम ज़रूरी हों, जैसे घर तक पहुँचाना, वे दोनों को अपने-अपने

हिस्से के लिए करने होंगे। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से रिवायत है कि उन्होंने फसल काटने, खलिहान में डालने, रौंदने और अनाज साफ़ करने की शर्त किसान के ज़िम्मे रखना जायज़ माना है, क्योंकि लोगों में इसका आम प्रचलन है। हमारे कुछ उलेमा और 'अन-नहर' ने भी इसी पर फ़तवा दिया है। खुरासान के उलेमा में से नस्र बिन यहया और मोहम्मद बिन सलमा ने भी इसी को चुना है, जैसा कि 'बदाए' में है। ज़ाहिर अल-रिवायत के अनुसार किसान पर फसल काटने और अनाज साफ़ करने की शर्त लगाना अनुबंध को अमान्य करता है, जैसा कि 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है और इसी पर फ़तवा है। शेख़ अल-अइम्मा सरखसी ने कहा कि हमारे क्षेत्रों में यही सही है। शेख़ अबू बक्र मोहम्मद बिन अल-फ़ज़ल से जब इस बारे में फ़तवा माँगा गया तो उन्होंने कहा कि इसमें प्रचलित प्रथा (उर्फ़) स्पष्ट है।

इनमें से एक यह भी है कि जिसकी ओर से बीज नहीं थे, उसके लिए भूसे की शर्त करना। इनमें से एक यह है कि भू-स्वामी किसान पर ऐसे काम की शर्त लगाए जिसका लाभ मुज़ाराअत की अवधि के बाद भी रहे, जैसे दीवार बनाना या नहर खोदना। लेकिन अगर हल चलाने की सामान्य शर्त हो तो उलेमा ने कहा है कि इससे अनुबंध अमान्य नहीं होगा।

---

1: इहराज़ : अपने घर में जमा करके सुरक्षित कर लेना।

کاشتکار دیتا ہو کسی کی خصوصیت نہ ہو تو مزارعت صحیح نہ ہو گی اور یہ حکم اس وقت ہے کہ عقد میں جب کوئی ایسا لفظ ذکر نہ کیا ہو کہ جس سے معلوم ہو جائے کہ بیج کس کی طرف سے ہیں اور اگر ایسا صحیح لفظ ذکر کیا ہو کہ جس سے یہ معلوم ہو جائے مثلاً مالک زمین نے کہا کہ میں نے تجھے یہ زمین اس واسطے دی کہ تو میرے واسطے اس میں کھیتی بوئے یا کہا کہ میں نے تجھے اجارہ پر اس غرض سے لیا کہ تو آدھی پیداوار کی بٹائی پر اس میں کاشتکاری کرے تو یہ اس بات کا بیان ہوگا کہ بیج مالک زمین کے ذمہ ہیں اور اگر یوں کہا کہ تا کہ تو اپنے واسطے اس میں زراعت کرے تو یہ اس امر کا بیان ہے کہ بیج کاشتکار کے ذمہ ہیں یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

ابن رستم نے اپنی نوادر میں امام محمدؒ سے روایت کیا کہ اگر کسی نے دوسرے سے کہا کہ میں نے اپنی یہ زمین ایک سال کے واسطے تجھے آدھے کی بٹائی پر اجارہ دی یا کہا کہ تہائی کی بٹائی پر اجارہ دی تو یہ مزارعت جائز ہے اور بیج کاشتکار کے ذمہ ہوں گے اور اگر یوں کہا کہ میں نے اپنی زمین تجھے مزارعت پر دی یا کہا کہ تہائی کی بٹائی پر تجھے مزارعت پر عطا کی تو جائز نہیں ہے کیونکہ اس میں اس کا بیان نہیں ہے کہ بیج کس کے ذمہ ہیں حالانکہ یہ امر شرط ہے اور اگر کہا کہ میں نے تجھے اس واسطے اجارہ پر لیا کہ تہائی کی بٹائی پر تو میری زمین میں زراعت کرے تو یہ جائز ہے اور بیج مالک زمین کے ذمہ ہوں گے یہ ذخیرہ میں ہے۔ مزارعت کی فاسد کرنے والی شرطیں چند انواع ہیں از انجملہ یہ کہ تمام پیداوار غلہ دونوں میں سے کسی ایک کے واسطے شرط کیا تو یہ شرط مفسد ہے کیونکہ شرکت کو قطع کرتی ہے از انجملہ یہ کہ مالک زمین پر کام کرنے کی شرط لگائی تو مفسد ہے کیونکہ یہ شرط مشروع فیہ سپرد کرنے سے

مانع ہے از انجملہ یہ کہ مالک زمین کے ذمہ بیل دینا شرط کیا از انجملہ یہ کھیتی کاٹ کر کھلیان میں ڈالنے اور روندنے اور دانہ صاف کرانے کی شرط کاشتکار کے ذمہ لگائی تو مفسد ہے اور اصل یہ ہے کہ کھیتی تیار ہو کر خشک ہونے سے پہلے کھیتی کی اصلاح کے واسطے جن باتوں کی ضرورت ہوتی ہے جیسے سینچنا و حفاظت کرنا و نکالو تالیاں و دہ ہے وغیرہ تیار کرنا اور ایسی باتیں یہ سب کاشتکار کے ذمہ ہیں اور جن امور کی ضرورت کھیتی پوری تیار ہو کر خشک ہونے کے بعد تقسیم غلہ سے پہلے ہوتی ہے جیسے پھٹک کر دانہ صاف کرنا وغیرہ وہ ان دونوں کے ذمہ اسی حساب سے جو پیداوار غلہ میں مشروط ہے ہوتا ہے اور تقسیم غلہ کے بعد حصہ رسدی کے احراز ۱۸ کے واسطے جن امور کی ضرورت ہوتی ہے جیسے اٹھا کر گھر پہنچانا وغیرہ تو یہ کام دونوں میں سے ہر ایک پر اپنے اپنے حصہ کے واسطے لازم ہے اور امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ انہوں نے کھیتی کاٹنے اور کھلیان میں ڈالنے اور روندنے دانہ پاک کرنے کی شرط کاشتکار کے ذمہ جائز رکھی ہے اس وجہ سے کہ لوگوں کا تعامل پایا جاتا ہے اور ہمارے بعض مشائخ اور النہر نے بھی اسی پر فتویٰ دیا ہے اور اسی کو مشائخ خراسان میں سے نصر بن یحیٰی و محمد بن سلمہ نے اختیار کیا ہے کذا فی البدائع۔ ظاہر الروایت کے موافق کاشتکار کے ذمہ کھیتی کاٹنے دروندنے اور دانہ پاک کرنے کی شرط لگانی مفسد ہے کذا فی فتاویٰ قاضی خان اور اسی پر فتویٰ ہے کذا فی الکبریٰ اور نصر بن یحیٰی و محمد بن سلمہ سے مروی ہے کہ انہوں نے فرمایا کہ یہ سب باتیں کاشتکار کے ذمہ ہوتی ہیں خواہ شرط لگائی ہو یا نہ لگائی ہو اس وجہ سے کہ عرف یہی ہے اور شیخ الائمہ سرخسی نے فرمایا کہ ہمارے دیار میں یہی صحیح ہے اور شیخ ابوبکر محمد بن الفضل سے مروی ہے کہ ان سے جب اس مسئلہ پر فتویٰ طلب کیا جاتا تو فرماتے تھے کہ اس میں عرف ظاہر ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

از انجملہ یہ ہے کہ جس کی طرف سے بیج نہ تھا اس کے واسطے بھوسے کی شرط کرنا۔ از انجملہ یہ ہے کہ مالک زمین کا کاشتکار کے ذمہ ایسے کام کی شرط لگائے جس کا اثر و منفعت مدت مزارعت کے بعد باقی رہے جیسے چہار دیواری بنانا و کنگرہ درست کر دینا اور نہر کھود کر تیار کر دینا اور کاریز بنانا اور اس کے مثل کام جن کا اثر و منفعت مدت مزارعت گزرنے کے بعد باقی رہتا ہے اور رباز میں گوڑ نا (ہل چلانا) پس اگر عقد میں دونوں نے بغیر صفت تثنیہ یعنی دوبارہ گوڑنے کی مطلقاً شرط کیا تو عامہ مشائخ نے فرمایا کہ مزارعت فاسد نہ ہوگی۔

---

۱: احراز : اپنے مکان میں جمع کر کے محفوظ کر لینا ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 291 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

This is the correct view: if the condition for double hoeing (weeding) was stipulated, the sharecropping agreement (Muzara'ah) becomes invalid (fasid). This is because double hoeing can mean one of two things: either hoeing once for cultivation and a second time after the harvest so that the land is returned to the owner in a tilled state; such a condition undoubtedly invalidates the contract because tilling after the harvest is not part of that year's agricultural tasks. Alternatively, it could mean hoeing twice before cultivation, and if this act's effect lasts beyond the duration of the Muzara'ah, the condition is invalid. However, if its effect does not persist, the condition will not invalidate the contract.

Regarding the rules of Muzara'ah, one rule is that tasks necessary for land improvement are obligatory for the cultivator (farmer). Tasks that involve expenses, such as fertilizing and weeding, are to be shared between both parties according to their respective shares of the harvest. The same applies to harvesting, transporting to the threshing floor, and threshing.^1 Another rule is that the produce is shared according to the agreed-upon terms of the contract. If the land yields nothing, neither party receives anything; the cultivator gets no wages for his labor, and the landowner gets no rent or share, regardless of who provided the seeds. This is mentioned in 'Badai'. If a calamity strikes before maturity, neither party has a claim against the other; this is found in 'Zakheera'.

Furthermore, the contract is not binding for the party providing the seeds but is binding for the other party. If the seed provider refuses to proceed after the contract is established, they have the right to do so, whether with or without a valid reason. However, if the other party refuses, they do not have this right without a valid excuse. This is in 'Badai'. Once seeds are sown, the contract becomes binding for both parties, and neither can terminate it without a valid reason; this is in 'Muheet'. In 'Muntaqa', it is narrated from Imam Abu Yusuf that if the seeds are provided by the landowner and handed over to the cultivator, neither can cancel the Muzara'ah. If the seeds were not yet handed over, the landowner has the right to cancel, but the cultivator does not; this is in 'Zakheera'.

Regarding the authority to compel a cultivator to plow, there are two scenarios: First, if the condition to plow was stipulated in the contract or if there was silence on the matter. If stipulated, the cultivator can be compelled. If there was silence, it depends

on whether the land yields a standard crop without plowing; if it does, the cultivator cannot be forced. If it yields nothing or an insignificant amount without plowing, then the cultivator can be compelled. The same principle applies if the cultivator refuses to irrigate the land.

It is permissible to increase or decrease the agreed-upon share of the produce. The principle is that any proportion that could validly be set at the start of the contract (like a fractional share: one-sixth, two-thirds, one-fourth, etc.) is subject to increase. However, a fixed quantity that cannot form the basis of the contract (like a fixed weight: two maunds, four maunds, etc.) cannot be increased. Decreasing the share is permissible in both scenarios.

---

^1 The expenses for these will be shared proportionately by both parties, provided these tasks are not specifically the obligation of the cultivator, as per previously mentioned legal differences.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 291 | किताब अल-मुज़ारअत (साझा खेती की पुस्तक)**

और यही सही है, और यदि दोबारा गुड़ाई करने की शर्त रखी गई, तो मुज़ारअत (साझा खेती का अनुबंध) फासिद (त्रुटिपूर्ण/अवैध) होगी। क्योंकि दोबारा गुड़ाई करने के या तो ये अर्थ हैं कि एक बार खेती के लिए गुड़ाई करे और दूसरी बार फसल कटने के बाद गुड़ाई कर दे ताकि गुड़ी हुई ज़मीन अपने मालिक के पास वापस पहुँचे; तो ऐसी शर्त निस्संदेह अनुबंध को बिगाड़ने वाली (मुफ़सिद) है, क्योंकि फसल कटने के बाद गुड़ाई करना उस वर्ष के कृषि कार्यों में से नहीं है। या फिर इसका अर्थ यह है कि खेती से पहले दो बार गुड़ाई करके खेती करे, और यह कार्य ऐसा है कि इसका प्रभाव मुज़ारअत की अवधि समाप्त होने के बाद भी बना रहता है; तो ऐसी शर्त मुफ़सिद होगी, यहाँ तक कि जहाँ कहीं इसका प्रभाव शेष नहीं रहता, वहाँ यह शर्त अनुबंध को नहीं बिगाड़ेगी।

मुज़ारअत के नियमों में से एक यह है कि कृषि सुधार के लिए जिन कार्यों की आवश्यकता होती है, वे काश्तकार (किसान) पर अनिवार्य हैं। और खेती की आवश्यकता के वे कार्य जिनमें खर्च होता है, जैसे खाद डालना और निराई आदि, तो यह खर्च दोनों पक्षों पर उनके हिस्से के अनुपात में पड़ेगा। यही नियम फसल काटने, खलिहान तक ले जाने और उसे रौंदने (मड़ाई) के लिए भी है।^1 मुज़ारअत के नियमों में यह भी है कि अनाज की पैदावार अनुबंध की शर्तों के अनुसार दोनों के बीच साझा होगी। और यदि ज़मीन में कुछ पैदा नहीं हुआ, तो दोनों में से किसी को कुछ नहीं मिलेगा, अर्थात न तो काश्तकार को उसके काम की मज़दूरी मिलेगी और न ही ज़मींदार को ज़मीन का किराया/हिस्सा मिलेगा, चाहे बीज काश्तकार की ओर से हों या ज़मींदार की ओर से। यह 'बदाए' (Badai) में उल्लेखित है। यदि फसल तैयार होने से पहले कोई दैवीय आपदा आ गई, तो किसी का दूसरे पर कोई अधिकार नहीं होगा; यह 'ज़ख़ीरा' में है।

नियमों में यह भी है कि बीज देने वाले पक्ष की ओर से यह अनुबंध अनिवार्य (लाज़िम) नहीं होता, जबकि दूसरे पक्ष के लिए अनिवार्य होता है। यहाँ तक कि यदि बीज देने वाले ने मुज़ारअत अनुबंध के बाद इनकार कर दिया कि वह खेती नहीं करना चाहता, तो उसे इसका अधिकार है, चाहे उसने किसी कारण (उज़्र) से इनकार किया हो या बिना किसी कारण के। लेकिन यदि दूसरे पक्ष ने इनकार किया, तो उसे बिना किसी ठोस कारण के ऐसा अधिकार नहीं है। यह 'बदाए' में है। और यदि ज़मीन में बीज बो दिए गए हों, तो मुज़ारअत का अनुबंध दोनों पक्षों के लिए अनिवार्य हो जाएगा, यहाँ तक कि बिना किसी ठोस कारण के कोई भी इसे निरस्त नहीं कर सकता; यह 'मुहीत' (Muheet) में है। 'मुनतका' (Muntaqa) में इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत है कि यदि बीज मालिक की ओर से हों और उसने

काश्तकार को सौंप दिए हों, तो दोनों में से किसी को अनुबंध रद्द करने का अधिकार नहीं होगा। और यदि उसने बीज काश्तकार को नहीं दिए हों, तो मालिक को रद्द करने का अधिकार होगा, काश्तकार को नहीं; यह 'ज़ख़ीरा' में है।

एक मुद्दा यह है कि काश्तकार को हल चलाने के लिए मजबूर करने का अधिकार होना या न होना; इसकी दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि दोनों ने अनुबंध में हल चलाने की शर्त रखी हो या इस पर मौन रहे हों। यदि शर्त रखी गई थी, तो काश्तकार को मजबूर किया जाएगा। यदि मौन रहे हों, तो देखा जाएगा कि यदि ज़मीन ऐसी है जिसमें बिना हल चलाए सामान्य रूप से पैदावार होती है, तो काश्तकार को मजबूर नहीं किया जाएगा। लेकिन यदि ज़मीन ऐसी है कि बिना हल चलाए बिल्कुल पैदावार नहीं होती या बहुत ही कम होती है, तो काश्तकार को हल चलाने के लिए विवश किया जाएगा। इसी प्रकार सिंचाई के मामले में भी यही नियम है।

अनाज के हिस्से में जो शर्त तय हुई है, उसे बढ़ाना या घटाना जायज़ है। सिद्धांत यह है कि वह मात्रा जो अनुबंध के समय तय की जा सकती है (जैसे साझा हिस्सा - छठा, दो-तिहाई, एक-चौथाई आदि), उसमें वृद्धि संभव है। लेकिन जो मात्रा अनुबंध की बुनियाद नहीं बन सकती (जैसे निश्चित मात्रा - दो मन, चार मन आदि), उसमें वृद्धि संभव नहीं है। घटाना दोनों स्थितियों में जायज़ है।

---

^1 इनका खर्च दोनों पर हिस्से के अनुसार होगा, बशर्ते ये कार्य काश्तकार पर अनिवार्य न हों, जैसा कि पहले के मतभेदों में वर्णित है।

---

اور یہی صحیح ہے اور اگر دوبارہ گوڑنا شرط کیا تو مزارعت فاسد ہوگی کیونکہ دوبارہ گوڑنے کے یا تو یہ معنی ہیں کہ ایک دفعہ زراعت کے واسطے گوڑنے اور دوسری دفعہ کھیتی کٹنے کے بعد گوڑ دے تاکہ گوڑی ہوئی زمین اپنے مالک کے پاس واپس پہنچے تو ایسی شرط بلا شک مفسد ہے کیونکہ بعد کھیتی کٹنے کے گوڑنا اس سال کے کاموں میں سے نہیں ہے اور یا یہ معنی ہیں کہ قبل زراعت کے دوبارہ گوڑ کر زراعت کرے اور یہ کام ایسا ہے کہ اس کا اثر وضع مدت مزارعت کے بعد بھی باقی رہتا ہے تو یہ شرط مفسد ہوگی حتی کہ جہاں کہیں اس کا اثر وضع باقی نہیں رہتا ہے وہاں یہ شرط مفسد نہ ہوگی اور رہے احکام مزارعت سو از جملہ یہ ہے کہ اصلاح زراعت کے واسطے جن کاموں کی ضرورت پڑتی ہے وہ کاشتکار پر واجب ہیں اور جو کام زراعت کی ضرورت کے ایسے ہیں کہ ان میں خرچہ پڑتا ہے جیسے کھاد ڈالنا اور نکائی وغیرہ تو یہ خرچہ دونوں پر ہر ایک کے حصہ کے موافق پڑے گا اور یہی حال کھیتی کاٹنے اور کھلیان میں لی جانے اور روندنے کا ہے ۱۸ـہ اور از جملہ یہ ہے کہ پیداوار غلہ دونوں میں موافق شرط عقد کے مشترک ہوگا اور از جملہ یہ ہے کہ اگر زمین میں کچھ نہ پیدا ہوا تو دونوں میں سے کسی کو کچھ نہ ملے گا یعنی نہ کاشتکار کو اپنے کام کی اجرت ملے گی اور نہ زمیندار کو زمین کا پوتہ ملے گا خواہ بیج کاشتکار کی طرف سے ٹھہرے ہوں یا زمیندار کی طرف سے ٹھہرے ہوں یہ بدائع میں ہے اور اگر تیار و پختہ ہونے سے پہلے کھیتی پر کوئی آفت پڑ گئی تو دونوں میں سے کسی کا دوسرے پر کچھ حق واجب نہ ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے اور از جملہ یہ ہے کہ بیج دینے والے کی طرف سے یہ عقد لازم نہیں ہوتا ہے اور دوسرے عاقد کی طرف لازم ہوتا ہے حتی کہ اگر بیج والے نے بعد عقد مزارعت قرار دینے کے اس سے انکار کر دیا اور کہا کہ میں اس زمین کی

زراعت نہیں چاہتا ہوں تو اس کو اختیار ہے خواہ اس نے کسی عذر سے انکار کیا یا بلا عذر انکار کیا ہو اور اگر دوسرے عاقد نے انکار کیا تو اس کو بدون عذر کے ایسا اختیار نہیں ہے یہ بدائع میں ہے اور اگر زمین میں تخم ریزی کردی تو عقد مزارعت دونوں جانب لازم ہو جائے گا حتی کہ بدون عذر کے دونوں میں سے کوئی اس کے بعد فسخ عقد نہیں کر سکتا ہے یہ محیط میں ہے اور منتقٰی میں ہے امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ٹھہرے ہوں اور اس نے کاشتکار کو سپرد کیے تو دونوں میں سے کسی کو مزارعت باطل کرنے کا اختیار نہ ہوگا اور اگر اس نے بیج کاشتکار کو نہ دیے ہوں تو مالک زمین کو عقد مزارعت باطل کرنے کا اختیار ہوگا اور کاشتکار کو نہ ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے۔

از جملہ یہ کہ کاشتکار کو زمین میں جوتنے پر مجبور کرنے کی ولایت حاصل ہونا یا حاصل نہ ہونا ہے اور اس کی دو صورتیں ہیں ایک یہ کہ دونوں نے عقد میں زمین جوتنے کی شرط کر لی ہو یا اس شرط سے سکوت کیا ہو پس اگر جوتنے کی شرط کر لی ہو تو کاشتکار اس پر مجبور کیا جائے گا اور اگر اس سے سکوت کیا ہو تو دیکھا جائے گا کہ اگر زمین ایسی ہو کہ اس میں بدون جوتنے کے زراعت معتاد کہ جیسے عرف میں لوگوں کا مقصود ہوتا ہے پیدا ہوتی ہو تو کاشتکار پر جوتنے کے واسطے جبر نہ کیا جائے گا اور اگر ایسی ہو کہ بدون جوتنے کے اس میں بالکل پیداوار نہ ہوتی ہو یا ہوتی ہو مگر ایسی قلیل کہ اس کے مثل کا کاشتکاری سے مقصود نہیں ہوتی ہے تو کاشتکار پر جوتنے کے واسطے جبر کیا جائے گا اور علیٰ ہذا اگر کاشتکار نے سینچنے سے انکار کیا پس اگر زمین ایسی ہو کہ بارش کا پانی اس کو کافی ہوتا ہو اور بدون سینچنے کے اس میں زراعت معتاد پیدا ہوتی ہو تو کاشتکار پر سینچنے کے واسطے جبر نہ کیا جائے گا اور اگر ایسی زمین ہو کہ اس کو فقط بارش کا پانی کافی نہ ہوتا ہو تو کاشتکار پر جبر کیا جائے گا۔

از جملہ یہ ہے کہ پیداوار غلہ میں جو باہم شرط قرار پائی ہے اس پر زیادہ کرنا یا گھٹانا جائز ہے اور اصل یہ ہے کہ جو مقدار ایسی ہے کہ ابتدائے عقد اس پر قرار پا سکتا ہے وہ محتمل زیادت بھی ہے (یعنی حصہ شائع مثلاً چھٹا حصہ، دو تہائی، چوتھائی وغیرہ) اور جو مقدار ایسی ہے کہ عقد اس پر قرار نہیں پا سکتا ہے وہ محتمل زیادت بھی نہیں ہے (جیسے دو من، چار من وغیرہ) اور گھٹانا دونوں صورتوں میں جائز ہے اور مزارعت میں گھٹانا و بڑھانا۔

---

۱۸ـہ ان کا خرچہ دونوں پر بقدر حصہ پڑے گا اور واضح ہو کہ یہ اس صورت میں ہے کہ یہ کام کاشتکار پر لازم نہ ہوں چنانچہ یہ اختلاف سابق میں ذکر کیا گیا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 292 Book of Sharecropping (Muzara'at)**

An increase [in share] occurs in two ways: either from the side of the sharecropper (farmer) or from the side of the landowner. It is essential that the seeds were stipulated to be provided either by the sharecropper or by the landowner. If, after harvesting the crops, in a case where the seeds were provided by the sharecropper and the sharecropping (Muzara'at) was, for example, on a half-share basis, and the sharecropper increased a one-sixth portion from his share for the landowner, making the landowner's share two-thirds, and the landowner agreed to this, then such an increase is not permissible. The grain harvest will remain shared between them according to the original condition. However, if the landowner increased the share for the sharecropper by a sixth from his own share and both agreed, then this increase is permissible. The reason for this is that in the first case, the sharecropper had already fully derived the benefit (manfa'at) from what he had leased (ijarah), i.e., the subject matter of the contract (ma'qud 'alayh), and after completing the work, he increased the rent (potah). Such an increase (because the subject matter no longer exists) is not permissible. In the second case, the rent due from the sharecropper was reduced; making such a reduction does not require the persistence of the subject matter, and thus it is permissible even when the subject matter is no longer there. If the seeds were from the landowner and the landowner made an increase, it is not permissible; but if the sharecropper increased it, it is permissible. All of this applies when the increase is made after harvesting. If either party makes an increase before harvesting, then whoever increases it, it is permissible. This is as stated in al-Bada'i'.

**Chapter Two: On the Types of Sharecropping (Muzara'at)**

The fundamental principle is that it is permissible to lease land in exchange for a portion of the land's produce (grain). Similarly, it is permissible to hire a sharecropper in exchange for a portion of the land's produce. Apart from these two, leasing land for a portion of its produce for any other thing is not permissible; this is mentioned in al-Muhit. Furthermore, for those who hold sharecropping to be permissible, there are two types according to their view: first, that the land belongs to one of the two parties, and second, that the land belongs to both of them. If the land belongs to only one, there are two scenarios: one where the seed is from one party, and second where the seed is from both. If the land belongs to one and the seed is from one party, there are six scenarios, of which three are valid (ja'iz) and three are irregular (fasid). Among the three valid scenarios: one is that the land is from one party, and the seeds, oxen, and labor are from the other, and they stipulate a known portion of

the grain yield for the landowner; this is permissible. The second is that labor is from one party and everything else (land, seeds, oxen) is from the other; this is also permissible. The third scenario is that the land and seeds are from one party and the oxen and labor are from the other; this is also permissible. One of the three irregular scenarios is that the land and oxen are from one party and the rest (seeds and labor) are from the other; this is irregular (fasid). It is narrated from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) that this is permissible because it is a common custom ('urf). However, the fatwa (legal ruling) is according to Zahir al-Riwayah because the benefit of the land is not of the same genus as the benefit of oxen.

1. Qala al-Hurra: The meaning here is that one-sixth of the total was increased, and it does not mean that one-sixth of the half was added to the half, as might initially seem apparent.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 292 किताब-उल-मुज़ारअत (बटाई पर खेती की किताब)**

हिस्सा बढ़ाना दो तरह से होता है: या तो काश्तकार (किसान) की ओर से होगा या ज़मीन के मालिक की ओर से होगा। यह निश्चित है कि बीज या तो काश्तकार की ओर से तय हुए होंगे या ज़मीन के मालिक की ओर से। यदि फसल काटने के बाद, ऐसी स्थिति में जहाँ बीज काश्तकार की ओर से थे और मुज़ारअत (बटाई) मान लीजिए आधे-आधे हिस्से पर थी, और काश्तकार ने अपने हिस्से में से एक-छठा भाग ज़मीन के मालिक के लिए बढ़ा दिया जिससे मालिक का हिस्सा दो-तिहाई हो गया और मालिक इस पर राज़ी हो गया, तो ऐसी बढ़ोतरी जायज़ (वैध) नहीं है। अनाज की पैदावार दोनों में पूर्व शर्त के अनुसार ही बँटेगी। और यदि ज़मीन के मालिक ने काश्तकार को अपने हिस्से में से छठा भाग बढ़ाकर दे दिया और दोनों राज़ी हो गए, तो यह बढ़ाना जायज़ है। इसका कारण यह है कि पहली स्थिति में काश्तकार ने जो चीज़ किराये (इजारा) पर ली थी, उससे 'मक़ूद अलैह' (संविदा की वस्तु) यानी लाभ पूरी तरह प्राप्त करके अपना काम पूरा करने के बाद किराये (पोत/लगान) में बढ़ोतरी की है, और ऐसी बढ़ोतरी (मक़ूद अलैह के मौजूद न रहने के कारण) जायज़ नहीं है। दूसरी स्थिति में जो लगान काश्तकार पर अनिवार्य था, उसमें कमी कर दी गई, और ऐसी कमी करने के लिए मक़ूद अलैह का बने रहना ज़रूरी नहीं है, इसलिए यह जायज़ है। यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों और ज़मीन के मालिक ने हिस्सा बढ़ाया तो वह जायज़ नहीं होगा, लेकिन यदि काश्तकार ने बढ़ाया तो जायज़ होगा। यह सब उस स्थिति में है जब फसल काटने के बाद किसी ने बढ़ोतरी की हो। यदि फसल काटने से पहले किसी ने भी हिस्सा बढ़ाया, तो चाहे कोई भी बढ़ाए, वह जायज़ है। ऐसा 'बिदाया' में वर्णित है।

## अध्याय 2: मुज़ारअत (बटाईदारी) के प्रकारों के वर्णन में

मूल सिद्धांत यह है कि ज़मीन की कुछ पैदावार के बदले ज़मीन को किराये पर लेना जायज़ है। इसी तरह ज़मीन की कुछ पैदावार के बदले काश्तकार को काम पर रखना जायज़ है। इन दोनों के अलावा किसी और चीज़ को ज़मीन की पैदावार के बदले किराये पर लेना जायज़ नहीं है, यह 'मुहीत' में दर्ज है। फिर जो व्यक्ति मुज़ारअत को जायज़ मानता है, उसके अनुसार मुज़ारअत की दो किस्में हैं: पहली यह कि ज़मीन दोनों में से किसी एक की हो, और दूसरी यह कि ज़मीन दोनों की साझा हो। यदि ज़मीन एक ही की हो, तो उसकी दो स्थितियाँ हैं: एक यह कि बीज एक ही पक्ष की ओर से हो, और दूसरी यह कि बीज दोनों पक्षों की ओर से हो। यदि ज़मीन एक की हो और बीज भी एक ही पक्ष का हो, तो इसमें छह स्थितियाँ बनती हैं, जिनमें से तीन जायज़ हैं और तीन फ़ासिद (दोषपूर्ण/अमान्य) हैं।

तीन जायज़ स्थितियों में से एक यह है कि ज़मीन एक की हो और बीज, बैल तथा मेहनत (मजदूरी) दूसरे की ओर से हो, और दोनों ने ज़मीन के मालिक के लिए पैदावार का एक निश्चित हिस्सा तय किया हो, तो यह जायज़ है। दूसरी स्थिति यह है कि एक पक्ष केवल मेहनत करे और बाकी सब (ज़मीन, बीज, बैल) दूसरे पक्ष का हो, तो यह भी जायज़ है। तीसरी स्थिति यह है कि ज़मीन और बीज दोनों एक ही पक्ष के हों और बैल तथा मेहनत दूसरे पक्ष की हो, तो यह भी जायज़ है। तीन फ़ासिद स्थितियों में से एक यह है कि ज़मीन और बैल एक पक्ष के हों और बाकी सब (बीज और मेहनत) दूसरे पक्ष की हो, तो यह फ़ासिद है। इमाम अबू यूसुफ (रह.) से वर्णित है कि यह भी जायज़ है क्योंकि ऐसा रिवाज (उर्फ़) पाया जाता है। लेकिन फ़तवा 'ज़ाहिर-उर-रिवायत' के अनुसार है, क्योंकि ज़मीन का लाभ बैलों के लाभ के समान प्रकार का नहीं है।

1. 'काल-अल-हुर्रा' के अनुसार यहाँ मुराद यह है कि कुल का छठा हिस्सा बढ़ाया गया है, न कि आधे हिस्से में आधे का छठा हिस्सा बढ़ाया गया है, जैसा कि स्पष्ट रूप से प्रतीत हो सकता है।

---

بڑھانا دو طرح پر ہوتا ہے یا تو کاشتکار کی طرف سے ہو گا یا مالک زمین کی طرف سے ہو گا اور ضرور ہے کہ بیج یا تو کاشتکار کی طرف سے ٹھہرے ہوں گے یا مالک زمین کی طرف سے ٹھہرے ہوں گے اور اگر کھیتی کاٹنے کے بعد درصورتیکہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور مزارعت مثلاً آدھے کی بٹائی پر ہو اور کاشتکار نے اپنے حصہ میں سے ایک چھٹا حصہ مالک زمین کے واسطے بڑھا دیا اور مالک زمین کے واسطے دو تہائی کر دیا اور مالک زمین اس پر راضی ہو گیا تو ایسی زیادتی جائز نہیں ہے اور حاصلات غلہ دونوں میں موافق شرط کے مشترک رہے گی اور اگر مالک زمین نے کاشتکار کو اپنے حصہ میں سے چھٹا حصہ بڑھا دیا اور دونوں راضی ہو گئے تو بڑھانا جائز ہے اور اس کی وجہ یہ ہے کہ صورت اوّل میں کاشتکار نے جو چیز اجارہ پر لی تھی اس سے معقود علیہ یعنی منفعت پوری حاصل کر کے اپنا کام تمام کرنے کے بعد پوتہ پر بڑھایا ہے اور ایسا بڑھانا (بوجہ معقود علیہ قائم نہ ہونے کے) جائز نہیں ہے اور دوسری صورت میں جو پوتہ کاشتکار پر واجب ہوا تھا اس میں سے کمی کر دی اور ایسی کمی کرنا معقود علیہ کے قائم ہونے کو نہیں چاہتا ہے (پس) معقود علیہ قائم نہ ہونے کی حالت میں بھی جائز ہے اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوئے اور مالک زمین نے زیادتی کر دی تو جائز نہیں ہے اور اگر کاشتکار نے بڑھایا تو جائز ہے یہ سب اس صورت میں ہے کہ کھیتی کاٹنے کے بعد دونوں میں سے کسی نے زیادتی کر دی ہو اور اگر کھیتی کاٹنے سے پہلے دونوں میں سے کسی نے زیادہ کیا تو چاہے کوئی زیادہ کرے جائز ہے کذا فی البدائع۔

**باب دوم: انواع مزارعت کے بیان میں**

اصل یہ ہے کہ زمین کی بعض پیداوار غلہ کے عوض زمین کو اجارہ لینا جائز ہے اسی طرح زمین کی بعض پیداوار غلہ کے عوض کاشتکار کو اجارہ پر لینا جائز ہے اور دونوں کے سوائے دوسری چیز کو زمین کی بعض پیداوار غلہ کے عوض اجارہ پر لینا جائز نہیں ہے یہ محیط میں ہے پھر جو شخص مزارعت کو جائز رکھتا ہے اس کے قول پر مزارعت کی دو قسمیں ہیں اوّل یہ کہ زمین دونوں میں سے کسی ایک کی ہو اور دوئم یہ کہ زمین دونوں کی ہو پس اگر زمین ایک ہی کی ہو تو اس کی دو صورتیں ہیں ایک یہ کہ بیج ایک ہی کی طرف سے ہو اور دوسری یہ کہ بیج دونوں کی طرف سے ہو پس اگر زمین ایک ہی کی ہو اور بیج ایک ہی کی طرف سے ہو تو اس میں چھ صورتیں ہیں جن میں سے تین صورتیں جائز ہیں اور تین صورتیں فاسد ہیں پس تینوں جائز صورتوں میں سے ایک یہ ہے کہ زمین ایک کی ہو اور بیج اور بیل اور کار گزار زراعت دوسرے کی طرف سے ہوں اور دونوں نے مالک زمین کے واسطے پیداوار غلہ سے کوئی حصہ معلوم شرط کیا تو جائز ہے کیونکہ اس صورت میں جس کی طرف سے بیج ٹھہرے ہوں بعض معلوم حاصلات زمین کے عوض زمین کا اجارہ پر لینے والا قرار پائے گا اور دوسرے یہ ہے کہ دونوں میں سے ایک کی طرف سے سے کار زراعت ہو اور باقی سب دوسرے کی طرف سے ہو تو یہ بھی جائز ہے کیونکہ جس کی طرف سے بیج ٹھہرے ہیں وہ اپنی زمین میں اپنے بیل اور بیج سے کار زراعت کرنے کے واسطے بعض پیداوار معلوم کے عوض دوسرے کا اجارہ پر لینے والا قرار پائے گا اور تیسری یہ صورت ہے کہ زمین اور بیج دونوں میں سے ایک کی طرف سے ہو اور بیل اور کار گزار زراعت دوسرے کی طرف سے ہو تو یہ بھی جائز ہے کیونکہ مالک زمین اس غرض سے دوسرے کا اجارہ پر لینے والا ٹھہرے گا تا کہ دوسرا اپنے بیل اور اپنے کام سے مالک زمین کی زمین میں اسی کے بیج ہوئے اور تینوں فاسد صورتوں میں سے ایک یہ ہے کہ زمین اور بیل ایک کی طرف سے ہو اور باقی دوسرے کی طرف سے ہو تو یہ فاسد ہے اور امام ابو یوسفؒ سے

مروی ہے کہ جائز ہے بسبب اس کے کہ عرف پایا جاتا ہے۔ مگر فتویٰ ظاہر الروایۃ کے موافق ہے اس واسطے کہ زمین کی منفعت ہم جنس منفعت گاؤ نہیں ہے کیونکہ زمین کی منفعت یہ ہے

۱۔ قال الحرہ مراد یہ ہے کہ کل کا چھٹا حصہ بڑھا دیا اور مراد نہیں ہے کہ نصف میں نصف کا چھٹا حصہ بڑھایا جیسا کہ ظاہر میں متبادر ہوتا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 293 Kitab al-Muzara'a (The Book of Sharecropping)**

...that it [the land] produces seeds by its natural power, and the utility of the bullock is that it is used for agricultural labor. Thus, since the benefit of the bullock is not of the same genus as the benefit of the land, the bullock shall not be subordinate to the land in the contract. Therefore, the hiring (ijara) of the bullock was intentionally stipulated in exchange for a portion of the land's produce, and this is corrupt (fasid/ invalid). Accordingly, if bullocks are provided solely by one party, the contract is invalid. The second scenario is where seeds are provided by one party and all other requirements by the other; this is also invalid because, in this case, the party stipulated to provide the seeds will be deemed the one leasing the land. Consequently, possession (takhliya) between him and the land is necessary, whereas the land will not actually come into his possession; rather, it will remain with the person performing the agricultural tasks like sowing, etc. Likewise, if three or four people enter into a partnership and only bullocks or only seeds are provided by one side, the contract shall be invalid. The third scenario is where seeds and bullocks are provided by one party, and the land and agricultural labor are stipulated for the other; this too is invalid. All of this applies when the land is from one party and the seeds are from the other. Furthermore, if the land belongs to one person and it is stipulated that seeds be provided by both, and both parties stipulate that the agricultural labor be performed by someone other than the landowner, with the condition that the grain produce be divided equally between them, the contract will be invalid. This is because, in this situation, the landowner essentially says to the worker, "Farm my land with my seeds on the condition that the entire produce will be mine, and farm with your seeds on the condition that the entire produce will be yours." This is invalid because this sharecropping arrangement (muzara'a) is in exchange for the total yield on the condition of granting half the land as a gratuitous loan (ariyah) to the worker. Similarly, if both stipulate that the grain yield be shared in thirds—one-third for the worker and two-thirds for the landowner, or vice-versa—it is also invalid because it involves granting some loan (ariyah) of the land. When the sharecropping contract becomes invalid, whatever produce is obtained shall be shared between both parties according to the proportion of their respective seeds. Then, whatever the landowner has taken from the land's produce remains rightfully his because it was produced on his land from his ownership; however, a fair market rent (ajr al-mithl) for half of the land will be due from the other party because the

latter obtained full benefit from his land via an invalid contract. As for what the other party took from the produce, an amount equivalent to his seeds will be lawful (halal) for him, and from the remainder, after deducting the rent for half the land and any expenses incurred, he shall give the rest in charity (sadqa). This is because this excess was acquired from another's land through an invalid contract.

If the land and seeds are provided by both parties, and it is stipulated that the agricultural labor be performed by both, on the basis that whatever produce is obtained shall be shared half-and-half between them, then it is permissible. This is because each contracting party has effectively become the one farming half the land with their own seeds; thus, in this contract, a loan (ariyah) of half the land is found, but without the condition that the borrower (mustaeer) perform the agricultural labor for the lender. Conversely, if the land is shared between two parties and they stipulate that the seeds and agricultural labor be provided by one of them on the basis that whatever produce is obtained shall be shared half-and-half, this is not permissible. This is because the party who is not providing seeds is essentially saying to the other, "Farm your land with your seeds on the condition that the entire produce will be yours, and farm my land with your seeds on the condition that the produce will be mine." Thus, for him, this sharecropping became conditional upon taking the entire yield, and therefore it is not permissible. Similarly, if one party provides seeds and stipulates that the labor be the responsibility of the other, with the condition that the total produce be shared half-and-half, it is also not permissible because seeds—

1. The reason is the same as mentioned in the second scenario.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 293 किताब अल-मुज़ारअह (बटाई/साझेदारी की पुस्तक)**

कि [भूमि] अपनी प्राकृतिक शक्ति से बीज उगाए और बैल का लाभ यह है कि वह कृषि कार्य में काम आए। अतः जब बैल का लाभ भूमि के लाभ के समान प्रकार का न हुआ, तो बैल अनुबंध (अक्द) में भूमि के अधीन नहीं होगा। इसलिए बैल का किराया (इजारा) जानबूझकर भूमि की कुछ उपज के बदले तय हुआ और यह फ़ासिद (दूषित/अमान्य) है। चुनाँचे, यदि एक पक्ष की ओर से केवल बैल ही हों तो अनुबंध फ़ासिद होता है। और दूसरी स्थिति यह है कि बीज एक की ओर से हों और बाकी सब दूसरे की ओर से हों, तो यह भी फ़ासिद है क्योंकि इस स्थिति में जिसकी ओर से बीज तय हुए हैं, वह भूमि को किराए पर लेने वाला माना जाएगा, अतः उसके और भूमि के बीच दखल (तखलिया) होना ज़रूरी है, जबकि भूमि उसके कब्जे में नहीं आएगी बल्कि जो व्यक्ति बीज बोने (तुख्म-रेज़ी) आदि का कृषि कार्य करेगा, भूमि उसी के पास रहेगी। इसी प्रकार यदि तीन या चार लोगों ने साझेदारी की और एक पक्ष की ओर से केवल बैल हों या केवल बीज हों, तो अनुबंध फ़ासिद होगा। और तीसरी स्थिति यह है कि बीज और बैल एक की ओर से हों और भूमि तथा कृषि कार्य दूसरे की ओर से तय हो, तो यह भी फ़ासिद है। यह सब उस स्थिति में है जब दोनों में से एक की ओर से भूमि हो और बीज दूसरे की ओर से हों। और यदि भूमि एक की हो और यह शर्त ठहरी कि बीज दोनों की ओर से हों, फिर यदि खेती का काम करना भूमि के स्वामी के अलावा दूसरे के ज़िम्मे दोनों ने शर्त की और दोनों ने यह भी शर्त की कि उपज दोनों में बराबर विभाजित हो, तो अनुबंध फ़ासिद होगा। क्योंकि इस स्थिति में भूमि स्वामी ने मानो बटाईदार (आमिल) से यह कहा कि 'तू मेरी भूमि में मेरे बीजों से इस शर्त पर खेती कर कि समस्त उपज मेरी होगी और अपने बीजों से खेती कर इस शर्त पर कि समस्त उपज तेरी होगी', तो यह फ़ासिद है क्योंकि यह मज़ारअत (साझेदारी) पूरी उपज के बदले इस शर्त पर है कि बटाईदार को आधी भूमि उधार (आरियत) दे। इसी प्रकार यदि दोनों ने यह शर्त लगाई कि अनाज की उपज दोनों में एक-तिहाई साझा हो, जिसमें से एक-तिहाई बटाईदार का हो और दो-तिहाई भूमि स्वामी का हो या इसके विपरीत शर्त की, तो भी फ़ासिद है क्योंकि इसमें भी भूमि में कुछ उधार (आरियत) देना शामिल है। और जब मज़ारअत फ़ासिद हुई, तो जो कुछ उपज होगी वह दोनों में उनके बीजों की मात्रा के अनुपात में साझा होगी। फिर भूमि स्वामी ने भूमि की उपज से जो कुछ लिया है वह उसके पास वैध रहेगा क्योंकि वह उसकी भूमि में उसके स्वामित्व से उत्पन्न हुआ, और दूसरे पर उसकी आधी भूमि का बाज़ार मूल्य किराया (अज्र-अल-मिस्ल) अनिवार्य होगा क्योंकि दूसरे ने उसकी भूमि से फ़ासिद अनुबंध के रूप में पूर्ण लाभ प्राप्त किया है। और जो कुछ उसने उपज में से

लिया है, उसमें से बीजों की मात्रा के बराबर उसके लिए वैध (हलाल) होगा, और बाकी में से आधी भूमि का किराया और जो कुछ उसका खर्च हुआ है वह निकाल कर शेष को दान (सदका) कर देगा, क्योंकि यह वृद्धि उसे दूसरे की भूमि से फ़ासिद अनुबंध के माध्यम से प्राप्त हुई है।

यदि भूमि और बीज दोनों पक्षों की ओर से हों और कृषि कार्य की शर्त दोनों ने दोनों पर लगाई इस अनुबंध पर कि जो कुछ उपज हो वह दोनों में आधी-आधी साझा हो, तो यह जायज़ है। क्योंकि प्रत्येक पक्ष आधी भूमि में अपने बीजों से खेती करने वाला हो गया, अतः इस अनुबंध में आधी भूमि का आरियत (उधार) देना पाया गया लेकिन इस शर्त के साथ नहीं कि उधार लेने वाला (मुस्तईर) उसके लिए कृषि कार्य कर दे। और यदि भूमि दोनों में साझा हो और दोनों ने यह शर्त की कि बीज और कृषि कार्य एक की ओर से हो इस अनुबंध पर कि जो कुछ उपज हो वह दोनों में आधी-आधी साझा हो, तो यह जायज़ नहीं है। क्योंकि जिसकी ओर से बीज तय नहीं हुए हैं, वह दूसरे से मानो यह कहने वाला हो गया कि 'तू अपनी भूमि में अपने बीजों से इस शर्त पर खेती कर कि समस्त उपज तेरी होगी और मेरी भूमि में अपने बीजों से खेती कर इस शर्त पर कि जो कुछ उपज होगी वह मेरी होगी', अतः उसके हक में यह मज़ारअत पूरी उपज लेने की शर्त पर हुई, इसलिए जायज़ नहीं होगी। और यदि बीज एक ने दिए और कार्य दूसरे के ज़िम्मे शर्त किया और शर्त लगाई कि समस्त उपज दोनों में आधी-आधी साझा हो, तो भी जायज़ नहीं है क्योंकि बीज—

1. कारण वही है जो दूसरी स्थिति में वर्णित हुआ।

---

کہ اپنی طبعی قوت سے بیج اگائے اور بیل کی منفعت یہ ہے کہ زراعت کے کام میں آئے پس جب بیل کی منفعت ہم جنس منفعت زمین نہ ہوئی تو بیل عقد میں زمین کے تابع نہ ہوگا پس بیل کا اجارہ مقصوداً بعض حاصلات زمین کے عوض قرار پایا اور یہ فاسد ہے چنانچہ اگر ایک کی طرف سے فقط بیل ہی ہو تو فاسد ہوتا ہے اور دوسری صورت یہ ہے کہ بیج ایک کی طرف سے ہو اور باقی دوسرے کی طرف سے ہو تو یہ فاسد ہے اس واسطے کہ اس صورت میں جس کی طرف سے بیج ٹھہرے ہیں وہ زمین کو اجارہ پر لینے والا قرار پائے گا پس اس کے اور زمین کے درمیان تخلیہ ہونا ضرور ہے حالانکہ اس کے قبضہ میں نہ آئے گی بلکہ جو شخص تخم ریزی وغیرہ کا کار زراعت انجام دے گا اس کے پاس رہے گی اور علیٰ ہذا اگر تین یا چار آدمی نے شرکت کی اور ایک طرف سے فقط بیل ہو یا فقط بیج ہوئے تو عقد فاسد ہوگا اور تیسری صورت یہ ہے کہ بیج اور بیل ایک کی طرف سے ہو اور زمین اور کار زراعت دوسرے کی طرف سے ٹھہرے تو یہ بھی فاسد ہے یہ سب اس صورت میں ہے کہ دونوں میں سے ایک کی طرف سے زمین ہو اور بیج دوسرے کی طرف سے ہوں اور اگر زمین ایک کی ہو اور یہ شرط ٹھہری کہ بیج دونوں کی طرف سے ہوں پس اگر زراعت کا کام کرنا مالک زمین کے سوائے دوسرے کے ذمہ دونوں نے شرط کی اور دونوں نے یہ بھی شرط کی کہ پیداوار غلہ دونوں میں برابر تقسیم ہو تو عقد فاسد ہوگا اس لیے کہ اس صورت میں مالک زمین نے عامل سے گویا یہ کہا کہ تو میری زمین میں میرے بیجوں سے اس شرط سے زراعت کر کہ تمام پیداوار غلہ میرا ہوگا اور اپنے بیجوں سے زراعت کر اس شرط سے کہ تمام پیداوار غلہ تیرا ہوگا تو یہ فاسد ہے اس واسطے کہ یہ مزارعت بعوض پوری حاصلات کے بدین شرط ہے کہ عامل کو آدھی زمین عاریت دے اسی طرح اگر دونوں نے یہ شرط لگائی کہ

پیداوار غلہ دونوں میں تہائی مشترک ہو جس میں سے ایک تہائی عامل کی ہو اور دو تہائی مالک زمین کی ہو یا اس کے برعکس شرط کی تو بھی فاسد ہے کیونکہ اس میں بھی زمین میں کچھ عاریت دینا ہے اور جب مزارعت فاسد ہوئی تو جو کچھ پیداوار ہو وہ دونوں میں ہر ایک کے بیجوں کی مقدار کے حساب سے مشترک ہوگا پھر مالک زمین نے پیداوار زمین سے جو کچھ لیا ہے وہ اس کے پاس مسلم رہے گا کیونکہ اس کی زمین میں اس کی ملک سے پیدا ہوا اور دوسرے پر اس کی آدھی زمین کا اجر المثل واجب ہوگا کیونکہ دوسرے نے اس کی زمین سے بطور عقد فاسد کے پوری منفعت حاصل کی ہے اور جو کچھ اس نے پیداوار میں سے لیا ہے اس میں سے بقدر بیجوں کے اس کو حلال ہوگا اور باقی میں سے آدھی زمین کا کرایہ اور جو کچھ اس کا خرچہ پڑا ہے وہ بھی نکال کر باقی کو صدقہ کر دے گا اس واسطے کہ یہ زیادتی اس کو دوسرے کی زمین سے بطور عقد فاسد حاصل ہوئی ہے۔

اگر زمین و بیج دونوں کی طرف سے ہوں اور کار زراعت کی دونوں نے دونوں پر شرط گیا اس قرار داد پر کہ جو کچھ پیداوار ہو وہ دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو تو جائز ہے اس واسطے کہ ہر ایک عاقد نصف زمین میں اپنے بیجوں سے زراعت کرنے والا ہو گیا پس اس عقد میں نصف زمین کا عاریت دینا پایا گیا مگر اس شرط سے نہیں کہ مستعیر اس کے واسطے زراعت کا کام کر دے اور اگر زمین دونوں میں مشترک ہو اور دونوں نے یہ شرط کی کہ بیج اور کار زراعت ایک کی طرف سے ہو اس قرارداد پر کہ جو کچھ پیداوار ہو وہ دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو تو یہ نہیں جائز ہے کیونکہ جس کی طرف سے بیج نہیں ٹھہرے ہیں وہ دوسرے سے گویا یہ کہنے والا ہو گیا کہ تو اپنی زمین میں اپنے بیجوں سے اس شرط سے زراعت کر کہ تمام پیداوار تیری ہوگی اور میری زمین میں اپنے بیجوں سے زراعت کر بدیں شرط کہ جو کچھ پیداوار ہوگی وہ میری ہوگی پس اس کے حق میں یہ مزارعت بشرط پوری حاصلات لے لینے کے ہوئی پس جائز نہ ہو

گی اور اگر بیج ایک نے دے اور عمل دوسرے کے ذمہ شرط کیا اور شرط لگائی کہ تمام پیداوار دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو تو بھی نہیں جائز ہے کیونکہ بیج

۱ وجہ وہی ہے ہے جو دوسری صورت میں مذکور ہوئی۔

---

**Fatwa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (394) Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

If the provider stipulates gifting or lending half of the seeds to the other party in exchange for them performing the agricultural work on half of the land, this is void (batil). Similarly, if a condition is set where two-thirds of the produce goes to the worker and one-third to the seed provider, or vice versa (two-thirds to the seed provider and one-third to the worker), it is not permissible. This is because the seed provider has stipulated a larger share of the harvest solely on the basis of providing seeds. However, if the seeds are provided by the worker and both parties agree that two-thirds of the produce will go to the worker, it is permissible. This is because the party not providing seeds is effectively leasing their land on the condition that the farmer sows his own seeds, with the farmer receiving two-thirds of the produce; this arrangement is valid.

If both the land and seeds are provided jointly by both parties, and they agree that one person will be responsible for the labor with a 50/50 split of the harvest, this is permissible. The one who does not work is, in effect, seeking assistance from the other for their portion of the labor. If the land and seeds are shared equally, but they stipulate that the worker (1) receives two-thirds of the produce and the other receives one-third, then according to the more authentic of two narrations, this is not permissible. Since the entire crop is produced from seeds owned equally in common, the produce must also be shared equally. Thus, the extra share taken by the worker is regarded as compensation for their labor on a joint property, yet someone working on joint property is not entitled to wages.

In a situation where the party not providing seeds is stipulated to receive two-thirds of the produce, it is also not permissible. This is because the extra portion stipulated from the farmer's share was claimed without providing land, seeds, or labor (hence, it is invalid). Furthermore, if the land is shared and they stipulate that the party other than the farmer provides two-thirds of the seeds on the condition of an equal split of the produce, it is invalid. This is recorded in Fatwa Qazi Khan. If a landowner wishes to take seeds from another person for cultivation and share the produce equally, a legal stratagem (heela) is to buy half the seeds from that person, after which the seller waives the price of those seeds, and then they agree to share the produce of the land equally. This is mentioned in Khazanat al-Muftin.

There are several rulings regarding an invalid (fasid) sharecropping contract: firstly, no labor is legally binding upon the farmer because such an obligation arises from a contract, and the contract is not valid. Secondly, the entire produce belongs to the party who provided the seeds, whether it was the landowner or the farmer. Thirdly, if the seeds belonged to the landowner, he must pay the farmer "Ajr al-Mithl" (fair market wage) (2) for his work.

(1) Meaning the person who performs the agricultural labor. (2) The typical wage given for such work.

देने वाले ने अपने वास्ते आधी ज़मीन में दूसरे की तरफ़ से खेती का काम करने के बदले में आधे बीज का हिबा (दान) करना या उधार देना शर्त किया और यह बातिल (अमान्य) है। इसी तरह अगर दो-तिहाई पैदावार काम करने वाले के लिए और एक-तिहाई बीज देने वाले के लिए शर्त की गई, या बीज देने वाले के लिए दो-तिहाई और काम करने वाले के लिए एक-तिहाई शर्त की गई, तो भी यह जायज़ नहीं है। क्योंकि बीज देने वाले ने सिर्फ बीजों की वजह से अपने लिए पैदावार में ज़्यादा हिस्से की शर्त लगाई है। और अगर बीज काम करने वाले की तरफ़ से हों और दोनों ने दो-तिहाई पैदावार काम करने वाले के लिए तय की, तो यह जायज़ है। क्योंकि जिसकी तरफ़ से बीज नहीं हैं, उसने अपनी ज़मीन इस शर्त पर खेती के लिए दी कि काश्तकार उसे अपने बीजों से बोए और दो-तिहाई पैदावार काश्तकार की होगी, और यह जायज़ है।

और अगर ज़मीन और बीज दोनों की तरफ़ से हों और दोनों ने एक व्यक्ति के ज़िम्मे खेती का काम करने की शर्त लगाई और आधी-आधी बँटाई की शर्त रखी, तो यह जायज़ है। जिस व्यक्ति ने काम नहीं किया, उसने मानो अपने हिस्से के काम के लिए दूसरे की मदद चाही है। और अगर ज़मीन दोनों की बराबर साझी हो और बीज भी दोनों की तरफ़ से बराबर हों, और शर्त यह रखी गई कि काश्तकार (1) को दो-तिहाई पैदावार और दूसरे को एक-तिहाई मिलेगी, तो दो रिवायतों में से सबसे सही रिवायत के मुताबिक यह जायज़ नहीं है। क्योंकि पूरी पैदावार दोनों के बीजों से हुई है और बीज दोनों के बराबर साझी हैं, इसलिए पैदावार भी दोनों में बराबर होनी चाहिए। अतः दो-तिहाई लेने वाले ने जो ज़्यादा लिया है, वह उसने अपने काम के बदले लिया है, जबकि जो व्यक्ति साझी संपत्ति में काम करता है, वह उजरत (मज़दूरी) का हकदार नहीं होता।

अगर इस स्थिति में, जिसके बीज नहीं हैं, उसके लिए दो-तिहाई पैदावार की शर्त लगाई हो, तो भी जायज़ नहीं है क्योंकि उस व्यक्ति ने काश्तकार के हिस्से में से जो बढ़ोतरी अपने लिए चाही, वह बिना ज़मीन, बिना बीज और बिना काम के चाही है (इसलिए जायज़ नहीं होगी)। और अगर ज़मीन साझी हो और दोनों ने काश्तकार के अलावा दूसरे के ज़िम्मे दो-तिहाई बीज देने की शर्त रखी, इस शर्त पर कि पैदावार बराबर बँटेगी, तो यह जायज़ नहीं है। और अगर दोनों ने काश्तकार के ज़िम्मे दो-तिहाई बीज देने की शर्त रखी कि पैदावार बराबर होगी, तो भी जायज़ नहीं है। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। एक व्यक्ति के पास ज़मीन है और वह चाहता है कि दूसरे से बीज लेकर खेती करे और पैदावार आधी-आधी हो, तो इसका कानूनी रास्ता (हीला) यह है कि वह उस व्यक्ति से आधे बीज खरीदे, फिर

बेचने वाला उसे उन बीजों की कीमत से मुक्त कर दे, फिर वह उससे कहे कि अपनी ज़मीन में इन बीजों से इस शर्त पर खेती कर कि पैदावार आधी-आधी होगी। यह खज़ाना अल-मुफ़्तीन में है।

फासिद (अमान्य) मुज़ारअत के कुछ नियम हैं: एक यह कि काश्तकार पर कोई काम अनिवार्य नहीं होता क्योंकि काम की अनिवार्यता अनुबंध (अक़्द) से होती है और अनुबंध सही नहीं है। दूसरा यह कि जो भी पैदावार होगी, वह उसकी होगी जिसकी तरफ़ से बीज थे। तीसरा यह कि अगर बीज ज़मीन मालिक के थे, तो उसे काश्तकार को 'अज्र-ए-मिस़्ल' (उचित मज़दूरी) (2) देना होगा।

(1) यानी जो व्यक्ति खेती का काम करेगा। (2) ऐसे काम के लिए जो सामान्य मज़दूरी होती है।

---

دینے والے نے اپنے واسطے نصف زمین میں دوسرے کی طرف سے کار زراعت انجام دینے کے مقابلہ میں آدھے بیج کا ہبہ کرنا یا قرض دینا شرط کیا اور یہ باطل ہے اس طرح اگر دو تہائی حاصلات عامل کے واسطے اور ایک تہائی بیج دینے والے کے واسطے شرط کیا یا بیج دینے والے کے واسطے دو تہائی اور عامل کے واسطے ایک تہائی شرط کیا تو بھی نہیں جائز ہے اس واسطے کہ بیج دینے والے نے محض بیجوں کی وجہ سے اپنے واسطے حاصلات میں سے زیادہ حصہ کی شرط لگائی ہے اور اگر بیج عامل کی طرف سے ہوں اور دونوں نے دو تہائی پیداوار عامل کے واسطے شرط لگائی تو جائز ہے اس واسطے کہ جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں وہ اپنی زمین اس شرط سے مزارعت پر دینے والا ہوا کہ کاشتکار اس کو اپنے بیجوں سے بوئے بدیں شرط کہ دو تہائی پیداوار کاشتکار کی ہوگی اور یہ جائز ہے اور اگر زمین اور بیج دونوں کی طرف سے ہوں اور دونوں نے ایک شخص کے ذمہ کار زراعت انجام دینے کی شرط لگائی اور آدھے کی بٹائی کی شرط لگائی تو جائز ہے پس جس نے کام نہیں کیا ہے اس نے گویا اپنے حصہ کے واسطے کار زراعت میں دوسرے سے استعانت چاہی ہے اور اگر زمین دونوں میں برابر مشترک ہو اور بیج برابر دونوں کی طرف سے ہوں اور دونوں نے یہ شرط کی کہ کاشتکار(۱) کو دو تہائی پیداوار اور دوسرے کو ایک تہائی ملے گی تو دو روایتوں میں سے اصح روایت کے موافق یہ جائز نہیں ہے اس واسطے کہ تمام پیداوار دونوں کے بیجوں سے پیدا ہوئی ہے اور بیج برابر دونوں کے مشترک ہیں تو پیداوار بھی دونوں میں برابر مشترک ہوگی پس دو تہائی والے نے جو زیادہ لیا ہے وہ اپنے کام ہی کے مقابلہ میں لیا ہے حالانکہ جو شخص محل مشترک میں کام انجام دیتا ہے وہ مستحق اجرت نہیں ہوتا ہے۔

اگر اس صورت میں جس کے بیج نہیں ہیں اس کے واسطے دو تہائی پیداوار کی شرط لگائی ہو تو بھی نہیں جائز ہے اس واسطے کہ اس شخص نے کاشتکار کے حصہ میں سے جس قدر زیادتی اپنے واسطے شرط کی وہ بغیر زمین و بغیر تخم و بغیر کام کے شرط کی ہے (پس جائز نہ ہوگی) اور اگر زمین دونوں میں مشترک ہو اور دونوں نے سوائے کاشتکار کے دوسرے کے ذمہ دو تہائی بیج دینے شرط کیے بدیں شرط کہ جو کچھ پیداوار ہو وہ دونوں میں برابر مشترک ہو گی تو جائز نہیں ہے اس واسطے کہ اس نے کاشتکار کے کام کے مقابلہ میں چھٹا حصہ بیج قرض دینے کی شرط کی ہے اور اگر دونوں نے کاشتکار کے ذمہ دو تہائی بیج دینے اس شرط سے شرط کیے کہ جو کچھ پیداوار ہو وہ دونوں میں برابر مشترک ہوگی تو بھی جائز نہیں ہے کیونکہ غیر کا کاشتکار نے گویا در واقع کاشتکار سے یوں کہا کہ اپنی زمین میں اپنے بیجوں سے اس شرط سے زراعت کر کہ تمام پیداوار تیری ہوگی اور میری زمین میں اپنے اور میرے بیجوں سے اس شرط سے زراعت کر کہ تمام پیداوار میری ہوگی پس یہ مزارعت بشرط تمام حاصلات لے لینے کے ہے اور یہ جائز نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص کے پاس زمین ہے اس نے چاہا کہ دوسرے شخص سے بیج لے کر زراعت کرے اور جو پیداوار ہو وہ دونوں میں نصفا نصف مشترک رہے تو اس بات میں اس کے لیے حیلہ یہ ہے کہ اس شخص سے آدھے بیج خریدے پھر بائع اس کو ان نصف بیجوں کے ثمن سے بری کر دے پھر اس سے کہے کہ اپنی زمین میں ان تمام بیجوں سے اس شرط سے زراعت کر کہ جو پیداوار ہو وہ ہم دونوں میں نصفا نصف مشترک ہوگی یہ خزانہ المفتین میں ہے اور مزارعت فاسد کے احکام چند طرح کے ہیں از انجملہ یہ کہ کاشتکار پر کار زراعت میں سے کوئی کام واجب نہیں ہوتا ہے کیونکہ اس کا واجب ہونا تو عقد کی وجہ سے ہوتا ہے اور عقد صحیح نہیں ہے اور از انجملہ یہ ہے کہ جو کچھ پیداوار ہو وہ سب اس کی ہوتی ہے جس کی طرف سے بیج تھے خواہ مالک زمین کے بیج ہوں یا کاشتکار کے بیج ہوں اور

اس پر کچھ صدقہ کرنا واجب نہیں ہوتا ہے اور از انجملہ یہ ہے کہ اگر بیج زمین دار کے ہوں تو اس پر کاشتکار کے واسطے اجر المثل واجب (۲) ہوگا اور اگر بیج کاشتکار کے ہوں تو کاشتکار پر واجب ہوگا کہ زمین دار کو اس کی

(۱) یعنی جو شخص کار زراعت انجام دے گا (۲) ایسے کام کی جو اجرت ہوتی ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 295 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

He shall pay the *Ujr al-Mithl* (fair rent/wage) of the land. Among the rules is that when the seeds are provided by the landowner and he becomes entitled to the entire produce, and he gives the cultivator his *Ujr al-Mithl* (1) as compensation, then the entire produce will be lawful (halal) for him. If the seeds belong to the cultivator and he becomes entitled to the entire produce and has paid the landowner the *Ujr al-Mithl* for his land, then the entire produce will not be lawful for him. Instead, he shall take from the produce an amount equal to his seeds and the *Ujr al-Mithl* of the land, which will be lawful for him, and he shall give the excess (2) as charity (*sadaqah*). Another rule is that in a flawed (*fasid*) sharecropping contract, the *Ujr al-Mithl* does not become obligatory until the land is put to use. Furthermore, in a flawed contract, the use of the land makes the *Ujr al-Mithl* obligatory even if no produce was obtained from the said land. Another point is that the *Ujr al-Mithl* obligatory in a flawed contract is subject to the condition that it shall not exceed the *miqdar-e-musamma* (agreed amount) (3). According to Imam Muhammad (RA), the full *Ujr al-Mithl* will be obligatory. This difference of opinion exists in cases where the wages, i.e., the share of each party, were specified in the contract. If they were not specified, then by consensus (*ijma*), the full *Ujr al-Mithl* is obligatory; this is mentioned in 'Bada'i'.

In a case where the sharecropping contract would be flawed according to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) or where it would be valid according to them but flawed according to the *Imam-e-Azam* (Imam Abu Hanifa), and the cultivator or landowner wishes for the cultivation to be lawful for them, the legal stratagem (*hila*) is that which is narrated from Sheikh Ismail al-Zahid (RA): The shares of the landowner and the cultivator should be separated. Then, the landowner says to the cultivator, "I owe you the *Ujr al-Mithl* of the land or compensation for land damage, and you owe me the *Ujr al-Mithl* for your work and the work of your oxen, and the equivalent of your seeds. So, will you settle (*sulh*) with me for this much wheat regarding the right I have against you and the right you have against me?" Then the cultivator says, "I have settled." Or the cultivator says to the landowner, "I owe you for my work and the work of my oxen as *Ujr al-Mithl*, and you owe me the *Ujr al-Mithl* for your land or compensation for land damage. So, have you settled for this much wheat regarding the right I have against you and the right you have against me?" Then the landowner says, "I have settled." Once both are satisfied, the settlement is valid, and the portion each receives becomes lawful for them because

the right lies between the two of them; no one else (2) has a right outside these two. Thus, when both are satisfied, the cause of prohibition is removed; this is in 'Nihaya'. Furthermore, in a case where the sharecropping is not flawed, if a condition was made for one party to provide oxen, the contract will not be flawed despite the condition of hiring oxen. Even if a second contract was stipulated within the sharecropping contract—namely, hiring oxen—making it a 'contract within a contract' (*safqa dar safqa*), the reason the sharecropping is not flawed is that hiring oxen merely signifies whose responsibility it is to provide them, and in reality, hiring the oxen is not the primary objective. The proof for this is that if the person upon whom the condition of hiring oxen was placed did not hire them but instead dug the land himself, or plowed with oxen he received as a gift or inheritance, or bought oxen and plowed with them, it is permissible even though he did not hire them. Thus, it is understood that the hiring of oxen...

---

**Footnotes:** 1. Al-Muharram said: This implies that he may also deduct his own expenses. 2. Al-Muharram said: Legally, despite the lack of produce, *Ujr al-Mithl* is obligatory, but out of piety (*taqwa*), one should not take it in such a case, as taking a Muslim's wealth without giving something in return (is improper). 3. Al-Muharram said: The explanation is that if, for example, the specified share is half, and suppose the produce was 40 *maunds*, then the share is 20 *maunds*. If the *Ujr al-Mithl* for the cultivator's work is 30 *maunds*, 10 *maunds* will be waived and he will receive no more than 20 *maunds*. However, according to Imam Muhammad (RA), he would receive the full 30 *maunds*. And if, for example, the *Ujr al-Mithl* is 15 *maunds*, then 15 *maunds* will be given instead of 20, not 20 *maunds*; this is by unanimous agreement. (1) Of such land whose status is known. (2) His right is upon him and his right is upon him.

ज़मीन का उज्र-ए-मिस्ल (उचित किराया) अदा करे और उसमें से यह कि जब बीज ज़मीन मालिक की तरफ से हों और वह पूरी पैदावार का हक़दार हो जाए और उसने किसान को उसका उज्र-ए-मिस्ल (१) बतौर ज़मानत दिया, तो पूरी पैदावार उसके लिए हलाल होगी। और अगर बीज किसान के हों और वह पूरी पैदावार का हक़दार हो और ज़मीन मालिक को उसकी ज़मीन का उज्र-ए-मिस्ल अदा कर दिया, तो पूरी पैदावार उसके हक़ में हलाल न होगी, बल्कि वह पैदावार में से अपने बीजों के बराबर और ज़मीन के उज्र-ए-मिस्ल के बराबर लेगा, और यह उसके लिए हलाल होगी, और अतिरिक्त हिस्से (२) को सदक़ा (दान) कर देगा। और इसमें से यह भी है कि फासिद (त्रुटिपूर्ण) मुज़ारअत में उज्र-ए-मिस्ल तब तक वाजिब नहीं होता जब तक कि ज़मीन का इस्तेमाल न किया जाए। और इसमें से यह भी है कि फासिद मुज़ारअत में ज़मीन का इस्तेमाल करने से उज्र-ए-मिस्ल वाजिब हो जाता है, चाहे उक्त ज़मीन में कोई पैदावार न हुई हो। और इसमें से यह भी है कि फासिद मुज़ारअत में जो उज्र-ए-मिस्ल वाजिब होता है, उसके साथ यह शर्त है कि वह 'मिक़दार-ए-मुसम्म' (तयशुदा राशि) (३) से ज़्यादा न हो। और इमाम मुहम्मद (रह.) के नज़दीक पूरा उज्र-ए-मिस्ल वाजिब होगा। यह मतभेद उस स्थिति में है जब अनुबंध (अक़्द) में पारिश्रमिक, यानी दोनों में से प्रत्येक का हिस्सा स्पष्ट कर दिया गया हो। और अगर स्पष्ट न किया गया हो, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से पूरा उज्र-ए-मिस्ल वाजिब होगा; यह 'बदाए' में लिखा है।

जिस स्थिति में साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) के नज़दीक मुज़ारअत फासिद होगी या जिस स्थिति में साहिबैन के नज़दीक मुज़ारअत सही होती है और इमाम-ए-आज़म के नज़दीक फासिद होगी, और किसान या ज़मीन मालिक चाहे कि हमारे लिए खेती हलाल हो जाए, तो उसके लिए हकीम (उपाय) वह है जो शेख इस्माइल अल-ज़ाहिद (रह.) से वर्णित है: ज़मीन मालिक और किसान दोनों का हिस्सा अलग किया जाए, फिर ज़मीन मालिक किसान से कहे, "मुझ पर तुम्हारी ज़मीन का उज्र-ए-मिस्ल या ज़मीन का नुक़सान वाजिब हुआ है, और तुम पर मेरा तुम्हारे काम का और तुम्हारे बैलों के काम का उज्र-ए-मिस्ल और तुम्हारे बीजों के जैसा वाजिब हुआ है; तो क्या तुम इतने गेहूँ पर उस हक़ से, जो मेरा तुम पर वाजिब है और जो तुम्हारा मुझ पर वाजिब है, आपसी समझौता (सुलह) करते हो?" फिर किसान कहे, "मैंने सुलह कर ली।" या किसान ज़मीन मालिक से कहे, "मुझ पर तुम्हारा और तुम्हारे बैलों के काम का उज्र-ए-मिस्ल वाजिब हुआ है, और तुम पर मेरी ज़मीन का उज्र-ए-मिस्ल या ज़मीन का नुक़सान वाजिब हुआ है; तो क्या तुमने उस हक़ से, जो मेरा

तुम पर वाजिब है और जो तुम्हारा मुझ पर वाजिब है, इतने गेहूँ पर सुलह की?" फिर ज़मीन मालिक कहे, "मैंने सुलह कर ली।" फिर जब दोनों इस बात पर राज़ी हो गए, तो सुलह जायज़ है और जो हिस्सा जिसे मिला, वह उसके लिए हलाल होगा, क्योंकि हक़ उन दोनों के बीच ही है; उन दोनों (२) के अलावा किसी और का हक़ नहीं है। अतः जब दोनों आपस में राज़ी हो गए, तो हराम होने का कारण समाप्त हो गया; यह 'निहाया' में है। फिर जिस स्थिति में मुज़ारअत फासिद न हो, अगर ऐसी स्थिति में बैल एक के ज़िम्मे शर्त किए गए, तो इस बात के बावजूद कि एक के ज़िम्मे बैल किराए पर लेना शर्त किया है, मुज़ारअत फासिद न होगी, चाहे मुज़ारअत के अनुबंध में एक दूसरा अनुबंध शर्त किया गया हो, यानी बैल किराए पर लेना। अतः यह 'सफ़क़ा दर सफ़क़ा' (अनुबंध पर अनुबंध) हो जाता है, लेकिन मुज़ारअत का फासिद न होना इस कारण से है कि बैल किराए पर लेने से तात्पर्य केवल यह प्रकट करना है कि किसके ज़िम्मे बैल वाजिब हैं, और वास्तव में बैलों को किराए पर लेना उद्देश्य नहीं है। और इसका प्रमाण यह है कि जिस पर बैल किराए पर लेने की शर्त लगाई जाती है और उसने बैल किराए पर नहीं लिए, बल्कि स्वयं ही ज़मीन खोद दी या ऐसे बैल से ज़मीन जोती जो उसे उपहार में मिला है या विरासत में मिला है, या कोई बैल ख़रीद कर उससे ज़मीन जोती, तो यह जायज़ है, भले ही उसने बैल किराए पर न लिए हों। अतः ज्ञात हुआ कि बैल किराया...

---

**पाद-टिप्पणियाँ:** १. अल-मुहर्रम ने कहा: इसमें संकेत है कि वह अपना ख़र्चा भी निकाल ले। २. अल-मुहर्रम ने कहा: नियम के अनुसार, पैदावार न होने के बावजूद उज्र-ए-मिस्ल वाजिब होता है, लेकिन तक़वा (परहेज़गारी) के नाते ऐसी स्थिति में इसे नहीं लेना चाहिए, क्योंकि किसी मुस्लिम का धन बिना किसी वस्तु के लेना (अनुचित) है। ३. अल-मुहर्रम ने कहा: इसका विवरण यह है कि मान लीजिए तयशुदा हिस्सा आधा है और मान लीजिए पैदावार ४० मन हुई, तो २० मन हुआ। और मान लीजिए कि किसान के काम का उज्र-ए-मिस्ल ३० मन होता है, तो १० मन छोड़ दिए जाएंगे और २० मन से ज़्यादा नहीं मिलेगा। हाँ, इमाम मुहम्मद (रह.) के नज़दीक पूरे ३० मन मिलेंगे। और अगर मान लीजिए कि उज्र-ए-मिस्ल १५ मन है, तो २० मन के बजाय १५ मन दिए जाएंगे, २० मन नहीं दिए जाएंगे, और इस पर सहमति है। (१) ऐसी ज़मीन का जो पता चलती हो। (२) उसका हक़ उस पर है और उसका हक़ उस पर है।

---

زمین کا اجر المثل ادا کرے اور از انجملہ یہ کہ جب بیج زمین دار کی طرف سے ہوں اور تمام پیداوار کا مستحق ہوا اور اس نے کاشتکار کو اس کا اجر المثل (۱) ضمان دیا تو تمام پیداوار اس کے واسطے حلال ہو گی اور اگر بیج کاشتکار کے ہوں اور تمام پیداوار کا مستحق ہوا اور زمین دار کو اس کی زمین کا اجر المثل ادا کر دیا تو تمام پیداوار اس کے حق میں حلال نہ ہو گی بلکہ پیداوار میں سے بقدر اپنے بیجوں کے اور بقدر زمین کے اجر المثل کے لیے لے گا اور یہ اس کو حلال ہو گی اور زیادتی (۲) کو صدقہ کر دے گا اور از انجملہ یہ ہے کہ مزارعت فاسدہ میں اجر المثل واجب نہیں ہوتا ہے تا وقتیکہ زمین کو استعمال میں لانا نہ پایا جائے اور از انجملہ یہ ہے کہ مزارعت فاسدہ میں زمین کو استعمال میں لانے سے اجر المثل واجب ہو جاتا ہے اگر چہ زمین مذکور میں کچھ پیداوار نہ ہوئی اور از انجملہ یہ ہے کہ مزارعت فاسدہ میں جو اجر المثل واجب ہوتا ہے اس کے ساتھ یہ شرط ہے کہ مقدار مسمے (۳) سے زیادہ نہ ہو گا اور امام محمدؒ کے نزدیک پورا اجر المثل واجب ہو گا اور یہ اختلاف ایسی صورت میں ہے کہ عقد میں اجرت یعنی دونوں میں سے ہر ایک کا حصہ بیان کر دیا گیا ہو اور اگر بیان نہ کیا گیا ہو تو بالاجماع پورا اجر المثل واجب ہو گا یہ بدائع میں ہے۔

جس صورت میں صاحبینؒ کے نزدیک مزارعت فاسد ہو گی یا جس صورت میں صاحبینؒ کے نزدیک مزارعت صحیح ہوتی ہے اور امام اعظمؒ کے نزدیک فاسد ہو گی اور کاشتکار یا زمین دار نے چاہا کہ ہم کو زراعت حلال ہو جائے تو اس کے واسطے حیلہ وہ ہے جس شیخ اسمعیل الزاہدؒ سے نقل کیا گیا ہے کہ زمین دار کاشتکار دونوں کا حصہ الگ کیا جائے پھر زمین دار کاشتکار سے یوں کہے کہ میرا تجھ پر زمین کا اجر المثل یا نقصان زمین واجب ہوا ہے اور تیرا مجھ پر

تیرے کام اور تیرے بیلوں کے کام کا اجر المثل و تیرے بیجوں کا مثل واجب ہوا ہے پس آیا تو اس قدر گیہوں پر اس طرح حق سے جو تیرا مجھ پر واجب ہوا ہے اس سے جو تجھ پر واجب ہوا ہے باہمی صلح کرتا ہے پس کاشتکار کہے کہ میں نے صلح کر لی یا کاشتکار زمین دار سے کہے کہ میرا تجھ پر میرے اور میرے بیلوں کے کام کا اجر المثل واجب ہوا ہے اور تیرا مجھ پر تیری زمین کا اجر المثل یا نقصان زمین واجب ہوا ہے پس آیا تو نے اس حق سے جو تیرا مجھ پر واجب ہے اس سے جو میرا تجھ پر واجب ہوا ہے اس قدر گیہوں پر صلح کی پس مالکِ زمین کہے کہ میں نے صلح کر لی پھر جب دونوں اس بات پر راضی ہو گئے تو صلح جائز ہے اور جو حصہ جس کو پہنچا وہ اس کو حلال ہو گا اس واسطے کہ حق انہیں دونوں میں دائر ہے ان دونوں (۲) سے باہر کسی کا حق نہیں ہے پس جب دونوں باہم راضی ہو گئے تو حرمت کا سبب دور ہو گیا یہ نہایہ میں ہے پھر جس صورت میں مزارعت فاسد نہ ہو اگر ایسی صورت میں بیل ایک کے ذمہ شرط کیے تو باوجود اس کے کہ ایک کے ذمہ بیل کرایہ پر لینا شرط کیا ہے مزارعت فاسد نہ ہو گی اگر چہ عقد مزارعت میں ایک دوسرا عقد شرط کیا یعنی بیل کرایہ پر لینا پس مشروط صفقہ در صفقہ ہو جاتا ہے مگر مزارعت فاسد نہ ہونا اس وجہ سے ہے کہ بیل کرایہ پر لینے سے مراد فقط اس بات کا اظہار ہے کہ کس کے ذمہ بیل واجب ہیں اور در حقیقت بیلوں کو کرایہ پر لینا مقصود نہیں ہے اور اس پر دلیل یہ ہے کہ جس پر بیل کرایہ لینے کی شرط کی جاتی ہے اور اس نے بیل کرایہ پر نہ لیے بلکہ خود ہی زمین کو گوڑ دیا یا ایسے بیل سے جو اس کو ہبہ میں ملا ہے یا میراث میں ملا ہے زمین کو جوتا یا کوئی بیل خرید کر اس سے زمین جوتی تو یہ جائز ہے اگر چہ اس نے بیل کرایہ پر نہیں لیے پس معلوم ہوا کہ بیل کرایہ

---

**حواشی:** ۱۔ قال المحرم اس میں اشارہ ہے کہ اپنا خرچہ بھی نکال لے۔ ۲۔ قال المحرم از راہ حکم باوجود عدم پیداوار کے اجر المثل واجب ہوتا ہے مگر ازراہ تقویٰ ایسی صورت میں اس کو لینا نہ

چاہیے کہ اخذ مال مسلم بغیر شے ہے۔ ۳۔ قال المحرم اس کا بیان یہ ہے کہ مثلاً حصہ مسمیٰ نصف ہے اور فرض کرو کہ پیداوار چالیس من ہوئی تو بیس من ہوا اور اجر المثل ایسے کاشتکار کے کام کا فرض کرو کہ تیس من ہوتا ہے تو دس من ساقط ہوں گے بیس من سے زیادہ نہ ملے گا ہاں امام محمدؒ کے نزدیک پورے تیس من ملیں گے اور اگر فرض کرو کہ اجر المثل پندرہ من ہے تو بہ معنی بیس پندرہ من دیا جائے گا بیس من نہ دیا جائے گا اور یہ بالاتفاق ہے۔ (۱) ایسی زمین کا جو پتہ پڑتا ہو۔ (۲) اس کا حق اس پر ہے اور اُس کا حق اس پر ہے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 [Page 296] Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

The purpose of mentioning taking [oxen] on rent is only that the responsibility for the plowing oxen was stipulated upon one of the two parties, and it is not actually intended to hire the oxen (so that 'rent upon rent' does not become necessary and the sharecropping contract does not become void). As stated in Al-Muhit.

**Chapter 1: Regarding the conditions found in Sharecropping (Muzara'ah)**

Zaid gave land and seeds to Amr on the condition that he himself should cultivate the land with his oxen and servants. If both stipulated that the entire produce would belong to Zaid, this is permissible. Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) has mentioned the same in *Kitab al-Asl*. By saying it is permissible, Imam Muhammad did not mean that the sharecropping contract (Muzara'ah) itself is valid, because this cannot be a contract of Muzara'ah. This is because in Muzara'ah, whatever is produced must be shared between the two parties, whereas in this case, the produce is not shared. Rather, it means that stipulating the entire produce for Zaid is permissible. Similarly, if both stipulated that the entire produce belongs to the cultivator, i.e., Amr, this is also permissible. Imam Muhammad's intent is that stipulating the entire produce for Amr is permissible. If the seeds are provided by the cultivator, i.e., Amr, there are several scenarios: One is that the landowner says to Amr, for example, "Cultivate my land with your seeds on the condition that the entire produce will be mine." This is void (fasid) because in this case, Amr becomes the one hiring the land in exchange for the entire produce. Shariah has permitted hiring land in exchange for a portion of the produce as an exception to general legal analogy (qiyas). Therefore, hiring land in exchange for the entire produce remains subject to the original analogy (which does not permit it). Since this contract is void, the entire produce will belong to Amr, and Amr will be liable to pay the 'fair rent' (*Ajr al-Misl*) of the land to the owner. Then, for Amr, a portion of that produce equivalent to his seeds and what he paid as fair rent will be lawful (*halal*), and he should give the remainder as charity (*sadqah*). If the landowner said to the cultivator, "Cultivate my land for me with your seeds on the condition that the entire produce will be mine," this condition is valid. The cultivator will be considered as lending the seeds to the landowner, the entire produce will belong to the landowner, and the cultivator will be considered an assistant to the landowner out of kindness. If the landowner says to the cultivator, "Cultivate my land for me with your seeds on the condition that the entire produce will be yours," this is void. The entire produce will belong to the

landowner, and the landowner will owe the cultivator seeds equivalent to his seeds and a fair wage for his labor. However, if the landowner said to the cultivator, "Cultivate in my land with your seeds on the condition that the entire produce will be yours," this is permissible. The entire produce will belong to the cultivator, and the landowner will be considered as giving his land for free use (*ariyah*). This is in *Al-Zakhiroh*.

If the landowner said to the cultivator, "Cultivate my land for me with your seeds on the condition that the entire produce will be shared half-and-half between us," then this sharecropping is valid. The entire produce will be shared equally between the two, and the sharecropper will be considered as lending his seeds to the landowner by virtue of the landowner's command to "cultivate for me." 1. Translator's note: The reason for this is that when the landowner had the land cultivated for himself, the crop belongs to him, and the condition that "the crop will be yours" carries no weight. It would follow that the cultivator should not be entitled to anything except his seeds, but fair wage (*Ajr al-Misl*) became due because the owner had promised him payment, albeit in an invalid manner (i.e., "all the crop will be yours"). For this reason, fair wage will be due, but it shall not exceed the total produce, contrary to the view of Imam Muhammad (may Allah have mercy on him).

फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 [296] किताब अल-मज़ारअत

किराये पर लेने के ज़िक्र से मक़सूद सिर्फ़ यह है कि हल जोतने के बैल दोनों में से एक के ज़िम्मे शर्त कर दिए और हक़ीक़तन बैल किराये पर लेना मक़सूद नहीं है (ताकि मुआवज़ा दर मुआवज़ा लाज़िम आए और मज़ारअत फ़ासिद हो जाए) कज़ा फ़िल मुहीत।

## बाब नंबर 1: मज़ारअत में शर्तें पाई जाने के बयान में

ज़ैद ने अम्र को ज़मीन और बीज इस शर्त से दिए कि ख़ुद आप और अपने बैल और अपने नौकरों से खेती करे, फिर अगर दोनों ने यह शर्त की कि तमाम पैदावार ज़ैद की होगी तो यह जायज़ है, ऐसा ही इमाम मुहम्मद (रह.) ने किताब अल-अस्ल में ज़िक्र फ़रमाया है और इमाम मुहम्मद (रह.) ने जायज़ कहने से यह मुराद नहीं रखी है कि मज़ारअत जायज़ है क्योंकि यह अक़्द (अनुबंध) मज़ारअत नहीं हो सकता है, इस वास्ते कि मज़ारअत में जो कुछ पैदावार हो वह दोनों में मुश्तरक (साझा) होती है हालाँकि इस सूरत में पैदावार मुश्तरक नहीं है बल्कि मुराद यह है कि पूरी पैदावार ज़ैद के वास्ते शर्त करना जायज़ है और अगर दोनों ने यह शर्त की कि पूरी पैदावार काश्तकार यानी अम्र के वास्ते है तो यह भी जायज़ है और मुराद इमाम मुहम्मद (रह.) की यह है कि अम्र के वास्ते पूरी पैदावार की शर्त लगाना जायज़ है और अगर बीज काश्तकार यानी अम्र की तरफ़ से हों तो इसकी चंद सूरतें हैं: एक यह कि मालिक-ए-ज़मीन ने मसलन अम्र से यह कहा कि मेरी ज़मीन में अपने एक गुरिया गेहूँ से इस शर्त से खेती कर कि तमाम पैदावार मेरी होगी तो यह फ़ासिद (दूषित/अमान्य) है इस वास्ते कि इस सूरत में अम्र पूरी पैदावार के बदले ज़मीन को इजारा (किराये) पर लेने वाला हो गया और शरीअत ने ज़मीन को बाज़ (कुछ) पैदावार के बदले इजारा लेना ख़िलाफ़-ए-क़यास जायज़ फ़रमाया है, लिहाज़ा पूरी पैदावार के एवज़ ज़मीन इजारा पर लेना असल क़यास पर रहा (और क़यास इसको जायज़ नहीं रखता है) और जब यह अक़्द फ़ासिद हुआ तो पूरी पैदावार अम्र की होगी और अम्र पर मालिक-ए-ज़मीन के वास्ते ज़मीन का 'अज्र अल-मिसल' (उचित किराया) वाजिब होगा, फिर अम्र के हक़ में इस पैदावार में से बक़दर अपने बीजों के और जो कुछ उसने अज्र अल-मिसल दिया है हलाल होगा और बाक़ी ज़्यादती को सदक़ा कर देगा। और अगर मालिक-ए-ज़मीन ने काश्तकार से कहा कि मेरे वास्ते मेरी ज़मीन में अपने बीजों से खेती कर दे बशर्ते कि तमाम पैदावार मेरी होगी तो यह शर्त जायज़ है और काश्तकार मालिक-ए-ज़मीन को बीज क़र्ज़ देने वाला हो जाएगा और पूरी पैदावार मालिक-ए-ज़मीन की होगी और काश्तकार इस काम में एहसान के तौर पर मालिक-ए-ज़मीन का मददगार क़रार दिया जाएगा। और अगर काश्तकार से यूँ कहा कि मेरे वास्ते मेरी ज़मीन में अपने बीजों से इस

शर्त पर खेती कर दे कि तमाम पैदावार तेरी होगी तो यह फ़ासिद है और तमाम पैदावार मालिक-ए-ज़मीन की होगी और काश्तकार के वास्ते मालिक-ए-ज़मीन पर उसके बीजों के बराबर बीज वाजिब होंगे और उसके काम के बराबर जो उजरत हो वह वाजिब होगी। और अगर काश्तकार से मालिक-ए-ज़मीन ने यह कहा कि मेरी ज़मीन में अपने बीजों से खेती कर इस शर्त पर कि तमाम पैदावार तेरी होगी तो यह जायज़ है और तमाम पैदावार काश्तकार की होगी और मालिक-ए-ज़मीन अपनी ज़मीन उसको आरियत (मुफ़्त इस्तेमाल के लिए) देने वाला क़रार दिया जाएगा, यह 'ज़ख़ीरा' में है।

अगर काश्तकार से मालिक-ए-ज़मीन ने यूँ कहा कि मेरे वास्ते मेरी ज़मीन में अपने बीजों से इस शर्त से खेती कर कि तमाम पैदावार हम दोनों में आधी-आधी मुश्तरक होगी तो यह मज़ारअत जायज़ है और तमाम पैदावार दोनों में आधी-आधी साझा होगी और मज़ारअ (बँटाईदार) अपने बीज मालिक-ए-ज़मीन को क़र्ज़ देने वाला क़रार दिया जाएगा मालिक-ए-ज़मीन के हुक्म के मुताबिक़ कि उसने उसे हुक्म दिया कि मेरे वास्ते खेती कर। १ــ अनुवादक कहता है कि इसकी वजह यह है कि जब मालिक-ए-ज़मीन ने अपने वास्ते खेती कराई तो फ़सल उसी की होगी और इस शर्त का कि फ़सल तेरी होगी कुछ एतबार नहीं है और चाहिए था कि काश्तकार के वास्ते सिवाय बीजों के अज्र अल-मिसल वाजिब न हो, मगर इस वजह से वाजिब हुआ कि मालिक ने उसे उजरत देने का वादा किया था हालाँकि बतौर फ़ासिद यानी 'तमाम फ़सल तेरी होगी', इस वजह से अज्र अल-मिसल वाजिब होगा मगर तमाम पैदावार से ज़्यादा न होगा, ख़िलाफ़-ए-मुहम्मद (रह.)।

پر لینے کے ذکر سے مقصود فقط یہ ہے کہ ہل جوتنے کے بیل دونوں میں سے ایک کے ذمہ شرط کر دیے اور حقیقتًا بیل کرایہ پر لینا مقصود نہیں ہے (تاکہ معہ در معہ لازم آئے اور مزارعت فاسد ہو جائے) کذا فی المحیط

**باب نمبر ۱: مزارعت میں شرطیں پائی جانے کے بیان میں**

زید نے عمرو کو زمین اور بیج اس شرط سے دیے کہ خود آپ اور اپنے بیل اور اپنے نوکروں سے زراعت کرے پس اگر دونوں نے یہ شرط کی کہ تمام پیداوار زید کی ہو گی تو یہ جائز ہے ایسا ہی امام محمدؒ نے کتاب الاصل میں ذکر فرمایا ہے اور امام محمدؒ نے جائز کہنے سے یہ مراد نہیں رکھی ہے کہ مزارعت جائز ہے کیونکہ یہ عقد مزارعت نہیں ہو سکتا ہے اس واسطے کہ مزارعت میں جو کچھ پیداوار ہو وہ دونوں میں مشترک ہوتی ہے حالانکہ اس صورت میں پیداوار مشترک نہیں ہے بلکہ مراد یہ ہے کہ پوری پیداوار زید کے واسطے شرط کرنا جائز ہے اور اگر دونوں نے یہ شرط کی کہ پوری پیداوار کاشتکار یعنی عمرو کے واسطے ہے تو یہ بھی جائز ہے اور مراد امام محمدؒ کی یہ ہے کہ عمرو کے واسطے پوری پیداوار کی شرط لگانا جائز ہے اور اگر بیج کاشتکار یعنی عمرو کی طرف سے ہوں تو اس کی چند صورتیں ہیں ایک یہ کہ مالک زمین نے مثلاً عمرو سے یہ کہا کہ میری زمین میں اپنے ایک گریہ گیہوں سے اس شرط سے زراعت کر کہ تمام پیداوار میری ہوگی تو یہ فاسد ہے اس واسطے کہ اس صورت میں عمرو پورے پیداوار کے بدلے زمین کا اجارہ پر لینے والا ہو گیا اور شرع نے زمین کو بعوض بعض پیداوار کے اجارہ لینا خلاف قیاس جائز فرمایا ہے پس پوری پیداوار کی عوض زمین اجارہ پر لینا اصل قیاس پر رہا (اور قیاس اس کو جائز نہیں رکھتا ہے) اور جب یہ عقد فاسد ہوا تو پوری پیداوار عمرو کی ہو گی اور

عمرو پر مالک زمین کے واسطے زمین کا اجر المثل واجب ہو گا پھر عمرو کے حق میں اس پیداوار میں سے بقدر اپنے بیجوں کے اور جو کچھ اس نے اجر المثل دیا ہے حلال ہو گا اور باقی زیادتی کو صدقہ کر دے گا اور اگر مالک زمین نے کاشتکار سے کہا کہ میرے واسطے میری زمین میں اپنے بیجوں سے زراعت کردے بشرطیکہ تمام پیداوار میری ہو گی تو یہ شرط جائز ہے اور کاشتکار مالک زمین کو بیج قرض دینے والا ہو جائے گا اور پوری پیداوار مالک زمین کی ہو گی اور کاشتکار اس کام میں ازراہ احسان مالک زمین کا معین قرار دیا جائے گا اور اگر کاشتکار سے یوں کہا کہ میرے واسطے میری زمین میں اپنے بیجوں سے بدیں شرط زراعت کردے کہ تمام پیداوار تیری ہو گی تو یہ فاسد ہے اور تمام پیداوار مالک زمین کی ہو گی اور کاشتکار کے واسطے مالک زمین پر اس کے بیجوں کے مثل بیج واجب ہوں گے اور اس کے کام کے مثل کام کی جو اجرت ہو وہ واجب ہوگی اور اگر کاشتکار سے مالک زمین نے یہ کہا کہ میری زمین میں اپنے بیجوں سے زراعت کر بدیں شرط کہ تمام پیداوار تیری ہو گی تو یہ جائز ہے اور تمام پیداوار کاشتکار کی ہو گی اور مالک زمین اپنی زمین اس کو عاریت دینے والا قرار دیا جائے گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر کاشتکار سے مالک زمین نے یوں کہا کہ میرے واسطے میری زمین میں اپنے بیجوں سے اس شرط سے زراعت کر کہ تمام پیداوار ہم دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو گی تو یہ مزارعت جائز ہے اور تمام پیداوار دونوں میں آدھوں آدھ مشترک ہو گی اور مزارع اپنے بیج مالک زمین کو قرض دینے والا قرار دیا جائے گا بمقتضائے حکم مالک زمین کے کہ اس کو حکم دیا کہ میرے واسطے زراعت کر پس ۱ــہ اسامی مسئلہ منقرہ ضمنی ترجمہ ہیں۔ مترجم کہتا ہے کہ وجہ اس کی یہ ہے کہ جب مالک زمین نے اپنے واسطے زراعت کرائی تو کھیتی اس کی ہو گی اور اس شرط کا کہ کھیتی تیری ہو گی کچھ اعتبار نہیں ہے اور چاہیے تھا کہ کاشتکار کے واسطے سوائے

بیجوں کے اجر المثل واجب نہ ہو مگر اس وجہ سے واجب ہوا کہ مالک نے اس کو اجرت دینے کا وعدہ کیا تھا اگرچہ بطور فاسد یعنی تمام کھیتی تیری ہو گی اس وجہ سے اجر المثل واجب ہوگا مگر تمام پیداوار سے زیادہ نہ ہو گا خلافاً لمحمدؒ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 297 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

The landowner has legally become the possessor of these seeds because these seeds have become attached to his property. Do you not see that if the landowner said to the cultivator, "Lend me a hundred dirhams," then in exchange for them, he buys a 'kur' (measure) of wheat for me and sows it in my land on the condition that the entire produce will be shared equally between us, then this is permissible. Similarly, it is permissible in this case as well. However, if the cultivator gave seeds to the landowner for sharecropping, for example, he gave one 'kur' of wheat to the landowner on the condition that he cultivates and sows them in his land this year, provided that whatever produce Allah Almighty grants will be shared half-and-half between us, then this is invalid (fasid). The entire produce will belong to the owner of the seeds. This is mentioned in 'Muzara'at al-Asl'. In the beginning of 'Kitab al-Mazun', it is mentioned that the entire produce will belong to the sharecropper, i.e., the landowner. Sheikh-ul-Islam stated in 'Sharh Kitab al-Muzara'ah' that there is no difference between the two issues. However, the interpretation of what we quoted from 'Kitab al-Mazun' is that the owner of the seeds said to the landowner, "Sow them for yourself, and the produce will be shared half-and-half between us." In this case, all the produce will belong to the landowner because the owner of the seeds became the lender of seeds to the landowner, as evidenced by his words "sow for yourself." When the sharecropping agreement becomes invalid, the crop remains for the landowner. Hisham also mentioned the 'Mazun' issue in his 'Nawadir' exactly as we described. 'Kitab al-Muzara'ah' does not mention that the owner of the seeds told the landowner to cultivate them for himself; rather, it mentions that the seed owner told the landowner to sow them so that the produce would be shared between them. In this scenario, the landowner would not be a borrower of the seeds; instead, the seeds remain in the ownership of their original owner. Thus, in the event of an invalid sharecropping agreement, the profit from the seeds belongs to their owner. If he had said, "Cultivate these seeds in your land for yourself on the condition that all produce is shared between us," and the rest of the matter remained as is, all produce would belong to the landowner, as mentioned in the case of 'Kitab al-Mazun'. This is in 'Al-Muhit'.

**Under what circumstances will the landowner pay the seed owner according to the kind (genus) of seeds?** ☆

If a person gave his seeds to another and said, "Sow them in your land so that you obtain the entire produce," or said, "Cultivate my seeds in your land so that you get the entire produce," this is permissible. The seed owner will become a lender of seeds to the landowner for him to cultivate his land, and the landowner's actual possession of them is established. However, if the seed owner said, "Cultivate my seeds in your land for me, and all the yield will be yours," this is invalid, and the entire produce will go to the seed owner. If the seed owner gave his seeds to the landowner to sow in his land on the condition that all produce would belong to the seed owner, this condition is permissible. The seed owner becomes the borrower (ariyah) of the land from the landowner and an assistant in the work, sowing his seeds in that borrowed land; all of this is permissible. If it was said, "Sow these seeds for yourself in your land on the condition that whatever produce comes by the grace of Allah Almighty will be mine," then all produce will belong to the landowner, and it will be mandatory for the landowner to return an equivalent amount of seeds to the seed owner. This is in 'Al-Zakheerah'. If a person gave his land to another for cultivation on the condition that whatever produce Allah Almighty grants from that land will be shared half-and-half, and both remained silent regarding the 'Neel' (a type of cost or tax) being the cultivator's responsibility, or explicitly made it his responsibility, then in any case, the 'Neel' will be the cultivator's responsibility, regardless of the seeds.

ज़मीन का मालिक कानूनी रूप से उन बीजों का कब्ज़ाधारी हो गया क्योंकि ये बीज उसकी मिल्कियत (ज़मीन) से जुड़ गए। क्या आप नहीं देखते कि यदि ज़मीन के मालिक ने काश्तकार (किसान) से कहा कि मुझे सौ दिरहम उधार दे, फिर उनके बदले मेरे लिए एक 'कुर' (माप) गेहूँ खरीद कर मेरी ज़मीन में इस शर्त पर बो दे कि पूरी पैदावार हम दोनों में आधी-आधी साझा होगी, तो यह जायज़ है। इसी तरह इस सूरत में भी जायज़ है। और अगर काश्तकार ने ज़मीन के मालिक को मुज़ाराअत (साझा खेती) पर बीज दिए, मिसाल के तौर पर ज़मीन के मालिक को एक 'कुर' गेहूँ इस शर्त पर दिए कि इस साल खेती करके उन्हें अपनी ज़मीन में बो दे, इस शर्त के साथ कि अल्लाह तआला जो कुछ पैदावार करेगा, वह हम दोनों में आधी-आधी साझा होगी, तो यह अमान्य (फ़ासिद) है और पूरी पैदावार बीजों के मालिक की होगी। ऐसा 'मुज़ाराअत अल-अस्ल' में वर्णित है। और 'किताब अल-माज़ून' की शुरुआत में इस तरह उल्लेख किया गया है कि पूरी पैदावार मुज़ारे यानी ज़मीन के मालिक की होगी। और शैख़ुल इस्लाम ने 'शरह किताब अल-मुज़ाराअत' में फरमाया कि दोनों मसलों में कोई फर्क नहीं है, लेकिन जो हमने 'किताब अल-माज़ून' से नक़ल किया है, उसकी व्याख्या यह है कि बीजों के मालिक ने ज़मीन के मालिक से यों कहा कि इसे अपने लिए बोओ और पैदावार हम दोनों में आधी-आधी साझा हो। इस सूरत में पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होगी क्योंकि बीजों का मालिक इस सूरत में ज़मीन के मालिक को बीज उधार देने वाला बन गया, और यह बात उसके इस कहने से पता चली कि "अपने लिए बोओ"। फिर जब मुज़ाराअत अमान्य हो गई, तो यह फसल ज़मीन के मालिक के लिए रह गई। हिशाम ने भी 'माज़ून' के मसले को अपने 'नवादिर' में वैसा ही ज़िक्र किया है जैसा हमने बयान किया। और 'किताब अल-मुज़ाराअत' में यह ज़िक्र नहीं किया कि बीजों के मालिक ने ज़मीन के मालिक से कहा कि अपने लिए उनकी खेती कर ले, बल्कि यह ज़िक्र किया है कि बीजों के मालिक ने ज़मीन के मालिक से यों कहा कि इनको बो दो ताकि पैदावार हम दोनों में साझा हो। इस सूरत में ज़मीन का मालिक बीजों का कर्ज़दार नहीं होगा बल्कि बीज अपने मालिक की मिल्कियत में रहेंगे। अतः मुज़ाराअत के अमान्य होने की स्थिति में बीजों का मुनाफ़ा उनके मालिक का होगा। और अगर वह यों कहता कि इन बीजों को तो अपनी ज़मीन में अपने लिए खेती कर ले इस शर्त पर कि पूरी पैदावार हम दोनों में साझा होगी, और बाकी मामला वैसा ही रहता, तो पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होती, जैसा कि 'किताब अल-माज़ून' के मसले में वर्णित है। यह 'मुहीत' में है।

**ज़मीन का मालिक किन सूरतों में बीजों वाले को उसकी नस्ल (जिंस) के मुताबिक भुगतान करेगा?** ☆

एक व्यक्ति ने दूसरे को अपने बीज देकर कहा कि इनको अपनी ज़मीन में बो दे ताकि पूरी पैदावार तुझे प्राप्त हो, या कहा कि अपनी ज़मीन में मेरे बीजों से खेती करना कि पूरी पैदावार तुझे प्राप्त हो, तो यह जायज़ है। और बीजों वाला ज़मीन के मालिक को बीज उधार देने वाला बन जाएगा ताकि वह अपनी ज़मीन में ऐसी खेती करे, और ज़मीन के मालिक का उस पर वास्तविक कब्ज़ा पाया गया है। और अगर बीजों के मालिक ने उससे कहा हो कि मेरे लिए अपनी ज़मीन में मेरे बीजों से खेती कर और पूरी पैदावार तेरी होगी, तो यह अमान्य है और पूरी पैदावार बीजों वाले को मिलेगी। और अगर बीजों के मालिक ने अपने बीज ज़मीन के मालिक को दिए कि अपनी ज़मीन में बोए इस शर्त पर कि पूरी पैदावार बीजों के मालिक की होगी, तो यह शर्त जायज़ है और बीजों का मालिक ज़मीन के मालिक से उसकी ज़मीन उधार (आरियत) लेने वाला बन जाएगा और काम में सहायता चाहने वाला हो जाएगा कि उसके बीज उस उधार ली हुई ज़मीन में बोए जाएँ, और यह सब जायज़ है। और अगर यों कहा कि इन बीजों को अपने लिए अपनी ज़मीन में बो दे इस शर्त पर कि जो कुछ पैदावार अल्लाह तआला के फ़ज़्ल से होगी वह सब मेरी होगी, तो पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होगी और ज़मीन के मालिक पर वाजिब होगा कि वह बीजों वाले को उसके बीजों के समान (मात्रा) अदा करे। यह 'ज़खीरा' में है। अगर किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन खेती के लिए दूसरे को इस शर्त पर दी कि जो कुछ पैदावार अल्लाह तआला के फ़ज़्ल से उस ज़मीन में हो वह हम दोनों में आधी-आधी साझा होगी, और दोनों ने 'नील' (एक प्रकार का खर्च या कर) के किसान के ज़िम्मे होने की शर्त पर चुप्पी साधी या किसान के ज़िम्मे शर्त रखी, तो बहरहाल नील किसान के ज़िम्मे होगा, चाहे बीज का मामला कुछ भी हो।

---

مالک زمین حکماً ان بیجوں کا قابض ہو گیا اس وجہ سے کہ اس کی ملک سے یہ بیج متصل ہو گئے آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ اگر مالک زمین نے کاشتکار سے کہا کہ مجھے سو درہم قرض دے پھر ان کے عوض میرے واسطے ایک کر گیہوں خرید کر میری زمین میں اس شرط سے بوئے کہ تمام پیداوار ہم دونوں میں آدھوں آدھ مشترک ہو گی تو یہ جائز ہے پس ایسے ہی اس صورت میں بھی جائز ہے اور اگر کاشتکار نے مالک زمین کو مزارعت پر بیج دیے مثلاً مالک زمین کو ایک کر گیہوں اس شرط سے دیے کہ اس سال زراعت کر کے ان کو اپنی زمین میں بوئے بدیں شرط اللہ تعالیٰ جو کچھ پیداوار کر دے وہ ہم دونوں میں نصفا نصف مشترک ہوگی تو یہ فاسد ہے اور تمام پیداوار بیجوں کے مالک کی ہو گی ایسا ہے مزارعة الاصل میں مذکور ہے اور کتاب الماذون کے اوائل میں یوں ذکر فرمایا کہ تمام پیداوار مزارع یعنی مالک زمین کی ہو گی اور شیخ الاسلام نے شرح کتاب المزارعة میں فرمایا کہ دونوں مسئلوں میں فرق نہیں ہے لیکن جو ہم نے کتاب الماذون سے نقل کیا ہے اس کی تاویل یہ ہے کہ بیجوں کے مالک نے مالک زمین سے یوں کہا کہ اس کو اپنے واسطے بوئے اور پیداوار ہم دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو اور اس صورت میں تمام پیداوار مالک زمین کی ہو گی کیونکہ بیجوں کا مالک اس صورت میں مالک زمین کو بیج قرض دینے والا ہو گیا اور یہ امر اس کے اس کہنے سے معلوم ہوا کہ ان کے اپنے واسطے بوئے پھر جب مزارعت فاسد ہوئی تو یہ کھیتی مالک زمین کے واسطے رہ گئی اور ہشام نے بھی مسئلہ ماذون کو اپنے نوادر میں ایسا ہی ذکر کیا ہے جیسا ہم نے بیان کیا اور کتاب المزارعة میں یہ ذکر نہ کیا کہ بیجوں کے مالک نے مالک زمین سے کہا کہ اپنے واسطے ان کی زراعت کرلے بلکہ یہ ذکر کیا ہے کہ بیجوں کے مالک نے مالک زمین سے یوں کہا کہ ان کو بوئے تا کہ پیداوار ہم

دونوں میں مشترک ہو اور اس صورت میں مالک زمین بیجوں کا قرض لینے والا نہ ہو گا بلکہ بیج اپنے مالک کی ملک میں رہیں گے پس فساد مزارعت کی صورت میں بیجوں کا منافع ان کے مالک کا ہو گا اور اگر یوں کہتا کہ ان بیجوں کو تو اپنی زمین میں اپنے واسطے زراعت کر لے بدیں شرط کہ تمام پیداوار ہم دونوں میں مشترک ہوگی اور باقی مسئلہ بحالہا رہتا تو تمام پیداوار مالک زمین کی ہوتی جیسا کہ کتاب الماذون کے مسئلے میں مذکور ہوا ہے یہ محیط میں ہے۔

**مالک زمین کن صورتوں میں بیجوں والے کو اُس کی جنس کے مطابق ادائیگی کرے گا؟** ☆

ایک شخص نے دوسرے کو اپنے بیج دے کر کہا کہ ان کو اپنی زمین میں بوئے تا کہ تمام پیداوار تجھے حاصل ہو یا کہا کہ اپنی زمین میں میرے بیجوں سے زراعت کرنا کہ تمام پیداوار تجھے حاصل ہو تو یہ جائز ہے اور بیجوں والا مالک زمین کو بیج قرض دینے والا ہو جائے گا تا کہ وہ اپنی زمین میں ایسی زراعت کرے اور مالک زمین کا اس پر قبضہ حقیقت ہاتھ سے پایا گیا ہے اور اگر بیجوں کے مالک نے اس سے کہا ہو کہ میرے واسطے اپنی زمین میں میرے بیجوں سے زراعت کر اور تمام حاصلات پیداوار تیری ہوگی تو یہ فاسد ہے اور تمام پیداوار بیجوں والے کو ملے گی اور اگر بیجوں کے مالک نے اپنے بیج مالک زمین کو دیے کہ اپنی زمین میں بوئے بدیں شرط کہ تمام پیداوار بیجوں کے مالک کی ہوگی یہ شرط جائز ہے اور بیجوں کا مالک زمین کے مالک سے اس کی زمین عاریت لینے والا ہو جائے گا اور اس سے ہونے کے کام میں استعانت چاہنے والا ہو جائے گا کہ اس کے بیج اس مستعار زمین میں بوئے اور یہ سب جائز ہے اور اگر یوں کہا کہ ان بیجوں کو اپنے واسطے اپنی زمین میں بوئے بدیں شرط کہ جو کچھ پیداوار اللہ تعالیٰ کے فضل سے ہو وہ سب میری ہوگی تو تمام پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور مالک زمین پر واجب ہوگا کہ بیجوں والے کو اس کے بیجوں کے مثل ادا کرے یہ ذخیرہ میں ہے اگر کسی شخص نے اپنی زمین زراعت کے واسطے دوسرے کو اس شرط سے دی کہ جو کچھ پیداوار اللہ تعالیٰ کے

فضل سے اس زمین میں ہو وہ ہم دونوں میں آدھی آدھی مشترک ہو گی اور دونوں نے نیل کا کاشتکار کے ذمہ شرط کرنے سے سکوت کیا یا کاشتکار کے ذمہ شرط کیے تو بہرحال نیل کاشتکار کے ذمہ ہوں گے خواہ بیج کا

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 / 298 / Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

...whether they belong to the cultivator or the landowner, because bullocks are considered agricultural implements. Thus, the responsibility for them lies with whoever is responsible for the agricultural labor. This is stated in *Khazanat al-Muftin*. If, in a sharecropping contract (*muzar'ah*), a portion of the produce is stipulated for a third party other than the landowner and the cultivator, it shall be observed: if no labor is required of this third party, then the contract of sharecropping is not invalidated (*fasid*). The portion stipulated for this third party will belong to the party who provided the seeds.

However, if labor is stipulated as a condition for this third party—for example, a person gives his land to another so that the latter may cultivate it with his own bullocks and plough, with the condition that this third person also works, and the produce granted by Allah's grace is divided as one-third for the landowner, one-third for the cultivator who provided the seeds, and one-third for the third person who provided no seeds—then such a sharecropping arrangement is *fasid* (invalid/corrupt). This means it is *fasid* specifically regarding the rights of the third person, not necessarily for the first party, as the second arrangement is not a condition of the first. However, if the second arrangement is made a condition within the first—for instance, if it is said, "on the condition that this person works alongside him"—then according to some scholars, even the initial sharecropping contract becomes *fasid*. Shams al-A'imma al-Sarakhsi used to issue fatwas based on this. On the other hand, if the seeds are provided by the landowner and the rest of the case remains as stated, the sharecropping is permissible (*ja'iz*). This is because when the seeds are from the landowner, he becomes the employer (*ajir*) of both workers in exchange for a portion of the produce, which is valid. This is mentioned in *al-Zakhirah*.

If, in a sharecropping contract, a portion of the produce is stipulated for a slave (*ghulam*) of either party, there are two scenarios. First, if the seeds are from the landowner and one-third is for the landowner, one-third for the cultivator, and one-third for the landowner's slave, this arrangement is valid whether the slave is in debt or not, and whether labor is required of the slave or not. This ruling applies when the seeds are provided by the landowner. Similarly, if a third is stipulated for the cultivator’s slave, it remains valid regardless of whether the slave has debts or whether his labor alongside the cultivator is a condition. This is applicable when seeds are from the landowner.

If the seeds are provided by the cultivator and one-third is stipulated for the landowner’s slave, the contract is valid provided the slave is not in debt and labor is not required of him. The portion stipulated for the slave will be considered stipulated for his master from the outset. However, if labor is required of the said slave and he is not in debt, then according to *Zahir al-Riwayah*, the contract is *fasid*. If the slave is in debt and no labor is required of him, the contract is valid, and the portion stipulated for the slave is considered as if stipulated for his master; as if both parties had initially agreed that two-thirds of the produce would go to the landowner and one-third to the cultivator. Yet, if labor is still required of the said slave, then according to *Zahir al-Riwayah*, the contract is *fasid*.

In this scenario, if a third is stipulated for the cultivator’s slave, and the slave is not in debt but labor is required of him, it is valid; two-thirds will go to the cultivator and one-third to the landowner. If both parties stipulated the slave's labor within the contract, the sharecropping becomes *fasid* for both. However, if the slave's labor was not an essential condition of the primary contract but was mentioned as an addition during the discussion of the sharecropping, then the owner...

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 / 298 / किताब-उल-मुज़ारआ (बटाई/साझा खेती की पुस्तक)**

चाहे वे काश्तकार (किसान) की ओर से हों या ज़मीन के मालिक की ओर से, क्योंकि बैल खेती के औज़ारों में से हैं, इसलिए उनकी ज़िम्मेदारी उसी की होनी चाहिए जिसके ज़िम्मे खेती का काम है। यह 'खज़ानतुल मुफ़्तीन' में दर्ज है। यदि मुज़ारआ (बटाई के अनुबंध) में ज़मीन के मालिक और काश्तकार के अलावा किसी तीसरे व्यक्ति के लिए पैदावार का कुछ हिस्सा तय किया गया हो, तो यह देखा जाएगा कि यदि उस तीसरे व्यक्ति के ज़िम्मे खेती का काम करना शर्त नहीं है, तो इससे मुज़ारआ अनुबंध में कोई दोष (फ़साद) नहीं आएगा। उस तीसरे व्यक्ति के लिए जो हिस्सा तय किया गया है, वह उसे मिलेगा जिसकी तरफ़ से बीज दिए गए हैं।

लेकिन अगर उस तीसरे व्यक्ति के ज़िम्मे खेती का काम करना शर्त हो, और बीज काश्तकार की तरफ़ से हों—उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन दूसरे को इस शर्त पर दी कि वह अपने बैलों और हल से खेती करे और यह तीसरा व्यक्ति भी काम करे, इस शर्त पर कि जो कुछ अल्लाह के फ़ज़ल से पैदावार हो, उसका एक-तिहाई ज़मीन के मालिक को, एक-तिहाई काश्तकार को (जिसके बीज हैं) और एक-तिहाई उस काम करने वाले तीसरे व्यक्ति को मिले जिसके बीज नहीं हैं—तो ऐसा मुज़ारआ 'फ़ासिद' (अमान्य/दोषपूर्ण) है। इसका अर्थ यह है कि यह मुज़ारआ उस तीसरे व्यक्ति के अधिकार में फ़ासिद है, न कि पहले व्यक्ति के अधिकार में, क्योंकि दूसरा मुज़ारआ पहले मुज़ारआ की शर्त नहीं है। यहाँ तक कि अगर दूसरा मुज़ारआ पहले मुज़ारआ में शर्त के रूप में शामिल हो, जैसे यह कहा जाए कि "इस शर्त पर कि यह व्यक्ति उसके साथ काम करे", तो कुछ विद्वानों के अनुसार पहला मुज़ारआ भी फ़ासिद हो जाएगा। शम्सुल अइम्मा सरख्सी (रह.) इसी पर फ़तवा देते थे। और अगर बीज ज़मीन के मालिक की तरफ़ से हों और बाकी मामला वैसा ही हो, तो यह मुज़ारआ जायज़ होगा, क्योंकि जब बीज ज़मीन के मालिक के हों, तो वह उन दोनों काम करने वालों को पैदावार के एक हिस्से के बदले मज़दूरी (इजारा) पर लेने वाला माना जाएगा, और यह जायज़ है। यह 'ज़खीरा' में वर्णित है।

यदि मुज़ारआ अनुबंध में पैदावार का कुछ हिस्सा दोनों पक्षों में से किसी के ग़ुलाम के लिए शर्त किया गया हो, तो इसकी दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बीज ज़मीन के मालिक की तरफ़ से हों और एक-तिहाई मालिक के लिए, एक-तिहाई काश्तकार के लिए और एक-तिहाई मालिक के ग़ुलाम के लिए तय किया गया हो, तो यह मुज़ारआ जायज़ है, चाहे ग़ुलाम पर कर्ज़ हो या न हो, और चाहे ग़ुलाम पर

काम करना शर्त हो या न हो। यह हुक्म तब है जब बीज ज़मीन के मालिक के हों। इसी प्रकार यदि काश्तकार के ग़ुलाम के लिए एक-तिहाई हिस्सा तय किया गया हो, तब भी मुज़ारआ जायज़ होगा, चाहे ग़ुलाम पर कर्ज़ हो या न हो, या काश्तकार के साथ ग़ुलाम का काम करना शर्त हो या न हो। यह सब तब है जब बीज ज़मीन के मालिक की तरफ़ से हों।

और यदि बीज काश्तकार की तरफ़ से हों, और ज़मीन के मालिक के ग़ुलाम के लिए एक-तिहाई हिस्सा तय किया गया हो, तो मुज़ारआ जायज़ है, बशर्ते कि उक्त ग़ुलाम पर कर्ज़ न हो और न ही उसके ज़िम्मे खेती का काम शर्त किया गया हो। ग़ुलाम के लिए तय किया गया हिस्सा शुरुआत से ही उसके मालिक के लिए शर्त माना जाएगा। लेकिन यदि ग़ुलाम के लिए काम करना शर्त हो और उस पर कर्ज़ न हो, तो 'ज़ाहिर-उर-रिवायत' के अनुसार मुज़ारआ फ़ासिद होगा। और यदि ग़ुलाम पर कर्ज़ हो और उसके ज़िम्मे काम शर्त न हो, तो मुज़ारआ जायज़ है और ग़ुलाम का हिस्सा उसके मालिक के लिए माना जाएगा; मानो दोनों ने शुरुआत में ही यह शर्त कर ली थी कि पैदावार का दो-तिहाई मालिक को और एक-तिहाई काश्तकार को मिलेगा। और यदि इसके बावजूद ग़ुलाम पर काम करना शर्त हो, तो 'ज़ाहिर-उर-रिवायत' के अनुसार मुज़ारआ फ़ासिद है।

यदि इस स्थिति में काश्तकार के ग़ुलाम के लिए एक-तिहाई हिस्सा तय हो, और ग़ुलाम पर कर्ज़ न हो तथा उसके ज़िम्मे काम शर्त किया गया हो, तो यह जायज़ है; पैदावार का दो-तिहाई काश्तकार का और एक-तिहाई मालिक का होगा। और अगर ग़ुलाम का काम करना दोनों ने शर्त किया हो, तो अनुबंध में काम की शर्त होने पर मुज़ारआ दोनों के हक में फ़ासिद होगा। लेकिन अगर ग़ुलाम का काम करना मूल अनुबंध में अनिवार्य शर्त न हो बल्कि बातचीत में इसे गौण रूप से जोड़ दिया गया हो, तो मालिक...

کا کاشتکار کی طرف سے ہوں یا مالک زمین کی طرف سے ہوں اس واسطے کہ بیل آلاتِ زراعت میں سے ہے پس اسی کے ذمہ چاہیے جس کے ذمہ زراعت کا کام ہے یہ خزانہ المفتین میں ہے اگر عقدِ مزارعت میں کسی قدر پیداوار سوائے مالکِ زمین و کاشتکار کے کسی غیر شخص کے واسطے شرط کی گئی تو دیکھا جائے کہ اگر اس غیر کے ذمہ کارِ زراعت کرنا مشروط نہیں ہے تو اس سے عقدِ مزارعت میں فساد نہ آئے گا اور جس قدر اس غیر کے واسطے شرط کیا گیا ہے وہ اس کو ملے گا جس کی طرف سے بیج ہیں اور اگر مزارعت کا کام اس غیر کے ذمہ مشروط ہو پس اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں مثلاً ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے کو اس واسطے دی کہ اپنے بیلوں اور بیل سے اس میں زراعت کرے اور اس میں یہ شخص غیر بھی کام کرے بدین شرط کہ جو کچھ اللہ تعالیٰ کے فضل سے پیداوار ہو اس میں سے ایک تہائی مالک زمین کی اور ایک تہائی کاشتکار کی جس کی طرف سے بیج ہیں اور تہائی اس کارگزار کی جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں تو ایسی مزارعت فاسد ہے اور مراد یہ ہے کہ مزارعت اس دوسرے شخص کارگزار کے حق میں فاسد ہے اور یہ نہیں مراد ہے کہ شخص اول کے حق میں فاسد ہے اس واسطے کہ دوسری مزارعت پہلی مزارعت میں شرط نہیں ہے حتی کہ اگر دوسری مزارعت پہلی مزارعت میں مشروط ہو مثلاً یوں کہا کہ بدیں شرط کہ یہ شخص کارگزار اس کے ساتھ مزارعت کا کام کرے تو بعض مشائخ کے نزدیک مزارعت اولیٰ بھی فاسد ہو جائے گی اور شمس الائمہ سرخسیؒ اسی پر فتویٰ دیتے تھے اور اگر بیج مالکِ زمین کی طرف سے ہوں اور باقی مسئلہ بحالہ ہو تو یہ مزارعت جائز ہو گی اس لیے کہ بیج جب زمین دار کی طرف سے ہوئے تو زمین دار ان

دونوں کام کرنے والوں کو بعض پیداوار کی عوض اجارہ لینے والا ہو گیا اور یہ جائز ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر عقدِ مزارعت میں بعض پیداوار دونوں میں سے کسی کے غلام کے واسطے شرط کی گئی تو اس کی دو صورتیں ہیں اوّل یہ کہ بیج مالکِ زمین کی طرف سے ہوں اور تہائی مالکِ زمین کے واسطے اور تہائی پیداوار کاشتکار کے واسطے اور تہائی مالکِ زمین کے غلام کے واسطے شرط کی گئی تو یہ مزارعت جائز ہے خواہ غلام پر قرضہ ہو یا نہ ہو خواہ غلام پر بھی مزارعت کا کام کرنا شرط کیا ہو یا نہ کیا ہو یہ حکم اس وقت ہے کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور مالکِ زمین یا غلام کے واسطے تہائی پیداوار کی شرط کی گئی ہو اور اگر کاشتکار کے غلام کے واسطے تہائی پیداوار کی شرط کی گئی ہو تو بھی مزارعت جائز ہو گی خواہ غلام پر قرضہ ہو یا نہ ہو خواہ کاشتکار کے ساتھ اس کے غلام کا کارِ زراعت انجام دینا مشروط ہو یا نہ ہو یہ اس وقت ہے کہ جب بیج مالکِ زمین کی طرف سے ہوں اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں پس اگر مالکِ زمین کے غلام کے واسطے تہائی پیداوار کی شرط کی گئی تو مزارعت جائز ہے بشرطیکہ غلام مذکور پر قبضہ نہ ہو اور نہ اس کے ذمہ کارِ زراعت شرط کیا گیا ہو اور جس قدر غلام کے واسطے شرط کیا گیا ہے وہ ابتداء سے مولیٰ کے واسطے مشروط ہونا اعتبار کیا جائے گا اور اگر غلام مذکور کے واسطے کارِ زراعت مشروط ہو اور اس پر قرضہ نہ ہو تو ظاہر الروایہ کے موافق مزارعت فاسد ہوگی اور اگر غلام مذکور پر قرضہ ہوئے پس اگر غلام مذکور کے ذمہ کارِ زراعت مشروط نہ ہو تو مزارعت جائز ہے اور جس قدر غلام کے واسطے مشروط ہے وہ ابتداء سے اس کے مولیٰ کے واسطے مشروط ہونا اعتبار کیا جائے گا گویا دونوں نے ابتداء سے یہ شرط کر لی تھی کہ پیداوار میں سے دو تہائی مالکِ زمین کو اور ایک تہائی کاشتکار کو ملے گی اور

اگر باوجود اس کے غلام مذکور کے ذمہ کارِ زراعت مشروط ہو تو ظاہر الروایہ کے موافق مزارعت فاسد ہے۔

اگر اس صورت میں کاشتکار کے غلام کے واسطے تہائی پیداوار مشروط ہو پس اگر غلام پر قرضہ نہ ہو اور اس کے ذمہ کارِ زراعت شرط کیا گیا ہو تو یہ جائز ہے اور دو تہائی پیداوار کاشتکار کی اور ایک تہائی مالکِ زمین کی ہو گی اور اگر اس کے ساتھ غلام کا کارِ زراعت انجام دینا بھی دونوں نے شرط کیا ہو پس اگر عقدِ مزارعت میں غلام کا کارِ زراعت انجام دینا شرط کیا ہو تو مزارعت دونوں کے حق میں فاسد ہو گی اور اگر غلام کے ذمہ کارِ زراعت انجام دینا افضل عقد میں مشروط نہ ہو بلکہ گفتگوئے مزارعت سے یہ بات بھی بطور عطف ملا دی ہو تو مالک

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 299 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

Sharecropping (Muzara'ah) between a landowner and a cultivator is permissible, but it is invalid (fasid) in the case of a slave. If the mentioned slave is in debt and the labor of farming was not stipulated as his duty, the sharecropping contract is valid. Whatever portion was stipulated for the slave will be considered as stipulated for the cultivator from the beginning. If the labor of farming was stipulated as his duty, the ruling is the same as that mentioned in the case of a slave without debt whose labor is stipulated. If a portion of the produce is stipulated for the bullock belonging to one of the parties, the ruling is identical to what was mentioned regarding a portion assigned for a slave who is not in debt.

If one-third of the produce is stipulated for the poor (masakin), the sharecropping contract is valid. Whatever portion is stipulated for the poor will be initially credited to the party providing the seeds. The seed-provider will receive it, but it will be religiously obligatory (wajib) upon him before Allah the Almighty to donate that grain to the poor. However, a judge (Qazi) cannot compel him to do so, nor does this invalidate the sharecropping contract. The ruling we mentioned regarding the stipulation of produce for a slave also applies to a *Mudabbar* slave (one promised freedom upon the master's death) or any slave whose earnings belong to the master. This is recorded in 'Al-Muhit'.

If both parties stipulate one-third of the produce for a *Mukatib* (a slave with a contract for freedom), a relative, or a stranger, and the seeds belong to the landowner with the condition that this third party performs the labor, it is permissible. This third party will be a partner to the cultivator in the contract and receive one-third of the produce. If his labor was not stipulated, the sharecropping is valid, but the specific stipulation is void (batil), and the one-third share goes back to the landowner. If the seeds are from the cultivator and no labor was stipulated for the third party, the contract is valid, and the portion designated for the third party goes to the cultivator. If labor was stipulated for the third party and he worked, the cultivator must pay him *Ajr al-Mithl* (a fair market wage), and the designated produce share goes to the cultivator. This is because the sharecropping is valid between the landowner and cultivator, but invalid between the cultivator and the third party. This is akin to a person giving land to two people with the condition that one provides seeds and the other only provides labor. This is found in 'Al-Muhit al-Sarkhasi'.

If one gives land to another on the condition that they cultivate it with their own seeds and labor on a one-third share basis, with the arrangement that a third person provides bullocks for a one-third share of produce, and that third person agrees, then the cultivator must pay the third person *Ajr al-Mithl* (fair market rent) for the bullocks. This is because bullocks are not considered a primary part of the sharecropping contract; therefore, the contract between them is invalid. However, since the benefit of the bullocks was fully realized, rent is due. One-third of the produce goes to the landowner and two-thirds to the cultivator. If the seeds belong to the landowner, he receives two-thirds of the produce and must pay the bullock rent. Hiring labor for a share of produce is permissible, but hiring bullocks for a specific share of produce is invalid. This is recorded in 'Al-Mabsut'. If seeds are from the landowner, the sharecropping is valid between the landowner and cultivator but invalid regarding the bullock provider. This means the third party did not provide seeds, only labor/ equipment.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ५ | २९९ | किताब अल-मुज़ारअत**

ज़मीन के मालिक और काश्तकार (किसान) के बीच मुज़ारअत (हिस्सेदारी पर खेती) जायज़ होगी, लेकिन एक ग़ुलाम के हक़ में यह फ़ासिद (अमान्य) होगी। यदि उस ग़ुलाम पर कर्ज़ हो और खेती का काम उसकी शर्त न हो, तो मुज़ारअत जायज़ होगी। ग़ुलाम के लिए जो हिस्सा तय है, वह शुरू से ही काश्तकार का हिस्सा माना जाएगा। और यदि खेती का काम उसके ज़िम्मे शर्त किया गया हो, तो वही हुक्म होगा जो उस ग़ुलाम के मामले में बताया गया है जिस पर कर्ज़ न हो और खेती उसके ज़िम्मे हो। यदि दोनों में से किसी एक के बैल के लिए पैदावार का कुछ हिस्सा शर्त किया गया हो, तो उसका भी वही हुक्म है जो ग़ुलाम के हिस्से के मामले में बताया गया है। यदि ग़रीबों (मसाकीन) के लिए पैदावार का एक तिहाई हिस्सा शर्त किया जाए, तो मुज़ारअत जायज़ है। मसाकीन के लिए तय हिस्सा शुरू से ही उस व्यक्ति का माना जाएगा जिसके बीज हों। बीज वाले को वह हिस्सा मिलेगा, लेकिन अल्लाह के वास्ते बीज वाले पर यह वाजिब होगा कि वह अनाज ग़रीबों में दान कर दे, हालाँकि काज़ी उसे ऐसा करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता और न ही इससे मुज़ारअत फ़ासिद होगी। जो नियम हमने ग़ुलाम के हिस्से के बारे में बताया है, वही मुदब्बर ग़ुलाम या उस ममलुक (दास) पर भी लागू होगा जिसकी कमाई का मालिक उसका स्वामी होता है। यह बात 'मुहीत' में दर्ज है।

यदि दोनों ने किसी मुकातिब (आज़ादी का अनुबंध करने वाला दास), रिश्तेदार या किसी अजनबी के लिए पैदावार के एक तिहाई हिस्से की शर्त रखी, और यदि बीज ज़मीन के मालिक के हों और उस तीसरे व्यक्ति के खेती करने की शर्त हो, तो यह जायज़ है। वह व्यक्ति काश्तकार के साथ अनुबंध में शामिल माना जाएगा और उसे एक तिहाई हिस्सा मिलेगा। यदि उसके काम की शर्त न हो, तो मुज़ारअत जायज़ है लेकिन वह शर्त बातिल (शून्य) है, और वह एक तिहाई हिस्सा ज़मीन के मालिक को मिलेगा। यदि बीज काश्तकार के हों और तीसरे व्यक्ति के काम की शर्त न हो, तो मुज़ारअत जायज़ है और तीसरे व्यक्ति के लिए तय हिस्सा काश्तकार का होगा। यदि तीसरे व्यक्ति के काम की शर्त हो और उसने काम किया हो, तो काश्तकार पर उसे 'अज्र-ए-मिसल' (उचित मज़दूरी) देना वाजिब होगा। तय हिस्सा काश्तकार को मिलेगा क्योंकि मालिक और काश्तकार के बीच अनुबंध जायज़ है, लेकिन काश्तकार और तीसरे व्यक्ति के बीच यह अनुबंध बातिल है। यह मामला वैसा ही है जैसे किसी ने अपनी ज़मीन दो लोगों को खेती के लिए दी हो और शर्त रखी हो कि एक बीज लाए और दूसरा सिर्फ काम करे। यह 'मुहीत सरख़सी' में वर्णित है।

यदि किसी ने अपनी ज़मीन दूसरे को इस शर्त पर दी कि वह अपने बीज और श्रम से खेती करे और एक तिहाई हिस्सा मालिक का होगा, इस व्यवस्था के साथ कि तीसरा व्यक्ति बैल उपलब्ध कराए और उसे पैदावार का एक तिहाई हिस्सा मिले, और वह तीसरा व्यक्ति मान जाए, तो काश्तकार पर उस तीसरे व्यक्ति को उसके बैल का 'अज्र-ए-मिसल' (उचित किराया) देना वाजिब होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि बैल को मुज़ारअत के अनुबंध में मुख्य रूप से शामिल नहीं किया जाता, अतः उनके बीच का अनुबंध फ़ासिद होगा। लेकिन चूंकि उसने बैल का लाभ उठाया है, इसलिए किराया वाजिब है। पैदावार का एक तिहाई मालिक को और दो तिहाई काश्तकार को मिलेगा। यदि बीज ज़मीन के मालिक के हों, तो दो तिहाई हिस्सा उसे मिलेगा और बैल का किराया उस पर वाजिब होगा। काम के बदले हिस्सा देना जायज़ है, लेकिन बैल के बदले हिस्सा देना फ़ासिद है। यह 'मबसूत' में है। यदि बीज मालिक के हों, तो मालिक और काश्तकार के बीच मुज़ारअत जायज़ है, लेकिन बैल वाले के साथ यह व्यवस्था फ़ासिद है।

زمین و کاشتکار کے درمیان مزارعت جائز ہوگی اور غلام کے حق میں فاسد ہوگی اور اگر غلام مذکور پر قرضہ ہو پس اگر غلام کا کار زراعت شرط نہ کیا گیا ہو تو مزارعت جائز ہوگی اور جس قدر غلام کے واسطے مشروط ہے وہ کاشتکار کے واسطے ابتداء سے مشروط ہونا اعتبار کیا جائے گا اور اگر اس کے ذمہ کار زراعت شرط کیا گیا ہو تو اس صورت میں وہی حکم ہے جو حکم اور صورت غلام پر قرضہ نہ ہونے اور اس کے ذمہ کار زراعت مشروط ہونے کے مذکور ہوا ہے اور اگر دونوں میں سے ایک کے بیل کے واسطے بعض پیداوار شرط کی گئی تو اس کا وہی حکم ہے جو حکم در صورت کسی کے غلام کے واسطے درصورت غلام پر قرضہ نہ ہونے کے بعض پیداوار کرنے میں مذکور ہوا ہے اور اگر مساکین کے واسطے تہائی پیداوار شرط کی گئی تو مزارعت جائز ہے اور جس قدر مساکین کے واسطے شرط کیا ہے وہ اس شخص کے واسطے ابتداء مشروط ہونا اعتبار کیا جائے گا جس کی طرف سے بیج ہوں پس بیج والے کو ملے گا مگر بیج والے پر فیما بینہ و بین اللہ تعالی واجب ہوگا کہ یہ اناج مساکین پر صدقہ کر دے لیکن قاضی ایسا کرنے کے واسطے اس پر جبر نہیں کر سکتا ہے اور نہ موجب فساد مزارعت ہوگا اور جو حکم ہم نے دونوں میں سے کسی کے غلام کے واسطے بعض پیداوار شرط کیے جانے کی صورت میں بیان کیا ہے وہی حکم دونوں میں سے کسی کے مدبر یا ایسے مملوک کے واسطے جس کی کمائی کا مولیٰ مالک ہوتا ہے بعض پیداوار شرط کیے جانے کی صورت میں ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر دونوں میں سے ایک کے مکاتب یا اس کے قریب کے واسطے یا کسی اجنبی کے واسطے تہائی پیداوار کی شرط کی پس اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور دونوں کے اس شخص

کے کار زراعت انجام دے کی شرط کی تو جائز ہے اور یہ شخص اس عقد مزارعت میں کاشتکار کے ساتھ ہوگا اور اس کو تہائی پیداوار ملے گی اور اگر دونوں نے اس کے کار زراعت انجام دینے کی شرط نہ کی تو مزارعت جائز ہے اور یہ مشروط باطل ہے اور تہائی پیداوار مالک زمین کو ملے گی اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں پس اگر شخص ثالث کے کار زراعت انجام دینے کی شرط نہ کی ہو تو مزارعت جائز ہے اور جس قدر اس ثالث کے واسطے شرط کیا گیا ہے وہ کاشتکار کا ہوگا اور شخص ثالث کو کچھ نہ ملے گا اور اگر شخص ثالث کے کار زراعت انجام دینے کی شرط کی ہو اور اس نے کام کیا تو اس کا اجر المثل کا کاشتکار پر واجب ہو گا اور جس قدر حصہ پیداوار اس کے واسطے شرط کیا گیا تھا وہ کاشتکار کو ملے گا کیونکہ مالک زمین و کاشتکار کے درمیان مزارعت جائز ہے اور کاشتکار اور اس شخص ثالث کے درمیان جس کی نسبت کار زراعت انجام دینا شرط کیا گیا ہے مزارعت باطل ہے اور یہ صورت ایسی ہو گئی کہ جیسے ایک شخص نے اپنی زمین دو شخصوں کو زراعت کے واسطے اس شرط سے دی کہ دونوں میں سے ایک اپنے بیجوں سے زراعت کرے اور دوسرا فقط زراعت کا کام کرے یہ محیط سرخسی میں ہے اور اگر اپنی زمین دوسرے کو اس شرط سے دی کہ اس میں اپنے بیجوں اور اپنے عمل سے تہائی بٹائی پر زراعت کرے اور تہائی مالک زمین کی ہوگی بدین قرار دار کہ اس کو فلاں شخص کے بیل سے جوتے دوسرا دے بدین شرط کہ تہائی پیداوار فلاں شخص کی ہوگی اور فلاں شخص اس امر پر راضی ہو گیا تو کاشتکار پر فلاں شخص کے واسطے اس کے بیل کا اجر المثل واجب ہوگا کیونکہ اس نے بیل والے سے تہائی پیداوار پر بیل کرایہ لیا حالانکہ بیل عقد مزارعت میں بالمقصود داخل نہیں کیا جاتا ہے پس ان دونوں میں عقد فاسد ہو گا مگر اس نے بیل والے کے بیل سے منفعت پوری حاصل کرلی ہے پس اس کے واسطے اجر المثل واجب ہو گا اور پیداوار میں سے ایک تہائی مالک زمین کو ملے گی اور دو تہائی کاشتکار کو ملے گی اور اس کے

حق میں حلال ہو گی کیونکہ اس کے اور مالک زمین کے درمیان عقد فاسد نہیں ہوا ہے اور اگر اس صورت میں بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں تو دو تہائی پیداوار اس کو ملے گی اور بیل کا اجر المثل اس پر واجب ہو گا کیونکہ اس نے عمل کو تہائی پیداوار پر اجارہ لیا اور یہ جائز ہے مگر بیل کو تہائی پیداوار پر بالمقصود اجارہ لینا فاسد ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں تو مالک زمین اور کاشتکار کے درمیان مزارعت جائز ہے اور بیل والے کے ساتھ فاسد ہے فقط الخ یعنی اس کی طرف سے بیج نہیں بلکہ فقط کام ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (300) Kitab al-Mazara'at (The Book of Sharecropping)**

The landowner shall be liable for the 'fair wage' (Ajr al-Mithl) of the oil-presser's oil; this is mentioned in 'Al-Zakhirah'. If both parties stipulate between themselves that whatever grows in a specific corner of the field belongs to one and the rest of the produce belongs to the other, then this is not permissible. This is stated in 'Fatawa Qadi Khan'. Furthermore, if the land is 'Kharaji' (subject to land tax) and both parties agree to share the remainder equally after paying the 'Kharaj' (land tax), then this contract is 'fasid' (invalid/voidable). However, this ruling applies when the Kharaj is 'muwazzaf' (1) (a fixed annual amount). It is deemed invalid because the land might only produce enough to cover the fixed Kharaj, leaving nothing for sharing. If the Kharaj is 'muqasama' (proportional), such as one-third or one-fourth of the actual yield, then such an agreement is permissible; this is stated in 'Al-Kafi'.

If the party providing the seeds stipulates that they will first take one-tenth of the produce for the seeds and then divide the rest, the sharecropping agreement ('mazara'at') is valid. This is because such a condition does not terminate the partnership in the produce, as one-tenth can be calculated and taken regardless of how small the yield is. If the seed provider wishes to ensure they recover an amount equivalent to their seeds before sharing the remainder, the legal strategy ('hila') is to stipulate a fixed portion (like a tenth or a third) equivalent to the value of the seeds for themselves and share the rest based on the agreed ratio; this is in 'Al-Nihayah'. If a tenth is stipulated for the person who did not provide the seeds and the rest is shared, it is also permissible.

If the land is 'Ushri' (subject to tithe) and they stipulate that the 'Ushr' (tithe) will be deducted first and then the remainder shared; for instance, if they agree that if the land is irrigated by a dug canal, the full Ushr (1/10) is taken out, and if by manual irrigation ('charas'), then half-Ushr (1/20) is taken out, and the remaining grain is shared equally between them, then this is permissible. If produce occurs, the ruler ('Sultan') of the time will take his right of Ushr or half-Ushr, and the rest will be distributed according to the agreement. If the ruler takes nothing, or if his officials secretly take a small amount without his knowledge, then according to Imam Azam (Abu Hanifa) [may Allah have mercy on him], based on the analogy of the contract's validity, that Ushr amount goes to the landowner. According to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad [may Allah have mercy on them], it will be shared between both parties according to their agreement.

If the landowner tells the cultivator, "I do not know whether the ruler will take a full Ushr or half-Ushr, but I contract with you such that after the ruler takes his share, the remainder is split half-half," then according to Imam Azam's [may Allah have mercy on him] analogy, this is 'fasid' (invalid). However, according to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad [may Allah have mercy on them], it is permissible as agreed. This issue arises because sometimes abundant rainfall makes manual irrigation unnecessary (leading to a full Ushr), while low rainfall necessitates manual effort (leading to a half Ushr). The ruler generally taxes based on the most probable ('aghlab') method used. By making such a condition, the parties are essentially acknowledging their uncertainty about the rainfall and the resulting tax. According to Imam Azam, since the tax was the landowner's responsibility, this condition introduces an 'unknown portion' (jahalat) from the yield for the landowner, which invalidates the contract. According to the 'Sahibayn' (2) (the two companions, Abu Yusuf and Muhammad), the tax is due from the produce itself, which is shared equally. Therefore, such a condition simply means the entire produce is shared equally, which does not invalidate the contract. This is mentioned in 'Al-Mabsut'.

**Footnotes:** 1: Muwazzaf: Land tax that is not proportional to produce but is a fixed annual amount, for example, 100 or 200 rupees. 2: According to the Sahibayn, there is shared ownership in what remains after the tax is deducted. Although the exact tax amount (full or half) is uncertain (majhool), this uncertainty pertains to the entire yield and not to one specific partner's share. Thus, it is as if the entire produce is shared between them.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (300) किताब अल-मज़ाराअत (साझेदारी की खेती की किताब)**

और ज़मीन के मालिक पर तिल पेरने वाले के तिल का 'अज्र-उल-मिसल' (वाजिब मज़दूरी) वाजिब होगा, यह 'ज़ख़ीरा' में है। अगर दोनों ने आपस में यह शर्त लगाई कि जो कुछ इस कोने में पैदा होगा वह एक का है और बाकी पैदावार दूसरे की है, तो यह जायज़ नहीं है। यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। और अगर ज़मीन 'ख़राजी' (टैक्स वाली) हो और दोनों ने यह शर्त लगाई कि ख़राज (टैक्स) देकर बाकी को आधा-आधा बाँट लेंगे, तो यह 'फ़ासिद' (अमान्य) है। लेकिन यह हुक्म उस वक्त है जब ख़राज 'मुवज़्ज़फ़' (1) (निश्चित राशि) हो और अमान्य इस वजह से है कि शायद ज़मीन में केवल उतना ही पैदा हो जिससे मुवज़्ज़फ़ ख़राज अदा हो सके। और अगर ख़राज 'मुक़ासबा' (हिस्सेदारी) हो, जैसे पैदावार का एक तिहाई या एक चौथाई आदि, तो यह जायज़ है; यह 'काफ़ी' में है। और अगर दोनों में से जिसके बीज हैं, उसके लिए यह शर्त लगाई कि पैदावार में से दसवाँ हिस्सा (जिसके बीज हैं उसे) देकर आपस में बाँट लेंगे, तो 'मज़ाराअत' (साझेदारी) सही है, क्योंकि इस शर्त से पैदावार में साझेदारी खत्म नहीं होती, क्योंकि पैदावार चाहे कितनी ही कम हो, उसका दसवाँ हिस्सा निकाला जा सकता है। और जिसकी तरफ से बीज हैं, अगर उसने चाहा कि अपने बीजों के बराबर हिस्सा मुझे मिल जाए और फिर बाकी में बँटाई हो, तो उसके लिए यही तरीका (हीला) है कि अपने लिए दसवाँ या तिहाई आदि कोई हिस्सा बीज की मात्रा के बराबर शर्त कर ले और बाकी दोनों में बँटाई पर शर्त रखे, जैसा कि 'निहाया' में है। और अगर ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसकी तरफ से बीज नहीं दिए गए हैं, दसवाँ हिस्सा शर्त किया और बाकी दोनों में बँटाई पर रखा, तो यह जायज़ है।

और अगर ज़मीन 'उशरी' (1/10 टैक्स वाली) हो और दोनों ने शर्त लगाई कि 'उश्र' (दशांश) निकाल कर बाकी बँटाई पर है; फिर अगर यों कहा कि अगर यह ज़मीन किसी खुदी हुई नहर से सींची गई तो उश्र निकाल कर, और अगर चरस (सिंचाई के साधन) से सींची गई तो आधा उश्र निकाल कर बाकी अनाज हम दोनों में बराबर साझा होगा, तो यह जायज़ है। फिर अगर पैदावार हुई, तो समय का सुल्तान (शासक) उश्र या आधा उश्र अपना हक ले लेगा और बाकी दोनों में शर्त के अनुसार बँट जाएगा। फिर अगर सुल्तान ने उन दोनों से कुछ न लिया, या सुल्तान के कर्मचारियों ने सुल्तान से छिपाकर उनसे थोड़ा अनाज ले लिया और सुल्तान को पता भी न चला, तो वह उश्र जो सुल्तान को देना तय था, इमाम आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के अनुसार, मज़ाराअत के जायज़ होने के कयास पर

ज़मीन के मालिक को मिलेगा, और इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मोहम्मद रहमतुल्लाह अलैहि के नज़दीक, वह भी दोनों में बँटाई की शर्त के अनुसार बँटेगा।

और अगर ज़मीन के मालिक ने किसान से कहा कि मुझे नहीं मालूम कि सुल्तान हमसे पूरा उश्र लेगा या आधा उश्र लेगा, बहरहाल मैं तुझसे इस तरह सौदा करता हूँ कि जो कुछ सुल्तान ले ले, उसके लेने के बाद ज़मीन की पैदावार में से आधा मेरा और आधा तेरा है, तो इमाम आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के कयास पर यह 'फ़ासिद' (अमान्य) है, और इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मोहम्मद रहमतुल्लाह अलैहि के नज़दीक, जिस तरह दोनों ने कहा है, उसी तरह जायज़ होगा। और इस मसले का अर्थ यह है कि कभी ऐसा होता है कि जब बारिश ज़्यादा होती है, तो ज़मीन को केवल बारिश का पानी काफ़ी होता है, और कभी ऐसा होता है कि बारिश कम होने पर चरस से सिंचाई की ज़रूरत पड़ती है। अतः सुल्तान ऐसी स्थिति में अपना उश्र या आधा उश्र लेने के लिए अधिक संभावना (अग़लब) का एतबार करता है। तो दोनों ने मानो यह कहा कि हमें नहीं मालूम कि इस साल बारिश कैसी होगी और सुल्तान हमसे पैदावार में से क्या लेगा, फिर दोनों ने इस तरीके से आपस में सौदा किया। फिर इमाम आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के नज़दीक उश्र या आधा उश्र मालिक पर वाजिब था ही, अतः इस शर्त से दोनों ने पैदावार में से मालिक के लिए एक अज्ञात हिस्सा (यानी उश्र या आधा उश्र) शर्त किया, और ऐसी अज्ञानता (जहालत) अनुबंध को खराब करने वाली है। और साहिबैन (2) के नज़दीक उश्र या आधा उश्र पैदावार में से वाजिब होता है और पैदावार दोनों में बराबर साझा है, अतः ऐसी शर्त का अर्थ मानो यह हुआ कि पूरी पैदावार हम दोनों में आधी-आधी साझा है, और यह अनुबंध को खराब करने वाला नहीं है। यह 'मबसूत' में है।

**फ़ुटनोट्स:** 1: मुवज़्ज़फ़: वह ख़राज जो हिस्सेदारी पर नहीं है, बल्कि एक निश्चित राशि है, जैसे सौ या दो सौ रुपये। 2: साहिबैन के अनुसार उश्र निकालने के बाद भी जो बचता है उसमें साझा है, और यह कि क्या आधा उश्र निकलेगा या पूरा उश्र, यह अनिश्चित (मजहूल) है। इसका उत्तर यह है कि यह अनिश्चितता पूरी पैदावार से संबंधित है न कि किसी एक पक्ष से, इसलिए वह भी कुल पैदावार में शामिल है, मानो पूरी पैदावार दोनों में साझा है।

---

اور مالک زمین پر تیل والے کے تیل کا اجر المثل واجب ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر دونوں نے باہم یوں شرط لگائی کہ جو کچھ اس گوشہ میں پیدا ہو وہ ایک کا ہے اور باقی پیداوار دوسرے کی ہے تو یہ نہیں جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر زمین خراجی ہو اور دونوں نے یہ شرط لگائی کہ خراج دے کر باقی کو نصفاً نصفاً بانٹ لیں گے تو یہ فاسد ہے مگر یہ حکم اس وقت ہے کہ خراج موظف (1) ہو اور فاسد اس وجہ سے ہے کہ شاید زمین میں فقط اس قدر پیدا ہو جس سے خراج موظف ادا ہو سکے اور اگر خراج مقاسمہ ہو جیسے تہائی پیداوار یا چوتھائی پیداوار وغیرہ تو جائز ہے یہ کافی میں ہے اور اگر دونوں میں سے جس کی بیج ہیں اس کے واسطے یہ شرط لگائی کہ پیداوار میں سے دسواں حصہ جس کے بیج ہیں اس کو دے کر باہم تقسیم کر لیں گے تو مزارعت صحیح ہے اس واسطے کہ اس شرط سے پیداوار میں شرکت منقطع نہیں ہوتی ہے کیونکہ پیداوار اگرچہ کیسی ہی قلیل ہو اس کا دسواں حصہ نکل سکتا ہے اور جس کی طرف سے بیج ہیں اگر اس نے چاہا کہ اپنے بیجوں کے قدر مجھے پہنچ جائے پھر باقی میں بٹائی ہو تو اس کے واسطے یہی حیلہ ہے کہ اپنے واسطے دسواں یا تہائی وغیرہ کوئی حصہ بقدر بیجوں کے شرط کرلے اور باقی دونوں میں بٹائی پر مشروط رکھے کذا فی النہایہ اور اگر ایسے شخص کے واسطے جس کی طرف سے بیج نہیں دیے گئے ہیں دسواں حصہ شرط کیا اور باقی باہم دونوں میں بٹائی پر مشروط رکھا تو یہ جائز ہے اور اگر زمین عشری ہو اور دونوں نے شرط لگائی کہ عشر نکال کر باقی بٹائی پر ہے پس اگر یوں کہا کہ اگر یہ زمین کسی کھودی ہوئی نہر سے سینچی گئی تو عشر نکال کر اور اگر چرس سے سینچی گئی تو آدھا عشر نکال کر باقی غلہ ہم دونوں میں برابر مشترک ہو گا تو یہ جائز ہے پس اگر پیداوار ہوئی تو سلطان وقت عشر یا نصف عشر اپنا حق لے

لے گا اور باقی دونوں میں موافق تقسیم ہو گا پس اگر سلطان نے ان دونوں سے کچھ نہ لیا یا اہل کار سلطان نے ان لوگوں سے تھوڑا سا اناج سلطان سے پوشیدہ لے لیا اور سلطان کو اطلاع بھی نہ ہوئی تو عشر جو سلطان کو دینا شرط کیا گیا تھا وہ امام اعظم رحمتہ اللہ علیہ کے قول میں بقیاس جوازِ مزارعت کے مالک زمین کو ملے گا اور امام ابو یوسف و امام محمد رحمتہ اللہ علیہ کے نزدیک وہ بھی دونوں میں موافق شرط بٹائی کے تقسیم ہو گا اور اگر مالک زمین نے کاشتکار سے کہا کہ مجھے نہیں معلوم کہ سلطان ہم سے پورا عشر لے گا یا نصف عشر لے گا بہرحال میں تجھ سے اس طرح معاملہ کرتا ہوں کہ جو کچھ سلطان لے لے اس کے لینے کے بعد زمین کی پیداوار میں سے آدھا میرا اور آدھا تیرا ہے تو امام اعظم رحمتہ اللہ علیہ کے قول کے قیاس پر یہ فاسد ہے اور امام ابو یوسف و امام محمد رحمتہ اللہ علیہ کے نزدیک جس طرح دونوں نے کہا اس طرح جائز ہو گا اور اس مسئلہ کے معنی یہ ہیں کہ کبھی ایسا ہوتا ہے کہ جب بارش زیادہ ہوتی ہے تو زمین کو فقط بارش کا پانی کافی ہوتا ہے اور کبھی ایسا ہوتا ہے کہ بارش کم ہونے کی صورت میں چرس سے سینچنے کی ضرورت پڑتی ہے پس سلطان ایسی صورت میں اپنا عشر لینے یا نصف لینے کے واسطے اغلب کا اعتبار کرتا ہے پس دونوں نے گویا یہ کہا کہ ہم کو نہیں معلوم کہ اس سال بارش کیسی ہو گی اور سلطان ہم سے پیداوار میں سے کیا لے گا پس دونوں نے اس طریقہ سے باہم معاملہ کیا پھر امام اعظم رحمتہ اللہ علیہ کے نزدیک عشر یا نصف عشر مالک زمین پر واجب تھا ہی پس اس شرط سے دونوں نے پیداوار میں سے مالک زمین کے واسطے ایک جزو مجہول یعنی عشر یا نصف عشر شرط کیا اور ایسی جہالت مفسد عقد ہے اور صاحبین (2) کے نزدیک عشر یا نصف عشر پیداوار میں سے واجب ہوتا ہے اور پیداوار دونوں میں برابر مشترک ہے پس ایسی شرط لگائیں کہ معنی گویا یہ ہوئے کہ پوری پیداوار ہم دونوں میں نصفاً نصفاً مشترک ہے اور یہ مفسد عقد نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔

**حواشی:** 1: موظف وہ خراج جو مقاسمہ نہ ہو یعنی پیداوار کی بٹائی پر نہیں ہے بلکہ سو روپیہ یا دو سو روپیہ مثلاً وظیفہ بندھا ہوا ہے۔ 2: اقوالِ صاحبین یہ ہے کہ عشر یا نصف عشر نکالنے کے بعد باقی میں اشتراک ہے اور نکالنا دو چیزوں میں متردد ہے کہ نصف ہے یا عشر ہے تو باقی مجہول ہوا جواب یہ کہ متردد خاص پیداوار سے متعلق ہے اور کسی شریک کے ساتھ خاص نہیں ہے تو وہ بھی کل میں شامل ہے گویا کل دونوں میں مشترک ہے۔

---

## (Fatawa Alamgiri ..... Vol. 8) [301] Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)

### Fixed Land Tax (Khiraj-e-Muwa'azzaf) and Proportional Land Tax (Khiraj-e-Muqasama) ★

If, in a sharecropping agreement (Muzara'ah), both parties stipulate that whatever wheat is produced shall be shared equally between them, but whatever barley is produced shall belong exclusively (1) to one of them, or if they stipulate that the wheat belongs specifically to one and the barley specifically to the other, then regardless of who provided the seeds, this agreement is invalid (not permissible). This is recorded in *Tatar-khaniya*. If the land is subject to land tax (Khiraj) and the landowner tells the tenant, "I do not know whether the Sultan (ruler) will collect a fixed tax (Muwa'azzaf) or a proportional tax (Muqasama) from us this year"—meaning that while some lands have a fixed tax, in certain years the land may not be able to sustain it, in which case the ruler should not forcibly collect the fixed tax but rather take a proportional share, which can be up to half the produce—and thus the owner tells the tenant, "I deal with you on the condition that after paying the Sultan's share, whether fixed or proportional, the remainder shall be shared equally between us," such a sharecropping agreement is irregular (*fasid*). If one gives their land to two persons on the condition that both sow it with their own seeds, stipulating that one receives one-third of the produce and the other receives exactly nine *qafiz* (a specific measure), then according to the reasoning (*qiyas*) of the Imam, the entire agreement is invalid. However, according to the *Sahibayn* (Abu Yusuf and Muhammad), it is valid for the one receiving a third, but invalid for the one for whom nine *qafiz* was stipulated. This is mentioned in *al-Kafi*. If the sharecropping contract stipulates that plowing the land is the responsibility of the owner, then if the seeds are from the tenant, the contract is invalid; if the seeds are from the owner, it is valid. This is found in *al-Khulasa*.

If it was stipulated that the tenant is responsible for digging a canal or repairing an irrigation channel (*kariz*) to the point that the contract became invalid, then if the seeds were from the tenant, the entire produce belongs to the tenant because it grew from his seeds. He would then owe the landowner an equitable rent (*Ajr al-Mithl*) (1) for the land, and the owner would owe the tenant equitable compensation for the labor of repairing the canal and channel. They should then settle their shares accordingly. If digging the canal was not stipulated as the tenant's responsibility in the contract, but the tenant did it voluntarily, the sharecropping agreement remains

valid, and the tenant is not entitled to any wages for digging the canal. If the seeds are from the landowner and the contract stipulates that the tenant must dig a canal and repair a dam (*musannah*), the contract becomes invalid; the entire produce belongs to the landowner, and the worker (tenant) is entitled to equitable remuneration for both the agricultural work and the repair of the irrigation systems. If both parties stipulate that the landowner is responsible for digging the canal and repairing the channel so that water reaches the land, the sharecropping agreement is valid according to their condition (2), whether the seeds are from the tenant or the owner. This is in *Fatawa Qadi Khan*. If the contract stipulates that one party is responsible for applying manure, and it is placed on the tenant, the contract is invalid regardless of who provides the seeds. If the seeds are from the tenant, all produce belongs to him, and he must pay equitable rent for the land; the owner is not required to pay for the manure applied. If the seeds are from the owner, all produce belongs to the owner, and he must pay the tenant equitable wages and the price of the manure applied. If applying manure is stipulated as the owner's responsibility, then if the seeds are from the tenant, the sharecropping...

1. The translator notes that "rent" here means *Ajr al-Mithl*, i.e., the fair market rent prevalent for such land. (1) Said for one specific person. (2) It becomes mandatory for the landowner to repair the canal and irrigation channel so water can reach.

**(फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8) [301] किताब अल-मज़ारअत**

**खिराज-ए-मुवज़्ज़फ़ और खिराज-ए-मुक़ासमा ★**

यदि मज़ारअत (बटाईदारी) में दोनों ने आपस में इस तरह शर्त की कि जितनी भी गेहूँ पैदा होगी वह दोनों में बराबर साझा होगी और जितनी जौ पैदा होगी वह हम दोनों में से विशेष रूप से (1) इसके लिए होगी, या इस प्रकार शर्त लगाई कि गेहूँ विशेष रूप से एक के लिए और जौ विशेष रूप से दूसरे के लिए होगी, भले ही बीज किसी भी पक्ष की ओर से हों, तो यह जायज़ नहीं है। यह तातारख़ानिया में है। और यदि भूमि खिराजी (कर योग्य) हो और ज़मीन के मालिक ने काश्तकार (किसान) से कहा कि हमें नहीं मालूम कि सुल्तान (शासक) इस साल हमसे खिराज-ए-मुवज़्ज़फ़ (नियत कर) लेगा या खिराज-ए-मुक़ासमा (हिस्सा कर) लेगा—और इसका अर्थ यह है कि कुछ जमीनों पर खिराज-ए-मुवज़्ज़फ़ निर्धारित होता है, लेकिन कुछ वर्षों में यह ज़मीन उस खिराज को बर्दाश्त नहीं कर पाती है; ऐसी स्थिति में सुल्तान के लिए उचित नहीं है कि वह ज़बरदस्ती खिराज-ए-मुवज़्ज़फ़ वसूल करे, बल्कि वह खिराज-ए-मुक़ासमा ले सकता है जो आधी पैदावार तक होता है। अतः मालिक यही कहता है कि मुझे मालूम नहीं कि इस साल ज़मीन में खिराज-ए-मुवज़्ज़फ़ बर्दाश्त करने की शक्ति होगी कि सुल्तान उसे ले ले—इसलिए वह काश्तकार से कहता है कि मैं तुम्हारे साथ इस तरह सौदा करता हूँ कि इसमें से सुल्तान का हिस्सा, चाहे वह खिराज-ए-मुवज़्ज़फ़ हो या खिराज-ए-मुक़ासमा, देने के बाद जो बचेगा वह हम दोनों में आधा-आधा साझा होगा। ऐसी मज़ारअत 'फ़ासिद' (अमान्य) है। और यदि अपनी ज़मीन दो व्यक्तियों को इस शर्त पर दे कि दोनों अपने बीजों से इसमें खेती करें, इस शर्त के साथ कि दोनों में से एक को पैदावार का एक तिहाई मिलेगा और दूसरे को नौ 'क़फ़ीज़' (एक माप) पैदावार मिलेगी, तो इमाम के क़यास के अनुसार पूरी मज़ारअत फ़ासिद है, जबकि साहिबैन के निकट तिहाई वाले के हक़ में जायज़ है और जिसके लिए नौ क़फ़ीज़ पैदावार तय है उसके हक़ में फ़ासिद है। यह 'काफ़ी' में है। यदि मज़ारअत के अनुबंध में ज़मीन जोतना ज़मीन के मालिक के ज़िम्मे शर्त किया गया, तो यदि बीज काश्तकार की ओर से हों तो मज़ारअत फ़ासिद है, और यदि बीज मालिक की ओर से हों तो जायज़ है। यह 'ख़ुलासा' में है।

यदि काश्तकार के ज़िम्मे नहर खोदना और कारीज़ (सिंचाई की नाली) ठीक करना शर्त किया गया और अनुबंध फ़ासिद हो गया, तो यदि खेती के बीज काश्तकार की ओर से हों तो पूरी पैदावार काश्तकार की होगी क्योंकि वह उसके बीजों से पैदा हुई है, और ज़मीन के मालिक को उसकी ज़मीन का किराया (1) देना होगा, और काश्तकार को नहर व कारीज़ की मरम्मत के काम का 'अज्र-अल-

मिसल' (उचित पारिश्रमिक) मालिक से पाने का अधिकार होगा। फिर दोनों आपस में मुक़ासमा (हिस्सा) कर लें और जिसकी बढ़त निकले वह ले ले। और यदि नहर खोदना अनुबंध में काश्तकार के ज़िम्मे शर्त न हो लेकिन काश्तकार ने स्वयं नहर खोदी, तो मज़ारअत जायज़ होगी और काश्तकार को नहर खोदने की कोई मज़दूरी नहीं मिलेगी। और यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों और अनुबंध में काश्तकार के ज़िम्मे नहर खोदना और 'मुसन्ना' (बाँध) ठीक करना शर्त हो, तो अनुबंध फ़ासिद होगा और पूरी पैदावार मालिक की होगी, और काम करने वाले (काश्तकार) को खेती के काम और नहर व कारीज़ की मरम्मत के लिए 'अज्र-अल-मिसल' मिलेगा। यदि दोनों ने ज़मीन के मालिक के ज़िम्मे नहर खोदना और कारीज़ ठीक करना शर्त किया ताकि ज़मीन में पानी आए, तो मज़ारअत दोनों की शर्त के अनुसार (2) जायज़ होगी, चाहे बीज काश्तकार की ओर से हों या मालिक की ओर से। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि मज़ारअत अनुबंध में दोनों में से किसी के ज़िम्मे खाद डालना शर्त किया गया, तो यदि काश्तकार के ज़िम्मे शर्त हो तो मज़ारअत फ़ासिद होगी, चाहे बीज किसी की भी तरफ से हों। ऐसी स्थिति में यदि बीज काश्तकार के हों तो पूरी पैदावार उसकी होगी और वह ज़मीन का किराया (अज्र-अल-मिसल) देगा, और काश्तकार ने जो खाद डाली है उसकी कीमत के बदले मालिक को कुछ भी देना ज़रूरी न होगा। और यदि बीज मालिक की ओर से हों तो पूरी पैदावार मालिक की होगी और वह काश्तकार के काम का पारिश्रमिक तथा खाद की कीमत अदा करेगा। और यदि खाद डालना मालिक के ज़िम्मे शर्त हो, तो यदि बीज काश्तकार की तरफ से हों तो मज़ारअत...

1- अनुवादक का कहना है कि यहाँ 'किराये' से तात्पर्य 'अज्र-अल-मिसल' है, यानी वह किराया जो ऐसी ज़मीन का प्रचलित हो। (1) किसी एक के लिए कहा। (2) ज़मीन के मालिक पर अनिवार्य होगा कि वह नहर व कारीज़ ठीक करे ताकि पानी आ सके।

---

**خراج موظف و خراج مقاسمہ ★**

اگر مزارعت میں دونوں نے باہم اس طرح شرط کی کہ جس قدر گیہوں پیدا ہوں وہ دونوں میں برابر مشترک ہوں اور جس قدر جو پیدا ہوں وہ ہم دونوں میں سے خاص (۱) اس کے ہوں یا یوں شرط لگائی کہ گیہوں خاص ایک کے اور جو خاص دوسرے کے ہوں اور حالانکہ بیج چاہے جس کی طرف سے ہوں تو یہ جائز نہیں ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے اور اگر زمین خراجی ہو اور مالک زمین نے کاشتکار سے کہا کہ ہم کو نہیں معلوم کہ سلطان اس سال ہم سے خراج موظف لے گا یا خراج مقاسمہ لے گا اور اس کے معنی یہ ہیں کہ بعض اراضی پر خراج موظف مقرر ہوتا ہے مگر بعض سال یہ اراضی خراج موظف کو برداشت نہیں کرسکتی ہے پس ایسی حالت میں سلطان کو روانہیں ہے خواہ مخواہ خراج موظف وصول کرے بلکہ خراج مقاسمہ لے سکتا ہے اور خراج مقاسمہ آدھی پیداوار تک ہوتا ہے سو مالک یہی کہتا ہے کہ مجھے معلوم نہیں کہ اس سال اراضی کو خراج موظف برداشت کرنے کی طاقت ہوگی کہ سلطان خراج موظف لے لے بنابریں کاشتکار سے کہتا ہے کہ میں تیرے ہاتھ اس طور پر معاملہ کرتا ہوں کہ اس میں سے حصہ سلطان خواہ خراج موظف ہو یا خراج مقاسمہ ہو دے کر باقی ہم دونوں میں نصفا نصف مشترک ہوگا تو ایسی مزارعت فاسد ہے اور اگر اپنی زمین دو شخصوں کو اس شرط سے دے کہ دونوں اپنے بیج سے اس میں زراعت کریں بدیں شرط کہ دونوں میں سے ایک کو تہائی پیداوار ملے گی اور دوسرے کو نو قفیز پیداوار لیں گے تو امام کے قیاس کے موافق پوری مزارعت فاسد ہے اور صاحبین کے نزدیک تہائی والے کے حق میں جائز ہے اور جس کے واسطے نو قفیز پیداوار مشروط ہے اس کے حق میں فاسد ہے یہ کافی میں ہے اگر عقد مزارعت میں زمین جوتنا مالک زمین کے ذمہ شرط کیا گیا پس اگر بیج

کاشتکار کی طرف سے ہوں تو مزارعت فاسد ہے اور اگر بیج مالک کی طرف سے ہوں تو جائز ہے یہ خلاصہ میں ہے۔

اگر کاشتکار کے ذمہ نہر اگارنا اور کاریز میں درست کرنا شرط کیا یہاں تک کہ عقد فاسد ہو گیا پس اگر زراعت کے بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو پوری پیداوار کاشتکار کی ہوگی کیونکہ اس کے بیجوں سے پیدا ہوئی ہے اور مالک زمین کا اس پر اپنی زمین کا کرایہ (۱) واجب ہوگا اور کاشتکار کا نہر و کاریز کے درستی کے کام کا اجر المثل مالک زمین پر واجب ہوگا پس دونوں باہم مقاسمہ کر لیں اور جس کا بڑھتی نکلے وہ لے لے اور اگر نہر اگارنا عقد مزارعت میں کاشتکار کے ذمہ شرط نہ کیا گیا ہو مگر کاشتکار نے خود ہی نہر اگاری تو مزارعت جائز ہوگی اور کاشتکار کے واسطے نہر اگارنے کی کچھ اجرت واجب نہ ہوگی اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور عقد مزارعت میں کاشتکار کے ذمہ نہر اگارنا و مسناۃ درست کرنا شرط کیا گیا تو عقد فاسد ہو گا اور تمام پیداوار مالک زمین کی ہو گی اور عامل کے واسطے مالک زمین پر کار زراعت کا و اصلاح کاریز و نہر دونوں کا اجر المثل واجب ہوگا اور اگر دونوں نے مالک زمین کے ذمہ نہر اگارنا و کاریز درست کر دینا شرط کیا تا کہ زمین میں پانی آئے تو مزارعت دونوں کی شرط کے موافق (۲) جائز ہو گی خواہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں یا مالک زمین کی طرف سے ہوں یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر عقد مزارعت میں دونوں میں سے کسی کے ذمہ کھاد ڈالنا شرط کیا گیا پس اگر کاشتکار کے ذمہ شرط کیا گیا تو مزارعت فاسد ہو گی چاہے بیج دونوں میں سے کسی کی طرف سے ہوں پس اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو تمام پیداوار اسی کی ہوگی اور اس پر زمین کا اجر المثل واجب ہوگا اور کاشتکار نے جو کھاد زمین میں ڈالی ہے اس کی قیمت کی بابت مالک زمین پر کاشتکار کو کچھ دینا واجب نہ ہوگا اور اگر بیج مالک کی طرف سے ہوں تو تمام پیداوار اسی کی ہوگی اور اس پر کار کاشتکار کا اجر المثل و جو کھاد ڈالی ہے اس

کی قیمت واجب ہوگی اور اگر کھاد ڈالنا مالک زمین کے ذمہ شرط کیا گیا پس اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو مزارعت

۱- قال المترجم کرایہ سے اجر المثل یعنی جو ایسی زمین کا پتا پتا ہو مراد ہے۔ (۱) ایک کسی کے واسطے کہا۔ (۲) مالک زمین پر واجب ہوگا کہ نہر و کاریز کو درست کرے تا کہ پانی آئے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 302 Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

[The agreement] is void (fasid), and the entire produce shall belong to [the provider of seeds], and the cultivator shall be entitled to fair market rent (ajr al-mithl) for the land and the price of the manure. If the seeds are provided by the landowner, the sharecropping (muzara'ah) will be valid. If adding manure was stipulated separately^1 from the sharecropping contract, its ruling is not mentioned in the book. It is narrated from Qadhi Imam Abdul Wahid al-Shaybani that he said: if adding manure was stipulated as the cultivator's responsibility outside of the contract, the sharecropping will be valid regardless of whose seeds they are. If it was stipulated as the responsibility of the landowner, then if the seeds are from the cultivator, it is not valid, just as it is not valid to stipulate plowing the land as the landowner's responsibility when the seeds are from the cultivator. If the seeds are also from the landowner, it is valid. This is in *Al-Khulasa*.

If the seeds are from the cultivator and the landowner stipulates that [the cultivator] must add manure to the land, some scholars said that according to the predecessors, the sharecropping is void, but according to the later scholars, it is not void, and the fatwa is based on the opinion of the later scholars. This was stated by Sheikh Khujandi and Aziz ibn Abi Sa’id; as mentioned in *Jawahir al-Akhlati*. A person gives his vineyard or land to someone on a sharecropping basis, and this person (the cultivator) undertakes to add manure, repair irrigation channels (kariz), clear canals, and fill holes etc. If these matters are stipulated as his responsibility, the contract will be void. If there is silence, these matters will not be mandatory for him. If he promised but might not fulfill it, the solution is for the worker to be hired for these tasks on a separate lease (ijarah) with a small known wage, without making it a condition within the contract. Thus, it will be correct and binding upon him, and the contract will also not be void. This is in *Jawahir al-Fatawa*.

If [providing] either the water-wheel (charkh) or leather bucket (charas) is stipulated as someone's responsibility, it is like stipulating the oxen^2. This is because the water-wheel and bucket are irrigation tools, and irrigation is the duty of the cultivator. Therefore, if the water-wheel and bucket are stipulated as the cultivator's responsibility, it is valid regardless of whose seeds they are. If they are stipulated as the landowner's responsibility while the seeds are from the cultivator, it is void. If the seeds are from the landowner, it is valid, as mentioned regarding the condition of the oxen. If the irrigation animal along with its fodder is stipulated as one's responsibility:

if it's the cultivator's responsibility, it is valid regardless of whose seeds they are, as mentioned regarding the oxen. If it was stipulated as the landowner's responsibility: if the seeds are from the cultivator, it is void; if they are from the landowner, it is valid, as mentioned regarding the stipulation of oxen. If the animal along with fodder is stipulated as the responsibility of someone other than the owner, it is void. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

If the landowner stipulates that if the cultivator plows the land and farms, he gets one-third, and if he farms without plowing, he gets one-fourth, the sharecropping is valid. What is mentioned in the original text, as narrated by Abu Hafs (RA), Abu Sulaiman's narration adds that the owner said: and if the cultivator farms and plows the land twice, he gets half. It is mentioned that if the cultivator plows twice and farms, the produce will be half according to the condition. Sheikh Isa bin Aban criticized this and said that what is mentioned—that if he plows twice and farms, the produce will be divided equally between them according to the condition—[is... continued on next page].

---

1. The phrase "separately" etc. is not mentioned in the original text, but the translator added it because this restriction is absolutely necessary for the core issue, for without it, the rulings change. The original wording either has an oversight, as scholars often do so that a layman is not misled regarding wages, or it was mentioned in the original manuscript but omitted due to a scribe's error. Allah knows best. 2. Like stipulating the oxen as one's responsibility.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 302 किताबुल मुज़ारअत (साझा खेती की पुस्तक)**

[अनुबंध] फासिद (अमान्य) है और पूरी पैदावार [बीज देने वाले] की होगी, और किसान ज़मीन के 'अज्र-उल-मिसल' (उचित बाज़ार किराए) और खाद की कीमत का हकदार होगा। यदि बीज ज़मीन मालिक की ओर से हों, तो मुज़ारअत (साझा खेती) वैध होगी। यदि मुज़ारअत अनुबंध से अलग ^1 खाद डालना शर्त बनाया गया, तो इसका आदेश पुस्तक में वर्णित नहीं है। काज़ी इमाम अब्दुल वाहिद शैबानी से वर्णित है कि उन्होंने कहा: यदि अनुबंध से बाहर खाद डालना किसान की ज़िम्मेदारी के रूप में शर्त रखा गया, तो मुज़ारअत वैध होगी, चाहे बीज दोनों में से किसी की भी ओर से हों। यदि इसे ज़मीन मालिक की ज़िम्मेदारी शर्त रखा गया, तो यदि बीज किसान की ओर से हैं, तो यह वैध नहीं है, जैसे कि किसान की ओर से बीज होने की स्थिति में ज़मीन जोतना मालिक की ज़िम्मेदारी शर्त रखना वैध नहीं है। यदि बीज भी ज़मीन मालिक की ओर से हों, तो यह वैध है। यह 'खुलासा' में है।

यदि बीज किसान की ओर से हों और ज़मीन मालिक ने यह शर्त रखी कि वह ज़मीन में खाद डाले, तो कुछ विद्वानों ने कहा कि पूर्ववर्तियों (मुतकाद्दिमीन) के अनुसार मुज़ारअत फासिद है, लेकिन बाद के विद्वानों (मुताअक़्ख़िरीन) के अनुसार यह फासिद नहीं होती है, और फतवा बाद के विद्वानों के कथन पर है। यह शेख खुजंडी और अज़ीज़ इब्न अबी सईद ने कहा है; जैसा कि 'जवाहिर अल-अख़लाती' में है। एक व्यक्ति ने अपना अंगूर का बाग या ज़मीन किसी व्यक्ति को मुज़ारअत पर दी और यह व्यक्ति खाद डालने, कारीज़ (सिंचाई नाली) ठीक करने, नहर साफ करने और गड्ढे भरने आदि का जिम्मा लेता है। यदि ये बातें उसकी ज़िम्मेदारी के रूप में शर्त रखी गईं, तो अनुबंध फासिद होगा। यदि मौन रहा गया, तो ये बातें उस पर अनिवार्य नहीं होंगी। यदि उसने वादा कर लिया और शायद उसे पूरा न करे, तो इसका तरीका यह है कि कार्यकर्ता को इन कामों के लिए अनुबंध में शर्त रखे बिना एक छोटी ज्ञात मज़दूरी पर इज़ारा (पट्टे) पर ले लिया जाए। इस प्रकार यह सही और उस पर अनिवार्य होगा, और अनुबंध भी फासिद नहीं होगा। यह 'जवाहिर अल-फ़तावा' में है।

यदि चरख (रहाट) या चरस (चमड़े का थैला) में से किसी एक को किसी की ज़िम्मेदारी शर्त रखा गया, तो यह बैल ^2 को शर्त रखने के समान है। ऐसा इसलिए क्योंकि चरख और चरस सिंचाई के उपकरण हैं, और सिंचाई करना किसान पर अनिवार्य है। अतः यदि चरख और चरस किसान की ज़िम्मेदारी शर्त हो, तो यह वैध है, चाहे बीज दोनों में से किसी के भी हों। यदि वे मालिक की ज़िम्मेदारी शर्त हों जबकि बीज किसान की ओर से हों, तो यह फासिद है। यदि बीज मालिक की ओर से हों, तो यह वैध है, जैसा कि बैल की शर्त के बारे में वर्णित हुआ है। यदि सिंचाई का पशु चारे सहित किसी की

ज़िम्मेदारी शर्त रखा गया: यदि वह किसान की ज़िम्मेदारी हो, तो वैध है चाहे बीज किसी के भी हों, जैसा कि बैल की शर्त के मामले में वर्णित हुआ है। यदि इसे ज़मीन मालिक की ज़िम्मेदारी शर्त रखा गया: तो यदि बीज किसान के हों, तो फासिद है; यदि बीज मालिक के हों, तो वैध है, जैसा कि बैल शर्त रखने के मामले में वर्णित हुआ है। यदि पशु चारे सहित मालिक के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की ज़िम्मेदारी शर्त रखा गया, तो यह फासिद है। यह 'मुहीत सरखसी' में है।

यदि ज़मीन मालिक ने यह शर्त लगाई कि यदि किसान ज़मीन जोतकर खेती करेगा तो उसे एक-तिहाई मिलेगा, और यदि बिना जोते खेती करेगा तो उसे चौथाई मिलेगा, तो मुज़ारअत वैध है। मूल पाठ में जो वर्णित है, जिसे अबू हफ़्स (रह.) ने रिवायत किया है, उसकी तुलना में अबू सुलेमान की रिवायत में कुछ अधिकता यह है कि मालिक ने कहा: और यदि किसान ने खेती की और दो बार ज़मीन जोती, तो उसे आधा मिलेगा। यह उल्लेख किया गया है कि यदि किसान ने दो बार जोतकर खेती की, तो शर्त के अनुसार पैदावार आधी होगी। शेख ईसा बिन अबान ने इस पर आपत्ति की और कहा कि यह जो उल्लेख किया गया है कि यदि उसने दो बार जोतकर खेती की तो पैदावार शर्त के अनुसार दोनों में बराबर बटेगी... [आगे का पाठ अगले पृष्ठ पर है]।

---

1. 'अलग' आदि शब्द मूल पाठ में वर्णित नहीं हैं, लेकिन अनुवादक ने इसे इसलिए बढ़ाया क्योंकि मूल मुद्दे में यह शर्त अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना आदेश बदल जाते हैं। मूल पाठ की इबारत में या तो चूक है, जैसा कि विद्वान अक्सर करते हैं ताकि साधारण व्यक्ति मज़दूरी के बारे में भ्रमित न हो, या यह मूल पांडुलिपि में वर्णित था और लिपिक की गलती से छूट गया। अल्लाह बेहतर जानता है। 2. जैसे बैल को किसी एक की ज़िम्मेदारी शर्त रखा गया।

فاسد ہے اور تمام پیداوار کی ہوگی اور کاشتکار پر زمین کا اجر المثل اور کھاد کی قیمت واجب ہوگی اور اگر بیج زمین دار کی طرف سے ہوں تو مزارعت جائز ہوگی اور اگر عقد مزارعت سے علیحدہ ۱۸ کھاد ڈالنا شرط کیا گیا تو اس کا حکم کتاب میں مذکور نہیں ہے اور قاضی امام عبد الواحد شیبانی سے منقول ہے کہ انہوں نے فرمایا کہ اگر عقد سے خارج کھاد ڈالنا کاشتکار کے ذمہ شرط کیا گیا تو مزارعت جائز ہوگی چاہے بیج دونوں میں سے کسی کی طرف سے ہوں اور اگر مالک زمین کے ذمہ شرط کیا گیا پس اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو جائز نہیں ہے جیسا کہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہونے کی صورت میں مالک زمین کے ذمہ زمین جوتنے کی شرط نہیں جائز ہے اور اگر بیج بھی مالک زمین کی طرف سے ہوں تو جائز ہے یہ خلاصہ میں ہے۔

اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہونے کی صورت میں مالک زمین نے یہ شرط کی کہ زمین میں کھاد ڈالے تو بعض نے فرمایا کہ متقدمین کے نزدیک مزارعت فاسد ہے اور متاخرین کے نزدیک مزارعت فاسد نہیں ہوتی ہے اور فتویٰ متاخرین کے قول پر ہے یہ شیخ خجندی اور عزیز ابن ابی سعید نے فرمایا ہے کذا فی جواہر الاخلاطی۔ ایک شخص نے اپنا باغ انگور یا زمین معاملہ مزارعت پر کسی شخص کو دیا اور یہ شخص کھاد ڈالنے اور کاریز درست کرنے اور نہر اگارنے اور گڑھے وغیرہ پاٹنے کا التزام کرتا ہے پس اگر یہ امور اس کے ذمہ شرط کیے تو عقد فاسد ہو گا اور اگر سکوت کیا تو یہ امور اس کے ذمہ لازم نہ ہوں گے اور اگر اس نے وعدہ کر لیا تو شاید نہ وفا کرے تو اس کی صورت یہ نکلتی ہے کہ عامل کو تھوڑی سی اجرت پر آگاہ کر کے بدوں عقد میں مشروط کرنے کے ان کاموں کے واسطے اجارہ پر لے لے پس یہ صحیح اور اس کے ذمہ لازم ہوگا اور عقد بھی فاسد نہ ہوگا یہ جواہر الفتاویٰ میں ہے اور اگر چرخ و چرس دونوں میں سے

ایک کے ذمہ شرط کیا گیا تو مثل بیل ۲۸ کے شرط کرنے کے ہے اس واسطے کہ چرخ و چرس سینچنے کے آلات میں سے ہے اور سینچنا کاشتکار پر واجب ہے پس اگر چرخ و چرس کاشتکار کے ذمہ مشروط ہو تو یہ جائز ہے خواہ بیج دونوں میں سے کسی کی طرف سے ہوں اور اگر مالک کے ذمہ مشروط ہوں حالانکہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہیں تو فاسد ہے اور اگر بیج مالک کی طرف سے ہوں تو جائز ہے جیسا کہ بیل کی شرط لگانے کی صورت میں مذکور ہوا ہے اور اگر سینچنے کا چوپایہ مع چارا کے ایک کے ذمہ شرط کیا گیا پس اگر چوپایہ مع چارا کے کاشتکار کے ذمہ شرط کیا گیا تو جائز ہے بیج دونوں میں سے چاہے جس کی طرف سے ہوں جیسا کہ بیل کے شرط لگانے کی صورت میں مذکور ہوا ہے اور اگر مالک زمین کے ذمہ اس کی شرط لگائی پس اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو فاسد ہے اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں تو جائز ہے جیسا کہ بیل شرط کیے جانے کی صورت میں مذکور ہوا ہے اور اگر چوپایہ مع چارا کے مالک کے سوا کسی شخص غیر کے ذمہ شرط کیا گیا تو یہ فاسد ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر مالک زمین نے یوں شرط لگائی کہ اگر کاشتکار نے زمین جوت کر زراعت کی تو اس کو تہائی ملے گا اور اگر بغیر جوتے زراعت کی تو چوتھائی ملے گا تو مزارعت جائز ہے اور پھر جو اصل میں مذکور ہے اس کو جس طرح ابو حفصؒ نے روایت کیا ہے اس کے بہ نسبت ابوسلیمان کی روایت میں کچھ زیادتی یہ ہے کہ مالک نے کہا کہ اور اگر کاشتکار نے زراعت کی اور دو بار زمین کو جوتا تو اس کو آدھا ملے گا اور ذکر کیا کہ اگر کاشتکار نے دو بار جوتا اور زراعت کی تو موافق شرط کے پیداوار نصف ہوگی اور شیخ عیسیٰ بن ابان نے اس پر طعن کیا اور کہا کہ یہ جو ذکر کیا ہے کہ اگر اس نے دو بار جوت کر زراعت کی تو پیداوار موافق شرط کے دونوں میں برابر تقسیم ہوگی

۱۔ قولہ علیحدہ الخ اصل میں یہ قید مذکور نہیں ہے لیکن مترجم نے اس واسطے بڑھائی کہ اصل مسئلہ میں یہ قید قطعی ضروری ہے کیونکہ بدوں اس کے احکام بدل جائیں گے اور اصل کی عبارت میں یا تو تسامح ہے کیونکہ علماء اکثر ایسا کرتے ہیں تاکہ ناسمجھ کو اجرت نہ ہو یا اصلی نسخہ میں مذکور ہو اور مکاتب کی غلط نویسی سے ساقط ہو گئی واللہ تعالیٰ اعلم۔ ۲۔ جیسے بیل ایک کے ذمہ شرط کیا گیا۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) Page 303 Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

A form for its validity is not apparent because the landowner has given him a choice among three contracts. When he leans toward any one of these three contracts, it becomes as if there was no other contract from the beginning. It is evident that if, from the start, both had stipulated the condition that he should weed/till the land again for cultivation and receive half of the produce, the sharecropping (*muzara'ah*) would be voidable/corrupt (*fasid*). (Thus, it should also be voidable in this case.) Sheikh Abu al-Qasim al-Saffar al-Balkhi (RA) leaned toward this view. However, Faqih Abu Bakr al-Balkhi (RA) stated that what Imam Muhammad (RA) mentioned based on the narration of Abu Sulayman is correct. Faqih Abu Bakr used to distinguish between these two scenarios: if the sharecropping contract was based solely on plowing twice from the beginning, then the *muzara'ah* is not permissible. But if there are other contracts along with the condition of plowing twice for cultivation, then the *muzara'ah* is permissible with the condition of plowing twice; this is found in 'Al-Muhit'. If both parties stipulated that both grain and straw be shared fifty-fifty, it is permissible, and both grain and straw will be divided according to the condition. Similarly, if they stipulated that the *rub'*[1] (quarter), *zar'* (crop), or *kharij* (produce) be shared equally between them, it is permissible and all will be shared according to the condition. If they stipulated that the grain belongs solely to one and the straw to the other, there are eight scenarios, six of which are voidable (*fasid*) and two are permissible. Among the voidable scenarios: first, they stipulated the grain for the landowner and the straw for the cultivator; second, the straw for the landowner and the grain for the cultivator; third, the grain for the landowner and the straw to be shared; fourth, the grain for the cultivator and the straw to be shared; fifth, the grain shared between both and the straw for the landowner. In this fifth case, if the straw is stipulated for the person providing the seeds, it is permissible; if it is stipulated for the one not providing the seeds, it is not permissible.

It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that this is not permissible at all. It is narrated from some scholars (*mashayikh*) that if they stipulated that the grain be shared but remained silent regarding the straw, then according to custom and usage (*'urf-o-riwaj*), the straw will also be shared. The sixth scenario is that they stipulated the straw be shared but remained silent regarding the grain; this is not permissible. Thus, in these scenarios, the *muzara'ah* is not valid because such a condition severs the original intent of partnership, as there is a possibility that one thing is obtained

while the other is not. If one gave his land for cultivation and the crop had already sprouted (reached the *saaga* stage), and both stipulated that the grain be shared equally and the straw goes to the landowner, it is not permissible. If they stipulated equal share in grain and remained silent on straw, the contract is valid and the straw belongs to the landowner. If they stipulated the straw for the cultivator, it is voidable because such a crop that has already sprouted is like giving seeds on sharecropping. In this case, if straw is stipulated for the one who sows the seeds, it can be permissible; if stipulated for the other, it is not permissible (this applies to the aforementioned case as well). This is found in 'Fatawa Qazi Khan'. If a condition was placed on the cultivator to sow safflower (*kusum*) and they stipulated partnership in the safflower, stalks (*kar*), and stems (*dandiyan*), it is permissible. If they stipulated that safflower and stalks be shared but the stems go to one person, then if the stems are stipulated for the seed provider, it is permissible; if for the non-provider, it is not. If they stipulated that the safflower and stalks belong to one and the stems to the other, it is not permissible. And if they stipulated thus...

---

[1] All these terms are used in the sense of crop yield/produce.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) पृष्ठ 303 किताब अल-मुज़ारअह (बटाईदारी की किताब)**

इसकी वैधता की कोई सूरत नज़र नहीं आती क्योंकि ज़मीन के मालिक ने उसे तीन अनुबंधों में विकल्प (ख़ियार) दिया है। और जब वह इन तीनों में से किसी एक अनुबंध की ओर झुकेगा, तो ऐसा हो जाएगा जैसे शुरुआत से उसके सिवा कोई और अनुबंध नहीं था। और यह स्पष्ट है कि यदि शुरू से ही दोनों ने यह शर्त लगाई होती कि वह दोबारा निराई-गुड़ाई करके खेती करे और उसे आधी पैदावार मिले, तो यह बटाईदारी (मुज़ारअत) अमान्य (फ़ासिद) होती (अतः इस स्थिति में भी इसे अमान्य ही होना चाहिए)। शेख अबुल कासिम अल-सफ़्फ़ार अल-बल्ख़ी रह. का रुझान इसी ओर है। किंतु फ़क़ीह अबू बक्र बल्ख़ी रह. ने फ़रमाया कि इमाम मुहम्मद रह. ने अबू सुलेमान की रिवायत से जो उल्लेख किया है वह सही है। फ़क़ीह अबू बक्र इन दोनों स्थितियों में अंतर करते थे कि यदि शुरुआत से ही केवल दो बार हल जोतने पर मुज़ारअत का अनुबंध किया गया, तो यह मुज़ारअत जायज़ नहीं है। और यदि दो बार हल जोतकर खेती करने के साथ अन्य अनुबंध भी हों, तो दो बार जोतने की शर्त के साथ मुज़ारअत जायज़ है, यह 'मुहीत' में वर्णित है। और यदि दोनों ने यह शर्त लगाई कि अनाज और भूसा दोनों आधा-आधा हो, तो यह जायज़ है और अनाज व भूसा दोनों शर्त के अनुसार विभाजित होंगे। इसी प्रकार यदि दोनों ने यह शर्त लगाई कि 'रुब'[1] या 'ज़रअ' या 'ख़ारिज' (पैदावार) हम दोनों के बीच बराबर साझा हो, तो यह जायज़ है और शर्त के अनुसार सब साझा होगा। और यदि दोनों ने इस तरह शर्त लगाई कि अनाज केवल एक का हो और भूसा दूसरे का, तो इसमें आठ स्थितियाँ हैं जिनमें से छह अमान्य (फ़ासिद) हैं और दो जायज़ हैं। अमान्य स्थितियों में से एक यह है कि दोनों ने शर्त लगाई कि अनाज ज़मीन के मालिक का और भूसा किसान का हो; दूसरी यह कि भूसा ज़मीन के मालिक का और अनाज किसान का हो; तीसरी यह कि अनाज ज़मीन के मालिक का हो और भूसा साझा हो; चौथी यह कि अनाज किसान का और भूसा साझा हो; पाँचवीं यह स्थिति है कि अनाज दोनों में साझा हो और भूसा ज़मीन के मालिक का हो। इस स्थिति में यदि भूसा उस व्यक्ति के लिए तय किया गया जिसकी ओर से बीज हैं, तो जायज़ है, और यदि उसके लिए तय किया गया जिसकी ओर से बीज नहीं हैं, तो जायज़ नहीं है।

इमाम अबू यूसुफ़ रह. से वर्णित है कि यह बिल्कुल जायज़ नहीं है। कुछ उलेमा से वर्णित है कि यदि दोनों ने इस तरह शर्त लगाई कि अनाज दोनों में साझा हो और भूसे के बारे में मौन रहे, तो परंपरा और रीति-रिवाज़ (उर्फ़ओ-रिवाज) के अनुसार भूसा भी दोनों में साझा होगा। छठी स्थिति यह है कि भूसा साझा हो और अनाज के बारे में मौन रहें, तो यह जायज़ नहीं है। अतः इन स्थितियों में मुज़ारअत

सही नहीं है क्योंकि यह ऐसी शर्त है जो मूल उद्देश्य (साझेदारी) को समाप्त कर देती है, क्योंकि संभावना है कि एक चीज़ प्राप्त हो और दूसरी न हो। और यदि किसी ने अपनी ज़मीन खेती के लिए दी और उसकी फसल अभी हरी (सागा) ही थी और दोनों ने शर्त लगाई कि अनाज बराबर साझा हो और भूसा ज़मीन के मालिक को मिले, तो यह जायज़ नहीं है। और यदि अनाज साझा हो और भूसे पर मौन रहें, तो अनुबंध जायज़ होगा और भूसा ज़मीन के मालिक को मिलेगा। और यदि भूसा किसान के लिए तय किया गया तो यह अमान्य है, क्योंकि ऐसी फसल जो हरी (सागा) हो चुकी है, बटाई पर देना बीज को बटाई पर देने के समान है। इस स्थिति में यदि बीज डालने वाले के लिए भूसा तय किया जाए तो जायज़ हो सकता है, अन्यथा नहीं (यही बात उपरोक्त स्थिति में भी है)। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। यदि किसान पर शर्त लगाई कि वह कुसुम (Safflower) बोए और दोनों ने कुसुम, डंठल और टहनियों में साझेदारी की शर्त रखी, तो जायज़ है। यदि कुसुम और डंठल साझा होने की शर्त रखी और टहनियाँ किसी एक के लिए तय कीं, तो यदि टहनियाँ बीज देने वाले के लिए तय की गईं तो जायज़ है, अन्यथा नहीं। यदि शर्त रखी कि कुसुम और डंठल एक के हों और टहनियाँ दूसरे की, तो जायज़ नहीं है। और यदि इस प्रकार शर्त रखी...

---

[1] ये सभी शब्द पैदावार (उपज) के अर्थ में हैं।

---

اس کے صحت کی صورت نظر نہیں آتی ہے کیونکہ مالک زمین نے اس کو تین عقدوں میں خیار دیا ہے اور جب وہ ان تینوں میں سے کسی عقد کی جانب میل کرے گا تو ایسا ہو جائے گا کہ گویا ابتدائے سوائے اس کے اور کوئی عقد نہ تھا اور ظاہر ہے کہ ابتدا سے دونوں نے یہ شرط لگائی ہوتی کہ دوبارہ گوڑ کر زراعت کرے اور اس کو نصف پیداوار ملے گی تو مزارعت فاسد تھی (پس ایسا ہی اس صورت میں بھی فاسد ہونی چاہیے) اور اسی طرف شیخ ابوالقاسم الصفار بلخیؒ نے میل کیا ہے مگر فقیہ ابوبکر بلخیؒ نے فرمایا کہ امام محمدؒ نے جو بروایت ابوسلیمان ذکر کیا ہے وہ صحیح ہے اور فقیہ ابوبکر ان دونوں صورتوں میں فرق کرتے تھے کہ اگر ابتدا سے فقط دو بار جوتنے پر عقد مزارعت قرار دیا تو مزارعت جائز نہیں ہے اور اگر دو بار جوت کر زراعت کرنے کی ساتھ اور عقود بھی ہوں تو دو بار جوتنے کی شرط سے مزارعت جائز ہے یہ محیط میں ہے اور اگر دونوں نے یہ شرط کی کہ دانہ وبھوسا دونوں میں نصفا نصف ہو تو جائز ہے اور دانہ وبھوسہ دونوں میں موافق شرط کے تقسیم ہوگا۔ اس طرح اگر دونوں نے یہ شرط کی کہ ربع[1] یا زرع یا خارج ہم دونوں میں برابر مشترک ہو تو جائز ہے اور موافق شرط کے سب دونوں مشترک ہوگی اور اگر دونوں نے اس طرح شرط کی کہ دانہ فقط ایک کا ہو اور بھوسہ دوسرے کا ہو تو اس میں آٹھ صورتیں ہیں جس میں چھ فاسد ہیں اور دو جائز ہیں پس فاسد صورتوں میں ایک یہ ہے کہ دونوں نے شرط کی کہ دانہ مالک زمین کا اور بھوسہ کاشتکار کا ہو دوسری یہ کہ بھوسہ مالک زمین کا اور دانہ کاشتکار کا ہو اور تیسری یہ کہ دونوں نے شرط کی کہ دانہ مالک زمین کا ہو اور بھوسہ دونوں میں مشترک ہو اور چوتھی یہ کہ دونوں نے شرط لگائی کہ دانہ کاشتکار اور بھوسہ دونوں میں مشترک ہو پانچویں یہ صورت ہے کہ دونوں نے یوں شرط لگائی کہ دانہ دونوں میں

مشترک ہو اور بھوسہ مالک زمین کا اور اس صورت میں اگر بھوسہ ایسے شخص واسطے شرط کیا جس کی طرف سے بیج ہیں تو جائز ہے اور اگر اس کے واسطے شرط کیا ہے جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں تو جائز نہیں ہے۔

امام ابویوسفؒ سے مروی ہے کہ یہ بالکل نہیں جائز ہے اور بعض مشائخ سے مروی ہے کہ اگر دونوں نے اس طرح سے شرط لگائی کہ دانہ دونوں میں مشترک ہو اور بھوسے کے بیان سے سکوت کیا تو عرف ورواج کے موافق بھوسہ بھی دونوں میں مشترک ہوگا اور چھٹی صورت یہ ہے کہ دونوں نے یہ شرط کی کہ بھوسہ دونوں میں مشترک اور غلہ کے بیان سے سکوت کیا تو جائز نہیں ہے پس اس صورتوں میں مزارعت صحیح نہیں ہے اس واسطے کہ یہ ایسی شرط ہے کہ اصل مقصود کی شرکت کو قطع کرتی ہے بوجہ اس کے کہ احتمال ہے کہ دونوں میں سے ایک چیز حاصل ہو دوسری حاصل نہ ہو اور اگر اپنی زمین زراعت کے واسطے دی اور اس کی کھیتی ساگا ہو گئی تھی اور دونوں نے یہ شرط لگائی کہ غلہ دونوں میں برابر مشترک ہو اور بھوسہ مالک زمین کو ملے تو نہیں جائز ہے اور اگر دونوں نے یہ شرط کی ہو کہ غلہ دونوں میں برابر مشترک ہو اور بھوسے کے بیان سے سکوت کیا ہو تو عقد جائز ہو گا اور بھوسہ مالک زمین کو ملے گا اور اگر دونوں نے بھوسہ کاشتکار کے واسطے شرط کیا ہو تو فاسد ہے کیونکہ ایسی کھیتی جو ساگا ہو چکی ہے مزارعت میں بیج مزارعت پر دینے کے مانند ہے اور اس صورت میں اگر بیج ڈالنے والے کے واسطے بھوسہ شرط کیا جائے تو جائز ہو سکتا ہے اور اگر دوسرے کے واسطے شرط کیا جائے تو نہیں جائز ہوتا ہے (پس ایسا ہی صورت مذکورہ میں بھی ہے) یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر کاشتکار کے ذمہ شرط لگائی کہ کسم بوئے اور دونوں نے کسم اور کڑ اور ڈنڈیوں میں شرکت شرط کرلی تو جائز ہے اور اگر کسم وکڑ دونوں نے مشترک ہونے کی شرط کرلی اور ڈنڈیاں کسی ایک کے واسطے ہونے کی شرط کی پس اگر ڈنڈیاں اس کے واسطے

مشروط کیں جس کی طرف سے بیج ہیں تو جائز ہیں اور اگر اس کے واسطے شرط کیں جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں تو نہیں جائز ہے اور اگر یوں شرط کی کہ کسم وکڑا ایک کی ہو اور ڈنڈیاں دوسرے کی ہوں تو نہیں جائز ہے اور اگر یوں شرط کی

---

[1] یہ سب الفاظ بمعنی حاصلات پیداوار۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 304 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

If the type of seed belongs to one party and the measurement unit (yard) to another, it is not permissible. Similarly, if one gives their land to another for harvesting and both stipulate that the harvesting implements belong to one and the seeds to the other, the same ruling applies: the contract is not valid. This is mentioned in *Al-Muhit*.

If one gives their land for cultivation on the condition that wheat and barley be sown, with the stipulation that the wheat specifically belongs to one party and the barley specifically to the other, the contract is *fasid* (irregular/invalid). This ruling applies to everything where both parties are entitled to the produce, and each part of the produce can be a distinct objective. For example, regarding flaxseeds and flax; if a condition is made that the flax specifically belongs to one and the flaxseeds to the other, it is not permissible. Stipulating melon and wood seeds specifically for one party is akin to stipulating fodder for one. In contrast, this does not apply to clover and clover seeds, or safflower and its dregs (1); this is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*.

The fundamental principle is that if both the landowner and the sharecropper include an irregular condition (*shart-e-fasid*) in the sharecropping contract (*muzar'ah*), one must examine the condition. If it is such that neither of the contracting parties gains any benefit from it—for example, if both stipulate that one party shall not sell or consume their share of the produce—then the sharecropping contract (2) is valid.

However, if there is a benefit in this condition for either of the parties, there are two scenarios: If the condition is intrinsic to the core of the contract (*sulb-e-aqd*) in such a way that a specific exchange (*badal*) is fixed for it (since in compensatory contracts, a contract is not valid without an exchange for its core components), then if a condition is included in this way, such sharecropping will be *mashrut-e-fasid* (conditionally invalid). It will never become valid again even if the person for whose benefit the condition was made waives it. For example, if in a sharecropping contract, both parties stipulated twenty dirhams along with half the produce for one party, and then the one for whom the dirhams were stipulated waived the condition before the work began; or for example, if the responsibility for reaping and threshing was stipulated on one party, rendering the contract *fasid* according to the rulings of the book, and then (3) the person for whom this was stipulated waived it, the aforementioned contract will not become valid.

But if such a condition is not part of the core of the contract but is rather derivative (*mustafad*), meaning there is no exchange value assigned to it—for example, a condition of an unknown option (*khiyar-e-majhul*) (4) or an unknown term (*mi'ad-e-majhul*) was made for one of the parties—and the person for whom the condition was made waives it before the corruption becomes settled, then according to our three leading scholars (*ulama-e-salasa*), the sharecropping contract will transform and become valid. If such a condition was stipulated for both parties, then unless both agree on its annulment before the corruption is established, the contract will not transform into a valid one. The annulment by only one party is insufficient because the corruptive condition will remain for the other, and that degree of corruption is enough to invalidate the contract.

If both stipulated that one person sell their share to the other, the sharecropping will be *fasid*. If either the seller or the buyer then annuls this condition, the contract will not become valid. However, if both agree to annul it, the contract will transform and become valid. If one party stipulated that the other must gift (*hiba*) their share of the produce to them, the sharecropping will be *fasid*. If the recipient of the gift annuls this condition before the work begins, the contract will become valid. Some of our masters have stated that the annulment by the recipient alone should not make the contract valid, but the most correct view is what is mentioned in the book.

---

Note 'A': It should be clear that the original text (Al-Asl) is... This phrasing is corrupted, and Allah knows best. In my research, the correct meaning is what has been translated. In essence, any contract based on mutual exchange is not a valid compensatory contract unless there is a consideration (*iwaz*) for the core of the contract; thus it becomes void, just as a sale without a price is not valid. When these conditions are part of the core contract, there must be a consideration for them. Understand this. Note 2: Unknown option (*khiyar-e-majhul*), meaning it wasn't specified who holds the option. (1) Each of these is a desired outcome upon maturity. (2) And the condition is void. (3) For whose benefit.

कि किस्म (प्रकार) एक का हो और गज़ (माप) दूसरे का हो, तो भी जायज़ नहीं है। इसी तरह अगर अपनी ज़मीन दूसरे को बुवाई के लिए दी और दोनों ने शर्त की कि बुवाई एक की होगी और बीज दूसरे के होंगे, तो भी यही हुक्म है कि अनुबंध (निकाह/कांट्रैक्ट) जायज़ नहीं है, यह 'मुहीत' में है।

अगर अपनी ज़मीन खेती के लिए दी कि उसमें गेहूं और जौ बोए जाएं इस शर्त पर कि गेहूं विशेष रूप से एक का हो और जौ विशेष रूप से दूसरे का हो, तो यह अनुबंध 'फ़ासिद' (अमान्य) है। इसी तरह हर वह चीज़ जिसकी पैदावार में दोनों हिस्सेदार हों और जिसमें से हर एक का उद्देश्य अलग हो सकता हो, उसमें यही हुक्म है। जैसे अलसी के बीज और अलसी (सन); कि अगर एक के लिए विशेष रूप से अलसी की शर्त की और दूसरे के लिए विशेष रूप से अलसी के बीज की शर्त की, तो यह जायज़ नहीं है। खरबूज़े और लकड़ी के बीज का किसी एक के लिए विशेष रूप से शर्त करना भूसे की शर्त करने के समान ही है। इसके विपरीत ऱतबा (हरा चारा) और ऱतबा के बीज, या कुसुम और उसके अवशेष (1) के मामले में ऐसा नहीं है, यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। मूल बात यह है कि ज़मीन के मालिक और किसान दोनों ने अगर बटाईदारी के अनुबंध (अक्द-ए-मुज़ारआ) में कोई 'शर्त-ए-फ़ासिद' (अमान्य शर्त) लगाई हो, तो उस शर्त को देखना चाहिए। यदि ऐसी शर्त हो जिससे अनुबंध करने वाले दोनों पक्षों में से किसी को भी कोई लाभ न हो, उदाहरण के लिए दोनों ने एक पक्ष पर यह शर्त लगाई कि वह अपनी पैदावार का हिस्सा न बेचे या न खाए, तो बटाईदारी (2) जायज़ है।

लेकिन अगर दोनों पक्षों में से किसी के लिए इस शर्त में कोई लाभ हो, तो उसकी दो स्थितियाँ हैं: यानी यदि यह शर्त अनुबंध के मूल (सल्ब-ए-अक्द) में शामिल हो इस प्रकार कि उसके लिए कुछ विनिमय (बदल) तय हो, क्योंकि प्रतिपूरक अनुबंधों (अक़ूद-ए-मुआविज़ात) में जब तक अनुबंध के मूल के बदले में कोई विनिमय न हो, तब तक अनुबंध जायज़ नहीं होता। अतः यदि शर्त इस तरह शामिल हो, तो ऐसी बटाईदारी 'मशरूत-ए-फ़ासिद' होगी और वह कभी भी पुनः जायज़ नहीं होगी, भले ही वह व्यक्ति जिसके लाभ के लिए शर्त थी, शर्त को रद्द कर दे। उदाहरण के लिए, बटाईदारी के अनुबंध में दोनों ने एक के लिए आधी पैदावार के साथ बीस दिरहम की शर्त की, फिर जिसके लिए दिरहम की शर्त की गई थी उसने काम शुरू होने से पहले शर्त रद्द कर दी; या उदाहरण के लिए दोनों ने फसल काटने और उसे रौंदने की ज़िम्मेदारी किसी एक पर शर्त की, जिससे उक्त पुस्तक के हुक्म के अनुसार अनुबंध फ़ासिद हो गया, फिर (3) जिसके लिए यह शर्त थी उसने इसे रद्द कर दिया, तो उक्त अनुबंध जायज़ नहीं हो जाएगा।

और अगर ऐसी शर्त अनुबंध के मूल में शामिल न हो बल्कि अनुबंध से अनुमानित (मुस्तफ़ाद) हो, यानी इस तरह कि उसके लिए विनिमय का कोई हिस्सा न हो, उदाहरण के लिए बटाईदारी में दोनों में से एक के लिए 'खियार-ए-मझूल' (अज्ञात विकल्प) (4) या 'मियाद-ए-मझूल' (अज्ञात अवधि) की शर्त की गई, फिर जिसके लिए शर्त थी उसने अनुबंध बिगड़ने से पहले उक्त शर्त को समाप्त कर दिया, तो हमारे तीनों प्रसिद्ध इमामों (उलमा-ए-सलासा) के निकट वह बटाईदारी का अनुबंध बदलकर जायज़ हो जाएगा। और अगर ऐसी शर्त दोनों के लिए अनिवार्य थी, तो जब तक दोनों उसके रद्द करने पर सहमत न हों, अनुबंध जायज़ नहीं होगा; केवल एक के रद्द करने से यह जायज़ नहीं हो सकता क्योंकि अमान्य करने वाली शर्त दूसरे के लिए बनी रहेगी और अनुबंध को फ़ासिद करने के लिए इतनी खराबी पर्याप्त है।

यदि दोनों ने यह शर्त लगाई कि एक व्यक्ति अपना हिस्सा दूसरे को बेच दे, तो बटाईदारी फ़ासिद होगी। फिर अगर विक्रेता या खरीदार ने इस शर्त को रद्द किया, तो भी अनुबंध जायज़ नहीं होगा। हाँ, अगर दोनों ने मिलकर इसे रद्द कर दिया, तो अनुबंध बदलकर जायज़ हो जाएगा। और अगर एक ने दूसरे पर यह शर्त लगाई कि वह पैदावार में से अपना हिस्सा मुझे दान (हिबा) कर दे, तो बटाईदारी फ़ासिद होगी; फिर अगर जिसे दान मिलना था उसने काम शुरू होने से पहले यह शर्त रद्द कर दी, तो अनुबंध जायज़ हो जाएगा। हमारे कुछ विद्वानों ने कहा है कि केवल प्राप्तकर्ता के रद्द करने से बटाईदारी का अनुबंध जायज़ नहीं होना चाहिए, लेकिन अधिक सही वही है जो किताब में वर्णित है।

---

1- स्पष्ट रहे कि मूल इबारत (अल-अस्ल) यह है... यह इबारत संदिग्ध (मुहर्रफ़) है, अल्लाह बेहतर जानता है। मेरे शोध के अनुसार अर्थ वही है जो अनुवाद हुआ। संक्षेप में यह कि जो अनुबंध दोनों ओर से विनिमय पर आधारित है, जब तक उसमें मूल अनुबंध के बदले कोई प्रतिफल (अवेज़) न हो, वह अनुबंध-ए-मुआविज़ा नहीं रहेगा और बातिल (शून्य) हो जाएगा, जैसे बिना कीमत के बिक्री सही नहीं है। जब उक्त शर्तें मूल अनुबंध का हिस्सा हैं, तो उनके बदले कुछ प्रतिफल होना आवश्यक है। - समझें। 2- खियार-ए-मझूल यानी यह नहीं बताया गया कि विकल्प किसके पास है। (1) यह प्रत्येक परिपक्व होने पर उद्देश्य होती है। (2) और शर्त बातिल है। (3) जिसके लाभ के लिए।

---

کہ قسم ایک کا اور گز دوسرے کی ہو تو بھی نہیں جائز ہے اس طرح اگر اپنی زمین دوسرے کو کٹ ہونے کے واسطے دی اور دونوں نے شرط کی کہ کٹ ایک کی اور بیج دوسرے کے ہوں تو بھی یہی حکم ہے کہ عقد جائز نہیں ہے یہ محیط میں ہے۔

اگر اپنی زمین زراعت کے واسطے دی کہ اس میں گیہوں و جو بوئے بدیں شرط کہ گیہوں خاص ایک کے اور جو خاصہ دوسرے کے ہوں تو فاسد ہے اسی طرح ہر شے جس کی حاصلات میں دونوں حاصل ہوں جس میں سے ہر ایک مقصود ہو سکتی ہے اس میں یہی حکم ہے جیسے بذر کتان و کتان کہ اگر ایک کے واسطے ایک خاصہ کتان شرط کی اور دوسرے کے واسطے خاصہ بذر کتان شرط کی تو نہیں جائز ہے اور خربزہ و لکڑی کے بیج خاصہ ایک کے واسطے شرط کرنا بمنزلہ بھوسے کے شرط کرنے کے ہی بخلاف رطبہ و تخم رطبہ یا کسم و کراکھ (۱) ان میں ایسا نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اصل یہ ہے کہ مالک زمین کا شکار دونوں نے اگر عقد مزارعت میں شرط فاسد لگائی تو اس شرط کو دیکھنا چاہیے پس اگر ایسی شرط ہو کہ ہر دو متعاقدین میں سے کسی کو اس شرط سے کچھ فائدہ نہیں ہے مثلاً دونوں نے ایک کے ذمہ یہ شرط لگائی کہ اپنا حصہ پیداوار فروخت نہ کرے یا نہ کھائے تو مزارعت (۲) جائز ہے اور اگر ہر دو متعاقدین میں سے کسی کے واسطے اس شرط میں کوئی فائدہ ہو تو اسکی دو صورتیں ہیں یعنی اگر یہ شرط صلب عقد میں داخل ہو بدین طور کہ اس کے واسطے کچھ بدل مقرر ہو کیونکہ عقود معاوضات میں صلب عقد کے مقابلہ میں جب تک بدل نہ ہو تب تک عقد جائز نہیں ہوتا ہے پس اگر شرط اس طرح داخل ہو تو ایسی مزارعت مشروط فاسد ہو گی اور کبھی عود کر کے جائز نہ ہو جائے گی اگر چہ وہ شخص جس کے واسطے مفاد شرط تھا شرط کو باطل کر دے مثلاً عقد

مزارعت میں دونوں نے ایک کے واسطے نصف پیداوار کے ساتھ بیس درہم شرط کیے پھر جس کے واسطے میں درہم شرط کیے گئے تھے اس نے قبل عمل کے شرط باطل کردی یا مثلاً دونوں نے کھیتی کاٹنا اور روندنا دونوں میں سے ایک کے ذمہ شرط کیا حتی کہ حکم مذکورہ کتاب کے موافق فاسد ہوا پھر (۳) جس کے واسطے یہ شرط تھی اس نے یہ شرط باطل کر دی تو عقد مذکورہ جائز نہ ہو جائے گا اور اگر ایسی شرط صلب عقد میں داخل نہ ہو بلکہ عقد سے مستفاد ہو یعنی اس طور سے کہ اس کے واسطے بدل میں سے کچھ حصہ نہ ہو مثلاً مزارعت میں دونوں میں سے ایک کے واسطے خیار مجہول (۴) یا میعاد مجہول کی شرط کی پھر جس کے واسطے شرط تھی اس نے مفسد مستقر ہونے سے پہلے شرط مذکور کو ساقط کر دیا تو ہمارے علمائے ثلاثہ کے نزدیک عقد مزارعت منقلب ہو کر جائز ہو جائے گا اور اگر ایسی شرط دونوں کے واسطے مشروط ہو تو تقرر مفسد سے پہلے جب تک دونوں اس کے ابطال پر متفق نہ ہوں تب تک عقد منقلب ہو کر جائز نہ ہو جائے گا اور فقط ایک کے باطل کرنے سے یہ نہیں ہو سکتا ہے کہ منقلب ہو کر جائز ہو جائے اس لیے کہ شرط مفسد دوسرے کے واسطے باقی رہے گی اور اس قدر فساد عقد کے واسطے کافی ہے اور اگر دونوں نے یہ شرط لگائی کہ ایک شخص اپنا حصہ دوسرے کے ہاتھ فروخت کر دے تو مزارعت فاسد ہو گی پھر اگر بائع نے یا مشتری نے اس شرط کو باطل کیا تو عقد جائز نہ ہو جائے گا ہاں اگر دونوں نے متفق ہو کر باطل کر دی تو عقد منقلب ہو کر جائز ہو جائے گا اور اگر ایک نے دوسرے پر یہ شرط لگائی کہ پیداوار میں سے اپنا حصہ مجھے ہبہ کر دے تو مزارعت فاسد ہو گی پھر اگر موہوب لہ نے قبل عمل کے یہ شرط باطل کر دی تو عقد جائز ہو جائے گا اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا ہے کہ فقط موہوب لہ کے باطل کرنے سے واجب ہے کہ عقد مزارعت جائز نہ ہو جائے لیکن اصح وہی ہے جو کتاب میں مذکور ہے۔

ا- واضح ہو کہ عبارت الاصل یہ ہے۔ فان البدل من صلب العقد فی المعاوضات الا یجوز العقد بدونہ یہ عبارت محرف ہے واللہ اعلم اور میرے نزدیک تحقیق وہ ہے جو ترجمہ ہوا اور حاصل یہ کہ جو عقد ایسا ہو کہ طرفین سے مبادلہ ہے تو جب تک صلب عقد اور لباب معاملہ کے مقابلہ میں عوض نہ ہو تو یہ عقد معاوضہ نفس ذات میں نہ رہے پس باطل ہو جائے گا جیسے بیع بغیر ثمن کے صحیح نہیں ہے پھر جب یہ شرائط مذکور داخل صلب عقد ہے تو ضرور اس کے مقابلہ میں عوض ہو گا اسی طرح جس شرط کے مقابلہ میں عوض ہوا اور وہ عقد میں مشروط ہو تو وہ داخل صلب عقد ہو گی فافہم۔ ۲۔ خیار مجہول یعنی یہ نہیں بتایا کہ کس کے واسطے خیار ہے۔ (۱) یہ ہر ایک وبالغات مقصود ہوتی ہے۔ (۲) اور شرط باطل ہے۔ ۳۔ جس کے نفع کے واسطے۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) 305 Book of Muzara'ah (Sharecropping)**

## On the Quality of Produce

If a person gives his land to another for sharecropping on a half-share basis and stipulates certain tasks for the tenant farmer or for himself, two primary scenarios arise. The first is when the seeds are provided by the landowner. In this case, there are three possibilities: either he stipulates some tasks for the tenant and remains silent on the rest; or he stipulates some tasks for himself and remains silent on the rest; or he stipulates some tasks for himself and some for the tenant farmer. If he stipulates some tasks for the tenant—such as plowing and cultivating—and remains silent regarding irrigation, there are six potential outcomes: 1) The land is such that nothing grows without irrigation; 2) nothing grows at all; 3) something grows, but not as expected from such land. In these cases, the sharecropping contract (*muzar'at*) is void (*fasid*). Similarly, if the crop grows as expected without irrigation but dries up without it, the contract is also void. However, if the crop grows as expected and does not dry up without irrigation—for instance, if the land is in a city with abundant rainfall—the contract is valid. Furthermore, if irrigation incidentally improves the quality of the produce, the contract remains valid (1). Even if it is unknown whether irrigation will improve the crop or not—due to uncertainty about rainfall amounts—the ruling remains the same. The second scenario is when the landowner stipulates a task like irrigation for himself and remains silent about the rest. The ruling here follows what we previously mentioned (2): if it is certain that irrigation has no impact on the produce, the contract is valid even though tasks are stipulated for the landowner. In all other cases, the contract is void. If the landowner stipulates irrigation for himself and assigns all other tasks to the tenant, this is treated the same as if he stipulated irrigation for himself and remained silent about the rest. The third scenario is when the seeds are provided by the tenant, and the landowner stipulates some tasks for the tenant—such as sowing seeds—and remains silent about irrigation; in this case, the contract is valid.

If the landowner stipulates some tasks for himself and some for the tenant, the ruling is the same as described in the case where seeds are provided by the landowner and tasks are shared; this is mentioned in *Al-Muhit*. If a person provides his land and seeds to another and agrees on sharecropping with the condition: "For the seeds you sow after plowing, the share is this much; for seeds sown without plowing, the share is that much; and if plowed twice, the share is such," this is valid. Similarly, if he says: "From this land, the portion you cultivate after plowing will yield

this share, and the portion cultivated without plowing will yield that share," it is also valid. The tenant will receive the share stipulated for whichever method he chooses. However, some scholars (*mashaikh*) have noted (3) that the ruling mentioned in the second case is erroneous and cannot be correct. Whenever the phrase "from this land" is used, the contract must be considered void because this phrase implies division (*tab'iz*); by stipulating that some land be plowed and some not, an "unknown portion" (*majhul*) is created, the extent of which is undefined, leading to the invalidity of the contract. Our argument for its validity is based on several issues mentioned by Imam Muhammad (R.A.) in *Kitab al-Asl*. Among them is: if a landowner says, "From this land, in the portion where you cultivate wheat, you shall receive this share of the produce, and in..."

---

(1) Despite the stipulation. (2) Explicit references have been made previously in various places. (3) Regarding the statement "Similarly, if it is said."

## पैदावार का श्रेष्ठ होना

यदि किसी व्यक्ति ने अपनी भूमि दूसरे को आधे की बटाई पर दी और कुछ कार्य काश्तकार (किसान) पर या स्वयं पर शर्त किए, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बीज भूमि के स्वामी की ओर से हों। इस स्थिति में तीन सूरतें हैं: या तो उसने खेती के कुछ कार्य काश्तकार के ज़िम्मे शर्त किए और बाक़ी के बारे में मौन (ख़ामोश) रहा, या कुछ कार्य अपने ज़िम्मे शर्त किए और बाक़ी पर मौन रहा, या कुछ कार्य मुज़ारअत (बटाईदारी) में अपने ऊपर शर्त किए और कुछ काश्तकार के ज़िम्मे। अब यदि उसने कुछ कार्य काश्तकार के ज़िम्मे शर्त किए और बाक़ी पर मौन रहा—उदाहरण के लिए भूमि जोतना और खेती करना उसके ज़िम्मे शर्त किया और सिंचाई (पानी देने) के ज़िक्र पर मौन रहा—तो इसमें छह स्थितियाँ हैं: या तो भूमि ऐसी होगी कि सिंचाई के बिना उसमें कुछ पैदा न हो, या कुछ भी पैदा न हो, या कुछ पैदा तो हो लेकिन वैसा न हो जैसा ऐसी भूमि से पैदावार की आशा की जाती है; इन दोनों स्थितियों में मुज़ारअत फ़ासिद (अमान्य) होगी। इसी प्रकार यदि उस भूमि से बिना सिंचाई के वैसी ही खेती उगे जैसी उस भूमि से आशा है, लेकिन सिंचाई के बिना सूख जाती है, तो भी मुज़ारअत फ़ासिद होगी। और यदि उस भूमि से वैसी ही खेती उगे जैसी आशा है और बिना सिंचाई के सूखे नहीं—उदाहरण के लिए यह भूमि ऐसे शहर में हो जहाँ वर्षा प्रचुर मात्रा में होती है—तो मुज़ारअत जायज़ होगी। इसी प्रकार यदि सिंचाई से संयोगवश यह लाभ हो कि पैदावार श्रेष्ठ (उच्च गुणवत्ता वाली) हो जाए, तो भी मुज़ारअत जायज़ (1) होगी। इसी तरह यदि यह ज्ञात न हो कि सिंचाई से पैदावार श्रेष्ठ होगी या वैसी ही रहेगी—इस अर्थ में कि यह ज्ञात न हो कि वर्षा अधिक होगी या कम—तो भी यही आदेश है। दूसरी स्थिति यह है कि जब भूमि के स्वामी ने कुछ कार्य, जैसे सिंचाई, अपने ज़िम्मे शर्त किया और बाक़ी के ज़िक्र पर मौन रहा, तो उसका आदेश उसी आधार पर है जैसा हमने उल्लेख किया (2) है कि यदि निश्चित रूप से ज्ञात हो कि पैदावार में इस सिंचाई का कोई प्रभाव नहीं है, तो मुज़ारअत जायज़ होगी, यद्यपि इस मुज़ारअत में भूमि के स्वामी के ज़िम्मे कृषि कार्य शर्त है। इसके अतिरिक्त सभी स्थितियों में मुज़ारअत फ़ासिद है। और यदि भूमि के स्वामी ने सिंचाई अपने ज़िम्मे शर्त की और बाक़ी कार्य काश्तकार पर रखे, तो यह स्थिति और वह स्थिति जब सिंचाई अपने ज़िम्मे शर्त की और बाक़ी पर मौन रहा, दोनों समान हैं। तीसरी स्थिति यह है कि बीज काश्तकार की ओर से हों और भूमि के स्वामी ने कुछ कार्य काश्तकार के ज़िम्मे शर्त किए, उदाहरण के लिए बीज

बोना (तुख़्म-रेज़ी) उसके ज़िम्मे शर्त किया और सिंचाई के ज़िक्र पर मौन रहा, तो मुज़ारअत जायज़ है।

यदि भूमि के स्वामी ने कुछ कार्य अपने ऊपर शर्त किए और कुछ काश्तकार के ज़िम्मे, तो उसका आदेश वैसा ही है जैसा भूमि के स्वामी की ओर से बीज होने की स्थिति में वर्णित हुआ है, जहाँ उसने कुछ कार्य स्वयं पर या कुछ स्वयं पर और कुछ काश्तकार पर शर्त किए थे; यह 'मुहीत' में वर्णित है। यदि किसी व्यक्ति ने अपनी भूमि और बीज दूसरे को दिए और मुज़ारअत इस शर्त पर तय की कि "जो बीज तूने भूमि जोत कर बोए उसमें यह हिस्सा (बटाई), और जो बिना जोते बो दिए उसमें यह हिस्सा, और यदि जोत कर और फिर दोबारा जोत कर बोए उसमें बटाई का यह हिसाब होगा," तो यह जायज़ है। इसी प्रकार यदि यों कहा कि "इस भूमि में से जिस भूमि पर तूने जोत कर खेती की उसमें यह हिस्सा और जिस भूमि पर बिना जोते खेती की उसमें यह हिस्सा होगा," तो भी जायज़ है। काश्तकार ने जो कार्य चुना, उसे बटाई में वही मिलेगा जो उसके मुक़ाबले में शर्त किया गया है। और मशाएख़ (विद्वानों) ने फ़रमाया (3) कि दूसरे मसले में जो आदेश वर्णित है वह त्रुटिपूर्ण (ग़लती) है, उसके सही होने की कोई सूरत नहीं है। जब भी उसने "इस भूमि में से" कहा, तो मुज़ारअत का फ़ासिद होना आवश्यक है क्योंकि जब उसने "इस भूमि में से" शब्द कहा, तो यह शब्द 'तब्ईज़' (विभाजन/हिस्सा) के लिए बोला जाता है; अतः उसने यह शर्त लगाई कि कुछ भूमि जोत कर बोए और कुछ बिना जोते, और यह "कुछ टुकड़ा" अज्ञात (मजहूल) है, उसकी मात्रा ज्ञात नहीं है, इसलिए यह मुज़ारअत के फ़ासिद होने का कारण बना। और हमने जो इसकी शुद्धता का तर्क दिया है वह कुछ मसलों पर आधारित है जिन्हें इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'किताब अल-अस्ल' में वर्णित फ़रमाया है। उनमें से एक यह है कि यदि भूमि के स्वामी ने कहा कि "इस भूमि में से जिस हिस्से में तूने गेहूँ की खेती की, तुझे यह बटाई का हिस्सा मिलेगा और उस..."

---

(1) शर्त के बावजूद। (2) पूर्व में कई स्थानों पर स्पष्ट संकेत दिया जा चुका है। (3) उनका कथन "इस प्रकार यदि यों कहा"।

## پیداوار کا جید ہونا

اگر کسی شخص نے اپنی زمین دوسرے کو آدھے کی بٹائی پر دی اور بعض کام کاشتکار پر یا اپنے اوپر شرط کیے تو اس میں دو صورتیں ہیں اول یہ کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں پس اس میں تین صورتیں ہیں یا تو اس نے کاشتکاری کے بعض کام کاشتکار کے ذمہ شرط کیے اور باقی سے سکوت کیا یا ایسے بعض کام اپنے اوپر شرط کیے اور باقی سے سکوت کیا یا بعض کام مزارعت اپنے اوپر شرط کیے اور بعض کا کاشتکار کے ذمہ شرط کیے پس اگر بعض کام کاشتکار کے ذمہ شرط کر کے باقی سے سکوت کیا ہو مثلاً زمین جوتنا وزراعت کرنا اس کے ذمہ شرط کر کے سینچنے کے ذکر سے سکوت کیا تو اس میں چھ صورتیں ہیں یا تو زمین ایسی ہوگی کہ بدون سینچے اس میں کچھ پیدا نہ ہو یا کچھ پیدا نہ ہو یا کچھ پیدا ہو مگر ایسا نہ ہو جیسا ایسی زمین سے پیداوار ہونے کی امید ہے اور ان دونوں صورتوں میں مزارعت فاسد ہوگی اس طرح اگر اس زمین سے بدون سینچے کے ایسی کھیتی اگے جیسی اس زمین سے امید ہے لیکن بدون سینچے کے خشک ہو جاتی ہے تو بھی مزارعت فاسد ہوگی اور اگر اس زمین سے جیسی امید ہے ویسی کھیتی اگے اور بدون سینچے کے خشک نہ ہو مثلاً یہ زمین ایسے شہر میں واقع ہو جہاں بارش کثرت سے ہوتی ہے تو مزارعت جائز ہوگی اس طرح اگر سینچنے سے اتفاقاً فائدہ ہو کہ پیداوار جید ہو جائے تو بھی مزارعت جائز (۱) ہوگی اس طرح اگر یہ معلوم نہ ہو کہ آیا سینچنے سے پیداوار جید ہوگی یا یونہی ہو گی بایں طور کہ یہ معلوم نہ ہو کہ بارش زیادہ ہو گی یا کم ہوگی تو بھی یہی حکم ہے۔ دوسری صورت میں یہ ہے کہ جب مالک زمین نے بعض کام مثلاً سینچنا اپنے ذمہ شرط کیا اور باقی کے ذکر سے سکوت کیا تو اس کا حکم اسی بنا پر ہے جیسا ہم نے ذکر کیا (۲) ہے کہ اگر

یقیناً معلوم ہو کہ پیداوار میں سے اس سینچنے کی کچھ تاثیر نہیں ہے تو مزارعت جائز ہو گی اگر چہ اس مزارعت میں مالک زمین کے ذمہ کار زراعت مشروط ہے اور اس کے ماسوائے سب صورتوں میں مزارعت فاسد ہے اور اگر مالک زمین نے سینچنا اپنے ذمہ شرط کیا اور باقی کاشتکار پر رکھا تو یہ صورت اور جب کہ سینچنا اپنے ذمہ شرط کیا اور باقی کے ذکر سے سکوت کیا ہے دونوں یکساں ہیں تیسری صورت یہ کہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور مالک زمین نے بعض کام کاشتکار کے ذمہ شرط کیے مثلاً تخم ریزی اس کے ذمہ شرط کی اور مثلاً سینچنے کے ذکر سے سکوت کیا تو مزارعت جائز ہے۔

اگر بعض کام مالک زمین نے اپنے اوپر شرط کیے اور بعض کاشتکار کے ذمہ شرط کیے تو اس کا حکم ویسا ہی ہے جیسا ہم کہ مالک زمین کی طرف بیج ہونے کی صورت میں جب مالک زمین نے بعض کام اپنے اوپر شرط کیے ہیں یا بعض اپنے اوپر اور بعض کاشتکار پر شرط کیے ہیں مذکور ہوا ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنی زمین اور بیج دوسرے کو دیے اور مزارعت اس شرط سے قرار دی کہ جو بیج تو نے زمین جوت کر بوئے اس میں یہ بٹائی اور جو بغیر جوتے بو دیے اس میں یہ بٹائی اور اگر جوت کر اور پھر دوبارہ جوت کر بوئے اس میں یہ حساب بٹائی کا ہو گا تو یہ جائز ہے اس طرح اگر یوں کہا کہ اس زمین میں سے جو زمین تو نے جوت کر زراعت کی اس میں یہ بٹائی اور اس میں سے جو زمین بغیر جوتی ہوئی زراعت کی اس میں یہ بٹائی ہوگی تو بھی جائز ہے اور جو کام کاشتکار نے اس میں سے اختیار کیا اس کو بٹائی میں وہی ملے گا جو اس کے مقابلہ میں شرط کیا گیا ہے اور مشائخ نے فرمایا (۳) کہ مسئلہ ثانیہ میں جو حکم مذکور ہے وہ خطا ہے اس کے صحیح ہونے کی کوئی صورت نہیں ہے اور ہرگاہ اس نے (اس زمین میں سے) کہا تو مزارعت کا فاسد ہونا واجب ہے کیونکہ جب اس نے (اس زمین میں سے) یہ لفظ کہا تو یہ لفظ تبعیض پر بولا جاتا ہے پس اس نے یہ شرط لگائی کہ بعض زمین جوت

کر بوئے اور بعض بغیر جوتی بوئے اور یہ بعض ٹکڑا مجہول ہے اس کی مقدار معلوم نہیں پس یہ مزارعت کے فاسد ہونے کا موجب ہوا اور یہ جو ہم نے کہا ہے کہ اس کی صحت کی دلیل چند مسائل ہیں۔ جو امام محمدؒ نے کتاب الاصل میں ذکر فرمائے ہیں از آنجملہ یہ ہے کہ اگر مالک زمین نے کہا کہ اس زمین میں سے جس میں تو نے گیہوں کی زراعت کی تو تجھے یہ حصہ بٹائی ملے گا اور اس

---

(۱) با وجود شرط کے۔ (۲) سابق میں جا بجا صریحاً اشارہ مذکور ہو چکی ہے۔ (۳) قولہ اس طرح اگر یوں کہا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | Page 306 | Kitab al-Mazara'a (The Book of Sharecropping)**

"If you sow barley in this land, you will get this share, and if you sow sesame in this land, you will get this share," then in such cases, the *Mazara'a* (sharecropping contract) is *fasid* (voidable/irregular). Among these cases is: if the landowner says, "Whatever you sow in this land in Jumada al-Ula (1), you will receive this share, and whatever you sow in Jumada al-Akhira, you will receive this share," then this *Mazara'a* is *fasid*. Another case is: if the landowner says, "Whatever you prepare in this land using rainwater, you will get this share, and whatever you irrigate and prepare using buckets and pulleys (wells), you will get this share," then the *Mazara'a* is *fasid*.

Sheikh Imam Jalil Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl used to state that the ruling mentioned in the previous problem—regarding plowing—is the opinion of the *Sahibayn* (the two disciples, Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad). The rulings mentioned in these cases by Imam Muhammad are based on the opinion of Imam Abu Hanifa. That is to say, if *Mazara'a* were permissible according to Imam al-A'zam (Abu Hanifa), he would have given this ruling in such cases. The reason is that in the word *minha* (from it), the preposition *min* (from/of), according to Imam al-A'zam, signifies *tab'id* (partitioning/partiality), whereas according to the *Sahibayn*, it is used as a *sila* (linking particle). Therefore, according to the *Sahibayn*, the conclusion in all these cases is that the *Mazara'a* is valid, just as mentioned in the case of plowing.

The aforementioned Sheikh designated the word *min* as a *sila* in all cases. However, other masters (*Mashayikh*) apart from him stated that the rulings mentioned in these cases are also the opinion of the *Sahibayn*, and the ruling in the case of plowing is also the opinion of the *Sahibayn*. These masters consider the word *min* to signify *tab'id* (partiality) in all cases because, linguistically, this word is inherently for *tab'id*. While it can act as a *sila*, that is only metaphorical (*majazan*). Our discussion pertains to its literal meaning, and in that regard, *jahalat* (uncertainty/ignorance) would certainly be established in the case.

However, in the case of plowing, this *jahalat*—the amount of land being unknown—does not cause the invalidity of the *Mazara'a* because by the time of *takid al-mazara'a* (1) (confirmation of the contract), this uncertainty was removed. Once the uncertainty is removed at the time of the contract's confirmation, it is as if there was no uncertainty at the time of the agreement. But in the case of wheat, this uncertainty remains even at the time of the contract's confirmation because the sprouts of sown

wheat and barley only become known after they have been sown. At the time of sowing, which is the time of the contract's confirmation, this will not be known. Thus, uncertainty exists at the time of the contract. The same applies to the cases of Jumada al-Ula and Jumada al-Akhira. The same applies to the issue of irrigation, because by irrigation, he meant the irrigation that was customary among those people, i.e., watering after sowing. Therefore, uncertainty remains at the time of the contract. However, if irrigation meant watering before sowing, then like plowing, the *Mazara'a* would be valid in this case as well, as the uncertainty would have been removed.

If the contract explicitly uses the word 'some' (*ba'z*), for instance, saying: "If you plow and sow some part of this land, you will get this share, and whatever part you sow without plowing, you will get this share," will the contract be *fasid*? Imam Muhammad did not mention this in the book. Based on the analogy (*qiyas*) of Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl's statement, the *Mazara'a* should be *fasid*; this is recorded in *Al-Zakhira*.

If someone gives their land to another so that they may cultivate it this year with their own seeds and labor, on the condition that: "If he sows the crop on the first of Jumada al-Awwal, the entire produce will be divided equally (half and half) between them; and if he sows on the first of Jumada al-Thani, two-thirds of the produce will go to the landowner and one-third to the cultivator," then for the scholar who held such *Mazara'a* to be permissible, based on the analogy of the statement...

(a) *Takid*: Meaning at the time when the *Mazara'a* contract becomes firm and binding, it is no longer unknown (*majhul*). (1) This is in accordance with their agricultural seasons.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | पृष्ठ 306 | किताब अल-मज़ारअत (साझा खेती की किताब)**

"उस ज़मीन में से जिसमें तुमने जौ (Barley) बोया तो तुम्हें यह बटाई (हिस्सा) मिलेगी और उस ज़मीन में से जिसमें तिल बोए तो तुम्हें यह बटाई मिलेगी", तो ऐसी स्थितियों में मज़ारअत (साझा खेती का अनुबंध) फ़ासिद (अमान्य/दोषपूर्ण) है। इसी तरह का एक और मामला यह है कि यदि ज़मीन के मालिक ने कहा कि "इस ज़मीन में से जितना तुमने जमादी अल-उला (1) में बोया तो तुम्हें यह बटाई मिलेगी और इसमें जितना तुमने जमादी अल-आख़िर में बोया तो तुम्हें यह बटाई मिलेगी", तो यह मज़ारअत भी फ़ासिद है। एक और मसला यह है कि यदि ज़मीन के मालिक ने कहा, "इस ज़मीन में से जितना हिस्सा तुमने बारिश के पानी से तैयार किया, उसमें तुम्हें यह बटाई मिलेगी और जितना हिस्सा तुमने चरस (कुएं से पानी निकालने का चमड़े का थैला) और डोल से सींचकर तैयार किया, उसमें तुम्हें यह बटाई मिलेगी", तो यह मज़ारअत भी फ़ासिद है।

शेख़ इमाम जलील अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल फ़रमाते थे कि जो हुक्म पिछले मसले यानी जोतने (हल चलाने) के मसले में ज़िक्र हुआ है, वह साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) का कौल (कथन) है। और इन मसलों में जो हुक्म इमाम मुहम्मद ने ज़िक्र फ़रमाया है, वह इमाम अबू हनीफ़ा के कौल पर आधारित है। यानी यदि इमाम-ए-आज़म के नज़दीक मज़ारअत जायज़ होती, तो वे ऐसे मसलों में यही हुक्म देते। इसकी वजह यह है कि शब्द "मिन्हा" (منها) में 'मिन्', जिसका अनुवाद 'उसमें से' है, इमाम-ए-आज़म के अनुसार 'तबीज़' (हिस्सा करने) के लिए है, जबकि साहिबैन के अनुसार इसे 'सिला' (जोड़ने वाले शब्द) के तौर पर बोला गया है। अतः साहिबैन के अनुसार इन सभी मसलों का परिणाम यह निकला कि मज़ारअत जायज़ है, जैसा कि जोतने के मसले में ज़िक्र किया गया है।

शेख़ मौसूफ़ ने शब्द "मिन्" (من) को सभी मसलों में 'सिला' के तौर पर माना है। शेख़ मौसूफ़ के अलावा अन्य मशाईख़ (विद्वानों) ने फ़रमाया कि इन मसलों में जो हुक्म वर्णित है, वह भी साहिबैन का कौल है। ये मशाईख़ शब्द "मिन्" को सभी मसलों में 'तबीज़' (विभाजन) के लिए मानते हैं, क्योंकि भाषाई दृष्टि से यह शब्द वास्तव में तबीज़ के लिए ही है। हाँ, यह 'सिला' के लिए भी आता है, लेकिन केवल लाक्षणिक (Metaphorical) रूप में। हमारा संवाद इसके वास्तविक अर्थ के बारे में है, और इस स्थिति में मसले में 'जहालत' (अस्पष्टता/अनिश्चितता) अवश्य सिद्ध होगी।

लेकिन जोतने के मसले में यह जहालत, यानी ज़मीन की मात्रा का अज्ञात होना, मज़ारअत के फ़ासिद होने का कारण इसलिए नहीं होगा क्योंकि 'ताकीद-ए-मज़ारअत' (1) के समय यह जहालत समाप्त हो गई। और जब यह जहालत अनुबंध की पुष्टि के समय समाप्त हो गई, तो यह वैसा ही हो गया जैसे अनुबंध के समय ही जहालत न रही हो। परंतु गेहूँ के मसले में 'ताकीद-ए-अक़्द' (अनुबंध की पुष्टि) के समय भी यह जहालत बनी रहेगी, क्योंकि बोए हुए गेहूँ का अंकुरण तभी ज्ञात होगा जब वे बुवाई कर चुकें। बुवाई के समय, जो अनुबंध की ताकीद का समय है, यह ज्ञात नहीं होगा। इसलिए अनुबंध के समय जहालत कायम रहेगी। यही स्थिति जमादी अल-उला और जमादी अल-आख़िर के मसले में है। यही बात सिंचाई के मसले में भी है, क्योंकि सिंचाई से उनका अभिप्राय वह सिंचाई है जो उन लोगों में सामान्य थी, यानी बुवाई के बाद पानी देना। अतः अनुबंध के समय जहालत बनी रहेगी। यहाँ तक कि यदि सिंचाई से अभिप्राय खेती से पहले की सिंचाई हो, तो जोतने की तरह इसमें भी मज़ारअत सही होगी, क्योंकि तब जहालत समाप्त हो जाएगी।

यदि अनुबंध में 'बअज़' (कुछ/हिस्सा) शब्द को स्पष्ट किया गया हो, उदाहरण के तौर पर कहा जाए: "यदि इस ज़मीन में से कुछ टुकड़ा तुमने जोतकर बोया तो तुम्हें यह बटाई मिलेगी और जो कुछ टुकड़ा तुमने बिना जोते बोया तो उसमें यह बटाई मिलेगी", तो क्या यह अनुबंध फ़ासिद होगा? इमाम मुहम्मद ने किताब में इसका उल्लेख नहीं किया है। इमाम अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल के कौल के कयास (अनुमान) पर यह मज़ारअत फ़ासिद होनी चाहिए, यह 'ज़ख़ीरा' में दर्ज है।

यदि किसी व्यक्ति को अपनी ज़मीन इस शर्त पर दी कि वह इस वर्ष अपने बीज और अपनी खेती से इसमें ज़राअत (कृषि) करे कि: "यदि उसने जमादी अल-अव्वल की पहली तारीख को खेती बोई तो सारी पैदावार दोनों में बराबर-बराबर (आधी-आधी) बँटेगी, और यदि जमादी अल-सानी की पहली तारीख को खेती बोई तो पैदावार का दो-तिहाई ज़मीन के मालिक का और एक-तिहाई किसान का होगा", तो जिस विद्वान ने इस मज़ारअत को जायज़ माना है, उनके नज़दीक कौल के कयास पर...

(अ) ताकीद: यानी जिस समय मज़ारअत का अनुबंध पक्का और मज़बूत होता है, उस समय वह अज्ञात (मजहूल) नहीं रहा। (1) यह उनके खेती के मौसम के अनुसार है।

---

اس زمین میں سے جس میں تو نے جو بوئے تو تجھے یہ بٹائی ملے گی اور اس زمین میں سے جس میں تل بوئے تو تجھے یہ بٹائی ملے گی تو ان صورتوں میں مزارعت فاسد ہے اور از انجملہ یہ ہے کہ اگر مالک زمین نے کہا کہ اس زمین میں سے جتنی تو نے جمادی الاولیٰ (۱) میں بوئی تو تجھے یہ بٹائی ملے گی اور اس میں جتنی تو نے جمادی الآخر میں بوئی تو تجھے یہ بٹائی ملے گی تو یہ مزارعت فاسد ہے اور از انجملہ یہ مسئلہ ہے کہ اگر مالک زمین نے کہا کہ اس زمین میں سے جتنی تو نے بارش کے پانی سے ہو کر تیار کی تو تجھے یہ بٹائی ملے گی اور اس میں سے جتنی تو نے چرس وڈول سے سینچکر تیار کی اس میں تجھے یہ بٹائی ملے گی تو مزارعت فاسد ہے اور شیخ امام جلیل ابوبکر محمد بن الفضل فرماتے تھے کہ جو حکم مسئلہ سابقہ یعنی جوتنے کے مسئلہ میں مذکور ہوا ہے وہ صاحبین کا قول ہے اور ان مسائل میں جو حکم امام محمد نے ذکر فرمایا ہے یہ بنا بر قول امام ابوحنیفہ کے ہے یعنی اگر امام اعظم کے نزدیک مزارعت جائز ہوتی تو ایسے مسائل میں یہ حکم دیتے اور وجہ اس کی یہ ہے کہ کلمہ منہا میں جس کا ترجمہ اس میں سے ہے امام اعظم کے نزدیک تبعیض کے واسطے ہے اور صاحبین کے نزدیک صلہ کے واسطے بولا گیا ہے پس صاحبین کے موافق حاصل جواب ان سب مسائل میں یہ نکلا کہ مزارعت جائز ہے جیسا کہ جوتنے کے مسئلہ میں مذکور ہے۔

لفظ "من" کو شیخ موصوف نے سب مسائل میں صلہ کے واسطے قرار دیا ہے اور سوائے شیخ موصوف کے اور مشائخ نے فرمایا کہ ان مسائل میں جو حکم مذکور ہے وہ بھی صاحبین کا قول ہے اور جوتنے کے مسئلہ میں جو حکم مذکور ہے وہ بھی صاحبین کا قول ہے اور یہ مشائخ لفظ من کو سب مسائل میں تبعیض کے واسطے قرار دیتے ہیں اس وجہ سے کہ حقیقت از روئے لغت یہ

کلمہ تبعیض کے واسطے ہے ہاں صلہ کے واسطے آتا ہے مگر مجازاً آتا ہے اور ہمارا کلام اس کے معنی حقیقی میں ہے اور بریں تقدیر مسئلہ میں جہالت ضرور ثابت ہو گی لیکن جوتنے کے مسئلہ میں یہ جہالت یعنی مقدار زمین کا مجہول ہونا موجب فساد مزارعت اس وجہ سے نہ ہو گا کہ تا کہ (ا) مزارعت کے وقت یہ جہالت زائل ہو گئی اور جب یہ جہالت وقت تاکید مزارعت کے زائل ہوئی تو بمنزلہ اس کے ہوا کہ گویا بوقت عقد مزارعت کے زائل تھی مگر جو گیہوں کے مسئلہ میں وقت تاکید عقد مزارعت کے بھی یہ جہالت قائم رہے گی کیونکہ گیہوں بویا ہوا انکرا اور جو بویا ہوا انکرا جب معلوم ہو گا کہ جب وہ تخم ریزی کر چکے مگر تخم ریزی کرنے کے وقت جو تاکید عقد کا وقت ہے یہ معلوم نہ ہو گا پس تا کہ عقد کے وقت جہالت قائم ہو گی اور یہی صورت جمادی الاولیٰ و جمادی الآخر کی کے مسئلہ میں ہے اور یہی بات سینچنے کے مسئلہ میں بھی ہے کیونکہ سینچنے سے اس کی مراد وہ سینچنا ہے جو ان لوگوں میں متعاد تھا یعنی تخم ریزی کے بعد پانی دینا پس تا کہ عقد کی وقت جہالت باقی رہے گی حتیٰ کہ اگر اس سینچنے سے زراعت سے پہلے سینچنا مراد ہو تو مثل جوتنے کے اس میں بھی مزارعت صحیح ہو گی کیونکہ تاکہ کے وقت جہالت زائل ہو گئی اور اگر عقد میں بعض کے لفظ سے تصریح کر دی ہو مثلاً یوں کہا کہ اگر اس زمین میں سے بعض ٹکڑا تو نے جوت کر بویا اس میں تجھے یہ بٹائی ملے گی اور جو بعض ٹکڑا تو نے بغیر جوتے اس زمین میں سے بویا اس میں تجھے یہ بٹائی ملے گی پس آیا عقد فاسد ہو گا سو اس کو امام محمد نے کتاب میں نہیں ذکر فرمایا اور بقیاس قول امام ابوبکر محمد بن الفضل کے مزارعت فاسد ہونا چاہیے یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر کسی شخص کو اپنی زمین اس واسطے دی کہ امسال اس میں اپنے بیجوں سے اور اپنی کاشت سے زراعت کرے بدیں شرط کہ اگر اس نے جمادی الاول کی پہلی تاریخ کھیتی بوئی تو تمام پیداوار دونوں میں نصفا نصف تقسیم ہو گی اور اگر جمادی الثانی کی پہلی تاریخ کھیتی بوئی تو دو

تہائی پیداوار مالک زمین کی اور ایک تہائی کاشتکار کی ہو گی تو جس عالم نے مزارعت کو جائز رکھا اس کے نزدیک بنا بر قیاس قول---

ا تا کہ یعنی جس وقت عقد مزارعت جم کر مضبوط ہوتا ہے اس وقت مجہول نہیں رہا۔ (۱) یہ ان کے موسم زراعت کے موافق ہے۔

---

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 8 | 307 | Kitab-ul-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

According to Imam-e-Azam (Imam Abu Hanifa), the first condition is valid and the second condition is invalid (fasid). According to the opinions of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, both conditions are valid. Therefore, based on the analogy (Qiyas) of Imam-e-Azam's opinion, if cultivation is done in the month of Jumada al-Awwal, the yield shall be shared equally (half-and-half) between both parties. However, if cultivation is done in Jumada al-Thani, the entire yield belongs to the party who provided the seeds. In this case, if the laborer (sharecropper) provided the seeds, he must pay the fair rental value (Ajar al-Mithl) of the land to the owner. Conversely, if the landowner provided the seeds, he must pay the fair wage (Ajar al-Mithl) to the laborer. Since both conditions are valid according to the 'Sahibayn' (Imams Abu Yusuf and Muhammad), if cultivation occurs in Jumada al-Thani, the total yield will be divided according to the agreed shares. Furthermore, if it is stated: "On the condition that whatever is sown in this land on a certain day, its yield shall be shared equally between us, and whatever is sown on another certain day, the yield shall be divided such that two-thirds goes to the owner and one-third to the laborer," then all such conditions are invalid (fasid). In the first case, if the laborer sowed half the land on the first of Jumada al-Awwal and the other half on the first of Jumada al-Thani, the yield from the portion sown at the first time will be shared equally according to the condition. The yield from the portion sown at the second time, based on Imam-e-Azam’s opinion, will belong to the provider of the seeds, while according to the opinion of the Sahibayn, it will be shared according to the condition. This is contrary to what was said in the second issue regarding "Al-Akhira" (the latter portion), as that ruling does not apply in this specific scenario.

If it is stated: "On the (1) condition that if the laborer irrigates the crop using a 'Chars' or 'Dulab' (manual water-lifting devices), the laborer receives two-thirds and the landowner one-third; but if irrigated by canal water or rain, the yield is shared equally," then this sharecropping arrangement (Muzara'ah) is valid according to the condition. This ruling is based on the second opinion of Imam-e-Azam. However, based on the analogy of Imam-e-Azam’s first opinion, both conditions would be invalid (fasid) (2). Furthermore, if it is said that "whatever portion of the land is prepared by 'Chars' irrigation, one-third of its yield belongs to the owner and two-thirds to the laborer, but if irrigated by canal, it is half-and-half," then this Muzara'ah is invalid. (Meaning it is unanimously invalid according to the majority of scholars,

though it is considered valid according to the Sahibayn based on the opinion of Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl). This is as mentioned in 'Al-Mabsut'.

If a person gives his land to another on the condition that if he sows wheat, the yield will be shared equally, but if he sows barley, the entire yield will belong to the laborer, this is valid because the owner has given him the choice between sharecropping (Muzara'ah) and leasing (Ijarah). Thus, if he sows wheat, the yield is shared equally, and if he sows barley, the entire yield belongs to the laborer. If the land is given on the condition that if wheat is sown it is shared equally, but if barley is sown the entire yield belongs to the owner, this contract is valid with respect to wheat (i.e., if wheat is sown, they share equally). However, if barley is sown, the entire yield belongs to the laborer (2), and the laborer is obligated to pay the fair rental (Ajar al-Mithl) to the landowner. This is mentioned in 'Al-Zakhirah'. If a person gives his land along with one 'Kurr' of wheat and one 'Kurr' of barley to another on the condition that if he sows wheat, the yield is shared equally and all seeds must be returned to the owner, but if he sows barley, the entire yield belongs to the landowner and the laborer must return all the wheat to him, then all this...

---

(1) According to the Sahibayn, both are valid. (2) Al-Harjam said: This applies if the seeds belong to the laborer, as is clear from the context; otherwise, if the seeds belong to the owner, the yield belongs to the owner, and the owner would not be obligated to pay 'Ajar al-Mithl' to the laborer.

(1) As mentioned, all are invalid.

इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाहि अलैहि के नज़दीक पहली शर्त जायज़ है और दूसरी शर्त फ़ासिद (अमान्य) है, जबकि इमाम अबू यूसुफ़ रहमतुल्लाहि अलैहि और इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाहि अलैहि के कौल के मुताबिक दोनों शर्तें जायज़ हैं। लिहाज़ा इमाम-ए-आज़म के कौल के कयास पर, अगर किसी ने जमादी अल-अव्वल में खेती की, तो पैदावार दोनों के बीच आधी-आधी (निसफ़ा निसफ़) साझी होगी। और अगर उसने जमादी अल-सानी में खेती की, तो पूरी पैदावार उसी की होगी जिसकी तरफ से बीज थे। अगर बीज किसान (आमिल) की तरफ से थे, तो उस पर ज़मीन का 'अज्र अल-मिस्ल' (उचित किराया) वाजिब होगा, और अगर मालिक-ए-ज़मीन की तरफ से थे, तो उस पर किसान का 'अज्र अल-मिस्ल' (उचित मजदूरी) वाजिब होगा। साहिबैन (दोनों इमामों) के नज़दीक, चूंकि दोनों शर्तें जायज़ हैं, इसलिए अगर उसने जमादी अल-सानी में खेती की, तो पूरी पैदावार दोनों के बीच तयशुदा हिस्से के हिसाब से होगी। और अगर इस शर्त पर कहा गया कि जो कुछ इस ज़मीन में फलां दिन बोया जाए, उसकी पैदावार हम दोनों में आधी-आधी होगी, और जो फलां दिन बोया जाए, उसकी पैदावार इस तरह होगी कि दो तिहाई मालिक की और एक तिहाई किसान की होगी, तो यह सब फ़ासिद (अमान्य) है। अगर पहले मसले में किसान ने आधी ज़मीन जमादी अल-अव्वल की पहली तारीख को बोई और आधी ज़मीन जमादी अल-सानी की पहली तारीख को बोई, तो जितना उसने पहले वक्त में बोया है, उसकी पैदावार शर्त के मुताबिक आधी-आधी होगी, और जो दूसरे वक्त में बोया गया है, वह इमाम-ए-आज़म के कौल के कयास पर बीज वाले की होगी, और साहिबैन के कौल के मुताबिक दोनों में शर्त के अनुसार साझी होगी। इसके विपरीत, जैसा कि दूसरे मसले में कहा गया है कि जो कुछ इस ज़मीन में से तूने 'अल-आख़िरह' (बाद वाला हिस्सा) किया, उस स्थिति में ऐसा हुक्म नहीं है। और अगर इस (१) शर्त पर कहा जाए कि अगर किसान ने खेती को 'चरस' या 'दुलाब' (रहट/सिंचाई यंत्र) से सींचा तो किसान की दो तिहाई और ज़मीन के मालिक की एक तिहाई होगी, और अगर उसे नहर या बारिश के पानी से सींचा तो पैदावार आधी-आधी होगी, तो यह मुज़ारा'त (बटाईदारी) शर्त के मुताबिक जायज़ है। यह हुक्म इमाम-ए-आज़म के दूसरे कौल के कयास पर है, जबकि इमाम-ए-आज़म के पहले कौल के कयास पर दोनों शर्तें फ़ासिद २ होंगी। और अगर कहा जाए कि ज़मीन के जितने हिस्से को चरस से सींचकर तैयार किया, उसकी पैदावार का एक तिहाई मालिक का और दो तिहाई किसान का होगा, और अगर नहर से सींचा तो आधी-आधी होगी, तो यह

मुज़ारा'त फ़ासिद है। (यानी जुम्हूर मशाइख के कौल पर सर्वसम्मति से फ़ासिद है, और इमाम अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़्ल के कौल पर साहिबैन के नज़दीक जायज़ है)। जैसा कि 'मबसूत' में है।

अगर एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन दूसरे व्यक्ति को इस शर्त पर दी कि अगर उसने गेहूँ बोए तो पैदावार दोनों में बराबर साझी होगी, और अगर उसने जौ बोए तो पूरी पैदावार किसान की होगी, तो यह जायज़ है क्योंकि मालिक ने उसे मुज़ारा'त और इज़ारा (किरायादारी) के बीच अधिकार दे दिया है। अतः अगर उसने गेहूँ बोए तो पैदावार आधी-आधी होगी, और अगर जौ बोए तो पूरी पैदावार किसान की होगी। और अगर ज़मीन इस शर्त पर दी कि अगर किसान गेहूँ बोए तो दोनों में आधी-आधी होगी, और अगर जौ बोए तो तमाम पैदावार मालिक की होगी, तो यह अनुबंध गेहूँ के हक़ में जायज़ है, यानी गेहूँ बोने पर बराबर साझी होगी। लेकिन अगर जौ बोए तो पूरी पैदावार किसान २ की होगी और किसान पर वाजिब होगा कि वह ज़मीन के मालिक को ज़मीन का 'अज्र अल-मिस्ल' दे दे। यह 'ज़खीरा' में है। अगर एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन और एक 'कुर्र' गेहूँ और एक 'कुर्र' जौ इस शर्त पर दिए कि अगर उसने गेहूँ बोए तो पैदावार दोनों में बराबर साझी होगी और सब (बीज) मालिक को वापस करना वाजिब होगा, और अगर उसने जौ बोए तो पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होगी और किसान उसके सारे गेहूँ उसे वापस कर देगा, तो यह सब...

---

१ साहिबैन के नज़दीक दोनों जायज़ हैं। २ अल-हरजम ने कहा: यह उस स्थिति में है जब बीज किसान के हों, जैसा कि प्रसंग से स्पष्ट है; अन्यथा यदि बीज मालिक के होंगे तो पैदावार मालिक की होगी और मालिक पर किसान को अज्र-ए-मिस्ल देना वाजिब नहीं होगा।

(१) जैसा कि ज़िक्र हुआ कि सब फ़ासिद है।

امام اعظمؒ کے شرط اول جائز ہے اور شرط دوم فاسد ہے اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے قول میں دونوں شرطیں جائز ہیں پس بنا بر قیاس قول امام اعظمؒ کے اگر اس نے جمادی الاول میں زراعت کی تو پیداوار دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو گی اور اگر اس نے جمادی الثانی میں زراعت کی تو پوری پیداوار اس کی ہوگی جس کی طرف سے بیج ہوں پس اگر عامل کی طرف سے ہوں تو اس پر زمین کا اجر المثل واجب ہوگا اور اگر مالک زمین کی طرف سے ہوں تو اس پر کاشتکار کا اجر المثل واجب ہوگا اور صاحبین کے نزدیک چونکہ دونوں شرطیں جائز ہیں لہذا اگر اس نے جمادی الثانی میں زراعت کی تو تمام پیداوار دونوں میں تین تہائی ہوگی اور اگر یوں کہا کہ بدیں شرط کہ جو کچھ اس زمین میں فلاں روز بوئے اس کی پیداوار ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گی اور جو کچھ اس زمین میں سے فلاں روز بوئے اس کی پیداوار ہم دونوں میں اس طرح ہوگی کہ دو تہائی مالک کی اور ایک تہائی کاشتکار کی ہوگی تو یہ سب فاسد ہے اور اگر مسئلہ اولیٰ میں کاشتکار نے نصف زمین اول تاریخ جمادی الاول میں بوئی اور نصف زمین اول تاریخ جمادی الثانی میں بوئی تو جس قدر اس نے وقت اول میں بوئی ہے اس کی پیداوار دونوں میں موافق شرط کے نصفا نصف ہوگی اور جس قدر وقت دوم میں بوئی ہے وہ بقیاس قول امام اعظمؒ بیجوں والے کی ہوگی اور موافق قول صاحبینؒ کے دونوں میں موافق شرط کے مشترک ہوگی بخلاف اس کے جس طرح اس نے مسئلہ ثانیہ میں کہا ہے کہ جو کچھ اس زمین میں سے تو نے الآخرۃ کہ اس صورت میں ایسا حکم نہیں ہے اور اگر یوں کہا کہ بدیں (۱) شرط کہ اگر کاشتکار نے کھیتی کو چرس یا دولاب سے سینچا تو کاشتکار کی دو تہائی اور مالک زمین کی ایک تہائی ہوگی اور اگر اس کو نہر کے پانی یا بارش کے پانی سے سینچا تو پیداوار دونوں میں نصفا نصف ہوگی تو یہ مزارعت موافق

شرط کے جائز ہے اور یہ حکم امام اعظمؒ کے دوسرے قول کے قیاس پر ہے اور امام اعظمؒ کے اول قول کے قیاس پر دونوں شرطین فاسد ۲ ہوں گی اور اگر یوں کہا کہ جس قدر اس زمین میں سے چرس سے سینچ کر تیار کی اس کی پیداوار میں سے ایک تہائی مالک کی اور دو تہائی کاشتکار کی ہوگی اور اگر اس کو نہر کے پانی سے سینچا تو پیداوار دونوں میں نصفا نصف ہوگی تو یہ مزارعت فاسد ہے۔ (یعنی بالا تفاق فاسد ہے علیٰ قول جمہور المشائخ اور صاحبینؒ کے نزدیک جائز ہے علیٰ قول الامام ابی بکر محمد بن الفضلؒ ) کذا فی المبسوط۔

اگر ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے شخص کو اس شرط پر دی کہ اگر اس نے گیہوں بوئے تو پیداوار دونوں میں برابر مشترک ہوگی اور اگر اس نے جو بوئے تو تمام پیداوار کاشتکار کی ہوگی تو یہ جائز ہے کیونکہ مالک نے اس کو مزارعت و اجارہ میں مختار کر دیا ہے پس اگر اس نے گیہوں بوئے تو پیداوار دونوں میں نصفا نصف مشترک ہو گی اور اگر جو بوئے تو پوری پیداوار کاشتکار کی ہوگی اور اگر زمین اس شرط سے دی کہ اگر کاشتکار نے گیہوں بوئے تو دونوں میں نصفا نصف ہوں گے اور اگر جو بوئے تو تمام پیداوار مالک کی ہوگی تو یہ عقد گیہوں کے حق میں جائز ہے یعنی اگر گیہوں بوئے تو دونوں میں برابر مشترک ہوں گے اور اگر جو بوئے تو تمام پیداوار کاشتکار ۲ کی ہوگی اور کاشتکار پر واجب ہوگا کہ مالک زمین کو زمین اجر المثل دے دے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین اور ایک کر گیہوں اور ایک کر جو اس شرط سے دیے کہ اگر اس نے گیہوں بوئے تو پیداوار دونوں میں برابر مشترک ہوگی اور سب مالک کو واپس کرنے واجب ہوں گے اور اگر اس نے جو بوئے تو تمام پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور کاشتکار اس کے سب گیہوں اس کو واپس کردے گا تو یہ سب

۱ صاحبینؒ کے نزدیک دونوں جائز ہیں۔ ۲ قال الحرجم یہ اس صورت میں ہے کہ بیج کاشتکار کے ہوں جیسا کہ سیاق سے واضح ہے ورنہ اگر مالک کے بیج ہوں گے تو پیداوار مالک کی ہوگی اور مالک پر واجب نہ ہوگا کہ کاشتکار کا اجر المثل ادا کرے۔

(۱) چنانچہ مذکور ہوا کہ سب فاسد ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (308) Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

It is permissible to agree upon conditions favored by both parties. If the entire produce of barley is stipulated for the cultivator, it is also (1) permissible; this is mentioned in *Al-Mabsut*. If a person gives his land to another on the condition that the latter cultivates it using his own seeds, such that if wheat is sown, the produce is shared equally; if barley is sown, the entire produce belongs to the cultivator; and if sesame is sown, the entire produce belongs to the landowner—then this contract is valid regarding wheat and barley but invalid (*fasid*) regarding sesame. If, in this scenario, the seeds are provided by the landowner while other conditions remain the same, it is permissible because the owner has given him three options: to engage in sharecropping, seek assistance, or accept the land as a loan and the seeds as a debt. Such an arrangement is valid in *Ijarah al-Mahdah* (pure lease), as stated in *Al-Muhit*. A person gave his land to another for cultivation this year using the tenant's seeds, with the condition that if wheat is sown, the produce is shared equally; if barley is sown, the landowner receives one-third; and if sesame is sown, the landowner receives one-fourth. This contract is valid according to their mutual stipulations, because at the time of sowing, the contract's specifics become confirmed based on the seeds used. Even if barley is sown in some patches and sesame in others, it remains valid according to the stipulations; the agreed-upon terms for each specific crop shall apply, as mentioned in *Al-Zahiriyyah*.

If land is given for thirty years on the condition that wheat, barley, or spring/autumn crops are grown and divided equally, and in areas where trees, grapes, or dates are planted, the produce is divided into thirds (one-third for the owner and two-thirds for the worker), this contract is valid based on mutual agreement. Whether the entire land is used for one type of crop or divided between farming and viticulture, it is valid according to *Zahir al-Riwayah*, as noted in *Khazanat al-Muftiyeen*. A person gave his land to another on the condition that the latter provides seeds and oxen to cultivate wheat in some patches, barley in others, and sesame in others, with shares of one-half for wheat, one-third for barley, and two-thirds for sesame; this entire contract is invalid (*fasid*). When a contract is deemed invalid, the entire produce belongs to the owner of the seeds; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If a landowner gives land for sharecropping on the agreement that the tenant uses his own seeds, oxen, and labor, and hires laborers at his own expense, it is permissible. However, if they stipulate that laborers be hired at the landowner's expense, the sharecropping contract is invalid because stipulating work alongside the landowner's hired help is

akin to working with the landowner himself, which vitiates the sharecropping agreement. Similarly, if they agree that the tenant hires laborers but deducts their wages from the total produce before sharing the remainder, this is also invalid. This is because stipulating a fixed amount to be deducted for the tenant is like pre-allocating a specific quantity of the harvest, which is impermissible. If the seeds are provided by the landowner and both parties agree...

---

1. *Ijarah al-Mahdah* refers to the general leases discussed in the *Book of Leases*, excluding the specific lease that is sharecropping (*Muzara'ah*). (1) The quantity is not publicly specified/certain.

दोनों की सहमति से शर्त रखना जायज़ है, और यदि जौ की पूरी पैदावार काश्तकार (किसान) के लिए तय की गई हो, तो भी (१) यह जायज़ है, ऐसा 'मबसूत' में उल्लेखित है। यदि एक व्यक्ति ने अपनी भूमि दूसरे को इस शर्त पर दी कि वह अपने बीजों से इस शर्त पर खेती करे कि यदि उसने गेहूँ बोया तो उपज दोनों में बराबर साझा होगी, यदि जौ बोया तो पूरी पैदावार काश्तकार की होगी, और यदि तिल बोया तो पूरी पैदावार ज़मींदार की होगी; तो यह अनुबंध गेहूँ और जौ के हक में जायज़ है और तिल के हक में अमान्य (फासिद) है। और यदि इस स्थिति में बीज ज़मींदार की ओर से हों और शेष शर्तें वही रहें, तो यह जायज़ है क्योंकि मालिक ने उसे तीन विकल्पों का अधिकार दिया है: चाहे तो मज़ाराअत (बटाई खेती) करे, या सहायता ले, या भूमि उधार ले और बीज ऋण के रूप में स्वीकार करे; और ऐसा करना 'इजारा-ए-महज़' (शुद्ध पट्टा) में जायज़ है, यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी भूमि इस शर्त पर दी कि इस वर्ष वह अपने बीजों से खेती करे कि यदि गेहूँ बोए तो उपज आधी-आधी होगी, जौ बोए तो ज़मींदार को एक-तिहाई मिलेगी, और यदि तिल बोए तो ज़मींदार को एक-चौथाई मिलेगी; तो यह अनुबंध दोनों की शर्तों के अनुसार जायज़ है, क्योंकि बीज बोते समय अनुबंध की पुष्टि हो जाएगी और स्पष्ट हो जाएगा कि कौन से बीज बोए गए हैं। यदि कुछ हिस्सों में जौ और कुछ में तिल बोए जाएँ, तो भी शर्तों के अनुसार यह जायज़ है। जिस बीज के लिए जो शर्त तय हुई है, उसी का पालन किया जाएगा, ऐसा 'ज़हीरिया' में है।

यदि तीस वर्षों के लिए अपनी भूमि दूसरे को इस शर्त पर दी कि उसमें गेहूँ या जौ या रबी व खरीफ़ की फसल हो और वह दोनों में बराबर विभाजित हो, और उस भूमि में जहाँ पेड़, अंगूर या खजूर लगाए गए हों, उपज तीन हिस्सों में बँटेगी (ज़मींदार को एक-तिहाई और काम करने वाले को दो-तिहाई), तो यह आपसी शर्तों के अनुसार जायज़ है। चाहे उसने पूरी भूमि में एक ही फसल उगाई हो या कुछ में खेती और कुछ में अंगूर की बेलें लगाई हों, यह 'ज़ाहिर अल-रिवाया' के अनुसार जायज़ है, ऐसा 'खज़ाना अल-मुफ़्तीइन' में है। यदि एक व्यक्ति ने अपनी भूमि दूसरे को उसके बीजों और बैलों के साथ इस शर्त पर दी कि कुछ हिस्सों में गेहूँ, कुछ में जौ और कुछ में तिल बोए जाएँ, और उपज का हिस्सा गेहूँ के लिए आधा, जौ के लिए एक-तिहाई और तिल के लिए दो-तिहाई तय किया जाए, तो यह सब अमान्य (फासिद) है। जब अनुबंध अमान्य हो जाए, तो पूरी पैदावार बीज के मालिक की होगी, ऐसा 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। यदि किसी ने अपनी भूमि इस शर्त पर दी कि किसान अपने बीजों, बैलों और श्रम से खेती करे और अपने धन से मज़दूर नियुक्त करे, तो यह जायज़ है। परंतु यदि

यह शर्त हो कि ज़मींदार के धन से मज़दूर नियुक्त किए जाएँ, तो यह मज़ाराअत अमान्य है, क्योंकि ज़मींदार के मज़दूर के साथ काम करने की शर्त रखना ज़मींदार के साथ काम करने जैसा ही है, जो मज़ाराअत को बिगाड़ देता है। इसी प्रकार, यदि यह शर्त हो कि किसान मज़दूर रखेगा लेकिन उनकी मज़दूरी पहले कुल पैदावार से काट ली जाएगी और शेष का बँवारा होगा, तो यह भी अमान्य है। क्योंकि फसल में से एक निश्चित हिस्सा (मज़दूरी के लिए) पहले से तय कर लेना ऐसा है जैसे किसान के लिए कोई विशिष्ट मात्रा शुरू में ही तय कर दी गई हो, जो कि इस्लामी कानून में अमान्य है। यदि बीज ज़मींदार की ओर से हों और दोनों ने यह शर्त की...

---

1. इजारा-ए-महज़ अर्थात जिसका वर्णन किताब-उल-इजारात में हुआ है, सिवाय उस विशेष इजारा के जो मज़ाराअत (बटائی) है। (१) मात्रा अज्ञात/अनिश्चित है।

---

موافق دونوں کے شرط کرنے کے جائز ہے اور اگر جو کی تمام پیداوار کاشتکار کے واسطے مشروط کی ہو تو بھی(۱) جائز ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے کو اس شرط سے دی کہ اس میں اپنے بیجوں سے بدیں شرط زراعت کرے کہ اگر اس نے گیہوں بوئے تو پیداوار دونوں میں برابر مشترک ہو گی اور اگر جو بوئے تو پوری پیداوار کاشتکار کی ہوگی اور اگر تل بوئے تو پوری پیداوار مالک زمین کی ہو گی تو یہ عقد گیہوں اور جو کے حق میں جائز ہے اور تلوں کے حق میں فاسد ہے اور اگر اس صورت میں بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو یہ جائز ہے کیونکہ مالک نے اس کو تین باتوں میں مختار کیا کہ چاہے مزارعت کرے یا استعانت کرے یا زمین عاریت قبول کرے اور بیج قرض قبول کرے اور ایسا کرنا اجارۂ محضہ میں جائز ہے یہ محیط میں ہے ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین دی کہ اس سال اس میں اپنے بیجوں سے اس شرط سے زراعت کرے کہ اگر اس نے گیہوں بوئے تو پیداوار دونوں میں برابر مشترک ہو گی اور اگر اس میں جو بوئے تو مالک زمین کے واسطے تہائی ہو گی اور اگر تل بوئے تو چوتھائی مالک زمین کی ہو گی تو یہ عقد موافق دونوں کے اشتراط کے جائز ہے اس لیے کہ مالک زمین کے حق میں بیج جھٹکانے کے وقت عقد کا تاکید ہو گا اور اس حالت میں معلوم ہو جائے گا کہ کون بیج بوئے ہیں اور اگر بعض ٹکڑے میں جو بوئے اور بعض تل بوئے تو بھی موافق اشتراط کے جائز ہے جس قسم کے بیج میں جو شرط ٹھہرائی ہے اسی کے موافق رکھا جائے گا یہ ظہیریہ میں ہے۔

اگر تیس برس کے واسطے اپنی زمین دوسرے کو اس شرط سے دی کہ اس میں گیہوں یا جو یا غلہ ربیع و خریف کا ہو یا وہ دونوں میں بنصفا نصف تقسیم ہو گا اور اس زمین میں سے جہاں درخت

لگایا یا انگور لگائے یا خرما کے درخت جمائے دونوں میں تین تہائی ہوں گے کہ مالک زمین کی ایک تہائی اور عامل کی دو تہائی ہو گی تو یہ عقد موافق اشتراط باہمی کے جائز ہے خواہ اس نے کل زمین میں دونوں قسم میں سے ایک ہی قسم کا اگایا یا بعض زمین میں زراعت کی اور بعض میں تاک انگور وغیرہ لگائی سب ظاہر الروایہ کے موافق جائز ہے یہ خزانہ المفتیین میں ہے ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے شخص کو بشرط اس کے بیجوں اور اس کے بیل سے اس شرط پر زراعت کرنے کے واسطے دی کہ بعض ٹکڑے میں گیہوں بوئے اور بعض ٹکڑے میں جو بوئے اور بعض میں تل بوئے پس زمین سے جس قدر ٹکڑے میں سے گیہوں بوئے گا اس میں آدھے کی بٹائی اور جس قدر ٹکڑے میں جو بوئے گا اس میں مالک کی ایک تہائی اور جس قدر ٹکڑے میں تل بوئے گا اس میں مالک زمین کی دو تہائی ہو گی تو یہ سب فاسد ہے اور جب عقد فاسد ٹھہرا تو پوری پیداوار بیج والے کی ہو گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر اپنی زمین ایک شخص کو اس سال اپنے بیجوں و بیل و اپنے کام سے بدین قرار داد کہ کارِ زراعت کے واسطے اپنے مال سے مزدور مقرر کرے مزارعت پر دی تو یہ جائز ہے اور اگر دونوں نے یہ شرط لگائی کہ مالک زمین کے مال سے مزدور مقرر کرے تو یہ مزارعت فاسد ہے کیونکہ مالک زمین کے مزدور کے ساتھ کام کرنا شرط کرنا مثل مالک زمین کے ساتھ کام کرنے کے ہے حالانکہ یہ مفسد مزارعت ہے اس طرح اگر دونوں نے یہ شرط کی کہ کاشتکار اپنے مال سے بدیں شرط مزدور مقرر کرے کہ کاشتکار پیداوار میں سے پہلے یہ مال مزدوری واپس نکال لے پھر جو باقی رہے اس کی دونوں میں بٹائی ہو تو یہ بھی فاسد ہے کیونکہ پیداوار میں سے جس قدر کاشتکار کے واسطے واپس نکال لینا شرط کیا وہ ایسا ہے کہ گویا کاشتکار کے واسطے ابتداً مشروط کیا اور چونکہ یہ مقدار (۱) معلوم ہے اس واسطے ایسا ہو گیا کہ گویا کاشتکار کے واسطے پیداوار میں سے کچھ فقیہ میں

معلوم مشروط کر دیں حالانکہ یہ ناجائز ہے اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور دونوں نے یہ شرط کی

---

ا۔ اجارہ محضہ یعنی جن کا بیان کتاب الاجارت میں گذرا سوائے خاص اجارہ کے جو مزارعت ہے۔

(۱) مقدار شائع نہیں ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 309 Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

If the sharecropper pays the wages of the laborers from his own property, it is permissible. However, if it is stipulated that the wages for the laborers are to be paid from the property of the landowner, it is not permissible, because this is akin to the landowner stipulating that the seeds and land must work along with the sharecropper. Similarly, if both have stipulated that these wages are the responsibility of the sharecropper, but on the condition that the sharecropper recovers this wage amount from the produce, it is also invalid (fasid), just as it is invalid to stipulate a fixed known quantity from the produce for the sharecropper. Thus, in such an instance, the sharecropping contract (1) will be invalid, and the entire produce will belong to the owner of the seeds, and the sharecropper will be entitled to a fair wage (Ajr-al-Mithl) for his work and for the work of his laborers. This is mentioned in Al-Mabsut.

**Chapter Four:**

**Concerning the situation where the owner of the land or garden personally takes charge of the work in sharecropping (Muzara'ah) and share-tending (Mu'amalah)**

Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) stated in 'Kitab al-Asl' that if a person gives his land to another for a half-share of the produce, and then the landowner himself performs the agricultural work, there are two scenarios: First, that the seeds are provided by the landowner, and this also has two sub-scenarios: First, that he performed the work at the sharecropper's command, which further involves three situations: one is that the sharecropper sought assistance from the landowner in his work, and in such a case, the entire produce will be divided equally between them according to the condition. The elders have stated that this ruling mentioned by Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) applies only when the landowner did not say at the time of farming, "I am farming this land for myself." If he said these words, the entire produce would belong to the landowner, and the sharecropping agreement would be voided. However, Imam Muhammad stated the ruling in general terms, and Shaykh-ul-Islam said that the ruling as stated generally by Imam Muhammad is correct. The second situation is that the sharecropper hired the landowner for a known amount of Dirhams to perform the agricultural work; in such a case, the hiring contract (Ijarah) will be void, and the sharecropping agreement will remain as it is. The third situation is that the sharecropper gave this

land back to the landowner for farming on the condition of giving him a portion of his share; in this case, this second sharecropping contract would be invalid, and the first sharecropping agreement would remain in effect. All of this applies when the landowner performed the work by the order of the sharecropper. If the seeds are from the owner and he performed the work without the sharecropper's command, he would be considered to have terminated the sharecropping agreement. If the seeds are from the sharecropper, then the ruling for farming with or without the sharecropper's command is the same as mentioned in the first scenario, with one difference: in this case (2), if the landowner farmed with or without the sharecropper's command, he would be liable to provide the sharecropper with seeds equivalent to his seeds, because he destroyed the sharecropper's seeds in his possession. If the seeds are provided by the landowner or the sharecropper, and the sharecropper ordered the landowner to appoint a laborer for this task, then the entire produce will be divided between the landowner and the sharecropper according to their mutual condition, and he (the landowner) will recover the wages from the sharecropper. Contrary to this, if the sharecropper sought help from the landowner and did not command him to appoint any laborer, then in such a case, the landowner cannot recover the wages from the sharecropper. The same ruling as mentioned in Muzara'ah applies to the case of share-tending (Mu'amalah) of trees (giving trees on a share-cropping basis).

(1) If the seeds are from the landowner. (2) If the seeds are from the sharecropper.

कि काश्तकार (किसान) अपने माल से मज़दूरों की मज़दूरी दे तो जायज़ है और अगर मालिक-ए-ज़मीन के माल से मज़दूरों की मज़दूरी शर्त की तो जायज़ नहीं है क्योंकि यह इसके समान है कि मालिक ने बीज और ज़मीन के साथ काश्तकार के साथ काम करना शर्त किया। इसी तरह अगर दोनों ने यह मज़दूरी काश्तकार के ज़िम्मे मशरूत (शर्तयुक्त) की मगर इस शर्त के साथ कि काश्तकार इस माल-ए-मज़दूरी को पैदावार में से वापस ले ले तो भी फ़ासिद (अमान्य) है जैसा कि काश्तकार के लिए पैदावार में से इतनी मात्रा मालूम (निश्चित) शर्त करना फ़ासिद है। अतः ऐसी घटना में मज़ारअत का अनुबंध (1) फ़ासिद होगा और पूरी पैदावार बीजों के मालिक की होगी और काश्तकार के लिए उसके काम और उसके मज़दूरों के काम का अज्र-उल-मिस्ल (उचित पारिश्रमिक) वाजिब होगा, यह मबसूत में है।

**अध्याय चार:**

## मज़ारअत और मामले में ज़मीन और बाग़ के मालिक के स्वयं कार्य प्रभारी बन जाने के वर्णन में

इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाहि अलैहि ने 'किताब अल-असल' में फ़रमाया कि अगर किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन दूसरे को आधे की बटाई पर दी, फिर ज़मीन के मालिक ने स्वयं खेती का काम किया तो इसकी दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों और इसकी भी दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि काश्तकार के आदेश से उसने खेती का कार्य किया और इसमें तीन स्थितियाँ हैं: एक यह कि काश्तकार ने ज़मीन के मालिक से अपने काम में मदद ली और ऐसी स्थिति में पूरी पैदावार दोनों के बीच शर्त के अनुसार आधी-आधी होगी और बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि यह नियम जो इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाहि अलैहि ने उल्लेख किया है, केवल उसी स्थिति में है जब खेती के समय ज़मीन के मालिक ने यह न कहा हो कि "मैं अपने लिए इस ज़मीन में खेती करता हूँ", और अगर उसने ये शब्द कह दिए हों तो पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होगी और मज़ारअत (अनुबंध) टूट जाएगा। लेकिन इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाहि अलैहि ने नियम को बिना किसी शर्त के बयान किया है और शैखुल इस्लाम ने फ़रमाया कि जैसा इमाम मुहम्मद रहमतुल्लाहि अलैहि ने नियम को बिना शर्त बयान किया है, वही सही है। दूसरी स्थिति यह है कि काश्तकार ने कुछ ज्ञात दिरहमों पर ज़मीन के मालिक को मज़दूरी पर रखा कि वह खेती का काम करे; ऐसी स्थिति में किराया अनुबंध

(इजारा) शून्य होगा और मज़ारअत अपनी स्थिति पर रहेगी। और तीसरी स्थिति यह है कि काश्तकार ने ज़मीन के मालिक को यह ज़मीन अपने हिस्से में से कुछ हिस्सा बटाई पर देने की शर्त पर खेती के लिए दी, तो ऐसी स्थिति में यह दूसरा मज़ारअत अनुबंध फ़ासिद होगा और पहली मज़ारअत अपनी स्थिति पर रहेगी। यह सब उस स्थिति में है जब ज़मीन के मालिक ने काश्तकार के आदेशानुसार खेती का कार्य स्वयं किया हो। और अगर बीज मालिक की ओर से हों और मालिक ने काश्तकार के आदेश के बिना स्वयं खेती का कार्य किया हो, तो वह मज़ारअत को तोड़ने वाला माना जाएगा। और अगर बीज काश्तकार की ओर से हों तो ऐसी स्थिति में काश्तकार के आदेश से खेती करने और बिना आदेश खेती करने में वही नियम है जो पहली स्थिति में उल्लेख किया गया है, लेकिन एक बात का अंतर है, वह यह है कि इस स्थिति (2) में यदि ज़मीन के मालिक ने काश्तकार के आदेश से या बिना आदेश के खेती की, तो वह काश्तकार के लिए उसके बीजों के समान बीजों का ज़िम्मेदार होगा क्योंकि उसने काश्तकार के बीजों को उसके पास से नष्ट किया है। और अगर बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों या काश्तकार की ओर से हों और काश्तकार ने ज़मीन के मालिक को आदेश दिया कि इस काम के लिए एक मज़दूर नियुक्त कर ले, तो पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक और काश्तकार के बीच आपसी शर्त के अनुसार होगी और वह मज़दूरी ज़मीन के मालिक या काश्तकार से वापस ले लेगा। इसके विपरीत यदि काश्तकार ने ज़मीन के मालिक से सहायता ली और उसे किसी मज़दूर को नियुक्त करने का आदेश नहीं दिया, तो ऐसी स्थिति में ज़मीन का मालिक काश्तकार से मज़दूरी वापस नहीं ले सकता। और जैसा नियम मज़ारअत में उल्लेख हुआ है, वैसा ही मामला पेड़ों को बटाई पर देने (मुआमलाह) की स्थिति में भी है।

(1) यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों। (2) बीज काश्तकार की ओर से हों।

کہ کاشتکار اپنے مال سے مزدوروں کی مزدوری دے تو جائز ہے اور اگر مالک زمین کے مال سے مزدوروں کی مزدوری شرط کی تو نہیں جائز ہے کیونکہ یہ بمنزلہ اس کے یہ کہ مالک بیج و زمین کاشتکار کے ساتھ کام کرنا شرط کیا اسی طرح اگر دونوں نے یہ مزدوری کاشتکار کے ذمہ مشروط کی مگر بدین شرط کہ کاشتکار اس مال مزدوری کو پیداوار میں سے واپس لے تو بھی فاسد ہے جیسا کہ کاشتکار کے واسطے پیداوار میں سے اتنی مقدار معلوم شرط کرنا فاسد ہے پس ایسے واقعہ میں عقد مزارعت (1) فاسد ہوگا اور پوری پیداوار بیجوں کے مالک کی ہوگی اور کاشتکار کے واسطے اس کے کام اور اس کے مزدوروں کے کام کا اجرالمثل واجب ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔

**باب چہارم:**

**مزارعت و معاملت میں مالک زمین و باغ کے خود متولی کار ہو جانے کے بیان میں**

امام محمد رحمہ اللہ نے کتاب الاصل میں فرمایا کہ اگر کسی شخص نے اپنی زمین دوسرے کو آدھے کی بٹائی پر دی پھر مالک زمین نے کار زراعت خود انجام دیا تو اس کی دو صورتیں ہیں اوّل یہ کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اس کی بھی دو صورتیں ہیں اوّل یہ کہ کاشتکار کے حکم سے اس نے کار زراعت انجام دیا اور اس میں تین صورتیں ہیں ایک یہ کہ کاشتکار نے مالک زمین سے اپنے کام میں مدد لی اور ایسی صورت میں تمام پیداوار دونوں میں موافق شرط کے نصفا نصف ہوگی اور مشائخ نے فرمایا کہ یہ حکم جو امام محمد رحمہ اللہ نے ذکر فرمایا ہے اسی صورت میں ہے کہ زراعت کے وقت مالک زمین نے یہ نہ کہا ہو کہ میں اپنے واسطے اس

زمین میں زراعت کرتا ہوں اور اگر یہ لفظ کہہ دیا ہو تو پوری پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور مزارعت ٹوٹ جائے گی لیکن امام محمد رحمہ اللہ نے حکم کو مطلقاً بیان فرمایا ہے اور شیخ الاسلام نے فرمایا کہ جیسا کہ حکم مطلقاً امام محمد رحمہ اللہ نے بیان فرمایا ہے وہی صحیح ہے دوسری صورت یہ کہ کاشتکار نے کچھ درہموں معلومہ پر مالک زمین کو مزدوری کی کہ کار زراعت انجام دے پس ایسی صورت میں اجارہ باطل ہوگا اور مزارعت اپنے حال پر رہے گی اور تیسری صورت یہ ہے کہ کاشتکار نے مالک زمین کو یہ زمین اپنے حصہ میں سے کچھ بٹائی دینے کی شرط پر زراعت کے واسطے دی تو ایسی صورت میں یہ دوسرا عقد مزارعت فاسد ہوگا اور پہلی مزارعت اپنے حال پر رہے گی یہ سب اس صورت میں کہ مالک زمین نے بحکم مزارع کار زراعت خود انجام دیا ہو اور اگر بیج مالک کی طرف سے ہوں اور مالک نے بدوں حکم کاشتکار خود کار زراعت انجام دیا ہو تو وہ مزارعت کا توڑ دینے والا ہو جائے گا اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو ایسی صورت میں کاشتکار کے حکم سے زراعت کرنے اور بالاحکم زراعت کرنے میں ویسا ہی حکم ہے جیسا کہ پہلی صورت میں مذکور ہوا مگر ایک بات سے فرق ہے وہ یہ ہے کہ اس صورت (2) میں اگر مالک زمین نے کاشتکار کے حکم سے یا بلا حکم زراعت کی تو کاشتکار کے واسطے اس کے بیجوں کے مثل بیجوں کا ضامن ہوگا کیونکہ اس نے کاشتکار کے بیج اس کے پاس سے برباد کیے ہیں اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں یا کاشتکار کی طرف سے ہوں اور کاشتکار نے مالک زمین کو حکم دیا کہ اس کام کے واسطے ایک مزدور مقرر کر لے تو تمام پیداوار مالک زمین و کاشتکار کے درمیان باہمی شرط کے موافق ہوگی اور مزدوری مالک زمین کاشتکار سے واپس لے گا بخلاف اس کے اگر کاشتکار نے مالک زمین سے استعانت لی اور اس کو کسی مزدور مقرر کرنے کے واسطے حکم نہ دیا کہ ایسی

صورت میں مالک زمین مزدوری کاشتکار سے واپس نہیں لے سکتا ہے اور جیسا حکم مزارعت میں مذکور ہوا ہے ویسا ہی معاملہ یعنی درختوں کو بٹائی دینے کی صورت میں ہے۔

(1) قولہ اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں۔ (2) بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں۔

**Fatawa-e-Alamgiri..... Volume 8 | 310 | Book of Muzara'ah (Sharecropping)**

For instance, if a person gave his date palms to another person on a half-share basis (batai) on the condition that the latter performs pollination (crossbreeding of male and female), protects them, and waters them; then the worker (amil) sought assistance from the owner of the trees in this task and the owner performed the task, then the fruit yields will be shared between both according to their agreed terms. However, if the owner of the trees took possession of the trees without the worker's instruction and performed these tasks himself, then all the yields will belong to the owner, and the contract will be voided, even though the tree owner does not have the right to break the contract without a valid reason. If the owner of the trees, after the date blossoms had appeared, cared for them himself without the permission of his worker, then the fruit yields will be shared equally between both. If the owner took back the mentioned trees before the blossoms appeared and cared for them, and then the worker took them back from the owner and cared for them until the fruit turned into full dates, then all these fruits will belong to the tree owner. If someone gave their land and seeds to another on a half-share basis, and then the farmer, after taking possession of the land, gave it back to the landowner on sharecropping on the condition that one-third of the produce would go to the farmer and two-thirds to the landowner, then this second sharecropping contract is invalid (fasid), and whatever the yield is, it will be shared half-and-half (1) between them; this is in 'Al-Muhit'. If a person gave his land on a half-share basis and made the seeds the responsibility of the farmer, then when the farmer sowed the crop, watered it, and it sprouted, the landowner himself and his laborers started caring for and watering it without the farmer's permission until the crop was ready and harvested, then the entire produce will be shared between the owner and the farmer according to their mutual condition. If the farmer sowed the seeds but had not yet watered them and the crop had not sprouted, and the landowner watered it before it sprouted without the farmer's permission, then by legal analogy (qiyas), all the produce should belong to the landowner because, before sprouting, the seed is essentially placed inside the land; do you not see that it can be cleaned from the soil with difficulty? Thus, its being inside the ground is like being on top of the ground, and if the landowner takes seeds from the surface, sows, and waters them until they grow, he is considered to have broken the sharecropping contract; thus, the same ruling should apply when the seeds are inside the ground. However, based on juridical preference (istihsan), the ruling is that all the produce will be shared between both according to

the sharecropping condition, because in such a state, the landowner's watering is considered to be with the farmer's permission.

**In the aforementioned series, the Fatwa is in accordance with the ruling of 'Istihsan'** ☆

This (above-mentioned) ruling applies to the case where the farmer sowed the seeds and the owner watered them without his permission. But if the owner sowed the seeds without the farmer's permission and the crop had not yet sprouted, and then the farmer watered it and took complete care of it until it was ready and harvested, then it is mentioned that the entire produce will be shared between both according to the condition, and in this case, qiyas and istihsan were not mentioned. If the seeds were kept on top of the ground and the owner came and took these seeds and cultivated them himself without getting permission from the farmer, then he will be the one who broke the sharecropping. If the farmer came and sowed and watered without the owner's permission, then the yield will be shared between both according to the mutual condition based on both qiyas and istihsan; this is in 'Al-Zakhira'. If a person gave his land and seeds to another person for sharecropping this year on the condition that whatever the yield is, it will be shared half-and-half between us, and the farmer sowed the seeds and watered them until the crop grew, then without the farmer's permission, the landowner himself along with his laborers cared for and watered it until the crop was ready and harvested, then the entire produce will be shared half-and-half between both. Let it be clear that a concise translation regarding the cultivation in the event of such an occurrence is stated as such, and its benefit is evident. (1) According to the first sharecropping agreement.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी..... जिल्द 8 | 310 | किताब-उल-मुज़ारआ (बटाई की खेती की किताब)**

चुनांचे, अगर किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति को अपने खजूर के पेड़ इस शर्त पर आधे की बटाई पर दिए कि वह उनकी नर-मादा का मिलान करे, उनकी हिफ़ाज़त करे और उन्हें सींचे, फिर मज़दूर (आमिल) ने पेड़ के मालिक से इस काम में सहायता ली और मालिक ने यह काम कर दिया, तो फलों की पैदावार दोनों की शर्त के अनुसार दोनों में साझा होगी। और अगर पेड़ के मालिक ने मज़दूर के आदेश के बिना पेड़ पर कब्ज़ा कर लिया और ये काम खुद किए, तो पूरी पैदावार पेड़ के मालिक की होगी और अनुबंध (मुआमला) टूट जाएगा, हालांकि पेड़ के मालिक को बिना किसी वाजिब कारण के अनुबंध तोड़ने का अधिकार नहीं है। और अगर पेड़ के मालिक ने खजूर के फूलों के निकलने के बाद मज़दूर की अनुमति के बिना खुद उनकी देखभाल की, तो फलों की पैदावार दोनों में बराबर साझा होगी। और अगर मालिक ने फूलों के निकलने से पहले उक्त पेड़ वापस ले लिया और उनकी देखभाल की, फिर मज़दूर ने मालिक से लेकर उनकी देखभाल की यहाँ तक कि फल पूरी तरह से पक कर छुहारे बन गए, तो ये सभी फल पेड़ के मालिक के होंगे। और अगर किसी ने अपनी ज़मीन और बीज किसी दूसरे को आधे की बटाई पर दिए, फिर किसान ने ज़मीन पर कब्ज़ा करने के बाद ज़मीन के मालिक को ही मुज़ारअत (बटाई) पर इस शर्त के साथ दे दिया कि पैदावार में से एक तिहाई किसान की और दो तिहाई ज़मीन के मालिक की होगी, तो यह दूसरी मुज़ारअत फ़ासिद (अमान्य) है और जो कुछ पैदावार होगी वह दोनों में आधा-आधा (1) होगी, यह 'मुहीत' में है। अगर किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन आधे की बटाई पर दी और बीज किसान के ज़िम्मे शर्त रखे, फिर जब किसान ने उसमें खेती बो दी, उसे सींचा और वह उग आई, तो उसके बाद किसान की अनुमति के बिना ज़मीन का मालिक खुद और अपने मज़दूरों को लेकर उसकी देखभाल करने लगा और उसे सींचा यहाँ तक कि खेती तैयार होकर काटी गई, तो पूरी पैदावार मालिक और किसान के बीच आपसी शर्त के अनुसार साझा होगी। और अगर किसान ने बीज डाल दिए मगर अभी उसने पानी नहीं दिया था और न ही खेती उगी थी कि ज़मीन के मालिक ने किसान की अनुमति के बिना उगने से पहले ही उसे सींच दिया, तो तर्क(क़यास) के आधार पर पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होनी चाहिए क्योंकि बीज उगने से पहले वास्तव में ज़मीन के अंदर रखा होता है; क्या तुम नहीं देखते कि बड़ी मशक्कत से उसे मिट्टी से साफ़ किया जा सकता है? अतः ज़मीन के अंदर उसका होना ज़मीन के ऊपर होने के समान हुआ, और ज़मीन के ऊपर से अगर मालिक बीज लेकर बोए और सींचे यहाँ

तक कि बीज उग आए, तो उसे मुज़ारअत तोड़ने वाला माना जाता है; इसलिए ज़मीन के अंदर बीज होने की स्थिति में भी यही हुक्म होना चाहिए। लेकिन 'इस्तिहसान' (न्यायिक प्राथमिकता) के आधार पर यह हुक्म है कि पूरी पैदावार दोनों में मुज़ारअत की शर्त के अनुसार साझा होगी क्योंकि ऐसी स्थिति में ज़मीन के मालिक का सींचना किसान की अनुमति से माना जाएगा।

**उपरोक्त मामले में फ़तवा 'इस्तिहसान' के हुक्म के अनुसार है** ☆

यह (उपरोक्त) हुक्म उस स्थिति में है जब किसान ने बीज डाले और मालिक ने बिना उसकी अनुमति के पानी दिया। और अगर किसान की अनुमति के बिना मालिक ने बीज डाले और अभी खेती उगी नहीं थी कि फिर किसान ने उसे सींचा और उसकी पूरी देखभाल की यहाँ तक कि खेती तैयार होकर काटी गई, तो उल्लेख किया गया है कि पूरी पैदावार दोनों में शर्त के अनुसार साझा होगी और इस स्थिति में 'क़यास' और 'इस्तिहसान' का ज़िक्र नहीं किया गया। और अगर बीज ज़मीन के ऊपर रखे हों और मालिक ने आकर ये बीज लेकर खुद खेती कर दी और किसान से अनुमति नहीं ली, तो वह मुज़ारअत को तोड़ने वाला कहलाएगा। और अगर किसान ने आकर मालिक की अनुमति के बिना बीज डाले और सींचा तो पैदावार दोनों में आपसी शर्त के अनुसार 'क़यास' और 'इस्तिहसान' दोनों के आधार पर साझा होगी, यह 'ज़ख़ीरा' में है। अगर किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन और बीज दूसरे व्यक्ति को इस वर्ष मुज़ारअत के लिए इस शर्त पर दिए कि जो कुछ पैदावार होगी वह हम दोनों में आधी-आधी होगी, और किसान ने उसमें बीज डालकर पानी दिया यहाँ तक कि खेती उग आई, फिर किसान की अनुमति के बिना ज़मीन के मालिक ने खुद अपने मज़दूरों के साथ उसकी देखभाल की और उसे सींचा यहाँ तक कि खेती तैयार होकर काटी गई, तो पूरी पैदावार दोनों में आधी-आधी होगी। स्पष्ट रहे कि खेती के संबंध में संक्षिप्त अनुवाद ऐसा कहा गया है और इसका आशय स्पष्ट है। (1) पहली बटाई के अनुसार।

---

چنانچہ اگر ایک شخص نے دوسرے کو اپنا درختِ خرما آدھے کی بٹائی پر اس شرط سے دیا کہ اس کی نر مادی لگائے اور اس کی حفاظت کرے اور اس کو سینچے پھر عامل نے مالکِ درخت سے اس کام میں استعانت لی اور مالکِ درخت نے یہ کام کر دیا تو پھلوں کی حاصلات دونوں کی شرط کے موافق دونوں میں مشترک ہو گی اور اگر مالکِ درخت نے بغیر حکمِ عامل کے درخت پر قبضہ کر لیا اور یہ کام اپنے آپ انجام دیے تو تمام حاصلات مالکِ درخت کی ہو گی اور عقد معاملہ ٹوٹ جائے گا اگرچہ مالکِ درخت بلا عذر عقدِ معاملہ توڑنے کا اختیار نہیں رکھتا ہے اور اگر مالکِ درخت خرمائے شگوفہ خرما برآمد ہونے کے بعد اپنے عامل کی بلا اجازت خود اس کی پرداخت کی تو پھلوں کی حاصلات دونوں میں مساوی مشترک ہو گی اور اگر مالک نے شگوفہ برآمد ہونے سے پہلے درختِ مذکور کو لے لیا اور اس کی پرداخت کی پھر مالک سے عامل نے لے کر اس کی پرداخت کی یہاں تک کہ پھل پورے چھوہارے ہو گئے تو یہ سب پھل مالکِ درخت کے ہوں گے اور اگر کسی نے اپنی زمین اور بیج کسی دوسرے کو آدھے کی بٹائی پر دیے پھر کاشتکار نے زمین پر قبضہ کرنے کے بعد مالکِ زمین کو مزارعت پر اس شرط سے دی کہ پیداوار میں سے ایک تہائی کاشتکار کی اور دو تہائی مالکِ زمین کی ہو گی تو دوسری مزارعت فاسد ہے اور جو کچھ پیداوار ہو گی وہ دونوں میں نصفا نصف (۱) ہو گی یہ محیط میں ہے۔ اگر کسی شخص نے اپنی زمین آدھے کی بٹائی پر دی اور بیج کاشتکار کے ذمہ شرط کیے پھر جب کاشتکار نے اس میں کھیتی بوئی اور سینچی اور وہ اگی تو اس کے بعد کاشتکار کی بلا اجازت مالکِ زمین آپ خود اور اپنے مزدوروں کو لے کر اس کی پرداخت کرنے لگا اور اس کو سینچا یہاں تک کہ کھیتی تیار ہو کر کاٹی گئی تو تمام پیداوار مالک و کاشتکار کے درمیان موافق باہمی

شرط کے مشترک ہو گی اور اگر کاشتکار نے تخم ریزی کر دی مگر ہنوز اس نے پانی نہ دیا اور نہ کھیتی اگی تھی کہ مالکِ زمین نے کاشتکار کی بلا اجازت اگنے سے پہلے اس کو سینچا تو بدلیل قیاس تمام پیداوار مالکِ زمین کو ہونی چاہیے کیونکہ بیج اگنے سے پہلے درحقیقت زمین کے اندر رکھا ہوتا ہے آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ بہ تکلف اس کو مٹی سے صاف کر سکتے ہیں پس اس کا زمین کے اندر ہونا مانند زمین کے اوپر ہونے کے ہوا اور زمین کے اوپر سے اگر مالکِ زمین بیج لے کر بوئے اور سینچے یہاں تک کہ بیج جم آئے تو مزارعت کا توڑنے والا ٹھہرایا جاتا ہے پس ایسا ہی زمین کے اندر بیج ہونے کی صورت میں یہی حکم ہونا چاہیے لیکن بدلیل استحسان یہ حکم ہے کہ تمام پیداوار دونوں میں موافق شرطِ مزارعت کے مشترک ہو گی کیونکہ ایسی حالت میں مالکِ زمین کا سینچنا والۂ کاشتکار کی اجازت سے ہوا ہے۔

**مذکورہ بالا سلسلہ میں فتویٰ حکم استحسان کے موافق ہے ☆**

یہ (مندرجہ بالا) حکم اس صورت میں ہے کہ کاشتکار نے تخم ریزی کی اور مالک نے بدوں اس کی اجازت کے پانی دیا اور اگر کاشتکار کی بلا اجازت مالک نے تخم ریزی کر دی اور ہنوز اگی نہ تھی کہ پھر کاشتکار نے اس کو سینچا اور تمام اس کی پرداخت کی یہاں تک کہ کھیتی تیار ہو کر کاٹی گئی تو ذکر فرمایا کہ تمام پیداوار دونوں میں موافق شرط کے مشترک ہو گی اور اس صورت میں قیاس و استحسان کو ذکر نہ فرمایا اور اگر بیج زمین کے اوپر رکھے ہوں اور مالک نے آ کر یہ بیج لے کر خود زراعت کر دی اور کاشتکار سے اجازت نہیں لی تو مزارعت کا توڑنے والا ہو گا اور اگر کاشتکار نے آ کر مالک کی بلا اجازت تخم ریزی کی اور سینچا تو پیداوار دونوں میں موافق شرط باہمی کے قیاساً و استحساناً مشترک ہو گی یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر کسی شخص نے اپنی زمین اور بیج دوسرے شخص کو امسال مزارعت کے واسطے بدیں شرط دی کہ جو کچھ پیداوار ہو وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گی اور کاشتکار نے اس میں تخم ریزی کر کے پانی دیا

یہاں تک کہ کھیتی اگی پھر بغیر اجازتِ کاشتکار کے مالکِ زمین نے خود مع اپنے مزدوروں کے اس کی پرداخت کی اور اس کو سینچا یہاں تک کہ کھیتی تیار ہو کر کانی گئی تو تمام پیداوار دونوں میں نصفا نصف ہو گی۔ واضح ہو کہ اختصار لائق در شدن کشت بر سبیلِ سانحہ ترجمہ آن چنیں گفتہ است و مفادِ آن ظاہر ہے۔ (۱) پہلی بٹائی کے موافق۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (311) Kitab-ul-Mazara'at (Book of Sharecropping)**

...will be so, and the landowner shall be considered a volunteer (mutatavi) regarding his labor. If the landowner himself performed the work but hired a laborer to do it on his behalf, the laborer's work is equivalent to the landowner's own work, and the laborer's wages shall be the responsibility of the landowner because he hired the laborer himself. If the cultivator sowed the seeds but the crop had not yet sprouted, and the cultivator had not yet watered it when the landowner irrigated it and continued to tend to it until it was ready and harvested, then by way of juristic preference (istihsanan), the entire produce shall be shared between both parties according to the agreed-upon terms, and the landowner shall be deemed a voluntary contributor (mutabarri) in this act. Analogically (qiyasan), it should follow that the entire produce belongs to the landowner, because before sprouting, the seeds inside the earth are as if they are filled in vessels outside the earth; however, the legal ruling (fatwa) on this issue is according to the principle of istihsanan, because placing seeds in the ground is the cause of growth, and for this reason, he does not have the authority to intentionally rescind the sharecropping contract. This is mentioned in Fatawa Qazi Khan.

If the landowner sowed the seeds but did not water them, and before the crop sprouted, the cultivator irrigated it and continued to tend to it until it was ready and harvested, then according to the terms, the entire produce shall be shared between both. However, if the landowner took the land, sowed the seeds, irrigated it, and the crop sprouted, and then the cultivator irrigated and tended to it until the crop was ready and harvested, the entire produce shall belong to the landowner, and the cultivator shall be considered a volunteer in his work and shall receive no wages for it. This is as stated in Al-Mabsut.

**Chapter Eight: Regarding the Cultivator Giving the Land to Another for Sharecropping**

If a cultivator wishes to give the land to another person for sharecropping, if the seeds are provided by the landowner, the cultivator does not have the authority to lease the land to another person for sharecropping. However, if the landowner has granted explicit (sarihan) permission or implied (dalalatan) permission—for example, by saying, "Act according to your own judgment in this matter"—then he may do so. In that case, the cultivator has the right to hire laborers with his own funds to carry

out the agricultural work, provided the landowner did not stipulate that the cultivator must perform the agricultural labor personally.

If the cultivator gave the land to another for sharecropping on a half-share basis, even though the landowner had not given him permission explicitly or implicitly in any way, it is recorded that the sharecropping contract between the first cultivator and the second cultivator shall be valid, and the landowner shall receive nothing. The owner of the land and seeds shall have the choice to claim indemnity (tawan) for his seeds from whichever of the two he wishes. If he takes indemnity from the first cultivator, the first cultivator cannot recover it from the second. But if he takes indemnity from the second, the second shall recover it from the first. If any loss occurs to the mentioned land, then according to Imam Azam (may Allah have mercy on him), and according to the later opinion of Imam Abu Yusuf, the liability for the loss shall fall on the second cultivator and not the first. This is mentioned in Al-Zakheerah.

Furthermore, it should be examined that whatever portion has fallen to the first cultivator—that is, half the produce—only that amount is lawful (halal) for him which equals the indemnity he paid to the landowner; he must give any excess in charity (sadqah) because he obtained this excess from usurped land (zamin-e-maghsuba). As for the portion that fell to the second cultivator, the scholars (mashaykh) have stated that it is all lawful for him. And if the owner of the land and seeds had given the cultivator explicit or implied permission, for example, saying, "Work on this according to your own opinion," and the landowner had with him...

होगी और ज़मीन का मालिक अपने काम में स्वैच्छिक (मुततव्वी) माना जाएगा। और यदि ज़मीन के मालिक ने स्वयं जो काम किया है, उसके लिए कोई मज़दूर नियुक्त करके उससे यह काम करवाया हो, तो उसके मज़दूर का काम करना स्वयं मालिक के काम करने जैसा ही है और मज़दूर की मज़दूरी मालिक के ज़िम्मे होगी क्योंकि उसने स्वयं ही मज़दूर नियुक्त किया है। और यदि काश्तकार (किसान) ने बुआई की और अभी फ़सल उगी नहीं थी और न ही काश्तकार ने उसमें पानी दिया था कि उगने से पहले उसके मालिक ने सिंचाई कर दी और बराबर उसकी देखभाल करता रहा यहाँ तक कि फ़सल तैयार होकर कट गई, तो इस्तेहसानन (न्यायिक वरीयता के आधार पर) समस्त उपज दोनों के बीच शर्त के अनुसार साझा होगी और ज़मीन का मालिक इस काम में दानकर्ता (मुतबर्रे) माना जाएगा। और क़ियासन (तर्क के आधार पर) ऐसा होना चाहिए कि समस्त उपज ज़मीन के मालिक की हो, क्योंकि उगने से पहले जो गेहूँ के बीज ज़मीन के अंदर हैं वे ऐसे हैं मानो ज़मीन के बाहर बर्तनों में भरे हों, मगर इस मसले में फ़तवा 'हुक्म-ए-इस्तेहसान' के अनुकूल है, क्योंकि ज़मीन में बीज डालना उगने का कारण होता है और इस कारण से मज़ारअत (बटाई के अनुबंध) को निरस्त करने का अधिकार नहीं रखता है। यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। यदि ज़मीन के मालिक ने बुआई की और पानी नहीं दिया और अभी फ़सल उगी नहीं थी कि काश्तकार ने उसे पानी दिया और उसकी देखभाल करता रहा यहाँ तक कि तैयार होकर कट गई, तो शर्त के अनुसार समस्त उपज दोनों में साझा होगी। और यदि ज़मीन के मालिक ने उसे लेकर ज़मीन में बुआई कर दी और सिंचाई की और फ़सल उग आई, फिर काश्तकार उसे पानी देता रहा और देखभाल करता रहा यहाँ तक कि फ़सल तैयार होकर कट गई, तो समस्त उपज मालिक की होगी और काश्तकार अपने काम में स्वैच्छिक माना जाएगा और उसके लिए उसे कोई पारिश्रमिक नहीं मिलेगा। जैसा कि 'अल-मबसत' में है।

## अध्याय आठ: काश्तकार द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को बटाई (मज़ारअत) पर देने के वर्णन में

यदि काश्तकार ने चाहा कि ज़मीन किसी दूसरे व्यक्ति को बटाई पर दे दे, तो यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, तो काश्तकार को यह अधिकार नहीं होगा कि वह ज़मीन दूसरे व्यक्ति को बटाई पर दे दे। लेकिन यदि ज़मीन के मालिक ने उसे स्पष्ट रूप से (सरहन) इसकी अनुमति दी हो या संकेतों (दलातलन) से अनुमति दी हो, उदाहरण के लिए यह कहा हो कि 'इस काम में अपनी राय पर अमल कर', तो वह ऐसा कर सकता है। और काश्तकार को अधिकार होगा कि कृषि कार्य संपन्न करने के लिए अपने धन से मज़दूर नियुक्त कर ले, बशर्ते कि ज़मीन के मालिक ने यह शर्त न रखी हो

कि काश्तकार स्वयं ही खेती का काम करेगा। और यदि काश्तकार ने किसी अन्य को आधे की बटाई पर खेती के लिए ज़मीन दे दी, जबकि ज़मीन के मालिक ने उसे स्पष्ट रूप से या संकेतों से किसी प्रकार इसकी अनुमति नहीं दी थी, तो वर्णित है कि प्रथम काश्तकार और द्वितीय काश्तकार के बीच बटाई का अनुबंध मान्य होगा और ज़मीन के मालिक को कुछ नहीं मिलेगा। और ज़मीन के मालिक तथा बीज (के मालिक) को यह अधिकार होगा कि वह अपने बीज का हर्जाना दोनों में से जिससे चाहे ले ले। फिर यदि उसने पहले काश्तकार से हर्जाना लिया, तो वह दूसरे काश्तकार से उसे वापस नहीं ले सकता। और यदि उसने दूसरे से हर्जाना लिया, तो वह पहले काश्तकार से वापस लेगा। और यदि उक्त ज़मीन में कोई हानि हुई हो, तो इमाम आज़म (रहमतुल्लाह अलैह) के अनुसार और अंतिम मत पर इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार, उसकी हानि दूसरे काश्तकार पर होगी और पहले काश्तकार पर नहीं होगी। यह 'ज़खीरा' में है। फिर यह देखना चाहिए कि प्रथम काश्तकार के हिस्से में जो कुछ आया है, यानी आधी उपज, उसमें से प्रथम काश्तकार के लिए केवल उतना ही हलाल (वैध) होगा जितना उसने ज़मीन के मालिक को हर्जाने के रूप में दिया है, और शेष अधिकता को सदक़ा (दान) कर दे क्योंकि उसने यह अधिकता 'ज़मीन-ए-मग़सूबा' (अवैध रूप से अधिग्रहित भूमि) से प्राप्त की है। और जितना दूसरे काश्तकार के हिस्से में आया, उसके बारे में विद्वानों (मशायख़) ने कहा है कि वह सब उसके लिए हलाल है। और यदि ज़मीन के मालिक और बीज के मालिक ने काश्तकार को स्पष्ट रूप से या संकेतों से इसकी अनुमति दे दी हो, उदाहरण के लिए कह दिया हो कि 'इसमें अपनी राय से काम कर' और ज़मीन के मालिक ने उसके साथ...

ہوگی اور مالک زمین اپنے کام میں متطوع قرار دیا جائے گا اور اگر مالک زمین نے جو کام خود کر دیا ہے اس کے واسطے کوئی مزدور مقرر کر کے اس سے یہ کام کروایا ہو تو اس کے مزدور کا کام کرنا مثل اس کے کام کرنے کے ہے اور مزدور کی مزدوری مالک کے ذمہ ہوگی کیونکہ اس نے خود ہی مزدور مقرر کیا ہے اور اگر کاشتکار نے تخم ریزی کی اور ہنوز کھیتی اگی نہیں اور نہ کاشتکار نے اس میں پانی دیا تھا کہ اگنے سے پہلے اس کے مالک نے سینچا اور اسی اور برابر اس کی پرداخت کرتا رہا یہاں تک کہ تیار ہو کر کٹی تو استحساناً تمام پیداوار دونوں میں موافق شرط کے مشترک ہوگی اور مالک زمین اس کام میں متبرع قرار دیا جائے گا اور قیاساً یوں ہونا چاہیے کہ تمام پیداوار مالک زمین کی ہوگی کیونکہ اگنے سے پہلے جو بیج گیہوں زمین کے اندر ہیں وہ ایسے ہیں کہ گویا زمین کے باہر پوروں میں بھرے ہیں مگر فتویٰ اس مسئلہ میں حکم استحسان کے موافق ہے کیونکہ زمین میں بیج ڈالنا اگنے کا سبب ہوتا ہے اور اس وجہ سے قصد امزارعت فسخ کرنے کا اختیار نہیں رکھتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر مالک زمین نے تخم ریزی کی اور پانی نہ دیا اور ہنوز کھیتی اگی نہ تھی کہ کاشتکار نے اس کو پانی دیا اور برابر اس کی پرداخت کرتا رہا یہاں تک کہ تیار ہو کر کٹی تو موافق شرط کے تمام پیداوار دونوں میں مشترک ہوگی اور اگر مالک زمین نے اس کو لے کر زمین میں تخم ریزی کر دی اور سینچا اور کھیتی اگی پھر کاشتکار اس کو پانی دیتا رہا اور پرداخت کرتا رہا یہاں تک کہ کھیتی تیار ہو کر کٹی تو تمام پیداوار مالک کی ہوگی اور کاشتکار اپنے کام میں متطوع قرار دیا جائے گا اور اس کے واسطے کچھ اجرت نہ ہوگی کذا فی المبسوط۔

**باب ہشتم : کاشتکار کا کسی غیر کو مزارعت پر دینے کے بیان میں**

اگر کاشتکار نے چاہا کہ زمین کسی دوسرے شخص کو مزارعت پر دے دے پس اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں تو کاشتکار کو یہ اختیار نہ ہوگا کہ زمین دوسرے شخص کو مزارعت پر دے دے لیکن اگر مالک زمین نے اس کو صریحاً اس بات کی اجازت دی ہو یا دلالتہً اجازت دی ہو مثلاً یوں کہا کہ اس کام میں تو اپنی رائے پر عمل کر تو ایسا کر سکتا ہے اور کاشتکار کو اختیار ہوگا کہ کار زراعت انجام دینے کے واسطے اپنے مال سے مزدور مقرر کر لے بشرطیکہ مالک زمین نے یہ شرط نہ کی ہو کہ کاشتکار خود ہی کار زراعت کرے اور اگر کاشتکار نے کسی غیر کو آدھے کی بٹائی پر زمین مزارعت کے واسطے دے دی حالانکہ مالک زمین نے اس کو صریحاً یا دلالتہً کسی طرح اس کو اس کام کی اجازت نہ دی تھی تو مذکور ہے کہ کاشتکار اول و کاشتکار ثانی کے درمیان مزارعت جائز ہوگی اور مالک زمین کو کچھ نہ ملے گا اور مالک زمین و بیج کو اختیار نہ ہوگا کہ اپنے بیج دونوں میں سے جس سے چاہے تاوان لے پس اگر اس نے کاشتکار اول سے تاوان لیا تو وہ دوسرے کاشتکار سے واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر اس نے دوسرے سے تاوان لیا تو وہ پہلے کاشتکار سے واپس لے گا اور اگر زمین مذکور میں نقصان آ گیا ہو تو امام اعظم رحمہ اللہ کے نزدیک اور آخر قول پر امام ابو یوسف کے نزدیک اس کا نقصان دوسرے کاشتکار پر ہوگا اور کاشتکار اول پر نہ ہوگا یہ ذخیرہ میں ہے۔ پھر دیکھنا چاہیے کہ جس قدر کاشتکار اول کے حصہ میں آیا ہے یعنی نصف پیداوار اس میں سے کاشتکار اول کو صرف اسی قدر حلال ہوگا جس قدر اس نے مالک زمین کو تاوان دیا ہے اور زیادتی کو صدقہ کر دے کیونکہ اس نے یہ زیادتی زمین مغصوبہ سے حاصل کی ہے اور جس قدر دوسرے کاشتکار کے حصہ میں آیا اس کی بابت مشائخ نے فرمایا ہے کہ یہ سب اس کو حلال ہے اور اگر مالک زمین و بیج نے کاشتکار کو صریحاً یا دلالتہً اس بات کی اجازت دے دی ہو مثلاً کہہ دیا ہو کہ اس میں اپنی رائے سے کام کر اور مالک زمین نے اس کے ساتھ

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (312) Kitab al-Muzara'a (Book of Sharecropping)**

If a contract was made for a half-crop share, and the primary tenant subsequently sub-lets the land to a second tenant for half the crop, this second sharecropping agreement is valid. From the resulting harvest, half shall belong to the landowner and half to the second tenant, while the primary tenant shall be excluded from the share. If the primary tenant stipulates with the second that half of the total harvest goes to the landowner and the remaining half is split between them (either in thirds or halves), this is also permissible, and the harvest will be divided according to the terms. This is mentioned in *Al-Muhit*. If a person provides land and seeds on the condition of half-sharing for the year, without granting the tenant the discretion to act on his own judgment, and that tenant then sub-lets the land and seeds to a second party—stipulating that the second party gets one-third and the first party gets two-thirds of the tenant's share—the harvest will be divided between the two tenants as per their agreement. However, by involving a second party without the landowner's consent, the primary tenant has acted in breach of contract. Consequently, the landowner has the right to claim restitution (indemnity/penalty) for the seeds from either tenant. According to Imam Muhammad and the initial view of Imam Abu Yusuf, the landowner may also claim compensation for any land damage from either party. If he recovers it from the second tenant, the latter may reclaim it from the primary tenant. If he recovers it from the primary tenant, the latter has no recourse against the second.

According to Imam-e-A'zam (Abu Hanifa) and the final view of Imam Abu Yusuf, compensation for land damage can only be claimed from the second tenant, who then reclaims it from the first. The primary tenant must then set aside from his share an amount equal to what he paid for the seeds and indemnity, and give the remainder of his share as charity (*sadaqah*), whereas the second tenant is not required to give charity from his share. If the landowner had told the primary tenant to "act according to your own judgment," and all other factors remained the same, the second tenant would receive a one-third share of the harvest because the primary tenant established a valid contract for that share. This share would be deducted specifically from the primary tenant's portion. Thus, the landowner receives half the total harvest as originally stipulated. The primary tenant would receive the remainder of his portion (one-sixth of the total harvest) as he stood as a guarantor for the agricultural work. If the landowner provided seeds and land stating, "whatever livelihood (*rozi*) Allah provides shall be shared half-and-half between us,"

and gave the tenant discretion to act on his judgment, and the tenant sub-lets it for half-share, it is valid. Half the total harvest goes to the second tenant, and the remaining half is split equally between the landowner and the primary tenant. This is because the landowner did not stipulate half of the *entire* crop for himself, but rather half of whatever "reaches the hand" or is "provided as livelihood" to the primary tenant. These phrasings are legally equivalent. Even if the landowner did not explicitly grant discretion, the primary tenant may still involve a second party as the authority to act on one's judgment implicitly includes this permission. (Understand/ Note this).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (312) किताबुल मुज़ाराअ (बटाई का वर्णन)**

यदि आधे बँटवारे की शर्त की गई थी, फिर प्रथम किसान (काश्तकार) ने दूसरे किसान को आधे बँटवारे पर ज़मीन दे दी, तो यह दूसरी 'मुज़ाराअत' (बटाई अनुबंध) वैध होगी। ज़मीन में जो भी पैदावार होगी, उसमें से आधी भू-स्वामी की और आधी दूसरे किसान की होगी, और पहला किसान बीच से निकल जाएगा। और यदि पहले किसान ने दूसरे से यह शर्त रखी हो कि आधी पैदावार तो भू-स्वामी की होगी और बाकी आधी हम दोनों में तिहाई-तिहाई या बराबर-बराबर होगी, तो यह भी जायज़ है और कुल पैदावार उन सब में शर्त के अनुसार विभाजित होगी; यह 'मुहीत' में वर्णित है। यदि किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन और बीज इस शर्त पर दिए कि इस वर्ष वह आधी बटाई पर खेती करे और यह न कहा हो कि "वह अपनी इच्छा/विवेक (राय) से कार्य करे", फिर उस किसान ने दूसरे किसान को वह ज़मीन और बीज इस शर्त पर दे दिए कि दूसरे का हिस्सा पैदावार का एक तिहाई होगा और पहले का दो-तिहाई; तो यदि दूसरे ने इस शर्त पर खेती की, तो कुल पैदावार उन दोनों के बीच उनके आपसी अनुबंध के अनुसार विभाजित होगी। परंतु पहला किसान भू-स्वामी की अनुमति के बिना दूसरे किसान को पैदावार में शामिल करने के कारण अनुबंध के विरुद्ध काम करने वाला माना जाएगा। ऐसी स्थिति में भू-स्वामी को अधिकार होगा कि वह उन दोनों में से जिससे चाहे अपने बीजों की क्षतिपूर्ति (तावान) ले ले। इमाम मुहम्मद और इमाम अबू यूसुफ़ के प्रारंभिक विचार के अनुसार, ज़मीन के नुकसान की क्षतिपूर्ति भी वह किसी से भी ले सकता है। यदि उसने दूसरे किसान से क्षतिपूर्ति ली, तो दूसरा किसान इसे पहले किसान से वापस लेगा। और यदि भू-स्वामी ने पहले किसान से क्षतिपूर्ति ली, तो वह दूसरे से कुछ नहीं ले सकता।

इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) और इमाम अबू यूसुफ़ के अंतिम विचार के अनुसार, ज़मीन के नुकसान की क्षतिपूर्ति केवल दूसरे किसान से ली जा सकती है, फिर दूसरा इसे पहले से वापस लेगा। फिर पहला किसान अपनी पैदावार के हिस्से में से उतनी राशि निकाल लेगा जितनी उसने बीजों और क्षतिपूर्ति के रूप में दी है, और बाकी हिस्सा दान (सदक़ा) कर देगा, जबकि दूसरा किसान अपने हिस्से में से कुछ दान नहीं करेगा। और यदि भू-स्वामी ने पहले किसान से कहा हो कि "अपनी राय (विवेक) से काम कर" और शेष स्थिति वही रहे, तो दूसरे किसान को एक तिहाई पैदावार मिलेगी क्योंकि पहले किसान ने वैध अनुबंध के साथ उसके लिए एक तिहाई शर्त रखी थी। यह हिस्सा केवल पहले किसान के हिस्से से काटा जाएगा। अतः भू-स्वामी आधी पैदावार का हकदार होगा जैसा कि उसने शर्त की थी, और पहले किसान के हिस्से का शेष (कुल पैदावार का छठा भाग) उसे मिलेगा

क्योंकि उसने खेती के कार्य की जिम्मेदारी ली थी। यदि भू-स्वामी ने बीज और ज़मीन इस शर्त पर दिए कि "जो कुछ अल्लाह जीविका (रोज़ी) देगा, वह हम दोनों में आधी-आधी होगी" और यह भी कहा कि "अपनी राय पर अमल करे", फिर किसान ने इसे दूसरे किसान को आधी बटाई पर दे दिया, तो यह वैध है। कुल पैदावार में से आधा दूसरे को मिलेगा और बाकी आधा भू-स्वामी और पहले किसान के बीच आधा-आधा बँटेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस स्थिति में मालिक ने पूरी पैदावार का आधा शर्त नहीं किया था, बल्कि यह शर्त की थी कि "जो कुछ पहले किसान को मिलेगा, उसका आधा मेरा होगा।" पिछली स्थिति में मालिक ने कुल पैदावार का आधा आरक्षित किया था। इसी प्रकार, यदि भू-स्वामी कहे "जो पैदावार तुझे अल्लाह दे" या "जो तेरे हाथ आए", ये सब बातें "जो अल्लाह रोज़ी दे" के समान हैं। यदि मालिक ने उसे अपनी राय से कार्य करने को न कहा हो, तब भी किसान दूसरे को ज़मीन दे सकता है क्योंकि राय पर अमल करने की अनुमति में यह अधिकार भी शामिल है। समझें (फ़ाहम)।

---

آدھی بٹائی کی شرط کی تھی پھر کاشتکار اوّل نے دوسرے کاشتکار کو آدھے کی بٹائی پر دے دی تو دوسری مزارعت جائز ہوگی اور زمین میں جو کچھ پیداوار ہوگی اس میں سے نصف مالک زمین کی اور نصف دوسرے کاشتکار کی ہوگی اور پہلا کاشتکار درمیان سے نکل جائے گا اور اگر کاشتکار اوّل نے دوسرے سے یہ شرط کی ہو کہ آدھی پیداوار تو مالک زمین کی ہوگی اور آدھی ہم دونوں میں تین تہائی یا آدھوں آدھ ہوگی تو یہ بھی جائز ہے اور تمام پیداوار ان سب میں موافق شرط کے تقسیم ہوگی یہ محیط میں ہے۔ اگر کسی شخص کو اپنی زمین اور بیج اس شرط سے دیے کہ اس سال اس میں آدھے کی بٹائی پر زراعت کرے اور یہ نہ کہا کہ اس میں اپنی رائے سے کام کرے پھر کاشتکار نے دوسرے کاشتکار کو یہ زمین اس شرط سے دی کہ اس سال انہیں بیجوں سے اس میں بدیں شرط زراعت کرے کہ دوسرے کی پیداوار میں سے ایک تہائی ہوگی اور اوّل کی دو تہائی ہوگی پس دوسرے نے اس شرط سے زراعت کی تو تمام پیداوار دونوں میں اس شرط کے موافق جوان دونوں کے باہمی عقد میں ٹھہری ہے تقسیم ہوگی اور پہلا کاشتکار بغیر رضا مندی مالک زمین کے دوسرے کاشتکار کو پیداوار میں شریک کرنے کی وجہ سے خلاف کرنے والا ہو گیا پس مالک زمین کو اختیار ہو گا کہ دونوں میں سے جس سے چاہے اپنے بیجوں کا تاوان لے اور اس طرح قول امام محمد اور اوّل قول امام ابو یوسفؒ کے موافق نقصان زمین کا تاوان بھی دونوں میں سے جس سے چاہے لے پس اگر اس نے دوسرے سے تاوان لیا تو یہ سب تاوان کاشتکار اوّل سے واپس لے گا اور اگر اس نے اوّل سے تاوان لیا تو وہ دوسرے سے کچھ نہیں لے سکتا ہے۔

قول امام اعظمؒ اور آخر قول امام ابو یوسفؒ کے موافق نقصان زمین کا تاوان فقط دوسرے کاشتکار سے لے سکتا ہے پھر دوسرا اس کو اوّل سے واپس لے گا پھر کاشتکار اوّل اپنے حصہ پیداوار میں سے جس قدر اس نے بیجوں کی ضمان دی اور تاوان دیا ہے نکال لے گا اور باقی کو صدقہ کر دے گا اور دوسرا کاشتکار اپنے حصہ میں سے کچھ صدقہ نہ کرے گا اور اگر مالک زمین نے کاشتکار اوّل سے یہ کہا ہو کہ اس میں اپنی رائے سے عمل کر اور باقی مسئلہ بحالہ ہو تو دوسرے کاشتکار کو تہائی پیداوار ملے گی اس وجہ سے کہ کاشتکار اوّل نے عقد صحیح کے ساتھ اس کے واسطے تہائی پیداوار شرط کر دی پس یہ پیداوار خالصہ اسی کے حصہ میں سے رکھی جائے گی پس یہ پیداوار کاشتکار اوّل کے حصہ کی دو تہائی ہوئی اور مالک زمین نصف پیداوار کا مستحق ہو گا جیسا کہ اس نے اپنے واسطے شرط کر لی تھی اور کاشتکار اول کے حصہ میں سے باقی ایک تہائی حصہ یعنی تمام پیداوار کا چھٹا حصہ وہ اس کاشتکار اوّل کو ملے گا کہ اس نے کار زراعت کے انجام دہی کی ضمانت کر لی تھی اور اگر اس طرح واقع ہوا کہ مالک زمین نے بیج اور زمین اس شرط پر کاشتکار کو دیے کہ اس سال اس میں زراعت کرے سو جو کچھ اس میں اللہ تعالیٰ روزی کرے وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گا اور اگر کہہ دیا کہ اس بات میں اپنی رائے پر عمل کرے پھر کاشتکار نے اس کو کسی دوسرے کاشتکار کو آدھے کی بٹائی پر دے دیا تو جائز ہے اور تمام پیداوار میں سے نصف اس دوسرے کو ملے گی اور باقی نصف پیداوار مالک زمین اور کاشتکار اوّل کے درمیان نصفا نصف ہوگی اس واسطے کہ اس صورت میں مالک نے اپنے واسطے تمام پیداوار کا نصف شرط نہیں کیا بلکہ فقط یہ شرط کی ہے کہ کاشتکار اوّل کو جو کچھ خداتعالیٰ روزی کرے اس کا نصف میرا ہوگا پس یہ پیداوار کاشتکار دوم کا حصہ نکال کر جو باقی رہے وہ ہے پس وہ دونوں میں نصفا نصف ہوگی اور صورت سابقہ میں یہ تھا کہ مالک زمین نے اپنے واسطے تمام پیداوار کا نصف شرط کر لیا تھا پس کاشتکار اوّل کا دوسرے کے ساتھ عقد

مزارعت کرنے سے مالک کا حق کم نہ ہو گا اسی طرح اگر مالک زمین نے کاشتکار سے یوں شرط کیا ہو کہ اس میں جو کچھ پیداوار تجھے اللہ تعالیٰ دے وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گی یا جو کچھ اس کی پیداوار میں سے تیرے ہاتھ آئے وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہوگی تو یہ قول اور قول مذکور کو جو کچھ اس میں اللہ تعالیٰ روزی کرے دونوں یکساں ہیں اور اگر مالک نے اس سے یہ نہ کہا ہو کہ اس میں اپنی رائے سے عمل کر اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو دوسرے کاشتکار کے زراعت کرنے کے وقت کاشتکار اول دوسرے کو دے سکتا ہے ۱۱ دوسرے کو دے سکتا ہے کیونکہ رائے پر عمل کرنے میں یہ اجازت بھی شامل ہے فاہم۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 313 | Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

The violator will become a guarantor, and the entire yield will be divided equally between the two farmers, and the landowner will receive nothing from it. The landowner can take compensation for his seeds from whichever of the two he chooses. There is a disagreement regarding taking compensation for damage to the land, as we have already explained.

If the second person has not yet farmed and the seeds were destroyed at his place, or the land was submerged, or it became defective in such a way that damage occurred to the land, then neither of them shall be liable for compensation. This is because the first farmer does not become a guarantor simply by giving the land and seeds to the second farmer. Don't you see that if he gave the land and seeds to another person seeking help in farming or appointed him as a hired worker (ajir) for farming, he is not considered a violator? This is stated in 'Al-Mabsut'. If the first farmer sought help from the second farmer, then the entire yield will be shared between the first farmer and the landowner. If the first farmer gave this land to the second person as a loan (ariyah) so that the second person could farm it for himself, then giving it as a loan is permissible. When the borrower (musta'ir) farms it, the entire crop will belong to him, and the first farmer will pay the fair rent (ajr-e-mithl) of the entire land as compensation to the owner because he took the land on lease (ijarah) from the owner on the condition of giving a portion of the crop, yet the owner received nothing. The difference between this case and the case where the farmer did not lend the land and did not farm it himself, or lent it but the borrower did not farm it, is that in the second case, nothing towards the fair rent is due from the farmer to the owner. This is in 'Al-Zakhirah'. If someone gave land to another person on the condition that he farms it with his own seeds this year such that the yield is divided equally, and told him to act as he sees fit (or didn't say it), and then the farmer gave this land along with the seeds to another farmer on a half-share basis, this is permissible. When the crop is harvested, half will go to the second farmer for his labor as the first farmer (the seed owner) had stipulated, and the other half will belong to the landowner as profit as the seed owner, i.e., the first farmer, had stipulated. The first farmer will get nothing. If in both cases a third of the crop was stipulated for the second farmer, it is permissible; the second will get one-third, the landowner will get half, and the first farmer will get one-sixth, and it will be lawful for him. If land was given to the first farmer on the condition that he farms with his

seeds for a half-share, and then the first farmer gave it to a second on the condition that he farms with his own seeds such that two-thirds of the crop goes to the second farmer and one-third to the first farmer, and he farmed on that condition, then two-thirds will go to the second farmer because whatever grew came from his seeds. Therefore, no outsider can take anything from the yield of his seeds except by stipulation, and in the condition, he only stipulated one-third for the first farmer. However, this one-third of the crop will belong to the landowner, and the landowner will be entitled to a fair rent for one-third of the land from the first farmer.

If the seeds are from the first farmer, then two-thirds of the yield will be for the second farmer as stipulated by the first, and one-third will be for the landowner, and the landowner will be entitled to a fair rent for his one-third of the land from the first farmer. This is mentioned in 'Al-Mabsut', chapter on 'Tawliyat al-Muzara'ah wa al-Musharakah'. And if someone gave his land and seeds on the condition of sharecropping (muzara'at) such that twenty 'qafiz' go to the farmer and the rest to the landowner, and told the farmer to act as he sees fit (or didn't say it), and then the farmer gave this land and seeds to another...

1. This first case applies when the seeds are from the farmer's side.

उल्लंघन करने वाला ज़िम्मेदार (ज़ामिन) हो जाएगा और पूरी उपज दोनों किसानों के बीच आधी-आधी होगी और ज़मीन के मालिक को इसमें से कुछ नहीं मिलेगा। ज़मीन का मालिक अपने बीजों का मुआवज़ा उन दोनों में से जिससे चाहे ले सकता है। ज़मीन के नुकसान का मुआवज़ा लेने में मतभेद है जैसा कि हमने बयान किया है।

यदि दूसरे ने अभी खेती न की हो और उसके पास बीज नष्ट हो गए हों या ज़मीन डूब गई हो या खराब हो गई हो और उसमें ऐसा दोष आ गया हो जिससे ज़मीन को नुकसान पहुँचा हो, तो उन दोनों में से किसी पर भी मुआवज़ा अनिवार्य नहीं होगा। क्योंकि पहला किसान केवल ज़मीन और बीज दूसरे किसान को दे देने से ज़िम्मेदार नहीं हो जाता है। क्या आप नहीं देखते कि यदि उसने ज़मीन और बीज किसी अन्य व्यक्ति को देकर खेती में मदद मांगी या उसे खेती के लिए मज़दूर (अजीर) नियुक्त किया, तो वह उल्लंघन करने वाला नहीं कहलाता है; यह 'अल-मबसूत' में है। यदि पहले किसान ने दूसरे किसान से मदद ली हो, तो पूरी उपज पहले किसान और ज़मीन के मालिक के बीच साझा होगी। और यदि पहले किसान ने दूसरे को यह ज़मीन ऋण (आरियत) पर दे दी ताकि वह अपने लिए इसमें खेती कर सके तो ऋण देना जायज़ है। जब उधार लेने वाला (मुस्तईर) इसमें खेती करेगा, तो पूरी उपज उसे दी जाएगी और पहला किसान पूरी ज़मीन का उचित किराया (अज्र-ए-मिसल) ज़मीन के मालिक को मुआवज़े के तौर पर देगा, क्योंकि उसने मालिक से ज़मीन इस शर्त पर पट्टे (इजारा) पर ली थी कि उपज का एक हिस्सा देगा, जबकि मालिक को उपज में से कुछ नहीं मिला। इस मामले में और उस दूसरे मामले में जहाँ किसान ने ज़मीन किसी को उधार नहीं दी और न ही स्वयं खेती की, या उधार दी लेकिन उधार लेने वाले ने खेती नहीं की, इन दोनों में अंतर यह है कि दूसरी स्थिति में किसान पर ज़मीन के मालिक के लिए उचित किराए में से कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा; यह 'अल-ज़खीरा' में है। यदि किसी ने दूसरे को ज़मीन दी कि इस साल इसमें अपने बीजों से इस शर्त पर खेती करे कि पूरी उपज हम दोनों में आधी-आधी होगी, और कह दिया कि इसमें अपनी राय से काम करे (या यह शब्द नहीं कहे), फिर किसान ने यह ज़मीन और उसके साथ बीज भी किसी दूसरे किसान को आधी बटाई पर दे दिए, तो यह जायज़ है। फिर जब उपज प्राप्त हुई, तो उसमें से आधी दूसरे किसान के उसके काम के बदले में होगी जैसा कि पहले किसान (बीजों के मालिक) ने शर्त रखी थी, और आधी ज़मीन के मालिक के लाभ में होगी जैसा कि बीजों के मालिक यानी पहले किसान ने शर्त रखी थी। और पहले किसान को कुछ नहीं मिलेगा। और यदि दूसरे किसान के लिए दोनों मामलों में एक-

तिहाई उपज की शर्त रखी गई हो, तो जायज़ है; दूसरे को एक-तिहाई और ज़मीन के मालिक को आधी मिलेगी, और छठा हिस्सा पहले किसान का होगा और वह उसके लिए हलाल होगा। और यदि पहले किसान को इस शर्त पर ज़मीन दी गई कि वह अपने बीजों से आधी बटाई पर खेती करे, फिर पहले किसान ने दूसरे को इस शर्त पर दी कि वह अपने बीजों से इस शर्त पर खेती करे कि दो-तिहाई उपज दूसरे किसान की होगी और एक-तिहाई पहले किसान की होगी, और उसने इसी शर्त पर खेती की, तो उपज में से दो-तिहाई दूसरे किसान की होगी क्योंकि जो कुछ भी पैदा हुआ है वह उसके बीजों से पैदा हुआ है। अतः उसके बीजों की उपज में से कोई भी बाहरी व्यक्ति बिना शर्त के कुछ नहीं ले सकता, और शर्त में उसने केवल एक-तिहाई उपज पहले किसान के लिए निर्धारित की है। लेकिन यह एक-तिहाई उपज ज़मीन के मालिक की होगी और ज़मीन का मालिक पहले किसान से एक-तिहाई ज़मीन का उचित किराया पाने का हकदार होगा।

यदि बीज पहले किसान की ओर से हों, तो दो-तिहाई उपज दूसरे किसान की होगी जैसा कि पहले किसान ने शर्त रखी है, और एक-तिहाई उपज ज़मीन के मालिक की होगी और ज़मीन का मालिक पहले किसान से अपनी एक-तिहाई ज़मीन का उचित किराया पाने का हकदार होगा। जैसा कि 'अल-मबसूत' के'तवलियात अल-मुज़ारअह व अल-मुशारका' अध्याय में है। और यदि किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन और बीज इस शर्त पर बटाई (मुज़ारअत) पर दिए कि उपज में से बीस 'क़फ़ीज़' किसान की और बाकी उपज ज़मीन के मालिक की होगी, और किसान से कह दिया कि वह अपनी राय से काम करे(या यह शब्द नहीं कहे), फिर किसान ने यह ज़मीन और बीज किसी दूसरे को...

1. यह पहली स्थिति तब है जब बीज किसान की ओर से हों।

---

خلاف کرنے والا اور ضامن ہو جائے گا اور تمام پیداوار دونوں کاشتکاروں میں نصفا نصف ہو گی اور مالک زمین کو اس میں سے کچھ نہ ملے گا اور مالک زمین اپنا بیج دونوں میں سے جس سے چاہے تاوان لے اور نقصان زمین کے تاوان لینے میں اختلاف ہے جیسا کہ ہم نے بیان کر دیا ہے۔

اگر دوسرے نے ہنوز زراعت نہ کی ہو کہ اس کے پاس بیج تلف ہو گئے یا زمین غرق ہوگئی اور فاسد ہوگئی اور اس میں ایسا عیب پیدا ہو گیا کہ جس سے زمین میں نقصان آگیا تو اس سے ان دونوں میں سے کسی پر تاوان لازم نہ ہوگا اس لیے کہ پہلا کاشتکار زمین و بیج دوسرے کاشتکار کو فقط دے دینے سے ضامن نہیں ہو جاتا ہے آیا تو نہیں دیکھتا ہے کہ اگر اس نے زمین و بیج کسی دوسرے شخص کو دے کر اس سے کارِ زراعت میں استعانت چاہی یا اس کو کارِ زراعت کے واسطے اجیر مقرر کیا تو مخالف نہیں ہوتا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کاشتکار اول نے دوسرے کاشتکار سے استعانت لی ہو تو تمام پیداوار کا کاشتکار اول اور مالک زمین کے درمیان مشترک ہوگی اور اگر کاشتکار اول نے دوسرے کو یہ زمین عاریت دے دی تا کہ اپنے واسطے اس میں زراعت کر لے تو عاریت دینا جائز ہے اور جب مستعیر اس میں زراعت کرے گا تو تمام پیداوار اس کی دی جائے گی اور پہلا کاشتکار تمام زمین کا اجرِ مثل اس کے مالک کو تاوان دے گا کیونکہ اس نے آدمی (مستعیر) کو پیداوار دینے پر مالک زمین سے زمین اجارہ پر لی تھی حالانکہ مالک زمین کو پیداوار میں سے کچھ نہ دیا اور اس صورت میں اور اس دوسری صورت میں کہ کاشتکار نے زمین کسی کو عاریت نہ دی اور نہ خود زراعت کی یا عاریت دی مگر مستعیر نے اس میں زراعت نہ کی ان دونوں میں فرق ہے کہ اس صورتِ ثانیہ میں کاشتکار پر مالک زمین کے واسطے زمین کے اجرِ مثل میں سے کچھ واجب نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر کسی نے دوسرے

کو زمین دی کہ اس سال اس میں اپنے بیجوں سے بدیں شرط زراعت کرے کہ تمام پیداوار ہم دونوں میں نصفا نصف ہوگی اور کہہ دیا کہ اس میں اپنی رائے سے کام کرے یا یہ لفظ نہ کہا پھر کاشتکار نے یہ زمین اور اس کے ساتھ بیج بھی کسی دوسرے کاشتکار کو آدھے کی بٹائی پر دے دے تو یہ جائز ہے پھر جب پیداوار حاصل ہوئی تو اس میں سے آدھی دوسرے کاشتکار کی اس کے کام کے مقابلہ میں ہوگی جیسے کہ کاشتکار اول یعنی بیجوں کے مالک نے شرط کردی تھی اور آدھی مالکِ زمین کے منافع میں ہوگی جیسے کہ بیجوں کے مالک یعنی کاشتکار اول نے یہ شرط کر دی تھی اور کاشتکار اول کو کچھ نہ ملے گا اور اگر دوسرے کاشتکار کے واسطے دونوں مسئلوں میں تہائی پیداوار کی شرط کی ہو تو جائز ہے اور دوسرے کو ایک تہائی اور مالکِ زمین کو آدھی ملے گی اور چھٹا حصہ کاشتکار اول کا ہوگا اور اس کا حلال ہوگا اور اگر کاشتکار اول کو اس شرط سے زمین دی کہ اس میں اپنے بیجوں سے آدھے کی بٹائی پر زراعت کرے پھر کاشتکار اول نے دوسرے کو اس شرط سے کہ اس میں اپنے بیجوں سے اس شرط سے زراعت کرے کہ دو تہائی پیداوار دوسرے کاشتکار کی ہوگی اور ایک تہائی کاشتکار اول کی ہوگی اور اس نے اسی شرط سے زراعت کی تو پیداوار میں سے دو تہائی دوسرے کاشتکار کی ہوگی اس واسطے کہ جو کچھ پیدا ہوا ہے وہ اس کے بیجوں سے پیدا ہوا ہے پس اس کے بیجوں کی پیداوار میں سے کوئی غیر کچھ نہیں لے سکتا ہے الا شرط کے ساتھ اور شرط میں اس نے فقط تہائی پیداوار کاشتکار اول کے واسطے مشروط کی ہے مگر یہ تہائی پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور مالکِ زمین کا کاشتکار اول پر تہائی زمین کا اجرِ مثل واجب ہوگا۔

اگر بیج کاشتکار اول کی طرف سے ہوں تو دو تہائی پیداوار دوسرے کاشتکار کی ہوگی جیسے کہ کاشتکار اول نے شرط کی ہے اور تہائی پیداوار مالکِ زمین کی ہوگی اور مالکِ زمین کا کاشتکار اول پر اپنی تہائی زمین کا اجرِ مثل واجب ہوگا کذا فی المبسوط باب تولیۃ المزارعۃ و مشارکۃ والنفذ

میں قبلہ اور اگر کسی شخص کو اپنی زمین اور بیج بدین شرط مزارعت پر دی کہ پیداوار میں سے بیس تغییر کاشتکار کی اور باقی پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور کاشتکار سے یہ کہہ دیا کہ اس میں اپنی رائے سے کام کرے یا یہ لفظ نہ کہا پھر کاشتکار نے یہ زمین اور بیج کسی دوسرے

۱۔ اتول پیاس صورت میں ہے کہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Vol. 5 | 314 | Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

If land is given to a farmer on a half-share basis and he cultivates it, all the produce belongs to the landowner. The second farmer is entitled to a fair wage (*Ajr-e-Misl*) from the first farmer, and the first farmer is entitled to a fair wage for his work from the landowner. This ruling applies even if the land yields no produce. If a farmer is given land and seeds on a half-share basis (whether given authority to act on his own judgment or not), and he then sub-leases it to another farmer on the condition that the sub-lessee receives 20 *qafiz* (a unit of measure) of the produce, the contract between the first and second farmer is invalid (*fasid*). The second farmer must receive a fair wage from the first, and the total produce is divided equally between the first farmer and the landowner. Similarly, if land is given on the condition that the farmer uses his own seeds and labor but gives 20 *qafiz* to the owner, or vice versa, and the farmer sub-leases it on a half-share basis, the produce is split between the two farmers, while the owner receives a fair rent from the first farmer. If the owner wishes to terminate the contract before the second farmer begins sowing, he has the right to do so. However, once sowing has commenced, the owner cannot retake the land until the harvest is complete.

**Regarding certain conditions where, despite agreeing on half-and-half, ambiguity remains** ☆

Suppose a landowner, Zaid, gives his land to a farmer, Amr, on the condition that they both provide seeds, Amr provides the oxen, and the produce is split half-and-half. Amr then involves a third party, Khalid, to assist in cultivation. In this scenario, both the sharecropping contract and the partnership are invalid (*fasid*). The entire crop shall be shared between Zaid and Amr according to the proportion of seeds each provided. Amr is liable to pay the fair rent (*Ajr-e-Misl*) for the land to Zaid, and Amr must also pay a fair wage to Khalid for his labor. Amr himself is not entitled to a wage from Zaid because he worked as a partner in the venture. Amr must deduct his expenses and the value of his seeds from his portion of the harvest and give any surplus in charity (*sadqa*), as this excess was gained through an invalid contract on another's land. This is recorded in *Fatawa Kubra*. A person gave his land to a farmer on the condition that he uses his own seeds and oxen... this serves as proof for the obligation of *Ajr-e-Misl*.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 314 | किताब अल-मज़ारत (बटाई/कृषि पुस्तक)**

यदि किसी किसान को आधे हिस्से (बटाई) पर ज़मीन दी जाए और उसने खेती की, तो पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होगी। दूसरे किसान को अपने काम की 'अज्र-ए-मिसल' (उचित मज़दूरी) पहले किसान से मिलेगी, और पहले किसान को अपने काम की 'अज्र-ए-मिसल' ज़मीन के मालिक से मिलेगी। यदि ज़मीन में कुछ पैदा न हुआ हो, तब भी यही हुक्म (नियम) है। यदि किसी किसान को ज़मीन और बीज आधे हिस्से पर दिए गए और कहा गया कि अपनी राय से काम करे (या यह न कहा गया हो), फिर उस किसान ने किसी दूसरे किसान को इस शर्त पर ज़मीन दे दी कि उसे पैदावार में से 20 'क़फ़ीज़' (एक माप) मिलेंगे, तो पहले और दूसरे किसान के बीच यह अनुबंध अमान्य (फ़ासिद) है। दूसरे किसान को पहले किसान से 'अज्र-ए-मिसल' मिलेगी, और पूरी पैदावार पहले किसान और ज़मीन के मालिक के बीच आधी-आधी बँटेगी। इसी प्रकार, यदि ज़मीन इस शर्त पर दी गई कि किसान अपने बीज और मेहनत से खेती करे और मालिक को 20 क़फ़ीज़ दे, या मालिक किसान को 20 क़फ़ीज़ दे और बाकी खुद रखे, और फिर किसान ने वह ज़मीन किसी और को आधे हिस्से पर दे दी, तो पैदावार दोनों किसानों में आधी-आधी बँटेगी और मालिक को पहले किसान से 'अज्र-ए-मिसल' मिलेगी। यदि मालिक अनुबंध रद्द करना चाहे तो उसे अधिकार है, बशर्ते बुआई शुरू न हुई हो। यदि बीज बो दिए गए हों, तो मालिक फसल कटने तक ज़मीन वापस नहीं ले सकता।

**कुछ ऐसी शर्तों के बारे में जिसमें आधा-आधा तय होने के बावजूद अनिश्चितता बनी रहे ☆**

ज़मीन के मालिक, मान लीजिए ज़ैद ने, अपनी ज़मीन उम्र नामक किसान को इस शर्त पर दी कि वे दोनों अपने-अपने बीजों से खेती करेंगे और बैल उम्र के होंगे, और जो कुछ पैदा होगा वह आधा-आधा बँटेगा। फिर उम्र ने अपने हिस्से में खालिद नामक व्यक्ति को शामिल कर लिया जिसने खेती में मदद की। ऐसी स्थिति में मज़ारत (बटाई अनुबंध) और भागीदारी दोनों अमान्य (फ़ासिद) हैं। पूरी खेती ज़ैद और उम्र के बीच उनके बीजों की मात्रा के अनुपात में बँटेगी। उम्र को ज़ैद को ज़मीन का 'अज्र-ए-मिसल' देना होगा, और उम्र को खालिद को उसके काम की 'अज्र-ए-मिसल' देनी होगी। उम्र को ज़ैद से कोई मज़दूरी नहीं मिलेगी क्योंकि वह काम में साझीदार था। उम्र के लिए यह अनिवार्य होगा कि वह अपने खर्च और बीज की मात्रा निकालकर जो अतिरिक्त लाभ हो, उसे दान (सदक़ा) कर दे, क्योंकि यह लाभ उसे अमान्य अनुबंध के ज़रिए गैर की ज़मीन से मिला है। यह 'फ़तावा कुबरा' में वर्णित है।

کاشتکار کو آدھے کی بٹائی پر دے دے اور اس نے زراعت کی تو تمام پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور دوسرے کاشتکار کا اپنے کام کا اجر المثل پہلے کاشتکار پر اور پہلے کاشتکار کا اپنے اس کام کا اجر المثل مالک زمین پر واجب ہوگا اس طرح اگر اس زمین میں کچھ نہ پیدا ہوا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر کسی کاشتکار کو اپنی زمین اور بیج آدھے کی بٹائی پر دیے اور کہا کہ اس میں اپنی رائے سے کام کرے یا یہ لفظ نہ کہا پھر کاشتکار نے دوسرے کاشتکار کو اس شرط سے کہ اس کو پیداوار میں سے بیس قفیز ملیں گے مزارعت پر دی تو اوّل و ثانی کے درمیان مزارعت فاسد ہے اور دوسرے کا اوّل پر اپنے کام کا اجر المثل واجب ہوگا اور تمام پیداوار کاشتکار اوّل اور مالک زمین کے درمیان نصفا نصف ہوگی اور کاشتکار کو زمین اس شرط سے دی کہ اپنے کام اور اپنے بیجوں سے بدیں شرط مزارعت کرے کہ بیس قفیز پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور باقی کاشتکاری ہوگی یا بیس قفیز کاشتکار کی اور باقی مالک زمین کی ہوگی پھر کاشتکار نے یہ زمین دوسرے کاشتکار کو آدھے کی بٹائی پر دے دی اور بیج کاشتکار اوّل کی طرف سے ٹھہرے یا کاشتکار دوم کی طرف سے ٹھہرے پس دوسرے کاشتکار نے زراعت کی تو تمام پیداوار دونوں کاشتکاروں میں نصفا نصف ہوگی اور مالک زمین کے واسطے اس کی زمین کا اجر المثل کاشتکار اوّل پر واجب ہوگا اور اگر دونوں کاشتکاروں کی عقد مزارعت واقع ہو جانے کے بعد قبل اس کے کہ کاشتکار دوم بیج کی زراعت شروع کرے مالک زمین نے چاہا کہ اپنی زمین لے لے اور جو عقد مزارعت دونوں میں ہوا ہے اس کو توڑ دے تو اس کو ایسا اختیار ہے پس اگر عقد دوم میں بیج کاشتکار دوم کی طرف سے ہو تو اس کے اور کاشتکار دوم کے درمیان نقض عقد ہوگا کیونکہ عقد اوّل بسبب فاسد ہونے کے مستحق نقض تھا اور اگر بیج کاشتکار اوّل کی طرف سے ہو تو کاشتکار

اوّل کا دوسرے کاشتکار کو کار زراعت کے واسطے اجارہ لینا توڑ دیا جائے گا یہ بھی بسبب اس کے کہ عقد اوّل فاسد تھا اور اگر دوسرے کاشتکار نے کار زراعت شروع کر دیا ہو یعنی بیج بو دیا ہو تو مالک زمین کو زمین لینے کا اختیار نہ ہو گا یہاں تک کہ کھیتی کاٹی جائے اور اگر مالک زمین نے کاشتکار اوّل کو آدھے کی بٹائی پر زمین دے دی اور کہا کہ اس میں اپنی رائے سے کام کرے یا یہ لفظ نہ کہا ہو پھر کاشتکار اوّل نے کاشتکار دوم کو زمین اور اس کے ساتھ بیج بھی بیس قفیز پیداوار پر مزارعت کے واسطے دی تو دوسرا عقد فاسد ہوگا اور دوسرے کاشتکار کا اجر المثل کاشتکار اوّل پر واجب ہوگا اور تمام پیداوار کاشتکار اوّل اور مالک زمین کے درمیان نصفا نصف ہوگی اور اگر اس صورت میں بیج دوسرے کاشتکار کی طرف سے ہو تو تمام پیداوار اسی کی ہوگی اور اس پر واجب ہوگا کہ اوّل کاشتکار کو زمین کا اجر المثل دے اور کاشتکار اوّل پر واجب ہوگا کہ مالک زمین کو اس کی زمین کا اجر المثل دے کذا فی المبسوط و فی باب مشارکۃ الحامل مع الآخر۔

**کچھ ایسی شرائط کی بابت جس میں نصفا نصف طے کرنے کے باوجود اٹکل رہ جائے ☆**

مالک زمین مثلاً زید نے اپنی زمین کا کاشتکار مثلاً عمرو نامی کو اس واسطے دی کہ ہم دونوں کے بیجوں سے زراعت کرے اور بیل عمرو کی طرف سے ٹھہرے بدیں شرط کہ جو کچھ پیدا ہو وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گا پھر عمرو نے اپنے حصہ میں ایک شخص خالد کو شریک کر لیا جس نے اس کے ساتھ کار زراعت انجام دیا تو مزارعت اور شرکت دونوں فاسد ہیں اور تمام کھیتی زید و عمرو کے درمیان دونوں کے بیجوں کی مقدار کے حساب سے مشترک ہوگی اور زید کا آدمی زمین کا اجر المثل عمرو پر واجب ہوگا اور خالد کا اپنے کام کا اجر المثل بھی عمرو پر واجب ہوگا کیونکہ اس نے بطور اجارہ فاسدہ کے کام کیا ہے اور عمرو کا اپنے کام کا اجر المثل زید پر واجب نہ ہوگا کیونکہ اس نے ایسی چیز میں کام کر دیا ہے جس میں وہ شریک تھا پس

شرکت کی وجہ سے مستحق اجرت نہ ہوگا اور عمرو پر لازم ہوگا کہ اپنے خرچہ اور بیجوں کی مقدار اور تاوان کی مقدار حاصلات میں سے نکال کر جو کچھ بڑھے اسے کو صدقہ کر دے کیونکہ یہ زیادتی اس کو غیر شخص کی زمین سے اجارہ فاسدہ کے ذریعہ سے حاصل ہوئی ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ ایک شخص نے اپنی زمین ایک کاشتکار کو اس شرط سے دی کہ اپنے بیجوں اور بیل سے مزارعت کرے ---- یہ اجر المثل واجب ہونے کی دلیل ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 315 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

If a person engages in cultivation with another person under the condition that whatever produce is obtained shall be divided into three parts: one-third for the landowner, one-third for the provider of seeds and oxen, and one-third for the second person who is the worker; then this sharecropping agreement (Muzara'ah) is valid (Sahih) in the right of the landowner and the first farmer, but it is invalid (Fasid) in the right of the working laborer. Consequently, one-third of the produce will belong to the landowner and two-thirds will belong to the first farmer (seed owner), and it will be mandatory to pay the second worker the "Ajr al-Misl" (fair market wage). However, in this case, it was theoretically required for the Muzara'ah to be invalid for all parties because the owner of the seeds (the first farmer) combined the hiring of land and the hiring of a laborer into a single contract. In this matter, if the seeds are provided by the landowner, then the Muzara'ah would be valid for all parties, and the entire produce would be shared among them according to the agreed terms, as mentioned in "Al-Bada'i".

**Chapter Two: In the Explanation of Muzara'ah** In which a secondary contract (Mu'amalah/Musaqat) is made conditional. If a secondary contract is made conditional within the Muzara'ah, it will be seen: if the seeds are from the farmer's side, then both the Muzara'ah and the Mu'amalah will be invalid (Fasid). If the seeds are from the landowner's side, and both Muzara'ah and Mu'amalah are permissible (Jayiz). If the Mu'amalah is not a condition but mentioned as an adjunct, then the Muzara'ah is permissible regardless of who provides the seeds. If a person gives his cultivated land, which contains date palm trees, to another person on the condition that the latter cultivates it with his own seeds and works on the trees, under the condition that whatever produce is obtained will be shared equally (50-50) between them for a known number of years; then this conditional contract is invalid (Fasid). This is because, regarding the land, the farmer is leasing the land in exchange for half the produce on the condition that he cultivates it with his seeds and labor; and regarding the trees, the owner of the trees is hiring the farmer in exchange for half the produce. Thus, these two contracts conflict because the subject matter (Maqood Alaih) of each is different, yet one contract is made conditional upon the other, which nullifies the contract, as mentioned in "Al-Muhit". Thereafter, whatever produce is obtained from the land will belong entirely to the owner of the seeds, and he must pay the landowner the "Ajr al-Misl" (fair rent) for the land. After deducting the

quantity of seeds and expenses from the produce, whatever surplus remains should be given in charity (Sadaqah), because he obtained this excess from another's land through an invalid contract. The entire yield from the trees will belong to the owner of the trees and will be pure and lawful (Halal) for him, and it will be mandatory for him to pay the worker the "Ajr al-Misl" (fair wage) for his work (1). If a condition of one-third and two-thirds was set regarding the tree yield or the crop yield, the ruling (2) remains the same. If, regarding the cultivation, the seeds are provided by the landowner and the rest of the matter remains as stated, the said contract will be permissible because in this case, the landowner has hired the farmer for the purpose of working on both the land and the trees. Thus, the contract between the two will be considered a single unified contract because the subject matter (3) of the contract is one, i.e., obtaining benefit from the farmer's person. Similarly, if the owner made a condition with the farmer for nine-tenths (4) of the tree fruits and half of the crop produce...

---

(1) i.e., it will be obligatory upon the first farmer. (2) i.e., the matter of giving trees on sharecropping. (3) The subject upon which the contract is based is only the personal benefit of the farmer, i.e., his labor and effort. (4) For example, meaning I will take nine parts out of ten. (1) i.e., for the labor he performed on the trees. (2) It has been mentioned previously.

**फतवा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 315 | किताब-अल-मुज़ाराअत (बटाई के नियमों की पुस्तक)**

उस दूसरे व्यक्ति के साथ इस शर्त पर खेती करे कि जो कुछ पैदावार होगी, वह तीन तिहाई इस प्रकार होगी: एक तिहाई ज़मीन के मालिक की, एक तिहाई बीजों और बैलों वाले की, और एक तिहाई काम करने वाले दूसरे व्यक्ति की। अतः यह मुज़ाराअत (बटाई समझौता) ज़मीन के मालिक और पहले किसान के हक में सही (वैध) है, और काम करने वाले मज़दूर के हक में फासिद (त्रुटिपूर्ण/अवैध) है। इसलिए पैदावार में से एक तिहाई ज़मीन के मालिक की होगी और दो तिहाई पहले किसान की होगी, और दूसरे किसान को उसका 'अज्र-ए-मिस्ल' (बाज़ार दर के अनुसार उचित पारिश्रमिक) देना अनिवार्य होगा। हालांकि इस स्थिति में यह अनिवार्य था कि मुज़ाराअत सभी के लिए फासिद हो जाए क्योंकि बीजों के मालिक यानी पहले किसान ने ज़मीन का किराया लेना और काम करने वाले मज़दूर का काम लेना, दोनों को एक ही सौदे में मिला दिया है। इस मामले में यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, तो मुज़ाराअत सभी के हक में सही होगी और कुल पैदावार शर्त के अनुसार सभी में साझा होगी, जैसा कि 'अल-बदाए' में उल्लेखित है।

**अध्याय दो: ऐसी मुज़ाराअत के वर्णन में** जिसमें मामला (वृक्षों की देखभाल का अनुबंध) शर्त के रूप में शामिल हो। यदि मुज़ाराअत में मामला शर्त के रूप में हो, तो देखा जाएगा कि यदि बीज किसान की ओर से हों, तो मुज़ाराअत और मामला दोनों फासिद (अवैध) होंगे। और यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, तो मुज़ाराअत और मामला दोनों जायज़ (वैध) होंगे। यदि मुज़ाराअत में मामला शर्त के रूप में न हो बल्कि विवरण के तौर पर दिया गया हो, तो मुज़ाराअत जायज़ है, चाहे बीज किसी भी पक्ष के हों। यदि किसी व्यक्ति ने अपनी बोई हुई ज़मीन, जिसमें खजूर के पेड़ हैं, किसी दूसरे व्यक्ति को इस शर्त पर दी कि वह अपने बीजों से खेती करे और पेड़ों की देखभाल करे, और जो कुछ पैदावार और फल होंगे वे दोनों में आधे-आधे बँटेंगे, और यह अनुबंध कुछ निश्चित वर्षों के लिए किया गया, तो यह अनुबंध फासिद (अवैध) है। इसका कारण यह है कि ज़मीन के संबंध में किसान आधी पैदावार की शर्त पर ज़मीन किराए पर लेने वाला है ताकि वह अपने बीजों और श्रम से खेती करे, और पेड़ों के संबंध में पेड़ों का मालिक किसान को आधे फलों के बदले काम पर रखने वाला है। अतः ये दोनों अनुबंध अलग-अलग होने के कारण आपस में टकराते हैं, जबकि एक अनुबंध दूसरे पर शर्त के रूप में आधारित है, और यह बात अनुबंध को बिगाड़ने वाली (फासिद करने वाली) है, जैसा कि 'अल-मुहीत' में उल्लेखित है। फिर जो कुछ पैदावार होगी, ज़मीन की सारी उपज बीजों

के मालिक की होगी और उस पर अनिवार्य होगा कि वह ज़मीन के मालिक को ज़मीन का 'अज्र-ए-मिस्ल' (उचित किराया) दे। वह पैदावार में से बीजों की मात्रा और लागत निकालकर जो कुछ अतिरिक्त बचे, उसे दान (सदका) कर दे, क्योंकि यह अतिरिक्त लाभ उसने दूसरे की ज़मीन से एक अवैध अनुबंध के माध्यम से प्राप्त किया है। पेड़ों की पूरी उपज पेड़ों के मालिक की होगी और वह उसके लिए पाक और हलाल होगी, और उस पर अनिवार्य होगा कि वह काम करने वाले को उसके काम (1) का उचित पारिश्रमिक (अज्र-ए-मिस्ल) दे। यदि पेड़ों के फलों या खेती की उपज के संबंध में एक-तिहाई और दो-तिहाई की शर्त रखी गई हो, तब भी यही नियम (2) लागू होगा। और यदि खेती के लिए बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों और शेष शर्तें वही रहें, तो उक्त अनुबंध जायज़ होगा, क्योंकि इस स्थिति में ज़मीन के मालिक ने किसान को इस उद्देश्य से नियुक्त किया है कि वह ज़मीन और पेड़ों का काम करे। अतः दोनों के बीच अनुबंध एक ही माना जाएगा क्योंकि अनुबंध का विषय (3) एक ही है, यानी किसान के श्रम से लाभ प्राप्त करना। इसी प्रकार यदि मालिक ने किसान से पेड़ों के फलों के नौ-दशमांश (4) हिस्से पर और खेती की उपज के आधे हिस्से पर शर्त की...

---

(1) यानी पहले किसान की ज़िम्मेदारी होगी। (2) यानी पेड़ों को बटाई पर देने का मामला। (3) जिस पर अनुबंध टिका है, वह केवल किसान का व्यक्तिगत लाभ यानी उसकी मेहनत और मशक्कत है। (4) उदाहरण के तौर पर, दस हिस्सों में से नौ हिस्से लूँगा। (1) यानी पेड़ों में उसने जो मेहनत की है। (2) पहले उल्लेख किया जा चुका है।

---

اس دوسرے شخص کے ساتھ زراعت کرے بدیں شرط کہ جو کچھ اس میں پیداوار ہو گی وہ تین تہائی اس طرح ہو گی کہ ایک تہائی مالک زمین کی اور ایک تہائی بیجوں اور بیل والے کی اور ایک تہائی دوسرے شخص کارگزار کی ہو گی پس یہ مزارعت مالک زمین اور پہلے کاشتکار کے حق میں صحیح ہے اور عامل کارگزار کے حق میں فاسد ہے پس پیداوار میں سے ایک تہائی مالک زمین کی ہو گی اور دو تہائی کاشتکار اول کی ہو گی اور دوسرے کاشتکار کا اجر المثل واجب ہو گا حالانکہ اس صورت میں یہ واجب تھا کہ مزارعت سب کے حق میں فاسد ہو جائے کیونکہ بیجوں کے مالک یعنی کاشتکار اول نے زمین کا اجارہ لینا اور عامل یعنی کارزراعت انجام دینے والے کا اجارہ لینا ایک میں جمع کر لیا ہے اور اس مسئلہ میں اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں تو مزارعت سب کے حق میں صحیح ہو گی اور تمام پیداوار ان سب میں موافق شرط کے مشترک ہو گی کذا فی البدائع۔

**باب ثانی: ایسی مزارعت کے بیان میں** جس میں معاملہ مشروط ہو۔ اگر مزارعت میں معاملہ مشروط ہو تو دیکھا جائے گا کہ اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو مزارعت اور معاملت دونوں فاسد ہوں گی اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اگر مزارعت اور معاملت دونوں جائز ہوں گی اور اگر مزارعت میں معاملہ مشروط نہ ہو بلکہ بطور عطف بیان کیا گیا ہو تو مزارعت جائز ہے خواہ بیج دونوں میں سے کسی کی طرف سے ہوں اور اگر ایک شخص نے اپنی زمین مزروعہ جس میں درختان خرما ہیں دوسرے شخص کو اس شرط سے دی کہ اس کو اپنے بیجوں سے زراعت اور درختوں میں کام کرے بدیں شرط کہ جو کچھ اس میں حاصلات ہو گی وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہو گی اور چند سال معلومہ کے واسطے یہ عقد مشروط قرار دیا تو یہ عقد

فاسد ہے اس واسطے کہ زمین کے حق میں کاشتکار اس زمین کو نصف پیداوار پر اس شرط سے اجارہ لینے والا ہے کہ اپنے بیجوں اور اپنے کام سے زراعت کرے اور درختوں کے حق میں درختوں کا مالک کاشتکار کو آدھی حاصلات پر اجارہ لینے والا ہے پس یہ دونوں عقد بوجہ اس کے کہ ہر ایک میں معقود علیہ مختلف ہے باہم مختلف ہوئے حالانکہ ایک عقد دوسرے میں مشروط ہے اور یہ امر مفسد عقد ہے کذا فی المحیط پھر جو کچھ حاصلات ہو گی اس میں زمین کی تمام پیداوار بیجوں کے مالک کی ہو گی اور اس پر واجب ہو گا کہ مالک زمین کو اس کی زمین کا اجر المثل دے اور بیجوں کی مقدار اور تاوان کو پیداوار میں سے نکال کر جس قدر بڑھے اس کو صدقہ کر دے کیونکہ یہ زیادتی اس نے غیر شخص کی زمین سے بذریعہ عقد فاسد حاصل کی ہے اور درختوں کی پوری حاصلات درختوں کے مالک کی ہو گی اور سب حاصلات اس کے واسطے پاک و حلال ہو گی اور اس پر واجب ہو گا کہ عامل کو اس کے کام ۸(1) کا اجر المثل دے اور اگر درختوں کی حاصلات کی بابت دونوں میں تہائی دو تہائی کی شرط ٹھہری ہو یا کھیتی کی بابت تہائی دو تہائی کی شرط ٹھہری ہو تو بھی حکم یہی ۸(2) ہو گا اور اگر زراعت کے حق میں بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو عقد مذکور جائز ہو گا کیونکہ اس صورت میں مالک زمین نے کاشتکار کو اس غرض سے اجارہ لیا کہ میری زمین اور درختوں کا کام انجام دے پس عقد دونوں میں واحد ہو گا بدیں وجہ کہ معقود ۸(3) علیہ واحد ہے یعنی کاشتکار کی ذات سے منفعت حاصل کرنا۔ اسی طرح اگر مالک نے کاشتکار سے شرط کر لی درختوں کے پھلوں میں سے نو دسویں ۸(4) حصے پر اور زراعت میں سے نصف پر

---

۸(1) یعنی کاشتکار اول کے ذمے واجب ہو گا۔ ۸(2) معاملہ یعنی درختوں کا بٹائی پر دینا۔ ۸(3) معقود علیہ جس پر عقد ٹھہرا وہ فقط کاشتکار کی ذاتی منفعت یعنی محنت و مشقت ہے۔ ۸(4) مثلاً

یعنی دس حصہ میں سے نو حصے لوں گا۔ ۸(1) یعنی درختوں میں جو اس نے محنت کی ہے۔

۸(2) مذکور ہوا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 316 | Kitab al-Muzara'a**

Sharing the crop (as per a specified ratio) is also permissible, because a variation in the quantity of the stipulated seed does not change the nature of the contract; rather, the contract changes based on the object of the contract itself. If someone grants their land and vineyard to another with such conditions, the ruling will be the same as mentioned regarding date palm trees. If a person gives their cultivable land, which contains date palms, to another person and says, "I give you this land so that you cultivate it with your own seeds and labor, on the condition that whatever produce comes out will be shared equally (half and half) between us; and I give you these trees under a contract (mu'amalat) on the condition that you irrigate them and perform fertilization (cross-pollination), and whatever produce is obtained will be shared equally between us, or you get one-third and I get two-thirds," and he specifies a certain number of years for this contract, then it is permissible. This is because, in this scenario, he has not made one contract conditional upon another but has conjoined (coordinated) them. Similarly, if one gives their land and vineyard to another and says, "Cultivate this land with your seeds and carry out the work of this vineyard by tending and watering it," then this contract is valid because he has not made one contract a condition for the other. This is as stated in *Al-Mabsut*.

**Chapter Eight: Regarding Acting Contrary to Conditions in Sharecropping (Muzara'at)**

If a person gives their land to another on the condition that they cultivate wheat, the farmer does not have the authority to grow anything other than wheat, even if growing another type of grain is easier on the land or less harmful to the land compared to wheat. Similarly, if one says, "Take this land so that you sow wheat" (using specific Arabic grammatical structures like *fa*), these are all considered strict conditions. If the farmer sows anything other than wheat, he becomes a violator (1) of the condition. This is as stated in *Khazanat al-Muftiin*. However, if one says, "Take this land *and* sow wheat" (using the conjunction *wa*), the question arises: is this a strict condition or merely a suggestion (2)? This issue is not explicitly mentioned in the *Book of Sharecropping* (Kitab al-Muzara'a), but it is mentioned in the *Book of Partnership* (Kitab al-Mudaraba). For instance, if someone gives a thousand dirhams to another for a profit-sharing partnership and says, "Take these dirhams for a half-profit partnership and work with them in Kufa," this is considered a suggestion; nonetheless, if he works somewhere other than Kufa, he will be considered an actor contrary to the advice. Some of our scholars have said it is necessary that the same

ruling applies to sharecropping. Sheikh Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fazl used to say that in sharecropping, such phrasing should be deemed a condition, because by treating it as a condition, the statement becomes a specification of the type of seed. Thus, the sharecropping would be permissible according to both analogy (*qiyas*) and juristic preference (*istihsan*). If we were to treat it as a suggestion, it wouldn't specify the seed type, thus sharecropping wouldn't be valid according to analogy, unlike partnership (3). This is mentioned in *Al-Muhit*.

A farmer with a one-year lease cultivated the land, but then locusts ate the entire crop or most of it, leaving only a little. The farmer then wanted to sow something else for the remaining duration, but the landowner forbade him. In this regard, the scholars stated that if...

---

(1) Meaning, the person who acts contrary to the condition. (2) Meaning, it is mentioned by way of consultation or advice. (3) In partnership (mudaraba), treating it as a suggestion sometimes allows the contract to remain valid according to both analogy and juristic preference.

बँटाई होगी तो भी जायज़ है, इस वजह से कि बीज की निर्धारित मात्रा अलग होने से अनुबंध (अक़्द) अलग नहीं होता है, बल्कि जिस चीज़ पर अनुबंध किया गया है उसके अलग होने से अलग होता है। और अगर अपनी ज़मीन और अंगूर का बाग इसी तरह की शर्त लगाकर दूसरे व्यक्ति को दिया, तो उसका हुक्म भी वैसा ही होगा जैसा कि खजूर के पेड़ों के मामले में वर्णित हुआ है। और अगर एक व्यक्ति ने अपनी कृषि भूमि, जिसमें खजूर के पेड़ हैं, दूसरे व्यक्ति को दी और कहा कि मैं तुझे यह ज़मीन देता हूँ कि तू अपने बीजों और अपने काम से इसमें खेती कर, इस शर्त पर कि जो कुछ इसमें पैदावार होगी वह हम दोनों में आधी-आधी होगी, और मैं तुझे ये पेड़ इस शर्त पर देता हूँ कि तू इन पेड़ों को सींच और उनकी देख-रेख (नर-मादी लगाना) कर, और जो कुछ इसमें से हासिल होगा वह हम दोनों में आधा-आधा होगा या तुझे एक-तिहाई मिलेगा और मुझे दो-तिहाई, और इस अनुबंध के लिए कुछ ज्ञात वर्षों की अवधि तय कर दी, तो यह जायज़ है। क्योंकि इस स्थिति में उसने एक अनुबंध को दूसरे में शर्त नहीं बनाया है बल्कि उसे जोड़ा (मातूफ़ किया) है। इसी तरह अपनी ज़मीन और अंगूर का बाग दूसरे व्यक्ति को दिया और कहा कि तू इस ज़मीन में अपने बीजों से खेती कर और इस अंगूर के बाग का जो काम है उसे अंजाम दे कि इसे संवार और पानी दिया कर, तो यह अनुबंध सही है क्योंकि उसने एक अनुबंध को दूसरे में शर्त नहीं बनाया है। जैसा कि 'अल-मबसत' में है।

## अध्याय आठ: मुज़ारअत (बँटाई पर खेती) में शर्त के विरुद्ध कार्य करने के वर्णन में

अगर एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन इस शर्त पर दी कि उसमें गेहूँ की खेती करे, तो काश्तकार (किसान) को गेहूँ के अलावा दूसरी चीज़ का अधिकार नहीं है, भले ही दूसरी किस्म का अनाज ज़मीन के लिहाज़ से उगना आसान हो और गेहूँ की तुलना में ज़मीन के लिए कम हानिकारक हो। इसी तरह अगर यूँ कहा 'ख़ुज़ हाज़िहिल अर्ज़ तज़रअहा हिन्तातन' या 'ली-तज़रअहा हिन्तातन' या कहा 'फ़ाज़-रअहा हिन्तातन' (अरबी अक्षर 'फ़ा' के साथ), यानी यह ज़मीन ले कि तू इसमें गेहूँ की खेती करे या ताकि इसमें गेहूँ की खेती करे या लेकर इसमें गेहूँ की खेती कर, तो ये सब शर्तें हैं, यहाँ तक कि अगर उसने गेहूँ के अलावा दूसरी चीज़ बोई तो वह उल्लंघन करने वाला (1) हो जाएगा। जैसा कि 'ख़ज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। और अगर यूँ कहा कि 'वज़-रअहा हिन्तातन' (अक्षर 'वाव' के साथ), यानी यह ज़मीन ले और इसमें गेहूँ की खेती करना, तो क्या यह शर्त है या मशवरा (2) है? इस मसले को 'किताब अल-मुज़ारअत' में ज़िक्र नहीं किया गया है, लेकिन 'किताब अल-मुज़ारबत' में इस तरह ज़िक्र किया गया है कि अगर एक व्यक्ति के हज़ार दिरहम दूसरे व्यक्ति को मुज़ारबत

(साझेदारी) पर दिए और कहा कि तू ये दिरहम आधे मुनाफ़े की मुज़ारबत पर ले और इनसे कूफ़ा में काम करना, तो यह मशवरा है, यहाँ तक कि अगर उसने कूफ़ा के अलावा दूसरी जगह काम किया तो वह खिलाफ़ करने वाला होगा। अतः हमारे कुछ उलेमा (मशायख़) ने फ़रमाया कि वाजिब है कि मुज़ारअत में भी यही हुक्म हो। और शेख इमाम अबू बक्र मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल फ़रमाते थे कि मुज़ारअत में यह शब्द शर्त माना जाएगा, क्योंकि इसे शर्त मानने की स्थिति में यह बातचीत बीज की किस्म का विवरण बन जाएगी, अतः मुज़ारअत क़यास (तर्क) और इस्तेहसान (औचित्य) दोनों तरह से जायज़ हो जाएगी। और अगर हम इस शब्द को मशवरा करार दें, तो बीज की किस्म का विवरण नहीं हुआ, अतः मुज़ारअत क़यास के अनुसार जायज़ नहीं हुई, मुज़ारबत (3) के विपरीत। यह 'अल-मुहीत' में है।

एक साल की अवधि वाले किसान ने ज़मीन में खेती की, फिर सारी फसल टिड्डियाँ खा गईं या अधिकांश फसल खा गईं और कुछ थोड़ी सी बच रही। फिर किसान ने चाहा कि बाकी बची अवधि में उसमें कोई दूसरी चीज़ बोए, लेकिन ज़मीन के मालिक ने उसे मना किया, तो मशायख़ ने फ़रमाया कि अगर...

---

(1) अर्थात शर्त के विरुद्ध कार्य करने वाला। (2) अर्थात परामर्श के रूप में ज़िक्र किया गया है। (3) मुज़ारबत में मशवरा मानने से कभी मुज़ारबत क़यास और इस्तेहसान के अनुसार जायज़ रहती है।

---

بٹائی ہو گی تو بھی جائز ہے اس واسطے کہ تخم مشروط کی مقدار مختلف ہونے سے عقد مختلف نہیں ہوتا ہے بلکہ معقود علیہ مختلف ہونے سے مختلف ہوتا ہے اور اگر اپنی زمین و باغ انگور اسی طرح سے شرط کر کے دوسرے شخص کو دیا تو اس کا حکم بھی ویسا ہی ہوگا جیسا کہ درختانِ خرما کی صورت میں مذکور ہوا ہے اور اگر ایک شخص نے اپنی زمین مزروعہ جس میں درختانِ خرما ہیں دوسرے شخص کو دی اور کہا کہ میں تجھے یہ زمین دیتا ہوں کہ تو اپنے بیجوں اور اپنے کام سے اس میں زراعت کر بدیں شرط کہ جو کچھ اس میں پیداوار ہوگی وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہوگی اور میں تجھے یہ درخت معاملت پر اس شرط سے دیتا ہوں کہ تو ان درختوں کو سینچنا کر اور نر مادی لگا اور جو کچھ اس میں سے حاصلات ہوگی وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہوگی یا تجھے تہائی ملے گی اور مجھے دو تہائی اور اس عقد کے واسطے چند سال معلومہ کا پتہ دے دیا تو یہ جائز ہے کیونکہ اس صورت میں اس نے ایک عقد کو دوسرے میں مشروط نہیں کیا ہے بلکہ معطوف کیا ہے اسی طرح اپنی زمین اور باغ انگور دوسرے شخص کو دیا اور کہا کہ تو اس زمین میں اپنے بیجوں سے زراعت کر اور اس باغ انگور کا جو کام ہے اس کو انجام دے کہ اس کو پیراستہ کر اور پانی دیا کر تو یہ عقد صحیح ہے کیونکہ اس نے ایک عقد کو دوسرے میں مشروط نہیں کیا ہے کذا فی المبسوط

## باب ہشتم: مزارعت میں خلافِ شرط عمل کرنے کے بیان میں

اگر ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین اس شرط سے دی کہ اس میں گیہوں کی زراعت کرے تو کاشتکار کو سوائے گیہوں کے دوسری چیز کا اختیار نہیں ہے اگر چہ دوسری قسم کا اناج زمین

کے لحاظ سے اگنا آسان ہو اور بہ نسبت گیہوں کے زمین کے حق میں کم مضر ہو اسی طرح اگر یوں کہا خذ ھذہ الارض تزرعھا حنطۃ اولتزرعھا حنطۃ او قال فاذ رھا حنطۃ بالفاء یعنی یہ زمین لے کہ تو اس میں گیہوں کی زراعت کرے یا تاکہ اس میں گیہوں کی زراعت کرے یا لے کر اس میں گیہوں کی زراعت کر تو یہ سب شرط ہیں حتیٰ کہ اگر اس نے سوائے گیہوں کے دوسرے چیز بوئی تو مخالف ہو(۱) جائے گا کذا فی خزانۃ المفتین اور اگر یوں کہا کہ و ازرعھا حنطۃ بالواؤ یعنی یہ زمین لے اور اس میں گیہوں کی زراعت کرنا پس آیا یہ شرط ہے یا مشورہ(۲) ہے تو اس مسئلہ کو کتاب المزارعۃ میں ذکر نہیں فرمایا اور کتاب المضاربہ میں یوں ذکر فرمایا کہ اگر ایک شخص کے ہزار درہم دوسرے شخص کو مضاربت پر دے اور کہا کہ تو یہ درہم آدھے کی مضاربت پر لے اور ان سے کوفہ میں کام کرنا یہ مشورہ ہے حتیٰ کہ اگر اس نے سوائے کوفہ کے دوسری جگہ کام کیا تو خلاف کرنے والا ہوگا۔ پس ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ واجب ہے کہ مزارعت میں بھی یہی حکم ہوئے اور شیخ امام ابوبکر محمد بن الفضل فرماتے تھے کہ مزارعت میں یہ لفظ شرط قرار دیا جائے گا اس واسطے کہ اس کی شرط قرار دینے کی صورت میں یہ کلام تخم کی قسم کا بیان ہو جائے گا پس مزارعت قیاساً و استحساناً دونوں طرح جائز ہو جائے گی اور اگر ہم اس لفظ کو مشورہ قرار دیں تو تخم کی قسم کا بیان نہ ہوا پس مزارعت قیاساً جائز نہ ہوئی بخلاف مضاربت (۳) کے یہ محیط میں ہے۔

ایک سال کے میعادی کاشتکار نے زمین میں زراعت کی پھر سب کھیتی ٹڈیاں کھا گئیں یا اکثر کھیتی کھا گئیں اور کچھ تھوڑی سی بیچ رہی پس کاشتکار نے چاہا کہ باقی مدت میں اس میں کوئی دوسری چیز بوئے مگر مالک زمین نے اس کو منع کیا تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر

---

(۱) یعنی بخلاف شرط عمل کرنے والا۔ (۲) یعنی بطور مشورہ ذکر کیا ہے۔ (۳) مضاربت میں مشورہ قرار دینے سے کبھی مضاربت قیاساً و استحساناً جائز رہتی ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8, Kitab al-Mazara'at (Book of Sharecropping), Page 317**

If sharecropping (Mazara'at) is agreed upon with the condition of sowing a specific type of seed by both parties, the farmer shall have no choice but to sow that type. If the sharecropping contract is general, allowing him to sow whatever he wishes, or if it is an absolute sharecropping contract (1), the farmer shall have the choice to sow whatever he wishes for the remainder of the term. The author stated: In my view, if sharecropping is agreed upon with the condition of sowing a specific type of seed, it is appropriate that he should have the option to sow seeds that are similar to the stipulated ones regarding the benefit to the land, or those that are less harmful to it; this is as stated in Fatawa Qazi Khan.

**Chapter Seven: Concerning the Increase or Decrease in Share by the Owner of Land and Trees, or by the Farmer and Worker**

The principle is that if the object of the contract (ma'qud alayh) is in a state where the commencement of sharecropping upon it is valid, then an increase in it is also valid. However, if it is in a state where the commencement of the sharecropping contract upon it is not valid, then an increase in it is also not valid, because the consideration for increasing the substitute (badal) depends on the original contract, and the original contract necessitates an object so that it may be in exchange for it. Thus, an increase also necessitates an object so that it may be in exchange for it. Conversely, a decrease is valid in both cases, because decreasing is the waiving of a part of the substitute; thus, it requires the existence of the substitute, not the existence of the object of the contract. If one of the parties increases the share of the produce, and if this increase occurs before the crops are fully ready and before the palm fruits have finished growing, it is valid. This is because a sharecropping contract on produce and grain is valid from the beginning until the point where the produce emerges and continues to grow. Therefore, an increase in it within the contract is also valid, similar to sale and lease. However, if the increase is made after the crops are fully ready and the palm fruits have reached full growth, then an increase from the side of the one who provided the seeds or who owns the trees is not valid, but it is valid from the side of the one who did not provide the seeds. The reason for this is that an increase by the owner of the seeds occurs at a stage where the commencement of sharecropping on such (ready) produce is not (2) valid. Therefore, an adjustment to increase the substitute is not possible because the object of the contract, namely the benefits (3), has already been realized. It is also not possible to consider this a 'khat'

(reduction), because the one who provided the seeds is the lessee (mustajir), and the lessee is, as it were, the purchaser of the benefits. An increase in price from the side of the purchaser cannot be proposed as a reduction because the price (thaman) is a liability upon him, not belonging to him. Thus, in this case, the produce is like the price, so proposing a reduction in it would not be possible. As for the person who did not provide the seeds, he is the lessor (mujir), and a reduction in rent by the lessor is conceivable. Therefore, increasing the produce for the one with the seeds on his behalf can be proposed as him reducing his rent. Reducing is valid even when the object of the contract is no longer present. Although the crop at the time of reduction (4) was a specific property (mal-e-ayn), and reduction in specific property is not valid, at the time of the contract, this crop (5) was not a specific property. Thus, the reduction is valid with respect to the contract. Whatever amount he reduced from his share to increase the other's share becomes the property of the other, just as if a seller took possession of the price and then reduced a portion of it for the buyer, it is valid, even though at the time of reduction the price had become specific property. This is written in al-Muhit al-Sarkhasi.

(1) Because the term is complete, there is no longer a need for anyone to take it on lease. (2) Meaning the benefits of physical labor and toil. (3) Reducing one's own right. (4) Meaning there was no further growth or increase according to the assumption, but it had become a fully ready specific entity. (5) And the increase or decrease is considered with respect to the original contract.

**फतावा आलमगीरी ..... खंड 8, किताब अल-मज़ाराअत (बटाई की किताब), पृष्ठ 317**

यदि दोनों पक्षों के बीच किसी विशेष प्रकार के बीज बोने की शर्त पर बटाई (मज़ाराअत) तय हुई हो, तो किसान को उसके अलावा किसी दूसरे प्रकार के बीज बोने का अधिकार नहीं होगा। और यदि बटाई का अनुबंध सामान्य हो कि जो चाहे बोए या निरपेक्ष बटाई (1) हो, तो किसान को अधिकार होगा कि वह शेष अवधि में जो चाहे बोए। लेखक ने कहा कि मेरे निकट यदि दोनों के बीच किसी विशेष प्रकार के बीज बोने की शर्त पर बटाई तय हुई हो, तो उचित यही है कि उसे यह अधिकार हो कि जो बीज भूमि के हक में शर्त किए गए बीज के समान हों या उसकी तुलना में भूमि को कम नुकसान पहुँचाने वाले हों, वह उन्हें बो सकता है; जैसा कि फतावा काज़ी खान में वर्णित है।

## सातवाँ अध्याय: भूमि और वृक्ष के स्वामी की ओर से या किसान व कामगार की ओर से हिस्से में कमी या वृद्धि करने के विवरण में

सिद्धांत यह है कि यदि अनुबंध की वस्तु (मक़ूद अलैह) ऐसी स्थिति में हो कि उस पर बटाई की शुरुआत जायज़ हो, तो उसके हिस्से में वृद्धि करना भी जायज़ होगा। और यदि वह ऐसी स्थिति में हो कि उस पर बटाई के अनुबंध की शुरुआत जायज़ न हो, तो उसमें वृद्धि करना भी जायज़ नहीं होगा, क्योंकि बदले (मुआवज़े) में वृद्धि का आधार मूल अनुबंध पर होता है, और मूल अनुबंध किसी प्रतिफल का तकाज़ा करता है ताकि वह उसके सामने हो। अतः इसी प्रकार वृद्धि भी किसी प्रतिफल का तकाज़ा करेगी ताकि वह उसके सामने हो। तथा कमी करना दोनों स्थितियों में जायज़ है क्योंकि कमी करना बदले के कुछ भाग को छोड़ना है, अतः यह बदले की स्थिरता चाहता है, अनुबंध की वस्तु की स्थिरता नहीं चाहता। और यदि दोनों में से किसी एक ने पैदावार के हिस्से में कुछ वृद्धि की, तो यदि फसल पूरी तरह तैयार होने और खजूर के फलों के पूरी तरह बढ़ने से पहले वृद्धि की, तो वह जायज़ है, क्योंकि पैदावार और अनाज पर बटाई का अनुबंध प्रारंभ से ही जायज़ है जब तक कि यह पैदावार उभरती और बढ़ती रहती है; अतः अनुबंध में इसकी वृद्धि भी जायज़ है जैसा कि क्रय-विक्रय (बैय) और किराए (इजारा) में होता है। और यदि फसल पूरी तरह तैयार होने और खजूर के फलों के पूर्णतः बढ़ जाने के बाद वृद्धि की गई, तो जिसकी ओर से बीज हैं और जिसके वृक्ष हैं, उसकी ओर से (वृद्धि) जायज़ नहीं है, और जिसकी ओर से बीज नहीं हैं, उसकी ओर से जायज़ है। इसका कारण यह है कि बीजों के मालिक की ओर से वृद्धि करना ऐसी स्थिति में है जहाँ ऐसी (तैयार) पैदावार पर बटाई की शुरुआत जायज़ नहीं (2) है। अतः बदले में वृद्धि करना सही नहीं हो सकता, क्योंकि अनुबंध की वस्तु अर्थात लाभ (3) प्राप्त हो चुके हैं। और इसे 'खत' (कमी) मान लेना भी संभव नहीं है क्योंकि

जिसकी ओर से बीज हैं वह किरायेदार (मुस्ताजिर) है, और किरायेदार मानो लाभ का खरीदार है, और खरीदार की ओर से कीमत में कमी करना संभव नहीं माना जा सकता क्योंकि कीमत (थमन) उस पर देय होती है, उसकी नहीं होती; अतः इस मामले में पैदावार कीमत के समान है, इसलिए उसमें कमी करना संभव नहीं होगा। रहा वह व्यक्ति जिसकी ओर से बीज नहीं हैं, वह मकान मालिक या स्वामी (मूजिर) है, और स्वामी की ओर से किराए में कमी की कल्पना की जा सकती है; अतः उसकी ओर से बीजों वाले व्यक्ति के लिए पैदावार के हिस्से में वृद्धि करना इस प्रकार माना जा सकता है कि उसने अपने किराए में से कुछ कम कर दिया, जबकि कमी करना अनुबंध की वस्तु के समाप्त होने की स्थिति में भी जायज़ है। और भले ही फसल हिस्से में कमी करते समय (4) एक ठोस वस्तु (माल-ए-ऐन) थी और ठोस वस्तु में कमी करना सही नहीं होता, लेकिन अनुबंध के समय यह फसल (5) ठोस वस्तु नहीं थी, अतः अनुबंध के आधार पर कमी करना सही हुआ। और जितना उसने अपने हिस्से में से घटाकर दूसरे के लिए बढ़ाया, वह दूसरे का स्वामित्व हो गया, जैसे यदि विक्रेता ने कीमत पर कब्जा कर लिया और फिर खरीदार के लिए कीमत का कुछ हिस्सा कम कर दिया, तो वह सही है भले ही कमी करते समय कीमत ठोस वस्तु बन चुकी थी; यह अल-मुहीत अस-सरखसी में लिखा है।

(1) क्योंकि फसल पूरी हो चुकी है, अब किसी को किराए पर लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। (2) अर्थात शारीरिक श्रम और कठिनाई का लाभ। (3) अपने अधिकार में कमी करना। (4) अर्थात इसमें अनुमान के अनुसार कोई और वृद्धि या विकास शेष नहीं था बल्कि यह पूरी तरह तैयार होकर ठोस वस्तु बन चुकी थी। (5) और कमी या वृद्धि का आधार मूल अनुबंध को माना जाता है।

---

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ۸، کتاب المزارعة، صفحہ ۳۱۷**

دونوں میں کسی قسم معین کے بیج بونے کی شرط پر مزارعت ٹھہری ہو تو کاشتکار کو اس کے سوائے دوسرے قسم کے بیج بونے کا اختیار نہ ہو گا اور اگر عقد مزارعت عام ہو کہ جو چاہے بوئے یا مزارعت مطلقہ (۱) ہو تو کاشتکار کو اختیار ہو گا کہ باقی مدت میں جو چاہے بوئے اور مؤلف نے فرمایا کہ میرے نزدیک اگر دونوں میں کسی خاص قسم کے بیج بونے کی شرط پر مزارعت ٹھہری ہو تو یہی چاہیے کہ اس کو اختیار ہو کہ جو ہم زمین کے حق میں تخم مشروطہ کے مثل ہو یا اس کی بہ نسبت ضرر میں کم ہو وہ بوئے کذا فی فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

## باب ہفتم: مالک زمین و درخت کی طرف سے یا کاشتکار و عامل کی طرف سے کمی و بیشی کرنے کے بیان میں

اصل یہ ہے کہ اگر معقود علیہ ایسی حالت میں ہو کہ ابتدائے مزارعت اس پر جائز ہو تو اس پر بڑھانا بھی جائز ہو گا اور اگر ایسی حالت میں ہو کہ ابتدائے عقد مزارعت اس پر جائز نہ ہو تو اس پر زیادہ کرنا بھی جائز نہ ہو گا کیونکہ بدل بڑھانے کا اعتبار اصل پر ہے اور اصل کسی معقود علیہ کی مقتضی ہے تاکہ اس کے مقابلہ میں ہو پس اس طرح زیادت بھی کسی معقود علیہ کی مقتضی ہوگی تاکہ اس کے مقابلہ میں ہو اور کمی کرنا دونوں حالتوں میں جائز ہے کیونکہ کمی کرنا بعض بدل کا ساقط کرنا ہے پس قیام بدل کو چاہتا ہے قیام معقود علیہ کو نہیں چاہتا ہے اور اگر دونوں میں سے ایک نے حصہ پیداوار میں کچھ بڑھایا پس اگر کھیتی پوری تیار ہو جانے اور خرما کی کیریوں کی باڑھ پوری ہو جانے سے پہلے بڑھایا تو جائز ہے کیونکہ پیداوار و غلہ پر عقد مزارعت ابتدا سے جائز ہے جس تک کہ یہ پیداوار ابھرتی اور بڑھتی جاتی ہو پس عقد میں اس کی

زیادتی بھی جائز ہے جیسا کہ بیع و اجارہ میں ہوتا ہے اور اگر کھیتی پوری تیار ہو جانے اور خرما کی کیریاں پوری بڑھ جانے کے بعد بڑھایا تو جس کی طرف سے بیج اور جس کے درخت ہیں اس کی طرف سے نہیں جائز ہے اور جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں اس کی طرف سے جائز ہے اور اس کی وجہ یہ ہے کہ بیجوں کے مالک کی طرف سے زیادہ کرنا ایسی حالت میں ہے کہ ابتدائے مزارعت ایسی پیداوار پر نہیں (۲) جائز ہے پس بدل میں زیادہ کرنے کی تصحیح نہیں ممکن ہے اس واسطے کہ معقود علیہ یعنی منافع (۳) ہو چکے ہیں اور یہ بھی تجویز کرنا کہ یہ خط ہے۔ نہیں ممکن ہے کیونکہ جس کی طرف سے بیج ہیں وہ مستاجر ہے اور مستاجر گویا منافع کا مشتری ہے اور مشتری کی طرف سے زیادتی کو گھٹانا تجویز نہیں کیا جا سکتا ہے اس واسطے کہ ثمن اس پر ہوتا ہے اس کا نہیں ہوتا ہے پس ثمن کے مانند اس صورت میں پیداوار ہے پس اس کا خط تجویز کرنا ممکن نہ ہو گا اور رہا وہ شخص جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں وہ موجر ہے اور موجر کی طرف سے اجرت کا گھٹانا متصور ہے پس اس کی طرف سے بیجوں والے کو پیداوار میں سے کچھ بڑھانا یوں تجویز کیا جا سکتا ہے کہ اس نے اپنی اجرت میں سے کچھ گھٹا دیا حالانکہ گھٹا دینا معقود علیہ کے فوت ہو جانے کی حالت میں بھی جائز ہے اور ہر چند کہ کھیتی گھٹانے کے وقت (۴) مال عین تھی اور عین مال میں گھٹانا نہیں صحیح ہوتا ہے لیکن عقد کے وقت یہ کھیتی (۵) عین نہ تھی پس بلحاظ عقد کے گھٹانا صحیح ہوا اور جس قدر اپنے حصہ میں سے گھٹا کر دوسرے کے واسطے بڑھایا ہے وہ دوسرے کی ملک ہو گیا جیسا کہ بائع نے اگر ثمن پر قبضہ کر لیا پھر مشتری کے واسطے بعض ثمن گھٹا دیا تو صحیح ہے اگر چہ گھٹانے کے وقت ثمن مال عین ہو گیا تھا یہ محیط سرخسی میں لکھا ہے۔

(۱) اس واسطے کہ پوری ہو چکی اب کسی کو اجارہ لینے کی کوئی حاجت نہیں ہے۔ (۲) یعنی منافع بدنی محنت و مشقت۔ (۳) اپنا حق گھٹانا۔ (۴) یعنی اس میں موافق فرض کے کچھ نمو و

زیادتی نہ تھی بلکہ پوری تیار ہو کر عین ہوگئی تھی۔ (۵) اور گھٹانا بڑھانا اصل عقد کے ساتھ اعتبار کیا جاتا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8, 318, Book of Sharecropping (Kitab al-Mazara'at)**

If two people entered into a sharecropping (Mazara'at) or transaction (Mu'amalat) agreement on a half-share basis, and the worker performed his duty until the produce was obtained, and then one of them increased the other's share by one-sixth from his own portion, making the other's share two-thirds, and the other agreed; if this occurred before the crop was fully ready or the fruits reached full growth, it is valid. However, if it occurred after the crop was fully ready and the fruits had fully grown, and if the one increasing it was the landowner or the owner of the trees in a transaction, then it is void. If the other person, i.e., the worker, did so, then it is valid. Similarly, if the landowner, who was not providing the seeds, increased the share for the worker who was providing the seeds, it is also valid. If a half-share was stipulated in the agreement or sharecropping, and both also stipulated a fixed amount of dirhams for one, the sharecropping and transaction become invalid (fasid), regardless of who provides the seeds. In the case of sharecropping, all produce will belong to the seed provider, and in a transaction, all produce will belong to the tree owner. Similarly, if one stipulated an increase of twenty Qafiz (a measure) for the other, the same ruling applies; this is mentioned in 'Al-Mabsut'.

**Chapter Nine: Regarding the death of the landowner or the expiry of the term before the crops are fully ready or while the fruits are still unripe**

This includes related matters such as the death of the farmer or worker, or death within the contract term, along with certain issues regarding farming expenses. If a person gave his land to another for sharecropping and the seeds were provided by the farmer, and the landowner died after the crop sprouted but before it was ready for harvest, according to analogical reasoning (Qiyas), the sharecropping contract should break, and the owner's heirs should have the right to take their land. However, according to juridical preference (Istihsan), the ruling is that the sharecropping contract will remain in effect until harvest time, and a new lease will not be established. The landowner's heirs will have three options: they may uproot the crop, in which case the uprooted crop will be shared among them; or they may bear the cultivation expenses by the Qazi's (judge's) order until they recover all costs from the farmer's share; or they may compensate the farmer for his share of the cultivation, in which case the crop will belong to the heirs. All this applies if the landowner dies after cultivation. If he dies before the crop is sown but the farmer has prepared the land—for instance, by tilling, digging canals, and fixing irrigation channels (musnat)—and then the owner dies, the sharecropping will break, and the

contract will not remain valid just to protect the farmer's labor. If the landowner dies after sowing but before sprouting, scholars have differed on whether the sharecropping remains valid. If the landowner did not die but the farmer delayed sowing until the end of the year, and the year is passing while the crop is still green (saga) and not ready for harvest, if the landowner wants to uproot the crop and the farmer prevents him, the landowner will not have the right to uproot it, to protect the farmer's right in the crop.

1. Meaning seeds were not provided by the landlord in this contract.
2. The summary explanation is that if a specific/fixed thing is added, it is void; but if a proportional share of the produce, like a tenth or twentieth, is added, it is valid.
3. Meaning between heirs and the farmer.
4. Musnat, meaning internal channels, etc.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ८, ३१८, किताब अल-मज़ाराअत**

यदि दो व्यक्तियों ने आधे के बंटवारे पर मज़ारअत (साझा खेती) या मामला (समझौता) किया और कार्यकर्ता ने अपना काम पूरा किया यहाँ तक कि जो कुछ पैदा हुआ था वह प्राप्त हुआ, फिर उनमें से एक ने दूसरे के लिए अपने हिस्से में से छठा हिस्सा बढ़ा दिया जिससे दूसरे का दो-तिहाई हो गया और दूसरा इस बात पर सहमत हो गया। यदि यह बात फसल पूरी तरह तैयार होने और फलों की वृद्धि पूरी होने से पहले हुई, तो यह जायज़ (मान्य) है। और यदि फसल पूरी तरह तैयार होने और फलों की वृद्धि पूरी होने के बाद हुई, तो यदि बढ़ाने वाला ज़मीन का मालिक हो या पेड़ों के मालिक ने समझौते में वृद्धि की हो, तो यह बातिल (अमान्य) है। और यदि दूसरे यानी कार्यकर्ता ने ऐसा किया तो जायज़ है। इसी तरह यदि ज़मीन के मालिक ने, जिसकी तरफ से बीज नहीं थे, उस कार्यकर्ता के लिए बीज बढ़ाने की शर्त रखी जिसकी तरफ से बीज तय थे, तो भी जायज़ है। और यदि मज़ारअत में आधे के बंटवारे की शर्त रखी और दोनों ने एक के लिए कुछ दिरहम भी शर्त रख दी, तो मज़ारअत व मामला फासिद (दूषित) हो जाएगा, चाहे बीज किसी की भी तरफ से हों। फिर मज़ारअत की स्थिति में पूरी पैदावार बीज वाले की होगी और मामला की स्थिति में पूरी उपज पेड़ों के मालिक की होगी। इसी तरह यदि एक ने दूसरे के लिए बीस क़फ़ीज़ (एक माप) बढ़ाने की शर्त रखी, तो भी यही नियम है, यह 'मबसूत' में है।

## अध्याय नौ: फ़सल पूरी तरह तैयार होने से पहले या पेड़ों के फल कच्चे होने की स्थिति में ज़मीन के मालिक की मृत्यु या अवधि समाप्त होने के बयान में

जो इसके संबंद्ध विषय हैं जैसे काश्तकार (किसान) या कार्यकर्ता की मृत्यु या अनुबंध की अवधि के भीतर मृत्यु होने के बयान में और इस अध्याय में खेती के खर्च के कुछ मसले शामिल हैं। यदि एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन मज़ारअत पर दी और बीज काश्तकार की ओर से तय हुए, फिर फसल तैयार होकर कटने के योग्य होने से पहले उसके उगने के बाद ज़मीन का मालिक मर गया, तो क़यास (तर्क) के अनुसार यह नियम है कि मज़ारअत का अनुबंध टूट जाए और मालिक के वारिसों को यह अधिकार हो कि वे अपनी ज़मीन ले लें। लेकिन इस्तिहसान (न्यायिक वरीयता) के अनुसार नियम यह है कि फसल कटने के समय तक मज़ारअत का अनुबंध बना रहेगा और नया अनुबंध (पट्टा) साबित नहीं होगा। ज़मीन के मालिक के वारिसों को तीन प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे: यदि चाहें तो फसल उखाड़ दें और उखाड़ी हुई फसल उन लोगों में साझा होगी, या चाहें तो काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से खेती का खर्च वहन करें जब तक कि वे पूरा खर्च काश्तकार से वापस न ले

लें, या चाहें तो काश्तकार को उसकी खेती का हिस्सा मुआवज़ा दे दें तो फसल वारिसों की हो जाएगी। यह सब उस स्थिति में है जब खेती करने के बाद ज़मीन का मालिक मर गया। और यदि फसल बोने से पहले मर गया लेकिन काश्तकार ने ज़मीन में कुछ सुधार कर दिया था जैसे ज़मीन जोत दी थी, नहरें खोदी थीं और सिंचाई नालियाँ (मुसनाह) ठीक कर दी थीं, फिर मालिक मर गया, तो मज़ारअत टूट जाएगी और काश्तकार के इन कार्यों की रक्षा के लिए अनुबंध बना नहीं रहेगा। और यदि ज़मीन का मालिक फसल बोने के बाद लेकिन उगने से पहले मर गया, तो क्या मज़ारअत बनी रहेगी या नहीं, इसमें विद्वानों ने मतभेद किया है। और यदि ज़मीन के मालिक की मृत्यु नहीं हुई लेकिन काश्तकार ने बुवाई में देरी की यहाँ तक कि साल के अंत में फसल बोई और साल बीत रहा है जबकि फसल अभी हरी (सागा) थी और काटने योग्य नहीं थी, फिर ज़मीन के मालिक ने फसल उखाड़ना चाहा और काश्तकार ने रोका, तो ज़मीन के मालिक को उखाड़ने का अधिकार नहीं होगा और काश्तकार के हक की रक्षा की जाएगी।

1. अर्थात ज़मींदार की ओर से इस अनुबंध में बीज नहीं दिए गए हैं।
2. संक्षिप्त व्याख्या यह है कि जब कोई निश्चित चीज़ बढ़ाई जाएगी तो अमान्य है, और जब पैदावार का कोई सामान्य हिस्सा जैसे दसवाँ, बीसवाँ आदि बढ़ाया जाएगा तो मान्य है।
3. अर्थात वारिसों और काश्तकारों के बीच।
4. मुसनाह यानी आंतरिक नालियाँ आदि।

---

اگر دو آدمیوں نے آدھے کی بٹائی پر مزارعت یا معاملت کی اور عامل نے اپنا کام انجام دیا یہاں تک کہ جو کچھ پیدا ہوا تھا وہ حاصل ہوا پھر دونوں میں سے ایک نے دوسرے کے واسطے اپنے حصہ میں سے چھٹا حصہ بڑھایا کہ دوسرے کی دو تہائی ہوگئی اور دوسرا اس بات پر راضی ہو گیا پس اگر یہ امر کھیتی پوری تیار ہونے اور پھلوں کی باڑھ پوری ہونے سے پہلے واقع ہوا تو جائز ہے اور اگر کھیتی پوری تیار ہونے اور پھلوں کی باڑھ پوری ہونے کے بعد واقع ہوا پس اگر بڑھانے والا مالک زمین ہو یا مالک درختان نے معاملہ میں بڑھایا ہو تو باطل ہے اور اگر دوسرے نے یعنی عامل نے ایسا کیا تو جائز ہے اور اسی طرح اگر مالک زمین نے جس کی طرف سے بیج نہ ہوں اس نے عامل کے واسطے جس کی طرف سے بیج ٹھہرے ہیں بڑھایا تو بھی جائز ہے اور اگر معاملہ یا مزارعت میں آدھے کی بٹائی کی شرط کی اور دونوں نے ایک کے میں درہم شرط کیے تو مزارعت و معاملت فاسد ہو گی بیج چاہے جس کی طرف سے ٹھہرے ہوں یا کسی نے شرط کر دی ہو۔ پھر مزارعت کی صورت میں تمام پیداوار بیج والے کی ہوگی اور معاملت میں تمام حاصلات مالک درختان کی ہو گی اس طرح اگر ایک نے دوسرے کے واسطے بیس قفیز بڑھا دینے کی شرط کی تو بھی یہی حکم ہے یہ مبسوط میں ہے۔

## باب نہم: کھیتی پوری تیار ہونے سے پہلے یا درختوں کے پھل کیری ہونے کی حالت میں مالک زمین کے مرجانے یا مدت گذر جانے کے بیان میں

جو اس کے متصلات ہیں کہ کاشتکار یا عامل کے مرجانے یا مدت عقد کے اندر مر جانے کے بیان میں اور اس باب میں کھیتی کے خرچہ کے بعض مسائل داخل ہیں۔ اگر ایک شخص نے دوسرے کو

اپنی زمین مزارعت پر دی اور بیج کاشتکار کی طرف سے ٹھہرے ہیں پھر کھیتی تیار ہو کر کاٹنے کے لائق ہونے سے پہلے اس کے اگنے کے بعد مالک زمین مر گیا تو بدلیل قیاس یہ حکم ہے کہ عقد مزارعت ٹوٹ جائے اور وارثان مالک کو یہ اختیار ہو کہ اپنی زمین لے لیں اور استحسانایہ حکم ہے کہ کھیتی کاٹنے کے وقت تک عقد مزارعت باقی رہے گا اور یہ نہ ہوگا کہ از سر نو اجارہ ثابت ہو جائے اور وارثان مالک زمین کو تین طرح کا اختیار حاصل ہو جائے چاہیں تو کھیتی کو اکھاڑ دیں اور اکھاڑی ہوئی کھیتی ان لوگوں میں مشترک ہوگی یا چاہیں تو قاضی کے حکم سے زراعت کا خرچہ اٹھائیں حتی کہ تمام خرچہ رسد کاشتکار سے واپس لیں گے یا چاہیں تو کاشتکار کو اس کا حصہ زراعت تاوان دے دیں پس کھیتی وارثوں کی ہو جائے گی یہ سب اس صورت میں ہے کہ کھیتی کرنے کے بعد مالک زمین مر گیا اور اگر کھیتی ہونے سے پہلے مر گیا مگر کاشتکار نے زمین میں کچھ درستی کر دی تھی مثلاً زمین کو گوڑ دیا تھا اور اس کی نہریں کھودی تھیں اور مسناۃ درست کر دی تھیں پھر مالک مر گیا تو مزارعت ٹوٹ جائے گی اور کاشتکار کے ان کاموں کی نگہداشت کے واسطے یہ نہ ہوگا کہ عقد باقی رہے اور مالک زمین کھیتی بونے کے بعد اگنے سے پہلے مر گیا پس آیا مزارعت باقی رہے گی یا نہیں سوا اس میں مشائخ نے اختلاف کیا ہے اور اگر اس صورت میں مالک زمین نے انتقال نہ کیا یہ صورت ہوئی کہ کاشتکار نے بونے میں تاخیر کی یہاں تک کہ سال کے آخر میں اس نے کھیتی بوئی اور سال گذر رہا حالانکہ کھیتی ہنوز ساگا تھی قابل کاٹنے کے نہ تھی پھر مالک زمین نے چاہا کہ کھیتی کو اکھاڑ ڈالے اور کاشتکار نے روکا تو مالک زمین کو اکھاڑ ڈالے کا اختیار نہ ہوگا اور کھیتی میں کاشتکار کے حق کی نگہداشت

۱۔ یعنی زمین دار کی طرف سے اس عقد میں بیج نہیں ٹھہرے ہیں۔ ۲۔ تفسیر خلاصہ یہ کہ جب معین چیز بڑھا دے گا تو باطل ہے اور جب پیداوار میں سے حصہ شائع مانند دسواں بیسواں وغیرہ بڑھا دے تو جائز ہے۔ ۳۔ یعنی وارثوں و کاشتکار میں۔ ۴۔ مسناۃ اندرونی نالیاں ویرہ وغیرہ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (319) Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

...for both of them, a constructive lease (ijara) shall be established in half of the crop until the time of harvest, such that the cultivator (kashtkar) shall pay half of the fair market rent (ajr al-mithl) for the land to the landowner. In the event that the landowner passes away during the term of the lease and the cultivator states that he will not uproot the crop, a new lease will not be established; rather, the sharecropping contract (uqud al-muzara'ah) will remain in effect until the cultivator pays nothing extra as fair market rent to the heirs of the land. Until the crop is ready for harvest, the labor shall be equally mandatory on both parties. This ruling is contrary to the case where the landowner dies mid-year while the crop is still green (saga); in that case, the entire labor is mandatory upon the cultivator, and he is not required to uproot the crop, but half of the fair market rent of the land shall be mandatory. This rule applies if the cultivator did not intend to uproot the crop. If the cultivator intended to uproot the crop, the landowner shall have the same three options that we mentioned in the first case regarding the heirs of the landowner. It should be clarified that there is a difference between the case where the landowner dies during the term while the crop is green and the case where the term of sharecropping expires while the crop is green. In the case of death, it is stated that if the heirs, by order of the Qazi (Judge), bear the expenses of the farming, they shall recover the entire proportionate expense from the cultivator. In the case of the term expiring, the ruling is that if the landowner, by order of the Qazi, bears the farming expenses, he shall recover half the value from the cultivator according to the proportionate share. If, in a contract, the lease term expires while the fruits are unripe and the worker refuses to pluck the unripe fruits, the trees shall be left with him without rent. Conversely, if in a sharecropping contract the lease term expires while the crop is green, the land shall be left with the cultivator upon payment of rent. This is recorded in 'Al-Muhit'.

If in the sharecropping the seeds were provided by the cultivator and he farmed, then died before the crop was ready for harvest, and his heirs said they would continue the farming according to the previous custom, they have the right to do so because they are the representatives of their predecessor. There shall be no wages for them, nor (1) shall any rent be mandatory upon them. If they say they will not work, they shall not be forced, and the landowner shall be told to uproot the crop, which shall be divided half and half (2) between him and the heirs; or he may pay

them the value of their share of the farming, or bear the expense of their share in the farming and recover his expenses from their share of the produce. If the seeds were from the cultivator and the sharecropping term expired while the crop was green, then whichever party spends anything on the crop in the absence of the other shall be considered a volunteer (mutawa) regarding that expense, and no land tax (pota) shall be mandatory upon the cultivator to the landowner. If, in the absence of the landowner, the cultivator presents this matter to the Qazi, the Qazi shall order him to present witnesses for his claim. If there is a delay in presenting witnesses and there is a fear of the crop being ruined, the Qazi shall tell him that if he is truthful, he is ordered to spend on the maintenance of the crop. Thus, by giving such an order, the goal of preservation will be achieved, because if the said cultivator is truthful, the order was appropriate, and if he is lying, no order was established from the Qazi, and the Qazi shall make half of the fair market rent of the land mandatory upon the cultivator. This is in 'Al-Zahiriyya'.

1. Rather, the cultivator prevented the uprooting. 2. His statement: if they wish, let them uproot the crop etc., see Sharh Wahab. 3. Since a half-share division was fixed in the sharecropping contract. (1) Land tax. (2) He cannot recover from the other more than their proportionate share.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) (319) किताब अल-मुज़ारअत (हिस्सा-खेती का अध्याय)**

उनके लिए उन दोनों के बीच आधी फसल में फसल कटने के समय तक कानूनी रूप से किराया (इजारा) सिद्ध हो जाएगा, यहाँ तक कि काश्तकार (किसान) ज़मीन के मालिक को उस ज़मीन का आधा उचित किराया (अज्र-ए-मिस्ल) देगा। यदि ज़मीन के मालिक का पट्टे की अवधि के बीच में देहांत हो गया और काश्तकार ने कहा कि मैं फसल नहीं उखाड़ूँगा, तो नए सिरे से किराया सिद्ध नहीं होगा, बल्कि हिस्सा-खेती का अनुबंध (अक़्द-ए-मुज़ारअत) बना रहेगा, यहाँ तक कि काश्तकार ज़मीन के मालिक के वारिसों को कोई अतिरिक्त उचित किराया नहीं देगा। फसल कटने लायक होने तक, दोनों पर उसका काम आधा-आधा अनिवार्य होगा। यह आदेश उस स्थिति के विपरीत है जब ज़मीन के मालिक का देहांत साल के बीच में हुआ हो, जबकि फसल अभी कच्ची (सागा) थी, तो पूरा काम काश्तकार पर अनिवार्य होगा, यहाँ तक कि उसके लिए फसल उखाड़ना अनिवार्य नहीं है, बल्कि ज़मीन का आधा उचित किराया अनिवार्य होगा। यह नियम उस स्थिति में है जब काश्तकार ने फसल उखाड़ने का इरादा न किया हो। यदि काश्तकार ने फसल उखाड़ने का इरादा किया, तो ज़मीन के मालिक को वही तीन अधिकार प्राप्त होंगे जो हमने पहली स्थिति में ज़मीन के मालिक के वारिसों के हक में बयान किए हैं। यह स्पष्ट रहे कि यदि फसल कच्ची होने की स्थिति में ज़मीन के मालिक का अवधि के बीच देहांत हो गया हो, और यदि फसल कच्ची होने की स्थिति में हिस्सा-खेती की अवधि समाप्त हो गई हो, इन दोनों स्थितियों में अंतर है। मृत्यु की स्थिति में कहा गया है कि यदि वारिसों ने काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से खेती का खर्च उठाया, तो वे आनुपातिक रूप से पूरा खर्च काश्तकार से वापस लेंगे। अवधि समाप्त होने की स्थिति में आदेश है कि यदि ज़मीन के मालिक ने काज़ी के आदेश से खेती का खर्च उठाया, तो वह काश्तकार से आनुपातिक हिस्से के अनुसार आधी कीमत वापस लेगा। यदि फल कच्चे होने की स्थिति में अनुबंध की अवधि समाप्त हो गई और काम करने वाले ने कच्चे फल तोड़ने से इनकार कर दिया, तो बिना किराए के ये पेड़ उसके पास छोड़ दिए जाएंगे। इसके विपरीत, यदि हिस्सा-खेती की स्थिति में फसल कच्ची होने पर पट्टे की अवधि समाप्त हो गई, तो यह ज़मीन काश्तकार के पास किराए पर छोड़ दी जाएगी। यह 'मुहीत' में है।

यदि हिस्सा-खेती में बीज काश्तकार की ओर से हों और काश्तकार ने खेती की, फिर फसल तैयार होने और कटने से पहले काश्तकार की मृत्यु हो गई और उसके वारिसों ने कहा कि हम पुरानी रीत के अनुसार खेती करेंगे, तो उन्हें यह अधिकार है, क्योंकि वे अपने पूर्वज के उत्तराधिकारी हैं। उनके लिए कोई पारिश्रमिक नहीं होगा और न ही (1) उन पर कोई किराया अनिवार्य होगा। यदि उन्होंने

कहा कि हम काम नहीं करते हैं, तो उन पर ज़ोर नहीं डाला जाएगा और ज़मीन के मालिक से कहा जाएगा कि तू फसल उखाड़ ले, वह तेरे और वारिसों के बीच आधी-आधी (2) होगी, या वह उन लोगों को उनके खेती के हिस्से की कीमत दे दे, या खेती में उनके हिस्से का खर्च उठाए और उसका खर्च उन लोगों के पैदावार के हिस्से से वसूला जाएगा। यदि बीज काश्तकार की ओर से हों और जब फसल कच्ची हो तभी हिस्सा-खेती की अवधि समाप्त हो गई, तो दोनों में से जो व्यक्ति दूसरे की अनुपस्थिति में खेती पर कुछ खर्च करेगा, उसे उस खर्च में स्वयंसेवक (मुतवा) माना जाएगा, और ज़मीन के मालिक का काश्तकार के जिम्मे कोई लगान (पोता) अनिवार्य नहीं होगा। यदि ज़मीन के मालिक की अनुपस्थिति में काश्तकार ने यह मामला काज़ी के सामने रखा, तो काज़ी उसे अपने दावे के गवाह पेश करने का आदेश देगा। यदि गवाह पेश करने में देरी हुई और फसल खराब होने का डर हुआ, तो काज़ी उससे कहेगा कि यदि तुम सच बोल रहे हो तो मैंने तुम्हें खेती सुधारने में खर्च करने का आदेश दिया। इस प्रकार आदेश देने से सुधार की संभावना प्राप्त हो जाएगी, क्योंकि यदि उक्त काश्तकार सच्चा होगा, तो आदेश सही स्थान पर हुआ, और यदि वह झूठा होगा, तो काज़ी की ओर से कोई आदेश सिद्ध नहीं हुआ, और काज़ी काश्तकार पर आधी ज़मीन का उचित किराया अनिवार्य करेगा। यह 'ज़हीरिया' में है।

1. बल्कि उखाड़ने से काश्तकार ने रोका। 2. उनका कथन: यदि चाहें तो फसल उखाड़ें आदि, शराह वहाब देखें। 3. जबकि हिस्सा-खेती के अनुबंध में आधी बटाई तय हुई थी। (1) ज़मीन का लगान। (2) दूसरे से उसके हिस्से के अनुसार वापस नहीं ले सकता है।

---

کے واسطے ان دونوں کے درمیان آدھی کھیتی میں کھیتی کاٹے جانے کے وقت تک حکماً اجارہ ثابت ہو جائے گا حتیٰ کہ کاشتکار مالک زمین کو اس زمین کا آدھا اجر المثل دے گا۔ در صورتیکہ مالک زمین نے پٹہ کی میعاد کے درمیان میں انتقال کیا اور کاشتکار نے کہا کہ میں کھیتی نہیں اکھاڑوں گا تو از سر نو اجارہ ثابت نہ ہو جائے گا بلکہ عقد مزارعت باقی رہے گا حتیٰ کہ کاشتکار وارثان ملک زمین کو اجر المثل کچھ نہ دے گا اور کھیتی کاٹنے کے قابل ہونے کے وقت تک دونوں پر اس کا کام آدھا آدھا لازم ہوگا اور یہ حکم بخلاف اس صورت کے ہے کہ مالک زمین نے سال کے بیچ میں انتقال کیا حالانکہ اس وقت تک کھیتی سا گا تھی تو پورا کام کاشتکار پر واجب ہو گا حتیٰ کہ اس پر کھیتی اکھاڑ لینا لازم نہیں ہے بلکہ زمین کا نصف اجر المثل لازم ہو گا اور یہ حکم اس صورت میں ہے کہ کاشتکار نے کھیتی اکھاڑ لینے کا ارادہ نہ کیا ہو اور اگر کاشتکار نے کھیتی اکھاڑ لینے کا ارادہ کیا تو مالک زمین کو وہی تین اختیارات حاصل ہوں گے جو ہم نے صورت اول میں وارثان مالک زمین کے حق میں بیان کیے ہیں اور واضح ہو کہ در صورتیکہ کھیتی سا گا ہونے کی حالت میں مالک زمین نے درمیان میعاد میں انتقال کیا اور در صورتیکہ کھیتی سا گا ہونے کی حالت میں مدت مزارعت گذر گئی ان دونوں صورتوں میں فرق ہے چنانچہ موت کی صورت میں فرمایا ہے کہ اگر وارثوں نے بحکم قاضی کھیتی کا خرچہ اٹھایا تو حصہ رسد تمام خرچہ کاشتکار سے واپس لیں گے اور مدت گذر جانے کی صورت میں حکم فرمایا ہے کہ اگر مالک زمین نے بحکم قاضی کھیتی کا خرچہ اٹھایا تو کاشتکار سے بقدر حصہ رسد نصف قیمت واپس لے گا اور اگر عقد معاملہ کی صورت میں پھل کچے ہونے کی حالت میں پٹہ کی میعاد گذر گئی اور عامل نے کچے پھل توڑنے سے انکار کیا تو بغیر اجارہ کے یہ درخت اس کے پاس

چھوڑے جائیں گے بخلاف اس کے اگر عقد مزارعت کی صورت میں کھیتی سا گا ہونے کی حالت میں پٹہ کی میعاد گذر گئی تو یہ زمین کاشتکار کے پاس باجرت چھوڑی جائے گی یہ محیط میں ہے۔

اگر مزارعت میں بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور کاشتکار نے زراعت کی پھر کھیتی کے تیار ہو کر کاٹنے کے لائق ہونے سے پہلے کاشتکار مر گیا اور اس کے وارثوں نے کہا کہ ہم لوگ سابق دستور کا رزراعت انجام دیں گے تو ان کو یہ اختیار ہے اس واسطے کہ وہ لوگ اپنے مورث کے قائم مقام ہیں اور ان کے واسطے کچھ اجرت نہ ہو گی اور نہ (۱) ان پر کچھ اجرت واجب ہوگی اور اگر انہوں نے کہا کہ ہم کام نہیں کرتے ہیں تو ان پر جبر نہ کیا جائے گا اور مالک زمین سے کہا جائے گا کہ تو کھیتی اکھاڑ لے وہ تیرے اور وارثوں کے درمیان نصفا نصف (۲) ہوگی یا ان لوگوں کو ان کے حصہ زراعت کی قیمت دے دے یا کھیتی میں ان کے حصہ کا خرچہ اٹھا اور تیرا خرچہ ان لوگوں کے حصہ پیداوار میں سے وصول ہو گا اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور جب کھیتی سا گا ہوئی تب ہی مزارعت کی میعاد گذر گئی تو دونوں میں سے جو شخص دوسرے کے غائب ہونے کی حالت میں کھیتی کی بابت کچھ خرچ کرے گا وہ اس خرچہ میں مطوع (۳) قرار دیا جائے گا اور مالک زمین کا کاشتکار کے ذمہ کچھ پوتہ واجب نہ ہو گا اور اگر مالک زمین کے غائب ہونے کی حالت میں کاشتکار نے یہ امر قاضی کے سامنے پیش کیا تو قاضی اس کو حکم دے گا کہ اپنے دعوی کے گواہ پیش کرے۔ پھر اگر گواہ پیش کرنے میں تاخیر ہوئی اور کھیتی خراب ہو جانے کا خوف ہوا تو قاضی اس سے فرمادے گا کہ اگر تو سچا ہے تو میں نے تجھے کھیتی کی درستی میں خرچ کرنے کا حکم دیا پس اس طرح حکم دینے سے نظر اصلاح حاصل ہو جائے گی اس واسطے کہ اگر کاشتکار مذکور سچا ہو گا تو حکم مذکور اپنے موقع پر ہوا

اور اگر جھوٹا ہو گا تو قاضی کی طرف سے کوئی حکم ثابت نہ ہوا اور قاضی کاشتکار پر نصف زمین کا اجر المثل لازم کرے گا یہ ظہیر یہ میں ہے۔

۱۔ بلکہ اکھاڑنے سے کاشتکار نے روکا۔ ۲۔ قولہ چاہیں تو کھیتی کو اکھاڑیں الخ شرح وہاب دیکھو۔ ۳۔ جبکہ عقد مزارعت میں آدھے کی بٹائی ٹھہری تھی۔ (۱) زمین کا پوتہ۔ (۲) دوسرے سے اس کے حصہ کے موافق واپس نہیں لے سکتا ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 320 | Book of Sharecropping**

### ☆ If the term of Sharecropping expires before the crop is fully matured ☆

If a person provides his land and seeds to a farmer on the condition that the yield for that year be shared equally, and the farmer cultivates it but flees before the crop is ready for harvest, the landowner may then spend on the crop by the order of the Qazi (judge) until it matures. Upon the farmer’s return, he shall have no right to take anything from the crop [1] until he compensates the landowner for the full expenses. It should be clear that the Qazi will not authorize the expenses until the landowner provides witnesses for his claim, as the landowner is making a claim that obligates the Qazi to order spending for reform, the necessity of which the Qazi does not inherently know. To clarify the matter, the Qazi may accept witnesses from the claimant even in the absence of the opponent, or the Qazi himself shall act as the opponent, as is standard in claims regarding expenses for trusts (Wadiah) or found property (Luqtah). Once witnesses are established, the Qazi's order for expenses is akin to ordering maintenance for a trustee; hence, he shall have the right to reimbursement (as per Al-Mabsut). If they disagree on the amount, the farmer's word is accepted under oath (as per Al-Muhit). If the farmer did not flee, but the term expired while he was absent and the crop was immature, the Qazi shall tell the landowner: "If you wish, mature the crop at your own expense. When it is ready for harvest, the farmer cannot touch it until he pays your expenses. If he refuses, I will sell his share and reimburse you from the proceeds. If his share is insufficient, you shall have no further claim." Some scholars state this follows the view of the 'Sahibayn', whereas according to Imam Azam (Abu Hanifa), the Qazi shall not sell the share. Others say it is a matter of consensus. In such cases, no charity (Sadaqah) is due from the received shares as no impurity or corruption occurred.

If the term expires while the crop is still green and one party is absent. If the landowner is absent and the farmer petitions the Qazi to spend on the crop, the Qazi will not grant permission without witnesses verifying that the crop is shared. Hearing these witnesses is not for passing a judgment against the absent party [3]. If the owner later appears and denies the partnership, claiming the land was usurped, the farmer must produce witnesses again to claim reimbursement. This testimony is heard only because the Qazi is responsible for protection.

1. The farmer cannot take anything from the produce until he reimburses the owner's expenses.
2. Expenses, for example: Zaid claims a goat is a trust and asks for an order for expenses to later recover them from the owner.
3. "Absent etc." means it is not permissible to pass a ruling against an absent person; hence, the witnesses are heard only to authorize the necessary spending.

### ☆ यदि बटाईदारी की अवधि फसल पूरी तरह तैयार होने से पहले समाप्त हो जाए ☆

यदि किसी व्यक्ति ने अपनी भूमि और बीज किसी किसान को इस शर्त पर दिए कि उस वर्ष पैदावार दोनों में आधी-आधी होगी। फिर किसान ने खेती की लेकिन फसल कटने योग्य होने से पहले ही वह भाग गया। इसके बाद भूमि के मालिक ने काज़ी (न्यायाधीश) के आदेश से खेती के काम में खर्च किया यहाँ तक कि फसल तैयार हो गई। जब किसान वापस आया, तो जब तक वह भूमि के मालिक को पूरा खर्च नहीं दे देता, उसे फसल [1] में से कुछ भी लेने का अधिकार नहीं होगा। यह स्पष्ट रहे कि काज़ी मालिक को खर्च का आदेश तब तक नहीं देगा जब तक मालिक अपने दावे के गवाह न पेश करे, क्योंकि मालिक ऐसा दावा कर रहा है जिससे काज़ी को फसल सुधारने के लिए खर्च का आदेश देना पड़ता है, जबकि काज़ी इसका मूल कारण नहीं जानता। इसलिए वह उसे गवाह पेश करने का आदेश देगा। स्थिति स्पष्ट करने के लिए, काज़ी दावेदार के गवाहों को प्रतिद्वंद्वी की अनुपस्थिति में स्वीकार करेगा, या काज़ी स्वयं प्रतिद्वंद्वी की भूमिका निभाएगा, जैसा कि अमानत (वदीअत) और खोई हुई वस्तु (लुक़्ता) के खर्च के दावे में होता है। गवाह पेश होने पर काज़ी का आदेश अमानतदार को रखरखाव के आदेश जैसा होगा, और उसे खर्च वापस लेने का अधिकार होगा (अल-मबसूत)। यदि खर्च की राशि पर विवाद हो, तो किसान की बात मानी जाएगी बशर्ते वह शपथ ले (अल-मुहीत)। यदि किसान भागा नहीं बल्कि फसल तैयार होने से पहले अवधि समाप्त हो गई और किसान अनुपस्थित है, तो काज़ी मालिक से कहेगा: "यदि तुम चाहो तो अपने खर्च से फसल तैयार करो। फसल कटने योग्य होने पर किसान तब तक उसे हाथ नहीं लगा सकेगा जब तक वह तुम्हारा खर्च न दे दे। यदि उसने खर्च देने से इनकार किया, तो मैं उसका हिस्सा बेचकर तुम्हारा खर्च चुका दूँगा। यदि उसका हिस्सा कम पड़ा, तो तुम्हें उससे अधिक कुछ नहीं मिलेगा।" किसान के इनकार पर काज़ी उसका हिस्सा बेच देगा। कुछ विद्वान इसे 'साहिबैन' का मत मानते हैं, जबकि इमाम आज़म के अनुसार काज़ी हिस्सा नहीं बेचेगा। कुछ के अनुसार यह सर्वसम्मत (इज्मा) है। इन स्थितियों में प्राप्त फसल में से कुछ भी दान (सदक़ा) करना आवश्यक नहीं क्योंकि इसमें कोई दोष या भ्रष्टाचार नहीं हुआ है।

यदि बटाई की अवधि समाप्त हो गई और फसल अभी हरी (सागा) है और कोई एक पक्ष अनुपस्थित है। यदि मालिक अनुपस्थित है और किसान काज़ी से खर्च करने की अनुमति माँगे, तो काज़ी बिना गवाहों के आदेश नहीं देगा जो यह प्रमाणित करें कि खेती साझा है। गवाहों की यह सुनवाई

अनुपस्थित व्यक्ति [3] पर फैसला सुनाने के लिए नहीं है। यदि बाद में मालिक आकर साझेदारी से इनकार करे और कहे कि उसने जमीन छीन ली है, तो किसान को खर्च वापस पाने के लिए फिर से गवाह देने होंगे। यह गवाही केवल इसलिए सुनी जाती है क्योंकि काज़ी पर संरक्षण का दायित्व है।

---

1. फसल यानी पैदावार में से कुछ नहीं ले सकता जब तक वह मालिक को खर्च न दे दे।
2. खर्च यानी उदाहरण के लिए ज़ैद ने कहा कि यह बकरी अमानत है, इस पर खर्च का आदेश दें ताकि मालिक से वसूल सकूँ।
3. "अनुपस्थित इत्यादि" का अर्थ है कि अनुपस्थित पर आदेश देना जायज़ नहीं है, यहाँ गवाही केवल खर्च की अनुमति हेतु है।

---

## ☆ کھیتی پوری تیار ہونے سے پہلے مزارعت کی میعاد گذر جائے تو ☆

اگر کسی شخص نے اپنی زمین اور اپنے بیج کسی کاشتکار کو دیئے کہ اس سال اس میں بدیں شرط زراعت کرے کہ پیداوار دونوں میں نصفا نصف ہوگی پس کاشتکار نے زراعت کی اور ہنوز کھیتی کاٹنے کے لائق نہ ہوئی تھی کہ کاشتکار چھوڑ کر بھاگ گیا پھر مالک زمین نے بحکم قاضی کھیتی کے کام میں خرچ کیا یہاں تک کہ کھیتی تیار ہوئی پھر کاشتکار آیا تو جب تک مالک زمین کو اس کا پورا خرچہ نہ دے تب تک کاشتکار کو کھیتی ۱ میں سے لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی اور واضح ہو کہ قاضی مالک زمین کو خرچہ کا حکم نہ دے گا جب تک کہ مالک زمین اپنے قول کے گواہ پیش نہ کرے کیونکہ مالک زمین ایسا دعویٰ کرتا ہے کہ قاضی کو لازم آتا ہے کہ اس کھیتی کی بابت بنظر اصلاح خرچ کرنے کا حکم فرمائے حالانکہ قاضی اس کا باعث نہیں جانتا ہے پس اس کو اس بات کے واسطے گواہ پیش کرنے کا حکم دے گا اور حال کھلنے کے واسطے ایسے گواہ مدعی کی طرف سے بغیر خصم کے قبول کرے گا یا خود قاضی اس میں خصم ہو گا جیسا کہ ودیعت اور لقطہ کی صورت میں خرچہ نفقہ کے دعوٰی میں ہوتا ہے پھر جب اس نے گواہ قائم کیے تو قاضی اس کو خرچہ کا حکم دینا مثل مستودع کو خرچہ اور نفقہ کا حکم دینے کے ہوگا پس اس کو اختیار ہوگا کہ جو کچھ اس نے خرچ کیا ہے وہ واپس لے کذا فی المبسوط اور اگر دونوں نے مقدار خرچہ میں اختلاف کیا تو مزارع کا قول قبول ہوگا مگر مزارع سے اس کے علم پر قسم لی جائے گی کذا فی المحیط اور کاشتکار بھاگ نہ گیا بلکہ یہ صورت ہوئی کہ کھیتی پوری تیار ہونے سے پہلے مزارعت کی میعاد گذر گئی حالانکہ کاشتکار غائب ہے تو قاضی مالک زمین سے فرمائے گا کہ اگر تیرا جی چاہے تو اپنے خرچے سے کھیتی کو تیار کر پھر جب کھیتی کاٹنے کے

لائق ہو جائے گی تو کاشتکار جب تک تیرا خرچہ نہ دے گا تب تک کھیتی کو ہاتھ نہیں لگا سکے گا اور اگر اس نے تیرا خرچہ دینے سے انکار کیا تو میں اس کا حصہ زراعت فروخت کر کے اس کے ثمن میں سے تیرا خرچہ دے دوں گا اور اگر اس کا حصہ زراعت تیرا خرچہ ادا ہونے کے واسطے کافی نہ ہو گا تو تیرا اس سے زیادہ اس پر کچھ نہ ہو گا پھر اگر کاشتکار نے مالک زمین کو اس کا خرچہ دینے سے انکار کیا تو قاضی اس کا حصہ فروخت کرے گا بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ حکم بناء پر قول صاحبینؒ کے ہے اور امام اعظمؒ کے نزدیک قاضی اس کا حصہ زراعت فروخت نہ کرے گا اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ نہیں بلکہ بالا جماع سب کے نزدیک ہے اور ان مسائل میں دونوں میں سے کوئی شخص جو کچھ کھیتی اس کے حصہ میں آئی ہے اس میں سے کچھ صدقہ نہ کرے گا کیونکہ جس سبب سے ہر ایک کو اپنا حصہ ملا ہے اس میں کوئی خبیث و فساد ممکن نہیں ہوا ہے یہ مبسوط میں لکھا ہے۔

اگر مزارعت کی میعاد گذر گئی حالانکہ ہنوز کھیتی ساگا ہے اور کاشتکار یا مالک دونوں میں سے کوئی غائب ہے پس اگر مالک زمین غائب ہوا اور کاشتکار نے قاضی کے سامنے مرافعہ کیا تا کہ قاضی اس کو حکم دے کہ کھیتی کی درستی میں اپنے پاس سے خرچ کرے تو قاضی اس کو حکم نہ دے گا جب تک کہ اس دعوٰی کے گواہ نہ لائے کہ یہ کھیتی میرے اور فلاں غائب کے درمیان مشترک ہے پس جب اس نے اس دعوٰی کے گواہ قائم کیے تب اس کو خرچ کرنے کا حکم دے گا اور ان گواہوں کی سماعت کرنا اس واسطے نہیں ہے کہ غائب ۳ پر حکم فرمائے چنانچہ اگر مالک زمین نے حاضر ہو کر شرکت سے انکار کیا اور کہا کہ یہ زمین اور کھیتی سب میری ہے تو نے مجھ سے غصب کر لی ہے تو کاشتکار کو اس سے اپنا خرچہ واپس لینے کا حق حاصل نہ ہو گا جب تک کہ دوبارہ اس بات کی گواہ پیش نہ کرے کہ یہ کھیتی ہم دونوں میں مشترک ہے بلکہ اس

گواہی کی سماعت فقط اس وجہ سے ہے کہ حفاظت قاضی کے ذمہ واجب ہے کیونکہ مدعی نے جو دعوٰی کیا اس سے مراد

---

۱ کھیتی یعنی پیداوار میں سے کچھ نہیں لے سکتا جب تک خرچہ مالک کو نہ دے۔ ۲ خرچہ یعنی مثلاً زید آیا اور کہا کہ یہ بکری میرے پاس ودیعت ہے یا یہ میرے پاس لقطہ ہے آپ اس پر خرچہ کا حکم دیجئے تاکہ مجھے مالک سے خرچہ واپس ملے۔ ۳ غائب الخ یعنی غائب پر حکم دینا جائز نہیں ہے تو یہاں گواہوں کی سماعت کچھ اس غرض سے نہیں ہے بلکہ خرچہ کا حکم دینے کے واسطے ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 321 Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

The principle is that protection is obligatory upon the Judge (Qadi) because it is his duty to safeguard the property of an absent person. Thus, the Judge has the discretion not to accept this responsibility solely based on a plaintiff's claim until the plaintiff provides witnesses for his claim. Before witnesses are presented, the Judge has the option to issue an order stating: "If the situation is exactly as you describe, then I command you to incur the necessary expenses." Once witnesses are presented, he shall issue an absolute (1) and definitive order to spend (2), saying, "Proceed with the expenditure." If the Judge fears the crop might perish before witnesses can be presented, he shall give a conditional order to spend, as previously mentioned (i.e., "If the matter is as you state, then I authorize you to spend"). Be it clear that when the Judge says "if the situation is as you describe," it means: "If this crop is shared between so-and-so and yourself, then I order you to spend." This is recorded in 'Al-Dhakhirah' and mentioned in 'Fatawa Itabiyya.'

If a person spends without the Judge's order, he shall be considered a volunteer (Mutabarri) (3), and the standard rent (Ajar al-Mithl) for half the land will not be mandatory upon the cultivator. Similarly, if the absent party returns and refuses to cover the expenses, the same ruling applies. If the cultivator goes missing before the end of the sharecropping period, then by the Judge's order, the present party—the landowner—shall cover the expenses. Whatever he spends, he shall recover entirely from the cultivator, regardless of whether the crop survives or is lost. Likewise, if the cultivator is destitute and unable to afford the expenses, the same ruling as mentioned before applies. If the landowner spends without the Judge's order, he is considered a volunteer. If the cultivator is affluent, he shall be compelled to pay for the expenses; this is found in 'Tatarkhaniyya.' If the sharecropping term expires while the crop is still unripe (green), and the landowner wishes to uproot it but the cultivator refuses, the rights held by the landowner shall not belong to the cultivator. Thus, if the cultivator offers to pay the landowner for his share of the crop, he has no such right without the landowner's consent. Conversely, if the cultivator wishes to uproot the crop and the landowner wishes to pay him for his share, the landowner has this right even without the cultivator's consent. The distinction is that the landowner is the owner of the principal (Asl) and the cultivator is the subordinate (Tabi'). The owner of the principal can acquire ownership of the subordinate's interest

without their consent, but the owner of the subordinate interest cannot acquire ownership of the principal without the owner's consent. This is stated in 'Al-Muhit.'

**Chapter Two: Regarding one of two partners sharecropping on common land and cultivation by a usurper (Ghasib).**

If land is held in common by several people, and some cultivate portions of the land using their own seeds and take water from the common source for irrigation, and the land remains shared in this manner for several years, all without the permission of the other partners; then, if the land used for cultivation is equivalent to what would have been his share or less had a partition taken place... [1] Note: The number 'two' is not restrictive; it refers to any number greater than one.

(1) Unconditionally. (2) It becomes obligatory upon the Judge. (3) He cannot reclaim the amount.

यह है कि क़ाज़ी पर सुरक्षा अनिवार्य है क्योंकि अनुपस्थित व्यक्ति की संपत्ति की रक्षा करना क़ाज़ी पर अनिवार्य है, अतः क़ाज़ी को अधिकार है कि वह वादी के केवल दावे पर इसे अपनी ज़िम्मेदारी न बनाए जब तक कि वादी अपने दावे के गवाह पेश न कर दे। फिर गवाह पेश करने से पहले क़ाज़ी को अधिकार है कि वह उसे इस प्रकार आदेश दे कि "यदि यह मामला वैसा ही है जैसा तुम बताते हो, तो मैंने तुम्हें खर्च करने का आदेश दिया।" और गवाह पेश करने के बाद वह उसे पूर्णतः(1) निश्चित रूप से खर्च (2) करने का आदेश देगा और कहेगा कि "तुम खर्च करो।" और यदि गवाह पेश करने से पहले क़ाज़ी को फसल खराब होने का डर हो, तो क़ाज़ी उसे सशर्त खर्च करने का आदेश देगा जैसा कि हमने बताया है (अर्थात यदि बात वैसी ही है जैसा तुम बताते हो, तो मैंने तुम्हें खर्च करने का आदेश दिया है)। और स्पष्ट रहे कि क़ाज़ी ने जो कहा कि "यदि यह मामला वैसा ही है जैसा तुम बताते हो", तो इसका अर्थ यह है कि "यदि यह फसल फलां व्यक्ति और तुम्हारे बीच साझा है, तो मैंने तुम्हें खर्च करने का आदेश दिया है।" यह 'ज़खीरा' में है और 'फ़तवा-ए-इताबिया' में लिखा है।

यदि उसने बिना क़ाज़ी के आदेश के खर्च किया तो उसे दानकर्ता (मुतबर्रे) (3) माना जाएगा और किसान पर आधी ज़मीन का उचित किराया (अजर-ए-मिस्ल) अनिवार्य नहीं होगा। इसी तरह यदि अनुपस्थित व्यक्ति आकर खर्च करने से मना कर दे तो भी यही आदेश है। और यदि बटाई (मुज़ारआ) की अवधि समाप्त होने से पहले किसान गायब हो गया, तो क़ाज़ी के आदेश से जो व्यक्ति उपस्थित है, अर्थात् ज़मीन का मालिक, खर्च करेगा और उसने जो कुछ खर्च किया है वह सब किसान से वापस लेगा चाहे फसल रहे या नष्ट हो जाए। इसी तरह यदि किसान निर्धन हो और उसके पास खर्च करने को न हो, तो भी यही आदेश है जो हमने बयान किया है। और यदि उसने बिना क़ाज़ी के आदेश के खर्च किया तो वह दानकर्ता माना जाएगा और यदि किसान समृद्ध हो तो उसे खर्च करने पर मजबूर किया जाएगा, यह 'तातारखनिया' में है। यदि बटाई की अवधि समाप्त हो गई जबकि फसल अभी हरी (सागा) है और ज़मीन के मालिक ने फसल उखाड़नी चाही और किसान ने मना किया, तो ज़मीन के मालिक को जो अधिकार प्राप्त हैं वे किसान को प्राप्त नहीं होंगे। अतः यदि किसान कहे कि "मैं ज़मीन के मालिक के हिस्से की फसल की कीमत उसे दे देता हूँ", तो वह ज़मीन के मालिक की सहमति के बिना ऐसा अधिकार नहीं रखता। और यदि किसान फसल उखाड़ना चाहे और ज़मीन का मालिक उसे उसके हिस्से की कीमत देना चाहे, तो किसान की सहमति के बिना मालिक को यह अधिकार है। और अंतर यह है कि ज़मीन का मालिक मूल (असल) का स्वामी है और किसान अधीनस्थ (ताबे) है,

और मूल का मालिक अधीनस्थ की सहमति के बिना अधीनस्थ का मालिक हो सकता है, परंतु अधीनस्थ मूल के मालिक की सहमति के बिना मूल का मालिक नहीं हो सकता, ऐसा ही 'अल-मुहीत' में है।

## अध्याय दो: दो साझेदारों में से एक के द्वारा साझा ज़मीन पर बटाई की खेती करने और कब्ज़ा करने वाले (ग़ासिब) के खेती करने के वर्णन में

यदि ज़मीन कई लोगों के बीच साझा हो और कुछ ने कुछ ज़मीन पर जानबूझकर अपने बीजों से खेती की और कुछ ने सबके साझा पानी में से सिंचाई के लिए लिया और इसी प्रकार कई वर्षों तक ज़मीन साझा रही और यह सब बातें साझेदारों की अनुमति के बिना हुईं, तो यदि यह ज़मीन जो उसने अपनी खेती में लगाई है इतनी हो कि यदि मान लीजिए बंटवारा होता तो इतनी ही ज़मीन उसके हिस्से में आती या उससे... [1] स्पष्ट रहे कि 'दो' की संख्या विशिष्ट नहीं है बल्कि एक से अधिक की संख्या है।

(1) बिना शर्त। (2) क़ाज़ी पर अनिवार्य हो जाएगा। (3) वापस नहीं ले सकता।

---

یہ ہے کہ قاضی پر حفاظت واجب ہے اس وجہ سے کہ غائب کے مال کی حفاظت کرنا قاضی پر واجب ہے پس قاضی کو اختیار رہا کہ مدعی کے محض دعویٰ پر یہ بات اپنے ذمہ لازم نہ کرے تا وقتیکہ مدعی اپنے دعویٰ کے گواہ قائم نہ کرے پھر گواہ قائم کرنے سے پہلے قاضی کو اختیار ہے چاہے اس کو اس طرح حکم دے دے کہ اگر یہ واقعہ ایسا ہی ہے جیسا تو بیان کرتا ہے تو میں نے تجھے خرچ کرنے کا حکم دیا اور گواہ قائم کرنے کے بعد اس کو مطلقاً (۱) حتماً خرچ (۲) کرنے کا حکم دے گا اور فرمائے گا کہ تو خرچ کر اور اگر گواہ قائم کرنے سے پہلے قاضی کو کھیتی خراب ہو جانے کا خوف ہوا تو قاضی اس کو شرطیہ خرچ کرنے کا حکم دے گا جیسا کہ ہم نے بیان کیا ہے (یعنی اگر بات یوں ہے جیسی تو بیان کرتا ہے تو میں نے تجھے خرچ کرنے کا حکم دیا ہے ) اور واضح ہو کہ قاضی نے جو فرمایا کہ اگر یہ واقعہ ایسا ہی ہے جیسا تو بیان کرتا ہے اس کی مراد یہ ہے کہ اگر یہ کھیتی فلاں شخص اور تیرے درمیان مشترک ہے تو میں نے تجھے خرچ کرنے کا حکم دیا ہے یہ ذخیرہ میں ہے اور فتاویٰ عتابیہ میں لکھا ہے۔

اگر اس نے بغیر حکم قاضی کے خرچ کیا تو متبرع (۳) قرار دیا جائے گا اور کاشتکار پر آدھی زمین کا اجر المثل واجب نہ ہو گا اسی طرح اگر غائب نے حاضر ہو کر اس کے خرچ کرنے سے انکار کیا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر مدت مزارعت گزرنے سے پہلے کاشتکار غائب ہو گیا تو قاضی کے حکم سے جو شخص حاضر ہے یعنی مالک زمین خرچ کرے گا اور جو کچھ خرچ کیا ہے وہ سب کاشتکار سے واپس لے گا خواہ کھیتی رہے یا تلف ہو جائے اس طرح اگر کاشتکار تنگدست ہو اس کے پاس خرچ کرنے کو نہ ہو تو بھی یہی حکم ہے جو ہم نے بیان کیا ہے اور اگر اس نے بغیر حکم قاضی خرچ کیا تو متبرع قرار دیا جائے گا اور اگر کاشتکار خوشحال ہو تو خرچ

کرنے پر مجبور کیا جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر مزارعت کی مدت گذر گئی حالانکہ کھیتی ساگا ہے اور مالک زمین نے کھیتی اکھاڑنی چاہی اور کاشتکار نے انکار کیا تو جو اختیارات کہ مالک زمین کو حاصل ہوئے ہیں وہ کاشتکار کو حاصل نہ ہوں گے چنانچہ اگر کاشتکار نے کہا کہ میں مالک زمین کے حصہ زراعت کی قیمت اس کو دیئے دیتا ہوں تو بدون رضامندی مالک زمین کے ایسا اختیار نہیں رکھتا ہے اور اگر کاشتکار نے اکھاڑنی چاہی اور مالک زمین نے اس کو اس کے حصہ کی قیمت دینی چاہی تو بدون رضامندی کاشتکار کے اس کو یہ اختیار ہے اور فرق یہ ہے کہ مالک زمین صاحب اصل ہے اور کاشتکار صاحب تبع ہے اور مالک اصل بدون رضامندی صاحب تبع کے تابع کا مالک ہو سکتا ہے اور صاحب تبع بدون رضامندی صاحب اصل کے اصل کا مالک نہیں ہو سکتا ہے کذا فی المحیط۔

**باب دوم: دو شریکوں میں سے ایک کی زمین مشترک میں مزارعت کرنے اور غاصب کی زراعت کرنے کے بیان میں**

اگر اراضی چند لوگوں میں مشترک ہو اور بعض نے بعض زمین بقصد خود اپنے بیجوں سے زراعت کی اور بعض نے سب کے مشترک پانی میں سے سینچنے کے واسطے لیا اور اسی طرح چند سال تک زمین مشترک رہی اور یہ سب باتیں شریکوں کے بغیر اجازت واقع ہوئی پس اگر یہ زمین جو اس نے اپنی کھیتی میں لگائی ہے اتنی ہو کہ اگر بالفرض بھایا واقع ہوتی تو اتنی ہی زمین اس کے حصہ میں آتی یا اس ۱ـہ الخ واضح ہو کہ دو عدد کی خصوصیت نہیں ہے بلکہ یکم سے کم تعداد ہے۔

(۱) بلا شرط (۲) قاضی پر واجب ہو جائے گا۔ (۳) واپس نہیں لے سکتا ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 322 Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

...if they provided it beforehand and its partners had not requested a division, then for whatever amount of land he used in his work, no liability (dhaman) shall be incumbent upon him. And whatever he has acquired from this shared land, his partners cannot share in it; this is mentioned in *Khazanat al-Muftiyeen*. It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that if a Muslim farmer was given land (1) and permission was granted for him to cultivate it, and he cultivated it, but then the landowner wished to evict the farmer, it is not permissible. This is because causing hardship (tafreed) to a Muslim is prohibited. If the landowner said to him, "Take your seeds and expenses, and the crop shall be mine," and the farmer agreed to this, then if this occurred before the crop sprouted, it is not permissible, because the sale of a crop before it sprouts is not valid, whether the seeds are present in the ground or have perished; there is no difference in either case. This is mentioned in *Wajiz al-Kardari*. If a person cultivated land for another and the landowner did not know initially but found out when the crop was ready for harvest, and upon finding out he became pleased, or if he once said "I am not pleased" but then said "I am pleased," the crop shall be lawful (halal) for the farmer. This is explicitly stated in *Khaniyah*, and Faqih Abu al-Layth (RA) stated that this ruling is based on the principle of juristic preference (*istihsan*), and we adopt this; it is in *Jawahir al-Ikhlati*.

If three men jointly took a piece of land for cultivation on a half-sharecropping basis, and one of them disappeared, then the remaining two cultivated wheat in a small portion of the land, after which the third returned and sowed barley in the remaining land (1): If they did this with each other's permission, then the wheat shall be shared among all of them. However, after deducting the landowner's share, the two who sowed the wheat shall take from the third person's share of the produce an amount equal to one-third of the seeds. Similarly, the barley shall also be shared among all of them, and after deducting the landowner's share, the third person shall take from the produce of the other two an amount equal to two-thirds of the seeds. If they did not cultivate with mutual permission, then one-third of the wheat belongs to the landowner and two-thirds to the two farmers, and both farmers shall pay compensation (tawan) to the landowner for the damage to one-third of the land. One-third of the produce shall be lawful for them, and from the remaining one-third, they shall deduct their expenses and give the rest as charity (*sadaqah*). This is because their rightful share was two-thirds of what they sowed, so that remains

lawful according to the condition, but they became usurpers (*ghasib*) regarding the remaining one-third; thus, the entire produce of that usurped part belongs to them [to be given in charity after expenses]. As for the third farmer, he shall receive five-sixths (5/6) of the barley produce, and one-sixth shall go to the landowner, because he sowed two-thirds of it through usurpation, so that produce is his [subject to charity rules], and he sowed one-third rightfully, so half of that (one-sixth) belongs to him according to the condition. For the sixth of the land he sowed [improperly], he shall pay compensation for two-thirds of the land's damage to the landowner; then, from its produce, he shall deduct the amount of the compensation and expenses and give the rest as charity; this is in *Fatawa Kubra*. If damage occurred to the usurped land due to the usurper's cultivation, but then the damage was removed by an act of the landowner, the usurper is not entirely exonerated. If it was removed without the landowner's act, the scholars (*mashayikh*) have differed: some said if it was removed before returning it to the landowner, the usurper is exonerated, and if it was removed after returning, he is not. Others said he is exonerated in both cases, and the fatwa is based on this.

(1) This is in the case where the sharecropping contract is general or absolute. (2) Five-sixths, meaning five parts out of six. Since after the two-thirds usurpation, they are partners in one-third, he also receives half of that sharecropping portion, i.e., one-sixth; thus, he receives five-sixths in total. (1) Gave as a loan (*ariyah*).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 322 किताब अल-मुज़ारआ (बटाई/खेती की साझेदारी की किताब)**

...उससे पहले मुहैया करते हों और उसके शरीकों ने तक़सीम की दरख़्वास्त न की हो तो जिस कदर ज़मीन उसने अपने काम में लगाई है उसकी बाबत उस पर ज़मान वाजिब न होगी और जो कुछ उसने उस ज़मीन-ए-शिरकत में हासिल किया है उसमें उसके शरीक लोग शिरकत नहीं कर सकते हैं, यह खज़ानतुल मुफ़्तीन में है। इमाम अबू यूसुफ़ रह. से मरवी है कि अगर किसी मुसलमान काश्तकार को अपनी ज़मीन दी (1) और इजाज़त दे दी कि उसमें खेती करे, फिर उसने ज़राअत की, फिर ज़मीन के मालिक ने चाहा कि काश्तकार को निकाल दे, तो यह जायज़ नहीं है। इसलिए कि मुसलमान को नुक़सान पहुँचाना हराम है। और अगर ज़मीन के मालिक ने उससे कहा कि अपना बीज और ख़र्चा ले ले और खेती मेरी हो जाएगी और काश्तकार उस पर राजी हो गया, तो अगर खेती उगने से पहले ऐसा हुआ तो जायज़ नहीं है, क्योंकि उगने से पहले खेती की बेअ (बिक्री) जायज़ नहीं है, चाहे बीज ज़मीन में मौजूद हों या बर्बाद हो गए हों, दोनों सूरतों में कोई फ़र्क़ नहीं है। यह वजीज़ कुदरुदी में है। एक शख़्स ने दूसरे को ज़मीन में ज़राअत की और ज़मीन के मालिक को पहले मालूम न हुआ, वह उस वक्त मालूम हुआ जब खेती काटने के लायक थी, फिर जिस वक्त मालूम हुआ वह उस वक्त राजी हो गया या एक बार यह कहा कि मैं राजी नहीं होता हूँ फिर कह दिया कि मैं राजी हो गया, तो काश्तकार के लिए खेती हलाल होगी। इसे खानिया में स्पष्ट बयान किया गया है और फ़क़ीह अबुल लैस रह. ने फ़रमाया कि यह हुक्म इस्तिहसान की दलील पर है और हम इसी को लेते हैं, यह जवाहरुल इख़्लाती में है।

अगर तीन आदमियों ने एक ज़मीन आधे की बटाई पर खेती के लिए शिरकत (साझेदारी) में ली और उनमें से एक गायब हो गया, फिर बाकी दोनों ने थोड़ी ज़मीन में गेहूँ की खेती की, फिर तीसरा हाज़िर हुआ और उसने बाकी ज़मीन में जौ बोए (1), तो अगर उन लोगों ने एक-दूसरे की इजाज़त से ऐसा किया तो गेहूँ उन सब में मुश्तरक (साझा) होंगे, लेकिन ज़मीन के मालिक का हिस्सा निकालने के बाद जिन दोनों ने गेहूँ बोए हैं वे तीसरे से बीज की मात्रा में से एक-तिहाई के बराबर उसके पैदावार के हिस्से में से ले लेंगे। इसी तरह जौ भी उन सब में मुश्तरक होंगे और ज़मीन के मालिक का हिस्सा निकालने के बाद तीसरा शख़्स दोनों के पैदावार के हिस्से में से बीजों का हिस्सा दो-तिहाई के बराबर ले लेगा। और अगर उन लोगों ने इस तरह खेती आपसी इजाज़त के बिना की हो, तो गेहूँ में से एक-तिहाई ज़मीन के मालिक की होगी और दो-तिहाई दोनों काश्तकारों की, और दोनों काश्तकार एक-

तिहाई ज़मीन के नुक़सान का हर्जाना (तावान) ज़मीन के मालिक को देंगे। और एक-तिहाई पैदावार दोनों के लिए हलाल होगी और बाकी एक-तिहाई में से अपना ख़र्चा निकालकर बाकी सदक़ा कर देंगे क्योंकि उसमें से दो-तिहाई के बराबर उनका हिस्सा था जिसे उन्होंने बोया है, तो वह तो शर्त के मुताबिक़ हलाल रहा और बाकी एक-तिहाई में दोनों ग़ासिब (अवैध कब्जा करने वाले) हुए, तो उस मफ़्तूह (छीनी हुई) ज़मीन की पूरी पैदावार उन्हीं दोनों की होगी। और रहा तीसरा काश्तकार, तो उसे जौ की पैदावार में से पाँच-छठा (5/6) हिस्सा मिलेगा और छठा हिस्सा ज़मीन के मालिक को मिलेगा क्योंकि उसने उसमें से दो-तिहाई ग़सब (अवैध) तौर पर बोई है, तो उसकी पैदावार उसकी होगी और एक-तिहाई उसने हक़ के तौर पर बोई है, तो उसमें से भी आधा शर्त के मुताबिक़ उसका होगा और छठी ज़मीन जो उसने बोई है, उसमें से दो-तिहाई ज़मीन के नुक़सान का हर्जाना ज़मीन के मालिक को देगा, फिर उसकी पैदावार में से हर्जाने और ख़र्चे के बराबर निकालकर बाकी को सदक़ा कर देगा, यह फ़तावा कुबरा में है। अगर ग़ासिब के खेती करने से छीनी हुई ज़मीन में नुक़सान आ गया, फिर ज़मीन के मालिक के काम से यह नुक़सान दूर हो गया, तो ग़ासिब पूरी तरह बरी नहीं होगा। और अगर मालिक के काम के बिना ही नुक़सान दूर हो गया हो, तो इसमें उलेमा (मशाइख़) में मतभेद है। कुछ ने फ़रमाया कि अगर ज़मीन के मालिक को वापस देने से पहले नुक़सान दूर हो गया हो तो ग़ासिब बरी होगा और अगर वापस देने के बाद दूर हुआ हो तो बरी नहीं होगा। और कुछ ने फ़रमाया कि दोनों सूरतों में बरी हो जाएगा और इसी पर फ़तवा है।

(1) कहा गया है कि यह उस सूरत में है जब मुज़ारआ (बटाई) का अनुबंध आम या मुतलक़ हो। (2) पाँच-छठा यानी कुल छह हिस्सों में से पाँच हिस्से मिलेंगे, इस वजह से कि दो-तिहाई ग़सब के बाद एक-तिहाई में दोनों शरीक हैं तो आधी बटाई यानी एक-छठा हिस्सा भी उसे मिलेगा, तो कुल पाँच-छठा पाएगा। (1) आरियत (उधार) दी।

---

سے پہلے مہیا کرتے ہوں اور اس کے شریکوں نے تقسیم کی درخواست نہ کی ہو تو جس قدر زمین اس نے اپنے کام میں لگائی ہے اس کی بابت اس پر ضمان واجب نہ ہو گی اور جو کچھ اس نے اس زمین شرکت میں حاصل کیا ہے اس میں اس کے شریک لوگ شرکت نہیں کر سکتے ہیں یہ خزانہ المفتیین میں ہے۔ امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ اگر کسی مسلمان کاشتکار کو اپنی زمین دی (۱) اور اجازت دے دی کہ اس میں کھیتی کرے پس اس نے زراعت کی پھر مالکِ زمین نے چاہا کہ کاشتکار کو نکال دے تو جائز نہیں ہے اس واسطے کہ مسلمان کو تفرِید دینا حرام ہے اور اگر اس سے مالکِ زمین نے کہا کہ اپنا بیج اور خرچہ لے لے اور کھیتی میری ہو جائے گی اور کاشتکار اس پر راضی ہو گیا پس اگر کھیتی اگنے سے پہلے ایسا ہوا تو جائز نہیں ہے اس واسطے کہ اگنے سے پہلے کھیتی کی بیع نہیں جائز ہے خواہ بیج زمین میں موجود ہو یا تلف ہو گئے ہوں، دونوں صورتوں میں کچھ فرق نہیں ہے۔ یہ وجیز کردری میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کو زمین میں زراعت کی اور مالکِ زمین کو پہلے معلوم نہ ہوا وہ اس وقت معلوم ہوا کہ کھیتی کاٹنے کے لائق تھی پھر جس وقت معلوم ہوا وہ اس وقت راضی ہو گیا یا ایک مرتبہ یہ کہا کہ میں نہیں راضی ہوتا ہوں پھر کہہ دیا کہ میں راضی ہو گیا ہو کاشتکار کے واسطے کھیتی حلال ہو گی اس کو خانیہ میں صریح بیان فرمایا ہے اور فقیہ ابواللیثؒ نے فرمایا کہ یہ حکم بدلیل استحسان ہے اور ہم اسی کو لیتے ہیں یہ جواہر اخلاطی میں ہے۔

اگر تین آدمیوں نے ایک زمین آدھے کی بٹائی پر زراعت کے واسطے بشرکت لی اور ان میں سے ایک غائب ہو گیا پھر باقی دونوں نے تھوڑی زمین میں گیہوں کی زراعت کی پھر تیسرا حاضر ہوا اور اس نے باقی زمین میں جو بوئے ۱ پس اگر ان لوگوں نے ہر ایک کی اجازت سے ایسا کیا تو

گیہوں ان سب میں مشترک ہوں گے مگر مالکِ زمین کا حصہ نکالنے کے بعد جن دونوں نے گیہوں بوئے ہیں وہ تیسرے سے مقدار بیج میں سے بقدر تہائی کے اس کے حصہ پیداوار میں سے لے لیں گے اسی طرح جو بھی ان سب میں مشترک ہوں گے اور مالکِ زمین کا حصہ نکالنے کے بعد تیسرا شخص دونوں کے حصہ پیداوار میں سے بیجوں کا حصہ بقدر دو تہائی کے لے لے گا اور اگر ان لوگوں نے اس طرح زراعت باہمی اجازت سے نہ کی ہو تو گیہوں میں سے ایک تہائی مالکِ زمین کی ہوگی اور دو تہائی دونوں کاشتکاروں کی اور دونوں کاشتکار تہائی زمین کا نقصان مالکِ زمین کو تاوان دیں گے اور تہائی پیداوار دونوں کے واسطے حلال ہو گی اور باقی تہائی میں سے اپنا خرچہ نکال کر باقی صدقہ کر دیں گے اس واسطے کہ اس میں سے بقدر دو تہائی کے ان کا حصہ تھا جس کو انہوں نے بویا ہے پس وہ تو موافق شرط کے حلال رہا اور باقی ایک تہائی میں دونوں غاصب ہوئے پس اس مغصوب کی پوری پیداوار انہیں دونوں کی ہو گی اور رہا تیسرا کاشتکار پس اس کو جو کی پیداوار میں سے پانچ ۲ چھٹے حصے ملیں گے اور چھٹا حصہ مالکِ زمین کو ملے گا کیونکہ اس نے اس میں سے دو تہائی بطور غصب کے بوئی ہے پس اس کی پیداوار اس کی ہو گی اور ایک تہائی اس نے حق طور سے بوئی ہے پس اس میں سے بھی آدھا موافق شرط کے اس کا ہو گا اور چھٹی زمین اس نے بوئی ہے اس میں سے دو تہائی زمین کا نقصان مالکِ زمین کو تاوان دے گا پس اس کی پیداوار میں سے بقدر تاوان و خرچہ کے نکال کر باقی کو صدقہ کر دے گا یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ اگر غاصب کے زراعت کرنے سے زمین مغصوبہ میں نقصان آ گیا پھر مالکِ زمین کے فعل سے یہ نقصان زائل ہو گیا تو غاصب بالکل بری نہ ہو گا اور اگر بدون مالک کے فعل کے زائل ہو گیا ہو تو اس میں مشائخ نے اختلاف کیا ہے بعضوں نے فرمایا کہ اگر مالکِ زمین کو واپس دینے سے پہلے زائل ہو گیا ہو تو غاصب بری ہو گا

اور اگر واپس دینے کے بعد زائل ہوا ہو تو بری نہ ہو گا اور بعضوں نے فرمایا کہ دونوں صورتوں میں بری ہو جائے گا اور اسی پر فتویٰ ہے۔

۱ قال یہ اس صورت میں ہے کہ عقد مزارعت عام ہو یا مطلق ہو۔ ۲ پانچ چھٹے یعنی منجملہ چھ حصوں کے پانچ حصے ملیں گے اس وجہ سے دو تہائی غصب کے بعد ایک تہائی میں دونوں میں شریک ہیں تو نصف بنائی یعنی ایک چھٹا حصہ بھی اس کو ملے گا تو کل پانچ چھٹے پاؤں گا۔ (۱) عاریت دی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 323 Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

As is the ruling in a case where the defect in a sold item is removed; this is mentioned in al-Ghayathiyyah.

**If the seeds are provided by the land-giver, it will not be effective toward the rightful owner** ☆

If a person gives land to another for sharecropping (Muzara'ah) and stipulates that the seeds are the responsibility of the cultivator, and the cultivator sows the land. Then, another person arrives, proves his ownership (Istihqaq), and takes possession of the land; he shall take the land without the crop. He will have the right to order the uprooting of the crop, even if it is still green. The land will not be left under lease to the cultivator until it is ready for harvest. The uprooted crop shall be shared half-and-half between the one who gave the land and the cultivator. The cultivator then has the choice to either agree to take half of the uprooted crop and take the price of his share based on its valuation as if it were established in his own land, not in another's. The meaning of this statement (1) is that he takes the price of his share from such a crop whose right to remain in the land is established, as stated in al-Muhit. According to the opinion of Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa), the one who proved ownership shall take compensation for any damage to the land from the cultivator alone, and the cultivator shall recover this compensation from the person who gave him the land. This is also the second opinion of Imam Abu Yusuf. According to the first opinion of Imam Abu Yusuf and the opinion of Imam Muhammad, the rightful owner has the choice to take compensation for the damage either from the land-giver or from the cultivator. If he takes it from the cultivator, the cultivator shall recover it from the land-giver. This is based on a legal issue in Ghasb al-Mukhtar, as stated in al-Mabsut. This ruling applies when the seeds are provided by the cultivator. If it was agreed that the seeds be provided by the land-giver and the rightful owner took the land and ordered both to uproot the crop, and they did so, the cultivator has the choice to either accept half of the uprooted crop and receive nothing else, or give the uprooted crop to the land-giver and take 'Ujrat al-Mithl' (fair wage) from him according to the opinion of Faqih Abu Bakr al-Balkhi, or take the price of his share of the crop according to the opinion of Faqih Abu Ja'far. If the rightful owner grants permission for the sharecropping, Imam Muhammad has not mentioned this case in Kitab al-Asl, but Shaykh al-Islam mentioned in the commentary (Sharh) of Kitab al-Asl that the ruling depends on details. That is, if the seeds were from the land-giver, the permission from the rightful owner will not be effective. If the seeds were from the

cultivator, permission granted before the sharecropping begins is valid, but permission granted after it is not. This scenario is like someone leasing out another's house, and then the owner permits the lease; if permission is given before the lease term ends, it is valid, but if given after the term ends, it is not. This is written in al-Zakheera.

It is mentioned in Muntaqa that Abu Sulayman narrated from Imam Muhammad that a person usurped another's land and gave it to someone for a year for sharecropping. If the seeds are from the cultivator and he performed sharecropping, and the crop had not yet sprouted when the landowner gave permission for the sharecropping, then his permission is valid. Whatever is produced in the land will be shared between the landowner and the cultivator based on the conditions set by the usurper (Ghasib), and no liability (Dhaman) will be mandatory. However, if any damage occurred before the landowner's permission, then according to Imam al-A'zam, the cultivator shall pay compensation for this damage to the landowner, and according to Imam Muhammad, the landowner has the option.

(1) The statement of Ghasb al-Mukhtar, i.e., the issue of whether immovable property (Aqar) can be subject to usurpation (Ghasb); this disagreement is explained in the Book of Usurpation. (2) Usurper of the land.

जैसा कि बिकी हुई चीज़ (मबी'अ) के दोष दूर हो जाने की स्थिति में हुक्म है, यह 'ग़ियासिया' में है।

## अगर बीज ज़मीन देने वाले की तरफ़ से हों तो साहिब-ए-इस्तहक़ाक़ (सही मालिक) की ओर से कुछ कारआमद न होगा ☆

अगर एक व्यक्ति ने एक ज़मीन दूसरे को मुज़ारअत (साझा खेती) पर दी और बीज काश्तकार (किसान) के ज़िम्मे शर्त किए, फिर मुज़ारिअ (किसान) ने उसमें खेती की। फिर एक व्यक्ति ने आकर अपना हक़ (इस्तहक़ाक़) साबित कर दिया और ज़मीन ले ली, तो वह ज़मीन को बिना खेती के लेगा। उसे यह अधिकार होगा कि वह खेती उखाड़ने का आदेश दे, चाहे वह खेती अभी हरी ही क्यों न हो। ऐसा नहीं होगा कि खेती काटने लायक होने तक ज़मीन किसान के पास किराए पर छोड़ दी जाए। उखड़ी हुई आधी खेती ज़मीन देने वाले और किसान के बीच आधी-आधी होगी। फिर किसान को अधिकार है कि चाहे तो वह उखड़ी हुई आधी खेती लेने पर सहमत हो जाए और अपने हिस्से की कीमत इस हिसाब से ले कि इतनी खेती उसकी अपनी ज़मीन में होती, न कि किसी दूसरे की ज़मीन में। इस कथन (1) का अर्थ यह है कि ऐसी खेती में से जिसके ज़मीन में रहने का हक़ साबित है, अपने हिस्से की कीमत ले ले, जैसा कि 'मुहीत' में है। फिर इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के अनुसार, जिसने अपना हक़ साबित किया है, वह ज़मीन के नुकसान का हर्जाना केवल किसान से लेगा और किसान यह हर्जाना उस व्यक्ति से वसूल करेगा जिसने उसे यह ज़मीन दी थी। इमाम अबू यूसुफ़ का दूसरा कथन भी यही है। इमाम अबू यूसुफ़ के पहले कथन और इमाम मुहम्मद के कथन के अनुसार, असली मालिक को अधिकार है कि चाहे तो ज़मीन देने वाले से नुकसान ले या किसान से। यदि उसने किसान से लिया, तो किसान उसे ज़मीन देने वाले से वापस लेगा। यह 'ग़सब-अल-मुख्तार' के मसले पर आधारित है, जैसा कि 'मबसूत' में है। यह हुक्म उस समय है जब बीज किसान की तरफ से हों। अगर बीज ज़मीन देने वाले की तरफ से तय हुए हों और असली मालिक ने ज़मीन ले ली और उन दोनों को खेती उखाड़ने का हुक्म दिया और दोनों ने खेती उखाड़ दी, तो किसान को अधिकार होगा कि चाहे तो उखड़ी हुई आधी खेती लेने पर राजी हो जाए और इसके अलावा उसे कुछ न मिलेगा, या चाहे तो उखड़ी हुई खेती ज़मीन देने वाले को दे दे और फ़कीह अबू बक्र बल्ख़ी के अनुसार उससे अपनी 'उजरत-अल-मिस्ल' (उचित मजदूरी) ले ले, और फ़कीह अबू जाफ़र के अनुसार उससे अपने खेती के हिस्से की कीमत ले ले। यदि असली मालिक ने मुज़ारअत की अनुमति दे दी, तो इस स्थिति का उल्लेख इमाम मुहम्मद ने 'किताब अल-अस्ल' में नहीं किया है, लेकिन शेख-उल-इस्लाम ने 'शरह

किताब अल-अस्ल' में बताया है कि इसका हुक्म विस्तार से है। यानी अगर बीज ज़मीन देने वाले की ओर से हों तो असली मालिक की ओर से यह मुज़ारअत प्रभावी नहीं होगी, और अगर बीज किसान की ओर से हों तो मुज़ारअत शुरू होने से पहले उसकी अनुमति सही होगी, लेकिन खेती हो जाने के बाद उसकी अनुमति मान्य नहीं होगी। यह स्थिति वैसी ही होगी जैसे किसी व्यक्ति ने दूसरे का घर किराए पर दे दिया, फिर घर के मालिक ने किराएदारी की अनुमति दे दी। यदि अवधि समाप्त होने से पहले अनुमति दी तो जायज़ है, और यदि अवधि समाप्त होने के बाद दी तो जायज़ नहीं है। यह 'ज़खीरा' में लिखा है।

'मुंतक़ा' में उल्लेख है कि अबू सुलेमान ने इमाम मुहम्मद से रिवायत की है कि एक व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन छीन (ग़सब) ली और उसे एक साल के लिए मुज़ारअत पर दे दिया। यदि बीज किसान की तरफ से हों और किसान ने उसमें खेती की और अभी खेती उगी नहीं थी कि ज़मीन के मालिक ने मुज़ारअत की अनुमति दे दी, तो यह अनुमति जायज़ है। ज़मीन में जो कुछ भी पैदा होगा, वह ज़मीन के मालिक और किसान के बीच उसी शर्त पर साझा होगा जो छीनने वाले (ग़ासिब) ने तय की थी, और उस पर कोई ज़मानत (हर्जाना) अनिवार्य नहीं होगी। लेकिन यदि ज़मीन के मालिक की अनुमति से पहले कोई नुकसान हुआ हो, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार किसान इस नुकसान का हर्जाना ज़मीन के मालिक को देगा, और इमाम मुहम्मद के अनुसार ज़मीन के मालिक को विकल्प होगा।

(1) 'ग़सब अल-मुख्तार' का कथन यानी मसला यह कि अचल संपत्ति (अक़ार) के छोड़े जाने पर उसका ग़सब (अवैध कब्ज़ा) हो सकता है या नहीं; किताब-अल-ग़सब में इस पर मतभेद का वर्णन हुआ है। (2) ज़मीन छीनने वाला (ग़ासिब)।

---

جیسا کہ مبیع کے عیب زائل ہو جانے کی صورت میں حکم ہے یہ غیاثیہ میں ہے۔

**اگر بیج زمین دینے والے کی طرف سے ہوں تو صاحب استحقاق کی جانب کچھ کارآمد نہ ہوگی ☆**

اگر ایک شخص نے ایک زمین دوسرے کو مزارعت پر دی اور بیج کاشتکار کے ذمہ شرط کیے پس مزارع نے اس میں زراعت کی پھر ایک شخص نے آکر استحقاق ثابت کر کے زمین لے لی تو زمین کو بدوں زراعت کے لے گا اور اس کو اختیار ہوگا کہ کھیتی اکھاڑنے کے واسطے حکم کرے اگرچہ زراعت مذکور ہنوز ساگا ہو اور یہ نہ ہوگا کہ کھیتی کاٹنے کے لائق ہونے تک زمین مذکور کاشتکار کے پاس اجارہ پر چھوڑ دی جائے اور اکھڑی ہوئی آدھی کھیتی اس دینے والے اور کاشتکار کے درمیان نصفا نصف ہوگی پھر کاشتکار کو اختیار ہے چاہے اکھڑی ہوئی آدھی کھیتی لینے پر راضی ہو جائے اور اس سے اپنے حصہ کی قیمت اس حساب سے کہ اس قدر زراعت اسی کی زمین میں ثابت ہے۔ نہ غیر کی زمین میں ہے لے لے اور اس قول (۱) کے یہ معنی ہیں کہ ایسی کھیتی میں سے جس کو زمین میں برقرار رہنے کا حق ثابت ہے اپنے حصہ کی قیمت لے لے کذا فی المحیط پھر امام اعظم رحمہ اللہ کے قول کے موافق جس نے استحقاق ثابت کیا ہے وہ اس زمین کا نقصان فقط کاشتکار سے لے گا اور کاشتکار یہ تاوان اس شخص سے جس نے اس کو یہ زمین دی ہے واپس لے گا اور یہی امام ابو یوسف کا دوسرا قول ہے اور اول قول امام ابو یوسف کے موافق اور امام محمد کے قول کے موافق صاحب استحقاق کو اختیار ہے چاہے زمین دینے والے سے نقصان لے یا کاشتکار سے لے پس اگر اس نے کاشتکار سے لیا تو کاشتکار اس کو زمین دینے والے سے واپس لے گا اور یہ غصب المحتار کے مسئلہ پر مبنی ہے کذا فی المبسوط یہ

حکم اس وقت ہے کہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور اگر زمین دینے والے کی طرف سے بیج ٹھہرے ہوں اور صاحب استحقاق نے زمین لے لی اور ان دونوں کو اس نے کھیتی اکھاڑنے کا حکم کیا اور دونوں نے کھیتی اکھاڑی تو کاشتکار کو اختیار ہوگا چاہے اکھڑی ہوئی آدھی کھیتی لینے پر راضی ہو جائے اور اس کے سوا اسے اس کو کچھ نہ ملے گا یا چاہے تو اکھڑی ہوئی کھیتی دینے والے کو دے دے اور فقیہ ابو بکر بلخی کے قول پر اس سے اپنا اجرت المثل لے لے اور فقیہ ابو جعفر کے قول پر اس سے اپنے حصہ زراعت کی قیمت لے لے اور اگر صاحب استحقاق نے مزارعت کی اجازت دے دی تو اس صورت کو امام محمد نے کتاب اصل میں ذکر نہیں فرمایا ہے اور شیخ الاسلام نے شرح کتاب الاصل میں ذکر فرمایا کہ اس کا حکم تفصیل کے ساتھ ہے یعنی اگر بیج زمین دینے والی کی طرف سے ہوں تو صاحب استحقاق کی جانب کچھ کارآمد نہ ہوگی اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو مزارعت کے پہلے اس کی اجازت صحیح ہوگی اور بعد مزارعت کے اس کی اجازت صحیح نہ ہوگی اور یہ صورت ایسی ہوگی کہ ایک شخص نے دوسرے کا دار کرایہ پر دے دیا پھر مالک دار نے اجارہ کی اجازت دے دی پس اگر مدت اجارہ گذرنے سے پہلے اجازت دی تو جائز ہے اور اگر مدت گذرنے کے بعد اجازت دی تو نہیں جائز ہے یہ ذخیرہ میں لکھا ہے۔

منتقٰی میں مذکور ہے کہ ابوسلیمان نے امام محمد سے روایت کی ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کی زمین غصب کر کے ایک شخص کو ایک سال کے واسطے مزارعت پر دی پس اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور کاشتکار نے اس میں مزارعت کی اور ہنوز کھیتی اگی نہ تھی کہ مالک زمین نے مزارعت کی اجازت دے دی تو اس کی اجازت جائز ہے اور جو کچھ زمین میں پیدا ہوا وہ مالک زمین اور کاشتکار کے درمیان اسی شرط سے جو غاصب نے ٹھہرائی ہے مشترک ہوگا اور اس پر کچھ ضمان واجب نہ ہو گی لیکن اگر مالک زمین کی اجازت سے پہلے کچھ نقصان

آیا ہو تو جیسا کہ قول امام اعظم کے کاشتکار پہ نقصان مالک زمین کو تاوان دے گا اور بقول امام محمد کے مالک زمین کو اختیار ا۔

(۱) قول غصب المحتار یعنی مسئلہ یہ کہ عقار ماندہ میں وغیرہ کے غصب ہو سکتا ہے یا نہیں چنانچہ کتاب الغصب میں یہ اختلاف بیان ہوا ہے۔ (۲) غاصب زمین۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (324) Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'a)**

...whether [the landowner] takes this loss as compensation from the sharecropper or from the usurper (ghasib). If the crop had already germinated to the extent that it had some value, and then the landowner gave permission, the sharecropping agreement (muzara'a) would become valid. Subsequently, after giving permission, the landowner would not have the right to terminate the sharecropping. He would receive nothing from the land's produce; instead, whatever grain is produced will be shared between the sharecropper and the usurper. If the landowner gave permission, the muzara'a becomes valid, meaning that after giving permission, the landowner does not have the right to demand that the sharecropper uproot the crop and vacate the land, whereas before giving permission, he did have such a right. This does not mean that the crop itself becomes the property of the landowner. Furthermore, it is mentioned in 'al-Muntaqa' that if a person usurps someone else's land and gives it to another on a half-share basis, with the seeds being provided by the usurper, and then the landowner gives permission for the sharecropping, whether this permission occurs before or after cultivation, the permission is void (batil)[1], to the extent that the landowner will receive nothing from the cultivation. According to the indication of 'Shaykh al-Islam', this means that when the seeds were provided by the usurper, the sharecropping contract was not established in favor of the rightful owner. In 'al-Muntaqa', it is stated that the said land, after the permission, will be in the possession of the usurper and the sharecropper as a loan ('ariyat). If after giving permission, the landowner wishes to retract his permission and take back the land, he has this right if the sharecropper has not yet started cultivation. However, if the sharecropper had already cultivated before the permission and the crop grew after the permission, or if he cultivated after the permission and it grew, or if he cultivated after the permission and it has not yet grown, in these cases, the owner will not have such a right of retraction, because his retraction would involve 'taghrir' (causing undue hardship or deception)[2] against the right of a Muslim, which is forbidden (haram).

Similarly, if the landowner gave permission for sharecropping after the ears of grain had appeared, even though the crop was not yet ready for harvest, and then the owner wished to retract his permission, he would not have the right to do so. However, the usurper will be told that he is liable for the 'ajr al-mithl' (fair rental value) of the land until the crop is ready for harvest. The relationship between the usurper and the sharecropper will remain as per the sharecropping agreement. If the

usurper says, "I will only be liable for the compensation of 'ajr al-mithl' in proportion to my share of the cultivation," he shall not be forced to pay more. The sharecropper will be told, "Be liable for the 'ajr al-mithl' in proportion to your share of the cultivation." If both accept the 'ajr al-mithl' compensation and both agree, then the responsibility for the cultivation work until harvest will lie with both the usurper and the sharecropper. This is because when the usurper refused to pay the full rent, it became as if both had cultivated on someone else's land. If the usurper says, "I will not pay any 'ajr al-mithl' and I am uprooting my crop," the sharecropper has the option to either uproot his share along with him or to pay the 'ajr al-mithl' of the [entire] land[3] from his own wealth and continue the cultivation work himself with his own laborers. Then, when the crop is harvested, the usurper's share is set aside, and the sharecropper takes from it the amount he paid for the usurper's portion of the 'ajr al-mithl' and the laborers' wages. Whatever remains will belong to the usurper, and he shall not take from it the wages of the scholars (experts). If the sharecropper says, "I will not bear any compensation for 'ajr al-mithl' nor will I do any work in it; rather, I will uproot the crop," and if the usurper also agrees with him, then both shall uproot the crop and return the empty land to its owner. But if the usurper refuses[4] this, then the usurper will have the choice to pay the 'ajr al-mithl' of the land from his own wealth, and he will be told to carry out the cultivation work himself with his laborers until the crop is harvested. Then the sharecropper's portion...

---

1. It is void, meaning there is no benefit for the owner.
2. 'Taghrir' means causing distress and harm without a valid reason.
3. Land, meaning the entire land.
4. Refused, meaning he said, "I will not uproot the crop; instead, I am liable for the total 'ajr al-mithl'."

चाहे तो किसान (काश्तकार) से यह नुकसान का जुर्माना ले या ग़ासिब (अवैध कब्जा करने वाले) से। और अगर फसल उग आई थी कि ऐसी हो गई कि उसकी कुछ कीमत है, फिर ज़मीन के मालिक ने इजाज़त दे दी, तो मुज़ारअत (साझा खेती) जायज़ हो जाएगी और फिर मालिक को इजाज़त देने के बाद मुज़ारअत तोड़ने का अधिकार नहीं होगा। ज़मीन के मालिक को (फसल में से) कुछ नहीं मिलेगा और जो कुछ उसमें अनाज पैदा होगा, वह सब किसान और ग़ासिब के बीच साझा होगा। और अगर ज़मीन के मालिक ने इजाज़त दे दी तो मुज़ारअत जायज़ हो जाएगी, इसका अर्थ यह है कि इजाज़त देने के बाद ज़मीन के मालिक को यह अधिकार नहीं होगा कि वह किसान से फसल उखाड़ने और ज़मीन खाली करने की माँग करे, जबकि इजाज़त देने से पहले उसे ऐसा अधिकार था। इसका यह अर्थ नहीं है कि फसल ज़मीन के मालिक की हो जाएगी। और 'मुन्तक़ा' में यह भी उल्लेख है कि एक व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन ग़सब (हड़प) करके किसी को आधी बटाई पर दी और बीज ग़ासिब की ओर से तय हुआ। फिर ज़मीन के मालिक ने मुज़ारअत की इजाज़त दे दी, और यह इजाज़त खेती से पहले या खेती के बाद हुई, तो इजाज़त बातिल (अमान्य) [1] है, यहाँ तक कि ज़मीन के मालिक को खेती में से कुछ नहीं मिलेगा। और 'शेखुल इस्लाम' के संकेत के अनुसार इसका अर्थ यह है कि जब बीज ग़ासिब की ओर से थे, तो मुज़ारअत का अनुबंध हक़दार के पक्ष में नहीं हुआ। और 'मुन्तक़ा' में फ़रमाया कि उक्त ज़मीन इजाज़त के बाद ग़ासिब और किसान के पास 'आरियत' (अस्थायी उपयोग) की तरह होगी। और अगर इजाज़त देने के बाद मालिक ने अपनी इजाज़त वापस लेना चाहा और ज़मीन वापस लेनी चाही, तो यदि किसान ने अभी तक खेती न की हो, तो मालिक को ऐसा अधिकार है। और अगर किसान इजाज़त से पहले खेती कर चुका हो और इजाज़त के बाद फसल उग आई हो, या उसने इजाज़त के बाद खेती की और वह उग आई, या इजाज़त के बाद खेती की और अभी तक नहीं उगी, तो इन स्थितियों में मालिक को (पीछे हटने का) ऐसा अधिकार नहीं होगा, क्योंकि उसके मुकरने में मुसलमान के हक में 'तग़रीर' (धोखा या अनुचित कष्ट) [2] है और यह हराम है।

इसी तरह अगर फसल में बालियाँ आने के बाद मालिक ने मुज़ारअत की इजाज़त दी हो, जबकि फसल अभी काटने के योग्य नहीं हुई थी, फिर मालिक ने अपनी इजाज़त से मुकरना चाहा, तो उसे ऐसा अधिकार नहीं होगा। लेकिन ग़ासिब से कहा जाएगा कि जब तक फसल काटने के योग्य न हो जाए, तब तक वह ज़मीन के'अज्र अल-मिस्ल' (उचित किराए) का ज़िम्मेदार होगा। और ग़ासिब व किसान के बीच मुज़ारअत का अनुबंध वैसा ही रहेगा जैसा था। और यदि ग़ासिब ने कहा कि मैं केवल

अपने खेती के हिस्से के हिसाब से 'अज्र अल-मिस्ल' का जुर्माना दूँगा, तो उसे इससे अधिक के लिए विवश नहीं किया जाएगा। और किसान से कहा जाएगा कि तुम अपने खेती के हिस्से के बराबर 'अज्र अल-मिस्ल' के ज़िम्मेदार बनो। फिर यदि दोनों ने 'अज्र अल-मिस्ल' का जुर्माना स्वीकार कर लिया और दोनों सहमत हो गए, तो फसल काटने के योग्य होने तक खेती का काम ग़ासिब और किसान दोनों के ज़िम्मे होगा। क्योंकि जिस समय ग़ासिब ने पूरी उजरत (किराया) देने से इनकार किया, तो ऐसा हो गया मानो दोनों ने किसी और की ज़मीन में यह खेती की है। और यदि ग़ासिब ने कहा कि मैं 'अज्र अल-मिस्ल' कुछ नहीं दूँगा और मैं अपनी फसल उखाड़ लेता हूँ, तो किसान को विकल्प होगा, चाहे तो उसके साथ अपना हिस्सा भी उखाड़ ले या ज़मीन [3] का 'अज्र अल-मिस्ल' अपने धन से चुकाकर स्वयं अपने मज़दूरों के साथ खेती का काम करे। फिर जब फसल काटी जाए, तो ग़ासिब का हिस्सा निकालकर उसमें से जितना किसान ने ग़ासिब के हिस्से का 'अज्र अल-मिस्ल' और मज़दूरों की मज़दूरी दी है, वह किसान ले लेगा, और जो बचेगा वह ग़ासिब का होगा, और उसमें से विद्वानों की मज़दूरी नहीं ली जाएगी। और अगर किसान ने कहा कि मैं 'अज्र अल-मिस्ल' का कोई जुर्माना नहीं उठाऊँगा और न ही इसमें कोई काम करूँगा, बल्कि मैं फसल उखाड़ लेता हूँ, तो यदि ग़ासिब ने भी उसके साथ सहमति जताई, तो ये दोनों फसल उखाड़कर खाली ज़मीन उसके मालिक को सौंप दें। और अगर ग़ासिब ने इससे इनकार [4] किया, तो ग़ासिब को विकल्प होगा कि ज़मीन का 'अज्र अल-मिस्ल' अपने धन से अदा करे, और उससे कहा जाएगा कि तुम स्वयं अपने मज़दूरों के साथ खेती का काम पूरा करो जब तक कि फसल काटी न जाए, फिर किसान का हिस्सा...

---

1. बातिल है अर्थात मालिक को कोई लाभ नहीं है।
2. तग़रीर अर्थात बिना कारण कष्ट और पीड़ा देना।
3. ज़मीन अर्थात कुल ज़मीन।
4. इनकार किया अर्थात कहा कि मैं फसल नहीं उखाड़ूँगा बल्कि पूरे 'अज्र अल-मिस्ल' का ज़िम्मेदार हूँ।

ہے چاہے کاشتکار سے یہ نقصان تاوان لے یا غاصب سے اور اگر کھیتی اگ آئی تھی کہ ایسی ہوگئی کہ اس کی کچھ قیمت ہے پھر مالک زمین نے اجازت دی تو مزارعت جائز ہو جائے گی اور پھر مالک کو بعد اجازت دینے کے مزارعت توڑنے کا اختیار نہ ہوگا زمین کو کچھ نہ ملے گا اور جو کچھ اس میں غلہ پیدا ہو گا وہ سب کاشتکار و غاصب کے درمیان مشترک ہو گا اور پھر مالک زمین نے اجازت دی تو مزارعت جائز ہو جائے گی اس کے یہ معنی ہیں کہ اجازت دینے کے بعد مالک زمین کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ کاشتکار سے کھیتی اکھاڑ لینے اور زمین خالی کر دینے کا مطالبہ کرے اور قبل اجازت دینے کے اس کو ایسا اختیار تھا اور یہ معنی نہیں ہیں کہ کھیتی مالک زمین کی ہو جائے گی اور نیز منتقٰی میں مذکور ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کی زمین غصب کر کے کسی کو آدھے کی بٹائی پر دی اور بیج غاصب کی طرف سے ٹھہرے پھر مالک زمین نے مزارعت کی اجازت دے دی اور یہ اجازت قبل زراعت کے یا بعد زراعت کے واقع ہوئی تو اجازت باطل ۱ ہے حتی کہ مالک زمین کو زراعت میں سے کچھ نہ ملے گا اور موافق اشارہ شیخ الاسلام کے اس کے معنی یہ ہیں کہ جب بیج غاصب کی طرف سے ہوئے تو عقد مزارعت بحق مستحق واقع نہ ہوا اور منتقٰی میں فرمایا کہ زمین مذکور بعد اجازت کے غاصب و کاشتکار کے پاس بمنزلہ عاریت کے ہو گی اور اگر اجازت دینے کے بعد مالک نے چاہا کہ اپنی اجازت سے پھر جائے اور زمین لے لے پس اگر کاشتکار نے ہنوز زراعت نہ کی ہو تو اس کو ایسا اختیار ہے اور اگر کاشتکار قبل اجازت کے زراعت کر چکا ہو اور بعد اجازت کے اُگی ہو یا اس نے بعد اجازت کے زراعت کی اور وہ اُگی ہو یا بعد اجازت کے زراعت کی اور ہنوز نہ اُگی ہو تو ان صورتوں میں

مالک کو ایسا اختیار نہ ہو گا کیونکہ اس کے رجوع کر جانے میں مسلمان کے حق میں تغریر ۲ ہے اور یہ حرام ہے۔

اسی طرح اگر کھیتی میں بالیاں آجانے کے بعد مالک نے مزارعت کی اجازت دی ہو حالانکہ ہنوز کھیتی قابل کاٹنے کے نہ ہوئی تھی پھر مالک نے اپنی اجازت سے رجوع کرنا چاہا تو اس کو ایسا اختیار نہ ہو گا لیکن غاصب سے کہا جائے گا کہ کھیتی جب تک کاٹنے کے قابل ہو تب تک تو اس کی زمین کے اجر المثل کا ضامن ہو اور غاصب و کاشتکار میں جس طرح عقد مزارعت تھا اسی طرح رہے گا اور اگر غاصب نے کہا کہ میں فقط اپنے حصہ زراعت کے حساب سے اجر المثل تاوان دینے کا ضامن ہوں گا تو اس سے زیادہ کے واسطے مجبور نہ کیا جائے گا اور کاشتکار سے کہا جائے گا کہ تو بقدراپنے حصہ زراعت کے اجر المثل کا ضامن ہو پس اگر دونوں نے تاوان اجر المثل قبول کیا اور دونوں راضی ہو گئے تو کھیتی کاٹنے کے قابل ہونے تک کار زراعت غاصب و کاشتکار دونوں کے ذمہ ہو گا اس واسطے کہ جس وقت غاصب نے پوری اجرت دینے سے انکار کیا تو ایسا ہو گیا کہ گویا دونوں نے کسی غیر کی زمین میں یہ زراعت کی ہے اور اگر غاصب نے کہا کہ میں اجر المثل کچھ نہ دوں گا اور میں اپنی کھیتی اکھاڑ لیتا ہوں تو کاشتکار کو اختیار ہو گا چاہے اس کے ساتھ اپنا حصہ بھی اکھاڑ لے یا زمین ۳ کا اجر المثل اپنے مال سے ادا کر کے خود مع اپنے مزدوروں کے زراعت کا کام کرے پھر جب کھیتی کائی جائے تو غاصب کا حصہ نکال کر اس میں سے جس قدر کاشتکار نے غاصب کے حصہ کا اجر المثل اور مزدوروں کی مزدوری دی ہے وہ کاشتکار لے لے گا اور جو بڑھ جائے گا وہ غاصب کا ہو گا اور اس میں سے عالموں کی اجرت نہ لے گا اور اگر کاشتکار نے کہا کہ میں کچھ تاوان اجر المثل نہیں اٹھاتا ہوں اور نہ اس میں کوئی کام کروں گا بلکہ میں کھیتی اکھاڑ لیتا ہوں پس اگر غاصب نے بھی اس کے ساتھ اتفاق کیا تو یہ دونوں کھیتی اکھاڑ کر خالی زمین اس کے مالک کو سپرد کر دیں اور اگر غاصب نے اس

سے انکار ۴ کیا تو غاصب کو اختیار ہو گا کہ زمین کا اجر المثل اپنے مال سے ادا کرے اور اس سے کہا جائے گا کہ تو خود اپنے مزدوروں کے ساتھ کار زراعت انجام دے یہاں تک کہ کھیتی کائی جائے پھر تو حصہ کاشتکار

---

۱ باطل ہے یعنی مالک کو کچھ فائدہ نہیں ہے۔ ۲ تغریر یعنی تکلیف و ایذاء بیوجہ ہے۔ ۳ زمین یعنی کل زمین۔ ۴ انکار کیا یعنی کہا کہ میں کھیتی نہیں اکھاڑوں گا بلکہ کل اجر المثل کا ضامن ہوں۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 325 Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

Take back whatever amount you have paid as land compensation and wages for laborers on his behalf. For you, the same rules will apply as mentioned for the cultivator in the first instance. This all applies if it is by a judicial decree (*qada al-qadi*). If either of them did so without a judge's order and without the other's permission, he will be considered a volunteer (*mutawwa'*) ١ـــه. The other person shall be given his full share of the crop, and neither of them shall be required to give charity (*sadaqah*) from the portion of the crop they received. However, for a usurper (*ghasib*), whatever portion of the crop was mandated before the owner's permission is considered the proceeds of misappropriation; this ruling (1) does not apply to it.

If the landowner gave permission for sharecropping (*muzara'ah*) before sowing, and then the cultivator sowed the seeds which sprouted, and at this point, the landowner wanted his land back, and the cultivator said, "I am leaving the sharecropping arrangement and do not need to work because the seeds haven't grown," while the usurper said, "I will maintain the sharecropping because the seeds put in the ground have become spoiled (*fasid*)," the usurper will be told that he is liable for the standard rent (*ujrat al-mithl*) of the land until harvest time. If he agrees to this, the cultivator must fulfill the sharecropping according to the usurper's conditions, and the entire rent will be the usurper's responsibility. The cultivator cannot reclaim any rent from his share (2). If the usurper says, "I will not pay the standard rent and will take back my seeds" (meaning from the landowner), the cultivator will be told that he has the choice to either void the sharecropping and return the seeds to the usurper and pay the standard rent to the landowner, or, if he wishes, the standard rent for the land will be mandatory upon him until harvest. If he agrees, the sharecropping will be valid, and the seed owner will have no way to take back his seeds. The compensation paid by the cultivator as standard rent for the land will be considered a voluntary act (*mutawwa'*), and the sharecropping, meaning the agricultural produce, will be shared between both parties according to the agreed terms. Neither of them shall give any *sadaqah* from the grain that falls into their share ٣ـــه; this is in *Al-Muhit*. If a person usurps seeds and sows them in his own land, the owner of the seeds has the right to authorize the usurper's action before the seeds sprout, because before sprouting, the seeds are established in the ground as they are. Therefore, it will be considered as if they were placed on top of the land. Authorization given after the seeds have sprouted will not be effective; this is in *Al-Muhit*. If land is usurped and cultivated, and

then another person sows crops over it, the crop belongs to the second cultivator, and the first must pay compensation equal to the seeds used. If any damage occurs to the land, the first usurper is liable for compensation; this is in *Khizanat al-Muftin* and written in *Al-Uyun*.

**In the aforementioned matter, following the verdict of Faqih Abul Laith is mandatory ؎**

If a person usurps another's land and sows wheat in it, and then both enter into a dispute while the seeds were still as they were and had not sprouted, the landowner has the option to either leave it until it sprouts, then tell him to uproot his crop, or give the usurper whatever increase occurred due to the seeds. A detailed explanation from Imam Muhammad is narrated: that the land should be appraised once without the sown seeds...

---

١؎ Volunteer: meaning he cannot claim any compensation from the other person's share. ٢؎ If he wishes: meaning do not void the sharecropping and take full responsibility for the land's yield. ٣؎ He shall not give *sadaqah* because the landowner gave permission at a time when the seeds were present in their original state and had value. (1) Rather, he should give *sadaqah*. (2) If a yield is produced.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) 325 किताब-अल-मुज़ार'अत**

जितना भी आपने उसकी ओर से ज़मीन का मुआवज़ा और मज़दूरों की मज़दूरी दी है, उसे ले लें। आपके हक़ में वही बातें होंगी जो पहली सूरत में काश्तकार (किसान) के लिए बताई गई हैं। यह सब उस सूरत में है जब क़ाज़ी का फ़ैसला हो। यदि दोनों में से किसी ने बिना क़ाज़ी के आदेश और बिना दूसरे की अनुमति के ऐसा किया, तो उसे 'मुतव्व' (स्वैच्छिक/अपनी ओर से करने वाला) १ــ करार दिया जाएगा। दूसरे व्यक्ति को कृषि का उसका पूरा हिस्सा दिया जाएगा और दोनों में से किसी पर यह अनिवार्य नहीं होगा कि उसे कृषि से जो हिस्सा मिला है, उसमें से कुछ दान (सदक़ा) करे। लेकिन ग़ासिब (ज़मीन हड़पने वाला) के लिए, ज़मीन के मालिक की अनुमति से पहले कृषि का जो हिस्सा वाजिब हुआ है, वह ग़सब (अवैध कब्ज़े) की उपज है, अतः उसका यह हुक्म (१) नहीं है।

यदि बुवाई से पहले ज़मीन के मालिक ने मुज़ार'अत (बटाई पर खेती) की अनुमति दे दी और फिर काश्तकार ने बुवाई कर दी, जिसके बाद बीज उग आए, और इसी स्थिति में ज़मीन का मालिक अपनी ज़मीन वापस लेना चाहे, और काश्तकार कहे कि मैं मुज़ार'अत छोड़ देता हूँ और मुझे काम करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि बीज नहीं उगे, जबकि ग़ासिब कहे कि मैं मुज़ार'अत जारी रखूँगा क्योंकि ज़मीन में बीज डाल दिए गए हैं और वे ख़राब (फासिद) हो चुके हैं, तो ग़ासिब से कहा जाएगा कि फ़सल कटने तक तुझ पर ज़मीन का उचित किराया (अजरत-उल-मिसल) अनिवार्य होगा। यदि वह इस पर सहमत हो जाए, तो काश्तकार के लिए आवश्यक होगा कि वह ग़ासिब की शर्तों के अनुसार मुज़ार'अत पूरी करे, और सारा किराया ग़ासिब पर वाजिब होगा। काश्तकार के हिस्से (२) में से वह कुछ भी किराया वापस नहीं ले सकता। यदि ग़ासिब कहे कि मैं ज़मीन का उचित किराया नहीं दूँगा और अपना बीज ले लूँगा (अर्थात् मालिक से ले लूँगा), तो काश्तकार से कहा जाएगा कि तुझे अधिकार है चाहे तो मुज़ार'अत रद्द करके ग़ासिब को उसका बीज दे दे और ज़मीन के मालिक को उसका उचित किराया दे दे। और यदि चाहे, तो तुझ पर फ़सल कटने तक ज़मीन का उचित किराया वाजिब होगा। यदि वह इस पर सहमत हो गया, तो मुज़ार'अत वैध होगी और बीज वाले के पास अपना बीज वापस लेने का कोई रास्ता नहीं होगा। काश्तकार ने ज़मीन के किराए के रूप में जो हर्जाना दिया है, उसमें उसे 'मुतव्व' करार दिया जाएगा और मुज़ार'अत अर्थात् कृषि की उपज दोनों के बीच शर्त के अनुसार साझा होगी। दोनों में से प्रत्येक के हिस्से में जो अनाज आएगा, उसमें से कोई भी सदक़ा नहीं करेगा ३ــ, यह 'मुहीत' में वर्णित है। यदि किसी व्यक्ति ने बीज हड़प (ग़सब) कर अपनी ज़मीन में बो दिए, तो बीजों के उगने से पहले बीजों के मालिक को यह अधिकार है कि वह

ग़ासिब के कार्य की अनुमति दे दे, क्योंकि बीज उगने से पहले ज़मीन में स्थित हैं। इसलिए उसे वैसा ही माना जाएगा जैसे वह ज़मीन के ऊपर रखा हो। बीज उगने के बाद दी गई अनुमति प्रभावी नहीं होगी, यह 'मुहीत' में है। एक ज़मीन हड़प कर उसमें खेती की गई, फिर उस खेती पर किसी अन्य व्यक्ति ने बुवाई कर दी, तो फसल दूसरे काश्तकार की होगी और पहले व्यक्ति को उसके बीजों के बराबर बीजों का हर्जाना देना होगा। यदि ज़मीन का नुक़सान हुआ, तो उसका हर्जाना पहले ग़ासिब पर अनिवार्य होगा, यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है और 'उयून' में लिखा है।

**उपरोक्त मसले में फ़क़ीह अबुल लैस के फ़तवे के अनुसार अमल करना अनिवार्य है ؎**

यदि एक व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन हड़प कर उसमें गेहूँ बो दिए और फिर दोनों के बीच विवाद हुआ, जबकि बीज अभी वैसे ही थे और उगे नहीं थे, तो ज़मीन के मालिक को अधिकार होगा कि चाहे तो उगने तक छोड़ दे, फिर उगने के बाद उससे कहे कि अपनी खेती उखाड़ ले, या बीजों के कारण जो कुछ बढ़ोतरी हुई है, वह ग़ासिब को दे दे। इमाम मोहम्मद से इसकी व्याख्या इस प्रकार वर्णित है कि एक बार ज़मीन का मूल्यांकन बीजों के बिना किया जाए...

---

१؎ मुतव्व अर्थात् वह दूसरे के हिस्से में से कोई हर्जाना नहीं ले सकता। २؎ यदि वह चाहे, अर्थात् मुज़ार'अत रद्द न करे और पूरी ज़मीन की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ले। ३؎ सदक़ा नहीं करेगा क्योंकि ज़मीन के मालिक ने अनुमति ऐसे समय दी जब बीज अपनी मूल अवस्था में मौजूद और कीमती थे। (१) बल्कि सदक़ा करे। (२) यदि पैदावार हो।

---

میں سے جس قدر تو نے اس کی طرف سے تاوان زمین اور مزدوروں کی مزدوری دی ہے لے لینا اور تیرے حق میں سب وہی باتیں ہوں گی جو پہلی صورت میں کاشتکار کے واسطے مذکور ہوئی ہیں اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ یہ قضاء قاضی ہو اور اگر دونوں میں سے کسی نے بغیر حکم قاضی اور بغیر اجازت دوسرے کے ایسا کیا تو وہ مطوع ۱ـہ قرار دیا جائے گا اور دوسرے کو اس کا حصہ زراعت پورا دیا جائے گا اور دونوں میں سے کسی پر یہ واجب نہ ہو گا کہ جس قدر اس کو زراعت میں سے حصہ ملا ہے اس میں سے حصہ صدقہ کر دے لیکن غاصب کے واسطے مالک کی اجازت سے پہلے جو کچھ حصہ زراعت واجب ہوا ہے وہ حاصلات غصب ہے اس کا یہ حکم (۱) نہیں ہے۔

اگر تخم ریزی سے پہلے مالک زمین نے مزارعت کی اجازت دے دی پھر کاشتکار نے تخم ریزی کی پس بیج اگے اور اسی حال میں مالک زمین نے اپنی زمین لینی چاہی پس کاشتکار نے کہا کہ میں مزارعت چھوڑے دیتا ہوں اور مجھے کام کرنے کی ضرورت نہیں ہے اس واسطے کہ بیج نہیں اگے اور غاصب نے کہا کہ میں مزارعت باقی رکھوں گا اس واسطے کہ بیج زمین میں ڈالا گیا تو فاسد ہو گیا ہے تو غاصب سے کہا جائے گا کہ کھیتی کاٹنے تک تجھ پر زمین کا اجرت المثل واجب ہو گا پس اگر وہ اس پر راضی ہو گیا تو کاشتکار پر واجب ہو گا کہ مزارعت کو موافق اشتراط غاصب کے پورا کرے اور تمام اجرت غاصب پر واجب ہو گی اور حصہ کاشتکار (۲) میں سے کچھ اجرت واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر غاصب نے کہا کہ میں زمین کا اجرت المثل نہ دوں گا اور اپنا بیج لے لوں گا یعنی مالک زمین سے لے لوں گا۔ تو کاشتکار سے کہا جائے گا کہ تجھے اختیار ہے چاہے مزارعت باطل کر کے غاصب کو اس کا بیج دے دے اور مالک زمین کو

اس کا اجرت المثل دے دے اور اگر چاہے تو تجھ پر زمین کا اجرت المثل کھیتی کاٹنے کے وقت تک واجب ہو گا پس اگر وہ اس پر راضی ہو گیا تو مزارعت جائز ہو گی اور بیجوں والے کو اپنے بیج لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی اور کاشتکار نے جو کچھ زمین کا اجرت المثل تاوان دیا ہے اس میں مطوع قرار دیا جائے گا اور مزارعت یعنی حاصلات زراعت دونوں میں موافق شرط کے مشترک ہوگی اور جس قدر اناج دونوں میں سے ہر ایک کے حصہ میں آئے گا اس میں سے کوئی کچھ صدقہ نہ کرے گا ۳ـہ یہ محیط میں ہے۔ اگر کسی شخص نے بیج غصب کر کے اپنی زمین میں بوئے تو ان بیجوں کے اگنے سے پہلے بیجوں کے مالک کو اختیار ہے کہ غاصب کے فعل کی اجازت دے دے اس واسطے کہ بیج اگنے سے پہلے زمین میں قائم ہے پس اس کا اعتبار اسی طرح ہوگا کہ گویا زمین کے اوپر رکھا ہے اور بیج اگنے کے بعد اگر اس نے اجازت دی تو اس کی اجازت کارآمد نہ ہو گی یہ محیط میں ہے ایک زمین غصب کر کے اس میں زراعت کی پھر اس کی زراعت پر کسی دوسرے شخص نے کھیتی بوئی تو کھیتی دوسرے کاشتکار کی ہو گی اور پہلے کو اس کے بیجوں کے مثل بیج تاوان دے گا اور اگر زمین میں نقصان آیا تو نقصان کا تاوان غاصب اوّل پر واجب ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے عیون میں لکھا ہے۔

**مسئلہ مذکورہ میں موافق حکم فقیہ ابو اللیثؒ کے فتویٰ واجب ہے ـہ**

اگر ایک شخص نے دوسرے کی زمین غصب کر کے اس میں گیہوں بوئے پھر دونوں نے خصومت کی حالانکہ ہنوز بیج ویسے ہی تھے اگے نہ تھے تو مالک زمین کو اختیار ہو گا چاہے اگنے تک چھوڑ دے پھر اگنے کے بعد اس سے کہے کہ اپنی کھیتی اکھاڑ لے یا بیجوں کی وجہ سے جو کچھ زیادتی ہو گئی ہے وہ غاصب کو دے دے اور امام محمدؒ سے اس کی تفسیر یوں مروی ہے کہ ایک مرتبہ زمین بغیر تخم ریختہ اندازہ کی جائے

۱ـہ مطوع یعنی دوسرے کے حصہ میں سے کچھ تاوان نہیں لے سکتا ہے۔ ۲ـہ اگر چاہے یعنی مزارعت باطل مت کر اور پوری زمین کا پوتہ اپنے ذمہ لے۔ ۳ـہ صدقہ نہ کرے گا کیونکہ مالک زمین نے اجازت ایسے وقت دی کہ بیج بحالہ موجود اور قیمت ہے۔ (۱) بلکہ صدقہ کرے۔ (۲) اگر پیدا ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 326 | Kitab al-Muzara'ah**

And the mentioned land shall be appraised once with the sown seeds; whatever the difference in value is, that shall be the surplus. The preferred legal opinion is that the owner shall compensate him for the price of his seeds as a penalty, but these seeds shall be valued on the basis that they are sown in another's land; this is stated in *Al-Khulasa*. If a person sowed seeds in his own land and they did not sprout, and a stranger irrigated it such that they sprouted, then analogy (Qiyas) suggests that the crop should belong to the person who irrigated it. However, by way of juristic preference (Istihsan), the ruling is that the crop belongs to the landowner, because the landowner's consent to such irrigation is implied by the circumstances. This is in contrast to irrigation before sowing. This is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*.

If a person sowed seeds in another's land and then the landowner irrigated it until the crop was ready, the entire crop shall belong to the landowner. If the landowner watered the crop while the seeds were still in their original state in the soil, he must compensate the sower for the price of the seeds on the basis that they were sown in another's land without the right of permanence (Haqq al-Qarar) (1). If the seeds were watered after they had spoiled in the ground and then sprouted—where they would not have grown or would have been worthless without such water—then the entire crop belongs to the landowner, and no compensation is due to the owner of the seeds.

If a person sowed seeds in his own land, and then another person came and added (1) his own seeds, and the crop grew without irrigation, the entire crop belongs to the second person (the non-owner). According to the opinion of Imam al-Azam (may Allah have mercy on him), he must pay the landowner the price of his seeds on the account that these seeds had the right of permanence in that land.

---

1- The phrase "without the right of permanence" means that there is no legal right to keep those seeds there because it is someone else's land. (1) In the same land.

और एक बार ज़मीन मज़कूर तुख़्म रेख़्ता (बोए हुए बीजों) के साथ अंदाज़ा की जाए, पस जो फ़र्क़ हो वही ज़्यादती है। मुख़्तार (पसंदीदा राय) यह है कि मालिक उसको उसके बीजों की क़ीमत बतौर तावान (जुर्माना) देगा, मगर ये बीज इस हिसाब से अंदाज़ा किए जाएंगे कि वे दूसरे की ज़मीन में बोए गए हैं; यह 'ख़ुलासा' में है। अगर एक शख़्स ने अपनी ज़मीन में बुवाई की और वह न उगी, और एक अजनबी ने उसे सींचा, जिससे वह उग आई, तो क़यास (तर्क) यह कहता है कि खेती सींचने वाले की होनी चाहिए, मगर इस्तिहसानन (लोकहित व न्याय की दृष्टि से) यह हुक्म है कि खेती ज़मीन के मालिक की होगी, क्योंकि ज़मीन का मालिक हालात के मुताबिक़ ऐसे सींचने पर राज़ी माना जाएगा। यह बुवाई से पहले सींचने के विपरीत है। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ाँ' में है। 'ख़ुलासा' में क़यास के आधार पर कहा गया है कि खेती सींचने वाले की होगी और बीजों की क़ीमत उस हिसाब से अनिवार्य होगी जैसे वे ऐसी ज़मीन में हों जहाँ उन्हें रहने का हक़ है, बशर्ते कि उसने बीजों के ख़राब होने से पहले सिंचाई की हो। अगर ख़राब होने के बाद और क़ीमती होने से पहले सींचा और खेती उगी, तो ज़मीन के नुक़सान का हक़ अनिवार्य होगा।

अगर एक शख़्स ने दूसरे की ज़मीन में बुवाई की, फिर ज़मीन के मालिक ने उसे सींचा यहाँ तक कि खेती तैयार हो गई, तो पूरी खेती ज़मीन के मालिक की होगी। अगर मालिक ने ऐसी हालत में पानी दिया कि दाना ज़मीन में वैसा ही था, तो उसे बीज बोने वाले को बीजों की क़ीमत देनी होगी इस हिसाब से कि वे बिना हक़-ए-क़रार (रहने के अधिकार) के बोए गए थे। यदि बीज ख़राब होने के बाद पानी दिया गया और खेती उगी जो बिना पानी के न उगती, तो पूरी खेती मालिक की होगी और कोई हर्जाना अनिवार्य न होगा।

अगर किसी ने अपनी ज़मीन में बीज बोए, फिर दूसरे ने आकर अपने बीज डाल दिए और खेती उग आई, तो बिना सिंचाई के उगने की सूरत में पूरी खेती दूसरे शख़्स (ग़ैर-मालिक) की होगी। इमाम-ए-आज़म (रह.) के क़ौल के मुताबिक़, उसे ज़मीन के मालिक को उसके बीजों की क़ीमत उस आधार पर देनी होगी कि उन्हें ज़मीन में रहने का हक़ हासिल था।

---

१- 'बग़ैर हक़-ए-क़रार' का अर्थ है कि वहाँ उन बीजों को रखने का क़ानूनी अधिकार नहीं है क्योंकि वह दूसरे की ज़मीन है। (१) उसी ज़मीन में।

---

اور ایک بار زمین مذکور تخم ریختہ اندازہ کی جائے پس جو تفاوت ہو وہی زیادتی ہے اور مختار یہ ہے کہ مالک اس کو اس کے بیجوں کی قیمت تاوان دے گا مگر یہ بیج اس حساب سے اندازہ کیے جائیں گے کہ غیر کی زمین میں ریختہ ہیں یہ خلاصہ میں ہے اگر ایک شخص نے اپنی زمین میں تخم ریزی کی اور وہ نہ اُگی اور اس کو ایک اجنبی نے سینچا پس اُگی تو قیاس چاہتا ہے کہ کھیتی سینچنے والے کی ہو مگر استحساناً یہ حکم ہے کہ کھیتی مالک زمین کی ہوگی اس واسطے کہ مالک زمین ازروئے دلالت ایسے سینچنے پر راضی ہے بخلاف تخم ریزی سے پہلے سینچنے کے کہ اس میں ایسا نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور خلاصہ میں بنابر حکمِ قیاس کے ذکر فرمایا کہ کھیتی سینچنے والے کی ہوگی اور اس پر بیجوں کی نیت اس حساب سے کہ ایسی زمین میں ریختہ ہیں جس میں ان کو برقرار رہنے کا حق حاصل ہے واجب ہوگی بشرطیکہ بیج مذکور کے زمین میں خراب ہو جانے سے پہلے اس نے سینچا ہو اور اگر خراب ہو جانے کے بعد اس طرح اگنے سے پہلے کہ اس کی کچھ قیمت ہو اس نے پانی دیا اور اس کے سینچنے سے بیج اگے تو بحکمِ قیاس اس پر نقصانِ زمین واجب ہوگا یعنی ایک بار زمین اس طرح اندازہ کی جائے گی کہ اس میں تخم ریزی ہوئی اور بیج خراب ہو گئے ہیں اور ایک بار اس طرح اندازہ کی جائے کہ اس میں زمین میں تخم ریزی نہیں ہوئی ہے پس جو کچھ تفاوت ہو وہ نقصان تاوان دے اور یہ کھیتی اسی سینچنے والے کی ہوگی اور اگر کھیتی اُگ کر کچھ قیمت دار ہو جانے کے بعد سینچنے والے نے اس میں پانی دیا تو جس دن اس نے پانی دیا ہے اس دن جو کھیتی کی قیمت تھی وہ سینچنے والے پر واجب ہوگی اور کھیتی سینچنے والے کی ہوگی اور اگر کھیتی کو ایسے وقت میں سینچا کہ اس وقت سینچنے کی حاجت کامل نہ تھی لیکن سینچنے سے کھیتی عمدہ جید ہوگئی تو یہ

کھیتی مالک زمین کی ہوگی اور سینچنے والے کو کچھ نہ ملے گا اور یہ جواب فقیہ ابوجعفر کا ہے اور فقیہ ابواللیث نے یوں جواب فرمایا ہے کہ بہر حال اجنبی سینچنے والا متطوع ہے اور کچھ نہ ملے گا کذا فی الخلاصۃ مترجم کہتا ہے کہ اس بارے میں بھی موافق حکم فقیہ ابواللیث کے فتویٰ واجب ہے فافہم۔

اگر ایک شخص نے دوسرے کی زمین میں تخم ریزی کی پھر مالک زمین نے اس کو سینچا یہاں تک کہ کھیتی تیار ہوئی تو اس صورت میں حکم قیاس لیا گیا ہے یعنی پوری کھیتی مالک زمین کی ہوگی پھر اگر مالک زمین نے کھیتی کو ایسی حالت میں پانی دیا کہ دانہ زمین میں ویسا ہی تھا تو اس پر واجب ہوگا کہ بیج ڈالنے والے کو اس کے بیجوں کی قیمت اس حساب سے کہ دوسرے کی زمین میں بغیر حق (1) القرار ریختہ ہیں تاوان دے اور اگر بیج زمیں میں خراب ہو جانے کے بعد اس نے پانی دیا اور کھیتی جمی حالانکہ اگر پانی نہ دیتا تو نہ جمتی یا جمتی مگر اس کی کچھ قیمت نہ ہوتی تو پوری کھیتی مالک زمین کی ہوگی اور اس پر بیجوں والے کے واسطے کچھ ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر بیج مالک زمین کے سوائے کسی دوسرے شخص کی طرف سے ہوں اور پانی بھی مالک زمین کے سوائے کسی دوسرے شخص نے دیا تو اس مسئلہ میں پانی دینے والے کے واسطے وہی حکم ہوگا جو مالک زمین کی طرف سے بیج ہونے کی صورت میں پانی دینے والے کے حق میں مذکور ہوتا ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر ایک شخص نے اپنی زمین میں بیج بوئے پھر دوسرے شخص نے آکر اس میں (1) اپنے بیج ڈالے پھر کھیتی اُگی پس اگر یہ کھیتی بدوں پانی دینے کے اگی تو پوری کھیتی دوسرے شخص یعنی غیر مالک زمین کی ہوگی اور قیاس قول امام اعظم رحمتہ اللہ علیہ اس پر واجب ہوگا کہ مالک زمین کو اس کے بیجوں کی قیمت بدیں حساب کہ یہ بیج زمین میں ریختہ ہیں جس میں ان کو برقرار رہنے کا استحقاق حاصل ہے ادا کرے اور اگر مالک زمین کے بیج زمین میں خراب ہو جانے کے

بعد اس نے اپنے بیج ڈالے ہوں پھر یہ سب بیج اُگے تو اس دوسرے شخص پر واجب ہوگا کہ مالک زمین کو نقصانِ زمین اس حساب سے کہ یہ زمین ایسے تخم سے مزروعہ ہے جن کو اس زمین میں برقرار رہنے کا استحقاق ہے ادا کرے

---

۱- قولہ بغیر حق القرار یعنی وہاں ان بیجوں کو باقی رکھنے کا حق حاصل نہیں ہے کیونکہ غیر کی زمین ہے اور اگر مالک نے ایسا کیا تو حق القرار حاصل ہے۔ (۱) اسی زمین میں۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 327 | Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

...and the entire crop shall belong to the other person. If, after the landowner's crop has sprouted and acquired value, another person sows their own seeds in that land, and subsequently, the entire crop grows together and matures, then it is mandatory for the other person to pay the landowner. On the day it became apparent that their crop had merged with the landowner's crop, whatever the value of the landowner's crop was—calculated on the basis that the crop had the right to remain in that land—must be paid to the landowner. This is the opinion of Imam Azam (RA).

Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA) stated that in all such cases, the entire crop shall be shared between the two parties. This ruling applies when the crop matures without irrigation or with irrigation provided by the other (1) person. However, if the crop matures through irrigation provided by the landowner, then the entire crop shall belong to the landowner. Furthermore, if the landowner provided water before the other person's seeds were spoiled, the landowner is obligated to pay the value of those seeds to the other person. If water was provided after the seeds were spoiled, no compensation is mandatory, as mentioned in 'Al-Muheet'. Matters of this nature have been mentioned in the eleventh chapter of 'Kitab al-Ghasb' (Book of Usurpation). The translator notes that this pertains to the mixing of assets with another's property, not specific agricultural issues; please understand.

**Chapter Eleven: On the Sale of Land Given for Muzara'ah (Sharecropping)**

If a person gives their land to another for sharecropping for one year on the condition that the sharecropper uses their own seeds and tools, and once the cultivator has sown the crop, the landowner sells the said land, there are two scenarios. First, if at the time of sowing the crop is green (sarga), then in this case, the sale is contingent upon the permission of the cultivator, regardless of whether the landowner sold the land with the crop or only the land without the crop. Thus, if the cultivator gives permission for the sale of both the land and the crop, the sale shall be finalized, and the price (thaman) shall be divided based on the value of the land and the value of the crop on the day of the sale. Whatever portion falls to the share of the land shall belong to the landowner. Whatever portion falls to the share of the crop shall be divided half-and-half (2) between the landowner and the cultivator. This applies if the cultivator has permitted the sale. If the cultivator does not permit the sale, the buyer (mushtari) has the option to either wait until the crop

matures or rescind the sale. This applies if the owner sold the land and the crop together. If the landowner sold only the land and not the crop, and the cultivator permitted the sale, the land shall belong to the buyer, and the crop shall be split half-and-half between the seller (ba'i) and the cultivator according to the agreed crop-sharing terms. If the cultivator does not permit the sale, as we have explained, the buyer shall have the right of option (khiyar). If the owner sold the land and their portion of the agriculture, and the cultivator permitted the sale, the buyer shall take the land and the landowner's share of the agriculture for the full price. If the cultivator did not give permission, the buyer shall have the same right of option as mentioned above. In this situation, if the cultivator wishes to rescind the sale, the correct (3) view is that they do not have this option. The second scenario is when the landowner sells the land at such a time...

---

1. This implies that the ruling is hypothetical based on Imam Azam's analogical reasoning (qiyas), as the Imam (RA) does not technically subscribe to the validity of muzara'ah. Note: Some scholars clarified that despite not prescribing muzara'ah, the Imam provided details on its issues, knowing people would not follow his specific opinion on its invalidity. This is considered a marvel of explanation, though it is subject to scholarly review.
2. Provided that the sharecropping is based on a half-share agreement.
3. This is the same disagreement found in 'Ijara' (Leasing) and has already been discussed in 'Kitab al-Buyu' (Book of Sales). (1) To whom the land does not belong.

और पूरी फसल दूसरे व्यक्ति की होगी। यदि ज़मीन के मालिक की फसल उगने और मूल्यवान होने के बाद किसी दूसरे व्यक्ति ने अपने बीज उस ज़मीन में डाले, फिर यह सब फसल मिल-जुलकर तैयार हुई, तो दूसरे व्यक्ति पर यह अनिवार्य होगा कि जिस दिन उसकी फसल का ज़मीन के मालिक की फसल के साथ मिलना ज़ाहिर हुआ, उस दिन ज़मीन के मालिक की फसल का जो भी मूल्य था, वह इस हिसाब से मूल्य लगाकर कि उस फसल को उस ज़मीन में बने रहने का अधिकार है, ज़मीन के मालिक को अदा करे। और यह सब इमाम-ए-आज़म (रह.) का कथन है।

इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि इन सभी स्थितियों में यह पूरी फसल उन दोनों के बीच साझा होगी। यह सब आदेश उस स्थिति में है जब यह फसल बिना सिंचाई के तैयार हुई हो या दूसरे (1) व्यक्ति की सिंचाई से तैयार हुई हो। और यदि ज़मीन के मालिक की सिंचाई से तैयार हुई हो, तो पूरी फसल ज़मीन के मालिक की होगी। फिर यदि दूसरे व्यक्ति के बीज खराब होने से पहले ज़मीन के मालिक ने पानी दिया हो, तो ज़मीन के मालिक पर अनिवार्य होगा कि वह दूसरे व्यक्ति को उसके बीजों का मूल्य दे। और यदि दूसरे व्यक्ति के बीज खराब होने के बाद उसने पानी दिया हो, तो उस पर कोई हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा, जैसा कि 'अल-मुहीत' में है। इस श्रेणी के मसले हमने 'किताब अल-ग़सब' के ग्यारहवें अध्याय में वर्णित कर दिए हैं। अनुवादक कहते हैं कि इसका अर्थ है दूसरे के माल के साथ मिल जाना, न कि कृषि के मसले, इसे समझें।

## अध्याय ग्यारह: जो ज़मीन मुज़ारअत (साझा खेती) पर दी गई हो, उसकी बिक्री के वर्णन में

यदि एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन एक साल के लिए मुज़ारअत के वास्ते इस शर्त पर दी कि वह उसमें अपने बीजों और औजारों से खेती करे, और जब किसान ने उसमें फसल बो दी तो ज़मीन के मालिक ने उक्त ज़मीन बेच दी, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं। पहली यह कि बोआई के समय फसल हरी (सागा) हो, और इस स्थिति में यह बिक्री किसान की अनुमति पर टिकी होगी, चाहे ज़मीन के मालिक ने फसल के साथ ज़मीन बेची हो या बिना फसल के केवल ज़मीन बेची हो। अतः यदि किसान ने ज़मीन और फसल दोनों की बिक्री की अनुमति दे दी, तो बिक्री प्रभावी हो जाएगी और उसका मूल्य (थमन) ज़मीन पर और फसल की बिक्री के दिन के मूल्य पर विभाजित होगा। तो जितना हिस्सा ज़मीन के खाते में आएगा, वह ज़मीन के मालिक का होगा। जितना फसल के खाते में आएगा, वह ज़मीन के मालिक और किसान के बीच आधा-आधा (2) विभाजित होगा। यह उस स्थिति में है जब

किसान ने बिक्री की अनुमति दे दी। और यदि किसान ने बिक्री की अनुमति नहीं दी, तो खरीदार (मुश्तरी) को अधिकार होगा कि चाहे तो फसल तैयार होने तक इंतज़ार करे या चाहे तो बिक्री को रद्द कर दे। यह उस स्थिति में है जब मालिक ने ज़मीन और फसल एक साथ बेच दी हो। और यदि ज़मीन के मालिक ने केवल ज़मीन बेची, फसल नहीं बेची, और किसान ने बिक्री की अनुमति दे दी, तो ज़मीन खरीदार की होगी और फसल बेचने वाले (बाये) और किसान के बीच साझा शर्त के अनुसार आधी-आधी होगी। और यदि किसान ने बिक्री की अनुमति नहीं दी, तो जैसा कि हमने वर्णन किया है, खरीदार को विकल्प (खियार) प्राप्त होगा। और यदि मालिक ने ज़मीन और खेती का अपना हिस्सा बेच दिया और किसान ने बिक्री की अनुमति दे दी, तो खरीदार पूरे मूल्य में ज़मीन और ज़मीन के मालिक के खेती के हिस्से को ले लेगा। और यदि किसान ने अनुमति नहीं दी, तो उसे उपरोक्त की तरह विकल्प प्राप्त होगा। और यदि इस स्थिति में किसान ने चाहा कि बिक्री रद्द कर दे, तो सही (3) यह है कि उसे यह अधिकार नहीं होगा। दूसरी स्थिति यह है कि ज़मीन के मालिक ने ज़मीन ऐसे समय...

---

1. तात्पर्य यह है कि इमाम-ए-आज़म के कयास (अनुमान) पर यह आदेश काल्पनिक है, अन्यथा इमाम (रह.) मुज़ारअत के कायल नहीं हैं, इसे समझें। और कुछ विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि इमाम (रह.) ने मुज़ारअत को स्वीकार न करने के बावजूद मुज़ारअत के मसलों का विवरण इसलिए दिया क्योंकि उन्हें पता था कि लोग उनके इस कथन (मुज़ारअत न करने) को नहीं अपनाएंगे। यह बयान की करामात है और इसमें विचार की गुंजाइश है।
2. बशर्ते कि मुज़ारअत आधी बटाई पर हो।
3. वही मतभेद है जो इजारा (किरायादारी) में है और 'किताब अल-बुयू' (बिक्री की किताब) में गुज़र चुका है। (1) जिसकी ज़मीन नहीं है।

---

اور پوری کھیتی دوسرے شخص کی ہوگی اور اگر مالک زمین کی کھیتی اگنے اور قیمت دار ہو جانے کے بعد دوسرے شخص نے اپنے بیج اس زمین میں ڈالے پھر یہ سب کھیتی ملی ہوئی جم کر تیار ہوئی تو دوسرے شخص پر واجب ہوگا کہ جس روز اس کی کھیتی کا مالک زمین کی کھیتی کے ساتھ ملنا ظاہر ہوا ہے اس دن مالک زمین کی کھیتی کی جو کچھ قیمت تھی وہ اس حساب سے قیمت لگا کر کہ اس کھیتی کو اس زمین میں برقرار رہنے کا استحقاق ہی مالک زمین کو ادا کرے اور یہ سب امام اعظمؒ کا قول ہے۔

امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ ان سب صورتوں میں یہ سب کھیتی ان دونوں میں مشترک ہوگی یہ سب حکم اس صورت میں ہے کہ جب یہ کھیتی بدون سینچے کے تیار ہوئی ہو یا دوسرے (۱) شخص کے سینچے سے تیار ہوئی ہو اور اگر مالک زمین کے سینچے سے تیار ہوئی ہو تو پوری کھیتی مالک زمین کی ہوگی۔ پھر اگر دوسرے شخص کے بیج خراب ہونے سے پہلے مالک زمین نے پانی دیا ہو تو مالک زمین پر لازم ہوگا کہ دوسرے شخص کو اس کے بیجوں کی قیمت دے اور اگر دوسرے شخص کے بیج خراب ہو جانے کے بعد اس نے پانی دیا ہو تو اس پر ضمان واجب نہ ہوگی کذا فی المحیط اس جنس کے مسائل ہم نے کتاب الغصب کے گیارھویں باب میں ذکر کر دیے ہیں۔ قال المترجم یعنی اختلاط بمال غیرہ نہ مسائل زراعت فافہم۔

## باب گیارہ: جو زمین مزارعت پر دی ہو اس کے فروخت کرنے کے بیان میں

اگر ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین ایک سال مزارعت کے واسطے بدیں شرط دی کہ اس میں اپنے بیجوں و آلات سے زراعت کرے اور جب کاشتکار نے اس میں کھیتی بوئی تو مالک

زمین نے زمین مذکور کو فروخت کر دیا تو اس میں دو صورتیں ہیں۔ اول یہ کہ بیج کے وقت کھیتی ساگا ہو اور اس صورت میں یہ بیع کاشتکار کی اجازت پر موقوف ہوگی خواہ مالک زمین نے کھیتی کے ساتھ زمین فروخت کی ہو یا بدوں کھیتی کے فقط زمین فروخت کی ہو پس اگر کاشتکار نے زمین و کھیتی دونوں کی بیع کی اجازت دے دی تو بیع نافذ ہو جائے گی اور اس کا ثمن زمین پر اور کھیتی کی بیع کے روز کی قیمت پر تقسیم ہو گا پس جس قدر زمین کے پڑتے میں آئے گا وہ مالک زمین کا ہوگا۔ جس قدر کھیتی کے پڑتے میں آئے گا وہ مالک زمین و کاشتکار کے درمیان نصفاً لنصف (۲) تقسیم ہوگا۔ یہ اس صورت میں کہ کاشتکار نے بیع کی اجازت دے دی اور اگر کاشتکار نے بیع کی اجازت نہ دی تو مشتری کو اختیار ہو گا چاہے کھیتی تیار ہونے تک انتظار کرے یا چاہے بیع کو فسخ کر دے یہ اس صورت میں کہ مالک نے زمین اور کھیتی ایک ساتھ فروخت کر دی ہو اور اگر مالک زمین نے فقط زمین فروخت کی کھیتی فروخت نہ کی اور کاشتکار نے بیع کی اجازت دے دی تو زمین مشتری کی ہو گی اور کھیتی بائع اور کاشتکار کے درمیان موافق شرط بٹائی کے آدھی آدھی ہو گی اور اگر کاشتکار نے بیع کی اجازت نہ دی تو جس طرح ہم نے بیان کیا ہے کہ مشتری کو خیار حاصل ہوگا اور اگر مالک نے زمین اور اپنا حصہ زراعت فروخت کیا اور کاشتکار نے بیع کی اجازت دی تو مشتری پورے ثمن میں زمین کو اور مالک زمین کے حصہ زراعت کو لے لے گا اور اگر کاشتکار نے اجازت نہ دی تو اس کو مثل مذکورہ بالا خیار حاصل ہوگا اور اگر اس صورت میں کاشتکار نے چاہا کہ بیع فسخ کردے تو صحیح (۳) یہ ہے کہ اس کو یہ اختیار نہ ہوگا۔ صورت دوم یہ ہے کہ مالک زمین نے زمین ایسے وقت...

---

۱۔ مراد یہ ہے کہ امام اعظمؒ کے قیاس پر حکم فرضی ہے ورنہ امام رحمہ اللہ مزارعت کے قائل نہیں ہیں فافہم اور بعض علما نے تصریح کی کہ امام رحمتہ اللہ نے باوجود تجویز مزارعت کے بھی مسائل مزارعت کی تفریحات فرمائی ہیں یہ جان کر کہ میرا قول لوگ اختیار نہ کریں گے۔ بیان

کے کرامت ہے وفیہ نظر۔ ۲۔ جبکہ مزارعت آدھے کی بٹائی پر ہوگا۔ ۳۔ وہی اختلاف ہے جو اجارہ میں ہے اور کتاب البیوع میں گزر چکا ہے۔ (۱) جس کی زمین نہیں ہے۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | 328 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

The sale was executed when the crops were ready for harvest. If the land was sold without the crops, the sale is valid without delay. If the land was sold along with all the crops, this sale shall be effective regarding the land and the owner's share of the cultivation, but it shall remain suspended regarding the sharecropper's share of the cultivation. If the sharecropper gives permission for the sale, he shall receive a share from the price (sale proceeds) in proportion to his share of the cultivation, and the rest of the price shall belong to the landowner. If the sharecropper does not grant permission, and if the buyer was unaware of the sharecropping agreement at the time of purchase, then because rights are divided in respect to the buyer, the buyer has the option to either accept or reject the deal. If the landowner sold the land and crops while the crops were still green (immature) and the sharecropper did not permit the sale, giving the buyer the right to rescind the sale, yet the buyer did not rescind until the crops became ready for harvest, then the said sale becomes effective regarding the land and the landowner's share of the cultivation, but the buyer still retains an option.

The buyer may either take the land and the owner's share of cultivation in exchange for their respective portions of the price or abandon it. If the owner sold the land along with his share of cultivation and the sharecropper did not permit the sale, and the buyer did not rescind the sale until the crops were ready for harvest, then the said sale shall become effective, and the buyer shall take the land and the owner's share of cultivation for the full price, and the buyer will not have the option to refuse. Similarly, if the owner sold the land without the cultivation and the sharecropper did not permit the sale, and the buyer did not rescind until the crops were ready for harvest, then the sale of the land shall become effective and the buyer shall not have the right of option (Khiyar); this is mentioned in 'Al-Muhit' and written in 'Fatawa Fazli'. If one gives his land for sharecropping and then sells it before the sharecropper begins cultivation, there are two scenarios: First, if the sale is on behalf of the landowner, the buyer has the right to prevent the sharecropper from cultivating. If the sharecropper had not yet started or performed any agricultural work, then legally and religiously nothing is due to the sharecropper. If he has performed some agricultural tasks such as constructing canals or repairing watercourses, the legal ruling (Qada) remains the same, but religiously (Diyanatan) it is mandatory upon the landowner before Allah the Almighty to satisfy him regarding

the work he has done, even though this is not a legal requirement. Second, if the sale is on behalf of the sharecropper, then the buyer shall not have the right to prevent him from cultivating; this is in 'Al-Zakhira'. A person gave his vineyard to another person for sharecropping, and the worker performed some work in said garden. Subsequently, with the worker's consent, the owner sold the garden. If no grapes or dates were harvested, the worker shall receive nothing from the sale price because only labor was provided by him, and mere labor (without result) has no value. However, if the owner sold the vineyard after the fruit appeared along with his share, and the worker permitted it, the sale is valid; the garden's share of the fruit belongs to the buyer, and the worker's share belongs to the worker. If such a sale occurred before the appearance of fruit, then by way of legal ruling (Qada), the worker shall receive nothing because he does not own anything until the fruit appears; he only becomes an owner after the fruit appears. This is in 'Fatawa Qazi Khan'.

A piece of land in which seeds have been sown but have not yet sprouted was sold. If the said seeds have spoiled in the ground, they belong to the buyer, otherwise they belong to the seller. If the buyer watered the land until the crops sprouted, and at the time of sale the seeds were not spoiled in the ground, the crops still belong to the seller, and the work done by the buyer shall be considered voluntary. Similarly, if the seeds have germinated but have not yet attained any value, the same ruling applies. Faqih Abu al-Layth (RA) has opted for the view that in all cases, the crops belong to the seller, unless he explicitly or implicitly included those seeds with the land...

बिक्री की गई जब खेती काटने योग्य हो गई थी, तो यदि ज़मीन बिना खेती के बेची गई, तो बिक्री बिना किसी विलंब के वैध होगी। और यदि ज़मीन को पूरी खेती के साथ बेचा गया, तो यह बिक्री ज़मीन और मालिक के खेती के हिस्से के संबंध में प्रभावी होगी और काश्तकार (किसान) के खेती के हिस्से के संबंध में निलंबित रहेगी। फिर यदि काश्तकार ने बिक्री की अनुमति दे दी, तो काश्तकार को कुल मूल्य में से उसकी खेती के हिस्से के अनुपात में हिस्सा मिलेगा और बाकी सारा मूल्य ज़मीन के मालिक का होगा। और यदि काश्तकार ने अनुमति नहीं दी, तो यदि खरीदार को खरीदते समय मुज़ारअत (बटाई की व्यवस्था) की जानकारी नहीं थी, तो चूंकि खरीदार के मामले में अधिकार विभाजित होते हैं, खरीदार को विकल्प होगा कि वह इसे ले या न ले। और यदि खेती हरी होने की स्थिति में मालिक ने ज़मीन और खेती बेच दी और काश्तकार ने बिक्री की अनुमति नहीं दी और खरीदार को बिक्री रद्द करने का अधिकार प्राप्त हुआ, लेकिन उसने बिक्री रद्द नहीं की यहाँ तक कि खेती काटने योग्य हो गई, तो उक्त बिक्री ज़मीन और ज़मीन के मालिक के खेती के हिस्से के संबंध में प्रभावी हो जाएगी, लेकिन खरीदार को विकल्प होगा।

चाहे वह ज़मीन और मालिक के खेती के हिस्से को उन दोनों के मूल्य के बदले ले ले या छोड़ दे। और यदि मालिक ने ज़मीन को अपने खेती के हिस्से सहित बेचा हो और काश्तकार ने बिक्री की अनुमति न दी हो और खरीदार ने बिक्री रद्द न की हो यहाँ तक कि खेती काटने योग्य हो गई, तो उक्त बिक्री प्रभावी हो जाएगी और खरीदार ज़मीन और मालिक के खेती के हिस्से को पूरे मूल्य पर ले लेगा और खरीदार के पास न लेने का विकल्प नहीं होगा। इसी प्रकार यदि मालिक ने ज़मीन को बिना खेती के बेचा और काश्तकार ने बिक्री की अनुमति नहीं दी और खरीदार ने बिक्री रद्द नहीं की यहाँ तक कि खेती काटने योग्य हो गई, तो ज़मीन की बिक्री प्रभावी हो जाएगी और खरीदार को विकल्प (खियार) प्राप्त नहीं होगा, यह 'मुहित' में है और 'फतावी फज़ली' में लिखा है। यदि अपनी ज़मीन मुज़ारअत (बटाई) पर दी और फिर काश्तकार के खेती करने से पहले उसे बेच दिया, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बिक्री ज़मीन के मालिक की ओर से हो, तो इस स्थिति में खरीदार को अधिकार होगा कि वह काश्तकार को खेती करने से रोके। फिर यदि काश्तकार ने काम शुरू न किया हो और खेती का कोई काम न किया हो, तो कानूनी और धार्मिक रूप से काश्तकार के लिए कुछ भी अनिवार्य नहीं होगा। और यदि उसने खेती के कुछ कार्य जैसे नहर बनाना या कुएँनाली ठीक करना आदि किए हों, तो कानूनी (क़ज़ा) आदेश यही है, लेकिन धार्मिक (दयानतन) रूप से ज़मीन के मालिक पर अल्लाह

के सामने यह अनिवार्य होगा कि उसने जो काम किया है उसके लिए उसे संतुष्ट कर दे, हालाँकि कानूनी रूप से यह आदेश नहीं है। दूसरी स्थिति यह कि बिक्री काश्तकार की ओर से हो, तो इस स्थिति में खरीदार को यह अधिकार नहीं होगा कि वह काश्तकार को खेती करने से रोके, यह 'ज़खीरा' में है। एक व्यक्ति ने अपना अंगूर का बाग दूसरे व्यक्ति को बटाई पर दिया और कामगार (आमिल्ल) ने उक्त बाग में थोड़ा काम किया, फिर कामगार की सहमति से मालिक ने उक्त बाग को बेच दिया। यदि अंगूर के बाग या खजूर के पेड़ों से कुछ फल आदि प्राप्त न हुए हों, तो कामगार को बिक्री मूल्य में से कुछ नहीं मिलेगा, क्योंकि कामगार की ओर से केवल श्रम पाया जाता है और खाली श्रम का कोई मूल्य नहीं है। और यदि मालिक ने अंगूर के बाग में फल आने के बाद ज़मीन को अपने हिस्से सहित बेचा, तो यदि कामगार ने अनुमति दे दी तो बिक्री वैध है, और फलों में से बाग का हिस्सा खरीदार का होगा और कामगार का हिस्सा कामगार का होगा। और यदि फल निकलने से पहले ऐसी बिक्री हुई, तो कानूनी आदेश के अनुसार कामगार को कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि फल आने से पहले वह किसी चीज़ का मालिक नहीं है, वह तो फल आने के बाद ही मालिक होता है, यह 'फतावी क़ाज़ी खान' में है।

एक ज़मीन जिसमें बीज बोए जा चुके हैं लेकिन अभी उगे नहीं हैं, बेची गई। यदि उक्त बीज ज़मीन में खराब हो गए हों तो वे खरीदार के होंगे, अन्यथा विक्रेता के होंगे। और यदि खरीदार ने ज़मीन में पानी दिया यहाँ तक कि खेती उग आई और बिक्री के समय बीज ज़मीन में खराब नहीं हुए थे, तो भी खेती विक्रेता की होगी और खरीदार ने जो काम किया उसे स्वैच्छिक (मुततवे) माना जाएगा। इसी प्रकार यदि बीज जम आए हों लेकिन अभी तक उनका कोई मूल्य न हुआ हो, तब भी यही आदेश है। और फकीह अबुल लैथ (रह.) ने यह विकल्प चुना है कि सभी स्थितियों में खेती विक्रेता की होगी, लेकिन यदि उसने ज़मीन के साथ उस बीज को स्पष्ट रूप से (सर्रीहन) या सांकेतिक रूप से (दलालातन)...

فروخت کی کہ جب کھیتی کاٹنے کے لائق ہو گئی تھی پس اگر زمین بدوں کھیتی کے فروخت کی تو بلا توقف بیع جائز ہوگی اور اگر زمین کو تمام کھیتی کے ساتھ فروخت کیا تو یہ بیع زمین اور مالک کے حصہ زراعت کے حق میں نافذ ہوگی اور کاشتکار کے حصہ زراعت کے حق میں موقوف رہے گی پس اگر کاشتکار نے بیع کی اجازت دے دی تو کاشتکار کو ثمن میں سے اس کے حصہ زراعت کے حساب سے حصہ ملے گا اور باقی سب ثمن مالک زمین کا ہو گا اور اگر کاشتکار نے اجازت نہ دی پس اگر مشتری کو خریدنے کے وقت مزارعت سے آگاہی نہ تھی تو چونکہ مشتری کے حق میں صفہ متفرق ہوتا ہے مشتری کو اختیار ہوگا چاہے لے یا نہ لے اور اگر کھیتی سا گا ہونے کی حالت میں مالک نے زمین اور کھیتی فروخت کردی اور کاشتکار نے بیع کی اجازت نہ دی اور مشتری کو فسخ بیع کا اختیار حاصل ہوا مگر اس نے بیع فسخ نہ کی یہاں تک کہ کھیتی کاٹنے کے لائق ہو گئی تو بیع مذکور زمین اور مالک زمین کے حصہ زراعت کے حق میں نافذ ہو جائے گی لیکن مشتری کو اختیار ہو گا۔

چاہے زمین و مالک کا حصہ زراعت بعوض ان دونوں کے حصہ ثمن کے لیے یا ترک کر دے اور اگر مالک نے زمین مع اپنے حصہ زراعت کے فروخت کی ہو اور کاشتکار نے بیع کی اجازت نہ دی اور مشتری نے بیع فسخ نہ کی یہاں تک کہ کھیتی کاٹنے کے لائق ہو گئی تو بیع مذکور نافذ ہو جائے گی اور مشتری زمین اور مالک کے حصہ زراعت کو پورے ثمن میں لے لے گا اور مشتری کو نہ لینے کا اختیار نہ ہو گا اسی طرح اگر مالک نے زمین کو بدوں زراعت کے فروخت کیا اور کاشتکار نے بیع کی اجازت نہ دی اور مشتری نے بیع فسخ نہ کی یہاں تک کہ کھیتی کاٹنے کے لائق ہو گئی تو زمین کی بیع نافذ ہو جائے گی اور مشتری کو خیار حاصل نہ ہو گا یہ محیط میں ہے

فتاویٰ فضلی میں لکھا ہے۔ اگر اپنی زمین مزارعت پر دی پھر کاشتکار کے زراعت کرنے سے پہلے اس کو فروخت کیا تو اس میں دو صورتیں ہیں اول یہ کہ بیع مالک زمین کی طرف سے ہوں پس اس صورت میں مشتری کو اختیار ہو گا چاہے کاشتکار کو زراعت سے منع کرے پھر اگر کاشتکار نے کام شروع نہ کیا ہو اور کار کاشتکاری میں سے کوئی کام نہ کیا ہو تو کاشتکار کے واسطے حکماً و دیانۃ کچھ لازم نہ ہو گا اور اگر اس نے بعض کار ہائے زراعت جیسے نہر ا گار بنا و کاریز میں درست کرنا انجام دیے ہوں تو بھی قضاء یہی حکم ہے لیکن دیانۃ مالک زمین پر فینا بینہ اللہ تعالی لازم ہو گا کہ جو کام اس نے کیا ہے اس کی بابت اس کو راضی کر لے اگرچہ شرعاً قضاء یہ حکم نہیں ہے دوم یہ کہ بیع کاشتکار کی طرف سے ہوں پس اس صورت میں مشتری کو اختیار نہ ہو گا کہ کاشتکار کو زراعت سے منع کرے یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک شخص نے اپنا باغ انگور دوسرے شخص کو بٹائی پر دیا اور عامل نے باغ مذکور میں تھوڑا کام انجام دیا پھر عامل مذکور کی رضامندی سے مالک نے باغ مذکور کو فروخت کیا پس اگر باغ انگور یا درختان خرما میں سے کچھ پھل وغیرہ حاصل نہ ہوئے ہوں تو عامل کو ثمن میں سے کچھ نہ ملے گا اس واسطے کہ عامل کی طرف سے فقط عمل پایا جاتا ہے اور خالی عمل کی کچھ قیمت نہیں ہے اور اگر مالک نے باغ انگور میں پھل آنے کے بعد زمین کو مع اپنے حصہ کے فروخت کیا پس اگر عامل نے اجازت دے دی تو بیع جائز ہے اور پھلوں میں سے باغ کا حصہ مشتری کا ہو گا اور عامل کا حصہ عامل کا ہو گا اور اگر پھل برآمد ہونے سے پہلے ایسی بیع واقع ہوئی تو حکم قضا کی راہ سے عامل کو کچھ نہ ملے گا اس واسطے کہ پھل آنے سے پہلے وہ کسی چیز کا مالک نہیں وہ تو پھل آنے کے بعد البتہ مالک ہوتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

ایک زمین جس میں تخم ریزی ہو چکی ہے مگر ہنوز اگا نہیں ہے فروخت کی پس اگر تخم مذکور زمین میں خراب ہو گیا ہو تو وہ مشتری کا ورنہ بائع کا ہو گا اور اگر مشتری نے زمین میں پانی دیا

یہاں تک کہ کھیتی اگی اور بیع کے وقت بیج زمین میں بگڑا نہ تھا تو بھی کھیتی بائع کی ہو گی اور مشتری نے جو کام کر دیا اس میں متطوع قرار دیا جائے گا اس طرح اگر بیج جم آیا ہو مگر ہنوز اس کی کچھ قیمت نہ ہوئی ہو تب بھی یہی حکم ہے اور فقیہ ابواللیثؒ نے اختیار کیا ہے کہ سب صورت میں کھیتی بائع کی ہو گی لیکن اگر اس نے زمین کے ساتھ اس تخم کو صریحاً یا دلالۃً

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) / Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping) / Page (329)**

If it has been sold, then it is not so, and the fatwa is based on this, as stated in 'Al-Kubra'.

**Chapter Twelve: On the Occurrence of Excuses (Legal Justifications) in Sharecropping and Related Dealings**

The matters that serve as excuses for the annulment of a sharecropping (Muzara'ah) contract are of several types. Some pertain to the landowner, and some to the cultivator (farmer). The first type, pertaining to the landowner, is when he is unable to settle a debt except by using the proceeds from selling that land. In such a case, the sharecropping contract will be annulled due to this excuse, provided annulment is possible. This is possible if it occurs before sowing or after the crop is ready for harvest. This is because maintaining and completing the contract is not possible without bearing loss, and he is not required to bear such loss. Therefore, the Qazi (judge) will first sell the land to settle the debt and then annul the sharecropping contract. The contract does not annul itself merely by the emergence of the excuse. If annulment is not possible because the crop is not yet ready for harvest, the land shall not be sold, nor shall the contract be annulled until the crop is ready for harvest. The landowner may remain or be imprisoned, if the creditor so requests, until the crop matures. This is because imprisonment is a penalty for non-payment, and this person cannot be considered a non-payer before the crop is harvestable, as he is legally prohibited from selling the land until then, and a prohibited person is excused. Once the crop is harvestable, he may be imprisoned again (1) so that he sells his land to pay the debt himself, or else the Qazi will sell it on his behalf. The second type, pertaining to the cultivator, includes excuses such as illness, which renders the cultivator unable to work, or travel, as he is in need of it. Also, leaving one profession to adopt another is an excuse because some professions do not provide enough sustenance, or if any other impediment arises that prevents him from working. This is as stated in 'Al-Badai'.

In dealings regarding the sharecropping of trees, if either party refuses to act according to the contract's requirements without a valid excuse, they do not have that right. Thus, the contract is binding on both sides. This is in 'Al-Dhakhirah'. Imam Muhammad stated in 'Al-Asl' that if the seeds are provided by the cultivator and he says he wishes to abandon sharecropping for that year or wishes to cultivate a

different piece of land, he has the right to do so and can annul the contract. This is in 'Al-Muhit'. It is written in 'Al-Abanah' that in the case of illness, a detailed explanation based on the analogy of travel is necessary. If he took the sharecropping of trees on the condition that he works himself and with his laborers, his falling ill would be an excuse. This is in 'Al-Tatarkhaniyah'. Excuses on the part of the owner of the trees or land include incurring a debt that cannot be paid except through the price of the trees and land. In such a case, for the annulment of the contract to be valid according to the report in 'Kitab al-Ziyadat', a judge's order or mutual consent is necessary. However, according to the reports in 'Kitab al-Muzara'ah', 'Ijarat', and 'Al-Jami al-Saghir', a judge's ruling or the consent of the cultivator/agent is not required. Some of our later scholars have followed the report in 'Ziyadat', while others have followed 'Kitab al-Asl' and 'Al-Jami al-Saghir'.

1. Again, I say this is not mandatory; rather, he should be imprisoned only if he refuses to sell it himself, as this is the cause.
2. Like travel, meaning like illness, travel and other matters mentioned later, such as not starting a second profession after leaving one, etc.

**फतावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) / किताब अल-मुज़ारअत (साझा खेती की पुस्तक) / पृष्ठ (329)**

बेच दिया गया हो तो ऐसा नहीं है और इसी पर फतवा है, जैसा कि 'अल-कुबरा' में है।

## अध्याय बारह: मुज़ारअत और मुआमलत में उज्र (कानूनी बाधा) उत्पन्न होने के वर्णन में

वे मामले जो मुज़ारअत (साझा खेती) को समाप्त करने के लिए उज्र (बहाना/बाधा) बनते हैं, वे कई प्रकार के हैं। कुछ ज़मीन के मालिक से संबंधित हैं और कुछ किसान (काश्तकार) से। पहला प्रकार, जो ज़मीन के मालिक से संबंधित है, वह यह है कि मालिक पर ऐसा कर्ज हो जिसे वह उस ज़मीन की कीमत के बिना चुकाने में सक्षम न हो, अर्थात उस ऋण को चुकाने के लिए ज़मीन का बेचा जाना आवश्यक हो। ऐसे उज्र से मुज़ारअत का अनुबंध समाप्त हो जाएगा, बशर्ते कि अनुबंध समाप्त करना संभव हो। यह उस स्थिति में संभव है जब यह मामला बुआई से पहले हो या फसल तैयार होकर कटाई के योग्य हो जाने के बाद हो। इसका कारण यह है कि बिना नुकसान उठाए अनुबंध को जारी रखना और पूरा करना संभव नहीं है। इसलिए, उस पर नुकसान सहन करना अनिवार्य नहीं है। काज़ी (न्यायाधीश) पहले ज़मीन को उसके कर्ज के बदले बेच देगा और फिर मुज़ारअत का अनुबंध समाप्त कर देगा। केवल उज्र पेश होने से अनुबंध स्वयं समाप्त नहीं होगा। यदि फसल अभी कटाई के योग्य न हुई हो, तो ज़मीन नहीं बेची जाएगी और न ही अनुबंध समाप्त किया जाएगा जब तक कि फसल पक न जाए। ज़मीन का मालिक कैद में रहेगा, या उसे कैद किया जा सकता है यदि ऋणदाता चाहे, जब तक कि फसल तैयार न हो जाए। ऐसा इसलिए है क्योंकि कैद अदायगी न करने की सज़ा है और यह व्यक्ति फसल कटने से पहले अदायगी करने में असमर्थ है क्योंकि ज़मीन बेचने से उसे शरियत द्वारा रोका गया है, और जो व्यक्ति प्रतिबंधित हो वह विवश माना जाता है। फिर जब फसल कटाई के योग्य हो जाए, तो उसे दोबारा (1) इस उद्देश्य से कैद किया जा सकता है कि वह अपनी ज़मीन बेचकर स्वयं ऋण चुकाए, अन्यथा काज़ी उसकी ओर से ज़मीन बेच देगा। दूसरा प्रकार जो किसान से संबंधित है, वह बीमारी जैसा उज्र है जिससे किसान काम करने में असमर्थ हो जाए, या यात्रा (सफर) जैसा उज्र क्योंकि वह इसके लिए विवश है। इसी तरह एक पेशा छोड़कर दूसरा अपनाना भी उज्र है क्योंकि कुछ पेशे ऐसे होते हैं जिनसे जीवन निर्वाह नहीं होता। या कोई ऐसी बाधा आए जो उसे काम करने से रोक दे, जैसा कि 'बदाए' में है।

पेड़ों की साझेदारी के मामले में, यदि दोनों में से किसी ने भी अनुबंध की शर्तों के अनुसार कार्य करने से इनकार किया, तो बिना किसी वैध उज़्र के उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं होगा। अतः अनुबंध दोनों पक्षों के लिए अनिवार्य है। यह 'अल-ज़खीरा' में है। इमाम मुहम्मद ने 'अल-अस्ल' में कहा है कि यदि बीज किसान की ओर से हों और वह कहे कि मैं इस वर्ष खेती छोड़ना चाहता हूँ या दूसरी ज़मीन पर खेती करना चाहता हूँ, तो उसे इसका अधिकार है और वह अनुबंध समाप्त कर सकता है। यह 'अल-मुहीत' में है। 'अल-इबाना' में लिखा है कि बीमारी की स्थिति में भी यात्रा के सादृश्य पर विस्तार होना आवश्यक है। यदि उसने पेड़ों की साझेदारी इस शर्त पर ली है कि वह स्वयं और अपने मजदूरों से काम करेगा, तो उसका बीमार होना उज़्र माना जाएगा। यह 'तातारीखानिया' में है। पेड़ों और ज़मीन के मालिक की ओर से उज़्र यह है कि उस पर ऐसा कर्ज हो जाए जिसे वह पेड़ों और ज़मीन की कीमत के बिना चुका न सके। ऐसी स्थिति में अनुबंध समाप्त करने के लिए 'किताब अल-ज़ियादात' की रिवायत के अनुसार काज़ी का आदेश या दोनों पक्षों की आपसी सहमति आवश्यक है। जबकि 'किताब अल-मुज़ारअत', 'इजारात' और 'जामे सगीर' के अनुसार काज़ी के फैसले या किसान की सहमति की आवश्यकता नहीं है। हमारे कुछ बाद के विद्वानों ने 'ज़ियादात' की रिवायत को अपनाया है और कुछ ने 'किताब अल-अस्ल' और 'जामे सगीर' की।

1. पुनः कहता हूँ कि यह अनिवार्य नहीं है, बल्कि यदि वह स्वयं बेचने से इनकार करे तब कैद किया जाएगा क्योंकि यही कारण है।
2. यात्रा की तरह, अर्थात बीमारी की तरह यात्रा और अन्य मामले जो आगे बताए गए हैं जैसे एक पेशा छोड़कर दूसरा शुरू न करना आदि।

---

فروخت کیا ہو تو ایسا نہیں ہے اور اسی پر فتویٰ ہے کذا فی الکبریٰ۔

**باب بارہ: مزارعت و معاملت میں عذر واقع ہونے کے بیان میں**

جو امور مزارعت کی فسخ کے واسطے عذر ہوتے ہیں وہ چند انواع ہیں بعض مالک زمین کی طرف راجع ہیں اور بعض کاشتکار کی طرف سے پس اول یعنی جو مالک زمین کی طرف سے راجع ہیں وہ یہ ہیں قادر ہے کہ جو بدوں اس زمین کے ثمن کے ادا نہیں ہو سکتا ہے یعنی یہ زمین اس دین میں فروخت کی جائے پس ایسے عذر سے عقد مزارعت فسخ ہو گا بشرطیکہ فسخ ممکن ہو بایں طور کہ یہ امر قبل زراعت کے ہو یا بعد زراعت کے کھیتی تیار ہو کر قابل درو ہو جانے کے بعد ہو اس وجہ سے عقد کو باقی رکھنا اور پورا کرنا اس سے بدوں ضرر برداشت کرنے کے ممکن نہیں ہے۔ پس اس پر ضرر برداشت کرنا لازم نہیں ہے پس قاضی پہلے زمین کو اس کے قرضہ میں فروخت کر دے گا پھر مزارعت فسخ کر دے گا اور فقط عذر پیش آنے سے مزارعت خود فسخ نہ ہو جائے گی اور اگر فسخ ممکن نہ ہو بایں وجہ کہ کھیتی تیار ہو کر قابل درو نہ ہوئی ہو تو قرضہ میں فروخت نہ کی جائے گی اور عقد فسخ نہ کیا جائے گا یہاں تک کہ کھیتی کاٹنے کے قابل ہو جائے اور مالک زمین مذکور قید رہے یا کیا جائے گا کہ اگر قرض خواہ نے اس کو قید کرایا ہو یہاں تک کہ کھیتی پک کر تیار ہو جائے اس واسطے کہ قید سزائے نادہندی ہے اور یہ شخص کھیتی کاٹنے کے لائق ہونے سے پہلے نادہند نہیں ہو سکتا اس واسطے کہ زمین فروخت کرنے سے یہ شخص شرعا ممنوع ہے اور شخص ممنوع معذور ہے۔ پھر جب کھیتی کاٹنے کے لائق ہو جائے تو دوبارہ 1 بدیں غرض قید کیا جائے گا کہ اپنی زمین فروخت کر کے خود ہی

قرضہ ادا کرے ورنہ قاضی اس کی طرف سے فروخت کرے گا اور دوم جو کاشتکار کی طرف سے راجع ہیں وہ عذر مثل مرض کے کہ کاشتکار کام کرنے سے معذور ہو اور مثل سفر کے کیونکہ محتاج الیہ ہے اور جیسے ایک حرفہ چھوڑ کر دوسرا اختیار کرنا اس وجہ سے کہ بعض پیشہ ایسا ہوتا ہے جس سے اس کا پیٹ نہ بھرے اور جیسے کوئی ایسا مانع پیش آئے جو اس کو کام کرنے سے باز رکھے کذا فی البدائع۔

معاملہ میں بعض درختوں کی بٹائی میں اگر دونوں میں سے کسی نے موافق مقتضائے عقد کے کارروائی کرنے سے انکار کیا تو بدوں کسی عذر کے اس کو یہ اختیار نہ ہوگا پس معاملہ دونوں طرف سے لازم ہوتا ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ امام محمد نے اصل میں فرمایا کہ اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور اس نے کہا کہ میں چاہتا ہوں کہ اس سال مزارعت کو چھوڑ دوں یا کہا کہ میں چاہتا ہوں کہ اس سال اس زمین کے سوائے دوسری زمین میں زراعت کروں تو اس کو اختیار ہے اور مزارعت کو فسخ کر سکتا ہے یہ محیط میں ہے اور ابانہ میں لکھا ہے کہ مرض کی صورت میں بھی سفر کے قیاس پر تفصیل ہونا واجب ہے کہ اگر اس نے درختوں کی بٹائی اس شرط سے لی کہ خود اور اپنے مزدوروں سے کام کرے تو اس کا بیمار ہونا عذر ہو گا اور اگر عقد معاملہ اس شرط سے کیا کہ خود ہی کام کرے تو اس کا بیمار ہونا عذر ہو گا یہ تاتارخانیہ میں ہے اور مالک درختان و مالک زمین کی طرف سے منجملہ عذر کے یہ ہے کہ اس کے ذمہ ایسا قرض لاحق ہو جائے جو سوائے ثمن درختان و ثمن زمین کے کسی طرح ادا نہیں ہو سکتا ہے اور ایسی حالت میں فسخ عقد صحیح ہونے کے واسطے موافق روایت کتاب الزیادات کے حکم قاضی یا طرفین کی باہمی رضامندی ضرور ہے اور موافق روایت کتاب المزارعہ و اجارات اور جامع صغیر کے حکم قضاء و کاشتکار یا عامل کی رضا مندی کی احتیاج نہیں ہے پس ہمارے بعض مشائخ متاخرین نے روایت زیادات کو لیا ہے اور بعضوں نے کتاب الاصل و جامع صغیر کی دوبارہ اقول یہ لازم نہیں ہے بلکہ

اگر وہ خود فروخت کرنے سے انکار کرے تب البتہ قید کیا جائے کیونکہ یہی علت ہے اور اسی طرف اشارہ بھی کیا ہے۔

1. دوبارہ اقول یہ لازم نہیں ہے بلکہ اگر وہ خود فروخت کرنے سے انکار کرے تب البتہ قید کیا جائے کیونکہ یہی علت ہے اور اسی طرف اشارہ بھی کیا ہے۔
2. مثل سفر یعنی مرض کی طرح سفر و دیگر امور جو آئندہ بیان ہوئے جیسے حرفہ چھوڑ کر دوسرا نہ شروع کرنا وغیرہ۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (330) Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

The narration is taken that if a person requests the Qazi (judge) to rescind (faskh) a sharecropping contract (Muzara'ah) or a transaction contract before selling, the Qazi shall not accept this request. Therefore, he should sell it himself and prove the existence of the debt before the Qazi so that the Qazi completes the sale, and the mentioned contract is legally annulled. This is stated in 'Al-Zakhira'. When a Muzara'ah contract is rescinded due to circumstances after it has taken effect, there are several types. Among them is 'Faskh' (rescission), which is of two kinds: one is 'Faskh-e-Sareeh' (express rescission), which occurs through the word 'faskh' or 'iqala' (mutual cancellation); and the second is 'bi-dalalat' (by implication), which is also of two kinds. The first is when the party providing the seeds refuses to act according to the requirements of the contract. If he says, "I do not want the sharecropping of this land," the contract will be rescinded because the contract is not binding upon him in this regard; thus, he retains the right to refuse to proceed according to the contract without excuse. The second is if an authorized person (mazun) gives his land and seeds to someone for sharecropping, and then his master (maula) compels him [to stop], the contract will be rescinded. Other instances include the expiration of the sharecropping period. Another instance is the death of the landowner, whether he dies before or after cultivation, and whether the crop is ready or still green. Similarly, if the farmer dies, whether before or after cultivation, and whether the crop is ready for harvesting or not, as stated in 'al-Bada'i'.

**Chapter Number: [Blank]**

**In Explanation of These Situations**

**If the farmer or worker dies and it is unknown what he did with the crop or fruit. Imam Muhammad (R.A.) said that if the farmer dies and it is not known what he did with the crop, the landowner's share of the produce will be declared as a debt against the farmer's estate. If the heirs claim that the crop was stolen, their statement will not be entertained. This ruling is because the landowner's share was an 'amanat' (trust) with the farmer, based on the evidence that if the entire crop had perished in the farmer's possession [without fault], he would not have been liable (zamin) to the landowner. Thus, when it is established that it was a trust with him, yet he died without disclosing the status of the trust, he becomes a trustee who dies leaving the trust 'majhool' (in an unknown state) and consequently becomes liable. If the heirs of the farmer and the landowner disagree over the value of the crop before the farmer's death, the statement of the farmer's heirs will be accepted. Similarly, if the worker for the trees dies and it is unknown what he did with the fruit, the same ruling applies. All this applies if the germination of the crop and the emergence of the fruit were known. If this is not known, the farmer or worker mentioned shall not**

**be liable. If the worker left money in his estate while having debts incurred during his state of health, the owner of the land and trees will share in the estate along with the other creditors. By this statement, Imam Muhammad (R.A.) means that it should be known that the Muzara'ah or transaction contract was entered into while in a state of health. If the existence of the contract is known only through the acknowledgment (iqrar) of the sick person (worker or farmer) during his illness, then this debt will be equivalent to a debt established by a sick person's acknowledgment; hence, it will be subordinate to 'duyun al-sihhah' (debts incurred during health), as stated in 'Al-Zakhira'.**

1. He dies; just as in 'Kitab al-Wadi'ah' (The Book of Deposits), the case of a trustee dying and leaving the deposit in an unknown state is explained in detail, stating that he becomes liable. (1) Debts incurred during health.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (330) किताब अल-मुज़ारअत (साझा कृषि का अध्याय)**

रिवायत को लिया है और अगर उसने बेचने से पहले काज़ी (न्यायाधीश) से साझा कृषि अनुबंध (अक़्द-ए-मुज़ारअत) या लेन-देन के अनुबंध को रद्द (फ़स्ख़) करने का अनुरोध किया, तो काज़ी इस अनुरोध को स्वीकार नहीं करेगा। अतः उसे चाहिए कि वह स्वयं बिक्री करे और काज़ी के सामने ऋण का होना सिद्ध कर दे ताकि काज़ी इस बिक्री को पूरा कर दे और उक्त अनुबंध कानूनी रूप से समाप्त हो जाए। यह 'ज़खीरा' में है। और जब चीज़ों से मुज़ारअत का अनुबंध घटित होने के बाद रद्द हो जाता है, तो इसके कई प्रकार होते हैं। उनमें से एक 'फ़स्ख़' (रद्दीकरण) है और वह दो प्रकार का होता है: एक 'फ़स्ख़-ए-सरीह' (स्पष्ट रद्दीकरण), जो 'फ़स्ख़' या 'इकाला' (परस्पर सहमति से रद्दीकरण) शब्द के साथ होता है; और दूसरा 'ब-दलालत' (संकेत द्वारा), जो भी दो प्रकार का है। पहला यह कि जिसकी ओर से बीज निर्धारित हों, वह अनुबंध की आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करने से मना कर दे। यदि उसने कहा कि मैं इस भूमि की खेती (मुज़ारअत) नहीं करना चाहता, तो अनुबंध रद्द हो जाएगा, क्योंकि उक्त अनुबंध उसके अधिकार में अनिवार्य नहीं है; अतः उसके पास अनुबंध के अनुसार कार्य करने से बिना किसी बहाने के मना करने का अधिकार शेष है। दूसरा यह कि किसी अधिकृत व्यक्ति (माज़ून) ने अपनी भूमि और बीज किसी व्यक्ति को मुज़ारअत पर दिए और फिर उसके स्वामी (मौला) ने उसे मजबूर कर दिया, तो अनुबंध रद्द हो जाएगा। अन्य कारणों में मुज़ारअत की अवधि का समाप्त होना शामिल है। साथ ही, भूमि के स्वामी की मृत्यु होना, चाहे वह बुआई से पहले मरे या बाद में, चाहे उस समय फसल तैयार हो चुकी हो या अभी कच्ची (सागा) हो। इसी तरह, किसान की मृत्यु होना, चाहे वह बुआई से पहले मरे या बाद में, चाहे उस समय फसल कटने लायक हो गई हो या नहीं, जैसा कि 'बदाई' में उल्लेखित है।

**अध्याय संख्या:**

**इन स्थितियों के वर्णन में**

किसान या कार्यकर्ता मर गया और यह पता नहीं है कि उसने फसल या फलों का क्या किया। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फ़रमाया कि यदि किसान मर गया और यह ज्ञात नहीं है कि उसने खेती के साथ क्या किया, तो खेती में से ज़मीन के मालिक का हिस्सा किसान की संपत्ति में ऋण (देय) माना जाएगा। और यदि वारिसों ने दावा किया कि फसल चोरी हो गई है, तो उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया जाएगा। यह आदेश इसलिए है क्योंकि ज़मीन के मालिक का हिस्सा किसान के पास इस प्रमाण के आधार पर अमानत (न्यास) था कि यदि पूरी फसल किसान के पास नष्ट हो जाती, तो वह मालिक के प्रति उत्तरदायी (ज़ामिन) नहीं होता। अतः जब यह सिद्ध हो गया कि उसके पास अमानत थी, जबकि वह अमानत की स्थिति बताए बिना मर गया, तो वह व्यक्ति ऐसा अमीन (न्यासी) बन गया जो अमानत को 'मजहूल' (अज्ञात स्थिति) में छोड़कर मर १ जाता है; ऐसी स्थिति में वह उत्तरदायी हो जाएगा। और यदि किसान के वारिसों और ज़मीन के मालिक के बीच इस बात पर विवाद हो कि किसान की मृत्यु से पहले खेती का मूल्य कितना था, तो किसान के वारिसों की बात स्वीकार की जाएगी। इसी प्रकार यदि पेड़ों का कार्यकर्ता मर

**गया और यह ज्ञात नहीं है कि उसने फलों के साथ क्या किया, तो भी यही नियम लागू होगा। यह सब उस स्थिति में है जब फसल का उगना और फलों का निकलना ज्ञात हो जाए। यदि यह ज्ञात न हो, तो किसान या कार्यकर्ता उत्तरदायी नहीं होगा। और यदि कार्यकर्ता ने अपनी विरासत (तरका) में धन छोड़ा है और उस पर स्वस्थ अवस्था के ऋण भी हैं, तो ऐसी स्थिति में ज़मीन और पेड़ों के मालिक को अन्य लेनदारों के साथ साझा किया जाएगा। इमाम मुहम्मद (रह.) का इस कथन से तात्पर्य यह है कि यदि यह ज्ञात हो कि मुज़ारअत या लेन-देन का अनुबंध स्वस्थ अवस्था में हुआ था। और यदि अनुबंध का होना केवल रोगी (कार्यकर्ता या किसान) की बीमारी की अवस्था के स्वीकारोक्ति (इक़रार) से पता चलता है, तो यह ऋण उस ऋण के समान होगा जो बीमारी की हालत में रोगी के इक़रार से वाजिब होता है; अतः यह 'दियून-ए-सेहत' (स्वस्थ अवस्था के ऋणों) के बाद चुकाया जाएगा, जैसा कि 'ज़खीरा' में है।**

१ मर जाता है, जैसा कि 'किताब अल-वदीअत' में धरोहर को अज्ञात छोड़कर मरने वाले का विस्तृत वर्णन है कि वह उत्तरदायी होता है। (१) स्वास्थ्य की स्थिति में लिए गए ऋण।

روایت کو لیا ہے اور اگر اس نے قبل فروخت کرنے کے قاضی سے عقد مزارعت یا عقد معاملت فسخ کرنے کی درخواست کی تو قاضی اس درخواست کو منظور نہ کرے گا پس اس کو چاہیے کہ خود فروخت کرے اور قاضی کے سامنے قرضہ ہونا ثابت کر دے تا کہ قاضی اس بیع کو تمام کر دے اور عقد مذکور حکماً ٹوٹ جائے گا یہ ذخیرہ میں ہے اور جب چیزوں سے عقد مزارعت بعد واقع ہونے کے فسخ ہو جاتا ہے اس کے چند انواع ہیں۔ از انجملہ فسخ ہے اور وہ دو طرح کا ہوتا ہے ایک فسخ صریح اور وہ اس طرح ہوتا ہے کہ بلفظ فسخ یا اقالہ ہو اور دوسرا بدلزالۃ اور وہ دو طرح کا ہے اور اول یہ کہ جس کی طرف سے بیج ٹھہرے ہوں وہ مقتضائے عقد کے موافق کارروائی کرنے سے انکار کرے پس اگر اس نے کہا کہ میں اس زمین کی مزارعت نہیں چاہتا ہوں تو عقد فسخ ہو جائے گا اس واسطے کہ عقد مذکور اس کے حق میں لازمی نہیں ہے پس اس کو مقتضائے عقد کارروائی کرنے سے بلا عذر انکار کرنے کا اختیار باقی ہے دوم یہ کہ ماذون نے اپنی زمین و بیج کسی شخص کو مزارعت پر دیے پھر اس کو اس کے مولیٰ نے مجبور کر دیا تو عقد فسخ ہو جائے گا از انجملہ یہ کہ مدت مزارعت منقضی ہو جائے از انجملہ یہ کہ مالک زمین مر جائے خواہ زراعت سے پہلے مر جائے یا بعد زراعت کے مرے خواہ اس وقت کھیتی تیار ہو گئی ہو یا ہنوز ساگا ہو۔ از انجملہ یہ کہ کاشتکار مر جائے خواہ زراعت سے پہلے مر جائے یا بعد زراعت کے خواہ اس وقت کھیتی تیار ہو کر کاٹنے کے لائق ہو گئی ہو یا نہ ہوئی ہو کذا فی البدائع۔

باب نمبر:

ان صورتوں کے بیان میں

کاشتکار یا عامل مر گیا اور یہ معلوم نہیں ہوتا کہ اس نے کھیتی یا پھل کیا کیے ہیں۔ امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر کاشتکار مر گیا اور یہ معلوم نہیں ہوتا کہ اس نے کھیتی کے ساتھ کیا کیا تو زراعت میں سے مالک زمین کا حصہ کاشتکار کے مال میں دین قرار دیا جائے گا اور اگر وارثوں نے دعویٰ کیا کہ کھیتی چوری ہو گئی ہے تو ان کے قول پر التفات نہ کیا جائے گا اور یہ حکم اس وجہ سے ہے کہ مالک زمین کا حصہ کاشتکار کے پاس بدیں دلیل امانت تھا کہ اگر تمام کھیتی کاشتکار کے پاس تلف ہو جاتی تو مالک زمین کے واسطے کچھ ضامن نہ ہوتا۔ پس جب ثابت ہوا کہ اس کے پاس امانت تھا حالانکہ وہ بدوں امانت کا حال بیان کیے ہوئے مر گیا تو یہ شخص ایسا امین ہو گیا جو امانت کو مجہول یعنی بلا بیان چھوڑ کر مر ۱ جاتا ہے پس ضامن ہو جائے گا اور اگر وارثان کاشتکار و مالک زمین نے اس امر میں اختلاف

کیا کہ کاشتکار کی موت کے قبل زراعت کی قیمت کس قدر تھی تو وارثان کاشتکار کا قول قبول ہوگا۔ اس طرح اگر درختوں کا عامل مر گیا اور یہ معلوم نہیں ہوتا کہ اس نے پھلوں کے ساتھ کیا کیا ہے تو بھی اس طرح حکم ہے اور یہ سب اس صورت میں ہے کہ کھیتی کا جمنا اور پھلوں کا نکلنا معلوم ہو جائے اور اگر یہ امر معلوم نہ ہو تو کاشتکار یا عامل مذکور ضامن نہ ہوگا اور اگر عامل نے اپنے ترکہ میں درم و دینار چھوڑے حالانکہ اس پر حالت صحت کے قرضے موجود ہیں تو ایسی صورت میں مالک زمین و درخت باقی قرض خواہوں کے ساتھ شریک کر دیا جائے گا اور اس قول سے امام محمدؒ کی مراد یہ ہے کہ یہ معلوم ہو کہ عقد مزارعت و عقد معاملت حالت صحت میں واقع ہوا ہے اور عقد مزارعت و معاملت کا واقع ہونا فقط باقرار مریض یعنی عامل و کاشتکار کی حالت مرض کے اقرار سے معلوم ہو تو یہ قرضہ

**بمنزلہ ایسے قرضہ کے ہوگا جو حالت مرض میں مریض کے اقرار سے واجب ہوتا ہے پس دیون (۱) الصحہ سے مؤخر ہوگا کذا فی الذخیرہ۔**

۱ مر جاتا ہے چنانچہ کتاب الودوعہ میں مستودع کا ودیعت کو مجہول چھوڑ کر مرنا مفصل بیان ہوا اور وہ ضامن ہوتا ہے۔ (۱) صحت کے قرضے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (331) The Book of Muzara'at (Sharecropping)**

**Chapter Eighteen:**

**Regarding Sharecropping and Business Transactions of a Sick Person**

The rulings in this chapter are based on a principle: the legal actions of a person suffering from terminal illness (*maradh al-maut*) are treated like those of a healthy person in matters where the rights of creditors or heirs are not involved. However, regarding matters that affect the rights of creditors or heirs, actions are of two types: First, actions that do not nullify the rights of creditors and heirs but merely transfer them from one asset to another of equivalent value, such as a sale (1) and similar transactions; such actions are the same for both a sick and a healthy person. Second, actions that nullify the rights of creditors or heirs; a sick person is restricted from such actions, such as making charitable donations or gifts (1). Furthermore, it should be clear that the rights of creditors and heirs pertain only to the assets in which inheritance is applicable, such as the physical assets of the estate (*a'yan al-tarkah*). Their rights do not pertain to things where inheritance does not apply, such as usufruct (*manafi'*). Similarly, they have no claim over things where inheritance might apply but which are not considered property (2) nor treated as property.

Imam Muhammad (RA) stated in '*Kitab al-Asl*' that if a person in terminal illness gives their land for farming under sharecropping terms, there are two scenarios: First, the seeds are provided by the tenant. In this case, the sharecropping agreement is valid regardless of whether the tenant is a stranger or an heir, whether the sick person has debts encompassing their entire estate or not, whether the share stipulated for the sick person is equal to or less than the fair rental value (*ajr al-mithl*), and whether the sick person owns assets other than that land or not. Second, the seeds are also provided by the sick person, and they possess no assets other than the land and the seeds. In this scenario, there are two sub-cases: First, the tenant is a stranger and the deceased has no debt. In this case, on the day the crop matures and becomes valuable, the value of the tenant's share and their fair wage (*ajr al-mithl*) shall be compared. If the value of the tenant's share is equal to or less than the fair wage, the tenant shall be given their share of the crop. If the value of the share exceeds the fair wage, it will be determined if the excess can be covered by one-third of the deceased's estate (the limit for bequests). If it can, the tenant shall receive the full share, partly as compensation and partly as a bequest. If it cannot be covered by one-third of the estate and the heirs do not grant permission, the same rule applies if

they do. If the heirs do not permit, the tenant shall receive compensation equal to their fair wage (*ajr al-mithl*), plus one-third of the remaining stipulated share as a bequest, while the remaining two-thirds shall belong to the heirs. Regarding the amount exceeding the fair wage, its valuation for the bequest will be based on the value on the day of harvest.

1. Sale: For example, the sick person sold property, whether for cash (shifting the heirs' rights from the property to the cash) or for another asset; however, the value of the second must be equivalent to the first. (1) For example, gifting all of one's property to someone. (2) For instance, the right of rescission due to a defect (*haq al-radd bil-'ayb*).

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 (331) किताब अल-मुज़ारअत**

**अध्याय अठारह:**

## बीमार व्यक्ति द्वारा मुज़ारअत (हिस्सेदारी खेती) और लेन-देन करने के वर्णन में

इस अध्याय के मुद्दे एक नियम पर आधारित हैं: वह व्यक्ति जो 'मरज़-उल-मौत' (मृत्यु शैय्या की बीमारी) में है, उसके द्वारा किए गए कार्य उन मामलों में एक स्वस्थ व्यक्ति के समान ही मान्य होते हैं जिनमें लेनदारों या वारिसों का अधिकार प्रभावित नहीं होता। लेकिन जिन कार्यों से लेनदारों या वारिसों का अधिकार जुड़ा हो, उनमें कार्य दो प्रकार के होते हैं: पहला यह कि उस कार्य से लेनदारों और वारिसों का अधिकार समाप्त न हो, बल्कि वह एक वस्तु से दूसरी समान मूल्य की वस्तु में स्थानांतरित हो जाए, जैसे कि बिक्री (1) और इसके समान अन्य कार्य; ऐसे कार्य एक बीमार और स्वस्थ व्यक्ति के लिए समान हैं। दूसरा यह कि कार्य से लेनदारों या वारिसों का अधिकार समाप्त होता हो, और इस प्रकार के कार्यों के लिए बीमार व्यक्ति प्रतिबंधित है, जैसे कि उपहार या दान (1) देना। फिर यह स्पष्ट हो कि लेनदारों और वारिसों का अधिकार केवल उसी संपत्ति से जुड़ा होता है जिसमें विरासत चलती हो, जैसे कि संपत्ति के मूल अंग (अयान-ए-तरका); और जिसमें विरासत नहीं चलती, जैसे कि लाभ (मनाफ़े), उनसे इन लोगों का अधिकार नहीं जुड़ता। इसी प्रकार, जिसमें विरासत तो चलती है लेकिन वह संपत्ति (2) नहीं है और न ही संपत्ति के आदेश में है, उससे भी इन लोगों का अधिकार नहीं जुड़ता।

इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'किताब अल-अस्ल' में फ़रमाया है कि यदि किसी मरज़-उल-मौत के मरीज़ ने अपनी ज़मीन मुज़ारअत (हिस्सेदारी खेती) की शर्तों पर किसी को खेती के लिए दी, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बीज किसान की ओर से हों, इस स्थिति में मुज़ारअत जायज़ है, चाहे किसान अजनबी हो या वारिस, चाहे मरीज़ पर इतना कर्ज़ हो जो उसकी पूरी संपत्ति को घेरे हुए हो या न हो, चाहे मरीज़ के लिए पैदावार में से उतना हिस्सा तय हो जो ज़मीन के उचित किराये (अज्र-उल-मिसल) के बराबर हो या उससे कम हो, और चाहे मरीज़ के पास उस ज़मीन के अलावा कोई अन्य संपत्ति हो या न हो। दूसरी स्थिति यह है कि बीज भी मरीज़ की ओर से हों और मरीज़ के पास उस ज़मीन और बीज के अलावा कुछ न हो, इस स्थिति में भी दो सूरतें हैं: पहली यह कि किसान अजनबी हो और मृतक पर कोई कर्ज़ न हो; इस सूरत में जब फ़सल पककर मूल्यवान हो जाए, तब किसान के हिस्से के मूल्य और उसके उचित पारिश्रमिक (अज्र-उल-मिसल) को देखा जाएगा। यदि किसान के

हिस्से का मूल्य और उसका उचित पारिश्रमिक बराबर हो या हिस्से का मूल्य पारिश्रमिक से कम हो, तो किसान को उसका हिस्सा दे दिया जाएगा। यदि किसान के हिस्से का मूल्य पारिश्रमिक से अधिक हो, तो देखा जाएगा कि क्या वह अधिक हिस्सा मृतक की एक-तिहाई संपत्ति (वसीयत की सीमा) से निकल सकता है; यदि हाँ, तो किसान को पूरा हिस्सा दिया जाएगा, कुछ वसीयत के तौर पर और कुछ मुआवज़े के तौर पर। यदि वह एक-तिहाई संपत्ति से न निकल सके और वारिस अनुमति दे दें, तो भी यही नियम है। यदि वारिस अनुमति न दें, तो किसान को उसके उचित पारिश्रमिक (अज्र-उल-मिसल) के बराबर मुआवज़ा दिया जाएगा, और शेष तय हिस्से में से एक-तिहाई उसे वसीयत के तौर पर दिया जाएगा, और बाकी दो-तिहाई वारिसों का होगा। उचित पारिश्रमिक से जितनी राशि अधिक होगी, वसीयत के लिए उसका मूल्य फ़सल काटने के दिन के अनुसार मान्य होगा।

1. बिक्री: उदाहरण के लिए, मरीज़ ने कोई संपत्ति बेची, चाहे नकद के बदले जिससे वारिसों का हक संपत्ति से बदलकर नकदी से जुड़ गया, या किसी अन्य वस्तु के बदले; लेकिन यह आवश्यक है कि पहले और दूसरे का मूल्य बराबर हो। (1) उदाहरण के लिए, अपनी पूरी संपत्ति किसी को दान कर देना। (2) जैसे कि दोष के कारण वापसी का अधिकार (हक अल-रद्द बिल-ऐब)।

---

**باب ہجدہ و:**

**مریض کے مزارعت و معاملت کرنے کے بیان میں**

اس باب کے مسائل ایک قاعدہ پر مبنی ہیں وہ یہ ہے کہ جو شخص مریض مرض الموت ہے اس کا تصرف اس لیے مور ہیں جن سے قرض خواہ ہوں یا وارثوں کا حق متعلق نہیں ہے مثل صحیح تندرست کے تصرف کے ہے اور جن امور سے قرض خواہوں یا وارثوں کا حق متعلق ہے اس میں تصرف دو طرح پر ہے ایک یہ کہ اس تصرف سے قرض خواہوں و وارثوں کا حق باطل نہ ہو جائے بلکہ ان کا حق ایک محل سے منتقل ہو کر دوسرے ایسے محل میں جائے جو مالیت میں مثل محل اوّل کے ہے جیسے بیع ۱ ے اس کے اشباہ پس ایسا تصرف مریض کا اور تندرست صحیح کا یکساں ہے اور دوسرے یہ کہ تصرف سے قرض خواہوں وارثوں کا حق باطل ہوتا ہو اور اس قسم کا تصرف مریض سے محجور ہے جیسے (۱) تبرعات کے طور پر تصرف کرنا پھر واضح ہو کہ قرض خواہوں و وارثوں کا حق اسی مال سے متعلق ہوتا ہے جس میں میراث جاری ہو جیسے اعیان ترکہ اور جس میں میراث نہیں جاری ہوتی ہے جیسے منافع اس سے اس لوگوں کا حق متعلق نہیں ہوتا ہے اس طرح جس میں میراث جاری ہوتی ہے مگر وہ مال (۲) نہیں ہے اور نہ وہ مال کے حکم میں ہے اس سے بھی ان لوگوں کا حق متعلق نہیں ہوتا ہے۔ امام محمدؒ نے کتاب الاصل میں فرمایا کہ اگر کسی مریض مرض الموت نے اپنی زمین بشرائط مزارعت کسی کو کاشتکاری کے واسطے دی تو اس میں دو صورتیں ہیں اوّل یہ کہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور اس صورت میں مزارعت جائز ہے خواہ کاشتکار اجنبی ہو یا وارث ہو اور خواہ مریض پر اس قدر قرضہ ہو جو اس کے تمام ترکہ کو محیط ہے یا نہ ہو اور خواہ مریض کے واسطے پیداوار میں سے اس قدر

مشروط ہو جو زمین کے اجر المثل کے برابر ہے یا اس سے کم مشروط ہو اور خواہ مریض کا سوائے اس زمین کے کچھ مال ہو یا نہ ہو دوم یہ کہ بیج بھی مریض کی طرف سے ہوں اور مریض کے پاس سوائے اس زمین و بیج کے کچھ مال نہ ہو اور اس صورت میں دو صورتیں ہیں اوّل یہ کہ کاشتکار شخص اجنبی ہو اور میت پر قرضہ نہ ہو پس اس صورت میں زراعت میں سے زراعت کے جم کر قیمت دار ہو جانے کے روز حصہ کاشتکار کی قیمت کو اور کاشتکار کے اجر المثل کو دیکھا جائے گا پس اگر زراعت میں سے زراعت جم کر قیمت دار ہو جانے کے روز حصہ کاشتکار کی قیمت اور اس کا اجر المثل برابر ہو یا حصہ کاشتکار کی قیمت بہ نسبت اجر المثل کے کم ہو تو کاشتکار کو اس کا حصہ زراعت دیا جائے گا اور اگر زراعت جم کر قیمت دار ہو جانے کے روز زراعت میں سے حصہ کاشتکار کی قیمت بہ نسبت اس کے اجر المثل کے زیادہ ہو تو دیکھا جائے گا کہ اگر حصہ کاشتکار میت کی تہائی مال سے برآمد ہوتا ہو تو کاشتکار کو اس کا پورا حصہ دیا جائے گا بعض بطور وصیت کے اور بعض بطریق معاوضہ کے اور اگر زراعت سے حصہ کاشتکار میت کے تہائی مال سے نہ نکل سکتا ہو پس اگر وارثوں نے اجازت دے دی تو بھی یہی حکم ہے کہ کاشتکار کو اس کا پورا حصہ زراعت دیا جائے گا اور اگر وارثوں نے اجازت نہ دی تو کاشتکار کو اس میں سے بقدر اس کے اجر المثل کے بطور معاوضہ دیا جائے گا پھر سب جس قدر اس کے واسطے مشروط تھا اس کے مابقی میں سے ایک تہائی اس کو بطور وصیت دے دیا جائے گا اور باقی دو تہائی وارثوں کا ہوگا اور جس قدر اجر المثل سے بڑھا ہے اس میں وصیت کا اعتبار یوم حصاد پر ہوگا یعنی جس قدر اجر المثل سے بڑھا ہے اس کی قیمت کھیتی کاٹنے کے روز کی معتبر ہوگی۔ ۱ـہ بیع مثلاً مریض نے کوئی مال فروخت کیا خواہ نقد تو وارثوں وغیرہ کا حق مال سے بدل کر نقد سے متعلق ہو یا بعوض مال کے تو ایک مال سے بدل کر دوسرے مال سے

متعلق ہوا لیکن ضرور ہے کہ اوّل سے دوم میں قیمت کی برابری ہو۔ (۱) مثلاً تمام مال کسی شخص کو بخش دینا۔ (۲) یہ جیسے حق الرد بالعیش۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (332) Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

This is in the case where the cultivator is a stranger and there is no debt on the deceased. If he has so much debt that it encompasses his entire wealth, whether it is a debt from a state of health or sickness, then in such a case, in the agriculture, the value of the cultivator's share and the market wage (Ajr al-Mithl) of his work will be examined from the day it became valuable after sprouting. Thus, if on the day of sprouting and becoming valuable, the value of the cultivator's share from the agriculture is equal to or less than his market wage, then whatever was stipulated for the cultivator will be given to him; rather, whatever is in his possession, the creditors of the sick person will be partners in it, and this possession will be divided among all of them according to each one's share, provided the sick person has no other wealth. Then, a price will be set on the cultivator's share reflecting its increased value up to the time it is fit for harvesting, and the creditors will be made partners according to the amount of their respective debts. And if from the agriculture, at the time of its sprouting and becoming valuable, the value of the cultivator's share is more than the cultivator's market wage, then the cultivator will only be made a partner to the extent of his market wage, and the amount that is in excess will not be taken by him. The creditors will be made partners along with their respective rights, and the cultivator will not be given anything from the excess beyond his market wage. However, whatever falls to the cultivator's share in this division, he will take from the agriculture, and whatever falls to the creditors' share will be sold to pay their debts. All this we have mentioned is in the case where the cultivator is a stranger.

If the cultivator is an heir, then if we were to follow the opinion of Imam al-A'zam (RA) regarding the permissibility of Muzara'ah, according to his analogy, the ruling is that the Muzara'ah is void, such that the heir cultivator is not entitled to anything from the produce; rather, he will only receive dirhams for his market wage and nothing else, whether the sick person has debt or not, and whether the value of the heir's share from the agriculture is equal to or more than the market wage of his work. And according to the opinion of Imam Abu Yusuf (RA) and Imam Muhammad (RA), the ruling is that if there is no debt on the sick person, then on the day the agriculture solidifies and becomes valuable, the value of the heir's share from the agriculture and his market wage will be looked at. Thus, if on the day of sprouting and becoming valuable, the value of the heir's share from the agriculture is equal to or less than the market wage of his work, he will receive his stipulated share, and whatever increases from that day until the day the crop is ready and harvested, the same ruling applies

as mentioned in the case of a stranger. And if on the day the agriculture solidifies and becomes valuable, the value of the heir's share from the agriculture is more than his market wage, then he will receive from the produce according to his market wage, and from the stipulated share, whatever is more than that market wage, the heir (1) will receive absolutely nothing. This is because any right to receive something from it could only be by way of a will, whereas there is no will for an heir. And if the sick person has so much debt that it encompasses all his wealth, then in this case the same ruling applies as mentioned in the case of a stranger; this is written in "Al-Muhit".

A sound person (2) gave his land on a half-share basis to a sick cultivator, and the seeds were provided by the cultivator, even though the cultivator has no wealth other than that. Then a crop was produced in the said land, and the sick cultivator died. The ruling for him is the same as mentioned in the case where a sick person gave his land to another for Muzara'ah and the seeds were provided by the landowner (the sick person), because in this case the said sick cultivator is considered to be taking it on lease in exchange for the produce, and in the case we have described here...

The writer said: "Jamm" (solidifying) is at the time when their debts are contrary to the kind of grain produced, otherwise perhaps the debt is of the same kind of grain, contrary to which he says the debt of grain is not permissible. Understand.

(1) Contrary to a stranger, who would get one-third. (2) Contrary to a sick person.

यह उस स्थिति में है जब काश्तकार (किसान) अजनबी हो और मृतक पर कोई कर्ज न हो। और यदि उस पर इतना कर्ज हो जो उसके पूरे माल को घेरे हुए हो, चाहे वह स्वास्थ्य की स्थिति का कर्ज हो या बीमारी की स्थिति का, तो ऐसी स्थिति में खेती में से जिस दिन वह उगने के बाद मूल्यवान हुई है, काश्तकार के हिस्से की कीमत और उसके काम की 'अज्र-ए-मिसल' (उचित मजदूरी) की ओर देखा जाएगा। यदि खेती उगने और मूल्यवान होने के दिन, खेती से काश्तकार के हिस्से की कीमत उसकी 'अज्र-ए-मिसल' के बराबर या कम हो, तो जो कुछ काश्तकार के लिए तय किया गया है वह काश्तकार को दिया जाएगा; बल्कि उसके कब्जे में जो कुछ है, उसमें बीमार के लेनदार (कर्जदाता) शरीक होंगे और यह कब्जे वाला माल उन सब में प्रत्येक के हिस्से के अनुसार बांटा जाएगा, बशर्ते कि बीमार का इसके अलावा कोई और माल न हो। फिर काश्तकार के हिस्से में वह कीमत लगाई जाएगी जो खेती के उस हिस्से के कटने के योग्य होने के समय तक बढ़कर हो गई है, और लेनदारों को उनके अपने-अपने कर्ज की मात्रा पर शरीक किया जाएगा। और यदि खेती में से, उसके उगने और मूल्यवान होने के समय, काश्तकार के हिस्से की कीमत काश्तकार की 'अज्र-ए-मिसल' से अधिक हो, तो काश्तकार को केवल उसकी 'अज्र-ए-मिसल' की मात्रा पर शरीक किया जाएगा और जो कुछ अधिक है वह नहीं लिया जाएगा और लेनदार अपने-अपने अधिकारों के साथ शरीक किए जाएंगे और काश्तकार की 'अज्र-ए-मिसल' से जितना उसका हिस्सा अधिक है, उस अधिकता में से उसे कुछ नहीं दिया जाएगा। लेकिन यह होगा कि इस विभाजन में जितना काश्तकार के हिस्से में पड़ेगा, वह उसे खेती में से लेगा और जो लेनदारों के हिस्से में पड़ेगा, वह उसे बेचकर उनके कर्ज अदा किए जाएंगे। यह सब जो हमने उल्लेख किया है उस स्थिति में है जब काश्तकार कोई अजनबी हो।

और यदि काश्तकार वारिस (उत्तराधिकारी) हो, तो यदि इमाम-ए-आज़म (रह.) के कथन पर मज़ारअत के जायज़ होने के कायल होते, तो उनके कयास (तर्क) पर यह हुक्म है कि मज़ारअत फासिद (अमान्य) है, यहाँ तक कि वारिस काश्तकार पैदावार में से किसी भी चीज का हकदार नहीं है, बल्कि उसे केवल उसकी 'अज्र-ए-मिसल' के बदले दिरहम मिलेंगे और कुछ नहीं मिलेगा, चाहे बीमार पर कर्ज हो या न हो, और चाहे खेती में से वारिस के हिस्से की कीमत उसके काम की उजरत-ए-मिसल के बराबर हो या अधिक। और इमाम अबू यूसुफ (रह.) और इमाम मुहम्मद (रह.) के कथन पर यह हुक्म है कि यदि बीमार पर कर्ज न हो, तो खेती के जमने और मूल्यवान होने के दिन, खेती में से वारिस के हिस्से की कीमत और उसकी 'अज्र-ए-मिसल' को देखा जाएगा। यदि खेती उगने और

मूल्यवान होने के दिन, वारिस के हिस्से की कीमत उसके काम की उजरत-ए-मिसल के बराबर या कम हो, तो उसे अपना तयशुदा हिस्सा मिलेगा और उस दिन के बाद खेती तैयार होने और कटने के दिन तक जितना बढ़ जाएगा, उसमें वही हुक्म है जो अजनबी की स्थिति में बताया गया है। और यदि खेती जमने और मूल्यवान होने के दिन, खेती में से वारिस के हिस्से की कीमत उसकी 'अज्र-ए-मिसल' से अधिक हो, तो उसे पैदावार में से उसकी 'अज्र-ए-मिसल' के बराबर मिलेगा और तयशुदा हिस्सा जितना उस 'अज्र-ए-मिसल' से अधिक हो, उसमें से वारिस (१) को बिल्कुल कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि यदि उसमें से उसे कुछ मिलने का अधिकार हो तो यह अधिकार वसीयत के माध्यम से हो सकता है, जबकि वारिस के लिए वसीयत नहीं होती। और यदि बीमार पर इतना कर्ज हो कि जो उसके पूरे माल को घेरे हुए हो, तो इस स्थिति में वही हुक्म है जो अजनबी की स्थिति में बताया गया है; यह 'मुहीत' में लिखा है।

एक स्वस्थ व्यक्ति (२) ने अपनी जमीन आधी बटाई पर किसी बीमार काश्तकार को दी और बीज काश्तकार की ओर से तय हुआ, जबकि काश्तकार के पास उसके अलावा कुछ भी माल नहीं है। फिर उक्त जमीन में खेती पैदा हुई, फिर बीमार काश्तकार मर गया, तो उसका हुक्म वही है जो उस स्थिति में बताया गया है कि एक बीमार ने अपनी जमीन दूसरे को मज़ारअत पर दी और बीज जमीन के मालिक यानी बीमार की ओर से तय हुआ, क्योंकि इस स्थिति में उक्त बीमार काश्तकार पैदावार के बदले उसे पट्टे (इजारा) पर लेने वाला माना गया है, और जो स्थिति हमने यहाँ बयान की है उसमें...

मुहर्रिर ने कहा: 'जम' (जमना/जम कर) यह उस समय है जब उनके कर्ज उस अनाज की नस्ल (जिंस) के विपरीत हों जो पैदा हुआ है, अन्यथा शायद उसी जिंस का अनाज कर्ज हो, इसके विपरीत वह अनाज का कर्ज जायज़ नहीं कहता। इसे समझें।

(१) अजनबी के विपरीत, जिसे एक तिहाई मिलेगा। (२) बीमार के विपरीत।

---

یہ اس صورت میں ہے کہ کاشتکار اجنبی ہو اور میت پر قرضہ نہ ہو اور اگر اس پر اس قدر قرضہ ہو جو اس کے تمام مال کو محیط ہو خواہ قرضہ صحت یا قرضہ مرض تو ایسی صورت میں زراعت میں سے جس روز اگنے کے بعد قیمت دار ہوئی ہے قیمت حصہ کاشتکار اور اس کے کام کے اجر المثل کی طرف دیکھا جائے گا پس اگر زراعت اگنے اور قیمت دار ہونے کے روز زراعت سے حصہ کاشتکار کی قیمت اس کے اجر المثل کے برابر ہو یا کم ہو تو جس قدر کاشتکار کے واسطے مشروط ہے وہ کاشتکار کو دیا جائے گا بلکہ جس قدر اس کے قبضہ میں ہے اس میں مریض کے قرض خواہ لوگ شریک ہوں گے اور یہ مقبوضہ ان سب میں موافق ہر ایک حصہ کے تقسیم ہو گا بشرطیکہ سوائے اس کے مریض کا کچھ مال نہ ہو پس کاشتکار کے حصہ میں وہ قیمت لگائی جائے گی جو اس حصہ زراعت کے لائق دور ہونے کے وقت تک بڑھ کر ہوگئی ہے اور قرض خواہ لوگ اپنے اپنے قرضہ کی مقدار پر شریک کیے جائیں گے اور اگر زراعت میں سے اس کے اگنے اور قیمت دار ہونے کے وقت حصہ کاشتکار کی قیمت کاشتکار کے اجر المثل سے زائد ہو تو کاشتکار فقط اپنے اجر المثل کی مقدار پر شریک کیا جائے گا اور جس قدر زیادہ ہے وہ نہ لیا جائے گا اور قرض خواہ لوگ اپنے اپنے حقوق کے ساتھ شریک کیے جائیں گے اور کاشتکار کے اجر المثل سے جس قدر اس کا حصہ زائد ہے اس زیادتی میں سے اس کو کچھ نہ دیا جائے گا لیکن یہ ہو گا کہ جس قدر اس تقسیم میں کاشتکار کے حصہ میں پڑے گا وہ اس کو زراعت میں سے لے گا اور جو قرض خواہوں کے حصہ میں پڑے گا وہ فروخت کر کے ان کے قرضے ادا کیے جائیں گے یہ سب جو ہم نے ذکر کیا ہے اس صورت میں ہے کہ کاشتکار کوئی اجنبی ہو اور اگر کاشتکار وارث ہو پس اگر امام اعظم رحمہ اللہ کے قول پر جواز مزارعت کے قائل ہوتے تو ان

کے قیاس پر یہ حکم ہے کہ مزارعت فاسد ہے حتیٰ کہ وارث کاشتکار پیداوار میں سے کچھ مستحق نہیں ہے بلکہ فقط اس کو اس کے اجر المثل میں درم ملیں گے اور کچھ نہ ملے گا خواہ مریض پر قرضہ ہو یا نہ ہو اور خواہ زراعت میں سے حصہ وارث کی قیمت اس کے کام کی اجرت مثل کے برابر ہو یا زائد ہو اور امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ کے قول پر یہ حکم ہے کہ اگر مریض پر قرضہ نہ ہو تو زراعت کے جم کر قیمت دار ہونے کے روز زراعت میں سے حصہ وارث کی قیمت اور اس کے اجر المثل کو دیکھا جائے گا پس اگر زراعت میں سے اگنے اور قیمت دار ہونے کے روز حصہ وارث کی قیمت اس کے کام کی اجرت مثل کے برابر ہو یا کم ہو تو اس کو اپنا حصہ مشروط ملے گا اور اس دن کے بعد کھیتی تیار ہونے اور کاٹنے کے روز تک جس قدر زیادہ ہو جائے اس میں وہی حکم ہے جو اجنبی کی صورت میں مذکور ہوا ہے اور اگر زراعت جم کر قیمت دار ہونے کے روز زراعت میں سے حصہ وارث کی قیمت اس کے اجر المثل سے زائد ہو تو اس کو پیداوار میں سے بقدر اپنے اجر المثل کے ملے گا اور حصہ مشروط جس قدر اس اجر المثل سے زائد ہو اس میں سے وارث (۱) کو بالکل کچھ نہ ملے گا کیونکہ اگر اس میں سے اس کو کچھ ملنے کا استحقاق ہو تو یہ استحقاق بطریق وصیت ہو سکتا ہے حالانکہ وارث کے واسطے وصیت نہیں ہے اور اگر مریض پر اس قدر قرضہ ہو کہ جو اس کے تمام مال کو محیط ہو تو اس صورت میں وہی حکم ہے جو اجنبی کی صورت میں مذکور ہوا ہے یہ محیط میں لکھا ہے۔

ایک صحیح (۲) نے اپنی زمین آدھے کی بٹائی پر کسی مریض کاشتکار کو دی اور بیج کاشتکار کی طرف سے ٹھہرے حالانکہ کاشتکار کا اس کے سوائے کچھ مال نہیں ہے پھر زمین مذکور میں کھیتی پیدا ہوئی پھر مریض کاشتکار مر گیا تو اس کا حکم وہی ہے جو اس صورت میں مذکور ہوا ہے کہ ایک مریض نے اپنی زمین دوسرے کو مزارعت پر دی اور بیج مالک زمین یعنی مریض

کی طرف سے ٹھہرے ہیں اس واسطے کہ اس صورت میں مریض مذکور کاشتکار کا بعوض پیداوار کے اجارہ پر لینے والا قرار پایا ہے اور جو صورت ہم نے یہاں بیان کی ہے اس میں

قال المحرر جم یہ اس وقت ہے کہ جب ان کے قرضے بر خلاف اس جنس اناج کے ہوں جو پیدا ہوا ہے ورنہ شاید اسی جنس کا اناج قرض ہو بخلاف اس کے جو اناج کا قرض جائز نہیں کہتا ہے فافہم۔

(۱) بخلاف اجنبی کے کہ اس کو ایک تہائی ملے گی۔ (۲) خلاف مریض۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) Kitab al-Mazara'ah (The Book of Sharecropping) (333)**

A sick farmer is established as one who takes land on lease for a portion of the produce. It is mentioned in *Al-Muhit al-Sarakhsi* that if a sick person gives his land, which contains a crop that is still green (*saga*) and not yet ready for harvest, or date palms with spathes/immature fruit (*kafra*) (1), or other trees with small green raw fruits whose value cannot yet be estimated, to someone on the condition that 'whatever Allah grants as sustenance shall be divided half-and-half between us', the ruling is the same as what we described in the case of sharecropping when the seeds are provided by the sick landowner. If a sick person gives his date orchard for the year on the condition that the worker tends to it, provides water, and performs pollination (*narmadi*), and whatever sustenance Allah provides shall be divided half-and-half; then spathes appear whose value is equal to or less than the fair wage (*ajr-e-misl*) of a worker for such spathes; the worker continues to tend and water them until they become semi-ripe (*gadar*), at which point their value becomes substantial; then these semi-ripe dates spoil and become shriveled/useless (*hashaf*) (2), such that their value is even less than when they were spathes; and then the owner dies while heavily in debt such that his debts encompass all his assets. In this case, whatever the deceased left behind shall be distributed among the worker and the creditors as follows: the creditors shall share according to the amount of their respective debts, and the worker shall be included based on the value of half of the spoiled dates (*hashaf*). The worker shall not be held liable (*zamin*) for the ruin of the dates. If the deceased has no debts and the situation remains the same, the worker shall receive half of the destroyed dates, and the heirs shall receive the other half. Thus it is in *Al-Muhit*.

**Section connected to this chapter: Explanation of a sick person's acknowledgment regarding transactions and sharecropping**

Imam Muhammad (may Allah have mercy on him) said: If a farmer falls ill while holding someone's land for cultivation and owes a debt contracted while in health (*dayn al-sehat*). The said sick person then acknowledges that the seeds were provided by the landowner and he had stipulated two-thirds of the produce for the landowner. He then dies, and the creditors deny this acknowledgment. It will be examined: If the sick person made this acknowledgment after the crop was ready for harvest, his acknowledgment will not be validated against the healthy-state creditors, and their debts will be paid first. Once those debts are settled, if anything remains from the

two-thirds produce, the landowner shall be given an amount equivalent to the fair rent (*ajr-e-misl*) of his land. Any excess remaining up to the full two-thirds shall be given to the landowner as a bequest (*wasiyyat*), provided it falls within one-third of the deceased's total estate (3). If the sick person made this acknowledgment while the crop was still green (*saga*), his statement shall be validated even against the rights of healthy-state creditors. After the debt is paid, if any assets remain, the landowner’s stipulated right shall be fulfilled from the one-third available for bequests. This applies when the sick person owes a debt from his time of health. However, if the person owes a debt acknowledged only during his illness, and he makes an acknowledgment regarding the farming as we described: if he acknowledged while the crop was green, priority will be given to fulfilling the landowner's right; he will be given the fair rent (*ajr-e-misl*) of his land from the two-thirds produce, even if that two-thirds exceeds the fair rent. If he made the acknowledgment when the crop was ready for harvest, it will be seen whether the sharecropping acknowledgment occurred before or after the debt acknowledgment. If the sharecropping acknowledgment was first, the landowner is first given the fair rent, then the illness-period debt is paid. If the debt acknowledgment was first, the landowner shall be made a co-sharer, to the extent of the land's fair rent, with the person in whose favor the debt was acknowledged. All this applies when the division of produce/fruit is stipulated as half.

---

*Hashaf*: Ultimately spoiled and useless. (Ayin) When the division is on half of the fruit produce. (1) Small immature dates. (2) Useless/spoiled dates. (3) Meaning this amount should be within one-third of the deceased's estate.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) किताब अल-मज़ारअह (बटाई का बयान) (333)**

बीमार काश्तकार को उपज के कुछ हिस्से पर ज़मीन पट्टे (इजारा) पर लेने वाला माना गया है। मुहीत-ए-सरख़सी में है कि यदि किसी बीमार व्यक्ति ने अपनी ज़मीन, जिसमें खेती तो है लेकिन अभी हरी (सागा) है और काटने के योग्य नहीं हुई है, या खजूर के पेड़ जिनमें गुच्छे (कफरे) (1) आए हैं, या अन्य पेड़ जिनमें कच्ची हरी कैरियाँ हैं और उनकी कीमत का अंदाज़ा नहीं लगाया जा सकता, किसी व्यक्ति को इस शर्त पर दी कि 'अल्लाह जो भी नसीब करेगा, वह हम दोनों में आधा-आधा होगा', तो इसका हुक्म वही है जो हमने मज़ारअत की सूरत में तब बयान किया है जब बीज बीमार मालिक-ए-ज़मीन की तरफ से हों। और यदि किसी बीमार व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग इस वर्ष के लिए इस शर्त पर दिया कि वह उसकी देखभाल (परदाख़्त) करे, पानी दे और परागण (नर-मादी) करे, और जो कुछ अल्लाह रोज़ी देगा वह हम दोनों में आधा-आधा होगा, फिर खजूर में गुच्छे निकले जिनकी कीमत काम करने वाले (आमिल) के सामान्य पारिश्रमिक (अज्र-ए-मिस्ल) के बराबर या उससे कम थी। फिर आमिल उसकी देखभाल और सिंचाई करता रहा यहाँ तक कि वे अधपके (गदर) हो गए और उनकी कीमत काफी बढ़ गई। फिर वे खराब होकर सूखे और बेकार (हशफ़) (2) हो गए, और उनकी कीमत गुच्छे निकलते समय की कीमत से भी कम हो गई। इसके बाद मालिक मर गया और उस पर इतना कर्ज़ है जो उसके पूरे माल को घेरे हुए है, तो जो कुछ मृतक ने छोड़ा है उसे आमिल और ऋणदाताओं में इस तरह बांटा जाएगा: ऋणदाता अपने-अपने कर्ज़ की मात्रा के अनुसार हिस्सेदार होंगे और आमिल को आधे खराब खजूरों (हशफ़) की कीमत के हिसाब से शामिल किया जाएगा। खजूर की बर्बादी के लिए आमिल ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा। और यदि मृतक पर कर्ज़ न हो और स्थिति वही रहे, तो आमिल को आधे तबाहशुदा खजूर मिलेंगे और आधे वारिसों को मिलेंगे। मुहीत में ऐसा ही है।

## इस अध्याय से संबद्ध अनुभाग: बीमारी की हालत में खेती और बटाई के मामले में इकरार (स्वीकृति) का बयान

इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि यदि एक काश्तकार बीमार हुआ और उसके पास किसी व्यक्ति की ज़मीन है जिसमें वह खेती करता है, और उस पर स्वस्थ अवस्था (हालत-ए-सेहत) का कर्ज़ है। बीमार व्यक्ति ने इकरार किया कि बीज ज़मीन के मालिक की तरफ से था और उसने मालिक के लिए दो-तिहाई उपज की शर्त रखी थी। फिर वह मर गया और ऋणदाताओं ने इस इकरार से इनकार किया, तो देखा जाएगा: यदि बीमार ने खेती कटने के योग्य होने के बाद ऐसा इकरार किया, तो उसके

इकरार की पुष्टि नहीं की जाएगी और पहले स्वस्थ अवस्था के ऋणदाताओं का कर्ज़ चुकाया जाएगा। कर्ज़ चुकाने के बाद यदि दो-तिहाई उपज में से कुछ बचता है, तो ज़मीन के मालिक को उसकी ज़मीन के उचित किराये (अज्र-ए-मिस्ल) के बराबर दिया जाएगा, और इससे अधिक पूरी दो-तिहाई तक जो बचेगा, वह ज़मीन के मालिक को 'वसीयत' के तौर पर दिया जाएगा, बशर्ते वह मृतक के कुल माल (3) के एक-तिहाई हिस्से में आता हो। और यदि बीमार ने यह इकरार तब किया जब खेती अभी हरी (सागा) थी, तो ऋणदाताओं के मुकाबले में भी उसकी बात की पुष्टि की जाएगी। कर्ज़ चुकाने के बाद यदि माल बचे, तो वसीयत के एक-तिहाई में से मालिक-ए-ज़मीन का निर्धारित हक़ पूरा किया जाएगा। यह तब है जब बीमार पर सेहत की हालत का कर्ज़ हो। और यदि कर्ज़ ऐसा हो जो बीमारी की हालत में ही उसके इकरार से साबित हुआ हो, और उसने खेती के बारे में भी वैसा ही इकरार किया जैसा हमने बताया, तो यदि उसने खेती हरी होने की दशा में इकरार किया, तो पहले मालिक-ए-ज़मीन का हक़ देना शुरू किया जाएगा; उसे दो-तिहाई उपज में से ज़मीन का अज्र-ए-मिस्ल दिया जाएगा, भले ही दो-तिहाई हिस्सा अज्र-ए-मिस्ल से ज़्यादा हो। और यदि उसने इकरार तब किया जब खेती कटने के लायक हो चुकी थी, तो देखा जाएगा कि बटाई का इकरार कर्ज़ के इकरार से पहले हुआ था या बाद में। यदि बटाई का इकरार पहले हुआ, तो पहले मालिक को अज्र-ए-मिस्ल दिया जाएगा, फिर बीमारी की हालत वाला कर्ज़ चुकाया जाएगा। और यदि कर्ज़ का इकरार पहले हुआ, तो मालिक-ए-ज़मीन को उस ऋणदाता के साथ, जिसके पक्ष में कर्ज़ का इकरार हुआ है, ज़मीन के अज्र-ए-मिस्ल के बराबर का हिस्सेदार बना दिया जाएगा। यह सब उस स्थिति में है जब उपज/फल की बटाई आधे-आधे पर तय हो।

---

हशफ़: अंततः खराब और बेकार चीज़। (अ) आधे फल की उपज की बटाई पर हो। (1) खजूर की कच्ची फलियाँ। (2) बेकार/सड़ा हुआ खजूर। (3) यानी यह मात्रा मृतक के माल का एक-तिहाई हो।

کاشتکار مریض بعض پیداوار کے زمین اجارہ پر لینے والا قرار پایا ہے محیط سرخسی میں ہے اور اگر کسی مریض نے اپنی زمین جس میں کھیتی ہے مگر ہنوز ساگا ہے قابلِ درو نہیں ہوئی ہے یا درختانِ خرما جس میں کفرے (۱) ہیں یا اور درخت جس میں کچی ہری کیریاں ہیں ایسی نہیں ہیں کہ ان کی کچھ قیمت اندازہ کی جائے کسی شخص کو اس شرط سے دی کہ اس میں سے جو کچھ اللہ تعالٰی نصیب کرے وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہوگا تو اس کا حکم وہی ہے جو ہم نے مزارعت کی صورت میں جب کہ بیج مریض مالک زمین کی طرف سے ہوں بیان کیا ہے اور اگر کسی مریض نے اپنا باغ درختِ خرما پر اس سال کے واسطے اس شرط سے دیا کہ اس کی پرداخت کرے اور پانی دے اور نرمادی لگائے اور جو کچھ اس میں اللہ تعالٰی روزی کرے گا وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہوگا پھر درختِ خرما میں کفرے نکلیں کہ اس میں آدمی کفر کے عامل کے اجر المثل کے برابر یا اس سے کم قیمت تھیں پھر عامل اس کی برابر پرداخت کرتا رہا اور پانی دیتا رہا یہاں تک کہ یہ کفرے گدر ہو گئیں کہ ان کی قیمت مال کثیر ہے پھر یہ گدر خرما خراب ہو کر حشف (۲) ہو گئے کہ ان کی قیمت کفرے جب نکلیں تھیں ان کی قیمت سے بھی کم ہو گئی پھر درخت کا مالک مر گیا حالانکہ اس پر بہت قرضہ ہے کہ اس کے تمام مال کو محیط ہے تو جو کچھ میت نے چھوڑا ہے وہ عامل اور قرض خواہوں میں اس طرح تقسیم کیا جائے گا کہ قرض خواہ لوگ اپنے اپنے قرضہ کی مقدار سے شریک کیے جائیں گے اور عامل آدھے حشف (۲) کی قیمت کے حساب سے شریک کیا جائے گا اور خرما کی بربادی کا عامل ضامن نہ ہوگا اور اگر میت پر قرضہ نہ ہو اور باقی مسئلہ بحالہ رہے تو عامل کو آدھے خرما کے تباہ شدہ ملیں گے اور آدھے وارثوں کو ملیں گے کذا فی المحیط

**اِس باب کے متصل فصل در بیان اقرار مریض در معاملہ ومزارعہ**

امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر ایک کاشتکار بیمار ہوا اور اس کے پاس کسی شخص کی زمین ہے جس میں وہ زراعت کرتا ہے اور اس پر حالت صحت کا قرضہ ہے پس مریض مذکور نے اقرار کیا کہ بیج اس کی طرف سے تھا اور اس نے مالکِ زمین کے واسطے دو تہائی پیداوار شرط کی تھی پھر مر گیا اور قرض خواہوں نے اس سے انکار کیا تو دیکھا جائے گا کہ اگر مریض نے کھیتی کاٹنے کے لائق ہو جانے کے بعد ایسا اقرار کیا تو اس کے اقرار کی تصدیق نہ کی جائے گی اور پہلے قرض خواہانِ صحت کا قرضہ ادا کیا جائے گا پھر جب قرض خواہانِ صحت کا قرضہ ادا ہو گیا تو دیکھا جائے گا کہ اگر دو تہائی پیداوار میں سے کچھ بچا تو مالکِ زمین کو اس میں سے بقدر اس کی زمین کی اجر المثل کے دیا جائے گا اور اس سے زیادہ پوری دو تہائی پیداوار تک جو رہا وہ بطور وصیت کے مالکِ زمین کو دیا جائے گا بشرطیکہ مال میت (۳) کا تہائی ہوتا ہو اور اگر مریض نے ایسا اقرار ایسی حالت میں کیا کہ اس وقت کھیتی ساگا تھی تو قرض خواہانِ صحت کے حق میں بھی اس کے قول کی تصدیق کی جائے گی اور اگر قرضہ ادا کر دیا گیا اور مال میں سے کچھ باقی رہا تو باقی مال وصیت کی تہائی میں سے مالکِ زمین کو اس کا حق مشروط پورا کر دیا جائے گا یہ اس وقت ہے کہ مریض مذکور پر قرضہ صحت ہو اور اگر مریض پر ایسا قرضہ ہو کہ حالت مرض میں اس کے اقرار ہی سے ثابت ہوا ہو پھر مریض نے جس طرح ہم نے بیان کیا ہے زراعت میں اقرار کیا پس اگر اس نے کھیتی ساگا ہونے کی حالت میں ایسا اقرار کیا تو پہلے مالکِ زمین کا حق ادا کرنا شروع کیا جائے گا پس دو تہائی پیداوار میں سے اس کی زمین کا اجر المثل اس کو دیا جائے گا اگر دو تہائی پیداوار اس کی اجر المثل سے زیادہ ہو اور اگر مریض نے یہ اقرار ایسی حالت میں کیا کہ کھیتی کاٹنے کے لائق ہو گئی تھی تو دیکھا جائے گا کہ اگر اقرار مزارعت بہ نسبت اقرار قرضہ کے پہلے واقع ہوا ہو تو پہلے مالک زمین کو اس کی زمین کا اجر

المثل دیا جائے گا پھر مریض کا حالت مرض کا اقراری قرضہ ادا کیا جائے گا اور اگر اقرار قرضہ اقرار مزارعت سے پہلے ہو تو مالک زمین اس شخص کے ساتھ جس کے واسطے قرضہ کا اقرار کیا ہے بقدر زمین کے اجر المثل کے حصہ دار کر دیا جائے گا۔ یہ سب اس وقت میں ہے کہ جب آدھے پیداوار پھل کی بٹائی پر ہو۔

---

حشف آخر ما خراب شدہ ناکارہ۔ ع آدھے پیداوار پھل کی بٹائی پر ہو۔ (۱) خرما کی کیریاں۔ (۲) خرما کے ناکارہ۔ (۳) یعنی یہ مقدار تہائی مال میت ہو۔

**Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

In a case where seeds are provided by the cultivator and the cultivator makes an admission, or if seeds are provided by the landowner and the cultivator is ill and makes such an admission, then his admission shall be verified. This applies whether he made the admission before his right became due or after. If in the said matter the landowner is ill and makes such an admission, the ruling in all scenarios remains the same as described for the cultivator's admission.

If a person gives his date orchard to another on a sharecropping basis, and when the fruits have fully developed (i.e., become dates), the worker (amil) falls ill[1] and claims that the owner had stipulated a one-sixth share for him, and the owner confirms this admission but creditors and heirs deny it, the worker's statement shall be accepted. If the heirs or creditors then present witnesses claiming that the owner had stipulated half the produce for him, their witnesses will not be heard. If they demand an oath from the owner regarding their claim, the judge (Qazi) will not take an oath from the owner. Scholars have noted that the text mentioning no oath is required from the owner represents Imam Muhammad's view, while according to Imam Abu Yusuf, an oath shall be taken. Similarly, if the worker survived after previously admitting a one-sixth share but then claimed a half share, asserting his prior admission was false and requesting an oath from the owner, an oath should be taken from the owner. This applies if the worker is a stranger. However, if the worker is an heir to the owner and admitted to a one-sixth share after the dates ripened, his admission stands. If the worker’s heirs and creditors present witnesses for a half-share claim, their testimony will be heard, and if they seek an oath, it will be taken from the owner. If an ill person admits to giving his orchard to a specific heir on sharecropping while the fruit was not yet ripe, then admits to a debt during his illness and dies, the worker’s due must be paid first. He will be given 'Ujr al-Mithl'[2] (fair market wage/equivalent remuneration) for his work, and then the debt admitted during illness will be paid. Sheikh al-Islam mentioned this in his commentary, attributing it likely to the Sahibayn (Imams Abu Yusuf and Muhammad), though according to Imam Azam (Abu Hanifa), this ruling might not be correct. If the worker's heir claims they haven't received their full right and others claim they have because their right was only 'Ujr al-Mithl' which was paid, then can the heir demand an oath? There are two scenarios: if it's admitted the contract occurred during health but the admission during illness, an oath can be demanded. If the contract occurred during illness, an oath cannot be taken. As stated in 'Al-Muhit'.

**Chapter Fifteen: On Sharecropping and Transactions in Pledging (Mortgage)** A person pledged his land and date orchard, and after handing it over to the mortgagee, asked him to water it and fertilize it and...

---

1. Meaning he fell ill with 'Marad al-Mawt' (deathbed illness).
2. 'Ujr al-Mithl' is given because the worker here is an heir, and a bequest to an heir is not valid in Islamic law. Therefore, his right is a debt against the estate equivalent to a fair wage, making him a primary claimant in the produce.

## किताब अल-मुज़ारअत (बटाई के नियमों की पुस्तक)

यदि बीज काश्तकार (किसान) की ओर से हो और काश्तकार ने ऐसा इकरार (स्वीकृति) किया हो, और यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हो और काश्तकार रोगी (बीमार) हो और उसने ऐसा इकरार किया, तो उसके इकरार की पुष्टि की जाएगी, चाहे उसने यह इकरार अधिकार प्राप्त होने से पहले किया हो या अधिकार प्राप्त होने के बाद। और यदि उक्त मामले में ज़मीन का मालिक बीमार हो और उसने ऐसा इकरार किया हो, तो सभी स्थितियों में उसका वही हुक्म (आदेश) होगा जो काश्तकार के इकरार करने की स्थितियों में बताया गया है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग किसी दूसरे को बटाई पर दिया, फिर जब बाग के फल पूरे पक गए (यानी खजूर बन गए), तो आमिल (काम करने वाला) बीमार[1] हो गया और कहा कि बाग के मालिक ने मेरे लिए छठा हिस्सा तय किया है। बाग के मालिक ने उसके इस इकरार की पुष्टि की, लेकिन लेनदारों और उत्तराधिकारियों ने इसे झुठलाया, तो आमिल की बात स्वीकार की जाएगी। फिर यदि उसके उत्तराधिकारियों या लेनदारों ने कहा कि हम इस बात के गवाह पेश करते हैं कि बाग के मालिक ने उसके लिए आधी उपज तय की थी, तो उनके गवाहों की सुनवाई नहीं होगी। और यदि उन्होंने अपने दावे पर बाग के मालिक से कसम माँगी, तो काज़ी (न्यायाधीश) उनके दावे पर मालिक से कसम नहीं लेगा। विद्वानों ने कहा है कि किताब में जो यह उल्लेख है कि मालिक से कसम नहीं ली जाएगी, यह इमाम मुहम्मद का विचार है, जबकि इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार कसम ली जाएगी। इसी तरह, यदि आमिल जीवित रहा और वह पहले इकरार कर चुका था कि मालिक ने मेरे लिए छठा हिस्सा तय किया था, फिर उसने दावा किया कि मालिक ने मेरे लिए आधा हिस्सा तय किया था और मैंने छठे हिस्से का झूठा इकरार किया था, और प्रार्थना की कि मालिक से कसम ली जाए, तो मालिक से कसम लेनी चाहिए। यह तब है जब आमिल कोई अजनबी हो। लेकिन यदि आमिल बाग के मालिक का उत्तराधिकारी हो और उसने इकरार किया कि मालिक ने मेरे लिए छठा हिस्सा तय किया, और यह इकरार खजूर पकने के बाद हुआ, तो उसके इकरार की पुष्टि की जाएगी। और यदि आमिल के उत्तराधिकारियों और लेनदारों ने कहा कि हम गवाह पेश करते हैं कि मालिक ने आधा हिस्सा तय किया था, तो उनके गवाहों की सुनवाई होगी, और यदि वे कसम लेना चाहें, तो मालिक से कसम ली जाएगी। यदि एक बीमार व्यक्ति ने इकरार किया कि मैंने अपना बाग अपने अमुक उत्तराधिकारी को बटाई पर दिया है, जबकि फल अभी पके नहीं थे, फिर उसने बीमारी की स्थिति में ऋण का इकरार किया और मर गया, तो पहले आमिल का ऋण (मेहनताना) चुकाया जाएगा। उसे उसके काम का

'अज्र-ए-मिसल'[2] (उचित पारिश्रमिक) दिया जाएगा, फिर वह ऋण चुकाया जाएगा जिसका उसने बीमारी में इकरार किया था। शेख-उल-इस्लाम ने अपनी व्याख्या में ऐसा ही उल्लेख किया है, और शायद यह साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) का विचार है, और इमाम आज़म के अनुसार यह मसला सही नहीं होना चाहिए। फिर यदि आमिल के उत्तराधिकारी ने कहा कि मुझे पूरा अधिकार नहीं मिला है, कुछ शेष है, और अन्य उत्तराधिकारियों ने कहा कि तुम्हारा कुछ शेष नहीं है क्योंकि तुम्हारा अधिकार 'अज्र-ए-मिसल' था जो तुम्हें मिल चुका है, तो क्या आमिल बाकी उत्तराधिकारियों से कसम ले सकता है? इसमें दो स्थितियाँ हैं: यदि आमिल के उत्तराधिकारी ने स्वीकार किया हो कि अनुबंध स्वास्थ्य की स्थिति में हुआ था और इकरार बीमारी की स्थिति में, तो उसे कसम लेने का अधिकार होगा। और यदि उसने कहा कि अनुबंध बीमारी की स्थिति में हुआ था, तो वह कसम नहीं ले सकता। जैसा कि 'मुहीत' में वर्णित है।

**अध्याय पंद्रह: गिरवी (रहन) में बटाई और लेन-देन के वर्णन में** एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन और खजूर का बाग गिरवी रखा और उसे गिरवी रखने वाले (मुर्तहिन) के सुपुर्द करने के बाद उससे कहा कि इसे पानी दो और उर्वरक लगाओ और...

---

1. अर्थात 'मरज़-उल-मौत' (मृत्युशय्या की बीमारी) का रोगी।
2. अज्र-ए-मिसल इसलिए क्योंकि आमिल यहाँ उत्तराधिकारी है, और उत्तराधिकारी के लिए वसीयत मान्य नहीं है, इसलिए उसका अधिकार उचित पारिश्रमिक के बराबर संपत्ति पर ऋण है, और वह इस उपज में हकदार है, अतः पहले उसे दिया जाएगा।

---

**کتاب المزارعۃ** کاشتکار کی طرف سے بیج ہونے کی صورت میں کاشتکار نے ایسا اقرار کیا ہو اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہونے کی صورت میں کاشتکار مریض نے ایسا اقرار کیا تو اس کے اقرار کی تصدیق کی جائے گی خواہ اس نے بحق عامل ورود ہونے کے پہلے ایسا اقرار کیا ہو یا قاتل ورود ہونے کے بعد ایسا اقرار کیا ہو اور اگر مسئلہ مذکورہ میں مالک زمین مریض ہو اور اس نے ایسا اقرار کیا تو اس کا حکم سب صورتوں میں وہی ہے جو کاشتکار کے اقرار کرنے کی صورتوں میں بیان کیا گیا ہے۔

اگر کسی شخص نے اپنا باغ خرما دوسرے کو بٹائی پر دیا پھر جب باغ کے پھل پورے نہ یعنی خرما ہو گئے تو عامل بیمار[1] ہو گیا اور کہا کہ مالک باغ نے میرے واسطے چھٹا حصہ شرط کیا ہے اور مالک باغ نے اس کے اس اقرار کی تصدیق کی مگر قرض خواہوں و وارثوں نے تکذیب کی تو عامل کا قول قبول ہوگا پھر اگر اس کے وارثوں یا قرض خواہوں نے کہا کہ ہم اس امر کے گواہ پیش کرتے ہیں کہ مالک باغ نے اس کے واسطے نصف حاصلات کی شرط کی ہے تو ان کے گواہوں کی سماعت نہ ہوگی اور اگر انہوں نے اپنے دعویٰ پر مالک باغ سے قسم طلب کی تو قاضی ان کے دعویٰ پر کہ مالک مذکور سے قسم نہ لے گا اور مشائخ نے فرمایا کہ یہ جو کتاب میں مذکور ہے کہ ان کے اس دعویٰ پر کہ مالک باغ نے عامل کے واسطے نصف حاصلات شرط کی ہے مالک باغ سے قسم نہ لی جائے گی یہ امام محمدؒ کا قول ہے اور امام ابویوسفؒ کے قول پر قسم لی جائے گی۔ اس طرح اگر عامل زندہ رہا اور وہ اقرار کر چکا تھا کہ میرے واسطے مالک باغ نے چھٹا حصہ شرط کیا تھا پھر دعویٰ کیا کہ مالک نے میرے واسطے نصف شرط کیا ہے اور میں نے چھٹا حصہ شرط کرنے کا جھوٹا اقرار کیا تھا اور درخواست کی کہ مالک باغ سے قسم لی جائے تو مالک باغ سے قسم لینا چاہیے یہ اس وقت ہے کہ عامل کوئی اجنبی ہو اور اگر عامل

مالک باغ کا وارث ہو اور عامل نے اقرار کیا کہ مالک باغ نے میرے واسطے چھٹا حصہ شرط کیا اور یہ اقرار خرما کی جانے کے بعد واقع ہوا تو اس کے اقرار کی تصدیق کی جائے گی اور اگر وارثان عامل اور اس کے قرض خواہوں نے کہا کہ ہم اس امر کے گواہ پیش کرتے ہیں کہ مالک باغ نے عامل کے واسطے نصف شرط کیا ہے تو ان کے گواہوں کی سماعت ہوگی اور اگر انہوں نے مالک باغ سے اس دعویٰ پر قسم لینی چاہی تو مالک باغ سے قسم لی جائے گی اور اگر ایک مریض نے اقرار کیا کہ میں نے اپنا باغ خرما اپنے فلاں وارث کو بٹائی پر دیا ہے حالانکہ ہنوز اس کے پھل پختہ نہ ہوئے تھے پھر مریض مذکور نے حالت مرض میں قرضہ کا اقرار کیا پھر مر گیا تو پہلے عامل کا قرضہ ادا کیا جائے گا پس اس کے کام کا اجر المثل[2] اس کو دیا جائے گا پھر وہ قرضہ ادا کیا جائے گا جس کا اس نے مرض میں اقرار کیا ہے ایسا ہی شیخ الاسلام نے اپنی شرح میں ذکر فرمایا ہے اور شاید یہ قول صاحبینؒ کا ہے اور امام اعظمؒ کے قول پر یہ مسئلہ صحیح نہ ہونا چاہیے۔ پھر اگر وارث عامل نے کہا کہ میرا پورا حق مجھے نہیں ملا ہے کچھ باقی رہ گیا ہے اور باقی وارثوں نے کہا کہ تیرا کچھ حق باقی نہیں رہا اس واسطے کہ تیرا حق اجر المثل تھا اور وہ سب تجھے پہنچ گیا پس عامل نے چاہا کہ باقی وارثوں سے قسم لے پس آیا قسم لے سکتا ہے تو اس میں دو صورتیں ہیں کہ اگر وارث عامل نے اقرار کیا ہو کہ عقد حالت صحت میں واقع ہو اور اقرار حالت مرض میں ہو تو اس کو قسم لینے کا اختیار ہوگا اور اگر اس نے کہا کہ عقد حالت مرض میں واقع ہوا ہے تو قسم نہیں لے سکتا ہے کذا فی المحیط

**باب پندرہ: رہن میں مزارعت ومعاملہ کرنے کے بیان میں** ایک شخص نے اپنی زمین و باغ خرما رہن کیا اور مرتہن کو سپرد کرنے کے بعد مرتہن سے کہا کہ اس کو پانی دے اور نرمادی لگا اور...

1. یعنی مرض الموت کا بیمار ہوا۔

2. اجر المثل اس واسطے کہ عامل یہاں وارث ہے اور وارث کے لیے وصیت جائز نہیں ہے تو حق مستحق بقدر اجر المثل کے ترکہ پر قرض ہے اور وہ اس پیداوار میں حق دار ہے پس پہلے اس کو دیا جائے۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 235 Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

[If he says] "Guard it on the condition that whatever proceeds arise shall be divided half-and-half," and the mortgagee (murtahin) accepts this, the transaction contract is void (fasid). The mortgagee shall receive fair wages (ajr al-mithl) for pollination (narmadehi) and irrigation, but shall receive nothing for guarding the land. Whatever is produced shall remain part of the mortgage (rahn). Similarly, if cultivated land was mortgaged but the crop was still green shoots (saag), the same ruling applies. If arable land, i.e., an empty field, was mortgaged and the mortgagor (rahin) gave it for sharecropping (muzara'ah) to the mortgagee, who accepted and provided the seeds, the sharecropping is valid. The harvest shall be divided according to the agreement, and the land shall exit the mortgage status, returning to it later without needing a new contract. If the seeds are provided by the mortgagor, the mortgagee has the option to re-enter it into mortgage after cultivation. If a person mortgages a vacant field containing date palms and commands the mortgagee to cultivate it using his own seeds for a half-share of the crop, and to maintain, irrigate, and guard the trees for a half-share, the sharecropping is valid but the management contract (mu'amala) is void. This is because if the sharecropping contract for the land stood alone, it would be valid and the land would leave mortgage; however, the management contract alone would not be valid. Thus, when both were combined, the part that was independently valid remained so, and the invalid part remained invalid. The invalidity of the management contract does not void the sharecropping because the sharecropping is conjoined to the management contract, not conditional upon it (as stated in Muhit al-Sarakhsi).

**Chapter Sixteen: Regarding Manumission (Itq) and Contracts of Manumission (Kitabat) Involving Sharecropping and Transactions**

If a person frees his slave on the condition that he cultivates his land, such that whatever God produces therein shall be shared half-and-half between them, and the slave agrees, two scenarios arise: 1. If the land is provided by the master and the seeds and labor by the slave: In this case, the sharecropping is void, but the manumission is valid. This is because sharecropping is an agreement that becomes void by attaching a second contract as a condition, whereas manumission remains valid. If the slave cultivates the land and produces a crop, the entire harvest belongs to the slave. The slave must pay the master fair rent (ajr al-mithl) for the land, as is the rule in void sharecropping, and he must also pay the master his own market

value (price of manumission). 2. If both land and seeds are provided by the master and only labor by the slave: In this case too, the sharecropping is void and the manumission is valid. The entire yield belongs to the master. The master must pay the slave fair wages for his labor, and the slave must pay the master his own market value.

If a person enters a contract of manumission (kitabat) with his slave on the condition that the 'mukatab' (slave under contract) cultivates the master's land and whatever is produced is shared (1) between them, this also has two scenarios: 1. If land and seeds are from the master and only labor from the 'mukatab': Both the sharecropping and the manumission contract are void. The master has the right to terminate the contract.

---

1. "Shared between them" is an idiom meaning a half-and-half partnership, as the default state of such a partnership is equal division.

उसकी सुरक्षा कर दे इस शर्त पर कि जो कुछ पैदावार होगी वह आधी-आधी (निसफ़ा-निसफ़) होगी और गिरवी रखने वाले (मुर्तहिन) ने इसे स्वीकार कर लिया, तो यह लेनदेन का अनुबंध शून्य (फ़ासिद) है। मुर्तहिन को परागण (नर्मादेही) करने और सिंचाई करने के लिए उचित पारिश्रमिक (अज्र-अल-मिस्ल) मिलेगा, लेकिन सुरक्षा के लिए कुछ नहीं मिलेगा। जो कुछ पैदा होगा वह बंधक (रहन) का हिस्सा रहेगा। इसी तरह, यदि बोई हुई ज़मीन बंधक थी लेकिन अभी वह केवल साग (सब्ज़ी) थी, तो यही हुक्म लागू होगा। यदि कोई कृषि योग्य ज़मीन यानी खाली खेत गिरवी रखा गया और रहन देने वाले (राहिन) ने उसे मुज़ारआ (बटाईदारी) पर दिया और मुर्तहिन ने स्वीकार कर लिया और मुर्तहिन की ओर से बीज डाले गए, तो मुज़ारआ जायज़ है। जो उपज होगी वह शर्त के अनुसार विभाजित होगी और वह ज़मीन बंधक से बाहर हो जाएगी, और रहन के नवीनीकरण के बिना वह फिर से रहन के रूप में लौट आएगी। यदि बीज राहिन (स्वामी) की ओर से हों, तो मुर्तहिन को यह अधिकार होगा कि वह खेती के बाद उसे फिर से रहन में ले ले। यदि किसी व्यक्ति ने खाली खेत जिसमें खजूर के पेड़ हैं गिरवी रखा, फिर मुर्तहिन को आदेश दिया कि वह इस वर्ष अपने बीजों से आधे की बटाई पर खेती करे और पेड़ों की देखभाल, सिंचाई और सुरक्षा करे, और आधे की बटाई शर्त रखी, तो मुज़ारआ जायज़ है लेकिन 'मुआ़मला' अनुबंध फ़ासिद है। क्योंकि यदि केवल ज़मीन का मुज़ारआ अनुबंध होता तो वह जायज़ था और ज़मीन रहन से बाहर हो जाती, और यदि केवल 'मुआ़मला' अनुबंध होता तो वह जायज़ नहीं था। इस प्रकार जब दोनों को मिलाया गया, तो जो अकेले जायज़ था वह जायज़ रहा और जो अकेले जायज़ नहीं था वह नाजायज़ रहा। मुआ़मला का फ़ासिद होना मुज़ारआ के फ़ासिद होने का कारण नहीं बना क्योंकि मुज़ारआ मुआ़मला पर निर्भर नहीं है (जैसा कि मुहीत अल-सरख़सी में वर्णित है)।

## अध्याय सोलह: ऐसे दास-मुक्ति (इतक) और दास-मुक्ति अनुबंध (किताबत) के वर्णन में जिसमें बटाईदारी और लेन-देन हो

यदि किसी व्यक्ति ने अपने गुलाम को इस शर्त पर आज़ाद किया कि वह मेरी ज़मीन पर इस शर्त के साथ खेती करे कि अल्लाह जो कुछ उसमें पैदा करेगा वह हम दोनों में आधा-आधा होगा, और गुलाम इस पर सहमत हो गया, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: 1. ज़मीन मालिक की हो और बीज व मेहनत गुलाम की हो: ऐसी स्थिति में मुज़ारआ अनुबंध फ़ासिद है लेकिन दास-मुक्ति (इतक) मान्य है। मुज़ारआ फ़ासिद इसलिए है क्योंकि इसमें दास-मुक्ति की शर्त है, और दास-मुक्ति में मुज़ारआ की शर्त है।

मुज़ारआ ऐसा अनुबंध है जो दूसरी शर्त लगाने से शून्य हो जाता है, पर दास-मुक्ति शून्य नहीं होती। यदि गुलाम ने खेती की और फसल हुई, तो पूरी फसल गुलाम की होगी। गुलाम को मालिक की ज़मीन का उचित किराया (अज्र-अल-मिस्ल) देना होगा जैसा कि फ़ासिद मुज़ारआ में होता है, और गुलाम को अपनी बाज़ार कीमत भी चुकानी होगी। 2. ज़मीन और बीज मालिक की ओर से हों और गुलाम की ओर से केवल काम हो: इस स्थिति में भी मुज़ारआ फ़ासिद है और दास-मुक्ति मान्य है। सारी पैदावार मालिक की होगी। मालिक को गुलाम की मेहनत के लिए उचित मज़दूरी देनी होगी, और गुलाम को मालिक को अपनी कीमत चुकानी होगी।

यदि किसी ने अपने गुलाम को इस शर्त पर 'मुकातब' (मुक्ति अनुबंध) किया कि वह मालिक की ज़मीन पर खेती करेगा और जो पैदा होगा वह दोनों (1) के बीच साझा होगा, तो इसमें भी दो स्थितियाँ हैं: 1. ज़मीन और बीज मालिक के हों और मुकातब केवल श्रम करे: इस मामले में मुज़ारआ और किताबत दोनों फ़ासिद हैं। मालिक को अधिकार होगा कि वह इसे रद्द कर दे।

---

1. "दोनों में साझा हो" यह एक मुहावरा है जिसका अर्थ आधा-आधा हिस्सा है, क्योंकि मूल रूप में इसमें बराबरी की भागीदारी होती है।

---

اس کی حفاظت کر دے بشرطیکہ جو کچھ حاصلات ہوں وہ نصفا نصف ہو گی اور مرتہن نے اس کو قبول کیا تو عقد معاملہ فاسد ہے اور مرتہن کو نرما دی لگانے اور سینچنے کا اجر المثل ملے گا اور حفاظت کرنے کا کچھ نہیں ملے گا اور جو کچھ پیدا ہو گا وہ رہن رہے گا اس طرح اگر کھیتی بوئی ہوئی زمین رہن کی مگر ہنوز ساگ تھی تو بھی یہی حکم ہے اور اگر کوئی زمین قابل زراعت یعنی خالی کھیت رہن ہوا اور راہن نے اس کو مزارعت پر دیا اور مرتہن نے قبول کیا اور بیج کیا اور بیج مرتہن کی طرف سے ہیں تو مزارعت جائز ہے اور جو حاصلات ہوں وہ موافق شرط کے تقسیم ہو گی اور زمین مذکور رہن سے نکل جائے گی اور بدون تجدید رہن کے رہن کی طرف سے عود کرے گی اور اگر بیج راہن کی طرف سے ہوں تو مرتہن کو اختیار ہو گا کہ بعد زراعت کے اس کو رہن میں کر لے اور اگر کسی شخص نے خالی کھیت جس میں درخت خرما ہیں رہن کیا پھر مرتہن کو حکم دیا کہ اس سال اس میں اپنے بیجوں سے آدھے کی بٹائی پر کار زراعت کرے اور درختوں کی پرداخت کرے اور سینچنے اور حفاظت کرے اور آدھے کی بٹائی شرط کر دی تو مزارعت جائز ہے اور معاملہ فاسد ہے کیونکہ اگر تنہا مزارعت زمین کا عقد قرار دیتا تو جائز تھا اور یہ زمین رہن سے باہر ہو جائے گی اور اگر تنہا عقد معاملہ قرار دیتا تو جائز نہ تھا پس اس طرح جب کہ دونوں کو جمع کیا تو جو تنہا جائز تھا وہ جائز ہوا اور جو تنہا جائز نہ تھا وہ ناجائز ہوا اور معاملہ کا فاسد ہونا موجب فساد مزارعت اس وجہ سے نہیں ہوا کہ مزارعت پر معاملہ معطوف ہے مشروط نہیں ہے کذا فی محیط السرخسی۔

**باب سولہ: ایسے عتق و کتابت کے بیان میں جس میں مزارعت و معاملت ہو**

اگر کسی شخص نے اپنے غلام کو اس شرط سے آزاد کیا کہ میری زمین میں بدیں شرط زراعت کرے کہ جو کچھ اللہ تعالیٰ اس میں پیدا کرے وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گا پس غلام اس پر راضی ہو گیا تو اس میں دو صورتیں ہیں اول یہ کہ زمین مولیٰ کی طرف سے ہو اور بیج کام غلام کی طرف سے ہو تو ایسی صورت میں مزارعت فاسد ہے اور عتق جائز ہے اس واسطے کہ یہ ایسی مزارعت فاسد ہے جس میں عتق مشروط ہے اور ایسا عتق ہے جس میں مزارعت مشروط ہے لیکن مزارعت ایسا عقد ہے جس میں دوسرا عقد شرط کرنے سے باطل ہو جاتا ہے اور عتق باطل نہیں ہوتا ہے اور اگر ایسے عقد پر غلام مذکور نے زراعت کی اور کھیتی پیدا ہوئی تو پوری کھیتی غلام کی ہو گی اور غلام پر مولیٰ کے واسطے اس کی زمین کا اجر المثل واجب ہو گا جس طرح تمام مزارعات فاسدہ میں ہوا کرتا ہے اور غلام پر یہ بھی لازم ہو گا کہ اپنی قیمت جس قدر ہو ادا کرے۔ دوم یہ کہ زمین و بیج مولیٰ کی طرف سے ہو اور غلام کی طرف سے خالی کام ہو اور ایسی صورت میں بھی مزارعت فاسد ہے اور عتق جائز ہے اور اس صورت میں تمام پیداوار مولیٰ کی ہو گی اور مولیٰ پر غلام کے کار زراعت کا اجر المثل جس قدر ہو غلام کے واسطے واجب ہو گا اور مولیٰ کے واسطے غلام پر غلام کی قیمت جس قدر ہو واجب ہو گی اور اگر کسی شخص نے اپنا غلام اس شرط سے مکاتب کیا کہ اس سال مکاتب اپنے مولیٰ کی زمین میں اس شرط سے زراعت کرے کہ جو کچھ اللہ تعالیٰ اس میں پیدا کرے وہ دونوں ۱ میں مشترک ہو تو اس مسئلہ کی بھی دو صورتیں ہیں اول یہ کہ زمین و بیج مولیٰ کی طرف سے ہو اور مکاتب کی طرف سے فقط کار زراعت ہو تو اس صورت میں مزارعت فاسد ہے اور کتابت بھی فاسد ہے اور جب کتابت فاسد ہوئی تو مولیٰ کو اس کے توڑ دینے کا اختیار ہو گا جیسا کہ غلام مذکور کو بعوض شراب وسور کے مکاتب کرنے کی صورت میں ہے پس اگر مولیٰ نے کتابت کو نہ توڑا حتیٰ کہ مکاتب نے زمین مذکور میں زراعت کی

۱ دونوں میں مشترک ہو یہ محاورہ ہے جس سے مراد یہ کہ نصفا نصف شرکت اس واسطے کہ اصل اس میں مساوی شرکت ہے اور وہ دونوں میں بلا ضرر نصفا نصف ہوئی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (336) Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

And if crops are produced on the land, the entire harvest will belong to the master, and the master will be obligated to pay a fair wage (*Ajr-ul-Mithl*) to the *Mukatib* (a slave in a manumission contract) for his labor. The *Mukatib* will be set free because he fulfilled the condition upon which the contract of manumission (*Kitabat*) was contingent—namely, to cultivate that land during that year. At the time the contract was suspended, the cultivation of the land for that year was unknown. When the matter upon which a defective (*fasid*) manumission is contingent is known at the time of the contract and the *Mukatib* fulfills it, manumission occurs. For instance, if he was contracted for manumission in exchange for wine or pigs and the *Mukatib* provided them, the ruling remains the same. Thus, the *Mukatib* becomes liable to the master for his own price, and the master becomes liable to the *Mukatib* for a fair wage for his labor. If both amounts are equal, a set-off (*muqassah*) occurs. If the *Mukatib's* price exceeds his fair wage, the master will collect the difference. If the fair wage for his work exceeds his price, he cannot demand anything from the master. Second: if the land is provided by the master and the seeds and labor by the *Mukatib*, in this case also, both the manumission and sharecropping contracts are defective. The master has the option to terminate the manumission. If he does not terminate it and substantial crops are produced by the *Mukatib's* labor, or even if nothing is produced, the *Mukatib* will not be freed. The ruling mentioned for sharecropping, where seeds are provided by the landowner, applies to the contract of *Muamalat* (dealing) in this situation as well, as stated in *al-Muhit*.

## Chapter Seventeen: Regarding Sharecropping and Dealing Contracts involving Marriage, *Khul'* (divorce initiated by the wife), and Settlement for Intentional Homicide (*Amd-i-Khoon*)

If a man marries a woman on the condition that she cultivates his land this year, using her own seeds and labor, and that the produce is shared equally between them, the marriage is valid, but the sharecropping contract is defective (*fasid*). According to Imam Abu Yusuf (RA), the woman's dower (*mahr*) in this case will be equal to half the rent of that land. According to Imam Muhammad (RA), her dower will be the lesser of two amounts: her customary dower (*mahr-ul-mithl*) or the fair rent (*ajr-ul-mithl*) of the land. If the woman cultivates the land—whether produce is obtained or not—and the landowner does not divorce her, the entire produce belongs to the woman. She will be liable for half the fair rent of the land, and the husband will not owe her any dower; this is the view of Imam Abu Yusuf. According to

Imam Muhammad, she will be liable for the full fair rent of the land, and the husband will owe her a dower equal to the lesser of her customary dower or the land's rent. If her customary dower is equal to or greater than the land's rent, she has received her due, and a set-off occurs. If the dower is less, she must return the amount by which the rent exceeds the dower to the husband, as stated in *al-Muhit al-Sarakhsi*. If the husband divorces her after this, and if the divorce occurs before consummation and before cultivation, then according to Imam Abu Yusuf, the woman is entitled to one-fourth of the fair rent from the husband, and the husband owes nothing due to the sharecropping contract. According to Imam Muhammad, she is entitled to a portion of the dower. If the divorce occurs after cultivation, then according to Imam Abu Yusuf, one-fourth of the land's fair rent will be her dower, and the husband, due to the defective sharecropping contract, will owe the full fair rent for the entire land. Thus, a set-off occurs to the extent of one-fourth, and the remaining three-fourths...

---

1. "Known" means it is not an unknown matter; rather, it is a known fact that he is to cultivate this land this year.
2. Contract of *Muamalat* means if a *Mukatib* was contracted or freed based on sharing fruit from trees; the ruling is the same as mentioned for sharecropping in manumission, provided the seeds are from the owner's side.

और ज़मीन में खेती पैदा हुई तो पूरी खेती मौला (मालिक) की होगी और मौला पर मुकातिब (आज़ादी की शर्त वाला गुलाम) के लिए उसके काम का अज्र-अल-मिसल (उचित मज़दूरी) वाजिब होगा और मुकातिब आज़ाद हो जाएगा क्योंकि मुकातिब ने वह शर्त पूरी की जिस पर अक़्द-ए-किताबत (मुक्ति अनुबंध) आधारित था, यानी इस साल इस ज़मीन की खेती करना। अनुबंध के समय इस साल ज़मीन की खेती अज्ञात थी। जब वह बात जिसके साथ दूषित (फासिद) मुकातिब अनुबंध जुड़ा हो, अनुबंध के समय ज्ञात हो और मुकातिब उसे पूरा कर दे, तो वह आज़ाद हो जाता है; जैसे उसे शराब या सूअर पर मुकातिब किया और मुकातिब ने उसे अदा कर दिया, तो यही हुक्म है। फिर मौला के लिए मुकातिब पर मुकातिब की कीमत वाजिब हुई और मौला पर मुकातिब के लिए उसके काम की उचित मज़दूरी वाजिब हुई। यदि दोनों बराबर हों, तो हिसाब बराबर (मुक़ासह) हो जाएगा। यदि मुकातिब की कीमत उसकी मज़दूरी से ज़्यादा हो, तो मौला उससे अतिरिक्त हिस्सा ले लेगा। और अगर काम की मज़दूरी उसकी कीमत से ज़्यादा हो, तो वह मौला से कुछ नहीं ले सकता। दूसरा यह कि ज़मीन मौला की ओर से हो और बीज और काम मुकातिब की ओर से हो, इस स्थिति में भी किताबत और मुज़ाराअत दोनों दूषित हैं और मौला को अधिकार होगा कि किताबत को तोड़ दे। यदि उसने किताबत नहीं तोड़ी और मुकातिब के काम से ज़मीन में बहुत उपज हुई या कुछ भी नहीं हुई, तो मुकातिब आज़ाद नहीं होगा। और मुज़ाराअत में जो हुक्म बताया गया है जब बीज ज़मीन के मालिक की तरफ से हों, वैसा ही हुक्म अक़्द-ए-मुआमलात की सूरत में भी है, जैसा कि 'अल-मुहीत' में वर्णित है।

## अध्याय सत्रह: मुज़ाराअत और मुआमलात के अनुबंधों में निकाह, ख़ुला और हत्या (अमद-ए-खून) के मामले में सुलह के बयान में

यदि किसी महिला से अपनी ज़मीन इस साल जोतने की शर्त पर इस तरह निकाह किया कि यह महिला इस साल अपने बीज और काम से इसमें खेती करे और जो कुछ पैदावार हो वह हम दोनों में आधी-आधी होगी, तो निकाह जायज़ है और मुज़ाराअत फासिद (दूषित) है। इमाम अबू यूसुफ (रह.) के अनुसार उपरोक्त स्थिति में उसका मेहर उस ज़मीन के आधे किराए के बराबर होगा। और इमाम मुहम्मद (रह.) के अनुसार उसका मेहर, सामान्य मेहर (मेहर-उल-मिसल) और ज़मीन की उचित मज़दूरी (अज्र-अल-मिसल) में से जो भी कम हो, उतना होगा। यदि महिला ने ज़मीन में खेती की, चाहे उपज हुई या नहीं, और ज़मीन के मालिक ने उसे तलाक नहीं दी, तो पूरी उपज महिला की होगी और

उस पर ज़मीन का आधा उचित किराया वाजिब होगा और पति पर उसका कोई मेहर वाजिब नहीं होगा। यह इमाम अबू यूसुफ के अनुसार है। इमाम मुहम्मद के अनुसार उस पर ज़मीन का पूरा उचित किराया वाजिब होगा और पति पर उसका मेहर, उसके सामान्य मेहर और ज़मीन के किराए में से जो कम हो, वह वाजिब होगा। यदि उसका सामान्य मेहर ज़मीन के किराए के बराबर या उससे अधिक हो, तो उसने अपना हक जो पति पर वाजिब था, प्राप्त कर लिया, अतः हिसाब बराबर हो जाएगा। यदि मेहर कम हो, तो वह उचित किराए से जितना कम है उतना पति को लौटा दे, जैसा कि 'अल-मुहीत अल-सरख़सी' में है। यदि इसके बाद पति ने उसे तलाक दे दी, और यदि सहवास (दुखुल) से पहले तलाक दी, और यदि यह तलाक खेती से पहले हुई, तो इमाम अबू यूसुफ के अनुसार महिला के लिए पति पर ज़मीन के उचित किराए का एक चौथाई वाजिब होगा और मुज़ाराअत की वजह से पति पर कुछ वाजिब नहीं होगा। इमाम मुहम्मद के अनुसार महिला के लिए मेहर का हिस्सा वाजिब होगा। और अगर तलाक खेती के बाद हुई, तो इमाम अबू यूसुफ के अनुसार महिला के लिए ज़मीन के उचित किराए का एक चौथाई मेहर वाजिब होगा और मुज़ाराअत के दूषित होने के कारण पति पर पूरी ज़मीन का पूरा उचित किराया वाजिब होगा। फिर एक चौथाई की सीमा तक हिसाब बराबर हो जाएगा और बाकी तीन चौथाई [जारी है...]

---

1. 'मालूम' यानी कोई अज्ञात चीज़ नहीं बल्कि यह ज्ञात तथ्य है कि इस साल इस ज़मीन की खेती करनी है।
2. अक़्द-ए-मुआमलात यानी यदि पेड़ों की उपज के बंटवारे पर मुकातिब किया या आज़ाद किया तो उसका वही हुक्म है जो मुज़ाराअत अनुबंध में गुज़रा, बशर्ते बीज मालिक की तरफ से हों।

اور زمین میں کھیتی پیدا ہوئی تو پوری کھیتی مولیٰ کی ہوگی اور مولیٰ پر مکاتب کے واسطے اس کے کام کا اجر المثل واجب ہوگا اور مکاتب آزاد ہو جائے گا اس واسطے کہ مکاتب نے وہ شرط پوری کی جس پر عقد کتابت مشروط تھا یعنی اس سال اس زمین کی زراعت کرنا اور اس سال زراعت زمین وقت تعلیق عقد کے معلوم نہ تھی اور جس امر کے ساتھ کتابت فاسدہ کی تعلیق ہے جب وہ وقت عقد کے معلوم ہو اور مکاتب اس کو پورا کر دے تو عتق ہو جاتا ہے جیسے کہ اس کو شراب یا سور پر مکاتب کیا اور مکاتب نے اس کو ادا کر دیا تو یہی حکم ہے پس مولیٰ کے واسطے مکاتب پر مکاتب کی قیمت واجب ہوئی اور مولیٰ پر مکاتب کے واسطے مکاتب کے کام کا اجر المثل واجب ہوا پس اگر دونوں برابر ہوں تو مقاصد واقع ہو جائے گا اور اگر مکاتب کی قیمت اس کے کام کے اجر المثل سے زیادہ ہو تو بقدر زیادت کے مولیٰ اس سے لے لے گا اور اگر اس کے کام کا اجر المثل اس کی قیمت سے زیادہ ہو تو وہ مولیٰ سے کچھ نہیں لے سکتا ہے دوم یہ کہ زمین مولیٰ کی طرف سے اور بیج اور کام مکاتب کی طرف سے ہو اور اس صورت میں بھی کتابت اور مزارعت دونوں فاسد ہیں اور مولیٰ کو اختیار ہوگا کہ کتابت کو توڑ دے اور اگر اس نے کتابت نہ توڑی اور مکاتب کے کام سے زمین میں کثیر زراعت پیدا ہوئی یا کچھ بھی نہ پیدا ہوئی تو مکاتب آزاد نہ ہوگا اور جو حکم مزارعت میں مذکور ہوا ہے جبکہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں ویسا ہی عقدِ معاملت صورت میں حکم ہے کذا فی المحیط۔

**باب سترہ: عقدِ مزارعت و معاملہ میں تزوج و خلع وعمدِ خون سے صلح واقع ہونے کے بیان میں**

اگر کسی عورت سے اپنی زمین اس سال زراعت کرنے پر بدیں شرط نکاح کیا کہ یہ عورت اس سال اپنے بیجوں اور کام سے اس میں اس سال زراعت کرے اور جو کچھ اس میں پیداوار ہو وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہوگی تو نکاح جائز ہے اور مزارعت فاسد ہے اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک صورتِ مذکور کا مہر اس زمین کی اجرت کے نصف کے مثل ہوگا اور امام محمدؒ کے نزدیک اس کا مہر اس کے مثل عورتوں کے مہر اور زمین کے اجر المثل دونوں میں سے کم مقدار ہوگی پس اگر عورت مذکور نے زمین میں زراعت کی پیداوار ہوئی یا نہ ہوئی اور مالک زمین نے اس کو طلاق نہ دی تو تمام پیداوار عورت کی ہوگی اور اس پر زمین کا نصف اجر المثل لازم ہوگا اور شوہر پر اس کا مہر کچھ واجب نہ ہو گا یہ امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک اس پر پوری زمین کا اجر المثل واجب ہوگا اور شوہر پر اس کا مہر اس کے مہر المثل و زمین کی اجرت دونوں میں سے کم مقدار واجب ہوگی پس اگر اس کا مہر المثل زمین کی اجرت کے برابر ہو یا زیادہ ہو تو اس نے اپنا حق جو کچھ شوہر پر واجب ہوا تھا بھر پایا پس مقاصدہ ہو جائے گا اور اگر مہر المثل کم ہو تو پوری اجرت زمین سے جس قدر کم ہے اس قدر شوہر کو واپس دے کذا فی المحیط السرخسی اور اگر اس کے بعد شوہر نے اس کو طلاق دے دی پس اگر عورت کو قبل دخول کے طلاق دی پس اگر یہ طلاق قبل زراعت کے واقع ہوئی تو بنا بر قول امام ابو یوسفؒ کے عورت کے واسطے شوہر پر زمین کے اجر المثل کا چوتھائی واجب ہوگا اور شوہر کا بسبب مزارعت کے اس پر کچھ واجب نہ ہو گا اور بنا بر قول امام محمدؒ کے عورت کے واسطے حصہ مہر واجب ہوگا اور اگر بعد زراعت کے واقع ہوئی تو امام ابو یوسفؒ کے قول پر عورت کے واسطے زمین کے اجر المثل کا چوتھائی مہر واجب ہوگا اور شوہر کا اس پر بسبب مزارعت کے فاسد ہونے کے تمام زمین کا پورا اجر المثل واجب ہوگا پس بقدر چوتھائی کے مقاصد ہو جائے گا اور باقی تین چوتھائی [جاری ہے...]

۱ معلوم یعنی مجہول چیز نہیں بلکہ معلوم بات ہے کہ امسال اس زمین کی زراعت کرے۔ ۲ عقدِ معاملت یعنی اگر درختوں کی بٹائی پر مکاتب کیا یا آزاد کیا تو اس کا حکم وہ ہے کہ جو مزارعت پر کتابت میں گذرا بشرطیکہ بیج مالک کی طرف سے ٹھہرے ہوں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 337 Book of Muzara'ah (Crop-sharing)**

The woman will return the fair rent (Ajr-ul-Mithl) of the land to him because, according to the opinion of Imam Muhammad (RA), since the husband divorced her before consummation. For this reason, Mut'ah (consolatory gift) becomes obligatory upon the husband, and the full fair rent of the land will be obligatory upon him, and there will be no mutual set-off (Maqasah). All this applies in the case where the husband divorced the woman before consummation. If he divorced after consummation, and if the divorce was before cultivation, then according to the opinion of Imam Abu Yusuf (RA), half of the fair rent of the land will be due to the woman from the husband, and nothing will be due from the woman to the husband because of the crop-sharing agreement. According to Imam Muhammad (RA), the woman will be entitled to whichever is less between the customary dower (Mahr-ul-Mithl) and the fair rent of the entire land from the husband, and nothing will be due from the woman to the husband because of crop-sharing. If he divorced after cultivation, then according to Imam Abu Yusuf (RA), the full fair rent of the land became due from the husband to the woman because of the invalid crop-sharing agreement, and half the fair rent of the land became due from the husband to the woman because of the marriage; thus, a set-off will occur for half, and the woman must return the remaining half of the fair rent to the husband. According to Imam Muhammad (RA), the woman's entitlement from the husband because of the marriage will be whichever is less between the customary dower (Mahr-ul-Mithl) and the fair rent of the land, which became her dower. And the full fair rent of the land became due from the husband to the woman. If her customary dower is equal to or more than the rent of the entire land, she will not return anything to the husband and a set-off will occur. All this applies if the seeds and labor are from the woman and only the land is from the man. If it is the opposite—where the land is from the woman and the seeds and labor are from the man—the marriage is valid but the crop-sharing agreement is invalid. If the husband cultivated it afterward, all the produce will belong to the husband. Due to the crop-sharing agreement, the fair rent of the land will be due from the husband to the woman. And by unanimous consensus (Ijma), the customary dower (Mahr-ul-Mithl), whatever its amount, will be due from the husband because of the marriage, because the husband fixed half of the produce as a substitute for her intimacy (Baz'a), whereas this is unknown/vague (Majhul). By consensus, when the substitute for intimacy is unknown, the customary dower becomes due. Contrary to this, if the seeds are from the woman, then

according to Imam Abu Yusuf (RA), it is not unknown because the husband, in that case, made the benefit of the land the substitute for intimacy, and that is known; hence it prevents the customary dower from being obligatory. Then if the husband divorced before consummation, and if it is before cultivation, then Mut'ah will be due from the husband to the woman because of marriage, and nothing will be due because of crop-sharing. If he divorced after cultivation, then Mut'ah will be due because of marriage, and the fair rent of the land will be due because of crop-sharing. If the husband divorced after consummation, then if it is before cultivation, the customary dower will be due from the husband because of marriage, and nothing will be due because of cultivation. If he divorced after cultivation, then both the customary dower because of marriage and the fair rent of the land because of crop-sharing will be due from the husband.

**In the chapter of Khul' (divorce at woman's request), the woman and in the chapter of Nikah (marriage), the man are precedents for each other.**

If the seeds and land are from the husband and only the labor is from the woman, then this case and the case where both seeds and labor were mentioned as being from the husband have the same ruling. And if the land and seeds are from the woman and the husband... (1) i.e., a woman married a man on the condition that the man cultivates her land this year with his own seeds, provided that whatever is produced is shared equally between them. (2) i.e., when the dower fixed against intimacy is unknown. (3) Land with seeds, i.e., in the marriage, the land and seeds are from the woman and only the labor is from the man, then the marriage is also valid and the ruling is the same as mentioned when the seeds and labor are from the woman.

ज़मीन का अज्रुल मिस्ल (उचित किराया) औरत उसे वापस करेगी, क्योंकि इमाम मुहम्मद (रह.) के कौल (कथन) के अनुसार, चूंकि शौहर ने दुख़ूल (सम्भोग) से पहले उसे तलाक़ दे दी है। इस वास्ते शौहर पर मुत'अह वाजिब होगा और शौहर पर इस ज़मीन का पूरा अज्रुल मिस्ल वाजिब होगा और आपस में मुकासा (हिसाब का समायोजन) नहीं होगा। यह सब उस सूरत में है कि शौहर ने औरत के साथ दुख़ूल से पहले उसे तलाक़ दे दी और अगर दुख़ूल के बाद उसे तलाक़ दी, फिर अगर ज़िराअत (खेती) से पहले तलाक़ दी तो इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के कौल के अनुसार औरत के वास्ते शौहर पर निस्फ़ (आधी) ज़मीन का अज्रुल मिस्ल वाजिब होगा और शौहर का मज़ारअत के सबब औरत मज़कूरा (उक्त औरत) पर कुछ वाजिब न होगा। और इमाम मुहम्मद (रह.) के कौल के अनुसार औरत का जो निकाह के शौहर पर महर-ए-मिस्ल और तमाम ज़मीन के अज्रुल मिस्ल से जो कम मिक़दार हो वाजिब होगी और शौहर का औरत पर मज़ारअत के सबब कुछ वाजिब न होगा। और अगर ज़िराअत के बाद तलाक़ दी तो इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के कौल के अनुसार शौहर का औरत मज़कूरा पर मज़ारअत के फ़साद (दोष) के सबब पूरी ज़मीन का अज्रुल मिस्ल वाजिब हुआ और औरत का निकाह के सबब शौहर पर निस्फ़ ज़मीन का अज्रुल मिस्ल वाजिब हुआ, पस निस्फ़ की कदर मुकासा वाक़े हो जाएगा और बाक़ी निस्फ़ ज़मीन का अज्रुल मिस्ल औरत का शौहर को वापस देना वाजिब होगा। और इमाम मुहम्मद (रह.) के कौल के अनुसार औरत का निकाह के सबब शौहर पर महर-ए-मिस्ल और ज़मीन के अज्रुल मिस्ल से जो कम मिक़दार हो वह बतौरे महर वाजिब हुई और शौहर की औरत पर ज़मीन की पूरी उजरत-ए-मिस्ल वाजिब हुई, पस अगर उसका महर-ए-मिस्ल पूरी ज़मीन की उजरत के बराबर या ज़्यादा हो तो वह शौहर को कुछ वापस न देगी और मुकासा वाक़े हो जाएगा। यह सब उस सूरत में है कि बीज और कार-ए-ज़िराअत (खेती का काम) औरत की तरफ़ से हो और मर्द की तरफ़ से फ़क़त ज़मीन हो। और अगर इसका उल्टा हो कि औरत की तरफ़ से ज़मीन और मर्द की तरफ़ से बीज और कार-ए-ज़िराअत हो और बाक़ी मसला बहाल रहे तो निकाह जाइज़ है और मज़ारअत फ़ासिद (अवैध) है और अगर इसके बाद शौहर ने ज़िराअत की तो पूरी पैदावार शौहर की होगी और शौहर पर मज़ारअत के सबब औरत के वास्ते ज़मीन का अज्रुल मिस्ल वाजिब होगा और औरत के वास्ते शौहर पर निकाह के सबब बिल-इजमाअ (सर्वसम्मति से) महर-ए-मिस्ल, चाहे जिस क़दर हो, वाजिब होगा। इस वास्ते कि शौहर ने उसके बज़अ (सम्भोग का अधिकार) के मुक़ाबले में निस्फ़ पैदावार बदल ठहराई है, हालांकि यह मजहूल (अज्ञात) है और बिल-

इजमाअ जब मुक़ाबला बज़अ में तस्मिया (निर्धारण) मजहूल हो तो महर-ए-मिस्ल वाजिब होता है। इसके ख़िलाफ़ अगर बीज औरत की तरफ़ से हों तो इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) के कौल पर जहालत इस वजह से नहीं है कि शौहर ने इस सूरत में औरत के बज़अ के मुक़ाबले में मनफ़अत-ए-ज़मीन (ज़मीन का लाभ) करार दी और यह मालूम है, पस वजूब-ए-महर-ए-मिस्ल से मानिअ हुई (रोक दिया)। फिर अगर शौहर ने दुख़ूल से पहले औरत को तलाक़ दी, पस अगर ज़िराअत से पहले हो तो औरत के वास्ते शौहर पर निकाह के सबब मुत'अह वाजिब होगा और शौہر का मज़ारअत के सबब औरत पर कुछ वाजिब न होगा। और अगर ज़िराअत के बाद तलाक़ दी तो औरत का शौहर पर निकाह के सबब मुत'अह वाजिब होगा और मज़ारअत के सबब ज़मीन का अज्रुल मिस्ल वाजिब होगा। और अगर शौहर ने औरत मज़कूरा से दुख़ूल के बाद उसको तलाक़ दी, पस अगर ज़िराअत से पहले तलाक़ दी तो औरत का शौहर पर निकाह के सबब महर-ए-मिस्ल वाजिब होगा और ज़िराअत के सबब शौहर पर कुछ वाजिब न होगा। और अगर ज़िराअत के बाद तलाक़ दी तो औरत का शौहर पर निकाह के सबब महर-ए-मिस्ल और मज़ारअत के सबब ज़मीन का अज्रुल मिस्ल वाजिब होगा।

### बाब-ए-ख़ुलअ में औरत और बाब-ए-निकाह में मर्द एक दूसरे की नज़ीर (समान) हैं

अगर बीज व ज़मीन शौहर की तरफ़ से हो और औरत की तरफ़ से फ़क़त कार-ए-ज़िराअत हो तो यह सूरत और जिस सूरत में कि बीज व कार-ए-ज़िराअत दोनों शौहर की तरफ़ से मज़कूर हुए हैं, दोनों का हुक्म यकसां (समान) है। और अगर ज़मीन व बीज औरत की तरफ़ से हों और शौहर की... (१) यानी एक औरत ने एक मर्द से इस शर्त पर निकाह किया कि मर्द उसकी ज़मीन में इस साल अपने बीजों से ज़िराअत करे इस शर्त पर कि जो कुछ पैदा हो वह दोनों में मसावी (बराबर) मुश्तरक (साझा) हो। (२) यानी जब बज़अ के मुक़ाबले में जो महर ठहराया गया वह मजहूल हो। (३) ज़मीन मा बीज (सहित बीज) यानी निकाह में औरत की तरफ़ से ज़मीन व बीज है और मर्द की तरफ़ से फ़क़त कार-ए-ज़िराअत है तो भी निकाह जाइज़ है और हुक्म वह है जो बीज व काम औरत की तरफ़ से होने में मज़कूर हुआ।

---

اجر المثل زمین کا عورت اس کو واپس دے گی اور بنا بر قول امام محمدؒ کے چونکہ شوہر نے قبل دخول کے اس کو طلاق دی ہے۔ اس واسطے شوہر پر متعہ واجب ہو گا اور شوہر کا اس پر زمین کا پورا اجر المثل واجب ہو گا اور باہم مقاصہ نہ ہو گا۔ یہ سب اس صورت میں ہے کہ شوہر نے عورت کے ساتھ دخول سے پہلے اس کو طلاق دے دی اور اگر بعد دخول کے اس کو طلاق دی پس اگر قبلِ زراعت کے طلاق دی تو بنا بر قول امام ابو یوسفؒ کے عورت کے واسطے شوہر پر نصف زمین کا اجر المثل واجب ہو گا اور شوہر کا بسبب مزارعت کے عورت مذکور پر کچھ واجب نہ ہو گا اور بنا بر قول امام محمدؒ کے عورت کا جو نکاح کے شوہر پر مہر مثل اور تمام زمین کے اجر المثل سے جو کم مقدار ہو واجب ہو گی اور شوہر کا عورت پر بسبب مزارعت کے کچھ واجب نہ ہو گا اور اگر بعد زراعت کے طلاق دی تو بنا بر قول امام ابو یوسفؒ کے شوہر کا عورت مذکورہ پر بسبب فساد مزارعت کے پوری زمین کا اجر المثل واجب ہوا اور عورت کا بسبب نکاح کے شوہر پر نصف زمین کا اجر المثل واجب ہوا پس بقدر نصف کے مقاصہ واقع ہو جائے گا اور باقی نصف زمین کا اجر المثل عورت شوہر کو واپس دینا واجب ہو گا اور بنا بر قول امام محمدؒ کے عورت کا بسبب نکاح کے شوہر پر مہر المثل و زمین کے اجر المثل سے جو کم مقدار ہو وہ بطور مہر واجب ہوئی اور شوہر کی عورت پر زمین کی پوری اجرت مثل واجب ہوئی پس اگر اس کا مہر مثل پوری زمین کی اجرت کے برابر یا زیادہ ہو تو وہ شوہر کو کچھ واپس نہ دے گی اور مقاصہ واقع ہو جائے گا یہ سب اس صورت میں ہے کہ بیج و کارِ زراعت عورت کی طرف سے ہو اور مرد کی طرف سے فقط زمین ہو اور اگر اس کا الٹا ہو کہ عورت کی طرف سے زمین اور مرد کی طرف سے بیج و کارِ زراعت ہو اور باقی مسئلہ بحالہا رہے تو نکاح جائز ہے اور مزارعت فاسد

ہے اور اگر اس کے بعد شوہر نے زراعت کی تو پوری پیداوار شوہر کی ہو گی اور شوہر پر بسبب مزارعت کے عورت کے واسطے زمین کا اجر المثل واجب ہو گا اور عورت کے واسطے شوہر پر بسبب نکاح کا بالا جماع مہر المثل چاہے جس قدر ہو واجب ہو گا اس واسطے کہ شوہر نے اس کے بضع کے مقابلہ میں نصف پیداوار بدل ٹھہرائی ہے حالانکہ یہ مجہول ہے اور بالاجماع جب مقابلہ بضع میں تسمیہ مجہول ہو تو مہر المثل واجب ہوتا ہے بخلاف اس کے اگر بیج عورت کی طرف سے ہوں تو امام ابو یوسفؒ کے قول پر جہالت اس وجہ سے نہیں ہے کہ شوہر نے اس صورت میں عورت کے بضع کے مقابلے میں منفعت زمین قرار دی اور یہ معلوم ہے پس وجوب مہر المثل سے مانع ہوئی پھر اگر شوہر نے قبل دخول کے عورت کو طلاق دی پس اگر قبل زراعت کے ہو تو عورت کے واسطے شوہر پر بسبب نکاح کے متعہ واجب ہو گا اور شوہر کا بسبب مزارعت کے عورت پر کچھ واجب نہ ہو گا اور اگر بعد زراعت کے طلاق دی تو عورت کا شوہر پر بسبب نکاح کے متعہ واجب ہو گا اور بسبب مزارعت کے زمین کا اجر المثل واجب ہو گا اور اگر شوہر نے عورت مذکور سے دخول کے بعد اس کو طلاق دی پس اگر قبل زراعت کے طلاق دی تو عورت کا شوہر پر بسبب نکاح کے مہر المثل واجب ہو گا اور بسبب زراعت کے شوہر پر کچھ واجب نہ ہو گا اور اگر زراعت کے بعد طلاق دی تو عورت کا شوہر پر بسبب نکاح کے مہر المثل اور بسبب مزارعت کے زمین کا اجر المثل واجب ہو گا۔

**باب خلع میں عورت اور باب نکاح میں مرد ایک دوسرے کی نظیر ہے**

اگر بیج و زمین شوہر کے طرف سے ہو اور عورت کی طرف سے فقط کارِ زراعت ہو تو یہ صورت اور جس صورت میں کہ بیج و کارِ زراعت دونوں شوہر کی طرف سے مذکور ہوئے ہیں دونوں کا حکم یکساں ہیں اور اگر زمین و بیج عورت کی طرف سے ہو اور شوہر کی (۱) یعنی ایک عورت نے ایک مرد سے اس شرط پر نکاح کیا کہ مرد اس کی زمین میں اس سال اپنے بیجوں

سے زراعت کرے اس شرط پر کہ جو کچھ پیدا ہو وہ دونوں میں مساوی مشترک ہو۔ (۲) یعنی جب بضع کے مقابلہ میں جو مہر ٹھہرا یاد وہ مجہول ہو۔ (۳) زمین مع بیج یعنی نکاح میں عورت کی طرف سے زمین و بیج ہے اور مرد کی طرف سے فقط کارِ زراعت ہے تو بھی نکاح جائز ہے اور حکم وہ ہے جو بیج و کام عورت کی طرف سے ہونے میں مذکور ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Vol. 8 (338) Kitab al-Muzara'ah (Book of Cultivation)**

...if it is only cultivation on one side, then this situation and the situation where the sale and work are from the woman's side are both identical, as stated in *Al-Muhit*. And if a man marries a woman on the condition that he gives her his date orchard for sharecropping at half-yield, then the 'Mahr al-Mithl' (fair dower) will be obligatory for the woman because the husband has designated half of the produce in exchange for her intimacy and her labor. If the woman marries him on the condition that she gives him a date orchard for sharecropping at half-yield, there is disagreement in this issue because the husband has committed to performing his work in exchange for her intimacy and half the produce. This is also mentioned in *Zahiriyyah*. Regarding the issues of 'Khula' (divorce initiated by wife), let it be clear that in the chapter of Khula, the woman is the counterpart to the man in the chapter of marriage, because in the chapter of intimacy, the one from whom compensation is expected is the woman. Just as in the chapter of marriage, the one from whom compensation is expected is the man. Therefore, if a woman designates the benefit of land in exchange for her intimacy, according to Imam Abu Yusuf, half of the 'Ajr al-Mithl' (fair rent) of the land will be due to the husband from the woman by reason of Khula. According to Imam Muhammad, whichever is less between the dower fixed by the husband for the woman and the fair rent of the land will be due to the man. And if the woman designated half the produce in exchange for intimacy, then by consensus of all, the dower that the husband had fixed for the woman at the time of marriage will be due to him. The ruling on a settlement (*Sulh*) from Muhammad Akhon is similar to the ruling mentioned in Khula, that from whom compensation is expected—meaning if a killer designated his land or the benefit of his self as compensation—then according to Imam Abu Yusuf, the legal heir of the deceased will receive half the fair rent of the land and half the fair rent of the killer's labor. According to Imam Muhammad, the heir of the deceased will receive whichever is less between the 'Diyat' (blood money) of the deceased and the fair rent of the entire land. And if the killer, in this situation (1), where the sale is from him, designates half the produce as compensation, then by consensus of all, the full 'Diyat' of the deceased will be obligatory upon the killer for the heir. Forgiveness (*Afw*) is valid in every case like marriage because forgiveness 1 is something that does not become void due to corrupt conditions, similar to Khula and marriage. This is all in the case where the settlement was made for intentional murder. If the settlement was made for accidental killing or for intentional murder where 'Qisas' (retaliation) cannot be taken, so much so that it resulted in a monetary

obligation, then both the cultivation agreement and the settlement will be corrupt (*fasid*). The right of the deceased's heir to 'Arsh-i Janabat' (compensation for injury) 2 will remain against the killer as it was before the settlement. When the settlement became corrupt, its existence and non-existence became equal. Thus, the heir's right to take 'Arsh-i Janabat' remains as we have described, as stated in *Al-Muhit*.

**Chapter Eighteen: On appointing an agent (Wakil) in cultivation and dealings.**

If a person orders someone to give my land for cultivation or my date orchard for dealing and says nothing more, it is permissible, provided that the land and date orchard are specified in the appointment of the agent. If the duration is not stated, it will be directed towards the first cultivation of that year. And if the share of the produce is not stated, then according to the 'Sahibayn' (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), it will be restricted by custom (2). The same is according to the analogy of Imam Azam (Abu Hanifa), even if it is from the landowner's side. The same ruling applies to the sharecropping of a date orchard. If the seeds are from the cultivator's side, then according to Imam Azam...

1. Forgiveness, i.e., a settlement for blood involves forgiving 'Qisas' and accepting wealth; thus forgiveness is valid in every situation, just as marriage remains valid even if the cultivation contract/dealing is corrupt.
2. That is, 'Arsh-i Janabat' is the penalty for a crime which is separately fixed in Shariah according to the nature of the wound; see *Kitab al-Jinayat*. (1) In this case. (2) That is, based on custom for half or one-third share, etc.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (338) किताब अल-मुज़ाराअत (खेती का बयान)**

तरफ़ से केवल काश्तकारी हो तो यह सूरत और जिस सूरत में कि बैय (बिक्री) व काम औरत की तरफ़ से है, दोनों एक समान हैं जैसा कि 'अल-मुहीत' में है। और अगर किसी औरत से इस शर्त पर निकाह किया कि उसे अपना खजूर का बाग़ आधी बटाई पर दे, तो औरत के लिए 'मेहर-ए-मिस्ल' (उचित मेहर) वाजिब होगा क्योंकि शौहर ने उसके बुज़अ (स्त्रीत्व/संसर्ग) और उसके काम के मुक़ाबले में आधी पैदावार तय की है। और अगर औरत से इस शर्त पर निकाह किया कि औरत उसे एक खजूर का बाग़ आधी बटाई पर दे, तो इस मसले में मतभेद है क्योंकि शौहर ने उसके बुज़अ और आधी पैदावार के मुक़ाबले में अपना काम करने का वचन दिया है। यह ज़हीरिया में भी रहा है। खुला के मसलों में यह स्पष्ट हो कि खुला के अध्याय में औरत और निकाह के अध्याय में मर्द एक-दूसरे की नज़ीर (मिसाल) हैं, क्योंकि बुज़अ के अध्याय में जिससे मुआवज़े (बदल) की उम्मीद है वो औरत है, जैसे कि निकाह के अध्याय में जिससे मुआवज़े की उम्मीद होती है वो मर्द होता है। अतः यदि औरत ने अपने बुज़अ के मुक़ाबले में ज़मीन का फ़ायदा तय किया, तो इमाम अबू यूसुफ़ के नज़दीक शौहर का औरत पर खुला के कारण ज़मीन का आधा 'अज्र-ए-मिस्ल' (उचित किराया) वाजिब होगा। और इमाम मोहम्मद के नज़दीक शौहर ने जितना मेहर औरत का तय किया है उससे और ज़मीन के 'अज्र-ए-मिस्ल' में से जो मात्रा कम हो, वह मर्द के लिए वाजिब होगी। और अगर औरत ने बुज़अ के मुक़ाबले में आधी पैदावार तय की, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से सबके नज़दीक शौहर के लिए वही मेहर वाजिब होगा जो उसने निकाह के समय औरत के लिए तय किया था। और मोहम्मद अखून से सुलह होने का हुक्म उस हुक्म की मिसाल है जो खुला में वर्णित हुआ है कि जिससे मुआवज़े की उम्मीद है —यानी क़ातिल ने अगर अपनी ज़मीन या अपने नफ़्स (स्वयं) के फ़ायदे को मुआवज़ा बनाया—तो इमाम अबू यूसुफ़ के नज़दीक वली-ए-क़तील (मृतक के उत्तराधिकारी) को ज़मीन के'अज्र-ए-मिस्ल' का आधा और क़ातिल के काम का आधा 'अज्र-ए-मिस्ल' मिलेगा। और इमाम मोहम्मद के नज़दीक मक़्तूल के वारिस को मक़्तूल की दियत (खून का मुआवज़ा) और पूरी ज़मीन के'अज्र-ए-मिस्ल' में से जो कम मात्रा हो, वह मिलेगी। और अगर क़ातिल ने इस सूरत (1) में, कि बैय उसकी तरफ़ से हो, आधी पैदावार को मुआवज़ा बनाया, तो सबके नज़दीक सर्वसम्मति से वली-ए-क़तील के लिए क़ातिल पर मक़्तूल की पूरी दियत वाजिब होगी। और अफ़्व (क्षमा) हर हाल में निकाह की तरह सही है क्योंकि अफ़्व 1 ऐसी चीज़ है जो फ़ासिद (दूषित) शर्तों से खुला और निकाह की तरह बातिल नहीं होती। यह सब उस सूरत में है जब जानबूझकर किए गए कत्ल (क़त्ल-ए-अमद) पर सुलह हुई हो।

और अगर गलती से हुए कत्ल (क़त्ल-ए-खता) या ऐसे कत्ल-ए-अमद पर सुलह हुई जिसमें किसास (बदला) नहीं लिया जा सकता, यहाँ तक कि माल वाजिब ठहरा, तो मुज़ाराअत और सुलह दोनों फ़ासिद होंगे और वली-ए-क़तील का 'अर्ज़-ए-जनाबत' (ज़ख्म का मुआवज़ा) 2 का हक़ क़ातिल की तरफ़ से वैसा ही बना रहेगा जैसा सुलह से पहले था। और जब सुलह फ़ासिद हो गई तो उसका होना न होना बराबर हो गया, अतः वली-ए-क़तील का 'अर्ज़-ए-जनाबत' लेने का हक़ वैसा ही रहा जैसा हमने बयान किया है, जैसा 'अल-मुहीत' में है।

**अध्याय अठारह: मुज़ाराअत और मामलात में वक़ील बनाने के बयान में**

अगर एक व्यक्ति को हुक्म दिया कि मेरी ज़मीन मुज़ाराअत (बटाई) पर या मेरा खजूर का बाग़ मुआमलत पर दे दे और उससे ज़्यादा कुछ न कहा, तो यह जायज़ है, बशर्ते कि ज़मीन और खजूर के बाग़ को वकालत में मुतअय्यन (निश्चित) कर दिया हो। और अगर अवधि (मुद्दत) बयान न की हो, तो वह उस साल की पहली खेती की ओर मुड़ेगा। और अगर पैदावार का हिस्सा बयान नहीं किया, तो साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मोहम्मद) के नज़दीक उसे उरफ़ (प्रथा) के साथ सीमित (2) किया जाएगा। और ऐसा ही इमाम-ए-आज़म रहमतुल्लाह अलैहि के क़यास (तर्क) पर है, चाहे वह ज़मीन के मालिक की तरफ़ से हो। और ऐसा ही हुक्म खजूर के बाग़ की बटाई में है। और अगर बीज काश्तकार (किसान) की तरफ़ से हों, तो इमाम-ए-आज़म के नज़दीक...

१ــ अफ़्व यानी खून से सुलह इसमें शामिल है कि किसास को माफ़ करके माल स्वीकार किया, तो अफ़्व हर सूरत में सही है। जैसे निकाह हर सूरत में सही रहता था चाहे मुज़ाराअत का मामला फ़ासिद हो। २ــ यानी 'अर्ज़-ए-जनाबत' जुर्म का जुर्माना है जो शरीयत में ज़ख्म की प्रकृति के अनुसार अलग-अलग तय है; देखिए 'किताब अल-जिनायात'। (१) इस सूरत में। (२) यानी रिवाज से आधी या तिहाई वगैरह की बटाई पर।

طرف سے فقط کا بر زراعت ہو تو یہ صورت اور جس صورت میں کہ بیع و کام عورت کی طرف سے ہے دونوں یکساں ہیں کذا فی المحیط اور اگر ایک عورت سے اس شرط سے نکاح کیا کہ اس کو اپنا باغ خرما آدھے کی بٹائی پر دے تو عورت کے واسطے مہر المثل واجب ہوگا کیونکہ شوہر نے اس کے بضع اور اس کے عمل کے مقابلہ میں نصف حاصلات قرار دی ہے اور اگر عورت سے اس شرط سے نکاح کیا کہ عورت اس کو ایک باغ خرما آدھے کی بٹائی پر دے تو اس مسئلہ میں اختلاف ہے اس واسطے کہ شوہر نے اس کے بضع اور آدھی حاصلات کے مقابلہ میں اپنے کام انجام دینے کا التزام کیا ہے یہ ظہیریہ میں ہی رہا ہے مسائل خلع سو واضح ہو کہ باب خلع میں عورت اور باب نکاح میں مرد ایک دوسرے کی نظیر ہے کیونکہ باب بضع میں جس سے بدل کی توقع ہے وہ عورت ہے چنانچہ باب نکاح میں جس سے بدل کی توقع ہوتی ہے وہ مرد ہوتا ہے پس اگر عورت نے اپنی منفعت بضع کے مقابلہ میں منفعت زمین قرار دی تو امام ابو یوسفؒ کے نزدیک شوہر کا عورت پر بسبب خلع کے زمین کا نصف اجر المثل واجب ہوگا اور امام محمدؒ کے نزدیک شوہر نے جس قدر مہر عورت کا قرار دیا ہے اس سے اور زمین کے اجر المثل سے جو مقدار کم ہو وہ مرد کے واسطے واجب ہوگی اور اگر عورت نے منفعت بضع کے مقابلے میں نصف پیداوار قرار دی تو بالاجماع سب کے نزدیک شوہر کے واسطے وہ مہر واجب ہوگا جو اس نے نکاح کے وقت عورت کے واسطے مقرر کیا تھا اور محمد اخون سے صلح واقع ہونے کا حکم نظیر اس حکم کا ہے جو خلع میں مذکور ہوا ہے کہ جس سے بدل کی توقع ہے یعنی قاتل نے اگر اپنی زمین یا اپنے نفس کے منفعت کو بدل قرار دیا تو امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ولی قتیل کو زمین کے اجر المثل کا نصف اور قاتل کے کام کا نصف اجر المثل ملے گا اور امام محمدؒ کے نزدیک مقتول کے

وارث کو مقتول کی دیت اور تمام زمین کے اجر المثل سے جو کم مقدار ہو وہ ملے گی اور اگر قاتل نے اندریں (۱) صورت کہ بیع اس کی طرف سے ہوں نصف پیداوار کو بدل قرار دیا تو سب کے نزدیک بالاتفاق ولی قتیل کے واسطے قاتل پر مقتول کی پوری دیت واجب ہوگی اور عفو ہر حال میں مثل نکاح کے صحیح ہے کیونکہ عفو ۱؎ ایسی چیز ہے۔ جو شروط فاسدہ سے مثل خلع و نکاح کے باطل نہیں ہوتا ہے۔ یہ سب اس صورت میں ہے کہ عمداً خون سے صلح واقع ہوئی ہو اور اگر قتل خطا سے یا ایسے قتل عمد سے جس میں قصاص نہیں لیا جا سکتا ہے صلح واقع ہوئی حتیٰ کہ مال ہے واجب ٹھہرا تو مزارعت و صلح دونوں فاسد ہوں گی اور ولی مقتول کا حق ارش ۲؎ جنابت یعنی میں قاتل کی طرف سے ویسا ہی باقی رہے گا جیسا کہ صلح سے پہلے تھا اور جب صلح فاسد ہوئی تو اس کا وجود و عدم یکساں ہوا پس ولی مقتول کا حق ارش جنابت لینے میں یوں ہی رہا جیسا ہم نے بیان کیا ہے کذا فی المحیط۔

**باب انہارہ: مزارعت اور معاملت میں وکیل کرنے کے بیان میں**

اگر ایک شخص کو حکم دیا کہ میری زمین مزارعت پر یا میرا باغ خرما معاملت پر دے دے اور اس سے زیادہ نہ کہا تو جائز ہے بشرطیکہ زمین و باغ خرما کو توکیل میں معین کر دیا ہو اور اگر مدت بیان نہ کی تو اس سال کی اول زراعت کی طرف منصرف ہوگا اور اگر پیداوار کا حصہ بیان نہ کیا تو صاحبین کے نزدیک عرف کے ساتھ مقید (۲) کیا جائے گا اور ایسا ہی امام اعظم رحمہ اللہ کے قیاس پر ہے اگر چہ مالک زمین کی طرف سے ہوں اور ایسا ہی حکم باغ خرما کی بٹائی میں ہے اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو امام اعظم رحمہ اللہ کے نزدیک

۱؎ عفو یعنی صلح خون سے متضمن ہے کہ قصاص عفو کر کے مال منظور کیا تو عفو ہر صورت میں صحیح ہے۔ جیسے نکاح ہر صورت میں صحیح رہتا تھا اگر چہ عقد مزارعت معاملہ

فاسد ہو۔ ۲ــہ یعنی ارش جنابت جرم کا جرمانہ جو شرع میں موافق نوعیت زخم کے علیحدہ علیحدہ مقرر ہے دیکھو کتاب الجنایات۔ (۱) اس صورت میں۔ (۲) یعنی رواج سے آدھے یا تہائی وغیرہ کی بٹائی پر۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | (339) | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

It is permissible to give a small or large amount, and according to the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad), it will be restricted to actual spending. If the *wakil* (agent) acts contrary to the *muwakkil's* (principal's) instructions, he shall be considered a *ghasib* (usurper). If he acts in accordance with the instructions, the right to take possession of the produce belongs to the principal, provided the seeds were from his side. The same rule applies to the sharecropping of trees (fruit-sharing). If the seeds are provided by the cultivator, the right to take possession of the produce belongs to the agent; this is mentioned in *Tatar-Khaniyah*.

If a person appoints an agent to lease out his specific land for sharecropping (*muzara'ah*), and the agent leases that land for sharecropping with a condition to sow wheat, barley, sesame, or millet, then this is permissible. Similarly, if a person is appointed as an agent to acquire land and seeds for sharecropping for the principal, and the agent takes land along with wheat seeds, barley, or other types of grains, it is valid for the principal. If someone is appointed as an agent to take land for sharecropping for the principal, and he takes it from the landowner on the condition of sowing wheat or barley or any other grain specified by the landowner, then the principal cannot sow any seed other than that specified by the landowner. If an agent is appointed to lease out land for sharecropping this year, and the agent leases it out in exchange for a fixed quantity (one *kur*) of medium-quality wheat, or pure barley, or sesame, or rice, etc., which are produced from the land, then this is valid based on *Istihsan* (juridical preference). However, according to *Qiyas* (analogy), the agent would be considered a violator because the principal only consented to sharecropping so that he could participate in the produce, whereas the agent acted contrary to this by leasing it for a fixed rent (*ijarah*). However, the Imam applied *Istihsan*, stating that the principal's objective—obtaining profit—is fulfilled by the agent's action. This is because if the agent had leased it for sharecropping and the cultivator failed to farm or a calamity struck the crop, the landowner would receive nothing. But in the agent's action, the principal's right is established as a debt against the lessee (*mustajir*), provided the lessee had the opportunity to cultivate, whether he cultivated or not, or a calamity struck. When an agent performs an act of the same genus as instructed and it is more beneficial to the principal than the specific act mentioned, the agent is not considered a violator. Since the agent is not a violator, his contract is as if the principal himself made it. The lessee shall have the choice to cultivate as he

sees fit because the restriction to wheat or barley is not useful for the landowner in this case, as there is no partnership in the produce, unlike in sharecropping where there is partnership.

If the agent leased the said land in exchange for Dirhams (currency), clothes, or other goods that are not produced by cultivation, then this lease contract is not valid for the principal because he deviated from the genus. The landowner explicitly ordered sharecropping, which implies leasing the land for something produced by the land. Since the agent leased it for something not produced by the land, he contradicted the genus of the object explicitly ordered by the principal. Thus, this agent is like an agent commissioned to sell for one thousand dirhams who sells for one hundred dinars; such a sale would not be binding upon the principal. Conversely, if he sold for two thousand dirhams, it would be binding based on *Istihsan*. This is mentioned in *Al-Mabsut*. And if he was appointed as an agent so that my...

1. The word 'beneficial' applies when the fixed rent is equal to what the principal expected from the produce; this must be taken into account.
2. It will not be valid; instead, the agent in this case becomes a usurper (*ghasib*) who is liable for any loss.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) | (339) | किताब अल-मज़ारअत (साझे की खेती की पुस्तक)**

थोड़ा या बहुत देना जायज़ है और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मोहम्मद) के अनुसार यह खर्च तक सीमित होगा। और यदि वकील (प्रतिनिधि) ने मुवक्किल (स्वामी) के आदेश का उल्लंघन किया तो वह ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाला) हो जाएगा। और यदि वह उसके आदेश के अनुसार कार्य करता है, तो पैदावार पर कब्ज़ा करने का अधिकार मुवक्किल को होगा, बशर्ते कि बीज उसी की ओर से हों। यही नियम पेड़ों की बटाई (हिस्सेदारी) में भी है। और यदि बीज किसान की ओर से हों, तो पैदावार पर कब्ज़ा करने का अधिकार वकील को होगा। यह तातारख़ानिया में वर्णित है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपनी भूमि को निश्चित मज़ारअत (साझे की खेती) पर देने के लिए किसी को वकील नियुक्त किया और वकील ने वह भूमि किसी व्यक्ति को मज़ारअत पर दे दी और उससे शर्त लगा ली कि उसमें गेहूँ बोए या जौ बोए या तिल बोए या ज्वार बोए, तो यह जायज़ है। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति को वकील नियुक्त किया गया कि मेरे लिए यह भूमि और उसके साथ बीज मज़ारअत पर ले, फिर वकील ने भूमि को गेहूँ के बीज या जौ आदि अनाज की किस्मों में से किसी के साथ लिया, तो यह मुवक्किल के हक में जायज़ है। और यदि किसी को वकील नियुक्त किया गया कि मेरे लिए यह भूमि मज़ारअत पर ले, फिर उसने ज़मीन के मालिक से अपने मुवक्किल के लिए इस शर्त पर ली कि उसमें गेहूँ की खेती करे या जौ की खेती करे या इसके अलावा किसी और प्रकार के अनाज की शर्त की। तो मुवक्किल उस भूमि में उस बीज के अलावा जिसकी भूमि के स्वामी ने शर्त की है, कोई बीज नहीं बो सकता। और यदि इस कार्य के लिए वकील नियुक्त किया गया कि मेरी भूमि इस वर्ष मज़ारअत पर दे दे, फिर वकील ने गेहूँ या जौ बोने के बदले में एक 'कुर' (मात्रा की इकाई) मध्यम गेहूँ या एक 'कुर' शुद्ध जौ या तिल, चावल आदि जो भूमि में पैदा होते हैं, के बदले उक्त भूमि दे दी, तो यह इस्तेहसानन (न्यायसंगत प्राथमिकता के आधार पर) जायज़ है। और क़ियासन (तर्क के आधार पर) वकील उल्लंघनकारी ही माना जाएगा, क्योंकि मुवक्किल तो इसी बात पर सहमत था कि मेरी भूमि मज़ारअत पर दे दी जाए ताकि मुवक्किल उसकी पैदावार में भागीदार हो, जबकि वकील ने इसके विपरीत कार्य किया कि उसने इसे निश्चित किराए (इजारा) पर दे दिया। परंतु इमाम ने इस्तेहसान किया और कहा कि वकील के कार्य से मुवक्किल का उद्देश्य लाभ के रूप में प्राप्त हो गया, क्योंकि यदि वकील मज़ारअत पर देता और किसान खेती न करता या फ़सल पर कोई आपदा आ जाती, तो ज़मीन के मालिक को कुछ न मिलता। जबकि वकील ने जो कार्य किया है उसमें मुवक्किल का

अधिकार किरायेदार (मुस्ताजिर) के ज़िम्मे ऋण के रूप में सिद्ध हो गया, बशर्ते किरायेदार को खेती करने का अवसर मिला हो, चाहे वह खेती करे या न करे या फ़सल पर आपदा आ जाए। और जब वकील ऐसा कार्य करे जो उसी श्रेणी का हो जिसका मुवक्किल ने आदेश दिया है और जो मुवक्किल द्वारा बताए गए विशेष कार्य की तुलना में मुवक्किल के लिए अधिक लाभकारी हो, तो वकील उल्लंघनकारी नहीं कहलाएगा। और जब वकील उल्लंघनकारी नहीं ठहरा, तो उसका अनुबंध (अक़्द) ऐसा ही है जैसे मुवक्किल ने स्वयं किया हो। किरायेदार को अधिकार होगा कि वह अपनी राय के अनुसार खेती करे क्योंकि गेहूँ या जौ आदि का प्रतिबंध इस स्थिति में ज़मीन के मालिक के लिए लाभकारी नहीं है, क्योंकि पैदावार में उसकी हिस्सेदारी नहीं है, मज़ारअत के विपरीत जिसमें हिस्सेदारी होती है।

यदि वकील ने उक्त भूमि को दिरहमों (मुद्रा) या कपड़ों आदि ऐसे सामान के बदले किराए पर दिया हो जिनकी खेती नहीं होती, तो यह किराया अनुबंध मुवक्किल के लिए जायज़ नहीं होगा क्योंकि उसने श्रेणी (जिंस) में अंतर कर दिया। भूमि स्वामी ने स्पष्ट आदेश दिया था कि मज़ारअत पर दे, जिसका अर्थ है कि भूमि को ऐसी वस्तु के बदले किराए पर देना जो भूमि में पैदा होती है। अतः जब वकील ने ऐसी वस्तु के बदले किराए पर दी जो भूमि में पैदा नहीं होती, तो उसने उस वस्तु की श्रेणी का उल्लंघन किया जिसका मुवक्किल ने स्पष्ट आदेश दिया था। अतः यह वकील उस वकील के समान है जिसे एक हज़ार दिरहम के बदले बेचने के लिए नियुक्त किया गया था और उसने सौ दीनार के बदले बेच दिया, तो यह बिक्री मुवक्किल के हक में लागू नहीं होगी। इसके विपरीत यदि उसने दो हज़ार दिरहम के बदले बेची, तो इस्तेहसानन लागू होगी। यह 'मबसूत' में है। और यदि इस कार्य के लिए वकील नियुक्त किया कि मेरे...

1. 'लाभकारी' शब्द का अर्थ यह है कि जो किराया तय किया गया हो, मुवक्किल को पैदावार से उतनी ही मिलने की उम्मीद हो, इस बात का ध्यान रखना चाहिए।
2. जायज़ नहीं होगा, बल्कि ऐसी स्थिति में वकील ग़ासिब बन गया जो नुकसान के लिए ज़िम्मेदार है।

---

بقلیل وکثیر دینا جائز ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک مقید بصرف ہوگا اور اگر وکیل نے موکل کے حکم سے مخالفت کی تو غاصب ہو جائے گا اور اگر اس کے حکم کے موافق کاربند ہو تو پیداوار پر قبضہ کرنے کا حق موکل کو حاصل ہوگا بشرطیکہ بیج اسی کی طرف سے ہوں اور یہی حکم درختوں کی بٹائی میں ہے اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو پیداوار پر قبضہ کرنے کا حق وکیل کو حاصل ہوگا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر کسی شخص نے اپنی زمین معین مزارعت پر دینے کے واسطے وکیل کیا اور وکیل نے وہ زمین کسی شخص کو مزارعت پر دی اور اس سے شرط کر لی کہ اس میں گیہوں بوئے یا جو بوئے یا تل بوئے یا جوار بوئے تو یہ جائز ہے۔ اس طرح اگر ایک شخص کو وکیل کیا کہ میرے واسطے یہ زمین اور اس کے ساتھ بیج مزارعت پر لے پس وکیل نے زمین کو گیہوں کے بیج یا جو وغیرہ اقسام حبوب میں سے کسی کے ساتھ لیا تو موکل کے حق میں جائز ہے اور اگر کسی کو وکیل کیا کہ میرے واسطے یہ زمین مزارعت پر لے پس اس نے مالک زمین سے اپنے موکل کے واسطے اس شرط سے لی کہ اس میں گیہوں کی زراعت کرے یا جو کی زراعت کرے یا اس کے سوا اور کسی قسم کے اناج کی شرط کی۔ تو موکل اس زمین میں سوائے اس بیج کے جس کی مالک زمین نے شرط کی ہے کوئی بیج نہیں بو سکتا ہے اور اگر اس واسطے وکیل کیا کہ میری زمین اس سال مزارعت پر دے دے پس وکیل نے گیہوں یا جو بونے کے واسطے بعوض ایک کر درمیانی گیہوں یا ایک کر کھرے جو یا تل دیا چاول وغیرہ کے جو زمین میں پیدا ہوتے ہیں زمین مذکورہ دے دی تو یہ استحساناً جائز ہے اور قیاساً وکیل مخالف ہی اس واسطے کہ موکل تو اسی امر پر راضی ہوا تھا کہ میری زمین مزارعت پر دے دے تاکہ موکل اس کی پیداوار میں شریک ہو

اور وکیل نے اس کے برخلاف فعل کیا کہ اس نے اجرت معینہ پر اجارہ پر دے دی لیکن امامؒ نے استحسان کیا اور فرمایا کہ وکیل کے فعل سے موکل کا مقصود بطور نفع کے حاصل ہوا کیونکہ اگر وکیل مزارعت پر دیتا پھر کاشتکار اس میں زراعت نہ کرتا یا کھیتی پر کوئی آفت آ جاتی تو مالک زمین کو کچھ نہ ملتا اور جو فعل وکیل نے کیا ہے اس میں موکل کا حق بطور دین کے مستاجر کے ذمہ ثابت ہو گیا جب کہ مستاجر کو زراعت کرنے کا قابو ملا اگرچہ مستاجر زراعت نہ کرے یا کھیتی پر آفت آجائے اور جب وکیل ایسا فعل کرے جو اسی جنس سے ہو جس کا موکل نے حکم کیا ہے اور جس خاص فعل کا موکل نے نام لیا ہے اس کی بہ نسبت موکل کے حق میں زیادہ نافع ہو تو وکیل مخالف نہ ہوگا اور جب وکیل مخالف نہ ٹھہرا تو اس کا عقد کرنا ایسا ہے گویا موکل نے خود ہی عقد کیا ہے مستاجر کو اختیار ہو گا کہ جو اس کی رائے میں آئے زراعت کرے کیونکہ گیہوں یا جو وغیرہ کی تقید اس صورت میں مالک زمین کے حق میں کچھ مفید نہیں ہے کیونکہ پیداوار میں اس کی شرکت نہیں ہے بخلاف مزارعت پر دینے کے کہ اس میں شرکت ہوتی ہے۔

اگر وکیل نے زمین مذکورہ کو بعوض درہموں و کپڑوں وغیرہ مالوں کے ساتھ جن کی زراعت نہیں ہوتی ہے اجارہ پر دیا ہو تو یہ عقد اجارہ موکل کے واسطے جائز ۲ نہ ہوگا کیونکہ اس نے جنس میں اختلاف کیا کہ رب الارض نے صریح حکم دیا کہ مزارعت پر دے اور اس کے یہ معنی ہیں کہ زمین کا ایسی چیز کے عوض اجارہ دینا جو زمین میں پیدا ہوتی ہے۔ پس جب وکیل نے ایسی چیز کے عوض اجارہ پر دی جو زمین میں نہیں پیدا ہوتی ہے تو اس نے اس چیز کی جنس میں خلاف کیا جس کا موکل نے صریح حکم دیا تھا پس یہ وکیل بمنزلہ ایسے وکیل کے ہے جو ہزار درہم کے عوض فروخت کرنے کا وکیل کیا گیا اور اس کو سو دینار کے عوض فروخت کی کہ یہ بیع موکل کے حق میں نافذ نہ ہو گی بخلاف اس کے اگر اس نے دو ہزار درہم کے عوض فروخت کی تو استحساناً نافذ ہے یہ مبسوط میں ہے اور اگر اس واسطے وکیل کیا کہ میرے۔

۱ قولہ نافع تو یہ اس وقت ہے کہ جو اجرت ٹھہرائی اسی قدر موکل کو پیداوار میں سے ملنے کی امید ہو پس یہ لحاظ رکھنا چاہیے۔ ۲ جائز نہ ہو گا بلکہ وکیل اس صورت میں غاصب ہو گیا جو نقصان کا ضامن ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri... Volume (8) Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping), Page 440**

...to take this land on sharecropping and said nothing more. Then the agent (Wakil) took it on lease in exchange for one *kurr* (a specific measure) of wheat or other grain; this is not permissible. However, if the seeds are provided by the landowner and the agent took the said land on the condition that all produce would belong to the landowner, and it would be mandatory for the landowner to give the farmer one *kurr* of wheat, or if it was stipulated from what grows in the land, then it is permissible. And if the agent stipulated dirhams or cloth as the responsibility of the landowner, it is not permissible, but if the principal (Muwalkkil - who appointed the agent) agrees to it, then it can be; this is in *Tatar-khaniya*.

"Law wakkalahu bi-an ya’khudhaha lil-muzara’ati bith-thuluth" – If he appointed the agent to take this land for him on a one-third sharecropping basis, but the agent took it on the condition that the farmer cultivates it and one-third of the produce goes to the farmer and two-thirds to the landowner, then this contract will not be valid in favor of the farmer. This is because what the farmer said implies that one-third should be for the landowner, as we have explained that the landowner is entitled to the produce in exchange for the use of his land. Therefore, the word on which the preposition is attached signifies his share of the produce, whereas the agent did the opposite. But if the principal instructed him thus: "ya’khudhul ard bith-thuluth" – that he should take the land and a third, and the rest of the matter remains as is, then this contract would be valid in favor of the farmer because the subject of the contract here is the farmer's labor, and he is entitled to the produce in return for his work. When the agent stipulated one-third for him, he became obedient to his order; this is in *Mabsut*.

And if a person appointed an agent to lease out his land for this year in exchange for one *kurr* of average quality wheat, and the agent gave it on a half-share basis or on the condition that the farmer cultivates wheat in it, and the farmer cultivated it, then the agent would be in violation; this is in *Fatawa Qazi Khan*. And if he appointed an agent to give his land on sharecropping with a one-third share, and the agent gave it on the condition that one-third goes to the landowner, then it is permissible. And if the landowner said, "My intention was that the one-third should be for the farmer," his statement will not be accepted. However, if the seeds were from his side, then in such a case his word would be accepted; this is in *Mabsut*.

## Chapter 19: Regarding the conditions under which liability (Daman) becomes mandatory for the farmer

If the farmer, despite having the capability, abandoned the irrigation of the land until the crops dried up, then he will be liable for the crops that were sown. For the estimation of the price, the time when the crops were in such a state that not watering them was harmful is considered. Thus, if in such a state the crops had no value, then the price of the sown land (1) and the un-sown land shall be appraised. Whatever the difference is between the two estimates, he will be liable for half of it; this is in *Khazanat-ul-Muftin*. If the farmer delayed in giving water, and if this delay was customary as people usually do, then he will not be liable; otherwise, he will be liable; this is in *Wajeez Kar Dari*. If the farmer abandoned the protection of the crops until some calamity befell them, such as animals grazing on them etc., then he will be liable. And if he did not drive away locusts until the locusts devoured the crops, it will be seen: if the locusts were so numerous that driving them away and repelling them was not possible, then no liability will be mandatory upon him. The summary is that in any case where the farmer, despite being capable, abandoned the protection...

1. i.e., in favor of the principal. 2. This applies when the sharecropping is on a half-share basis. (1) Sown.

**फ़तावा आलमगिरी..... जिल्द (8) किताब अल-मुज़ारआ (पेज 440)**

...इस ज़मीन को मुज़ारअत (साझा खेती) पर लेने के लिए और इससे ज़्यादा कुछ नहीं कहा, फिर वकील (प्रतिनिधि) ने एक कुर्र (एक माप) गेहूँ आदि अनाज के बदले किराये पर लिया तो यह जायज़ नहीं है। लेकिन अगर बीज ज़मीन के मालिक की तरफ से हों और वकील ने उक्त ज़मीन इस शर्त पर ली कि पूरी उपज ज़मीन के मालिक की होगी और ज़मीन के मालिक पर वाजिब होगा कि वह काश्तकार (किसान) को एक कुर्र गेहूँ दे या जो ज़मीन में पैदा होता है उसकी शर्त की तो जायज़ है। और अगर वकील ने ज़मीन के मालिक के ज़िम्मे दिरहम या कपड़े की शर्त रखी तो जायज़ नहीं है, लेकिन अगर मुवक्किल (वह व्यक्ति जिसने वकील बनाया) इससे राज़ी हो जाए तो हो सकता है, यह तातारखानिया में है।

"लो वकलाहु बिन याखुज़हा लिमुज़ारअति बिल्थुल्थ" - अगर वकील को इसलिए वकील बनाया कि यह ज़मीन मेरे लिए एक तिहाई (1/3) बटाई पर ले ले, फिर वकील ने इसे इस शर्त पर लिया कि काश्तकार इसमें खेती करे और एक तिहाई उपज काश्तकार की हो और दो तिहाई ज़मीन के मालिक की हो, तो यह अनुबंध काश्तकार के हक में जायज़ नहीं होगा। क्योंकि जो बात काश्तकार ने कही है उसका मतलब यह है कि ज़मीन के मालिक के लिए एक तिहाई हो, क्योंकि हमने स्पष्ट कर दिया है कि ज़मीन का मालिक ही अपनी ज़मीन के लाभ के बदले उपज का हकदार है। अतः जिस शब्द पर 'हर्फ़ए-जार' (पूर्वसर्ग/Preposition) लगा है, वह उपज में से उसका हिस्सा होगा, जबकि वकील ने इसके विपरीत कार्य किया। और अगर मुवक्किल ने उसे इस प्रकार आदेश दिया कि "याखुज़ुल अर्ज़ बिल्थुल्थ" कि ज़मीन और एक तिहाई ले और बाकी मामला वैसा ही रहे, तो यह अनुबंध काश्तकार के हक में जायज़ होगा, क्योंकि इसमें अनुबंध का विषय काश्तकार का काम है और वह अपने काम के बदले उपज का हकदार है। जब वकील ने उसके लिए एक तिहाई की शर्त रखी, तो वह उसके आदेश का आज्ञाकारी हो गया, यह 'मबसूत' में है।

और अगर किसी व्यक्ति को वकील बनाया कि मेरी ज़मीन इस साल एक कुर्र औसत दर्जे के गेहूँ के बदले किराये पर दे दे, और वकील ने उसे आधी बटाई पर दे दिया या इस शर्त पर कि काश्तकार इसमें गेहूँ की खेती करे और काश्तकार ने खेती की, तो वकील आदेश का उल्लंघन करने वाला माना जाएगा, यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। और अगर इसलिए वकील बनाया कि मेरी ज़मीन एक तिहाई बटाई के साथ मुज़ारअत पर दे दे और वकील ने इस शर्त पर दे दी कि एक तिहाई ज़मीन के मालिक

को हो, तो यह जायज़ है। और अगर ज़मीन के मालिक ने कहा कि मेरा मतलब यह था कि काश्तकार के लिए एक तिहाई हो, तो उसकी बात नहीं मानी जाएगी, लेकिन अगर बीज उसी की तरफ से हों, तो ऐसी स्थिति में उसकी बात मान ली जाएगी, यह 'मबसूत' में है।

**अध्याय 19: काश्तकार पर हर्जाना (ज़मान) वाजिब होने के वर्णन में**

अगर काश्तकार ने सामर्थ्य होने के बावजूद ज़मीन की सिंचाई छोड़ दी यहाँ तक कि फ़सल सूख गई, तो वह उस बोई हुई फ़सल का ज़िम्मेदार होगा। और मूल्य के आकलन में वह समय मान्य है जब फ़सल ऐसी स्थिति में थी कि उसे पानी न देना हानिकारक था। अतः यदि ऐसी स्थिति में फ़सल का कोई मूल्य न हो, तो बोई हुई ज़मीन (1) और बिना बोई हुई ज़मीन की कीमत आंकी जाएगी। फिर दोनों आकलनों में जो अंतर होगा, उसके आधे का वह ज़िम्मेदार होगा, यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है। काश्तकार ने पानी देने में देरी की, यदि यह देरी सामान्य हो जैसे लोग करते हैं, तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा, अन्यथा ज़िम्मेदार होगा, यह 'वजीज़ कर दरी' में है। अगर काश्तकार ने फ़सल की सुरक्षा छोड़ दी यहाँ तक कि उसे कोई आपदा पहुँची जैसे जानवरों का चर जाना आदि, तो वह ज़िम्मेदार होगा। और अगर उसने टिड्डियों को नहीं भगाया यहाँ तक कि टिड्डियों ने फ़सल चट कर ली, तो देखा जाएगा कि यदि टिड्डियाँ इतनी अधिक थीं कि उन्हें भगाना और रोकना संभव न था, तो उस पर हर्जाना वाजिब नहीं होगा। सारांश यह है कि जिस स्थिति में काश्तकार ने सामर्थ्य के बावजूद सुरक्षा...

1. अर्थात् मुवक्किल के पक्ष में। 2. यह तब है जब मुज़ारअत आधी बटाई पर हो। (1) बोई हुई।

فتاوی عالمگیری..... جلد (۸) کتاب المزارعہ ۴۴۰ واسطے یہ زمین مزارعت پر لے اور اس سے زیادہ کچھ نہ کہا پس وکیل نے ایک کر گیہوں وغیرہ اناج کے عوض اجارہ پر لیے تو جائز نہیں ہے لیکن اگر بیچ مالک زمین کی طرف سے ہوں اور وکیل نے زمین مذکور اس شرط سے لی کہ تمام پیداوار مالک زمین کی ہو گی اور مالک زمین پر واجب ہوگا کہ کاشتکار کو ایک کر گیہوں دے یا جو زمین میں پیدا ہوتا ہے شرط کیا تو جائز ہے اور اگر وکیل نے مالک زمین کے ذمہ درہم یا کپڑے شرط کیے تو جائز نہیں ہے لیکن اگر موکل اس سے راضی ہو جائے تو ہو سکتا ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ لو دکلہ بان یاخذ ہا لمزارعة بالثلث ۔ اگر وکیل کو اس واسطے وکیل کیا کہ یہ زمین میرے واسطے تہائی کے ساتھ بٹائی دینے پر لے پس وکیل نے اس کو اس شرط سے لیا کہ کاشتکار اس میں زراعت کرے اور تہائی پیداوار کاشتکار کی اور دو تہائی مالک زمین کی ہو تو یہ عقد کاشتکار کے حق میں جائز نہ ہو گا اس واسطے کہ جو کلام کاشتکار نے کہا ہے اس کا موقع یہ ہے کہ مالک زمین کے واسطے تہائی ہو کیونکہ ہم نے بیان کر دیا کہ مالک زمین ہی اپنی زمین کی منفعت کے عوض پیداوار کا مستحق ہے پس جس لفظ پر حرف جار داخل ہے وہ پیداوار میں سے اس کا حصہ ہو گا حالانکہ وکیل نے اس کے ضد و برخلاف کیا اور اگر موکل نے اس کو یوں حکم کیا کہ یاخذ الارض بالثلث کہ زمین اور تہائی لے اور باقی مسئلہ بحالہ ہو تو یہ عقد کاشتکار کے حق میں جائز ہوگا کیونکہ اس میں معقود علیہ کاشتکار کا عمل ہے اور وہ بمقابلہ اپنے کام کے پیداوار کا مستحق ہے جب وکیل نے اس کے واسطے تہائی کی شرط کی تو اس کے حکم کا فرمانبردار ہو گیا یہ مبسوط میں ہے اور اگر ایک شخص کو وکیل کیا کہ میری زمین اس سال ایک کر درمیانی گیہوں کے عوض اجارہ پر دے دے اور وکیل نے اس کو آدھے کی بٹائی پر دے دیا یا بدیں شرط کہ کاشتکار اس میں گیہوں کی زراعت کرے اور کاشتکار نے زراعت کی تو وکیل

مخالف ہو گا یہ فتاوی قاضی خان میں ہے اور اگر اس واسطے وکیل کیا کہ میری زمین تہائی کی بٹائی کے ساتھ مزارعت پر دے دے اور وکیل نے اس شرط سے دے دی کہ تہائی مالک زمین کو ہو تو یہ جائز ہے اور اگر مالک زمین نے کہا کہ میری مراد یہ تھی کہ کاشتکار کے واسطے تہائی ہو تو اس کی تصدیق نہ کی جائے گی لیکن اگر حج اسی کی طرف سے ہوں تو ایسی صورت میں قول اس کا قبول ہو گا یہ مبسوط میں ہے۔

باب انیس: کاشتکار پر ضمان واجب ہونے کے بیان میں اگر کاشتکار نے با وجود قدرت پانے کے زمین کا سینچنا ترک کیا یہاں تک کہ کھیتی خشک ہو گئی تو اسی ہوئی کھیتی کا ضامن ہو گا اور قیمت اندازہ کرنے میں وہ وقت معتبر ہے کہ جب کھیتی ایسی حالت میں تھی کہ اس کو پانی نہ دینا مضر تھا پس اگر ایسی حالت میں کھیتی کی کچھ قیمت نہ ہو تو زمین مزروعہ (۱) اور غیر مزروعہ کی قیمت لگائی جائے پس جس قدر دونوں اندازوں میں فرق ہو اس کے نصف کا ضامن ہو گا یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ کاشتکار نے پانی دینے میں تاخیر کی پس اگر یہ تاخیر معتاد ہو کہ ایسا لوگ کرتے ہوں تو ضامن نہ ہو گا ورنہ ضامن ہو گا یہ وجیز کر دری میں ہے۔ اگر کاشتکار نے کھیتی کی حفاظت چھوڑ دی حتی کہ اس کو کوئی آفت جیسے جانوروں کا چر جانا وغیرہ پہنچی تو ضامن ہوگا اور اگر اس نے ٹڈیوں کو نہ ہانکا حتی کہ ٹڈیوں نے کھیتی چاٹ لی تو دیکھا جائے گا کہ اگر ٹڈیاں اس کثرت سے تھیں کہ ان کا ہانکنا اور دفع کرنا اس سے ممکن نہ تھا تو اس پر ضمان واجب نہ ہوگی اور حاصل یہ ہے کہ جس صورت میں کاشتکار نے حفاظت با وجود قادر

۱؎ یعنی موکل کے حق میں۔ ۲؎ یہ اس وقت ہے کہ مزارعت آدھے کی بٹائی پر ہو۔ (۱) بوئی ہوئی۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (341) Book of Sharecropping (Kitab al-Muzara'ah)**

...left it, liability shall be obligatory upon him, otherwise not. This applies when the crop has not yet ripened; if the crop has ripened, the farmer (kashtkar) shall not be liable for ceasing protection, as stated in *al-Dhakirah*. The translator notes: in our lands, it is appropriate that liability be established; there is no distinction in this regarding whether the crop is 'Bhala' or 'Dooka' as per common knowledge. If the 'Zari' (thresher) left the protection of the granary at night, he shall be liable, provided it is customary for him to provide protection at night; this is in *al-Qima*. It is stated in *Fatawa Abu al-Layth* that if the farmer harvested the crop and gathered it in a granary and threshed it without the permission of the person who gave the land for sharecropping (the landowner), and this task was not stipulated as his responsibility, then the landowner's portion shall be guaranteed by the said farmer. If the landowner had stipulated this task as his responsibility and the farmer was then negligent in this act until the crop was destroyed, Faqih Abu Bakr Balkhi stated that he shall be liable.

Faqih Abu al-Layth mentioned that if the said farmer caused such a delay that people like him do not typically cause, he shall be liable; however, if the delay was such as is common among people, he shall not be liable. This is based on the preferred view of Balkhi that it is valid to stipulate such tasks as the farmer's responsibility, as in *al-Muhit*. Similarly, when cotton blossoms, the same ruling applies to its picking; this is in *Khazanat al-Muftin*. If the farmer did not place bundles of wheat in the open field even though this act was stipulated in the contract, he shall be liable; this is in *Wajiz Kardari*. It is narrated in *Majmu' al-Nawazil* from Imam Abu Yusuf that if a crop is shared between two men and one refuses to water it, he shall be compelled to do so. If the crop is ruined before the matter is referred to the authorities, no liability shall be due. But if the matter is referred to the judge (Qadi) and after the Qadi orders irrigation he still refuses and the crop is ruined, he shall be liable, as per the summary in *al-Dhakirah*. It is in *Fatawa Nasafi* that if the landowner's ox is with the farmer and the farmer sends it to the pasture with a shepherd, the farmer shall not be liable, nor shall the shepherd. The same rule applies to an ox taken on loan (musta'ar) or rented. The Shaykh (1) stated that reports from the scholars on this issue are conflicting, but the Fatwa is based on the aforementioned narration because the depository (mustawda') protects the entrusted property as he does his own, and he considers his animal safe in the pasture. Thus, the ruling for an entrusted ox is similar. If he leaves the ox grazing unattended, scholars differ on this;

the author states the Fatwa is that he shall not be liable. This is in *al-Khulasah*. Imam Muhammad stated in *al-Asl* that if a person gives his land to another on the condition that he cultivates it for the year and pays as compensation a 'kur' (measure) of wheat already in the farmer's possession, it is permissible. Then, if the farmer cultivates for the entire year and after the year passes and the crop is ready for harvest, the farmer destroys what was given in exchange for the rented land (ijara), he shall be liable for the fair market rent (ajr-ul-misl) of the land, regardless of its amount. He shall not be liable for wheat similar to the original wheat because when the lease (ijara) became irregular (fasid), the farmer was obligated to return the benefit of the land which he had fully utilized. Since returning the exact benefit is impossible, he is obligated to return the value of the benefit, i.e., the fair market rent; this is in *al-Muhit*.

If a person destroys someone's 'sharb' (share of water), i.e., irrigates his land with someone else's water, some scholars stated that he is liable...

---

- The translator says: In our regions, whether the crop is ripe or not, there should be liability in every case as it has become the prevailing custom.
- 'Zari' refers to the one who threshes to extract grain; here it means the granary/ threshing floor.
- 'Sharb' is the portion of water from the canal designated for his land. To destroy another's 'sharb' refers to the right upon which grapevines grow.
- (1) Meaning the author.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (341) किताब अल-मुज़ाराअह**

...छोड़ दी है तो उस पर हर्जाना (ज़मानत) अनिवार्य होगा, अन्यथा नहीं। यह तब है जब खेती पक न गई हो, और यदि पक गई हो तो किसान पर रखवाली छोड़ने से हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा जैसा कि 'अज़-ज़ख़ीरा' में है। मुतर्जिम (अनुवादक) ने कहा कि हमारे देशों में उचित यह है कि इसे अनिवार्य समझा जाए, इसमें कोई अंतर नहीं है चाहे फसल 'भला' हो या 'दूका' जैसा कि प्रसिद्ध है। यदि 'ज़ारी' (दौनी करने वाले) ने रात में खलिहान की रखवाली छोड़ दी तो वह ज़िम्मेदार होगा, बशर्ते कि रात में उसकी सुरक्षा करना प्रचलित हो, यह 'क़ीमा' में है। 'फ़तावा अबुल लैस' में है कि यदि किसान ने भूमि स्वामी की अनुमति के बिना फसल काट ली और खलिहान बना दिया और उसे रौंदा, जबकि स्वामी ने यह शर्त उसके ज़िम्मे नहीं की थी, तो स्वामी का हिस्सा किसान के ज़िम्मे सुरक्षित होगा। और यदि स्वामी ने यह शर्त उसके ज़िम्मे की थी और फिर किसान ने इस कार्य में लापरवाही की यहाँ तक कि खेती नष्ट हो गई, तो फ़क़ीह अबू बक्र बल्खी ने फ़रमाया कि वह ज़िम्मेदार होगा।

फ़क़ीह अबुल लैस ने ज़िक्र किया कि यदि किसान ने इतनी देरी की कि उसके जैसे लोग वैसी देरी नहीं करते, तो वह ज़िम्मेदार होगा, और यदि ऐसी देरी की जैसी लोग सामान्यतः करते हैं तो वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। यह बल्खी के चुनिंदा मत पर आधारित है कि इन कामों की शर्त किसान पर लगाना सही है, जैसा कि 'अल-मुहीत' में है। इसी तरह कपास की रुई जब खिल जाए तो उसके चुनने में भी यही नियम है, यह 'खज़ानतुल मुफ़्तीन' में है। यदि किसान ने गेहूँ के गट्ठर खुले मैदान में नहीं रखे जबकि अनुबंध (अक़्द) में यह उस पर शर्त थी, तो वह ज़िम्मेदार होगा, यह 'वजीज़ करदरी' में है। 'मजमूअ-ए-नवाज़िल' में इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत है कि एक खेत दो व्यक्तियों के बीच साझा है, उनमें से एक ने उसे पानी देने से इनकार किया तो उसे मजबूर किया जाएगा। और यदि शासक के पास मामला ले जाने से पहले खेती खराब हो गई तो हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। और यदि क़ाज़ी के पास मामला ले जाकर क़ाज़ी द्वारा सिंचाई का आदेश देने के बाद उसने इनकार किया और खेती खराब हो गई, तो वह ज़िम्मेदार होगा, जैसा कि 'अज़-ज़ख़ीरा' के सारांश में है। 'फ़तावा नसफ़ी' में है कि भूमि स्वामी का नील (एक प्रकार का बैल/पशु) किसान के पास है, किसान ने उसे चरवाहे के साथ चरागाह भेज दिया तो किसान ज़िम्मेदार नहीं होगा और न ही चरवाहा ज़िम्मेदार होगा। और जो बैल उधार (मुस्तआर) लिया गया हो या किराये पर लिया गया हो, उसका भी यही नियम है। शेख (लेखक) ने फ़रमाया कि इस मसले में विद्वानों से अलग-अलग रिवायतें आई हैं और फ़तवा उसी उल्लेखित रिवायत पर है क्योंकि अमानत रखने वाला (मुस्तौद'अ) अमानत की वैसे ही रक्षा करता है जैसे अपने

माल की, और वह अपने पशु को चरागाह में सुरक्षित समझता है। अतः अमानत के पशु के साथ यही व्यवहार है। और यदि उसने पशु को चरते हुए छोड़ दिया, तो विद्वानों ने इसमें मतभेद किया है, और लेखक ने फ़रमाया कि फ़तवा इस पर है कि वह ज़िम्मेदार नहीं होगा। यह 'खुलासा' में है। इमाम मोहम्मद ने 'अस्ल' में फ़रमाया कि यदि एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन इस शर्त पर दी कि वह इस वर्ष इसमें खेती करे और बदले में एक 'कुर' (मात्रा) गेहूँ जो किसान के पास मौजूद है, तय किया तो यह जायज़ है। फिर यदि पूरे साल किसान ने खेती की, वर्ष बीत जाने पर जब फसल कटने लायक हो गई, तो किसान ने जिसके बदले ज़मीन किराये (इज़ारा) पर ली थी उसे नष्ट कर दिया, तो किसान पर ज़मीन का उचित किराया (अजर-उल-मिस्ल) अनिवार्य होगा, चाहे वह कितना भी हो। और उस अनाज के बदले अनाज उस पर अनिवार्य नहीं होगा क्योंकि जब इज़ारा (अनुबंध) दोषपूर्ण (फासिद) हो गया, तो किसान पर ज़मीन का वह लाभ जो उसने पूर्णतः प्राप्त किया है, लौटाना अनिवार्य हुआ। मगर चूँकि लाभ को वैसे का वैसा लौटाना असंभव है, इसलिए लाभ की कीमत यानी 'अजर-उल-मिस्ल' लौटाना अनिवार्य है, यह 'मुहीत' में है।

एक व्यक्ति ने किसी दूसरे के'शर्ब' (सिंचाई का हिस्सा) को नष्ट कर दिया, यानी किसी और के पानी से अपनी ज़मीन सींची, तो कुछ विद्वानों ने फ़रमाया कि वह ज़िम्मेदार है...

---

1. मुतर्जिम कहता है कि हमारे प्रदेशों में चाहे खेती पकी हो या नहीं, हर स्थिति में ज़िम्मेदारी होनी चाहिए क्योंकि यही प्रथा प्रचलित हो गई है।
2. 'ज़ारी' यानी रौंदकर अनाज निकालने वाला, यहाँ खलिहान मुराद है।
3. 'शर्ब' पानी का वह हिस्सा है जो नहर से उसकी ज़मीन के लिए निर्धारित है। दूसरे व्यक्ति का पानी नष्ट करने का अर्थ है वह अधिकार जिस पर अंगूर की बेलें बढ़ती हैं। (1) अर्थात लेखक (मुअल्लिफ़)।

ہونے کے چھوڑ دی ہے اس پر ضمان واجب ہوگی ورنہ واجب نہ ہوگی۔ یہ اس وقت ہے کہ کھیتی پختہ نہ ہوئی ہو اور اگر پختہ ہوگئی ہو تو کاشتکار پر حفاظت چھوڑ دینے سے ضمان واجب نہ ہوگی کذا فی الذخیرہ قال المحرجم وامانی بلادنا فیینبغی ان یستجب فلا فرق نے ذلک فیما اذا کان الزرع بھلا اودو کا للمعروف ۔ ذاری ۲ نے اگر کدس کی حفاظت رات میں چھوڑ دی تو ضامن ہوگا بشرطیکہ رات میں اس کے ذمہ حفاظت کرنے کا رواج ہو یہ قیمہ میں ہے فتاویٰ ابواللیث میں ہے کہ اگر کاشتکار نے بدوں اجازت اس شخص کے جس نے زمین مزارعت پر دی ہے یعنی زمین دہندہ کی کھیتی کو کاٹا اور کھلیاں کی اور روند ا اور یہ امر دہندہ نے اس کے ذمہ شرط نہ کیا تھا تو دہندہ کا حصہ کاشتکار مذکور کے ذمہ مضمون ہوگا اور اگر دہندہ نے یہ امر اس کے ذمہ شرط کیا ہو پھر کاشتکار نے اس فعل میں غفلت کی یہاں تک کہ کھیتی تلف ہو گئی تو فقیہ ابو بکر بلخی نے فرمایا کہ وہ ضامن ہو گا۔

فقیہ ابواللیث نے ذکر کیا کہ اگر کاشتکار مذکور نے اس قدر تاخیر کی کہ اس کے مثل لوگ تاخیر نہیں کرتے ہیں تو ضامن ہو گا اور اگر ایسی تاخیر کی کہ اس کے مثل لوگ تاخیر کرنے میں تو ضامن نہ ہو گا اور یہ بنا بر مختار الیم بلخی کے ہے کہ ان کاموں کا کاشتکار کے ذمہ شرط کرنا صحیح ہے کذافی المحیط ۔ اسی طرح کپاس کی روئی جب پھول جائے تو اس کے چن لینے میں بھی یہی حکم ہے یہ خزانۃ المفتین میں ہے۔ کاشتکار نے جزر وتر گیہوں میدان صحرا میں نہ ڈالے حالانکہ عقد میں یہ فعل اس کے ذمہ مشروط تھا تو ضامن ہو گا یہ وجیز کردری میں ہے۔ مجموعہ نواز ل میں امام ابو یوسف سے روایت ہے کہ ایک کھیتی دو آدمیوں میں مشترک ہے ان میں سے ایک نے اس کو پانی دینے سے انکار کیا تو اس پر جبر کیا جائے گا اور اگر حاکم کے پاس اس امر

کے مرافعہ کرنے سے پہلے کھیتی خراب ہوگئی تو اس پر ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر قاضی کے پاس مرافعہ کر کے اور قاضی کے سینچنے کا حکم دینے کے بعد اس نے سینچنے سے انکار کیا اور کھیتی خراب ہوگئی تو ضامن ہو گا کذافی الذخیرہ خلاصہ ۔ فتاویٰ نسفی میں ہے کہ مالک زمین کا نیل کاشتکار کے پاس ہے کاشتکار نے اس کو چرواہے کے پاس چراگاہ بھیجا تو کاشتکار ضامن نہ ہوگا اور نہ چرواہا ضامن ہوگا اور جو بیل مستعار ہو یا کرایہ پر لیا گیا ہو اس کا بھی یہی حکم ہے۔ شیخ (۱) نے فرمایا کہ اس مسئلہ میں مشائخ سے روایات مضطرب آئی ہیں اور فتویٰ اسی روایت مذکورہ پر ہے کیونکہ مستودع مال ودیعت کو مثل اپنے مال کے حفاظت کرتا ہے اور وہ اپنے نیل کو چراگاہ میں محفوظ جانتا ہے پس ایسی ہی ودیعت کے نیل کے ساتھ ہے اور اگر اس نے نیل کو چرتا چھوڑ دیا تو مشائخ نے اس میں اختلاف کیا ہے اور مؤلف نے فرمایا کہ فتویٰ اس پر ہے کہ وہ ضامن نہ ہو گا۔ یہ خلاصہ میں ہے۔ امام محمدؒ نے اصل میں فرمایا کہ اگر ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین اس شرط سے دی کہ اس سال اس میں زراعت کرے اور معاوضہ میں ایک کر گیہوں جو کاشتکار کے پاس موجود ہیں قرار دیے تو جائز ہے پس اگر پورے امسال کاشتکار مذکور نے زراعت کی پھر جب سال گذر گیا اور کھیتی کاٹنے کے لائق ہو گئی تو کاشتکار نے کہ جس کے عوض زمین اجارہ پر لی تھی تلف کر دیا تو کاشتکار کے ذمہ زمین کا اجر المثل واجب ہوگا چاہے جس قدر ہو اور اس اناج کے مثل اناج اس پر واجب نہ ہوگا کہ جب اجارہ فاسد ہوا تو کاشتکار پر لازم آیا کہ منفعت زمین جو اس نے پوری حاصل کی ہے واپس کرے مگر چونکہ منفعت بعینہ واپس کرنا متعذر ہے اس واسطے کہ اس کے ذمہ قیمت منفعت یعنی اجر المثل واپس کرنا واجب ہو یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نے کا شرب ۳ تلف کر دیا یعنی غیر شخص کے شرب یعنی پانی سے اپنی زمین سینچی تو بعض مشائخ نے فرمایا کہ ضامن

ا مترجم کہتا ہے کہ ہمارے دیار میں خواہ کھیتی ہو یا نہ ہو ہر صورت میں ضامن ہونا چاہیے کیونکہ عرف رائج ہو گیا ہے۔ ۲ ذاری روند کروانہ نکالنے والا کہ اس سے مراد کھلیان ہے۔ ۳ شرب وہ حصہ پانی کا جو نہر میں سے اسکی زمین کے واسطے معین ہے لوز تو غیر شخص یعنی جسکا شرب تلف کیا ہے قول ارج جس پر انگور کے بیلوں کا بڑ ھاؤ ہوتا ہے۔ (۱) یعنی مؤلف۔

Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (342) Book of Muzara'ah (Sharecropping)

...will be liable, and some have said he will not be a guarantor (jamin), and the fatwa is based on this. This is in 'Jawahir al-Ikhlati'. It was inquired via fatwa that the custom is that gardeners (1) live in the gardens in summer. If a gardener did not stay in the garden during summer and left the garden neglected, to the extent that someone cut down a tree or took away wood and fruit (aranj), then by consensus (bil-ittifaq), the response given by the scholars (masha'ikh) through 'istihsan' (juridical preference) was that the gardener will be liable for damages (daman). A similar issue is of the people of Samarkand, where the custom is that in winter, gardeners live in palaces and do not live in gardens, but in summer they go to gardens for maintenance and consider this maintenance as part of security. If in winter someone came to the garden and took wood and fruit or cut a tree, then the ruling is that if the gardener had provided basic maintenance, he will not be liable; if he had not provided even basic maintenance, he will be liable. This is mentioned in 'Al-Muhit'.

Twentieth Chapter: Description of Kafala (Guaranty/Suretyship) in Muzara'ah (Sharecropping) and Mu'amalat (Dealings)

If a condition of kafala for farming was made in Muzara'ah (1) and Mu'amalat, and the seeds are provided by the cultivator (tenant), then both contracts will be void (fasid). If kafala was not a condition in Muzara'ah, then the kafala will be null (batil) while the Muzara'ah remains valid. The reason for this is that when seeds are from the cultivator, the work is not a guaranteed (madmun) liability upon him; he may perform the farming or abandon the Muzara'ah. Guaranty for a non-guaranteed obligation is void. Therefore, when such a kafala was conditioned in Muzara'ah which the contract does not necessitate, it becomes a void contract like sale or lease (bay' and ijarah). If such a kafala was not a condition in the contract, the contract will be free from a corrupting condition and thus valid. If the seeds are from the landowner, then it is not void of two scenarios: either performing work by the cultivator's own hands is a condition in the Muzara'ah, or it is not. If it's not a condition, then both kafala and Muzara'ah are valid, whether this was conditioned in the contract or after it, because the guarantor (kafil) has guaranteed an obligation whose fulfillment (istifa') is possible from the guarantor, since this work is a liability upon the cultivator such that he can be compelled for its fulfillment (ifa'), and it became obligatory upon him by the ruling of Muzara'ah. Fulfillment from the guarantor is possible. If the beneficiary (makful lahu) held the guarantor for the work and the guarantor performed it, then 'Ajr al-Mithl' (fair market wage) for the work will be due from the

cultivator to the guarantor. If it was a condition for the cultivator to perform the work himself, then if kafala was conditioned in the Muzara'ah contract, both will be void. If not conditioned in the contract, Muzara'ah will be valid and kafala will be null. The reason is that the guarantor guaranteed an act whose fulfillment is not possible by the guarantor, as work performed by the cultivator's hands cannot be performed by another. Thus, this kafala is null, as in 'ijarah'; this is written in 'Muhit al-Sarakhsi'.

In the contract of dealing, if the orchard owner took a guarantor from the worker (amil) for his work, its ruling is similar to the ruling in Muzara'ah where seeds are from the landowner. And if a person gave his land to another for half sharecropping, and the landowner took a guarantor from the cultivator for his share, or the cultivator took a guarantor from the landowner for his share, then this kafala is void. If it was conditioned in the Muzara'ah contract, the Muzara'ah will be void. If not conditioned, the Muzara'ah will not be void. And if each of them took a guarantor from the other regarding his share for the matter that the other...

---

1 Farming on the condition that such-and-such person provides guaranty for farming. 2 Conditions, i.e., there is no flaw in the conditions of validity. (1) Includes the cultivator as well. 2 I'fa (Fulfillment): It is obligatory for the cultivator to perform the work, so he fulfilled it through 'tahlil'.

होगा और कुछ ने फ़रमाया कि वह ज़मानतदार (ज़ामिन) नहीं होगा और इसी पर फ़तवा है, यह 'जवाहर अल-इख्लाती' में है। फ़तवे के माध्यम से पूछा गया कि रिवाज यह है कि बाग़बान (1) गर्मियों में रहते हैं, यदि कोई बाग़बान गर्मियों में बाग़ में नहीं रहा और बाग़ को नष्ट होने के लिए छोड़ दिया, यहाँ तक कि किसी ने पेड़ काट लिया या लकड़ी और फल (अरंज) ले गए, तो सर्वसम्मति (बिल-इत्तेफ़ाक) से माशायख़ ने इस्तिहसान का जवाब यही दिया कि बाग़बान पर ज़मानत (ज़मान) वाजिब होगी। और इसी प्रकार का यह मसला है कि समरकंद के लोगों का रिवाज यह है कि सर्दियों में बाग़बान महलों में रहते हैं, बाग़ों में नहीं रहते, लेकिन गर्मियों में बाग़ों में जाते हैं और उसकी देखभाल करते हैं, और इस देखभाल को सुरक्षा (हिफ़ाज़त) का हिस्सा समझते हैं। और अगर सर्दियों में कोई व्यक्ति बाग़ में आया और लकड़ी व फल ले गया या पेड़ काट लिया, तो हुक्म यह है कि अगर बाग़बान ने मामूली देखभाल कर ली हो तो वह ज़ामिन नहीं होगा, और अगर मामूली देखभाल भी न की हो तो वह ज़ामिन होगा, जैसा कि 'मुहीत' में लिखा है।

बीसवां अध्याय: मुज़ारअत और मुआमलात में कफ़ालत (ज़मानत) के वर्णन में

यदि मुज़ारअत (साझेदारी की खेती) और मुआमलात में खेती की कफ़ालत की शर्त लगाई गई और बीज काश्तकार (किसान) की ओर से हो, तो दोनों (अनुबंध) फ़ासिद (अमान्य) हो जाएंगे। और अगर मुज़ारअत में कफ़ालत की शर्त न हो, तो कफ़ालत बातिल होगी और मुज़ारअत सही होगी। इसका कारण यह है कि जब बीज किसान की ओर से हो, तो काम करना उसके ज़िम्मे की गारंटी (मज़मून) नहीं है; वह चाहे खेती करे या मुज़ारअत छोड़ दे। गैर-मज़मून (जिसकी गारंटी न हो) की कफ़ालत फ़ासिद होती है। अतः जब मुज़ारअत में ऐसी कफ़ालत की शर्त लगाई गई जिसकी अनुबंध (अक़द) मांग नहीं करता, तो यह बिक्री और किराए (बैअ व इजारा) की तरह फ़ासिद अक़द होगा। और अगर अक़द में ऐसी कफ़ालत की शर्त न हो, तो अक़द शर्त-ए-मुफ़सिद (बिगाड़ने वाली शर्त) से मुक्त होगा, इसलिए अक़द सही रहेगा। और यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हो, तो यह दो स्थितियों से खाली नहीं: या तो मुज़ारअत में किसान का अपने हाथों से काम करना शर्त है, या ऐसी शर्त नहीं है। यदि शर्त नहीं है, तो कफ़ालत और मुज़ारअत दोनों सही होंगे, चाहे यह अक़द में शर्त किया गया हो या अक़द के बाद शर्त किया गया हो, क्योंकि कफ़ील (ज़मानतदार) ने एक ऐसी चीज़ की कफ़ालत की है जिसकी पूर्ति (इस्तीफ़ा) कफ़ील से संभव है, क्योंकि यह काम किसान के ज़िम्मे गारंटी (मज़मून) है कि उसे इसकी पूर्ति (ईफ़ा) के लिए मजबूर किया जा सकता है, और मुज़ारअत के हुक्म

से यह उसके ज़िम्मे ज़रूरी हो गया। कफ़ील से इसकी पूर्ति संभव है। और यदि मकफ़ूल लहू (जिसके लिए ज़मानत दी गई) ने कफ़ील को काम के लिए पकड़ा और कफ़ील ने वह काम पूरा किया, तो किसान पर कफ़ील के लिए उसके काम का 'अजर-ए-मिसल' (बाजार भाव के अनुसार मज़दूरी) वाजिब होगा। और अगर किसान पर स्वयं काम करना शर्त हो, तो यदि कफ़ालत मुज़ारअत के अक़द में शर्त हो, तो दोनों फ़ासिद हो जाएंगे, और यदि अक़द में शर्त न हो, तो मुज़ारअत सही होगी और कफ़ालत बातिल होगी। इसकी वजह यह है कि कफ़ील ने ऐसे कार्य की कफ़ालत की है जिसकी पूर्ति कफ़ील से संभव नहीं है, क्योंकि जिस तरह किसान के हाथों से काम होगा, वह किसी दूसरे से संभव नहीं है। अतः यह कफ़ालत बातिल होगी, जैसा कि 'इजारा' (किराए/मज़दूरी) में है; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में लिखा है।

मुआमलात के अक़द में अगर बाग़ के मालिक ने आमिल (कामगार) से उसके काम का कफ़ील लिया, तो इसका हुक्म मुज़ारअत के हुक्म जैसा है जिसमें ज़मीन के मालिक की ओर से बीज हों। और अगर एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन आधी बटाई पर दी और ज़मीन के मालिक ने किसान से अपने हिस्से का कफ़ील लिया, या किसान ने ज़मीन के मालिक से अपने हिस्से का कफ़ील लिया, तो यह कफ़ालत फ़ासिद है। यदि यह मुज़ारअत के अक़द में शर्त हो, तो मुज़ारअत फ़ासिद होगी, और अगर शर्त न हो, तो मुज़ारअत फ़ासिद नहीं होगी। और अगर दोनों में से प्रत्येक ने दूसरे से अपने हिस्से के बारे में इस बात का कफ़ील लिया कि दूसरा मेरा हिस्सा...

---

1 खेती इस शर्त पर कि खेती करने का फ़लां कफ़ील (ज़ामिन) दे। 2 शर्तें, यानी स्वास्थ्य की शर्तों में कोई बाधा नहीं है। (1) किसान भी शामिल है। 2 ईफ़ा (पूरा करना): किसान पर काम करना लाज़िम है तो उसने तहलील से पूरा करा लिया।

ہوگا اور بعض نے فرمایا کہ ضامن نہ ہوگا اور اسی پر فتویٰ ہے یہ جواہر اخلاطی میں ہے۔ بذریعہ فتویٰ دریافت کیا گیا کہ رواج یہ ہے کہ باغبان (۱) گرمیوں میں رہتے ہیں اگر کوئی باغبان گرمیوں میں باغ میں نہ رہا اور باغ کو ضائع چھوڑ دیا حتیٰ کہ کسی نے درخت کاٹ لیا یا چوب و ارنج لے گئے تو بالاتفاق جواب استحسان مشائخ نے یہی دیا کہ باغبان پر ضمان واجب ہوگی اور اسی جنس کا یہ مسئلہ ہے کہ اہل سمر قند کا رواج یہ ہے کہ جاڑوں میں باغبان محلوں میں رہتے ہیں باغوں میں نہیں رہتے ہیں لیکن گرمیوں میں باغوں میں جاتے ہیں اور اس کو دیکھ بھال آتے ہیں اور اس دیکھ بھال کو منجملہ حفاظت کے سمجھتے ہیں اور اگر جاڑوں میں کوئی شخص باغ میں آیا اور چوب و ارنج لے گیا یا درخت کاٹ لیا تو یہ حکم ہے کہ اگر باغبان نے معمولی دیکھ بھال کر لی ہو تو ضامن نہ ہو گا اور اگر معمولی دیکھ بھال نہ کی ہو تو ضامن ہو گا کذا فی المحیط۔

باب بیسی: مزارعت و معاملت میں کفالت کے بیان میں

اگر مزارعت ۱ و معاملت میں کفالت بالزراعت شرط کی اور بیج کاشتکار کی طرف سے ہے تو دونوں فاسد ہو جائیں گے اور اگر مزارعت میں کفالت مشروط نہ ہو تو کفالت باطل ہو گی اور مزارعت صحیح ہوگی اور یہ وجہ یہ ہے کہ ہرگاہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہے تو کام کرنا اس کے ذمہ مضمون نہیں ہے چاہے کام زراعت انجام دے یا مزارعت ترک کر دے اور غیر مضمون کی کفالت فاسد ہوتی ہے پس جب مزارعت میں ایسی کفالت شرط کی تو ایسی شرط کی جس کو عقد مقتضی نہیں ہے پس مثل بیع و اجارہ کے عقد فاسد ہو گا اور اگر عقد میں ایسی کفالت مشروط نہ ہو تو عقد شرط مفسد سے خالی ہو گا پس عقد صحیح رہے گا اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے

ہو پس در حال سے خالی نہیں یا تو مزارعت میں کاشتکار کا اپنے ہاتھوں کام انجام دینا مشروط ہے یا ایسی شرط نہیں ہے پس اگر مشروط نہیں ہے تو کفالت و مزارعت دونوں صحیح ہوں گی خواہ یہ امر عقد میں مشروط کیا ہو یا بعد عقد کے شرط کر لیا ہو کیونکہ کفیل نے ایسے مضمون کی کفالت کی جس کا استیفاء ۲ کفیل سے ممکن ہے کیونکہ یہ کام کاشتکار کے ذمہ مضمون ہے کہ اس کے الایفاء (۲) پر مجبور کیا جا سکتا ہے اور بحکم مزارعت اس کے ذمہ لازم ہو گیا اس کا استیفاء کفیل سے ممکن ہے اور اگر مکفول لہ نے کفیل کو کام کے واسطے پکڑا اور کفیل نے یہ کام انجام دیا تو کاشتکار پر کفیل کے واسطے اس کے کام کا اجر المثل واجب ہوگا اور اگر کاشتکار پر بذات خود کام انجام دینا مشروط ہو پس اگر کفالت عقد مزارعت میں مشروط ہو تو دونوں فاسد ہو جائیں گے اور اگر عقد میں مشروط نہ ہو تو مزارعت صحیح ہو گی اور کفالت باطل ہو گی اور وجہ یہ ہے کہ کفیل نے ایسے فعل کی کفالت کی جس کا استیفاء کفیل سے ممکن نہیں ہے کیونکہ جس طرح کاشتکار کے ہاتھوں سے کام ہوگا وہ غیر سے ممکن نہیں ہے پس یہ کفالت باطل ہو گی جیسا کہ اجارہ میں ہے یہ محیط سرخسی میں لکھا ہے۔

عقد معاملہ میں اگر مالک باغ نے عامل سے اس کے کام کا کفیل لیا تو اس کا حکم نظیر حکم مزارعت میں مالک زمین کی طرف سے بیج ہوں اور اگر ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین آدھے کی بٹائی پر دی اور مالک زمین نے کاشتکار سے اپنے حصہ کا کفیل لیا یا کاشتکار نے مالک زمین سے اپنے حصہ کا کفیل لیا تو یہ کفالت فاسد ہے پس اگر عقد مزارعت میں مشروط ہو گی تو مزارعت فاسد ہو گی اور اگر مشروط نہ ہو گی تو مزارعت فاسد نہ ہو گی اور اگر دونوں میں سے ہر ایک نے دوسرے سے اپنے حصہ کی بابت اس امر کا کفیل لیا کہ دوسرا میرا حصہ

۱ زراعت اس شرط پر کہ زراعت کرنے کا فلاں کفیل دے۔ ۲ شرائط یعنی صحت کے شرائط میں کچھ خلل نہیں ہے۔ (۱) کاشتکار بھی شامل ہے۔ ۲ الایفاء پورا کرنا کاشتکار پر کام کرنا لازم ہے تو وہ تحلیل سے پورا کرالیا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 343 | Kitab al-Mazara'ah**

...if he does not destroy it, he shall be liable. Thus, if such a guarantee (kafalat) is stipulated within the sharecropping contract (mazara'ah), then the mazara'ah shall be invalid (fasid), while the guarantee remains valid. If it is not stipulated within the mazara'ah contract, then both the mazara'ah and the guarantee shall be valid. If the mazara'ah is invalid and each party has taken a guarantor from the other regarding their share of the cultivation, the guarantee shall be void, as stated in *Al-Muhit*.

## Chapter Twenty-One: On the Statement of Sharecropping (Mazara'ah) by Minors and Authorized Slaves (Ma’dhun)

If an authorized slave (ma'dhun) gives his land for sharecropping with specified conditions, the mazara'ah is valid according to the opinion of the jurist (Mujtahid) who upholds the validity of sharecropping, whether the seeds are provided by the farmer (cultivator) or by the authorized slave. Similarly, if he takes land for sharecropping under its terms, it is also valid. Likewise, a minor boy who has received permission to trade from his father or executor (wasi) has the authority to take or give land for sharecropping; this is mentioned in *Al-Muhit*. If an authorized slave gives land for sharecropping and then his master (mawla) interdicts (imposes legal restriction/hajr) him, there are two possibilities: either the seeds are from the slave or from the farmer. If the seeds are from the farmer, the mazara'ah remains in force, regardless of whether the master interdicted him before or after cultivation. If the seeds are from the authorized slave, then if interdiction occurs after cultivation, the mazara'ah remains; if interdicted before cultivation, the contract is dissolved. If an authorized slave takes land for sharecropping and then the master interdicts him, if the seeds are from the landowner, the mazara'ah remains because it becomes binding (lazim) upon the slave; thus, the interdiction will not be effective against him. If the seeds are from the slave, the same rule applies if interdiction occurs after cultivation because the contract has become binding. However, before cultivation, the mazara'ah becomes void because the master has the right to prohibit him from the work of cultivation since it is not binding upon him; thus, the interdiction becomes effective. Continuing cultivation despite the interdiction becomes a nullified act, the subject of the contract (ma'qud 'alayh) is lost, and the contract is annulled; this is in *Muhit al-Sarakhsi*. If an authorized slave gives his land and seeds to someone for sharecropping this year on a half-share basis, and then the master prohibits the cultivation and annuls the contract but does not legally interdict his slave, the mazara'ah remains valid regardless, and the master's prohibition is ineffective. The

farmer has the right to cultivate because this specific restriction (hajr-e-khaas) occurred upon a general permission (idhn-e-aam), hence it is not valid. Similarly, if an authorized slave takes land for sharecropping and the seeds are provided by him, then the master prohibits him but does not interdict him, his prohibition is not effective and the authorized slave can cultivate, for the same reason mentioned previously; this is in *Al-Muhit*.

If a minor or an interdicted (mahjur) slave gives his land to a farmer on a half-share basis, it is void. However, if the farmer works and crops are produced without any damage to the land, then by legal preference (istihsan), the produce shall be divided equally between them. If the cultivation causes damage to the land, the farmer shall be liable for the loss and the entire produce shall belong to him. When the slave is emancipated, the farmer shall recover the loss compensation paid to the master from the said slave, but he cannot recover it from the minor after he reaches maturity. Then the slave will take half the produce from the farmer, out of which he will receive an amount equivalent to the indemnity (tawan) he paid for the farmer. If anything remains, the excess belongs to the master. If the master says, "I do not consider the damage to the land and am satisfied with half the produce," he has this right both before and after the slave's emancipation; this is in *Muhit al-Sarakhsi*. This means that after a general permission, prohibiting a specific act is void, as per the principle that the benefit of the contract is what is derived from this transaction.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 343 | किताब अल-मज़ारा'अत**

...नष्ट न करे तो वह ज़िम्मेदार होगा। अत; यदि ऐसी ज़मानत (कफ़ालत) बटाई के अनुबंध (मज़ारा'अत) में शर्त के रूप में रखी गई हो, तो मज़ारा'अत अमान्य (फ़ासिद) होगी और ज़मानत वैध होगी। और यदि मज़ारा'अत में यह शर्त न हो, तो मज़ारा'अत और ज़मानत दोनों वैध होंगी। और यदि मज़ारा'अत फ़ासिद हो और प्रत्येक ने दूसरे से अपनी खेती के हिस्से के संबंध में ज़मानत ली हो, तो ज़मानत रद्द हो जाएगी, जैसा कि 'अल-मुहीत' में उल्लेखित है।

## अध्याय इक्कीस: नाबालिग और माज़ून (अधिकृत व्यक्ति/दास) की मज़ारा'अत (बटाई की खेती) के बयान में

यदि एक माज़ून दास ने अपनी ज़मीन शर्तों के साथ मज़ारा'अत (बटाई) पर दी, तो मज़ारा'अत वैध है, उस मुज्तहिद (विधिवेत्ता) के कथन के अनुसार जो मज़ारा'अत की वैधता का कायल है, चाहे बीज किसान (काश्तकार) की ओर से हों या माज़ून की ओर से। इसी प्रकार यदि उसने मज़ारा'अत की शर्तों पर कोई ज़मीन ली, तो वह भी वैध है। और इसी तरह जिस नाबालिग लड़के को अपने पिता या वसी (अभिभावक) की ओर से व्यापार करने की अनुमति प्राप्त हो, वह ज़मीन को मज़ारा'अत पर लेने और देने का अधिकार रखता है, यह 'मुहीत' में है। यदि माज़ून ने एक ज़मीन मज़ारा'अत पर दी और फिर उसके स्वामी (मौला) ने उसे प्रतिबंधित (महजूर) कर दिया, तो यह दो स्थितियों से खाली नहीं: या तो बीज दास की ओर से होंगे या किसान की ओर से। अत; यदि बीज किसान की ओर से हों, तो मज़ारा'अत बनी रहेगी, चाहे स्वामी ने उसे खेती से पहले प्रतिबंधित किया हो या खेती के बाद। और यदि बीज माज़ून की ओर से हों, तो यदि खेती के बाद प्रतिबंधित किया गया हो, तो मज़ारा'अत बनी रहेगी, और यदि खेती से पहले प्रतिबंधित किया गया हो, तो मज़ारा'अत टूट जाएगी। और यदि माज़ून ने कोई ज़मीन मज़ारा'अत पर ली और फिर स्वामी ने उसे प्रतिबंधित कर दिया, तो यदि बीज भूमि स्वामी की ओर से हों, तो मज़ारा'अत बनी रहेगी क्योंकि दास की ओर से मज़ारा'अत अनिवार्य (लाज़िम) हो जाएगी, अतः उसके मामले में प्रतिबंधित करना प्रभावी नहीं होगा। और यदि बीज माज़ून की ओर से हों, तो खेती के बाद प्रतिबंधित करने की स्थिति में भी यही नियम है क्योंकि मज़ारा'अत अनिवार्य हो गई है। और खेती से पहले मज़ारा'अत अमान्य हो जाएगी क्योंकि स्वामी को अधिकार है कि वह उसे खेती के कार्य से रोके, क्योंकि खेती उस पर अनिवार्य नहीं है; अतः प्रतिबंध प्रभावी हुआ और प्रतिबंध के बावजूद खेती का कार्य करना निरर्थक रहा, अनुबंधित वस्तु (मा'क़ूद अलैह) समाप्त हो गई, इसलिए अनुबंध (अक़्द) रद्द हो जाएगा, यह 'मुहीत सरख़सी' में है। यदि माज़ून दास ने अपनी

ज़मीन और बीज इस वर्ष आधे की बटाई पर मज़ारा'अत के लिए किसी व्यक्ति को दिए, फिर स्वामी ने खेती से मना कर दिया और मज़ारा'अत रद्द कर दी, लेकिन उसने अपने दास को प्रतिबंधित नहीं किया, तो मज़ारा'अत हर हाल में बनी रहेगी और स्वामी का निषेध प्रभावी नहीं होगा और किसान को खेती करने का अधिकार होगा, क्योंकि यह विशेष प्रतिबंध (हज्र-ए-ख़ास) सामान्य अनुमति (इज़न-ए-आम) पर हुआ है, अतः यह सही नहीं होगा। इसी तरह यदि माज़ून दास ने कोई ज़मीन मज़ारा'अत पर ली और बीज माज़ून की ओर से हैं, फिर स्वामी ने उसे मना किया लेकिन प्रतिबंधित नहीं किया, तो उसका निषेध प्रभावी नहीं होगा और माज़ून खेती कर सकता है, और कारण वही है जो हमने पहले बताया है, यह 'मुहीत' में है।

नाबालिग या प्रतिबंधित (महजूर) दास ने अपनी ज़मीन आधे की बटाई पर किसी किसान को दी, तो यह अमान्य है। अतः यदि किसान ने काम किया और फ़सल पैदा हुई और मज़ारा'अत से ज़मीन को कोई नुक़सान नहीं हुआ, तो न्यायसंगतता (इस्तहसान) के आधार पर पैदावार दोनों में आधी-आधी होगी। और यदि खेती से ज़मीन में नुक़सान आया, तो किसान नुक़सान का ज़िम्मेदार होगा और पूरी पैदावार उसी की होगी। और जब दास स्वतंत्र (आज़ाद) हो जाएगा, तो किसान ने जो नुक़सान की राशि उसके स्वामी को दी है, वह उसे उस दास से वापस लेगा, लेकिन नाबालिग से बालिग होने के बाद यह राशि नहीं ले सकता। फिर दास उस किसान से आधी पैदावार ले लेगा, जिसमें से दास को उतना ही मिलेगा जितना उसने किसान को मुआवज़ा (तावान) दिया है, और यदि कुछ शेष रहा तो वह अतिरिक्त स्वामी का होगा। और यदि स्वामी ने कहा कि मैं ज़मीन का नुक़सान नहीं देखता और आधी पैदावार लेने पर सहमत हूँ, तो दास की स्वतंत्रता से पहले और बाद में उसे यह अधिकार है, यह 'मुहीत सरख़सी' में है। अर्थात सामान्य अनुमति के बाद किसी विशेष कार्य से मना करना अमान्य है, क्योंकि अनुबंध का लाभ वही है जो इस मामले से प्राप्त होता है।

---

تلف نہ کرے تو ضامن ہو پس اگر ایسی کفالت عقد مزارعت میں مشروط ہو تو مزارعت فاسد اور کفالت جائز ہوگی اور اگر مزارعت میں مشروط نہ ہو تو مزارعت و کفالت دونوں جائز ہوں گی اور اگر مزارعت فاسد ہو اور ہر ایک نے دوسرے سے اپنے حصہ زراعت کی بابت کفیل لیا تو کفالت باطل ہو گی کذا فی المحیط۔

**باب اکیسواں: نابالغ و ماذون کی مزارعت کے بیان میں**

غلام ماذون نے اگر اپنی زمین شرائط کے ساتھ مزارعت پر دی تو مزارعت جائز ہے بنا بر قول اس مجتہد کے جو جوازِ مزارعت کا قائل ہے خواہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں یا ماذون کی طرف سے۔ اسی طرح اگر اس نے مزارعت پر کوئی زمین بشرائط مزارعت لی تو بھی جائز ہے اور اسی طرح جس نابالغ لڑکے کو اپنے باپ یا وصی کی طرف سے تجارت کی اجازت حاصل ہو وہ زمین کو مزارعت پر لینے و دینے کا اختیار رکھتا ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر ماذون نے ایک زمین مزارعت پر دی پھر اس کے مولیٰ نے اس کو محجور کر دیا تو دو حال سے خالی نہیں یا تو بیج غلام کی طرف سے ہوں گے یا کاشتکار کی طرف سے ہوں گے پس اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو مزارعت باقی رہے گی خواہ مولیٰ نے اس کو قبل زراعت کے محجور کر دیا تو بعد زراعت کے اور اگر بیج ماذون کی طرف سے ہوں پس اگر بعد زراعت کے محجور کیا ہو تو مزارعت باقی رہے گی اور اگر قبل زارعت کے محجور کیا تو مزارعت ٹوٹ جائے گی اور اگر ماذون نے کوئی زمین مزارعت پر لی پھر مولیٰ نے اس کو محجور کر دیا پس اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں تو مزارعت باقی رہے گی اس واسطے کہ غلام کی طرف مزارعت لازم ہو گی

پس اس کے حق میں محجور کرنا کار آمد نہ ہو گا اور اگر بیج ماذون کی جانب سے ہوں تو بعد زراعت کے محجور کرنے کی صورت میں یہی حکم ہے کیونکہ مزارعت لازم ہو گئی اور قبل زراعت کے مزارعت باطل ہو جائے گی کیونکہ مولیٰ کو اختیار ہے کہ اس کو کار زراعت سے منع کرے کیونکہ زراعت اس پر لازم نہیں ہے پس حجر کار آمد ہوا اور باوجود حجر کے کار زراعت انجام دینا حصہ رہا واپس معقود علیہ فوت ہو گیا پس عقد فسخ ہو جائے گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر غلام ماذون نے اپنی زمین و بیج کسی شخص کو امسال آدھے کی بٹائی پر مزارعت کے واسطے دی پھر مولیٰ نے زراعت سے منع کر دیا اور مزارعت فسخ کردی لیکن اس نے اپنے غلام کو محجور نہیں کیا تو مزارعت بہرحال خود باقی رہے گی اور مولیٰ کی ممانعت کار آمد نہ ہوگی اور کاشتکار کو زراعت کرنے کا اختیار ہو گا کیونکہ یہ حجر خاص اذنِ عام پر واقع ہوا ہے پس صحیح نہ ہو گا اسی طرح اگر غلام ماذون نے کوئی زمین مزارعت پر لی اور بیج ماذون کی طرف سے ہیں پس مولیٰ نے اس کو منع کیا اور محجور نہ کیا تو اس کی ممانعت کار آمد نہ ہو گی اور ماذون زراعت کر سکتا ہے اور وجہ وہی ہے جو ہم نے بیان کر دی ہے یہ محیط میں ہے۔

نابالغ یا غلام محجور نے اپنی زمین آدھے کی بٹائی پر کسی کاشتکار کو دی تو یہ باطل ہے پس اگر کاشتکار نے کام کیا اور کھیتی پیدا ہوئی اور مزارعت سے نقصان نہ ہوا تو استحساناً پیداوار دونوں میں نصفا نصف ہوگی اور اگر زراعت سے زمین میں نقصان آیا تو کاشتکار نقصان کا ضامن ہوگا اور پیداوار پوری اسی کی ہوگی اور جب غلام آزاد ہو جائے گا تو کاشتکار نے جو مال نقصان اس کے مولیٰ کو دیا ہے وہ غلام مذکور سے واپس لے گا اور نابالغ سے بعد بالغ ہونے کے یہ مال نہیں لے سکتا ہے پھر غلام اس کاشتکار سے نصف پیداوار لے لے گا اس میں سے غلام کو اس قدر ملے گا جس قدر اس نے کاشتکار کو تاوان دیا ہے اور اگر کچھ باقی رہا تو وہ زیادتی مولیٰ کی ہوگی اور اگر مولیٰ نے کہا کہ میں نقصان زمین نہیں دیکھتا ہوں اور آدھی پیداوار لینے پر راضی

ہوں تو غلام کی آزادی سے پہلے اور بعد اس کو یہ اختیار ہے یہ محیط سرخسی میں ہے یعنی عام اجازت کے بعد کسی خاص کام سے منع کرنا باطل ہے بقولہ مفاد عقد کو لا کج یعنی اس معاملہ سے جو کچھ فائدہ ہوتا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 344 Kitab al-Muzara'a (Book of Sharecropping)**

...is. If the seeds are from the side of the *mazun* (authorized slave), then the sharecropping (*muzara'a*) is not valid, whether the land suffered a loss due to sharecropping or not. And if a free person gave their land on sharecropping terms to a *mahjur* (restricted) slave or a *mahjur* child who understands the benefit of the contract, then if the seeds are from the landowner's side and the slave remained alive after performing the agricultural labor, according to *qiyas* (analogy), the ruling is that the sharecropping is void and the entire produce belongs to the landowner. However, based on *istihsan* (juristic preference), the sharecropping is valid, and all the produce will be shared between both according to the agreed-upon conditions. If the slave or child dies after the crop is ready for harvesting, there are two scenarios: either they died naturally and not from the hardship of agricultural labor, in which case the landowner will pay the slave's price as compensation in the slave's scenario, and nothing will be owed in the case of the boy. When the landowner pays the slave's price, the entire produce will belong to the landowner and the seeds. In the case of the child, the produce will be shared between the landowner and the child according to the agreed-upon conditions. The second scenario is that both died from the hardship of agricultural labor. In the case of the slave, the landowner will be liable for his price, whether he died from a task performed before the crop was ready for harvesting or after. The entire produce will belong to the landowner, and the slave's master will receive nothing from it. In the case of the child being a victim and dying, if the said child died from a task performed before the crop was ready for harvesting, the child's *diyat* (blood money) will be obligatory on the landowner's supportive tribe (*'aqila*). If he died from a task performed after the crop became ready for harvesting, then no liability (*daman*) is obligatory. And in the mentioned scenario, if the seeds were from the slave's or child's side, then the entire produce belongs to the child and slave, and the landowner will receive nothing from it. No rent for the land will be obligatory on both, nor will compensation for land damage be required. Compensation for damage is not required because both farmed with the landowner's permission. And what was said about land rent not being obligatory means that rent will not be due from the slave immediately, but will be due after he becomes free. In the case of the boy, rent will be obligatory both immediately and after reaching maturity. Therefore, a *mahjur* slave is held accountable for his verbal guarantees after becoming free, whereas a free child is not held accountable, and a *mahjur* child is never held accountable. This is in the *Muhit*.

**If the Guardian (*Wasi*) took the orphan's seeds and sowed them in the orphan's own land and made witnesses to the sharecropping ☆**

A guardian (*wasi*), who was the guardian of an orphan, used to take the orphan's land for sharecropping himself. Some among the scholars (*mashayikh*) said it is absolutely permissible, just as it is permissible to give it to someone else for sharecropping. Others said that if the seeds are from the orphan's side, it is not permissible because it involves the destruction (*itlaf*) of his seeds at present. If the seeds are from the guardian's side, it is permissible because the guardian will become the tenant of the orphan's land. Thus, this matter is like the guardian hiring the orphan himself. This is permissible according to Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa), as it is better for the orphan's right. The preferred opinion (*mukhtar*) is that if the fair rent (*ajr al-mithl*) or fair compensation (*daman al-mithl*) or compensation for loss in value of the orphan's body is better for the orphan than the share of the produce he receives, then the sharecropping will not remain valid (meaning he will be made to pay this compensation and all the produce will belong to the guardian). And if the share of the produce is better for the orphan's right, the sharecropping will be valid, because full compassionate consideration for the orphan's right lies in this. It is narrated from Imam Abu Yusuf that if the guardian took the orphan's seeds and sowed them in the orphan's land and made witnesses to the sharecropping, then he has taken these seeds as a loan and taken the land on lease. Therefore, if the produce is better for the orphan's right, he will receive the produce, and if land rent is better for his right, he will receive the rent. This is in the *Fatawa Kubra*.

---

1. Destruction (*itlaf*): mixing with soil, meaning there is no obvious profit but a possibility of harm. And see the rulings on guardians (*wasi*).

...है। अगर बीज माज़ून की तरफ से हों तो मुज़ारआत (बटाई) सही नहीं है, चाहे मुज़ारआत से ज़मीन में नुकसान आया हो या न आया हो। और अगर किसी आज़ाद शख्स ने अपनी ज़मीन मुज़ारआत की शर्तों पर किसी गुलाम महजूर को या बच्चे महजूर को दी, जो अनुबंध के लाभ को समझता है। फिर अगर बीज ज़मीन के मालिक की तरफ से हों और गुलाम खेती का काम करने के बाद जीवित रहा, तो कयास (तर्क) से यह हुक्म है कि मुज़ारआत बातिल (अवैध) है और पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होगी और इस्तेहसानन (लोकहित में) मुज़ारआत सही है और पूरी पैदावार दोनों के बीच तय की गई शर्त के अनुसार साझा होगी। और अगर खेती कटने के लायक हो जाने के बाद गुलाम या बच्चा मर गया, तो इसमें दो सूरतें हैं: या तो वह अपनी मौत से मरा, खेती की मेहनत और मशक्कत से नहीं मरा, तो ज़मीन का मालिक गुलाम की सूरत में गुलाम की कीमत हरजाना देगा और लड़के की सूरत में कुछ भी ज़िम्मेदार न होगा। और जब उसने गुलाम की कीमत हरजाना दे दी, तो पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक और बीज की होगी और बच्चे की सूरत में पैदावार ज़मीन के मालिक और बच्चे के बीच शर्त के अनुसार साझा होगी। दूसरी सूरत यह है कि दोनों खेती की मशक्कत से मर गए, तो गुलाम की सूरत में ज़मीन का मालिक उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा, चाहे वह ऐसे काम से मरा हो जो उसने ज़मीन में खेती कटने के लायक होने से पहले किया था या ऐसे काम से जो उसने खेती कटने के लायक होने के बाद किया था, और पूरी पैदावार ज़मीन के मालिक की होगी, गुलाम के मालिक को उसमें से कुछ नहीं मिलेगा। और बच्चे के शिकार होने की मौत में, अगर उक्त बच्चा ऐसे काम से मरा जो उसने ज़मीन में खेती कटने के लायक होने से पहले किया था, तो ज़मीन के मालिक की मददगार बिरादरी (आकिला) पर उक्त बच्चे की दियत (खून की कीमत) वाजिब होगी। और अगर वह ऐसे काम से मरा जो उसने खेती कटने के लायक हो जाने के बाद किया था, तो ज़मानत (मुआवज़ा) वाजिब न होगा। और अगर उक्त मसले में बीज गुलाम या बच्चे की तरफ से हों, तो पूरी पैदावार बच्चे और गुलाम की होगी और ज़मीन के मालिक को उसमें से कुछ नहीं मिलेगा और इन दोनों पर ज़मीन का कोई किराया वाजिब नहीं होगा और न ही ज़मीन के नुकसान का हरजाना लाज़िम होगा। हरजाना इस वजह से लाज़िम नहीं होगा क्योंकि दोनों ने ज़मीन के मालिक की इजाज़त से खेती की है। और जो यह कहा गया कि ज़मीन का किराया वाजिब नहीं होगा, उससे मुराद यह है कि गुलाम पर फ़िलहाल किराया वाजिब नहीं होगा, बल्कि आज़ाद होने के बाद वाजिब होगा। और लड़के की सूरत में, लड़के पर फ़िलहाल और बालिग होने के बाद, दोनों समय किराया वाजिब होगा।

पस, गुलाम महजूर अपनी बातों की गारंटी के लिए आज़ाद होने के बाद पकड़ा जाता है और बच्चा आज़ाद होने पर भी नहीं पकड़ा जाता, और बच्चा महजूर कभी पकड़ा नहीं जाता। यह 'मुहीत' में है।

### अगर वसी (अभिभावक) ने यतीम के बीज लेकर उसी की ज़मीन में बोये और मुज़ारआत पर गवाह बना लिए ☆

एक वसी, जो यतीम का वसी था, उसकी ज़मीन खुद मुज़ारआत पर लिया करता था। पस कुछ मशायख (विद्वानों) ने फरमाया कि यह मुतलकन (पूरी तरह) जायज़ है जैसे किसी दूसरे को मुज़ारआत पर देने का हुक्म है। और कुछ ने फरमाया कि अगर बीज यतीम की तरफ से हों तो जायज़ नहीं है क्योंकि इसमें फ़िलहाल उसके बीजों का इतलाफ (बर्बादी) है और अगर बीज वसी की तरफ से हों तो जायज़ है क्योंकि वसी उसकी ज़मीन का किरायेदार बन जाएगा। पस यह मामला इस तरह हुआ जैसे वसी ने खुद यतीम को किराये पर मुकर्रर किया, और यह इमाम-ए-आज़म (रहमतुल्लाहि अलैहि) के नज़दीक जायज़ है क्योंकि यह यतीम के हक में बेहतर है। और मुख्तार (चुनी हुई राय) यह है कि अगर अज्र-ए-मिसल (उचित किराया) या ज़मानत-ए-मिसल या शारीरिक नुकसान का मुआवज़ा यतीम के हक में पैदावार के उस हिस्से से बेहतर हो जो उसे मिल रहा है, तो मुज़ारआत जायज़ नहीं रहेगी (यानी उसे यह हर्जाना दिलाया जाएगा और पूरी पैदावार वसी की होगी)। और अगर पैदावार का हिस्सा यतीम के हक में बेहतर हो तो मुज़ारआत जायज़ होगी, क्योंकि यतीम के हक में पूरी शफ़क़त (सहानुभूति) इसी में है। और इमाम अबू यूसुफ़ (रहीमहुल्लाह) से रिवायत है कि अगर वसी ने यतीम के बीज लेकर उसी की ज़मीन में बोये और मुज़ारआत पर गवाह बना लिए, तो उसने ये बीज उधार लिए और ज़मीन किराये पर ली। पस अगर पैदावार यतीम के हक में बेहतर होगी तो उसे पैदावार मिलेगी और अगर ज़मीन का किराया उसके हक में बेहतर होगा तो उसे किराया मिलेगा। यह 'फ़तावा कुबरा' में है।

---

1. इतलाफ: मिट्टी में मिलाना, यानी कोई स्पष्ट लाभ नहीं बल्कि नुकसान की आशंका है, और वसी के अहकाम (नियम) मुलाहिज़ा करें।

ہے۔ اگر بیج ماذون کی طرف سے ہوں تو مزارعت صحیح نہیں ہے خواہ مزارعت سے زمین میں نقصان آیا ہو یا نہ آیا ہو اور اگر شخص آزاد نے اپنی زمین بشرائط مزارعت کسی غلام محجور کو یا طفل محجور کو جو مفاد عقد کو جانتا ہے مزارعت پر دی پس اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور غلام کا شکار عمل سے زندہ بچ رہا تو قیاس سے یہ حکم ہے کہ مزارعت باطل ہے اور پوری پیداوار مالک زمین کی ہوگی اور استحساناً مزارعت صحیح ہے اور تمام پیداوار دونوں میں موافق شرط کے مشترک ہوگی اور اگر کھیتی کاٹنے کے لائق ہو جانے کے بعد غلام یا طفل مر گیا تو اس میں دو صورتیں ہیں یا تو اپنی موت سے مراد لینے مشقت کار زراعت سے نہیں مرا تو مالک زمین غلام کی صورت میں غلام کی قیمت تاوان دے گا اور لڑکے کی صورت میں کچھ ضامن نہ ہوگا اور جب اس نے غلام کی قیمت تاوان دے دی تو پوری پیداوار مالک زمین و بیج کی ہوگی اور طفل کی صورت میں پیداوار مالک زمین و طفل کے درمیان موافق شرط کے مشترک ہوگی وجہ دوم یہ کہ دونوں مشقت کار زراعت سے مر گئے تو غلام کی صورت میں مالک زمین اس کی قیمت کا ضامن ہوگا خواہ ایسے کام سے مرا ہو جو اس نے زمین میں کھیتی کاٹنے کے لائق ہونے سے پہلے کیا ہے یا ایسے فعل سے جو اس نے کھیتی کاٹنے کے لائق ہونے سے بعد کیا ہے اور پوری پیداوار مالک زمین کی ہوگی غلام کے مولیٰ کو اس میں سے کچھ نہ ملے گا اور طفل کا شکار ہونے کی موت میں اگر طفل مذکور ایسے کام سے مرا جو اس نے زمین میں کھیتی کاٹنے کے لائق ہونے سے پہلے کیا ہے تو مالک زمین کی مددگار برادری پر طفل مذکور کی دیت واجب ہوگی اور اگر ایسے کام سے مرا جو اس نے زمین میں کھیتی کاٹنے کے لائق ہو جانے کے بعد کیا ہے تو ضمان واجب نہ ہوگی اور اگر مسئلہ مذکورہ میں بیج غلام یا طفل کی طرف سے ہوں

تو پوری پیداوار طفل و غلام کی ہوگی اور مالک زمین کو اس میں سے کچھ نہ ملے گا اور ان دونوں پر کچھ اجرت زمین واجب نہ ہوگی اور نہ تاوان نقصان زمین لازم ہوگا پس تاوان نقصان اس وجہ سے لازم نہ ہوگا کہ دونوں نے زراعت مالک زمین کی اجازت سے کی ہے اور اجرت زمین واجب نہ ہونا جو فرمایا اس سے یہ مراد ہے کہ غلام پر فی الحال اجرت واجب نہ ہوگی مگر بعد آزاد ہونے کے واجب ہوگی اور لڑکے کی صورت میں لڑکے پر فی الحال و بعد بلوغ کے دونوں وقتوں میں اجرت واجب ہوگی پس غلام محجور تو اپنے اقوال کی ضمانت میں بعد آزاد ہونے کے پکڑا جاتا ہے اور طفل آزاد ہونے کے نہیں ماخوذ ہوتا ہے اور طفل محجور کبھی ماخوذ نہیں ہوتا ہے یہ محیط میں ہے۔

**اگر وصی نے یتیم کے بیج لے کر اسی کی زمین میں بوئے اور مزارعت پر گواہ کر لیے☆**

ایک وصی جس یتیم کا وصی تھا اس کی زمین خود مزارعت پر لیا کرتا تھا پس مشایخ میں سے بعض نے فرمایا کہ مطلقاً جائز ہے جیسے کسی دوسرے کو مزارعت پر دینے کا حکم ہے اور بعض نے فرمایا کہ اگر بیج یتیم کی طرف سے ہوں تو نہیں جائز ہے کیونکہ اس میں فی الحال اس کے بیجوں کا اتلاف ۱ ہے اور اگر بیج وصی کی طرف سے ہوں تو جائز ہے کیونکہ وصی اس کی زمین کا اجارہ لینے والا ہو جائے گا پس یہ امر بمنزلہ اس کے ہوا کہ وصی نے خود یتیم کو اجارہ پر مقرر کیا اور یہ امام اعظم رحمہ اللہ کے نزدیک جائز ہے کہ یہ یتیم کے حق میں بہتر ہے اور مختار یہ ہے کہ اگر اجراً المثل یا ضمان المثل یا ضمان نقصان جنم یتیم کے حق میں بہ نسبت اس حصہ پیداوار کے جو اس کو ملتا ہے بہتر ہو تو مزارعت جائز نہ رہے گی (یعنی اس کو یہ تاوان دلایا جائے گا اور تمام پیداوار وصی کی ہوگی) اور اگر حصہ پیداوار یتیم کے حق میں بہتر ہو تو مزارعت جائز ہوگی اس واسطے کہ پوری نظر شفقت یتیم کے حق میں یوں ہی ہے اور امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ اگر وصی نے یتیم کے بیج لے کر اسی کی زمین میں بوئے اور مزارعت

پر گواہ کر لیے تو اس نے یہ بیج قرض لیے اور زمین اجارہ پر لی پس اگر پیداوار یتیم کے حق میں بہتر ہوگی تو اس کو پیداوار ملے گی اور اگر اجرت زمین اس کے حق میں بہتر ہوگی تو اس کو اجرت ملے گی یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔

---

۱۔ اتلاف خاک میں ملاتا یعنی کھلا ہوا نفع نہیں بلکہ ضرر کا احتمال ہے اور احکام وصی ملاحظہ کرو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (5) | 345 | Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

## Chapter Twenty-Two: Regarding the Settlement of Disputes Between the Landowner and the Sharecropper

It should be known that the disputes occurring between a landowner and a sharecropper are of two types. First, when both disagree regarding the validity (jawaz) and invalidity (fasad) of the sharecropping agreement (muzara'ah). That is, one person claims validity, stating that the sharecropping was based on a half, one-third, or one-fourth share, etc., which does not terminate the partnership in the produce. The other person claims a condition that terminates the partnership in the produce. This has several scenarios: first, claiming that sharecropping was based on a certain fixed quantity (e.g., specific qafiz). Second, claiming half the produce plus an additional ten qafiz. Third, claiming half the produce minus ten qafiz. Therefore, if one person claims (1) that the agreement was for half, one-third, or one-fourth share, and the other claims (2) that it was for a certain fixed qafiz, two situations arise. First, if the seeds are provided by the sharecropper: if such a dispute occurs before cultivation, the statement of the one claiming invalidity (fasad)^1 will be accepted, whether it is the landowner or the sharecropper. If both present witnesses, the witnesses of the one claiming validity (jawaz) will be accepted. If such a dispute occurs after cultivation, the statement of the one who provided the seeds will be accepted, whether they claim validity or invalidity, and whether any crop has sprouted or not. If both present witnesses, the witnesses of the one claiming validity will be accepted.

Second, if the seeds are provided by the landowner: in this case, the landowner's position is the same as the sharecropper's in the first scenario. Thus, all the rules mentioned for the sharecropper in the first scenario will apply to the landowner in this scenario. This description pertains to the case where one claims a half or one-third share, etc., and the other claims a fixed number of qafiz. If one claims half the produce and the other claims half the produce plus an additional ten qafiz, there are two scenarios: First, if the seeds belong to the landowner. In this case, if the claim for the additional ten qafiz is made by the owner of the seeds (i.e., the landowner), the statement of the sharecropper, who claims only half the produce, will be accepted, whether the dispute occurs before or after cultivation. If both present their witnesses, the witnesses of the person claiming the additional ten qafiz will be accepted. If the person claiming the additional ten qafiz is the one who did not

provide the seeds (i.e., the sharecropper), then if they have such a dispute (3) before cultivation, the statement of the one claiming validity will be accepted, i.e., the one who provided the seeds. And if the dispute occurs after cultivation, the statement of the one who did not provide the seeds (i.e., the sharecropper) will be accepted. If both present witnesses, the witnesses of the person who proves the additional ten qafiz will be accepted. This is when the seeds belong to the landowner; if the seeds belong to the sharecropper, then the sharecropper will be in the same position as the landowner was in the first scenario. Thus, all rules mentioned for the landowner in this case will apply to the sharecropper.

1. Claimant of invalidity (fasad), i.e., the person claiming the sharecropping agreement is invalid. (1) Claimed validity (jawaz). (2) i.e., claimed invalidity (fasad). (3) i.e., Landowner.

**फ़तावा-ए-आलमगिरी ..... जिल्द (5) | 345 | किताब अल-मुज़ारअत (खेती की साझेदारी की किताब)**

## इक्कीसवाँ अध्याय: ज़मीन के मालिक और काश्तकार (किसान) के बीच मतभेद के विवरण में

यह जानना चाहिए कि ज़मीन के मालिक और किसान के बीच होने वाला मतभेद दो प्रकार का होता है। एक यह कि दोनों बटाई (मुज़ारअत) की वैधता (जवाज़) और अवैधता (फ़साद) के बारे में विवाद करें। यानी, एक व्यक्ति वैधता का दावा करे कि मुज़ारअत आधी, तिहाई, या चौथाई आदि हिस्से की शर्त पर हुई है, जो उपज में साझेदारी को खत्म नहीं करती है, और दूसरा व्यक्ति ऐसी शर्त का दावा करे जो उपज में साझेदारी को खत्म कर देती है। इसकी कई स्थितियाँ हैं: एक यह कि वह किसी निश्चित मात्रा (जैसे कुछ क़फ़ीज़) पर मुज़ारअत का दावा करे। दूसरा यह कि आधी उपज पर दस क़फ़ीज़ अतिरिक्त होने का दावा करे। तीसरा यह कि आधी उपज से दस क़फ़ीज़ कम का दावा करे। अतः यदि एक ने आधी, तिहाई या चौथाई उपज आदि पर मुज़ारअत की शर्त होने का दावा (1) किया और दूसरे ने कुछ निश्चित क़फ़ीज़ पर मुज़ारअत की शर्त होने का दावा (2) किया, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं। पहली यह कि बीज किसान की ओर से हों। यदि खेती से पहले ऐसा विवाद हो, तो फ़साद (अवैधता) के दावेदार^1 की बात मानी जाएगी, चाहे वह ज़मीन का मालिक हो या किसान, और यदि दोनों ने अपने गवाह पेश किए, तो उसके गवाह स्वीकार किए जाएंगे जो खेती की वैधता का दावा करता है। और यदि ऐसा विवाद खेती के बाद हुआ, तो जिसके बीज हैं उसी की बात मानी जाएगी, चाहे वह वैधता का दावा करे या अवैधता का, और चाहे ज़मीन में कुछ फसल उगी हो या नहीं। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो वैधता के दावेदार के गवाह स्वीकार किए जाएंगे।

दूसरी स्थिति यह है कि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों। इस मामले में ज़मीन का मालिक उसी तरह है जैसे पहली स्थिति में किसान था। अतः पहली स्थिति में किसान के लिए जो नियम बताए गए हैं, वे सब इस स्थिति में ज़मीन के मालिक पर लागू होंगे। यह वर्णन उस स्थिति का है जब एक ने आधी या तिहाई आदि हिस्से का दावा किया और दूसरे ने कुछ निश्चित क़फ़ीज़ का दावा किया। और यदि एक ने आधी उपज की शर्त का दावा किया और दूसरे ने आधी उपज के साथ दस क़फ़ीज़ अधिक की शर्त का दावा किया, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बीज ज़मीन के मालिक के हों। इस स्थिति में यदि दस क़फ़ीज़ अधिक होने का दावा बीजों के मालिक यानी ज़मीन के मालिक का हो, तो किसान की बात मानी जाएगी जो केवल आधी उपज का दावा करता है, चाहे यह विवाद खेती से पहले हो या बाद में। यदि दोनों ने अपने-अपने गवाह पेश किए, तो उस व्यक्ति के गवाह

स्वीकार किए जाएंगे जो दस क़फ़ीज़ अधिक की शर्त का दावा करता है। और यदि दस क़फ़ीज़ अधिक का दावा करने वाला वह व्यक्ति है जिसकी ओर से बीज नहीं हैं यानी किसान, तो यदि दोनों ने खेती से पहले ऐसा विवाद (3) किया, तो वैधता के दावेदार की बात मानी जाएगी यानी जिसके बीज हैं (मालिक)। और यदि खेती के बाद विवाद हुआ, तो जिसके बीज नहीं हैं यानी किसान की बात मानी जाएगी। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो जो व्यक्ति दस क़फ़ीज़ अधिक की शर्त साबित करता है उसके गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यह तब है जब बीज ज़मीन के मालिक के हों, और यदि बीज किसान के हों, तो इस स्थिति में किसान वैसा ही होगा जैसे पहली स्थिति में ज़मीन का मालिक था। अतः जो नियम ज़मीन के मालिक के लिए इस स्थिति में बताए गए हैं, वे सब किसान के लिए होंगे।

1. मुद्दई-ए-फ़साद यानी वह व्यक्ति जो मुज़ारअत के अमान्य होने का दावा करता है। (1) वैधता (जवाज़) का दावा किया। (2) यानी अवैधता (फ़साद) का दावा किया। (3) यानी मालिक।

---

## باب بائیس: مالک زمین و کاشتکار کے درمیان اختلاف واقع ہونے کے بیان میں

جاننا چاہیے کہ جو اختلاف مالک زمین و کاشتکار کے درمیان واقع ہوتا ہے وہ دو طرح کا ہوتا ہے۔ ایک یہ کہ دونوں جواز مزارعت و فساد مزارعت میں اختلاف کریں۔ یعنی ایک شخص اس طرح مدعی جواز ہو کہ مزارعت آدھی یا تہائی یا چوتھائی وغیرہ حصے کی شرط سے جو پیداوار میں موجب قطع شرکت نہیں ہے واقع ہوئی ہے اور دوسرا شخص ایسی شرط کا دعویٰ کرے جو پیداوار میں شرکت کو قطع کرتی ہے اور اس کی چند صورتیں ہیں ایک یہ کہ چند قفیز معلومہ پر مزارعت واقع ہونے کا دعویٰ کرے۔ دوم یہ کہ نصف پیداوار پر دس قفیز زیادتی کا دعویٰ کرے۔ سوم یہ کہ نصف پیداوار سے دس قفیز کمی کا دعویٰ کرے پس اگر ایک نے نصف یا تہائی یا چوتھائی وغیرہ حصہ پیداوار پر مزارعت مشروط ہونے کا دعویٰ (۱) کیا اور دوسرے نے چند قفیز معلومہ پر مزارعت مشروط ہونے کا دعویٰ (۲) کیا تو اس میں دو صورتیں ہیں ایک یہ کہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں پس اگر قبل زراعت کے ایسا اختلاف ہو تو مدعی۱۸ فساد کا قول قبول ہو گا خواہ مدعی فساد مالک زمین ہو یا کاشتکار ہو اور دونوں نے اپنے گواہ قائم کیے تو گواہ اس کے مقبول ہوں گے جو جواز زراعت کے ایسا اختلاف کر کے دونوں نے اپنے گواہ قائم کیے تو گواہ اس کے مقبول ہوں گے جو جواز مزارعت کا دعویٰ کرتا ہے اور اگر ایسا اختلاف زراعت کے بعد پڑا تو جس کے بیج ہیں اس کا قول قبول ہوگا خواہ وہ جواز کا مدعی ہو یا فساد کا مدعی ہو خواہ زمین میں کچھ کھیتی اُگی ہو یا نہ اُگی ہو اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو مدعی جواز کے گواہ قبول ہوں گے۔

دوم یہ کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اس صورت میں مالک زمین ویسا ہی جیسا صورت اول میں کاشتکار تھا پس صورت اول میں جو احکام کاشتکار کے واسطے مذکور ہوئے ہیں وہ سب اس صورت میں مالک زمین کے واسطے ثابت ہوں گے یہ بیان اس صورت کا ہے کہ ایک نے نصف و ثلث وغیرہ حصہ کا دعویٰ کیا ہے اور دوسرے نے چند قفیز معلومہ کا دعویٰ کیا ہے اور اگر ایک نے نصف پیداوار مشروط ہونے کا دعویٰ کیا اور دوسرے نے نصف پیداوار کے ساتھ زیادہ دس قفیز مشروط ہونے کا دعویٰ کیا تو اس میں دو صورتیں ہیں اوّل یہ کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اس صورت میں اگر دس قفیز کے زیادہ ہونے کا دعویٰ مدعی بیجوں کا مالک ہو یعنی مالک زمین تو کاشتکار کا قول جو فقط نصف پیداوار مشروط ہونے کا دعویٰ کرتا ہے مقبول ہو گا خواہ ایسا اختلاف قبل زراعت کے ہو یا بعد زراعت کے واقع ہو۔ اگر دونوں نے اپنے اپنے گواہ قائم کیے تو جو شخص دس قفیز زیادہ مشروط ہونے کا دعویٰ کرتا ہے اس کے گواہ مقبول ہوں گے اور اگر دس قفیز زیادہ مشروط ہونے کا مدعی وہ شخص ہو جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں یعنی کاشتکار پس اگر دونوں نے قبل زراعت کے ایسا اختلاف (۳) کیا تو مدعی جواز کا قول قبول ہوگا یعنی جس کی طرف سے بیج ہیں اور اگر بعد زراعت کے ایسا اختلاف کیا تو جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں یعنی کاشتکار کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں نے اپنے گواہ قائم کیے تو جو شخص دس قفیز زیادہ مشروط ہونے کو ثابت کرتا ہے اس کے گواہ قبول ہوں گے یہ اس وقت ہے کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اگر کاشتکار کی طرف سے ہوں تو اس صورت میں کاشتکار ویسا ہی ہوگا جیسا صورت اوّل میں مالک زمین ہے پس جو احکام مالک زمین کے واسطے اس صورت میں مذکور ہوئے ہیں وہ سب اس صورت میں کاشتکار کے واسطے ہوں گے۔

۱۔ مدعی فساد یعنی جو شخص مزارعت فاسد ہونے کا مدعی ہے۔ (۱) جواز کا دعویٰ کیا۔ (۲) یعنی فساد کا دعویٰ کیا۔ (۳) یعنی مالک

---

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume (8) Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping) 346**

This applies when one party claims that half the share was stipulated, while the other claims that half plus ten *qafiz* (a unit of measure) was stipulated. If the second party claims a share ten *qafiz* less than half, there are two scenarios: First, if the seeds are provided by the landowner. In this case, there are further two possibilities: one is where the dispute arises after cultivation. If crops have grown in the field and the one claiming the half share is the party who did not provide the seeds (i.e., the cultivator), then the statement of the landowner shall be accepted. If both provide witnesses, the witnesses of the cultivator shall be accepted. If no crops have grown in the field, the statement of the landowner shall be accepted; and if both provide witnesses, the witnesses of the party who provided the seeds (i.e., the landowner) shall be accepted. This pertains to when the dispute occurs after cultivation. The second scenario is when the dispute occurs before cultivation. Here too, if the party claiming the validity (of the contract) is the one who provided the seeds, his statement shall be accepted; and if both provide witnesses, his witnesses shall be accepted. If the cultivator claims validity, the landowner's statement and the cultivator's witnesses shall be accepted, as mentioned in 'al-Dhakhira'. All of the above applies when both parties dispute whether the sharecropping contract (*'aqd al-muzara'ah*) is valid (*ja'iz*) or invalid (*fasid*). If both agree on the validity of the contract but dispute the stipulated amount—for instance, if the party providing seeds says to the other, "I stipulated one-third of the produce for you," and the other says, "No, rather you stipulated half of the produce for me"—then there are two scenarios: First, if the seeds are provided by the landowner. In this case, if the dispute arises before cultivation and neither or both lack witnesses, each shall be required to take an oath regarding their claim, starting with the cultivator.

Our scholars stated that this is the first opinion of Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him). His second opinion is that the oath should start with the landowner. Some scholars mentioned that his second opinion is that the oath should start with the cultivator, and this is also the opinion of Imam Muhammad (may Allah have mercy on him). If both parties take the oath, the judge (*Qazi*) shall annul the contract between them, provided one of them requests annulment. If one party provides witnesses after both have sworn, and if the judge has already annulled the contract, he shall not entertain those witnesses. However, if the judge has not yet annulled the contract, the witnesses shall be accepted. Before mutual oaths take place, if either

party provides witnesses for their claim, they shall be accepted. If both provide witnesses, the cultivator's witnesses shall be accepted. This applies if the dispute occurs before cultivation. If the dispute occurs after cultivation, if either party provides witnesses, they shall be accepted; and if both provide witnesses, the cultivator's witnesses shall be accepted. If neither has witnesses, they shall not be required to take mutual oaths. All this applies when the seeds are from the landowner. If the seeds are provided by the cultivator, then in this scenario, the cultivator stands in the same position as the landowner in the first scenario. Thus, if both provide witnesses, the landowner's witnesses shall be accepted. If neither has witnesses, and the dispute is after cultivation, mutual oaths shall not be taken. If the dispute is before cultivation, mutual oaths shall be taken, starting with the landowner.

The scholars stated that the mention in the book regarding mutual oaths in this matter is predicated on the situation where the owner of the seeds says, "I am not breaking the sharecropping agreement." If he says, "I am breaking the sharecropping agreement," then mutual oaths carry no significance.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) किताब अल-मज़ारा (बटाईदारी की किताब) 346**

यह उस समय है जब एक ने आधे हिस्से की शर्त का दावा किया और दूसरे ने आधे के साथ दस क़फ़ीज़ अधिक की शर्त का दावा किया। यदि दूसरे ने आधे से दस क़फ़ीज़ कम की शर्त का दावा किया हो, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, और इसमें भी दो स्थितियाँ हैं—एक यह कि मतभेद खेती के बाद हो। अतः यदि ज़मीन में कुछ फ़सल उगी हो और आधा हिस्सा तय होने का दावा करने वाला वह व्यक्ति हो जिसकी ओर से बीज नहीं हैं (यानी बटाईदार/काश्तकार), तो ज़मीन के मालिक का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो बटाईदार के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। और यदि ज़मीन में कुछ फ़सल न उगी हो, तो ज़मीन के मालिक का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो गवाह भी उसी के स्वीकार किए जाएंगे जिसकी ओर से बीज हैं, यानी ज़मीन के मालिक के। यह उस समय की बात है जब खेती के बाद दोनों में मतभेद हुआ। और दूसरी स्थिति यह है कि दोनों ने खेती से पहले मतभेद किया, तो इसमें भी दो स्थितियाँ हैं कि अनुबंध की वैधता का दावा वह व्यक्ति करे जिसकी ओर से बीज हैं, तो उसका कथन स्वीकार किया जाएगा, और यदि दोनों गवाह पेश करें तो गवाह भी उसी के स्वीकार होंगे। और यदि वैधता का दावा बटाईदार करे, तो ज़मीन के मालिक का कथन और बटाईदार के गवाह स्वीकार होंगे, जैसा कि 'अज़-ज़खीरा' में उल्लेखित है। यह सब जो वर्णित हुआ है, उस स्थिति में है जब दोनों ने बटाईदारी के अनुबंध (अक़्द-ए-मज़ारा) के वैध या अवैध होने पर मतभेद किया हो। और यदि दोनों अनुबंध के वैध होने पर सहमत हों लेकिन तयशुदा मात्रा में मतभेद हो—उदाहरण के लिए, जिसकी ओर से बीज हैं उसने दूसरे से कहा कि 'मैंने तुम्हारे लिए एक-तिहाई पैदावार की शर्त रखी है' और दूसरे ने कहा कि 'नहीं, बल्कि आपने मेरे लिए आधी पैदावार की शर्त रखी है'—तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: पहली यह कि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, और इस स्थिति में यदि खेती से पहले मतभेद हुआ और दोनों में से किसी के पास या दोनों के पास गवाह नहीं हैं, तो दोनों से उनके दावों पर शपथ (क़सम) ली जाएगी और शपथ लेने की शुरुआत बटाईदार से की जाएगी।

हमारे आचार्यों (मशाइख़) ने फ़रमाया कि इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) का पहला मत यही है। और इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) का दूसरा मत यह है कि पहले ज़मीन के मालिक से शपथ ली जाएगी। कुछ आचार्यों ने फ़रमाया कि इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) का दूसरा मत यह है कि पहले बटाईदार से शपथ ली जाएगी और यही इमाम मुहम्मद (रह.) का मत है। फिर यदि दोनों ने शपथ ले ली, तो न्यायाधीश (क़ाज़ी) दोनों

के बीच अनुबंध को रद्द कर देगा, बशर्ते कि दोनों में से कोई रद्द करने का अनुरोध करे। और यदि दोनों के शपथ लेने के बाद किसी एक ने गवाह पेश किए, तो यदि क़ाज़ी दोनों के बीच अनुबंध रद्द कर चुका हो, तो वह उसके गवाहों पर ध्यान नहीं देगा। और यदि अभी तक क़ाज़ी ने अनुबंध रद्द न किया हो, तो उसके गवाह स्वीकार्य होंगे। और आपसी शपथ होने से पहले दोनों में से जिसने अपने दावे पर गवाह पेश किए, उसके गवाह स्वीकार किए जाएंगे। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो बटाईदार के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यह उस समय है जब खेती से पहले दोनों में मतभेद हुआ हो। और यदि खेती के बाद दोनों में मतभेद हुआ, तो यदि दोनों में से किसी ने गवाह पेश किए, तो उसके गवाह स्वीकार होंगे। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो बटाईदार के गवाह स्वीकार होंगे। यदि दोनों के पास गवाह नहीं हैं, तो दोनों से आपसी शपथ नहीं ली जाएगी। यह सब उस स्थिति में है जब बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों। और यदि बीज बटाईदार की ओर से हों, तो उस स्थिति में बटाईदार की वही स्थिति है जो पहली स्थिति में ज़मीन के मालिक की थी। अतः यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो ज़मीन के मालिक के गवाह स्वीकार होंगे। और यदि दोनों के पास गवाह न हों, तो यदि खेती के बाद मतभेद हो, तो दोनों से आपसी शपथ नहीं ली जाएगी। और यदि खेती से पहले मतभेद हो, तो दोनों से आपसी शपथ ली जाएगी और शपथ की शुरुआत ज़मीन के मालिक से की जाएगी।

आचार्यों ने फ़रमाया कि पुस्तक में जो यह उल्लेख है कि इस मामले में दोनों से आपसी शपथ ली जाएगी, यह उस स्थिति पर आधारित है जब बीजों के मालिक ने यह कहा हो कि 'मैं बटाईदारी का अनुबंध नहीं तोड़ता हूँ'। और यदि उसने कहा कि 'मैं बटाईदारी का अनुबंध तोड़ता हूँ', तो आपसी शपथ का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

---

یہ اس وقت ہے کہ ایک نے نصف حصہ مشروط ہونے کا اور دوسرے نے نصف کے ساتھ دس قفیز زیادہ مشروط ہونے کا دعویٰ کیا۔ اگر دوسرے نے نصف سے دس قفیز کم مشروط ہونے کا دعویٰ کیا ہو تو اس میں دو صورتیں ہیں اول یہ کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہو اور اس میں بھی دو صورتیں ہیں ایک یہ کہ اختلاف بعد زراعت کے ہو پس اگر زمین میں کچھ کھیتی اُگی ہو اور نصف مشروط ہونے کا مدعی وہ ہو جس کی طرف سے بیج نہیں ہیں یعنی کاشتکار تو قول مالک زمین کا قبول ہو گا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو گواہ کاشتکار کے قبول ہوں گے اور اگر زمین میں کچھ کھیتی اُگی نہ ہو تو قول مالک زمین کا قبول ہو گا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو گواہ بھی اسی کے جس کی طرف سے بیج ہیں یعنی مالک زمین کے قبول ہوں گے۔ یہ اس وقت ہے کہ بعد زراعت کے دونوں نے اختلاف کیا اور دوم یہ کہ دونوں نے قبل زراعت اختلاف کیا تو اس میں بھی دو صورتیں ہیں کہ مدعی صحت وہ شخص ہو۔ جس کی طرف سے بیج ہیں پس قول اسی کا قبول ہو گا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو گواہ بھی اسی کے قبول ہوں گے اور اگر مدعی صحت کاشتکار ہو تو قول مالک زمین کا اور گواہ کاشتکار کے قبول ہوں گے کذا فی الذخیرہ۔ یہ سب جو مذکور ہوا ہے اس صورت میں ہے کہ دونوں نے عقد مزارعت کے جائز ہونے یا فاسد ہونے میں اختلاف کیا اور اگر دونوں نے عقد جائز ہونے پر اتفاق کیا مگر مقدار مشروط میں اختلاف کیا مثلاً جس کی طرف سے بیج ہیں اس نے دوسرے سے کہا کہ میں تیرے واسطے تہائی پیداوار شرط کی ہے اور دوسرے نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے میرے واسطے نصف پیداوار شرط کی ہے تو اس میں دو صورتیں ہیں اول یہ کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اس صورت میں اگر قبل زراعت کے اختلاف واقع ہوا اور دونوں میں سے کسی ایک کے پاس یا دونوں

کے پاس گواہ نہیں ہیں تو دونوں سے ہر ایک کے دعویٰ پر قسم لی جائے گی اور پہلے کاشتکار سے قسم لینی شروع کی جائے گی۔

ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ امام ابو یوسفؒ کا پہلا قول ہے اور دوسرا قول امام ابو یوسفؒ کا یہ ہے کہ پہلے مالک زمین سے قسم لینی شروع کی جائے گی اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ امام ابو یوسفؒ کا دوسرا قول یہ ہے کہ پہلے کاشتکار سے قسم لی جائے گی اور یہی امام محمدؒ کا قول ہے پھر اگر دونوں نے قسم کھائی تو قاضی دونوں کے درمیان عقد فسخ کر دے گا بشرطیکہ دونوں میں سے کوئی فسخ کی درخواست کرے اور اگر دونوں کے قسم کھا لینے کے بعد کسی ایک نے گواہ قائم کیے پس اگر قاضی دونوں کے درمیان سے عقد فسخ کر چکا ہو تو اس کے گواہوں کی طرف التفات نہ کرے گا اور اگر ہنوز قاضی نے عقد فسخ نہ کیا ہو تو اس کے گواہ مقبول ہوں گے اور باہمی قسم واقع ہونے سے پہلے دونوں میں سے جس نے اپنے دعویٰ پر گواہ قائم کیے اس کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو کاشتکار کے گواہ قبول ہوں گے یہ اس وقت ہے کہ قبل زراعت کے دونوں نے اختلاف کیا اور اگر زراعت کے بعد دونوں نے اختلاف کیا پس اگر دونوں میں سے کسی نے گواہ قائم کیے تو اس کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو کاشتکار کے گواہ قبول ہوں گے۔ اگر دونوں کے پاس گواہ نہیں تو دونوں سے باہم قسم نہ لی جائے گی یہ سب اس صورت میں ہے کہ بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں تو اس صورت میں کاشتکار ویسا ہی ہے جیسا کہ صورت اول میں مالک زمین ہے پس اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو گواہ مالک زمین کے مقبول ہوں گے اور اگر دونوں کے پاس گواہ نہ ہوں پس اگر بعد زراعت کے اختلاف ہو تو دونوں سے باہمی قسم نہ لی جائے گی اور اگر قبل زراعت کے اختلاف ہو تو دونوں سے باہمی قسم لی جائے گی اور پہلے مالک زمین سے قسم شروع کی جائے گی۔

مشائخ نے فرمایا کہ یہ جو کتاب میں مذکور ہے کہ اس مسئلہ میں دونوں سے باہمی قسم لی جائے گی یہ محمول ایسی صورت پر ہے کہ بیجوں کے مالک نے یہ کہا ہو کہ میں مزارعت کو نہیں توڑتا ہوں اور اگر اس نے کہا کہ میں مزارعت کو توڑتا ہوں تو باہمی قسم کے کچھ معنی نہیں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8, Kitab al-Muzara'ah (The Book of Cultivation), Page 327**

...All that we have mentioned pertains to the scenario where both parties agree that the seeds were provided by that person [Footnote A] — as stated in *al-Muhit*. If one or both of them die and their heirs dispute the stipulated shares, the word of the landlord's heirs and the witnesses of the farmer's heirs shall be accepted. If they dispute as to whose side provided the seeds, the statement of the farmer and his heirs [Footnote 1] shall be accepted, while the witnesses of the landlord or his heirs shall be accepted. If they dispute the condition regarding the seeds and both parties present witnesses, the landlord's witnesses shall not be accepted because he is the claimant (*kharij*), and the farmer is the "possessor" (*sahib al-yad*), meaning he is currently in possession — this is mentioned in *Muhit al-Sarkhasi*. If a person cultivated someone else's land, and upon harvesting the crop, the landlord claimed, "You were my hired laborer; you farmed with my seeds," while the farmer claimed, "I was the sharecropper; I farmed with my own seeds," the farmer's statement shall be accepted because both agreed that the seeds were in the farmer's possession. Thus, in this case, the word of the possessor is accepted — this is found in *Fatawa Qazi Khan*.

If a person gives his land and seeds to two individuals on the condition that they both cultivate it this year, and whatever Allah Almighty produces from it, one-third shall belong to that person and two-thirds to the landlord, while for the other cultivator, the landlord pays one hundred dirhams, then this sharecropping agreement is valid according to the condition. This is because the landlord hired one for a known consideration (i.e., one hundred dirhams) for a specified period, and hired the other in exchange for a portion of the produce for a specified period. Each of these two contracts is valid individually, and thus they remain valid when combined. If the land yields significant produce and both workers dispute each other, each claiming, "I am the one for whom the landlord stipulated the one-third share," the statement of the landlord shall be accepted.

If each of the two presents witnesses that the one-third was stipulated for him, the one acknowledged by the landlord will receive the one-third produce based on that acknowledgement, and the other will receive one-third produce based on his witnesses. However, he will not receive any wages because entitlement to a share of produce necessitates that wages be "negated" [Footnote 2] for the one whom the landlord acknowledged. If the land yields nothing and both claim, "I am the one for

whom the landlord fixed the wages," the landlord's statement shall be accepted. If both present witnesses, the landlord must pay one hundred dirhams in wages to each: to one because the landlord acknowledged him, and to the other because he proved his claim through witnesses. In this case, as well as the first scenario, no weight shall be given to the landlord's witnesses in opposition to the witnesses of the two workers.

If a landlord gives his land to two farmers on the condition that they both use their own seeds to cultivate it, and of the produce, a specific one [Footnote 3] receives half, and the landlord receives one hundred dirhams in rent for that half, while for the other half, the second farmer receives one-third produce and the landlord receives one-sixth, then this is valid. This is because he leased his land to both: half the land to one specific farmer for one hundred dirhams rent, and half to the other in exchange for [Footnote A] half its produce...

**Footnotes:** A - This person, meaning someone designated by both, whether the landowner or the farmer; the condition of the share, for instance, the landlord's heirs said a quarter was stipulated for the farmer, while they said no, the seeds were stipulated for the landowner. 2 - *Muntafi* means non-existent, implying that whoever receives produce does not receive one hundred dirhams. 3 - *Khas* (Specific) means one person was specifically designated. (1) - When the farmer died.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8, किताबुल मुज़ारअह (खेती-बाड़ी की किताब), पृष्ठ 327**

...ये सब जो हमने उल्लेख किया है, उस स्थिति में है जब दोनों इस बात पर सहमत हों कि बीज उस व्यक्ति [फुटनोट अ] की ओर से हैं - जैसा कि 'अल-मुहीत' में है। यदि उनमें से एक या दोनों मर गए और उनके उत्तराधिकारियों ने हिस्सों की शर्त में विवाद किया, तो ज़मीन के मालिक के उत्तराधिकारियों का कथन और किसान के उत्तराधिकारियों के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यदि वे इस बात पर विवाद करें कि बीज किसकी ओर से थे, तो किसान और उसके वारिसों (1) का कथन स्वीकार किया जाएगा, और ज़मीन के मालिक या उसके वारिसों के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। यदि उन्होंने बीजों की शर्त पर विवाद किया और दोनों पक्षों ने गवाह पेश किए, तो ज़मीन के मालिक के गवाह स्वीकार नहीं किए जाएंगे क्योंकि वह दावेदार (ख़ारिज) है, और किसान 'साहिबुल यद' है यानी फिलहाल उसका कब्ज़ा है - यह 'मुहीत सरख़सी' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे की ज़मीन में खेती की, फिर जब फसल काटी गई तो ज़मीन के मालिक ने कहा, "तुम मेरे मज़दूर थे, तुमने मेरे बीजों से खेती की थी," और किसान ने कहा, "मैं हिस्सेदार किसान (काश्तकार) था, मैंने अपने बीजों से खेती की है," तो किसान का कथन स्वीकार किया जाएगा क्योंकि दोनों इस बात पर सहमत थे कि बीज किसान के कब्ज़े में थे। अतः इस स्थिति में कब्ज़ा रखने वाले का कथन स्वीकार होगा - यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन और बीज दो लोगों को इस शर्त पर दिए कि दोनों इस साल उसमें खेती करें, और अल्लाह तआला जो भी उसमें पैदा करे, उसमें से उस एक व्यक्ति का एक-तिहाई होगा और ज़मीन के मालिक का दो-तिहाई होगा, और दूसरे किसान के लिए ज़मीन के मालिक पर सौ दिरहम होंगे, तो यह 'मुज़ारअत' (हिस्सेदारी) शर्त के अनुसार वैध है। क्योंकि ज़मीन के मालिक ने उनमें से एक को एक ज्ञात मुआवज़े यानी सौ दिरहम के बदले एक ज्ञात अवधि के लिए किराए पर रखा, और दूसरे को पैदावार के हिस्से के बदले एक ज्ञात अवधि तक काम करने के लिए नियुक्त किया। इन दोनों अनुबंधों (अक़्द) में से प्रत्येक अपने आप में वैध है, इसलिए उन्हें मिलाने की स्थिति में भी यह वैध है। फिर यदि ज़मीन में बहुत पैदावार हुई और दोनों काम करने वालों के बीच विवाद हो गया और प्रत्येक ने दावा किया कि "मैं वह हूँ जिसके लिए मालिक ने एक-तिहाई पैदावार की शर्त रखी है," तो ज़मीन के मालिक का कथन स्वीकार किया जाएगा।

यदि उनमें से प्रत्येक ने गवाह पेश किए कि "मेरे लिए एक-तिहाई शर्त रखी गई थी," तो जिसके लिए ज़मीन के मालिक ने इक़रार (स्वीकृति) किया है, वह ज़मीन के मालिक के इक़रार से एक-तिहाई

पैदावार ले लेगा, और दूसरा अपने गवाहों के आधार पर एक-तिहाई पैदावार ले लेगा। लेकिन उसे मज़दूरी में से कुछ नहीं मिलेगा, क्योंकि पैदावार के हिस्से का हक़दार होने के साथ यह आवश्यक है कि मज़दूरी 'मुनतफ़ी' (शून्य) [फुटनोट 2] हो जिसके लिए ज़मीन के मालिक ने इक़रार किया है। और यदि ज़मीन में कुछ पैदा न हुआ और दोनों में से प्रत्येक ने दावा किया कि "मैं वह हूँ जिसके लिए मालिक ने मज़दूरी तय की है," तो ज़मीन के मालिक का कथन स्वीकार किया जाएगा। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो ज़मीन के मालिक पर प्रत्येक के लिए सौ दिरहम मज़दूरी वाजिब होगी: एक के लिए इस कारण कि मालिक ने उसके लिए इक़रार किया है, और दूसरे के लिए इस कारण कि उसने अपने गवाहों से इसे साबित किया है। इस स्थिति में और पहली स्थिति में भी, उन दोनों के गवाहों के मुक़ाबले में ज़मीन के मालिक के गवाहों पर ध्यान नहीं दिया जाएगा।

और यदि ज़मीन के मालिक ने अपनी ज़मीन दो किसानों को इस शर्त पर दी कि दोनों अपने बीजों से उसमें खेती करें, और जो कुछ उसमें पैदा होगा, उसमें से 'ख़ास' (विशेष) [फुटनोट 3] उस एक के लिए आधी पैदावार होगी और ज़मीन के मालिक के लिए उस पर सौ दिरहम किराया वाजिब होगा, और दूसरे के लिए एक-तिहाई पैदावार और ज़मीन के मालिक के लिए छठा हिस्सा होगा, तो यह वैध है। क्योंकि उसने अपनी ज़मीन दोनों को पट्टे (इजारा) पर दी है, यानी आधी ज़मीन एक विशेष किसान को सौ दिरहम किराए के बदले दी, और आधी ज़मीन दूसरे को उस आधे की पैदावार में से [फुटनोट अ]...

**फुटनोट:** अ - वह व्यक्ति यानी जिसे दोनों ने तय किया हो, चाहे वह ज़मींदार हो या किसान; हिस्से की शर्त यानी उदाहरण के लिए मालिक के वारिसों ने कहा कि किसान के लिए चौथाई हिस्सा शर्त थी और उन्होंने कहा कि नहीं बल्कि बीज ज़मींदार के लिए शर्त थी। 2 - 'मुनतफ़ी' यानी न होना, तात्पर्य यह कि जिसके लिए पैदावार है, उसके लिए सौ दिरहम नहीं थे। 3 - 'ख़ास' यानी एक को तय किया। (1) - जब किसान मर गया।

---

ہیں۔ یہ سب جو ہم نے ذکر کیا اس صورت میں ہے کہ دونوں نے اس امر پر اتفاق کیا کہ بیج اس شخص ا کی طرف سے ہیں کذا فی المحیط۔ اگر دونوں میں سے ایک یا دونوں مر گئے اور دونوں کے وارثوں نے حصص کی شرط میں اختلاف کیا تو مالک زمین کے وارثوں کا قول اور کاشتکار کے وارثوں کے گواہ قبول ہوں گے۔ اگر دونوں نے اس طرح اختلاف کیا کہ بیج کس کی طرف سے ہیں تو قول کاشتکار اور اس کے وارثوں(۱) کا قبول ہوگا اور گواہ مالک زمین یا اس کے وارثوں کے قبول ہوں گے۔ اگر دونوں نے بیجوں کی شرط میں اختلاف کیا اور دونوں نے گواہ قائم کیے تو گواہ مالک زمین کے قبول نہ ہوں گے کیونکہ وہی خارج ہے اور کاشتکار صاحب الید یعنی فی الحال قابض ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کی زمین میں زراعت کی پھر جب کھیتی کانی تو مالک زمین نے کہا کہ تو میرا اجیر تھا تو نے میرے بیجوں سے زراعت کی تھی اور کاشتکار نے کہا کہ میں کاشتکار تھا۔ میں نے اپنے بیجوں سے زراعت کی ہے تو قول کاشتکار کا قبول ہو گا کیونکہ دونوں نے اس امر پر اتفاق کیا ہے کہ بیج کاشتکار کے قبضہ میں تھے پس اس صورت میں قول قابض کا قبول ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنی زمین و بیج دو شخصوں کو اس شرط سے دیے کہ دونوں اس میں اس سال زراعت کریں اور جو کچھ اس میں اللہ تعالیٰ پیدا کرے اس میں سے اس شخص کا تہائی ہوگا اور مالک زمین کا دوتہائی ہوگا اور دوسرے کاشتکار کے واسطے مالک زمین پر سو درہم ہوں گے تو یہ مزارعت موافق شرط کے جائز ہے کیونکہ مالک زمین نے دونوں میں سے ایک کو بعض بدل معلوم یعنی سو درہم کے کسی قدر مدت معلومہ کے واسطے اجارہ پر مقرر کیا اور دوسرے کو حصہ پیداوار کے عوض مدت معلومہ تک کام کرنے کے واسطے اجارہ پر مقرر کیا اور ان دونوں عقدوں میں

سے ہر ایک تنہا جائز ہے پس دونوں کو جمع کر دینے کی صورت میں بھی جائز ہے پھر اگر زمین میں بہت پیداوار ہوئی اور دونوں عالموں نے باہم اختلاف کیا اور ہر ایک نے دعویٰ کیا کہ مالک نے جس کے واسطے تہائی پیداوار شرط کی ہے وہ میں ہوں تو مالک زمین کا قول قبول ہو گا۔

اگر دونوں میں سے ہر ایک نے گواہ قائم کئے کہ میرے واسطے تہائی مشروط تھی تو جس کے واسطے مالک زمین نے تہائی کا اقرار کیا ہے وہ مالک زمین کے اقرار سے تہائی پیداوار لے لے گا اور دوسرا اپنے گواہوں سے تہائی پیداوار لے لے گا مگر اس کو اجرت میں سے کچھ نہ ملے گا اس واسطے کہ تہائی پیداوار کے استحقاق کے ساتھ ضرور ہے کہ اجرت منفی ۲ ہے ہو جس کا مالک زمین نے اقرار کیا ہے اور اگر زمین میں کچھ نہ پیدا ہوا اور دونوں میں سے ہر ایک نے دعویٰ کیا کہ جس کے واسطے مالک نے اجرت قرار دی ہے وہ میں ہوں تو قول مالک زمین کا قبول ہوگا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو مالک زمین پر ہر ایک کے واسطے سو درہم اجرت واجب ہوگی پس ایک کے واسطے اس وجہ سے کہ مالک نے اس کے واسطے اقرار کیا ہے اور دوسرے کے واسطے اس وجہ سے کہ اس نے اپنے گواہوں سے ثابت کی ہے اور اس صورت میں اور نیز صورت اول میں ان دونوں کے گواہوں کے مقابلہ میں مالک زمین کے گواہوں کی طرف التفات نہ کیا جائے گا اور اگر مالک زمین نے اپنی زمین دو کاشتکاروں کو اس شرط سے دی کہ دونوں اپنے بیجوں سے اس میں زراعت کریں اور جو کچھ اس میں پیدا ہو گا اس میں سے خاص ۳ اس ایک کے واسطے نصف پیداوار ہو گی اور مالک زمین کے واسطے اس پر سو درہم اجرت واجب ہوگی اور دوسرے کے واسطے تہائی پیداوار اور مالک زمین کے واسطے چھٹا حصہ ہو گا تو یہ جائز ہے اس واسطے کہ اس نے اپنی زمین دونوں کو اجارہ پر دی یعنی نصف زمین خاص ایک کاشتکار کو بعوض سو درہم اجرت کے دی اور نصف زمین دوسرے کو اس نصف کی پیداوار میں سے ا

**حواشی:** ۱ اس شخص یعنی کسی کو دونوں نے معین کیا خواہ زمین دار یا کاشتکار ہو تو حصہ کی شرط یعنی مثلاً مالک کے ورثاء نے کہا کہ کاشتکار کے لیے چہارم شرط تھی اور انھوں نے کہا کہ نہیں بلکہ بیج زمین دار کے لیے شرط تھی۔ ۲ منتفی یعنی ندارد ہو مراد یہ کہ جس کے لئے پیداوار ہے اس کے لئے سو درہم نہیں تھے۔ ۳ خاص یعنی ایک کو معین کیا۔ (۱) جب کاشتکار مر گیا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 438 Book of Muzara'ah (Agricultural Partnership)**

The land was given on the condition of providing one-third of the total produce 1. Each of these two contracts is valid individually; therefore, they are also valid collectively. Subsequently, if both cultivated the aforementioned land and no crop was produced, and each said to the landowner, "I stipulated a one-sixth share of the produce for you," then each person's statement regarding what they believe was stipulated shall be accepted. If both present their respective witnesses, the landowner's witnesses shall be accepted. If the land produced an abundant crop and each person claimed to be the one who agreed to pay the land's rent (ujrat), while the landowner claimed rent from one and a one-sixth share of the produce from the other, the landowner shall take the rent from the one he claimed rent from, because both agree that rent was stipulated for him. Regarding the other, the owner claimed a portion of the produce while he denies it; thus, the denier's statement shall be accepted, and the landowner will be told, "You claimed a one-sixth share from him, produce your witnesses." If both present witnesses, the landowner's witnesses shall be accepted.

If two individuals gave their land to one cultivator on the condition that he farm it with his own seeds and labor, with two-thirds of the produce going to the cultivator and one-third specifically to one owner, and for the other owner's share, an equivalent compensation (sood-ham) is due from the cultivator, this is permissible. Thereafter, if there is a high yield and each owner claims that the one-third share was stipulated for him, the cultivator's word shall be accepted. However, if both owners present witnesses for their respective claims, each shall receive one-third of the produce, and the cultivator's witnesses shall not be accepted against their witnesses.

A person gave his land and seeds to two cultivators on the condition that one specifically receives one-third of the produce and the other receives twenty 'faqeer' (a unit of measure) from the produce, with the remainder belonging to the landowner. Both cultivated the land and there was a high yield. The cultivator for whom one-third was stipulated shall receive one-third, and the remaining two-thirds shall belong to the landowner. For the other cultivator, an 'Ajr-ul-Misl' (customary wage) shall be due for his work, whether anything grew in the land or not. This is because the contract of muzara'ah between the owner and the first cultivator (for whom one-third was stipulated) is valid, but it is 'fasid' (void/defective) between the owner and the second cultivator. However, the contract with one is connected to the other by a

conjunction, but not stipulated within it. If both cultivators claim the one-third was for them, the landowner's word is accepted. If both present witnesses, each cultivator receives one-third: one because the landowner acknowledged it for him, and the other because he proved it through witnesses. If the land produced nothing and both cultivators claim to be the one entitled to 'Ajr-ul-Misl', the landowner's statement as to who is entitled shall be accepted. If both present witnesses, the landowner's witnesses are preferred because he is proving the validity of the contract between himself and the other cultivator, whereas the cultivator is denying it. Priority is given to the witnesses that prove the validity of the contract. If two owners give their land to one cultivator and the seeds are provided by the cultivator, then in all the cases mentioned, the same rules will apply for the cultivator as were mentioned for the landowner who provided the seeds in the aforementioned problem, for they are identical in meaning. Thus it is mentioned in 'Al-Mabsut'.

---

1. "Gave on the basis of giving," meaning one-third of the total produce of the land should be given. For example, if the total is 300 maunds, the cultivator gives 100 maunds from his half-share, which constitutes one-third of the total land's produce.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 438 किताबुल-मुज़ारआत (कृषि साझेदारी की पुस्तक)**

पूरी ज़मीन की पैदावार का एक तिहाई देने की शर्त पर दी 1 और इन दोनों अनुबंधों (अक़्द) में से प्रत्येक व्यक्तिगत रूप से सही है। अतः सामूहिक रूप से भी सही है। फिर यदि दोनों ने उक्त भूमि में खेती की और भूमि में कुछ भी उत्पन्न न हुआ, तो उनमें से प्रत्येक ने भूमि स्वामी से कहा कि मैंने तेरे लिए खेती का छठा भाग तय किया था, तो ऐसी स्थिति में प्रत्येक के दावे के अनुसार उसकी बात स्वीकार की जाएगी। और यदि दोनों ने अपने-अपने गवाह पेश किए, तो भूमि स्वामी के गवाह स्वीकार किए जाएंगे। और यदि भूमि में प्रचुर मात्रा में फसल हुई और दोनों में से प्रत्येक ने दावा किया कि जिसने भूमि का किराया (उजरत) देने की शर्त रखी थी वह मैं हूँ, और भूमि स्वामी ने उनमें से एक पर किराये का दावा किया और दूसरे पर उपज के छठे हिस्से का दावा किया, तो भूमि स्वामी जिससे किराये का दावा कर रहा है, उससे किराया ले लेगा क्योंकि दोनों इस बात पर सहमत हैं कि किराया तय था। और दूसरे पर स्वामी ने उपज के कुछ हिस्से का दावा किया है जबकि वह इससे इनकार कर रहा है, तो इनकार करने वाले की बात मानी जाएगी और भूमि स्वामी से कहा जाएगा कि तुमने उस पर छठे हिस्से का दावा किया है, उसके गवाह पेश करो। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो भूमि स्वामी के गवाह स्वीकार किए जाएंगे।

और यदि दो व्यक्तियों ने अपनी भूमि एक किसान को इस शर्त पर दी कि वह अपने बीजों और श्रम से खेती करे और जो कुछ भी पैदा होगा उसमें से दो-तिहाई किसान का होगा और एक-तिहाई विशेष रूप से उस एक स्वामी का होगा, और दूसरे स्वामी के हिस्से के बदले किसान पर 'सूद-हम' (समान मुआविज़ा/किराया) वाजिब होगा, तो यह जायज़ है। फिर यदि उक्त भूमि में अधिक पैदावार हुई और दोनों स्वामियों में से प्रत्येक ने दावा किया कि जिसके लिए एक-तिहाई उपज तय थी वह मैं हूँ, तो किसान की बात स्वीकार की जाएगी। और यदि दोनों स्वामियों ने अपने-अपने दावे के गवाह पेश किए, तो प्रत्येक को एक-तिहाई उपज मिलेगी और उन दोनों के गवाहों के मुकाबले में किसान के गवाह स्वीकार नहीं किए जाएंगे।

एक व्यक्ति ने दो किसानों को अपनी भूमि और बीज इस शर्त पर दिए कि विशेष रूप से इस किसान को एक-तिहाई उपज मिलेगी और दूसरे को उपज में से बीस 'फ़क़ीर' (एक माप) मिलेंगे, और शेष भूमि स्वामी का होगा। फिर दोनों ने खेती की और पैदावार बहुत हुई, तो जिस किसान के लिए एक-तिहाई तय था उसे एक-तिहाई मिलेगा और शेष दो-तिहाई भूमि स्वामी का होगा। और दूसरे किसान के लिए उसके काम का 'अज्र-उल-मिस्ल' (प्रचलित पारिश्रमिक) वाजिब होगा, चाहे ज़मीन में कुछ

पैदा हुआ हो या नहीं, क्योंकि भूमि स्वामी और उस किसान के बीच मुज़ारअत का अनुबंध (जिसके लिए एक-तिहाई तय था) सही है, और स्वामी और दूसरे किसान के बीच अनुबंध फासिद (त्रुटिपूर्ण) है, क्योंकि वह अनुबंध दूसरे पर आधारित था और उसमें हिस्सा स्पष्ट रूप से तय नहीं था। यदि दोनों किसानों में से प्रत्येक ने दावा किया कि मेरे लिए एक-तिहाई तय था, तो भूमि स्वामी की बात स्वीकार की जाएगी। और यदि दोनों ने गवाह पेश किए, तो प्रत्येक किसान को एक-तिहाई उपज मिलेगी; एक को इसलिए कि स्वामी ने उसके हक में इकरार किया है और दूसरे को इसलिए कि उसने गवाहों से साबित किया है। और यदि भूमि में कुछ पैदा न हुआ और दोनों किसानों में से प्रत्येक ने दावा किया कि जिसके लिए अज्र-उल-मिस्ल होना चाहिए वह मैं हूँ, तो भूमि स्वामी की बात मानी जाएगी कि वह व्यक्ति कौन है जिसे अज्र-उल-मिस्ल मिलना चाहिए। और यदि दोनों ने अपने दावों पर गवाह पेश किए, तो भूमि स्वामी के गवाह स्वीकार होंगे क्योंकि वह अपने और दूसरे किसान के बीच अनुबंध के सही होने को साबित कर रहा है जबकि दूसरा किसान इनकार कर रहा है। अतः जिसके गवाहों से अनुबंध की वैधता (सेहत) सिद्ध होती है, उसे वरीयता दी जाती है। यदि दो स्वामियों ने अपनी भूमि एक किसान को दी और बीज किसान की ओर से हैं, तो उन सभी स्थितियों में जो हमने वर्णन की हैं, किसान के लिए वही नियम लागू होंगे जो ऊपर उस भूमि स्वामी के मामले में बताए गए हैं जिसकी ओर से बीज थे, क्योंकि अर्थ में दोनों समान हैं। जैसा कि 'मबसूत' में उल्लेखित है।

---

1. 'देने पर दी' अर्थात पूरी ज़मीन की पैदावार में से एक-तिहाई दिया जाए। उदाहरण के लिए, यदि कुल 300 मन पैदावार हुई, तो किसान अपने आधे हिस्से में से 100 मन दे, जो कि पूरी ज़मीन की पैदावार का एक-तिहाई है।

تمام زمین کی پیداوار کی تہائی کے حساب سے دینے پر دی ۱ اور ان دونوں عقدوں میں سے ہر ایک تنہا صحیح ہے۔ پس باجتماع بھی صحیح ہے۔ پھر اگر دونوں نے زمین مذکور میں زراعت کی اور زمین میں کچھ پیدا نہ ہو پس دونوں میں سے ہر ایک نے مالک زمین سے کہا کہ میں نے تیرے واسطے چھٹا حصہ زراعت شرط کیا ہے پس دونوں میں سے ہر ایک اپنے زعم میں جس قدر شرط کرنے کا زعم کرتا ہے اس میں اس کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں نے اپنے اپنے گواہ قائم کیے تو مالک زمین کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر زمین میں زراعت کثیر پیدا ہوئی اور دونوں میں سے ہر ایک نے دعویٰ کیا کہ جس نے اجرت زمین دینے کی شرط کی تھی وہ میں ہوں اور مالک زمین نے دونوں میں سے ایک پر اجرت کا دعویٰ کیا اور دوسرے پر چھٹے حصہ پیداوار کا دعویٰ کیا تو مالک زمین نے جس پر اجرت کا دعویٰ کیا ہے اس سے اجرت لے لے گا کیونکہ دونوں نے اس پر اجرت مشروط ہونے پر اتفاق کیا ہے اور دوسرے پر مالک نے بعض پیداوار کا دعویٰ کیا حالانکہ وہ منکر ہے تو قول منکر کا قبول ہوگا اور مالک زمین سے کہا جائے گا کہ تو نے اس پر چھٹے حصہ پیداوار کا دعویٰ کیا ہے اس کے گواہ پیش کر اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو مالک زمین کے گواہ قبول ہوں گے اور اگر دو شخصوں نے اپنی زمین ایک کاشتکار کو اس شرط سے دی کہ اس میں اپنی بیجوں و کام سے زراعت کرے اور جو کچھ اس میں پیدا ہو گا اس میں سے دو تہائی کاشتکار کا اور ایک تہائی خاص اس مالک زمین کا ہوگا اور دوسرے مالک کے واسطے اس کے حصہ کی بابت کاشتکار پر سود ہم واجب ہوں گے تو یہ جائز ہے پھر اگر زمین مذکور میں بہت پیداوار ہوئی اور دونوں مالکوں میں سے ہر ایک نے دعویٰ کیا کہ جس کے واسطے تہائی پیداوار مشروط ہے وہ میں ہوں تو کاشتکار کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں مالکوں

میں سے ہر ایک نے اپنے اپنے دعویٰ کے گواہ قائم کیے تو ہر ایک کو تہائی پیداوار ملے گی اور ان دونوں کے گواہوں کے مقابلہ میں کاشتکار کے گواہ مقبول نہ ہوں گے۔

ایک شخص نے دو کاشتکاروں کو اپنی زمین و بیج اس شرط سے دی کہ خاص اس کاشتکار کو تہائی پیداوار ملے گی اور دوسرے کو پیداوار میں سے بیس فقیر ملیں گے۔ باقی مالک زمین کی ہوگی پس دونوں نے زراعت کی اور زمین میں پیداوار بہت ہوئی تو جس کاشتکار کے واسطے تہائی شرط کی تھی اس کو تہائی ملے گی اور باقی دو تہائی مالک زمین کی ہوگی اور دوسرے کاشتکار کے واسطے اس کے کام کا اجر المثل واجب ہوگا خواہ زمین میں کچھ پیدا ہو یا نہ ہو اس واسطے کہ عقد مزارعت مالک اور اس کاشتکار کے درمیان جس کے واسطے تہائی مشروط تھی صحیح ہے اور مالک اور دوسرے کاشتکار کے درمیان فاسد ہے لیکن ایک کے ساتھ جو عقد ہے وہ بحرف عطف دوسرے عقد پر معطوف ہے اس میں مشروط نہیں ہے۔ اگر دونوں کاشتکاروں میں سے ہر ایک نے دعویٰ کیا کہ میرے واسطے تہائی مشروط ہے تو مالک زمین کا قول قبول ہوگا اور اگر دونوں نے گواہ قائم کیے تو ہر ایک کاشتکار کو تہائی پیداوار ملے گی پس ایک کاشتکار کو اس وجہ سے کہ مالک زمین نے اس کے واسطے اقرار کیا ہے اور دوسرے کو اس وجہ سے کہ اس نے اپنے گواہوں سے ثابت کیا ہے اور اگر زمین میں کچھ پیدا نہ ہوئی اور دونوں کاشتکاروں میں سے ہر ایک نے دعویٰ کیا کہ جس کے واسطے اجر المثل ہونا چاہیے وہ میں ہوں تو مالک زمین کا قول قبول ہوگا کہ یہ شخص ہے جس کے واسطے اجر المثل چاہئے ہے اور اگر دونوں نے اپنے اپنے دعویٰ پر گواہ قائم کیے تو مالک زمین کے گواہ قبول ہوں گے کیونکہ مالک زمین اپنے گواہوں سے اپنے اور دوسرے کاشتکار کے درمیان عقد صحیح ہونا ثابت کرتا ہے اور دوسرا کاشتکار اپنے گواہوں سے اس کی نفی کرتا ہے پس جس کے گواہوں سے شرط صحت عقد ثابت ہوتی ہے اس کو ترجیح ہے۔ اگر دو مالکوں نے اپنی زمین ایک کاشتکار کو دی اور بیج

کاشتکار کی طرف سے ہیں تو ان سب صورتوں میں جو ہم نے بیان کر دی ہیں کاشتکار کے واسطے وہی احکام ثابت ہوں گے جو مسئلہ مذکورہ بالا میں مالک زمین کے حق میں جس کی طرف سے بیج ہیں مذکور ہوئے ہیں کیونکہ یہ دونوں فی المعنی یکساں ہیں کذا فی المبسوط

---

۱۔ دینے پر دی یعنی تمام زمین کی پیداوار سے تہائی دیجی جائے مثلاً سو من ہوئی تو یہ کاشتکار اپنے نصف کی پیداوار میں سے سو من دے جو تمام زمین کی تہائی پیداوار ہے ۱۲

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 449 | Kitab al-Muzara'a (Book of Sharecropping)**

**Chapter on Taqis: Regarding the Cultivation of Land Without a Formal Contract**

A person gave his land to a farmer for one year on the condition of sharecropping (*muzar'at*), specifying that the farmer would cultivate it using his own oxen. The farmer cultivated the land, and after the year passed, he cultivated it again without the explicit permission of the landowner. The landowner became aware of this, whether before or after the crops sprouted, but did not grant permission. The scholars (*masha'ikh*) stated that if it is a prevailing custom among the people of that village to cultivate repeatedly after the first instance without renewing the contract, then it is permissible. The resulting produce shall be shared between both parties according to the terms of the previous year's contract. It is narrated from Sheikh Imam Ismail Zahid (RA) that he mentioned this issue in a book and stated it is not permissible. In his view, the farmer must act as in a case of usurpation (*ghasab*); he should take a portion of the produce equivalent to the wages for his labor, the use of his oxen, and his seeds, and give the remainder in charity (*sadqah*). Our scholars used to issue fatwas according to the ruling mentioned in that book. However, I have seen in some texts that it is permissible, similar to a case where a person gives his land to another saying, "I give you this land on the same terms as it was with such-and-such farmer last year," which is permissible. Therefore, in the current scenario, it should be permissible *a fortiori*. The author stated: In my opinion, the rule is that if the land is designated for sharecropping and the farmer's share of the produce is well-known through local custom (*urf*) and never varies, and then someone cultivates such land, it is permissible by way of *istihsan* (juristic preference). However, if the land is not designated for sharecropping, or if the farmer's share in that locality is not uniform but varies based on individual agreements, then it is not permissible, and the farmer shall be declared a usurper (*ghasib*). It should be clear that custom is considered only when it is not known that the farmer cultivated the land specifically by way of usurpation.

- If it is known that the person cultivated by way of usurpation—for instance, if at the time of sowing the farmer declared, "I am cultivating this land for myself and not on sharecropping terms," or if he is someone who never takes land on sharecropping but intends to seize it—then he shall be considered a usurper. The produce shall belong to him, but he must pay compensation for any

damage to the land. Similarly, if after cultivation he admits, "I cultivated this land by way of usurpation," his statement shall be accepted because he is denying another's right to the produce. This is found in *Fatawa Qazi Khan*. I have seen written in some fatwas that regarding lands in villages, whether *waqf* (endowment) or private property (*milk*), if the local custom is that anyone who wishes may cultivate the land without seeking permission from the trustee (*mutawalli*) or owner, and the owners or trustees do not stop them, and the farmers provide the share for *batai* (1) and *dehqani* (2) upon harvest and the owners do not refuse, then if someone cultivates such land without explicit permission, it shall be treated as sharecropping. However, in a locality where the owner's permission is mandatory for cultivation, and the owner actively prevents unauthorized farming or cultivates it himself, then in such a place, if someone cultivates without permission from the owner or trustee, in the case of *waqf* land, it will be treated as sharecropping and...

(1) Dehqani landownership, because the original is the *Qa-an*, i.e., the village headman. (2) Meaning, they will establish as a principle that he cultivated it by way of sharecropping (*muzar'at*).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) | 449 | किताब अल-मुज़ारअत**

## बाब तक़ीस: बिना अनुबंध (कॉन्ट्रैक्ट) के भूमि पर खेती करने के विवरण में

एक व्यक्ति ने अपनी भूमि एक किसान को एक वर्ष के लिए बटाई (मुज़ारअत) पर इस शर्त के साथ दी कि वह अपने बैलों से उस पर खेती करेगा। किसान ने खेती की, फिर वर्ष बीतने के बाद भूमि के मालिक की अनुमति के बिना दोबारा उस पर खेती की। मालिक को इसका पता चला, चाहे फसल उगने से पहले या बाद में, लेकिन उसने अनुमति नहीं दी। इस पर उलेमा (मशाइख़) ने कहा कि यदि उस गाँव के लोगों में यह प्रथा है कि एक बार के बाद बिना अनुबंध के दोबारा खेती करते हैं, तो यह जायज़ है। और जो उपज होगी वह पिछले वर्ष की अनुबंध की शर्तों के अनुसार दोनों के बीच साझा की जाएगी। शेख इमाम इस्माइल ज़ाहिद (रह.) से वर्णित है कि उन्होंने किताब में इस मसले का उल्लेख करते हुए कहा कि यह जायज़ नहीं है। किसान के लिए आवश्यक है कि वह 'ग़सब' (अवैध कब्ज़ा) की स्थिति की तरह उपज में से अपने काम, अपने बैलों और अपने बीजों की लागत के बराबर हिस्सा लेकर शेष दान (सदक़ा) कर दे। हमारे मशाइख़ उसी आदेश के अनुसार फतवा देते थे जो किताब में वर्णित है। लेकिन मैंने कुछ किताबों में देखा कि यह जायज़ है और वैसा ही है जैसे किसी ने अपनी भूमि दूसरे को दी और कहा कि मैंने यह भूमि तुझे उसी तरह दी जैसे फलां किसान के पास पिछले साल थी, तो यह जायज़ है। इसलिए इस मसले में तो यह और भी अधिक जायज़ होना चाहिए। लेखक ने कहा कि मेरे अनुसार नियम यह है कि यदि भूमि बटाई पर देने के लिए रखी गई हो और उपज में किसान का हिस्सा गाँव की प्रथा (उर्फ़) से ज्ञात हो और कभी बदलता न हो, और फिर किसी ने ऐसी भूमि पर खेती की तो वह 'इस्तिहसान' (न्यायिक वरीयता) के आधार पर जायज़ है। और यदि भूमि बटाई पर देने के लिए न रखी गई हो या उस स्थान पर किसान का हिस्सा एक जैसा न हो बल्कि हर अनुबंध के अनुसार अलग-अलग होता हो, तो यह जायज़ नहीं है और किसान को 'ग़ासिब' (अवैध कब्ज़ा करने वाला) माना जाएगा। स्पष्ट रहे कि प्रथा पर तभी विचार किया जाएगा जब यह ज्ञात न हो कि किसान ने जानबूझकर ग़सब (अवैध कब्ज़ा) के तौर पर खेती की है।

- यदि यह ज्ञात हो कि व्यक्ति ने जानबूझकर ग़सब के तौर पर खेती की है, उदाहरण के लिए खेती के समय किसान ने यह तय किया कि मैं इस भूमि पर अपने लिए खेती करता हूँ, बटाई पर नहीं, या वह व्यक्ति ऐसा है जो भूमि बटाई पर नहीं लेता बल्कि हड़पना चाहता है, तो वह ग़ासिब होगा और उपज उसी की होगी, और उसे भूमि के नुकसान का मुआवज़ा देना होगा।

इसी तरह यदि उसने खेती के बाद स्वीकार किया कि मैंने यह खेती ग़सब के तौर पर की है, तो उसी की बात मानी जाएगी क्योंकि वह उपज में किसी और के अधिकार से इनकार कर रहा है। यह फ़तावा काज़ी ख़ान में है। मैंने कुछ फतवों में लिखा देखा है कि गाँवों की भूमि, चाहे वक्फ़ हो या मिल्कियत, और उस स्थान की प्रथा यह हो कि जिसका जी चाहे खेती कर ले और वह वक्फ़ के मुतवल्ली या मालिक से अनुमति न मांगता हो, और मालिक या मुतवल्ली भी उन्हें नहीं रोकते, और किसान फसल तैयार होने पर बटाई (1) और देहक़ानी (2) का हिस्सा दे देते हैं और वे इनकार नहीं करते, तो ऐसी भूमि पर यदि कोई बिना अनुमति खेती करे तो उसे बटाई की खेती माना जाएगा। और यदि कोई ऐसा स्थान हो जहाँ खेती के लिए मालिक की अनुमति आवश्यक हो और मालिक बिना अनुमति खेती करने वाले को रोकता हो या खुद खेती करता हो, तो ऐसे स्थान पर यदि किसी ने मालिक या मुतवल्ली की अनुमति के बिना खेती की, तो वक्फ़ भूमि के मामले में उसे बटाई पर आधारित माना जाएगा और...

(1) देहक़ानी ज़मींदारी क्योंकि मूल वह 'का-आन' यानी गाँव का मुखिया है। (2) यानी मूल रूप से यह मानेंगे कि उसने बटाई (मुज़ारअत) के तौर पर खेती की है।

---

## باب تقیس: بغیر عقد کے اراضی کی زراعت کے بیان میں

ایک شخص نے اپنی زمین ایک کاشتکار کو ایک سال مزارعت کے واسطے اس شرط سے دی کہ اپنے بیلوں سے اس میں زراعت کرے پس کاشتکار نے اس میں زراعت کی پھر سال گزرنے کے بعد بدوں اجازت مالک زمین کے اس میں زراعت کی پھر مالک زمین کو یہ بات معلوم ہوئی خواہ کھیتی اگنے سے پہلے یا اس کے بعد مگر اس نے اجازت نہ دی تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر اس گاؤں کے لوگوں میں یہ عادت جاری ہے کہ ایک بار کے بعد مکرر بدوں تجدید عقد کے زراعت کرتے ہیں تو یہ جائز ہے اور جو پیداوار ہوئی ہے وہ سال گذشتہ کے عقد کی شرط کے موافق دونوں میں مشترک ہوگی اور شیخ امام اسمٰعیل زاہدؒ سے منقول ہے کہ انہوں نے فرمایا کہ کتاب میں یہ مسئلہ ذکر کر کے فرمایا کہ یہ جائز نہیں ہے اور کاشتکار پر لازم ہے کہ مثل صورت غصب کے پیداوار میں سے بقدر اجرت اپنے کام اور اپنے بیلوں کے اور اپنے بیجوں کے لے کر باقی صدقہ کر دے اور ہمارے مشائخ اسی حکم کے موافق جو کتاب میں مذکور ہے فتویٰ دیتے تھے مگر میں نے بعض کتب میں دیکھا کہ یہ جائز ہے اور ایسا ہے کہ جیسے ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے کو دی اور کہا کہ میں نے یہ زمین تجھے اسی طور پر دی جس طرح فلاں کاشتکار کے پاس پہلے سال تھی تو یہ جائز ہے پس صورت مسئلہ بدرجہ اولیٰ جائز ہونا چاہیے اور مؤلف نے فرمایا کہ میرے نزدیک حکم یوں ہے کہ اگر زمین مزارعت پر دینے کے واسطے رکھی گئی ہو اور پیداوار میں سے کاشتکار کا حصہ اس گاؤں کے لوگوں کے عرف سے معلوم ہو اور کبھی مختلف نہ ہوتا ہو پھر کسی شخص نے ایسی زمین میں زراعت کر لی تو استحساناً جائز ہے اور اگر یہ زمین مزارعت پر دینے کے واسطے نہ رکھی گئی ہو یا پیداوار میں سے کاشتکار کا

حصہ اس موضع میں یکساں نہ ہو بلکہ ہر ایک کے قرارداد کے موافق مختلف ہوتا ہو تو جائز نہیں ہے اور کاشتکار غاصب قرار دیا جائے گا اور واضح ہو کہ عادت کی طرف اس وقت لحاظ کیا جائے گا جب یہ معلوم نہ ہو کہ کاشتکار نے براہِ غصب اس میں کھیتی کی ہے۔

- اگر یہ معلوم ہو کہ اس شخص نے براہِ غصب زراعت کی ہے مثلاً وقتِ زراعت کے کاشتکار نے یوں قرار کیا کہ میں اس زمین میں اپنے واسطے زراعت کرتا ہوں مزارعت پر زراعت نہیں کرتا ہوں یا یہ شخص ایسا ہو جو زمین کو مزارعت پر نہیں لیتا ہے اس کو چاہتا ہے تو یہ شخص غاصب ہوگا اور پیداوار اسی کی ہوگی اور اس پر نقصان زمین کا تاوان واجب ہوگا اس طرح اگر اس نے بعد زراعت کے اقرار کیا کہ میں نے اس زمین میں براہِ غصب زراعت کی ہے تو قول اسی کا قبول ہوگا اس واسطے کہ وہ پیداوار میں غیر کا کچھ استحقاق ہونے سے انکار کرتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ میں نے بعض فتاویٰ میں لکھا دیکھا کہ زمینیں جو دیہات میں ہیں یا وقف یا ملک اور اس موضع کی عادت یہ ہے کہ جس کا جی چاہتا ہے ان زمینوں میں زراعت کرتا ہے اور متولی وقف سے اجازت نہیں مانگتا ہے اور نہ مالک زمین سے اور متولی و مالک لوگ ان کو منع نہیں کرتے ہیں اور کاشتکار لوگ غلہ تیار ہونے پر بٹائی ۱ و دہقانی ۲ کا حصہ دے دیتے ہیں اور یہ لوگ انکار نہیں کرتے ہیں اگر ایسی زمینوں میں کوئی شخص کھیتی کرے بدوں اس کے کہ متولی یا مالک سے مزارعت پر لے تو یہ زراعت بطور مزارعت کے ہوگی اور اگر کوئی ایسا موضع ہو کہ جس میں زراعت کے واسطے مالک کی اجازت ضروری ہوتی ہے اور اگر کوئی مالک کی بلا اجازت زراعت کرے تو مالک اس کو منع کرتا ہے یا مالک زمین خود کاشت کرتا ہے اور کبھی کاشتکار کو دے دیتا ہے پس ایسے موضع میں اگر کسی نے بلا اجازت مالک کے یا بے اجازت متولی وقف کے زمین ملکی یا وقفی میں زراعت کی تو زمین وقفی میں مزارعت پر حمل کریں گے اور

۱ دہقانی زمینداری کیونکہ اصل وہ قا آن یعنی سردار قریہ ہے۔ ۲ یعنی اصل قرار دیں گے کہ اس نے بطور مزارعت کے زراعت کر لی ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 350 | Kitab al-Mazara'a (The Book of Sharecropping)**

...not in proprietary land, as stated in Al-Muhit. If a cultivator has harvested the grain from the land, but some wheat seeds remained scattered in the said land and they germinated and the crop became ready, this crop shall be divided between the cultivator and the landowner according to each one's share of the produce. This is because it grew from their shared seeds. However, the cultivator should give in charity (Sadaqah) anything exceeding his share. If the landowner watered it and looked after it until it grew, it shall belong to him, because by providing water, he became its owner. In this case, if those seeds have a value, the landowner shall be a guarantor (1) (liable) for them, otherwise not. If a stranger watered it voluntarily (out of charity), then the grown crop shall be shared between the cultivator and the landowner; this is mentioned in Fatawa Qazi Khan. If a tree or crop grows on a person's land without anyone sowing it, it belongs to the landowner because it grew from his land; thus, it becomes a part of the land and belongs to the landowner; as stated in Al-Muhit.

**Chapter Twenty-Two: On Miscellaneous Matters**

If someone gives their land and seeds to another on the condition that they cultivate it this year and whatever livelihood (Rizq) Allah Almighty provides from it shall be split half-and-half between them, and the crop becomes 'Tahsil' (2) (fodder/without ears of grain), and then both wish to cut and sell it, then the responsibility of cutting and selling it lies on both, whether the seeds were provided by the cultivator or the landowner. If the crop becomes ready for harvesting but the Sultan (ruler) prevents them from harvesting it—whether he prevents them unjustly, or for some perceived benefit (maslahat), or for the purpose of collecting his land tax (Kharaj)—then the protection of that crop is mandatory upon both of them; this is in the 'Mafsid al-Mazara'a' chapter of Al-Mabsut. If a piece of land is held as collateral (mortgaged) and a third party wishes to take this land on a sharecropping basis from the mortgagor (Rahin), he should do so with the permission of the mortgagee (Murtahin). If a person gives his land for sharecropping for one or two years and the seeds are provided by the landowner, then the landowner later decides to take the land back from the cultivator and says to him, "If you wish, cultivate it with your own seeds or leave it to me," and the cultivator replies, "Pay me the fair wages (Ajr-ul-Misl) for my work," and the landowner agrees, "I will pay you," but the landowner then intends to cultivate it himself. When the cultivator learns of this, he goes ahead and

cultivates the land and the crop ripens and becomes ready. If the landowner permits this act of his, the produce shall be shared between both; this issue is 'Waqia al-Fatwa,' meaning such an incident occurred and a verdict was given accordingly. If a cultivator dies and the lessor (Mustajir) gives seeds to the heirs of the cultivator and tells them to cultivate the land with them, and they do so, to whom will the produce belong? This is also a 'Waqia al-Fatwa' issue. The consensus among all Muftis in their response was that the produce belongs to the heirs of the cultivator. This is because the sharecropping contract (Aqd-e-Mazara'a) was annulled (Faskh) upon the death of the cultivator. Therefore, the lessor's action is considered as lending seeds to the heirs, as there is nothing in the lessor's statement to prove that he set any condition for himself in the produce—for example, if he had said, "Cultivate this land for me with these seeds" or "so that the crop is shared between us." The lessor is entitled to receive from the heirs the equivalent (Misl) of the seeds provided; this is in Al-Muhit.

---

(1) i.e., the share of the cultivator. (2) Tahsil: i.e., in which ears of grain do not appear, which is called 'Chari' (fodder).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 350 | किताब अल-मज़ारा'अ (बटाई/खेती का बयान)**

...मालिकाना ज़मीन में नहीं है, जैसा कि अल-मुहीत में है। यदि काश्तकार (किसान) ने ज़मीन से अनाज की पैदावार उठा ली, लेकिन उक्त ज़मीन में गेहूँ के कुछ दाने बिखरे रह गए और वे उग आए और खेती तैयार हो गई, तो यह काश्तकार और ज़मीन के मालिक के बीच प्रत्येक के पैदावार के हिस्से के अनुपात में विभाजित होगी, क्योंकि यह दोनों के साझा बीज से उगी है। लेकिन काश्तकार को चाहिए कि अपने हिस्से से अधिक को सदक़ा (दान) कर दे। और यदि ज़मीन के मालिक ने उसे सींचा हो और उसकी देखभाल की हो यहाँ तक कि वह उग आई, तो वह उसकी (मालिक की) होगी, क्योंकि जब उसने पानी दिया तो वह उसका मालिक हो गया। अतः यदि उन दानों की कोई क़ीमत हो, तो ज़मीन का मालिक उसके लिए ज़ामिन (१) (उत्तरदायी) होगा, अन्यथा नहीं। और यदि उसे किसी अजनबी ने स्वेच्छा से (तत़व्वु) पानी दिया, तो वह उगी हुई खेती काश्तकार और ज़मीन के मालिक के बीच साझा होगी; यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। यदि किसी व्यक्ति की ज़मीन में बिना किसी के बोए कोई पेड़ या खेती उग आए, तो वह ज़मीन के मालिक की होगी क्योंकि वह उसकी ज़मीन से पैदा हुई है, अतः वह ज़मीन का हिस्सा होगी और ज़मीन के मालिक की होगी; जैसा कि अल-मुहीत में है।

**अध्याय बाइस: विविध मामलों में**

यदि अपनी ज़मीन और बीज किसी को इस शर्त पर दिए कि इस वर्ष इसमें खेती करे और जो कुछ इसमें अल्लाह तआला रिज़्क़ (आजीविका) देगा, वह हम दोनों के बीच आधा-आधा होगा, फिर खेती तहसील (२) (चारा/बिना बालियों वाली) हो गई, फिर दोनों ने चाहा कि इसे काटकर बेच दें, तो उसे काटना और बेचना दोनों की ज़िम्मेदारी होगी, चाहे बीज काश्तकार की ओर से हों या ज़मीन के मालिक की ओर से। यदि खेती काटने योग्य हो गई लेकिन सुल्तान (शासक) ने उन्हें उसे काटने से रोक दिया, चाहे ज़ुल्म के तौर पर रोका हो या कोई भलाई (मसलहत) देखकर रोका हो या इस उद्देश्य से रोका हो कि अपना ख़राज (कर) वसूल करे, तो उसकी सुरक्षा करना उन दोनों पर अनिवार्य होगा; यह मब्सूत के'मफ़िसद अल-मज़ारा'अ' अध्याय में है। यदि कोई ज़मीन किसी के पास गिरवी (रहन) हो और कोई अन्य व्यक्ति चाहे कि यह ज़मीन रहन रखने वाले (राहिन) से बटाई (मज़ारा'अ) पर ले ले, तो उसे चाहिए कि गिरवी रखने वाले (मुर्तहिन) की अनुमति से राहिन से बटाई पर ले। यदि किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन एक या दो वर्ष के लिए बटाई पर दी और बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हैं, फिर ज़मीन के मालिक ने चाहा कि अपनी ज़मीन काश्तकार के हाथ से निकाल ले, अतः उसने

काश्तकार से कहा कि "तेरा मन चाहे तो इसमें अपने बीजों से खेती कर या मेरे पास छोड़ दे", फिर काश्तकार ने कहा कि "मुझे मेरे काम का अज्र-उल-मिस्ल (उचित मज़दूरी) दे दे", तो ज़मीन के मालिक ने कहा कि "तुझे दे दूँगा", फिर ज़मीन के मालिक ने चाहा कि स्वयं इसमें खेती करे। फिर जब काश्तकार को यह बात पता चली तो उसने जाकर ज़मीन में खेती कर दी और खेती पककर तैयार हो गई। अतः यदि ज़मीन के मालिक ने उसके इस कृत्य की अनुमति दे दी हो, तो पैदावार दोनों के बीच साझा होगी; और यह मसला 'वाक़िआ अल-फ़तवा' है, यानी ऐसा वाक़या हुआ था और उस पर ऐसा फ़तवा दिया गया था। यदि एक काश्तकार मर गया और मुस्ताजिर (पट्टेदार/किराएदार) ने काश्तकार के उत्तराधिकारियों को बीज देकर कहा कि इनसे इस ज़मीन में खेती करो, फिर उन्होंने खेती की, तो पैदावार किसकी होगी? यह मसला भी 'वाक़िआ अल-फ़तवा' है। सभी मुफ़्तियों के उत्तर में इस बात पर सहमति थी कि पैदावार काश्तकार के उत्तराधिकारियों की होगी, क्योंकि काश्तकार की मृत्यु से बटाई का अनुबंध (अक़्द-ए-मज़ारा'अ) समाप्त (फ़स्ख़) हो गया। अतः मुस्ताजिर का यह कार्य उत्तराधिकारियों को बीज उधार देने के समान माना जाएगा, क्योंकि मुस्ताजिर के कथन में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि उसने पैदावार में से अपने लिए कुछ शर्त रखी है, उदाहरण के लिए उसने यह कहा हो कि "इन बीजों से इस ज़मीन में मेरे लिए खेती कर दो" या "ताकि खेती हमारे और तुम्हारे बीच साझा हो"। और मुस्ताजिर के लिए काश्तकार के उत्तराधिकारियों पर उन बीजों के समान (मिस्ल) बीज वापस लेना अनिवार्य होगा; यह मुहीत में है।

---

(१) यानी काश्तकार का हिस्सा। (२) तहसील: यानी जिसमें बालियाँ न आएं जिसे चरी (चारा) कहते हैं।

---

زمین ملکی میں نہیں کذا فی المحیط کاشتکار نے زمین سے پیداوار غلہ اٹھا لیا مگر زمین مذکور میں گیہوں کے دانہ چھٹکے رہ گئے اور وہ اگے اور کھیتی تیار ہو گئی تو یہ کاشتکار و مالک زمین کے درمیان بحساب ہر ایک کے حصہ پیداوار کے تقسیم ہو گی اس واسطے کہ دونوں کے مشترک بیج سے اُگی ہے مگر کاشتکار کو چاہیے کہ اپنے حصہ سے زائد کو صدقہ کر دے اور اگر مالک زمین نے اس کو سینچا ہو اور پرداخت کی ہو حتی کہ وہ اُگی تو یہ اس کی ہو گی کیونکہ جب اس نے پانی دیا تو اس کا مالک ہو گیا پس اگر ان دانوں کی قیمت ہو تو مالک زمین اس کا ضامن (۱) ہو گا ورنہ نہیں اور اگر اس کو کسی اجنبی نے پانی دیا مگر بطور تطوع تو یہ اُگی ہوئی کھیتی کاشتکار و مالک زمین کے درمیان مشترک ہو گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر ایک شخص کی زمین بغیر کسی کے بوئے ہوئے کوئی درخت یا کھیتی اُگی تو وہ مالک زمین کی ہو گی کیونکہ اس کی زمین سے پیدا ہوئی ہے پس زمین کا جز ہو گی پس مالک زمین کی ہو گی کذا فی المحیط

**باب بوبیس: متفرقات میں**

اگر اپنی زمین و بیج کسی کو اس شرط سے دی کہ امسال اس میں زراعت کرے اور جو کچھ اس میں سے اللہ تعالیٰ روزی کرے گا وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گا پس کھیتی تحصیل (۲) ہو گئی پھر دونوں نے چاہا کہ اس کو کاٹ کر فروخت کر دیں تو اس کا کاٹنا و فروخت کرنا دونوں کے ذمہ ہو گا خواہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں یا مالک زمین کی طرف سے۔ اگر کھیتی قابل درود ہو گئی مگر سلطان نے ان کو اس کے کاٹنے سے منع کیا خواہ براہِ ظلم منع کیا یا کوئی مصلحت

دیکھ کر منع کیا یا اس غرض سے منع کیا کہ اپنا خراج وصول کرے تو اس کی حفاظت ان دونوں پر لازم ہو گی یہ مبسوط باب مفسد المزارعہ میں ہے۔ اگر کوئی زمین کسی کے پاس رہن ہو اور کسی غیر شخص نے چاہا کہ یہ زمین راہن سے مزارعت پر لے تو اس کو چاہیے کہ مرتہن کی اجازت سے راہن سے مزارعت پر لے۔ اگر کسی شخص نے اپنی زمین ایک سال یا دو سال کے واسطے مزارعت پر دی اور بیج مالک زمین کی طرف سے ہیں پھر مالک زمین نے چاہا کہ اپنی زمین کاشتکار کے ہاتھ سے نکال لے پس اس نے کاشتکار سے کہا کہ تیرا جی چاہے اس میں اپنے بیجوں سے زراعت کر یا میرے پاس چھوڑ دے پس کاشتکار نے کہا کہ مجھے میرے کام کا اجر المثل دے دے پس مالک زمین نے کہا کہ تجھے دے دوں گا پھر مالک زمین نے چاہا کہ خود اس میں زراعت کرے پھر جب کاشتکار کو یہ بات معلوم ہوئی تو اس نے جا کر زمین میں زراعت کی پھر کھیتی پختہ ہو کر تیار ہوئی پس اگر مالک زمین نے اس کے اس فعل کی اجازت دے دی ہو تو پیداوار دونوں میں مشترک ہو گی اور یہ مسئلہ واقعہ الفتویٰ ہے یعنی ایسا واقعہ ہوا تھا اور اس پر یوں فتویٰ دیا گیا ہے۔ اگر ایک کاشتکار مر گیا اور مستاجر نے وارثانِ کاشتکار کو بیج دے کر کہا کہ ان سے اس زمین میں زراعت کرو پس انہوں نے زراعت کی تو پیداوار کس کی ہو گی اور یہ مسئلہ واقعہ الفتویٰ ہے۔ پس تمام مفتیوں کے جواب میں اس امر پر اتفاق تھا کہ پیداوار وارثانِ کاشتکار کی ہو گی اس واسطے کہ عقدِ مزارعت کاشتکار کے مرنے سے فسخ ہو گیا پس یہ فعل مستاجر کی طرف سے وارثانِ کاشتکار کو بیج قرض دینے میں شمار ہے اس واسطے کہ مستاجر کے قول میں کوئی ایسی بات نہیں ہے جس سے ثابت ہو کہ اس نے پیداوار میں سے اپنے واسطے کچھ شرط کر لیا ہے مثلاً یوں کہا ہو کہ ان بیجوں سے اس زمین میں میرے واسطے زراعت کر دیا یوں کہا ہو کہ تاکہ کھیتی ہمارے و تمہارے درمیان مشترک ہو اور مستاجر کے واسطے وارثانِ کاشتکار پر ان بیجوں کے مثل واجب ہوں گے یہ محیط میں ہے۔

(۱) یعنی حصہ کاشتکار۔ (۲) تحصیل: یعنی اس میں بالیاں نہ آئیں جس کو چری کہتے ہیں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 351 Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

Qazi Badi-ud-Din was asked about a woman who leased her adult son's land on a contract while the son used to visit. He stated that this does not constitute his consent. Furthermore, Qazi Badi-ud-Din was asked about a lessee who gave his vineyard to a farmer for one year on a contract of one thousand maunds of a specific type of grapes. He replied that this is not permissible; this is mentioned in Tatarkhaniya. If a person leased land for a known rent for one or two years and then gave this land to a farmer for sharecropping (Muzara'ah), then if the seeds are provided by the lessee, it is permissible, but if provided by the farmer, it is not. Hakim Ahmad Samarqandi has mentioned this in his 'Mashroot'. Ibn Rustam mentioned this issue in his 'Nawadir' and declared it as Imam Muhammad's first opinion. According to Imam Muhammad's second opinion, it is not permissible to give this land for sharecropping to a farmer, whether the seeds are from the farmer or the lessee; this is in 'Dhakhirah'. It is also mentioned in 'Fatawa Itabiyah'.

If someone watered their vineyard or land with prohibited (haram) or impure water, the produce is halal (permissible); just as if someone grazed their donkey on someone else's grass, and whatever it brings back is halal for them; this is in Tatarkhaniya. Zaid leased land from Amr, then gave that land to Amr's dependent son for sharecropping. The seeds are from the farmer (the son), and the son is part of his father's household. If the father, Amr, cultivated it—in a way that he lent the seeds to his son as a trust—then the grain produce will be shared between the son and Zaid according to the agreement. But if Amr cultivated it for himself—without lending seeds to his son—then the entire produce belongs to Amr, who cultivated it; this is in 'Muheet'. If a person leased land from a woman and, after taking possession, gave it to the woman's husband for sharecropping or a fixed contract (Muqata'ah) (1), it is permissible; this is in Tatarkhaniya. If a person died leaving minor (2) and adult (3) children and a wife, and these adult children are from that woman or another wife of the deceased, and the adult children started farming in their shared land or someone else's land as farmers usually do, and all these children and the wife live together and this woman looks after their affairs, and these adult children farm and collect all the grain in one house and spend from it, will all this grain be shared between the woman and children or only belong to those who farmed? This was an issue of 'Waqi'at-ul-Fatwa', meaning an event had occurred on which a fatwa was sought. The scholars of fatwa agreed on this point: if the cultivators farmed using shared seeds with the consent of others (if they are adults)

or their guardian's consent (if they are minors), then the grain will be shared among all. If they farmed using their personal seeds, the grain belongs only to the cultivators. If they farmed using shared seeds without the consent of others or their guardian, the grain belongs to the cultivators because they became usurpers (ghasib) of the seeds, and whoever farms with usurped seeds, the produce belongs to the usurper; this is in 'Muheet'.

A person gave his land to another for sharecropping while the land had cotton stalks (stubble) in it. Sheikh Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl stated that if these stalks do not hinder cultivation, the sharecropping is permissible; if they do, it will be invalid (fasid). However, if the contract is made for a time when the land will be empty, it is permissible. If nothing was specified about this, it will not be permissible; this is in 'Fatawa Qazi Khan'. Zaid gave land to Amr on the condition of sharecropping, Amr cultivated it and grain was produced. Then Khalid came and said, "I bought this land from Bakr and it was his property, so I want half of the sharecropping produce..."

(1) Fixed contract. (2) Small children. (3) Adult offspring.

**फ़तावा आलमगीरी ..... खंड (8) 351 किताब अल-मुज़ारअत (बटाई/खेती का अध्याय)**

काज़ी बदीउद्दीन से पूछा गया कि एक महिला ने अपने वयस्क बेटे की ज़मीन एक समझौते पर दे दी और बेटा आता-जाता रहता था। उन्होंने फ़रमाया कि यह उसकी सहमति नहीं मानी जाएगी। साथ ही काज़ी बदीउद्दीन से यह भी पूछा गया कि यदि एक पट्टेदार (मुस्ताजिर) ने किसान को अपना अंगूर का बाग एक साल के लिए एक हज़ार मन अंगूर की निश्चित मात्रा पर समझौते के तहत दिया, तो उन्होंने फ़रमाया कि यह जायज़ नहीं है। यह तातारख़ानिया में उल्लेखित है। यदि किसी व्यक्ति ने एक या दो साल के लिए एक निश्चित किराए पर ज़मीन पट्टे (इजारा) पर ली, फिर वह ज़मीन किसी किसान को बटाई (मुज़ारअत) पर दे दी, तो यदि बीज पट्टेदार की ओर से हों तो यह जायज़ है, और यदि बीज किसान की ओर से हों तो जायज़ नहीं है। हाकिम अहमद समरकंदी ने अपनी 'मशरूत' में ऐसा ही उल्लेख किया है। इब्न रुस्तम ने अपने 'नवादिर' में इस मसले का उल्लेख किया है और इसे इमाम मोहम्मद का पहला मत करार दिया है। इमाम मोहम्मद के दूसरे मत के अनुसार, किसान को यह ज़मीन मुज़ारअत पर देना जायज़ नहीं है, चाहे बीज किसान की ओर से हों या पट्टेदार की ओर से; यह 'ज़ख़ीरा' में है। 'फ़तावा इताबिया' में भी ऐसा ही है।

यदि किसी ने अपने अंगूर के बाग या ज़मीन को हराम या अपवित्र पानी से सींचा, तो जो कुछ पैदा होगा वह हलाल है; जैसे कि यदि किसी ने अपनी गधी को दूसरे की घास चराई और फिर वह जो कुछ लाए, वह उसके लिए हलाल है; यह तातारख़ानिया में है। ज़ैद ने अम्र से एक ज़मीन पट्टे पर ली, फिर वह ज़मीन अम्र के आश्रित बेटे को बटाई पर दे दी। बीज किसान (बेटे) की ओर से हैं और यह बेटा अपने पिता के परिवार में रहता है। यदि पिता यानी अम्र ने उसमें खेती की, तो यदि उसने बेटे की अमानत के तौर पर खेती की—इस तरह कि बीज अपने बेटे को उधार दिए—तो पैदावार का अनाज बेटे और ज़ैद के बीच शर्त के अनुसार साझा होगा। और यदि अम्र ने अपने लिए खेती की—इस तरह कि बेटे को बीज उधार नहीं दिए—तो पूरी पैदावार अम्र की होगी जिसने खेती की है; यह 'मुहीत' में है। यदि किसी व्यक्ति ने एक महिला से ज़मीन पट्टे पर ली और कब्ज़ा करने के बाद वह ज़मीन उसी महिला के पति को बटाई, लेन-देन या निश्चित समझौते (मक़ातअत) (1) पर दे दी, तो यह जायज़ है; यह तातारख़ानिया में है। यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गई और उसने छोटे (2) और बड़े (3) बच्चे और एक पत्नी छोड़ी, और ये वयस्क बच्चे उसी महिला से हैं या मृतक की किसी अन्य पत्नी से हैं, और वयस्क बच्चों ने खेती का काम शुरू किया—चाहे अपनी साझा ज़मीन में हो या दूसरों की ज़मीन में, किसानों की तरह जैसे लोग करते हैं—और ये सभी बच्चे और पत्नी एक ही परिवार में हैं और यही

महिला उनकी देखभाल करती है, और ये बड़े बच्चे खेती करते हैं और सारा अनाज एक ही घर में जमा करते हैं और वहीं से खर्च करते हैं, तो क्या यह सारा अनाज महिला और बच्चों के बीच साझा होगा या केवल खेती करने वालों का होगा? यह मसला 'वाकिअतुल फ़तवा' का था यानी ऐसा मामला हुआ था जिस पर फ़तवा माँगा गया था। मुफ़्ती विद्वानों के उत्तर इस पर सहमत हुए कि यदि खेती करने वालों ने सभी लोगों के साझा बीजों से, बाकियों की अनुमति से (यदि वे वयस्क हैं) या उनके संरक्षक (वसी) की अनुमति से (यदि वे नाबालिग हैं) खेती की है, तो सारा अनाज सबमें साझा होगा। और यदि खेती करने वालों ने अपने व्यक्तिगत बीजों से खेती की है, तो सारा अनाज केवल खेती करने वालों का होगा। और यदि उन्होंने साझा बीजों से बाकियों की अनुमति के बिना खेती की है, तो सारा अनाज खेती करने वालों का होगा क्योंकि वे बीज के ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाले) हो गए, और जो व्यक्ति छीने हुए बीज से खेती करता है, अनाज उसी का होता है; यह 'मुहीत' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन दूसरे को बटाई पर दी जबकि ज़मीन में कपास के ठूँठ (पुराने अवशेष) मौजूद थे, तो शेख इमाम अबू बकर मोहम्मद बिन अल-फ़ज़ल ने फ़रमाया कि यदि ये ठूँठ खेती में बाधक न हों तो बटाई जायज़ है, और यदि बाधक हों तो बटाई का अनुबंध अमान्य (फ़ासिद) होगा। लेकिन यदि अनुबंध ऐसे समय के लिए किया गया हो जब ज़मीन खाली हो जाए, तो अनुबंध जायज़ होगा। यदि इस बारे में चुप्पी साधी गई, तो जायज़ नहीं होगा; यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। ज़ैद ने अम्र को एक ज़मीन बटाई की शर्त पर दी और अम्र ने उसमें खेती की और अनाज पैदा हुआ। फिर खालिद आया और कहा कि मैंने यह ज़मीन बक्र से खरीदी है और यह उसी की मिल्कियत थी, इसलिए मुझे आधी पैदावार चाहिए...

(1) निश्चित समझौते के साथ। (2) छोटे बच्चे। (3) वयस्क संतान।

---

قاضی بدیع الدین سے دریافت کیا گیا کہ ایک عورت نے اپنے بالغ پسر کی زمین معاملہ پر دے دی اور بیٹا آتا جاتا تھا تو فرمایا کہ یہ رضا مندی نہیں ہے اور بھی قاضی بدیع الدین سے دریافت کیا گیا کہ ایک مستاجر نے کاشتکار کو اپنا باغ انگور ایک سال کے واسطے ہزار من انگور فلانی پر بعقد معاملہ دی تو فرمایا کہ نہیں جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص سے ایک سال یا دو سال کے واسطے اجرت معلومہ پر ایک زمین اجارہ لی پھر یہ زمین کسی کاشتکار کو مزارعت پر دی پس اگر بیج مستاجر کی طرف سے ہوں تو جائز ہے اور اگر کاشتکار کی طرف سے ہوں تو نہیں جائز ہے ایسا ہی حاکم احمد سمرقندی نے اپنے مشروط میں ذکر فرمایا ہے اور ابن رستم نے اپنے نوادر میں یہ مسئلہ ذکر کیا اور اس کو امام محمد کا اول قول قرار دیا اور بنا بر دوم قول امام محمدؒ کے یہ حکم ہے کہ کاشتکار کو یہ زمین مزارعت پر دینا نہیں جائز ہے خواہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں یا اجارہ لینے والے کی طرف سے ہوں یہ ذخیرہ میں ہے۔ فتاویٰ عتابیہ میں ہے۔

اگر کسی نے اپنا باغ انگور یا زمین حرام یا نجس پانی سے سینچا تو جو کچھ پیدا ہو وہ حلال ہے جیسے کہ کسی نے اپنی گدھی کو غیر کی گھاس چرائی پھر جو کرے لے آئے وہ اس کو حلال ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ زید نے عمرو سے ایک زمین اجارہ لی پھر وہ زمین عمرو کے جو ردیا بیٹے کو مزارعت پر دی اور بیج کاشتکار کی طرف سے ہیں اور یہ بیٹا اپنے باپ کی عیال میں ہے پس باپ یعنی عمرو نے اس میں زراعت کی پس اگر بیٹے کی امانت کے طور پر زراعت کر دی بایں طور پر کہ بیج اپنے بیٹے کو قرض دیے تو پیداوار غلہ اس بیٹے اور زید کے درمیان موافق شرط کے مشترک ہو گا اور اگر عمرو نے اپنے واسطے زراعت کر لی بایں طور پر کہ بیٹے کو بیج قرض نہ دیے تو پوری پیداوار عمرو کی ہو گی جس نے کاشت کی ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر

ایک شخص نے ایک عورت سے ایک زمین اجارہ پر لے کر قبضہ کرنے کے بعد یہ زمین عورت مذکورہ کے شوہر کو مزارعت یا معاملت یا مقاطعت (۱) پر دے دی تو جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے اگر ایک شخص مر گیا اور اس نے اولاد (۲) صغار ہو کبار (۳) وزوجہ چھوڑی اور یہ اولاد بالغ اسی عورت سے ہے یا میت کی کسی دوسری زوجہ سے ہے پس اولاد بالغ نے کھیتی کا کام شروع کیا اور اپنے درمیان مشترک زمین میں یا غیر کی زمین میں بطریق کاشتکاروں کے جیسا لوگ کیا کرتے ہیں زراعت کی اور یہ سب اولاد و زوجہ زندہ کی عیال میں یہی عورت ان کے احوال کی نگران ہے اور یہ اولاد کبار زراعت کرتے ہیں اور ایک ہی بیت میں سب غلہ جمع کرتے ہیں اور سب اس میں خرچ کرتے ہیں پس یہ تمام غلہ عورت اور اولاد کے درمیان مشترک ہو گا یا فقط زراعت کرنے والوں کا ہو گا یہ مسئلہ واقعۃ الفتویٰ تھا یعنی ایسا واقعہ ہوا تھا جس پر فتویٰ طلب کیا گیا تھا پس علمائے مفتیین کے جواب اس باب پر متفق ہوئے یا اگر زراعت کرنے والوں نے اپنے سب لوگوں کے باہمی مشترک بیجوں سے باقیوں کی خود اجازت سے اگر وہ لوگ بالغ ہیں یا ان کے وصی کی اجازت سے اگر نابالغ ہیں زراعت کی ہے تو یہ سب غلہ سب میں مشترک ہو گا اور اگر زراعت کرنے والوں نے اپنے ذاتی بیجوں سے زراعت کی ہے تو یہ سب غلہ فقط زراعت کرنے والوں کا ہو گا اور اگر زراعت کرنے والوں نے باہمی مشترک بیجوں سے باقیوں کی بلا اجازت یا ان کے وصی کی بلا اجازت کی ہے تو یہ سب غلہ زراعت کرنے والوں کا ہو گا کیونکہ زراعت کرنے والے بیج کے غاصب ہو گئے اور جو شخص غصب کے بیج سے زراعت کرے تو غلہ غاصب کا ہوتا ہے یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے کو مزارعت پر دی حالانکہ زمین مذکور میں کپاس کے ٹھونٹھ ہیں تو شیخ امام ابو بکر محمد بن الفضل نے فرمایا کہ اگر یہ ٹھونٹھ زراعت سے مانع نہ ہوں تو مزارعت جائز ہے اور اگر مانع ہوں تو مزارعت فاسد ہو گی لیکن اگر عقد مزارعت ایسے وقت کی

طرف مضاف کیا جس وقت زمین مذکور بالکل خالی ہو جائے تو عقد جائز رہے گا اور اگر اس سے سکوت کیا تو جائز نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ زید نے عمرو کو ایک زمین بشرطیکہ مزارعت پر دی اور عمرو نے اس میں زراعت کی اور غلہ پیدا ہوا پھر خالد آیا اور کہا کہ میں نے یہ زمین بکر سے خریدی ہے اور یہ زمین اسی کی ملک تھی بس نصف غلہ بٹائی کا مجھے چاہیے اس کا دودھ حلال ہو قاتل۔

(۱) بالقطع۔ (۲) چھوٹے بچے۔ (۳) بالغ اولاد۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 352 | Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

If he confirmed Khalid's statement and did not litigate against Amr, he shall receive nothing. If he refuted Khalid and litigated against Amr, then if Khalid took half of the grain by force (usurpation), Zaid has the option to partner with Amr in the remaining half; because whatever was lost from the joint property is accounted against the partnership, and what remains stays in the partnership. Then both together shall recover from Khalid what he took, if they can find it. If Khalid did not take it by force but Amr gave it to him of his own will, then Zaid has the option to take the remaining half from Amr. If at the time Khalid took half the grain, he said to Amr, "Take this land for sharecropping (Muzara'ah) from my side," and he accepted, would this sharecropping be valid and the first one be annulled? The ruling is that if the seeds are not from Amr's side, this sharecropping is invalid and the first one is not annulled. If the seeds are from Amr's side such that he has the right of annulment, even then, the sharecropping should not be annulled at this stage; contrary to if he had annulled it initially, then it could be annulled. This is mentioned in 'Al-Zakheera'.

If a person gave his vineyard to another on a contract and the worker (Aamil) did no work in the said orchard, he will have no right to the fruits. Similarly, if he worked but did not protect the trees and fruits until they were destroyed, he will be entitled to nothing, because protection is part of the worker's duty. However, if a farmer failed to perform tasks like levelling/lining the crop (Tasdeeb) (1) or irrigation such that the crop was damaged, does he have any right to the produce? Some scholars have stated that there is a distinction: if the seeds were his, he would be entitled, unlike a vineyard worker who did no work and the fruits were stolen or spoiled. If the seeds were from the landowner, he should receive nothing because the produce did not grow from his ownership. This is in 'Al-Muhit'. If a person gave land for one year of sharecropping, then the crop matured and was harvested before the year ended, the sharecropping contract terminates, provided that the remaining year is not sufficient for growing another crop. This is in 'Tatarkhania'. If someone gave land to sow date stones on the condition that they would be transplanted from one place to another and the produce would be shared, there are two scenarios: first, if the place of transplanting was specified, for example, from here to another piece of land or from one side of this land to another, then the contract is irregular (Fasid) whether the seeds are from the farmer or the landowner. If the place was not specified, then by analogy (Qiyas) it should not be permissible, but by juristic preference (Istihsan) the

contract is valid. Anything that is transplanted from one place to another follows this same ruling, as mentioned in some fatwas regarding eggplant plants and the like. The translator notes that this is the local custom there and the same is expected in India.

Do not give this ruling. Allah knows best. If a person gave his barren land to another on the condition that the farmer would reclaim (2) it and both the farmer and the landowner would cultivate it with seeds from both for three years, then this Muzara'ah is irregular (Fasid) because the condition of reclamation imposed on the farmer voids the contract. If the owner and the worker sowed for one year with seeds from both, the landowner has the option to take back the land and the entire crop for both...

---

1. The translator says: The truth is that Muzara'ah and Mu'amalah (Musaqat) follow the same path in this regard...
2. 'Ta'mir' (Reclamation) of land means preparing it and making it suitable for cultivation. (1) Arranging/Preparing the field. (2) Meaning with seeds.

यदि उसने खालिद के कथन की पुष्टि की और अम्र से विवाद नहीं किया, तो उसे कुछ नहीं मिलेगा। और यदि उसने खालिद को झुठलाया और अम्र से विवाद किया, तो यदि खालिद ने ज़बरदस्ती आधा अनाज ले लिया हो, तो ज़ैद को अधिकार होगा कि वह शेष आधे में अम्र के साथ साझेदारी करे, क्योंकि जो माल साझा संपत्ति में से नष्ट हुआ वह साझेदारी के खाते में गया और जो शेष रहा वह साझेदारी में ही रहा। फिर दोनों मिलकर खालिद से वह हिस्सा वापस लेंगे जो उसने लिया है, यदि वे उसे पा सकें। यदि खालिद ने ज़बरदस्ती नहीं लिया, बल्कि अम्र ने अपनी इच्छा से उसे दिया हो, तो ज़ैद को अधिकार होगा कि वह अम्र से शेष आधा हिस्सा ले ले। और यदि खालिद ने आधा अनाज लेते समय अम्र से कहा हो कि यह ज़मीन मेरी ओर से बटाई (मुज़ारअत) पर ले लो और उसने ले ली हो, तो क्या यह बटाई सही होगी और पहली बटाई निरस्त हो जाएगी? तो नियम यह है कि यदि बीज अम्र की ओर से न हों, तो यह बटाई सही नहीं होगी और न ही पहली बटाई निरस्त होगी। और यदि बीज अम्र की ओर से हों और उसे निरस्त करने का अधिकार हो, तो भी इस स्थिति में बटाई निरस्त नहीं होनी चाहिए; इसके विपरीत यदि उसने शुरुआत में ही निरस्त किया होता तो निरस्त हो सकता था। यह 'अल-ज़ख़ीरा' में वर्णित है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपना अंगूर का बाग दूसरे को समझौते पर दिया और उस व्यक्ति (आमिल) ने बाग में कोई काम नहीं किया, तो बाग के फलों में उसका कोई अधिकार नहीं होगा। इसी प्रकार यदि उसने काम तो किया लेकिन पेड़ों और फलों की रक्षा नहीं की यहाँ तक कि फल नष्ट हो गए, तो भी वह किसी चीज़ का पात्र नहीं होगा। इसका कारण यह है कि रक्षा करना भी काम का हिस्सा है। लेकिन यदि काश्तकार ने खेती में बुवाई (तसदीब) (1) और सिंचाई नहीं की जिससे खेती में नुकसान हुआ, तो क्या वह उपज में कुछ अधिकार रखता है? कुछ विद्वानों ने कहा है कि इसमें विस्तार है, अर्थात् यदि बीज उसकी ओर से हों तो वह पात्र होगा, बाग के आमिल के विपरीत जिसने काम नहीं किया और फल चोरी हो गए या खराब हो गए। और यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, तो उसे कुछ नहीं मिलना चाहिए क्योंकि उपज उसकी मिल्कियत से नहीं उगी है। यह 'अल-मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने एक वर्ष की बटाई पर ज़मीन दी, फिर वर्ष पूरा होने से पहले ही फ़सल तैयार होकर कट गई, तो बटाई का अनुबंध समाप्त हो जाएगा, बशर्ते कि शेष वर्ष किसी दूसरी चीज़ की खेती के लिए पर्याप्त न हो। यह 'तातारीखनिया' में है। यदि किसी ने अपनी ज़मीन खजूर की गुठलियाँ बोने के लिए दी इस शर्त के साथ कि उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जाएगा और उपज

साझा होगी, तो इसकी दो स्थितियाँ हैं: एक यह कि स्थानांतरण का स्थान निश्चित कर दिया गया हो, जैसे कि यहाँ से दूसरी ज़मीन में या ज़मीन के इस हिस्से से उस हिस्से में, तो ऐसी स्थिति में अनुबंध दोषपूर्ण (फ़ासिद) होगा चाहे बीज काश्तकार के हों या मालिक के। और यदि स्थान निश्चित नहीं किया गया, तो कयास के अनुसार यह जायज़ नहीं होना चाहिए, लेकिन इस्तिहसान (विवेक) के आधार पर अनुबंध जायज़ है। और जो चीज़ ऐसी हो जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित किया जाता हो, उस पर यही नियम लागू होगा, जैसे कुछ फ़तवों में बैंगन आदि के पौधों के बारे में बताया गया है। अनुवादक का कहना है कि यह वहां का रिवाज है और भारत में भी ऐसी ही आशा है।

यह आदेश न दें। अल्लाह बेहतर जानता है। एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी बंजर ज़मीन इस शर्त पर दी कि काश्तकार उसे कृषि योग्य (2) बनाएगा और काश्तकार व ज़मीन का मालिक दोनों के बीजों से तीन वर्ष तक खेती करेंगे, तो यह मुज़ारअत फ़ासिद (दोषपूर्ण) है क्योंकि काश्तकार पर सुधार की शर्त अनुबंध को बिगाड़ देती है। यदि मालिक और आमिल ने दोनों के बीजों से एक वर्ष बुवाई की, तो मालिक को अधिकार होगा कि वह ज़मीन वापस ले ले और पूरी फ़सल दोनों...

---

1. अनुवादक ने कहा: सत्य यह है कि मुज़ारअत और मुआमला (मुसाक़ात) इस मामले में एक ही मार्ग पर हैं...
2. ज़मीन की तामीर का अर्थ है उसे खेती के योग्य बनाना। (1) खेत को व्यवस्थित करना। (2) यानी बीजों से।

---

آیا پس اگر اس نے خالد کے قول کی تصدیق کی اور عمرو سے مخاصمہ نہ کیا تو اس کو کچھ نہ ملے گا اور اگر اس نے خالد کی تکذیب کی اور عمرو سے مخاصمہ کیا پس اگر خالد نے نصف غلہ براہ تغلب لے لیا ہو تو زید کو اختیار ہو گا کہ باقی نصف میں عمرو کے ساتھ شرکت کرے کیونکہ جس قدر مال مشترک میں سے تلف ہوا وہ شرکت میں گیا اور جو باقی رہا وہ شرکت میں رہا پھر دونوں نے مل کر مئی یعنی خالد سے جو اس نے لیا ہے واپس لیں گے اگر اس کو پائیں۔ اگر خالد نے تغلب کی راہ سے نہ لیا ہو بلکہ عمرو نے باختیار خود اس کو دیا ہو تو زید کو اختیار ہو گا کہ عمرو سے باقی نصف لے لے اور اگر خالد نے جس وقت نصف غلہ لیا ہے عمرو سے کہا ہو کہ یہ زمین میری طرف سے مزارعت پر لے اور اس نے لے لی پس آیا یہ مزارعت صحیح ہو گی اور مزارعت اولیٰ فسخ ہو جائے گی تو یہ حکم ہے کہ اگر بیج عمرو کی طرف سے نہ ہوں تو یہ مزارعت صحیح نہ ہو گی اور نہ مزارعت اولیٰ فسخ ہو گی اور اگر بیج عمرو کی طرف سے ہوں حتیٰ کہ اس کو فسخ کا اختیار ہو تو باوجود اس کے بھی اس مقام پر چاہیے کہ مزارعت فسخ نہ ہو گا بخلاف اس کے اگر اس نے ابتداً فسخ کی تو فسخ ہو سکتی ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر ایک شخص نے اپنا باغ انگور دوسرے کو معاملہ پر دیا اور عامل باغ مذکور میں کچھ کام نہ کیا تو باغ کے پھلوں میں اس کا کچھ استحقاق نہ ہو گا اس طرح اگر اس نے کام تو کیا مگر درختوں و پھلوں کی حفاظت نہ کی حتیٰ کہ پھل ضائع ہو گئے تو کچھ مستحق نہ ہو گا اس واسطے کہ حفاظت کرنا بھی عامل کے حق میں منجملہ عمل کے ہے مگر کاشتکار نے اگر زراعت میں مثل تسدیب (1) و سقی کے نہ کیا یہاں تک کہ زراعت میں نقصان آیا پس آیا پیداوار میں کچھ استحقاق رکھتا ہے تو بعض مشائخ نے فرمایا کہ حکم تفصیل ہے یعنی اگر بیج اس کی طرف سے ہوں تو

مستحق ہو گا بخلاف عامل کے کہ اگر اس نے باغ انگور میں کچھ کام نہ کیا اور پھل کسی شخص نے توڑ لیے یا خراب ہو گئے تو کچھ مستحق نہ ہو گا اور اگر بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں تو چاہیے کہ کچھ مستحق نہ ہو اس واسطے کہ پیداوار اس کی ملک سے نہیں اُگی ہے یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے ایک سال کی مزارعت پر ایک زمین دی پھر کھیتی سال کے تمام ہونے سے پہلے تیار ہو کر کاٹ لی گئی تو مزارعت ٹوٹ جائے گی بشرطیکہ جب باقی سال کسی دوسری چیز کی زراعت کے واسطے کافی نہ ہو یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر ایک شخص کو اپنی زمین دی کہ اس میں خرما کی گٹھلیاں بو دے اس شرط سے کہ ان کو ایک مقام سے دوسرے مقام پر منتقل کرے اور حاصلات دونوں میں مشترک ہو گی تو اس کی دو صورتیں ہیں ایک یہ کہ موضع تحویل معین کر دیا مثلاً یوں کہا کہ یہاں سے اس دوسری زمین میں منتقل کر دے یا کہا کہ اسی زمین کے اس جانب سے دوسری جانب منتقل کر دے تو اس صورت میں عقد فاسد ہو گا خواہ بیج کاشتکار کی طرف سے ہو یا مالک زمین کی طرف سے اور اگر اس نے موقع تحویل معین نہ کیا تو قیاس یہ چاہتا ہے کہ جائز نہ ہو اور استحساناً عقد جائز ہے اور جو چیز ایسی ہو کہ ایک مقام سے دوسرے مقام پر تحویل کی جاتی ہو اس کا یہی حکم ہے اور بعض فتاویٰ میں ہے مثلاً بیان کیا کہ جیسے بادبنجان وغیرہ کے درخت۔ قال المترجم یہ وہاں کا عرف ہے اور دیار ہند میں امید ہے۔

یہ حکم نہ دو۔ واللہ اعلم ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین کھنڈل اس شرط سے دی کہ کاشتکار اس کی تعمیر (2) کرے اور کاشتکار مع مالک زمین کے دونوں کو بیجوں سے تین برس تک زراعت کرے تو مزارعت فاسد ہے اور اس واسطے کہ کاشتکار کے ذمہ تعمیر کی شرط مفسد عقد ہے پس اگر مالک و عامل نے دونوں کے بیجوں سے ایک سال بویا تو مالک زمین کو اختیار ہو گا کہ زمین کو لے لے اور تمام کھیتی دونوں

1. قال المترجم: والحق ان المزارعة والمعاملة فى هذا على نهج واحد فان المعاملة بالاشجار اذا كانت فى الثمار كانت كمزارعة كانت فيها البذر على رب الارض وفى هذه المزارعة اذالم يعمل المزارع مانكره فى الكتاب لم يستحق شئنيا نقوله بخلاف العامل ينبغى ان يتصل بالشق الثاني هناك لاحاجة الى ذكر هذا الخلاف فافهم۔

2. تعمیر زمین کو آراستہ کر کے زراعت کے قابل کرنا۔ (1) کھیتی پیراستہ کرنا۔ (2) یعنی بیجوں سے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) [Page 454] Kitab al-Muzara'ah (Book of Sharecropping)**

The produce shall be shared in proportion to the seeds provided by each party. The cultivator is entitled to 'Ajr al-Mithl' (fair wages) from the landowner for his labor in transforming the land. Similarly, the landowner is entitled to 'Ajr al-Mithl' from the cultivator for the portion of land occupied by the cultivator's seeds. This is mentioned in Fatawa Qazi Khan. Sheikh Abu al-Qasim was asked regarding a person who cultivated land on the banks of the Jayhun (1) River; after the crop was ready, a group claimed ownership of the land. The Sheikh ruled that the crop belongs to the owner of the seeds, and regarding the land, if the claimants prove their right, it is theirs; otherwise, it belongs to the one who 'revived' (2) the barren land. This is also stated in Al-Hawi. Between two plots of land, one higher than the other, is a water embankment with trees of unknown origin on a 'Kariz' (irrigation channel). Sheikh al-Islam Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl ruled that if the lower land retains water without the Kariz and does not depend on it, the word of the owner of the higher land (with an oath) shall be accepted regarding the Kariz and the trees. However, if the lower land depends on the Kariz for water, then the channel and the trees are shared between both.

If one party claims exclusive ownership, it will not be confirmed without witnesses, though each may demand an oath from the other. If two people took land for sharecropping using the owner's seeds on the condition that the produce be split into thirds (one for the owner and one for each cultivator), and after a crop failure, one refused to plant the Kharif (autumn) crop while the other proceeded alone, does the first cultivator deserve a share of the new crop due to previous labor? It was ruled that while labor without a contract technically holds no value, it is better to compensate him for his satisfaction. Regarding land held under 'Bay-ul-Wafa' (sale with right of redemption), it was asked who owes the 'Kharaj' (land tax) after the buyer has cultivated it for years. The ruling is that it falls upon the seller. Hiring someone to thresh grain in exchange for half the straw is not permissible as it falls under the 'Qafiz al-Tahhan' prohibition.

**If the Cultivator becomes an Apostate and provides the Seeds** ☆

Regarding paying a weaver with a third or fourth of the cloth produced, the scholars of Balkh permitted it based on public custom, while the scholars of Bukhara prohibited it, aligning with the prohibition of 'Qafiz al-Tahhan' (paying a laborer with

a portion of the product processed). This same ruling applies to cotton picking, pounding grain, or reaping wheat when the wage is a portion of the harvested produce.

(1) Name of a river. (2) Turning barren land into cultivable land.

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) [पृष्ठ 454] किताबुल मुज़ारअह (साझेदारी की खेती का विवरण)

फ़सल उस अनुपात में साझा होगी जितना प्रत्येक का बीज था। काश्तकार (किसान) के लिए ज़मीन के मालिक पर अपने काम यानी ज़मीन की स्थिति बदलने के लिए 'अज्र-ए-मिसल' (उचित मज़दूरी) वाजिब होगी। इसी तरह ज़मीन के मालिक के लिए किसान पर उतनी ज़मीन का 'अज्र-ए-मिसल' वाजिब होगा जितनी ज़मीन किसान के बीजों की खेती में इस्तेमाल हुई थी। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। शेख अबुल क़ासिम से पूछा गया कि एक व्यक्ति ने जीहूँ (नदी) के किनारे की ज़मीन में खेती की और फ़सल तैयार हो गई, फिर एक समूह ने दावा किया कि ज़मीन उनकी है। शेख ने कहा कि फ़सल बीज वाले की होगी, और ज़मीन का नियम यह है कि यदि उक्त समूह अपना अधिकार सिद्ध कर दे तो उनकी होगी, अन्यथा उसकी होगी जिसने बंजर ज़मीन को उपजाऊ (आबाद) बनाया। दो ज़मीनों के बीच एक पानी का बांध है, एक ज़मीन दूसरी से ऊँची है और कारीज़ (जलधारा) पर पेड़ लगे हैं जिनका लगाने वाला अज्ञात है। शेखुल इस्लाम अबू बकर मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल ने कहा कि यदि निचली ज़मीन में कारीज़ के बिना भी पानी रुकता है और उसे कारीज़ की आवश्यकता नहीं है, तो विवाद में ऊँची ज़मीन वाले का कथन (शपथ के साथ) मान्य होगा और पेड़ भी उसी के होंगे। लेकिन यदि निचली ज़मीन पानी के लिए कारीज़ पर निर्भर है, तो कारीज़ और पेड़ दोनों के साझा होंगे।

यदि कोई दावा करे कि यह उसकी निजी संपत्ति है, तो गवाहों के बिना पुष्टि नहीं होगी, पर प्रत्येक को दूसरे से शपथ लेने का अधिकार है। यदि दो लोगों ने इस शर्त पर खेती शुरू की कि मालिक के बीज का उपयोग करेंगे और पैदावार के तीन हिस्से होंगे (एक मालिक का और एक-एक दोनों किसानों का), पहली फ़सल नष्ट होने के बाद एक किसान ने खरीफ़ की फ़सल बोने से मना कर दिया, लेकिन दूसरे ने अकेले बो दी, तो क्या पहले किसान को पुरानी मेहनत के बदले नई फ़सल में हिस्सा मिलेगा? कहा गया कि उसे संतुष्ट करना बेहतर है, हालाँकि नियमतः बिना अनुबंध के काम का कोई मूल्य नहीं होता। एक अन्य प्रश्न में पूछा गया कि 'बय-अल-वफ़ा' (शर्तिया बिक्री) के तहत ज़मीन पर खेती की गई, तो उसका 'खराज' (राजस्व) कौन देगा? उत्तर मिला कि विक्रेता (बेंचने वाला) देगा। भूसे के बदले अनाज निकालने का काम तय करना जायज़ नहीं है।

### यदि किसान धर्मत्यागी (मुरतद) हो जाए और बीज उसी के हों

कपड़ा बुनने की मज़दूरी में कपड़े का तीसरा या चौथा हिस्सा तय करने के बारे में बल्ख़ के विद्वानों ने जन-प्रथा के कारण इसे जायज़ माना है, जबकि बुखारा के विद्वान इसे 'क़फ़ीज़ अल-तहान' के सिद्धांत के अनुसार नाजायज़ मानते हैं। इसी तरह रूई चुनने, अनाज कूटने या गेहूँ काटने की मज़दूरी उसी वस्तु के हिस्से के रूप में तय करना भी इसी नियम के अंतर्गत आता है।

---

فصل اس تناسب سے مشترک ہو گی جس قدر ہر ایک کا بیج تھا، اور کاشتکار کے لیے زمین کے مالک پر اپنے کام یعنی زمین کی حالت تبدیل کرنے کی وجہ سے 'اجر المثل' (مناسب اجرت) واجب ہوگی۔ اسی طرح زمین کے مالک کے لیے کاشتکار پر اتنی زمین کا 'اجر المثل' واجب ہوگا جتنی زمین کاشتکار کے بیجوں کی زراعت کی وجہ سے استعمال ہوئی تھی۔ یہ حکم فتاویٰ قاضی خان میں مذکور ہے۔ شیخ ابو القاسم سے پوچھا گیا کہ ایک شخص نے جیحون دریا کے کنارے زمین میں کاشت کی اور فصل تیار ہو گئی، پھر کچھ لوگوں نے دعویٰ کیا کہ زمین ان کی ہے۔ شیخ نے فرمایا کہ فصل بیج بونے والے کی ہوگی، اور زمین کے بارے میں حکم یہ ہے کہ اگر دعویٰ کرنے والوں نے اپنا حق ثابت کر دیا تو زمین ان کی ہوگی، ورنہ اس کی ہوگی جس نے بنجر زمین کو آباد کر کے قابلِ کاشت بنایا تھا۔ کتاب الحاوی میں ایسا ہی لکھا ہے۔ دو زمینوں کے درمیان ایک پانی کا بند ہے، ایک زمین دوسری سے اونچی ہے اور کاریز (زیرِ زمین نالہ) پر درخت لگے ہوئے ہیں جن کے لگانے والے کا علم نہیں۔ شیخ الاسلام ابو بکر محمد بن الفضل نے فرمایا کہ اگر نیچی زمین میں کاریز کے بغیر بھی پانی ٹھہرتا ہے اور پانی کی فراہمی میں کاریز کی ضرورت نہیں ہے، تو تنازع کی صورت میں اونچی زمین والے کا قول (حلف کے ساتھ) معتبر ہوگا اور درخت بھی اسی کے ہوں گے، جب تک کہ دوسرا فریق گواہ پیش نہ کر دے۔ لیکن اگر نیچی زمین پانی کے لیے کاریز کی محتاج ہے، تو کاریز اور درخت دونوں کے درمیان مشترک ہوں گے۔

اگر کوئی اکیلا دعویٰ کرے کہ یہ میری خاص ملکیت ہے، تو گواہوں کے بغیر اس کی تصدیق نہیں کی جائے گی، البتہ ہر ایک دوسرے سے حلف لینے کا حق رکھتا ہے۔ اگر دو افراد نے زمین اس شرط پر لی کہ مالک کے بیج سے کاشت کریں گے اور پیداوار کے تین برابر حصے ہوں گے

(ایک مالک کا اور ایک ایک دونوں کاشتکاروں کا)، پھر پہلی فصل ضائع ہو گئی اور ایک کاشتکار نے خریف کی کاشت سے انکار کر دیا، جبکہ دوسرے نے اکیلے کاشت کر لی، تو کیا پہلے کاشتکار کو گزشتہ محنت کی وجہ سے اس نئی فصل میں حصہ ملے گا؟ فرمایا گیا کہ کچھ دینا بہتر ہے تاکہ وہ راضی ہو جائے، ورنہ اصول یہ ہے کہ بغیر معاہدے کے کام کی کوئی قیمت نہیں ہوتی۔ تاہم امام محمدؒ نے اسے پسند کیا ہے کہ عامل کو راضی کیا جائے۔ ایک اور مسئلہ میں پوچھا گیا کہ 'بیع الوفاء' (مشروط فروخت) پر لی گئی زمین پر مشتری (خریدنے والے) نے کاشت کی، تو زمین کا خراج (ٹیکس) کس کے ذمے ہوگا؟ فرمایا کہ بیچنے والے (بائع) کے ذمے ہوگا۔ بھوسے کے عوض گندم نکالنے کی مزدوری طے کرنا جائز نہیں ہے (یہ قفیز الطحان کے حکم میں آتا ہے)۔

**اگر کاشتکار مرتد ہو جائے اور بیج اس کی طرف سے ہوں**

کپڑا بننے کی اجرت میں تہائی یا چوتھائی کپڑا طے کرنے کے معاملے میں بلخ کے علماء نے عوامی رواج کی وجہ سے اسے جائز قرار دیا ہے، جبکہ بخارا کے علماء اسے ناجائز سمجھتے ہیں۔ اسی طرح روئی چننے، غلہ کوٹنے یا گندم کاٹنے کی مزدوری اسی جنس میں سے طے کرنا (مثلاً کٹی ہوئی گندم کا حصہ) بھی اسی حکم میں آتا ہے۔

---

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 5 | 354 | Kitab al-Muzara'a (Book of Sharecropping)**

The same disagreement exists regarding 'Daroon'; this is mentioned in 'Tatar-khaniya'. If an apostate (*murtad*) gave his land and seeds to a sharecropper for half the yield, and the sharecropper farmed according to the conditions and a crop was produced; then if the said apostate returns to Islam, the crop will be shared between both parties according to the agreed conditions. However, if he was killed while in the state of apostasy, the entire yield will belong to the sharecropper, and he must compensate the provider for the seeds and the depreciation of the land. This is the opinion of those who adopted the permissibility of sharecropping based on the analogy (*qiyas*) of the saying of Imam A'zam (may Allah have mercy on him). This compensation will be mandatory for the sharecropper in all cases, whether the land produced anything or not. According to the *Sahibayn* (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), this sharecropping contract is valid, and the yield will be shared between both parties according to the conditions. If the seeds were provided by the sharecropper and the apostate [landowner] was killed in the state of apostasy, then if the land suffered any damage, the sharecropper shall pay for the loss, and the entire crop will belong to him. If there was no damage to the land, analogy suggests that the entire yield should belong to him; however, by way of *istihsan* (juridistic preference), the total yield shall be shared between the sharecropper and the heirs of the apostate. This analogy and preference are based on the saying of Imam A'zam (may Allah have mercy on him), whereas according to the *Sahibayn*, this contract is valid. If the sharecropper is the apostate and provided the seeds, and was killed in that state, then according to the opinion of Imam A'zam, the entire yield belongs to him and the landowner receives nothing. If the seeds were from the landowner, then by consensus (*ijma'*), the entire yield shall be shared according to the conditions. If both are apostates and the seeds are from the landowner, the yield belongs to the sharecropper, who must compensate for the seeds and land damage. This is because the landowner's directive was not legally valid for the sharecropper, rendering him like a usurper (*ghasib*) who seized the land and seeds. If both return to Islam or the owner of the seeds becomes Muslim, the total yield is shared according to the conditions, as if they were Muslim at the time of the contract.

If the seeds were from the sharecropper and he was killed while in apostasy, the yield belongs to him, but he must pay for land damage because the owner's directive is not valid regarding the rights of the heirs. If there is damage, then as in 'like usurpation' (*mithl al-ghasb*) ^1, the owner's heirs receive nothing. Similarly, if the

landowner becomes Muslim, it is as if he were Muslim at the time of the contract, meaning the same ruling applies. If both become Muslim, or the sharecropper becomes Muslim and the landowner is killed while an apostate, the sharecropper shall compensate the heirs of the deceased for land damage, as the deceased's instruction to farm was not valid regarding the heirs. If there is no damage, analogy suggests the yield belongs to the sharecropper and the heirs receive nothing, but by *istihsan*, it is shared according to the conditions. According to Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him), if both are killed, or both become Muslim, or both flee to *Dar al-Harb* (the land of war), or both ^2 die, the yield is shared according to the conditions. This opinion ^3 of Imam A'zam (may Allah have mercy on him) also applies to the sharecropping and dealings of an apostate woman, as mentioned in 'Al-Mabsut'. A sharecropping contract between a Muslim and a *Harbi* (non-Muslim from the land of war) is valid in both *Dar al-Islam* and *Dar al-Harb*. Similarly, such a contract is permissible between two *Harbis* or two Muslims in *Dar al-Harb*, whether they entered it as Muslims or converted there. If Muslims conquer *Dar al-Harb*, all the lands become *Fay* ^4 and spoils of war. Thus, the portion belonging to the *Harbi* also becomes *Fay*, but the portion belonging to the Muslim does not. If the Imam (leader) leaves the lands in the possession of those *Harbis* as a favor or they embrace Islam, their existing dealings will remain as they were; however, the dealings they had with Muslims...

---

1. 'Like usurpation' means just as in usurpation nothing was received because the cultivation was with permission.
2. The saying "they died" means it will be shared between the heirs of both.
3. Meaning what was stated in the case of the apostate.
4. *Fay* refers to the spoils of war obtained through Jihad.

'दरून' में भी यही मतभेद है, यह 'ताटारख़ानिया' में दर्ज है। यदि किसी धर्मत्यागी (मुरतद) ने अपनी भूमि और बीज किसी किसान को आधी बटाई पर दी और उसने शर्त के अनुसार खेती की और फसल पैदा हुई; तो यदि उक्त मुरतद मुसलमान हो गया, तो यह खेती दोनों के बीच शर्त के अनुसार साझा होगी। और यदि उसे धर्मत्याग की स्थिति में मार दिया गया, तो पैदावार किसान की होगी और वह बीज देने वाले को बीजों और भूमि के नुकसान का हर्जाना देगा। यह उसका कथन है जिसने इमाम आज़म (रह.) के कथन के अनुमान पर मुज़ारअत (साझा खेती) की अनुमति देकर इसे अपनाया है। और यह हर्जाना हर हाल में किसान पर वाजिब होगा, चाहे ज़मीन में कुछ पैदा हुआ हो या नहीं। साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के कथन के अनुसार यह मुज़ारअत सही है और पैदावार दोनों में शर्त के अनुसार साझा होगी। और यदि बीज किसान की ओर से हों और मुरतद को धर्मत्याग की स्थिति में मार दिया गया हो, तो यदि भूमि को नुकसान पहुँचा हो, तो किसान भूमि के नुकसान का हर्जाना देगा और पूरी खेती उसी की होगी। यदि भूमि में कोई नुकसान न हुआ हो, तो अनुमान (क़यास) यही है कि पूरी पैदावार उसी की हो, लेकिन इस्तिहसान (विवेकपूर्ण प्राथमिकता) के आधार पर पूरी पैदावार किसान और मुरतद के उत्तराधिकारियों के बीच साझा होगी। यह क़यास और इस्तिहसान इमाम आज़म (रह.) के कथन पर आधारित है, और साहिबैन के अनुसार यह मुज़ारअत सही है। यदि किसान मुरतद हो और बीज उसकी ओर से हों, तो यदि वह मुरतद अपनी धर्मत्याग की स्थिति में मारा गया, तो इमाम आज़म के मत के अनुसार पूरी पैदावार उसी की होगी और ज़मीन के मालिक को कुछ नहीं मिलेगा। यदि बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, तो सर्वसम्मति (इज्मा) से सभी के अनुसार पूरी पैदावार दोनों में शर्त के अनुसार साझा होगी। और यदि दोनों मुरतद हों और बीज ज़मीन के मालिक की ओर से हों, तो पैदावार किसान की होगी और उस पर वाजिब होगा कि वह बीजों और भूमि के नुकसान का हर्जाना दे, क्योंकि ज़मीन के मालिक का आदेश किसान के लिए राय के तौर पर सही नहीं हुआ, इसलिए किसान ग़ासिब (अवैध कब्ज़ा करने वाले) के समान हो गया जिसने ज़मीन और बीजों को हड़प लिया है। और यदि दोनों मुसलमान हो गए या बीजों का मालिक मुसलमान हो गया, तो पूरी पैदावार दोनों में शर्त के अनुसार साझा होगी, जैसे कि यदि वे अनुबंध के समय मुसलमान होते।

यदि बीज किसान की ओर से हों और वह धर्मत्याग की स्थिति में मारा गया, तो पैदावार उसी की होगी और उसे भूमि के नुकसान का हर्जाना देना होगा, क्योंकि ज़मीन के मालिक का राय आधारित आदेश

उत्तराधिकारियों के हक में सही नहीं है। यदि भूमि में कुछ नुकसान हुआ हो, तो 'मिसले ग़सब' (हड़पने के समान) ^1 के तौर पर ज़मीन के मालिक के उत्तराधिकारियों को कुछ नहीं मिलेगा। इसी प्रकार यदि ज़मीन का मालिक मुसलमान हो गया, तो यह वैसा ही है जैसे वह अनुबंध के समय मुसलमान था, अर्थात यही नियम लागू होगा। यदि दोनों मुसलमान हो गए या किसान मुसलमान हो गया और ज़मीन का मालिक धर्मत्याग की स्थिति में मारा गया, तो किसान मृतक के उत्तराधिकारियों को भूमि के नुकसान का हर्जाना देगा, क्योंकि उक्त मालिक का किसान को खेती का आदेश देना उत्तराधिकारियों के हक में सही नहीं है। और यदि भूमि में कोई नुकसान न हुआ हो, तो क़यास यह है कि पैदावार किसान की होगी और ज़मीन के मालिक के उत्तराधिकारियों को कुछ नहीं मिलेगा, लेकिन इस्तिहसान के अनुसार पैदावार दोनों में शर्त के अनुसार साझा होगी। इमाम अबू यूसुफ (रह.) के अनुसार यदि दोनों मारे गए या दोनों मुसलमान हो गए या दोनों दारुल हर्ब (युद्ध क्षेत्र) चले गए या दोनों ^2 मर गए, तो पैदावार दोनों में शर्त के अनुसार साझा होगी। और एक मुरतद औरत की मुज़ारअत और लेनदेन के मामले में भी इमाम आज़म (रह.) का यही कथन ^3 है, यह 'मबसूत' में उल्लेखित है। मुसलमान और हर्बी के बीच दारुल इस्लाम या दारुल हर्ब में मुज़ारअत का अनुबंध सही है। इसी प्रकार दो हर्मियों या दो मुसलमानों के बीच दारुल हर्ब में मुज़ारअत का अनुबंध जायज़ है, चाहे वे दोनों मुसलमान होकर दारुल हर्ब गए हों या वहीं मुसलमान हुए हों। और यदि मुसलमानों ने दारुल हर्ब पर विजय प्राप्त कर ली, तो वह पूरी भूमि 'फ़ै ^4 और गनीमत का माल होगी। अतः जो हिस्सा हर्बी की खेती का है वह भी 'फ़ै होगा, लेकिन मुसलमान का हिस्सा 'फ़ै नहीं होगा। और यदि इमाम ने उन हर्मियों की भूमि उन्हीं के पास रहने दी और उन पर उपकार किया या वे लोग मुसलमान हो गए, तो उनके बीच जो लेनदेन जिस तरह था वह वैसा ही बना रहेगा, लेकिन जो मामला वे मुसलमानों...

---

1- 'मिसले ग़सब' अर्थात जैसे हड़पने में कुछ नहीं मिलता था क्योंकि खेती अनुमति से है। 2- उनका कथन "मर गए" तो दोनों के उत्तराधिकारियों के बीच साझा होगी। 3- अर्थात जो मुरतद की स्थिति में वर्णित हुआ। 4- 'फ़ै वह गनीमत का माल है जो जिहाद में प्राप्त हुआ।

---

درووں میں بھی یہی اختلاف ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر کسی مرتد نے اپنی زمین و بیج کسی کاشتکار کو آدھے کی بٹائی پر دی اور اس نے شرط پر زراعت کی اور کھیتی پیدا ہوئی پس اگر مرتد مذکور مسلمان ہو گیا تو یہ زراعت دونوں میں موافق شرط کے مشترک ہوگی اور اگر حالتِ ردت میں قتل کیا گیا تو پیداوار کاشتکار کی ہو گی اور دینے والے کو بیجوں اور نقصانِ زمین کا تاوان دے گا یہ اس کا قول ہے جس نے بقیاسِ قول امام اعظمؒ مزارعت کی اجازت دے کر اختیار کیا ہے اور یہ تاوان ہر حال میں کاشتکار پر واجب ہوگا خواہ زمین میں کچھ پیدا ہوا ہو یا نہ ہوا ہو اور بنا پر قول صاحبینؒ کے یہ مزارعت صحیح ہے اور پیداوار دونوں میں موافقِ شرط کے مشترک ہو گی اور اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں اور مرتد حالتِ ردت میں قتل کیا گیا پس اگر زمین میں نقصان آیا ہو تو کاشتکار نقصانِ زمین کا تاوان دے گا اور پوری زراعت اسی کی ہو گی۔ اگر زمین میں نقصان نہ آیا ہو تو قیاس چاہتا ہے کہ پوری پیداوار اسی کی ہو مگر استحساناً تمام پیداوار کاشتکار و وارثان مرتد کے درمیان مشترک ہوگی اور قیاس و استحسان بقیاس قول امام اعظمؒ ہے اور صاحبین کے نزدیک یہ مزارعت صحیح ہے۔ اگر کاشتکار مرتد ہو اور بیج اسی کی طرف سے ہوں پس اگر مرتد مذکور اپنی حالتِ ردت پر قتل کیا گیا تو امام اعظمؒ کے قول پر تمام پیداوار اسی کی ہوگی اور مالکِ زمین کو کچھ نہ ملے گا۔ اگر بیج مالکِ زمین کی طرف سے ہوں تو بالا جماع سب کے نزدیک تمام پیداوار دونوں میں موافقِ شرط کے مشترک ہوگی اور اگر دونوں مرتد ہوں اور بیج مالکِ زمین کی طرف سے ہوں تو پیداوار کاشتکار کی ہو گی اور اس پر واجب ہو گا کہ بیج اور نقصانِ زمین تاوان دے اس واسطے کہ کاشتکار کے واسطے مالکِ زمین کا حکم بالرائے صحیح نہ ہوا تو کاشتکار مثلِ غاصب کے ہو گیا کہ اس نے زمین و بیج غصب کیے ہیں اور اگر

دونوں مسلمان ہو گئے یا بیجوں کا مالک مسلمان ہو گیا تو تمام پیداوار دونوں میں موافقِ شرط کے مشترک ہو گی جیسا کہ اگر وقتِ عقد کے مسلمان ہوتا تو یہ حکم تھا۔

اگر بیج کاشتکار کی طرف سے ہوں حالانکہ وہ حالتِ ردت میں قتل کیا گیا تو پیداوار اسی کی ہوگی اور اس پر نقصانِ زمین کا تاوان لازم ہوگا اس واسطے کہ مالکِ زمین کا حکم بالرائے وارثوں کے حق میں صحیح نہیں ہے۔ اگر زمین میں کچھ نقصان آیا ہو تو مثلِ غصب ۱۸ کے وارثان مالکِ زمین کو کچھ نہ ملے گا اسی طرح اگر مالکِ زمین مسلمان ہو گیا تو یہ ایسا ہے کہ جیسے وقتِ عقد کے مسلمان تھا یعنی حکم یہی ہے۔ اگر دونوں مسلمان ہو گئے یا کاشتکار مسلمان ہوا اور مالکِ زمین حالتِ ردت میں قتل کیا گیا تو کاشتکار و وارثانِ مقتول مذکور کو نقصانِ زمین تاوان دے گا اس واسطے کہ مالکِ مذکور کا کاشتکار کو زراعت کے واسطے حکم دینا وارثوں کے حق میں صحیح نہیں ہے اور اگر زمین میں کچھ نقصان نہ آیا ہو تو قیاس یہ ہے کہ پیداوار کاشتکار کی ہوگی اور وارثانِ مالکِ زمین کو کچھ نہ ملے گا مگر استحساناً پیداوار دونوں میں موافقِ شرط کے مشترک ہوگی اور امام ابویوسفؒ کے نزدیک اگر دونوں قتل کیے گئے یا دونوں مسلمان ہو گئے یا دونوں دارالحرب میں جا ملے یا دونوں ۲۸ مر گئے تو پیداوار دونوں میں موافقِ شرط کے مشترک ہو گی اور وہ مرتدہ عورت کی مزارعت و معاملت میں بھی امام اعظمؒ کے رحم اللہ کا یہ قول ۳۸ ہے یہ مبسوط میں ہے۔ مسلمان و حربی کے درمیان دارالاسلام یا دارالحرب میں عقدِ مزارعت صحیح ہے اس طرح دو حربیوں یا دو مسلمانوں کے درمیان دارالحرب میں عقدِ مزارعت جائز ہے خواہ یہ دونوں مسلمان ایمان لے کر دارالحرب میں گئے ہوں یا وہیں مسلمان ہوئے ہوں اور اگر دارالحرب پر مسلمان غالب ہو گئے اور انہوں نے فتح کر لیا تو یہ سب اراضی فئی ۴۸ و مالِ غنیمت ہو گی پس جو حصہ زراعتِ حربی کا ہے وہ بھی فئی ہوگا مگر جو حصہ مسلمان کا ہے وہ فئی نہ ہوگا اور اگر امام نے ان حربیوں کی اراضی ان کے پاس چھوڑ دی اور ان پر منت و احسان

کیا یا یہ لوگ مسلمان ہو گئے تو جو معاملات ان کے درمیان جس طرح تھے بحالہ باقی رہیں گے لیکن جو معاملہ وہ مسلمانوں

---

۱- مثلِ غصب یعنی جیسے غصب کچھ نہیں ملتا تھا کیونکہ زراعت باجازت ہے۔ ۲- قولہ مر گئے تو دونوں کے وارثوں میں مشترک ہو گی۔ ۳- یعنی جو مرتد کی صورت میں بیان ہوا۔ ۴- فئی مالِ غنیمت جو جہاد میں حاصل ہوا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume ⑧ [355] Kitab al-Muzara'ah (The Book of Sharecropping)**

...in which it becomes invalid (fasid), it will become invalid. If a Muslim, in a contract of sharecropping for a Harbi (a non-Muslim from a territory at war with Muslims), stipulated only a 'qafiz' (a specific measure) of the produce, then according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, it is valid, but according to Imam Abu Yusuf, it is not valid. If such a sharecropping contract occurs between two Muslims who converted to Islam in Dar al-Harb (territory of war), then according to Imam Azam it is valid, and according to the Sahihayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) it is not valid; this is mentioned in Tatar-khaniyah.

If a person gave their land and seeds in an invalid (fasid) sharecropping contract and the sharecropper plowed the land and dug channels, and then the owner of the seeds refused (1) to continue the sharecropping, the owner shall be liable for the fair wage (Ajr al-Mithl) for the cultivator's work; this is in Sirajiyyah. It is mentioned in Majmu' al-Nawazil that a sharecropper requested a landowner to give him his land on a one-fourth (2) share basis. The landowner said, "If you wish, cultivate on the condition that one-third will be mine, otherwise not." Then, when the crop was harvested after cultivation, the two disagreed. It is mentioned that one-third will belong to the landowner and the rest of the produce to the sharecropper. Also in Majmu' al-Nawazil, when a crop is shared between two men, one of them disappears and the other harvests the crop, he will be considered a volunteer (acting gratuitously); as stated in al-Muhit.

---

(2) Meaning one-fourth will be yours and the rest of the produce will be mine. (1) Meaning he broke the contract.

...जिसमें वह फ़ासिद (अमान्य) हो जाता है, वह फ़ासिद हो जाएगा। अगर किसी मुसलमान ने हरबी (युद्ध क्षेत्र के गैर-मुस्लिम) के लिए साझा खेती के अनुबंध (मुज़ारअत) में केवल एक 'क़फ़ीज़' (एक माप) पैदावार की शर्त रखी, तो इमाम आज़म (अबू हनीफ़ा) रह. और इमाम मुहम्मद रह. के अनुसार यह सही है, और इमाम अबू यूसुफ़ रह. के अनुसार यह सही नहीं है। यदि ऐसा मुज़ारअत अनुबंध ऐसे दो मुसलमानों के बीच होता है जो दारुल हर्ब (युद्ध क्षेत्र) में मुसलमान हुए हैं, तो इमाम आज़म रह. के अनुसार यह सही है और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) रह. के अनुसार यह सही नहीं है, यह तातारख़ानिया में है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपनी भूमि और बीज फ़ासिद (अमान्य) मुज़ारअत के रूप में दिए और किसान ने भूमि जोती और नहरें खोदीं, फिर बीजों के मालिक ने मुज़ारअत जारी रखने से इनकार (1) कर दिया, तो उस पर किसान के काम का उचित पारिश्रमिक (अज्र अल-मिस्ल) अनिवार्य होगा, यह सिराजिया में है। मजमूअ अल-नवाज़िल में उल्लेख है कि एक किसान ने एक ज़मींदार से अनुरोध किया कि वह अपनी ज़मीन मुझे चौथाई (2) हिस्से पर दे दे। ज़मींदार ने कहा कि अगर तुम्हारा मन हो, तो इस शर्त पर खेती करो कि एक-तिहाई हिस्सा मेरा होगा, अन्यथा नहीं। फिर जब उसने खेती के बाद फसल काटी, तो दोनों में मतभेद हो गया। यह उल्लेख किया गया है कि एक-तिहाई ज़मींदार का होगा और बाकी पैदावार किसान की होगी। और साथ ही मजमूअ अल-नवाज़िल में है कि जब कोई फसल दो आदमियों के बीच साझा हो, उनमें से एक गायब हो जाए और दूसरे ने फसल काट ली, तो उसे स्वयंसेवी (मुतबर्रअ - यानी बिना मुआवज़े के काम करने वाला) माना जाएगा, जैसा कि अल-मुहीत में है।

---

(2) यानी एक-चौथाई तुम्हारी होगी और बाकी पैदावार मेरी होगी। (1) यानी अनुबंध तोड़ दिया।

میں فاسد ہوتا ہے وہ فاسد ہو جائے گا۔ اگر مسلمان نے حربی کے واسطے عقدِ مزارعت میں بس قفیز پیداوار شرط کی تو امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک صحیح ہے اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک نہیں صحیح ہے۔ اگر ایسا عقدِ مزارعت ایسے دو مسلمانوں میں جو دار الحرب میں مسلمان ہوئے ہیں واقع ہو تو امام اعظمؒ کے نزدیک صحیح ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک صحیح نہیں ہے تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر ایک شخص نے اپنی زمین و بیج بطورِ مزارعت فاسدہ دی اور مزارع نے زمین جوتی اور نہریں اگاریں پھر بیجوں کے مالک نے مزارعت باقی رکھنے سے انکار (۱) کیا تو اس پر کاشتکار کے کام و اجر المثل واجب ہو گا یہ سراجیہ میں ہے۔ مجموع النوازل میں مذکور ہے کہ ایک کاشتکار نے ایک زمیندار سے درخواست کی کہ اپنی زمین مجھے چوتھائی (2) کی بٹائی پر دے دے پس زمین دار نے کہا کہ اگر تیرا جی چاہے تو اس شرط سے زراعت کر کہ تہائی میری ہو گی ورنہ نہیں پھر جب اس نے بعد زراعت کے کھیتی کاٹی تو دونوں نے اختلاف کیا تو مذکور ہے کہ تہائی زمین دار کی ہو گی اور باقی پیداوار کاشتکار کی ہو گی اور نیز مجموع النوازل میں ہے جب کہ ایک کھیتی دو آدمیوں میں مشترک ہے ان میں سے ایک غائب ہو گیا اور دوسرے نے کھیتی کو کاٹا تو یہ متبرع قرار دیا جائے گا کذا فی المحیط

---

(2) یعنی چوتھائی تیری ہو گی باقی پیداوار میری ہو گی ۔ (۱) یعنی توڑ دیا ۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 356 | Kitab al-Mu'amalah**

# The Book of Transactions (Al-Mu'amalah)

**It consists of two chapters.**

# किताब अल-मुआमला (लेन-देन/मुसाक़ात की किताब)

## इसमें दो अध्याय हैं

## کتاب المعاملہ

---

### اس میں دو ابواب ہیں

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 --- 457 --- Book of Transactions**

...shall be. Among them is that some of the produce stipulated for each party must be joint (shared)[1] and of a known quantity, i.e., one-third, one-fourth, etc., of the shared portion must be known. Another condition is that the subject of the contract must be handed over to the worker (agent); that is, there should be a vacancy created between the owner and the worker with no hindrance or attachment, to the extent that if the contract stipulates work from both parties, the transaction will be void (*fasid*). It should be noted that specifying the duration is not a preferred (*istihsanan*) condition for the validity of the transaction because it is an ongoing practice among people without such specifications. Thus, the first fruit that ripens at the beginning of the year will mark the commencement of the contract; that is, the duration will be determined based on it. If land is given for the cultivation of fresh dates (*rutab*) or land where date roots already existed and no duration was specified, then if it is an item whose beginning and end of picking or harvesting time is unknown, the transaction is void. However, if the harvest time is known, the transaction is valid, and the first harvest that occurs will mark the end of the term, as is the case with fruit-bearing trees. There are several types of invalidating conditions (*shara'it-e-mufsida*); among them is if the entire produce is stipulated for only one of the two parties, then this condition invalidates the contract. Another is if a specific quantity (*qafiz*) is stipulated for one of the two parties. Another is if labor is stipulated from the landowner. Another is if it is stipulated that the produce must be transported or guarded after its distribution. Another is if picking date fruits or grapes is stipulated as the worker's responsibility, then without disagreement, this condition is invalidating. Another is stipulating work for the farmer whose benefit remains after the duration of the transaction has expired, such as applying manure, erecting grape trellises, planting trees, or tilling the soil, and similar tasks, because these matters are not within the requirements of the contract, nor are they necessary for the subject matter or its objectives.

Among these is that if the worker's labor is made the basis of the transaction but the contract offeror also participates in the labor, then the transaction is void. For example, if a date grove is shared between two persons, and one partner hands it over to the other partner for a known period for management under the condition that whatever produce is yielded will be divided into three parts, such that two-thirds go to the partner who worked and one-third to the partner who did not work, then such a transaction is void. The entire produce will be divided between both according

to each one's ownership share, but the partner who worked will be entitled to a fair wage (*ajr-al-mithl*) from the other partner for their labor. If both had stipulated that the entire produce would be divided according to each one's ownership, the transaction would have been valid. If the silent partner ordered the working partner to purchase the material used for pollinating date trees and he did so, he shall recover half of the cost from him, and the transaction is valid, whether the worker is one person or more. For instance, if a person gave his date grove to two persons on a sharecropping basis, it is valid, whether he kept the shares of both workers equal or unequal. Furthermore, it should be clarified that the rules for a valid transaction are of several types. Among them is that in a contract, tasks necessary for trees, vineyards, dates, and eggplant roots, etc., such as irrigation, repairing canals, guarding, and pollinating date trees, are all the responsibility of the worker. Tasks that involve expenditures on trees, vineyards, and land, such as manuring the soil and...

[1] Al-Muharram said: If a vineyard was given and ten *maunds* of grapes were stipulated for the worker, the transaction is void because the produce is no longer shared. And if it was said that the owner gave this vineyard to you for management on the condition that some of the produce will be mine and some yours, it is void because the shared portion must be a known quantity.

[2] For example, it was stipulated for the worker to transport the owner's share to his home after distribution, or to guard it until it is transported, or both conditions were made.

होगा। उनमें से एक यह है कि प्रत्येक के लिए निर्धारित कुछ उपज साझा १ــ और ज्ञात मात्रा में होनी चाहिए, यानी तिहाई, चौथाई आदि साझा हिस्से की मात्रा ज्ञात हो। और उनमें से एक यह है कि जिसके विषय में अनुबंध हुआ है, उसे कार्यकर्ता (आमिला) के सुपुर्द कर दिया जाए, यानी मालिक और कार्यकर्ता के बीच खाली स्थान कर दिया जाए, कोई बाधा या लगाव न रखा जाए, यहाँ तक कि यदि अनुबंध में दोनों के जिम्मे काम करना अनिवार्य किया गया हो, तो सौदा अमान्य (फ़ासिद) होगा। और स्पष्ट रहे कि अवधि का विवरण देना अनुबंध की वैधता के लिए अधिमानतः(इस्तेहसानान) शर्त नहीं है क्योंकि अवधि बताए बिना भी लोगों में इसका प्रचलन जारी है। अतः पहला फल जो वर्ष के आरंभ में उतरता है, उसी पर अनुबंध लागू होगा, यानी उसी को अवधि माना जाएगा। और यदि कोई भूमि दी गई कि उसमें रताब (खजूर) की खेती की जाए या ऐसी भूमि दी जिसमें रताब की जड़ें बाकी थीं और अवधि का विवरण नहीं दिया, तो यदि वह ऐसी वस्तु हो जिसके तोड़ने और काटने की शुरुआत और अंत का समय ज्ञात न हो, तो सौदा अमान्य होगा। और यदि उसके काटने का समय ज्ञात हो, तो सौदा वैध है और पहली कटाई जो होगी, उसी पर अवधि की समाप्ति मानी जाएगी जैसा फलदार वृक्षों में होता है। अमान्य करने वाली शर्तों के कई प्रकार हैं, उनमें से एक यह है कि पूरी उपज दोनों में से केवल एक के लिए निर्धारित हो, तो यह शर्त अनुबंध को अमान्य करने वाली है। उनमें से एक यह है कि दोनों में से एक के लिए एक निश्चित मात्रा (क़फ़ीज़) निर्धारित हो। उनमें से एक यह है कि भूमि के स्वामी के जिम्मे काम अनिवार्य किया गया हो। उनमें से एक यह है कि उपज के बंटवारे के बाद उसे उठाना और सुरक्षा करना शर्त रखा गया हो। उनमें से एक यह है कि यदि खजूर के फल तोड़ना या अंगूर के फल तोड़ना कार्यकर्ता के जिम्मे शर्त किया गया, तो बिना किसी मतभेद के यह शर्त अमान्य करने वाली है। उनमें से एक खेतीहर के जिम्मे ऐसे काम की शर्त करना है जिसका लाभ अनुबंध की अवधि बीतने के बाद भी रहे, जैसे खाद डालना, अंगूर की टटियाँ खड़ी करना, पेड़ लगाना, या जमीन खोदना और इसी तरह के अन्य काम, क्योंकि ये बातें अनुबंध की प्रकृति के अनुसार नहीं हैं और न ही ऐसी हैं कि अनुबंध की वस्तु की आवश्यकता या उसके उद्देश्यों में से हों।

उनमें से एक यह है कि जिसमें कार्यकर्ता का काम अनुबंध का आधार बनाया गया है, उसमें अनुबंध करने वाला भी शामिल हो, तो सौदा अमान्य है। उदाहरण के तौर पर यदि खजूर का एक बाग दो व्यक्तियों में साझा हो, फिर एक साझेदार ने दूसरे साझेदार को एक निश्चित अवधि के लिए काम पर

दिया इस शर्त के साथ कि जो उपज होगी वह दोनों में तीन तिहाई होगी, इस तरह कि दो तिहाई उस साझेदार की जिसने काम किया है और एक तिहाई उस साझेदार की जिसने काम नहीं किया है, तो ऐसा सौदा अमान्य है और पूरी उपज दोनों में प्रत्येक के स्वामित्व के अनुपात में विभाजित होगी, लेकिन जिस साझेदार ने काम किया है, उसे दूसरे साझेदार से काम का उचित पारिश्रमिक (अज्र-ए-मिस्ल) पाने का अधिकार होगा। और यदि दोनों यह शर्त रखते कि पूरी उपज दोनों में प्रत्येक के स्वामित्व के अनुपात में विभाजित होगी, तो सौदा वैध होता। और यदि मौन साझेदार ने कार्यशील साझेदार को आदेश दिया कि जिससे खजूर के पेड़ों का परागण (नर-मादी मिलाना) किया जाता है वह खरीदे और उसने खरीदा, तो उसने जो दाम दिए हैं, उसके आधे दाम वह उससे वापस लेगा और सौदा वैध है, चाहे कार्यकर्ता एक व्यक्ति हो या अधिक। उदाहरण के तौर पर यदि एक व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग दो व्यक्तियों को बटाई पर दिया तो यह वैध है, चाहे उसने दोनों कार्यकर्ताओं का हिस्सा बराबर रखा हो या कम-ज्यादा। फिर स्पष्ट हो कि सही अनुबंध के नियम कई प्रकार के हैं, उनमें से एक यह है कि अनुबंध में जिन कामों की आवश्यकता पेड़ों, अंगूर के बाग, रताब और बैंगन आदि की जड़ों को इस प्रकार की है जैसे सिंचाई करना, नहर ठीक करना, सुरक्षा करना और खजूर के पेड़ों का परागण करना, तो ऐसे सभी काम कार्यकर्ता के जिम्मे हैं। और जो काम ऐसे हैं जिनमें पेड़ों, अंगूर के बाग और जमीन में खर्च होता है जैसे जमीन में खाद देना और...

१ـ अल-मुहर्रम ने कहा कि यदि अंगूर का बाग दिया और कार्यकर्ता के लिए दस मन अंगूर शर्त किए तो सौदा अमान्य है क्योंकि उपज साझा नहीं रही। और यदि यह कहा गया कि मालिक ने यह अंगूर का बाग तुझे इस शर्त पर अनुबंध पर दिया कि इसी उपज में से कुछ उपज मेरी और कुछ तेरी होगी, तो यह अमान्य है क्योंकि साझा हिस्सा ज्ञात होना चाहिए।

२ـ उदाहरण के तौर पर कार्यकर्ता के जिम्मे शर्त किया कि मालिक का हिस्सा बंटवारे के बाद उठाकर उसके घर पहुँचाए या जब तक न उठाया जाए तब तक उसकी सुरक्षा करे या दोनों शर्तें रखीं।

---

ہوگا۔ از آنجملہ یہ ہے کہ بعض حاصلات جو ہر ایک کے واسطے مشروط ہے وہ مشترک ۱ـہ و معلوم القدر ہو یعنی تہائی و چوتھائی وغیرہ مقدار حصہ مشترک معلوم ہو اور از آنجملہ یہ ہے کہ جس میں عقد معاملہ قرار پایا ہے وہ عامل کے سپرد کرے یعنی اس کے اور عامل کے درمیان تخلیہ کر دے کوئی مانع اور کچھ لگاؤ نہ رکھے حتیٰ کہ اگر دونوں کے ذمہ اس میں کام کرنا عقد میں مشروط ہو تو معاملہ فاسد ہوگا اور واضح ہو کہ مدت کا بیان کرنا جوازِ معاملہ کے واسطے استحساناً شرط نہیں ہے کیونکہ بدوں بیانِ مدت کے لوگوں میں اس کا تعامل جاری ہے پس پہلا پھل جو سال کے اول میں اترتا ہے اس پر عقد معاملہ کا وقوع ہوگا یعنی اسی پر مدت قرار دی جائے گی اور اگر کوئی زمین دی کہ اس میں رطاب کی کاشت کرے یا ایسی زمین دی جس میں اصول رطبہ باقی تھیں اور مدت بیان نہ کی پس اگر ایسی شے ہو کہ اس کے چننے و کاٹنے کی ابتدا و انتہا کا وقت معلوم نہ ہو تو معاملہ فاسد ہوگا اور اگر اس کے کاٹنے کا وقت معلوم ہو تو معاملہ جائز ہے اور پہلی کٹائی جو واقع ہو اسی پر مدت کی انتہا قرار دی جائے گی جیسا پھل دار درختوں میں ہوتا ہے۔ شرائط مفسدہ کے چند انواع ہیں از آنجملہ یہ کہ تمام حاصلات دونوں میں سے ایک کے واسطے مشروط ہوں پس یہ شرط مفسد عقد ہے۔ از آنجملہ یہ کہ دونوں میں سے ایک کے واسطے کسی قدر قفیز معلومہ مشروط ہوں۔ از آنجملہ یہ کہ مالک زمین کے ذمہ کام مشروط ہو۔ از آنجملہ یہ کہ حاصلات تقسیم ہونے کے بعد اس کا اٹھالانا اور حفاظت کرنا شرط کیا گیا ہو از آنجملہ یہ کہ اگر خرما کے پھل توڑنا یا انگور کے پھل توڑنا عامل کے ذمہ شرط کیے تو بلا خلاف یہ شرط مفسد ہے۔ از آنجملہ کاشتکار کے ذمے ایسے کام کی شرط کرنا جس کی منفعت مدت معاملہ گزرنے کے بعد باقی رہے۔ جیسے کھاد ڈالنا و انگوروں کی ٹٹیاں کھڑی کرنا یا درخت جمانا و زمین کوڑنا اور

جو اس کے مانند کام ہوں کیونکہ یہ امور بر مقتضائے عقد نہیں ہیں اور نہ ایسے ہیں کہ ضرورت معقود علیہ اور اس کے مقاصد میں سے ہوں۔

از آنجملہ یہ ہے کہ جس میں عامل کا کام عقد معاملہ قرار دیا گیا ہے اس میں معاملہ پرونے والا شرکت رکھتا ہو تو معاملہ فاسد ہے چنانچہ اگر ایک باغ خرما دو شخصوں میں مشترک ہو پھر ایک شریک نے دوسرے شریک کو مدت معلومہ کے واسطے معاملہ پر دے دیا بدیں شرط کہ جو حاصلات ہو وہ دونوں میں تین تہائی ہو اس طرح کہ دو تہائی اس شریک کی جس نے کام کیا ہے اور ایک تہائی اس شریک کی جس نے کام نہیں کیا ہے تو ایسا معاملہ فاسد ہے اور تمام حاصلات دونوں میں بحساب ہر ایک کی ملک کے تقسیم ہوگی مگر جس شریک نے کام کیا ہے اس کے واسطے دوسرے شریک پر کام کا اجر المثل واجب ہوگا اور اگر دونوں یوں شرط کرتے کہ تمام حاصلات دونوں میں بحساب ہر ایک کی ملک کی تقسیم ہو گی۔ تو معاملہ جائز ہوتا اور اگر شریک ساکت نے شریک عامل کو حکم دیا کہ جس سے درخت خرما کی نر مادی لگائی جاتی ہے وہ خرید کرے اور اس نے خرید کی تو جس قدر دام اس نے دیے ہیں اس کے آدھے دام اس سے واپس لے گا اور معاملہ جائز ہے خواہ عامل ایک شخص ہو یا زیادہ ہوں چنانچہ اگر ایک شخص نے اپنا باغ خرما دو شخصوں کو بٹائی پر دیا تو جائز ہے خواہ اس نے دونوں عاملوں کا حصہ برابر رکھا ہو یا کم زیادہ رکھا ہو پھر واضح ہو کہ معاملہ صحیح کے احکام چند انواع ہیں از آنجملہ یہ ہے کہ عقد معاملہ میں جن کاموں کی ضرورت درختوں و باغ انگور و رطبہ و اصول باذنجان وغیرہ کو اس قسم کی ہے جیسے سینچنا و نہر درست کرنا و حفاظت کرنا و درختان خرما کی نرمادی لگانا تو ایسے کام سب عامل کے ذمہ ہیں اور جو کام ایسے ہیں کہ ان میں درختوں و باغ انگور و زمین میں خرچہ پڑتا ہے جیسے زمین میں کھاد دینا اور

۱۔ قال المحرم اگر باغ انگور دیا اور عامل کے واسطے دس من انگور شرط کیے تو معاملہ فاسد ہے اس واسطے کہ حاصلات مشترک نہ رہی اور اگر کیوں کہا کہ تعین نے یہ باغ انگور تجھے معاملہ پر بدین شرط دیا کہ اسی حاصلات میں سے بعض حاصلات میری اور بعض تیری ہوگی تو فاسد ہے اس واسطے کہ حصہ مشترک چیز معلوم القدر ہے۔

۲۔ مثلاً عامل کے ذمہ شرط کیا کہ مالک کا حصہ بعد تقسیم کے اٹھا کر اس کے گھر پہنچائے یا جب تک نہ اٹھایا جائے تب تک اس کی حفاظت کرے یا دونوں شرط کیے۔

**Fatawa 'Alamgiri ..... Vol 8 | 358 | Kitab al-Mu'amala (Book of Transactions)**

Digging land that contains grapevines and fodder, and erecting trellises for grapes and similar tasks involving expenditure, shall be obligatory upon both parties in proportion to their respective rights. Harvesting dates and picking grape clusters are also included in this. Among the rules is that whatever produce is obtained shall be shared between both parties according to the agreed terms. Another rule is that if the trees produce nothing, neither party shall receive anything. Furthermore, the transaction contract is binding on both parties; neither has the right to refuse or annul the contract without the other's consent, unless a valid excuse (uzr) recognized by Sharia is presented, in which case it may be annulled. An employer may compel a worker (amil) to perform the task, but not if the worker is physically unable or incapacitated. Increasing or decreasing the agreed share is permissible, but generally, an increase is valid only if it could have been stipulated at the beginning of the contract; otherwise, it is not. However, decreasing the share is permissible in both scenarios.

If the growth of the fruit buds is complete, an increase from the worker's side in favor of the orchard owner is permissible, but an increase from the owner's side in favor of the worker is not. Another rule is that the worker does not have the authority to delegate the transaction to another worker unless the owner has authorized the worker to act according to his own judgment. It should be clear that there are several types of void/irregular transactions (mu'amala fasida). In such cases, the worker cannot be compelled to work. Additionally, the entire harvest belongs to the owner, and the owner is not required to give a share from it as charity. Furthermore, the worker's customary wage (ajr al-mithl) is not dependent on the production of fruit; rather, it is mandatory whether fruit is produced or not. According to Imam Abu Yusuf, the wage shall not exceed the named amount, whereas according to Imam Muhammad, the full customary wage is due. Reasons for annulment include the worker being a notorious thief. A contract is automatically annulled by mutual cancellation (iqala), expiry of the term, or the death of either party. It is also annulled if the worker becomes too ill to work without harming his health.

**Chapter Two: On Miscellaneous Issues**

If a transaction is made in exchange for some fruits in orchards or vineyards, it is considered void (fasid) according to Imam Azam (Abu Hanifa), but permissible according to the 'Sahibayn' (Abu Yusuf and Muhammad), provided the time period

and the fractional share (like one-third or one-fourth) are specified. The fatwa (legal verdict) is based on the latter view. If a date or grape orchard is leased for a specific number of months during which it is certain that the plants lack the capacity to produce fruit, or the fruit is no longer in a state to be contracted upon, the contract is invalid. Regarding the wage: if the customary wage is ten and the named wage is twelve, ten will be given; if the customary wage is fifteen and the named is twelve, twelve will be given (not more) according to Imam Abu Yusuf, whereas Imam Muhammad holds that in every case, the full fifteen (the customary wage) will be given.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 358 | किताब अल-मुआमला**

ऐसी ज़मीन कोड़ना जिसमें अंगूर वगैरह के दरख्त और रतबा (सब्ज़ चारा) है और अंगूर की टट्टियाँ (मचान) खड़ी करना और इसी तरह के काम जिनमें खर्च होता है, वह दोनों पर प्रत्येक के हिस्से के अनुसार वाजिब होगा। खजूर के फल तोड़ना और अंगूर के गुच्छे चुनना भी इसमें शामिल है। उनमें से एक नियम यह है कि जो पैदावार होगी, वह दोनों के बीच शर्त के अनुसार साझा होगी। एक नियम यह है कि अगर पेड़ों में कुछ पैदा न हो, तो दोनों में से किसी को कुछ नहीं मिलेगा। एक नियम यह भी है कि सौदे का अनुबंध (अक़्द) दोनों पक्षों पर अनिवार्य होता है, यहाँ तक कि दोनों में से किसी को दूसरे की सहमति के बिना अनुबंध रद्द करने का अधिकार नहीं है, लेकिन अगर कोई ऐसी बाधा (उज़्र) सामने आए जिसे शरीयत में मान्य माना गया हो, तो रद्द किया जा सकता है। एक नियम यह है कि काम करने के लिए श्रमिक (आमलि) को बाध्य किया जा सकता है, लेकिन अगर वह लाचार हो तो ऐसा नहीं किया जा सकता। एक नियम यह है कि तय किए गए हिस्से को बढ़ाना या घटाना जायज़ है, लेकिन नियम यह है कि बढ़ाना उसी स्थिति में जायज़ होगा जब अनुबंध की शुरुआत में ही उसे तय किया जा सके, अन्यथा नहीं। हालाँकि, घटाना दोनों स्थितियों में जायज़ है।

यदि कलियों का बढ़ना पूरा हो गया, तो श्रमिक की ओर से बाग के मालिक के लिए हिस्सा बढ़ाना जायज़ है, लेकिन मालिक की ओर से श्रमिक के लिए बढ़ाना जायज़ नहीं है। एक नियम यह है कि श्रमिक को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी दूसरे श्रमिक को यह काम सौंप दे, सिवाय इसके कि उसे अपनी राय से काम करने की अनुमति दी गई हो। स्पष्ट हो कि दूषित अनुबंध (मुआमला फ़ासिदा) के कई प्रकार हैं। उनमें से एक यह है कि श्रमिक को काम करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। एक यह कि पूरी पैदावार मालिक को मिलेगी और मालिक उसमें से कुछ भी नहीं देगा। एक यह कि श्रमिक का उचित पारिश्रमिक (अज्र-ए-मिस्ल) फलों के पैदा होने पर निर्भर नहीं है, बल्कि वह अनिवार्य होगा चाहे फल पैदा हों या न हों। इमाम अबू यूसुफ के अनुसार पारिश्रमिक तय राशि से अधिक नहीं होगा, जबकि इमाम मुहम्मद के अनुसार पूरा उचित पारिश्रमिक वाजिब होगा। अनुबंध रद्द करने के कारणों में श्रमिक का प्रसिद्ध चोर होना भी शामिल है। अनुबंध खुद ही रद्द हो जाता है यदि आपसी सहमति से उसे खत्म किया जाए, समय सीमा समाप्त हो जाए, या किसी पक्ष की मृत्यु हो जाए। श्रमिक के बीमार होने पर भी अनुबंध रद्द हो जाता है यदि काम उसके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो।

**अध्याय दो: विविध विषयों पर**

यदि पेड़ों और अंगूर के बागों में कुछ फलों के बदले अनुबंध किया गया, तो इमाम आज़म के अनुसार यह दूषित है, जबकि साहिबैन के अनुसार यह जायज़ है, बशर्ते समय सीमा और हिस्सा (जैसे एक-तिहाई या एक-चौथाई) स्पष्ट हो। फतवा इसी पर है कि यह जायज़ है। यदि खजूर या अंगूर का बाग कुछ महीनों के लिए दिया गया और यह ज्ञात हो कि इस अवधि में फल पैदा नहीं हो सकते, तो यह अनुबंध मान्य नहीं होगा।

---

ایسی زمین گوڑنا جس میں انگور وغیرہ کے درخت ورطبہ ہے اور انگور کی ٹٹیاں کھڑی کرنا اور اس کے مثل کام جن میں خرچہ ہے وہ دونوں پر بقدر ہر ایک کے حق کے واجب ہوگا اور خرما کے پھل توڑنا اور انگور کے خوشہ چننا بھی اس میں داخل ہے۔ از انجملہ یہ ہے کہ جو حاصلات ہو وہ دونوں میں موافق شرط کے مشترک ہوگی از انجملہ یہ ہے کہ اگر درختوں میں کچھ نہ آئے تو دونوں میں سے کسی کو کچھ نہ ملے گا۔ از انجملہ یہ ہے کہ عقد معاملہ طرفین سے لازم ہوتا ہے حتیٰ کہ دونوں میں سے کسی کو انکار کیا فسخ عقد کا بدوں دوسرے کی رضا مندی کے اختیار نہیں ہے لیکن اگر کوئی عذر پیش آئے جس کا شرع میں اعتبار ہے تو فسخ کرسکتا ہے۔ از انجملہ یہ کہ عامل پر کام کے واسطے جبر کر سکتا ہے لیکن اگر عامل معذور ہو تو ایسا نہیں کر سکتا ہے۔ از انجملہ یہ کہ جو حصہ شرط کیا گیا ہے اس پر بڑھانا یا اس سے گھٹانا جائز ہے مگر اصل یہ ہے کہ بڑھانے میں بڑھانا اسی صورت میں جائز ہو گا جب ابتدائے عقد قرار دینا ہو سکے ورنہ نہیں ہاں گھٹانا دونوں صورتوں میں جائز ہے چنانچہ اگر ایک شخص نے اپنا باغ خرما آدھے کی بنائی پر دیا اور پھل نکلے پس اگر انکار بڑھنا پورا نہ ہو گیا ہو تو دونوں میں سے ہر ایک کی طرف سے دوسرے کے حق میں حصہ مشروط پر کچھ بڑھا دینا جائز ہے۔

اگر کیریوں کا بڑھنا پورا ہو گیا تو عامل کی طرف سے مالک باغ کے واسطے بڑھانا جائز ہے اور مالک کی طرف سے عامل کے واسطے کچھ بڑھانا نہیں جائز ہے اور از انجملہ یہ ہے کہ عامل کو یہ اختیار نہیں ہے کہ دوسرے عامل کو معاملہ پر دے دے لیکن اگر دوسرے نے عامل سے یہ کہہ دیا ہو کہ اپنی رائے پر عمل کر تو دے سکتا ہے۔ واضح ہو کہ حکم معاملہ فاسدہ کے چند انواع ہیں۔ از انجملہ یہ کہ عامل پر کام کرنے کے واسطے جبر نہیں کیا جاسکتا ہے۔ از انجملہ یہ کہ پوری

حاصلات مالک کو ملے گی اور مالک اس میں سے کچھ صدقہ نہ کرے گا از انجملہ یہ کہ عامل کے کام کا اجر المثل پھلوں کے پیدا ہونے پر نہیں ہے بلکہ اجر المثل واجب ہوگا خواہ پھل پیدا ہوں یا کچھ نہ پیدا ہوں از انجملہ یہ ہے کہ اجر المثل مقدار مسمیٰ پر مقدر ہوگا اس سے زیادہ نہیں دیا جائے گا یہ امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک پورا واجب ہوگا یہ اختلاف اس صورت میں ہے کہ عقد معاملہ میں دونوں میں سے ہر ایک کا حصہ بیان کیا گیا ہو اور اگر بیان نہ کیا گیا ہو تو بلا خلاف پورا اجر المثل واجب ہوگا اور واضح ہو کہ جو امور فسخ معاملہ میں عذر ہوتے ہیں از انجملہ یہ کہ عامل چور ہو چوری میں مشہور ہو کہ اس کی ذات پھلوں کی نسبت جوف کیا جائے اور جن امور سے عقد معاملہ خود فسخ ہو جاتا ہے وہ اقالہ کرنا ہے اور مدت معاملہ گزر جانا اور متعاقدین کا مر جانا کذا فی البدائع اور عقد معاملہ عامل کے بیمار ہونے سے فسخ ہو جاتا ہے بشرطیکہ کام کرنا اس کو اس طرح مضر ہو کہ وہ کام سے ضعیف ہوتا ہو اور اگر عامل نے چاہا کہ میں کام نہ کروں تو صحیح قول کے موافق اس کو یہ قابو نہ دیا جائے گا یہ تبیین میں ہے۔

**باب دوم : متفرقات میں**

اگر درختوں و باغہائے انگور میں بعض پھلوں کے عوض معاملہ اقرار دیا تو امام اعظمؒ کے نزدیک فاسد ہے اور صاحبین کے نزدیک جائز ہے بشرطیکہ مدت معلومہ اور جز و مشاع یعنی مثل تہائی و چوتھائی وغیرہ کے بیان کر دیا ہو اور فتویٰ اسی امر پر ہے کہ معاملہ جائز ہے اگر چہ مدت بھی بیان نہ کی ہو یہ سراجیہ میں ہے اور طلبات و اصول باد بنجان میں مساقات جائز ہے یہ سراج الوہاج میں ہے۔ اگر باغ خرما اور درخت خرما یا باغ انگور کسی شخص کو چند ماہ معلوم کے واسطے پر دیا حالانکہ یقیناً یہ بات معلوم ہے کہ نخل یا شجر یا انگور میں اتنی مدت میں پھل پیدا ہونے کی صلاحیت نہیں ہے یا پھل اس قابل باقی نہ ہو کہ اس پر ابتدائے عقد ہو سکتا ہو۔ قال الحر

رحمہم اللہ اس کے معنی یہ ہیں کہ اجر المثل اگر مثلاً دس ہو اور مسمیٰ بارہ تو دس ملے گا اور اگر اجر المثل اس صورت میں پندرہ ہو تو بارہ ملے گا نہ زیادہ یہ امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ہے اور امام محمدؒ کے نزدیک ہر صورت پورے پندرہ ملیں گے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 359 Kitab al-Muamalah**

If no fruit is produced, the transaction (contract) is void (fasid). If the duration is such that fruit sometimes appears and sometimes does not, the contract remains suspended; if fruit appears within the fixed period, the contract becomes valid, and if not, it becomes void. This applies when the fruit produced is as expected in such a transaction. If the fruit produced is not of a desirable quality[1] for such a transaction, the contract will not be valid because something undesirable is as good as non-existent. If fruit does not appear on date palms within the specified period, it should be seen whether no fruit was produced at all in those trees throughout that year or failed due to some cause; in such a case, the contract remains valid. However, if fruit appears later in that same year after the period has expired, the contract is void; this is mentioned in 'Khulasa'[2]. If land is given for a transaction for a period of five hundred years, it is not valid; if given for a hundred years while the lessor is twenty years old, it is valid; but if it exceeds one hundred and twenty years[3], it is not valid; this is in 'Tatar Khaniya'.

If a date palm orchard is given to someone under a transaction contract on the condition that both the trees and the fruit are shared half-and-half, then if the trees are still in their growth phase (hadd-e-numood), the contract will be valid for both the trees and the fruit. But if the trees have passed the growth phase (fully matured), the transaction is void. Passing the growth phase is recognized when the trees have reached full size and bear fruit; this is in 'Zakheera'. A person gave a vineyard to another on a transaction contract even though the trees required nothing but protection; the scholars (Mashaikh) stated that if the situation is such that without protection the fruits would perish before ripening, then the contract is valid, and in this case, protection will be considered part of the growth process. However, if the situation is such that without protection only unripe fruit would be lost, the transaction will not be valid, and the worker (amil) will receive nothing from the fruit. If trees are given to someone for a transaction, Sheikh Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fadl (RA) stated that their transaction is valid and the worker will receive a share because they require watering or protection; even if they require neither, the transaction remains valid; this is in 'Fatawa Qazi Khan'. In 'Mukhtasar Shaikhul Islam Khwarzadah', it is written that if someone gives a date palm orchard to two persons on the condition that one worker[4] receives a sixth share, the second receives half, and the owner receives a third, then this is valid; this is in 'Tatar Khaniya'.

If a person gives his date palm tree to two workers on the condition that both (1) perform pollination (2) at their own expense and the produce is divided into equal thirds among all three, then this is valid. But if a condition is set that the owner receives one-third and a specific worker receives two-thirds, and the other worker is to be paid one hundred dirhams by the worker receiving two-thirds, then this is void (fasid). When a transaction becomes void, the entire harvest belongs to the tree owner, and the second worker is entitled to fair wages (ajr-al-mithl) from the worker for whom two-thirds was stipulated, but the amount shall not exceed the specified sum (one hundred dirhams). Then this worker for whom two-thirds...

---

[1] Not desirable, for example, if ten thousand mangoes were expected but only two hundred were produced, it is void. [2] The quote in 'Khulasa' is mentioned as such, but it appears the ruling should be the opposite, and Allah knows best. [3] 'Exceeds': I say that based on this, the duration in current times should be much less, based on the analogy of a missing person (mafqud), etc. For instance, the fatwa of necessity for a missing person is that after four years his wife may remarry; this long duration is mentioned considering the time of the Mujtahid Imams, i.e., one hundred and twenty years. [4] 'One worker' refers to a specific one, and if done for an unspecified one, it is void. (1) Meaning at their own expense. (2) To perform pollination.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 359 किताब अल-मुआमला**

यदि फल नहीं आता है, तो अनुबंध (मुआमला) अमान्य (फ़ासिद) है। यदि समय इतना है कि जिसमें फल कभी आ जाता है और कभी नहीं आता, तो अनुबंध निलंबित रहेगा; यदि निर्धारित समय के भीतर फल आ जाता है, तो अनुबंध वैध हो जाएगा, और यदि नहीं आता, तो अमान्य हो जाएगा। यह तब है जब फल वैसा ही आया हो जैसा कि मुआमले में अपेक्षित था। यदि फल ऐसा आया जो मुआमले में वांछनीय (मरग़ूब)[1] नहीं होता, तो अनुबंध वैध नहीं होगा क्योंकि जो वांछनीय नहीं है उसका होना या न होना बराबर है। यदि निर्धारित समय के भीतर खजूर के पेड़ों में फल न आए, तो देखना चाहिए कि यदि उस समय के बाद साल भर में इन पेड़ों में कोई फल नहीं आया या किसी अन्य कारण से नहीं आया, तो अनुबंध वैध है। लेकिन यदि उस समय बीतने के बाद उसी साल फल आ गए, तो अनुबंध अमान्य है; यह 'ख़ुलासा'[2] में है। यदि किसी ने ज़मीन पाँच सौ साल के लिए मुआमले पर दी तो यह वैध नहीं है, और यदि सौ साल के लिए दी जबकि देने वाले की उम्र बीस साल है, तो यह वैध है, और यदि एक सौ बीस साल[3] से अधिक हो तो वैध नहीं है; यह 'ततारख़ानिया' में है।

यदि खजूर का बाग किसी व्यक्ति को मुआमले के अनुबंध के तहत इस शर्त पर दिया गया कि पेड़ और फल दोनों में आधा-आधा हिस्सा होगा, तो यदि ये पेड़ अभी बढ़ रहे हैं (हद-ए-नुमूद-ओ-ज़ियादत), तो अनुबंध पेड़ और फल दोनों के लिए वैध होगा। और यदि पेड़ बढ़ने की सीमा से बाहर हो गए हों (पूरी तरह विकसित हों), तो मुआमला अमान्य है। बढ़ने की सीमा से बाहर होने को ऐसे पहचाना जाता है कि जब वे पूरे हो जाएँ और फल आ जाएँ; यह 'ज़ख़ीरा' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे को अंगूर का बाग मुआमले पर दिया जबकि उसमें पेड़ केवल सुरक्षा के अतिरिक्त किसी और चीज़ के मोहताज नहीं थे, तो उलेमा (मशाइख़) ने कहा कि यदि स्थिति ऐसी हो कि यदि उनकी सुरक्षा न की जाए तो फल पकने से पहले ही नष्ट हो जाएँगे, तो मुआमला वैध होगा और इस स्थिति में सुरक्षा को विकास के लिए काम माना जाएगा। लेकिन यदि स्थिति ऐसी हो कि सुरक्षा न करने पर केवल कच्चे फल ही खराब होंगे, तो मुआमला वैध नहीं होगा और श्रमिक (आमिल) को कुछ नहीं मिलेगा। और यदि पेड़ किसी व्यक्ति को मुआमले पर दिए गए, तो शेख इमाम अबू बकर मोहम्मद बिन अल-फ़ज़ल (रह.) ने फ़रमाया कि उनका मुआमला वैध है और श्रमिक को उसमें हिस्सा मिलेगा क्योंकि वे सिंचाई या सुरक्षा के मोहताज होते हैं, यहाँ तक कि यदि वे इन दोनों बातों के मोहताज न हों, तब भी मुआमला वैध होगा; यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। 'मुख़्तसर शेखुल इस्लाम ख़्वारज़ज़ादा' में लिखा है कि यदि किसी ने खजूर का बाग दो व्यक्तियों को इस शर्त पर मुआमले पर दिया कि एक श्रमिक[4]

को छठा हिस्सा, दूसरे को आधा और मालिक को तिहाई हिस्सा मिले, तो यह वैध है; यह 'तातारख़ानिया' में है।

यदि किसी ने अपना खजूर का पेड़ दो श्रमिकों को इस शर्त पर दिया कि दोनों (1) अपने पास से इसका गर्भाधान (तल्क़ीह/परागण) (2) करेंगे और उपज हम तीनों में एक-तिहाई के बराबर होगी, तो यह वैध है। और यदि ऐसी शर्त लगाई कि मालिक को एक-तिहाई और एक विशेष श्रमिक को दो-तिहाई मिले, और दूसरे श्रमिक के लिए उस श्रमिक पर (जिसे दो-तिहाई हिस्सा मिलना है) सौ दिरहम अनिवार्य होंगे, तो यह अमान्य (फ़ासिद) है। जब मुआमला अमान्य हो जाए, तो पूरी उपज पेड़ के मालिक की होगी और दूसरे श्रमिक के लिए उस श्रमिक पर, जिसके लिए दो-तिहाई हिस्सा तय था, उचित पारिश्रमिक (अज्र-ए-मिसल) अनिवार्य होगा, लेकिन वह तयशुदा राशि (सौ दिरहम) से अधिक नहीं होगा। फिर वह श्रमिक जिसके लिए दो-तिहाई...

---

[1] वांछनीय नहीं है, जैसे बाग से दस हज़ार आमों की उम्मीद थी लेकिन केवल दो सौ आम आए तो यह अमान्य है। [2] उद्धरण 'ख़ुलासा' में इसी तरह दिया गया है, लेकिन स्पष्ट रूप से नियम इसके विपरीत होना चाहिए, अल्लाह ही बेहतर जानता है। [3] 'ज़्यादा': मेरे अनुसार इस दौर में अनुबंध की अवधि इससे बहुत कम होनी चाहिए, लापता व्यक्ति (मफ़क़ूद) के सिद्धांत के आधार पर, जैसा कि ज़रूरत के समय लापता व्यक्ति के लिए फ़तवा है कि चार साल बाद उसकी पत्नी दूसरा निकाह कर सकती है, और यह लंबी अवधि इमामों के समय के अनुसार है, यानी एक सौ बीस साल। [4] 'एक श्रमिक' का अर्थ है एक विशेष श्रमिक, और यदि किसी अज्ञात के लिए ऐसा किया जाए तो वह अमान्य है। (1) यानी अपने खर्च से। (2) गर्भाधान/परागण करना।

پھل نہ آئے گا تو معاملہ فاسد ہے اور اگر اتنی مدت ہو کہ جس میں کبھی پھل آ جاتا ہے اور کبھی نہیں آتا ہے تو عقد معاملہ موقوف رہے گا پس اگر اس مدت مقررہ میں پھل آگیا تو معاملہ صحیح ہو جائے گا اور اگر نہ آیا تو فاسد ہو جائے گا اور یہ اس وقت ہے کہ اس مدت میں ایسا پھل آگیا ہو جیسا اس معاملہ میں امید ہے اور اگر ایسا پھل آیا کہ جیسا ایسے معاملہ میں مرغوب ۱ نہیں ہوتا ہے تو معاملہ جائز نہ ہو گا کیونکہ جو مرغوب نہیں ہے اس کا وجود و عدم یکساں ہے اور اگر اس مدت مقررہ میں درخت خرما میں پھل نہ آئے تو دیکھنا چاہیے کہ اگر اس مدت کے بعد اس سال بھر میں ان درختوں میں کچھ پھل پیدا نہ ہوئے یا کسی علت سے نہ آئے تو معاملہ جائز ہے اور اگر اس مدت گذرنے کے بعد اسی سال میں اس میں پھل آگئے تو معاملہ فاسد ہے یہ خلاصہ ۲ میں ہے۔ اگر کوئی زمین پانچ سو برس کے واسطے معاملہ پر دی تو نہیں جائز ہے اور اگر سو برس کے واسطے دی حالانکہ دینے والے کی عمر بیس برس کی ہے تو جائز ہے اور اگر میں برس سے زیادہ ۳ ہو تو نہیں جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر باغ خرما کسی شخص کو بعقد معاملہ اس شرط سے دیا کہ درخت و پھل دونوں میں نصفا نصف ہوں پس اگر یہ درخت حد نمود زیادتی کی حالت میں ہوں تو عقد معاملہ درختوں و پھلوں دونوں کے حق میں جائز ہو گا اور اگر یہ درخت حد نمود و زیادت سے خارج ہو گئے ہوں تو معاملہ فاسد ہے اور درختوں کا حد نمود وزیادت سے خارج ہونا یوں پہچانا جاتا ہے کہ جب پورے ہو جائیں اور پھل آجائیں یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کو ایک باغ انگور معاملہ پر دیا حالانکہ اس میں جو درخت ہیں وہ سوائے حفاظت کے کسی کام کے محتاج نہیں ہیں تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر ایسی حالت ہو کہ اگر اس کی حفاظت نہ کی جائے تو اس کے پھل پکنے سے پہلے ہاتھ سے جاتے

رہیں تو معاملہ جائز ہوگا اور اس صورت میں یہ حفاظت نمود و زیادت کے واسطے کار معاملہ شمار ہو گی اور اگر ایسی حالت ہو کہ پکنے سے پہلے اگر حفاظت نہ کیا جائے تو کچے پھل ہاتھ سے جائیں گے تو معاملہ جائز نہ ہوگا اور عامل کو ان پھلوں میں سے کچھ نہ ملے گا اور اگر درختوں جو کسی شخص کو معاملہ پر دیے تو شیخ امام ابوبکر محمد بن الفضلؒ نے فرمایا کہ ان کا معاملہ جائز ہے اور عامل کو اس میں سے حصہ ملے گا کیونکہ یہ سینچنے یا حفاظت کے محتاج ہوتے ہیں حتیٰ کہ اگر ان دونوں باتوں میں سے کسی کے محتاج نہ ہوں تو معاملہ جائز ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ مختصر شیخ الاسلام خواہرزادہ میں لکھا ہے کہ اگر کسی شخص نے باغ خرما دو شخصوں کو بدیں شرط معاملہ پر دیا کہ ایک عامل ۴ کے واسطے چھٹا حصہ اور دوسرے کے واسطے نصف اور مالک کے واسطے تہائی ہو گی تو یہ جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر کسی شخص نے اپنا درخت خرما دو عاملوں کو بدیں شرط پر دیا کہ دونوں (۱) اپنے پاس سے اس کی تلقیح (۲) کریں اس شرط سے کہ پیداوار ہم سب میں تہائی تہائی ہو گی تو یہ جائز ہے اور اگر یوں شرط لگائی کہ مالک درخت کے واسطے ایک تہائی اور خاص اس عامل کے واسطے دو تہائی ہوگی اور دوسرے عامل کے واسطے اس عامل پر جس کے واسطے دو تہائی حاصلات مشروط ہے سو درہم واجب ہوں گے تو یہ فاسد ہے اور جب معاملہ فاسد ہوا تو پوری حاصلات مالک درخت کی ہوگی اور دوسرے عامل کے واسطے اس عامل پر جس کے واسطے دو تہائی حاصلات مشروط تھی اجر المثل واجب ہو گا مگر مقدار مسمیٰ یعنی سو درہم سے زائد نہ کیا جائے گا پھر یہ عامل جس نے واسطے دو تہائی

۱ ؎ مرغوب نہیں مثلاً درخت میں دس ہزار آم کی امید تھی حالانکہ دو سو آم آئے تو فاسد ہے۔ ۲ ؎ قولہ خلاصہ اس طرح اصل میں مذکور ہے اور بظاہر یہ کہ حکم برعکس ہونا چاہیے واللہ تعالیٰ اعلم۔ ۳ ؎ قولہ زیادہ اقول بنا بریں مختل مدت اس زمانے میں اس سے بہت کم ہونی چاہیے کہ بر قیاس مفقود وغیرہ چنانچہ فتویٰ ضرورت مفقود میں یہ کہ چار برس کے بعد اس کی زوجہ اپنا نکاح کرے کھانے انشامی اور یہ مدت دراز امام مجتہد کے وقت کے لحاظ سے مذکور ہے یعنی ایک سو بیس برس۔ ۴ ؎ قول ایک عامل یعنی معین کے واسطے اور اِن غیر معین کے واسطے ایسا کیا ہو فاسد ہے۔ (۱) یعنی اپنے خرچہ سے۔ (۲) زرہ دہی لگانا۔

...was stipulated, the landowner shall receive the customary wage (Ajr al-Mithl) for his work, and the worker (Amil) shall receive the full customary wage for his work, whatever the amount may be. If the orchard owner stipulated certain tasks for the worker and remained silent regarding others—for instance, remained silent about irrigation—then if the task omitted is essential for obtaining fruit (meaning without it, for example, without irrigation, no fruit would grow at all, or some fruit would grow but not as expected from that orchard, or fruit would grow as expected but would wither without irrigation), then in all such cases, the contract is void (Fasid). If the omitted task has no effect on fruit production, or affects the quality (excellence) of the fruit, and this fact is currently known, or if it is currently unknown whether it will affect the quality or not, the contract is valid (Jaiz). If the orchard owner stipulated irrigation as his own responsibility, then if it is known that irrigation does not affect the production of fruit, the contract is valid, even if tasks are stipulated for the owner. However, if it is known that irrigation affects production—whether in a way that without it no fruit is produced at all, or it is produced but irrigation makes it superior—the contract is void (Fasid). If it is unknown whether irrigation will have any effect on production or not, the contract is also void. If the owner stipulated irrigation for himself and other tasks for the worker, then this type of contract and the one where he took responsibility for irrigation but remained silent on other tasks are identical. If guarding was stipulated as the owner's responsibility, and the trees are in a location where guarding is unnecessary (e.g., the orchard has a fully protective perimeter wall), then the ruling is the same as that mentioned regarding the irrigation stipulation for the landowner when irrigation was not effective on production. This is recorded in 'Al-Muhit'.

**The Issue of a Date Palm Orchard Shared Between Two Persons** If a person gives his date palm orchard for farming on the condition that the produce be shared half-and-half, with the further condition that the worker hires a specific person for labor in exchange for one hundred dirhams, this is void (Fasid). Conversely, if the condition was that the worker hires someone for one hundred dirhams but does not specify the person himself, it is valid (Jaiz). This is in 'Al-Zakhira'. A date palm orchard is shared by two persons. Both gave the said orchard to a worker for maintenance this year, stipulating that half of whatever is produced belongs to the worker. Of this half, two-thirds shall come from one owner's share and one-third from the other's share. The remaining produce shall be divided between the two owners such that two-thirds

goes to the owner from whose share one-third was stipulated for the worker, and one-third goes to the other owner. This is valid. However, if both stipulated that the remaining two-thirds go to the owner from whose share two-thirds was stipulated for the worker, the contract is void. This is in 'Muhit al-Sarakhsi'. A date palm orchard is shared by two persons; both gave it to a person for a specified period on the condition that the man...

---

1. The translator states: In the original manuscript, it says 'with the condition of Takayyus'... I say this is exactly like the first case, and then giving a different ruling without reason is invalid. Therefore, in my view, the correct version is that for whom a sixth portion is stipulated; here the scribe made an error. The reason for my correction is that one of the two owners stipulated one-third for the worker from his half-share, which amounts to one-third of the total. Whoever stipulated one-third meant one-third of the total, and this is the proportion of the remaining two-thirds compared to the other so that both become equal, as the partnership here is equal... as previously explained in its place. Understand this.

...शर्त थी कि ज़मीन का मालिक अपने काम का 'अज्र-अल-मिसल' (उचित पारिश्रमिक) और दूसरा काम करने वाला (आमिल) अपने काम का पूरा 'अज्र-अल-मिसल' ले ले, चाहे वह जितना भी हो। और यदि बाग के मालिक ने आमिल पर मुआमले के कुछ कामों की शर्त लगाई और बाकी कामों पर चुप्पी साधे रखी, उदाहरण के लिए सिंचाई के काम पर चुप्पी साधी, तो वह काम जिस पर चुप्पी साधी गई है, यदि ऐसा काम है जो फलों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है—अर्थात उस काम के बिना, जैसे सिंचाई के बिना, फल बिल्कुल न आएँ या कुछ फल आएँ लेकिन वैसे न हों जैसी उस बाग से उम्मीद थी, या फल तो आएँ जैसी उम्मीद है लेकिन सिंचाई के बिना सूख जाएँ—तो इन सभी स्थितियों में मुआमला 'फ़ासिद' (अमान्य) होगा। यदि वह काम जिस पर चुप्पी साधी गई है, ऐसा हो जिसका फलों की उत्पत्ति पर कोई प्रभाव न पड़ता हो, या फलों की गुणवत्ता बढ़ाने में प्रभावी हो, और यह बात वर्तमान में ज्ञात हो, या वर्तमान में यह ज्ञात न हो कि यह काम फलों की गुणवत्ता में प्रभावी होगा या नहीं, तो मुआमला 'जायज़' (मान्य) होगा। यदि बाग के मालिक ने सिंचाई को अपने ज़िम्मे शर्त के रूप में लिया, तो यदि यह ज्ञात हो कि सिंचाई फलों की उत्पत्ति में प्रभावी नहीं है, तो मुआमला जायज़ होगा, भले ही इसमें बाग के मालिक के ज़िम्मे काम शर्त के रूप में हो। और यदि यह ज्ञात हो कि सिंचाई फलों की उत्पत्ति में प्रभावी है, चाहे इस तरह कि सिंचाई के बिना फल बिल्कुल पैदा न होंगे या पैदा होंगे लेकिन सिंचाई से बेहतर हो जाएँगे, तो मुआमला 'फ़ासिद' है। और यदि यह ज्ञात न हो कि सिंचाई का फलों की उत्पत्ति पर कुछ प्रभाव होगा या नहीं, तब भी मुआमला फ़ासिद है। यदि बाग के मालिक ने सिंचाई अपने ज़िम्मे शर्त रखी और बाकी काम आमिल के ज़िम्मे, तो इस प्रकार का मुआमला और वह मुआमला जिसमें सिंचाई अपने ज़िम्मे रखी और बाकी काम पर चुप्पी साधी, दोनों एक समान हैं। यदि बाग के मालिक के ज़िम्मे रखवाली करना शर्त किया गया, तो यदि बाग के पेड़ ऐसी जगह हों जहाँ रखवाली की आवश्यकता नहीं है, जैसे बाग के चारों ओर चारदीवारी हो और यह चारदीवारी ऐसी हो जिससे पूरी सुरक्षा हो, तो इसका हुक्म वही है जो ज़मीन के मालिक के ज़िम्मे सिंचाई की शर्त में बताया गया है जब सिंचाई फलों की उत्पत्ति में प्रभावी नहीं थी। यह 'मुहीत' में वर्णित है।

**दो व्यक्तियों के बीच साझा खजूर के बाग का मामला** यदि किसी व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग इस शर्त पर मुआमले पर दिया कि पैदावार दोनों के बीच आधी-आधी होगी, और इस शर्त के साथ कि आमिल सौ दिरहम के बदले किसी खास व्यक्ति को काम के लिए मज़दूर रखेगा, तो यह फ़ासिद है।

इसके विपरीत, यदि यह शर्त लगाई कि आमिल सौ दिरहम पर किसी व्यक्ति को मज़दूर नियुक्त करे और मज़दूर को स्वयं निर्दिष्ट न किया हो, तो यह जायज़ है। यह 'ज़खीरा' में है। एक खजूर का बाग दो व्यक्तियों के बीच साझा है। दोनों ने उक्त बाग एक आमिल को दिया कि वह इस साल इसकी देखभाल करे और जो कुछ पैदा होगा उसका आधा हिस्सा आमिल का होगा। इस आधे में से दो-तिहाई एक मालिक के हिस्से से और एक-तिहाई दूसरे के हिस्से से होगा। शेष उपज दोनों मालिकों के बीच इस तरह होगी कि दो-तिहाई उस मालिक की होगी जिसके हिस्से से आमिल के लिए एक-तिहाई शर्त रखी गई थी, और शेष एक-तिहाई दूसरे मालिक की होगी। तो यह जायज़ है। और यदि दोनों ने यह शर्त लगाई कि शेष की दो-तिहाई उस मालिक की हो जिसके हिस्से से आमिल के लिए दो-तिहाई शर्त रखी गई थी, तो मुआमला फ़ासिद है। यह 'मुहीत सरख़सी' में है। एक खजूर का बाग दो व्यक्तियों के बीच साझा है, दोनों ने इसे एक निश्चित अवधि के लिए एक व्यक्ति को इस शर्त पर मुआमले पर दिया कि आदमी...

---

1. अनुवादक कहता है: मूल प्रति में 'बशर्त अल-तकय्युस' लिखा है... मैं कहता हूँ कि यह बिल्कुल पहली स्थिति जैसी है, फिर बिना किसी कारण के अलग हुक्म देना गलत है। अतः मेरे निकट सही यह है कि जिसके लिए छठा हिस्सा शर्त है, यहाँ लेखक से गलती हुई है। मैंने जो सही कहा उसका कारण यह है कि दो मालिकों में से एक ने अपने आधे हिस्से में से आमिल के लिए एक-तिहाई शर्त रखी, और यह मात्रा कुल की एक-तिहाई हुई। और जिसने एक-तिहाई की शर्त रखी, उससे अभिप्राय यह है कि कुल की एक-तिहाई शर्त रखी, और यही शेष दो-तिहाई का दूसरे के अनुपात में मात्रा है, ताकि दोनों बराबर हो जाएँ क्योंकि यहाँ साझेदारी समान है... जैसा कि पहले अपने स्थान पर वर्णित हुआ है। इसे समझें।

مشروط تھی مالک زمین سے اپنے کام کا اجرالمثل اور دوسرے عامل کے کام کے اجرالمثل پورا چاہے جس قدر ہو لے لے گا اور اگر مالک باغ نے عامل کے ذمہ بعضے کام ہائے معاملہ کی شرط لگائی اور باقی کاموں سے سکوت کیا مثلاً سینچنے کے کام سے سکوت کیا پس وہ کام جس سے سکوت کیا ہے اگر ایسا کام ہو کہ پھلوں کے حاصل ہونے کے واسطے یہ کام ضروری ہے یعنی بدوں اس کام کے مثلاً بدوں سینچنے کے بالکل پھل نہ آئیں یا کچھ پھل آئیں مگر ایسے نہ آئیں کہ جیسی اس باغ سے امید تھی یا ایسے ہی پھل آئیں جیسی اس باغ سے امید ہے لیکن بدوں سینچنے کے خشک ہو جائیں تو ان سب صورتوں میں معاملہ فاسد ہو گا۔ اگر وہ کام جس سے سکوت کیا ہے ایسا کام ہو کہ پھلوں کی پیدائش میں بالکل مؤثر نہ ہو یا پھلوں کے جید ہونے میں مؤثر ہو اور یہ بات فی الحال معلوم ہو یا فی الحال یہ معلوم نہ ہو کہ یہ کام پھلوں کے جید ہونے میں مؤثر ہو گا یا نہ ہو گا تو معاملہ جائز ہو گا۔ اگر مالک باغ نے سینچنا اپنے ذمہ شرط کیا پس اگر یہ معلوم ہو کہ سینچنا پھلوں کی پیدائش میں مؤثر نہیں ہے تو معاملہ جائز ہو گا اگرچہ اس میں مالک باغ کے ذمہ کام مشروط ہے اور اگر یہ معلوم ہو کہ سینچنا پھلوں کی پیدائش میں مؤثر ہے خواہ اس طرح کہ بدوں سینچنے کے بالکل پھل پیدا نہ ہوں گے یا پیدا ہوں گے مگر سینچنے سے جید ہو جائیں گے تو معاملہ فاسد ہے اور اگر یہ معلوم نہ ہو کہ سینچنا پھلوں کی پیدائش میں کچھ مؤثر ہو گا یا نہ ہو گا تو بھی معاملہ فاسد ہے۔ اگر مالک باغ نے سینچنا اپنے ذمہ شرط کیا اور باقی کام عامل کے ذمہ شرط کیے تو اس طرح کا معاملہ اور وہ معاملہ کہ جس میں سینچنا اپنے ذمہ شرط کیا اور باقی کام سے سکوت کیا ہو دونوں یکساں ہیں۔ اگر مالک باغ کے ذمہ حفاظت کرنا شرط کیا گیا پس اگر درختان باغ ایسی جگہ میں واقع ہوں کہ وہاں حفاظت کی ضرورت نہیں ہے مثلاً باغ کے گرد

چاردیواری ہو اور یہ چاردیواری ایسی ہو کہ اس سے پوری حفاظت ہو تو اس کا حکم وہی ہے جو مالک زمین کے ذمہ سینچنے کی شرط میں جب کہ سینچنا پھلوں کی پیدائش میں بالکل مؤثر نہ تھا مذکور ہوا ہے یہ محیط میں ہے۔

**دو اشخاص میں مشترکہ خرما کے باغ کا مسئلہ** اگر ایک شخص کو اپنا باغ خرما معاملہ پر اس شرط سے دیا کہ حاصلات دونوں میں نصفا نصف ہو گی اور اس شرط سے کہ عامل سو درہم کے عوض فلاں شخص کو کام کے واسطے مزدور کرے تو یہ فاسد ہے بخلاف اس کے اگر یہ شرط لگائی کہ عامل سو درہم پر کسی شخص کو اجیر مقرر کرے اور اجیر کو خود معین نہ کیا جائز ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک باغ خرما دو شخصوں میں مشترک ہے دونوں نے باغ مذکور ایک عامل کو دیا کہ اس سال اس کی پرداخت کرے اور جو کچھ پیدا ہو گا اس کا نصف عامل کا ہو گا اس نصف میں سے دو تہائی ایک کے حصہ میں سے اور ایک تہائی دوسرے کے حصہ میں سے ہو گی اور باقی حاصلات دونوں مالکوں کے درمیان اس طرح ہو گی کہ دو تہائی اس مالک کی ہو گی جس کے حصہ میں سے عامل کے واسطے تہائی مشروط ہے اور ایک تہائی باقی دوسرے مالک کے واسطے ہو گی تو یہ جائز ہے اور اگر دونوں نے یوں شرط لگائی کہ باقی کی دو تہائی اس مالک کی جس کے حصہ میں سے عامل کے واسطے دو تہائی مشروط ہے تو معاملہ فاسد ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ ایک باغ خرما دو شخصوں میں مشترک ہے دونوں نے اس کو مدت معلومہ کے واسطے ایک شخص کو اس شرط سے معاملہ پر دیا کہ آدمی

---

۱ قال المترجم فی نسخۃ الاصل بشرط التکیس میں نفیسہ آہ اقول یہ تو بعینہ صورت اول ہے پھر حکم مختلف بیوجہ باطل ہے پس صحیح میرے نزدیک یہ کہ جس کے واسطے چھتانہ حصہ مشروط ہے پس کاتب سے غلطی واقع ہوئی اور جو میں نے صحیح کہا اس کی وجہ یہ کہ دونوں

مالکوں میں سے ایک نے اپنے نصف حصہ میں سے عامل کے لیے تہائی شرط کی اور یہ مقدار کل کی تہائی ہوئی اور جس نے تہائی شرط کی اس سے مراد یہ کہ کل کی تہائی شرط کی اور یہی باقی کی دو تہائی کا بہ نسبت دوسرے کے مقدار ہے تا کہ دونوں برابر ہو جائیں کیونکہ یہاں شرکت مساوی ہے بدیل قولہ تخیل میں غلطین اور جب سہمد وسرے سے جنوب یعنی مساوی ہے چنانچہ سابق میں اپنی جگہ بیان ہوا ہے فافہم۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) | (361) | Kitab al-Mu'amala (The Book of Transactions)**

Half of the produce shall belong to the worker (amil), and the other half shall be split equally between the two owners; this is permissible. It is evident that if both stipulated a condition that half of the produce would specifically belong to one of the owners without any reduction, and in the remaining half, the worker and the other owner would share equally, or if they stipulated to share in thirds, then this is void (fasid); this is mentioned in 'al-Muhit'. If they agreed among themselves that the worker would receive half of the produce, of which one-third would be taken from the share of one owner and two-thirds from the share of the other owner, and the remaining half is shared equally between the two owners, then this is void; this is mentioned in 'al-Mabsut'. If a person gave his date-palm orchard to two persons to cultivate on the condition that half the yield be for one specific worker, a sixth share for the other, and one-third for the owner, then this is permissible because he hired two workers by appointing one for a half share and the other for a sixth share. Similarly, if the owner stipulated a third of the produce for his worker and two-thirds for himself, and for the second worker, he stipulated a wage of one hundred dirhams upon himself, it is also permissible because he appointed two workers at different wages, and as this is permissible separately, it is also permissible collectively. However, if they all mutually stipulated that one-third of the produce be for the orchard owner and two-thirds specifically for this worker, and for the second worker, a wage of one hundred dirhams is to be paid by the worker for whom the two-thirds were stipulated, then the contract is void. This is because such a condition is not required by the contract of transaction (mu'amala), as a transaction requires that the workers' wages be mandatory upon the orchard owner; this is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'.

Giving half of a date-palm orchard for a transaction (mu'amala) is not permissible. If a person gave a date-palm orchard for a transaction on the condition that the worker works in it, and then both the trees and their produce are shared half and half between them, this transaction is void. It should be noted that there is a difference between this case and the case of farming; for instance, if land containing a crop that is still green (unripe) is given to another on the condition that he tends and irrigates it until it is fit for harvesting, and whatever yield Allah Almighty grants is shared half and half between them, then it is permissible; this is in 'al-Tatarkhaniyya'. If someone gives land suitable for planting trees to another person to plant saplings on the

condition that both the trees and their fruits will be shared between them, it is permissible. But if a condition is made that the trees will belong to one and the fruits to the other, it is not permissible because such a condition severs the partnership, as it is possible that the trees may not bear fruit during that period, leaving the worker with nothing. If both stipulated that the fruits be shared half and half while the trees belong specifically to one, then if the saplings were stipulated for the person (1) who provided them, it is permissible. But if they were stipulated for the person who did not purchase them with his own wealth, it is void, although according to analogical reasoning (qiyas), the ruling is that it should not be permissible in either case, and this narration is also reported from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) in 'al-Nawadir'. If both stipulated that the fruits be shared and remained silent regarding the trees, then the trees will belong to the one who provided them; this is in 'al-Dhakhira'.

If a person gave his land, which is suitable for planting trees, to another person for a specified number of years on the condition that he plants trees, grapevines, or date palms, with the condition that whatever trees, date palms, or grapevines Allah Almighty grants...

(1) Meaning, for example, the one who purchased them with his own wealth.

आधी पैदावार आमिल (काम करने वाले) की होगी और आधी दोनों मालिकों के दरमियान आधा-आधा होगी, यह जायज़ है। और यह ज़ाहिर है कि अगर दोनों ने इस तरह शर्त लगाई कि आधी पैदावार दोनों में से खास इस मालिक की होगी, इसमें कोई कमी न हो, और बाकी आधे में आमिल और दूसरा मालिक आधे-आधे के शरीक होंगे या शर्त की कि तीन तिहाई के शरीक होंगे, तो यह फासिद (अमान्य) है; यह 'मुहीत' में है। अगर आपस में इस तरह शर्त तय की कि आमिल को आधी पैदावार मिलेगी, जिसमें से एक तिहाई एक मालिक के हिस्से से और दो तिहाई दूसरे मालिक के हिस्से से होगी और बाकी आधी दोनों मालिकों में बराबर-बराबर होगी, तो यह फासिद है; यह 'मबसूत' में है। अगर किसी व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग दो व्यक्तियों को दिया कि दोनों उसकी देखभाल करें, इस शर्त पर कि खास इस आमिल के लिए आधी पैदावार होगी और दूसरे के लिए छठा हिस्सा होगी और मालिक के लिए एक तिहाई होगी, तो यह जायज़ है क्योंकि उसने दो आमिलों को इस तरह मज़दूर बनाया कि एक को आधे पर और दूसरे को छठे हिस्से पर मुक़र्रर किया। इसी तरह अगर मालिक ने अपने आमिल के लिए एक तिहाई पैदावार की शर्त रखी और अपने लिए दो तिहाई, और दूसरे आमिल के लिए अपने ऊपर सौ दिरहम मज़दूरी की शर्त रखी, तो भी जायज़ है क्योंकि उसने दो मज़दूरों को अलग-अलग मज़दूरी पर मज़दूर मुक़र्रर किया है और यह अलग-अलग जायज़ है, तो मिलने की हालत में भी जायज़ है। और अगर सबने मिलकर इस तरह शर्त लगाई कि बाग के मालिक के लिए एक तिहाई पैदावार हो और खास इस आमिल के लिए दो तिहाई हो और दूसरे आमिल के लिए इस आमिल पर जिसके लिए दो तिहाई शर्त रखी गई है, सौ दिरहम उजरत (मज़दूरी) हो, तो अनुबंध (अक्द) फासिद होगा क्योंकि यह ऐसी शर्त है जो मुआमला अनुबंध की मांग नहीं है, क्योंकि मुआमला इस बात की मांग करता है कि आमिलों की उजरत बाग के मालिक पर वाजिब हो; यह 'मुहीत सरख्सी' में है।

अगर आधा खजूर का बाग मुआमला पर दिया तो जायज़ नहीं है, और अगर किसी व्यक्ति ने मुआमला पर खजूर का बाग इस शर्त पर दिया कि आमिल उसमें काम करे, फिर बाग के पेड़ और उनकी पैदावार दोनों में बराबर-बराबर होगी, तो यह मुआमला फासिद है। और यह स्पष्ट हो कि इस सूरत में और खेती की सूरत में फर्क है, यानी अगर दूसरे को ऐसी ज़मीन दी जिसमें खेती है जो अभी हरी फसल (सागा) है, इस शर्त पर कि वह उसकी देखभाल करे और सिंचाई करे यहाँ तक कि वह काटने के लायक हो जाए और जो कुछ अल्लाह तआला के फ़ज़ल से पैदावार हो वह हम दोनों में

आधी-आधी होगी, तो जायज़ है; यह 'तातारा़ख़ानिया' में है। अगर किसी ने दूसरे को पेड़ लगाने के लायक ज़मीन पौधे लगाने के लिए इस शर्त पर दी कि पेड़ और उनके फल दोनों में साझे के होंगे, तो यह जायज़ है। और अगर यह शर्त लगाई कि पेड़ एक के होंगे और फल दूसरे के होंगे, तो यह जायज़ नहीं है क्योंकि इस शर्त से साझेदारी खत्म हो जाती है, हो सकता है कि इस दौरान उन पेड़ों में फल न आएं, तो आमिल को कुछ हासिल नहीं होगा। और अगर दोनों ने इस तरह शर्त लगाई कि फल दोनों में आधे-आधे हों और पेड़ खास एक के हों, तो अगर पौधे उस व्यक्ति के लिए शर्त किए (1) जिसके पास वे मौजूद थे, तो यह जायज़ है, और अगर उस व्यक्ति के लिए शर्त किए जिसने अपने माल से नहीं खरीदे हैं, तो यह फासिद है, हालांकि क़यास (तर्क) के अनुसार यह हुक्म है कि दोनों सूरतों में जायज़ न हो और इमाम अबू यूसुफ़ रह. से भी 'नवादिर' में यह रिवायत वर्णित है। और अगर दोनों ने यह शर्त लगाई कि फल दोनों में साझे के हों और पेड़ों के ज़िक्र से खामोशी बरती, तो पेड़ उसके होंगे जिसने अपने पास से दिए हैं; यह 'ज़ख़ीरा' में है।

अगर किसी व्यक्ति ने अपनी ज़मीन जो पेड़ लगाने के लायक है, दूसरे व्यक्ति को कुछ ज्ञात वर्षों के लिए इस शर्त पर दी कि वह उसमें पेड़ या अंगूर के पेड़ या खजूर के पेड़ लगा दे, इस शर्त पर कि अल्लाह तआला के फ़ज़ल से पेड़ या खजूर के पेड़ या अंगूर के पेड़ जो...

(1) यानी उदाहरण के लिए जिसने अपने माल से खरीदे हैं।

آدھی پیداوار عامل کی ہو گی اور آدھی دونوں مالکوں کے درمیان نصفاً نصف ہو گی یہ جائز ہے اور یہ ظاہر ہے کہ اگر دونوں نے یوں شرط لگائی کہ نصف حاصلات دونوں میں سے خاص اس مالک کی ہو گی اس میں کچھ کمی نہ ہو اور باقی آدھے میں عامل دوسرا مالک نصفاً نصف کے شریک ہوں گے یا شرط کی کہ تین تہائی کے شریک ہوں گے تو یہ فاسد ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر باہم یوں شرط ٹھہرائی کہ عامل کی نصف حاصلات ہو گی جس میں سے ایک تہائی ایک مالک کے حصہ میں سے اور دو تہائی دوسرے کے حصہ میں سے ہو گی اور باقی نصف دونوں مالکوں میں نصفاً نصف ہو گی تو یہ فاسد ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنا باغ خرما دو شخصوں کو دیا کہ دونوں اس کی پرداخت کریں۔ بدیں شرط کہ خاص اس عامل کے واسطے نصف پیداوار ہو گی اور دوسرے کے واسطے چھٹا حصہ ہو گی اور مالک کے واسطے تہائی ہو گی تو یہ جائز ہے کیونکہ اس نے دو عاملوں کو اس طرح اجیر کیا کہ ایک کو نصف پر اور دوسرے کو چھٹے حصے پر مقرر کیا اسی طرح اگر مالک نے اپنے عامل کے واسطے تہائی حاصلات شرط کی اور اپنے واسطے دو تہائی اور دوسرے عامل کے واسطے اپنے اوپر سو درہم مزدوری شرط کی تو بھی جائز ہے کیونکہ اس نے دو مزدوروں کو مختلف مزدوری پر مزدور مقرر کیا ہے اور یہ طور علیحدہ علیحدہ جائز ہے پس بحالت اجتماع بھی جائز ہے اور اگر سب نے باہم یوں شرط لگائی کہ مالک باغ کے واسطے تہائی حاصلات ہو اور خاص اس عامل کے واسطے دو تہائی ہو اور دوسرے عامل کے واسطے اس عامل پر جس کے واسطے دو تہائی مشروط ہے۔ سو درہم اجرت ہو تو عقد فاسد ہو گا کیونکہ یہ ایسی شرط ہے جس کو عقد معاملہ مقتضی نہیں ہے کیونکہ معاملہ اس امر کو مقتضی ہوتا ہے کہ عاملوں کی اجرت مالک باغ پر واجب ہو یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر نصف باغ خرما معاملہ پر دیا تو نہیں جائز ہے اور اگر ایک شخص نے معاملہ پر باغ خرما اس شرط سے دیا کہ عامل اس میں کام کرے پھر درختان باغ و ان کی حاصلات دونوں میں نصفاً نصف ہو گی تو یہ معاملہ فاسد ہے اور واضح ہو کہ اس صورت میں اور کھیتی کی صورت میں فرق ہے یعنی اگر دوسرے کو ایسی زمین دی جس میں کھیتی ہے جو ہنوز ساگا ہے اس شرط سے کہ اس کی پرداخت کرے اور سینچے یہاں تک کہ کاٹنے کے لائق ہو جائے اور جو کچھ اللہ تعالیٰ کے فضل سے پیداوار ہو وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہو گی تو جائز ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ اگر کسی نے دوسرے کو درخت لگانے کے لائق زمین پودے بٹھلانے کو اس شرط سے دی کہ درخت اور ان کے پھل دونوں میں مشترک ہوں گے تو یہ جائز ہے اور اگر یہ شرط لگائی کہ درخت ایک کے ہوں گے اور پھل دوسرے کے ہوں گے تو یہ جائز نہیں۔ ہے کیونکہ اس شرط سے قطع شرکت ہوتی ہے کہ شاید اس مدت میں ان درختوں میں پھل نہ آئیں پس عامل کو کچھ حاصل نہ ہو گا اور اگر دونوں نے یوں شرط لگائی کہ پھل دونوں میں نصفاً نصف ہوں اور درخت خاصہ ایک کے ہوں پس اگر پودے اس شخص کے واسطے شرط کیے (1) جس کے پورے تھے تو یہ جائز ہے اور اگر اس شخص کے واسطے شرط کیے جس نے اپنے مال سے نہیں خریدے ہیں تو یہ فاسد ہے حالانکہ بدلیل قیاس یہ حکم ہے کہ دونوں صورتوں میں جائز نہ ہو اور امام ابو یوسفؒ سے بھی نوادر میں یہ روایت مروی ہے اور اگر دونوں نے یہ شرط لگائی کہ پھل دونوں میں مشترک ہوں اور درختوں کے ذکر سے سکوت کیا تو درخت اس کے ہوں گے جس نے اپنے پاس سے دیے ہیں یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر کسی شخص نے اپنی زمین جو درخت جمانے کے لائق ہے دوسرے شخص کو چند سال معلومہ کے واسطے بدیں شرط دی کہ اس میں درخت یا انگور کے درخت یا خرما کے درخت لگا دے اس شرط سے کہ اللہ تعالیٰ کے فضل سے درخت یا درختان خرما یا درختان انگور جو...

(1) یعنی مثلاً جس نے اپنے مال سے خریدے ہیں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 362 Kitab al-Mu'amala (Book of Transactions)**

When the produce is ready, it shall be divided equally between them. However, if it is stipulated that the land itself shall also be shared equally between them, then this contract is void (fasid). When such a contract becomes void, yet the worker (amil) has taken possession of the land under this agreement and planted date palms, trees, or grapevines, and they yield a significant harvest, all the trees and vines shall belong to the landowner. The landowner shall then be obligated to pay the worker who planted them the value of those plants and a fair wage (ajr al-mithl) for his labor. Similarly, if the landowner did not stipulate giving any part of the land to the worker but said, "Plant trees, date palms, or grapes in this land on the condition that whatever Allah produces from it shall be shared equally between us," and further stipulated, "I shall owe you a hundred dirhams, or a 'kurr' of wheat, or half of another piece of land (other than the one where the plants are)," then all of this is void. This is mentioned in 'Al-Muhit'. If the plants are provided by the landowner and they both agreed that the produce would be shared equally, but also stipulated that the landowner must pay the worker a hundred dirhams, then it is void. If he worked based on this agreement, the harvest shall be shared equally. If the plants are provided by the worker and they agreed on an equal split of the produce, but stipulated that the farmer must pay the landowner a hundred dirhams, then it is void; the entire harvest shall belong to the worker, and the landowner is entitled to the fair rental value (ajr al-mithl) of his land. If both the plants and seeds are from the landowner and the rest of the terms remain the same, it is still void; the entire harvest belongs to the worker, and the landowner is entitled to the fair rental value of the land and the price of the plants from the farmer, and seeds equivalent to those provided must be returned. Likewise, if the worker stipulated wheat or a specific or non-specific animal for the landowner instead of a hundred dirhams, this condition also invalidates the contract. This is mentioned in 'Al-Mabsut'.

## Leasing a Date Orchard to Another After the Fruit Stalks (Flower Buds) Have Emerged

It is stated in 'Fatawa 'Utabiyya' that if someone leases his date orchard to another after the fruit stalks have emerged, it is permissible if the worker's labor results in an increase in the fruit such that he becomes a partner in them. If the fruit is later claimed by a third party with a superior right (istihqaq), the worker shall recover his fair wage (ajr al-mithl) from the person who gave him the contract; otherwise, he shall not. This is in 'Tatarkhaniyya'. A person gave his land to another for the purpose

(1) of planting grapevines using his own cuttings, without setting a fixed term. The person planted them, the vines matured, and the trees grew large. He then rented the land from the owner for a known annual rent. Later, during the spring season before Nowruz, the landowner told him to remove his trees from the land. The scholars stated that if he said this at the time of fruiting, he has the right to do so because removing trees at that time would not cause excessive harm to the planter. The author stated: "In my view, if he said this before the completion of the year while the person had taken the land on an annual lease (ijara), the lessee cannot be forced to uproot the trees if he refuses." This is in 'Fatawa Qadi Khan'. Zaid gave a piece of land to his son, Amr, to plant trees on the condition that any produce from the trees would be shared equally between them, without setting a time limit. Amr planted the trees, then Zaid passed away... (1) i.e., gave it as a commodate/gratuitous loan ('ariyah).

जब फल तैयार होंगे, वे दोनों के बीच आधे-आधे (50-50) होंगे। लेकिन अगर यह शर्त रखी जाए कि ज़मीन भी दोनों के बीच आधी-आधी होगी, तो यह अनुबंध अमान्य (फ़ासिद) है। जब ऐसा अनुबंध अमान्य हो जाए, और कार्यकर्ता (आमिल) ने इसी अनुबंध के आधार पर ज़मीन अपने कब्ज़े में लेकर उसमें खजूर, वृक्ष या अंगूर की लताएँ लगाई हों और उनमें भरपूर उपज हुई हो, तो सभी वृक्ष और अंगूर की लताएँ ज़मीन के मालिक की होंगी। ज़मीन के मालिक के लिए अनिवार्य होगा कि वह उस कार्यकर्ता को, जिसने ये पौधे लगाए हैं, उन पौधों की कीमत और उसके काम का उचित पारिश्रमिक (अज्र अल-मिस्ल) अदा करे। इसी तरह, अगर ज़मीन के मालिक ने कार्यकर्ता के लिए ज़मीन का कोई हिस्सा देना तय नहीं किया, बल्कि यह कहा कि "तुम इस ज़मीन में वृक्ष, खजूर या अंगूर लगाओ, शर्त यह है कि अल्लाह इसमें जो भी पैदा करेगा, वह हम दोनों में आधा-आधा होगा," और साथ में यह शर्त भी लगा दी कि "तुम्हारे लिए मुझ पर सौ दिरहम अनिवार्य होंगे या एक 'कुरु' गेहूँ होगा या उस ज़मीन के अलावा दूसरी ज़मीन में से आधी ज़मीन देना अनिवार्य होगा," तो यह सब अमान्य (फ़ासिद) है। यह 'मुहीत' में वर्णित है। यदि पौधे ज़मीन के मालिक के हों और उन्होंने आपस में यह शर्त रखी हो कि उपज दोनों में आधी-आधी होगी, और साथ ही यह शर्त भी रखी कि कार्यकर्ता के लिए ज़मीन के मालिक पर सौ दिरहम अनिवार्य होंगे, तो यह अनुबंध अमान्य है। यदि उसने इसी समझौते पर काम किया, तो उपज दोनों में आधी-आधी होगी। और यदि पौधे कार्यकर्ता के हों और दोनों ने शर्त रखी कि उपज आधी-आधी होगी, और ज़मीन के मालिक के लिए किसान पर सौ दिरहम अनिवार्य होंगे, तो यह अनुबंध अमान्य है। ऐसी स्थिति में सारी उपज कार्यकर्ता की होगी और ज़मीन के मालिक के लिए अपनी ज़मीन का उचित किराया (अज्र अल-मिस्ल) प्राप्त करना अनिवार्य होगा। यदि पौधे और बीज ज़मीन के मालिक के हों और शेष शर्तें वही रहें, तब भी यह अमान्य है; सारी उपज कार्यकर्ता की होगी, और ज़मीन के मालिक के लिए किसान पर ज़मीन का उचित किराया और पौधों की कीमत वाजिब होगी, और बीजों के बदले उतने ही बीज वाजिब होंगे। इसी तरह, यदि कार्यकर्ता ने सौ दिरहम के बजाय गेहूँ या किसी निश्चित या अनिश्चित पशु की शर्त ज़मीन के मालिक के लिए रखी हो, तो यह शर्त भी अनुबंध को बिगाड़ने वाली है। यह 'मबसूत' में वर्णित है।

## फलों की कलियाँ (डंठल) निकलने के बाद अपना खजूर का बाग़ दूसरे को साझीदारी के अनुबंध पर देना

'फ़तावा उताबिया' में उल्लेख है कि यदि किसी व्यक्ति ने फलों की कलियाँ निकलने के बाद अपना खजूर का बाग़ दूसरे को अनुबंध पर दिया, तो यदि कार्यकर्ता के परिश्रम से उन फलों में वृद्धि होती है जिससे कार्यकर्ता उनका भागीदार बन सके, तो यह जायज़ है। यदि वे फल किसी और के हक (इस्तहकाक) में चले गए, तो कार्यकर्ता उस व्यक्ति से जिसने उसे काम दिया था, अपना उचित पारिश्रमिक ले लेगा, अन्यथा नहीं; यह 'तातारखानिया' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन इस उद्देश्य से (1) दी कि वह उसमें अपनी ओर से अंगूर की कलमें लगाकर अंगूर उगाए, और इसके लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की। उस व्यक्ति ने पौधे लगाए, अंगूर तैयार हुए और वृक्ष बड़े हो गए, फिर उसने ज़मीन के मालिक से एक निश्चित वार्षिक किराए पर वह ज़मीन ले ली। बाद में ज़मीन के मालिक ने बसंत ऋतु (रबी) के दिनों में नौरोज़ से पहले उससे कहा कि वह ज़मीन से अपने पेड़ हटा दे। विद्वानों ने कहा कि यदि उसने फल निकलने के समय ऐसा कहा, तो उसे अधिकार है, क्योंकि ऐसे समय में पौधे उखाड़ने से बोने वाले को अधिक हानि नहीं होगी। लेखक ने कहा कि मेरे अनुसार, यदि उसने साल पूरा होने से पहले ऐसा कहा जबकि उसने ज़मीन वार्षिक पट्टे (इज़ारा) पर ली है, तो पट्टेदार को पेड़ उखाड़ने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता यदि वह इनकार करे; यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। ज़ैद ने अपने एक पुत्र अमर को एक ज़मीन दी ताकि वह उसमें अपनी ओर से पेड़ लगाए, इस शर्त पर कि पेड़ों से जो भी उपज होगी वह दोनों में आधी-आधी होगी, और कोई समय सीमा तय नहीं की। अमर ने उसमें पेड़ लगाए, फिर ज़ैद की मृत्यु हो गई... (1) अर्थात उधार (आरियत) के रूप में दी।

---

تیار ہوں گے وہ دونوں میں نصفا نصف ہوں گے اور اس شرط سے کہ زمین بھی دونوں میں نصفا نصف ہوگی تو یہ فاسد ہے اور جب ایسا معاملہ فاسد ہوا حالانکہ عامل نے اسی معاملہ پر زمین اپنے قبضہ میں لے کر اس میں نخل یا شجر یا درختاں انگور لگائے اور اس میں پھلوں کی بہت حاصلات ہوئی تو سب درخت و شجر و درختاں انگور مالک زمین کے ہوں گے اور مالک زمین پر واجب ہوگا کہ عامل کو جس نے یہ پودے لگائے ہیں ان پودوں کی قیمت اور اس کے کام کا اجر المثل ادا کرے۔ اسی طرح اگر مالک زمین نے عامل کے واسطے زمین میں سے کچھ دینا شرط نہ کیا مگر یہ کہا کہ تو اس زمین میں شجر یا درختاں خرما یا انگور لگا دیں شرط کہ جو کچھ اللہ تعالیٰ اس میں سے پیدا کرے گا وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہوگی اور بدیں شرط کہ تیرے واسطے مجھ پر سو درہم واجب ہوں گے یا ایک کر گیہوں ہوں گے یا اس زمین کے سوائے جس میں پودے لگائے ہیں دوسری زمین میں سے نصف زمین دینی واجب ہوگی تو یہ سب فاسد ہے یہ محیط میں ہے۔ اگر پودے مالک زمین کی طرف سے ہوں اور اس نے اور مالک زمین نے باہم یہ شرط کی کہ جو کچھ اس میں سے پیدا ہو وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہوگی اور یہ شرط کی کہ عامل کے واسطے مالک زمین پر سو درہم واجب ہوں گے تو یہ فاسد ہے اور اگر اس نے اسی قرار داد پر کام کیا تو حاصلات دونوں میں نصفا نصف ہو گی اور اگر پودے عامل کی طرف سے ہوں اور دونوں نے یوں شرط کی کہ حاصلات دونوں میں نصفا نصف ہوگی اور یہ شرط کی کہ مالک زمین کے واسطے کاشتکار پر سو درہم واجب ہوں گے تو یہ فاسد ہے پس سب حاصلات عامل کی ہوگی اور مالک زمین کے واسطے اپنی زمین کا اجر المثل واجب ہوگا اور اگر پودے اور بیج مالک زمین کی طرف سے ہوں اور باقی مسئلہ بحالہا ہو تو بھی فاسد ہے اور سب حاصلات عامل کی ہوگی اور

مالک زمین کے واسطے کاشتکار پر اس کی زمین کا اجر المثل اور پودوں کی قیمت واجب ہوگی اور اس کے بیجوں کے مثل بیج واجب ہوں گے۔ اسی طرح اگر عامل نے بجائے سو درہم کے گیہوں یا حیوان میں سے کوئی جانور معین یا غیر معین مالک کے واسطے شرط کیا ہو تو یہ شرط بھی مفسد عقد کے معنی میں ہے۔ یہ مبسوط میں ہے۔

**کیریاں (ڈنتھل) نکل آنے کے بعد اپنے خرما کا باغ دوسرے کو کا باغ معاملہ پر دینا**

فتاویٰ عتابیہ میں ہے کہ اگر کسی شخص نے کیریاں نکل آنے کے بعد اپنا باغ خرما دوسرے کو معاملہ پر دیا پس اگر عامل کے کام سے ان پھلوں میں زیادتی ہو حتیٰ کہ عامل ان میں شریک ہو جائے تو جائز ہے اور اگر یہ استحقاق میں لے لیے گئے تو عامل مذکور اس شخص سے جس نے اس کو دیا ہے اپنا اجر المثل لے لے گا ورنہ نہیں یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین اس غرض سے (۱) دی کہ اس میں اپنی طرف سے اشجار کے کرنا تھائے کرم لے کر انگور لگائے اور اس کے واسطے کوئی مدت مقرر نہ کی پس شخص مذکور نے پودے جمائے پھر درختاں انگور تیار ہوئے اور اشجار بڑے ہو گئے اور مالک زمین سے زمین سالانہ کسی قدر اجرت معلومہ کے عوض کرایہ پر لی پھر مالک زمین نے شخص مذکور سے ایام ربیع میں نوروز سے پہلے کہا کہ اس زمین سے اپنے درخت دور کر دے تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر اس نے پھل نکلنے کے وقت ایسا کہا تو اس کو اختیار ہے اس واسطے کہ ایسے وقت میں بونے والے کو اپنے درخت اکھاڑنے میں زیادہ ضرر نہ ہوگا مؤلف نے فرمایا کہ میرے نزدیک یہ ہے کہ اگر سال پورا ہونے سے پہلے ایسا کہا حالانکہ شخص مذکور نے مالک زمین سے یہ زمین سالانہ اجارہ پر لی ہے تو مستاجر پر درخت اکھاڑنے کے واسطے جبر نہیں کیا جاسکتا ہے اگر وہ انکار کرے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ زید نے اپنے ایک فرزند عمرو نامے کو ایک زمین دی تاکہ اس میں اپنی طرف سے درخت لگائے بدیں شرط کہ درختوں سے جو کچھ حاصلات ہوگی وہ دونوں میں

نصفا نصف ہوگی اور کوئی مدت مقرر نہ کی پس عمرو نے اس میں درخت لگائے پھر زید مر گیا اور عمرو کے ساتھ (۱) یعنی عاریت دی۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 [Page 363] Kitab al-Mu'amalat (The Book of Transactions)**

...and he left other heirs, then the remaining heirs wanted to have the land cleared by Amr for the purpose of dividing the land, and they told him to remove his trees from it so that the land could be partitioned. The Sheikh stated that if this land is divisible (muhtamal-e-qismat), it shall be divided among them all according to their respective shares. Consequently, whatever portion falls into Amr’s share, that land along with its trees shall belong to him. Regarding whatever portion falls into the shares of others, Amr shall be ordered to uproot his trees and level the ground, provided that no reconciliation (sulh) is reached between them. However, if the land is not divisible (1), Amr shall be ordered to uproot all the trees, unless they reach a reconciliation in some manner. A person gave his land to another on the condition that he plant trees in it, provided that whatever is produced shall be shared equally (half and half) between them. When the fixed term expired, the landowner has the option: he may either pay half the value of the trees to the planter and take all the trees into his possession, or he may uproot the vines. This is mentioned in 'al-Muhit'.

A person gave his land to an agent (amil) who planted trees in it by the owner's order. If the saplings belonged to the owner, the trees belong to the owner. If the owner told the said agent to 'plant saplings for me', the ruling is the same, and the owner is liable to pay the agent the cost of the saplings. If the agent planted saplings without saying they were for the owner, but planted them of his own accord, then all those saplings belong to the agent, and the owner may tell him to uproot them. If it was agreed that he plant saplings on the condition that all trees would be jointly owned half-and-half, this is permissible. This is in 'Wajeez Kardi'. A person gave his land to another to plant trees and gave him the saplings. Later, the landowner claimed the saplings were his, thus the trees are his; whereas the planter claimed those saplings were stolen from him and he planted his own saplings, thus the trees are his. The scholars (Mashayikh) stated that regarding the trees, the landowner's word shall be accepted because the trees are attached to his land. Regarding the saplings given to the planter, the agent's word shall be accepted that they were stolen, such that the agent shall not be liable (zamin) because he was a trustee (amin). This is in 'Fatawa Qazi Khan'. A person gave his land to another to plant a vineyard; all of it shall belong to the landowner, and the planter shall receive the cost of the plants (2) he procured and a fair market wage (ajr al-mithl) for his labor. This is in 'Jawahir al-Fatawa'. If a person gave his vineyard to another on a contract and the agent worked diligently

for a period but then abandoned it, and returned at the time the fruit ripened to claim his share. If he returned the vineyard to the owner after the fruit had emerged in such a state that if appraised, they would have value, then his partnership is not void, and he shall be a partner according to the previous condition. However, if he returned it before the fruit emerged, or after they emerged at a time when an appraisal would show they have no value, then the said agent shall not share in those fruits. This is in 'al-Zakhira'.

**Giving seeds on a contract after they are ready for cultivation by saying 'As Allah Wills'**

If a person gave his fresh crop (ratba), which has reached its harvesting period, to another on the condition that the latter tends to and irrigates it until its seeds are produced, with the condition that 'whatever Allah Almighty destines from these seeds shall be shared between us both', this is permissible by way of 'istihsan' (legal preference). Although both parties did not specify the time, it is because the time for seeds to ripen is known, therefore—

1. Muhtamal: i.e., it is capable of providing the same benefit after division that was obtained before.
2. Saplings taken: i.e., they were purchased; their price, meaning the expenses incurred.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 [पृष्ठ 363] किताबुल मुआमला (लेन-देन की किताब)**

और अन्य उत्तराधिकारी छोड़े गए, फिर शेष उत्तराधिकारियों ने चाहा कि ज़मीन विभाजित करने के लिए अम्र से यह ज़मीन खाली करा दें और उससे कहें कि अपने पेड़ इसमें से हटा दे ताकि ज़मीन बाँटी जा सके। तो शेख ने फ़रमाया कि यदि यह ज़मीन विभाजन योग्य (मुहतमल-ए-क़िस्मत) हो, तो उन सब में हिस्से के अनुसार विभाजित की जाएगी। अतः अम्र के हिस्से में जितनी ज़मीन आएगी, वह ज़मीन अपने पेड़ों सहित उसकी होगी। और जितनी ज़मीन दूसरों के हिस्से में आएगी, उसके बारे में अम्र को आदेश दिया जाएगा कि अपने पेड़ उखाड़कर ज़मीन समतल कर दे, बशर्ते कि उन लोगों में आपस में समझौता (सुलह) न हो जाए। और यदि यह ज़मीन विभाजन योग्य (1) न हो, तो अम्र को आदेश दिया जाएगा कि सभी पेड़ उखाड़ ले, लेकिन यदि उनमें किसी प्रकार का समझौता हो जाए, तो ऐसा नहीं होगा। एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन दूसरे को इस शर्त पर दी कि उसमें पेड़ लगा दे, इस शर्त के साथ कि जो भी पैदावार होगी वह दोनों में आधी-आधी होगी। फिर निर्धारित समय बीत गया, तो ज़मीन के मालिक को अधिकार होगा कि चाहे तो पेड़ों की आधी कीमत बोने वाले को देकर सभी पेड़ अपने अधिकार में ले ले, या अंगूर (की बेलें) उखाड़ ले। यह 'मुहीत' में वर्णित है।

एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन किसी श्रमिक (आमिल) को दी, उसने मालिक के आदेश से उसमें पेड़ लगाए। अतः यदि पौधे मालिक के हों, तो पेड़ मालिक के होंगे। और यदि मालिक ने उक्त श्रमिक से कहा कि 'मेरे लिए पौधे लगाओ', तो भी यही आदेश है और मालिक पर श्रमिक के पौधों की कीमत देना अनिवार्य होगा। और यदि ऐसा किया गया हो कि पौधे लगाए और यह नहीं कहा कि 'मेरे लिए पौधे लगाए हैं', बल्कि श्रमिक ने अपने पास से उसमें पौधे लगाए, तो ये सभी पौधे श्रमिक के होंगे और मालिक उससे कह सकता है कि इन्हें उखाड़ ले। और यदि ऐसा कहा गया हो कि इसमें इस शर्त पर पौधे लगा दे कि सभी पेड़ आधे-आधे साझे के होंगे, तो यह जायज़ है। यह 'वजीज़ कुर्दी' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी ज़मीन इसलिए दी कि उसमें पेड़ लगा दे और पौधे उसे दे दिए। फिर ज़मीन के मालिक ने कहा कि पौधे मैंने दिए हैं, इसलिए पेड़ मेरे हैं; और बोने वाले ने कहा कि वे पौधे तो मेरे पास से चोरी हो गए और मैंने अपने पास से पौधे लगाए हैं, इसलिए पेड़ मेरे हैं। तो विद्वानों (मशायख) ने फ़रमाया कि पेड़ों के संबंध में ज़मीन के मालिक की बात मानी जाएगी क्योंकि ये पेड़ उसकी ज़मीन से जुड़े हुए हैं; और जो पौधे उसने बोने वाले को दिए थे, उनके बारे में श्रमिक की बात मानी जाएगी कि वे चोरी हो गए, यहाँ तक कि श्रमिक ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा क्योंकि वह अमानतदार (अमीन) था। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। एक व्यक्ति ने अपनी ज़मीन दूसरे को दी

ताकि वह अंगूर का बाग़ लगा दे, तो यह सब ज़मीन के मालिक का होगा और लगाने वाले को उसके द्वारा लगाए गए पौधों (2) की कीमत और उसके काम का उचित पारिश्रमिक (अज्र-उल-मिस्ल) मिलेगा। यह 'जवाहरुल फ़तावा' में है। यदि एक व्यक्ति ने अपना अंगूर का बाग़ दूसरे को अनुबंध पर दिया और एक समय तक श्रमिक ने उसके कार्यों को पूरा करने में मेहनत की, फिर उसे छोड़कर चला गया। फिर फल पकने के समय आया और साझेदारी के हिस्से की माँग की। अतः यदि उसने मालिक को यह अंगूर का बाग़ फल आने के बाद ऐसी स्थिति में लौटाया कि यदि इन फलों का आकलन किया जाता तो कुछ मूल्य होता, तो उसकी साझेदारी रद्द नहीं होगी और वह पिछली शर्त के अनुसार साझेदार होगा। और यदि फल निकलने से पहले उसने लौटा दिया, या फल निकलने के बाद ऐसे समय लौटाया कि यदि उस समय मूल्य का आकलन किया जाता तो कुछ मूल्य न होता, तो उक्त श्रमिक उन फलों में साझेदार नहीं होगा। यह 'ज़खीरा' में है।

### फ़सल तैयार हो जाने पर बीजों को 'अल्लाह की मर्जी' कहकर अनुबंध पर देना

यदि एक व्यक्ति ने अपनी ताज़ा फ़सल (रतबा), जो कटाई के समय पर पहुँच गई है, दूसरे को इस शर्त पर दी कि वह व्यक्ति इसकी देखभाल करे और इसे तब तक सींचे जब तक कि इसके बीज न निकल आएँ, इस शर्त के साथ कि 'अल्लाह तआला इसके बीजों में से जितना भी नसीब करेगा, वह हम दोनों में साझा होगा', तो यह बेहतर (इस्तेहसानन) रूप से जायज़ है। यद्यपि दोनों ने इसका समय नहीं बताया है, क्योंकि बीज पकने का समय ज्ञात है, अतः—

1. मुहतमल: अर्थात वह इस योग्य हो कि बँटवारे के बाद वह लाभ प्राप्त हो सके जो पहले प्राप्त था।
2. पौधे लिए: अर्थात खरीदे गए हैं, उनकी कीमत अर्थात जो खर्च हुआ हो।

---

اور بھی وارث چھوڑے پھر باقی وارثوں نے چاہا کہ زمین تقسیم کرنے کے واسطے عمرو سے یہ زمین خالی کرا دیں اور اس سے کہیں کہ اپنے درخت اس میں سے دور کر دے تاکہ زمین تقسیم کی جائے تو شیخ نے فرمایا کہ اگر یہ زمین محتمل قسمت ہو تو ان سب میں موافق حصہ کے تقسیم کی جائے گی پس جس قدر عمرو کے حصہ میں پڑے وہ زمین مع اس کے درختوں کے اس کی ہو گی اور جس قدر غیروں کے حصہ میں آئے اس کی بابت عمرو کو حکم دیا جائے گا کہ اپنے درخت اکھاڑ کر زمین برابر کر دے بشرطیکہ ان لوگوں میں باہم صلح نہ ہو جائے اور اگر یہ زمین محتمل قسمت ۱ نہ ہو تو عمرو کو حکم دیا جائے گا کہ سب درخت اکھاڑ لے لیکن اگر ان میں باہم کسی طور سے صلح ہو جائے تو ایسا نہیں ہے ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے کو اس شرط سے دی کہ اس میں درخت لگا دے بدیں شرط کہ جو پیدا ہو وہ دونوں میں نصفا نصف ہو گا پھر مدت مقرر گزر گئی تو مالک زمین کو اختیار ہو گا چاہے درختوں کی نصف قیمت اس کے بونے والے کو دے کر سب درخت اپنی ملک میں لے لے یا انگور اکھاڑ لے یہ محیط میں ہے۔

ایک شخص نے اپنی زمین کسی عامل کو دی اس نے مالک کے حکم سے اس میں درخت لگائے پس اگر پودے مالک کے ہوں تو درخت مالک کے ہوں گے اور اگر مالک نے عامل مذکور سے کہا کہ میرے واسطے پودے لگائے تو بھی یہی حکم ہے اور عامل کے واسطے مالک پر اس کے پودوں کی قیمت لازم ہو گی اور اگر یہ کیا ہو کہ اس میں پودے لگائے اور یہ نہ کہا اور میرے واسطے پودے لگائے ہیں عامل نے اپنے پاس سے اس میں پودے لگائے تو یہ سب پودے عامل کے ہوں گے اور مالک اس سے کہہ سکتا ہے کہ ان کو اکھاڑ لے اور اگر یوں کہا ہو کہ اس میں اس شرط سے پودے لگا دے کہ سب درخت نصفا نصف مشترک ہوں گے تو جائز ہے یہ وجیز کردی

میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کو اپنی زمین اس واسطے دی کہ اس میں درخت لگا دے اور پودے اس کو دے دیے پھر مالک زمین نے کہا کہ پودے میں نے دیے ہیں پس درخت میرے ہیں اور بونے والے نے کہا کہ وہ پودے تو میرے پاس سے چوری ہو گئے اور میں نے اپنے پاس سے پودے جمائے ہیں پس درخت میرے ہیں تو مشائخ نے فرمایا کہ درختوں کے باب میں مالک زمین کا قول قبول ہو گا کیونکہ یہ درخت اس کی زمین سے متصل ہیں اور جو پودے اس نے جمانے والے کو دیے تھے ان کی بابت عامل کا قول قبول ہو گا کہ چوری گئے یہاں تک کہ عامل ضامن نہ ہو گا اس واسطے کہ وہ امین تھا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص نے اپنی زمین دوسرے کو دی تاکہ وہ باغ انگور لگا دے تو یہ سب مالک زمین کا ہو گا اور لگانے والے کو جو اس نے پودے وغیرہ ۲ لیے ہیں ان کی قیمت اور اس کے کام کا اجر المثل ملے گا یہ جواہر الفتاویٰ میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنا باغ انگور دوسرے کو معاملہ پر دیا اور ایک مدت تک عامل نے اس کے کاموں کی انجام دہی میں کوشش کی پھر اس کو چھوڑ کر چلا گیا پھر پھل پختہ ہونے کے وقت آیا اور حصہ شرکت طلب کیا پس اگر اس نے مالک کو یہ باغ انگور پھل بر آمد ہونے کے بعد ایسی حالت میں واپس کیا کہ اگر یہ پھل اندازہ کیے جاتے تو کچھ قیمت ہوتی تو اس کی شرکت باطل نہ ہو گی اور شرط سابق کے موافق وہ شریک ہو گا اور اگر پھل نکلنے سے پہلے اس نے واپس کیا یا بعد پھل نکلنے کے ایسے وقت واپس کیا کہ اگر اس وقت قیمت اندازہ کی جاتی تو کچھ قیمت نہ ہوتی تو عامل مذکور ان پھلوں میں شریک نہ ہو گا یہ ذخیرہ میں ہے۔

**قابلِ پرداخت ہو جانے پر بیجوں کو اللہ کی مشیت کا کہہ کر معاملہ پر دینا**

اگر ایک شخص نے اپنا رطبہ جو اپنے کاٹنے کی میعاد پر پہنچ گیا ہے دوسرے کو اس شرط سے دیا کہ یہ شخص اس کی پرداخت کرے اور اس کو سینچے یہاں تک کہ اس کے بیج برآمد ہوں بدیں شرط کہ اللہ تعالیٰ اس کے بیجوں میں سے جس قدر نصیب کرے گا وہ ہم دونوں میں مشترک ہوں

گے تو استحساناً یہ جائز ہے اگر چہ دونوں نے اس کا وقت نہیں بیان کیا ہے اس واسطے کہ بیج پک جانے کا وقت معلوم ہے پس—

۱ محتمل یعنی اس قابل ہو کہ بعد بٹوارہ کرنے کے جو نفع پہلے حاصل تھا وہ حاصل ہو سکے۔ ۲ تولے لیے ہیں یعنی خرید کیے ہیں ان کی قیمت یعنی جو خرچہ ہوا ہو۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 364 | Kitab al-Mu'amalah (Book of Transactions)**

The seeds shall be shared between both parties, but the fresh dates (rutab) shall belong solely to the owner. If both parties stipulate that the fresh dates be shared equally, the transaction is voidable (fasid), as mentioned in *Al-Zahiriyyah*. If trees (1) or date palm saplings have been planted and have taken root in the ground but have not yet borne fruit, and are given to another on the condition that they care for them, water them, and perform pollination (2) of the palms, with the understanding that the produce will be split half-and-half, such a transaction is voidable. However, if a specific number of years is specified, it may be permissible. This is because it is uncertain how long it will take for palms, trees, or vines to bear fruit, as there is variation even among trees of the same kind due to the strength or weakness of the soil. If a known duration is stated, then the extent of the contracted labor (the worker's effort) becomes known, and the transaction becomes valid. If the duration is not specified, it is invalid; this is found in *Al-Mabsut*. If someone gives their date palms on a sharecropping basis and the worker (amil) wishes to graft the trees, the grafting branch is the responsibility of the owner. The work of grafting, such as making incisions with a tool and similar tasks to complete the graft, is the responsibility of the worker. Similarly, in planting a vineyard, the branch used for layering is the owner's responsibility, and the labor of planting it is the worker's. Likewise, supports/pillars (1) are the owner's responsibility, while their installation in the vineyard is the worker's. This is the prevailing custom and practice in our regions, and the fatwa is based on this; this is in *Al-Zakhiroh*.

A farmer planted tree saplings in a piece of land without the owner's permission. When the trees grew large, a dispute arose between them regarding the trees. If the landowner admits that the farmer planted these trees in his land, the trees shall belong to the farmer. However, in terms of religious piety between him and Allah Almighty, they will not be lawful (halal) for the farmer if he planted them without permission. If he planted them with permission but without a partnership agreement, they are lawful for him; this is in *Fatawa Kubra*. A person gave another a sapling (3) to plant by the village canal, and he did so. When the sapling became a tree, the giver told the planter, "You were my servant and among my dependents; I gave you this sapling to plant for me, so the tree is mine." The scholars (mushaikh) stated that if it is known the sapling belonged to the planter, the tree is his. If the sapling belonged to the giver, and the planter was a dependent of the giver who performed such tasks for him, the tree belongs to the giver as the apparent

circumstances testify to this. If the planter did not perform such tasks for him and did not plant it by his order or permission, the tree belongs to the planter, but he is obligated to pay the giver the price of the sapling. Similarly, if a planter uproots a sapling from someone's land and plants it elsewhere, it belongs to the planter, but he must pay the original owner the value of the sapling on the day it was uprooted; this is in *Fatawa Qazi Khan*.

A person gave his vineyard to someone on a contractual basis. When the fruit appeared, the owner's family would visit the garden daily, eat the fruit, and take some with them, while the worker (amil) only visited occasionally. If the owner's family...

---

(1) *Shajar* means tree, *karam* means grapevines, and *nakhl* means date palms. (2) *Talqih* refers to the process of pollination for fruit-bearing. (3) A single sapling or multiple saplings. (1) i.e., for the purpose of spreading/supporting grapevines.

उसके बीज दोनों में साझा होंगे और रतब (ताज़ा खजूर) केवल उसके मालिक का होगा। और यदि दोनों ने यह शर्त लगाई हो कि रतब दोनों में बराबर साझा होगा, तो मामला फासिद (अमान्य) होगा, जैसा कि ज़हीरिया में है। यदि पेड़ (1) या खजूर के पौधे बोए गए हों जो ज़मीन में जम गए हों, लेकिन अभी उनमें फल नहीं आए हों, और किसी दूसरे को इस शर्त पर दिए जाएँ कि वह उनकी देखभाल करे, पानी दे और खजूरों का परागण (2) करे, और जो भी उपज होगी वह दोनों में आधी-आधी होगी, तो ऐसा मामला फासिद है। लेकिन यदि कुछ ज्ञात वर्ष बता दिए जाएँ तो यह हो सकता है, क्योंकि यह ज्ञात नहीं होता कि कितने दिनों में खजूर, पेड़ या अंगूर के पेड़ फल देंगे, क्योंकि एक ही प्रकार के पेड़ों में ज़मीन की ताकत और कमजोरी की वजह से अंतर हो जाता है। यदि दोनों ने ज्ञात अवधि बता दी, तो अनुबंधित कार्य की मात्रा यानी आमिल (मज़दूर) के काम की मात्रा ज्ञात हो जाएगी, फिर मामला जायज़ होगा। और यदि उन्होंने इसे स्पष्ट नहीं किया, तो यह जायज़ नहीं है, यह 'मबसूत' में है। यदि किसी ने अपने खजूर के पेड़ों को बँटाई पर दिया और आमिल ने पेड़ों में पैबंद (ग्राफ्टिंग) करना चाहा, तो पैबंद की शाखा मालिक की ज़िम्मेदारी होगी। फिर पैबंद का काम, यानी औज़ार से पेड़ में चीरा लगाना और उसके जैसे काम जिससे पैबंद पूरा हो, आमिल की ज़िम्मेदारी हैं। इसी तरह अंगूर का बाग लगाने में वह शाखा जिससे नया पौधा लगाया जाए, मालिक की ज़िम्मेदारी है, और वह काम जिससे पौधा लग जाए, आमिल की ज़िम्मेदारी है। इसी तरह स्तंभ (1) मालिक की ज़िम्मेदारी है और उन्हें बाग में लगाना आमिल की ज़िम्मेदारी है। हमारे क्षेत्र में यही प्रथा प्रचलित है और इसी पर फतवा है, यह 'ज़खीरा' में है।

एक किसान ने ज़मीन के मालिक के आदेश के बिना ज़मीन में पेड़ के पौधे लगा दिए। जब पेड़ बड़े हो गए, तो दोनों में उन पेड़ों को लेकर विवाद हुआ। यदि ज़मीन का मालिक यह स्वीकार करता है कि किसान ने ये पेड़ मेरी ज़मीन में लगाए हैं, तो वे किसान के होंगे। लेकिन किसान के लिए धार्मिक दृष्टि से (अल्लाह के सामने) वे हलाल नहीं होंगे यदि उसने मालिक की अनुमति के बिना लगाए हों। और यदि उसने मालिक की अनुमति से बिना किसी साझेदारी की शर्त के लगाए हों, तो उसके लिए हलाल होंगे, यह 'फतावा कुबरा' में है। एक व्यक्ति ने दूसरे को एक पौधा (3) दिया ताकि वह उसे गाँव वालों की नहर के किनारे लगाए, और उसने लगा दिया। जब वह पौधा पेड़ बन गया, तो देने वाले ने लगाने वाले से कहा कि तुम मेरे सेवक थे और मेरे आश्रितों में थे, मैंने तुम्हें यह पौधा इसलिए दिया था कि तुम इसे मेरे लिए लगाओ, अतः पेड़ मेरा है। विद्वानों (मशायख) ने फरमाया कि यदि यह ज्ञात हो

जाए कि यह पौधा लगाने वाले का था, तो पेड़ उसी का होगा। और यदि पौधा देने वाले का हो, और लगाने वाला देने वाले के आश्रितों में हो जो उसके लिए ऐसे काम करता हो, तो पेड़ देने वाले का होगा क्योंकि प्रत्यक्ष स्थिति इसी की गवाही देती है। और यदि वह उसके लिए ऐसे काम न करता हो और न ही उसकी अनुमति से लगाया हो, तो पेड़ लगाने वाले का होगा और उस पर अनिवार्य होगा कि वह देने वाले को पौधे की कीमत अदा करे। इसी प्रकार यदि किसी पौधा लगाने वाले ने किसी की ज़मीन से पौधा उखाड़कर दूसरी जगह लगा दिया, तो वह लगाने वाले का होगा और उस पर अनिवार्य होगा कि वह मालिक को उस दिन की कीमत अदा करे जिस दिन उसने पौधा उखाड़ा था, यह 'फतावा काज़ी खान' में है।

एक व्यक्ति ने अपना अंगूर का बाग किसी को काम के लिए दिया, फिर उसमें फल आए। बाग देने वाले के घर के लोग रोज़ बाग में जाते, फल खाते और साथ ले आते थे, जबकि आमिल (कार्यकर्ता) कभी-कभी ही जाता था। यदि देने वाले के घर के लोगों...

---

(1) शजर का अर्थ पेड़, करम का अर्थ अंगूर की बेल और नख्ल का अर्थ खजूर का पेड़। (2) तलकीह का अर्थ है नर और मादा का मिलाप ताकि फल आए। (3) एक पौधा या कई पौधे। (1) यानी अंगूर की बेलों को फैलाने के लिए।

اس کے بیچ دونوں میں مشترک ہوں گے اور رطبہ فقط اس کے مالک کا ہو گا اور اگر دونوں نے یہ شرط لگائی ہو کہ رطبہ دونوں میں مساوی مشترک ہو تو معاملہ فاسد ہو گا کذا فی الظہیر یہ۔ اگر شجر (1) یا نخل کے پودے بوئے ہوئے جو زمین میں جم گئے ہیں۔ مگر ہنوز ان میں پھل نہیں آئے ہیں کسی دوسرے کو اس شرط سے دیے کہ ان کی پرداخت کرے اور پانی دے اور اس کے نخل کی تلقیح (2) کرے اور جو کچھ اس میں حاصلات ہو گی وہ دونوں میں نصفا نصف ہو گی تو ایسا معاملہ فاسد ہے لیکن اگر چند سال معلوم بیان کر دیے تو ہو سکتا ہے کیونکہ یہ نہیں معلوم کہ کتنے دنوں میں نخل یا شجر یا کرم بارور ہوں گے کیونکہ ایک ہی قسم کے درختوں میں زمین کی قوت و ضعف کی وجہ سے تفاوت ہو جاتا ہے یعنی کسی درخت کی زمین قوی ہوتی ہے اور کسی کی ضعیف پس اگر دونوں نے مدت معلومہ بیان کر دی تو مقدار معقود علیہ یعنی عامل کے عمل کی مقدار معلوم ہو جائے گی پس معاملہ جائز ہوگا اور اگر انھوں نے اس کو بیان نہ کیا تو جائز نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر کسی نے اپنے درخت خرما کی بٹائی پر دیا اور عامل نے چاہا کہ درختوں میں پیوند کرے تو شاخ پیوند مالک کے ذمہ ہوگی پھر پیوند کا کام یعنی درخت میں آلہ سے شگاف کرنا جس میں شاخ پیوند کرے اور جو اس کے مانند کام جس سے پیوند تمام ہو سب عامل کے ذمہ ہیں اور علیٰ ہذا انگور کا باغ لگانے میں وہ شاخ جس سے دبہ لگایا جائے مالک کے ذمہ ہے اور وہ کام جس سے دبہ لگ جائے یعنی دبہ لگا دینا عامل کے ذمہ ہے اس طرح ستون (1) مالک کے ذمہ اور ان کا نصب کرنا باغ انگور میں عامل کے ذمہ ہے ایسے ہی ہمارے دیار میں عرف وعادت جاری ہے اور اس پر فتویٰ ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔

ایک کاشتکار نے ایک زمین میں بدوں حکم مالک زمین کے درختوں کے پودے بودیئے پھر جب بڑے درخت ہو گئے تو دونوں نے ان درختوں کی بابت جھگڑا کیا پس اگر مالک زمین اس امر کا مقر ہو کہ کاشتکار نے یہ درخت میری زمین میں لگا دیے ہیں تو وہ کاشتکار کے ہوں گے لیکن کاشتکار کے حق میں از راہ دیانت فیما بینہ و بین اللہ تعالیٰ حلال نہ ہوں گے اگر اس نے مالک کی بلا اجازت لگائے ہوں اور اگر اس نے مالک کی اجازت سے بدوں شرط شرکت کے لگائے ہیں تو اس کے حق میں حلال ہوں گے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کو ایک پودا (3) دیا تا کہ اس کو ایک گاؤں والوں کے نہر کے کنارے لگائے اور اس نے لگا دیا۔ پھر جب وہ پودا درخت ہو گیا تو دینے والے نے لگانے والے سے کہا کہ تو میرا خادم تھا اور میرے عیال میں تھا میں نے تجھے یہ پودا دیا تھا کہ تو اس کو میرے واسطے جمادے پس درخت میرا ہے تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر یہ معلوم ہو جائے کہ یہ پودا اس جمانے والے کا تھا تو درخت اسی کا ہوگا اور اگر پودا جس نے دیا ہے اس کا ہو پس اگر جمانے والا اس دینے والے کے عیال میں ہو کہ اس کے واسطے ایسے کام کرتا ہو تو درخت اس دینے والے کا ہو گا کیونکہ ظاہر حال اسی کے واسطے شاہد ہے اور اگر اس کے واسطے ایسے کام نہ کرتا ہو اور نہ اس کی اجازت و حکم سے یہ پودا جمادیا ہو تو درخت اس جمانے والے کا ہوگا اور اس پر واجب ہوگا کہ دینے والے کو پودے کی قیمت ادا کرے اسی طرح اگر کسی پودا لگانے والے نے کسی شخص کی زمین سے کوئی پودا اکھاڑ لیا پھر اس کو زمین میں جمادیا تو یہ جمانے والے کا ہوگا اور اس پر واجب ہوگا کہ مالک زمین کو اس کے پودے کی وہ قیمت جو اس کے اکھاڑ لینے کے روز تھی ادا کرے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

ایک شخص نے اپنا باغ انگور کسی شخص کو معاملہ پر دیا پھر اس میں پھل آئے اور دینے والا اس کے گھر کے لوگ ہر روز اس باغ میں جاتے اور پھل کھاتے اور اپنے ساتھ لاتے تھے اور عامل باغ مذکور میں فقط کبھی کبھی جاتا تھا پس اگر دینے والے کے گھر کے لوگوں

---

(1) شجر بمعنی درخت اور کرم بمعنی درختاں انگور اور نخل بمعنی درختاں خرما۔ (2) تلقیح نرمادی لگانا بارور و پھلدار ہونا۔ (3) ایک پودا یا کئی پودے۔ (1) یعنی انگور کے پھیلانے کے واسطے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Vol 8 | 365 | Book of Transactions**

...If they have eaten the fruits of the one who gave them or taken them away without permission, the liability (indemnity) will fall upon those people, and it will not be obligatory upon the giver. This is the same ruling as in the case of a stranger; that is, if a stranger did so without the owner's permission, the ruling remains the same. However, if these people did so with the giver's permission, and they are individuals whose maintenance (nafaqah) is obligatory upon the giver, then the giver shall be liable for the worker's (Amil's) share, just as if he had taken the fruit himself and given it to them. But if they are not those whose maintenance is obligatory upon him, then the giver shall not be liable for compensation because in this case, he acted only as a secondary cause (sabab). It follows that the giver merely showed people the way to destroy another's property, and in such cases, liability does not usually fall on the cause. Thus, liability will not fall on him here either, but the individuals who took the fruit will be liable. This is mentioned in Fatawa Kubra.

If a person gave his date garden to another on the condition that he maintains it, waters it, and performs pollination (mating the male and female trees), with the agreement that whatever Allah Almighty produces therein shall be shared equally (half and half) between them; and the worker (Amil) maintained it and performed pollination until the fruits appeared and the unripe dates (kiriyan) turned green. If the landowner then dies, the analogical ruling (Qiyas) is that the contract (Uqd) is terminated, and the fruits in their current state shall be shared equally between the owner's heirs and the worker. This is because the owner hired the worker in exchange for a portion of the produce. Since a hire contract (Ijarah) for a fixed amount of dirhams would terminate upon the death of either party, so too does this contract involving a share of the produce terminate. This termination due to the death of one party is as if both had mutually agreed to terminate it during their lifetime. If they had mutually agreed to terminate the contract while the fruit was unripe during their lifetime, the produce would have been shared equally. However, the Imam (r.a.) has ruled through juristic preference (Istihsan) that the worker shall have the option to continue maintaining the garden as he did before until the fruits ripen, even if the heirs find it objectionable (1). This is because terminating the contract upon the owner's death would cause harm (darrar) to the worker and invalidate the right he earned through the contract—specifically, the right to leave the fruit on the trees until ripening. If the contract were terminated immediately, the fruits would have to be picked now, which is detrimental to the worker. Just as

terminating a contract is permissible to prevent harm, maintaining it is also permissible for the purpose of averting harm.

Just as the initial formation of a contract is permissible to prevent harm, maintaining the contract to avert harm is all the more permissible. If the worker says, "I will take my half of the unripe fruit now," he has the right to do so, because maintaining the contract was for the purpose of averting harm from himself. Once he accepts the harm upon himself, the contract is terminated upon the owner's death. However, the worker does not have the right to cause harm to the landowner's heirs. Therefore, the heirs shall have the option: they may pick the unripe fruit and divide it equally with the worker, or if they wish, they may pay the worker half the value of the unripe fruit and keep all the fruit for themselves. If they prefer, they may bear whatever expenses are incurred until the fruit ripens and then recover half of those expenses from the proceeds (thaman) (2) of the worker's share. Furthermore, if the worker dies, his heirs have the right to continue working in the garden according to the previous arrangement, even if the landowner does not agree, because they stand in the place of the worker.

**Footnotes:** 1. Acted as a cause, meaning this person was the cause of the destruction, and whoever is merely a cause is not liable; rather, the one who committed the act is liable. 2. They cannot recover it fully from his share but should take it from whatever price is realized upon sale. (1) They are not willing/pleased.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 365 | किताबुल मुआ'मला (लेनदेन की पुस्तक)**

...ने बिना अनुमति उस देने वाले के फल खाए या बांधकर ले आए हैं, तो हर्जाना उन्हीं लोगों पर वाजिब होगा, देने वाले पर वाजिब नहीं होगा। जैसा कि किसी अजनबी के मामले में हुक्म है, यानी अगर किसी अजनबी ने मालिक की अनुमति के बिना ऐसा किया तो यही हुक्म है। और अगर इन लोगों ने देने वाले की अनुमति से ऐसा किया है, जबकि ये वे लोग हैं जिनका भरण-पोषण (नफ़क़ा) उस देने वाले पर वाजिब है, तो देने वाला 'आमिल' (मज़दूर) के हिस्से का ज़िम्मेदार होगा, जैसा कि यदि वह स्वयं लेकर इन लोगों को देता तो यही हुक्म होता। और यदि ये लोग ऐसे न हों जिनका भरण-पोषण उस देने वाले पर वाजिब है, तो देने वाले पर ज़िम्मेदारी (ज़मान) वाजिब नहीं होगी क्योंकि वह इस स्थिति में केवल एक कारण (सबब) बना है। तो यह परिणाम निकलेगा कि देने वाले ने लोगों को दूसरे का माल नष्ट करने का रास्ता दिखाया, जबकि ऐसी स्थिति में हर्जाना अनिवार्य नहीं होता। अतः इस स्थिति में भी हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा, लेकिन वे लोग (खाने वाले) उत्तरदायी होंगे। यह 'फ़तावा कुबरा' में दर्ज है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग इस शर्त पर दिया कि वह उसकी देखभाल (परदाख़्त) करे, पानी दे और उसमें कृत्रिम गर्भाधान (नर-मादी मिलाना) करे, और जो कुछ भी अल्लाह ताला उसमें पैदा करेगा वह हम दोनों में आधा-आधा (निस़्फ़न-निस़्फ़) होगा; फिर आमिल ने उसकी देखभाल की और परागण किया यहाँ तक कि फल आ गए और कच्ची खजूरें (कीरियाँ) हरी हो गईं। फिर यदि भूमि का मालिक मर गया, तो नियम (क़यास) यह है कि अनुबंध (अक़्द) टूट जाएगा, और फल जिस स्थिति में हैं, मालिक के वारिसों और आमिल के बीच आधे-आधे बाँट दिए जाएँगे। क्योंकि मालिक ने आमिल को फसल के कुछ हिस्से के बदले काम पर रखा था। जबकि यदि उसने कुछ निश्चित रकम (दिरहम) के बदले काम पर रखा होता, तो किसी एक पक्ष की मृत्यु से अनुबंध स्वतः समाप्त हो जाता। अतः इस स्थिति में भी, जहाँ फल के हिस्से के बदले काम लिया गया है, अनुबंध समाप्त हो जाएगा। यह अंत किसी एक पक्ष की मृत्यु के कारण ऐसा है जैसे दोनों ने अपनी मर्जी से इसे समाप्त कर लिया हो। जबकि यदि जीवन में आपसी सहमति से कच्ची फलियों की स्थिति में अनुबंध समाप्त करते, तो फल आधे-आधे बँटते। लेकिन इमाम (र.) ने इस्तिहसान (विधिक प्राथमिकता) के तौर पर फरमाया है कि आमिल को अधिकार होगा कि वह बाग की देखभाल वैसे ही जारी रखे जैसे पहले करता था, जब तक कि फल पक न जाएँ, भले ही वारिस इसे नापसंद (मक़रूह) करें (1)। ऐसा इसलिए है क्योंकि मालिक की मृत्यु से अनुबंध समाप्त होने पर आमिल के अधिकार

को हानि (ज़रर) पहुँचती है और उस अधिकार का हनन होता है जिसका वह अनुबंध के माध्यम से हकदार बना था—अर्थात फलों को पेड़ पर पकने तक छोड़ देना। यदि अनुबंध तुरंत समाप्त कर दिया जाए तो फलों को अभी तोड़ना पड़ेगा जो आमिल के लिए नुकसानदेह है। जिस प्रकार नुकसान को दूर करने के लिए अनुबंध को तोड़ना जायज़ है, उसी प्रकार नुकसान से बचने के लिए अनुबंध को बनाए रखना भी जायज़ है।

जैसे नुकसान को रोकने के लिए अनुबंध की शुरुआत जायज़ है, वैसे ही उसे जारी रखना ताकि नुकसान टल जाए, और भी अधिक जायज़ है। और यदि आमिल ने कहा कि मैं आधी कच्ची फलियाँ ही ले लेता हूँ, तो उसे इसका अधिकार है क्योंकि अनुबंध का बना रहना उसके स्वयं के नुकसान को टालने के लिए था। फिर जब उसने स्वयं नुकसान सहना स्वीकार कर लिया, तो मालिक की मृत्यु से अनुबंध समाप्त हो जाएगा। लेकिन आमिल को यह अधिकार नहीं है कि वह मालिक के वारिसों को नुकसान पहुँचाए। अतः वारिसों को अधिकार होगा कि वे चाहें तो उन कच्ची फलियों को तोड़कर आमिल के साथ आधा-आधा बाँट लें, या चाहें तो आमिल को उसके हिस्से की आधी कीमत दे दें और सारी फलियाँ उनकी हो जाएँगी। और यदि वे चाहें तो फल पकने तक जो भी खर्च हो उसे वहन करें और फिर आमिल के हिस्से की बिक्री से प्राप्त धन (ज़मन) (2) से अपना आधा खर्च वापस ले लें। और यदि आमिल मर जाए, तो उसके वारिसों को अधिकार है कि वे बाग में पुराने नियम के अनुसार काम जारी रखें, भले ही मालिक राज़ी न हो, क्योंकि वे आमिल के उत्तराधिकारी हैं।

**फुटनोट्स:** 1. कारण बना, यानी नुकसान का कारण यह व्यक्ति हुआ है और जो कोई केवल कारण बने वह ज़िम्मेदार नहीं होता बल्कि वह होता है जिसने कार्य किया है। 2. उसके हिस्से से पूरा वसूल नहीं कर सकते बल्कि बिक्री से जो कीमत प्राप्त हो उसमें से ले लें। (1) सहमत न हों।

---

نے بلا اجازت اس دینے والے کے پھل کھائے یا باندھ لائے ہیں تو تاوان انہیں لوگوں پر لازم ہوگا دینے والے پر واجب نہ ہوگا۔ جیسے اجنبی کی صورت میں حکم ہے یعنی اگر اجنبی نے بلا اجازت مالک ایسا کیا تو یہی حکم ہے اور اگر ان لوگوں نے دینے والے کی اجازت سے ایسا کیا ہے حالانکہ یہ لوگ ایسے ہیں کہ ان کا نفقہ اس دینے والے پر واجب ہے تو دینے والا حصہ عامل کا ضامن ہوگا جیسا کہ اگر وہ خود لے کر ان لوگوں کو دیتا تو یہی حکم تھا اور اگر یہ لوگ ایسے نہ ہوں کہ جن کا نفقہ اس دینے والے پر واجب ہے تو دینے والے پر ضمان واجب نہ ہو گی کیونکہ وہ اس صورت میں سبب ہوا آ تو یہ لازم آئے گا کہ دینے والے نے لوگوں کو مال غیر تلف کرنے کی راہ بتائی حالانکہ ایسی صورت میں ضمان لازم نہیں آتی ہے پس اس صورت میں بھی ضمان لازم نہ آئے گی لیکن یہ لوگ ضامن ہوں گے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔

اگر ایک شخص کو اپنا باغ خرمائی اس شرط سے دیا کہ اس کی پرداخت کرے اور پانی دے اور اس میں نر مادی لگائے پس جو کچھ اس میں اللہ تعالیٰ پیدا کرے گا وہ ہم دونوں میں نصفاً نصف ہوگا پس عامل نے اس کی پرداخت کی اور اس میں نر مادی لگائی حتیٰ کہ پھل آئے اور کیریاں سبز ہو گئیں پھر مالک زمین مر گیا تو قیاسًا یہ حکم ہے کہ عقد معاملہ ٹوٹ جائے گا اور پھل جس حالت سے موجود ہیں اور وارثاں مالک اور عامل کے درمیان نصفاً نصف ہوں گے کیونکہ مالک نے عامل کو بعض بعض حاصلات کے اجارہ پر لیا ہے حالانکہ بعض کسی قدر دراہم معلومہ کے اجارہ پر لیتا تو دونوں میں سے کسی کی رضا سے اجارہ ٹوٹ جاتا پس ایسی ہی اس صورت میں بھی کہ بعض حاصلات کے عوض اجارہ پر لیا ہے اجارہ ٹوٹ جائے گا پھر یہ ٹوٹ جانا بوجہ کسی ایک عاقد کے مرنے کے ایسا ہے کہ گویا دونوں نے اپنی زندگی میں باہمی رضامندی سے توڑ لیا

حالانکہ اگر زندگی میں باہمی رضامندی سے ایسی حالت میں کہ کیریاں کچی ہیں دونوں اجارہ توڑتے تو یہ حاصلات دونوں میں نصفاً نصف ہوتی پس ایسا ہی اس صورت میں ہے لیکن امامؒ نے استحساناً فرمایا کہ عامل کو اختیار ہوگا چاہے اس باغ کی پرداخت کرے جیسے پہلے کرتا تھا کیے جائیں یہاں تک کہ پھل پک جائیں اگرچہ وارث لوگ اس بات کو مکروہ جانیں (۱) اس واسطے کہ مالک زمین کے مرنے سے عقد معاملہ ٹوٹ جانے میں عامل کے حق میں ضرر رسانی اور اس کے اس حق کا ابطال ہے جس کا بذریعہ عقد معاملہ کے وہ مستحق ہوا تھا یعنی پھل درختوں پر پکنے کے وقت تک چھوڑ دینا حالانکہ اگر معاملہ ٹوٹ جائے تو فی الحال اس کو توڑ لینے لازم ہوں گے اور اس میں عامل کے واسطے ضرر ہے اور جس طرح نقض اجارہ ضرر دفع کرنے کی غرض سے جائز ہے اجارہ باقی رکھنا بھی دفع ضرر کی غرض سے جائز ہے۔

جیسے دفع ضرر کی غرض سے ابتداء انعقاد عقد ہو جانا جائز ہے تو اس عقد کا باقی رکھنا تاکہ ضرر دور ہو بدرجہ اولیٰ جائز ہے اور اگر عامل نے کہا کہ میں آدھی کیریاں لیے لیتا ہوں تو اس کو اختیار ہے اس واسطے کہ عقد کا باقی رکھنا اس کی ذات سے ضرر دور کرنے کے واسطے تھا پھر جب اس نے اپنے اوپر ضرر کا التزام کر لیا تو مالک زمین کے مرنے سے عقد ٹوٹ جائے گا لیکن عامل کو یہ اختیار نہیں ہے کہ مالک زمین کے وارثوں کو ضرر لاحق کرے پس وارثوں کو اختیار حاصل ہوگا چاہیں ان کیریوں کو توڑ کر عامل کے ساتھ نصفاً نصف بٹوارہ کر لیں اور اگر چاہیں تو عامل کو کیریاں کی نصف قیمت دے دیں اور تمام کیریاں ان کی ہو جائے گی اور اگر چاہیں تو کیریاں پختہ ہونے تک جو کچھ خرچہ پڑے وہ اٹھادیں پھر عامل کے حصہ کے ثمن ۲ سے اپنا نصف خرچہ واپس لیں اور اگر عامل مر گیا تو اس کے وارثوں کو اختیار ہے کہ معاملہ کے باغ وغیرہ پر سابق دستور دوستی سے کام کریں اگر چہ مالک زمین اس پر راضی نہ ہو کیونکہ یہ لوگ عامل کے قائم مقام ہیں اور اگر

**حواشی:** ۱ سبب ہوا یعنی تلف ہونے کا سبب یہ شخص ہوا ہے اور جو کوئی سبب ہو وہ ضامن نہیں ہوتا بلکہ جو مرتکب ہو۔ ۲ اس کے حصہ میں بھر نہیں پا سکتے ہیں بلکہ فروخت کرنے سے جو ثمن آوے اس میں سے لے لیں۔ (۱) راضی نہ ہوں۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (366) Kitab al-Mu'amala (Book of Transactions)**

The heirs of the worker (Amil) said: "We will pick these unripe green fruits and divide them." In this case, the landowner shall have the same rights as those we described for the heirs of the owner in the first(1) scenario. If both parties die, the heirs of the worker have the option to tend to the trees or not, because the worker had such an option during his lifetime in the event of the landowner's death, and the heirs succeed him in his position; thus, they shall also have this option. This matter does not fall under the 'Inheritance of Options' (Tawreeth al-Khiyar) but rather under 'Succession' (Khilafat), whereby the right that the predecessor (Muwarrith) lawfully possessed—namely, to keep the fruits on the trees until they ripen—shall be held by the heirs as successors. If these people refuse to tend to the trees, the heirs of the landowner shall have the same rights as we mentioned in the first scenario(2). If neither of them dies but the duration of the contract expires while the fruits are still raw and green, this situation is identical to the situation of death. That is, the worker shall have an option; if he wishes, he may continue to work as before until the fruits ripen, and then they shall be divided equally between the two. However, in this case, if the worker chooses to keep the fruits on the trees, he shall be liable for half of the 'fair rent' (Ajr al-Mithl) of the land from that time until ripening. This is mentioned in *al-Mabsut*.

If a person gives his vineyard for sharecropping (Banai/Musaqat) and the worker dies within a year, and the owner, without a judge's order, bears the expenses until the fruits ripen, he shall not be considered a gratuitous volunteer (Mutabarri') but shall recover his expenses from the fruit. The worker shall have no way to take his share from the fruits until he pays the owner's expenses. The same rule applies to 'Muzara'at' (sharecropping in agriculture). If the worker disappears and the rest of the issue remains as it is, the landowner cannot recover his expenses; this is in *al-Sirajiyya*. If a free man gives his date orchard to a legally restricted slave (Ghulam Mahjur) or a restricted child (Tifl Mahjur) for ten years on the condition that they tend to the tasks, irrigate, and pollinate, and whatever Allah produces therein shall be shared equally between them; then the said worker worked on this agreement, then by legal preference (*istihsanan*), if the said slave or child survived the work safely, all the yield shall be divided equally between him and the owner. If the said slave or child died during the work in the orchard, then in the case of the slave, all yield shall belong to the orchard owner, and he must pay the value of the slave to the slave's master. If the worker is a restricted child, the yield shall be shared equally between

the owner and the child's heirs, and the blood money (Diyat) shall be due from the supporting clan of the orchard owner; this is in *al-Muhit*. If an authorized slave (Ghulam Ma'dhun) or an authorized child gave their date orchard to someone for cultivation and the worker had not yet started work when the giver was placed under legal restriction, the contract shall not be annulled because the contract is binding on both parties, to the extent that the slave has no right to annul the contract before the worker begins work. Thus, his being restricted shall not be effective regarding the right to annul the contract; this is in *al-Muhit al-Sarakhsi*. If a restricted slave or a restricted child, who possesses a date orchard, gives it to another on a half-share basis and the worker performs the work, all the yield shall belong to the orchard owner. Furthermore, if the giver is a restricted child, the worker shall never receive any wages, neither currently nor after the child reaches maturity. If it is a restricted slave, he cannot receive them currently, but after the slave is manumitted, he can hold him accountable for his wages; this is in *al-Muhit*. A farmer planted trees in a landlord's land, and then the contract period expired. If he planted them for the landlord, the farmer shall be a volunteer (3), and if the landlord had ordered him to buy them for me...

**Footnotes:** 1- His statement 'Tawreeth al-Khiyar': Initially, an objection was raised that you Hanafis do not consider options to be inheritable, as mentioned in the Book of Inheritances regarding 'Khiyar al-Shart' (Option of Condition) etc., so why did you accept it here? The answer given was: here we do not call it inheritance of an option, but rather representation (Niyabat). That is, these people stand in the place of their predecessor in this regard; therefore, whatever option the predecessor had, they also possess. Al-Sarakhsi said: if you say that inheritance itself is a form of succession, then the answer is that it contains this meaning, not that inheritance is only this, such that all heirs become equal. Thus, the Hanafi scholars used 'heir' in the sense of 'successor'. 2- Mutabarri': One who does a favor or acts gratuitously. (1) While the owner is alive. (2) While the owner has died.

**फतावा आलमगीरी ..... खंड (8) (366) किताब-अल-मुआमला (लेन-देन की पुस्तक)**

कार्यकर्ता (आमुल) के वारिसों ने कहा कि हम इन कच्ची कैरियों को तोड़कर बाँट लेते हैं, तो भूमि के मालिक को वही अधिकार प्राप्त होंगे जो पहली(1) स्थिति में हमने मालिक के वारिसों के लिए बताए हैं। यदि दोनों मर गए, तो पेड़ों की देखभाल करने या न करने में कार्यकर्ता के वारिसों का अधिकार है, क्योंकि कार्यकर्ता को अपने जीवन में भूमि के मालिक के मर जाने की स्थिति में ऐसा अधिकार था और वारिस उसके प्रतिनिधि हैं, अतः उन्हें भी यही अधिकार होगा। और यह मामला 'तौरीत-अल-खियार' (विकल्प की विरासत) की श्रेणी में नहीं आता है, बल्कि 'खिलाफत' (उत्तराधिकार) की श्रेणी में आता है कि जो अधिकार पूर्वज (मौरिस) को प्राप्त था—अर्थात फलों के पकने तक उन्हें पेड़ों पर लगाए रखना—वह वारिसों को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होगा। और यदि उन लोगों ने पेड़ों की देखभाल करने से इनकार कर दिया, तो भूमि के मालिक के वारिसों को वही अधिकार प्राप्त होंगे जो हमने पहली स्थिति(2) में बताए हैं। और यदि दोनों में से कोई न मरा, लेकिन अनुबंध की अवधि समाप्त हो गई जबकि उस समय तक फल कच्चे और हरे थे, तो यह स्थिति और मृत्यु की स्थिति दोनों समान हैं, अर्थात कार्यकर्ता को विकल्प प्राप्त होगा; यदि वह चाहे तो पहले की तरह काम जारी रख सकता है जब तक कि फल पक न जाएं और फिर दोनों के बीच आधा-आधा बँटवारा होगा। लेकिन इस स्थिति में यह बात है कि यदि कार्यकर्ता ने फलों को पेड़ों पर लगाए रखना चुना, तो उस समय से पकने तक उसे भूमि का आधा 'अज्र-ए-मिसल' (उचित किराया) देना होगा, यह 'मबसूत' में है।

यदि किसी व्यक्ति ने अपना अंगूर का बाग खेती (बनाई) के लिए दिया, फिर कार्यकर्ता वर्ष के भीतर मर गया और मालिक ने न्यायाधीश के आदेश के बिना फलों के पकने तक का खर्च उठाया, तो वह परोपकारी (मुतबर्रे) नहीं माना जाएगा बल्कि फलों से अपना खर्च वसूल कर लेगा, और कार्यकर्ता को फलों में अपना हिस्सा लेने का कोई अधिकार नहीं होगा जब तक कि वह मालिक का खर्च न दे दे। और यही नियम 'मज़ारअत' (साझा खेती) में भी है। यदि कार्यकर्ता गायब हो गया और बाकी मामला यथावत है, तो भूमि का मालिक अपना खर्च वापस नहीं ले सकता, यह 'सिराजिया' में है। यदि किसी स्वतंत्र व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग किसी प्रतिबंधित दास (गुलाम महजूर) या प्रतिबंधित बालक (तिफ्ल महजूर) को दस वर्ष के लिए इस शर्त पर काम के लिए दिया कि वह कार्यों की देखभाल करेगा, सिंचाई करेगा और परागण करेगा, और जो कुछ अल्लाह उसमें पैदा करेगा वह हम दोनों में आधा-आधा होगा; फिर उक्त कार्यकर्ता ने इसी अनुबंध पर काम किया, तो सादृश्य के आधार पर (इस्तिहसानन) यदि उक्त दास या बालक काम के बाद स्वस्थ और सुरक्षित रहा, तो सारी उपज

उसके और मालिक के बीच आधी-आधी होगी। और यदि उक्त बाग के काम के दौरान उक्त दास या बालक की मृत्यु हो गई, तो दास की स्थिति में सारी उपज बाग के मालिक की होगी और उस पर दास के मालिक को दास की कीमत देना अनिवार्य होगा। और यदि कार्यकर्ता प्रतिबंधित बालक हो, तो उपज मालिक और बालक के वारिसों के बीच आधी-आधी होगी, और बाग के मालिक के सहायक समुदाय पर उसका हर्जाना (दियत) अनिवार्य होगा, यह 'मुहित' में है। यदि किसी अनुमत दास (गुलाम माज़ून) या अनुमत बालक ने अपना खजूर का बाग किसी को खेती के लिए दिया और अभी कार्यकर्ता ने काम शुरू नहीं किया था कि देने वाले पर प्रतिबंध लगा दिया गया, तो अनुबंध नहीं टूटेगा, क्योंकि अनुबंध दोनों पक्षों के लिए अनिवार्य होता है, यहाँ तक कि दास को कार्यकर्ता के काम शुरू करने से पहले अनुबंध तोड़ने का अधिकार नहीं है। अतः अनुबंध तोड़ने के अधिकार के संबंध में उसका प्रतिबंधित होना प्रभावी नहीं होगा, यह 'मुहित-ए-सरखसी' में है। यदि किसी प्रतिबंधित दास और प्रतिबंधित बालक ने, जिसके कब्जे में एक खजूर का बाग है, दूसरे को आधे हिस्से की खेती पर दिया और कार्यकर्ता ने काम किया, तो पूरी उपज बाग के मालिक की होगी। फिर यदि देने वाला प्रतिबंधित बालक हो, तो कार्यकर्ता को कभी कोई पारिश्रमिक नहीं मिलेगा, न वर्तमान में और न बालक के वयस्क होने के बाद। और यदि वह प्रतिबंधित दास हो, तो वर्तमान में नहीं मिल सकती, लेकिन दास के स्वतंत्र होने के बाद वह उससे अपने पारिश्रमिक की मांग कर सकता है, यह 'मुहित' में है। एक किसान ने ज़मींदार की ज़मीन में पेड़ लगाए, फिर अनुबंध की अवधि समाप्त हो गई। यदि उसने ज़मींदार के लिए पेड़ लगाए हों, तो किसान परोपकारी (3) होगा, और यदि ज़मींदार ने उसे आदेश दिया हो कि उन्हें मेरे लिए खरीदकर...

**पाद-टिप्पणियाँ:** 1- कथन 'तौरीत-अल-खियार': पहले यह आपत्ति होती थी कि तुम हनफी लोग अधिकारों को विरासत नहीं मानते हो, जैसे 'खियार-उश-शर्त' आदि में उत्तराधिकार की पुस्तक में उल्लेख है, फिर यहाँ क्यों सहमत हुए? उत्तर दिया गया कि यहाँ हम विकल्प की विरासत की बात नहीं कर रहे हैं, बल्कि प्रतिनिधित्व (नियाबत) की बात कर रहे हैं, अर्थात ये लोग अपने पूर्वज के स्थान पर प्रतिनिधि के रूप में हैं, अतः जो अधिकार पूर्वज को था, वही उन्हें प्राप्त है। और अल-सरखसी ने कहा कि यदि तुम कहो कि विरासत स्वयं एक प्रकार का प्रतिनिधित्व है, तो उत्तर यह है कि इसमें यह अर्थ निहित है, न कि विरासत केवल यही है, यहाँ तक कि सभी वारिस बराबर हो जाएँ। अतः हनफी विद्वानों ने वारिस को 'प्रतिनिधित्व' के अर्थ में लिया है। 2- मुतबर्रेः मुफ्त में एहसान करने वाला। (1) जबकि मालिक जीवित है। (2) जबकि मालिक मर गया।

عامل کے وارثوں نے کہا کہ ہم ان کیریوں کو توڑ کر تقسیم کیے لیتے ہیں تو مالک زمین کو وہی اختیارات حاصل ہوں گے جو پہلی(۱) صورت میں ہم نے مالک کے وارثوں کے واسطے بیان کیے ہیں۔ اگر دونوں مر گئے تو درختوں کی پرداخت کرنے یا نہ کرنے میں عامل کے وارثوں کا اختیار ہے کیونکہ عامل کو اپنی زندگی میں مالک زمین کے مر جانے کی صورت میں ایسا اختیار تھا اور وارث لوگ اس کے قائم مقام ہیں پس ان کو بھی یہی اختیار ہوگا اور یہ امر از باب توریت الخیار نہیں ہے بلکہ از باب خلافت ہے کہ جو حق مورث کو باستحقاق حاصل تھا یعنی پھل پختہ ہونے تک پھلوں کو درخت پر لگا رکھنا وہ وارثوں کو بطور خلافت حاصل ہوگا اور اگر ان لوگوں نے درختوں کی پرداخت کرنے سے انکار کیا تو وارثان مالک زمین کو ویسے ہی اختیارات حاصل ہوں گے جیسے ہم نے صورت اول (۲) میں بیان کیے ہیں اور اگر دونوں میں سے کوئی نہ مرا لیکن معاملہ کی مدت گزر گئی حالانکہ اس وقت تک کیریاں کچی سبز تھیں تو یہ صورت اور موت کی صورت دونوں یکساں ہیں یعنی خیار عامل کو حاصل ہوگا اگر چاہے تو یہ بدستور سابق کام کرتا رہے یہاں تک کہ پھل پختہ ہو جائیں اور پھر دونوں میں نصفا نصف تقسیم ہوں گے لیکن اس صورت میں یہ بات ہے کہ اگر عامل نے پھلوں کا درخت پر لگا رکھنا اختیار کیا تو اس وقت سے پختہ ہونے تک اس پر زمین کا نصف اجر المثل واجب ہوگا یہ مبسوط میں ہے۔

اگر ایک شخص نے اپنا باغ انگور بنائی پر دیا پھر عامل سال کے اندر مر گیا اور مالک نے بدون حکم قاضی پھلوں کے پختہ ہونے تک خرچہ اٹھایا تو متبرع نہ ہوگا بلکہ پھلوں سے وصول کر لے گا اور عامل کو پھلوں میں سے اپنے حصہ لینے کی کوئی راہ نہ ہوگی جب تک مالک کا خرچہ نہ دے اور یہی حکم مزارعت میں ہے۔ اگر عامل غائب ہو گیا اور باقی مسئلہ بحالہ ہے تو مالک زمین

اپنا خرچہ واپس نہیں لے سکتا ہے یہ سراجیہ میں ہے۔ اگر مرد آزاد نے اپنا باغ خرما کسی غلام محجور یا طفل محجور کو بنائی پر دس سال کے واسطے دیا بدیں شرط کہ اس کے کاموں کی پرداخت کرے اور اس کو سینچے اور نر مادی لگائے اور جو کچھ اللہ تعالیٰ اس میں پیدا کرے گا وہ ہم دونوں میں نصفا نصف ہو گا پس عامل مذکور نے اسی معاملہ پر کام کیا تو استحساناً اگر غلام و طفل مذکور کام کرنے سے صحیح سالم بچ رہا تو سب حاصلات اس کے و مالک کے درمیان نصفا نصف ہوگی اور اگر باغ مذکور میں کام سے غلام مذکور یا طفل مذکور مر گیا پس غلام کی صورت میں تمام حاصلات مالک باغ کی ہوگی اور اس پر واجب ہوگا کہ غلام کے مالک کو غلام کی قیمت ادا کرے اور اگر طفل محجور عامل ہو تو حاصلات مالک اور طفل کے وارثوں کے درمیان نصفا نصف ہوگی اور مالک باغ کی مددگار برادری پر اس کی دیت واجب ہوگی یہ محیط میں ہے۔ غلام ماذون یا طفل ماذون نے اپنا باغ خرما کسی کو بنائی پر دیا اور ہنوز عامل نے کام نہ کیا تھا کہ دینے والا محجور کیا گیا تو معاملہ نہ ٹوٹے گا اس واسطے کہ معاملہ طرفین سے لازم ہوتا ہے حتیٰ کہ غلام کو قبل عامل کے کام کرنے کے معاملہ توڑنے کا اختیار نہیں ہے پس معاملہ ٹوٹنے کے حق میں اس کا محجور ہونا کار آمد نہ ہوگا یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر غلام محجور اور طفل محجور نے جس کے قبضہ میں ایک باغ خرما ہے دوسرے کو آدھے کی بنائی پر دیا اور عامل نے کام کیا تو پوری حاصلات مالک باغ کی ہوگی پھر اگر دینے والا طفل محجور ہو تو عامل کو کبھی کچھ اجرت نہ ملے گی نہ فی الحال اور نہ طفل مذکور کے بالغ ہونے کے بعد اور اگر غلام محجور ہو تو فی الحال نہیں مل سکتی ہے مگر غلام آزاد ہو جانے کے بعد اس سے اپنی اجرت کا مواخذہ کر سکتا ہے یہ محیط میں ہے۔ ایک کاشتکار نے زمین دار کی زمین میں درخت جمائے پھر مدت معاملہ منقضی ہو گئی پس اگر اس نے زمین دار کے واسطے جمائے ہوں تو کاشتکار متبرع (۳) ہوگا اور اگر زمین دار نے اس کو حکم دیا ہو کہ ان کو میرے لیے خرید کر

**حواشی:** ۱- قولہ توریت الخیار اولاً یہ اعتراض ہوتا تھا کہ تم حنفیہ لوگ اختیارات کو میراث ہونا نہیں کہتے ہو جیسے خیار الشرط وغیرہ میں کتاب المواریث میں عذراً پھر یہاں کیوں قائل ہوئے جواب دیا کہ یہاں خیار کی میراث ہم نہیں کہتے ہیں بلکہ نیابت کہتے ہیں یعنی یہ لوگ اپنے مورث کے قائم مقام بدیں ہیں پس جو اختیار مورث کو تھا وہی ان کو حاصل ہے و قال السر حم اگر کہو کہ میراث خود قائم مقامی ہے تو جواب یہ کہ اس میں یہ معنی حاصل ہیں نہ آنکہ درینہ صرف یہی ہے حتیٰ کہ سب وارث برابر ہو جائیں تو علماے حفیہ نے وارث کو قائم مقامی کے معنی میں کہا ہے قائل فیہ۔ ۲- متبرع مفت احسان کرنے والا۔ (۱) جبکہ مالک زندہ ہے۔ (۲) جبکہ مالک مرا۔

If someone says "plant it for me," these trees will still belong to the landowner. However, it is mandatory for the landowner to reimburse the cultivator the price at which the trees were purchased. If the cultivator planted them for himself with the landowner's permission, they belong to the cultivator, and the landowner has the right to ask him to uproot them and level the land. If the people of a village collectively brought small amounts of seeds and sowed them for a teacher (Mu'allim), then whatever the yield, it belongs to the owners of the seeds because they did not formally hand over (donate) the seeds to the teacher. This is mentioned in *Wajiz Kardari*.

**The Issue of a Canal Shared Between Two Owners**

A canal is shared jointly by two individuals, and trees are planted along its banks. If both claim sole ownership of those trees, the scholars (*Mashaikh*) have stated that if the person who planted them is known, they belong to him. If the planter is unknown, then whatever trees are on the specific property of either person belong to that person. If they are in a shared area, they belong to both jointly. This is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*. If a person took a vineyard on a long-term lease (*Ijarah-e-Tawila*) and then purchased the trees and vines (*Zaramin*), and after the deal, gave the trees and vines (1) to another person, it is permissible. This is in *Dhakirah*. A cultivator sowed land on a sharecropping basis (*Batayi*); he uprooted some and left some without uprooting. After the contract period expired, due to the cultivator's watering and nurturing, the crops grew. Whatever grew from what was already in the ground and not uprooted would be shared between the cultivator and the landowner according to their agreed terms. Whatever grew from what had been uprooted and removed from the soil belongs to the cultivator who irrigated and grew it, and compensation for the consumed property (*Dhaman-e-Mustahlak*) is due upon him. If it grew without irrigation, it should be divided between both according to each person's share in the seeds. This is in *Al-Muhit*. If a person planted a tree on the bank as compensation for a village and later cut it down, and then new shoots sprouted from the root and became a tree, it belongs to the one who originally planted it because it is a branch of his property. This is in *Wajiz Kardari*. It is mentioned in *Nawazil* that if some leftovers were remaining in a melon field and people took them, then if they were left so that anyone could take them, there is no harm in it—similar to how if a crop is harvested and some ears of grain remain in the field, there is no fear in picking them. This is in *Khulasah*.

It is mandatory for a worker (*Aamil*) to protect himself from what is forbidden (*Haram*). It is not permissible for him to burn any trees or dry branches for cooking, nor is it permissible to take and burn wood from the pillars (*Du'aim*) (2) or the trellises (*Arish*). When dry branches are removed from the vineyard during the spring (*Rabi*) season and taken outside, it is not lawful for him to take those dry branches for himself. It is not permissible to take grapes or other fruits (3) out of the orchard for one's guests or others without the owner's permission. This is in *Fatawa Qazi Khan*. A sick man gave his date orchard on a half-sharecropping basis. The worker tended to it, pollinated it, and irrigated it until the fruit appeared. Then the owner died, leaving no property other than this orchard and its fruits. Those fruits will be evaluated for their value on the day the buds emerged and became unripe fruit (*Kufre*). If half of their value is equal to or less than the worker's fair wage (*Ajr-e-Mithl*), the worker will receive half the fruit, but if it is more than his fair wage, then...

---

1. *Kufre* refers to buds or fruits that are still raw/unripe. *Zaramin* is the plural of *Zarjun*, meaning grapevine.
2. *Du'aim* are the pillars supporting the structure; *Arish* is the trellis on which the grapevine spreads. (3) Meaning, absolute discretion or unauthorized use of them is not allowed.

(यदि कोई कहे कि) "मेरे लिए लगाए," तो भी ये पेड़ ज़मींदार के होंगे, लेकिन ज़मींदार पर यह अनिवार्य होगा कि काश्तकार (किसान) ने जितने दामों में ये पेड़ खरीदे हैं, वह काश्तकार को दे दे। और यदि काश्तकार ने अपने लिए ज़मींदार की अनुमति से लगाए हैं, तो वे काश्तकार के होंगे और ज़मींदार को यह अधिकार होगा कि वह उससे कहे कि यहाँ से उखाड़ ले और ज़मीन बराबर कर दे। एक गाँव के लोगों ने मिलकर हर एक ने थोड़ा-थोड़ा बीज लाकर एक शिक्षक (मुअल्लिम) के लिए बोया, तो जो कुछ पैदावार होगी वह बीज वालों की होगी, क्योंकि उन लोगों ने बीज शिक्षक को सुपुर्द (दान) नहीं किया है। यह 'वजीज़ करदरी' में है।

## दो मालिकों के बीच विभाजित नहर का मसला

एक नहर दो आदमियों के बीच साझा (साझा) है, उसके किनारे पेड़ लगे हुए हैं। यदि दोनों में से प्रत्येक ने उन पेड़ों का दावा किया कि ये विशेष रूप से मेरे हैं, तो विद्वानों (मशायख) ने फरमाया कि यदि उन्हें लगाने वाला ज्ञात हो जाए, तो वे उसी के होंगे। और यदि ज्ञात न हो, तो जितने पेड़ दोनों में से किसी की निजी संपत्ति में होंगे, वे उसी के होंगे। यदि वे दोनों की साझा जगह में हैं, तो वे दोनों के साझा होंगे। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। एक व्यक्ति ने अंगूर का बाग लंबी अवधि के पट्टे (इज़ारा-ए-तवीला) पर लिया, फिर उसने पेड़ों और लताओं (ज़रामीन) को खरीदा, फिर पेड़ों और लताओं (१) को सौदे के बाद दूसरे व्यक्ति को दिया, तो यह जायज़ है। यह 'ज़खीरा' में है। एक काश्तकार ने बटाई पर ज़मीन बोई और कुछ हिस्सा उखाड़ा और कुछ बिना उखाड़े छोड़ दिया। फिर अनुबंध की अवधि बीत जाने के बाद काश्तकार के पानी देने और उगाने से जो पैदावार हुई, तो जो हिस्सा ज़मीन में था और उखाड़ा नहीं गया था, वह काश्तकार और भूस्वामी के बीच उस शर्त के अनुसार साझा होगा जो उनके बीच तय हुई थी। और जो हिस्सा उखाड़ दिया गया था और ज़मीन से अलग हो गया था, वह उस काश्तकार का होगा जिसने उसे सींचकर उगाया है, और उस पर नष्ट की गई वस्तु का मुआवज़ा (ज़मान-ए-मुस्तहलिक) अनिवार्य होगा। और यदि बिना सींचे उगा हो, तो उसे दोनों के बीच उस अनुपात में बाँटा जाना चाहिए जिस अनुपात में बीजों में प्रत्येक का अधिकार था। यह 'मुहीत' में है। एक व्यक्ति ने गाँव के बदले (मुआवज़े) के किनारे एक पेड़ लगाया, फिर उसे काट दिया। बाद में उसकी जड़ से फिर अंकुर फूटे और पेड़ बन गया, तो यह भी उसी का होगा जिसने मूल पौधा लगाया था क्योंकि यह उसी के स्वामित्व वाली शाखा है। यह 'वजीज़ करदरी' में है। 'नवाज़िल' में है कि खरबूजों के एक खेत में कुछ अवशेष रह गए थे, जिसे लोगों ने लूट लिया (खा लिया)। यदि वह

अवशेष इसलिए छोड़ा गया था कि जिसका जी चाहे ले ले, तो इसमें कोई दोष नहीं है, जैसे कि यदि फसल काट ली जाए और खेत में कुछ बालियाँ रह जाएँ तो उन्हें चुन लेने में कोई डर नहीं है। यह 'खुलासा' में है।

कार्यकर्ता (आमलि) पर अनिवार्य है कि वह स्वयं को हराम (निषिद्ध) से बचाए। उसके लिए यह जायज़ नहीं है कि हांडी पकाने के लिए पेड़ों या सूखी टहनियों में से कुछ जला दे, और न ही खंभों (दुआइम) (२) और बेल के मचान (अरीश) से निकालकर जलाना जायज़ है। जब वसंत ऋतु (रबी) के समय सूखी टहनियाँ हटाई जाएँ और बाग से बाहर निकाली जाएँ तो उसके लिए उन सूखी टहनियों को लेना हलाल नहीं है। बाग के मालिक की अनुमति के बिना अपने मेहमान आदि के लिए बाग से अंगूर या अन्य फल (३) बाहर ले जाना जायज़ नहीं है। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है। एक बीमार व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग आधी बटाई पर दिया। कार्यकर्ता ने उसकी देखभाल की, नर परागण किया और सिंचाई की यहाँ तक कि फल आ गए। फिर बाग का मालिक मर गया और इस बाग और इसके फलों के अलावा कोई संपत्ति नहीं छोड़ी। तो उन फलों को देखा जाएगा कि जिस दिन कलियाँ निकलकर कच्चे फल (कुफ़रे) बने थे, उस दिन उनकी क्या कीमत थी। यदि उनकी आधी कीमत कार्यकर्ता के पारिश्रमिक (अज्र-ए-मिसल) के बराबर या कम हो, तो कार्यकर्ता को आधे फल मिलेंगे, और यदि उसके पारिश्रमिक से अधिक हो तो...

---

1. 'कुफ़रे' से तात्पर्य उन कलियों या फलों से है जो अभी कच्चे हैं। 'ज़रामीन' अंगूर की लताओं (ताक) का बहुवचन है।
2. 'दुआइम' वे खंभे हैं जिन पर लकड़ियाँ टिकी होती हैं, 'अरीश' वह मचान है जिस पर अंगूर की बेल फैलती है। (३) अर्थात उनमें पूर्णतः हस्तक्षेप करना उचित नहीं है।

---

میرے واسطے جمائے تو بھی یہ درخت زمین دار کے ہوں گے مگر زمین دار پر واجب ہوگا کہ کاشتکار نے جتنے داموں کو یہ درخت خریدے ہیں وہ کاشتکار کو دے دے اور اگر کاشتکار نے اپنے واسطے زمین دار کی اجازت سے لگائے ہیں تو کاشتکار کے ہوں گے اور زمین دار کو اختیار ہوگا کہ اس سے کہے کہ یہاں سے اکھاڑ لے اور زمین برابر کر دے ایک گاؤں کے لوگوں نے متفق ہو کر ہر ایک نے تھوڑا تھوڑا بیج لا کر ایک معلم کے واسطے بویا تو جو کچھ پیداوار ہو وہ بیج والوں کی ہوگی اس واسطے کہ ان لوگوں نے بیج معلم کو نہیں سپرد کیا ہے یہ وجیز کردری میں ہے۔

**دو مالکوں میں منقسم نہر کا مسئلہ**

ایک نہر دو آدمیوں میں مشترک ہے اس کے کنارے درخت لگے ہوئے ہیں پس دونوں میں سے ہر ایک نے ان درختوں کا دعویٰ کیا کہ خاصہ میرے ہیں تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر ان کا لگانے والا معلوم ہو جائے تو اس کے ہوں گے اور اگر نہ معلوم ہو تو جس قدر درخت دونوں میں سے کسی کی خاص ملک ہوں وہ اس کے ہوں گے دونوں کی مشترک جگہ میں ہوں وہ دونوں میں مشترک ہوں گے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ باغ انگور کو ایک شخص نے باجارہ طویلہ اجارہ پر لیا پھر اس نے درختوں و زرامین کو خریدا پھر درختوں وزرامین (۱) کو بعد معاملہ دوسرے شخص کو دیا تو جائز ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک کاشتکار نے بٹائی پر زمین کو بویا اور تھوڑا اکھاڑ اور تھوڑا ویسا ہی بغیر اکھاڑا چھوڑ دیا پھر مدت معاملہ گذر جانے کے بعد کاشتکار کے پانی دینے اور اُگانے سے وہ اُگا تو جس قدر ایسا اُگا ہے جو زمین میں تھا اکھاڑ انہیں گیا تھا وہ کاشتکار و

مالک زمین کے درمیان اس شرط کے موافق جو ان میں قرار پائی تھی مشترک ہوگا اور جو ایسا اُگا ہے جو اکھاڑ ا گیا تھا اور زمین سے بھی اکھڑ گیا تھا تو وہ اس کاشتکار کا ہوگا جس نے اس کو سینچ کر اگایا ہے اور اس پر ضمان مستہلک واجب ہوگی اور اگر بدون سینچنے کے اُگا ہو تو چاہیے کہ دونوں کے درمیان اس حساب سے تقسیم ہو کہ جس قدر ہر ایک کا بیجوں میں حق تھا اسی حساب سے پیداوار ہر ایک کو ملے یہ محیط میں ہے۔ ایک شخص نے گاؤں کے عوض کے کنارے ایک درخت جمادیا پھر اس کے بعد اس کو کاٹ لیا پھر اس کی جڑ پھوٹی اور درخت ہوا تو یہ بھی اسی کا ہو گا جس نے پودا جمادیا تھا کیونکہ اسی کی ملک کی شاخ ہے یہ وجیز کردری میں ہے۔ نواز ل میں ہے کہ خربوزوں کے ایک فالیز میں کچھ بقیہ رہ گیا تھا اس کو لوگوں نے لوٹ کھایا پس اگر بقیہ وہ اس واسطے چھوڑا گیا تھا کہ جس کا جی چاہے لے لے تو اس میں کچھ خوف نہیں ہے جیسا کہ اگر کھیتی کاٹ لی اور کھیت میں کچھ بالیاں رہ گئیں تو ان کے چن لینے میں ڈر نہیں ہے یہ خلاصہ میں ہے۔

عامل پر واجب ہے کہ اپنے آپ کو حرام سے بچائے اور اس کے حق میں جائز نہیں ہے کہ ہانڈی پکانے میں درختوں و خشک شاخوں میں سے کچھ جلا دے اور نہ دعائم (۲) و عریش میں سے نکال کر جلانا جائز ہے اور جب وقت ربیع کے خشک شاخیں دور کی گئیں اور باغ انگور سے باہر نکالی گئیں تو اس کے حق میں ان خشک شاخوں میں سے لے لینا حلال نہیں ہے۔ بدون اجازت مالک باغ کے اپنے مہمان وغیرہ کے واسطے باغ میں سے انگور یا اور پھل (۳) باہر لانا جائز نہیں ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک مریض نے اپنا باغ خرما آدھے کی بٹائی پر دیا اور عامل نے اس کی پرداخت کیا اور نرمادی دی اور سینچنا یہاں تک کہ پھل آئے پھر مالک باغ مر گیا اور سوائے اس باغ و اس کے پھلوں کے کچھ مال نہ چھوڑا تو ان پھلوں کو دیکھا جائے گا کہ شگوفہ برآمد ہو کر کفرے ہو جانے کے روز ان کی کیا قیمت تھی پس اگر ان کی نصف قیمت عامل

کے اجر المثل کے برابر یا کم ہو تو عامل کو آدھے پھل ملیں گے اور اگر اس کے اجر المثل سے زیادہ ہو تو

---

۱۔ کفرے براء مشدد و مقصور وہ کیریاں ہیں جو کچی ہیں حریم گرد اگر و نہر و کنواں دیکھو باب احیاء موات۔ (۱) زرامین جمع زرجون تاک انگور۔ ۲۔ دعائم کھمبے جن پر لکڑیاں ہیں عریش وہ مچان جس پر انگور کی بیل پھیلتی ہے۔ (۳) یعنی ان میں مطلق تصرف کرنا روا نہیں ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 [368] Kitab al-Mu'amala (Book of Transactions)**

On the day the division occurs, considering the *Ajr al-Mithl* (customary/fair wage) of the *Amil* (laborer/worker), he shall be given his *Ajr al-Mithl*. Whatever remains of his full portion shall be given to the *Amil* from the deceased's one-third [of the estate] as a bequest (*Wasiyyat*). However, if the said *Amil* is an heir, he shall receive nothing from the bequest. If the deceased patient has debts encompassing his entire wealth, and if at sunrise the value of half a *Kufra* (date palm husk/sheath) is equal to his *Ajr al-Mithl*, the *Amil* shall share half of all the fruits along with the creditors. If the value of half a *Kufra* exceeds his *Ajr al-Mithl*, he shall share with the creditors to the extent of his *Ajr al-Mithl*.

If a healthy person gave his date orchard to a sick person (the patient) on a sharecropping (*Butai*) basis with the condition that the *Amil* receives one part out of a hundred parts of the produce, and the sick person worked in the said orchard with his laborers and helpers, irrigated it, and maintained it until fruits were produced, then the *Amil* (the patient) died leaving no wealth other than this produce while having debts. The owner of the orchard is among his heirs, and the *Ajr al-Mithl* for the said *Amil's* work exceeds his contractual right. In this case, he can only receive what was stipulated for him, because the patient's disposal in this instance pertains to something in which the heirs and creditors have no right, namely, 'profits of the body' (*Manafi-e-Badan*). This is in *Al-Mabsut*.

Some trees are planted along a shared canal belonging to a community, and this canal flows into a non-thoroughfare alley (*Kucha Ghair Nafidha*). Some trees are also planted in the central courtyard of that neighborhood. Then, some people from that alley claimed that so-and-so planted these trees and "I am his heir," but the residents of the said neighborhood denied this. Witnesses shall be sought from the claimant for his claim. If he has no witnesses, all trees planted outside the perimeter (*Harim*) of the canal shall be shared among all residents of the alley. Any trees located within the canal's perimeter shall be shared among the canal owners. This is because when the planter of the trees is unknown and the owner of the saplings is unknown, the land is declared *Thakam* (disputed/shared). This is in *Fatawa Kubra*. It is in *Fatawa Abu al-Layth* that if a tree is in one person's land and its roots grow into another's land, if the owner of the second land grew it by watering it, then what has grown belongs to him. If it grew on its own, it belongs to the owner of the tree, provided the second landowner confirms that it sprouted from the root of his tree. If he denies it, then the landowner's word is accepted. This is in *Fatawa Qazi Khan*.

If the wind blew a seed (*Guthli*) belonging to one person into another's vineyard and a tree grew from it there, it belongs to the owner of the vineyard because a seed has no value. Similarly, if someone's walnut fell into another's vineyard and grew there, the tree belongs to the vineyard owner because the seed grew after the pulp (kernel) was destroyed. Thus, this case and the first case are identical. This is in *Fatawa Kubra*. If after fruits appear in a date orchard, the land and trees are all taken by legal claim (*Istihqaq*), then all of them belong to the claimant, and the *Amil* will take his *Ajr al-Mithl* from the person who gave him the orchard for the transaction. If no fruits appeared, the *Amil* will receive nothing. This is quoted in *Tatar Khaniya* from *Atabiyya*.

The roots of one person's tree went into another's property and saplings grew there. Then, the owner of the tree gifted (*Hiba*) these saplings to someone other than the landowner. If these saplings are such that they would dry up if the original tree were cut, the gift is not valid. If they would not dry up, the gift is valid. This is in *Fatawa Kubra*. If an *Amil* planted saplings in a landowner's vineyard within the contract period, and then the period expired, it will be seen: if he planted them for the landowner, the trees belong to the landowner. This is because the opinions have no fixed quantity. The statement "the gift will not be valid" should be the opinion of the Imam [Abu Hanifa], and according to the *Sahibayn* (Abu Yusuf and Muhammad), it would be permissible. 1. This issue previously appeared under the name of 'Kishtkar' (farmer/cultivator), and there too 'Amil' was intended; keep this in mind.

जिस दिन बंटवारा हुआ है, उस दिन 'आमिल' (कार्यकर्ता/मज़दूर) के'अज्र अल-मिस्ल' (प्रचलित मज़दूरी) का ध्यान रखते हुए उसे उसका हिस्सा दिया जाएगा। फिर जितना उसके पूरे हिस्से तक शेष रह गया है, वह मृतक की एक-तिहाई (तिहाई जायदाद) में से आमिल को वसीयत के रूप में दिया जाएगा। लेकिन अगर उक्त आमिल वारिस (उत्तराधिकारी) हो, तो उसे वसीयत में कुछ नहीं मिलेगा। और यदि बीमार व्यक्ति (मरने वाले) पर इतना कर्ज हो कि उसकी पूरी संपत्ति को घेर ले, तो यदि सूर्योदय के समय खजूर के आधे 'कुफ़रा' (खजूर का खोल) की कीमत उसके'अज्र अल-मिस्ल' के बराबर हो, तो आमिल को कर्जदाताओं के साथ सभी फलों के आधे हिस्से में भागीदार बनाया जाएगा। और अगर आधे कुफ़रा की कीमत उसके अज्र अल-मिस्ल से अधिक हो, तो उसे कर्जदाताओं के साथ उसके अज्र अल-मिस्ल की मात्रा तक शरीक किया जाएगा।

अगर किसी स्वस्थ व्यक्ति ने किसी बीमार व्यक्ति को अपना खजूर का बाग इस शर्त पर 'बटाई' (फसल साझा करना) पर दिया कि आमिल को उपज के सौ हिस्सों में से एक हिस्सा मिलेगा, फिर बीमार ने अपने मज़दूरों और सहायकों के साथ उक्त बाग में काम किया, सिंचाई की और उसे नरम किया यहाँ तक कि फल पैदा हो गए, फिर आमिल बीमार मर गया और उसने इस उपज के अलावा कुछ और माल नहीं छोड़ा, जबकि उस पर कर्ज है। बाग का मालिक उसके वारिसों में से है और आमिल के काम का अज्र अल-मिस्ल उसके हक से ज़्यादा है, तो उसे केवल उतना ही मिल सकता है जितना उसके लिए शर्त रखी गई थी, क्योंकि इस स्थिति में बीमार का अधिकार ऐसी चीज़ में है जिससे वारिसों और कर्जदाताओं का कोई अधिकार संबंधित नहीं है, यानी 'मुनाफेए-बदन' (शारीरिक श्रम का लाभ)। यह 'मबसूत' में दर्ज है।

एक समुदाय की साझा नहर के किनारे कुछ पेड़ लगे हैं और यह नहर एक बंद गली (कूचा-ए-गैर नाफ़िज़ा) में बहती है। कुछ पेड़ उस मोहल्ले के बीच के मैदान में लगे हैं। फिर उस गली के कुछ लोगों ने दावा किया कि इन पेड़ों को लगाने वाला फलां व्यक्ति है और मैं उसका वारिस हूँ। मोहल्ले के लोगों ने इससे इनकार किया, तो दावा करने वाले से गवाह माँगे जाएंगे। यदि उसके पास गवाह न हों, तो जितने पेड़ नहर की सीमा (हरीम) से बाहर लगे हैं, वे सभी गली के लोगों के बीच साझा होंगे। और जो नहर की सीमा पर स्थित हैं, वे सभी नहर के मालिकों के बीच साझा होंगे। क्योंकि जब पेड़ लगाने वाला ज्ञात न हो और न ही पौधों का मालिक पता हो, तो यह ज़मीन 'ठकम' (साझा/विवादित) करार दी जाएगी। यह 'फ़तावा कुबरा' में है। 'फ़तावा अबू लैथ' में है कि एक पेड़ एक व्यक्ति की ज़मीन में

है, उसकी कुछ जड़ें दूसरे की ज़मीन में जाकर उगीं। यदि दूसरी ज़मीन वाले ने पानी देकर उसे उगाया है, तो वह उसी का होगा। और अगर वह खुद उगा है, तो वह पेड़ के मालिक का होगा, बशर्ते कि दूसरा ज़मीन वाला इस बात की पुष्टि करे कि यह उसके पेड़ की जड़ से फूटा है। और अगर उसने इसे झुठला दिया, तो उसी (ज़मीन मालिक) की बात मानी जाएगी। यह 'फ़तावा काज़ी खान' में है।

एक व्यक्ति की गुठली को हवा दूसरे के अंगूर के बाग में उड़ा ले गई और वहाँ उससे पेड़ उग आया, तो वह बाग के मालिक का होगा क्योंकि गुठली का कोई मूल्य नहीं होता। इसी तरह अगर किसी का अखरोट दूसरे के अंगूर के बाग में गिर गया और वहाँ उग आया, तो यह पेड़ बाग के मालिक का होगा क्योंकि अखरोट का गूदा (गिरी) नष्ट हो जाने के बाद गुठली से यह पेड़ उगा है। अतः यह मामला और पहला मामला दोनों एक समान हैं। यह 'फ़तावा कुबरा' में है। अगर खजूर के बाग में फल निकलने के बाद ज़मीन और पेड़ सब हकदारी (इस्तेहक़ाक़) में ले लिए गए, तो ये सब हकदार के होंगे और आमिल उस व्यक्ति से, जिसने उसे बाग काम पर दिया था, अपना 'अज्र अल-मिस्ल' ले लेगा। और अगर कोई फल नहीं निकला हो, तो आमिल को कुछ नहीं मिलेगा। यह 'तातारी खानिया' में 'अताबिया' से उद्धृत है।

एक व्यक्ति के पेड़ की जड़ें दूसरे की मिल्कियत (ज़मीन) में चली गईं और वहाँ पौधे उग आए। फिर पेड़ के मालिक ने इन पौधों को ज़मीन के मालिक के अलावा किसी और को दान (हिबा) कर दिया। यदि ये पौधे ऐसे हैं कि मुख्य पेड़ कट जाने पर वे सूख जाएंगे, तो दान मान्य नहीं होगा। और अगर वे नहीं सूखेंगे, तो दान मान्य होगा। यह 'फ़तावा कुबरा' में है। अगर आमिल ने अनुबंध की अवधि के भीतर ज़मींदार के अंगूर के बाग में पौधे लगाए, फिर अवधि समाप्त हो गई, तो देखा जाएगा कि यदि उसने ज़मींदार के लिए लगाए हैं, तो पेड़ ज़मींदार के होंगे। इस बारे में राय है क्योंकि इसकी कोई निश्चित मात्रा नहीं है। "हिबा (दान) मान्य नहीं होगा" यह इमाम का कथन होना चाहिए, और 'साहबैन' (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार यह जायज़ होगा। १. यह मसला पहले 'काश्तकार' (किसान) के नाम से बीत चुका है और वहाँ भी आमिल ही मुराद है, इसे याद रखें।

فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ۸ [۳۶۸] کتاب المعاملة جس روز تقسیم واقع ہوئی ہے اس روز عامل کے اجر المثل کی طرف لحاظ کر کے اجر المثل کے بجز اس کے دیا جائے گا پھر جس قدر اس کے پورے حصہ تک رہ گیا ہے وہ میت کی تہائی میں سے عامل کو بطور وصیت دیا جائے گا لیکن اگر عامل مذکور وارث ہو تو اس کو وصیت میں کچھ نہ ملے گا اور اگر مریض پر اس قدر قرض ہو کہ اس کے تمام مال کو محیط ہو پس اگر نصف کفرلے کی قیمت وقتِ طلوع کے اس کے اجر المثل کے برابر ہو تو قرض خواہوں کے ساتھ عامل تمام پھلوں کے نصف کے ساتھ شریک کیا جائے گا اور اگر نصف کفرلے کی قیمت اس کے اجر المثل سے زائد ہو تو قرض خواہوں کے ساتھ بمقدار اپنے اجر المثل کے شریک کیا جائے گا اور اگر صحیح آدمی نے مریض کو اپنا باغ خرما اس شرط سے بٹائی پر دیا کہ عامل کو پیداوار کے سو حصوں میں سے ایک حصہ ملے گا پس مریض نے اپنے مزدوروں و مدد گاروں سے باغ مذکور میں کام کیا اور سینچا اور نرمادی دی یہاں تک کہ پھل پیدا ہوئے پھر عامل مریض مر گیا اور سوائے اس حاصلات کے کچھ مال نہ چھوڑا حالانکہ اس پر قرض ہے۔ مالکِ باغ اس کے وارثوں میں سے ہے اور عامل مذکور کے کام کا اجر المثل اس کے حق سے زائد ہے تو اس کو فقط اس قدر مل سکتا ہے جس قدر اس کے واسطے مشروط ہے کیونکہ مریض کا تصرف اس صورت میں ایسی چیز میں ہے جس سے وارثوں کا اور قرض خواہوں کا کچھ حق متعلق نہیں ہے یعنی منافعِ بدن یہ مبسوط میں ہے۔ ایک قوم کی مشترک نہر کے کنارے کچھ درخت لگے ہیں اور یہ نہر ایک کوچہ غیر نافذہ میں جاری ہے اور بعض درخت اس محلہ کے درمیانی میدان میں لگے ہیں پھر اس کوچے کے آدمیوں میں سے بعض نے دعویٰ کیا کہ ان درختوں کا لگانے والا فلاں شخص ہے اور میں اس کا وارث موجود ہوں اور اہلِ محلہ مذکور نے اس سے انکار کیا تو مدعی سے اس کے دعویٰ کے گواہ طلب کیے جائیں گے پس

اگر اس کے پاس گواہ نہ ہوں تو جس قدر درخت اس نہر کے حریم سے باہر لگے ہوں وہ سب اہل کوچہ کے درمیان مشترک ہوں گے اور جس قدر حریمِ نہر پر واقع ہوں تو وہ سب نہر والوں میں مشترک ہوں گے کیونکہ جب درخت لگانے والا معلوم نہ ہو اور نہ پودوں کا مالک معلوم ہوا تو یہ زمین ٹھکم قرار دی جائے گی یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے فتاویٰ ابو اللیث میں ہے کہ ایک درخت ایک شخص کی زمین میں ہے اس کی بعض جڑیں جا کر دوسرے کی زمین میں اُگیں پس اگر دوسری زمین والے نے پانی دے کر اگایا ہو تو اگا یا ہوا اسی کا ہوگا اور اگر خود اگا یا ہو تو درخت کے مالک کا ہوگا بشرطیکہ دوسرا زمین والا اس امر کی تصدیق کرے کہ یہ اس کے درخت کی جڑ پھوٹی ہے اور اگر اس نے تکذیب کی تو قول اسی کا قبول ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص کی گٹھلیکو ہوا دوسرے کے باغ انگور میں اڑا لے گئی اور وہاں اس سے درخت اُگا تو مالک باغ کا ہو گا اس واسطے کہ گٹھلی کی کچھ قیمت نہیں ہے اس طرح اگر کسی کا اخروٹ دوسرے کے باغ انگور میں جا پڑا اور وہاں اگا تو یہ درخت مالک باغ کا ہوگا اس واسطے کہ گودا ضائع ہو جانے کے بعد گٹھلی سے یہ درخت اگا ہے پس یہ صورت اور صورت اوّل دونوں یکساں ہیں یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ اگر باغِ خرما میں پھل برآمد ہونے کے بعد زمین و درخت سب استحقاق میں لے لیے گئے تو یہ سب صاحبِ استحقاق کے ہوں گے اور عامل اس شخص سے جس نے اس کو معاملہ پر باغِ مذکور دیا تھا اپنا اجر المثل لے لے گا اور اگر کچھ پھل برآمد نہ ہوئے ہوں تو عامل کو کچھ نہ ملے گا یہ تاتار خانیہ میں عتابیہ سے منقول ہے۔ ایک شخص کے درخت کی دوسرے کی ملک میں جا کر جڑیں پھوٹیں اور پودے پیدا ہوئے پھر مالکِ درخت نے یہ پودے کسی شخص غیر کے سوائے اس زمین کے مالک کے ہبہ کر دیے پس اگر یہ پودے ایسے ہوں کہ درخت اصل قطع کیے جانے پر خشک ہو جائیں تو ہبہ جائز نہ ہوگا اور اگر خشک نہ ہوں تو ہبہ جائز ہو گا یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ اگر عامل نے مدت معاملہ کے اندر زمین دار کے باغ انگور میں پودے

لگائے پھر مدتِ معاملہ گذر گئی تو دیکھا جائے گا کہ اگر اس نے زمین دار کے واسطے لگائے ہیں تو درخت زمین دار کے ہوں گے اس واسطے اقوال اس لیے کہ کوئی مقدار نہیں ہے۔ قولہ ہبہ جائز نہ ہوگا یہ امام کا قول ہونا چاہیے اور صاحبین کے نزدیک جواز ہو گا۔ ۱۲ یہ مسئلہ سابق میں بنام کاشتکار گزرا اور مراد وہاں بھی عامل ہے فاحفظ

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 369 | Kitab-ul-Mu'amala (Book of Transactions)**

...and the agent (Aamil) will be considered a volunteer. If the landowner ordered him to purchase saplings for him and plant them in his garden, these trees will belong to the landowner, but it will be mandatory for the landowner to reimburse the agent for the amount of Dirhams spent on the purchase. If he planted them for himself with the landowner's permission, the trees will belong to him, but the landowner can order him to uproot them. This is mentioned in *Al-Tatar Khaniyah*. A person who held a vineyard on a crop-sharing basis sold mulberry leaves to someone without obtaining permission from the vineyard owner. It will be seen that if the leaves were still present and the owner subsequently permitted the sale, the price (Thaman) would go to him. If the buyer destroyed the leaves, then regardless of whether the owner gave permission or not, he [the agent] would receive nothing of the price. However, he [the owner] has the option to seek indemnity (Tawan) from either the agent or the buyer; this is in *Al-Dhakhirah*. A person gave trees on crop-sharing but the trees bore no fruit at all, then the owner sold these trees; the sale will be valid and the [crop-sharing] agreement will become void because the agent had taken them on lease in exchange for the produce, and since nothing was produced, the agent's right did not accrue. Thus, the sale is valid. If he protected and watered the trees, he will receive nothing because he did so for his own benefit and his right was linked to the fruits, which were not produced; this is in *Al-Dhakhirah*.

If a person was appointed as an agent (Wakeel) to acquire a certain date palm grove on a transaction basis (Mu'amala), and the agent took it on a condition where people normally bear loss (Khasara) [due to estimation errors], then this transaction will be valid in favor of the principal (Muwakkil) according to the condition, and the tree owner himself will be responsible for collecting his share. If the agent stipulated such a small share for the worker that people do not usually tolerate such a loss in price estimation, it will not be binding on the worker, but he may accept it if he wishes. Then, if he worked, whether he knew his share or not, he would receive the share that was stipulated for him; this is in *Al-Mabsut*. If a person gave his date grove to another and appointed him as an agent to give it on crop-sharing for the year, and the agent gave it at such a loss that people do not usually incur in estimation, and the worker performed the work, then the entire yield will belong to the tree owner, and the agent will be liable to pay the worker a fair wage (Ajr-ul-Mithl). In sharecropping (Muzara'a), if this occurs, the entire produce will be shared between the farmer and the agent according to the stipulated condition; this is in *Al-Tatar*

*Khaniyah*. A person gave his trees to another on the condition that he would maintain them, tie those needing tying, and prune (Taqzeeb) those needing pruning, but the worker delayed tying the trees until they were damaged by frost—whereas they were trees that would not have been frost-damaged had they been tied—the said worker will be liable for the extent of damage caused by the frost; this is in *Fatawa Kubra*. If someone appointed another as an agent regarding a date grove or trees, and if he is an agent on behalf of the worker, then according to unanimous reports, he is responsible for collecting the worker's share. If he is an agent on behalf of the tree owner, then according to the report in *Kitab-ul-Mu'amala*, the agent does not have the authority to collect the garden owner's share, whereas according to reports in *Kitab-ul-Wakala*, he does; this is written in *Al-Dhakhirah*.

**A problem mentioned in 'Kitab-al-Asl' from Imam Muhammad (RA)** ☆

If an agent planted date palms, grapes, or other types of trees in the land with the permission of the landowner, then when they grew large...

1. He took it at such a loss that in estimating the price, one appraiser estimates this much and another differs; thus, the loss is the difference, but only to the extent that the first appraiser had passed it. 2. *Taqzeeb*: To prune and beautify.

...और कार्यकर्ता (आमिल) स्वेच्छाचारी (स्वयंसेवक) होगा और यदि ज़मींदार ने उसे आदेश दिया हो कि मेरे लिए पौधे खरीदकर मेरे बाग में लगा दो, तो भी ये पेड़ ज़मींदार के ही होंगे, लेकिन ज़मींदार पर यह अनिवार्य होगा कि उसने जितने दरहमों में उन्हें खरीदा है, वह कार्यकर्ता को दे दे। और यदि उसने ज़मींदार की अनुमति से अपने लिए पेड़ लगाए हों, तो पेड़ उसके होंगे, लेकिन ज़मींदार उसे उन्हें उखाड़ने का आदेश दे सकता है। यह 'तातार खानिया' में वर्णित है। जिस व्यक्ति के पास अंगूर का बाग बटाई (हिस्सेदारी) पर था, उसने शहतूत के पत्ते किसी को बेच दिए, जबकि बाग के मालिक से अनुमति नहीं ली थी। यह देखा जाएगा कि यदि पत्ते अभी मौजूद थे और बाग के मालिक ने बिक्री की अनुमति दे दी, तो मूल्य (थमन) उसे मिलेगा। और यदि खरीदार ने उन पत्तों को नष्ट कर दिया, फिर मालिक ने अनुमति दी हो या न दी हो, तो उसे मूल्य में से कुछ नहीं मिलेगा। हाँ, उसे यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो कार्यकर्ता से हर्जाना ले या खरीदार से; यह 'अल-ज़खीरा' में है। एक व्यक्ति ने पेड़ बटाई पर दिए लेकिन पेड़ों में बिल्कुल फल नहीं आए, फिर मालिक ने ये पेड़ बेच दिए, तो बिक्री वैध हो जाएगी और अनुबंध रद्द हो जाएगा क्योंकि कार्यकर्ता ने उन्हें उपज के बदले किराए पर लिया था, और जब कुछ पैदा ही नहीं हुआ, तो कार्यकर्ता का अधिकार उससे संबंधित नहीं हुआ। अतः बिक्री सही हो गई। और यदि उसने पेड़ों की रक्षा की और उन्हें सींचा है, तो उसे कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि उसने यह अपने लिए किया था और उसका अधिकार फलों से संबंधित था और फल पैदा नहीं हुए; यह 'अल-ज़खीरा' में है।

यदि किसी व्यक्ति को प्रतिनिधि (वकील) नियुक्त किया गया कि मेरे लिए अमुक खजूर का बाग अनुबंध (मुआमला) पर लो, और प्रतिनिधि ने ऐसी शर्त पर लिया जिसमें लोग घाटा (खसारा) सहते हैं [मूल्यांकन की त्रुटि के कारण], तो यह अनुबंध शर्त के अनुसार मुवक्किल (मुख्य पक्ष) के हक में जायज़ होगा और पेड़ों का मालिक ही अपना हिस्सा वसूल करने का उत्तरदायी होगा। और यदि प्रतिनिधि ने कार्यकर्ता के हक में इतना कम हिस्सा तय किया जितना लोग कीमत के अंदाज़े में घाटा बर्दाश्त नहीं करते, तो यह कार्यकर्ता पर अनिवार्य नहीं होगा, लेकिन यदि वह चाहे तो स्वीकार कर ले। फिर यदि उसने काम किया, चाहे वह अपना हिस्सा जानता हो या नहीं, उसे वही हिस्सा मिलेगा जो उसके लिए तय किया गया था; यह 'अल-मबस्तूत' में है। यदि एक व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग दूसरे को देकर प्रतिनिधि नियुक्त किया कि उसे इस साल के लिए बटाई पर दे दे, और प्रतिनिधि ने इतने घाटे पर दिया जितना लोग कीमत के अंदाज़े में नहीं उठाते, और कार्यकर्ता ने उसमें काम

किया, तो पेड़ों की पूरी पैदावार मालिक की होगी और कार्यकर्ता के लिए प्रतिनिधि पर उसके काम का उचित पारिश्रमिक (अज्र-उल-मिस्ल) अनिवार्य होगा। खेती (मज़ारा'अत) में यदि ऐसा हो, तो पूरी उपज किसान और प्रतिनिधि के बीच शर्त के अनुसार साझा होगी; यह 'तातार खानिया' में है। एक व्यक्ति ने अपने पेड़ दूसरे को इस शर्त पर दिए कि वह उनकी देखभाल करेगा और जिन्हें बांधने की आवश्यकता है उन्हें बांधेगा और जिनकी छंटाई (तक्ज़ीब) की आवश्यकता है उनकी छंटाई करेगा, फिर कार्यकर्ता ने पेड़ों को बांधने में देरी की यहाँ तक कि उन्हें पाला (ठंड) मार गया, जबकि ये पेड़ ऐसे थे कि यदि बांधे जाते तो पाला न मारता, तो पाले से जितना नुकसान हुआ है उसका ज़िम्मेदार उक्त कार्यकर्ता होगा; यह 'फ़तावा कुबरा' में है। यदि किसी ने दूसरे को खजूर के बाग या पेड़ों के मामले में प्रतिनिधि नियुक्त किया, तो यदि वह कार्यकर्ता की ओर से प्रतिनिधि है, तो सर्वसम्मत वृत्तांतों के अनुसार कार्यकर्ता का हिस्सा वसूल करने का वही उत्तरदायी होगा। और यदि वह पेड़ों के मालिक की ओर से प्रतिनिधि है, तो 'किताब-उल-मुआमला' के वृत्तांत के अनुसार प्रतिनिधि को बाग के मालिक का हिस्सा वसूल करने का अधिकार नहीं है, जबकि 'किताब-उल-वकाला' के वृत्तांतों के अनुसार अधिकार है; यह 'अल-ज़खीरा' में लिखा है।

**इमाम मुहम्मद (रह.) से 'किताब-अल-अस्ल' में वर्णित एक समस्या** ☆

यदि कार्यकर्ता ने ज़मीन में ज़मीन देने वाले की अनुमति से खजूर या अंगूर या अन्य प्रकार के पेड़ लगाए, फिर जब वे बड़े हो गए...

1. इतने घाटे पर लिया कि मूल्य का अनुमान लगाने में एक पारखी इतना अनुमान लगाता है और दूसरा उसके विपरीत, अतः अंतर के बराबर घाटा है लेकिन इतना ही कि पहले अनुमान लगाने वाले ने उसे छोड़ दिया था। २. तक्ज़ीब: काट-छाँट कर सजाना।

---

گے اور عامل متبرع ہوگا اور اگر زمین دار نے اس کو حکم دیا ہو کہ پودے میرے واسطے خرید کر میرے باغ میں لگا دے تو بھی یہ درخت زمین دار کے ہوں گے مگر زمین دار پر واجب ہوگا کہ جتنے درہموں کو اس نے خریدے ہیں وہ عامل کو دے دے اور اگر اس نے زمین دار کی اجازت سے اپنے واسطے لگائے ہوں تو درخت اس کے ہوں گے مگر زمین دار اس کو اکھاڑ لینے کے واسطے حکم دے سکتا ہے یہ تاتار خانیہ میں ہے۔ ایسے شخص نے جس کے پاس باغ انگور بٹائی پر تھا شہتوت کے پتے کسی کے ہاتھ فروخت کر دیے حالانکہ مالک باغ سے اجازت نہ لی تو دیکھا جائے گا کہ اگر پتے باقی موجود ہونے کی حالت میں مالک باغ نے بیچ کی اجازت دے دی تو ثمن اس کو ملے گا اور اگر مشتری نے یہ پتے تلف کر دیے پھر مالک نے اجازت دی یا نہ دی تو اس کو ثمن میں کچھ نہ ملے گا ہاں اس کو اختیار ہوگا چاہے عامل سے تاوان لے یا مشتری سے یہ ذخیرہ میں ہے۔ ایک شخص نے درخت بٹائی پر دیے مگر درختوں میں بالکل پھل نہ آیا پھر مالک نے یہ درخت فروخت کر دیے تو بیع نافذ ہو جائے گی اور معاملہ فاسد ہو جائے گا کیونکہ عامل نے ان کو بعوض پیداوار کے اجارہ پر لیا تھا اور جب اس میں کچھ پیدا نہ ہوا تو عامل کا حق اس سے متعلق نہ ہوا پس بیع صحیح ہو گئی اور اگر اس نے درختوں کی حفاظت کی اور سینچا ہے تو اس کو کچھ نہ ملے گا اس واسطے کہ اس نے اپنے واسطے ایسا کیا تھا اور اس کا حق پھلوں سے متعلق تھا اور پھل پیدا نہ ہوئے یہ ذخیرہ میں ہے۔

اگر ایک شخص کو وکیل کیا کہ میرے واسطے فلاں باغ خرما معاملہ پر لے پس وکیل نے ایسی شرط سے لیا کہ جس کے اندازہ ۱ میں لوگ خسارہ برداشت کرتے ہیں تو یہ معاملہ موافق شرط کے مؤکل کے حق میں جائز ہو گا اور مالک درخت ہی اپنے حصہ کے وصول کرنے کا متولی ہو

گا اور اگر وکیل نے عامل کے حق میں اس قدر کم حصہ شرط کیا کہ جس قدر لوگ انداز قیمت میں خسارہ برداشت نہیں کرتے ہیں تو عامل کے ذمہ لازم نہ ہو گا لیکن اگر چاہے تو قبول کر لے پھر اگر اس نے کام کیا خواہ اپنا حصہ جانتا ہو یا نہ جانتا ہو تو اس کو وہی حصہ ملے گا جو اس کے واسطے شرط کیا گیا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص نے اپنا باغ خرما دوسرے کو دے کر وکیل کیا کہ اس کو اس سال کے واسطے بٹائی پر دے دے پس وکیل نے اس قدر خسارہ پر دیا کہ لوگ انداز قیمت میں اتنا خسارہ نہیں اٹھاتے ہیں اور عامل نے اس میں کام کیا تو پوری حاصلات درختوں کے مالک کی ہو گی اور عامل کے واسطے وکیل پر اپنے کام کا اجر المثل واجب ہوگا۔

مزارعت میں اگر ایسا واقع ہو تو پوری پیداوار کاشتکار و وکیل کے درمیان موافق شرط کے مشترک ہو گی یہ تاتار خانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے اپنے درخت دوسرے کو اس شرط سے دیے کہ ان کی پرداخت کرے اور جن میں باندھنے کی ضرورت ہو ان کو باندھے اور جن میں تقذیب ۲ کی ضرورت ہو ان کی تقذیب کرے پھر عامل نے درختوں کے باندھنے میں تاخیر کی یہاں تک کہ ان کو پالا مار گیا حالانکہ یہ درخت ایسے تھے کہ اگر باندھے نہ جائیں تو ان کو پالا مار جائے تو پالے سے جس قدر نقصان ہوا ہے اس کا عامل مذکور ضامن ہوگا یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ اگر کسی شخص نے دوسرے کو باغ خرما یا درختوں کے معاملہ میں وکیل کیا پس اگر عامل کی طرف سے وکیل ہو تو با تفاق روایات حصہ عامل وصول کرنے کا وہی متولی ہو گا اور اگر درختوں کے مالک کی طرف سے وکیل ہو تو کتاب المعاملہ کی روایت کے موافق وکیل کو مالک باغ کے حصہ وصول کرنے کا اختیار نہیں ہے اور کتاب الوکالہ کی روایات کے موافق اختیار ہے یہ ذخیرہ میں لکھا ہے۔

**امام محمدؒ سے کتاب الاصل میں مذکور ایک مسئلہ ☆**

اگر عامل نے زمین میں زمین دینے والے کی اجازت سے درخت خرما یا انگور یا اور قسم کے درخت لگائے پھر جب وہ بڑے ہو

۱ اس قدر خسارہ پر لیا کہ قیمت اندازہ کرنے میں کوئی آنکنے والا اتنے کو اندازہ کرتا ہے اور کوئی اس سے خلاف پس بقدر تفاوت خسارہ ہے مگر ایسا ہی کہ پہلا اندازہ والا اس کو اٹھا گیا تھا۔

۲ تقذیب چھانٹ کر آراستہ کرنا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 370 | Kitab al-Muamalah (The Book of Transactions)**

If fruit is produced and another person establishes their legal right (of ownership), he shall take his land and uproot the trees of dates, grapes, etc., that were planted therein. When both parties uproot these trees, they shall unanimously claim indemnity for the damage caused to the land due to uprooting. The one who planted the trees shall also pay indemnity for the plantation (1). This is the opinion of Imam al-A'zam (Abu Hanifa) and the later opinion of Imam Abu Yusuf. Whatever indemnity the agent (worker) paid for uprooting and planting the trees, he shall recover it from the person who gave him the land. According to the first opinion of Imam Abu Yusuf and the opinion of Imam Muhammad, the rightful claimant has the choice to collect all such indemnity from the person who gave the land to the agent. According to Imam Muhammad, the usurper (Ghasib) is liable like the one who destroys. However, according to Imam al-A'zam and Imam Abu Yusuf (2), the rightful claimant may take this indemnity from the one who destroyed (the land's value) rather than the usurper. Then, the one who planted the trees (the destroyer) shall recover that indemnity money from the person who gave him the land (the usurper), because the usurper deceived the planter in a mutual contract of exchange. This is mentioned in *Al-Mabsut*. If a person gives his date orchard on a crop-sharing basis of half and does not specify that the agent may act according to his own discretion, and then the agent gives it to another agent on sharecropping who completes the work, then whatever yield is obtained shall belong to the orchard owner. The first agent shall be liable to pay the second agent a fair wage (Ajr al-Mithl), regardless of the amount, and the first agent shall receive no wages. It should be clear that the statement "fair wage regardless of the amount" is the opinion of Imam Muhammad. According to the opinion of Imam Abu Yusuf and Imam al-A'zam, the fair wage shall not exceed the specified amount (3) agreed upon, as stated in *Al-Muhit*.

If all the fruits on the trees are ruined while in the possession of the second agent without any action of his contributing to it, then neither of them shall be liable for indemnity. If they are ruined by the action of the second agent in a manner that contradicted the first agent's instructions, then the owner's indemnity shall be due from the second agent, not the first. If they are ruined by the second agent's action without him violating the first agent's instructions, the orchard owner has the option to seek indemnity from whichever of the two he chooses. If he chooses to take indemnity from the first agent, the first cannot recover this from the second agent. If

he takes it from the second, the second shall recover it from the first agent. This applies if the owner did not tell the first agent to act according to his own discretion. If he did permit discretion and stipulated half the yield for him, and the first agent gave it to a second for one-third yield, this is permissible. In this case, half the fruit goes to the owner and a fourth share to the first agent (4). Imam Muhammad mentioned in *Kitab al-Asl* that if the owner did not tell the agent to use his discretion and stipulated a known share (5), and the first agent stipulated the same for the second, both contracts are void (Fasid), and the first agent shall not be liable for indemnity, as stated in *Al-Bada'i*.

---

(1) Planting of trees. (2) i.e., according to the final opinion. (3) The stipulated condition. (4) And one-third for the second agent. (5) i.e., a known share like one-third or one-fourth.

यदि वृक्षों पर फल आ जाएँ और किसी दूसरे व्यक्ति ने (उस ज़मीन पर) अपना अधिकार सिद्ध कर दिया, तो वह अपनी ज़मीन ले लेगा और खजूर, अंगूर आदि के पेड़ जो उसमें लगाए गए हैं, उन्हें उखाड़ देगा। जब दोनों उन पेड़ों को उखाड़ें, तो दोनों की सर्वसम्मति (इत्तेफ़ाक़) से वह नुकसान जो उखाड़ने के कारण ज़मीन में पैदा हुआ है, उसका हर्जाना (तावान) लिया जाएगा। पेड़ लगाने वाला उसे रोपण का नुकसान (1) भी देगा। यह इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) रह. का और इमाम अबू यूसुफ़ रह. का अंतिम मत है। यदि काम करने वाले (आमिल) ने पेड़ उखाड़े और पेड़ लगाने का जो कुछ हर्जाना दिया है, वह उस व्यक्ति से वापस लेगा जिसने उसे ज़मीन दी थी। इमाम अबू यूसुफ़ रह. के पहले मत के अनुसार और यही इमाम मुहम्मद रह. का भी मत है कि अधिकार सिद्ध करने वाले को यह अधिकार है कि वह यह सारा हर्जाना उस व्यक्ति से ले जिसने आमिल को ज़मीन दी थी। इमाम मुहम्मद रह. के अनुसार, ज़बरदस्ती कब्ज़ा करने वाला (ग़ासिब) नष्ट करने वाले की तरह उत्तरदायी (ज़ामिन) है। इमाम-ए-आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ (2) के अनुसार, अधिकार सिद्ध करने वाला यह हर्जाना नष्ट करने वाले से ले सकता है, न कि ग़ासिब से। फिर जिसने पेड़ लगाए हैं, यानी नष्ट करने वाले ने, वह उस हर्जाने की राशि उस व्यक्ति से वापस लेगा जिसने उसे ज़मीन दी है, यानी ग़ासिब से, क्योंकि उसने पेड़ लगाने वाले को आपसी विनिमय अनुबंध (मुआविज़ा) में धोखा दिया है। यह 'मबसूत' में उल्लेखित है। यदि किसी व्यक्ति ने अपना खजूर का बाग़ आधे की हिस्सेदारी (बटाई) पर दिया और यह नहीं कहा कि वह (आमिल) अपनी राय के अनुसार कार्य करे, फिर पहले आमिल ने दूसरे आमिल को बटाई पर दे दिया और उसने काम पूरा किया, तो जो भी उपज प्राप्त होगी वह बाग़ के मालिक की होगी। दूसरे आमिल के लिए पहले आमिल पर उसके काम का उचित पारिश्रमिक (अज्र-उल-मिस्ल) चाहे वह कितना ही हो, अनिवार्य होगा, और पहले आमिल को कोई मज़दूरी नहीं मिलेगी। यह स्पष्ट रहे कि यह कहना कि उचित पारिश्रमिक चाहे जितना हो, इमाम मुहम्मद रह. का मत है। इमाम अबू यूसुफ़ रह. और इमाम-ए-आज़म रह. के अनुसार उचित पारिश्रमिक तयशुदा राशि (3) से अधिक नहीं होगा, जैसा कि 'अल-मुहीत' में है।

यदि दूसरे आमिल के पास पेड़ों पर लगे सभी फल बिना उसके किसी हस्तक्षेप या कार्य के खराब हो गए हों, तो दोनों में से किसी पर भी हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। यदि दूसरे आमिल के किसी ऐसे कार्य से फल खराब हुए हों जो पहले आमिल के आदेश के विरुद्ध था, तो बाग़ के मालिक के लिए हर्जाना दूसरे आमिल पर अनिवार्य होगा, न कि पहले पर। यदि दूसरे आमिल के कार्य से, जिसमें

उसने पहले आमिल के आदेश का उल्लंघन नहीं किया था, फल खराब हो गए, तो बाग़ के मालिक को अधिकार है कि वह दोनों में से जिससे चाहे हर्जाना ले। यदि उसने पहले आमिल से हर्जाना लेना पसंद किया, तो पहला आमिल यह राशि दूसरे से वापस नहीं माँग सकता। और यदि उसने दूसरे से हर्जाना लिया, तो वह (दूसरा) इसे पहले आमिल से वापस लेगा। यह सब उस स्थिति में है जब मालिक ने पहले आमिल से यह न कहा हो कि वह अपनी राय से काम करे। यदि उसने राय से काम करने को कहा हो और आधी उपज की शर्त रखी हो, और पहले ने दूसरे को एक-तिहाई उपज पर बाग़ दे दिया हो, तो यह जायज़ है। ऐसी स्थिति में आधी उपज मालिक की होगी और चौथा हिस्सा पहले आमिल (4) का होगा। इमाम मुहम्मद रह. ने 'किताब अल-अस्ल' में उल्लेख किया है कि यदि मालिक ने आमिल से यह न कहा हो कि वह अपनी राय से कार्य करे और उसके लिए कोई ज्ञात हिस्सा (5) तय कर दिया हो, और पहले आमिल ने दूसरे के लिए भी वैसी ही शर्त रखी हो, तो दोनों अनुबंध अवैध (फ़ासिद) हैं और पहले आमिल पर कोई हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा, जैसा कि 'अल-बदाइ' में है।

---

(1) रोपण (पेड़ जमाना)। (2) यानी अंतिम मत के अनुसार। (3) जो शर्त तय हुई है। (4) और एक-तिहाई दूसरे का। (5) यानी एक-तिहाई, एक-चौथाई आदि ज्ञात हिस्सा।

---

کر پھل لائے تو کسی دوسرے شخص نے اپنا استحقاق ثابت کیا تو وہ اپنی زمین لے لے گا اور درختوں خرما وانگور وغیرہ جو درخت اس میں لگائے گئے ہیں اکھاڑ دے گا اور جب دونوں ان درختوں کو اکھاڑیں تو دونوں سے بالاتفاق وہ نقصان جو اکھاڑنے سے زمین میں پیدا ہو گیا ہے تاوان لے گا اور درخت جمانے والا اس کو نقصان غرس (1) بھی دے گا یہ امام اعظمؒ کا اور آخر قول امام ابو یوسفؒ کا ہے اور عامل نے اکھاڑے اور درخت جمانے کا جو کچھ نقصان تاوان دیا ہے وہ اس شخص سے جس نے زمین اس کو دی تھی واپس لے گا اور اوّل قول امام ابو یوسفؒ کے موافق اور یہی قول امام محمدؒ کا ہے استحقاق ثابت کرنے والے کو اختیار ہے کہ یہ سب نقصان اس شخص سے لے جس نے عامل کو زمین دے دی تھی امام محمدؒ کے نزدیک غصب کرنے والا مثل تلف کرنے والے کے ضامن ہے اور امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ (2) کے نزدیک استحقاق ثابت کرنے والا یہ ضمان تلف کرنے والے سے لے سکتا ہے نہ غصب کرنے والے سے پھر جس نے درخت لگائے ہیں یعنی تلف کرنے والا وہ اس مال تاوان کو اس شخص سے جس نے اس کو زمین دی ہے یعنی غاصب سے واپس لے گا کیونکہ اس نے درخت جمانے والے کو باہمی عقد معاوضہ میں دھوکا دیا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ اگر ایک شخص کو اپنا باغ خرما آدھے کی بٹائی پر دیا اور یہ نہ کہا کہ اپنی رائے پر عمل کرے پھر عامل نے دوسرے عامل کو بٹائی پر دے دیا اور اس نے کام کو انجام دیا تو جو کچھ پیداوار حاصل ہو وہ مالک باغ کی ہوگی اور دوسرے عامل کے واسطے پہلے عامل پر اپنے کام کا اجر المثل چاہے جس قدر ہو واجب ہوگا اور پہلے عامل کو کچھ اجرت نہ ملے گی اور واضح ہو کہ یہ جو فرمایا کہ اجر المثل چاہے جس قدر ہو یہ امام محمدؒ کا قول ہے اور

امام ابو یوسفؒ و امام اعظمؒ کے قول میں یہ ہے کہ اجر المثل مقدار مسمّے (3) سے زیادہ نہ کیا جائے گا کذا فی المحیط۔

اگر دوسرے عامل کے پاس تمام پھل جو درختوں پر لگے تھے درختوں پر خراب ہو گئے ہوں اس کے کہ دوسرے عامل کے فعل کا اس میں کچھ دخل ہو تو دونوں میں سے کسی پر تاوان لازم نہ ہوگا اور اگر عامل ثانی کے فعل سے جس میں اس نے عامل اوّل کے حکم کے برخلاف کیا ہے خراب ہو گئے تو مالک کے واسطے اس کا تاوان دوسرے عامل پر واجب ہوگا نہ عامل اوّل پر اور اگر عامل ثانی کے فعل سے جس میں اس نے عامل اوّل کے حکم کے برخلاف نہیں کیا ہے خراب ہو گئے تو باغ کے مالک کو اختیار ہے کہ دونوں میں سے جس سے چاہے تاوان لے پس اگر اس نے عامل اوّل سے تاوان لینا پسند کیا تو اول یہ مال تاوان دوسرے عامل سے واپس نہیں لے سکتا ہے اور اگر اس نے دوسرے سے تاوان لیا تو وہ مال تاوان عامل اوّل سے واپس لے گا۔ یہ سب اس صورت میں ہے کہ مالک نے عامل اوّل نے سے یہ نہ کہا ہو کہ اس میں اپنی رائے سے عمل کرے اور اگر یہ کہا ہو کہ اس کے واسطے آدھی حاصلات شرط کر دی ہو اور اس نے دوسرے کو تہائی پیداوار پر دے دیا تو یہ جائز ہے اور جو کچھ پھل پیدا ہوں اس میں سے آدھے مالک باغ کے اور چوتھا حصہ عامل (4) اوّل کا ہو گا اور امام محمدؒ نے کتاب الاصل میں ذکر فرمایا کہ اگر مالک نے عامل سے یہ نہ کہا کہ اس میں اپنی رائے سے عمل کرے اور اس کے واسطے کچھ شے معلوم شرط (5) کر دی اور عامل اوّل نے دوسرے کے واسطے بھی یوں ہی شرط کی تو دونوں فاسد ہیں اور عامل اوّل پر تاوان لازم نہ ہو گا کذا فی البدائع۔

---

1۔ یہ مخالف سابق ہے کیونکہ غاصب ہے حالانکہ یہاں اس کو ضامن نہیں کیا فافہم اور اگر قولہ کچھ شے معلوم سے مراد حقیر معلومہ ہیں تو پہلے ہی سے فاسد ہے ہاں اگر کہا کہ اپنی رائے سے عمل کرے تو البتہ ضامن نہ ہوگا۔

(1) درخت جمانا۔ (2) یعنی بنابر قول آخر۔ (3) جو شرط ٹھہری ہے۔ (4) اور تہائی دوسرے کی۔

(5) یعنی تہائی و چوتھائی وغیرہ معلوم۔

---

## KITAB AL-ZABA'IH (The Book of Slaughters)

It consists of three chapters.

# किताब-उज़-ज़बाह (ज़ब्ह करने की किताब)

इसमें तीन अध्याय हैं।

## کتاب الذبائح

اس میں تین ابواب ہیں

...it is not permissible to make it Halal (lawful) through 'Aqr' (wounding). Similarly, if an animal falls into a well and its owner is unable to reach the place of slaughter (Dhabh) or the place of 'Nahr' (stabbing the neck, as for camels) with a knife, and it is killed through wounding, this is also considered slaughtered. It is mentioned in 'Al-Muntaqa' that if a camel attacks someone and that person kills it with the intention of making it Halal, then eating it is Halal, because when the person was unable to capture it, it attained the status of game (hunted prey). The conditions for 'Zakāt' (ritual slaughter) are of several types: some apply to both 'Zakāt Ikhtiyāri' (voluntary slaughter) and 'Zakāt Idtirāri' (compulsory/emergency slaughter), while others are specific to one and not the other. Among the conditions that apply to both is that the slaughterer must be sane (Aaqil); therefore, the slaughter of a person who is mentally unstable or a child who does not understand the process of slaughter shall not be consumed. If the child understands the process and is capable of performing it, the slaughtered meat is Halal. The same rule applies to an intoxicated person. Another condition is that the slaughterer must be a Muslim or a person of the Book (Kitabi, i.e., Jew or Christian). Thus, the slaughter of polytheists (Mushrikeen) and apostates (Murtadeen) shall not be consumed because the religion an apostate has converted to is not recognized. If the apostate is a discerning youth (a child nearing puberty), then according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, his slaughter is not to be eaten, but according to Imam Abu Yusuf, it is permissible. This is because, according to the first two, his apostasy is valid, whereas, according to Imam Abu Yusuf, it is not. The slaughter of the People of the Book is permissible whether they are from 'Ahl al-Harb' (people at war with Muslims) or not, and whether they are Christians of the Banu Taghlib tribe or others, because the Banu Taghlib are on the religion of the Arab Christians.

If a Kitabi leaves their religion for the religion of non-Kitabi disbelievers, their slaughter is not permissible. Conversely, if a non-Kitabi disbeliever leaves disbelief and joins the religion of the People of the Book, their slaughter becomes permissible. The principle is that the status and religion of the slaughterer at the time of slaughter are considered; anything prior to that is disregarded. It is among the principles of our companions (jurists) that if a person leaves one sect of disbelief for another similar sect of disbelief, they will be treated as if they were originally from that sect. A person born of one Kitabi parent and one non-Kitabi parent may have their slaughter consumed, whether the father is a Kitabi or the mother; this is the ruling according to

us. The slaughter of the 'Sabian' sect is permissible according to Imam Azam, but not according to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad. Furthermore, it is clear that the slaughter of the People of the Book is permissible when (a Muslim) is not present and hears nothing, or if present, only hears the name of Allah mentioned. Just as one holds a good opinion (Husn al-Zann) of a Muslim, if no words were heard, it should be assumed that only the name of Allah was mentioned. However, if they intended Jesus (Isa AS) by the word 'Allah', the scholars have stated that the slaughter is still permissible. But if they explicitly state, "In the name of Allah who is the third (of three)," i.e., referring to the Trinity, then the slaughter is Haram (forbidden). If only the name of Jesus is heard, or both the names of Allah and Jesus are mentioned, the slaughter is not permissible. Among our conditions is that the name of Allah must be mentioned during slaughter, whether it is a specific name or accompanied by an attribute, such as 'Allahu Akbar', 'Allahu Azam', 'Allahu Ajall', 'Allahu al-Rahman', 'Allahu al-Rahim', etc., or mentioned without an attribute, like 'Allah', 'Rahman', or 'Rahim'. The same rule applies to 'Tahlil' (La ilaha illallah), 'Tasbih' (Subhanallah), and 'Tahmid' (Alhamdulillah). It is irrelevant whether the person knows the customary 'Tasmiyah' (Bismillahir-Rahmanir-Rahim) or not, whether it is in Arabic, Persian, or any other language, and whether they can pronounce the Arabic words correctly or not. This is as narrated by Bishr from Imam Abu Yusuf.

1- A person, meaning even a discerning child.

...तो 'अक़्र' (घाव लगाकर मारना) से उसका हलाल करना जायज़ नहीं है। इसी तरह जो जानवर उनमें से कुएं में गिर पड़े और उसका मालिक उसे निकालने या उसके ज़बह करने की जगह या नह्र करने की जगह पर छुरी चलाने पर काबू न पाए, तो अक़्र से वह भी ज़बह हो जाएगा। यह 'मुन्तकी' में वर्णित है कि यदि एक ऊंट ने किसी व्यक्ति पर हमला किया और उस व्यक्ति ने हलाल करने की नियत से उसे मार डाला, तो उसका मांस खाना हलाल है, क्योंकि जब वह व्यक्ति उसे पकड़ने में असमर्थ था, तो वह शिकार के समान हो गया। 'ज़कात' (धार्मिक वध) की शर्तें कई प्रकार की हैं; कुछ शर्तें 'ज़काते इख्तियारी' (स्वैच्छिक वध) और 'ज़काते इज़्तिरारी' (अनिवार्य वध) दोनों को शामिल हैं, और कुछ केवल एक के लिए विशिष्ट हैं। जो शर्तें दोनों के लिए हैं, उनमें से एक यह है कि वध करने वाला बुद्धिमान (आक़िल) हो; इसलिए पागल या उस बच्चे का वध किया हुआ नहीं खाया जाएगा जो वध की प्रक्रिया को नहीं समझता। यदि बच्चा वध को समझता हो और उसे करने में सक्षम हो, तो उसका ज़बीहा (वध किया हुआ) खाया जाएगा। नशे में धुत व्यक्ति का भी यही नियम है। इनमें से एक शर्त यह भी है कि वध करने वाला मुसलमान या किताबी (यहूदी/ईसाई) हो। इसलिए मुशरिकों (बहुदेववादियों) और मुर्तदों (स्वधर्मत्यागियों) का ज़बीहा नहीं खाया जाएगा, क्योंकि मुर्तद जिस धर्म को अपना चुका है, उसे मान्यता नहीं दी गई है। यदि मुर्तद एक किशोर (मुराहिक) लड़का हो, तो इमाम आज़म और इमाम मोहम्मद के अनुसार उसका ज़बीहा नहीं खाया जाएगा, जबकि इमाम अबू यूसुफ के अनुसार खाया जाएगा। इसका आधार यह है कि दोनों (इमामों) के अनुसार उसका धर्मत्याग वैध है, जबकि इमाम अबू यूसुफ के अनुसार नहीं। अहले किताब (किताबी) का ज़बीहा खाया जाएगा, चाहे वे युद्धरत (अहले हर्ब) हों या नहीं, चाहे वे बनी तग़लिब के ईसाई हों या कोई और, क्योंकि बनी तग़लिब के ईसाई अरब ईसाइयों के धर्म पर हैं।

यदि कोई किताबी अपना धर्म छोड़कर किसी गैर-किताबी काफिर के धर्म में चला जाए, तो उसका ज़बीहा नहीं खाया जाएगा। और यदि कोई गैर-किताबी काफिर अपना कुफ्र छोड़कर किसी किताबी धर्म में आ जाए, तो उसका ज़बीहा खाया जाएगा। मूल सिद्धांत यह है कि वध करने वाले की स्थिति और धर्म उस समय देखा जाएगा जब वह वध कर रहा हो; इसके अलावा किसी और समय का विचार नहीं किया जाएगा। हमारे साथियों (इमामों) का सिद्धांत है कि यदि कोई व्यक्ति एक कुफ्र वाले धर्म को छोड़कर दूसरे कुफ्र वाले धर्म में शामिल हो जाता है जो उससे मिलता-जुलता है, तो उसे उसी धर्म का हिस्सा माना जाएगा। वह व्यक्ति जो किताबी और गैर-किताबी माता-पिता से पैदा हुआ हो, उसका

ज़बीहा खाया जाएगा, चाहे पिता किताबी हो या माता। यह नियम हमारे अनुसार है। 'साबिया' संप्रदाय का ज़बीहा इमाम आज़म के अनुसार खाया जाएगा, लेकिन इमाम अबू यूसुफ और इमाम मोहम्मद के अनुसार नहीं। यह स्पष्ट रहे कि अहले किताब का ज़बीहा तभी खाया जाएगा जब वध के समय वहां (कोई मुसलमान) उपस्थित न हो और उससे कुछ न सुना हो, या यदि उपस्थित हो तो उसने केवल अल्लाह का नाम लिया हो। जैसा कि एक मुसलमान के बारे में अच्छा गुमान (हुस्ने ज़न) रखा जाता है, वैसे ही यदि उसकी ज़बान से अल्लाह का नाम नहीं सुना गया, तो इसे अच्छे गुमान पर आधारित माना जाएगा कि उसने केवल अल्लाह का नाम लिया होगा। लेकिन यदि उसने अल्लाह के शब्द से मसीह (ईसा अलैहिस्सलाम) का अर्थ लिया हो, तो उलेमा ने कहा है कि उसका ज़बीहा खाया जाएगा। हालांकि, यदि उसने स्पष्ट रूप से कहा कि "बिस्मिल्लाह अल्लज़ी हुवा सालिस" (उस अल्लाह के नाम पर जो तीन में से एक है), तो उसका ज़बीहा हराम है। और यदि उसकी ज़बान से केवल मसीह का नाम सुना गया या उसने अल्लाह और मसीह दोनों का नाम लिया, तो उसका ज़बीहा नहीं खाया जाएगा। हमारे अनुसार एक शर्त यह भी है कि वध करते समय अल्लाह का नाम लिया जाए, चाहे कोई भी नाम हो या उसके साथ कोई विशेषण जोड़ा जाए, जैसे 'अल्लाहू अकबर', 'अल्लाहू आज़म', 'अल्लाहू अजल', 'अल्लाहुर्रहमान', 'अल्लाहुर्रहीम' आदि, या बिना किसी विशेषण के केवल 'अल्लाह', 'रहमान' या 'रहीम' कहे। यही नियम 'तहलील' (ला इलाहा इल्लल्लाह), 'तस्बीह' (सुब्हान अल्लाह) और 'तहमीद' (अल्हम्दुलिल्लाह) के लिए भी है। चाहे वह प्रसिद्ध तस्मिया 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' जानता हो या न जानता हो, और चाहे वह अरबी में हो या फ़ारसी या किसी अन्य भाषा में, और चाहे वह अरबी शब्दों का उच्चारण सही ढंग से कर सके या नहीं। बशर ने इमाम अबू यूसुफ से इसी प्रकार वर्णन किया है।

1- व्यक्ति यानी जो अभी भी एक बुद्धिमान बच्चा हो।

---

جائے تو عقر سے اس کا حلال کرنا روا نہیں ہے اس طرح جو جانور ان میں سے کنویں دیکھتے ہیں گر پڑے اور اس کا مالک اس کے نکالنے پر یا اس کے ذبح کرنے کی جگہ یا نحر کرنے کی جگہ پر چھری چلانے پر قابو نہ پائے تو عقر سے وہ بھی ذبح ہو جائے یہ منتقی میں مذکور ہے کہ اگر اونٹ نے کسی شخص پر حملہ کیا اور اس شخص نے حلال کرنے کی نیت سے اس کو قتل کر ڈالا تو اس کا کھانا حلال ہے کیونکہ جب وہ شخص اس کے پکڑنے پر قادر نہ ہوا تو وہ بمنزلہ صید کے ہو گیا۔ شرائط ذکوۃ چند انواع ہیں بعض تو ذکوۃ اختیاری و ذکوۃ اضطراری دونوں کو شامل ہیں اور بعض خاص ایک کے ساتھ مخصوص ہیں نہ دوسرے کے ساتھ پس جو شرائط دونوں کو شامل ہیں از انجملہ یہ ہے کہ ذبح کرنے والا عاقل ہو پس مجنون کا یا جو لڑکا ذبح کو نہیں سمجھتا ہے اس کا ذبیحہ نہ کھایا جائے گا اور اگر لڑکا کا ذبح کو سمجھتا ہو اور ذبح کرنے پر قادر ہو اس کا ذبیحہ کھایا جائے گا اور سکران یعنی جو شخص نشہ میں ہو اس کا بھی یہی حکم ہے از انجملہ یہ ہے کہ ذبح کرنے والا مسلمان ہو یا کتابی ہو پس مشرکوں کا ذبیحہ اور مرتدوں کا ذبیحہ نہ کھایا جائے گا کیونکہ مرتد جس دین کی طرف منتقل ہو گیا ہے اس کا مقر نہیں ہے اور اگر مرتد ایک طفل مراہق یعنی قریب یہ بلوغ ہو تو امام اعظم و امام محمد کے نزدیک اس کا ذبیحہ نہ کھایا جائے گا اور امام ابو یوسف کے نزدیک کھایا جائے گا بنا بریں کی طرفین کے نزدیک اس کی ردت صحیح ہے اور امام ابو یوسف کے نزدیک نہیں صحیح ہے اور اہل کتاب کا ذبیحہ کھایا جائے گا خواہ اہل حرب ہوں یا غیر ہوں خواہ نصارائے بنی تغلب ہوں یا غیر ہوں کیونکہ نصارائے بنی تغلب نصارائے عرب کے دین پر ہیں۔

اگر کوئی کتابی اپنا دین چھوڑ کر کسی غیر کتابی کافروں کے دین پر ہو گیا تو اس کا ذبیحہ نہ کھایا جائے گا اور اگر کوئی غیر کتابی کافر اپنا کفر چھوڑ کر کسی اہل کتاب کے دین میں آگیا تو اس کا ذبیحہ کھایا جائے گا اور اصل یہ ہے کہ ذبح کرنے والا کا حال و دین اس کے ذبح کرنے کے وقت کا دیکھا جائے گا اس کے ماسوا کا کچھ اعتبار نہیں ہے اور ہمارے اصحاب کے اصول میں سے ہے کہ جو شخص کفر کی ملتوں میں سے کسی ملت کو چھوڑ کر دوسری ملت کفر میں جو اس کے قریب قریب ہی داخل ہو گیا تو ایسا قرار دیا جائے گا کہ گویا دراصل وہ اسی ملت کے لوگوں میں سے ہے اور جو شخص کتابی وغیرہ کتابی سے پیدا ہوا ہے اس کا ذبیحہ کھایا جائے گا خواہ باپ کتابی ہو یا ماں کتابی ہو یہ حکم ہمارے نزدیک ہے اور صابیہ فرقہ کا ذبیحہ امام اعظم کے نزدیک کھایا جائے گا اور امام ابویوسف و امام محمد کے نزدیک نہیں کھایا جائے گا پھر واضح ہو کہ اہل کتاب کا ذبیحہ جبھی کھایا جائے گا کہ جب اس کے ذبح کرنے کے وقت وہاں حاضر نہ ہو اور نہ اس سے کچھ سنا ہو یا حاضر ہو اور اس سے فقط اللہ تعالیٰ کا نام لیا ہے ۔ جیسا مسلمان کے ساتھ حسن ظن کیا جاتا ہے اور اگر اس کی زبان سے اللہ تعالیٰ کا نام سنا ہو کیونکہ جب اس سے کوئی لفظ نہیں سنا تو بحسن ظن اس امر پر محمول کیا جائے گا کہ اس نے فقط اللہ تعالیٰ کا نام سنا گیا مگر اس نے اللہ تعالیٰ کے لفظ سے مسیح علیہ السلام کو مراد لیا ہے تو مشائخ نے فرمایا کہ اس کا ذبیحہ کھایا جائے گا لیکن اگر اس نے صریح اس طرح بیان کیا کہ بسم اللہ الذی ہو ثالث یعنی ایسے اللہ کے نام پر ذبح کرتا ہوں جو تین میں سے ایک ہے تو اس کا ذبیحہ حرام ہے اور اگر اس کی زبان سے فقط مسیح علیہ السلام کا نام سنا گیا یا اس نے اللہ سبحانہ و تعالیٰ کا نام اور مسیح علیہ السلام کا نام لیا تو اس کا ذبیحہ نہ کھایا جائے گا از انجملہ ہمارے نزدیک شرط ہے کہ ذکوۃ کی حالت میں اللہ تعالیٰ کا نام لے خواہ کوئی نام ہو خواہ نام کے ساتھ کوئی صفت ملائے جیسے اللہ اکبر اللہ اعظم ۔ اللہ اجل اللہ الرحمن اللہ الرحیم وغیرہ یا نہ ملائے جیسے فقط اللہ یا رحمن یا رحیم وغیرہ

کہے اور یہی حکم تہلیل و تسبیح و تحمید کا ہے اور حوالہ تسمیہ معہودہ یعنی بسم اللہ الرحمن الرحیم کو جانتا ہو یا نہ جانتا ہو اور خواہ تسمیہ زبان عربی میں ہو یا فارسی وغیرہ کسی زبان میں ہو اور خواہ وہ عربی الفاظ اچھی طرح ادا کر سکتا ہو یا نہ ادا کر سکتا ہو ایسا ہی بشر نے امام ابو یوسف سے روایت کیا ہے۔

۱- شخص یعنی ہنوز طفل عاقل ہو۔

---

Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 5 [Star Symbol] 473 [Star Symbol] Kitab-uz-Zaba'ih (Book of Slaughter)

**Reciting Tasmiyah in a Language Other Than Arabic** If a person recites the Tasmiyah (Bismillah) over an animal for slaughter in the Roman or Persian language, regardless of whether they can pronounce Arabic well or not, this Tasmiyah is sufficient. Among the conditions of Tasmiyah is that the person performing the slaughter must say it themselves; to the extent that if someone else recites it and the slaughterer remains silent despite remembering it (i.e., not forgetting), the slaughtered animal will not be Halal (lawful). Another condition is that by reciting the Tasmiyah, one intends specifically to mention the name of Allah Almighty over the slaughter. If one intends the mention of Allah's name as a general beginning to an action, the slaughter will not be Halal. Similarly, if one says 'Alhamdulillah' without the intention of Tasmiyah, but rather with the intention of thanking Allah Almighty, the slaughter will not be Halal. Likewise, if one recites Tasbih (SubhanAllah), Tahlil (La ilaha illAllah), or Takbir (Allahu Akbar) without the intention of Tasmiyah for slaughter, but solely to describe Allah Almighty's purity from the attributes of creation and His Oneness, the slaughter will not be Halal; as stated in 'al-Bada'i'. And if one sneezes and says 'Alhamdulillah' with the intention of praising after a sneeze and then slaughters, that animal will not be Halal; this is mentioned in 'Fatawa Qadi Khan'. It is also required that the name of Allah Almighty be isolated from the names of others; meaning, only the name of Allah Almighty should be uttered, and the name of any other should not be included, even if it were the name of a Prophet (peace be upon him). Furthermore, the mention of Allah's name must be intended purely for His glorification, without any trace of a supplication (Du'a); thus, if one says 'Allahummaghfir-li' (O Allah, forgive me), it will not count as Tasmiyah because it is a prayer, and in prayer, mere glorification is not the primary objective. (Timing of Tasmiyah): In voluntary slaughter (Dhakat Ikhtiyariyah), the Tasmiyah should be recited at the time of slaughter; it is not permissible to recite it significantly before, except for a very brief period that cannot be avoided. In involuntary slaughter (Dhakat Idtirariyah, such as hunting), the Tasmiyah should be said at the moment of shooting the arrow or releasing the trained dog, etc. The condition that refers to the 'Dhaki' (the slaughtered state), meaning where the slaughter is required, is the more correct view, which is that the animal becomes Halal, and this applies to involuntary slaughter, not voluntary.

Regarding the condition of Tasmiyah relating to the place of slaughter, one must specify the time of Tasmiyah with the voluntary slaughter. From this arises the ruling that if one recites Tasmiyah and slaughters one animal, then slaughters another thinking the first Tasmiyah suffices for it as well, that second animal shall not be eaten; it is necessary to recite a separate Tasmiyah for each animal. Among the conditions, if the animal is not a hunted one, is that original life (Hayat) must remain at the time of slaughter, whether it be a little or much; this is the view of the Great Imam (Abu Hanifa). According to Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, mere original life is not sufficient; rather, there must be 'Hayat Mustaqirrah' (stable life/ vitality sufficient for continued existence); as in 'al-Bada'i'. If an animal that has fallen (Mutaradiyah), been strangled (Munkhaniqah), struck by a blow (Mawqudhah), or a sick goat with a ruptured abdomen is slaughtered, it will be observed: if 'Hayat Mustaqirrah' remains in it, it becomes Halal by consensus after slaughter. If 'Hayat Mustaqirrah' does not remain, it will still become Halal after slaughter, whether it could have survived or not; this is the position of the Great Imam, and it is the correct view upon which the Fatwa is given; this is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'. Regarding animals that do not become Halal without slaughter, is the flowing of blood after slaughter among the conditions for it being Halal? No narration from our colleagues (scholars) has come down regarding this, but some Fatwas mention that one of two things must occur: either the slaughtered animal moves, or blood flows. If neither occurs, it will not be Halal; as in 'al-Bada'i'. If a cow or goat is slaughtered and blood flows but it does not move, and the blood flows as it would from a living animal, then according to the Great Imam, this slaughtered animal may be eaten, and we adopt this view. A person slaughtered a sick goat, and no part of its body moved except its mouth. If it opened its mouth, it shall not be eaten; if it closed it, it shall be eaten. If it opened its eyes, it shall not be eaten; if it closed them, it shall be eaten. If it extended its legs, it shall not be eaten; if it pulled them in, it shall be eaten. If its hair did not stand up, it shall not be eaten; and if...

**अरबी के अलावा अन्य भाषाओं में तस्मिया (बिस्मिल्लाह) कहना** यदि किसी व्यक्ति ने ज़िबह (पशु वध) करते समय रूमी या फ़ारसी भाषा में तस्मिया कहा, चाहे वह अरबी को अच्छी तरह से बोल सकता हो या नहीं, तो यह तस्मिया पर्याप्त है। तस्मिया की शर्तों में से यह है कि ज़िबह करने वाला स्वयं तस्मिया कहे; यहाँ तक कि यदि किसी अन्य ने तस्मिया कहा और ज़िबह करने वाला चुप रहा, जबकि वह भूला नहीं था बल्कि उसे याद था, तो वह ज़िबह हलाल (वैध) नहीं होगा। शर्तों में से यह भी है कि तस्मिया कहते समय उसका इरादा ज़िबह पर अल्लाह तआला का नाम लेना हो; यदि उसने तस्मिया से कार्य आरंभ करते समय अल्लाह का नाम लेना मुराद लिया, तो ज़िबह हलाल नहीं होगा। इसी प्रकार, यदि उसने 'अल्हम्दुलिल्लाह' कहा और उसका इरादा तस्मिया का नहीं था, बल्कि उसने अल्लाह की प्रशंसा (शुक्र) करने की नियत से कहा, तो वह ज़िबह हलाल नहीं होगा। इसी प्रकार, यदि उसने तस्बीह (सुभान अल्लाह), तहलील (ला इलाहा इल्लल्लाह) या तकबीर (अल्लाहू अकबर) कही और उसका इरादा ज़िबह पर तस्मिया कहने का नहीं था, बल्कि केवल अल्लाह के गुणों और उसकी एकता का वर्णन करना था, तो ज़िबह हलाल नहीं होगा; जैसा कि 'बदाइ' में वर्णित है। और यदि उसे छींक आई और उसने 'अल्हम्दुलिल्लाह' कहा, अर्थात छींक पर प्रशंसा करने की नियत की, फिर ज़िबह किया, तो वह जानवर हलाल नहीं होगा; यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। शर्तों में से यह भी है कि अल्लाह के नाम को अन्य नामों से अलग रखे, अर्थात केवल अल्लाह का नाम ज़बान से कहे और किसी अन्य का नाम न मिलाए, चाहे वह नबी (अलैहिस्सलाम) का नाम ही क्यों न हो। यह भी आवश्यक है कि अल्लाह के नाम के ज़िक्र से केवल उसकी महिमा (तज़ीम) का इरादा हो, उसमें दुआ (प्रार्थना) का कोई अंश न हो; यहाँ तक कि यदि उसने 'अल्लाहुम्मा इग़फिर ली' (हे अल्लाह मुझे क्षमा कर) कहा, तो यह तस्मिया नहीं माना जाएगा क्योंकि यह एक दुआ है, और दुआ में केवल महिमा का इरादा मुख्य नहीं होता। (तस्मिया के समय का विवरण): 'ज़काते इख़्तियारी' (सामान्य ज़िबह) में तस्मिया ज़िबह के समय ही कहना चाहिए, उससे बहुत पहले कहना जायज़ नहीं है, सिवाय इसके कि बहुत थोड़ा समय पहले हो जिससे बचा न जा सके। 'ज़काते इज़तिरारी' (शिकार) में तीर चलाते समय या प्रशिक्षित कुत्ते को छोड़ते समय तस्मिया कहना चाहिए। जो शर्त 'ज़की' (पवित्र/हलाल करने वाली प्रक्रिया) की ओर है, यानी जिसकी ज़कात अपेक्षित है, वह अधिक सही है, और वह यह कि जानवर हलाल हो गया, और यह 'ज़काते इज़तिरारिया' में है, न कि 'इख़्तियारया' में।

तस्मिया की शर्त जो ज़िबह के स्थान से संबंधित है, वह यह है कि 'ज़काते इख़्तियारी' के साथ तस्मिया के समय का स्थान निश्चित करे। इसी से यह नियम निकलता है कि यदि किसी ने तस्मिया कहकर एक जानवर ज़िबह किया, फिर दूसरा ज़िबह किया और यह समझा कि पहला तस्मिया इसके लिए भी पर्याप्त है, तो वह दूसरा जानवर नहीं खाया जाएगा; हर जानवर के लिए अलग से तस्मिया कहना अनिवार्य है। शर्तों में से यह भी है कि यदि जानवर शिकार न हो, तो ज़िबह के समय उसमें मूल जीवन (हयात) शेष हो, चाहे थोड़ा हो या अधिक; यह इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) का विचार है। जबकि इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद के अनुसार केवल मूल जीवन पर्याप्त नहीं है, बल्कि 'हयाते मुस्तक़िर्रह' (स्थिर जीवन, जो जीने के लिए पर्याप्त हो) होना चाहिए; जैसा कि 'बदाइ' में है। यदि किसी गिरते हुए (मुतरदिया), गला घुटने वाले (मुनख़निक़ा), चोट खाए हुए (मौक़ूज़ा) जानवर या बीमार और पेट फटी हुई बकरी को ज़िबह किया जाए, तो देखा जाएगा कि यदि उसमें 'हयाते मुस्तक़िर्रह' शेष है, तो ज़िबह करने से वह सर्वसम्मति से हलाल हो जाएगी। और यदि उसमें 'हयाते मुस्तक़िर्रह' न हो, फिर भी ज़िबह करने से वह हलाल हो जाएगी, चाहे वह जीवित रह सके या नहीं; यह इमाम-ए-आज़म का मत है और यही सही है और इसी पर फ़तवा है, यह 'मुहीत सरख़सी' में वर्णित है। जो जानवर बिना ज़िबह के हलाल नहीं होते, क्या ज़िबह के बाद रक्त का निकलना उनके हलाल होने की शर्तों में से है या नहीं? इस विषय में हमारे साथियों (विद्वानों) से कोई रिवायत नहीं आई है, लेकिन कुछ फ़तवा ग्रंथों में उल्लेख है कि दो बातों में से एक अवश्य होनी चाहिए: या तो जानवर हरकत (हलचल) करे या रक्त निकले। यदि दोनों में से कुछ भी न हो, तो वह हलाल नहीं होगा; यह 'बदाइ' में है। यदि किसी गाय या बकरी को ज़िबह किया गया और उससे रक्त निकला लेकिन उसने हरकत नहीं की, और रक्त वैसा ही निकला जैसा जीवित पशु से निकलता है, तो इमाम-ए-आज़म के अनुसार यह ज़िबह किया हुआ पशु खाया जाएगा और हम इसी को अपनाते हैं। एक व्यक्ति ने एक बीमार बकरी ज़िबह की और उसके मुँह के अलावा शरीर के किसी भी हिस्से ने हरकत नहीं की। यदि उसने मुँह खोल दिया, तो वह नहीं खाई जाएगी, और यदि बंद कर लिया, तो खाई जाएगी। यदि आँख खोल दी, तो नहीं खाई जाएगी, और यदि आँख बंद कर ली, तो खाई जाएगी। यदि उसने पैर फैला दिए, तो नहीं खाई जाएगी, और यदि खींच लिए, तो खाई जाएगी। यदि उसके बाल खड़े नहीं हुए, तो नहीं खाई जाएगी और यदि...

**ماسوا عربی تسمیہ پکارنا** اگر کسی شخص نے ذبیحہ پر زبان رومی یا فارسی تسمیہ کہا خواہ وہ عربی اچھی طرح ادا کر سکتا ہے یا نہیں تو یہ تسمیہ کافی ہے اور تسمیہ کی شرائط میں سے یہ ہے کہ ذبح کرنے والا تسمیہ کہے حتیٰ کہ اگر غیر نے تسمیہ کہا اور ذبح کرنے والا خاموش رہا حالانکہ بھولنا نہیں ہے یاد ہے تو ذبیحہ حلال نہ ہو گا اور از جملہ یہ ہے کہ تسمیہ سے یہ قصد کرے کہ ذبیحہ پر اللہ تعالیٰ کا نام لیتا ہے اور اگر اس نے تسمیہ سے شروع کام پر اللہ تعالیٰ کا نام لینا مراد لیا ہے تو ذبیحہ حلال نہ ہو گا اور علیٰ ہٰذا اگر الحمد للہ کہا اور اس سے تسمیہ کی نیت نہ کی بلکہ اس نے بطریق شکر کے اللہ تعالیٰ کے حمد کرنے کی نیت کی تو ذبیحہ حلال نہ ہو گا اسی طرح اس نے تسبیح یا تہلیل یا تکبیر کہی اور اس سے ذبیحہ پر تسمیہ کہنے کی نیت نہ تھی بلکہ فقط یہ نیت تھی کہ صفات مخلوقات سے اللہ تعالیٰ کے پاک ہونے اور اس کی وحدانیت کے وصف کو بیان کرے تو ذبیحہ حلال نہ ہو گا کذا فی البدائع اور اگر اس کو چھینک آئی پس اس نے الحمد للہ کہا یعنی چھینک پر تحمید کی نیت کی پھر ذبح کر دیا تو یہ جانور حلال نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ از جملہ یہ ہے کہ غیر کے ناموں سے اللہ تعالیٰ کے نام کی تجرید کرے یعنی فقط اللہ تعالیٰ کا نام زبان سے کہے کسی غیر کا نام نہ ملائے اگرچہ نبی علیہ السلام کا نام کیوں نہ ہو۔ از جملہ یہ ہے کہ اللہ تعالیٰ کے نام ذکر کرنے سے خالص اس کی تعظیم کا قصد کرے اس میں معنی دعا کا شائبہ نہ ہو حتیٰ کہ اگر اس نے کہا کہ اللہم اغفر لی تو یہ تسمیہ نہ ہو گا کیونکہ یہ دعا ہے اور دعا میں محض تعظیم ہے مقصود نہیں ہوتی ہے (وقت بیان تسمیہ کا) پس ذکوٰۃ اختیاری میں وقت ذبح کے بیان کرے اس سے مقدم کرنا جائز نہیں ہے مگر یوں ہی کچھ پہلے نہایت تھوڑی سی دیر کہ جس سے بچاؤ نہیں ہو سکتا ہے اور ذکوٰۃ اضطراری میں تیر پھینکنے اور سیکھا ہوا کتا

وغیرہ چھوڑنے کے وقت تسمیہ کہہ دے اور جو شرط ذکی کی طرف یعنی جس کی ذکوٰۃ مطلوب ہی راجح ہے وہ یہ ہے کہ یہ جانور حلال ہوا اور یہ ذکوٰۃ اضطراریہ میں ہے۔ نہ اختیاریہ میں۔

جو تسمیہ شرط کی محل ذکوٰۃ کی طرف راجع ہے از جملہ یہ ہے کہ ذکوٰۃ اختیاری کے ساتھ وقت تسمیہ کا محل معین کرے اور اسی سے اس صورت کا حکم نکلتا ہے کہ اگر تسمیہ کہہ کر ایک جانور ذبح کیا پھر دوسرا ذبح کیا اور گمان کیا کہ پہلا تسمیہ اس کے حق میں بھی کافی ہو گیا ہے تو یہ جانور نہ کھایا جائے گا اور ضرور ہے کہ ہر جانور کے واسطے علیحدہ تسمیہ کہے از جملہ یہ ہے کہ جانور شکار نہ ہو اس میں وقت ذبح کے اصل حیات باقی ہو خواہ قلیل ہو یا کثیر ہو یہ امام اعظم کے نزدیک ہے اور امام ابو یوسف و امام محمد کے نزدیک اصل حیات کافی نہیں ہے بلکہ حیاۃ مستقرہ ہونا چاہیے کذا فی البدائع اور متردیہ و منخنقہ و موقوذہ اور بکری مریضہ و مشقوقہ البطن اگر ذبح کی گئی تو دیکھا جائے گا کہ اگر اس میں حیاۃ مستقرہ باقی ہے تو ذبح سے بالاجماع حلال ہو جائے گی اور اگر اس میں حیاۃ مستقرہ نہ ہو تو بھی ذبح سے حلال ہو جائے گی خواہ زندہ رہ سکتی ہو یا نہ رہ سکتی ہو یہ امام اعظم کا مذہب ہے اور یہی صحیح ہے اور اسی پر فتویٰ ہے یہ محیط سرخسی میں ہے اور جو جانور بدوں ذبح کے حلال نہیں ہوتے ہیں اس میں بعد ذبح کے خون کا نکلنا آیا حلال ہونے کی شرائط میں سے ہے یا نہیں تو اس میں کوئی روایت ہمارے اصحاب سے نہیں آئی اور بعض فتاویٰ میں مذکور ہے کہ دو باتوں میں سے ایک بات ہونا چاہیے یا تو ذبیحہ حرکت کرے یا خون نکلے اور اگر کوئی بات نہ پائی گئی تو حلال نہ ہو گا یہ بدائع میں ہے اگر کوئی گائے یا بکری ذبح کی گئی اور اس سے خون نکلا مگر اس نے حرکت نہ کی اور خون ایسا نکلا جیسا زندہ سے نکلا کرتا ہے تو امام اعظم کے نزدیک یہ مذبوحہ کھائی جائے گی اور ہم اسی کو اختیار کرتے ہیں۔ ایک شخص نے ایک بیمار بکری ذبح کی اور اس کے منہ کے سوائے کسی جزو بدن نے حرکت نہ کی پس اگر اس نے منہ کھول دیا تو نہ کھائی جائے

گی اور اگر بند کر لیا تو کھائی جائے گی اور اگر آنکھ کھول دی تو نہ کھائی جائے گی اور اگر آنکھ بند کر لی تو کھائی جائے گی اور اگر اس نے پاؤں پھیلا دیے تو نہ کھائی جائے گی اور اگر کھینچ لیے تو کھائی جائے گی اور اگر اس کے بال نہ کھڑے ہوئے تو نہ کھائی جائے گی اور اگر

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) | 374 | Book of Slaughters (Kitab al-Dhabaih)**

...if it stood up, it can be eaten. All this applies to a goat whose life at the time of slaughter is unknown, so that its life may be recognized through these signs. But if its being alive is certainly known at the time of slaughter, it shall be permissible to eat in every circumstance. This is mentioned in 'Siraj al-Wahaj'. The ruling on Zakat (ritual slaughter) is that the slaughtered animal becomes evident; if it is from among the lawful animals, eating it becomes permissible. And if it is not from the lawful animals, it becomes permissible to derive benefit from it in ways other than eating. This is in 'al-Muhit al-Sarakhsi'.

The slaughter performed by a hermaphrodite or an effeminate person is permissible; this is in 'al-Jawharah al-Nayyirah'. It is not disliked (makruh) for a leper to perform slaughter or to cook bread and stew, though it is preferable if someone else performs these tasks; this is in 'al-Ghara'ib'. Muslim and Kitabi (People of the Book) women are like men regarding slaughter. The slaughter performed by a mute person, whether Muslim or Kitabi, shall be eaten; this is in 'Fatawa Qadi Khan'. A person in the state of Ihram (Muhrim) who slaughters game, whether in the Hill (outside Meccan precincts) or the Haram (sacred precinct), it is not lawful. Any animal slaughtered in the Haram is not lawful. Similarly, game slaughtered in the Haram, whether by a 'Halal' (1) (non-Muhrim) or a Muhrim, is not lawful. Conversely, if a Muhrim slaughters something other than game, this ruling does not apply because this act is prescribed by Sharia; this is in 'al-Kafi'. If a Christian slaughters game in the Haram, it is not lawful; this is in 'al-Sirajiyyah'. If a Muslim slaughters a Magian’s goat for their fire-temple (2) or a disbeliever's goat for their idols (1), eating it is permissible because the Muslim mentioned the name of Allah. However, performing such an act is disliked (makruh) for a Muslim; this is in 'al-Tatarkhaniyyah'. It is narrated from 'Jami al-Fatawa', and written in 'al-Mushkil' that if someone slaughters an animal in honor of a guest specifically for their glorification (as worship), its meat is not lawful. Similarly, if slaughtered in honor (3) of an arriving ruler/noble, its meat is also not lawful. However, if slaughtered to provide hospitality and a feast for a guest, there is no harm; this is in 'al-Jawharah al-Nayyirah'. It is mentioned in 'al-Tajrid' that if a Muslim slaughters an animal and then a Magian runs a knife across its throat after the slaughter, it does not become unlawful. But if a Magian performs the slaughter and then a Muslim runs a knife across its throat, it does not become lawful; this is in 'al-Tatarkhaniyyah'. It should be clear that the vessels cut during ritual slaughter are four: the trachea (halqum) for respiration, the esophagus (mari') for

food and drink, and the two jugular veins (wadajayn) on either side of the neck through which blood flows. If all four are cut, the slaughter is lawful. If the majority are cut, the ruling remains the same according to Imam al-A'zam (Abu Hanifa). The 'Sahibayn' (Imams Abu Yusuf and Muhammad) stated that it is necessary to cut at least one (2) from among the trachea, esophagus, and both jugulars. However, the correct view is that of Imam al-A'zam, as the ruling for the whole applies to the majority; this is in 'al-Mudmarat'.

It is written in 'Jami al-Saghir' that if half of the trachea, half of the esophagus, and half of a jugular vein are cut, the slaughter is not lawful because lawfulness depends on cutting the whole or the majority, and in matters of caution, half is not given the status of the whole. This is also in 'al-Kafi'. It is narrated from Imam Muhammad that if the majority of the trachea, esophagus, and both jugulars are cut, the animal becomes lawful; otherwise, it is not. Our masters (mashayikh) said that among all answers, this is the most correct (asah). If a goat is slaughtered from the back of the neck and most of these vessels are cut before its death, it becomes lawful.

---

(1) 'Halal' refers to a person not in the state of Ihram. (2) 'For the sake of' means that ostensibly it was slaughtered there, but in reality, it was for Allah because it is mentioned that Allah's name was taken. Had it been for the fire or idols, the person would have become an apostate, as clarified in 'Lubab al-Urwah'. Since he is regarded as a Muslim here, it means he slaughtered in truth by the name of Allah for the glorification of Allah. Understand this. (3) Regarding 'honoring' - the basis is the intent of honoring. When it is for someone other than Allah (as worship), the slaughter is prohibited. In the statement of 'al-Mudmarat', the translator says 'majority' here refers to nearly three, as evident from 'al-Kafi'. Thus, there is no difference. (1) Deities and idols. (2) Trachea, esophagus, and jugular veins.

...खड़े हो गए तो वह (बकरी) खाई जाएगी। और यह सब ऐसी बकरी के बारे में है जिसके ज़िब्ह के समय जीवित होने का पता न चलता हो, ताकि इन संकेतों से उसके जीवित होने की पहचान हो जाए। और अगर ज़िब्ह के समय निश्चित रूप से उसका जीवित होना ज्ञात हो, तो हर हाल में वह खाई जाएगी। यह 'सिराजुल वहाज' में है। और ज़कात (हलाल तरीके से ज़िब्ह) का हुक्म यह है कि जो जानवर ज़िब्ह किया गया है, वह ज़ाहिर हो जाता है। अतः यदि वह हलाल जानवरों में से हो, तो उसका खाना भी हलाल हो जाता है। और यदि वह हलाल जानवरों में से न हो, तो खाने के अलावा उससे अन्य तरीकों से लाभ उठाना जायज़ हो जाता है। यह 'मुहीत सरख़सी' में है।

हिजड़े और नामर्द का किया हुआ ज़िब्ह जायज़ है। यह 'जौहरतुन नय्यिरा' में है। सफेद दाग़ वाले (कोढ़ी) का ज़िब्ह करना और रोटी व हांडी पकानामकरूह नहीं है, लेकिन इसके अलावा कोई दूसरा यह काम कर ले तो बेहतर है। यह 'ग़रायब' में है। मुस्लिम और किताबी महिला ज़िब्ह करने में पुरुष के समान हैं। गूँगे का किया हुआ ज़िब्ह, चाहे वह मुसलमान हो या किताबी, खाया जाएगा। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। मुहरिम (एहराम की हालत में व्यक्ति) ने जो शिकार ज़िब्ह किया, चाहे वह हराम (मक्का की सीमा) में किया हो या हलाल (बाहर) में, वह हलाल नहीं है। और जो जानवर हरम में ज़िब्ह किया गया, वह हलाल नहीं है। इसी तरह हरम में जो शिकार ज़िब्ह किया गया, चाहे 'हलाल' (1) (गैर-मुहरिम) ने ज़िब्ह किया हो या मुहरिम ने, वह हलाल नहीं है। इसके विपरीत, यदि मुहरिम ने शिकार के अलावा कोई और चीज़ ज़िब्ह की, तो यह हुक्म नहीं होगा, क्योंकि यह कार्य शरीयत में मान्य है। यह 'काफ़ी' में है। एक ईसाई ने हरम में शिकार ज़िब्ह किया तो वह हलाल नहीं है। यह 'सिराजिया' में है। एक मुसलमान ने किसी मजूसी (अग्निपूजक) की बकरी उनके आतिश-कदे (2) (अग्नि मंदिर) के लिए ज़िब्ह की, या किसी काफ़िर की बकरी उनके देवताओं (1) के लिए ज़िब्ह की, तो उसका खाना जायज़ है, क्योंकि मुसलमान ने अल्लाह का नाम लिया है। लेकिन मुसलमान के लिए ऐसा कार्य करना मकरूह है। यह 'तातारख़ानिया' में है। 'जामेउल फ़तावा' से उद्धृत है और 'मुश्किल' में लिखा है कि अगर किसी ने मेहमान के सम्मान में उसके सामने कोई जानवर ज़िब्ह किया (इबादत के तौर पर), तो उसका खाना हलाल नहीं है। इसी तरह अगर किसी अमीर (हाकिम) आदि के आने पर उनके सम्मान (3) में ज़िब्ह किया गया, तो भी उसका खाना हलाल नहीं है। हाँ, अगर मेहमान की मेज़बानी के लिए उसकी ज़ियाफ़त (भोज) हेतु ज़िब्ह किया गया, तो कोई डर नहीं है। यह 'जौहरतुन नय्यिरा' में है। 'तजरीद' में है कि अगर मुसलमान ने जानवर ज़िब्ह किया, फिर

ज़िब्ह के बाद मजूसी ने उसके गले पर छुरी फेर दी, तो वह हराम नहीं होगा। और अगर मजूसी ने ज़िब्ह किया और उसके बाद मुसलमान ने उसके गले पर छुरी फेर दी, तो वह हलाल नहीं होगा। यह 'तातारख़ानिया' में है। स्पष्ट रहे कि ज़िब्ह (ज़कात) में जो नसें (रग) काटी जाती हैं, वे चार हैं: एक 'हलक़ूम' यानी साँस की नली, दूसरी 'मरी' यानी खाने-पीने की नली, और दो 'वदजैन' यानी गर्दन के दोनों तरफ की नसें जिनमें खून बहता है। अतः यदि ये चारों कट गईं, तो ज़िब्ह हलाल हो गया। और अगर इनमें से अधिकतर कट गईं, तब भी इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) रह. के अनुसार यही हुक्म है। और 'साहिबैन' (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) ने फ़रमाया कि हलक़ूम, मरी और दोनों वदजैन में से कम से कम एक (2) का कटना ज़रूरी है। लेकिन सहीह कौल इमाम-ए-आज़म रह. का है, क्योंकि कुल (सब) का हुक्म वही होता है जो अक्सर (ज़्यादातर) का होता है। यह 'मुज़मरात' में है।

'जामे सगीर' में लिखा है कि अगर आधी हलक़ूम, आधी मरी और आधी वदज (नस) कटी, तो ज़िब्ह हलाल नहीं होगा, क्योंकि हलाल होना पूरी या अधिकतर नसों के कटने पर निर्भर है। और एहतियात (सावधानी) के स्थान पर आधे को पूरे का हुक्म नहीं दिया गया है। ऐसा ही 'काफ़ी' में है। और इमाम मुहम्मद रह. से रिवायत है कि अगर हलक़ूम, मरी और दोनों वदजैन में से अधिकांश कट गईं, तो जानवर हलाल हो जाएगा, वरना हलाल नहीं होगा। हमारे उलेमा (मशाइख़) ने फ़रमाया कि सभी जवाबों में से यही जवाब सबसे सही (असह) है। अगर बकरी को गर्दन के पीछे (गुद्दी) की तरफ से ज़िब्ह किया गया, और उसके मरने से पहले इन नसों में से अधिकांश कट गईं, तो वह हलाल हो जाएगी।

---

(1) 'हलाल' से मुराद वह व्यक्ति है जो एहराम की हालत में न हो। (2) 'के वास्ते' से मुराद यह है कि ज़ाहिरी तौर पर वहां ज़िब्ह किया गया, लेकिन हकीकत में अल्लाह के लिए ज़िब्ह किया गया, क्योंकि आगे लिखा है कि अल्लाह का नाम लिया। अगर वह आग या मूर्तियों के लिए ज़िब्ह करता तो मुर्तद हो जाता। जैसा कि 'लुबाबुल उरवा' में स्पष्ट है। यहाँ उसे मुसलमान माना गया है, तो अर्थ यह है कि उसने वास्तव में अल्लाह के नाम पर उसकी बड़ाई के लिए ज़िब्ह किया। समझ लें। (3) ताज़ीम (सम्मान) की बातें—मदार ताज़ीम पर है। जब अल्लाह के अलावा किसी और के लिए (इबादत के तौर पर) हो तो ज़िब्ही हराम है। फिर 'मुज़मरात' के कौल में अनुवादक कहता है कि यहाँ 'अक्सर' से मुराद तीन के करीब है, जैसा कि 'काफ़ी' से ज़ाहिर होता है। अतः कोई फर्क नहीं पड़ा। (1) पूज्य और मूर्तियां। (2) हलक़ूम, मरी और वदजैन।

کھڑے ہو گئے تو کھائی جائے گی اور یہ سب ایسی بکری میں ہے جس کا ذبح کے وقت زندہ ہونا معلوم نہ ہوتا کہ ان علامات سے اس کا زندہ ہونا پہچانا جائے اور اگر وقت ذبح کے یقینا اس کا زندہ ہونا معلوم ہو تو ہر حال میں کھائی جائے گی یہ سراج الوہاج میں ہے اور ذکوۃ کا حکم یہ ہے کہ جو جانور ذبح کیا گیا ہے وہ ظاہر ہو جاتا ہے پس اگر حال جانوروں میں سے ہو تو اس کا کھانا بھی حلال ہو جاتا ہے اور اگر حلال جانوروں میں سے نہ ہو تو سوائے کھانے کے اس سے اور طور پر نفع اٹھانا جائز ہو جاتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر خنثے اور مخنث کا ذبیحہ جائز ہے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے ابرص کا ذبح کرنا اور روٹی و ہانڈی پکانا مکروہ نہیں ہے مگر اس کے سوائے اگر دوسرا یہ کام کرلے تو اولیٰ ہے یہ غرائب میں ہے عورت مسلمہ و کتابیہ ذبح کرنے میں مثل مرد کے ہیں۔ گونگے کا ذبیحہ خواہ مسلمان ہو یا کتابی ہو کھایا جائے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ محرم نے جو صید ذبح کیا خواہ حل میں ذبح کیا ہو یا حرم میں وہ حلال نہیں ہے اور جو جانور حرم میں ذبح کیا گیا وہ حلال نہیں ہے اس طرح حرم میں جو صید ذبح کیا گیا خواہ حلال (1) نے ذبح کیا یا محرم نے وہ حلال نہیں ہے بخلاف اس کے اگر محرم نے سوائے صید کی ذبح کیا تو اس کا یہ حکم نہیں ہے کیونکہ یہ فعل مشروع ہے یہ کافی میں ہے۔ ایک نصرانی نے حرم میں ایک صید ذبح کیا تو حلال نہیں ہے یہ سراجیہ میں ہے۔ ایک مسلمان نے ایک مجوسی کی بکری ان کے آتش کدہ (2) کے واسطے ذبح کی یا کافر کی بکری ان کے آلہہ (1) کے واسطے ذبح کی تو اس کا کھانا جائز ہے کیونکہ مسلمان نے اللہ تعالیٰ کا نام لیا ہے مگر مسلمان کے حق میں ایسا فعل کرنا مکروہ ہے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ جامع الفتاویٰ سے منقول ہے مشکل میں لکھا ہے کہ اگر کسی نے مہمان کے پیش نظر اس کی تعظیم کے واسطے

کوئی جانور ذبح کیا تو اس کا کھانا حلال نہیں ہے اس طرح اگر کسی امیر وغیرہ کی آمد میں اس کی تعظیم (3) کے واسطے ذبح کیا تو بھی اس کا کھانا حلال نہیں ہے ہاں اگر مہمان کی غنیمت میں اس کی ضیافت کے واسطے ذبح کیا تو کچھ ڈر نہیں ہے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے۔ تجرید میں ہے کہ اگر مسلمان نے جانور ذبح کیا پھر بعد ذبح کے مجوسی نے اس کے گلے پر چھری پھیر دی تو حرام نہ ہو جائے گا اور اگر مجوسی نے ذبح کیا بعد اس کے ذبح کے مسلمان نے اس کے گلے پر چھری پھیر دی تو حلال نہ ہو جائے گا یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ واضح ہو کہ ذکوۃ میں جو رگیں کاٹی جاتی ہیں وہ چار ہیں ایک حلقوم یعنی سانس کی آمد و رفت کا راستہ دوسری مری یعنی کھانے پانی کا راستہ تیسرے دو چتنے دو وداجین یعنی گردن کے منکے کی دونوں طرف دورگیں ہیں جن میں خون کی آمد و رفت ہے پس اگر یہ چاروں کٹ گئیں تو ذبیحہ حلال ہو گیا اور اگر اکثر کٹ گئیں تو بھی امام اعظمؒ کے نزدیک یہی حکم ہے اور صاحبینؒ نے فرمایا کہ حلقوم و مری و دونوں وداجین میں سے ایک (۲) کا کٹ جانا ضرور ہے مگر صحیح قول امام اعظمؒ کا ہے کیونکہ وحکم کل کا ہوتا ہے وہی اکثر کا ہوتا ہے یہ مضمرات میں ہے۔

جامع صغیر میں لکھا ہے کہ اگر نصف حلقوم و نصف مری و نصف وداج کٹ گئی تو ذبیحہ حلال نہ ہو گا کیونکہ حلت کل یا اکثر کے قطع ہونے پر ہے اور موضع احتیاط میں نصف کو کل کا حکم نہیں دیا گیا ہے کذا فی الکافی اور امام محمدؒ سے مروی ہے کہ اگر حلقوم و مری و اکثر دونوں وداجین میں سے کٹ گئیں تو جانور حلال ہو جائے گا ورنہ حلال نہ ہو گا اور ہمارے مشائخ نے فرمایا کہ سب جوابات میں سے یہ جواب اصح ہیں۔ اگر گدی کی طرف سے بکری ذبح کی گئی پس اگر اس کے مرنے سے پہلے ان رگوں میں سے اکثر کٹ گئیں تو حلال ہو جائے گی

(1) حلال وہ شخص جو احرام میں نہ ہو۔ (2) کے واسطے مراد یہ کہ بظاہر صورت ان کے وہاں ذبح کی مگر حقیقت میں اللہ تعالیٰ کے واسطے ذبح کی کیونکہ آگے خود مذکور ہے کہ اللہ تعالیٰ کا نام لیا اور اگر وہ آگ و بت وغیرہ کے لیے ذبح کرتا تو مرتد ہو جاتا چنانچہ لباب الروۃ میں صریح مسئلہ مذکور ہے اور یہاں اس کو مسلمان رکھا تو معنیٰ یہ ہوئے کہ اس نے در حقیقت اللہ تعالیٰ کے نام پر تعظیم اللہ تعالیٰ کے لیے ذبح کی فافہم۔ (3) التعظیم اقوال پس مدار بھی تعظیم ہے جب سوائے خدائے تعالیٰ کے کسی کے واسطے ہو تو ذبیحہ حرام ہے پھر قول مضمرات میں مترجم کہتا ہے کہ اکثر یہاں تین کے قریب ہے چنانچہ کافی سے ظاہر ہوتا ہے پس فرق نہ ہوا۔ (۱) معبودوں و بتون۔ (۲) حلقوم ومری وانک وداج ۱۲۔

**Fatawa al-Alamgiri ..... Volume (8) [Page 375] Book of Slaughtering (Kitab al-Dhabaih)**

If an animal dies before most of its veins are severed, it shall not be lawful (Halal), and this act is disliked (Makruh) because it contradicts the Sunnah and causes excessive suffering to the animal; this is mentioned in *al-Muhit*. If a cow or goat is close to giving birth, the scholars have stated that slaughtering it is Makruh as it entails the loss of the fetus, and this is the view of Imam al-Azam (Abu Hanifa), because in his view, the slaughter of the mother does not make the fetus in the womb Halal; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If a person slaughters a camel or a cow and a dead fetus is subsequently removed from its womb, it shall not be eaten, whether the person was aware of its presence or not; this is according to Imam al-Azam. However, Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad have stated that if the fetus's physical form was complete, it may be eaten; as cited in *al-Hidayah*.

If the fetus is removed alive but does not survive long enough (1) to be ritually slaughtered and then dies, it may be eaten; this detailed ruling is based on the opinion of Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad, not on the opinion of Imam Abu Hanifa; as stated in *al-Nihayah*. If a person cuts open a goat's belly, removes a live fetus and slaughters it, and then slaughters the goat, the scholars have ruled: if the goat could not have survived that initial wound, it shall not be Halal because its death resulted from the first wound, which was not a ritual slaughter (*Dhakah*). If it could have survived, then it becomes Halal through the subsequent slaughtering, as the actual ritual slaughter is the second act; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If a person's cow faced great difficulty in birthing such that delivery became impossible, and the person reached into the cow's birth canal and slaughtered the fetus while still inside —whether at the standard slaughter site or elsewhere—then: if slaughtered at the correct site, it is Halal; if slaughtered elsewhere, it is Halal only if the person was unable to reach the correct site; if they were able but chose another spot, it is not Halal; this is mentioned in *al-Wajiz al-Kardari*. If a cat severs a chicken's neck, it is not Halal even if it continues to struggle; this is in *al-Multaqit*. Slaughtering tools are of two types: cutting (*Qati'ah*) (2) and crushing/tearing (*Fahitah*). Cutting tools are further divided into sharp and blunt. Slaughtering with a sharp tool is permissible without any dislike, whether it is made of iron or not, such as using a reed's skin, marble, a splinter from a staff, or a bone shard. Slaughtering with a blunt tool is permissible but Makruh. If slaughtered with a pulled-out tooth or nail, it is Halal but the act is Makruh; this is in *al-Muhit al-Surkhi*. Using tools that are still attached to the

body, such as fixed nails or teeth, is impermissible by consensus (*Ijma*), and if used, the animal is considered carrion (*Murdar*); this is in *al-Bada'i*.

**The Prophetic (PBUH) Method of Slaughtering a Camel**

The Sunnah method for slaughtering a camel is to tie its left foreleg at the shank and perform *Nahr* while it is standing, which means slaughtering at the base of the throat. If the camel is laid on its side for *Nahr*, it is permissible, but the first method is superior. For goats and cows, the Sunnah is to lay them on their side for slaughtering, as this allows for the veins to be cut effectively. In all cases, one should face the animal towards the *Qibla*; this is in *al-Jawharah al-Nayyirah*. It is recommended (*Mustahabb*) to slaughter during the day. In voluntary slaughter, it is recommended to use a sharp iron tool like a knife or sword. Slaughtering with non-iron tools (3) or at night (4) with iron is Makruh. Among the recommended acts is to cut the veins thoroughly and to support...

---

- Footnotes: ! The translator states that according to both (the two students of Abu Hanifa), the slaughter of the mother is considered the slaughter of the fetus based on Hadith evidence, and this is the preferred view upon which fatwa is given. 2 The translator notes that this issue is derived from the opinion of the two companions (Abu Yusuf and Muhammad). 3 "Iron" (Hadid) here refers to a sharp edge, whether it be iron or something else. (1) Meaning it did not survive long enough for a ritual slaughter to be performed. (2) Cutter, crusher. (3) Even if during the day. (4) Even if with a sharp tool.

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) [375] किताब-उज़्-ज़बाईह (ज़ब्ह का बयान)**

और अगर अधिकांश रगें कटने से पहले वह मर गई तो हलाल न होगी और यह कार्य मकरूह (नापसंद) है, क्योंकि एक तो यह सुन्नत के खिलाफ है और दूसरा इसमें जानवर को अधिक कष्ट दिया गया है; यह 'मुहीत' में है। एक गाय या बकरी बच्चा जनने के करीब आ गई, तो मशाईख़ (विद्वानों) ने फरमाया कि उसे ज़ब्ह करना मकरूह है क्योंकि इसमें बच्चे की बर्बादी (नुकसान) है, और यह इमाम-ए-आज़म (अबू हनीफ़ा) रह. का कौल (कथन) है, क्योंकि उनके निकट माँ के ज़ब्ह करने से पेट का बच्चा हलाल नहीं होता; यह 'फतावा काज़ी खान' में है। यदि किसी व्यक्ति ने ऊँटनी या गाय ज़ब्ह की, फिर उसके पेट से मरा हुआ बच्चा निकला, तो वह नहीं खाया जाएगा, चाहे उसे इस बात का आभास हो या न हो; यह इमाम-ए-आज़म रह. के निकट है। और इमाम अबू यूसुफ रह. व इमाम मुहम्मद रह. ने फरमाया कि यदि उसकी बनावट (अंग) पूरी हो गई हो, तो उसे खाया जाएगा; जैसा कि 'हिदाया' में है।

यदि गर्भस्थ शिशु (जनीन) जीवित निकला और इतना समय (1) नहीं था कि उसे ज़ब्ह किया जा सके और वह मर गया, तो उसे खाया जाएगा; यह विस्तार इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद के कथन पर आधारित है, न कि इमाम अबू हनीफ़ा के कथन पर; जैसा कि 'निहाया' में है। एक व्यक्ति ने बकरी का पेट फाड़कर जीवित बच्चा निकाल लिया और उसे ज़ब्ह कर दिया, फिर बकरी को ज़ब्ह किया, तो मशाईख़ ने फरमाया कि यदि बकरी उस घाव से जीवित न रह सके, तो वह हलाल न होगी क्योंकि उसकी मृत्यु पहले घाव से होगी और वह घाव 'ज़काह' (शास्त्रोक्त ज़ब्ह) नहीं है। और यदि वह जीवित रह सके, तो ज़ब्ह से हलाल हो जाएगी क्योंकि ज़काह यह दूसरा कार्य यानी ज़ब्ह है; यह 'फतावा काज़ी खान' में है। एक व्यक्ति की गाय को प्रसव में बहुत कष्ट हुआ और बच्चा पैदा होना कठिन हो गया, अतः उसने गाय की योनि में हाथ डालकर पेट ही में बच्चे को ज़ब्ह कर दिया, चाहे ज़ब्ह के स्थान पर किया हो या किसी और स्थान पर; तो यदि ज़ब्ह के स्थान पर किया तो वह हलाल है, और यदि अन्य स्थान पर किया तो यदि वह ज़ब्ह के स्थान पर करने में असमर्थ था तो हलाल होगा, और यदि समर्थ था फिर भी अन्य स्थान पर किया तो हलाल न होगा; यह 'वजीज़ करदरी' में है। यदि बिल्ली ने मुर्गी की गर्दन काट दी, तो वह हलाल न होगी भले ही वह फड़फड़ाती रहे; यह 'मुल्तकित' में है। और औज़ार दो प्रकार का होता है: 'काते' (काटने वाला) और 'फाते' (फाड़ने वाला)। फिर काटने वाला दो प्रकार का होता है: धारदार और कुंद (भोथरा)। धारदार से बिना किसी कराहत (नापसंदगी) के ज़ब्ह करना जायज़ है, चाहे वह लोहे का हो या न हो, जैसे किसी ने सरकंडे की छाल

से, संगमरमर से, लाठी की फाँक से या हड्डी की फाँक से ज़ब्ह किया हो तो जायज़ है। कुंद औज़ार से ज़ब्ह करना जायज़ है पर मकरूह है। और यदि उखड़े हुए दाँत या नाखून से ज़ब्ह किया तो हलाल है पर यह कार्य मकरूह है; यह 'मुहीत सुरख़ी' में है। और जो औज़ार शरीर से जुड़े हों, जैसे जड़े हुए नाखून और दाँत, उनसे ज़ब्ह करना सर्वसम्मति से जायज़ नहीं है और यदि ज़ब्ह किया तो जानवर मुर्दार (मृत) माना जाएगा; यह 'बदाए' में है।

### ऊंट की ज़ब्ह का नबवी (ﷺ) तरीका

ऊंट को ज़ब्ह करने में सुन्नत तरीका यह है कि उसका बायाँ अगला पैर घुटने के नीचे से बाँध कर खड़ा करके'नह्र' करे, यानी हलक (गले) के निचले हिस्से से ज़ब्ह करे। यदि ऊंट को करवट पर लिटाकर नह्र किया तो जायज़ है, लेकिन पहला तरीका उत्तम है। और बकरी व गाय में सुन्नत यह है कि उन्हें करवट पर लिटाकर ज़ब्ह करे क्योंकि इस तरीके से रगें काटना अच्छी तरह संभव है। सभी स्थितियों में जानवर को किबला (काबा) की ओर मुख करके रखे; यह 'जौहरा नय्यिरा' में है। मुस्तहब (पसंदीदा) यह है कि दिन में ज़ब्ह करे। ज़ब्ह-ए-इख़्तियारी में यह मुस्तहब है कि लोहे के तेज़ औज़ार जैसे छुरी या तलवार आदि से ज़ब्ह करे। गैर-लोहे (3) के औज़ार से और रात में (4) लोहे से ज़ब्ह करना मकरूह है। मुस्तहब कार्यों में से यह भी है कि रगें अच्छी तरह काटे और सहारा...

---

- पाद-टिप्पणी: ! अनुवादक कहते हैं कि उन दोनों (साहबैन) के निकट माँ का ज़ब्ह होना ही बच्चे का ज़ब्ह होना है, हदीस के प्रमाण के आधार पर, और यही पसंदीदा है और इसी पर फतवा है। 2 अनुवादक कहते हैं कि यह मसला साहबैन के कथन पर आधारित है। 3 लोहे (हदीद) से तात्पर्य तेज़ धार है, चाहे वह लोहा हो या कोई अन्य चीज़। (1) अर्थात वह इतनी देर जीवित नहीं रहा कि उसे ज़ब्ह किया जा सके। (2) काटने वाला, तोड़ने वाला। (3) चाहे दिन में हो। (4) चाहे धारदार औज़ार से हो।

اور اگر اکثر رگیں کٹ جانے سے پہلے وہ مرگئی تو حلال نہ ہوگی اور یہ فعل مکروہ ہے اس وجہ سے کہ ایک تو خلافِ سنت ہے اور دوسرے اس میں زیادہ تکلیف دی ہے یہ محیط میں ہے۔ ایک گائے یا بکری بچہ جننے پر آگئی تو مشائخ نے فرمایا کہ اس کا ذبح کرنا مکروہ ہے کہ اس میں بچہ کی تضییع ہے اور یہ امامِ اعظمؒ کا قول ہے اس واسطے کہ ان کے نزدیک ماں کے حلال کرنے سے بچہ پیٹ کا حلال نہیں ہوتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر کسی شخص نے اونٹنی یا گائے حلال کی پھر اس کے پیٹ میں سے مردہ بچہ نکلا تو وہ کھایا نہ جائے گا خواہ اس کو اس بات کا شعور ہوا ہو یا نہ ہو اور یہ امامِ اعظمؒ کے نزدیک ہے اور امام ابویوسفؒ و امام محمدؒ نے فرمایا کہ اگر اس کی خلقت پوری ہوگئی ہو تو کھایا جائے گا کذا فی الہدایہ۔

اگر جنین یعنی پیٹ کا بچہ زندہ نکلا اور اتنی مہلت (۱) نہ تھی کہ اس کو ذبح کیا جا سکے پس وہ مر گیا تو کھایا جائے گا اور یہ تفریع بنا پر قول امام ابویوسفؒ و امام محمدؒ کے ہے نہ بنا پر قول ابی حنیفہؒ کے کذا فی النہایہ۔ ایک شخص نے بکری کا پیٹ پھاڑ کر زندہ بچہ نکال کر اس کو ذبح کیا پھر بکری کو ذبح کیا تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر بکری اس زخم سے زندہ نہ رہ سکے تو حلال نہ ہو گی اس واسطے کہ اس کی موت پہلے زخم سے ہو گی اور یہ زخم ذکوۃ نہیں ہے اور اگر اس سے زندہ رہ سکے تو ذبح سے حلال ہو جائے گی کیونکہ ذکوۃ یہ دوسرا یعنی ذبح ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص کی گائے پر بچہ پیدا ہونے میں بہت تکلیف پیش آئی اور پیدا ہونا مشکل ہو گیا پس اس نے گائے کی فرج میں ہاتھ ڈال کر پیٹ ہی میں اس کا بچہ ذبح کر دیا خواہ ذبح سے اس کو ذبح کر دیا یا ذبح کرنے کی جگہ کے سوائے دوسری جگہ سے ذبح کر دیا پس اگر ذبح کی جگہ سے ذبح کیا تو حلال ہے اور اگر غیر جگہ سے ذبح کیا پس اگر وہ شخص ذبح کرنے کی

جگہ سے ذبح نہیں کر سکتا تھا تو حلال ہوگا اور اگر ذبح کی جگہ سے ذبح کر سکتا تھا مگر اس نے غیر جگہ سے ذبح کیا تو حلال نہ ہوگا یہ وجیز کردری میں ہے۔ ایک بلی نے مرغی کی گردن کاٹ دی تو وہ ذبح کرنے سے حلال نہ ہو گی اگر پھڑکتی رہے یہ ملتقط میں ہے۔ اور آلہ دو طرح کا ہوتا ہے قاطعہ (۲) و فاحتہ پھر قاطعہ دو طرح کا ہوتا ہے دھار دار اور کند۔ پس دھار دار سے بلا کراہت ذبح کرنا جائز ہے خواہ لوہے کا ہو یا نہ ہو جیسے کسی نے نرکل کے پوست سے یا سنگ مرمر سے یا عصا کی کھپاچ سے یا ہڈی کی کھپاچ سے ذبح کیا تو جائز ہے اور کند آلہ سے ذبح کرنا جائز ہے مگر مکروہ ہے اور اگر اکھڑے ہوئے دانت یا ناخن سے ذبح کیا تو حلال ہے مگر یہ فعل مکروہ ہے یہ محیط سرخی میں ہے اور جو آلہ بستہ سے ہوتا ہے وہ ناخن قائم و دندان قائم ہے کہ اس سے بالاجماع ذبح کرنا جائز نہیں ہے اور اگر ذبح کیا تو جانور مردار ہو جائے گا یہ بدائع میں ہے۔

**ذبح اونٹ کا نبوی (ﷺ) طریقہ**

اونٹ کے ذبح کرنے میں سنت طریقہ یہ ہے کہ اس کا بایاں بازو ساق باندھ کر کھڑا کر کے نحر کرے یعنی آخر حلق سے ذبح کرے پس اگر اونٹ کو کروٹ سے لٹا کر نحر کیا تو جائز ہے مگر طریقہ اول افضل ہے اور بکری گائے میں سنت یہ ہے کہ اس کو کروٹ سے لٹا کر ذبح کرے کیونکہ اس طریقہ سے رگوں کا کاٹنا اچھی طرح ممکن ہے اور سب صورتوں میں اپنے ساتھ جانور کو قبلہ رخ رکھے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے مستحب یہ ہے کہ دن میں ذبح کرے اور ذبح اختیاری میں یہ مستحب ہے کہ لوہے کے تیز آلہ سے جیسے چھری و تلوار وغیرہ سے ذبح کرے اور غیر حدید (۳) سے اور رات میں (۴) حدید سے مکروہ ہے اور مستحبات میں سے ہے کہ رگوں کو اچھی طرح کاٹے اور تکیہ...

• حاشیہ: ! مترجم کہتا ہے کہ ان دونوں کے نزدیک ماں کا ذبح وہی بچہ کا ذبح ہے بدلیل حدیث اور یہی مختار اور اسی پر فتویٰ ہے۔ ۲ قال المترجم یہ مسئلہ بقول صاحبین متفرع ہے فافہم۔ ۳ حدید سے مراد تیز دھار ہے خواہ لوہا ہو یا دوسری چیز ہو۔ (۱) یعنی اتنی دیر زندہ نہ رہا کہ اس کو ذبح کیا جا سکے۔ (۲) کاٹنے والا، شکستہ کرنے والا۔ (۳) اگرچہ دن میں ہو۔ (۴) اگر چہ حدید سے ہو۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 5 | 376 | Book of Slaughter (Kitab al-Dhaba'ih)**

Striking (the animal) in this state is disliked (Makrooh), and slaughtering from the direction of the throat (gullet) is recommended (Mustahab), while slaughtering from the nape (back of the neck) is Makrooh. Among the recommended acts is to cut all the vessels (jugular veins and arteries). Some have said cutting the Shahrug (main artery) is Makrooh. It is Mustahab to focus only on cutting the vessels and not to detach the head. If one does so, it is Makrooh. Saying at the time of slaughter, "O Allah, accept this from so-and-so," is Makrooh; however, one may say this after finishing the slaughter or before starting it. If said during the slaughter, the animal does not become forbidden (Haram). Skinning the slaughtered animal before it has become cold (lost all movement) is Makrooh. If, before it becomes cold, the knife is plunged into the spinal cord (Nukha) or the skin is pulled, there is no harm in eating it (it remains Halal). Dragging the animal to the place of slaughter by its legs is Makrooh, as is sharpening the knife in front of it while it is laid down. However, these are matters that do not render the slaughter Haram; this is mentioned in 'Bada'i'. If an animal that should undergo Nahr (stabbing at the base of the neck, like camels) is slaughtered (by slitting the throat), or vice versa, it is permissible but Makrooh because it deviates from the Sunnah; this is in 'Khaza'in al-Muftiin'. If someone strikes the neck of a camel, cow, or goat and detaches the head but mentions God's name (Tasmiyah), then if the strike was from the throat side, it may be eaten, although the person committed a reprehensible act. If the head was detached with pauses and hesitation, it shall not be eaten because it died before the valid slaughter (Zakat) was completed, thus becoming carrion (Murdar). But if the vessels were cut before it died, it may be eaten because the necessary act for slaughter occurred while it was alive, though this act is Makrooh as it increased suffering unnecessarily. If the act was completed without a pause, it may be eaten as it is evident it died from the slaughter; this is in 'Bada'i'. If the animal is slaughtered without facing the Qiblah, it will be Halal but Makrooh; this is in 'Jawahir al-Akhlati'.

A person's ox was about to die, and the owner had no tool except something that could only wound the place of slaughter. If he goes to find a proper tool, it will die in the meantime and he won't be able to make it Halal. If he wounds the place of slaughter of said ox, it will not be Halal. But if he cuts the vessels, it will be Halal; this is in 'Qunyah'. Nukha (2) is Makrooh, meaning plunging the knife into the spinal cord, but the meat may be eaten. The Nukha is a white nerve in the neck bone (commonly called the spinal marrow). Some said Nukha means pulling the head so the slaughter

site stretches. Others said Nukha means breaking the neck before it becomes cold from twitching. In any case, all this is Makrooh because it is torture of an animal without necessity. The gist is that whatever is not required for slaughter but causes extra pain to the animal is Makrooh; this is in 'Kafi'. Baqali said it is Mustahab to say "Bismillah Allahu Akbar" without the conjunction 'waw' (and). Saying it with 'waw' is Makrooh because the immediate invocation is interrupted by it; so it is in 'Al-Muhit'. If a slaughterer mentions the name of the Prophet ﷺ along with Allah's name without 'waw', there are three cases: either mentioning the name 'Muhammad' with a Fatha (Nasb), a Kasra (Jarr), or a Damma (Rafa'). In all these cases, the animal remains Halal because the Prophet's ﷺ name is not mentioned as a conjunction (meaning slaughtering in the name of both), so the intended meaning is understood, yet it is Makrooh because of the appearance of joining. If he mentions it with 'waw', and uses a Kasra (Jarr), the slaughter will not be Halal because the person became one who slaughters in the name of both (a form of Shirk). If he mentions it with a Damma (Rafa'), it will be Halal.

1. It was said that perhaps they do this so that life may leave the body (quickly). 2. It was said that both these statements are close, rather they essentially mean the same thing, with only a difference in expression. (1) O Allah, accept it from so-and-so. (2) Meaning, it has not yet become cold.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 5 | 376 | किताब-उज़्-ज़बाइह (ज़बह का अध्याय)**

इस स्थिति में प्रहार करना मकरूह (नापसंद) है, और हलक (कंठ) की ओर से ज़बह करना मुस्तहब (पसंदीदा/अनुशंसित) है, जबकि गर्दन के पीछे की ओर से करना मकरूह है। मुस्तहब कार्यों में से यह है कि सभी नसें काट दी जाएँ। कुछ ने कहा है कि शाहरग काटना मकरूह है। यह मुस्तहब है कि केवल नसें काटने पर ध्यान दिया जाए और सिर को (शरीर से) अलग न किया जाए। यदि ऐसा किया गया तो वह मकरूह होगा। ज़बह के समय यह कहना कि "ऐ अल्लाह, इसे फलां (व्यक्ति) की ओर से स्वीकार कर" मकरूह है; हाँ, यह शब्द ज़बह से फारिग (मुक्त) होने के बाद कहे या उससे पहले कह ले, लेकिन यदि उसने ज़बह के समय कहा तो ज़बीहा (ज़बह किया हुआ जानवर) हराम नहीं होगा। ज़बह के बाद ठंडा होने से पहले जानवर की खाल खींचना मकरूह है। यदि ज़बीहा के ठंडा होने से पहले उसकी रीढ़ की हड्डी के गूदे (नख़ा) तक छुरी घोंप दी गई या खाल खींच ली गई, तो उसे खाने में कोई डर नहीं (हलाल है)। जानवर के पैरों को पकड़कर ज़बह की जगह की ओर खींचना मकरूह है, और उसे उल्टा लिटाकर उसके सामने छुरी तेज़ करना भी मकरूह है। लेकिन ये सभी बातें ऐसी हैं जिनसे ज़बीहा हराम नहीं हो जाता; यह 'बदाए' में दर्ज है। जिस जानवर का नह्र (ऊंटों के लिए विशिष्ट वध) करना चाहिए, यदि उसे ज़बह किया गया, या जिसे ज़बह करना चाहिए उसे नह्र किया गया, तो यह जायज़ है, लेकिन मकरूह है क्योंकि उसने सुन्नत को छोड़ दिया; यह 'ख़ज़ाइनुल मुफ़्तीन' में है। यदि किसी ने ऊंट, गाय या बकरी की गर्दन पर प्रहार किया और सिर अलग कर दिया लेकिन बिस्मिल्लाह (तस्मिया) कहा, तो यदि प्रहार हलक की ओर से किया गया है, तो उसे खाया जाएगा, परंतु उस व्यक्ति ने बहुत बुरा काम किया। और यदि उसने रुक-रुक कर प्रहार किया जिससे सिर अलग हुआ, तो उसे नहीं खाया जाएगा क्योंकि वह ज़कोह (सही वध) से पहले मर गई और मुर्दार (शव) हो गई। और यदि उसके मरने से पहले उसकी नसें काट दी गईं, तो उन्हें खाया जाएगा क्योंकि वध के लिए आवश्यक क्रिया उसके जीवित रहते हुए पाई गई, लेकिन यह क्रिया मकरूह है क्योंकि उसने बिना आवश्यकता के उसकी पीड़ा बढ़ा दी। यदि उसने अपनी क्रिया बिना रुके पूरी कर दी, तो उसे खाया जाएगा क्योंकि ज़ाहिर यही है कि वह वध से ही मरी है; यह 'बदाए' में है। यदि जानवर को क़िबला की ओर मुँह किए बिना ज़बह किया गया, तो वह हलाल होगा लेकिन मकरूह है; यह 'जवाहर अल-अख्लाती' में है।

एक व्यक्ति का बैल मरने लगा और मालिक के पास वध का कोई औजार नहीं है सिवाय ऐसी चीज़ के जिससे वह केवल ज़बह की जगह पर घाव कर सकता है। यदि वह औजार खोजने जाता है, तो इस

बीच वह मर जाएगा और उसे हलाल करने का अवसर नहीं मिलेगा। अतः उसने उक्त बैल के वध-स्थान को घायल कर दिया, तो वह हलाल नहीं होगा। लेकिन यदि नसें काट दीं तो हलाल हो जाएगा; यह 'कुनिया' में है। नख़ (2) मकरूह है, अर्थात उसकी रीढ़ की हड्डी तक छुरी घोंपना, परंतु ज़बीहा खाया जाएगा। नख़ गर्दन की हड्डी में एक सफेद नस है (जिसे हराम मग़्ज़ कहते हैं)। कुछ ने कहा कि नख़ के अर्थ यह हैं कि उसका सिर पकड़कर खींचना ताकि वध-स्थान फैल जाए। कुछ ने कहा कि नख़ उसे कहते हैं कि तड़पने से ठंडा होने से पहले उसकी गर्दन तोड़ दी जाए। बहरहाल, यह सब मकरूह है क्योंकि यह बिना ज़रूरत के जानवर को तड़पाना है। निष्कर्ष यह है कि जो बात वध के लिए ज़रूरी नहीं है और उसमें जानवर को अधिक कष्ट होता है, वह मकरूह है; यह 'काफी' में है। बक़ाली ने कहा कि मुस्तहब यह है कि 'बिस्मिल्लाह अल्लाहु अकबर' बिना 'वाव' (और) के कहा जाए। 'वाव' के साथ कहना मकरूह है क्योंकि 'वाव' के कारण तुरंत तस्मिया (अल्लाह का नाम) लेना टूट जाता है; ऐसा 'मुहीत' में वर्णित है। यदि ज़बह करने वाले ने अल्लाह के नाम के साथ बिना 'वाव' के रसूलुल्लाह ﷺ का मुबारक नाम लिया, तो इसमें तीन स्थितियाँ हैं: या तो शब्द 'मुहम्मद' को ज़बर (नसब) के साथ पढ़ा, या ज़ेर (जर) के साथ, या पेश (रफ़ा) के साथ। इन सभी स्थितियों में ज़बीहा हलाल रहा क्योंकि हुज़ूर ﷺ का नाम अत्फ़ (जोड़ने) के तरीके से नहीं लिया गया है, अतः वही अर्थ समझा जाएगा जो उचित है, लेकिन यह मकरूह है क्योंकि बनावट में जुड़ाव पाया जाता है। और यदि उसने 'वाव' के साथ ज़िक्र किया, तो यदि ज़ेर (जर) के साथ किया तो ज़बीहा हलाल नहीं होगा क्योंकि वह व्यक्ति इन दोनों नामों के साथ ज़बह करने वाला बन गया (शिर्क की सूरत), और यदि उसने पेश (रफ़ा) से ज़िक्र किया तो ज़बीहा हलाल होगा।

1. कहा गया कि शायद जान निकलने के लिए ऐसा करते हैं। २. कहा गया कि ये दोनों कथन निकटवर्ती हैं, बल्कि वास्तव में दोनों का एक ही अर्थ है, केवल शब्दों का अंतर है। (१) ऐ अल्लाह, इसे फलां की ओर से स्वीकार कर। (२) अर्थात अभी ठंडा न हुआ हो।

لگانا اس حال میں مکروہ ہے اور حلقوم کی طرف سے ذبح کرنا مستحب ہے اور گدی کی طرف سے مکروہ ہے اور منجملہ مستحبات کے یہ ہے کہ رگیں سب کاٹے اور بعض نے کہا شاہرگ مکروہ ہے اور یہ مستحب ہے کہ فقط رگیں کاٹنے پر التفات کرے اور سر کو جدا نہ کر دے اور اگر ایسا کیا تو مکروہ اور ذبح کے وقت یہ کہنا اللھم تقبل عن فلاں مکروہ ہے ہاں یہ لفظ ذبح سے فارغ ہونے کے بعد کہے یا اس سے پہلے کہہ لے لیکن اگر اس نے ذبح کے وقت کہا تو ذبیحہ حرام نہ ہوگا اور ذبح کے بعد ٹھنڈا ہونے سے پہلے ذبیحہ کی کھال کھینچنا مکروہ ہے اور اگر ذبیحہ ٹھنڈا ہونے سے پہلے اس کی نخاع تک چھری بھونکی یا کھال کھینچی تو اس کے کھانے میں ڈر نہیں ہے اور مذبح کی طرف جانور کے پاؤں پکڑ کے کھینچ لے جانا مکروہ ہے اور اس کو الٹا کر اس کے سامنے چھری تیز کرنا مکروہ ہے مگر یہ سب باتیں ایسی ہیں کہ ان سے ذبیحہ حرام نہیں ہو جاتا ہے یہ بدائع میں ہے اور جس جانور کو نحر کرنا چاہیے اگر اس کو ذبح کیا یا جس کو ذبح کرنا چاہیے اس کو نحر کیا تو جائز ہے مگر مکروہ ہے کہ اس نے سنت کو ترک کیا یہ خزائن المفتین میں ہے۔ اگر کسی نے اونٹ یا گائے یا بکری کی گردن ماری اور سر جدا کر دیا مگر تسمیہ کہا پس اگر حلقوم کی طرف سے گردن ماری ہے تو وہ کھائی جائے گی مگر اس شخص نے بہت برا کیا اور اگر اس نے ورگی و توقف کے ساتھ گردن ماری ہے تو نہ کھائی جائے گی کیونکہ وہ ذکوۃ سے پہلے مرگئی پس مردار ہوگئی اور اگر اس کے مر جانے سے پہلے اس کی رگیں کاٹ دیں تو کھائی جائیں گی کیونکہ ذکوۃ میں جو فعل چاہیے ہے وہ اس کی زندگی میں پایا گیا لیکن یہ فعل مکروہ ہے کیونکہ اس نے بلا حاجت اس کی تکلیف بڑھا دی اور اگر اس نے اپنا فعل بلا توقف پورا کر دیا تو کھائی جائے گی کیونکہ ظاہر یہی ہے کہ وہ ذکوۃ سے مری ہے یہ بدائع میں ہے۔

اگر جانور کو بدوں قبلہ کی طرف توجہ کے ذبح کیا تو حلال ہو گا مگر مکروہ ہے یہ جواہر الاخلاطی میں ہے۔

ایک شخص کا بیل مرنے لگا اور مالک کے پاس کوئی آلہ نہیں ہے سوائے ایسی چیز کے جس سے اس کے مذبح میں جرح کر سکے اور اگر وہ ذبح کرنے کا آلہ تلاش کرتا ہے تو اتنی دیر میں وہ مر جائے گا اس کو حلال کرنا نہ ملے گا پس اس نے بیل مذکور کے مذبح کو مجروح کر دیا تو حلال نہ ہو گا لیکن اگر رگیں کاٹ دیں تو حلال ہو جائے گا یہ قنیہ میں ہے۔ نخع (۲) مکروہ ہے یعنی اس کے نخاع تک چھری بھونکنا مگر ذبیحہ کھایا جائے گا اور نخاع رقبہ کی ہڈی میں ایک سپید رگ ہے (جس کو حرام مغز کہتے ہیں) اور بعض نے فرمایا کہ نخع کے یہ معنی ہیں کہ اس کا سر پکڑ کر کھینچنا کہ اس کا مذبح پھیل جائے اور بعض نے فرمایا کہ نخع اس کو کہتے ہیں کہ تڑپنے سے ٹھنڈا ہونے سے پہلے اس کی گردن توڑ دے بہرحال یہ سب مکروہ ہے اس واسطے کہ یہ بلا ضرورت حیوان کی تعذیب ہے اور حاصل یہ ہے کہ جو بات ذکوۃ میں محتاج الیہ نہیں ہے مگر اس میں جانور کے حق میں زیادہ تکلیف ہے وہ مکروہ ہے وہ کافی میں ہے۔ بقالی نے فرمایا کہ مستحب یہ ہے کہ یوں کہے کہ بسم اللہ اللہ اکبر بدوں واد کے اور واد کے ساتھ مکروہ ہے کہ واد سے فی الفور تسمیہ ہونا منقطع ہو جاتا ہے کذا فی المحیط ایک ذبح کرنے والے نے اللہ تعالیٰ کے نام کے ساتھ ملا ہوا بغیر واد کے رسول مقبول ﷺ کا نام مبارک ذکر کیا تو اس میں تین صورتیں ہیں یا لفظ محمد کو نصب کے ساتھ ذکر کیا یا جر کے ساتھ یا رفع کے ساتھ اور ان سب صورتوں میں ذبیحہ حلال رہا اس واسطے کہ آنحضرت ﷺ کا نام بطریق عطف کے نہیں مذکور ہے پس متبادر ہو گا لیکن مکروہ ہے اس واسطے کہ صورت میں وصل پایا جاتا ہے اور اگر اس نے واو کے ساتھ ذکر کیا پس اگر جر کے ساتھ ذکر کیا تو ذبیحہ حلال نہ ہوگا کیونکہ یہ شخص ان دونوں ناموں کے ساتھ ذبح کرنے والا ہو گیا اور اگر اس نے رفع سے ذکر کیا تو ذبیحہ حلال ہو گا۔

۱۔ قال شاید جان نکلنے کے واسطے ایسا کرتے ہیں۔ ۲۔ قال یہ دونوں قول اقرب ہیں بلکہ فی الواقع دونوں کے ایک معنی ہیں فقط اختلاف عبادت ہے۔ (۱) اللہ اس کو فلاں کی طرف سے قبول فرما۔ (۲) یعنی ہنوز ٹھنڈا نہ ہوا ہو۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) [377] Book of Slaughter**

...because the word "Muhammad" would be the subject (mubtada), and if the word "Muhammad" is mentioned in the accusative case (nasab), the jurists (Mashaikh) have disagreed on its ruling. Similarly, if any other name is mentioned alongside the holy name of Allah Almighty, the same ruling applies; this is mentioned in *An-Nihayah*.

The translator states: regarding mentioning another name with Allah's name, there are two scenarios: mentioning it without the conjunction "and" (waw) or with it. In the first case—without "and"—if the *Tasmiyah* (Bismillah) is recited in Arabic, the ruling is as mentioned in the book. If expressed in Urdu, the ruling might be the same as in Arabic. However, Urdu speakers sometimes omit the conjunction (harf-e-atf), such as saying "We [and] you do this work together," even though a conjunction is intended. Regardless, the Sharia ruling is based on the spoken words. If "and" is explicitly mentioned (e.g., "In the name of Allah and Muhammad"), the slaughtered animal (zabiha) is haram (forbidden) in my view, because blood can only be lawfully shed by mentioning the name of Allah alone. The Arabic text states: "Verily, the lawfulness of shedding blood is only by mentioning the name of Allah Almighty alone. It is not permissible to include any name with His, even if it is one of the names of the Prophets or saints. No regard is given to the actions of the ignorant, even if they appear in the guise of scholars and jurists." Allah knows best.

If one says "Bismillah" without the final 'h' sound, it is halal if *Tasmiyah* was intended, as Arabs sometimes truncate words (tarkheem). Likewise, saying "O Allah, accept from so-and-so" makes the zabiha halal, but the act is disliked (makruh). If said before or after the slaughter, there is no harm; this is in *Al-Muheet as-Sarakhsi*. If during slaughter one says "La ilaha illallah," cuts half the vessels, then says "Muhammadur Rasulullah" and completes the cut, the animal is not halal because the *Tasmiyah* must exclusively feature Allah's name; this is in *Al-Qunyah*. Saying "Bismillah and may Allah bless Muhammad" makes it halal but disliked. *Al-Baqai* notes that mentioning Muhammad (PBUH) is halal if it coincides with *Tasmiyah*. Some scholars say if one intended to share the *Tasmiyah* with his name, it is haram, but if intended for blessing (tabarruk), it is halal but disliked; this is in *Al-Muheet*.

Intentional omission of *Tasmiyah* renders the animal haram. If omitted accidentally, it is halal. Both Muslims and People of the Book are subject to the same rule. *Al-Kafi* and *Fatawa Atabiyah* state that a child and an adult (1) are equal regarding accidental

omission; this is in *Tatarkhaniyah*. If a butcher intentionally omits it, the animal is haram and the butcher must pay its value as compensation. If he says "Bismillah" without inner intent, most scholars deem the meat edible; this is correct according to *Fatawa Qazi Khan*.

If one lays down a goat, takes a knife, says *Tasmiyah*, but then slaughters a different goat without repeating *Tasmiyah*, the second goat is haram. However, if one merely switches knives for the same goat, it is halal. In hunting, if one says *Tasmiyah* for one arrow but then uses another, the prey is haram. If after *Tasmiyah* one speaks briefly, drinks water, sharpens the knife, or eats a morsel (minor actions), the zabiha remains halal. However, prolonged speech or significant actions (*amal-e-kaseer*) make eating it disliked. The definition of "significant action" depends on local custom. *Az-Zafarani* states that sharpening the knife breaks the continuity of the *Tasmiyah*.

(1) Accidental omission of *Tasmiyah*. (2) Meaning whether the dislike is mild (tanzihi) or severe (tahrimi).

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) [377] किताबुज़-ज़बाइह (वध का अध्याय)**

...क्योंकि लफ्ज़ 'मुहम्मद' मुबतदा (subject) होगा, और अगर लफ्ज़ 'मुहम्मद' को नसब (accusative case) के साथ ज़िक्र किया गया, तो मशायख़ (विद्वानों) ने इसमें मतभेद किया है। इसी प्रकार, यदि अल्लाह तआला के पवित्र नाम के साथ कोई दूसरा नाम ज़िक्र किया जाए, तो उसमें भी यही हुक्म है; यह 'निहाया' में उल्लेखित है।

अनुवादक ने कहा है कि अल्लाह तआला के नाम के साथ दूसरा नाम ज़िक्र करने की दो स्थितियाँ हैं: या तो बिना 'वाव' (तथा) के ज़िक्र किया जाए या 'वाव' के साथ। पहली स्थिति में, यानी जब बिना 'वाव' के ज़िक्र किया गया, तो यदि अरबी भाषा में तस्मिया (बिस्मिल्लाह) कहा गया है, तो उसका हुक्म वही है जो किताब में वर्णित है। और अगर उर्दू भाषा में बयान किया गया, तो संभवतः वही हुक्म होगा जो अरबी में है, लेकिन उर्दू बोलने वाले कभी-कभी हर्फ़ए-अत्फ़ (संयोजक) को हटा देते हैं, जैसे 'हम तुम मिलकर यह काम कर लें', हालांकि यहाँ जुड़ाव (conjunction) ही उद्देश्य होता है। लेकिन ज़ाहिर है कि शरीयत के हुक्म की बुनियाद बोले गए शब्दों पर होगी। और अगर 'वाव' का ज़िक्र किया गया (जैसे: अल्लाह और मुहम्मद के नाम से), तो मेरे निकट हर हाल में ज़बीहा (वध किया हुआ जानवर) हराम है, क्योंकि इसमें रक्त बहाने की अनुमति केवल अल्लाह के नाम के उल्लेख से है। अरबी उद्धरण का अर्थ है: "निश्चय ही रक्त बहाने की वैधता केवल अल्लाह तआला के अकेले नाम के ज़िक्र से होती है, अतः अल्लाह के नाम के साथ किसी और नाम को मिलाना हलाल नहीं है, भले ही वह नबियों या वलियों के नामों में से हो। अज्ञानी लोग जो करते हैं उसका कोई महत्व नहीं है, भले ही वे मशायख़ और विद्वानों के रूप में हों।" अल्लाह ही बेहतर जानता है।

अगर किसी ने 'बिस्मिल्लाह' में 'ह' के बिना कहा, और उसका इरादा तस्मिया का था, तो ज़बीहा हलाल होगा, अन्यथा नहीं, क्योंकि अरब लोग कभी-कभी शब्दों को छोटा (तर्खीम) कर देते हैं। इसी तरह, अगर किसी ने कहा "ऐ अल्लाह, फ़लां की ओर से स्वीकार कर", तो ज़बीहा हलाल होगा लेकिन यह कार्य मकरूह (नापसंद) है। और यदि वध करने से पहले या बाद में ऐसा कहा, तो कोई डर नहीं है; यह 'मुहीत-ए-सरख़सी' में है। यदि वध के समय "ला इलाहा इल्लल्लाह" कहा और गर्दन की रगों आदि को आधा काट दिया, फिर "मुहम्मदुर रसूलुल्लाह" कहा और फिर बाकी काटा, तो ज़बीहा हलाल नहीं होगा, क्योंकि तस्मिया को केवल अल्लाह के नाम से कहना फ़र्ज़ है; यह 'कुनिया' में है। यदि कहा "बिस्मिल्लाह व सल्लल्लाहु अला मुहम्मद", तो ज़बीहा हलाल होगा लेकिन यह कार्य मकरूह है। 'बक़ाई' में लिखा है कि मुहम्मद (स.) का नाम लेने से ज़बीहा हलाल होगा यदि वह

तस्मिया के साथ संगत हो। कुछ विद्वानों ने कहा है कि यदि मुहम्मद (स.) के नाम को तस्मिया में शामिल करने का इरादा था, तो हलाल नहीं होगा। लेकिन यदि तबर्रुक (बरकत) के लिए कहा, तो हलाल होगा मगर मकरूह है।

जिस व्यक्ति ने जानबूझकर तस्मिया छोड़ दिया, उसका ज़बीहा हलाल नहीं होगा। यदि भूलवश छूट गया, तो हलाल होगा। मुसलमान और किताबी (ईसाई/यहूदी) दोनों के लिए तस्मिया छोड़ने का नियम समान है। 'काफ़ी' और 'फ़तावा-ए-अताबिया' में है कि बच्चा और वयस्क (1) भूलने के हुक्म में समान हैं; यह 'तातार ख़ानिया' में है। यदि किसी कसाई से वध कराया और उसने कहा कि "मैंने जानबूझकर तस्मिया छोड़ दिया", तो जानवर हलाल नहीं होगा और कसाई उसकी कीमत का हर्जाना देगा। यदि उसने 'बिस्मिल्लाह' कहा लेकिन दिल में नियत (इरादा) नहीं थी, तो अधिकांश मशायख़ के अनुसार वह ज़बीहा खाया जाएगा; यही सही है।

यदि किसी ने एक बकरी को लिटाया, छुरी हाथ में ली और तस्मिया कहा, फिर उसे छोड़कर दूसरी बकरी को वध किया और उस पर दोबारा तस्मिया नहीं कहा, तो वह हलाल नहीं होगी। लेकिन यदि छुरी बदली और उसी बकरी को वध किया, तो हलाल होगी। शिकार में यदि तीर लेकर तस्मिया कहा, फिर वह तीर रख दिया और दूसरा तीर मारा, तो वह शिकार हलाल नहीं होगा। यदि वध के लिए बकरी लिटाकर तस्मिया कहा, फिर बात की, पानी पिया, छुरी तेज़ की या एक निवाला खा लिया (जो कि 'अमल-ए-कसीर' या बड़ी रुकावट नहीं है), तो ज़बीहा हलाल होगा। यदि बहुत अधिक बातचीत की या कोई बड़ा काम किया, तो उसे खाना मकरूह होगा। 'अमल-ए-कसीर' की कोई निश्चित सीमा नहीं है, बल्कि स्थानीय लोगों की आदत के अनुसार तय होगा। 'अज़-ज़फ़रानी' में है कि यदि छुरी तेज़ की तो तस्मिया का सिलसिला टूट जाएगा।

(1) भूल से तस्मिया छोड़ दिया। (2) यानी मकरूह-ए-तन्ज़ीही (हल्का नापसंद) है या तहरीमी (सख्त नापसंद)।

---

گا کیونکہ لفظ محمد مبتدا ہوگا اور اگر لفظ محمد نصب کے ساتھ ذکر کیا تو مشائخ نے اس میں اختلاف کیا ہے اور علیٰ ہذا القیاس اگر اللہ تعالیٰ کے نام پاک کے ساتھ کوئی نام دوسرا ذکر کیا تو اس میں بھی حکم ہے یہ نہایہ میں ہے۔

وقال المترجم اللہ تعالیٰ کے نام کے ساتھ دوسرا نام ذکر کرنے میں دو صورتیں ہیں یا بلا واؤ ذکر کیا یا با واؤ ذکر کیا پس صورت اولیٰ میں یعنی جب بلا واؤ ذکر کیا پس یا تو بزبان عربی تسمیہ کہا سو اس کا حکم وہی ہے جو کتاب میں مذکور ہے اور اگر بزبان اردو بیان کیا تو شاید وہی حکم ہو جو عربی زبان میں ہے مگر اردو والے کبھی حرف عطف دور کر دیتے ہیں جیسے ہم تم مل کر یہ کام کر لیں حالانکہ عطف مقصود ہے مگر بظاہر بناءِ حکم شرعی ملفوظ پر ہوگی اور اگر واؤ ذکر کیا تو میرے نزدیک بہر حال ذبیحہ حرام ہے کیونکہ اس میں نصف وجرہ وغیرہ شقوق کا احتمال نہیں ہے فان حلة اراقة الدم انما یکون بذکر اسم اللہ تعالی وحدہ فلا یحل ادخال اسم مع اسمہ تعالی وان کان من اسماء الانبیاء لاولیاء ولا عبرة بما یفعلہ الجهلة وان کانوا في صورة المشائخ والعلماء واللہ تعالیٰ اعلم بالصواب اور اگر کسی نے بسم اللہ بغیر ہاء کہا پس اگر اس سے تسمیہ کا ارادہ کیا تو ذبیحہ حلال ہوگا ورنہ نہیں کیونکہ عرب کے لوگ کبھی ترخیم کر کے حذف کر دیتے ہیں اسی طرح اگر یوں کہا کہ اللھم تقبل من فلان تو ذبیحہ حلال ہوگا مگر فعل مکروہ ہے اور اگر ذبح کرنے سے پہلے یا بعد یوں کہا کہ اللھم تقبل من فلان تو کچھ ڈر نہیں ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر ذبح کے وقت کہا کہ لا الہ الا اللہ اور دونوں وداجین و حلق و مری میں سے نصف قطع کیا پھر کہا محمد رسول اللہ پھر باقی قطع کیا تو ذبیحہ حلال نہ ہوگا کہ تسمیہ کو بجز و اللہ تعالیٰ کے نام سے کہنا فرض ہے یہ قنیہ میں ہے اور اگر کہا بسم اللہ وصلی اللہ علی محمد یا کہا صلی اللہ علیٰ بدوں

واؤ کے تو ذبیحہ حلال ہوگا لیکن یہ فعل مکروہ ہے اور بقائی میں لکھا ہے محمد کہ ذبیحہ حلال ہوگا اگر موافقت تسمیہ ہو اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ اگر اس نے محمد صلی اللہ علیہ وآلہ وسلم کے ذکر سے اشتراک فی التسمیہ مراد لیا ہے تو ذبیحہ حلال نہ ہوگا اور اگر اس نے آنحضرت صلی اللہ علیہ وآلہ وسلم کے ذکر سے تبرک فعل ذبح قصد کیا تو ذبیحہ حلال ہوگا لیکن یہ فعل مکروہ ہے یہ محیط میں ہے اور جس شخص نے عمداً تسمیہ چھوڑ دیا ہے اس کا ذبیحہ حلال نہ ہوگا اور اگر اس نے بھولے سے چھوڑ دیا ہے تو حلال ہوگا اور مسلمان و کتابی دونوں تسمیہ چھوڑنے کے حکم میں یکساں ہیں کذا فی الکافی اور فتاویٰ عتابیہ میں ہے کہ لڑکا اور بالغ (۱) بھولنے کے حکم میں یکساں ہیں یہ تاتار خانیہ میں ہے۔ اگر کسی قصاب سے اپنا جانور ذبح کرایا اس نے کہا کہ میں نے عمداً تسمیہ چھوڑ دیا ہے تو جانور حلال نہ ہوگا اور قصاب اس جانور کی قیمت تاوان دے گا یہ خزانہ المفتین میں ہے اور اگر اس نے بسم اللہ کہا مگر اس کے دل میں نیت نہ آئی تو عامہ مشائخ کے نزدیک یہ ذبیحہ کھایا جائے گا اور یہی صحیح ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اگر ایک شخص نے بکری کو لٹایا اور چھری ہاتھ میں لی اور تسمیہ کہا پھر اس کو چھوڑ کر دوسری بکری کو ذبح کیا اور عمداً اس پر تسمیہ نہ کہا تو وہ حلال نہ ہوگی یہ خلاصہ میں ہے اور اگر ایک بکری کو لٹایا تاکہ ذبح کرے اور چھری ہاتھ میں لی۔ اور تسمیہ کہا پھر یہ چھری چھوڑ کر دوسری چھری لے کر اس سے بکری ذبح کر دی تو وہ حلال ہوگی اور اگر شکار میں ایک تیر لیا اور تسمیہ کہا پھر یہ تیر رکھ دیا اور دوسرا تیر لے کر مارا تو شکار اسی تسمیہ کی وجہ سے حلال نہ ہو گا یہ جواہر الاخلاطی میں ہے۔ اگر ذبح کرنے کے واسطے ایک بکری کو لٹایا اور تسمیہ کہا پھر کسی شخص نے کچھ کلام کیا یا پانی پیا یا چھری تیز کی یا ایک لقمہ کھا لیا یا اور اس کے مثل کوئی کام جو عمل کثیر نہیں ہے کیا تو ذبیحہ اس تسمیہ سے حلال ہو جائے گا اور اگر

بہت کلام کیا یا بہت عمل کیا تو اس ذبیحہ کا کھانا مکروہ ہوگا اور عمل کثیر کے واسطے اس مقام پر کوئی تقدیر نہیں بلکہ جہاں واقعہ ہو وہاں کے لوگوں کی عادت کو دیکھا جائے گا پس اگر لوگ اپنی عادت میں اس کام کو کثیر سمجھتے ہوں تو کثیر ہوگا اور اگر قلیل گنتے ہوں تو قلیل ہوگا پھر واضح ہو کہ اس صورت میں مکروہ کا لفظ ذکر فرمایا ہے اور مشائخ نے اس کراہت میں اختلاف (۲) کیا ہے اور اضحی زعفرانی میں ہے کہ اگر اپنی چھری تیز کی تو تسمیہ منقطع ہو جائے گا کچھ تفصیل نہیں ہے کہ عمل کثیر

(۱) بھولے سے تسمیہ چھوڑ دیا۔ (۲) یعنی کراہت تنزیہی ہے یا تحریمی۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (378) Book of Slaughtering (Kitab al-Dhabaih)**

Whether it is a little or a lot, this is comprehensive. If a person had recited the *Tasmiyah* (mentioning Allah's name) and then the goat escaped from his hand and stood up after lying down, and he then laid it down again, the *Tasmiyah* is considered severed; this is stated in *Bada'i*. If a person saw a herd of wild asses and said *Tasmiyah* and released his dog, and it caught an ass, it is *Halal* (permissible); this is in *Wajeez Kurdi*. If a person looked at his goats and said "Bismillah," then caught one, laid it down, and slaughtered it, deliberately omitting the *Tasmiyah* at that moment under the impression that the first *Tasmiyah* would suffice, then this goat shall not be eaten; this is in *Bada'i*. If one goat is laid upon another (1) and both are slaughtered with a single stroke of the knife, then one *Tasmiyah* is sufficient. Several wolves are in a person's hands; he said *Tasmiyah* and slaughtered one, then immediately slaughtered another behind it without saying *Tasmiyah*; the second one will not be *Halal*. However, if he ran the knife over all of them at once, then one *Tasmiyah* is sufficient; thus it is in *Khazanat al-Muftin*.

**Second Chapter:**

**Regarding the Description of Animals**

Concerning those whose consumption is permissible and those whose consumption is not permissible. Animals are essentially of two types: those that live in water and those that live on land. All animals that live in water are forbidden (*Haram*) to eat, except for fish, as only fish is specifically permissible. However, among fish, any fish that dies and floats to the surface is *Haram*. Land animals are of three kinds: first, those that have no blood at all; second, those that do not have flowing blood; third, those that have flowing blood. Animals with no blood at all, such as locusts, honeybees, wasps, flies, spiders, beetles, scorpions, etc., are all not permissible, except for the locust, as only the locust is *Halal*. Similarly, animals that do not have flowing blood, such as snakes, lizards (various types), and all insects and creeping things of the earth like mice, rats, porcupines, and desert lizards (2), etc., are all not permissible. No one has disagreed regarding their prohibition, except for the desert lizard (*Dhab*) (4), which is *Halal* according to Imam Shafi'i (RA). Animals with flowing blood are of two types: domestic (*Mustanas*) and wild (*Mutawahish*). Among cattle, those that are domestic, such as camels, cows, and goats, are *Halal* by consensus (*Ijma*). Those that are wild, such as deer, nilgai, wild asses, and wild camels, are also *Halal* by the consensus of Muslims. Among predators, those that are domestic, such

as dogs, cheetahs, and pet cats, are not permissible. Similarly, among wild predatory animals and birds of prey, every animal with fangs (5) and every bird with talons (6) is not permissible. Among wild predatory animals with fangs are lions, wolves, hyenas, leopards, cheetahs, foxes, badgers, otters, bears, monkeys, elephants, and their likenesses; no one has disagreed on their prohibition except for the hyena (*Kaftar*), which is *Halal* according to Imam Shafi'i (RA). Among birds, those with talons like hawks, falcons, eagles, kites, and vultures, are all *Haram*. Among birds that do not have talons, whether domestic like chickens and ducks, or wild like pigeons, doves, partridges, and the agricultural crow (the one that eats grain and crops), all these are *Halal* by consensus; this is in *Bada'i*. The turtle-dove (*Qumri*), Sudan bird, and starling...

---

1 - *Zi-Makhalab*: A predator with claws/talons like a hawk, etc. It should be clear that the permissibility or prohibition of animals is generally based on *Qiyas* (analogy), and the *Mujtahids* (jurists) have given rulings based on analogy; it is not definitive (*Qat'i*) in every sense. However, acting upon one's belief is obligatory, as is the rule in matters of *Ijtihad*. (1) Plural of *Qunfudh*, meaning porcupine. (2) Wild rat. (3) *Tivad*, Persian for weasel. (4) i.e., *Dhab* (Spiny-tailed lizard); having teeth. (5) Whose tail is like that of an insect, etc. (6) Predatory animal.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) (378) किताब अल-ज़बाइह (ज़बह के मसाइल)**

चाहे वह कम हो या ज़्यादा, यह व्यापक है। यदि किसी व्यक्ति ने तस्मिया (अल्लाह का नाम) कह दिया था, फिर बकरी हाथ से छूट गई और लेटने के बाद खड़ी हो गई, फिर उसने उसे दोबारा लिटाया, तो वह तस्मिया समाप्त हो गया; यह 'बदाइ' में है। यदि किसी व्यक्ति ने जंगली गधों का एक झुंड देखा और तस्मिया कहकर अपना कुत्ता छोड़ा, और उसने किसी गधे को पकड़ लिया, तो वह हलाल है; यह 'वजीज़ कुर्दी' में है। यदि किसी व्यक्ति ने अपनी बकरियों को देखा और 'बिस्मिल्लाह' कहा, फिर एक को पकड़कर लिटाया और ज़बह कर दिया, और जानबूझकर तस्मिया इस गुमान पर छोड़ दिया कि वही पहला तस्मिया काफी होगा, तो यह बकरी नहीं खाई जाएगी; यह 'बदाइ' में है। यदि एक बकरी को दूसरी बकरी पर लिटाया (1), और यदि दोनों को एक ही बार छुरी चलाने से ज़बह कर दिया, तो एक ही तस्मिया काफी है। एक व्यक्ति के हाथ में कई भेड़िए हैं, उसने तस्मिया कहकर एक को ज़बह किया, फिर उसके तुरंत बाद दूसरे को ज़बह किया लेकिन तस्मिया नहीं कहा, तो दूसरी हलाल नहीं होगी; और यदि उसने सब पर एक साथ छुरी चलाई, तो एक ही तस्मिया काफी है; ऐसा 'खज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है।

**दूसरा अध्याय:**

**उन जानवरों के बयान में**

जिनका खाना जायज़ है और जिनका खाना जायज़ नहीं है। जानवर वास्तव में दो प्रकार के होते हैं: एक वे जो पानी में रहते हैं और दूसरे वे जो ज़मीन (खुश्की) पर रहते हैं। जो जानवर पानी में रहते हैं, उन सबका खाना हराम है, सिवाय मछली के, क्योंकि विशेष रूप से मछली का खाना हलाल है। लेकिन मछलियों में भी जो मछली मरकर ऊपर तैर आए, वह हराम है। जो जानवर खुश्की पर रहते हैं, वे तीन तरह के होते हैं: पहले वे जिनमें बिल्कुल खून नहीं होता, दूसरे वे जिनमें बहने वाला खून नहीं होता, तीसरे वे जिनमें बहने वाला खून होता है। वे जानवर जिनमें बिल्कुल खून नहीं होता, जैसे टिड्डी, शहद की मक्खी, बर्र, मक्खियाँ, मकड़ी, जुद (एक प्रकार का कीड़ा), बिच्छू आदि, ये सब हलाल नहीं हैं, सिवाय टिड्डी के कि केवल टिड्डी हलाल है। इसी तरह वे जानवर जिनमें बहने वाला खून नहीं होता, जैसे सांप, छिपकली (विभिन्न प्रकार की), और तमाम कीड़े-मकौड़े और ज़मीन के रेंगने वाले जीव जैसे चूहा, बड़ा चूहा (जरद), साही, और ज़ब (रेगिस्तानी छिपकली) (2) आदि, ये सब हलाल नहीं हैं। इनकी हुरमत (निषेध) में किसी ने मतभेद नहीं किया है, सिवाय 'गोह' (रेगिस्तानी छिपकली)

(4) के कि वह इमाम शाफ़ई रह. के नज़दीक हलाल है। वे जानवर जिनमें बहने वाला खून होता है, वे दो प्रकार के होते हैं: एक पालतू (मुस्तानस) और दूसरे जंगली (मुतवहिश)। चौपायों में से जो पालतू हैं, जैसे ऊंट, गाय और बकरी, वे सर्वसम्मति (इजमा) से हलाल हैं। जो जंगली हैं, जैसे हिरण, नीलगाय, जंगली गधा और जंगली ऊंट, वे भी मुसलमानों की सर्वसम्मति से हलाल हैं। हिंसक पशुओं में से जो पालतू हैं, जैसे कुत्ता, चीता और पालतू बिल्ली, वे हलाल नहीं हैं। इसी तरह शिकार करने वाले जानवरों में जो जंगली हैं, जिन्हें जंगली शिकारी जानवर कहा जाता है, और शिकारी पक्षी, और हिंसक पशुओं में से हर वह जिसके पास नुकीले दांत (ज़ी-नाब) (5) हों और पक्षियों में से हर वह जिसके पास पंजे (ज़ी-मख़लब) (6) हों, हलाल नहीं हैं। जंगली हिंसक पशुओं में नुकीले दांतों वाले जैसे शेर, भेड़िया, लकड़बग्घा, तेंदुआ, चीता, लोमड़ी, बिज्जू, ऊदबिलाव, भालू, बंदर, हाथी और इनके समान जानवर; इन सबकी हुरमत में किसी ने मतभेद नहीं किया है सिवाय लकड़बग्घा (कफ़्तार) के कि वह इमाम शाफ़ई रह. के नज़दीक हलाल है। पक्षियों में से जिनके पास शिकार करने वाले पंजे होते हैं, जैसे बाज़, शिकरा, चरग, शाहीन, चील, गिद्ध और उकाब आदि, ये सब हराम हैं। पक्षियों में से जिनके पंजे नहीं होते और वे पालतू होते हैं, जैसे मुर्गी और बत्तख, या जंगली होते हैं जैसे कबूतर, फाख्ता, तीतर, बटेर और कौआ (जो अनाज और खेती खाता है), ये सब सर्वसम्मति से हलाल हैं; यह 'बदाइ' में है। कुमरी (पंडुक), सूदानिया और ज़रज़र के..

---

1 - ज़ी-मख़लब: शिकारी पंजा रखने वाला दरिंदा जैसे शिकरा आदि। यह स्पष्ट रहे कि जानवरों के हलाल या हराम होने का मामला आमतौर पर क़यास (तर्क) पर आधारित है और मुजतहिदों ने क़यास की दृष्टि से हुक्म दिया है, यह किसी तरह से क़तई (पूर्णतः निश्चित) नहीं है। लेकिन अपने विश्वास (अक़ीदे) पर अमल करना वाजिब है, जैसा कि इजतिहादी मसलों में हुक्म होता है। (1) क़ुनफ़ुज़ (साही) का बहुवचन। (2) जंगली चूहा। (3) फ़ारसी में नेवला। (4) यानी ज़ब (रेगिस्तानी छिपकली); दांतों वाला। (5) जिसकी पूंछ कीड़े-मकौड़े जैसी होती है। (6) दरिंदा (हिंसक)।

---

ہو یا قلیل ہو یہ محیط ہے اگر ایک شخص تسمیہ کہہ چکا تھا پھر بکری ہاتھ سے چھوٹ گئی اور لیٹنے سے اٹھ کھڑی ہوئی پھر اس نے اس کو لٹا دیا تو تسمیہ منقطع ہو گیا یہ بدائع میں ہے۔ ایک شخص نے حمار وحشی کا ایک گلہ دیکھ کر تسمیہ کہا اور اپنا کتا چھوڑا اور اس نے کوئی گدھا پکڑا تو وہ حلال ہے یہ وجیز کردی میں ہے۔ ایک شخص نے اپنی بکریوں کو دیکھا پس کہا کہ بسم اللہ پھر ایک کو پکڑ کر لٹایا اور ذبح کر دیا اور عمداً تسمیہ اس گمان پر چھوڑ دیا کہ وہی تسمیہ کافی ہو گا تو یہ بکری نہ کھائی جائے گی یہ بدائع میں ہے۔ اگر ایک بکری کو دوسری بکری پر لٹایا (۱) پس اگر دونوں میں ایک بار چھری چلانے میں ذبح کر ڈالا تو ایک ہی تسمیہ کافی ہے۔ چند گرگ بیان ایک شخص کے ہاتھ میں ہیں پس اس نے تسمیہ کہہ کر ایک کو ذبح کیا پھر اسی کو پیچھے ہی دوسرے کو ذبح کیا مگر تسمیہ نہ کہا تو دوسری حلال نہ ہو گی اور اگر اس نے سب پر ایک بار ہی چھری چلائی تو ایک ہی تسمیہ کافی ہے کذا فی خزانۃ المفتین۔

**باب دوسرا:**

**ان حیوانوں کے بیان میں**

جن کا کھانا جائز ہے اور جن کا کھانا نہیں جائز ہے حیوان دراصل دو قسم کے ہوتے ہیں ایک وہ جو پانی میں جیتے ہیں اور دوسرے وہ جو خشکی میں جیتے ہیں پس جو پانی میں جیتے ہیں ان سب حیوانوں کا کھانا حرام ہے سوائے مچھلی کے کہ خاصہ مچھلی کا کھانا حلال ہے لیکن مچھلیوں میں سے بھی جو مچھلی مر کر اوپر تیر آئے وہ حرام ہے اور جو حیوانات خشکی میں جیتے ہیں وہ تین طرح کے ہیں ایک وہ جن میں بالکل خون نہیں ہے دوم وہ کہ جن میں خون سائل

نہیں ہے سوم وہ کہ جن میں خون سائل ہے پس جن جانوروں میں بالکل خون نہیں ہے جیسے ٹڈی اور شہد کی مکھی و بھڑ اور مکھیاں و مکڑی و جزد و بچھو وغیرہ یہ سب حلال نہیں ہے سوائے ٹڈی کے کہ فقط ٹڈی حلال ہے اس طرح وہ جانور جن میں خون سائل نہیں ہے جیسے سانپ دوزخ و سام ابرص و تمام حشرات و ہوام الارض جیسے چوہا و جرد وقافذ و ضب اوپر (۲) نوع و بن (۳) عرس وغیرہ سب حلال نہیں ہیں اور ان جانوروں کی حرمت میں کسی نے خلاف نہیں کیا ہے مگر فقط گوہ (۴) میں کہ وہ امام شافعیؒ کے نزدیک حلال ہے اور جن جانوروں میں خون سائل ہے وہ دو طرح کے ہوتے ہیں ایک مستانس اور دوسرے متوحش پس بہائم یعنی چوپایہ میں سے جو مستانس ہیں وہ مثل اونٹ و گائے وبکری کے بالاجماع حلال ہیں اور جو متوحش ہیں جیسے ہرن و نیل گائے وحمار وحشی واونٹ وحشی پس بالا جماع مسلمین حلال ہیں اور دورندوں میں سے جو مستانس ہیں یعنی کتا و چیتا و پالتو بلی پس یہ حلال نہیں اس طرح سباع میں جو متوحش ہیں جن کو سباع وحشی کہتے ہیں اور سباع الطیر اور سباع میں سے ہر ذی (۵) ناب اور طیر میں سے ہر ذی مخلب (۶) حلال نہیں ہے پس سباعِ (۷) وحشی میں سے ذی ناب مثل شیر و بھیڑیا و کفتار و پلنگ و چیتا ولومڑی دستور بری دستجاب وسورودق ودب و قر دوفیل واس کے امثال پس ان سب کی حرمت میں کسی نے خلاف نہیں کیا ہے سوائے کفتار کے کہ وہ امام شافعیؒ کے نزدیک حلال ہے اور طیور میں سے جو ذی مخلب ہیں جیسے باز و باشہ و چرغ و شاہین و چیل و بعاث و نسر طائر و عقاب واس کے امثال یہ سب حرام ہیں اور طیور میں سے جن کی مخلب نہیں ہوتی ہے اور وہ مستانس ہیں جیسے مرغی و بط یا متوحش ہوتے ہیں جیسے کبوتر و فاختہ در گرباد کبک و کلنگ وزاغ زراعت یعنی جو کوا دانہ و کھیتی وغیرہ اور ایسی چیزیں کھاتا ہے یہ سب بالا جماع حلال ہیں یہ بدائع میں ہے۔ قمری و سودانیہ وزر زر کے

۱ - ذی مخلب درندہ پنجہ دار مانند شکرہ وغیرہ کے اور واضح ہو کہ جانوروں میں عموماً حلت وحرمت قیاسی ہے اور مجتہدوں نے بنظر قیاس حکم دیا ہے کسی طرح قطعی نہیں ہے۔ لیکن عمل اپنے اعتقاد پر واجب ہے۔ جیسے اجتہادی مسائل میں حکم ہے۔ (۱) جمع قنفذ بمعنی ساہی۔ (۲) جنگلی چوہا۔ (۳) تیواد فارسی راسو۔ (۴) یعنی ضب۔ دانتوں والا (۵) جس کی پونچ حشرہ وغیرہ کے مثل ہوتی ہے۔ (۶) درندہ۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 379 | Kitab al-Dhabai'h (The Book of Slaughters)**

There is no harm in eating it; this is stated in Fatawa Qazi Khan. The meat of a 'Jallala' (an animal that feeds on filth) is *Makruh* (disliked/reprehensible). A Jallala is a camel (or animal) whose primary diet consists of impurities/excrement, because by consuming mostly filth, its meat changes and becomes malodorous. Thus, eating it is Makruh, similar to eating putrid food. Qazi mentioned in the *Sharh Mukhtasar al-Tahawi* that deriving benefit (work, etc.) from it is not *Halal* (permissible) unless it is confined for several days and fed pure fodder; after that, benefiting from it becomes Halal. What Quduri mentioned is more excellent: that in the primary reports, no specific duration is fixed for its confinement. Similarly, it is narrated from Imam Muhammad that Imam Abu Hanifa did not fix a term for confinement but said it should be confined until it becomes clean. Imam Abu Yusuf narrated from Imam Abu Hanifa that it should be confined for three days. If an animal starts to smell and its state changes, it becomes a Jallala; its milk should not be drunk and its meat should not be eaten, though its sale and gifting remain permissible. This ruling applies when it eats only filth; if it mixes filth with other food, it is not a Jallala, and eating it is not Makruh as it will not smell. The meat of a free-roaming chicken is not Makruh even if it eats some filth, because filth does not dominate its diet; it mixes it with other things like grain. However, it is better to confine the chicken so its stomach is cleared before eating; this is mentioned in *Badai'*. Eating swallows (*Ababil*), *Salsal*, and hoopoes (*Hudhud*) is fine because they are not birds of prey (possessing talons).

It is narrated from Imam Abu Yusuf that he asked Imam Abu Hanifa about eating the magpie (*'Aqa'q*). He replied there is no harm. Then he said it eats filth, to which the Imam replied that it mixes filth with other things before eating. The principle according to Imam Azam is that any animal that mixes filth with other food, like a chicken, is fine to eat. However, Imam Abu Yusuf said the magpie is Makruh, just as a chicken (that only eats filth) is Makruh; this is in Fatawa Qazi Khan. Regarding *Wuz Banoor* (larvae in a wasp nest), there is no harm in eating them as long as life has not been breathed into them, as per *Al-Zahiriyya*. It is narrated from Sheikh Khalaf that eating a wasp's nest is Makruh. Regarding bats, it is mentioned in some places that eating them is permissible and in others that it is not, because they have teeth (possessing fangs). Some scholars said eating the *Shaqraq* (a green bird/roller) is not permissible, while eating the *Bum* (owl) is. The author says: I saw in my father’s notes that the *Shaqraq* is a green bird with a hint of red that attacks everything. It is

narrated from Ibrahim that the Imams considered every bird of prey and every filth/carrion-eater as Makruh. We follow this because the nature of humans finds filth-eaters like the common black crow and wild crow to be repulsive. However, the crow that lives in the wild eating only crops and grain is *Mubah* (permissible) and pure. If a crow mixes its diet, sometimes eating filth and sometimes grain, Imam Abu Yusuf considers it Makruh while Imam Azam considers it permissible, by analogy to the chicken.

1. The white larvae found in a wasp's nest are called *Wuz Banoor*. 2. *Bum* refers to the owl, a well-known bird. Allah knows best; hence the translator left the word as is.

(1) Whether male or female. (2) A bird; some say it is a dove (*Fakhta*). (3) A type of crow.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द 8 | 379 | किताब-उज़-ज़बाह (वध के नियम)**

इसे खाने में कोई हर्ज़ नहीं है, यह फ़तावा क़ाज़ी खान में उल्लेखित है। 'जल्लालह' (गंदगी खाने वाले जानवर) का मांस मकरूह (नापसंद) है। जल्लालह वह ऊँट (या जानवर) है जिसकी अधिकांश खुराक गंदगी/नजासत हो, क्योंकि अधिक गंदगी खाने से उसका मांस परिवर्तित होकर बदबूदार हो जाता है। इसलिए इसे खाना बदबूदार भोजन की तरह मकरूह है। क़ाज़ी ने शरह मुख्तसर अल-तहावी में ज़िक्र किया है कि उससे काम लेना आदि हलाल नहीं है, जब तक कि उसे कुछ दिन कैद रखकर (साफ) चारा न खिलाया जाए। तब उससे लाभ उठाना हलाल है। इमाम मोहम्मद के अनुसार इमाम अबू हनीफ़ा फ़रमाते थे कि कैद रखने की कोई निश्चित अवधि नहीं है, बल्कि तब तक कैद रखा जाए जब तक वह साफ न हो जाए। इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार तीन दिन कैद रखना चाहिए। यदि जानवर से बदबू आने लगे तो वह जल्लालह कहलाएगा, उसका दूध और मांस वर्जित होगा, लेकिन उसकी खरीद-बिक्री जायज़ है। यदि मुर्गी गंदगी के साथ दाना भी खाती है, तो वह जल्लालह नहीं होगी और उसे खाना मकरूह नहीं है, लेकिन बेहतर यह है कि उसे कुछ समय बंद रखा जाए ताकि पेट साफ हो जाए। अबाबील, सलसल और हुदहुद खाना जायज़ है क्योंकि ये शिकारी पंजे वाले (ज़ी-मख़लब) पक्षी नहीं हैं।

इमाम अबू यूसुफ़ ने इमाम अबू हनीफ़ा से 'अक़अक़' (एक प्रकार का कौआ) के बारे में पूछा, तो उन्होंने इसे जायज़ बताया क्योंकि वह अपनी खुराक मिला-जुलाकर खाता है। इमाम आज़म के अनुसार जो जानवर गंदगी को दूसरी चीज़ों के साथ मिलाकर खाए, उसमें हर्ज़ नहीं। ततैया (ज़ंबूर) के छत्ते के बच्चों (वूज़ बनूर) को खाना, जब तक उनमें जान न पड़ी हो, जायज़ है। चमगादड़ के बारे में मतभेद है; कुछ इसे जायज़ और कुछ नाजायज़ कहते हैं क्योंकि उसके दांत होते हैं। 'शक़राक़' (एक हरा शिकारी पक्षी) के बारे में कुछ ने मना किया है। 'बूम' (उल्लू) के बारे में भी विभिन्न विचार हैं। इब्राहिम से वर्णित है कि इमाम हर शिकारी और मुर्दार खाने वाले पक्षी को मकरूह समझते थे। जो कौआ केवल दाना और खेती खाता है, वह हलाल और पाक है। जो कौआ मिला-जुला खाता हो, इमाम अबू यूसुफ़ उसे मकरूह और इमाम आज़म उसे जायज़ समझते हैं (मुर्गी के तर्क पर)।

1. ततैया के छत्ते में सफ़ेद बच्चे 'वूज़ बनूर' कहलाते हैं। 2. बूम से तात्पर्य उल्लू है, जो एक प्रसिद्ध पक्षी है। वल्लाहु आलम (अल्लाह बेहतर जानता है)।

(1) चाहे नर हो या मादा। (2) एक पक्षी जिसे कुछ ने फाख्ता (पंडुक) कहा है। (3) एक प्रकार का कौआ।

---

(جدید اردو میں خلاصہ)

**فتاویٰ عالمگیری ..... جلد ۸ | ۳۷۹ | کتاب الذبائح**

اس کے کھانے میں کوئی حرج نہیں، یہ فتاویٰ قاضی خان میں درج ہے۔ 'جلالہ' (گندگی کھانے والے جانور) کا گوشت مکروہ ہے۔ جلالہ سے مراد وہ اونٹ (یا جانور) ہے جس کی زیادہ تر خوراک نجاست ہو، کیونکہ زیادہ نجاست کھانے سے اس کا گوشت تبدیل ہو کر بدبودار ہو جاتا ہے، اس لیے اسے کھانا بدبودار کھانے کی طرح مکروہ ہے۔ قاضی نے شرح مختصر الطحاوی میں لکھا ہے کہ اس سے کام لینا وغیرہ بھی حلال نہیں، الا یہ کہ اسے کچھ دن قید رکھ کر پاک چارہ کھلایا جائے، تب اس سے فائدہ اٹھانا حلال ہو جاتا ہے۔ قدوری کی ذکر کردہ بات زیادہ بہتر ہے کہ اس کے قید رکھنے کی کوئی خاص مدت مقرر نہیں ہے۔ امام محمدؒ کے مطابق امام ابو حنیفہؒ فرماتے تھے کہ اسے تب تک قید رکھا جائے جب تک وہ صاف نہ ہو جائے۔ امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ تین دن قید رکھا جائے۔ اگر جانور سے بدبو آنے لگے تو وہ جلالہ کہلائے گا، اس کا گوشت اور دودھ منع ہوگا لیکن اس کی خرید و فروخت جائز ہے۔ اگر مرغی گندگی کے ساتھ دانہ بھی کھاتی ہو تو وہ جلالہ نہیں ہوگی اور اس کا کھانا مکروہ نہیں، لیکن بہتر یہ ہے کہ اسے کچھ دیر بند رکھا جائے تاکہ پیٹ صاف ہو جائے۔ ابابیل، صلصل اور ہدہد کھانا جائز ہے کیونکہ یہ شکاری پرندے (ذی مخلب) نہیں ہیں۔

امام ابو یوسفؒ نے امام ابو حنیفہؒ سے 'عقعق' (ایک قسم کا کوا) کے بارے میں پوچھا تو انہوں نے اسے جائز قرار دیا کیونکہ وہ غذا ملا کر کھاتا ہے۔ امام اعظمؒ کے نزدیک جو جانور نجاست کو دوسری چیزوں کے ساتھ ملا کر کھائے اس میں حرج نہیں۔ زنبور (بھڑ) کے چھتے کے بچوں (ووز بنور) کو کھانا، جب تک ان میں جان نہ ہو، جائز ہے۔ چمگادڑ کے بارے میں اختلاف ہے؛

بعض اسے جائز اور بعض ناجائز کہتے ہیں کیونکہ اس کے دانت ہوتے ہیں۔ 'شقراق' (ایک سبز شکاری پرندہ) کے بارے میں بعض نے اسے منع کیا ہے۔ بوم (الو) کے بارے میں بھی مختلف آراء ہیں۔ ابراہیمؒ سے مروی ہے کہ ائمہ ہر شکاری اور مردار خور پرندے کو ناپسند کرتے تھے۔ جو کوا صرف دانہ اور کھیتی کھاتا ہے وہ حلال و پاک ہے۔ جو کوا ملا جلا کھاتا ہو اس کے بارے میں امام ابو یوسفؒ اسے مکروہ اور امام اعظمؒ اسے جائز سمجھتے ہیں، مرغی کی طرح۔

۱۔ بھڑ کے چھتے میں سفید رنگ کے بچے 'ووز بنور' کہلاتے ہیں۔ ۲۔ بوم سے مراد الو ہے، جو ایک معروف پرندہ ہے۔ واللہ اعلم۔

(۱) چاہے نر ہو یا مادہ۔ (۲) ایک پرندہ، بعض کے نزدیک فاختہ ہے۔ (۳) کوے کی ایک قسم۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 380 Book of Slaughter (Kitab al-Dhabaih)**

This is the correct view, as mentioned in *Al-Mabsut*. The meat of a domestic donkey is forbidden (haraam), and similarly, its milk and fat are also forbidden. Regarding the use of its fat for purposes other than consumption, the scholars (Masha'ikh) have disagreed; some have analogized it to consumption and declared it forbidden, while others have deemed it permissible (mubah), and this is the correct position, as stated in *Al-Dhakheera*.

If a wild donkey (e.g., a zebra) becomes domesticated—that is, it is raised as a pet and saddled like a domestic animal—then its meat can be eaten. However, if a domestic donkey turns wild, it still cannot be consumed; this is mentioned in *Sharh al-Tahawi*. According to Imam-e-Azam (Imam Abu Hanifa), horse meat is disliked (makruh), but the *Sahibayn* (Imams Abu Yusuf and Muhammad) differed on this. Scholars have debated the meaning of 'disliked' in this context, but the correct view is that Imam-e-Azam intended it as 'prohibitively disliked' (makruh tahrimi). The ruling on horse milk is the same as its meat (1), as found in *Fatawa Qadhi Khan*. Sheikh Imam Sarakhsi stated that the ruling given by Imam-e-Azam is more cautious (2), whereas the ruling of the *Sahibayn* is broader and more accommodating for the people (3), as in *Al-Sirajiyya*. A mule is disliked in all circumstances according to Imam-e-Azam, and the *Sahibayn* hold the same view if it is born from a male donkey and a female horse. However, if it is the offspring of a male horse and a female donkey, some have said it is not disliked according to the *Sahibayn*; this is in *Al-Dhakheera*. If a goat kid is raised on the milk of a donkey or a sow, and later fed only grass for several days, there is no harm in eating it because it assumes the status of (4) *jallalah* (an animal that eats filth). The ruling for *jallalah* is that if it is fed clean food for a few days, it becomes permissible. The same applies here; this is in *Fatawa Kubra*.

**Chapter Three:**

**Miscellaneous Issues (Mutafarriqat)**

A goat gave birth to an offspring that looks like a dog. This situation posed a legal complexity. If it makes a sound like a dog, it should not be eaten. If it sounds like a goat, it may be eaten. If it makes both sounds, water should be placed before it; if it laps it up with its tongue, it is considered a dog and is forbidden. If it drinks with its mouth, it is a goat and is permissible. If it does both, offer it fodder and meat; if it eats fodder, it is a goat; if it eats meat, it is a dog. If it eats both, slaughter it; if intestines are found inside, do not eat it, but if a stomach (*karsh/ojh*) is found, it is

edible. This is from *Jawahir al-Akhlati*. There are seven parts of a (halal) animal (5) that are forbidden to eat: 1) Flowing blood (6) that gushes forcefully from veins; 2) The penis; 3) Both testicles; 4) The vulva/vagina; 5) Glands/nodes; 6) The bladder; 7) The gallbladder. This is mentioned in *Bada'i'*.

**The Translator Said ***

Hair, hooves, horns, and bones were not specifically mentioned due to their inherent purity, and there is no prohibition or dislike regarding them. If someone slaughters a goat and it subsequently falls into water or from a height while struggling, its permissibility (*dhakat*) is not compromised. This is because the legal act of slaughter was correctly performed, and the soul departed as a result of that act. Once the slaughter is established, any subsequent movement or falling is inconsequential. Thus, the meat remains permissible as if it fell after death; this is in *Al-Mabsut*. A person's hen got caught in a tree...

(1) Meaning it is disliked. (2) Meaning there is more caution in labeling it disliked. (3) Meaning there is ease for the people. (4) A halal animal that starts eating filth. (5) Meaning from among halal animals. (6) Meaning it is permissible to eat liver, etc.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (८) ३८० किताबुद ज़बाइह (वध की पुस्तक)**

यही सही है, यह 'मबसूत' में है। गधे का मांस हराम है और इसी तरह उसका दूध और उसकी चर्बी भी हराम है। और खाने के अलावा अन्य रूपों में उसकी चर्बी का उपयोग करने में विद्वानों (मशाइख) ने मतभेद किया है। कुछ ने इसे खाने पर तुलना (कियास) करके हराम कहा है और कुछ ने इसे जायज़ (मुबाह) कहा है, और यही सही है। यह 'ज़खीरा' में है।

जंगली गधा (ज़ेबरा आदि) यदि पालतू हो जाए, यानी उसे पाल लिया जाए और उस पर जीन (काठी) डालना शुरू कर दी जाए, यानी पालतू की तरह हो जाए, तो उसे खाया जाएगा। और अगर पालतू गधा जंगली हो जाए, तो भी उसे नहीं खाया जाएगा; यह 'शरह तहवी' में है। इमाम-ए-आज़म के नज़दीक घोड़ों का मांस मकरूह (नापसंद) है, लेकिन साहिबैन (इमाम अबू युसूफ और इमाम मुहम्मद) ने इसमें मतभेद किया है। विद्वानों ने 'कराहियत' (नापसंदगी) के अर्थ में मतभेद किया है, लेकिन सही यह है कि इमाम-ए-आज़म ने 'मकरूह-ए-तहरीमी' (हटा हुआ मकरूह) मुराद लिया है। घोड़े के दूध का हुक्म उसके मांस (१) के समान है, जैसा कि 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। शेख इमाम सरख्सी ने फ़रमाया कि इमाम-ए-आज़म ने जो हुक्म दिया है वह अधिक सावधानी (एहतियात) वाला (२) है और साहिबैन ने जो हुक्म दिया है वह अधिक उदार (३) है, जैसा कि 'सिराजिया' में है। खच्चर इमाम-ए-आज़म के नज़दीक हर हाल में मकरूह है, और साहिबैन के नज़दीक भी यही हुक्म है, बशर्ते कि वह नर गधे और मादा घोड़ी से पैदा हुआ हो। लेकिन अगर नर घोड़े और मादा गधी से पैदा हुआ हो, तो कुछ ने कहा है कि साहिबैन के नज़दीक मकरूह नहीं है; यह 'ज़खीरा' में है। अगर बकरी के बच्चे को गधी या सुअरनी का दूध पिला-पिलाकर पाला गया, फिर अगर कुछ दिनों तक उसे घास खिलाई गई हो, तो उसके खाने में कोई हर्ज नहीं है क्योंकि वह 'जल्लालह' (४) के दर्जे में होगा। और 'जल्लालह' में यह हुक्म है कि अगर उसे कुछ दिनों तक केवल घास खिलाई जाए, तो उसे खाने में कोई हर्ज नहीं है। इस स्थिति में भी यही हुक्म है; यह 'फ़तावा कुबरा' में है।

**तीसरा अध्याय:**

**विविध विषय (मुतफ़र्रिक़ात)**

एक बकरी ने कुत्ते जैसी शक्ल का बच्चा दिया। इस स्थिति में पेचदगी पैदा हुई। अगर वह कुत्ते की तरह आवाज़ निकालता है, तो उसे नहीं खाया जाएगा। और अगर बकरी की तरह आवाज़ निकालता है, तो खाया जाएगा। और अगर दोनों की तरह आवाज़ निकालता है, तो उसके सामने पानी रखा

जाए; अगर वह जीभ से पिए, तो न खाया जाए क्योंकि वह कुत्ता है। और अगर मुँह से पिए, तो खाया जाए क्योंकि वह बकरी है। अगर दोनों तरह से पिए, तो भूसा और मांस उसके सामने रखा जाए; अगर उसने भूसा खाया तो वह बकरी है, खाई जाएगी। और अगर मांस खाया तो वह कुत्ता है, नहीं खाई जाएगी। और अगर दोनों को खाया तो उसे ज़िबह (वध) किया जाए; अगर आँतें निकलें तो न खाया जाए, और अगर ओझ (आमाशय) निकले तो खाया जाए। यह 'जवाहर अल-अख्लाती' में है। जानवर (५) के अंगों में से जिनका खाना हराम है वे सात हैं: पहला बहता हुआ खून (६) जो नसों से तेज़ी से निकले; दूसरा नर का लिंग; तीसरा दोनों अंडकोष; चौथा योनि; पाँचवाँ ग्रंथि; छठा मूत्राशय; सातवाँ पित्त की थैली। यह 'बदाइ' में है।

**अनुवादक ने कहा ***

बाल, खुर, सींग और हड्डी को उनकी पवित्रता के कारण वर्णित नहीं किया गया, जबकि उनमें कोई हराम या मकरूह होने की बात नहीं है। अगर किसी ने बकरी ज़िबह की और वह तड़पकर पानी में गिर गई या ऊँचाई से नीचे गिर पड़ी, तो उसके हलाल होने (ज़कोत) में कोई नुक़सान नहीं है क्योंकि ज़िबह की क्रिया उसमें स्थापित हो गई, इसलिए उसकी जान उसी क्रिया से निकली। ज़िबह की क्रिया पूर्ण होने के बाद उसके तड़पने का कोई विचार नहीं किया जाएगा। अतः यह मांस वैसा ही है जैसे ज़िबह के बाद पानी में गिर गया या ऊपर से नीचे गिर गया; यह 'मबसूत' में है। एक व्यक्ति की मुर्गी किसी पेड़ में लटक गई...

(१) यानी मकरूह है। (२) यानी मकरूह होने में अधिक सावधानी है। (३) यानी लोगों के लिए आसानी है। (४) जो हलाल जानवर गंदगी खाने लगे। (५) यानी हलाल जानवरों में से। (६) यानी जिगर आदि खाना जायज़ है।

---

یہی صحیح ہے یہ مبسوط میں ہے یا گدھے کا گوشت حرام ہے اور اسی طرح اس کا دودھ اور اس کی چربی بھی حرام ہے اور سوائے کھانے کے اور طور پر اس کی چربی استعمال کرنے میں مشائخ نے اختلاف کیا ہے پس بعض نے اس کو کھانے پر قیاس کر کے حرام ہے اور بعضوں نے اس کو مباح کہا ہے اور یہی صحیح ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔

حمار وحشی اگر اہل ہو جائے یعنی اس کو پالو کر لیں اور اس پر اکاف ڈالنا شروع کریں یعنی مثل پالو کے ہو جائے تو وہ کھایا جائے گا اور اگر پالو گدھا وحشی ہو جائے تو بھی نہیں کھایا جائے گا یہ شرح طحاوی میں ہے اور امام اعظمؒ کے نزدیک گھوڑوں کا گوشت مکروہ ہے مگر صاحبینؒ نے اس میں خلاف کیا ہے اور مشائخ نے کراہت کے معنی میں اختلاف کیا ہے مگر صحیح یہ ہے کہ امام اعظمؒ نے مکروہ سے مکروہ تحریمی مراد لیا ہے اور گھوڑے کے دودھ کا حکم اس کے گوشت (۱) کے مثل ہے کذا فی قتاویٰ قاضی خان اور شیخ امام سرخسیؒ نے فرمایا کہ امام اعظمؒ نے جو حکم دیا ہے وہ احوط (۲) ہے اور صاحبینؒ نے جو حکم دیا ہے اوسع (۳) ہے کذا فی السراجیہ اور بغل یعنی خچر سوا امام اعظمؒ کے نزدیک ہر حال میں اس کا گوشت مکروہ ہے اور صاحبینؒ کے نزدیک بھی یہی حکم ہے درصورتیکہ اسب نر و مادہ خرسے پیدا ہوا ہو اور اگر نر گدھے اور مادہ گھوڑی سے پیدا ہوا ہو تو بعض نے فرمایا کہ صاحبینؒ کے نزدیک مکروہ نہیں ہے یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر بکری کا بچہ گدھی یا سورنی کا دودھ پلا پلا کر پالا گیا پس اگر چند روز تک اس کو گھاس کھلائی گئی ہو تو اس کے کھانے میں کچھ ڈر نہیں ہے کیونکہ وہ بمنزلہ " (۴) جلالہ کے ہوگا اور جلالہ میں یہ حکم ہے کہ اگر چند روز تک اس کو خالی گھاس کھلائی جائے تو

اس کے کھانے میں کچھ ڈر نہیں ہے پس ایسا ہی اس صورت میں بھی حکم ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔

**باب سوئم:**

**متفرقات**

ایک بکری نے کتے کی صورت کا بچہ دیا پس اس کی حالت میں اشکال پیش آیا پس اگر کتے کی طرح آواز کرتا ہو تو نہ کھایا جائے گا اور اگر بکری کی طرح آواز کرتا ہو تو کھایا جائے گا اور اگر دونوں کی طرح آواز کرتا ہو تو اس کے سامنے پانی رکھا جائے پس اگر زبان سے پیے تو نہ کھایا جائے کیونکہ وہ کتا ہے اور اگر منہ سے پیے تو کھایا جائے کہ وہ بکری ہے اور اگر دونوں طرح سے پیے تو بھوسہ اور گوشت اس کے سامنے رکھا جائے پس اگر اس نے بھوسہ کھایا تو بکری ہے کھائی جائے گی اور اگر گوشت کھایا تو کتا ہے نہ کھایا جائے اور اگر اس نے دونوں کو کھایا تو ذبح کیا جائے پس اگر امعاء با آنتیں نکلیں تو نہ کھایا جائے اور اگر کرش یعنی اوجھ نکلا تو کھایا جائے یہ جواہر اخلاطی میں ہے۔ اجزاء (۵) حیوان میں سے جن کا کھانا حرام ہے وہ سات ہیں اول دم مسفوح یعنی خون (۶) جو تیزی کے ساتھ رگوں سے آئے اور دوم نر کا خایہ، سوم دونوں خصیے، چہارم قبل یعنی مادہ کی پیشاب گاہ، پنجم غدہ ، ششم مثانہ، ہفتم مراره یعنی پتا یہ بدائع میں ہے۔

**قال المترجم ***

مال وکھر و سینگ و ہڈی کو بسبب طہور کے بیان نہ کیا حالانکہ ان میں حرمت یا کراہت بضہ نہیں ہے اگر کسی نے کوئی بکری ذبح کی اور وہ تڑپ کر پانی میں گر گری مری یا اونچے سے نیچے گر پڑی تو اس کی ذکوۃ میں کچھ ضرر نہیں ہے کیونکہ فعل ذکوۃ اس میں مستقر ہوا پس اس کا

انزہاق روح اسی فعل سے ہوا اور بعد استقرار فعل ذکوۃ کے اس کے اضطراب کا کچھ اعتبار نہیں ہے پس یہ گوشت ہے کہ پانی میں گر پڑا یا اونچے سے نیچے گر پڑا ہے یہ مبسوط میں ہے۔ ایک شخص کی مرغی کسی درخت میں از کر لٹک گئی حالانکہ اس کا مالک اس

(۱) یعنی مکروہ ہے۔ (۲) یعنی مکروہ میں زیادہ احتیاط ہے۔ (۳) یعنی لوگوں پر آسانی ہے۔ (۴) جو حلال جانور نجاست کھانے لگے۔ (۵) یعنی حلال جانوروں میں سے۔ (۶) یعنی جگر وغیرہ کھانا جائز ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 381 Kitab al-Zabaih (The Book of Slaughtering)**

...cannot reach it. Therefore, if the owner does not fear its departure or its death, and despite that, he shoots an arrow or similar at it, it shall not be eaten. But if he fears its departure and then shoots an arrow, it shall be eaten. If a pigeon flies away from its owner and the owner or a stranger shoots an arrow at it, the scholars (Mashaikh) have stated that if it does not know how to return home, its consumption is halal (permissible), whether the arrow struck its throat (place of slaughter) or elsewhere, because this person is unable to perform 'Zakat-e-Ikhtiyari' (voluntary slaughter). However, if it knows how to return home, then if the arrow struck its throat, it is halal; if it struck elsewhere, the scholars differ, but the correct view is that it shall not be halal—this is narrated from Imam al-Azam (Abu Hanifa). This is because when the pigeon knows how to return home, the person is capable of 'Zakat-e-Ikhtiyari'. If a deer was raised at home and then escaped into the wild, and a person shoots it after saying 'Bismillah', it is halal if the arrow hits the throat; otherwise, it is not. But if it has become wild such that it cannot be caught without hunting, it is halal. This is in 'Fatawa Qadi Khan'. A person slaughtered a goat and cut the throat and veins, but while it still had life, someone cut a piece of meat from its body; it is halal to eat this cut piece. This is in 'Jawharah al-Nayyarah'.

A person ordered Zaid to slaughter his goat, but Zaid did not do so until the owner sold the goat to Amr. Then Zaid slaughtered it. In this case, Zaid is liable for its price and cannot recover this indemnity from the one who ordered him, whether he knew about the sale or not. This is in 'Fatawa Kubra'. If a wolf bites off a piece of the goat's rump, it is not permissible to eat that severed piece. The Arabs of the pre-Islamic era (Jahiliyyah) used to eat such pieces, but the Holy Prophet ﷺ said: "Whatever piece is cut from a living animal is carrion (dead meat)." Regarding hunting, it is to be seen: if the game could survive without that severed piece, its consumption is not permissible; if it could not survive without it, such as if the head was severed, then both parts are permissible to eat. If a wolf skins the skull of a goat, as long as it is alive, it will become halal if slaughtered by running a knife across the 'Labba' (the upper part of the neck between the jaws). This is in 'Wajiz Kardari'. In 'Mufti', it is stated that if a camel falls into a well and it is known it will not die from it, yet it dies, it shall not be eaten. If the situation is ambiguous (doubtful), then it may be eaten. This is in 'Kitab al-Sayd' of 'Al-Muhit'. A person entrusted his goats to a shepherd. The shepherd slaughtered one of them and claimed he did so when it was [already] dead, while the owner claimed it was slaughtered while still alive. The shepherd's statement

shall be accepted upon oath, and its consumption shall not be halal. This is in 'Fatawa Kubra'. If a wolf severs the neck veins of a goat and it is still alive, there is no way to perform 'Zakat' (slaughtering to make it halal) because the site of slaughter (the neck) is gone. This is in 'Wajiz Kardari'.

## Ibn Sama'ah narrates in his 'Nawadir' from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) that if a person cuts a goat into two pieces, and then another person cuts the neck veins while the head is still moving; or if one person rips open its stomach and removes its contents, and then another cuts the neck veins, the goat shall not be eaten because the act of the first person was fatal. Imam Quduri (may Allah have mercy on him) mentioned two scenarios: if the first person's blow was near the back, the goat shall not be eaten; if it was near the head, it shall be eaten. This is as stated in 'Al-Bada'i'.

- (L) The statement was accepted because he is a trustee (amin).
- (1) Therefore, 'Zakat-e-Iztirari' (slaughter by necessity) shall not be valid.
- (2) The state is ambiguous/doubtful.

...तक नहीं पहुँच सकता है। अतः यदि मालिक को उसके साथ से चले जाने या मर जाने का डर नहीं है और इसके बावजूद उसने उसे तीर आदि मारा तो वह नहीं खाई जाएगी। और यदि उसे उसके चले जाने का डर हो, फिर उसने तीर फेंका तो वह खाई जाएगी। और यदि कबूतर मालिक के पास से उड़ गया और उसे मालिक ने या किसी गैर ने तीर मारा, तो मशाइख़ (विद्वानों) ने फ़रमाया कि यदि वह घर आना नहीं जानता हो, तो उसका खाना हलाल है, चाहे यह तीर उसके वध-स्थल (गले) पर लगा हो या किसी और जगह, क्योंकि यह व्यक्ति 'ज़कात-ए-इख़्तियारी' (अपनी मर्जी से वध करने) में असमर्थ है। और यदि वह घर आना जानता हो, फिर यदि यह तीर उसके वध-स्थल पर लगा तो हलाल है, और यदि दूसरी जगह लगा तो मशाइख़ के बीच मतभेद है, और सही यह है कि वह हलाल नहीं होगा, यह इमाम-ए-आज़म से वर्णित है। क्योंकि जब वह कबूतर अपने घर आना जानता है, तो यह व्यक्ति 'ज़कात-ए-इख़्तियारी' पर सक्षम है। और यदि हिरनी घर में पल गई हो, फिर वह जंगल में निकल गई, फिर उसे किसी व्यक्ति ने बिस्मिल्लाह कहकर तीर मारा, तो यदि तीर उसके वध-स्थल पर पहुँचा तो हलाल है, अन्यथा हलाल नहीं है। लेकिन यदि वह जंगली हो गई हो कि बिना शिकार के हाथ न आए, तो हलाल होगी; यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। एक व्यक्ति ने एक बकरी ज़बह की और हलक़ व नसें काट दीं, लेकिन अभी उसमें जान बाक़ी थी कि किसी व्यक्ति ने उसके शरीर से एक टुकड़ा काट लिया, तो यह कटा हुआ टुकड़ा खाना हलाल है; यह 'जौहरा नायरा' में है।

एक व्यक्ति ने ज़ैद को हुक्म दिया कि मेरी बकरी ज़बह कर दे और उसने ज़बह नहीं की यहाँ तक कि मालिक ने वह बकरी अम्र के हाथ बेच दी, फिर ज़ैद ने उसे ज़बह कर डाला, तो वह उसकी क़ीमत का ज़िम्मेदार होगा और अपने हुक्म देने वाले से यह हर्जाना वापस नहीं ले सकता, चाहे उसे बिक्री का पता चला हो या न चला हो; यह 'फ़तावा कुबरा' में है। यदि भेड़िये ने बकरी की चपटी (पूँछ के नीचे का मांस) काट ली, तो यह कटी हुई चपटी खाना जायज़ नहीं है। ज़मान-ए-जाहिलियत में अरब के लोग इसे खा लेते थे, तब हज़रत मुहम्मद ﷺ ने फ़रमाया कि जीवित जानवर में से जो टुकड़ा अलग कर लिया जाए वह मुर्दार (मरा हुआ) है। और शिकार में देखा जाएगा कि यदि उक्त शिकार बिना उस अलग किए टुकड़े के जीवित रह सके तो उसका खाना जायज़ नहीं है, और यदि उसके बिना जीवित न रह सके जैसे सिर अलग किया हुआ, तो बाक़ी दोनों का खाना जायज़ है। यदि भेड़िये ने किसी बकरी की खोपड़ी उतार ली, तो जब तक वह जीवित है, तब तक उसके लब्बा यानी गर्दन के ऊपरी किनारे और जबड़े के बीच छुरी चलाकर ज़बह कर लेने से हलाल हो जाएगी; यह 'वजीज़

करदरी' में है। 'मुफ़्ती' में है कि एक ऊँट एक कुएँ में गिर पड़ा, पता है कि वह इससे नहीं मरेगा, फिर भी वह मर गया, तो नहीं खाया जाएगा। और यदि स्थिति संदिग्ध (मुश्किल) हो तो खाया जाएगा; यह 'मुहीत' की 'किताब अल-सैद' में है। एक व्यक्ति ने अपनी बकरियाँ एक चरवाहे के हवाले कीं, उसने उन बकरियों में से एक बकरी ज़बह की और कहा कि मैंने इसे ऐसी स्थिति में ज़बह किया है जब यह मुर्दा थी (या मरने वाली थी), और मालिक ने कहा कि नहीं बल्कि तुमने इसके जीवित होने की स्थिति में ज़बह किया है, तो क़सम के साथ चरवाहे की बात स्वीकार की जाएगी और उसका खाना हलाल नहीं होगा; यह 'फ़तावा कुबरा' में है। एक भेड़िये ने एक बकरी की गर्दन की नसें काट डालीं और वह अभी जीवित थी, तो उसकी ज़कात यानी ज़बह करके हलाल करने की कोई सूरत नहीं है क्योंकि ज़बह करने की जगह (गर्दन) जा चुकी है; यह 'वजीज़ करदरी' में है।

**इब्न समा'ह ने अपनी 'नवादिर' में इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) से रिवायत की है कि यदि एक व्यक्ति ने एक बकरी के दो टुकड़े कर दिए, फिर दूसरे ने उसकी गर्दन की नसें काट दीं जबकि उसका सिर हिल रहा था; या एक व्यक्ति ने उसका पेट फाड़कर जो कुछ उसमें था बाहर निकाल दिया, फिर दूसरे ने उसकी गर्दन की नसें काटीं, तो यह बकरी नहीं खाई जाएगी क्योंकि पहले व्यक्ति का कार्य घातक है। और इमाम कुदूरी (रह.) ने ज़िक्र किया कि इसमें दो स्थितियाँ हैं: यदि पहले व्यक्ति का प्रहार उसकी पीठ के पास हुआ तो यह बकरी नहीं खाई जाएगी, और यदि सिर के पास हुआ तो खाई जाएगी; जैसा कि 'बदई' में है।**

- (ल) इसलिए बात स्वीकार की गई क्योंकि वह अमानतदार (ट्रस्टी) है।
- (1) अतः 'ज़कात-ए-इज़तिरारी' (मजबूरी का वध) मान्य नहीं होगा।

• (2) स्थिति संदिग्ध (संदेहास्पद) हो।

تک نہیں پہنچ سکتا ہے پس اگر مالک کو اس کے ساتھ سے جاتے رہنے یا مر جانے کا خوف نہیں ہے اور با وجود اس کے اس نے اس کو تیر وغیرہ مارا تو وہ نہ کھائی جائے گی اور اگر اس کو اس کے جاتے رہنے کا خوف ہو پس اس نے تیر پھینک مارا تو کھائی جائے گی اور کبوتر اگر مالک کے پاس سے اڑ گیا اور اس کو مالک نے یا غیر نے تیر پھینک مارا تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر وہ گھر آنا نہ جانتا ہو تو اس کا کھانا حلال ہے خواہ یہ تیر اس کے مذبح پر لگا ہو یا اور جگہ لگا ہو کیونکہ یہ شخص ذکاۃِ اختیاری سے عاجز ہے اور اگر گھر آنا جانتا ہو پس اگر یہ تیر اس کے مذبح پر لگا تو حلال ہے اور اگر دوسری جگہ لگا تو مشائخ نے اختلاف کیا ہے اور صحیح یہ ہے کہ وہ حلال نہ ہو گا یہ امام اعظم سے مروی ہے کیونکہ جب وہ کبوتر اپنے گھر آنا جانتا ہے تو یہ شخص ذکوٰۃ (۱) اختیاری پر قادر ہے اور اگر ہرنی گھر میں پل گئی ہو پھر وہ جنگل میں نکل گئی پھر اس کو کسی شخص نے تسمیہ کہہ کر تیر مارا پس اگر اس کی مذبح پر پہنچا تو حلال ہے ورنہ نہیں حلال ہے لیکن اگر وہ وحشی ہو گئی ہو کہ بدوں شکار کے ہاتھ نہ آئے تو حلال ہو گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ ایک شخص نے ایک بکری ذبح کی اور حلقوم و رگیں کاٹ ڈالیں مگر ہنوز اس میں جان باقی تھی کہ کسی شخص نے اس کے جسم سے ایک ٹکڑا کاٹ لیا تو یہ کٹا ہوا ٹکڑا کھانا حلال ہے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے۔

ایک شخص نے زید کو حکم دیا کہ میری بکری ذبح کر دے اور اس نے ذبح نہ کی یہاں تک کہ مالک نے وہ بکری عمرو کے ہاتھ فروخت کر دی پھر زید نے اس کو ذبح کر ڈالا تو اس کی قیمت کا ضامن ہو گا اور اپنے حکم دینے والے سے یہ مال تاوان واپس نہیں لے سکتا ہے خواہ اس کو بیع کا علم ہوا ہو یا نہ ہوا ہو یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ اگر بھیڑیے نے بکری کی چکتی کاٹ لی تو یہ

کٹی ہوئی چکتی کھانا روا نہیں ہے اور زمانہ جاہلیت کے عرب لوگ اس کو کھا لیتے تھے پس آنحضرتؐ نے فرمایا کہ زندہ جانور میں سے جو ٹکڑا جدا کر لیا جائے وہ مردار ہے اور شکار میں دیکھا جائے گا کہ اگر صید مذکور بدوں اس جدا کیے ٹکڑے کے زندہ رہ سکے تو اس کا کھانا روا نہیں ہے اور اگر بدوں اس کے زندہ نہ رہ سکے جیسے سر تو جدا کیا ہوا اور باقی دونوں کا کھانا روا ہے۔ اگر بھیڑیے نے کسی بکری کی کھوپڑی اتار لی تو جب تک وہ زندہ ہے تب تک اس کے لبہ یعنی اوپر کے کنارہ گردن اور جبڑے کے درمیان چھری چلا کر ذبح کر لینے سے حلال ہو جائے گی یہ وجیز کردری میں ہے۔ مفتی میں ہے کہ ایک اونٹ ایک کنویں میں گر پڑا جانتا ہے کہ اس سے نہ مرے گا حالانکہ وہ مر گیا تو نہ کھایا جائے گا اور اگر مشکل (۲) ہو تو کھایا جائے گا یہ محیط کی کتاب الصید میں ہے۔ ایک شخص نے اپنی بکریاں ایک چرواہے کے سپرد کیں اس نے ان بکریوں میں سے ایک بکری ذبح کی اور کہا کہ میں نے اس کو ایسی حالت میں ذبح کیا ہے کہ جب یہ مردہ تھی اور مالک نے کہا کہ نہیں بلکہ تو نے اس کے زندہ ہونے کی حالت میں ذبح کیا ہے تو قسم سے چرواہے کا قول قبولؔ ہو گا اور اس کا کھانا حلال نہ ہو گا یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ ایک بھیڑیے نے ایک بکری کی رگہائے گردن کاٹ ڈالیں اور ہنوز وہ زندہ موجود تھی تو اس کی ذکوٰۃ یعنی ذبح کر کے حلالی کرنے کی کوئی صورت نہیں ہے کیونکہ محل ذبح جاتا رہا ہے یہ وجیز کردری میں ہے۔

**ابن سماعہ نے اپنی نوادر میں امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ اگر ایک شخص نے ایک بکری کے دو ٹکڑے کر دیے پھر دوسرے نے اس کی رگہائے گردن کاٹ دیں درحالانکہ اس کا سر حرکت کرتا تھا یا ایک شخص نے اس کا پیٹ پھاڑ کر جو کچھ اس کے پیٹ میں تھا باہر نکال دیا پھر دوسرے نے اس کی رگہائے گردن کاٹ دیں تو یہ بکری نہ کھائی جائے گی کیونکہ پہلے شخص کا فعل قاتل ہے اور امام قدوریؒ نے ذکر کیا کہ اس میں دو صورتیں ہیں کہ اگر پہلے شخص کی ضرب اس کے پیٹھ کے متصل واقع ہوئی تو یہ بکری نہ کھائی جائے گی اور اگر سر کے متصل واقع ہوئی تو کھائی جائے گی کذا فی البدائع۔**

لـ اس واسطے قول قبول ہوا کہ وہ امانت دار ہے۔ (۱) پس ذکوٰۃ اضطراری معتبر نہ ہو گی۔ (۲) حالت مشتبہ ہو۔

**Kitab al-Udhhiyah (The Book of Sacrifice)** It consists of nine chapters.

## Chapter One: On the definition, pillar, attribute, conditions, and ruling of Udhhiyah (Sacrifice)

Regarding the person upon whom it is obligatory and the person upon whom it is not: In Sharia, 'Udhhiyah' is defined as a specific animal of a specific age that is slaughtered on specific days with the intention of seeking proximity to God at the time when the conditions and causes exist. This is mentioned in 'at-Tabyin'. Slaughtering an animal that is permissible for sacrifice during the days of sacrifice with the intention of sacrifice is the 'rukn' (pillar/essential element) of Udhhiyah. A 'rukn' is that upon which the existence of a thing depends, and the existence of Udhhiyah depends on this act; hence, it is the pillar, as stated in 'an-Nihayah'. Regarding the attribute of 'tadhiyah' (the act of sacrifice), it is of two types: obligatory (wajib) and voluntary (tatavvu) (1).

The obligatory type has several categories: among them is that which is obligatory upon both the wealthy (ghani) and the poor (faqir); among them is that which is obligatory upon the poor but not the wealthy; and among them is that which is obligatory upon the wealthy but not the poor. The sacrifice that is obligatory on both the wealthy and the poor is the 'manthūr bihi' (the subject of a vow). For example, someone says, "For the sake of Allah, it is obligatory upon me to sacrifice a goat or a camel, or this goat or this camel." Similarly, if a person made such a statement in a state of extreme poverty and then became prosperous during the days (2) of sacrifice (Nahar), then sacrificing two goats becomes obligatory (3) upon him. This is because at the time of the vow, no sacrifice was obligatory upon him; therefore, this statement cannot be interpreted merely as news, but must be taken as a Sharia reality. Thus, one sacrifice becomes obligatory due to his vow, and the second becomes obligatory by the command of Sharia.

A voluntary (tatavvu) sacrifice is that performed by a traveler or a poor person for whom no vow of sacrifice exists and no purchase of an animal for sacrifice has been established. It is voluntary because the cause and condition of obligation are absent. The sacrifice that is obligatory upon the poor but not the wealthy is that which the poor person purchased specifically for the purpose of sacrifice. For instance, a poor person bought a goat with the intention, "I will sacrifice this." If the person were wealthy, the mere purchase would not make it obligatory. If a person already owns a

goat and then intends to sacrifice it, or if someone buys a goat but does not have the intention of sacrifice at the time of purchase, then the sacrifice does not become obligatory upon them, whether they are poor or wealthy.

The sacrifice that is obligatory only upon the wealthy and not the poor is that which becomes obligatory without a vow or a specific purchase intention, i.e., it is obligatory as a mark of gratitude for the blessing of life and to revive the ancestral tradition of Ibrahim (Khalilullah, peace be upon him), as Allah Almighty commanded Ibrahim (peace be upon him) to slaughter a ram during those days. This is mentioned in 'Bada'i'.

---

1. The translator says: "Specific animal" refers to animals suitable for sacrifice, such as goats, cattle, and camels. "Specific age" means, for instance, a goat should not be less than a year old according to the most correct opinion. "Specific days" means from the 10th of Dhul-Hijjah until the end of the days of sacrifice.
2. The translator says: Scholars differ on whether the ransomed sacrifice was in place of Isaac or Ishmael. The opinion of Tahawi, Shami, Bahr al-Ulum, etc., favors the former, but the more correct and authentic view is that it was Ishmael; indeed, this is the truth. The translator has provided a well-researched account in the Urdu commentary titled 'Mawahib al-Rahman'. (1) Nafl, meaning it is not obligatory but performed for spiritual reward. (2) The days of sacrifice. (3) Meaning, for the animal vowed, two will become obligatory.

**किताब अल-उज़हिया (कुर्बानी की किताब)** इसमें नौ अध्याय हैं।

**अध्याय एक: उज़हिया की परिभाषा, आधार (रुकन), विशेषता, शर्तें और आदेश के वर्णन में**

किस व्यक्ति पर यह अनिवार्य है और किस पर नहीं, इसके वर्णन में— शरीयत में, एक विशिष्ट जानवर को एक विशिष्ट आयु में, जो विशिष्ट दिनों में, अल्लाह की निकटता की नियत से, शर्तों और कारणों की उपस्थिति के समय इस नियत से ज़बह किया जाए, उसे 'उज़हिया' (कुर्बानी) कहते हैं। यह 'तब्बीन' में है। और जिस जानवर की कुर्बानी करना जायज़ है, उसे कुर्बानी की नियत से कुर्बानी के दिनों में ज़बह करना उज़हिया का 'रुकन' (आधार) है, क्योंकि रुकन उसे कहते हैं जिससे उस चीज़ का अस्तित्व हो, और उज़हिया का अस्तित्व इसी क्रिया से है। अतः यह रुकन हुआ, जैसा कि 'अन्-निहाया' में है। रही बात 'तसहिया' (कुर्बानी करने) की विशेषता के वर्णन की, तो तसहिया दो प्रकार का होता है: वाजिब (अनिवार्य) और ततव्वु (ऐच्छिक) (1)।

फिर वाजिब के कई प्रकार हैं: उनमें से एक यह कि धनी और निर्धन दोनों पर वाजिब हो; एक यह कि केवल निर्धन पर वाजिब हो, धनी पर नहीं; और एक यह कि केवल धनी पर वाजिब हो, निर्धन पर नहीं। अतः जो धनी और निर्धन दोनों पर वाजिब होता है, वह 'मन्ज़ूर-बिही' है यानी जिसकी मन्नत मानी गई हो। उदाहरण के लिए, किसी ने कहा कि अल्लाह के लिए मुझ पर अनिवार्य है कि मैं एक बकरी या एक ऊँट, या यह बकरी या यह ऊँट कुर्बान करूँ। इसी तरह अगर उसने ऐसी बात अत्यंत गरीबी की स्थिति में कही, फिर वह 'नहर' (कुर्बानी) के दिनों (2) में समृद्ध हो गया, तो उस पर दो बकरियों की कुर्बानी वाजिब (3) होगी, क्योंकि मन्नत के समय उस पर कोई कुर्बानी वाजिब नहीं थी। अतः इस कथन को केवल सूचना नहीं माना जा सकता, बल्कि इसे शरीयत की वास्तविकता पर आधारित माना जाएगा। इसलिए एक कुर्बानी मन्नत के कारण वाजिब होगी और दूसरी शरीयत के आदेश के कारण वाजिब होगी।

और ऐच्छिक (ततव्वु) कुर्बानी वह है जो मुसाफिर (यात्री) या निर्धन व्यक्ति करे, जिसकी ओर से कुर्बानी की मन्नत नहीं पाई गई और न ही कुर्बानी के लिए जानवर खरीदना सिद्ध हुआ है। और यह ऐच्छिक इसलिए होगी क्योंकि अनिवार्यता का कारण और शर्त अनुपस्थित है। और जो कुर्बानी निर्धन पर वाजिब होती है धनी पर नहीं, वह ऐसी कुर्बानी है जिसे निर्धन ने कुर्बानी के इरादे से खरीदा हो। उदाहरण के लिए, एक निर्धन ने एक बकरी इस नियत से खरीदी कि मैं इसकी कुर्बानी करूँगा। और

यदि वह धनी होता, तो केवल खरीदने से उस पर वाजिब नहीं होती। और यदि किसी व्यक्ति के स्वामित्व में पहले से एक बकरी हो और वह नियत करे कि मैं इसकी कुर्बानी करूँगा, या किसी ने बकरी खरीदी पर खरीदते समय कुर्बानी की नियत नहीं की, तो उस पर कुर्बानी वाजिब नहीं होगी, चाहे वह व्यक्ति निर्धन हो या धनी।

और जो कुर्बानी केवल धनी पर वाजिब होती है निर्धन पर नहीं, वह वह है जो मन्नत और कुर्बानी की नियत से खरीदे बिना ही अनिवार्य हो, यानी जीवन की नेमत के शुक्र के रूप में और हज़रत खलीलुल्लाह (इब्राहीम अलैहिस्सलाम) के पैतृक तरीके को जीवित करने के उद्देश्य से वाजिब हो, क्योंकि अल्लाह तआला ने उन दिनों में हज़रत खलीलुल्लाह अलैहिस्सलाम को एक मेंढा ज़बह करने का आदेश दिया था। यह 'बदाये' में है।

---

1. अनुवादक ने कहा: 'विशिष्ट पशु' से तात्पर्य उन जानवरों से है जिनकी कुर्बानी दी जाती है, जैसे बकरी, गाय, ऊँट। 'विशिष्ट आयु' से तात्पर्य है, जैसे बकरा, जो अधिक सही राय के अनुसार एक वर्ष से कम का न हो। 'विशिष्ट दिन' से तात्पर्य है ज़िल-हिज्जा की 10वीं तारीख से कुर्बानी के दिनों के अंत तक।
2. अनुवादक ने कहा: विद्वानों में मतभेद है कि फ़िदया (बलिदान) के रूप में ज़बह किया गया पशु हज़रत इस्हाक़ के बदले था या हज़रत इस्माईल के बदले। तहावी, शामी और बहरुल-उलूम आदि की राय पहले के पक्ष में है, लेकिन अधिक सही यह है कि वह हज़रत इस्माईल थे, बल्कि यही सही है। अनुवादक ने उर्दू तफ़्सीर 'मवाहिब-उर-रहमान' में इसका विस्तार से वर्णन किया है। (1) नफ्ल, यानी अनिवार्य नहीं बल्कि सवाब (पुण्य) की दृष्टि से है। (2) कुर्बानी के दिन। (3) यानी जिस जानवर की मन्नत मानी है, वह दो वाजिब होंगी।

**کتاب الاضحیہ** اس میں نو ابواب ہیں **باب اول: اضحیہ کی تفسیر، رکن، صفت، شرائط و حکم کے بیان میں** جس شخص پر یہ واجب ہوتا ہے اور جس پر نہیں ہوتا ہے اس کے بیان میں شرع میں حیوانِ مخصوص بس مخصوص کو جو یوم مخصوص میں بہ نیت قربت وقت وجود شرائط و سبب اس نیت کے ذبح کیا جائے اضحیہ کہتے ہیں یہ تبیین میں ہے اور جس جانور کا قربانی کرنا جائز ہے اس کو قربانی کی نیت سے قربانی کے دنوں میں ذبح کرنا اضحیہ کا رکن ہے کیونکہ رکن اس شے کو کہتے ہیں جس سے اس شے کا تقوم ہو اور اضحیہ کا تقوم اس فعل سے ہے پس یہ رکن ہوا کذا فی النہایہ رہا صفت تضحیہ کا بیان سو تضحیہ دو طرح کا ہوتا ہے واجب و تطوع (۱) پھر واجب کے چند انواع ہیں از انجملہ یہ کہ غنی و فقیر دونوں پر واجب ہو از انجملہ یہ کہ فقیر پر واجب ہو نہ غنی پر۔ از انجملہ یہ کہ غنی پر واجب ہو نہ فقیر پر پس جو غنی و فقیر دونوں پر واجب ہوتا ہے وہ منذور بہ ہے یعنی نذر کی ہو مثلاً کہا کہ اللہ تعالیٰ کے واسطے مجھ پر واجب ہے کہ میں ایک بکری یا ایک بدنہ یا یہ بکری یا یہ بدنہ قربانی کروں اس طرح اگر اس نے ایسا کلام اتنی تنگدستی کی حالت میں کہا پھر وہ ایام (۲) نحر میں فراخ حال ہو گیا تو اس پر دو بکریاں قربانی کرنی واجب (۳) ہوں گے کیونکہ نذر کے وقت اس پر کوئی قربانی واجب نہ تھی پس یہ کلام محتمل اخبار نہیں ہو سکتا ہے تو حقیقت شرعیہ پر محمول کیا جائے گا پس ایک اضحیہ اس پر اپنی نذر کی وجہ سے واجب ہو گا اور دوسرا با یجاب شرع واجب ہو گا اور اضحیہ تطوع وہ ہے جو مسافر یا فقیر کرے جس کی طرف سے قربانی کرنے کی نذر نہیں پائی گئی اور نہ اضحیہ کی خرید ثابت ہوئی ہے اور تطوع اس وجہ سے ہو گا کہ سبب و شرط وجوب معدوم ہے اور جو اضحیہ کہ فقیر پر واجب ہوتا ہے نہ غنی پر وہ ایسا اضحیہ ہے جس کو فقیر نے اضحیہ کے

واسطے خرید کیا مثلاً ایک فقیر نے ایک بکری بدیں نیت خریدی کہ میں اس کی قربانی کروں گا اور اگر غنی ہو تو اس پر خریدنے سے واجب نہ ہو گی اور اگر کسی شخص کی ملک میں ایک بکری ہو پس اس نے نیت کی کہ میں اس کی قربانی کروں گا یا کسی نے ایک بکری خریدی مگر خریدنے کے وقت اس کی قربانی کرنے کی نیت نہ کی کہ اس کی قربانی کروں تو قربانی اس پر واجب نہ ہو جائے گی خواہ یہ شخص فقیر ہو یا غنی ہو اور جو اضحیہ کہ فقط غنی پر واجب ہوتا ہے نہ فقیر پر وہ ہے کہ بدوں نذر و بدون نیت اضحیہ خرید کرنے کے واجب ہو یعنی شکر نعمت حیات اور طریقہ موروثی حضرت خلیل اللہ علی نبینا و علیہ السلام زندہ کرنے کی غرض سے واجب ہو کہ حضرت خلیل اللہ علیہ السلام کو اللہ تعالیٰ نے ان ایام میں ایک مینڈھا ذبح کرنے کا حکم فرمایا تھا یہ بدائع میں ہے۔

---

۱ قال المترجم قولہ حیوان مخصوص یعنی وہ جانور جو قربانی ہوتے ہیں۔ جیسے بکری گائے، اونٹ قولہ سن مخصوص مثلاً بکرا علیٰ الاصح سال بھر سے کم نہ ہو قولہ یوم مخصوص یعنی ذی الحجہ کی دسویں سے تا آخر ایام قربانی۔ ۲ قال المترجم علماء مختلف ہیں کہ ذبیحہ فدیہ اسحاق تھا یا فدیہ اسماعیل اور طحاوی و شامی و بحر العلوم وغیرہ کے قول اولیٰ ہے اور اصح یہ ہے کہ فدیہ اسماعیل تھا بلکہ یہی صحیح ہے اور مترجم نے تفسیر اردو میں جس کا نام مواہب الرحمن ہے خوب محقق بیان کیا ہے۔ (۱) نفل یعنی واجب نہیں مگر بنظر ثواب ہے۔ (۲) ایام قربانی۔ (۳) یعنی جس جانور کی نذر کی ہے وہ دو واجب ہوں گی۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 383 Kitab al-Adhiya (Book of Sacrifice)**

Among the conditions for the sacrifice (qurbani) to be obligatory is prosperity (well-off state). Prosperity here refers to the level of wealth that makes 'Sadaqah al-Fitr' obligatory, not the level that makes 'Zakat' obligatory. Being an adult or sane is not a condition; even if a minor possesses wealth, their father or their father's executor (guardian) shall purchase a sacrificial animal from the minor's wealth and sacrifice it on their behalf, but shall not give the meat as charity (sadaqah). According to Imam-e-Azam (Abu Hanifa) and Imam Abu Yusuf, neither of them will be liable (for compensation), but if the meat is given as charity, they will be liable. This is mentioned in 'Al-Muhit al-Sarakhsi'. Another condition is Islam; hence, it is not obligatory for a non-believer. It should be clear that Islam is not a condition throughout the entire duration (of the days of sacrifice), from beginning to end; such that if someone was a non-believer at the beginning of the period and converted to Islam by the end, the sacrifice becomes obligatory for them. Another condition is freedom (being a free person), so sacrifice is not obligatory for a slave, even if they are a 'Ma’dhun' (authorized to trade) or a 'Mukatab' (contracted for freedom). It is not a condition to be free from the beginning; rather, if someone becomes free in the final part of the period, it is sufficient. Accordingly, if one becomes free at the end of the period and possesses the 'Nisab' (minimum threshold of wealth), the sacrifice becomes obligatory. Another condition is being a resident ('Muqim'); thus, it is not obligatory for a traveler ('Musafir'). Being a resident for the entire duration is not a condition; even if someone was a traveler at the beginning and became a resident by the end, the sacrifice is obligatory. If one was a resident at the beginning but traveled and then became a resident again by the end, the sacrifice remains obligatory. This applies if the journey was undertaken before purchasing the animal. If one purchased a goat for sacrifice and then traveled, it is mentioned in 'Al-Muntaqa' that they have the option to sell the goat and not perform the sacrifice. The same is narrated from Imam Muhammad, that they may sell it. Some scholars distinguished between the poor and the wealthy, stating that if one is wealthy, this is the ruling, but if one is poor, they should perform it and it should not be waived due to travel. If one traveled after the onset of the sacrifice period, scholars stated that this same ruling should apply. All the conditions mentioned apply equally to men and women; this is in 'Al-Bada'i'.

**In which cases, despite the prompt dowry (Mahr al-Mu'ajjal), a woman cannot be considered wealthy** ☆

The ruling on sacrifice is that the obligation upon the person in this world has been fulfilled, and by the grace of Allah, they will receive a reward in the hereafter; this is in 'Al-'Attabiyyah'. A 'Musir' (prosperous person), according to 'Zahir al-Riwayah', is one who, besides their dwelling, household goods, transport, and servants, etc., which they are in need of and cannot do without, possesses two hundred dirhams or twenty dinars, or something of equivalent value. Apart from the mentioned essentials, if they possess livestock, slaves, horses, or trade goods, etc., these will all be counted towards their prosperity. If they own 'Aqar' (1) (real estate) that is rented out, the later scholars differed. Sheikh Zaffarani and Sheikh Ali Razi considered its value, while Sheikh Abu Ali Daqqaq and others considered the income. Then they differed among themselves; Sheikh Abu Ali Daqqaq said that if the income provides the person with one year's worth of food, the sacrifice is obligatory. Some of those scholars said if it provides one month's worth of food and whenever two hundred dirhams or more remain after that, the sacrifice is obligatory (2). If an 'Aqar' is endowed (waqf) for them, it will be seen whether two hundred dirhams or more became due for them during the days of sacrifice; if so, the sacrifice is obligatory, otherwise not. This is in 'Al-Zahiriyyah'. If one has so much debt that, if the current wealth were spent on it, the Nisab would not remain complete but decrease, then the sacrifice is not obligatory. Similarly, if one possesses wealth but it is not with them (absent) such that they cannot obtain it during the days of sacrifice, then it is not obligatory. It is also not a condition for the person to be wealthy at all times; even if one was poor at the beginning of the sacrifice period and became wealthy by the end, it becomes obligatory. If one had two hundred dirhams and a year passed over it, and they gave five dirhams as Zakat, then the days of sacrifice arrived and their wealth became 195 dirhams, there is no narration from our companions (scholars) regarding this. Sheikh Zaffarani mentioned that... (1) House, etc. (2) To be performed.

**फतावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) 383 किताबुल उज़हिया (कुर्बानी की किताब)**

कुर्बानी वाजिब होने की शर्तों में से एक यह है कि व्यक्ति समृद्ध (फ़राख़ दस्त) हो। यहाँ समृद्धि से तात्पर्य वह स्तर है जिससे सदका-ए-फित्र वाजिब होता है, न कि वह स्तर जिससे ज़कात वाजिब होती है। बालिग (वयस्क) होना और अक्ल (विवेकशील होना) शर्त नहीं है, यहाँ तक कि यदि किसी नाबालिग के पास माल हो, तो उसके पिता या पिता का वसीय (अभिभावक) उसके माल से कुर्बानी का जानवर खरीद कर उसकी ओर से कुर्बानी करेगा, लेकिन उसका मांस सदका नहीं करेगा। इमाम-ए-आजम (अबू हनीफा रह.) और इमाम अबू यूसुफ (रह.) के अनुसार, इनमें से कोई भी ज़ामिन (ज़िम्मेदार) नहीं होगा, लेकिन यदि मांस सदका कर दिया गया, तो वह ज़ामिन होगा। यह 'मुहीत सरख़सी' में वर्णित है। शर्तों में से एक इस्लाम भी है, अतः काफिर पर कुर्बानी वाजिब नहीं होगी। स्पष्ट रहे कि पूरे समय में शुरू से अंत तक इस्लाम शर्त नहीं है; यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति कुर्बानी के समय की शुरुआत में काफिर था और अंत में इस्लाम लाया, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी। एक अन्य शर्त आज़ादी (हुर्रियत) है, इसलिए गुलाम पर कुर्बानी नहीं होगी, चाहे वह 'गुलाम-ए-माज़ून' (व्यापार की अनुमति प्राप्त) हो या 'मुकातब' (मुक्ति के लिए अनुबंध करने वाला)। यह भी शर्त नहीं है कि वह शुरू से आज़ाद हो, बल्कि यदि वह समय के आखिरी हिस्से में आज़ाद हो गया, तो यह काफी है। तदनुसार, यदि वह अंत में आज़ाद हुआ और निसाब का मालिक बना, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी। एक शर्त 'मुकीम' (निवासी) होना है, अतः मुसाफ़िर (यात्री) पर कुर्बानी वाजिब नहीं है। पूरे समय मुकीम रहना शर्त नहीं है; यहाँ तक कि यदि कोई शुरू में मुसाफ़िर था और अंत में मुकीम हो गया, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी। यदि वह शुरू में मुकीम था, सफर किया और फिर अंत में मुकीम हो गया, तब भी कुर्बानी वाजिब होगी। यह उस स्थिति में है जब उसने जानवर खरीदने से पहले यात्रा की हो। यदि उसने कुर्बानी के लिए बकरी खरीदी और फिर सफर किया, तो 'मुंतक़ा' में उल्लेख है कि उसे अधिकार है कि वह बकरी बेच दे और कुर्बानी न करे। इमाम मुहम्मद (रह.) से भी यही वर्णित है कि वह उसे बेच दे। कुछ उलेमाओं ने निर्धन और समृद्ध के बीच अंतर किया है, यानी कहा कि यदि समृद्ध है तो यही नियम है, और यदि निर्धन है तो उसे कुर्बानी करनी चाहिए और सफर के कारण यह साक़ित (रद्द) नहीं होनी चाहिए। यदि उसने समय आने के बाद सफर किया, तो उलेमाओं ने कहा कि यही नियम होना चाहिए। हमने जो भी शर्तें उल्लेख की हैं, उनमें पुरुष और महिला समान हैं, यह 'बद्दा-ए' में है।

**किन स्थितियों में मुअज्जिल मेहर (तत्काल देय स्त्रीधन) के बावजूद स्त्री को 'तवँगर' (धनी) नहीं कहा जा सकता** ☆

कुर्बानी का हुक्म यह है कि दुनिया में जो दायित्व उस पर वाजिब था, वह अदा हो गया और अल्लाह के फज़्ल से आख़िरत (परलोक) में उसे इसका सवाब (पुण्य) मिलेगा, यह 'इताबिया' में है। 'मूसिर' यानी समृद्ध व्यक्ति, 'ज़ाहिरुल रिवाया' के अनुसार वह है जिसके पास अपने निवास, घरेलू सामान, सवारी और सेवक आदि, जिनकी उसे अनिवार्य आवश्यकता है, के अलावा दो सौ दिरहम या बीस दीनार या उतनी कीमत की कोई चीज़ हो। उपर्युक्त आवश्यक चीजों के अलावा यदि उसके पास पशु, गुलाम, घोड़े या व्यापारिक सामान आदि हों, तो वे सब उसकी समृद्धि में गिने जाएंगे। यदि उसके पास 'अक़ार' (1) (भूमि/मकान) हो जो किराए पर चलती हो, तो बाद के उलेमाओं में मतभेद है। शेख ज़फ़रानी और शेख अली राज़ी ने इसकी कीमत का विचार किया है, जबकि शेख अबू अली दक्काक़ आदि ने इसकी आमदनी का विचार किया है। फिर आपस में मतभेद है कि शेख अबू अली दक्काक़ ने कहा कि यदि इससे उस व्यक्ति को एक साल के भोजन की आमदनी प्राप्त होती हो, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी। कुछ अन्य उलेमाओं ने कहा कि एक महीने के भोजन की आमदनी प्राप्त होती हो और जब भी इसमें से दो सौ दिरहम या अधिक बचे, तो उस पर कुर्बानी वाजिब (2) होगी। यदि कोई अक़ार उस पर वक्फ़ (धर्मादा) हो, तो देखा जाएगा कि कुर्बानी के दिनों में यदि उसके लिए दो सौ दिरहम या अधिक वाजिब हुए हैं, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी, अन्यथा नहीं। यह 'ज़हीरिया' में है। यदि उस पर इतना कर्ज हो कि यदि वर्तमान माल कर्ज में खर्च कर दिया जाए तो निसाब पूरा न रहे, बल्कि कम हो जाए, तो उस पर कुर्बानी वाजिब नहीं होगी। इसी प्रकार यदि उसके पास माल हो लेकिन वह मौजूद न हो (गायब हो), कि कुर्बानी के दिनों में वह उसे प्राप्त न कर सके तो कुर्बानी वाजिब नहीं होगी। यह भी शर्त नहीं है कि व्यक्ति हर समय धनी हो; यहाँ तक कि यदि वह कुर्बानी के शुरू में निर्धन था और अंत में धनी हो गया, तो उस पर वाजिब होगी। यदि उसके पास दो सौ दिरहम थे और उन पर एक साल बीत गया और उसने ज़कात में पाँच दिरहम दे दिए, फिर कुर्बानी के दिन आए और उसका माल 195 दिरहम रह गया, तो इस बारे में हमारे साथियों (उलेमाओं) से कोई रिवायत (कथन) नहीं है। शेख ज़फ़रानी ने उल्लेख किया कि... (1) मकान आदि। (2) अदा करनी।

---

قربانی واجب ہونے کے شرائط از جملہ یہ ہے کہ فراخ دستی ہو اور فراخ دستی وہ مراد ہے جس سے صدقہ فطر واجب ہوتا ہے ایسی فراخ دستی نہیں مراد ہے جس سے زکوٰۃ واجب ہوتی ہے اور بلوغ و عقل شرط نہیں ہے حتیٰ کہ اگر نابالغ کا مال ہو تو اس کی طرف سے اس کا باپ یا باپ کا وصی اس کے مال سے خرید کر قربانی کر دے گا مگر گوشت صدقہ نہ کرے گا اور امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک ان دونوں میں سے کوئی ضامن نہ ہوگا اور اگر گوشت صدقہ کر دیا تو ضامن ہوگا یہ محیط سرخسی میں ہے اور از جملہ یہ کہ اسلام شرط ہے پس کافر پر واجب نہ ہوگی اور واضح ہو کہ تمام وقت میں اول سے آخر تک اسلام شرط نہیں ہے حتیٰ کہ اگر اول وقت میں کافر ہو پھر آخر وقت میں اسلام لایا تو اس پر قربانی واجب ہوگی از جملہ حریت ہے پس غلام پر قربانی نہ ہوگی اگرچہ غلام ماذون التجارۃ یا مکاتب ہو اور یہ شرط نہیں ہے کہ اول وقت سے آزاد ہو بلکہ اگر آخر جزو وقت میں آزاد ہو گیا تو کافی ہی چنانچہ اگر آخر وقت میں آزاد ہوا۔ نصاب کا مالک ہوا تو اس پر اضحیہ واجب ہو گا از جملہ یہ شرط ہے کہ مقیم ہو پس مسافر پر واجب نہیں ہے اور پورے وقت میں مقیم ہونا شرط نہیں ہے حتیٰ کہ اگر اول وقت میں مسافر ہو پھر آخر وقت میں مقیم ہو گیا تو اس پر قربانی واجب ہوگی اور اگر اول وقت میں مقیم تھا مگر سفر کیا پھر آخر وقت میں مقیم ہوا تو اس پر قربانی واجب ہوگی یہ اس وقت ہے کہ اس نے قربانی کا جانور خریدنے سے پہلے سفر کیا ہو اور اگر قربانی کے واسطے بکری خریدی پھر سفر کیا تو منتقٰی میں مذکور ہے کہ اس کو اختیار ہے کہ یہ بکری فروخت کر دے قربانی نہ کرے اور ایسا ہی امام محمدؒ سے مروی ہے کہ وہ اس کو فروخت کر دے اور بعض مشائخ نے تنگدست و فراخ دست میں فرق کیا ہے یعنی فرمایا کہ اگر فراخ دست ہے تو یہی حکم ہے اور اگر تنگدست ہے تو چاہیے کہ اس پر

واجب ہو اور سفر کی وجہ سے اس سے ساقط نہ ہو۔ اگر اس نے وقت آنے کے بعد سفر کیا تو مشائخ نے فرمایا کہ ایسا ہی حکم ہونا چاہیے اور سب شرطیں جو ہم نے ذکر کر دی ہیں ان میں مرد و عورت یکساں ہیں یہ بدائع میں ہے۔

**کن صورتوں میں باوجودیکہ مہر معجل کے عورت تو انگر نہیں کہی جا سکتی ☆**

قربانی کا حکم یہ ہے کہ دنیا میں جو امر اس کے ذمہ واجب ہوا تھا اُس سے ادا ہو گیا اور اللہ تعالیٰ کے فضل سے عقبی میں اس کو ثواب ملے گا یہ عتابیہ میں ہے۔ موسر یعنی فراخ دست ظاہر الروایہ کے موافق وہ شخص ہے جو اپنے مسکن و متاع خانہ و سواری و خادم وغیرہ سے جن کی اس کو حاجت ہے کہ ان سے بے پرواہ نہیں ہو سکتا ہے ان کے سوائے دو سو درہم یا بیس دینار یا اتنی قیمت کی کوئی چیز رکھتا ہو اور ضروری چیزیں جو مذکور ہوئیں ان کے سوائے اگر اس کے پاس سوائم یا رقیق یا گھوڑے یا متاع تجارت وغیرہ ہوں تو وہ سب اس کی فراخ دستی میں شمار ہوں گے اگر اس کے پاس عقار (۱) و کرایہ پر چلانے کی ملک ہو تو مشائخ متاخرین نے اختلاف کیا ہے پس شیخ زعفرانی و شیخ علی رازی نے اس کی قیمت کا اعتبار کیا ہے اور شیخ ابوعلی دقاق وغیرہ نے آمدنی کا اعتبار کیا ہے پھر باہم اختلاف کیا کہ شیخ ابوعلی دقاق نے فرمایا کہ اگر اس سے اس شخص کو ایک سال کھانے کی آمدنی حاصل ہوتی ہو تو اس پر قربانی واجب ہوگی اور انہیں مشائخ میں سے بعض نے کہا کہ ایک مہینہ کھانے کی آمدنی حاصل ہوتی ہو اور ہر گاہ کہ اس میں سے دو سو درہم یا زیادہ بچے تو اس پر قربانی واجب (۲) ہوگی اور اگر کوئی عقار اس پر وقف ہو تو دیکھا جائے گا کہ اگر قربانی کے ایام میں اس کے واسطے دو سو درہم یا زیادہ واجب ہوئے ہیں تو اس پر قربانی واجب ہوگی ورنہ نہیں یہ ظہیریہ میں ہے۔ اگر اس پر اس قدر قرضہ ہو کہ اگر مال موجود قرضہ میں صرف کیا جائے تو نصاب پورا نہ رہے کم ہو جائے تو اس پر قربانی واجب نہ ہوگی اسی طرح اگر اس کا مال ہو مگر اس کے پاس نہ ہو غائب ہو کہ ایام قربانی میں اس

کو نہ ملے تو اس پر قربانی واجب نہ ہوگی اور یہ شرط نہیں ہے کہ یہ شخص ہر وقت میں غنی ہو حتیٰ کہ اگر اول وقت قربانی میں فقیر ہو پھر آخر وقت میں غنی ہو گیا تو اس پر واجب ہوگی اور اگر اس کے پاس دو سو درہم ہوں پھر اس پر سال گزر گیا اور اس نے پانچ درہم زکوٰۃ میں دے دیئے پھر قربانی کے ایام آئے اور اس کا مال ایک سو پچانوے درہم ہیں تو اس میں ہمارے اصحاب سے کوئی روایت نہیں ہے اور شیخ زعفرانی نے ذکر کیا کہ (۱) گھر وغیرہ۔ (۲) ادا کرنی۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 384 Kitab al-Adhiya**

Sacrifice (Adhiya) will be obligatory upon him because the reduction in wealth occurred in a way that is itself an act of proximity (qurbat) to God, so this wealth will be considered as if it is cash on hand. Even if he spent five dirhams out of it on maintenance, sacrifice would not be obligatory. If a wealthy person purchased a goat for sacrifice and it was lost, and then his wealth decreased to the point of poverty, and the days of sacrifice (Ayyam al-Nahr) arrived, it would not be obligatory for him to buy another goat. If, during the days of sacrifice, he found the same goat that was lost while he is now in poverty, sacrifice would not be obligatory upon him. If the first goat was lost and he, while still wealthy, bought another goat and performed the sacrifice, but later became poor and then found the first goat, he would not be required to give anything in charity (Sadaqah); this is mentioned in 'Badai'.

According to the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), a woman's wealth due to her mahr (dowry) is only considered if her husband is wealthy. According to Imam Azam, following a second opinion, a woman is not considered wealthy because of it. Some scholars (Mashaykh) have said that this disagreement among the Imams is specifically regarding 'mahr muajjal' (deferred dowry), which in Persian is called 'dast payman'. If it is 'mahr muajjal' (prompt dowry), known in Persian as 'kabin', then such mahr does not make a woman wealthy by consensus (Ijma). In 'Ajnas', it is written that if a cook possesses wheat worth two hundred dirhams for trade, or salt worth two hundred dirhams, or a soap-maker (kundi-gar) possesses soap or washing soda (ashnan) worth two hundred dirhams, sacrifice becomes obligatory; this is in 'Muheet'. If someone possesses a copy of the Holy Quran (Mushaf Majeed) worth two hundred dirhams and can read it well, sacrifice is not obligatory, whether he reads it or neglects to do so. However, if he cannot read it, sacrifice is obligatory. If he has a young son for whom he has kept a bound copy of the Quran to give to a teacher when he grows up, sacrifice is obligatory upon him. Books of knowledge and Hadith are treated like the Holy Quran in this ruling, as in 'Zahiriyyah'. In 'Fatawa Sughra', it states that one is not considered wealthy because of books, except if he has two copies of every book by the same teacher (Shaikh) with the same narration. If there are two narrations from the same teacher, like narrations from Shaikh Abu Hafs and Shaikh Abu Sulayman from Imam Muhammad, then having such duplicate copies [1] does not make sacrifice obligatory, and he is not considered wealthy. If he has several books of Hadith, literature (adab), and Tafsir, even if he has two of each kind, and if someone has books on medicine (tibb),

astronomy (nujum), and literature, and their value reaches the threshold (nisab), he will be considered wealthy; this is in 'Dhakhira Kardari'.

In 'Ajnas', it is written that if a person is lame and has bought a donkey worth two hundred dirhams for his transportation needs, sacrifice is not obligatory upon him, even if its value remains the same. If a person has a house (war) with two rooms (bayt), one for winter and one for summer, or carpets for winter and summer, he is not considered wealthy because of them. But if there are three rooms in that house and the value of the third room is two hundred dirhams, sacrifice becomes obligatory. Similarly, if there is a third carpet, the same ruling applies. A warrior (Ghazi) does not become wealthy by having two horses; he can by having a third. A warrior does not become wealthy by weapons, except if he has two sets of every type of weapon such that the price of one set is two hundred dirhams, then he is considered wealthy. In 'Fatawa', it is stated that a landlord is not considered wealthy by one horse or one donkey, but if he has two horses or two donkeys such that the price of one is two hundred dirhams, he will be considered a person of nisab (wealthy). A farmer does not become wealthy by two oxen and farming tools, but becomes wealthy by one cow (1). If he has three oxen such that the price of one ox or...

---

[1] In this, there is a difference of narrations. (1) Provided its value is two hundred dirhams.

**फतावा आलमगीरी ..... खंड (8) 384 किताब अल-अज़हिया**

उस पर कुर्बानी (अज़हिया) वाजिब होगी क्योंकि माल में कमी ऐसे तरीके से आई कि वह स्वयं इबादत (कुर्बत) है, इसलिए इस माल को नकद मौजूद माना जाएगा यहाँ तक कि अगर उसने इसमें से पांच दिरहम खर्च के लिए निकाल दिए हों तो उस पर कुर्बानी वाजिब नहीं होगी। और अगर एक अमीर (फ़राख़-दस्त) आदमी ने कुर्बानी के लिए एक बकरी खरीदी, वह खो गई, फिर उसकी दौलत (नसाब) में कमी आ गई और वह गरीब (फ़क़ीर) हो गया, फिर कुर्बानी के दिन (अय्याम-ए-नहर) आ गए, तो उस पर यह वाजिब नहीं होगा कि वह दूसरी बकरी खरीदे। और अगर उसने कुर्बानी के दिनों में वही खोई हुई बकरी पा ली जबकि वह अब तंगदस्त है, तो उस पर उसकी कुर्बानी करना वाजिब नहीं होगा। और अगर पहली बकरी खो गई, फिर उसने अमीरी की हालत में दूसरी बकरी खरीद कर कुर्बानी की, फिर वह गरीब हो गया और गरीबी की हालत में उसे पहली बकरी मिल गई, तो उस पर कुछ सदका करना वाजिब नहीं होगा, यह 'बदाए' में है।

साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ और इमाम मुहम्मद) के अनुसार महर के कारण महिला की अमीरी का विचार तभी होगा जब उसका पति अमीर हो। इमाम आज़म के अनुसार, दूसरी राय के मुताबिक, इससे महिला अमीर नहीं मानी जाएगी। कुछ विद्वानों (मशायख़) ने कहा है कि इमामों के बीच यह मतभेद केवल महर-ए-मुअज्जल (बाद में देय महर) में है जिसे फारसी में 'दस्त पैमान' कहते हैं। और अगर महर-ए-मुअज्जल (तुरंत देय महर) हो जिसे फारसी में 'काबीन' कहते हैं, तो ऐसे महर के कारण महिला सर्वसम्मति (इजमा) से अमीर नहीं मानी जाएगी। और 'अजनास' में लिखा है कि यदि किसी रसोइये के पास दो सौ दिरहम की कीमत के गेहूं हों जिनसे वह व्यापार करता हो, या दो सौ दिरहम कीमत का नमक हो, या किसी साबुन बनाने वाले (कुंडी-गर) के पास दो सौ दिरहम कीमत का साबुन या सज्जी (अशनन) हो, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी, यह 'मुहीत' में है। यदि किसी के पास दो सौ दिरहम की कीमत का पवित्र कुरान (मुसहफ मजीद) हो और वह व्यक्ति उसे अच्छी तरह पढ़ सकता हो, तो उस पर कुर्बानी वाजिब नहीं होगी, चाहे वह उसे पढ़ता हो या आलस्य के कारण न पढ़ता हो। और अगर वह व्यक्ति उसे पढ़ नहीं सकता, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी। और अगर उसका छोटा बेटा हो जिसके लिए उसने कुरान की जिल्द रख छोड़ी हो कि जब वह बड़ा होगा तो उसे उस्ताद के पास सौंपेगा, तो भी उस पर कुर्बानी वाजिब होगी। और इल्म और हदीस की किताबें इस हुक्म में कुरान के समान हैं, जैसा कि 'ज़हीरिया' में है। और 'फतावा सग़ुरा' में है कि किताबों के कारण कोई अमीर नहीं माना जाता, सिवाय उस स्थिति में जब उसके पास हर प्रकार की दो किताबें

एक ही शिक्षक (शेख) की एक ही रिवायत से हों। और अगर एक ही शिक्षक से दो रिवायतें हों जैसे शेख अबू हफ्स और शेख अबू सुलेमान ने इमाम मुहम्मद से रिवायत की है, तो ऐसे दोहराव वाले संस्करण [1] होने से उस पर कुर्बानी वाजिब नहीं होगी और वह अमीर नहीं माना जाएगा। यदि उसके पास हदीस, साहित्य (अदब) और तफसीर की कई किताबें हों, चाहे उसके पास हर प्रकार की दो किताबें हों, और जिसके पास चिकित्सा (तिब), ज्योतिष (नुजूम) और साहित्य की किताबें हों, यदि उनकी कीमत नसाब (दो सौ दिरहम) तक पहुँचती है, तो वह अमीर माना जाएगा, यह 'ज़खीरा करदरी' में है।

'अजनास' में लिखा है कि एक व्यक्ति लंगड़ा है, उसने दो सौ दिरहम की कीमत का एक गधा खरीदा जिसके माध्यम से वह अपनी जरूरतों के लिए आता-जाता है, तो उस पर कुर्बानी वाजिब नहीं होगी, हालांकि उसकी कीमत अब भी वही है। और अगर किसी व्यक्ति के पास एक घर (वार) हो जिसमें दो कमरे (बैत) हों, एक सर्दी का और एक गर्मी का, या सर्दी और गर्मी के कालीन (फर्श) हों, तो वह इस कारण अमीर नहीं होगा। और अगर उस घर में तीन कमरे हों और तीसरे कमरे की कीमत दो सौ दिरहम हो, तो उस पर कुर्बानी वाजिब होगी। इसी तरह यदि तीसरा कालीन हो तो भी यही हुक्म है। और गाजी (जिहाद करने वाला) दो घोड़ों से अमीर नहीं माना जाता, तीसरे से हो सकता है। और गाजी हथियारों से अमीर नहीं माना जाता, सिवाय उस स्थिति में जब उसके पास हर प्रकार के दो हथियार हों और एक सेट की कीमत दो सौ दिरहम हो, तो वह अमीर माना जाएगा। 'फतावा' में है कि जमींदार एक घोड़े या एक गधे से अमीर नहीं माना जाता, लेकिन यदि उसके पास दो घोड़े या दो गधे हों जिनमें से एक की कीमत दो सौ दिरहम हो, तो वह अमीर (साहिब-ए-नसाब) माना जाएगा। किसान दो बैलों और खेती के औजारों से अमीर नहीं होता, लेकिन एक गाय (1) से अमीर होता है। और यदि तीन बैल हों कि एक बैल की कीमत या...

---

[1] इसमें रिवायतों का मतभेद होता है। (1) जबकि उसकी कीमत दो सौ दिरहम हो।

اس پر اضحیہ واجب ہوگا کیونکہ مال میں کمی ایسے طریق سے آئی کہ وہ خود قربت ہے پس یہ مال نقد پر آ موجود قرار دیا جائے گا حتیٰ کہ اگر اس نے اس میں سے پانچ درہم نفقہ میں خرچ کر دیے ہوں تو اس پر قربانی واجب نہ ہوگی اور اگر فراخ دست آدمی نے قربانی کے واسطے ایک بکری خریدی وہ ضائع ہوگئی پھر اس کے نصاب میں کمی آگئی اور وہ فقیر ہو گیا پھر ایام نحر آگئے تو اس پر یہ واجب نہ ہو گا کہ دوسری بکری خریدے اور اگر اس نے قربانی کے دنوں میں وہی بکری جو ضائع ہوگئی تھی پائی حالانکہ وہ تنگدست ہے تو اس پر اس کی قربانی کرنی واجب نہ ہوگی اور اگر پہلی بکری ضائع ہوگئی پھر اس نے فراخ دستی کی حالت میں دوسری بکری خرید کر قربانی کی پھر تنگدست ہو گیا اور تنگدستی کی حالت میں اس نے پہلی بکری پائی تو اس پر کچھ صدقہ کر دینا واجب نہ ہو گا یہ بدائع میں ہے۔

صاحبینؒ کے نزدیک مہر کی وجہ سے عورت کی توانگری کا اعتبار جبھی ہوگا کہ جب اس کا خاوند توانگر ہو امام اعظمؒ کے نزدیک دوسرے قول کے موافق اس سے عورت توانگر نہیں شمار ہوتی ہے اور بعض مشائخ نے فرمایا کہ ائمہ میں یہ اختلاف مہر موجل میں ہی جس کو فارسی میں دست پیمان کہتے ہیں اور اگر مہر معجل ہو جس کو فارسی میں کابین کہتے ہیں تو ایسے مہر کی وجہ سے عورت بالاجماع توانگر نہیں شمار ہوگی اور اجناس میں لکھا ہے کہ اگر کسی باورچی کے پاس دو سو درہم قیمت کے گیہوں ہوں جس سے تجارت کرتا ہو یا دو سو درہم قیمت کا نمک ہو یا کنڈی گر کے پاس دو سو درہم قیمت کا صابن یا اشنان ہو تو اس پر قربانی واجب ہوگی یہ محیط میں ہے۔ اگر کسی کے پاس دو سو درہم کا مصحف مجید ہو اور یہ شخص ایسا ہو کہ اس کو اچھی طرح پڑھ سکتا ہو تو اس پر قربانی واجب نہ ہوگی خواہ وہ شخص اس مصحف سے پڑھتا ہو یا

سستی کرتا ہو نہ پڑھتا ہو اور اگر وہ شخص اس مصحف سے نہ پڑھ سکتا ہو تو اس پر قربانی واجب ہوگی اور اگر اس کا چھوٹا لڑکا ہو اس کے واسطے اس نے قرآن شریف کی جلد رکھ چھوڑی ہو کہ ذرا بڑا ہوائے تو اس کو دے کر استاد کے سپرد کرے تو اس پر قربانی واجب ہوگی اور کتب علم و حدیث اس حکم میں مثل مصحف مجید کے ہیں کذا فی الظہیر یہ اور فتاویٰ صغریٰ میں ہے کہ کتابوں کی وجہ سے غنی نہیں شمار ہوتا ہے الا اس صورت میں کہ اس کے پاس ہر قسم کی دو کتابیں ایک ہی شیخ سے ایک ہی روایت سے ہوں اور اگر ایک ہی شیخ سے دو روایتوں سے ہوں جیسے شیخ ابوحفص نے اور شیخ ابوسلیمان نے امام محمد سے روایت ہے کہ تو ایسے مکرر نسخہ [1] ہونے سے اس پر قربانی واجب نہ ہوگی اور وہ غنی شمار نہ ہوگا اگر اس کے پاس احادیث و ادب کی کئی کتابیں و تفسیر کی کتابیں ہوں اگرچہ اس کے پاس ہر قسم کی دو کتابیں ہوں اور جس کے پاس طب و نجوم و ادب کی کتابیں ہوں پس اگر ان کی قیمت نصاب کو پہنچے تو وہ غنی شمار ہو گا یہ ذخیرہ کردری میں ہے۔

اجناس میں لکھا ہے کہ ایک شخص لنگ کرتا ہے اس نے دو سو درہم قیمت کا ایک گدھا خرید اس کے ذریعہ سے سوار ہو کر اپنی حاجتوں میں آتا جاتا ہے تو اس پر قربانی واجب نہ ہوگی حالانکہ ہنوز اس کی وہی قیمت ہے اور اگر ایک شخص کے پاس ایک وار ہو جس میں وہ بیست ہوں ایک جاڑے کا اور ایک گرمی کا یا فرش جاڑے و گرمی کا ہو تو اس کی وجہ سے غنی نہ ہوگا اور اگر اس دار میں تین بیوت ہوں اور تیسرے بیت کی قیمت دو سو درہم ہوں تو اس پر قربانی واجب ہو گی اسی طرح اگر تیسرا فرش ہو تو بھی یہی حکم ہے اور غازی یعنی جہاد کرنے والا دو گھوڑوں سے غنی نہیں ہوتا ہے تیسرے سے ہو سکتا ہے اور غازی ہتھیاروں سے غنی نہیں ہوتا ہے الا اس صورت میں کہ اس کے پاس ہر قسم کے دو ہتھیار ہوں کہ ایک جوڑ کی قیمت دو سو درہم ہوں تو غنی شمار ہوگا اور فتاویٰ میں ہے کہ زمین دار ایک گھوڑے یا ایک گدھے سے غنی نہیں ہوتا ہے

اور اگر اس کے پاس دو گھوڑے یا دو گدھے ہوں کہ ایک کی قیمت دو سو درہم ہوں تو وہ غنی صاحب نصاب قرار دیا جائے گا اور کاشتکار دو بیلوں اور آلات کاشتکاری سے غنی نہیں ہوتا ہے اور ایک گائے (۱) سے غنی ہوتا ہے اور اگر تین بیل ہوں کہ ایک بیل کی قیمت یا

---

[1] اس میں سے روایتوں کا اختلاف ہوتا ہے۔ (۱) جب کہ اس کی قیمت دو سو درہم ہو۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 | 485 | Kitab al-Adhiyah (The Book of Sacrifice)**

If the value of a cow is two hundred dirhams, then the owner is considered a 'Sahib-e-Nisab' (possessor of sufficient wealth). A person possessing clothes is not considered wealthy (Ghani) simply by having three sets of clothes—one for daily wear, one for middle-tier occasions, and a third for higher occasions like Eid. However, if they have a fourth set, they may be considered wealthy (1). Similarly, one who owns a vineyard is considered wealthy if its value reaches two hundred dirhams; this is mentioned in 'Khulasa'. It is not mandatory (lazim) for any individual to perform a sacrifice on behalf of their adult children or their wife. However, if either of them grants permission (2), the sacrifice may be performed. Regarding sacrifice on behalf of a minor child, there are two narrations from Imam-e-Azam (RA): 'Zahir-ur-Riwayah' states it is recommended (mustahab), not obligatory (wajib), unlike Sadaqat-ul-Fitr, which is obligatory. Hasan bin Ziyad narrated from Imam-e-Azam (RA) that it is obligatory for a person to perform sacrifice on behalf of their minor child and their grandson whose father has passed away. However, the fatwa (legal ruling) follows 'Zahir-ur-Riwayah'. If the minor possesses their own wealth, some of our scholars (Mashaikh) stated that it is obligatory for the father to perform the sacrifice using the minor's wealth (3); this is stated in 'Fatawa Qazi Khan' and is considered the most correct (Asahh) view, as noted in 'Hidaya'.

According to Imam-e-Azam (RA), an executor (Wasi) has the discretion to perform the sacrifice using a minor's wealth by analogy with Sadaqat-ul-Fitr. However, the executor shall not distribute the meat as charity; instead, the minor should consume it. If there is a surplus that cannot be preserved, it should be exchanged for something whose essence (4) can be utilized; this is mentioned in 'Fatawa Qazi Khan'. The most correct view is that this is not obligatory, and the executor does not have the authority to do this from the minor's wealth; this is stated in 'Al-Muhit'. Based on the narration stating that sacrifice is not obligatory from a minor's wealth, neither a father nor an executor has the authority to sacrifice from it. If a father does so, according to Imam-e-Azam (RA) and Imam Abu Yusuf (RA), he shall not be held liable (zamin), and the fatwa follows this. If an executor does so, according to Imam Muhammad (RA), he shall be held liable. Regarding the view of Imam-e-Azam (RA), scholars have differed; some say the executor is not liable just as the father is not, while others say he is not liable if the minor consumes it, otherwise he is. Mentally challenged (ma'tooh) and insane individuals are treated like minors in this ruling. However, an insane person who has lucid intervals (periodically sane) is treated like a

healthy person; this is in 'Fatawa Qazi Khan'. It is not obligatory for anyone to perform sacrifice on behalf of their slaves (servants or maids), nor on behalf of their 'Umm-e-Walad'; this is in 'Multaqat'. However, it is recommended (mustahab) to sacrifice on behalf of one's subjects/servants; this is in 'Tatar-Khaniyah'. If a minor reaches puberty during the days of sacrifice and is wealthy, by consensus (Ijma) of our scholars, sacrifice becomes obligatory for them; this is in 'Bada'i'. Sacrifice is not obligatory for travelers (musafir), nor for pilgrims (Haji) while in the state of Ihram, even if they are residents of Mecca; this is in 'Sharh Tahawi'. The nature of the obligation is that it is 'Muwassa' (1) (flexible timing) within its designated days; meaning one can perform it at any time within that period, and no specific moment is fixed. Thus, if an eligible person performs it at any time during the sacrifice days, the obligation is fulfilled, whether it was at the beginning, middle, or end. It follows that if one was not eligible at the beginning (e.g., being a non-Muslim, a slave, poor, or a traveler) but becomes eligible by the end (e.g., becomes Muslim, free, wealthy, or a resident), then the sacrifice becomes obligatory. Conversely, if one was eligible at the beginning (5) but becomes ineligible by the end (e.g., becomes apostate, poor, or a traveler), then it is not obligatory...

---

**Footnotes:** * **Muwassa:** A time period that exceeds the time required to perform the act (e.g., the window for Dhuhr prayer). **Mudiyaq:** A time period exactly equal to the duration of the act (e.g., fasting). (1) When the value is two hundred dirhams. (2) Said, "Perform the sacrifice on my behalf." (3) From their own wealth... (4) Do not buy food or drink items (with the exchange). (5) But did not perform the sacrifice.

यदि गाय की कीमत दो सौ दिरहम हो तो वह साहिब-ए-निसाब (धनी) है। कपड़ों वाले व्यक्ति के पास यदि तीन जोड़े कपड़े हों—एक हर समय पहनने के लिए, दूसरा मध्यम दर्जे का और तीसरा थोड़ा बेहतर ईद आदि पर पहनने के लिए—तो वह धनी (ग़नी) नहीं कहलाता; हाँ, यदि चौथा जोड़ा हो तो वह धनी (1) हो सकता है। जिसके पास अंगूर का बाग हो और उसकी कीमत दो सौ दिरहम हो, वह भी धनी है; यह 'ख़ुलासा' में दर्ज है। किसी व्यक्ति पर यह अनिवार्य (लाज़िम) नहीं है कि वह अपनी बालिग संतान या अपनी पत्नी की ओर से क़ुर्बानी करे, लेकिन यदि उनमें से किसी ने उसे अनुमति (2) दी हो, तो क़ुर्बानी कर दे। नाबालिग पुत्र की ओर से क़ुर्बानी करने के संबंध में इमाम-ए-आज़म रह. से दो रिवायतें हैं: 'ज़ाहिर-उर-रिवाय' में इसे मुस्तहब (पसंदीदा) कहा गया है, वाजिब (अनिवार्य) नहीं; इसके विपरीत सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब है। हसन बिन ज़ियाद ने इमाम-ए-आज़म रह. से रिवायत की है कि उस पर वाजिब है कि अपने नाबालिग पुत्र और अपने पोते की ओर से—जिसका पिता मर चुका हो—क़ुर्बानी करे। लेकिन फ़तवा 'ज़ाहिर-उर-रिवाय' के अनुसार ही है। और यदि नाबालिग का अपना धन हो, तो हमारे कुछ विद्वानों (मशायख़) ने कहा कि पिता पर उसकी ओर से (3) क़ुर्बानी करना वाजिब है; जैसा कि 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है और यही अधिक सही (अस्ह) है, यह 'हिदाया' में भी है।

इमाम-ए-आज़म रह. के अनुसार वसी (वसीयत लागू करने वाला) को अधिकार है कि वह नाबालिग के धन से उसकी ओर से क़ुर्बानी करे (सदक़ा-ए-फ़ित्र की तुलना में), लेकिन वसी उस मांस का दान नहीं करेगा, बल्कि नाबालिग उसे खाएगा। फिर यदि मांस इतना बच जाए कि उसे रखना संभव न हो, तो उसके बदले ऐसी चीज़ खरीदे जिससे उसके अस्तित्व (4) से लाभ उठाया जा सके, जैसा कि 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। और सही बात यह है कि यह वाजिब नहीं है और वसी को नाबालिग के धन से ऐसा करने का अधिकार नहीं है; जैसा कि 'अल-मुहीत' में है। उस रिवायत के आधार पर जिसमें उल्लेख है कि नाबालिग के धन में क़ुर्बानी वाजिब नहीं होती, पिता या वसी को उसके धन से उसकी ओर से क़ुर्बानी करने का अधिकार नहीं है। यदि पिता ने ऐसा किया, तो इमाम-ए-आज़म रह. और इमाम अबू यूसुफ़ रह. के अनुसार वह ज़िम्मेदार (ज़ामिन) नहीं होगा, और इसी पर फ़तवा है। यदि वसी ने ऐसा किया, तो इमाम मुहम्मद रह. के अनुसार वह ज़िम्मेदार होगा। इमाम-ए-आज़म रह. के कथन के अनुसार विद्वानों में मतभेद है; कुछ ने कहा कि जैसे पिता ज़िम्मेदार नहीं होता, वसी भी नहीं होगा, और कुछ ने कहा कि यदि नाबालिग खाता हो तो ज़िम्मेदार नहीं होगा, अन्यथा होगा। विक्षिप्त

(मअतूह) और पागल इस आदेश में नाबालिग की तरह हैं, लेकिन वह पागल जिसे कभी दौरा पड़ता हो और कभी होश आ जाता हो, वह स्वस्थ व्यक्ति के समान है; यह 'फ़तावा काज़ी ख़ान' में है। किसी व्यक्ति पर यह वाजिब नहीं है कि वह अपने दासों (लौंडी या गुलाम) की ओर से क़ुर्बानी करे, और न ही 'उम्म-ए-वल्द' की ओर से; यह 'मुल्तक़त' में है। हालांकि अपने दासों की ओर से क़ुर्बानी करना मुस्तहब है; यह 'ताटारख़ानिया' में है। जो नाबालिग क़ुर्बानी के दिनों में बालिग हो गया और वह धनी है, तो हमारे विद्वानों के बीच सर्वसम्मति (इज्मा) है कि उस पर क़ुर्बानी वाजिब होगी; यह 'बदाए' में है। यात्रियों (मुसाफ़िरों) पर क़ुर्बानी वाजिब नहीं है, और न ही हाजियों पर जब वे एहराम में हों, चाहे वे मक्का के निवासी ही क्यों न हों; यह 'शराह तहावी' में है। क़ुर्बानी के वाजिब होने की प्रकृति यह है कि यह अपने दिनों में 'मुवस्सअ' (1) (विस्तारित समय) के रूप में वाजिब होती है, अर्थात पूरे समय में किसी भी क्षण क़ुर्बानी की जा सकती है, कोई विशेष समय निश्चित नहीं है। अतः जिस पर क़ुर्बानी वाजिब हुई, यदि उसने क़ुर्बानी के दिनों में किसी भी समय कर दी, तो वाजिब अदा हो जाएगा, चाहे उसने शुरुआत में की हो, बीच में या अंत में। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि शुरुआत में कोई पात्र नहीं था और अंत में पात्र बन गया—जैसे शुरुआत में काफ़िर, गुलाम, निर्धन या मुसाफ़िर था, फिर अंत में पात्र (मुसलमान, स्वतंत्र, धनी और निवासी) हो गया—तो उस पर क़ुर्बानी वाजिब हो जाएगी। और यदि शुरुआत में पात्र था (5) लेकिन अंत में अपात्र हो गया—जैसे धर्मत्यागी (मुरतद) हो गया, निर्धन हो गया या मुसाफ़िर हो गया—तो उस पर वाजिब नहीं होगी और...

---

**पादलेख (Footnotes):** 1. **मुवस्सअ:** वह समय जो कार्य करने की अवधि से अधिक हो, जैसे ज़ुहर की नमाज़ का समय। **मुज़य्यक़:** वह समय जो कार्य की अवधि के बराबर हो, जैसे रोज़ा। (1) जब कीमत दो सौ दिरहम हो। (2) कहा कि मेरी ओर से क़ुर्बानी कर दो। (3) उसके धन से... (4) खाने-पीने की चीज़ न खरीदे। (5) लेकिन क़ुर्बानी नहीं की।

---

گائے کی قیمت دو سو درہم ہو تو وہ صاحب نصاب ہے اور کپڑوں والا اگر تین دستہ کپڑے سے ایک ہر وقت کے پہننے کے دوسرے درمیانی کپڑے تیسرے ذرا اونچے عیدوں میں پہننے کے کپڑے سے غنی نہیں ہوتا ہے ہاں اگر چوتھا دستہ ہو تو غنی (۱) ہو سکتا ہے اور جس کے پاس باغ انگور ہے وہ غنی ہے اگر اس کی قیمت دو سو درہم ہو یہ خلاصہ میں ہے اور کسی شخص پر یہ لازم نہیں ہے کہ اپنی بالغ اولاد کی طرف سے یا اپنی بیوی کی طرف سے قربانی کرے لیکن اگر ان میں سے کسی نے اس کو اذن (۲) دیا ہو تو قربانی کر دے اور نابالغ فرزند کی طرف سے قربانی کرنے میں امام اعظمؒ سے دو روایتیں ہیں ظاہر الروایہ میں مستحب ہے واجب نہیں ہے بخلاف صدقہ فطر کے کہ وہ واجب ہے اور حسن بن زیاد نے امام اعظمؒ سے روایت کی ہے کہ اس پر واجب ہے کہ اپنے نابالغ فرزند کی طرف سے اور اپنے بیٹے کے بیٹے کی طرف سے جس کا باپ مر گیا ہے قربانی کرے مگر فتویٰ ظاہر الروایہ کے موافق ہے اور اگر نابالغ کا مال ہو تو ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ باپ پر اس کی طرف (۳) سے قربانی کرنی واجب ہے کذا فی فتاویٰ قاضی خان اور یہی اصح ہے یہ ہدایہ میں ہے۔

امام اعظمؒ کے نزدیک وصی کو اختیار ہے کہ مال صغیر سے اس کی طرف سے قربانی کرے بقیاس صدقہ فطر کے مگر وصی اس کا گوشت صدقہ نہ کرے گا بلکہ صغیر اس کو کھائے گا پھر اگر اس قدر بچ رہا کہ اس کا رکھ چھوڑنا ممکن نہیں ہے تو اس کے عوض ایسی چیز خریدے جس سے عین (۴) سے نفع اٹھائے کذا فی فتاویٰ قاضی خان اور اصح یہ ہے کہ یہ واجب نہیں ہے اور وصی اس کے مال سے ایسا کرنے کا اختیار نہیں رکھتا ہے کذا فی المحیط اور بنابر اس روایت کے جس میں مذکور ہے کہ مال صغیر میں قربانی واجب نہیں ہوتی ہے باپ وصی کو اس کے مال سے

اس کی طرف سے قربانی کرنے کا اختیار نہیں ہے اور اگر باپ نے ایسا کیا تو امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک کچھ ضامن نہ ہوگا اور اسی پر فتویٰ ہے اور اگر وصی نے ایسا کیا تو امام محمدؒ کے قول کے موافق ضامن ہوگا اور امام اعظمؒ کے قول کے موافق مشائخ نے اختلاف کیا ہے بعضوں نے فرمایا کہ جیسے باپ ضامن نہیں ہوتا ہے وصی بھی ضامن نہ ہوگا اور بعض نے فرمایا کہ اگر صغیر کھاتا ہو تو ضامن نہ ہوگا ورنہ ضامن ہوگا اور معتوہ و مجنون اس حکم میں مثل نابالغ کے ہیں مگر جو مجنون ایسا ہو کہ کبھی اس کو جنون رہتا ہو اور کبھی افاقہ ہو جاتا ہو وہ مثل صحیح کے ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور کسی شخص پر واجب نہیں ہے کہ اپنے رقیق یعنی محض لونڈی و غلام کی طرف سے قربانی کرے اور نہ یہ واجب ہے کہ اپنی ام ولد کی طرف سے قربانی کرے یہ ملتقط میں ہے مگر مستحب ہے کہ اپنے مملوکوں کی طرف سے قربانی کرے یہ تاتارخانیہ میں ہے۔ جو نابالغ کی ایام قربانی میں بالغ ہو گیا حالانکہ وہ توانگر ہے تو ہمارے اصحاب کے نزدیک بالاجماع اس پر قربانی واجب ہوگی یہ بدائع میں ہے۔ اور مسافروں پر قربانی واجب نہیں ہوتی ہے اور نہ حاجیوں پر جب کہ وہ احرام میں ہوں اگر چہ اہل مکہ میں سے ہوں یہ شرح طحاوی میں ہے اور بیان کیفیت وجوب سوا زانجلہ یہ ہے کہ قربانی اپنے ایام میں بطور موسع (۱) واجب ہوتی ہے یعنی تمام وقت میں کس وقت قربانی کرے کوئی وقت معین نہیں ہے پس جس پر قربانی واجب ہوئی اگر اس نے ایام قربانی میں سے کس وقت قربانی کر دی تو واجب ادا ہو جائے گا خواہ اس نے اول وقت قربانی کی ہو یا درمیان میں یا آخر وقت میں اور اسی سے نکلتا ہے کہ اگر اول وقت میں قربانی واجب ہونے کی اہلیت نہ رکھتا ہو پھر آخر وقت اس کا اہل ہو گیا مثلاً اول وقت میں کافر یا غلام یا فقیر یا مسافر تھا پھر آخر وقت میں اہل ہو گیا یعنی مسلمان آزاد توانگر و مقیم ہو گیا تو اس پر قربانی واجب ہو جائے گی اور اگر اول وقت میں اہلیت

رکھتا تھا (۵) پھر آخر وقت میں نا اہل ہو گیا مثلاً مرتد ہو گیا یا فقیر ہو گیا یا مسافر ہو گیا تو اس پر واجب نہ ہو گی اور

---

**حواشی:** ا موسع وہ وقت جو ادائے فعل سے زائد ہو جیسے فرض ظہر کا وقت ہے اور مضیق وہ وقت کہ بقدر فرض ہو جیسے روزہ پورے دن میں ادا ہوتا ہے۔ (۱) جب دو سو درہم قیمت ہو۔ (۲) کہا کہ میری طرف سے قربانی کر دے۔ (۳) اس کے مال سے وقد مرت الروایۃ فیما تقدم اضع من ھذہ فیہ۔ (۴) کھانے پینے کی کوئی چیز نہ خریدے۔ (۵) مگر قربانی نہ کی۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (382) Kitab al-Adhiyah (The Book of Sacrifice)**

If someone performed a sacrifice at the beginning of the designated time while they were poor, but later became wealthy towards the end of the period, it becomes mandatory (wajib) for them to perform the sacrifice again, and this is the correct view.

If a person remained wealthy throughout the time but did not perform the sacrifice, and then became poor, the value of a goat suitable for sacrifice becomes a debt upon them; when they acquire this amount, they must give it in charity (sadaqah). If a wealthy person dies during the days of sacrifice without having performed it, the obligation is dropped from their responsibility. Among the rules is that as long as the time remains during the days of sacrifice, nothing can substitute for the act of sacrifice itself; so much so that if someone gives the actual goat or its value in charity during these days, the sacrifice is not considered fulfilled. Another rule is that representation (niyabat) is permissible in performing the sacrifice; hence, it is lawful for a person to slaughter the animal themselves or for another to do it on their behalf with their permission. This is because this act of devotion is related to property, so representation is possible, whether the person given permission is a Muslim or a person of the Book (Christian or Jew). Another rule is that if the sacrifice is not performed in its time, its compensation (qaza) must be made. This compensation is sometimes made by giving the price of a goat in charity. If someone had made it mandatory upon themselves to sacrifice a specific goat, but the days of sacrifice passed and they did not perform it, they should give that specific goat in charity alive, whether the person is wealthy or poor. Similarly, if someone bought a goat for the purpose of sacrifice but did not sacrifice it until the days of sacrifice passed, the same rule applies. Another point is that the obligation of this sacrifice has abrogated all previous types of slaughtering, such as aqiqah, rajabiyah, atirah, etc., as stated in 'Al-Bada'i'.

## Chapter Two: Concerning the obligation of sacrifice due to a vow (nadhr) or something similar in meaning

If a person bought a goat for sacrifice and declared its sacrifice with their tongue, then bought another, according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad, they have the right to sell the first goat. If the second goat is inferior to the first, i.e., of lower value, and they slaughter the second goat, they must give the difference in price between the two goats in charity. This is because by declaring the first goat

mandatory with their tongue, they made the value of that first goat mandatory upon themselves for the sake of Allah. Therefore, it is not permissible for them to keep anything for themselves; thus, whatever amount the first goat's price exceeds the second's must be given in charity. Some of our scholars (Mashaikh) have stated that this applies when the buyer is poor; if wealthy, they are not obligated to give the excess price in charity. However, Shams al-Aimma al-Sarakhsi stated that the correct view is that the rule is the same for both the rich and the poor, meaning it is mandatory to give the excess price in charity whether wealthy or poor. This is because although the obligation of sacrifice for a wealthy person is a general responsibility, it becomes specific to the animal designated. Thus, the goat they designated became fixed to the extent of its value, as the designation itself is what counts^1. If a wealthy person bought a sacrificial animal, say a goat, and it was lost, so they bought another, and then the first lost animal was found during the days of sacrifice, they have the choice to sacrifice whichever of the two they wish. But if the person is poor and bought a goat making its sacrifice mandatory, then bought another after the first was lost, and then found the first, the scholars have said that sacrificing both is mandatory for them. This is found in 'Fatawa Qazi Khan'. If someone made the sacrifice of ten animals mandatory upon themselves, the scholars stated that nothing is mandatory upon them except for two... 1. This is the consideration, otherwise specific and non-specific animals are the same.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (382) किताब अल-अज़हिया (बलिदान की पुस्तक)**

यदि किसी ने शुरुआती समय में कुर्बानी कर दी जबकि वह गरीब था, फिर अंत में वह धनी हो गया, तो उस पर वाजिब (अनिवार्य) होगा कि वह दोबारा कुर्बानी करे और यही सही है।

यदि पूरे समय धनी रहा कि कुर्बानी नहीं की, फिर गरीब हो गया, तो कुर्बानी के लायक एक बकरी की कीमत उसके जिम्मे कर्ज हो जाएगी कि जब उसे यह कीमत मिल जाए तो वह इसे दान (सदक़ा) कर दे। और यदि कुर्बानी के दिनों में धनी व्यक्ति मर गया और अभी तक उसने कुर्बानी नहीं की थी, तो उसके जिम्मे से यह समाप्त हो जाएगी। इनमें से एक बात यह है कि कुर्बानी के दिनों में जब तक समय बाकी है, तब तक कुर्बानी के स्थान पर दूसरी चीज नहीं हो सकती, यहाँ तक कि यदि उसने विशेष रूप से बकरी या बकरी की कीमत कुर्बानी के दिनों में दान कर दी, तो उसकी कुर्बानी अदा नहीं होगी। इनमें से एक बात यह है कि कुर्बानी करने में प्रतिनिधित्व (नियाबत) मान्य है, अतः यह जायज़ है कि व्यक्ति स्वयं वध (ज़बह) करे या उसकी अनुमति से दूसरा उसकी ओर से वध कर दे, और यह इस कारण से है कि यह इबादत धन से संबंधित है, अतः इसमें प्रतिनिधित्व हो सकता है, चाहे वह व्यक्ति जिसे अनुमति दी गई है मुसलमान हो या अहले-किताब (यहूदी या ईसाई) हो। इनमें से एक बात यह है कि यदि कुर्बानी अपने समय पर अदा न हुई तो उसकी कज़ा (बाद में भरपाई) होती है। फिर उसकी कज़ा कभी इस तरह होती है कि बकरी की कीमत दान कर दे, और यदि उसने किसी विशेष बकरी की कुर्बानी अपने ऊपर वाजिब कर ली थी लेकिन कुर्बानी के दिन बीत गए और उसने कुर्बानी नहीं की, तो वह उस बकरी को जीवित ही दान कर दे, चाहे वह व्यक्ति धनी हो या निर्धन। इसी प्रकार यदि उसने कोई बकरी इस उद्देश्य से खरीदी कि उसकी कुर्बानी करे लेकिन उसकी कुर्बानी नहीं की यहाँ तक कि कुर्बानी के दिन बीत गए, तो भी यही नियम है। और इनमें से एक बात यह है कि इसके वाजिब होने ने हर उस वध को जो इससे पहले था, जैसे अक़ीक़ा, रजबिया और अतीरा आदि, सबको निरस्त (मनसूख) कर दिया है, जैसा कि 'बदाए' में है।

## दूसरा अध्याय: मन्नत (नज़र) के कारण या उसके समान अर्थों में कुर्बानी वाजिब होने के वर्णन में

एक व्यक्ति ने कुर्बानी के लिए एक बकरी खरीदी और अपनी ज़बान से उसकी कुर्बानी (का संकल्प) कर लिया, फिर दूसरी खरीदी, तो इमाम आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार उसे पहली बकरी बेचने का अधिकार है। और यदि दूसरी बकरी पहली बकरी की तुलना में खराब यानी कम कीमत की

हो और उसने दूसरी बकरी ज़बह की, तो दोनों बकरियों की कीमत में जितना अंतर है, वह उसे दान कर दे क्योंकि जब उसने पहली बकरी को अपनी ज़बान से वाजिब कर लिया था, तो पहली बकरी के मूल्य के बराबर अल्लाह के लिए अपने ऊपर वाजिब कर लिया था, अतः उसके लिए यह उचित नहीं होगा कि वह अपने लिए कुछ बचा कर रखे, इसलिए दूसरी की कीमत से जितनी पहली की कीमत अधिक है, उसे दान करना वाजिब है। और हमारे कुछ उलेमाओं (मशायख़) ने कहा कि यह तब है जब वह व्यक्ति खरीदने वाला गरीब हो, और यदि धनी हो तो उस पर यह वाजिब नहीं है कि बढ़ी हुई कीमत दान करे। और शम्सुल आइम्मा सरखसी ने कहा कि सही यह है कि धनी और गरीब दोनों का नियम एक समान है, अर्थात उस पर वाजिब है कि बढ़ी हुई कीमत दान कर दे, चाहे वह धनी हो या गरीब, क्योंकि धनी पर कुर्बानी का अनिवार्य होना यद्यपि उसके उत्तरदायित्व (ज़िम्मे) में होता है, लेकिन वह उस जानवर के निर्धारण से निश्चित हो जाता है। अतः यह बकरी जो उसने निश्चित की, वह अपने मूल्य के बराबर निश्चित हो गई, क्योंकि निर्धारण में उसी^१ का विचार किया जाएगा। यदि किसी धनी व्यक्ति ने कुर्बानी का जानवर यानी बकरी खरीदी, फिर वह खो गई, फिर उसने दूसरी खरीदी, फिर पहली खोई हुई बकरी कुर्बानी के दिनों में मिल गई, तो उसे अधिकार है कि दोनों में से जिसे चाहे उसकी कुर्बानी करे। और यदि वह निर्धन हो और उसने एक बकरी खरीदकर उसकी कुर्बानी वाजिब कर ली, फिर उसके खो जाने पर दूसरी खरीदी, फिर पहली मिल गई, तो उलेमाओं ने कहा कि उस पर दोनों की कुर्बानी करना अनिवार्य है, यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। यदि किसी ने अपने ऊपर दस जानवरों की कुर्बानी वाजिब की, तो उलेमाओं ने कहा कि उस पर सिवाय दो के कोई वाजिब नहीं... १. इसका विचार है अन्यथा निश्चित और अनिश्चित आदि समान हैं।

---

اگر کسی نے اول وقت میں قربانی کر دی حالانکہ وہ فقیر تھا پھر آخر میں توانگر ہو گیا تو اس پر واجب ہو گا کہ دوبارہ قربانی کرے اور یہی صحیح ہے۔

اگر تمام وقت میں توانگر رہا کہ قربانی نہ کی پھر فقیر ہو گیا تو قربانی کے لائق ایک بکری کی قیمت اس کے ذمہ قرضہ ہو جائے گی کہ جب اس کو یہ قیمت ہاتھ آجائے تو اس کو صدقہ کر دے اور اگر قربانی کے ایام میں توانگر مر گیا اور ہنوز اس نے قربانی ادا نہ کی تھی تو اس کے ذمہ سے ساقط ہو جائے گی از انجملہ یہ ہے کہ قربانی کے ایام میں جب تک وقت باقی ہے تب تک قربانی کرنے کے قائم مقام دوسری چیز نہیں ہو سکتی ہے حتیٰ کہ اگر اس نے بعینہ بکری یا بکری کی قیمت ایام قربانی میں صدقہ کر دی اس کی قربانی ادا نہ ہو گی از انجملہ یہ ہے کہ قربانی کرنے میں نیابت جاری ہوتی ہے پس جائز ہے کہ آدمی خود ذبح کرے یا اس کی اجازت سے دوسرا اس کی طرف سے ذبح کر دے اور یہ اس وجہ سے ہے کہ یہ قربت مال سے متعلق ہے پس اس میں نیابت ہو سکتی ہے خواہ وہ شخص جس کو اجازت دی ہے مسلمان ہو یا کتابی ہو از انجملہ یہ ہے کہ اگر قربانی اپنے وقت پر ادا نہ ہوئی تو اس کی قضا ہوتی ہے پھر اس کی قضا کبھی اس طرح ہوتی ہے کہ بکری کی قیمت صدقہ کر دے اور اگر اس نے کسی خاص بکری کی قربانی کرتا اپنے اوپر واجب کر لیا تھا مگر قربانی کے ایام گذر گئے اور اس نے قربانی نہ کی تو اس کی بکری کو بعینہ زندہ صدقہ کر دے خواہ یہ شخص توانگر ہو یا تنگدست ہو اس طرح اگر اس نے کوئی بکری اس واسطے خریدی کہ اس کی قربانی کرے مگر اس کی قربانی نہ کی یہاں تک کہ قربانی کے ایام گذر گئے تو بھی یہی حکم ہے اور از انجملہ یہ ہے کہ اس کے وجوب نے ہر ذبح کو جو اس سے پہلے تھا جیسے عقیقہ ورجبہ و عتیرہ وغیرہ سب کو منسوخ کر دیا ہے کذا فی البدائع۔

## باب دوسرا: بوجہ نذر کے یا جو اس کے معنی میں ہے قربانی واجب ہونے کے بیان میں

ایک شخص نے قربانی کے واسطے ایک بکری خریدی اور اپنی زبان سے اس کی قربانی واپس کر لی پھر دوسری خریدی تو امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک اس کو پہلی بکری فروخت کرنے کا اختیار ہے اور اگر دوسری بکری بہ نسبت پہلی بکری کے خراب یعنی کم قیمت ہو اور اس نے دوسری بکری ذبح کی تو جس قدر دونوں بکریوں کی قیمت میں تفاوت ہے وہ صدقہ کر دے کیونکہ جب اس نے پہلی بکری کو اپنی زبان سے واجب کر لیا تو پہلی بکری کی مالیت کی قدر اپنے اوپر اللہ تعالیٰ کے واسطے واجب کر لیا پس اس کو روا نہ ہو گا کہ اپنے واسطے کچھ بچا رکھے اس واسطے دوسری کی قیمت سے جس قدر پہلی کی قیمت زائد ہے وہ صدقہ کرنا واجب ہے اور ہمارے بعض مشائخ نے فرمایا کہ یہ اس وقت ہے کہ یہ شخص خریدنے والا فقیر ہو اور اگر توانگر ہو تو اس پر یہ واجب نہیں ہے کہ بڑھتی قیمت صدقہ کرے اور شمس الائمہ سرخسی نے فرمایا کہ صحیح یہ ہے کہ غنی و فقیر دونوں کا حکم یکساں ہے یعنی اس پر واجب ہے کہ بڑھتی قیمت صدقہ کر دے خواہ توانگر ہو یا فقیر ہو اس واسطے کہ غنی پر قربانی کا وجوب اگر چہ ذمہ ہوتا ہے مگر تعین اس کے معین کرنے سے ہو جاتا ہے پس یہ بکری جو اس نے معین کی بقدر اس کی مالیت کے متعین ہو گئی اس واسطے کہ تعین میں اسی۱۸ کا اعتبار کیا جائے گا اگر کسی توانگر نے قربانی کا جانور خریدا یعنی بکری پھر وہ گم ہو گئی پھر اس نے دوسری خریدی پھر پہلی گم شدہ کو ایام قربانی میں پایا تو اس کو اختیار ہے کہ دونوں میں سے جس کو چاہے قربانی کرے اور اگر تنگدست ہو اور اس نے ایک بکری خرید کر اس کی قربانی واجب کر لی پھر گم ہو جانے سے دوسری خریدی پھر پہلی کو پایا تو مشائخ نے فرمایا کہ اس پر دونوں کا قربانی کرنا لازم ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ اگر کسی نے دس جانور کی قربانی اپنے اوپر واجب کی تو

مشائخ نے فرمایا کہ اس پر سوائے دو کے کوئی واجب نہ ۱۔ اس کا اعتبار ہے ورنہ معین وغیرہ معین یکساں ہیں۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 387 Kitab al-Adhiya**

...it will be [valid], because in the reports, only two are mentioned; this is how it is stated in the book. And the correct view is that it becomes obligatory upon them; this is in al-Zahiriyya.

If someone purchased a goat for sacrifice (Qurbani), then sold it and purchased another during the days of sacrifice, there are three scenarios: First, that a goat was purchased with the intention of sacrifice. Second, that a goat was purchased without the intention of sacrifice, and then an intention for sacrifice was made. Third, that it was purchased without the intention of sacrifice, and then one made it obligatory upon themselves verbally, saying, "For the sake of Allah the Almighty, it is obligatory upon me to perform sacrifice with this goat this year." In the first scenario, according to the *Zahir al-Riwayah*, that goat does not become an *Adhiya* (sacrificial animal) until its sacrifice is made obligatory verbally. However, Imam Abu Yusuf (RA) narrated from Imam Azam (RA) that the goat becomes an *Adhiya* merely by intention, just as it becomes obligatory by verbal declaration. This is the view adopted by Imam Abu Yusuf (RA) and some later scholars. It is narrated in *al-Muntaqa* from Imam Muhammad (RA) that if a person buys a goat for sacrifice and keeps the intention in his heart at the time of purchase, it becomes an *Adhiya* according to that intention. Then, if he travels before the days of sacrifice, he may sell it, and the obligation of sacrifice is waived for him due to travel. The second scenario, i.e., buying without the intention of sacrifice and then intending it later, is not mentioned in *Zahir al-Riwayah*. Hasan (RA) narrated from Imam Azam (RA) that it does not become an *Adhiya* to the extent that if he sells this goat, the sale will be valid, and this is the view we hold. In the third scenario, i.e., making its sacrifice obligatory verbally after purchase, it becomes an *Adhiya* according to all scholars by consensus; this is in *Fatawa Qazi Khan*. If a person slaughters a goat, which he had purchased with the intention of sacrifice, without a specific intention at the time of slaughter, it is permissible as the intention at the time of purchase is sufficient; this is in *al-Wajiz al-Kardari*.

If a person purchased a goat with the intention of sacrifice and then sold it, then purchased another and performed the sacrifice, and he sold the first goat for twenty dirhams, and its value increased in the possession of the buyer—meaning it became worth thirty dirhams—then according to Imam Azam (RA) and Imam Muhammad (RA), the sale of the first goat is valid, and it will be obligatory upon him to give in charity (Sadaqah) the amount by which the value increased with the buyer from the second to the first. According to Imam Abu Yusuf (RA), the sale of the first goat is void

(batil), and thus the first goat will be taken back from the buyer; this is in *Tatar Khaniyah*. If a person bought a goat for trade and then verbally made its sacrifice obligatory, it is mandatory for him to do so. If he does not do so until the days of sacrifice pass, he must give that specific animal in charity; this is in *al-Hawi*. If he sacrificed two goats, the most correct view is that the sacrifice of both is valid, as Hasan narrated from Imam Azam (RA) that there is no harm in sacrificing one goat or two. It is stated in *Muhit al-Sarakhsi* that for a sacrifice, buying two goats for thirty dirhams is better than buying one. Conversely, if one buys for twenty dirhams, one goat is better than two because for thirty dirhams, one can get two good, full-grown goats of the required age and size for sacrifice, which is not possible for twenty dirhams. However, if they are available elsewhere for that price, buying two would be better. If two such goats cannot be found for thirty dirhams, buying one goat would be superior; this is in *Fatawa Kubra*. If a person intended to sacrifice a goat but did not specify which one, then one goat becomes obligatory upon him, and he cannot eat from its meat. If he eats any of it, he must give the equivalent value in charity; this is in *al-Wajiz al-Kardari*. If a person said, "For the sake of Allah, it is obligatory upon me to sacrifice a goat," and then he sacrificed a camel or a cow, it is permissible, as mentioned in *al-Sirajiyya*.

---

1 i.e., the sacrifice will be valid.

होगी क्योंकि असर में दो का ही बयान आया है, ऐसा ही किताब में ज़िक्र है और सही यह है कि उस पर वाजिब होंगी, यह ज़हीरिया में है।

अगर किसी ने क़ुर्बानी के वास्ते एक बकरी खरीदी फिर उसको फ़रोख़्त (बेच) किया और अय्यामे क़ुर्बानी (क़ुर्बानी के दिनों) में दूसरी खरीदी तो इसमें तीन सूरतें हैं: अव्वल यह कि क़ुर्बानी की नियत से एक बकरी खरीदी। दुव्वम यह कि बग़ैर नियत क़ुर्बानी के बकरी खरीदी फिर क़ुर्बानी की नियत की। सुव्वम यह कि बग़ैर नियत क़ुर्बानी के खरीदी फिर अपनी ज़बान से उसकी क़ुर्बानी वाजिब कर ली यानी यह कहा 'अल्लाह तआला के वास्ते मुझ पर वाजिब है कि इस साल में इसकी क़ुर्बानी करूँ पस अव्वल सूरत में मुवाफ़िक़ ज़ाहिरुर रिवाया के वह बकरी अज़्हिया (क़ुर्बानी का जानवर) न हो जाएगी जब तक कि अपनी ज़बान से उसकी क़ुर्बानी वाजिब न करे। और इमाम अबू यूसुफ़ रह. ने इमाम आज़म रह. से रिवायत की कि वह बकरी महज़ नियत से अज़्हिया हो जाएगी जैसा कि ज़बान से उसकी क़ुर्बानी वाजिब करने में हो जाती है और इसी को इमाम अबू यूसुफ़ रह. ने और बाज़ मुताअख़िरीन ने लिया है। और इमाम मोहम्मद रह. से मुंतक़ा में मरवी है कि एक शख़्स ने क़ुर्बानी के वास्ते एक बकरी खरीदी और खरीदते वक़्त क़ुर्बानी की नियत दिल में रखी तो वह नियत के मुवाफ़िक़ अज़्हिया हो जाएगी, फिर अगर अय्यामे क़ुर्बानी से पहले उसने सफ़र किया तो उसको फ़रोख़्त कर सकता है और सफ़र की वजह से क़ुर्बानी उससे साक़ित (ख़त्म) हो जाएगी। और सूरत दुव्वम यानी बग़ैर नियत क़ुर्बानी के खरीद कर फिर क़ुर्बानी की नियत की, यह ज़ाहिरुर रिवाया में मज़कूर नहीं है और हसन रह. ने इमाम आज़म रह. से रिवायत की है कि वह अज़्हिया न हो जाएगी यहाँ तक कि अगर उसने यह बकरी फ़रोख़्त कर दी तो उसकी बेअ (बिक्री) जायज़ होगी और हम इसी को लेते हैं। और तीसरी सूरत में यानी खरीदने के बाद अपनी ज़बान से उसकी क़ुर्बानी वाजिब की तो बिला इत्तेफ़ाक़ सबके नज़दीक अज़्हिया हो जाएगी, यह फ़तावा काज़ी ख़ान में है। एक शख़्स ने ऐसी बकरी जिसको उसने ब-नियत क़ुर्बानी खरीदा था बिला नियत क़ुर्बानी ज़बह किया तो जायज़ है कि खरीदने के वक़्त की नियत काफ़ी है, यह वजीज़ करदरी में है।

एक शख़्स ने क़ुर्बानी की नियत से एक बकरी खरीद कर फ़रोख़्त कर दी फिर दूसरी खरीद कर क़ुर्बानी की और पहली बकरी उसने बीस दिरहम को फ़रोख़्त की और मुश्तरी (खरीदार) के पास उसमें ज़्यादती हो गई यानी वह तीस दिरहम की हो गई, तो इमाम आज़म रह. व इमाम मोहम्मद रह. के नज़दीक पहली बकरी की बेअ जायज़ है और उस पर वाजिब होगा कि दूसरी से पहली में जिस

क़दर मुश्तरी के पास ज़्यादती होगी, यह ज़्यादती की मिक़दार सदक़ा कर दे। और इमाम अबू यूसुफ़ रह. के नज़दीक पहली बकरी की बेअ बातिल (अवैध) है पस पहली बकरी मुश्तरी से ले ली जाएगी, यह तातार ख़ानिया में है। एक शख़्स ने तिजारत (व्यापार) के वास्ते एक बकरी खरीदी फिर अपनी ज़बान से उसकी क़ुर्बानी वाजिब कर ली तो उस पर वाजिब है कि ऐसा ही करे और अगर न किया यहाँ तक कि अय्यामे क़ुर्बानी गुज़र गए तो उसको ब-ऐनही (ज्यों का त्यों) सदक़ा कर दे, यह हावी में है। और अगर दो बकरियाँ क़ुर्बानी कीं तो असही (सबसे सही) यह है कि दोनों से क़ुर्बानी होगी क्योंकि हसन ने इमाम आज़म रह. से रिवायत की है कि कुछ डर नहीं है कि एक बकरी से क़ुर्बानी करे या दो बकरियों से क़ुर्बानी करे। मुहीते सरख़सी में है कि एक शख़्स ने अज़्हिया में तीस दिरहम की दो बकरियाँ खरीदना एक के मुक़ाबले में अफ़ज़ल (बेहतर) है, इसके बरअक्स अगर बीस दिरहम की खरीदे तो एक बकरी दो बकरियों की तुलना में बेहतर है क्योंकि तीस दिरहम में क़ुर्बानी के वास्ते जैसी उम्र की और जितनी बड़ी चाहिए वैसी अच्छी पूरी दो बकरियाँ आती हैं और बीस दिरहम में नहीं आती हैं, यहाँ तक कि अगर कहीं आती हों तो दो बकरियाँ खरीदना बेहतर होगा और अगर तीस दिरहम में दो बकरियाँ ऐसी न मिलें तो एक बकरी खरीदना अफ़ज़ल होगा, यह फ़तावा क़ुबरा में है। एक शख़्स ने एक बकरी क़ुर्बानी करने की नियत की और किसी बकरी को मुअय्यन (निर्धारित) न किया तो उस पर एक बकरी वाजिब होगी और उसमें से खा नहीं सकता है और अगर कुछ खाया तो उस क़दर की क़ीमत सदक़ा करनी वाजिब होगी, यह वजीज़ करदरी में है। एक शख़्स ने कहा कि अल्लाह तआला के वास्ते मुझ पर वाजिब है कि मैं एक बकरी क़ुर्बानी करूँ फिर उसने ऊँट या गाय की क़ुर्बानी की तो जायज़ है, कज़ा फ़िस सिराजिया।

---

1 यानी क़ुर्बानी हो जाएगी।

ہوگی اس واسطے کہ اثر میں دوہی کا بیان آیا ہے ایسا ہی کتاب میں مذکور ہے اور صحیح یہ ہے کہ اس پر واجب ہوں گی یہ ظہیریہ میں ہے۔

اگر کسی نے قربانی کے واسطے ایک بکری خریدی پھر اس کو فروخت کیا اور ایام قربانی میں دوسری خریدی تو اس میں تین صورتیں ہیں اول آنکہ قربانی کی نیت سے ایک بکری خریدی دوم یہ کہ بغیر نیت قربانی کے بکری خریدی پھر قربانی کی نیت کی۔ سوم یہ کہ بغیر نیت قربانی کے خریدی پھر اپنی زبان سے اس کی قربانی واجب کر لی یعنی یہ کہا اللہ تعالیٰ کے واسطے مجھ پر واجب ہے کہ اس سال میں اس کی قربانی کروں۔ پس اول صورت میں موافق ظاہر الروایہ کے وہ بکری اضحیہ نہ ہو جائے گی تاوقتیکہ اپنی زبان سے اس کی قربانی واجب نہ کرے اور امام ابو یوسفؒ نے امام اعظمؒ سے روایت کی کہ وہ بکری مجرد نیت سے اضحیہ ہو جائے گی جیسا کہ زبان سے اس کی قربانی واجب کرنے میں ہو جاتی ہے اور اسی کو امام ابو یوسفؒ نے اور بعض متاخرین نے لیا ہے اور امام محمدؒ سے منتقٰی میں مروی ہے کہ ایک شخص نے قربانی کے واسطے ایک بکری خریدی اور خرید کے وقت قربانی کی نیت دل میں رکھی تو وہ نیت کے موافق اضحیہ ہو جائے گی پھر اگر ایام قربانی سے پہلے اس نے سفر کیا تو اس کو فروخت کر سکتا ہے اور بوجہ مسافرت کے قربانی اس سے ساقط ہو جائے گی اور صورت دوم یعنی بغیر نیت قربانی کے خرید کر پھر قربانی کی نیت کی یہ ظاہر الروایہ میں مذکور نہیں ہے اور حسنؒ نے امام اعظمؒ سے روایت کی ہے کہ وہ اضحیہ نہ ہو جائے گی حتیٰ کہ اگر اس نے یہ بکری فروخت کر دی تو اس کی بیع جائز ہوگی اور ہم اسی کو لیتے ہیں اور تیسری صورت میں یعنی خریدنے کے بعد اپنی زبان سے اس کی قربانی واجب کی تو بالاتفاق سب کے نزدیک اضحیہ ہو جائے گی یہ فتاویٰ قاضی

خان میں ہے۔ ایک شخص نے ایسی بکری جس کو اس نے بہ نیت قربانی خریدا تھا بلانیت قربانی ذبح کیا تو جائز ہے کہ خریدنے کے وقت کی نیت کافی ہے یہ وجیز کردری میں ہے۔

ایک شخص نے قربانی کی نیت سے ایک بکری خرید کر فروخت کر دی پھر دوسری خرید کر قربانی کی اور پہلی بکری اس نے بیس درہم کو فروخت کی اور مشتری کے پاس اس میں زیادتی ہوگئی یعنی وہ تیس درہم کی ہوگئی تو امام اعظمؒ و امام محمدؒ کے نزدیک پہلی بکری کی بیع جائز ہے اور اس پر واجب ہوگا کہ دوسری سے پہلی میں جس قدر مشتری کے پاس زیادتی ہوگی یہ زیادتی کی مقدار صدقہ کر دے اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک پہلی بکری کی بیع باطل ہے پس پہلی بکری مشتری سے لے لی جائے گی یہ تاتار خانیہ میں ہے۔ ایک شخص نے تجارت کے واسطے ایک بکری خریدی پھر اپنی زبان سے اس کی قربانی واجب کر لی تو اس پر واجب ہے کہ ایسا ہی کرے اور اگر نہ کیا یہاں تک کہ ایام قربانی گذر گئے تو اس کو بعینہ صدقہ کر دے یہ حاوی میں ہے اور اگر دو بکریاں قربانی کیں تو اصح یہ ہے کہ دونوں سے قربانی ہوگی کیونکہ حسن نے امام اعظمؒ سے روایت کی ہے کہ کچھ ڈر نہیں ہے کہ ایک بکری سے قربانی کرے یا دو بکریوں سے قربانی کرے۔ محیط سرخسی میں ہے کہ ایک شخص نے اضحیہ میں تیس درہم کو خریدنا دو بکریاں بہ نسبت ایک کے افضل ہیں بخلاف اس کے اگر بیس درہم کو خریدے تو ایک بکری بہ نسبت دو بکریوں کے بہتر ہے کیونکہ تیس درہم میں قربانی کے واسطے جیسی سن کی اور جتنی بڑی چاہئے ہے اچھی پوری دو بکریاں آتی ہیں اور بیس درہم میں نہیں آتی ہیں حتیٰ کہ اگر کہیں آتی ہوں تو دو بکریاں خریدنا بہتر ہوگا اور اگر تیس درہم میں دو بکریاں ایسی نہ ملیں تو ایک بکری خریدنا افضل ہوگا یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک بکری قربانی کرنے کی نیت کی اور کسی بکری کو معین نہ کیا تو اس پر ایک بکری واجب ہوگی اور اس میں سے کھا نہیں سکتا ہے اور اگر کچھ کھایا تو اس قدر کی قیمت صدقہ کرنی واجب ہوگی یہ وجیز کردری میں

ہے۔ ایک شخص نے کہا کہ اللہ تعالیٰ کے واسطے مجھ پر واجب ہے کہ میں ایک بکری قربانی کروں پھر اس نے بد نہ یا گائے قربانی کی تو جائز ہے کذا فی السراجیہ۔

---

۱ یعنی قربانی ہوجائے گی ۔

**Chapter Three: Regarding the Timing of Sacrifice**

The time for sacrifice lasts for three days, namely the 10th, 11th, and 12th of Dhu al-Hijjah. The first date is the most virtuous, and the last date is the least preferred. Sacrifice is permissible during the days and nights of these dates, from the break of dawn on the 10th until sunset on the 12th; however, slaughtering at night is disliked (makruh). If there is doubt regarding the Day of Sacrifice (Yawm al-Adha) (1), it is recommended (mustahabb) not to delay it until the third day. If one does delay, it is recommended not to eat any of it and to give it all in charity (sadqa). Furthermore, if the animal has been slaughtered, one should estimate its value as slaughtered and its value as alive; whatever the difference between these two values, that amount should also be given in charity. This is because if the sacrifice occurred outside the prescribed time, the person cannot be absolved of their obligation (1). This is mentioned in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. The Days of Sacrifice (Ayyam al-Nahr) are three days, and the Days of Tashriq (Ayyam al-Tashriq) are three days, and both (2) are completed in four days. Of these four, the first day is solely the Day of Sacrifice, and the last is solely the Day of Tashriq. The middle two days are both Days of Sacrifice and Days of Tashriq. Performing the sacrifice during these days is more virtuous than giving the value of the sacrifice in charity, because by sacrificing, an obligation (wajib) or a Sunnah is fulfilled, whereas giving money is merely voluntary (tatawwu'); thus, sacrifice holds superiority. This is mentioned in *Al-Hidayah*. For rural residents, the recommended time is after sunrise, and for city dwellers, it is after the sermon (khutbah) (3). This is mentioned in *Al-Zahirah*. If someone slaughters while the Eid prayer is still in progress, it is not permissible. Similarly, if they slaughter before the Imam has sat for the duration of the Tashriq (Qa’dah), the same ruling applies. If they slaughtered after the Imam had sat for the duration of the Tashriq but before he had turned for the closing salutation (salam), the scholars have said that based on the opinion of Imam Abu Hanifa, it is not permissible, just as doing so during the prayer itself is not permissible; because according to the Imam, exiting the prayer by one's own action is obligatory. This is as stated in *Al-Bada'i*, and this is correct. This is found in *Khizanat al-Muftin*.

If one slaughters after the Imam has performed one salutation (salam), the sacrifice is permissible by consensus. This is in *Fatawa Qazi Khan*. If the Imam has finished the prayer but has not yet delivered the sermon, slaughtering is permissible. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. If after the Tashahhud, before the Imam has given the salam, a

sacrifice is made, and then it is discovered that the Imam led the prayer without ablution (wudu), the sacrifice will still be valid. If the Imam remembers before the congregation disperses that he led the prayer without wudu, the prayer must be repeated, but the sacrifice need not be repeated. Some scholars have said that the congregation does not need to repeat the prayer; only the Imam does. If the Imam makes an announcement to the people to repeat the prayer, then anyone who slaughtered before becoming aware of this will have a valid sacrifice; however, for those who slaughtered after knowing, it will not be valid. Whether slaughtering occurs before or after the sun passes its meridian (zawal), it is permissible. This is in *Al-Wajiz al-Kardari*. If the prayer was missed on the 10th, whether for a valid reason or not, the sacrifice is not permissible until after the sun has passed its meridian. On the second or third day, the sacrifice is permissible before the prayer, because the time for the first day's prayer expired at zawal, and the prayer performed on the subsequent day would be a makeup (qada) prayer. This is in *Al-Muhit al-Sarakhsi*.

---

(1) If it occurred outside the prescribed time, the obligation was to give a live goat in charity or its value; if it has been slaughtered, calculate the value as live and give the difference in charity. (1) The 10th of Dhu al-Hijjah. (2) From the 10th to the 13th. (3) The prayer sermon.

## तीसरा अध्याय: क़ुर्बानी के वक़्त के बयान में

क़ुर्बानी का वक़्त तीन दिन तक है यानी ज़िल-हिज्जा की दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं तारीख। पहली तारीख सबसे उत्तम (अफ़ज़ल) है और आख़िरी तारीख निम्नतर है। दसवीं तारीख की फ़ज्र (भोर) से लेकर बारहवीं तारीख के सूर्यास्त तक इन दिनों के दिन-रात में क़ुर्बानी जायज़ है, लेकिन रात में ज़बह करना मकरूह (नापसंदीदा) है। और यदि यौम-ए-अज़हा (१) में संदेह हो जाए, तो मुस्तहब (पसंदीदा) यह है कि तीसरे दिन तक देरी न करे। और यदि देरी कर दी, तो मुस्तहब यह है कि उसमें से कुछ न खाए और सब सदक़ा (दान) कर दे। और जिस जानवर को ज़बह किया है, उसकी ज़बह की हुई स्थिति में जो क़ीमत आँकी जाए और जितनी उसकी जीवित रहने की स्थिति में क़ीमत आँकी जाए, उन दोनों क़ीमतों में जितना अंतर हो, उतनी राशि भी सदक़ा कर दे। क्योंकि यदि क़ुर्बानी ग़ैर-वक़्त (समय बीतने के बाद) में हुई, तो यह व्यक्ति अपने अनिवार्य कर्तव्य (वाजिब) से मुक्त नहीं (१) हो सकता। यह 'मुहीत-ए-सरख़्सी' में है। 'अय्याम-उन-नहर' (क़ुर्बानी के दिन) तीन दिन हैं और 'अय्याम-उत-तशरीक़' तीन दिन हैं, और दोनों (२) मिलकर चार दिनों में पूरे होते हैं। इन चार में से पहला दिन केवल 'यौम-उन-नहर' है और इन चार में से आख़िरी दिन केवल 'यौम-ए-तशरीक़' है। बीच के दो दिन 'यौम-ए-नहर' भी हैं और 'यौम-ए-तशरीक़' भी। इन दिनों में क़ुर्बानी करना, क़ुर्बानी की रक़म सदक़ा करने से बेहतर है, क्योंकि यदि उसने क़ुर्बानी की तो वाजिब या सुन्नत अदा हुई, और यदि केवल रक़म दी तो वह केवल नफ़्ल (स्वैच्छिक) है, अतः इस पर उसे श्रेष्ठता प्राप्त है। यह 'हिदाया' में है। गाँव या शहर के बाहरी इलाक़ों के निवासियों के लिए मुस्तहब समय सूर्योदय के बाद है, और शहर वालों के हक़ में ख़ुत्बा (३) के बाद है। यह 'ज़हीरा' में है। यदि किसी ने ऐसी स्थिति में ज़बह किया कि नमाज़ का समय था (नमाज़ चल रही थी), तो जायज़ नहीं है। इसी तरह यदि ऐसी स्थिति में ज़बह किया कि इमाम ने तशह्हुद के बराबर क़ायदा (बैठना) नहीं किया था, तो भी यही हुक्म है। और यदि ऐसी स्थिति में ज़बह किया कि इमाम ने तशह्हुद की मात्रा के बराबर क़ायदा कर लिया था लेकिन अभी सलाम नहीं फेरा था, तो मशायख़ (विद्वानों) ने फ़रमाया कि इमाम-ए-आज़म रह. के कथन के अनुसार जायज़ नहीं है, जैसा कि नमाज़ की स्थिति में ऐसा करना जायज़ नहीं है क्योंकि इमाम के नज़दीक अपनी स्वेच्छा से नमाज़ से बाहर होना फ़र्ज़ है। जैसा कि 'बदाए' में है और यही सही है। यह 'ख़ज़ाना-तुल-मुफ़्तीन' में है।

यदि ऐसी स्थिति में ज़बह किया कि इमाम ने एक सलाम फेर दिया था, तो सर्वसम्मति से क़ुर्बानी जायज़ है। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है। और यदि इमाम नमाज़ से फ़ारिग़ (मुक्त) हो गया और अभी ख़ुत्बा नहीं पढ़ा है, तो ज़बह करना जायज़ है। यह 'मुहीत-ए-सरख़्सी' में है। और तशह्हुद के बाद जब तक इमाम ने सलाम न फेरा हो तब तक क़ुर्बानी (करने पर) पता चला कि इमाम ने बिना वुज़ू के नमाज़ पढ़ाई है, तो क़ुर्बानी जायज़ होगी। और यदि लोगों के अलग होने से पहले इमाम को याद आ गया कि मैंने बिना वुज़ू के नमाज़ पढ़ाई है, तो नमाज़ दोबारा पढ़ी जाएगी (एआदा किया जाएगा) लेकिन क़ुर्बानी दोबारा नहीं की जाएगी। कुछ लोगों ने कहा कि लोग नमाज़ दोबारा नहीं पढ़ेंगे, केवल इमाम पढ़ेगा। और यदि इमाम ने लोगों में घोषणा (मुनादी) करा दी कि नमाज़ दोबारा पढ़ें, तो जिस व्यक्ति ने इस बात के पता चलने से पहले ज़बह कर दिया, उसकी क़ुर्बानी जायज़ होगी, और जिसने जानने के बाद ज़बह किया, उसकी क़ुर्बानी जायज़ नहीं होगी। और यदि ज़वाल (दोपहर) से पहले ज़बह किया या ज़वाल के बाद ज़बह किया, तो जायज़ है। यह 'वजीज़ करदरी' में है। यदि दसवीं तारीख़ को किसी कारणवश (उज़्र) या बिना कारण नमाज़ छोड़ दी, तो जब तक सूर्य का ज़वाल न हो जाए तब तक क़ुर्बानी जायज़ नहीं है। और उसके दूसरे या तीसरे दिन नमाज़ से पहले क़ुर्बानी जायज़ है क्योंकि पहले दिन ज़वाल से नमाज़ का वक़्त निकल गया और दूसरे दिन जो नमाज़ पढ़ी जाएगी वह क़ज़ा होगी। यह 'मुहीत-ए-सरख़्सी' में है।

---

(१) यदि ग़ैर-वक़्त में वाक़े हुई तो उस पर वाजिब था कि बकरी जीवित सदक़ा कर दे या उसकी क़ीमत, और इस सूरत में ज़बह हो गई तो जीवित के हिसाब से क़ीमत लगाकर जितना अंतर हो सदक़ा कर दे। (१) ज़िल-हिज्जा की दसवीं तारीख़। (२) दसवीं से लेकर तेरहवीं तक। (३) नमाज़ का ख़ुत्बा।

---

**باب سوم: قربانی کے وقت کے بیان میں**

قربانی کا وقت تین روز تک ہے یعنی ذی الحجہ کی دسویں و گیارھویں اور بارھویں اور اوّل تاریخ افضل ہے اور آخر تاریخ ادون ہے اور دسویں تاریخ طلوع فجر سے لے کر بارھویں تاریخ غروب آفتاب تک ان ایام کے دن و رات میں قربانی جائز ہے لیکن رات میں ذبح کرنا مکروہ ہے اور اگر یوم اضحیٰ(۱) میں شک ہوا تو مستحب یہ ہے کہ تیسرے روز تک تاخیر نہ کرے اور اگر تاخیر کر دی تو مستحب یہ ہے کہ اس میں سے کچھ نہ کھائے اور سب کو صدقہ کر دے اور جس جانور کو ذبح کیا ہے اس کی ذبح کی ہوئی حالت میں جو قیمت اندازہ کی جائے اور جس قدر اس کے زندہ ہونے کی حالت میں قیمت اندازہ کی جائے ان دونوں قیمتوں میں جس قدر فرق ہو اس قدر دام بھی صدقہ کر دے کیونکہ اگر قربانی غیر وقت میں واقع ہوئی تو یہ شخص عہدہ واجب سے اس کے خارج نہیں(۱) ہو سکتا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے ایام النحر تین دن ہیں اور ایام التشریق تین دن ہیں اور دونوں (۲) چار میں پورے ہوتے ہیں کہ ان چار میں سے اوّل روز فقط یوم النحر ہے اور ان چار میں سے آخر روز فقط یوم تشریق ہے اور بیچ کے دونوں روز یوم نحر بھی ہیں اور یوم تشریق بھی ہیں اور ان ایام میں قربانی کرنا بہ نسبت قربانی کے دام صدقہ کرنے کے افضل ہے کیونکہ اگر اس نے قربانی کی تو واجب ادا ہوا یا سنت ادا ہوئی اور اگر دام کیے تو محض تطوع ہے پس اس پر اس کو فضیلت ہے یہ ہدایہ میں ہے اور سواد شہر والوں کے واسطے وقت مستحب طلوع آفتاب کے بعد ہے اور اہل شہر کے حق میں خطبہ (۳) کے بعد ہے یہ ظہیرہ میں ہے۔ اگر کسی نے ایسی حالت میں ذبح کیا کہ ایام نماز میں تھا تو نہیں جائز ہے اسی طرح اگر ایسی حالت میں ذبح کیا کہ امام نے بقدر تشہد کے قعدہ نہیں کیا تھا تو بھی یہی حکم ہے اور اگر ایسی حالت

میں ذبح کیا کہ امام نے بقدر تشہد کے قعدہ کر لیا تھا مگر ہنوز سلام نہیں پھیرا تھا تو مشائخ نے فرمایا کہ بقیاس قول امام اعظمؒ کے نہیں جائز ہے جیسا کہ نماز میں ہونے کی حالت میں ایسا کرنا نہیں جائز ہے کیونکہ امام کے نزدیک اپنی حرکت سے نماز سے باہر ہونا فرض ہے کذا فی البدائع اور یہ صحیح ہے یہ خزانہ المفتین میں ہے۔

اگر ایسی حالت میں ذبح کیا کہ امام نے ایک سلام پھیرا تھا تو بالاتفاق قربانی جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر امام نماز سے فارغ ہو گیا اور ہنوز خطبہ نہیں پڑھا ہے تو ذبح کرنا جائز ہے یہ محیط سرخسی میں ہے اور تشہد کے بعد جب تک امام نے سلام نہ پھیرا ہو تب تک قربانی معلوم ہوا کہ امام نے بلا وضو نماز پڑھی ہے تو قربانی جائز ہو گی اور اگر لوگوں کے متفرق ہونے سے پہلے امام کو یاد آگیا کہ میں نے بلا وضو نماز پڑھی ہے تو نماز کا اعادہ کیا جائے گا اور قربانی کا اعادہ نہیں کیا جائے گا اور بعض لوگوں نے کہا کہ لوگ نماز کا اعادہ نہ کریں گے فقط امام اعادہ کرے گا اور اگر امام نے لوگوں میں منادی کرا دی کہ نماز کا اعادہ کریں تو جس شخص نے اس بات سے واقف ہونے سے پہلے ذبح کیا ہے اس کی قربانی جائز ہو گی اور جس نے بعد جاننے کے ذبح کیا اس کی قربانی جائز نہ ہو گی اور اگر قبل زوال کے ذبح کیا یا بعد زوال کے ذبح کیا تو جائز ہے یہ وجیز کردری میں ہے۔ اگر دسویں تاریخ بسبب عذر کے یا بلا عذر نماز ترک کی تو جب تک زوال آفتاب نہ ہو تب تک قربانی نہیں جائز ہے اور اس کے دوسرے روز یا تیسرے روز نماز سے پہلے قربانی جائز ہے کیونکہ پہلے زوال آفتاب سے نماز کا وقت فوت ہو گیا اور دوسرے روز جو نماز ادا کی جائے گی وہ قضا ہو گی یہ محیط سرخسی میں ہے۔

(۱) اگر غیر وقت میں واقع ہوئی تو اس پر واجب تھا کہ بکری زندہ صدقہ کر دے یا اس کی قیمت اور اس صورت میں ذبح ہو گئی تو زندہ کے حساب سے قیمت لگا کر جس قدر فرق ہو صدقہ کر دے۔ (۱) دسویں تاریخ ذی الحجہ۔ (۲) دسویں سے لے کر تیرہویں ہے۔ (۳) خطبہ نماز۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8**
**389**
**Kitab al-Adhiya (The Book of Sacrifice)**

It is stated in 'Waqi'at' that if a state of disorder arises in a city such that no ruler or leader remains to lead the people in the Eid-ul-Adha prayer, and the people perform the sacrifice after dawn, it is permissible. This is the preferred (mukhtar) view because the city, in this ruling, becomes equivalent to the outskirts of the city (sawad-e-shahr). This is mentioned in 'Fatawa al-Kubra' and the fatwa is based on this. It is also mentioned in 'Sirajiyyah'. If someone sacrificed their animal after the sun began to decline (zawal) on the Day of Arafah, believing it to be the Day of Arafah, and it later became clear that it was actually the Day of Sacrifice (10th of Dhul-Hijjah), the sacrifice will be valid. Conversely, if someone performed the sacrifice before the prayer believing it to be the Day of Sacrifice (10th), and it later became clear it was the second day (11th), the sacrifice is still valid. This is stated in 'Zahiriyyah'.

If an Imam appoints a deputy (Khalifa) to lead the prayer for weak individuals in the congregational mosque (Jami Masjid) while he himself goes to the open ground (Eidgah) with the stronger men; and after the prayer in the mosque is completed but before the prayer at the Eidgah is finished, a person performs the sacrifice, by analogy (qiyas) it should not be valid, but by legal preference (istihsan) it is permissible. If the sacrifice is performed after the people at the Eidgah have finished but before those at the mosque have finished, it is valid according to both qiyas and istihsan. Some have stated that qiyas and istihsan are the same in both cases. Shams al-A'imma al-Halwani stated that this applies if the person performing the sacrifice belongs to the group that has already completed the prayer. If a person from a group that has not yet prayed performs the sacrifice, it is not valid according to both qiyas and istihsan. It is mentioned in 'Adahi Zafarani' that if someone from one of two parts of a large city—where the people on their side have prayed—performs the sacrifice, or if they are among those who have not prayed yet, the sacrifice will be valid. This is in 'Muhit'. It is recommended (mustahabb) to slaughter during the day rather than at night, as it is more likely that all necessary veins will be properly cut during daylight. This is in 'Jawharah al-Nayyira'.

It is stated in 'Nawazil' that if the Imam leads the Eid prayer on the Day of Arafah and the people sacrifice thereafter, there are two possibilities: either the people had provided testimony of sighting the moon of Dhul-Hijjah before him, or they had not. In the first case, both the prayer and the sacrifice are valid. In the second case,

neither is valid. In this invalid case, if people sacrifice on the second day, there are two further possibilities: either the Imam will lead the prayer on the second day or he will not. In the former, the sacrifice is not valid. In the latter, the matter is twofold: sacrifice performed before zawal or after zawal. If performed before zawal with the expectation that the Imam would pray, it is not valid. If there was no such expectation, it is valid. If the sacrifice is performed after zawal, it will be valid. This all applies if it becomes clear it was the Day of Arafah. If it is not clear and people remain in doubt, in the first scenario (with testimony), people have the choice to sacrifice either before or after zawal on the second day. In the second scenario (without testimony), it is cautious to sacrifice after zawal on the second day. This is found in 'Dhakhirah' and 'Fatawa Attabiyah'. If testimony is given after zawal that the day is the Day of Sacrifice (10th), people should sacrifice. If such testimony is given before zawal, the sacrifice is not valid until the sun declines (zawal). It is stated in 'Tajnees Khawahirzada' that if a person travels and instructs their family to perform the sacrifice on their behalf in the city, that sacrifice will not be valid until the Imam has completed the Eid prayer. Thus it is mentioned in 'Tatarkhaniyya'.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8**

**389**

**किताब अल-अज़हिया (कुर्बानी की किताब)**

वाकयात (किताब) में है कि अगर किसी शहर में ऐसा फ़ितूर (गड़बड़ी) पैदा हो जाए कि वहाँ कोई हाकिम (शासक) न रहे जो लोगों को ईदुज़-ज़ुहा की नमाज़ पढ़ा सके और लोगों ने सुबह सादिक़ के बाद कुर्बानी कर दी, तो यह जायज़ है। यही राय चुनी गई है (मुख़्तार है), क्योंकि उक्त शहर इस हुक्म के मामले में शहर के बाहरी इलाक़े(सवाद-ए-शहर) की तरह हो गया है। ऐसा 'फ़तावा अल-कुबरा' में है और इसी पर फ़तवा है। यह 'सिराजिया' में भी है। अगर किसी ने अरफ़ा के दिन यह समझकर कि आज अरफ़ा है, सूरज ढलने (ज़वाल) के बाद अपनी कुर्बानी के जानवर को ज़िब्ह कर दिया, फिर पता चला कि वह वास्तव में नह्र का दिन (ईद का दिन, 10वीं तारीख़) था, तो उसकी कुर्बानी जायज़ हो जाएगी। और अगर किसी ने यह जानकर कि यह नह्र का दिन (10वीं तारीख़) है, नमाज़ से पहले कुर्बानी कर दी और फिर पता चला कि वह दूसरा दिन (11वीं तारीख़) था, तो भी उसकी कुर्बानी अदा हो जाएगी। यह 'ज़हीरिया' में लिखा है।

अगर इमाम ने किसी व्यक्ति को अपना नायब (खलीफ़ा) नियुक्त किया ताकि वह कमज़ोर लोगों को जामा मस्जिद में नमाज़ पढ़ा दे, और इमाम स्वयं ताक़तवर लोगों को लेकर मैदान (ईदगाह) की तरफ़ चला गया; फिर ईदगाह वालों की नमाज़ पूरी होने से पहले और जामा मस्जिद वालों की नमाज़ पूरी होने के बाद किसी व्यक्ति ने कुर्बानी कर दी, तो क़ियास (तर्क) यह कहता है कि जायज़ न हो, लेकिन इस्तेहसान (बेहतर निर्णय) के तौर पर कुर्बानी जायज़ है। और यदि ईदगाह वालों के फ़ारिग होने के बाद लेकिन मस्जिद वालों के फ़ारिग होने से पहले उसने कुर्बानी की, तो क़ियास और इस्तेहसान दोनों के अनुसार जायज़ है। कुछ का कहना है कि दोनों स्थितियों में क़ियास और इस्तेहसान एक ही हैं। 'शम्सुल अइम्मा हलवानी' ने कहा कि यह उस स्थिति में है जब उसी समूह के व्यक्ति ने कुर्बानी की हो जिसने नमाज़ पढ़ ली हो। यदि उस समूह के व्यक्ति ने जिसने नमाज़ नहीं पढ़ी है, कुर्बानी कर दी, तो क़ियास और इस्तेहसान के अनुसार उसकी कुर्बानी जायज़ नहीं होगी। 'अज़ाही ज़फ़रानी' में है कि यदि बड़े शहर के दो हिस्सों में से किसी व्यक्ति ने, जो उस तरफ़ के लोगों में से है जिन्होंने नमाज़ पढ़ ली है, कुर्बानी की, या दूसरी तरफ़ के लोगों में से है जिन्होंने नहीं पढ़ी है, तो उसकी कुर्बानी जायज़ होगी। यह 'मुहीत' में है। मुस्तहब (पसंदीदा) यह है कि कुर्बानी दिन में की जाए, रात में नहीं,

क्योंकि दिन में सभी नसें (रगें) अच्छी तरह कटने की संभावना अधिक होती है। यह 'जौहरा नय्यिरा' में है।

'नवाज़िल' में है कि अगर इमाम ने अरफ़ा के दिन ही ईद की नमाज़ पढ़ा दी और लोगों ने उसके बाद कुर्बानी कर ली, तो इसमें दो स्थितियाँ हैं: या तो लोगों ने इमाम के सामने ज़िल-हिज्जा का चाँद देखने की गवाही दी थी या नहीं दी थी। पहली स्थिति में नमाज़ और कुर्बानी दोनों जायज़ हैं। दूसरी स्थिति में नमाज़ और कुर्बानी दोनों जायज़ नहीं हैं। इस नाजायज़ स्थिति में अगर लोगों ने अगले दिन कुर्बानी की, तो फिर दो स्थितियाँ हैं: या तो इमाम अगले दिन नमाज़ पढ़ेगा या नहीं पढ़ेगा। पहली स्थिति में कुर्बानी जायज़ नहीं होगी। दूसरी स्थिति में मसला दो तरह का है: या तो ज़वाल (दोपहर) से पहले कुर्बानी की या ज़वाल के बाद। यदि ज़वाल से पहले की और उम्मीद थी कि इमाम नमाज़ पढ़ाएगा, तो कुर्बानी जायज़ नहीं होगी। यदि नमाज़ पढ़ाने की उम्मीद नहीं थी, तो कुर्बानी जायज़ होगी। और अगर लोगों ने ज़वाल के बाद कुर्बानी की हो, तो वह अदा हो जाएगी। यह सब तब है जब यह साफ़ हो गया कि वह अरफ़ा का दिन था। यदि साफ़ नहीं हुआ और लोगों को शक रहा, तो पहली स्थिति में (जब गवाही दी गई थी) लोगों को अधिकार होगा कि चाहे तो दूसरे दिन ज़वाल के बाद ज़िब्ह करें या ज़वाल से पहले। दूसरी स्थिति में (जब गवाही नहीं दी गई थी) एहतियात (सावधानी) इसमें है कि दूसरे दिन ज़वाल के बाद कुर्बानी करें। यह 'ज़खीरा' और 'फ़तावा अताबिया' में है। अगर ज़वाल के बाद गवाही मिली कि आज नह्र का दिन (10वीं तारीख़) है, तो लोग कुर्बानी करें। लेकिन यदि ज़वाल से पहले ऐसी गवाही मिली, तो कुर्बानी तब तक नहीं होगी जब तक सूरज ढल (ज़वाल) न जाए। 'तजनीस ख़्वाहरज़ादा' में है कि यदि कोई व्यक्ति यात्रा पर गया और अपने घर वालों को हुक्म दिया कि मेरी तरफ़ से शहर में कुर्बानी करें, तो जब तक शहर का इमाम नमाज़ से फ़ारिग (निवृत्त) न हो जाए, तब तक उसकी तरफ़ से कुर्बानी अदा नहीं होगी। ऐसा 'तातारीख़ानिया' में लिखा है।

---

**کتاب الاضحیۃ**

واقعات میں ہے کہ اگر کسی شہر میں فتور واقع ہوا کہ اس میں کوئی والی نہ رہا جو لوگوں کو بقر عید کی نماز پڑھادے پس لوگوں نے بعد طلوع فجر کے قربانی کردی تو جائز ہے اور یہی مختار ہے کیونکہ شہر مذکور اس حکم کے حق میں مثل سوادِ شہر کے ہو گیا کذا فی الفتاویٰ الکبریٰ اور اسی پر فتویٰ ہے یہ سراجیہ میں ہے اگر کسی نے عرفہ کے روز یہ جان کر کہ یہ روز عرفہ ہے بعد زوالِ آفتاب کے اپنی قربانی کے جانور کو ذبح کر دیا پھر ظاہر ہوا کہ وہ یوم النحر تھا یعنی دسویں تاریخ تھی تو اس کی قربانی جائز ہو جائے گی اور اگر کسی نے یہ جان کر کہ یہ یوم النحر ہے یعنی دسویں تاریخ ہے نماز سے پہلے قربانی کردی پھر ظاہر ہوا کہ یہ دوسرا روز یعنی گیارھویں تاریخ تھی تو بھی اس کی قربانی ادا ہو جائے گی یہ ظہریہ میں ہے۔

اگر امام نے ایک شخص کو خلیفہ مقرر کیا کہ ضعیف لوگوں کو جامع مسجد میں نماز پڑھادے اور خود قوی آدمیوں کو لے کر صحرا کی طرف یعنی عید گاہ میں گیا پھر عید گاہ والوں کی نماز تمام ہونے سے پہلے جامع مسجد والوں کی نماز تمام ہو جانے کے بعد ایک شخص نے قربانی کردی تو قیاساً یہ ہے کہ جائز نہ ہو مگر استحساناً قربانی جائز ہے اور عید گاہ والوں کے فارغ ہونے کے بعد اہل مسجد کے فارغ ہونے سے پہلے اس نے قربانی کردی تو قیاساً و استحساناً جائز ہے اور بعض نے فرمایا کہ دونوں صورتوں میں قیاس و استحسان ایک ہے اور شمس الائمہ حلوانی نے فرمایا کہ یہ اس صورت میں ہے کہ جس فریق نے نماز پڑھی ہے اس فریق کے آدمی نے قربانی کی ہو اور اگر اس فریق کے آدمی نے جس نے نماز نہیں پڑھی ہے قربانی کردی تو قیاساً و

استحساناً اس کی قربانی جائز نہ ہوگی اور اضاحی زعفرانی میں ہے کہ اگر بڑے شہر کے دو ٹکڑوں میں سے کسی شخص نے جو ایسی طرف کے لوگوں میں سے ہے جنھوں نے نماز پڑھ لی ہے قربانی کی یا دوسری جانب کے لوگوں میں سے ہے جنھوں نے نہیں پڑھی ہے تو اس کی قربانی جائز ہو گی یہ محیط میں ہے۔ مستحب یہ ہے کہ قربانی کو دن میں ذبح کرے نہ رات میں کیونکہ دن میں اس کی سب رگیں اچھی طرح کٹنا ممکن ہے یہ جوہرہ نیرہ میں ہے۔

نواز ل میں ہے کہ اگر امام نے عرفہ کے روز نماز عید پڑھی پھر لوگوں نے اس کے بعد قربانی کر لی تو اس میں دو صورتیں ہیں یا تو اس کے سامنے لوگوں نے ذی الحجہ کے چاند دیکھنے کی گواہی دی تھی یا نہیں دی تھی پس اول صورت میں نماز و قربانی دونوں جائز ہیں اور دوسری صورت میں نماز و قربانی دونوں جائز نہیں ہیں اور اس ناجائز صورت میں اگر دوسرے روز لوگوں نے قربانی کی تو اس میں دو صورتیں ہیں یا تو امام دوسرے روز نماز پڑھ لے گا یا نہ پڑھے گا پس پہلی صورت میں قربانی جائز نہ ہو گی اور دوسری صورت میں مسئلہ دو طرح پر ہے یا تو قبل زوال کے قربانی کی یا بعد زوال کے قربانی کی پس اگر قبل زوال کے قربانی کی پس اگر اس کو امید تھی کہ امام نماز پڑھے گا تو قربانی جائز نہ ہوگی اور اگر اس کے نماز پڑھنے کی امید نہ تھی تو قربانی جائز ہوگی اور اگر لوگوں نے بعد زوال کے قربانی کی ہو تو ادا ہو جائے گی۔ یہ سب اس صورت میں ہے کہ یہ ظاہر ہو گیا کہ یہ روز عرفہ ہے اور اگر یہ ظاہر نہ ہوا لیکن لوگوں نے اس میں شک کیا تو صورت اول میں یعنی جب لوگوں نے امام کے سامنے گواہی دی ہو لوگوں کو اختیار ہوگا چاہیں دوسرے روز زوال کے بعد ذبح کریں یا زوال سے پہلے اور دوسری صورت میں کہ جب لوگوں نے اس کے سامنے گواہی نہ دی ہو تو احتیاط یہ ہے کہ دوسرے روز زوال کے بعد قربانی کریں یہ ذخیرہ میں ہے یہ فتاویٰ عتابیہ میں ہے کہ اگر لوگوں نے بعد زوال کے یوں گواہی دی کہ یہ دن یوم النحر ہے یعنی دسویں تاریخ ذی الحجہ ہے تو لوگوں قربانی کریں

اور اگر لوگوں نے قبل زوال کے ایسی گواہی دی تو قربانی نہ ہو گی مگر جب کہ آفتاب ڈھل جائے اور تجنیس خواہرزادہ میں ہے کہ اگر ایک شخص نے مسافرت اختیار کی ہے اور اپنے اہل کو حکم دیا کہ میری طرف سے شہر میں قربانی کریں تو جب تک امام نماز سے فارغ نہ ہو تب تک اس کی طرف سے قربانی ادا نہ ہو گی کذا فی التاتارخانیہ۔

---

**Fatawa 'Alamgiri ..... Volume 5 | 390 | Kitab al-Adhiya (Book of Sacrifice)**

**Chapter Four: Explanation of situations** relating to time and place. If a person from the city's outskirts (Savad-e-Shahr) comes to the city for the Eid al-Adha prayer and leaves instructions for his family to perform the sacrifice, they have the authority to perform it on his behalf after dawn (fajr). Imam Muhammad (RA) stated that in this regard, we consider the location where the sacrifice is performed; we do not consider the location of the person on whose behalf the sacrifice is made. This is mentioned in 'al-Zahiriyya'. From Hasan bin Ziyad, the opposite (1) is reported, but the first opinion (2) is more correct and we adopt it; this is in 'al-Hawi'. If a person is in the city's outskirts, the sacrifice on his behalf will not be valid until the Imam finishes the prayer. Similar is reported from Imam Abu Yusuf (RA). It is also narrated from the 'Sahibayn' (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad) that if a person is in one city and his family is in another, and he writes to them to perform the sacrifice on his behalf, then the location where the sacrifice takes place is what matters. This means it is necessary for his family to perform the sacrifice after the Imam of the city where they are performing it has finished the prayer. It is narrated from Abul Hasan (A) that the sacrifice is not valid until the prayer has been held in both cities; this is in 'al-Zahiriyya'. If a person takes a sacrificial animal outside the city and slaughters it before the Eid prayer, the scholars have said that if he has traveled far enough from the city that it is permissible for a traveler to perform the 'Qasr' (shortened) prayer, then the sacrifice before the Eid prayer is valid; otherwise, it is not. This is in 'Khazanat al-Muftin'. In matters of poverty, wealth, death, and birth, the end of the days of sacrifice (Ayyam al-Nahr) (Kh) is taken into account. If someone bought a goat for himself or his child and did not perform the sacrifice until the days of sacrifice passed, it becomes mandatory for him to give that goat or its value in charity (sadaqah). Hasan bin Ziyad said that no charity would be mandatory upon him; this is in 'Fatawa Qazi Khan'. If a specific goat was made mandatory for sacrifice or purchased with the intention of sacrifice, and it was not done until the days of sacrifice passed, then he must give it away alive in charity, and it is not permissible for him to eat from it. If he sold it, he should give the proceeds in charity. If he slaughtered it and gave the meat in charity, it is valid, but if the value of the goat while alive was more than when slaughtered, he must also give the difference in charity. If he ate some of it, he will be liable for its value. If he did not do so until the days of sacrifice arrived the following year and he slaughtered it for the previous year's sacrifice, this is not valid. Therefore, if he sold it after the days of sacrifice, he

must give its price in charity. If he sold it at such a price that people consider it a loss, then whatever is estimated is sufficient; but if he sold it at such a low price that no one would estimate it so low, he must also give the deficit in charity. This is in 'al-Zahiriyya'. If someone made a will for a sacrifice to be performed on his behalf and did not specify the animal (goat, cow, etc.) or its price, it is valid, and this will apply to a goat. Conversely, if he appointed an agent (wakil) to perform a sacrifice on his behalf and specified neither the animal nor the price, then this (3) is not valid. This is in 'al-Bada'i'.

(A) Here 'Shaikh' refers to Abul Hasan al-Karkhi. (Kh) The end of the days of sacrifice, i.e., the 12th of Dhul-Hijjah. For example, if someone is poor on the 12th, the sacrifice is waived even if he was wealthy on the 10th. If he is wealthy on the 12th, it is mandatory even if he was poor on the 10th. Apply the same logic to cases of death and birth. (1) Contrary to the opinion of Imam Muhammad. (2) The opinion of Imam Muhammad. (3) Such an agency is not valid.

**अध्याय चार: उन स्थितियों के वर्णन में** जो समय और स्थान से संबंधित हैं। यदि शहर के आसपास के इलाकों (सवाद-ए-शहर) के लोगों में से कोई व्यक्ति ईद-उल-अज़हा की नमाज़ के लिए शहर आया और अपने परिवार से कह आया कि कुर्बानी कर दें, तो उन लोगों को अधिकार है कि उसकी ओर से फज्र के उदय होने के बाद कुर्बानी कर दें। इमाम मुहम्मद (रह.) ने फरमाया कि हम इस विषय में कुर्बानी के स्थान को देखते हैं, उस व्यक्ति के स्थान का विचार नहीं करते जिसकी ओर से कुर्बानी की जा रही है। ऐसा ही 'ज़हीरिया' में है। हसन बिन ज़ियाद से इसके विपरीत (1) वर्णित है, लेकिन पहला मत (2) अधिक सही है और हम इसी को अपनाते हैं, यह 'हावी' में है। और यदि कोई व्यक्ति शहर के बाहरी इलाके में हो, तो जब तक इमाम नमाज़ से फारिग न हो जाए, तब तक उसकी ओर से कुर्बानी जायज़ नहीं होगी। ऐसा ही इमाम अबू यूसुफ (रह.) से वर्णित है। साहिबैन से यह भी वर्णित है कि यदि कोई व्यक्ति एक शहर में हो और उसका परिवार दूसरे शहर में हो, और उसने अपने परिवार को लिखा कि मेरी ओर से कुर्बानी करें, तो जिस स्थान पर कुर्बानी की जाएगी वही मान्य होगी। अर्थात उसके परिवार के लिए अनिवार्य होगा कि जिस शहर में वे उसकी ओर से कुर्बानी कर रहे हैं, वहां के इमाम के नमाज़ से फारिग होने के बाद कुर्बानी करें। अबुल हसन (अ.) से वर्णित है कि कुर्बानी तब तक जायज़ नहीं होगी जब तक दोनों शहरों में नमाज़ न हो जाए, यह 'ज़हीरिया' में है। और यदि किसी व्यक्ति ने कुर्बानी का जानवर शहर से बाहर निकाला और ईद की नमाज़ से पहले उसे ज़बह किया, तो उलेमा ने फरमाया कि यदि वह शहर से इतनी दूर निकल गया है कि वहां मुसाफिर के लिए नमाज़ 'क़स्र' करना जायज़ है, तो ईद की नमाज़ से पहले कुर्बानी जायज़ होगी, अन्यथा नहीं। यह 'खज़ानत-उल-मुफ़्तीन' में है। गरीबी, अमीरी, मृत्यु और जन्म के मामलों में कुर्बानी के अंतिम दिनों (एयाम-अल-नह्र) (ख) का विचार किया जाएगा। यदि किसी ने अपने लिए या अपनी संतान की ओर से एक बकरी खरीदी और फिर कुर्बानी नहीं की यहाँ तक कि कुर्बानी के दिन गुजर गए, तो उस पर अनिवार्य होगा कि वह बकरी या उसकी कीमत सदका (दान) कर दे। हसन बिन ज़ियाद ने फरमाया कि उस पर कोई सदका अनिवार्य नहीं होगा, यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। और यदि किसी विशेष बकरी की कुर्बानी अनिवार्य कर ली हो या कुर्बानी की नियत से कोई बकरी खरीदी हो, फिर ऐसा नहीं किया यहाँ तक कि कुर्बानी के दिन बीत गए, तो उसे जीवित सदका कर दे और उसमें से खाना जायज़ नहीं है। यदि उसे बेच दिया तो उसकी कीमत सदका कर दे, और यदि उसे ज़बह करके उसका मांस सदका कर दिया तो जायज़ है, लेकिन यदि जीवित बकरी की कीमत ज़बह

की हुई से अधिक हो, तो जितनी अधिक हो वह भी सदका करे। यदि उसमें से कुछ खाया हो तो उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा। यदि उसने ऐसा नहीं किया और दूसरे साल कुर्बानी के दिन आ गए और उसे पिछले साल की कुर्बानी की नियत से ज़बह किया, तो यह जायज़ नहीं है। अतः यदि उसे कुर्बानी के दिनों के बाद बेचा तो उसकी कीमत सदका कर दे। यदि उसे इतने कम दामों पर बेचा कि सामान्यतः लोग उसे घाटा मानते हों, तो जितना पर्याप्त हो उतना ठीक है, और यदि इतने कम पर बेचा जिसे कोई भी उचित न मानता हो, तो जितनी कमी है उसे भी सदका करे, यह 'ज़हीरिया' में है। यदि किसी ने वसीयत की कि मेरी ओर से कुर्बानी कर दी जाए और जानवर (बकरी या गाय आदि) या उसकी कीमत स्पष्ट नहीं की, तो यह जायज़ है और यह वसीयत बकरी पर लागू होगी। इसके विपरीत यदि किसी को वकील (प्रतिनिधि) बनाया कि मेरी ओर से कुर्बानी कर दे और न कोई जानवर बताया और न ही कीमत, तो यह (3) जायज़ नहीं है, यह 'बदाए' में है।

(अ.) यहाँ शेख से मुराद अबुल हसन अल-करखी हैं। (ख) कुर्बानी के दिनों का अंत अर्थात 12 ज़ुल-हिज्जा। उदाहरण के लिए, यदि कोई 12 तारीख को गरीब है तो कुर्बानी माफ है चाहे वह 10 तारीख को अमीर रहा हो, और यदि 12 तारीख को अमीर है तो वाजिब है चाहे वह 10 तारीख को गरीब रहा हो। मृत्यु और जन्म के मामले में भी ऐसा ही समझें। (1) इमाम मुहम्मद के कथन के विपरीत। (2) इमाम मुहम्मद का कथन। (3) ऐसी वकालत जायज़ नहीं है।

---

**باب چہارم: اُن صورتوں کے بیان میں** جو متعلق بزمان و مکان ہیں۔ اگر سوادِ شہر کے لوگوں میں سے کوئی شخص نماز بقر عید کے واسطے شہر میں آیا اور اپنے اہل سے کہہ آیا کہ قربانی کر دیں تو ان لوگوں کو اختیار ہے کہ اس کی طرف سے بعد طلوعِ فجر کے قربانی کر دیں اور امام محمدؒ نے فرمایا کہ ہم اس باب میں قربانی کے مقام کو دیکھتے ہیں اس کی طرف سے لحاظ نہیں کرتے ہیں جس کی طرف سے قربانی ہے۔ کذا فی الظہیریہ اور حسن بن زیاد سے بخلاف (۱) اس کے مذکور ہے مگر قول (۲) اول اصح ہے اور ہم اسی کو اختیار کرتے ہیں یہ حاوی میں ہے اور اگر ایک شخص سوادِ شہر میں ہو تو جب تک امام نماز سے فارغ نہ ہو تب تک اس کی طرف سے قربانی جائز نہ ہو گی اور ایسا ہی امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ اور صاحبین سے یہ بھی مروی ہے کہ اگر ایک شخص ایک شہر میں ہو اور اس کے اہل دوسرے شہر میں ہوں پس اس نے اپنے اہل کو لکھا کہ میری طرف سے قربانی کریں تو جس جگہ قربانی واقع ہو وہ معتبر ہو گی یعنی اس کے اہل پر لازم ہو گا کہ جس شہر میں اس کی طرف سے قربانی کرتے ہیں وہاں کے امام کے نماز سے فارغ ہونے کے بعد اس کی طرف سے قربانی کریں اور ابوالحسن (ع) سے مروی ہے کہ قربانی جائز نہ ہو گی جب تک دونوں شہروں میں نماز نہ ہو جائے یہ ظہیریہ میں ہے اور اگر کسی شخص نے قربانی کا جانور شہر سے باہر نکالا اور نمازِ عید سے پہلے اس کو ذبح کیا تو مشائخ نے فرمایا کہ اگر شہر سے اتنی دور نکل گیا ہے کہ وہاں مسافر کو نمازِ قصر کرنا جائز ہے تو نمازِ عید سے پہلے قربانی جائز ہو گی ورنہ نہیں یہ خزانہ المفتین میں ہے اور فقیری و توانگری و موت و ولادت میں آخر ایام (خ) النحر کا اعتبار ہے اگر کسی نے اپنی ذات سے یا اپنے فرزند سے ایک بکری خریدی پھر قربانی نہ کی یہاں تک کہ ایامِ قربانی گزر گئے تو اس پر واجب ہو گا

کہ یہ بکری یا اس کی قیمت صدقہ کر دے اور حسن بن زیاد نے فرمایا کہ اس پر کچھ صدقہ واجب نہ ہو گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر کسی خاص بکری کی قربانی واجب کر لی ہو یا قربانی کی نیت سے کوئی بکری خریدی ہو پھر ایسا نہ کیا یہاں تک کہ ایامِ قربانی گزر گئے تو اس کو زندہ صدقہ کر دے اور اس میں سے کھانا جائز نہیں ہے اور اگر اس کو فروخت کیا تو اس کے دام صدقہ کر دے اور اگر اس کو ذبح کر کے اس کا گوشت صدقہ کر دیا تو جائز ہے مگر اس بکری کے زندہ ہونے کی حالت کی قیمت اگر ذبح کی ہوئی سے زائد ہو تو جس قدر زائد ہو وہ بھی صدقہ کرے اور اگر اس میں سے کچھ کھایا ہو تو اس کی قیمت کا ضامن ہو گا اور اگر اس نے ایسا نہ کیا یہاں تک کہ دوسرے سال میں قربانی کے ایام آ گئے اور اس کو سالِ گذشتہ کی قربانی میں ذبح کیا تو یہ جائز نہیں ہے پس اگر اس کو بعد ایامِ قربانی کے فروخت کیا تو اس کا ثمن صدقہ کر دے پس اگر اس کو اتنے داموں سے فروخت کیا کہ یہ لوگ اپنے انداز میں خسارہ اٹھا لیتے ہیں یعنی کوئی اندازہ کرنے والا اتنے کو اندازہ کرتا ہے تو خیر کافی ہے اور اگر اتنے کو فروخت کی کہ لوگوں میں سے کوئی اس قدر کم قیمت نہیں اندازہ کرتا ہے تو جتنی کمی ہے اس کو بھی صدقہ کرے یہ ظہیریہ میں ہے۔ اگر کسی نے وصیت کی کہ میری طرف سے قربانی کر دی جائے اور قربانی کا جانور بکری یا گائے وغیرہ کچھ نہ بتلایا اور نہ اس کا ثمن بیان کیا تو یہ جائز ہے اور یہ وصیت بکری پر واقع ہو گی بخلاف اس کے اگر کسی کو وکیل کیا کہ میری طرف سے قربانی کر دے اور کوئی جانور نہ بتلایا اور نہ اس کے دام بتلائے تو یہ نہیں (۳) جائز ہے یہ بدائع میں ہے۔

(ع) کان المراد بالشیخ ابوالحسن الکرخی۔ (خ) آخر ایام النحر یعنی بارہویں ذی الحجہ مثلاً بارہویں کو فقیر ہے تو قربانی ساقط ہے اگرچہ دسویں کو امیر تھا اور اگر بارہویں کو امیر ہے تو واجب ہے اگرچہ دسویں کو فقیر تھا اور علیٰ ہذا موت و ولادت میں سمجھو۔ (۱) بخلاف قول امام محمدؒ۔ (۲) قول امام محمدؒ۔ (۳) ایسی وکالت جائز نہیں ہے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (391) Kitab al-Udhiya (Book of Sacrifice)**

...until he died during the days of sacrifice. If he dies before the days of sacrifice pass, the obligation of sacrifice is dropped from him, such that it will not be mandatory for him to leave a will for sacrifice on his behalf. However, if he dies after the days of sacrifice have passed, the obligation to give the price of a goat in charity is not dropped, to the extent that it will be mandatory for him to bequeath the equivalent amount to be given in charity; this is mentioned in *Az-Zahiriyyah*. If a city resident appointed an agent (*wakil*) to sacrifice his goat and then he himself went to the outskirts of the city (*sawad al-shahr*). Then the agent took the sacrificial animal out of the city to a place not considered part of the city and slaughtered it there. Now, if the principal (*muwakil*) was in the outskirts of the city, the agent's act of sacrifice on his behalf is valid. But if the principal had returned to the city and the agent was aware of his return, then without dispute, the sacrifice by the agent on behalf of the principal is not valid. If the agent was unaware of the principal's return to the city, Imams Abu Yusuf (RA) and Muhammad (RA) differed; the opinion of Imam Abu Yusuf, that this sacrifice on behalf of the principal is valid, is the preferred one (*mukhtar*); as stated in *Al-Kubra*.

**Fifth Chapter: Regarding the Place for Fulfilling the Obligation**

Regarding the animals whose sacrifice is valid for the obligatory *Udhiya*, this chapter describes the species (*jins*), types (*naw'*), age (*sin*), quantity (*qadr*), and qualities (*sifat*). It should be clear that for the obligatory sacrifice, the animal must be from one of three species: camel, cattle (cow/ox), or *ghanam* (sheep/goats). Within each species, its types, male or female, castrated (1) or uncastrated male (2) are all included because the species name applies to all of them. 'Ma'z' (goat) is a type (1) of 'ghanam' (2), and 'jamus' (buffalo) (3) is a type of 'baqr' (cattle). Sacrificing a wild animal is not permitted. If an animal is born of one wild and one domestic (3) parent, the mother's status is considered. Thus, if the mother is domestic, the offspring's sacrifice is valid, otherwise not. To the extent that if the sire is domestic and the dam is wild, sacrificing their offspring is not permitted. Some have said that if a deer mates with a domestic goat and a goat is born, its sacrifice is valid, but if a deer is born, it is not. Some have said that if a mare gives birth to a donkey from a wild ass, it shall not be eaten, but if she gives birth to a horse, its ruling is like that of a horse. If a person sacrifices a wild deer or a wild cow that has become tame, it is not valid. Regarding the age of sacrificial animals: for camels, cattle, and goats, sacrifice of any animal less than the age of 'Thani' is not permitted, except specifically for 'Daan' (sheep) (4)

where 'Jad'a' (a 6-month-old) is permissible provided it is healthy and well-built. The meanings of these terms as mentioned by Imam Quduri (RA) are: a six-month-old offspring of 'ghanam' is called 'Jad'a' and a one-year-old is 'Thani'. A one-year-old calf of a cow is 'Jad'a' and a two-year-old is 'Thani'. A four-year-old camel is 'Jad'a' and a five-year-old is 'Thani'. Our specification of these ages means that sacrifice of an animal younger than this is not valid. If it is older, the sacrifice is valid; in fact, slaughtering an older animal is better. Sacrificing a 'Haml' (5), 'Jadi', 'Ajul', or 'Fasil' [terms for very young offspring] is not permitted. Regarding the obligatory amount...

**Footnotes:** 1. Per *Qamus al-Muhit*, 'Ma'z' refers to goats with coarse hair, and 'Daan' to those with woolly hair; some say the opposite. 2. 'Ghanam' is a generic noun including both sheep and goats. Hairy goats are 'Ma'z' and woolly sheep are 'Daan'. 3. i.e., Buffalo. 4. 'Daan' literally means sheep. Commoners mistakenly use terms like 'Meish' for buffalo milk, but 'Meish' refers to sheep. 5. Haml: lamb; Jadi: kid; Ajul: calf; Fasil: camel foal. (1) Known (2) Breeding male (3) Opposite of wild, i.e., domestic.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8 (391) किताबुल अज़हिया (कुर्बानी की किताब)**

...यहाँ तक कि अगर वह कुर्बानी के दिनों में मर गया, इससे पहले कि कुर्बानी के दिन गुज़र जाएं, तो उसके ज़िम्मे से कुर्बानी साक़ित (ख़त्म) हो जाएगी, यहाँ तक कि उस पर अपनी तरफ़ से कुर्बानी करने की वसीयत वाजिब न होगी। और अगर वह कुर्बानी के दिन गुज़रने के बाद मरा, तो उसके ज़िम्मे से बकरी की क़ीमत सदक़ा करने की ज़िम्मेदारी साक़ित न होगी, यहाँ तक कि उस पर वाजिब होगा कि वह इतनी क़ीमत सदक़ा करने की वसीयत करे; यह 'ज़हीरिया' में लिखा है। यदि शहर के रहने वाले ने एक वकील (प्रतिनिधि) नियुक्त किया कि मेरी बकरी की कुर्बानी कर दे और वह खुद शहर के बाहरी इलाके(सवाद-ए-शहर) में चला गया। फिर वकील उस कुर्बानी के जानवर को शहर से बाहर ऐसी जगह ले गया जिसे शहर का हिस्सा नहीं माना जाता और वहाँ उसे ज़बह कर दिया। तो अगर मोक्किल (मालिक) शहर के बाहरी इलाके में हो, तो वकील का उसकी तरफ़ से कुर्बानी करना जायज़ होगा। और अगर मालिक शहर में लौट आया हो और वकील को उसके वापस आने का पता हो, तो बिना किसी मतभेद के, वकील का मालिक की तरफ़ से कुर्बानी करना जायज़ नहीं होगा। और अगर वकील को मालिक का शहर में वापस आना मालूम न हो, तो इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद (रह.) के बीच मतभेद है, और इमाम अबू यूसुफ़ का कथन कि यह कुर्बानी मालिक की तरफ़ से जायज़ होगी, वही मान्य (मुख़्तार) है; जैसा कि 'अल-कुबरा' में उल्लेखित है।

**अध्याय पाँच: वाजिब (अनिवार्य) कुर्बानी अदा करने के स्थान के वर्णन में**

जिस जानवर की कुर्बानी 'अज़हिया-ए-वाजिबा' के तौर पर जायज़ है, और इस अध्याय में उस वाजिब जानवर की नस्ल (जिंस), प्रकार (नऊ), आयु (सिन), मात्रा (क़द्र) और गुण (सिफ़त) का वर्णन है। स्पष्ट हो कि वाजिब नस्लों में यह ज़रूरी है कि कुर्बानी का जानवर ऊँट, गाय या 'ग़नम' (भेड़-बकरी) इन तीन नस्लों में से हो। हर नस्ल में उसकी प्रजाति, नर-मादा, खस्सी (बधिया) (1) और फ़हल (नर/साँड) (2) सब शामिल हैं क्योंकि नस्ल का नाम इन सब पर लागू होता है। 'माज़' (बकरी) एक प्रकार (1) की ग़नम (2) है और 'जामूस' (भैंस) (3) गाय (बक्र) की एक प्रजाति है। कुर्बानी के जानवरों में कोई भी जंगली जानवर जायज़ नहीं है। अगर कोई जानवर एक जंगली और एक पालतू (3) के मेल से पैदा हो, तो माँ (मादा) की स्थिति को देखा जाएगा। यदि मादा पालतू है, तो बच्चे की कुर्बानी जायज़ होगी, अन्यथा नहीं। यहाँ तक कि अगर नर पालतू हो और मादा जंगली हो, तो उनके बच्चे की कुर्बानी जायज़ नहीं है। और कुछ विद्वानों ने कहा कि यदि हिरन ने किसी पालतू बकरी के साथ संभोग किया और उससे बकरी पैदा हुई, तो उसकी कुर्बानी जायज़ होगी और अगर हिरन पैदा हुआ तो जायज़ नहीं

होगी। और कुछ ने कहा कि अगर घोड़ी ने जंगली गधे से गधा जना, तो वह नहीं खाया जाएगा, और अगर घोड़ा जना तो उसका हुक्म घोड़े जैसा है। यदि किसी व्यक्ति ने जंगली हिरन या जंगली गाय को पालतू बना लिया और फिर उसकी कुर्बानी की, तो वह जायज़ नहीं है। कुर्बानी के लिए निर्धारित आयु का वर्णन यह है: ऊँट, गाय और बकरी की हर नस्ल में 'थनी' (एक विशेष आयु) से कम आयु की कुर्बानी जायज़ नहीं है, सिवाय 'ज़ान' (भेड़) (4) के, जिसमें 'जज़आ' (6 महीने का बच्चा) जायज़ है बशर्ते वह मोटा-ताज़ा हो। इन शब्दों के अर्थ इमाम कुदूरी (रह.) ने इस प्रकार बताए हैं: भेड़-बकरी के छह महीने के बच्चे को 'जज़आ' कहते हैं और एक साल का बच्चा 'थनी' होता है। गाय का एक साल का बच्चा 'जज़आ' और दो साल का बच्चा 'थनी' होता है। ऊँट का चार साल का बच्चा 'जज़आ' और पाँच साल का बच्चा 'थनी' होता है। हमने जो आयु निर्धारित की है, उसका अर्थ यह है कि इससे कम उम्र के जानवर की कुर्बानी जायज़ नहीं है। यदि उम्र निर्धारित आयु से अधिक हो, तो कुर्बानी हो सकती है; बल्कि अधिक उम्र का जानवर ज़बह करना बेहतर है। 'हम्ल' (भेड़ का बच्चा) (5), 'जदी' (बकरी का बच्चा), 'अजूल' (बछड़ा) और 'फ़सील' (ऊँट का बच्चा) - इनमें से किसी [जो निर्धारित आयु से कम हों] की कुर्बानी जायज़ नहीं है। और वाजिब मात्रा का...

**पाद-टिप्पणियाँ:** 1. क़ामूस-ए-मुहीत के अनुसार 'माज़' वे बकरियाँ हैं जिनके बाल (पश्म) होते हैं और 'ज़ान' वे जिनके रेशमी बाल हों, कुछ इसके विपरीत कहते हैं। 2. 'ग़नम' एक नस्ल का नाम है जिसमें भेड़ और बकरी दोनों शामिल हैं। पश्म वाली बकरियाँ 'माज़' और ऊन वाली भेड़ें 'ज़ान' कहलाती हैं। 3. यानी भैंस। 4. 'ज़ान' का शाब्दिक अर्थ भेड़ है, और आम लोग 'मीश' शब्द भैंस के लिए इस्तेमाल करते हैं जो गलत है; 'मीश' भेड़ को कहते हैं। 5. हम्ल: भेड़ का बच्चा; जदी: बकरी का बच्चा; अजूल: बछड़ा; फ़सील: ऊँट का बच्चा। (1) प्रसिद्ध (2) जो संभोग के लिए हो (3) जंगली के विपरीत यानी पालतू।

---

تک کہ قربانی کے ایام میں مر گیا قبل اس کے ایامِ قربانی گذر جائے تو اس کے ذمہ سے قربانی ساقط ہو جائے گی حتی کہ اس پر اپنی طرف سے قربانی کرنے کی وصیت واجب نہ ہوگی اور اگر ایامِ قربانی گذرنے کے بعد مرا تو اس کے ذمہ سے بکری کی قیمت صدقہ کرنی ساقط نہ ہوگی حتی کہ اس پر واجب ہوگا کہ اس قدر قیمت صدقہ کرنے کی وصیت کرے یہ ظہیر یہ میں ہے۔ شہر کے رہنے والے نے ایک وکیل کیا کہ میری بکری قربانی کر دے اور خود سواد شہر میں چلا گیا پھر وکیل یہ جانور قربانی کا شہر سے نکال کر ایسی جگہ لے گیا جو شہر میں سے نہیں گنا جاتا اور وہاں ذبح کر دیا پس اگر موکل سواد شہر میں ہو تو وکیل کا اس کی طرف سے قربانی کرنا جائز ہوگا اور اگر شہر میں لوٹ آیا ہو اور وکیل کو اس کے واپس آنے کا حال معلوم ہو تو بلا خلاف وکیل کا قربانی کرنا موکل کی طرف سے جائز نہ ہوگا اور اگر وکیل کو موکل کا شہر میں واپس آنا معلوم نہ ہو تو امام ابو یوسفؒ و امام محمدؒ نے اختلاف کیا ہے اور امام ابو یوسفؒ کا قول کہ یہ قربانی موکل کی طرف سے جائز ہوگی یہ مختار ہے کذا فی الکبریٰ۔

## باب پنجم: محل اقامة الواجب کے بیان میں

جس جانور کا قربانی کرنا اضحیہ واجبہ سے جائز ہے اور اس باب میں جنس واجب واس کے نوع وسن وقدر وصفت کا بیان ہے واضح ہو کہ جنس واجب میں یہ چاہیے کہ قربانی کا جانور اونٹ و گائے و غنم تین جنس سے ہو اور ہر جنس میں اس کی نوع و نر مادہ اور خصی (۱) و فحل (۲) سب داخل ہیں کیونکہ اسم جنس ان سب پر اطلاق کیا جاتا ہے اور معز نوع ۱ غنم ۲ ہے اور جاموس ۳ نوع بقر ہے اور قربانی کے جانوروں میں سے کوئی وحشی نہیں جائز ہے اور اگر کوئی جانور ایک وحشی اور ایک انسی (۳) سے پیدا ہو تو مادہ کا اعتبار ہے پس اگر مادہ پالتو ہو تو بچہ

کی قربانی جائز ہوگی ورنہ نہیں حتی کہ اگر وحشی ہو اور نر پالتو ہو تو ان دونوں کا بچہ قربانی کرنا جائز نہیں ہے اور بعض نے فرمایا کہ اگر ہرن نے کسی پالتو بکری سے جفتی کھائی پس اگر اس سے بکری پیدا ہوئی تو اس کی قربانی جائز ہوگی اور اگر ہرن پیدا ہوا تو جائز نہ ہوگی اور بعض نے فرمایا کہ اگر گھوڑی نے جنگلی گدھے سے گدھا جنا تو وہ نہ کھایا جائے گا اور اگر گھوڑا جنا تو اس کا حکم مثل گھوڑے کے ہے اور اگر کسی شخص نے وحشی ہرن کی جو مانوس ہوگئی ہے یا وحشی گائے کی جو مانوس ہوگئی قربانی کی تو جائز نہیں ہے اور جو جانور قربانی ہو سکتا ہے اس کے سن کا بیان یہ ہے کہ اونٹ و گائے و بکری میں سے ہر جنس کے ثنی سے کم قربانی کرنا نہیں جائز ہے مگر خاصہ ضان ٤ میں سے جذع جائز ہے جبکہ موٹا تازہ ہو اور ان الفاظ کے معانی کا بیان امام قدوریؒ نے یوں ذکر فرمایا کہ غنم کے چھ مہینہ کے بچہ کو جذع کہتے ہیں اور ایک سال کا بچہ ثنی ہوتا ہے اور گائے کا ایک سال کا بچہ جذع ہوتا ہے اور دو برس کا گائے کا بچہ ثنی ہوتا ہے اور اونٹ کا چار برس کا بچہ جذع ہوتا ہے اور پانچ برس کا ثنی ہوتا ہے اور ہم نے جون مقرر کر کے ہر ایک جنس میں یہ بیان کیا ہے اس سے یہ مراد ہے کہ اس سے کم عمر کا قربانی کرنا نہیں جائز ہے اور اگر زیادہ عمر کا ہو تو قربانی ہو سکتا ہے حتی کہ اگر اس عمر سے کچھ بھی کم عمر کا قربانی کیا تو نہیں جائز ہے اور اگر اس سے کچھ زیادہ عمر کا ذبح کیا تو جائز ہے بلکہ افضل ہے اور حمل ٥ وجدی و عجول و فصیل کسی کی قربانی کرنا نہیں جائز ہے اور مقدار واجب کا

**حواشی:** ١ قال المبرحم قاموس محیط سے واضح ہے کہ معز اس کو کہتے ہیں جس کے پشم ہوتی ہے اور ضان جس پر بال ہوں وقیل بالعکس۔ ٢ قولہ غنم اسم جنس ہے بز و گوسفند دونوں کو شامل ہے پس معز پشم دار بکریاں نر و کیش مادہ اور ضان بال دار تیں ومعز کہلاتی ہے۔ ٣ اے گائے میش یعنی بھینس۔ ٤ قولہ ضان بمعنی میش لغت میں ہے اور عوام میں میش و زمیش بمعنی بھینس

کا دودھ مشہور ہے مگر یہ غلط کہتے ہیں میش بھیڑ کو کہتے ہیں۔ ۵ حمل بکری کا بچہ جدی بھیڑ کا بچہ عجول گائے کا بچہ فصیل اونٹ کا بچہ۔ (۱) معروف ہے (۲) جو جفتی کرتا ہو۔ (۳) مقابل وحشی یعنی پالتو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 | 392 | Book of Sacrifice (Kitab al-Udhiya)**

The explanation is that a goat or sheep is permissible for sacrifice on behalf of only one person, even if it is so large and fat that it equals two goats, each of which would be suitable for sacrifice. A camel or a cow is not permissible for more than seven people. If seven people are partners or fewer, it is permissible on their behalf; this is the opinion of the majority of scholars. The required condition is that the animal be free from major defects (1), as stated in *al-Bada'i*. An animal without horns or with a broken horn is permissible for sacrifice, as mentioned in *al-Kafi*. However, if the *mashash* (the ends of bones such as knees and elbows) is fractured, it is not sufficient, according to *al-Bada'i*. The sacrifice of a *Majboob* animal (one unable to copulate), one with a cough, one too old to reproduce, one that has been branded, one whose milk does not descend without a cause, and one whose offspring is present, are all permissible. It is stated in *al-Ajnas* that if the tail-fat (*aliyah*) is small, resembling a congenital stump, it is permissible. If it congenitally lacks tail-fat, Imam Muhammad (RA) stated it is permissible, as in *al-Khulasa*. A blind animal, or a *Aura* (2) (one-eyed) where the blindness is obvious, or a lame animal where the lameness is obvious—meaning it cannot walk on its own feet to the place of sacrifice—or a sick animal whose illness is evident, or one whose both ears or tail are completely severed, or one born without ears; sacrifice is not permissible for any of these. An animal with small ears is permissible. If an entire ear is cut off or it was born with only one ear, it is not permissible. If a portion of the ear, tail, or eye is lost, it is mentioned in *al-Jami al-Saghir* that if the lost portion exceeds the remaining portion, the sacrifice is not permissible; if it is less, it does not hinder validity. Our scholars have differed regarding the definition of "little" and "much." From Imam Abu Hanifa (RA), there are four narrations, and Imam Muhammad (RA) narrated from Imam-e-Azam (RA) in *al-Asl* and *al-Jami* that if one-third of the organ or less is lost, sacrifice is permissible; if more than one-third is lost, it is not. The correct view is that one-third or less is considered "little," and more than one-third is "much." This is the fatwa as stated in *Fatawa Qazi Khan*.

If one-third or more of the vision in an eye is lost, it should be determined as follows: the goat should not be fed for one or two days. Then, its defective eye should be bandaged and a little grass brought near it. The point from which it first sees the grass should be marked. Then, the healthy eye should be bandaged and grass brought near it; the point from which it sees with the defective eye should be marked. The distance between these two points should be estimated. If the distance

is one-third, then one-third of the vision is gone. If half, then half is gone. This is in *al-Kafi*. A toothless goat is permissible if it can graze and eat fodder, otherwise not, as in *al-Bada'i*, and this is the correct view according to *al-Muhit al-Sarkhi*. A "mad" animal (*Majnoona*) is permissible, but if its state prevents it from grazing and eating, it is not. A mangy animal is permissible provided it is healthy and fat; if it is emaciated, it is not. *Sharqa* (ear split lengthwise), *Muqabala* (ear cut from the front and hanging), and *Mudabira* (ear cut from the back and hanging)—all these are permissible. The narrations that the Prophet (PBUH) prohibited the sacrifice of *Sharqa*, *Muqabala*, *Mudabira*, and *Kharqa* are interpreted as a recommendation of avoidance, and the prohibition for *Kharqa* refers specifically to extensive damage. Definitions of "extensive damage" (*Kharq-e-Kathir*) vary, as stated in *al-Bada'i*. One with a severed nose is not permissible.

(1) *Aura* refers to an animal whose one eye or eyesight is lost; scholars intend the latter. (2) The prohibition is based on the extent of damage defined in each saying; the preferred view is that one-third or more is "much." (1) It should not have an obvious major defect, the description of which follows.

विवरण यह है कि बकरी और भेड़ केवल एक व्यक्ति की ओर से जायज़ है, चाहे वह इतनी बड़ी और मोटी हो कि दो बकरियों के बराबर हो, जिनमें से प्रत्येक की कुर्बानी हो सकती है। और एक ऊंट या एक गाय की कुर्बानी सात से अधिक व्यक्तियों की ओर से जायज़ नहीं है। तो सात व्यक्ति शामिल हों या कम हों, उनकी ओर से हो सकती है। और यह सामान्य विद्वानों का कथन है। और आवश्यक गुण यह है कि वह 'ऐब-ए-फ़ाश' (गंभीर दोषों) (1) से मुक्त हो, जैसा कि 'बदाए' में है। और जिसके सींग न हों या सींग टूटा हुआ हो, उसकी कुर्बानी जायज़ है, जैसा कि 'काफी' में है। और यदि 'मशाश' (हड्डियों के सिरों) में टूटन हो, तो पर्याप्त नहीं है। मशाश हड्डियों के सिरों को कहते हैं जैसे घुटने और कोहनियाँ, यह 'बदाए' में है। और 'मजबूब' (जो संभोग करने में अक्षम है) की कुर्बानी, और जिसे खांसी आती हो, और जो बुढ़ापे के कारण बच्चे जनने से अक्षम हो, और जिसे दागा गया हो, और जिसका दूध बिना किसी कारण के न उतरता हो, और जिसका बच्चा मौजूद हो, उन सब की कुर्बानी जायज़ है। 'अजनास' में है कि यदि उसका 'अलिया' (पूँछ की चर्बी) छोटा हो जो जन्मजात पूँछ के समान हो, तो वह जायज़ है। और यदि उसे जन्मजात अलिया न हो, तो इमाम मुहम्मद (रह.) ने कहा कि जायज़ है, जैसा कि 'खुलासा' में है। और अंधा जानवर, और 'औरा' (2) (काना) जिसका कानापन स्पष्ट हो, और लंगड़ा जिसका लंगड़ापन स्पष्ट हो—अर्थात जो अपने पैरों पर चलकर कुर्बानी के स्थान तक न पहुँच सके—और बीमार जिसका बीमार होना स्पष्ट हो, और वह जिसके दोनों कान और पूँछ पूरी तरह कटे हुए हों, और वह जो बिना कान के पैदा हुआ हो, उन सब की कुर्बानी जायज़ नहीं है। और जिसके कान छोटे हों, वह जायज़ है। और जिसका एक पूरा कान कटा हुआ हो या जो जन्मजात एक ही कान वाला हो, वह जायज़ नहीं है। और यदि कान, पूँछ और आँख, इन अंगों में से कुछ हिस्सा गया हो और कुछ न गया हो, तो 'जामे सगीर' में वर्णित है कि जितना हिस्सा चला गया है, यदि वह बाकी की तुलना में अधिक हो, तो कुर्बानी जायज़ नहीं है; और यदि कम हो, तो वह कुर्बानी की वैधता में बाधा नहीं है। हमारे विद्वानों ने 'थोड़ा' और 'बहुत' की मात्रा में मतभेद किया है। इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) से चार रिवायतें हैं, और इमाम मुहम्मद (रह.) ने इमाम-ए-आज़म (रह.) से 'अस्ल' और 'जामे' में रिवायत की है कि यदि एक तिहाई अंग या उससे कम गया हो, तो कुर्बानी जायज़ है; और यदि एक तिहाई से अधिक गया हो, तो जायज़ नहीं है। और सही यही है कि यदि एक तिहाई या कम हो तो वह 'थोड़ा' है, और यदि एक तिहाई से अधिक हो तो वह 'बहुत' है। और इसी पर फतवा है, यह 'फतावा काज़ी खान' में है।

आँख में से एक तिहाई या उससे अधिक दृष्टि चली गई हो, इसे इस तरह जाँचना चाहिए: बकरी को एक या दो दिन तक चारा न दिया जाए। फिर उसकी दोषपूर्ण आँख पर पट्टी बाँध दी जाए और थोड़ा-थोड़ा घास उसके पास लाया जाए। जिस स्थान से वह आँख से देखे, उस स्थान पर निशान लगा दिया जाए। फिर स्वस्थ आँख पर पट्टी बाँध दी जाए और थोड़ा-थोड़ा घास उसके पास लाया जाए। फिर दोषपूर्ण आँख से वह जहाँ से देख सके, वहाँ निशान लगा दिया जाए। फिर पहले निशान और इस निशान के बीच की दूरी का अनुमान लगाया जाए। यदि दूरी एक तिहाई के बराबर हो, तो एक तिहाई दृष्टि चली गई और दो तिहाई बाकी है। और यदि आधी हो, तो आधी चली गई। यह 'काफी' में है। जिस बकरी के दाँत न हों, यदि वह चरती है और चारा खा सकती है, तो जायज़ है, अन्यथा नहीं, जैसा कि 'बदाए' में है, और यही सही है। यह 'मुहीत सुख़्ख़ी' में है। 'मजनूना' (पगली) जायज़ है, लेकिन यदि यह बात उसे चरने और चारा खाने से रोकती हो, तो जायज़ नहीं है। 'ख़ारश्ती' (खुजली वाला) जायज़ है बशर्ते वह मोटा-ताज़ा हो; और यदि वह दुबला हो, तो जायज़ नहीं है। 'शर्क़ा' यानी जिसका कान लंबाई में फटा हो, 'मुक़ाबला' यानी जिसका कान सामने से कटा हुआ लटकता हो और पूरी तरह अलग न हुआ हो, और 'मुदाबिरा' यानी जिसका कान पीछे की ओर से कटा हुआ लटकता हो—ये सब जायज़ हैं। और यह जो रिवायत किया गया है कि रसूलुल्लाह (सल्ल.) ने शर्क़ा, मुक़ाबला, मुदाबिरा और ख़र्क़ा की कुर्बानी करने से मना फ़रमाया है, तो शर्क़ा, मुक़ाबला और मुदाबिरा की मनाही तो इस पर आधारित है कि वह केवल नापसंदीदा (नद्ब) है, और ख़र्क़ा की मनाही उस पर आधारित है जिसमें क्षति (ख़र्क़) बहुत अधिक हो। 'ख़र्क़ए-कसीर' (अधिक क्षति) की परिभाषा में विभिन्न कथन हैं, यह 'बदाए' में है। और जिसकी नाक कटी हो, वह जायज़ नहीं है।

(1) 'औरा' वह जिसकी एक आँख चली गई हो या आँख की रोशनी चली गई हो; फ़ुक़हा के अनुसार यहाँ दूसरा अर्थ अभिप्रेत है। (2) हर कथन में जितना 'ख़र्क़ए-कसीर' बताया गया है, उसी के अनुसार मनाही भी मानी जाएगी; और चुना हुआ मत यह है कि एक तिहाई या अधिक 'कसीर' (बहुत) है। (1) इसमें कोई गंभीर दोष न हो, और इसका विवरण आगे आता है।

---

بیان یہ ہے کہ بکری اور بھیڑ فقط ایک آدمی کی طرف سے جائز ہے اگر چہ وہ بڑی اور موٹی ہو کہ اسی دو بکریوں کے برابر ہو کہ جس میں سے ہر ایک کی قربانی ہو سکتی ہے اور ایک اونٹ یا ایک گائے کی قربانی سات آدمی سے زیادہ کی طرف سے نہیں جائز ہے پس سات آدمی شریک ہوں یا کم ہوں تو ان کی طرف سے ہو سکتی ہے اور یہ عام علماء کا قول ہے اور صفت واجب یہ ہے کہ عیوبِ فاحشہ (۱) سے سالم ہو کذا فی البدائع اور جس کے سینگ نہ ہوں یا سینگ ٹوٹا ہوا اس کی قربانی جائز ہے کذا فی الکافی اور اگر مشاش میں شکستی ہو تو کافی نہیں ہے اور مشاش ہڈیوں کے سروں کو کہتے ہیں جیسے گھٹنے و کہنیاں یہ بدائع میں ہے اور مجبوب کی یعنی جو جماع کرنے سے عاجز ہے اس کی قربانی اور جس کو کھانسی آتی ہو اور جو بڑھاپے کے سبب سے بچے جننے سے عاجز ہو اور جس کو داغ دیا گیا ہو اور جس کا دودھ بدوں کسی علت کے نہ اترتا ہو اور جس کا بچہ موجود ہے سب کی قربانی جائز ہے اور اجناس میں ہے کہ اگر اس کا الیہ چھوٹا ہو کہ پیدائشی دم گزہ کے مشابہ ہو وہ جائز ہے اور اگر اس کی پیدائشی الیہ نہ ہو تو امام محمدؒ نے فرمایا کہ جائز ہے کذا فی الخلاصة اور تاریک چشم اور عوراء ۲ جس کا ایک چشم ہونا کھلا ہوا ہو اور لنگ جس کا لنگڑا ہونا کھلا ہوا ہو یعنی قربانی کی جگہ تک اپنے پیروں سے نہ چل سکے اور مریض جس کا بیمار ہونا کھلا ہوا ہو اور وہ جس کی دونوں کان دم بالکلیہ کٹی ہوئی ہو اور وہ جس کی پیدائشی کان نہ ہوں سب کی قربانی جائز نہیں ہے اور جس کے کان چھوٹے ہوں وہ جائز ہے اور جس کا پورا ایک کان کٹا ہوا ہو یا جس کا پیدائشی ایک ہی کان ہو وہ جائز نہیں ہے اور اگر کان دم و آنکھ ان اعضا میں تھوڑا گیا ہو اور تھوڑا نہ گیا ہو تو جامع صغیر میں مذکور ہے کہ جس قدر جاتا رہا ہے اگر وہ بہ نسبت باقی کے زیادہ ہو تو قربانی جائز نہیں ہے اور اگر کم ہو

تو جوازِ قربانی سے مانع نہیں ہے اور ہمارے اصحاب نے قلیل و کثیر کی تعداد میں اختلاف کیا ہے اور امام ابوحنیفہؒ سے چار روایتیں ہیں اور امام محمدؒ نے امامِ اعظمؒ سے اصل اور جامع میں روایت کی کہ اگر تہائی عضو یا اس سے کم جاتا رہا ہو تو قربانی جائز ہے اور اگر تہائی سے زیادہ گیا ہو تو نہیں جائز ہے اور صحیح یہی ہے کہ اگر تہائی یا کم ہو تو قلیل ہے اور اگر تہائی سے زیادہ ہو تو کثیر ہے اور اسی پر فتویٰ ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

آنکھ میں سے تہائی سے زیادہ کا جاتا رہا اس طرح پہچاننا چاہئے کہ بکری کو ایک یا دو روز تک چارہ نہ دیا جائے پھر اس کی عیب دار آنکھ پر پٹی باندھ دی جائے اور تھوڑی تھوڑی گھاس اس کے قریب کی جائے پس جس جگہ سے وہ آنکھ سے دیکھے اس مقام پر نشان کر دیا جائے پھر یہ صحیح آنکھ باندھ دی جائے اور تھوڑی تھوڑی گھاس اس کے قریب کی جائے پس عیب دار آنکھ میں سے جس جگہ سے نظر کرے وہ نشان کر دیا جائے پھر پہلے نشان و اس نشان دونوں کے درمیان کی مسافت انداز کی جائے پس اگر بقدر تہائی کے مسافت ہو تو تہائی آنکھ جاتی رہی اور دو تہائی باقی ہے اور اگر آدھی ہو تو آدھی گئی اور آدھی باقی رہی یہ کافی میں ہے۔ جس بکری کے دانت نہ ہوں اگر وہ چرتی اور چارہ کھا سکتی ہو تو جائز ہے ورنہ نہیں کذا فی البدائع اور یہی صحیح ہے یہ محیط سرخی میں ہے اور مجنونہ جائز ہے لیکن اگر یہ امر اس کے چرنے اور چارہ کھانے سے مانع ہو تو نہیں جائز ہے اور خارشتی جائز ہے بشرطیکہ موٹی تازی ہو اور اگر دبلی ہو تو نہیں جائز ہے اور شرقاء یعنی جس کا کان طول میں پھٹا ہوا ہو اور مقابلہ یعنی جس کا کان آگے سے کٹا ہوا لٹکتا ہو بالکل الگ نہ ہوا ہو اور مدابرہ یعنی جس کا کان پیچھے کی طرف سے کٹا ہوا لٹکتا ہو یہ سب جائز ہے اور یہ جو روایت کیا گیا ہے کہ رسول صلی اللہ علیہ وسلم نے شرقاء اور مقابلہ و مدابرہ و خرقاء کی قربانی کرنے سے ممانعت فرمائی ہے پس شرقاء و مقابلہ و مدابرہ کی ممانعت تو اس پر محمول ہے کہ بسبیل ندب منع فرمایا ہے اور خرقاء کی ممانعت اس پر

محمول ہے کہ جس کی خرق کثیر ہو اس سے منع فرمایا ہے اور خرق کثیر کی تعریف میں اقوال مختلف ہیں یہ بدائع میں ہے اور جس کی ناک کٹی ہو وہ جائز نہیں ہے یہ

۱۔ عوراء جس کی ایک آنکھ جاتی رہی ہو یا آنکھ کی بینائی جاتی رہی ہو مراد معنی ثانی ہیں علی قول الفقہاء۔ ۲۔ ہر قول میں جس قدر خرق کثیر بیان کیا گیا ہے اسی کے موافق ممانعت بھی قرار دی جائے گی اور مختار یہ کہ تہائی یا زائد کثیر ہے۔ (۱) اس میں کوئی عیبِ فاحش نہ ہو اور اس کا بیان آتا ہے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) (393) Kitab al-Adhiya (Book of Sacrifice)**

In 'Zahiriya' it is stated: An animal that is 'Ahwal' (squint-eyed) is permissible for sacrifice. Similarly, one whose wool has been shorn is also permissible. This is in 'Fatawa Qazi Khan'. An animal whose teats are cut is not permissible, nor is one that cannot breastfeed its offspring, nor one whose teats have dried up. This is in 'Muheet Sarkhasi'. In 'Takmees' it is written: I wrote to Sheikh Abu al-Hasan Ali al-Marghinani asking if a goat with a cut tongue is permissible for sacrifice. He replied that yes, it is permissible, provided it does not interfere with its eating fodder. If it interferes with eating, its sacrifice (1) is not permissible. This is in 'Tatarkhania'. If it is a bull with a cut tongue, the sacrifice cannot be performed; this is in 'Quniya'.

If among sheep or goats, one has no tongue, its sacrifice is permissible, but if it is among cattle, it is not permissible. This is in 'Khulasa'. Sheikh Amr bin al-Hafiz was asked: If a sixth part of each of the two ears of a sacrificial animal is missing, should these parts be added together? According to Imam Azam's view, if combined they reach a third, it would prevent sacrifice, just as small impurities on clothes across seven spots are combined to see if they equal a Dirham or more. Should we reason by analogy and combine them, or treat them like tears in two socks where each sock (2) is considered separately and thus not combined, making the sacrifice permissible? He replied that they shall not be combined. It was also asked: if a person cuts more than a third of the tongue of a sacrificial animal, is its sacrifice permissible according to Imam Azam? He replied that it is not permissible. This is in 'Tatarkhania'. A 'Jalala' animal is not permissible, meaning an animal that only eats filth and nothing else. This is in 'Fatawa Qazi Khan'. An animal that is so thin that there is no marrow in its bones is not permissible; this is in 'Mabsut'. If it is thin but has some fat, it is permissible; this is narrated from Imam Muhammad. If it was thin at the time of purchase but became fat after being bought, it is permissible. This is in 'Fatawa Qazi Khan'. One whose teat-tips are cut is not permissible. If less than half of a teat-tip is cut, there is the same difference of opinion as there is regarding eyes and ears. If a sheep or goat is born without a teat-knob or has lost one to an ailment and only one remains, it is not permissible. In camels and cows, if one teat-knob is lost, it is permissible, but if two are lost, it is not. This is in 'Khulasa'. If one of the four legs of a four-legged animal is cut, it is not permissible. This is in 'Tatarkhania'. The sacrifice of a 'Khuntha' (1) goat is not permissible because its meat does not cook properly. If the hair of a sacrificial animal falls out before the time of sacrifice, it is permissible provided there is marrow in its bones. This is in 'Quniya'. A 'Khantur' is not

permissible. Among goats, 'Khantur' refers to one whose milk from one of its two teats has dried up. In cows and camels, it refers to one where milk from two teats has dried up because these animals have four (2) teats each. This is in 'Ghiyasiya'.

Some of the Mashaikh (scholars) mentioned a fundamental principle (3) in this chapter on defects: a defect that completely destroys the utility or completely destroys the beauty of the animal prevents its sacrifice. That which does not, does not prevent it. Furthermore, a defect that prevents sacrifice is applicable to a wealthy person in all cases, whether they buy the animal already defective or buy it healthy and it later becomes defective. In all such cases, it is not permissible for them. However, for a person of limited means (2), it is permissible in all cases. This is in 'Muheet'.

(1) Khuntha means an intersex animal possessing both male and female characteristics. (2) There is a flaw in this reasoning; the reliable view is that if milk from half the teats dries up, the reasoning would be valid. (3) Note that 'Faqir' or 'person of limited means' used here does not mean a beggar, but someone who does not possess the 'Nisab' (minimum threshold for obligatory charity). Likewise, 'wealthy' refers to someone who possesses the Nisab. (1) Not permissible. (2) Equivalent to the width of three fingers. (3) General rule.

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द (8) (393) किताबुल अज़हिया (बलिदान की पुस्तक)**

ज़हीरिया में है कि जो 'अहवल' हो, यानी जिसकी आँखें तिरछी हों, वह (बलिदान के लिए) जायज़ है। इसी तरह जिसकी ऊन उतार ली गई हो, वह भी जायज़ है। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। जिसके थन कटे हुए हों, वह जायज़ नहीं है, और जो अपने बच्चे को दूध न पिला सकती हो, और जिसके थन सूख गए हों, वह जायज़ नहीं है। यह 'मुहीत सरख़सी' में है। 'तक्मीस' में लिखा है कि मैंने शैख़ अबुल हसन अली अल-मर्ग़ीनानी को लिखा कि अगर बकरी की ज़बान कटी हुई हो तो क्या उसकी क़ुर्बानी (बलिदान) जायज़ है? तो जवाब में फ़रमाया कि हाँ जायज़ है, बशर्ते कि ऐसी न हो कि उसके चारा खाने में रुकावट आती हो। और अगर चारा खाने में रुकावट आती हो तो उसकी क़ुर्बानी (1) जायज़ नहीं है। यह 'तातारख़ानिया' में है। और अगर ज़बान कटा हुआ बैल हो तो क़ुर्बानी नहीं हो सकती, यह 'क़ुनैया' में है।

अगर भेड़-बकरी में से किसी की ज़बान न हो तो उसकी क़ुर्बानी जायज़ है और अगर गाय-बैल में से हो तो नहीं जायज़ है, यह 'ख़ुलासा' में है। और शैख़ उम्र बिन अल-हाफ़िज़ से पूछा गया कि अगर क़ुर्बानी के जानवर के दोनों कानों में से हर एक का छठा हिस्सा कट गया हो, तो क्या इन्हें जमा किया जाएगा ताकि इमाम आज़म के क़ौल पर तिहाई (एक-तिहाई) होकर क़ुर्बानी से रोकने वाला बन जाए, जैसे कि कपड़ों पर लगी गंदगियाँ जो सात जगह थोड़ी-थोड़ी हों उन्हें जमा किया जाता है ताकि पता चले कि वह एक दिरहम के बराबर हैं या ज़्यादा? इस पर क़यास करके इसे भी जमा करेंगे या जिस तरह दोनों मोज़ों के फटे होने को जमा नहीं करते बल्कि हर एक मोज़े (2) का अलग-अलग हिसाब होता है, उसी तरह इसमें भी जमा नहीं किया जाएगा और क़ुर्बानी जायज़ होगी? तो फ़रमाया कि जमा नहीं किया जाएगा। और यह भी पूछा गया कि अगर किसी व्यक्ति ने क़ुर्बानी के जानवर की तिहाई से ज़्यादा ज़बान काट डाली, तो क्या इमाम आज़म के क़ौल के अनुसार उसकी क़ुर्बानी जायज़ है? फ़रमाया कि नहीं जायज़ है। यह 'तातारख़ानिया' में है। और 'जलाला' जायज़ नहीं है, यानी वह जानवर जो केवल गंदगी खाता है और कुछ नहीं खाता। यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। और जो जानवर इतना दुबला हो कि जिसकी हड्डियों में गूदा न हो, वह जायज़ नहीं है, यह 'मब्सूत' में है। अगर दुबली हो मगर उसमें कुछ चर्बी हो तो जायज़ है, यह इमाम मुहम्मद से वर्णित है। और अगर ख़रीदते समय दुबली थी फिर ख़रीदने के बाद मोटी हो गई तो जायज़ है, यह फ़तावा क़ाज़ी ख़ान में है। और जिसके थनों के सिरे कटे हुए हों वह जायज़ नहीं है। और अगर एक थन में से आधे से कम सिरा कटा हुआ हो तो उसमें वैसा ही मतभेद है जैसा आँख और कान में है। और अगर दुंबे या बकरी के किसी

एक थन की घुंडी पैदाइशी न हो या किसी आफ़त से चली गई हो और एक बाक़ी हो तो नहीं जायज़ है। और ऊंट और गाय में अगर एक घुंडी चली गई हो तो जायज़ है और अगर दो चली गई हों तो नहीं जायज़ है, यह 'ख़ुलासा' में है। और अगर चौपाये के चारों पैरों में से एक कटा हुआ हो तो जायज़ नहीं है, यह 'तातारख़ानिया' में है। और 'ख़ुनसा' (1) बकरी की क़ुर्बानी जायज़ नहीं है क्योंकि उसका मांस नहीं गलता। क़ुर्बानी के जानवर के बाल बिना क़ुर्बानी के समय गिर गए हों तो वह जायज़ है बशर्ते कि उसकी हड्डियों में गूदा मौजूद हो, यह 'क़ुनैया' में है। और 'ख़नतूर' जायज़ नहीं है। 'ख़नतूर' बकरियों में उसे कहते हैं जिसके दोनों थनों में से एक का दूध सूख जाए। और गाय व ऊंट में उसे कहते हैं जिसके दो थनों का दूध सूख जाए क्योंकि इन दोनों के चार-चार (2) थन होते हैं, यह 'ग़ियासिया' में है।

मशाइख़ (विद्वानों) में से कुछ ने दोषों के इस अध्याय में एक सिद्धांत (3) का उल्लेख किया और फ़रमाया कि जो दोष ऐसा हो कि उपयोगिता को पूरी तरह नष्ट कर दे या सुंदरता को पूरी तरह नष्ट कर दे, वह क़ुर्बानी से रोकता है। और जो ऐसा न हो वह नहीं रोकता। फिर जो दोष क़ुर्बानी से रोकने वाला है वह अमीर (मालदार) के हक़ में हर हाल में एक जैसा है, चाहे वह क़ुर्बानी के जानवर को ऐसे ही दोषपूर्ण ख़रीदे या ख़रीदते समय सही-सलामत ख़रीदे फिर वह उस दोष के साथ दोषपूर्ण हो जाए, हर हाल में जायज़ नहीं है। और तंगदस्त (ग़रीब) (2) के हक़ में हर हाल में जायज़ है। यह 'मुहीत' में है।

(1) खुनसा यानी जिसमें नर और मादा दोनों के लक्षण मौजूद हों। (2) इस तर्क में कमज़ोरी है, माना यह जाता है कि आधे थनों का दूध सूख जाए तो तर्क अपनी जगह सही होगा। (3) यह स्पष्ट रहे कि फ़क़ीर या तंगदस्त से यहाँ वह भिखारी मुराद नहीं है जो टुकड़े माँगते फिरते हैं, बल्कि वह जो साहिब-ए-निशाब (निर्धारित धन सीमा से नीचे) न हो। इसी तरह अमीर से साहिब-ए-निशाब मुराद है। (1) जायज़ नहीं है। (2) तीन-तीन अंगुल की लंबाई के बराबर। (3) सामान्य नियम।

---

ظہیریہ میں ہے۔ جو احول ہو یعنی جس کی آنکھ بھینگی ہو وہ جائز ہے اسی طرح جس کی پشم اتار لی گئی ہو وہ بھی جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔ جس کے تھن کٹے ہوئے ہوں وہ نہیں جائز ہے اور جو اپنے بچے کو دودھ نہ پلا سکتی ہو اور جس کے تھن خشک ہو گئے ہوں وہ نہیں جائز ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ تکمیس میں لکھا ہے کہ میں نے شیخ ابو الحسن علی المرغینانی کو لکھا کہ اگر بکری کی زبان کٹی ہوئی ہو تو اس کی قربانی جائز ہے تو جواب میں فرمایا کہ ہاں جائز ہے بشرطیکہ ایسی نہ ہو کہ اس کے چارہ کھانے میں خلل آتا ہو اور اگر چارہ کھانے میں خلل آتا ہو تو اس کی قربانی (1) نہیں جائز ہے یہ تاتار خانیہ میں ہے اور اگر زبان کٹا ہوا بیل ہو تو قربانی نہیں ہو سکتی ہے یہ قنیہ میں ہے۔

اگر غنم میں سے کسی کی زبان نہ ہو تو اس کی قربانی جائز ہے اور اگر بقر میں سے ہو تو نہیں جائز ہے یہ خلاصہ میں ہے اور شیخ عمر و بن الحافظ سے دریافت کیا گیا کہ اگر قربانی کے جانور کے دونوں کانوں میں سے ہر ایک کا چھٹا حصہ جاتا رہا ہو پس آیا یہ جمع کیا گیا ہے حتیٰ کہ امام اعظم کے قول پر تہائی ہو کر قربانی سے مانع ہو جیسا کہ بروں پر جو نجاست سات تھوڑی تھوری لگی ہوں وہ جمع کی جاتی ہیں تاکہ دریافت ہو کہ قدر درہم ہیں یا زائد ہیں اس پر قیاس کر کے اس کو بھی جمع کریں گے یا جس طرح دونوں موزوں کے شکاف کو جمع نہیں کرتے ہیں بلکہ ہر ایک موزہ (۲) کا علیحدہ اعتبار ہے اس طرح اس میں بھی جمع نہ کیا جائے گا پس قربانی جائز ہے گی تو فرمایا کہ جمع نہیں کیا جائے گا اور یہ بھی دریافت کیا گیا کہ اگر ایک شخص نے قربانی کے جانور کی تہائی سے زیادہ زبان کاٹ ڈالی پس آیا امام اعظم کے قول کے موافق اس کی قربانی جائز ہے فرمایا کہ نہیں جائز ہے یہ تاتار خانیہ میں ہے اور جلالہ نہیں جائز ہے یعنی وہ

جانور جو فقط نجاست کھاتا ہے اور کچھ نہیں کھاتا ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور جو جانور اس قدر دبلا ہو کہ جس کی ہڈیوں میں گودہ نہیں جائز ہے یہ مبسوط میں ہے اگر دبلی ہو مگر اس میں کس قدر چربی ہو تو جائز ہے یہ امام محمد سے مروی ہے اور اگر خریدنے کے وقت دبلی تھی پھر بعد خریدنے کے موٹی ہو گئی تو جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور جس کے تھنوں کے سرے کٹے ہوئے ہوں وہ نہیں جائز ہے اور اگر ایک تھن میں سے آدھے سے کم سرا کٹا ہوا ہو تو اس میں ویسا ہی اختلاف ہے جیسا آنکھ وکان میں ہے اور اگر دنبہ و بکری کے کسی ایک تھن کی گھنڈی پیدائشی نہ ہو یا کسی آفت سے جاتی رہی ہو اور ایک باقی ہو تو نہیں جائز ہے اور اونٹ و گائے میں اگر ایک گھنڈی جاتی رہی ہو تو جائز ہے اور اگر دو جاتی رہی ہوں تو نہیں جائز ہے یہ خلاصہ میں ہے اور اگر چوپایہ کے چاروں پاؤں میں ایک کٹا ہوا ہو تو نہیں جائز ہے یہ تاتار خانیہ میں ہے اور خنثیٰ (۱) بکری کی قربانی نہیں جائز ہے کیونکہ اس کا گوشت نہیں گلتا ہے قربانی کے جانور کے بال بغیر وقت قربانی میں گر گئے تو وہ جائز ہے بشرطیکہ اس کی ہڈیوں میں گودہ موجود ہو یہ قنیہ میں ہے اور خنطور نہیں جائز ہے اور خنطور بکریوں میں سے اس کو کہتے ہیں جس کے دونوں تھنوں میں سے ایک کا دودھ خشک ہو جائے اور گائے و اونٹ میں سے اس کو کہتے ہیں جس کے دو تھنوں کا دودھ خشک ہو جائے کیونکہ ان دونوں کے چار چار (۲) تھن ہوتے ہیں یہ غیاثیہ میں ہے۔

مشائخ میں سے بعض نے اس فصل عیوب میں ایک اصل (۳) ذکر فرمائی اور فرمایا کہ جو عیب ایسا ہو کہ منفعت کو پورا پورا زائل کر دے یا جمال کو پورا پورا زائل کر دے وہ قربانی سے مانع ہوتا ہے اور جو ایسا نہ ہو وہ مانع نہیں ہوتا ہے پھر جو عیب کہ قربانی سے مانع ہے وہ تو انگر کے حق میں بہرحال یکساں ہے خواہ وہ قربانی کے جانور کو ایسا ہی عیب دار خریدے یا خریدنے

کے وقت صحیح و سالم خریدے پھر وہ اس عیب کے ساتھ عیب دار ہو جائے ہر حال میں جائز نہیں ہے اور تنگدست (۲) کے حق میں بہر حال میں جائز ہے یہ محیط میں ہے۔

(۱) خنثیٰ یعنی جس میں مادہ و مادہ دونوں کی علامت موجود ہو۔ (۲) اس استدلال میں ضایع ہے گویا معتبر یہ ہے کہ آدھے تھنوں کا دودھ خشک ہو پس استدلال بجائے خود ہوگا۔ (۳) قال واضع ہو کہ فقیر یا تنگدست جہاں مستعمل ہے اس سے یہ مراد نہیں ہے کہ گداگر ہو جیسے لوگ ٹکڑے مانگتے پھرتے ہیں بلکہ جو ذی نصاب نہ ہو اعلیٰ ہذا تو انگر سے ذی نصاب مراد ہے۔ (1) جائز نہیں ہے۔ (۲) بقدر تین تین انگشت کے۔ (۳) قاعدہ کلیہ۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 394 Kitab al-Adhiya (Book of Sacrifice)**

A person purchased a goat for sacrifice, which was healthy and fat at the time, but then it became so emaciated while in his possession that if he had purchased it in that state, the sacrifice would not have been valid. If the purchaser is wealthy (Tawangar), the sacrifice will not be fulfilled on his behalf with this animal. However, if he is poor (Tang-dast), it will be valid. This is because the obligation of sacrifice rests upon the wealthy. If the animal was purchased specifically for sacrifice, it becomes designated for that purpose through intention. Even if a poor person had made a sacrifice obligatory upon himself, this animal would still not be valid for him. If an animal was purchased for sacrifice and at that time its eyes were sound and healthy, but then it became one-eyed (A'war) (1) while with the buyer, or its ear, tail, or limb was cut, or its leg broke so that it cannot walk, and the buyer is wealthy, then this sacrifice will not suffice (1) on his behalf, and it will be mandatory for him to sacrifice another animal instead. This is unlike the poor person, for whom such a ruling does not apply. Similarly, if the animal dies or is stolen, the same ruling applies. If the animal was led forward for slaughter and at the place of slaughter it struggled desperately, causing its leg to break, and the person slaughtered it right there, then the sacrifice is valid. Similarly, if a cow escaped from his hand and suffered an injury to its eye causing it to lose its sight, but he caught and slaughtered it there, the same ruling applies. Although according to analogy (Qiyas), the ruling would be that it is not valid, as this defect arose before the act of worship was fully realized with the animal. However, the preferred legal reasoning (Istihsan) is that this is something unavoidable, as animals like goats naturally struggle, which can lead to injuries. It is narrated from Imam Abu Yusuf (RA) that he said: If someone held the legs of the sacrificial animal to slaughter it and its leg broke or it became one-eyed, and then he slaughtered it that day or the next, the sacrifice will be valid. This is mentioned in 'Badai'.

**Which animal's sacrifice will be considered superior (Afzal)?**

Seven people purchased a cow for fifty dirhams for sacrifice, and another seven people purchased seven goats for one hundred dirhams. The scholars have discussed (2) among themselves which of the two is superior, and the chosen opinion is that the second scenario is superior (3). This is in 'Fatawa Kubra'. Ten people purchased ten goats at once from a person, and the seller said, "I have sold these ten goats to you at the rate of ten dirhams per goat," and they agreed. Thus, these goats became jointly owned by them. If each person took one goat and offered it as a

sacrifice on their own behalf, it is valid. However, if it later appeared that one of the goats was one-eyed, and every one of the partners denied that the defective goat belonged to them, then the sacrifice of all ten people would be invalid, because nine goats cannot constitute a valid sacrifice for ten people. This is in 'Fatawa Qazi Khan'. A castrated animal (Khasi) is superior to a non-castrated male (Fahl) because its meat is of better quality. This is in 'Muheet'. Scholars have differed over whether a large animal (Badana) is superior (4) or a goat. Some scholars said that if the price of the goat is higher than that of the large animal, then the goat is superior, because the entire goat will be the fulfillment of an obligation (Fard), whereas only one-seventh of the large animal is Fard and the rest is voluntary (Nafl).

---

1 The translator states that this is a translation of the phrase "La yujzi 'anhu." Baidawi has written in his book that this is sufficient for fulfillment. (1) Eyesight was lost. (2) It is a matter of good etiquette that there should be no pointless disagreement. (3) Because it is a form of financial worship without partnership with others and involves a greater number of sacrifices. (4) One who cannot copulate (referring to castrated animals).

एक व्यक्ति ने कुर्बानी के लिए एक बकरी खरीदी, हालांकि वह मोटी-ताजी थी, फिर उसके पास वह इतनी दुबली हो गई कि यदि वह उसे उसी अवस्था में खरीदता तो जायज़ न होती। तो यदि खरीदने वाला समृद्ध (तवांगर/धनी) हो, तो उसकी ओर से कुर्बानी अदा नहीं होगी, और यदि वह निर्धन (तंगदसत) हो तो अदा हो जाएगी। इसका कारण यह है कि समृद्ध व्यक्ति पर कुर्बानी अनिवार्य (वाजिब) होती है, अतः यदि उसने इस बकरी को कुर्बानी के लिए खरीदा है, तो नियत के कारण यह बकरी निर्धारित हो जाएगी, यहाँ तक कि यदि किसी गरीब ने अपने ऊपर कुर्बानी वाजिब कर ली हो, तो उसकी ओर से भी यह बकरी जायज़ न होगी। और यदि कुर्बानी का जानवर खरीदा गया और उस समय उसकी दोनों आँखें सही-सलामत थीं, फिर खरीदार के पास वह एक आँख से कानी (अ'वर) (1) हो गई, या उसके कान, पूंछ या अंगादि काट दिए गए, या उसका पैर टूट गया कि वह चल नहीं सकती, जबकि खरीदार समृद्ध है, तो यह कुर्बानी उसकी ओर से अदा (1) के लिए पर्याप्त नहीं होगी और उस पर वाजिब होगा कि इसके स्थान पर दूसरी कुर्बानी करे। इसके विपरीत निर्धन व्यक्ति के लिए ऐसा आदेश नहीं है। इसी प्रकार यदि उसके पास वह मर गई या चोरी हो गई, तो भी यही आदेश है। और यदि कुर्बानी के जानवर को कुर्बानी के लिए आगे ले जाया गया और उस स्थान पर जहाँ उसे ज़बह (बलि) करना चाहता था, जानवर ने व्याकुलता में ऐसी हलचल की जिससे उसका पैर टूट गया, फिर उस व्यक्ति ने उसे उसी स्थान पर ज़बह कर दिया, तो कुर्बानी अदा हो गई। इसी तरह यदि गाय उसके हाथ से छूट गई और उसकी आँख में ऐसी चोट लगी जिससे उसकी दृष्टि चली गई, लेकिन उसने उसे पकड़कर वहीं ज़बह कर दिया, तो भी यही हुक्म है। यद्यपि तर्क(क़ियास) के आधार पर यह आदेश है कि जायज़ न होगी, क्योंकि यह ऐसा दोष है जो जानवर के साथ इबादत निर्धारित होने से पहले उसमें उत्पन्न हो गया है। परन्तु पसन्दीदा (इस्तेहसान) पक्ष यह है कि यह ऐसी बात है जिससे बचना संभव नहीं है, क्योंकि बकरी आदि का स्वभाव है कि वे व्याकुलता में हलचल करती हैं जिससे उनमें दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इमाम अबू यूसुफ (रह.) से वर्णित है कि उन्होंने फ़रमाया कि यदि उसने कुर्बानी के जानवर की टांगें पकड़ीं ताकि उसे ज़बह करे और इससे उसकी टांग टूट गई या वह कानी हो गई, फिर उसे उसी दिन या दूसरे दिन ज़बह कर दिया, तो कुर्बानी अदा हो जाएगी। यह 'बदाए' में है।

## कैसे जानवर की कुर्बानी अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) मानी जाएगी?

सात व्यक्तियों ने कुर्बानी के लिए एक गाय पचास दिरहम में खरीदी और अन्य सात व्यक्तियों ने सात बकरियाँ सौ दिरहम में खरीदीं, तो विद्वानों ने आपस में चर्चा (2) की है कि दोनों में से कौन श्रेष्ठ है, और पसंदीदा राय यह है कि दूसरी स्थिति श्रेष्ठ (3) है। यह 'फ़तावा कुबरा' में है। दस व्यक्तियों ने एक व्यक्ति से एक साथ दस बकरियाँ खरीदीं और विक्रेता ने कहा कि मैंने ये दस बकरियाँ तुम्हारे हाथ प्रति बकरी दस दिरहम के हिसाब से बेचीं और उन लोगों ने कहा कि हमने खरीदीं, तो ये सभी बकरियाँ उन लोगों में साझा हो गईं। और हर एक ने उनमें से एक-एक बकरी लेकर अपनी ओर से कुर्बानी कर दी तो जायज़ है। फिर यदि उन बकरियों में से यह प्रकट हुआ कि कोई एक कानी थी और सभी साझेदारों में से प्रत्येक ने इस बात से इनकार किया कि यह कानी बकरी उसकी है, तो उन सभी लोगों की कुर्बानी नाजायज़ होगी क्योंकि नौ बकरियाँ दस लोगों की ओर से जायज़ कुर्बानी नहीं हो सकतीं। यह 'फ़तावा क़ाज़ी खान' में है। और खस्सी (बधिया किया हुआ) जानवर नर (फ़हल) की तुलना में श्रेष्ठ होता है क्योंकि उसका मांस उत्तम होता है। यह 'मुहीत' में है। विद्वानों ने इस पर मतभेद किया है कि ऊँट/बड़ा जानवर (बदना) श्रेष्ठ (4) है या एक बकरी। कुछ विद्वानों ने फ़रमाया कि यदि बकरी की कीमत बड़े जानवर की तुलना में अधिक हो तो बकरी श्रेष्ठ है, क्योंकि बकरी पूरी अनिवार्य (फ़र्ज़) होगी जबकि बड़े जानवर का सातवां हिस्सा फ़र्ज़ होगा और शेष नफ़्ल (ऐच्छिक) होगा।

---

1 अनुवादक कहता है कि यह शब्द "ला युज्ज़ी अन्हु" का अनुवाद है। बैज़ावी ने किताब में लिखा है कि यह अदा के लिए पर्याप्त है। (1) दृष्टि चली गई। (2) शिष्टाचार है कि निरर्थक विवाद न हो। (3) क्योंकि यह वित्तीय इबादत है बिना किसी दूसरे की साझेदारी के और इसमें कुर्बानियों की संख्या अधिक है। (4) जो संभोग नहीं कर सकता (खस्सी)।

---

ایک شخص نے قربانی کی بکری خریدی حالانکہ وہ موٹی تازی تھی پھر اس کے پاس اس قدر دبلی ہو گئی کہ اگر وہ ایسی حالت پر خریدتا تو جائز نہ ہوتی پس اگر خریدنے والا توانگر ہو تو اس کی طرف سے قربانی ادا نہ ہوگی اور اگر تنگدست ہو تو ادا ہو جائے گی اس واسطے کہ قربانی تو انگر پر اس کے ذمہ واجب ہوتی ہے پس اگر اس بکری کو قربانی کے واسطے خریدا ہو تو نیت کی وجہ سے یہ بکری متعین ہو جائے گی حتی کہ اگر فقیر نے اپنے اوپر قربانی واجب کر لی ہو تو اس کی طرف سے بھی یہ بکری جائز نہ ہوگی اور اگر قربانی کا جانور خریدا اور اس وقت اس کی دونوں آنکھیں صحیح و سالم تھیں پھر مشتری کے پاس وہ اعور (۱) ہوگئی یا اس کا مکان پورا یا الیہ یا دم کاٹی گئی یا اس کا پاؤں ٹوٹ گیا کہ چل نہیں سکتی حالانکہ یہ مشتری تو انگر ہے تو یہ قربانی اس کی طرف سے ادا (۱) سے کافی نہ ہوگی اور اس پر واجب ہوگا کہ بجائے اس کے دوسری قربانی کرے بخلاف فقیر کے کہ اس کے حق میں ایسا حکم نہیں ہے اسی طرح اگر اس کے پاس مرگئی چوری ہوگئی تو بھی یہی حکم ہے اور اضحیہ کو قربانی کے واسطے آگے کو سنبھالا اور اس نے اس جگہ جہاں ذبح کرنا چاہتا تھا مضطر بانہ حرکت کی کہ جس سے اس کا پاؤں ٹوٹ گیا پھر اس شخص نے اس کو اسی جگہ ذبح کر دیا تو قربانی ادا ہوگئی اسی طرح اگر گائے اس کے ہاتھ سے چھوٹ گئی اور اس کی آنکھ میں ایسا صدمہ پہنچا جس سے اس کی آنکھ جاتی رہی مگر اس نے پکڑ کر وہیں ذبح کر دی تو بھی یہی حکم ہے مگر قیاس کی دلیل سے یہ حکم ہے کہ جائز نہ ہوگی اور وہ قیاس یہ ہے کہ یہ ایسا عیب ہے کہ اس جانور کے ساتھ قربت متعین ہونے سے پہلے اس جانور میں پیدا ہو گیا ہے پس ایسا ہوا کہ گویا حالت ذبح سے پہلے اس میں ایسا عیب تھا اور وجہ استحسان یہ ہے کہ یہ ایسی بات ہے کہ جس سے احتراز ممکن نہیں ہے

کیونکہ بکری وغیرہ کا قاعدہ ہے کہ اضطرابی حرکتیں کرتی ہیں جس سے اس میں عیب پیدا ہو جاتے ہیں اور امام ابو یوسفؒ سے مروی ہے کہ انہوں نے فرمایا کہ اگر اس نے اضحیہ کی ٹانگیں پکڑیں تاکہ اس کو ذبح کرے پس اس سے اس کی ٹانگ ٹوٹ گئی یا وہ کانی ہوگئی پھر اس کو اسی روز یا دوسرے روز ذبح کر دیا تو قربانی ادا ہو جائے گی یہ بدائع میں ہے۔

**کیسے جانور کی قربانی افضل متصور ہوگی؟**

سات آدمیوں نے ایک گائے پچاس درہم کو قربانی کے واسطے خریدی اور دوسرے سات آدمیوں نے سات بکریاں سو درہم کو خریدیں تو مشائخ نے باہم گفتگو (۲) کی ہے کہ دونوں میں سے کون افضل ہے اور مختار یہ ہے کہ دوم افضل (۳) ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ دس آدمیوں نے ایک شخص سے دس بکریاں ایکبارگی خریدیں اور بائع نے کہا کہ میں نے یہ دس بکریاں تم لوگوں کے ہاتھ ہر بکری دس درہم کے حساب سے فروخت کیں اور ان لوگوں نے کہا کہ ہم نے خریدیں پس یہ سب بکریاں ان لوگوں میں مشترک ہوگئیں اور ہر ایک نے ان میں سے ایک بکری لے کر اپنی طرف سے قربانی کردی تو جائز ہے پھر اگر ان بکریوں میں سے ظاہر ہوا کہ کوئی کانی تھی اور سب شریکوں میں سے ہر ایک نے اس بات سے انکار کیا کہ یہ کانی بکری اس کی ہو تو ان سب لوگوں کی قربانی ناجائز ہوگی کیونکہ نو بکریاں دس آدمیوں کی طرف سے جائز قربانی نہیں ہو سکتی ہے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور خصی بہ نسبت فحل کے افضل ہوتا ہے کیونکہ اس کا گوشت عمدہ ہوتا ہے یہ محیط میں ہے اور مشائخ نے باہم اختلاف کیا ہے کہ بدنہ افضل (۴) ہے یا ایک بکری تو بعض مشائخ نے فرمایا کہ اگر بکری کی قیمت بہ نسبت بدنہ کے زیادہ ہو تو بکری افضل ہے کیونکہ بکری پوری فرض ہوگی اور بدنہ کا ساتواں حصہ فرض ہوگا اور باقی نفل ہوگا۔

۱ مترجم کہتا ہے کہ یہ قول لا یجزی عنہ کا ترجمہ ہے بیضاوی نے کتاب میں لکھا ہے کہ یہ اداء کے کافی ہے۔ (۱) بینائی جاتی رہی۔ (۲) حسن ادب ہے کہ لایعنی اختلاف نہ ہو۔ (۳) کیونکہ عبادت مالی و بلا اشتراک غیر اور تعد د قربات ہے۔ (۴) جو جماع نہیں کرسکتا۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (395) Book of Sacrifice (Kitab al-Adhiya)**

Sheikh Imam Abu Bakr Muhammad bin al-Fazl stated that a large sacrificial animal (camel/cow) is superior because it yields more meat compared to a goat. Regarding the statement of some scholars that the remaining portion of a large animal would be voluntary (nafl), this is not so; rather, if a single person performs the sacrifice, the whole act will be considered obligatory (fard). This is compared to the recitation in prayer: if one limits oneself to the amount of recitation that makes the prayer valid, i.e., three verses, it is permissible. However, if more is recited, it all becomes part of the obligation. Sheikh Imam Abu Hafs al-Kabir said that when the price of a goat and a large animal is equal, the goat is superior because its meat is of higher quality, as mentioned in 'al-Zahiriyya'. If a goat and a seventh portion of a cow are equal in both price and meat quantity, the goat is superior due to the superior quality of its meat. However, if the seventh portion of a cow has more meat, then the seventh portion of the cow is superior. The summary is that when price and quantity are equal, the animal with superior meat quality is better. If they differ in meat and price, that which is more abundant (1) is better. Thus, an uncastrated animal (2) costing ten dirhams is superior (3) to a castrated one costing fifteen dirhams. If prices are equal but the uncastrated animal has more meat, it is superior. If the price and meat of a cow and a blue bull are equal, the cow is superior to the blue bull because its meat is better. One cow is better than six goats if both are equal, but seven goats are better than one cow; this is mentioned in 'Fatawa Qazi Khan'.

If a ram and a ewe are equal in price and meat, the ram is better. If the ewe is greater in price or meat, it is superior; this is in 'al-Zakhiro'. Purchasing a sacrificial animal for ten dirhams and sacrificing it is superior to giving a thousand dirhams in charity (sadaqah); this is in 'Fatawa Kubra'. It is written in Imam Saffar’s 'Usul al-Tawhid' that if a person for whom sacrifice is not obligatory due to poverty slaughters a rooster or a hen during the days of Eid to resemble those performing sacrifice, it is reprehensible (makruh) because it is among the customs of the Magians (4); this is in 'al-Khulasa'. It is recommended (mustahabb) that the sacrificial animal be well-fattened, handsome, and large. The most superior (5) sheep is a ram with black spots around the eyes (or pied) and horns. It is recommended that the slaughtering tool be sharp (6) and made of iron. It is also recommended to wait after slaughtering until the animal cools down, its limbs become still, and the soul completely departs the body. It is reprehensible to begin skinning it before it has cooled down after slaughter; this is in 'al-Badai'. It is superior for one to slaughter with their own hand if

they can do it well, as personal involvement in acts of devotion is better. If one cannot slaughter well, it is superior to seek help (7) from another, but one should remain present at the time of sacrifice; this is in 'al-Kafi'. It was stated that if one orders a Magian to slaughter their sacrifice and they do so, it is not permissible because it is an act of corruption, not devotion, as the animal slaughtered by a Magian is not eaten. If one orders a Jew or a Christian, the slaughter will be valid as a sacrifice because both are capable of slaughtering, though it is reprehensible since sacrifice is an act of devotion and the action of a Jew or Christian is not one of devotion; this is in 'al-Mabsut'. It is recommended to eat from one's own sacrifice and feed others. It is superior to give one-third in charity, designate one-third for the entertainment of relatives and friends, and keep one-third for oneself. There is no distinction between rich and poor when feeding others; both should be fed, as in 'al-Badai'. From this, one may gift (hibah) as much as they wish to the rich, poor, Muslims, or protected non-Muslim citizens (dhimmis); this is in 'al-Itabiyya'.

If one gave the entirety in charity, it is permissible; and if one kept it all for oneself, it is permissible. One has the option to keep everything for three...

(1) Whether for quality or quantity of meat. (2) That which is not castrated. (3) When the meat of both is equal. (4) Fire-worshippers. (5) Best among the sheep kind. (6) Sharp-edged. (7) Have someone else slaughter.

**फ़तावा आलमगीरी ..... खंड 8 (395) किताब अल-अज़हिया (क़ुर्बानी की किताब)**

और शेख़ इमाम अबू बकर मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल ने फ़रमाया कि बदना (ऊँट या गाय) अफ़ज़ल (बेहतर) है क्योंकि इसमें बकरी की तुलना में मांस अधिक होता है। और मशाईख़ (बुज़ुर्गों) ने जो कहा कि बदना का बाकी हिस्सा नफ़्ल होगा, ऐसा नहीं है बल्कि जब एक ही व्यक्ति ने क़ुर्बानी की तो पूरा फ़र्ज़ होगा। इसकी तुलना नमाज़ की क़िरात (पढ़ने) से की गई है कि यदि नमाज़ में केवल उतनी क़िरात पर बस किया जाए जिससे नमाज़ जायज़ हो जाती है, यानी तीन आयतें, तो जायज़ है। लेकिन यदि इससे अधिक पढ़ी, तो सब फ़र्ज़ होगी। और शेख़ इमाम अबू हफ़्स अल-कबीर ने फ़रमाया कि जब बकरी और बदना की कीमत बराबर हो, तो बकरी अफ़ज़ल है क्योंकि उसका मांस उत्तम होता है, ऐसा ही 'ज़हीरिया' में है। यदि बकरी और गाय का सातवाँ हिस्सा कीमत और मांस दोनों में बराबर हों, तो बकरी ही अफ़ज़ल है क्योंकि बकरी का मांस उम्दा होता है। और यदि गाय का सातवाँ हिस्सा मांस की मात्रा में अधिक हो, तो गाय का सातवाँ हिस्सा अफ़ज़ल है। इसका सारांश यह है कि जब दोनों कीमत और मांस की मात्रा में बराबर हों, तो जिसमें मांस उत्तम है, वह अफ़ज़ल है। और यदि मांस और कीमत अलग-अलग हों, तो जो फ़ाज़िल (श्रेष्ठ/बड़ा) (1) है, वह बेहतर है। अतः जो नगल (बिना बधिया किया हुआ) (2) दस दिरहम का है, वह पंद्रह दिरहम के खसी (बधिया किए हुए) से अफ़ज़ल (3) है। और यदि दोनों की कीमत बराबर हो लेकिन नगल में मांस अधिक हो, तो नगल अफ़ज़ल है। और यदि गाय और नील (एक प्रकार का जंगली जानवर) की कीमत और मांस बराबर हों, तो नील की तुलना में गाय अफ़ज़ल है क्योंकि गाय का मांस उम्दा होता है। और एक गाय छह बकरियों से अच्छी होती है यदि दोनों बराबर हों, और सात बकरियाँ एक गाय से अच्छी हैं, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

मेंढा और भेड़ यदि दोनों कीमत और मांस में बराबर हों, तो मेंढा अच्छा है। और यदि भेड़ कीमत या मांस में अधिक हो, तो वही अफ़ज़ल है, यह 'ज़ख़ीरा' में है। दस दिरहम में अज़हिया (क़ुर्बानी का जानवर) खरीदकर क़ुर्बानी कर देना, एक हज़ार दिरहम सदक़ा (दान) करने से अफ़ज़ल है, यह 'फ़तावा कुबरा' में है। इमाम सफ़ार के'उसूल अल-तौहीद' में लिखा है कि यदि क़ुर्बानी के दिनों में ऐसे व्यक्ति ने जिस पर गरीबी के कारण क़ुर्बानी वाजिब (अनिवार्य) नहीं है, कोई मुर्गा या मुर्गी ज़िब्ह की ताकि क़ुर्बानी करने वालों के साथ समानता हो, तो यह मकरूह (नापसंद) है क्योंकि यह मजूसी (4) (अग्निपूजकों) की रस्मों में से है, यह 'ख़ुलासा' में है। और मुस्तहब (पसंदीदा) है कि अज़हिया का जानवर खूब मोटा-ताज़ा, सुंदर और बड़ा हो। और अफ़ज़ल (5) भेड़-जाति में चितकबरा और सींगों

वाला मेंढा है। और मुस्तहब है कि ज़िब्ह करने वाला औज़ार लोहे का तेज़ (6) हो। और मुस्तहब है कि ज़िब्ह करने के बाद इतना इंतज़ार करे कि ज़बीहा (ज़िब्ह किया हुआ जानवर) ठंडा हो जाए, उसके सभी अंग स्थिर हो जाएँ और पूरे शरीर से रूह (प्राण) निकल जाए। और यह मकरूह है कि ज़िब्ह के बाद ठंडा होने से पहले उसकी खाल खींचना शुरू कर दे, यह 'बदाइ' में है। अफ़ज़ल यह है कि यदि स्वयं अच्छी तरह ज़िब्ह कर सकता हो, तो अपने ही हाथ से ज़िब्ह करे क्योंकि इबादत के कार्यों में स्वयं कार्य करना उत्तम है। और यदि अच्छी तरह ज़िब्ह न कर सकता हो, तो अफ़ज़ल यह है कि दूसरे से सहायता (7) ले, लेकिन स्वयं भी क़ुर्बानी के समय उपस्थित रहे, यह 'काफ़ी' में है। और फ़रमाया कि यदि उसने किसी मजूसी को आदेश दिया कि मेरी क़ुर्बानी ज़िब्ह कर दे और उसने ज़िब्ह की, तो जायज़ नहीं है क्योंकि यह बिगाड़ है, अल्लाह का सामीप्य (तक़र्रुब) नहीं, क्योंकि मजूसी का ज़िब्ह किया हुआ जानवर नहीं खाया जाता। और यदि उसने किसी यहूदी या ईसाई को ऐसा आदेश दिया, तो उसका ज़बीहा क़ुर्बानी हो जाएगा क्योंकि ये दोनों ज़िब्ह की योग्यता रखते हैं, लेकिन यह मकरूह है क्योंकि क़ुर्बानी सामीप्य का कार्य है और यहूदी या ईसाई का कार्य सामीप्य नहीं है, यह 'मबसूत' में है। और मुस्तहब है कि अपनी क़ुर्बानी में से स्वयं खाए और दूसरों को भी खिलाए। और अफ़ज़ल यह है कि एक-तिहाई सदक़ा (दान) कर दे, एक-तिहाई रिश्तेदारों और मित्रों की दावत के लिए रखे, और एक-तिहाई अपने लिए रख ले। और दूसरों को खिलाने में अमीर और गरीब का कोई भेद नहीं है, दोनों को खिलाए, यह 'बदाइ' में है। और इसमें से जितना चाहे अमीर, गरीब, मुसलमान हो या ज़िम्मी (गैर-मुस्लिम नागरिक) को दान (हिबा) करे, यह 'इताबिया' में है।

यदि उसने सारा सदक़ा कर दिया तो जायज़ है, और यदि सब अपने लिए रख लिया तो जायज़ है। और उसे अधिकार है कि सब अपने लिए तीन...

(1) चाहे स्वाद के लिए हो या मांस के लिए। (2) जो खसी (बधिया) न हो। (3) जबकि दोनों का मांस बराबर हो। (4) अग्नि-पूजक। (5) भेड़ की नस्ल में सबसे बेहतर। (6) धारदार। (7) दूसरे से ज़िब्ह कराए।

---

اور شیخ امام ابوبکر محمد بن الفضل نے فرمایا کہ بدنہ افضل ہے کیونکہ اس میں بہ نسبت بکری کے گوشت زیادہ ہوتا ہے اور یہ جو مشائخ نے کہا کہ بدنہ کا باقی حصہ نفل ہو گا سوا ایسا نہیں ہے بلکہ جب ایک ہی شخص نے قربانی کیا تو پورا فرض ہوگا اور اس کو نماز کی قرأت کے ساتھ مشابہ کیا ہے کہ اگر نماز میں صرف اس قدر قرأت پر اقتصار کیا جس سے نماز جائز ہو جاتی ہے یعنی تین آیت پر تو جائز ہے ۔ لیکن اگر اس سے زیادہ پڑھی تو سب فرض ہو گی اور شیخ امام ابوحفص الکبیر نے فرمایا کہ جب بکری اور بدنہ کی قیمت برابر ہو تو بکری افضل ہے کیونکہ اس کا گوشت عمدہ ہوتا ہے کذا فی الظہیر یہ اگر بکری اور ساتواں حصہ گائے کا قیمت اور گوشت دونوں میں برابر ہوں تو بکری افضل ہی کیونکہ بکری کا گوشت عمدہ ہوتا ہے اور اگر گائے کا ساتواں حصہ مقدار گوشت میں زیادہ ہو تو ساتواں حصہ گائے کا افضل ہے اور اس میں حاصل یہ ہے کہ جب دونوں قیمت و مقدار گوشت میں برابر ہوں تو دونوں میں جس کا گوشت عمدہ ہے وہ افضل ہے اور گوشت و قیمت میں مختلف ہوں تو جو فاضل (۱) ہے وہ بہتر ہے پس جو نغل (۲) دس درہم کا ہے وہ پندرہ درہم کے خصی سے افضل (۳) ہے اور اگر دونوں کی قیمت برابر ہو مگر نغل میں گوشت زیادہ ہو تو نغل افضل ہے اور اگر گائے اور نیل کی قیمت اور گوشت میں برابر ہوں تو نیل کے بہ نسبت گائے افضل ہے کیونکہ گائے کا گوشت عمدہ ہوتا ہے اور ایک گائے چھ بکریوں سے اچھی ہوتی ہے اگر دونوں برابر ہوں اور سات بکریوں ایک گائے سے اچھی ہیں یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

مینڈھا اور بھیڑی اگر دونوں قیمت و گوشت میں برابر ہوں تو مینڈھا اچھا ہے اور اگر بھیڑی قیمت یا گوشت میں زیادہ ہو تو وہی افضل ہے یہ ذخیرہ میں ہے دس درہم میں اضحیہ خرید کر قربانی کر

دینا بہ نسبت ہزار درہم صدقہ کر دینے کے افضل ہے یہ فتاویٰ کبریٰ میں ہے۔ امام صفار کے اصول التوحید میں لکھا ہے کہ اگر ایام قربانی میں ایسے شخص نے جس پر بہ سبب تنگدستی کے قربانی واجب نہیں ہے کوئی مرغا یا مرغی ذبح کی تا کہ قربانی کرنے والوں کے ساتھ مشابہت ہو تو یہ مکروہ ہے کیونکہ یہ مجوسیوں (۴) کی رسوم میں سے ہے یہ خلاصہ میں ہے اور مستحب ہے کہ اضحیہ کا جانور خوب فربہ و خوبصورت و بڑا ہو اور افضل (۵) الشاۃ مینڈھا کپوردرنگ سینگوں والا ہے اور مستحب ہے کہ ذبح کرنے والا آلہ لوہے کا تیز (۶) ہو اور مستحب ہے کہ بعد ذبح کے اتنا انتظار کرے کہ ذبیحہ ٹھنڈا ہو جائے اور تمام اعضاء اس کے ساکن ہو جائیں اور تمام بدن سے روح نکل جائے اور یہ مکروہ ہے کہ ذبح کے بعد ٹھنڈا ہونے سے پہلے اس کی کھال کھینچنا شروع کرے یہ بدائع میں ہے افضل یہ ہے کہ اگر خود اچھی طرح ذبح کر سکتا ہو تو خود ہی اپنے ہاتھ سے ذبح کرے کیونکہ قربات میں خود بنفسہ متولی ہونا اولی ہے اور اگر اچھی طرح ذبح نہ کر سکتا ہو تو افضل یہ ہے کہ دوسرے سے استعانت (۷) لے لیکن چاہیے کہ خود بھی قربانی کے وقت حاضر رہے یہ کافی میں ہے اور فرمایا کہ اگر اس نے کسی مجوسی کو حکم دیا کہ میرا اضحیہ ذبح کر دے اس نے ذبح کیا تو جائز نہیں ہے اس وجہ سے کہ یہ افساد ہے تقرب نہیں ہے کیونکہ مجوسی کا ذبح کیا ہوا جانور نہیں کھایا جاتا ہے اور اگر اس نے کسی یہودی یا نصرانی کو ایسا حکم دیا تو اس کا ذبیحہ قربانی ہو جائے گا کیونکہ یہ دونوں ذبح کی اہلیت رکھتے ہیں لیکن یہ مکروہ ہے کیونکہ قربانی عملِ قربت ہے اور یہودی یا نصرانی کا فعل قربت نہیں ہے یہ مبسوط میں ہے اور مستحب ہے کہ اپنی قربانی میں سے خود کھائے اور دوسرے کو بھی کھلائے اور افضل یہ ہے کہ تہائی صدقہ کر دے اور تہائی اقارب و دوستوں کی ضیافت کے واسطے قرار دے اور تہائی اپنے واسطے رکھ لے اور غیر کو کھلانے میں غنی و فقیر کی

خصوصیت نہیں ہے دونوں کو کھلائے یہ بدائع میں ہے اور اس میں سے جس قدر چاہے غنی و فقیر و مسلمان ہو یا ذمی کو ہبہ کرے یہ عتابیہ میں ہے۔

اگر اس نے کل صدقہ کر دیا تو جائز ہے اور اگر سب اپنے واسطے رکھ لیا تو جائز ہے اور اس کو اختیار ہے کہ سب اپنے واسطے تین...

(۱) خواہ برائے طیب و براہ گوشت۔ (۲) جو خصی نہ ہو۔ (۳) جب کہ دونوں کا گوشت برابر ہو۔ (۴) آتش پرست۔ (۵) جنس غنم میں سے بہتر۔ (۶) دھار دار۔ (۷) دوسرے سے ذبح کرائے۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 (396) Kitab al-Adhiya**

...keeping it for more than [three] days, but feeding others and giving it in charity is superior. However, if a person has dependents and is not well-off, it is better for him to leave it for his family to provide them with sufficiency; this is mentioned in *Bada'i*. If the sacrifice became mandatory due to a vow (*nadhr*), the person making the vow cannot eat from it himself, nor can he feed any wealthy (*ghani*) person, regardless of whether the vower is wealthy or poor. This is because it is for charity, and it is not permissible for the one giving charity to eat from his own charity or feed a wealthy person; this is in *Tabyin*. Bishr bin al-Walid narrated from Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him) that a man had nine dependents, and he was the tenth. He sacrificed ten rams on behalf of himself and his family without designating a specific ram for anyone, but intended the tenth for himself and his family; this is permissible by way of juristic preference (*Istihsan*), and this is the view of Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa), as stated in *al-Muhit*.

**Chapter Nine: Regarding the Rights of Adhiya (Sacrificial Animal)**

Concerning what is recommended and what benefits can be derived: It is recommended to tie the sacrificial animal a few days before the Days of Sacrifice (*Ayyam al-Nahr*) and to provide it with a cover (*Tajleel*). Then, lead it to the place of sacrifice kindly; do not be harsh in driving it, nor drag it by its leg; this is in *Bada'i*. When it has been slaughtered, give all its covers and collars (1) in charity; this is in *Sirajiyya*. If a goat was purchased for sacrifice, it is disliked (*makruh*) to milk it or shear its wool and benefit from it, because this goat has been designated for an act of devotion (*qurbah*). Thus, before the act of devotion is established, it is not lawful to benefit from any part of it, just as one cannot benefit from its meat by slaughtering it before the time of sacrifice. Some of the sheikhs said this ruling applies to a goat designated by a vow by a poor or wealthy person, or a goat purchased for sacrifice by a poor person (2). If a wealthy person purchased it for sacrifice, there is no harm in milking it or shearing its wool, as mentioned in *Bada'i*. However, the correct view is that the ruling for milking and shearing is the same for both the wealthy and the poor; this is in *Ghiyathiyya*. If the milk was drawn or wool sheared before slaughtering, it must be given in charity and not utilized; this is in *Zahiriyya*. Once it is slaughtered during the days of sacrifice, it is permissible to milk it and shear its wool and benefit from them, because the act of devotion is completed by slaughtering, and benefiting from it after completion is like eating its meat; this is in *al-Muhit*. If its udders are full of milk and there is a fear of disease, sprinkle cold water on the

udders; if they shrink, then well and good; otherwise, milk it and give that milk in charity. It is disliked to ride the sacrificial animal or use it for work. If one does so and the animal suffers a loss in value, he must give that amount in charity. If he rented it out, the rent must be given in charity. If a milch cow was bought and sacrifice became mandatory, and then wealth was gained from its milk, he should give an equivalent amount (3) in charity, and its dung should also be given in charity. If the animal needs fodder, then whatever wealth was earned from its milk or benefit derived from its dung belongs to it (for the animal's maintenance).

(1) Neckbands and what is placed on the necks of sacrificial camels. (2) By intention. (3) Indicated that whether it was consumed or remains, he must give charity in any case; if it remains, give the actual thing, if consumed, give its equivalent value.

## फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 5 (396) किताब अल-अज़हिया

...दिनों से ज़्यादा तक रख छोड़े लेकिन इसका खिला देना और सदक़ा कर देना अफ़ज़ल है लेकिन अगर वह शख़्स अयालदार (बड़े परिवार वाला) और खुशहाल न हो तो उसके हक़ में अफ़ज़ल यह है कि इसको अपने अयाल के वास्ते छोड़ दे और इसके ज़रिए से उनको फ़राख़ी (आसानी) दे, यह 'बदाए' में है। और अगर क़ुरबानी नज़र (मन्नत) की वजह से वाजिब हुई हो तो नज़र करने वाला न खुद इसमें से खा सकता है और न किसी धनी (ग़नी) को खिला सकता है, चाहे नज़र करने वाला धनी हो या फ़क़ीर क्योंकि वह तो सदक़ा करने के वास्ते है और सदक़ा करने वाले को यह रवा (जायज़) नहीं है कि अपने सदक़ा में से खुद खाए या किसी धनी को खिला दे, यह 'तबीईन' में है। बिश्र बिन अल-वलीद ने इमाम अबू यूसुफ़ से रिवायत की कि एक शख़्स के नौ अयाल हैं और दसवां वह खुद है, पस उसने दस दुम्बे अपनी और अपने अयाल की तरफ़ से क़ुरबानी किए और कोई दुम्बा किसी के वास्ते मुतअय्यन (तय) न किया बल्कि दसवां अपनी और अपने अयाल की तरफ़ से क़ुरबानी की नियत की तो इस्तेहसानन (तर्क के आधार पर) जायज़ है और यही इमाम-ए-आज़म अल्लाह तआला का क़ौल है, यह 'मुहीत' में है।

## बाब नहम (नौवाँ अध्याय): अज़हिया (क़ुरबानी के जानवर) के हक़ में

इसमें जो मुस्तहब है और जो इससे इंतिफ़ा (फ़ायदा) हासिल कर सकता है उसके बयान में मुस्तहब है कि अयाम-ए-नह्र (क़ुरबानी के दिनों) के चंद रोज़ पहले अज़हिया को बांध रखे और उसकी तक्लील व तजलील (झूल डालना) करे, फिर उसको क़ुरबानी की जगह तक खूबी के साथ हांक ले जाए। उसके हांकने में सख़्ती न करे और न उसकी टांग पकड़ के वहां तक खींच ले जाए, यह 'बदाए' में है। और जब उसको ज़बह कर चुके तो उसकी झूलें और क़लादा (पट्टा) (१) सब सदक़ा कर दे, यह 'सिराजिया' में है। और अगर क़ुरबानी के वास्ते एक बकरी खरीदी तो मकरूह है कि उसका दूध दुह ले या उसकी पशम (ऊन/बाल) नोच ले और उससे नफ़ा उठाए क्योंकि यह बकरी उसने क़ुरबत (अल्लाह की नज़दीकी) के वास्ते मुतअय्यन कर दी है, पस इक़ामत-ए-क़ुरबत से पहले उसके किसी जुज़ (हिस्से) के साथ उसको नफ़ा लेना हलाल नहीं है, जैसे कि क़ुरबानी के वक़्त से पहले उसको ज़बह करके उसके गोश्त से नफ़ा नहीं उठा सकता है। और मशाएख में से बाज़ ने फ़रमाया कि यह हुक्म ऐसी बकरी का है जिसकी क़ुरबानी की फ़क़ीर या ग़नी ने मुतअय्यन करके नज़र की हो और ऐसी बकरी का है जिसको तंगदसत ने क़ुरबानी के वास्ते (२) खरीदा हो। और अगर ग़नी ने क़ुरबानी के वास्ते खरीदी हो तो उसके दूध दुह लेने और उसकी पशम नोच लेने में कुछ डर नहीं है, कज़ा

फ़िल बदाए (जैसा कि बदाए में है)। मगर सही यह है कि इसका दूध दुह लेने और पशम उतार लेने में ग़नी व फ़क़ीर दोनों का हुक्म यकसां है, यह 'ग़ियाथिया' में है। और अगर ज़बह करने से पहले अज़हिया का दूध दुहा या उसकी पशम उतार ली तो उसको सदक़ा कर दे और उससे इंतिफ़ा न ले, यह 'ज़हीरिया' में है। और जब उसने अयाम-ए-क़ुरबानी में उसको ज़बह किया तो उसको जायज़ है कि उसका दूध दुह ले और उसकी पशम उतार ले और उससे नफ़ा उठाए क्योंकि ज़बह करने से क़ुरबत पूरी हो चुकी और क़ुरबत पूरी होने के बाद उससे नफ़ा उठाना मिस्ल उसके गोश्त खाने के है, यह 'मुहीत' में है। और अगर उसके थनों में दूध भरा हो और उससे ख़ौफ़-ए-बीमारी हो तो उसके थनों पर ठंडा पानी छिड़कें पस अगर उससे सिमट जाएं तो ख़ैर वरना दूध दुह कर उसको सदक़ा कर दे। और क़ुरबानी के जानवर पर सवार होना या उसको किसी काम में लगाना मकरूह है; और अगर उसने ऐसा किया और जानवर मज़कूर में नुक़सान आ गया तो उस पर वाजिब होगा कि जिस क़दर नुक़सान आया है उतने दाम सदक़ा कर दे। और अगर उसको किराए पर दिया तो किराया सदक़ा कर दे। और अगर दुधारू गाय खरीदी और उसकी क़ुरबानी वाजिब कर ली फिर उसको दूध से माल हासिल कर लिया तो जिस क़दर हासिल किया है उसके मिस्ल (३) माल सदक़ा कर दे और उसका गोबर सदक़ा कर दे। और अगर उसको चारा देना हो तो जो कुछ माल उसके दूध से कमाया है या उसके गोबर से नफ़ा उठाया है वह उसका (जानवर के रखरखाव का) है।

(१) गर्दन के पट्टे और वह जो क़ुरबानी वाले ऊंटों के गले में डालते हैं। (२) नियत से। (३) इशारा किया कि अगर तलफ़ कर दिया हो या बाक़ी हो बहरहाल सदक़ा करे, पस बाक़ी में बि-ऐनिही (वस्तु के रूप में) और इस्तेहलाक (खर्च हो जाने) में मिस्ल (बराबरी का मूल्य)।

---

روز سے زیادہ تک رکھ چھوڑے لیکن اس کا کھلا دینا اور صدقہ کر دینا افضل ہے لیکن اگر وہ شخص ذی عیال اور فراخ حال نہ ہو اس کے حق میں افضل یہ ہے کہ اس کو اپنے عیال کے واسطے چھوڑ دے اور اس کے ذریعہ سے ان کو فراخی دے یہ بدائع میں ہے اور اگر قربانی بوجہ نذر کے واجب ہوئی ہو تو نذر کرنے والا نہ خود اس میں سے کھا سکتا ہے اور نہ کسی غنی کو کھلا سکتا ہے خواہ نذر کرنے والا غنی ہو یا فقیر ہو کیونکہ وہ تو صدقہ کرنے کے واسطے ہے اور صدقہ کرنے والے کو یہ روا نہیں ہے کہ اپنے صدقہ میں سے خود کھائے یا کسی غنی کو کھلادے یہ تبیین میں ہے بشر بن الولید نے امام ابو یوسفؒ سے روایت کی کہ ایک شخص کے نو عیال ہیں اور دسواں آپ ہے پس اس نے دس دنبہ اپنے اور اپنے عیال کی طرف سے قربانی کیے اور کوئی دنبہ کسی کے واسطے معین نہ کیا بلکہ دسواں اپنے اور اپنے عیال کی طرف سے قربانی کی نیت کی تو استحساناً جائز ہے اور یہی امام اعظمؒ اللہ تعالیٰ کا قول ہے یہ محیط میں ہے۔

**باب نہم: اضحیہ کے حق میں**

میں جو مستحب ہے اور جو اس سے انتفاع حاصل کر سکتا ہے اس کے بیان میں مستحب ہے کہ ایام النحر کے چند روز پہلے اضحیہ کو باندھ رکھے اور اس کی تقلیل و تجلیل کرے پھر اس کو قربانی کی جگہ تک خوبی کے ساتھ ہانک لے جائے اس کے ہانکنے میں سختی نہ کرے اور نہ اس کی ٹانگ پکڑ کے وہاں تک کھینچ لے جائے یہ بدائع میں ہے اور جب اس کو ذبح کر چکے تو اس کی جھولیں اور قلادہ (۱) سب صدقہ کر دے یہ سراجیہ میں ہے اور اگر قربانی کے واسطے ایک بکری خریدی تو مکروہ ہے کہ اس کا دودھ دوھ لے یا اس کی پشم نوچ لے اور اس سے نفع اٹھائے

کیونکہ یہ بکری اس نے قربت کے واسطے معین کر دی ہے پس اقامت قربت سے پہلے اس کے کسی جزو کے ساتھ اس کو نفع لینا حلال نہیں ہے جیسے کہ قربانی کے وقت سے پہلے اس کو ذبح کر کے اس کے گوشت سے نفع نہیں اٹھا سکتا ہے اور مشائخ میں سے بعض نے فرمایا کہ یہ حکم ایسی بکری کا ہے جس کی قربانی کی فقیر یا غنی نے معین کر کے نذر کی ہو اور ایسی بکری کا ہے جس کو تنگدست نے قربانی کے واسطے (۲) خریدا ہو اور اگر غنی نے قربانی کے واسطے خریدی ہو تو اس کے دودھ دوھ لینے اور اس کی پشم نوچ لینے میں کچھ ڈر نہیں ہے کذا فی البدائع مگر صحیح یہ ہے کہ اس کا دودھ دوھ لینے اور پشم اتار لینے میں غنی و فقیر دونوں کا حکم یکساں ہے یہ غیاثیہ میں ہے اور اگر ذبح کرنے سے پہلے اضحیہ کا دودھ دوہا یا اس کی پشم اتار لی تو اس کو صدقہ کر دے اور اس سے انتفاع نہ لے یہ ظہیریہ میں ہے اور جب اس نے ایام قربانی میں اس کو ذبح کیا تو اس کو جائز ہے کہ اس کا دودھ دوھ لے اور اس کی پشم اتار لے اور اس سے نفع اٹھائے کیونکہ ذبح کرنے سے قربت پوری ہو چکی اور قربت پوری ہونے کے بعد اس سے نفع اٹھانا مثل اس کے گوشت کھانے کے ہے یہ محیط میں ہے اور اگر اس کے تھنوں میں دودھ بھر ا ہو اور اس سے خوف بیماری ہو تو اس کے تھنوں پر ٹھنڈا پانی چھڑکیں پس اگر اس سے سمٹ جائیں تو خیر ورنہ دودھ دوھ کر اس کو صدقہ کر دے اور قربانی کے جانور پر سوار ہونا یا اس کو کسی کام میں لگانا مکروہ ہے اور اگر اس نے ایسا کیا اور جانور مذکور میں نقصان آگیا تو اس پر واجب ہو گا کہ جس قدر نقصان آیا ہے اتنے دام صدقہ کر دے اور اگر اس کو کرایہ پر دیا تو کرایہ صدقہ کر دے اور اگر دودھارہ گائے خریدی اور اس کی قربانی واجب کر لی پھر اسکو دودھ سے مال حاصل کر لیا تو جس قدر حاصل کیا ہے اس کے مثل (۳) مال صدقہ کر دے اور اس کا گوبر صدقہ کر دے اور اگر اس کو چارہ دینا ہو تو جو کچھ مال اس کے دودھ سے کمایا ہے یا اس کے گوبر سے نفع اٹھایا ہے وہ اس کا ہے (۱) گردن و بند اور جو قربانی والے اونٹ کے

گردن میں ڈالتے ہیں۔ (۲) نیت سے۔ (۳) اشارہ کیا کہ اگر تلف کر دیا ہو یا باقی ہو بہر حال صدقہ کرے پس باقی میں بعینہٖ استہلاک میں مثل۔

---

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume 8 (397) Kitab al-Adhiya (The Book of Sacrifice)**

Nothing should be given as charity (from the animal before slaughtering), as mentioned in *Muheet-e-Sarakhsi*. One should donate its skin as charity or use it to make items like a sieve or a bag. If the skin is exchanged for an item that provides benefit while its physical form remains intact, such as a sieve, then by way of preference (*Istihsan*), there is no harm in it. However, one cannot purchase something that cannot be used without consuming it (*Istihlak*), such as meat or grain. The skin cannot be sold for silver coins (*Dirhams*) to spend on oneself or one's family. According to the correct view, the meat of the sacrificial animal is like the skin; it cannot be sold for something that provides no benefit without consumption. If the skin or meat is sold for *Dirhams* with the intention of donating those *Dirhams* as charity (*Sadqa*), it is permissible because it is an act of seeking proximity (*Qurbat*) to Allah. This is mentioned in *Tabyin*, and similarly in *Hidaya* and *Kafi*.

If a bag is purchased in exchange for the sacrificial meat, it is not permissible. If grains are purchased for the meat, it is permissible, and if meat is purchased for meat, it is also permissible. The scholars (*Mashaikh*) stated that the most correct (*Asah*) ruling in this matter is: selling an edible item for another edible item is permissible, and selling a non-edible item for another non-edible item is permissible. However, selling a non-edible item for an edible one, or vice-versa, is not permissible. This is in *Zahiriyya* and *Fatawa Qazi Khan*. If the sacrificial skin is used to line a basket (*Qartala*) or made into a bag, it is permissible to use it for household chores, but it is not permissible to rent it out. If rented, the rent must be donated as charity. Using the *Qartala* for house work or lending it for use is permissible. Regarding renting the *Qartala*, scholars say: if the basket is new, the rent does not need to be donated. If it is old and torn, half the rent must be donated. For example, if it is rented for two *Dangs*, donate one *Dang*. This is because if it is new, the benefit is derived without needing the skin; thus, the skin is secondary, and the full rent is for the basket. If it is old, the skin is necessary for its use, so half the rent is for the basket and half for the skin. *Qartala* refers to a basket (*Kuwara*); this is in *Zahiriyya*.

Selling the fat, hooves, head, wool (*Sauf*), camel hair (*Wabal*), or the milk extracted after slaughter for *Dirhams*, *Dinars*, food, drink, or anything consumed during use is not lawful (*Halal*). Nor is it lawful to give these items as wages to the butcher or slaughterer. If any of these are sold for the aforementioned items, the sale is valid according to Imam Azam (Abu Hanifa) and Imam Muhammad (though sinful), but invalid according to Imam Abu Yusuf. The proceeds must be donated; this is in *Badai*.

If during the days of sacrifice (*Ayyam-e-Nahr*), some wool is plucked for identification, it is not permissible to throw it away or gift it; rather, it must be donated to the poor. This is in *Fatawa Qazi Khan*.

In *Adhiya Zafrani*, it is stated that if a sacrificial animal gives birth, the offspring should also be slaughtered. Some of our scholars said this applies to the poor person for whom the sacrifice became mandatory due to a vow. For a wealthy person, slaughtering the offspring on the day of sacrifice is not mandatory. If he slaughters the offspring before or after its mother on the day of sacrifice, it is permissible. If not slaughtered, and it is donated alive during the days of sacrifice, it is permissible. In *Mushki*, it says if donated alive, one must donate its value. If sold, donate the price. If not slaughtered until the days of sacrifice pass, it becomes mandatory to donate it alive. (1) According to Imam Abu Yusuf, one should take it back from the buyer and donate the animal itself. (Footnotes): (1) Donating the skin itself. (2) The fundamental rule in this chapter. (3) Goat's wool. (4) Camel's wool.

कुछ सदक़ा न करे, यह मुहीत सरख़सी में है। और उसकी खाल सदक़ा करे या उससे छलनी या थैला आदि जैसी चीज़ें बना ले। और अगर उसके बदले ऐसी कोई चीज़ खरीदी जिससे उसके स्वरूप (वजूद) से इस तरह लाभ उठाया जा सके कि वह चीज़ वैसे ही बनी रहे, जैसे छलनी आदि, तो बेहतर (इस्तेहसानन) तौर पर इसमें कोई हर्ज़ नहीं है। लेकिन ऐसी चीज़ नहीं खरीद सकता जिससे उसके वजूद को ख़त्म (इस्तेहलाक) किए बिना लाभ न उठाया जा सके, जैसे मांस या अनाज आदि। खाल को कुछ दिरहमों के बदले इसलिए नहीं बेचा जा सकता कि उन्हें स्वयं पर या अपने परिवार पर खर्च करे। सही मत के अनुसार, क़ुर्बानी का मांस भी खाल के समान है, यहाँ तक कि उसे भी ऐसी चीज़ के बदले नहीं बेचा जा सकता जिससे उसके वजूद को ख़त्म किए बिना लाभ न मिले। यदि खाल और मांस को दिरहमों के बदले इस नियत से बेचा कि उन दिरहमों को सदक़ा कर देगा, तो यह जायज़ है क्योंकि यह भी अल्लाह की निकटता (क़ुर्बत) प्राप्त करने का एक ज़रिया है। यह 'तब्बीन' में है और ऐसा ही 'हिदाया' और 'काफ़ी' में भी है।

यदि क़ुर्बानी के मांस के बदले थैला खरीदा तो यह जायज़ नहीं है। यदि मांस के बदले अनाज खरीदा तो जायज़ है, और यदि मांस के बदले मांस खरीदा तो भी जायज़ है। विद्वानों (मशायख) ने फरमाया कि इस विषय में सबसे सही (अस़ह) नियम यह है कि: खाने योग्य चीज़ की बिक्री खाने योग्य चीज़ के बदले और न खाने योग्य चीज़ की बिक्री न खाने योग्य चीज़ के बदले जायज़ है। लेकिन न खाने योग्य चीज़ की बिक्री खाने योग्य चीज़ के बदले जायज़ नहीं है, और खाने योग्य चीज़ की बिक्री न खाने योग्य चीज़ के बदले भी जायज़ नहीं है। यह 'ज़हीरिया' और 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में वर्णित है। यदि क़ुर्बानी की खाल को किसी 'क़रताला' (टोकरीनुमा बर्तन) में लगाया या उसका थैला बनाया, तो यदि थैले को घर के काम में इस्तेमाल किया तो जायज़ है, लेकिन यदि किराये पर दिया तो जायज़ नहीं है, और किराया सदक़ा करना अनिवार्य (वाजिब) होगा। क़रताला को यदि घर के काम में इस्तेमाल किया या किसी को उधार (आरियतन) दिया तो जायज़ है। यदि किराये पर दिया तो विद्वानों का मत है कि: यदि क़रताला नया है तो उसका किराया सदक़ा करना अनिवार्य नहीं है। लेकिन यदि वह पुराना और फटा हुआ है, तो आधे किराये का सदक़ा करना अनिवार्य होगा। उदाहरण के लिए, यदि दो दांग किराये पर दिया तो एक दांग सदक़ा कर दे, क्योंकि यदि क़रताला नया होगा तो लाभ उठाने में खाल की ज़रूरत नहीं होगी, अतः खाल उसके अधीन (ताबे) होगी और पूरा किराया क़रताला का माना जाएगा। यदि

वह पुराना है, तो लाभ उठाने में खाल की ज़रूरत होगी, इसलिए आधा किराया क़रताला का और आधा खाल का माना जाएगा। 'क़रताला' का अर्थ टोकरी (कुवारा) है, यह 'ज़हीरिया' में है।

क़ुर्बानी के जानवर की चर्बी, पायें, सिरी, ऊन (सोफ़), या ऊंट की पश्म (बाल), या ज़बह के बाद निकाला गया दूध, इन चीज़ों को दिरहम, दीनार, खाने-पीने की चीज़ों या ऐसी किसी चीज़ के बदले बेचना हलाल नहीं है जिसे उपभोग (इस्तेहलाक) किए बिना लाभ नहीं लिया जा सकता। न ही इन चीज़ों को कसाई या ज़बह करने वाले की मज़दूरी में देना हलाल है। यदि इनमें से किसी चीज़ को वर्णित चीज़ों के बदले बेच दिया, तो इमाम-ए-आज़म और इमाम मुहम्मद के अनुसार बिक्री प्रभावी (नाफ़िज़) हो जाएगी (लेकिन गुनाह होगा), जबकि इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार यह प्रभावी नहीं होगी। इसकी कीमत सदक़ा कर देनी चाहिए, यह 'बदाये' में है। यदि अयाम-ए-नहर (क़ुर्बानी के दिनों) में पहचान के लिए जानवर के शरीर से थोड़ा सा ऊन नोच लिया, तो उसे फेंकना या किसी को दान (हिबा) करना जायज़ नहीं है, बल्कि उसे निर्धनों (फ़क़ीरों) को सदक़ा कर देना चाहिए। यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

'अज़हिया ज़फ़रानी' में लिखा है कि यदि क़ुर्बानी के जानवर का बच्चा पैदा हो जाए, तो उसके साथ उस बच्चे को भी ज़बह करे। हमारे कुछ विद्वानों ने कहा कि यह नियम निर्धन व्यक्ति के लिए है जिस पर मन्नत के कारण क़ुर्बानी वाजिब हुई है। धनी व्यक्ति के लिए नियम यह है कि क़ुर्बानी के दिन उस बच्चे को ज़बह करना अनिवार्य नहीं है। यदि उसने बच्चे को क़ुर्बानी के दिन उसकी माँ से पहले या बाद में ज़बह कर दिया, तो जायज़ है। यदि ज़बह नहीं किया और क़ुर्बानी के दिनों में उसे जीवित सदक़ा कर दिया, तो भी जायज़ है। 'मुश्की' में लिखा है कि यदि बच्चे को क़ुर्बानी के दिनों में जीवित सदक़ा किया तो उसकी कीमत सदक़ा करना वाजिब होगा। यदि उसने बच्चे को बेच दिया, तो उसकी कीमत सदक़ा कर दे। और यदि उसने बच्चे को ज़बह नहीं किया यहाँ तक कि क़ुर्बानी के दिन बीत गए, तो उस पर वाजिब होगा (कि उसे जीवित सदक़ा करे)। (१) इमाम अबू यूसुफ़ के अनुसार, खरीदार से वापस लेकर वही बच्चा सदक़ा कर देना चाहिए। (१) खाल का स्वयं सदक़ा करना। (२) इस अध्याय का मूल नियम। (३) बकरी का ऊन। (४) ऊंट का ऊन।

---

کچھ صدقہ نہ کرے یہ محیط سرخسی میں ہے اور اس کی کھال صدقہ کرے یا اس سے چھلنی و تھیلا وغیرہ کے مثل بنا لے اور اگر اس کے عوض ایسی کوئی چیز خریدی جس کے عین سے اس طرح نفع اٹھا سکتا ہے کہ وہ چیز بعینہ باقی رہے جیسے چھلنی وغیرہ تو استحساناً اس میں کچھ ڈر نہیں ہے اور ایسی چیز نہیں خرید سکتا ہے جس سے بدون استہلاک عین کے نفع حاصل نہ کر سکے جیسے گوشت و اناج وغیرہ اور کھال کو بعض درہموں کے نہیں فروخت کر سکتا ہے تا کہ ان کو اپنے اور اپنے میں لادے اور قربانی کا گوشت صحیح قول کے موافق بمنزلہ کھال کے ہے حتیٰ کہ اس کو ایسی چیز کے عوض جس سے بدون استہلاک عین کے نفع نہ اٹھا سکے فروخت نہیں کر سکتا ہے اور اگر کھال و گوشت کو درہموں کے عوض اس غرض فروخت کیا کہ درہموں کو صدقہ کر دے تو جائز ہے کیونکہ یہ بھی قربت ہی ہے اس کا صدقہ (۱) کر دینا ہے یہ تبیین میں ہے اور ایسا ہی ہدایہ و کافی میں ہے۔

اگر قربانی کے گوشت کے عوض ایک چیز کے تھیلا خریدا تو نہیں جائز ہے اور اگر اس کے گوشت کے عوض حبوب یعنی اناج خریدا تو جائز ہے اور اگر اس کے گوشت کے عوض گوشت خریدا تو جائز ہے اور مشائخ نے فرمایا کہ اصح (۲) حکم اس باب میں یہ ہے کہ کھانے کی چیز کی بیع بعوض کھانے کی چیز کے اور بے کھانے کی چیز کو بعوض لے کھانے کی چیز کے جائز ہے اور غیر ماکول کی بیع بعوض ماکول کے نہیں جائز ہے اور ماکول کی بیع بعوض غیر ماکول کے بھی نہیں جائز ہے یہ ظہیریہ و فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر قربانی کی کھال ایک قرطالہ میں لگائی یا اس کی تھیلی بنائی پس اگر تھیلی کو اپنے گھر کے کاموں میں استعمال کیا تو جائز ہے اور اگر کرایہ پر دے دی تو جائز نہیں ہے اور اس پر واجب ہو گا کہ کرایہ صدقہ کر دے اور

قرطالہ کو اگر اپنے گھر کے کاموں میں استعمال کیا یا عاریتہ دے دیا تو جائز ہے اور اگر کرایہ پر دے دیا تو مشائخ نے فرمایا کہ دیکھا جائے گا کہ اگر قرطالہ جدید ہو تو اس پر کرایہ صدقہ کرنا لازم نہیں ہے اور اگر پرانا پھٹا ہو تو اس پر فقط آدھا کرایہ صدقہ کرنا لازم ہوگا چنانچہ اگر دو دانگ کو کرایہ پر دیا تو ایک دانگ صدقہ کر دے کیونکہ جب قرطالہ جدید ہو گا تو اس سے نفع اٹھانے میں کھال کی احتیاج نہ ہو گی پس کھال اس کے تابع ہو گی اور پوری اجرت بمقابلہ قرطالہ کے ہو گی اور اگر قرطالہ کہنہ ہو گا تو اس سے نفع اٹھانے میں کھال کی ضرورت ہو گی پس نصف کرایہ بمقابلہ قرطالہ کے نصف بمقابلہ کھال کے ہو گا اور قرطالہ کوارہ کہتے ہیں یہ ظہیریہ میں ہے اور قربانی کے جانور کی چربی یا پایا یا سری یا صوف (۳) یا و بال (۴) یا اس دودھ کا جو اس کے ذبح کرنے کے بعد دودھ لیا ہے کسی کو درہم یا دینار یا ماکولات و مشروبات وغیرہ کسی ایسی چیز کے عوض جس سے بدون استہلاک عین کے نفع نہیں اٹھا سکتا ہے بیع کرنا حلال نہیں ہے اور نہ ان چیزوں کو بکری یا اونٹ وغیرہ ذبح کرنے والے کی اجرت میں دینا حلال ہے اور اگر ان چیزوں میں سے کسی کو بعوض اس کے جو ہم نے بیان کیا ہے فروخت کر دیا تو امام اعظم و امام محمدؒ کے نزدیک بیع نافذ ہو جائے گی اور امام ابو یوسفؒ کے نزدیک نافذ نہ ہو گی اور اس کا ثمن صدقہ کر دے یہ بدائع میں ہے اور اگر قربانی کے جانور کے کسی طرف سے تھوڑا سا صوف ایامِ نحر میں پہچان کے واسطے نوچ لیا تو اس کے واسطے یہ جائز نہیں ہے کہ یہ صوف پھینک دے اور نہ یہ جائز ہے کہ کسی کو ہبہ کر دے بلکہ اس کو فقیروں پر صدقہ کر دے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

اضحی زعفرانی میں لکھا ہے کہ اگر اضحیہ کے بچہ پیدا ہو تو اس کے ساتھ اس کا بچہ بھی ذبح کرے ہمارے بعض اصحاب نے فرمایا کہ یہ حکم تنگدست کے حق میں ہے جس کے واجب کر لینے سے قربانی اس پر واجب ہو گئی اور غنی کے حق میں یہ حکم ہے کہ قربانی کے روز اس

بچہ کا ذبح کرنا لازم نہیں ہے پس اگر اس نے بچہ کو قربانی کے روز اس کی ماں سے پہلے یا بعد ذبح کر دیا تو جائز ہے اور اگر نہ ذبح کیا اور ایامِ قربانی میں اس کو زندہ صدقہ کر دیا تو جائز ہے اور مشکی میں یوں لکھا ہے کہ اگر بچہ کو ایامِ قربانی میں زندہ صدقہ کر دیا تو اس پر اس کی قیمت صدقہ کرنی واجب ہو گی اور اگر اس نے ایامِ قربانی میں اس کا بچہ فروخت کر دیا تو اس کا ثمن صدقہ کر دے اور اگر اس نے بچہ کو ذبح نہ کیا یہاں تک کہ ایامِ قربانی گزر گئے تو اس پر واجب ہو گا (۱) قال المحرجم یہ شاید طرفین کے نزدیک ہے اور بقول امام ابو یوسفؒ یہ چاہے کہ مشتری سے پھر لے اور بعینہ صدقہ کر دے۔ (۱) خود کھال کا صدقہ کرنا۔ (۲) اصل اس باب میں یہ ہے۔ (۳) بکری کی پشم۔ (۴) اونٹ کی پشم۔

**(Fatawa Alamgiri ..... Volume 8) (Kitab al-Udhiya - Book of Sacrifice) 498**

...that he should give the offspring as live charity (Sadaqah). If he slaughtered the offspring along with the mother, he may eat from the meat of both the mother and the offspring. It is narrated from Imam al-A'zam (Imam Abu Hanifa, may Allah have mercy on him) that one should not eat from the meat of the offspring; if one has eaten it, one must give the value of what was consumed as charity. In my view, it is better to give the offspring as live charity; this is mentioned in *Al-Khulasa*. If one sold the sacrificial animal, it is permissible according to Imam al-A'zam, but not according to Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on him). In such a case, one should buy another with its price, and whatever difference exists between the two prices should be given in charity. Cutting the wool or hair of the sacrificial animal's offspring is also not permissible, similar to its mother, as stated in *As-Sirajiyya*. If this offspring remained with him until it grew up and he slaughtered it in the second year for that year's sacrifice, it is not permissible. He must sacrifice another animal for that year, and the one he slaughtered should be given in charity as it is (slaughtered). Any loss in value caused by the slaughter should also be given in charity with it. This is the official fatwa (legal ruling), as stated in *Fatawa Qazi Khan*.

**Chapter Seven: Regarding performing sacrifice on behalf of someone else and sacrificing someone else's goat on one's own behalf.**

It is mentioned in *Fatawa Abu'l-Layth* (may Allah have mercy on him) that if a person performs the sacrifice of a goat on behalf of someone else—whether by that person's command or without it—it is not valid. This is because authorizing a sacrifice on behalf of another person is not possible unless that person's ownership of the goat is established. Ownership cannot be established without the person taking possession of the animal, and in this case, possession was neither found by the individual nor by their deputy. This is mentioned in *Az-Zakhira*. If a person slaughters someone else's sacrificial animal on behalf of the owner without their explicit command, the sacrifice will be valid on behalf of the owner, and by way of legal preference (*istihsan*), the one who slaughtered it will not be liable for compensation (*daman*). It is stated here generally that compensation is not due, without restricting it to cases where the owner had already laid the animal down for sacrifice. Such a restriction is mentioned in *Al-Ajnas*, but the preferred view (*mukhtar*) is what is mentioned here (1). This is in *Al-Ghiyathiyya*. If a person sacrificed a large animal (*budna*, like a camel or cow) on behalf of himself, his wife, and his children, this is not mentioned in *Zahir al-Riwayah*. Hasan bin Ziyad mentioned in *Kitab al-Udhiya* that if the children are minors, it will be

valid for him and all his children according to Imam al-A'zam and Imam Abu Yusuf (may Allah have mercy on them). If they are adults, it will be valid for everyone if done by their command. However, if it was done without the command of all or some of them, it will be invalid for everyone—neither valid for him nor for the children. This is because the share of the person who did not give a command becomes mere meat, and thus the entire animal becomes mere meat (not a sacrifice). Hasan bin Ziyad's opinion is that if a person sacrifices one *budna* on behalf of himself, his five minor children, and his *Umm al-Walad* (slave-mother of his child), with or without her permission, it will be valid on his behalf but not on behalf of the others. Sheikh Abu'l-Qasim (may Allah have mercy on him) stated that the sacrifice will be valid on his (the individual's) behalf. This is mentioned in *Fatawa Qazi Khan*.

---

! This applies when the second animal is of lower value. For example, if the first was ten dirhams and the second eight dirhams, then two dirhams should be given as charity. (1) With conditions.

**(फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द 8) (किताब अल-अज़हिया) 498**

कि बच्चे को ज़िंदा सदक़ा (दान) कर दे और अगर उसने बच्चे को माँ के साथ ज़बह किया तो माँ और बच्चे दोनों के गोश्त में से खा सकता है और इमाम आज़म (रहमतुल्लाहि अलैहि) से रिवायत है कि बच्चे के गोश्त में से न खाए और अगर खा लिया तो जिस कदर खाया है उसकी क़ीमत सदक़ा कर दे और मेरे नज़दीक बच्चे को ज़िंदा सदक़ा कर देना बेहतर है, यह ख़ुलासा में है। और अगर क़ुर्बानी के जानवर को फ़रोख़्त (बेच) कर दिया तो जाइज़ है मगर इमाम अबू यूसुफ़ (रहमतुल्लाहि अलैहि) के नज़दीक जाइज़ नहीं है, फिर उसकी क़ीमत से दूसरा खरीदे और जिस क़दर दोनों क़ीमतों में फ़र्क (तफ़ावुत) हो वह सदक़ा कर दे। और क़ुर्बानी के जानवर के बच्चे की ऊन और बाल काटना भी उसकी माँ की तरह जाइज़ नहीं है, जैसा कि 'अत-सिराजिया' में है। और अगर यह बच्चा उसके पास रहा यहाँ तक कि बड़ा हो गया और उसने दूसरे साल की क़ुर्बानी में दूसरे साल के लिए ज़बह किया तो जाइज़ नहीं है और उस साल के लिए दूसरा जानवर क़ुर्बानी करे, और जिसको ज़बह किया है उसको वैसा ही ज़बह किया हुआ सदक़ा कर दे और ज़बह करने से उसकी क़ीमत में जो नुक़सान आया है वह नुक़सान भी उसके साथ सदक़ा करे और इसी पर फ़तवा है, जैसा कि 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

## अध्याय सात: दूसरे की ओर से क़ुर्बानी करने के बयान में और दूसरे की बकरी को अपनी ओर से क़ुर्बानी करने के बयान में

फ़तावा अबुल लैस (रहमतुल्लाहि अलैहि) में है कि अगर किसी दूसरे की ओर से एक बकरी की क़ुर्बानी कर दी, चाहे उस व्यक्ति के हुक्म से की या बिना हुक्म के, तो यह जाइज़ नहीं है क्योंकि किसी दूसरे की ओर से बकरी की क़ुर्बानी को जाइज़ मानना तब तक संभव नहीं है जब तक कि उस बकरी में उस दूसरे की मिल्कियत (स्वामित्व) साबित न हो जाए, और दूसरे का स्वामित्व बिना उस बकरी पर कब्ज़ा पाए साबित नहीं होगा, और इस स्थिति में उस बकरी पर न तो उस व्यक्ति का अपना कब्ज़ा पाया गया और न ही उसके प्रतिनिधि (नाइब) का। यह 'अज़-ज़खीरा' में है। और अगर किसी व्यक्ति ने दूसरे का क़ुर्बानी का जानवर मालिक की ओर से बिना उसके स्पष्ट आदेश (हुक्म-ए-सरीह) के ज़बह कर दिया तो क़ुर्बानी मालिक की ओर से होगी और 'इस्तेहसानन' (भलाई की दृष्टि से) ज़बह करने वाले पर जुर्माना (ज़मान) अनिवार्य नहीं होगा। और इस स्थान पर स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि जुर्माना अनिवार्य नहीं होगा, इस तरह सीमित नहीं किया कि यदि मालिक ने उसे क़ुर्बानी के लिए लिटाया हो तभी जुर्माना अनिवार्य न हो। 'अजनास' में यह शर्त लगाई गई है, लेकिन वही मान्य

(मुख्तार) है जो इस स्थान पर वर्णित (1) है, यह 'ग़ियासिया' में है। और अगर किसी ने एक बड़ा जानवर (बदना) अपनी ओर से और अपनी पत्नी और बच्चों की ओर से क़ुर्बानी किया, तो यह 'ज़ाहिर अर-रिवाया' में वर्णित नहीं है। हसन बिन ज़ियाद ने 'किताब अल-अज़हिया' में उल्लेख किया है कि यदि उसकी संतान नाबालिग हो, तो इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ (रहमतुल्लाहि अलैहि) के नज़दीक उसकी और उसकी संतान सबकी ओर से जाइज़ होगी। और अगर वे बालिग हों, तो यदि उन सबके आदेश से ऐसा किया गया तो भी इमाम आज़म और इमाम अबू यूसुफ़ के नज़दीक सबकी ओर से जाइज़ होगी। और यदि उन सबके आदेश के बिना या कुछ के आदेश के बिना ऐसा किया गया, तो किसी की ओर से भी जाइज़ नहीं होगी—न उसकी ओर से और न ही संतान की ओर से, क्योंकि जिसने आदेश नहीं दिया था उसका हिस्सा मात्र गोश्त बन गया, अतः पूरा गोश्त हो गया (क़ुर्बानी नहीं रही)। हसन बिन ज़ियाद का यह कथन है कि यदि एक व्यक्ति ने अपनी ओर से, अपनी पांच नाबालिग संतान की ओर से और अपनी 'उम्मुल वलद' (दासी जिससे संतान हो) की ओर से, उसकी अनुमति से या बिना अनुमति के एक बदना क़ुर्बानी किया तो यह उसकी (व्यक्ति की) ओर से जाइज़ होगी और उन लोगों की ओर से जाइज़ नहीं होगी। और शेख अबुल क़ासिम (रहमतुल्लाहि अलैहि) ने फ़रमाया कि उसकी ओर से क़ुर्बानी जाइज़ होगी, यह 'फ़तावा क़ाज़ी ख़ान' में है।

---

! यह उस समय है जब दूसरा कम कीमत का हो, जैसे पहला दस दिरहम का और दूसरा आठ दिरहम का, तो दो दिरहम सदक़ा करे। (1) शर्तों के साथ।

---

کہ بچہ کو زندہ صدقہ کر دے اور اگر اس نے بچہ کو ماں کے ساتھ ذبح کیا تو ماں و بچہ دونوں کے گوشت میں سے کھا سکتا ہے اور امام اعظمؒ سے روایت ہے کہ بچہ کے گوشت میں نہ کھائے اور اگر کھا لیا تو جس قدر کھایا ہے اس کی قیمت صدقہ کر دے اور میرے نزدیک بچہ کو زندہ صدقہ کر دینا بہتر ہے یہ خلاصہ میں ہے اور اگر قربانی کے جانور کو فروخت کر دیا تو جائز ہے مگر امام ابو یوسفؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے پھر اس کی قیمت سے دوسرا خریدے اور جس قدر دونوں قیمتوں میں تفاوت ہو وہ صدقہ کر دے اور قربانی کے جانور کے بچہ کے صوف و بال کاٹ لینا بھی اس کی ماں کے مانند نہیں جائز ہے کذا فی السراجیہ اور اگر یہ بچہ اس کے پاس رہا یہاں تک کہ بڑا ہو گیا اور اس نے دوسرے سال کی قربانی میں دوسرے سال کے واسطے ذبح کیا تو جائز نہیں ہے اور اس سال کے واسطے دوسرا جانور قربانی کرے اور جس کو ذبح کیا ہے اس کو ویسا ہی ذبح کیا ہوا صدقہ کر دے اور ذبح کرنے سے جس قدر اس کی قیمت میں نقصان آیا ہے وہ نقصان بھی اس کے ساتھ صدقہ کرے اور اسی پر فتویٰ ہے کذا فی فتاویٰ قاضی خان۔

## باب ہفتم: غیر کی طرف سے قربانی کرنے کے بیان میں اور غیر کی بکری کو اپنی طرف سے قربانی کرنے کے بیان میں

فتاویٰ ابواللیثؒ میں ہے کہ اگر غیر کی طرف سے ایک بکری کی قربانی کر دی خواہ اس غیر کے حکم سے کی یا بغیر حکم کی تو یہ نہیں جائز ہے کیونکہ غیر کی طرف سے کسی بکری کی قربانی جائز تجویز کرنا بدون اس کے ممکن نہیں ہے کہ غیر کی ملکیت اس بکری میں ثابت کی جائے اور ملکیت غیر پر اس بکری میں بدوں اس کے ثابت نہ ہوگی کہ غیر کا قبضہ پایا جائے اور

اس صورت میں غیر کا قبضہ اس بکری نہ اس کی ذات سے پایا گیا اور نہ اس کے نائب کی ذات سے پایا گیا یذخیرہ میں ہے اور اگر غیر شخص کا قربانی کا جانور مالک کی طرف سے بدوں اس کے حکم صریح کے ذبح کر دیا تو قربانی مالک کی طرف سے واقع ہوگی اور استحساناً ذبح کرنے والے پر ضمان واجب نہ ہوگی اور اس مقام پر مطلقاً فرمایا کہ ضمان واجب نہ ہوگی اس طرح مقید نہ کیا کہ اگر مالک نے اس کو قربانی کے واسطے لٹایا تو ایسا کرنے سے ضمان واجب نہ ہو گی اور اجناس میں یہ قید لگائی ہے لیکن مختار وہی ہے جو اس مقام پر مذکور (۱) ہے یہ غیاثیہ میں ہے اور اگر ایک بدنہ اپنی طرف سے اور اپنی بیوی اور اپنی اولاد کی طرف سے قربانی کیا تو یہ ظاہر الروایہ میں مذکور نہیں ہے اور حسن بن زیاد نے کتاب الاضحیہ میں ذکر کیا کہ اگر اس کی اولاد نا بالغ ہوں تو امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک اس سے اور اس کی اولاد سب کی طرف سے جائز ہو گی اور اگر بالغ ہوں پس اگر ان سب کے حکم سے ایسا کیا تو بھی امام اعظمؒ و امام ابو یوسفؒ کے نزدیک سب کی طرف سے جائز ہو گی اور اگر ان سب کے بلا حکم یا بعض کے بلا حکم ایسا کیا تو سب کی طرف سے نا جائز ہو گی نہ اس کی طرف سے جائز ہو گی اور نہ اولاد کی طرف سے اس واسطے کہ جس نے اس کو حکم نہیں دیا تھا اس کا حصہ محض گوشت ہو گیا پس سب گوشت ہو گیا اور حسن بن زیاد کا یہ قول ہے کہ اگر ایک شخص نے اپنی طرف سے اور اپنی نا بالغ پانچ اولاد کی طرف سے اور اپنی ام ولد کی طرف سے اس کی با اجازت یا بلا اجازت ایک بدنہ قربانی کیا تو یہ اس کی طرف سے جائز ہو گی اور نہ ان لوگوں کی طرف سے جائز ہو گی اور شیخ ابوالقاسمؒ نے فرمایا کہ اس کی طرف سے قربانی جائز ہو گی یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

---

! یہ اس وقت ہے کہ دوسرا کم قیمت ہو مثلاً پہلا دس درہم کا دوسرا آٹھ درہم کا تو دو درہم صدقہ کرے۔ (۱) باقید۔

Fatawa Alamgiri ..... Volume (8) 399 Kitab al-Adhiyah (The Book of Sacrifice)

A person slaughtered someone else's sacrificial animal (1) (for which a sacrifice was intended) on their own behalf without permission. If the owner took compensation (daman) for the price of that animal from him, the sacrifice will not be valid on behalf of the slaughterer nor on behalf of the owner, because it became evident (3) (after compensation) that this sacrifice occurred on his own property. However, if the owner took the slaughtered animal as is, the sacrifice would be valid on behalf of the owner because he had intended it for sacrifice; thus, someone else slaughtering it would not be detrimental. This is mentioned in 'Muheet al-Sarakhsi'.

If two men made a mistake such that each slaughtered the other's sacrificial animal, the sacrifice will be valid for both. By way of preference (istihsan), compensation will not be mandatory for either, and each will take his skinned goat from the other without demanding compensation. If both have eaten from the sacrificial meat and then realize the mistake, they should seek mutual exoneration (tahlil) from each other, i.e., "Forgive me for what I ate and make it lawful," then the sacrifice will be valid for both. If they dispute, each will take the price of his goat as indemnity from the other. Then, if the days of sacrifice have passed, he should give that price in charity (sadqah) because this price is a substitute for the meat indemnity. This is in 'al-Kafi'.

Two persons put their respective goats in the same tethering place or pen (marbat (1)). Then they both fell into confusion. Consequently, both claimed the same goat, and neither claimed the other goat, leaving it as it was. Thus, the goat for which both abandoned their claim shall belong to the public treasury (Bayt al-Mal), and the one they both claim shall be shared equally between them, and its sacrifice will not be valid for either. Had it been a camel or a cow, it would have sufficed for both, and this is the most correct view.

There are four men, each having one goat. All four locked their respective goats in the same room. Then one of the goats died, and it is not known whose goat it was. In this case, all these goats should be sold, and from their proceeds, four goats should be purchased, one for each. Then each of these people should appoint the others as agents (wakil) to slaughter all the goats. Then each person should obtain mutual exoneration (tahlil) from the others. Thus, the sacrifice will be valid for everyone. This is mentioned in 'al-Khulasa'.

If three men tied three sacrificial goats in the same pen and then one goat was found to be defective such that its sacrifice is not permissible, and they all disputed, each denying that the defective goat was his, then the defective goat shall be handed over to the public treasury, and the ownership of the remaining two goats will be divided equally (one-third each) among the three. This is in 'Tatar Khaniya'.

A person purchased a goat through an irregular sale (bai fasid) and then sacrificed it. This is valid, but the seller (ba'i) retains the right of rescission (khiyar). So, if he took the price of the live goat as indemnity from the one who performed the sacrifice, nothing further is due from the latter. If the seller took back the slaughtered goat, some have said that the person who performed the sacrifice should give in charity the value of the goat in its live state. This is because when the seller took it back slaughtered, the price was dropped from his liability, so it is as if he sold (2) that goat for the price that was due upon it. Some have said that it is not mandatory for the person who performed the sacrifice to give in charity more than the price of the slaughtered goat, and this is the correct view. If the seller did not take the slaughtered goat, but the buyer reached a settlement (sulh) with the seller regarding the slaughtered goat using the price due upon it, or...

---

a: So that permission becomes complete even if one person slaughters for everyone.
1: Where the goats stay (pen). (1) The full details of the case's judgment are not mentioned here because the purpose is to explain the rules of sacrifice. (2) The price of a live goat had become mandatory upon him.

फ़तावा आलमगीरी ..... खंड (8) 399 किताब अल-अज़हिया (क़ुरबानी का अध्याय)

एक व्यक्ति ने दूसरे की अज़हिया (1) (जिसकी क़ुरबानी की नियत की गई थी) बिना उसकी अनुमति के अपनी ओर से ज़िबह कर दी। यदि मालिक ने उससे उस अज़हिया की क़ीमत का हर्जाना (ज़मान) लिया, तो क़ुरबानी ज़िबह करने वाले की ओर से मान्य नहीं होगी और न ही मालिक की ओर से, क्योंकि यह स्पष्ट (3) (हर्जाना लेने के बाद) हो गया कि यह क़ुरबानी उसकी मिल्कियत (स्वामित्व) पर हुई। और यदि मालिक ने ज़िबह किया हुआ जानवर वैसे ही ले लिया, तो मालिक की ओर से क़ुरबानी मान्य हो जाएगी क्योंकि मालिक ने उसकी क़ुरबानी की नियत की थी, अतः किसी और का उसे ज़िबह कर देना हानिकारक नहीं होगा। यह 'मुहीत सरखसी' में है।

यदि दो व्यक्तियों ने ऐसी गलती की कि प्रत्येक ने दूसरे की अज़हिया ज़िबह कर दी, तो क़ुरबानी दोनों की ओर से सही हो जाएगी और श्रेष्ठता (इस्तेहसान) के आधार पर दोनों पर हर्जाना अनिवार्य नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से अपनी खाल उतारी हुई बकरी ले लेगा और उससे हर्जाना नहीं मांगेगा। यदि दोनों ने अज़हिया में से कुछ खा लिया हो और फिर उन्हें यह बात पता चले, तो चाहिए कि दोनों एक-दूसरे से अनुमति ले लें (तहलील करा लें), यानी यह कहें कि "जो मैंने खाया है उसे माफ़ करके वैध कर दो," तो क़ुरबानी दोनों की ओर से मान्य हो जाएगी। और यदि दोनों ने झगड़ा किया, तो प्रत्येक दूसरे से अपनी बकरी की क़ीमत हर्जाने के तौर पर लेगा। फिर यदि क़ुरबानी के दिन बीत गए हों, तो उस क़ीमत को सदक़ा (दान) कर देगा क्योंकि यह क़ीमत मांस के बदले का हर्जाना है। यह 'काफी' में है।

दो व्यक्तियों ने अपनी-अपनी बकरी एक ही खूँटे या बाड़े (मर्बत (1)) में रखीं, फिर दोनों भ्रम में पड़ गए। अतः दोनों ने एक ही बकरी पर अपना दावा किया और दूसरी बकरी के संबंध में किसी ने दावा नहीं किया, उसे वैसे ही छोड़ दिया। तो जिस बकरी के संबंध में दोनों ने दावा त्याग दिया है, वह बैतुल-माल (राजकोष) के लिए होगी, और जिस पर दोनों दावा करते हैं, वह दोनों के बीच आधी-आधी होगी और दोनों की ओर से उसकी क़ुरबानी मान्य नहीं होगी। यदि ऊंट या गाय होती, तो दोनों की ओर से अदायगी हो जाती और यही अधिक सही मत है।

चार व्यक्ति हैं और प्रत्येक के पास एक-एक बकरी है। चारों ने अपनी-अपनी बकरियाँ एक ही कोठरी में बंद कर दीं। फिर उनमें से एक बकरी मर गई और यह पता नहीं चल पा रहा कि वह किसकी बकरी थी। तो ये सभी बकरियाँ बेच दी जाएँ और उनके मूल्य से उन सभी के लिए चार बकरियाँ

खरीदी जाएँ प्रत्येक के लिए एक। फिर वे लोग एक-दूसरे को उन सभी बकरियों के ज़िबह के लिए वकील (प्रतिनिधि) नियुक्त कर दें। फिर प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से अनुमति (तहलील) प्राप्त कर ले, तो सभी की ओर से क़ुरबानी मान्य हो जाएगी। यह 'ख़ुलासा' में है।

यदि तीन व्यक्तियों ने क़ुरबानी की तीन बकरियाँ एक ही जगह बाँध दीं, फिर उनमें से एक बकरी दोषपूर्ण पाई गई जिसमें ऐसा दोष है कि उसकी क़ुरबानी नहीं हो सकती। फिर उन सब ने आपस में झगड़ा किया और प्रत्येक ने इनकार किया कि यह दोषपूर्ण बकरी मेरी नहीं है। तो दोषपूर्ण बकरी बैतुल-माल में जमा की जाएगी और बाकी दो बकरियों का स्वामित्व तीनों के नाम पर एक-तिहाई के हिसाब से होगा। यह 'तातार खानिया' में है।

एक व्यक्ति ने अनियमित विक्रय (बैय-ए-फ़ासिद) के तौर पर एक बकरी खरीदी, फिर उसकी क़ुरबानी कर दी, तो यह मान्य है, लेकिन विक्रेता (बाये) को विकल्प (खियार) प्राप्त होगा। अतः यदि उसने क़ुरबानी करने वाले से जीवित बकरी की क़ीमत हर्जाने के रूप में ली, तो क़ुरबानी करने वाले पर कुछ और अनिवार्य नहीं होगा। और यदि विक्रेता ने ज़िबह की हुई बकरी वापस ले ली, तो कुछ विद्वानों ने कहा है कि क़ुरबानी करने वाला उस बकरी के जीवित होने की स्थिति की क़ीमत सदक़ा करे, क्योंकि जब विक्रेता ने उसे ज़िबह की हुई अवस्था में ले लिया, तो उसके ज़िम्मे से क़ीमत समाप्त हो गई, तो मानो उसने वह बकरी उसी क़ीमत के बदले बेच (2) दी जो उस पर अनिवार्य थी। और कुछ ने कहा कि क़ुरबानी करने वाले पर ज़िबह की हुई बकरी की क़ीमत से अधिक सदक़ा करना अनिवार्य नहीं है और यही सही है। और यदि विक्रेता ने ज़िबह की हुई बकरी नहीं ली, बल्कि क्रेता ने उस क़ीमत से जो उस पर अनिवार्य है, उस ज़िबह की हुई बकरी पर विक्रेता के साथ समझौता (सुलह) कर लिया या...

---

अ: ताकि अनुमति पूर्ण हो जाए चाहे एक ही व्यक्ति सबको ज़िबह करे। 1: जहाँ बकरियाँ रहती हैं। (1) मामले के निर्णय का पूरा विवरण यहाँ वर्णित नहीं है क्योंकि उद्देश्य क़ुरबानी का विवरण देना है। (2) उस पर जीवित बकरी की क़ीमत अनिवार्य हुई थी।

ایک شخص نے غیر کا اضحیہ (۱) (جس کی قربانی کی نیت کی تھی ۱۲) بدون اس کے حکم کے اپنی طرف سے ذبح کیا پس اگر مالک نے اس سے اس اضحیہ کی قیمت کی ضمان لی تو قربانی اس ذبح کرنے والے کی طرف سے جائز نہ ہو گی نہ مالک کی طرف سے اس وجہ سے کہ یہ ظاہر (۳) (بعد ضمان کے ۱۲) ہوا کہ یہ قربانی اس کی ملک پر واقع ہوئی ہے اور اگر مالک نے اس طرح مذبوحہ لے لی تو مالک کی طرف سے قربانی جائز ہو جائے گی کیونکہ مالک نے اس کے قربانی کی نیت کی تھی پس غیر کا اس کو ذبح کر دینا کچھ مضر نہ ہو گا یہ محیط سرخسی میں ہے۔

اگر دو آدمیوں نے اس طرح غلطی کھائی کہ ہر ایک نے دوسرے کا اضحیہ ذبح کر دیا تو قربانی دونوں کی طرف سے صحیح ہو جائے گی اور استحساناً دونوں پر ضمان واجب نہ ہوگی اور ہر ایک دوسرے سے اپنی کھال کھینچی ہوئی بکری لے لے گا اور اس سے ضمان نہ لے گا اور اگر دونوں نے اضحیہ میں سے کھا لیا ہو پھر دونوں کو یہ بات معلوم ہوئی تو چاہیے کہ دونوں میں سے ہر ایک شخص دوسرے سے تحلیل کرالے یعنی مجھے جو میں نے کھایا ہے معاف کر کے حلال کر دے اور قربانی دونوں کی طرف سے جائز ہو جائے گی اور اگر دونوں نے جھگڑا کیا تو ہر ایک دوسرے سے اپنی بکری کی قیمت تاوان لے گا پھر اگر ایام قربانی گزر گئے ہوں تو اس قیمت کو صدقہ کر دے گا کیونکہ یہ قیمت تاوان گوشت کا بدل ہے یہ کافی میں ہے۔

دو شخصوں نے اپنی اپنی بکری ایک مربط (۱) میں داخل کیں پھر دونوں غلطی میں پڑے پس دونوں نے ایک ہی بکری پر اپنا اپنا دعویٰ کیا اور دوسری بکری کی نسبت دونوں نے دعویٰ نہ کیا یوں ہی چھوڑی تو جس بکری کی نسبت دونوں نے دعویٰ ترک کیا ہے وہ بیت المال کے واسطے

ہو گی اور جس پر دونوں دعویٰ کرتے ہیں وہ دونوں میں نصفا نصف ہو گی اور دونوں کی طرف سے اس کی قربانی جائز نہ ہو گی اور اگر اونٹ یا گائے ہوتی تو دونوں کی طرف سے ادا ہو جاتی اور یہی اصح ہے۔

چار آدمی ہیں اور ہر ایک کے پاس ایک ایک بکری ہے اور چاروں نے اپنی اپنی بکریاں ایک ہی کوٹھری میں بند کر دیں پھر ان میں سے ایک بکری مرگئی اور یہ معلوم نہیں ہوتا ہے کہ یہ کس کی بکری تھی تو یہ سب بکریاں فروخت کی جائیں اور ان کے داموں سے ان سب کے واسطے چار بکریاں ہر ایک کے واسطے ایک بکری خریدی جائے پھر ان لوگوں میں سے ہر ایک دوسرے کو ان سب بکریوں میں سے ہر ایک کے ذبح کے واسطے وکیل کر دے پھر ہر ایک شخص ہاتھوں میں سے تحلیل بھی کرا لے پس سب کی طرف سے قربانی جائز ہو جائے گی یہ خلاصہ میں ہے۔

اگر تین آدمیوں نے تین بکریاں قربانی کی ایک ہی مربط میں باندھ دیں پھر ان میں سے ایک بکری عیب دار پائی گئی کہ جس میں ایسا عیب ہے کہ اس کی قربانی نہیں ہو سکتی ہے پس ان سب نے باہم جھگڑا کیا اور ہر ایک نے انکار کیا کہ یہ عیب دار بکری میری نہیں ہے تو عیب دار بیت المال میں داخل کی جائے گی اور باقی دونوں بکریوں کی ڈگری تینوں کے نام تین تہائی ہوگی یہ تاتار خانیہ میں ہے۔

ایک شخص نے بطور بیع فاسد ایک بکری خریدی پھر اس کی قربانی کر دی تو جائز ہے مگر بائع کو خیار حاصل ہو گا سو اگر اس نے قربانی کرنے والے سے زندہ بکری کی قیمت تاوان لی تو قربانی کرنے والے پر کچھ واجب نہ ہوگا اور اگر بائع نے ذبح کی ہوئی واپس لے لی تو بعض نے فرمایا ہے کہ قربانی کرنے والا اس بکری کے زندہ ہونے کی حالت کی قیمت صدقہ کرے اس واسطے کہ جب بائع نے اس کو ذبح کی ہوئی لے لیا تو اس کے ذمہ سے قیمت ساقط ہو گئی پس

گویا اس نے اس بکری کے ہاتھ اسی قیمت کے عوض جو اس پر واجب ہوئی تھی فروخت (۲) کر دیا ہے اور بعض نے فرمایا کہ قربانی کرنے والے پر مذبوحہ کی قیمت سے زیادہ صدقہ کرنا واجب نہیں ہے اور یہی صحیح ہے اور اگر بائع نے مذبوحہ بکری نہ لی بلکہ مشتری نے اس قیمت سے جو اس پر واجب ہوئی ہے اس مذبوحہ بکری پر بائع کے ساتھ صلح کر لی یا

---

ا تاکہ اجازت تام ہو جائے اگرچہ ایک کو ایک ہی ذبح کرے گا ۔ ۱ بکری جہاں رہتی ہیں۔ (۱) پوری تصویر فیصلہ مقدمہ ذکر نہیں فرمائی بدیں وجہ کہ مقصود بیان قربانی ہے۔ (۲) اس پر زندہ بکری کی قیمت واجب ہوئی تھی۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 (Page 400) Book of Sacrifice (Kitab al-Udhiyah)**

If he sold it in exchange for that price, he shall not give anything in charity (Sadaqah); this is mentioned in 'Zahiriya'. If a person is gifted a goat through an irregular gift (Hibah Fasid) and he sacrifices it, the donor (Wahib) has the choice: he may take the price of the live goat as compensation from the donee (Mawhub lahu), in which case the sacrifice becomes valid and the donee may eat from it. Alternatively, if the donor wishes, he may take back the slaughtered carcass and receive compensation for the loss in value. If the days of sacrifice (Ayyam al-Nahr) have passed, then this person (the donee) shall give an amount equivalent to its value in charity.

Similarly, if a person suffering from a terminal illness (Marz al-Maut) gifts a goat during his illness while he is so heavily in debt that his entire estate is submerged in debt, and the donee sacrifices the goat, the creditors have the choice: they may take back the specific slaughtered animal, in which case the one who performed the sacrifice must give its value in charity. If they choose to take the value of the goat as compensation, the sacrifice remains valid. The reason is that the goat was under his liability (Daman); so when he returned it, he discharged his liability. This is mentioned in 'Badai'.

**In the mentioned issue, if the price of the cloth exceeds the price of the goat, "what" shall be given in charity?**

If a goat was purchased in exchange for a piece of cloth and then sacrificed, and later the seller (Ba'i) found a defect in the cloth and returned it, the seller has the choice: he may take the price of the goat as compensation, in which case the person who sacrificed it does not need to give anything in charity and may eat the meat. However, if the seller wishes to take back the slaughtered goat, then it will be observed: if the value of the cloth was higher, he shall give the cloth in charity, as if he sold the goat for the cloth. If the price of the goat was higher than the cloth, he shall give the value of the goat in charity because the goat was under his liability; by returning it, he discharged his liability, as if he sold it for an amount equal to its price.

If the person who performed the sacrifice finds a defect in the slaughtered goat while it is with the seller, the seller has the option to accept the goat as it is and return the price; the buyer (Mushtari) shall then give that price in charity, but he shall not give in charity the portion corresponding to the loss in value because he did not take liability for that portion. If the seller refuses to accept the slaughtered goat and returns the price equivalent to the defect, the buyer shall not give that portion in

charity because that portion did not enter into the act of worship (Qurbah); only what was slaughtered entered into worship, even though he slaughtered a defective goat. However, this is not the case regarding 'Jaza al-Sayd' (compensation for hunting violations); rather, in that case, it will be seen that if no equivalent or equal can be found for the hunt with that defect, then giving this excess in charity becomes obligatory. This is in 'Sharh Tahawi'.

If a person gifts a goat to another, and the donee sacrifices it, or slaughters it as the obligatory sacrifice for Hajj, or slaughters it as compensation for hunting, and then the donor revokes the gift, the revocation is valid and the sacrifice or compensation (Mut'ah) is permissible. It is narrated from Imam Abu Yusuf that revoking the gift is not valid, and the donee would not be required to give anything in charity in the case of sacrifice or compensation. This is in 'Zahiriya'.

If a terminally ill person (Marz al-Maut) gifts a goat to someone and the donee sacrifices it, and then the ill person dies of that same illness leaving no other property besides that goat, the heirs have the choice: they may take two-thirds of the value of the live goat as compensation from the donee, or they may take back two-thirds of the slaughtered carcass. The donee would then be required to give in charity two-thirds of the value of the animal in its slaughtered state. In both cases, the sacrifice remains valid because he slaughtered an animal that was his own property. This is in 'Muhit Sarakhsi'. It is written in 'Fatawa Ahl Samarqand' that if a person bought five goats during the days of sacrifice intending to sacrifice one of them but did not specify which one, and on the day of sacrifice another person slaughtered one of them on behalf of the owner with the intention of sacrifice without the owner's permission, then that person shall be liable (Zamin).

(1) This issue is discussed in detail in the Book of Hajj. (2) Giving a second animal (Dam) as compensation for hunting. (3) A patient in terminal illness (Marz al-Maut).

**फ़तावा आलमगीरी ..... जिल्द ८ (४००) किताब अल-अज़हिया (बलिदान की पुस्तक)**

यदि उसी कीमत के बदले में उसे बेच दिया, तो वह कोई सदक़ा (दान) नहीं करेगा, यह 'ज़हीरिया' में है। और यदि किसी व्यक्ति को अमान्य उपहार (हिबा-ए-फ़ासिद) के तौर पर एक बकरी भेंट की गई और उसने उसकी कुर्बानी कर दी, तो उपहार देने वाले (वाहब) को अधिकार है कि चाहे तो उपहार प्राप्त करने वाले (मोहूब लहू) से जीवित बकरी की कीमत मुआवज़े के रूप में ले ले; ऐसी स्थिति में कुर्बानी मान्य हो जाएगी और उपहार प्राप्त करने वाला उसमें से खा सकता है। और यदि वह चाहे तो ज़बह की गई बकरी वापस ले ले और नुकसान की कीमत ले ले। यदि कुर्बानी के दिन (अय्याम-ए-क़ुर्बानी) बीत चुके हों, तो यह व्यक्ति यानी उपहार प्राप्त करने वाला उसकी कीमत के बराबर सदक़ा कर देगा।

इसी तरह यदि मृत्यु-शैय्या पर पड़े बीमार (मर्ज़ अल-मौत) ने बीमारी की स्थिति में किसी को एक बकरी उपहार में दी, जबकि उस पर इतना कर्ज है कि उसकी पूरी संपत्ति कर्ज में डूबी हुई है, फिर उपहार प्राप्त करने वाले ने उस बकरी की कुर्बानी कर दी, तो लेनदारों (क़र्ज़ ख्वाहां) को अधिकार है कि वे चाहें तो उसी ज़बह की गई बकरी को वापस ले लें; ऐसी स्थिति में कुर्बानी करने वाले पर उसकी कीमत सदक़ा करना अनिवार्य होगा। और यदि वे चाहें तो उससे उक्त बकरी की कीमत मुआवज़े के रूप में लें, तो कुर्बानी मान्य हो जाएगी। इसका कारण यह है कि यह बकरी उसकी जिम्मेदारी (ज़मान) में थी, तो जब उसने इसे वापस कर दिया, तो उसने अपनी जिम्मेदारी समाप्त कर दी, यह 'बदाए' में है।

**उक्त मसले (विषय) में यदि कपड़े की कीमत बकरी से बढ़ जाए तो "क्या" सदक़ा होगा?**

यदि एक बकरी एक कपड़े के बदले खरीदी गई, फिर उसकी कुर्बानी कर दी गई, फिर विक्रेता (बाइ') ने कपड़े में कोई दोष पाकर उसे वापस कर दिया, तो उसे अधिकार होगा कि चाहे तो बकरी की कीमत मुआवज़े में ले ले; ऐसी स्थिति में कुर्बानी करने वाला कोई सदक़ा नहीं करेगा और बकरी का मांस खा सकता है। और यदि वह चाहे तो ज़बह की गई बकरी वापस ले ले, फिर देखा जाएगा कि यदि कपड़े की कीमत अधिक हो तो वह कपड़ा सदक़ा कर देगा, मानो उसने कपड़े के बदले उसे बेचा है। और यदि कपड़े से बकरी की कीमत अधिक हो, तो वह बकरी की कीमत सदक़ा कर देगा क्योंकि बकरी उसकी जिम्मेदारी में थी; उसे वापस करने से उसने अपनी जिम्मेदारी समाप्त की, मानो उसने उसे उसकी कीमत के बराबर राशि के बदले बेचा है।

यदि कुर्बानी करने वाले ने ज़बह की गई बकरी में विक्रेता के पास कोई दोष पाया, तो विक्रेता को अधिकार है कि चाहे तो बकरी को वैसे ही स्वीकार कर ले और कीमत वापस कर दे, फिर खरीदार (मुश्तरी) उस कीमत को सदक़ा कर देगा, लेकिन उसमें से दोष के हिस्से के बराबर राशि सदक़ा नहीं करेगा क्योंकि उसने दोष के हिस्से के बराबर अपनी जिम्मेदारी नहीं मानी है। और यदि विक्रेता चाहे तो ज़बह की गई बकरी को स्वीकार न करे और दोष के मूल्य के बराबर राशि वापस कर दे, तो खरीदार उस हिस्से को सदक़ा नहीं करेगा क्योंकि वह हिस्सा इबादत (क़ुर्बत) में शामिल नहीं हुआ है; इबादत में तो वही शामिल हुआ है जो उसने ज़बह किया है, हालांकि उसने दोषपूर्ण बकरी ज़बह की है। लेकिन 'जज़ा-ए-सैद' (शिकार के हर्जाने) में ऐसा नहीं है, बल्कि उस स्थिति में देखा जाएगा कि यदि उस दोष के साथ शिकार के लिए कोई समानता न मिले, तो उस पर यह अधिकता सदक़ा करना अनिवार्य होगा, यह 'शराह तहावी' में है।

यदि एक व्यक्ति ने दूसरे को एक बकरी उपहार में दी, फिर उपहार प्राप्त करने वाले ने उसकी कुर्बानी की, या हज के हिस्से में अनिवार्य कुर्बानी के रूप में ज़बह किया, या शिकार के हर्जाने में ज़बह किया, फिर उपहार देने वाले ने उपहार वापस ले लिया (रुजू' किया), तो वापसी सही है और कुर्बानी तथा हर्जाना (मुत्'आ) मान्य होगा। और इमाम अबू यूसुफ से रिवायत है कि उपहार से रुजू' करना सही नहीं है और उपहार प्राप्त करने वाले पर कुर्बानी की स्थिति में कुछ भी सदक़ा करना अनिवार्य नहीं होगा, यह 'ज़हीरिया' में है।

यदि एक बीमार व्यक्ति (मर्ज़ अल-मौत) ने किसी को बकरी उपहार में दी, फिर उपहार प्राप्त करने वाले ने उसकी कुर्बानी कर दी, फिर बीमार उसी बीमारी में मर गया और उस बकरी के अलावा उसकी कोई संपत्ति नहीं थी, तो वारिसों को अधिकार होगा कि उपहार प्राप्त करने वाले से उसके जीवित रहने की स्थिति की दो-तिहाई कीमत मुआवज़े में लें या दो-तिहाई ज़बह की गई बकरी वापस लें। और उपहार प्राप्त करने वाले पर अनिवार्य होगा कि वह ज़बह की गई स्थिति में उसकी दो-तिहाई कीमत सदक़ा कर दे। दोनों स्थितियों में कुर्बानी मान्य हो जाएगी क्योंकि उसने अपनी मिल्कियत (स्वामित्व) का जानवर ज़बह किया है, यह 'मुहीत सरख़सी' में है। 'फ़तावा अहल-ए-समरकंद' में लिखा है कि एक व्यक्ति ने कुर्बानी के दिनों में पाँच बकरियाँ खरीदीं और उनमें से एक की कुर्बानी का इरादा किया लेकिन कोई विशेष बकरी निर्धारित नहीं की, फिर कुर्बानी के दिन किसी अन्य व्यक्ति ने मालिक की अनुमति के बिना मालिक की ओर से कुर्बानी की नीयत से उनमें से एक को ज़बह कर दिया, तो वह व्यक्ति उत्तरदायी (ज़ामिन) होगा।

(१) यह मसला 'किताब अल-हज्ज' में विस्तार से वर्णित है। (२) शिकार के हर्जाने में दूसरा दम (बलिदान) दे। (३) मृत्यु-शैय्या पर बीमार।

---

اسی قیمت کے عوض اس کے ہاتھ فروخت کر دی تو کچھ صدقہ نہ کرے گا یہ ظہریہ میں ہے اور اگر ایک شخص کو ایک بکری بطور ہبہ فاسد کے ہبہ کی گئی اور اس نے اس کی قربانی کر دی تو واہب کو اختیار ہے چاہے موہوب لہ سے زندہ بکری کی قیمت تاوان لے پس قربانی جائز ہو جائے گی اور موہوب لہ اس میں سے کھا سکتا ہے اور اگر چاہے تو مذبوحہ کو واپس کر لے اور نقصان کی قیمت لے لے پس اگر ایام قربانی گزر گئے ہوں تو یہ شخص یعنی موہوب لہ بقدر اس کی قیمت کے صدقہ کر دے گا اسی طرح اگر مرض الموت کے مریض نے حالت مرض میں کسی کو ایک بکری ہبہ کی حالانکہ مریض پر اس قدر قرضہ ہے کہ اس کا سب مال قرضہ میں ڈوبا ہوا ہے پھر موہوب لہ نے اس بکری کی قربانی کر دی تو قرض خواہوں کو اختیار ہے چاہیں یہ مذبوحہ بعینہ واپس کر لیں پس قربانی کرنے والے پر اس کی قیمت صدقہ کرنی واجب ہو گی اور اگر چاہیں تو اس سے بکری مذکور کی قیمت تاوان لیں پس قربانی جائز ہو جائے گی اور وجہ یہ ہے کہ یہ بکری اس کے ذمہ مضمون تھی تو جب اس نے واپس دی تو اپنے ذمہ سے ضمان ساقط کر دی یہ بدائع میں ہے۔

**مسئلہ مذکورہ میں کپڑے کی قیمت بکری سے بڑھ جائے تو "کیا" صدقہ ہو گا ؟**

اگر ایک بکری بعوض ایک کپڑے کے خریدی پھر اس کی قربانی کر دی پھر بائع نے کپڑے میں کوئی عیب پا کر واپس کر دیا تو اس کو اختیار ہو گا چاہے بکری کی قیمت تاوان لے لے پس قربانی کرنے والا کچھ صدقہ نہ کرے گا اور بکری کے گوشت میں سے کھا سکتا ہے اور اگر چاہے تو مذبوحہ بکری واپس کر لے پھر دیکھا جائے گا کہ اگر کپڑے کی قیمت زیادہ ہو تو کپڑا صدقہ کر

دے گا گویا اس نے کپڑے کے عوض فروخت کی ہے اور اگر کپڑے سے بکری کی قیمت زیادہ ہو تو بکری کی قیمت صدقہ کر دے گا کیونکہ بکری اس کے ذمہ مضمون تھی پس اس کے واپس کر دینے سے اس نے اپنے ذمہ سے ضمان ساقط کی گویا اس نے جو اس کی قیمت ہے اس قدر ثمن کے عوض اس کو فروخت کیا ہے اور اگر قربانی کرنے والے نے مذبوحہ بکری میں بائع کے پاس کچھ عیب پایا تو بائع کو اختیار ہے چاہے بکری کو اسی طرح قبول کر لے اور ثمن واپس کر دے پھر مشتری اس ثمن کو صدقہ کر دے گا مگر اس میں سے حصہ نقصان کو صدقہ نہ کرے گا کیونکہ اس نے بقدر حصہ نقصان کے اپنے ذمہ نہیں واجب کیا ہے اور اگر بائع چاہے تو مذبوحہ بکری کو نہ قبول کرے اور حصہ عیب کے قدر ثمن واپس کر دے اور مشتری اس قدر حصہ کو صدقہ نہ کرے گا اس وجہ سے کہ اس قدر حصہ قربت میں داخل نہیں ہوا ہے قربت میں تو اس قدر داخل ہوا ہے جو اس نے ذبح کیا ہے حالانکہ اس نے ناقص بکری ذبح کی ہے لیکن جزائے (۱) لصید میں یہ نہیں ہے بلکہ اس صورت میں دیکھا جائے گا کہ اگر اس عیب کے ساتھ صید کے واسطے کوئی عدل و مساوی نہ پایا جائے تو اس پر یہ زیادتی صدقہ کرنی واجب ہو گی یہ شرح طحاوی میں ہے۔ ایک شخص نے دوسرے کو ایک بکری ہبہ کی پھر موہوب لہ نے اس کو قربانی کیا یا حصہ حج میں جو قربانی لازم آتی ہے اس میں ذبح کیا یا جزائے صید میں ذبح کیا پھر واہب نے ہبہ سے رجوع کیا تو رجوع صحیح ہے اور قربانی و متعہ (۲) جائز ہو گا اور امام ابو یوسفؒ سے روایت ہے کہ ہبہ سے رجوع کرنا نہیں صحیح ہے اور موہوب لہ پر قربانی و متعہ کی صورت میں کچھ صدقہ کرنا واجب نہ ہو گا یہ ظہریہ میں ہے۔

ایک مریض (۳) نے ایک شخص کو ایک بکری ہبہ کی پھر موہوب لہ نے اس کی قربانی کر دی پھر مریض اسی مرض میں مر گیا اور سوائے اس بکری کے اس کا کچھ مال نہ تھا تو وارثوں کو اختیار ہو گا کہ موہوب لہ سے اس کی دو تہائی قیمت زندہ ہونے کی حالت کی تاوان لیں یا دو تہائی

مذبوحہ واپس لیں اور موہوب لہ پر لازم ہو گا کہ اس کی دو تہائی کی قیمت مذبوحہ حالت کی صدقہ کر دے اور دونوں صورتوں میں اس کی قربانی جائز ہو جائے گی کیونکہ اس نے اپنی ملک کا جانور ذبح کیا ہے یہ محیط سرخسی میں ہے فتاوی اہل سمر قند میں لکھا ہے کہ ایک شخص نے ایام قربانی میں پانچ بکریاں خریدیں اور ان میں سے ایک بکری کی قربانی کا ارادہ کیا مگر اس نے کوئی معین نہ کی پھر قربانی کے روز کسی شخص نے ان میں سے ایک بکری بدوں حکم مالک کے مالک کی طرف سے قربانی کی نیت سے ذبح کر دی تو وہ شخص ضامن ہو گا

(۱) یہ مسئلہ کتاب الحج میں مفصل مذکور ہوا ہے۔ (۲) جزائے صید میں دوسرا دم دے۔ (۳) مریض مرض الموت۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 201 | Kitab al-Udhiya (Book of Sacrifice)**

Because when the owner had not specified it for sacrifice, then the permission to slaughter it as a representative was also not established on behalf of the owner; this is in "Al-Dhakhira". In "Al-Muntaqa" it states that if a person usurps another's sacrificial animal and sacrifices it on his own behalf and then pays its price as compensation to the owner, what he has done is valid because by paying the price as compensation, he became the owner from the time of usurpation; this is in "Al-Khulasa". And if a person usurps someone's goat and sacrifices it, it is not permissible, and the owner will have the choice whether to take the slaughtered animal and take compensation for the loss, or if he wishes, to take the price of a live goat as compensation. Then from the time of usurpation, this goat becomes the property of the usurper; therefore, by "Istihsan" (juridical preference), the sacrifice becomes valid. Similarly, if someone buys a goat and sacrifices it, then someone else proves their rightful ownership of the goat, if the rightful owner permits the sale, the sacrifice is valid. But if he takes back the slaughtered goat, it will not be valid; this is in "Sharh al-Tahawi".

If Zaid left a goat with Amr on trust (wadi'at) and Amr sacrificed it on the day of sacrifice, then Zaid chose to take its price as compensation or took back the slaughtered animal, in either case, Amr's sacrifice will not be fulfilled. The same ruling as in "wadi'at" (trust) applies to "ari'at" (loan) and "ijara" (hire/lease). For example, if someone borrowed a camel or an ox or a cow or took it on hire and then sacrificed it, the sacrifice will not be valid whether its owner takes the slaughtered animal or takes the price as compensation; this is in "Al-Bada'i". If a goat is held as a pledge (rahn) and someone sacrifices it and pays its price as a guarantee, it is not permissible; this is in "Fatawa Qazi Khan" and "Al-Khulasa". A person called a butcher to sacrifice an animal for him, but the butcher sacrificed it on his own behalf; then this sacrifice will be on behalf of the owner; this is in "Al-Sirajia". A person bought a sacrificial animal (udhiya) and ordered another to slaughter it. After slaughtering, the person said, "I intentionally omitted the Tasmiya **[1]**". In this case, the slaughterer will be liable for its price to the owner, and the owner should buy another goat with that price, perform the sacrifice, and give all the meat in charity without eating any of it. This is when the days of sacrifice still remain. If they have passed, he should give its price in charity to the poor; this is in "Fatawa Qazi Khan". Ibn Sama'ah reported from Imam Muhammad that a person ordered another to slaughter his goat. The person ordered did not slaughter it until the owner sold the goat. Then the person ordered

slaughtered it. The person ordered will give the price as compensation to the buyer and cannot reclaim it from the one who ordered him to slaughter it, whether the person ordered knew about the sale or not. Because if he knew about the sale, this ruling is clear, and if he didn't know, it's because the one giving the order did not deceive him since at the time he gave the order, this goat was his property; this is in "Waqi'at al-Natiti". In "Al-Ajnas" it is stated that Ibn Sama'ah reported from Imam Abu Yusuf that Zaid ordered Amr to slaughter a goat although Zaid had already sold it. Amr slaughtered it despite not knowing about the sale. The buyer will have the option to give the payment to the seller and take the price as compensation from Amr, and Amr will not have the option to reclaim the compensation from Zaid. But if Amr did not know about its sale, the buyer does not have the option to take the price compensation from Amr because if the buyer takes compensation from him, Amr would reclaim that compensation money from Zaid; thus it would be as if Zaid had **[2]**

---

**[1]** Tasmiya means saying "Bismillah" (In the name of Allah), and the intention is the name of Allah Almighty. **[2]** The translator said some have said that this is analogy (qiyas), and in "Istihsan" there is validity and absence of compensation when it is one goat and the intention is sacrifice, and the same ruling applies to more goats because the goal is performing an act of proximity. I say no, rather the correct view is that he will be liable because in one animal the value was specified, and here the specification did not remain, so the difference became apparent.

**फ़तावा आलमगीरी ..... खंड 5 | 201 | किताबुल अज़हिया (बलिदान की पुस्तक)**

क्योंकि जब मालिक ने इसे कुर्बानी के लिए निश्चित नहीं किया था, तो उसी जानवर को ज़िब्ह (बध) करने की अनुमति मालिक की ओर से प्रतिनिधि के रूप में भी सिद्ध नहीं हुई थी; यह "अल-ज़ख़ीरा" में है। "अल-मुंतक़ा" में है कि यदि किसी व्यक्ति ने दूसरे के कुर्बानी के जानवर को हड़प (ग़सब) लिया और अपनी ओर से कुर्बानी कर दी और मालिक को उसकी कीमत का मुआवज़ा (तावान) दे दिया, तो उसने जो किया वह मान्य हो गया क्योंकि मुआवज़ा देने से वह हड़पने के समय से ही मालिक बन गया; यह "खुलासा" में है। और यदि किसी व्यक्ति की बकरी हड़प कर उसकी कुर्बानी कर दी गई तो यह मान्य नहीं है, और मालिक को यह अधिकार होगा कि चाहे वह उस ज़िब्ह किए हुए जानवर को ले ले और नुकसान का मुआवज़ा ले ले, या यदि वह चाहे तो उससे जीवित बकरी की कीमत मुआवज़े के रूप में ले ले। तब हड़पने के समय से यह बकरी हड़पने वाले की संपत्ति हो जाएगी; अतः "इस्तिहसान" (विधिक प्राथमिकता) के अनुसार कुर्बानी जायज़ हो जाएगी। इसी प्रकार यदि कोई बकरी खरीदी गई और उसकी कुर्बानी कर दी गई, फिर किसी अन्य व्यक्ति ने बकरी पर अपना कानूनी अधिकार सिद्ध कर दिया, तो यदि अधिकार रखने वाले ने बिक्री की अनुमति दे दी, तो कुर्बानी जायज़ है। लेकिन यदि उसने ज़िब्ह की हुई बकरी वापस ले ली, तो यह जायज़ नहीं होगी; यह "शरह अल-तहावी" में है।

यदि ज़ैद ने अम्र के पास एक बकरी अमानत (वदीअत) के रूप में रखी और अम्र ने कुर्बानी के दिन उसकी कुर्बानी कर दी, फिर ज़ैद ने उसकी कीमत मुआवज़े के रूप में लेना पसंद किया या ज़िब्ह किया हुआ जानवर वापस ले लिया, किसी भी स्थिति में अम्र की कुर्बानी पूरी नहीं होगी। अमानत के मामले में जो नियम ज्ञात हुआ है, वही नियम "आरियत" (उधार) और "इजारा" (किराया/लीज़) में भी है। उदाहरण के लिए, यदि किसी ने ऊंटनी या बैल या गाय उधार ली या किराए पर ली और फिर उसकी कुर्बानी कर दी, तो कुर्बानी मान्य नहीं होगी, चाहे उसका मालिक ज़िब्ह किए हुए जानवर को ले ले या कीमत मुआवज़े के रूप में ले ले; यह "अल-बदाई" में है। यदि कोई बकरी गिरवी (रहन) रखी गई हो और उसकी कुर्बानी कर दी जाए और उसकी कीमत ज़मानत के रूप में दे दी जाए, तो यह जायज़ नहीं है; यह "फ़तावा क़ाज़ी ख़ान" और "अल-खुलासा" में है। एक व्यक्ति ने एक कसाई को बुलाया ताकि वह उसके लिए जानवर की कुर्बानी कर दे, लेकिन कसाई ने अपनी ओर से कुर्बानी कर दी; तब यह कुर्बानी मालिक की ओर से मानी जाएगी; यह "सिराजिया" में है। एक व्यक्ति ने कुर्बानी का जानवर (अज़हिया) खरीदा और दूसरे को उसे ज़िब्ह करने का आदेश दिया। ज़िब्ह करने के बाद

उस व्यक्ति ने कहा, "मैंने जानबूझकर तस्मिया **[1]** छोड़ दिया है"। इस मामले में, ज़िब्ह करने वाला मालिक को उसकी कीमत का ज़िम्मेदार होगा, और मालिक उस कीमत से दूसरी बकरी खरीदकर कुर्बानी करेगा और उसका सारा मांस दान कर देगा और स्वयं कुछ नहीं खाएगा। यह तब है जब कुर्बानी के दिन शेष हों। यदि वे बीत चुके हों, तो वह उसकी कीमत गरीबों को दान कर देगा; यह "फ़तावा क़ाज़ी ख़ान" में है। इब्न समाआ ने इमाम मुहम्मद से रिवायत की है कि एक व्यक्ति ने दूसरे को अपनी बकरी ज़िब्ह करने का आदेश दिया। जिस व्यक्ति को आदेश दिया गया था उसने उसे तब तक ज़िब्ह नहीं किया जब तक कि मालिक ने वह बकरी बेच नहीं दी। फिर आदेशित व्यक्ति ने उसे ज़िब्ह कर दिया। आदेशित व्यक्ति खरीदार को कीमत मुआवज़े के रूप में देगा और उसे ज़िब्ह करने का आदेश देने वाले से वापस नहीं मांग सकता, चाहे आदेशित व्यक्ति को बिक्री के बारे में पता हो या न हो। क्योंकि यदि उसे बिक्री का पता था, तो यह नियम स्पष्ट है, और यदि नहीं पता था, तो इसलिए कि आदेश देने वाले ने उसे धोखा नहीं दिया क्योंकि जिस समय उसने आदेश दिया था, वह बकरी उसकी संपत्ति थी; यह "वाक़िआत अल-नातिती" में है। "अल-अजनास" में है कि इब्न समाआ ने इमाम अबू यूसुफ से रिवायत की कि ज़ैद ने अम्र को एक बकरी ज़िब्ह करने का आदेश दिया, जबकि ज़ैद उसे पहले ही बेच चुका था। अम्र ने बिक्री के बारे में न जानते हुए उसे ज़िब्ह कर दिया। खरीदार के पास विकल्प होगा कि वह विक्रेता को भुगतान कर दे और अम्र से कीमत मुआवज़े के रूप में ले ले, और अम्र के पास ज़ैद से मुआवज़ा वापस मांगने का विकल्प नहीं होगा। लेकिन अगर अम्र को इसकी बिक्री के बारे में पता नहीं था, तो खरीदार के पास अम्र से कीमत का मुआवज़ा लेने का विकल्प नहीं है क्योंकि यदि खरीदार उससे मुआवज़ा लेता है, तो अम्र वह मुआवज़ा ज़ैद से वापस ले लेगा; इस प्रकार यह ऐसा होगा जैसे ज़ैद ने **[2]**

---

**[1]** तस्मिया का अर्थ है "बिस्मिल्लाह" (अल्लाह के नाम से) कहना, और इसका उद्देश्य अल्लाह तआला का नाम लेना है। **[2]** अनुवादक ने कहा कि कुछ ने कहा है कि यह "क़यास" (तर्क) है, और "इस्तिहसान" में वैधता और मुआवज़े की अनुपस्थिति तब होती है जब एक बकरी हो और इरादा कुर्बानी का हो, और यही नियम अधिक बकरियों पर भी लागू होता है क्योंकि उद्देश्य निकटता का कार्य करना है। मैं कहता हूँ कि नहीं, बल्कि सही विचार यह है कि वह उत्तरदायी होगा क्योंकि एक जानवर में मूल्य निश्चित हो गया था, और यहाँ वह निश्चितता नहीं रही, इसलिए अंतर स्पष्ट हो गया।

---

کیونکہ جب مالک نے اس کو قربانی کے واسطے معین نہ کیا تھا تو بعینہ اس کے ذبح کرنے کی اجازت بطور ولایت کے بھی مالک کی طرف سے ثابت نہ ہوئی یہ ذخیرہ میں ہے۔ منتقی میں ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کی قربانی کا جانور غصب کر کے اپنی طرف سے قربانی کر دیا اور مالک کو اس کی قیمت تاوان دے دی تو جو اس نے کیا ہے وہ ادا ہو گیا کیونکہ قیمت تاوان دینے سے وہ غصب کے وقت سے مالک ہو گیا یہ خلاصہ میں ہے اور اگر ایک شخص کی بکری غصب کر کے اس کی قربانی کر دی تو جائز نہیں ہے اور مالک کو اختیار ہو گا چاہے اس کو مذبوحہ لے لے اور تاوان نقصان لے لے اور اگر چاہے تو اس سے زندہ بکری کی قیمت تاوان لے لے پس غصب کے وقت سے یہ بکری غاصب کی ملک ہو جائے گی پس استحساناً قربانی جائز ہو جائے گی اسی طرح اگر ایک بکری خریدی اور اس کی قربانی کر دی پھر کسی شخص نے بکری پر اپنا استحقاق ثابت کیا پس اگر مستحق نے بیع کی اجازت دے دی تو قربانی جائز ہے اور اگر مذبوحہ بکری واپس لی تو جائز نہ ہو گی یہ شرح طحاوی میں ہے۔

اگر زید نے عمرو کے پاس ایک بکری ودیعت رکھی اور عمرو نے قربانی کے روز اس کی قربانی کر دی پھر زید نے اس کی قیمت تاوان لینی اختیار کی یا مذبوحہ واپس کر لی بہر حال عمرو کی قربانی ادا نہ ہو گی اور جو حکم ودیعت میں معلوم ہوا وہی عاریت و اجارہ میں ہے مثلاً ایک اونٹنی یا بیل یا گائے مستعار لیا یا اجارہ پر لیا پھر اس کی قربانی کر دی تو اس کی قربانی ادا نہ ہو گی خواہ اس کا مالک اس مذبوحہ کو لے لے یا قیمت تاوان لے لے یہ بدائع میں ہے۔ اگر کوئی بکری رہن ہو اس کی قربانی کر دی اور اس کی قیمت ضمان دے دی تو نہیں جائز ہے یہ فتاویٰ قاضی خان و خلاصہ میں ہے۔ ایک شخص نے قصاب کو بلایا تاکہ میرے واسطے یہ جانور قربانی

کر دے اور قصاب نے اپنی طرف سے قربانی کر دیا تو یہ قربانی مالک کی طرف سے ہو گی یہ سراجیہ میں ہے۔ ایک شخص نے اضحیہ خریدا اور غیر کو حکم دیا کہ اس کو ذبح کر دے پس اس نے ذبح کیا اور کہا کہ میں نے عمداً تسمیہ **[1]** چھوڑ دیا ہے تو ذبح کرنے والا مالک کے واسطے اس کی قیمت کا ضامن ہو گا اور مالک اس قیمت سے دوسری بکری خرید کر قربانی کر کے اس کا سب گوشت صدقہ کر دے گا اور کچھ نہ کھائے گا اور یہ اس وقت ہے کہ جب ایام قربانی باقی ہوں اور اگر گزر گئے ہوں تو اس کی قیمت فقیروں پر صدقہ کر دے گا یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے۔

ابن سماعہ نے امام محمد سے روایت ہے کہ ایک شخص نے دوسرے کو حکم دیا کہ میری یہ بکری ذبح کر دے پھر مامور نے اس کو ذبح نہ کیا یہاں تک کہ مالک نے وہ بکری فروخت کر دی پھر مامور نے اس کو ذبح کر دیا تو مامور نے اس کی قیمت مشتری کو تاوان دے گا اور جس نے اس کو ذبح کرنے کا حکم دیا تھا اس سے واپس نہیں لے سکتا ہے خواہ مامور کو بیع کا علم ہوا ہو یا نہ ہوا ہو۔ کیونکہ اگر اس کو بیع کا علم ہو گیا تھا تو یہ حکم ظاہر ہے اور اگر نہ ہوا تھا تو اس وجہ سے کہ حکم دہندہ نے اس کو دھوکا نہیں دیا ہے کیونکہ جس وقت اس نے اس شخص کو ذبح کرنے کا حکم دیا تھا اس وقت یہ بکری اس کی ملک تھی یہ واقعات ناطقی میں ہے۔ اجناس میں ہے کہ ابن سماعہ نے امام ابو یوسف سے روایت کی کہ زید نے عمرو کو ایک بکری ذبح کرنے کا حکم دیا حالانکہ زید اس کو فروخت کر چکا تھا پس عمرو نے اس کو ذبح کر دیا باوجودیکہ عمرو کو فروخت ہو جانے کا علم نہ تھا تو مشتری کو اختیار ہو گا کہ اس کا ثمن بائع کو دے کر عمرو سے اس کی قیمت تاوان لے اور عمرو کو یہ اختیار نہ ہو گا کہ زید سے تاوان واپس لے اور اگر عمرو کو اس کی بیع کا علم نہ ہو تو مشتری کو عمرو سے تاوان قیمت لینے کا اختیار نہیں ہے اس واسطے کہ اگر مشتری اس سے تاوان لے تو عمرو یہ مال تاوان زید سے واپس لے گا پس ایسا ہو گا کہ گویا زید نے **[2]**

**[1]** تسمیہ بسم اللہ کہنا اور مراد اللہ تعالیٰ کا نام ہے۔ **[2]** قال المترجم بعض نے کہا کہ یہ قیاس ہے اور استحسان میں جواز وعدم تاوان ہے جبکہ ایک بکری ہو اور قربانی کی نیت ہو اور زیادہ بکریوں میں بھی یہی حکم ہے کیونکہ مقصود ادائے قربت ہے میں کہتا ہوں کہ نہیں بلکہ صحیح یہ کہ ضامن ہو گا کیونکہ ایک میں مالیت متعین ہو گئی تھی اور یہاں تعین نہیں رہا تو فرق ظاہر ہو گیا۔

---

...acted as such himself, the sale will be invalidated; this is mentioned in al-Zakhira and others.

If three men bought three goats, and at the time of slaughtering, they were unsure which goat belonged to whom, Shaykh Imam Abu Bakr Muhammad ibn al-Fadl said that each person should appoint the others as agents (wakils) to slaughter on his behalf. Thus, if the slaughterer kills his own goat, it is valid, and if he kills another's, it is also valid due to the permission. If a person intended to perform a sacrifice and placed his hand along with the butcher's hand so that both could assist in a proper slaughter, Shaykh Imam Abu Bakr Muhammad ibn al-Fadl stated that reciting the name of Allah (Tasmiyah) is mandatory for both. If even one of them omits the Tasmiyah, the slaughter will not be valid; this is recorded in al-Zahiriyya.

## Chapter Eight: Concerning the issues related to partnership in sacrificial animals

Regarding partnership in sacrificial animals, it should be known that a goat, no matter how large, is only valid on behalf of one person. However, a camel or a cow is valid on behalf of up to seven people, provided that all of them intend the sacrifice for the pleasure of Allah Almighty. Specifying the number seven means it is not permissible for more than seven people, but it is permissible for fewer; this is stated in 'al-Khulasa'. A person performing a sacrifice in a sharable animal should not include someone who has no intention of any act of devotion (qurbat) (1) at all. If such a person is included, the sacrifice will not be valid. This rule applies to all acts of devotion: if someone seeking nearness to God includes a person who does not intend such nearness, the act will not be fulfilled. If everyone intends a sacrifice or another act of devotion, the goal of all will be achieved, whether the act is obligatory (wajib) or voluntary (nafl), or obligatory for some and voluntary for others, and whether the types of devotion (2) are the same or different—such as some intending 'Hady-e-Ihsar' (3) (sacrifice due to hindrance), some the expiation (kaffarah) for a violation during Ihram, some 'Hady-e-Tatattu' (voluntary sacrifice), and some the 'Dam' (penalty) for Mut'ah or Qiran. This is the view of our three companions (3) (the prominent Imams). Similarly, if some intend 'Aqiqah' for a child born previously, it is also permissible; Imam Muhammad (RA) mentioned this in 'Nawadir al-Fasahaya'. If someone intends a wedding feast (Walimah), this case is not specifically mentioned, but it should be permissible. There is a narration from Imam Abu Hanifah (RA) that

he considered partnership disliked (makruh) (4) when the types of devotion differ. It is also narrated from Imam-e-Azam that "if this partnership is in the same type of devotion, it is more pleasing to me." Imam Abu Yusuf (RA) said the same. If any partner is a minor, or the seventh partner is someone who only wants meat (1), or is a Christian, etc., then the sacrifices of the others will also not be valid (5); this is in 'al-Sirajiyya'. If any partner is a Dhimmi (non-Muslim citizen), whether they belong to the people of the book or not, and whether they participate for the sake of meat or intend some devotion according to their own religion, the devotion of all as they intended will not be fulfilled. This is according to our view because an act of devotion (qurbat) from a disbeliever is not realized, so their intention will be considered null and void. Thus, it will be as if...

**Additional Notes:** 1. It is said that for eating meat, each person should seek a release/permission from others. 2. Everyone should perform a sacrifice; let there be no one who does not want the sacrifice but only a portion of meat. 3. 'Hady-e-Ihsar': When one is hindered from performing the Tawaf of Kaaba due to illness or enemy after wearing Ihram, they exit Ihram after sacrificing. 'Hady-e-Tatattu': Voluntary sacrifice. If Umrah and Hajj are performed with one Ihram in a single journey, give a sacrifice of gratitude for Qiran; if performed with separate Ihrams, sacrifice as well.

**Footnotes:** (1) Only wants meat. (2) As if everyone performed a sacrifice. (3) Imam-e-Azam, Abu Yusuf, and Imam Muhammad. (4) Mildly disliked (Makruh Tanzihi). (5) Sacrifice or another act of devotion.

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (8) (404) किताब अल-अधिया (क़ुरबानी की किताब)**

...ख़ुद ऐसा किया है तो बिक्री टूट जाएगी, यह ज़ख़ीरा वग़ैरह मुहीत में है।

अगर तीन आदमियों ने तीन बकरियाँ खरीदीं फिर ज़बह करने के वक़्त सब को शक हो गया कि कौन सी बकरी किसकी है, तो शैख़ इमाम अबू बकर मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल ने फ़रमाया कि चाहिए कि हर एक आदमी दूसरों को ज़बह करने के लिए वकील बना दे ताकि अगर ज़बह करने वाले ने अपनी बकरी ज़बह कर दी तो जायज़ होगी और अगर दूसरे की ज़बह की तो उसकी इजाज़त की वजह से जायज़ होगी। एक शख़्स ने क़ुरबानी करनी चाही, फिर उसने क़साब (कसाई) के हाथ के साथ अपना हाथ भी लगाया ताकि दोनों की मदद से अच्छी तरह ज़बह हो जाए, तो शैख़ इमाम अबू बकर मुहम्मद बिन अल-फ़ज़ल ने फ़रमाया कि दोनों में से हर एक पर तस्मिया (बिस्मिल्लाह कहना) वाजिब होगा, यहाँ तक कि अगर दोनों में से एक ने भी तस्मिया छोड़ दिया तो जायज़ न होगी, यह ज़हीरिया में लिखा है।

**अध्याय आठ: उन मसलों के बयान में**

जो क़ुरबानी के जानवरों में हिस्सेदारी से संबंधित हैं। यह जानना चाहिए कि बकरी, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, केवल एक आदमी के अलावा ज़्यादा की तरफ़ से जायज़ नहीं है। ऊँट और गाय सात आदमियों की तरफ़ से जायज़ है, बशर्ते कि ये सभी लोग अल्लाह तआला की रज़ा के लिए क़ुरबानी करने की नीयत रखते हों। और सात की संख्या निर्धारित करने से यह मुराद है कि सात से ज़्यादा आदमियों की तरफ़ से जायज़ नहीं है, और कम होने में क़ुरबानी अदा हो जाएगी, यह 'ख़ुलासा' में है। क़ुरबानी करने वाला ऐसे जानवर में, जिसमें हिस्सेदारी हो सकती है, ऐसे शख़्स को शरीक न करे जिसे सिरे से किसी क़ुरबत (1) (अल्लाह की निकटता प्राप्त करने का कार्य) का इरादा न हो। और अगर शरीक कर लिया तो उसकी क़ुरबानी अदा न होगी। यही हुक्म तमाम इबादतों (क़ुर्बात) में है कि अगर इबादत की नीयत रखने वाले ने ऐसे शख़्स को शरीक कर लिया जो इबादत नहीं चाहता, तो इबादत अदा न होगी। और अगर सब ने क़ुरबानी का इरादा किया या क़ुरबानी के अलावा किसी और इबादत का इरादा किया तो सब का उद्देश्य पूरा हो जाएगा, चाहे वह इबादत वाजिब हो या नफ़्ल, या कुछ पर वाजिब हो और कुछ ने नफ़्ल अदा की हो, और चाहे इबादत के प्रकार (2) एक ही हों या अलग-अलग, जैसे कुछ ने 'हद्य-ए-एहसार' (3) का इरादा किया हो और कुछ

ने एहराम में किसी अपराध के कफ़्फ़ारे का, और कुछ ने 'हद्य-ए-ततव्वु' का, और कुछ ने 'दम-ए-मुतअ' या 'क़िरान' का इरादा किया हो। हमारे असहाब-ए-सलासा (3) (तीनों इमामों) का यही मत है। इसी तरह अगर कुछ ने अपने उस पुत्र के अक़ीक़ा का इरादा किया जो पहले पैदा हो चुका है, तो भी जायज़ है। इमाम मुहम्मद (रह.) ने 'नवादिर अल-फ़साहा' में ऐसा ही ज़िक्र किया है। और अगर किसी ने वलीमा यानी निकाह की दावत का इरादा किया, तो यह सूरत वर्णित नहीं है लेकिन चाहिए कि जायज़ हो। इमाम अबू हनीफ़ा (रह.) से एक रिवायत है कि उन्होंने इबादत के प्रकार अलग-अलग होने की सूरत में हिस्सेदारी को मकरूह (4) बताया है। और इमाम-ए-आज़म से यह भी वर्णित है कि अगर यह हिस्सेदारी एक ही प्रकार की इबादत में हो तो मुझे ज़्यादा पसंद है। इमाम अबू यूसुफ़ (रह.) ने भी ऐसा ही फ़रमाया है। और अगर कोई साझीदार नाबालिग हो या सातवें हिस्से का साझीदार ऐसा शख़्स हो जो केवल मांस चाहता है (1) या ईसाई आदि हो, तो दूसरों की क़ुरबानी भी जायज़ (5) नहीं होगी, यह 'सिराजिया' में है। और अगर कोई साझीदार ज़िम्मी (ग़ैर-मुस्लिम नागरिक) हो, चाहे वह किताब वाला हो या न हो, और चाहे वह मांस की ग़रज़ से शरीक हो या अपने धर्म के अनुसार किसी इबादत का इरादा रखता हो, तो किसी की भी वह इबादत जिसकी उन्होंने नीयत की है अदा न होगी। यह हमारे नज़दीक है क्योंकि काफ़िर की तरफ़ से इबादत (क़ुरबत) सिद्ध नहीं होती, इसलिए उसकी नीयत शून्य (निरस्त) मानी जाएगी। तो यह ऐसा ही होगा जैसे...

**अतिरिक्त टिप्पणियाँ:** 1. कहा गया है कि मांस खाने के लिए हर एक को चाहिए कि वह दूसरों से इजाज़त ले ले। 2. सभी लोग क़ुरबानी करें, कोई ऐसा न हो जो क़ुरबानी नहीं बल्कि मांस का हिस्सा चाहता हो। 3. 'हद्य-ए-एहसार': जब एहराम बाँधकर तवाफ़-ए-काबा से बीमारी या दुश्मन आदि के कारण विवश हो जाए, तो क़ुरबानी करके एहराम से बाहर निकले। 'हद्य-ए-ततव्वु': स्वैच्छिक क़ुरबानी। अगर एक ही यात्रा में एक एहराम से उमराह और हज अदा किया, तो 'क़िरान' के शुक्राने की क़ुरबानी दे, और अगर अलग एहराम से अदा किया तो भी क़ुरबानी करे।

**पाद टिप्पणी:** (1) केवल मांस चाहता है। (2) जैसे सब ने क़ुरबानी की। (3) इमाम-ए-आज़म और अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद। (4) मकरूह तंज़ीही (हल्का नापसंद)। (5) क़ुरबानी या दूसरी इबादत हो।

---

...خود ایسا کیا ہے تو بیع ٹوٹ جائے گی یہ ذخیرہ وغیرہ محیط میں ہے۔ اگر تین آدمیوں نے تین بکریاں خریدیں پھر ذبح کرنے کے وقت سب کو شبہ پڑ گیا کہ کون بکری کس کی ہے تو شیخ امام ابوبکر محمد بن الفضل نے فرمایا کہ چاہیے کہ ہر ایک آدمی دوسروں کو ذبح کرنے کے واسطے وکیل کر دے تا کہ اگر ذبح کرنے والے نے اپنی بکری ذبح کر دی تو جائز ہوگی اور اگر دوسرے کی ذبح کی تو اس کی اجازت کی وجہ سے جائز ہوگی۔ ایک شخص نے قربانی کرنی چاہی پس اس نے قصاب کے ہاتھ کے ساتھ اپنا ہاتھ بھی لگایا تا کہ دونوں کی مدد سے اچھی طرح ذبح ہو جائے تو شیخ امام ابوبکر محمد بن الفضل نے فرمایا کہ دونوں میں سے ہر ایک پر تسمیہ واجب ہو گا حتیٰ کہ اگر دونوں میں سے ایک نے تسمیہ چھوڑ دیا تو جائز نہ ہوگی یہ ظہیریہ میں لکھا ہے۔

**باب ہشتم: ان مسائل کے بیان میں**

جو قربانی کے جانوروں میں شرکت ہونے سے متعلق ہیں جاننا چاہیے کہ بکری اگرچہ بڑی ہو مگر فقط ایک آدمی کے سوائے زیادہ کی طرف سے نہیں جائز ہے اور اونٹ و گائے سات آدمی کی طرف سے جائز ہے بشرطیکہ یہ سب لوگ اللہ تعالیٰ کی رضامندی کے واسطے قربانی کرنے کی نیت رکھتے ہوں اور سات کی تعداد مقرر کرنے سے یہ مراد ہے کہ سات سے زیادہ آدمیوں کی طرف سے جائز نہیں ہے اور کم ہونے میں قربانی ادا ہوگی یہ خلاصہ میں ہے اور قربانی کرنے والا ایسے جانور میں جس میں شرکت ہو سکتی ہے ایسے شخص کو جو سرے سے کسی قربت (۱) کا قصد نہیں رکھتا ہے۔ شریک نہ کرے اور اگر شریک کر لیا تو اس کی قربانی ادا نہ ہوگی اور یہی حکم تمام قربات میں ہے کہ اگر قربت چاہنے والے نے ایسے شخص کو جو قربت نہیں

چاہتا ہے شریک کر لیا تو قربت ادا نہ ہوگی اور اگر سب نے قربانی کا ارادہ کیا یا قربانی کے سوائے دوسری قربت کا قصد کیا تو سب کی مراد ادا ہو جائے گی خواہ یہ قربت واجبہ ہو یا نفل ہو یا بعض پر واجب اور بعض نے نفل ادا کی ہو اور خواہ جہات قربت (۲) ایک ہی ہوں یا مختلف ہوں جیسے بعض نے ہدی (۳) احصار کا اور بعض نے احرام میں کسی جرم کے کفارہ کا اور بعض نے ہدی تطوع کا اور بعض نے دم متعہ یا قران کا ارادہ کیا اور یہ ہمارے اصحاب ثلاثہ (۳) کا قول ہے اسی طرح اگر بعض نے اپنے فرزند کے عقیقہ کا جو پیشتر پیدا ہوا ہے قصد کیا تو بھی جائز ہے ایسا ہی امام محمدؒ نے نوادر الفصحایا میں ذکر کیا اور اگر کسی نے ولیمہ یا یعنی نکاح کی ضیافت کا قصد کیا تو یہ صورت مذکور نہیں ہے مگر چاہیے کہ جائز ہو اور امام ابوحنیفہؒ سے ایک روایت ہے کہ انہوں نے جہات قربت مختلف ہونے کی صورت میں شرکت کو مکروہ (۴) فرمایا ہے اور امام اعظمؒ سے یہ بھی مروی ہے کہ اگر یہ اشتراک ایک ہی نوع قربت میں ہو تو مجھے زیادہ پسند ہے اور ایسا ہی امام ابو یوسفؒ نے فرمایا ہے اور اگر ہر شریک نا بالغ ہو یا ساتویں حصہ کا شریک ایسا شخص ہو جو فقط گوشت چاہتا ہے یا نصرانی وغیرہ ہو تو دوسروں کی قربانی بھی جائز (۵) نہ ہوگی یہ سراجیہ میں ہے اور اگر کوئی شریک ذمی ہو خواہ کتابی ہو یا غیر کتابی ہو اور خواہ وہ گوشت کی غرض سے شریک ہو یا اپنے دین کے موافق کسی قربت کا قصد رکھتا ہو تو سب کی قربت جو انہوں نے نیت کی ہے ادا نہ ہوگی یہ ہمارے نزدیک ہے اس واسطے کہ کافر کی طرف سے قربت متحقق نہیں ہوتی ہے تو اس کی نیت کالعدم ہوگی پس ایسا ہو گا کہ جیسے اس ...

**حواشی:** ۱ قال انھر جس اور گوشت کھانے کے واسطے ہر ایک کو چاہیے کہ وہ دوسروں سے تحلیل کرائے۔ ۲ سب لوگ قربانی کریں کوئی ایسا نہ ہو کہ جو قربانی نہیں بلکہ گوشت کا حصہ چاہتا ہے۔ ۳ ہدی احصار جب احرام باندھ کر طواف کعبہ ادا کرنے سے بوجہ بیماری دشمن وغیرہ

کے مجبور ہوا تو قربانی کر کے احرام سے نکلے ہدی تطوع نفل قربانی اگر سفر واحد میں ایک احرام سے عمرہ وحج ادا کیا تو قران کی شکریہ قربانی دے اور اگر وہ احرام سے ادا کیا تو بھی قربانی کرے۔ (۱) فقط گوشت چاہتا ہے۔ (۲) جیسے سب نے قربانی کی۔ (۳) امام اعظمؒ و ابو یوسفؒ و امام محمدؒ۔ (۴) مکروہ تنزیہی۔ (۵) قربانی یا دوسری قربت ہو۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 8 / Page 203 / Kitab al-Adhiya (The Book of Sacrifice)**

...partnered with the intent of obtaining meat. If a Muslim partners solely for the purpose of meat, it is not permissible according to us. Similarly, if a partner is a slave or a 'Mudabbar' (a slave promised freedom after the master's death) who intends to perform sacrifice (1), the ruling remains the same. This is mentioned in *Badai'*.

If a person purchases a cow with the intention of sacrifice and then includes six other people as partners, it is disliked (Makruh), but the sacrifice will be valid on behalf of everyone because, legally, this is akin to the sale of goats. However, if at the time of purchase, he intended to include others later, it is not Makruh, and doing so would be better. This ruling applies when the person is wealthy (*Ghani*). If the person is poor (*Faqir*), the sacrifice became mandatory (*Wajib*) upon them merely by the act of purchasing the animal; therefore, it is not permissible for them to include others in that cow. Similarly, if someone explicitly made the sacrifice mandatory upon themselves and then included six others, there is no allowance for this because they had made the entire cow mandatory for Allah. If they still included others, the sacrifice would be valid, but they would be liable for six-sevenths of the cow, meaning they must give it in charity (*Sadqa*). For a wealthy person, it is said they should give the six shares in charity.

Three people were partners in a cow: one held three out of seven shares, and the other two held two shares each. Then, the one with three shares died, leaving those shares along with 600 dirhams and two minor children (a son and a daughter). If the executor (*Wasi*) sacrificed the deceased's share on behalf of the two children, the sacrifice would not be valid for all partners. This is because the girl's share became merely meat since she is considered poor (*Faqir*)—having received less than 200 dirhams from her father's inheritance. However, if the deceased had left 600 dirhams apart from the cow's share, the sacrifice would be valid for everyone because the girl would be considered wealthy (*Ghani*) (2) in that case. This is from *Muhit al-Sarakhsi*.

Five people partnered for a cow. Then another person requested to join. Four agreed, and one refused. If they all proceeded with the sacrifice, it is valid because the one whose share was carved from the four partners' portions owns more than one-seventh of the cow. For calculation, the cow should be divided into 25 parts. Initially, five partners have 5 parts each. Four partners agree to share their combined 20 parts with the newcomer (making it 5 people sharing those parts). Thus, each of those five

gets 4 parts. Four parts out of 25 is greater than one-seventh (1/7). This logic is easily understood through mathematical expansion (*Bast wa Takhmis*), as stated in *al-Zahiriyya*.

If there are six partners and a seventh person requests to join, and five agree while one refuses, the sacrifice will not be valid in this case. This is because the newcomer's share falls below one-seventh. In this scenario, the cow should be divided into 36 parts, giving each of the original six partners 6 parts. The five consenting partners have 30 parts, which, when shared among six people (the five plus the newcomer), results in 5 parts each. Five parts out of 36 is less than one-seventh of the whole.

(1) Because sacrifice cannot be technically established from his side. (2) Because 200 dirhams come into her share.

**फतवा-ए-आलमगीरी ..... खंड 8 / 203 / किताब-उल-अज़हिया**

...किसी ने मांस के उद्देश्य से साझेदारी की, और यदि कोई मुसलमान मांस के उद्देश्य से साझेदारी करता है, तो हमारे निकट यह जायज़ नहीं है। इसी तरह, यदि कोई साझेदार गुलाम या मुदब्बर (वह दास जिसे स्वामी की मृत्यु के बाद मुक्त करने का वादा किया गया हो) हो और वह कुर्बानी की नीयत रखता हो (1), तब भी यही आदेश है। यह 'बदाइ' में वर्णित है।

यदि किसी ने कुर्बानी के इरादे से एक गाय खरीदी और फिर उसमें छह और लोगों को शामिल कर लिया, तो यह मकरूह (नापसंद) है, लेकिन कुर्बानी सबकी ओर से अदा हो जाएगी क्योंकि कानूनी तौर पर यह बकरियों की बिक्री के समान है। लेकिन अगर उसने खरीदते समय ही यह इरादा किया था कि वह इसमें लोगों को शामिल करेगा, तो यह मकरूह नहीं है और ऐसा करना बेहतर होगा। यह आदेश उस समय के लिए है जब व्यक्ति 'गनी' (धनी) हो। यदि वह व्यक्ति फकीर या तंगदस्त (गरीब) हो, तो गाय खरीदने से ही उस पर कुर्बानी वाजिब (अनिवार्य) हो गई, अतः उसके लिए दूसरों को इसमें शामिल करना जायज़ नहीं है। इसी तरह, यदि उसने स्पष्ट रूप से अपने ऊपर कुर्बानी वाजिब करने के बाद छह लोगों को शामिल किया, तो इसकी गुंजाइश नहीं है क्योंकि उसने पूरी गाय अल्लाह के लिए कुर्बान करना वाजिब कर लिया था। यदि उसने फिर भी शामिल कर लिया, तो कुर्बानी मान्य होगी, लेकिन वह गाय के छह-सातवें हिस्से का ज़ामिन (उत्तरदायी) होगा, यानी उसे सदका (दान) करना होगा। गनी के मामले में कहा गया है कि वह उन छह हिस्सों को सदका कर दे।

एक गाय में तीन लोग साझेदार थे: एक के पास सात में से तीन हिस्से थे, और बाकी दोनों के पास दो-दो हिस्से थे। फिर तीन हिस्सों वाला व्यक्ति मर गया और उसने इन हिस्सों के साथ 600 दिरहम छोड़े और एक नाबालिग बेटा और बेटी छोड़ी। फिर वसी (अभिभावक) ने गाय में से मृतक का हिस्सा उन दोनों की तरफ से कुर्बान कर दिया, तो कुर्बानी सभी साझेदारों की ओर से अदा नहीं होगी। इसका कारण यह है कि लड़की का हिस्सा केवल मांस बन गया क्योंकि वह 'फकीर' है (पिता की विरासत से उसे 200 दिरहम से कम मिले)। यदि मृतक ने गाय के हिस्से के अलावा 600 दिरहम छोड़े होते, तो कुर्बानी सबकी ओर से मान्य होती क्योंकि उस स्थिति में लड़की 'गनी' (2) होती। यह 'मुहीत-ए-सरखसी' में है।

पांच लोगों ने एक गाय में साझेदारी की। फिर एक और व्यक्ति आया और शामिल होने का अनुरोध किया। चार ने सहमति दी और एक ने मना कर दिया। फिर सबने उस गाय की कुर्बानी की, तो यह

जायज़ है क्योंकि जिस व्यक्ति को चार के हिस्सों से शामिल किया गया, उसका हिस्सा गाय के सातवें भाग (1/7) से अधिक बनता है। इसके लिए गाय को 25 हिस्सों में विभाजित करना चाहिए ताकि हिसाब सही रहे। पांच मूल साझेदारों के पास 5-5 हिस्से थे। चार साझेदारों ने अपने 20 हिस्सों को नए व्यक्ति के साथ साझा किया (कुल 5 लोग)। अतः उन पांचों में से प्रत्येक के पास 4 हिस्से हुए। 25 में से 4 हिस्से, सातवें हिस्से (1/7) से अधिक हैं। इसकी पहचान गणना (बस्त व तखमीस) से आसान है, जैसा कि 'ज़हीरिया' में है।

यदि छह साझेदार हों और सातवें के अनुरोध को पांच स्वीकार करें और एक अस्वीकार करे, तो कुर्बानी जायज़ नहीं होगी। क्योंकि इस स्थिति में उसका हिस्सा सातवें भाग से कम हो जाता है। इसमें 36 हिस्से करने चाहिए, जहाँ प्रत्येक के6 हिस्से हों। पांच साझेदारों के30 हिस्सों को छह लोगों में बाँटने पर प्रत्येक के पास 5 हिस्से आएंगे। 36 में से 5 हिस्से, सातवें भाग से कम हैं।

(1) क्योंकि उसकी ओर से कुर्बानी सिद्ध नहीं हो सकती। (2) क्योंकि उसके हिस्से में 200 दिरहम आते हैं।

---

نے گوشت کی غرض سے شرکت کی اور مسلمان اگر گوشت کی غرض سے شرکت کرے تو ہمارے نزدیک جائز نہیں ہے اسی طرح اگر کوئی شریک غلام یا مدبر ہو کہ وہ قربانی کی نیت رکھتا (۱) ہو تو بھی یہی حکم ہے یہ بدائع میں ہے۔

اگر قربانی کے ارادے سے ایک گائے خریدی پھر اس میں چھ آدمیوں کو شریک کر لیا تو مکروہ ہے مگر قربانی سب کی طرف سے ادا ہو جائے گی کیونکہ حکما یہ بمنزلہ بکریوں کی بیع کے ہے لیکن اگر اس نے خریدنے کے وقت یہ قصد کیا ہو کہ اس میں لوگوں کو شریک کرے گا تو مکروہ نہیں ہے اور اگر ایسا کیا تو احسن ہوگا اور یہ حکم اس وقت ہے کہ جب یہ شخص غنی ہو اور اگر فقیر تنگدست ہو تو اس نے خریدنے سے اپنے اوپر قربانی واجب کر لی پس اس کے حق میں یہ جائز نہیں ہے کہ اس گائے میں دوسروں کو شریک کرے اسی طرح اگر اس نے صریح اپنے اوپر اس کی قربانی واجب کرنے کے بعد اس میں چھ آدمیوں کو شریک کر لیا تو اس کی گنجائش نہیں ہے کیونکہ اس نے پوری گائے اللہ تعالیٰ کے واسطے قربانی کرنی واجب کر لی ہے پھر اگر اس نے شریک ہی کر لیا تو قربانی جائز ہو جائے گی مگر گائے مذکور کے چھ ساتویں حصے کا ضامن ہو گا یعنی صدقہ کرے اور غنی کے حق میں کہا گیا ہے کہ غنی چھ کو صدقہ کر دے تین آدمی ایک گائے میں شریک ہوئے کہ ایک کے سات حصوں میں سے تین حصے ہیں اور باقی دونوں میں سے ہر ایک کے دو دو حصے ہیں پھر جس کے تین حصے ہیں وہ مر گیا اور اس نے یہ حصے ملا کر چھ سو درہم چھوڑے اور ایک بیٹا اور ایک بیٹی دونوں نا بالغ چھوڑے پھر وصی نے گائے میں سے میت کا حصہ ان دونوں کی طرف سے قربانی کر دیا تو قربانی سب شریکوں کی طرف سے ادا نہ ہو گی اس واسطے کہ لڑکی کا حصہ محض گوشت ہو گیا کیونکہ بیٹی فقیر ہے

اس لیے کہ باپ کی میراث سے اس کو دو سو درہم سے کم ملا ہے اور اگر میت نے گائے کے حصے کے سوائے چھ سو درہم چھوڑے ہوں تو قربانی سب کی طرف سے جائز ہو جائے گی اس واسطے کہ لڑکی اس صورت میں غنی (۲) ہو گی یہ محیط سرخسی میں ہے۔

پانچ آدمیوں نے ایک گائے میں شرکت کی پھر ایک شخص آیا اور اس نے درخواست کی کہ مجھے بھی شریک کر تو پس چار نے منظور کیا اور ایک نے انکار کیا پھر سبھوں نے اس گائے کی قربانی کی تو جائز ہے کیونکہ جس کا حصہ قربانی چار کے حصوں میں سے قرار دیا گیا ہے وہ گائے کے ساتویں حصہ سے زیادہ کا مالک ہوا پس گائے کے پچیس حصے لینے چاہیے کیونکہ ہم کو حساب کے واسطے ایسے عدد کی ضرورت ہے جس کا پانچواں حصہ نکلے اور پھر اس کے چار پانچویں حصہ کا پانچواں حصہ نکلے پس پانچواں حصہ نکالنے کی اس وجہ سے ضرورت ہے کہ پانچ شریک ہیں پس ہر واحد کا پانچواں حصہ ہو اور چار پانچویں کا پانچواں اس وجہ سے نکالنے کی ضرورت ہے کہ چار شریکوں نے اس کی درخواست منظور کی ہے پس اس کو اپنے حصوں میں برابر شریک کر لیا ہے اور ان حصے چار پانچویں ہیں پس چار پانچویں حصوں کو پانچ آدمیوں میں برابر مشترک کر لیا پس کمتر عدد پچیس ہے پس پانچ شریکوں میں سے ہر ایک کے پانچ حصے ہوئے پھر چار نے درخواست منظور کر کے اس کو اپنے ساتھ اپنے بیس حصوں میں مشترک کیا یعنی پانچ آدمی میں مشترک کیا کہ جس میں سے ہر ایک کے چار حصے ہوئے اور پچیس میں سے چار حصے پچیس کے ساتویں سے زائد ہیں اور اس کی پہچان بسط و تخمیس کے ساتھ آسان ہوتی ہے کذا فی الظہیریہ۔

اگر چھ شریک ہوں پھر ساتویں کی درخواست کو پانچ نے منظور کیا اور ایک نے نامنظور کیا تو اس صورت میں قربانی جائز نہ ہو گی کیونکہ گائے کے ساتویں حصے سے اس کا حصہ کم پڑتا ہے کیونکہ اس صورت میں چھتیں حصے کرنے چاہیے ہیں کہ جس میں سے ہر ایک کے چھ

حصے ہوئے پس پانچ شریکوں کے تیس حصے ہوئے کہ جن کو انہوں نے سائل کی درخواست منظور کر کے چھ آدمیوں میں مشترک کر دیا پس ہر ایک کے پانچ حصے ہوئے اور چھتیں میں سے پانچ حصے چھتیں کے ساتویں حصہ سے کم ہیں ایک گائے میں تین آدمی شریک ہیں پس (۱) کیونکہ اس کی طرف سے قربانی محقق نہیں ہو سکتی۔ (۲) کیونکہ اس کے حصہ میں دو سو درہم آتے ہیں۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 Book of Sacrifice (Kitab al-Adhiyah) 404**

If one of the partners includes an outsider as a shareholder for one-fourth of his portion, it is permissible; however, one-third will be shared equally between the two of them. This is because he made the outsider equal to each partner, but doing so was not valid regarding the shares of the other partners. Thus, it specifically became valid within his one-third share. This is mentioned in Al-Muheet (1) of Sarakhsi. If three people bought a cow and then one of them included someone in his share, one-third will be shared between them, and the sacrifice will be valid. If he included him for a seventh share, then if the other partners gave permission, the sacrifice would be valid. If the partners did not give permission, the outsider would have a seventh share only from the portion of the one who included him; consequently, the sacrifice would not be valid. If only one partner gave permission, the outsider would receive a seventh share from both their portions, but even then, the sacrifice (2) would not be valid. If a person bought a cow and then included seven other people as partners, the sacrifice is not valid. If the days of sacrifice have passed, he must give the value of one-seventh share in charity (Sadaqah), and no charity is mandatory for the other partners. If he told six people, "I have made you partners," and only one accepted, he will receive one-seventh share, and the sacrifice will be valid. If half a cow belonged to one person and the other half was shared by two people, and the animal was lost, and they subsequently bought another cow on a three-way equal partnership, but then the first cow was found; if the second cow is less than three-sevenths the value of the first cow, they should give the difference in charity. This is stated in Tatar Khaniya.

If a cow was bought for sacrifice and one-seventh was slaughtered with the intention of this year's sacrifice, while the remaining six-sevenths were intended for sacrifices of previous years, the sacrifice for the current year will be valid, but those of previous years will not be fulfilled. This is in Khazanat al-Muftiyyin. If some partners intended a voluntary (Nafl) sacrifice, some intended to fulfill a debt of sacrifice from the previous year, and some intended the mandatory (Wajib) sacrifice of the current year, all are permissible. However, for the person who intended the mandatory sacrifice of this year, his current year's obligation will be fulfilled. For the one who intended to make up for a missed sacrifice (Qada) from a previous year, it will be considered a voluntary sacrifice (3) this year, and the mandatory missed sacrifice will remain unfulfilled; for that, he should give the price of an average goat in charity. This is in Fatawa Qazi Khan. If eight people share a camel or a cow, the sacrifice of none will be valid

because each person's share falls below one-seventh. Similarly, if there are fewer than eight partners but any partner's share is less than one-seventh—for example, a man died leaving a wife, a son, and a cow, and the heirs sacrificed the cow on the day of Eid-ul-Adha—it will not be valid because the wife's share (according to inheritance laws) is less than one-seventh. Since her share's sacrifice is invalid, the son's share sacrifice also becomes invalid. It is stated in Azahi Za'frani that if a camel or cow is shared between two people and both perform the sacrifice, there is a difference of opinion among the scholars; the preferred view is that the sacrifice will be valid, and the half share will follow the seventh share rule, so it will not be considered merely meat. Sadr al-Shahid stated that his father, the Imam, adopted this view, and it is also the chosen view of Faqih Abul Layth. This is in Al-Khulasah. If one person contributed three and a half Dinars, another contributed two and a half Dinars, and a third contributed one Dinar, the sacrifice will be valid on behalf of all of them because the minimum required share for sacrifice is one-seventh. Similarly, if five people participated...

---

1- The reasoning is that if a cow is divided into 63 parts, then one-third, which is 21 parts, belongs to the one who did not give permission. In the remaining 42 parts, 3 partners remain, making each share 14 parts. But a seventh of the whole cow (63) is 9. Thus, the one with 14 parts did not have a valid sacrifice [the context implies a complex rule of proportional partnership], so his portion became just meat, rendering the entire cow invalid for sacrifice. 2- There is some ambiguity/confusion in this statement; reflect upon it. 3- This is how it appears in the manuscript; care should be taken regarding both issues mentioned in the introduction or another correct manuscript should be consulted. (1) Thus, he will be an equal partner in the one-third.

उनमें से एक व्यक्ति ने किसी गैर व्यक्ति को चौथाई हिस्से का भागीदार बना लिया तो यह जायज़ है, लेकिन एक-तिहाई हिस्सा उन दोनों में आधा-आधा साझा होगा। इसका कारण यह है कि उसने उस बाहरी व्यक्ति को प्रत्येक भागीदार के बराबर कर दिया, लेकिन ऐसा करना अन्य भागीदारों के हिस्से में सही नहीं हुआ, इसलिए यह विशेष रूप से उसी के एक-तिहाई हिस्से में सही हुआ। यह मुहीत (1) सरख्सी में है। यदि तीन व्यक्तियों ने एक गाय खरीदी और फिर एक ने किसी को अपने हिस्से में शामिल कर लिया, तो एक-तिहाई हिस्सा उन दोनों में साझा होगा और कुर्बानी जायज़ हो जाएगी। और यदि उसे सातवें हिस्से का भागीदार बनाया, तो यदि उसके अन्य भागीदारों ने अनुमति दे दी तो कुर्बानी जायज़ होगी, और यदि भागीदारों ने अनुमति नहीं दी, तो उस बाहरी व्यक्ति के लिए शरीक करने वाले के हिस्से में से सातवां हिस्सा होगा, अतः कुर्बानी जायज़ नहीं होगी। और यदि केवल एक भागीदार ने अनुमति दी, तो उस बाहरी व्यक्ति को उन दोनों के हिस्सों में से सातवां हिस्सा मिलेगा, तब भी कुर्बानी जायज़ (2) नहीं होगी। यदि एक व्यक्ति ने गाय खरीदी और सात लोगों को भागीदार बना लिया तो कुर्बानी जायज़ नहीं है। फिर यदि कुर्बानी के दिन बीत गए हों, तो सातवें हिस्से की कीमत दान (सदक़ा) करे और उसके भागीदारों पर कुछ भी सदक़ा करना अनिवार्य नहीं होगा। और यदि उसने छह लोगों से कहा कि मैंने तुम्हें भागीदार बनाया और फिर एक ने स्वीकार कर लिया, तो उसे सातवां हिस्सा मिलेगा और कुर्बानी जायज़ हो जाएगी। और यदि आधी गाय एक की हो और शेष आधे में दो भागीदार हों, फिर वह गुम हो गई, फिर उन लोगों ने दूसरी गाय तीन-तिहाई की भागीदारी पर खरीदी, फिर पहली गाय मिल गई, तो यदि दूसरी गाय पहली गाय की तुलना में तीन-सातवें हिस्से से कम हो, तो जो भी उनके बीच का अंतर है, वे सब उसे दान करें। यह तातारख़ानिया में है।

यदि कुर्बानी के लिए एक गाय खरीदी गई और उसमें से एक-सातवां हिस्सा इस साल की कुर्बानी की नीयत से और शेष छह-सातवें हिस्से पिछले वर्षों की कुर्बानी की नीयत से ज़बह किए गए, तो इस साल की कुर्बानी जायज़ हो जाएगी और पिछले वर्षों की अदा नहीं होगी। यह ख़ज़ाना अल-मुफ़्तीन में है। और यदि कुछ भागीदारों ने नफ़्ल (ऐच्छिक) कुर्बानी की नीयत की और कुछ ने पिछले साल की कुर्बानी की जो उनके ज़िम्मे कर्ज़ हो गई थी, और कुछ ने इसी साल की वाजिब (अनिवार्य) कुर्बानी की नीयत की, तो सब जायज़ है। लेकिन जिसने इस साल की वाजिब कुर्बानी की नीयत की है, उसकी इस साल की कुर्बानी अदा होगी, और जिसने पिछले साल की कज़ा (छूटी हुई) की नीयत की है, उसकी इस साल नफ़्ल कुर्बानी अदा (3) होगी, और वह कज़ा जो उसके ज़िम्मे अनिवार्य है वह अदा

नहीं होगी; इसके बदले में उसे एक औसत दर्जे की बकरी की कीमत दान करनी चाहिए। यह फ़तावा काज़ी ख़ान में है। और यदि ऊंट या गाय में आठ लोग भागीदार हों, तो किसी की कुर्बानी अदा नहीं होगी क्योंकि प्रत्येक का हिस्सा सातवें हिस्से से कम हो जाता है। इसी तरह यदि भागीदार आठ से कम हों लेकिन किसी भागीदार का हिस्सा सातवें हिस्से से कम हो, उदाहरण के लिए एक व्यक्ति मर गया और उसने एक पत्नी, एक बेटा और एक गाय छोड़ी, फिर वारिसों ने ईद-उल-अज़हा के दिन गाय की कुर्बानी कर दी, तो यह जायज़ नहीं होगी क्योंकि पत्नी का हिस्सा सातवें हिस्से से कम है। अतः उसके हिस्से की कुर्बानी नाजायज़ हुई, और जब उसके हिस्से की नाजायज़ हुई तो बेटे के हिस्से की भी जायज़ नहीं हुई। अज़ाहि ज़फ़रानी में है कि यदि ऊंट या गाय दो व्यक्तियों के बीच साझा हो और दोनों ने उसकी कुर्बानी की, तो विद्वानों में इसमें मतभेद है और पसंदीदा मत यह है कि कुर्बानी जायज़ होगी और आधा हिस्सा सातवें के अधीन होगा, अतः वह केवल मांस नहीं होगा। सद्र अल-शहीद ने कहा कि उनके पिता इमाम ने यही विचार अपनाया है और यही फ़क़ीह अबुल लैस का भी पसंदीदा मत है। यह खुलासा में है। और यदि एक व्यक्ति ने साढ़े तीन दीनार दिए, दूसरे ने ढाई दीनार दिए और तीसरे ने एक दीनार दिया, तो कुर्बानी उन सभी की ओर से जायज़ होगी क्योंकि कुर्बानी का न्यूनतम हिस्सा सातवां हिस्सा है। इसी तरह यदि पांच व्यक्तियों ने भागीदारी की...

---

1- कारण यह है कि यदि गाय के63 हिस्से किए जाएं तो एक-तिहाई यानी 21 हिस्से उसके निकल गए जिसने अनुमति नहीं दी। शेष 42 हिस्सों में 3 भागीदार रहे, एक का सातवां हिस्सा यानी 14 हुआ और बाकी दोनों में बराबर। लेकिन पूरी गाय का सातवां हिस्सा 9 है, तो 14 वाले की कुर्बानी नहीं हुई, अतः उसका हिस्सा केवल मांस रह गया, तो पूरी गाय कुर्बानी के लिए पर्याप्त नहीं होगी। 2- इस कथन में कुछ संशय है, विचार करें। 3- नुस्खे (पांडुलिपि) में ऐसा ही है, अतः प्रस्तावना के दोनों मसलों पर ध्यान देना चाहिए या अन्य सही नुस्खा देखना चाहिए। (1) अतः वह एक-तिहाई में बराबर का भागीदार होगा।

---

ان میں سے ایک آدمی نے ایک شخص غیر کو چوتھائی کا شریک کر لیا تو جائز ہے مگر تہائی ان دونوں میں نصفاً نصف مشترک ہو گی اس وجہ سے کہ اس نے اس شخص غیر کو ہر ایک شریک کے برابر کر دیا مگر ایسا کرنا شریکوں کے حصہ میں صحیح نہ ہوا پس خاصۃً اسی کے تہائی حصہ میں صحیح ہوا یہ محیط (۱) سرخسی میں ہے۔ اگر تین آدمیوں نے گائے خریدی پھر ایک نے کسی کو اپنے حصہ میں شریک کر لیا تو تہائی دونوں میں مشترک ہو گی اور قربانی جائز ہو جائے گی اور اگر اس کو ساتویں حصہ کا شریک کیا پس اگر اس کے شریکوں نے اجازت دے دی تو قربانی جائز ہو جائے گی اور اگر شریکوں نے اجازت نہ دی تو اس غیر کے لیے شریک کرنے والے کے حصہ میں سے ساتواں حصہ ہو گا پس قربانی جائز نہ ہو گی اور اگر فقط ایک شریک نے اجازت دے دی تو اس غیر کو ان دونوں کے حصوں میں سے ساتواں حصہ ملے گا تو بھی قربانی جائز ۲ نہ ہو گی اگر ایک شخص نے ایک گائے خریدی اور سات آدمی شریک کر لیے تو قربانی جائز نہیں ہے پس اگر ایام قربانی گذر گئے ہوں تو ساتویں حصہ کی قیمت صدقہ کرے اور اس کے شریکوں پر کچھ صدقہ کرنا لازم نہ ہو گا اور اگر اس نے چھ آدمیوں سے کہا کہ میں نے تم کو شریک کیا پس ایک نے قبول کیا تو اس کو ساتواں حصہ ملے گا اور قربانی جائز ہو جائے گی اور اگر نصف گائے ایک کی ہو اور باقی نصف میں دو شریک ہوں پھر وہ ضائع ہو گئی پھر ان لوگوں نے دوسری گائے تین تہائی کی شرکت پر خریدی پھر پہلی گائے مل گئی پس اگر دوسری گائے بہ نسبت پہلی گائے کے تین ساتویں حصہ سے کم ہو تو جس قدر اس کے مابین ہے اس کو سب صدقہ کریں یہ تاتارخانیہ میں ہے۔

اگر قربانی کے واسطے ایک گائے خریدی اور اس میں سے ایک ساتواں حصہ اس سال کی قربانی کی نیت سے اور باقی چھ ساتویں حصے سالہائے گذشتہ کی قربانی کی نیت سے ذبح کی تو اس سال کی قربانی جائز ہو جائے گی اور سالہائے گذشتہ کی ادا نہ ہو گی یہ خزانہ المفتین میں ہے اور اگر بعض شریکوں نے نفل قربانی کی اور بعض نے سال گذشتہ کی قربانی سے جو اس کے ذمہ دین ہو گئی ہے اور بعض نے اسی سال کی قربانی واجب سے ذبح کرنے کی نیت کی تو سب جائز ہے مگر جس نے اس سال کی قربانی واجبہ سے ذبح کرنے کی نیت کی ہے اس کی اس سال کی قربانی ادا ہو گی اور جس نے قضائے سال گذشتہ کی نیت کی ہے اس کی نفل قربانی اس سال ادا ۳ ہو گی اور قضاء جو اس کے ذمہ واجب ہے اور ادا نہ ہو گی اس کے واسطے درمیانی بکری کی قیمت صدقہ کر دے یہ فتاویٰ قاضی خان میں ہے اور اگر اونٹ یا گائے میں آٹھ آدمی شریک ہوں تو کسی کی قربانی ادا نہ ہو گی کیونکہ ہر ایک کا حصہ ساتویں حصے سے کم پڑتا ہے اس طرح اگر شریک لوگ آٹھ سے کم ہوں لیکن کسی شریک کا حصہ ساتویں حصہ سے کم ہو مثلاً ایک شخص مر گیا اور اس نے ایک بیوی و بیٹا و گائے چھوڑی پس وارثوں نے گائے کی بقر عید کے روز قربانی کر دی تو جائز نہ ہو گی اس واسطے کہ عورت کا حصہ ساتویں حصہ سے کم ہے پس اس کے حصہ کی قربانی نا جائز ہوئی اور جب اس کے حصہ کی ناجائز ہوئی تو بیٹے کے حصے کی بھی جائز نہ ہوئی۔ اضاہی زعفرانی میں ہے کہ اگر اونٹ یا گائے دو آدمیوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس کی قربانی کی تو مشائخ نے اس میں اختلاف کیا ہے اور مختار یہ ہے کہ قربانی جائز ہو گی اور نصف حصہ ہفتم تابع ہو گا پس گوشت محض نہ ہو گا اور صدر الشہید نے فرمایا کہ امام والد نے یہ اختیار کیا ہے اور یہی فقیہ ابواللیث کا مختار ہے یہ خلاصہ میں ہے اور اگر ایک شخص نے ساڑھے تین دینا ر دیے اور دوسرے نے اڑھائی دینار دیے اور تیسرے نے ایک

دینار دیا تو قربانی ان سب کی طرف سے جائز ہو گی کیونکہ کمتر حصہ قربانی ساتواں حصہ ہے اس طرح اگر پانچ آدمیوں نے شرکت کی

---

۱- وجہ یہ ہے کہ گائے کے ۶۳ حصے کئے جائیں پس ایک تہائی یعنی ۲۱ تو اس کے نکل گئے جس نے اجازت نہ دی اور باقی ۴۲ میں ۳ شریک رہے ایک کا ساتواں حصہ یعنی ۱۴ اور باقی دونوں میں برابر لیکن پوری گائے کا ساتواں حصہ ۹ ہے تو چودہ والے کی قربانی نہ ہوئی پس اس کا حصہ محض گوشت ہو گیا تو سب گائے قربانی نہ ہو گی۔ ۲- اس بیان میں تشویش ہے فتامل۔ ۳- اس طرح نسخہ میں ہے تو مقدمہ سے دونوں مسائل میں توجہ چاہیے یا نسخہ صحیح دیگر۔ (۱) پس تہائی میں اس کا برابر شریک ہو گا۔

---

**Fatawa Alamgiri ..... Volume 5 | 405 | Book of Sacrifice (Kitab al-Adhiya)**

For example, if one person gave two dinars, a second gave two and a half, a third gave three dinars, a fourth also gave three dinars, and a fifth gave three and a half dinars, it is permissible on behalf of all because the share in a sacrifice is at least one-seventh; this is mentioned in *Al-Muhit al-Sarakhsi*. If seven people bought a cow for sacrifice, then one of them died and his adult heirs said, "Perform the sacrifice on behalf of yourselves and the deceased," then by *Istihsan* (juristic preference) it is permissible. However, if the remaining people slaughtered it without the heirs' permission, the sacrifice will not be valid on their behalf because the deceased's share would not count as an act of worship (*qurbat*) as permission from the heirs was not obtained; thus, the entire cow would not be considered slaughtered as an act of worship due to its indivisibility; this is found in *Al-Kafi*. And if three people each bought a goat for sacrifice—one for ten dirhams, the second for twenty, and the third for thirty—and the value of each goat is equal to its price, and subsequently the goats got mixed up such that no one can recognize their own, and then they sacrificed all of them, the obligation will be fulfilled for everyone. However, the purchaser of the thirty-dirham goat should give twenty dirhams in charity (*sadqa*), the twenty-dirham purchaser should give ten dirhams in charity, and the ten-dirham purchaser needs to give nothing in charity. If each person gave permission to the other to slaughter a goat on their behalf, the sacrifice will be valid for all and no charity will be mandatory upon them; this is stated in *Al-Nahi*. If ten people bought ten goats jointly and then each slaughtered one, it is permissible, and all the meat shall be divided among them by weight. If they divided it by placing it in heaps (1), it is permissible provided each person took a portion of the legs, head, and skin. Similarly, if each bought them separately but they got mixed (2), then each slaughtered one and they all agreed amongst themselves, it is also permissible; this is in *Khazanat al-Muftin*. It is stated in *Adhiya Za'farani* that if seven people jointly bought seven goats so everyone could perform sacrifice, and no specific goat was designated for anyone, and then they were slaughtered without designation, the *Qiyas* (analogy) suggests it might not be permissible, but by *Istihsan* it is. It should be clear that the statement "jointly bought seven goats" has two possibilities: one is that they bought them such that every goat is shared among all of them, and second is that they bought seven goats such that there is one goat for each, but without specific designation. If the second meaning is intended, it is unanimously permissible because each performed the sacrifice of a full goat. If the first meaning is intended,

the ruling mentioned aligns with one of two narrations because if a goat is shared between two people and both sacrifice it, it is mentioned in some places that this is permissible; this is in *Al-Muhit*. If two goats are shared between two people and both performed their *Nusuk* (3) through them, the rite of both will be fulfilled. This is contrary to a case where two slaves are shared between two people and both free them as their respective atonement (*kaffarah*), which is not permissible. If a camel is shared between two people and both sacrifice it; if one owns one-seventh or two-sevenths and the rest belongs to the other, it is permissible. If it is shared half-and-half (fifty-fifty), it is also permissible according to the most correct opinion; as mentioned in *Khazanat al-Muftin*.

**Chapter Nine: Regarding Miscellaneous Matters**

If two goats were purchased for the purpose of sacrifice, then one was lost/destroyed and he sacrificed the other, then the destroyed...

---

1. It will not be mandatory because he has now slaughtered his own goat or the other person's goat by their command. (1) By estimation/guesswork (2) Not recognizable (3) The matter, such as sacrifice, which was mandatory upon him.

इस प्रकार कि एक ने दो दीनार दिए, दूसरे ने ढाई दिए, तीसरे ने तीन दीनार दिए, और चौथे ने भी तीन दीनार दिए, और पाँचवें ने साढ़े तीन दीनार दिए, तो भी सब की ओर से जायज़ (मान्य) है क्योंकि कुर्बानी का हिस्सा कम से कम सातवाँ भाग होता है; यह 'मुहीत सरखसी' में है। अगर सात व्यक्तियों ने कुर्बानी के लिए एक गाय खरीदी, फिर सातों में से एक की मृत्यु हो गई और उसके वयस्क वारिसों ने कहा कि तुम लोग इसे अपनी ओर से और मृतक की ओर से कुर्बान कर दो, तो 'इस्तेहसानन' (न्यायिक विवेक से) यह जायज़ है। और यदि शेष लोगों ने वारिसों की अनुमति के बिना उसे ज़िबह (बलि) कर दिया, तो उनकी ओर से कुर्बानी अदा नहीं होगी क्योंकि मृतक का हिस्सा 'कुर्बत' (पुण्य कार्य) नहीं माना जाएगा क्योंकि वारिसों की अनुमति प्राप्त नहीं थी, अतः पूरी गाय पुण्य के रूप में ज़िबह नहीं मानी जाएगी क्योंकि यह अविभाज्य थी; यह 'काफ़ी' में उल्लेखित है। और यदि तीन व्यक्तियों में से प्रत्येक ने कुर्बानी के लिए एक-एक बकरी खरीदी, एक ने दस दिरहम में, दूसरे ने बीस में, और तीसरे ने तीस दिरहम में खरीदी, और प्रत्येक बकरी का मूल्य उसके क्रय मूल्य के बराबर है, फिर ये बकरियाँ आपस में मिल गईं कि कोई अपनी बकरी पहचान नहीं पा रहा है, फिर सबने मिलकर उनकी कुर्बानी कर दी, तो सब की ओर से अदा हो जाएगी, लेकिन तीस दिरहम वाला खरीदार बीस दिरहम सदक़ा (दान) करे, और बीस वाला दस दिरहम सदक़ा करे, और दस वाला कुछ भी सदक़ा नहीं करेगा। और यदि प्रत्येक ने दूसरे को अनुमति दे दी कि बकरी उसकी ओर से ज़िबह कर दी जाए, तो सब की ओर से कुर्बानी अदा हो जाएगी और उन पर सदक़ा करना अनिवार्य नहीं होगा; यह 'नाही' में है। और यदि दस व्यक्तियों ने संयुक्त रूप से दस बकरियाँ खरीदीं, फिर प्रत्येक ने एक बकरी ज़िबह कर दी, तो जायज़ है, और सारा माँस उन सब में वज़न के अनुसार बाँटा जाएगा। और यदि उन्होंने ढेरी (१) लगा-लगाकर बाँट लिया तो भी जायज़ है, बशर्ते प्रत्येक ने पैरों, सिरी (सिर) और खाल में से कुछ-कुछ हिस्सा लिया हो। इसी प्रकार यदि प्रत्येक ने अलग-अलग खरीदी हो और सब मिल (२) गई हों, फिर प्रत्येक ने एक-एक बकरी ज़िबह कर दी और उस पर सब आपस में सहमत हो गए, तो भी जायज़ है; यह 'खज़ाना अल-मुफ़्तीन' में है। 'अज़हिया ज़फ़रानी' में है कि सात व्यक्तियों ने मिलकर सात बकरियाँ खरीदीं ताकि सब लोग कुर्बानी करें और किसी के लिए कोई बकरी निश्चित नहीं की, फिर बिना निर्धारण के ज़िबह कर दिया, तो 'क़यास' (अनुमान) यह है कि जायज़ न हो, लेकिन 'इस्तेहसानन' जायज़ है। स्पष्ट रहे कि जो कहा गया कि सात बकरियाँ संयुक्त रूप से खरीदीं, इसमें दो संभावनाएँ हैं: एक यह कि इस प्रकार खरीदीं कि प्रत्येक बकरी उन सब में

साझा हो, और दूसरा यह कि सात बकरियाँ इस प्रकार खरीदीं कि प्रत्येक के लिए एक बकरी हो परंतु वह निर्दिष्ट न हो। यदि दूसरा अर्थ है, तो वह सर्वसम्मति से जायज़ है क्योंकि प्रत्येक ने पूरी बकरी की कुर्बानी की। और यदि पहला अर्थ है, तो जो नियम बताया गया है वह दो मतों में से एक के अनुसार है, क्योंकि यदि बकरी दो व्यक्तियों में साझा हो और दोनों उसकी कुर्बानी करें, तो कुछ स्थानों पर उल्लेख है कि यह जायज़ है; यह 'मुहीत' में है। यदि दो बकरियाँ दो व्यक्तियों के बीच साझा हों और दोनों ने अपने-अपने 'नुसुक' (३) से उनकी कुर्बानी कर दी, तो दोनों का अनुष्ठान पूरा हो जाएगा; इसके विपरीत यदि दो ग़ुलाम दो व्यक्तियों में साझा हों और दोनों ने अपने-अपने कफ़ारे के बदले उन्हें आज़ाद किया, तो जायज़ नहीं है। एक ऊँट दो व्यक्तियों में साझा है और दोनों ने उसकी कुर्बानी कर दी; यदि उनमें से किसी का सातवाँ भाग या दो-सातवें भाग हों और शेष दूसरे का हो, तो जायज़ है, और यदि दोनों का आधा-आधा (निसफ़ा-निसफ़) हो, तो भी सही मत के अनुसार जायज़ है; जैसा कि 'खज़ाना अल-मुफ़्तीन' में है।

**अध्याय नौ: विविध विवरण**

यदि कुर्बानी के उद्देश्य से दो बकरियाँ खरीदीं, फिर उनमें से एक नष्ट हो गई और उसने दूसरी को कुर्बान कर दिया, फिर नष्ट हुई...

---

1. अनिवार्य नहीं होगा क्योंकि अब उसने अपनी बकरी ज़िबह की या दूसरे के आदेश से उसकी बकरी ज़िबह की। (१) अंदाज़े से (२) पहचान नहीं होगी (३) जो मामला कुर्बानी आदि की तरह उस पर अनिवार्य था।

---

اس طرح کہ ایک نے دو دینار دیے اور دوسرے نے اڑھائی دیئے اور تیسرے نے تین دینار دیے اور چوتھے نے بھی تین دینار دیئے اور پانچویں نے ساڑھے تین دینار دیئے تو بھی سب کی طرف سے جائز ہے کیونکہ حصہ قربانی کمتر ساتواں حصہ ہے یہ محیط سرخسی میں ہے۔ اگر سات آدمیوں نے ایک گائے قربانی کرنے کے واسطے خریدی پھر ساتوں میں سے ایک مر گیا اور اس کے بالغ وارثوں نے کہا کہ تم لوگ اس کو اپنی طرف سے اور میت کی طرف سے قربانی کردو تو استحساناً جائز ہے اور اگر باقیوں نے بلا اجازت وارثوں کے ذبح کردی تو ان کی طرف سے قربانی ادا نہ ہوگی کیونکہ حصہ میت قربت نہ ہوگا کیونکہ وارثوں کی طرف سے اجازت نہیں پائی گئی پس پوری گائے قربت میں مذبوح نہ ہوگی کیونکہ تجزی نہ تھی یہ کافی میں ہے اور اگر تین آدمیوں میں سے ہر ایک نے ایک ایک بکری قربانی کے واسطے خریدی ایک نے دس درہم کو خریدی اور دوسرے نے بیس درہم کو اور تیسرے نے تیس درہم کو خریدی اور ہر ایک بکری کی قیمت اس کے ثمن کے مثل ہے پھر یہ بکریاں باہم خلط ہو گئیں کہ ہر ایک شخص اپنی بکری پہچان نہیں سکتا ہے پھر سبھوں نے ان کی قربانی کردی تو سب کی طرف سے ادا ہو جائے گی مگر تیس درہم کا خریدنے والا بیس درہم صدقہ کر دے اور بیس درہم والا دس درہم صدقہ کر دے اور دس والا کچھ صدقہ نہ کرے گا اور اگر ہر ایک نے دوسرے کو اجازت دے دی کہ بکری کو اس کی طرف سے ذبح کرنے تو سب کی طرف سے قربانی ادا ہو جائے گی اور ان پر کچھ صدقہ کرنا لازم نہ ہوگا یہ ناہی میں ہے اور اگر دس آدمیوں نے دس بکریاں مشترک خریدیں پھر ہر ایک نے ایک بکری ذبح کردی تو جائز ہے اور سب گوشت ان سب میں وزن سے تقسیم کیا جائے گا اور اگر انہوں نے ڈھیری (۱) لگا لگا کر بانٹ لیا تو جائز ہے بشرطیکہ ہر ایک نے پائے اور سری اور

کھال میں سے کچھ کچھ لیا ہو اسی طرح اگر ہر ایک نے علیحدہ خریدی ہو کر سب خلط (۲) ہو گئیں پھر ہر ایک نے ایک ایک بکری ذبح کردی اور اس پر سب نے باہم رضامندی کر لی تو بھی جائز ہے یہ خزانہ المفتین میں ہے۔ اضحیٰ زعفرانی میں ہے کہ سات آدمیوں نے باہم مشترک سات بکریاں خریدیں تاکہ ان بکریوں کی سب لوگ قربانی کریں اور ہر ایک کے واسطے کوئی بکری معین نہ کی پھر یوں ہی بلا تعین ذبح کر دیا تو قیاس یہ ہے کہ جائز نہ ہو مگر استحساناً جائز ہے واضح ہو کہ یہ جو فرمایا کہ باہم مشترک سات بکریاں خریدیں اس میں دو احتمال ہیں ایک یہ ہے کہ اسطور سے خریدیں کہ ہر بکری ان سب میں مشترک ہو اور دوسرا یہ ہے کہ سات بکریاں اسطور سے خریدیں کہ ہر ایک کے واسطے ایک بکری ہو مگر غیر معین متصلاً پس اگر دوسرے طور سے خریدنا مراد ہے تو وہ بالاتفاق جائز ہے کیونکہ ہر ایک نے پوری بکری قربانی کی اور اگر اول مراد ہے تو جو حکم ذکر فرمایا ہے وہ دو روایتوں میں سے ایک روایت کے موافق ہے کیونکہ اگر بکری دو شخصوں میں مشترک ہو اور دونوں نے اس کی قربانی کی تو بعض مقام پر مذکور ہے کہ یہ جائز ہے یہ محیط میں ہے اگر دو بکریاں دو شخصوں میں مشترک ہوں اور دونوں نے اپنے نسک (۳) سے ان کی قربانی کر دی تو دونوں کا نسک ادا ہو جائے گا بخلاف اس کے اگر دو غلام دو شخصوں میں مشترک ہوں اور دونوں نے اپنے اپنے کفارہ سے ان کو آزاد کیا تو جائز نہیں ہے۔ ایک اونٹ دو شخصوں میں مشترک ہے دونوں نے اس کی قربانی کر دی پس اگر دونوں میں سے کسی کا ساتواں حصہ یا دو ساتویں حصہ ہوں اور باقی دوسرے کا ہو تو جائز ہے اور اگر دونوں میں نصفا نصف ہو تو بھی اصح قول کے موافق جائز ہے کذا فی خزانہ المفتین۔

**باب نہم: متفرقات کے بیان میں**

اگر قربانی کی غرض سے دو بکریاں خریدیں پھر دونوں میں سے ایک ضائع ہوگئی اور اس نے دوسری کو قربانی کر دیا پھر ضائع شدہ

۱؎ لازم نہ ہوگا کیونکہ اب اس نے اپنی بکری ذبح کی یا دوسرے کے حکم سے اس کی بکری ذبح کی۔ (۱) اٹکل سے (۲) پہچان نہ ہوگی۔ (۳) جو امر مثل قربانی وغیرہ کے اس پر واجب تھا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (5) - 406 - Book of Sacrifice (Kitab al-Udhiyah)**

...found it during the days of sacrifice or after it, nothing will be obligatory upon him, whether this goat is superior or inferior compared to the one he sacrificed. This is in 'Al-Muhit'. If someone appoints an agent (Wakil) saying, "Buy a black cow for me for sacrifice," and the agent buys a 'Kabra' cow (black and white spotted), it will not be the responsibility of the principal (Muwakkil). If he appoints an agent saying, "Buy me a ram with horns and wide eyes," and the agent buys a hornless ram with small eyes, it will not be the responsibility of the principal because people desire such qualities in sacrificial animals; thus, the agent has violated the principal's instruction. If he appoints an agent to buy a two-year-old calf of a cow for him and does not specify its price, and the agent buys a 'Musinna' (a fully-grown cow), there are two cases: if the two-year-old calf costs less than the 'Musinna', the 'Musinna' will not be the principal's responsibility; but if both cost the same, the 'Musinna' will be binding on the principal because the agent deviated from the instructions in favor of something better for him. If he appoints an agent to buy a goat for sacrifice, and the agent buys it and hires someone for one dirham to drive it along, this (wage) will not be the principal's responsibility. This is in 'Az-Zahiriyyah'.

If someone says, "It is obligatory upon me for the sake of Allah to send a goat as a gift (Hady) or to sacrifice a goat," and then he sends a cow or camel as Hady or sacrifices a cow or camel, it shall be valid(1). If one person sacrifices a goat worth 90 dirhams, another sacrifices a cow worth 70 dirhams, and a third gives 100 dirhams in charity (Sadaqah), the one who sacrificed the goat is better than the one who sacrificed the cow because the price of the goat is higher; and the reward for the one who sacrificed the cow is much greater than the reward of the one who gave charity. If a person buys a goat for sacrifice while in a state of poverty during the days of sacrifice and performs the sacrifice, and then becomes wealthy (Ghani) within those same days, Sheikh Faqih Abu Muhammad (RA) said he should repeat the sacrifice, but other later scholars (Muta’akhkhirin) said he does not need to repeat it, and we adopt this view. If one appoints an agent saying, "Buy a 'Shah' (goat/sheep) for me for sacrifice," it should be known that 'Shah' is a generic noun covering both sheep (Dhan) and goats (Ma’z)(2). If he appoints an agent to buy a sheep and he buys a goat, or vice-versa, it will not be binding on the principal. This is in 'Al-Muhit'. If someone leaves a will (Wasiyyah) that a sacrifice be performed on his behalf without specifying an animal, the will is valid and shall be fulfilled with a goat. Similarly (3), if he does not leave a will but commands someone to sacrifice on his behalf without

specifying an animal, it is also valid. If he wills that "a cow be bought from my entire estate and sacrificed on my behalf," and then he dies and the heirs do not give permission, the will is valid for one-third of the estate without dispute; thus, a goat shall be bought with that one-third and sacrificed on his behalf. If he wills that "a cow be bought for 20 dirhams from my estate and sacrificed on my behalf," and then he dies and one-third of his estate is less than 20 dirhams, then according to our school (Madhhab), a goat shall be bought for whatever amount is available and sacrificed. This is in 'Az-Zakhirah'.

If a person wills that "if I die, buy a goat with these twenty dirhams of mine and sacrifice it on my behalf," and then he dies and one dirham from those coins is lost, then according to Imam-e-Azam (Imam Abu Hanifah), it is not permissible to perform the sacrifice from the remainder. However, the Sahibayn (Imam Abu Yusuf and Imam Muhammad), drawing an analogy (Qiyas) to a slave(1) bought for manumission, stated that from the remaining nineteen dirhams... (continued on the next page).

**Footnotes:** 1- It will not be his responsibility because this description was useless. 2- 'Thaniyyah': an animal in its second year; 'Musinna': an animal in its third year. 3- All this is applicable if he performed these actions during the days of Sacrifice (Ayyam-un-Nahr). 1- It will be valid. (2) Sheep and goat. (3) As if he said, "Let a goat be sacrificed."

**फ़तावा-ए-आलमगीरी ..... जिल्द (5) - 406 - किताब अल-उदहिया (क़ुर्बानी का बयान)**

...को क़ुर्बानी के दिनों में या उसके बाद पाया, तो उस पर कुछ वाजिब न होगा, चाहे वह बकरी उस बकरी की तुलना में जो उसने क़ुर्बानी की है, बेहतर हो या कमतर हो। यह 'मुहीत' में है। और अगर किसी को वकील बनाया कि "मेरे लिए क़ुर्बानी के वास्ते काली गाय ख़रीदे," और उसने 'कबरा' (काली-सफ़ेद चितकबरी) गाय ख़रीदी, तो वह मुवक्किल (काम सौंपने वाले) के ज़िम्मे न होगी। और अगर वकील बनाया कि "मेरे लिए सींगों वाला और बड़ी आँखों वाला मेंढा ख़रीदे," और उसने बिना सींगों वाला और छोटी आँखों वाला मेंढा ख़रीद लिया, तो वह मुवक्किल के ज़िम्मे न होगा, क्योंकि लोग क़ुर्बानी के जानवरों में ऐसी खूबियों को पसंद करते हैं, इसलिए वकील ने मुवक्किल के हुक्म की मुख़ालफ़त की। और अगर वकील बनाया कि "मेरे लिए गाय का दो साल का बच्चा ख़रीदे" और उसकी क़ीमत तय नहीं की, और वकील ने 'मुसिन्ना' (पूर्ण आयु की गाय) ख़रीद ली, तो इसमें दो सूरतें हैं: अगर दो साल का बच्चा मुसिन्ना की तुलना में कम दाम का मिलता है, तो मुसिन्ना मुवक्किल के ज़िम्मे न होगी; और अगर दो साल का बच्चा और मुसिन्ना दोनों एक ही दाम के मिलते हैं, तो मुसिन्ना मुवक्किल के ज़िम्मे लाज़िम होगी, क्योंकि वकील ने मुवक्किल के हुक्म को छोड़कर उसके हक़ में बेहतर चीज़ चुनकर इख़्तिलाफ़ किया है। और अगर वकील बनाया कि "मेरे लिए क़ुर्बानी के लिए एक बकरी ख़रीदे," फिर वकील ने ख़रीद ली और एक आदमी को उसे हांक कर लाने के लिए एक दिरहम की मज़दूरी पर रखा, तो यह (मज़दूरी) मुवक्किल के ज़िम्मे न होगी। यह 'ज़हीरिया' में है।

अगर किसी ने कहा, "अल्लाह के वास्ते मुझ पर वाजिब है कि मैं एक बकरी 'हदिया' (तोहफ़े के तौर पर मक्का) भेजूँ या एक बकरी की क़ुर्बानी करूँ" फिर उसने गाय या ऊँट का हदिया भेजा या गाय या ऊँट की क़ुर्बानी कर दी, तो यह जायज़ होगा(1)। एक शख़्स ने 90 दिरहम की बकरी की क़ुर्बानी की, दूसरे ने 70 दिरहम की गाय की क़ुर्बानी की, और तीसरे ने 100 दिरहम सदक़ा कर दिए, तो बकरी वाले की क़ुर्बानी गाय वाले की तुलना में बेहतर है क्योंकि इसकी क़ीमत ज़्यादा है, और जिसने गाय की क़ुर्बानी की है उसका सवाब सदक़ा करने वाले की तुलना में बहुत ज़्यादा है। एक शख़्स ने ग़रीबी की हालत में क़ुर्बानी के दिनों में एक बकरी क़ुर्बानी के लिए ख़रीदकर उसकी क़ुर्बानी कर दी, फिर उन्हीं दिनों में वह अमीर (ग़नी) हो गया, तो शेख़ फ़क़ीह अबू मुहम्मद रहमतुल्लाह अलैहि ने फ़रमाया कि वह क़ुर्बानी को दोहराए, लेकिन उनके अलावा दूसरे मुतअख़िरीन (बाद के विद्वान) ने फ़रमाया कि दोहराना ज़रूरी नहीं है, और हम इसी को पसंद करते हैं। एक शख़्स को वकील बनाया कि "मेरे लिए एक 'शाह' (बकरी) क़ुर्बानी के लिए ख़रीद दे," तो यह जानना चाहिए कि 'शाह' एक

सामान्य संज्ञा है जिसमें भेड़ और बकरी(2) दोनों शामिल हैं। और अगर किसी को वकील बनाया कि "मेरे लिए भेड़ (ज़ान) ख़रीदे" और उसने बकरी (मअज़) ख़रीदी, या इसके उलट हुआ, तो मुवक्किल के ज़िम्मे वह लाज़िम न होगी। यह 'मुहीत' में है। अगर किसी ने वसीयत की कि "मेरी तरफ़ से क़ुर्बानी कर दी जाए" और किसी विशेष जानवर का ज़िक्र नहीं किया, तो वसीयत जायज़ है और बकरी पर लागू होगी। इसी तरह (3) अगर वसीयत नहीं की बल्कि किसी को हुक्म दिया कि "मेरी तरफ़ से क़ुर्बानी कर दो" और जानवर नहीं बताया, तो भी जायज़ है। और अगर वसीयत की कि "मेरी पूरी छोड़ी हुई संपत्ति से एक गाय ख़रीदकर मेरी तरफ़ से क़ुर्बानी की जाए," फिर वह मर गया और वारिसों ने इजाज़त नहीं दी, तो एक तिहाई (1/3) संपत्ति से बिना किसी विवाद के वसीयत जायज़ है; अतः एक तिहाई संपत्ति से बकरी ख़रीदकर उसकी तरफ़ से क़ुर्बानी की जाएगी। और अगर वसीयत की कि "मेरे माल से 20 दिरहम की एक गाय ख़रीदकर मेरी तरफ़ से क़ुर्बानी की जाए," फिर वह मर गया और उसकी एक तिहाई संपत्ति 20 दिरहम से कम है, तो हमारे मज़हब के अनुसार जितनी रक़म हो उसकी बकरी ख़रीदकर क़ुर्बानी कर दी जाएगी। यह 'ज़खीरा' में है।

अगर एक शख़्स ने वसीयत की कि "अगर मैं मर जाऊँ तो मेरे इन 20 दिरहमों से एक बकरी ख़रीदकर मेरी तरफ़ से क़ुर्बानी की जाए," फिर वह मर गया और उन दिरहमों में से एक दिरहम खो गया, तो बाकी बचे पैसों से उसकी तरफ़ से क़ुर्बानी करना इमाम-ए-आज़म रह. के नज़दीक जायज़ नहीं है। और साहिबैन (इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद) ने उस ग़ुलाम(1) पर जिसे आज़ाद करने के लिए ख़रीदा जाए, क़ियास (तुलना) करते हुए फ़रमाया कि बाकी 19 दिरहमों से उसकी तरफ़ से... (अगले पृष्ठ पर जारी)।

**फुटनोट्स:** 1- ज़िम्मे न होगी क्योंकि यह सिफ़त बेकार थी। 2- थनिया: वह जानवर जो दूसरे साल में हो; मुसिन्ना: जो तीसरे साल में हो। 3- यह सब उस समय है जब उसने ये काम क़ुर्बानी के दिनों में किए हों। 1- अदा हो जाएगी। (2) भेड़ और बकरी। (3) गोया उसने यह कहा कि बकरी की क़ुर्बानी कर दी जाए।

کو ایام قربانی میں یا اس کے بعد پایا تو اس پر کچھ واجب نہ ہوگا خواہ یہ بکری اس کی بہ نسبت جو قربانی کی ہے برتر ہو یا کم تر ہو یہ محیط میں ہے۔ اور اگر کسی کو وکیل کیا کہ میرے واسطے کالی گائے قربانی کے واسطے خریدے اس نے کبرای گائے جس میں سیاہی و سفیدی تھی خریدی تو موکل کے ذمہ نہ پڑے گی اور اگر وکیل کیا کہ میرے واسطے مینڈھا سینگوں دار فراخ چشم خرید دے اس نے مینڈھا بے سینگوں والا غیر فراخ چشم خرید دیا تو موکل کے ذمہ نہ پڑے گا کیونکہ یہ وصف ایسا ہے کہ لوگ قربانی کے جانور ایسی وصف مرغوب رکھتے ہیں پس وکیل نے موکل کے حکم کی مخالفت کی اور اگر وکیل کیا کہ میرے واسطے گائے کا دوسرے برس کا بچہ خرید دے اور اس کا کچھ ثمن بیان نہ کیا اور وکیل نے مسنہ خرید دیا تو اس میں دو صورتیں ہیں کہ اگر ثنیہ بچہ بہ نسبت مسنہ کے کم داموں کو آتا ہو تو مسنہ موکل کے ذمہ نہ پڑے گا اور اگر ثنیہ و مسنہ دونوں ایک داموں کو آتے ہیں تو مسنہ موکل کے ذمہ لازم ہوگا کیونکہ وکیل نے موکل کا حکم چھوڑ کر اس کے حق میں بہتر چیز کی طرف خلاف کیا ہے اور اگر وکیل کیا کہ میرے واسطے ایک بکری قربانی کے لیے خرید دے پس وکیل نے خریدی اور ایک شخص کو مزدور کیا جو اس کو ایک درہم اجرت پر ہانک لایا تو یہ موکل کے ذمہ نہ ہوگا یہ ظہیریہ میں ہے۔ اگر کہا اللہ کے واسطے مجھ پر واجب ہے کہ ایک بکری ہدی بھیجوں یا ایک بکری قربانی کروں پھر اس نے گائے یا اونٹ کی ہدی بھیجی یا گائے یا اونٹ قربانی کر دیا تو جائز ہوگا(۱)۔ ایک شخص نے نوے درہم کی بکری قربانی کی اور دوسرے نے ستر درہم کی گائے کی قربانی کی اور تیسرے نے سو درہم صدقہ کر دیے تو بکری والے کی قربانی بہ نسبت گائے والے کے بہتر ہے کیونکہ بکری کی قیمت سے زیادہ ہے اور جس نے گائے قربانی کی ہے اس کا ثواب بہ نسبت

صدقہ کرنے والے کے بہت زیادہ ہے۔ ایک شخص نے فقیری کی حالت میں ایام قربانی میں ایک بکری قربانی کے واسطے خرید کر اس کی قربانی کر دی پھر ایام قربانی ہی میں غنی ہو گیا تو شیخ فقیہ ابومحمد رحمہ اللہ نے فرمایا کہ قربانی کا اعادہ کرے اور ان کے سوائے دوسرے متاخرین نے فرمایا کہ اعادہ نہ کرے اور ہم اسی کو اختیار کرتے ہیں۔ ایک شخص کو وکیل کیا کہ میرے واسطے ایک شاۃ قربانی کے لیے خرید دے تو جاننا چاہیے کہ شاۃ اسم جنس ہے ضان و معز(۲) دونوں کو شامل ہے اور اگر کسی کو وکیل کیا کہ میرے واسطے ضان خرید دے اس نے معز خریدی یا اس کے برعکس واقع ہوا تو موکل کے ذمہ لازم نہ ہوگی یہ محیط میں ہے۔ اگر کسی نے وصیت کی کہ میری طرف سے قربانی کر دی جائے اور کوئی جانور بیان نہ کیا تو وصیت جائز ہے اور بکری پر واقع ہوگی۔ اسی طرح (۳) اگر وصیت نہیں کی بلکہ کسی شخص کو حکم دیا کہ میری طرف سے قربانی کر دے اور کوئی جانور بیان نہیں کیا تو بھی جائز ہے اور اگر یوں وصیت کی کہ تمام میرے مال متروکہ سے ایک گائے خرید کر میری طرف سے قربانی کی جائے پھر وہ مر گیا اور وارثوں نے اجازت نہ دی تو تہائی مال سے بلا خلاف وصیت جائز ہے پس تہائی مال سے بکری خرید کر اس کی طرف سے قربانی کی جائے گی اور اگر یوں وصیت کی کہ میرے مال سے بیس درہم کی ایک گائے خرید کر میری طرف سے قربانی کر دی جائے پھر مر گیا اور اس کا تہائی مال بیس درہم سے کم ہے تو ہمارے مذہب کے موافق جس قدر پہنچے اس کی بکری خرید کر قربانی کر دی جائے گی یہ ذخیرہ میں ہے۔ اگر ایک شخص نے وصیت کی کہ اگر میں مر جاؤں تو میرے ان بیس درہموں سے ایک بکری خرید کر میری طرف سے قربانی کر دی جائے پھر مر گیا اور ان درہموں سے ایک درہم جاتا رہا تو ما بقی سے اس کی طرف سے قربانی کرنا امام اعظمؒ کے نزدیک نہیں جائز ہے اور صاحبینؒ نے اس مملوک (۱) پر جو آزاد کرنے کے واسطے خریدا جائے قیاس کر کے فرمایا کہ ما بقی انیس درہم سے اس کی طرف۔

**حواشی:** ۱- نہ پڑے گی کیونکہ یہ وصف بے فائدہ تھا۔ ۲- ثنیہ جس کو دوسرا سال ہو اور مسنہ جس کو تیسرا سال ہو۔ ۳- یہ سب اس وقت ہے کہ جب نذر ان ایام نحر میں کیے ہیں۔ ۱- ادا ہوگا۔ (۲) بھیڑ و بکری۔ (۳) گویا یوں کہا کہ بکری کی قربانی کر دی جائے۔

**Fatawa Alamgiri ..... Volume (8), Page 407, Book of Sacrifice (Kitab al-Adhiya)** ...from buying an animal and performing the sacrifice. A person bought a cow and said to another person, "O so-and-so, I have made you a partner in two-thirds of it," then he will have two-thirds of it. And if he said, "I have made you a partner in the whole of it," then he will have half of it, because if we give him the entire cow, there would be no partnership. And if he said, "I have assigned a share or a piece of it for you," this is void (batil), even though by this statement I have assigned a 'sahm' (share) for you. According to Imam Azam (RA), a 'sahm' should be a sixth part, because according to the Imam, the interpretation of 'sahm' is a sixth part, as is known from the Book of Wills (Kitab al-Wasaya). However, since there is also a possibility that 'sahm' could mean less than a sixth part, it was declared void. A person bought a cow for ten dinars, took possession of it, and told another person, "I have made you a partner for two dinars in it," and he accepted, then that person will be a partner for one-fifth; this is in 'Zahiriyya'. A person bought a goat and sacrificed it, then a defect was found in it which reduces its value, but the defect is not such that the sacrifice cannot be performed. He will have the right to take back the reduction in value caused by the defect from the seller. It will not be obligatory for him to give what he took back in charity (sadqah), because the sacrifice of that defective goat has been fulfilled, and nothing more than that is obligatory upon him. If the seller said, "I will take back the slaughtered goat and return the price," it would be obligatory for the buyer to give the entire price in charity, except for the portion representing the defect's reduction. If the price was lost with the seller (unrecoverable), then nothing would be obligatory upon him. If some was recovered and some was lost, he should give in charity the recovered portion minus the part proportional to the defect's value reduction. For example, if the price was ten dirhams and the defect portion was one dirham, he should give nine-tenths of the recovered price in charity; this is in 'Zakheera'. And with dirhams, hair (mustarsil) that are an impediment are not considered; this is in 'Qayna'.

**Description of various cases of demanding price from some and exonerating others** If someone usurped an animal that was meant for sacrifice, he would be liable for its price because he took someone else's property without permission. When the person performing the sacrifice receives the price, he should give it in charity because the usurper (ghasib) became the owner by paying the fine. It is as if the person performing the sacrifice sold it to him, and in the case of selling, it is obligatory to give the price in charity; similarly, it will be obligatory in this case. It is

not permissible to gift (hiba) the price of the slaughtered sacrificial animal (adhiya) to someone else. If he returned the price to the usurper, nothing would be obligatory upon him because the said sacrificial animal was lost without his action. If the one performing the sacrifice exonerated the usurper from the price, whether the one performing the sacrifice is wealthy or poor, it would not be obligatory for him to give anything in charity. This is because, initially, he had the right to gift the original item to the usurper; likewise, he has the right to make the usurper the owner of its substitute. Similarly, if he made a settlement (sulh) with the usurper regarding the price of the slaughtered animal, it would be obligatory for him to give in charity whatever amount of the price came into his hands; it is not necessary to give more in charity than that, because this settlement is a combination of 'ibra' (exoneration from a part) and 'istifa' (collecting a part). And if he made a settlement for food or goods, it is mentioned in 'Muheet Sarkhasi'. A poor person bought a goat and it died during the days of sacrifice, and a kid was found in its womb; he has the choice to eat it or benefit from the goods, because by way of preference (istihsan), the substitute should be like the original in quality and nature. He should give this kid in charity; this is in 'Zakheera Dari'. And if he bought the sacrificial animal for molten silver (seem-e-gadakhta) which was specified, and performed the sacrifice, then the seller...

1. Divide the total amount into ten parts and give nine parts in charity. (1) Whether raw or cooked. (2) Hanging hair. (3) Exonerating from the price and taking a portion.

**फ़तावा आलमगीरी ..... खंड (8), पृष्ठ 407, किताब अल-अज़हिया (कुर्बानी की किताब)** ...से जानवर खरीद कर कुर्बानी की जाएगी। एक व्यक्ति ने एक गाय खरीदी और दूसरे व्यक्ति से कहा, "हे अमुक व्यक्ति! मैंने तुम्हें इसके दो-तिहाई का हिस्सेदार बनाया," तो उसकी दो-तिहाई हिस्सेदारी होगी। और यदि उसने कहा, "मैंने तुम्हें इसके पूरे का हिस्सेदार बनाया," तो उसका आधा हिस्सा होगा, क्योंकि यदि हम उसे पूरी गाय दे दें, तो साझेदारी नहीं रहेगी। और यदि उसने कहा कि "मैंने इसका एक हिस्सा या टुकड़ा तुम्हारे लिए कर दिया," तो यह बात बातिल (अमान्य) है, भले ही इस कथन से मैंने तुम्हारे लिए इसका एक 'सहम' (हिस्सा) कर दिया हो। इमाम आज़म (रह.) के निकट सहम का अर्थ छठा हिस्सा होना चाहिए, क्योंकि इमाम के निकट सहम की व्याख्या छठा हिस्सा है, जैसा कि किताबुल वसाया (वसीयत की किताब) से ज्ञात हुआ है। लेकिन चूंकि 'सहम' से छठे हिस्से से कम मुराद होने की भी संभावना है, इसलिए इसे बातिल करार दिया गया है। एक व्यक्ति ने दस दीनार की एक गाय खरीदी, उस पर कब्ज़ा किया और दूसरे व्यक्ति से कहा, "मैंने तुम्हें इसमें दो दीनार का साझी बनाया," और उसने स्वीकार कर लिया, तो वह व्यक्ति पांचवें हिस्से का साझी होगा; यह 'ज़हीरिया' में उल्लेखित है। एक व्यक्ति ने एक बकरी खरीदी और उसकी कुर्बानी कर दी, फिर उसमें कोई ऐसा दोष पाया गया जिससे उसकी कीमत कम हो जाती है, लेकिन वह दोष ऐसा नहीं है कि कुर्बानी न हो सके, तो उसे अधिकार होगा कि वह विक्रेता (बाइ') से दोष के कारण हुई कमी का मुआवज़ा वापस ले ले। और जो कुछ उसने वापस लिया, उसका सदक़ा करना उस पर अनिवार्य (वाजिब) नहीं होगा, क्योंकि उसी दोषपूर्ण बकरी की कुर्बानी अदा हो गई है और इससे अधिक उस पर कुछ वाजिब नहीं है। और यदि विक्रेता ने कहा कि "मैं ज़िबह की हुई बकरी वापस लेता हूँ और कीमत वापस कर देता हूँ," तो खरीदार (मुश्तरी) पर वाजिब होगा कि वह दोष की कमी के हिस्से के अलावा शेष पूरी कीमत सदक़ा कर दे। और यदि उसकी कीमत विक्रेता पर डूब गई (वसूली न जा सकी), तो उस पर कुछ वाजिब न होगा। और यदि कुछ प्राप्त हुआ और कुछ डूब गया, तो जितना प्राप्त हुआ है उसमें से भी दोष की कमी के अनुपात में हिस्सा निकालकर बाकी हिस्सा सदक़ा कर दे। उदाहरण के लिए, यदि कीमत दस दरहम थी और दोष का हिस्सा एक दरहम था, तो प्राप्त कीमत में से नौ-दसवां हिस्सा सदक़ा कर दे; यह 'ज़खीरा' में है। और दरहम के साथ बाल (मुस्तरसिल) जो रुकावट पैदा करने वाले हों, मान्य नहीं हैं; यह 'क़ीना' में है।

**कुछ से कीमत मांगना और कुछ को बरी कर देने की विभिन्न स्थितियों का वर्णन** यदि किसी ने किसी दूसरे के कुर्बानी किए हुए जानवर को छीन लिया (ग़सब कर लिया), तो वह उसकी कीमत का

ज़िम्मेदार होगा, क्योंकि उसने बिना अनुमति के किसी दूसरे की मिल्कियत का माल लिया है। और जब कुर्बानी करने वाले को उसकी कीमत प्राप्त हो जाए, तो वह उसे सदक़ा कर दे, क्योंकि ग़ासिब (छीनने वाला) हर्जाना देने से उसका मालिक हो गया। तो यह ऐसा हुआ मानो कुर्बानी करने वाले ने उसे उसके हाथ बेच दिया हो, और बेचने की स्थिति में प्राप्त कीमत का सदक़ा करना वाजिब होता है, वैसे ही इस स्थिति में भी वाजिब होगा। और यह जायज़ नहीं है कि वह ज़िबह की हुई अज़हिया (कुर्बानी के जानवर) की कीमत किसी गैर को उपहार (हिबा) में दे दे। और यदि उसने ग़ासिब को कीमत लौटा दी, तो उस पर कुछ वाजिब न होगा क्योंकि उक्त अज़हिया उसके कार्य के बिना ही नष्ट हुआ है। और यदि कुर्बानी करने वाले ने ग़ासिब को उसकी कीमत से मुक्त (बरी) कर दिया, चाहे कुर्बानी करने वाला धनी हो या निर्धन, तो उस पर कुछ सदक़ा करना वाजिब न होगा। इसका कारण यह है कि प्रारंभ में उसे अधिकार था कि वह मूल वस्तु ग़ासिब को हिबा कर दे, तो वैसे ही उसे इसके बदले को ग़ासिब की मिल्कियत बनाने का भी अधिकार है। इसी प्रकार, यदि उसने ज़िबह की हुई अज़हिया की कीमत के बारे में ग़ासिब के साथ समझौता (सुलह) कर लिया, तो उस पर वाजिब होगा कि जो कीमत उसके हाथ आई है उसे सदक़ा कर दे; इससे अधिक सदक़ा करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि यह सुलह 'इबरा' (कुछ छोड़ देना) और 'इस्तीफ़ा' (कुछ वसूल करना) का मिश्रण है। और यदि उसने किसी भोजन या सामग्री पर सुलह की, तो यह 'मुहीत सरखसी' में उल्लेखित है। एक निर्धन व्यक्ति ने एक बकरी खरीदी और वह कुर्बानी के दिनों में मर गई, और उसके पेट से एक बच्चा निकला, तो उसे अधिकार होगा कि वह उसे खा ले या उससे लाभ उठाए, क्योंकि बेहतर (इस्तेहसानन) यह है कि बदल (विकल्प) भी असल (मूल) के गुण और स्वभाव के समान होगा। वह इस बच्चे को सदक़ा कर दे; यह 'ज़खीरा दरी' में है। और यदि उसने अज़हिया को पिघली हुई चांदी (सीमे गदाख्ता) के बदले खरीदा जो निश्चित थी, और उसकी कुर्बानी कर दी, फिर विक्रेता ने...

1. कुल हिस्से को दस भाग करके उसके नौ हिस्से सदक़ा कर दे। (1) चाहे कच्चा हो या पका हुआ। (2) लटके हुए बाल। (3) कीमत से बरी करना और कुछ हिस्सा लेना।

فتاویٰ عالمگیری ..... جلد (۸) ۴۰۷ کتاب الاضحیۃ سے جانور خرید کر قربانی کیا جائے گا۔ ایک شخص نے ایک گائے خریدی اور دوسرے شخص سے کہا کہ اے فلاں شخص میں نے تجھے اس کی دو تہائی کا شریک کیا تو اس کی دو تہائی ہوگی اور اگر کہا کہ میں نے تجھے اس کے پورے کا شریک کیا تو نصف اس کی ہوگی کیونکہ اگر ہم اس کو پوری گائے دیں تو شرکت نہ ہوگی اور اگر کہا کہ میں نے اس کا حصہ یا ٹکڑا تیرے واسطے کر دیا تو یہ باطل ہے ہر چند کہ اس قول سے میں نے تیرے واسطے اس کا ایک سہم کر دیا امام اعظمؒ کے نزدیک چھٹا حصہ ہونا چاہیے کیونکہ امام کے نزدیک سہم کی تفسیر چھٹا حصہ ہے جیسا کہ کتاب الوصایا میں معلوم ہوا ہے کہ لیکن چونکہ سہم سے چھٹے حصے سے کم مراد ہونے کا بھی احتمال ہے اس واسطے باطل قرار دیا گیا ایک شخص نے دس دینار کو ایک گائے خرید کر قبضہ کر کے دوسرے شخص سے کہا کہ میں نے تجھے اس میں دو دینار کا شریک کیا اور اس نے قبول کر لیا تو وہ شخص پانچویں حصہ کا شریک ہو گا یہ ظہیر یہ میں ہے۔ ایک شخص نے ایک بکری خرید کر اس کی قربانی کردی پھر اس میں کوئی ایسا عیب پایا گیا کہ جس سے اس کی قیمت میں نقصان آتا ہے مگر ایسا نہیں ہے کہ اس کی قربانی نہ ہو سکے تو اس کو اختیار ہوگا کہ بائع سے نقصان عیب واپس لے اور جو کچھ واپس لیا اس کا صدقہ کر دینا اس پر واجب نہ ہوگا کیونکہ وہی معیوب بکری کی قربانی ادا ہوگئی ہے اور اس سے زیادہ اس پر کچھ واجب نہیں ہے اور اگر بائع نے کہا کہ میں مذبوحہ بکری واپس کیے دیتا ہوں اور ثمن واپس کر دیا تو مشتری پر واجب ہوگا کہ یہ سب ثمن سوائے حصہ نقصان عیب کے صدقہ کر دے اور اگر اس کا ثمن بائع پر ڈوب گیا تو اس پر کچھ واجب نہ ہوگا اور اگر کچھ وصول ہوا اور کچھ ڈوب گیا تو جس قدر وصول ہوا ہے اس میں سے بھی جتنا حصہ نقصان عیب کے پڑتے میں پڑتا ہو اس کو نکال کر باقی حصہ صدقہ کر دے مثلاً ثمن دس درہم تھے اور

حصہ عیب ایک درہم تو ثمن وصول شدہ میں سے نو دسویں حصے صدقہ کر دے یہ ذخیرہ میں ہے اور درہم کے ساتھ شعر (۲) مسترسل مانع میں معتبر نہیں ہے یہ قینہ میں ہے۔

**بعض سے قیمت طلب کرنا اور بعضوں کو بری کر دینے کی مختلف صورتوں کا بیان** ایک کسی کا قربانی کیا ہوا جانور غصب کر لیا تو اس کی قیمت کا ضامن ہوگا کیونکہ یہ غیر کا مال مملوک بدوں اس کی اجازت کے لے لیا ہے اور جب قربانی کرنے والے کو اس کی قیمت وصول ہو جائے تو اس کو صدقہ کر دے کیونکہ غاصب اس کی قیمت تاوان دینے سے اس کا مالک ہو گیا پس ایسا ہو کہ گویا قربانی کرنے والے نے اس کے ہاتھ فروخت کر دیا اور فروخت کرنے کی صورت میں ثمن صدقہ کرنا واجب ہوتا ہے ویسا ہی اس صورت میں واجب ہوگا اور یہ جائز نہیں ہے کہ اضحیہ مذبوحہ کی قیمت کسی غیر کو ہبہ کر دے اور اگر اس نے غاصب کو قیمت واپس کردی تو اس پر کچھ واجب نہ ہو گا کیونکہ اضحیہ مذکور بدوں اس کے فعل کے تلف ہوا ہے اور اگر قربانی کرنے والے نے غاصب کو اس کی قیمت سے بری کر دیا حالانکہ قربانی کرنے والا غنی ہے یا فقیر ہے تو اس پر کچھ صدقہ کرنا واجب نہ ہو گا اس کے واسطے کہ ابتدا میں اس کو اختیار تھا کہ اصل کو غاصب کو ہبہ کر دے پس ایسا ہی اس کے بدل کو غاصب کی ملک کر دینے کا بھی اختیار ہے اس طرح اگر مذبوحہ اضحیہ کی قیمت سے غاصب کے ساتھ صلح کرلی تو اس پر واجب ہو گا کہ جو کچھ اس کی قیمت اس کے ہاتھ آئی ہے اس کو صدقہ کردے اس سے زیادہ صدقہ کرنا لازم نہیں ہے کیونکہ یہ صلح ابراء (۳) بعض و استیفاء بعض ہے اور اگر کسی کھانے کی یا متاع پر صلح کی تو محیط سرخسی میں ہے۔ ایک تنگدست نے ایک بکری خریدی اور وہ ایام قربانی میں مرگئی اور اس کے پیٹ میں سے ایک بچہ نکلا تو اس کو اختیار ہوگا کہ یہ کھانے کی چیز کھائے یا متاع سے نفع اٹھائے اس واسطے کہ استحساناً بدل بھی برنج و برصفت اصل ہو گا یہ استانباچہ کو صدقہ کر دے یہ ذخیرہ دری میں ہے اور اگر اضحیہ کو سیم گداختہ کے عوض جو معین تھی خرید کی اور اس

کی قربانی کر دی پھر بائع نے ۱ جملہ دسویں حصہ کر کے اس کے نو حصہ صدقہ کر دے۔ (۱) خواہ خام ہو یا پختہ۔ (۲) بال لٹکے ہوئے۔ (۳) قیمت سے بری کرنا اور بعضے سے لینا۔

**Fatawa-e-Alamgiri ..... Volume (8) 408 Kitab al-Adhiya (Book of Sacrifice)**

If a piece of silver was returned due to a defect and the sacrificed animal was kept, the buyer must give the said price in charity (Sadaqah), and the religious obligation will be fulfilled. If two persons exchanged a ram and a ewe and both sacrificed their respective acquired animals, and then the buyer of the ram found a defect in it that reduces its value by one-tenth; if he wishes, he may take back the value of one-tenth of the slaughtered ewe, and no charity will be obligatory upon him, but the other person must give in charity the price of the meat equivalent to what was taken back from him. If he prefers to take the price of one-tenth of the live ewe as compensation, no charity will be obligatory upon him. If the seller of the ram wishes to take back the slaughtered ram, the buyer has the option to take the price of his ewe as compensation and give all of it in charity except for the defective portion, provided there is a defect. If he wishes, he may take the slaughtered ewe, and preferentially (Istihsanan), he should not give it in charity. Similarly, the one who returned the ewe should not give in charity the ram he agreed to take; this is in 'Tatar Khaniya'.

A woman has a necklace whose value reaches the Nisab (minimum threshold for zakat), and she resides in it with her husband; sacrifice (Qurbani) and Sadaqat al-Fitr are obligatory upon her. If her husband is capable of providing her residence, then sacrifice and Sadaqat al-Fitr are not obligatory upon her, whether the husband is wealthy or poor. The Sheikh says that the disagreement among the Imams in this matter is that if the said woman did not reside in it, it would be obligatory by consensus, and I have given this fatwa; this is in 'Quniyah'. Sheikh Ali bin Ahmad was asked about a person who has a debt owed to him by a bankrupt (Muflis) person; is Zakat lawful for him? He said no. Then he was asked if sacrifice is obligatory upon him? He said no, until he receives the debt; this is in 'Tatar Khaniya'. If a person's debt is such that it is currently due or deferred and is owed by a wealthy person, but he does not have enough money at hand to buy an animal for sacrifice, it is not mandatory for him to take a loan for sacrifice. Nor is it mandatory that when he receives this debt, he gives charity equal to the price of the sacrifice. However, it is necessary that if he has a strong belief that the debtor will pay, he should ask him for the money for the sacrifice. If a person has substantial wealth but it is absent, such as being held by a partner or in a business investment (Mudarabat), and he has enough Dirhams, Dinars, or goods to buy a sacrifice, then sacrifice is obligatory upon him; this is in 'Quniyah'. It is stated in 'Majmu' al-Nawazil' that four men each bought a

goat whose color and weight were identical. They tied them in one place, and in the morning, they found that one goat had died, and it was unknown whose goat it was. In this case, all the goats should be sold, and four goats should be purchased with the proceeds. Then each person should permit the others to slaughter and grant mutual release (Tahlil) so that the sacrifice on behalf of all becomes valid; this is in 'Muheet'.

A woman said to her husband, "Perform sacrifice on my behalf every year from my dowry (Mahr) which you owe me." If he did so, there is a difference of opinion. If the days of sacrifice pass and he does not perform it, he shall give its value in charity. However, if the woman gave this amount as charity to her poor husband, it is not permissible. And if the husband gave charity to his poor wife, it is not permissible. According to Imam Azam, this applies to both of them. If she gave it in charity to her slave girl, it is not permissible. If someone gave the meat of the sacrifice to a poor person with the intention of Zakat, then according to 'Zahir al-Riwayat', it will not be fulfilled. If a person does not find a sacrificial animal in his city or village, it is incumbent upon him to go to the place where people usually go to buy goats; as mentioned in 'Quniyah'.

1. Pieces of melted silver. 2. "A woman etc." is mentioned as such in the original, and reliable research will be in the preface. 3. The mention of "color" and "weight" is merely for illustration to show they were indistinguishable; otherwise, if they are indistinguishable even without these, the ruling remains the same. (1) One who does not deny (the debt).

यदि किसी दोष के कारण चाँदी का यह टुकड़ा वापस कर दिया गया और ज़िबह किया हुआ जानवर ले लिया गया, तो खरीदार (मुश्तरी) उक्त राशि को दान (सदक़ा) कर दे और उसकी धार्मिक बाध्यता पूरी हो जाएगी। और यदि दो व्यक्तियों ने एक मेढ़े और एक भेड़ के विनिमय (तबादले) पर सौदा किया और दोनों ने अपने खरीदे हुए जानवर की कुर्बानी कर दी, फिर मेढ़ा खरीदने वाले ने उसमें ऐसा दोष पाया जिससे उसकी कीमत में दसवें हिस्से की कमी आती है, तो यदि वह चाहे तो ज़िबह की गई भेड़ का दसवाँ हिस्सा वापस ले ले और उस पर कोई सदक़ा वाजिब नहीं होगा, लेकिन दूसरा व्यक्ति उतने मांस की कीमत दान कर दे जितना उसने वापस लिया है। और यदि वह जीवित भेड़ के दसवें हिस्से की कीमत हर्जाने के रूप में लेना चाहे, तो उस पर सदक़ा वाजिब नहीं होगा। और यदि मेढ़ा बेचने वाले ने ज़िबह किया हुआ मेढ़ा वापस लेना चाहा, तो खरीदार को अधिकार है कि वह अपनी भेड़ की कीमत हर्जाने के रूप में ले और दोष वाले हिस्से को छोड़कर बाकी सब दान कर दे, बशर्ते कि दोष हो। और यदि वह चाहे तो ज़िबह की गई भेड़ ले ले और इसे दान न करना ही बेहतर (इस्तेहसानन) है। इसी प्रकार, जिसने भेड़ वापस की है, वह उस मेढ़े को दान न करे जिसे लेने पर वह सहमत हो गया है; यह 'ततार खानिया' में है।

एक महिला के पास एक हार है जिसकी कीमत निसाब (न्यूनतम सीमा) तक पहुँचती है, वह उसमें अपने पति के साथ रहती है, तो उस पर कुर्बानी और सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब है। और यदि उसका पति उसे रहने के लिए घर देने में सक्षम है, तो उस पर कुर्बानी और सदक़ा-ए-फ़ित्र वाजिब नहीं होगा, चाहे पति धनी हो या गरीब। शेख कहते हैं कि इस मामले में इमामों के बीच मतभेद इस बात पर है कि यदि उक्त महिला उसमें न रहती होती, तो सर्वसम्मति से यह वाजिब होता, और मैंने यही फतवा दिया है; यह 'कुनिया' में है। शेख अली बिन अहमद से पूछा गया कि एक व्यक्ति का एक गरीब कर्जदार पर कर्ज है, तो क्या उसके लिए ज़कात लेना जायज़ है? उन्होंने कहा नहीं। फिर पूछा गया कि क्या उस पर कुर्बानी वाजिब है? उन्होंने कहा नहीं, जब तक कि वह कर्ज वसूल न कर ले; यह 'ततार खानिया' में है। यदि किसी व्यक्ति का कर्ज ऐसा है जो तुरंत देय है या मियादी है और वह किसी धनी व्यक्ति पर है, लेकिन फिलहाल उसके पास कुर्बानी के लिए जानवर खरीदने के पैसे नहीं हैं, तो उस पर यह अनिवार्य नहीं है कि वह कर्ज लेकर कुर्बानी करे। और यह भी अनिवार्य नहीं है कि जब उसे वह कर्ज मिले, तो वह कुर्बानी की कीमत के बराबर दान करे। लेकिन यह वाजिब है कि यदि उसे पक्का विश्वास हो कि कर्जदार पैसे दे देगा, तो वह उससे कुर्बानी के पैसे माँगे। एक व्यक्ति के पास

बहुत धन है लेकिन वह अनुपलब्ध है, जैसे कि उसके साथी के पास या निवेश (मुज़ारबत) में है, और उसके पास इतने नकद या सामान हैं कि वह कुर्बानी खरीद सकता है, तो उस पर कुर्बानी करना वाजिब है; यह 'कुनिया' में है। 'मजमूअ अल-नवाज़िल' में है कि चार लोगों ने चार बकरियाँ खरीदीं जिनका रंग और मोटाई एक जैसी थी। उन्होंने उन्हें एक जगह बाँध दिया, सुबह देखा तो एक बकरी मर गई थी और यह पता नहीं चला कि किसकी बकरी मरी है। ऐसी स्थिति में सभी बकरियाँ बेच दी जाएँगी और प्राप्त राशि से चार बकरियाँ खरीदी जाएँगी। फिर हर व्यक्ति दूसरे को ज़िबह करने की अनुमति दे और एक-दूसरे को स्वामित्व से मुक्त कर दे ताकि सबकी ओर से कुर्बानी मान्य हो जाए; यह 'मुहीत' में है।

एक महिला ने अपने पति से कहा कि मेरा मेहर (स्त्रीधन) जो तुम्हारे ऊपर है, उसमें से हर साल मेरी ओर से कुर्बानी कर दिया करो। यदि उसने कर दी, तो इसमें मतभेद है। और यदि कुर्बानी के दिन बीत जाएँ और कुर्बानी न की गई हो, तो वह उसकी कीमत दान करेगा। लेकिन यदि महिला ने यह राशि अपने गरीब पति को दान के रूप में दी, तो यह जायज़ नहीं है। और यदि पति ने अपनी गरीब पत्नी को दान दिया, तो भी जायज़ नहीं है। इमाम आज़म के अनुसार यह दोनों के लिए समान नियम है। और यदि अपनी दासी को दान में दी, तो भी जायज़ नहीं है। और यदि किसी गरीब को ज़कात की नीयत से कुर्बानी का मांस दिया, तो 'ज़ाहिर अल-रवायत' के अनुसार वह अदा नहीं होगी। और यदि किसी व्यक्ति को अपने शहर या गाँव में कुर्बानी का जानवर नहीं मिला, तो उसे वहाँ तक जाना चाहिए जहाँ से लोग बकरियाँ खरीदने जाते हैं; जैसा कि 'कुनिया' में है।

1. पिघली हुई चाँदी के टुकड़े। 2. एक महिला आदि मूल रूप से इसी तरह उल्लेखित है और विश्वसनीय जानकारी प्रस्तावना में होगी। 3. 'रंग' और 'मोटाई' का उल्लेख केवल उदाहरण के लिए है ताकि उनकी पहचान न हो सके; अन्यथा यदि इनके बिना भी पहचान न हो, तो भी यही नियम है। (1) जो इनकार करने वाला न हो।

---

کسی عیب کی وجہ سے یہ ٹکڑا چاندی کا واپس کیا اور مذبوحہ جانور کو لے لیا تو مشتری ثمن مذکور کو صدقہ کر دے اور قربت ادا ہو جائے گی اور اگر دو شخصوں نے مینڈھا و بھیڑی کے مبادلہ پر بیع کی اور دونوں نے اپنی خریدی ہوئی کو قربانی کیا پھر مینڈھا خریدنے والے نے اس میں ایسا عیب پایا جس سے اس کی قیمت میں دسویں حصہ کا نقصان آتا ہے پس اگر چاہے تو بھیڑی ہی ذبح کی ہوئی کا دسواں حصہ واپس لے لے اور اس پر کچھ صدقہ واجب نہ ہو گا مگر دوسرا اس قدر گوشت کی قیمت جتنا اس سے واپس لیا گیا ہے صدقہ کر دے اور اگر چاہے تو زندہ بھیڑی کے دسویں حصہ کی قیمت تاوان لے اور اس پر کچھ صدقہ کرنا واجب نہ ہو گا اور اگر مینڈھا بیچنے والے نے ذبح کیا ہوا مینڈھا واپس لینا پسند کیا تو اس کے مشتری کو اختیار ہے چاہے اس سے اپنی بھیڑی کی قیمت تاوان لے اور اس سب کو صدقہ کر دے سوائے حصہ عیب کے بشرطیکہ عیب ہو اور اگر چاہے تو مذبوحہ بھیڑی لے اور استحساناً اس کو صدقہ نہ کرے اسی طرح جس نے بھیڑی واپس دی ہے وہ اس مینڈھا کو بھی صدقہ نہ کرے جس کے لینے پر راضی ہو گیا ہے یہ تاتار خانیہ میں ہے۔

ایک عورت کا ایک ہار ہے کہ اس کی قیمت نصاب کو پہنچتی ہے اس میں خود مع اپنے شوہر کے رہتی ہے تو اس پر قربانی و صدقہ فطر واجب ہے اور اگر اس کا شوہر ساکن کرنے پر قادر ہے تو اس پر قربانی و صدقہ فطر واجب نہ ہو گا خواہ شوہر غنی ہو یا فقیر ہو۔ شیخ فرماتے ہیں کہ اس باب میں اختلاف ائمہ اس بات پر ہے کہ اگر عورت مذکورہ اس میں نہ رہتی ہو تو بالاتفاق واجب ہونا چاہیے اور میں نے یہی فتویٰ دیا ہے یہ قنیہ میں ہے۔ شیخ علی بن احمد سے دریافت کیا گیا کہ ایک شخص ہے جس کا ایک مقر (۱) مفلس پر قرضہ ہے پس آیا اس کے واسطے زکوٰۃ حلال ہے

فرمایا کہ نہیں پھر دریافت کیا گیا کہ آیا اس پر قربانی واجب ہے فرمایا کہ نہیں جب تک کہ اس کو وصول نہ ہو جائے یہ تاتار خانیہ میں ہے۔ ایک شخص کا قرضہ خواہ ایسا ہو جو فی الحال واجب الادا ہے یا میعادی ہے کسی مرد تو نگر پر آتا ہے حالانکہ سزدست اس کے پاس اتنا نہیں ہے کہ جس سے قربانی کے واسطے جانور خرید سکے تو اس پر یہ لازم نہیں ہے کہ قرض لے کر قربانی کرے اور یہ بھی لازم نہیں ہے کہ جس وقت اس کو یہ قرضہ وصول ہو تو بقدر قیمت اضحیہ کے صدقہ کرے مگر یہ واجب ہے کہ اگر اس کو گمان غالب ہو کہ قرض دار دے دے گا تو اس سے اضحیہ کے دام مانگے ایک شخص کا مال کثیر ہے مگر غائب ہے کہ اس کے شریک کے ہاتھ میں ہے یا مضارب کے قبضہ میں ہے اور خود اس کے پاس درہم و دینار یا متاع میں سے اس قدر ہے کہ اس سے اضحیہ خرید سکتا ہے تو اس پر قربانی کرنا واجب ہے یہ قنیہ میں ہے۔ مجموع النوازل میں ہے کہ چار آدمیوں نے چار بکریاں ہر ایک نے ایک بکری خریدی کہ جس کا رنگ ۳ و منائی یکساں ہے پھر انہوں نے ان کو ایک جگہ بند کر دیا پھر صبح کو جو دیکھا تو ایک بکری مرگئی تھی اور یہ معلوم نہیں ہوتا ہے کہ کس کی بکری مرگئی تو یہ بکریاں سب فروخت کر دی جائے گی اور ثمن سے چار بکریاں خریدی جائیں گی پھر ہر ایک شخص دوسرے کو ہر ایک کی ذبح کی اجازت دے اور ہر ایک دوسرے سے تحلیل بھی کرا لے تا کہ سب کی طرف سے قربانی جائز ہو جائے یہ محیط میں ہے۔

ایک عورت نے اپنے شوہر سے کہا کہ میرا مہر اس قدر جو تیرے اوپر ہے اس میں سے ہر سال میری طرف سے قربانی کر دے پھر اس نے کر دی تو اس میں اختلاف ہے اور قربانی کے ایام گذر جائیں و قربانی نہ کرے تو اس کی قیمت صدقہ کرے گا لیکن اگر عورت نے یہ قیمت اپنے شوہر فقیر کو صدقہ میں دی تو نہیں جائز ہے اور اگر شوہر نے اپنی عورت فقیر کو صدقہ دی تو نہیں جائز ہے یہ خلاصہ انہیں دونوں کے حق میں امام اعظم کے نزدیک ہے اور اگر اپنی باندی کو

صدقہ میں دی تو نہیں جائز ہے اور اگر کسی فقیر کو قربانی کا گوشت زکوٰۃ کی نیت سے دیا تو ظاہر الروایت کے موافق ادا نہ ہو گی اور اگر کسی شخص نے اپنے شہر یا گاؤں میں قربانی کا جانور پایا تو اس پر لازم ہے کہ جہاں لوگ شہر سے بکریاں خریدنے جاتے ہوں وہاں تک جائے کذا فی القنیہ۔

ا ۔ گلائی ہوئی چاندی کے ٹکڑے ۔ ۲۔ ایک عورت الخ اصل میں یوں ہی مذکورہ ہے اور معتبر حب مقدمہ میں تحقیق ہوگی ۔ ۳۔ قولہ رنگ اقوال یہ تک ومنائی صرف اتفاق بیان ہے تا کہ شناخت نہ ہو ورنہ اگر بدوں اس کے شناخت نہ ہو تو بھی یہی حکم ہے۔ (۱) منکر نہیں ہے۔